

हिन्दी विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक
श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहाराय,
सिद्धान्त-वारिधि, मन्दरभाकर, तत्त्वचिन्तामणि, पद्म, चार, व, वसु,
तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित ।

त्रयोदश भाग

परमार—पुराण (महावैवस्वत)

THE ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. XIII.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, *Prāchyavidyāmahārṇava*,
Siddhānta-vāridhi, *Sabda-ratnākara*, *Tattva-chintāmaṇi*, M. R. A. S.
Compiler of the Bengali Encyclopædia; the late Editor of *Banglā Sāhitya Parīṣad*
and *Kāyastha Patrikā*; author of *Castes & Sects of Bengal*, *Mayura-*
bhanja Archaeological Survey Reports and *Modern Buddhism*;
Hon. Archaeological Secretary, Indian Research Society,
Member of the Philological Committee, Asiatic
Society of Bengal &c. &c. &c.

Printed by B. Basu. at the Visvakosha Press.
Published by

Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu
9, Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta

1927.

हिन्दी

विषयकोष

(त्रयोदश भाग)

परमार—राजपूतजातिको एक प्रधान शाखा । राज-
पूतोंको ३६ शाखाओंके मध्य जो चार शाखा चम्पक-
से उत्पन्न हुई हैं, उनमेंसे परमार एक है । अंग्रेज
ऐतिहासिकोंके अनुवर्त्ती हो कर बहुतोंने इस खोको
'परमार' नामसे उल्लेख किया है । किन्तु प्राचीन शिलालि-
पि, ताम्रशासन और प्राचीन संस्कृत ग्रन्थादिमें 'पर-
'मार' नाम ही देखा जाता है ।

किस प्रकार इस खोको उत्पत्ति हुई और पर-
मार नाम क्यों पड़ा, वह पद्मपुराणके नवसाहसार्द्धवित
चतुष्टयपुर (शालिग्र) में आशिक्षित मालवराजाओंकी
शिलाप्रशस्ति, नागपुरको शिलालिपि और बहुतसे ताम्र-
शासनमें इस प्रकार लिखा है—पुराकालमें एक समय
महर्षिवशिष्ठ अर्बुद (बाबू) गिरिके ऊपर नाम करते
थे । विश्वासिष्ठ बलपूर्वक उनकी कामधेनु हर लाए ।
अगिष्ठके प्रभावमें चम्पकुराईसे एक योद्धा पुरुष निकला
जिनोंने पहले शत्रुको सेनाको निधन कर डाला ।
शत्रुको मार कर धेनु गाय लिये जब वे वशिष्ठके पास
गए तब वशिष्ठने उनसे कहा, "तुम 'परमार' बघाते
शत्रुहन्ता प्राणिकेन्द्र हो ।" तदनुसार तम महावीर-
के वंशधर भी परमार नामसे प्रसिद्ध हुए ।

राजपूत-इतिहासके एक टाडसाहबने इस परमार
खोके मध्य पुनः ३५ शाखाएं निर्देश की हैं । यथा—
१ मोरो—मुहम्मद खान खोके अनुवर्त्ती चित्तारकी
राजगण ।

२ सोडा—महम्मदकी अन्तर्गत रात भूभागके
सामन्तराजगण ।

३ गङ्गला—पुगल और मारवाड़के सामन्तगण ।

४ खेर—इस शाखाको राजधानी खेराल में है ।

५ उमरा सुमरा—पूर्वतन महम्मदवासी, सुमनगण
धर्मवलम्बी ।

६ विजिल—चन्द्रायतीके राजगण ।

७ महीपावत—मेवारके अधीन विजिलीके सामन्त-
गण ।

८ बलहार—उत्तरमहम्मदवासी ।

९ कावा—पूर्वकालमें मोराहमें प्रसिद्ध थे । अभी
सिरोहतिमें बसि सामान्य हैं ।

१० समता—मालव प्रदेशके अन्तर्गत राजगण ।

११ रेहार

१२ सुन्दा

१३ मोरातिया

१४ हरिहर

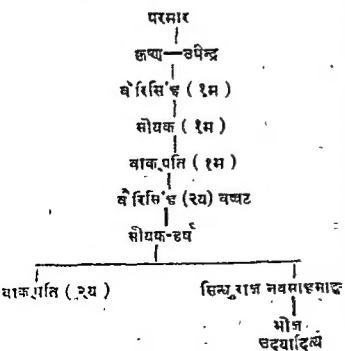
मालववासी छोटे छोटे

सामन्त ।

इसके अलावा चावन्ट, खेजर, सगरा, बड़कीटा, मुली, मम्मार, भोवा, कालपुर, काह्मो, कौहिला, पवा, काहोविया, धन्त, देवा, वरहर, जिपरा, पोसरा, पुला, निकुम्भ घोर टीरा आदि कई एक शाखाओंका पता मिलता है। इनके मध्य अधिकार्य इस्लाम धर्मावलम्बी हैं और सिन्धु नदीके दूसरे किनारे जा कर रहते हैं, डाडसाहबने लिखा है—एक समय समस्त मरुस्थली भूभाग परमारराजपूतोंके दखलमें था। इनकी विभिन्न शाखाओंने महेश्वर, धारा, मारु, उज्जयिनी, चन्द्र-भागा, चित्तौर, चावू, चन्द्रावती, महोब, मयदाना, परमावती, पमरकोट, बखेर, लोदवा और पत्तन आदि स्थानों पर एक समय की अधिकार जमाया था और वहाँ नगर भी बसाया था।

उक्त स्थानोंमें परमारराज एक समय राजत्व करते थे, उसका कोई प्रकृत धारावाहिक इतिहास नहीं मिलता। अधिक दिनकी बात नहीं है, डाक्टर बुहलर आदि पुराविदोंके शब्दमें मालवके परमार राजाओंका इतिहास बहुत कुछ संश्लेषित हुआ है। मालवके प्रबल पराक्रान्त परमार राजवंशका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

मालवके मानास्थानोंसे भाविष्कृत शिलालिपि और पद्मगुप्तके 'नवसाहस्राक्षरित'-से जो वंशावली पाई गई है वह इस प्रकार है—



उपेन्द्र हृण्यराजने अपने भुजमलसे मालवराज्य जीता। इस समय यह मालवराज्य इनके अधिकारमें आया, उसका आज तक भी ठीक ठाक पता नहीं चलता है। चौथी शताब्दीके शेष भागमें उनका अभ्युदय स्थापित किया जा सकता है।

उपेन्द्रके बाद उनके पुत्र वैरिसिंह, वैरिसिंहके पुत्र सोयक, सोयकके पुत्र वाकपति इन सबका कोई विशेष परिचय नहीं मिलता। शिलालिपिसे केवल इतना ही जाना जाता है कि ये तीनों ही महोब और धे और अनेक याम-यज्ञ किये थे।

वाकपतिके उत्तराधिकारी २य वैरिसिंह थे। इनका दूसरा नाम था वज्रटक्षामो। वज्रटके पुत्रका नाम ओहर्षदेव था जो सोयक नामसे मगहर थे। मेरुतुङ्गको प्रबन्धचिन्तामणिमें इनका 'सिंहभट' लिखा है। पद्मगुप्तका लिपुना है कि सोयक बड़वाटोकी राजा थे और इन्होंने एक हर्ष राजाको परास्त किया था (१)। उदयपुरकी प्रशस्तिमें लिखा है, कि इन्होंने युद्धक्षेत्रमें खोह्मिगदेवकी लक्ष्मी ग्रहण की थी। यह खोह्मिग राट्टकूट-वंशीय मान्यखेटके एक राजा थे। ८८३ सम्वत्में लक्ष्मीर्ष इनका ताम्रगासन पाया जाता है। इधर धनपालके 'वाईलक्ष्मी' नाममाला नामक ग्रन्थमें लिखा है कि, 'नव विक्रमगत-के. १०२८ वर्ष (८७२-७३ ई०) में मन्वखेट (मान्यखेट) मालवाधिपतिसे आक्रान्त हो कर लूटा गया था, उसी समय यह गन्ध रचा गया।' इससे जाना जाता है, कि ८७२-७३ ई० में ओहर्षदेवने मान्यखेट पर आक्रमण किया था और मन्वखेट की युद्धमें खोह्मिगदेवने प्राणत्याग वा राज्यत्याग किया। पद्मगुप्तने 'ओहर्षदेव' की महियो बड़जा का नाम उल्लेख किया है। उन्हींके गर्भसे सुप्रसिद्ध (२य) वाकपति उत्पन्न हुए। १०३१ विक्रमसम्वत्में (८७४ ई० में) लक्ष्मीर्ष वाकपतिका प्रथम ताम्रगासन पाया जाता है। इससे जान पड़ता है, कि उनके पिता ओहर्षदेव मान्यखेटको सम्वद पा कर भी उसका अधिक दिन तक उपभोग कर सके।

(१) यह हृण्यजति गजजति की एक शाखा नहीं है। राजपूतोंके १६ कुलोंमेंसे यह एक है। Tod's Rajasthan. Vol. I. pp. 82 (London ed.)

नवसाहसाङ्कचरित, शिलालिपि और वाक्पतिके ताम्रगासनमें इनके प्रतिक नामान्तर पाये जाते हैं, यथा—उत्पलराज, सुञ्ज, समोघवर्ष, धृतिवीरहभ और शोक्लभ ।

ये स्वयं विद्वान्, कवि, विद्योत्साही, काव्याभोदी और दिव्यजीवी और थे । प्रबन्धचिन्तामणि, भोजपदम्भ, नानाकाव्यसंग्रह और धनद्वारप्रथमं सुञ्जवाक्पति-राजकी कविता उद्धृत हुई है ।

इस वाक्पतिकी मभामें राजकाव्य पद्मगुप्त 'दशरूप' नामक प्रसिद्ध धनद्वारप्रथमचरिता धनञ्जय, विद्वान्-टोकाकार हलायुध और धनपाल प्रभृति पण्डितगण रहते थे । धनञ्जयके भाई और 'दशरूपावलोक' नामक दशरूपके टोकाकार धनिष्ठ भूपतेकी महाराज उत्पल-राज (वाक्पति) 'महासाधरपाल' उतनाये गये हैं । उदयपुरकी प्रगप्तिमें लिखा है, कि इन्होंने कर्णाट, लाट, केरल और चोलदेशको जय किया था । इन्होंने युवराजको जीत कर और उनके सेनापतिको मार कर त्रिपुरा जीतनेके लिये खट्ट ठाया था । उक्त 'युवराज' सेदिके कलसुरिवर्गीय एक राजा थे । प्रबन्धचिन्तामणि-कारने लिखा है कि सुञ्जने सोलह बार चालुक्यराज-स्य तैलपको जीता था । किन्तु प्रसिद्ध बार उनके भाग्यने पलटा जाया । इस बार गन्धी-वट्टादित्यके परा-मर्गसे गोदावरी नदी पार कर तैलाज्ञको राज्यसोमा पराज्यो हो पड़-से, लीं ही वे शत्रुसे परास्त हुए और कोट कर लिये गये । बन्दो गवस्थामें वाक्पतिने वति सुलसिन कदम्बरमायिन कवितायी रचना की जो । कुछ दिन बाद जब यह मालूम हो गया है, कि वे भागनेको चेष्टा कर रहे हैं, तब गलेमें फाँतो डाल कर उन्हें मार दिया । पद्मगुप्त-प्रथमा मालवराजाश्रीकी किसी शिलालिपिमें उक्त प्रसङ्ग मिलित नहीं रहने पर भी मेहतुङ्गकी वर्णनाको मिथ्या नहीं कह सकते । कारण चालुक्य राजाश्रीकी शिलालिपि और ताम्रगासन में तैलपकर्णक वाक्पतिका दमनप्रसङ्ग सविस्तार वर्णित हुआ है ।

प्रसिद्धतमकी 'सुभाषितप्रसङ्ग'में लिखा है, कि उन्होंने १५० विक्रमसम्बत् (८८३ ई.) में सुञ्जके

राजत्वकालमें उक्त ग्रन्थ सम्पूर्ण किया । इधर चालुक्य-शासनलिपिमें जाना जाता है कि तैलपने ८१८ गकाब्द (९८७-८ ई.) में इस लोकका परित्याग किया । इस हिमाचने जान पड़ता है, कि परमारराज सुञ्जवाक्पति ८८५में ८८७ ई. में चन्द्र किसी समय मारे गए होंगे ।

सुञ्ज वा स्य वाक्पतिके बाद उनके चतुर्ज मिश्र-राजने राज्यसूत्र किया । नवसाहसाङ्कचरितके मतसे उनके विसद थे 'नवसाहसाङ्ग' और 'कुमार नागायण' । इनका नाम ले कर पद्मगुप्तने 'नवसाहसाङ्कचरित'को रचना की । किसी किसी प्रबन्धमें इनका नाम मिश्रज वा सौमल लिखा गया है ।

मिश्रराजके प्रथम जीवनकी कथा पद्मगुप्त प्रथमा किसी शिलालिपिमें लिखी नहीं है । किन्तु मेहतुङ्ग प्रबन्धचिन्तामणिमें इन प्रकार लिखा है,—

'मिश्रराजका स्वभाव उनना अच्छा न था । इस कारण वाक्पति उनके प्रति वति कठोर व्यवहार करते थे । यद्यपि तब कि उन्होंने एक समय मिश्रराजके आचरण पर अत्यन्त क्षुब्ध हो उन्हें निर्वासित किया था । मिश्रराज गुजरातमें जा कर भस्मदावादके निकटवर्ती कामरुद्रनगरके समीप था कर रहने लगे । कुछ दिन बाद वे मालवकी लौट आए । इस बार मालवाधिप सुञ्जवाक्पति भी उनके साथ अच्छो तरह पैग पाये । कुछ दिग बाद फिर उनकी दुश्चरित्रता पूर्ववत् जारी हो गई । इन बार वे चतुर्गोन और काण्डपिञ्जरावह हुए । इस समय उनके पुत्र भोजने अक्षय्यहण किया । घेरे घाटे भोजकी उमर बढ़ने लगी । एक दिन सुञ्जने भविष्यत्वाणी सुनी कि, 'भोज उनके महाप्रबुद्ध हैं ।' सुञ्जने उसी समय उगका शिर काट डालनेके लिए हुकुम दे दिया । किन्तु उनका वादेग प्रतिपालित होनेके पहले ही भोजने वचाके निकट कुछ सोक लिख भेजे । शोक पढ़ कर सुञ्जका हृदय दहल गया । उसी समय उन्होंने हुकुम लौटा लिया । सुञ्जने भोजको योग-राज्यमें प्रमिपित किया ।'

उदयपुरप्रगप्तिमें लिखा है, कि मिश्रराजने हूणों-को जीता था । फिर पद्मगुप्त लिखते हैं, कि ये हूण और योगलराज तथा प्रागङ्गलाट और सुरनीकी पराजय

किया था। पद्मगुप्तने सिन्धुराजको नामकन्याका परि-
ग्रहप्रसङ्ग बहुत चढ़ा चढ़ा कर वर्णित किया है,—

नामकन्याका नाम था शशिप्रभा । गर्तं यद् ठहरो
कि सोनेका पद्म पानेसे सिन्धुराजके साथ उनका विवाह
होगा । नर्मदाके ५० मंथूति पूर रखवती नगरीमें बच्चा
हूय नामक एक श्वर रहता था । उस राक्षसको मार
कर सिन्धुराजने सोनेका पद्म पाया । सिन्धुराजके मन्त्री-
का नाम था यशोधर-महाकाण्ड ।

सिन्धुराजने कथसे कब तक राज्य किया, ठोक ठोक
मालूम नहीं। पर पद्मगुप्त को वर्णना पढ़नेसे ज्ञान पड़ता
है कि उन्होंने सृज्जको मृत्युके बाद ८८ वर्ष तक
राज्यशासन किया ।

सिन्धुराजके बाद भारतप्रसिद्ध भोजराज मातृवर्षके
मिह्रासन पर अभिषिक्त हुए । ये पण्डित समाजमें
'धाराधिव' नामसे प्रसिद्ध थे । इनके जैसा विद्वान्, सुवि-
धंचक, कवि, दार्शनिक और महावीर मालूममें न
कोई हुए और न कोई होंगे। उदयपुरकी प्रशस्तिमें
लिखा है,—

“वाचितं विदितं दत्तं दत्तं यद् यत् केनचित् ।

किमन्यद् कविराजस्य भीमोजय प्रसाधये ॥”

‘कविराज भोजराजको अधिक प्रशंसा पदा कहूँ,
उन्होंने ज्ञा साधन किया था—जो दान किया था और
जो जाना था, वैसे और कोई नहीं हो सकता ।’

उक्त शिलालिपिसे हो जाना जाता है कि भोजराजने
चोदाश्वर, इन्द्रय, तोमर, भोम तथा गुर्जर, लाट,
कण्ठा और तुलुकी अधिपतियोंके साथ धारतर युद्ध
किया था । किन्तु सब जगह उनकी जय हुई थी वा
नहीं, इनमें सन्देह है । कारण चालुक्यराज २५ जय-
सिंहके ८४९ शकाब्द (१०१८-२० ई०) की लिपिमें
वे ‘नाजपक्षके चन्द्रवक्त्र’ अर्थात् भोजराजके यशो-
दासिहार और मालवचम्पू-प्रभुरणकारो और विश्व-स-
कारो नामसे वर्णित हुए हैं । इससे बोध होता है कि
भोजराजने कल्याणके चालुक्यराज्य पर आक्रमण किया
था, पर सफलतालाभ कर न सके । भोमकी पराजयके
सम्बन्धमें मेरुगुप्ति लिखा है कि भोम जिस समय सिन्धु-
जयमें लिप्त थे, उस समय भोजने कुलचन्द्र नामक एक

दिगम्बर जैनको दलवक्त्रके साथ अनहिलवाड़ जीने
भेजा था । बहुत भामानोसे पत्तन अधिकृत हुआ ।
विजिता राजद्वार पर अपनी गोठो जमा कर घोर जयपत्र
से कर चले आये ।

विजयपुरा विक्रमाङ्कचरित पढ़नेसे ज्ञान पड़ता है,
कि जयसिंहके उत्तराधिकारी चालुक्यराज (२५) सोम-
श्वरने (१०४२-१०६८ ई०में)—धारा नगरी पर चढ़ाई
की और भोज अपनी राजधानी छोड़ कर भागनेको
बाध्य हुए ।

नागपुरप्रशस्ति और मेरुगुप्तिकी प्रशस्तिनामनिमें
लिखा है, कि चोदिराज कर्ण और गुर्जरराज चालुक्य-
भोम दोनोंने ही मिल कर भोजराज पर आक्रमण
किया । इस आक्रमणसे भोजका अधःपतन हुआ ।—

भोजको ठाक किस समय मृत्यु हुई, मालूम नहीं ।
'राजमृगाङ्ककरण'से जाना जाता है, कि ८६४ शक
(१०४२-४३ ई०) में भोजराज जीवित थे । फिर
विजयके विक्रमाङ्कचरित (१८६६)से ज्ञात होता
है कि जिस समय विजय मध्यप्रदेशमें उपस्थित हुए,
उस समय भा भोजराज जीवित थे । विजयने भा लिखा
है, कि काश्मिरपति कलस और भोजनरन्द दोनों हो
कविवाच्य और एक समय जीवित थे । इस हिसाबसे
१०६२ ई०के कुछ पहले भोजराजता मृत्यु हुई, पर,
इसमें सन्देह नहीं । महाराजधिराज भोजकी नाम पर
अनेकी स्मृतिविग्रह प्रचलित हैं । इसकी शलाका-राज-
मात्संख नामक योगसूत्रटीका—राजमात्संख, राज
मृगाङ्ककरण और विद्वज्जगन्नाथ नामक ज्योतिष, समरा-
ङ्ग नामक वासुधास्त, स्वहारमञ्जरिका नामक काव्य
आदि अनेक ग्रन्थ भोजराजके वगाये हुए हैं ।

भोजराजके बाद उदयादित्यदेव नामक, इस पर-
मारवंशीय एक राजाका नाम पाया जाता है । उन्होंने
यदुकरकबलित धारा राज्य का बहुत भागानोसे उधार
किया और धरणीवराहके मन्दिरका संस्कार कर धियात
हुए । किस समय उदयादित्य सिंहासन पर बैठे, ठाक
ठोक मालूम नहीं ।

युद्धप्रदेश और यशोधराप्रदेशवांसी शुक्रका जातिके
कुलज्जाता कहना है, कि उदयादित्य निर्विवादपूर्वक

राज्यभोग कर न सके। उनके भाई जगत्पावने उन्हें घरसे निकाल दिया था। पोछे वे कतिपय अनुचरों और पुरोहितों के साथ अधोधारान्तिक अन्तर्गत बनवास नामक ग्राममें जा कर रहने लगे। इस पञ्चलके मुकसा लोग अपनेकी उदयादित्यकी सत्तान बलवाते हैं।

उसके बाद हम लोग पिपलिया नगरके ताम्बग्रामन और भीपालमें प्राप्त उदयवर्मके (१२५६ सन्वत्में सत्कोष) ताम्बग्रामनसे भोजवंशोय महाराजाधिराज यशोवर्म देव, उनके पुत्र महाराजाधिराज जयधर्म देव, पोछे महाकुमार लक्ष्मीवर्म देव, उनके बाद हरपन्द पुत्र महाकुमार उदयवर्म देवका नाम पाते हैं। गेवात महाकुमार हय भोजवंशोय थे वानहा तथा जयवर्म देवके साथ उनका कोई सम्बन्ध है वा नहीं, ठोक ठोक मान लूँ नहीं होता। लेकिन गेवात ताम्बग्रामनमें जयवर्म देवराज्ये भरतोर्त इत्यादिका प्रयोग करनेसे बोध होता है, कि उस समय भोजवंशोयजयवर्म देवका राजत्वकाल कितना बोल चुका था और उदयवर्म देव उनका अधीनस्थ अथवा राजवंशोय महामण्डलिक वा महासामन्त थे। ये नामदापुर (वत्तमान नर्मदा तीरस्थ डोसड़ाबाद) नामक स्थानमें राजत्व करते थे।

परमार (सं० पु०) शोनकच्छ्रिके एक पुत्रका नाम।
परमाथ (सं० पु०) परमः अष्टा अर्थः। १ उल्लूट पदार्थ, सबसे बड़ कर वस्तु। २ वास्तव सत्ता, सार वस्तु। ३ मोक्ष। ४ दुःख या सर्वथा अभावस्थ सुख।
परमाथता (सं० स्त्री०) सत्ताभाव, याथार्थ्य।
परमाथबादो (सं० पु०) तत्त्वज्ञ, ज्ञानो, वेदान्ता।
परमाथविदु (सं० स्त्री०) परमाथ वेत्ति विदुःज्ञिपु।
१ परमाथ वेत्ता। २ ईश्वरतत्त्वज्ञ।
परमाथविन्द (सं० स्त्री०) परमाथ विन्दक। १ तत्त्वज्ञानो। २ अष्टधननामकारो।
परमाथसूत्र (सं० स्त्री०) यथार्थ निद्रित।
परमार्या (सं० स्त्री०) १ तत्त्वज्ञानासु, यथार्थ तत्त्वको दुर्दुर्निवाला। २ सुसुद्ध मोक्ष वादुर्निवाला।
परमाहंत (सं० स्त्री०) परमः अहंत देवता उपास्यतया परतत्त्व, परमाहंत भक्त। १ जैनगृहभेद। २ कुमारपालका नामान्तर।

परमावटिका (सं० पु०) वेदको एक शाखा।
परमाह (सं० पु०) शुभदिन, अच्छा दिन।
परमोकरमुद्रा (सं० स्त्री०) देवताओंको आह्वानाहु-मुद्राभेद, तन्त्रके अनुसार देवताओंके आह्वानको एक मुद्रा। इसमें हाथके दूनों अंगूठोंको एकसे गाँठ कर अंगुलियोंको फैलाते हैं। इसे महामुद्रा भी कहते हैं।
परमृत्यु (सं० पु०) परम्यो मृत्युर्वायु। काक, कौश। रोगादिसे अथवा आपने आप कौयकी मृत्यु, नहीं होता, इससे इसको परमृत्यु कहते हैं।
परमेत्तु (सं० पु०) अणुके एक पुत्रका नाम।
परमेज (सं० पु०) परमः ईश्वर। परमेश्वर, विष्णु।
परमेश—हिन्दुके एक कवि। ये संवत् १८६८में उत्पन्न हुए थे। इनके कविता संग्रहमें पावे जाते हैं।
परमेशदास—हिन्दुके एक कवि। ये साधारण अर्थोके थे। इनका कविताकाल संवत् १८७८ कदा जाता है। इन्होंने दत्तात्रेयनामक ग्रन्थ बनाया।
परमेशवन्दोजन—एक सुप्रसिद्ध हिन्दु-कवि। ये सातवां जिला रायचूरलोके रहनेवाले थे। सं० १८८६में इनका जन्म हुआ था। पुष्टकर इनको कविताएं पायो जाती हैं।
परमेश्वर (सं० पु०) परमेश्वरों ईश्वरचेति। १ जगत्-सृष्ट्यादिकारक सगुण विमूर्तका तत्त्व, परमारका कर्त्ता और परिचालक सगुणब्रह्म। २ विष्णु। ३ गिव। स्त्रियां डोप। ४ परमेश्वरों, दुर्गा।
“देवरी मधुगान्धु पालले परमेश्वरी।”
(देवीभाग० श। ३०। ७०)
आत्मा, ब्रह्म, परमात्मा आदि अर्थोंसे भी परमेश्वरका बोध होता है।
परमेश्वर—१ चार्यभट्टमहाकालिकाके प्रणीता। २ कवोन्द-चन्द्रोदयधृत एक कवि।
परमेश्वरतत्त्व (सं० स्त्री०) तन्त्रभेद।
परमेश्वरदत्त—वैराग्यप्रकरण नामक ग्रन्थके प्रणीता।
परमेश्वरजित—गणाध्याय नामक ग्रन्थके रचयिता।
परमेश्वर्यमी—पञ्चवर्गोय एक राजा। इन्होंने पेरु-सुडुलकुके गुहर्में बलभर्राजकी सेनाको परास्त किया था।
परमेषु (सं० पु०) अणुका पुत्र, परमेत्तुका नामान्तर।

परमेष्ट (स० पु०) महाविष्णुप ।

परमेष्ठ (स० पु०) परमे चिदाकाशे संतानोके वा तिष्ठति स्या-क, अलुक् समाम्, अस्मात्वेति पत्व । १ चतुर्मुखब्रह्म, प्रजापति ।

परमेष्ठिन् (स० पु०) परमे व्योम्नि चिदाकाशे ब्रह्म पदे वा तिष्ठतीति स्या इति, स च कित् (परमे कित् । उण् ४।१०) ततोऽलुक् पत्वञ्च । १ ब्रह्मा वा अग्नि प्रभृति देवता । २ विष्णु । ३ महादेव । ४ जिनविशेष ।

५ शालग्रामविशेष । इसका लक्षण ब्रह्मपुराणमें इस प्रकार लिखा है—परमेष्ठिनारायणको आभा शुक्ल, पद्मवक्त्रसमायुक्त, बाह्यति विचित्र और घृष्टदेश्य भूति लक्ष्मण छिद्रयुक्त है । अन्यविध—इनको आभा लोहित, एक चक्र विशाकृति रेखा और भूति मुष्कल शृंगि । पुराणमध्यमें लिखा है—परमेष्ठिनारायण शुक्ल आभा युक्त, चक्र और पद्ममन्वित, वस्त्रालाङ्गनि, पीतवर्ण और घृष्टदेश्य शृंगियुक्त है । वैश्वानरसंहितामें लिखा है, कि परमेष्ठिनारायण रत्नाभ, चक्र और पद्ममयुक्त, घृष्टदेश्य पर दिवाकृत शृंगि, वस्त्राल और पीतवर्ण के हैं । यह परमेष्ठिनारायण भुक्तिमुक्तिप्रदायक माने जाते हैं । ६ गुरुविशेष । ७ अजमीड़के एक पुत्रका नाम । ८ परमस्थानस्थित । ९ इन्द्रधनुजके पुत्रका नाम । १० प्रजापति और उनके पुत्र । ११ गरुड़ । १२ चाक्षुष-मनु । १३ विराट्-पुरुष ।

परमेष्ठिनो (स० स्त्री०) परमेष्ठिन् स्त्रियां डोप । १ ब्राह्मो-क्षुप, ब्राह्मो जड़ो । २ परमंष्ठोकी भक्ति, देवी । ३ श्री । ४ महादेवी ।

परमंष्ठो (स० पु०) परमेष्ठिन् देखो ।

परमंश्चर्यं (स० स्त्री०) परमं ऐश्वर्यं । अष्ट ऐश्वर्यं ।

परम्पर (स० पु०) परं पिप्पत्तीति पृ-अच्, 'तत्पुरुषे क्षीतीति' अलुक् समासः । १ प्रपञ्चादि, प्रपञ्चतन्त्र, घेठा, पोता, परपोता आदि । २ सृष्टमद, कफूरी । (स्त्री०) ३ अनुक्रम, एकके बाद एक ।

परम्परा (स० स्त्री०) परम्पर-टाण । १ श्रवण । २ स्नान, अवल । ३ वध । ४ हिंसा । ५ परिपाटी । ६ अनुक्रम, एकके बाद एक ।

परम्पराक (स० स्त्री०) परम्पराका कायते प्रकाशते इति कै-क, परम्परास्थापितपशुहनात् तथात्वं । यच्चार्यपशु-

हनन, उसके लिए पशुका वध । पर्याय—भ्रमन, मोक्षण, घातन और वध ।

परम्परागत (स० स्त्री०) क्रमागत, वंशानुक्रमसे आगत, पिछे पता महसे प्राप्त या प्रचलित ।

परम्परागत (स० स्त्री०) १ पुरुषानुक्रमसे लब्ध, पुरुषानु-क्रमसे पाया हुआ । २ जनश्रुति, प्रवाद ।

परम्परासम्बन्ध (स० स्त्री०) श्रेणीबद्धरूपसे आगत, एकके बाद एक सम्बन्धयुक्त ।

परम्परोप (स० स्त्री०) पराये परतर्गय अनुभवति परम्परो-प (परावरं रमरेति । पा ५।२.१०) परम्पराप्राप्त, वंशानु-क्रमसे प्राप्त ।

परयंक (स० पु०) पर्यङ्क देखो ।

परयन्तापङ्कश्रुति (स० स्त्री०) पर्यन्तापङ्कश्रुति देखो ।

परमण (स० पु०) जो पुरुष पत्नीको छोड़ दूसरे स्त्रीके साथ रमणको प्रमिताया करे, नम्पट, उपर्या ।

परु (स० पु०) पिप्पत्तीं देहादिकं प्रायतोति पृ-आङ्ल-कात् परु । ऋषाराजगाक, नोक्षमुक्षाराज (Eclipta prostrata) नोक्षो भंगरेवा ।

पररूप (स० स्त्री०) परस्वरूपमिव रूपं यस्य । दूसरेके रूपके लोसा रूपवाला ।

परस्त (स्त्री० पु०) एक जड़को पेड़ जिनका जड़ और छाल दवाके काममें आता हैं और लकड़ो इमारतीमें लगती है ।

परस्त्य (स्त्री० स्त्री०) छटिका नाम वा भस्त, प्रत्यय ।

परता (स० स्त्री०) १ पटोलवृक्ष । २ दूसरी तरफका, उस पारका, सरलाका सल्टा ।

परलोक (स० पु०) परलोकः । १ लोकान्तर, दूसरा लोक, स्वर्गादि । श्रद्धाके बाद जिस लोकमें गति होती है, उसे परलोक कहते हैं । २ इस लोकका विपरीत, स्वर्गलोक । ३ स्थानविशेष । हृदयसंहितामें लिखा है, कि यह स्थान मुक्ताफलका आकर है और यहाँ जो मुक्ताफल उत्पन्न होता है, वह काना, उज्जला भयवा पोला और विषम है । वह पारलौकिक मुक्ता नामसे प्रसिद्ध है ।

परलोकगत (स० स्त्री०) परलोकं गतः स्यात्तत् । स्वर्ग-प्राप्त श्रुत, भरा हुआ ।

परलोकगम (स० पु०) परलोकं लोकांतरं गमो गमनं यच्चात् । श्रायु ।

परलोकागमन (सं० स्त्री०) परलोक गमन । मृत्यु, मरण ।

परलोकप्राप्ति (सं० स्त्री०) लोकान्तरमें गति, मृत्यु ।

परलोकेषण (सं० स्त्री०) परलोकको गंधेषण ।

परवत् (सं० स्त्री०) परः नियोजकतयाऽस्तस्य मनुष्य-

मस्य व । पराधीन, परवय ।

परवर्णार—मन्द्रज प्रदेशके दक्षिण प्रकट जिल्लमें प्रवादित

एक नदी । ४६ मील ११ ३१ ४० मार देगा ०८

४३ घंटे निकल कर कुहालूरके निकट समुद्रमें

गिरी है ।

परवर (हिं० पुं०) १ परवल । २ पाँखला एक रोग ।

परवरदिगार (फा० पुं०) १ पालन करनेवाला । २ ईश्वर ।

परवरिश (फा० स्त्री०) पालन-पोषण ।

परवल (हिं० पुं०) १ एक लता जो टट्टियों पर चढ़ाई

जाती और जिसके फलोंकी तरकारी होती है । यह सारे

उत्तरीय भारतमें पञ्जाबसे लेकर बङ्गाल आसाम तक

होती है । पुरुषमें पानके भोठों पर परवलको बेसे चढ़ाई

जाती है । फल चार पाँच प्रहल लम्बे और दोनों छिरी

की ओर पतले या लुकोने होते हैं । फलोंके भीतर गूरेकी

बीच मोल बीजोंको कई पंक्तियाँ होती हैं । परवलको

तरकारी पण्य मानौ जाती है और स्त्रियोंके रोगियोंको दो

जाती है । वैद्यकमें परवलके फल कटु, तिक्त, पाचन, दोष

हृद्य, हृष्य, रण्य, सारक तथा कफ, पित्त, प्लव, दाहको

हटानेवाले माने जाते हैं । जड़ विरेचक और पत्ते तिक्त

तथा पित्तनायक कहे गये हैं । पर्याय—कुलक, तिक्तक,

पटु, कर्षणफल, फुलज, गालिमान, लताफल, राजफल,

वरतिक्त, चमृताफल, कटुफल, राजनामा, वोजगर्भ,

नागफल, कुहारि, कामसदन, ज्योत्स्नों और कच्छुषो ।

२ चिचड़ा जिसके फलोंकी तरकारी होती है ।

परवय (सं० स्त्री०) परस्व परेपाँ वा यमः वशीभूतः ।

पराधीन, जो दूसरेके अधीन हो । पर्याय—परायण, परा-

धीन, परच्छेद, परवान् ।

जो कुछ काम पराधीन हैं, उन्हें यज्ञपूर्वक छोड़

देना चाहिए और जो अपने यममें हों, उन्हें यज्ञपूर्वक

करना चाहिए । (मनु ४।१८)

परवय (सं० स्त्री०) जो दूसरेके अधीन हो, जो दूसरेके

हवास्तुसार काम करता हो, पराधीन ।

परवयता (सं० स्त्री०) पराधीनता ।

परवतु—आचार्य चम्पू नामक चम्पूकाव्यके रचयिता ।

परवा (हिं० पुं०) १ कठारेके आकारका बरतन जो

भिड़का बना होता है, कामा । (स्त्री०) २ पड़वा,

परिवा एचको पहली तिथि । ३ एक प्रकारको घास ।

परवा (फा० स्त्री०) १ व्यथता, चिन्ता, आशङ्का, खटका ।

२ आसरा, भरोसा । ३ ख्याल, ध्यान ।

परवाई (हिं० स्त्री०) परवा देखो ।

परवाच (सं० स्त्री०) निन्दित, जिसे दूसरे बुरा कहते हैं ।

परवाज (फा० स्त्री०) बड़ान ।

परवाणि (सं० पुं०) परं धर्मं वाचयति प्रकाशयति वण

शब्दं णिच् तत इन् । धर्तुनामनेकाथ त्वाद्धत प्रकाशयः ।

१ धर्माज्य । २ वस्त्र । परं शब्दं सर्पमित्यर्थः । वाण-

यतीति । ३ क्षार्त्तिक्यवाहन, मयूर, मोर ।

परवाद (सं० पुं०) परस्ववाद । १ दूसरेका प्रवाद,

दूसरेकी निन्दा (परः वादः । २ उत्तरवाद । ३ प्रवाद ।

परवादिन् (सं० पुं०) प्रत्यर्थीके प्रति उत्तरवादी, दूसरे-

की निन्दा करनेवाला ।

परवान (हिं० पुं०) १ सोमा, मिति, अवधि । २ प्रमाण,

सबूत । ३ सत्यवात, पदार्थ वात ।

परवानगी (फा० स्त्री०) अनुमति, आज्ञा, राजत ।

परवाना (फा० पुं०) १ आज्ञापत्र । २ पत्र, फर्तिगा,

पंखी ।

परवाया (हिं० पुं०) चारपाईके पायोंके नीचे रखनेकी

वस्तु ।

परवाल (हिं० पुं०) प्रवाल देखो ।

परवासिका (सं० स्त्री०) वाँदा, बंदाक, परमाक्षा ।

परवासिनी (सं० स्त्री०) परवासिना देखो ।

परवासी (सं० स्त्री०) प्रवासी, दूसरेके घरमें रहनेवाला ।

परवाह (सं० पुं०) बहनेका भाव ।

परवाह (फा० स्त्री०) १ चिन्ता, आशङ्का, व्यथता,

खटका । २ भरोसा, आसरा । ३ ध्यान, ख्याल ।

परवीरहन् (सं० स्त्री०) शत्रुपक्षीय शोहायिका मध-

कर्त्ता, दुश्मनकी सेनाकी मारनेवाला ।

परवेख (हिं० पुं०) बहुत हलकी बटलोकें बीच दिखाई

पड़नेवाला चन्द्रमाकी चारों ओर पड़ा हुआ मेरा, चान्द-

की भयाई, मण्डल ।

परवेश (सं० स्त्री०) स्वर्ग, वैकुण्ठपुरी, परपुरुषके रहने-
का घर ।

परव्यूहविनाशन (सं० पुं०) शत्रु पक्षोद्योग दूधभेदकारो ।
परव्रत (सं० पुं०) परं व्रतं यस्य । व्रतराष्ट्र ।

परग (सं० स्त्री०) रुष्टगतीति प्रयोदरादित्वात् साधुः । १
रत्नविशेष, पारमपत्यार । इसकी स्पर्शसे ही धातु स्वर्णरूप-
को प्राप्त होती है, इसी लिये इसका नाम स्पर्शमणि
पड़ा है । २ स्वर्ग, छुना ।

परगवार - मध्यप्रदेशके बालाघाट जिलेकी 'क'ची भूमि पर
अवस्थित एक गण्डग्राम । यह अक्षां २१° १८' ०" और
देशां ८०° २०' ०" के मध्य, समूची पश्चिमका भूमि में
बीचमें बसा हुआ है और इसके चारों ओर घनधान्य-
पूरित समृद्धिशाली तीन ग्राम देखनेमें आते हैं ।

परगवार (सं० त्रि०) परगवो हितं हितार्थं यत् । परशुका
हितकर, परशुके योग्य ।

परगान्ता (सं० पुं०) १ परगाछा, बाँदा । २ परगट,
दूसरे का घर ।

परगामन (सं० स्त्री०) दूसरेका आदेश ।

पराशु (सं० पुं०) परान् शत्रून् शृणाति हिनस्वर्तनेति
पर-श-शु, छिन्न (श-इ परलो; शृङ्गि शृङ्गा छिन्न । ३ण्
। ३४) पक्षविशेष, एक इशियारका नाम, कुठार,
कुवहाड़ी, तखर, भलुवा । पराश-पराश, परखर, परख,
स्वक्षिति और कुठार ।

यह प्राचीन हिन्दुओंका युद्धास्त्रविशेष था । वैश-
म्पायनीय धनुर्वेदमें इस अस्त्रकी जो वर्णना लिखी है,
उसके अनुसार यह एक प्रकारकी कुवहाड़ी कहा जा
सकता है । इसमें एक छेदके सिरे पर एक पक्षेन्द्राकार
कोटिका फल लगा रहता है । यह पक्षे लड़ाईके काममें
आता था । स्वयं भृगुमुनिके पुत्र नारायणावतार परशु-
रामने यह अस्त्र धारण कर पृथ्वीको निःचित्रिय किया
था । परशुराम देखो ।

ऋष्यटादि अरयन्ता प्राचीन ग्रन्थोंमें भी इस अस्त्रकी
तीक्ष्ण धारका विषय लिखा है । (ऋ० ७१.३.४२) ।
परशुचि (सं० पुं०) उत्तममनुजे पुत्रभेद, उत्तममनुजे
एक पुत्रका नाम ।

परशुस्त्रिय (सं० पुं० स्त्री०) कुमारिया नामक स्त्रिय ।

परशुधर (सं० पुं०) धरतीनिष्ठ-पक्ष; परशोधरः इत्यतः ।
१, गणेश । २ परशुराम । ३ परशु धारण करनेवाला ।
परशुमत् (सं० त्रि०) परशुः त्रिदशैः सस्य, मनुष्यः । परशु-
युक्त, परशुधारी ।

परशुकाकोट—प्रयोगप्रदेशके चतुर्गत्त बलर-विहारेमें दो
कोश पयिममें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम । यहां पूर्वसे
पश्चिमको ओर विस्तृत इसी नामका एक बड़ा स्तूप है ।
प्रवाद है, कि बलिाज नामक एक शाक्यवंशीय
राजाने परशुका (परशु) नामक एक शरीर जोकरके
लिए एक मन्दिर ओर बहुतसे चर, वनवा दिये थे । इस
ध्वंसावशिष्ट स्तूपकी लम्बाई १४० फुट और चौड़ाई
३०० फुट है । इसके पूर्वार्धमें ३१ फुट ऊँची भूमिके
ऊपर, जो ईंटोंकी दीवार पाई गई है, महाहिन्दूदेव-
मन्दिरकी जैसी है । यहांसे १०० फुट पश्चिममें ओर भी
एक मन्दिरकी दीवार देखी जाती है । दोनों मन्दिरके
चारों ओर प्राचीनपरिवेष्टित था जिसका चिह्न अभी भी
पाया जाता है ।

परशुराम (सं० पुं०) परशुना कुठाराख्यगर्भेण रामा
रमणं यस्य । भगवदवतारभेदः ।

“अवतारे योऽङ्गुलिं परशुं सम्यक् द्रष्टव्यम् ।
त्रिःपञ्चकृत्स्नं कृतो निःसङ्गमकरोन्मदीम् ॥”
(भागवत १२ अ०)

पराश-जामदग्न्य परशुराम, परशुरामक, भार्गव,
भृगुपति, भृगुनापति ।

महाभारतमें लिखा है, कि महात्मा जह्नुके पुत्र अज,
अजके पुत्र बलाकाश और बलाकाशके पुत्र कुशिक थे ।
कुशिकने इन्द्रको पुत्रकृत्ने पानेको चागांसे कठोर तपो-
वृत्तान किया । इन पर देवराज प्रसन्न हो स्वयं उनकी
औरमें जन्मग्रहण कर गांधि नामसे विख्यात हुए ।
महाराज गांधिसे सख्यवती नामक एक स्त्रियकी कन्या
थी । उन कन्याको कुशिकतनयने भृगुनन्दन अस्त्रोक्त
हाथ समर्पण किया । भगवान् ऋषीकने निज प्रियतमा
के पवित्रताशुण पर प्रसन्न हो उन्हें तथा उनके पिता
महाराज गांधिके पुत्रतामके लिये दो प्रथक-प्रथक
चतुर्भुज किये और सत्यवतीकी बुलाकर कहा,
“तपनी माताको एक चतुर्भुज देना और दूसरा तुम

ज्ञाना। प्रथम चक्र खाने में नियत हो तुम्हारी माता
एक क्षत्रिय निरुद्धन शेरपुत्र प्रसव करेगी और द्वितीय
चक्र खाने में तुम एक शालीवर्षाये चैत्रशक्ती तपोनिरत
पुत्रका सुख देखोगे।' इतना कह कर ऋषीकैतवप्राक
लिये चक्र चली गये। इस समय गांधी तीर्थ गांवाप्रसङ्ग में
मन्त्रीकं ऋषीकैतव आचमन पढ़े। पितामाताको देख
कर सत्तारवती पुनः किमिच्छेयसे दोनों चक्रों में माताके
समोप गई और प्राचीवास्तु चक्र बात कह सुनाई। इस पर
गांधीमहिषी फूली न समझी और भूलसे समने चपना
चक्र कल्याणको दिया तथा कल्याण चक्र भाव साया। इस
प्रकार भ्रमवशतः माताका चक्र खाने में सत्तारवतीका गर्भ
घोरे घोरे भीषणाकार होने लगा। ऋषीकैतव पत्नीके गर्भ
की चिकी चालते देख समने कहा, 'प्रिये! तुम्हारी मातानि
चपना चक्र तुम्हें खिलाया है और तुम्हारा चक्र उसने
खोया है।' इस कारण तुम्हारे गर्भ में जो पुत्र होगा वह
मिथ्य हो चित्त क्रूरकर्म और क्रोधरायण तथा तुम्हारा
भाई तपोनिरत और ब्रह्मतेजःप्रसव होगा। मैंने तुम्हारे
चक्र में ब्रह्मतेज और तुम्हारी माताके चक्र में चक्रतेज दिया
था। इस कारण तुम्हारी माताको पुत्रब्राह्मण और
तुम्हारी पुत्र क्षत्रिय होगी, इसमें संन्देह नहीं। ऋषीकैतव
को इतना कहने पर सत्यवती फूट फूट कर रोने लगी और
पतिके चरणों पर गिर कर बोली, 'भगवन्! मैंने पुत्र चक्र
धर्मविलम्बी होगा, ऐसा कहना भापको उचित नहीं है।'
ऋषीकैतव कहा, 'इसमें मेरी क्या दौड़! तुम चक्रभोजन
दीपवर्ण की प्रति क्रूरकर्म पुत्र प्रसव करोगी, यह तुम्हारे
को नहीं।' विप्रपति तुम्हारे पतिके वर्गमें ब्राह्मण
संस्थ होना, यह मैं पक्षसे होना मानता हूँ।' इस पर
सत्यवती गिड़गिड़ा कर बोली, 'यदि भापका वाक्य
पश्येता होनीको नहीं, तो जिससे भापके पोत्र संतधर्मवि
पत्नी हो कर जन्मग्रहण करे, वैसे संपाद्य कर दोजिये;
किन्तु भापकी दया करके शालिग्रणीविलम्बी पुत्र प्रदान
करना होगा।' महात्मा ऋषीकैतव प्रियतमाके शत्रुनय
विमर्श पर सन्नत हो गये। यथाकाम सत्यवतीने
शाकम्भभाव कमदम्बिकी और चक्रकी मातानि विज्ञा
मित्रको प्रसव किया। (गान्धर्व ४८ अ०)
यन्ममने यह विवरण कुल और प्रकारसे लिखा है—

"महर्षि ऋषीकैतव! विवाह करके लिये संप
स्थित हुए, तब राजा गांधीने उमसे कहा, 'हम लोग
कन्याके विवाहमें एक हजार ऐम चक्रोंपम लेते हैं
जिनका शरीर पाण्डुरवर्ण का हो, कानका भोतरी भाग
नान और बांधरी भाग काना हो तथा जो सन्मने में बहुत
तेज हो।' ऋषीकैतव यैसे हो छोड़े वक्षसे का का
दिये। जहाँ वे भव चक्र चले गये, तब स्थान पर सती
नामसे प्रसिद्ध हुआ। राजा गांधीने सत्यपक्ष पा कर
कान्यकुलमें गङ्गाके किनारे ऋषीकैतव को सत्यवतीको
भोप दिया। ऋषीकैतव विवाहकार्य जब श्रेय हुआ,
तब उनके पिता ऋगु जनकी देखने चाये। पुत्र और पुत्र
बधू दोनोंने उनको पूजा की। ऋगुने प्रसव हो कर बधू
से कहा, 'चपने इच्छानुसार वर मांगो, मैं देता हूँ।'
सत्तारवतीने चपने तथा चपनो माताके पुत्रके लिये प्राथना
की। इस पर ऋगुने दो भाग चक्र दे कर कहा कि, 'तुम
और तुम्हारी माता ऋगुदत्तनाम कर्क ययाकर्म सङ्ग
और चक्रयज्ञका बालह्वन करेता। मैंने तुम्हारे तथा
तुम्हारी माताके लिये बहुत यज्ञने ये चक्र प्रदत्त किये हैं।'
इतना कह कर ऋगुनो चक्र दिये। किन्तु राजाद्विहा और
राज्ञीने ऋगुके पादयज्ञके विपरीत कार्य किया। बहुधाक
बाद जब ऋगुको दिव्यज्ञानसे कुल वार्ता मालम हो गई,
तब वे पुनः पुत्रबधूके पांव चाये और बोले, 'भद्रे! तुम्हारी
मातानि विषययज्ञसे तुम्हें वञ्चित किया है, इस
कारण तुम्हारा पुत्र ब्राह्मण हो कर क्षत्रियव्रतिका भव
लभ्यन करेगा और तुम्हारी माताका पुत्र महावीर्य क्षत्रिय
हो कर भी ब्राह्मण होना।' यह सुन कर सत्तारवतीने
श्वशुरकी पुनः पुनः प्रसव कर प्राथना की, 'मेरा पुत्र
वैशा न हो, पोत्र हो तो हो।' ऋगुने वैशा ही होगा
कह कर सत्तारवतीकी राखना दी।

यथामय सत्तारवतीने तेजोमय और क्षान्तिविशिष्ट
जमदग्निकी प्रसव किया। यह जमदग्नि समस्त धनुर्वेद
और चारों शास्त्रोंमें प्रवर्तत थे। पौष्टि प्रेमजित् राजाके
निकट उपस्थित हो कर उन्होंने उनको ऐणका नामकी कन्या
का पाणिग्रहण किया। ऐणकाके गर्भसे पांच पुत्र हुए,
रुमेश्वान, सुदेव, वसु, विश्वामस और कनिष्ठ परशुराम।
सत्तारवतीने उन पञ्चपुत्रोंके नाम ये हैं—वसु, विश्वामस,

हहहात, हहहहह और कण्व । परशुराम सभी भाइयों से तो छोटे थे, पर ये गष्टेष्टगुण सम्पन्न । (धनपर्व)

विष्णु, महद्य, भागवत, कालिकापुराण और महाद्भि-
खण्ड में रेणुका-माहात्म्य में लिखा है, कि जमदग्नि ने
इच्छाकुशंगेय रेणुराजकी कन्या रेणुकासे विवाह किया
था । उन्होंने गर्भ से क्षत्रियनिश्चयता परशुरामको उत्पत्ति
हई । महाद्भिखण्ड में लिखा है, 'चैतमास पुनर्वसु नक्षत्र
हमेश्या तिथिकी रेणुकाके गर्भ से परशुरामने जन्म ग्रहण
किया । श्राद्धपर्व में लिखा है—परशुरामने गन्ध-सादग
पर्व पर महादेवकी प्रसन्न कर उनकी वरसे चतितेजो-
मय परशु अस्त्र प्राप्त किया था ।

महाद्भिखण्ड में लिखा है, कि भार्गवने महादेवसे
अस्त्रगिष्ठा प्राप्त कर पीछे विश्वराज गणेशसे परशुविद्या
सीखी थी । इसी परशुसे ही वे परशुराम नामसे प्रसिद्ध
हुए ।

महाभारतमें लिखा है—एक दिन रेणुका स्नान
करने के लिये नदीमें गई थी । यहाँ उसने राजा चित्रश-
की अपनी स्त्रीके साथ जलस्नान करते देखा और काम-
सामानसे चहिन हो कर घर आई । जमदग्नि उसकी
यह दृष्टि देख बहुत कुपित हुए और उन्होंने अपने चार
पुत्रोंको एक एक करके माद्वेषधरी आज्ञा दी । पर
सर्वप्रथम किसीसे ऐसा न हो सका । इस पर जमदग्नि
ने उन चारों पुत्रोंको शाप दिया जिससे वे हतचेतन हो
पड़े । इतनेमें परशुराम आये । जमदग्निने उनसे कहा,
'तुम इस पापीयत्री माताका वध करो, इसके लिए जरा
भी दुःख न करना ।' परशुरामने आज्ञा पाते ही माताका
गिर काट डाला । इस पर जमदग्निने प्रसन्न हो कर वर
मानने के लिए कहा । परशुराम बोले 'पहले तो मेरी माता-
को जिला दीजिए और फिर यह वर दीजिये कि मैं परमायु
प्राप्त करूँ, मेरे आद्यगण प्रकृतिस्थ हों तथा युद्ध में मेरे मामने
कोई न ठहर सके ।' जमदग्निने ऐसा ही किया । एक
दिन राजा कात्तवीर्य-सहस्राक्षुर्न जमदग्नि के आश्रम पर
आये । आश्रम पर रेणुकाकी छोड़ कर और कोई न था ।
रेणुका ने कात्तवीर्यकी पान्ते देख उनकी यथोचित पूजा
की, पर कात्तवीर्य युद्धमदके उत्सव हो उनकी पूजासे
मानस रूप वर प्राप्त करने के लक्ष्यसे राजा को आज्ञा दी।

शेनुका वरदाती कर चण टिए । इस पर होमई
रोटन करने लगी । परशुरामकी जब इसकी खबर लगी,
तब वे तुरन्त दौड़े और जा कर कात्तवीर्यकी सहस्र
पूजाओंकी भावसे काट डाला । महासाक्षुर्नके कुटु-
म्बियों और सायियोंने एक दिन या घर जमदग्निसे
बटला लिया और उन्हें बाणोंसे मार डाला । परशुरामने
आश्रम पर आ कर जब यह देखा, तब पहले तो बहुत
विलाप किया, फिर सम्पूर्ण क्षत्रियोंके नामकी प्रतिज्ञा
की । उन्होंने शस्त्र से कर महासाक्षुर्नके पुत्र, पोतादिका
वध करके क्रमशः सारे क्षत्रियोंको नाश कर डाला । पर
रामको इस करता पर जब ब्राह्मण-समाजमें उनकी
निन्दा होने लगी तब परशुराम दयासे विव्र हो वनमें आ
गये । एक दिन विश्वामित्रके श्वेत परावसुने परशुरामसे
कहा, 'भभी जो यज्ञ राजा ययातिके देवकीकसे
पतनके कारण हुआ था उसमें न जानि कितने ही प्रतापी
क्षत्रिय-राजा आए थे ; तुमने पृथ्वीकी जो क्षत्रियविहीन
करनेकी प्रतिज्ञा की थी वह सब व्यर्थ हो । भभी
केवल जनसमाजमें तुम हया आत्मघात कर रहे हो ।
सचमुचमें तुम महावीर क्षत्रियोंके डरके सारे इस पर्व
पर जा हिषा हो ।' फिर क्या था, इतना सुनते ही परशु-
राम घायबबूला हो उठे और पुनः शस्त्र धारण किया ।
पहले इन्होंने जिन सब क्षत्रियोंकी छोड़ दिया था, वे
भभी प्रबलपराक्रान्त हो कर पृथ्वीका शासन कर रहे थे ।
उन्हें देखते ही परशुरामके क्रोधका पारा चढ़ पाया और
उन सबका वानवर्षोंके महित मंहार किया । कुछ दिन
बाद यमस्थ क्षत्रिय सन्तान जो जन्म लेती थी, उन्हें भी
परशुराम यमपुर भेजने लगे । इस समय कितनी ही गर्भ-
वती स्त्रियोंने बड़े कठिनातासे इधर, उधर छिप कर
अपनी रक्षा की थी । उन सबके नाम धृति, शर्मदे, देवी ।

महायोर परशुरामने इस प्रकार पृथ्वीकी
निःक्षत्रिय करके अन्तमें अन्तमेघ यज्ञ किया और उनमें
सारी पृथ्वी कश्यपकी दान दे दी । पृथ्वी क्षत्रियोंसे सर्वथा
रहित न हो जाय इस अभिप्रायसे कश्यपने परशुरामसे
कहा, 'यह यह पृथ्वी हमारी हो चुकी, अब यहाँ रहना
तुम्हें उचित नहीं है, सा तुम दक्षिणको और चल
जाओ ।' परशुरामने ऐसा ही किया । जब वे समुद्रके

जिनारे पहुँचे, तब समुद्रने उनके रहनेके लिए गुफापरक नामक स्थान प्रस्तुत कर दिया। परशुराम वहीं रहने लगे। (पाणिनिके ४९ अ० २)

वनपर्वमें फिर लिखा है कि, परशुरामने इकोम बार पृथ्वीको निःश्रित्य कर समस्तपञ्चकके पाँच छंद कश्चिमे भर दिए थे और वहीं छंदोंमें पितृतर्पण करके पितामह मइयि कृचोका दान पाया था। कृचोकने रामकी क्षत्रियवध करनेमें मना किया। इसपर रामने यज्ञ द्वारा देवेंद्रको परितप्त करके कृचोकोको पृथ्वी दान दे दी। ब्राह्मणोंमें कश्यपके आदिगण उस वंशको खण्ड खण्ड करके पापमें विभाग कर लिया और उसमें वे सब ब्राह्मण पीछे पाण्डवायन कहलाने लगे। रामने कश्यपको पृथ्वी दान दे कर महेन्द्र नामक शैलेन्द्र परतपस्या की और वहीं वे रहने लगे।

(वनपर्व ११७ अ०)

वाल्मीकि रामायणके आदिखण्डमें लिखा है, कि जब रामचन्द्र शिवका धनुस तोड़ सीताको ब्याह कर लौट रहे थे, तब परशुरामने उनका रास्ता रोका और सामने जा कर कहा, 'तुमने मेरे धनुस तोड़ दिया है, यह सुन कर मैं एक और धनुस लाया हूँ, यह वेषण धनुस है। मैं वधवशे किसी वंशमें कम नहीं हूँ। विश्वने यह धनुस मइयि कृचोकको दान दिया था। उन्होंने फिर मेरे पिताको दिया और मैंने इसे पिताजीमें पाया है। यदि तुम इस पर बाण चढ़ा संकोम, तो मैं तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा।' राम धनुस पर बाण चढ़ा कर बोले, 'जमदग्निपुत्र। प्रथम इस बाणसे मैं आपकी गतिक्षा अवरोध करूँ या तपसे प्रजित आपके लोकोका हरण करूँ।' परशुरामने हतभय तथा चकित हो कर कहा, 'मैंने मेरी पृथ्वी कश्यपको दानमें दे दी है, इससे मैं रातको पृथ्वी पर नहीं सीता। मेरी गतिक्षा अवरोध न करो, लोकोका हरण कर लो।' इसपर रामने लक्ष्य करके शरयाग किया जिससे परशुरामके तपोबलसंस्थित शोक नष्ट हो गये। कामदम्य रामसे इस प्रकार पूजित हो कर महेन्द्रपर्वत पर चले गये। (७५ अ० ३१)

रामायण और महाभारतके किसी स्थानमें परशुरामकी भगवदधरार नहीं मिलता है। परवर्तिकाधर्म

मत्स्य, विष्णु आदि पुराणोंमें ये भगवतोंके छठे अवतार और भगवतपुराणमें सोलहवें अवतार माने गए हैं।

फिर सच्चाद्विखण्डके रेणुका-माहात्म्यमें परशुरामकी दूध अवतार और उनकी माता रेणुका (दूधरा नाम एकवीरा) की स्वयं वंदित गङ्गा वायसी वतलाया है। उनका व्यवसायदोष क्रिपानिके लिए उक्त ग्रन्थों कुछ और ही उपाख्यान लिखा है। रेणुका-माहात्म्य देखो।

सच्चाद्विखण्डमें जाना जाता है, कि परशुरामने जो समुद्रने कोङ्कणका चहार कर वहाँ ब्राह्मणवास स्थापित किया। बहुतोंका कहना है, कि कोङ्कणस्य ब्राह्मणगण परशुरामकी सृष्टि है। कोङ्कणस्य ब्राह्मण, केरल मलबार आदि भण्ड देखो। केरलोत्पत्ति नामका ग्रन्थमें लिखा है, कि परशुरामने पश्चिच्छ्रामने ब्राह्मण ला कर केरलमें बसाया और समस्त जनपद उन्हें संपर्ण किया।

वनारस जिल्लात्मगत तुर्सीपारिके निकटवर्ती खैरागढ़का प्रांचोन नाम भाग वपुर है। प्रवाद है, कि इसी स्थानमें परशुरामका जन्म हुआ था। खैरागढ़में ३ कोस पश्चिम रतौड़ नामका एक छंद है। यहाँ लोगोका कहना है, कि परशुरामने जब सख्खालुनका वध किया, तब उसीके रक्तसे सक्त छंद बना है। स्तम्भ-पुराणोंमें जैमिनिस्मृतिमें, रेणुका-माहात्म्य आदि ग्रन्थोंमें परशुरामका विषय बहुत बढ़ा चढ़ा कर लिखा है।

परशुराम—गुजरात प्रदेशके चल्तगत धागर राज्यके एक राजपूत राजा। फिरिस्तानमें लिखा है, कि इन्होंने गुजरातके सुलतान बहादुरके साथ युद्ध कर जय प्राप्तमें आत्ममर्पण किया, तब उनके पुत्र इस्लामधर्म में दीक्षित हुए।

परशुराम—एक श्रेष्ठकार, कण्ठके पुत्र। इन्होंने ईशा-वासोपनिषद्की, शृङ्गारसूत्रव्याख्या और महाद्वयप्रवृत्ति नामक ग्रन्थोंकी रचना की है।

२ रसराराजशिरोमणिके प्रणीत।

३ कण्ठदेवके पुत्र पाटोलीलाभते विवरण और भूपालवत्सलके रचयिता।

परशुराम—यसुनापुरके एक राजा, स्वयं करके पीठ और इंग्लिन्डियके पुत्र। ये परशुरामप्रकाशके रचयिता खण्डे रायके प्रतिपादक थे।

परशुराम—१ हिन्दू के एक कवि । दिग्विजयभूषणों
इनके कविता पाये जाते हैं ।

२ एक हिन्दू-कवि । चाप धनक रहनेवाले थे ।
सन्वत् १६६० में चापका जन्म हुआ था । चापके पद
राममागरीद्वय में मिलते हैं । चाप बड़े भक्त तथा योगी
और हरिव्रजमन्त्री के सिद्धान्तके अनुयायी थे । चापने
अपनी सुन्दर कवित्वशक्तिका उपयोग भगवद्गुणवर्णन में
किया है ।

परशुरामकवि—पनालाके अन्तर्गत एक गिरिशुद्ध ।

परशुरामगुजर—एक व्यङ्गकार । दिनकरकृत शान्ति-
सार में इनका विषय लिखा है ।

परशुरामठापा—नेपालके भीमान्तप्रदेशका एक शासन-
कर्त्ता । १८१५ ई० में जब अङ्ग्रेजोंने न्यू नेगल पर चढ़ाई
करनेको सफल हुए थे, तब इन्होंने ४००० गुर्खों के कर
बागमती नदी के किनारे उनका सामना किया था ।
किन्तु इन युद्ध में वे दलबलके साथ भारी-गये और अङ्ग-
रेजोंने 'तराई' प्रदेश भारतसे मासुक्त कर लिया ।

नेपाल देखो ।

परशुराम-विश्वक—एक महाराष्ट्रकवि । ये पहले किष्कि
नामक स्थान में सामान्य 'कुलकारणों' का काम करते
थे । चौर और इनकी प्रतिभा चारों ओर जग चढ़ा ।
राजाराम, रामचन्द्रपन्थ और शम्भुजी बादि महाराष्ट्र-
नैमिक पुद्गलज जय सुगलीके हाथसे दुर्ग की रक्षा
कर रहे थे, तब उस समय परशुराम अपने वीर्य और
बुद्धि का यथेष्ट परिचय दे कर जनसाधारण में प्रसिद्ध हो
गये थे । १६८२ ई० में चोरङ्गजेबने गिर्गी दुर्ग की घेर
लिया । पीछे वे सतारा दुर्ग जीतनेके लिए भागे बड़े
और एक पत्र लिख कर रामचन्द्रपन्थको पूना भेजा । वह
पत्र दिग्विजयकी हाथ पड़ा । ये बहुत ही समझ कर
प्रकाशरूपसे रामचन्द्रकी विरहवाचारी हो गये । चोरङ्ग-
जेब और उनकी पुत्र राजमशाहने सतारा दुर्गके सामने
जावनी छाती और युद्धके लिए समझ दिये । गिर्गीकी
गिर्जित सेनापति प्रयागजी प्रभु स्वच्छदारने प्राणपणसे
सुगलसेन्यके साथ युद्ध किया । इस युद्ध में प्रयागजीने
अपनी खूब वीरता तो दिखाई, पर उन्हें दलबलके
साथ दुर्ग में घायल सेना पड़ा । कुछ दिन बाद दुर्गको

भीतर रसद बादि घट गई । तब उन्होंने सहायका कोई
उपाय न देख, शासनसमर्थ करनेको संकल्प किया ।
पीछे परशुराम विश्वकने निर्भय हो पानी दुर्गके समर्थ
प्रवेश करके रक्षित द्वारा राजमशाहका सुदृढ़ बन्द कर
दिया जिससे उन्होंने इस ओरने बिलकुल बाधेष्टा पड़ा
ली । परशुरामने इच्छानुसार रसद बादि से जर
प्रयागजीकी सेनाको बाहर रूय भेज दी ।

सतारा दुर्गको अधःपतनके एक माम बाद चर्चात्
१७०० ई० में मार्चमास में राजारामकी मृत्यु हुई । पीछे
उनकी स्त्री नाराबाईने परशुरामको राजकार्य चलाने-
के लिए प्रतिनिधिके पद पर नियुक्त किया । उनकी
ऊपर दुर्गादिकी देखरेखका भार भी सौंपा गया ।

प्रतिनिधि विश्वकजीने १७०६ ई० में सुगलीके वसन्तगढ़
और सतारा दुर्ग जीत लिया । १७०७ ई० में सुलतानकर
बाकि परामर्शसे चोरङ्गजेबके द्वितीय पुत्र राजमशाहने
जब शाहको छोड़ दिया, तब शाहने परशुरामको सतारा
दुर्ग प्रत्यर्पण करनेका आदेश लिख भेजा, किन्तु
विश्वकजीने उनकी बात पर कान न दिया । अन्त में

गुप्त रहस्य न जानते हुए विश्वकजीने अपने अधीनस्थ
सुनलमान सेनापति शिखरीरावे परबद्ध हुए । शिख-
रीराने सतारा दुर्ग विपरिणति के हाथ समर्पण किया ।
१७११ ई० में शाहने गदाधर प्रजादकी कार्यसे कुड़ा कर
परशुराम प्रतिनिधिको नामके साथ स्वयं पर भेजि
हित किया । प्रतिनिधिले अपने पुत्र लखजी भास्कराको
दुर्गादिरक्षकका भार सौंपा और अपने शाहकी विदवा-
चारी को कोदहापुरका प्रतिनिधित्व ग्रहण किया । उनके
ऐसे व्यवहारने अन्ततः दो शाहने उन्हें शानसे न गार
कर पुनः कैद में रखा । इसकी कुछ दिन बाद शाहने
प्रतिनिधिके द्वितीय पुत्र योप्रतापकी वीरत्वने प्रसव हो
परशुराम विश्वकको पुनः सुक्ति दी । १७२० ई० में
जब निजाम-सल-सुल्तान दारुलशाहके शासनकर्त्ता
नियुक्त हुए, तब विश्वकजीको मृत्यु हुई । उनकी मृत्यु-
के बाद सेनावा बालाजी विश्वनाथ दीक्षीने छद्म कोटने
भी न पाए, कि प्रतिनिधिके पुत्र योप्रताप पितृपद पर
अधिकार कर बैठे ।

परशुरामदेव—निर्वाक सहायकी एक शुद्ध । ये हरि-
व्यासदेवकी गिर्गी और हरिवन्देवकी गुरु-ये ।

परशुरामपुर—यद्यपि प्रदेश की प्रतापगढ़ जिनान्तर्गत एक गण्डवाम। यहाँ एक मन्दिरमें “जीहाजी” नामक एक शक्ति (पार्वती) की मूर्ति प्रतिष्ठित है। यहाँ की लोगोंका ऐसा विश्वास है, कि दसवर्षकी समय पार्वती की देवका पंगु इन् स्थान पर गिरा था। यहाँ की पुरोहितोंका कहना है, कि बलाफर-बीर अलहा इस देवी की स्थापना करते थे। यहाँ देवीपूजाके लिए अनेक यात्री आते हैं।

परशुराम भाऊ-पटवर्धन—एक महाराष्ट्रीय योद्धा। तास गांववासी पटवर्धनवंशधरोंके ये अधिनायक थे। १७७२ ई० में पेशवा माराठण राजको हत्या और रघुबा (रघुनाथराव) के महाराष्ट्रसे शासन-प्रणयसे राज्य भरमें तलबगी मच गई। रघुबाने जब देखा कि वे मजिदलकी विरुद्ध युद्ध नहीं कर सकते, तब उन्होंने हैदर-अलीके साथ सन्धि कर ली।

१७७५ ई० में अंग्रेजोंके साथ रघुनाथकी सूरतमें की सन्धि हुई, यी उसकी अशुभता से कृष्णानदीके दक्षिण कूल तक विस्तीर्ण महाराष्ट्रभूभाग छोड़ देनेके लिये (कृतमङ्गल्य-रूप)। १७७९ ई० में भी सैन्य और धर्म दि कर उसकी सहायता करनेका वचन दिया। १७७६ ई० में उक्त गर्त कागज पर लिखी जानिके बाद हैदरने मरेश्व सावर्कर प्रदेश तक आक्रमण काके अपना अधिकार फैला लिया। इन पर पूनाके मजिदलभा सुप चाप न रह सकी, उनकी विरुद्ध कोन्दराव त्रिभक् पटवर्धन और पाण्डुरङ्गपय भेजे गये। हैदरके सेना प्रति मजिदल अमीरोंके युद्धमें कोन्दर मारे गये और पाण्डुरङ्ग बन्दी हुए। अन्तमें १७७७ ई० की तासगांव के अधिनायक परशुरामभाऊने मरेश्व मण्ड करके निजाम सेन्यके साथ हैदरके विरुद्ध युद्धसेनमें कदम रखा। जब वे कृष्णानदी पार कर गये, तब उन्हें मालूम हुआ कि निजाम सेन्यके अध्यक्ष इब्राहिमखाने हैदरअलीसे रिश्तत ली है। अतः वे अपनेकी कोशिसमें न हाननेकी इच्छासे त्रापिम करने गए। हैदर सुप आपने ठान रहा। उन्होंने कोल्हापुरके राजमन्त्री यद्योवत्तरावका साथ दिया। परशुरामने लौट कर कोल्हापुर पर आक्रमण किया और अधिकांश नामक

दुर्ग की जीत लिया। १७७८ ई० में कोल्हूरके देशाई सरदार इराफाने हैदरकी सहायतासे गोकाक नामक स्थान अपने अधिकारमें कर लिया। १७७८ ई० में परशुरामने पेशवाके लिये केवल गोकाक ही नहीं जीता, साथ साथ इराफाको भी कैद कर लेते पाये। १७८३ ई० तक यह स्थान पेशवाके अधिकारमें था, पीछे उन्होंने युद्ध-व्ययकी बातमें यह भूसम्पत्ति शब्द नौको दे दो। सभी वर्ष रघुनाथने भग कर सूरतमें जनरल गडार्डका साथय लिया। इस पर पूनाके मजिदलने पंगु जीते ऐसे पाचरणसे चमस्स ही हैदरअली और निजामके साथ सन्धि कर ली तथा पंगुदेशोंको भारतसे निकाल भगानेका सङ्कल्प किया। कोल्हापुरराजकी भी इस दलगत योग देनेके लिये अशुरोध किया गया। अतः यह ठहरा कि मनोली और चिकोड़ो नामक स्थान कोल्हापुरराजकी लोटा दिये जायेंगे, पर १९ वर्षके भीतर उक्त दोनों स्थानके राजसत्त्व युद्ध-अर्थके लिये परशुरामभाऊ १५ लाख रुपये वसूल कर लेंगे। सूरतमें उल्लिखित समय तक वहकि राजसत्त्व वसूलका भार परशुरामके लपर हो रहा। १७८९ ई० के मार्च मासमें नाना फडुनवीशके आदेशसे उन्होंने १२००० मैन्य ले कर कर्नाल गडार्ड पर धावा डोल दिया। १७८६ ई० में परशुरामने तोरौले सरदारोंसे मनोली दुर्ग जीत कर अपने अधिकारमें कर लिया।

१८८५ ई० में टीपू सुलतान निगुण्ड नामक स्थान की जीत कर हिन्दुओंके लपर घोर अत्याचार करने लगे। तबहिंदु करके कितने हिन्दुओंका जातिनाश किया। इन कारण भारी सङ्कटमें पड़ कर सेकड़ों ब्राह्मणसन्तानने आत्मजीवन विसर्जन किये थे। महाराष्ट्र सचिव नाना फडुनवीश सुपचावे बैठे न रहे। इसका प्रतिगोध सेनेकी कोशिस करने लगे। बीचमें दो युद्ध भी हुए। पाकिरकी १८८७ ई० में टीपूने कुछ स्थान महाराष्ट्रोंको दे कर सन्धि तो कर ली, पर पीछे उन्होंने पुनः महाराष्ट्रों पर चढ़ाई कर दी। १८८० ई० में टीपू सुलतानकी दमन करनेकी इच्छासे पंगुरेज, महाराष्ट्र और निजामके बीच सन्धि हुई। पंगुरेज और निजामकी सेनाने परशुरामभाऊ साथ दिया। इस

युद्धमें महार द्र सेन्यके अध्यक्ष बन कर परशुरामभाऊ पागे बढ़े। अंगरेजोंकी गहायतासे परशुरामने औरह्मदतन तर्कके जो मय स्थान टीपूसे जोत लिये, उनका शासन भार धुन्नुपन्य गोखलेके ऊपर सौंप दिया और इस प्रकार पाप निश्चित हो बैठे। १७८२ ई०में इस युद्धका अन्तमान हुआ। इतिहासमें यही तृतीय महिसुर युद्धके नामसे प्रसिद्ध है।

महिसुर-युद्धके शेष हो जाने पर औरह्मदपक्षमें जो मन्त्रि स्थापित हुई, उनमें सुब्रह्मन्नदी तकके स्थान, परैयगढ़ और कीचूर देगाइयोंके अधिष्ठित स्थान जो एक समय टीपू सुलतानके अधिकारमें थे, वे सबके मय महाराष्ट्र सीमानाभूत हो कर परशुरामके शासनाधीन हुए। उन्होंने कीचूर नगरमें एक सामन्तद्वारा की नियुक्त करके यह नवलक्ष्य स्थान धारवाणके अधीन रख छोड़ा। औरह्मदपक्षमें लौट कर परशुरामने देखा कि धुन्नुपन्य गोखलेकी कौचूरके देगाई सरदारोंसे अर्धसंश्रद्ध करके अपनी क्षमता बढ़ा रहे हैं। अतः उन्हें गोखलेकी क्षमताका ज्ञास करनेकी चिन्ता पड़ी। १७८२ ई०में उन्होंने कोल्हापुरराजके विरुद्ध अश्वधारण करके उनका अभिमान चूर किया था। १७८५ ई०में साधवरावकी मृत्यु होने पर बाजीरावकी राज्यारोहणके उपसलमें परशुराम पूना लाये गये और यहाँ उनके साथ गाना फड़नवीरका विवाद हो गया। इसके बाद मुगलसैन्य में उपयुक्ति प्राप्तमणसे तंग भा कर महाराष्ट्र-मन्त्रि नाना फड़नवीरने सेनानायकोंसे सलाह ली परशुरामभाऊको सर्वश्रेष्ठ सेनापतिके पद पर वरण किया। उन्होंने मुगलह्मदको पर प्राप्तमण करनेके लिये विण्ड्यारी और अन्याय अश्वारोही सेनाओंका हुकुम दिया। १७८६ ई०के मार्चमासमें मुगलसेनापतिके साथ परशुरामका समझौता हुआ। इस युद्धमें लाल खाँके प्राप्तमणसे वे विनीतहुने चाहत हुए। उसी साल महाराष्ट्र-सिंहासनके लिये दत्तकपुत्र ले कर अंगरेज कर्मचारी मैलेट (Mr. Malet) और नाना फड़नवीरमें घोर तर्क उपस्थित हुआ। इधर बाजीरावने मसन्द पानिके लिये सिन्धियाके सचिवकी अपना मुद्दोंमें कर लिया और सिन्धियापतिकी

लिख भेजा कि वे उन्हें सिंहासन लेनेमें यदि विशेष सहायता करें, तो स्वयं बाजीराव उन्हें ४ लाख रुपयेकी सम्पत्ति देंगे।

यह उपर्युक्त काममें लानेके पहले ही नाना फड़नवीरको मय बातें मालूम हो गईं। उन्होंने उपस्थित विपद् समझ ली समय परशुराम भाऊकी बुला और उनका कान भंग दिया। परशुराम तत्समागवे गिबनेरी दुर्ग जो १२ कोस दूर था, ४८ घण्टोंमें पहुँचे और वहाँ बाजीरावको पेशवा बनाकर, उसे प्रस्ताव सबके मामलें प्रकट किया। पहुँचे तो किमोने उनकी बात पर विश्वास न किया, पीछे मृदु बाजीरावने परशुराम की गोपुच्छ और गोदावरीका पवित्र जल लुना कर शपथ कराया और पाप दुर्गमें उतर कर अपनी भाई चिमनाजी अर्थात् साधवावो राजधानीकी ओर अग्रसर हुए। अमरतराव परशुरामके आदेशमें उस दुर्गमें बन्दे रहे। बाजीरावने पूना आ कर नाना फड़नवीरके साथ फिरसे दोरतो कर ली। बाजीरावके इस अन्याय आचरण पर लड़ हो कर बलभट्टने सिन्धियापतिकी पूनाकी ओर सैन्य अग्रसर होनेके लिये प्रायना की। फड़नवीर कुछ डर भी गये, तो भी परशुरामभाऊने सतर्कभावसे युद्ध करनेकी उन्हें सलाह दी। किन्तु युद्ध नहीं हुआ। नाना फड़नवीरने कि कर्त्तव्यविमूढ़ हो कर युद्ध करना नहीं चाहा। वे सिन्धियाके डरसे पुरन्दर होती हुए सतारा की ओर चल दिये। बाजीराव और परशुराम पूनामें रहे। सिन्धियाराज लज्जित पूना गये, तब बाजीराव और परशुरामने उनकी खूब खातिर की। बलभट्टने बहुत सोच विचारके बाद बाजीरावकी पक्षधृत्य करके कैद कर लिया और परशुरामको सलाह पा कर मधुरावकी विधवा पत्नीने चिमनाजी अर्थात् दत्तकपुत्ररूपमें ग्रहण किया। चिमनाजी पेशवाके पद पर नियोजित तो हुए पर परशुराम मन्त्रिपद पर रह कर राजकार्यको देख रख करेंगे, ऐसा स्थिर हुआ।

परशुराम मन्त्रिपद पर प्रतिष्ठित हो कर चिमनाजीकी पूनानगर से गये और उनकी प्रतिष्ठा रहते हुए भी उन्हें १७८६ की २६वीं मईकी पेशवाकी पद पर

वरण किया। परशुरामने अपने पद पर प्रतिष्ठित रह कर प्रतिज्ञा की कि सिन्धियाको विपद पड़ने पर वे यथेष्ट आर्थिक सहायता करेंगे। पथ-संशुद्धि के लिये उन्होंने निजामखलीफे-सन्नी मशिर-उल-मुल्कको कारागारसे मुक्त कर दिया।

चिमनाजीके पेशवापद पानेके दूसरे ही दिन परशुरामने नाना फड़नवीससे पूना आ कर नूतन-शासन-भार ग्रहण करनेका प्रस्ताव किया। लेकिन नाना नहीं आये—कोङ्कणकी भीर भाग गये। बलभट्टने परशुरामको सिन्धियामें ले कर नानाका पीछा करनेका हुक्म दिया। परशुरामने वैसे तो नहीं किया, पर उनकी सभी लागीर छुटिया कर सिन्धिया-राजकी संपर्क कर दी और पुनाका राजप्रासाद अपने लिये रख छोड़ा।

पक्षी परशुराम और नाना फड़नवीसके विवादका एकतरफा कारण था। नाना फड़नवीसने बाबाराव फड़के, तुंकाजी डोलकर और रायजी पाटेल आदि सिन्धियाराजके साथ शुभभावसे यह पद्धत्यन्त रचा कि यदि वे लोग बाजीरावको सिंहासन पर बिठा सकें और बलभट्टको कैद करें, तो वे (नाना) उन्हें परशुरामभाऊ पट्टवर्द्धनकी सभी जागीर, पञ्चमदनगर दुर्ग और दस लाख रुपये आयकी सम्पत्ति प्रदान करेंगे। इस नानाने कोल्हापुर-राजकी सुलावेमें छल कर परशुरामभाऊ पर आक्रमण करनेके लिये उन्हें उत्तेजित किया। १७८६ ई०में सर्वांगीण बाट-कोल्हापुरके सरदारोंने परशुरामके अधिकृत प्रदेश और बलभट्ट दुर्गको छूट लिया। पीछे तासगांवमें वेरा डालने और उसे अच्छी तरह जलनेके बाद उन्होंने परशुरामका घर जला दिया। नाना फड़नवीसने राधोजी भोंसले, निजाम खली और पंरगेलीकी प्रसिद्ध सहायतासे मुनरहीत हो २७ भाद्रपदकी बलभट्टको कैद कर लिया और परशुरामभाऊको भी कैद करनेके लिये मशिर-उल-मुल्क तथा नारूपाम चक्रदेवके प्रवीण सेना भेजी। परशुराम चिमनाजी अपनाको साथ ले कर मिहनेरी दुर्गकी ओर भागे, पर राहमें पकड़े गये और कैद कर लिये गये। बाजीराव नाना फड़नवीसकी सहायतासे मसनद पर आकर

हुए, पर उनकी दृष्टि रुद्धभाव न रहा। बाजीरावने सताराराजकी सहायतासे नानाके सहकारी बाबाराव-ऊष और नाना फड़नवीसको कैद कर लिया। किन्तु सताराराजके व्यवहारसे असन्तुष्ट हो बाजीराव छुण हो गये। दोनों ही युद्धका आयोजन करने लगे। सिन्धिया-राजने सताराका पक्ष अवलम्बन किया। मधुराव रस्तिया सतारा आक्रमणमें विकलप्रयत्न हो मानगांव लौट आये। इस समय परशुराम मधुराव रस्तियाकी भाई भानुदरावके निकट माण्डूग्राममें कैद थे। बाई नगरमें जा कर वे इस ग्राम पर छोड़ दिए गये, कि वे (परशुराम) पेशवाके लिए मेन्थ-संग्रह करनेके युद्ध करेंगे।

पेशवाके आदेशसे और रस्तियाकी सहायतासे थोड़े ही दिनोंमें अन्ध बहुतेसे मनुष्य आ कर परशुरामसे सैन्य-दलमें मिल गये। परशुराम दस हजार सेना ले नदी पार कर सताराकी ओर अग्रसर हुए। कई दिनों तक सतारा दुर्गमें सेरा डालने रहनेके बाद राजाने आत्म-समर्पण किया। सभीद मित्र हो चुका, ऐसा देख परशुरामने चमत्प्राप्त हो अपनी सेनाको विदा किया, कि वे उनकी पूर्व वस्तु न दे सकेंगे। कबिनी तो मान लिया, पर बाजीराव कब माननेवाले थे। उन्होंने दस लाख रुपये खिसारा ले कर परशुरामका पिण्ड छोड़ा। १७८८ ई०में महाराष्ट्रकी साथ टीपू सुलतानका विवाद उपस्थित हुआ। नाना फड़नवीसने परशुरामको पुनः प्रथा साहबकी सेनानायकके पद पर अभिषिक्त करनेकी इच्छा प्रकट की। लेकिन उन्होंने यह पद लेना न चाहा। इस पर नाना फड़नवीसने परशुरामभाऊको उक्त पद देनेका विचार किया। ऐसा होनेसे जो कुछ मनोमालिख्य दोनोंमें था सो मिट गया और मित्रता स्थापित हुई। परशुरामने अपना मन्त्रस्थ प्रकट करते हुए कहा, यदि हमें धारवार जिला और कर्णाटक राज्यका कुछ भाग जागीर तोर पर मिले तथा बाजीरावने पहले जो हमें क्षमा किया था, यदि वे माफ कर दें तो वे (परशुराम) वस्तुमान समयमें महाराष्ट्रवाहिनी परिचालनका भार ग्रहण कर सकते हैं। इस युद्धमें टीपू सुलतानकी हार हुई। इतिहासमें यह ४४^{वां} महिषर-युद्ध नामसे वर्णित है।

जब एक और सुनसानटमनका उद्योग हो रहा था, तब दूसरी ओर कोरवापुरराजने महकानी चित्तरसिंह की सहायतामें पेशवाके विरुद्ध अस्त्रधारण किया था। परशुराम जब सतारा जोत कर लौटे, तब बिट्टोही चित्तरसिंहने वरणानदीके उत्तर रक्षिताकी रक्षित सेना की रोक रक्ता। कोरवापुरराज और धनुषपथ गोखलेने परशुरामको विरुद्ध अस्त्रधारण करके तासगाँव घाटि परशुरामके जागीरभूक्त नाना स्थान अपने अधिकारमें कर लिए। नाना फहमवीगन कोई उपाय न देख धर्म-सहि-सुर युद्धके लिये संगठित सेनाको परशुरामको सहायतामें कोरवापुर भेज दिया। नाना फहमवीगन परशुरामभाऊको बुलुम दिया कि जिसमें कोरवापुरराज बधमर न हो सके उसी पर विग्रह ध्यान रहे। परशुरामने पहले दक्षिण युद्धमें जा कर घाटप्रभा और मान-प्रभा नामक दोनों पर्वतके मध्यस्थित ममस्त दुर्ग पर अधिकार जमाया। सितम्बर मासमें ये टनवलके साथ गोकावने कोरवापुर होत हुए चिकोडो पहुँचे। तियाजी घामवे ३ मील पूर्व और चिकोडो ३ मील पश्चिमकीड़ी नामक घाममें कोरवापुरराज और चित्तरसिंह क्षिप रहे थे। परशुरामने इसी स्थानमें उन पर आक्रमण कर दिया। युद्धमें परशुरामको हार हुई। वे भोयण रूपसे पाछता और बन्दे हुए। उक्त घाघातमें ही उनकी मृत्यु हुई।

परशुरामसिन्धु—एक विख्यात ज्योतिर्विद्। इन्होंने जातकचन्द्रिकाटोका, जातकचन्द्रि नामण्टोका, जातका भरण्टीका, जातकालहारटोका, ताजिकचिन्तामणि-टीका, भावचिन्तामणिटीका, मुहूर्तचिन्तामणिटीका घाटि कई एक ग्रन्थों की रचना की है। २ मधुराधमू नामक ग्रन्थके रचयिता।

४ किसी किसीका कहना है, कि शिवाचाराव नाथक कोई क्षत्रिय परशुरामकी मृतदेह ले कर कोरवापुरराजके समीप उपस्थित हुए। राजाने उसी समय उनकी देह टुकड़े टुकड़े कर कानदेही भाड़ा दी। १८१२ ई०में बाजीरावने स्वयं एकफिरो-इन साहबसे कहा था, कि यह बात सबैवादीपरमत्त होने पर भी कोरवापुर यहाँ तक कि सतारामें नहीं। कोरवापुरराजकी कनू-में ही है, कोई भी इसे स्वीकार नहीं करता।

परशुरामसुनि—विद्याकरेणसूत्र नामक ग्रन्थके प्रणेता। इस ग्रन्थकी कोई कोई परशुरामसूत्र भी कहते हैं।

परशुरामशास्त्री—एक प्रसिद्ध पण्डित। इन्होंने सधमास म'मप'मामकार्यकार्य'निर्णय और सधमासमें म'प'मास-कार्यकार्य'निर्णयखण्डन नामक दो ग्रन्थ प्रणयन किये हैं।

परशुरामश्रीनिवास—एक महाराष्ट्र-प्रतिनिधि। १७७७ ई०के ममोपवर्त्ती किसी समयमें उनके पिता प्रतिनिधि भवानोरावको मृत्युके बाद इनका जन्म हुआ। जन्मसे ही इन्होंने प्रतिनिधिका पद प्राप्त किया। युवावस्थामें ये साहसी छ ने पर भी इनकी सामानिक छत्तियाँ खतनी तेज न थीं। बाल्यकालमें नाना फहमवीगन के कष्ट-धीनमें रह कर इन्होंने नाना विषयोंमें शिक्षा प्राप्त की थी। इनकी माता और बलवन्तराय फहमवीगनके घामिनी-धोनमें श्रीनिवासके एक पेटके जागोर थी। परशुराम-ने अपने हाथमें इस कल्पितका भार, पेशवा करकेकी इच्छा अपनी माताके नाममें प्रकट की। माता भी पुत्र को चाहा दे कर वञ्चित करने लगी। उद्यतप्रवृत्तिक प्रति-निधि बलपूर्वक जमोनका अधिकार लेनेके लिये बधमर हुए। पेशवा बाजीरावने दोनों का समीक्षात्मकभाव लक्ष्य किया था, लेकिन जब उन्होंने देखा कि पटवर्धनी में प्रतिनिधिको महायत्ना मिलनेकी आशा नहीं है, तब उन्होंने परशुरामको दण्ड देनेकी इच्छासे बलवन्त फहमवीगनका पक्ष अवलम्बन किया और उन्हें कैदमें रक्ता। इस दारुण विपदमें परशुरामके सहकांशियोंने क्षिप कर अपनी जान बचाई, किन्तु परशुरामको अपनी को चेष्टा न की। उन लोगोंमें ऐसा समझ लिया था मानो परशुरामको यावज्जीवन कारागारमें ही रहना पड़ेगा। उनकी एकमात्र स्त्रीने माताके इच्छापुरा-कार्य करनेके लिये बहुत कुछ उनके सम्भोगों बुझाया, लेकिन कठोर प्रवृत्तिक प्रतिनिधिने एक भोजन में मानो—उलटे उस पर बधमरके को समझ बोझना तक भी बन्द कर दिया। इसका कोई नहीं, वे स्त्री पर इतने रव को गए कि भविष्यमें उन्हें स्त्रीरूपमें ग्रहण नहीं करेगा, ऐसी प्रवृत्ति भी कर ली। इससे बढे इन्होंने किसी तैलीकी स्त्री (तैलिन) को अपनी बसिमत में भारी-रूपमें ग्रहण

किया। प्रत्यय हो कर इस प्रकार खुलन खुला तिलोकी कन्याका सङ्वास करना, जनसमाजमें इसकी बड़ी निन्दा पडो। लेकिन वे इसको कुछ भी परवाह न करते थे। उस तिलिनने प्रतिनिधिको ऐसी दुष्टता सुन कर समाज में जा बहुतसे लोगोंकी अपने दलमें मिला लिया और बसोता दुर्गके जिन स्थानमें परशुराम कारावद्ध थे, उस स्थान पर आक्रमण कर उन्हें मुक्त किया। मुक्त होनेके साथ ही परशुरामने पद्मप्रधानकी अघोरता अन्वोकार कर अपनेको सताराराजके श्रुत्य बतलाते हुए तमाम घोषणा कर दो। इस समय उनके अधिकांशभक्त नोरा और वरणा नामक स्थानके अधिवासियोंमें विद्रोहितता का आभाव भक्तकने लगा। परशुराम स्वयं वहां गए और उनका साथ दिया। धीरे धीरे उनके पूर्वतन सहयोगियोंने भी कार विद्रोहदलको पुष्ट किया। अब परशुरामने इस सैन्यसंघ्यको ले कर अपनी माता और लक्ष्मणराव फड़नबोगके पक्षीय लोगों पर मिष्टर अत्याचार चारम्भ कर दिया। जो सब क्षपक उनके दलभुक्त थे, वे लूटका माल पा कर धीरे धीरे उनके भ्रमुरता हो गए परशुरामके पदभुक्त साहस रहने पर भी उनको बुद्धि और कार्यकारिता शक्ति उत्तमो प्रबल न थी। जिस प्रसोम साहससे इन्होंने विद्रोहीदलको परिचालना की थी, कि यदि बाजोराव चङ्करेजीको सहायता न लेते, तो वे कभी भी विद्रोहदलनमें कृतकार्य नहीं हो सकते थे। युद्धके लिए सज्जित होनेके पहले गोखले दलबलके साथ वहां पहुंच गए। इस पर परशुरामकी सहकारियोंने पर्वत पर जा कर उनसे सम्मेलन बढ़ाने कहा, लेकिन उनके बात पर ध्यान न दे कर इन्होंने असतगतकी निकट गोखलेके साथ लड़ाई ठाम दी। युद्धके प्रारम्भमें ही परशुरामको कितनी सेनाएं भाग चलीं, पीछे वे सिर्फ एक योद्धा ले कर लड़ने लगे। इस युद्धमें इनका एक हाथ नष्ट हो गया और सिर पर भोषण आघात लगा।

शत्रुोंने इन्हें मृत समझ कर लड़ाई बन्द कर दी, लेकिन कुछ समय बाद इन्हें छोय पाया और ये उठ कर खड़े हुए। बाजोरावने इन्हें पूना नगरमें यावज्जीवन कैद रखा और पूर्वोक्त जागोरके कुछ चंग इनके भरणपोषणके लिये निर्दिष्ट कर दिया। महाराष्ट्रराज्यके

सभी दुर्ग बाजोरावके हाथ लगे, जेवन बसोता दुर्ग इनके अधिकारसे बाहर था। श्रीनिवासप्रणयिनो वह तेलोमयी पदम्य उत्साहसे ८ मास तक इस दुर्गकी रक्षा करती रही। पीछे दुर्गमें जो रमद घो उसमें आग लग जानेके कारण वह आत्मसमर्पण करने को बाध्य हुई। बापुगोखलेने भी कर प्रतिनिधिका समस्त धनराज्य अपहरण कर लिया और बाजोरावकी आदेशमें वे इन सब जीते हुए दुर्गके अधिकारो हुए।

परशुरामेश्वर—उड़ोसाकी भुवनेश्वरदेवके अन्तर्गत भुवनेश्वर मन्दिरके समीप एक देवमन्दिर। इसका कारुकाय तथा गठनप्रणाली उत्तमो अच्छी नहीं है।

परशुवन (सं० स्त्री०) परशुवत् पश्युक्तं वनं मध्यलो० कर्मधा० । नरकभेद, एक नरकका नाम जिनके पैरोंके पक्षे परशुको-भो तोखो धारके हैं। इसीलिए सद नरकका नाम परशुवन पड़ा।

परचत्वारिंश (सं० त्रि०) चत्वारिंशकी अर्धसंख्या, चालीसके भागको संख्या।

परश्व (सं० पु०) पर + श्वि अश्वेभ्योऽपोति ङ, ततः परश्वं दधति धा-क। कुठार, परशु, कुचड़ाहो।

परश्वधन् (सं० त्रि०) परशुधारी।

“वमनो लंगली चकी एषी र्धर्मा परश्वधी॥” (हरिवंश ११८ अ०)

परश्व (सं० अश्व०) पर श्वस्, पृषोदरादित्वात् साधुः। आगामी दिनका दूसरा दिन, परमो।

परश्वेयन् (सं० स्त्री०) परामुक्ति। परम उत्कर्षं लाभ कर अन्तर्गत् मोक्षप्राप्ति होती है।

परस् (सं० अश्व०) परस्मात् परस्मिन् परो वा पश्वम्याद्यर्थे बाहु० चसि। दूसरे से वा दूसरेके विषयमें।

परमंसा (हि० पु०) प्रसंग देखो।

परम (हि० पु०) १ स्वयं, दूना, छूनेकी क्रिया या भाव। २ स्वयंमणि, पारस पत्थर।

परमङ्ग (सं० त्रि०) १ दूसरेका सङ्ग वा वस्तुता। २ दूसरेके साथ विवाहित। ३ प्रसङ्ग।

परमङ्गत (सं० त्रि०) १ दूसरेके साथ मिलित वा विवाहित। २ दण्डयुद्धमें लिप्त।

परसञ्चारक (सं० पु०) १ देगभेद, एक देगका नाम। २ इसी नामके देगवासी।

परसंज्ञक (सं० पु०) परा शब्दा मन्त्रा यस्य, ततः कर्त्तुः । परसूत्र (सं० पु०) एक सूत्र परिमाण जो चाहे परमा-
भावा ।
परसन (हिं० पु०) १ कूनेका भाव । २ कूना, कूने-
का काम ।
परसना (हिं० क्रि०) १ स्वर्ग करना, कूना । २ खर्च
करना, कुशाना । ३ किसोके सामने भोज्य पदार्थ
रखना, परोसना ।
परसन्न (हिं० वि०) प्रसन्न देखो ।
परसन्न्य (सं० पु०) दूसरेके साथ सन्न्य, चासोयता,
कुटुम्बिता ।
परसवर्ण (सं० पु०) समानवर्णः सवर्णः परेष सवर्णः
इत्यत् । पर या वस्तरवर्त्तो वर्णके समान वर्ण ।
परसखान (सं० वि०) परवर्त्तो वर्णके समान वर्ण ।
परसा (हिं० पु०) परश, फरसा, कुठार, कुच्छाडी,
तन्वर ।
परसात् (सं० प्रथ०) पर-वसात् । दूसरेको देना ।
परसाहता (सं० स्त्री०) विवाहिता दुहिता, दूसरेके
साथ जिस वालिकाका विवाह हुआ हो ।
परनाद—ये भाषाके कवि थे । इनका जन्म सवत् १५८० में
हुआ था । ये सद्यपुरके महाराजाके दरबारी कवि थे ।
इनको कविताको प्रसिद्धि कुछ कम नहीं है ।
परनाना (हिं० क्रि०) खर्च करना, कुशाना ।
परनामान्य (सं० पु०) गुण कर्म समवेत सत्ता ।
परनाल (क्रा० क्रि० वि०) १ गत वर्ष, पिछले साल । २
भाग्यो वर्ष, भगले साल ।
परनाल (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी घास जो पानोमें
पैदा होती है । इसे परसारी भी कहते हैं ।
परसिद्ध (हिं० वि०) प्रसिद्ध देखो ।
परसिया (हिं० स्त्री०) हंसिया ।
परसो (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी मछली जो
नदियोंमें होती है ।
परसोया (हिं० पु०) एक पेड़ जिसको लकड़ोमें भोज,
कुरखी इत्यादि बनाई जाती हैं और जो मन्दाज तथा
गुकरातमें बहुतयातसे होता है । इसकी लकड़ो ह्याड,
ससत और मजबूत होती है ।
परसु (हिं० पु०) परस देखो ।

परसूत्र (सं० पु०) एक सूत्र परिमाण जो चाहे परमा-
भावाके बराबर माना गया है ।
परसेद (हिं० पु०) मत्तेद देखो ।
परसेवा (सं० स्त्री०) परेषा सेवा । दूसरे की सेवा ।
परसी (हिं० प्रथ०) १ भाग्यो दिनसे भाग्यो दिन,
भानेवाजे कलसे एक दिन भाग्यो । २ गत दिनसे पहले
दिन, बोते हुए कलसे एक दिन पहले ।
परसीर (हिं० पु०) एक प्रकारका धान जो पगहनमें
तेधार होता है ।
परसीर (सं० वि०) तरः तरणोयः, परः सातिशयः तरः,
पारस्कारदित्वात् नाधु । शत्यन्त तरणीय ।
परसात् (सं० प्रथ०) पर-पक्षम्याद्यर्थे यस्माति ।
पक्षम्याद्यर्थ-वृत्तिपर शब्दाद्यः, दूसरेसे या दूसरेके
विषयमें इत्यादि रूप ।
परसी (सं० स्त्री०) परेषा स्त्री । परकीया नारो, दूसरे-
की स्त्री । साधुगण दूसरेकी स्त्रीके प्रति माता के जैसा
व्यवहार करते हैं ।
परसीगमन (सं० पु०) पराई स्त्रीके साथ सम्भोग ।
परस्पर (सं० वि०) परः परः 'सर्वनाम्नां द्वौ वाच्यं समा-
सवच बहुच' इति वाचिकोक्त्या समासवचनो पूर्व-
पदस्य सुवर्त्तत्यः । १ अन्यन्त, इतरतर । (प्रथ०)
२ एक दूसरेके साथ, आपसमें ।
परस्परानुमति (सं० स्त्री०) परस्परको अनुमति, एक
दूसरेकी सन्नाह ।
परस्परोपमा (सं० स्त्री०) एक सर्वाङ्गद्वार जिसमें उप-
मानका उपमा उपमेयको और उपमेयको उपमा उप-
मानका दो जाती है । इसे 'उपमेयोपमा' भी कहते हैं ।
परस्मैपद (सं० स्त्री०) परस्मै परार्थ परवाचक पद ।
दश लकारके पूर्व जो विभक्ति है, दूसरे जो विभक्ति आत्मने
पदकी है । "अङ्गात् कर्त्तरि परस्मैपद" (पाणिनि) यथा-
क्रमसे परस्मैपदकी विभक्ति लिखी जाती है ।
सङ्घ चौर सङ्घ—तिप, तस, भलि । सिप, यस्,
य । मिप, यस्, मस । पाणिनीके मतमें भक्तिको
जगह भि, ऐमा रूप निर्दिष्ट हुआ है । सङ्घ—तुप,
ताम् भन्तु । हि. तं, नं भानि, भाय, भाम । सङ्घ—
दिप, ताम्, भन् । सिप, तं, त । पं, य, म । सङ्घ

पीर लड्डं भो यद्यो विभक्ति ज्योती है । लिट्—एण्,
 प्रतुष्ट, उस्, यल्, पशुस्, ष । णन्, व, म । लुट्—
 ता, तारो, तारस् । तामि, तास्वम्, तास्व । तारिम,
 तारिस्व, तारिस्वम् । लिङ्—यात्, यातां, युष्, यास्व,
 यातं, यात । याम्, याव, याम । शोङ्—यात्,
 यास्ता, यास्तुम् । यास्व, यान्, यास्त । यासे, यास्व,
 यासम् । इस सब विभक्तिशेका नाम परस्मैपद है ।
 जो सब धातु परस्मैपदो हैं, उनके उत्तर परस्मैपद शर्वात्
 सर्वव्यक्त विभक्ति जाती है ।

परस्मैपदिन् (सं० त्रि०) परस्मैपद इति । धातुमीद,
जिन सब धातुके उत्तर परस्मैपद विभक्ति होती है, उन्हें
परस्मैपदी कहते हैं ।

परश्वध (भ० पु०) परश्वध निपातनात् शस्य-भत्वं ।
 परश्वध, कुठार, कुल, जाली ।

परहन् (सं० त्रि०) परं हन्ति हन् क्षिप् । परहनन-
कारी, दुमरीकी मारनेवाला ।

परहारी- हि० पु०) जगन्नाथजीके मन्दिरके पुजारो जो
मन्दिरमें ही रहते हैं।

परहित (स० वि०) परमहन्ताभिलाषी; दूसरेकी भलाई चाहनेवाला, हिताकाङ्क्षी ।

परचित्तरचित्त (सं० पु०) पञ्चकाम नामकं ग्रन्थके टीका-
कार ।

परहितराज—चालुख्यत्र शोय एक राजा ।

परहित शानोविगम—सन्नाद शाहजगन्को कथा ।
 इसका जन्म कान्धारो विगमके गर्भसे हुआ था । २०८६
 हिजरीमें इसकी मृत्यु हुई ।

परहिया (पहाड़ियां) — रत्नामूँ जिनावांभी पावँ तोय जातिभेद । इनके जो संव श्रेणीविभाग देखे जाते हैं, वे साधारणतः पर्व पहाड़ों नामसे सम्पन्न हैं। शिरोधर, गार्ज और मनुष्यो यद्यो तीन इनकी वंशशाखाएँ हैं। शांग (श्याम), गीध (गृध्र-), फणिया (फतिया-), फोवां (काक), मैना (पक्षी), नाग (मर्ग), तेजिहा (जिक) और गृहादि, माफियां आदि भिन्न भिन्न श्रेणी हैं। ये लोग 'धरतीमांघ' (धरतीदेवी) की ओर गीर्जित नामक देवताको उपासना करते हैं।

परछेज (फा० पु०) १. दुरी, घातेसे दृष्टीका नियम,

गुराडयो और दोपेसि दूर रहना । २ द्वापत्यको हानि
 पहेँ चनिवालो बातांसि बचना, रोग उत्पन्न करनिवाला
 या बढानिवालो वस्तुभोका त्याग, खाने पेनिका मंयम ।
 परहेजगार (फा० पु०) १ संयमो, परहेज करनिवाला,
 कुपय न करनिवाला । २ दोपेसि दूर रहनिवाला ।
 गुराडयोसि बचनिवाला ।

परहेजगारो (फा० म्त्रो०) १ टोपी और बुराईयोका
ह्याग । २ मंथम, परहेज करनेका काम ।

परहेलना (दि० क्रि०) तिरस्कार करना, निरादर करना ।

पर्याचा (हि० पु०) १ तखना, पटरो । २ तख्को पाटन जो आस पासके तलसे जंवाई पर हो और जिस पर बैठ सकते हो, पाटन । ३ बेड़ा ।

परांठ (हि० पु०) घी लगा कर तबे पर सेकौ हुई
चपातो ।

परा (म० शब्द०) १ विमोक्ष । २ प्राधान्य । ३ प्राति-
लोभ्य । ४ धर्षण । ५ वामिमुख्य । ६ भुगार्थ ।
७ विप्लव । ८ गति । ९ वध । उपसर्गविशेष—
इस उपसर्गका अर्थ है— १० भङ्ग । ११ क्षनाद्वर ।
१२ प्रत्यावृत्ति । १३ न्युगमाय ।

परा (सं० स्त्री०) पृ-भक्ष, ततष्टाप्, १ वधा कर्को-
 टको, बांभ ककोड़ा । दधका गुण-लघु, कफनाशक,
 व्रणशोधक, सर्प या विषर्प विषनाशक क्षीरतीक्ष्ण ।
 (भाव प्र०) २ नामिरूप मूलाधारसे प्रयमादित नादस्व-
 रूप वर्ण, चार प्रकारको वाणियोंमें पहली वाणी जो
 नादस्वरूपी क्षीर मूलाधारसे निकली हुई मानो जाती
 है । पुरयति सागरं भक्तमनोरथं पृ-भक्ष-टाप्, ३
 गङ्गा । ४ वह विद्या जो ऐसी यशसा भान कराती
 है जो सब गोचर पदार्थोंमें परे हो, उपनिषद्-विद्या,
 ब्रह्मविद्या । ५ नदीविशेष, एक नदीका नाम ।
 पारा देवी, ६ मायत्री । ७ एक प्रकारका सामगान ।
 (त्रि०) ८ श्रेष्ठ, उत्तम । ९ जो सबसे परे हो ।

परा (हि० पु०) १ रथम खोलनेवालाका लकड़ोका
बारह चौदह पंद्रह लम्बा एक भोजार । २ पंक्ति,
कतार ।

पराधोषादो—इलाहाबादके—हमोरपुर जिलांतमें ॥ पक्ष—

याम। यहाँ एक प्राचीन कृषि ७५५ सम्यत्तमं चक्रोणं
एक गिन्नालिपि देखी जाती है।

पराक (सं० पु०) परं श्रमन्तं पाकं दुःखं उपवासः दि-
जन्य शारीरिकादिको यत्र, यस्माद्वा। १ व्रतविशेष,
पराकव्रत।

“यतामनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनं।

पराकनाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनीदनः॥”

(यशु ११२१५)

इस व्रतमें जितेन्द्रिय हो कर बारह दिन तक उप-
वास करना होता है। इसे पराकव्रत कहते हैं। यह
व्रत भव प्रकारके पापोंका नाशक है। इस पराकव्रतमें
पञ्चधनु टान करना होता है और यह व्रत पञ्च राजा-
पत्यव्रतके जैसा माना गया है। इसका विशेष विवरण
प्रायश्चित्ततत्त्व और प्रायश्चित्तविवेकमें लिखा है। २ खड्ग,
तलवार। ३ क्षुद्र रोगविशेष, एक रोगका नाम। ४ जन्तु-
विशेष, एक जन्तुका नाम।

पराकी (सं० अर्थ०) १-अथ क्राडनकात् डे। दूर।

पराकाश (सं० पु०) १ वायव्य द्वाश प्रतिष्ठित और कार्य-
में प्रकृत धर्मको परीक्षा, वचनके अनुसार कार्य नहीं
करनेकी परीक्षा। २ शतपथब्राह्मणके अनुसार दूर-
दर्शिता।

पराकाष्ठा (सं० स्त्री०) १ गायत्रीमंत्र। २ ब्रह्माकी
प्राची प्रायु। ३ परिमोमा, चामरौमा, मोमान, हट।
पराकोटि (सं० स्त्री०) १ ब्रह्माकी प्राची प्रायु। २ परा-
काष्ठा।

पराकृपुष्या (सं० स्त्री०) अष्टमार्ग, चिचहो, चिचिटा।

पराकृपुषी (सं० स्त्री०) पराकृपुषा देखी।

पराक्रम (सं० पु०) पराक्रमतिऽनेन क्रम-मञ्जु (नोदासीरवे-
दस्य। पा ७।३।४) इति मल्लिः। १ शक्ति, बल, सामर्थ्य।
पर्याय—द्रविण, तर, मह, बल, शौर्य, स्थान, शुभ्र,
प्राण, मह, श्रम और सामर्थ्य। २ विक्रम, पुरुषार्थ,
वीर्य। ३ लोभ। ४ निष्क्रान्ति। ५ विश्वास।

पराक्रम—१ लोभशरीर एक राजा। जोर देकी।

२ पाण्डवशरीर लोभमेट। ये सभागतः १३० ई०की
मधुरामे राजत्व करते हैं। इनका पूरा नाम या क्षात्रि-
कः पराक्रम पाण्डव। १२४८ ई०की लोकोपश्रितिका-

लिपिमें इनका नामोल्लेख है। ३ लल वंशीय एक दूधरे
राजाका नाम। इसका पूरा नाम विभुवन-चक्रवर्ती
पराक्रम पाण्डुराज था। १५४६ शकमें लोकोपश्रितिका
एक प्रशस्ति पाई गई है। दक्षिण भारतमें लल राजवंश
धरालो निर्मित चनेक वीरों देखी जाती है।

पराक्रमकेशरिन् (सं० पु०) पराक्रम केशरीय। १ विक्रम-
केशरी, विक्रममें सिंहके तुल्य। २ विक्रमकेशरी राजाके
एक पुत्रका नाम।

पराक्रमस्र (सं० त्रि०) पराक्रम शत्रुबल जानातीति
स्राक। जो शत्रु पराक्रमकी जान सके।

पराक्रमवत् (सं० त्रि०) पराक्रमःविद्यतिऽस्य मतुप, मस्य
व। विक्रमशाली, पराक्रमयुक्त।

पराक्रमवाहु (महत्)—सिंहलदेशके एक राजा। ये बौद्ध
धर्मावलम्बी थे और बौद्धधर्मका प्रचार देनेके लिये मठ,
विहार और नामालानोंमें मन्दिरादि बनवाये थे। इस
कारण जनतासे इन्हें महत् और लङ्काश्रीकी उपाधि
मिली थी। ११२६ ई०में इनके पिताकी मृत्युके बाद
राजपरिवारके मध्य राज्याधिकार से कर बहो गहबहो
लगी। इस कारण प्रायः २२ वर्ष तक युद्ध चलता रहा।
अन्तमें युद्ध-विषयादिके शान्त होने पर ११५३ ई०में परा-
क्रमने सिंहासन प्राप्त किया। लङ्काकी राजधानी चतु-
रधापुरके ओहीन होने पर पुनर्लोकनगर राजधानी
रूपमें गिना जाने लगा। इसी नगरमें पराक्रम बाहुका
अभिषेक कार्य सम्पन्न हुआ था। अपने राजत्वके आठवें
वर्षमें इन्होंने दक्षिण सिंहलके अधिपतिकी परास्त
कर इनका राज्य अपने राज्यमें मिला लिया। नरेन्द्र-
चरितावलोकनप्रदीपिका नामक सिंहलदेशीय ऐति-
हासिक ग्रन्थ पढ़नेसे मालूम होता है, कि रामच-
द्रगाधपतिके साथ राजा पराक्रमका विशेष मन्त्राव था।
रामगाधपतिने दुष्ट लोगोंको मलाहमे सिंहलराज
दूतकी कद कर लिया। इससे मलाहा जम्बुद्वीपराज
० चतुर्थ महेंद्रके पुत्र काश्यप नामक एक भोटासने जब
सिंहलका निवासन करनेकी कोशिश थी, तब रामचन्द्राहुने उन्हें
परास्त किया था। (Jour. R. A. S. Vol. VII p. 154)
मुद्रके बाद शांति स्थापित हुई। सम्भवतः पराक्रमवाहु, इन्दी-
के निकट उपशोदनासे मेलते थे।

काश्यापकी 'निष्ठ' सिंहराजने जो उपटीकन और पवादि भोजी से उन्हें भी रोके रक्खा । पराक्रमवाहु ने कुपित हो कर अपने देववाभियों की एक सभा को जिसमें यह स्थिर हुआ कि रामचरराज या तो यमपुर भेजी जाय या राजा को निकट बन्दी कर लाये जाय । देवप्रथेष्ट दमिलाधिकारो सेनापति हो कर प्रग्रसर हुए । रामचरराज पराजित और बन्दी हो कर सिंहराज की सामने लाए गए । मधुराधिपति पराक्रम पाण्ड्य जब कुलशेखरसे उत्प्रेक्षित किए गए, तब उन्होंने पराक्रमवाहु की शरण ली । सिंहराजने अपने महामन्त्री लङ्कापुरदण्डनाथ को कुलशेखर के मायका चुकस दिया । कुलशेखर पराजित और बन्दी हुए । रामेश्वर के निकट लङ्कापुरदण्डनाथ द्वारा प्रतिष्ठित जयस्तम्भमें यह कौत्ति घोषित हुई है । ११६८ ई० में इन्होंने कम्बोज और चरमन तथा चोल और पाण्ड्य राज्य पर आक्रमण किया । इनकी पत्नी पाण्ड्यराज-पुत्री लोलावती की खनामाहित सुद्धा भाज भोगी जाती है । स्त्रीको शत्रु के बाद लोलावती ने ११८७, ११९८ और १२११ ई० में तीन बार राज्याधिकार पाया था । ये भी स्त्रीको तरह विद्या-शुभागिनी थी ।

पराक्रमवाहु त्रिपिटक के अनुसार बौद्धधर्म-रक्षा के विशेष पक्षपाती थे । इस कारण बुद्धविग्रहादि भाता विज्ञान रहते हुए भी इन्होंने बौद्धग्रन्थसमन्वित १२० विद्यामन्दिर बनवाये । पमिधानपट्टोपिका नामक एक कोष इन्होंने राजत्वकालमें रचा गया है । ११८६ ई० में इनकी मृत्यु हुई । कोई कोई निःशङ्कमल्ल और महापराक्रमवाहु की एक ही व्यक्ति मानते हैं ।

पराक्रमवाहु १२५—सिंहराजोपका एक बौद्ध राजा । इन्होंने

१२६६ से १२९१ ई० तक राज्यशासन किया था । इन्होंने पिटस्थापित मन्दिरादिना पुनर्निर्माण, चोलराज्यसे यमण ला कर देववाभियों की 'त्रिपिटक' ग्रन्थादान, दक्षिण भारतके नाना स्थानोंमें बौद्धग्रन्थ संग्रह और बौद्धधर्मपुस्तकादिका विचारके लिए एक सङ्घ स्थापित किया था । 'पूजावलि' नामक एक ऐतिहासिक ग्रन्थ इनके राजत्वकालमें रचा गया है ।

पराक्रमवाहु ४४—सिंहराजोपका एक बौद्ध राजा । इन्होंने १२१४ से १२१८ ई० तक राजत्व किया था ।

पराक्रमवाहु ५५—सिंहराज के एक बौद्ध राजा का नाम । १२२० ई० को इनके राजत्वके दशवें वर्षमें लङ्का में गिलाफलकसे जाना जाता है, कि इन्होंने देवराज विष्णु के चतुर्थसे भूमिमहाविहारकी समीप एक नारिपेल-स्तूप निर्माण किया था ।

पराक्रमवाहु ६४—सिंहराजोपका एक प्रबल पराक्रान्त बौद्ध राजा । कलम्बो बन्दर के निकटवर्ती जयवर्द्धनपुर नामक नगर (वर्तमान काट्ट) में १४१० से १४६२ ई० तक इन्होंने राजत्व किया था । माता सुनेमादेवी की स्मरणार्थ इन्होंने समस्त १४५३ में एक बुद्धमन्दिरकी प्रतिष्ठा की थी ।

पराक्रमवाहु ७५—सिंहराजोपका एक बौद्ध राजा । लगभग १५०५ से १५२५ ई० तक इन्होंने राज्यशासन किया था । पिहित, माया और बहुत नामक सिंहराज इन्होंने तीन विभागों में उनको अधीनता स्वीकार की थी । राज-महाकल्याणोय नामक स्थानको गिलातिपिसे जाना जाता है, कि वे २०५२ बुद्ध-सम्बत्सरमें लङ्का के सिंहासन पर आरुढ़ हुए ।

पराक्रमवाहुवीरराजनिःशङ्कमल्ल—सिंहराज की एक राजा । महापराक्रमवाहु की मृत्यु के बाद वे ११८७ ई० में राज्य-सिंहासन पर अधिकृत हुए । पराक्रमवाहु के राजत्वकालके प्रथमागमें लङ्का में जो तीन गिलाफलक पाए गए हैं, उनमें ऐसा लिखा है, मानो पराक्रमवाहु, सिंहराजोप वासियों से कह रहे हैं कि वे सुदेवयोगके साथ किसीको राजा न बना कर भारतवासियों किसी क्षत्रिय नरपतिकी राजपद पर प्रतिष्ठित करें । यही कारण है, कि कलिङ्गके अन्तर्गत सिंघपुराधिपति राजा

† Jour. R. A. S. Vol. VII p. 155 & J. A. S. B. Vol. XLI. 197.

‡ Jour. A. S. B. Vol. XLI. p. 190.

॥ कोई कोई इस स्थानको आराकन वा ब्रह्मदेशके अन्तर्गत बतलाते हैं । Ind. Ant. Vol. XVII p. 126. लेकिन राजावली, राजरत्नावली और महावंशमें इस स्थानको कलम्बो-इल्लम के अन्तर्गत बतलाया है ।

§ J. R. A. S. Vol. VII. p. 154. Vol. XIII. 6

जरगोपके पुत्र निःशङ्कमल्ल निर्वाचित हो कर मिहलमें
 पामन्वित हुए और राजपद पर प्रतिष्ठित किये गये ।
 ११५० ई०में इनका जन्म हुआ था । मिहलम पर
 बैठ कर इन्होंने "श्रीमत्सुशोभिकानिष्ठ पराक्रमबाहु—
 वीरराज-निःशङ्कमल्ल-प्रप्रतिमल्ल-नक्षत्रा महाराज" की
 उपाधि पाई । पाण्डुराज्यजय, पुष्करिण्यादि ध्वनन और
 मन्दिरादिका निर्माण छोड़ कर इनके राजत्व कालमें और
 कोई विशेष घटना न घटी । इनके वीरबाहु नामक एक
 पुत्र और सर्वज्ञसुन्दरी नामक एक कन्या थी । प्रजाको
 सुविधाके लिए इन्होंने करमंषकी प्रथा जारी की,
 किन्तु प्रजाको परमंतोष कर कोई भी करके इन्होंने
 यत्न नहीं किया । ११८६ ई०में इनकी मृत्यु के बाद
 पुत्र वीरबाहुने एक वर्ष तक राज्य किया, पीछे रानी
 कीलावतीने पुनः राज्याधिकार पाया ।

पराक्रमबाहु 'महत' देखो ।

पराक्रमिन् (म० वि०) पराक्रमः अस्यास्ति इति । १
 पराक्रमयुक्त, जिसके पराक्रम हो, बलिष्ठ, बलवान् । २
 बहादुर, वीर । ३ उपपायी, उद्योगी, उद्यमी ।

पराग (म० पु०) परा गच्छतीति गम-ड । १ पुष्पधूलि,
 वह धूलि वा रज जो फूलों के बीच मध्ये केसरों पर जमा
 रहता है । पर्याय—सुमनोरज, कीसुमरेणु, पुष्परेणु ।
 २ धूलि, रज । ३ ज्ञानीय द्रव्यविशेष, एक प्रकारका
 सुगन्धित चूर्ण जिसे लगा कर स्नान किया जाता है । ४
 गिरिप्रसेद, एक पर्वत । ५ विरुधाति । ६ उपराग । ७
 चन्दन । ८ स्रक्चन्द गमन । ९ अपूररज, कपूरही धूल
 वा चूर्ण ।

पराग—भाषाके एक कवि । काशीनरेश महाराज उदय-
 नारायणमिहली महामंथे रहते थे । इन्होंने घमर-
 कोपके तीनों काण्डोंका भाषामें अनुवाद किया ।

परागकेसर (म० पु०) फूलों के बीचमें से पतने लगे
 सुत जिनकी नोक पर पराग लगा रहता है । इन्हें
 पोषों की पुं० जननिन्द्रिय समझना चाहिए ।

परागति (म० पु०) १ गिय, महादेव । (स्त्री०)
 २ गायत्री ।

परागद्वय (म० वि०) सद्विद्वेति ।

परागना (हि० स्त्री०) चतुरङ्ग होना ।

परागपुष्प (म० पु०) धूलोकदम्ब ।

परागवस्तु (म० पु०) परावस्तु का नामान्तर ।

परावस्तु देखो ।

परागम (म० पु०) गन्तु का आगमन वा आक्रमण ।

पराह (म० की०) शरीरका प्रथः वा पश्चात्भाग, शरीर-
 का पिछला हिस्सा ।

पराहद (म० पु०) परं पङ्क कागोमृचो गिरत्वं दश-
 तोमि टाक । गिय, मं० देव ।

पराहृष (म० पु०) पराहृ जनश्रद्धा प्रचुरशरीर वागि
 प्राप्नोतीति टाक । समुद्र ।

पराधुख (म० वि०) पराध, प्रतिक्रीमामिमुख, यस्य ।

१ विमुख, मुँह फिरे हुए । पर्याय—पराबोन । २ प्रति-
 कूल, विरुद्ध । ३ निवृत्त । ४ श्रद्धाहीन, जो ज्ञान न दे ।

(पु०) ५ तन्मोक्त सम्प्रतिगेष ।

पराङ्मुखता (म० स्त्री०) पराङ्मुख्य भावः, तत्त-
 टाव् । पराङ्मुखत्व, पराङ्मुखका भावः, प्रतिकूलता ।

पराव (म० वि०) परा पश्यतीति परा-पश्य-क्तिप् । १
 प्रतिनीमगमनाययं, प्रतिक्रीमनामो, उलटा चलनेवाला ।
 २ कर्षणादी । ३ बाह्योन्मुख । ४ पराचगम्य, परचय-
 गम्य । (पु०) ५ परमस्वभावी दूररेता आत्मा द । ६
 परगामी बाह्यपदार्थबोधक, पर्यय, रूपकामित्र ।

पराचित (म० वि०) परेण आचितः, पालितः । परमुद्र,
 दूररे द्वारा प्रतिगलित । पर्याय—परिस्तब्ध, परनात
 और परेधित ।

परावा (म० स्त्री०) परा पश्य-क्तिप्, क्रियां होय । १
 अनुलोम द्वार आहवा कृत् । २ परेवर्तिना विट्, नि-
 गेद ।

परावोन (म० वि०) परा पश्यति परमिमुखो मन्त्रोति
 क्तिप् (कृतिवृद्धम् । वा १२।५८) १ पराङ्मुख,
 विमुख । २ प्राचीन, पुराना ।

परादेव (म० अर्थ०) पराधुख ।

पराजय (म० पु०) पराजयतीति नि-पद्ये । रथमें भङ्ग ।

उपजयण, विद्या, विवाह आदि भी रथ मण्डके मध्य
 जानना चाहिए, पराभव । पर्याय—मङ्ग, हार । हारि ।

पराजय (हि० स्त्री०) विजयका उलटा, हार, गिराव ।

पराजिका (हि० स्त्री०) पराज नामको राजिनी ।

परान्त (सं० पु०) एककवचके एक पुत्रका नाम ।
 परान्त (सं० वि०) परान्त कर्मणि लृट् । कृतपरान्त ।
 परान्त, विजित, परान्त, चारा, दुष्य । पर्याय—हारित,
 विजित और निर्जित ।
 परान्त (सं० वि०) जयो, विजिता ।
 परान्त (सं० पु०) परान्त अन्तीति अन्त आलो अच् । १
 तं न निष्कृष्ट-यन्त्र । २ किम् । ३ कुरिवादन ।
 परान्त (सं० स्त्री०) परान्त देखा ।
 परान्त (सं० पु०) परान्त, विच, ततो, गत्व । १ प्राण ।
 (स्त्री०) २ सामभेद ।
 परान्त (सं० स्त्री०) विताड्, दूराकरण, भिन्नस्थानमें
 प्रेरण ।
 परान्त—अथर्व वेदके अष्टादश जितान्तगत एक
 दुर्ग और नगर ।
 परान्त (सं० पु०) १ ताडित । २ अष्ट जितको धका
 दे कर निकाल दिया गया हो ।
 परान्त (सं० स्त्री०) धातोके आकार का एक वृद्धा वर-
 तन जिसका किन्तु धातोके किन्तुमें अच् होता
 है । यह आठ सूत्रों, दाय और धीने आदिके नाम
 आता है ।
 परान्त (सं० वि०) अत्यन्त दूरतर ।
 परान्त (सं० पु०) परान्त अथादिपरिः परः अर्थः । १
 अलिप्त, विष्णु । भगवान् विष्णुसे और कोई दूरा अर्थ
 नहीं है, इसलिए ये ही एकमात्र परान्त हैं । २ पर-
 मात्मा । (वि०) ३ सर्वार्थ, जिसके पर कोई दूरता
 नहीं होती ।
 परान्त (सं० पु०) परान्त प्रियः । हृदयप्रिय, उत्प-
 ल्य । एक घाम जो कुशकी तरहको होती है और जिसमें
 जो या गेहूँको से दान पड़ते हैं । इसको धातोके ठ ठ
 नहीं होती ।
 परान्त (सं० पु०) परः आत्मा । १ परमात्मा, परब्रह्म ।
 परस्य आत्मा इत्यन्त । २ दूसरेकी आत्मा ।
 परान्त (सं० वि०) जिस प्रकार शत्रुको परान्त हो
 उसी प्रकार दानकारी ।
 परान्त (सं० पु०) परं उत्कृष्टमदनं यस्य, यथा परान्त
 शत्रुन् पत्तिं वा वादयति, अद्वयः विच, अत्युच्च
 परान्त घोटक, फारसका घोड़ा ।

परान्त (सं० स्त्री०) परान्त आदानं सम्यक् दानं ।
 परीपकारके लिए दयादि द्वारा कृपाणादिकी सम्यक्
 दान ।
 परान्त (सं० पु०) परस्य आधिः । १ दूसरेका दुःख,
 दूसरेकी मानमोहा । परः आधिः । २ अत्यन्त मानस-
 मोहा ।
 परान्त (सं० वि०) परस्य पर्यायं वा अधीनः । परवश,
 जो दूसरेके अधीन हो, जो दूसरेके ताबेमें हो । पर्याय—
 परतन्त्र, परवान, नाथवान् ।
 “स्वाधीनवृत्तेः साफल्यं न पराधीनवृत्तितः ।
 ये पराधीनकर्मणे जीवन्तां अपि च ते मृताः ॥”
 (बृहत्पु० १३३ अ०)
 पराधीनता (सं० स्त्री०) पराधीनस्य भावः, तत्तत्तः
 टाप । पराधीनका भाव, परतन्त्रता, दूसरेकी अधी-
 नता ।
 परान्त (सं० पु०) प्राण देखो ।
 परान्त (सं० वि०) भागना ।
 परान्त (सं० स्त्री०) परान्तितया परान्त्य करणे
 बाहुल्यं अन्तर्गता टाप । चित्तिला । बहुतांका
 कहना है, कि इस अर्थमें अत्यन्त अर्थात् प्राणना ऐसा
 पदना ठीक है ।
 परान्त—देशभेद, एक देशका नाम ।
 परान्त (सं० पु०) परान्तकः । १ सर्वनामक महा-
 देव । महादेव सर्वोका नाम करती हैं, इहीलिये इन्हें
 परान्तक कहते हैं । २ सोमान्तदेव ।
 परान्तकारा—चोलवंशीय एक राजा । इन्होंने मधुराका
 ध्वंस किया था, इस कारण इनका और एक दूसरा नाम
 था मधुरान्तक ।
 परान्तकाल (सं० पु०) परं संसारोत्तरं अन्तःकालः ।
 समुद्रमूर्धको संसारहानि, देहान्तकाल, मृत्युका समय ।
 जो संसारो हैं उनका जब देहान्तकाल उपस्थित
 होता है, तब उसे अन्तकाल और समुद्रमूर्धको जय संसार-
 हानि अर्थात् भोग और देहादिका अन्तकाल उपस्थित
 होता है, तब उसे परान्तकाल कहते हैं । संसारियोंका
 मृत्युके बाद पुनः जन्म होता है, इसलिए उसका नाम
 अन्तकाल तथा समुद्रमूर्धकोका मृत्युके बाद फिरसे

जरगोपके पुत्र निःशङ्कमन्त्र निर्वाचित हो कर सिंहासनमें
 प्रामाण्यतः एषोर राजपद पर प्रतिष्ठित किये गये ।
 ११५० ई० में इनका जन्म हुआ था । सिंहासन पर
 बैठ कर उन्होंने 'श्रीमद्भक्तिकान्तिप्रदा पराक्रमवाह—
 शौरराज-निःशङ्कमन्त्र-प्रतिमन्त्र-मन्त्रज्ञा' 'महागज' की
 उपाधि पाई । पाण्डुराज्यजय, पुष्करिण्यादि धनन शौर
 मन्दिशटिका निर्माण छोड़ कर इनके राजत्व शालमें शौर
 कोई विशेष घटना न घटी । इनके वीरबाहु नामक एक
 पुत्र शौर सर्वाङ्गसुन्दरी नामक एक कन्या थी । पञ्जाको
 सुविधाके लिए उन्होंने कस-पड़की प्रथा जारी की,
 किन्तु प्रजाको चमत्तोष कर कोई भी करके उन्होंने
 ग्रहण नहीं किया । ११८ ई० में इनकी मृत्यु के बाद
 पुत्र वीरबाहुने एक वर्ष तक राज्य किया, पीछे रानी
 कीनामतीने पुनः राज्यधिकार पाया ।

पराक्रमवाहु 'महत्' देखो ।

पराक्रमिन् (म० वि०) पराक्रमः अस्यास्ति इति । १
 पराक्रमयुक्त, जिसके पराक्रम हो, बलिष्ठ, धैर्यवान् । २
 बहादुर, यीर । ३ पुत्रपार्थी, उद्योगी, उद्यमी ।

पराग (म० पु०) परा गच्छतीति गम-ङ् । १ पुष्पधूलि,
 बह धूलि वा रज जो फूलों के बीच लम्बे केसरों पर जमा
 रहता है । पर्याय—सुमनोरज, कौसुमरेणु, पुष्परेणु ।
 २ धूलि, रज । ३ छात्रीय द्रव्यविशेष, एक प्रकारका
 सुगन्धित चूर्ण जिसे लगा क स्नान किया जाता है । ४
 गिरिप्रभेद, एक पर्वत । ५ विख्याति । ६ उपराग । ७
 चन्दन । ८ क्षुब्ध गमन । ९ शूर्पूररज, कपूर से धूत
 वा चूर्ण ।

पराग—भाषाके एक कवि । काशीनरेश महाराज उदय-
 शारदायणमिन्दकी समामे ये रहते थे । उन्होंने समर-
 कोपके तीनों काण्डोंका भाषा में अनुवाद किया ।

परागगेर (म० पु०) फूलों के बीचमें से पनने लम्बे
 सुत जिनकी नोक पर पराग लगा रहता है । इन्हें
 पोषों की पुं० जन्मिन्ध्रव समझना चाहिये ।

परागति (म० पु०) १ शिव, महादेव । (श्री०)
 २ गायत्री ।

परागदृग् (म० वि०) दृष्टिदेष्टि ।

परागना (हि० क्लि०) पशुरक्त होना ।

परागपुष्प (सं० पु०) धूमकेतुम् ।

परागवसु (म० पु०) परागसुका नामाक्षर ।

परावप देखो

परागम (म० पु०) शत्रुका आगमन वा आक्रमण ।

पराह (म० क्लि०) शरीरका पथः वा पक्षाभ्याग, शरीर
 का पिछला हिस्सा ।

पराहद (म० पु०) परं चक्रं कायेभ्यो गिरत्वं दृष्ट्वा
 तोति दाक्षं । शिव, महादेव ।

पराह्व (म० पु०) पराह्व जनद्वारा पशुरशरीरों वा
 प्राणीतोति वाक् । समुद्र ।

पराशुख (म० वि०) पराश्रु प्रतिशोभामिमुखः यस्य
 १ विमुख, मुँह फिरे हुए । पर्याय—पराधीन । २ प्रा-
 क्षुण्ण, विरुद्ध । ३ निवृत्त । ४ उदानोन, जो ध्यान न है
 (पु०) ५ तन्मोक्ष मन्त्रविशेष ।

पराङ्मुखता (म० स्त्री०) पराङ्मुख्य भावः, त-
 टाव । पराङ्मुख्य, पराङ्मुखका भावः, प्रतिजूलता ।

पराच (म० वि०) परा पश्यतीति परा-पश्य-क्षिप ।
 प्रतिशोभामनायय, प्रतिशोभामो, उलटा चलनेवाला
 २ कर्षणशील । ३ बाह्योन्मुख । ४ परीक्षण्यः अपश्य-
 गम्य । (पु०) ५ पश्यत्यवगामी दूररेता वाक्का दे ।
 परागामी वाङ्मयदाय बोधक, प्रत्यय, द्वाभाभिव ।

पराचित (म० वि०) परेण चाचितः, पालितः । परग-
 दूररे द्वारा प्रतिभालित । पर्याय—परिस्कन्द, परना-
 शोर परेचित ।

परावा (म० स्त्री०) परा पश्य-क्षिप, क्षिप्यो डोव ।
 अनुशोभ द्वारा पाहता कटक । २ परेवसिना विट्, वि-
 भेद ।

परावोन (म० वि०) परा पश्यति चरमिमुखो भवतीति
 क्षिप् । क्षिपिगृहक । वा १।२।५८ । १ परावोन
 विमुख । २ प्राचीन, पुराना ।

परावेम् (म० अर्थ०) पराङ्मुख ।

पराजय (म० पु०) पराजयतीति जि-पद्य । रक्षमें भ-
 उपनचण, विद्या, विवाह आदि भो रक्ष शब्दके म-
 जायना आदि, पराभव । पर्याय—मर्दा, हार । हारि-
 पराजय (हि० स्त्री०) विजयका उलटा, हार, शिकम ।
 पराजिका (हि० स्त्री०) परम नामकी रागिनी ।

पराजित् (सं० पु०) कृत्तकवचके, एक पुत्रका नाम ।
पराजित (सं० त्रि०) परा-जि कर्मणि क्त । हतपराजय.
पराभूत, विजित, परास्त, द्वारा हुआ । पर्याय—हारित.
विजित और निर्जित ।

पराजिण्ड (सं० त्रि०) जयो, विजेता ।
पराञ्ज (सं० पु०) परान् अनन्तोति अञ्ज व्याप्तो अच् । १
तन्म निषोद्धन-यन्त्र । २ कैन । ३ कुरिश्चाल ।
पराञ्जल (सं० स्त्री०) पराञ्ज देवा ।
पराण (सं० पु०) परा-मण-विच, ततो गत्वा । १ प्राण ।
(स्त्री०) २ श्वासभेद ।

पराणक्ति (सं० स्त्री०) विताड्, दूराकरण, भिन्नस्थानमें
प्रेरण ।

पराण्डा—ब्रम्हदे प्रदेगके अष्टादनगर, जिलास्तर्गत एक
दुर्ग और नगर ।

परातंस (सं० पु०) १ ताडित । २ सङ्ग जिहको धक्का
दे कर निकाल दिया गया हो ।

परात (हि० स्त्री०) शालीको आकारका एक बड़ा वर-
तन जिसका किशोरा शालीको किशोरिने जूंचा होता
है । यह बाटा गूँघने, हाथ पैर धोने आदिके काम
आता है ।

परातर (सं० त्रि०) अत्यन्त दूरतर ।

परावर (सं० पु०) परान् अष्टादशिका परः अष्टः । १
त्र्योक्त्य, त्रिणु । भगवान् त्रिणुसे और कोई दूसरा अष्ट
नहीं है, इसलिए ये ही एकमात्र परावर हैं । २ पर-
मात्मा । (त्रि०) ३ सर्व अष्ट, जिनके पर कोई दूसरा
नहीं ।

पराजय (सं० पु०) परादपि प्रियः । लक्ष्यविशेष, लक्ष्य-
लक्ष । एक घाम जो कुशको तरहको होता है और जिसमें
जो या गेहूँ को से दाने पड़ते हैं । इसको शालीमें उठ
नहीं होती ।

परात्मन् (सं० पु०) परः आत्मा । १ परमात्मा, परब्रह्म ।
परस्य आत्मा इ-तत् । २ दूसरेकी आत्मा ।

पराट्टि (सं० त्रि०) जिम प्रकार शत्रुको पराजय हो
उसी प्रकार दानकागे ।

परादन (सं० पु०) परं लक्ष्मणमदनं यस्य, यदा परान्
शत्रून् पति वा पादयति, अद्वैतः शिव, च्युर्वा
पारधी, घोटक, फारसका घोड़ा ।

परादान (सं० स्त्री०) परस्मै आदानं सम्यक्दानं ।
परोपकारके लिए दद्यादि द्वारा लपणादिकी सम्यक्-
दान ।

पराधि (सं० पु०) परस्य आधिः । १ दूसरेका दुःख,
दुश्चरको मानमोड़ा । परः आधिः । २ अत्यन्त मानम-
मोड़ा ।

पराधीन (सं० त्रि०) परस्य परेषां वा अधीनः । परवग,
जो दूसरेके अधीन हो, जो दूसरेके ताबेमें हो । पर्याय—
परतन्त्र, परवान, माधवान् ।

“स्वाधीनमुत्तेः साकल्ये न पराधीनमुत्तिता ।

ये पराधीनकर्मो जीवन्तोऽपि च ते मृताः ॥”

(गङ्गुपु० ११३० अ०)

पराधीनता (सं० स्त्री०) पराधीनस्य भावः, तत्त ततः
टाप् । पराधीनका भाव, परतन्त्रता, दूसरेकी अधी-
नता ।

पराम (हि० पु०) प्राण देखो ।

परामा (हि० क्ति०) भागना ।

परामा (सं० स्त्री०) परानित्यतया परा-मण्य, करबे
बाहुल्यं यम्, नित्या टाप् । चिकित्सा । बहुतीका
कहना है, कि इस गन्दमें गल्लपाठ अर्थात् परामणा ऐसा
पढ़ना ठीक है ।

परान्त—देशभेद, एक देशका नाम ।

परान्तक (सं० पु०) परोऽन्तकः । १ सर्वनाशक महा-
देव । महादेव सबकी नाश करते हैं, इसीलिए इन्हें
परान्तक कहते हैं । २ सोमनाशक ।

परान्तकाराय—चोलवंशीय एक राजा । इन्होंने मदुराका
ध्वंस किया था, इस कारण इनका और एक दूसरा नाम
था मधुरान्तक ।

परान्तकाल (सं० पु०) परं संसारोत्तरं अन्तःकालः ।
समुत्पत्तिकी संसारहानि, देहान्तकाल, मृत्युका समय ।

जो संसारो हैं उनका जब देहान्तकाल उपस्थित
होता है, तब उसे अन्तकाल और समुत्पत्तिकी जब संसार-
हानि अर्थात् भोग और देहादिका अन्तकाल उपस्थित
होता है, तब उसे परान्तकाल कहते हैं । संसारवर्षिका
मृत्युके बाद पुनः जन्म होता है, इसलिए उसका नाम
अन्तकाल तथा समुत्पत्तिकी मृत्युके बाद फिरसे

जन्म नहीं होता, इसलिए उसका नाम परान्तिका न है।

परान्तिका (मं० स्त्री०) गौतमिनी मातासुतमेद ।

परान्तिका—१ बम्बई प्रदेशके चल्मदावाट जिलामें एक उपविभाग । यह वल्ल जिनके उत्तर-पूर्व कोणमें अवस्थित है तथा यह स्थान साधारणतः गौतम और स्वास्थ्यकर है । पानोके रहते हुए भी यहां कमल उत्पन्न नहीं उगजती । जिनका अधिकार स्थान पर्याप्त और समय है । निम्न शावरमनी नदीके किनारे जो नीचे जमीन है वहीमें अच्छे फल लगती है । इसमें कुल दो शहर और १५८ ग्राम लगते हैं । भूपरिमाण ४४८ वर्ग मील है ।

२ वल्ल उपविभागका एक प्रधान शहर । यह अक्षा० २२° २६' उ० और देशा० ७२° ५४' पू० के मध्य, चल्मदावाटमें १६॥ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है । यह सल्हिलाली शहर है और यहां सातुन तैयार करनेके कारखाने हैं । सातुन को यहांका प्रधान वाणिज्यद्रव्य है । यहांकी प्राचीन कीर्तियोंमें जय्यामस्त्रिजद, चक्षुमात्र, रत्नसंगव और चक्षुमात्रकी तीर्थसौं मलेश्वर महादेवका मन्दिर की प्रधान है ।

पराश (मं० स्त्री०) पराश पत्र । १ परकत्क शस्यपाकज द्रव्यमात्र, दूसरेका दिया हुआ भोजन । शास्त्रमें पराश भोजन निषिद्ध बताया है—

“वरात् पराशस्य नित्यं परितस्तत्तज्जेत ॥” (स्मृति)

चर्मरत वास्तुकी पराश और पराशका सदा परि-रथाग करना चाहिये । संयम और पारणके दिन पराश विशेष निषिद्ध है । पराश-भक्षण करके यागादि करनेमें यह निष्फल होता है । पराश भोजन कर यदि मोर्षगमन किया जाय, तो बहुत कम फल प्राप्त होता है । एकादशी-तत्त्वमें लिखा है, कि जिसका पत्र भोजन कर पुत्रोत्पादक किया जाय, वह पुत्र उसका होता है । क्योंकि पत्र से रेतोत्पन्न होता है और रेत ही समानका कारण है । महागुरुनिपात होनेमें जब तक सन्ध्या पूरा न हो जाय, तब तक पराश भोजन विशेष निषिद्ध है । पराश भोजनमें दस प्रकार प्रतिषेध विद्या है, कि गुरु, मातुल,

ग्रह और भ्राताका पत्र खेवन किया जा सकता है, इसको गिनती पराशमें नहीं है । ७

फिर शास्त्रमें ऐसा भी लिखा है, कि ब्राह्मणके पत्र भोजनमें दुरिद्रता, क्षत्रियके पत्रमें प्रभृता, वैश्यके पत्रमें शुद्धता और शूद्रके पत्रमें मरक होता है ।

“अक्षयामेव दारिद्र्यं क्षत्रियामेव प्रभृता ।

वैश्यामेव भुक्ता दत्तं शूद्रामेव नैरदः प्रजेत ॥”

(एकादशीतत्त्व)

तन्त्रमें लिखा है कि जो पराश भोजन करते हैं, उनकी मर्यादा नहीं होती, वरं हानि होती है ।

३ संयमके दिन पराश स्वाग्य है ।—

“कांश्च मांश्च मत्प्राप्त्यन्यकं कोरूपकम् ।

शाकं मधु पराशञ्च खजेदुदरस्य त्रिपलम् ॥”

(एकादशीतत्त्व)

पराशदिनमें स्वाग्य है ।—

“अक्षयं गुरु पराशञ्च तैलं निर्वाण्यकंपनम् ।

तुलसीचन्दनं च तं पुनर्भोजनमेव वा ॥

वक्ष्यीह तया शारं द्वादशीं वर्जयेदुदुषः ॥”

पराशभोजनका साधना निषेध है ।—

“परपाकेण पुष्टय द्विभक्ष्यं दृढमेवित्तः ।

इदं दत्तं तपोऽपीतं यथाशक्तं तस्य तद्वन्धे ॥”

पराश-भोजन द्वारा पुत्रोत्पादनमें दोष है, यथा—

“अक्षयामेव तु भुक्तेन मांश्चोऽपि समिपिप्यति ।

अक्षयामेव तस्य से पुत्रा अमात्रेताः प्रवर्धये ॥”

(एकादशीतत्त्व)

पराश-भोजन करके तीर्थगमनमें भी फल होता है ।—

“वीटुशांशं स लभते यः पराशमेन, मच्छति ।

शर्दं तीर्थफलं तस्य यः प्रयेतेन गच्छति ॥”

महाप्राणितान्त्रमें स्वाग्य है ।—

“अक्षयध्यात् पराशञ्च शम्भं मत्प्राप्त्यन्यकं पुनम् ।

वर्जयेत् पुष्टयं तु शाययन्तं न वरधरः ॥”

(द्वितीया)

पराशभोजनमें प्रतिषेध बचन ।—

“अप्येनं मातुलान् वा श्वशुरान् तथैव च ।

नित्यपुनर्य वैश्यान् न पराशमेति इदं विदुः ॥”

(एकादशीतत्त्व)

(त्रि०) पराक्षं निधमस्यस्य चर्यादि पञ्च । २ परा-
क्षोपञ्चोवौ, जो दूसरेका प्रश्न खा कर अपना गुजारा करता
है। इसका पर्याय परविण्डाद है।

पराक्षपरिपुष्ट (सं० पु०) दूसरेके दिये हुए असादिके
भोजनमे परिवर्तित शरीर।

पराक्षभोजी (सं० त्रि०) जो दूसरेका भक्ष खाता हो।

पराप (सं० त्रि०) परा गता भाषो यस्मात्, भव् समा-
सात्ताः (अवर्णान्ताह। पा ६।१।८६) इत्यस्य वाचि-
कीत्या पक्षे भव ईदभावः। परागत जलापादन।

परापर (सं० क्लो०) परमापिपत्तिं भा-पूः पञ्च । १ पर-
पक्षफल, फालसा। परश्च अपरश्च तयोः समाहारः। २ पर
श्रीर अपर।

परापरशुक् (सं० पु०) परमादपि परः श्रेष्ठा परापरः,
द्योदरादित्वात् साधुः, परापरद्याशो शुभचंतिः। शुभविशेष,
मन्त्रमे भगवतोऽशो परापरशुक् कथा गया है।

“आदौ सर्वत्र देवेति मन्दः परमो शुभः।

परापरशुक् इति परमेशो (वह) शुभः ॥”

(सुहृदीकृत अं २ प०)

परापरत्वं (सं० क्लो०) परापरस्य भावः त्व। परत्वं श्री
अपरत्वंयुक्त भाव, परापरता।

परापरद (सं० त्रि०) १ परादनुसरण। २ श्रेयोवद-
रूपमे दूसरे मनुष्यको शीर जाना।

परापारतुक (सं० त्रि०) गमस्त्रावसम्बन्धाय।

परापुर (सं० त्रि०) परा स्थलाः पूः समासात्तविधि-
रनित्यत्वात् न समासात्तः। स्थल देह।

परादृष्टोभूत (सं० त्रि०) दूसरेको पाठ दिखानेवाला।

पराप्रसादमन्त्र (सं० पु०) प्रसादनकारी शुभमन्त्रविशेष।

परावर (सं० क्लो०) सामभेद।

परामर्ति (सं० क्लो०) परा उत्कृष्टा मर्तिः। सख्यभक्ति,
श्रोतृश्रुति प्रति गोपिनिर्वाको उत्तमा भागुरक्ति।

परामव (सं० पु०) परामृयते इति परामवनमित्यर्थः, परा-
भू-भप। १ पराजय, हार। २ तिरस्कार, मान्ध्वंम।

पर्याय—व्यकार, तिरस्त्रिया, परामाव, विप्रकार, परि-
भव, प्रभिव, अयाकार, निप्रकार और विनाश। बहुत
जगह परामाव ऐसा पाठ है, वहाँ प्रायः प्रयोगवशतः भप
न हो कर वज्, प्रताप हुआ है। ३ यैश्चयुक्तो भवतर्गं तु

दुष्पांचर्वा वर्ष। यह वर्ष समकक्षी है और इसमें नि,
शस्त्रोष्ठा आदि रोग होते हैं तथा गो और ब्राह्मणको
विशेष भय रहता है।

परामावुक (सं० त्रि०) पतन या ध्वंसमौल।

परामिन्न (सं० पु०) परमाभिवर्ते प्रा-मिन्न अण्। मनि-
प्रसमेद। इसमें दूसरेके चरसे थोड़ा भिन्ना मांगनी
पड़ती है।

परामिन्न (सं० क्लो०) कुह म, केसर, जाफरान।

परामृत (सं० त्रि०) परामृत्यते स्म, परा-भुक्त। १ परा-
जित, हारा हुआ। २ नष्ट, ध्वस्त।

परामृति (सं० क्लो०) परा-भू-क्तिन्। पराजय, हार।

परामर्श (सं० पु०) परामृश्यते इति परामर्शं नमित्यर्थः,
परा-मृग भावे प्रज्ञ। १ युक्ति, विवेचन, विचार।
पर्याय—वितर्क, चर्च, विमर्षण, अथाहार, तर्क और
कहना। न्यायशास्त्रमें व्याप्तिविशिष्ट पक्षधर्मता ज्ञानको
परामर्श कहते हैं।

परामर्श होनेसे ही अनुमिति ज्ञान होता है।
व्याप्तिविशिष्टके साथ योग्यतावगाहितान हो अनु-
मितिजनक है। अनुमिति व्याप्तिज्ञान कारण और परा
मर्श व्यापार है। यह व्यापार पर्यात् परामर्श होनेसे
ही अनुमितिज्ञान होता है।

किसी मनुष्यने पाकस्थान आदिसे धुर्षा निकलते
देख, उसमें अग्निको व्याप्ति स्थिर का, पर्यात् जहाँ जहाँ
धुर्षा है वहाँ वहाँ अग्नि भी है, ऐसा निश्चय किया।
बाद किसी समय उसने पहाड़ पर धुर्षा देखा। पहले
पाकस्थान आदिमें धुर्षा देख कर उसे भ्रम बहिका
व्याप्य है, ऐसा स्मरण हुआ और होके बहिव्याप्य भ्रम
वान् पर्वत है, ऐसा बोध हुआ। जहाँ धुर्षा है, वहाँ
अग्नि भी है; अतएव इस पर्वत पर जब धुर्षा देखा
जाता है, तब यह पर्वत बह्निमान् है, ऐसा परामर्श
हुआ। बाद बह्निमान् पर्वत इसी प्रकार स्थिर हुआ।
२ निश्चय। ३ अनुमान। ४ सलाह, मन्त्रणा। ५ पक-
हुना, खोचना। ६ स्थिति, याद।

परामर्शन (सं० क्लो०) १ स्मरण, चिन्तन। २ विचार-
करण, विचार करना। ३ मन्त्रणा करना, सलाह करना।
४ खोचना।

जन्म नहीं होता, इसलिए उसका नाम परान्तिका
है।

परान्तिका (स० स्त्री०) मोतिरूप मातावृत्तमेष्ट ।

परान्तिका—१ स्वर्ग प्रदेशके पद्ममहासागर शिखरगत
एक उपविभाग । यह पद्म जिनेके उत्तर-पूर्व कोणमें
व्यवस्थित है तथा यह स्थान साधारणतः गीतल और
स्वास्थ्यकर है । पानोके रहते हुए भी यहां फलन उत्तनी
नहीं उपजती । जिनेका अधिकांश स्थान पर्वतावृत्त और
वनमय है । सिर्फ गावरमती नदीके किनारे जो नौचो
जमीन है उसीमें अच्छो फलन लगती है । इसमें कुल
दो शहर और (५८ ग्राम लगते हैं । भूपरिमाण ४४८
वर्गमैल है ।

२ पद्म उपविभागका एक प्रधान शहर । यह पद्मा०
२१° २६' स० और देगा० ७२° ५४' पू० के मज, पद्ममहा-
सागरमें १६॥ कोस उत्तर-पश्चिममें व्यवस्थित है । यह
सम्पृष्टिगामी शहर है और यहां सातुन तैयार करनेके
कारखाने हैं । सातुन ही यहांका प्रधान वाणिज्यद्रव्य
है । यहांकी प्राचीन कीर्तियोंमें जन्मामहिराज, बसुबाब,
रत्नलगव और बलानदीके तीरवर्ती मलकेश्वर महादेव-
का मन्दिर ही प्रधान है ।

पराश (स० स्त्री०) पराश्रय । १ परकचूक शस्यपाकज
द्रव्यमात्र, दूसरेका दिया हुआ भोजन । शास्त्रमें पराश
भोजन निषिद्ध बतायाया है—

“पराशं पराश्रयं नित्यं पर्येतत्तज्जैतु ॥” (स्मृति)

धर्मरत व्यक्ति को पराश और पराश्रयका सदा परि-
श्रय करना चाहिये । मध्यम और पारणके दिन पराश
विशेष निषिद्ध है । पराश-भक्षण करके यागादि करनेमें
बहु निष्फल होता है । पराश भोजन कर यदि तोषर्गमन
किया जाय, तो बहुत कम फल प्राप्त होता है । एकादशी-
तत्त्वमें लिखा है, कि जिसका पक्ष भोजन कर पुत्रोत्पा-
दन किया जाय, वह पुत्र उसका होता है । क्योंकि पक्ष
में वैशीत्य होता है और रीत ही समानका कारण है ।
महाशुद्धिपात दोनमें जब तक मन्त्रास्त्र पूरा न हो
जाय, तब तक पराश भोजन निषिद्ध निषिद्ध है । पराश
भोजनमें हम प्रकार प्रतिप्रसव निष्ठा है, कि शुद्ध, मातुल,

शुद्ध और श्रुताका पक्ष सेवन किया जा न करना है, हम-
को गिनती पराशमें नहीं है ।

फिर शास्त्रमें ऐसा भी लिखा है, कि शास्त्रान्ते पक्ष-
भोजनमें दरिद्रता, क्षत्रियके पक्षमें प्रश्रुत, वैश्यके पक्षमें
शूद्रता और शूद्राक्षमें नरक होता है ।

“क्षत्र्यान्ते दारिद्र्यं क्षत्रियान्ते न प्रैश्यतां ।

वैश्यान्ते मृग इव शूद्रान्ते नरकं मत्सेतु ॥”

(एकादशीतत्त्व)

तन्त्रमें लिखा है कि जो पराश भोजन करते हैं,
उनकी मन्त्रसिद्धि नहीं होती, वरं हानि होती है ।

३ मध्यमके दिन पराश स्वायत्त है —

“कांशं मांसं मसूर्यश्च वनकं कोरूपकम् ।

शकं यक्ष पराश्रयं स्वनेष्टुवसन्ति वनम् ॥”

(एकादशीतत्त्व)

पराश्रयमें स्वायत्त है ।—

“अश्वं वनकं पराश्रयं तैलं निर्वहिकं पनम् ।

तुलसीवननं यत् पुनर्भोजनमेव वा ॥

वक्षीयैतं तथा क्षां द्वादशार्थं वर्जयेद्दुधम् ॥”

पराश्रयको, क्षा यागादि निषिद्ध है ।—

“पराश्रयं पुष्टं द्विष्टं एष्टमेयिनः ।

इदं दत्तं तपोऽपीदं यश्चायं तस्य तद्गन्धः ॥”

पराश्र-भोजन द्वारा पुत्रोत्पादनमें दोष है, यथा—

“यश्चास्तेन तु भुञ्जते मांसीं समभिमण्डति ।

यश्चास्तेन तस्य ते पुत्रा अग्राहेतः प्रपरीते ॥”

(एकादशीतत्त्व)

पराश्र-भोजन करके तीर्थगमनमें भी फल थोड़ा है ।—

“शोडशांशं च समते यः पराश्रयेन गच्छति ।

शर्द्धं तीर्थं फलं तस्य यः प्रसंगेन गच्छति ॥”

महाशुद्धिपातमें स्वायत्त है ।—

“अश्वधातुं पराश्रयं शस्यं मन्त्रायुक्तं येषुनम् ।

वर्जयेत् पुत्रकते तु यावत्पूर्वी न वावरः ॥”

(द्वादशीतत्त्व)

पराश्रभोजनमें प्रतिप्रसव बचन ।—

“पुष्टं मातुलान् वा द्रव्यद्वयान् तपेव वा ।

विपुत्रस्य वैश्वानरं न पराश्रयिनि हनति ॥”

(एकादशीतत्त्व)

(त्रि०) पराक्षं निर्यमस्यस्य चर्यादि चक्षुः । २. परा-
क्षोपजीवी, जो दूसरेका भ्रष्ट खा कर अपना गुजारा करता
है। इसका पर्याय परपिण्डाद है।

पराक्षपरिपुष्ट (स० पु०) दूसरेके दिये हुए अन्नआदिके
भोजनसे परिचरित शरीरः।

पराक्षभोजी (स० त्रि०) जो दूसरेका भ्रष्ट खाता हो।

पराप (स० त्रि०) परा गता पापो यस्मात्, चक्षुः समा-
न्ताः (अवर्णान्ताः । पा ६।३।८६) इत्यस्य वाचि-
कोत्तरा पक्षे अप ईदभावः । परागत जलापादन ।

परापर (स० स्त्री०) परमापिपत्तिं प्राप्नु-पचुः । १. पर-
पक्षफल, फलश्रा । परश्च अपरश्च तयोः समाहारः । २. पर
श्रीर अपर ।

परापरशुद्ध (स० पु०) परमादयि परः श्रेष्ठः परापरः,
द्युयोदरादित्वात् साधुः, परापरस्यासौ शुद्धश्चेति । शुद्धविशेष,
तन्मये भगवतोऽसौ परापरशुद्ध कदा गया है ।

“आदौ सर्वत्र देवेति मन्त्रदः परमो शुद्धः ।

परापरशुद्धश्च हि परमेष्ठी त्वद् शुद्धः स”

(लक्ष्मीकृतप्र २ ५०)

परापरत्व (स० स्त्री०) परापरस्य भावः त्वः । परत्व और
अपरत्वयुक्त भाव, परापरता ।

परापरत्वं (स० त्रि०) १. पदादनुसरण । २. श्रेयोवद्ध-
रूपसे दूसरे मनुष्यको और जाना ।

परापारतुक् (स० त्रि०) गर्भस्त्रावसम्भवाय ।

परापुर (स० त्रि०) परा स्थानाः पूः, समासात्तविशि-
रनिश्चत्वात् न समासात्तः । स्थान देश ।

परापुष्टभूत (स० त्रि०) दूसरेको पाठ दिखानिवाला ।

पराप्रसादमन्त्र (स० पु०) प्रसादनकारी गुप्तमन्त्रविशेष ।

परावर (स० स्त्री०) नामभेद ।

परामर्श (स० स्त्री०) परा उत्कृष्टा भातिः । सख्यभक्ति,
श्रेष्ठश्रेष्ठ प्रति गोपिनिर्वाको उत्तमा आशुरक्ति ।

परामर्ष (स० पु०) परामृत्यते इति परामर्षनमित्यर्थः, परा-
भूषणः । १. पराजय, हार । २. तिरस्कार, मानध्वंस ।

पर्याय—न्याकार, तिरस्क्रिया, परामर्ष, विप्रकार, परि-
भव, अभिभव, श्रद्धाकार, निकार और विनाश । बहुत
जगह परामर्ष ऐसा पाठ है, वहाँ शायद प्रयोगवशतः चय
न हो कर चक्षुः प्रतीय हुआ है । १. श्रेष्ठश्रेष्ठके अन्तर्गत

दूपांचां वयं । यह वयं समझी है और हममें नि,
यक्षपौड़ा आदि रोग होते हैं तथा गो और ब्राह्मणको
विशेष भय रहता है।

परामातुक (स० त्रि०) पतन या ध्वंसशील ।

परामिच (स० पु०) परामिचते प्रा-मिच अण् । शान-
प्रस्थेभेद । इसमें दूसरेके घरसे थोड़ा भिन्ना सांगनी
पड़ती है ।

परामिच (स० स्त्री०) क्रुद्ध म, केसर, आकरान ।

परामृत (स० त्रि०) परामृत्यते स्म, परा-भुक्त । १. परा-
जित, हारा हुआ । २. मृत, ध्वस्त ।

परामृति (स० स्त्री०) परा-भू-क्तिन् । पराजय, हार ।

परामर्ष (स० पु०) परामृत्यते इति परामर्ष नमित्यर्थः,

परा-मृत्य भावे चक्षुः । १. युक्ति, विवेचन, विचार ।

पर्याय—वितर्क, उत्तर, विमर्षण, श्रद्धाहार, तर्क और
ऊह्य । न्यायशास्त्रमें व्याप्तिविशिष्ट पक्षधर्मता ज्ञानको
परामर्ष कहते हैं ।

परामर्ष होनेसे ही अनुमिति ज्ञान होता है ।

व्याप्तिविशिष्टके साथ वैशिष्ट्यावगाहिज्ञान ही अनु-
मितिजनक है । अनुमिति व्याप्तिज्ञान कारण और परा-
मर्ष व्यापार है । यह व्यापार अर्थात् परामर्ष होनेसे
ही अनुमितिज्ञान होता है ।

किसी मनुष्यमें पाकस्थान आदिसे धुआँ निकलते
देख, उसमें अग्निको व्याप्ति स्थिर का, अर्थात् जहाँ जहाँ
धुआँ है वहाँ वहाँ अग्नि भी है, ऐसा निश्चय किया ।
बाद किसी समय उसने पहाड़ पर धुआँ देखा । वहने
पाकस्थान आदिमें धुआँ देख कर उसे धूम बह्नि का
व्याप्य है, ऐसा स्मरण हुआ और होखे बह्निव्याप्य धूम
वान् पर्वत है, ऐसा बोध हुआ । जहाँ धुआँ है, वहाँ
अग्नि भी है । अतएव इस पर्वत पर जब धुआँ देखा
जाता है, तब यह पर्वत बह्निमान् है, ऐसा परामर्ष
हुआ । बाद बह्निमान् पर्वत इसी प्रकार स्थिर हुआ ।
२. निश्चय । ३. अनुमान । ४. सन्तुष्ट, मन्त्रणा । ५. पर-
हना, खोचना । ६. स्मृति, याद ।

परामर्शन (स० स्त्री०) १ स्मरण, चिन्तन । २. विचार-
करण, विचार करना । ३. मन्त्रणा करना, सन्तुष्ट करना ।
४. खोचना ।

परावत (सं० स्त्री०) परा-पथ वाङ्मलकात् भवत् । पर-
पथफल, फालसा ।

परावन (हिं० पुं०) १ पलावन, एक साथ बहुतेके लोगों-
का भागन; भगदड़, भागड़ । २ गांव के लोगों का घर के
बाहर डेरा डाल कर पूजा और छत्तव करने की रीति ।
परावर (सं० त्रि०) १ सर्वश्रेष्ठ । २ अगला पिछला,
निकटका दूरका, इधरका अधर । (स्त्री०) ३ परपुत्र-
फल, फालसा ।

परावरा (सं० स्त्री०) परा-अक्ष विषयत्वेनास्तस्या,
अच्युता । १ विद्याभेद, एक प्रकारकी विद्या । (त्रि०)
परमादिप्यथा । २ श्रेष्ठतम, सबसे उत्तम ।

परावत्त (सं० पुं०) परा-वर्त्तति इति परा-वृत्त-अप ।
१ परिवर्त्त, विनिमय, बदल बदल । २ प्रत्यावर्त्तन, पल-
टनेका भाव, मोटाना, पलटाना ।

परावर्त्तन (सं० स्त्री०) परा-वृत्त-निच्-ल्युट् । प्रत्या-
वर्त्तन, पलटनेका भाव ।

परावर्त्तव्यचार (सं० पुं०) १ परिवर्त्तनीय व्यवहार,
पुनर्वार विचार प्रार्थना (Appeal), सुकटनेकी फिर-
से जांच, सुनदनेके फैसलेका फिरसे विचार । २ सुक-
टनेका फिरसे फैसला ।

परावर्त्तित (सं० त्रि०) परा-वृत्त निच्-ल्युट् । प्रत्यावर्त्तित,
पलटाया हुआ, पीछे फिरा हुआ ।

परावय (सं० त्रि०) परावरयत् । परावरी-सम्बन्धीय ।

परावलि—पूर्व राजपूतानात्सर्ग एक प्राचीन शहर । यह
परोलीसे ३३ कोस उत्तर-पूर्व और खानियर-दुर्गसे ८
कोस उत्तर अवस्थित है । यहां एक ऊँची भूमिके ऊपर
काह्वाय युक्त एक सुन्दर प्राचीन मन्दिर तथा दक्षिण-
पूर्व उपत्यका पर नगमग एक मोहो-पक्षिक बड़े और
छोटे मन्दिर विद्यमान हैं । यहांके अधिवासियोंका
कहना है, कि यह शहर पहले 'धारोन' नामसे प्रसिद्ध
था और धारोन, सुतबाल तथा सुहनिया ये तीन निकट-
वर्त्ती भिन्न भिन्न नगर एक थे । उस समय इसको
महार्थ १२ कोस थी ।

यहाँके ऊपर निर्मित प्राचीन मन्दिरसंलग्न दोनपुरके
महाराजका बनाया हुआ एक छोटा किना और चोया-
फ या नामक एक आच्छादित कूप है ; (इसके प्राङ्गरे

ऊपर गिलाखण्ड पर लिखा है, खानियरके 'तीमरराज-
वशीय महाराजाधिराज श्रीकोत्ति सिंहदेव सम्बत्
१५२८') ऊपरको दक्षिण-उपत्यका पर अवस्थित
भूतेश्वर शिवमन्दिर (इस मन्दिरके उत्तर-पश्चिममें ८
घनेमेंसे एकमें ११०० सम्बत्को लक्षाण एक गिलानिधि
है ।), इसके भलावा उपत्यकाके मध्यस्थित विष्णु मन्दिर,
लिङ्गमन्दिर और एक बड़े मन्दिर का चत्वर देखने योग्य
तथा कौतुहलोद्दीपक है ।

परावसु (सं० पुं०) परागत यक्षाख्य वसुधनं यस्मात् ।
१ शतपथ ब्राह्मणके अनुसार चतुरके पुरोहितका नाम ।
२ रभ्यसुनिपुत्रभट्ट, रभ्यसुनिके एक पुत्रका नाम । ३
गम्बर्भट्ट, पक्ष गम्बर्भका नाम । ४ विश्वामित्रके एक
पोत्रका नाम ।

परावह (सं० पुं०) परा-वहतोति वह पच । वायुके
मात भेदोंमेंसे एक । यह वायु परिवह वायुके चत्त-
स्थित है ।

परावा (हिं० वि०) परावा देखो ।

परावाक (सं० पुं०) पराभर-वचन, तिरस्कारकी बात ।

पराविह (सं० पुं०) परा-वशतः । १ लुब्ध । २ प्रत्या-
विहमात्र ।

परावृत्त (सं० पुं०) परा-वृत्तति तपसा पापं वर्जयति
परावृत्तौ वर्जने क्षिप । ऋषिभेद, एक ऋषिका
नाम ।

परावृत्त (सं० त्रि०) १ पलटा या पलटाया हुआ, फिरा
हुआ । २ बदला हुआ ।

परावृत्ति (सं० स्त्री०) परा-वा-वृत्त-क्ति । १ प्रत्यावृत्ति,
जिस रास्ते से गया वही उसी रास्ते से फिर लौटना ।
२ परिवर्त्त, पलटने या पलटाने की क्रिया या भाव, पल-
टाव । २ सुकटनेका फिरसे विचार या फैसला ।

परावेदो (सं० स्त्री०) परमुत्कर्षमायिन्दतीति विद्-पण,
क्षिप्रयां ढोष । डहती, रुटारी, भटकटया ।

पराशपुर—अयोध्या प्रदेशके गोण्डा जिलेके चन्नागत दो
समूहियाली ग्राम । यह गोण्डा नगरसे ३३ कोस
दक्षिण-पश्चिम और नवावगञ्जसे कर्णसगञ्ज जानेवाले
रास्तेके समीप बसा हुआ है । जो गोण्डाराज घघरा
नदीमें डूब मरे थे, उनके पुत्र राजा पराशराम कल-

हमने लगभग ४०० वर्ष पहले यह ग्राम समाया था। इनके वंशधर परामपुर के राजा और गुहारिया के कल-हमियों के मददर यह ग्राम के पूर्वांग एक सुदृढ़ स्तम्भानिर्मित स्तम्भ में पास भी दास करते हैं। यह ग्राम पाटा नाम से प्रसिद्ध है। इसका यह नाम पड़ने का कारण यह है, कि जल वंशधर के प्रथम पुरुष बाबूलाल शाह नामक एक व्यक्ति ने परामपुर के निकट शिकार करते समय एक फकीर की मुहा दूधा मौस खाते देखा। फकीर ने बाबूलाल को देख लगे भी मांस पाने को कहा। पोछे फकीर भोजन में अभिच्छा देख कर शाप दिया, ऐसा जान, वे बड़े ही भयभीत हुए। किन्तु देवता ने देवता यह मांस पाटा के रूप में परिणत हो गया। पशु यह पाद बाबूलाल के निर्मित दुर्ग के सामने गाढ़ दिया गया। उसी समय से यह स्थान 'पाटा' नाम से प्रसिद्ध है।

वराहर (सं० पु०) परान् पायवाति, गृह्णित्वा च। १ नागभेद, एक सर्प का नाम। २ ऋषिभेद, ये वसिष्ठ-पुत्र शक्ति के पौरस और पदमन्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इनको नामनिर्वाह के विषय में इस प्रकार लिखा है—

“वराहः स यस्त्वेन वसिष्ठः स्थापितो भुविः।

गर्भेन ततो छोके वराहर इति स्मृतिः॥

(भारत १.१८६।१)

जब ये गर्भ में थे उसी समय वसिष्ठ ने अपनी मृत्यु खाड़ी थी। इसी से इनका वराहर नाम पड़ा है।

महाभारत के पादि पर्व में लिखा है, कि महर्षि वसिष्ठ के सो पुत्रों में शक्ति बड़े थे। पदमन्त्री के साथ इनका विवाह हुआ था। एक दिन शक्ति जन्म में विचारण कर रहे थे, इसी बीच इन्द्राकुलशाय कल्याण पाद नामक एक राजा शिकार में चलता हुआ वहाँ शक्ति टहन रहे थे उसी आ पहुँचे। वह रास्ता बड़ा ही तंग था, एक ही अधिक मनुष्य उस ही कर जा नहीं सकते थे। राजा ने शक्ति से राह छोड़ देने के लिये बहुत कहा, किन्तु शक्ति ने उनकी एक भी न मानी। इस पर दोनों में विवाद खड़ा हुआ। राजा पथस्थ हो कर राक्षसों के साथ लगे कशाघात करने लगे। पीछे के सारे शक्ति शक्ति ही पड़े और राजा-

को इस प्रकार शाप दिया, “मैं तपस्वी हूँ, तुने राक्षसों के साथ लड़कर प्रहार किया, इस कारण आज मैं तुझमें हो जा।” राजा इसी प्रकार एक और वसिष्ठ शाप-भिभूत हुए थे। शापान्भिभूत राजा ने उसी समय राक्षसों को कर पड़े शक्ति को ही भक्षण किया। इस प्रकार धीरे धीरे वसिष्ठ के सो पुत्र विनष्ट हुए।

वसिष्ठ के सो पुत्र जो विनष्ट हुए वह सिर्फ विद्या-मित्र के कोमल थे। वसिष्ठदेव ने पुत्रगोकुल में नितात्म कातर ही स्त्रगरोरपात के लिये लापों बिटा की, पर कम कुछ भी न निकला। एक दिन वे पुनः अपने पायमन को लोट रहे थे, इसी बीच पोछे की धोर से वेद-ध्वनि सुन कर उन्होंने पूजा, ‘वेदध्वनि कीन कर रहा है?’ पदमन्त्री ने कहा, ‘मैं आपकी स्थापितपुत्रवधू पदमन्त्री हूँ। आपने जो वेदध्वनि सुनी है, वह मेरे गर्भ से हादगवर्षीय पुत्र की जानिये।’ इस पर वसिष्ठदेव पदमन्त्री के गर्भ में एक सन्तान है, ऐसा जान फूल न समझे और घरको धोर लोटने लगे। राह में एक राक्षस पदमन्त्री पर टूट पड़ा। वसिष्ठदेव ने उसे मन्त्र द्वारा जलमर्चन किया जिससे उसका शाप विमोचन हो गया। ये ही इन्द्राकुलशाय कल्याण-पाद थे।

वर लोट कर पदमन्त्री ने शक्ति के साथ एक पुत्र प्रसव किया। वसिष्ठदेव ने स्वयं उसके जातकर्मदि शिव किये। वह पुत्र जिस समय गर्भ में था, उसी समय वसिष्ठदेव ने जीवन विवर्जन करने का मन्त्र कहा था, इसी से वह पुत्र वराहर कहलाये। वराहर जन्म में वसिष्ठ की ही पिता के सेवा मानते थे। एक दिन उन्होंने अपनी माता पदमन्त्री के सामने वसिष्ठ की पिता कह कर पुकारा। यह सुन कर पदमन्त्री की पत्नी इस तरह भाई धोर वह दोस्रो, ‘तुम जिन्हें पिता समझते हो, वह तुम्हारे पिता नहीं हैं—विशामह हैं। अंगभूत एक राक्षस तुम्हारे पिता को खा गया है।’ यह सुनते ही वराहर ने मर्षाशोक संसार करने का मन्त्र किया। वराहर का भोजन सदा सुन कर वसिष्ठदेव ने लगे पापकर्म से रोकना चाहा, पर वे न तो इस मन्त्र का परिग्रहण कर सके और न कोषकी ही रोक सके।

अन्तर्नि उन्हींने एक राक्षससदृश अनुष्ठान किया।
 अपने पिता शक्ति के विनाशका स्मरण करते हुए वे
 आशालब्ध सभी राक्षसीको दण्ड करने लगे। इस
 समय वसिष्ठदेवकी भी रोकनेका साहस न हुआ।
 क्रमशः सभी राक्षस दण्ड होने लगे। अनन्तर मुलस्य
 और मुलस्य-बादि ऋषियोंने ब्राह्मणकी ओरसे-पराशरसे
 जा कर कहा, 'तान! ये सब राक्षस तुम्हारे पित्रवधका
 जाल कुछ भी नहीं जानते—बिनाकुल निर्दोष हैं, ज्यों इस
 प्रकार अनर्थक श्रुटिका ध्वंस कर रहे हैं। अब इस
 लोभके अनुगोधने हम भयानक कृत्याकी रीकी और यज्ञ
 शेष करो। विवेकतः, तपस्वि-ब्राह्मणोंका यह धर्म नहीं
 है, शक्ति हो उनकी परम धर्म है। तुम रोषपरतन्त्र हो
 कर इस भयानक यज्ञका अनुष्ठान करके केवल हमारी
 प्रजाका समुच्छेद कर रहे हो। तुम्हारे पिताको राक्षस-
 ने जो भक्षण किया था उसमें, सबका कुछ भी दोष
 नहीं। तुम्हारे पिता आत्मदोषसे ही इस लोभके स्वर्गको
 चले गये हैं, नहीं तो तुम्हारे पिताको भक्षण करे, ऐसी
 राक्षसमें शक्ति कहाँ? विश्वामित्र ही इन सबके मूल
 कारण हैं। तुम्हारे पिता और उनकी महारक्षण, तथा
 राजा कल्याणपाद सभी देवताओंके साथ स्वर्गमें रहते हैं।
 तुम्हारे पितामह वसिष्ठदेव इन सब विषयोंसे अच्छी
 तरह जानकार हैं। अभी तुम अपना यज्ञ समाप्त करो,
 इसमें तुम्हारा भंगल है।' पराशरने उनसे आदिशानु-
 सार यज्ञ समाप्त किया और सभी राक्षससदृश लिये जा
 प्रति संस्थापित हुई थी, उसे हिमालयके उत्तरपार्श्व
 महारण्यमें कैद दिया। वहाँ वह प्रति पात्र भी प्रति-
 पन्न में राक्षस, वृक्ष और प्रसूतका दण्ड किया करती है।

(मात आदि पर्व १७५वे १८२क०)

इसी पराशरसे वेदविभागकर्ता ऋषिदेव प्रायन व्यास
 उत्पन्न हुए। वेदविभागयत्नमें इसका विषय इस प्रकार
 लिखा है—एक समय पराशर तोषयात्राके उपलक्ष्यमें
 समस्त देव पर्यटन करते हुए यमुनाके किनारे पहुँचे।
 वहाँ उन्होंने यमुना पार कर देनेके लिये धोवरसे कहा।
 धोवर उस समय दूसरे काममें लगा हुआ था, इस कारण
 सुनिकी पार कर देनेके लिये उसने अपना पालिता कन्या
 मत्स्यगन्धसे कहा। यमुनाकन्या मत्स्यगन्ध धोवरके

आदिशानुसार यह काम करनेकी तैयार हो गई।
 अनन्तर, वह नाव प्रव यमुनाके बीच पहुँची, तब पराशर
 सुनि उस चारुलोचना मत्स्यगन्धकी देख कर देवघटना-
 वशतः कामातुर हो पड़े। उपभोग करनेकी कामनासे
 सुनिवरने अपने दाहिने हाथसे उसका दाहिना हाथ
 पकड़ कर कहा, 'मैं गिगान्त कामपोहित हो गया हूँ;
 मेरा प्रमत्ताप पूरा करो।' इस पर मत्स्यगन्ध बोली,
 'आप महर्षि वसिष्ठके वंशधर हैं और समस्त वेद-
 वेदान्तादि शास्त्रविगारक तथा प्रति तपस्वी हैं। अतः
 आप अपने कुल, गीत और धर्मके विगर्हित कार्यमें क्यों
 प्रवृत्त हुए हैं। मेरा यह शरीर मत्स्यगन्धसे परिपूर्ण है,
 तो भी क्यों आप इस प्रकार मेरे कुरुपथके पर लड़ लगे
 रहे हैं? आप इस दुष्ट बुद्धिका परिध्याग करें।' इतने
 पर भी मत्स्यगन्धने जब देखा, कि सुनि गिगान्त ही काम-
 पोहित हैं और उसके सभी उपदेश निष्फल जा रहे हैं,
 तब उसने सुनिसे कहा, 'अभी आप धैर्यावलम्बन करें,
 पहले पार हो जाय, पोछे जो इच्छा हो सो कोजिये।' यह
 सुन कर पराशरने हाथ छोड़ दिया। जब नाव दूसरे
 किनारे लगी, तब पराशरने पुनः कामातुरभावसे उसका
 हाथ पकड़ा। इस पर मत्स्यगन्धने आपसी हुई सुनिसे
 कहा, 'सुनिवर! कामोपभोग समागमन होनेसे ही सुख-
 कर हुआ करता है। मेरा शरीर प्रतिगद्य दुर्गन्धसे परिपूर्ण
 है, अतएव कुछ कालके लिये ठहर जाइये।' इतना सुनते
 ही पराशरने चषभरमें उसे बाधवदना, सर्वाङ्गसुन्दरी
 और यौजनगन्ध बना दिया। कल्याणोने सुनि की उप-
 भोगभिलाषी देख फिरसे कहा, 'सुनिवर, अभी दिन है,
 तटस्थित सभी मनुष्य विवेकतः मेरे पिताजी देख लेंगे।
 यह पशुवत् प्रति जन्म्यकर्म है और शास्त्रमें भी दिवा-
 विहार निषिद्ध वतताया है। अतः जब तक रात न हो
 जाय, तब तक आप प्रतीक्षा कीजिए।' पराशरने इस
 वाक्यकी युक्तिसङ्गत समझ कर उस समय तपके प्रभावसे
 चारों ओर कुम्भश्रुतिकामय कर दिया जिससे सब
 दिवाधीन अन्धकार का गया। अनन्तर मत्स्यगन्धने
 पराशरको बहुत विनैत खरसे कहा, 'सुनिवर! मैं अभी
 कन्या हूँ, आप उपभोगके बाद हा जहाँ इच्छा होगी
 चले जायेंगे। किन्तु आपका योग्य पत्नी है, सुनि

नियंत्रण हो गमधारण करने में पड़ेगा। अतः 'पीछे मेरी क्या गति होगी, भी पाप मुझे बता दोजिए।' इस पर पराशरने कहा, 'पात्र हमारा नियंत्रण सम्पादन करके फिर तुम कन्या हो होगी। इस पर भी यदि तुम्हें डर हो, तो अभिनयित वर मांगो। मत्स्यगन्धर्वों इस प्रकार वर मांगा, 'मेरे पिता, माता वा अन्य कोई भी इस विषयको ज्ञान न सके और जिसमे मेरा कन्या मत भ्रम न हो वही कार्य कोजिए।' आपसे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह आप हीके समान तेजवी और गुणो कोवि। मैं शरीरमें यह सौगन्ध मदां एककी बनी रहूँ और मेरा यह योगन सर्वदा नयनवर्षमें विराजमान रहे।'।

यह सुन कर पराशरने कहा, 'सुन्दर। तुम्हारे गर्भ में जो पुत्र जन्म लेगा, वह विशुद्ध पञ्चमे अयस्क हो कर त्रिभुवनमें विषयांत होगा। तुम यह नियंत्रण जानो कि किसी विषय का रसवशता ही मैं तुम पर आसक्त हुआ हूँ, नहीं तो इसके पक्षमें आज तक कभी भी मुझे इस प्रकारका मोह उपस्थित नहीं हुआ था। तुम्हें देख कर इस प्रकार कामाविभूत होनेको देख ही एकमात्र कारण है। पतएव देखी प्रतिफल करना किसीको भी साध्य नहीं है। यदि ऐसा नहीं होता, तो कब सम्भव था कि मैं तुम्हारे दुर्गन्धर्मय शरीर पर आसक्त हो जाता। तुम्हारा पुत्र पुत्राकृष्ण, विद्वान् और विद्वान् विभागकर्ता होगा।'

अपिपर पराशरने मत्स्यवतीको इस प्रकार वरमें करके उसके साथ उपभोग किया और पीछे यमुनामें स्नान करके ये सभी समय बर्हामें चले गए। मत्स्यवतीने सभी समय गर्भधारण किया और दितोय कन्दर्पभट्टग एक पुत्र प्रसव किया। पुत्रने जन्म लेते ही मातासे कहा, 'आप अभी घर कोट जावे, मैं इसी स्थान पर तपस्या करूँगा, जब कभी आपकी मेरी प्रयोजन पड़ेगा सभी समय आप मेरा स्पर्श करूँगी, स्पर्शभावसे ही मैं आपसे पुनः पुनः जालूँगा।' इसके बाद मत्स्यवती भी पिताके घर चली गई। यह पुत्र होवमें उत्पन्न हुआ था, इस कारण उसका नाम दे गायन पड़ा। (विशेष- २४ पं०)

पराशर अयिने एक महिला रचा है जिसमें कविपुत्रको

कविपुत्रावस्था अयिने मिल है। २५में लिखा है—

"हृत्वे तु मानवो बर्हद्वेतायां गीतवः स्मृतः।

शरीरे गृहस्थितौ कतो पराशरः स्मृतः॥" (पापव०)

सत्ययुगमें मनुज धर्म प्रधान है, तैत्तिर्ययुगमें गीतम, द्वापरमें गृह और सिद्धि तथा कलियुगमें एकमात्र पराशरका मत ही ग्रहणीय है। इस संहितामें १२ अध्याय हैं। प्रथम अध्यायमें युगमेदवे चर्मादिमंदकचयन, २४ अध्यायमें पावारचर्म और गृहधर्मादिकचयन, १५ अध्यायमें पत्नीसव्यवस्था और पात्रहरेणादि दोष, ४४ अध्यायमें प्रायश्चित्तमत, अथोद्विष्टियां और कुमुत्पलिकादिकचयन, ५५ अध्यायमें प्रायश्चित्त प्रायश्चित्त व्यवस्था, ६४ अध्यायमें प्रायश्चित्त प्रायश्चित्त कथन, ७५ अध्यायमें द्रव्यसिद्धि प्रवृत्ति, ८५ अध्यायमें गोवधादि प्रायश्चित्त, ९५ अध्यायमें गोवधापवाद प्रवृत्ति, १०५ अध्यायमें अग्न्यागमनादि प्रायश्चित्त, ११५ अध्यायमें अग्निधामन्यादि प्रायश्चित्त, १२५ अध्यायमें प्रायश्चित्त स्नानमेदादि।

पराशर संहितामें इस सब विषयोंको व्यवस्था अविशेषित है। पराशरके साथ अन्य संहितासंहिताका विशेष होने पर भी कनिकाकर्म पराशरका मत ही ग्रहणीय है।

ये विष्णुपुराण और पराशर, पुराणके बर्हता ये २ आयुर्वेद तन्त्रकारके अयिमें है। ३ इन्द्र।

पराशर—१ कोरागर्भ या वारागोरोरा नामक एक ज्योतिष्यके रचयिता।

२ एक ज्योतिषविद्। वराहमिहिर ज्ञत गृहजातक-पत्रमें इनका उल्लेख है।

३ कविपद्विक्त प्रवृत्ति।

४ गृहस्थितौ कतो रचयिता।

५ पुराणरत्न नामक पत्रके प्रवृत्ति।

६ योगोपदेश नामक एक योगशास्त्रके प्रवृत्ति।

पराशर—गीतमेद। विहारयात्री साधव, राजपुत्र, बागम आदि जातियों, उद्योगिके कार्योंमें तथा ब्रह्मणके साधव, काव्य, तातो, मनुष्यापित, तात्त्विकी, सुयव-वर्चिकमें यह गीत प्रवृत्तिमें देखा जाता है।

पराशर दाम—वेदवेत्तातिथी एक मायाका नाम।

पराशर भट्ट—एक विख्यात पण्डित। ये पञ्चाङ्गके पुत्र

चौर रङ्गेश्वर के कनपुत्रोद्दिन थे। पृष्ठ ५ 'चंभायोडगो, गणरत्नकोषस्तोत्र (चौरहाराजस्तोत्र चौर स्तोत्रगत), यमकशायकर, वेदान्तमार्ग, विश्वसुखस्वनाममाध्य (यच पद्य इत्थेनि चौरहेश्वरके कहने पर बनाया) आदि यच इनके बनाए हुए हैं।

२ इनका दूसरा नाम रङ्गनाथ था। इत्थेनि भागवतपुराणपदपत्र वा विश्वसुखस्वनाममाध्य नामक एक पद्य प्रणयन किया।

पराशरिन् (सं० पु०) पराशरेण लोकः भिक्षुसूत्रं पराशरं तद्विद्वान्दत्त्याध्यायनायेति च, इन्च, पराशरोति कृत्वः। पराशरी; चतुर्थ्यायमी।

पराशरीय (पराशर्य) — गुजराती ब्राह्मणोंको एक शाखा। काठियावाड़ प्रदेशके दक्षिणपूर्वार्धमें ये लोग वास करते हैं।

पराशरेश्वर (सं० पु०) स्कन्दपुराणवर्णित दक्षिणालके शिवसिद्धभेद।

पराशरेश्वरतीर्थः (सं० स्त्री०) शिवपुराणके उत्तरखण्डमें वर्णित दक्षिणालके भक्तगंत तीर्थभेद। यत्रां स्नान करनेसे पुण्यकी प्राप्ति होती है।

पराशवाङ्—यमिष्ठगोत्रोय निपाको ब्राह्मणोंका एक उक्त।

पराशस्त्रः (सं० स्त्री०) पराशसन, पराङ्मुख, हिंसन।

पराशानुयुक् (सं० पु०) यद्युक्तो हिंसा करतिवाला।

पराशय (सं० त्रि०) परो प्राशयो यस्य। १ अन्धाश्रित, को दूसरेके आश्रयमें हो। (पु०) २ पराधानतः। ३ दूसरेका भ्रतृत्व, पराया भगोप, दूसरेका सहारा।

पराश्रया (सं० स्त्री०) लताविशेष, परगळा, बांदा, बांदाक। पर्याय—श्वरा, श्वराटनी, हृच्छहवा, श्वरात्मिका, श्रमिनी-पुत्रिणी, श्वरा चौर परपृष्टा।

पराश्रित (सं० त्रि०) १ दूसरेके आश्रित, पराधोप। २ जिने दूसरेका आसना हो, जिसका काम दूसरेसे हो चलता हो।

पराश (सं० पु०) १ दूरता, किसी स्थानसे, वतनी, दूर जितनी दूरी पर उस स्थानसे किसी दूर, वहा गिरे। २ पलाय देवो।

पराशस्त्र (सं० पु०) १ श्वरोपश्रयोपश्रितोप। २ दूसरे पुरुषमें आश्रित।

परासन (सं० स्त्री०) परा-घस-भावे क्युट्। १ सारण, वध। परं आसनं। २ अछासन, उत्तम आसन। पराश्रित (सं० त्रि०) १ दृष्टादि निक्षेप द्वारा दूरताका परिमाण। (स्त्री०) २ एक रागिनोका नाम।

पराधी देखो।

पराश्र (सं० त्रि०) परा-गतः प्रश्रितः प्रसवी यस्य। मृत, मरा हुआ। जिसको प्राणवायु निकल गई हो, उसे पराश्र कहते हैं। इसको परीक्षाका विषय व द्रष्टव्यमें इस प्रकार लिखा है,—जिसका वक्त्र वाक् प्रत्यक्ष दोष वा क्लृप्त, स्वन्दनहोण, दवा प्रतिकीण, पक्ष्य गटावह, दोर्ता नेत्र प्रकृतिहान, विक्षतिगुल, प्रत्युत्तिगुलित, प्रविष्ट, कृटिक, विषम तथा प्रक्षत हो, उसे पराश्र जानना चाहिए। (चर० इन्द्रिय ४ अ०) मृत्यु देवो। पराश्रता (सं० स्त्री०) पराश्रितस्य भावः, तन-टाप। १ मृतत्व, मृत्यु, मोत। २ निद्रापरवधता।

पराश्रद्धिन् (सं० पु०) पराश्र श्राद्धिदित्यु योवस्य श्राद्धिदित्यु। चोरभेद, एक प्रकारका चोर, डकैत। पराश्र (सं० त्रि०) पराश्रयते इमं, परा-घस-क्त। १ निरस्त, पराजित, हारा हुआ। २ प्रभावहीन, दवा हुआ। ३ ध्वस्त, विजित।

पराश्रोत्र (सं० स्त्री०) उत्कृष्ट स्त्रव।

पराश्रय (सं० त्रि०) निक्षेपयोग्य।

पराश्र (सं० पु०) परमुत्तरवर्त्तिभव, ततः टव (राज-इति०) इत्यु। पा ३।४।८। परदिन, दूसरा दिन।

पराहाट—विहभूम जिलेके भक्तगंत एक सुंदर सामन्त-राज्य। भूमिका परिमाण ७८१ वर्ग मील है। इसमें कुल ३८० ग्राम लगते हैं।

यहकि राजाओंको वंश-पाल्याके सख्यमें दो स्वतन्त्र इतिहास पाये जाते हैं। पराहाटके सरदारगण पहले सिंहा-भूमके राजा समझे जाते थे। इस राज्यमें आदिपुरुष जिन्होंने सबसे पहले राक्षोपाधि पाई उनके विषयमें इस प्रकार चरित्राख्यान सुना जाता है। किसी समय एक भू-इया-पुत्र काटने गया, वहां उसने हचक कोटमें एक बालकको देख पाया। घर ला कर वह उस बालकका पालन-पोसन करने लगा। धीरे धीरे वह बालक भू-इया-पुत्रात्मा एक प्रधान नेता हो गया। बहुत बचपनसे ही

निधय हो गमधारण करना पड़ेगा। ब्रह्मन् ! पीछे मेरी क्या गति होगी, मो पाप मुझे बता दोजिए। इस पर पराशरने कहा, राज हमारा प्रियकाय सन्मादन करके फिर तुम कन्या हो जाओ। इस पर भी यदि तुम्हें डर हो, तो अभिनयित वर मांगो। मत्स्यगन्धर्वने इस प्रकार वर मांगा, 'मेरे पिता, माता वा अन्य कोई भी हम विषयकी जाने न सके और जिससे मेरा कन्याव्रत भङ्ग न हो नष्ट कार्य कोजिए। आपसे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह आप हीने समान तेजस्वी और गुणो होवे। मैं शरीरमें यह सौगन्ध सदा एकसी बनी रहे और मेरा यह योवन सर्वदा नवनवरूपमें विराजमान रहे।'।

यह सुन कर पराशरने कहा, 'सुन्दरि ! तुम्हारे गम से जो पुत्र जन्म लेगा, वह विशुद्ध सन्धि उत्पन्न हो कर त्रिभुवनमें विख्यात होगा। तुम्हें यह निश्चय जानो कि किसी विशेष कारणवशता ही मैं तुम पर पानेवाला हुआ हूँ, नहीं तो हमने पहले राजतक कभी भी सुनि इस प्रकारका मोह उपस्थित नहीं हुआ था। तुम्हें देख कर इस प्रकार कामाभिभूत होनेके देव जो एकमात्र कारण हैं। अतएव देवकी अतिक्रम करना किसीका भी साध्य नहीं है। यदि ऐसा नहीं होता, तो अब संभव था कि मैं तुम्हारे दुर्गन्धर्मय शरीर पर असक्त हो जाता। तुम्हारा पुत्र पुराणकर्ता, वेदज्ञ और वेदका विभागकर्ता होगा।'।

वृषिवर पराशरने सत्यवतीको इस प्रकार वचनमें करके उसकी साथ उपमोग किया और पीछे यमुनामें स्नान करके वही उसी समय वहाँमें चले पड़े। सत्यवतीने उसी समय गमधारण किया और द्वितीय कन्दर्पसदृश एक पुत्र प्रसव किया। पुत्रने जन्म लेते ही मातासे कहा, 'आप हमी घर कोट जावे, मैं इसी स्थान पर तपस्या करूँगा, जब कभी आप मेरी प्रयोजन पढ़ेंगे उसी समय आप मेरा स्मरण कर गी, स्मरणमात्रसे ही मैं आपके पास पहुँच जाऊँगा।' इसके बाद सत्यवती भी पिताके घर चली गई। यह पुत्र हीमें उत्पन्न हुआ था, इस कारण उसका नाम हो गायन पड़ा। (दीर्घा २१ अ०)

पराशर कृषिने एक म हितो रचा है जिसमें कलियुगको

कर्त्तव्यवस्था सचिव प्रित है। इसमें लिखा है —

“कृते तु मानवो धर्मप्रेतायां गौतमः स्मृतः।

हापरे गङ्गालिखितौ कलौ पराशरः स्मृतः॥” (पराशर०)

सत्ययुगमें मनुज धर्म प्रधान है, त्रेतायुगमें गौतम, हापरमें गङ्ग और लिखित तथा कलियुगमें एकमात्र पराशरका मत ही ग्रहणीय है। इस संहितामें १२ अध्याय हैं। प्रथम अध्यायमें युगमेदसे धर्मादिमें दक्षयन, २५ अध्यायमें आचारसम और गृहधर्मादिकथन, ३५ अध्यायमें अष्टचव्यवस्था और आचरणादि दीव, ४५ अध्यायमें प्रायश्चित्तमत, अन्त्येष्टिका और कुशपुत्तलिकादिकथन, ५५ अध्यायमें प्राणिवेद प्रायश्चित्त व्यवस्था, ६५ अध्यायमें प्राणिवेद प्रायश्चित्त कथन, ७५ अध्यायमें दृष्टशुद्धि प्रकृति, ८५ अध्यायमें गोवधादि प्रायश्चित्त, ९५ अध्यायमें गोवधापवाद प्रकृति, १०५ अध्यायमें भगव्यागमनादि प्रायश्चित्त, ११५ अध्यायमें अनेधामचण्णादि प्रायश्चित्त, १२५ अध्यायमें प्रायश्चित्तज्ञानमें दादि।

पराशर संहितामें ६५ सब विषयोंको गोवधा सचिवेयित हुई है। पराशरके साथ अन्य सम्वादसंहिताका विरोध होने पर भी कलिकालमें पराशरका मत ही ग्रहणीय है।

ये विष्णुपुराण और पराशर, पुराणके बहता हैं २ पाण्डेय तन्त्रकारके अभिषेद। १ इन्द्र।

पराशर—१ होराशास्त्र वा पराशरीहोरा नामक एक ज्योतिष न्यके रचयिता।

२ एक ज्योतिषविद्। ब्राह्मनिहिर क्षत्र दृष्ट्यात्मक जन्ममें इनका उत्पन्न है।

३ क्षत्रियवर्तिके प्रणेता।

४ गृहक्षत्रवशात्वाके रचयिता।

५ पुराणरत्न नामक ग्रन्थके प्रणेता।

६ योगोपदेश नामक एक योगशास्त्रके प्रणेता।

पराशर—गौतमदे। विचारवाची ब्राह्मण, राजपूत, बाभन आदि जातियों; चङ्कोरके करणों तथा बङ्गालके ब्राह्मण, कायस्थ, तति, मधुनापित, ताम्बुकी, सुवर्ण वृषिकमें यह गौतम प्रवृत्ति त देखा जाता है।

पराशर दास—केवर्त्तजातिकी एक शाखाका नाम।

पराशर भट्ट—१ एक विख्यात पण्डित। ये वत्साङ्गके पुत्र

घोर रङ्गे शरके कूनपुरोद्दिन ये । पट्ट प 'चंमायोडमो,
गणरत्नकोपमोव (घोरहाराजमोव घोर-स्तीवरत्न),
यमकराकाकर, वेदान्तमार, विष्णुमन्दस्त्रनामभाष्य (घर
ग्रन्थ इत्येति घोरहाराशरके कहने पर बनाया) भाटि यन
इनके बनाए हुए हैं ।

२ इनका दूसरा नाम रङ्गनाथ था । इन्होंने भाग-
वतपुराणतर्पण वा विष्णुमन्दस्त्रनामभाष्य नामक एक
ग्रन्थ प्रणयन किया ।

पराशरिन् (स० पु०) पराशरेण 'भोक्तः भिक्षुत्वं पराशरं
तद्विद्यार्नेऽस्याध्यायनायेति षड्, इन्, पराशरोति ङत्वः ।
पाराशरी, चतुर्थ्यादि ।

पराशरीय (पराशर्य) —गुजराती ब्राह्मणोंको एक शाखा ।
काठियावाड़ प्रदेशके दक्षिणपूर्वार्धमें ये लोग वास
करते हैं ।

पराशरेखा (स० पु०) स्कन्दपुराणवर्णित दक्षिणालके
शिवसिङ्गमंभेद ।

पराशरेखानीयः (स० ली०) शिवपुराणके उत्तरखण्डमें
वर्णित दक्षिणालके अन्तर्गत तीर्थभेद । यत्रां खान
करनेसे पुण्यकी प्राप्ति होती है ।

पराशवाङ्—यमिष्टगोत्रोय निपातो ब्राह्मणोंका एक हन ।

पराशस् (स० ली०) पराशसन, पराङ्मुख-हिंसन ।

पराशान्यिद्ध (स० पु०) यद्धको हिंसा करनेवाला ।

पराशय (स० लि०) पशो चाश्रयो यस्य । १ अश्व-अश्वत,
को दूसरेके आश्रयमें हो । (पु०) २ पराशयता । ३

दूसरेका चवनस्य, पराया भरोसा, दूसरेका सहारा ।

पराशय (स० ली०) कलाविशेष, परगाछा, बांदा,
बांदाक । पर्याय—बन्दा, छवाड़नी, छचहवा, वि-
लिका, बगिनी-पुलिनी, बन्दा घोर परपुष्टा ।

पराश्रित (स० लि०) १ दूसरेके आश्रित, पराधेन । २
जिसे दूसरेका आसरा हो, जिसका काम दूसरेसे हो
चलावा हो ।

पराश (स० पु०) १ दूरता, किसी स्थानसे उतनी दूर
अतनी दूरी पर उस स्थानसे किसी हद, वस्तु-गिर ।
२ प्रत्यक्ष देखो ।

पराश (स० पु०) १ अवरोध, शोषित्तोष । २ दूसरे
परधर्म आश्रित ।

परासन (स० ली०) परा-अस-भावे क्युट् । १ सारण,
वध । परं आसनं । २ अछानम, उत्तम आसन ।
पराशिन (स० लि०) १ इष्टकादि निक्षेप द्वारा दूरताका
परिमाप । (ली०) २ एक रागिनोका नाम ।

पराश्री देखो ।

पराश्र (स० लि०) परा-गताः प्रश्रित्य प्रसवो यस्य । मृत,
मरा हुआ । जिसको प्राणवायु निकल गई हो, उसे
पराश्र कहते हैं । इसको परीक्षाका विषय वंशप्रणयमें
इस प्रकार लिखा है,—जिसका वस्त्र वाम श्रवस्त दोष
ता कल, सन्दतहोण, दवा प्रतिकीण, पञ्च जटावह,
दोनों नेत्र प्रकृतिहान, विलसिपुल, अट्युत्तिष्ठित,
प्रविष्ट, कुटिल, विप्रस तथा प्रसृत हो, उसे पराश्र
जानना चाहिए । (चरक इन्द्रिय ४ अ०) मृत्यु देखो ।

पराश्रता (स० ली०) पराश्रित्य तस्य भावः, मृत-ताप ।

१ मृतत्व, मृत्यु मोत । २ निद्रापरवधता ।

पराश्रित्य (स० पु०) परान् प्राश्रित्युं योवमस्य
आश्रित्य-श्रित्ति । चोरभेद, एक प्रकारका चोर, चकैत ।

पराश्र (स० लि०) पराश्रयते हस, परा-अस-कृत् । १

निरस्त, पराजित, हारा हुआ । २ मभावहान, दवा

हुपा । ३ अस्त, विजित ।

पराश्री (स० ली०) पराश्रित्य श्रव ।

पराश्र (स० लि०) निक्षेपयोग्य ।

पराश (स० पु०) परमुत्तरवर्त्ति सद्यः ततः टव (राजा-
इतिप्रत्ययः । पा ३।४।८१) परदिन, दूसरा दिन ।

पराहाट—विंद्मभूमि जिलेके अन्तर्गत एक सुदृष्ट सामन्त-
राज्य । भूमिका परिमाण ७८१ वर्ग मील है । इसमें कुल
३८० ग्राम लगते हैं ।

यहाँके राजाओंको वंश-पाल्याके सम्बन्धमें दो सत्यन्त
इतिहास पाये जाते हैं । पराहाटके सरदारगण पहले सिंहा-
भूमिके राजा समझे जाते थे । इस राजवंशका बादिपुरुष
जिन्होंने सबसे पहले राजकीयाधि पाई उनके विषयमें इस
प्रकार चरित्राख्यान सुना जाता है । किसी समय एक
भू-इया-पुत्र काटने गया, वहाँ उसने छच्छर कोटमें एक
बाजकको देख पाया । घर का कर वह उस बाजकका
पालन-पोसन करने लगा । बार धीरे-धीरे वह बाजक भू-इया
जातिका एक प्रधान नेता हो गया । बहुत-बहुतसे हो

परिगणना (स० स्त्री०) परिगणन ।
 परिगणनोद्य (स० त्रि०) परिगणनप्रतिपक्ष । परिगणना-
 के योग्य । संख्या करनेके उपयुक्त, गिनने लायक ।
 परिगणित (स० त्रि०) १. सर्वतोभावसे गणनायुक्त,
 संख्यात, गिना हुआ, जिसकी गिनती हो चुकी हो । २.
 विधित्वविधेय विधेयरूपसे कथित ।
 परिगण्य (स० त्रि०) परिगण्य-यत् । परिगणनाके योग्य,
 गिनने लायक ।
 परिगत (स० त्रि०) परिगमन-क्त । १. प्राप्त, मिला हुआ ।
 २. विस्मृत, जिसे भूल गये हो । ३. ज्ञात, जाना हुआ ।
 ४. चेष्टित । ५. गत, चला हुआ, गया, गुजरा । ६. वीक्षित,
 घेरा हुआ । ७. स्तन, भरा हुआ ।
 परिगदित (स० त्रि०) परिगद-क्त । परिकथित, कहा
 हुआ ।
 परिगदितम् (स० त्रि०) परिगदितं तत्कालमेवनेन इष्टा-
 दित्वादिनि । परिगदितकर्ता, परिकथनकारो ।
 परिगमिक (स० पुं०) बालरोगभेद, बालकीकी होने-
 वाला एक प्रकारका रोग भावप्रकाशमें लिखा है—जो
 बालक गर्भिणी माताका दूध पीता है, उसे प्रायः कास,
 अग्निमान्द्य, वमि, तन्द्रा, क्षणता, अरुचि और अम तथा
 उदरकी वृद्धि होती है । बालकीमें ये सब लक्षण देखनेसे
 उन्हें परिगमिक कहते हैं । उक्त रोग होनेसे अग्निप्रदी-
 पक औषधका प्रयोग करना चाहिए और अग्निप्रदीप
 होनेसे ये आप हो आप जाते रहते हैं ।
 परिगमिन् (स० त्रि०) बहुत गव वाला, भारी घमण्डी ।
 परिगम्य (स० स्त्री०) परिगम्य-यत् । अत्यन्त गहन,
 अतिशये निन्दा ।
 परिगह (स० पुं०) कुटुम्बी, संगी सांघी या आश्रित
 जान ।
 परिगहन (स० स्त्री०) परिगह-भाव ल्युट्, सुम्नादि-
 त्वात् न ण्वत् । अत्यन्त गहन, बहुत अन्धकार ।
 परिगोति (स० स्त्री०) कुन्दोभेद, एक कुन्दका नाम ।
 परिगुण्डन (स० त्रि०) क्षिपया हुआ, टका हुआ ।
 परिगुण्डन (स० त्रि०) धूलसे क्षिपया हुआ, गदसे
 टका हुआ ।

परिगुह (स० त्रि०) परिगुह-क्त । अत्यन्त गुप्त, बहुत
 क्षिपया हुआ ।
 परिगुह (स० त्रि०) अधिक भक्षणयोग्य, बहुत खाने-
 वाला ।
 परिगुहीत (स० स्त्री०) परिग्रह-कर्मणि-क्त । १.
 स्वीकृत, जो ग्रहण किया गया हो, उपान्त । २. मिला
 हुआ, शामिल ।
 परिगुहीति (स० त्रि०) परिग्रह-कर्मणि-तत् इटो दीर्घः ।
 १. परिग्रह, ग्रहण करना । (त्रि०) परिग्रह-कर्मणि । २.
 ग्रह गयो, लेने लायक ।
 परिगुह्यवत् (स० त्रि०) परिग्रह्य-समुप-सम्प-व । परि-
 ग्रह्ययुक्त ।
 परिगुह्या (स० त्रि०) विवाहिता स्त्री, धर्मपत्नी ।
 परिग्रह (स० पुं०) परिग्रहणमिति परिग्रह-कर्मणि (ग्रह-
 हनिदिचगभदच । पा २।३।५८) १. प्रतिग्रह, दान लेना,
 ग्रहण करना । २. सैन्यपक्षात्भाग, सेनाका पिछला
 भाग । ३. पत्नी, भार्या, स्त्री । ४. परिजन, परिवार ।
 ५. आदान, लेना । ६. स्वीकार, ग्रहणकार, आदरपूर्वक
 कोई वस्तु लेना । ७. मूल, कन्द । ८. शपथ । ९.
 शपथ, कसम । १०. राहुवज्रास्थित भास्कर । ११. वैन,
 तनखाह । १२. हस्त, हाथ । १३. विष्णु । जो विष्णु-
 को ग्रहण करते हैं, उन्हें विष्णु, सब तरहसे ग्रहण करते
 हैं । इसीसे इसका नाम परिग्रह हुआ है । १४. अनु-
 ग्रह, क्षपा, मिहरवानो । १५. जेनग्राहकों के अनुसार
 तीन प्रकारके गतिनिवन्धन कर्म—द्रव्यपरिग्रह, भाव-
 परिग्रह और द्रव्यभावपरिग्रह । १६. कुक्षि विगृह्य वस्तु
 संग्रह न करनेका व्रत । १७. साधन ।
 परिग्रहक (स० त्रि०) परिग्रहकर्ता, परिग्रह करने-
 वाला ।
 परिग्रहण (स० स्त्री०) १. सर्वतोभावसे ग्रहण, सब
 प्रकारसे लेना, पूर्णरूपसे ग्रहण करना । २. वस्त्र-
 परिधान, कपड़े पहनना ।
 परिग्रहमय (स० त्रि०) परिग्रह-स्वरूपे सम्यक् । १.
 परिग्रह स्वरूप, स्त्रीपुत्रादि सम्मिलित ।
 परिग्रहवत् (स० त्रि०) परिग्रहः समुप-सम्प-व । परि-
 ग्रहयुक्त, स्त्रीपुत्रादि सम्मिलित ।

परिग्रह (स० त्रि०) परिग्रहः विद्यतेऽस्मात्, परिग्रह-
इति । परिग्रहयुक्तः स्त्री-पुमादिके माय ।

परिग्रहित (स० त्रि०) परि-ग्रह-लृट् । १ दत्तकग्रहण-
कारो पिता, यह जो पोषयुक्त होता है । २ यद्व-
कारो, लेनेवाला ।

परिग्राम (स० पु०) ग्रामके सामनेका भाग, गांवको
घोर ।

परिग्रह (स० पु०) परि-ग्रह-लृट् (पौ वङ् । पा ३।३५७)
यज्ञे दिविशेष, एक विशेष प्रकारको यज्ञवेदो ।

परिग्रहा (स० त्रि०) परि-ग्रह-लृट् । ग्रहण्य, ग्रहणके
योग्य, लेने लायक ।

परिच (स० पु०) परिग्रह्यतेऽनेनेति परि च ल-यत् । ततो
धादिग्य । (पौ पः । पा ३।१।८४) १ लौहमय लसुह,
लोहागो, गंडासा । पर्वीय—परिचासन, परिचातन ।
भारतवर्षमें पूर्व समय युद्धमें इसी अस्त्रका व्यवहार
होता था । धनुर्वेदमें लिखा है, कि यह अस्त्र सुमेरु
घोर लम्बाईमें साढ़े तीन हाथका होता था । २ परि-
चात, परितो लन । ३ ल्योतिषके धर्मशास्त्र-२७ योगिमें
से १८वां योग । कोई शुभ कर्म करनेसे इस योगका
प्राप्ति होइ देना चाहिये । जन्म शालमें यह योग पढ़नेसे
संतुष्ट बंगलुहार, अमरयवाको, जमाविहीन, अल्प व
री । घोर ग्रन्थ विजयी होती है । ४ संगल, अगह्वी ।
५ सुहर । ६ शुन, चर्छी, भाला । ७ कलस, जलपात्र,
चड़ा । ८ काचघट, काचका चड़ा । ९ गोपुर, पुर-
हार, फाटक । १० मघ्न, घर । ११ कार्तिकाशुचर-
मेष्ट, कार्तिकाका एक मेवक । १२ चण्डालविशेष ।
परिच इस शब्दके १६ के स्थान पर १६ करनेसे पल्लि
ऐसा शब्द बनता है । १७ प्रतिवन्ध, व्याघात, बाधा ।
१८ मृदुगर्भ विधेय । १९ तोर । २० पर्वत, पहाड़ ।
२१ वस्त्र । २२ शिवनाग २३ जन्म, पत्नी । २० चेन्द्र ।
२१ सुय । २२ स्थल । २३ पानन्द घोर सुखको
निशानक विद्या । २४ वे वादन जो सूर्यके सदृश वा
प्राप्ति होनेके समय तकके सामने आ जाय ।
परिग्रह (स० पत्नी) परि-ग्रह-लृट् । सर्वतोभावेसे
घटन, सब प्रकारसे घटनेकी क्रिया या भाव ।
परिग्रह (स० त्रि०) परि-ग्रह-लृट् । सम्यक् धर्षित ।

परिग्रह (स० पु०) यह शालक जो प्रसवके समय
योगिके द्वार पर आ कर अगह्वीकी तरह घटक जाय ।
परिग्रम (स० त्रि०) परि-ग्र-मन् । यज्ञाङ्ग महावीरपात्र
पतित फेनादिका चरण ।

परिग्रम्य (स० पु०) परिग्रम्येष्टं यत् । महावीरराज
धर्मसम्पत्तिपात्र, यज्ञमें काम पानेवाला एक विशेष
पात्र ।

परिचा (पर्व)—मुद्गर, भागलपुर घोर सन्धान परगना
वामी क्षपिजोवि जानिविगो । दूसरे का कार्य करके
अथवा खेतो बारी द्वारा ये लोग अपना जीविका
पलाने हैं ।

इनको वाघ्रा जाति घोर शरीरादिकी गठन देखनेमें
ऐसा मान्य पड़ता है, कि ये लोग द्वाविड़ प्रथा प्राचीन
अन्य जातिके हैं । इनमें प्रथा है, कि किमो हिन्दू
देवताने प्रायश्चित्तानुसार अपने पत्नीमें एक योहाको
खट्टी की । यही रीति परिचा जातिका प्रादि पुरुष
है । किमो किमो कहना है कि परशुरामने जय द्रुपदीको
निःस्त्रिय करनेको पतिव्रता की थी, तब कितने ही राज-
पूतोंने युद्धप्रदेशमें भाग कर इस पक्षमें आश्रय ग्रहण
किया था । पति समय उन्ही पत्नी पत्नी यत्तीपवातको
सोभनदेके जन्ममें किं का शूद्रभावेने आभरता की
थी । तभीने वे लोग पक्षधर कर्मज्ञानी लगे । दिनाज-
पुरके पत्नियान्न काचब गोह्व होने पर भी वे लोग
अपनी राजपूतवंशको पालना देते हैं । इस प्रकार ऐसी
कितनी द्वाविड़ शाखाएँ हैं जो अपनेको राजपूत वतला
कर सोभाम्यवान् समझती हैं । मान्य होता है, कि
सभी पत्नियाने इस परिचा जातिका उत्पत्ति है । फिर
किमो किमोका अनुमान है, कि किमो समय भुंश्या
लोगोंने तह्येवामो हिन्दुपंको रीति नीति घोर आचार
व्यवहारका अनुकरण किया था और घोर घोर वे ही
हिन्दूके मध्य गच्छे हो कर परिचा कहलाने लगे ।

भागलपुरके परिचाके मध्य दो स्वतन्त्र योवी विभाग
हैं, घुपपर्वी घोर पक्षधरपर्वी । कुहार, मांझी, गराव,
मारि, बोका, दाव, राय, राउत घोर गियार प्रादि
कई विभिन्न पदविगो इनमें प्रचलित देखो जानी हैं ।

इन लोगोंने वालिका घोर मयका कन्याका विशाह

प्रचलित है। बालिकाविवाह हो इनमें विगेष आदर्श-
णोय समझा जाता है। कन्या यदि विवाहके पहले
कृतुमती हो जाय, तो समाजमें उसको निन्द्य होती
है। मांगने निन्द्य देना हो विवाहका प्रधान पक्ष है।
यदि स्त्री मर्यादा अथवा दुष्टरिवाज रहे, तो स्वामी दूसरा
विवाह कर सकता है। ऐसी हालतमें स्वामी यद्यपि स्त्री-
को छोड़ भी देता है, तो भी स्त्रीको जाति नष्ट नहीं
होती, वरं वह दूसरे पुरुषसे विवाह कर संसारी हो
सकती है। स्त्रीयाग करके अथ्य पक्षोपहणका कोई
नियम नहीं है।

इनके निम्नलिखित कार्यादि विगेष आदर्शोय
नहीं हैं। इस विषयमें हिन्दुओंके साथ किसी किसी
धर्ममें विसदृश भाव देखा जाता है। निम्नश्रेणीके
मैथिल-ब्राह्मण इनकी याज्ञकता करते हैं। शवदेहको
अन्त्येष्टिक्रिया हिन्दु-सा होती है। तीरहवें दिन
मृतका आहवाय सम्पन्न होता है। यदि कोई व्यक्ति
असीमवाहसी कार्यसे समाजसेवन विसर्जन कर दे, तो
वे लोग एक गोलाकार शुष्क मृत्तिकास्तम्भ बना कर मृत
व्यक्ति के नाम पर (उपदेवता जान कर) उक्त स्तम्भ की
पूजा करते हैं और छागवलि तथा मिष्टान उपहार
देते हैं।

परिधात (सं० पु०) परिहन्त्यते अनेन परि-हन्-घञ्, ततः
उपधाया वृद्धिः मर्यं तः । १ परिच अक्षर लोहांगो,
गंड़ास । २ इनन, दर्या, मार डालना ।

परिधातन (सं० क्ली०) १ परिधात, यह पक्ष जिमसे
किसीकी इत्या की जा सकता हो । २ इनन; हत्या ।
३ प्रतिबन्ध, व्याघात, बाधा । ४ आघात, चोट ।

परिधाती (सं० त्रि०) परि-हन्-णिनि । १ इननकारो,
हत्याकारो, मार डालनेवाला । २ अवज्ञाकारी ।

परिघट्टिक (सं० त्रि०) परिनः घट्टं आघ्रत्वेनान्त्यस्य
ठन् । धानप्रत्यभेद ।

परिघोष (सं० पु०) परितो घोषो यस्मिन् । १ मेघशब्द,
बादलका गरजना । २ शब्द, आवाज । ३ अवाच्य ।

परिघ्नत (सं० पु०) हाविंशति अवदानककी शब्दा-
भेद, हाईस अवदानककी एक शाखाका नाम ।

परिघ्नका (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नगरीका नाम ।

परिचक्षा (सं० स्त्री०) परि-चक्ष्-भावे श्, माव धातु-
त्वात् न उदादिगः । १ निन्दा । परि-वर्जने-प्र २ वर्जन,
मनाहो ।

परिवक्ष्य (सं० त्रि०) परि-वर्जने-चक्ष्-त्वात्, वर्जनाय-
त्वात् न उदादिगः । वर्जनीय, छोड़ने लायक ।

परिचतुर्दश (सं० त्रि०) परिहोनचतुर्दश यतः, ततः ड
समासान्तः । एकाधिक चतुर्दशका, पञ्चदश संख्या-
न्वित, पन्द्रह ।

परिचना (हि० क्लि०) परचना देणो ।

परिचपल (सं० त्रि०) परि सर्वतोभावेन चपतः । प्रति
चपल, जो किसी समय स्थिर न रहे, जो हर समय
हिलता झुलता या घूमता फिरता रहे ।

परिचय (सं० पु०) परि-समन्तात् चयनं बोधो ज्ञानमित्यर्थः
परि-वि-पप । १ विषयपुरुषसे ज्ञान, अभिज्ञता, विगेष
ज्ञानकारो । पर्याय—संस्तन, प्रणय । २ नादको एक
अवस्थाका नाम । ३ अभ्यास, मशक । ४ किसी वस्तुकी
नाम-धाम या गुणकमं आदिके सम्बन्धकी जानकारी ।
५ ज्ञान पहचान । ६ प्रमाण, लक्षण ।

परिचयवत् (सं० त्रि०) परिचयः विद्यतेऽस्य, परिचय-
मनुय, मर्य व । परिचययुक्त ।

परिचर (सं० पु०) परिनचरतीति परि-चर पचाद्यच् ।
१ युद्धके समय शत्रुके प्रहारसे रथरजक, वह- सेनाज
जो रथ पर शत्रुके प्रहारसे उसको रक्षा करनेके लिये
बैठाया जाता था । २ प्रजासामन्त व्यवस्थापनकारो ।
३ सेनाविषयमें राजाका दण्डनायक, नेतापति । पर्याय—
परिषिक्त, सहाय । ४ परिचर्याकारक, अनुचर, श्रुत्य,
खिदमतगार, टहलुवा । ५ रोगीकी सेवा करनेवाला,
शय्याकारो ।

जो विषयपुरुषसे उपचार, अतिशय कार्यदक्ष
तया शीघ्रप्रवृत्त हो और जिनका प्रभुके प्रति विगेष
अनुराग हो, वे ही परिचरके उपयुक्त हैं । सुश्रुतमें लिखा
है, कि क्षिप्त, आनन्दित, बलवान्, रोगोकी रक्षा करने-
में सर्वदा नियुक्त, वैद्यका-प्राज्ञाकारो और अश्रान्त, ये
सब गुण रहनेसे परिचर कहा जाता है ।

परिचरकमं (सं० क्ली०) सेवाका काम ।

परिचरजा (हि० स्त्री०) परिचर्या देणो ।

परिचरण (स० पु०) परि-वरण्यु । परिचर्या, सेवा, खिदमत, टहल ।

परिचरणकर्म (स० क्त०) परिचरण सेवक कर्म । परिचर्या सेवा, खिदमत । वैदिक पर्याय—इरज्यति, विधेय, मपर्यति, नमस्यति, दुरस्यति, ऋध्नोति, षट्पदि ऋच्छति, मपति चौर शिवामति ।

परिचरणोय (स० क्त०) परि-चरणोयर् । परिचर्याके योग्य, सेवाके लायक ।

परिचरत (चि० स्त्रो०) प्रलभ, कयामत ।

परिचरितव्य (स० क्त०) परि-चर-तव्य । परिचर्याके योग्य, सेवाके लायक ।

परिचरिता (स० क्त०) परि-चर-तव्य । परिचर्याकारक, सेवक, शूद्रपाकारो, सेवा करनेवाला ।

परिचर्या (चि० स्त्रो०) परिचर्या देखो ।

परिचर्यन् (स० क्तो०) ऋध्नवज्जु भेद ।

परिचर्यन् (स० क्तो०) चर्मखण्ड ।

परिचर्या (स० स्त्री०) परिचर्यते परिचरणमित्यर्थः परि-चर (परिचर्यपरिचर्येति । पा ३।३।१०१) इत्यस्य नास्ति-कोत्तया श, यक् च इति निपात्यते । १ सेवा, शूद्रपा, खिदमत । पर्याय—वरिवस्था, शूद्रपा, उपामन, परिचर्या, उपासना, उपासि चौर शूद्रपा । पितृ, माता, शूद्र, आत्मा तथा अग्नि प्रभृतिकी यत्पूर्वक परिचर्या करनी चाहिए । २ रोगीकी शूद्रपा ।

परिचर्यावत् (स० क्त०) परिचर्या विद्यतेऽस्य मनुष्य मख्य । जिसकी परिचर्या की गई हो । २ माननीय ।

परिचायक (स० पु०) १ परिचय या ज्ञान पहचान करनेवाला । २ सुचित करनेवाला, जतानेवाला ।

परिचाय्य (स० पु०) परिचीयते इति (अगौ परिव्याधोऽ-चायवमूलाः । पा ३।१।११) इत्यनेन साधु । १ यज्ञाग्नि, यज्ञकी अग्नि । पर्याय—समूह, उपवाय्य । २ यज्ञाग्निगुण, यज्ञकाग्निगुण । सिद्धान्तकौमुदीमें लिखा है, कि परिचाय्य शब्दका अर्थ अग्नि है, किन्तु अग्नि प्रभृते वज्रि वा आग नहीं बनन् अग्निधारणार्थं स्ववर्षिणे पशुमभनना चाहिए । (त्रि०) १ सेव्य, शूद्रपा ।

परिचार (स० पु०) परि-चर भावे घञ् । १ सेवा, खिद-

मत, टहल । २ टहनने या धूपने किरनेके लिए निर्दिष्ट स्थान ।

परिचारक (स० क्त०) परिचरतोमि परि-चर खलु । १ सेवक, शूद्र, नौकर, टहल । पर्याय—शूद्र, दाम्बर, दामेय, दात्र, गोप्यक, चेटक, नियोज्य, निह्वर, प्रत्य, भुजिष्य, डिह्वर, चेट, गोप्य, पराचित, परिहकन्द, परि-कर्मी । २ रे गाटिके समय जो सेवा शूद्रपा करता है (Nurse) । परिचारक रोगमुक्तता एक भङ्ग है । उत्तम परिचारकके गुणमें दुर्लभ रोग भी आरोग्य होता है । आयुर्वेदभाष्यमें शूद्रपाभिन्न, कार्यकुशल, प्रभुभक्त चौर शुचिश्चिन्ति यैष्ट परिचारक कहे गए हैं । ३ देवमन्दिर आटिका कायें भयवा प्रत्यक्षकर्ता ।

परिचाय्य (स० क्तो०) परि-चर-णिव-युट् । १ सेव्य, खिदमत, टहल । २ सङ्वास'करण, संग करना वा रहना । ३ सेवाके लिए अपेक्षा करना ।

परिचारना (चि० क्त०) सेवा करना, खिदमत करना ।

परिचारिक (स० पु०) परिचारे प्रवृत्तः क्तन् । दास, सेवक, खिदमतगार ।

परिचारिका (स० स्त्री०) दासी, सेविका, मजदूरनी ।

परिचारिन् (स० क्त०) परिचारः अस्त्यर्थे इनि । १ इतन्मतः भ्रमणकारी, इधर उधर घूमनेवाला । २ सेवक, टहल, चाकर ।

परिचाय (स० क्त०) परिचर्यतेऽस्ती इति परि-चर कर्मणि खलु । सेव्य, सेवा करने लायक, जिसकी सेवा करना उचित हो ।

परिचालक (स० पु०) १ परिचालनकारी, नेता, चालने-वाला, चलनेके लिए प्रेरित करनेवाला । २ संचालक, किसी कामकी जारी रखने तथा आगे बढ़ानेवाला । ३ गति देनेवाला, चिन्तानेवाला ।

परिचालकता (स० स्त्री०) परिचालन करनेकी क्षमता, भाव वा शक्ति (Conductivity) । जिस गुणके रहनेसे सभी जड़ वस्तुएं एक परमाणुसे दूसरे परमाणुमें ताप संचालन करती हैं, उन्हें प्रबल परिचालक (Good Conductors) चौर इसके विपरीत गुणसम्बन्ध होनेसे दुर्बल परिचालक (Bad Conductors) कहते हैं ।

परिचालन (स० पु०) १ गत्यंका निर्वाह करना, कार्य-

क्रम जारी रखा। २ चलाया, चलने के लिए प्रेरित करना। ३ गति देना, हिलाया, चरकत देना।
 परिचालित (सं० वि०) १ निर्वाह किया हुआ, बराबर जारी रखा हुआ। २ चलाया हुआ, चलने में लगाया हुआ। ३ जिसे गति दी गई हो, हिलाया हुआ।
 परिचित् (सं० वि०) परिचयोयर्थे चि कर्मणि क्तिप्। १ चारों ओर स्थापित। (वि०) २ परिचयकर्त्ता, ज्ञान पद-चान करनेवाला।
 परिचिन (सं० वि०) परि-वि-कर्मणि क्त। १ परिचय-विशिष्ट, ज्ञात, अभ्यस्त, जिसका परिचय हो गया हो, जाना-बूझा, मान्य। २ अभिन्न, वह जो किसीको जान चुका हो, वाकिफ़। ३ ज्ञान पदचान करनेवाला, मिनने ज्ञाननेवाला, सुनाता। ४ जैनदर्शन के अनुसार वह स्वर्गीय आत्मा जो दो बार किसी चक्रमें घा चुकी हो।
 ५ सश्रित, इकट्ठा किया हुआ, ढेर लगा हुआ।
 परिचिति (सं० स्त्री०) प्राप्ति, परिचय, अभिज्ञता, ज्ञान-कारी।
 परिचिन्तक (सं० वि०) चिन्ताश्रेष्ठ, अनुष्ठानकारी।
 परिचुस्वन (सं० क्तो०) समीप चुस्वन, भरपूर प्रेम या स्नेह से चुस्वन करना।
 परिचय (सं० वि०) परि-चि-कर्मणि य। १ परिचययोग्य, ज्ञान पदचान करने लायक, साक्ष्य सत्तामत्त या राक्षी रक्षा रखने कायित। २ अभ्यसनीय। ३ सञ्चय करने या ढेर लगाने लायक।
 परिचो (हिं० स्त्री०) परिचय, ज्ञान।
 परिच्छत् (परिच्छत्)—एक कोचराज। बङ्गाल के उत्तर-राष्ट्र और कोचविहार के पार्श्ववर्ती कोचराजों प्रदेशमें ये राज्य करते थे। वत्समान खालपाड़ा जिन्हा और निम्न आसाम तथा ब्रह्मपुत्र के वामतट पर कराईवाड़ी परगने के हातगिला (हस्तगिल) से खालपाड़ामें उक्त नदी के मुखाव तक उक्त राज्य फैला हुआ था। इसको पूर्व सीमा कामरूप थी। जिस समय कोचविहार के सिंहासन पर राजा लक्ष्मो नारायण वर्त्तमान थे, उसी समय अर्थात् भक्तवर शाह के पुत्र जहांगीर बादशाह के राज्यकालसे पहले ये इस प्रदेशमें शासन करते थे। सन् १६११ ई० में

इन्होंने सोमङ्ग (१) परगने के जमोदार, रघुनाथको मघरिवार बन्दो कर रखा। इस पर उक्त जमोदारने बङ्गाल के शासनकर्त्ता शेष बलाउहो न फतेपुरी इस्लाम खां के निकट परिच्छत् के नाम पर नामिश को। शेष बलाउहो नने जत्र यह जाना कि सचमुचमें परिच्छत्ने रघुनाथको सघरिवार कारारुह किया है, तब उन्होंने उन्हें रघुनाथ के परिवार-वर्ग को छोड़ देने के लिये कहमा भेजा। लेकिन परिच्छत्ने उनकी बात धनसुनो कर दो। बलाउहो न की वधिहारपति लक्ष्मो नारायण की तरह उन्हें बिनयावनत न देख आगबन्ना डो। उठे और उनका राज्य छोन लेने के लिए सेना तैयार करने लगे।

सेनापति सुकरम खां युद्धार्थ छह हजार पश्चारी को चार हज़ार पदाति और पाँच सौ कोटे जहाज़ ले कर कोचराजों को और अयमर हुआ। समुखवाड़ी सेनादल ले कर आमाख खाने हातगिलामें छावनी डाली और धुवड़ो दुर्ग को घेर अयसर हो कर परिच्छत् पर आक्रमण किया। उक्त दुर्गमें परिच्छत् पाँच सौ पश्चारी को और दस हज़ार पदातिके साथ बसव हुआ। एक मास तक अवरोध तथा उपयुक्तोप-वृष्टिके कारण बहुत-सी सेना मर गई। बाद परिच्छत्ने अपने निवासस्थान खेरा से सेनापतिके निकट सन्धिका प्रस्ताव कर भेजा और रघुनाथके परिवारवर्ग को छोड़ देनेमें स्वीकृत हुए। किन्तु सेनापतिने दुर्ग पर अधिकार कर लिया और सन्धिका बाद बङ्गाल-नवाबके पास भेजा। बङ्गालिय इस पर राजी न हुए वरन् उन्होंने परिच्छत्का राज्य छोन लेने तथा उन्हें कैद कर लाने का आदेश दिया। अतः फिर लड़ाई छिड़ गई। परिच्छत्ने अपने मर्यादारक्षा के लिये वर्षों की बेतनी पर ४८० पश्चारी को, १० हज़ार सैन्य और २० हाथी ले कर धुवड़ो पर आक्रमण किया। इस बार मुमलमान से निरीक पांव उखड़ गए और वे खेलाको और चले। नवाब की सेनानि धुवड़ो को छोड़ कर गदाधरनदोमें परिच्छत्को सेना पर चढ़ाई की। वहाँ एक छुद्र नौयुद्ध हुआ। परिच्छत्ने

(१) यह भैरवसिंह के अन्तर्गत है और ब्रह्मपुत्र के पूर्वार्धमें

गारो और कराईवाड़ी-पर्वत के मध्य अवस्थित है।

जेलयुद्धमें सुगलसेनाका सामान न कर खेलाने भाग्य लिया। किन्तु यहाँ था कर भी वे निश्चित न रह सके। उन्होंने सुना, कि उनके पितामह-भ्राता कोषविधायक राज लक्ष्मीनारायण उनके विरुद्ध सुगलसेन्यके साथ योगदान कर उन पर चढ़ाई करनेको उद्यत हुए हैं। इस पर वे धनासन्नदोके तीरवर्षी सुनहरमें भाग गये। खेला पर पाक्षमण कर सुगलोंने उनका पोछा किया। परिच्छेदकी प्रथम अर्थानुसंधानकोई सपाय न देख आत्मसमर्पण किया। सुकरम खाँ धनरत्न और परिच्छेदकी बन्दो कर छाकाको भीरु बनाउहेन इच्छाम खाँके पास चल दिये। उसी समय अनाउदानको ज्यू को गई। प्रथम अनाउहेन के पुत्र कीसंग और सुकरम खाँ दिल्लीखर जहांगीरके पास यह सन्वाद देनेको वाध्य हुए। जहांगीरने परिच्छेदको दिल्ली भेज देनेकी आज्ञा दी। परिच्छेद भी उक्त आदेशानुसार विधायक अन्नाटकके समीप भेज दिए गये।

राजा परिच्छेदकी ऐसी दुरवस्था देख उनके भाई बलदेव आसामराज खगदेवको शरण नो और पुत्र चन्द्रनारायण ब्रह्मपुत्रके दक्षिण मोतमारी परगनेमें रहने लगे। इन दोनोंने भी अपनेपुत्र बन्धुसत्तिका उधार करनेके लिए सुगलसेन्यके साथ युद्ध किया। किन्तु प्रथम परिच्छेद के युद्धोंके बाद उन्होंने भी जीवन विसर्जन किया।

परिच्छेदगढ़—युक्तप्रदेशके मोरट जिल्लागत एक प्राचीन नगर। यह मोरट नगरसे ७ कोस दूरी पर अवस्थित है। प्रवाद है, कि यहाँ जो प्राचीन किल्ले चारा और नगर बना हुआ है, बहुतके पोष परिचितनै यह नगर और युग निर्माण किया था। विगत शताब्दीमें गुजरातके अन्धदयके समय राजा नयनसिंह द्वारा उन युगका जीर्णोद्धार हुआ था। १२५० ई. में उक्त किल्ला कुछ क्षय तोड़ दिया गया है और अभी समीप पुलिस रहती है। गढ़ासे ले कर अन्धपर्वत तक जो खाई गई है, यह इसी नगरके समीप हो कर बहती है।

परिच्छेद (सं० पु०) परिच्छेदशब्दनेनेति परिच्छेदशब्द ततो च (प्रति संज्ञायां) पा ३।३।१।१६ ततो उपधाङ्गः ॥ १ परिहार, परिजन, लुट्, २ चङी, भय, यस्, कम्बलादि उपकरण, वेग, पोशाक, पहनावा। ३ आच्छा-

दन, कपड़ा जो किसी वस्तु को ढक सके या छिपा सके, ढकनेवाली वस्तु, पट। ४ भयभाव, सामान। ५ प्रसूच, राजा आदिके सब समय साथ रहनेवाले नीकर। ६ राजचिह्न।

परिच्छेद (सं० पु०) परिच्छेदशब्दनेनेति परिच्छेद शब्दने चञ्। परिच्छेद, पोशाक, पहनावा।

परिच्छेद (सं० त्रि०) परिच्छेदः कर्त्तारि, कर्मणि यात्। १ परिच्छेदनिमित्त, वस्तुयुक्त, जो कपड़ें पहने हो। २ परिश्रुत, साफ किया हुआ। ३ आच्छादित, छिपा हुआ, ढका हुआ। ४ सज्जन, सजाया हुआ। ५ प्रसूत। परिच्छेद (सं० ध्यो०) परिच्छेद भावे क्तिन्। १ भवधारण, निश्चय, ज्ञान बोध। २ परिच्छेद, मोटा, इयत्ता, छद्। ३ सीमा द्वारा दो वस्तुओंको एक दूसरेसे विभक्तुन लुटा कर देना, विभाग, बाँट।

परिच्छेद (सं० पु०) परिच्छेद भावे कारणादो च वञ्। १ विभाजन, काट कर विभक्त करनेका भाव, पण्ड या टुकड़े करना। २ प्रत्यविच्छेद, प्रत्यत्यन्त्रि, प्रत्य या पुस्तकका ऐसा विभाग या खण्ड जिसमें प्रधान विषयके अङ्गभूत पर स्वतन्त्र विषयका वर्णन या विवेचन होता है, अध्याय, प्रकरण।

अन्त्यके विषयानुसार उसके विभागोंके नाम भी भिन्न भिन्न होते हैं। कायमें प्रत्येक विभागको भग, कोपमें भग, चलद्वारमें परिच्छेद तथा उच्छास, कथामें उद्घात, पुराण और संहितादिमें अध्याय, नाटकमें प्रह्ला, तन्त्रमें पटल, ब्राह्मणमें काण्ड, संगीतमें प्रकरण, इतिहासमें पर्व और भाष्यमें पाक्षिक कहते हैं। इसके प्रतिष्ठित पाठ, तरङ्ग, स्वावक, प्रपाठक, स्वल्प, मञ्जरी, लघुरा, शाखा प्रभृति भी परिच्छेदके अंगानुसार हुआ करते हैं। परिच्छेदका नाम विषयके अनुसार नहीं, किन्तु संख्याके अनुसार होता है। १ सामान, प्रवधि, इयत्ता, छद्। ४ भय, भाग। ५ इयत्तारूपसे व्यवधारण, दो वस्तुओंको स्वल्प रूपसे प्रत्यग्न अलग कर देना, परिभाषा द्वारा दो वस्तुओं या भावोंका अन्तर स्पष्ट कर देना। ६ निर्वय, निश्चय, फौजाना।

परिच्छेदक (सं० षष्ठी०) १ सीमा, इयत्ता, छद्। २ परिमाण, मिततो, आप या तोल। (त्रि०) ३ विच्छेद,

सोमा या इयत्तानिर्धारित करनेवाला, रुद सुकर करनी
वाला । ४ इयक् करनेवाला, बिलगानेवाला ।

परिच्छेदकर (सं० पु०) समाधिभेद, एक प्रकारको
समाधि ।

परिच्छेद्य (सं० त्रि०) परिच्छिद्-कर्मणि-ल्यत् । १ परि-
मेय, गिनने, नापने या तोलने योग्य । २ भवधार्य,
निश्चय करने योग्य । ३ विभाज्य, बांटने योग्य ।

परिच्छित (सं० त्रि०) १ भ्रष्ट, स्खलित, पतित । २ जाति
या पंक्तिसे वधिष्ठित, विरादरीसे निकाला हुआ ।

परिच्छति (सं० स्त्री०) स्खलन, भ्रंश, पतन, गिरना ।

परिच्छन (हि० पु०) परछन देखो ।

परिच्छा—मन्दिभादिके परिवारक पुरोहित । श्रीक्षेत्रमें
जगन्नाथदेवके मन्दिरके पुरोहितोंमें प्रधान वाक्ताइलो
नामसे पुकारे जाते हैं ।

परिच्छार्ही (हि० स्त्री०) परछाईं देखो ।

परिच्छिन्न (हि० वि०) परिच्छिन्न देखो ।

परिच्छेक (हि० पु०) परछेक देखो ।

परिच्छटन (हि० पु०) परछटन देखो ।

परिजन (सं० पु०) परिजनों जन्मः । १ परिवार, आश्रित
या पोषधर्मा । २ सदा साथ रहनेवाला सेवक, अनु-
चरवर्ग ।

परिजनता (सं० स्त्री०) परिजन भावने तथा ततः टाप-
। १ परायत्तता, अधोमता । २ परिजन होनेका भाव ।

परिजन्मन् (सं० पु०) परिजायते इति परिजन-भन्
निपातनात् साधु । १ चन्द्र । २ अग्नि । पर्यजतीति भजः
परिपूर्वस्य भन्, प्रकारसोपः, ततः निपात्यते । ३ परि-
गन्ता ।

परिजपित (सं० त्रि०) अनुस्रवसे चाराधना करना,
धीरे धीरे मन्त्रोच्चारित ।

परिजप्त (सं० त्रि०) सुष्ठ, मोहित ।

परिजय्य (सं० त्रि०) जेतुं शक्य जय्य, परितो जय्य । जो
चारों ओर जय करनेमें समर्थ हो, सब ओर जीत सहने-
वाला ।

परिजल्पित (सं० स्त्री०) परिजल्पि भावे क्त । कथनभेद,
दशाङ्ग चित्ररत्नका दूसरा भेद । विवेकज देखो ।

परिजा (सं० स्त्री०) संपत्तिस्रोतः, पादिजन्मभूमि ।

परिजाह्य (सं० त्रि०) सुखेता, जेहता ।

परिजात (सं० त्रि०) उत्पन्न, जन्मा हुआ ।

परिजोह—भूटान सोमान्तमें हिमालय शिखर पर क्व-
स्थित एक गिरिपथ । यह समुद्रपृष्ठसे प्रायः सात हजार
फुट ऊँचे पर अवस्थित है ।

परिजोति (सं० स्त्री०) १ कथोपकथन, वातचीत । २
प्रत्यभिज्ञान, पदचान ।

परिज्ञा (सं० स्त्री०) १ सम्यक्ज्ञान । २ सुज्ञान । ३
निययाज्यज्ञान, संशयहरित ज्ञान ।

परिज्ञान (सं० त्रि०) १ भवधारित, ज्ञाना हुआ । २
विशेष रूपसे ज्ञाना हुआ ।

परिज्ञात (सं० त्रि०) १ जो सब विषयोंसे ज्ञानशाली हो ।
२ परिदर्शक । ३ ज्ञानी, बुद्धिमान् ।

परिज्ञानं (सं० क्तो०) परिज्ञा-ल्युट् । १ सुष्ठ ज्ञान, भेद
धर्मधर्मरक्षा ज्ञान । २ सम्यक्ज्ञान, पूर्णज्ञान,
किमी वस्तुका भवोमांति ज्ञान ।

परिज्ञेय (सं० त्रि०) ज्ञातव्य, जानने योग्य ।

परिज्वनन् (सं० त्रि०) १ चारों ओर व्याप्त भूमि, जो
जमीन चारों ओर फैली हुई हो । २ इतस्ततः गमन-
कारी, इधर उधर जानेवाला ।

परिजमना (सं० पु०) १ चन्द्रमा । २ चारों ओर प्रसरित
अग्नि ।

परिज्वि (सं० त्रि०) परि-कृ-क्ति । चारों ओर गमन ।

परिज्वन् (सं० पु०) परिज्व-कनिन् (शब्द धृक् प्रथमिति ।
उण्, १।१५८) १ इन्द्र । २ अग्नि । ३ सेवक । ४ यज्ञ
करनेवाला । ५ इन्द्र ।

परिजोन (सं० पु०) किसी पक्षीको हवाकार गतिमें
उड़ान, किसी पक्षीका चकर काटने हुए उड़ना ।

परिजोनक (सं० स्त्री०) परिजो-क्त-ततः कार्ये कन् ।
परिजोन देखो ।

परिणत (सं० त्रि०) परिणमति-स्म परिणम क्त । १ पक्का,
पका हुआ, पका । २ समादिर्नि परिणतित, पका हुआ ।

३ पति गन्ध या गन्ध, बिलकुल या बहुत सूखा हुआ । ४
मौड़, मुष्ट, बढ़ा हुआ । ५ अवस्थान्तरित, रूपान्तरित,
बढ़ता हुआ ।

परिणतप्रत्यय (सं० त्रि०) जिस कार्यका फल परिणत
हुवा हो ।

परिणति (सं० त्रि०) परिणम-कृति । १ अवयवनि-
सृष्टाव, नोचिको चोर सृष्टाव । २ चन्द्रबालरत्नमणि,
विकृति, बदलना । ३ प्रवृत्तान, पन्त । ४ परिपाक, पकना
या पचना । ५ प्रोढ़ावस्था, प्रोढ़ता, पुष्टि, पुष्टतमो । ६
वारिष्य, वृष्टता, वृष्टि ।

परिचय (सं० त्रि०) परि-नञ-कृत् । १ वद, बाधा हुआ ।
२ परिहित, कपेटा हुआ, मड़ा हुआ । ३ विस्तीर्ण,
खोटा, विग्रान । ४ प्रवृद्ध, खूब बढ़ा हुआ ।

परिणमन (सं० क्ता०) १ रूपान्तरप्राप्ति । २ उत्तरावस्था ।
परिणमयित (सं० त्रि०) १ नमनकारयिता । २ परिपाच-
यिता ।

परिणय (सं० पु०) परिणयमं परि-नो-प्रप । विवाह,
दारपरिणय, व्याह, मादो ।

परिणयन (सं० पु०) दारपरिणय, विवाह करनेकी
क्रिया, व्याहना ।

परिणयसम्पन्नात (सं० पु०) धर्मपत्नीका गर्भजात, बच्चा
जो धर्मपत्नीके गर्भसे उत्पन्न हुआ हो ।

परिणाम (सं० पु०) परिणम-नञ् । १ विकार, प्रकृति-
का अन्त्यया भान । २ प्रकृतिका अन्तर्गत विकार । ३
चरम, शेव । ४ अर्थान्तराभेद । इसका अन्वय—

“विषयान्तगतयोग्ये प्रकृतार्थोऽयोगिनि ।

परिणामो भवेत्तुल्यवृत्त्यधिकरणो हिना ॥”

(साहित्यद० १०।६७८)

पारोक्ष्यमान वस्तु जब पारोक्ष्य विषयके अभिप्रेक्ष्यके
अर्थ प्रस्तुत आर्थको उपयोगी होती है, तब परिणाम
फलदायी होता है । जहाँ प्रकृतार्थके उपयोगि विषयमें
विषयोका पारोक्ष्य होता है वहाँ परिणाम फलदायी
होता है । यह परिणाम दो प्रकारका है, तुल्यधिकरण
और व्यधिकरण । इसका तात्पर्य यह कि जहाँ एक वष-
नीय विषयमें अन्य एक वस्तुका पारोक्ष्य किया जाता है
और वह पारोक्ष्यमान वस्तु अभिप्रेक्ष्यके प्रकृत विषयकी
उपयोगी होती है, वहाँ यह फलदायी हुआ करता है ।

उदाहरण—

“रिमतेनोपायनं दूरादागतस्य कृतं भम् ।

स्तनोपवीकृमादेव; कृती च वेपथस्तथा ॥” (साहित्यद०)

नायक नायिकासे कहता है, कि मैं दूरसे आ रहा हूँ

और तुमने हाथ धारा इसका उपायन (छपटीकन)
किया है । यहाँ पर नायक नायिकाका समामग वष-
नीय विषय है, नायकको नायिकाका हाथ-छपटीकन
देना प्रकृत वषनीय विषयका उपयोगी हुआ है और
यह उपायनरूपसे पारोक्ष्य है, इससे यहाँ यह फल-
दायी हुआ ।

“नयेचरागं वनितासकानां दीपरोऽसङ्गनियतमानः ।

मगतिं वशीभवतो रजस्यामसैव पूराः सुरतप्रवीणाः ॥

(साहित्यद०)

रात्रिकालमें दीपरोऽङ्गिर्गत् किरणयुक्त शोषवि-
न्ताएँ वनितासकानां दीपरोऽङ्गिर्गत् सुरतप्रवीणां तैव शोभ
प्रदोषका कार्य करती हैं, यहाँ पर सुरतप्रवीणा वष-
नीय विषय है । इसमें प्रदोषकी आवश्यकता है ; किन्तु
प्रदोषके नहीं रहनेसे किरणयुक्त शोषविन्ताएँ इसका
कार्य करती हैं । अतएव प्रदोषके बदले पारोक्ष्य वस्तु
प्रकृतविषयकी उपयोगी हुई है, इस कारण परिणाम-
फलदायी हुआ ।

प्रकृतविषयमें किमो एक वस्तुका पारोक्ष्य होनेसे
रूपक फलदायी होता है । परिणामकी जगह भी रूपक
फलदायी हो सकता है, इस प्रकार चापदा करते हुए
पारोक्ष्यकारिकोंने इसका निराकरण किया है । परिणाम
फलदायी की पारोक्ष्य होगा वह वषनीय विषयका
सम्पूर्ण उपयोगी होगा, किन्तु रूपकमें वह नहीं होता ।
पारोक्ष्यमान की रूपकाशङ्कारका विषय है और जहाँ
पारोक्ष्य अभिप्रेक्ष्यके प्रकृतार्थका उपयोगी होगा, वहाँ
परिणाम फलदायी हुआ करता है । परिणाम-पारोक्ष्य रूपकमें
इस प्रकार भ्रमेद जानना होगा ।

यह परिदृश्यमान जगत् प्रकृतिका परिणाम है ।
साध्यदर्शनमें इस परिणामका विषय विवृतरूपमें
दिखा है, यहाँ पर उसका संचित विवरण दिया
जाता है ।

प्रकृति परिणामकीला है । एक चित्पञ्चिके सिद्धा
और सभी परिणामी हैं । प्रकृति अथवा भी परिणत
हूए बिना नहीं रह सकती । सभी समय प्रकृतिका परि-
णाम हुआ करता है । सब जगत् नहीं था, प्रकृतिको जो
अवस्था-महाप्रलय, अथवा और प्रधान संज्ञा कहलाती

निर्माणकर्त्री है। प्रकृति-परिणाममे जगत्की उत्पत्ति होती है, यह पहले ही कहा जा चुका है। प्रकृति जड़ है, जड़वस्तु चापसे बाण प्रकट नहीं होता, यदि कदाचित् कभी हो भी जाय, तो उसकी यह प्रकृति सर्वथा अनियमित यथात् अदृष्टाधीन रहती है। ज्ञान-शक्ति नहीं रहनेसे कोई भी कभी नियमित कार्य नहीं कर सकता। ऐसे नियमयुक्त और ऐसे कोशलपूर्ण जगत्का निर्माण क्या जड़-प्रकृति के केवल परिणामसे संभव है? कभी नहीं। ज्ञानशून्या जड़-प्रकृति यदि इसकी कर्त्री होती, तो इस प्रकार सृष्टिकृता नहीं रहती। इससे कोई कोई प्रयुमान करते हैं, कि अथावतच्छा-ज्ञानमय्यस्य सर्वशक्तिमान् कोई एक कर्त्तृपुरुष इसके स्रष्टाताका निर्णाम है। उन्होंने ही प्रकृति द्वारा नियमसे जगत्का सृष्टि की है।

इसके उत्तरमें कविन कहते हैं, कि सो नहीं, प्रकृति के परिणामसे जगत्को उत्पत्ति हुई है, स्थिति होती है और पछि लय होगा। यह एक अचेतन वस्तु है, चेतना-वान् पुरुष उस पर कब्जा कर जिस तरह अपने इच्छा-नुसार नियमितरूपमें उसे चलाता है, भववा सुवर्ण-खण्ड एक जड़पदार्थ है, कोई कुम्हार स्वयंकार उसका अधिष्ठाता वा कर्त्ता हो कर जिस प्रकार उड़े कुण्डलादि भाकारमें परिणामित करता है, प्रकृति के स्वयम्भवे वंश परिणामक वा वंश प्रेरणकर्त्ता कोई नहीं है। वैसे अधिष्ठाताका प्रयुमान निम्नोक्त है। प्रकृति जड़ है, भूतः। नियमितता शारदिकी तरह उसके किछी स्वतन्त्र नियन्त्रा रहने ही कल्पना प्रयोजनीय नहीं समझी जाती। प्रकृति अस्वाधोक्त है, इस कारण उसे परिणामित करने के लिये कर्मकारकी तरह दृष्टक शक्ति रहनेकी जरूरत नहीं होगी। अनादि भगन्त पुरुष ही उसके अधिष्ठाता है और निजशक्ति ही उसके परिणामको प्रयोजक है।

कपिलसूत्रमें लिखा है, 'उपवर्तिष्यानात् अधिष्ठात्वं संपिबत्' जिस प्रकार सन्निधानवयतः इच्छादिगुणशून्य जड़स्वभाव अवस्थान्तमणि लोह के भस्वभूमे सचेतन अधिष्ठाताको तरह कार्यकारी होता है, उसी प्रकार सन्निधानविषयवर्गमे निगुण निश्चित पाया ही ताड़गो

प्रकृति के अधिष्ठाता वा प्रेरकका कार्य सम्पूर्ण कर सकते हैं।

जिस प्रकार लोह और लुप्तक दोनों ही जड़स्वभाव के हैं, इच्छादि गुणशून्य और स्वयं प्रवृत्तिरहित अवयव परस्पर सन्निहित होने के साथ ही एक दूसरे के शरीरमें विक्षिप्ता (सोहशरीरमें चलन और लुप्तक शरीरमें भाक-पकभाव) उपस्थित करते हैं, उसी प्रकार पामा के निष्क्रिय और इच्छाशून्य तथा प्रकृति जड़ और स्वतः प्रवृत्तिरहित होने पर भी सन्निधान विषय पत्रे वलसे प्रकृति शरीरमें परिणामशक्ति का उदय हुआ करता है। जड़-स्वभाव होनेसे अनियमित परिणामको आगच्छा पत्तोक आगच्छा है। क्योंकि नियमितरूपमें परिणत होना भी प्रकृति का स्वभाव है। तदनुसार प्रायेक वस्तु ही नियमित परिणामके अधीन है। दुष्टा दधि भिन्न कटौम परिणाम नहीं होता, घृणयुक्त चरक्षा रक्तावन ही होती है—कृष्णवर्ण नहीं होती। प्रकृति और प्रकृत पदार्थों के नियमित परिणामके विषयमें विज्ञान, ज्योतिष, वैद्यक आदि सभी शास्त्र साक्ष्य देनेमें समर्थ हैं। सांख्यकारिकामें लिखा है, "सर्ववस्तु प्रति गुणाप्रविविधेनात्" अर्थात् निरुक्त सन्निहित एक है, एक रूप और एक रस है। किन्तु वह एक और एक गामक जन पृथक् पर पा कर नागा प्रकारके पायि व विकारों के संयोगमें यथात् ताल और ताली प्रभृति विभिन्न वोज भावापन्न हो कर भिन्न भिन्न रूपों और भिन्न भिन्न रसोंमें परिणत होता है। तान-वोज या तानवस्तुने जिसे भाकवर्ण किया, वह एक रस हुआ, नाकिलने जिसे भाकवर्ण किया, वह अन्य रस हुआ। अतएव एक ही जल जिस प्रकार कारणविशेष के संयोगसे भिन्न भिन्न कर्त्तों और भिन्न भिन्न वस्तुओं में कटौ, तिज, कपाय आदि भिन्न भिन्न रस उत्पन्न करता है, उसी प्रकार प्रकृतिनिष्ठगुणत्रयके एक एक गुणके अभिभव और एक एक गुणके समुद्रय होनेसे प्रकृत संयोग द्वारा दुर्बल गुण विकृत हो जाता है। अतएव प्रकृति के नियमित परिणामके लिये प्रकृति की निज शक्ति या स्वतःप्रवृत्ति स्वभाव लोह कर स्वतन्त्र प्रेरक रहना सङ्गत नहीं है।

प्रकृतिवा प्रथम परिणाम—प्रकृतिका प्रथम विषय मद्भक्त है।

सृष्टिके प्रारम्भमें समंसारो और अशरीरो आत्माके सग्निसिद्धान्तः प्रकृतिके सत्य प्रथम प्रस्फुरण होता है। शास्त्रमें लिखा है, कि रजोगुणसे सृष्टि, सत्त्वगुणसे पावन और तमोगुणसे मंहार होता है। इससे यह जाना जाता है, कि पहले गुणसमुदायके साम्यमङ्गसे सबसे पहले रजोगुणने सत्त्वगुणको उद्भिन्न किया था। इसी कारण सत्त्वगुण सबसे पहले महत्त्व (जिसका अन्त नहीं है) — निर्मल विकास को प्रादुर्भूत हुआ था। महत्त्व हृदयङ्गम करनेके लिये वर्तमान प्राणिनिचयकी बुद्धिके बीजस्थान पर विचार करना होता है। इस प्रकार विचार करनेसे देखा जाता है, कि प्रत्येक अन्तःकरण हरिहरभूति की तरह हिमूत्ति में अवस्थित है। उसको एक भूति वा परिणाम मानन और अध्यवसाय नामसे तथा दूसरी भूति वा परिणाम भूमिमान और यह नामसे परिचित है। 'मैं' 'मैं हूँ' 'बस' 'बस है' 'मेरा' 'मेरे जितना' इत्यादि प्रकारके निश्चयात्मक-विकासका नाम अध्यवसाय और ज्ञानशक्ति है। प्रकृतिका प्रथम परिणाम यही ज्ञानशक्ति सहजातस्वरूपमें जोवकी अन्तरात्मामें निरन्तर संलग्न है। ज्ञानशक्ति की समष्टि हो महान् है। महान् और पूर्ण ज्ञान एक चीज है। पूर्ण ज्ञान शक्ति सांख्योक्त महत्तत्त्व और बुद्धितत्त्व शब्दका अभिधेय है। जो महान् पुरुष इस महान् बुद्धितत्त्वमें पूर्णरूपसे प्रतिविम्बित होता है, वो ही सांख्योक्त पुरुष है। इन्हें ईश्वर भी कह सकते हैं। भूलोक, द्यूलोक, अन्तरीक्षलोक, चन्द्रलोक, सूर्यलोक, पद्मलोक, नक्षत्रलोक, ब्रह्मलोक आदि सभी लोकोंके सभी पदार्थ इस महान् पुरुषके अधोक्त हैं। प्रकृतिका प्रथम परिणाम महत्तत्त्व नामक व्यापक बुद्धि है। मेरा ज्ञान, तुम्हारा ज्ञान, उसका ज्ञान, चन्द्र सूर्य आदि लोकस्थितिका ज्ञान इत्यादि क्रमसे सभी सभी देहमें परिरिक्त्त हो कर शोभता है। हम लोग जिन प्रकार इस इस पदार्थविशिष्ट देहके ऊपर मैं और मेरा हम भूमि-मागकी निधेय किये हुए हैं, उसी प्रकार सांख्योक्त पुरुष सम्पूर्ण बुद्धितत्त्व वा अन्तःकरणसमष्टिके ऊपर मैं और मेरा इत्याकार भूमिमान निधेय किये हुए हैं। हम लोग जिस प्रकार अपने हस्तपदादिको जिधर तिधर,

चलाते हैं, उसी प्रकार पुरुष भी अन्तःकरणकी प्रेरण कर सकता है। कपिशने कहा है, 'महदाश्च अथ कायं तन्मनः।' प्रकृतिका प्रथम परिणाम यह है— सर्वदा-समुत्पन्ना विषयोपरत्ता बुद्धिको अवगाह्य खण्ड खण्ड विषयरागिका परित्याग कर निरवच्छेद केवल अथवा विशुद्ध बुद्धि ही महत्तत्त्व है, ऐसा जानना हीगा पहले केवल विद्यात्मपुरुष और प्रकृति यो। जब प्रकृतिके विषयप्रकारपरिणाममें जगत्-प्रारम्भ हुआ, तब प्रकृतिके प्रथम परिणाममें अर्थात् महत्तत्त्व नामक बुद्धिमें विद्यात्मका अनुसृष्टन कोइ अथ पदार्थका अनुसृष्टन नहीं था और न उसका परिच्छेदक ही था। उससे वह अपरिच्छिन्न था। पोले प्रकृतिसे जितना ही ह्यूल भूत्त्वविकार प्रादुर्भूत हुआ है, उतना ही वह विषय-परिरिक्त्त और मलिन हो गया है। प्रकृतिका प्रथम महत्तत्त्व ही जगहोज है। हम महत्तत्त्वसे अर्थात् इस महत्तत्त्वके परिणामसे जो चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है। जब इस जगत्कार्य की रचना प्रारम्भ नहीं हुई, उस समयकी अवस्थाका भगवान् मनुने ऐसा वर्णन किया है—

‘आसीदिदं तमोभूतमप्रकातम कथं नृ।

अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसूतमिव सर्वतः॥’ (मनु १ भ०)

यह जगत् पहले प्रकृतिहीन था। प्रकृतिमें लीन रहना हो लय या प्रलय है। जो अवस्था सभी लोगोंसे अज्ञात, पलत्तय और अप्रतर्क्य है अर्थात् जिस अवस्थामें प्रत्यक्ष, अनुमान और श्रद्धादि प्रमाण नहीं था, प्रमाणका विषय जो प्रमेय पदार्थ है, वह भी नहीं था, वही अवस्था प्रायः महासुप्तिसे सहज थी।

जिस तरह हम लोगोंकी गाड़ी मोट टूटनेके साथ ही पांच मोंजते न मोंजते अज्ञानतम दूर हो जाता और ज्ञानविकासका रुदय होता है, उसी तरह जितना दुर्लभरूप प्रलय प्रकृतिके परिणामसे जगत्की निद्रा टूटनेके साथ ही प्रकृतिप्रारम्भमें सूक्ष्मजगत्के अभिव्यञ्जन (अद्वैतरूप) तमोभूतप्रकारक सृष्टिसामर्थ्ययुक्त महत्तत्त्वका आविर्भाव हुआ। ज्योंही जगत्की निद्रा टूटी त्योंही महान् विकासका रुदय हुआ। सत्य जगत् अस्तित्वसे पहले मात्रामें अस्तित्व हुआ। यही प्रकृतिका

प्रथम परिणाम है। यह द्वितीय परिणामके विषय पर कुछ विचार करना आवश्यक है। यह विषय जान लेना उचित है, कि ज्ञानशक्तिको अनुगामिनी दृष्ट्याशक्ति, दृष्ट्याशक्तिको अनुगामिनी क्रियाशक्ति और क्रियाशक्ति की अनुगामिनी कृतिशक्ति है।

प्रकृतिका द्वितीय परिणाम चङ'तत्त्व है—

"प्रकृतेर्मेवान् महतेऽहङ्गाः॥" (संख्यसारिका २२)

प्रकृतिसे महत् और महत्से चङ'कारकी उत्पत्ति होती है, यही प्रकृतिका द्वितीय परिणाम है। पूर्वाक्त प्रथम परिणामके अर्थात् मैं हूँ इत्यादि महज्जात मिथ्या भिन्नावृत्तिके एकदेशमें जो चङ'तत्त्व संलग्न है, वही प्रकृतिका द्वितीय परिणाम है और चङ'तत्त्व इस नामसे प्रसिद्ध है। यह चङ'तत्त्व प्रत्येक पाप्मके आश्रित है।

यह चङ' एक एक गणनाकी व्यष्टि और समस्त गणनाकी समष्टि है। चङ', अविमान और चङ'तत्त्व ज्ञान-भेदमात्र है। महत्तत्त्वके साथ चङ'तत्त्वका प्रभेद यह है कि महत्तत्त्वके पक्षगत में अवश्योत्पन्न है और चङ'तत्त्वका में मूलपूर्वक उत्पन्न है। चङ'का प्रधान लक्ष्य पाप्माका जीवभाव है। यही प्रकृतिका द्वितीय परिणाम है। चङ'प्रकृतिके तृतीय परिणामका विषय लिखा जाता है।

प्रकृतिका तृतीय परिणाम इन्द्रिय और तन्मात्र है।

पहले कहा गया है, कि प्रकृतिका प्रथम परिणाम महत्तत्त्व और महत्तत्त्वका परिणाम चङ'तत्त्व है। इस चङ'तत्त्वसे जो विचित्र परिणाम हुआ है, वही सांख्यशास्त्रमें इस प्रकार लिखा है—चङ'कार तत्त्वके दो परिणाम हैं,—इन्द्रिय और तन्मात्र। जिस प्रकार एक बुद्धिसे द्विविध परिणाम या विकार अर्थात् किना और किनेका जल उत्पन्न होता है, उसी प्रकार एक चङ'तत्त्वके परिणामसे द्विविध विकार उत्पन्न हुए हैं, इन्द्रिय और तन्मात्र। इन्द्रियगण स्रक् और प्रकाशप्रभावका तथा तन्मात्रप्रवाह स्रक् और अप्रकाशप्रभावका है। दोनोंका आकार भी भिन्न है। इन्द्रिय और तन्मात्रका तुल्याकार तथा तुल्यप्रभाववृत्त नहीं होनेका कारण यह है; कि चङ'तत्त्वव्युत्पन्न रजोगुणसे चङ'तत्त्वकी सभी प्रकारके विभिन्न आकार और रूपान्तरें विज्ञान किया था। प्रकृति-

का परिणाम अत्यन्त विचित्र और बोधातीत है, इसीसे चङ'तत्त्वमें प्रकाशप्रभाव (एकादश इन्द्रिय) और अह-प्रभाव (पञ्चतन्मात्र) उत्पन्न हुआ। कपित्थने कहा है—
"इत्येष श्रुतः सर्वः," "अनुदिपूर्वस्त्वेवः" यही अनुदिपूर्वक सृष्टि अर्थात् प्राकृतिक सृष्टि है। इसके बाद ब्राह्मी सृष्टि है। इस लोग जिस प्रकार सलिल, सूत्र और मृत्तमादि ले कर बुद्धिपूर्वक स्रष्टृपटादिका निर्माण करते हैं, उसी प्रकार प्रकृतिस्रष्टृ वस्तु द्वारा नियमित रूपसे यह सृष्टि हुई है।

पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय और मन तथा पञ्चतन्मात्र ये सोलह पदार्थ चङ'तत्त्वके ही परिणाम हैं। एकादश इन्द्रियोंका ऐसा और क्षीन परिणाम कहा जा सकता है? मन उभय इन्द्रिय है, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और पञ्च कर्मेन्द्रियकी मन परिचालन करता है, इसीसे मनकी उभय इन्द्रिय कहा गया है। भाव शब्दमें ज्ञायमान वस्तु समझी जाती है। जो-जो वस्तु ज्ञायमान हैं, सभीकी बुद्धि, ज्ञान, परिवर्तन और विनाश होता है। वस्तुमें ऐसे परिणामको अथवा दास निम्न पण्डितोंने भावविकार शब्दसे अभिविज्ञा किया है। भावविकार अस्त नहीं है, ऐसी अन्यवस्तु अप्रसिद्ध अर्थात् नहीं है। सांख्यके मतमें पुरुष व्यतीत अपरिणामी कोई पदार्थ ही नहीं है।

पहले ही कहा जा चुका है, "परिणामश्च भावा हि मायः ना परिणम्य क्षणवत्यवतिष्ठन्ते।" सभी भाव परिणामी हैं, बिना परिवर्तन हुए स्थायक भी नहीं रह सकते। इस वस्तुमें जो परिणामधर्म है, वह प्रत्यक्षप्रसिद्ध है। मन भी जन्मवान् है, इसीसे मनकी भी भावविकारप्रवृत्त-लाया है।

पहले जो पञ्चतन्मात्रकी व्याख्या की गई है, उसी पञ्चतन्मात्रसे पञ्चमहाभूत हुआ है। इस प्रकार चतुर्विंशति तत्त्व ही प्रकृतिका परिणाम है। इस प्रकृतिके परिणामसे जगत् उत्पन्न और विनष्ट होता है। फल जो कुछ होता है, यह प्रकृतिके परिणामसे हुआ करता है।

विशेष विवरण प्रकृति शब्दमें देखो।

महामति शङ्कराचार्य प्रकृतिके परिणामसे जो जगत् की सृष्टि और नाश होता है, इसे स्वीकार नहीं करते

‘पौर’ इस मतका उद्देश निजोरसे खण्डन किया है। भगवान् गङ्गावासीका कहना है, कि सांख्यशास्त्रों जो प्रधानके बाद परिणामी महत्त्व और अहंत्वका उल्लेख है, वह कदाचित् लोक, अथवा पेट किसीमें उपलब्ध नहीं होता। किन्तु परिणामी महत्त्व है, अङ्गुली जो सांख्ययोगका कल्पित है, वह लोक और वेद दोनोंमें ही अप्रसिद्ध है।

सांख्यशास्त्रों का पितृ सत्त्वादिगुणकी साम्यावस्थाकी प्रधान कहते हैं। कपिलने सत्त्व गुणत्रय छोड़ कर और कुछ भी नहीं है। उसे कार्यप्रवृत्ति (स्वयंमुख) और कार्यनिष्ठ (प्रत्योमुख) कानिसे लिये कोई भी नहीं है। पुण्य है सही, लेकिन वे उद्देश्यन और निष्पत्ति है, इस कारण वे किसीके नती प्रवर्तक हैं और न निवर्त्यक। सुतरां यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रधान अनपेक्ष है, अथवा प्रवृत्ति होती है। यदि यही सच मान लिया जाय, तो वह कभी महत्त्वत्वादि भावमें परिणत होते और कभी नहीं होते हैं। लेकिन यह श्रुति-सङ्गत वा प्रामाण्य नहीं है। गङ्गावासीमें परिणामवादकी स्वीकार न कर अर्थात् यह जगत् प्रकृतिका परिणाम है, ऐसा न बतला कर यह जगत् ब्रह्मका विवर्त है, यही स्वीकार किया है। यद्यपि यह मत अवैदिक है, तो भी वेदके अतिरिक्तित्व है, इस प्रकार स्वीकार कर उन्होंने सांख्यवे परिणामवादका निराकरण किया है।

(वेदाङ्गभाष्य २ अ०)

५ रुगन्तर-प्राप्ति, बदलनेका भाव या कार्य, बदलना। ६ प्रकृति या पचनेका भाव, पाक। ७ परिपुष्टि, वृद्धि, विकास। ८ वृद्ध होना, बढ़ा होना। ९ फल, नतीजा। परिणाम—एक विख्यात अर्थानुसंग प्रचारक। ये अपने मतसे वैष्णवधर्मका प्रवर्तन करके विख्यात हुए। खेड़ा जिलेमें इनका समाधिमन्दिर आज भी वसूमान है।

परिणामक (अ० वि०) परिणाम-साधक-कृत्। १ परिणाम। २ परिणामयुक्त।

परिणामदग्धिन् (अ० वि०) परिणाम श्रेयं पश्यति इत्यपिनि। स्वप्नदग्धि, भविष्य या होनहारकी आज्ञा मकनेवाला, सोच विचार कर काम करनेवाला।

परिणामदग्धि (अ० पु०) परिणामदग्धिन् देखो।

परिणामदृष्टि (अ० स्त्री०) परिणामे दृष्टि। भविष्यत् दृष्टि, भाग्यी फलकी ओर दृष्टि।

परिणामन (अ० पु०) १ पुण्य पुष्ट तथा वृद्धित करना।

२ जाति वा संघका उद्दिष्ट वस्तुकी अपेक्षे काममें लगाना।

परिणामवाद (अ० पु०) वह सिद्धान्त जिसमें जगत्की उत्पत्ति नाम आदि निवृत्तिपरिणामिक रूपमें माने जाते हैं।

परिणामशूल (अ० पु०) परिणामे परिणामके चरमावस्थायां शूलं यस्य वा परिणामे सुखाभादेः परिणामे उत्पद्यते शूलं यस्यमात्। शूलरोगविषय। खाया हुआ भक्ष जड़ पचना है, तब यह रोग उत्पन्न होता है, इसीसे इसको परिणामशूल कहते हैं। हममें भोजन पचनेके समय पेटमें पीड़ा होती है। भावप्रकाशमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—स्वकीयकारणसे अर्थात् रवादि

हारा क्षुपित यन्त्राङ्ग-बाहु समीपस्थ हो कर्कश और पित्तकी दूषित करके परिणामशूल उत्पादन करती है। परिणामशूल सुखद्वयको जीर्णविषयों उत्पन्न होता है। वातजादि भेदसे परिणामशूलका लक्षण संक्षेपमें लिखा जाता है। वातज परिणामशूलमें आशयन, आटोप, मलमूलकी बढ़ता, स्वादि और कम्प होता है। क्षिप्त और उत्थ क्रिया द्वारा यह रोग उत्पन्न होता है। परितक परिणामशूलमें पिपासा, दाह, कानि और चर्मरोग होता है। कट, पक्ष और लघ्वरसयुक्त द्रव्यसेवनसे यह रोग बढ़ता और शोथक्रियासे घटता है। क्षीभक परिणामशूलमें वमि, हृत्पाथ, समाह और चक्षुष्य बढ़ना होता है। यह बढ़ना दोषका लक्षणों की जाती है। कट, और तिक्तस्व सेवन करनेसे यह रोग प्रयमित होता है, उक्त दोषद्वयों में मिलित लक्षण द्वारा हिदोपज और त्रिदोषमें मिलित लक्षण द्वारा त्रिदोषिक परिणामशूल जाना जाता है।

त्रिदोषज परिणामशूलमें रोगीका मोसवस और जठरानि चोष हो कर पचाय हो जाता है। यह तो परिणामशूलका लक्षण लिखा गया, अब इसकी चिकित्साका विषय लिखा जाता है। परिणामशूलरोगीकी दूर करनेके लिये पहले उपवास, वमन और विरेचनका प्रयोग करना चाहिए। मदनफलका काड़ा दूधके साथ और कान्तिार, पोखक, इक्षुस भयवा नामका काड़ा या तिलशोकीका

रस भर पेट निम्ना कर रोगोको वमन कराना चाहिए।
निषेध वा दन्तोमुनके चूर्ण को रेंडोने तेनके साथ
पितानेवे विरेचन होता है, इससे परिणामशूल बहुत
जड़दूर हो जाता है।

विद्वक्का तण्डुल, त्रिकटु, निषेध, दन्तो और चीता
इनका चूर्ण बराबर बराबर भाग से सबका परि-
माण जितना हो उनके दूने गुड़के साथ मोदक बना कर
२ रत्ती को गोमो बनावे। उष्ण प्रकृति के साथ इनका
सेवन करनेसे त्रिदोषयुक्त परिणामशूल जाता रहता है।
कचूर, तिल और गुड़की समान भाग दूधमें पीस कर
चाटनेसे तोन रातकी चन्द्र परिणामशूल दूर हो
जाता है। शङ्खभस्म चूर्ण को उष्ण जलके साथ भाघ
तोला करके पान करनेसे परिणामशूल उसी समय
प्रगमित हो जाता है। खोह, हरोतकी, पिप्लो और
कचूरका चूर्ण समभाग से कर भाघ तोले घो और मधु-
को साथ लेहन करनेसे परिणामशूल नष्ट होता है।
जलनयुक्त सुपका नारिकेलके मध्य सेन्धव भर बार
ऊपरसे मटोका लीप दे। पीछे उसे लपटकी चिमने
मला कर उसके मध्यका सेन्धवयुक्त नारिकेल यथामात्रा-
पिप्लोके साथ सेवन करे। इससे सब प्रकारका परि-
णामशूल नष्ट हो जाता है। (भावप्रकाश)

महदुपरायमें लिखा है—लोहचूर्ण और त्रिकला-
चूर्ण को मधुके साथ सेवन करनेसे परिणामशूल प्रगमित
होता है।

"लोहचूर्ण समायुक्त त्रिकलाचूर्ण भवति।

मधुना स्वादितं कुरु परिणामाशयसंशुद्धम्।"

चारित्तहिताके चिकित्सितस्थानके ८वें अध्यायमें
परिणामशूलकी चिकित्सा का विशेष विवरण लिखा है।
भैषज्यरत्नावलीमें इसको चिकित्सा का विषय इस प्रकार
लिखा है—

परिणामशूल—तिक्त और मधुरद्रव्य द्वारा वमन,
विरेचन और वक्षस्त्रिया उपकारक है। दो तोले कचूर-
चूर्ण और उतने की गुड़का दूधके साथ पायस बना कर
सेवन करनेसे प्रवृत्त परिणामशूल नष्ट होता है। शब्बूक-
के गन्धित मांसको निकाल कर उसका भावरण भस्म
करावे। पीछे एक या दो मांसा भर उष्ण जलके साथ

सेवन करनेसे परिणामशूल उसी समय प्रगमित हो जाता
है। सबका परिणाम कर भरतयुक्त दधिके साथ मटर
और जौका भस्म खानेसे परिणामशूल बहुत जड़दूर
हो जाता है। तिल, खीर, हरितकी और शब्बूककी
एक पाय मिला कर तोले भरकी गोमो बनावे। इसका
यथानियम सेवन करनेसे परिणामशूल विनष्ट हो जाता
है। इससे चलावा सामुद्रायचूर्ण, भस्मयत्तोह, पिप्लो-
घृत, शोजपूरायुष्टत, कौवादिमण्डूर, और मण्डूर बादि
चोपचिथां परिणामशूलमें विशेष हित भर मानो गई है।

(भैषज्यरत्नाकर सप्तविंश) शूलोग देखो।

परिणामिल (सं० पु०) परिवर्तनशीलता, बदलनेका
स्वभाव या धर्म।

परिणामित्य (सं० त्रि०) जो परिणामयोगी हो कर
निच या क्षिणागो हो, जिसकी सत्ता स्थिर रहे पर
रूप याकार बादि बदलता रहे। सांख्यदर्शनके अनुसार
प्रकृति परिणामित्य है और पुरुष चयवा आत्मा अपरि-
णामित्य।

परिणामो (सं० त्रि०) परिणम-विनि। १ परिणामयुक्त,
जिसका परिणाम हो। सांख्यदर्शनके अनुसार प्रकृति
और पुरुष इन दोनोंमेंसे प्रकृति का ही परिणाम होता
है, पुरुष का नहीं। प्रकृति जो परिणामिनी है।

सृष्टिके पहले प्रकृति और पुरुष ये ही दो पदार्थ
थे, परन्तु ये दोनों ही अलग-आपक नहीं हैं। दोनोंकी
पूर्ववर्त्तिता रहने पर भी कारणताप्रत्यय अन्वय और
व्यतिरेक इन दोनों युतिवीके लक्ष्ये एक होको कार-
णता पर्याप्त केवल प्रकृति की कारणता पर्याप्त प्रकृतिसे
परिणामसे अलग-अलग होता है, केवल प्रकृति ही
परिणामिनी है, ऐसा स्थिर हुआ है। २ जो परिवर्तन
स्थोकार करे, बदलनेवाला। प्रकृति और परिणाम देखो।
परिणाय (सं० पु०) परितो वामदक्षिणतो गमन। १
किसी वस्तुको जिस-दशमें चाहे चलाना, सब ओर
चलाना। २ चौसर, गतराज बादिके गोठोको चलाना।
३ विवाह, व्याह।

परिणायक (सं० पु०) परिणी-शुद्ध। १ सेनापति।
२ स्त्रीमें, भर्ता, पति। ३ पदमर्दक, नेता, चत्ताने-
वाला।

परिपाटी (सं० स्त्री०) परिपाटि-डोप । १-अनुक्रम, श्रेणी, विन्यास । २-प्रणाली, रीति, शैली, ढंग । ३-पद्धति, रीति, चाल । ४-अनुगणित ।

परिपाठ (सं० पुं०) सम्यक् गणन, आनुपूर्विक कथन ।
परिपाठक (सं० त्रि०) आनुपूर्व पाठ वा प्रकाशकारी ।
परिपाथ (सं० पुं० स्त्री०) १-परितः पालन, परिरक्षण ।
२-परिपालक ।

परिपाण्ड (सं० त्रि०) १-पाण्डु धर्म, बहुत हुसका
वीणा, भक्तिदीप्ति हुए पोसा । २-दुर्बल, क्षय, क्षीण ।
परिपातन (सं० स्त्री०) निपातन, नष्ट करना ।

परिपाद (सं० अय०) पादवर्जन करने ।
परिपान (सं० स्त्री०) पानोप, जन ।
परिपाण्ड (सं० स्त्री०) पाण्ड, वर्णल ।
परिपाण्डुचर (सं० त्रि०) निकट वा वगलमें चरने वा
जानेवाला ।

परिपाण्डवर्त्ती (सं० त्रि०) निकटवर्त्ती, नजदीकका ।
परिपालक (सं० त्रि०) परिरक्षक, रक्षा करनेवाला ।
परिपालन (सं० स्त्री०) १-परिरक्षण, देखरेख, निगराने । २-रक्षा, बचाव ।

परिपालयिष्ठ (सं० त्रि०) परिपालि-ठप् । रक्षक, परि-
पालक ।

परिपालय (सं० त्रि०) पालनयोग्य, जो रक्षा या पालन
करनेके सायक हो ।

परिपिच्छ (सं० पुं०) प्राचीन काश्मीरका एक आभूषण
जो मोरझी-पूँके परेसे बनता था ।

परिपिञ्जर (सं० त्रि०) पिञ्जल वा रत्नवर्ण, हलके लाल
रंगका ।

परिपिण्डोक्त (सं० त्रि०) जो पिण्डाकारमें परिणत
किया हो ।

परिपिपासयिषा (सं० स्त्री०) पालन या रक्षण करनेकी
इच्छा ।

परिपिष्ट (सं० त्रि०) परि-पिष्ट । दलित, कुचला हुआ ।
परिपिष्टक (सं० स्त्री०) परि-पिष्ट-क संभार्या कर्म ।
सोसक, सीसा ।

परिपोषण (सं० स्त्री०) १-पेयण, पिसान । २-सत्पोषण,
अत्यन्त पोड़ा पट्टेचना या देना । ३-अतिष्ठकरण, युक्त-
साधन पट्टेचना ।

परिपोषा (सं० स्त्री०) १-पेयण, पिसान । २-पोड़ा या
कष्ट देना ।

परिपोषर (सं० त्रि०) अति मोटा, बहुत मोटा या
तगड़ा ।

परिपुटन (सं० स्त्री०) १-भेदन, छेदना । २-पाककरण,
पाक करना ।

परिपुष्करा (सं० स्त्री०) कर्कटोभेद, गोडु बककड़ी,
गोडुषा ।

परिपुष्ट (सं० त्रि०) परि-पुष्ट । १-परिवर्द्धित, जिसकी
वृद्धि पूर्णरूपसे हुई हो । २-परिपोषित, जिसका पोषण
भक्षोर्भाति किया गया हो ।

परिपुष्टता (सं० स्त्री०) १-सम्यक्वृद्धि । २-परिपुष्टि ।

परिपूजन (सं० स्त्री०) सम्यक्पूजा, उत्तम रीतिसे पूजन
वा स्थापना ।

परिपूत (सं० त्रि०) १-विपुष्ट, अति पवित्र । (स्त्री०) २-
अपतुल धान्य, ऐसा धान जिसकी भूषी या हिलका
भलग कर लिया गया हो, छाँटा हुआ धान ।

परिपूरक (सं० त्रि०) १-परिपूरणकारी, भर देनेवाला,
सवालव कर देनेवाला । २-सम्पूरक, अन्तर्धान्यसे
भरनेवाला । ३-सम्पूर्ण ।

परिपूरण (सं० स्त्री०) १-पूरणकरण, पूरा करना । २-
सम्पूर्णतासाधन ।

परिपूरित (सं० त्रि०) परिपूरण, खूब भरा हुआ, सवाल-
व । २-सम्पूर्ण, समाप्त किया हुआ ।

परिपूरण (सं० त्रि०) परिपूरण । १-सम्पूर्ण, पूरा किया
हुआ । २-पूर्णतः, सवाया हुआ । ३-सम्यक् रीतिसे
व्याप्त, खूब भरा हुआ ।

परिपूरणता (सं० स्त्री०) परिपूरण स्वभाव । तल-टाप, ।
सम्पूर्णता, आभोग ।

परिपूरणत्व (सं० स्त्री०) सम्पूर्णत्व, परिपूरणता ।

“दशमे परिपूर्णं ब्रह्मवन्द्यं ते वशि ।
न ज्ञाने कंचकोटं हि विधाता पालयिष्यति ॥” (सूक्त)

परिपूर्ण चन्द्रविपलमय (सं० पुं०) सोढासाक्षवर्षित
समाधिभेद, एक प्रकारकी समाधि जिसका वर्णन सोढा
शारदामें मिलता है ।

परिपूर्णसहस्रचन्द्रवती (स० ०० स्त्री०) चन्द्रकी एक स्त्री-
का नाम ।

परिपूर्णावतरश्मि (स० पु०) चन्द्रमा ।

परिपूर्णार्थ (स० त्रि०) पूर्णार्थ, पूरा करनेके लिये ।

परिपूर्णन्दु (स० पु०) पूर्णचन्द्र ।

परिवृत्ति (स० स्त्री०) परिपूर्णता, परिपूर्ण होनेकी
क्रिया या भाव ।

परिपृच्छक (स० पु०) जिज्ञासा करनेवाला, पूछनेवाला ।

परिपृच्छा (स० स्त्री०) परि-प्रच्छ-धातु । जिज्ञासा,
प्रश्न करना, पूछना ।

परिपृच्छानिका (स० स्त्री०) विचार्य विषय, वह बात
जिसको ले कर वाद प्रतिवाद किया जाय ।

परिवेल (स० स्त्री०) परि-वेल-घञ् । कौबर्त्तिसुप्तक,
केवटी मोथा ।

परिवेलव (स० त्रि०) १ अत्यन्त कोमल, बहुत सुकुमार ।
(स्त्री०) २ कौबर्त्तिसुप्तक, केवटी मोथा (*Cyperus
Rotundus*)

परिवेल (स० स्त्री०) १ जलजातवृक्षविशेष, पानेमें
होनेवाली एक प्रकारकी घास । २ जलसुप्तक, जलका
मोथा, केवटी मोथा ।

परिपोट (स० पु०) परि-पुट-घञ् । १ परिपुटन । २ कर्ण-
पालित रोगभेद, कानका एक रोग । इसमें लोकका
चमड़ा सज कर स्याको लिए कुछ लाल रंगका हो जाता
है और उसमें पीड़ा होती है । यह रोग प्रायः कानमें
भारी वाली घादि पड़नेसे होता है ।

परिपोटक (स० त्रि०) लक्ष्मिदेक, परिपुटक ।

परिपोटन (स० क्ली०) १ भेदन । २ परिपोट ।

परिपोष (स० पु०) पूर्णपुष्टि या हृदि ।

परिपोषण (स० क्ली०) परि-पोष-ल्युट् । १ परिपुष्टि ।
२ रक्षणपेक्ष । ३ पालन ।

परिपोषणीय (स० त्रि०) परिपोष-घनीयत् । परि-
पोषणयोग्य, पालने लायक ।

परिप्रश्न (स० पु०) शुक्लायुक्त प्रश्न, जिज्ञासा ।

परिप्राप्ति (स० स्त्री०) साम, मिलना ।

परिप्राप्य (स० क्ली०) करण्य, करने योग्य ।

परिप्राध (स० क्ली०) परिप्राध, नैकाध ।

परमो (स० त्रि०) प्रोङ् तर्पणे, क्षिप, छटुत्तरपद-
प्रकृतिसत्त्व । प्रीणयिता, सब प्रकारसे संतुष्ट करने-
वाला ।

परिप्रुप (स० त्रि०) परि-प्रुप-क्षिप् । परितः गन्ता ।

परिप्रेषु (स० त्रि०) परि-प्रेषाप सन्-उ । १ पानेमें
इच्छा । २ परिपालनके अभिलाषो । ३ इच्छा, का,
अभिलाषो ।

परिप्रयय (स० क्ली०) परि-प्रिय-ल्युट् । १ चोरी घोर
भोजना, जिधर इच्छा हो वहां भोजना । २ मिर्चानन,
किसी विशेष स्थान या देशसे निकाल देना । ३ परि-
त्याग देना ।

परिप्रयिन (स० त्रि०) परि-प्रिय-लृट् । १ प्रेरित, भेजा
हुया । २ निर्वासित, निकाला हुआ । ३ परित्र्यक्त,
त्यागा हुआ ।

परिप्रयय (स० पु०) परि-प्रिय-घञ् । १ परिचर, दास,
टहलुवा । (त्रि०) २ प्रेरणयोग्य, भेकने लायक ।

परिप्रव (स० त्रि०) परि-प्रु-घञ् । १ अस्थिर, चंचल,
कांपना हुआ, २ गतिभ्रष्ट, चलता हुआ, लक्ष्मण हुआ ।
(पु०) ३ ज्ञावन, बाढ़ । ४ पर्याचार, लुप्त । ५
नोका, नाव । पुराणाश्रयार एक राजकुमारका नाम
को सुखोनख राजाका सेवकका था ।

परिप्रवमान (स० त्रि०) पानेमें बहनेवाला ।

परिप्रवा (स० स्त्री०) परि-प्रव-टाप् । यन्मोद दर्वीभेद,
यसमें काम पानेवालों एक प्रकारकी लक्ष्मी या चिन्ता ।

परिप्रवाय (स० क्ली०) १ ज्ञावित होना । २ जलमें
डूबोना ।

परिप्रुत (स० त्रि०) परि-प्रु-लृट् । १ ज्ञावित, डूबा
हुया । २ खाद, भोगा हुआ । ३ क्षम्यित, क्षांपता
हुया । (क्ली०) ४ लम्प, फलांग, छठींग ।

परिप्रुता (स० स्त्री०) १ सदिरा, मराया । २ मेघुन-
वेदनायुक्त स्त्री-चन्द्रभेद, वह यौनि जिसमें मेघुने या
मासिक रजःस्वावके संमय पीड़ा हो ।

परिप्रुट् (स० त्रि०) जला हुआ, धुना हुआ ।

परिप्रोय (स० पु०) १ जलन, दाह । २ जलना, सुनना,
तपना । ३ प्रीतिसे मोतारकी गरमी ।

परिफुल्ल (स० त्रि०) १ सम्पन्न विकसित, फूलें बिना

परिपाटी (स० स्त्री०) परिपाटि-छोप । १ अनुक्रम, श्रेणी, मिनसिला । २ प्रणाली, रीति, शैली, ढंग । ३ पद्धति, रीति, चाल । ४ अट्टगथित ।

परिपाठ (स० पु०) सम्बन्धगणन, आनुपूर्विक कथन ।
परिपाठक (स० त्रि०) आनुपूर्व पाठ या प्रकाशकारी ।
परिपाण (स० पु० वस्त्रो०) १ परितः पालन, परिरक्षण ।
२ परिपालक ।

परिपाण्डु (स० त्रि०) १ पाण्डु, धन्य, बहुल हलका पीला, मक्केदी लिए हुए पोला । २ दुर्बल, क्षय, क्षीण ।

परिपामन (स० वस्त्रो०) निपातन, नष्ट करना ।

परिपाद (स० अ य०) पादवर्जन करके ।

परिपान (स० वस्त्रो०) पानोप, जन ।

परिपाख (स० वस्त्रो०) पाख, घण्ट ।

परिपाखर (स० त्रि०) निकट या घगलमें चरने या जानिवाला ।

परिपाखवर्त्ती (स० त्रि०) निकटवर्त्ती, नजदीकका ।

परिपालक (स० त्रि०) परिरक्षक, रक्षा करनेवाला ।

परिपालन (स० वस्त्रो०) १ परिरक्षण, देखरेख, निगरानी । २ रक्षा, रक्षण ।

परिपालविद्ध (स० त्रि०) परि पालि-द्वय । रक्षक, परिपालक ।

परिपाण्य (स० त्रि०) पालनयोग्य, जो रक्षा या पालन करनेके लायक हो ।

परिपिच्छ (स० पु०) प्राचीन कालका एक आभूषण जो मोरकी पूंछके पंखों से बनता था ।

परिपिञ्जर (स० त्रि०) विहल या रत्नवर्ण, हलके लाल रंगका ।

परिपिण्डोक्त (स० त्रि०) जो पिण्डाकारमें परिणत किया हो ।

परिपिपासयिषा (स० स्त्री०) पालन या रक्षण करनेकी इच्छा ।

परिपिष्ट (स० त्रि०) परि-पिष-क्त । दलित, कुचला हुआ ।

परिपिष्टक (स० वस्त्रो०) परि-पिष-क्त संघ्रायी कन । सोसक, सीसा ।

परिपोहन (स० वस्त्रो०) १ वेपण, पिसान । २ उत्तीर्णन, पथ्यन्त पोहा पट्ट चाना या देना । ३ संनिष्टकरण, मुक्क-सान पट्ट चाना ।

परिपोहा (स० स्त्री०) १ वेपण, पिसान । २ पोहा या कष्ट देना ।

परिपोवर (स० त्रि०) अति मोटा, बहुत मोटा या तगड़ा ।

परिपुटन (स० वस्त्रो०) १ भेदन, छेदना । २ पात्रकरण, पाक करना ।

परिपुष्करा (स० स्त्री०) कर्कटोभेद, गोडु बककड़ो, गोडुवा ।

परिपुट (स० त्रि०) परि-पुष-क्त । १ परिवर्धित, जिसकी वृद्धि पूर्णरूपसे हुई हो । २ परिपोषित, जिसका पोषण भोज्यमांति किया गया हो ।

परिपुटता (स० स्त्री०) १ सम्यक्वृद्धि । २ परिपुष्टि ।

परिपूजन (स० स्त्री०) सम्यक्पूजा, उत्तम रीतिसे पूजन या सपासना ।

परिपूत (स० त्रि०) १ विपुष्ट, अति पवित्र । (वस्त्रो०) २ अपतृप धान्य, ऐसा धान जिसकी भूसी या क्षिल्ला अलग कर लिया गया हो, छांटा हुआ धान ।

परिपूरक (स० त्रि०) १ परिपूरणकारी, भर देनेवाला, लवालव्य कर देनेवाला । २ सम्यक्वृद्धि, धनधान्यसे भरनेवाला । ३ सम्यक् ।

परिपूरण (स० वस्त्रो०) १ पूरणकरण, पूरा करना । २ सम्पूर्णतासाधन ।

परिपूरित (स० त्रि०) परिपूरण, खूब भरा हुआ, लवालव । २ सम्पूर्ण, समाप्त किया हुआ ।

परिपूर्य (स० त्रि०) परिपूर-क्त । १ सम्पूर्ण, पूरा किया हुआ । २ पूर्यंत, अंघाया हुआ । ३ सम्पूर्णरूपसे व्याप्त, खूब भरा हुआ ।

परिपूर्यता (स० स्त्री०) परिपूरण्य भावाः तल-टाप । सम्पूर्णता, आभोग ।

परिपूर्यत्व (स० वस्त्रो०) सम्पूर्णत्व, परिपूर्यता ।

“तस्यै परिपूर्णं मुखचन्द्रस्य ते वलिः ।
न जाने कंचकोटं हि विधाता पालयिषति ॥” (वृद्ध)

परिपूर्णचन्द्रविमलमम (स० पु०) बौद्धास्तवर्णित समाधिभेद, एक प्रकारकी समाधि जिसका वक्त्रं बौद्ध आदर्शमें मिलता है ।

परिभाषा-द्वयुक्तः । १ सनिन्द
द्वय उवाचना देना । २ ऐसा
निन्दा मोड़ी, मानत मनामत,
की अनुसार गर्भिणी, भाषद्वयत्,
भोर कियो प्रचारता दण्ड न दे
रहा दण्ड देना चाहिये । ३ मोनना
गोन करना, भाषण, घालाप । ४ नियम-

नं० त्रि०) परिभाष-मनोहर । परि-
भाषणोय निन्दके साधक ।

नं० स्त्री०) परिभाष-भक्त ततटाप । १

भाषण, स्पष्ट कथन, मंग्यरहित कथन या
पदार्थ विवेचनायुक्त अर्थकथन, किसी शब्द का
परिभाष्य करना जिसमें समझी विशेषता और
पूर्णरूपसे निश्चित हो जाय । प्रयोग—प्रज्ञति,
सहते, ममयकार । परिभाषा नचित भोर प्रति
म, अध्याप्ति रहित होनी चाहिये । जिस शब्द की
भाषा हो वह समझ न पाना चाहिये । जिस परि-
भाष्य में दोष हो वह शब्द परिभाषा नहीं होगी बल्कि
उक्त परिभाषा लज्जाविगे । ३ किसा धारण, प्रत्य, वक्ष्यकार
आदिको विगिष्ट संज्ञा, ऐसा शब्द जो मोक्ष विशेषमें
किसी निर्दिष्ट अर्थ या भावका संकेत मान लिया गया
हो, पदार्थ विवेच हो या शास्त्रकारोंको बनाई हुई
संज्ञा । जैसे, मणितकी परिभाषा, वंद्यकको परिभाषा,
लुकाईको परिभाषा । वंद्यक वा वंदान्त शास्त्रज्ञान-
की सुविधाके लिये परिभाषाका जानना आवश्यक है ।
जिन सब शब्दोंके अर्थविशेषमें जो निर्दिष्ट अर्थ परि-
कल्पित हुआ है, उसीकी परिभाषा कहते हैं ।

दोष जिस प्रकार अन्वकारको नाश कर प्रकाश देता
है, उसी प्रकार परिभाषा द्वारा कठिनमें कठिन शब्दोंका
अर्थ प्रजायास साक्षर हो जाता है बल्कि अपनी आसय
पारिभाषिक शब्दोंमें प्रकट करे, ऐसी चीज चाह जिसमें
या व्यवसायकी विशेष संज्ञाएं काममें लाई गई
हैं । ५ मूल प्रकरण विशेष, मूलके ऊः सचचोमिसे एक ।
परिवाद, गिकायत, वदनामी ।

(नं० त्रि०) परिभाष-त । कथित, जो

भक्तो तरह कहा गया हो, २ जिसकी परिभाषा की
गई हो ।

परिभाषिन् (नं० त्रि०) परिभाष-इति । कथनयुक्त, बोझने-
वाला ।

परिभाष्य (नं० त्रि०) कहनेयोग्य, बताने साधक ।

परिभुक्त (नं० त्रि०) परिभुज-त । उपभुक्त, जिसका
भोग किया जा चुका हो ।

परिभू (नं० त्रि०) परिभू जित् । १ गर्वलोभायसे प्राप्ति-
युक्त, जो चारों ओरसे घेरे या आच्छादित किये हो । २
नियामक । ३ परिपालक । यह शब्द ईश्वरका विशेष
पण है ।

परिभूत (नं० त्रि०) परिभू-त । १ तिरस्कृत, जिसका
तिरस्कार किया गया हो । २ अनादृत, जिसका अनादर
किया गया हो । पर्याय—अवगणित, अवमत, अवज्ञात,
अवमानित, अभिभूत, अप्रशस्त । ३ पराजित, हारा
या हराया हुआ ।

परिभूति (नं० स्त्री०) परिभू-तिन् । १ परिमात्रक,
गिरादर, तिरस्कार । २ खेदता ।

परिभूषण (नं० पु०) १ सजानेकी क्रिया या भाव,
सजावट या सजाना । २ वह शक्ति जो किसी विशेष
प्रदेय या भूखण्डका राजस्व किसीको दे कर स्थापित
को जाय । ३ ऐसी शक्ति या सन्धिकी स्थापना ।
परिभूषित (नं० त्रि०) शृङ्गाररहित, सजाया हुआ,
बनाया या संवारा हुआ ।

परिभेद (नं० पु०) शब्दादिका आवात, तत्पार तौर
आदिका धाव, जलम ।

परिभेदक (नं० त्रि०) १ भेदनकारी, काटने फाड़ने या
छेदनेवाला । (पु०) २ खूब गहरा धाव कटनेवाला
मनुष्य या इधियार ।

परिभोक्तृ (नं० त्रि०) १ जो दूसरेके धनका उपभोग करे ।
२ जो शुरूके धनका उपभोग करे ।

परिभोग (नं० पु०) परिभुज-वञ्ज । १ उपभोग, भोग ।
२ स्त्री-प्रसङ्ग, मैथुन ।

परिभ्रंश (नं० पु०) १ विच्युति, पतन, गिराव या
गिराना । २ पलायन, भागना ।

परिभ्रंशन (नं० स्त्री०) परिच्युति, सजलन ।

दुषा। २ खूब खुला दुषा, अच्छी तरह खुला दुषा।
 ३ रोमाचयुक्त, जिसके रोंगटे ढँढ़े हों।
 परिवन्धन (सं० स्त्री०) चारों ओरसे बांधना, अच्छी तरह बांधना, अकड़ कर बांधना।
 परिवर्द्ध (सं० पुं०) परिवर्द्ध।
 परिवर्द्ध (सं० पुं०) परिवर्द्धतेनैव वद्ध-घञ्। १ राजाधीने हाथी घोड़ों पर डालो जानेवाली भूमि। २ राजाके छत्र, चंवर चाटि, राजचिह्न या राजा का आज सामान। ३ निरर्थक व्यवहारकी वस्तुएं वे 'चोरी' जिनको वृद्धत्वमें अव्यावश्यकता हो। ॥ कर्मणि, दीर्घत, माल असवाव।
 परिवर्द्धण (सं० स्त्री०) परिवर्द्ध-ल्युट्। १ राजाका हस्ति-अश्वपरिकृदादि, राजाधीने हाथी घोड़ों पर डालो जानेवाली भूमि। २ परिवर्द्धि, समृद्धि, वृद्धि। ३ पूजा, उपासना।
 परिवर्द्धवत् (सं० पुं०) उपकरण वचन।
 परिवाध (सं० स्त्री०) चारों ओर बाधा।
 परिबाधा (सं० स्त्री०) १ पीड़ा, कष्ट, बाधा। २ व्याप्ति, ज्ञप्ति, सिद्धन्त।
 परिवारदोष—भारतमहासागरस्य एक द्वीप। यहाँके अधिवासी पशुभावासिद्धीके लोभसे देखनेसे लगते हैं, किन्तु अपेक्षाकृत स्वार्थकार होते हैं।
 परिवर्द्धण (सं० स्त्री०) परिवर्द्ध-ल्युट्। १ समृद्धि, वृद्धि, वृद्धि। २ अङ्गीभूत शास्त्र वा ग्रन्थ, वह ग्रन्थ अथवा शास्त्र जो किसी अन्य ग्रन्थ या शास्त्रके विषयकी पूर्ति या पुष्टि करता हो।
 परिवर्द्धित (सं० त्रि०) १ समृद्ध, वृद्ध, २ अङ्गीभूत, किसीसे जुड़ा या मिला हुआ।
 परिवर्द्ध (सं० त्रि०) यथेष्ट, काफी। २ युक्त, मिला हुआ। ३ कर्ता, अर्थ।
 परिवर्द्धतम (सं० स्त्री०) १ वृद्ध। २ अर्थतम।
 परिवोध (सं० पुं०) परिवोध-घञ्। ज्ञान।
 परिवोधन (सं० स्त्री०) १ दण्डकी धमकी दे कर कोई विशेष कार्य करनेसे रोकना, चिन्ता। २ ऐसी धमकी या भयप्रदर्शन, चिन्ता।
 परिवोधना (सं० स्त्री०) परिवोधन।

परिभच (सं० त्रि०) परद्रव्य-भक्षणकारी, दूसरोंका माल खानेवाला।
 परिभचण (सं० स्त्री०) परिभच-ल्युट्। सम्पूर्ण रूपसे भोजन, विलकुल खा डालना, सफाचट कर देना।
 परिभचा (सं० स्त्री०) चापसाय स्वयंसे अनुमार एक विशेष विधान।
 परिभक्षित (सं० त्रि०) परिभक्ष-क्त। १ खायादिसे वञ्चित। २ चयप्राप्त, कृतभक्षण।
 परिभग्न (सं० त्रि०) परिभग्न-क्त। कृतभक्षण।
 परिभङ्ग (सं० पुं०) सर्वतोभावने भङ्ग, चर चर।
 परिभय (सं० पुं०) परिभय-घञ्। चालत भय।
 परिभर्त्सन (सं० स्त्री०) तिरस्कारण, भयप्रदर्शन।
 परिभव (सं० पुं०) परिभू-घञ्। १ घनादर, तिरस्कार, अवज्ञा। २ पराजय, पराभव।
 परिभवन (सं० स्त्री०) परिभू-ल्युट्। परिभव, घनादर या तिरस्कार करना।
 परिभवनीय (सं० त्रि०) परिभू-घनीयर्। पराभवयोग्य।
 परिभविन् (सं० त्रि०) परिभूताच्छीक्ये इति। परिभवनशील, अपमानकारी, तिरस्कार करनेवाला।
 परिभाव (सं० पुं०) परिभू-घञ्। (परौभूतोऽवज्ञाते) वा १। २। ३। ४। ५। परिभव, घनादर, तिरस्कार।
 परिभावन (सं० स्त्री०) १ संयोग, मिश्रण, मिलाप। २ चिन्ता, क्लृप्ति।
 परिभावना (सं० स्त्री०) १ चिन्ता, मोक्ष, क्लृप्ति। २ साहित्यमें वह वाक्य या पद जिसमें कुतूहल या प्रतिशय उत्पन्न होता सुचित अथवा उपपन्न हो। नाटकमें ऐसे वाक्य जिसमें चिन्ता की उत्पत्ति होती अथवा समस्या उत्पन्न होती।
 परिभाविन् (सं० त्रि०) परिभू-पश्चादित्वात् भूतार्थे निनि। १ सर्वतोभावने परिभवयुक्त, तिरस्कृत या अपमानित। (पुं०) २ तिरस्कार या अपमान करनेवाला।
 परिभाप (सं० स्त्री०) परिभा-ल्युट्। १ उदाहृत करना। २ कोई बात कहना। ३ उपपत्ति देना।
 परिभाषक (सं० त्रि०) निन्दक, निन्दा। सारा किसीका अपमान करनेवाला, बदगोई करनेवाला।

परिभाषण (स० ब०) परिभाषा-सुट्ट । १ अनिन्द
उपासना, निन्दा करते हुए उपासना देना । २ ऐसा
उपासना जिसके साथ निन्दा भी हो, नानातन्त्रात्मक,
फटकार । अनुस्मृतिके अनुसार गमिनी, पापदृष्ट,
हठ और बालकका भोर किन्हीं प्रकारका दण्ड न दे
कर केवल परिभाषण का दण्ड देना चाहिए । ३ बोलना
चाहना या बातचीत करना, भाषण, आनाप । ४ नियम,
दस्तर, कायदा ।

परिभाषणीय (स० द्वि०) परिभाषणीय-सुट्ट । परि-
भाषणके योग्य, भाषणीय निन्दाके साथक ।

परिभाषा (स० स्त्री०) परिभाष-प्रच् ततटाप् । १
परिष्कृत भाषण, स्पष्ट कथन, संशयहित कथन या
वात । २ पदार्थविषयवस्तुका अर्थकथन, किसी शब्दका
इस प्रकार अर्थ करना जिसमें उसकी विशेषता और
व्याप्ति पूर्णरूपसे निश्चित हो जाय । पर्याय—प्रक्षति,
शैली, मङ्गल, सम्यक्कार । परिभाषा पञ्चम और अति
व्याप्ति, अस्यापि रहित होने चाहिये । जिस शब्दको
परिभाषा हो वह समझ में आना चाहिये । जिस परि-
भाषामें ये दोष हों वह शब्द परिभाषा नहीं होगा बल्कि
दुष्ट परिभाषा कहलावेगा । ३ किसा शास्त्र, ग्रन्थ, व्यवहार
आदिकी विधि संज्ञा, ऐसा शब्द जो शास्त्र विशेषमें
किसी निर्दिष्ट अर्थ या भावका सर्वत्र मान लिया गया
हो, पदार्थ विवेचनी या शास्त्रकारोंकी बनाई हुई
संज्ञा । जैसे, गणितकी परिभाषा, वेद्यककी परिभाषा,
लुत्ताहिकी परिभाषा । वेद्यक वा वेदान्त शास्त्रज्ञान-
की सुविधाके लिये परिभाषाका जानना आवश्यक है ।
जिन सब शब्दोंके अर्थविशेषमें जो निर्दिष्ट अर्थ परि-
कल्पित हुआ है, उसीकी परिभाषा कहते हैं ।

दोष जिस प्रकार अन्धकारको नाश कर प्रकाश देता
है, उसी प्रकार परिभाषा द्वारा कठिनसे कठिन शब्दोंका
अर्थ प्रजाप्राप्त मासूम हो जाता है बल्कि अपना अर्थ
परिभाषिक शब्दोंमें प्रकट करे, ऐसी बोलचाल जिसमें
शास्त्र या व्यवसायकी विशेष संज्ञाएं काममें लाई गई
हों । ५ मुख जलण विशेष, मुखके ऊपर लकीरोंसे एक ।
६ निन्दा, परिवाद, गिकायत, बदनामी ।

परिभाषित (स० द्वि०) परिभाष-प्रच् । कथित, जो

पक्के तरह कहा गया हो, २ जिसकी परिभाषा की
गई हो ।

परिभाषिन् (स० द्वि०) परिभाष-प्रच् । कथनयुक्त, बोलने-
वाला ।

परिभाष्य (स० द्वि०) कथनीय, बताने लायक ।

परिभुक्त (स० द्वि०) परिभुज-प्रच् । उपभुक्त, जिसका
भोग किया जा चुका हो ।

परिभू (स० द्वि०) परिभू-प्रच् । १ सर्वतोभावे प्राप्ति-
युक्त, जो चारों ओरसे घेरे या आच्छादित किये हो । २
नियामक । ३ परिपालक । यह शब्द ईश्वरका विशेष
अर्थ है ।

परिभूत (स० द्वि०) परिभू-प्रच् । १ तिरस्कृत, जिसका
तिरस्कार किया गया हो । २ अनादृत, जिसका अनादर
किया गया हो । पर्याय—अवमानित, अवमत्त, अवज्ञात,
अवमानित, अभिभूत, अप्रसन्न, ३ पराजित, हारा
या हराया हुआ ।

परिभूति (स० स्त्री०) परिभू-प्रच् । १ परिभाषक,
गिरादर तिरस्कार । २ अक्षयता ।

परिभूषण (स० पु०) १ सजानेकी क्रिया या भाव,
सजावट या सजाना । २ वह शक्ति जो किसी विशेष
प्रदेय या भूखण्डका राजस्व किसीको दे कर स्थापित
को जाय । ३ ऐसी शक्ति या सम्पत्तिकी स्थापना ।

परिभूषित (स० द्वि०) शृङ्गाररहित, सजाया हुआ,
बनाया या सजारा हुआ ।

परिभेद (स० पु०) भेदादिका आवात, तत्त्वधार तीर
आदिका घाय, अलम ।

परिभेदक (स० द्वि०) १ भेदनकारी, काटने फाड़ने या
छेदनेवाला । (पु०) २ खूब गहरा घाव करनेवाला
समुद्य या हथियार ।

परिभोग (स० द्वि०) १ जो दूसरेके धनका उपभोग करे ।
२ जो शुरूके धनका उपभोग करे ।

परिभोग (स० पु०) परिभुज-प्रच् । १ उपभोग, भोग ।
२ स्त्री-प्रसङ्ग, मैथुन ।

परिभ्रम (स० पु०) १ विद्युति, पतन, गिराव या
गिराव । २ पचायन, भागना ।

परिभ्रम (स० स्त्री०) परिभ्रुति, उलटन ।

परिभ्रम (स० पु०) परि-भ्रम-पञ्च । १ पर्यटन, भ्रमण, भटकना । २ किसी वस्तु के प्रसिद्ध नामकी कृपा कर उपयोग, गुण, मन्वन्ध आदिसे संघका सम्बन्ध करना, सीधे सीधे न कह कर और प्रकारसे कहना । ३ भ्रम, भ्रान्ति, प्रमाद ।

परिभ्रमण (स० स्त्री०) परि-भ्रम-ल्युट । १ पर्यटन, उधर उधर टहलना, मटरगश्ती करना । २ घूमना, चक्कर खाना । ३ परिधि, चिरा ।

परिभ्रष्ट (स० त्रि०) १ च्युत, पतित, गिरा हुआ । २ पलायित, भागा हुआ ।

परिभ्रामी (स० त्रि०) परिभ्रमण करनेवाला, भटकनेवाला ।

परिमण्डल (स० पु०) परि संवर्ती मण्डल । १ वस्तु-लाकार, गोला । २ परमाणुपरिमाण, जिसका मान परमाणु के बराबर हो । (पु०) ३ पुरुषविशेष । ४ मयक, एक प्रकारका विशेषा मच्छर । (स्त्री०) ५ खचणान्वित मण्णीविशेष । ६ पर्वतविशेष । ७ गोलाकार वा आवर्त विशिष्ट, चन्द्रमाके चारों ओरकी ज्योतिष्कटा ।

८ परिधि, चिरा, दाघरा ।

परिमण्डनकुष्ठ (स० पु०) एक प्रकारका महाकुष्ठ, मण्डनकुष्ठ ।

परिमण्डलता (स० स्त्री०) परिमण्डल-भावे-तत्त्व । वस्तु-लता, गोलाई ।

परिमण्डलित (स० त्रि०) परिमण्डलोऽस्य सञ्ज्ञातः परिमण्डल तारकादित्वादि तत्त्व । गोलाकार आवर्त-विशिष्ट ।

परिमन्द (स० त्रि०) अत्यन्त मन्द, धीरा या धीमा ।

परिमन्द (स० त्रि०) १ परिराम्य, बहुत थका हुआ । २ अत्यन्त ह्लास्य, अत्यन्त शिथिल या लुप्त ।

परिमन्दता (स० स्त्री०) ह्लास्यजनकता, ल्हासि, पथसाद ।

परिमण्डु (स० त्रि०) कोष्परिप्लुत, सीधेसे भरा हुआ ।

परिमर (स० पु०) परिमन्वितेऽस्मिन् परि-मन्-आधारे पपु । बायु, हवा ।

परिमर्द (स० पु०) परि-मृद-भावे-पञ्च । १ घर्षण । २ नाशन । ३ दिसन ।

परिमर्दन (स० स्त्री०) परि-मृद-ल्युट । परिमर्द । परिमर्ग (स० पु०) परि-मृग-घञ् । १ घर्षण । २ परामर्ग, विचार ।

परिमर्ग (स० पु०) ईर्ष्या, कुटन, चिड़ ।

परिमल (स० पु०) परिमलते सुगन्धि पार्थिवकषां धातोर्ति मल-पञ्च । १ विमर्दन, मलनेका कार्य । २ वह सुगन्धि जो कुछ, म आदि सुगन्धित पदार्थोंके मले जाई, से उत्पन्न हो । ३ कुछ आदि मर्दन, कुछ, म आदि मलना या उबटना । ४ उत्तम गन्ध, सुवास, खुशबू । ५ पण्डित समूह, पण्डितोंका समुदाय । ६ मैथुन, संयोग, सहवास । ७ एक पत्र्यकार । जैमिन्ही इसका नामोक्तेव किया है ।

परिमलज (स० त्रि०) मद्योगजनित सुख, जो सुख मैथुनसे प्राप्त हो ।

परिमाण (स० स्त्री०) परिमीयतेऽनेन, परि-मा-करणे ल्युट । माप, वह मान जो माप या तोलके द्वारा जाना जाय ।

नेयाधिकीके मतसे मान्यव्यवहारका कारण ही परिमाण है, परिमित व्यवहारके अभावसे कारणकी ही परिमाण कहते हैं । यह चार प्रकारका है-पण, महत्, दीर्घ और ह्रस्व । अतिस परिमाण संख्याके लिये जाता है । हरणुकादिका जो परिमाण है, वह अतिस है, क्योंकि यह संख्यामय है । परमाणुका परिमाण हरणुकादिके परिमाणका प्रतिकारण नहीं है ।

जिस उपायसे ताल पथका कठिन द्रव्यकी उपयुक्त माप जानी जाती है, उसको परिमाणविद्या कहते हैं ।

भारतीय धार्मिके मध्य करणातोस कालसे परिमाण प्रसङ्ग पाया जाता है । मनुष्य जितने ही सभ्य होते हैं, सामाजिक हिसाब किताबमें से सने को विशेष नियम रखते हैं । इस प्रकार जब धार्मिक सभ्यता बढ़ने लगी थी, उस समय धार्मिक धर्मों के लिए परिमाणकी मापका उपाय सहायित हुए थे । किसी किसी यरावीय पण्डितका विश्वास है, कि मित्यासिधियोंसे ही भारतीय धार्मिक मापका उपाय पहले पण्डित सोचा । फिर किसीका कहना है, कि पनेज माप द्राविड़ोंके मन्त्रधर्मसे धार्मिक द्वारा सहायित हुई है । किन्तु धनुस्मान द्वारा देखा जाना गया है,

किं भारतमें जो परिमाण प्रचलित है, वे भारतीय धर्म-
के ही कल्पित हुए हैं।

ऋतुसंहितामें (१४७१२-२२ मंत्रकर्म) 'कोय'
और 'कोमयी' शब्दका उल्लेख है। यथा—

"प्रत्येक इन्द्र राघवस्त इन्द्र दश कोमयीर्दश वाजिनोऽदात्त।"

घे इन्द्र। प्रत्येकने तुम्हारे स्तवकारोको (सुमि)
सुवर्ण पूर्ण दश कोय और दश मन्त्र दिये हैं।

"इत्यादवान् दश कोशान् दश वज्राभिर्भोजना।

दशहिरण्यपिण्डान् दिवोरासादसानि॥"

हमने दिवोदाससे दश मन्त्र, दश सुवर्ण कोश,
वस्त्र, प्रचुर भीष्य और दश हिरण्यपिण्ड पाये हैं।

उपरोक्त दो ऋतुसंहितामें 'कोश' और 'कोमयी' शब्दका
को उल्लेख है उससे किसी निर्दिष्ट वजन या मापका
नोध होता है (१)। विशेषतः यन्त्रमें दश हिरण्य-
पिण्डका उल्लेख रहनेसे कोई विशेष सन्देह नहीं
होता।

ऋतुसंहिता और अथर्वसंहितामें 'मिष्क' शब्दका
उल्लेख देखनेमें आता है (२)। सायणाचार्यने 'मिष्क'
शब्दका अर्थ 'हार' लगाया है (३) किन्तु इधर बहुत
पहलेसे ही मिष्क शब्दसे विशेष वजनको सुवर्ण मुद्राका
ही बोध होता था। अभी जिस तरह मोहरकी माला
बहुतसे लोग गलेमें पहनते हैं, उसी तरह वैदिक
समयमें मिष्ककी माला पहनी जानी थी। यह 'मिष्क'
शब्द देख कर भी प्राचीन मुद्रा-परिमाणका बहुत
कुछ आभास पाया जाता है (४)।

वेदसंहिता विषयकर्मनिर्वाहके लिये आभिर्भूत

(१) औरङ्गजेबके समयमें प्रमगदारी बर्गियर जब इस
क्षेत्रमें आये थे, उस समय भी इसी प्रकारका निर्दिष्ट वजन
प्रचलित था।

(२) मिष्क वा या कृण्वते सत्रं वा दुहिपदिषः।

(कृष्. ८।४७।१५)

"हयान् इत्याहुते देवा मिष्कमिव प्रतिमुञ्चतः।"

(मथर्वण. ८।१४।२)

(३) "मिष्क हारः।" (ऋग. माध्य. २।११।१०)

(४) पाणिनिने भी "शतसहस्रान्ताम्य निष्कान्" (५।२।११८)

दश सत्रमें निष्कमुद्राका उल्लेख किया है।

नहीं हुई है, इसीसे श्रुतिके मध्य परिमाणका प्रकट
उदाहरण देनेकी आवश्यकता नहीं हुई। लेकिन शुक्ल
यजुर्वेदोय शतपथब्राह्मणमें (१२।७।२) "हिरण्यं सुवर्णं
शतमानम्" और माधवके काकनिष्पद्युत "हृषणैश्वर्याकानि
यवमय परिमितानि" इत्यादि श्रुतिवाक्य द्वारा वैदिक
कालमें जो परिमाणकी प्रथा प्रचलित थी उससे और कुछ
भी सन्देह रहने नहीं आता। शतपथब्राह्मणमें जो
'शतमान' शब्द है, मनुसंहितामें वह परिमाणविशेष है।
कात्यायनके वार्तिकमें भी इस शतमानका उल्लेख है।
माधवाचार्यने जो 'सुवर्णशलाका'का उल्लेख किया
है, कोई कोई अनुमान करते हैं कि यही भारतको
प्राचीन छेनी काटनेकी मुद्रा है। आज भी तेलगू भाषामें
'शलाका' शब्दसे मुद्राचिह्न समझा जाता है।

पाणिनिका एक सत्र है, "कृषादाहप्रणवोर्वे॥"
(५।२।१०) अर्थात् आहत वा प्रणवार्थमें रूप
शब्दके उत्तर मत्वर्थमें यप, प्रत्यय होता है। यहाँ
आहतकथ्य अर्थात् रूपयके जैसा द्रव्य समझा जाता
है। काशिकाकारने भी लिखा है, कि 'आहत' कामस्य,
रूपो रीनारः। इस 'रूप'से ही यहाँका रूपी या
रूपया हुआ है। मुद्रा शब्दमें विरहल विवरण देखो।

उपरोक्त प्रमाण द्वारा बहुत कुछ जाना जाता है,
कि निर्दिष्ट आकार वा वजनकी मुद्रा वैदिक समयमें
प्रचलित थी। वैदिककालमें होमादि कार्यके लिये
हुतका विशेष प्रयोजन पड़ता था, इसीसे वैदिक
ग्रन्थोंमें हुतका परिमाण स्पष्ट रूपसे लिखा है—

"हृतप्रमाणं वक्षामि मायकं पञ्चकृष्णकम्।

मासकाणि चतुःषष्टि पञ्चमेकं विधीयते॥

ह्रादि श्रवणिकं प्रत्यं मागधैः परिधीति॥

आठकम् चतुःप्रत्यं चतुर्भिर्होमपाठकैः॥

श्रीगप्रमाणं विधेयं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।

ह्रादशाष्टपथिकैस्त्रिंशत्तानां पञ्चवभिः श्रुतेः॥"

हुतका परिमाण—

१ क्षण्ड (१२०) = १ माय (मायः ८७१ घन)

१४ मायक = १ पत्र (५६० घन)

२२ पत्र = १ मागधप्रत्य (१०८२० घन)

४ मागधप्रत्य = १ आठक (७१६८० घन)

४ आठक = १ द्रोण (२८६०२० घन)

मंत्र, याज्ञवल्क्य आदिको स्मृति पोर बहुप्राण ग्रन्थमें विभिन्न द्रव्योंके परिमाणका विषय विष्टत भावमें वर्णित है। मन् (८१३२-१३६), याज्ञवल्क्य (११३६१) पोर नारदने संख्यापरिमाण जो निष्पन्न किया है वह इस प्रकार है—

८ वरुण = १ निष्ठा।

१ निष्ठा = १ राजसर्पप।

१ राजसर्पप = १ गौरसर्पप।

१ गौरसर्पप = १ यव।

१ यव = १ कृष्णल (रत्तो वा गुंजा)

अंश १ में संख्यापरिमाण इस प्रकार लिखा है—

१० पामणु = १ वसरेण वा वंगो

८६ वंगो = १ मरीचि (मर्याकिय)

६ मरीचि = १ राजिका।

८ सर्पप = १ यव।

४ यव = १ गुंजा (रत्तो)

सुश्रुतमें पल-कुड़वादि परिमाण इस प्रकार लिखा है—

१२ धान्य = १ मापा वा सुवर्णमापा।

१६ मापा = १ सुवर्ण।

२१ मापा = १ धरण।

१॥ धरण = १ कर्ष।

४ कर्ष = १ पल।

४ पल = १ कुड़व।

४ कुड़व = १ प्रस्थ।

४ प्रस्थ = १ पादक।

७ पादक = १ क्षौण।

१०० पल = १ तुला।

२० तुला = १ भार। मतास्तरवे

१० भारका १ पावित।

हागयोगेश्वरके मतमें १० पाधारका एक भार होता है।

मन् पोर याज्ञवल्क्यादिके मतमें सुवर्णका परिमाण—

५ = १ माप।

१० पल = १ धरण।

याज्ञवल्क्यके मतमें ५ सुवर्णका एक पल।

उक्त स्मृतिकारोंके मतमें रजतपरिमाण—

२ रत्तिका = १ मापक।

१६ मापक = १ धरण वा पुराण।

१० धरण = १ यतमान वा पल।

८० रत्तिका = १ पण वा कार्यापण।

नारदके मतमें २० मापका एक कार्यापण पोर वृह-

स्पतिके मतमें २० मापका एक पल होता है। सुश्रु-

४ प्रकारका माप पाया जाता है—५ रत्तिका एक

प्रकारका माप, (नारदके मतमें) ४ रत्तो का एक माप,

(वृहस्पतिके मतमें) १६ रत्तिकाका एक माप पोर

चतुर्थ प्रकारका माप २ रत्तिकाका होता है।

किन्तोकें मतमें ५ सुवर्णका पोर किन्तोकें मतमें

१५० सुवर्णका एक निष्ठा होता है। १०८ सुवर्ण वा

तोलकका एक जलभूषण, पल वा दोनार माना गया है।

गोवासमहने स्मृतिके मणिकार (जोहरो) का

परिमाण इस प्रकार संप्रह किया है—

६ राजिका = १ मापव वा हैम धानक।

४ हैमधानक = १ मल, धरण वा टङ्क।

२ टङ्क = १ कोण।

२ कोण = १ कर्ष।

पुराणादिमें धान्यादिका परिमाण लिखा है, किन्तु

सभी पुराणोंमें एकता नहीं है।

वराहपुराणके मतमें— मविष्य पोर स्वर्णके मतमें—

१ मुष्टि = १ पल

२ पल = १ प्रस्थिति

२ पल = १ प्रस्थिति

२ प्रस्थिति = १ कुड़व।

८ मुष्टि = १ कुष्ठि

४ कुड़व = १ प्रस्थ

४ पुष्कल = १ पादक

४ प्रस्थ = १ पादक।

४ पादक = १ क्षौण

४ पादक = १ क्षौण।

२ क्षौण = १ कुम्भा।

मविष्यके मतमें १६ क्षौणका १ पारो, स्वर्णके

मतमें २० क्षौणका एक कुम्भा पोर १० कुम्भाका १ वाह

होता है।

० संस्कृतविश्वकोशसूक्त माह्य इत्यादि अंगरेजी Com-

की उपरलि बतलाये हैं। उन्होंने लिखा है, कि १०८ सुवर्णका १

बराहपुराणमें प्रयुक्त चौथाई भाग 'सेतिका' नामसे वर्णित है। दृग्मात्रिके मतसे सेतिका कुड़वका ही नामान्तर है। समयप्रदीप रच्यतिहार, रत्नाकर और कल्पतरु पादि निबन्धकारोंने के मतसे सेतिका कुड़वकी ही समान है, लेकिन १२ प्रयत्निका एक कुड़व होता है। लक्ष्मीधरने स्पष्ट लिखा है, कि वाधारण-समुत्थकी १२ पञ्चति प्रमाणका नाम कुड़व है। वाचस्पति मिथुन भी यही स्वीकार किया है। कुल्लूकभट्टके २० द्रोणका एक कुल्लू स्वीकार करने पर भी उनके मतसे २०० पलका एक द्रोण होता है। जातुकर्णके मतसे ५१२ पलका एक कुल्लू, रत्नाकरके मतसे २० प्रस्थ और दानविवेकके मतसे १००० पलका १ कुल्लू होता है।

हस्तराजमार्तण्डमें एक परिमाणका उल्लेख है जो कहीं भी नहीं मिलता। यथा—

१० तोलका १ सेर, २ सेरका १ प्रभ।

बर्द्धन इ-पञ्चवरीने लिखा है, कि भारतके किसी किसी स्थानमें पहले १८ दामका १ सेर और किसी स्थानमें २२ दामका १ सेर चलता था। किन्तु पञ्चवर ११ राष्ट्रपारम्भमें २८ दामका सेर हुआ। पोहे सम्राट्ने १८ दामका एक सेर ठोक कर दिया। २० माप वा ५ टङ्कका १ दाम, मताम्तरसे २० माप ० रत्तिकका १ दाम होता है। इस विषयसे राजमातेण्ड्यायण ने सेर और भार्द-इ-पञ्चवरीका सेर एक ही समझा जाता है।

मविष्य, स्कन्द और पद्मपुराणमें जो माप वर्णित है वह एक समय मिथिलामें प्रचलित था ऐसा चण्डेश्वरके संघट्टे जाना जाता है। द्रोणके सिवा चण्डेश्वरने और भी कई परिमाणोंका उल्लेख किया है। यथा—

४ द्रोण = १ माणिका।

४ माणिका = १ चारो।

२० चारो = १ वाह।

हाथ होनेसे ५८२२ पन इच्छका १ चारो होता है। सुतरी १ चारो = २ गुल, २ पेक और १६ गेलन। इस विषयसे १ कुम्भ = १६ चारो = ३ गुल और १ गेलन। लक्ष्मीधरने रच्यतिहारके मतसे ३६ तोलका १ पल और १ चारो का वजन १४३३ तोलक = २१५ पौंड (Avoirdupois) तथा १ कुम्भका वजन १०८२० तोलक = १६८ पौंड। इस प्रकार एक वाहका वजन प्रायः १ टनके बराबर होता है।

गोपालब्रह्मने एक और प्रकारका धान्यपरिमाण ब्रह्मन किया है—

४ पायुः = १ माघ ?

४ माघ ? = १ विव्व।

४ विव्व = १ कुड़व।

४ कुड़व = १ प्रस्थ।

४ प्रस्थ = १ चारोके।

४ गोघो = १ द्रंघिका।

भू-परिमाणके सम्बन्धमें मार्कण्डेयपुराण (४८/३०-३८) में इस प्रकार लिखा है,—

११ १ परमाणु = १ तमरेणु।

११ तमरेणु = १ महीरजः।

११ महीरजः = १ वासाय (कियाय)।

११ वासाय = १ निचा।

११ मुका = १ यवोदर।

११ यवमध्य = १ अङ्गुल।

१ अङ्गुल = १ पद।

२ पद = १ वितस्ति।

२ वितस्ति = १ कस्त।

४ कस्त = १ चतुदण्ड।

कहीं गवलीदीक्षने लिखा है—'किसी पात्रके चारों ओरका परिवार एक एक हाथ करके होनेसे लगे पनहस्त कहते हैं। म-पमें इसका नाम है 'क्षारो' जो बरकोणी हुआ जाता है। उरलका क्षारो गोदावरीके दक्षिणगंगे प्रचलित है। वहाँ १६ द्रोणका एक चारो, ४ आढकका १ द्रोण, ४ प्रस्थका १ आढक और ४ कुड़वका १ प्रस्थ होता है। कुड़व पनहस्तका चार द्रोण, इसका १६ अंशलि-करके परिवार रहेगा और मृत्तिका अथवा तम्ल किसी द्रव्यका बना होगा।'

इस विषयसे कुड़व १३६ पन अङ्गुलका होता है। किन्तु लक्ष्मीधरने कस्तममें लिखा है—कुड़वका विस्तार ४ अङ्गुलि और गभीरता भी उतनी ही है, इस प्रकार १ कुड़व ६४ पनअङ्गुलका होता है।

१ कोल्लूक वाहने जो मार्कण्डेयपुराणका वचन ब्रह्मन किया है, उसमें परमाणुसे लेकर यवमध्य पर्यन्त ११ स्थानमें प-संख्या निर्दिष्ट है। (Colebrooke's Essays, Vol. I, p. 586)

मनु, याज्ञवल्क्य आदिको स्मृति और यदुपुराण ग्रन्थमें विभिन्न द्रव्योंके परिमाणका विषय विस्तृत भावमें वर्णित है। मनु (८।१२२-१३६), याज्ञवल्क्य (१।३६१) और नारदने संख्यापरिमाण जो निम्नलिखित किया है वह इस प्रकार है—

८ अ० रेणु = १ निष्ठा।

१ निष्ठा = १ राजसर्पप।

१ राजसर्पप = १ गौरसर्पप।

१ गौरसर्पप = १ यय।

१ यय = १ क्षणल (रत्तो वा गुंजा)

वेदात्मके संख्यापरिमाण इस प्रकार लिखा है—

१० परमाणु = १ वसरेणु वा वंशो

८६ वंशो = १ मरीचि (सर्वाक्षर)

१ मरीचि = १ राजिका।

८ सर्पप = १ यय।

४ यय = १ गुंजा (रत्तो)

संयुक्तमें पल-कुड़वादि परिमाण इस प्रकार लिखा है—

१२ धान्य = १ मापा वा सुवर्णमापा।

१६ मापा = १ सुवर्ण।

२१ मापा = १ धरण।

६॥ धरण = १ कर्ष।

४ कर्ष = १ पल।

४ पल = १ कुड़व।

४ कुड़व = १ प्रस्थ।

४ प्रस्थ = १ पादक।

४ पादक = १ द्रोण।

१०० पल = १ तुला।

२० तुला = १ भार। मतांतरसे

१० भारका १ भावित।

दाग्योगोष्तरके मतमें १० आधारका एक भार होता है।

मनु और याज्ञवल्क्यआदिके मतसे सुवर्णका परिमाण—

५ क्षणल = १ माप।

१६ माप = १ कर्ष, पञ्च (द्रोण)।

४ कर्ष = १ पल (निष्ठा)।

१० पल = १ धरण।

याज्ञवल्क्यके मतमें ५ सुवर्णका एक पल।

पल स्मृतिकारोंके मतमें राजपरिमाण—

२ रत्तिका = १ मापक।

१६ मापक = १ धरण वा पुराण।

१० धरण = १ यतमान वा पल।

८० रत्तिका = १ पञ्च वा कार्पाषण।

नारदके मतमें २० मापका एक कार्पाषण और कुड़-

वपतिके मतमें २० मापका एक पल होता है। सुवर्ण

४ प्रकारका माप पाया जाता है—१ रत्तिका एक

प्रकारका माप, (नारदके मतमें) ४ रत्तोका एक माप,

(कुड़वपतिके मतमें) १६ रत्तिकाका एक माप और

चतुर्थ प्रकारका माप २ रत्तिकाका होता है।

किमोके मतमें ५ सुवर्णका और किमोके मतमें

१५० सुवर्णका एक निष्ठा होता है। १०८ सुवर्ण वा

तोलकका एक लक्षभूषण, पल वा दोनार माना गया है।

गोपालमहर्षि स्मृतिके सन्धिकार (जोहरी) का

परिमाण इस प्रकार संघट्ट किया है—

१ राजिका = १ मापक वा १६० धानक।

४ हेमधानक = १ मल, धरण वा टङ्क।

२ टङ्क = १ कोण।

२ कोण = १ कर्ष।

पुराणादिमें धान्यादिका परिमाण लिखा है, किन्तु

सभी पुराणोंमें एक-सा नहीं है।

वराहपुराणके मतमें— भविष्य पुराण स्मृतिके मतमें—

१ मुष्टि = १ पल २ पल = १ प्रस्थ।

२ पल = १ प्रस्थ २ प्रस्थ = १ कुड़व।

८ मुष्टि = १ कुष्ठि ४ कुड़व = १ प्रस्थ।

४ पुष्कल = १ पादक ४ प्रस्थ = १ पादक।

४ पादक = १ द्रोण ४ पादक = १ द्रोण।

२ द्रोण = १ कुम्भ।

भविष्यके मतमें १६ द्रोणका १ खारो, स्तम्बके

मतमें २० द्रोणका एक कुम्भ और १० कुम्भका १ वाह

होता है।

* संस्कृतविश्वकोश

जिनेजी Com.

वराहपुराणमें प्रसङ्गा चोथाई भाग 'सेतिका' नामसे वर्णित है। हेमाद्रिके मतसे सेतिका कुड़वका ही नामान्तर है। समयप्रदीप स्मृतितार, बसाकर चौर कल्प-तह पादि निवन्धकारियोंके मतसे सेतिका कुड़वके ही समान है, लेकिन १२ प्रस्थतिका एक कुड़व होता है। लघोधरने स्पष्ट लिखा है, कि साधारण-मनुष्यकी १२ अश्वति प्रमाणका नाम कुड़व है। वाचस्पति मिथुने भी यही स्वीकार किया है। कुम्भकभट्टके २० द्रोणका एक कुम्भ स्वीकार करने पर भी उनके मतसे २०० पतका एक द्रोण होता है। जातुकर्णके मतसे ५१२ पतका एक कुम्भ, रत्नाकरके मतसे २० प्रस्थ चौर दानविषके के मतसे १००० पतका १ कुम्भ होता है।

सहस्राजमातंगडमें एक परिमाणका उल्लेख है जो कहीं भी नहीं मिलता। यथा—

१० तोलका १ सेर, २ सेरका १ प्रभ।

बाईम द-पञ्चवरीमें लिखा है, कि भारतके किसी स्थानमें पहले १८ दामका १ सेर चौर किसी स्थानमें २२ दामका १ सेर चलता था। किन्तु पञ्चवरी राज्याचार्यमें २८ दामका सेर हुआ। पोहो सम्पादने १० दामका एक सेर ठीक कर दिया। २० माप या ५ टहका १ दाम, मतान्तरसे २० माप ७ रत्तिकका १ दाम होता है। इस हिंसावर्ष राजमातंगपुराणतः सेर चौर बाईम द-पञ्चवरीका सेर एक ही समझा जाता है।

मविध्य, खान्द चौर पद्मपुराणमें जो माप वर्णित है वह एक समय सिधिलामें प्रचलित था ऐसा चण्डेश्वरके संघट्टे जाना जाता है। द्रोणक निवा चण्डेश्वरने चौर भी कई परिमाणोंका उल्लेख किया है। यथा—

४ द्रोण = १ माणिका।

४ माणिका = १ खारो।

२० खारो = १ गहू।

हाथ होनेसे ५८२२ पन इच्छका १ खारो होता है। सुतरां १ खारो = २ कुवल, २ पेक और १६ गेलन। इस हिंसावर्ष १ कुम्भ = ११ खारो = २ कुवल और ३ गेलन। लक्ष्मीधरकी स्मृतिव्यवहारके मतसे ६६ तोलका १ प स और १ खारोका वजन १४३३१ तोलक = २१५ पौंड (Avoirdupois) तथा १ कुम्भका वजन १०८२० तोलक = १६८ पौंड। इस प्रकार एक बाईका वजन प्रायः १ टनके बराबर होता है।

गोपालमहर्षिने एक चौर प्रकारका धान्यपरिमाण उद्धृत किया है—

४ पायुः = १ शाच ?

४ शाच ? = १ विज्व।

४ विज्व = १ कुड़व।

४ कुड़व = १ पल।

४ प्रस्थ = १ खारो४।

४ गोणो = १ द्रंणिका।

भु-परिमाणके मध्यस्थमें मार्कण्डेयपुराण (४८.३०-३८) में इस प्रकार लिखा है,—

११ १ परमाणु = १ तमरेणु।

११ तमरेणु = १ महीरजः।

११ महीरजः = १ बालाघ (केयाघ)

११ बालाघ = १ निघा।

११ निघा = १ यवोदर।

११ यवमध्य = १ शकुन।

६ पशुन = १ पद।

२ पद = १ वितस्ति।

२ वितस्ति = १ हस्त।

४ हस्त = १ धनुदण्ड।

४ लोभावलीदीर्घमें लिखा है—'किसी पात्रके चारों ओरका परिवार एक एक हाथ करके होनेसे उसे पनहस्त कहते हैं। मनपरमें इसका नाम है 'खारोक' जो पञ्चकोणी हुआ करता है। उरलका खारोक गोरावरीके दक्षिणार्धमें प्रचलित है। वहाँ १६ द्रोणका एक खारो, ४ आदकका १ द्रोण, ४ प्रस्थका १ अदक और ४ कुड़वका १ प्रस्थ होता है। कुड़व पनहस्ताकार द्रोण, इसका ६६ अंशुति करके परिवार रहेगा और स्मृतिका अर्थात् तद्वत् किसी द्रव्यका बना होगा।'

इस हिंसावर्ष कुड़व १३३ पन अङ्गुलका होता है। किन्तु लक्ष्मीधरने कलसतदमें लिखा है—कुड़वका विस्तार ४ अङ्गुलि और गभीरता भी वतनी ही है, इस प्रकार १ कुड़व ६४ पनअङ्गुलका होता है।

१ कोलम्बूक वाहनेने जो मार्कण्डेयपुराणका वचन उद्धृत किया है, उसमें परमाणुसे ३३ कर अवयव पर्यन्त ११ स्थानमें न संख्या निरिष्ट है। (Colebrooke's Essays, Vol. I, p. 586)

मनु, योष्यवल्क्य आदिको स्मृति और बृहपुराण पन्थमें विभिन्न द्रव्यों के परिमाणका विषय विस्तृत भावने वर्णित है। मनु (८।१२२-१२६), याज्ञवल्क्य (१।२६१) और नारदमें सङ्ग्राह्यरमाण जो निष्पन्न किया है वस्तु इस प्रकार है—

८ वरणा = १ लिखा।

१ लिखा = १ राजसर्पप।

१ राजसर्पप = १ गौरसर्पप।

१ गौरसर्पप = १ यय।

१ यय = १ कण्डल (रत्तो वा गुंजा)

यथा ११ सङ्ग्रहपरिमाण इस प्रकार लिखा है—

१० पामणु = १ वसुधेणु वा वंगो

८६ वंगो = १ मरीचि (सर्पकिरण)

१ मरीचि = १ राजिका।

८ सर्पप = १ यय।

४ यय = १ गुंजा (रत्तो)

सुश्रुतमें पल-कुडुवादि परिमाण इस प्रकार लिखा है—

१२ धान्य = १ मापा वा सुवर्णमापा।

११ मापा = १ सुवर्ण।

२१ मापा = १ धरण।

१॥ धरण = १ कर्प।

४ कर्प = १ पल।

४ पल = १ कुडुव।

४ कुडुव = १ प्रस्थ।

४ प्रस्थ = १ पादक।

८ पादक = १ द्रोण।

१०० पल = १ तुला।

२० तुला = १ भार। मतात्तरवे

१० भारका १ षावित।

हागयोगोश्वरके मतमें १० मापादका एक भार होता है।

मनु और याज्ञवल्क्यादिके मतमें सुवर्णका परिमाण—

५ कण्डल = १ माप।

१६ माप = १ कर्प, यय (तोना)।

४ कर्प = १ पल (निष्क)।

१० पल = १ धरण।

याज्ञवल्क्याके मतमें ५ सुवर्णका एक पल।

उक्त स्मृतिकारिके मतमें रजतपरिमाण—

२ रत्तिका = १ मापक।

१६ मापक = १ धरण वा पुराण।

१० धरण = १ शतमान वा पल।

८० रत्तिका = १ पण वा काषाण्य।

नारदके मतमें २० मापका एक काषाण्य और वृहस्पतिके मतमें २० मापका एक पल होता है। सुश्रुत ४ प्रकारका माप पाया जाता है—१ रत्तिका एक प्रकारका माप, (नारदके मतमें) ४ रत्तो वा एक माप, (वृहस्पतिके मतमें) १६ रत्तिकाका एक माप और चतुर्थ प्रकारका माप २ रत्तिकाका होता है।

किमोके मतमें ५ सुवर्णका और कितोके मतमें १५ सुवर्णका एक निष्क होता है। १०८ सुवर्ण वा तोलकाका एक लक्षभूषण, पल वा दोनार माना गया है।

गोपालभट्टने स्मृतियों में मणिकार (जोहरो) का परिमाण इस प्रकार सङ्ग्रह किया है—

१ राजिका = १ मापक वा हिमधानक।

४ हिमधानक = १ मल, धरण वा टङ्क।

२ टङ्क = १ कोण।

२ कोण = १ कर्प।

पुराणादिमें धान्यादिका परिमाण लिखा है, किन्तु सभी पुराणोंमें एक-भा नहीं है।

वराहपुष्के के मतमें— भविष्य और स्कन्दके मतमें—

१ मुष्टि = १ पल २ पल = १ प्रस्थ।

२ पल = १ प्रस्थ २ प्रस्थ = १ कुडुव।

८ मुष्टि = १ कुडुव ४ कुडुव = १ प्रस्थ।

४ पुण्डल = १ पादक ४ प्रस्थ = १ पादक।

४ पादक = १ द्रोण ४ पादक = १ द्रोण।

२ द्रोण = १ कुभा।

भविष्यके मतमें १६ द्रोणका १ मारो, स्कन्दके मतमें २० द्रोणका एक कुभा और १० कुभाका १ बाह होता है।

॥ संस्कृतविद् कोलह्वर साहय इत्यादि अंगरेजी Com. की उत्पत्ति बतलावे है। उन्होंने लिखा है, कि १८ इन्च १

वर्तमान समयमें इस देशमें जिस नियमसे मन्थार
परिमाणदि स्थिर किया जाता है, वह नीचे दिये हैं—

- ४ कोड़ोका ५१ एक गंडा ।
- ५ गंडोका ५० एक पैसा ।
- २० गंडोका १ एक घाना ।
- ८० गंडोका १० चार घाना ।
- १६ पानिका १ एक रुपया ।

मुद्राविभाग ।

- २ पट्टीकी ५१ दमही
- २ दमहीका ५१ दुकड़ा वा छदाम
- २ दुकड़ाका १ पधेला
- २ पधेलेका १ एक पैसा ।
- २ पैसेका ५१० एक डबल पैसा वा टका
- २ डबल पैसेका १ एक घाना ।
- २ घानेकी १ एक दुपची ।
- २ दुपचीकी १०१ एक चवकी ।
- २ चवकीकी ११ एक पठकी ।
- २ पठकीका वा ४ चवकीका १ एक रुपया ।
- १६ रुपयको १ एक मोहर (मोश) ।

अंगरेजीमें ३ पाईका एक पैसा और १२ पाईका
एक घाना होता है ।

कोड़ोका घटारह घं गाना गया है,—३ क्लांतकी
१ कोड़ो, ४ काकको एक कोड़ो, ५ रटकी १ कोड़ो,
६ चटुकी १ कोड़ो, ७ समूद्रकी १ कोड़ो, ८ बसुकी
१ कोड़ो, ९ दलकी १ कोड़ो, १० टिककी १ कोड़ो,
११ सद्रकी १ कोड़ो, १२ सूर्यकी १ कोड़ो, १५ तिथिकी
१ कोड़ो, १६ कलाकी १ कोड़ो, १७ गडकी १ कोड़ो,
२० नौकी १ कोड़ो, १४ सुवनकी १ कोड़ो, १३ तम्बोसक
१ कोड़ो, ८० तिसकी १ कोड़ो, ३२० ऐणकी १ कोड़ो,
१२८० बहरकी १ कोड़ो ।

अंगरेजी मुद्राका परिमाण ।

- ४ फाटिङकी १ पेनी ।
- १२ पेसका १ शिल्लिंग ।
- ५ शिल्लिंगका १ क्राउन ।
- २० शिल्लिंगका १ पौंड या मासरेन ।
- २१ शिल्लिंगकी १ गिनी ।

एक शिल्लिंग करोड़ पाठ आनेके बराबर होता है ।
एक पञ्चरिनडा एक रुपया होता है ।

बैचका वजन ।

- ४ धानकी १ रत्तो ।
 - ६ रत्तीका १ घाना ।
 - १० रत्तीका १ मागा ।
 - ८ मागेका १ तोला
- बेद्याका वजन छोड़ कर खर्ण रोव्य चादि तोलमें
१२ मागेका एक तोला होता है ।

बाकरी वजन ।

- २० घनेका १ रक्त पत्त ।
 - ३ रक्त पत्तका १ ड्राम ।
 - ८ ड्रामका १ पौंड ।
 - १२ पौंडका १ पौंड ।
 - १८० घनेका एक तोला सुतरां १ पौंड ३ तोला ।
- बाकरी औषधकी माप ।

- ६० मिनिमका १ ड्राम ।
- ८ ड्रामका १ पौंड ।
- १६ पौंडका १ पाइण्ट ।
- १२ पौंडका १ छोटा पाइण्ट ।

१ पौंड करोड़ पाध छटाकं और १ पाइण्ड करोड़
पाध सेरके समान होता है ।

देशीय प्रपासे साधारण द्रव्यका वजन ।

- ४ चवकीका १ तोला
- ५ तोनेकी १ छटाक ५
- ४ छटाकका १ पाव ५०
- ४ पावका १ सेर ६१
- ५ सेरकी १ पम्बेरो ५५
- १० सेरकी १ धरा १०
- ४ धारा या ८ पम्बेरो मून १५
- वा ४० सेरका

सेरका परिमाण मव लगभग एक-ता नहीं है, कहीं
६० तोनेका, कहीं ८० तोनेका और कहीं १०० तोनेका
सेर होता है । ८० तोनेका सेर पक्की और ६० तोनेका
फकी सेर कहलाता है । पक्की वजनकी छटाक =
तोला ।

२ धनुक = १ नाड़िका ।

२००० धनु = १ गव्यूति ।

४ गव्यूति = १ योजन ।

मार्कण्डेयपुराणके अन्त्य एक स्थानमें लिखा है—

२१ अङ्गुष्ठ = १ परत्रि ।

१० अङ्गुष्ठ = १ प्रादेश ।

पादित्यपुराणके मतसे २ परत्रि = १ किष्कु ।

हारीतके मतसे किष्कु, और हस्ता एक है, ४ किष्कु = १ लव ।

किन्तु पादित्यपुराणके मतसे १० धनुका १ लव, २००० धनुका १ क्रोध, २ क्रोधकी १ गव्यूति, २ गव्यूति का १ योजन और विष्णुपुराणके मतसे १००० धनुका १ कोस होता है । किन्तु गोपालभट्टने प्राचीनमतका उद्धृत करके लिखा है, 'विदेशीय भ्रमणकारिण ४००० धनुका १ योजन मानते हैं ।' * श्रीलावतीमें इस प्रकार लिखा है—

८ यव = १ अङ्गुलि ।

२४ अङ्गुलि = १ हस्ता ।

* बौद्धशास्त्रवित् तिज डेमिनेने ज्ञाना बौद्धमण्डि इस प्रकार योजन परिमाण स्थिर किया है—

स्थानके नाम ।	अन्त्यमतसे	वर्तमान	प्रतियोजनमें
दुराव ।	दुराव ।	दुराव ।	कितना मील
काशीसे बम्बेक	१६ योजन	१२८ मील	८ मील ।
काशीसे तक्षशिला	१२० योजन	८५० " ७१ "	
नलन्दासे राजगृह	१ योजन	८ " ८ "	
ऊमीनगरसे राजगृह	२५ " १५० "	७ " ७ "	
भाबरहलीसे	४५ " २७५ "	७ " ७ "	
गङ्गासे राजगृह	५ " ३५ "	८ " ८ "	
मगधपुरसे			
रिदिविहार ।	८ " ५४ "	७१ " ७१ "	
अनुराधपुरसे			
श्रीपादशैल	१५ " १०० "	७११ " ७११ "	

उपरोक्त प्रमाणानुसार यह ज्ञाना जाता है, कि पूर्वकालमें ७१ से ८८ मीलका १ योजन माना जाता था । (Rhys David's Ancient coins and Measures of Ceylon इत्यादि)

४ हस्ता = १ दण्ड (= १ धनुः)

२००० दण्ड = १ कोस । १० हस्ता = १ वंश ।

४ कोस = १ योजन । २० वंश = १ निरह ।

कालपरिमाण ।

मनुके मतसे—

१८ निमेष = १ काष्ठा

३० काष्ठा = १ कला ।

३० कला = १ लव ।

१२ लव = १ सुहृत् ।

३० सुहृत् = १ पक्षीरात्र ।

१५ पक्षीरात्र = १ पक्ष ।

२ पक्ष = १ मास ।

२ मास = १ ऋतु ।

६ ऋतु = १ धन्य ।

२ धन्य = वत्सर ।

वराहपुराणके मतसे—

६० क्षण = १ लव ।

६० लव = १ निमेष ।

६० निमेष = १ काष्ठा ।

६० काष्ठा = १ पतिपक्ष ।

६० पतिपक्ष = १ विपक्ष ।

६० विपक्ष = १ पक्ष ।

६० पक्ष = १ दण्ड ।

६० दण्ड = १ पक्षीरात्र ।

६० पक्षीरात्र = १ ऋतु ।

भविष्यपुराणके मतसे— १००० संक्रान्तकी १ द्युति,

१०० द्युटिका १ तारण्य, १ तारण्यका निमेष ।

सूर्यसिद्धान्तके मतसे गोपालभट्टत विष्णुपुराणके मतसे—

६ प्राण = १ विकला ।

६० विकला = १ दण्ड ।

६० दण्ड = १ दिन ।

६ प्राण = विनाड़िका ।

६० विनाड़िका = १ घटि ।

६० घटि = १ पक्षीरात्र ।

३० पक्षीरात्र = १ मास ।

(१२ मास = १ वर्ष) ।

सुखसमाप्ती भ्रमणका योजन ३६ प्रकार का ।

(हस्तकुलजममें लिखा है)

१ यव = १ हन्यतः (धर्मात् योजन)

२ हन्यतः = १ तक्षु ।

४ यव = १ किराट (कर्कट)

८ यव = १ दाह ।

४८ यव = १ मिस्त्रल ।

३०६ यव या ४६ मिस्त्रल = १ पक्षर वा खीर (सेतक) ।

७१ मिस्त्रल = १ भोकोयत (खीर)

१२ मिस्त्रल = १ रटल (पौंड) ।

२४ मिस्त्रल = १ मन ।

१० मन = १ कौलजत ।

सर्वा मान समयमें इस देशमें जिस नियमसे मंख्या
परिमाणदि स्थिर किया जाता है, वह नीचे दिये हैं—

- ४ कोड़ोका ५१ एक गंडा ।
५ गंडोका ५० एक पैसा ।
२० गंडोका १ एक पाना ।
८० गंडोका १ चार पाना ।
१६ पानिका १ एक रुपया ।
मुद्राविभाग ।

- २ चव्बोकी ५१ दमकी
२ दमकीका ५१ दुकड़ा वा छदास
२ दुकड़ाका १ पधेला
२ पधेलेका १ एक पैसा ।
२ पधेला ५१० एक डमल पैसा या टका
२ डमल पधेला १ एक पाना ।
२ पानिकी १ एक दुपची ।
२ दुपचीकी १० एक चवचो ।
२ चवचोकी १ एक चठची ।
२ चठचीका वा ४ चवचोका १ एक रुपया ।
१६ रुपयोका १ एक मोहर (मोटा) ।

चंगरेजीमें ३ पाईका एक पैसा और १२ पाईका
एक पाना होता है ।

कोड़ोका प्रकार चंगरेजी माना गया है— ३ कानाकी
१ कोड़ो, ४ कानाको एक कोड़ो, ५ दडकी १ कोड़ो,
६ चटुकी १ कोड़ो, ७ समूद्रकी १ कोड़ो, ८ वसुकी
१ कोड़ो, ९ दमाकी १ कोड़ो, १० टिककी १ कोड़ो,
११ बद्रकी १ कोड़ो, १२ सूर्यकी १ कोड़ो, १५ तिथिकी
१ कोड़ो, १६ कनाकी १ कोड़ो, १७ शङ्खकी १ कोड़ो,
२० गौकी १ कोड़ो, १४ सुवमकी १ कोड़ो, १३ तखोलव
१ कोड़ो, ८० तिलकी १ कोड़ो, ३२० रेणुकी १ कोड़ो,
१२८० महरकी १ कोड़ो ।

चंगरेजी मुद्राका परिमाण ।

- ॥ फाटिङ्कीकी १ पेनी ।
१२ पेसका १ मिलिङ्की ।
५ मिलिङ्कीका १ कानन ।
२० मिलिङ्कीका १ पौड या माभरेम ।
२१ मिलिङ्कीकी १ गिन्नी ।

एक मिलिङ्की करोड पाठ आनेके बराबर होता है ।
एक पेनोरिनका एक रुपया होता है ।

वैद्यका वजन ।

- ४ धानकी १ रत्तो ।
६ रत्तीका १ आना ।
१० रत्तीका १ मागो ।
८ मागोका १ तोला

वैद्यका वजन छोड़ कर खर्च रोप्य पादि तोलमें
१२ मागोका एक तोला होता है ।

वाकटरी वजन ।

- २० घेनका १ एक पल ।
३ एकपलका १ डाम ।
८ डामका १ मौल ।
१२ मौलका १ पौड ।
१८० घेनका एक तोला सुतरां १ पौड ३ तोला ।

वाकटरी औषधकी माप ।

- ६० मिनिमका १ डाम ।
८ डामका १ मौल ।
१६ मौलका १ पाण्ड ।
१२ मौलका १ छोटा पाण्ड ।

१ मौल करोड पाण्ड छटाकई और १ पाण्ड करोड
पाण्ड सेरके समान होता है ।

देशीय प्रवासे खापारन इत्यादिका वजन ।

- ४ चवचोका १ तोला
५ तोलकी १ छटाक ६
४ छटाकका १ पाव ५१०
४ पावका १ सेर ६१
५ सेरकी १ पण्डेरो ५५
१० सेरकी १ धरा १०
४ धारा या ८ पण्डेरी मन १५
या ४० सेरका

सेरका परिमाण सब जगह एक-मान नहीं है, कहीं
६० तोलका, कहीं ८० तोलका और कहीं १०० तोलका
सेर होता है । ८० तोलका सेर पकी और ६० तोलका
कचो सेर कहलाता है । पकी वजनकी छटाक =
तोला ।

भूमिकी माप ।

२० फुरकीकी	१ धुरकी ।
२० धुरकीका	१ धूर ।
२० धूरका	१ कड़ा ।
२० यट्टेकी	१ बीघा ।

भूमिकी अंगरेजी रेडिक माप ।

२ सूतका	१ जो ।
४ जोका	१ इंच वा सुसल ।
१२ इंचका	१ फुट ।
१॥ फुटका	१ हाथ ।
३ फुट वा २ हाथका	१ गज ।
१७६० गजका	१ मील ।
२ मीलका	१ कोस ।

६ गजका एक फादम् (जल मापनेका परिमाण),

४४० गजका एक पोल, ४० पोलका एक फर्माङ्ग, ८ फर्माङ्गका एक मील, ६ मोलका एक लीग, ७६ या ७०८२ इंचका एक लिङ्ग, २२ गजका एक चेन वा १०० लिङ्ग (Link) ।

लम्बाईका परिमाण ।

१ खड्डे या ८ पड़े जोका	१ अङ्गुल ।
४ अङ्गुलकी	१ सुट्टी ।
२ सुट्टीका	१ विकरत ।
२ विकरतका	०१ हाथ = १८ इंच ।
२ हाथका	१ गज ।
२ गज वा ४ हाथका	१ दण्ड (धनु) ।
२००० दण्ड वा } १ कोस ।	
८००० हाथ }	
४ कोसका	१ योजन ।

दूसरी रीति ।

१ इलाही गज = ३३ इंच ।	
३ इलाही गजका	१ बांस ।
२० बांसका	१ जरीब ।

अंगरेजी भूमिकी वर्गमाप ।

१४४ वर्ग इंचका	१ वर्ग फुट ।
८ वर्ग फुटका	१ वर्ग गज ।
१८० वर्ग फुटका	१ वर्ग बीघा ।

७२० वर्ग फुटका	१ वर्ग कड़ा ।
१४४०० वर्ग फुटका	१ वर्ग बीघा ।
४८४० वर्ग गज = एक एकड़, एक एकड़ = ३ बीघा	
॥० वट्ट, ६४० एकड़का एक वर्ग मील ।	

१०२८ घन इंचका	१ घन फुट ।
२७ घन फुटका	१ घन गज ।
१६८२४ घन घंभुनोका	१ घन हाथ ।
८ घन हाथका	१ घन गज ।

वस्तुदिदी माप ।

८ जोका	१ अङ्गुल ।
१ अङ्गुलकी	१ गिरह ।
४ गिरहका	१ बिन्दा ।
८ गिरह या २ बिन्दोका	१ हाथ ।
२ हाथका	१ गज ।

कागजका हिसाब ।

जिम्मा ताव पचोसकी, होत कबी' चौबीस ।
दग जिम्मा गछी पछे, रोमहि' जिम्मा बीस ।

अर्थात्

२५ तावका	१ जिम्मा ।
१० जिस्तेकी	१ गछी ।
२० जिस्तेका	१ रोम ।
१० रोमका	१ बेल ।

कमो २४ तावका भी एक जिम्मा होता है ।

कलम आदि की गणना ।

१२ टायका	१ डजन ।
१२ डजनका	१ पोस ।
२४ टायका	१ बण्डल ।
२० टायका	१ स्कोर ।

कालपरिमाण

६० अनुपलका	१ विपन ।
६० विपलका	१ पल ।
६० पलका	१ टण्ड या चढ़ी ।
७॥ दण्डका	१ गहर ।
८ गहर वा ६० दण्डका	१ दिन ।
७ दिनका	१ सप्ताह ।
२ सप्ताह वा १५ दिनका	१ मस ।

२ घण्टा वा ३० दिनका	१ महीना ।
१२ महीनेका	१ वर्ष ।
१२ वर्षका	१ युग ।
शंकरजी कासरिमाण ।	
१० सेकण्डका	१ मिनट ।
६० मिनटका	१ घंटा ।
२४ घंटेका	१ दिन ।
७ दिनका	१ सप्ताह ।
५२ सप्ताह, चौर एक दिनका	१ वर्ष ।
एक वर्ष के प्रकृत समयका परिमाण ३६५ दिन ५ घंटा ४८ मिनट ४८ सेकण्ड अथवा ३६५ दिन १४ टण्ड ४९ घण्टा ५८ विपण्टा होता ।	

अंगरेजीमें इन्फादि की वजनप्रणाली ।

१६ ग्रामका	१ औंस ।
१६ औंसका	१ पौंड ।
१४ पौंडका	१ सेटन ।
१८ पौंडका	१ क्वार्टर ।
४ क्वार्टरका	१ हण्ड्रेड वा कंटर ।
१० कंटरका	१ टन ।

७२ पौंड = ३५ सेर, १ पौंड = ३५ भाघ सेरसे कुछ कम (१८ भरो वजन), ४ औंस = भाघ कटाकसे कुछ कम (भाघ २ भरो ७ पाना), एक कंटर = १४४ पाना, एक सन चौदह सेर सात कटाकसे कुछ ज्यादा । १ टन = २० सन ८ सेर ११ कटाक ।

परिमाणक (स० फलो०) परिमाणक, दिग्दर्शन, बैरी-मोटर गन्नादि ।

परिमाणकल (स० फलो०) क्षेत्रकल, भूमि के मध्यगत स्थानका परिमाण ।

परिमाणवती (स० लि०) परिमाण विधानस्थ सतुप, सत्य व । परिमाणयुक्त, परिमाणविशिष्ट ।

परिमाणित (स० लि०) परिमाण-रतु । परिमाण-विशिष्ट ।

परिमाद्य (स० लि०) मापनेवाला, पैमाइय करने-वाला ।

परिमाद (स० पु०) परि-माद-वज्र । महाव्रतश्रीवके अन्तर्गत मोनह मासमेद ।

परिमाण (हि० पु०) परिमाण देखो ।

परिमाण (स० पु०) परि-मृज-वज्र । परिमाणना, परिष्कार करना ।

परिमाणण (स० फलो०) चन्देयण, खोजना या टूटना ।

परिमाणितव्य (स० लि०) चन्देयणीय, खोजने या टूटने लायक ।

परिमाणित (स० लि०) चन्देयणकारी, खोजने या खोजने किमोके पोछे जानेवाला ।

परिमाय्य (स० लि०) परि-मृज-व्याप्त । परिमृज्ये, परिशोधनीय ।

परिमाज (स० लि०) परि-मृज-वज्र । परिष्कार करना, साफ सुथरा करना, साजना ।

परिमाजक (स० लि०) परिशोधक, धोने या साजने-वाला ।

परिमाजन (स० फलो०) परि-मृज-व्युट, ततो द्विज ।

१ मधुमस्तक, एक विम्वय मिठाई जो घी मिले हुए शहदके गोरेमें छुवाई हुई होती है । २ परिशरण, परिशोधन, साजना । ३ मधुमे सपाटा ।

परिमाजित (स० लि०) १ धोयावा साजना हुआ । २ परिश्रुत, साफ किया हुआ ।

परिमित (स० फलो०) धार्क बोम बरगा पादि ।

परिमित (स० लि०) परि-मा-मि, परितो मित वा । १ युक्त, मिला हुआ । २ परिमितविशिष्ट, जिसका परि-माण ही वा प्राप्त हो । ३ कृतपरिमाण, तोला हुआ । ४ यथाथे परिमाण, न अधिक न कम । ५ सत्य, घोड़ा, कम ।

परिमितकथा (स० लि०) १ जो उचितसे अधिक न बोलता हो । २ सत्यभाषी, कम बोलनेवाला ।

परिमिति (स० फलो०) परि-मा-मिन् । भूमिमात्रमात्र, करीबविद्या । ज्ञानमितिमात्रमे प्रतिपादित वस्तु (भूमि पादि) का परिमाण निर्दिष्ट करनेके लिये इस अर्थमें यह प्रयोग द्वारा उन सब पदार्थों का प्रकृत परिमाण या मापयत्न क्या है, वही निर्दिष्ट हुआ है । किसी वस्तुके ऊपरी तल वा सहर्दंग, चैवकल, वस्तु या जीव पादि की आकृतिके व्यापकल अर्थात् उस उस वस्तु या जीव के अपने अपने शरीरयत्नप्रयुक्त कितना स्थान वह

भूमिकी माप ।

२० फुरकीकी	१ धुरकी ।
२० धुरकीका	१ धूर ।
२० धूरका	१ कड़ा ।
२० कड़ेका	१ बीघा ।

भूमिकी अंगरेजी रेडिक माप ।

२ सूतका	१ जो ।
४ जोका	१ इंच या सुमल ।
१२ इंचका	१ फुट ।
१॥ फुटका	१ हाथ ।
२ फुट वा २ हाथका	१ गज ।
१७६० गजका	१ मील ।
२ मीलका	१ कोस ।

१ गजका एक फादम् (जल सपनिका परिमाण),
 ४४० गजका एक पील, ४० पीलका एक फलौङ्ग, ८
 फलौङ्गका एक मील, १ मीलका एक मोग, ७३ या
 ७०८२ इंचका एक लिङ्क, २२ गजका एक चैन वा
 १०० लिङ्क (Link) ।

सम्बन्धिता परिमाण ।

१ खड़े या ८ पड़े जोका	१ अङ्गुल ।
४ अङ्गुलकी	१ सुहो ।
२ सुहोका	१ विहस्त ।
२ विहस्तका	०१ हाथ = १८ इंच ।
२ हाथका	१ गज ।
२ गज वा ४ हाथका	१ दण्ड (धनु)
२००० दण्ड वा } ८००० हाथ }	१ कोस ।
४ कोसका	१ योजन ।

दूसरी रीति ।

१ इलाही गज =	३२ इंच ।
३ इलाही गजका	१ बाँस ।
२० बाँसका	१ जरीज ।

अंगरेजी भूमिकी वर्गमाप ।

१४४ वर्ग इंचका	१ वर्ग फुट ।
८ वर्ग फुटका	१ वर्ग गज ।
१८० वर्ग फुटका	१ वर्ग बीघा ।

०२० वर्ग फुटका	१ वर्ग कड़ा ।
१४४०० वर्ग फुटका	१ वर्ग बीघा ।
४८४० वर्ग गज = एक एकड़, एक एकड़ = ३ बीघा	
॥० वर्ग, ६४० एकड़का एक वर्ग मील ।	

१०२८ घन इंचका	१ घनफुट ।
२७ घनफुटका	१ घनगज ।
१६८२४ घनघंभुनोका	१ घनहाथ ।
८ घनहाथका	१ घनगज ।

वस्तुआदि माप ।

८ जोका	१ अङ्गुल ।
१ अङ्गुलकी	१ गिरह ।
४ गिरहका	१ बिस्ती ।
८ गिरह या २ बिस्तीका	१ हाथ ।
२ हाथका	१ गज ।

कागजका हिसाब ।

जिस्ता ताब पचोचकी, होत कबो चौबीस ।
 दग जिस्ता गड्डी चढ़े, रोमहिं जिस्ता बीस ।

अर्थात्

२५ ताबका	१ जिस्ता
१० जिस्तीकी	१ गड्डी
२० जिस्तीका	१ रोम
१० रोमका	१ बेल ।

कमो २४ ताबका भी एक जिस्ता होता है ।

कलम आदिकी गणना ।

१२ टायका	१ डजन ।
१२ डजनका	१ रोम ।
२४ टायका	१ बण्डल ।
२० टायका	१ स्कोर ।

बालरिमाण

६० अनुपनका	१ विपन ।
६० विपनका	१ पल ।
६० पलका	१ टण्ड या चढ़ो ।
७॥ दण्डका	१ गहर ।
८ गहर वा ६० दण्डका	१ दिन ।
७ दिनका	१ सप्ताह ।
२ सप्ताह वा १५ दिनका	१ पल ।

१ घण्टा वा ३० दिनका	१ महीना ।
१२ महीनाका	१ वर्ष ।
१२ वर्षका	१ युग ।
४ गैरेजी का समयपरिमाण ।	
१ सेकण्डका	१ मिनट ।
६० मिनटका	१ घंटा ।
२४ घंटेका	१ दिन ।
७ दिनका	१ सप्ताह ।
५२ सप्ताह, चौर एक दिनका	१ वर्ष ।

एक वर्ष के प्रकृत समयका परिमाण ३६५ दिन ५ घंटा, ४८ मिनट ४८ सेकण्ड, अथवा ३६५ दिन १४ घण्टा ४९ मिनट ५८ सेकण्ड होगा ।

४ गैरेजी में इकाइयों की गणनाप्रणाली ।	
१ इंचका	१ फीट ।
१२ फीटका	१ योर्ड ।
१४ योर्डका	१ सेटन ।
२८ योर्डका	१ क्राटर ।
४ क्राटरका	१ कण्डवेट वा कंडर ।
१० कंडरका	१ टन ।

७२ योर्ड = ३५ मीटर, १ योर्ड = ३३० सेंटीमीटर से कुक कम (१८ भरो वजन), ४ योर्ड = पांच कटाकसे कुक कम (प्रायः २ भरो, ० घाता), एक कंडर = १४४, एक मल चौदह सेंटीमीटर मात कटाकसे कुक ज्यादा । १ टन = ९० मनु द सेर ११ कटाक ।

परिमाणक (स० फ्लो०) परिमाणक, दिग्दर्शन, बैरो-मोटर यन्त्रादि ।

परिमाणकल (स० फ्लो०) चेतकल, भूमि के सज्जगत स्थानका परिमाण ।

परिमाणवत् (स० लि०) परिमाण विद्युतस्थ मत्पुत्र सख्य । परिमाणयुक्त, परिमाणविशिष्ट ।

परिमाणिन् (स० लि०) परिमाण-हन् । परिमाण-विशिष्ट ।

परिमाद्य (स० लि०) मापनेवाला, पैमाइश करने-वाला ।

परिमाद (स० पु०) परि-मद-चञ्च । महाभूतस्त्वोके अन्तर्गत भोजन सामग्री ।

परिमाण (हि० पु०) परिमाण देखो ।
परिमाण (स० पु०) परि-मृज-चञ्च । परिमाणना, परिष्कार करना ।
परिमाण (स० फ्लो०) अन्वेषण, खोजना या ढूँढ़ना ।
परिमाणित्य (स० लि०) अन्वेषणीय, खोजने या ढूँढ़ने लायक ।
परिमाणिन् (स० लि०) अन्वेषणकारी, खोजने या खोजने किमोके पोछे जानेवाला ।
परिमाण्य (स० लि०) परि-मृज-स्थत् । १ परिमृज्य, परिशोधनीय । २ अन्वेषणीय ।
परिमाण (स० लि०) परि-मृज-चञ्च । परिष्कार करना, साफ सुथरा करना, मांजना ।
परिमाणक (स० लि०) परिशोधक, धोने या मांजने-वाला ।
परिमाणन (स० फ्लो०) परि-मृज-व्युट्, ततो वृद्धि । १ मधुमक्षक, एक विशेष मिठाई जो घी मिले हुए शक्कर के थोरे में छुवाई हुई होती है । २ परिष्करण, परिशोधन, मांजना । ३ मधुत लपान ।
परिमाजित (स० लि०) १ धोयाया मांजा हुआ । २ परिष्कृत, साफ किया हुआ ।
परिमित् (स० स्त्रो०) चरके बोम बरगा पादि ।
परिमित (स० लि०) परि-मा-क्त, परितो मित वा । १ युक्त, मिला हुआ । २ परिमाणविशिष्ट, जिसका परिमाण हो वा ज्ञात हो । ३ तत्परिमाण, तोला हुआ । ४ यथार्थ परिमाण, न अधिक न कम । ५ पक्ष, घोड़ा, कम ।
परिमितकथा (स० लि०) १ जो चरितवै अधिक न बोलता हो । २ अल्पभाषी, कम बोलनेवाला ।
परिमिति (स० स्त्री०) परि-मा-क्तिन् । भूमिमात्राज्ञ, जमीनविद्या । ज्यामितिशास्त्रे प्रतिपादित यत् (भूमि पादि) का परिमाण निर्दिष्ट करनेके लिये इस पद्धति प्रयोग द्वारा उन सब पदार्थों का प्रकृत परिमाण वा मापन करा है, यही निर्दिष्ट हुआ है । किसी वस्तु के ऊपरों तब वा वह निर्दिष्ट, चेतकल, वस्तु या जीव पादि की प्राकृतिक व्यापकत्व पथार्थ उस उस वस्तु या जीव ने अपना अपना गैरेयतनप्रयुक्त कितना स्थान घनि

कार किया है, उसका चतुर्परिमाण और गृह्य, पाटिका, चंघान पादिको भूम्यादिका परिमाण इस शास्त्रानुसार निर्णित होता है। ज्यामिति अथवा त्रिकोणमिति शास्त्र-निष्पादित अनेक प्रतिष्ठाएं भाषाने से परिमिति अष्ट विद्याओं सहायता द्वारा निष्पन्न की जा सकती हैं, किन्तु एक वस्तुका परिमाण निर्देश करनेमें उस जानिकी वस्तु का अन्य एक प्राथमिक विभाग लेना होता है। ज्यामिति शास्त्रमें इसे Magnitude वा पायतनांश और अष्ट-विद्यामें Measuring unit वा परिमाण कहते हैं। जिस प्रकार कोई एक निर्दिष्ट रेखा (Straight line) नापनेमें उस मापके परिमाणक १ इंच, १ लिङ्ग अथवा १ गुट्ट आदि परिमाणोंको आवश्यकता होती है, उसी प्रकार किसी एक समतलक्षेत्रकी भूमिका परिमाण लेनेमें पहले उस भूमिका वर्गक्षेत्रफल (Square area) निकालना आवश्यक है। इसमें स्पष्ट जाना जाता है, कि एक एक गुट्ट वर्गइंचकी परिमाण-समष्टि से इसी प्रकार एक इन्च जमीनका परिमाण स्थिर हुआ है। किसी एक चतुष्कोण वस्तुका, जिसकी लम्बाई १० इंच और चौड़ाई ५ इंच है, परिमाण स्थिर करनेमें लम्बाई द्वारा चौड़ाईको गुना करना होगा। इससे जो वर्गगुणफल (१० × ५ = ५० वर्गइंच) होगा, वही उक्त वस्तुका आधार वा व्यापकपायतन है।

एक जमीन कितना मोटा, कितना बड़ा है वह जाननेमें ज्यामितिशास्त्रकी अवलम्बनीय समान्तररेखा, सरल रेखा, समकोणी त्रिभुज, पञ्चकोणी, षट्कोणी, अष्टकोणी, वृत्त वा परिधि आदि, निरूपित गणनाको सहायता से सहजमें जिस उपाय द्वारा भूमिका परिमाण स्थिर होता है, परिमितिशास्त्रमें इसे क्षेत्रव्यवहार वा Surveying कहते हैं। भूम्यादिके लरीवकार्यका परिमाण-वाचक को छुट्टा अथवा जनसाधारणमें धाया है, अंगरेजीमें इसे Link कहते हैं। हम लोगोंके देशमें जिस प्रकार अङ्गुलि, अष्टप्रभृति परिमाणटण्डको सहायतासे भूम्यादिकी लरीव कई घोड़ेमें परिणत होती है, अंगरेजीमें उसी प्रकार लिङ्गमें एकड़ और बड़ एकड़ हम लोगोंके परिमाणानुसार हीचेमें रूपान्तरित होता है। यदि कोई जमीन ५०५ लिङ्ग लम्बी और ४२५ लिङ्ग चौड़ी हो, तो

यह जितने हीचेकी होगी? पहले दो राशियोंकी परस्पर गुना करनेसे जमीनका वर्गफल २१४३०५ हुआ। किन्तु १००००० वर्गलिङ्गकी एक एकड़ जमीन होती है, यह माप स्वतः सिद्ध है। अतएव पूर्वोक्त २१४३०५ वर्ग-लिङ्गकी निष्कोट १००००० वर्गलिङ्ग द्वारा भाग देनेसे भागफल २१४३०५ एकड़ होगा। यह एकड़ परिमाण शब्दके तालिकासुधार भाषाने से दोघेमें और दशम-सप्त भिन्नको भी पुनः विभाग करके इन्च, पांचूस पदवा कहे, धूर आदिमें रक्खा जा सकता है।

त्रिकोण और चतुष्कोण आकृतियुक्त भूमिका परिमाण सहजमें निकालना जाता है। पहले ही कहा जा चुका है, कि एक चतुष्कोणका परिमाण उसकी लम्बाई और चौड़ाईके गुणनफलसे जाना जाता है। इससे यह मालूम होता है, कि समान्तर दो रेखाओंकी मध्यवर्ती समरेखाके ऊपर स्थापित दो त्रिभुज परस्पर समान होते हैं। सुतरां इस प्रकार एक त्रिभुज चतुर्भुजका अर्धांग होगा, इसमें संदेह नहीं। त्रिभुजका परिमाण जाननेमें उसकी आधार (Base) से लम्ब रेखा (Perpendicular) के अर्धांगको गुना करनेसे गुणनफल जो हो, उसका अर्धांग उक्त त्रिभुजभूमिका परिमाण होगा। चतुर्भुज, पञ्चकोणी, षट्कोणी और दशकोणी आदि का परिमाण निम्नलिखित उपायसे निकाला जाता है।

किसी एक चतुर्भुजकी (Quadrilateral figure) विभक्त कर सकनेसे ही उसकी परिमाणस्थला भी निर्देश की जा सकती है। परन्तु समरेखाविशिष्ट और समकोणयुक्त पञ्चकोणी षट्कोणी वा द्वादशकोणी आदि (Regular polygon) चिह्नित भूमिों परिमाण निर्देश करनेमें उक्त क्षेत्रकी भुजसमष्टिका अर्धांग ले कर उसमें केन्द्र (Centre) से किसी एक परास्पररेखा से लम्बमान ऋजुरेखा (Perpendicular) को संस्थापित करना करी। गुणनफल जो होगा उसीको उक्त क्षेत्रका परिमाण जानो। साधारणको सुविधाके लिये नौवें बड़-समबाहु और समकोणी (Regular polygon) क्षेत्रका परिमाण जाननेके लिये एक तालिका दी गई है। इन तालिकाकी व्यवहारप्रणाली इस प्रकार है—

किसी एक बहुभुज समकोणी चोर समबाहु Regular polygon क्षेत्र की किसी वस्तुका वर्गफल को कर उसमें निम्नलिखित तानिका प्रदत्त क्षेत्रफलके साथ गुना करो। गुणनफल जो होगा, उसको उपस्थित त्रैकोणी भूमिका परिमाण जानो।

सोमारेखा एक छेदोंमें से किसी एक रेखाका क्षेत्रफल	परिमाण
१	०.२८८६०५१३४६
२	०.५
३	०.६८८८०८१०२
४	०.८१०२५४०३८
५	१.००३८२९०६८४४
६	१.२००१००८०८२
७	१.३९३०३००८०
८	१.५८८८०८१०२
९	१.७८८८०८१०२
१०	१.९८८८०८१०२
११	२.१८८८०८१०२
१२	२.३८८८०८१०२

उदाहरण—किसी एक पञ्चकोणकी एक सोमारेखा यदि २० फुटकी हो; तो उसके वर्गफल ४०० को १.०१०४००४ से गुना करनेसे गुणनफल जो ४०८.१८०८ फुट होगा, वही सत्त क्षेत्रका परिमाण है।

क्षेत्रके सम्बन्धमें भी परिमिति शास्त्रमें अनेक प्रणालियाँ लिखी हैं। किसी एक वस्तुक्षेत्रकी परिधि, उसके व्यासकी १.४१५८ से गुना करनेमें जो फल होगा, उसके समान है। यह भी जान लेना उचित है, कि वर्ग लाकार क्षेत्रका भूमिपरिमाण निर्देश करनेमें निम्नलिखित नियमोंका अवलम्बन करनेसे वर सफलमें निश्चयता का भक्तता है। (१) उसके पक्षोंकी व्यासके गुा करनेसे जो फल होता

है, वही भूमिका परिमाण है। (२) व्यासके वर्गफलको ०.८५४ से गुना करनेसे जमीनका क्षेत्रफल निश्चय पाता है। (३) परिधि के वर्गफलको ०.०८५०७५ से गुना करनेमें जो गुणनफल होगा, वही जमीनका प्रस्त क्षेत्रफल है।

किसी एक ठोस वस्तुका परिमाण निकालना हो, तो उसकी लम्बाई, चौड़ाई चोर लम्बाई तीनोंकी आपसमें गुना करो, इस प्रकार जो गुणनफल होगा, वही उस वस्तुका परिमाण है। पिरामिड (Pyramid) अथवा किसी कोणाकार (Cone) वस्तुका परिमाण निकालनेमें उसकी तलभूमिके परिमाणफलको उस जो लम्बरेखाके परिमाणसे गुना करो। गुणनफल जो होगा उसका दसोवाँ हिस्सा ही उस पिरामिडका परिमाण होगा। किसी एक ठोस गोलाकार (Sphere or Solid circle) वस्तुका परिमाण उसकी परिधिकी व्याससे गुना करनेसे जाना जाता है। जिस गोलेक्षेत्रका व्यास ३६ इंच है, उसका परिमाण $३६ \times ३.१४१५८२६ = १०९.१५४$ वर्ग इंच होगा। इस गोलेक्षेत्रका यदि समूचा क्षेत्रफल निकालना हो, तो उसके व्यासके घनगुन (Cube) अर्थात् ३६^3 को ५.२४५१२ से गुना करो अथवा क्षेत्रफलकी व्यासके छठे भागसे गुना करनेमें जो गुणनफल होगा, वही उस ठोस गोलाकार वस्तुका परिमाण है। यथा— $४०० \times १.५०४ \times १.५०४ = ९४४८.०२४$ ठोस इंच (Solid inch)। प्रयोज्य प्रमाणासुसार $३६^3 \times ५.२४५१२$ गुना करनेसे भी गुणनफल २४४८.०२४ होता है। समतल क्षेत्रादिकी जरोब या मापका विषय चर्चयवहार, अर्थमें विगे वस्तुसे पालोचित हुआ है। क्षेत्रवहार देखो।

परिमिति (दि० स्को) मर्यादा, दन्त।
परिमितन (सं० क्लो०) सम्यक्, मिलन, अच्छी तरह मिश्रण।
परिमुख (सं० लि०) मुखमण्डलके चारों ओर।
परिमुखा (सं० लि०) सम्यक् रूपसे मुख, पूर्ण रूपसे स्नायु।
परिमुख (सं० लि०) सुन्दर साथ साथ सरन।
परिमुख (सं० लि०) मोचनके योग्य।
परिमुख (सं० लि०) परिमुखता। १ व्याकुल। २ भावोद्धित, विचलित, मथित। ३ योगित।

परिमृदता (स० स्त्री०) १ व्याकुलता । २ भ्रम । ३ विरक्ति ।

परिमृणी (स० स्त्री०) हड्डी, दूढ़ी ।

परिमृज् (स० त्रि०) परिमृज्-क्षिप् । परिष्कारकरण, धोना या मांजना ।

परिमृज्य (स० द्वि०) परिमृज्-प्रत्यय, (मृजोर्विभाषा । पा ३।१।११३) परिष्कृत, साफ किया हुआ या मांजा हुआ ।

परिमृष्ट (स० त्रि०) १ परिमार्जित, धोया या साफ किया हुआ । २ स्पृष्ट, जिसको छुचा गया हो । ३ अधि-क्षत, पकड़ा हुआ । ४ जिससे परामर्श किया गया हो ।

परिमृष्टि (स० स्त्री०) परिष्करण, धोना, मांजना ।
परिमृष्य (स० त्रि०) १ जो नापा या तोला जा सके, नापने तोलनेके योग्य । २ सङ्क्षिप्त, छोड़ा । ३ जिसके नापने या तोलनेका प्रयोजन हो ।

परिमोच (स० पु०) परितोमोचः परित्यागः । १ मल-त्याग, हगना । २ विष्णु । ३ परित्याग, छोड़ना । ४ सम्पत्सुक्ति, पूर्णमोच ।

परिमोचण (स० क्तो०) परिमोच-ल्युट् । १ परि-त्याग । २ सुक्ति । ३ मोच । ४ मलत्याग । ५ धौतक्षिप्या द्वारा परिष्कार करना ।

परिमोटन (स० क्तो०) सट्सट शब्द ।
परिमोप (स० पु०) परिमुप-प्रत्यय, स्त्री, चोरी ।
परिमोपक (स० पु०) परिमुप-प्रत्यय । परिमोपण-कारी, चोरी ।

परिमोषिन् (स० त्रि०) परिमुष्यातीति परिमुप-णिनि । चोरीसमावपन, जिसकी समावप हो चोरी करनेकी प्रवृत्ति हो ।

परिमोहन (स० क्तो०) परिमुह-ल्युट् । वशोकरण, किसीकी बुद्धि या मनको पूर्ण रूपसे अपने अधिकारमें कर लेना ।

परिमोहित (स० त्रि०) १ आक्रोहित, मयित । २ क्षेतनहीन । ३ अन्तर्निधन्य ।

परिमोहान (स० त्रि०) १ होनप्रभ, कुहलाया हुआ, मतिन ।

परिमोहयिन् (स० पु०) परिमुह-णिनि । १ तिसिरोग

मिद । इसका कारण बुद्धिमें मूर्च्छित पित्त होता है । इनमें रोगीको सभी दिशाएँ पीली या प्रश्लित दिखाई पड़ती हैं ।

परिमृज् (स० पु०) परित् समयतो विहितो यत्रोऽस्य । समयतः विहित यत्र, वह छोटा यत्र या विधान जिसको श्रद्धा करनेकी विधि न हो, किन्तु जो किसी, पन्थ यत्रके साथ समके पड़ने या पीके किया जाय ।

परियत्त (स० त्रि०) परिवेष्टित, चारों ओरसे घिरा हुआ ।

परियष्टा (स० पु०) वह मनुष्य जो अपने बड़े भाईसे पहले स्नानयोग करे ।

परिया (तामिन् परेयान्)—दाक्षिणात्यवासी एक प्रादिम जाति । किसी किसीका कहना है, कि 'परे' का अर्थ ठका (मगरा) है, इसी अर्थसे परेया अर्थात् ठका वाद्यकारजाति नाम पड़ा है । किन्तु कोई कोई भाषा-तत्त्वविद् इसे स्त्रीकार नहीं करते । उनके मतसे परेया का मूल अर्थ है 'पहाड़िया' या पारंपरीय । जिस तरह गोडोयशावाके मध्य 'चण्डाल' है, उभी तरह ब्राह्मण शास्त्रके मध्य 'परिया' है ।

समाज-वाद्य सभी जातियों से कर यह परिया-समाज गठित होने तथा दाक्षिणात्यहिन्दू-समाजमें नितान्त होन समझ जाने पर भी ये लोग अपनेमें उच्च-नीच जातिभेद स्वीकार करते हैं । इनके मध्य १८ विभाग हैं जिनमेंसे कुछके नाम नीचे दिये जाते हैं—

बल्लवप्यड़ई, तातप्यड़ई, तङ्कानप्यड़ई, तुर्गालियप्यड़ई, कुलियप्यड़ई, तिप्पड़ई, सुरगप्यड़ई, मोट्टप्यड़ई, पम्प-प्यड़ई, वट्टकप्यड़ई, आलियप्यड़ई, कोलियप्यड़ई, वेनियप्यड़ई, वेडिगप्यड़ई, शङ्कुप्यड़ई, इनमेंसे बल्लवप्यड़ई अर्थात् वे सबसे बड़े समझी जाते हैं ।

परिया लोगोंका कहना है, कि हमारे उत्पत्ति ब्राह्मणोंके गर्भ से है और हम ब्राह्मणोंके बड़े भाई होते हैं । वेडुटाचार्यने कुलपट्टरमालामें लिखा है, कि सर्वसौके पुत्र वंशजने पञ्चमती नामकी एक चण्डाली-से विवाह किया था । इस चण्डालीके गर्भ से १०० पुत्र उत्पन्न हुए । इनमेंसे पिताका प्रादेश मान, लेनेवाले ४ पुत्र तो चार वर्षोंके मूलपुरुष हुए और पिताकी आज्ञा की अवज्ञा करनेवाले ८३ पुत्रोंकी पञ्चमवर्ष या परिया-की संज्ञा मिली ।

परिया लोगीका आचार व्यवहार दूसरे वचोसे मिल-
कुल पृथक् है। ये लोग अपर निम्न श्रेणीकी अपने समाजमें
मिलने नहीं देते और न सब श्रेणीमें प्रवेश करनेकी चेष्टा
ही करते हैं। इस जातिके लोग अधिकतर चौकीदारों, भंगी
या मेहतरका काम पढ़या शूद्रकिसानके खेतमें मज-
दूरी करते हैं। स्वभावसे ये गान्त, नन्ध और परिचयी होते
हैं। त्रिवाङ्गु, महिपुर आदि स्थानोंमें जिस राहसे
ब्राह्मण या नायर चलते हैं उस राहसे परिया लोग
नहीं चल सकते। यदि संयोगवश राहमें मुलाकात
ही जाय, तो ब्राह्मण ह्यान करके कुछ दूर सेते हैं। यदि
कोई परिया किसी तरह नायरकी छू ले, तो वह नायरसे
हाथसे सचित दण्ड पाता है। जिस घाममें ब्राह्मणोंका
वास है उस घाममें परिया घुस नहीं सकता। दाहि-
पालके विभिन्न प्रदेशोंमें ये लोग होशोया, धेर, महार
या परवारी नामसे प्रसिद्ध हैं। इस जातिके लोग अधिक
तर चौकीदारों, भंगी या मेहतरका काम करते हैं।
ये देवीसे उपासक हैं और विशेषतः पाव'ती या
काशीकी मूर्त्तिवीकी पूजा करते हैं। सामाजिक
सम्बन्धमें ये बड़े रक्षणीय हैं। पूजाकालमें सब
वर्णके क्रोड़ भी ब्राह्मण रजका पोरोहित्य नहीं करते।

परियाके मध्य भी कितने साधुओं और कवियोंने
जन्म ग्रहण किया है। इनमेंसे 'कुरल'-ग्रन्थ-प्रणेता तिरु-
वन्नव नायनर और उनकी भगिनी अम्बे (आविशर),
वेण्णकविधानवर तिरुप्पान् और शिव साधु मन्दनका
नाम उल्लेखनीय है।

परियाण (स'० स्त्री०) चारों ओर गमन, घुमाई फिराई।

परियाणि (स'० पु०) चलतो हुई गाड़ी।

परियाणीय (स'० त्रि०) १ भ्रमणक्षम्यो। २ रचा-
करणयोग्य, बचाने लायक।

परियात (स'० त्रि०) १ जो भ्रमण या पर्वटन कर चुका
हो। २ कहींसे लौटा हुआ, आया हुआ।

परियार—१ पयोध्या प्रदेशके सत्ताव जिलान्तर्गत एक
प्राचीन नगर। यह सन् १६३० ई० तथा देगा०
८० २१ ४५ पू०के मध्य समुद्र सतहसे ७ कोस उत्तर-
पश्चिममें अवस्थित है। प्रवाद है, कि पहले यह स्थान

सङ्कलसे परित्त था, महासुनि बाहमीक इस वनायममें
रहते थे। रामचन्द्रके आदेशसे सत्तावन सेताकी इमी
स्थानमें 'परिहार' किया था। इस कारण यह स्थान
परिहार या परियार नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस घामके
चारों ओर 'महना' नामक जो विस्तीर्ण भूमी है, वह
थौरामके पुत्र सब और लुगको 'महारण' भूमि समझी
जाती है। इस महना भूमिके मूलवर्ती भीमहर
महादेव-मन्दिरके सन्निकट और गङ्गाके दोनों किनारे
बाज भी अनेक तौरोंके फल भूगर्भमें पाये जाते
हैं। यहां गङ्गाके किनारे जो सब मन्दिर हैं, वे
वर्तमान समयके बने हुए हैं। पहाड़के ऊपर
वजोर और पलमसथली खाँके किलेका ध्वंसावशेष
गङ्गातोरसे देखा जाता है। यहां प्रति वर्ष कार्तिक-
की पूर्णिमामें लाखों अक्षिन्न मनुष्य गङ्गा ओर भूमीमें
स्नान करने आते हैं।

२ बिहारवासो गाकहीपिमाहर्षीका एक 'पुर'
वा था।

३ मन्दाज प्रदेशके पूना जिला-वासो निम्न श्रेणीकी
जातिविशेष। गिरहें देवी।

परियोग (स'० पु०) परि-युक्त-भावसे चञ्च। परितः योग,
दोनों ओर योग।

परियोग्य (स'० पु०) वेदकी एक शाखा।

परिरक्षक (स'० त्रि०) परि-रक्ष-यत्क, रक्षाकर्त्ता,
सब प्रकारसे बचानेवाला।

परिरक्ष्य (स'० क्तो०) परि-रक्ष-यतु, सर्वतोभावसे
रक्षा करना, सब प्रकार या सब ओरसे रक्षा करना।

परिरक्षणीय (स'० त्रि०) परि-रक्ष-यनीय, रक्षाके योग्य।

वरिरक्षा (स'० स्त्री०) परियायन।

वरिरक्षित (स'० त्रि०) वक्षम रूपसे रक्षित।

परिरक्षितव्य (स'० क्तो०) परि-रक्ष-तव्य, परिरक्षणीय,
सर्वतोभावसे रक्षाके योग्य।

परिरक्षितन् (स'० त्रि०) रक्षाकारी, चौकीदार।

परिरक्षित (स'० त्रि०) परि-रक्ष-यत्क, परिरक्षक।

परिरक्षिन् (स'० त्रि०) रक्षाकारी, बचानेवाला।

* इस घामके पास ही गङ्गाके किनारे बिदर नगरमें आज
भी बागीकिरी कुटी विद्यमान है। एक समय गङ्गाके दोनों
किनारेका स्थान बाग्योकिरी आश्रम कहलाता था।

परिरक्षा (मं० त्रि०) रक्षा के योग्य ।
 परिरथ्य (सं० पु०) रथाङ्गभेद, रथका एक अंग ।
 परिरथ्या (मं० स्त्री०) प्रचारमार्ग, चौड़ा रास्ता ।
 परिरम्भ (सं० पु०) परिरम्भात् इति परि-रभि घञ् ।
 ततो धुम् (रमेरश्लिष्टोः) । पा ३।१।६३ आलिङ्गन ।
 परिरम्भ (सं० स्त्री०) परि-रभ ल्युट् । आलिङ्गन ।
 परिरम्भिन् (मं० त्रि०) परिरम्भाः कियतेऽस्य परि-रम्भ-
 इति । सञ्ज्ञेपयुक्त, आलिङ्गनयुक्त ।
 परिराटन (सं० त्रि०) परि-राट-ताच्छोत्ये जुञ् । समन्तात्
 रटनगोल, चारों ओर जानैवाना ।
 परिराटिन् (मं० त्रि०) परि-राट-ताच्छोत्ये घितुन् ।
 समन्तात् रटनगोल ।
 परिराप् (मं० पु०) १ पाठकप राक्षस । २ परिवादकारो,
 निन्दक ।
 परराप्ति (मं० त्रि०) परामर्ग द्वारा वृत्तिविधानकागे ।
 परिरोध (सं० पु०) परि-रुध-घञ् । मन्थ्य् अवरोध
 रुकावट, अड़ंगा ।
 परित (मं० त्रि०) परितो नाति ला-क । परितोग्राहक ।
 परितुषु (मं० त्रि०) १ अतिलघु, बहुत छोटा । २
 अत्यन्त शीघ्र पधनेके कारण अति लघुपाक ।
 परितुङ्ग (सं० स्त्री०) इतदन्तः लम्फन, फलांग या
 छलांग मारना ।
 परितुष्ट (सं० पु०) १ रगड़ या घिस-कर किसी चीज
 का खुरदरापन दूर करना । २ चिकना और चमकदार
 करना, पालिश करना ।
 परितुष्टि (सं० त्रि०) रेखासे परिवर्तित, रेखासे बिना
 हुआ ।
 परितुष्ट (सं० त्रि०) परि-तुष्ट-कृ । १ नाशग्राम, नष्ट,
 विनष्ट । २ क्षतिग्रस्त जिसको क्षति या प्रपकार किया
 गया हो ।
 परितुष्ट (मं० पु०) परि-तुष्ट-घञ् । १ परितो लेखन-
 माधु-द्रव्य, कूँचो या कलम जिसमें रेखा या चित्र
 खोचा जाय । २ चित्रका स्वरूप जिसमें वेबल रेखाएँ
 हैं, रंग न भरा गया हो, टाँचा । ३ चित्र, तस्वीर ।
 ४: टुष्टि ख, वर्णन ।
 परितुष्ट (सं० स्त्री०) यज्ञस्थानके सत्र और रेखादि
 चिह्न ।

परितुष्ट (मं० त्रि०) समभन्ता, मान्य, ख्यात
 करना ।
 परितुष्टिन् (मं० पु०) कण शोभने, कानका एक शोभ
 जिममें कण और रुधिरके प्रकोपते कानकी लोचक पर
 कोटो कोटो फुंसियाँ निकल आती हैं और उनसे जनन
 होती है ।
 परि-प (मं० पु०) परि-सुर घञ् । १ शानि, तुल्यता ।
 २ धिक्काप ।
 परिवंश (मं० पु०) प्रसारण, धोखा, छन ।
 परिवका (मं० स्त्री०) १ गोताकार वेगभेद । २ नगरो-
 भेद ।
 परिवक्त्र (सं० पु०) वक्त्र का पदार्थ ।
 परिवक्त्र (सं० पु०) १ सवक्त्र पञ्च होते अन्तर्गत वक्त्र-
 विशेष । छद्मसंज्ञितसे लिखा है, कि सवक्त्र, परि-
 वक्त्र, इदावक्त्र, अनुवक्त्र और इद्वक्त्र-ये पाँच
 वक्त्र युगवक्त्रके अन्तर्गत हैं, यष्टि वक्त्रके नहीं ।
 परिवक्त्रके अधिपति सूर्य हैं । इस वक्त्रके प्रारम्भमें छटि
 होतो है । २ एक ममस्त वक्त्र, एक पूरा नास ।
 परिवक्त्रोण (मं० त्रि०) ममस्त वक्त्रो, जिसका
 सम्बन्ध भारी वक्त्रसे हो ।
 परिवक्त्रोय (मं० त्रि०) ममस्त वक्त्रे सम्बन्धोय ।
 परिवदन (सं० स्त्री०) परि-वद ल्युट् । परिवाद, निन्दा,
 बदगोई ।
 परिवर्ग (मं० पु०) परि-वृज-घञ् । परितो वर्जन,
 सर्वतो भावसे वर्जन ।
 परिवर्ग्य (सं० त्रि०) परिवर्जनीय, त्यागने योग्य ।
 परिवर्जक (मं० त्रि०) परिवर्जयति परिवर्जयिष्यति
 परित्यागकागे, छोड़नेवाला ।
 परिवर्जन (मं० स्त्री०) परिवर्ज्यते परिवर्ज्यते मा पोर्यन्त,
 परि-वृज-णिच्-ल्युट् । १ मारण । भावे ल्युट् । २ परि-
 त्याग । कौन कौन द्रव्य परिवर्जनके योग्य है, तदङ्गा विषय
 कर्मपुराणमें इस प्रकार लिखा है—एकशय्या, एकामन,
 एकपिण्ड, माण्ड, पक्षावमित्युष्ण, याजन, प्रत्युष्ण, योनि,
 सहभोजन, सहाध्याय और सहयाजन इन ग्यारहोंको
 साहचर्य कहते हैं । इनके समोप रहनेसे पाप संश्रामित
 होता है, प्रीति इन में वर्जन करना उचित है ।

जिस देगमें सम्मान, प्रीति, वात्सल्य और किमो प्रकारका विद्यालभ नहीं है, उस देगको छोड़ देना चाहिये। गुरुपुराणमें लिखा है, कि सर्वे ब्राह्मण, प्रयोहा क्षत्रिय, जड्वैश्य और चत्वारसंयुक्त गृध्र वृक्ष ही परिवर्तनीय हैं। कुम्हार्यो, कुम्भित, कुराजा, कुक्षु, कुसोद्वय और कुदेयका परित्याग विधेय है।

परिवर्तनीय (स० त्रि०) परिवर्तन-विधेयः परिवर्तनके योग्य, त्यागने लायक।

परिवर्तित (स० त्रि०) परिवर्तन-विधेयः। परिवर्तित, त्यागा हुआ।

परिवर्त्त (स० पु०) परिवर्त्तनमिति परिवर्त्तनभावः। १ विनिमय, बदला। २ धूमराज। ३ विवर्त्तन-

भाषित, धुमाव, चक्रर। ४ जो बदलेमें लिया या दिया जाय, बदल। ५ युगान्तरकाल, किसी काल या युगका अन्त। ६ दण्डका परिच्छेद, अध्याय, वयोपान। ७

पुराणानुसार अयुकी पुत्र दुस्सहक पुत्रोंमेंसे एक। माक-श्रेयं पुराणमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—

अयुके दुस्सह नामका एक पुत्र था जिसका विवाह कनिकी कन्या निर्माष्टिके साथ हुआ था। निर्माष्टिके

गर्भमें घनेका पुत्र उत्पन्न हुआ जो सबके सब जगद्गणों से। इन पुत्रोंमें परिवर्त्त तीसरा था। यह एक स्त्रीके गर्भको दूसरी स्त्रीके गर्भमें बदल दिया करता था, किसी वाक-

का भी बलाके परिणामसे विद्वत् या भिन्न अर्थ कर दिया करता था। इसीसे इसका परिवर्त्त नाम पड़ा।

इसके उपद्रवसे गर्भको रक्षा करनेके लिये सफेद सरसों और लोह मन्त्रसे इसकी शक्ति की जाती है। इसके पुत्र विद्वत् और विद्वत् भी उपद्रव करके गर्भपात करते हैं। इनके रहनेके स्थान डासग्रीव शिरे, चहार-

दीवारों, खोई और समुद्र हैं। जब गर्भकी स्त्री इनमेंसे किसीके पास पहुँचती है तब ये उसके गर्भमें घुस जाते और फिर बराबर एकसे दूसरे गर्भमें जाया करते

हैं। इसके बार बार जाने जानेसे गर्भ गिर पड़ता है। इसी कारण गर्भावस्थामें स्त्रीको हस्त, पर्वत, प्राचीर,

खोई और समुद्र आदिके पास घूमने फिरनेका निषेध है। (मार्कण्डेयपु० ५१ अ०) परिवर्त्तते परिवर्त्तन-पच्।

परिवर्त्तयुक्त धनादि। ८ विवाहादि कार्यमें आपनका

कन्या पुत्रका पादान-प्रदान। विवाह देखो। १० स्त्रः साधनको एक प्रणाली जो इस प्रकार है—

पारोही—सा ग म रे, रे म प य, ग प ध म, म ध नि प, प नि सा घ, घ सा रे नि, नि रे ग सा। पारोही—

सा ध प नि, नि प सा ध, ध म ग प, प ग रे म, म रे सा ग, ग सा नि रे, रे नि घ सा।

परिवर्त्तक (स० त्रि०) १ घूमनेवाला, फिरनेवाला, चक्रर खानेवाला। २ घुमानेवाला, फिरानेवाला, चक्ररे-

वाला। ३ बदलनेवाला, विनिमय करनेवाला। ४ परिवर्त्तन योग्य, जो बदला जा सके। ५ युगका अन्त करनेवाला। (पु०) ६ अयुकी पुत्र दुस्सहका एक पुत्र।

परिवर्त्त देखो।

परिवर्त्तन (स० वली०) परिवर्त्तन-विधेयः। १ परिवर्त्तन, धुमाव, फेर। २ विनिमय, दो वस्तुओंका परस्पर

बदल, बदल। ३ जो किसी वस्तुके बदलेमें लिया या दिया जाय, बदल। ४ दण्डान्तर, बदलने या बदल जानेकी क्रिया या भाव, तबदीली। ५ किसी काल या युगको समाप्ति।

परिवर्त्तनीय (स० त्रि०) परिवर्त्तन-विधेयः। परिवर्त्तनके योग्य, बदलने लायक।

परिवर्त्तिका (स० स्त्री०) मितगतरोगभेद, उपलक्षकी पोड़ा। इसका लक्षण भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है—

अतिशय मदन, पीड़न वा अभिघात द्वारा व्यानवास्य कुपित हो कर जब मीनृगत चर्मका आश्रय करती है,

तब यतः संछटप्रयुक्त लज्जका चर्म स्कीत होता है और शिथिलका अधःस्थित चर्मकोच पर्यिकीपमें

लक्ष्यमान हो जाता है। कभी कभी बदनकी बाय दाह और पाक उपस्थित होता है। इसी भागानुक्त वातज

रोगको परिवर्त्तिका कहते हैं। यह कफाशुविश्रुतिसे कठिन और कष्टयुक्त हो जाता है।

इसकी चिकित्सा—परिवर्त्तिका रोगमें हृत्को स्रवण करके मांसदि वातान्न प्रश्व दार खेद दे और तीन या पांच रात तक वात्सल्यवादि उपनाहका प्रयोग

करे। मोछे छेसादि चर्मरोगों द्वारा धीरे धीरे चर्मकी यथास्थानमें आवे। शिथिल अथवा भागी पोड़न करके

जब चर्म अच्छी तरह प्रविष्ट हो जाय, तब शिथिलमें

संज्ञा और उपनाह दे कर वांतागमक व्यक्तिविशेष विधेय है। रोगी को स्निग्ध द्रव्य खानेके लिये देवे।

(भावप्र० सूत्रोपनि०)

परिवर्तित (सं० त्रि०) १ जिसका आकार वा रूप बदल गया हो, बदला हुआ। २ जो बदलनेमें मिला हुआ हो।

परिवर्तित (सं० त्रि०) परिवर्तितुं शीलमर्थ्य, शीनार्थे ऋणि। १ परिवर्तनशील, बार बार बदलनेवाला। २ क्षिप्रगति करनेवाला। ३ जो बराबर घूमता रहता हो, जिसका घूमनेका स्वभाव हो। (स्त्री०) ४ विद्युति-भेद।

परिवर्तितो (सं० स्त्री०) भादो युक्तपक्षकी एकादशी।

परिवर्त्ता (हि० वि०) परिवर्त्तन देखो।

परिवर्त्तुल (सं० त्रि०) पूर्ण गोलाकार, खूब गोला।

परिवर्त्तन् (सं० त्रि०) प्रदक्षिणा करता हुआ, जो किसी वस्तुके चारों ओर घूम रहा हो।

परिवर्त्तन (सं० स्त्री०) परिवर्त्तन-व्युत्पत्ति। सम्पत्क-रूपसे हस्तिकरण, संख्या, गुण आदिमें किसी वस्तुकी खूब बदलती होना।

परिवर्त्तित (सं० त्रि०) परिवर्त्तन-विशुद्ध। १ हस्तिक-प्राप्ति, बढ़ाया हुआ। २ बढ़ा हुआ।

परिवर्त्तन् (सं० त्रि०) वर्मावृत्त, वक्त्ररसे ठका हुआ, निरहृषीय।

परिवर्त्त (सं० पु०) परिवर्त्तन-वृत्त। परिवर्त्तन, राजचिह्न आभारहस्तादि, चक्र, हस्त आदि राजत्वकी सूचक वस्तुएँ।

परिवर्त्तय (सं० पु०) परिवर्त्तन-व्यवस्था परिवर्त्तन-व्यवस्था परिवर्त्तयति भय, ग्राम, गाँव।

परिवर्त्त (सं० पु०) परिवर्त्तन-व्यवस्था परिवर्त्तयति भय, ग्राम, गाँव। १ समवायुके अन्तर्गत पञ्च वायु, सात पवनोर्मि-से कर्ण पवन। कहते हैं, कि यह सुवह पवनके ऊपर रहता है और आकाशगंगाकी बहाता तथा शुक्र तारोंकी घुमाता है। २ अग्नि की सात जीर्णोर्मिसे एक।

परिवा (हि० स्त्री०) किसी पक्षकी पक्षी तिथि, पड़िया।

परिवाद (सं० पु०) परिवर्त्तन-व्यवस्था परिवर्त्तयति भय, ग्राम, गाँव। १ अपवाद, निन्दा। २ अनु-

वृत्तिके अनुसार ऐसी निन्दा जिसकी आधारभूत घटना या तथ्य-सत्य न हो, झूठा निन्दा। २ लोहेके तारोंका वह कक्षा जिससे बीणा या सितार बजाया जाता है, मिज-राव।

परिवादक (सं० त्रि०) परिवर्त्तयति परिवर्त्तयन्।

१ परिवर्त्तककर्त्ता, निन्दा करनेवाला। २ बीनकार, बीन बजानेवाला।

परिवादिन् (सं० त्रि०) परिवर्त्तयति परिवर्त्तितुं शील-मर्थ्य वा, परिवर्त्तन-शीलार्थे कर्त्तरि-णिनि। परिवर्त्त-कर्त्ता, निन्दाक।

परिवादिनी (सं० स्त्री०) वह बीन जिसमें सात तार होते हैं।

परिवाप (सं० पु०) परिवर्त्तन-व्यवस्था परिवर्त्तयति भय, ग्राम, गाँव।

१ पर्व ति, वपन। २ जलस्थान। ३ परिच्छेद। ४ मुण्डन।

परिवपिन् (सं० स्त्री०) परिवर्त्तन-व्यवस्था परिवर्त्तयति भय, ग्राम, गाँव। २ परिवप।

परिवापित (सं० त्रि०) परिवर्त्तयति भय, ग्राम, गाँव। १ सुविष्ट। २ परिवपनमें नियोजित।

परिवाप्य (सं० त्रि०) परिवर्त्तयति भय, ग्राम, गाँव।

परिवार (सं० पु०) परिवर्त्तयति भय, ग्राम, गाँव।

१ एक ही कुलमें उत्पन्न और परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रखने-वाले मनुष्योंका समुदाय, परिजनसमूह, कुटुम्ब। २ खज्जकीन, लक्ष्यारकी खोली, निवास। ३ परिच्छेद, कोट्टी टकनेवाली खोज। ४ वे लोग जो किसी राजा या ईश्वरकी सवारीमें उसके पोछे उसे घेरे हुए चलते हैं, परिपद। ५ वे लोग जो अपने भरण पोषणके लिये किसी विशेष व्यक्ति के आश्रित हैं, आश्रितवर्ग। ६ एक स्वभाव या धर्मकी वस्तुओंका समूह, कुल।

परिवारण (सं० स्त्री०) १ परिच्छेद, आवरण। २ कोप, खोल, आन।

परिवारवत् (सं० त्रि०) परिवारो विद्यतेऽस्य मनुष्य-मर्थ्य वा। १ आवरणयुक्त, जिसके आवरण हो। २ परिवारयुक्त, जिसके परिवार हो।

परिवाम (सं० पु०) १ गृह, घर। २ प्रवास, परदेशकी निवास। ३ सुवास, सुगन्ध। ४ गृह प्रत्ययेसे किसी अप-राधो भिक्षुका वाहर किया जाना।

परिवासन (सं० क्तो०) परिवासतेऽनेन परि-वास-ल्युट् ।
१ यस्त्रीयवेदाच्छादनाशुक्ल व्यापारविशेष । २ खण्ड,
टुकड़ा ।

परिवासत् (सं० क्तो०) सामभेद ।

परिवाह (सं० पु०) पर्युञ्जते लृष्ठादिकं येन, परि-वह-
ल्यप् । १ परीवाह, ऐसा प्रवाह या बहाव जिसके कारण
पानी ताप्तताकाव आदिको समाईये अधिश हो जाता
हो । २ जलनिर्गमप्रणाली, फालतू पानी निकलनेका
मार्ग, अनिरिक्त पानीका निकास । ३ सुहागा । ४
राजोपहार योग्य वस्तु, राजाको भेंट देने योग्य वस्तु ।

परिवाहयत् (सं० त्रि०) परिवाह-विध्यऽस्य सतृप्-
सम्बन्ध । प्रवाहयुक्त ।

परिवाहिनृ (सं० त्रि०) प्रवाहशील, उबल या उफल
कर बहनेवाला ।

परिविंयत् (सं० क्तो०) पूर्णविंशति ।

परिविक्रयिन् (सं० लि०) विक्रयमोल, बेचनेवाला ।

परिविचोम (सं० पु०) परि-वि-चुम्भ-ल्यप् । १ सम्पूर्ण
लोभनशील । २ हानिकर ।

परिविष्णु (सं० पु०) परिविद-लृट् । परिविन्, वह मनुष्य
जिसका छोटा भाई उससे पहले अपनी विवाह कर ले

परिवित्तक (सं० क्तो०) परीक्षा प्रश्न ।

परिवित्त (सं० पु०) परिविद-लृट्, न दृश्यः । वह
मनुष्य जिसका छोटा भाई उससे पहले अपनी विवाह
कर ले ।

परिवित्ति (सं० पु०) परिवर्जनं, विन्दति लभते इति परि-
विद-लृट् । विवाहित व्यक्तिका अविवाहित लब्ध
भ्राता ।

परिविद (सं० त्रि०) परिविद-लृट् । १ परितोविद, वह
घोर या सब प्रकारसे विधा दुष्टा । (पु०) २ कुबेर ।

परिविन्दत् (सं० पु०) परिविन्दति परिविन्द-ल्यप् ।
परिविन्ता, वह व्यक्ति जो जेठे भाईसे पहले अपनी विवाह
कर ले ।

परिविन्दत् (सं० पु०) परित्याज्य उन्नेष्टव्यत्परं विन्दति
आन्याधानभार्यादिकं लभते इति परिविद-लृट् । परि-
विन्दनकर्त्ता, बड़े भाईसे पहले विवाह करनेवाला छोटा
भाई । ज्येष्ठका विवाह नहीं होनेसे कनिष्ठका विवाह

नहीं होगा, यही शास्त्रविधि है और सभी धर्मशास्त्रों-
में इस कार्यको निन्दित वतजाया है । किन्तु शास्त्रने
इसका प्रतिपक्ष भी देखनेमें पाता है । इसका विपक्ष
उदाहरतस्त्वेन इस प्रकार लिखा है—

“देगान्तरस्यवतीरे कृत्तव्यमनघोदरान् ।

वेरवामिप्रकपतिनद्यद्रुहशतिरोगिनः ॥

नक्षत्रेष्वप्यनिरुद्धमवापनकुष्ठान् ।

अतिवृष्ट्याभार्यां च कृषिप्रकान् शूराय च ॥

वनवृद्धिप्रसक्तान् कान्तः करिमततः ।

कुलतोन्मत्तकौराश्च परिविन्दन् न दुष्यति ॥”

(उदाहरणस्वरूपमदोषपरिधिः)

ज्येष्ठ सहोदर यदि परदेशमें रहे, (यासम्में देगा-
न्तरका अर्थ ऐसा लिखा है—जहाँको भाया विभिन्न है
घोर गिरि महानदी आदि बीचमें पड़तो है उसे देगान्तर
कहते हैं अथवा दस दिनमें जहाँको चार्ता सुनाई न दे,
उसे भी देगान्तर कहते हैं । कुंक्षतिके मतसे ६० योजन
दूर घोर किसी किसीके मतसे ४० वा १० योजन दूरका
स्थान देगान्तर कहलाता है । शुद्धिचिन्तामणिके मतसे जो
स्थान ४० योजनसे ले कर ६० योजन तक दूर हो, जहाँ-
को भाषामें प्रभेद पड़ता हो तथा गिरि घोर महानदी
आदिका व्यवधान हो, उसे देगान्तर कहते हैं ।*) कौन,
एकदम चार्थात् जिसके केवल एक पक्ष है, अज्ञाप्य,
पतित घोर शत्रुतुल्य (मनुने शूद्रतुल्यका अन्वय ऐसा बत-
लाया है,—जो ब्राह्मण गोरवध, वाणिजिक, यादकुशी-
ल, प्रेष्य एवं चार्थवृत्तिक चार्थात् शूद्र खानेवाला है, उसे
शूद्र कहते हैं ।), पतिरोगी, लड़, मूक, मन्त्र, मर्द,

* देगान्तरपरिभाषायां दृश्यः—

‘वाचो यत्र विमिश्रते गिरिर्वा गवधवृक्षः ।

महानक्षत्रं यत्र दृष्टान्तरदृश्यते ॥

देवानामनदीमेधान् मिच्छेद्यपि मयेव हि ।

तस्य देगान्तरं शोकं स्वयमेव स्वबन्धुषा ।

दशरात्रेण वा चार्थां यत्र न भूत्तवेद्यथा ॥”

(हरस्पतिः)

“देगान्तरं वदन्त्येके शत्रियोजनमायतं ।

पत्वारिंशत्तदन्त्येके त्रिंशदेके तथैव च ॥”

‡ शूद्रतुल्याह मतः—

हृत्, वामन, कुटी, अतिहृत्, भार्याहीन, पर्यात् जो शास्त्रनिषिद्ध भार्यासम्बन्धयुक्त हो, काष्ठकारी शास्त्रका विधान नहीं माननेवाला भार्यात् यथेच्छाचारी, दत्तक और चोर इन सब गुणोंसे युक्त यदि ज्येष्ठ भ्राता हो, तो कनिष्ठ विवाह कर सकता है। इसमें कोई दोष नहीं बतलाया गया है। यदि ज्येष्ठ भ्राता देशान्तरमें हो, तो तीन वर्ष तक उसकी प्रतीक्षा कर विवाह करना उचित है, यही शास्त्रसङ्गत है। फिर कहीं पर लिखा है—

“इदमेव द्व वर्षाणि ज्येष्ठान् धर्मार्थयोगतः।

न्यायः प्रतीक्षितुं भ्राता धूम्रमग्नः पुनः पुनः ॥

सम्मतः किरियो कुप्यो पतितः वलोन एव वा।

राजयक्ष्मायवाधो च न न्यायः इत्यतः प्रतीक्षितं ॥”

(उद्धारतत्त्व)

इस वचनसे जाना जाता है, कि ज्येष्ठ यदि धर्मार्थ के लिये कहीं चला जाय, तो उसके लिये १४ वर्ष तक प्रतीक्षा करे, किन्तु यदि वह सम्मत, पापे, कुप्यो, पतितादि हो, तो उसकी प्रतीक्षा न करनी चाहिये। प्रायश्चित्तविवेकमें लिखा है, कि विद्योपार्जनके लिये यदि परदेश गया हो, तो ब्राह्मण २ वर्ष, क्षत्रिय २ वर्ष, वैश्य ६ वर्ष और शूद्र ४ वर्ष प्रतीक्षा करे। समानाका कहना है, कि ज्येष्ठ यदि विवाह न करे और विवाह करनेकी अनुमति छोटेको दे दे, तो वह विवाह कर सकता है, इसमें दोष नहीं*।

किन्तु प्रायश्चित्तविवेकके मतसे ज्येष्ठ यदि विवाह करनेकी अनुमति भी दे दे, तो भी कनिष्ठ विवाह नहीं कर सकता है। परन्तु जिस ज्येष्ठने विषयविरक्त हो कर योगसमाप्ता अवसन्धन किया है अथवा जो पूर्वजित

“शौर्यशान्तिशान्तिशान्ति तथा काङ्क्षुलीशान्ति।

श्रेष्ठान् वाहूषिकान् विप्रान् शूद्रवाचरेत ॥”

(उद्धारतत्त्व)

* उक्तानां—“ज्येष्ठभ्राता यदा विप्रदायान् नैव कारयेत्।

अनुव्रतस्तु कर्तव्यं शूद्रस्य वचनं यथा ॥

वशिष्ठः—अथनोऽस्य यदाग्निरधिकारं व्रजः कथं।

अथनानुमतः कुर्यादग्निहोत्रं यथा विधि ॥

एवेन विवाहस्यनुसंगानि दोषायेति प्रायश्चित्तविवेकः।”

(उद्धारतत्त्व)

रूपसे पतित हुआ है, वे ही शास्त्रमें कनिष्ठ विवाह कर सकता है।

परिविन्दत् (सं० पु०) परिवेत्ता, परिविंदक।

परिविन्द (सं० पु०) परिविन्दक, दस नः, नकारिण व्यवहारान् न यत्वं। परिवेत्ता, परिविन्दक।

परिविविदान (सं० पु०) बड़े भाईसे पहले विवाह करनेवाला छोटा भाई।

परिविद्ध (सं० लि०) १ परिवृत, घेरा हुआ। २ परोक्ष हुआ।

परिविष्टि (सं० स्त्री०) परिविग्न-विचल। १ परिवर्ण, सेवा, दहस। २ व्याप्ति, घेरा।

परिविष्णु (सं० अव्यय०) विष्णु विष्णु परिवर्त्यग्यो भावः। सर्वतोविष्णु, सभी जगह विष्णु।

परिविहार (सं० पु०) परितो विहार। सम्यक विहार, भूलोभाति विहार।

परिविह्वल (सं० लि०) सम्यक् रूपसे कोभित या उत्तेजित।

परिवी (सं० स्त्री०) परिविन्ध-विप्र-सम्प्रसारणे दीर्घः। १ परिवारित। २ परितःस्थित।

परिवीक्षण (सं० स्त्री०) परितोवीक्षण। १ सर्वतोभावे प्रवक्षीकन, समनिर्णयपूर्वक दर्शन। २ घेरा हुआ, लपेटा हुआ। ३ आच्छादित, ढका हुआ, छिपाया हुआ।

परिवीत (सं० लि०) परिविन्ध-विप्र-सम्प्रसारणे दीर्घः। १ परिवेष्टित, घेरा हुआ, लपेटा हुआ। २ आच्छादित, ढका हुआ, छिपाया हुआ।

परिवृक्षण (सं० स्त्री०) परिवृक्ष-विप्र-सम्प्रसारणे दीर्घः। बहलीकरण।

परिवृत्त (सं० लि०) परितोवृत्ति। १ सर्वतोभावे दीर्घनिविष्टि। २ सर्वतोभावे करि गर्जित। ३ सर्वतोभावे हसिनिविष्टि। ४ सर्वतोभावे ध्वनिनिविष्टि।

परिवृत्त (सं० लि०) परिविन्ध-विप्र-सम्प्रसारणे दीर्घः। १ क्लिप्त, कटा हुआ। (पु०) २ क्लिप्त हस्तपाद, कटा हुआ हाथ पांव।

परिवृत्त (सं० लि०) परिवृत्त ज्ञात। परिवृत्त, छोड़ा हुआ।

परिवृद्ध (सं० लि०) परिविन्ध-विप्र-सम्प्रसारणे दीर्घः। १ हति हति हतोक्त-रिक्त, निपातनात् इकारलोपः, निष्ठा तस्य दत्वच्। अधिव, प्रभु, स्वामी।

परिवृत्त (स० त्रि०) परि सर्वतोभावेन वृत्तः । आवृत, ढका, ढिपाया या चिरा दुषा ।

परिवृत्ति (स० स्त्री०) परि सर्वतोभावेन वृत्तिः । घेष्टन, ढकने, घेरने या ढिपानेशान्ती वस्तु ।

परिवृत्त (स० त्रि०) परिवृत्तः । १ परिवीर्य, ढका, ढिपाया या चिरा दुषा । २ समाप्त ।

परिवृत्तसुख (स० त्रि०) जिसने प्राप्ता सुख दुषाया है ।

परिवृत्ति (स० स्त्री०) परिवर्तन वस्तुते इति परिवृत्त-
तिष्ठ । १ परिवेत्ता । २ घुमाव, चकर, गरदिय । ३ घेष्टन, घेरा । ४ विनिमय, बदला, बदला । ५ समाप्ति, अन्त । ६ एक शब्द या पदको दूसरे ऐसे शब्द या पदसे बदलना जिससे अर्थ बही बना रहे । (पु०) ७ एक पद्यांशद्वारा जिसमें एक वस्तुको दे कर दूसरोके लेने अर्थात् लेन देन या बदल बदलका कथन होता है ।

इस पदद्वाराके दो प्रधान भेद हैं—एक समपरिवृत्ति, दूसरा विषमपरिवृत्ति । पहिलेमें समानगुण या सम्यक्की चौर दूसरेमें असमानगुण या असम्यक्की वस्तुको बदल बदलका वणन होता है । इन दोनोंके दो दो चत्वारभेद होते हैं । समके चत्वारमें एक उत्तम वस्तुका उत्तमसे विनिमय ; दूसरा न्यून वस्तुका न्यूनसे विनिमय है । इसी प्रकार विषमके चत्वारमें उत्तम वस्तुका न्यूनसे चौर न्यूनका उत्तमसे विनिमय होता है ।

इसका उदाहरण इस प्रकार है—

“इदं कटाक्षमेवाक्षी जगद् हृदयं मम ।

मया तु हृदयं इदं वहीतो मदनगणः ॥”

(बाणभट्टकेन)

है हरिषतोचन ! तुमने कटाक्ष द्वारा मेरा मन हरण कर लिया और मैंने भी हृदय द्वारा मदनगण ग्रहण किया है । यहां पर पूर्व चरणमें कटाक्ष द्वारा हृदय ग्रहण और परचरणमें हृदय द्वारा मदनगण ग्रहण किया गया है, इस कारण प्रथमार्थमें समान द्रव्य द्वारा और परार्थमें अलग द्वारा विनिमय हुआ है, अतएव यहां पर परिवृत्ति अलक्ष्य हुआ ।

परिवृत्तिसह (स० त्रि०) परिवृत्ति-परावृत्ति सहने सह-पक्ष । योगिकशब्दभेद ।

परिवृत्त (स० त्रि०) आवृतति, आवृत वृत्ता दुषा ।

परिवृत्ति (स० स्त्री०) परिवर्तन, घुम वृत्ती ।

परिवृत्ति (स० पु०) परिवर्ति शब्दका पाठान्तर ।

परिवृत्त (स० त्रि०) परिवृत्तः । १ सर्वतो भावसे वृत्तिविशिष्ट । २ सर्वतोभावे उद्यमविशिष्ट ।

परिवेत्ता (हि० पु०) वह व्यक्ति जो बड़े भाईसे पहले अपना विवाह कर ले या पणिशोक्त ले ले ।

परिविन्दतु देखो ।

परिवेत्तृ (स० पु०) परिविन्द्य ज्येष्ठ भ्रातरं विन्दति भार्यामन्यादिर्वा नामते विदु-ल्लभ (शुभ, लभ्य) । पा १।१।१११) वह व्यक्ति जो बड़े भाईसे पहले अपना विवाह कर ले ।

परिवेद (स० पु०) परिविद-घञ् । परिव्रान, पूरा ज्ञान ।

परिवेदक (स० पु०) परिविद-ञ्जुन् । परिवेत्ता, परिवेदन कारो ।

परिवेदन (स० स्त्री०) परिविद-ञ्जुत् । १ विवाह । २ अन्त्याधान, पणिशोक्तके लिये पणिशोक्त स्थापना । ३ परिव्रान, पूरा ज्ञान । ४ विवरण, अवयव, घुमना । ५ विद्यमानता, मोजूदगी । ६ शाम, प्राप्ति । ७ भारो दुःख या कष्ट । ८ वादविवाद, बहस ।

परिवेदना (स० स्त्री०) विदग्धता, तीक्ष्णवृत्तिता, चतुराई ।

परिवेदनोया (स० स्त्री०) परिविद-पनीयर्, स्त्रियां टाप् । परिवेदनाही, उस मनुष्यको स्त्री जिसने बड़े भाईसे पहले अपना व्याह कर लिया हो ।

परिवेदिनी (स० स्त्री०) परिवेदोऽस्त्यस्यामिति इति, डोप्, च । परिवेत्ताको स्त्री ।

परिवेश (स० पु०) परिणा विषमोति परिविद्य-घञ् । वेष्टन, परिवि, घेरा ।

परिवेष (स० पु०) परितो विष्यते व्याप्यतेनेन विष-
व्यापने घञ् । १ परिवृत्ति, परिवि, घेरना सङ्कल ।

इसका विषय वस्तुवृत्तिताने हम प्रकार बिना है—

“वृद्धिर्वा रक्षीशोः किरणः पवनं मण्डलीयुगाः ।

जानावर्णिकवस्तुवृत्तं बोधेन परिवेदाः ॥”

(वृहत्सं० १४)

सूर्य या चन्द्रको किरण पतनस्थित हो कर जब वायु द्वारा मण्डलीभूत हो जातो है, तब पोषागम

मानावर्ण पाकृतिविशिष्ट मण्डन बन जाता है, इसीको परिवेष कहते हैं। रत्न, मोक्ष, पाण्डुर, कपोत, धूम्र, शबल, हरिदण्य और शुकवर्ण का परिवेष यथा क्रम इन्द्र, यम, वरुण, निरृति, वायु, महादेव, ब्रह्मा और अग्निसे उत्पन्न माना गया है। धनद कुम्भरका परिवेष कृष्णवर्ण है और परस्पर गुणाश्रय हेतु जो मुहूर्त कुम्भप्रसिद्ध होता है, वह चक्षु फलद परिवेष वायुकृत है। जो परिवेष चापल्य, गिरी, रोष्य, तैल और और जलके समान आभाविशिष्ट, अकान्तसम्भूत, अविकलवृत्त और क्षिप्र है, वह परिवेष सुमित्र और कल्याणकर माना गया है। जो परिवेष गगनानुवारो, अनेक आभाविशिष्ट, रत्नवन्निभ, रक्त और असमप्रकट, शरासन तथा शृङ्गाटक सदृश अवस्थित है, वह पापकर होता है। परिवेष मयूर-दीवासदृश होनेसे अतिवृष्टि, बहुवर्ण होनेसे शृङ्ग-वध, धूम्रवर्ण होनेसे भय, इन्द्रधनु सदृश वा अशोककुसुमसदृशप्रभाविशिष्ट होनेसे युद्ध होगा, ऐसा जानना चाहिये। जिस ऋतुमें परिवेष एक वर्ण योगसे बहुल, शिवाच चूरकी तरह दृश्य भिन्न द्वारा व्याप्त होगा वा सूर्यकिरण पीतवर्ण की होगी, उस समय तत्क्षणात् वृष्टि होगी है। प्रतिदिन प्रहर्निश सूर्य और चन्द्रका परिवेष रक्तवर्ण होनेसे नरन्द्रवध सम्भवा जाता है। फिर जिससे लग्न और दशमराशिमें सूर्य तथा चन्द्र परिविष्ट हों, उसकी भी मृत्यु होती है।

हिमण्डल परिवेष सेनापतिके भयजनक है, किन्तु पाल्य शस्त्रकोपकर नहीं है। हिमण्डल वा तदधिक मण्डलवान् परिवेषमें शस्त्रकोप, युवराजभय और नगररोध हुआ करता है। कोई घर, चन्द्र वा नक्षत्र यदि परिवेष द्वारा निरुद्ध हों, तो तीन दिनमें वृष्टि वा एक मासमें विषय होगा, ऐसा जानना चाहिये। फिर होरा और लग्नाधिपति वा जन्मनक्षत्र का परिवेष होनेसे राजाका वध होता है। अग्नि परिवेष-मण्डलगत होनेसे क्षुद्र धार्य नष्ट करते और स्थावर तथा क्षयकी वृद्धिजनकारो ही कर वातवृष्टि उत्पन्न किया करते हैं। मण्डलके परिवेषगत होनेसे कुमार सेनापति और सेन्याका विद्रव तथा अग्नि और शत्रुजातभय

होता है। वृहस्पतिके परिवेषगत होनेसे पुरोहित, पमात्र और राजाधोको कष्ट होता है। बुधपरिवेषगत होनेसे मन्त्री, स्थावर और लेखकोंको परिवृष्टि तथा सुवृष्टि होती है। शुक परिविष्ट होनेसे क्षत्रिय और राजाधोको कष्ट तथा दुर्मित्र होता है। केतु परिवेषगत होनेसे सुधा, घनघ्न, मृत्यु, राजा और शत्रुका भय रहता है। राहु परिविष्ट होनेसे गर्भभय और व्याधि तथा नृपभय उपस्थित होता है। एक परिवेषके अभ्यन्तर दो घर रहनेसे यह और रवि, चन्द्र तथा अग्नि इन तीन ग्रहोंके परिविष्ट होनेसे सुधा और वृष्टिजनित भय होता है। चार ग्रहोंके परिविष्ट होनेसे पमात्र और पुरोहितके साथ राजाको मृत्यु होती है। पञ्चादि ग्रहोंके परिवेषगत होनेसे जगत् मानो प्रसङ्ग-कालके सौधा हो जाता है। ताराग्रह प्रयात् मङ्गलादि पञ्चग्रह अथवा नक्षत्रगण यदि पृथक् रूपसे परिवेषगत हों अथवा उदित न हों, तो नरन्द्रवध होता है। प्रति-पदादि चतुर्थी पर्यन्त तिथिमें परिवेष होनेसे क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंका विनाश होता है। पञ्चमोक्ष से कर संसारी तकको तिथिमें श्रेणी, पुर और कोपका वध, पट्टमोमें परिवेष होनेसे युवराजका और तत्परिस्थित तोनों तिथिमें परिवेष होनेसे राजा-का हादशोमें पुररोध और त्रयोदशीमें होनेसे शस्त्रसौख्य होता है। चतुर्दशीमें परिवेष होनेसे रामोको, पूर्णिमा और पमावस्थामें होनेसे राजाको कष्ट होता है। परिवेषके अभ्यन्तर यदि रेखा देखी जाय, तो नगरवासियोंकी और परिवेषके बाहर रेखा रहनेसे गमनशील व्यक्ति की कष्ट पड़ता है। ग्रहभुक्ति वा काम विभाग करनेसे जिस देशके भागमें परिवेषका वर्ण रक्त और श्याम होगा, उस देशकी पराजय होती है। शिवाच, शत्रुतर्षण वा दौर्नि-शाली परिवेष जिनके भागमें पतित होते हैं, उनकी जय सम्भवी होती है। (वृहत्संहिता १२ अ०)

२ परिवेषण, परसना या परोसना। ३ परिधि, घेरा। ४ कोई ऐसी वस्तु जो चारों ओरसे घेर कर किसी वस्तु की रक्षा करती हो। ५ शहरपनाहको दोवार, परकोट, कोट।

परिवेषक (सं० पु०) परिवेषतोति-परिवेषण-संज्ञा।

परिवेचकता, परसनेवाला। जो परिवेचण करेजे उन्हें स्नान कर चक्षुमें चन्दन लेप सप्तम वस्त्रमाल्यादि पहनावा चाहिये। जो विप्रभक्तिपरायण, प्रसन्नहृदय, प्रभुभक्त, स्वकार्यकुशल, प्रोढ़, वदाम्य, शक्ति और कुलीन आदि गुणोंसे सम्पन्न है, वे ही राजाके परिवेचक होने योग्य है।

परिवेचण (सं० स्त्री०) परि-विच-णिच् व्युट् । १ वेष्टन-परिधि, घेरा। २ परसना, परोसना। ३ स्वर्ग या चन्द्र आदिके चारों ओरका मण्डल। ४ भोजनार्थ भोजनपात्र-में भजादिका दान, आहमें भजादि विभाग कर देना। इसका विषय मनुने इस प्रकार कहा है—

“वाग्भिश्चाभ्यां च दद्यात् स्वयमनयं वर्धितं”।

विवाहितके पितृ नृप्यायन शनकैरुपनिषेधः ॥”

(मनु १।२४४)

अनूप पात्र स्रयं दोनों हाथमें ले कर परिवेचणके क्रिये पितरोंका स्मरण करते हुए ब्राह्मणोंके समीप रखे। दोनों हाथसे न धारण कर जो अन्न लाया जाता है वा परिवेचण किया जाता है, दुष्टचेता अशुभरूप से उपहरण करते हैं। शास्त्रसाहि व्यञ्जन पयः, दधि घृत और मधु ये सब द्रव्य परिवेचणके पहले पति सावधान हो कर अन्नमयमर्चेंद्रियों पर रखे। विविध प्रकारकी भोग्यवस्तुओं, नामा प्रकारके फलमूल, हृदयघादीमौल और पानीय ये सब ज्ञानमय समाहितमनसे आह-मिम-न्वित ब्राह्मणके समीप रख कर बहुत सावधानीसे उन्हें परिवेचण करने होते हैं। परिवेचणके समय परिवेच-माण भोग्यद्रव्यका गुण-हीन सन करना होता है। उस समय अशुभपात करना तथा अवल-बोलना मितकुल निषेध है। (मनु १।२४-२३०) आहकाचमें किस प्रकार ब्राह्मणकी परिवेचण करना होता है, इसका विषय आहृतत्वमें विरोधरूपसे लिखा है, विस्तार हो जानेके भयसे यहाँ अधिक नहीं दिया गया। परिवेचणके समय अन्नपात्र संस्थापित करे, पीछे उस अन्नको दूधरे पात्रमें रख कर दोनों हाथसे परिवेचण करना अवहित है। भेदित ब्राह्मण केवल दाहिने हाथसे परिवेचण करना वतनाते है, पर यह युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि शास्त्रमें लिखा है, कि एक हाथसे दिया हुआ अन्न और

शुद्धका अन्न खाना नहीं चाहिये। अग्रिष्ठवचनमें भी लिखा है, कि एक हाथसे दत्त स्त्रोह पदार्थ, अन्न और व्यञ्जनादि प्रदत्त होनेसे भोक्ता केवल पापमात्र भोजन करते है, अतएव एक हाथसे परिवेचण नहीं करना चाहिये।

परिवेचणवत् (सं० त्रि०) परिवेचः विद्यतेऽस्य परिवेच-रूपेण मस्य च। १ परिवेचयुक्त, परिवेष्टित। २ परि-मण्डलयुक्त।

परिवेचिन् (सं० त्रि०) परिवेचोऽप्यस्य इति। परिवेच-विशिष्ट, परिवेष्ट।

परिवेचिका (सं० स्त्री०) परिवेचति या परि-विच-यत्, क्रियां टाप, अत इत्थं च। परिवेचणकर्ता, परिवेचणकारी स्त्री। इसका लक्षण इस प्रकार है—

“रनाता विष्टद्वयवना नवधूपितांथी
कपूर्वोरभमुषी वचनाभिरावा।

विभावा गिरधि वदसुगन्धिपुष्पा

मन्दस्निता उतिष्ठतां परिवेचिका इत्यात् ॥” (पाकराजेश्वर)

परिवेचिका जो स्नान कर विशुद्ध वस्त्र पहने और वे नवधूपिताङ्गो हों, उनके मुखसे कपूर्वकी सुगन्ध निकलती रहे, वे नयनाभिरावा हों, उनके अधर बिम्ब-फलके सहज हों, मस्तकसुगन्धित पुष्पोंसे आच्छादित रहे और वे ईदपुष्पास्यमुखी हों।

परिवेष्टन (सं० स्त्री०) परि-वेष्ट-ल्युट् । १ चारों ओरसे वेष्टन या घेरना। २ आच्छादन, छिपाने, ढकने या लपेटनेवाली चीज। ३ परिधि, घेरा, दायरा।

परिवेष्टा (वि० पु०) परिवेचक, परसनेवाला।

परिवेष्टित (सं० त्रि०) परि-वेष्ट-ल्युट् । चारों ओरसे वेष्टित या घिरा हुआ। पर्याय—परिच्छिन्न, ललित, निवृत्त, परिच्छिन्न, परोत।

परिवेष्टु (सं० त्रि०) परि-हृय-ल्यट् । परिवेचणकारी, परसनेवाला।

परिवेष्ट्य (सं० त्रि०) परि-विच-कर्मणि-तश्च । परि-वेचणयोग्य, परसने लायक।

परिवेष्टिज (सं० त्रि०) परि-वेष्ट-ल्युट् । परिवेष्टक, परिवेष्टनकारी।

परिवेष्टक (सं० त्रि०) सम्यक् रूपसे प्रकाशित, स्वच्छ या प्रकट।

परिशय (सं० पु०) १ सम्यक्स्थय । २ दान । ३ पण्डित्य ।

परिव्यय (सं० स्त्री०) पाच्छादन करना, ठकना ।

परिव्ययणीय (सं० त्रि०) पुनरावृत्तियोग्य ।

परिव्याघ (सं० पु०) परिसर्वात्मना के विध्यतोति परि-
व्याघः । (श्याद्व्यभेति । पा० ३।१।१२) १ पशुवैतल,
जलवैतल । २ द्रुमोत्पल, कनेर । ३ ऋषिभेद, एक ऋषि-
का नाम । (वि०) ४ चारों ओर से घेरेनकारक, चारों
ओर से घेरेने या छेदेनेवाला ।

परिव्रज्य (सं० त्रि०) परिभ्रमणयोग्य ।

परिव्रज्या (सं० स्त्री०) परिव्रज्यभावेऽप्यपि स्थिता टाप ।
१ तपस्या । २ इतस्तदा भ्रमण, दूर दूर घूमना । ३
भिच्छूकको भांगि जीवन बिताता, लोके लोके चलो-आदि
धारण करना और सदा भ्रमण करते रहना ।

परिव्रजिमन (सं० पु०) परिव्रज्य-वृद्धादित्वादिमनिषः ।
आधिपत्य ।

परिव्राज् (सं० पु०) परिवर्तनीयतादिर्ब्रजति परिव्रज-
तिप टोचं । १ भिक्षु, यति, संन्यासी । पुत्रदारादि तथा
सभी कर्मोंका परित्याग कर जो दूसरे आश्रमको ग्रहण
करते हैं उन्हें परिव्राज् कहते हैं ।

गर्ह्यपुराणमें लिखा है कि जिन्होंने सब आश्रमोंका
परित्याग किया है, जो निःपरिव्राज्, सभी जीवोंके प्रति
द्रोहशून्य, सब दुःखमें समान, पाप्म और पशुपतार
शोधसम्पन्न, जितेन्द्रिय, ध्यान और धारणाशाल तथा भाव-
विमुक्त हैं, वे ही परिव्राजक कहलाते हैं । २ वह संन्यासी
जो सदा भ्रमण करता रहे ।

परिव्राज (सं० पु०) परिव्रज्य सर्वान् विषययोगान्
वृद्धाभ्यासात् ब्रजतीति परिव्रज-संज्ञायां कर्त्तरि चञ्ज ।
परिव्राजक, भिक्षु ।

परिव्राजक (सं० पु०) परिव्राज-स्वाधे कन्, परिव्रजतीति
परिव्रज-ण्युल् वा परिव्राट् । जो सब प्रकारके विषय-
भागोंका परित्याग कर परिभ्रमण किया करते हैं; उन्हें
परिव्राजक कहते हैं । पर्याय—चतुर्थाश्रमी, भिक्षु,
कर्मव्यो, पाराशरी, मल्लरी, संन्यासी, यमण, परिव्राज्,
पराशरी, ब्रजक ।

परिव्राजि (सं० स्त्री०) परिव्रज-विध-इन् । आधिप-
त्य, गौरवसुष्ठो ।

परिव्राजो (सं० स्त्री०) परिमार्जि देवो ।

परिव्राट् (सं० पु०) १ परिव्राज, परिव्राजक ।

परिव्राह्मणीय (सं० त्रि०) परिव्राह्मते इति परि-व्राह्म-
यत् । सर्वतोभावसे ब्रह्माविषय, अत्यन्त ब्रह्मसे योग्य ।
परिव्राह्मिन् (सं० त्रि०) परिव्राह्म-पत्यर्थ इति । अत्यन्त
ब्रह्मायुक्त, जिसमें बहुत संदेह हो ।

परिव्यप (सं० पु०) १ अभिसम्प्राप्त, अभिगम्य । २ तिर-
स्कार ।

परिमित (सं० त्रि०) १ निर्धारित । २ दूरीभूत ।

परिग्राह्यन (सं० त्रि०) जो सदा एक-सा रहे ।

परिग्रिष्ट (सं० स्त्री०) परितः ग्रिष्टः, ग्रिष्ट-ज्ञा । १ परिग्र-
विग्रिष्ट, पुस्तक या लिखना वह अंग जिसमें ऐसी बातें
लिखी गई हों जो यथास्थान देनेसे छूट गई हों और
जिनके देनेसे पुस्तकके विषयको पूर्ति होती हो । जैसे,
कण्ठोपरिग्रिष्ट, शृङ्गारिग्रिष्ट आदि । २ किसी
पुस्तकका वह अतिरिक्त अंग जिसमें कुछ ऐसी बातें दी
गई हों जिनसे उसकी उपयोगिता या महत्त्व बढ़ता हो;
जैसे मोना । (त्रि०) ३ पर्वग्रिष्ट, छूटा हुआ; नचा हुआ ।

परिगोचरन (सं० स्त्री०) परि-गोच-क्युट् । १ अतिव्यय शत-
शोभनचर्या, सब बातों या अंगोंको सोच समझ कर
पढ़ना । २ स्पर्श, लग जाना या छू जाना । ३ आधिष्ठान ।
परिशुद्ध (सं० त्रि०) सर्वतोभावसे शुद्ध, परिष्कृत ।
परिशुद्धि (सं० स्त्री०) १ निर्मलता; शुद्धि । २
दोषवण्डन, छुटकारा, रिहाई । ३ पोषेविमुक्त, पापसे
छुटकर ।

परिशुद्ध्या (सं० स्त्री०) सर्वतोभावे शुद्ध्या, सम्यक्-
रोतिसे विद्या, टहल ।

परिशुक्त (सं० स्त्री०) परि-शु-क्युल्-क्युल्-क्युल्-क्युल्-क्युल्-
व्यञ्जनभेदः, तत्रा दुषा मांस । पहले मांसको अच्छी
तरह चीमें भून कर पीके जलमें सिद्ध करे । बाद उसमें
जीरा आदि डाल दे, इसीको परिशुक्त कहते हैं ।
(त्रि०) २ सर्वतोनीरम, विलकुल सूखा हुआ, अत्यन्त
रसहीन ।

परिशून्य (सं० त्रि०) सम्यक् प्रकारसे शून्य या विरहित ।

परिश्रुत (सं० स्त्री०) सुरा, मेघ ।

परिशिव (सं० पु०) परि-शिव-वञ्जः । १ समोति,

भक्त । २ परिशिष्ट । ३ जो कुछ बच रहा हो ।
 (ति०) ४ अवशिष्ट, बाकी बचा हुआ ।
 परिशेष (स० स्त्री) परि-शेष-व्युट् । परिशेष, वह जो
 बाकी बच रहा हो ।
 परिशोध (स० पु०) परि-शुध भावे घञ् । १ पूर्ण-
 शुद्धि, पूर्ण सफाई । २ ऋणशोध, ऋणकी सेवाको ।
 परिशोधन (स० स्त्री०) परि-शुध-ल्युट् । १ परिशोध,
 पूर्ण शोधित शुद्धि करना, अंग प्रत्यंगको सफाई
 करना । २ ऋणका दाम दाम दे डालना, कर्जको
 सेवाको ।
 परिशोप (स० पु०) परि-शुप-भावे घञ् । सर्वतोभावे
 श्रुता, पूरी सफाई ।
 परिशोषण (स० स्त्री०) परि-शुष-ल्युट् । परिशोष, स्रव
 प्रसारने श्रुता ।
 परिशोषिन् (स० स्त्री०) परि-शुष-णिनि । परिशोषयुक्त,
 परिशोषविशिष्ट ।
 परिश्रम (स० पु०) परि-श्रम घञ्, न वृद्धिः । १ परि-
 श्रान्ति, श्रमावृत्त, मादगो । पशय—श्रम, क्लम, वसेश,
 प्रयास, श्रमाय, व्यायाम । २ श्रम, मेहनत, मजदूरी ।
 परिश्रमापन्न (स० स्त्री०) परिश्रम अपवर्त्तति इति
 परिश्रम-अप-इण्ड । परिश्रम अपनोदनकारो (बाधु,
 लल प्रभृति) ।
 परिश्रमो (स० स्त्री०) श्रमो, श्रमशील, मेहनती ।
 परिश्रय (स० पु०) परि-श्रि-घञ्, (परना । पा १।३।
 ५६) १ सहा, परिपद । भावे घञ् । २ श्रायय,
 श्लाघान, पनाहना जगह । ३ श्रेय, सेवा ।
 परिश्रयण (स० स्त्री०) परि-श्रि-ल्युट् । श्रेय, सेवा ।
 परिश्रान्त (स० स्त्री०) परि-श्रम कर्त्तरि क्त । सर्वतो-
 भावे श्रान्तियुक्त, बहुत श्रमा हुआ ।
 परिश्रान्ति (स० स्त्री०) परि-श्रम-भावे क्तिन् । श्रान्ति,
 श्रमावृत्त, मादगो ।
 परिश्राम (स० पु०) श्रान्ति, श्रमावृत्त ।
 परिश्रित् (स० स्त्री०) परि-श्रि-क्तिप् तुगागमय । १
 श्रमपापण । २ श्रमश्रेष्ठक सममध्यम पापणखण्ड,
 यक्ष्म काम शानिवाला पदरका एक विविष्ट टुकड़ा ।
 परिशत (स० स्त्री०) परि-शत । १ सर्वतोभावे

श्रवणविशिष्ट, जिसके विषयमें यथेष्ट सुना या जाना जा
 सका हो, प्रसिद्ध, मशहूर । (पु०) २ कुमाराद्युत्तरभेद ।
 परिश्रित (स० स्त्री०) परि-श्रि-पठ । शान्तिहित ।
 परिश्रय (स० पु०) परि-श्रि-भावे घञ् । शान्तिप,
 शान्तिजन, गले मिलना ।
 परिश्रय (स० स्त्री०) श्रान्तिवादिता अंगभेद ।
 परिश्रयवारिक (स० पु०) श्रय, नोकर ।
 परिपक्ष (स० स्त्री०) परिपक्षदेवो ।
 परिपक्ष (स० स्त्री०) परिपक्षो भावः, 'द्वैततो भावे'
 इति त्व । परिपक्षका धर्म या भाव ।
 परिपक्ष (स० स्त्री०) परितः सीदन्त्यस्या, परि-पक्ष
 पक्षकारणे क्षिप्र, (सदिरप्रेतः । पा ८।१।५६) इति प्रथमः ।
 १ प्राचीन शास्त्रकी विद्वान् ब्राह्मणोंको सभा ।
 "इत्याहं यं परिपक्षं धर्मं परिकल्पयेत् ।
 अथवा बापि हस्तस्यासं धर्मं न विनालयेत् ॥
 त्रिविधा हेतुकस्तर्की मेवतो धर्मवदहः ।
 नवराधाभिमनः पूर्वं परिपक्षं स्यात् दशावरा ॥"
 (मनु १।१।११-१११)
 दूसरा अवस्था तीनमें स्थूल न हो, ऐसी प्रतिष्ठित
 धर्म ब्राह्मणोंको सभाको परिपक्ष कहते हैं । इस परि-
 पक्षमें जो धर्म निरूपित होगा, वह सभीके गिरोधाप
 है, इसे कोई भी सहन नहीं कर सकता । तीन वेदके
 पद्धति, अनुमान, तार्किक, पदार्थनिष्ठिदृष्टान्त
 और मानवादि धर्मशास्त्र जिनमें पढ़ा है, ऐसी कर्ममें
 कम दण्ड ब्राह्मणारी, गृहस्थ या श्रमणसे ले कर परि-
 पक्ष करे । धर्मनिर्णयके विषयमें जो परिपक्ष बैठेगा
 वह ऋक्ष यज्ञः सामवेदके ज्ञाननेवाली कर्मसे कम
 तीन ब्राह्मण ले कर को जायगा । वे तीनों जो कुछ
 निर्णय कर देंगे, उसीके अनुसार सबको चलना पड़ेगा ।
 जिनके कोई बात नहीं है, वे व्याख्यान नहीं है, जो
 जातिमात्रके ब्राह्मण हैं, ऐसे ब्राह्मणोंकी स्थिति होने पर भी
 उन्हें ले कर परिपक्ष नहीं बैठेगा कोई चाहिये । ये लोग जो
 कुछ उपदेश देंगे वह ग्रहणीय नहीं है । पर हमें
 विमानस्थानके पटल अध्यायमें लिखा है, कि परिपक्ष
 दो प्रकारको है,—प्राग्गतो परिपक्ष और मृदपरिपक्ष ।
 आचारणतः परिपक्ष तीन प्रकारकी बातलाई गई है—

सुहृद्-परिपद, सदासीन-परिपद और प्रतिनिविष्ट-परिपद । प्रतिनिविष्ट-परिपद ज्ञान, विज्ञान, वचन, प्रतिवचन और शक्तिस्मय्य-होना उचित है, सुहृद्-परिपदमें किसीके भी साथ जल्पना-करना विधेय नहीं है । २ सभा, सजलिस । ३ समूह, समाज, भौड़ ।
 परिपद (स० पु०) परितः सीदतीति परि-सद-यच् । १ सदस्य, समासद । २ सचारी या जुलूसमें चलने-वाले के अनुचर जो स्वामीको घेर कर चलते हैं, परिपद । ३ सुमाहव, दरबारी ।
 परिपद्य (स० पु०) परिपदमहतीति परिपद-यत् । १ समाह, सदस्य । २ प्रेक्षक, दृशक । ३ पर्याप्त ।
 परिपद्यन् (स० त्रि०) चारों ओरसे चलनेमान परिचारक ।
 परिपद्यल (स० त्रि०) परिपदस्यास्त्योति परिपद-यलच् (रजःकृपाश्रुतिपरिपदो यलच् । पा ३।२।१११) समासद, सदस्य ।
 परिपित्त (स० त्रि०) १ सिञ्चित, जो कौंचा गया हो । २ जिस पर छिड़काव किया गया हो ।
 परिपोषण (स० क्ता०) परि-सिच-भावे ल्युट् । पत्नं ततो दीचंच, निपातनात् सिञ्च । १ शय्यीकरण, गोंद देना । २ मोना ।
 परिपूति (स० स्त्री०) परि-पू प्रेरणे ल्तिन् । ततः पत्नं । प्रेरण, चारों ओर भोजना ।
 परिपेक्ष (स० पु०) परि-सिच-वञ्ज, ततः पत्नं । परि-सिचन, सिंचाई । २ छिड़काव । ३ स्नान ।
 परिपेक्षक (स० पु०) परि-सिच-खुल, ततः पत्नं । १ क्षेपणकारी, सौंचनेवाला । २ छिड़कनेवाला ।
 परिपोड्य (स० त्रि०) जो सोलह सख्यामें पूरा होता है ।
 परिष्कण (स० त्रि०) परि-स्कन्द-क, दस्य तस्य च नः (परेत् । पा ४।३।०४) इति पठ्येणत्वं । १ परिष्कन्द, दूसरेसे पाला हुआ । २ परिपुष्ट, मोटा ताजा । (पु०) ३ मृत्वविशेष । ४ दत्तक पुत्र । ५ परपुष्ट व्यक्ति ।
 परिष्कन्द (स० पु०) वृक्ष सतीति जिसको उसके माता पिताके अतिरिक्त किसी औरने पाला पोसा हो ।
 परिष्कार (स० पु०) परि-क-भावे माडुलकात् षप्, सुट्-पत्नं । रथको रखाई ।

परिष्कार (स० पु०) परिष्कृत्यनेन परि-क-वञ्ज, ततः सुट् (वग्नरिभ्यो करोती भूषण । पा ६।१।१३०) परिनिवीति । पा ८।३।००) इति पत्नं । १ बलहार, भूषण । २ संस्कार, शुद्धि, ओघन । ३ शोभा । ४ सज्जितकरण, सजावट । ५ निर्मलोकरण, स्वच्छता, निर्मलता । ६ संयम ।
 परिष्कारण (स० पु०) १ वह जो पाला पोसा गया हो । २ दत्तक पुत्र ।
 परिष्क्रिया (स० स्त्री०) परि-कृग, सुट्, स्त्रियां टाप् । १ परिष्कारकरण, शुद्ध करना । २ मांजना, धोना । ३ संस्कार, सज्जना ।
 परिष्कृत (स० त्रि०) परिष्क्रियते स्म इति परि-कृ-क, सुट्, ततः पत्नं । १ भूषित, सजाया हुआ । २ वेष्टित, घिरा हुआ । ३ शुद्ध किया हुआ, साफ किया हुआ ।
 परिष्कृतभूमि (स० स्त्री०) परिष्कृता यज्ञाय पशुवन्धनाय यज्ञपात्रासादनाय चाहितसंस्कारा भूमिः । वेदि, विशुद्धभूमि ।
 परिष्टवन (स० पु०) सम्यक् प्रकारसे स्तुति करना, खूब तारोफ करना ।
 परिष्टवनीय (स० त्रि०) परिष्टवन ।
 परिष्टि (स० स्त्री०) परि-ष्टप-ल्लिन्, शकन्वाशित्वात् परकृपत्वं । सर्वतः खन्वेषण, चारों ओर खोजना ।
 परिष्टुति (स० स्त्री०) परि-स्तु-ल्लिन्, ततः पत्नं यात् परस्य तस्य च ट । स्तुति, स्तव, प्रशंसा, तारीफ ।
 परिष्टुम् (स० त्रि०) परि-स्तु-ल्लिप् । धनञ्ज ।
 परिष्टोम (स० पु०) स्तुतियुक्त सामभेद, एक प्रकारका स्तुतियुक्त साम गान ।
 परिष्टोम (स० पु०) परितः स्तुयते नानावर्णवत्वादिति, स्तु-मन् ततः पत्नं केचित् पुंसेः स्तोति प्रति अनुपसर्गत्वात् न यः इत्युच्चा परिस्तोम इति कल्पयन्ति । गजष्टुष्टस्थित चित्रकम्बन, वह कपड़ा जिसे हाथी, पादिकी-पोट पर जीभोंके बिये डाल देते हैं, भ्रूज ।
 परिष्टन (स० स्त्री०) परितः स्थलं (विक्रमसि परिस्थः स्थलं । पा ४।३।०६) इति पत्नं । चारों ओरका स्थल ।
 परिष्ठा (स० स्त्री०) परि-स्था-क्रिप्, पत्नं । परिस्थेन करके स्थित ।
 परिस्थन्द (स० पु०) परि-स्थन्द-घञ्, ततः पत्नं । १ नदी, दरिया । २ प्रवाह, धारा । ३ दौप, टापू ।

परिचयनिर्देश (सं० त्रि०) परिचयन्द् अन्वये इति । प्रवाह-
माण, बहता हुआ ।

परिचयत् (सं० त्रि०) चालिङ्गित, जिसका चालिङ्गन किया
गया हो ।

परिचयत् (सं० पु०) परि-स्वञ्ज-घञ् । (परिनिवीति । पा
२।३।७०) पत्वं । चालिङ्गन, गले मिलाया ।

परिचयज्ञान (सं० त्रि०) परिचयजमान ।

परिचयज्य (सं० त्रि०) चालिङ्गनयोग्य ।

परिचयज्ञान (सं० लो०) परि-स्वञ्ज-घञ् । ततः पत्वं
चालिङ्गन, गलेसे लगना ।

परिचयज्ञान (सं० पु० क्तो०) गृह्यादिभिः व्यवहार्य
तैलमर्मेद ।

परिचयज्ञोयस (सं० त्रि०) दृढ़ चालिङ्गनवह ।

परिचयङ्कित (सं० क्तो०) इतस्ततः लम्प्यमान, इधर
उधर चलायना कूटना ।

परिचय्या (सं० क्तो०) परि-सम्-ख्या-घञ् । १ परि-
गणना, गिनती । २ काव्यालङ्कारविशेष, एक अर्धा-
लङ्कार जिसमें पूछो या बिना पूछो हुई बात सचोके सहज
दूसरी बातको व्यर्थ या वाक्यसे वर्जित करनेके अभि-
प्रायके कहो जाय । यह कहो हुई बात और प्रमाणसे
मिथ विख्यात होती है । यह शब्द और अर्थके भेदसे दो
प्रकारकी होती है ।

उदाहरण—

“किं भूयन् सुदृढमत्र यमो न शनः”

किं कार्यमात्रं चरितं सुदृढं न दोषः ।

किं चक्षुरप्रतिहतं धिपणान न नेत्रं

जानाति कस्यदपराः सुदृढद्विनेकं ॥”

सुदृढ़ भूषण क्या है ? यम, रत्न नहीं । कार्य क्या
है ? भाव्यं चरित, दोष नहीं । अप्रतिहत चक्षु क्या है ?
धिपणा (बुद्धि), नेत्र नहीं । एतन्निम दूसरा कौन मनुष्य
सदसद्विवेक जानता है, यहां पर प्रत्यपूर्वक व्यवच्छेद
किया गया है, अर्थात् सुदृढ़ भूषण क्या है ? इस प्रश्नमें
एक सुदृढ़ भूषण नहीं है, यम हो सुदृढ़भूषण रत्न है,
तत्सहज अर्थात् रत्न सहज यम द्वारा रत्न व्यवच्छेद्य हुआ
है, इसीमें यहां पर परिचय्या अलङ्कार हुआ । अन्य
अर्थमें भी इसी प्रकार जानना आदिह्ये ।

यहां पर रत्नादिका यमादि शब्द द्वारा व्यवच्छेद
हुआ है, इस कारण यह शब्द है । प्रत्यपूर्वक अर्थद्वारा
व्यवच्छेदका उदाहरण—

“किमाराध्यं सदा पुण्यं बन्धं सेव्यं सरागमः ।

ओ ज्येष्ठो भगवान् विष्णुः किं काम्यं पदम् पदं ॥”

सदा आराध्य क्या है ? पुण्य, सेवनीय क्या है ?
आगम, ज्येष्ठ कौन है ? भगवान् विष्णु, प्रायं नोय क्या
है ? परमपद । यहां पर आराध्य क्या है, तो पुण्य, पाप
आराध्य नहीं है, यद्यो प्रतीत होता है, इनोसे यहां
अर्थवशतः पापादिका व्यवच्छेद होनेके कारण अर्थ
परिसंख्या अलङ्कार हुआ ।

अप्रत्यपूर्वक उदाहरण—

“नकिमेव न विभवे न्यसनं वास्त्रे ॥ युवतिकापार्श्वे ।

चिन्ता ययसि न वपुषि प्रायः परिदृश्यते महतां ॥”

महत् अश्लेषीको भक्ति ईश्वरमें है, विभवेमें नहीं;
आसक्ति आसनेमें है, युवतिकामार्श्वमें नहीं, चिन्ता
ययमें है, शरीरमें नहीं; प्रायः यद्यो देखा जाता है । यहां
पर प्रत्यपूर्वक नहीं है अथवा विभवादि शब्दका व्यव-
च्छेद हुआ है, इस कारण यहां परिचय्या अलङ्कार
हुआ । (सं० १० पं) ३ विधिभेद ।

परिसंख्यात (सं० त्रि०) परि-संख्या-क्त । परिगणित,
गिना हुआ ।

परिसंख्यान (सं० लो०) परि-संख्या-घञ् । परि-
गणन, गिनती ।

परिसंघुष्ट (सं० त्रि०) चारों ओर शब्दाग्रमान ।

परिसंघट्ट (सं० त्रि०) परित्याग योग्य, छोड़ने या
त्यागने लायक ।

परिसंघसर (सं० अश्व०) ऊर्ध्वं संघसरत् अश्वयो-
भावः । वत्सरके ऊर्ध्वं, एक वर्षके बाद ।

परिसंख्य (सं० त्रि०) पूर्ण संख्यातायुक्त ।

परिसंखर (सं० पु०) अटिकालादूर्ध्वं संचरति परि-सम्-
खर अच् । अटिप्रलयकाल ।

परिसन्तान (सं० पु०) परि-सम्-सन-घञ् । तन्नी,
तार ।

परिसंभ्य (सं० पु०) सभायां माधुः यत् । संभ्य, सभासद ।

परिसमन्त (सं० पु०) किमो वृत्तके चारों ओरकी सीमा ।

सुहृद्-परिपद, शदासीन-परिपद और प्रतिनिविष्ट-परिपद । प्रतिनिविष्ट-परिपद ज्ञान, विज्ञान, वचन, प्रतिवचन और शक्तिसम्पन्न होना उचित है, सुहृद्-परिपदमें किसीके भी साथ जल्पना करना विधेय नहीं है । २ सभा, सभाजिस । ३ समुद्र, संभाज, भीड़ ।
 परिपद (सं० पु०) परितः सीदतीति परि-सद-पच् । १ सदस्य, सभासद । २ सवारो या क्षुल्लसमे चन्ने-वाले वे अनुचर जो स्वामीको घेर कर चलते हैं, परिपद । ३ सुमाह्व, दरबारी ।
 परिपद्य (सं० पु०) परिपदमर्हतीति परिपद्य-यत् । १ समाह, सदस्य । २ प्रेक्षक, दर्शक । ३ पर्याप्त ।
 परिपहन् (सं० त्रि०) चारों ओरसे वक्तृमान परिचारक ।
 परिपहल (सं० त्रि०) परिपदस्याप्तीति परिपद-पहलच् । (१) कृष्णपुतिपरिपदो वलच् । पा ५।२।१११ सभासद, सदस्य ।
 परिपिक्त (सं० त्रि०) १ मिश्रित, जो मींचा गया हो । २ जिस पर छिड़काव किया गया हो ।
 परिपोषण (सं० क्ति०) परि-सिच-भावे लुट् । पर्व-ततो दीर्घच्, निपातनात् सिद्ध । १ पश्वोत्करण, गांठ देना । २ मोना ।
 परिपूति (सं० स्त्री०) परि-सु-प्रेरये-तिन् । ततः पत्व । प्रेरण, चारों ओर भेजना ।
 परिपेक्त (सं० पु०) परि-सिच-घञ्, ततः पत्व । परि-सिचन, सिंचाई । २ छिड़काव । ३ स्नान ।
 परिपेक्षक (सं० पु०) परि-सिच-ण्वल्, ततः पत्व । १ क्षेपणकारी, चींचनेवाला । २ छिड़कनेवाला ।
 परिपोषण (सं० त्रि०) जो सोलह सख्यामें पूरा होता है ।
 परिप्लव (सं० त्रि०) परि-प्लव-क, दस्य तस्य च-ना (१२२७) पा ५।३।७४ इति पत्वण्वत् । १ परिप्लव, दूसरेसे पाला हुआ । २ परिप्लव, मोटा ताजा । (पु०) ३ सुलक्षिण । ४ दत्तक-पुत्र । ५ परपुष्ट व्यक्ति ।
 परिप्लव (सं० पु०) बद्ध मति जिसको उसके माता पिताके अतिरिक्त किसी औरने पाला पोसा हो ।
 परिप्लव (सं० पु०) परि-प्लव-भावे बाहुलकात् षण्, सुट्-पत्व । रथको रेंवादि ।

परिप्लव (सं० पु०) परिप्लवतः जैन परि-प्लव-पञ्च, ततः सुट् (सम्प्रसार्य) करोती भूषण । पा ६।१।१३० परिनिवीति । पा ८।३।०० इति पत्व । १ भस्महार, भूषण । २ संस्कार, श्रद्धा, शोधन । ३ शोभा । ४ संज्ञितकरण, सजावट । ५ निर्मलोकरण, स्वच्छता, निर्मलता । ६ संयम ।
 परिप्लव (सं० पु०) १ वह जो पाला पोसा गया हो । २ दत्तक पुत्र ।
 परिप्लव (सं० स्त्री०) परि-प्लव-श, सुट्, स्त्रियां टाप् । १ परिप्लवकरण, श्रद्धा करना । २ मोजना, धोना । ३ संस्कार, सजाना ।
 परिप्लव (सं० त्रि०) परिप्लवति स्त्र इति परि-प्लव-श, सुट्, ततः पत्व । १ भूषित, सजाया हुआ । २ वेष्टित, घिरा हुआ । ३ श्रद्धा किया हुआ, नाफ किया हुआ ।
 परिप्लवभूमि (सं० स्त्री०) परिप्लवता यज्ञाय पशुवन्-नाय यज्ञपात्राभादनाय चाहितसंस्कारा भूमिः । वैदि, विशुद्धभूमि ।
 परिप्लव (सं० पु०) सम्यक् प्रकारसे स्तुति करना, खूब तारोफ करना ।
 परिप्लवनीय (सं० त्रि०) परिप्लव ।
 परिप्लव (सं० स्त्री०) परि-प्लव-तिन्, शकम्बादित्वात् परकृपत्व । सर्वतः भवेयण, चारों ओर खोजना ।
 परिप्लव (सं० स्त्री०) परि-प्लव-तिन्, ततः पत्व यात् परस्य तस्य च ट । स्तुति, स्तव, प्रशंसा, तारीफ ।
 परिप्लव (सं० त्रि०) परि-प्लव-तिन्, धनञ्ज ।
 परिप्लव (सं० पु०) स्तुतियुक्त सामभेद, एक प्रकारका स्तुतियुक्त साम गान ।
 परिप्लव (सं० पु०) परितः स्तुयति नामावर्णवत्वा-दिति, स्तु-भन् ततः पत्व केचित् परे स्तोति प्रति अनुपसर्गत्वात् न यः इत्युक्ता परिप्लव इति कल्पयन्ति । गजवृष्टस्थित चित्रकम्बन, वह कपड़ा जिसे हाथी चादिको घोट पर जीभाके लिये डाल देते हैं, भ्रूण ।
 परिप्लव (सं० स्त्री०) परितः स्थल (विदुषामि परिप्लव-स्थलं) पा ८।३।०६ इति पत्व । चारों ओरका स्थल ।
 परिप्लव (सं० स्त्री०) परि-प्लव-तिन्, पत्व । परिप्लव-करके स्थित ।
 परिप्लव (सं० पु०) परि-प्लव-घञ्, ततः पत्व । १ नदी, दरिया । २ प्रवाह, धारा । ३ दीप, टाप् ।

परिष्यन्दिन् (सं० त्रि०) परिष्यन्द अक्यये इति । प्रवाह-
माण, वहता हुआ ।

परिष्यत् (सं० त्रि०) पालिङ्गित, जिसका आलिङ्गन किया
गया हो ।

परिष्यङ्ग (सं० पु०) परि-स्यङ्ग-वञ् । (परिषीति । पा
२।३।७०) पत्यं । पालिङ्गन, गले मिलना ।

परिष्वजान (सं० त्रि०) परिष्वजमान ।

परिष्वज्य (सं० त्रि०) पालिङ्गनयोग्य ।

परिष्वज्जन (सं० स्त्री०) परि-स्यङ्ग-व्युट् । ततः पत्यं
आलिङ्गन, गले से लगना ।

परिष्वज्जत्य (सं० पु० वक्र०) गृहादिमें व्यवहार्य
तेजसभेद ।

परिष्वज्जोयस् (सं० त्रि०) दृढ़ पालिङ्गनवह ।

परिष्वसित (सं० वक्र०) दूतदूततः लम्पमान, इधर
उधर उलझना कूटना ।

परिसंख्या (सं० वक्र०) परि-सम्-ख्या-वङ् । १ परि-
गणना, गिनती । २ काव्यालङ्कारविधेय, एक अर्था-
कद्वार जिसमें पूछो या बिना पूछो हुई बात उसोके सहज
दूसरो बातको व्यंग्य या वाच्यसे वर्जित करनेसे अभि-
प्रायसे कहो जाय । यह कहो हुई बात और प्रमाणीसे
मिद विख्यात होती है । यह शब्द और अर्थके भेदसे दो
प्रकारकी होती है ।

उदाहरण—

“किं भूषणं सुदृढमत्र यमो न रत्नं”

किं कार्यमायं चरितं सुकृतं न दोषः ।

किं चक्षुरप्रतिहतं धियमन न नेत्रं

जानाति कस्तद्वदपहः सदवद्विषेकं ॥”

सुदृढ भूषण क्या है ? यम, रत्न नहीं । कार्य क्या
है ? धर्म चरित, दोष नहीं । अप्रतिहत चक्षु क्या है ?
विषया (बुद्धि), नेत्र नहीं । एतद्विषय दूसरा कौन मनुष्य
सदसद्विषेक जानता है । यहां पर प्रत्यपूर्वक व्यवच्छेद
किया गया है, अर्थात् सुदृढ भूषण क्या है ? इस प्रश्नमें
रत्न सुदृढ भूषण नहीं है, यम हो सुदृढभूषण रत्न है,
तत्सहज अर्थात् रत्न सहज यम द्वारा रत्न व्यवच्छेद
हुआ है, इसीसे यहां पर परिसंख्या अलङ्कार हुआ । अन्य
अरण्यमें भी इसी प्रकार जानना चाहिये ।

यहां पर रत्नादिका यमादि शब्द द्वारा व्यवच्छेद
हुआ है, इस कारण यह शब्द है । प्रत्यपूर्वक अर्थ द्वारा
व्यवच्छेदका उदाहरण—

“किमाराण्यं सदा पुण्यं कथं चेभ्यः सदागमः ।

को ध्येयो भगवान् विष्णुः किं कार्यं परमं पदं ॥”

सदा आराध्य क्या है ? पुण्य, सेवनीय क्या है ?
आगम, ध्येय कौन है ? भगवान् विष्णु, परमं नेय क्या
है ? परमपद । यहां पर आराध्य क्या है, तो पुण्य, पाप
आराध्य नहीं है, यद्यो प्रतीत होता है, इसीसे यहां
अर्थव्ययतः पापादिका व्यवच्छेद होनेके कारण अर्थ
परिसंख्या अलङ्कार हुआ ।

प्रत्यपूर्वक उदाहरण—

“नक्तिर्भयं न विनये भयस्यं शास्त्रे न युवतिकाभास्त्रे ।

चिन्ता यशसि न वपुषि प्रायः परिहृयते सहतां ॥”

महत् शक्तिवीकी भक्ति ईश्वरमें है, विभवमें नहीं;
आसक्ति शास्त्रमें है, युवतिकाभास्त्रमें नहीं, चिन्ता
यममें है, शरीरमें नहीं; प्रायः यहां देखा जाता है । यहां
पर प्रत्यपूर्वक नहीं है अथवा विमर्शादि शब्दका व्यव-
च्छेद हुआ है, इस कारण यहां परिसंख्या अलङ्कार
हुआ । (सां १० पं) ३ विधिभेद ।

परिसंख्यात (सं० त्रि०) परि-संख्या-त । परिगणित,
गिना हुआ ।

परिसंख्यान (सं० स्त्री०) परि-संख्या-व्युट् । परि-
गणन, गिनती ।

परिसंघुट (सं० त्रि०) चारों ओर शब्दाग्रमान ।

परिसंख्य (सं० त्रि०) परित्याग योग्य, छोड़ने या
त्यागने लायक ।

परिसंक्षर (सं० वक्र०) कार्यं संघासरात् पश्यो-
भावः । वत्सरके कार्य, एक वर्षके बाद ।

परिसंख्य (सं० त्रि०) पूर्ण संख्यातायुक्त ।

परिसंखर (सं० पु०) खटिकासादूर्ध्वं संचरति परि-सम्-
खर अच । खटिप्रलयकास ।

परिसन्तान (सं० पु०) परि-सम्-तन-वञ् । तन्वो,
तार ।

परिसम्य (सं० पु०) समायो साधुः यत् । सभ्य, सभानन्द ।

परिसमन्त (सं० पु०) किसी हस्तके चारों ओरकी सीमा ।

परिसमापन (स० स्त्री०) सम्यक् रूपसे समाधाकरण,
भयोभाति समाप्त करना ।

परिस्माप्त (स० त्रि०) बिलकुल समाप्त, निश्चेष्ट ।

परिममामि (स० स्त्री०) परितः समाप्तिः । परिशेष,
शेष ।

परिममहसुक (स० त्रि०) भवन्तु संस्तुक्तं, उद्दिष्ट,
चिन्ताकुल ।

परिसंभूत (स० श्लो०) परि-सम्-भूत भावे व्युत् । १
दृष्टकौ चरितं समिधा डालना । २ दृष्टे चादिको
भागमें भौकना ।

परिसर (स० पु०) परिसरंस्थान, परि-रु-ध । १ नदी
या पहाड़के पास पासकी भूमि, किसी घरके निकटका
खुला मैदान । २ शय्य, मोत । ३ विधि, तरीका ।
४ शिरा, नाड़ी ।

परिसरण (स० श्लो०) परि-रु-धुत् । १ इतस्ततः
भ्रमण, टक्कना । २ पराजय, हार । ३ शय्य, मोत ।

परिसर्प (स० पु०) परि संमन्तात् सर्पणं, परि-रु-ध-
धञ् । १ परिक्रिया, किसीके चारों ओर घूमना । २
परिजनादि द्वारा घेष्टन, अपने कुटुम्बीके चिरा हुआ ।
३ सर्वतोभावसे गमन, घूमना फिरना । ४ सर्प-
विशेष, एक प्रकारका सर्प । ५ कुष्ठरोगविशेष,
सुच्युतसे अनुसार १८ चतुर्द्वारोंमें एक । इसमें छोटी
छोटी फुंसियाँ निकलती हैं जो फूट कर फैलती जाती
हैं । उन फुंसियोंके पोप भी निकलती हैं । ६ साहित्य-
दर्पणके अनुसार नाटकमें किसीका किसीकी खोजमें
भट्टे ईना जब कि खोजी कीनियाली वस्तुकी जाँचको
दिशा या अवस्थितिका स्थान पत्रात हो, केवल माँगके
विज्ञापनादिके सहारे उसका खोजना किया जाय ।
केस, शकुन्तला नाटकके तीसरे चङ्गमें दुष्यन्तका शकु-
न्तलाकी खोज करना ।

परिसर्पण (स० श्लो०) परि-रु-ध-धुत् । १ प्रसरण,
चलना । २ रेंगना ।

परिस्मिन् (स० त्रि०) परिसर्प-परिस्मिन् इति । परि-
सर्पण, गन्ना, जाना वाला ।

परिस्तीम (स० श्लो०) परिसरंस्थिति स्तुतिः । परि-
सर्पणति । पा ३।३।१०१ इति ध्रुवस्य वार्त्तिः

कोत्था निपातनात् निहं । १ परिसर, सर्व लोभ
घूमना फिरना । २ भूमि पर सर्पण । ३
सर्वस्व । ४ भन्तसरण । ५ सेवा ।

परिसहस्र (स० त्रि०) सहस्रका पूरण ।

परिमाधन (स० श्लो०) १ निपादन, समाप्त करना ।
२ परम विषयका साधन ।

परिसात्वन् (स० श्लो०) सर्वतोभावसे सात्वता-
करण, परस्पर मिलन ।

परिसामन् (स० श्लो०) सामभेद ।

परिसारक (स० त्रि०) परि-रु-धुत् । चारों ओर गमन-
शील, भटकनेवाला ।

परिसारिन् (स० त्रि०) परि-रु-ध-धुत् इति ।
भ्रमणकारो, घूमनेवाला ।

परिसिद्धिका (स० स्त्री०) मण्डविशेष, वैद्यकमें एक
प्रकारकी चावलकी लपपी ।

परिशीमा (स० श्लो०) १ चारों ओरकी गीमा, चौड़ाई ।
२ सीमा, बंद ।

परिशीर्य (स० श्लो०) हलमयुक्त चर्मवस्त्रो, चमड़े-
की डोरी जो हलमें बंधो रहती है ।

परिस्तन्द (स० पु०) परिस्तन्दतीति परि-स्तन्द-मच् । (परेष्ट ।
पा ८।१।०४) इति एषोपल्ला भावः । १ परपुष्ट, बड़ा
जिसका पालन पोषण उसके पिताके अतिरिक्त किसी
औरने किया हो ।

परिस्तव (स० पु०) परि-स्तन्द-मच्, तस्य च ना पक्षे पल्ल-
भावः । परिस्तन्द ।

परिस्तर (स० पु०) परि-स्त-मच्, पक्षे पल्लभावः । इधर
उधर क्षितराग ।

परिस्तरण (स० श्लो०) परि-स्त-मच् । १ विविध, क्षित-
राग, फेंकना । २ फेंकना, तानना । ३ आवरण
करना, लेपटना ।

परिस्तान (स० पु०) १ वह कथित लोक या स्थान
जहाँ परियाँ रहती हैं । २ वह स्थान जहाँ सुन्दर
भनुष्यों विशेषतः स्त्रियोंका जमघटा हो ।

परिस्तोम (स० पु०) परिस्तुयते प्रदस्यते नाना धन-
वस्त्रात् परेन मनः वा । परिगतः स्तोमोऽयः । राजपुत्र-
स्थित चित्रकम्बन, होश आदिको पाठ पर डाला जाने-
वाला चित्रित वस्त्र, भस्त्र ।

परिस्थान (स० स्त्री०) स्थिति, रहनेका घर ।
 परिस्थन्द (स० पु०) परिस्थन्द अधिकारी घञ् । १ कुसुम-
 प्रकाशदि और पञ्चावलीकी रचना । २ परिकर । ३ परि-
 वार । भावे घञ् । ४ सर्वतो भावसे स्पन्द, क'पक'पो ।
 ५ मर्दन, दवाना ।
 परिस्थन्दन (स० स्त्री०) परि सर्वतोभावसे स्पन्दते इति
 परिस्थन्द-घुट् । १ सम्यक् कम्पन, बहुत अधिक
 हिलना, खूब कांपना । २ कम्पन, कांपना ।
 परिस्थन्दमान (स० त्रि०) परिस्थन्दते इति परिस्थन्द-
 शानच् । सर्वतोभावसे कम्पमान ।
 परिस्थदा (स० स्त्री०) धन, वस्त्र, यय आदिमें किसीके
 बराबर होनेको इच्छा, मुकाबिला, लागडाट ।
 परिस्थान्दिन् (स० त्रि०) परि-स्थान्-दिनि । खाईकारी,
 मुकाबिला या लागडाट करनेवाला ।
 परिस्थुट (स० त्रि०) १ व्यक्त, प्रकाशित । २ सम्यक्-
 रूपसे विकसित, खूब खिला हुआ । ४ विकसित, खिला
 हुआ ।
 परिस्थापन (स० स्त्री०) आसपासीपन, जिसमें या कुछ
 हल उत्पन्न करना ।
 परिस्थान्द (स० पु०) परिस्थान्द-भावे घञ् । परिस्थन्द,
 चरण, भरना, जैसे ज्ञायोके मस्तकसे मदका परिस्थान्द ।
 परिस्थान्दिन् (स० त्रि०) परिस्थान्द-परिस्थान्दिन् इति । परि-
 स्थान्दिन्, चरणयुक्त ।
 परिस्थव (स० पु०) परिस्थु-भावे घञ् । १ परितः
 चरण, टपकना, चूना । २ मन्द प्रवाह, झिरझिरा कर
 बहना ।
 परिस्थाव (स० पु०) परिस्थ-णिच्-घञ् । १ परिस्थव-
 अन्त उपप्रभेद, सुश्रुतके अनुसार एक रोग । इसमें
 शुद्धसे पित्त और कफ मिला हुआ पतला मल निकलता
 रहता है । कई कीठवालीकी मृदु विरचन देनेसे जब
 सम्रा हुआ सारा दोष शरीरके बाहर नहीं हो सकता,
 तब वही दोष सपथुत रोगसे निकलने लगता है ।
 इसमें कुछ कुछ मरोड़ भी होता है । इसमें भ्रष्ट
 और सब रोगोंमें एकामट होता है । कहते हैं, कि
 यह रोग वैद्य अथवा रोगीकी सज्जताके कारण होता है ।
 परिस्थावण (स० स्त्री०) जगन्निष्ठान्तरक पात्रमें द, वह

वस्तुन जिससे पानी टपका कर माफ किया जाय ।
 परिस्थाविन् (स० त्रि०) परिस्थाव यस्यर्थे इति या
 परिस्थु-तादित्ये णिनि । निरन्तर स्त्रावणोक्त, हमेशा
 चहनेवाला । २ चरणगोल, चूने, रमने या टपकनेवाला ।
 (पु०) १ एक प्रकारका मगन्द । इसमें फाड़ने पर
 समय गाढ़ा मयाद बहता रहता है । कहते हैं, कि यह
 कफके प्रकीर्णसे होता है । फोड़ा कुछ कुछ सफेद और
 बहुत कड़ा होता है । पोंड़ा उतना नहीं होता ।
 मगन्द देखो ।
 परिस्थावुदर (स० स्त्री०) उदररोगमें द ।
 परिस्थुत् (स० स्त्री०) परिस्थवतीति परिस्थु-क्षिप्र-
 तुक् च । १ चरणान्तरा । २ मथा, मराम । ३ चरण ।
 (त्रि०) ४ सर्वतोभावसे चरित, निचोड़ा हुआ ।
 परिस्थुत (स० त्रि०) परितः स्त्रूयते स्म (गत्यर्थेति । पा
 ३।५।०२) इति कर्त्तरि-क् । १ स्त्रावयुक्त, जो चू या
 टपक रहा हो । २ सर्वतोभावसे चरित, टपकाया हुआ,
 निचोड़ा हुआ । (पु०) ३ पुण्यसार, फूलोंका मार, इत्र ।
 परिस्थुत-दधि (स० स्त्री०) परिस्थुतं दधि । पक्ष-
 गालित दधि, ऐसा दही जिसका पानी निचोड़ लिया
 गया हो । वैद्यकमें ऐसे दहीकी वातपित्तनाशक, कफ-
 कारो और पोषक ज्ञाया है ।
 परिस्थुता (स० स्त्री०) परिस्थुत धियां टापु । १ द्राक्षा
 मथा, च'गुरो मराम । २ वाक्पी ।
 परिकथन (स० स्त्री०) परिहनु क्युट् । सम्यक् नाम,
 कथ ।
 परिहन्त (स० स्त्री०) १ इससे अंतिम और मुख्य भाग-
 को वह सोधो खड़ी मकड़ी जिसमें कपरको और सुडिया
 होती है और नीचेकी पोर हरिष तथा तरकी या
 बीमो ठूँको रहती है । २ एक नगर । इसमें तरकीकी
 लकड़ी बनगसे नहीं लगानो पड़ने किन्तु इसका निचला
 भाग खय हो इस प्रकार टेढ़ा होता है, कि समोको
 नोकदार बना कर सममें फाल डीक दिशा जाता है ।
 परिहन्त (स० त्रि०) श्रव, मरा हुआ ।
 परिहनु (स० पञ्च०) हन्वोद्परि मथयो भावः । १ हनु-
 का उपरिदेश । (त्रि०) ततः परिमुल्यादित्यात् ख । २ परि-
 हन्थ, जो हनुके उपरमें उभय हो ।

परिहर (स० पु०) परि-हृ अण् । परिहार ।

परिहर—लोहरडंगावासी कुम्हारजाति ।

परिहरण (स० क्री०) परि-हृ लृट् । १ परिवर्जन, त्याग ।

२ किसीके बिना पूछे अपने अधिकारमें कर लेना, छोन लेना । ३ निाकरण, दोष अनिष्टादिका उपचार या उपाय करना ।

परिहरणीय (स० त्रि०) परि-हृ-अनीयर । १ परिहरण-के योग्य, छोन लेने लायक । २ त्यागयोग्य, छोड़ या तज देने योग्य । ३ उपचार योग्य, इटाने या दूर करने योग्य ।

परिहर्तव्य (स० त्रि०) परि-हृ-तण्य । त्यागयोग्य, तजने लायक ।

परिचर्यण (स० त्रि०) सम्प्रकृ-हर्षयुत ।

परिहस्य (स० पु०) सम्प्रकृ-आवाहन ।

परिहस्त (स० अर्थ०) हस्तस्य परि, परिवर्जने अर्थयोग्य-भावः । हस्तका परिवर्जन ।

परिहाटका (स० क्री०) १ अन्तर्कारविशेष । २ बलश, कंकण ।

परिहाण (स० क्री०) परि-हा-लृट् । चति, चय, ज्ञान ।

परहानि (स० क्री०) परिहण्य, विशेष हानि ।

परिहार (स० पु०) परि-हृयति-निनिति परि-हृ-अण् । १ अवज्ञा । २ अन्यादर । ३ दोष वचनका परिहरण, दोषादि-

के दूर करने या छुड़ानेका कार्य । ४ त्याग, तजनेका काम । ५ भोग्य, द्विपानिको मिश्र । ६ विजित द्रव्यादि,

नद्वार्द्धमें जीता हुआ धनादि । ७ ध्यानविशेष, मनुके अनुसार एक स्थानका नाम । ८ दोषावनय, दोषादिके दूर करनेकी युक्ति या उपाय । ९ उपेक्षा । १० पक्षपाते

चरनेके लिये परती छोड़ो हुई सावजनिज भूमि, चरवा ।

११ कर या लगानकी माफ़ी, छूट । १२ खण्डन, तरदोद ।

परिहार—सूर्य और चन्द्रवर्षीय राजपूत जातिकी खतम्व शाखा । ये लोग साधारणतः 'अग्निकुल' नामसे प्रसिद्ध

हैं । प्रवाद है, कि भावपूर्वत पर जब मुनि लोग यज्ञ करते थे, सभी समय अन्तर्कुण्डसे कई एक वीर्यवान्

पुरुष उत्पन्न हुए थे ।

जिन्होंने जन्म लिया था, मुनियोंने उन्हीं पर यज्ञहारकी रक्षाका भार सौंपा । इनो महापुरुषसे उनके वंशधर गण बहुत प्राचीन कालसे अपने पूर्वपुरुषका वंशपरिचय देते हैं ।

कन्नचुरीके राजाने कालञ्जर जीत कर परिहारीको अपने अधीन कर लिया था । उस समय कालञ्जराप्रदेश परिहारराजके अधिकारभुक्त था । कन्नचुरीराजने अपनी विजयकीर्ति कन्नरानिके लिये उसी साल (१४८६) में कन्नचुरी वा चेदिमम्बल चलाया ।

ये लोग अपनेकी वृन्देनाछण्ड और रैवावासी चन्दे तथा ज्वेलजातिसे भी पूर्वतन वतलाते हैं । सभीगणखण्डमें लिखा है, कि बारहवीं शताब्दीमें चन्देलापरमालके मन्त्रो परिहार राजपूतवर्षीय थे ।

कच्छवाहावर्षीय राजाओंके राज्यगामने बाद ११२८से से कर १२११ ई० तक ग्वालियर प्रदेशमें बालादेव चादि सात राजाओंने राज्य किया था ।

इनके बाद सुनतान गामस-छहोन-र-भलतमछे ग्वालियर (उचहरप्रदेश) प्रान्तमणसे ही यहां सुबलमानी राज्य संस्थापित हुआ । (१)

इस मण्डसे चाहमान, परमार, परिहार आदि बार 'अग्नि-कुल' राजपूत जातिकी उत्पत्ति हुई । चाहमान, परमार आदि देखो ।

१ Ptolemy ने पोर्वररोई (Porvaröl) नामक एक बहुप्राचीन सधर्दिशाली जातिकी कथाका उल्लेख किया है । ये लोग विशहरी, बहुरियन और सुलताई आदि नगरोंमें राज्य करते थे । प्रत्यतश्चित् कनिह्व इन लोगोंको पारिया बतला गये हैं । (Cunningham's Arch. Rep. IX 55)

१ उनके नाम ग्वालियर चन्देमें देखो ।

(१) Tabakati-Nasiri, I. p. 611. किन्तु फिलिप्स लिखा है, कि ११८६ ई०में बहाउद्दीन तुगलकने जब ग्वालियर पर आक्रमण किया, तब परिहारराज ग्वालियरके उद्धार के लिये आहमदको स्वदेश रक्षाके लिये बुलाया । आहमद स्वयं आ कर ग्वालियरको जीता और यहां अपना अधिकार बख्शी सरह बना लिया । ६०० हिजरीको कुतब-मुन्न औरंगजेब शासनकालमें हिन्दुओंने कितने इस प्रदेश पर दखल जमाया

ई० एकपरिहार राजाओंके राज्य करनेके बाद वंश

परमारराजके परिहारमन्त्रीके प्रधान बंशधरने जो भाज भी गजनोके सामन्तसामन्त्यमें वास करते हैं, सुना जाता है, कि वे गोविन्ददेवके बंशधरभूत हैं और हमीर पुराधिपति परिहारबंशीय विख्यात राजा भास्करमिहके पोत्र सारङ्गदेव उनके पूर्वपुरुष हैं। उक्त सारङ्गदेव मारवाड़ प्रदेशमें रहते थे। कर्नल टाडने लिखा है—मन्दा-र (१) नगरमें परिहारोंकी राजधानी थी। कन्नोजमें विताहित राठोर मरदार चन्दने विग्नानघाननाती परिहारोंकी राज्यसे मार भगाया और उनकी सम्पूर्ण राज्य अपने दखलमें कर लिया (२)।

कुमारो, विन्धु और चम्बल नदोके मध्य स्थल पर २४ ग्राम मिला कर एक परिहार-उपनिवेश स्थापित हुआ है। ये लोग पहले ठगोविद्रोहियोंके साथ मिल कर बहुत चलाचार करते थे। भाज भी कुमारो और चम्बल नदियोंके मध्यवर्ती-मन्द्य तालुकका उपत्यक 'ठाकुर' उपाधिधारी परिहारबंशीय जमींदारगण भोग कर रहे हैं।

युक्तप्रदेश और अयोध्याप्रदेशके एतावा जिलावासी परिहार लोग दृष्ट्युत्पत्ति द्वारा जीविकानिर्वाह करते थे। यमुना, चम्बल, मिथु, कुमारो और पाण्डुज बादि पञ्च नदो प्रवाहित दुर्गम स्थानमें ये लोग क्रिप कर रक्ती और समय समय पर अपने चौहल्यका परिचय देते थे। (३)।

गहरदेव नामक किसी परिहार मरदारने धुलोराजकी

साथ युद्ध किया था (१)। दिग्विपति चन्द्रपालकी पराजय के बादमें इस प्रदेशमें उनकी अभ्युत्थान देखा जाता है। वर्तमान समयमें ये लोग चौहान और मेहरा राजपूत जातिके साथ आदान-प्रदान करके अपने समाजमें उन्नत हुए हैं।

उनाव जिलेके मिहन्दरपुर परगनेके चन्तारत 'चौरामो' ग्रामके जमींदार लोग परिहारवंशके हैं। इनकी बंश-प्राप्त्यधि जाना जाता है, कि ये लोग काश्मीरराज्यके योनगरमें यहां था कर बस गये। उक्त बंशविवरणमें लिखा है कि, "सन्नाह इसाधुनके राजत्व-कालमें यमुनाके पर तीरवर्ती जोगोनिवासी किसी परिहार-राजपूतके साथ परेण्डाशयो एक दीक्षित कन्याका विवाह हुआ। वारानमें परेण्डा जाति समय ये लोग कुछ कालके लिये नरोसी ग्राममें ठहर गये। यहां उन्होंने एक दुर्ग देख कर पूछा, 'दुर्गाधिपति कौन है?' जब उन्हें मालूम हुआ, कि दुर्गाधिपति गृह्णतिका है, तब उस समय ये और कुछ नहीं बोले, बर और कन्या ले कर सोधे घरको चल दिये। पोछे होनो उक्तवके दिन भागे सिंह नामक किसी सरदारने दनबन्धक साथ रातको था कर दुर्ग पर अधिकार कर लिया।" (२) अभी वह सम्पत्ति उनके मध्य छोटे छोटे खण्डोंमें विभक्त हो गई है।

पश्चिममें कच्छवाहा और चौहानोंके साथ इनका विवाह होता है। ये लोग ज्ञानपो पर अधिकार कर गीतमोंके साथ विवाह किया करते थे। पोछे चन्देलने पराजित होकर ये उस समयमें गस्त हो गये। भाजमगध-वासियोंका कहना है, कि गहरवाड़ जातिके द्वारा नरवार प्रदेशमें भगाये जाने पर ये लोग महमदाबाद परगनेमें था कर बस गये। जलोनवासो परिहारगण शियास और गीतम गाछाके राजपूतोंको अपने कन्या देते हैं, किन्तु उनके घरमें कन्यादि दण्डन नहीं करते। फिर ये लोग कच्छवाहा, भदोरिया, चन्देल और राठोर बादिके घर अपने पुत्रका विवाह करते हैं। हमीरपुरवासी परिहार लोग सैनपुरो चौहान, भदोरिया, यादोन और राठोर

बंशका जोड़ हुआ। बादमें वहाँ कुछमानोहा प्रभाव पायी और कैल गया और अहो'ने अपने हाथमें राज्यशासनका भार धरन किया। Briggs' Pishisht, Vol. I, p. 202.

(१) वरहट भाषामें इसका नाम मन्दोरी है। यह वर्तमान नोषपुर नगरसे ५ मील उत्तर अवस्थित है। यहाँका अन्नाव-विष्ट मन्दिर, भारकथ्युक्त प्रतिमूर्ति और शिवालिंग देख कर टाडने लिखा है, "The remains of it bring to mind those of Volterra or Cortona and other ancient cities of Tuscany." L. 109

(२) Annals of Rajasthan, Vol. I. p. 108-9.

(३) Census Rep. N. W. P. 1865 L. App. 65.

(१) Annals of Rajasthan, Vol. I. p. 103.

(२) Elliot's Chronicles of Unas, p. 58.

परिहर (स० पु०) परि-हृ अप् । परिहार ।

परिहर—लोहरडंगावासी कुम्हारजाति ।

परिहरण (स० क्लौ०) परि-हृ क्युट् । १ परिवर्तन, त्याग ।
२ किसीके बिना कुछे अपने अधिकारमें कर लेना, छोन लेना । ३ निगारण, दोष अनिष्टादिका उपचार या उपाय करना ।

परिहरणीय (स० त्रि०) परि-हृ अनौद्यत् । १ परिहरण-के योग्य, छोन लेने लायक । २ त्यागयोग्य, छोड़ या तज देने योग्य । ३ उपचार योग्य, हटाने या दूर करने-योग्य ।

परिहर्त्तव्य (स० त्रि०) परि-हृ-तव्य । त्यागयोग्य, तजने लायक ।

परिहर्षण (स० त्रि०) सम्यक् हर्षयुत ।

परिह्व (स० पु०) सम्यक् भावाहन ।

परिहस्त (स० अथ०) हस्तस्य परि, परिवर्तने अव्ययी-भावः । हस्ताका परिवर्तन ।

परिहाटका (स० क्लौ०) १ अलङ्कारविशेष । २ वलय, कंकण ।

परिहाण (स० क्लौ०) परि हा-ण्युट् । चित, चय, ज्ञास ।

परिहानि (स० क्लौ०) परिहन्, विगोप हानि ।

परिहार (स० पु०) परि-हृयतेऽनेनेति परि-हृ-घञ् । १ अवज्ञा । २ भनादर । ३ दोष वचनका परिहरण, दोषादिके दूर करने या छुड़ानेका कार्य । ४ त्याग, तजनेका काम । ५ गोपन, छिपानेकी क्रिया । ६ विजित द्रव्यादि, लड़ाईमें जीता हुआ भनादि । ७ ध्यानविशेष, मनुके भनुवार एक स्थानका नाम । ८ दोषापनय, दोषादिके दूर करनेकी युक्ति या उपाय । ९ उपेक्षा । १० पशुधर्मके चरनेके लिये परती छोड़ो हुई सर्वजनिक भूमि, चरहा । ११ कर या लगानकी माफी, छूट । १२ खण्डन, तरदोद ।

परिहार—सूर्य और चन्द्रवर्गश्रेष्ठ राजपूत जातिकी स्वतन्त्र शाखा । ये लोग साधारणतः 'अग्निकुल' नामसे प्रसिद्ध हैं । प्रवाद है, कि आर्यवंत पर जब मुनि लोग यज्ञ करते थे, सभी समय भनलकुण्डसे कई एक बौर्यवान् पुरुष उत्पन्न हुए थे । परिहारवंशके आदिपुरुषरूपमें

जिन्होंने लक्ष लिया था, सुनियोंने उन्हीं पर यज्ञहारकी रक्षाका भार सौंपा । इसी महापुरुषसे उनके वंशधर-गण बहुत प्राचीन कालसे अपने पूर्वपुरुषका वंशपरिचय देते हैं ।

कलचुरीके राजाने कालञ्जर जेत कर परिहारको अपने अधीन कर लिया था । उस समय कालञ्जरप्रदेश परिहारराजके अधिकारभुक्त था । कलचुरीराजने अपने विजयकोत्ति फहरानेके लिये 'सप्त साह' (२४८ ई०) में कलचुरी वा चेदिसम्बत् चलाया ।

ये लोग अपनेकी बुन्देलखण्ड और देशावासी चन्देस तथा बघेलजातिसे भी पूर्वतन बतलाते हैं । महाबाखण्डमें लिखा है, कि बारहवीं शताब्दीमें चन्देलराज परमालके मन्त्रो परिहार राजपूतवंशोप थे ।

कच्छबाहावर्गश्रेष्ठ राजाओंके राज्ययासनके बाद ११२८ से लेकर १२११ ई० तक खालियर प्रदेशमें या साखदेव आदि सात राजाओंने राज्य किया था ।

इसके बाद सुयतान गामर-उद्दोम-प्रभलतमसके खालियर (उज्जैनप्रदेश) आक्रमणसे ही यहाँ सुयतमानो राज्य संस्थापित हुआ । (१)

इस यज्ञसे बादमान, परमार, परिहार आदि चार 'अग्नि-कुल' राज्यपूत जातिकी उत्पत्ति हुई । बादमान, परमार आदि देखो ।

Ptolemy ने पोर्वारोई (Porvaroi) नामक एक बहुप्राचीन समुद्रिवासी जातिकी कथा संलेख किया है । ये लोग बिहारी, बहुरियन और मुल्ताई आदि नगरोंमें राज्य करते थे । प्रस्तुतरलिख कनिहम इन लोगोंकी परिहार बतला गये हैं । (Cunningham's Arch. Rept. IX 55)

† उनके नाम खालियर कदमें देखो ।

(२) Tabakab-i-Nasiri, I. p. 611. किन्तु फेरिस्तोंने लिखा है, कि ११८६ ई०में बराउद्दौल तुगलके जब अफगान पर आक्रमण किया, तब परिहारराज चारकुदेवने शत्रुपक्षसे आश्रयकको स्वदेश रक्षाके लिये बुलाया । आश्रयके स्वयं आ कर खालियरकी जीता और यहाँ अपना अधिकार अच्छी तरह जमा लिया । ६०० हिजरीकी कुतब-मुस आदमके शासनकालमें हिन्दुओंने फिरसे इस प्रदेश पर दखल जमाया । १२३२ ई० तक परिहार राजाओंके राज्य करनेके बाद उनके

“मृदोऽग्निर्दकच्छेद विद” औपम्य पञ्चमम् ।
पञ्चमं तण्डुलं प्राक् सप्तमं तप्तमापन्नम्
अष्टमं कालशित्युक्तं नवमं धर्मजं स्मृतम् ।
दिग्वाप्येतानि सर्वाणि निर्दिष्टानि स्वयम्भुवा ॥”

(सहस्रति)

घट, अग्नि, उदक, विप, कोप, तण्डुल, तप्तमापक, काल और धर्म ज इन सब दिव्यों द्वारा परोचा करने होती है। पापों से सब दिव्य करके यदि उत्तीर्ण हो सके, तो समझना चाहिये, कि उसको प्रकृत परोचा हुई। चैत्र, पञ्चायण और वैशाख ये तीन मास परोचा-काल बतलाये गये हैं। घट द्वारा जो परोचा को जानो है, वह सभी ऋतुओं में होता है। मिश्र, छिन्न और वर्षा में अग्निपरोचा, शरत् और शीत में जलपरोचा, छिन्न और मिश्र में विपपरोचा तथा कोपपरोचा सभी ऋतुओं में हो सकती है। नारदवैदिकानि लिखा है, कि शीतकाल में जलपुष्टि, उष्णकाल में अग्निमोघन, वर्षा-काल में विप और प्रसन्नता से तुलापरोचा नहीं करनी चाहिये।

पूर्वाङ्गकाल में सब प्रकारको परोचा को जा सकती है। अपराङ्ग, सन्ध्या और मध्याह्नकाल में एक भी परोचा कर्त्तव्य नहीं है।

“पूर्वाह्णे सर्वदिग्वापि प्रदानं परिकीर्त्तितम् ।

मापराह्णे न सन्ध्यायै न मध्याह्णे कदाचन ॥” (नारद)

शपथ (परोचा) -के विषय में और भी लिखा है, कि जो शपथ देवता, पिताके चरण और पुत्र, दारा तथा छत्रदके मस्तक छू कर किया जाता है, उसे भी परोचा कह सकते हैं। यह शपथ सामान्य अपराध पर बतलाया गया है।

“सत्यवाहनश्चाश्रयि शीतोन्नहनकामिव ।

देवतापितृनामैव दत्तानि कुर्वतामि व ॥

इष्टशेव शिरसि पुनर्ना दायणी सुहृन्तया ।

अनिशेनेषु सर्वेषु को धानमधायि वा ॥

इत्येते शपथाः प्रोक्ताः मनुना स्वतः कारणात् ॥”

(नारद)

सामान्य अपराध में इस प्रकारका शपथ करनेसे उसे विशद जानना चाहिये। इस परोचाकी सामान्य परोचा

कह सकते हैं। ज्योतिषमें लिखा है, कि सहस्रति सिंहरिखित, मकरस्थित या अश्वत्थामित होनेसे तथा मंस-मास में जयाकांची राक्षि द्वारा परोचा कर्त्तव्य नहीं है। रविपुष्टि और शुक्र तथा शुभ अस्तमित होनेसे एवं अष्टमी, चतुर्दशी, अग्नि और मङ्गलवार में परोचा निषेध है।

ब्राह्मणको परोचा घट द्वारा, क्षत्रियकी हुतायन द्वारा, वैश्यकी सन्धिन द्वारा, शूद्रकी विप द्वारा, एत-द्विज और सर्वोकी परोचा कोप द्वारा करने चाहिये। व्रतधारी अति प्राची, ब्राह्मिपुत्र, गणको और स्त्री इनका दिव्य (परोचा) निषेध बतलाया है। मूलपाणि-ने भग्याय्य शास्त्रोंके साथ एकमत हो कर स्थिर किया है, कि इनका जो दिव्य निषेध है, सो तुलापरोचाके सिवा और इनको कोई परोचा नहीं होगी। आख्यायन-के वचन में लिखा है, कि लोहमिश्रको अग्निकी परोचा, धव्युष्योकी जलपरोचा और सुवर्णोको तण्डुल परोचा नहीं करने चाहिये।

नारदवचन में लिखा है—शनीव, पातुर, सत्यशेन, परितापान्वित, माज, और वृद्ध इनकी परोचा घटसे करने चाहिये। पालकी तोयपुष्टि, चित्तरीगोता विप, खिली, पश्व और कुलवीरका अग्निकर्म, श्वो और बालकका मज्जन, गिरवाह, ब्राह्मिपुत्र और चापे इन का जलदिव्य निषेध है। विचारक अपराधकी विवेचना कर धर्मशास्त्रानुसार परोचा करे। जहाँ मासियों की समता हो, वहाँ विचारक प्रतिष्ठा करावे और माणान्ति-विवाद होने पर साक्षीके विद्यमान रहते भी दिव्यका प्रयोग करे।

दिव्य अस्तमें इनका विशेष विवरण लिखा है, विस्तार-के भयसे यहाँ अधिक नहीं लिखा गया।

परादि दिग्वापि विशेष विवरण तत्तद् ग्रन्थ में और दिव्य शब्द में देखो।

भियक रोगीको सप्तमरूपसे परोचा कर, पोष्टी ओषध-निर्वाचन विषय है।

“बुद्धिः परमैति या मानान् बहुकारणयोगान् ।

पुर्कारिणकालासा हेवा शिवनीः कारयेत् यथा ॥

एषा परोचा नास्त्वन्वा यं सर्वं परीक्ष्यते ।

परीक्ष्यं सदृशैव तथा नास्ति पुनर्भवा ॥”

(चरक सु० ११ अ०)

राजपूतोंके घर कन्याका तथा दीक्षित, विद्याधर, चन्देल, गौतम, सेहज, कानपुरवासी गोड़ और चौहान राजपूतोंके घर पुत्रका विवाह देते हैं। आगराके परिहार लोग अपनेको काश्यप गोत्रके बतलाते हैं।

प्राचीनतम सचहर राज्यमें परिहार राजाओंको छत पूर्वतन कीर्तियोंका ध्वंसावशेष ७वीं शताब्दीके पूर्व समयमें निर्मित था, ऐसा अनुमान किया जाता है। यहांके बिलहरी ग्राममें लक्ष्मणसेन परिहार छत 'लक्ष्मण-सागर' एवं अन्य राजाका निर्मित 'सिंहोरगढ़' नामक एक सुविस्तीर्ण दुर्ग बसेखयोग्य है।

परिहारक (सं० त्रि०) परि-हृ-ण्वुल। परिहारकारी, परिहार करनेवाला।

परिहारिन् (सं० त्रि०) परि-हृ णिनि। परिहारकारी, परिहरण करनेवाला।

परिहार्य (सं० त्रि०) परि-हृ ण्यत्। १ परिहारयोग्य। (पु०) २ अलङ्कारभेद, बल्य, कंकण।

परिहास (सं० पु०) परि-हस-भावे-घञ्। १ परिहसन, हँसी, दिहगो, ठहा।

परिहासपुर—काशीराज्यके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। राजतरङ्गिणीमें लिखा है, कि राजा क्षितिादित्यने (७२०-७६० ई०में) यह नगर बसाया। यह ब्रह्मा नदीके पूर्व या दक्षिण कूल पर वर्षमान सम्रत्न ग्रामके निकट अवस्थित है। इस नगरको प्राचीन कीर्तियों का ध्वंसावशेष इधर उधर विखिन्न देखनेमें आता है। अबुलफजल अपने ग्रन्थमें लिख गये है, कि एक समय सिकन्दरने (१५८८-१५९१ ई०के मध्य) इस नगरके बड़े बड़े मन्दिरोंको तहस नहस कर डाला था। इनमेंसे एक मन्दिरकी ईंटोंके मध्य एक ताम्रफलक पाया गया है जिसमें लिखा है कि "११०० सो वर्ष बाद यह मन्दिर सिकन्दरसे विध्वस्त होगा।" अबुलफजल और फिरोजावर्णित ताम्रशासनको कथा कदा तक सत्य है, कह नहीं सकती।

परिहास्य (सं० त्रि०) परि-हस-ण्यत्। परिहसनयोग्य, परिहास योग्य।

परिहित (सं० त्रि०) परि-हृ-ण्वुल। १ पहना हुआ, कपरा डाला हुआ। २ आच्छादित, चारों ओरसे ढ़िपाया हुआ। ३ चारों ओर स्थित।

परिहोण (सं० त्रि०) १ सर्वतोभावे होम, सर्वप्रकारसे दुःखों और दरिद्र फटे हानवाला। २ परित्यक्त, त्यागा हुआ।

परिहृत् (सं० त्रि०) परि-हृ-क्विप्, तुगागमघ्। १ पतित, श्वेट, गिरा हुआ, पामाल। २ मत्त, बरबाद, तबाह।

परिहृति (सं० स्त्री०) परि-हृ-कितन्। सर्वतोभावेसे हानि, चय।

परिहृत् (सं० त्रि०) गमनपूर्वक हुना।

परिहृत् (सं० त्रि०) परिपोहित।

परिहृति (सं० स्त्री०) सर्वतोभावेसे पीड़ा, परिधा।

परो (फा० स्त्री०) १ कारकोको प्राचीन, कथाओंके अनुसार कोहकाफ पहाड़ पर बधनेवालो कथित स्त्रियाँ। ये अनेक नामको कथित सृष्टिके अन्तर्गत माने गई हैं। इनका सारा शरीर तो मानव स्त्रीका सा ही माना गया है, पर विलक्षणता यह बताई गई है कि इनके दोनों कंधों पर पर होती हैं। इन परोके सघरे ये गमन-पथमें विचरती फिरती हैं। इनका मोन्दर्य कारको चट्ट साहित्यमें आदर्श माना गया है, केवल बहिष्कृतवासिनों द्वारा ही मोन्दर्यको तुलनामें रखे कंवा स्थान दिया गया है। कारको चट्टको कवितामें ये सुन्दर रमणियोंको उपमान बनाई गई है। २ परोको सुन्दर स्त्री, निहायत खूबसूरत पोरत। जैवे, उसकी सुन्दरताका क्या कहना, सासो परो है।

पराचक्र (सं० स्त्री०) परि-हृ-ण्वुत्। प्रमाण वा तर्क द्वारा निरूपक, परखने या जांचनेवाला।

परोक्ष (सं० स्त्री०) परि-हृ-ण्वुत्। १ परोक्षा, जांच, पड़ताल। २ राजकटके चरादि द्वारा अमात्यादिका भावतत्त्वनिरूपण। ३ वास्तुतत्त्वधारण। ४ सर्वतो भावसे दर्शन।

परोक्षा (सं० स्त्री०) परित ईक्षतेऽनया परि-हृ-ण्वुत् (उश्व हल; पा ३।३।१२) ततश्च। १ शुषदीप-विवेचन, तर्कप्रमाणादि द्वारा वस्तुका तत्त्वधारण, दीप-शुषानुभवान। परोक्षा करनेसे, दीप किया है वा नहीं, इसका प्रतीक लग जाता है। सट, अग्नि आदि द्वारा परोक्षा की जाती है।

हो इन्हें इस्तिनापुरको सिंहासन पर बिठा दोपटो मनेत तपस्या करने सजे गये। शस्त्रियों के उपदेशानुसार परीक्षित राज्यपासन करने लगे।

यथासमय इन्होंने माद्रवतो नामक एक राज-कन्याका परिग्रहण किया जिसके गर्भमें जनमेजय उत्पन्न हुए। (आदि० ८५ अ०) कोई कोई कहते हैं, कि इन्होंने राजा उत्तरको ररावतो नामक कन्यासे विवाह किया था और उन्होंने गर्भ में जनमेजय प्रादि चार पुत्र उत्पन्न हुए। (भागवत ११.६।१)

परीक्षितने महाभारत युद्धमें कुरुदलके प्रसिद्ध महा-रथोत्तपाचार्यसे भोज-विद्या सोखी थी और उन्हें ही गुरु बना कर गङ्गातट पर तीन प्रव्रतमेघ वस्त्र किये थे। कहते हैं, कि पश्चिम यज्ञमें देवतापनि प्रचय था कर बलि-प्रव्रण किया था।

परीक्षित जब कुरुजङ्गलमें रहते थे, उस समय एक दिन इन्होंने सुना कि, कलियुग उनके राज्यमें घुम पाया है और अधिकार जमानेका मोका ढूँढ़ रहा है। यह प्रिय वार्ता सुन कर ये उसे राज्यसे निकाल बाहर करनेके लिये ढूँढ़ने निकले। मरुत्वतो नदी पार हो कर इन्होंने देखा, कि एक गाय और एक बेल बनाय कातर भावसे खड़े हैं और एक शूद्र जिसका वेष भूषण तथा टाट-बाट राजाके समान था, डँडेंमें उन्हें मार रहा है। बेलके बेलन एक ही पैंर था। पूछने पर परीक्षितको बेल, गाय और राजवेषधारी शूद्र तीनोंने अपना अपना पर-चय दिया। गाय पृथ्वी थी, बेल धर्म था और शूद्र कलिराज। धर्मरूपी बेलके मत्त्व, तप और दयारूपी तीन पैंर कलियुगने मार कर तोड़ डाले थे, केवल एक पैंर दानके सञ्चारे वह भाग रहा था, उसे भी तोड़ डालनेके लिये कलियुग बराबर उसका पोछा कर रहा था। धर्मरूपी हथके इतनी बात जान कर परीक्षितको कलियुग पर क्रोध हुआ और उसे मारनेके लिये खड़े उठाया। कलिराजके पीछे कर राजाके चरण पर सेट रहा और बहुत गिड़गिड़ा कर बोना "मेरे रहनेके लिये कोई स्थान बतला दीजिए।" इसपर परीक्षितको दया था गई और उन्होंने उसके रहनेके लिये गुफा, झी, मध्य, हिंसा और सोना ये पाँच स्थान बतला

दिये। ये पाँच स्थान छोड़ कर अन्यत्र न रहनेको कलिन प्रतिज्ञा की। राजाने पाँच स्थानोंके साथ साथ मिथ्या, मद, काम, हिंसा और वैर ये पाँच वस्तुएँ भी दे डालीं। (भागवत ११.७ अ०)

इस घटनाके कुछ समय बाद महाराज परीक्षित एक दिन भाड़े के निजने। कलियुग बराबर इस ताकत था कि, किसी प्रकार परीक्षितका घटका मिटा कर भस्म कर राज करे। राजाके मुकुटमें सोना था ही, कलियुग उसमें घुस गया। राजाने एक हिरनके पीछे घोड़ा छोड़ा। बहुत दूर तक पीछा करने पर भी वह न मिला। एक तो राजा १० वर्षके बूढ़े, दूसरे लका-वटके कारण लम्हे व्यास लग गई थी। एक हंस मुनि मार्गमें मिले। राजाने उससे पूछा कि क्या इस राजा को कर कोई हिरन भागा है? मुनि मौनो थे, इसलिए राजाके प्रश्नका कुछ उत्तर न दे सके। बल्ले और प्यासे परीक्षितको मुनिके इस व्यवहारसे बड़ा क्रोध हुआ। राजाको यह भावम नहीं, कि मुनिने मोनव्रत धर-लम्बन किया है, कारण उनके चिरं पर कलियुग सवार था। उन्होंने निरय कर लिया कि, मुनिने सप्तर्षिके मारे हमारी बातका जवाब नहीं दिया है और इस अपराधका उन्हें कुछ दण्ड होना चाहिये। पास ही एक मरा हुआ साँप पड़ा था। राजाने कमानको नोकसे उसे उठा कर मुनिके गलेमें डाल दिया और अपनी राह ली।

उस क्षणिके योगमें ही उत्पन्न हुई नामक एक महातन्त्रकी पुनर्था। किसी कामसे वह बाहर गया था, मोटटी समय राक्षसोंमें अपने सुना, कि कोई पादमी उसके पिताका अपमान करके उनके गलेमें मृत सर्प की माँहा पड़ना गया है। कोपमोक्ष शूद्रोंने पिताके इस अपमान की बात सुनते ही हाथमें जल लें कर श्राप दिया, जिस पापान्ते मेरे पिताके गलेमें मृत सर्प पड़नाया है, प्राज्ञ-से बात दिग्गमोत्तर तपस्व नामका यप उसे खप ले। प्राज्ञममें पहुँच कर शूद्रोंने पिताके अपमान करने वाले को सप्तर्षिके सप्त श्राप देनेकी बात कही। क्षणिकी पुनर्था पवित्रक पर दुख हुआ और उन्होंने गलीक गोर-सुख नामक एक शिष्य द्वारा परीक्षितको श्रापका समा-चार कहवा भेजा, ताकि वे शतक रहे।

पनेक कारणवशतः जो उत्पन्न होता है, बुद्धि द्वारा यदि यह अग्रगत हो जाय, तो उसे त्रिकाला युक्ति कहते हैं। इसके द्वारा त्रिवर्ग साधित होता है और सभी परीक्षा की जाती है। मियक् रोगोंके पास ला कर इस प्रकार परीक्षा करें,—दर्शन, स्पर्शन और प्रत्यक्ष इन तीन प्रकारसे रोगोंकी परीक्षा करनी होती है। दर्शन द्वारा परमायु, रोगकी साध्यता और असाध्यतादि, स्पर्शन द्वारा शीतलता, उष्णता, सुदुता और कठिनता तथा नाड़ीपरीक्षा प्रभृति और प्रत्यक्ष द्वारा सदरकी कृच्छता, शुद्धता, पिण्डसा, अक्षयता, सुधा, अमृता तथा बला-बलादिकी परीक्षा करें। रोगोंकी जब तक अच्छी तरह देखा न जाय और द्रव्य न पूछा जाय अथवा सम्यक्-प्रकारसे अवस्थाका वर्णन न किया जाय, तब तक प्रकृत रोगका पता लगाना कठिन है। नेत्र, जिह्वा और मूत्र आदि देख कर परीक्षा करनी होती है। प्रथम नेत्रपरीक्षा—वायुके प्रकोपसे नेत्र रुंध, धूम और अश्रुवर्ण हो जाते हैं तथा हृष्टिस्थिता होती है। पित्त-प्रकोपसे नेत्र हरिद्रावर्णकी तरह वा रक्त अथवा हरित-वर्ण और दाहयुक्त होते हैं तथा रोगो प्रदीपका प्रकाश उद्यम नहीं कर सकता। कफके प्रकोपसे नेत्र स्निग्ध, अश्रुपूर्ण, शूलवर्ण, लोतिविहीन और बलाभ्यस्त होते हैं। दो दीर्घोंकी अधिकता होनेसे नेत्रमें भी मिश्रित दीप भलकने लगता है। त्रिदीपके प्रकोपसे बहुत अत्यन्त भन्ना निर्बिष्ट और सनका प्रान्तभाग उन्मोहित तथा अश्रुसे अनवरत अश्रुपात होता है। जिह्वापरीक्षा करनेमें वायुके प्रकोपसे जिह्वा शीतपत्रकी तरह आभाविष्टि, रुद्ध और रुद्धित होती है। पित्तप्रकोपसे जिह्वा रक्त अथवा श्यामवर्ण की तथा कफके प्रकोपसे परिलिम्पाय, भाद्र और शूलवर्ण की हो जाती है। मूत्रपरीक्षा करनेमें मूत्र वायुके प्रकोपसे पौतवर्ण, पित्तके प्रकोपसे रक्त वा नील-वर्ण, रक्तवर्णसे रक्तवर्ण और कफके प्रकोपसे श्वेत वर्ण का हो जाता है। शरीरकी शीतलता और उष्णतादि पहले शरीर पर हाथ रख कर पीछे नाड़ीकी परीक्षा कर जानी जाती है। नाड़ी प्रकृति दाहिनी हाथकी और स्त्रीके बाएँ हाथकी देखनी होगी। तीन उँगली दाहिनी या बाएँ हाथ पर रख कर नाड़ीपरीक्षा करनेमें

शारीरिक सुख दुःख जाना जाता है। सानके बार्द, निद्रित अवस्थामें, क्षुधित, पिशाभात्, श्वातपताहित वा व्यायामादि द्वारा स्नान व्यक्तियोंकी नाड़ीपरीक्षा अर्त्तव्य नहीं है। क्योंकि इन सब अवस्थामें नाड़ीकी गति सम्यक् रूपसे नहीं जानी जा सकती। (भाद्र० १ ख०)

विशेष विवरण नाड़ी सम्बन्धें देखा।

२ वच कार्य जिससे किसीकी योग्यता, सामर्थ्य आदि जानें जाय, इतहास। ३ अनुभवार्थ प्रयोग, आज-माद्य। ४ निरीक्षण, जांचपड़ताल, सुभाषणा। ५ समालोचना, समीक्षा, निरीक्षा।

परीक्षित् (सं० पु०) परि र्वन्तोभावेन चोयते इत्यते दुरितं येन परि-चि-बधे क्षिप्त्वा तुक् च वा परीक्षीषु कुरुषु चियते इट् उपसर्गस्य दीर्घत्वं क्षिप्त्वादे क्षात्रिह्वत्, इति उपसर्गस्य दीर्घत्वं। १ अर्जुनके पोते, उत्तराके गर्भसे उत्पन्न अभिमन्युके पुत्र। महाभारतमें लिखा है, कि कुछ परिचोष होने पर इस बालकने जन्म-ग्रहण किया था, इस कारण इसका परीक्षित नाम पड़ा। *

इनकी कथा अनेक पुराणोंमें आई है। महाभारतमें लिखा है, कि जिस समय ये उत्तराके गर्भमें थे, क्षीराचार्य के पुत्र-अश्वत्थामांसे गर्भमें ही इनको हत्या कर पाण्डु-कुलका नाश करना चाहा। इस अभिमायसे उन्होंने ऐमोके नामके महासूक्तो उत्तराके गर्भमें प्रेरित किया। इसका फल यह हुआ, कि गर्भसे परीक्षितका छः मास का भ्रूणसा हुआ मृत पिण्ड बाहर निकला। भ्रूणवान् जन्मचन्द्र पाण्डु कुलका नाम लोप करना चाहते नहीं थे, इसलिये उन्होंने अपने योगवशसे मृत भ्रूणको जीवित कर दिया। परिचोष या विनष्ट होने। अर्थात् जानिके कारण इस बालकका नाम परीक्षित रखा गया।

(सौमित्रपर्व ११ अ० और आदिपर्व १५ अ०)

युधिष्ठिरादि पाण्डव संभारसे भलोभाति, सदाचोन हो चुके थे और तपस्याके अभिलाषी थे। अतः वे मोक्ष

* "परिक्षिणे कुले जातो भवत्ययं परीक्षित्नामेति ।" (१)

८५८४)

तथा—“परिक्षीणेषु कुरुषु, उत्तरायामर्जीजनव ।

परिक्षीदभवसेन सौमद्रस्यास्वजे वर्जा ॥” (१४८१५)

हो इन्हें हस्तिनापुरके सिंहासन पर बिठा दोषदेो मनेत तपस्या करने चले गये। काश्याको के उपदेशाबुसार परीक्षित राज्यपालन करने लगे।

यथासमय इन्होंने माद्रवतो नामक एक राज-कन्याका प्राणिपहण किया जिनके गर्भमें जनमेजय उत्पन्न हुए। (भावि० ८५ अ०) कोई कोई कहते हैं, कि इन्होंने राजा उत्तरको दरायतो नामक कन्यासे विवाह किया था और उन्हींके गर्भमें जनमेजय पादि चार पुत्र उत्पन्न हुए। (भागवत ११११२)

परीक्षितने महाभारत युद्धमें कुरुदलके प्रसिद्ध महा-रथो जवाकायसे चन्न-विद्या सोवो घो घोर उन्हीं की शूद्र बना कर गङ्गातट पर तीन अश्वमेध यज्ञ किये थे। कहते हैं, कि अन्तिम यज्ञमें देवतापानि प्रयत्न आ कर अग्नि-प्रवृत्त किया था।

परीक्षित जब कुरुजङ्गलमें रहते थे, उस समय एक दिन इन्होंने सुना कि, कनियुग, उनके राज्यमें घुम आया है और अधिकार जमानेका मोका ढूँढ़ रहा है। यह संशय वात्ता सुन कर ये उसे राज्यमें निकाल बाहर करनेके लिये ढूँढ़ने निकले। मरुत्वतो नदी पार हो कर इन्होंने देखा, कि एक गाय और एक बैल अनाथ कातर भावसे खड़े हैं और एक शूद्र जिमका वेप-भूषण तथा दाढ़-बाट राजाके समान था, डँडेमें उन्हें मार रहा है। बैलके बैल एक ही पैर था। पहले पर परोक्षितको बैल, गाय और राजवेषधारी शूद्र तीनोंनि अपना अपना परिचय दिया। गाय पृथ्वी घो, बैल धर्म था और शूद्र क्षत्रिराज। धर्म रूपी बैलके सत्य, तप और दयारूपी तीन पैर क्षत्रियगुने मार कर तोड़ डाले थे, बैल एक पैर दासके सहारे बड़ माग रहा था, उसे भी तोड़ डालनेके लिये कनियुग बराबर उभरका पोछा कर रहा था। धर्म रूपी हथमें इतनी बात जान कर परोक्षितको कनियुग पर क्रोध हुआ और उसने मारनेके लिये खुद उठाया। कनि राजवेष छोड़ कर राजाके चरण पर सेट रहा और बहुत गिड़गिड़ा कर बोना "मेरे रहनेके लिये कोई स्याम वस्त्रा दोजिए।" इस पर परोक्षितको दया आ गई और इन्होंने उसके रहनेके लिये लुघा, श्री, मय, हिंसा और बीना ये पाँच स्याम वस्त्रा

दिये। ये पाँच स्याम कौड़ कर पन्ध्र न रहनेको कनिने प्रेतिष्ठा की। राजाने पाँच स्यामके साथ साथ मिथ्या, मद, काम, हिंसा और वैरे ये पाँच वस्तुएँ भी दे डाली। (भागवत १११० अ०)

इस घटनाके कुछ समय बाद महाराज परोक्षित एक दिन आखेट करने निकले। कनियुग बराबर इस ताकतमें था कि, किसी प्रकार परोक्षितको खटका मिटा कर अकण्टक राज करे। राजाके मुकुटमें मोना था ही, कनियुग उसमें घुस गया। राजाने एक हिरनके पीछे घोड़ा जोड़ा। बहुत दूर तक पोछा करने पर भी वह न मिला। एक तो राजा इन्हीं सपने में, दूसरे एक-वटके कारण उन्हीं जमान लग गई थी। एक बड़े सुनि मार्गमें मिले। राजाने उन्हीं वृक्षा कि क्या इस राह हो कर कोई हिरन भागा है? सुनि मोनो रो, हसलिये राजाके प्रश्नका कुछ उत्तर न दे सके। वहीं और प्यारे परोक्षितकी सुनिके इस व्यवहारसे बहुत क्रोध हुआ। राजाको यह मोक्षम नहीं, कि सुनि मोनेमत पदे-सत्यन किया है, कारण उनके चिर पर कनियुग सवार था। पक्षीने निषय कर लिया कि, सुनिने घमण्डके मारे हमारी बातका जवाब नहीं दिया है और इस अपराधका उन्हें कुछ देखा होना चाहिये। पाँच ही एक मरा हुआ सप पड़ा था। राजाने कमानकी नोकमें उसे उठा कर सुनिके गधेमें डाल दिया और अपनी राह की।

उस वृष्टिके गोगर्भसे उत्पन्न शूद्रा नामक एक महातेजस्वी पुत्र था। किसी काममें वह बाहर गया था, लोटेते समय रास्तेमें उसने सुना, कि कोई बादमी उसके पिताका अपमान करके उनके गलेमें शूत सप की मोबा पहना गया है। कोपमोक्ष शूद्राने पिताके इस अपमान की बात सुनते ही हाथमें जल ले कर भाग दिया, जिस पापामाने मेरे पिताके गलेमें शूत सप पहनाया है, पात्र से मात दिनेके भीतर तब तक नामका सप उसे खप ले। पात्रममें पड़े कर शूद्राने पितासे अपमान करने वाले को सपुत्र के सप खाप देनेकी बात कही। कनियुग पुत्रके परिवर्तन पर दुःख हुआ और उसने नमीक और मुख नामक एक मिथ्य दूरा परोक्षितकी गाँपका समाचार कहला भेजा, ताकि वे गतक रहे।

परीक्षितने कृपिके शापको घटल समझ कर अपने लड़के जमनेजयको राजसिंहासन पर बिठा दिया और सब प्रकारसे मरनेके लिये प्रसन्न हो कर भग्नजनवत करते हुए श्रीशुकदेवजीसे श्रीमद्भागवतकी कथा सुनी। सातवें दिन ब्रह्मर्षि कश्यप राजाके निकट आ रहे थे। राजासे नागराज तत्त्वक उससे मिला और बोला, 'ब्राह्मण! इतनी तेजीसे कदम बढ़ाये कहाँ जा रहे हो? कश्यपने उत्तर दिया, 'राज भुजङ्गाश्रय तत्त्वक कुबकुलप्रदोप राजा परीक्षित को देख करैगा, सो मैं उन्हें आरोप्य करने आता हूँ।' इस पर तत्त्वकने कहा, 'मैं ही तत्त्वक हूँ। मेरे डबनेसे क्या तुम चढ़े जिला सकते हो? कभी नहीं, मेरे इस बहुत बौद्धिक देखो।' इतना कह कर उसने एक वृक्ष पर दांत मारा, जो तत्काल जल कर भस्म हो गया। कश्यपने अपनी विद्यासे उसे पूर्ववत् करा भरा कर दिया। इस पर तत्त्वकने कहा कि, 'तुम जिस आशा पर राजा यहाँ जा रहे हो, वह आशा मैं यहाँ पुरो कर देता हूँ, लौट जावो।' ब्रह्मर्षिके लोकार कारणसे पर तत्त्वकने बहुत सा धन दे कर उन्हें लौटा दिया। परम धार्मिक परीक्षित सुरचित प्रासादमें बड़ी सावधानीसे बैठे हुए थे, कि इसी वृक्ष छड़वनेमें आ कर तत्त्वकने उन्हें हम हिंसे और विपत्ति भयंकर उवाचानसे उनका शरीर भस्म हो गया। (भारत आदि १० अ०)

देवी भागवतमें लिखा है, कि शापका ममाचार या क्रूर परीक्षितने तत्त्वकसे अपनी रक्षा करनेके लिये एक सात मंजित जवा मकान बनवाया और उसके चारों ओर अच्छे अच्छे सर्वमन्त्रज्ञाता और मुहूर्त रखनेवालों को सेनात कर दिया। सातवें दिन जब तत्त्वककी कृतिना पुरमें यह हाल मालूम हुआ, तब वह बहुत घबराया और किंचित यह काम पूरा हो, इसी चिन्तामें रात दिन धिक्क रहा। अन्तको परीक्षित तक पहुँचनेका उसे एक उपाय सूझ पड़ा। उसने अपने एक सजातीय सर्पको तपस्विका रूप दे कर उसके प्रायमें कुछ फल दे दिये और एक फलमें बहुत छोटी कीड़ेका रूप धर कर भाग जा बैठा। जब वह तपस्वी सर्प सुरचित प्रासाद तक पहुँचा, तब पहरदारोंने उसे पत्थर जानिसे मत्ता किया, लेकिन राजाकी सुधर मित्रने पर उन्होंने उसे अपने पाँच

सुत्ता लिया और फल से कर उसे बिटा कर दिया। एक तपस्वी मेरे लिये यह फल दे गया है, यतः इसके खानेसे प्रवश्य उपकार होगा; यह सोच समझ कर उन्होंने और फल तो मंत्रियोंमें बाँट दिये, पर उसको अपने खानेके लिये काटा। काटनेके साथ ही उसमेंसे एक छोटा कीड़ा बाहर निकला जिमका रंग ताम्रहा और भाँसे काली थी। परीक्षित कीड़ा देख कर विस्मित हो गये और मन्त्रियोंसे बोले, 'सर्प भस्म हो रहे हैं, प्रवृत्त तत्त्वकसे सुझा कोई भय नहीं। परन्तु ब्राह्मणके शापकी मानरक्षा करने चाहिए, इसलिये इस कीड़ेसे इसनेकी विधि पूरा करा लेता हूँ।' यह कह कर उन्होंने उस कीड़ेको गलेमें लगा लिया। परीक्षितके गलेसे स्त्र्य होते ही यह नन्हा सा कीड़ा भयंकर सर्प हो गया और उससे दंगनके साथ परीक्षितका शरीर भस्ममात् हो गया। इस प्रकार तत्त्वकने राजाका विनाश कर गगनको प्रस्थान किया।

(देवीभाग १८० १० अ०)

परीक्षितको मृत्युके बाद कलियुगसे छेड़, छाड़ करनेवाला कोई न रहा और वह उसी दिनसे चक्रेटक भावसे शासन करने लगा। पिताकी मृत्युका परिमोघ लेनेके लिये जमनेजयने सर्वप्रथम किया जिममें सारे सँसारके सर्व मन्त्रवन्तसे खिच भाप और यज्ञकी पत्नीमें उनकी पाहुति हुई। २ कर्मका एक पुत्र। ३ पयोध्याके एक राजा। ४ अनन्तके एक पुत्र। परीक्षित (सं० पु०) पयोध्याके कुबकुल भोगतिष्ठम ईदेंम इति परिशिष्ट उपसर्गस्थ दोर्ध्व। १ पविमंशुपुत्र। परीक्षित देख। (त्रि०) २ क्षतपरोक्षा, जिमकी परोक्षा की गई हो।

परीक्षितस्थ (सं० त्रि०) परि-ईक्ष-तस्थ। परीक्षणीय, जिसका इन्तहान या पाजसादय या जांच को जा सके। परीक्षिन् (सं० त्रि०) परि-ईक्ष-इनि। परीक्षाकारक, युक्ति और प्रमाणदि द्वारा जो परीक्षा लेते हैं। परीक्ष्य (सं० त्रि०) परि-ईक्ष-ण्यत्। १ परीक्षाके योग्य। २ जिसकी परीक्षा करना उचित या कर्तव्य हो। परीक्षम (हि० पु०) पैरमें पहननेका चांरोका एक गहना।

परीक्षा (हि० स्त्री०) परीक्षा देखो।

परीजाद (फा० वि०) पत्थन रूपवान्, बहुत सुन्दर।

परीष्ठा (सं० स्त्री०) यज्ञाङ्ग पूजामेद, परियज्ञ।

परीषम (सं० वि०) परि-नम-क्षिप, १ व्यापक।

२ चारों ओरसे बह। ३ मङ्गल, बङ्गा।

परीषसा (सं० पञ्च०) परि-नम-स्थानो वाहु० आत् दीर्घः। बहु पदार्थ।

परीषद (सं० स्त्री०) परि-नम-भावे क्षिप, 'नहि हतोऽस्यादिना' पूर्वपदस्य दीर्घः। १ परीषद्वन, आच्छादन। २ परितोषस्थान। ३ तत्त्वम्। ४ कुहचोऽस्य जनपदभेद।

परीषाय (सं० पु०) परितो नयनं, परि-नो-घञ्- 'उपसर्ग' दीर्घस्य क्षिप, [असादी कचित् भवेत्] इति पाणिनी दीर्घः। गांवके चारों ओरकी बह भूमि जो गांवके सब लोगोंकी सम्पत्ति समझी जानी हो।

परीत (सं० वि०) परि-ह-ता। परिवेष्टिता, घिरा हुआ।

परीतन् (सं० वि०) परि-तन्-क्षिप, (नहिषति युविष्यमीती या १।१।११) इति पूर्वपदस्य दीर्घः। सब तोमानसे विरहता।

परीताप (सं० पु०) परि-तप-घञ्, घञि दीर्घः। परिताप।

परीति (सं० स्त्री०) पुष्पाङ्गन, फूलोंसे बनाया हुआ सुरमा।

परीतिन् (सं० वि०) परिवेष्टित; घिरा हुआ।

परीतोष (सं० पु०) परि-तुप-घञ्, घञि दीर्घः। परि-तोष, सन्तोष।

परीतं (सं० वि०) १ सीमावद्ध, महदूद। २ महोर्ण, सह-विन, तंग।

परीदाह (सं० पु०) परि-दह-घञ्, ततो दीर्घः। परिदाह।

परीष्य (सं० वि०) प्रवचन वा ज्ञानार्थे शोध।

परीष्ठा (सं० स्त्री०) पर्याप्त मिश्रण, परि-भाष-सन् ततो ष, लिप्यो टाप। १ पानिकी इच्छा। २ लिपिता।

परीषु (सं० वि०) पानिका इच्छुः।

परीषद (फा० पु०) १. कर्नाई-पर पवननेका स्त्रियोंका एक गृहना। २ कुश्तीका एक पेच। ३ बर्लीके पांवसे पवननेका एक पाभूषण। दशमें छुंछरु होते हैं।

परीभाव (सं० पु०) परि भाव्यते इति परि-भावि घञ् वैकल्पिकदीर्घः। परिभाव, सनादर।

परीमन् (सं० वि०) १ देव, देवता मन्मथी। २ प्रचुर।

परीर (सं० स्त्री०) पूर्यतेनेति पु-ईरन् (कृ पु पु कटीति। उष् ४।२०) १ कारवेष्ट, फरेल्लो बेल। २ करेला।

परीरम्भ (सं० पु०) परिवर्धते इति परि-रम्भ-घञ्, भावे वैकल्पिक दीर्घत्व। परिवरम्भ, पालिङ्गन।

परीरु (फा० वि०) पति सुन्दर, बहुत रूपवान्, खूब-सूत।

परीवत्त (सं० पु०) परिवृत्त-घञ् (उपसर्गस्य-घञेति। या। ६।१।२२) इति दीर्घः। १ परिवर्त्तन। पर्याय-प्रतिदान, दैमेय, विनिमय, परिवर्त्त, वैमेय, निमय, परिदान। २ कृभराज, कच्छप।

परीवाट (सं० पु०) परि-वट भावे घञ्, ततो दीर्घः। दीयोक्षास,। पर्याय—कुत्ता, निन्दा, जुगुप्सा, गर्हा, गहंष, निन्दन, दुस्सन, परिवाद, जुगुप्सन, पादेष, चक्षुष, निवाद, अपकीश, भर्त्सन, उपकीश, अपवाद, चक्षुषवाद। २ वीणादि वादन।

परीवार (सं० पु०) परिव्रियतेनेति परि-व-घञ्, उपसर्गस्य दीर्घः। १ वृक्षकोष, भ्यान। २ जङ्गम, परिजन। ३ परिवृद्ध, द्रव्य, चंवर याद सामर्थी।

परीवाह (सं० पु०) परितो बहतेनेति परि-वह-घञ्, ततो दीर्घः। १ जलोच्छ्वास। २ द्रव द्रव्यका सवाह। ३ राजयोग्यवस्तु।

परीशान (फा० वि०) परेशान, बैरान।

परीशानी (फा० स्त्री०) परेशानी।

परीषद (सं० पु०) वैजयास्तीके अनुसार त्याग या सहन। ये नीचे लिखे २२ प्रकारके हैं—१ लुधापरिषद या लुधरीषद, २ विषामापरिषद, ३ यीतपरीषद, ४ उष्यपरीषद, ५ दंशममकपरीषद, ६ पक्षेक्षपरीषद या चित्रपरीषद, ७ चरतिपरीषद, ८ स्त्रीपरीषद, ९ पर्यपरीषद, १० निष्यापरीषद या नैषधिकापरीषद, ११ गव्यापरीषद, १२ माक्रीगपरीषद, १३ यधपरीषद, १४ याचनापरीषद या यंचापरीषद, १५ पनामपरीषद, १६ रोगपरीषद, १७ लघपरीषद, १८ मलपरीषद, १९ कल्हारपरीषद, २० प्रज्ञापरीषद, २१ पञ्चानपरिषद, और २२ दमनपरीषद या संपन्नपरीषद।

परोक्ष (पं० पु०) यह संकेतका शब्द जिसे घेनाका अक्षर अपने सिवाधियों को बतना देना है और जिसके बोलनेसे पहले परके सिवाही बोलनेवालेको अपने दलका समझ कर घाने जानिसे नहीं रोकता ।

परोक्ष (पं० स्त्री०) लघात् परः, सुट्, निपातनात् साधु । लाखसे अधिकको संख्या ।

परोक्षो—गङ्गातीरवर्ती एक प्राचीन ग्राम । यह कानपुर नगरसे प्रायः ७ कोट दक्षिणमें अवस्थित है । यहां प्राचीन मन्दिरादिका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है ।

परावर (सं० अश्व०) १ परस्परानुक्रमसे । २ सिरसे ले कर पैर तक ।

परोक्षरोग (सं० त्रि०) पराधाराद्यानुभवति (परो-वपरस्त्वपुत्रातीरवर्ती) वा ५।१।१०) ततः अव-रख्यात् निपात्यते । श्रेष्ठश्रेष्ठपुत्र, जिसमें बुरा भला दोनों हो गुण हो ।

परोक्षरायस (सं० त्रि०) परय वरोग्रथ निपातनात् पुंवपदे सुट् । अत्यन्त श्रेष्ठ परमात्मा ।

परोक्षिह (सं० स्त्री०) वैदिक कन्दोभेट ।

परायो (सं० स्त्री०) पराः शत्रून् यो यस्याः । १ मेनवा-यिका, तैलवटा नामका कोड़ा । २ काश्मीर देशस्थित नदी विशेष ।

पराम (हिं० पु०) परोक्ष देखो ।

परासना (हिं० स्त्री०) खानिके लिये किसीके सामने तरह तरहके भोजन रखना, परसना ।

परावा (हिं० स्त्री०) एक मनुष्यके खाने भरका भोजन जो घातो या पक्ष पर लगा कर कहीं भेजा जाता है ।

परासा (हिं० पु०) परोक्ष देखो ।

परोक्षेया (हिं० पु०) खानिके लिये भोजन सामने रखनेवाला, वह जो भोजन परसता है ।

परोहन (हिं० पु०) वह जिस पर सवार हो कर शत्रुओं को जाय । जैसे घोड़ा, बैल, गाड़ी आदि ।

परोहा (हिं० पु०) समझेका बड़ा धैर्य जिससे किमान कुपोसे पानी निजाल कर खेत सींचते हैं, मोट, चरस ।

पराका (हिं० स्त्री०) वह भेड़ जो परो लवान होने पर भी बच्चा न दे, बाँझ भेड़ ।

परोता (हिं० स्त्री०) वह चादर या कपड़ा जिससे

पनाज बरसाते समय हवा करते हैं । इसे 'परतो' भी कहते हैं ।

परोतो (हिं० स्त्री०) पत्नी देखो ।

पकैट (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका बगना ।

पकैटि (सं० स्त्री०) घृत्त्वम्पके बाहुलकाटि । प्रचलित, पाकरका पेड़ ।

पकैटो (सं० स्त्री०) पकैटि शब्दादिभ्यश्च (पा ५।१।१५)

इति डोप् । प्रहल्लस, पाकरका पेड़ । पर्याय—प्रसृजटो, कमण्डलुतक, कपोतन, चौरों, सुपाख, कमण्डलु, शूद्रों, चवरोह, गाखो, गदभाण्ड, पोतन, हड़प्ररोह, प्रसक, प्रवक्, महावल । गुण—कटु, कषाय, मिश्रित, रक्तदीप, नृच्छी, भ्रम चौर प्रलापनाशक । भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—कषाय, मिश्रित, त्रण, योनिरोग, दाह, पित्त, कफ, अस्त्र, शोथ और रक्तपित्तनाशक है

पकटो (हिं० स्त्री०) पकैट बगने की मादा ।

पकौर (हिं० पु०) परकार देखो ।

पकौला (हिं० पु०) पराला देखो ।

पगना (हिं० पु०) परगना देखो ।

पर्वो (हिं० पु०) परवा देखो ।

पवांवा (हिं० स्त्री०) परवाना देखो ।

पचन (हिं० पु०) परचन देखो ।

पचूनिया (हिं० पु०) परचूनी देखो ।

पचूनी (हिं० स्त्री०) परचूनी देखो ।

पज (हिं० पु०) परज देखो ।

पजंनो (सं० स्त्री०) परं स्वाद्यं जगयतीति पर-जन-णिच्, 'कर्मस्वण' इति. चण्, द्विर्वा डोप् । दाह-हरिद्रा, दाहहर्दो ।

पजंन्य (सं० पु०) पर्यति सिचति षटि ददातीति घृप्-मिचने (पञ्चः) । अण् ३।१०३ इति निपातनात् पका-रस्य जकारत्वे बाधः । १ इन्द्र । २ शब्दायामोन मिच । ३ मिच, बादल । ४ कश्यप ऋषिको स्त्रीके एक पुत्र

का नाम जिसको गिनती गन्धर्वोंमें होती है ।

पजंन्यकथ्य (सं० त्रि०) मिचयत् गज मगोन, मिचके

समान शब्द करनेवाला ।

पजंन्यपत्नी (सं० स्त्री०) पजंन्यः पतिरियास्याः पत्य न्

डाप् । १ वशा । २ इन्द्रको पत्नी, शर्वादेवा

पञ्चधरतम् (सं० लि०) पञ्चो रीती यस्य । नक्षत्रे ।
 पञ्चयष्ट (सं० लि०) पञ्चयष्ट द्वारा प्राप्त हवि ।
 पञ्चान्या (सं० स्त्री०) पञ्चान्या-टाप । दाहचरित्रा, दाह-
 हव्यौ ।
 पण (सं० स्त्री०) विपत्तिंति पृ-न (धा वृत्त्युपतिप्रो-
 न् । टण् १।१) वा पण्यतीति पणं पच । १ पत्र,
 यत्ता । २ ताम्बूल, पान । विपत्तिं पानयति गगन-
 आतादिति पृ-न । ३ पत्र, लेना । ४ पनागहृत् ।
 पणक (सं० पु०) पण्यस्वार्थे कन् । १ पण्यगम्यार्थ ।
 २ ऋषिमेह, एक ऋषिका नाम जो पाणकि गोत्रके
 प्रयत्न के थे । ३ सुनिपणगक ।
 पणकपूर (सं० पु०) पानकपूर ।
 पणकार (सं० पु०) पण्य ताम्बूल करोति उत्पाद्यति
 पण्य-क-पण्य । पान वेदनेवाको एक जाति जो तंबाको
 या बरई कहलाती है । बरई देखो ।
 पणकुट्टिका (सं० स्त्री०) पणकुटी ।
 पणकुटी (सं० स्त्री०) पण्य निर्मिता कुटी, मध्यपदको
 क्षमधा । पत्रमातरचित सुद्रष्टव्य, केवल पत्तोंकी
 बनी हुई कुटी ।
 पणकुचं (सं० पु०) एक प्रकारका व्रत । इसमें तीन
 दिन तक ठाक, गूरर, कमल और बेल्के पत्तोंका जाय
 पोना होता है ।
 पणकुच्छ (सं० पु०) पण्यसाध्यं कुच्छं व्रतं यत् । पत्र-
 कुच्छयत् । इसमें पहले दिन ठाकके पत्तोंका, दूसरे
 दिन गूररके पत्तोंका, तीसरे दिन कमलके पत्तोंका और
 चौथे दिन बेल्के पत्तोंका जायपो कर पाँचवें दिन कुश-
 का जल पिया जाता है । यह व्रत पापनाशक माना
 गया है ।
 पणखण्ड (सं० पु०) पण्यमेव खण्डो यस्य, पुष्पादि-
 क्षौणत्वात् तथात्वं । १ पुष्पक्षौण्यवदगति, वह वनस्पति
 जिसमें फूल न लगते हैं । २ ताम्बूलका एकधा ।
 ३ पण्यमूह, पत्तोंका टेर ।
 पण्यखण्डेश्वर—पौषधमिशेष । प्रसुत प्रणाली—रस, गन्धक
 मन्मिला और विष प्रत्येकके समभागकी एक साथ पीस
 कर सम्मानके पत्तोंके रस और अदरकके रसमें तीन
 बार करके भावना दे । पीछे एक रस्तीकी गोली

बनावे । इसे पानके साथ सेवन करनेसे उदर पति
 ग्रीध नाम हो जाता है । (भेषज्यर० उदरपिहार)
 पण्यचौरपट (सं० पु०) मण्डपेन, गिव ।
 पण्यचोरक (सं० पु०) पण्य चोरयतीति पण्य-चोरि-क-
 चोरक नामक गन्धद्रव्य, मटेसर ।
 पण्यदत्त—गुप्त-वर्गीय सन्ध्यादृक् सन्ध्यागुप्तके पञ्चो सप्त-
 प्रदेय (वर्षमान काठियावाड़) के एक गप्तनकर्ता ।
 ये स्वदेगपालक चोर चोर गप्तओंके समस्वरूप माने
 जाते थे ।
 पण्यधि (सं० स्त्री०) तोरका वह स्थान जहाँ पर दिये
 जाते हैं ।
 पण्यध्वंस (सं० लि०) पण्यध्वन्स्-कर्त्तरि क्तिप् । पण्य-
 ध्वंसकर्त्ता ।
 पण्यनर (सं० पु०) पण्यः पनागपत्रे-निर्मितो नरः
 नराकारः पुत्तनरः । पनागपत्र द्वारा रचित नरा-
 कार पुत्तन, पनासके पत्तोंका किनो मृन्मय्यक्तिका वह
 पुत्तना जो उसको पश्चिमादि न मिलनेकी दृशाने
 दाहकमे भादिके लिये बनवाया जाता है । जहाँ
 पित्रादिको पश्चि नहीं पाई जाते, वहाँ यह पण्यनर
 दाह करके अगोच रहण्यपूर्वक अन्त्येष्टिक्रिया करने
 होती है । विधिपूर्वक दाह नहीं करनेमें उसका
 अगोच वा आह्लादि निषिद्ध है, इसीसे पश्चिमें नहीं
 मिलने पर उस शवके प्रतिनिधि स्वरूप पण्यनर निर्माण-
 पूर्वक प्रायश्चित्तानुष्ठान करने उसका दाह करना होता
 है । इसका विषय शक्तिस्त्वमें इस प्रकार निधा है—
 पश्चि नहीं मिलने पर ३६० पनागके पत्तोंमें पुष्पकी
 प्रतिकृति बनावे । इसमेंसे मन्त्रक ४० पत्तोंका, गला
 १० का, वसःखल ३० का, जठर २० का, दोनों बाहु
 १०० का, १० पत्तोंकी दमौं सगलियाँ, दोनों छपण ६
 का, शिथ ४ का, दोनों ऊरु १०० का, जहा घोर जागु
 ३० का तथा १० पत्तोंकी पैरको दमौं सगलियाँ कल्पित
 करे । इन सब पत्तोंको कर्णाक्षरने सेपेट कर यवपिट
 द्वारा सेपन कर दे । इसमें बाद उसका मन्त्रपूर्वक
 दहन करना होता है ।

“अग्निनाग्ने पनाजानां ग्रीणि पश्चिनाति च ।

पुरयप्रतिष्ठति हस्त दहेत मन्त्रपूर्वकम् ॥

परोन (अं० पु०) लक्ष

यस्य

स

परोस

नगरसे

प्राचीन मा

परावर (सं०

कर पेट तक।

परोचरण (सं०

बनरसपुरमग्नमग्न

रख्योत्वं निपात्यते।

टीनों को गुण हो।

परोवरायस् (सं० वि०

पूर्व पदे सुट्। अत्यन्त

परोषिड (सं० स्त्री०)

परायो (सं० स्त्री०) पर

यिका, तेजघटा नामका

नदी विशेष।

परान (हिं० पु०) परोक्ष

परासना (हिं० स्त्री०)

तरह तरहके भोजन

परोषा (हिं० स्त्री०) एक

थाना या पत्तल पर लग

परोसा (हिं० पु०) पड़

परोसैया (हिं० पु०)

रखनेवाला, वह जो भी

परोहन (हिं० पु०) वह

को जाय। जैसे छोड़ा,

परोहा (हिं० पु०) चमड़

कुपोसे पानो निशान का

पराका (हिं० स्त्री०) वह

भो बचा न दे, बाँझ भड़

परोता (हिं० स्त्री०) व

परोक्ष, परस्पर विरोध (प्रतिपक्ष)

परोक्षोपपत्ति का अर्थ है। परोक्षी मध्यमे

का परोक्षोपपत्ति को कहते हैं, ऐसे

शब्दों में परोक्षोपपत्ति होता है, इसको

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

परोक्षोपपत्ति कहते हैं। परोक्षोपपत्ति को

"पर्वणरी दहेमर विना रं" कर्षचन ।
शस्त्रयामे सु दयेतु तता पर्वणरी दहेतु ।
नरः पर्ण दहेमर प्राक शिप्यात् कर्षचन ।
त्रिष्टुप् पते दयात् दये प्राप्ते लयन्मका ॥" (श्रुतिस्त्र)

इस कर्षचनके अनुसार जाना जाता है कि पमावस्था-
के दो दिन पर्ण नरदाह प्रगम्य है । किन्तु मुख्य चिन्ता
मणिके मतमें यह निरपिष्ट वतनाया गया है ।

गयां पोर गोदावरी छोड़ कर गुरु पोर शुकके
पक्षमें पोष तथा विश्वामयनमें प्रतिज्ञतिदाह पोर व्यती-
पातयोग तथा वैधृतयोगमें पर्ण नरादिका दाह नहीं
करना चाहिये । प्रतिज्ञतिस्कार क्यों करना होता
है ? किमो ध्यानमें जा कर जिसको देवान् स्त्रियु हो
गई है पोर जिसको मृतदेहका पता नहीं है, उसका
प्रतिज्ञतिदाह करके आशादिभक्त करना होता है ।
जिसको नाग नहीं मिलतो, उसकी पश्चि संध कर
दाह करना होगा पोर यदि पश्चि भो न, मिले, तो
पर्ण नररचित ग्रव करके उसका दाह विधेय है ।

इन्द्रोमसूत्रमें लिखा है, कि यदि शरीर विनष्ट हो
जाय, तो उसकी पश्चि संध कर चौरादकमें धो डाले,
पौछे क्षणाजिनमें पुष्पाक्षति करके दाह करे । यदि
पश्चि भो न पाई जाय, तो पलाशपत्र द्वारा क्षणाजिनमें
पुष्पाक्षतिदाह करे । पलाशपत्र जिम्नलिखित निधमसे
संस्थापन करना होता है—

१० मन्त्रक पर, १० घोडा पर, २० वक्षस्त्र पर,
१० उदर पर, ५० करके दोनों हाथों पर १००, उमलो
पर ५०, करके दोनों पैरों पर, वादाङ्गि पर ३
करके १०, मिश्रदेय पर ८, लपण पर १२ इनकी पलावा
८० पलाशपत्रोंमें प्रवयवको कल्पना करके यह पत्र-
रचित प्रवयव तैयार करे । पौछे छके क्षणाजिन पर
रख कर दाह करे । इस शवप्रतिज्ञतिदाहका नाम
पर्ण नरदाह है ।

मुख्य चिन्तामणि पोर उसकी टोका वीयप्रधारां
इसका विशेष विवरण लिखा है । विग्नार हो जानिके
मयसे यहां अधिक नहीं लिखा गया ।

पर्यायनाल (स० स्त्री०) पत्नी की माल या डंडन ।

पर्यायिणी (स० पु०) नदनह्वय ।

पर्यायिका—अनपदभेद ।

पर्यायिनी (स० स्त्री०) पर्याणि भिनत्नोति पर्या-भिद-
विनि, सियां डोप । प्रियङ्गु ।

Vol. XIII. 26

पर्याभोजन (स० पु०) पर्याय्ये भोजनं यस्य, पर्यानि
मुह्यते इति वा पर्या-भुज कर्त्तरि-ण्यु । १ क्षामल,
वक्रा । (ति०) २ पत्रभोजिमात्र, जो केषल पत्ते खा
कर रहता हो ।

पर्यामणि (स० पु०) पर्याय्यो मणिः मण्यलो० कमं वा० ।
१ हरिमणि, पत्ता । २ भौतिक पक्षभेद ।

पर्यामय (स० स्त्री०) पर्याय्य विकारः, विकारे मयट्-
(द्वयवङ्गोश्च । पा १।३।१५०) पर्याका विकार ।

पर्यामाचाल (स० पु०) पर्यामाचालयतीति पर्या-पो-
चल-विच-पर्य, निपातनात् विभक्तं लोपाभावा, बाहुल-
कात् सुत्वा । कमरैश्च, कमरखाना पिट् । (Av-
rrhoa carembola) ।

पर्यामुच (स० स्त्री०) पर्यानि मुच-त्यत्र मुच प्राधारे
क्षिप् । हृत्तका पर्यामोचनाधार शिखरकाल ।

पर्यामूल (स० स्त्री०) पर्यानां मूलं । साम्बूलमूल ।

पर्यामृग (स० पु०) पर्याचरो मृगः पशुः । पशुभेद,
पेड़ों पर रहनेवाले पशु, जैसे बंदर आदि । सद्युतमें
महु, मृषिक, हृत्तमायिका, वक्रुग, पुतिघास पोर
वानर आदिको पर्यामृग वतलाया है । इनके
मायका गुण—मधुर, शुष्पक, हृद्य, चक्षुष्य, शोणितमें
हितकर, मलमूत्रवर्द्धक एवं कास, पर्म पोर खास-
नाशक । (शृष्टुत सूत्रधान ४९ अ०)

पर्याय (स० पु०) इन्द्रसे निहत असुरभेद, एक
असुरका नाम जिसे इन्द्रने मारा था ।

पर्यायुह (स० पु०) पर्या रोहत्यय रुह-प्राधारे क्षिप् ।
पर्याजननाधार वनना काल ।

पर्याय (स० स्त्री०) पर्या-पर्यायं सिध्नादित्वात् नाच् ।
पत्रयुक्त, जिसमें पत्ते हों ।

पर्यायता (स० स्त्री०) पर्याप्रधाना सता । ताम्बूली-
सता, पानकी सता ।

पर्यायत् (स० स्त्री०) पर्या विद्यतेऽस्य, पर्यामनुप,
मस्य वा । पत्रयुक्त हृद्य ।

पर्यायस्क (स० पु०) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम ।

पर्यायको (स० स्त्री०) पर्याप्रधाना वक्त्री । पलाशीसता ।

पर्याय्य (स० स्त्री०) पत्रवृक्षात्तन द्वारा उचित मृष्ट ।

पर्यायो (स० स्त्री०) पर्यामिय अजति, अज-रिप, ततः
अजर्विभावः । खग, पयो ।

अधीत्यैव शिरसि ग्रीवायां दश वीजयेत् ।
 अति शिरसं दद्यात् विंशतिं जठरे तथा ॥
 बाहुभ्याश्च शतं दद्यात् द्वादशगुणित्वैश्च ।
 दादद्याद् वृषणयोश्चार्द्धं शिरसि एव च ॥
 ऊरुभ्यां च सतं दद्यात् शिरसं जासुत्रं पयोः ।
 पदांगुलिषु दश एतत् प्रेतस्य लक्षणम् ॥
 ऊर्णसूत्रेण संवेष्ट्य यवविष्टेन लेपयेत् ॥"

(शुद्धितत्त्वभूत आध्यात्मनिरूपणम्)

पूर्वोक्तरूपसे पलायन द्वारा जो नर प्रसृत होता है, उसे पर्णनर कहते हैं। शुद्धितत्त्वभूत आदिपुण्यमंत्र लिखा है, कि अस्थिसे नहीं मिलने पर पलायन पथवा गरपत्र द्वारा पुष्पकी प्रतिज्ञाति बनावे। इससे ऐसा सिद्धान्त हुआ, कि आचार और योग्यताके कारण गरपत्र द्वारा पुष्पक बना कर ममकादि पर पलायन रखे। पछि उसे जपोधनने बँटन कर यवपिष्टका लेप दे। यहो पर्णनर कहलायगा। यदि पिवादि किसीको मृत्यु हो जाय और उसको पश्चि न मिले, तो अशोचके मध्य पर्णनरदाह करनेसे उसी अशोचकालमें शक्ति होगी। अशोचकाल मोत जानेके बाद पर्णनरदाह करनेसे त्राताशोच होता है उसके बाद शक्ति होती है।

पर्णनरदाहके बाद यदि फिरसे पश्चि मिल जाय तो उसका दाह करे, किन्तु पिण्डादि दान नहीं करना होगा। कारण विष्णुने कहा है, कि जो अग्निजक है वे त्रिपक्ष मोत जाने पर पर्णनर दाह करे, त्रिपक्षके भीतर न करे। इससे अधिक समय बीत जाने पर कल्प पक्षको अष्टमी और दश (अमावस्या) तिथिमें दाह करके तीन दिन तक अशोच मान कर पिण्डादि दान करे। रघुनन्दनने इस वचनके समानुसार स्थिर किया है, कि अशोचकालके मध्य यदि पर्णनरदाह न हो, तो त्रिपक्षके मध्य न करे, उसके बाद करे। त्रिपक्षके बाद कृष्णाष्टमी वा अमावस्याके दिन दाह विधेय है।

"उत्रादयेदुपक्रम्येत तदस्मिन् कदाचन ।

तदन्तर्गते पलायस्य धनमेव हि पुनः किंवा ॥"

"प्रिपक्षे तु मते पर्णनर दद्यादन्यथाः ।

त्रिपक्षयान्तरे राजन् वैव पर्णनर ददेत् ॥

सुदुर्गममयी प्राप्यदशी वति विवक्षणाः ॥" (शुद्धितर)
 अष्टमीको पर्णनर दाहका विधान है। अष्टमी अर्द्धमे शुक्ला और कृष्णा दोनोंका ही मोष हो सकता है, ऐसे हालतमें किस अष्टमीको पर्णनरदाह होगा, इसको मीमांसा इस प्रकार है—सभी पितृकाय कल्पपत्रमें हो विहित हैं, अतः यह पर्णनरदाह शक्ताष्टमीमें न हो कर कृष्णाष्टमीमें ही होगा। (शुद्धितर)

सुदुर्गम चिन्तामणि और तटोका वीथू पधारामें लिखा है, कि प्रेत संस्कार दो प्रकारका है, प्रत्यक्ष गरीरका और तत्प्रतिज्ञातिका। इनमेंसे प्रत्यक्ष गरीरके संस्कारमें अमाशुभ दिनका विचार नहीं करना होता है अर्थात् मृत्युके बाद जो शवका अग्निकाय करनेमें दोष नहीं होगा। किन्तु प्रतिज्ञातिका जगह यह नियम नहीं है, वहाँ अमाशुभ दिनका विचार आवश्यक है। प्रतिज्ञात संस्कारमें अर्थात् पर्णनरदाह में तो न प्रकारका काल वनलाया है, प्रथम अशोचके मध्य, द्वितीय अर्धमासमें, और तृतीय सव्यस्तरके बाद। यदि अशोचके मध्य प्रतिज्ञात संस्कार करना हो, तो यथासम्भव दिनशुद्धिका विचार करना होता है, किन्तु वर्षके मध्य वा बाद यदि प्रतिज्ञात संस्कार हो, तो दिनशुद्धिका विचार अवश्य करना होता है। शुक्ल, शनि और मङ्गलवारको, अमावस्या चतुर्दशी, त्रयोदशी, प्रतिपदा, एकादशी और पक्षी इन सब तिथियोंमें, मूला, ज्येष्ठा, आर्द्रा और अश्लेषा, पूर्वाषाढा, पूर्वभाद्रपद और पूर्वफाल्गुनी, भरणी, मघा, पुष्या और रेवती नक्षत्रमें तथा त्रिपुष्करयोगमें प्रतिज्ञात दाह नहीं करना चाहिये।

"एकादशमास नन्दत्यो विनीवास्य शुभोदिने ।

नमस्ते च चतुर्दशी कृत्वा दश त्रिपुष्करे ॥

न कुर्वीत पुष्कृत्वास्ते पौषे स्वप्ने मन्त्रिपुत्रे ।

मिलिषितं प्रेतकाये यथा तोदायि विना ॥

प्रतर्कयामि कुर्वेत् अथ ततोतराधनम् ।

करणपक्षे च तत्रापि वर्जयेत् द्व दिनसपथम् ॥

(शुद्धचिन्तामणि एवं तटोका)

इस मतसे अमावस्याके दिन प्रतिज्ञातदाह निषिद्ध है, किन्तु रघुनन्दनने शुद्धितत्त्वमें लिखा है—

मार्गः, जो केवल पत्त खा कर रहता हो।

पर्याय—१ इलाहाबाद प्रदेशके बाँदा जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह इलाहाबाद नगरसे ८३ कोस दक्षिण-पूर्व गङ्गा और तमसा नदीके सङ्गमस्थल पर बसा है।

२ परियारपर्वतसे निःसृत एक नदी। इसका दूसरा नाम है पर्यायवा। मझाभारतमें समापर्वके ८५ पञ्चायमें यह मझामटी और शोणमहानद नामसे उल्लिखित हुई है।
३ सल नदी तीरवर्ती एक नगर। टलेमोनी इसका संकेत किया है।

पर्याय (सं० पु०) पर्यैरसति दीप्यति शोभते इति भस्मदीप्तौ चच्। तुलसी।

पर्यायि (सं० पु०) पर्यै-भस्म-वाहुनकात्-इत्। १ तुलसी। २ लघ्याजक।

पर्याहार (सं० त्रि०) पर्यै पत्रं याचारी यष्य। व्रतके लिये पत्रभोजी, जो व्रतके उद्देश्यसे पत्त खा कर रहता हो।

पर्याक (सं० त्रि०) पर्यै पण्यमस्य ठन् (किष्कादिभ्य-ठन्। वा ४।४।५।१) पर्यायिकोता, पत्त भेचनेवाला।

पर्याका (सं० स्त्री०) १ स्मरपत्र। २ दृष्टिपर्वी, पिठ-वन नामकी लता। ३ शासपर्वी, मानकन्द। ४ कर्मिप्रत्य, चरणी।

पर्यान् (सं० पु०) पर्यै भक्ष्यथे इति। १ लघ, पिठ। २ शासपर्वी, सरिवन। ३ दृष्टिपर्वी, पिठवन। ४ चक्षुराभेद। ५ तेजपत्र, तेजपत्ता। ६ पलाशवृक्ष। ७ सप्तवर्णवृक्ष।

पर्यानी (सं० स्त्री०) १ शासपर्वी, सरिवन। २ कल्याणपुत्र। ३ दृष्टिपर्वी, पिठवन। ४ मायपर्वी, मयवन।

पर्यानीदय (सं० स्त्री०) मायपर्वी और सुवपर्वी।
पर्याय (सं० त्रि०) पर्यै अस्त्यर्थे पिच्छादित्वादि लृच्। पर्यायिनिष्ठ।

पर्यायि (सं० त्रि०) पर्यै उत्क्रादिवात् क् (उत्क्रा-दिभ्यः। वा ४।१।०) पर्यायिभ्यः।

पर्यायि (सं० पु०) सुगन्धवाला।

पर्यायिज (सं० स्त्री०) पर्यायनिर्मितं सटजं, मध्यसी-कम धा०। पर्यायशा।

पर्याय (सं० पु०) पर्यायानां चक्षः। काश्मीरस्य जनपदमेत-
पर्याय (सं० त्रि०) पर्याय-यत्। पर्याका हितकर, पर्या-
सम्बन्धोय।

पतं (हिं० स्त्री०) परत देखो।

पत्तुं गाल—पुर्तगाल देखो।

पत्तुं गोज—पुर्तगीज देखो।

पत्तं (सं० त्रि०) रघामाधनभुत।

पदं नो (हिं० स्त्री०) धोतो।

पदरं (हिं० पु०) परदा देखो।

पदानिगोन (हिं० त्रि०) परदानगोन देखो।

पदं (सं० पु०) पृ-वाहुनकात् इत्। १ कैशसमूह। पद-

चपनोत्सर्ग-भच्। २ चपानोत्सर्ग, चपान वायुका त्याग,
पाद। ३ कैशसमूह, सिरकं बाल। ४ चनकेश, चने बाल।

पदन (सं० स्त्री०) पदं द्युत्। वातकर्म, वायु-
निःसारण, पादना।

पर्य (सं० स्त्री०) पृ-पालनादौ निपातनात् परप्रत्यये ल-
सिच् (लघाचिन्त्यस्य परादास्य परप्रत्ययः। उन्। ३।२८) इ-
नवटण। २ शृङ्ग। ३ खञ्जवाद्ययकट।

पर्यट (सं० पु०) पर्यै-यटन्। १ खनामख्यात कृत्स्न कुप,
विस्फापवृक्षा (Oldenlandia bassora)। पर्याय—
त्रिपट, तिर, चरक, रेणु, टण्डारि, वरश्, भरक, शोत,
शोतम्रिय, पाश, कल्याण, कर्म कण्ठक, लग्नगात्र, प्रगन्ध,
सुतिक्त, रक्तपुष्पक, पिचारि, कटुपत्र, वक्ष। गुण—
शीतल, तिक्त, पित्तश्लेष्मा, क्वर, रक्त, दाह, पदधि,
ग्लानि, मद और भ्रमनाशक। भावप्रकाशके मतसे इस-
का गुण—पित्त, भस्म, भ्रम, टण्डा और कफक्षरनाशक,
संघाही, शीतल, तिक्त, लघु, वातघ्नक और दाहनाशक।
२ पिष्टकभेद। गुण—लघु और रुक्ष।

सरदकी दासकी पानोमें मिगोकर उसको भूखी
निकास लेते हैं, पीछे उसे भूपमें सुखा कर चक्रोंमें पीसते
हैं। इस प्रकार जो पाटा तैयार होता है उसका नाम
भूमवी है। इस भूमवीमें हॉग, हबदो, नमक, जोरा
पादि मसाला डाल कर बहुत पतलो पतली रोटी
बनाते हैं। पीछे उस रोटीकी पहाकरकी चमि पर गरम
कर लेनेसे पर्यट तैयार होता है। यह पर्यट भक्ष्य
सुखरोचक, पचनप्रदीपक, पाचक, रुच और किञ्चित्

पर्णवीटिका (स० स्त्री०) पर्णस्य वीटिका । स्तवको
स्ततस्त्वस्त्व, पानका बोझा ।

पर्णगद (स० पु०) पर्णानि शयन्ते शौर्यं क्ते यत्र गद-
मन्त्रायां पात्रारे च । १ पतित पर्णस्थितिदेश । २
तद्रूप रुद्रभेद ।

पर्णश्या (स० स्त्री०) पर्णरचिता शय्या मध्यलो-
भमंधा० । पत्ररचित शय्या, पर्वाका विक्रीना ।

पर्णश्वरो (स० पु० स्त्री०) पर्णभक्षणकरः श्वरो-
यत्र । १ देशभेद, पुराणानुसार एक देशका नाम ।
२ इस देशकी रहनेवालों कादिम जनार्थ जाति जो
कदाचित् पशु विगष्ट हो गई हो । ये लोग पैदल के पत्तों-
को गाँव कर अपना लज्जाका निवारण करते थे । ये
कादिम जनार्थ जाति थे, यहविषयकादिम भी विमेष
पट्ट, ये । टलेमो इन्हें Phullitae नामसे उल्लेख कर
गये हैं । आगर नगरमें इनको राजधानी थी । कोई
कोई उक्त आगरको वर्त्तमान आगर मानते हैं । मार्क-
ण्डेयपुराणमें भी इस जाति और देशका उल्लेख है ।
(मार्क० पु० ५८।१८) श्वर देखो ।

पर्णश्वरी—उपदेशोविमेष । नेपाल प्रदेशमें ये 'घाँय-
पर्णश्वरी' तारादेवी नामसे प्रसिद्ध हैं । पशुभूषणसे
हो ये हमेशा भूषित रहते हैं । इनके नामका कवच
पहननेसे समस्त बाधा और विघ्न नाश होते हैं । "नग-
वती पिशाचीय पाठपरब्रह्मचरिणी" इस प्रकार अस्त्र-
मालाविभूषिता पिशाची देवीकी वर्णना पाई जाती
है । उपासमाकात्ममें 'ओं पिशाचवर्णेश्वरी ह्रीं ह्रूं
कद् पिशाचि स्वाहा' यह मन्त्र उच्चारण करना
पड़ता है । पर्णश्वरीसाधनका विषय साधनमाला-
तन्त्रमें विस्ताररूपसे लिखा है ।

(साधनमालातन्त्र ८० पटल)

पर्णशला (स० स्त्री०) पर्णरचिता शाला । १ पत्र-
रचित कुटीर, पत्तोंकी बनी हुई कुटी । पर्याय—उटज,
पर्णोत्तज । २ मण्ददेशस्थित पामविमेष । यह देश गङ्गा
और यमुनाके मध्यवर्ती है तथा यमुनानिकरके निम्न-
देशमें अवस्थित है । यह स्थान बहुत रमणीय है और
शास्त्रण लोग यहाँ वास करते हैं । (भाट्ट ११।५८२)

पर्णशला—मन्दाग्रप्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत एक

तोयक्षेत्र । यह मद्रासजनम नगरसे १० कोस दूरमें अव-
स्थित है ।

पर्णशलाप (स० पु०) मद्रासवर्षस्थित कुलावनभेद,
पुराणानुसार मद्रासवर्षके एक पर्वतका नाम ।

पर्णशय (स० पु०) पर्णशयन्यत्र, शय-पाधारे लिप् ।
उचका पत्रगोपक शीतकाल ।

पर्णम (स० त्रि०) पर्णस्यादूरदेशादि । पर्णस्थिति-
त्वात् स । पर्णका अदूर देशादि ।

पर्णमि (स० पु०) पृथुरण्ये पति ण क्त्वा (धातु-
वर्णिते पर्वतीति । उच् ५।१००) १ पद्म, कमल । २ जप-
माला, पानीमें बना हुआ चर । ३ शाक, ताग । ४ पाम-
रणक्रिया ।

पर्णा—युक्त प्रदेशके आगरा जिलान्तर्गत पर्णाहाट तह-
सीलका एक गण्डपाम । यहाँ यमुनाके दाहिने
किनारे पर्वतके ऊपर एक दुर्ग बना हुआ है ।

पना देखो ।

पर्णाटक (स० पु०) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम ।

पर्णाद (स० त्रि०) पर्णमसि व्रतार्थं मद-पण् । १
व्रत कल्प पत्रभक्षक, किसी व्रतके चर्हणसे पत्ते खा कर
रहनेवाला । (पु०) २ ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम ।
३ टमयन्त्री प्रेरित एक ब्राह्मण । नर और दमदम्भी देखो
पर्णान (स० पु०) १ नोकाभेद । २ कौदाकोविमेष ।
१ सुद्र युद्ध ।

पर्णान—दाक्षिण्यके भोजापुर राज्यके चन्तर्गत एक
नगर । यह कौन्हापुर नगरसे ६ कोस उत्तर-पश्चिममें
अवस्थित है । भोजापुरराज कादिल खाँके सेनापति
कस्तम खाँ १६६० ई०में इस दुर्गके समोप महाराष्ट्रऔर
शिवाजी द्वारा परास्त हुए थे । इसके बाद यहाँ शिवाजी-
के साथ भोजापुर-सेनापति खानेकानामका फिरसे
युद्ध हुआ था । तभीसे यह दुर्ग महाराष्ट्रके अधिकार-
में रहा । पछि १६८० ई०में औरङ्गजेबकी आकांक्षे
सुकावर खाँने पर्णानमें घेरा डाला और मम्भूकी परास्त
कर उक्त दुर्ग को लिया । वर्त्तमान सानचित्रमें यह
स्थान पनालानामसे प्रसिद्ध है । पनाला देखो ।

पर्णाशन (स० पु०) पर्णे चञ्चति भक्षयतीति पण-स्य,
पर्णानामग्रणी वा । १ मूत्र, बादल । (त्रि०) २ पत्रभोजि-

मीन, जो केवल पत्ते खा कर रहता हो।

पर्याय—१ इलाहाबाद प्रदेशके बांदा जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह इलाहाबाद नगरसे ८॥ कोस दक्षिण-पूर्व गङ्गा और तमसा नदीके सङ्गमस्थान पर बसा है।

२ परियारपर्वतने निःसृत एक नदी। इसका दूसरा नाम है पर्यवहा। महाभारतमें समापर्वके ८वें अध्यायमें यह मछानदी और शोणमछानद नामसे उल्लिखित हुई है।

३ उल्ल नदी तीरवर्ती एक नगर। टलेमीने इसका उल्लेख किया है।

पर्याय (सं० पु०) पर्यैरसति दीप्यति शोभते इति भस्मदीप्ति चक्षुः तुलसी।

पर्यायि (सं० पु०) पर्यं चक्षुःवाङ्मलात्-इत् । १ तुलसी। २ क्षणार्जक।

पर्याहार (सं० त्रि०) पर्यं पत्रं आहारो यश्च। व्रतके स्थिये पत्रमोजी, जो व्रतके उद्देश्यसे पत्ते खा कर रहता हो।

पर्याक (सं० त्रि०) पर्यं पण्यमस्य ठन् (किशारिभ्य-ठन्। वा ४।५।११) पर्याविक्रीता, पत्ते बेचनेवाला।

पर्याका (सं० स्त्री०) १ सप्तपत्र। २ दृष्टिपर्वी, पिठ-वन नामकी लता। ३ शासपर्वी, मासकन्द। ४ चर्मिमन्त्र, चररो।

पर्यान् (सं० पु०) पर्यं अक्षये इति। १ उल्ल, पेड़। २ शासपर्वी, सरिखन। ३ दृष्टिपर्वी, पिठवन। ४ चक्षुराभेद। ५ तीजपत्र, तीजपत्ता। ६ पलाशवृक्ष। ७ समवर्णवृक्ष।

पर्यानी (सं० स्त्री०) १ शासपर्वी, सरिखन। २ कल्याणधृत। ३ दृष्टिपर्वी, पिठवन। ४ मापपर्वी, मधुवन।

पर्याभेदय (सं० स्त्री०) मापपर्वी और सुवर्णपर्वी। पर्याभ (सं० त्रि०) पर्यं अस्त्यर्थं पिच्छादित्वादि लृट्। पर्याभिमिश्र।

पर्यायि (सं० त्रि०) पर्यं उत्करादित्वात् छ (उत्करा-दिभ्यः। वा ४।१०) पर्यासम्बन्धोय।

पर्यायि (सं० पु०) सुगन्धवाला

पर्यायि (सं० स्त्री०) पर्याभिमिश्रं चटजं, मधुसो-कम धा०। पर्यायाला।

पर्याय (सं० पु०) पर्यायानां उक्तः। काश्मीरस्य जनपदभेद पण्यं (सं० त्रि०) पर्यं-यत्। पर्याका हितकर, पर्या सम्बन्धोय।

पतं (हिं० स्त्री०) परत देखो।

पत्तुं गाल—पुर्तगाल देखो।

पत्तुं गोज—पुर्तगीज देखो।

पत्तुं (सं० त्रि०) रक्षासाधनभूत।

पदं नो (हिं० स्त्री०) घोतो।

पदं (हिं० पु०) परदा देखो।

पदान्धोन (हिं० वि०) परदानभोन देखो।

पदं (सं० पु०) पृ-पाङ्गुलकाम् द। १ कैशसमूह। पद-चपनोक्तम्-पच्। २ चपानोत्सर्ग, चपान वायुका त्याग, पाद। ३ कैशगुच्छ, सिरकं बाल। ४ चनकेश, चने बाल।

पदं (सं० स्त्री०) पदं वृत्। वातकर्म, वायु-निःसरण, पादना।

पर्यं (सं० स्त्री०) पृ-पाङ्गुलकाम् निपातनात् पप्रत्यये न चिक् (उपधात्वात्पप्रत्ययेनपतेत्यन्तः। उण् ३।२८) १ नववृक्ष। २ गृह। ३ खड्गवाद्यगकट।

पर्यं (सं० पु०) पर्यं-पटन्। १ खनमख्यात कृष्ण पुष्प, पिच्छपापुष्पा (Oldenlandia balfora)। पर्याय—त्रिपटि, तिर, चरक, रण, टण्डारि, चरक, चरक, शीत, शीतप्रिय, पाश, कल्याण, कर्म कण्ठक, क्षमाग्राह, प्रगन्ध, सुतिक्त, रक्तपुष्पक, पिच्छारि, कटुपत्र, वक्र। गुण—शीतल, तिक्त, पिच्छलेप्ता, क्वर, रक्त, दाह, चर्दचि, श्लानि, मृद और भ्रमनागक। भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—पित्त, पित्त, भ्रम, टण्डारि और कफक्षरनागक, संपाही, शीतल, तिक्त, कटु, वातघ्नक और दाहनागक। २ पिच्छाभेद। गुण—लघु और क्वर।

उरदकी दासकी पानोमें भिगो कर उसको भूसी निकाल लेते हैं, पीछे उसे धूपमें सुखा कर चक्रोंमें पीसते हैं। इस प्रकार जो पाटा तैयार होता है उसका नाम धूमवी है। इस धूमवीमें होंग, हव्दो, तमक, जोरा आदि मसाला डाल कर बहुत पतलो पतली रोटी बनाते हैं। पीछे उस रोटीकी पट्टारकी चर्म पर गरम कर लेनेसे पर्यं तैयार होता है। यह पर्यं अत्यन्त सुखरोचक, अतिप्रदीपक, पाचक, क्वर और किष्ट

गुरु माना गया है। मृगशी दासका जो पर्यट बनता है, वह भी भूमिभोजन पर्यटको तरह हितकर है।
पर्यटक (मं० पु०) पर्यट-स्वायं कन् । पर्यट ।
पर्यटद्रम (मं० पु०) १ कोष्ठप्रदेश-प्रसिद्ध कुशोत्तुल ।
२ गुणसुका पट्ट ।

पर्यटादि (सं० पु०) १ काशोधमभेद । प्रसृत प्रणाली—
पित्तपापहा २ तोला, पाकाय जन ३२ तोला, श्रेष्ठ ८ तोला । यह पित्तज्वरकी एक उत्कृष्ट औषध है । यदि पित्तपापहा, रक्तचन्दन, सुगन्धवाना और कचूर कुल मिला कर २ तोलसे पूर्ववत् काय प्रसृत करके सेवन किया जाय, तो वह विषैय फलप्रद होता है ।

(भेषजशास्त्रां स्वागधि०)

पर्यटी (सं० स्त्री०) पर्यट-डोप । १ सोराद्रुमस्तिका, गोपचन्दन । २ उत्तरदेशमय सुगन्धिद्रव्य, पपड़ो ।
पर्याय—रञ्जनो, छया, जतुका, जनो, जनो, जतुछया, संहर्षा, जतुका, चक्रवर्त्तनी । गुण— रुष, तिक्त, शिथिल, वर्णहृत्, तप्त और विष, मधु, कण्डू, कफ, पित्त, भस्म और कुष्ठनाशक । ३ पानडो ।

पर्यटोरस (सं० पु०) औषधभेद । प्रसृत प्रणाली—
पारा एक भाग और गन्धक दो भाग, चन्दे खड्गशजके रसमें हल करते हैं । दोहो उसमें चतुर्थांश ताम्र और लोह भस्म मिला कर लोहपात्रमें पाक करते हैं । जब यह ऊर्ध्वमें जैसा हो जाता है, उस समय उसे गोबर-के जलपर रखे हुए ढेलेके पत्ते पर पर्यटोत्पन्न रख देते हैं । बादमें उसे चूर कर समालूके रसमें एक दिन तथा जयन्ती, छतकुमारो पड़ूस, ब्रह्मपट्टि, त्रिकटु, भृङ्गराज, बीता और मुण्डरी प्रत्येकके रस वा कायमें मात्र दिन भावना दे कर चन्दन चट्टारे पर खेव देते हैं ।
मात्रा ४ रसो और अनुमान हरीतकी, मोह का काय है । यह सौम्यस्वरूप माना ।

(रघुवैद्यशास्त्र)

पर्यायविध—
भस्म चयसा
शोभो चयसा यः
पित्तपापहृत्के
और हरीतकी
करना

पर्यटोक्त (मं० पु०) पित्तोत्ति पृ-रक्तन् (पृ-रक्तन्) दोह-
वाग्वासव । उग्न-४।१८) १ सूर्य । २ बलि । ३
जन्मायय ।

पर्यटोत्त (मं० पु०) पृ-रक्तन्, वाहू रक्तन् । १
पर्व । २ पर्यायस्तरम । ३ पर्यायशिरा । ४ पदचूष-
रस । ५ द्युतकम्बल ।

पर्यिक (सं० पु० स्त्री०) पर्यण गच्छतीति पर्य ठन् ।
खेञ्ज, खंगड़ा ।

पर्यादि (सं० पु०) पाणिन्युक्त शब्दगणभेद । पर्य,
अन्न, चन्द्रम, रय, जान, न्यास और व्यास पर्यादिगण हैं ।
पर्यारोक्त (सं० स्त्री०) स्फुर-रक्तन् पर्यारोक्तादयश्च इति
निपातनात् साधु । किसलय, नवपल्लव ।

पर्ये (हिं० पु०) पर्ये देखो ।

पर्यंत (हिं० पु०) पर्यंत देखो ।

पर्यतो (हिं० वि०) पहाड़सम्बन्धो, पहाड़ी ।

पर्यशुद्धि—नगरभेद ।

पर्याहि (सं० पु०) जर्णारामके एक पुत्रका नाम ।

पर्याग (सं० पु०) कडाह, बड़ो कड़ाही ।

पर्यशु (सं० पु०) परितो न मच्छन्ति प्रापे वाचः यस्मात्
इन्द्रिय नियन्ता, जितेन्द्रिय ।

पर्याग्नि (मं० पु०) १ यज्ञके लिये छोड़े हुए पदकी
अग्नि ले कर परिक्षमा करना । २ वह अग्नि जो
हाथमें ले कर यज्ञको परिक्षमा की जाती है ।

पर्याग्निजल (सं० वि०) अग्नेः परितः जलः । चारों ओर
अग्निवेष्टन द्वारा कृतचस्तार ।

पर्याह (सं० पु०) परितोऽहृतं इति परि-पक्-चञ् ।

१ खट्वा, पसंग । पर्याय—मन्त्र, मन्त्रक, पण्डित, पर्यायिका
परिहृत्—अयसक श्रिका । २ योगका एक आसन ।
का वीरासन । ४ नर्मदागदीके उत्तर
तका नाम जो विन्ध्यपर्वतका पुत्र माना

पर्याय पादोत्सवाः

रंगशोभे, सुपरा-

यन्त्रः यन्त्रः

पर्यवसान (स० स्त्री०) पर्यवस्य यद्वस्यन् ।
 वस्त्रादि द्वारा एक जगत् और अष्टा वस्त्रन् ।
 पर्यवस्य (स० पु०) अन्तर्गत यत्तमवस्योद्य प्रथम यूपमे
 सन्त्योद्य पक्षद्वय सन्त्युद्य पक्षभेद ।
 पर्यटन (स० स्त्री०) परितोऽनन्तं स्त्रमणं परि-पट भावे
 ल्युट् । पुनः पुनः गमन, घूमना फिरना । पर्याय—
 मन्त्रा, घटाय ।
 पर्यनुयुक्त (स० त्रि०) जिज्ञासित, जो पूछा गया हो ।
 पर्यनुयोग (स० पु०) परितोऽनुयोगः पृच्छा, परि-पु-
 युक्त-पक्ष । जिज्ञासा, पूछना ।
 पर्यनुयोज्य (स० त्रि०) परि-पु-यु-कर्मणि ल्यप् ।
 निपक्षोपपत्ति द्वारा चोटनोप, प्रेषोप ।
 पर्यनुयोज्योपेक्षण (स० स्त्री०) गौतमोक्त निपक्षस्थान
 भेद ।
 पर्यन्त (स० पु०) परितोऽन्तं प्रादि समानः । १ मेघ-
 सीमा । २ समोप, पास । ३ पाशं, बगल । (अथ)
 ४ तक, खो ।
 पर्यन्तम् (स० स्त्री०) पर्यन्तस्य क्षेत्रसीमायाः भू-
 पृथिवी । नदी, नगर और पर्वतादिको उगान्तभूमि ।
 पर्याय—परिवार ।
 पर्यन्तिका (स० स्त्री०) परितः सर्वतोभावेन अन्तिका,
 गुण्यदीर्घा नामिका । गुण्यभंग, गुण्यनाम ।
 पर्यन्तोक्त (स० त्रि०) सम्पादित, जो समाप्त किया
 गया हो ।
 पर्यन्त (स० पु०) पञ्चम्य पृथोदशदित्यात् साधुः । १
 इन्द्र । २ शब्दायमान सित, गजजना दुषा वादन । ३
 सितशब्द, वादनकी तरङ्ग ।
 पर्यन्त (स० पु०) पर्यन्त देणो ।
 पर्यन्त (स० पु०) परि क्रमणः अथो गमनं । क्रमोक्तहन,
 किसी नियम या क्रमका उत्पन्न । पर्याय—पतिपात,
 उपात्यय, विपर्यय, पत्यय, पतिपतन, व्यत्यय, अतिक्रम ।
 पर्यन्त (स० स्त्री०) परितोऽन्तं गच्छत्यनेन परि-पन्थ-
 ल्युट् । पन्थसज्जा, जौन ।
 पर्यन्त (स० त्रि०) अपर्याप्तस्वरूपे उत्पन्न वा जात ।
 पर्यवदात (स० त्रि०) १ उत्तमस्वरूपे परिच्छिन्न । २
 परितः । ३ मोक्षवन्धन वा छानयुक्त ।

पर्यवदापयित (स० पु०) दाता, यह जो विभाग कर
 देता है ।
 पर्यवधारण (स० स्त्री०) यथायथ निरूपण ।
 पर्यवरोध (स० पु०) बाधा, चङ्गा ।
 पर्यवसान (स० स्त्री०) परि-पन्-तो-भावे ल्युट् । १
 अन्त समाप्ति, अन्तमा । २ अन्तर्भाव, शामिल हो जाना ।
 ३ राग, क्रोध । ४ ठीक ठीक अर्थ निरूपण करना ।
 पर्यवसानिक (स० त्रि०) जीव अवस्थागत ।
 पर्यवसायिन् (स० त्रि०) परि-पन्-तो-निनि । पर्यव-
 सामग्री ।
 पर्यवसित (स० त्रि०) परि-पन्-तो-कर्मणि ल्यप् । १
 पूर्वापरालोचन द्वारा अवधारित अर्थ । २ निरूपणार्थ ।
 पर्यवस्यन्त (स० पु०) रथादिषु सम्प्रदानपूर्वक
 अवधारण ।
 पर्यवस्था (स० स्त्री०) परितोऽवस्थानं परि-पन्-दथा-
 शब्द (आचारचोपवर्ग, वा ३।३।१०६) । प्रतिपक्षजाट ।
 पर्यवस्था (स० त्रि०) पर्यवस्यन्तते इति-परि पन्-स्था-
 ल्यप् । पर्यवस्थानकर्त्ता, विरोधो ।
 पर्यवस्थान (स० स्त्री०) परितोऽवस्थिततेऽनेन परि-पा-
 स्था करणे ल्युट् । १ विरोध । २ सर्वताभावे
 अवस्थित ।
 पर्यवस्थित (स० त्रि०) रागान्वित, क्रोधयुक्त ।
 पर्यन्त (स० त्रि०) अन्तर्गतने स्त्रान्, अन्तर्गुणं ।
 पर्यन्त (स० स्त्री०) परि-पन्-तो-भावे ल्युट् । १
 अपवारण । २ दूरीकरण । ३ परितः क्षेत्र, चारों ओर
 क्षेत्र ।
 पर्यन्त (स० त्रि०) परितोऽन्तः क्षिप्तः, पन्-वेपे-न्-तः ।
 १ पतित । २ हत । ३ सर्वता प्रचुर, विस्तृत । ४
 विक्षिप्त । ५ प्रसारित । ६ दूरीकृत । ७ उद्विग्न ।
 पर्यन्तवत् (स० त्रि०) पर्यन्त अवस्थानं मनुष्य, मन्त्र-
 व । पर्यन्तवत्, पर्यन्त पर्यन्त सन्त्योद्य ।
 पर्यन्तावृत्ति (स० स्त्री०) यह पर्यायद्वार जिनमें
 वस्तुका गुण भोवन करके उस गुणका किसी दूसरेमें
 आरोपित किया जाना अर्थान्न किया जाय ।
 पर्यन्ति (स० स्त्री०) पर्यन्त्यते शरीरं यत्र परि पन्-मेव,
 आधारे भावे वा जित् । १ पक्ष्य, पन्नग । २ दूरी-
 करण, अन्तर्ग कराना, हटाना ।

पर्यास्तिका (स० स्त्री०) पर्यास्त स्वार्थे कन्-टाप् ।

खटा, खाट, पञ्चग ।

पर्याकुल (स० त्रि०) परितः आकुलः । १ अतिशय व्याकुल, बहुत घबराया हुआ । २ हलचलितगति । ३ अतिशयस्त ।

पर्याकुलत्व (स० क्ली०) पर्याकुल-भावेत्वं । व्याकुलता, अशान्त भाव ।

पर्याप्त्यान् (स० स्त्री०) परि-चक्षिङ्-ल्युट् (वक्षिङ्-ल्युट् । पा २।४।३४) इति ध्यादिभ्यः, वा परितः आख्यान् ।

परितःक्षण, आख्यान् ।

पर्यागत (स० त्रि०) पक्ता, पक्का ।

पर्यागतत्वं (स० त्रि०) परि-आ-गन्-शब्द । अ्योतत्, चरत् ।

पर्याधान (स० स्त्री०) परितः आधानम् । भोजनके समय पसनों आदि पर रखा हुआ वह भोजन जो एक पंक्तिमें बैठ कर खानेवालोंमेंसे किसी एक व्यक्तिके बीचमें दो आचमन कर लेने भयवा लठ खड़े होनेके बाद बच रहता है । ऐसा भक्ष्य ठूठा और दूषित समझा जाता है । ऐसी जालमें एक पंक्तिमें खानेके लिये जितने मनुष्य बैठे हुए हैं उन्हें सबको यह भक्ष्य परित्याग करना चाहिये । मनुष्योंमेंसे कुछकने लिखा है—

“वमानं सूतिकान्ध पर्याधानमभिदिश्यम् ॥”

(कुल्लुक

व्यास, सूतिकावध और पर्याधान-प्रवृत्ति परित्याग करना चाहिये । याज्ञवल्क्यरहितको मुद्रित पुस्तकमें ‘पर्याधान’ ऐसा पाठ देखनेमें आता है, लेकिन वह प्रमादिक है ।

पर्यावित (स० त्रि०) परि-अ-वि-ञ्ज । आवित, व्याप्त ।

पर्याण (स० स्त्री०) परितो याति गच्छत्यनेति परि-आ-ल्युट्, प्रयोदगादित्वात् साधुः । १ शयनप्रवृत्ति का आसन, चौड़ेको पीठ परका पलान । २ शयनमञ्चा, चौड़ेको साज जोन ।

पर्याणन (स० स्त्री०) सोमोऽनसि स्थितः, समन्तादान-श्रुतिऽनेन परि-आ-नह कारणे ल्युट् । सोमशकटोपरि-गत पटकुटीरस्य तद्वन्धनोपायपदार्थः ।

पर्यादान (स० स्त्री०) १ शय, पलान । २ शय, नाग ।

पर्याप्त (स० त्रि०) परि-आप-भावे क्त्वा । १ योग्य,

काको, पूरा । २ प्राप्त, मिला, हुआ । ३ शक्तिसम्पन्न, जिसमें शक्ति हो । ४ समर्थ, जिसमें सामर्थ्य हो । ५ परिपूरित । (स्त्री०) ६ दृष्टि, संतोष । ७ शक्ति, ताकत । ८ निवारण । ९ प्राप्ति, यष्टि होनेका भाव । १० सामर्थ्य । ११ योग्यता ।

पर्याप्तभोग (स० त्रि०) भोगातिशयः ।

पर्याप्ति (स० स्त्री०) परि-आप-क्तिन् । १ सम्यक्प्राप्ति ।

२ परिदाय । ३ शरणोद्यतता निवारण । ४ प्रकाश । ५ प्राप्ति । ६ दृष्टि । ७ शक्ति । ८ नैयायिकोंका मतपरिहारात्मक-सम्बन्धविशेष । यह सम्बन्ध सभी पदार्थोंका विभिन्नबुद्धिनिर्वाहक है । अतएव यह पदार्थ भेदसे माना प्रकाशका है । यथा—यह एक घट है, यह दो घट है इत्यादि पर्याप्ति प्रतीतिसाक्षिक है । हितोपाय्यत्वं पर्याप्तवादमें गदाधर भट्टाचार्यने लिखा है, कि पर्याप्ति दो प्रकारकी है, वही पर्याप्ति और पूर्ण पर्याप्ति । इनमेंसे जहाँ अधिक निराशयके लिये जो पर्याप्ति निवेशित होती है, वहाँ इसे पूर्णपर्याप्ति कहते हैं । जैसे—‘एवंतो वज्रिमान् भूमात्’ इत्यादिको जगह साध्यतावच्छेदक वज्रत्वनिष्ठा पर्याप्ति है, यही पूर्णपर्याप्ति है । फिर जहाँ ध्युन धारणके निमित्त जो पर्याप्ति निवेशित होती है, वहाँ इसे पूर्णपर्याप्ति कहते हैं । जैसे—‘एवंतो न महानदीय वज्रिमान्’ पर्याप्त पर वज्र है, लेकिन महानदीयवच्छेदीय वज्र पर्याप्त पर नहीं है, इत्यादि जगह साध्यतावच्छेदकी भूत महानदीयत्वविशिष्ट वज्रत्वनिष्ठा पर्याप्ति है । यही पूर्णपर्याप्ति है । (द्वितीयाध्यायपरिवाद)

पर्याधान (स० पु०) परि-आ-धु-ञ्ज । १ अभिप्रेषणार्थः । २ परितः आधान, चारों ओरसे डूबाना, बोरना ।

पर्याय (स० पु०) परि-रन गतो घञ् । (पाठग्रन्थपरः इति । पा १।१।२०) १ पर्यायण, क्रम, सिमसिला, परम्परा । पर्याय—आनुपूर्वी, आह्वन, परिपाटी, आनुक्रम, आनुपूर्व, आनुपूर्वक, परिपाटी । २ प्रकार । ३ पञ्चमर, मोका । ४ विमोच, वननिका काम । ५ द्रव्यधर्म । ६ क्रम द्वारा एकाग्रवाचक शब्दको पर्याय कहते हैं । ७ सम्यक्विशेष, दो व्यक्तियोंका वह पारस्परिक सम्बन्ध जो दोनोंके एक ही कुलमें उत्पन्न होनेके कारण होता

है। ८ पर्याप्तद्वारविशेष, वह पर्याप्तद्वार जिसमें एक वस्तुका क्रममें पनेक आशय लेना वर्णित हो।

पर्यायक्रम (स० पु०) १ एकके बाद दूसरेका चयिष्ठान, क्रममें बदली। २ मान या पद आदिके विचारमें क्रम, बढाई छोटाई आदिके विचारमें भिन्नमिना।

पर्यायस्थान (स० त्रि०) स्वाधिकार प्रथमे भ्रष्ट, पर्याय-क्रममें जिसकी पदोचति न हुई हो।

पर्यायवचन (स० स्त्री०) एकाद्यैवकायक-शब्द।

पर्यायवाचक (स० त्रि०) पर्यायवाचको यत्न। १ जिसमें पर्यायवाचक शब्द हो। २ पर्यायशब्दका वाचक।

पर्यायवृत्ति (स० स्त्री०) एकको त्याग कर दूसरेकी प्रवृत्ति करनेकी वृत्ति, एकको छोड़ कर दूसरेकी प्रवृत्ति करना।

पर्यायगत (स० स्त्री०) पर्यायेण क्रमेण गत्यर्थ। प्र-रिक्तिका क्रमशुभारम्भे गत्यर्थ, पहरेदारों आदिका क्रममें चपनी चपनी चारोंमें सेना। पर्याय—उपागय, विगाय।

पर्यायशब्द (स० पु०) पर्यायवाचको शब्दः। पर्याय-वाचक शब्द, एक पर्याय शब्द।

पर्यायगम (स० पञ्च०) पर्याय-चगमः। पर्यायक्रमसे, समय समयमें।

पर्यायगत (स० स्त्री०) पर्यायगत देखी।

पर्यायगत (स० पु०) मन्त्रोक्त वा नृत्यादिका चक्रमेष्ट।

पर्यायिन् (स० त्रि०) १ चारों ओर घेरित वा आगत। २ पर्यायानुक्रमसे।

पर्यायोक्त (स० त्रि०) पर्यायेण उक्तः। १ क्रममें उक्त, जो भिन्नभिन्न बार कहा गया हो। (स्त्री०) २ पर्याप्तद्वार-भट, वह शब्दात्मकद्वार जिसमें कोई बात भक्ति साफ न कह कर कुछ दूसरी वचनरचना या सुमाव फिरोसे करी जाय, पद्यवा जिसमें किसी रमणीय-मिम या व्याज-में कार्यमाधन धिये जानेका वर्णन हो।

पर्यायिण (स० त्रि०) परि-क्त-यिनि। १ परितः-पान्ति-युक्त।

पर्यायो (स० पञ्च०) परि-पा-यन्-इत्यर्थः। हिंसा।

पर्यायोचन (स० स्त्री०) परि-पा-लोच-मावे-ल्युट्। १ सम्यक् विवेचन, अनुगमन, अच्छी तरह देख भान। २ विमर्श।

पर्यालोचना (स० स्त्री०) पर्यायोचन-टाप। १ सर्वतो-भावे पर्यालोचना, किसी वस्तुको घूरी देखभान, घूरी जाय पड़ताल।

पर्यावर्तन (स० पु०) परि-पा-वृत्त-वञ्ज्। १ मंसारमें फिरसे आ कर जगमगहण। २ मोटना, यापन चाना।

पर्यावर्त्तन (स० स्त्री०) परि-पा-वृत्त-ल्युट्। १ सय-को पथिमवर्त्तिनो कायाके पूर्वदिक्-वर्त्तिकूपमें परि-वृत्ति।

पर्यावर्त्तन (स० त्रि०) परितः-पान्ति-युक्त। १ परितः-पान्ति-युक्त। २ परितः-पान्ति-युक्त।

पर्याय (स० पु०) पर्याय-वृत्ति इति परि-पञ्च-वञ्ज्। १ पतन, गिरना। २ इनन, बध, मार डालना। ३ परि-वर्त्तन, फिरोव, सुमाव। ४, यद्विषयमानगत तान प्रकार-के वृत्तिमेंसे वृत्तिमद्वय-। ५ नाग।

पर्यायन (स० स्त्री०) परि-पा-पञ्च-ल्युट्। १ चारों ओर घूमना, परिक्रमा करना। २ किसीको घेर कर बैठना, चारों ओर बैठना।

पर्याहार (स० पु०) परि-पा-हृ-वञ्ज्। १ एक लगभगमें दूसरो जगहमें जाना। २ नाका, चाटो। ३ कलसो। ४ सुवर्णियेय।

पर्यायण (स० स्त्री०) परितः-पान्ति-युक्त। १ तृतीयभावे जनादिका चारों ओर घूमना, आह, होम या पूजा आदि-के समय यों ही पद्यवा कोई मन्त्र पढ़ कर चारों ओर जल छिड़कना। २ मन्त्रेदो विना मन्त्रके हो चोर साम-वेदो मन्त्रपाठके माध पर्यायण करति हैं। सामवेदोके पर्यायणके विषयमें-गोभिलशृङ्ग-मन्त्रमें इव पतार मन्त्र लिखा है—“अग्निमुपसमावाय परितःपुनः दक्षिणतःपुनः दक्षिणतःपुनः प्रयुजेति प्रदक्षिणमग्निं पर्युक्तेरुच्छद त्रिषां।” (गोभिल)।

पर्यायणो (स० स्त्री०) यह पाठ जिसमें पर्यायणका जल छिड़का जाना है।

पर्यायान (स० स्त्री०) मन्त्ररूपमें उत्थान, पचने तरहमें उठना।

पर्यायस्थ (स० त्रि०) परितः-पान्ति-युक्तः। १ उत्कण्ठित, व्याकुल। २ अनुरक्त-पामन, भोग।

पर्यायस्थ (स० स्त्री०) पर्यायस्थ इति परि-उद्-पञ्च-

पर्याप्तिका (स० स्त्री०) पर्याप्ति स्त्राय कन्टाप ।
खटा, खाट, पत्राय ।

पर्याकुल (स० लि०) परितः आकुलः । १ अतिशय
व्याकुल, बहुत घबराया हुआ । २ सखलितगति । १
अतिशय ।

पर्याकुलत्व (स० क्ली०) पर्याकुल-भावेत्त्व । व्याकुलता,
व्याकुल भाव ।

पर्याख्यान (स० क्ली०) परि-चरित्वा-ल्यट् (चरित्वा-
ल्यट् । पा ३।४।४४) इति ख्यादेर्ना, वा परितः आख्यान ।
परितः कथन, आख्यान ।

पर्यागत (स० लि०) पक्का, प्रका ।

पर्यागतत् (स० लि०) परि-आगत-शब्द । श्रुतत्, श्रुत ।

पर्यागत (स० क्ली०) परितः आगतम् । भोजनके समय
पत्तनों पादि पर रखा हुआ वह भोजन जो एक पंक्तिमें
बैठ कर खानेवालोंमेंसे किसी एक व्यक्तिके जीवनें हो
आचमन कर लेने अथवा छठ खड़े होनेके बाद बच
रहता है । ऐसा बच बूटा और दूषित समझा जाता
है । ऐसी हालतमें एक पंक्तिमें खानेके लिये जितने
मनुष्य बैठे हुए हैं उन्हें सबको यह पक्ष परित्याग
करना चाहिये । मनुष्योंकामें कुलूकने लिखा है—

“भगानं सूक्ष्माण्य पर्यागन्तमनिदिग्मम् ॥”

(ऊक्तक)

सयान, सुतिकाय और पर्यागत-मयका परित्याग
कानः चाहिये । याज्ञरस्कारहितको सुद्धित
पुस्तकमें ‘पर्यागन्त’ ऐसा पाठ देखनेमें आता है, लेकिन
वह प्रमादिक है ।

पर्यावित (स० लि०) परि-च-वि-क्त । आवित, व्याप्त ।

पर्याण (स० क्ली०) परितो याति गच्छत्यनेनेति-परि-या-
ण्यट्, ध्रुपेदरादित्वात्साधुः । १ पण्यपट्टका-आसन,
घोड़ेको पीठ परका पलान । २ पण्यपट्टा, घोड़ेको
भाज जोन ।

पर्याणहन (स० क्ली०) सोमोऽनसि स्थितः, समन्तादान-
हृतोऽनेन परि-पाननह कारये श्युट् । सोमशकटोप-
गत पट्टकटीरूप तद्ग्रन्थनोपायपदार्थ ।

पर्याण (स० क्ली०) १ शेष, पन्त । २ सय, नाग ।

पर्याप्त (स० लि०) परि-आप-भावे क्त । १ यथेष्ट,

काफ़ी, पूरा । २ प्राप्त, मित्रा, दूपा । ३ यत्किमप्य,
जिसमें शक्ति हो । ४ समय, जिसमें सामर्थ्य हो । ५
परिचित । (क्ली०) ६ दृष्टि, संतोष । ७ शक्ति,
ताकत । ८ निवारण । ९ प्राप्ति, यथेष्ट होनेका
भाव । १० सामर्थ्य । ११ योग्यता ।

पर्याप्तभोग (स० लि०) भोगातिशय ।

पर्याप्ति (स० क्ली०) परि-आप-क्तिन् । १ सम्यक्-प्राप्ति ।

२ परिताप । ३ मरणोद्यतका निवारण । ४ प्रकाश । ५
प्राप्ति । ६ दृष्टि । ७ शक्ति । ८ नैयायिकोंका सतपत्ति
स्वरूप-सम्बन्धविशेष । यह सम्बन्ध सभी पदार्थोंका

विशिष्टबुद्धिनिर्णायक है । अतएव यह पदार्थ भेदके
नाना प्रकारका है । यथा—यह एक घट है, यह दो घट
है इत्यादि पर्याप्ति प्रतीतिसाक्षिक है । द्वितीयाव्युत्प-

पत्तिवादमें गदाधर महाचार्यने लिखा है, कि पर्याप्ति दो
प्रकारकी है, पहले पर्याप्ति और दूसरे पर्याप्ति । इनमेंसे जहाँ
‘अ’ शब्दके निरासके लिये जो पर्याप्ति निवेगित होती है,

वहाँ इसे पहले पर्याप्ति कहते हैं । जैसे—‘पर्वतो बह्मिमान्
भूमात्’ इत्यादिको जगह साध्यतावच्छेदक बह्वल्लिखिता

पर्याप्ति है, यहाँ अर्धपर्याप्ति है । फिर जहाँ ‘यून धारण-
के निमित्त जो पर्याप्ति निवेगित होती है, वहाँ उसे

पूरा पर्याप्ति कहते हैं । जैसे—‘पर्वतो न महानसोऽपि
बह्विमान्’ पर्वत पर बह्वि है, लेकिन महानसोऽप्यस्यैव
बह्वि पर्वत पर नहीं है, इत्यादि जगह साध्यतावच्छेदकी

भूत महानसोऽप्यस्यैव बह्वि बह्वल्लिखिता पर्याप्ति है ।
यही पूरा पर्याप्ति है । (द्वितीयाव्युत्पत्तिवाद)

पर्याणव (स० पु०) परि-आ-मु-वञ्ज । १ अभिप्राय
शब्दार्थ । २ परितः आणव, चारों ओरसे डूबाना,
बोरना ।

पर्याय (स० पु०) परि-रज गतो घञ्, (पारशुपात्यर-
रजः । पा ३।४।४८) १ पर्यायण, क्रम, सिलसिला,
सम्पत्ति । पर्याय—आनुपूर्वी, आगम, परिपाटी, आनुक्रम,

आनुपूर्व, आनुपूर्वक, परिपाटी । २ प्रकार । ३ प्रवे-
श, मोका । ४ निर्माण, बनानेका काम । ५ द्रव्यधर्म ।
६ क्रम द्वारा एकान्वयाचक शब्दको पर्याय कहते हैं ।
७ सम्पर्कविशेष, दो व्यक्तियोंका वह पारस्परिक सम्बन्ध
जो दोनोंके एक ही कुलमें उत्पन्न होनेके कारण होता

है। ८ पर्यायद्वारविशेष, वह पर्यायद्वार जिसमें एक वस्तुका क्रमसे पनेक भाग्य सेना बर्तित हो।

पर्यायक्रम (सं० पु०) १ एकके बाद दूसरेका पश्चिष्ठन, क्रमसे बढ़ती। २ मान या पद आदिके विचारसे क्रम, बढाई कोटाई आदिके विचारसे सिलसिला।

पर्यायव्युत्पत्ति (सं० त्रि०) स्वाधिकार पथसे अट, पर्याय-क्रमसे जिसकी पदोत्पत्ति न हुई हो।

पर्यायवचन (सं० क्लो०) एकार्यप्रकाशक-शब्द।

पर्यायवाचक (सं० त्रि०) पर्यायः वाचको यत्नः। १ जिस-में पर्यायवाचक शब्द हो। २ पर्यायशब्दका वाचक।

पर्यायवृत्ति (सं० क्लो०) एककी त्याग कर दूसरेकी ग्रहण करनेकी वृत्ति, एककी छोड़ कर दूसरेकी ग्रहण करना।

पर्यायगयन (सं० क्लो०) पर्यायेण क्रमेण गयनं। प्र-रिकादिका क्रमानुसारमे गयन, पढेढाई आदिका क्रम-से चपनो चपनो बारोमे सेना। पर्याय—उपागयः विगाय।

पर्यायशब्द (सं० पु०) पर्यायवाचको शब्दः। पर्याय-वाचक शब्द, एक पर्याय शब्द।

पर्यायशब्द (सं० पद्य०) पर्याय-वचन। पर्यायक्रमसे, समय समये।

पर्यायशब्द (सं० क्लो०) पर्यायवाचक शब्द।

पर्यायशब्द (सं० पु०) पद्मोत्पत्ति वा वृत्त्यादिका चक्रभेदः।

पर्यायिन् (सं० त्रि०) १ चारों ओर घेरित वा घातन। २ पर्यायाश्रयक्रमसे।

पर्यायोक्त (सं० त्रि०) पर्यायेण उक्तः। १ क्रमसे उक्त, जो निमित्तको बार कड़ा गया हो। (क्लो०) २ पर्यायद्वार-भेद, वह शब्दालङ्कार जिसमें कोई बात साफ साफ न कह कर कुछ दूसरी वचनरचना या धुमाव, फिरावसे करी जाय, पद्यया जिसमें किसी रमणीय निमित्त या व्याज-से कार्यसाधन किये जानेका वर्णन हो।

पर्यायिण (सं० त्रि०) परि-चर-यिनि। १ परितः-पान्ति-युक्त।

पर्यायो (सं० पद्य०) परि-चा-पन्न-दे क्षयार्थि। हिंसा।

पर्यायोचन (सं० क्लो०) परि-चा-लोच-मावे ल्युट्। १ सम्यक् विवेचन, अनुगोचन, अच्छी तरह देख भान। २ विनयक।

पर्यालोचना (सं० क्लो०) पर्यालोचन-टाप। १ सर्वतो-भावसे चालोचना, किसी वस्तुकी पूरी देखभाल, पूरी जाँच पड़ताल।

पर्यावहन (सं० पु०) परि-चा-वृत्त-घञ्। १ सारमें फिरसे या कर जन्मग्रहण। २ लोटना, घावस घाना। पर्यावर्त्तन (सं० क्लो०) परि-चा-वृत्त ल्युट्। १ स्रग्-का। पश्चिमवर्त्तिनी कायाके पूर्वदिक्-वर्त्तिरूपमें परि-वृत्ति।

पर्याविन (सं० त्रि०) परितः चावितः। चरितगय कलुपः बहुत भेसा।

पर्याव (सं० पु०) पर्याव्यते इति परि-चम्-घञ्। १ पतन, गिरना। २ हनन, बध, मार डालना। ३ परि-वर्त्त, फिराव, घुमाव। ४ वहिष्यमानगत तान प्रकार-के लवोर्निसे अन्तिम लव्। ५ नाग।

पर्यासन (सं० क्लो०) परि-चा-पम-ल्युट्। १ चारों ओर घूमना, परिक्रमा करना। २ किसीकी चिर कर बैठना, चारों ओर बैठना।

पर्याहार (सं० पु०) परि-चा-ह-घञ्। १ एक जगहसे दूसरी जगहमें जाना। २ नाला, घाटो। ३ कचमी। ४ लुपविशेष।

पर्युचय (सं० क्लो०) परि-न-चयनं। तूष्णीभावसे जलादिका चारों ओर नेचन, याद, होम या पूजा आदि-के समय यों ही पद्यना, कोई मन्त्र पढ़ कर चारों ओर जन हड़कना। ऋग्वेदो विना मन्त्रके हो चोर साम-वेदो मन्त्रगठके साथ पर्युचय करते हैं। सामवेदोके पर्युचयके विषयमें गोभिलगृह्य-मन्त्रमें इस प्रकार मन्त्र लिखा है—“अग्निमुपवचमायम परियमुग्रः दक्षिणान्त्वको दक्षिणैर्नाभिः, देववर्षितः प्रवृत्तेषु प्रक्षिप्यमग्निं पर्युत्तेरः सकृद्व त्रिषु।” (गोविल)

पर्युचयो (सं० क्लो०) वह पात्र जिसमें पर्युचयका जन हड़का जाता है।

पर्युत्थान (सं० क्लो०) मग्यकरूपमें उत्थान, चक्को तरफसे उठना।

पर्युत्सृज्य (सं० त्रि०) परितः स्फुरकः। १ उलक-पटन, ब्याकुल। २ अनुवृत्त, घामन, योग।

पर्युदञ्चन (सं० क्लो०) पर्युदञ्चते इति परि-चद-घञ्-

पुण्य (कृष्णपुण्य) रहते । पा १।१।१०) १ नृण, कर्ज । भाषे पुण्य । २ उद्वार ।

पुण्यद्वय (म० प्रथ०) उदयस्य सामीप्यं, सामीप्ये अययोभाषः । उदय सामीप्य, सूर्योदय समीप होनेका समय ।

पुण्यद्वय (म० त्रि०) पुण्यद्वयते इति परि-उत्-पन्न-त् । १ पुण्यदामविशेष, फल और प्रत्यवाय शून्यता द्वारा वारण । १ पुण्यदाम देवो । २ निवारित, निषिद्ध । ३ परा-भूत, द्वारा हुआ । ४ होनवत्, जिसकी शक्ति रह न गई हो ।

पुण्यदाम (म० पु०) परि सर्वतोभावेन उदास्यते विधि-यत्र, परि उत् प्रग-धज् । नञ्भेद । नञ्, दो प्रकारका है, पुण्यदाम और प्रमज्जप्रतिषेध । जो कार्य निषिद्ध बतनाया गया है और यदि वह किया जाय, तो उस कार्यमें कार्यजन्य फल और तत्त्वत्व प्रत्यवाय नहीं हानिसे वहाँ पुण्यदाम नञ्, होता है ।

सामान्यग्राह्य द्वारा जहाँ प्रत्यनिषेध पर्यात् निषिद्ध होता, उन्को नाम पुण्यदाम है । (प्रादिविधे)

जहाँ विधिकी प्रधानता और निषेधकी अप्रधानता समझी जाय तथा उसापदमें नञ्का प्रयोग न हो, वहाँ पुण्यदाम नञ्, हुआ करता है । 'रात्रौ भ्रातृं न कुर्वीत' रातको आद नहीं करना चाहिये, यहाँ पा 'न' यको निषेध पुण्यदाम नञ्, है । क्योंकि यहाँ पर विधिकी प्रधानता और निषेधकी अप्रधानता समझी गई है, 'भ्रातृं कुर्वीत' यहाँ पर यको विधि है, कि आद करना ही होगा, यही विधिकी प्रधानता हुई है । रातको 'न' यध निषेध है । आद मत करो, सो नहीं, रात्रौतर-कालमें आद करो, यही समझी जाता है । दूसरे शास्त्रोंमें भी समी जगह आदका विधान हुआ है, इस कारण आदकरणके साक्षात् सम्बन्धमें अन्वय हुआ है । विग्रहवाचक लिङ् प्रत्यय पर्यात् 'कुर्वीत' इसी लिङ् प्रत्यय द्वारा विधिकी प्रधानता हुई और विध्यवाचक लिङ्गमें नञ्पदके साथ अन्वय नहीं होनेसे निषेधकी अप्रधानता हुई । अन्वयानामासमें भेद, पर्यात् मत करो, यह न समझ कर रात्रि भिन्न कालमें करो, यही भेद नञ्का पर्यं हुआ । भेदरूप निषेधका साक्षात्

अन्वय हुआ है, विध्यवाचक लिङ्गयका अन्वय नहीं होता । इसीसे निषेधकी अप्रधानता हुई । ऐसे हो स्थान पर पुण्यदाम नञ्, होता है, ऐसा स्थिर करना चाहिये । (मलभाषतः) प्रपञ्चप्रतिषेध देखो ।

"जुगोपात्तमानमन्त्रतो भजे धर्ममात्रः ।

अथपुरादे सोममसक्तः सुहमन्मभूत् ।"

(शु १ सं० । साहित्यद० ७ परि० पुण्यदामनञ्का उदाहरण)

पुण्यपस्थान (म० स्त्री०) परि-उप-स्था-देयुट् । परिषर्ग, सेवा ।

पुण्यपासक (म० त्रि०) परि-उप-पास-लृत् । पुण्य-पासभाकारो, सेवक, सेवा करनवाला ।

पुण्यपासन (म० स्त्री०) परि-उप-पास-लृट् । सेवा, स्तकार ।

पुण्यपास्त्रि (म० त्रि०) परि-उप-पास-लृच् । पुण्य-पासक, सेवक ।

पुण्यति (म० स्त्री०) परि-उप-भावे तिन् । चारों ओर चपन, चारों ओर बोज डालना या डोना ।

पुण्यपण (म० पु०) सेवा, पूजा । अनिष्टोंके मध्य, जो समय तीर्थहृत्को पूजाका प्रसन्न काल है, उसे ये पुण्य-पण कहते हैं । इस समय तीर्थहृत्की पूजाके उप-नक्षत्रों में मङ्गोत्सव होता है । जैन ६६२ देखो ।

पुण्यवित (म० त्रि०) परिश्रम्य स्वकावसुमितम्, वद-त् । व्युट्, नासो, को नात्रा न हो, एक दिन पहलीका । पुण्यवित पुष्पादि द्वारा देवताको पूजा नहीं करने चाहिये, करनेमें वह निष्फल होता है ।

"अपुण्यविततिरिद्धः शोक्षितेऽप्युपहितः ।

स्वीयारामोद्धीर्वाणि पुण्यैः संदुग्धेदस्मि ॥"

(योगिनीतन्त्र)

जो मन्त्र फलपुण्यवित न हो तथा जो द्विद्वय, अन्त-वर्जित और निजोद्यामज्ञात हो, ऐसे फलोन्नि-देयताको पूजा करने चाहिये । पुण्यवित पुष्प ही निषिद्ध है, सो नहीं, किन्तु पूर्वात्त वचनका प्रतिप्रसव है, यथा—

"स्वित्पतिरुप-मागच्छन् तदाशामलकीदलम् ।

कदम्बालुखीचैव पद्मच्छन् पुष्पिपुष्पकम् ॥

एतन् पुण्यवितं न ह्येतद् वचनवत्तु वक्तव्यम् ॥"

(योगिनीतन्त्र)

विश्वपथ, भावी पुत्र, तमाल, धामनकीदण, कदुग, तुलसी, पद्म और जो कलिकात्मक कोरक हैं वे पर्युपित नहीं होते।

"दुर्वासीसन्पुष्पाणि पद्मं गन्धोदकं कृताः ।

न पर्युपितदोषोऽनृत्तिमभिर्न न दुष्पतिः" (स्मृति)

तुलसीदल संस्नन पर्युपित पुष्प और पद्म, गङ्गोदक, कुग इनमें पर्युपित दोष नहीं लगते अर्थात् पर्युपित होने पर भी इनसे देवता को पूजा कर सकते हैं।

पर्युपित अन्त खाभा नहीं चाहिए । शास्त्रमें लिख है, कि पर्युपिताक्ष, उच्छिष्टाक्ष, खरष्ट, पतितष्टा उदकी मरुष्ट और पर्याप्तान् पक्ष परिवर्तनीय है । पर्युपित भोजन तामस भोजन है । पर्युपितद्रव्य खानेसे केवल धर्महानि ही नहीं होती बरन् शरीर भी असुख होता है ।

पर्युपितभाजिन् (स० वि०) पर्युपित व्युत्प० भुङ्क्ते इति भुजयिनि । न्युष्टद्रव्य भोक्ता, वासी पदार्थ खानेवाला ।

पर्युषण (स० स्त्री०) परि-उष-भावे ल्युट् । परि-सम्बन्धन, चमिके चारों ओर मार्गन ।

पर्येष्ट (स० वि०) याक्रीमता ।

पर्येषण (स० स्त्री०) परि-इष-ल्युट् । अन्वेषण, खान-बीन ।

पर्येष्टव्य (स० वि०) परि-इष-तश्च । पर्येषणीय अन्वेषणीय ।

पर्येष्टि (स० स्त्री०) परि-इष-क्तिन् । पर्येषणा, अन्वेषण, खानबीन ।

पर्येष्टि (स० वि०) परि-षा-इष-इन् । समन्तात् घेष्टाकारक ।

पलांकिमिद्धी—सम्प्रदाय प्रदेशके गङ्गाम जिलागत एक भू-सम्पत्ति । यह पचास १८३५ व० और देशा ८२४ व०, चिकलाकोसके निकट अवस्थित है । यह प्राचीन कालसे यहांके राज-उपाधिधारी जमींदारगण इस भूमिसंपत्तिका उपरस्व भोग करने पर रहते हैं । सारी जमींदारीका भूपरिमाण ७५४ वर्गमील है जिनमेंसे ३५४ वर्गमील स्थान 'मानिया' वा पावतोय वन्य-भूमिमें परिणत है । यहांको मिट्टी और समतल जमीन पर ७२१ और पावतोय वन्यभूमि पर ११८ ग्राम बसे हुए हैं ।

Vol. XIII. 28

वर्षमान जमींदारगण चपनेकी वहीभांके गाढ़-वंशोय गजपतिराजके वंशधर बतलाते हैं । यहांके पावतोय पंचममें २१ 'विमोई'सामन्त और २१ 'दीरा' सरदार राजाको अधीनता खोकार करते हैं और वस्तुना-सुत्वसे सभी राजसन्धानरचाय प्रतिवर्ष कुछ कुछ कर दिया करते हैं ।

१०५८ ई०में राजा नारायण देवके विरुद्ध पंगरेज-राजने कर्नाल-पिचको भेजा । जलमुरके युद्धमें पराजित हो कर राजाने पंगरेजोंको यस्तता खोकार की । किन्तु परवर्त्तों समयमें जब राजाने सन्धि तोड़ दी, तब १०८८ ई०में पंगरेजोंने चपने जगम १८ प्रदेशका शासन भार ले लिया; फिर कुछ क्षणके बाद छोटा टिवा । राजाको दुर्बलप्रकृतिका देख कर पिछड़ा-रियोंने १८१५ ई० में इस प्रदेश पर धावा बोल दिया । पोलि १८१८ ई०में राज्यके मध्य विद्रोह उपस्थित होने पर सि० चौकीर उक्त विद्रोहदमनमें नियुक्त हुए । पुनः १८३३ ई०में राष्ट्रविद्रोहके समय जेनरल टेलर दल-बलके साथ यहां पहुंचे थे । १८३५ ई०में शास्त्रि स्थापित हुई थी । १८५५-५७ ई०में पुनः विद्रोहान्त ममक लड़ा, किन्तु यह सचजमें शास्त्र किया गया ।

पलांकिमिद्धीमें शास महाराज इन्द्रवर्माने तान्त्रयासन-से जाना जाता है, कि, गाढ़वंशोय लुपतिगण यहां राज्य करते थे । सुतरां राजा उपाधिधारी जमींदारोंके गाढ़वंशका परिवर्ष नितान्त चमूक्त प्रतीत नहीं होता । महाराज इन्द्रवर्माने ८१ गाढ़वंशमें यह शासन दान किया ।

पलि—१ सद्याद्रि पर्वतकी एक गाछ । यह समुद्रस्तरसे तीन हजार फुट ऊंचो है ।

२ उक्त पर्वतकी गाछके ऊपर अवस्थित एक ग्राम । यह सतारा नगरसे ६ मील पश्चिममें अवस्थित है । यहां समतल क्षेत्रमें १०४५ फुट ऊंचे पर्वतद्वारा निर्मित है १० दुर्गकी चतुर्भुजा १८२४ गज है ।

* पलि दुर्गका दूसरा नाम वज्रगड वा युवगड है, जब महापट्टेश्वरी शिवाजीके शुभ रामदास स्वामी यहां रहते थे, उस समय अनेक बहादुर इनके दर्शन करने आते थे । महा-जनके समाधि मने इस दुर्गका सर्वगड नाम पड़ा । १००५

उत्तर-दक्षिण-घोर-दक्षिण-पश्चिममें यथाक्रम यावटे शर, सतारा घोर नाहा नामक-पर्वत शिखर इमे शत्रुके आक्रमणसे बचाता है। दुर्गमें प्रवेश करनेके केवल दो द्वार हैं। पतारा नगरसे दुर्ग जानेकी राह पर एकमात्र उर्मिछोनदो घोर करनी पड़ती है। पत्ति-यामसे उत्तरीकी घोर दुर्ग द्वार जानमें जो रास्ता गया है वही प्रायः १२८० गज लम्बा है।

दुर्गके भीतर भग्नावशेष एक सुसज्जमान मसजिद घोर तोत हिन्दूमन्दिर हैं। रामचन्द्रके लहरीसे निर्मित मन्दिर दुर्गके मध्य भागमें खड़ा है। इसके उत्तरार्धमें एक सुदोर्घ दीर्घिका है जिसका प्रज्ञ बहूत मोठा लगता है। दुर्ग द्वारके सामने ही एक छोटी चट्टी है जहाँ प्रायः ६० घर पराचरि-जाति का वास है, एत-द्विष पत्ति-याममें ब्राह्मण घोर शनिवा पवित्र संस्थामें रहते हैं। ग्रामवासी क्रूर वा उर्मिछोनदोने जल ला कर पीते हैं। प्रति सोमवारको यहाँ बाट लगती है। १६२० ई०में शिवाजीने अपने गुरु रामदास स्वामीको (१६०८-१६८१ ई०में जीवित थे) यह स्थान दान दिया था। रामदासके सत्यधर्ममें लाना प्रकीर्णक प्रसन्न सतारामें सुने जाते हैं। पत्ति-यामके मध्यस्थमें राम दाम मन्दिरके चारों घोर उनके शिष्याका वास है। परधर-घोर ईंटसे स्वामीजीके शिष्य पाकाबाई घोर दिवाकर-गोसाईंने जो मन्दिर १६८० ई०में निर्माण किया, गिरगाववासी परधरामभाजने १८०० घोर १८२० ई०में उसका जोर्णमें स्तार कर दिया। पीछे यवटे शरनिवासी वैजनाथ भागवतने उसका बरामदा जहाँ तहाँ ठोक कराया। प्रतिशय करवरो मानमें यहाँ एक मेला लगता है।

पत्ति-यामके उत्तर-पश्चिममें हेमाड पत्ति-यामें जो दो पुरातन मन्दिर विद्यमान हैं वे पुर्व-मुखी हैं। उत्तरकी चपेला दक्षिणका मन्दिर भग्नावशेष घोर वष परहे शिखीके समोदरे यह दुर्ग स्थापित हुआ था। पीछे १७०५ ई० में नारीसस छोटी नावक छिड़ी मांघातदरने इसका कुछ अंश परिवर्तित किया। इसके द्वारके ऊपर पारसगणपति-लिखित एक शिलालिपि है। दुर्गके अवस्था घोषनीय है।

प्राचीन प्रतीत होता है। १६०१ ई०में शिवाजीको सेनाने यह स्थान जोता था। १६८८ ई०में मुगलोंने जब सतारा परगण जिया, तब पत्ति-याम परधराम त्रिम्बकने पत्ति-दुर्गसे रमद इच्छा की थी। १७०० ई०के पश्चिम माघमें सतारा मुगलोंके हाथ लगा, पीछे उन्होंने पत्तिमें भी घेरा डाला। इस पर महाराष्ट्रगण दुर्ग छोड़ कर भाग चले। सम्मत् घोरशनिवासे इन दुर्गका 'भीराड' नाम रखा था। १७८० ई०में यह स्थान 'नक्षिण दुर्ग' सरकारके सदरदफ्तमें गिरा जाने लगा। १८१८ ई०में यह स्थान पंगरेजीके अधिकार-भुक्त हुआ। १८५० ई०में घोर शिवाजीविरोधके समय यहाँ दह्युका उपद्रव खूब जोर मार था। पीछे पारस युद्धसे प्रत्यागत पंगरेजी सेनाने धा कर उसका दमन किया।

पर्व (सं० पर्वो०) १ वर्षपत्ति, वासकी गाँठ। २ पट्ट-स्थापित्य, पट्ट-लिखी गाँठ या गिरह। ३ पर्व-रेती। पर्वक (सं० पर्वो०) पर्व-या पत्तिना कायतोति-कौ-क। उत्तरपर्व, परेका घुटना।

पर्वकार (सं० त्रि०) पर्व-पर्व-तत्पुण्यक्रिय-करोति, पर्व-क-पण्य। धनश्रीभादि द्वारा पर्वके दिन पर्वक-कर्मकारक, वह जो सन्तके लोभसे पर्वके दिनका काम घोर दिनोंमें करे।

पर्वकान्ति (सं० त्रि०) पर्व-करोतीति पर्व-क-पत्ति। पर्वकार-देवी।

पर्वकाल (सं० पु०) पर्व-काल। १ पर्व-समय, पर्वका समय, पुण्यकाल। २ पर्वके दिन पर्वका समयकाल। जैसे, समावस्था, चतुर्दशी आदि।

पर्वकान्ति (सं० पु०) पर्व-काल-पर्व-काल-पत्ति। गच्छति स्त्रियमिति, पर्व-काल-पत्ति। वह जो पर्वके दिन कौनके साथ भोग करे। शास्त्रमें पर्वके दिन स्त्री-सम्योग निषिद्ध वतलाया गया है। पर्वके दिन कौनके साथ भोग करनेवाला मनुष्य नरहेका अधिकारी होता है। पर्व-देवी।

पर्वगुप्त-काश्मीरके एक राजा। ये पर्वके मन्त्रोपे। बाद इन्होंने अपने को मन्त्रसे राजपति-राज्य पर अधिकार

किया था। ये भव्यम्न पापाहमा' थे। २४ 'लोक-
काण्डको कृत्य दशमोके दिन ये राज्याग्रीहण हुए और २५
'लोकिकाण्डको भाद्रकृत्य त्रयोदशोके दिन इस लोकमे
चल गये। कारागार देखो।

पश्य (उ०. वली०) पश्यं पूर्णो कश्चि न्युट् । १ पूर्ति-
करण, पूरा करनेको क्रिया या भाव । (पु०) २
एक राक्षसका नाम ।

पर्वणिका (मं० स्त्रो०) निम्नके पर्वगत रोगभेद, पार्श्वके
सन्धिस्थानमें होनेवाला एक रोग । पर्याय—उर्वणो,
पार्श्वो और पर्वणिका ।

पर्वणो (स' खी') १ ग्रृष्मा, पोष्मासी । २ सन्ध-
तोषा, चतुर्दश, सन्धिस्थानात् रोगोद । इसका लक्षण—
यदि नेत्रके सन्धि-स्थानमें दाह पीर मूलविगिष्ट ताश्च-
वर्ष' सूक्ष्म गोलाकार जोफ हों, तो उसे पर्वणो कहते
हैं । यह रोग पित्तजन्य होता है ।

पर्वत (सं० पु०) पर्वति पूरयतीति पर्व पूरणे पतच् ।
 (सूत्रादिनिबन्धिनाति । उ० ३।१००) वा। पर्वणि भागाः
 सम्यक् । १ पहाड़ । पर्वय—महीध्रं शिखरी, उमाश्रित
 पर्वार्य, धर, पट्टि, गोत्र, गिरि, पाषा, पर्वक, शैल
 शिखरीचय, स्थायर, कानुमान्, पृथुशेखर, धरणोकीलक
 कुहर, जीमूत, पातुष्टन, भूधर, स्थिर, कलोर, कटकी,
 गङ्गी, गिरि, चग, गय, दन्तो, धरणीध्र, भूभृत्, चिति-
 भूत्, पर्वनीधर, कुधर, धराधर, प्रस्थवान्, वृषवान् ।

(॥ अग्नि० उद्भू० प्रमृति)

काशिकापुराणमें लिखा है—पर्वत दो प्रकारका है एक प्राथम्य स्थावर और दूसरा तदन्तर्गत देह। स्थावर मूर्ति पर्वतके स्वरूपमें स्थित है। यह गरोरश्री पट्टि और दक्षिणधायक है। पुराकाननं विष्णुने जगत्-धी स्थितिके लिये पर्वतोंको कामरूपे बनाया। पर्वतोंका यह स्थावरगरीर विमोर्ष हो जानिये दनशा प्रकृत गरीर सब दा दुःखाकुल होता है। मांकरुण्येपुराणमें अथ्य होपके संस्थानपर्यन्तमें लिखा है—

प्राप्तो कुल गताईकोटि विस्तृत है । हममें जन्म-
दोषका विस्तार और दृष्ट्य एक मात्र योजन होगा ।
हमवान्, हमकृत, हमपद, हमद, हमोप, हमेत और हमो

ये प्रत्येक वर्ष-पर्वत है। इन वर्ष-पर्वतोंके मध्य-स्थलमें दो महापर्वत है जिनका विस्तार दो लाख योजन है। इनके दक्षिण ओर उत्तरमें यथाक्रम दो दो कारके को पर्वत है, उनका परस्पर विस्तार दस दस सहस्र योजन माना गया है।

प्राच्यादि दिक्भागोंमें यथाक्रम मन्दार, गन्धमादन, विष्णु और सुपाश्वर्य पर्वत प्रतिष्ठित हैं। ये सभी केतुपादप-शोभित हैं। इनके मध्य मन्दारका केतुपादः कदम्ब, गन्धमादनश्चा जम्बूद्वय, विष्णुका चमरश्च और सुपाश्वर्यका केतुपादश्च वटवृक्ष है। इन सब पर्वतोंका आधोमपरिमाण व्यास ही योजन है। जो सब पर्वत पूर्वकी ओर हैं, उनका नाम उत्तर, दैवकूट और परद्वार एकत्र समिपवत् पानोन और निपद्य है। निपद्य और पारिपाश्वर्य ये दोनों ही पर्वत मिरके पश्चिम पाश्वर्यमें और कैलास तथा हिमवान् ये दो महापर्वत मिरके दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित हैं। ये सब पूर्व-पश्चिममें पायल और सागरके मध्य प्रविष्ट हुए हैं। शृङ्गवान् और जादधि ये द्वा पर्वत मिरके उत्तरकी ओर पङ्क्ति हैं। इन सब पर्वतोंकी सर्वादा-पर्वत कहते हैं।

इसके चरित्रित गीतान्त, चक्रगुप्त, कुशीर, पात्र, कटवान्, मण्डल, हयवान्, महागोत्र, भवाचन, सुविन्द, मन्दर, वेष, सुमेय, निमेष और मन्दरके पूर्व में महावल, देवगोत्र, त्रिजूट, मिथुराद्रि, क्षत्रिह, पतञ्जक, कचक, शत्रुमान्, तास्त्रक, विगाववान्, शत्रुतोदर, नमस्त, वसुधार, रत्नवान्, एकग्रह, महागोत्र, गजगोत्र, पिशाचक, पञ्चगोत्र, कौलाभ और हस्तवान् ये सब पर्वत मेरुके दक्षिणपार्श्व में अवस्थित हैं। सुवह्नु, मिर्मिर, वैदूर्य, पिङ्गल, पिञ्जर, भद्र, सुरभ, कवित, मधु, अश्वत्थ, कुजूट, कृष्ण, पाण्डुर, सहस्रमिवर, पारिपात्र, शृङ्गवान् ये सब पर्वत मेरुके प्रायम और विष्णुभद्रपर्वतके बाहरमें अवस्थित हैं। गङ्गकूट, नटपभ, हंसनाभ, कपिलेन्द्र, गोत्र, स्वर्णेश्वर, गतशृङ्ग, पुष्पक, मेघपर्वत विराज्जाल्य, यराहाद्रि, मयूर और रुचिर ये सब पर्वत उत्तरकी ओर अवस्थित हैं।

महेन्द्र, मसंग, सहा, सुखिमान्, कृष्णपर्वत, विन्ध्य
-मोर पारिपात्र ये सात कृष्णपर्वत हैं । इन सब कृष्णपर्वतोंके

समोप चत्वार्य मङ्गल सङ्ग पर्वत हैं। उनके समीप मातृ विन्दत, चण्डिका, विष्णुनाथ और चति मनोहर हैं। कोलाहन, वेम्बाज, मन्दर, ददूर, वातस्वन, वन्द्य, मेनाक, हवरन, सुद्धमस्त, नामगिरि, रोचन, पाण्डुर, पुष्य, उज्जयन्त, रेवत, चतुर्द, ऋगमुह, गोमता, कूट-शैल, लम्पमा, ओपर्वत, क्रोड और इनके चलावा चत्वार्य मङ्गल पर्वत हैं। (मार्कण्डेयपुराण-५२ अ०)

सभी पर्वतोंके मध्य हिमवान्, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत, शृङ्गवान्, महेन्द्र, मेरु, माख्यवान्, गन्ध-मादन, मलय, सन्न, शक्तिमान्, चतुर्मान्, विन्ध्य, परि-पाल, कैलास, मन्दर, लोकातोह और उत्तरमानस ये २० श्रेष्ठ पर्वत हैं।

बराहपुराणमें लिखा है, कि जो सब श्रेष्ठ पर्वत हैं उन पर देवता वास करते हैं। इन सब पर्वतोंके मध्य शान्त नामक पर्वत पर महेश्वरका क्रोडामयन है। इस क्रोडामयनमें पारिजात-वृक्ष विद्यमान है। उसके पूर्व की ओर कुञ्जर नामका पर्वत है जिस पर दानवोंके पाठ पुर है। इसी प्रकार वज्रकेतु पर्वत पर राक्षसोंके अनेक पुर हैं। मरुनील पर्वत पर किन्नरोंके पन्द्रह हजार पुर हैं। ये सब पुर सोमके बने हुए हैं। चन्द्रो-दय पर्वत पर नागोंका आवास-स्थान है। कुञ्जर पर्वत पर पशुरति हमेशा वास करते हैं। वसुधार पर्वत पर वसुधोंकी आवास-भूमि है। वसुधार और रत्नधार इन दो पर्वतों पर यथाक्रमः ८ और ७ पुर हैं। इन सब पुरोंमें चटवसु और सप्तविंश वास करते हैं। एकशृङ्ग-नामक पर्वत पर प्रजापति चतुर्भुज-ब्रह्माकी २१६ भूमि है। मज्जपर्वत पर भगवती महाभूमिसे परिवेष्टित है। कर वास करते हैं। वसुधार पर्वत पर मुनि, सिद्ध और विद्याधरगण रहते हैं। इस पर्वत पर अनेक पुर हैं जिनका तोरण और प्राकार बहुत बड़ा है। यहाँ अनेक पर्वत नामक युद्धालो गन्धर्वगण वास करते हैं जिनमें से एक पित्रात्मज राजाधिराज है। पञ्चकूट पर राक्षस, शतशृङ्ग पर दानव और यक्षोंके तो पुर हैं। प्रमदके पर्वतके पश्चिम देश, दानव और सिद्धादिके पुर हैं। जया दमके मद्राकदेव पर हृष्टलोमगिनी है जिस पर प्रेत प्रथम सोम चतुर्थ होता है। उसके उत्तरमें त्रिकूट-

पर्वत है जहाँ ब्रह्मा वास करते हैं। इस पर्वतके किनो स्थान पर बह्मिवायतन है जिस पर चन्द्रिदेव मूर्तिमान् हो कर विराजित हैं। देवगण उनकी उपासना कर रहे हैं। उत्तरकी ओर शृङ्गचपर्वत पर देवताओंका पाय-तन है। इसके मध्य पूर्वकी ओर नागयणका पायतन, मध्यमें ब्रह्मा और पश्चिममें गङ्गाकी भवस्थान-भूमि है। इसके उत्तर शाल्व महापर्वत पर तीन योजन मन्त्र नन्दज नामक एक सरोवर है। इस सरोवरमें नागराज-का वास है। यहाँ सब देवपर्वत हैं। इनकी गिना-प्रभृतिका वर्ण है म, रजत, रत्न, वेदुर्य और मन्-गिना महदा है। (बराहपुराण)

पहले सभी पर्वतोंके पञ्च (५) थे। चन्द्रिपुराणमें लिखा है, कि पुराकारमें सभी पर्वत विष्णुकी मायाने स-पञ्च हुए थे। पञ्च वा कर ये सब पर्वत जहाँ जहाँ अवस्थित थे, वहाँसे चढ़ पड़े। विधाताने चतुर्दश स्थान जगन्नाथमें निर्देश किया था, किन्तु ये सब पर्वत पश्चिमकी ओरसे चढ़ते हुए समुद्रमें गिर पड़े। इस पर देवता और अस्त्ररामों विरोध हुआ हुआ। देवताने युद्धमें जय प्राप्त कर पर्वतोंके पञ्च काट डाले, केवल मेनाकके पञ्च रहने दिष्टे। पर्वतोंके पञ्च काट कर देवताओंने उन्हें अपने अपने स्थानमें सन्निवेशित किया।

पर्वतमें वर्ण नीच विषय—

‘श्वेतो मेघो वीर्यवान् वृक्षैश्च निर्दिष्टः।

शृङ्गपाद महारत्न-वनकी वापसरत्नः॥’

(कविचरितम्)

पर्वतका वर्ण न जानेमें मेघ, पीपलि, धातु, वंग, किन्नर और निर्भर, शृङ्ग, पाद, गुहा, रत्न, वन, शोभादि और उपलब्धता इन सब विषयोंकी वर्णना करना होता है।

मत्स्यपुराणमें कृत्रिम पर्वतदानका विषय देखनेमें आता। इस प्रकारके कृत्रिम पर्वत प्रसृत करके जगन्नाथोंकी यथाविधि दान करनेसे योग्य पुण्य प्राप्त होता है। १० प्रकारके पर्वत ये हैं—

‘प्रथमो धानशैलः शब्दादिशीलो उदयानतः।

गुहाचतुर्दशैश्च चतुर्विंशैश्च पर्वतैः।

पञ्चवर्तिकाः शृङ्गान् वपुः काष्ठैश्च वनैः।

सप्तमोऽष्टमस्तथा नवमोऽष्टमस्तथा ॥

राशती नवमस्तद्वत् दशमः शतैकचक्रः ॥

इत्ये विधानेतेषां पञ्चाशद्विंशतः ॥

(मत्स्यपुराण ७७ अ०)

प्रथम धान्यपर्वत, द्वितीय लवण, तृतीय गुड्राचन, चतुर्थ क्रिमपर्वत, पञ्चम तिन्नाचन, षष्ठ कापीनपर्वत, सप्तम छतपर्वत, अष्टम रजगेश्वर, नवम रात्रतपर्वत और दशम शर्कराचन है । एक दश प्रकारके कृत्रिम पर्वत प्रस्तुत करने दान करने होते हैं । इसका विधान इस प्रकार है—प्रथम, विपुल दिन वा पुष्य ऋतु, अतोप न, दिगन्तय, शुक्रहस्तोषा, पक्ष्म, विषाह, उत्तर वा यज्ञोपनयन, पञ्चमस्त्या वा, पूर्णिमा तिथि तथा शुभदिनमें धान्यकोलादि यशानियम प्रस्तुत कर दान करे । निम्नलिखित नियममें धान्यादिपर्वत प्रस्तुत करना होता है । पहले चत्वार दिगामें एक चोकान सगुण दनवे । उस क्षानको अच्छो तहह गोधरने सेव कर वहाँ कुश बिहा दे । वह धान्यपर्वत सहस्रद्रोणपरिमित होगा और यशो सबमें अष्ट माना गया है । पाँच सो द्रोणता मध्यम और तोन सो द्रोणका धान्यपर्वत छोटा होता है । पाण्यपर्वत प्रवृत्ति देखो ।

लवणपर्वतका विधान—जो विधिपूर्वक लवणाचन दान करते हैं वे निम्नदेह विषकोटको जानते हैं । १६ द्रोण लवणका उत्तम, ८ द्रोणका मध्यम और ४ द्रोणका कनिष्ठ लवणाचन होता है । बिस्वहोत्र व्यक्तिक एक द्रोणसे ऊपरता भी लवणाचन बना कर दान कर सकता है । जिसमें पर्वत बनावे, उसके चतुर्थांशसे विष्कम्भ पर्वत बनाना होता है । बाकी इसके समो कार्य धान्यपर्वत बागके नियमानुसार करने होते हैं । निम्नलिखित मन्त्रका पाठ करके दान करे । दानमन्त्र—

“लोमापरवम्भूतो यतोऽयं लवणो रजः ।

तथात्मस्त्वेन च सो यदि पाण्यप्रणेतमः ॥

वर्धनादप्रस्थाः सर्वे सोऽहंता कृण्वन् विना ।

त्रिपथं विप्रोर्निर्यन् तस्मात् कान्तिप्रदो भव ॥

विष्णुदेवसुहृद्भूतो नृणां दाराग्भवस्त्वेन ।

तस्मात् पर्वतस्त्वेन यदि संवासायमाह ॥”

इसो मन्त्रमें लवणाचन दान करे । यथाविधि पूज

पर्वतका दान करनेमें पहले एक कक्ष तक समालोकमें मान करके पीछे परागति मान होती है । धान्यादि जिन दश प्रकारके पर्वतदानका विषय लिखा है, उनका विवरण उन्हीं सब शब्दोंमें देखो । (मत्स्यपुराण ७७ अ०)

बहुदूर विच्छन्न प्रस्तर-बहुल पशुपुत्र गिखरमिगिट श्रुवण्डका नाम पर्वत कहनेमें हम लोग जो समझते हैं, हिमालय, विन्ध्य, सहाद्रि नाममें भी वही भाव हम लोगोंके हृदयह्रम होता है । जिन्होंने कभी भी पर्वत नहीं देखा है । उनके लिये पर्वतता धर्म केवल उच्चभूमिको धारणामात्र है । हिमालयादि पति उच्च गिरियोंको छोड़ कर जो सब (पहाड़) उच्चस्थान वा दो समतलक्षेत्रके मध्य प्राचीररूपमें दण्डायमान हैं, उन्हें भी पर्वत कहते हैं । किन्तु परस्परको उच्चता और निम्नता जाननेके लिये पृथक् पृथक् नामानुसार वह विधेयता लावित हुई है । पर्वत, गिरिमाधा, सुद्रपर्वत वा पहाड़ और पथरमय उच्चभूमि यथाक्रम चम्परेजोमें Mount or Mountain, Mountain-rango or Chain, hill, hillock and rocks नामसे प्रसिद्ध हैं ।

पर्वत कहनेमें ही जो केवल यज्ञानित रसमिश्रित श्रुतिकाके विषा और कुछ भी बोध नहीं होगा, सो नहीं । पर्वत धनधान्यता आकर है । पर्वतगह्वरमें नाना वर्णोंका प्रस्तर छोड़ कर खण्डरौव्यादि धातुको खान, होरक माणिक्यादि सूव्यवान् मणि, कीयला, हरिताल, खड्गप्रभृति श्रुतिकाजात प्रयोजनोय द्रव्य तथा गणनातोतकालमें श्रुतिकाभोषित जीवदेशकी प्रस्तरोभूत फॉसिलों (Fossils) पाई जाती हैं । क्रमशः सही हट्ट होकर कठिन पथरमें परिणत हो गई है । वह श्रुतिकागिहित जीवदेह सो क्रमशः श्रुतिकाके साथ प्रस्तरमें रूपान्तरित हट्ट होने पर भी उनकी पूर्वतन प्राकृति अट नहीं होती । ये सब जीवकदाल प्राप्त होने के आसक्त धनस्त्राल और जगद्वाप्ति का असोमल निर्वर्ति होता है । जिस प्रकार पर्वतके भीतर भागमें नाना जातीय पदार्थ विद्यमान हैं, उन्ही प्रकार उपरोक्त भाग भी नाना प्रकारके जीवजसु और हवादिसे सोभायमान हैं ।

पर्वतके ऊपर नाना जातीय हिंस और शास्त्रलभाषके पय, मरोष्ठ्यादि, नाना वर्णोंमें रञ्जित पदार्थ और

मात, तमान, चन्दन आदि मूल्यवान् वृक्ष तथा भोज्य विलास उपपन्न होते हैं। एतद्विषय उपत्यकादिमें उदात्तकार जलरागिके मध्य मंथ्य घोर समथ तोरवर्त्ती समतल क्षेत्र पर (Terraces) तरङ्ग तरङ्गके चनाजोंकी खेगो होती है। पर्वतगात्र हो कर कितनी श्रोतसिन्धो इन स्थानों विहित हुई हैं। कितनी स्त्रोतःमाला प्रकट नदीके पाकारमें भिन्न भिन्न देगोंमें बहती हुई तत्-तोरवर्त्ती भूमिमसूहकी उर्वरा बनाती है। नदीके वायं बहतो हुई नृतकणा (Sediments) कभी कभी पट्ट आदिमें रुक कर जमा हो जाती हैं, जिनसे चर पड़ जाता है। नदीस्त्रोतमें सूक्ष्म सूक्ष्म बालुकाकणा जिस प्रकार नृतिका, पोछि द्रोप और नगरमें घर्षयवित्त हो जातो है उसी प्रकार पनस्तकालयापो भूमिके पट्टपट्टे सब क्या परिवर्त्तन होता है, कोन कह सकता। इस सृष्टजगत् पर षण्ण परमाणु कालके पनस्तस्त्रोतमें बह कर तथा प्राकृतिक विवर्त्तनसे परिभ्रमिन हो कर पुनः पुनः परिवर्त्तन घोर रुग्णकर ग्रहणमें परिदृशक जगत्वासीको घातक प्रदान करता है। कोन कह सकता, कि जो आज जननाधारयके सामने पर्वत प्रतीयमान होता है, वह कल क्या था ?

सभी पदार्थतत्त्वविद्वांका कहना है, कि जल जगत्का प्रथम सृष्ट पदार्थ है। यूरोपीय वैज्ञानिक पण्डितगण भी इसे स्वीकार करने हैं। स्रष्टाने पहले जलको सृष्टि की, घेर घेर उससे मछोका उद्भव हुआ। इसीसे पृथिवीको सृष्टि है। तेजसे सूर्य, सूर्यसे चत्ताप, जलसे चत्तापयोग द्वारा वायु, वायुसमष्टिसे मेघ, मेघ बना होनेसे जल होता है। प्रकृतिका पावर्त्तन ओक इसी प्रकार है। पृथिवीके जिस प्रकार एक बार घटने पथ पर घूमनेसे दिन रात और २४ दिनमें सूर्यका परिवेष्टन करनेसे बहार होता है, उसी प्रकार ईश्वरकी इच्छाके परिवर्त्तनसे जल घोर लज्जके परिवर्त्तनसे मछो तथा वायु बनतो है। उधर मछोको लेट कर उद्गत जलरागिके कहीं प्रस्रवण, कछो उद्ग, कछो नदीका पाकार धारण कर बहती है। पंखों को लिखा आ चुका है, कि जलसे मछो स्रष्टे हुई है, यह फिर उच्च प्राकृतिक नियमका ध्यातिक्रम होता है

बहतो हुई नदी जलको गति द्वारा जो पथ काटती है उस पथकी समवपाखर्वर्त्ती भूमि जलस्त्रोतसे विधो न होने पर चयप्राप्त हो जाती है। नीचेकी घोर कानेवाला यह जलस्त्रोत यदि कोमल मछोके चभावमें दृढ़ मछो वा पर्वतगात्रमें पा कर रुक कर, तो चयप्राप्तके लिए वह रुक कर पुनः वक्रगतिमें चयना पथ निकाल लेता है। किन्तु जब जल पर्वत हो कर बहता है, तब देखा जाता है कि बालुकाकणा जलस्त्रोतसे भिन्न स्थानमें प्रवाहित हो कर जमा हो जाती है। क्रमशः वह नवानेत बालुका जल घोर नृतिकाके सहयोगसे दृढ़भूत होने लगतो है। अन्त्यातसे चूर्णित पर्वतगात्र जिस प्रकार बालुका में परिवर्त्तन हो जाता है, उसी प्रकार वह बालुकागामि भी घेर घेर प्रकृतिवशतः प्रसारवत् कठिन हो जाती है।

नदीगर्भमें बालू आदिके रुक जानेसे जिस प्रकार डेल्टाकी उत्पत्ति होती है, वृष्टोके ऊपर भी उसी प्रकार चर (Silt) पड़ कर एक एक नृतिकादार (Strata or bed) बन जाता है। नृतिकागर्भमें कभी कभी किसी दैव विपरीयसे निहित वनमसूह जिस प्रकार नृतिका घोर जलादिके सहयोगसे दृढ़ हो कर 'कोयले'में रूपान्तरित होती है, उसी प्रकार मछोका चर भी किसी चभावनीय वससे विल हो कर क्रमशः भिन्नानि हो बात होता है। किसी पर्वतकी सम्मुखस्थ समतल भूमिसे लेकर पार्श्वतीय उच्चभूमि तकका विगिरूपवसे पथवैचल्य करनेसे जाना जा सकता है, कि विभिन्न समथों निहित नृतिकादार भूगर्भस्थ वायुस्तरिक प्रक्रियाके अनुसार क्रमशः दृढ़से दृढ़तर पाकारमें परिवर्त्तन होता है। कारण पार्श्वतीय द्रव्य समतल सेनादि खनन करनेसे नीचेकी घोर जितनी ही बालुकागामिय नृतिकागामि आकर निकलतो है, उतना ही विभिन्न प्रकारके प्रतरका स्तर देखनेमें आता है। इस प्रकार स्थानविगिरसे कछो बालुका (Sandstone), कछो लुनात्तर (Limestone), कछो टागादार (Granite), कछो चोपमाना, कछो स्लेट (Slate) आदि नामा जातीय पत्थरोंका स्तर पाया जाता है। उधर उच्च नृतिकागामि पथवसे दृढ़ प्रसारमय बालू

बानू पत्थर, 'लोम' (Loam) जोयदहं पौर छडिजादि अहित प्रसारीभूत मृत्तिका पौर बाज, दह कर्म वा घनापत्थरको भूतत्वविदोंने पावं तोय स्तर (Stratified rocks) : घननाया है। ये सब मृत्तिकानिहित दह-स्तराकृति भूयंश देखनेमें अनुमान होता है, कि किसी समय यह पर्वतभूमि जलके मध्य निहित रह कर ऐसी विक्षत पथस्याको प्राप्त हुई है। विशेष पर्यालोचना करनेमें यह भी मान्य होता है, कि जिस प्रकार एक स्थानमें कर्म मात जलसे स्तर जम कर धीरे धीरे दहो-भूत हो पत्थरमें (Sedimentary rocks) परिवर्तन होता है, अस्याय स्थानोंमें भी उसी प्रकार मल्लोके ऊपरी भागको तरह प्रस्तरवण्ड (Shales) कहीं स्लेट, कहीं जोयने, कहीं अन्धके चाकारमें रूपान्तरित होता है। अन्धको स्थानमें मही वा चाकार जिस प्रकार कायवत् चमकोला, पत्थर, मल्लोके छिलकेको तरह कठिन, जाना पौर धूसर-वर्णयुक्त हो जाता है उसी प्रकार मल्लोके छिलकेको तरह दह मृत्तिकामात्र ही Crystalline rocks नामसे प्रविष्ट है। ऐसे प्रस्तर-स्तरके मध्यस्थानमें जोयदेहके कोई चिह्न देखनेमें नहीं आता; किन्तु ससका कोई कोई अंग ऐसा विक्षत है कि उसकी रूपरूपमें पाओचना करने पर मान्य होता है, कि वह अंग एक समय तरल पदार्थ था, धीरे धीरे रूपान्तरित हो कर ऐसी अवस्थामें प्रवृत्त गया है। भूतत्वशास्त्रमें इस जातिका प्रस्तर Gneiss कहलाता है। क्योंकि यह सज्जमें अनुमान किया जाता है कि एक समय वे सब स्थान स्तरीभूत (Stratified) थे, उसी समयमें लगभग अन्धके उत्थापने पथवा गुह्र वाप पौर उत्तप्त जल (Heated water under great pressure) से अनुसंध विभिन्नित रहनेके कारण किसी अस्थान कारण द्वारा उसके अन्तर्निहित पदार्थोंदि रासायनिक क्रियायोगसे अवस्थास्तर (Chemical change) को प्राप्त हुआ है। योही वह क्रियासे गये भावमें अंगठित हो कर नये चाकारमें दिखाई पड़ता है। स्तरीभूतप्रस्तर कालक्रमसे Gneiss में रूपान्तरित होता है, इस कारण लोग इसे Metamorphic प्रस्तर कहते हैं।

स्तरीभूत (Stratified) पौर रूपान्तरित (Metamorphic) के पत्थावा पौर भी दो जातिका पर्वतका पश्चित्त देखा जाता है। वह पान्थेय (Volcanic) पौर दानादार (Granitic) के गेदसे दो प्रकारका है। इनकी उत्पत्ति भी प्रथमोक्त दोनों पर्वतोंमें पतन्त्र है। इनकी गठन स्तरीभूत-प्रस्तर-में नहीं है। इनके प्रस्तर कठिन पौर भारी, बोध बोधमें गह्र पौर उसके मध्य खनिज-पदार्थोंदि निहित होते हैं। किसी प्राचोन-कालमें मृगमर्भके मध्यसे यह प्रस्तररागि गलित तरल पदार्थ रूपमें (Molten rock) उत्पत्ति हो कर ऊर्ध्वादि-के नीचे पथवा समतलवृत्त पर प्रवाहित हुई थी। योही ग्रीनलवायु या जलके मध्यसे ग्रीनलता प्राप्त कर अन्त तरल धातु दहोभूत होती गई। इसके पत्थावा पुनः स्तरीभूत प्रस्तरके सङ्ग लगभग स्तर पड़ कर वह लुद्धाकार पर्वतमें परिवर्तन हो गई है। आसनसोत्पत्ति नीनिया-जाना पौर रानीगज्जवे बराकरके मध्यवर्ती तथा बर्बई प्रदेशमें कई जगह इस जातिका पत्थर देखनेमें आता है। साधारणतः ये सब पर्वत शाखा प्रशाखा व्याप्ये होते हैं। ये जलो तो जलोके मध्य द्विपे हैं, केवल एक पाथ लुद्ध पत्थर सङ्गठन बना कर पर्वतका निदर्शन होता है, कहीं वह तरल पत्थर उस निम्न पर्वताकार-में स्थित रह कर पूर पश्चित्तका प्रमाण देता है। ऐसे पर्वतके उपलब्ध गात्रसंख्य नहीं है, परम्पर स्वतन्त्र है, केवल एक रूपमें लगी हुए हैं। जोयनेको खान पौर बानू-पत्थर (Sand-stone) के मध्य यह पर्वत-गिखा विस्तारित रह कर बांध (Dyke) का काम करती है। बांध वा लहत् प्राचोरक्यो पान्थेयपर्वत भू-भागके अन्तरतम स्थानमें निकलता है। यहाँ निम्न-प्रदेशमें उत्तप्त तरल-पावं तोय पदार्थोंके सहयोगमें रह कर यदि बालू पत्थरका संस्पर्ध हो, तो वह बानू-प्रस्तर-मय स्थान भागोंकी तरह कठिन पौर दुर्मेय हो जाता है। पश्चिम भारतमें, नागपुरसे बर्बईप्रदेश तकके विस्तृत स्थानमें इस जातिके पर्वतका पश्चित्त देखनेमें आता है। पत्थरका चाकार बहुत काला होता है।

एक समय यहाँ पान्थेयपर्वत था। कालक्रमसे उसको लिप्ता बन्द हो गई है। अन्तिम गलितधातु

प्रातः, तमाल, चन्दन आदि मूल्यवान् पत्र तथा चोषधि लता उत्पन्न होती है। एतद्विषय उपत्यकादिमें उद्घाटन जनसामानिक मध्य माल्य पौर उभय तीरवर्त्ती समतल-क्षेत्र पर (Terraces) तरङ्ग तरङ्गके पनाओंकी खेती होती है। पर्वतगात्र ही कर कितनी भूतस्त्रिने इन-स्थानं विहित हुई है। किन्तु स्त्रीतःमासा प्रकट मटोके आकारमें भिन्न भिन्न देयमें बहती हुई तत्-तीरवर्त्ती भूमिमूहको उर्वरा बनाती है। मटोके साथ बहती हुई मृत्तुका (Sediments) कभी कभी पेड़ आदिमें रुक कर जमा हो जाती हैं, जिनसे चर पड़ जाता है। नदीस्त्रीतमें सुष्प सुष्प बालुकाकण जिन प्रकार मृत्तिका, पोछी होय और नगरमें पर्ववसित हो जानो है उनो प्रकार पनस्तकालयायो भूमिके पट्टपट्टे रुक बहा परि-वर्त्तन होता है, कोन कट सकता। इस मृत्तुका पर चणु परमाणु कालके पनस्तस्त्रीतमें बह कर तथा भौतिक विषयनसे परिभ्रमिन हो कर पुनः पुनः परिवर्त्तन पौर स्थानपर प्रक्षालनमें परिदृशक जगत्समीको घालोक प्रदान करता है। कोन कट सकता, कि जो प्राञ्ज जनसाधारणके सामने पर्वत प्रतीयमान होता है, यह कल बहा था ?

सभी पदार्थतत्त्वविदोंका कहना है, कि जन जगत्का प्रथम मृत्त पदार्थ है। यूरोपीय वैज्ञानिक पण्डितगण भी इसे स्वीकार करते हैं। मृत्तानि पड़ने जनको मृत्त की, धीरे धीरे उससे मटोका उद्भव हुआ। इसीसे पृथिवीको मृत्त है। तत्रसे सूर्य, सूर्यसे उत्ताप, जनने उत्तापनयोग द्वारा वायु, वायुतमद्विषे मेष, मेष घना होनेसे जन होता है। प्रकृतिका पावर्त्तन ठोक हुआ प्रकार है। पृथिवीके जिस प्रकार एक बार अपने पथ पर घूमनेमें दिन रात पौर २४ दिनोंमें सूर्यका परिवर्त्तन करनेसे वरुण होता है, उसो प्रकार मृत्तकी दृष्टिके परिवर्त्तनसे जल पौर जलके परिवर्त्तनसे मटो तथा वायु बनती है। कथर मटोको छेद कर उद्गत जनसामानिक कहीं प्रक्षय, कहीं उद्ग, कहीं नदीका वाहक धारण कर बहती है। पर्वतों को लिखा आधुना है, कि जलसे मटो उद्भव हुई है, यह फिर उस भौतिक नियमका व्योक्तन होता है

बहती हुई मटो जनकी गति द्वारा जो पथ काटती है उस पथकी समवपाखर्बर्त्ती भूमि जनस्त्रीतसे विधोय होने पर चयप्राप्त हो जाती है। नौचोको पौर मानवाना यह जनस्त्रीत यदि कोमल मटोके समभावमें दृढ़ मटो वा पर्वतगात्रमें या कर स्थग करे, तो चयप्राप्तके लिए वह रुक कर पुनः सक्रियतामें पचना पथ निकाल लेता है। किन्तु जब जल पर्वत हो कर बहता है, तब देखा जाता है कि बालुकाकण जनस्त्रीतसे भिन्न स्थानमें प्रवाहित हो कर जमा हो जाती है। क्रमशः वह गवानीत बालुका जन पौर मृत्तिकाके सहयोगसे दृढ़भूत होने लगती है। जलाघातसे चूर्णित पर्वतगात्र जिस प्रकार बालुकामें परिपत हो जाता है, उसो प्रकार वह बालुकागमि मो धीरे धीरे प्रकृतिवशतः प्रस्तरवत् कठिन हो जाती है।

मटोगर्भमें बालू आदिके रुक जानेसे जिस प्रकार छेदको उत्पत्ति होती है, पृथ्वीके ऊपर भी उसी प्रकार चर (Silt) पड़ कर एक एक मृत्तिकास्त (Strata or bed) बन जाता है। मृत्तिकागर्भमें कभी कभी किसी दैव विपदायसे निहित जनसमूह जिस प्रकार मृत्तिका पौर जलादिके सहयोगसे दृढ़ हो कर 'कोयले'में रूपान्तरित होती है, उसी प्रकार मटोका चर भी किसी समाननीय रमसे स्थित हो कर क्रमशः भिवालितको प्राप्त होता है। किसी पर्वतकी समुत्पन्न समतल भूमिसे लेकर पार्श्वतीय उच्चभूमि तकका विविधरूपसे पर्ववर्त्तन करनेमें जाना जा सकता है, कि विभिन्न समर्थों निहित मृत्तिकास्त भूगर्भमें पाये जाते हैं प्रकृतिप्राप्त बलुका क्रमशः दृढ़से दृढ़तर पदार्थोंमें परिवर्त्तन होता है। कारण पार्श्वतीय दैव्य जनसमूह सेनादि खनन करनेसे नौचोको पौर जितनी ही बालुकामिश्रित मृत्तिकागमि बाहर निकलती है, उतना ही विभिन्न प्रकारके प्रस्तरका स्तर देखनेमें आता है। इस प्रकार स्थानविषयके को बालुपत्थर (Sandstone), कहीं चुनात्थर (Lime-stone), कहीं दामा-दार (Granite), कहीं शोयमाना, कहीं स्लेट (Slate) आदि नामा ज्ञातीय पत्थरोंका स्तर पाया जाता है। उपरि-उक्त मृत्तिकागमि बलुका दृढ़ प्रस्तरमय बालू,

बालू पत्थर, 'लोम' (Loam) जोवदेह घोर छडिजादि अहित प्रस्तरभूत स्रुतिका घोर बालू; दृढ़ कदम वा घुनवायरको भूतस्वयिदेनि पर्वतोय स्तर (Stratified rocks) बननाश है। ये सब स्रुतिकानिहित दृढ़-स्तराकृति भूभंग देखनेसे अनुमान होता है कि किसी समय यह पर्वतभूमि जनके मध्य निहित रह कर ऐसी विकृत पथस्थानों को प्राप्त हुई है। विशेष पर्यालोचना करनेसे यह भी मान्य होता है कि जिस प्रकार एक स्थानमें कदमाकृति झल्ले स्तर जम कर धीरे धीरे दृढ़-भूत-ही पत्थरमें (Sedimentary rocks) परिवर्तित होते हैं, वगैरह स्थानोंमें भी उसी प्रकार स्रुतियोंके लपरी भागको तरह प्रस्तरखण्ड (Shales) कहीं स्लेट, कहीं कोयले, कहीं पथके पाकारमें रूपान्तरित होता है। पथकी खानमें मही का पाकार जिस प्रकार काचयत् चमकीला, पतला, स्रुतियोंके झिल्लेको तरह कठिन, काला, घोर धूमर-वर्णयुक्त हो जाता है उसी प्रकार स्रुतियोंके झिल्लेको तरह दृढ़ स्रुतिकामान ही Crystalline rocks नामसे प्रसिद्ध है। ऐसे प्रस्तर-स्तरके मध्यस्तरमें जोवदेहके कोई चिह्न देखनेमें नहीं आता; किन्तु उसका कोई कोई अंग ऐसा विकृत है कि उसकी सूक्ष्मरूपसे आलोचना करने पर मान्य हो जाता है कि वह अंग एक समय तरल पदार्थ था, धीरे धीरे रूपान्तरित हो कर ऐसी पथस्थानों पड़-व गया है। भूतस्वयान्तरमें इस जातिका प्रस्तर Gneiss कहलाता है। क्योंकि यह सृजने अनुमान किया जाता है कि एक समय में यह स्थान स्तरभूत (Stratified) थे, उसी समयमें क्रमशः पथिके उत्थापने पथवा गुह वायु घोर उत्तापन (Heated water under great pressure) से अनुसृष्ट विमिश्रित रहनेके कारण किसी अज्ञात कारण द्वारा उसके अन्तर्निहित पदार्थादि रासायनिक क्रियायोगसे पथस्थान्तर (Chemical change) को प्राप्त हुआ है। योहि वह फिरसे नये भावमें प्रगणित हो कर नये पाकारमें दिखाई पड़ता है। स्तरभूतप्रस्तर कालक्रमसे Gneiss में रूपान्तरित होता है, इस कारण लोग इसे Metamorphic प्रस्तर कहते हैं।

स्तरभूत (Stratified) घोर रूपान्तरित (Metamorphic) के पथस्थानों घोर भी दो जातिका पर्वतका पथित्व देखा जाता है। वह वाग्नेय (Volcanic) घोर दामादार (Granitic) के मध्ये दो प्रकारका है। इनकी उत्पत्ति भी प्रयोजन दोनों पर्वतोंसे स्वतन्त्र है। इनकी गठन स्तरभूत-प्रस्तर-सी नहीं है। इनके प्रस्तर कठिन घोर भारो, घेच घेचमें गहरा घोर समके मध्य खनिज-पदार्थादि निहित होते हैं। किसी प्राचीन-कालमें भूगर्भके मध्यसे यह प्रस्तररगि गणित तरल पदार्थ रूपमें (Molten rock) उत्पन्न हो कर ज्वालामुखी के नीचे पथवा समतलसे पर प्रवाहित हुई थी। योहि गीमलवायु वा जनके मध्यसे गीमलता प्राप्त कर चल तरल धातु दृढ़भूत होती गई। इसके पथस्थानों पुनः स्तरभूत प्रस्तरके सहग क्रमशः स्तर पड़ कर वह सुदृढ़ाकार पर्वतमें परिवर्तित हो गई है। आधुनिकोत्पत्ति मोनिया-जाना घोर रानोगल्ले वराकरके मध्यवर्ती तथा वस्त्र-प्रदेशमें कई जगह इस जातिका पत्थर देखनेमें आता है। साधारणतः ये पथ पर्वत प्राचा प्राचा व्याप्य होते हैं। ये कहीं तो जमीनके मध्य छिपे हैं, केवल एक पथ खण्ड पत्थर स्रुतिका उठा कर पर्वतका निर्माण देता है, कहीं वह तरल पत्थर उच्च निम्न पर्वताकार-में स्थित रह कर पूर्ण पथित्वका प्रमाण देता है। ऐसे पर्वतोंके उपलक्षण लक्षण अनेक नहीं हैं, परन्तु स्वतन्त्र है, केवल एक घूरेमें सरी रूप हैं। कोयलीको खान घोर बालू-पत्थर (Sand-stone) के मध्य यह पर्वत-गिम्हा विस्तारित रह कर बाँध (Dike) का काम करती है। बाँध वा दृढ़ प्राचोरद्वारे पार्श्वोपपन्न भू-गर्भके अन्तर्गत स्थानसे निकलता है। यहां निम्न-प्रदेशमें उत्तापन तरल-पार्श्वोय पदार्थोंके सृष्टीगर्भ रह कर यदि बालू पत्थरका संस्पर्श हो, तो वह बालू प्रस्तर-मध्य स्थान धाँसे की तरह कठिन घोर दुर्मध्य हो जाता है। पश्चिम भारतमें, नागपुरसे वस्त्र-प्रदेश तकके विस्तृत स्थानमें इस जातिका पर्वतका पथित्व देखनेमें आता है। पत्थरको पाकार बहुत काला होता है।

एक समय यहाँ पार्श्वोपपन्न था। कालक्रमसे उसको गिम्हा बन्द हो गई है। उत्पन्न गणितधातु

घोर भस्म प्रवृत्ति प्रवाहित हो कर एक स्थानमें जम गई है। घोर पाजिरकी पहाड़में परिणत हुई है। इस जातिके पर्वतका आकार साधारण पर्वतसे भिन्न है। इसका गतिपात्र 'स' वा घोर दुशरोह है; किन्तु जगत् तत्प्रायः विपटा घोर समतल है। इस प्रकारका पर्वत साधारणतः Trappean वा rock वा Trap-dike नामसे प्रसिद्ध है। इस चोपेके पनावा आग्नेय पर्वतसे निकला हुआ द्रवपदार्थमें संगठित घोर भी एक जातिका पर्वत देखा जाता है; किन्तु निम्नोच्चन जान कर उसका विशेष ज्ञान नहीं दिया गया। आग्नेय पर्वतसे स्तम्भान्तः आग निकलती है। एक समय इटलीके हाऊनैरियस घोर पम्पियाई नगर पर्वताश्रित तरल-वह्निमें लज गया था। अभी उस नगरके पावि-रुजत होने पर भी आग्नेय पर्वतकी मर्यादा अभीकी दृढयुक्त है। तरल च्छिन्न सृष्टिकामे पर्वतमित हुई है। कौन कह सकता कि वह क्रमशः प्रसारमें परिणत नहीं होती? जिस आग्नेय पर्वतसे आज भी धूम घोर लहरादि निकलते हैं, उस पर जन-मानस याम नहीं तर सकती। आग्नेयपर्वत छोड़ कर अन्य पर्वतों पर माना जातिके लोग रहते देखे जाते हैं।

आग्नेयपर्वत देखो।

आग्नेयपर्वतघटित द्रवपदार्थमें उत्पन्न पर्वत (volcanic rocks) जिस प्रकार है, घेण्टिक (Granitic rocks) पर्वत भी ठीक वही प्रकार उत्पन्न होता है। इन्प्रिशन पर्वतमाना पर जिस प्रकार आग्नेयपर्वतज द्रवधातु भूगर्भमें स्थित हो कर पृथ्वी सतह पर विस्फारित हो पर्वतमाधार धारण करती है, घेण्टिक पर्वतकी उत्पत्ति ठीक उसीको विपरीत है। इसमें पर्वतोच्च तरल-पदार्थ समुद्र भूगर्भ में दूध करके सृष्टिकामे कथनार प्रशस्ति हो किसी दृढ़ पर्वतसे प्राप्त होता है। क्रमिक घात-प्रतिघातसे यह उत्पन्न जन शोतन हो कर पर्वतके आकारमें स्थापित होता है। बहुत समयके बाद समुद्रके ललने वा मदीयवाहने सृष्टिकारण विरोध हो कर पदवा किसी समाधनीय कारणसे बह दृष्टि-नीचर होता है। हिमालय पर्वत पर-कहीं-कहीं देखा ही होत देखा जाता है। इसकी वाद्य पाक्षति,

स्निग्धपदार्थसंयोग घोर आग्नेयकारिक गठन ठीक Metamorphic जातीय पर्वतकी-सी है। इस पर देवना स्निग्धपदार्थका स्तर नहीं पड़ता।

पूर्वोक्त Stratified वा Sedimentary, Metamorphic, Volcanic घोर Granitic पर्वतोंके मध्य सर्वोच्चो वाद्य पाक्षति प्रायः एक दूसरेकी समरूप है। जिस अभूतपूर्व क्रियाके संयोगमें धातुज पदार्थ दृढ़भूत हुए हैं, उनका विशेषण छोड़ कर स्तम्भान्तः पानिका घोर कोई दूसरा उपाय नहीं है। पर्वतोंकी उत्पत्ति सृष्टिका, कदम, वायु घोर चुनापत्तिका स्तरजननेसे होती है। दूसरा भूगर्भस्थ उत्पन्न जन पदवा उत्तापकी प्रक्रियामें स्तरोभूत पत्थर जन कर सृष्टिके स्निग्धके समान पर्वतके आकारमें स्थापित होता है। किन्तु Volcanic घोर Granitic पर्वतमाना भूगर्भके मध्य स्थित प्रसार घोर किमिने संयोगमें द्रववह्नि शोतन होनेसे उत्पत्ति प्राप्त करतो है, उने जाननेका कोई उपाय नहीं है। समुद्र पृथ्वी मदीयसत पर चर पड़ जानेसे जो सब पर्वत उत्पन्न हुए हैं पदवा जिसकी उत्पत्ति स्वाभाविक है, उनका हम लोग पर्वतसंघण कर सकते हैं। भूगर्भनिहित तरल प्रसाररूप द्रवपदार्थका लक्ष्य करना हम लोगोंकी शक्तिमें बाहर है। प्रधानतः प्रयोज्य पर्वत की हम लोगोंके लिये तथा जोर-इतिहासके लिये विविध आदरको वस्तु है। इसके मध्यमें बहुत दिन पहले प्रोथित जीवदेह घोर उत्क्रियादि की प्रक्षीभूत पक्षि प्राप्त होनेसे जगत्का भारो उपाय हुआ है। शरीर मृतत्वमें Fossils वा 'फोसिलि' नामसे प्रसिद्ध है। निश्चित प्रमाणानि (Fossil remains) में जगतके अनेक प्राणी जीवोंका इतिहास प्रकट होता है। प्रसार के मध्य पर्वतोंमें स्थित होता है, तथा प्राणी स्थानोंमें उत्पत्ति प्राप्त उस समय जगत् व्याप्त था। ये सब formation) होती हैं।

गया है। जिस समय भारतके आसामप्रदेशमें खसिया पर्वतमाला गठित हुई, जोक उसी समय इङ्गोलेण्डके कैण्ट और सावेकस् प्रदेशका चल्कीमय (Chalk) पर्वत संघटित हुआ था। इस कारण भूतत्त्वविदोंने उस समयमें उत्पन्न पर्वतमालाको retaceous formation या उस समयका Cretaceous period (खड़ीयुग) नाम रखा है *। पृथ्वीके पाश्चात्य स्थानों पर इस प्रकार एक एक समयमें उत्पन्न पर्वतको भूतत्त्वविदोंने उसके सामान्यिक कालके मध्य समाविष्ट किया है।

यूरोपीय भूतत्त्वविद्गण विभिन्न देशोंमें भूगर्भस्य शक्तिशाली और पर्वतादिके भूगर्भके मध्य गठनकालका निरूपण तो कर जिस विद्यालय पर पहुँचे हैं, वहाँ मान समयमें सर्वप्राचीनतम स्तर जो प्राप्त तक आविष्कृत हुए हैं उनकी एक तालिका नीचे दी जाती है।

Post-Tertiary or Quaternary	<ul style="list-style-type: none"> 1. वर्तमान Alluvium, 2. Pleistocene,
Tertiary or Cainozoic	<ul style="list-style-type: none"> 3. Pliocene इस युगमें जीबदेशी 4. Miocene प्रसारित पशु पक्षि 5. Oligocene मनुष्य पाई जाती है। 6. Eocene
The Secondary or Mesozoic	<ul style="list-style-type: none"> 7. Cretaceous, 8. Jurassic, 9. Triassic,
Primary or Palaeozoic	<ul style="list-style-type: none"> 10. Permian or Dyan, 11. Carboniferous, 12. Devonian, 13. Silurian, 14. Cambrian or Primordial Silurian,
Archian, Azoic or Eozoic	<ul style="list-style-type: none"> 15. Fundamental Gneiss,

इस तालिकाके देशमें मध्य, अर्थात्, ऊपर और कनिष्ठ चार युगोंमें जिस प्रकार बड़ेकालशापो समयका उल्लेख है, भूतत्त्वशास्त्रमें भी उसी प्रकारके समयका उल्लेख देखनेमें आता है। उस प्राचीनतम समयमें जोषित देशादिको प्रसारितिका पशुपक्षिक कर्मसे इस युग जान सकते हैं, कि सत्य-अर्थात् युगका

वर्षान् जीवतिहास बहुत कुछ यिज्ञास्य है और दोनोंके मध्य विशेष सामान्यत्व देखा जाता है।

भूतत्त्वका विशेष विवरण यहां नहीं दिया गया। प्रियी और भूतत्त्व शब्दमें उसका विशय देखो।

अब यह जानना आवश्यक है, कि भूमि पादिकी उन्नता और निम्नता क्यों हुई? इस प्रश्न का धारणतः देवने है, कि समुद्रके निकटवर्ती स्थानोंको अपेक्षा उच्चके दूरवर्ती स्थान ऊँचे हैं। समुद्रोर्ध्व कलकत्ता नगर ऊँचे पर है, फिर कलकत्तेसे कागो, कागोसे साहोर, साहोरसे गिमला, गिमनेसे हिमालयका सर्वोच्च श्रृंग धनबागिरि ऊँचा दिखाई देता है। इसका कारण क्या है? भूतत्त्वविद्गण विशेष आलोचना करके भूगर्भस्य उत्थापको हो इसका एक मात्र कारण बतलाते हैं। यह अन्तर्निहित अग्नि शीघ्र जोर्ध्वमें इतनी तापयुक्त और वेगवती हो जा जाती है, कि वह तापयोगसे विघटित वा विताहित हो कर भूगर्भस्य प्रस्तरमय पदार्थों (Great Masses of Stony Matters) में जा मिलती है, जोकि उन्नत पदार्थोंकी द्रव करके ऊपर उठती और वह धातुज द्रवपदार्थ अन्तर्निहित कर कर कमलः पर्वतमें परिणत होता है। इसी प्रकार आग्नेय पर्वतकी सृष्टि है। आग्नेय पर्वतकी सहायतासे जिस प्रकार पर्वत का देग समूह उत्पन्न हो कर जननाधारणमें प्रकाश पाता है, उसी प्रकार कहीं कहीं इस वाष्पकारिक अग्नि की प्रक्रियाके बलसे देग और नगरादि भूगर्भमें शायित हो कर उद्गार और जलामयादिमें परिणत होते देखा जाता है। अन्तर्निहित अग्नि वा उसका उत्थापमान भूमिकम्प हा एवमात्र कारण है। भूमिकम्पने कोई स्थान रमातलकी पहुँचना और कोई समतल रेखा में ऊपर जा ठहरता है। देखना चाहिये कि पृथ्वी पर इस प्रकारकी घटना कहीं घटी है वा नहीं? १८८६ ई., १६ जूनको जो भारतशापो भूमिकम्प हुआ उसमें कच्छ प्रदेशका सिन्धुनाम और दुर्ग सिन्धुगर्भ तथा रणप्रदेश समुद्रगर्भशापो हुआ। किन्तु कुछ दिन बाद ही पुनः रणप्रदेशके समीप एक दूसरे स्थानमें अथ और बहुत दूर स्थित एक शक्तिशाली जल कर जलसे ऊपर

* ऐतिहासिक नामों Cretaceous शब्दका अर्थ Chalk वा सखी है।

और भूमि प्रकृति प्रवाहित हो कर एक स्थानमें जम गई है और बाहिरकी पदार्थमें परिणत हुई है। इस जातिके पर्वतका आकार साधारण पर्वतसे भिन्न है। इसका गात्रपात्र ऊँचा और दुरारोह है; किन्तु ऊपरी तल प्रायः चिपटा और समतल है। इस प्रकारका पर्वत साधारणतः Trappean वा rock वा Trap-dyke नामसे प्रसिद्ध है। इस श्रेणीके पत्थर आग्नेय पर्वतोंसे निकला हुआ द्रवपदार्थमें संगठित और भी एक जातिका पर्वत देखा जाता है; किन्तु निम्नप्रयोजन जान कर उसका विशेष ज्ञान नहीं दिया गया। आग्नेय पर्वतसे स्वाभावतः आग निकलती है। एक समय इटलीके ड्राकुनेरियस और पम्पियाई नगर पर्वताश्रित तरल-वाहिनियोंसे जल गया था। अभी उस नगरके प्राक्-क्षेत्र ज़ोमें पर भी आग्नेय पर्वतकी भण्डा समीचीन छद्मदृश्य है। तरल पत्थर, श्रुतिशक्ति पर्याप्त है। कोन कह सकता कि वह क्रमशः प्रसारमें परिणत नहीं होती? जिस आग्नेय पर्वतसे आज भी धूम और कर्दमादि निकलते हैं, उस पर जन-मानस वान नहीं कर सकते। आग्नेयपर्वत छोड़ कर पत्थर पर्वतों पर नामा जातिके लोग रहते देखे जाते हैं।

आग्नेयपर्वत देखो।

आग्नेयपर्वतवर्तित द्रवपदार्थोंमें उत्पन्न पर्वत (volcanic rocks) जिस प्रकार है, ग्रैण्टिक (Granitic rocks) पर्वत भी ठीक उसी प्रकार उत्पन्न होता है। द्रवियन पर्वतमाला पर जिस प्रकार आग्नेयपर्वतज द्रवधातु भूगर्भसे उत्थित हो कर पृथ्वी सतह पर विस्फाटित हो पर्वतकार धारण करती है, ग्रैण्टिक पर्वतकी उत्पत्ति भी उसी प्रकार विपरीत है। इसमें पार्श्वतोय तरल-पदार्थ समूह भूगर्भ में दृढ़ करके श्रुतिके अभ्यन्तर प्रवाहित हो किसी दृढ़ पर्वतसे आहत होता है। क्रमिक घात-प्रतिघातसे यह श्रेण जल शोषण हो कर पर्वतके आकारमें रूपान्तरित होता है। बहुत समयके बाद समुद्रकी जलसे वा नदीप्रादेशसे श्रुतिकारागि विजोत हो कर अथवा किसी पमात्रनीय-कारणसे वह दृष्टि-गोचर होता है। हिमालय पर्वत पर कहीं-कहीं ऐसा ही देखा जाता है। इसकी वाह्य प्रकृति,

खनिजपदार्थसंयोग और आभ्यन्तरिक गठन-शैली Metamorphic जातीय पर्वतकी होती है। इस पर केवल खनिजपदार्थका स्तर नहीं पड़ता।

पूर्वोक्त Stratified वा Sedimentary, Metamorphic, Volcanic और Granitic पर्वतोंके मध्य सर्वोच्च वाह्य प्रकृति प्रायः एक-दूसरेकी अनुपम है। जिस अभूतपूर्व क्षियाके संयोगमें धातु पदार्थ दृढ़ोभूत हुए हैं, उनका विशेष छोड़ कर खन-न्यता पानीका और तोड़े दूसरा उपाय नहीं है। पर्वतोंको उत्पत्ति श्रुति है, कर्दम, वायु और चूनापत्थरका स्तर जमनेसे होता है। दूसरा भूगर्भस्थ श्रेण जल अथवा उष्णपानी प्रकृतिसे स्तरोभूत पत्थर जम कर मछलीके हिलकेके समान पट्टोंके आकारमें रूपान्तरित होता है। किन्तु Volcanic और Granitic पर्वतमाला भूगर्भके मध्य हिस्से प्रहार और किमन संयोगमें द्रववस्तुके शोषण होनेसे उत्पत्ति प्राप्त करती है, उसे जाननेका कोई उपाय नहीं है। समुद्र अथवा नदीवर्ष पर चढ़ पड़ जानेसे जो सब पर्वत उत्पन्न हुए हैं अथवा जिनकी उत्पत्ति स्वाभाविक है, उनका हम लोग पर्वतवर्षण कर सकते हैं। भूगर्भनिहित तरल प्रसारक द्रवपदार्थोंका लक्ष्य करना हम लोगों को शक्तिसे बाहर है। प्रधानतः प्रयोज्य पर्वत की हम लोगोंके लिये तथा जीव-इतिहासके लिये विशेष आदरको वस्तु है। इसकी मध्यसे बहुत दिन पहले प्रोथित जोस्टेड और लिल्लाडिकी प्रस्तरीभूत श्रुति प्राप्त होनेसे जगत्का भारी उपकार हुआ है। यही भूतत्त्वमें Fossils वा 'प्रस्तरीय' नामसे प्रसिद्ध है। निहित प्रस्तरीय (Fossil remains) से जगत्के अभ्यन्तरमय सत्यादि युगका इतिहास प्रकट होता है। जब दो विभिन्न देशोंमें किसी स्तरीभूत-प्रसारके मध्य एक जातिके जीवको प्रस्तरीय निहित देखो जातो है, तब यह स्पष्ट अनुमान किया जाता है, कि विभिन्न स्थानोंमें होनेसे भी इस स्तरीभूत प्रसारने एक संघर्षमें उत्पत्ति प्राप्त की है। इससे यह भी सिद्ध होता है, कि उस समय जगत्में वही एक जातिको जीव समी देशोंमें व्याप्त था। वे सब पर्वत एक समयमें गठित (Of same formation) होनेके कारण उनका एक ही नाम रहता

गया है। जिस समय भारतके चासामप्रदेशमें खसिया पर्वतमाला गठित हुई, जोक उसी समय इङ्ग्लैण्डके कैण्ट और मावेकस प्रदेशका खड़ोमय (Chalk) पर्वत संगठित हुआ था। इस कारण भूतत्त्वविदोंने उस समयमें उत्पन्न पर्वतमालाको retaceous formation या उस समयका Cretaceous period (खड़ीयुग) नाम रखा है *। पृथ्वीके यावतोय स्थानों पर इस प्रकार एक एक समयमें उत्पन्न पर्वतको भूतत्त्वविदोंने उसके सामयिक कालके मध्य समावेगित किया है।

यूरोपीय भूतत्त्वविदगण विभिन्न देशोंमें भूगर्भस्य भूतत्त्वशास्त्र और पर्वतादिके भूगर्भके मध्य गठनकालका निरूपण कर जिस विद्यालय पर पहुँचे हैं, वहाँमान समयसे सर्वप्राचोनतम स्तरकी प्राज्ञ तत्त्व चाबिज्ञत हुए हैं उनको एक तालिका नीचे दो जाती है।

Post-Tertiary or Quaternary	<ul style="list-style-type: none"> 1 वर्तमान Alluvium, 2 Pleistocene,
Tertiary or Cainozoic	<ul style="list-style-type: none"> 3 Pliocene इस युगमें जीवदेही 4 Miocene प्रत्तरासि प्रचुर परि- 5 Oligocene मानमें पाई जाती है। 6 Eocene
The Secondary or Mesozoic	<ul style="list-style-type: none"> 7 Cretaceous, 8 Jurassic, 9 Triassic,
Primary or Palaeozoic	<ul style="list-style-type: none"> 10 Permian or Dyras, 11 Carboniferous, 12 Devonian, 13 Silurian, 14 Cambrian or Primordial Silurian,
Archian, Azoic or Eozoic	<ul style="list-style-type: none"> 15 Fundamental Gneiss.

इस क्रमिकी देगमें मत्त, त्रेता, हापर और कलि इन चार युगोंमें जिस प्रकार बहुकालयापो समयका उल्लेख है, भूतत्त्वशास्त्रमें भी उसी प्रकारके समयका उल्लेख देखनेमें आता है। उस प्राचोनतम समयमें जोवित देशादिकी प्रत्तरासिका यद्युगोत्पन्न करनेसे इस मोग जान सकते हैं, कि मत्त-त्रेतादि युगका

वर्षित जीवोतिवास बहुत कुछ विप्राप्य है और दोनोंके मध्य विशेष सामन्त्रस्थ देखा जाता है।

युत्तरका विशेष विवरण यहाँ नहीं दिया गया। पृथ्वी और भूतत्त्व शब्दमें उसका विषय देखो।

अब यह जानना चाहिये है, कि भूमि पादिकी उच्चता और निम्नता क्यों हुई? इस मोग साधारणतः देखते हैं, कि समुद्रके निकटवर्ती स्थानोंकी अपेक्षा उसके दूरवर्ती स्थान ऊँचे हैं। मगदोःने कसकसा नगर ऊँचे पर है, किर कसकसाँचे कागो, कागीसे साहोर, साहोरसे गिमसा, गिमनेसे हिमालयका सर्वोच्चपर्वत श्वन्नागिरि ऊँचा दिखाई देता है। इसका कारण क्या है? भूतत्त्वविदगण विशेष जाकोचना करके भूगर्भस्य उत्थापनो को इसका एक मात्र कारण बतलाते हैं। यह अन्तर्निहित अग्नि बोज बोजमें इतनी तापयुक्त और येगवती को जा जाती है, कि वह तापयोगसे विक्षिप्त वा विताहित हो कर भूगर्भस्य प्रत्तरमय पदार्थों (Great Masses of Stony Matters) में वा मिनती है, पोके उक्त पदार्थोंकी द्रव्य करके ऊपर उठाती और वह धातुज द्रवपदार्थ अन्तर्भ्रम कर क्रमगः पर्वतमें परिणत होता है। इसी प्रकार आग्नेय पर्वतकी सृष्टि है। आग्नेय पर्वतकी सहायतासे जिस प्रकार पर्वत वा देग समूह उत्पन्न हो कर जनप्राधारणमें प्रकाग पाता है, उसी प्रकार कहीं कहीं इस आग्नेय अग्निकी प्रक्रियाके चलने देग और नगरादि भूगर्भमें ग्राहित हो कर जड़ और जलाशयादिमें परिणत होते देखा जाता है। अन्तर्निहित अग्नि वा उसका उत्थापनोत्त भूमिकम्पना एकमात्र कारण है। भूमिकम्पने कोई स्थान रमातनको पहुँचता और कोई समयत रैग्याने ऊपर जा उठरता है। देखना चाहिये कि पूर्वापर इस प्रकारकी घटना कहीं घटो है वा नहीं? १८१८ ई०, १६ जूनको जो भांगल्यापो भूमिकम्प हुआ उसने कच्छ प्रदेशका सिन्धुधाम और दुगे मिम्बुगर्भ तथा रणप्रदेश समुद्रगर्भायाी हुआ। किन्तु कुछ दिन बाद ही पुनः रणप्रदेशके समीप एक दूसरे स्थानमें पक्ष और बहुदूर विस्तृत एक भूतत्त्वशास्त्र जम कर जलने ऊपर

* देखिये आग्नेय Cretaceous शब्दका अर्थ Chalk वा लोही है।

उठ गया। यह रूप भी 'बलावाँ' नामसे प्रसिद्ध है। १८२२ ई० में मलबारसी नगर हठात् ३ फुट ऊपर उठा था। १८२५ ई० में सेण्टा-मेरिया द्वीपके समोप एक पर्वतांग (Rocky-flat) समुद्रगर्भसे इतना ऊपर उठ गया कि ज्वारका जल ऊपर चढ़ आनेसे भी (High Water-Mark) वह कमसे कम १५ फुट ऊपर ही रह जाता था। १८१८ ई० के भूमिकम्पने लेमस द्वीप (Island of Lemus) हठात् ८ फुट ऊँचा उठ गया। उसी दिन १८८८ ई० में जून मासके भूमिकम्पने आसामके शौनगसदरका कुछ भूग जलमग्न हो कर बह-खान झड़ाकारमें परिणत हो गया है, उसी प्रकार मन्दाग्न उपकूलमें पुलिकट ऋदसे सड़स घोर दान्वि भूकंपने तल्लोर पादि नाना स्थानोंमें भूमिको इस प्रकार उन्नति संघटित हुई है।

भूमिकम्प ही जो भूमिको घबराति और उन्नति (Depression and Elevations)का एकमात्र कारण है, वो नहीं। भूम्यादिको हठात् उन्नति साधारणमें विस्मयकर होने पर भी, देशवासियोंके प्रत्यक्षसे जो सब भूमि धीरे धीरे उन्नति हो कर कुछ वर्षोंके बाद पूर्वाधिकृत स्थानकी अपेक्षा प्राकृति घोर भी बड़ी हो गई है, वही आश्चर्यका विषय है।

वेद और पुराणादि ग्रन्थोंमें हिमालयादि भारतीय प्राचीन पर्वतोंका उल्लेख है। विभिन्न देशोंमें गिन्न भिन्न जातिके मध्य किसी किसी पर्वतका साक्षात्कार बहुत बढ़ा चढ़ा कर कल्पित हुआ है। योलिम्यत्र पर्वत पर ग्रीक और रोमीय देवदेवीगण विशार करतां यो। श्रोक्यन्ते गावर्धन पर्वत धारण कर इन्द्रके प्रकोपसे ब्रजवासियोंको रक्षा की थी। कैलाश पर हनुमरीका विलासभयन और कुबेरका आराम स्थान है। मन्दर पर्वत पर इन्द्रादिदेवगण पुष्पधोरभडे आभरणसे उन्नतप्राय हो कर विवरण करते थे। मेरु पर्वत पर वैदिक देवता इन्द्रका वासस्थान है। मेरु पर्वतके निकट वेदोयिन्-धरवगण जाते सम-हृता-उत्तर कर सम्मान दिखाते हैं। जलमुनादसत् पर्वत पर मोजिके साथ जेहोमाका कथोपकथन हुआ

था, इस कारण धरववासियोंके मध्य यह विशेष मान्य है। आगरत पर्वत पर मोषाके जहाजने लय कर धामि-रोंको रक्षा की थी। जेनशास्त्रमें गिर्नर और पणिटाना, तुलजा (सोराष्ट्रके भन्तर्गत), पाखनाय प्रसूति पर्वत देवाधिष्ठित हैं। राजपुतानेका पादू पर्वत भी गोरक्षनाथ मन्दिर, पादिके लिये जनसाधारणमें विशेष आदरयोग्य है।

२ देवपर्व विशेष।

"कश्यपान्नादथैव पर्वतोऽवस्थतीत्या" (अग्निपुराण)

नारदके साथ पर्वत ऋषिकी विशेष मित्रता थी। ये चक्रसंहिताके ८१२१८, १०४ और १०५ ऋकके ऋषि थे। ३ सरस्वतीगण। इसका गुण वायुनागक, लिङ्ग, वल और शुक्लकारक है। ४ वृषभ। ५ गान्धर्भदे। ६ गन्ध्यासिविशेष।

जो ध्यान और धारणाका प्रबलध्यान करनेके पर्वत-मूलमें प्रवर्णन करते हैं, घोर अति शोभ ही सारांशपर धनु जान सकते हैं, उन्हें पर्वत कहते हैं। ७ गन्धर्व-भेद। (भारत ११८० अ०)

८ सप्तधाके गर्भजात धर्मके पुत्र देवभेद। ९ पौर्णमासका पुत्रभेद। १० सम्भूतिके गर्भसे उत्पन्न मरोचिके एक पुत्रका नाम। ११ राजा पुष्करवाके एक मन्त्री। १२ पार्थिव उन्नत जनपदभेद। परिव्राजक यष्ट-धुवङ्गने इस स्थानको पत्त-कन्तो वतनाया है। यह पञ्चाशके भन्तर्गत सरकोट जिलेमें अवस्थित है। * पर्वतकाक (सं० पु०) पर्वत जात; काकः। श्लेषकाक, जेमकोष। ये प्रायः पहाड़ पर हो रहते हैं। पर्वतस्थ (सं० त्रि०) पर्वत-स्थ-त्किं। * जल-चरणकारी, जलदाता। पर्वतज (सं० त्रि०) पर्वताज्जायते यः पर्वत-जन-ड। (पञ्चमहाभूतौ। ग ३।१।८) पर्वतजातमात्र, जो पर्वतसे उत्पन्न हुआ है। पर्वतजा (सं० स्त्री०) १ नदी। २ पावतो, गौरी। हिमगिरिसे उत्पन्न होनेके कारण इनका नाम पर्वतजा पड़ा।

पर्वततृण (स० स्त्री०) पर्वतत्रातृण, पहाड़ पर जौने-
वाली एक प्रकारकी घास, चूँड़। पर्णय—लघाव्य,
पदाव्य, श्रमप्रिय। शुष—बूझ और पुष्टिकर।

पर्वतनिम्ब (स० पु०) मद्धानिम्ब।

पर्वतपति (स० पु०) पर्वतानां पतिः इत्यत्र हिमालय।

पर्वतभेद (स० पु०) कश्यपोद्धिपापाचभेद।

पर्वतभेदो (स० पु०) पापाचभेद।

पर्वतमोवा (स० स्त्री०) पर्वतोद्भवा मोवा, मध्यपदो-
कर्मधा०। गिरिकदली, पहाड़ी केला।

पर्वतराज (स० पु०) पर्वतानां राजा (राजाह्वयस्तिपठ्य
वा ५।५।११) इति टव्। १ हिमालय पर्वत। २
बहुत बड़ा पहाड़।

पर्वतराजपुत्री (स० स्त्री०) पर्वतराजस्य पुत्री। दुर्गा।

पर्वतशानिन् (स० त्रि०) पर्वते वसतीति पर्वत-वस-

निनि। १ गिरिशानिमान्, पहाड़ पर रहनेवाला।

(स्त्री०) २ आकाशमामो। ३ गायत्री। ४ कान्ती।

पर्वतवासिनी (स० स्त्री०) पर्वतवासिन् स्त्री०।

पर्वतामजा (स० स्त्री०) पर्वतस्य आमजा इति दुर्गा।

पर्वताधारा (स० स्त्री०) पर्वत आधाराः एत्याम्।
एषो १। पुराणमें लिखा है कि महेन्द्रादि षट्कुम्भ-
पर्वत एषोको धारण किये हुए हैं।

पर्वतारि (स० पु०) पर्वतस्य अरिः शत्रुः इत्यत्र।

पर्वतीति शत्रु, इन्द्र। कहते हैं; कि इन्द्रने एक बार
पहाड़ोंके परकाट डाले थे, इसीसे उनका यह नाम
पड़ा।

पर्वताग्रभ (स० त्रि०) पर्वत-प्रा-ग्रभ-क्षिप्। पर्वतसे
चकित।

पर्वताग्रय (स० पु०) पर्वते आश्रिते इति आ-श्रो-श्रयने
अच्। मेघ, बादल।

पर्वताग्रय (स० पु०) पर्वत आश्रयो वासस्थानं यस्य।
१ गरभ, महामिह (त्रि०) २ पर्वतवासिमान्, पहाड़
पर रहनेवाला।

पर्वताग्रयिन् (स० त्रि०) पर्वत-आ-ग्रि-यिनि। पर्वत-
निवासी, पहाड़ी।

पर्वताग्र (स० पु०) प्राचीन कावका एक पर्वत।
इसके फेकने की शक्ति सेना पर बड़े बड़े पत्थर धरने

सगते थे, अथवा अपने सेनाके चारों ओर पहाड़ हो
जाते थे जिससे शत्रु का प्रभञ्जन आस सक्त जाता था।

पर्वतिया (हि० पु०) १ जेवाजियोंको एक जाति। २

एक प्रकारका कद्दू। ३ एक प्रकारका तिल।

पर्वती (हि० वि०) १ पहाड़सम्बन्धी, पहाड़ी। २

पहाड़ों पर पैदा होनेवाला।

पर्वतोय (स० त्रि०) पर्वते मयः पर्वत-रु (विभाषा

समुत्पे। वा ४ २।१४) १ पर्वतसम्बन्धी, पहाड़ी। २

पहाड़ पर रहनेवाला। ३ पहाड़ पर पैदा होनेवाला।

पर्वतेश्वर (स० पु०) पर्वतानामो श्वरः। १ पर्वतराज,

हिमालय। २ सुदूराचक्षुर्निर्णेत एव राजा। इनका

दूसरा नाम था गोलेश्वर। काश्मीर, कुलूत और मल

जातिका वास्तवभूमिके मन्थवर्त्ति हिमालय तटदेश पर ये

राज्य करते थे।

पर्वतेहा (स० त्रि०) पर्वते तिष्ठति स्था-तिग, वेदे पत्नं।

पर्वत पर अवस्थित।

पर्वतोद्भव (स० पु० स्त्री०) १ हिङ्गुल, मिर्गिरक। २

पारद, पारा।

पर्वतोद्भूत (स० स्त्री०) पर्वतधातु, पर्वरक्त।

पर्वतोमि (स० पु०) मत्स्यविशेष, एक प्रकारका मछली

पर्वधि (स० पु०) पर्वणि अमावस्यापूर्णिमयोः क्षान-

द्वहि दधाति पर्व-धा कि। चन्द्रमा।

पर्वन् (स० स्त्री०) पर्वतोति पर्व-यतो वाहुलकान् कामिन्,

वा विपत्तौति वृ-वनिच् (स्थावलेपवर्तिवृ-वनिच्) इति।

उन् ५।१११) १ लम्बव। २ अन्वि, गाँठ। ३ प्रज्ञाव।

४ लक्षणांतर। ५ दर्श और प्रतिपदकी मन्थि, पूर्णिमा

और प्रतिपदकी मन्थि। ६ पत्यविच्छेद, जैसे मङ्गलारन-

का घटादशपर्व। ७ सप्त। ८ मङ्गो। ९ वृषर्ष, धर्म,

गुणकार्य अथवा लक्ष्य आदि करनेका समय। पुरा-

णानुसार चतुर्दशी, पञ्चमी, अमावस्या, पूर्णिमा और

संक्रान्ति ये सब पर्व कहलाते हैं। पर्व है इन्द्र की-

प्रसन्न करना अथवा मान मछली आदि खाना निविड

है। जो यह सब काम करता है, वह विश्वत्रय जन

नामक नरकमें जाता है। पर्वके दिन उपवास, नदी-

स्नान, याद, दाग और जप आदि करना चाहिये।

१० दर्शाते पूर्णिमाद्वय काल। ११ अंग, भाग।

१२ यद्य पादिके समय हीनेशला उत्तर या कार्य ।
१३ सूर्य भयथा चन्द्रमाका ग्रहण । १४ प्रतिपदासे ले
कर पूर्णिमा भयथा समावस्था तत्काल समय । १५
दिवस दिन । १६ सन्धिरथान, वह स्थान जहां दो
चीकें, विगियता दो अङ्ग जुड़े हैं । १७ अवतर
भोका ।

पर्वधर पुरवन्दर) - १ स्वर्गप्रदेशके अन्तर्गत काठिया-
वाड़के सूरत विभागका एक देशीय नामस्तथावत् । यह
पक्षा २१. १४ से २१. ५८ उ० तथा देशा ६८. २८
से ७० पू० के मध्य अवस्थित है । भूमिका परिमाण
६२६ वर्ग मील है । इसमें कुल १ प्रधान गहर और ८४
ग्राम लगते हैं ।

वर्षापूर्व तक ठाकू देशसे ले कर समुद्रतोरवर्त्तौ एम-
तल्लेय तक सभी भूभाग इस राज्यके अन्तर्गत हैं ।
भादर, सोती, वसु, मिनवार और जगात आदि
नदियाँ यहाँ बहती हैं । समुद्रसे किनारे जिस भावरमें
छटिका जल जमा रहता है, वह 'चिर' कहलाता है ।
समुद्रका लवणजल जल भावरमें आ कर गिरनेसे वहाँ
ऊपरके सिवा और कुछ भी उत्पन्न नहीं होता । सुमिष्ट
जलपूर्ण भावरमें धान वने आदि अनाज उत्पन्न होते हैं ।
मोक्षायाराका चिर नामक भावर सबसे बड़ा है । 'गङ्गा-
जल' नामक सुमिष्ट जलयुक्त भावर किन्दरो खाड़ीके
निकट अवस्थित है । 'पुरन्दरपथार' नामक यहाँका
धूनापथार विषय विख्यात है । इन प्रसारको प्रभूत
परिमाणमें ध्वस्त रहती होती है । कच्छ उपभागके
किनारे कच्छ, गाम्बूक आदि अधिक संख्यामें पाये
जाते हैं । पर्वधर, माधवपुर और मियाजी नामक
धन्दर ही यहाँका प्रधान है ।

१८०७ ई० में अङ्गरेजोंके साथ यहाँके सरदारगण
सन्धिपत्रमें आवद्ध हुए । वर्त्तमान सरदार राणा यो-
विक्रमजित् जेठवावशेय राजपूत है । जेठवा लोगोंने
यहाँ प्रायः छेड़ सौ वर्ष तक राज्य किया । इन्हें ११
तोपोंको सन्तानों मिलती है । इनके खेती पसामोंका
विचार करनेकी क्षमता है । राज्यके सभी विचारकार्य
से स्वयं देखते हैं । इन्हें अङ्गरेजराज, गायकवाड़ और
जुनागढ़के नवाबकी प्रतिश्रुति कर देना पड़ता है ।

इनको एकमात्रमें जो चौदोका भिक्षा ठहलता है, वह
कोरो कहलाता है । तोपोंके सिक्के का नाम 'दोका' है ।

२ उत्तराखण्डका प्रधान नगर । यह पक्षा २१. १०
उ० और देशा ६८. ६८ पू० के मध्य पर्वतमागरेके चप-
कून पर अवस्थित है । अधिक पठ पर शुक्ल पर्वत होने
पर भी यहाँ वाणिज्य तो विगिय उत्तरे देखो जाती है ।
मसवार ठाकूर, कोइरारदेग, सिन्धु, वेतू विस्तान,
पारस उपमागर, चरन और पक्रिताके साथ यहाँका
वाणिज्य व्यवसाय चलता है । नगर दुर्ग द्वारा सुरक्षित
है । इस राज्यका प्रचोन नाम सुदाना गी है ।

पर्वपुथी (सं० स्त्रा०) पर्वसु पथियु पुथ्य यथथा
स्त्रियां ङोप । १ नागदन्तो नामक सुर । २ रामपुतो
तुनो ।

पर्वपूरता (सं० स्त्रा०) पर्वणः पूरता । १ सभा,
चायोजन, उत्सवका उद्यान । २ उत्सवको परिपूर्णता ।
पर्वभेट (सं० पु०) पर्वणः भेटः । १ पर्वविशेष । २
सन्धिभङ्गरोगभेद ।

पर्वमूल (सं० स्त्रा०) चतुर्दशो और समावस्थाके मध्य-
वर्त्तौ सुवर्त्त ।

पर्वमूला (सं० स्त्रा०) पर्वणि पर्वणि मूलं यस्य ।
ज्जेतदुर्गा, सफेद दूध ।

पर्वयोनि (सं० पु०) पर्वपथियरेव यानित्पत्तिकारणं
यस्य । वह वनस्पति आदि जिनमें गाँठ हैं । जैसे
कजल ।

पवर (हि० पु०) पवर देखो ।

पर्वशि (का० स्त्रा०) पालन-पोषक, पालना पोसना ।

पर्वरोष (सं० स्त्रा०) पर्वरोष एषोदरादित्यात् साधः
१ पर्व । २ गर्व । ३ मार । ४ पर्वगिरा । ५ दूतक ।
६ दूतकस्वल्प । ७ पर्वचूषरष ।

पर्वकट (सं० पु०) दाहिमकट ।

पर्वक (सं० पु०) दाहिम प्रसार ।

पर्ववत् (सं० वि०) पर्व मनुष्य मस्य व । पर्वयुक्त,
पर्वविशिष्ट ।

पर्ववशी (सं० स्त्रा०) पर्वप्रधाना ग्रथिवहुला वशी-
सता । मातापूर्वा, दूध ।

३३२ दोकेंनी एक कोरी । तीव कीटीका १ द्वाया = २ धिः

पर्वशब्द (स० अश्व०) पर्वन् नारयं चमसः । पर्व
पर्वमे, मयि मयिमे ।

पर्वस (स० अश्व०) प्रति पर्वमे, पर्व पर्वमे ।

पर्वसमि (स० पु०) पर्व गोः समिः । १ पूर्णिमा
पयसा प्रसाधयसा चौर प्रतिपदाके बोचका समय, यह
समय जव नि पूर्णिमा पयसा प्रसाधयसाका पय हो
सुता हो, चौर प्रतिपदाका चारवा होता हो । २ सूर्य
पयसा चन्द्रमाको पयस लगनेका समय, यह समय
अह नि सूर्य पयसा चन्द्रमा पय हो । ३ छुटने परका
कोह ।

पर्व (हि० श्लो०) १ पराव देखो । २ प्रतिपदा देखो ।

पर्वण—विचारपारके भागनपुर जितेमे प्रवाहित एक
नदी । यह नारोदगङ्गा परगनेके निकल कर लगभग १
मोन दूरी तक बहतो हुई हिन्दुस्तान नामक स्थान पर
धमान नदीमें मिल गई है । इस सङ्गमस्थानपर एक
शिवमन्दिर बना हुआ है । शिवलिंगके ऊपर, गङ्गाजल
चढ़ाने लिये बहुतसे मनुष्य हम पर्वण क्षेत्रमें पाते
हैं । यहाँसे दोनोंनदियाँ पर्वण नामके १० मोन तक
बहतो हुई गङ्गाजल जितेके पड़िया काटना नामक
फसलियाँ परगनेमें प्रवेश करती हैं । लगभग पचास
मन बोझको नाव हम नदीमें आ जा सकती है ।

पर्वण (परमान)—रम्भके होको पर्वणवाको ज्ञाति । ये
मयके मय क्षयिजो हो । रम्भयोंके परिच्छेदहि हिन्दू-
स्थानवासी ही तरह हैं । हम लोगोंका कहना है, कि
ये लोग राजपूतानेके आ कर यहाँ बस गए हैं ।

पर्वणधारा—शाश्वतके सततगत एक नदी चौर उपत्यका-
भूमि । यहाँसे हिन्दूकृष्ण पर्वण का पाददेश पार करने पर
बहुतसे गिरिपय नहर आते हैं । पर्वण गिरिपयमें बेगिज
को दनबलके साथ वारिजमके सुलतान जलालउद्दौलने
१२२१ ई०में डराया था । १८४० ई०में जनरल मेल्-
परिचालित, पञ्जारेज-वेम्य फकानाराज दोस्त मरहमद
दारा फाकाना हुए । हम युद्धमें पञ्जारेजों पक्षमें पांच
सेनापति-हत चौर पाहत हुए थे ।

पर्वणिया—पराणप्रोवाको हिन्दू ज्ञातिको एक शाखा ।

पर्वणो (हि० पु०) पर्वणकी देखो ।

पर्वणा (हि० पु०) पर्वणा देखा ।

पर्वणधि (स० पु०) पर्वणः पर्वणः । परयन्ति ।

पर्वणोत् (स० पु०) पर्वणः प्रास्तोः । पञ्चानि पर्व-
का प्रास्तोत्तन । शास्त्रमें चगनो मटकाना निविष्ट है ।

“अथैश्वर्यं कथं शीतं कृतं तथा ।

जुम्हने पात्रमंथय पर्वणोत्तय वंथेद ॥”

(कामरूपी ५११)

पर्वण (स० पु०) पर्व दिन, उत्सवदिन ।

पर्वण (हि० श्लो०) गवाह देखा ।

पर्वणो (हि० श्लो०) पर्व देखा ।

पर्वण (स० पु०) पर्वयन्तिनामस्य । पर्वणमस्य एक
प्रकारको मछली (Silurus pabda) ।

पर्वण (स० पु०) पर्वणामोः । यह पकानमंद, फलित-
ज्योतिषके पशुवार काननेदेवे यह प समयके अधिपति
देवता ।

हृदयचिह्नको पशुवार ब्रह्म, चन्द्र, इन्द्र कुबेर,
बृहस्पति, पत्नि चौर यम ये सात देवता क्रमशः छः छः
महीनेके यह पर्वण अधिपति देवता हुआ करते हैं । इसीसे
हम सातोंको पर्वण कहते हैं । भिन्न भिन्न पर्वणके समय
यह पर्वण होनेका भिन्न भिन्न फल होता है । यह पर्वणके समय
ब्रह्मा यदि अधिपत हो तो दिन चौर परमाका हृदि, मङ्गल,
पाराय चौर धनरम्भति हो हृदि; चन्द्रमा हो तो पाराय
चौर धनरम्भति हो हृदि; इन्द्र हो तो राजाघोर्नि विरोध, गरदन्तनुके
धाम्यका नाश चौर समस्त कुबेर हो तो धनयोंके
धनका नाश चौर दुर्भिक्ष; बृहस्पति हो तो राजाघोर्नि
पशुधः पञ्जाका मङ्गल चौर धाम्यको हृदि; पत्नि हो, तो
धाम्य, पाराय, समस्त चौर अच्छी वर्षा तथा यम हो,
तो पनाहृदि, दुर्भिक्ष चौर धाम्यको हानि होती है ।
इसके मलावा यदि चौर समयमें यह पर्वण हो तो सुवा,
महामायो चौर पनाहृदि होती है ।

पर्वणोय (हि० वि०) स्थग्यं करने योग्य, कूने आशक ।

पमान (स० श्लो०) पाम्भस्थानं पयोदरादित्वा साधु ।

१ पायस्थान । २ मेघ, बादल । (वि०) १ पौष्मान ।

पय (स० पु०) परं यत्, श्रुताति पर-शु-कु, मय
डि । (आर्य पयोः क्षयिष्वा विष । उष् ११२०) वा
स्यमिति शब्दनिष्ठस्य-पय-धातोश्च-पादिस्यः । (रुद्रोः

अणु शनौ पु च । उ० ५।२७) १ परश । २ श्रुगो । ३ एक
प्राचीन घोडा जातिको नाम जो वर्त्तमान अफगानिस्तान
के एक देगमें रहती थी । ४ पश्वंस्थित पश्वि ।

पशुका (स० स्त्री०) पशु रिक् प्रतिवृत्तिः (दो प्रतिवृत्ति) ।
पा ५।३।१६) इति कन्, श्रियां टाप् । पिञ्जर, छाती
पर की हड्डी ।

पशुपाणि (स० पु०) पशुः परशः पाणौ यस्य । १
गणिय । २ परशुराम । पशुरामके हाथमें हमेशा
परशु रहता था ।

पशुमय (स० त्रि०) परशुको तरह आकारविशिष्ट ।
पशुराम (स० पु०) पशुधारी रामः, आकाश्यादि-
वत् नन्मासः । परशुराम । ये परशुके साथ सम्बन्ध
हुए थे । परशुराम देखो ।

“भारावतरणाधीन जातः परशुना सह ।

सहजः परशुस्तदय न जहाति कदाचन ॥”

(काविकावु० ७ : अ०)

पशुल (स० त्रि०) पशुः तदाकारमस्ति ततः निष्पादि-
त्वात् लृच् । पाश्वीस्थियुक्त ।

पशुस्थान—एक प्राचीन जनपद । यहाँ पशु जातिके
लोग रहा करते थे । चीनपरिभाषा इस स्थानका
फर-स-य-न नामसे वर्णन कर गये हैं । आनकन
यह प्रान्त वर्त्तमान अफगानिस्तानके अन्तर्गत है ।
पश्यक देखो ।

पश्वं (स० पु०) परश्वं दधातीति परश्व-वा-क, ह्रस्व-
दशदित्वात् साधुः । कुठार ।

पश्वदि (स० पु०) पश्वं आदि करके पाणिभ्युक्त गणभेद ।
स्त्रायमें पश्वदि शब्दके उत्तर अण्, प्रत्यय होता है । गण
यथा—पशु, पशुर, रश्म, वाक्त्रोक, वयम्, वसु, मरुत्,
सस्वत्, द्वाह, पिशाच, अग्नि, कापीपण । (पाणिने)
पर्यं (स० पु०) निरुत्, कठोर ।

पर्यद (स० स्त्री०) परिस्रोदन्त्यस्यां परिसदृ-क्रिय
(सदृशप्रवेः । पा ५।३।१६) इति बहुलकात् पल्,
इकारलोपश्च । सभा ।

पर्यदल (स० त्रि०) पर्यदं सभा विद्यते यस्य पर्यदं
(रजः कृतीति । पा ५।२।१२) इति वलच् । पारिषद,
सभांसद

पर्यन् (स० त्रि०) पारयितव्य विषय ।

पर्यिक (स० त्रि०) पर्यः पूर्णं अस्त्यर्थे ठन् । पूर्ण-
युक्त ।

पर्येज (फा० पु०) १ रोग आदिके समय पचय्य वस्तुका
व्याग, रोगके समयः संयम । २ वचना, पत्रग रहना,
दूर रहना ।

पर्येजगार (फा० त्रि०) पर्येज कारनेवत्ता ।

पर्येग (हि० पु०) अच्छी चारपाई, अच्छे गोठे,
पाटो और नुनःवटकी चारपाई ।

पर्येगडो (हि० स्त्री०) १ पत्रग । २ छोटा पर्येग ।

पर्येगतोड़ (हि० पु०) १ एक आदि-जिसका मुख्य
गुण स्तम्भन है । यह बोधैवृद्धिके लिये भी खाई जाती
है । (वि०) २ निठला, पालसो, निक्कसा ।

पर्येगदं (फा० पु०) जिसके दांत चातेके दांतोंको तरह
कुल्ल कुल्ल टेंके हो । है ।

पर्येगपोय (हि० पु०) पर्येग पर जिसने तो चादर ।

पर्येगवा (हि० स्त्री०) छोटा पर्येग, छुटिया ।

पर्येजो (हि० स्त्री०) एक प्रकारकी घास ।

पर्येडो (हि० स्त्री०) नावमेंका वह बांस जिससे पाल
खड़ी को जाता है ।

पल (स० पु०) पलतीति पल-पच् । १ अ-भिप, मांस ।

२ समयका एक बहुत प्राचीन विभाग जो है मिनट या
२४ सेकंडके बराबर होता है, चंद्रो मा २८ दिन ६० वां
भाग, ६० विपनके बराबर समय । ३ धानका सूखी
ठंडल जिसमें दाने अलग कर लिये गये हों, पशाल । ४
प्रतारणा, धाखेवाजा । ५ गति, चलनेकी क्रिया । ६
तुला, ताला । ७ एक तोल जो ४ कर्षके बराबर होता
है । कर्ष प्रयः एक तोलके बराबर होता है, पर यह
मान इसका मिलकुल नियत नहीं है । इसी कारण
पलके मानमें भी मतभेद है । ब्रह्मके इसका मान
८ तोला और अन्यत्र चार तोला या तीन तोला ४ मांश
भी माना जाता है । ८ सूत्र । ९ दृगंधलः पलक ।

पलके साधारण लोग पल और निमेषक कालमानमें
कोई अन्तर नहीं समझते थे । पता आधिके परदेहा
प्रत्येक पलमें एक बार गिरना मान कर उसे भी पल
या पलक कहने लगे । १० समयका प्रत्यक्ष छोटा विभाग,

सेन, पति, लक्ष्मी। कहीं इसे स्त्रोत्रिग भी बोलते हैं।
पल—१म, ये टिमिनके बाद ७३० ई०में रोमके पं-
पट पर नियुक्त हुए। इनके साथ लक्ष्मीवाडके राजाका
विवाद हुआ था। ७६८ ई०में इनको मृत्यु हुई।

पल—२य, ये १४६४ ई०में २य पायासके पद पर बसि-
यित हुए। इन्होंने यूरोपीय स्वतंत्रराजप्रणालीको
तुर्कीके विरुद्ध धर्मयुद्ध करनेके लिये उभाड़ा। तुर्क
लोग इन समय इटली-शासनकी तैयारियाँ कर
रहे थे। इनके यत्नसे इटलीके विभिन्न प्रदेशोंमें शान्ति
स्थापित हुई। शीत और रोमिय भाषाओंमें लिखित
नास्तिक-मतवादकी प्रकाशने लिये रोमनगरमें लो विद्या-
लय खोला गया था, उसे इन्होंने ही उठा दिया। उक्त
विद्यालयके अनेक सहयोगी का-र्य हुए और युगो
तकसे घोंटे गये थे। १४७१ ई०में इनको मृत्यु हुई।

पल—३य, इनका असल नाम फेलिकसन्दर कर्षिज
था। १५१४ ई०में लोमैण्डके बाद ये पोपसिंहासन
पर बसिष्ठित हुए। इन्होंने दण्डविधादण्ड स्थापन,
जेसुइट सम्प्रदायकी प्रतिष्ठा और धर्म पाठसे धर्म
विरोधका उन्मोचन करनेमें तथा इङ्ग्लैण्डराज वम
हुनगरी विरुद्ध लाने की कार उनका दमन करनेमें
विशेष दक्षता दिखलाई दी।

पल—४य, (जान पोटर कर्षाका) १५५५ ई० में
पारसो-वर्षकी अवस्थामें ये पोपसिंहासन पर बैठे।
इन्होंने रानो एलिजाबेथकी इङ्ग्लैण्डसिंहासनप्राप्तिमें
बाधा डाली और कहा, 'अनेककन्या होनेके कारण
एलिजाबेथ सिंहासनकी अधिकारिणी नहीं हो सकती,
क्योंकि इङ्ग्लैण्ड पोपकी जागीरमान है।' १५५८
ई०में इन्होंने विधर्मियोंके विरुद्ध प्रचुरा प्रचार को।
उनो माल इनका देशान्त भी हुआ।

पल—५म, (कामिलो कर्षिज) १६०५ ई०में ११वें
बीजको मृत्यु होने पर इन्होंने पोपपद प्राप्त किया और
भित्तमकी गिनेट मभाके साथ विवाद कर उक्त
मभाकी धर्मधिकारयुक्त बनाने हुए घोषणा कर
दी। इसके बाद प्रशासनके विरोधी हो कर जब इन्होंने
मेथ्यारयत किया तब १६०० ई०में इन्हाट और
पन्थाय राजाओंकी मध्यस्थतामें दूरीपने भी शान्ति

स्थापित हुई। इन्होंने उद्योगसे रोमनगर नाना प्रकारके
भास्करकार्य-श्रुदित पुस्तिका, चित्रपट और जनप्रवासो-
से समोमित हुआ था। इन्होंने इटलीके धनवान् बाविक-
यंगको प्रतिष्ठा हुई। १६२१ ई०में इन्होंने जीवनकी ला
श्रेय की।

पल—६म रूप-सम्पाद, रानो कैथरिनके गर्भमें उत्पन्न
पोटरके पुत्र। १७७५ ई०में इन्होंने इमिडारमटाडके
मृत्युधिपतिको कन्या बिलहेलमिनाके साथ विवाह
किया। १७७५ ई०में बिलहेलमिनाको मृत्यु हुई और
इन्होंने फिर प्रूमियाराज-परिवारभुक्त उद्योग राजपुत्रो-
की व्याह। १७८६ ई०में माता २य कैथरिनको मृत्यु
होने पर ये सम्पादके पद पर बसिष्ठित हुए। राजगद
वा कर पहले इन्होंने कान्तिवल्ली, निम्नभिग पाटिहो
कागारसे लुझाया और १७८८ ई०में पटिया-राजके
साथ मिल कर फ्रांसके विरुद्ध युद्धप्रारंभ को। पोछे इटली-
शासनपत्रके लिये इन्होंने सेना भेजी, लेकिन किसी कारण-
वश उन्हें फिर बाविस बुला लिया। तदनन्तर फ्रांस्य-
वालो सङ्घर्षका इन्होंने मजबूत छौन लिया और धीरे
धीरे प्रजा पर अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया।
जब सार्डिनीससन्ने सक्त लोग कोपेनहेगेनमें परास्त हुए,
तब राजकर्मचारिगव सम्पादके पाचरण पर बड़े हो
बिदू गये। वे लोग जानते थे, कि इन समय सम्पाद उक्त
कार्यमें लगे हुए हैं, जो उन्होंने पदयन्त्र करके दीपहर
रातको सम्पादके घरमें प्रवेश किया और धमकी दे कर
उनसे कहा, 'पाप सिंहासन परित्यागके लिये पत्र पर
हस्ताक्षर कर दोजिये, अन्यथा पापके पदमें पक्षी नहीं
होगा।' राजाने उनका प्रस्ताव स्वीकार न किया और
दीनोंमें हत्यावादी होने लगे। पलमें इन्होंने राजाका
गला घोट कर प्राण ले लिया। उनको मृत्यु पर नगर-
वासिगव बड़े प्रसन्न हुए थे।

पलई (डि० फ्लो०) १ पैट्रुको नरम डाली था टहनी। २
पैट्रुके लपटका भाग, चिरा, लोक।

पलक (प्र० पु०) पल-सार्थक कम्। १ लप, पन, दम,
लक्ष्मी। २ पापके करारका समझौता पदा जिनके
द्विर्धसे पाप बंट होतो और उठनेसे पुनर्तो है।
बिन्दोमें इनका व्यवहार श्लोक्तिमें होता है।

पलकण (सं० पु०) धूपघंडीके शंकुकी उस समयकी छायाकी लम्बाई जब भेष संक्रान्तिके मध्याह्नकालमें सूर्य ठीक विषुवत् रेखा पर होता है।

पलकदारिया (हिं० वि०) पलित छटार, बड़ा दानो।
पलकनेवाज (हिं० वि०) कृमि निहाल कर देनेवाला, बड़ा दानो।

पलकपोटा (हिं० पु०) १ शंखका एक रोग। इसमें बरोनियां प्रायः झड़ जाती हैं, बाखें बराबर झकनो रहती हैं और रोगी धूर या रोगनौरी धोर नहीं देख सकता। २ वह मनुष्य जिसे पलकपोटा हुआ हो, पलक पोटेका रोगी।

पलका (हिं० पु०) पलंग, चादर।

पलका (सं० स्त्री०) पलक मांस तद्वद्वये हितं पलक यत् क्षियांटात्। पालङ्गयाक, पालङ्का साग।
पलक (सं० पु०) पलक, एषोदादित्वात् मधु। १ श्वेतवर्ण, मृदिर रंग। (वि०) २ श्वेतवर्णं युक्त जिसका रंग सफेद हो।

पलचार (सं० पु०) पल्लव मांस्य चार इव उत्पादकत्वात्। शाणित, रक्त, लङ्ग, लून। मांस खानेसे वह परिरक्त हो कर रक्त हो जाता है, इससे पलचार शब्द रक्तका प्रीति होता है।

पलखन (हिं० पु०) पालक, पीछा।

पलखिरा—मध्यप्रदेशके कन्दारा जिलान्तर्गत एक जमो-
हिनारो सम्पत्ति। भूपरिमाण ३८ वर्ग मील है। इसमें कुल २१ ग्राम लगते हैं। १८५६ ई०से यह सम्पत्ति कामठा राजा पंके अधिकारभुक्त हुई है। यहाँके सरदार और अधिवासिय कुलवी जातिके हैं।

पलगण्ड (सं० पु०) पल मांस तद्वद्वगण्डित भित्ती श्रृङ्गादिना लिम्पतोती गण्ड-चण्ड। केषक, कसो दोवारने मिट्टीका लेप करनेवाला।

पलगुलपञ्चो—मन्द्राज प्रदेशके कड़ापा जिलान्तर्गत एक गण्डयाम। यह कड़ापा नगरसे १८॥ कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है।

पलकट (सं० वि०) पल मांस कटित पाकुक्षितं करोति पलकट बाहुलकात् खष मुच्। मयगील, मोर, डरपोक।

पलकुर (सं० पु०) पल मांस करोतीति पल-क-पच् (ति) पुरे इतीति। पा ६।२ १५ इति हितोयायाः भलुक। पित।

पलङ्क (सं० वि०) पल वपतीति कष-डिंसायां पच् ततो हितोयायाः भलुक। १ राजम। २ गुग्गुल।

पलङ्गया (सं० स्त्री०) पलङ्क-यात्। १ गोशुक्र, गोयक। २ रास्ना। ३ गुग्गुल। ४ किंशुक, पन्ना, टेष्। ५ मुण्डोमे, गोरखमुण्डो। ६ लावा, लाह। ७ छद्मोक्तक, छोटा गोशुक्र। ८ मन्नाश्रावणो। ९ मलिका, मरखो।

पलङ्गो (सं० स्त्री०) पलङ्ग देवी।

पलङ्गपादितैल (सं० पु०) प्रोषधविशेष। प्रस्तुत प्रमाणो—गुग्गुल, यव, हरीतकी, शक्रन्दमूल, मधुप, जटामांसी, भुवनेश, ईपनाङ्गना, ल-सुन, असीम, दन्तो, कट, रट्ट, पश्चिमांसांशो पत्तियोंकी बिछा इन सबका मिश्रित चूर्ण १ सेर, छागमुत्र १६ सेर, तैल ६ सेर। इस तैलके लगानेसे श्वप्सरस जाना रहता है।

पलचर (हिं० पु०) राजपूतजातिके पुराणोक्त उपदेशता विशेष। इसके विषयमें लोगोंका विश्वास है, कि यह युद्धमें श्रुतशक्तियोंका रक्त पेना और आनन्दसे नाचता कूदता है।

पलटन (हिं० स्त्री०) १ शंगरेजो पैदल सेनाका एक विभाग। इसमें दो वा अधिक कम्पनियों प्रधात् २०० के करीब सैनिक होते हैं। २ सैनिकों प्रधात् अन्य लोगोंका समूह जो एक उद्देश्य या निमित्तसे एकत्र हो, दल, समुदाय, झुण्ड।

पलटना (हिं० क्रि० प्र०) १ किसी वस्तुकी स्थिति उलटना, ऊपरके भागका नीचे या नीचेके भागका ऊपर हो जाना। २ अच्छी स्थिति या दया प्रस होना, कभीके दिन फिरना या लोटना। ३ आसूल परिवर्तन हो जाना, काया पलट हो जाना। ४ लोटना, घापन होना। ५ सुदना, पोछे फिरना। (क्रि० सं०) ६ किसी वस्तुकी प्रथमा उलट देना, काया पलट देना। ७ बदलना, एकको हटा कर दूसरीकी स्थापित करना। ८ लोटना, फेरना, घापन करना। ९ बार बार उलटना, फेरना। १० एक बातकी प्रथमा करके दूसरी कहना, एक बातसे

सुकर कर दूमी कइना । ११ सजटी वलुगो लीखी
घोर लीखीको चपटी करना ।

पलटा (हि० पु०) १ पलटनेको क्रिया या भाव, ऊपर-
से नीचे घोर मोचेमे जरा झोनेको क्रिया या भाव
२ प्रतिफल, बदला । ३ नाचमें यह पलटो जिन पर
नाचका खेनेवाला बैठता है । ४ गानमें जइयो जइयो
योहो मे खोरो पर चकर लगाता, गाते समय ऊँचे वा
तक पहुँच कर खूबदूरतोंके साथ फिर नीचे खरोका
साथ सुझना । ५ कुरतोहा एक वेव । इनमें जय
ऊपरवाला पहचाना नीचे पड़े हुए पहचानना का काम
पकड़ना है, तब मोचेवाला ०ठा चपने दहिने पैरके पंजी
ऊपरवालेकी टांगीके मोचमें डाल कर उसको बाईं
टांगीको कंसा होता है घोर दहिने हाथसे उसको बाईं
कलाई पकड़ कर झटकेके साथ घनो दहिनी घोर मुड़
जाता है घोर ऊपरका पहचाना चितगिर जाता है ।

६ लीखी घा पोतनाको बड़ो खुरचनी । इनका फल चोकोर
न जो कर मोलाकार होता है । इसमें बटलीकोमें
चावल निकालते घोर घूरो खादि चपटते हैं ।

पलटाना (हि० क्रि०) १ लोटाना, किरना, वापन करना ।
२ बदलना ।

पलटो (हि० लो०) पलटा देतो ।

पलटे (हि० क्रि० वि०) प्रतिफलस्वरूप, बदले,
एवजमें ।

पलड़ा (हि० पु०) तुनापट, तराजूका पल्ला ।

पल्ला (पल्ला)—इहानके २४ परगमेंके पल्लामें एक
पल्ला । यह पल्ला २२' ४०' १०" ० तथा देगा ० ८८
२४' ५०" गहानमेंके बाएँ किनारे बाएँपुलसे १ कोस
दूरमें अवस्थित है ।

पल्ला (हि० पु०) १ कलावाजी, विशेषतः पानामें
मारनेकी क्रिया या भाव । २ लीखी देको ।

पल्लो (हि० लो०) एक पासन जिनमें दहिने पैरका
पंजा बाएँ घोर बाएँ पैरका पंजा दहिने पड़े
मोचे दबा कर बैठते हैं घोर दोनों टांगी ऊपर मोचे की
की कर दोनों आँचोंमें दो तिकीय बना देतो हैं । जिस
पासनमें पंजो लगाया सम्यक् प्रकारमें न हो अर
दोनों तिकीय ऊपर पधवा एकके ऊपर दूसरेके मोचे हो
उमें भी पल्लो को कहते हैं ।

Vol XIII 22

पलट (म० वि०) पल्ले मान' ददाति मेघनेन दा'व ।
१ मेघन द्वारा मानहारक द्रव्यभेद, यह द्रव्य जिसके
खानेमें मानको वृद्धि हो । २ देगभेद । (लो०) ३
नगरोभेद ।

पल्ला दि (म० पु०) पलटो खादि करके पल्ला प्रत्यय
निमित्त पाणिन्युक्त शब्दगणभेद । यथा—पलटो, परि-
पट, रोमट, भाटिक, कलहाट, वट्टाट, जलहाट,
कमलहाट, कमलहाट, कमलहाट, गोठो, नैकतो,
परखा, गुरमेन, गोमता, पल्ला, लटवान, यज्ञकोम ।
(वाणि ४२१२०)

पल्ला (हि० क्रि०) १ पलनेका एकमेदद्वय, ऐसी
स्थितिमें रहना जिनमें भोजन वस्त्र खादि प्राचलकताएँ
दूरको महायता या जगामे ह्रा हो रही हों, दूरका
दिया भोजन वस्त्रादि वा कर रहना, पाला या पोसा
जाना । २ खा पो कर छटपुट जाना, मोटा ताजा
होना । ३ कोई पदार्थ किताता देना ।

पल्लाङ्ग—मन्त्राङ्ग प्रदेशके कल्या जिनान्तर्गत एक उप-
विभाग । यह पल्ला १६' १०" से १६' ४४" ० तथा
देगा ० ८८' १४" से ८०' ५०" तक मध्य अवस्थित है ।
भूपरिमाण १०४१ वर्ग मील घोर जनसंख्या १५३६१८ है ।
इसमें ८६ ग्राम लगते हैं । जिनके अधिकांशमें विस्तीर्ण
घना जङ्गल है । यहाँ श्वेत मार्मल प्रसार अधिक
परिमाणमें पाया जाता है, इसीसे इसका नाम पल्लाङ्ग
या पल्लाङ्ग पड़ा है ।

घोरङ्गलके गणपति रात्राधीन समयमें यहाँके सर-
दारीमें युद्ध-विपदादिमें विवेक वाकाला दिखनाते हुए
पञ्चवस्याति लाभ की गो । पल्लाङ्गो-विद्वत्-भागवतम्
नामक घोरचरिताख्यानमें वल्ला वारा को जीवनो लिखो
है । १२५५ घोर १३०८ तकमें वल्लाङ्ग गिलानिधिमें
भी समका प्रमाण मिलता है । १५०८ ई०में पल्लाङ्ग-
वाग्मिनीने महोत्सवमें पुस्तु गोत्राको पुस्तिकटमें पारदा
कर कुम्भि वस्त्रमें भगा दिया था । इस युद्धमें पुस्तु-
गोत्राको विगेष क्षति हुई थी ।

० पल्ल शब्दका अर्थ दूध है । पल्ल दूधके जेवा बकेद
मेवेही ऐषा नाम पड़ा है । लीखी लीखा कइना, हि
'अदि' लल्लन देको अर्थमें ही पल्लन नाम हुआ है । पल्ल
नाममें इहवा प्रकृत नाम पल्लनाङ्ग या पल्लन है ।

पलकण (सं० पु०) धूर्धुरेकी शंकुकी उस समयकी छायाकी लम्बाई जब सूर्य सन्क्रान्तिके मध्याह्नकालमें सूर्य ठीक विपुवत् रेखा पर होता है।

पलकदरिया (हिं० वि०) पति छटार, बड़ा दानो। पलकनेवाल (हिं० वि०) छनमें निहाल कर देनेवाला, बड़ा दानो।

पलकपीठा (हिं० पु०) १ आँखका एक रोग। इसमें बरोनिया प्रायः भङ्ग जातो है, प्रायः बराबर भयकनो रहती है और रोगी धूप या रोगनी हो घोर नहीं देख सकता। २ वह मनुष्य जिसे पलकपीठा हुआ हो, पलक पीटेका रोगी।

पलका (हिं० पु०) पलंग, चारपाई।

पलका (सं० स्त्री०) पलक मांस तद्वद्दये हितं पलक यत्, क्लियां टाप्। पालकपाक, पालकका साग।

पलक (सं० पु०) पलक, पृथ्वीदशदिशात् सधु। १ श्वेतवर्ण, सफेद रंग। (त्रि०) २ श्वेतवर्ण पुष्प जिसका रंग सफेद हो।

पलचार (सं० पु०) पतस्य मांसस्य चार इव उत्पादकत्वात्। शाणित, रक्त, लहू, लून। मांस खनिषे वह परिगक्त हो कर रक्त हो जाता है, इसीसे पलचार शब्द रक्तका विशेष होता है।

पलखन (हिं० पु०) पार्कीका पहिड़।

पलखिरा—मध्यप्रदेगके कन्दारा जिलान्तर्गत एक जमो-दारो सम्पत्ति। भूपरिमाण ३८ वर्गमोल है। इसमें कुल २१ ग्राम लोहा है। १८५६ ई०से यह सम्पत्ति कामठा राजा पंके अधिकारभुक्त हुई है। यहाँके सार और अधिवामिण कुनबी जातिके हैं।

पलगण्ड (सं० पु०) पल मांस तद्वत् गण्डति भित्तौ सृष्टादिना लिम्पतोती गण्डश्च। कोष्क, कसो दोवारमें मिट्टीका सेप करनेवाला।

पलगुरलपत्तो—मन्दाज प्रदेशके कछाया जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह कछाया नगरसे १८१ कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है।

पलकट (सं० त्रि०) पल मांस कटति शकुचितं करोतीति पलकट वाहुनकात् खच्च मुञ्च। मयगील, मोर, डरवोक।

पलकुर (सं० पु०) पल मांस करोतीति पलक-प्रच (तै० उपवे इतीति। पा ६।२।१०) इति द्वितीयायाः अलुक्। पित्त।

पलकृप (सं० त्रि०) पलं वधतीति कप-हिंसायाः अच् ततो द्वितीयायाः अलुक्। १ राजस। २ गुग्गुल।

पलकृपा (सं० स्त्री०) पलकृप-टाप्। १ गोक्षुरक, गोयक। २ राहना। ३ गुग्गुल। ४ किंशुक, पत्र, टिप्पू, ५ मुण्डोरी, गोरखमुण्डो। ६ लासा, लाह। ७ चन्द्रगोक्षक, छोटा गोयक। ८ महाथावणो। ९ मक्खिका, मक्खो।

पलकृपो (सं० स्त्री०) पलकृपा-देखो।

पलकृपादितैल (सं० पु०) औषधविशेष। प्रसुत प्रपायो—गुग्गुल, वच, हरीतकी, आकन्दमूल, सर्पप, जटामांसो, भुननेको, ईपनाङ्गना, लःसुन, यतीस, दन्तो, कट, गृध्र अभूति मांसयो पत्तियोंको विष्टा इन सबका मिश्रित चूर्ण १ सेर, क्षाम्बूल १६ सेर, तैल ६ सेर। इस तैलके लगानेसे अपस्मार जाता रहता है।

पलचर (हिं० पु०) राजपूतजातिके पुराणोक्त उपदेष्टा त्रिगय। इसमें विषयमें लोगोंका विश्वास है, कि यह युद्धमें सत्यव्रतियोंका रक्त पीता और आनन्दसे नाचता कूदता है।

पलटन (हिं० स्त्री०) १ पंगरेजों पैदल सेनाका एक विभाग। इसमें दो वा अधिक कम्पनियों पर्यात् २०० के करीब सैनिक होते हैं। २ सैनिकों पथवा पथ लोगोंका समूह जो एक उद्देश्य या निमित्तसे एकत्र हो, दल, समुदाय, भुण्ड।

पलटना (हिं० क्ति० प्र०) १ किसी वस्तुकी स्थिति उलटना, लपरेके भागका जोचे या जोचेके भागका ऊपर हो जाना। २ अच्छे स्थिति या दया प्रस होना, किसीके दिन फिरना या लोटना। ३ पालन परिवर्तन हो जाना, काया पलट हो जाना। ४ लोटन, घाप होना। ५ सुदना, पोछे फिरना। (क्ति० सं०) ६ किसी वस्तुकी अवस्था उलट देना, काया पलट देना। ७ बदलना, एकको हटा कर दूसरीकी स्थापित करना। ८ लोटाना, फिरना, वापस करना। ९ बार बार उलटना, फिरना। १० एक बातकी अवस्था करके दूसरी कहना, एक बातसे

सुका कर दूमी कहना। ११ उनडो यलुरो भीषी
घोर भीषीको उनडो करना।

पलटा (हिं० पु०) १ पलटनेको क्रिया या भाव, ऊपर-
से नीचे घोर मोचेने ऊपर नीचे हो क्रिया या भाव
२ प्रतिफल, बदला। ३ नाचमें यह पटरो जिन पर
नाचका खेनवाला बैठता है। ४ गानमें अदो अरुही
घोड़ेमें खुरों पर चढ़कर लगाना, गाते समय ऊंचे हा-
तक पहुँच कर खुद नरनोके साथ फिर नीचे खुरों का
ताक सुझना। ५ कुश्ती का एक पेंच। इसमें जय
ऊपरवाला पहुँचान नीचे पड़े हुए पलवान का कम-
पकड़ता है, तब मोचेवाला पड़ा पपमें दहिने पैर के पंज
ऊपरवालेकी टांगोके बीचमें डाल कर उसको बाईं
टांगोके फंसा लेता है घोर दहिने हाथसे उसको बाईं
कलाई पकड़ कर झटकेके साथ घुरने दहिनी घोर मुड़
जाता है घोर ऊपरका पलवान चित गिर जाता है।

६ लोहे या पोतको बड़ो घुरवना। इनका फल चोकोर
न हो कर गोशकार होता है। इसमें घटनोशमेंसे
चावल निकालते घोर पूगे खादि उनटते हैं।

पलटाना (हिं० क्रि०) १ मोटाना, फेरना, वापस करना।
२ बदलना।

पलटो (हिं० स्त्री०) पलटा देखो।

पलटे (हिं० क्रि० वि०) प्रतिफलस्वरूप, बदलेमें,
युक्जमें।

पलड़ा (हिं० पु०) तुलापट, तराजूका पत्र।

पलता (फलात्ता) — बङ्गालके २४ परगनेके पलतामें एक
ग्राम। यह पचा० २२° ४०' १०" उ० तथा देगा० ८८
२४' पू०, गङ्गानदीके बाएँ किनारे बारकपुरमें १ कोस
उत्तरमें अवस्थित है।

पलया (हिं० पु०) १ कलाबाजी, विगेषतः वानोमें
मारनेकी क्रिया या भाव। पलयी देखो।

पलयी (हिं० स्त्री०) एक पासन जिनमें दहिने पैरका
पंजा बाएँ घोर बाएँ पैरका पंजा दहिने पड़े-
मोचे दया कर बैठते हैं घोर दोनों टांगे ऊपर मोचे हो
होकर दोनों जाँघें दो मिथोण बना देता है। जिस
पासनमें पंजोका सापग उगुल प्रसारमें न हो कर
दोनों जाँघें ऊपर धक्का एकके ऊपर दूसरेके मोचे हो
उसे भी पलयी हो कहते हैं।

पलट (मं० लि०) पलं मौनं ददाति मेवमेन दा य।
१ मेवम द्वारा मौनकारक द्रव्यभेद, वह द्रव्य जिसके
खानेने मौन हो छड़ि हो। २ देगभेद। (स्त्री०) १
नगरोभेद।

पलटा दि (मं० पु०) पलटो खादि करके गण्य प्रपय
निमित्त पाणिन्युक्त गण्यगणभेद। यथा—पलटो, परि-
पट, गोमट, चाहिङ, कनहाट, बड़ोटी, जलभीट,
कमलकोट, कमलको तर, कमलमिदा, गोखो, नैकनो,
परखा, गुरवेन, गोमता, पटघा, उटगान, यज्ञकोम।
(गणिनि भा० १२०)

पलना (हिं० क्रि०) १ पालने का प्रक्रम स्वरूप, पैना
स्थितिमें रहना जिनमें भोजन वस्त्र खादि आवश्यकताएँ
दूसरेको सहायता या काममें पूरा हो रही हों, दूसरेका
दिया भोजन वस्त्रादि वा तर रहना, पाला या पोसा
जाना। २ खा पो कर छटपुट होना, मोटा ताना
होना। ३ कोई पदार्थ किसानों देना।

पलनाड—मन्द्राज प्रदेशके जयश जिलागत एक उप-
विभाग। यह पचा० १६° १०' से १६° ४४' उ० तथा
देगा० ७८° १४' से ८०° पू०के मध्य अवस्थित है।
भूपरिमाण १०४१ वर्ग मील घोर जनसंख्या १५२६१८ है।
इसमें ८६ ग्राम गते हैं। जिलेके पयिमांशमें विस्तीर्ण
जना जङ्गल है। यहाँ श्वेत मार्बल प्रसार अधिक
परिमाणमें पाया जाता है, इसीसे इसका नाम पलनाड
या पालनाड पड़ा है।

घोरङ्गलके गणपति राजाओंके समयमें यहाँके मर-
दारोंने युद्धविषयदिमें विषेय पाकृष्टा दिखानाते हुए
पञ्चवर्षाति लाभ की थी। पलनाटो-विरुल-भागवतम्
नामक बोरचरिताख्यामें उक्त बोरदा को जोबनो लिखा
है। १२५५ घोर १३०८ तकमें उल्लाख, गिलागिदिमें
भो उमका प्रभाव मिलता है। १५०८ ई०में पलनाड-
त्रागिदिने मङ्गलायने पुर्तगोशोंको मुलिकटमें परास्त
कर कुल्मि बन्दरमें भगा दिया था। इस युद्धमें पुर्त-
गोशोंको विषेय चित हुई थी।

० पल गण्डका अर्थ दूध है। परब दूधके जेवा बन्दे
रोनेसे ही ऐसा नाम पड़ा है। हिन्दी लिपीका बङ्गना है, कि
'इति' उच्चारण देखके अनेमें ही पलनाड नाम हुआ है। गान्धू
भाषामें बङ्गना प्रकृत नाम पलनाड या पलन है।

पत्तनि (पयनि) १—मन्दाजप्रदेशके मंदरा जिज्ञान्तर्गत एक तालुक। यह पचा० १०° ८' से १०° ४३' उ० और देशा० ७७° १५' से ७७° ५५' पू० के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५८८ वर्ग मील और जनसंख्या प्रायः १८५०५० है। इसमें पत्तनि नामका एक शहर और ११७ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह पचा० १०° २८' और देशा० ७७° ३१' पू०, दिग्दृग्मनसे १७ कोस पश्चिम और मंदरासे ३४१ कोन उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या सत्तरह हजारसे ऊपर है। १८८९ ई० में यहां म्युनिसिपलिटि स्थापित हुई है। यहां एक प्रचोन दुर्ग है। पाखर्वर्त्ती ब्राह्मणवर्तके प्राचोन शिवमन्दिरके लिये इस स्थानका साहचर्य अधिक है।

यहांका देवमन्दिर दक्षिण भारतमें पवित्र तीर्थक्षेत्र माना जाता है। मन्दिर पत्थरका बना हुआ है। उच्च प्रवेशद्वारके ऊपरको छत और दोवार नाना प्रकारके काश्चायांसि सज्जित है। पर्वतके ऊपरके मन्दिरमें जानिके लिये एक मोड़ी लगी हुई है। मन्दाज और दूरवर्त्ती स्थानवासी अपने मानसिक मित्रिके लिये अपने अपने हाथमें दूध लिये आते हैं। पेदल इतनी दूर आने पर भी वह दूध नष्ट नहीं होता। जिसका दूध नष्ट हो जाता, वह अपनेको अभिशाप समझता है। उसको ममोट सिद्धिरी और सभावनना नहीं रह जाती।

स्थलपुराणमें इसका साक्षात् स्मरण है। इस पवित्र तीर्थमें उल्लेखके समय बहुत स्थान लोग समागम होते हैं। यहां अनेक प्राचोन शिलालिपियां भी देखी जाती हैं।

नगरके नामानुसार यहांका पर्वत पत्तनि नामसे प्रसिद्ध है। पर्वतके शिखरदेशसे शिवमन्दिरको छोड़ कर एक विष्णुमन्दिर भी देखा जाता है जिसके गर्भगृहके चारों ओर अनेक शिलालिपियां हैं। इन शिलालिपियोंमें कितनोंमें सुन्दर पाण्डुरादेवका नाम उल्लेख है। 'एतन्निज पर्वतके पादमूलमें शिवमन्दिर और भास्कराकार्ययुक्त पुष्करिण्यादि देखी जाती हैं। पत्तनि पर्वतसे १ कोस उत्तर आदिबन्धम नामक स्थानमें तैलवरणमगुडि मन्दिरका आश्चर्य अतीव सुन्दर है। मन्दिरमें शिव

देवकी मूर्ति नोलक्षणका परिच्छद पहने काश्चादन पर बैठो हुई है।

३ निम्नवर्त्ती गिरिमाना। यह पचा० १०° १' से १०° २३' उ० और देशा० ७७° १४' से ७७° ५२' पू० के मध्य अवस्थित है। इस गिरिमाना को लम्बाई ५४ कोस और चौड़ाई १५ कोस है। इसका दूसरा नाम बराहगिरि, बहुगिरि और कचन्देनन है। इसके उत्तरमें कोयम्बतोरुंशोर त्रिचोरुपको, पूर्वमें मंदुरा और तञ्जोर, दक्षिण में गिन्नेवली और त्रिवाङ्गु, दक्षिण तथा पश्चिममें पश्चिमघाट पर्वत है। इस गिरिमानाने प्रायः ८०० वर्ग मील स्थान घेर लिया है। इसका सर्वोच्च शिखर ७००० फुट और निम्नोच्च ३००० से ४००० फुट ऊंचा है। पर्वतके ऊपर कई एक गिरिपथ हैं जिनमेंसे पश्चिमको और त्रिवाङ्गु और पूर्वमें मंदुरा जानिके लिये दो पथ दक्षिणभारतीय देशके कोयम्बतोरुंशोर नामक शिखरके पथसे मिल गये हैं। पर्वतके शिखर २० कोस दूर पड़ता है। यहां नाना जातोग्रन्थ पशु-पक्षी देखनेमें आते हैं।

पर्वतके ऊपरी भाग पर मनाङ्गे, कुतुवर, वा कोरावर, काराकल-बेजानर, थोको और पंतिपर जाति ग्राम करतो है। कोरावर जाति पर्वतको प्रादिम पश्चिमको है। प्रायः चार शताब्दी पड़ते ये लोग कोयम्बतोरुंशोर यहां आ कर बस गये हैं और खेतो-बारी द्वारा अपना गुजारा चलाते हैं। यहां तो भूमिमें ये ही लोग प्रशान अधिकारों हैं। ये लोग गांव में, प्रादि पालते हैं। इनकी सांसारिक अवस्था दूसरोंको अपेक्षा अच्छी प्रतीत होती है। इनको विवाह-प्रथा बहुत अच्छी है, विवाहके समय अपने सभी मात्स्य उपस्थित होते हैं। विवाहमें प्रचुर पर्याय्य होनेके कारण, ये लोग परस्पर विवाहका सम्बन्ध स्थापित कर रखते हैं। इस प्रकार स्वाति के मध्य तीन चार विवाह सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर विवाह उत्सव आरम्भ होता है। विवाहमें उपस्थित व्यक्तियोंका भोजन-अध्यय निर्वहके लिये प्रत्येक गृहस्थको कुछ न कुछ चन्द देना ही पड़ता है। इन लोगोंमें बहु-विधा और पति-पत्नीत्यागको प्रथा प्रचलित है। पश्चिम कोरावरीमें एक भूतन पाचार देखा जाता है। यदि कोई व्यक्ति पुत्र

पन्थाधर्म धर्मही सम्पत्ति निज कल्याणकी दे दे तो यह क्या किसी वय प्राप्त युवकसे विवाह नहीं कर सकते, वरन् एक पञ्जातग्रन्थ शास्त्रके साथ यह ब्रह्माहो जातो है । श्री धर्मने पञ्जातीय किसे मनोमत पुष्यके सम्भर्गमे सुतो पादन कर सक्तो है । यह बानक धर्मि धर्मने माध्यमना पधिकःरो होता है । इन प्रकार का पाचर ले पर कभी यभी भारी गोल्मा उपस्थित होता है । हे लोग शेष हो पर भी प्रथातः पर्वतीय देवता यज्ञापमकी पूजा करते हैं ।

ककटद्वे-शाररिण ब्रह्म पात्रेते यं काम
वरते है। ये लोग परिमिताचार होते हैं। ज्ञान-
मन्त्रो, यकीन और तमाकू सेवनन ये हमेशा लगी रहते
हैं। तेनकन्दने ये लोग शरीरमें घो लागते हैं। बैसा नरोंके
जैसा ये लोग भो यष्ट भो। कर्णालहार पात्रना ब्रह्म
पमन्द करति हैं। मन्दिरादिमें बाढाए लोग भोर
श्यादिमें पछासमग यज्ञकता करति हैं। खो यष्ट्या
कीम पर तामी खोको सनाइ ने कर दूसरा विहाइ
कर सकता है। शिस्त यदि दूसरे कारणसे बड़ विहाइ
करना चाहि, तो खोके बहने जों कर मकतः ।
इन लोगोंमें विवध-विवाह प्रचलित है।

परमजिनसो शोडोण गाथ घनान् हैं । अन्यन्य
क्षतिशोभे विवाद छडा कोने पा ये लोग लपटस हो
कर लसे निघटा देते हैं । परमज्ञान पण्डित ये कर
ये लोग वाणिज्य-व्यवसाय करते हैं ।

पवित्राचार, पवनविपर्यय, पादमिनिशानो ह्ये । ये
भोग एक प्राप्तिं च पश्यन्ति ते ह्ये । इतिमेव कीदृ कीदृ
कीदावर जातिरिति नृकट दामन्य नृकटनमं पावयन्ति ह्ये ।
किन्तु इति भोगीनि शोभावर तथा पश्यन्ति पावतोय
जातिरिति माना विपरीतेन कृते च वर्तन्ते ह्ये । ये भोग
पश्यन्ति ज्ञानवीक्षा इत्येवमिति जानन्ति ह्ये । ये भोग
कामा कर्मो देवतार्थोक्तिं गच्छन्ति वयं प्रकारं, पश्यन्ति
आहू-विद्यामि रोगोक्तं मन सुखं ज्ञानं रोग पादोक्तं कर
देति ह्ये । देशाधनं समग्रं ये भोगं पुराहितारि करन्ति ह्ये ।
स्वभावतः ये भोग विनयोः शीतं नम्रं तथा श्यामादि
मिश्रकारं यद्वै चिद्वस्तुं ज्ञानं ह्ये । मिश्रकारं यद्वै चिद्वस्तुं
पामोद-जनक ह्ये । भूत पितामी शो पुरादि करन्ति ह्ये

रनका प्रधान धर्म है। इन लोगोंमें एकमेव पवित्र विचार कर्त्तव्यता नियम नहीं है। स्वाध्याय दृष्टमें रनका उत्तम विचार नहीं है। 'राजी' नामक पहाड़ी पेड़में ये लो 'भोज' नामक मद्य प्रयुक्त करते हैं। पर्वतधामा ज'तियां लक्ष मद्यको बड़े चावमें पीते हैं।

यहां वायव्य, लक्ष्मण, भरणी, मीन जो चाँदि नामा ग्रहणो को खितो होनि पर भी कइवेक, खितो हो विग प ययमे देखा जातो है। १८८३ ई० में २०५८ क विंके प्रगान थे। यमो क्रमः खितो हो वृद्धि पर ही लोमो जा लक्ष्य है। जनवांशुको प्रवस्था प्रायः निपात्रातप्रधानः काठमण्डू-की-तो है। यहां कोइईकनन नाम का एक स्थास्थनिवास है जहाँ लोमो को स'स्था दिन दिन बढ़तो जा रहो है। इस स्थास्थनिवास का चारों ओर की जमीन उधरा है। यहां सम्राट्तरको विस्मायता प्राय मुक्त हो खितो हातो है।

पञ्चश्रिय (४० पु०) पञ्चमामिधं प्रियं यश्च । १ द्रोण
काश, डोम कोषा । (३०) २ मानागो, मां । का
कर ११ नैवान्ना ।

पत्रमधो (हिं० पु०) मसिदाहारी, प्रांन खा कर रहने वाला ।

पञ्चमा (वं सो०) पञ्चम्या दोषिपत्र । विषुवद्-
दिनादिना गङ्गाकाश, धूप चतुर्दि गङ्गाका लभ समः ।
कायाको चोद्दि नष्ट मंत्र संक्रान्तिक मन्त्राङ्गवं सुग-
दां विषुवत् रेखा पर होता है । पश्चिम पञ्चमि,
विषुवत्तमा ।

पलमोट—मन्द्रज प्रदेशके निचले क्षेत्रों (जंगलों) में एक प्राचीन नगर। यह समय यह नगर सुदूर दुर्ग से सुलभित था। चारों ओर से ध्वनिमय दुर्ग का योड़ा योड़ा चिह्न बसित हुआ है।

पनरा (जि० पु०) गच्छा देखो ।

पञ्च (सं० क्ला०) पञ्चति पञ्चोद्देशेन या पञ्चमो द्यन
(इत्येवमिति । तत्प-११२०) १ सति । २ पद
कोटि । ३ तिलचूर्ण, तिलका दूर । इत्युत्तर-
मधुर, हविः, पित्तवर्द्धक, चक्षु, वन धोर पुटि हार
द । ४ भोजन तिलचूर्ण, तिल धोर शुद्ध पत्रया
लोकोत्त, योगेन वनया इत्युत्तर । तिलकट । इत्युत्तर ।

पञ्चनि (२)

तः लुक् ।

୭୭୫

भाग ५४

६ । इस

लगते हैं

22

ਸ਼ੀਰ ਦੇ

पौर म.ट.

जनसंख्या

यद्वां मयि

ਦਸੰ ੧੯੮੧

के लिये

युद्ध

ਸਾਨਾ ਭਾ

सर्वेयुक्तः

कारुकाय

आयुष्ये वि

ਟਰਬਲਰੀ

सपने जा

पर भी व

जाना, व

समोष्ट

इयत्

पवित्र ते

दीर्घः ।

જાતો જે

नगर

प्रसिद्ध है

एक वि०

चारों ओर

कितानोमें

ज्ञिषं पव

युक्त पुष्प

कोस उच

मन्दिर का

किया। यहाँ धर्ममन्दिरमें लोग इन्हें मढ़ाया, पत्र
कहने लगे। इसके बाद ही पञ्चने गुरुधर्म के प्रचारमें
प्राप्तमोक्षन स्वयं करके 'वपमन' (वृष्टमन्त्र) की
आख्या प्राप्त की। इनकी सहायक सपत्न्यासे किमिन्न
कम्पित हो पड़े। यथेन्द्रवामो दिवनिममने इनका
मन ग्रहण किया था। ६६ ई० की रोमनमार्गमें गुरु-
पत्रका समस्त देहसे विच्छिन्न हो गया।

२ दक्षिण पमेरिहार्के मज्जिमप्रदेशके पन्थागन एक
नगर। यह मसुहरोमें १० कोष और राउजेमरोमें
८५ कोमकी दूरी पर अवस्थित है। यहाँ बाणव्यो
विमोप चरित्त देखा जा सकता है। यहाँ जितने घंटे
समी महीके घने वृक्ष हैं।

पत्रकर (हि० पु०) मही चूने प्रादिके गारेका रंग का
दोषार प्रादिके वर उने प्रसार लोको घोर सुडोन कान्तिके
लिये किया जाता है, निम्न।

पत्रकरकारो (हि० क०) पत्रकर करने या किए
जानेको क्रिया या भाव, पत्रकर करने या होनेका
काम।

पत्रस्ति (सं० शि०) १ पतित, हल, पत्रा दुषा। २
दोषाद्युक्त, अधिक उमरवाला।

पत्रा (हि० पु०) १ निमित्त, पत्र। २ तेजकी प्रसी।
३ तराजूका पत्रा, पत्रा।

पत्रागि (सं० पु०) पत्रागि मांगव्य पत्रिः। पित्तधातु।
पत्राप (सं० स्त्री०) पत्राप्य पत्रं मारणः। मांषप्राण।
पत्राण (सं० पु०) पत्रं मांषं तत्प्राधानं भद्रं यस्य।
निपुणार, सुस।

पत्राण्ड (सं० पु०) पत्राण्ड मांगव्य पत्राण्डिकाचरभोति
(सू० ११६) इति कुल्ययेन साधुः।
मुलविमोप, पत्राण्ड (Allium Cepa) १- पत्राण्ड-
सुखन्द, मोहितकन्द, मोक्षकन्द, सख, सुपद्रुपण,
शुद्धिम, क्षतिप्र, दीपन, मुजगम्य, बहुपत्र, धिप्रगम्य,
रोचन, सुकन्द, गुण—हृत्, पत्र, कफ, पित्त
घोर वपनदोनगम, गुरु, वनार, रोचन और तिन्त्र।
भावप्रकारके मतमें—पत्राण्ड, यवनेष्ट, दुर्मन्त्र और
दूषक। पत्राण्ड भारतमें उत्पन्न होता है।

निम्न निम्न देशोंमें पत्राण्डा विभिन्न नाम देवा
Vol. XIII. 33

जाता है; वज्रता—विद्यान, पत्राण्ड, परयो—वज्रम,
पारमो—पोशाक, मित्यु घोर मुजगती—दुहरी; वयर्—
प्याज, कन्द; मराठी घोर कच्छ कम्हा। तामिस—
वेज-वेङ्गायम् दक्षि, दूर-वेङ्गायम्; तेनगु—तुल्लिगडल
निहलि, कानाहो—वेङ्गायम्, निहलि, कुम्हो, मलय—
धवज; मिन्नागु—सूनु; पंरैको—Onion; फारसी—
Oignon घोर जर्मनी—Zwiebel

कातिक, पत्राण्ड, पूष घोर माघ माघमें प्याजकी
खेती होती है। प्याजकी कलोकें ऊपर जो रूप लगता
है, उने वाज कहते हैं। इस वाजकी यत्पूर्वक
रखा करनेमें दूरे वर्षें उससे बढ़िया प्याज उत्पन्न
होता है। इसके पत्रों जतने, लम्बे घोर सुगन्धराजके
पत्रोंके प्रकारके होते हैं। गांठमें ऊपरमें मोचे तर
कैवल्य क्षितिके ही क्षितिके होते हैं। बीज पत्रया
प्याजकी जमीनके पन्दा गांठनेसे छोड़े हो दिनोंमें
बुरे उग पाते हैं जिसे प्याजकी कली कहते हैं।
दिनो वाजकी पत्रिया विजयतो वाज विमोप बादरवीय
नहीं है। प्याज बहुत दिन रखा जाता है घोर कम
महता है। भावप्रकारमें लिखा है, कि प्याज घोर
लक्ष्मण दोर्नेमें समान गुण है। यह मांस घोर
बोधवर्द्धक, पाचक, मारक, तोष्य, कण्ठमोक्षक, भारी,
पित्त घोर रक्तवर्द्धक, वलकारक, मेधाजनक, प्रादिके
लिये हितकारो, रसायन तथा जोषण्वर, गुलम, मर्दच,
छात्री, शीघ्र, चासदीप, कुष्ठ, पत्रिमाग्य, क्षमि, मायु
और श्वाश प्रादिका नागक माना जाता है। जो लक्ष्मण
घोर प्याज खाते हैं, उनके लिये मयमांस घोर पत्रा
दूष्य हितकर है। किन्तु प्याज आनिशानीको व्यायाम,
रोष्ट, पत्राण्ड मोक्ष, लक्ष्मण घोर गुडका परित्याग
करना चाहिये। (भावप्रकार)

गांठमें पत्राण्ड-वेज निद्रातिथीके लिये विमोप
निपिष्ट बनताया गया है। यथा—

“रत्नं दिग्दृष्टं पत्राण्डं पत्राण्डं पत्राण्डं पत्राण्डं।

सन्तुं पत्राण्डं पत्राण्डं पत्राण्डं पत्राण्डं पत्राण्डं।”

(दाष्टः ११०९)

पत्राण्ड, यटवराह, पत्राण्ड पत्राण्ड यदि दिज्ञाति-
गण भव्य करे, तो उन्हें पान्द्राण्ड करना होता है।
मनुने भी लिखा है—

‘लघुर्न गृह्यते नैव पलायुड कवकानि च ।

अमक्षयि द्विजातीनामभयप्रभवानि च ॥’

(मनु ५/५)

लहसुन, गाजर और प्याज आदि द्विजातियोंके भक्ष्य हैं। कुङ्कुम इस श्लोककी टीकामें लिखा है, “द्विजातीनामभयप्रभवि । द्विजातिप्रदूषणं शुद्धपुद्गाद्यर्थे ।” ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन्होंने तीनों वर्णोंके लिये पलायुड-भक्षण विशेष निषिद्ध है; किन्तु शूद्रोंके लिये नहीं है। सभी धर्मशास्त्रोंने द्विजातियोंको प्याज और लहसुन खानेसे मना किया है। मनुमें दूसरी जगह लिखा है, कि द्विज यदि जान बूझ कर पलायुड भक्षण करे, तो वह पतित होता है। पलायुड-भक्षक पतित प्रायश्चित्त करके विशुद्ध हो सकता है।

“पल्लुं पुरुनननैव मत्वा जग्वा पतेव द्विजः ।”

(मनु ५/११)

यह तरकारी या सांसके मसालेके काममें पाता है। यह बहुत पक्षिक पुष्ट माना जाता है। इसको गन्ध बहुत उष्ण और अम्रिय होती है जिसके कारण इसका अधिक व्यवहार करनेवालाके मुँह और कभी कभी शरीर या पसोनेमें भी विकट दुर्गन्ध निकलती है। एक दिन प्याज खानेसे दूसरे दिन मलमूत्रमें भी उसकी गन्ध पाई जाती है।

फारक्रय और फोर्क्रेय (Fourcroy और Vaucoulin) नामक दो डाक्टरोंने प्याजसे एक प्रकारका तैल-निर्माण निकाला जो मोम हो उड़ गया। किमिया विद्याकी सहायतासे उन्होंने उसका विश्लेषण करके देखा कि इसमें गन्धक, शुभ्रपदार्थ (Albumen), चीनी, गीदकी तरहका लसोला पदार्थ, फस्फरिक एसिड, साइट्रा-आब-लाइम और लिगनिन् पदार्थ मिले हुए हैं। मटिराको तरह प्याजके रसमें भी फेन पा जाता है। लहसुनके तैलके जैसे इसके तैलमें भी आलिलसल्फाइड (Allyl-sulphide) है और दोनों ही प्रायः समानगुणविशिष्ट हैं।

प्याजके मूल या कन्दसे कटु आन्त्रादयुक्त तैल निकलता है जो उष्णज्वर वा चेतनाजनक माना गया है। यह मूलोत्पादक और श्लेष्मानिःसारक औषधस्वरूपमें भी

व्यवहृत होता है। ज्वर, सदरी, श्लेष्मा (Catarrh) और कण्ठवात (Ochronic Bronchitis), वायुमूल और रक्तपित्तरोगमें सचराचर इसका प्रयोग किया जाता है। वृद्धिःप्रयोगमें भी यह चर्म-प्रदाहक और जला कर देनेसे पुल्टिषका काम करता है। कविराजोमतसे यह उष्ण और तिक्त है तथा सदराधान रोगमें विशेष उपयोगी कारी है। इसकी तोवगन्धमें सर्पादि विषाक्त सरीसृप नजदोक पा नहीं सकते। मतान्तरसे इसका गुण कामोद्दीपक और वायुनाशक है। कृत्वा प्याज खानेसे रक्त और मूल पक्षिक परिमाणमें निम्नता है। जहाँ विष्कू-पादिनी काटा हो, वहाँ प्याजका रस लगा देनेसे ज्वर निवृत्त हो जाती है। प्याजके भीतरका गूदा पत्तिमें उत्तप्त करके कानके भीतर देनेसे कर्णशूल शरीरस्थ हो जाता है। कभी कभी प्याजकी चर कर उसका गरम रस कानमें डालनेसे वेदना जानो रहती है। कन्द (सिंघा) इसके बीजसे एक प्रकारका निर्मल वर्षा होने से निकलता है जो नाना शोषणोंमें काम पाता है। मूच्छागत और शुक्लवायुरोग (Fainting and hysterical fits) में यह उपयोग्य ‘कैलि-सवट’ का काम करती है। इससे पन्धस्य पेशियोंको किया बलवान् रहती है और कभी भी उसका पचसाद नहीं होता। पाल्शुरोग, सर्प, शुद्धभय और अलङ्काररोग (Hydrophobia) में यह पक्षिक व्यवहृत होता है। इसका व्यवहार करनेसे जड़ियाँ (जड़ों) दूर होती हैं और अत्यन्तारोगमें सर्प होने नहीं पाते। सामान्य सर्पोंमें प्याजके काढ़े और गन्धतरीयोंमें विरक्त साय इसका प्रयोग करनेमें उपकार दिखाई देता है।

प्याजके रस और सरसोंके तैलकी एक माय मिलान कर शरीरमें लगानेसे गैठिशयानरोग शरीरस्थ होता है। नोआखालो प्रदेशमें जय विष्वक्कारोगका प्रकोप देखा जाता है, तब छोटे छोटे अक्षोंके ग्रन्थोंमें प्याजकी माला पहना देते हैं यथवा दरवाजे पर लगे नटका देते हैं। उनका विश्वास है कि प्याजमें ऐसा गुण है कि वह जेगकी भांति नहीं देता। यद्यार्थमें प्याज दुर्गन्धहारक है। वायुमें दुर्गन्धजनित पक्षास्थकारगुण जेग आदि मक्रामक-रोगकी उत्पत्तिका कारण और शरीरका

हानिकारक है। एकमात्र व्याज ही ऐसी दूषित वायुको विदार कर सकता है। व्याज खानेसे मूत्र बढ़ता है। मिरकेके साथ पका कर इसे खानेसे पाण्डू, प्रजा और एजीज रोगमें विशेष उपकार होता है। पायल कुतिते काटनेमें स्यास्यान पर ताजे व्याजका रस लगा देना चाहिए। शाल्यस्त्रिक प्रयोगसे भी सतके पतिगोघ पांडीय ही जानेंको मरवा रहा है। डा० एल् केमिरेण साहबने लिखा है, कि बङ्गाली लोग व्याज खाते हैं, इस कारण उनके गोता रोग न हो जाता। व्याजका रस ४ से ८ बौंस तक दो बौंस चोनोंके साथ मिला कर रक्तक्षरणशूल चर्मा रोगको विकानेमें पति गोघ कायदा दियाई देना है। मधे घोर नामकी एक एक व्याज करके कालो मिर्चके साथ खानेसे मलेरियाघटित ज्वर पांडीय होता है। व्याजका मुँह काट कर उस पर जला हुआ घुना लगा कर हृदयकतस्थान पर घिस देनेसे ज्वरमा बहुत कुछ दब जाता है।

डाक्टर बेरेनके मतसे कच्चा व्याज नौट लगता है। मूत्ररोगमें इसका रस उत्कृष्ट उत्तेजक पोषक है। मूत्ररोगमें समय बह रस रोगको नाशमें लगाया जाता है। किसी एक घटतनमें यदि कुछ व्याजको बन्द करके जहाँ गोघर लगा दिया जाता है वहाँ जमोनेके नीचे चार मांस तक गाड़ कर रख दे, तो व्याजको कामोद्देश्य शक्ति बढ़ती है। सामान्य वा आमरक्त रोगमें व्याजका पथित प्रयोग हाँसे देखा जाता है। एक थोड़ा पफीसकी व्याजके भीतर भर कर छतम चारगुल पन्नि में बाधा बंध करके रोगको विकानेमें कठिन पामरक्तका उपगम होता है। तीव्र व्याजबन्धकी सुठो भर इसकी पतिघाँसे साथ रोगको विकानेमें यह विरक्षक पोषक काम करता है। व्याजको खूँ कर खसका ताजा रस पर्कायात वा सरदो गरमसे पोहित रोगोंके शरीरमें पण्डी तरह लगानेसे भारी उपकार होता है। प्रायः देखा जाता है, कि उत्तर भारतवासी गोष्पराशमें पपनी पपनी सत्तानकी उपाय वायु (मूत्र) में पचानेसे किये गलेमें व्याज बांध देते हैं, सामान्यमें मित्र हृदिकरनेके लिये साधारणतः व्याज जल्दा कर मातकीको खिलाया जाता है।

हिन्दुगान्धर्व व्याजकी चरह घतनाया है, इस कारण घर्माप्य हिन्दुमात्र ही व्याज मर्ग नहीं करते। मुसलमान घोर यूरोपीयण विना व्याजके तरकारी खादि बनाते ही नहीं। निम्नशोके हिन्दुगण व्याजनादिके प्रभावमें भात पचवा रोटीके साथ कच्चा व्याज खाते हैं।

पाइबोरिया राज्यमें एक जातिका पनाण्ड, सत्य होता है जिसका नाम है Stone leek or rock onion Allium fistulosum। यूरोपमें समो समय व्याज नहीं मिलता, इस कारण प्युलमादिमें यही दिया जाता है। हिमालय पर्वतज्ञात पलायन (A. leptophyllum) घर्माकारक घोर साधारण व्याजसे भाल होता है। पद (A. Porum, चरबी-किराय) नामक पलायन, यूरोप राज्यसे यूरोप खण्डमें लाया गया था। फरीयाके समय इन्डिष्टवासिण्य 'पद' खपन करते थे। प्रिन्सिपलियत पन्थ पढ़नेसे जाना जाता है, कि सम्राट् नेरोने पहले पहल इस बीजका यूरोपजगत्में प्रचार किया। विस्ववासिण्य सैक्सनीको पराजयके उपसर्गमें लड़ो अनाथोसे इस जातिके व्याजका विश्व धारण करते पा रहे हैं। जंगली व्याज (A. Rubellium) उत्तर-पश्चिम-हिमालयखण्ड पर साहोर तक विस्तृत स्थानमें उत्पन्न होता है। इसको पतिघाँका दल मोटा होता है। इसका बन्ध कच्चा घोर सिक्का कर खाया जाता है। स्थान विगेषसे इसके घोर भी दो नाम सुने जाते हैं, घरनो व्याज घोर विरिध्याजी। मोजिघके समय इन्डिष्टमें व्याजकी खेती होती थी। हिरोदोतसने ४१३ ई० सन्ने पहले जिव गिन्नालिविका उल्लेख किया है उसमें लिखा है कि, 'इन्डिष्टके विपामिड निर्मापकार्यमें श्री मध मजदूर काम करते थे, उन्होंने ४२८८०० पोण्डका व्याज लाया था।'

पलाद (य० पु०-प्रा०) पल० मांस० पत्तोति पद-मध्वि (हर्षभ्य) वा ३१२१) इति पण्य। १ रायस। (वि०) २ मांसमध्वः।

पलाद (य० पु०-प्रा०) पल० मांस० पत्तोति पद-मध्वि (हर्षभ्य) वा ३१२१) इति पण्य। १ रायस। (वि०) २ मांसमध्वः।

पलायन (य० पु०) मधो या चारजामा की आनधनी पीठ पर सादने या चढ़नेके लिये कच्चा जाता है।

पञ्चानना (हि० क्रि०) १ छोड़ आदि पर पञ्चान कमना, गद्दी या चारपाया कमना या मांघना । २ पढ़ाई को तैयारी करना, छात्रा करने के लिये तैयार होना ।

पञ्चानी (हि० स्त्री०) १ छप्पर । २ पान के आकार का एक गड़ना जिसे क्षियों पर में पंजी के ऊपर पहनते हैं ।

पञ्चाम (सं० स्त्री०) पत्नी मांस तीन सड़ पक्षपक्ष, मध्य पदलोपि कर्मधारयः । मांसादिपुक्तः सिद्ध अन्न, चावल और मांस के सेवसे बना हुआ भोजन, पुनाव । पाक-राजिस्त्रमें इसको पाकपण्याओ इस प्रकार लिखी है—
छान मांस १ गराव, छत मांस का चोथाई भाग, दार-चोनी १ मागा, मक्खन-मांसा, इलायची १ मागा, तड़क १ गराव, मिर्च २ तोला, तीजपत्र १ तोला, कुड़म १ मागा, अदरक २ तोला, लवण ६ तोला, धनिया २ तोला, द्राक्षा (१ गराव का पादाई) । पहले क्षामांश को सूख-रुखे चूर्ण, करके शुष्क प्रत्येक पाक करने के बाद दूसरे भरतनमें तीजपत्र क्षिप्वा दे और तब ऊपर से छोड़ा भूखण्ड गन्धद्रव्य डाल दे । चारणको जलमें मईसिद्ध करके उमका माछ पमा ली और उसमें थोड़ा गन्धद्रव्य मिला कर इस मईसिद्ध तण्डुलका मांस के ऊपर अच्छी तरह सजा कर रख दे । इस प्रकार दो वा तीन बार सजा कर रखना होता है । प्रोक्षे इसके ऊपर बचा हुआ वो छिड़क दे और दो दाण्ड तक आंच देते रहें । ऐसा करनेसे बड़ भोजोमति सिद्ध हो जायगा । मांस यदि न दिया जाय, तो समते बदलेमें मछली, फल-सूतदि भो दे सकते हैं । इसमें गन्धद्रव्य तो दधि के साथ मिला कर देना होता है ।

पञ्चाप (सं० पुं०) पत्नी मांस वाप्ये प्राप्यते वाङ्मन अन्न, पत्नी प्राप, वञ्च । १ कपटप्राप्त । २ कृत्रिमपान, हाथोका कपोल, कनपट्टी आदि ।

पञ्चापना (सं० स्त्री०) नेत्राञ्जन ।

पञ्चामू—बिहार और उड़ीस के छोटा नागपुर उपविभाग का एक जिला । यह पञ्चा० २३° २०' से २४° ३८' उत्तर और देगा० ८३° २०' से ८४° ५८' पू० के मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण ४८१४ वर्ग मील है । इसके उत्तरमें शाहाबाद और गया, पूर्वमें गया, हजारीबाग और राँची, दक्षिणमें राँची और सुरगुजा राज्य तथा पश्चिममें युक्तमदेग के सुरगुजा और मिरजापुर जिला हैं ।

इस जिले का अधिकांश पर्वतमाला में घिरा है सोननदी जिले के उत्तरांगमें बह गई है । यहाँ के जङ्गल में बाघ, चोता, मखर, जयसार, मोरगाय प्रौर, जङ्गली कुत्ते पाये जाते हैं । यहाँ का तापपरिमाण ७४° से ८४° और वार्षिक वृष्टिगत ४८ इंच है ।

पञ्चामू जिले का इतिहास १६०१ ई० के पञ्चमे भाग में मिलता । उस समय विरोध गने राज्य राजपूतों को भगा कर अपना अधिराज्य जमा लिया । इस वर्गने प्रायः २०० वर्ष तक राज्य किया । इन वर्गों के प्रधान मेहोराय ये जिन्होंने १६५५ ई० १६७२ ई० तक शासन किया । इन्होंने अपना राज्य गया, हजारीबाग और सुरगुजा तक फैला लिया था । यहाँ जो दुर्ग हैं, उनमें से एक इहाँ का बगबाय दुर्ग है । दूसरे दुर्ग को गोवे इना लखुने डालो बा, पर वे इसे पूरा कर न सके । उस समय सुमनसरायों ने कई बार पञ्चामू पर चढ़ाई की और राजाओं को कर देगके लिये बाध्य किया । दूसरे वर्ष टाकट खाने यहाँ के दुर्ग पर अधिकार जमा हो लिया । १७२२ ई० में राजा राजा जराय मारे गये और उनके छोटे लड़के राजनिर्दामन पर प्रतिष्ठित हुए । तदनन्तर जयजङ्ग राय उन्हें सिंहासनच्युत कर आप गद्दी पर बैठ गये । कुछ वर्ष बाद जयजङ्गराय गोखो के आघातने पञ्चामू को प्राप्त हुए और उनके परिवारवर्ग प्राप्त ले कर मेगा भगि । यहाँ उन्होंने उद-वन्तराम नामक एक कानूनमोके यहाँ आश्रय लिया । उदवन्त १७७० ई० में मृत राजा के पोते गोपालराय को गवर्मेण्ट-पजिण्ट कप्तान कामकी पास पटना ले गये और सारा हान कह-सुनाया । इस पर कामनने राजा को मेनाको पञ्चों तरह परस्त कर, पनामू के ललित उक्त राधिकारो गोपालराय को सिंहासन पर बिठाया । किन्तु दुर्भाग्यवश दो वर्ष, प्रोक्षे गोपालरायने कानूनगो-की हत्यामें दुष्टों का साथ दिया और इस अपराधमें उन्हें कठिन कारावास की सजा हुई । १७८४ ई० को पटनेमें उनको मृत्यु हुई । इसी समय वनन्तराय को जो उनके कारावास के मन्त्रय गद्दी पर बैठे थे, कालकाल के शासन में प्रतिन हुए । तदनन्तर १८२३ ई० में बुगमनराय राजा सिंहासन पर अधिकृत हुए । इस समय पनाम जिले

पर मुद्रित-नवमण्डल को बहुत देन को गई जो पोर नरोंने १८१४ ई०में इसे पञ्चरेजो-राज्यमें मिला लिया । उसी समयमें पनाम को दिनी दिन उन्नति पातो जा रहो है ।

उहाँकी जनघंस्या करोड़ ६१८६०० है । इसमें डानटनगञ्ज पोर गढ़वा नामके दो शहर पोर ११८४ ग्राम लगते हैं । यहाँको प्रधान उपज बैसाही पोर भदई है । इस जिलेमें कोयलेको अनेक स्थानों देखनेमें पातो है । डानटनगञ्ज पोर पोरङ्गामें जो कोयलेको खान है उसका बाह्यात प्रायः ८० वर्गमील है । यहाँ ताँबा भी पाया जाता है, पर काको नहीं । इस जिलेमें चमड़े, लाह, घो, तेलहन, चाँस पोर कोयलेको रस्ते तथा दूसरे दूसरे देशोंमें लकड़, चोनी, कराचन तेल, चावल, ची, ताँबे वरतन पोर सरसों को पामनो कोतो है । १८८० पोर १८०० ई०में यहाँ दुर्भिक्ष पड़ा था ।

विद्या-मिक्षामें यह जिला बहुत मोछे पड़ा हुआ है । यहाँका डानटनगञ्ज हा.इ. स्कूल बहुत प्रसिद्ध है । स्कूलके सिवा यहाँ चार बिकिसालाध भी हैं ।

पलायक (सं० त्रि०) पलाय-क्यु । पलायनकारी, भागने वाला, भग्नु ।

पलायन (सं० स्त्री०) पलायने पलाय भावे क्युट् । भगडिहेतु स्थानान्तर गमन, भागने को क्रिया या भाव । पर्याय—पपनाम, सँदाव, द्रव, विद्रव, उपक्रम, सँद्राध, उद्भाव, प्रद्राव, उद्भव, सन्द्राव, द्राव, शृगालिका, अपक्रम, चक्रम ।

पलायमान (सं० त्रि०) पलाय-मानच् । पलायनकारी, भागता हुआ ।

पलायित (सं० त्रि०) पलाय-क्त । पलायन विशिष्ट, भागा हुआ । पर्याय—नष्ट, शङ्कोतदिक, तिरोहित ।

पलायिन् (सं० त्रि०) पलाय-यिनि । पलायक, भग्नु ।

पलाय (सं० पु०-स्त्री०) पलति शब्दशून्यत्वे प्राप्नोतेति पाल-कालन (तसि विधि विगिति । ठक् १।११०) वा पलं पलतीति पल्-पल् । १ शब्दशून्य सामानान, धामका कृपा उँठन, पशान । २ शब्द किमो बोधका कृपा उँठन, टण, तिनका ।

पलायनमाल (सं० पु०-स्त्री०) पलायनज्ञामाक, एक प्रकारका साग ।

पलायनदोहद (सं० पु०) पलाय' दोहद' गत्य । पाल-दह, पामका पेड़ ।

पलासा (सं० स्त्री०) लन सात रातभियोंमें एक जो लड़कीको बोल-करनेजानो मनो जातो है ।

पलासो (सं० स्त्री०) मांसमसृष्ट ।

पनाम (सं० स्त्री०) पनं गतिं कम्पनं चयुति व्याप्नोतीति चप् । १ पन, पला । २ पनामपुष्पादि, टाकका फूल । (पु०) पनागानि पर्णानि मस्यत्र चप् । ३ खनामख्यातपुष्प हृक्षविशेषः (Butea frondosa) पनाम, टाक ।

संज्ञत पर्याय—किंशुक, पर्ण, वानरोध, याज्ञिक, निरर्थ, वक्तुशक, पूतद्र, सप्रज्ञव ह, सप्रोपनेता, काठद्र । गुण—ऊषाध, उष्ण पोर किमिदोपनामक । इसमें पुष्पका गुण—ठण्ड, कण्डू पोर कुष्ठनामक । इसमें शोत्रका गुण—कण्डू, द्रुष्ट पोर त्वग्दोपनामक । इसका पुष्प चार प्रकारका होता है, रक्त, पोत, मित पोर मोल ।

भावप्रकाशके मतसे इसका पर्याय—किंशुक, पर्ण, याज्ञिक, रक्तपुष्प ह, चारश्रेष्ठ, वातरोध, सप्रज्ञव, समिद्धर । गुण—पल्लिदोषक, शुक्रवर्धक, शारक, उष्णवर्धक, द्रव्यनामक, शुष्मघ्न, कषाय, कटु, तिक्तघ्न, क्षिप्त, शुद्धज्ञात, रोगनामक, भग्न सन्धानकारक, विदोष, किमि, पर्य' पोर पदुषोनामक । पनामपुष्प—मधुव, विपाक, कटु, तिक्त पोर कषायरस, वायुवर्धक, धारक, शीतवीर्य, कफ, रक्तपित्त, मूत्रकण्ड, पिपासा, दाह, वातरक्त पोर कुष्ठनामक । पनामफल—लघु, उष्णवीर्य, कटु, विपाक, कृष्ण, म्लेह, पर्य', किमि, वायु, कफ, कुष्ठ, शुष्म पोर उदररोगनामक । (भावप्र०)

पमपुराणमें लिखा है, कि पनामपुष्प स्रग्धका स्वरूप है । स्रग्धा पार्वतीके शपथसे पनामपुष्पस्वरूपमें उदभव हुए थे ।

“अनारकतो मगवान् निपुणैश्च न संशयः ।

इदंरुणे वटस्तत्र पलायनमस्तस्य ह ॥

इदंनरुणेश्वरायु ते वै पावहराः स्मृताः ।

इत्यादिशब्दाधिरुपानां विनाशकारिणो प्रुवं ॥”

(पञ्चोत्तरा० १६० अ०)

विष्णुगोपके प्राप्तामद स्कन्दवर्मा इय शताब्दीके लोग है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

विष्णुगोपवर्मा-महावीर थे। इन्होंने चाखमेघयज्ञ किया था। उनके पुत्र सिंहवर्माने भी नानादेश जीत कर अच्छा नाम कमा लिया था। इय स्कन्दवर्माके पुत्र नन्दिवर्माने नाना यागयज्ञकृत और ब्राह्मणादि गुरु भक्त थे। इस कारण वे पुरुषोंके मध्य 'धर्ममहाराज' नामसे प्रसिद्ध थे। १०

मामलपुरके गणेशमन्दिरमें उल्लोण लिपि पल्लव-राज नरसिंहका और शालुवहुप्पमके पतिरणचण्डेश्वरके मन्दिरमें उल्लोण शिलालिपिमें पल्लवराज पतिरणचण्डका नाम खोदित है। इससे पचास काञ्चीपुरके कैलासनाथस्वामीके मन्दिरकी शिलालिपियोंसे जो एक राजवंशकी तात्त्विका पाई गई है, वह इस प्रकार है—
राजा चण्डण्ड या लोकादित्य।

(इन्होंने शालुक्वराज रणरसिक (रणराज) को युद्धमें परास्त किया)

राजसिंह या सिंहविष्णु •

नरसिंहविष्णु और नरसिंहगोपवर्मान्
(इन्होंने रत्नपताकासे स्थापित किया था)

महेन्द्रवर्मा—१म

नन्दिवर्माको उल्लोण लिपिमें इस लोग एक और सम्पूर्ण वंशावली देखते हैं। उक्त लिपिमें सिंहविष्णु के बाद राजा महेन्द्रवर्मा १म, पल्लवसिंहवर्षन पर बैठे।

महेन्द्रवर्मा—१म,

नरसिंहवर्मा—१म,

(इन्होंने शालुक्वराज मुनीशेश्वरीको

परास्त कर नगर ध्वंस किया ।)

महेन्द्रवर्मा—२य,

परमेश्वरवर्मा—१म,

(इन्होंने शालुक्वराज विक्रमादित्य

१मको परास्त किया)

नरसिंहवर्मा—२य,

परमेश्वरवर्मा—२य,

नन्दिवर्मा,

पल्लवमल्ल नन्दिवर्मा ।

कैलासनाथ मन्दिरके चारों ओर नित्यविनोदस्वर, राजसिंहेश्वर और रानीरत्नपताका स्थापित शिवमन्दिर तथा महेन्द्रवर्माेश्वरका मन्दिर आदि वसंस्थ कीर्तियाँ देखी जाती हैं।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि पल्लवराजाओंने परम्पराक्रमसे ब्रह्मणे चण्डी उत्पत्तिकी कल्पना की। कैलासनाथके मन्दिरमें जैसा वर्ष १ ई समरावतीके स्तम्भगायमें खोदित लिपि उसका प्रमाण है ५।

उक्त शिलालिपिसे और भी कितने पल्लवराजाओंके नाम पाये जाते हैं—

(१) महेन्द्रवर्मा

(२) सिंहवर्मा—१म

(३) चक्रवर्मा (चक्रवर्मासे बाद उद्यवर्मा

राजा हुए। सम्पर्क जाना

(४) उद्यवर्मा नहीं जाता ।)

(५) नन्दिवर्मा (५) (श्रीसिंहविष्णु के

(६) सिंहवर्मा—२य, पुत्र इनके बाद

राजा हुए)

() Indian Antiquary, Vol. V, p. 50.

(१०) Mr. Foulkes' Salem District manual Vol. I, p. 8.

६ दक्षिण बर्मीट जिलेके विन्डपुरम तालुके अन्तर्गत पनमछई पर्वतके गुडामन्दिरमें जो उल्लोण शिलालिपि है, उसमें उनका नाम विवदराजय लिखा है।

५ समरावतीकी स्वप्नलिपिसे शङ्करा ब्रह्मके पुत्र मारुह, मारुहके पुत्र अंशिंग, अंशिराके पुत्र हुपामो, हुपामोके पुत्र मोय, मोयपुत्र अश्वत्थामाके और च और मदन की स्थापनाके पल्लवका वंश हुआ। प्रथमके बाद अश्वत्थ जातपुत्रको पञ्चदशे बैठ कर मग गई। तीसरे इनका नाम पल्लव पड़ा है।

(Madras Journal of Literature and Science 1866-67

राजा नि'हवर्मा २य, सत्तरहेंग जोतनेकी भाषासे तथा पटना दिग्विजयजित यशकी स्थापनाके लिये सुमेरुपर्यंत पर गये। यहाँ कुछ दिन ठहर कर पय'टन-जमित झेगको दूर करनेके लिये इन्होंने हरिचन्दन वृक्षकी लगेतल छाया धोर वायुका सेवन किया। वोई ये भागोययो, मोदावरो घोर लखानादी-वार कर बोत-राग बुद्धकी पवित्रसेव धाम्यघट नगरमें ७ पदु'से धोर बुद्धदेवकी पूजा करने लगे।

विजिरापत्तो (विजिरापत्तो) पर्वतस्थ गुहाकी स्थापितिमें पञ्चवराज गुणधर (पुत्रपोत्तम, शत्रुसज भी। मन्थमन्थ इनका शिष्ट) कावेरो नगोरवाहित देगमें राज्य-काते थे। इन्होंने चोल राजर्षीको पराम्ना कर उनका राज्य अपने अधिकारमें कर लिया।

पञ्चवराजवंशका पूर्वपर इतिहास पढ़नेसे हम लोग देखते हैं, कि एक धोर जिस प्रकार बालुस्थवंश दाक्षिणात्यमें अपने प्रतिपत्ति विस्तारमें चेष्टित रहे, दूसरो धोर पञ्चवराजगण अपने पुष'गोरवके रक्षणमें समो प्रकार यत्नवान् थे। इस कारण दोनों ही राजवंशोंमें रात दिन युद्ध चलता था। इस प्राचीन राजवंशका प्रहज धोर धारापादिन इतिहास नहीं मिलने पर भी आज तकके आवि'कृत ताम्रशासन धोर शिलालिपिमें यह स्पष्ट जाना जाता है, कि पञ्चवराजगण बालुस्थवंशकी प्रतिष्ठाके पहले दाक्षिणात्य भूमिमें राज्य करते थे।

जब बालुस्थवंश जयमि'ड नि'हवर्मा पर अधिकृत थे, तब हम लोग शिलोचन पञ्चवको राजपद पर प्रतिष्ठित देखते हैं। राजा तिमोचन धोर जोमयके सम-नामयिक थे। तिमोचनके समान प्रतापशाली राजा दाक्षिणात्यमें कोई भोग था। इन्होंने जो बालुस्थवंश जयमि'डकी पराम्ना कर यमपुर मेज दिया था। जयमि'डके पुत्रका नाम था राजसि'ड वा रणराग। इन्होंने किन्ने बालुस्थवंशके परिपालन करके पञ्चवराज पर अधिकार जमाया। बालुस्थवंशने पञ्चवराजक्यामे विवाह कर दोनों एकमें शांति स्थापित की। ये ही बालुस्थवंश

दाक्षिण भारतके प्रथम प्रतिष्ठाता थे। इस समय पदमव-राज'भूमिमें कुछ सुखसेवक थे। प्राचीन-वादम्ब-राजापोंके प्रदत्त ताम्रशासनमें हम लोगोंको पता लगता है, कि राजा मृगेश्वरमने पदमयो'को पाला किया था। उनके लड़के राजा रविधर्मने भी दिग्विजय कालमें पञ्चवराज विष्णुगोपदर्मको (१) धोर काञ्चीराज चण्डदण्ड पञ्चवकी पराम्ना कर पटना प्रभाव फैलाया (२)। पञ्चवराजगण जब पदमव राजधानीमें राज्य करते थे, उस समय राजा त्रैराज्यवर्तवके साथ शिखादित्य बालुस्थका सनवोर युद्ध बना था। शिखा-दित्यके पुत्र राजा विमयादित्य-सत्याश्रमने भी पञ्चवके निवृद्ध पदम धारण किया था। इनके पुष'सन राजा पुनोर्गेमने भी काञ्चीपुर धोर वातापी नगरमें पदमव राजको चराया था। इनके बाद पदमवराजने पुन' वातापी पर अपना अधिकार जमा लिया। इन समय काञ्चीपुर राज्य पशुस्थ था। कालक्रममें पदमव-राजापोंकी सजता ज्ञान होनेसे १०वीं शताब्दीमें चोवराज परकेयारिमर्माके पुत्र चोरचोलने पञ्चवोंमें तोल्डमपल्लम जीत लिया (१)। वैद्वीशास्त्रान्तर्गत माङ्गलुर धम दामोपल्लममें राजा नि'हवर्माके राजतर्के पंचे वर्ष जो ताम्रशासन सत्को'र दुषा है उससे पता लगता है, कि पदमवके बाद पदमवराजापोंने दगनपुरमें राजधानी बनाई थी।

(१) गुप्तिदि'वा-नुनेकने विष्णुगोवर्षा भी। मतिवर्मोकी लिपिसे सहासलेखना करके स्थिर किया है, कि चौदी शताब्दीमें पदमवराजवाची तोल्डईनाह नगरमें इसी प्रकारका अक्षर प्रचलित था। इस अक्षरको उम्हने पूर्ण पेर वा परलद-अक्षर बताया है। किन्ने विष्णुगोवर्षा ११वीं शताब्दीमें वर्तमान थे। (Sowell's Dynasties of Southern India, p. 71.)

(२) Indian Antiquary Vol. VI, p. 25-30, and Dynasties of the Kerner-so Dist, p. 8.

(१) इस घटनाका प्रहज समयविह्वल के दर गुप्तिदि'मने पदमेद देना जाना है। यह युद्ध ३००० पू० पूर्वापदे १०वीं शताब्दीके मध्यवर्ती किसी समयमें हुआ था। पदमेद देनेका यही कारण है।

७ पानपट्ट ४। पानपट्ट ४ संकृत पान-पट्टक कदवदा अपम'ग है। पानपट्टक अमरावतीका सर्वशचीन नाम है। ताम्रिष्ट गोशर्मा 'क' की वग 'व' लिखेका निरन है।

प्रसिद्ध चीन-परिव्राजक फाहियान जब दक्षिणात्य में परित्यज्य करने गये, उस समय पल्लववंशीय राजगण काञ्चीपुर और वेङ्गोनगर में राज्य करते थे। इसके प्रायः दो शताब्दी बाद चालुक्यराज कुजविष्णुवर्धन ने पल्लवों को पराजय कर वेङ्गो नगर पर अधिकार किया था। पीछे उस शक्ति देखते हैं, कि चालुक्य-राज २५ विक्रमादित्य ने (६५५-६६८ शक में) पल्लव-राज नन्दिपोतवर्मा को परास्त किया। एतद्विषय पर्वो शताब्दी में राजपुत्र हेमगोनजी जैनधर्म ग्रहण करके बौद्धों को काञ्चीधाम में सिंहासन पर मार भगाया। तदनन्तर राष्ट्रकूटवंशीय राजा भुव-निस्रवमसे पल्लव परास्त हुए और तत्पश्चात् राजा २५ गोविन्द ने काञ्चीपति इतिहास की विवेचन रूप में पराजय किया था। इसके कुछ समय बाद कौट्य राज गण्डदेव महाराज ने पल्लवों को अपने अधीन कर लिया था। इसके अनन्तर पल्लवमल नन्दिधर्मा ने ताम्रगासन में जाता है, कि उन्होंने शश्वर-राज उदयन पिपादराज, पृथिवोच्चात्र और पाण्डुराज के साथ युद्ध किया था।

पल्लववंशीय राजगण बौद्ध और ब्राह्मण-धर्म के श्रेष्ठ थे। इधर जिस प्रकार उन्होंने बौद्धधर्म के प्रचार के लिये सम्राज्य की नगरों में बुद्धमन्दिर, स्तूप और महा-मन्दिरों के उत्कृष्ट रथविहार आदि निर्माण कराये, उधर उसी प्रकार ब्राह्मणधर्मियों की पराकाष्ठा दिखा कर देव-सेवानुरत और विद्याभुगीनानों में निरत ब्राह्मणों को ताम्रगासन के पल्लव पर भूमि वसुधै भूमि भी दान की थी। उक्त राजवंशधरमण प्रतिष्ठित देव-मन्दिरका वर्षे वर्ष चलायिका लिये चकुरित इदयसे भुसम्पत्ति दान कर गये हैं। इन सबकी शानोचना करनेसे साफ साफ प्रतीत होता है, कि चीन-परिव्राजक फाहियान वर्णित वृत्तान्त निराला प्रामाणिक नहीं है। उनका लिखित ग्रन्थ पढ़नेसे ज्ञात होता है, कि पल्लवराजाधीन समय दक्षिण-राज्य में अमण, ब्राह्मण और भिन्न भिन्न धर्मावलम्बी आदिगण स्वच्छन्द भावने

एकत्र बाध करते थे। इनके राजत्वकाल में दक्षिण-भारत में विदेशी आधिपत्य स्वतन्त्रिकी प्रमोदना तक पहुँच गया था। यह तत्सामयिक इतिहास पढ़नेसे ज्ञान जाता है। आधिपत्य के कारण भिन्न धर्मावलम्बीयों का पल्लवराज्य में बाध करना कोई सम्भव नहीं है।

परन्तु चीन-परिव्राजक यत्नसुबद्ध भवण-वृत्तान्त में हम लोगों को पता लगता है, कि दक्षिणात्य प्रांत में जिस राह हो कर वे चीन गये, उसमें चारों ओर बौद्धमन्दिर, मठ और महा-विहारों का प्रमाण था। इनमें से किन्हीं उस समय भी पूर्ण प्रमाण देदीप्यमान थे। पश्चिमिष्टांत ज्ञानक्रमों ध्वंस होता जा रहा था और उसके समीपवर्ती मन्त्रालय हिन्दुमन्दिर

"While these considerations lead to the conclusion that the Kings of the Pallavas were powerful, enlightened and prosperous, the sources of their great prosperity are not far to seek. The central Emporium of the whole of the commerce between India and the Golden Chersonese and the region to the further East, and so of every Sea-bay and beyond India between China and the Western world was within their Territory; and all the Diamonds then known to the world more also within their dominions and had probably supplied every diamond which up to that time had ever adorned a diadem. The bulk of the commerce went southwards from that 'Lucas unde solvunt in Oryzen navigiter' in coasting vessels around Cape Kumari to the port of departure for the markets of the West; the western crafts. The merchants laden with commodities would need to be protected along the wild roads across the Peninsula and could well afford to pay for the protection. Fab. Hiv's 'certain Sum of money to King the country'."

For these reasons the conditions to me to be irresistible that Fab. Hiv's 'Kingdom called Thaisseu' is the great Kingdom of the Pallavas of the Indian. Ind. Ant. Vol. VII. p. 7.

जो पञ्चराजधंगको वस्त्रव्य कीर्ति को घोषणा करता है, कुछ समय हुआ, विष्णुपूजक। चातुर्वर्ण्यके ढाघ लग गया है। आज भी पञ्चराजधानीमें प्राचीन को संस्मृतः। धर्मभावगोप लक्षित होता है।

पञ्चराजतैल (मं० स्त्री०) पीयधर्म। प्रसृत प्रणाली— तिल तेल ४ सेर, त्रिकलाकार ४ सेर, जल १६ सेर, शीघ ४ सेर, अङ्गुरात्रय, शतमूलोकार ४ सेर, दुग्ध घोर कुषाण्डरस प्रत्येक ४ सेर, लाक्षा १ सेर, जट १६ सेर, शीघ ४ सेर, कांति ४ सेर, कक्षाय घोर, हरीतकी, द्राक्षा, त्रिकला, मौसोदक, घटिमधु, घोरकाकीनो प्रत्येक १ पुनः। गन्धद्रव्य कपूर, नली, अङ्गनाभो, गन्ध- विरजा, जौरो घोर लवङ्ग प्रत्येक ४ तोला। इस तेलके लगानेसे वायु घोर पित्तजनित विविध बीड़ाकी गान्ति होती है। यह पत्रयो घोर प्रमेह पाटि रोगोंमें प्रयोज्य है। इसके व्यवहारमें वनशेयको हृदि होती है।

पल्लवाट (मं० पु०) हरिण, हरिण ।

पल्लवाट (मं० पु०) पल्लवस्य चटुरो यत्र । १ शाखा ।

पल्लवस्य चटुरः । २ पल्लवका चटुरः ।

पल्लवाधार (मं० पु०) पल्लवस्य आधारः । शाखा, आलो ।

पल्लवाक्ष (मं० पु०) कामदेव ।

पल्लवाक्ष (मं० स्त्री०) ताम्रगण्ड ।

पल्लविक (मं० स्त्री०) पल्लवः अङ्गारसोऽन्तराध्यायिन् वा पल्लव इव । काशुक, लम्पट ।

पल्लवि (मं० स्त्री०) पल्लवः मञ्जारी इव 'सारकादभ्य इतश्च' इति इत्यच् । १ मण्डलव, जिसमें नए नए पत्ते निकले या लगे हों । २ विस्तृत, लम्बा चौड़ा । ३ लावारण, लाव या पानमें रंगा हुआ । ४ सहस्रांश, हजार भरा । ५ रोमांचपुल, जिसके रोंगटे खड़े हों । (स्त्री०) ६ लावारण, लावका रंग ।

पल्लविन् (मं० पु०) पल्लवः सकृदप्य पल्लव-इति । १ हृष, पिक । (स्त्री०) २ पल्लवविगट, जिसमें पल्लव हों ।

पल्ला ('हि० स्त्री०') १ दूर । (पु०) २ लिनो अपेक्षा घोर, पाचन । १ दूरी । ४ पाचि-

कारमें, पास । ५ घोर, तरफ । ६ दुर्गन्धो टोपोका एक भाग । ७ चर या मोन जिसमें पच बांध कर ले जाते हैं । ८ पटल, किराड । ९ पहन । १० तोन मनका शीक । ११ घोर । १२ तराजमें एक घोरका टोकरा या डलिया, पनडा । १३ कौचोके दो भागोंमेंसे एक भाग । (फ्रा० वि०) १४ परला देवे ।

पल्लवावरम—मन्द्राज प्रदेशके घिड़नपुत जिनका एक नगर । यह पचा १२ ५० १०० घोर दिगा ८० ११ पू०के मध्य मण्डलाज दुर्गमें ५५ कोस दक्षिण- पश्चिममें अवस्थित है । यहके मन्द्याग्रामके सविकट किनारे जो प्राचीन चक्रमहोमितिष पञ्च पाविष्कृत हुए हैं । निकटवर्ती पञ्चपण्डव पर्वत पर भी बहुत- से धर्मभावगोप देखे जाते हैं ।

पल्लि (मं० स्त्री०) पल्लतोति पल्ल-सर्वधातुभ्य इन् इति इन् । १ घामक । २ कुटो । ३ कुटोषमुदात्त । ४ घाम । ५ गटक । ६ स्थान । ७ गटहगोषिका ।

पल्लिका (मं० स्त्री०) पल्लि-सर्वार्थ कन् तमटाप । गटहगोषिका, छिप क्लो ।

पल्लि-वाह (मं० पु०) पल्लि कुटो वाहयति निर्याहयतीति पल्लि-वाह-णिच्-घञ् । छपभेद, एक प्रकारको घाम ।

पल्लो (मं० स्त्री०) पल्लि 'लटिकारादिति' वा डोय ।

१ स्वप्नग्राम, छोटा गाँव, खेडा । २ कुटो । ३ नगर- भेद । ४ गटहगोषी, छिप क्लो । पयोप—मुपलो, गट गोधा, विगम्बर, उग्रिष्ठ, कुक्षमस्थ, पल्लिका, गटहगोषिका, माणिक्य, भित्तिका, गटहगोषिका प्रभृति । मनुष्यके शरीर पर इसके गिरनेसे निम्नलिखित फल होता है । मनुष्यके दाहिने पक्ष पर गिरनेसे स्त्रजन्-धविधोग घोर बाएँ पक्ष पर गिरनेसे लाम ; वचः- स्थान, मन्दक, पट घोर कण्ठ पर गिरनेसे राज्यलाम घोर कष, चरण तथा हृदय पर गिरनेसे सुखलाम होता है । (ज्योतिष-शास्त्र)

पल्लो—दालिपात्य-वामो दम्भजाति । ब्राह्मणको दाल्य- प्रसि करना इनको प्रधान उपजोविका है ।

पल्लोवाच—ब्राह्मणजाति की शाखःभेद । राठोरोंके मार- बाकु प्रदेशमें वाप करनेके पक्षमें ये लोग पल्लोमी राज्य करते थे, इसीसे इनका पल्लोवाच नाम पड़ा है । किंच

प्रकार दहनें पस्कीका अधिकांश पाय, इमका पता लगाना कठिन है। किन्तु पस्की नगरसे ले का पालिटाना तकके स्थानोंमें आज भी उनको कौत्तियां देखे जाते हैं। १२वीं शताब्दीमें जब कछोजराज शिवचोने पस्की पर आक्रमण किया, उस समय पस्कीवाले ब्राह्मणगण पशुं राज्य करते थे। मुसलमानोंके मारवाड़ आक्रमण करने पर वे लोग जयपालमोर, बोकानेर, घात घोर सिन्धु-उपत्यकामें आ कर रहने लगे।

पञ्च (हि० पु०) १ दामन, कौर, पांचन । २ खोड़ो
गोट, पट्टा ।

पयलेद्वार (हि० पु०) १ यह मनुष्य जो गल्लेके वाजारमें दूकानों पर गन्तव्यको गाँठमें बांध कर दूकानसे मोन लीनवातीके घर पर पहुँचा देता है, अनाज दोनिधाला मजदूर। २ गल्लेको दूकान पर वा कीठियोंमें गल्ला नीलनिवाला भादमौ।

पञ्चेदारो (हिं० स्त्री०) १ पञ्चेदारका काम । २ घनाज-
को दुकान पर घनाज तोलनेका काम ।

पत्न्यं (म० पु० स्त्री०) पत्न्यं मच्छति पिबत्यस्मिन् वा
पत्न्यं मतो वा पापानि वल्लभं परवयेन निपातनात् सिद्धं
(धानसिखरिणिर्यस्येति । उ० ५।१००) । अथ परः । सुद-
जन्तमप्य, स्त्रीता तासां यथा गच्छ ।

“अहं सरः पलालं स्याद् रसचन्द्रसंगे रसौ ।

न तिष्ठति जलं किञ्चित् तत्राप्येव। रि पाश्र्वलं ॥”

(ଭାବପ୍ରବଣ)

जिम जलागधने थोडा जन रहता है और चन्द्रमाके
मृगशिरा नक्षत्रमें जानिमे कुछ भोजन रहने नहीं पाता
उमे पश्वत कहते हैं। ऐमे पश्वतके जलका नाम पाश्वत
है। इस जलका गुण - अभिष्यन्दि, शुद्ध, स्वादु और
विदोषकम् । (भावः)

पल्लनाशस (स० पु०) कच्छुय, ककुपा ।

पल्यत्य (म० त्रि०) पल्यत-प्रत् । पल्यतमश्च, जलम । ।

एष (मं० प०) पवनमिति पूज्यगोचने, भावे अयम्, वा पुनः-
 तोति पूज्यम् । १ निष्पात्र, भूमौ निक्षेपना, शोभना ।
 २ दायुः, हवा । (स्तो०) पूज्यतेऽनेन पुरुषि गोचरे अयम् ।

(पा ३।१।४३) इ गोमय, गोवर ।

पञ्चदे (हिं० प्लो०) एक प्रकारकी विद्विया । इसको

छाती खैर रंगको, पौठ खाको पोर्चा चोर्पोतो होतो-६।
पवन (स० पु०) पुनातोति पू-बहुनमन्यत्रापोति युच।

१ निष्पाद्य, भूतो निष्कामना । २ वायु, धवा । 'पवनः
पञ्चतमस्मि रामः अक्षयनाभम् ।' (गीता १०।११) ३ चला-
रोच मन्त्रारो वायु । मिहात्मगिरोमणिम् ८ प्रकारके वाष्प-
पवनका उल्लेख है । इनमें वे, पावक, प्रचर, उच्चर, संवर,
सुवर, परिवर और परावर प्रभृति उल्लिखित हैं । ४ प्राण-
वायु । ५ उत्तममनुषे पुत्रविशेष । ६ कुम्भकारोंके पात-
घटादिका पाकस्थान, कुम्हारका चार्वा । ७ जन, पानो ।
८ पवित्रीकरण । ९ विष्णु । १० भनात्रको भूतो समस्त
करना । ११ खाद्य, खांन । (त्रि०) १२ प्रयत्न, पवित्र ।

पवन-चल (हि० पु०) वायुदेवता का चल । कहते हैं,
कि हमने चलाने से बड़े वेग से वायु चलने लगती है ।
पवन-कुमार (वं० पु०) १ हनुमान् । २ भांसेन ।
पवनगङ्ग—चम्पारन के प्रवाहित एक गिरिदुर्ग । १८३
ई० में कर्णाल बर्द्धनने किर्नेदारको युद्ध में परास्त कर
इस दुर्ग पर अधिकार कर लिया था ।

पवनचक्रों (1६० स्लो) हवाके जोरसे चलनेवालों चक्रों या कल। प्रायः चक्रों पोतने प्रयत्न हुए। आदिमें पनी निकासनेके लिये यन्त्र उपाय करती हैं कि चलाई जानेवाला कलका उपयोग किसी ऐसे चक्रके साथ करा दिते हैं जो बहुत जगहों पर रहता है और हवाके भीतरोंसे बराबर घमता रहता है। उस चक्रके घमनेके कारण नोचका कल भी घमना काम करने लगता है।

पवन-चक्र (सं० पु०) चक्र खाती दुई जोरको हवा,
चक्रवात, बवंडर ।

पवनज (मं० पु०) १ हनुमान् । २ भोमसेन ।

पवनतनय (मं० पु०) पवनस्य तनयः । १ पवनका
पुत्र, हनुमान् । २ भोमसेन ।

पवननन्द (स^० पु०) १ हनुमान् । २ भीम ।

पञ्चननन्दन (मं० पु०) १ हनुमान् । २ भोम ।

वृषभपति (मं० पु०) वायुके पञ्चिष्ठाता देवता ।

पवन-पथेवा (सं० स्त्री०) ज्योतिषियोंको एक क्रिया ।
इसके अनुसार वे भाषाद्वारा पूर्णिमाके दिन वायुको
दिशाको देख कर वस्तुका भविष्य कहते हैं ।

वन-पुत्र (स० पु०) १. हनुमान् । २. भीमसेन ।

पवनवंश—दक्षिण मिहभूमिवासी 'मुद्रया' जातिकी शाखा ।

पवनवाण (मं० पु०) वह बाण जिससे पनानेसे हवा बेगमे चलने लगे ।

पवनवाहन (सं० पु०) पत्नि ।

पवनविजय (मं० पु०) पवन-शासकवायु-त्रिजयतन्त्रेण विजि-करण-पत्र । देहस्थित श्वास और प्रश्वास वायुकी गतिसे श्वासश्वासक पत्रभेद ।

इस पत्रमें श्वास और प्रश्वास वायु द्वारा शुभ और अशुभ फल जाता जाता है अर्थात् किस नासिका द्वारा श्वास प्रश्न दित होनेसे और किस नासिका द्वारा प्रश्वास होनेसे कैसा फलानुक्त होगा उसका विषय इस पत्रमें वर्णित है । गरुडपुराणमें लिखा है,—महादेवने हरिसे यह वृत्तान्त सुन कर पाश्चात्तये कहा था, 'हे देवि ! देवके मध्य नामा जातीय बहुतकरक नादिया है । नाभिके पक्षोद्देशमें दशशक्त्य है । इन शक्तियोंमें मधो पक्षर निकल कर गरोरमें व्याप्त है । इनमेंसे तीन श्रेष्ठ हैं, वामा, दक्षिणा और मध्यमा । वामा मोमा-मिका, दक्षिणा रक्षितुया और मध्यमा पत्तिश्रद्धा है । वामा पञ्चतद्विषयो को कर जगत् प्राप्यावित करनी है, दक्षिणा श्रेष्ठभागमें जगत् शक्त करनी, इत्यादि । (गङ्गु० १० म०) पक्षी-जिन वामा, दक्षिणा और मध्यमाका उद्देश्य सिधा गया है, उन्हें ईडा, पिङ्गना और सुपुत्रा कहते हैं । पति मत्सिमोक्षमें इनका फलफल लोचि दिया जाता है ।

तत्त्वादिक उदयानुसार श्वास और प्रश्वास हुआ करता है । वाम नासिकाके श्वास-उदयसे निरूपित समयमें यदि दक्षिणनासिकामें प्रवेश दक्षिण नासिकाके श्वास-उदयसे निरूपित समयमें वाम नासिकामें श्वास उदय हो, तो उस व्यक्तिका उस दिन अशुभ और दुःखमान होता है । जब वाम नासिकासे श्वास निर्गम हो, उस समय शुभ कर्म करनेसे शुभ होता है । यात्रा, दान, विवाह और वस्त्रालङ्कार-धारण प्रभृति कार्य इस समय करना उचित है । दक्षिण नासिका हो कर श्वास प्रवेशके समय जितने प्रकारके कर्म हैं उन्हें करनेसे कार्य सिद्धि होती है । इस समय युद्ध-

यात्रा, दान, श्वास, भोजन, मेध, व्यवहार, भय और भङ्ग प्रभृति सभी कार्य कर सकते हैं ।

जब सुपुत्रासे श्वासका उदय हो, उस समय शुभ वा अशुभ कोई भी कार्य न करे ; कार्यका अनुष्ठान करनेसे निष्फल होता है । इस समय एकमात्र योग-साधनादिका अनुष्ठान न हो सिधे है । यात्रा न समय जिन नासिका हो कर श्वास निकले, यदि उसी ओर जा पद पागे बढ़ावे, तो कार्यको सिद्धि होती है । दक्षिण नासिकासे श्वास प्रवेशके समय पट्टकर्म अर्थात् मारण, मोहन, स्तम्भन, उच्छाटन और वयोकरण आदिका अनुष्ठान करनेसे सिद्धिनाम होता है । माम, शक्त बुध और उच्छाटनवाका वाम नासिकासे श्वास प्रवेशके समय कोई कार्य करनेसे वह सिद्ध नहीं होता । शूल-पक्ष होनेसे विविध फल प्राप्त होता है । रवि, मङ्गल और शनिवारकी दक्षिण-नामागुटमें श्वास प्रवेशके समय जिस किसी कार्यका अनुष्ठान किया जाय, वह सिद्धि होता है । विशेषतः लक्ष्मणमें यह पञ्चक फलप्रद है । दक्षिणनासिका हो कर वायु निकलनेसे दक्षिण और पश्चिमका ओर तथा वाम-नामागुट हो कर वायुके निकलनेसे पूर्व ओर उत्तरका ओर यात्रा निषेध है । इसका कहन कर यात्रा करनेसे पण्डित ज्ञानकी सम्भावना है । यात्राकालमें जिस नासिकामें श्वासका उदय होगा, वही वही पद पारी बढ़ावे, ऐसा करनेसे यात्रादि सिद्ध होती है । जमान पर यदि पार मङ्गल वारको ७ बार, रवि और सोमवारका १० बार, बुध और शक्रवारकी एक बार तथा उच्छाटनशरकी दोन बार फेंक कर यात्रा करनेसे शुभ होता है । यदि कहीं किसी विविध कार्यके लिये जाना हो, तो उस समय जिस नासिकासे वायु निकले उस ओर श्वास लिये नासिका अग्र कर, वामनासिका हो कर बहुत कालमें जमान पर ४ बार और दक्षिणनासिका हो कर बहुत कालमें ५ बार पदाघात कर यात्रा करनेसे शुभ होता है । प्रातःकालमें उठनेके समय जिस नासिका हो कर वायु बहुत हो, उस ओरके राहसे मुँहका अग्र करके उठनेसे वाञ्छित फलप्राप्त होता है, इत्यादि । (पवनविजय एवेद) एवेद देवो ।

पवन-व्याधि (म० पु०) पवनः वायुरोग एव व्याधिरस्य ।
 १ रुद्ध, कीकृष्यते सखा । २ वायुरोग ।
 पवनमघात (म० पु०) दो चोरने वायुका भा कर
 चावसने चोरने टकराना जो दुर्भिक्ष चोर दूसरे राजाके
 आक्रमणका लक्षण माना जाता है ।
 पवन-सुत (स० पु०) १ हनुमान् । २ भीमसेन ।
 परता (हि० पु०) भरता, पोता ।
 परमत्तज (म० पु०) पवनस्य चालनः पुत्रः । १
 हनुमान् । २ भीमसेन । ३ अग्नि ।
 “आकाशाद्भुः वायोरग्निः” (श्रुति)
 वायुसे अग्नि उत्पन्न हुई है, इसीसे अग्निको पवन-
 त्तज कहते हैं ।
 पवनान (म० पु०) पवनाय निष्पावाय चलति पर्याग्रो-
 तीति चल पर्यागो पच । धान्यविशेष, पुनेरा नामका
 धान्य (*Andropogon saccharatus*) । पर्याय—
 देवधान्य, चण्ण, जुहुन, लुनन, वोजपुष्प, पुष्पग्रन्थ ।
 गुण—हितकर, स्वादु, मोहित, शैम और पित्तनाशक,
 चक्षुष्य, तुवर, रुच, कृदकारो और लघु ।
 पवनाग (स० पु०) पवनं वायुं चञ्चति भवतीति
 अग-भोजने कर्मण्य, इति-अण् । सर्प, सर्प ।
 पवनाग्रन (स० पु०) पवन-पग-ण् । १ सर्प ।
 सर्पं केवल हवा पो कर रहता है, इसीसे पवनाग्रनके
 अर्थसे सर्पका बोध होता है । (त्रि०) २ वायुमध्यमात्र
 को केवल हवा पो कर हो रहता है ।
 पवनाग्रनाम (म० पु०) पवनाग्रस्य सर्पस्य नामो
 यस्मात् वा पवनाग्रनं सर्पमस्तीति अग-अण् । १
 गच्छ । २ मयूर, मोर ।
 पवनागिन् (स० पु०) पवन-पग-णिनि । १ सर्प,
 भव । (त्रि०) २ जो हवा खा कर रहता हो ।
 पवनास्र (म० पु०) पुराणानुसार एक प्रकारका पक्ष ।
 कहते हैं, कि इसके चाननेसे बहुत तेज हवा चलने
 लगती थी ।
 पवनो (हि० स्त्री०) गांभीर्य रक्षनेवाली वह प्रजा या
 मोक्ष प्राप्ति को अपने निवासके निचे चत्रियों, ब्रह्मणों
 अथवा गोविके दूसरे रक्षनेवालोंसे नियमित रूपसे कुछ
 पाती है ।

पवनीतर (म० पु०) पवनेन स्थापितः ईश्वरः ईश्वर-
 लिङ् । कायोस्थित मिथश्चिह्नमेद ।
 पवनदंष्ट (म० पु०) पवनं वायुरोगे दंष्टः । १ महाविष,
 चकायन । २ निम्बू, वृक्ष, नोबूका पेड़ ।
 पवनोन्मूल (स० स्त्री०) पवनं पवित्रं चाम्बुजमिव
 दृषोदरादित्वात् साधुः । परपकवृक्ष, फाल्गुना ।
 पवमान (म० पु०) पवने गोवयसीति पूङ्, गोधने
 मानच, ततो सुमानसः (१६५ श्लोः शान् १५३/१०)
 १ वायु, मसोर । २ खाड़ादेवोक्ते गर्भसे उत्पन्न अग्नि है
 एक पुत्रका नाम । ख. हादेवोक्ते तीन पुत्र थे, पावक,
 पवमान और शुचि । ३ निमग्नान्नि । इसे गाई-
 पत्थान्नि भी कहते हैं । ४ सोम, चन्द्रमाका नामाक्षर ।
 ५ ज्योतिष्टोम यज्ञमें साम्या कर्त्तक गेय स्तोत्रमेद,
 ज्योतिष्टोम यज्ञमें साम्यासे गाथा ज्ञानेवाला एक प्रकार-
 का स्तोत्र । ६ विराजमेद ।
 पवमानाक्ष (स० पु०) पवमानस्य वायोरासनः ।
 हयशासन, अग्नि ।
 पवमानवत् (म० त्रि०) पवमानः विद्यतेऽस्य, पवमान-
 मतुप-मस्य व । पवमानयुक्त, स्तोत्रविगिट ।
 पवमानहविष (स० स्त्री०) पवमान अग्नि है वहैय्यसे
 देने योग्य हविः ।
 पवमानेष्टि (स० स्त्री०) पवमानस्य अग्नेः इष्टिः वागः
 अग्नियष्ट, पवमानहविः ।
 पवयत् (स० त्रि०) पू-णिच्, तत् । दत्तव । पवित्रता
 सम्पादनकारो ।
 पवर (हि० स्त्री०) पंक्ति देखे ।
 पवरिया (हि० पु०) पौरि देखे ।
 पवर्ग (स० पु०) वर्णमानाका पांचवें वर्ग जिसमें प,
 फ, ब, भ, म ये पांच अक्षर हैं ।
 पवट्टरिक (स० पु०) कृपिमेद ।
 पवरी (हि० पु०) १ पमार, पशाड़ । २ चत्रियोंको
 एक शाखा । रमार देखो ।
 पवरीना (हि० स्त्री०) १ पेंडना, गिरना । २ क्षेत्तमें
 क्षिपना कर बोझ घेरना ।
 पवारि (हि० स्त्री०) १ एक फंद लूता, एक पेरका
 जाता । २ चक्रोका एक पाट ।

पवाका (सं० स्त्री०) पुनातीति पुञ्, पाप्, प्रत्ययेन
निपातनात् साधुः (बलाहादयश्च । उण् ५।१४) वात्या,
चक्रवात ।

पवाङ् (हि० पु०) चक्रवङ् ।

पवाडा (हि० पु०) पंखा देखो ।

पवाना (हि० स्त्री०) भोजन करणा, खिचाना ।

पवार (हि० पु०) परमार देखो ।

पवाह (सं० पु०) काश्चेत्य् ।

पवि (सं० पु०) पुनातीति पुञ्, मोचने क, (अच् इः ।
उण् ५।११८) १ वज्र । २ पिङ्गलो, गात्र । ३ नाभ्य ।
४ मूत्रकोष्ठ, पुच्छ । ५ मार्ग, रास्ता ।
पवित्र (सं० त्रि०) पूयतेत्य् पुञ्, ल ततः इङागमः
(पृथक् । पा ५।२।१) १ पूत, पवित्र, शुद्ध । (स्त्री०)
२ मित्र ।

पवित्रा (हि० स्त्री०) शुद्धि, पवित्रता, सफाई ।

पविष्ट (सं० त्रि०) पुनातीति पुञ्, टच् । पवित्रताकारक ।

पवित्र (सं० स्त्री०) पूयतेतिनेति पू (पुत्रः संज्ञायाम् ।

पा १।२।८५) इति इत् । १ वर्षाण, मैत्र, दात्रिण ।

२ कुश । ३ ताम्र, ताँबा । ४ पयः, दूध । ५ जल, पानी ।

६ वर्षाण, रगड़ । ७ धर्मोपकारण । ८ यज्ञोपवीत,

जनेज । ९ छत, घी । १० मधु । ११ कुशलो वनो

हुई पवित्रो मिते आहादिमं च शुनिर्मितं पद्यते है ।

१२ शुद्धद्वय । पर्याय—पूत, मित्र, शुद्ध, शुचि, पुण्या

योग्य पूतिवत् । १३ तिकुष्ठ, तिलका पेड़ । १४

पुत्रकोषका हृद्य । १५ वासिनेयका एक नाम । १६

समादेव । १७ विष्णु । (त्रि०) १८ शुद्ध, निर्मल,

साक ।

पवित्रक (सं० स्त्री०) पवित्र-कन् वा पवित्रे पयसि

कापसोति कौ-क । १ जाल । २ सन्ने वृत्तका बना

हुया जाल । ३ चित्रिका यज्ञोपवीत । पवित्र स्नाथे

कन् । ४ कुश । ५ दमनक, दोनिका पेड़ । ६ छद्-

मर, गूस्करा पेड़ । ७ पण्डित, पोषका पेड़ ।

पवित्रता (सं० स्त्री०) पवित्र-तया भावः, पवित्र तत्त्व,

टाप । शुद्धि, सफाई, सफाई, पाकीजगी ।

पवित्रधाम्य (सं० स्त्री०) पवित्र-धाम्य नित्यकर्म-धा-

यव, गी ।

पवित्रपति (सं० पु०) पवित्रस्य पतिः । पवित्रपामक,

विशुद्ध पामक ।

पवित्रपाणि (सं० त्रि०) पवित्र-पाणी यस्य । पवित्र

हस्त, कुशहस्त जो कर धर्म कर्म करना होता है ।

पवित्रपूत (सं० त्रि०) पवित्रेण पूतः । पवित्र वस्तु

द्वारा विशुद्ध ।

पवित्ररथ (सं० त्रि०) पवित्रः रथा यस्य । एक राजा ।

पवित्रवत् (सं० त्रि०) पवित्रं विद्यनेत्य् पवित्र-मतुः,

मस्य च । पावनरश्मिसंयुक्त ।

पवित्रवति (सं० स्त्री०) कौव हंपकी एक वनस्पति ।

पवित्रा (सं० स्त्री०) पवित्र-टाप । १ तुलसी । २

नदीभेद । ३ हरिद्रा, हरेदी । ४ पण्डित, पोषण ।

५ गमोष्ठक । ६ रोगके दार्तालो वनो हुई रोगी

माता जो कुछ धार्मिक छत्तोंके समय पढ़ने जानी है ।

७ आचरणके शुद्धपक्षी एकदमी ।

पवित्रात्मा (हि० त्रि०) जिनकी आत्मा पवित्र हो, शुद्ध

चत्तुष्करव्यवस्था ।

पवित्रारोपण (सं० क्ली०) पवित्रस्य यज्ञोपवीतम्,

पारोपणं प्रदानं यस्य । योऽङ्गणवस्त्रात्माक उद्योग

दानरूप उक्तविविध, एक वस्त्र जिसेमें अतवात्मा यो-

ङ्गणकी यज्ञोपवीत पहनाया जाता है ।

आचमनसमर्थी शुक्ला दादगीकी वैष्णवगण भक्ति-

पूर्वक योऽङ्गणरा पवित्रारोपणकाव करे ।

योऽङ्गणका यह पवित्रारोपण काव होना चाहिये,

हरेभक्तिविधानमें इस प्रकार लिखा है—

“आचमनस्य पिते वसे वस्त्रेऽप्ये दिवाकरे ।

दादगीका बाह्ये वाप पवित्रारोपणं मृतं ॥

तिरस्ते वा रवी कार्यं वस्त्रायाम् मृतं ॥

तस्यानेन स्थिती वस्त्रं गुणसंयुक्तं कथं च ॥”

(विष्णु १५५५)

यः वस्त्रको शुक्ला दादगीके दिन पवित्रारोपण होता ।

यदि किसी विद्वान्मनः उक्त मासमें न हो सके, तो

भाद्र, पश्चिम वा कार्तिक मासमें कर सकते है ।

दूसरे दूसरे विधानोंमें यह प्रतीत होता है कि वैष्णवोंके

लिये यह पवित्रारोपण अवश्य कर्त्तव्य है । भाद्रादि

मासमें और शुक्ला दादगीके दिन यह करना होता है ।

मन्त्रमन्त्रप्रकाशमें लिखा है, कि आषण मासमें किसी प्रकार का विष होनेसे बरिगयन शेष होनेसे पञ्चमे हो पवित्रकथपण विधेय है। आषण मास मुख्य और तदतिरिक्त काल मौण है। बरिगयनके शेष होने पर यह दान नहीं करना चाहिये विष्णु रत्नस्य आदिमें लिखा है, कि जिनमेंसे सभी तीर्थोंमें स्नान और सभी यज्ञ समाप्त किये हैं, पर श्राशानुसार पवित्रदान नहीं किया। उनका पूर्वाप्राप्त फल भी निष्फल है। इस कारण इसका अनुष्ठान करना बर-एक ही अवश्य कर्त्तव्य है। विष्णुसंह्यमें लिखा है, कि विष्णुको पवित्रदान करनेसे मुक्ति भिन्नतों है और श्रीगुरुपदा कोशप्रद, पवित्र तथा सुख-सम्पन्न काण है। यह पवित्रदान सभी प्रकारके पुण्योंमें उत्तम है। पञ्च वर्ष जागर्टन विष्णुको पूजा कानिमें जो फल लिखा है, इस पवित्रदानमें भी वही फल प्राप्त होता है। यह पापमें मुक्त और भयभक्षणसे निष्कृतिकाम करता है, इस कारण इसका नाम 'पवित्र' पड़ा है। पवित्रारोपणविधि—

सुषण, रजत, तास, सोम, सुव, पद्मसुव या कापस सुव द्वारा यह पवित्र प्रयुक्त करे। सुवको त्रिगुण करके पोछे उसे फिरसे त्रिगुण कर ले। इस प्रकार प्रयुक्त होने पर उसे पवित्र कहने हैं। इस पवित्रको पञ्चगव्यमें मीघन और विशुद्ध जलमें धो डाले, षोडश मन्त्र का एक ही घाट बार बार जप करके प्रमिसंस्करण करे। इसके बादभागमें ३६, मध्यमें २४ और अन्तमें १२ पत्ति दे। ये सब पत्ति सुव्रत और मनोरम हों। उत्तम पवित्रमें अष्टाष्ट वर्ष परिमाणान्तर, मध्यममें समका आधा और कनिष्ठमें समका भी आधा है। इस प्रकार पवित्र निर्माण करके हादशोंके दिन श्रोत्रण्यको वर्षण करे। पवित्रारोपणके पूर्व दिन अधिवास करके परवर्ती हादशोंमें प्रातःकालादि यथाविधान कानि घाट पवित्रदान करना होता है दानके समय नाना प्रकारके वाद्य, उत्सव और नाम में कोतनका होता आवश्यक है। श्रोत्रण्य तथा उनके परिवारादिही पूजा समाप्त करके रिजनिवित मन्त्र पाठ करनेके बाद पवित्र वर्षण करे।

“कृष्ण कृष्णानमस्तुभ्यं यद्वाप्ये पवित्रम् ।

पवित्रं च यथायथं वर्षणं कर्तव्यम् ॥

पवित्रके कुरुवाय यन्मया हुकृतं कृतम् ।

युद्धो भवाद्ग्रहे देव स्वतन्त्रप्रदायकतादेन ॥”

पोंकि श्रोत्रण्यकी महापूजा समाप्त, सुति और नमस्कारके बाद इष्ट प्राय मा करे।

“वनमालां यथा देव । कौस्तुभं सततं हृदि ।

तद्वत् पवित्रतन्त्रं धृत्वा पुन ऊच हृदये ॥

ज नताजानना वापि न हर्तुं दत्तवर्षते ।

केनचिद्विघ्नदोषेण परिपूर्णं तदन्त्र मे ॥”

इस प्रकार पवित्र वर्षण करके मान, पक्ष, विरास या परोरात्र पर्यन्त रख कर इनका धिसर्जन करना होता है। हरिभक्तिविलासमें इसका विवेक विवरण लिखा है। विस्तर हो जानेके भयमें यहाँ अधिक नहीं लिखा गया।

पवित्रारोहण (स० स्त्री०) पवित्रस्य यन्त्रोपवीतस्य, आरोहणं सम्प्रदानं यत्र । पवित्रारोपण ।

पवित्रारोपण देवी ।

कालिकापुराणमें लिखा है कि प्रायः सभी देवताओं को पवित्रारोहण करना होता है। पापाद और आषण-मासको शुक्लपक्षीय चष्टमीको दुर्गाका परमप्रीतिकर पवित्रारोहण करे। आषणमासमें ही देवीको पवित्र निर्माण करे। पापाद और आषणमासमें सभी देव-ताओंके पवित्रारोहण कर्त्तव्य है। की देवीहंगी पवित्र वर्षण करती हैं, उनके मध्यस्तर शुभ होता है। निश्च समुदायके मध्य कुबेरको प्रतिपद, लक्ष्मीकी हितोया, भवभावनादेवीको ज्योथा और उनके पुत्रश्री चतुर्था, मोमराजकी पद्ममी, कात्तिकेयों पट्टी, भास्कर की सप्तमी, दुर्गाको चष्टमी, मातृतापीकी नवमी, वासुकि की दशमी, कृष्णदेवीकी एकादमी, चक्रपाणिकी द्वादशी, पद्मकाकी त्रयोदशी, महादेवीकी चतुर्दशी और ब्रह्मा तथा दिक्पालोंको पौर्णमासी तिथि पवित्रारोहण में प्रगष्टा है। जो सब मनुष्य देवताओंके लिये इस पवित्रारोहण क्रियाका अनुष्ठान नहीं करते, उनके मध्यस्तरकन पूजाका फलशाम नहीं होता। सुतरां यह पूर्वक इसका अनुष्ठान करना सर्वोका कर्त्तव्य है।

पवित्रनिर्माणके विषयमें पहिले दर्भसूत्र, उसमें बाद पद्मसूत्र, सुपवित्रनाम और उसमें अमावस्यमें कार्णिकसूत्र और पद्मसूत्र आशयशून्य है। अथवा सूर्य द्वारा पवित्रनिर्माण न करे। गन्ध और सुरभिमात्र द्वारा पवित्रको यथोचित पवित्रता करना चाहिये। कथ्या प्रथम पवित्रता और मधुरवा-मिषदाका पवित्र-मूल कातनेका अधिकार है। दुर्गामा नारो अमो भा पवित्रके मूल न काते। सूचित, दध, मध, वा धूम द्वारा पवित्रपुष्टन सूत्र पवित्रनिर्माणमें वर्तनीय है और जो मूल उपयुक्त, सूचितदण्ड, रक्षादि द्वारा दूषित, मलिन और नान्वाराग-युक्त है वह भी वर्तनीय है। उभय, मध्यम और क्षीण भेदमें तीन प्रकारका पवित्र होता है। २० गुणित मूल का जो पवित्र इन या जाता है, वह कनिष्ठ, ५४ गुणित का मध्यम और १०८ गुणित सूत्रका पवित्र उत्तम माना गया है। यह पवित्र द्विगुणकका उत्पादक और स्वयं तथा मोक्षका साधन है। महादेवको दान करनेमें शिवमायुष्य लाभ होता है। वायुदेवको दान करनेमें विष्णु लोकमें गति होती है। अष्टोत्तर-महस्त्रमंत्रके निर्मित पवित्रको रत्ननाम कहते हैं। रत्ननामांशक पवित्र दान करनेमें कौटिल्य वक्ष्य स्वर्गलोकमें रत्न कर पत्नमें शिवत्व प्राप्त होता है। इस प्रकार अष्टोत्तर-महस्त्रमूल द्वारा जो पवित्र बनता है, उसे नागेश्वर कहते हैं। इसका दान करनेमें मूलमप्यनुसार वसना ही कल्प स्वर्गलोकमें प्राप्त होता है। अष्टोत्तरसहस्र तन्त्रुमें हरिके निमित्त जो पवित्र प्रसूत होता है, उसका नाम वनमाता है। वनमाता पवित्र दान करनेमें विष्णुमायुष्य लाभ होता है। पहिले जिस कनिष्ठ पवित्र का उल्लेख किया गया है, वह नाभिदेश-प्रमाणका होगा और उसमें १२ ग्रन्थि रहेंगी। मध्यम पवित्र लक्ष पर्यन्त और २४ ग्रन्थियुक्त उत्तम पवित्र आनुपर्वण मध्यमान और १६ ग्रन्थि का होता चाहिये। नागेश्वर नामक पवित्रमें यथाविधि एक ही पाठ ग्रन्थि बनाना विधिय है। जिस रंगमें पवित्र-निर्माण करे, ग्रन्थि उस रंगके मूलमें न बना कर अन्य रंगमें बनावे।

पवित्रदानके पूर्व दिन अश्विनाश करके दूसरे दिन उसमें मन्त्रन्यास करे। पवित्रको सभी पत्नियोंमें बाँटकर

प्रथम भाग द्वारा मन्त्रजप करके न्यास करे। इस प्रकार मन्त्रन्यास करने पर पवित्र देवोके प्रदूषित होजाता है। दुर्गानन्धमन्त्र द्वारा तत्त्वस्थान करता कह्य है। एक यज्ञपात्रमें सभी पवित्रको रख कर उन पात्रों में उभय गन्ध और पुष्पादि रखने होते हैं। पौष्टि-उभय न्यास करना होता है। उस पवित्रमें कुङ्कुम, उगाध, कर्पूर और चन्दनादिका विनियन आवश्यक है। इसके बाद न्यासादि समाप्त करके दुर्गानन्धके अनुसार दुर्गा-वो हवा देवोके मन्त्रोंमें पवित्र प्रयोग करे। जिस दिन देवताप्रीति पूजाविधानजिन जिस प्रकार है, उभी, सभी विधानके अनुसार उन देवताप्रीति पूजा करके पवित्रार्पण विधिय है।

इसमें नागविधि नवेद्य, पेर, पनेत्र प्रकारके पिष्टक, मोदक, नारिकेल, खजूर, पनस, चामर प्रभृति विविध फल, सभी प्रकारके मूल्य और भाज्य, मद्य, मांस, पौदन, गन्धपुष्प, मनोहर धूपशोष और वनभूषण प्रभृति उप-हार देने होते हैं। रात्रिको मठ और वैष्णव द्वारा नृत्य-गीत करा कर आनन्दचित्तमें रात्रि आनन्द करे। इस अवसरमें दिजातियोंमें माय माझण, शांति और कुटुम्बादिको भोजन कराना होता है। पवित्रारोहण सम्पन्न हो जाने पर सुवर्ण, गो-प्रभृति दक्षिणा दे कर विभजन करना होता है। इसका दान करनेमें वास्त-रिक्त पूजा करनेका फल मिष्टता है तथा मानव शत-कोटिकल्प देवोके गृहमें वास करते हैं। जालिहापुराण-के ५६ अध्यायमें और गङ्गपुराणके २४ अध्यायमें इसका विगोप विवरण लिखा है।

पवित्राग (सं० पु०) धनका वना हुआ द्वारा जो प्राचीन-कालमें भारतमें बहुत पवित्र माना जाता था।

पवित्रित (सं० लि०) पवित्रमस्य सञ्जातः तारकादि-त्वादित्थम्। शुद्ध किया हुआ, निर्मल किया हुआ।

पवित्रित् (सं० लि०) पवित्र पदार्थ है। पवित्रतायुक्त। पवित्रो (सं० स्त्री०) कुशका बना हुआ एक प्रकारका कला जो कर्मकाण्डके समय अनामिर्णामें पहना जाता है।

पवित्रर (सं० पु०) वस्त्रधारण करनेवाले, दण्ड।

पविन्द (सं० पु०) श्रुतिभेद, एक बह्विधा नाम।

पविमत् (सं० पु०) सामभेद ।

पवीट (सं० त्रि०) पू-टच् वेदे इटी दोषः । शोधक ।

पवीनय (सं० पु०) गर्भोपद्रावक प्रसुरभेद, प्रयव वेदके अनुसार एक प्रकारके प्रसुर जिनके विषयमें लोगोंका विश्वास था कि ये स्त्रियोंका गर्भ गिरा देते हैं ।

पवीर (सं० स्त्री०) १ भायुध, शस्त्र, हथियार । २ वल्ल । ३ हलकी फाल ।

पवीरव (सं० पु०) पवेः वज्रस्य रवः, वेदे दीवः । १ वल्ल या वल्लका शब्द ।

पवीवत् (सं० त्रि०) पवीरं विद्यतेऽस्य मनुष्य, मस्य व । फालसंयुक्त, जिसमें फाल लगे हो ।

पवेरा (हिं० त्रि०) कितरा कर बोज बोना ।

पवेरा (हिं० पु०) वह बोपाई जिसमें हावसे कितरा या फौक कर बोज बोया जाय ।

पय्य (सं० त्रि०) पू-य्यत् । १ शोथ । (पु०) २ यज्ञ-पात्रादि ।

पयम (हिं० स्त्री०) १ बहुत बढ़िया और सुखायम ऊन जो प्रायः पञ्जाब, काश्मीर और तिब्बतकी वकरियों परसे उत्पत्ता है और जिससे बढ़िया दुग्गाने और पद्मोने खादि बनते हैं । पञ्जादिका लोम जो प्रकृत पयम कहलाता है । किन्तु भारतवर्षसे छागलादिके लोमको यूरोपमें रफ्ताना हो कर कोमल, मोटे और नरम सूतके आकारमें बँडल बांध कर जो सब द्रव्य पुनः भारतआदि नाना देशोंमें भेजे जाते हैं, वे आधारेणतः पयम वा ऊन कहलाते हैं । दाक्षिण भारतके अधिकांश प्रदेश, नेलगिरि पर्वतमाला, सहिचुरसे समथ दाक्षिणात्य, ग्वाल्देस, गुजरात, बरार, मानावा, राजपूताना, हरियाना और दिल्लीप्रदेश तथा हिमालय पर्वतके अधिकांश स्थान, काश्मीर और भोट राष्ट्रमें भेड़े और वकरके शरीर पर जो रोएँ उत्पन्न होती हैं, उन्हींको प्रधानतः 'पयम' कहते हैं । चामरोगी और तिब्बतदेशीय जामा नामक वकरके रोएँ भी प्रसृत होता है, इस कारण वहाँके लोग वड़े यज्ञमें भेड़े और वकरे आदिसे पाकते हैं । दाक्षिणात्यमें भी इसी उद्देश्यसे वकरे पासे जाते हैं । इससे बढ़िया दुग्गाने और पद्मोने प्रसृत होते हैं जो बच्चनके लिये नाना स्थानोंमें भेजे जाते हैं । शीतप्रधान देशोंमें ये

पय वस्त्र शीतनिवारणमें विशेष उपयोगी हैं । हिमालयके निकटवर्ती और उत्तरवर्ती शीतप्रधान देशोंमें शीतकी अधिकताके कारण पद्मोने बपड़े की बहुत पड़ती है, इस कारण वहाँके लोग भेड़ेका अधिक आदर करते हैं ।

विभिन्न देशोंमें पयमके पृथक्, पृथक् नाम हैं । पयम, ऊन—बङ्गला ; सूत, धात, ताफतिल—प्रबो ; यामी—चीन ; सन्द—तिनेमार ; Wol—पोनल्यान ; लीने—फरासो ; Wolle—जर्मनी ; जून—गुजरात ; Lana—इटली और स्पेन ; वुलु—मस्य । पयम, पु०, पम्—गरको ; Welna—पोलेण्ड ; Ln, Lan—मुलगात ; Wolna, Seherst—रुस ; लोम ऊनी—मस्कत ; Woo-or-oo—स्काट ; ऊन—स्कोडन और वसु—तेल्लु ।

महामति बार्नस (Sir A Barnes) ने लिखा है, कि तुर्कस्थानके बोखारा और समरकन्द जिलेजगत छागलके लोम, काबुलजगत पशुलोमसे बहुत ही उत्कृष्ट, किन्तु तिब्बतदेशीय मेषके लोमको अपेक्षा पूर्णमात्रा में निकट होती है । काश्मीरदेशमें जो विख्यात गान्ध दुग्गाने बनते हैं, वे समरकन्दके छागलके लोम और तिब्बतीय मेषकी पयमके मेलसे ही बनाये जाते हैं, इन्हींमें तुर्कस्थानजगत सब पशुके लोमकी भारे पञ्जाबके धन्तगत चम्पनसरनगरमें धामदनी होती है । काबुलजगत छागलके लोम किसी देशमें नहीं भेजे जाते । सदेशवासियोंके परिच्छेदने हो वे सब खप जाते हैं । काबुलके दुग्गा Fat tailed Sheep नामक भेड़ेसे खेत लोम प्रभुन परिमाणमें पाया जाता है जो उस देशमें पयम-ई-बुराक कहलाता है । इससे निर्मित वस्त्रको 'बुराक' और छागलज लोमसे प्रसृत परिच्छेदादिकी 'पट्ट' कहते हैं । ये गद् भी कहते हैं, कि काबुलके प्रायः अधिकांश स्थानमें पयमके लिये छागलादि पासे जाते हैं । लड़ोनी और चित्तोजी जाति की लोमके लिये भेड़े, वकरे आदि चराया करते हैं । लोम-संग्रहके व्यवसायमें ये ही लोम प्रधान हैं । यहाँ एक प्रकारका सुगन्धित पोषाण उत्पन्न होता है, जिसके स्थानमें लोम बढ़ते और परिष्कार होते हैं ।

दुग्गा नामक मेषके लोमसे निर्मित वस्त्र और गलाचा

मस्तिष्कोटक (Hydrocephalus); मन्व्यास (Anoplexy), मस्तिष्क-प्रदाह (Inflammation of the brain) होनेसे पग कमजोर हो जाता है और उसमें चलने फिरनेकी शक्ति नहीं रह जाती। दायुके प्रकोपसे व्याध्यादिके साथ उदरकी स्त्रीति, यक्ष्म-युक्त पीड़ा और वेदना, उदर-गह्वरमें दस्तशूल, उदरामय, काशरोग, कुंभपुष्पका प्रदाह, स्तन प्रदाह आदि रोग इनके स्वास्थ्यके हानिकारक हैं और कभी कभी इनसे प्राण भी निश्चल जानिका डर रहता है। एक दृष्टिसे यदि काशरोग हो जाय, तो यह तमाम दलोंमें फैल जाता है।

पगमें तारतम्यानुसार पगके शीस साधारणतः तीन भागोंमें विभक्त हैं। चाङ्गयान, तफोन और किर्मान आदि स्थानोंकी पगमें सर्वांगिक होती है और इसीसे दशजोरी शाल दुगली बनते हैं। उसमें निम्न कादक, रोडक, भिपति, रामपुर, ब्रमरि और खोटान आदि स्थानोंकी पगमें ऊपर अस्तमर, नरपुर, लुधियाना आदि स्थानोंके शालका व्यवसाय चलता है। काशरोगी और प्राथमिक नामक मीठे के लोममें चमर बनते हैं।

पेगावर, काहुन, कन्दहार और किर्मानो वा पार रोग पगमें द्वितीय श्रेणीकी है। इसमें घाट अस्यान्य सभी-पगोंके लोम इसमें निकटतर समझी जाते हैं।

भारतवर्षमें पगकी पगमें इन्कैण्ड आदि यूरोप-खण्डमें और अमेरिकादिमें भी जी जाती तथा बर्तमान पुनः विभिन्न प्रकारोंमें इसकी चामदगी भारतवर्षमें होती है। इन्कैण्ड और अस्यान्य स्थानीय बर्तनी तथा कुतोंके लोममें निम्नतः एक प्रकारका शाल, भारतवर्षमें मेन्ना ज्ञाता है, जो विनायती शाल कहलाता है। ऐसे शालका मूल्य बहुत होता है। मकर जे पगमें बखरे नगर, घाती है वह घुल-देगन नामसे प्रसिद्ध है। लुधियाने तारतम्यीय शालोंकी पगमें पगमें तैयार होते हैं। वह पगमें सुनी कपड़े और मोहेकी बनी मनुष्यी घटती जाती है। व्यवसायिण घर ला कर पगमकी बुनते और बागेक तथा मोठी पगमकी फलन चलन रखते हैं। घाट लड़े वायसके जसमें पक्की तरह भिगी कर सत प्रयुक्त करते हैं। बारोक पगमके

मूतसे रांगपुरी चादर और चपेलाकृत मोठी पगमकी नाना प्रकारके पगमें बनते हैं। उत्तर-एशिया, चीन और भारतवर्षमें पगमोदिका पश्चिम चादर है।

सम्बल, नामदा, चादर, लम्ब के कपड़े, कोट, पट्ट, मनोदा आदि शीतकालके वायु-शरीर उपकरण पगममें तैयार होते हैं। पश्चिम इसके साथ पटसंग, सवसन और रेशम मिला कर टेबुल आदि पर बिछानेके बिने नाना प्रकारके बनीये बनाये जाते हैं। जो मूख मजदूर और टिकाऊ होते हैं।

बहु माधोनकालसे पगमका वाणिज्य चला चार रहा है। भारतको बात तो दूर रहे, यूरोपखण्डमें भी पगमें पगमका चादर था। ई. सन् १६५६ में रोमन और पीक लोग पगमोदकी कदर करने थे। भारतमें से मिडिलेय युद्धके बाद ग्रीक लोग भारतवर्ष आ कर पगमोद बनाने के तरीके सीख गये। रोमवासो फो-पुष्ट दोनों की पगमके कपड़े पहनते थे। पाइरन ब्रम पुस्तकमें भी पगमोदिका प्रसङ्ग है। भारतको माधोन पगमके वाणिज्यका कथा बहुतसे लोग स्मरण करते हैं।

पगमी (फा० वि०) लोममध्यस्थाय, जनता बना हुआ। पगमीना (फा० पु०) १ पगम, २ पगमका बना हुआ कपड़ा या चादर आदि।

पगम्य (सं० त्रि०) पगमिद पगमि रित या पगम्य। १ पगम्यन्त्रि। २ पगमिदकर।

पग (सं० पु०) पवित्रविषय समे पगमोति, दगःकु (अर्धे एमि कर्मणिगोति। उग, १२६) वा पगमति पगमति पागमस्तार्था दित्वादिता, पगःकु। अतुपद और लाङ्गानिगिष्ट अनुविशेष।

भाषातन्त्रमें कथादने इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है, - 'लोमरत्नांशुवर्षे पगमो' लोम और लाङ्गानिगिष्ट अतुपकी पग कहते हैं। चमरकोपमें पगमिद स्थानमें इन सब पगमोका उदोप है, सिद्ध, व्याघ्र, तारु, धराक, कपि, भस्मक, बकु, मडिप, मृगाल, बिहान,

• And we have indirect evidence from various quarters to show the prevalence of a similar custom in the East generally, in early times. 'Bag, Cyclo. Art & Sc. Vol. V. p. 997

गीघा, ग्रावित्, हरिष, क्षायमार, रुह, न्यह, रहु, गम्बर, रोहिष, गोकर्ण, ध्रुव, एण, ऋष, रोहित, चमर, गन्धर्व, गरभ, राम, खर, गवय, शय, ऋहाय, गो, चद्र, क्षाय, मेघ, खर, हन्ती और घाघ । पशुके दो भेद देखनेमें आते हैं, याम्य पशु और दम्य पशु । इनमें से गो, चवि, चत्र, चश्र और चश्रतर तथा गदंभ और गैडोनवी ये सात याम्य पशु तथा मरिष, खानर, ऋष, मरीस्य, रुह, ध्रुव और खग ये सात दम्य पशु हैं ।

आगादिमें पशुपदका प्रयोग हुआ करता है ।

“बहो वा यदि वा मेघरागे वा यदि वा हवः ।

पशुस्थाने नियुक्तानां पशुपदयोगिष्यते ॥”

(ऋषार्य)

उष्ट्र, मेघ, क्षाय और चश्र ये सब पशु स्थानमें नियुक्त होते हैं, इस कारण इन्हें पशु कहते हैं । वैद्यकके मतसे पशु भृगुय और जाङ्गल दो प्रकारका है । इन सब पशुओंके अंशका गुण मात्र मध्यमें देखो । यवैध भावने पशुहिंसा नहीं करनी चाहिये । जो यवैधरूपसे पशुका हनन करते हैं, वे सब पशुके रोम मंथ्यानुसार घोर नरकमें बांध कारते हैं ।

“यद्येव च नरके चोरे दिन नि पशुगोमयिः ।

समिपानि दुराचारो वो हनयन्निषा ना पशूः ॥

(गृह्यसूत्र १५०-४०)

विधिवृत्त पशुहिंसा दौषण्य नहीं है । शिशु-तत्त्वमें सीमासित हुआ है, कि यैधहिंसाजनित किमो प्रकारका पाप नहीं होता । किन्तु मज्जितस्वकौमुदोर्म वाचस्पतिमित्रने लिखा है, कि यैधपशुहिंसा में भी पाप है । इस अंगके ऐसा बचन है, “वा हिंसात् यैधुनामि भूतमात्रको हिंसा न करे, यह सामान्य विधि है । ‘अग्निगोमीयं पशुमांशमेतं’ यन्नि योमयज्ञमें पशुको हिंसा करे मज्जते है, यह विशेष विधि है । इस विशेष विधि द्वारा सामान्य विधिका अङ्कन हुआ ; यद्योत यैधहिंसा में कोई दोष नहीं । अग्न्यन्त और सोमासकीका भी एही मत है । किन्तु वाचस्पतिमित्रने विचार करके कहा है, कि यह सामान्य और विशेष विधि नहीं है । छे दोनो स्वतन्त्र विषय हैं । ‘वा हिंसात् यैधुनामि’ इस विधि द्वारा हिंसा मात्र ही निषेध है और हिंसा अनर्थ-

करो है इस बचनसे यह भी समझा गया । ‘अग्निगोमीयं पशुमांशमेतं’ यन्नि योमयज्ञमें पशुहनन विधि है, यह पशुहनन यज्ञका उपकारक है । यज्ञमें पशुको हिंसा करनेसे यज्ञका उपकार होता है, किन्तु इसमें कोई पाप नहीं होता, ऐसा नहीं समझा जाता है । वे हिंसा में पशुहननप्रत्य पाप भी होता है और यह सम्पूर्ण होने पर पुण्य भी होता है । इसीसे धार्मिकोंके पशुहनन करनेसे नरक और यज्ञपूर्ण होनेसे स्वर्ग ये दोनों ही फल प्राप्त होते हैं । यही वाचस्पति मित्रका मत है । विशेष विधान वैध-हिंसा मध्यमें देखो ।

पशुओंके अधिष्ठात्री देवताका विषय इस प्रकार लिखा है,—सिंहके अधिष्ठात्री देवता दुर्गा, गरभके प्रजापति, एषके वायु, मेघके चन्द्रमा, गमकके लक्ष्मण, मरुह, क्षायमारके स्वर्ग, हरि, गामिके शतक्रतु, गवयके समस्त भुवन, गदंभके चन्द्रमङ्गल, गमके गणेश्वर विष्णु, चश्रके आदित्य और क्षायमने अधिष्ठात्री देवता यमल हैं । (मत्स्यसूक्तमन्त्र और पटल)

देवताके समोप पशु-जलि देनेमें लक्षणान्वित पशु, को बलि देना होता है । क्षायपशुको बलि देनेमें ब्राह्मणका अंश वर्ष क्षायन, सवित्यका रत्न और अंश, चैत्रका गौर और शुद्धका नानावर्ण-विभिन्न क्षाय को प्रशस्त है ।

“श्वेतं चरुं चाम्रं चैव ब्राह्मणस्य विदितम् ।

रक्तं येनैव ध्रुवैश्च वैश्वदेव गौरमवध ॥

नावावर्णं हि क्षायस्य ध्रुवैश्चाम्रमवधम् ॥” (योनिनीयम्)

२ प्रमथ । ३ देव । ४ प्राचिमात्र । ५ पागल । ६

यज्ञ । ७ मंसारिणीकी वात्सा । ८ यज्ञ-उद्धरण । ९ माघकीके तीन भावोंमेंसे प्रथम भाव । पशुमार देवो ।

मत्स्यवृत्तमन्त्रमें लिखा है, कि जो प्रतिदिन दुर्गा-पूजा, विष्णु पूजा और गिरपूजाका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें पशु कहते हैं । १० दमन ।

पशुकर्म (मं० स्त्री०) पशुक्रिया, यज्ञ आदिमें पशुका यनिदास ।

पशुकल्प (मं० पुं०) पशुः यज्ञादपशुः कल्पो विधानम् । यज्ञादिमें विहित पशुके उपकरणआदि और मंस्तारादि कर्म ।

पशुका (मं० स्त्री०) १ सुद पशु । २ शिखरभेद, पशु प्रकारकी हिरन ।

पशुकांम (स० त्रि०) गोमेयादि पानिके प्रमिलायो ।
 पशुक्रिया (स० स्त्री०) पशोरिव क्रिया कार्य । मोक्षण ।
 पशुगन्धा (स० स्त्री०) पशुगन्धा ।
 पशुगायत्री (स० स्त्री०) पशु कर्णज्या गायत्री । तन्त्र-
 को रीतिसे मन्त्रिदान करनेमें एक मन्त्र जिसका मन्त्र-
 पशुके काममें उच्चारण किया जाता है । मन्त्र यह है—
 “पशुगायत्रि विष्टे सिन्दूराय धीमहि तन्नः पशुः प्रचोदयात्”
 (दुर्गासप्तशती)

पशुघ्न (स० त्रि०) पशुं हन्ति घ्न-क । पशुघातक ।
 पशुचर्या (स० स्त्री०) पशूनां चर्या, याचरण । १
 विष्णुचर । २ पशुके समान विषेकडोंमें याचरण,
 ज्ञानवर्धनकी सी चाल ।

पशुचिन्त (स० त्रि०) यज्ञाग्निवत् पशुचयनकारी ।
 पशुतन्त्र (स० स्त्री०) पशूनां तन्त्र । १ पशुके उद्देश्यसे
 एक जातिकी पशुपद्धति । २ पशुधन । ३ पशुतन्त्र,
 पशुत्व ।

पशुता (स० स्त्री०) पशोर्भावः, पशु-तन्त्र, तन्त्रः टाप ।
 १ पशुका भाव । २ मूलनाम और चौदह, ज्ञानवर्धन ।

पशुतत्त्व (स० त्रि०) पशुचर्याके लक्षण ।

पशुत्व (स० पु०) पशुका भाव, ज्ञानवर्धन ।

पशुट (स० त्रि०) पशुं टटति टा-क । पशुटानां ।

पशुटा (स० स्त्री०) भूमिको पशुचरी एक मातृका-
 देवी ।

पशुदेवता (स० स्त्री०) १ पशुचर्याके पञ्चिडात्री देवता । २
 पशुदेवदेव देवताविशेष । जिस जिस उद्देश्यसे पशुचर्या दो
 जाती है, वही वही देवता पशुदेवता कहलाते हैं ।

पशुधर्म (स० पु०) पशूनामिव यष्टेष्टमेषुनादिक्रमो
 धर्मः । यष्टेष्ट मेषनादि सम्पादक पशुतुल्यधर्म ।

“अथ द्विर्दिष्टिः पशुधर्मो विप्रदितः ।

पशुधर्मायमि प्रोक्तः वेदे राज्यं प्रशंसति ॥”

(मनु १।६५)

पशुधर्म द्विज और पण्डितोंके लिये निम्नमोय है ।
 राजा वैष्णव शासनकालमें यह शासन समाजमें प्रव-
 र्त्तित हुआ है । शास्त्रमें पशुधर्मको विद्वधर्म बत-
 लाया है । दिमागिसे मध्य विधवा पशुधर्म निःसन्तान
 भारी पुत्रके लिये स्त्रीको भिक्षा अन्य पुरुषके साथ निषे-

जिता नहीं हो सकती । कारण जो उद्देश्य-ऐसे धर्ममें
 नियुक्त करते हैं, वे निःसन्तान-धर्मका उद्देश्य
 करते हैं । विवाहके सम्वादिमें ऐसा नहीं किया है कि,
 ‘एकही स्त्रीमें पशुधर्मका नियोग हो सकता है’ और
 विवाहमन्त्रविशेष शास्त्रमें ऐसे विधि भी नहीं कि वि-
 वाहका पुनर्विवाह हो सकता है । यही भगवान्
 मनुने पशुधर्म कहा गया है । (मनु १।६४-६५)

पशुनाथ (स० पु०) पशूनां नाथः १ तन्त्र । १ शिव । २
 पशुधर्मो २ सिद्ध ।

पशुप (स० त्रि०) पशुन् पति पा-क । १ पशुपालक ।
 २ पशुधर्मका पति ।

पशुपताम्ब (स० पु०) महादेवका श्रुलाहा ।

पशुपति (स० पु०) पशूनां स्थावरजगन्माता पतिः ।
 १ शिव, महादेव । २ महादेवका पशुपति नाम पड़ने का
 कारण इस प्रकार लिखा है ।

“ब्रह्माद्याः स्थावरास्तथा पशवः परिकीर्तिताः ।

तेषां पतिर्महादेवः स्युतः पशुपतिः ध्रुवो ॥”

(विष्णुसप्तशती)

ब्रह्मादि लोकार्थावर पर्यन्त सभी पशु कहलाते
 हैं । महादेव इन सब पशुधर्मोंके पति हैं, इसीसे महा-
 देवका पशुपति नाम पड़ा है । बराहपुराणमें लिखा
 है,—

“महं सर्वविद्यानां पतिरायः ॐ नमः ।

अथैवै पतिमावेन पशुधर्मो व्यवहितः ॥

अतः पशुपतिर्नाम तं लोके उपातिमेषपतिः ॥”

(बराहपुराण)

शिवजी कहते हैं, कि मैं हूँ सब विद्याके आदि और
 पति हूँ तथा पशुके मध्य पतिभावमें व्यवहित होता हूँ,
 इसीसे लोग मुझे ‘पशुपति’ कहते हैं । ननु लोग-पशुपति
 दर्शनके मतसे पशुपति महादेव हो परमेश्वर हैं ।
 सर्वधर्मनशर्कमें लिखा है, कि जोवमात्र ही पशुपति
 वाच्य है । जोवमात्र पशुपति होनेके कारण पशुपति
 ही परमेश्वर कहलाते हैं । इस दर्शनका मत यह है,
 कि कोई काम करनेमें जिस प्रकार हम कीर्तनीको हाथ
 परेको सहायता देनेमें पड़ती है, उसी प्रकार पशुपति
 परमेश्वरमें बिना किसी वस्तुकी सहायताके ही जगत्का

पदार्थोंका निर्माण किया है। हम लोगोंने जो सब काम किया जाता है, उसका भी कारण वही पशुपति है। पतः उक्ते समस्त कार्योंका मूल कारण यह सन्ती है। विशेष विवरण प्राप्त करने देखो।

गोवर्धनके मतमें भी पशुपति-शिव ही परमेश्वर हैं और जीवतम पशुपदवाच्य। किन्तु नकुलीगने पाशुपत-दृग्निके मतानुसार महादेवके कामादिकी निरपेक्ष-कृत स्व-भस्म्य वतलाया है। गोवर्धन यह मत स्वीकार नहीं करते। यह मतने जिन स्थितियोंका काम किया है, परमेश्वर शिव उन्हीं वंसा जो फल देते हैं, यह युक्तिनिष्ठ है। इन दर्शनमें पशुपति और पाशुपति के पदार्थोंका तीन प्रकारका बतलाया है। पति पदार्थ भगवान् शिव हैं और ये भी हैं जिन्होंने शिवत्वपद प्राप्त किया है। पशु शब्दमें जीवात्माका बोध होता है। यह जीवात्मा मनुष्य, चैत्रादि पदवाच्य, देहादिभिन्ना, सर्वव्यापक, निरय, अपर्याय्य, दुर्ज्ञेय और कर्त्तात्विक है। यह पशुपदार्थ भी फिर तीन प्रकारका है, विद्यामाकल, प्रत्यक्षकल और अकल। एकमात्र मनस्वरूप पाशुपत जीवकी विद्यामाकल, मल और कामरूप पाशुपतयुक्तको प्रत्यक्षकल तथा, वरम और माया इस पाशुपतयुक्तकी अकल कहते हैं। इनके मध्य समाश्रयण और अ-समाश्रयण भेदसे विद्यामाकल जीव भी दो प्रकारका है। इनमेंसे समाश्रयण विद्यामाकल जीवकी परमेश्वर अनुपपन्नत्वक अनन्त, सृष्ट, शिरोत्तम, एकनेत्र, एकवद्र, त्रिमूर्ति, क, व्याकृत और निरुच्छो इन्होंने विद्याश्वरके पद पर तथा अ-समाश्रयणकी मन्त्रस्वरूप नियुक्त करते हैं। यह मन्त्र मात कोटि है। प्रमत्ताकल जीव भी दो प्रकारका है, एक पशुपत और अ-पशुपतयुक्त। पशुपतयुक्तकी मुक्तिपद प्राप्त होता है और अ-पशुपतयुक्तकी पूर्व एकदेह धारण का व्यवहारानुसार तिर्यक, मनुष्यादि विभिन्न योगियोंमें कथा लेना पड़ता है। (सर्वदर्शन-२)

इन दर्शनकी अन्तर्गत विवरण प्राप्त करने और सर्वदर्शन वाद-में देखो।

२ बुतायन, धम्म। ३ धीपधि, दवा। ४ निजाल-देशस्थित शिवलिङ्गभेद। यह चोटस्थान पशुपति नाम से प्रसिद्ध है।

“नेपाले च पशुपतिः केदारि परमेश्वरः।”

पशुपति-१ एक शब्दकार। ये ब्रह्मेश्वर मन्त्रपत्रमें ही शुरू होनायुक्तके वही भाई और वास्तविकीय धनत्रयके पुत्र थे। इन्होंने आद्यतत्त्व और पशुपति-पद्धति इन दो शब्दोंको रचना की।

२ स्वानियरराज्यके एक प्रचोद राजा। ये लगद विष्णवान राजा तेरमात्रके पुत्र थे। पिता और पुत्रको उल्लोचने शिवालिनिधि जाना जाता है कि ये सम्भवतः २२५-२३० ई०के मध्य जीवित थे।

३ विजयानाथामके महाप्रभवशब्दों उगधि। पशुपतिनाथ—मात-विजयत पवित्र शैवतैय, यह नेपाल-राज्यके मध्य अवस्थित है। जिन तीन शिवा या पशुपतिनाथ महादेवका मूर्ति स्थापित है, वह गिरहेश भी पशुपति कहलाता है। यहाँमें पुण्य भूमिमा वागमतो नदी निकल कर काठमाण्डू राजधानीकी पार चली गई है। पशुपतिका पार्वतीय क्षेत्र वन-रात्रिविराजित और हिन्दू तथा बौद्ध मन्दिर एवं विद्यादिसे सुशोभित है। पर्वतकी एक और धौवीकोन नदी प्रवाहित है और दूसरी और वागमतो इस पुरातन पवित्रकाटेशकी बाएँ किनारे पर छोड़ी हुई चली गई है। ठीक इसके विपरीत और वागमतोके दाहिने किनारे बुधनाथ और दानदेवका विजयान मन्दिर स्थापित है। यह स्थान पाटन राज्यके अन्तर्गत है। प्रवाद है, कि ई-सन्के पहले मन्दाट, पगोक इन पर्वत पर गुह्यगुह्यो मन्दिर देखने पाये थे। इनके बादमें मन्दिरों की चाली और बाग बागि बुध की मूर्ति प्रतिष्ठित हुई। इनकी उपपत्ति कथानि भिन्नकी हैं। पर यावज्जीवन अपना समय उनी मन्दिरमें गताया। इसकी जीवन्तकी परकाठा दिशा कर उन्हें अपने नाम पर और अपने स्वर्गमें ‘चारु-रिचि’ नामक एक विशाल की स्थापना की। मन्दिरमें बुध और तारादीकी प्रतिष्ठा निशोदित करनेसे ऐसा मान्य पड़ता है, कि एक समय बौद्धभाव यहाँ पूर्ण प्रभावे प्रतिभात था। पशुपतिके वर्णनके उत्तर दानदेवमन्दिरमें पादबुधकी मूर्ति प्रतिष्ठित है। निवारराज धर्मदत्तने सबसे पहले पशुपतिका महादेवमन्दिर बनवाया। भद्रिहारिका विवरण नेपाळ, काठमाण्डू और पाटन प्रदेशमें देखो।

विष्णुस्मरण, वेदार्थाय धीर, यदरोमाय गिववेत्तु
माहात्म्य प्रेमा ये, निधानका पणुनाय भो वामे, ही
मर्त्य पूजित है। प्रति यपं बहुमंथक लोग दस देव-
मूर्त्ति के दायन करने प्राति है।

वारसतो तोरवर्त्ती प्राचोन दिवपाटन नगरमें पय-
वतिहा मन्दिरं प्रतिष्ठित है। यमो देवपाटनका पूर्व-
मोर्ध्य जाता रहा, अधिकांश स्थान टूट फूट गया है।
धाठमण्डू नगरमें ३३ सोन उत्तर-पूर्वमें मन्दिर अवस्थित
है। वर्त्तमान मन्दिर खितल भोर ५० फूट ऊंचा है।

प्रवाद है, कि रातो गङ्गादेवोंने ७०५ ने.सं० (१८८५ ई०) में इस मन्दिरका संस्कार किया। मन्दिर-
के चार द्वार हैं और चारों ओर घेरे गए हैं। गर्भ-
गृह में मध्यस्थल में प्रसन्ननिमित्त महादेवकी मूर्ति है।
मूर्ति की जंघाईं शी फुट है और इसके चार मुख तथा
पाठ भुजाए हैं। दाहिनी हाथमें चार रुद्राक्ष माला
पर प्रत्येक बाएँ हाथमें कमण्डलु है। मयूरा और
उदयगिरिमें सुतनयको इसी प्रकारकी दो मूर्तियाँ
देखी जाती हैं। पूजाके पहले देवमूर्ति के माथेमें खण्ड-
पत्तलधार उत्तर दिशे जाती हैं। देवमन्दिर संतान करने
शिलातिथियाँ राजा और गङ्गास्थ व्यक्तिगो से प्रदत्त
अभ्युदिका उल्लेख है।

महाभारत पाण्डिपर्वमें लिखा है कि पञ्चनने
गोहर्षसौर्यमें पशुपतिनाथ को दर्शन किये थे।

पद्मपत्रन (सं. ६००) पद्मप्रियं पत्रनं सुदृग्गताशय
रामस्तिष्ठानत्वेनाश्रयस्य, पत्र. १ कौवर्त्तमुद्रक, केवटो
मोया ।

पशुपा (स० स्तो०) पशु-प-क्षिप् । १ ग प, स्वा न । २
पशु पक्षि ।

पशुपाल (मं० त्रि०) पशुपाल इति पालि-पशु ।
पशुपालो पालनेवान्, अत्र भुक्ति मे कर पशुपालो
पालना द्यो ।

“अक्षयं च तत्र बालश्च परिवर्त्तता निराकृतिः ।

मङ्गलैः परिहितेषु गणैः यन्त्रैः एव च ॥”

(मनु ३।१५४)

यदि ब्राह्मण, जीविकाके लिये पशुपालन करे, तो उसे दृश्य कर्ष्यमें भोजन न करावे । २ ईमान कोष-

लित देगभेद. देगानक्षेत्रमें एक देश जहाँके निवासो
एगुपानन द्वारा हो घपना निर्वाह करते हैं।

(५६८५०, ५५५५५)

पशुपाननक (सं० वि०) पशुपानशक्ति पशुपाननकम् ।
पशुपाननकशक्तिः पशुपाननकशक्तिः ।

पशुपाग (नं० पु०) पशूनां पागः । पशुका पाश-वन्धनं ।
 पशु-पौंसा वन्धनम् । २ पशुद्वयं शोचका वन्धनम् । शोचद्वयम्-
 र्त्तं पशु पशुद्वयो शोचः वतनाया है । मन्त्र-कर्म, माया
 और रोधगति-के भेदसे पाग चार प्रकारका है । स्वामा-
 विश्व पशु-चित्तको मल जड़ते हैं । जिस प्रकार तण्डुल तुप-
 से पाच्छादित रहता है, उसी प्रकार वह मल, दूध,
 और क्षिपागति को पाच्छादन किये हुए हैं । धर्मो
 धर्मको कर्म, प्रलयावस्थामें जिवन्ते सभी कार्य साध-
 नो जाते हैं परं फिरने सृष्टिके समय जिवन्ते सबसे
 शीते हैं उसीको माया तथा प्रवृत्तिरोधावत जो पाग
 है, उसे रोधगति कहते हैं । पशुद्वय शोच इन्हीं पाग-
 प्रकारों वन्धनों से बन्धे हुए हैं ।

(સર્વેશ્વરનાં ઇશ્વરપૂજન • સૌંદર્ય)

पशुपातक (स० पु०) पशुनामित्र 'पातो' वस्थन' यत्,
ततः क्व० । रतिवन्धविशेष, एक रतिवन्धका नाम ।

“सिन्धुमात्रतपुर्वामी हावादाब्दः पदद्वयं ।

कश्चिन्नेन रमेन् कामी वन्धोऽयं पशुरासहः ॥” (रत्निमं०)

पशुप्रमद्वेन—किरातवर्गोय एक राजा। इहानि १२२४
कलियुगमे पशुपतके मन्दिरका जीर्ण-संस्कार किय।
पशुप्ररथ (चं० लो०) पशुना प्रेरण। गवादिना चालन।
इसका पर्याय वदज है।

पशुधर्म्य (स० पु०) । यज्ञविधिः । २ पशुधर्म्यम् ।

पशवन्धक (सं० पु०) पशुओं का बांधने का द्रव्य, डोरी
रस्सी ।

पद्मभक्त^१ (मं० पु०) पद्मनाभा भारती । मित्र, मङ्गलदेव ।

पराभाव (सं. पुं०) वयोभावं ६-तत् । १. परात् । २. साधनत्वात् ।
 कौमन्त्रिहिका प्रकार विनियोगः । इतोको साधनाकारः ।
 प्रथमं चन्द्रवतलायै । ३. चन्द्रवामने निष्ठा है, नि माव
 तोम प्रकारका है, दिश्य, वीर, चोर पत्न, । इन तीनोंमें
 भावोंमें दिश्यभाव उत्तम, कौमन्त्रि सध्यम चोर वय भाव

पशुमार माना गया है। जो इस विविध भावका प्रवर्तन करने हैं, उनके गुण, मन्त्र पोर देवता पृथक् पृथक् रूपमें निर्णित हैं। मन्त्रविधि करनेमें भावका प्रवर्तन करना निम्नलिखित प्रयोजनो है। द्वाविंश बह्विध उप, होम पोर कायक्रियादि द्वारा उपासना करनेमें प्रवृत्त होने पर भी एकमात्र उच्छ्रित भावान्मयन व्यतीत मन्त्र-विधि को ही नहीं सकते। दिव्य पशुमा वोरभाववश होत व्यक्तिको बहुत जल्द मन्त्रविधि होती है। पशु-भावमें निश्चिन्ता पनायास नहीं होता। जो निरन्तर वेदाभ्यास पोर वेदाध्ययन को करता करते हैं तथा जिन्होंने मन्त्र प्रकाशको निम्ना, विंश, पानस्य, लोम मोह, काम, क्रोध, मद पोर मात्सर्यका परिच्छेद किया है, वे ही पशुभावमें निश्चिन्ता कर सकते हैं। जिन्होंने पशुने दिव्यभाव, याद वोरभाव पोर धर्ममें पशुभाव इन तीनों भावोंका विशेषत्व समझा है तथा पञ्चतत्त्वायका भाव समझ कर दिव्याचारमें ही रात दिन मन लगाया है वे ही मात्सर्यके मन्त्र अष्ट हैं पोर पश्चिमादि षट्पिध एतद्वर्गमें समन्वित हो कर शिवकी तरह जगत्में विचार कर सकते हैं। निरन्तर शुद्धिभाषण रश्मिमें उनका पानन्दमय स्थित भाषणे पाप धान-धारपादिमें निमग्न होता है। इस कारण जिसको एक निर्जन प्रदेशमें निःशब्द रहना मिश्रित होता है।

कुलिकान्तर्गत मन्त्रपटलमें लिखा है, कि तीनों भावोंके साथ पशुभाव हो निकट है। जो पशुभावमें पाराधना करते हैं, वे केवल पशु को तरह होते हैं। जो रात्रिकालमें शयन स्वप्न वा मन्त्रका उप नहीं करते, मन्त्रे यन्त्रिणां न शय, तन्मन्त्रे मन्त्रे, मन्त्रमें पञ्चबुद्धि, बुद्धिधर्म पञ्चिन्ता, प्रतिमां शिलाप्राण, पोर देवमूर्तमें भेदबुद्धि यत्मान है; जो निरानिदने देवताको पूजा, पञ्चाननगतः निरन्तर स्नान पोर मन्त्रोंको निम्ना करते हैं, वे ही पशुभावान्तर्गत पशुमाने कहलाते हैं।

पशुभावान्तर्गतोंमें एतमें रात, दोपहर पशुमा गामको देवीका पूजन करना कर्त्तव्य नहीं है। ऋतु-कालमें योगमन्त्र, परंपरामें मन्त्रादि त्याग पोर पनाया इसके वेदमें जिन श्रवका विधान है, उन्हें मन्त्रा

पशुमान करना कर्त्तव्य है। इन तन्त्रमें भी दिव्य पोर वीरभाव ही अष्ट तत्त्वनाया गया है। पशु-भाव निकट है पोर इन भावमें सभी मन्त्र केवल पञ्चर-रूपों ही होते हैं यथात् पशुभावमें जो उपासना करते हैं, उनके मन्त्रको तेजो विनकुल सुख ही जानी है। यथाप्य शोधकोंको चाहिये कि वे कभी भी वोरभावका त्याग कर पशुभावमें उपासना न करें।

(निम्नतन्त्र १ पटल)

ब्रह्मामन्त्रके द्वितीय पटलमें लिखा है, कि पशु-भाव-विन मानव यदि निम्नश्राद्ध, मन्त्रा, पूजा, पिष्टतर्पण, देवताऽर्चन, वेदद्वय, गुह्य वा पात्राणां पोर देव-ता रक्षा पूजन करे, तो वे मन्त्रादि त्याग कर सकते हैं।

ब्रह्मामन्त्रके कठे पटलमें दूसरी जगह लिखा है, कि पशुभावान्तर्गतोंको मन्त्राण सह्य हैं। ये चाकस्मिन् सिद्धिनाम कर श्राद्ध चक्षु मदा पशु श्राद्धमें निवेदित गन्धके उत्तर बैठ कर बैठक नगर जाते हैं। जो साधक व्यक्ति क्षमान्त्रमें तीनों भावोंका प्रवर्तन करने शक्य, धन, मान, विद्या पोर मोक्ष इनमें जिन किमोंको इच्छा करे, उन्हें वही प्राप्त हो जाता है।

विष्णुनामस्तोत्रके ५१वें पटलमें लिखा है कि शम्भुने ही कर १६ वर्ष तक पशुभाव, बाद ५० वर्ष तक वीर-भाव, पोर पीछे दिव्यभाव होता है। इन तीनों भावोंका ऐश्वर्यज्ञान ही कुलाचार है। मनुष्य कुलाचार द्वारा ही देवत्व होते हैं। मानसिक धर्म ही भाव है शिवका पश्चात्तम मन द्वारा ही करना होता है।

श्रान्तोपिभी तन्त्रमें मातृवशा विष्णु विधान देखो।

पशुमा (मं० वि०) पशु-मनुष्य । पशु-मन्त्राध्यय, पशु-युक्त ।

पशुमार (मं० पशु०) पशुमिव सारथिवा पशुमन् । पशु-को तरह चिंता। ऐसे श्रममें पशुमन् प्रत्यक्ष होनेसे 'सारथि' का पशुप्रयोग होता है। मन्त्रतन्त्रमें पशु-प्रयोगके साथ ही प्रयोग दृष्टा करता है। यथा 'पशु-मार' सारथि, पशुमारमसारथि' इत्यादि।

पशुमारक (मं० वि०) पशुवधयुक्त ।

विष्णुधर, वेदाराध और बदरीनाथ गिवदेव का महात्म्य ने मा है, नेपालका पञ्चनाथ भी वैसे ही सर्वत्र पूजित हैं। प्रति वर्ष बहुमंख्यक लोग इस देव-मूर्ति के दर्शन करने आते हैं।

चारभूतों तोरवर्ती प्राचीन देवपाटन नगरमें पञ्च-पति का मन्दिर प्रतिष्ठित है। यही देवपाटनका पूर्व-मोक्ष्य जाता रहा, पश्चिम स्थान टूट फूट गया है। काठमाण्डू नगरसे ३३ मील उत्तर-पूर्वमें मन्दिर अवस्थित है। वसन्मान मन्दिर द्वितल और ५० फुट ऊँचा है।

प्रवाद है, कि राजा गङ्गादेवोंने ८०५ ने.सं. (१८८१ ई.)में इस मन्दिरका मरम्मत किया। मन्दिरके चार द्वार हैं और चारों ओर घर्मे गाला है। गर्भ-गृहके मध्यमणमें प्रस्तरनिर्मित महादेवकी मूर्ति है। मूर्ति की ऊँचाई ३३ फुट है और इनके चार मुख तथा पाठ भुजाएँ हैं। दाहिने हाथमें चार रुद्राक्ष माला पर प्रत्येक बाएँ हाथमें कमण्डलु है। मधुरा और वदयगिरिने गुप्तमयको इसी प्रकारको दो मूर्तियाँ दियो जाती हैं। पूजाके पक्षी देवमूर्ति के माथसे स्वर्ण-पल्लवार उतार दिये जाते हैं। देवमन्दिर संलग्न योक्त गिर्जाविधियाँ राजा और पञ्चायथ व्यक्तिगोसे प्रदत्त भूम्यादिका उत्पन्न है।

महाभारत पादिपर्वमें लिखा है कि यक्षुनने गाहनतोषमें पञ्चपतिनाथके दर्शन किये थे।

पञ्चपञ्चन (सं० स्त्री०) पञ्चप्रियं पञ्चनं सुदृष्टलाभय उपतिष्ठानन्तेनाख्यस्य, पञ्च. केवर्त्तुमुत्तम, केवश्री मोक्षा ।

पञ्चपा (सं० स्त्री०) पञ्च-प-क्रि. १ गं प. स्वात् । २ पञ्चपालक ।

पञ्चपाल (सं० स्त्री०) पञ्चन् पालयति पालि-पञ्च । १ पञ्चभोंको पालनेवाला, जो वृत्ति ने कर पञ्चभोंको पालना हो ।

“मङ्गी च पञ्चपालय परिवेत्ता निपङ्क्तिः ।

मङ्गचेष्ट परिचितिय मङ्गमन्तर एव च ॥”

(मनु ११/५४)

यदि ब्राह्मण जीविकाके निम्ने पञ्चपालन करे, तो उसे हय कश्यमें भोजन न करावे । २ ईशान कीर्ण-

स्थित देयमेत, ईशानकीर्णमें एक देय जहाँकि निवासी पञ्चपालन द्वारा ही अपना निर्वाह करते हैं।

(रत्नसं० १/११९)

पञ्चपालक (सं० स्त्री०) पञ्च पालयति पञ्च-पाल-पञ्चन् ।

पञ्चपालनकर्ता, पञ्चपालनवाला ।

पञ्चपाय (सं० पुं०) पञ्चनां पायः । पञ्चका पाय-अथ. पञ्चभोंका वस्त्रन । २ पञ्चरूप जीवका वस्त्रन । मेवदर्शनमें पञ्च शब्द हो जीव-वत नाया है । मन, कर्म, साया और रोधयगिके भेदमें पाय चार प्रकारका है । श्यामा-विश्व पञ्चविकी मल कहते हैं। जिस प्रकार तण्डुल तुप-से चाच्छादित रहता है, उसी प्रकार सङ्घ-मल हृक्-ओर क्रियागति हो चाच्छादन किये हुए हैं । धर्मा-धर्मको कर्म, प्रलयावस्थामें जिवमें सभी कार्य लान हो आते हैं और फिरने छटिते समय जिवसे उत्पन्न होने हैं उसीको साया तथा पुन्यतिरोधावयव जो पाय है, उसे रोधयगिक कहते हैं । पञ्चरूप जीव इन्हीं चार प्रकारके वस्त्रनोंसे वस्त्रे हुए हैं ।

(सर्वदर्शनसंग्रहसं० दीर्घदर्शन)

पञ्चपायक (सं० पुं०) पञ्चनामिक पायो वस्त्रनं यत्र, ततः कप. । रतिवत्सवियेय, एक रतिवत्सका नाम ।

“सिमानतूहीणी ररागादः पदद्वयं ।

कान्तिरेन रमेर कामी वन्धोऽयं पञ्चपायकः ॥” (रतिगं०)

पञ्चपुण्यदेव—किरातवंशीय एक राजा । इन्होंने १२३४ कलिबुगमें पञ्चपति के मन्दिरका जीर्ण-मरम्मत किया । पञ्चप्रेरण (सं० स्त्री०) पञ्चगुणां प्रेरण । गवादिका चालन । इयका पश्याय उदज है ।

पञ्चपञ्च (सं० पुं०) १ यष्टविधिय । २ पञ्चवस्त्रन ।

पञ्चपञ्चक (सं० पुं०) पञ्चभोंका बांधनेका द्रव्य, डोरी, रस्सी ।

पञ्चभक्त (सं० पुं०) पञ्चभूत भक्ता । गिव, महादेव ।

पञ्चभाव (सं० पुं०) पञ्चभोवः ५-तत् । १ पञ्चत्व । २ साधकों की मन्त्रसिद्धिका प्रकार विग्रह । इसीको साधनाका प्रथम अङ्ग वतनाया है । रुद्रावाममें लिखा है कि भाव तीन प्रकारका है, दिव्य, और और पञ्च । इन तीनों भावोंमें दिव्यभाव उत्तम, औरभाव मध्यम और पञ्चभाव

पशुमाना गया है। जो इस विधि भावका चयनस्वन करते हैं, उनके मुख, मन्त्र और देवता प्रत्यक्ष, प्रत्यक्ष रूपमें निर्णयित हैं। मन्त्रमिष्ट करनेमें भावका चयनस्वन करना निम्नलिखित प्रयोजनोपयोग है। क्योंकि बहुविध ज्ञाप, होम और कायिकोपादि द्वारा उपासना करनेमें प्रवृत्त होते पर भी एकमात्र उद्भूत भावान्स्वन व्यतीत मन्त्र-मिष्टि को ही नहीं मकतो। दिव्य पशुवा वीरभाववृत्तोंत व्यक्तिको बहुत जलद मन्त्रमिष्टि होती है। पशु-भावमें मिष्टिनाम चयनात्मक नहीं होता। जो निरन्तर वेदाभ्यास और वेदाध्ययन को विवक्षा करते हैं तथा जिन्होंने सर्व प्रकारको निन्दा, विमर्श, चान्द्र, मोम, मोह, काम, क्रोध, मद्र और मायिकता परिशोध किया है, वे ही पशुभावमें मिष्टिनाम कर सकते हैं। जिन्होंने पशुमें दिव्यभाव, बाद वीरभाव और चकारमें पशुभाव इन तीनों भावोंका विमोचक समझा है तथा पञ्चतत्त्वात्मका भाव समझ कर दिव्याचारमें हो रात दिन मन लगाया है वे ही मायोके मध्य स्थित हैं और पशुमादि पशुविषय प्रवृत्तिमें समन्वित हो कर शिवकी तरह जगत्तमें विचार कर सकते हैं। निरन्तर शुद्धिभावसे रक्षणमें उनका चान्द्रमय चित्त चापसे चाप ध्यान-धार्यादिमें निमग्न होता है। इस कारण किमो एक निर्जन प्रदेशमें निमग्न हो उनका मिष्टिनाम होता है।

कुजिज्ञानमें समस्त पशुत्वमें लिखा है, कि तीनों भावोंके मध्य पशुभाव को निज्जट है। जो पशुभावमें पाराधना करते हैं, वे केवल पशुको तरह होते हैं। जो रात्रिकालमें यज्ञ स्पर्श वा मन्त्रका जप नहीं करते, उनके चित्तानामें मन्त्र, तन्त्रमें मन्त्र, मन्त्रमें पञ्चरत्न, मुद्रादिमें पवित्रात्म, प्रतिमाओं मित्राज्ञान, और देवपूजामें भेदबुद्धि यत्नामान है; जो निरामिषमें देवताकी पूजा, पञ्चाननगतः निरन्तर स्नान और सर्वोंको निन्दा करते हैं, वे ही पशुभावान्स्वो अधम लक्षणार्थ हैं।

पशुभावान्स्वोके पशुमें रात, दोपहर पशुना गामको देवीका पूजन करना कर्त्तव्य नहीं है। चतुःकालमें योगमन्त्र, परंपर्यात्म मांवादि स्नान और पशुवा हमके वस्त्रोंमें जिन सबका विधान है, सभी सबका

पशुमान करना कर्त्तव्य है। इन तन्त्रमें भी दिव्य और वीरभाव की श्रुति स्तुत्याया गया है। पशु-भाव निज्जट है और इस भावमें सभी मन्त्र केवल पञ्चर-रूपो हो होते हैं यथात् पशुभावमें जो उपासना करते हैं, उनके मन्त्रको तेजो विलकुल लुप्त हो जाती है। अतएव मोक्षार्थको चाहिये कि वे कभी भी वीरभावका त्याग कर पशुभावमें उपासना न करें।

(निरन्तर १ पद)

कुर्यात्मानके द्वितीय पटलमें लिखा है, कि पशु-भाव-स्मिन् मानव यदि निरन्तर, मन्त्र, पूजा, विष्टतर्पण, देवतादयः, वीरदयः, मुख वा पादाभ्यास और देव-ताओंका पूजन करे, तो वे महाभिष्टि नाम कर सकते हैं।

कुर्यात्मानके तृतीय पटलमें दूसरी जगह लिखा है, कि पशुभावान्स्वो नारायण मह्यम् है। ये चाकस्मिन् मिष्टिनाम कर गद्गद् चक्र गद्गद् पञ्च धारमें लिये गद्गद् के जल देव कर वैकुण्ठ नगर जाते हैं। जो साधक व्यक्ति कृमान्स्वमें तीनों भावोंका चयनस्वन करके रात्र, धन, मान, विद्या और मोक्ष इनमें जिन किमोको इच्छा करे, उन्हें वही प्राप्त हो जाता है।

विष्णुनामस्तोत्रके ५१वें पटलमें लिखा है कि जगत्तमें ही कर १६ वर्ष तक पशुभाव, बाद ५० वर्ष तक वीर-भाव, और वीर दिव्यभाव होता है। इन तीनों भावोंका ऐश्वर्यज्ञान ही कुलाचार है। मनुष्य कुलाचार द्वारा हो देवत्व होता है। मानसिक धर्म ही भाव है जिसका अभ्यास मन द्वारा ही करना होता है।

प्रणेतोपि तन्त्रमें भाववत्त भिन्न विवरण देखो।

पशुमत् (मं० वि०) पशुमत्पु। पशु-मन्त्रोप, पशु-मुत्त।

पशुमार (मं० पशु०) पशुमिव मारयित्वा पशुम्। पशु-को तरह हिंसा। ऐसे पशुमें पशुम् प्रत्यय जोनिमें 'मारयति' का पशुप्रयोग होता है। मं०कृतमें पशु-प्रयोगके साथ ही प्रयोग हुआ करता है। यथा 'पशु-मार' मारयति, पशुमारमपशुमत् इत्यादि।

पशुमारक (मं० वि०) पशुवधयुक्।

“इजे च कृतमिधो रैर्दक्षितः पशुमारकैः ।

देवान् विवृन् भूगपतीन् नानाकामो यथा भवान् ॥”

(भाग० ५।२०।११)

आपका तरह राजा पुण्ड्रान नाना प्रकारको काम नाभोजे घगवर्षी हो भयानक पशुमारक यज्ञका अनुष्ठान करके देवता और पितृगणोंकी अर्चना करतें हैं ।

पशुमोहनिका (सं० स्त्री०) मुहूर्तसमया मुह-व्य-ट्, स्वार्थ कन् टापि भत इत्, पशूनां मोहनिका । कटीलता, कटुवती ।

पशुयज्ञ (सं० पु०) पशुकारणको यज्ञः वा पशुना यज्ञः । पशु नामक यागभेद । पशुद्रव्य द्वारा यज्ञ करना होता है । इस यज्ञका विधान आश्वलायनश्रौत सूत्रमें उल्लिखित हुआ है ।

“कालं दर्मकृतेन सर्वत्र शोतसां गतो ।

तुभ्योमिच्छामि यथाहोमं पार्णदाकरो ॥”

(कर्मपुराण ।

पशुरक्षि (सं० पु०) गोपाल, ग्वाला ।

पशुरक्षिन् (सं० पु०) पशुरक्षा अस्तयथे इति । पशु-पालक, वह जो पशुको रक्षा करता हो ।

पशुरज्जु (सं० स्त्री०) पशुनामस्त्रादोर्नाम ग्रन्थनाथ रज्जुः । पशु ग्रन्थरज्जु पशु बांधनेको रहतो । पर्याय—दामनो, बन्धनो ।

पशुराज (सं० पु०) पशुनां राजा, ततः समासान्त टच् । (राश्ट्रसंहिता, टच् । पा ५ । ४।११) सिंह ।

पशुलब्ध (सं० पु०) एक प्राचीन देवका नाम ।

पशुवत् (सं० त्रि०) पशु इव, इवार्थे यति । पशुवत् । पशुवर्द्धन (सं० स्त्री०) पशूनां वर्द्धनं इत्यत् । यज्ञमें पशु संपुष्टताविधायक आचारभेद, यज्ञकार्यमें पशुको जिससे वृद्धि हो, वंसे आचार विशेषका नाम पशुवर्द्धन है । इसका विषय आश्वलायन गृहसूत्र (४।८।८) में लिखा है ।

पशुविद् (सं० त्रि०) पशु सवराहकारो ।

पशुमोर्ष (सं० स्त्री०) पशूनां मोर्ष इत्यत् । पशुमस्तक-पशुवपण (सं० स्त्री०) यज्ञादिमें उच्छृष्ट पशुवपण ।

पशुप (सं० त्रि०) पशुपु सौदति सद-ह-पत्वं । पशु विषयमें स्थित पशु, और-दधि प्रवृत्ति ।

पशुष्ठ (सं० त्रि०) पशुपु तिष्ठति स्था-क, ततः पत्वं । पशुके मध्य अवस्थित ।

पशुसख (सं० पु०) पशूनां सखा, इत्यत्, ततः समासान्त टच् । पशुका सखा, गृहका नामभेद ।

पशुमनि (सं० त्रि०) पशुं मनोति ददाति सन् इत् । पशुदायक ।

पशुमनाश्राय (सं० पु०) १ यज्ञादिमें हस्तश पशुको गणना । २ याज्ञसनेय संहिताका एक विभाग ।

पशुपचन (सं० स्त्री०) पशुको सौधमिका काम ।

पशुहरीतको (सं० स्त्री०) पशूनां हरीतकीव, हित कारित्वात् । आश्रातकफल, आमड़ेका फल ।

पशुहृष्य (सं० स्त्री०) पशूनां हृष्ये । पशुमान ।

पशू (हिं० पु०) पशु देखो ।

पशा (सं० पञ्च०) पशात् वेदे प्रयोदरादित्वात् साधुः ।

पशात् । वेदिक प्रयोगमें ही ऐसा पद सिद्ध हुआ करता है । आर्य प्रयोगमें कहीं कहीं अपर शब्दको जगह पशा देय होता है । यथा—

कैलाशो दिववाधैव दक्षिणं महाचलो ।

पूर्यश्वारतावेतौ ।” (मार्क० पु० ५।१।४)

पशाचर (सं० त्रि०) पशात्पगमनकारी, पीछे पीछे चलने-वाला ।

पशाच्छमण (सं० पु०) कौश्लभिमुभेद ।

पशात् (सं० पञ्च०) अपरस्मिन् अपरस्मात् अपरो वा वसति भागतो रमणोयं वा, इति अपरस्य पशमाव आतिथ प्रत्ययेऽस्तारतिविषये (पशान् । पा ५।३।११) १ पीछे, पीछे, आद । (पु०) २ प्रतोची, पश्चिम दिगा । ३ श्रेय, शान्त । ४ अधिकार ।

पशात्कर्ण (सं० पु०) कर्णका वहिर्भाग या पृष्ठदेव ।

पशात्कर्म (सं० स्त्री०) १ वेद्यकोक्त प्रलंबार्णिककार्य, वेद्यकके अनुसार वह कर्म जिसमें शरीरके बल, बर्ण और प्रसन्निकी वृद्धि हो । ऐसा कर्म प्रायः रोगकी समामि पर शरीरकी पूर्ण और प्रकृत अवस्थामें प्रतिष्ठित किया जाता है । भिन्न भिन्न रोगोंके लिये भिन्न प्रकारके पशात्कर्म होते हैं । २ पशुपति सर्मजन । ३ निवृत्तातद्धके पशुवप्योपशर जो किया जाता है, उसे पशात्कर्म

संयुक्तमें लिखा है, कि कम के तीन भेद हैं—पूर्वकर्म, प्रधानकर्म और पश्चात्कर्म । (पुष्प सूत्रपा० ५ अ०)

पश्चात्काल (स० पु०) परवर्त्तिकाल ।

पश्चात्तर (स० ति०) पश्चात्पक्षयोग ।

पश्चात्ताप (स० पु०) पश्चात् अग्रतोऽकार्यं कृते चरमे ताप । वह भ्रान्तिक दुःख या चिन्ता जो किसी अनुचित कामको करनेके उपरान्त उसके अनौचित्यका भ्राम करके पश्यता किसी उचित या आवश्यक कामको न करनेके कारण होती है, पश्चात्ताप, अफसोस, पछतावा ।

पश्चात्तापिन् (स० ति०) पश्चात्ताप पक्षवर्त्त इति ।

पश्चात्तापयुक्त, पक्षतावा करनेवाला ।

पश्चात्सदृ (स० पु०) पश्चात् भीदन्तीति सदृ किण् ।

पश्चाद्दृक्स्थित देवता ।

पश्चादक्ष (स० अर्थ०) अक्षता पश्चाद्भाग ।

पश्चादप्रवर्ग (स० वि०) पश्चात् निर्वाहित ।

पश्चादुक्ति (स० स्त्री०) पोष्टिका कथन, बादमें कहना ।

पश्चादोप (स० पु०) जयाका शेष भाग ।

पश्चाद्भाग (स० पु०) पश्चभाग ।

पश्चाद्वात (स० पु०) पश्चिम वायु ।

पश्चात्ताप (स० पु०) पश्चात् अनुताप, अफसोस, पछतावा ।

पश्चात्प्रवृत्त (स० पु०) पश्चिमकी ओर प्रवृत्त वायु ।

पश्चात्सज (स० पु०) बालकीका रोगभेद । यह कटक व्यागवाली स्यादीका दूध पीनेवाले बालकोंको होता है । इस रोगमें बालकोंको गुदामें जलन होती है, उमका, मल हरे वा पीले रंगका हो जाता है और उन्हीं बहुत तेज ऊपर पानी मगता है । यह रोग पतिकट-दात्रक है । इसमें रक्तचन्दन, अमृतमूल, श्यामालता पादिका प्रसेव और चमेलिह प्रयुक्त है ।

पश्चाई (स० ति०) पश्चात्तापवर्द्ध इति । (अरररवादे) पश्चातो वक्ष्यते । वा १११५० वार्तिक) इत्यस्य पश्चात्तापः । शिवाई, अपराई ।

पश्चाद्वा (स० ति०) पश्चदेग सम्बन्धीय ।

पश्चिम (स० ति०) पश्चाद्वा (कश्चिदि पश्चात् दिग्वा । वा १११११ वार्तिक) इत्यस्य वास्ति कीर्तया हिमम् ।

१ पश्चाद्वा । जो पश्चिमे उत्पन्न हुआ हो । २ चरम, शेष, अन्तिम । (पु०) ३ वह दिशा जिसमें सूर्य अस्त होता है, पूर्व दिशाके सामनेको दशा । पश्चोप—प्रतीचो, वादचो, पक्षक । पश्चिमदिकस्थित वायुका गुण—तैल्य, कफ, मेह, शोषक, मध्य प्राणहर, दुष्ट और शोषकारो ।

राजवचनभक्तके मतमें अग्नि, यमु, वर्ण, वन और आरोग्यवर्द्धक, कषाय, शोषण, रोचन, विगद, मधु, जलका लघुनामस्यादक, शैत्य और वैभ्रम्यकारक । फलितश्लोनिपमें मिथुन, तुला और कुम्भा रागिको पश्चिमका पति बतलाया है ।

पश्चिमघाट—दाक्षिणात्यके बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत एक पर्वतमाना । भारतके पश्चिम उपजूममें दोवार पर्वत दण्डायमान रहनेके कारण इसमें समुद्रतरङ्ग और गड्ढे बचानेके लिए तीरभूमिको सुदृढ़ कर रखा है । प्रिन्स पर्वतकी पश्चिमाभिमुखी शाखाकी शेष सीमाने में पार यह क्षमशः दक्षिणकी ओर शिवाद्दृक् शिखरके उत्तर तक फैल गई है । समुद्रतीरे की कहीं कहीं यह पर्वत सुदोर्घ और पतलु भोड़ोरी तरह दिखाई देता है । अधिकांश जगह इसकी ऊँचाई प्रायः ३०० फुट है, समुद्रतटवर्त्ती शिखर प्रायः ४००० फुट ऊँचा है । किन्तु दक्षिण सीमाने लहीं यह पर्वतमाना पूर्वघाट पर्वतमानासे मिल गई है, वहाँ कहीं कहीं इसकी ऊँचाई ७००० से ८०६० फुट दिखाई देता है ।

पूर्व और पश्चिमघाट पर्वतके मध्यस्थान पर जो त्रिकोणाकार पश्चिमकाभूमि अवस्थित है, वह स्वभावतः १००० से ३००० फुट ऊँची है । यहाँ इतनातः जो सब शिखरस्थो देखनेमें आते हैं उनकी ऊँचाई प्रायः ४००० फुट है । इनमेंसे दक्षिण-भारतका विख्यात श्राव्यनिवास जोशमिरि पर्वतस्य चोटाका मण्ड उपत्यका समुद्रतटसे ७००० फुट ऊँची है । दक्षिण छोडाविसामिखर ८०६० फुट ऊपर पश्चात्तिर उठायें बड़ा है । एतदन्तर्गत बम्बईनगरमें २० कीम दक्षिण-पूर्वमें भोरघाट नामक शिखर (२००० फुट ऊँचा) है । यही शिखरमण्ड प्राचीनकालमें समुद्रजूमसे दाक्षिणात्यमें प्रवेश करनेका

सुश्रुतमें लिखा है, कि कम के तीन भेद हैं, पूर्वकर्म, प्रधानकर्म और पश्चात्कर्म । (सुश्रुत सूत्रपाठ ५ अ०)

पश्चात्काल (स० पु०) परवर्तीकाल ।

पश्चात्तर (स० लि०) पश्चात्सम्बन्धीय ।

पश्चात्ताप (स० पु०) पश्चात् पश्चतोऽकार्यं कृते चरमे तापः । यह मानसिक दुःख या चिन्ता जो किसी अनुचित कामकी करनेके उपरान्त उसके अनौचित्यका ध्यान करके पश्चात् किसी उचित या चावश्यक कामको न करनेके कारण होती है, पश्चात्ताप, पक्षीम, पक्ष-तापः ।

पश्चात्तापिन् (स० लि०) पश्चात्ताप परत्यय रति ।

पश्चात्तापयुक्त, पक्षतावा कार्त्तिकवाक्ता ।

पश्चात्सदृ (स० पु०) पश्चात् सौदन्तीति सदृ क्रिप् ।

पश्चाद्दिकस्थित देवता ।

पश्चादृष (स० पद्य०) पक्षका पश्चाद्भाग ।

पश्चादृषवर्ग (स० लि०) पश्चात् निर्वादिता ।

पश्चादुक्ति (स० स्त्री०) पश्चात् कथन, बादमें कहना ।

पश्चादोप (स० पु०) जपका शेष भाग ।

पश्चाद्भाग (स० पु०) पश्चाद्भाग ।

पश्चाद्वात (स० पु०) पश्चिम वायु ।

पश्चात्ताप (स० पु०) पश्चात् पश्चात्ताप, पक्षनीम, पक्ष-तापः ।

पश्चात्तापित (स० पु०) पश्चिमकी ओर प्रवाहित वायु ।

पश्चात्तज (स० पु०) बालकीका रोगभेद । यह कदम ज्वरवाली बालिका दूध पीनेवाली बालिकाकी होता है । इस रोगमें बालिकाकी मुद्रामें जलन होती है, उमका, मल हरे वा पीले रंगका हो जाता है और उसके बहुत तेज ज्वर पाने लगता है । यह रोग अतिकट दायक है । इसमें रक्तचन्दन, चमत्तमूल, श्यामालता चाटिका प्रतीप और चमसेह प्रगुप्त है ।

पश्चाई (स० लि०) पश्चात्तापवर्द्ध रति (अश्वरत्नार्द्ध पश्चात्तापवर्द्धः । वा १११/५८ बर्तिका) इत्यस्य पश्चात्तापः । गिराई, अपराई ।

पश्चात्तर (स० लि०) पश्चात्त सम्बन्धीय ।

पश्चिम (स० लि०) पश्चात्तव (अमरि पश्चात्त दिग्म् । वा १११/१ बर्तिका) इत्यस्य वाक्तीकृता डिम्ब ।

१ पश्चात्तव । जो पश्चिमे उत्पन्न हुआ हो । २ चरम, शेष, अन्तिम । (पु०) ३ यह दिग्मा जिनमें सूर्य चन्द होता है, पूर्व दिग्माके नामनेको दग्मा । पश्चिम-प्रतीची, वाक्की, प्रत्यक् । पश्चिमदिक्स्थित वायुका गुण—तीक्ष्ण, कफ, भेद, शीघ्रक, मध्य प्राणहर, दुष्ट और शीघ्रकारी ।

रात्रपञ्चमभक्त मत्तमे अग्नि, वसुः, यणः, वन और चारोग्यवर्द्धक, कषाय, शीघ्रक, रोजन, विगद, लघु, जलका लघुतासम्पादक, शीघ्र और प्रेमन्थकारक । क्षिप्तज्योतिषमें मिश्रुन, तुला और कुम्भा रागिको पश्चिमका पति बतलाया है ।

पश्चिमघाट—दाक्षिणात्यके बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत एक पर्वतमाना । भारतके पश्चिम उपकूलमें दोवार द्वीपमें दण्डायमान रहनेके कारण इसमें समुद्रतरङ्ग और मल्लुसे बचानेके लिए तीरभूमिको सुदृढ़ कर रखा है । विन्ध्य पर्वतकी पश्चिमाभिमुखी गङ्गाकी शीघ्र सीमामें से कर यह सप्तमः दक्षिणकी ओर त्रिवाङ्गुद राजके उत्तर तक फैल गई है । समुद्रतीरेमें कहीं कहीं यह पर्वत खुदोर्ष और पतगुच भोक्ती की तरह दिखाई देता है । अधिकांश जगह इसकी ऊँचाई प्रायः ३०० फुट है, समुद्रतलमार्गी गिरार प्रायः ४००० फुट ऊँचा है । किन्तु दक्षिण सीमामें जहाँ यह पर्वतमाना पूर्वघाट पर्वतमानासे मिल गई है, वहाँ कहीं कहीं इसको ऊँचाई ७००० से ८०१० फुट दिखाई देता है ।

पूर्व और पश्चिमघाट पर्वतके समुद्रतल पर जो त्रिकोणाकार अधिव्याख्याभूमि समस्थित है, वह स्वभावतः १००० से १००० फुट ऊँची है । यहाँ इतनातः जो सब शिखरस्थो दिव्यनेमि पातो है उनकी ऊँचाई प्रायः ४००० फुट है । इनमेंसे दक्षिण-भारतका विख्यात स्वास्थ्यनिवास जीवगिरि पर्वतस्थ चोटाका-मण्ड उपत्यका समुद्रतलसे ७००० फुट ऊँची है । दक्षिण चोटाकेतागिरार ८०१० फुट ऊपर चयना मिर उठाये खड़ा है । अश्वरत्नोत बम्बईनगरसे २० कोष दक्षिण-पूर्वमें भीरघाट नामक गिरिमण्ड (२०.७ फुट ऊँचा) है । यही गिरिमण्ड प्राचीनकालमें समुद्रकूलमें दाक्षिणात्यमें प्रवेश करनेका

एतस्मात् पयः समस्ता जाता या । यस्मिन् गगनं लघु-
पूतं यन्घातमदृष्ट (१८१२ फुट ऊंचा) है । येन-
गुणो यस्मिन् धनमागते केमानिधममं जां का एक
घोर भीषण है । घानघात नामक चपलाकर्म जाते
ओ ओ पय है, ये भी घानघातमदृष्ट कहलाने हैं ।
यह स्थान १० कोम विस्तीर्ण है । मन्द्राज जातेके
निये इस स्थान को कर घोर मध्यभाग जानके लिये
यसुरके निकट हो कर एक ऐक्यय मठा है ।

पश्चिमघाट पर्वत भेद पर कोई भी नदीप्रवाह
मध्यभागमें पश्चिमसागरमें नहीं गिरा है । मोदाबरो,
लणा घोर फाबोरी नामक तीनों नदियाँ इसी पर्वत
प्रवाहित अनुरागिनि पुट हो कर मन्द्राजपर्वत कीतो
हई पूर्णमसुद्धमें गिरती हैं । पति प्राचीनकालमें भारतके
पूर्व दक्षिण भूभागमें हिन्दूराजाधीन राज्यका निदर्शन
ही नहीं, किन्तु इस सुदृढ़ पश्चिमोर्गमें हिन्दू राज-
वंशको यैतो प्रतिष्ठा देखी नहीं जाती । पश्चिममें
समुद्रतटमें पूर्वकी घोर पश्चिमघाट गिरिमांसाश मध्य-
वर्ती स्थलभाग कोटुप कहलाना है । यह कोटुप राज्य
बहुप्रायोगकालमें चर्चित है । कोटुप केने । माघ
जाति ही यहांके अधिक स्थानमें राज्य करती है । जब
महाभारतकेरा गिवाजा दक्षिण भारतके सिंहासन पर
बसितुत है घोर पर्वत परवर्ती महारथ-राजगण जब
महाराष्ट्र गौरवकी रक्षामें लगे हुए थे, उस समय इस
पर्वतमांसाके नामा स्थान घोर प्रयोक्त निविण दुर्भेद
दुर्गमें सुरक्षित था ।

पर्वत पर तातजातोय बड़े बड़े लघु घोर निविष
प्रकारके पशुपत्नी देखनेमें पाते हैं । वर्षावर्षमें इस
पर्वतमें जगद जगद जननिर्ममके लिये जो सब प्रयास
है, समस्त दृश्य उस समय घटा हो अनोरम लगता है ।
यहाँका नामांका नामक प्रवास ८१० फुट ऊपरमें
गिरता है ।

पश्चिमजन (गं० पु०) भारतवर्षके पश्चिमदिक्स्थ क्षेत्र-
वासो, पारचात्य व्यक्ति ।

पश्चिमदेग (सं० पु०) रोमक विद्याकीकृत जनपदभेद ।

पश्चिमप्रव (सं० पु०) यह भूमि जो पश्चिमकी घोर
भुकी ओ ।

पश्चिमयामलव्य (मं० पु०) बौद्धिक अनुसार रातरे विज्ञे
पश्चिका कर्षाव्य ।

पश्चिमराज (मं० पु०) पश्चिम रात्रि, एकदशमिधमाने
पञ्च समामासा । रात्रिका मध्यभाग । कोई कोई
कहते हैं, कि एकदशमिधमाने कालपात्रक मन्दके काय
दृष्टा करता है । यदि ऐसा हो, तो 'मधाराज' प्रभृति
मन्द नहीं हो सकते ।

पश्चिमवर्षादिना (गं० वि०) पश्चिम दिशाकी घोर बहने-
वाली ।

पश्चिमसागर (गं० पु०) पावरमेण्ड घोर पश्चिमकाके
बोधका सुदृढ़, एटनाण्डिकमहासागर ।

पश्चिमा (मं० स्त्री०) पृथ्वीका दिशा, प्रतोयो, वाहनी,
वृद्धिम ।

पश्चिमाक्षय (मं० पु०) एक कल्पित पर्वत । इसमें
विषयमें लोगोंमें यह धारणा है कि पर्वत होनेके समय
पृथ्वी का बाहुमें क्षय करता है । इसका नाम पश्चि-
म हो है ।

पश्चिमाक्षयक (मं० पु०) नृमंथ, एक राजा ।

पश्चिमाक्षे (मं० पु०) योधाके, पश्चाक्षे ।

पश्चिमा (वि० वि०) १ पश्चिमकी पारका, पश्चिमराज ।
२ पश्चिमवर्षा, जैम, पश्चिमोदिन्द्र ।

पश्चिमोवाट (मं० पु०) यस्मिन् भ्रातृही पश्चिम पोरकी
एक पर्वतमांसा । पश्चिमघाट पर्वत ।

पश्चिमोत्तर (मं० पु०) पश्चिमपश्चिम उत्तरकी दिशाका
राजा दिक् 'दिक्षुनामावयवकारणे' प्रति समाना । बाहु-
कीय, पश्चिम पोर उत्तरमें बोनवा स्थान ।

पश्ता (का० पु०) यक्षा ।

पश्ता (का० पु०) तट, किनारा ।

पश्तो (दि० पु०) १ १५ मातापिता एक ताल, इसमें दो
पाघात होते हैं । इसका स्वरयाम इस प्रकार है—
मिं, तङ्, धिं, धा, गी । २ भारतकी पायं भाषाओंमेंसे
एक दिमा भाषा । इसमें फारसी प्रादिक प्रवृत्तये मन्द
मिन्न गर्थ हैं । यह भाषा भारतका पश्चिमोत्तर सीमामें
से कर चरमागिस्तान तक बोली जाती है ।

पश्म (का० पु०) बहरो भेद प्रादिका रात्रि, जन ।

विशेष विवरण पश्म शब्दमें देखो ।

पद्मीना (हि० पु०) एक प्रकारका बहुत बढ़िया और सुनायम जनों पपड़ा । यह काश्मीर और तिब्बत आदि पहाड़ी तथा उँटे देशोंमें बहुत अच्छा और अधिकतासे बनता है ।

पद्म (म० घञ०) दृग्, धातुसंज्ञात् । १ प्रमंसा । २ विस्मय । ३ दर्शक ।

पद्मत् (म० त्रि०) दृग्-गलन्तः 'दृग्ः पद्म' इति पद्मा-देशः । १ दर्शक, देखनेवाला । दृग्-गल । २ दृश्यमान । पद्मतिकर्मन् (म० पु०) पद्मतिदं शंभवे कर्म यस्य । दर्शनकर्म, वह जिनका काम देखना हो । वैदिक पदार्थ—विद्यात्, चाकनत्, आचम्य, चष्टे, विचष्टे, विचर्षति, विमृशयति, पचयामकम् ।

(निपट १ अ०)

पद्मतीर्थ (म० त्रि०) पद्मनां जमनादृष्ट इरतोति ह्रस्वः इरणे अच् (परो वानादरे । पा २।३।२८) इति पद्मादरे पठो, ततः (आदिह्रस्वः पठोः युक्तिरादरेषु । पा १।३।११ गार्तिक) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या पठ्याः चतुर्ः । और, वह जो बाँवोंके सामने चोत्र पुग ले । जैसे, सुनार आदि ।

पद्मनी (म० स्त्री०) पद्मनि या दृग्-गल-डोपः ततः मुम् (रश्च इत्योर्निर्त्ये । पा ४।१।८१) १ मूलाधारोत्थित छदयगत नादरूपवर्णः ; नादको सम समयको ध्वन्या या स्वरूप जय कि वह मूलाधारमें सट कर छदयमें जाता है ।

"मूलाधारान् प्रथममुक्तिं यस्तु ततः पद्मनीः ।

पद्मादयस्त्वय हृदयगो मुदिमुद्मन्मन्मन् ॥"

(भर्तृहरि०)

भारतीय शास्त्रमें बानो या वरुणतोके चार चक्र माने गये हैं—३रा, पद्मलो, मन्मथा और वैश्वतो । मूलाधारमें सठनेवाले नादको परा कहते हैं; जब वह मूलाधारमें छदयमें पहुँचता है तब पद्मलो कहलाता है । वहमें पाँच बड़ने और मुड़िमें युक्त होने पर उसका नाम मन्मथा होता है और जब वह कण्ठमें पा कर सबसे सुनने योग्य होता है, तब उसे वैश्वतो कहते हैं । २ वाग्विशेष । मूला, स्तोत्राचार्य और पनपायिनी वायव्यो पद्मलो कहते हैं । ३ ईश्वरार्थी, दर्शनो परो ।

पद्म-इष्टि (म० त्रि०) पद्मसाधारण्य, पद्मनामक यज्ञ ।

पद्मयन (म० घञो०) यागभेदः ।

पद्मयम (म० पु०) एक प्रकारका दैनिक यज्ञ ।

पद्मयश्म (म० त्रि०) पद्मोरिदं वो० इ, ततः पद्मयावो यश्मश्चेति कर्मधा० । पद्मनिर्गमार्थं यश्मभेदः ।

पद्मयदान (म० घञो०) पद्मोद्गायित्रिंशत्पद्म पद्मदानं केदम । पद्मका पद्मविमोप केदम ।

पद्माचार (म० पु०) पद्मनां तन्त्रोक्त्याधिकारिविशेषा-यामाचारः । तन्त्रोक्त्याचारभेदः ।

"वेदोक्तं यजुर्देशो तामयंकापूर्वेष्टम् ।

॥ एव वैदिकाचारः पद्माचारः च उच्यते ॥"

(अचारभेदः)

कामना और सहस्यपूर्वक वेदोक्त विधानमें जो देवोको पूजा की जाती है, वही वैदिकाचार है । इसी वैदिकाचारको पद्मचार कहते हैं । ऋग्य, और और पद्म इन तीन भावोंमें सावक साधना करें । किन्तु कलिकालमें दिव्य और मोराचार विदित नहीं है क्योंकि जोई भी साधक वीरभारमें साधना न करे । कल्पि केवल पद्माचार ही प्रसन्न है । सभी साधकोंको पद्मभावमें पूजा करनी चाहिये । इसी पद्मभावमें साधकोंको मन्त्र-सिद्धि होगी ।

"दिश्वरीमयो धाराः कलौ न सिन् काचन ।

वेदं पद्मनाभेन मन्त्रविदिभवेमृणाम् ॥"

(महाविष्णुताम्र०)

निम्नलिखित निशर्तोंमें पालन करनेकी पद्माचार कहती है । यथा—मित्रस्त्राम, मित्रदान, त्रिसन्ध्या अथ और पूजा, निमग्न वस्त्रपरिधान, वेदगानमें दृढ़ ज्ञान, शुद्ध और देवतामें भक्ति, मन्त्रमें दृढ़ विश्वास, पित्र और देवपूजा, बनि, आद और निचकर्म, गय और मित्रको समदर्शन, शुद्ध के पतिरिक्त दूसरेका अथ परि-त्याग, कदर्य और निन्दुर कार्यका परित्यजन । देव-मिन्दुके साथ सुताहात हो जानसे उससे साध बात-चीत न करनी चाहिये । सर्वदा सत्य बोधना चाहिये भूत कसो भी न कोसना चाहिये, जो इस प्रकारके आचरण करते, उन्हें पद्माचारों कहते हैं ।

(कुम्भिकाग्र० ७ पटल) पद्म भोक्त पद्माचारो देवो ।

पद्माचारो—गति-उपासक सम्प्रदायविशेष । पद्म भावमें

एकमात्रे पथ समझा जाता था। बम्बई नगरके उत्तर पूर्व यलवांटसङ्घट (१८१२ फुट ऊँचा) है। वेनगुर्ला बन्दरसे वेनगामके किनानिवासमें जाँका एक और भी पथ है। पालघाट नामक उपत्यकामें जानके जो जो पथ हैं, वे भी पालघाटसङ्घट कहलाते हैं। यह स्थान १० कोम विस्तीर्ण है। मन्द्राज जानके लिये इस स्थान हो कर और मध्यभारत जानके लिये बिपुरके निकट हो कर एक रेलपथ गया है।

पश्चिमघाट पर्वत भेद कर कोई भी नदीप्रवाह मध्यभारतसे पश्चिमसागरमें नहीं गिरा है। गोदावरी, कृष्णा और कावेरी नामक तीनों नदियाँ इसी पर्वत प्रवाहित जलरागिमें पुष्ट हो कर मन्द्राजप्रदेश होतो हुई पूर्वसमुद्रमें गिरती हैं। अति प्राचीनकालसे भारतके पूर्व दक्षिण भूभागमें हिन्दूराजाओंके राजत्वका निदर्शन है भव्ही, किन्तु इन सुदृढ़ पश्चिमार्गमें हिन्दू राजवंशकी वैसे प्रतिष्ठा देखी नहीं जाती। पश्चिममें समुद्रतटने पूर्वकी और पश्चिमघाट गिरिमालाका मध्यवर्ती स्थलभाग कोट्टण कहलाता है। यह कोट्टण राज्य बहुप्राचीनकालसे अवस्थित है। कोट्टण देशी नाथर जाति ही यहाँके अधिक स्थानोंमें राज्य करती है। जब महाराष्ट्रकी गिरावाजी दक्षिण भारतके सिंहासन पर अर्धस्थित हो और उनके परवर्ती महाराष्ट्रराजगण जब महाराष्ट्र गौरवकी रत्नामें लगे हुए थे, उस समय इस पर्वतमालाको नाना स्थान और प्रत्येक गिरिपथ दुर्भेद दुर्गसे सुरक्षित था।

पर्वत पर तालजातीय बड़े बड़े वृक्ष और विभिन्न प्रकारके पशुपक्षी देखनेमें आते हैं। वर्षाश्रुतमें इस पर्वतमें जगह जगह जलनिर्गमके लिये जो सब प्रयास हैं, उनका दृश्य उस समय बड़ा ही मनोरम लगता है। यहाँका गार्सिया नामक प्रपात ८३० फुट ऊँचाईसे गिरता है।

पश्चिमजन (सं० पु०) भारतवर्षके पश्चिमदिक्स्थ देशवासी, पश्चात्य व्यक्ति।

पश्चिमदेश (सं० पु०) रोमक मिथ्यान्तोक्त जनपदभेद।

पश्चिमप्रव (सं० पु०) वह भूमि जो पश्चिमकी ओर झुकी हो।

पश्चिमयामकृत्य (सं० पु०) बौद्धिक अनुसार रातके पिच्छे पश्चरका कर्त्तव्य।

पश्चिमरात्रि (सं० पु०) पश्चिम रात्रि, एकदशिसमासे अच समाप्तान्तः। रात्रिका शेष भाग। कोई कोई कहते हैं, कि एकदशिसमास कालवाचक शब्दके दाय दृशा करता है। यदि ऐसा हो, तो 'मधरात्रि' प्रभृति शब्द नहीं हो सकते।

पश्चिमवाहिनी (सं० त्रि०) पश्चिम दिशाकी और बहनेवाली।

पश्चिमसागर (सं० पु०) पायरोण्ड और अमेरिकाके बीचका समुद्र, एटलाण्टिक-महासागर।

पश्चिमा (सं० स्त्री०) सूर्यास्तकी दिशा, प्रतीचो, बाहणी, पच्छिम।

पश्चिमाचल (सं० पु०) एक कल्पित पर्वत। इसके विषयमें लोगोंकी यह धारणा है कि अस्त होनेके समय सूर्य उमकी बाढ़में लुप्त जाता है। इसका नाम पश्चिमाचल भी है।

पश्चिमावृषक (सं० पु०) नृपभेद, एक राजा।

पश्चिमावे (सं० पु०) गोपादे, अपराधी।

पश्चिमा (हिं० वि०) १ पश्चिमकी ओर जा, पश्चिमवाला। २ पश्चिममन्त्रियो, जैसे, पश्चिमो-हिन्दा।

पश्चिमोवाट (सं० पु०) बम्बई प्रान्तकी पश्चिम ओरकी एक पर्वतमाला। पश्चिमघाट स्त्री।

पश्चिमोत्तर (सं० स्त्री०) पश्चिमाशः उत्तरास्या दिगोऽन्तराला दिक्, 'दिङ्नामाद्यन्तराले' प्रति समासः। बाणकीण, पश्चिम ओर उत्तरके बीचका कोन।

पश्च (फा० पु०) छाया।

पश्ता (फा० पु०) तट, किनारा।

पश्तो (हिं० पु०) १ ३॥ मात्रार्थाका एक ताल, इसमें दो आघात होते हैं। इसका स्वरधाम इस प्रकार है— तिं, तक, चिं, धा, गे। २ मारनको आर्थ भाषाओंमेंसे एक देशी भाषा। इसमें फारसी आदिके बहुतसे शब्द मिल गये हैं। यह भाषा भारतको पश्चिमोत्तर सीमामें ले कर अफगानिस्तान तक बोली जाती है।

पश्म (फा० पु०) बकरी भेड़ आदिका रोया, ऊन।

विशेष विवरण पठन शब्दमें देखो।

पद्मीना (हि० पु०) एक प्रकारका बहुत बड़िया और सुलायम कनो वपड़ा। यह काश्मीर और निम्बत आदि पहाड़ी तथा ठंढे देशोंमें बहुत अच्छा और अधिकतासे बनता है।

पद्म (सं० अर्थ०) दृग्-बाहुलकात् प्र० । १ प्रमंसा । २ विस्मय । ३ दर्शक ।

पद्मत् (सं० त्रि०) दृग्-ग्रन्थतः 'दृग्' पद्मत् इति पद्या-
देशः । १ दर्शक, देखनेवाला । दृग्-ग्रन्थः । २ दृश्यमान ।
पद्मतिकर्मन् (सं० पु०) पद्मतिट् शंभवे कर्म यस्य ।
दर्शनकर्म, वह जिसका काम केवल देखना हो ।
वैदिक पर्याय—चित्रात्, चाकनत्, आचक्ष, चष्टे,
विचष्टे, विचर्षणि, विक्षचर्षणि, भवचाकनत् ।

(निष्पट् ३ अ०)

पद्मतीहर (सं० त्रि०) पद्मन्तं जनमनादृश्य हरतोति
हृद्-हरणे अच् (पणे कानादरे । पा २।३।३८) इति
चनादरे पद्मी, ततः (वाग्दिकृत्पद्वन्तोः युक्तिद्वन्द्वरेण । पा
१।३।२१ वार्तिक) इत्यस्य वार्त्तिकोक्ता पद्याः यलुक् ।
चौर, वह जो चोरीके सामने चोच उठा ले । जैसे,
सुनार आदि ।

पद्मस्ती (सं० स्त्री०) पद्मनि या दृग्-ग्रन्थ डोप् ततः
तुम् (श्यप् शनोर्निसे । पा ४।१।८१) । मूलाधारोक्ति
हृदग्रगत नादरूपवर्ण, नादकी उस समयकी अवस्था या
स्वरूप जब कि वह मूलाधारसे उठ कर हृदयमें जाता है ।

"मूलाधारात् प्रथममुद्दिशे यस्तु तारः पराक्षरः ।

पथादपरमस्य हृदयगो मुदिद्युहमध्वमाहवः ॥"

(भर्तृहरकौ०)

भारतीय शास्त्रोंमें बायी या सरस्वतीके चार चक्र
माने गये हैं—परा, पद्मस्ती, मध्यमा और वैश्वरो ।
मूलाधारसे उठनेवाले नादकी परा कहते हैं; जब वह
मूलाधारसे हृदयमें पहुँचता है तब पद्मस्ती कहलाता
है । वहाँसे बायी बड़ने और मुड़िये युक्त होने पर उसका
नाम मध्यमा होता है और जब वह कण्ठमें आकर
सबसे समने योग्य होता है, तब उसे वैश्वरी कहते हैं ।
२ वाग्विशेष । सूच्या, धोतिताशी और अनवायिनो
वायको पद्मगती कहते हैं । ३ ईश्वरकर्त्ता, दर्शिनो
स्त्री ।

पद्म-इष्टि (सं० त्रि०) पद्मसाधयपद्म, पद्मनामक यज्ञ ।

पद्मवन (सं० स्त्री०) यागभेद ।

पद्मयम (सं० पु०) एक प्रकारका दैविक यज्ञ ।

पद्मयन्त्र (सं० त्रि०) पगोरिदं धो० ह्र्, ततः पद्मचानो
यन्त्रेति कर्मधा० । पगुनिर्गमाय यन्त्रभेद ।

पद्मवदान (सं० स्त्री०) पगोऽङ्गविशेष पद्म वदान
हेदनं । पगुसा अङ्गविशेष पद्महेदनं ।

पद्माचार (सं० पु०) पद्मनां तन्त्रोक्ताधिकारिविशेषा-
णामाचारः । तन्त्रोक्त पाचारभेद ।

"वेदोक्तान् यन्त्रेश्वरीं यामवेदकापूर्वकम् ।

॥ एव वैदिकाचारः पद्माचारः स उच्यते ॥"

(आचारभेदतन्त्र)

कामना और सङ्कल्पपूर्वक वेदोक्त विधानसे जो
देवीको पूजा की जाती है, वही वैदिकाचार है । इसी
वैदिकाचारकी पद्म चार कहते हैं । निम्न, और और
पद्म इन तीन भावोंमें साधक साधना करें । किन्तु
कालिकासमें दिव्य और वीराचार विहित नहीं है
पर्याय को भी साधक वीरभावेन साधना ग करे ।
कालिमें केवल पद्माचार ही प्रगुप्त है । सभी साधकों-
की प्रगुभावमें पूजा करनी चाहिये । इसी प्रगुभावसे
साधकको मन्त्र-सिद्धि होगी ।

"दिव्यवीर्ययो भावं कलौताति काचन ।

केवलं पद्मभावेन मन्त्रविद्धिर्वैमृणाम् ॥"

(महानिर्वाणतन्त्र०)

निम्नलिखित निपत्तोंके पालन करनेकी पद्माचार
कहती है । यथा—नित्यस्नान, नित्यदान, त्रिसंन्या
जप और पूजा, निर्मल वस्त्रपरिधान, वेदगान्धमें हृद्
ज्ञान, गुरु और देवतामें भक्ति, मन्त्रमें हृद् विश्वास, पिछ
और देवपूजा, भक्ति, आदि और निष्कर्म, गन्ध और
मित्रकी समदर्शन, गुरुके प्रतिरिक्त दूसरेका भक्त परि-
त्याग, कदर्य और निष्ठुर कार्यका परिवर्जन । हे-
नन्दके साथ मुलाकात हो जानसे उसके साथ बात-
चीत न करनी चाहिये । सर्वदा सत्य बोलना चाहिये
भूत कामो भो न बोलना चाहिये, जो इस प्रकारके आच-
रण करते, उन्हें पद्माचारो कहते हैं ।

(क्रुतिप्रकाशतन्त्र० ७ पटल) पद्म और पद्माचार देखो ।

पद्माचारी—यत्नि-उपासक सम्प्रदायविशेष । पद्म भावमें

शक्तिसाधनाकारी पञ्चाचारो और दूसरे वीराचारो कह-
लाते हैं। पशुभाव देखो।

पशुभाव और पञ्चाचारके साथ वीरभाव तथा वीरा-
चारका प्रभेद यह है कि वीरभाव और वीराचारमें
मध्यमांशका व्यवहार है, पशुभाव और पञ्चाचारमें वह
निषिद्ध है।

कुलाण्य वमें इन दो प्रधान आचारोंकी विभाग कर
सात प्रकारमें विभक्त किया है। यथा—वेदाचार (१)
सर्वपितृउत्तम, वेदाचारकी अपेक्षा वैष्णवाचार उत्तम,
वैष्णवाचारकी अपेक्षा शैवाचार उत्तम, शैवाचारसे
दक्षिणाचार उत्तम, दक्षिणाचारसे सिद्धान्ताचार और
भो उत्तम, सिद्धान्ताचारसे कोलाचार श्रेष्ठ, कोलाचारके
ऊपर और कुछ नहीं है। (कुलार्णवपञ्चम खण्ड)

ये सब आचार किस प्रकारके हैं, तन्त्रमें उनका विव-
रण विषयरूपमें लिखा है। क्रमानुसार वैष्णवादि
आचारका विषय लिखा जाता है।

वैष्णवाचार—वेदाचारके व्यवस्थानुसार सर्वदा
लिखित कार्य करनेमें तत्पर रहें। भैरुन और तत्त-
त्तान्त कथाकी जल्पना कभी न करें। हिंसा, निन्दा,
कुटिलता, मांसभोजन, रात्रिमें सोना और यन्त्र-स्पर्श
आदि कार्य सर्वतोभावे वर्जनीय है।

(नित्यात्मन १ पटल)

शैवाचार—वेदाचारके नियमानुसार शैव और

(१) वेदाचार शब्दसे यहां वैदिककर्मका अनुष्ठान समझा

नहीं जाता। तन्त्रमें आचारविशेषकी वेदाचार कहा है—

“वेदाचारै प्रवक्ष्यामि शृणु सर्वो गच्छन्दरि।

शस्त्रिसुहृत्तं वर्याय शुद्धं नला स्वनामसिः॥

आनन्दनाथशब्दादौ पूजयेदथ साधकः।

सहस्राराम्बुजे शाला उपचारितु पञ्चमभिः॥

प्रजप वाम्मवयीजं चिन्तयेत् परमां कलाम्॥”

हे सर्वो गच्छन्दरि ! वेदाचारका हाल कहता हूँ, सुनो।
साधक शस्त्रिसुहृत्तमें उठ कर शुद्धा नाम ले, पीछे ‘आनन्द’ यह
शब्द उच्चारण करके उभरे प्रणाम करे। सहस्राराम्बुमें ध्यान कर
पञ्च उपचार द्वारा पूजा करके और वाम्मवयीज अर्थात् यह
चन्द्र जप करके परम कलाशक्तिकी चिन्ता करे। इत्यादि

(नित्यात्मन)

आज्ञाचारकी व्यवस्था को गई है। आत्मकी विशेषतां
यह है कि उसमें पशु, इत्याका विधान है।

(नित्यात्मन १ प०)

दक्षिणाचार—वेदाचारके नियमानुसार भगवतीकी
पूजा और रात्रियोगमें विजया ग्रहण करके तद्गत-
चित्तसे मन्त्रका जप करे। (नित्यात्मन १ पटल)

वामाचार—कुलश्रीकी पूजा विषय है। इसमें
मध्य-मांसादि पञ्चतत्त्व (२) और खुण्णका (३) व्यव-
हार-करना होता है, इसीकी वामाचार कहते हैं।
वासालक्ष्म्या हो कर परमात्मज्ञ हो पूजा करनी होती है।

(आचारभेदतन्त्र)

सिद्धान्ताचार—गृह हो या अगृह हो, समो द्वाय
योधन द्वारा विद्युद् होते हैं, सिद्धान्ताचारका यही
लक्षण है। समयाचार तन्त्रके द्वितीय पटलमें लिखा
है कि जो व्यक्ति अष्टरहः देवपूजामें चतुरहः रह कर
तथा दिशभागमें विष्णुपरायण हो कर रात्रिकात्ममें
साध्यानुसार और भक्तिपूर्वक यथाविधि मन्त्रादिका दाग
तथा सेवन करता है, उस सिद्धान्ताचारोकी समो फल
प्राप्त होती है। (समयाचारतन्त्र २ पटल)

कोलाचार—यथार्थमें कोलाचारका कोई नियम
नहीं है, स्थानास्थान, कालाकाल और कर्मकर्मका
कुछ विचार करना नहीं होता। संज्ञामन्त्रसाधनमें दिक्,
और कामका नियम नहीं है। तिथि और नक्षत्रादिका
भी नियम नहीं है। कहाँ शिष्ट, कहाँ श्रेष्ठ और कहाँ
भूत-पियाय सुख इन प्रकार नाना विषयोंको लोचसमु-
दाय पृथो पर विचरण करते हैं। कर्म और चन्दनमें,
पुत्र और शत्रु में, श्रमयान और शत्रुमें तथा काश्चन और
त्यजमें जिसकी भेद ज्ञान नहीं है, वही व्यक्ति कौल कह-
लाता है।

(२) पञ्चमकार देखो।

(३) तन्त्रोपस्थित-सुप्त विषयविज्ञापक सांकेतिक भेद
है। संपुष्प शब्दसे रजस्वला स्त्रियोंका रज समझा जाता है।
इसी प्रकार स्वयम्भुपुष्प वा कुसुम शब्दसे प्रथम रज, कुण्ड-
पुष्पसे स्रवणश्रीका रज, गोलकुसुमसे शिववाका रज और वन-
पुष्प कहनेसे वाण्डलिनीका रज जानना चाहिये।

श्यामारक्ष्यमें लिखा है, कि जो भोतरसे शाल, बाहरसे शैव और मध्यभागसे वैष्णव हैं, वैसे नाना-वेशधारी योगी कोल कहलाते हैं।

“अस्ताःशाका बहिः शैवाः समायां वैष्णवा मताः।

नानाह्वयराः कौला विचरन्ति महीतले ॥”

बीराचारोमें पञ्चाचारोंमें मध्यमांपादिका व्यवहार निषिद्ध रहने पर भी दोनों पाचारोंमें ही पशुचरिका विधान है (१)। पशुचरिदान तन्त्रोक्त शक्ति-उपासनाका एक प्रधान चक्र है। तदनुसार गो व्याध मनुष्य प्रभृति कोही भी जोव पशुचरिके प्रयोग नहीं है।

तन्त्रादिमें सात प्रकारके पाचारका लक्षण भी। व्यवस्था निरूपित होने पर भी शास्त्रोंके मध्य प्रधानतः दो ही सम्प्रदाय देखनेमें आते हैं, दक्षिणाचारो और वामाचारो। जो प्रशास्यभावमें वेदाचारके नियमानुसार भगवतोको अर्चना करते भी वामाचारियोंके अनुष्ठेय-सम्प्रदायधार और शक्तिसाधनादि नहीं करते वे ही साधारणतः दक्षिणाचारो नामसे प्रसिद्ध हैं। वे लोग सरावान तो नहीं करते हैं, पर पञ्चावारके नियमानु-यायो इच्छाक्रममें छोड़ा बहुत वलिदान प्रवश्य देते हैं। काशीनाथप्रणीत दक्षिणाचारतन्त्राजमें इनके कर्मांश-कर्मचक्रा विशेष विवरण लिखा है।

मयादि दान-चौर सेवन वामाचारियोंका प्रवश्य कर्तव्य है। जो साधक इसका उल्लङ्घन करने हैं उनको किसी प्रकार सिद्ध नहीं होगी है। श्यामारक्ष्यमें

(१) बलि दो प्रकारकी है, राजसिक और सात्विक। मांस खादिविभिष्ट बलिको राजसिक अथवा मूत्र, वायव, मूत्र, मधु और शर्करासुक्त एवं रक्तवांसादि समित बलिको सात्विक बलि कहते हैं।

कालिकापुराणमें वेदिका औरवादि शक्ति-उपासनामें जीव कह कर उल्लेख है। बलि द्वारा मुक्तिप्राप्त और इस बलि द्वारा स्वर्गप्राप्त होता है। किन्तु किसी किसी शास्त्रमें यह नरक-प्राप्तिके जैसा उल्लेख हुआ है।

“मदये शिवः कुर्वन्ति तामसा जीवप्राप्तम्।

अहश्च कोटिलि मे तेषां वासो न संशयः ॥” (पद्म०)

लिखा है—मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा (२) चौर मैथुन इस पञ्चम कारसे महापातक विनष्ट होता है। दिवा-कालमें इसका व्यवहार करनेसे पोछे हास्यास्पद होता पड़ता है, इस कारण रात्रिकालमें इसका अनुष्ठान वत-लाया गया है।

निरुत्तरतन्त्रके प्रथम पटलमें लिखा है, —साधक शिव-को कुलक्रिया और दिनको वैदिकक्रिया करे। इसी प्रकार भिन्न भिन्न योगोंको साधना करके योगिवशक्ति दिवारात्र देवोको अर्चना करे। (निरुत्तरतन्त्र १७०)

पूजा दो प्रकारकी है—वाद्यपूजा और अन्तर्यामि। गन्ध, पुष्प, मत्स्य और पानोप प्रदानादि द्वारा जो पूजा की जाती है, उसका नाम वाद्यपूजा और चित्कृत्प्रभु, प्राणकृत्प्रभु, तेजोऋत्प्रभु, वायुकृत्प्रभु चामर आदि कल्पित चपवारादि द्वारा जो आन्तरिक साधन किया जाता है उसका नाम अन्तर्यामि है। पट्टचक्रमें इस अन्तर्यामि का प्रधान चक्र है। पट्टचक्र देखो।

ऐसा लिखा है, कि साधक अपने गुरुके उद्देश्यानुसार शरीरस्थ बाहुके योगसे अग्नि को मति द्वारा कुण्डलिनो शक्तिको उत्तेजित करे। पोछे हूँ इस मोजमन्त्रका उच्चारण करके उन्हें चेतन करे और चित्रिणी नाड्यो मध्यगत पथ हो कर मूलाधारसे आशा पर्यन्त छः पराओं को तथा मूलाधार, पनाशत और आशा इन तीन पराओंमें अवस्थित तीन शिवको भीद कर डाले। अनन्तर कुण्डलिनिको महस्त्रदल कमल पर स्थापन करते तन्त्रस्थित परम शिवके साथ संयुक्त करे। इसके बाद दोन के संयोगसे उत्पन्न परमाष्टन प्राप्त करके पूर्वोक्त कुलपत्र हो कर कुण्डलिनिको मूलाधारपर्यन्त लाया जाता है। इस प्रकार अन्तर्यामि साधनामें प्रवृत्त भी सदा बीराचारो वशक्ति मद्य-मांसादि द्वारा भगवतोको उपासना करते हैं, तन्त्रके मतमें वे ही उनके प्रियसाधक हैं (३)।

(कुलार्णव)

(२) “मद्यं मांसं मत्स्यं च मुद्रा मैथुनमेव च।

मकारपञ्चरत्नैश्च महापातकनाशनम् ॥” (श्यामारक्ष्य, मनुष्य पक्षके साथ जो उपकरण सामग्री मध्यन करते हैं, उन्हीका नाम मुद्रा है।

(३) शैव, वैष्णव, शक्त, सौर, शैव, पादपत, सांध्य-

बोराचारो लोग बीच बीचमें चक्र करके देवदेवीको साधना करते हैं। स्त्रोचक्र कोषा है, सो नोचे दिया जाता है,—

साधन चक्राकारमें वा ओंकारममें अपने अपने शक्ति अनुभार ललाट पर चन्दन लगावे और युग युग क्रममें भैरव-भैरवोके भावमें सप्रेम्यन करे तथा मध्यस्थित किमी स्त्रोको साक्षात्कालो समझ कर मध्य सांसादि द्वारा उसको प्रवेश करे। कैसे स्त्रोका इस प्रकार पूजन करना होता है, गुप्तसाधनमें उसको विधि इस प्रकार लिखी है,—

नटस्त्री, कापालो, येश्या, रजकी, नापित जो भार्या शालाणी, गुग्गुन्या, गोपकन्या, सालाकारकी कन्या ये नौ प्रकारकी स्त्रियां कुलकन्या हैं। विशेषतः परपुरुष गामिनो विदग्धा होने पर सभी स्त्रो कुलस्त्रो हो जाती हैं। रूपवती, युवती, सुगौना और भाग्यवती स्त्रियांको यदि यस्तप्यक पूजा करे, तो सिद्धि लाभ अनश्व होता है, इसमें सन्देह नहीं। (१)

उक्त चक्रगत परपुरुष को इन समस्त कुलस्त्रियोंके पति हैं, कुलधर्ममें विवाहित पति पति नहीं हैं। पूजा-काल भिन्न प्रत्य समर्थमें कभी भी परपुरुषको चित्तमें न लावे—पूजाकालमें येश्याको तरह सर्वोमें परितुष्ट कलासुखमत, इभिमाचार, दौलति, बामाचार, सिद्धान्तचर, और वेदाचारदि सबोका मत है, कि बिना मयमायके पूजा करनेसे वह निष्फल होती है। इनके मतेसे द्वारा शक्तिस्वरूप, मोक्ष शिवस्वरूप और इन शिव-शक्ति मय भैरवस्वरूप है। इन तीनोंका एकल समवेष्ट होनेसे आनन्दस्वरूप मोक्षकी व्यापति होती है। (कल्पतरु)

(१) देवतीतन्त्रमें चण्डाली, गवनी, चौदा, रजकी आदि ६४ प्रकारकी कुलस्त्रियोंका विवरण है। निवृत्ततन्त्रकारका कहना है, कि ये सब बन्द वर्ण वा वर्णेश्वर-लोपक नहीं हैं, कार्य वा गुणके विहाय हैं। विशेष कथोंके अनुष्ठानके हेतु सभी वर्णोद्भवा कन्या इन प्रकार विशेष विशेष-संज्ञा पाती हैं। जैसे, पूजा प्रत्य देख कर जो कोई वर्णोद्भवा कन्या रजो-वस्था प्रकाश करती है, उसे रजकी कहते हैं। जो कोई वर्णोद्भवा रमणी अपनेको पञ्चाचारीसे ठिगाने, उसे गोपिनी कहते हैं, इत्यादि।

रहे। (वसन्ततन्त्र) निवृत्ततन्त्रमें दूसरी जगह इस प्रकार लिखा है,—चागसोक्त पति गिवस्वरूप हैं, वे ही गुप्त हैं। वे ही पति कुलस्त्रियोंके प्रकृत पति हैं। विवाहित पति पति नहीं हैं। कुलज्ञासे विवाहित पति का त्याग करनेमें दोष नहीं होता। केवल वेदके कार्यमें विवाहित पति का त्याग निषिद्ध बात नाया है।

साक्षात् कालोद्भवा उक्त कुलनारोको पूजा करके मध्य मोक्षनाटिपूर्वक पान करना होता है। ललाटमें सिन्दूरचिह्न और छात्रमें मदिरामय धारणपूर्वक गुप्त और देवताका ध्यान करके पान करीकी विधि है। (प्रणतोपिणी) छात्रमें सुरापान न कर तदगतचित्तसे इस प्रकार वन्दना करनी होती है—

“श्रीगद्भैरवसोऽखरप्रविलसन्मृगमृगप्लवितं

क्षेत्राधीश्वरयोगिनीद्वरगणैः सिद्धैः समारपितम् ।

आनन्ददार्णवकं महात्मकमिदं साक्षात् प्रिलक्ष्यमायतं

बन्दे धीरधर्मं करामुत्तमं प्राप्तं विशुद्धिप्रदम् ॥”

(श्वाभारहस्य)

इस प्रकार विशेष विशेष मन्त्र द्वारा पांच बार पात्रको वन्दना करके पांच पात्र ग्रहण करे। पौष्टि जब तक इन्द्रियां (दृष्टि और मन) चञ्चल न हो जाय, तब तक पान करते रहें। इसके बाद पान करनेमें पात्र पान किया जाता है, ऐसा जानना चाहिए। चक्र दिके कल्याण और तदीय विपक्षियोंके विनाशके उद्देश्यसे शान्तिस्तोत्रका पाठ करे। तदनन्तर आनन्दस्तोत्रका पाठ करके व्याख्य कुलकार्यका अनुष्ठान करे। कुल भैरव स्वरूप साधक मयपान करके स्तव पाठ करे और कुलस्त्रीवर्गमें प्रवृत्त हो कर कुलकार्यका अनुष्ठान विधेय है। इसके अनन्तर आनन्दस्तोत्रका पारम्भ होता है। (इस व्यापारका सविशेष वर्णन मध्यतन्त्र प्रसिद्ध है। इसकी व्यवस्था कुलार्णवके पञ्चमाध्यायमें लिखी है।)

मनुष्यका मन कितना ही विकृत क्यों न हो, तो भी मनुष्यके सामने वंसा काम करनेमें लज्जा आती है। प्राणतोपिण्योतन्त्रमें लिखा है, कि चक्रके मध्य मदिरामय व्यक्तियोंको देख कर छात्र और निन्द न करे और न उस चक्रकी वार्ता ही प्रकट करे, इनके समीप भोजन

करे, अद्विष्ट आचरणमें विरत रहे, भक्तिपूर्वक उनकी
रक्षा करे और यन्त्रपूर्वक छिपाये रखे ।

तन्ममें लतासाधनादि चार भी अधिकतर लज्जाकर
और घृणाकर व्यापारका उल्लेख है । इसी कारण
उसका वर्णन नहीं दिया गया । सामान्यतः लता-
साधनमें एक स्त्रीको भगवती मान कर मन्त्रपात्रादिके
साथ उसको साधना करने कोतो है । इसमें उसकी
गरोरकी गुह्यागुह्य नानाशान्तियोंमें सम्मिश्रण एवं अपने
और उसकी चक्षु विमोचको पूजा वन्दनादि पुरःपर स्त्री-
पुरुषवद्विष्ट व्यापारगुह्यगोचरी पराकाष्ठा प्रदर्शित हुई
है । तन्मविरहित सुरापान और परस्त्रीगमन आदिको
तरह मारण, उच्चाटन प्रभृति नरकस्था और परपोड़ा
भी शास्त्रीय क्रियाके मध्य गिने जाते हैं ।

ऊपरमें जो नाना प्रकारके साधकोंकी कथा लिखी
है वह पञ्चाचारो और चोराचारो दोनों सम्प्रदायके
मनसे सिद्ध है, किन्तु भवभाषन जो चोराचारियोंका
प्रधान साधन है । चोराचार देना

पञ्चिण्या (सं० स्त्री०) पशुना दद्यात् । पशुसाध्य दानभेद ।
इस दानका विषय क्षात्वायन श्रौतसूत्र (१।४।१)में
लिखा है ।

पञ्चिष्टका (सं० स्त्री०) पशुना इष्टका इत्यम् । अग्नि-
चयभावे इष्टका भेदसे पशुयाग । पाँच प्रकारकी
इष्टकाओंमेंसे पञ्चिष्टका एक है ।

पञ्चिष्टि (सं० स्त्री०) पशुयागाङ्ग इष्टिभेद ।

पञ्चैकादशिनी (सं० स्त्री०) एकादशपरिमाणमस्य
डिनि डोय, पशुना एकादशिनो । पशुयागभेद ।
देवताको एकादश पशु, दाना यज्ञ करना होता है, इसी-
से इसे पञ्चैकादशिनो कहते हैं । एकादश पशु यथा—
आग्नेय, साखत, मोम्य, पोष, वाहस्य, वैश्वदेव,
ऐन्द्र, मासुत, ऐन्द्राग्न, सावित्र और वासुण । पशु देखो ।

पपा (हि० पु०) झण्ड, दाढ़ी ।

पपाण (हि० पु०) पापान देखो ।

पपान (हि० पु०) पापान देखो ।

पठवाह (सं० पु०) पृथ्वेन वहति एष्टं भारं वहति
यह ऋज, प्रयोदशरात्रिस्तथा मासः । पञ्चवर्षीय भारपट्ट
सप्त, पाँच वर्षका वह वहड़ा जो बौद्ध ढो सकता हो ।

पसंगा (हि० पु०) १ वह बौद्ध जिसे तराजू के पदोंका
बोझ बराबर करनेके लिये तराजूको जोतीमें धनके
पैसे को तरफ बाँध देते हैं, पासंगा । २ तराजूके दोनों
पक्षोंके बोझका पन्तर जिसके कारण उस तराजू पर
तोली जानेवाली चीजकी तौलमें भी उतना ही पन्तर
पड़ जाता है । (वि०) ३ बहुत जो थोड़ा, बहुत ही
काम ।

पसंद (फा० वि०) १ रुचिके अनुसार, मनोनीत, जो
अच्छा लगे । (स्त्री०) २ अच्छा लगनेको वृत्ति, अभि-
रुचि ।

पसंदा (हि० पु०) १ एक प्रकारका कपड़ा जो मांसके
कुचने हुए टुकड़ोंसे बनाया जाता है । २ मांसके एक
प्रकारके कुचसे हुए टुकड़े, पारचैका गोष्ठ ।

पस (फा० अर्थ०) इसलिये, इस कारण, अतः ।

पसई (हि० स्त्री०) पहाड़ो राई जो हिमालयकी तराई
और विमोपतःनेपाल तथा कमाजमें होती है । इसकी फसल
पत्तियाँ गोभीके पत्तोंकी तरह होती हैं । इसकी फसल
जाड़ेमें तैयार होती है । इसकी सब विषयोंमें यह
साधारण राईकी ही तरह होती है ।

पसकारण (फा० वि०) कायर, डरपोक ।

पसघ (हि० पु०) पसंगा देखो ।

पनतान (हि० पु०) एक प्रकारकी घास जो पानीके
आम पास बहुतायतसे होती है और जिसे पशु बड़े
चावसे खाते हैं । कहीं कहीं गरीब लोग इससे दानों
या बीजोंका व्यवहार बनाजकी भाँति भी करते हैं ।

पमनो (हि० स्त्री०) अस्वपायन नामक संस्कार ।
इसमें बच्चोंकी प्रथम बार पक्ष खिलाया जाता है ।

पसर (हि० पु०) १ करतल घुट, पाधो पंजखो, गहरी
को हुई इरीकी । २ विस्तार, प्रसार, फैलाव । ३
रातके समय पशुओंको खरानेका काम । ४. पातमण,
धावा, चढ़ाई ।

पसरकटाली (हि० स्त्री०) भटकटैया, कटार ।

पसरन (हि० स्त्री०) पशुपसरणो, पसरानो ।

पसरना (हि० क्ति०) १ बागेको और बड़ना, फैलना ।
२ विस्तृत होना, बढ़ना । ३ घेर फँसा कर सोना,
हाथ पैर फँसा कर लेटना ।

पसरहा (हि० पु०) पसरहा देखो ।

पसरहा (हि० पु०) वह हाट या बाजार जिसमें पसरियों आदिकी दूकानें हों, वह स्थान जहां वन-चौपधियों और मसाले आदि मिलते हैं ।

पसरागा (हि० क्रि०) पसरानेका काम दूसरेसे कराना, दूसरेकी पसरागमें प्रवृत्त करना ।

पसली (हि० स्त्री०) मनुष्यों और पशुओं आदिके शरीरमें छाती परकी पंखरकी भांड़ी और गोलाकार हड्डियोंमेंसे कोई हड्डी ।

साधारणतः मनुष्यों और पशुओंमें गलेके नीचे और पेटके ऊपर हड्डियोंका एक पंखर होता है । मनुष्योंमें इस पंखरमें उभयपार्श्व बरह बरह हड्डियाँ होती हैं । ये हड्डियाँ पशु तृभागमें रोटमें संयुक्त रहती हैं और उसकी दोनों ओरसे निकल कर उभयपार्श्व होती हुई प्राग् जाता और पेटको तरफ आती हैं । पमलियोंके अगले निचे सामने भा कर छातोकी ठोक मध्यरेखा तक नहो पड़ूँ चले वल्लि उससे कुछ पडले हो अन्तमें हो जाती हैं । ऊपरकी जो नाम सात हड्डियाँ रहती हैं, वे कुछ बड़ी होती हैं और छातीके मध्यकी हड्डांसे जुड़ी रहती हैं । इसके बादकी नीचेकी ओरकी हड्डियाँ या पमलियाँ क्रमशः छोटी होती जाती हैं और प्रत्येक पमलीका अगला मिरा अपनेसे ऊपरवाली पमलीसे नीचेके भागसे जुड़ा रहता है । इन प्रकार पमलि या मधसे नीचेकी पमली जो कोखके पास होती है सबसे छोटी होती है । नीचेकी जो दो पमलियाँ हैं, उनमें अगले मिर छातोकी हड्डी तक तो पड़ूँ चले ही नहीं, साथ ही वे अपने ऊपरकी पमलियोंसे भी जुड़े हुए नहीं होती । इन पमलियोंके बीचमें जो अन्तर होता है उसमें मांस तथा पेगियाँ रहती हैं । श्वास लेते समय मांस पेगियोंके झुकने और फैलनेके कारण ये पमलियाँ भी आगे बढ़ती और पीछे हटती दिखाई देती हैं । साधारणतः इन पमलियोंका उपयोग हृदय और फेफड़े आदि शरीरके आभ्यन्तरिक कोमल अङ्गोंकी वाह्य आघातोंसे बचानेके लिये होता है । पशुओं, पक्षियों और सरीसृपों आदिकी पमलीकी हड्डियोंकी संख्यामें प्रायः बहुत कुछ अन्तर होता है और उनको बनावट तथा

स्थिति आदिमें भी बहुत भेद होता है । पमलीकी हड्डियोंकी मधसे अधिक संख्या साँपोंमें होती है । उनमें कभी कभी दोनो और दो दो सौ हड्डियाँ होती हैं ।

पशवपेय (हि० पु०) पशुपेय देखो ।

पमवा (हि० पु०) झलका गुलाबोरंग ।

पसही (हि० पु०) तिमोका चावल ।

पसा (हि० पु०) अन्ननी ।

पसाई (हि० स्त्री०) पसताल नाम गो घास मो रासोंमें होती है ।

पसाना (हि० क्रि०) १ सिंह चावलका बचा हुआ पानी निकालना या बलव करना, भातमेंसे माँड़ निकालना ।

२ किसी पदार्थमें मिला हुआ जलका अंश चुपा या बचा देना, पसेव निकालना या गिराना ।

पमार (हि० पु०) १ पसरानेकी क्रिया या भाव, फैलाव ।

२ विस्तार, लम्बाई और चौड़ाई आदि ।

पमारना (हि० क्रि०) विस्तार करना, फैलाना, अंगीकी और बढ़ाना ।

पसारी (हि० पु०) १ तिमोका घान, पसवन, पसेहो ।

२ पसारी देखो ।

पमाव (हि० पु०) वह जो पमाने पर निकले, माँड़ पोच ।

पमावन (हि० पु०) १ किसी उषांनो हुई वस्तुमेंका गिराया हुआ पानी । २ माँड़, पोच ।

पमिअर (अ० पु०) यात्रो, विद्येपतः रत्न या जहाज या यात्रो । २ सुमाफिरोके मवार होनेको वह रैनगाड़ी जो प्रत्येक स्टेशन पर ठहरती चलती है और प्रिसकी चावलकागाड़ोको चालसे कुछ धोमो होती है ।

पमोजना (हि० क्रि०) १ किसी घन पदार्थमें मिने हुए द्रव अंशका गरमोपा करया और किसी कारणसे रस रस कर बाहर निकाला । २ दयाई होना, विसर्प दया उत्पन्न होना ।

पसोना (हि० पु०) शरीरमें मिला हुआ जल । यह कठिन परिश्रम करने अथवा गरमो लगने पर सारे शरीरमें निकलने लगता है । खैर देखो ।

पस (हि० पु०) पशु देखो ।

पमूज (हि० स्त्री०) वह खिल/ई जिसमें सीधे तोपे भरे जाते हैं ।

पमूजना (हि० क्ति०) खिलाई करना, सीना ।

पमूता (हि० स्त्री०) जिस स्त्रीने अभी हालमें बच्चा जन्मा हो, प्रसूत, ज्वज ।

पमूव (फा० वि०) कठोर ।

पमैव (हि० पु०) पमेव देखो ।

पमैरो (हि० स्त्री०) पाँच सेरका घाट, पंमेरो ।

पमैव (हि० पु०) १ वह तरल पदार्थ जो किसी पदार्थ-के प्रभोक्त्रसे प्रद निकले, जिसको चोजमेंसे रस कर निकला हुआ जल । २ खेद, पसोना । ३ वह तरल पदार्थ जो कच्ची अफोमकी सुखानेके समय उसमेंसे निकलता है । इन चंशके निकल जाने पर अफोम सूख जाती है और खराब नहीं होती ।

पमैवा (हि० पु०) सोनारोंको चंगीमे पर चारों ओर रहनेवाली चारों ईंटे ।

पमोपेग (फा० पु०) १ दुविधा, पागा पीछा, सोच विचार । २ हानि लाभ, भला बुरा ।

पमू (फा० वि०) १ पमात् द्वारा हुआ । २ हान्त, घका हुआ । ३ अघोमय, दशा हुआ ।

पमूकद (फा० वि०) नाटा, वामन ।

पमूहिसत (फा० वि०) भीष्ट, डरपोक, कायर ।

पमूना (हि० क्ति०) पठना देखो ।

पमूनावा (हि० पु०) पठनावा देखो ।

पमूनी (फा० स्त्री०) १ जीबे होनेका भाव, निचाई । २ कामी, न्यूनता, अभाव ।

पमूतो (हि० स्त्री०) पमूनी देखो ।

पमूय (स० स्त्री०) अपकृयायन्ति सङ्गीभूय तिष्ठन्ति जीवा यत्न, अय-स्य-क, निपातनाहुपसंगस्य अकार लोपः । गृह, घर ।

पमूयसद (स० पु०) देवयजनगृहमें अवस्थित ।

पमूयवत् (स० क्ति०) पमूयमस्त्यास्यति मत्तु सस्य व, ततो दीर्घः । गृहयुक्त, पाचोच वंशादि-गृहयुक्त ।

पमूयग (स० पु०) सन्दर्भग्रन्थभेद । यह महाभाष्यका प्रधानाङ्गिकात्मक है ।

पमूर (स० पु०) जहाजका वह कम चारों ओर खलामियों

घाटिकी बंजन और रसद बांटता है, जहाजका खजा-नची या भण्डारी ।

पमूवचूल (हि० पु०) एक प्रकारका पहाड़ी विनायतो बचूल । यह जङ्गलो नदीं होता बल्लि बोने और लगाने-से होता है । हिमालयमें यह ५००० फुटको ऊँचाई तक बोधा जा सकता है । प्रायः चैरा बनाने या बाढ़ लगानेके लिये यह बहुत ही उत्तम और उपयोगी होता है । जाड़ेमें इसमें खूब फूल लगते हैं जिनमेंसे बहुत अच्छी सुगन्ध निकलती है । यूरोपमें इन फूलोंसे कई प्रकारके द्रव और सुगन्धित द्रव्य बनाये जाते हैं ।

पमूसल (हि० स्त्री०) हंनियारके पाकारका तरकारी काठनेका एक जोहार ।

पमूचनवाना (हि० क्ति०) पमूचाननेका काम करना ।

पमूचान (हि० स्त्री०) १ पमूचाननेको क्रिया या भाव ।

२ पमूचानने की सामग्री, किसी वस्तुको बिगड़ पता प्रकट करनेवाली ऐसी बातें जिनकी सहायतासे वह अन्य वस्तुओंसे अलग की जा सके । ३ पमूचाननेकी शक्ति या हस्ति । ४ भेद या विवेक करनेकी क्रिया या भाव । ५ ज्ञान पमूचान, परिचय ।

पमूचानना (हि० क्ति०) १ किसी वस्तु या व्यक्तिकी देवते की ज्ञान लेना कि वह कौन व्यक्ति क्या वस्तु है । २ विवेक करना, बिलगाना तमोज करना । ३ किसी वस्तुका गुण या दोष जानना । ४ किसी वस्तुकी शरीर-कति, रूप रंग अथवा गन्तसूरतसे परिचित होना ।

पमूटना (हि० क्ति०) १ भगा देने अथवा पकड़ लेनेकी लिये किसीके पोछे दौड़ना, खदेड़ना । २ धारकी रगड़ कर तैज करना, पना करना ।

पमूटा (हि० पु०) १ पाटा देखो । २ पैठा देखो ।

पमून (फा० पु०) वह दूध जो बच्चेकी देख कर वास्तव्य-भावेके कारण माँकी कामियोंमें भर पावे और टपकनेकी हो ।

पमूनना (हि० क्ति०) परिधान करना, शरीर पर धारण करना ।

पमूनवाना (हि० क्ति०) किसी औरके द्वारा किसीकी कुछ पहनाना ।

पमूना (फा० पु०) रदन देखो ।

पहनाई (हि० स्त्री०) पहननेकी क्रिया या भाव । २ जो पहनानेके बदलेमें दिया जाय, पहनानेकी मजदूरी पहनाना (हि० क्रि०) किसीके शरीर पर पहननेका कोई चीज धारण कराना ।

पहनवा (हि० पु०) १ परिच्छेद, परिधि, योगाक । २ सिरसे पैर तकके लयर पहननेके सब कपड़े, पाँचो कपड़े । ३ वे कपड़े जो किसी छाव भवसर पर देय या समाजमें पहने जाते हैं । ४ कपड़े पहननेका ढंग या चाल ।

पहपट (हि० पु०) १ एक प्रकारका गीत जो स्त्रियां गाया करती हैं । २ कोलाहल, हल्ला, शोरगुल । ३ शुभ अपवाद या निन्दा, ऐसी बटनामों को कानाफूसी द्वारा की जाय । ४ हल्ला, घोषा, ठगी, फरेब । ५ अपवादका शोर, बटनामोंकी जोर जोरसे चर्चा ।

पहपटवाज (हि० पु०) १ हल्ला करने या कारनामा, फसादी, शरारती । २ घोखिवाज, कलिया, फरेबी ।

पहपटवाजी (हि० स्त्री०) १ कलहप्रियता, झगड़ानू-पन । २ कलियापन, ठगी, मकारी ।

पहपटवाई (हि० स्त्री०) बातका बतगूह करनेवाली, झगड़ा लगानेवाली ।

पहर (हि० पु०) १ युग, समय, जमाना । २ पड़ोस-का अष्टम भाग, एक दिनका चतुर्थांश, तीन घण्टेका समय ।

पहरना (हि० क्रि०) पहनना देखो ।

पहरा (हि० पु०) १ रचकनियुक्ति, रचा बयवा निगह-बानीका प्रबन्ध, चौकी । २ एक साथ काम करते हुए चौकीदार, रचकदल, गारद । ३ निर्दिष्ट स्थानमें किसी विशेष वस्तु या व्यक्तिकी रक्षा, करनेका कार्य, रखवानी स्थापना, निगहबानी । ४ एक पहरदार या पहरदारोंके एक दलका कार्यकाल, नियुक्ति, तैनाती । एक व्यक्ति बयवा एक रचकदलकी नियुक्ति पहले एक पहरके लिये होती थी । उसके बाद दूसरे व्यक्ति या दलकी नियुक्ति होती थी और पहलेकी कुछे मिसलती थी । उपर्युक्त प्रबन्ध, कार्य और कार्यकालका 'पहरा' नाम पहनेका यहो कारण जान पड़ता है । ५ पहरमें रहने की स्थिति, हिरासत, जवालात, नजरबन्दी । ६ रातमें निश्चित समय

पर रचकका भ्रमण या सफर । ७ चौकीदारकी भावांज । ८ भा जानेका शुभ या अशुभ प्रभाव, पैर रखनेका फल । ९ युग, समय, जमाना ।

पहराना (हि० क्रि०) पहनना देखो ।

पहरावनी (हि० स्त्री०) वह योगाक जो कोई बड़ा छोटिकी टै, खिलभत ।

पहरावा (हि० पु०) पहनावा देखो ।

पहरो (हि० पु०) १ रचक, पहरदार, चौकीदार । २ एक जाति, जिसका काम पहरा देना होता था । किन्तु इस इस जातिकी लोग भिन्न भिन्न व्यवसाय करने लग गये हैं । लेकिन पूर्व समयमें इस जातिकी लोग पहरा देनेके सिवा और कोई काम नहीं करते थे । पासमें रहनेवाले पहरो जब तक अधिकतर चौकीदार ही होते हैं । वे लोग सुपर भी पानते हैं । प्रायः चतुर्वर्णके हिन्दू इनका स्वयं किया हुआ जल नहीं पीते ।

पहरवा (हि० पु०) पहरा देखो ।

पहरू (हि० पु०) पहरा देनेवाला, चौकीदार, रचक, सँतरी ।

पहल (हि० पु०) किसी वस्तुकी सम्झाई, चौड़ाई और मोटाई बयवा गहराईके कोनों बयवा देखाओंमें विभक्त समतल अंश, बगल, तरफ । २ राजाई तीर्थ यादिवे निकामी हुई पुरानी रुई जो दशके कारण काड़ी हो जाती है । ३ जमीं हुई रुई बयवा जन । ४ किसी कार्य, विषयमें ऐवे शाय का आरम्भ जिसके प्रतिकार में कुछ किये जानेको सम्भावना है । छेड़ । ५ तरफ, परत ।

पहलदार (हि० वि०) जिसमें पहल हो, जिसमें चारों ओर बल्य बल्य बंटो हुई मने हैं ।

पहलनी (हि० स्त्री०) मोनारोंका एक चीनार । इसमें वे कोड़ेको पहना कर उसे गोल करने हैं । पहलहीना होना है ।

पहलवान (फा० पु०) १ कुश्ती लड़नेवाला, बल्लो पुरुष, कुश्तीबाज । २ वह जिसका शरीर यथेष्ट छट छट और बल्युक्त हो, मोटा तगड़ा और डोढ़ गरीरका आदमी ।

पहलवानो (फा० स्त्री०) १ कुश्ती लड़नेका काम, कुश्ती लड़ना । २ कुश्ती लड़नेका पैगा, मज्ज-बाववाय ।

१ बलकी अधिकता और दास पैस आदिमें कुमनता ।
 पहलवी (फा० पु०) पहली देखो ।
 पहला (हि० वि०) १ एककी संख्याका पूरक, प्रथम, चौथल । (पु०) २ जमी हुई पुरानी रुई, पहल ।
 पहलू (फा० पु०) १ बगल और कमरके बीचका वह भाग जहाँ पहलियाँ होती हैं, कच्छका प्रथोभाग, पाख, पांजर । २ करबट, बल, दिया । ३ किसी वस्तुके श्रष्ट-देग परका समतल कटाव, पहल । ४ सैन्यपाख, सेनाका दहिना या बायाँ भाग । ५ पाखभाग, बाजू, बगल । ६ पड़ोस, पान पास । ७ सहेत, गुप्त सूचना, गुहाशय । ८ विचारणीय विषयका कोई एक अंग, गुण दोष, भलाई बुराई आदिकी दृष्टिमें किसी वस्तुके भिन्न भिन्न अङ्ग ।
 पहले (हि० प्रथ०) १ आरम्भमें, सब प्रथम, शुरूमें । २ पूर्वकालमें, गीते समयमें, अपने जमानेमें । ३ देश क्रममें प्रथम, स्थितिमें पूर्व ।
 पहलेज (हि० पु०) एक प्रकारका खरबूजा । यह लम्बी-तरा होता है और ख़ादमें गोले खरबूजीके अपेक्षा कुछ हीन होता है ।
 पहलेपहल (हि० अर्थ०) सर्व प्रथम, पहली बार ।
 पहलींठा (हि० वि०) पहलींठा देखो ।
 पहलींठो (हि० स्त्री०) पहलींठी देखो ।
 पहलीठा (हि० वि०) प्रथम गर्भजात, पहली बागकी गर्भसे उत्पन्न ।
 पहलीठो (हि० स्त्री०) प्रथम प्रसव, पहले पहल-बच्चा जमाना ।
 पहाड़ (हि० पु०) १ प्राकृतिक रीतिसे बना हुआ पत्यः भूमि मही आदिकी चट्टानोंका लंबा और बड़ा समुच्चय । विशेष विवरण गर्वत शब्दमें देखो । २ किसी वस्तुका बहुत भारी ढेर । ३ दुष्प्रभाव्य काम । दुष्कर काम, अति कठिन कार्य । ४ वह जिसकी समाप्त या शेष न कर सके, वह जिससे निस्तार न हो सके । ५ अति-गुण गुण वस्तु, बहुत बोझिल चीज ।
 पहाड़खो—बनूष जातीय एक गोदा । इन्होंने सम्राट अकबरसे अधीन हारावतोरान सुरजनकी पुत्र दालदक्ष विरह और पीछे बह्मसमें युद्ध किया था । ८८८ हिजरीमें

इन्होंने गाजोपुरके 'तुगुनदार'का पद पाया । आज भी गाजोपुरके लोग फोजदार पहाड़खोंकी स्मृति नहीं भूलते हैं । यहाँको पहाड़खोंकी समाधि और मरोवर देखने योग्य है । गाजोपुरसे वे एक समय महमदाबादमें मसूम-खोके विरह भेजे गये थे । इसके दो वर्ष बाद ये गुजरातके पाटनके निःश्रवर्त्तों से माना-रणनेत्रमें लपस्थित हुए । उस युद्धमें खेरखो-कुलादिकी हार हुई ।

(अकबरनामा)

पहाड़पुर—१ अयोध्या प्रदेशके अन्तर्गत एक परगना । २ पञ्जाबके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर । ३ दिनाजपुरके अन्तर्गत एक प्राचीन गण्डवाम । यहाँ एक समय हिन्दू का राज्य था । उस समयके अतिप्राचीन हिन्दू-मन्दिरका धर्मावगोप और कुछ प्राचीन देवमूर्तियाँ बाहर हुई हैं । किसीका कहना है, कि वे सब बौद्ध-मूर्तियाँ हैं, लेकिन एक बार देखनेमें ही वे ब्राह्मण-मूर्तियों-से प्रतीत होती हैं ।

पहाड़सिंह—पंजरेजभक्त फरिदकोटके एक राजा ।

फरिदकोट देखो ।

पहाड़वरगिरा—मध्यप्रदेशके गन्धनपुर जिलेका एक छोटा गोग्राम्य । भूपरिम. २० वर्गमील है । राजश-के तिराई स्थानमें धान और ईँवको खेती होती है ।

१८५८ ई०में यहाँके राजाने सिपाहोविद्रोहमें भाग लिया था, लेकिन पछि पंजरेज गवर्मेण्टने उनका पप-राफ्त समा कर दिया । छटिय-गवर्मेण्टको १४० रुपये करमें देने पड़ते हैं ।

पहाड़ा (हि० पु०) किसी बहकके एकमे निकर दस तककी साथ गुणा करनेके फल जो सित्तचिन्नेके साथ दिये गए हैं, गुणनसूची ।

पहाड़िया (हि० वि०) पहाड़ी देखो ।

पहाड़िया-विचार और चहोसाके अन्तर्गत मन्थाल परगना-कासी धर्मत्व जातिविशेष । ये लोग साधारणतः समान नामसे मशहूर हैं और विचारकी आदिम अमध्य जाति माने जाते हैं । इन लोगोंका कहना है कि पर्वत पर वास-करनेके लिये जगदीश्वरने जिस प्रथम मानव जातिकी सृष्टि की, वही मान पहाड़िया उन्हें एकमात्र वंशधर हैं ।

पहनाई (हि० स्त्री०) पहननेकी क्रिया या भाव । २ जो पहनाने के बदले में दिया जाय, पहनानेकी मजदूरी । पहनाना (हि० क्ति०) किसीके शरीर पर पहननेका कोई वीज धारण कराना । पहनावा (हि० पु०) १ परिच्छद, परिधेय, पोषाक । २ सिरसे धरे तकके लपट पहननेके सब कपड़े, पाँचो कपड़े । ३ वे कपड़े जो किसी खास अवसर पर देश या समाजमें पहने जाते हैं । ४ कपड़े पहननेका ढंग या चाल । पहपट (हि० पु०) १ एक प्रकारका गीत जो स्त्रियां गाया करती हैं । २ कोलाहल, हल्ला, शोरगुल । ३ शुभ अपवाद या निन्दा, ऐसी बदनामी जो कानाफूसी द्वारा की जाय । ४ छल, धोखा, ठगी, फरेब । ५ अपवादका शोर, बदनामीकी जोर शोरसे चर्चा । पहपटवाज (हि० पु०) १ हल्ला करने या करानेवाला, फसादी, शरारती । २ छेड़वाज, छलिया, फरेबी । पहपटवाजी (हि० स्त्री०) १ कलहप्रियता, झगड़ालूपन । २ छलियापन, ठगी, मफारी । पहपटवाई (हि० स्त्री०) बातका बतगड़ करनेवाली, झगड़ा लगानेवाली । पहर (हि० पु०) १ युग, समय, जमाना । २ पहरातकका चटम भाग, एक दिनका चतुर्थीय, तीन घण्टेका समय । पहरना (हि० क्ति०) पहनना देखो । पहरा (हि० पु०) १ रक्षकनियुक्ति, रक्षा अथवा निगहबानीका प्रबन्ध, चौकी । २ एक साथ काम करते हुए चौकीदार, रक्षकदल, गारट । ३ निर्दिष्ट स्थानमें किसी विशेष वस्तु या व्यक्तिकी रक्षा करनेका कार्य, रखवाली स्थापित, निगहबानी । ४ एक पहरदार या पहरेदारी में एक दलका कार्यकाल, नियुक्ति, तैनाती । - एक व्यक्ति अथवा एक रक्षकदलकी नियुक्त पहले एक पहरके लिये होती थी । उसके बाद दूसरे चरति या दलकी नियुक्ति होती थी और पहलेकी छुट्टी मिलती थी । उपर्युक्त प्रबन्ध, कार्य और कार्यकालका 'पहरा' नाम पहननेका यहो कारण जान पड़ता है । ५ पहरमें रहने की स्थिति, बिरासत, हवासात, नजरबन्दो । ६ रातमें निश्चित समय

पर रक्षकका भ्रमण या चक्कर । ७ चौकीदारकी घावाज । ८ घा जानेका शुभ या अशुभ प्रभाव, पैर पहननेका फल । ९ युग, समय, जमाना ।

पहराना (हि० क्ति०) पहनाना देखो ।

पहरावनी (हि० स्त्री०) १ वृद्ध पोगाक जो कोई बड़ा छोटोको दे, खिलवात ।

पहरावा (हि० पु०) पहनावा देखो ।

पहरो (हि० पु०) १ रक्षक, पहरेदार, चौकीदार । २ एक जाति जिनका काम पहरा देना होता था । किशान इस जातिके लोग भिन्न भिन्न वर्षावाय करने लग गये हैं । लेकिन पूर्व समयमें इस जातिके लोग पहरा देनेके सिवा और कोई काम नहीं करते थे । ग्राममें रहनेवाले पहरो वष तक अधिकतर चौकीदार ही होते हैं । ये लोग खपर भी पाते हैं । प्रायः चतुर्थीके हिन्दू दलका खर्ग किया हुआ जल नहीं पीते ।

पहरपा (हि० पु०) पहर देखो ।

पहर (हि० पु०) पहरा देनेवाला, चौकीदार, रक्षक, सतरी ।

पहल (हि० पु०) किनो वस्तुको सम्बाई, चौड़ाई और मोटाई अथवा गहराईके कोनों अथवा रेखाओंमें विभक्त समतल अंश, बगल, तरफ । २ रजार्हे तीव्र खाँदोंके निकाली हुई पुरानी रुई जो दर्पनेके कारण लड़ी हो जाती है । ३ जमी हुई रुई अथवा जल । ४ किनो कार्य, विशेषतः ऐसे कार्य का आरम्भ जिनके प्रतिकार में कुछ किये जानेको सम्भावना है, छेड़ । ५ तर, परत ।

पहलदार (हि० वि०) जिनमें पहल हो, जिसमें चारों ओर अलग अलग घंटों हुई सतहें हों ।

पहलनो (हि० स्त्री०) सोनारोंका एक औजार । इसमें वे कोढ़को पहना कर उसे गोल करते हैं । वह लोहका होता है ।

पहलवान (फा० पु०) १ कुश्ती लड़नेवाला, इनो पद, कुश्तीवाज । २ वह जिनका शरीर यथेष्ट दृढ़ गुट और बलशाली हो, मोटा, तल्ला और जोग शरीरका चादमी ।

पहलवानो (फा० स्त्री०) १ कुश्ती लड़नेका काम, कुश्ती लड़ना । २ कुश्ती लड़नेका पैगा, मह अवसाय ।

३ बलकी अधिकता और दाघ पैच आदिमें कुशलता ।
 पहलवी (फा० पु०) पहली देखो ।
 पहला (हि० वि०) १ एकखी सख्याका पूरक, प्रथम, शीघ्र । (पु०) २ जमी हुई पुरानी रुई, पहल ।
 पहलू (फा० पु०) १ बगल और कमरके बीचका वह भाग जहाँ पहलियाँ होती हैं, कच्छा अधोभाग, पाख, पाजर । २ करघट, वस्त्र, दिया । ३ किसी वस्तुके प्रवेश परका समतल कटाव, पहल । ४ सैन्यपार्श्व, सेनाका दहिना या बायाँ भाग । ५ पाखभाग, बाजू, बगल । ६ पड़ोस, पास पास । ७ सङ्केत, गुप्त सूचना, गूढ़ाशय । ८ विचारणाय विपयका कोई एक अंग, गुण दोष, भलाई बुराई आदिकी दृष्टिमें किसी वस्तुके भिन्न भिन्न पक्ष ।
 पहले (हि० अव्य०) १ आरम्भमें, सय प्रथम, शुरूमें । २ पूर्वकालमें, गीत समयमें, पहले जमानमें । ३ देश क्रममें प्रथम, स्थितिमें पूर्व ।
 पहलेज (हि० पु०) एक प्रकारका खरबूजा । यह, लम्बी-तरा होता है और खादमें गोत खरबूजीको अपेक्षा कुछ हीन होता है ।
 पहलेपहल (हि० अव्य०) सर्व प्रथम, पहलो बार ।
 पहलीठा (हि० वि०) पहलीठा देखो ।
 पहलीठो (हि० स्त्री०) पहलीठी देखो ।
 पहलीठा (हि० वि०) प्रथम गर्भजात, पहली-बालकी गर्भसे उत्पन्न ।
 पहलीठी (हि० स्त्री०) प्रथम प्रभव, पहली पहल-वस्त्रा जनना ।
 पहाड़ (हि० पु०) १ प्राकृतिक रीतिसे बना हुआ पत्यर चूने मट्टी आदिकी चट्टानीका जंघा और बड़ा समुद्र, गिरि । विशेष विवरण पृष्ठ १७६में देखो । २ किसी वस्तुका बहुत भारो डेर । ३ दुष्काम्य काम । दुष्कर काम, अति कठिन कार्य । ४ वह जिसको समाप्त या शेष न कर सके, वह जिससे निवृत्ति न हो सके । ५ अति-शय गुण वस्तु, बहुत शोभाल चीज ।
 पहाड़खी—बनूच जानेय एक थोड़ा । इन्होंने सम्राट अकबरके पक्षीन हारावतोरान सुरजकी पुत्र दालदक्ष विरह और पीछे ब्रह्मलमें युद्ध किया था । ८८८ हिजरीमें

इन्होंने गाजोपुरके 'तुयुनदर'का पद पाया । आज भी गाजोपुरके लोग फोजदार पहाड़खीको स्मृति-नहीं भूलते हैं । यहाँको पहाड़खीकी समाधि और शरोवर देखने योग्य है । गाजोपुरसे ये एक समय महमूदनाटमें मसूम-खाके विरह भेजे गये थे । इसके दो वर्ष बाद ये गुजरातके पाटनके निरुद्धवर्त्तों में माना-रणसेवमें लक्षित हुए । उस युद्धमें शेरखी-कुलादिकी हार हुई ।

(शहरनामा)

पहाड़पुर—१ अयोध्या-प्रदेयके अन्तर्गत एक परगना । २ पञ्जाबके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर । ३ दिनाग्रपुरके अन्तर्गत एक प्राचीन गण्डायाम । यहाँ एक समय हिन्दूका राज्य था । उस समयके प्रतिप्राचीन हिन्दू-सम्वत्सरका अर्धमावगोप और कुछ प्राचीन देवमुर्तियाँ बाहर हुई हैं । किसीका कहना है, कि वे सब बौद्ध-मूर्तियाँ हैं, लेकिन एक बार देखनेमें ही वे ब्राह्मण-मूर्तियाँ-सो प्रतीत होती हैं ।

पहाड़सिंह—प्रगरेजभक्त फरिदकोटके एक राजा ।

फरिदकोट देखो ।

पहाड़नगरि—प्रथमप्रदेयके सम्बलपुर जिलेका एक कोटा/गोण्डराज्य । भूपरिम.प २० वर्गामील है । राज्यके तिहाई स्थानमें धान और ईँखको खेती होती है ।

१८५८ ई०में यहाँ राजाने सिपाहोविद्रोहमें साथ दिया था, लेकिन पछि प्रगरेज गवर्मेण्टने सनत्ता अय-राध चमा कर दिया । ब्रिटिश-गवर्मेण्टकी १४० रुपये वार्षिक देने पड़ते हैं ।

पहाड़ा (हि० पु०) किसी पक्षकी एकसे लेकर दस तकके साथ गुणा करनेके फल जो सितसितिके साथ दिये गए हों गुणनसुको ।

पहाड़िया (हि० वि०) पहाड़ी देखो ।

पहाड़िया-विहार और उद्दोसाके अन्तर्गत सत्याल परगना-यासी पारस्य जातिविशेष । ये लोग आधारायतः समार नामसे मशहूर हैं और बिहारको आदिम अश्वय जाति माने जाते हैं । इन लोगोंका कहना है कि पूर्वत पर वास करनेके लिये जगदीश्वरने जिस प्रथम मानव जातिकी सृष्टि की, वतमान पहाड़िया उन्हींके एकमात्र वंशधर हैं ।

अंगरेजी राज्यके पहले इन लोगों के मध्य दस्यु-वृत्ति और परीक्षाधार प्रभृति अनियम प्रचलित थे। नोमिंगास्त्र का बहुत कुछ पदानुसरण करने पर भी जिघांसावृत्ति और निष्ठुरता इनका प्रधान व्यवसाय था। इन कारण नौतिके व्यवर्त्ती हो कर ये लोग जो कार्य करते हैं, वह अत्यन्त प्रमथ्य और नीचजनोचित है। पामका प्रधान व्यक्ति (मांभी) ही सभी प्रकारके कार्योंका विचार करता है।

ये लोग आत्माकी दिशान्तरप्राप्ति पर विश्वास करते हैं। 'मृत्युके बाद कर्मके फलाफल-मनुष्य मृत व्यक्तिकी आत्मा सुख और दुःख भोग करते हैं' यह संभाव्य जगदीश्वरने उनके आदिपुत्रवसे कहा था। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक ईश्वरका आदेश पालन करता है और स्वजातियोंको क्षति, अवमानना, पीड़न और हत्या आदि कार्योंमें लिप्त नहीं रहता तथा जो सुबह और शामकी जगदीश्वरकी उपासना करता है, मृत्युके बाद उसको आत्मा ईश्वरके पाम लाई जाती है। वे (ईश्वर) प्रीत हो कर कुछ दिन तक उसे अपने पाम रखते, बाद तत्कृत पुण्यकर्मके पारितोषिकस्वरूप उसे धनाधाम भेज देते हैं। इस प्रकार पवित्रात्मा हो संसारमें या कर राजा या सरदार रूपमें जन्म ग्रहण करते हैं। किन्तु यदि वह उच्चपदाधिकृत व्यक्ति ऐश्वर्यमंदसे मृत हो कर ईश्वरका चमतोयोगी और कृतज्ञ हो जाय, तो ईश्वरके आदेशसे उस व्यक्ति का पुनः निष्ठुर पशुधेनिमें जन्म होता है। आत्महत्या महापाप है। जो आत्महत्या द्वारा ईश्वरका अमीतिभाजन होता है, उसको कलुषित आत्मा स्वर्गद्वारमें प्रवेश नहीं सकती—अनन्तकाल तक उसे स्वर्ग और पृथ्वीके मध्यवर्त्ती श्चोमलोकमें भटकना पड़ता है। मृत्युके बाद हत्याकारीको आत्मा भी इसी प्रकार दुर्गति को प्राप्त होती है। हत्या, सतीत्वनाश प्रभृति महापाप ईश्वरसे छुगित समझे जाते हैं। यदि कोई उन्नत प्रकारकी पापकर्ममें लिप्त रह कर भी उसे क्षिपाना चाहता है अथवा पशुव्यवृत्तिसे उस दीवको दूसरेके मृत्यु मढ़ता है, तो उसका वह पाप-द्विगुणित होता है और आश्विरेकार वह ईश्वरसे भागे दण्ड पाता है।

मत्तारगण जगदीश्वरकी 'बेटो' कह कर पुकारते हैं। सूर्यदेव ईश्वरके निदर्शनरूपमें 'बेटो' वा 'बो' नामसे पूजित होते हैं। अपरपर देवताओंकी पूजाके पहले प्रथमतः इन ही पूजा करते वलि चढ़ाते हैं।

इस प्रदेयमें अंगरेजगमनने ही पहाड़ियोंके मध्य विशेष उन्नति हुई है। मत्तार भिन्न पहाड़ियोंके मध्य माल-चौर कुमार नामके दो और भी स्वतन्त्र गाँव हैं। मत्तारगण ईसाधर्मावलम्बियों की तरह सभी प्रकारके खाद्य खाते हैं। इनके अनावा की मृत पशुका मांस खाते हैं भी बाज नहीं खाते। ये लोग स्वभावतः डर-पोत होते हैं। भिन्न देगवासोका आगमन इनके लिये दुःखद हो जाता है।

ये लोग ज़मावतः हो परिष्कार परित्यक्त हैं। इनकी आकृति अपेक्षाकृत खूब है। अङ्गुलीयमें ये लोग विलक्षण पटु होते हैं। श्रेयविन्यास इनकी जातीय उन्नतिकी पराकाष्ठा दिखता है। पुरुष भी स्त्रियों की तरह लूहा बांधते हैं। टसर, रेशम आदिके वस्त्र और पंगड़ीका ये लोग व्यवहार करते हैं। स्त्रियाँ अन्यान्य धातुओंके अलङ्कारकी अपेक्षा प्रवालकी माला पहनना बहुत पसन्द करती हैं। इन लोगोंमें बहुविधा प्रथा प्रचलित है। यदि कोई व्यक्ति दो वा दोसे अधिक स्त्रियों को हार मर जाय, तो उसको स्त्री देवसे प्रथम स्वसम्पत्तियों अथ देवरसे विवाह कर सकती है।

साधारणतः ये लोग शवदेह गाड़ते हैं और प्रत्येक कब्रके ऊपर एक एक पत्थर रख छोड़ते हैं। पुरोहितोंको देह ये लोग कभी भी नहीं गाड़ते, बल्कि उसे खाट पर सुत्ता कर जंगल ले जाते और किसी वृक्षकी शीतल छायामें पत्थरोंसे ढक कर वर कोट पाते हैं। संक्रामक रोगमें मृत व्यक्तिकी भी यही दुर्दशा होती है। मृत व्यक्तिका ज्येष्ठ पुत्र सम्पत्तिका बर्हीश पाता है और बर्हीश ज्येष्ठ पुत्र-कन्याके बीच बाँट दिया जाता है। भाँजा मातामह वा मामाकी सम्पत्तिका अधिकारी नहीं होता। यदि उपरि-उक्त एक वर्षके भीतर किसीकी मौत मर जाय, तो वह विवाह नहीं कर सकता।

पहाड़ों (दि० वि०) १ जो पहाड़ पर रहता था होता है। २ पहाड़मस्वस्थी, जिपकी मध्यस्थ पहाड़ों की।

(स्त्री०) १ छोटा पहाड़। ४ पहाड़के लोगोंकी गानेकी एक धुन। ५ सम्पूर्ण जातिकी एक प्रकारकी रातिनी। इसके गानेका समय आधे रात है।

पहाड़ी—दाक्षिणात्यवासी जातिविशेष। पर्वत पर वास करनेके कारण इसका पहाड़ी नाम पड़ा है। पहले असभ्य रहने पर भी ये लोग सुसभ्य हो गये हैं। पूना पञ्चमके पहाड़ी खेतो व रो करके अपना गुजारा करते हैं। लेकिन इन लोगोंको सभ्यता बहुत कम है। इनका आदिवास कहीं था, किसीको भी आज तक मालूम नहीं। ये लोग मराठी भाषा बोलते हैं। निरामिय वा धार्मिक, मध्य मांस प्रवृत्ति किसी भी वाद्यमें भाग नहीं लेते। ये लोग मादक वस्तुका अधिक व्यवहार करते हैं। रवि और मङ्गलवारको जब तक ये लोग गाजा और मद्य पी नहीं लेते, तब तक कोई काम नहीं करते हैं। हिन्दूदेवदेवीको पूजा इन लोगोंमें प्रचलित है। देवस्थ ब्राह्मण इनके पुरोहित होते हैं।

सन्तान प्रसूत होनेके बाद जो वे उसकी नाम काट डालते और उसे तथा प्रसूतकी खान करा देते हैं। प्रथम तीन दिन तक किसीकी जान केवल मद्य और चन्दोके तेलसे बचाई जाती है। चौथे दिनसे प्रसूत बच्चेकी दूध पिलाने लगती है। कातम, भलप्रागन, विवाह और और्ध्वदेहिक क्रिया बहुत कुछ निम्नश्रेणीके मराठियोंकी होती है। इनमें बहुविवाह और बाल्य विवाह प्रचलित है। किसीकी श्रुति भी जान पर उसके पुत्र और प्रातिपदकी दस दिन तक चमोच रहता है। इन लोगोंमें पचायत भी है।

पहार (सं० पु०) पहाड़ देखा।

पहारो (हिं० वि०) पहाड़ी देखा।

पहिचान (हिं० स्त्री०) पहचान देखा।

पहिचानना (हिं० क्ति०) पहचानना देखा।

पहिनमा (हिं० क्ति०) पहनना देखा।

पहिनाना (हिं० क्ति०) पहनाना देखा।

पहिनाना (हिं० पुं०) पहनाना देखा।

पहिया (हिं० पुं०) १ गाड़ी, दंजन अथवा अन्य किसी

काममें लगा हुआ लकड़ी या लोहेका चक्का। यह अपने धुरो पर घूमता है और इसके घूमने पर गाड़ी या कल भी चलने लगती है, चक्का। २ किसी कलका वह चक्काकार भाग जो अपनी धुरी पर घूमता है, लेकिन जिसके घूमनेमें समस्त कलकी गति नहीं मिलती, पर उसके अंग विशेष अथवा उससे सम्बन्ध अन्य वस्तु या वस्तुओंको मिलती है, चक्र।

यद्यपि धुरो पर घूमनेवाले प्रत्येक चक्रको पहिया कहना उचित होगा तथापि जोन चालने लिये चलनेवाली चोख अथवा गाड़ीके जमीनमें लगी हुए चक्रको ही पहिया कहते हैं। पहिया कलका अधिक महत्वपूर्ण अङ्ग है। उसका उपयोग केवल गति देने हीमें नहीं होता, गति का घटना बढ़ना, एक प्रकारकी गतिमें दूसरे प्रकारकी गति उत्पन्न करना आदि कार्य भी उसमें लिये जाते हैं। पहियेके प्रसिद्ध पुजे ये मद्य हैं—पुडो, पाग, बैलन, पावन, धुरा, खोपड़ा, तितुला, लाग, चाल आदि।

पहिरना (हिं० क्ति०) पहनना देखा।

पहिराना (हिं० क्ति०) पहनाना देखा।

पहिराना (हिं० क्ति०) पहनाना देखा।

पहिराना (हिं० स्त्री०) पहनाना देखा।

पहिला (हिं० वि०) १ प्रथम प्रसूता, पहले पहल ब्याई हुई। २ पहला देखा।

पहिली (हिं० अर्थ०) पहले देखा।

पहिलोटा (हिं० वि०) पहलौटा देखा।

पहिलोटी (हिं० वि०) १ पहलौटी देखा। (स्त्री०) २ पहलौटी देखा।

पहुँच (हिं० स्त्री०) १ किसी स्थान तक अपनेकी ले जानेकी क्रिया या शक्ति, किसी स्थान तक गति। २ प्राप्तिपूचना, प्राप्ति, रसोद। ३ प्रवेग, पैठ, गुजर, रमाई। ४ किसी स्थान पर्यन्त विस्तार, किसी स्थान तक लगातार फैलाव। ५ अभिप्रायकी सोमा, जानकारी या विस्तार, परिचय। ६ समया भाग्य सम्भूतिकी शक्ति, पकड़।

पहुँचना (हिं० क्ति०) १ गति द्वारा किसी स्थानमें प्राप्त

या उपस्थित होना । २ एक स्थिति या अवस्थाने दूसरी स्थिति या अवस्थाको प्राप्त होना । ३ कहीं तक विस्तृत होना । ४ गूढ़ अर्थ प्रथवा आन्तरिक भाष्यको प्राप्त कर लेना । ५ पविष्ट होना, घुसना, पठना । ६ पास होना, मिलना । ७ समझनेमें समर्थ होना, दूर तक छटना, जानकारो रखना । ८ समझना होना, तुल्य होना । ९ पहुँचाना होना, अनुभवमें आना ।

पहुँचा (हिं० पु०) सविषय, प्रथवाहुँचो र हथेलीके बीचका भाग, कलाई, गद्दा ।

पहुँचाना (हिं० क्त०) १ किसी उद्दिष्ट स्थान तक गमन कराना, उपस्थित कराना, ले जाना । २ किसीके साथ सहजिये जाना जिसमें वह अनेकाने न पहुँचे । ३ समझना का देना, समझना देना । ४ परिणामके रूपमें प्राप्त कराना, अनुभव कराना । ५ पविष्ट कराना, घुमाना, पठाना । ६ किसीको स्थिति-विशेषमें प्रवेश कराना । ७ कोई चीज ला कर या ले जा कर किसीको प्राप्त कराना ।

पहुँचो (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका माभूषण जो हाथको कलाई पर पहना जाता है ।

पहुँचाने (हिं० स्त्री०) पहुँचाई देखो ।

पहुँचा (हिं० पु०) पहुँचा देखो ।

पहुँचाई (हिं० स्त्री०) १ पतियि रूपमें कहीं जाना या आना, निहमान हो कर जाना या आना । २ पतियि-सत्कार, मेहमानदारी, वातिर तवाजा ।

पहुँचो (हिं० स्त्री०) पहुँचाई देखो ।

पहुँचो (हिं० स्त्री०) वह पक्ष जो पक्षी या ध्वनि आदि चोरने समय चिरे हुए अंशके बीचमें इसलिये दे देते हैं कि आरेके चलानेके लिये काफ़ी फासला रहे ।

पहुँच (हिं० स्त्री०) पहुँची देखो ।

पहुँची (हिं० स्त्री०) वह चिपटो टाँकी जिससे गढ़े हुए पत्थर चिकने किये जाते हैं, सटरनो ।

पहुँचो (हिं० स्त्री०) पहुँची देखो ।

पहुँचो (हिं० स्त्री०) १ किसी वस्तु या विषयका ऐसा वर्णन जो दूसरी वस्तु या विषयका वर्णन जान पड़े और बहुत सोच विचारसे उस पर चटाया जा सके, सुभोजन ।

पहुँचिगो की रचनामें प्रायः ऐसा देखा जाता है, कि जिस विषयको पढ़ेको बनानो होतो है उसके रूप, गुण, कार्य आदिको किसी अन्य वस्तुके रूप, गुण, कार्य बना कर वर्णन करते हैं जिससे सुननेवालेको थोड़ा देर तक वही वस्तु पड़े जो कि विषय मान्य होतो है । लेकिन समस्त लक्षण धीरे धीरे जगह चटाने से वह अवश्य समझ सक्ता है कि इसका सत्य कुछ दूरा है । जैसे, पढ़नेमें लगे हुए मुट्ठीको पड़ेको है—“ही थी मन मरी थी” राजाजीके हाथमें दुहाला भेटे लड़को थी । आचार्य मधुमें यह किताबें सत्रोका वर्णन जान पड़ता है । कौमो ऐसा भा करी है, कि कुछ प्रसिद्ध वस्तुओंको प्रसिद्ध विषयवाचक पढ़ेकोके विषयको पहचानके लिये देते हैं और साथ ही यह भी धनता देते हैं कि वह इन वस्तुओंसे कहीं नहीं है । जैसे, धानसे चयुक्त सूर्यको पढ़ेको—“एक नवन वापस नहीं, निव बाह्य नई नाम । पढ़े पढ़े नहि चान्द्रमा, चढ़ी रह सित पाग ।” कुछ पढ़ेकोमें इनके विषयका नाम भी रख देते हैं । जैसे “देखो एक लोहा नारी, गुण उग्रमें एक वस्त्रे मरी । पढ़ो नही यह अवलम्ब आर्थ, मरवा जीन दुर्ग बतारै ।” इस पढ़ेकोका उत्तर नाही है जो पढ़ेकोकी नारी शब्दके रूपमें वर्तमान है । अलङ्कारवाचनमें आचार्योंने इस प्रकारको रचनाको एक अलङ्कार माना है । श्रेष्ठता देखो ।

बुद्धिके अनेक व्यायामोंमें पढ़ेको वृत्तना भी एक अच्छा व्यायाम है । बालकोंको पढ़ेलिपिका बड़ा चाव होता है । इसमें मनोरञ्जनके साथ उसको बुद्धिकी सामर्थ्य भी बढ़ती जाती है ।

२ गूढ़ अर्थवा दुर्ज्ञेय व्यापार, सुमावकिरावतो बात ।

पड़न (मं० पु०) अमनुष्यपरिच्छिन्नजाति विशेष । इस जातिके लोग पहली क्षत्रिय थे, म स्नेहमावापक होनेके कारण स्नेह कहलाने लगा ।

पड़िका (मं० स्त्री०) चररु, वा० उ, मं० प्रायां कर्त्तुं कापि पत इत्वं अपेराजोपः । वारिष्ठ्यो ।

पड़न (मं० पु०) एक प्राचीन जाति, प्रायः प्राचीन पारसी या ईरानी । विस्तृत विवरण पढ़ी शब्दमें देखो ।

पह्वी—ईरान राज्य को एक प्राचीन भाषा। पारसिकों के धर्मिक ग्रन्थ अथर्ववेद इसी भाषा में लिखे हुए हैं। इनका मूल धर्मग्रन्थ "अथर्ववेद" जिस भाषा में लिखा है, उसका नाम क्या है, मालूम नहीं। उस मूल ग्रन्थ की टीका, निष्पत्ति, अथवा जो सब अनुवाद अभी प्राचीन धर्मग्रन्थ के जैसे पारसिकों के निकट आहत होते हैं, उनको भाषा का नाम उन ग्रन्थों में अथर्व वेद मूल-ग्रन्थ को भाषा का नाम आधुनिक भाषा बनना चाहिए। यूरोपीय पण्डित लोग भूत में "अथर्ववेद" को भाषा को ही अथर्व भाषा कहा करते हैं, लेकिन वह ठीक नहीं है। पारसिक लोग इसे खोकार नहीं करते। पारसिक भाषा में "अथर्व" किसे ठीक भाषा का अर्थ बोध नहीं होता। पारसिकों के ग्रन्थ में जहाँ "अथर्व" शब्द पते-राध्यक्ष्य होते देखा जाता है, वहीं उनके द्वारा किसी पञ्चवी भाषा में लिखित पारसिक धर्मग्रन्थ को ठीक निष्पत्ति, वा अनुवाद का ही बोध होता है। सुनरी "अथर्व" ग्रन्थों को भाषा हो "पञ्चवी" भाषा है। किन्तु "अथर्व-पञ्चवी" नामक मूलग्रन्थ को भाषा पञ्चवी नहीं है, उसको भाषा पारसिकों को "आधुनिक" भाषा कहा जायगी।

पह्वी भाषा का विवरण देने के पहले इस नाम के विषय में कुछ कह देना आवश्यक है। आन्तरिक नामक फारसी पण्डित का कहना है, कि आधुनिक पारस्य भाषा में (जिसे बोलचाल में पारसी वा फारसी कहते हैं, उसमें) आधुनिक शब्द का अर्थ है "प्राचीन" वा पारसी। इससे वे "पञ्चवी" का अर्थ "प्राचीनदेशीय भाषा" लगाते हैं। डा० डोगका कहना है, कि बहुतेरों के यह अर्थ खोकार करने पर भी एक प्राक्वर्ती भाषा जो एक समय भारे ईरान राज्य की भाषा हो गई थी, वह भ्रमभय है। कोई कोई "पञ्चवी" का "वीर" अर्थ करके "पञ्चवी" का अर्थ "वीर भाषा" लगाते हैं। इस प्रकार की श्रुत्युक्ति समीचीन नहीं है। पारसिक धार्मिकानि के "पञ्चवी", अर्थ में ईरान साम्राज्य का तत्कालीन एक प्रदेश और नगर का नाम उल्लेख किया है। फिरोजशाहा कहना है, कि "दोघान" अर्थात् पारस के नावक पञ्चवी की विश्रुत कथापि की आज भी उपा करता है। इससे जाना जाता है, कि पञ्चवी भाषा तत्कालीन नगर को भी थी, पर

प्रदेश की भाषा अथर्व है। बहुतेरों का कहना है, कि आधुनिक इस्लाम, राय, इमदान, निहायन्द और आगर-विज्ञान प्रदेश बहु-पुरातन पञ्चवर्ष प्रदेश के अन्तर्गत थे। यदि ऐसा हो, तो उसको प्राचीन मिडिया राज्य का अर्थ प्राचीन नाम कहना होगा। किन्तु किसी भी अथर्व वा पारस्य-देशीय ऐतिहासिक ने मिडिया राज्य की "पञ्चवी" कह कर उल्लेख नहीं किया। कोषाट्टरमियर का कहना है, कि पञ्चवी प्राचीन पारस्य राज्य का अर्थ प्राचीन नाम है। शोक लोग इस पारस्य या रागर का उल्लेख कर गये हैं। पारस्य को दोरी को राज-उपाधि "पञ्चवी" थी, कोषाट्टरमियर ने यह धर्म-निर्णय के अर्थ में भी प्रमाणित किया है। पारस्यगण अपने-को सर्वोपेक्षा युद्धमय और वीरजाति समझते थे। सुनरी "पञ्चवी" और "पञ्चवी" शब्दों के पारसिक लोग तथा "पञ्चवी" शब्दों के धर्म-निर्णय लोग जो "वीर", "युद्धमय" इत्यादि वीरपथीय समझते हैं, वह अन्वय नहीं है। पञ्चवी का शीर्षार्थ एक समय ईरान छोड़ कर भारत में भी फैला हुआ था, जिसका प्रमाण रामायण, महाभारत और मनुस्मृतियों में मिलता है। साधारणतः भारतवासी पञ्चवी शब्दों से उस समय के पारस्य भाषा जनसाधारण को समझते थे। पञ्चवी और पारस्य देशों।

पारस्योलिन, इमदान, जिदुस्तान आदि स्थानों में पर्वत पर तथा भूमि स्तूप आदि में पारस्योलिन राजाओं को जो कोषाट्टरमियर पञ्चवी को उल्लेख लिखि पाई गई है, उसमें "पारस्य" नामक एक जाति का उल्लेख है। यह "पारस्य" शोक और रोमनों का उल्लेखित पारस्य है। डा० डोगका ऐसा विचार है, कि यहाँ पारस्य वा पारस्य यथानाम "पञ्चवी" हो गया है। उनका कहना है, कि ईरानीय लोग "र" की जगह "ल" और "घ" की जगह "ह" उच्चारण करते हैं; यथा, आधुनिक "मिथ" (महान मित्र) शब्द पारस्य भाषा में "मिहिर" हो गया है। कोई कोई कहते हैं, कि यदि ऐसा हो, तो पारस्योलिन को पारसिक कहना होगा; लेकिन सो नहीं है। सम्भवतः पारस्य लोग स्त्रीपथीय (अथर्व) अथर्वी किसी शाखा के होंगे। डा० डोग इस अनुमान को ठीक नहीं मानते। जब हम लोग देखते हैं, कि पारस्यगण पारस्य में

होता है। समस्त हजवारिमकी एक तालिका मंशहोत है जिसमें उसका समितिक वर्षगत उच्चारण और ईरामो उच्चारण आवास्तिक-अक्षरमें लिखा है। पहली छे कर्मां ला चुकी है, कि अवस्था शब्दके पहूवी अनुवादका जिस प्रकार अन्ध नामसे उल्लेख हुआ है, उसी प्रकार हम हजवारिमकी तालिकामें ईरामो प्रतिशब्दोंका पाजान्द नामसे उल्लेख किया गया है।

दो तीन ग्रामनीय शिनाखिपियेमें राजा पापहान और उनके पुत्र १२ मासुर (२२६-२७० ई०) के नाम पाये जाते हैं। ये नाम तीन भाषाओं में लिखे हुए हैं, — ग्रीक, शासनीय पहूवी और कालदोय पहूवी। शासनीय पहूवी रीतिसे प्राचीन शासनीय राजगण लिपि लिखते थे। वही क्रमशः परिवर्तित हो कर उत्तर-कालवर्ती शासनीय राजाओंकी वावहार्य लिपि हो गई। इसीका नाम कालदोय पहूवी है। तीन सौ ई०-मन्की पहूवी ही हम लिपिका वावहार भी बन्द हो गया।

अभी पहूवी-भाषाओं में जो सब ग्रन्थ हैं, उन्हींका थोड़ा बहुत विवरण नीचे दिया जाता है।

कुल ग्रन्थ दो भागोंमें विभक्त है। एक भाग अवस्था शास्त्रका अनुवाद है और दूसरेका मूल अवस्थाओं में नहीं मिलता। अनुवाद ग्रन्थोंमें एक पंक्ति मूल और एक पंक्ति अनुवाद रहता है। उसमें केवल मूलमें भाषान्तर-भाव रहता है। कहीं कहीं वाक्या और कहीं टीच टाका भी देखी जाती है। अमोलिक पहूवी ग्रन्थमें धर्मविषयकी वाक्या की गई है, दो चारमें ऐतिहासिक उपाख्यान भी रहते हैं। इनमेंसे किसी किसी पुस्तकका पाजान्द रीतिमें लिखित मन्स्तरण भी है। पाजान्द आवास्तिक पंचर वा फारसी अक्षरोंमें लिखा हुआ है। आवास्तिक पंचरमें पाजान्द रीतिसे लिखित ग्रन्थकः इस प्रकार फारसी अनुवाद रहता है। संस्कृत वा गुजराती वाक्यामूलक और फारसी ग्रन्थ अनुवादमूलक है।

रिभायन नामक पुस्तक केवल फारसी अक्षरों की निकी है। उसमें चर्य और धर्मकर्मकी रीति-निति-का तकवित्तक एवं मोसमा रहते हैं। इस ग्रन्थमें फारसी कविताओंमें रचित अनेक पाजान्द ग्रन्थोंका

अनुवाद है। ये मंत्र ग्रन्थ दो सौमें साठे तीन सौ वर्ष पहलीके बने हुए प्रतीत होते हैं।

हम भाषाओं बन्दीदाद, यपन, विगपरद, हादोखन-नक्ष, विगताएष यपन, चिदाक आवास्तिक क-इ-गामान प्रभृति आवास्तिक अनुवाद ग्रन्थ हैं और निरहोस्तान, करहाह-इ थोम-खदुक, आक्रिन-इ-ददमान प्रभृति आवास्तिक वचन और वाक्यासंग्रह ग्रंथ, बज्राह-इ-दिनी, दिनकाट, दादिस्तान-इ-दिनी, तुन्दाहिस वा अन्ध आकाश, मिनोक-इ-अरद, वाइसन यम प्रभृति ग्रन्थ विख्यात हैं।

पहिलका (सं० खो०) जलकुम्भी।

पाई-वाम (फा० पु०) मन्थनीकी घास पास या चारों ओर बना हुआ छोटा बाग। इसमें प्रायः राजमहलकी खिया और करनीकी जातो हैं। ये वागोंमें प्रायः सर्वशासनके जानकी मनाहो होती है।

पाक (हि० पु०) पक, कीचड़।

पाका (हि० पु०) पाक देखो।

पाख (हि० पु०) पंख, पर।

पाखडी (हि० स्त्री) पहारी देखो।

पाखुरो (हि० स्त्री) पहड़ी देखी।

पाग (हि० पु०) गंगवारार, कछार, गादर।

पागन (हि० पु०) कट।

पांगा (हि० पु०) पांगाने देखो।

पांगानोन (हि० पु०) मसुदो नमक। इसका गुण सापर और मधुर, भारी, न बहुत गरम और न बहुत शीतल, अग्निप्रदीपक, पातनाशक और कफकारक होता है।

पांच (हि० वि०) १ जो तीन और दो हो, चारमें एक अधिक। (पु०) २ पांचकी मंख्या या बड़। ३ बहुत लोग, कई एक घादमें। ४ जाति-विरादोंके मुखिया लोग, पंच।

पांचक (हि० पु०) गन्धक देखो।

पांचमहाल—बम्बईप्रदेशके गुजरातके पूर्वोत्तरी भागमें राजाधिराज एक जिला। यह अर्थात् २२° १५' से २३° ११' उ० और देशा० ७३° २२' से ७४° २८' पू० के मध्य अवस्थित है। भूविस्तर १६०६ वर्ग मील है। इसमें पांच सर्वाधिकार रहनेके कारण इसका पांचमहाल नाम

पहा है। यह जिका दो भागमें बंटा है। पश्चिमी भाग और पूर्वीभाग। पश्चिमीभागके उत्तरमें नूनावदराज्य, मुख्य और सनजोती; पूर्वमें बांयाराज्य, दक्षिणमें बरोदाराज्य और पश्चिममें भो. बरोदाराज्य तथा माहो नदी है। पूर्वीभागके उत्तरमें विलकारीराज्य और कुगान नद, पूर्वमें पूर्वयमाजवा और घनासननदी, दक्षिणमें पश्चिमीमालवा और पश्चिममें सुवराज्य, सनजोती और बारिया है।

इस जिलेमें माही छोड़ कर और सभी छोटी छोटी नदियाँ हैं। घनास और पानम भीमकालमें सूख जातो हैं। इस जिलेके गोधड़ा सपविभागमें ओर्वादा नामक जो झर है, समस्त जल सभी भो सूखने नहीं पाता। एतद्विषय यहां प्रायः ३५० बड़ो बड़ो, पुष्करिण्याँ और असंख्य झूप हैं।

जिलेके दक्षिण-पश्चिमकोणमें घोषा या पावागढ़ नामक एक पर्वत है। इसका गिखरदेश वहांके समस्तक्षेत्रमें प्रायः २५०० फुट ऊंचा है। इस उच्चस्थान पर पक्षी-एक दुर्ग अवस्थित था। जिलेकी घावहवा अच्छी है।

चम्पानेर गहरका इतिहास हो हम जिलेका इतिहास है। दलों, यत्नाम्होंमें चम्पानेर हिन्दुराजाधेनि स्थापित हुआ। उस समय यह एक मध्यस्थानको स्थान था। १०१२ ई०में भो तूपर राजगण इस प्रदेश तथा पावादुर्गके पधेश्वर थे। पीके चोहान राजाधेनि यह दुर्ग दखल किया। १४१८ ई०में सुमनमानगण इस स्थान पर आक्रमण कर पक्षतकार्य हो कर भाग गये थे।

१७६१-१७७० ई०के मध्य सिन्धियाराजने इस प्रदेशकी जीता और १८०३ ई० तक उनके वंशधरोंने इसका भोग किया। उसी सालके, अन्तमें कर्णल वॉडिंग्टनने इस पर आक्रमण कर पूरा अधिकार जमा लिया। १८०४ ई०में पञ्चरेजराजने यहांका शासनभार फिरसे सिन्धियाके हाथ सुपुर्द किया। पीके १८५३ ई०में पञ्चरेजोंने सदाके लिये हमका शासनभार अपने हाथ ले लिया। चम्पानेर नगरका सभी ध्वंसावशेषमात्र देखा जाता है। १५०-१३० ई० तक यहां अनन्तरवाहाके तूपरोंने और पीके १४८४ ई० तक चौहानोंने राज्य किया।

उस समय के ले कर १५३६ ई० तक चम्पानेर नगर गुजरातकी राजधानीरूपमें गिना जाता था।

इस जिलेमें ४ गहर और ६८ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या प्रायः २६१०२० है। यहांकी भाषा गुजराती है। इस प्रदेशके पांचमहाल जिलेमें अपने-अपने हैं। यहांमें घनाज, महुए, फूल, देवदार और तिलहनकी रफ्तानी गुजरात होती है और गुजरातमें तमाकू, नमक, नारियल, मसाले और सोहें पोतल आदि चीजें लाई जाती हैं। १८५३, १८५७, १८६१, १८६४ और १८७७ ई०में घनाजविद्रोह कारण यहां भारो प्रकान पड़ा था।

विद्या-विद्यामें यह जिला बहुत पीछे पड़ा हुआ है। पर धीरे धीरे लोगोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट होता जा रहा है। सभी यहां कुल उद्भूत हैं। स्कूल है जिनमेंसे केवल एक हाई स्कूल है। स्कूलके शिक्षा १ असस्ताल और ५ चिकित्सालय हैं।

पाँवर (हि० स्त्री०) कोण्डके बीचमें जड़े हुए लकड़ोंके छोटे छोटे टुकड़े। ये टुकड़े गन्धके टुकड़ोंको दवानेमें जाठ संशयक होती हैं।

पाँवरी (हि० वि०) जो क्रमसे पाँवके स्थान पर पड़े, पाँवके स्थान पर पड़नेवाला।

पाँवा (हि० पु०) १ किसानका एक भोजन। इसमें बी भूना घास आदि समेटने वा इटाते हैं। इसमें चार दाँत और एक बेँट होता है, इसीसे इसका पाँवा नाम पड़ा है। (वि०) २ पंचाल देशका रहनेवाला। ३ पंचालदेश-सम्बन्धी।

पाँचालिका (हि० स्त्री०) गायत्री देखो।

पाँचो (हि० स्त्री०) तालाबोंमें कोनेवाली एक प्रकारकी घास।

पाँचि (हि० स्त्री०) किसी पक्षकी पाँचवीं तिथि, पंचमी।

पाँजभा (हि० स्त्री०) टोम, लाह, पोतल आदि धातुके दो या अधिक टुकड़ोंको टाँके लगा कर जोड़ना, भालना, टीका लगाना।

पाँजर (हि० पु०) १ बगल और कमरके बीचका वह भाग जिसमें पसलियाँ होती हैं, छातोके बगल बगलका भाग। २ पमनो। ३ पाख, पास, बगल, मामोप्य।

पाँजी (हि० स्त्री०) नुदोका पानो घुटनी तथा या समसे भी कम हो जाना।

पांक्त (हि० वि०) पांजी देखो ।
 पांङ्क (हि० पु०) पंङ्क देखो ।
 पांङ्ग (हि० पु०) एक प्रकारकी ईंध ।
 पांङ्गस (हि० स्त्री०) तलवार ।
 पांङ्गे (हि० पु०) १ सरयूपारी, कान्यकुब्ज और गुजरातो
 आदि ब्राह्मणोंकी एक आखा । २ कायस्थोंकी एक
 आखा । ३ पण्डित, विद्वान् । ४ अध्यापक, शिक्षक ।
 ५ रसोदया, भोजन बनानेवाला ।
 पांति (हि० स्त्री०) १ पङ्क्ति, कतार । २ भवली, समूह ।
 ३ एक साथ भोजन करनेवाले बिरादरीके लोग, परिवार-
 समूह ।
 पांयचा (का० पु०) १ पाखानों आदिमें बना हुआ पेर
 रखनेका वह स्थान जिस पर पेर रख कर गौचने निहस
 कोनके लिये बैठते हैं । २ पायजामेकी मोड़री जिसमें
 जाँघसे ले कर टखने तकका भाग टका रहता है ।
 पांयता (हि० पु०) पलंग या खाटका वह भाग जिसको
 और पेर किए जाते हैं, पैंताना ।
 पांय (हि० पु०) पावे देखो ।
 पांयड़ा (हि० पु०) पावड़ा देखो ।
 पांयड़ी (हि० स्त्री०) पावड़ी देखो ।
 पांवरी (हि० स्त्री०) पावड़ी देखो । २ सोपान, सीढ़ी ।
 ३ सपानह, जूता । ४ पेर रखनेका स्थान । ५ पेंरी,
 छोड़ी । ६ बैठक, दाखान ।
 पांगन (सं० त्रि०) पांग-वयु उपोदरादित्वात् दीर्घः ।
 दूषक ।
 पांगव (सं० पु०) पांगोर्ल वयविशेषस्य विकारः, पांग-
 वण् । लवणविशेष, रिकान नमक । पर्याय—रोमक,
 बौद्धिज, वसुक्त, वसुपांश, क्षपराज, मोघर, ऐरिण, मोर्व,
 भइ । गुण—नीच, कटु, तिक्त, दोषन, टाङ्गशोषकर,
 ग्राही और पित्तकोपकर ।
 पांश (सं० पु०) पांगयति नागयति आत्मानमिति पांगि
 नागमे कु दोषस्य (अग्निहोत्रकर्मणि । उ० १।२) १ धूलि,
 रज । २ श्लेष्माद्यं चिरसञ्चित गोमय, गोधरकी खाद । ३
 पर्वट, पित्तपापड़ा । ४ कपूर विशेष, एक प्रकारका
 कपूर । ५ भूमम्पति । ६ बालुका, बाल ।
 पांशुका (सं० स्त्री०) केवड़ेका पौधा ।

पांशुकावीस (सं० पु०) कसोम ।
 पांशुकूल (सं० पु०) १ चौपट्टी आदिकी सी कर बनाया
 हुआ चौध भित्तुओंके पहननेका वस्त्र । २ वह टप्पा-
 बेज या कामज जो किसी विशिष्ट व्यक्तिके नाम न
 लिखा गया है ।
 पांशुचत्वर (सं० पु०) घोला ।
 पांशुज (सं० पु०) नोनो मटोसे निकाला हुआ नमक ।
 पांशुपत्र (सं० पु०) वह पासाग ।
 पांशुमय (सं० स्त्री०) मृत्तिकासमय ।
 पांशुभ्रिचा (सं० स्त्री०) धातुकी छुछ ।
 पांशुर (सं० पु०) १ खज्जनघोटक, लूना घोट । २
 दंगक, डाँस ।
 पांशु, रागिनी (सं० स्त्री०) महामिदा ।
 पांशुगुह (सं० स्त्री०) जनपदभेद, एक देशका नाम ।
 पांशुन (सं० वि०) १ परस्त्रीगामी, लम्बट, अभिचारी ।
 २ मलिन, मैला, धूल या मटोसे ढँका हुआ । (पु०)
 ३ पूतिकारक । ४ शिव ।
 पांशुनयन (सं० स्त्री०) बौद्धिजनयन, पांगानोन ।
 पांशुना (सं० स्त्री०) १ कुलटा । २ रजस्वला । ३ शेतकी ।
 ४ भूमि ।
 पांस (हि० स्त्री०) १ शराब निकाली हुआ महुषा ।
 २ खाद । ३ किसी वस्तुकी मढ़ाने पर उठा हुआ
 खंभोर ।
 पांसना (हि० स्त्री०) खेतमें खाद देना ।
 पांसव (सं० पु०) पांसव देखो ।
 पांसव्य (सं० त्रि०) पांसुभर, जो धूलसे उत्पन्न हो ।
 पांसा (हि० पु०) हाथीदाँत या किसी हड्डिकी बने चार
 पाँव पहन लम्बे बत्तीके पाकारके चौपहन टकड़े
 जिसमें चोसरका खेल खेलते हैं । २ म'ख्यामें १ होती
 है । प्रत्येक पहलमें कुछ बिन्दुसे बने रहते हैं । उन्हीं
 बिन्दुओंकी गणनासे दाँव मसक्ता जाता है ।
 पांसिन् (सं० त्रि०) दीपो, अपराधी ।
 पांसी (हि० स्त्री०) सूत या डीरी आदिका बना हुआ ।
 वह छाल जिसमें भूना आदि गांधते हैं ।
 पांसु (सं० पु०) पांग-कु दोषस्य । धूलि, रज ।
 पांसुक (सं० पु०) १ धूलि, रज । २ पांसुनयन ।

पांशुका (स० स्त्री०) राजधला स्त्री ।
 पांशुकाषीस (स० स्त्री०) पांशुख का सोस । कसोस ।
 पांशुकुलो (स० स्त्री०) पांशुना कोनति पाकुलोभवतीति
 कुलक, ततस्त्रियां ङोप् । राजमार्ग ।
 पांशुकूल (स० स्त्री०) पांशोः कूलमिव । अनामपटोलिका,
 बड दसाधेज या कागज जो किसी विग्रिष्ट व्यक्तिके
 नाम न लिख गया हो ।
 पांशुकुल (स० स्त्री०) जो धूल पर पतित हो गया हो ।
 पांशुखार (स० पु०) पांशुखि चार । चारलवण, पांगा
 नमक ।
 पांशुखुर (स० पु०) पशुके पादतलस्थित रोगभेद, चोड़ों-
 का एक रोग जो उनके पैरोंमें होता है ।
 पांशुखल (स० पु०) पांशुभिश्चल इव । चनोपल,
 ओला ।
 पांशुचन्दन (स० पु०) पांशुचिताभस्मरजस्यन्दनमिव यस्य ।
 शिव, महादेव ।
 पांशुचामर (स० पु०) पांशुधूलिचामर इव यस्य । १
 पटवान, तंबू, बड़ा छिमा । २ दूर्वादिपशुक तटभूमि,
 तान्नाय या नदीका बड किनारा जो दूसरे प्राच्छादित
 रहता है । ३ बर्काक । ४ प्रयाग । ५ पुरोटा । ६
 धूलिगुच्छक, धूलका ढेर ।
 पांशुज (स० स्त्री०) पांशुजयति पांशु जन-ड । पांशु-
 लवण, पांगानोन । पशय—जय, सद्धिद, पाश्च, लवण,
 पटु । गुण—मिदक, पाचन और पित्तकारक ।
 पांशुजचार (स० पु०) श्रुत्तिकालवण ।
 पांशुजालिक (स० पु०) विष्णुका नामान्तर ।
 पांशुपटु (स० स्त्री०) पांशुलवण, पांगानोन ।
 पांशुपत्र (स० स्त्री०) पांशुः कर्पूर इव सुगन्धिपत्रमस्य ।
 शास्त्रक, सद्युषा नामका साग ।
 पांशुमध (स० स्त्री०) श्रुत्तिकालवण ।
 पांशुमिषा (स० स्त्री०) घातकीवृक्ष, धोका पेड़ ।
 पांशुमदन (स० पु०) मद्यतेऽसाविति मृद-स्युट् मदन
 ततः पांशुः मदनो यत् । कंटारभूमि ।
 पांशुर (स० पु०) पांशुः चिरसञ्चित-गोमथादिकस्यत्ति-
 त्वेन रातोति पांशुराक । १ दंशक, डांश । २ पीठ-
 सर्प, सगङ्गा । ३ खज्ज, लूना । (त्रि०) ४ पाश
 विग्रिष्ट ।

पांशुरागिणो (स० स्त्री०) पांशुरागो विद्यतेऽस्याः इति,
 स्त्रियां ङोप् च । महाभेदा ।
 पांशुराष्ट्र (स० स्त्री०) देशभेद ।
 पांशुरो (हि० स्त्री०) पत्नी देखो ।
 पांशुल (स० पु०) पांशुविद्यतेऽस्य पांशु-लब्ध (सिन्धादि-
 म्बध । पा ५१/१०) १ हर, महादेव । २ पावो । ३
 पुंश्चल, परस्त्रीसे प्रेम करनेवाला । ४ शम्भुका मृदाङ्क ।
 ५ लावण्यो । ६ केतकोष्ठल । ७ पूतिकरज, कंजा ।
 पांशुलवण (स० स्त्री०) पांशुलवण देखो ।
 पांशुला (स० स्त्री०) पांशुन-टाप । १ कुनटा । २ रज
 खला । ३ भूमि । ४ केतकी ।
 पाशका (स० पु०) नावके विचारसे छापके टाशोंका
 एक प्रकार । इसकी चोड़ाई १ इंच होती है । पल्लोंको
 मोटाई पाटिके विचारसे इसके धोर भी कई भेद
 होते हैं ।
 पाशप (स० पु०) १ मल या नको । २ पानीको कल, नल ।
 ३ एक प्रकारका पशुरेजो बाजा जो बांसरोके पाशारका
 होता है । ४ हुक्का नल ।
 पाशरा (हि० पु०) रकाव जिस पर चोड़ोंको सवारोंके
 समय पर रखते हैं । रकाव देखो ।
 पाशै (हि० स्त्री०) १ किसी एक हो नियत चरे या
 मण्डलमें नाचने या चरनेको क्रिया, गाढ़ापाशो । २
 जोलाडीका एक टाँचा जो बैतोंका बना होता है और
 जिस पर तानेके सुनको फंसा कर उसे खूब मारते हैं ।
 ३ छापके घिमे हुए और रही टाशप । ४ दोष पाकार-
 सुषक मात्रा । इसे पचरभी दोष कारनेके लिये लगाते
 हैं । ५ चोड़ोंकी एक बीमारो । इसमें उनके पैर सूज
 जाते हैं और वे चल नहीं सकते । ६ एक पेस । ७ एक
 छोटा भिक्का जो एक चानिका १२वां वा एक पैसेका
 तीसरा भाग होता है । ८ छोटी सीधो लकोर जो किसी
 संश्रयके आगे लगानेसे एकईका चतुर्थांश प्रकट करता
 है । ९ स्त्रियोंके पाभूषण रखनेको पिठारो । १० छोटी
 खटो रेखा जो किसी वाक्यके अन्तमें पूर्णविराम सूचित
 करनेके लिये लगाई जाती हो । ११ एक छोटा लम्बा
 कीड़ा । यह सुनकी तरह पशुको विषपतः घातकी खा
 जाता चयवा खराब कर देता है और जमने योग्य नहीं
 रहने देता ।

पारिता (हि० पु०) एक वण वृत्त । इसमें एक भगण,
एक भगण और एक सगण होता है ।

पाउंड (पं० पु०) १ मोने का एक चदरे जो मित्रा जो २० गिलिद्रा होता है। पडने यह (१५) का, लेकिन यह १०) का माना जाता है। इसका भाव घटता बढ़ता रहता है। २ एक एंगरेजी तोल जो लगभग सात कटॉक का होता है।

पाठशर (पं० पु०) १ कोई वस्तु जो पीस कर धूँके समान कर दी गई हो, धूर्ण, तुकड़ो । २ एक प्रकारका त्रिभायतो बना हुआ मसाला या धूर्ण । खियाँ चोर भाटकसे प्राप्त अपनी चेशरे पर उसको रंगत बदलने चोर शोभा बढानेके लिये लगाते हैं ।

पाक (स० पु०) पच भावे प्रज् । १ पचन, क्षोदन,
शोधना । २ रन्धन, रसोद्दि । पाकराजेश्वरमें लिखा है,—

“मर्जनं क्षलनं” स्वेदः पचनं कषयनं तथा ।

तान्दुरं पुढगाकथ पाकः सप्तविधो मतः ।”

भज्जन, तनन, खेद, पवन, क्षयन, तान्दूर और पुट-
पाक ये सात प्रकारके पाक हैं। इनमेंसे केवल पात्रमें
भज्जन, खेद द्रव्यमें तनन, धूम्रिके उत्तापमें खेदन,
जलमें पवन, सिद्ध द्रव्यके रसप्रक्षयमें क्षयन, हारवह
तम्रयन्त्रमें तान्दूर और भर्हिग्नितपापमें पुटपाक किया
जाता है। तण्डुलादि कृतेन, स्यालोभार्जन, पक्ष-
मस्तापन, चास्योतन और पयोक्षान्त व्यापार विशेषकी
पाक श्रुति है।

‘निरयं नूतनमाण्डेन कर्तव्यः पाठ एव च ।

अथवा पक्षपर्यन्तं ततस्तथाऽयं मनीषिभिः ॥”

ब्रह्मवैवर्त के मतसे प्रतिदिन नूतन भाण्डमें पाक करना चाहिये । यदि उसमें प्रसन्न हो, तो पंद्रह दिन तक एक पादमें शक कर पोत्रि उसे फेंक दे ।

याहकालमें पाक प्रकारादिका विषय निर्णयमिच्छुं
इमं प्रकार निष्ठा है—याज्ञिके चपने हाथमें ही अन्न-
पात्र करे, दूसरेमें न करावे। यदि इममें नितान्त
असमर्थ हो, तो स्तोत्रे, स्तोत्रे अभावमें वायस्वसे पाक
करा सकती है।

दीपकलिकाष्टन पाश्चलायन यचनमें लिखा है,—
सुप्राण प्रवर, मित्र, सपिण्ड और गुणान्वित व्यक्ति द्वारा

पाक करानेमें कोई दोष नहीं। यह विधि केवल
असमर्थ पक्षमें बतलाई गई है, समर्थ पक्षमें नहीं।

ध्यात-वचनमें लिखा है—*एहिणो स्नानं करणे पयं*
पूर्वक पाक करे और पाककार्यं निष्पन्न हो जनि पर
पुनः स्नान कर ले। राजस्वना, पावण्ड, मुंछने, पतिता,
विषव्या, वज्या, चरु, गोष्ठना, वरुणकर्णे, चतुर्थाः स्नाना
राजस्वना और माह वा विहगगत भिन्न प्रपर छो
डारा पाक कार्य न करावे। स्नानात्, गमना वा
गमिण्यो भो पक करनी ता अधिक न जो है।

पाकभाण्ड का विषय है। इस 'इस' प्रकार
लिखा है—

“शौचमन्यय रौप्याणि कस्यनामोद्भवानि च ।

मार्तिकान्येति भङ्गानि नूतनानि दृढाणि च ॥

सुवर्ण, रौप्य, कांस्य वा ताम्रनिर्मित पात्र ग्रहण-
नृत्तनं पौर दृष्टं श्रुत्वा पात्रमेव पाकं करे । वायुपुत्राय-
मेतिहा है, कि लोहपात्रमेव कभी भी यादृशो यज्ञपाकं
न करे, कानिमेऽपिह्यगणं उच्यते यज्ञं नहोः करेति ।
ग्रहसंकेतं सज्जं बालायाम् विधेयं निन्द्यते । विवाहमे-
वातां पौर पित्रादिकं प्रेतकायाम्, क्षयं दिनमेव पौर यज्ञ-
कानादिमेव नृत्तनपात्रमेव पाकं कर्तव्यं करणा होता है ।

‘विवाहे प्रेनकार्ये च नातादिभ्योः क्षयेऽहनि ।

नव माण्ड नि कुर्वीन मद्यच्छेदो विशेषतः ॥" (यन)

पाकका तर्जें शुद्ध हो भग्नि न दे, देनेसे वह शुद्धत्व समझा जाता है। ब्राह्मण यदि वह पक्ष भक्षण करे, तो वे शुद्धत्वको प्राप्त होते हैं।

“शूद्रायाग्निहोत्रं यो दद्यात् पारुषाळे विसेवतः ।

शुद्धपाकं भवेदन्ते प्राप्तागं . शुद्धतामिषात् ॥”

(प्रत्ययैः पुः)

मत्स्यवृक्षके द्वये पटनमे लिप्ता है, कि पूर्व वा उत्तरमुखो हो कर मन्त्राह्वानमें प्रथमांक करे । मन्त्राह्वानमें मन्त्रिकोपाधिसंख्य हो कर पाक करनेमें तदग्रमन्त्र तुल्य होता है । धर्मकामो पूर्वमुखः पौर पति-कामो पश्चिममुखः पाक करे । दक्षिणमुखमें पाक करनेमें शीघ्र पौर हानि तथा ईशान होशमें पाक करनेमें देहिद होता है । ताम्रपात्रमें पाक करनेमें चक्षुःहानि पौर मृषिमयपात्रमें पाक करनेमें ध्वं होता है ।

चटुस्यर काष्ठ, कदम्बदन, शाल, करमर्द, शिरोप, वज्रहत-
काष्ठ, मेरुपुत्र और शास्त्रमलिकाद्वये पाक न करे, करनेसे
नष्ट निष्फल होता है। पाककालमें एक हो बार लज्ज
दे दे, पोछे में न दे। (भस्मसूत्र ४३ पटल)

३ परिणति। ४ स्तम्भपायी शिष्ट, दुष्युङ्गा वज्रा।
५ हृदयहस्त केङ्करी धवसता, बुद्धापेमें मालका पकना।
६ स्यात्वादि। ७ राट्टादि। ८ भङ्ग। ९ भोति।
१० पसरमेद। इन्द्रमें पसका विनाश किया था।
पाकशानन देखो। ११ फलपाकाधिकारणकालभेद।

"पक्षाद्गामोऽसोमस्य मासिकोऽगारक्ष्य वक्रोक्तः।

आ दर्शनाख्य पाको बुधस्य औबस्य वर्षेण ॥"

(बृहत् सं १७ अ०)

भातुका पाककाल पचपर्यन्त, चन्द्रका मास, भङ्गल-
का, वक्रासुसारी, दिम, बुधका दशम पर्यन्त और हृ-
स्यतिका पर्याकाल पर्यन्त हुआ करता है। शक्र-
का पाक परमासमें, शनिका एक वर्षमें, राहुका चर्द
वर्षमें और सूर्यग्रहणमें वर्ष-पर्यन्त तथा त्वाष्ट्र और
कौलकका पाक सद्य हुआ करता है। धूमकेतुका
विमानमें, ज्येष्ठका समराज्यान्तमें और परिवेष, इन्द्रवाण,
सन्ध्या तथा अश्वसुचोका सप्ताह पर्यन्त पाक होता है।
शोतोष्णका शक्तिमान, भवाननात फल पुण्यादि, खिर
और चरका अन्यत्वं तथा प्रमत्तिविक्रतिका पाक
बार मासमें होता है। शक्तिप्रमाण कार्यकरण
(जो काम कभी नहीं किया हो, उसे करना अथवा
अनिच्छासे या डटानु करना), भूमिकम्प, अनुत्सव,
दुष्टि, चणोष्णका शोषण और स्त्रीतका अन्यत्वं इन-
मवका फलपाक छः मासमें होता है। कौट, भूमिक,
मजिका, श्रृग, विशङ्क और मातृत अथवा जनमें कोट्ट-
का तरण, ये सब तीन मासमें, परस्परमें कुक्षरीका प्रसव,
जंगलीका घासमें सम्मेषण, मधुनिष्ठ, तोरण और
इन्द्रध्वज, ये सब एक वर्षमें वा कुछ अधिक समयमें,
शृगान और गृध्रासमूह दश दिवसमें, तृणरव मवाः और
पाक ८, वनकीक और छविबोधिः रण एक पक्षमें पाक-
अनित फल प्राप्त होता है। पानिप्रदेष्टका प्रज्वलन,
हृत, तैल और समादिवर्षण अथ पाक प्राप्त होता है।
छल, चिति, यूप, वृत्तवह और वेत्र-पाक एक मासमें

मासान्तरसे छत्र और तोरणका फल मास पर्यन्त होता
है। अत्यन्त विशद जोवका परस्पर खेद, आकाशमें
भूतोका शब्द, साजोर और नकुलके साथ भूमिकका दण्ड
इनका फल एक महीनेमें होता है। गन्धर्वपुर, रस-
विक्रति और हिरण्यविक्रति मास पर्यन्त; समस्तदिक,
ध्वज, मालव, पांशु और धूम द्वारा आकुल होनेसे एक
मासमें फल सिन्ता है। यदि कथित समयमें फल न
दिखाई दे, तो उसके दिगुष समयमें अधिकतर फल
होता है। किन्तु खनक, रत्न और गो प्रदानादि शान्ति
द्वारा शिखण्डसे यदि विविधत् उपमानित न हो, तो
दिगुष समयमें पाक होगा। इत्यादि। पाकका
विस्तृत विवरण बृहत्संहिताके ८० अध्यायमें विशेष-
रूपसे लिखा है।

११ खाये हुए पदार्थों के पचनेकी क्रिया। जो कुछ
खाया जाता है, वह जाठराग्निसे पच जाता है। इस
पाकका विषय सद्युत्तमें इस प्रकार लिखा है—

भुक्त द्रव्यका सम्यक् रूपसे परिपाक होने पर गुण
तथा अप्रशस्त्यरूपसे दोष उत्पन्न होता है। किसी
किसीका मत है, कि प्रत्येक रसमें परिपक्व हुआ जाता
है। कोई कहते हैं, कि मधुर, अम्ल और कटु इन
तीन प्रकारके रसोंमें ही पाक होता है, लेकिन यह युक्ति-
मंगत नहीं है। क्योंकि द्रव्यगुण और शास्त्रकी पर्या-
लोचना कर देखनेमें यही प्रतीत होता है, कि अम्ल-
रसका पाक नहीं है, कारण अग्निमान्द्र होनेसे पित्त
ही विष्य हो कर अम्लरसमें परिणत होता है। यदि
अम्लरसका पाक स्वीकार किया जाय, तो लवणरसका
भी अम्लप्रकारका वाद सम्भव है। किन्तु ऐसा नहीं
होता। श्लेष्मा विष्य हो कर ही लवणत्वको प्राप्त होती
है। किसी किसीका कहना है, कि मधुररस परि-
पाकमें मधुर और अम्लरस अम्ल ही रहता है। इस
प्रकार अभी रस अविकृत रहते हैं। इसका उदाहरण
यों है—श्लेष्मीका दूध पाक होनेके समय मधुर ही
रहता है और घान, जी, मूत्र आदिके जमीन पर छिड़-
कनेमें वादमें भी इनका स्थाव्र नहीं बदलता। किसी
किसीका मत है, कि सद्युत्त मनवान् रसका अनुगामी
होता है। इस विषयमें इस प्रकार विविध मतवर्षा

दोष लगता है। अतएव ऐसा स्थिर द्रव्य कि आत्मने दो प्रकारके पाक बतलाये गये हैं, मधुर और कटु। इनमेंसे मधुर पाकमें शुक्र और कटु पाकमें लघु होता है। पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश ये गुणानुसार शुक्र और लघु दो प्रकारमें विभक्त किये जाते हैं। पृथ्वी और अप शुक्र तथा अवशिष्ट तीन लघु हैं।

द्रव्य परिपाकके समय पृथिवी और जलका गुण अधिक परिमाणमें रहनेसे मधुरपाक और अग्नि, वायु वा आकाशका गुण अधिक परिमाणमें रहनेसे कटुपाक होता है। (शुद्ध शुष्कता ५० अ०) क्या क्या द्रव्य शुक्रपाक और लघुपाक है, इसका विषय सुष्ठुतन्त्र-खानके ४४वें अध्यायमें विशेष रूपसे लिखा है। विस्तार हो जानके भयसे यहां नहीं दिया गया।

पुटपाकका विषय पुटपाकमें देखो।

चक्रदत्तमें लोहपाकका विषय इस प्रकार लिखा है— भक्तिपूर्वक ईश्वरकी प्रणाम करके लोह, पित्तल वा मृत्तमप्राप्तमें लज्जोको धोमो आंच पर लोहका पाक करो। शेष पाकमें त्रिफलाका ज्ञाप, घृत और दुध डाल दे। पाककालमें लोहेके छल्लेमें बार बार घोटते रहो। यदि शोधक बरतनको पेटोंमें जम जाय, तो उसो समय ठल्लेमें खुंरव दे। लोहका शेष पाक तीन प्रकारका है—मृदु, मध्य और खर। ये तीन प्रकारके पाक यथाक्रम वायु, पित्त और कफके पक्षमें हितकर हैं। लोह जब कोचड़को तरह दूर्ध्वमें संलग्न हो जाता है, तब उसे मृदुपाक और जब दूर्ध्वमें मड़कमें गिर पड़ता है, उसमें जरा भी रहने नहीं पाता, तब उसे मध्यपाक कहते हैं। खरपाक होनेमें दूर्ध्वमें संलग्न हो नहीं होता। किसी किसीका कहना है, कि जब प्रतीप देनेमें दूर्ध्वमें नहीं लगता, गिर पड़ता है और यह चूड़को मिट्टीके मटग हो जाता है, तब उसे मृदुपाक तथा जिनका पक्षीय चूर्ण और पक्षीय चूड़को मिट्टीके जोड़ा हो जाता है, उसे मध्यपाक और बालुका पुच्छकी तरह होनेसे उसे खरपाक कहते हैं। ये हो तान प्रकारके पाक सर्वोक्त लिये गुणकारक हैं। कभी भी इनका गुण विफल नहीं होता। प्रकृतिभेदसे गुणदोषका भेद यदि होता भी है, तो बहुत थोड़ा।

पाक शेष होने पर उसे उतार कर तिकनादिका चूर्ण मिला दे। (चक्रदत्त-रसायनाधि-पाकविधि) बाभट कल्पखानमें लिखा है, कि घृत-पाकमें जब किनका निकलना बन्द हो जाय, तब जानना चाहिये कि प्रकृत घृतपाक द्रव्य है और तेनपाकमें भी किनके निकलने पर पाककी निधि संभली जाती है। इस मतसे पाक तीन प्रकारका है, मन्द, चिक्षण और खर (आमर-वहस्या १ अ०) (त्रि०) १४ पाककर्त्ता, रसोद्भवाने बला।

पाक (फा० वि०) १ पवित्र, शुद्ध, सुयत्त। २ समाप्त, वैवाक्य। ३ पापरहित, निर्मल, निर्दोष। ४ साफ।

पाककृष्ण (मं० पु०) पाके कृष्ण होने यव्य। १ कृष्ण-फलपाक, कौरोदा। २ कर्णकृष्ण।

पाककृष्णफल (सं० पु०) १ पानोप-चामलक, कौरोदा। २ कर्णकृष्ण।

पाकन (सं० स्त्री०) पाकाज्जायते इति पाक-जनक। १ पाकलक्षण, कविदा नमक। २ परिणामशून्य। (त्रि०) ३ पाकजात।

पाकट (सं० स्त्री०) जीव, यैलो।

पाकठ (हि० वि०) १ पका हुआ। २ पुराना, तजर-वैकार। ३ बली, मजबूत।

पाकडु (हि० पु०) पाकर देश।

पाकतप्त (मं० पञ्च०) पाक-तप्त, किसी प्रकार, किन्तो तरह।

पाकत्रा (मं० पञ्च०) पाकः विपतप्रज्ञः कार्यं त्रा। विपत-प्रज्ञ, पुराना, तजरवैकार।

पाकदामन (फा० वि०) निष्कलक और विशुद्ध स्त्री-पतिव्रता, सती।

पाकदामिनी (फा० स्त्री०) सतीत्व, पतिव्रत्य, शुद्धचरि-व्रता।

पाकदूर्वा (मं० स्त्री०) पाकयुक्ता दूर्वा मध्यपदक्षीय कन्दधा०। परिपक्व दूर्वा, पुरानो दूब।

पाकदिव्य (सं० पु०) पाकाय देव्याय दृष्टि दिव्य-किं०। पाकगामन, इन्द्र।

पाकपत्तन—पञ्चाशके अन्तर्गत सटोगमारी जिसका एक नगर। यह पञ्चा० १०२० सं० और देगा० ७३२३

५० पू०, शतद्रु नदीके किनारे अवस्थित है। इसका प्राचीन नाम भलुधान है। जनरल कनिंघम भलेक-मन्दरके ऐतिहासिकोंके लिखित शब्द हो (Oxodrako)-के अश्वेनम्य एक नगरके साथ इस नगरकी तुलना कर गये हैं। सुसलमान-दिविजयी महमूद, तेमूर पाटि इसी स्थान पर नदी पार हुए थे। सुसलमान फकीर फरिद-उद्दीनके भास पर इन नगरका नामकरण हुआ है। इस सुसलमान-भक्त, सारी दक्षिण पञ्जाबको सुसलमानो धर्ममें डोलान किया। यही कारण है, कि दूर दूर देशोंके सुसलमान यहाँ तक कि अफगानिस्तान और अन्य-एशियामें अपने-आपके यहाँ समागम होते हैं। सुद-रैमके उपलक्षमें इनको संख्या साठ हजार तक हो जाती है। यहाँ सब फकीरोंका एक विषय है। इसमें जो कुछ भामदनी होती है, उसका सम्भोग फकीरोंके अंशकर करते हैं। इस नगरको स्थिति तथा मङ्गल साधारणता सुन्दर है। यह गहर वाणिज्यका एक प्रधान स्थान है। गेहूँ, चरद, गुड़ और चीनीका अधिक व्यवसाय होता है। यहाँ सरकारी प्रदासत और मुसलम-स्टेशन, पोस्ट-ऑफिस, टाउनहाल, बालिका-विद्यालय आदि कितनी ही साधारण प्रदालिकाएँ हैं।

पाकपात्र (सं० स्त्री०) पाकनाधन पात्र मध्यको० । पाक-नाधनपात्र, वह वस्तु जिसमें भोजन पकाया या रखा जाय; जैसे, बटखोई, बडो आदि।

पाकपुटी (सं० स्त्री०) पाकाय पुटी। कुम्भगाना, भावा।

पाकफल (सं० पुं०), पाककण्य-फलमय। फलपाक, कौड़ा।

पाकभाण्ड (सं० स्त्री०) पाकाय पाकप्य भाण्ड। पाक-पात्र, वह वस्तु जिसमें कुछ पकाया या रखा जाय।

पाकमय (सं० पुं०) पाकः पाकयुक्तो मय्यो यत्र। १ मय्ययुक्तन। इसका प्रयोग मय्ययुक्त है। २ समुद्रजात मय्यविशेष, समुद्रमें होनेवाली एक प्रकारकी मछली। ३ कोटविशेष, एक प्रकारका कोड़ा।

पाकयज्ञ (सं० पुं०) पाकनाथो यज्ञः मघावो० । १ हवी स्वर्ग और गृहप्रतिष्ठादिका होम, चरुहोमादिक कर्म। प्रायश्चित्तहोममें अग्निना नाम विधि और पादयज्ञमें साहस रखा गया है। २ ब्रह्मयज्ञसे अन्य पञ्च महायज्ञ

भन्तर्गत वेजदेव, होमवलिकर्म, निर्याय और पतिविध भोजनात्मक चार प्रकारके महायज्ञ।

“ये पाकयज्ञास्तयो विधियष्टमन्विताः।

सर्वे ते जपयज्ञस्य क्लृप्ता नार्हन्ति पोदुषी ॥” (मनु २।१९)

अष्टादि भो पाकयज्ञ नामसे प्रसिद्ध है। आश्व-लायन गृह्यसूत्रमें पाकयज्ञ तीन प्रकारका बतलाया गया है।

पाकयज्ञिक (सं० पुं०) पाकयज्ञ करोतीति पाकयज्ञ-ठञ्।

१ पाकयज्ञ कर्त्ता, पाकयज्ञ करनेवाला। २ वह पुत्राक्ष जिसमें पाकयज्ञका विधान हो। ३ वह जो पाकयज्ञ से उत्पन्न हो।

पाकयज्ञिय (सं० त्रि०) पाकयज्ञमहेति पाकयज्ञ-व।

पाकयज्ञाह।

पाकर (हिं० पुं०) समस्त भारतवर्षमें होनेवाला एक

वृक्ष। यह पञ्चरट्टमें माना जाता है। इसके पत्ते खूब हरे और भामको तरह लम्बे पर उसमें कुछ अधिक चौड़े होते हैं। यह वृक्ष बिना लगाने के नहीं लगता है और ७८ वर्षमें तैयार हो जाता है। इसकी चमो

छःपाके विषयमें कवियोंने बड़ी प्रशंसा की है। इसकी छानसे बड़े वारोंक और सुनारम सुत तैयार किये जा सकते हैं। नरम फलों या गोदोंका जंगनी और देहातो मनुष्य प्रायः खाते हैं। बायो तथा अन्य पशु इसके पत्ते बड़े चावसे खाते हैं। इसकी लकड़ीसे केवल कोयला तैयार होता है। वैद्यकमें इसे कपाय, कटु, गीतल, वष, योगिरोग, दाह, पित्त, कफ, रुधिरविकार, सूजन और रक्तपित्तकी दूर करनेवाला माना है।

पाकरञ्जन (सं० स्त्री०) पाकं पथमानं रञ्जयतीति रञ्ज-णिच्-ञ्यट्। तेजपत्त, तेजपत्ता।

पाकरिपु (सं० पुं०) इन्द्र।

पाकल (सं० स्त्री०) पाकं लातीति ला-क। १ कुष्ठो-पधि, कोढ़की दवा। २ कुष्ठरज्ज्वर, हाथोका बुखार। ३ अनिल, वायु। ४ शनख, पाग। ५ मन्त्रिपात पञ्चविशेष। इसमें पित्त प्रवृत्त, वात मध्य और कफ दोन अस्थानों होता है तथा इनके बलावलके अनुसार इन दोनों की उपाधियाँ अग्रे प्रकट होती हैं। इसका रोगो प्रायः तीन दिनमें मर जाता है। (त्रि०) १ अर्पादिकारक।

पाकलि (स० स्त्री०) कर्कटो, काकड़ा सींगो ।

पाकगाला (स० स्त्री०) पाकस्थ गाला गृह । रन्ध्र-
गृह, रसोईका घर, वावरसीखाना ।

सुन्तमें लिखा है, कि प्रशस्त दिशमें तथा प्रशस्त
स्थानमें गवाक्षयुक्त पाकगाला बनावे । पाकगाला
रसोईके वरतन पवित्र रहे भोग पाककार्य सामीप्य-
वर्गसे किया जाय । राजाको उचित है, कि वे पाक-
गाला में कुल्लो, धामिक, हिनम्ब, निर्लाम, मरुल, कतक,
प्रियदर्शी और क्षोभ, काकड़, मासूर्य, मसुता तथा
पालस्ववर्जित, क्षमाशील, शुद्ध, नम्र, दयालु, अपरि-
त्यान्त, असुरत, प्रतापशालीन आदि सद्गुणविभूषित
व्यक्तिकाकुपनवैद्यको पाकगालाके अध्यक्षत्वरमें नियुक्त
करे । विशेष रूपसे स्वभावको परोक्षा करके पूर्वोक्त
गुणयुक्त पुरुष यथवा स्त्रीको पाककार्यमें नियुक्त करना
विधेय है । पाकगालाके जो अध्यक्ष बनावे जायेंगे
उन्हींके कथनानुसार सबकी चलना होगा ।

(सुन्त कलहणा १ अ०)

पाकशासन (स० पु०) शास्तेति शास-क्यु, पाकस्य शासनः
शास्ता । इन्द्रने पाक नामक प्रसिद्ध असुरको मारा था,
इसीने वे पाकशासन कहलाये ।

“वर्क जपान् सीङ्गमिर्मागैः कडवावसैः ।

तत्र नाम विमुक्तैरेवासनवाच्यं शरद्वैः ॥

पाकशासनतो वायुः सर्वोत्तरपतिविभुः ॥”

(धामनपु०)

पाकशासनि (स० पु०) पाकशासनस्यापत्यं इज्, (कत
इन् । पा ४१/८१) इन्द्रपुत्र, जयन्त ।

पाकपक्षा (स० स्त्री०) पाके परिणामे शुक्ला । छड़िया
मट्टी ।

पाकसंख्य (स० त्रि०) पाकः संख्या यथ्य । पाकसाध्य यज्ञ-
भेद ।

पाकसंखत् (स० पु०) पाकेन परिपक्वो मनसा सुनोति
सोमाभिपद्यं करोति सुखमिषं तुकच् । सोमाभिपद्यं-
कर्त्ता यजमान ।

पाकस्थकी (स० स्त्री०) उदरका वह स्थान जहां आहार
द्रव्य अठारान्ति या पाचक रसकी क्रियासे पचता है,
पाकशय ।

पाकहृत् (स० पु०) पाकस्थ तंत्रांतः परस्परं इत्तो ।
पाकशासन, इन्द्र ।

पाकागार (स० पु०) रसोई घर ।

पाकातीसार (स० पु०) पतिसाररोगभेद ।

पाकात्यय (स० पु०) चक्षुरोगभेद, आँखोंका एक रोग ।
त्रिदोषके कुपित होने पर यह रोग उत्पन्न होता है ।

इसमें आँखोंका काला भाग संकोच हो जाता है । आरम्भ
में इसमें एक फोड़ा होता है और आँखोंसे गरम पदार्थ
गिरने हैं । पुतलोका संकोच हो जाता त्रिदोषका कोष
सूचित करता है । इस दृशमें यह रोग पचास
समझा जाता है । (सुधृत वस्तरतं १ अ०)

पाकारि (स० पु०) पाकमृच्छतीति कृत् गतो इन् ।
श्वेतकाष्ठम, संकोच कचनारका वृक्ष । पाकस्थ परिः
६-तत् । २ पाकशासन इन्द्र ।

पाकास् (स० त्रि०) पाकेन मुखपाकेन परस्परं, पाकस्थ
अत्रादि पाकस्थ वा अत्रः क्षतं । १ सुवपाक द्वारा क्षत ।
२ पचपाकनाशक पन्निमाश्रय ।

पाकिन् (स० त्रि०) पच वाहुलकात् घिमुन् ततः कुलं ।
१ पाककर्त्ता । २ पाकयुत । ३ सुवपाकी ।
पाकिम (स० त्रि०) पात्रेन निर्हृत्, पाकभावप्रत्यय-
त्वादि मच् । पक्क, पाकनिष्पन्न ।

पाकी (फा० स्त्री०) निमज्जता, पवित्रता, शुद्धता । २
परद्वैजगरी ।

पाकीजा (फा० त्रि०) १ पवित्र, पाक । २ सुन्दर,
खूबसूरत । ३ निर्दोष, वैधेय ।

पाकु (स० त्रि०) पच-ठण, न्य-कादित्वात् कुलं । पाचक,
रसोई बनानेवाला ।

पाकुज (स० पु०) पचतौति पच-पाके एकन्तु कादेग्य ।
(पचिनश्चोणं कन्तुमुपोष । वण् २।३०) सूपाक,
पाचक, रसोईवा ।

पाउंट (हि० पु०) १ पैकेट देखो । २ जट

पाउंट (च० पु०) जेब, खोसा ।

पाकौर—विहार और उड़ीसाके भूतगत-मन्थाल परगने
का पूर्वी उपविभाग । यह अक्षां २४° १४' से २४° ४८'
उ० और देशां ८०° २३' से ८०° ५५' पू०के मध्य पश्चि-
मित है । भूविमाण ६८३ वर्गमील है । इसका पश्चिमी

भाग तो पयरीला है, पर पूर्वी भाग सब रा है जिसमें खेतों वारो होती है। यहाँको जनसंख्या २३६६४८ है। इसमें कुल १०५५ ग्राम लगते हैं जिनमेंसे पाकौर ही प्रधान है। यहाँ ई० आर्इ० रेलवेकी बड़ी स्टेशन और एक हाई स्कूल भी है।

पाक (स० स्त्री०) पचतेजने पच-प्लातु (कइलोथैव । पा ३।१।२४) ततः कुत्वे । १ विह्वलवण, काना नमक । २ पांशुलवण, सांभरनमक । ३ यवचार, जवावार । ४ गोरा । (त्रि०) ५ पचनीय, पचने योग्य, ओ पच सके ।

पाकचार (स० पु०) १ यवचार, जवावार । २ गोरा । पाकवज (स० स्त्री०) काचलवण, कचिया नमक । पाक्वा (स० स्त्री०) १ मज्जिचार, सज्जी । २ यवचार, जवावार । ३ औषधसलवण । ४ मृत्तिका लवण ।

पाक्वापट्ट (स० स्त्री०) पाकलवण । पाक्वाद्र (स० पु०) यवचार । पाचपातिक (स० त्रि०) पचपातयुक्त । पाचाण्य (स० त्रि०) पचप्याय पचो भवः प्रलेण निरुत इति वा, पच भक्त (पुट्टणकठजिहेति । पा ३।२।८०) १ पचसम्यक्, जो पचसे सम्यक् रहता हो । २ जो पचमें एक बार हो या किया जाय ।

पाचिक (स० त्रि०) पचे तिष्ठतीति पच-ठक् । १ पचपातो, किसी विषय व्यक्तिका पच करनेवाला, तरफदार । २ पचपातक, पचपातीको मारनेवाला । पचे पचात्तर भवतीति । ३ पचकालभव, जो पच या प्रतिपचमें एक बार हो या किया जाय, जैसे, पाचिक पत्र या बैठक । ४ पच या पचवाड़े से सम्बन्ध रखनेवाला । ५ दो मातापिता ।

पाख (हि० पु०) पाख देखो । पाख (हि० पु०) ॥ महीनका आधा, पन्द्रह दिन । २ मकानको चोड़ाईको दीवारोंके से भाग जो ठाँके सुभोतके लिये लम्बाईको दोवारोंसे त्रिकोणके आकारमें अधिक लंबे किये जाते हैं और जिन पर लकड़ोंका यह लम्बा मोटा और मजबूत सड़ा रखा जाता है जिसको बहुर कहते हैं ।

पाखण्ड (स० पु०) प्रातीति पा-खिप, 'पास्त्वधीधर्मस्त' खण्डयतीति खडिभेदेने पचायच । १ पापण्ड, वेद-विषय आचार ।

'पाखनाथ त्रयीधर्मः पाखरेन निगद्यते ।
'तं खण्डयति ते यस्मात् पाखण्डास्तेन हेतुना ।

नाना व्रतधरा नाना-वैश्याः पाखण्डिनो व्रताः ॥

तयोधर्मका पालन करनेमें लगे 'पा' खोर जो इस 'पा'का खण्डन करते हैं, उन्हें पाखण्ड कहते हैं । २ वह व्यय जो किसीको धोखा देनेके लिये किया जाय, बकभलि, छल । ३ वह भक्ति या सवासना जो केवल दूसरोंके दिखानेके लिये की जाय और जिसमें कर्त्ताको वास्तविक मिठा वा यद्दान हो, ढोंग, पाडव्यर, ढकोसला । ४ नीचता, ग़रारत । (त्रि०) ५ पाखण्ड करनेवाला, पाखण्डी ।

पाखण्डो (स० त्रि०) १ वेदविमल आचार करनेवाला । पाखण्डन देखो । २ दूसरोंको ठगनेके निमित्त भ्रमेक प्रकार के आयोजन कानैसादा, ठग, धोखेवाज । ३ बनावटो धार्मिकता दिखानेवाला, कपटाचारी, बगलाभगत । पाखर (हि० स्त्री०) १ राख चढ़ाया हुआ टाट या लससे बनी हुई पोशाक । २ सोईको वह झूल जो लकड़ाके समथ रसाके लिये हाथी वा घोड़े पर डालो जाती है, चार पाईना ।

पाखरो (हि० स्त्री०) टाटका बना हुआ यह विस्तारा जिसे गाड़ोमें पहले बिछा कर तब अनाज भरा जाता है ।

पाखा (हि० पु०) १ कोना, कोर । २ पाख देखो । पाखानभेद (हि० पु०) पखानभेद ।

पाखाना (फा० पु०) १ वह स्थान जहाँ मल त्याग किया जाय । २ भोजनके पाचनके बाद बचा हुआ मल जो अधोमांससे निकल जाता है, यू-ग्ली ।

पाग (हि० स्त्री०) १ पगड़ी । कहते हैं, कि पगड़ो पहने पेरके घुटने पर धाँध कर तब सिर पर रखो जातो-यो, इसीसे यह नाम पड़ा । - (पु०) २ पाख देखो । ३ वह गोरा या चायनी जिसमें मिठाईयाँ वा दूसरी खानेकी चीजें डूबा कर रखी जाती हैं । ४ वह दवा या पुष्टि जो चौबी या शहदके मोरोंमें पता कर बनाई जाय और जिसका सेवन अलपानके रूपमें भी कर सके ।

पंगना (हि० त्रि०) मीठे चायनोंमें चानना या सुपे-
टना ।

पागल (स० त्रि०) पा-रचयं तस्मात् गनति, पाक्-
रचनात् विच्युतो भवतीति गन-चच् । १ उन्मत्त, जिह-
का दिमाग लोक न हो ।

पागलशो भी कन्या देति है उन्हें ब्रह्महत्याका पाप
लगता है । उन्मादरोगग्रस्त होने पर उसे पागल कहते
हैं । अना कारणसे मानसिक विकार उपस्थित हो कर
यह रोग उत्पन्न होता है ।

इस रोगका विवरण उन्माद शब्दमें देखो ।

२ क्रोध, शोक वा प्रेम आदिके उद्देगमें जिसको
भला बुरा सोचनेकी शक्ति जाती रहती हो, जिनके होय
ज्वाब दुबल न हो, चापसे बाहर । ३ झूठ, नासमझ,
वैयक्तिक ।

पागलखाना (हि० पु०) वह स्थान जहाँ पागलोंको
रख कर उनका इलाज किया जाता है ।

पागलपन (हि० पु०) १ वह भीषण मानसिक रोग जिन-
से मनुष्यकी बुद्धि और इच्छाशक्ति आदिमें घनेर प्रकार-
के विकार होते हैं । उन्माद, बावलापन । उन्माद देखो ।
२ वैयक्तिक ।

पागला—वङ्गदेशमें मासुदह जिलागत एक नदी । यह
गङ्गासे निकल कर छोटी भागरीयो नामक एक छोटी
खाता साय मिल गई है और ८१ मील दौरे एक बाँध
के चारों ओर बूम कर पुनः गङ्गामें गिरी है । वर्षाकाल-
में इनमें बहती बहती नामें जाती पातो है ।

पागली (हि० स्त्री०) पगली देखो ।

पागुर (हि० पु०) दुगली देखो ।

पागामो—यथोहर जिलेके सर्वोत्तर प्रांतमें मातभङ्गानदी-
की एक शाखा । इसका दूसरा नाम कुमार है । श्रीम-
काशमें मातभङ्गा नदीके साथ इसका संयोग दूर हो
जाता है ।

पाङ्क (स० त्रि०) पङ्क जो भवः पङ्क्ति-उत्पादितत्वात्
चच् । १ पङ्क्तिभव । २ दण्डारपादक शब्दोभेदपुङ्क्त ।
(पु०) पङ्क्ति संस्कारव्यय चच् । १ तत्संख्या चयय-
पुङ्क्त पय । ४ पुङ्क्त । ३ भीमनताभेद ।

पाङ्कता (स० स्त्री०) आह्वानमें एक पङ्क्तिमें बैठ कर
पानिका अधिकार ।

पाङ्कतेय (स० त्रि०) १ पङ्क्तिस्थित, एक पङ्क्तिमें रहने-
वाला । २ एक पङ्क्तिमें भोजनाई, जो एक पङ्क्तिमें
बैठ कर खा सकता हो ।

पाङ्कज (स० त्रि०) पाङ्कतेय, एक पङ्क्तिमें बैठ कर
भोजन करनेवाला ।

पाङ्क (स० पु०) मूयक जातिविशेष, मूषेकी एक
जाति ।

पाङ्क (स० स्त्री०) पङ्कता ।

पाचक (स० स्त्री०) पचतीति पच-कृत्य, पित्तसेन भुक्तद्रव्य
पचनादृश्य तत्वात् । १ पित्तविशेष ।

“पाचकं आचकचैव रक्तकालोचकं तथा ।

पाचकचैव पचयेति पित्तनामाग्निकवादः ॥”

(कश्च०)

पित्त पाचक, भोजक, रक्क, लोचक और पाचक
इन पांच नामोंमें पुकारा जाता है । जिससे भुक्त
परिपाक हो, उसे पाचक कहते हैं । भावप्रामाण्य
लिखा है, कि पाचकपित्त भुक्तान् परिपाक करता है
और अपाग्नि बलवृद्धि तथा रसमूलपुरोधको विरचन
करतो है ।

“पाचकं पचते भुक्तं दोषाग्निवसरदेन ।

रसमूलपुरीषाग्नि विरेचयति नित्यशः ॥” (भावप्रकाश)

विशेष विवरण पित्तमें देखो ।

(पु०) पचतीति पच-कृत्य, २ पङ्क्ति । सुष्ठुमें
लिखा है, कि देशस्थित जो पित्त है वही पङ्क्ति-
पदवाच्य है । देखते पित्त छोड़ कर और किसी प्रकार
को पङ्क्ति नहीं है । दहन और परिवर्तन विषयमें
पित्त ही अधिकतर रह कर पङ्क्ति के जैसा काम करता
है । इसीको अन्तराग्नि कहते हैं । कारण देहमें सब
अग्नि मन्द हो आय, तब जिससे पित्तकी वृद्धि हो ऐसे
द्रव्यका सेवन विशेष है । पित्त पक्काय और आमाशयमें
रह कर किस प्रणालीसे आहारको परिपाक करता है
और आहारजनित रस वायु, पित्त, कफ, मूत्र और
पुण्य आदिको किस प्रकार एक दूसरेसे अलग करता
है, वह प्रत्यक्ष तो नहीं होता, पर पित्त ही उस स्थानमें
रह कर अग्निप्रिया द्वारा देहमें गोचर-पित्तस्थानको
क्रियामें सहायता पहुँचाता है । उस पङ्क्ति और आमाशयमें

संस्थित पित्तमें पाचक नामक अग्नि अधिष्ठान करते है। यक्ष्म और शोथके अग्न्य जो पित्त है, उसे रज्ज्वक अग्नि कहते हैं। यही अग्नि आहारमन्त्रत रसको लाल बनाने है। जो पित्त हृदयस्थानमें संस्थित है, उसका नाम साधक अग्नि है। इसीसे मनके समीप भिन्नाप पुरे होते हैं। जो पित्त दृष्टिस्थानमें है, उसमें पालोचक नामक अग्नि रहती है। इसी अग्निमें पदार्थ का रूप ग्रहण प्रतिविम्ब गृहोत् होता है। त्वर्कमें जो पित्त संस्थित है उसमें आंजकाम्नि रहती है। तैल-मर्दन, अघगाहन, असेपन आदि क्रिया द्वारा जो सब अत्रेष्ट द्रव्य शरीरमें लीज होते हैं, इसी पित्तसे उन सब द्रव्योंका परिपाक और देखकी कायाका प्रकाश होता है। (सुप्तसूत्रस्थान २१ अ०) पित्तका विषय पित्त कर्ममें देखो।

१ सूक्ष्माहार, जो पाककोय सम्पन्न करता है, उसे पाचक कहते हैं, रसोदधौ। सुप्तुत कल्पस्थानमें लिखा है, कि राजा विष्णु कल्पसे परीक्षा करके पाचक नियुक्त करे। पाचकको देख देख करकेने लिये एक सद्गुण सम्पन्न वैद्यकी उसमें अध्वरूपमें रखे। राजा जो पाचक रखेगी, उसमें निम्नलिखित गुणका रहना आवश्यक है—

कुलोत्, धार्मिक, क्षिप्र, सर्वदा कार्यतत्पर, निर्लभ, सरल, क्षम, प्रियदर्शन, क्रोधादिशून्य, पालस्य यजित, जितेन्द्रिय, समशोभ, शुचि, नम्र, प्रसारणाङ्गी प्रभृति। आहार ही प्राणधारणका मूल है। इसीमें उक्त गुण सम्पन्न एक पाचकको सदैव के अधीन रखना चेष्टित है। पाचक और परिचारक प्रभृति सभी वैद्यकी अधीन रहनी। (सुप्त कल्पस्थान १ अ०)

“उत्तमोत्तमोदेतः काप्रको मिदपाचकः।

प्रायः कठिनवैद्य सूचकः स उच्यते ॥”

(चाणक्य)

पुत्र, पौत्र और शुक्युक्त, शास्त्रज्ञानी, मिदपाचक अर्थात् जो उत्तम, पात्र स्वर सके और शूर तथा कठिन होनेसे उसे सूचकार (पाचक) कहते हैं। सूत्रज्ञ देखो।

४ अन्नादि पाककारक औषध, वह औषध जो भोजनको पचाने और मुख तथा पाचन शक्तिको बढ़ानेके लिये खाई जाती है। (त्रि०) ५ जो किसी कष्टी वलुकी पचाये वा पकाये।

पाचका (सं० स्त्री०) कर्कटो।

पाचन (सं० स्त्री०) पाच्यते अनेनेति पच्-पिच्-करणे ल्युट्, १ प्रायचित्त। २ दोषपाचक कायोपधि, वह औषधि जो पाम ग्रहणा अथवा दोषको पचाये। ज्वरादि रोगमसूरमें पाचनोपधके व्यवहारका विधान लिखा है। चक्रपाणिदत्तने रोगभेदमें नामा प्रकारके पाचन निर्देश किये हैं।

पाचन-प्रदानका काल—

“अरितं बह्वेऽतीते लघ्वप्रवृत्तिमोहितं।

सप्ताहात् परतोऽन्ये मासे ह्यात् पाचनं ऋते ॥”

(चक्रपत्त ऋषि०)

ज्वरयुक्त व्यक्ति को ६ दिनके बाद पाचन औषधका सेवन करना चाहिये। पाचनका परिणाम—

“द्वारसिक्तवापेण गृहीत्वा तोलकद्वयं।

दशमनः पौष्टं गुणं प्राणं वादावरोपितं ॥” (परिभाषा)

पाचन औषध प्रायः काढ़ा करके दो जाते हैं। यह औषध १६ गुने पानीमें पकाई जाती है और चौथाई रह जाने पर व्यवहारमें लाई जाती है। ज्वरादि सभी रोगोंमें पाचनको व्यवस्था है। यह कायोपध पाम ग्रहणा अथवा दोषको पचाती है, इसीसे इसको पाचन कहते हैं।

चक्रपाणिदत्तने प्रत्येक रोगके लिये भलग भलग पाचन बतलाया है जो कुल मिला कर १२२ होते हैं। यथाक्रम उनके नाम नीचे दिये जाते हैं।

ज्वराधिकार सर्वज्वरमें—१ नागरादि, वातिक ज्वरमें २ विस्वादि पञ्चभूतौ, ३ पिप्पलीमूलादि, ४ किरातादि, ५ राक्षादि, ६ विस्वादि पञ्चमुखादि, ७ पिप्पल्यादि, ८ गुडूआदि, ९ द्राक्षादि, १० वैतिकज्वरमें १० कलिङ्गादि, ११ तिक्तादि, १२-२३ लोधादि (लोधादि पाचन दो प्रकारका है), १४ यवपटोल, १५ दुग्धालमादि, १६ वायव्यामादि, १७ सुदोकादि, १८ पर्पटकादि, १९ विष्ठादि, २० परंटादि, २१, २२, २३ द्राक्षादि (द्राक्षादि पाचन ३ प्रकारका है), २४ घन्याकोदि, कफ-ज्वरमें २५ मातुलुङ्गादि, २६ कटुकादि, २७ निम्बोदि, २८ तिसुवारादि, २९ आमलज्वादि, ३० त्रिफलादि, ३१ दशमूलौ वा वासककाष्ठ, ३२ मुस्तादि। वातपैतिक

ज्वरमे ३३ लवङ्ग, ३४ विकलादि, ३५ किरातादि, ३६ निदिग्धिकादि, ३७ पञ्चभद्र, ३८ मधुकादि; पित्तसौंषिक ज्वरमे ३९ पटोलादि, ४० गुडूच्यादि, ४१-४२ चातुर्भद्रक पाठासकद्वय, ४३ गुडूच्यादिगण, ४४, कण्टकारीदि, ४५ वासादि, ४६ पटोलादि, ४७ अमृताष्टक, ४८ पटोलादि, ४९ क्षुद्रादि; वातघ्नोपि कज्वरमे—५० धान्य-पटोल, ५१ सुतादि, ५२ पञ्चकोल, ५३ पिप्पलीकाय ५४ पारश्वनादि, ५५ क्षुद्रादि, ५६ दशमूल, ५७ सुतादि, ५८ दावीदि; त्रिदोषज्वरमे—५९ चतुर्भद्रपञ्चमूल, ६० हृत्पञ्चमूल, ६१ स्वस्वामूल, ६२ दशमूल, ६३ चतुर्दशाह, ६४-६५ अष्टादशाह (यः पाचन दोषनाशका हे), ६६ सुतादि, ६७ पराष्टादशाह; ६८ गण्डदि, ६९ हृत्पञ्चादि, ७० भार्यादि, ७१ विपञ्चमूल्यादि, ७२ दशमूल्यादि, ७३ मातुलुङ्गादि, ७४ मातुलुङ्गाद्वय युक्त दशमूल, ७५ श्लोकादि, ७६ जिह्वादि; जोषज्वरमे—७७ निदिग्धादि, ७८ विषयशोणितं मन्तज्वरमे—७९ मधुकाय, ८० कनिह्वकादि, ८१ पटोलगारिवादि ८२ निम्बपटोलादि, ८३ किरातजिह्वादि, ८४ गुडूच्या-समकादि, ८५ सुतादि; तृतीयज्वरमे—८६ मधोपवादि; चातुर्भद्र ज्वरमे—८७ वागधातुशोणितं; ज्वरतीक्ष्णरमे—८८ पाठादि, ८९ नागरादि, ९० श्लोवादि, ९१ हृत्पञ्चमूल, ९२ उग्रोरादि, ९३ पञ्चमूल्यादि, ९४ कनिह्वकादि, ९५ वसकादि, ९६ अष्टादशादि, ९७ नागरादि, ९८ सुताकादि, ९९ धनादि, १०० दशमूलोत्प्लवङ्ग, १०१ किरातादि ।

प्लीहाशमे—१०२ धान्यपञ्चक, १०३ धान्यचतुष्क, १०४ कण्टादि, १०५ किरातजिह्वादि, १०६ कुटजादि, १०७ विषादि काय, १०८ पटोलादिकाय, १०९ कुटजादि, ११० समद्रादि, १११ कुटजकाय, ११२ वसकादि, ११३ कुटजदाहिस्य । अह्नोरोगशमे—११४ नागरादि, ११५ सहृण्यविमर्शदि । आमोशोष रोगशमे—११६ धान्यप्लवङ्ग । पाण्डुरोगशमे—११७ फलविकादि । रक्तपित्तशमे—११८ खजूरादि जम्ब । राजयक्ष्मा रोगशमे—११९ धन्याकादि, १२० पत्रगम्यादि, १२१ दशमूलादि । काश-विशारमे—१२२ पिप्पली चूर्णयुक्त पञ्चमूल, १२३ गोक्षरादि, १२४ पिप्पलीचूर्णयुक्त दशमूल, १२५ कट-

फलादि, १२६ कण्टकारीकाय । हिक्कारोगशमे—१२७ अमृतादि, १२८ कुटचूर्णयुक्त दशमूल, १२९ कुलकादि, १३० अमृतादि । कृमि-विशारमे—१३१ अमृतादि, १३२ गुडूच्यादि, १३३ पर्वटकाय, १३४ गुडूची शोणित-कषाय, १३५ विष्वक्कनगुडूचीकषाय, १३६ अमृतादि-वारि; मृच्छासिंधि-विशारमे—१३७ मधोपवादि, १३८ दुग्ध-समाकाय । अम्यादाविशारमे—१३९ क्षुतादिपुक्त दश-मूल । अपहमारोगशमे—१४० दशमूल कषायप्लवङ्ग । वातरोगशमे—१४१ पञ्चमूल वा दशमूलोकाय, १४२ दशमूल, १४३ मातुलुङ्गादि, १४४ दशमूल्यादि, १४५ मायादि, १४६ वातदशमूलोकाय, १४७ परण्डतेन-युक्त दशमूलादि, १४८ शोकालोकाय, १४९ परण्डतेन-युक्त पञ्चमूल, १५० परण्डतेनयुक्त दशमूल वा शूलो-काय, १५१ गुग्गुलुयुक्त गुडूची त्रिफलाकाय ।

वातरक्तशमे—१५२ अमृतादि, १५३ वसकादि-काय, १५४ वासादि, १५५ गुडूचीकाय, १५६ गुडूची-कषाय । जलदस्तशमे—१५७ गिन्नाजत्वादिपुक्त दशमूल, १५८ भस्मादि, १५९ विषयशोणितं । आमवातशमे—१६० अमृतादि, १६१ पुनर्वाकाय, १६२ राक्षादशमूल, १६३ परण्डतेनयुक्त दशमूल वा शूलोकाय, १६४ राक्षापञ्चक, १६५ राक्षासक, १६६ गोक्षरादि, १६७ कषाययुक्त दशमूल । शूलरोगशमे—१६८ वसकादि, १६९ विषादि, १७० हिङ्गुपत्रकर्मयुक्तविष्वक्कन-यवकाय, १७१ कषादि, १७२ उद्वेगादि, १७३ मतायादि, १७४ विष-कादि, १७५ मधुकाय, १७६ गिपकाय, १७७ पटोलादि, १७८ विषादि, १७९ कषकाद्यादि, १८० हृत्पञ्चादि, १८१ हिङ्गुवादिचूर्णयुक्त दशमूलोकाय, १८२ परण्डसमक, १८३ परण्डहादशक । उदावसाविशारमे—१८४ श्यामादिगणकाय, प्लीहाशमे—१८५ पञ्च विधेय हे । हृद्दोशशमे—१८६ स्नेहसकषयुक्त दशमूल १८७ नागरकाय, १८८ वसा वा निम्बकाय, १८९ हिङ्गुवादिचूर्णयुक्त यवकाय, १९० अन्नसारयुक्त दश-मूल । मूत्रकण्डूशमे—१९१ अमृतादि, १९२ वस-पञ्चमूल, १९३ मतायादि, १९४ हरीतकादि, १९५ अष्टादशा वा विषयकाय, १९६ हृत्पञ्चादि, १९७ पत्र-सारयुक्त गोक्षरादि, २०० विकण्टकादि, २०१ अतिवसाकाय ।

त्राघातमें—२०२ गिलाजतुयुक्त वीरतरादिकाय,
२०३ दुरालमारस वा वासाकपाय । अश्वमेरीरोगमें—
२०४ वरुणत्वगादि, २०५ वीरतरादिगणकाय । २०६
शुण्डादि, २०७ वरुणकाय, २०८ वरुणाकल्कयुक्त
वरुणत्वकपाय, २०९ शिशुकाय, २१० नागरादि,
२११ वरुणत्वगादि, २१२ श्वट्टेष्टादि, २१३ पलादि ।
मेहुरोगमें—२१४ दूर्वादि, २१५ त्रिफलादि, २१६ खजू-
रादि, २१७-२२०, २२१ कषायचतुष्टय, २२२ किन्नावडि-
कपाय, २२३ कदरादि, २२४ पन्निमन्यकपाय, २२५
पाठादि, २२६ त्रिफलादि, २२७ फलत्रिकादि, २२८
कटुहृदयोदि, २२९ त्रिफलादि, २३० कुटमादि ।

चदररोगमें—२३१ त्रिष्टक्तकयुक्त पारम्वधकाय
वा परण्डकाय, २३२ गिरकाय, २३३ दग्धमूलादि,
२३४ हरोतकपाय, २३५ परण्डतेन वा गोमूत्रयुक्त दग्ध-
मूलो, २३६ पुनर्णवाष्टक, २३७ पुनर्णवाचतुष्टय ।

शोथरोगमें—२३८ शुण्डादि, २३९ दग्धमूल, २४०
त्रिफलादि, २४१ अमयादि, २४२ पुनर्णवाससक, २४३
शुण्डायुक्त पुनर्णवादि वा दग्धमूलकाय, २४४ हिंसा-
स्यादि, २४५ पुनर्णवाकाय । अन्तर्गदिरोगमें—२४६
हवुतेनयुक्त दग्धमूल, २४७ रात्रादि । विद्वहिरोगमें—
२४८ पुनर्णवादि, २४९ त्रिष्टक्तकयुक्त त्रिफलाकाय,
२५० दग्धमूलो कपाय, २५१ वंशलागादिकाय ।

उपदंशरोगमें—२५२ पटोलादि, २५३ त्रिफलाकाय,
२५४ जयादिकाय । मन्मरोगमें—२५५ न्यग्रोधादि, २५६
नवकपाय, २५७ पटोलादि, २५८ धात्रीवदिरकाय ।
शीतपित्तमें—२५९ पटोलादिजन । अक्षपित्तरोगमें—
२६० निलुपयवादि, २६१ शृङ्गवेरपटोलकाय, २६२-
२६३ पटोलादि (यद्यपि पाचन दो प्रकारका है), २६४
यवादि, २६५ दग्ध, २६६ फलत्रिकादि, २६७ पटोलादि,
२६८ किन्नोदवादि, २६९ पटोलादि, २७० विंहास्यादि ।
विसर्प रोगमें—२७१ पञ्चमूलत्रय, २७२ सुस्तादि,
२७३ धात्रादि, २७४ नवकपाय, २७५ अमृतादि, २७६-
२७७ पटोलादि (यद्यपि पाचन दो प्रकारका है), २७८
भूमिस्त्रादि, २७९ दुरालमादि, २८० कुण्डल्यादि ।

मसुरीरोगमें—२८१ दुरालमादि, २८२ निम्बादि,
२८३-२८४ पटोलादि (यद्यपि पाचन दो प्रकारका है),

२८५ पटोलमूलादि, २८६ खदिराष्टक, २८७ अमृतादि,
२८८ जातोपमादि, २८९ गवेषमधुककाय २९० बराकाय
वा खदिराष्टक, २९१ निम्बादि ।

मुखरोगमें—२९२ हृत्वादि, २९३ दावादि वा
हरोतकपाय, २९४ कटुकादि । मुखपाक रोगमें—
२९५ जातोपमादि, २९६ पटोलादि, २९७ पञ्चकल्क वा
त्रिफलाकपाय, २९८ दावीकाय, २९९ सप्तकटु यष्टि वा
प्राश्नादिकपाय, ३०० पटोलादि, ३०१ त्रिफलादि ।
प्रदर रोगमें—३०२ दावादि । योनिश्याव रोगमें—३०३
गुडूचो, त्रिफला वा दन्तेकाय । गर्भावस्थामें—३०४
चन्दनादि, ३०५ हृत्वादि । स्तनरोगमें—३०६
हरिद्रादि वा वचादिकाय, ३०७ दग्धमूलकाय, ३०८
अमृतादि, ३०९ त्रिफलादि, ३१० भार्गवादि, ३११ मष्टन
त्रिफलाकाय । स्तित्कार रोगमें—३१२ स्तित्कादग्धमूल, ३१३
महचरादि, ३१४ दग्धमूलो । मूत्ररोगमें—३१५
पिण्डादिगणकाय । वातरोगमें—३१६ हरिद्रादि, ३१७
विस्त्रादिकाय, ३१८ समझादि, ३१९ नागरादि, ३२०
सगर्भरसाजयुक्त विस्त्रमूलकपाय, ३२१ पटोलादि ।
विषरोगमें ३२२ कटुभ्यादि । (चक्राणिदत्त)

चक्राणिदत्तने वतकाये हुए यही ३२२ प्रकारके
पाचन हैं । एतद्विषय चौर भो कितने पाचन यैयकपाय-
में देखनेमें आते हैं । ऊपर जिन सब पाचकीके नाम
लिखे गये, उनके मध्य एका नामके अनेक पाचन हैं,
किन्तु अधिकारभेदसे एक नामका पाचन होने पर भो
उनमें भिन्न भिन्न पदार्थ हैं । भावप्रकाशमें लिखा है—

“न प्रशाम्यति यः शोथं प्रवेशादिविधानतः ।

दग्धाणि पाचनीयानि द्वावदंशोपनाहने ॥”

अथ जहाँ प्रलेपादि द्वारा उपग्रस म हो, वहाँ पाचन
द्रव्यका उपग्रस प्रदान विधेय है ।

अथमूल, सोरिछनका फल, तिल, सर्पपं चौर
तोसो इन सब द्रव्योंका सत्त्व, पुरावीज चौर अग्न्यान्व
उष्ण द्रव्य मण्का पाचन है ।

(त्रि०) १ पाचयिता, पचानेवाला, हाजिम । भाव-
प्रकाशमें लिखा है, कि यदि कोई वस्तु खानेमें अजोर्ण
हो, तो जिस वस्तुके खानेसे उस अजोर्ण वस्तुका परि-
पाक होता है, उसी वस्तुको उसका पाचन कहते हैं ।

कटहल पचानेके लिये किया, केना पचानेके लिये वो और वो पचानेके लिये जंभोरी नौबूका रस प्रयुक्त है। नारियल और तालबीज पचानेके लिये तण्डुल और आम पचानेके लिये दूधका सेवन करना चाहिये।

मूँगा, बैल, पियाज, फालसा, खजूर और निमलो पचानेके लिये निम्बोत्रजन्त पत्र, छत और तत्तका सेवन करे। खजूर और पानोफल 'सजोण' होने पर सीठ अथवा नगरमोषिका सेवन तथा यक्षहूमर, चक्र-त्यादिका फल और पाकर खुने से 'सजोण' होने पर सीठ अथवा नगरमोषिके काढ़े को धाँसी हरके पीना चाहिये। तण्डुल खानेसे सजोण होने पर दुग्ध, दुग्ध सजोण होने पर अजवायन और चिचड़ा सजोण होने पर पोपरके साथ अजवायन खानेसे तुरत पच जाना है। मष्टिक तण्डुल सजोण होने पर दूधको पीनेसे, कफड़े फल गेहूँ से और गेहूँ, उरद, चना तथा मूँग इन सबका परिपाक धतूरेके फलसे होता है। क'गनोधान, श्यामाधान, खजूर, मृणाल, केसर, चोनी, पानोफल और मधुफल सजोण होने पर नगरमोषिका सेवन विधेय है। विटलकृत मामयी काँजो द्वारा, पिटाज श्रोतल जल द्वारा और विचड़ो मैथुन द्वारा परिपाक होते हैं। जंजीर द्वारा मापिण्डर (पापड़), मूँग द्वारा पायम, लवण द्वारा वेगवार, लहसुन द्वारा केनी, मोड़ि प्लन द्वारा पपेट, पिरामूल द्वारा लउड, पिटाज और मूँग तथा मण्डू द्वारा कचोड़ी 'हजम' होती है। खीर (तेलादि), हरिद्रा, हिङ्गु, लवङ्ग, इलायची, धनिया, खीरा, चटपक, सीठ, टाङ्गुमिदि 'सस्तरम', मिर्च और मैथुन खण्ड इन सबके परिपाकके लिये संस्तराय सजका सेवन करे। यदि मण्डू और खीर मोस अधिक खा लिया हो, तो काँजो पी ले, इससे बहुत जल्द हजम हो जाता है। सपक पान्ज द्वारा मख्य और पान्जबीज द्वारा मांस, यवचार द्वारा कच्छरका मांस, शुद्ध और पाण्डुरण परावत, नीलकण्ठ तथा मधुप्लवङ्ग मांस खाने पर सजोण होनेसे काँजो लोको दोस कर जलके साथ सेवन करना चाहिए। तिनके पोषेके यवचार द्वारा सभी प्रकारके मांस, खीरको सफ़ाई के

चारसे बहुतसाक, अतिसर्प और सधुपासाक, अतिसर्प द्वारा पास्तनगाक, कंबुकगाक, करेला, बैल, मूली, पोटे, कद्दू, परवल और चीज परिपाक होता है।

मूँगे से दूध, कुछ गरम माँहसे गायका दूध और मैथुन ममकसे भैंसका दही जोण होता है। त्रिकटु खानेसे रसान, खण्ड खानेसे शूल, नाग मोषिसे दूध और पदरहा रम पचता है। गेहूँमूँगे और चन्दनेसे शुरातन मद्य, कण्डूसे श्रोतल दूध और रससे चारममूँग जोण होता है। जलपान करनेसे यदि सजोण हो लाय, तो सोने या चाँदीको चन्निमें सक्त करके जलमें डाल दे। इस प्रकार मात बार करती रहे, पाकि उस जलको पीनेसे अच्छी तरह परिपाक हो जाता है।

(आयस मयदाश • अग्निभाण्डवि०)

जिन सब द्रव्योंको बात ऊपर लिखी गई, उन सब द्रव्योंको खानेसे भूकद्रव्य परिपाक होता है, इस कारण उन्हें पाचन कहते हैं। (पु०) ४ सस्तरम, पदराम। ५ चन्नि, चाम। ६ रत्नेरण्ड, मात चंडी।

“पाषाणमेदी वरिच यमानी श्लशीरुहम्।

शुद्धीचकरं पचकणा श्रेष्ठानि पाचनो गणाः॥”

(कर्मभण्ड)

पाषाणमेदी, मिर्च, अजवायन, जलशोषक, कच्छर, चर्द, गजकणा और मूँगे इन सब द्रव्योंका नाम पाचन गण है।

पाचनक (म० पु०) पचतिऽनेनेति पच-विष-उद्यु, तत् संप्राप्य कन्। टङ्गन्सार, मोक्षामा।

पाचनगण (म० पु०) पाचन योग्यद्रव्योका वर्ग। जैने, काकोमिच, अजवायन, सीठ, चय, गजपोदन, काकड़ा मिर्चो चादि।

पाचनशक्ति (म० स्त्री०) पच शक्ति जो भोजनको पचावे, शक्तिमा।

पाचनो (म० स्त्री०) पचति भुक्तद्रव्यादिकं पचति, पच-विष-उद्युट्, स्त्रियां डोप। १ हरोतको, इट। (त०) २ परिपाचक।

पाचनीय (स० स्त्री०) पच-विष-पनीय, पाषा, पचाने या पचाने योग्य।

पाचयित (स० स्त्री०) पच-विष-यित्, पाचक, रचोद्या। २ पचानेवाला, शक्तिमा।

पंचर (हि० पु०) पच देखो ।

पाचल (सं० पु०) पाचयतीति, पच-णिच्, बाहुलकात् कलन् । १ पाचक । २ अग्नि । ३ रश्मिद्रव्य । ४ वायु । (वृत्ती०) पाच पाचनं स्नातीति स्ना-क । ५ पाचन ।

पाचिका (सं० स्त्री०) पाचक-टाप, पत-इत् । पाक-कर्त्ता, रसोई वनानेवाची स्त्री, रसोईदारिन ।

पाचो (सं० स्त्री०) पाचयति स्तपयसादिप्रत्ययादिना परिपञ्चयति ज्ञादि पच-णिच्, (वृत्तिपाठान् इव, ततोदीर्य) लक्ष्यविशेष, पाचो या पचो नामकी स्त्रियां । पर्याय-सरजतपत्री, हरितस्तता, हरितपत्रिका, पत्रो, सुरभि, मालारिष्टा, ग्राह्यस्तपत्रिका । गुण-कटु, तिक्त, सख्य, कषाय, वातदोष, यह और भुनविकारनाशक, त्वग्-दोषप्रशमक और ज्वरका हितकर ।

पाच्छा (हि० पु०) पाश्चात् देखो ।

पाच्य (सं० त्रि०) पच-भाष्यके शब्द, भाष्यकार्य-त्वात् न कृत् । पच्यपचनौद्य, जो भव्य पचाया जा पचाया जा सके ।

पाछ (हि० स्त्री०) १ जन्तु या पौधेके शरीर पर कुरोकी धार आदि मार कर ऊपर ऊपर किया हुआ धाव जो गहरा न हो । २ वह चीरा जो किसी ठोस पर उसका रस निष्काशनेके लिये किया जाता है । ३ वह चीरा जो पोम्बोके डोडे पर नहरनोसे लगाया जाता है । इससे गौदके कपमें फकोम निकलतो है ।

पाछना (हि० क्लि०) जन्तु या पौधेके शरीर पर कुरोकी धार इस प्रकार मारना कि वह दूर तक न चले और जिसमें केवल ऊपर ऊपरका रस आदि निकल जाय, बिरना ।

पाज (हि० पु०) पाजर ।

पाजरा (हि० पु०) एक वनस्पति जिससे रंग निकाला जाता है ।

पाजम, (सं० क्लो०) पाति रचतीति पाचनेनेति वा पा-रचये पठन् लुङागमस्य (पाठेर्विभे च कृत्) । १ यन् । २ पञ्च ।

पाजस्य (सं० पु०) शातो और पैटकी बगलकी भाग, पाजर ।

पाजा (हि० पु०) पायना देखो ।

पाजामा (का० पु०) पेरने पहननेका एक प्रकारका मिला हुआ वस्त्र । इससे टखनेसे कमर तकका भाग ढंका रहता है । इसके टखनेको ओरके अन्तिम भागको सुहरो या मोरी, जितना भाग एक-एक पैरमें होता है उसे पायवा, दोनों पायवोके मिलावेवाले भागको मियानी, कमरकी ओरके अन्तिम भागको जियमें हज्जार-बंद रहता है, नेफा और जिम सुन या रंगमटे बंधनकी नफिसे डाल कर कसते हैं, उसे हज्जारबंद कहते हैं । पाजामेके कई भेद होते हैं, चूड़ोदार, बरदार, बरबो, पतन ननुमा, कलौदार, पैगावरो, काबुली और नेपाली । चूड़ोदार पाजामा छुटनेके नाचे इतना तंग होता है कि सज्जमें पहना या उतारा नहीं जा सकता । जय यह पहना जाता है, तब छुटनेके नीचे बहुतसे मोड़ पड़ जाते हैं । इसके दो भेद होते हैं—घाड़ा और खड़ा । घाड़ेको काट नीचेके ऊपर तक बाड़ो भार खड़ेको खड़े होनेसे है । कभी कभी इनमें मोहरोको तरफ तीन बटन लगते हैं । उस दशमें मोहरो और भी तंग रखे जाते हैं ।

बरदार पाजामा छुटनेके नाचे और ऊपर बराबर चौड़ा होता है । इसको एक एक सुहरो एक हाथसे कम चौड़ा नहीं होता । बरबो पाजामेको मोहरो चूड़ोदारसे अधिक ठोली होती है और यह अधिक लम्बा न होनेके कारण सज्जमें पहन लिया जाता है । पतन ननुमाकी मोहरो बरदारसे कम और बरबोसे अधिक चौड़ी होती है । पाज कल इसी पाजामेका रवाज अधिक है । कलौदार या जनाना पाजामा नफिको तरफ कम और मोहरोकी तरफ अधिक चौड़ा रहता है । इसके नफिका घेरा १ गज और मोहरोका २२ गिरह होता है । इसमें बहुत-सी कलियां होती हैं । इन कलियोंका चौड़ा भाग मोहरोकी ओर और तंग भाग नफिको ओर होता है । पैगावरो पाजामा कलौदारका प्रायः उलटा होता है । काबुली और नेपाली भी इसी प्रकारके होते हैं ।

पाजामेका व्यवहार हम देशमें कबसे प्रारम्भ हुआ, ठीक ठीक मालूम नहीं । अधिकार्ग जोर्निकाला काल है, कि यह मुसलमानोंके साथ यहाँ आया । पूर्व समयमें यहाँके लोग धोती पहना करते थे । परन्तु पहचानिये

घोर गीतप्रधान देवीमें पाज कब इसका जितना व्यवहार है वममें संदेह हो सकता है, कि पहले भी उसका काम इनके बिना न चलता रहा होगा। किन्तु हिन्दू सुसन्मान दोनों पाजामा पहनते हैं, पर सुसन्मान अधिक पहनते हैं।

पाजो (हि० पु०) १ पैदल सेनाका सिपाही, प्यादा । २ रक्षक, चौकीदार । (वि०) ३ दुष्ट, लुच्चा, कमीना ।

पाजोवन (हि० पु०) दुष्टता, कमीनापन ।

पाजिव (फा० स्त्री०) पैरोंमें पहननेका स्त्रियोंका एक गड़ना । यह चांदीका होता है और इसमें घुंघरू टके होते हैं, नूपुर, मंजीर ।

पाञ्चकपाल (सं० त्रि०) पञ्चकपालस्वायमिति षण्, (नखे-दम् । पा ४।३।२०) पञ्चकपाल यज्ञसम्बन्धी ।

पाञ्चगतिक (सं० त्रि०) पञ्चगतियुक्त ।

पाञ्चजन्य (सं० स्त्री०) पञ्चजन नामक व्राजापतिकी कश्या षसिकी ।

पाञ्चजन्य (सं० त्रि०) पाञ्चजने साधुः पञ्चजन-घञ् । (प्रतिज्ञादिभ्यः घञ् । पा ४।४।६८) जो पाँच जनके प्रति साधु व्यवहार करते हैं ।

पाञ्चजन्य (सं० पु०) पञ्चजने दैत्यविघ्ने भयः (पञ्च-जनादुपसंयशसम् । पा ४।१।१८ वार्तिक) इत्यस्य वार्तिकोक्तम् अर्थः । १ विष्णुसूक्तं, विष्णु जिस गंधकी धारण करते हैं उस गंधका नाम पाञ्चजन्य है । (गीता १।१०) पञ्चजन नामक दैत्यसे यह गंध पाया गया था, इसीसे इसका नाम पाञ्चजन्य पड़ा है । हरिवंशमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—

भगवान् विष्णुने शुकदक्षिणामें बपने शुक सान्द्रो-र्षाग सुनिकी उसका पुत्र सा देनिकी प्रतिष्ठा की । इस कारण वे समुद्रके किनारे जा जलमें धुस पड़े । इस पर समुद्र हाथ जोड़े कृष्णके सामने था उपस्थित हुए और कृष्णने बपने पानिका सारा हाज उनसे कह सुनाया । जब कृष्णकी मासूम हुआ, कि पञ्चजन नामक एक महादेव तिमिरघ धारण कर शुक-पुत्रकी निगल गया है, तब वे उसी समय दैत्यके समीप पहुँचे । वहाँ कृष्णने पञ्चजनकी मार कर बपने शुकपुत्रकी मुद्राया और उसका गंध भी ले लिया । यही गंध देवता

घोर मनुष्यके मध्य पाञ्चजन्य नामसे विख्यात हुआ था । (हरिवंश ८।१५-१८) पञ्चमिः काश्यपगणितप्रकाशिनः सप्तम्यधनैः निवृत्तः पञ्च । २ पञ्चि । महाभारतके वन पर्वमें लिखा है—

सकृच्च घोर मार्कण्डेयने धर्मिष्ठ घोर ब्रह्मादे सहग यगस्थौ एक पुत्र पानेको कामनासे बहुवर्ष व्यापे घोर तपस्याका आरम्भ कर दिया । जब कश्यप, यमित्र, प्राणपुत्र प्राण, चंद्रिकाके पुत्र अथर्व घोर सुवर्चक इन पाँचोंने पञ्च महाव्याकृत मन्त्र द्वारा ध्यान किया, तब महतीज्वालासमन्वित, पञ्चवर्ण विभिन्न, जगत्की सृष्टि करनेमें समर्थ एक तेज उत्पन्न हुआ । उसका मूलक प्रकृतित प्रनिवर्ण-सा, दोनों बाहु सृष्टिद्वय प्रमांश्वित, त्वक् घोर नेत्र सुवर्णके समान शक्तियुक्त तथा दोनों जड़ा कण्ठवर्णको थी । उक्त पाँचोंने तपस्या द्वारा उस तेजको पञ्चवर्ण किया, इससे वे पाञ्चजन्य नामसे प्रसिद्ध हुए । (भागव १।२।८ अ०) ३ हारीश सुनिवर्णोय दीर्घबुधियुक्त । ४ पुराणानुसार जम्बूद्वीपके एक भागका नाम ।

पाञ्चजन्यधर (सं० पु०) धरतीति धृ+घञ्, पाञ्चजन्यधरः । विष्णु ।

पाञ्चजन्ययनि (सं० त्रि०) पाञ्चजन्यधर चतुर्दशादि चतुरथयो कर्णौ किञ्च । पाञ्चजन्य सज्जित देवादि । पाञ्चदम (सं० त्रि०) पञ्चदम्यो भयः शालत्वं ऽपि सन्नि-वेलादित्यादयः । पञ्चदमीभव ।

पाञ्चदम्य (सं० पु०) पञ्चदमभिः सामधेनोमन्त्रैः प्रकाशः एव । पञ्चदम सामधेनो मन्त्र द्वारा प्रकाश पञ्चभौतिक वक्ति । (भाग० ६।४।२०)

पाञ्चनख (सं० त्रि०) पञ्चनख-घण्ट । पञ्चनख सम्बन्धी, पञ्चनखभव ।

पाञ्चनद (सं० त्रि०) पञ्चनद-घण्ट । पञ्चनदसम्बन्धी पाञ्चभौतिक (सं० त्रि०) पञ्चभ्यो भूतभ्य पागतः उक् । विपदवृद्धिः । आकाशादि भूतपञ्चकारण देहादि, पाँच भूतों या तत्त्वोंमें बना हुआ शरीर । जोयाकाकि पाञ्च भौतिक देहपरिवहका नाम जन्म घोर इसका भाग हो श्रव्य है । कोई कोई देहको पाञ्चभौतिक नहीं मानते—कोई इसे चातुर्भौतिक और कोई एकभौतिक मनसाते

है। शरीरमें पाथिवांगका भाग अधिक है, इसीसे शरीरको पाथिव भो कहते हैं। देहमें पाथिवांगका भाग आधा है।

पाञ्चमाङ्गिक (स० त्रि०) पञ्चमदिन-सम्बन्धीय।

पाञ्चमिक (स० त्रि०) पञ्चमयुक्त।

पाञ्चयज्ञिक (स० त्रि०) पञ्चयज्ञके पन्तगत कोई एक।

पाञ्चाश्र (स० पु०) पञ्चाश्रमतामसको।

पञ्चरात्र देखो।

पाञ्चालिका (स० स्त्री०) पञ्चालो स्त्रायें अण् तत्प० कन्, तत्तटापि पत इत्वं। पञ्चालिका, सखादि निर्मित पुत्तलिका।

पाञ्चवर्षिक (स० त्रि०) पञ्चावर्षाः प्रमाणमस्य ङङ्, तस्य वा न लुक्, पञ्चवर्षवयस्क, जिसकी उमर पांच वर्ष की हो।

पाञ्चमन्दित (स० त्रि०) पञ्चभिः शब्दैः निवृत्तं, तिन निवृत्तं। (पा ५।१।११) इति ठक्, पञ्च प्रकार शब्द द्वारा निष्पादित वाद्यमेद, करताल, ढोल, बोन, चंटा और भैरो आदि पांच प्रकारके बाजे।

पाञ्चयर (स० त्रि०) पञ्चयर वा कामदेव-सम्बन्धीय।

पाञ्चार्यिक (स० पु०) पञ्चार्याः सन्त्यत्र (अत इति ठनौ) पा ५।२।१५ इति ठन्। पाण्डपतगाक्ष। इसमें पागादि पञ्च पदार्थ दिखलाये गये हैं।

पाञ्चाल (स० स्त्री०) पञ्चाल एव पञ्चाल-स्त्रायें-अण्। १ शास्त्र। (पु०) पञ्चमिं प्रधानाभिर्नटोभिरलति पर्याव्रतोति पञ्चाल स्त्रायें अण्। २ देशविशेष, द्रुवदराज-नगर। पञ्चाल देखो। ३ पञ्चालदेशवासो, पञ्चाल-देशका रहनेवाला। ४ ब्रह्मदत्तका सहचरविशेष। ५ बड़ई, नाई, लालहां, घोषी, समार इन पांचोका समुदाय। (त्रि०) ६ पञ्चालदेशोद्भव, पञ्चालदेशमें होनेवाला। ७ पञ्चाल देशका रहनेवाला।

पाञ्चालक (स० त्रि०) पञ्चाल स्त्रायें-कन्। पञ्चाल।

पाञ्चालिका (स० स्त्री०) पाञ्चाली स्त्रायें कन् ततो ङलटाप, च। १ सखा वा दण्डादिकत पुत्तलिका, गुड़िया, कपड़े आदिको पुत्तली। पर्याय—पुत्तलिका, पञ्चालिका, शास्त्रमञ्जी, पञ्चाली। २ रीतिविशेष, साहित्य-में एक प्रकारकी रीति या वाक्यरचनाप्रणाली।

पाञ्चाली (स० स्त्री०) पञ्चभिर्वर्षैरलतोति अल पच, गौरादित्वाद् डोप्। १ पाञ्चालिका, गुड़िया। २ पञ्चाल देशकी भाषा। पञ्चाल-अण्, स्त्रियां डोप्।

१ पाण्डवोंको स्त्रो द्रोपदीका एक नाम जो पञ्चाल-देशकी राजकुमारी थी। पर्याय—कन्या, पाण्डु गर्मिना, पाथती, याज्ञमिनो, वेदिज्ञा, सेरन्ध्रा, निशयोवना। ४ रीतिविशेष, साहित्यमें एक प्रकारकी रीति या वाक्य-रचना-प्रणाली। इसमें बड़े बड़े पांचकः समासोंसे युक्त और कान्तिपूर्ण पदामेली होती है। इसका व्यवहार सुकुमार और मधुर वर्णनमें होता है। किसी-किसीके मतसे गौड़ो और बेंदर्यों वृत्तियोंके सम्मिश्रणको भी पाञ्चाली कहते हैं। ५ पिप्पली, पोपल। ६ स्त्रसाधनकी एक प्रणाली।

पाञ्चाव्य (स० त्रि०) १ पञ्चालसम्बन्धीय। (पु०) २ पञ्चालदेशके राजपुत्र।

पाञ्चि (स० पु०) पिष्टमेद।

पाञ्चिक (स० पु०) यक्षदलपति।

पाञ्चर्य (स० त्रि०) पञ्चर-सम्बन्धीय।

पाट (हि० पु०) १ एक प्रसिद्ध पोषा। यह चतुको परिष्कार रहता है, इस कारण इसका पंगरेजो वैज्ञानिक नाम 'करकरास' (Orchorus) पड़ा है।

पाटका पंगरेजो नाम जूट वा जिउसमेतो (Jute or Jew's mellow), फरासी नाम जूट, मोषाम इस लुइफ, कर्डेटेक्सटाइल (Jute, mauve des juifs, Corde textile), जर्मन जूट (Jute), बङ्गला पाट, ब्रह्मदेशीय नाम फेटकयून (Phetecwoon) संस्कृत जूट वा कट।

इनके कुल ३६ भेद हैं जिनमेंसे ८ भारतवर्षमें पाये जाते हैं। इन आठमेंसे दो मुख्य हैं और प्रायः इन्हींको खेती की जाती है। किसी किसी जातिके पाटकी पत्तियां कट्टई होती हैं। यह कट्टई पत्तियां कृमि आदि रोगोंमें मछोपकारो मानो गई हैं।

तिलपाटका वैज्ञानिक नाम करकोरस-एकुटाङ्गुलस (Orchorus Aentangulus) है। इसके काण्डदेशका अधिकार्य रेशेसे आहत रहता है। पत्तोंके दोनों भागमें शलकों तरह बहुत बारीक पदार्थ नजर आते हैं।

वोजकोप इच्छ भरका होता है और हमने ३३ भाषाएं निकलती हैं। यह दो प्रकारका होता है, एकका मल-दिग्ग कुक्ष कुक्षिन तथा दूसरेका छोटा छोटा और चिपटा बीज होता है।

इस जातिका पाट भारतवर्ष, और सिन्धुदेगमें जहाँ अधिक गरमी पड़ती है, उत्पन्न होता है। वर्षा और गीतकालमें हममें फल लगते हैं। इस जातिके पाटकी खेती नहीं होती। भारतवर्ष के पनेक, खानानि तथा ब्रह्मदेगमें, यह पत्तसर जंगल में पचस्यारमें देखा जाता है।

बाफुसोपाट (Orchurus Antichorus) इसका पंजाबी नाम बाफुसि, कुराण्ड, बोकाको, बाबुना और सिन्धु देगोय नाम सुधरो है। यह गुल्लप्रदेगसे पञ्जाबके मन्थ, सिन्धुदेगमें, काठियावाड़के दक्षिण-पश्चिम भागमें, भुजरातमें और दक्षिणप्रदेगमें पाया जाता है। इसका आकार कण्टहाकोणें अन्य जलाके समान होता है। भारतवर्षकी मरभूमिमें जो सब पुष्प पाये जाते हैं, वे इसी जातिके हैं। यह सभी पक्षगानिखान, पक्षिका आदि स्थानोंमें बहुत मिलता है। इससे प्रच्छे-रेगे नहीं निकलते, विगेष कर यह बीजधर्म पचकृत होता है। इसका गुण शीतल और नेदरोगमें महोप-कारो माना गया है।

नरहोपाट (Corchorus Capsularis) विगेषतः बड़ा सब और आसाममें बोया जाता है। वनपाटकी पवित्रा इसके रेगे अधिक उत्तम होते हैं। नरहोका पोषा वनपाटके पोषेने जंवा होता है और पंती तथा कत्ती लम्बी होती है। वनपाटकी पत्तियाँ गोल, फुल नरहोमें बड़े और कभीको चौंघ भो नरहोमें कुछ अधिक लम्बी होती है। नरहोकी पत्तियाँकी जलमें कुछ काल तक डुबोये रखनेके बाद वह जल पोनेसे रक्त-आमामय, प्वर प्रसुति रोगको शांति होती है। इसके बीजकी भुज कर एक प्रकारका तेल निकलते हैं जो दीयेमें जलाया जाता है। वनपाटकी बम्बईमें हिरणखोरो और सुपाको कहते हैं। सिन्धुदेगमें इस पाटने जो रेगे निकलते हैं हमने रखी बनाई जाती है।

एक प्रकारका और पाट होता है जिसे चीन-मलिका पाट (Corchorus Capsularis) कहते हैं। यह चीन-देगमें पहले पचन भारतवर्षमें लाया गया। कण्ट

नगरके निकट कई शताब्दी तक इसकी खेती होने ली और वहाँ इसे बोमोयो कहते थे। मान्यदेगके बीज हमें रापिचमजिमा कहते हैं। किन्तु मलिकपाट इन्डिया और सिरियाके अधिवासीयोंके निकट परिचित था, उसका प्रमाण मित्रता है। यह शाकके घटनेमें व्यवहृत होता था। योसलोग जिसे करकोरस कहते थे और पभा जो करकोरस कहा जाता है, दोनों एक नहीं हैं। क्वॉलि योस करकोरस शब्दका अर्थ चतुरोगविनाशक है, किन्तु यहकि करकोरसमें वह गुण नहीं है। इस जातिके पाट-को बहुत दिन तक पलेमाके निकट खेती होती थी और शाक ललाकी तरह इसका व्यवहार होता था। इसका फरासा नाम मय डि फूरे है।

खुद्रीय शताब्दीके प्रारम्भमें इसकी खेती रजिष्ठमें होने लगी। वहाँ इसे मेल्लोक्चि (Mellowkych) और फिटेलोचिया कहते हैं। इन नामोंके माध्य भारतवर्षमें नामका कोई सादृश्य नहीं है। १८वीं शताब्दीके मध्यभागमें यूरोपियनोंने इसका विषय पहले पहल सुन पाया। योहं जो दिन हुए हैं, कि इसका गुण सब किसीकी मान्य हो गया। यह प्वर, उदामय आदि रोगोंमें व्यवहृत होता है। पूर्वब्रह्मल और सत्याल-परगनेके लोग इसकी पवित्राका शाकको तरह व्यवहार करते हैं।

इसके सिवा और भी दो प्रकारका पाट है अर्धे Moulechia Corchorus और Travense Corchorus Trilocularis कहते हैं। येदोत्र जातिके पाटका बीज बम्बईके बाजारमें राजजोरा नामसे बिकता है।

प्रायः अर्धे शताब्दी पहले ब्रह्म देगके दरिद्र मनुष्य आने पवने घरमें पाटके कपड़े बना कर पहनते थे। किसी किसी पक्षभ्य जातिके मध्य प्राय भो इस प्रकारके कपड़े का व्यवहार देखा जाता है। किन्तु मध्यतावित्कारके प्राय शोध पञ्चको आवश्यकता भो बढ़ गई है। पाटवे यह आवश्यकता पूर्ण हुई है। किन्तु यूरोपमें, पचमरुय में बस्तादिको पासदनी होनेके कारण इस देगके बस्त-व्यवसायको विगेष चलि हुई है। विदेगोय पवित्र्यमें दिमी दिग पाटका पादर बढ़ जानेसे इसकी खेतीकी प्रवृत्ति हुई है और कपड़ोंके लिये यह अत्यन्त

सामाजिक भी दुष्प्रभाव करता है। भारतवर्ष, ब्रह्मा, चीन, अमेरिका, पट्टालिया और इजिप्ट देगवे जिन सब प्रजाजनों को रक्खनी होती है। उनके लिये घोरको विशेष प्रावश्यकता पड़ती है। इस कारण पाटको खेतों पर नौगोनी विशेष ध्यान दिया है, लाभ भी इसमें काफी है। पहले घोर हाथसे बनाये जाते थे, पर अभी इन्-सोपडमें पटसनकी रफतभी हो जानेसे वहाँ कलमें बातको बातमें घनेक घोर तैयार होने लगे हैं। सरकारी रिपोर्टसे जाना जाता है, कि १८८८ ई०में पहले पहाल १६४ हजार पाटकी रफतनी यूरोपमें हुई। इसमें कुछ समय बाद ही स्काटलैण्डमें पाटकी घोरको काल जाननेसे इस देगके लोगोंने देखा, कि भ्रम हाथके जने हुए घोरों के व्यवसायमें बहुत भाका पड़ चुका, इस कारण वहाँ भी घोरोंकी घनेकी कल यहाँ खोल दी। स्काटलैण्डके इण्डोनेगरमें पहले पहाल पाटकी काल स्थापित हुई। पीछे १८५४ ई०में जाज भाकलैण्ड नामक किसी ब्रह्मदेजने योरामपुरके निकट पाटकी काल खोल दो जो अभी 'वेसिल्टन मिश' नामसे प्रसिद्ध है। इसमें कुछ दिन बाद ही बराहमनगर, मोरोगुर और कालकत्ते के चारों घोर पाटकी काल स्थापित हुई। १८६८-७० ई०को सरकारी रिपोर्टसे जाना जाता है, कि सल सालमें ६४४१८६१ घोर हाथ और कलसे इस देगमें तैयार हुए थे। १८७०-८० ई०में ५५८०८०० घोरोंकी विदेगमें रफतनी हुई थी। यूरोप और इस देगमें घनेकी कलके खुल जाननेसे पाटकी विवेग प्रावश्यकता पड़ती है, इस कारण देगवासोयोंके लिये पाटकी खास विवेग सामाजिक हो गई है और प्रति-वर्ष पाटकी रफतनी उत्तरीतर बढ़ती जा रही है।

पटसनको बापाई मद्धे भनाजोंके साथ होती है और काटई उसी समय होती है जब उसमें फूल लगते हैं। इस समय न काट लेनेसे रंगो कड़े हो जाते हैं। बाजके लिये घोड़ेसे पीछे खेतमें एक जिनारे कोड़ दिये जाते हैं, ग्रैप काट कर और ग्रीसमें बांध कर नदी, तोलाव या गड्ढेक जलमें ग्राह दिये जाते हैं। तीन चार दिन बाद निकाल कर डलसे क्लिकको भलग कर लेते हैं। फिर क्लिकोंकी पल्लके कपर

पकाइती हैं और धोही धोही देरके बाद पानीमें धोते हैं। ऐसा करनेमें कड़े काल कट कर धुल जातो है और नोच ही सुलायम काल निकल पाती है। क्लिकके या रंगे भलग करनेके लिये यन्त्र भी है, परन्तु भारतीय किसान उसका उपयोग नहीं करते। यन्त्र द्वारा भलग किए हुए रंगोंको भवेसा सड़ा कर भलग किये हुए रंगे अधिक सुलायम होते हैं। कुहाए और सुखाए जाने के बाद रंगे एक विवेग यन्त्रमें दबाए घबवा कुचले जाते हैं। जब तक यह क्रिया होती रहती है, रंगों पर जल घोर सलके कोटि देते रहते हैं। १०० सौ मन पाट पर प्रायः २० मन जल घोर २१ टाई मन तेल लगता है। ऐसा करनेसे उनको खवाई घोर कठोरता दूर हो कर कोमलता, चिकनाई और चमक आ जाती है। आज कल पटसनके रंगोंसे तोन काम लिये जाते हैं—सुलायम लघोके रंगोंसे कपड़े तथा टाट बनाए जाते हैं, कड़े रंगोंसे रक्खे रस्सियां और जो इन दोनों कामोंके उपयोग समझे जाते हैं उनसे कागज बनाया जाता है। रंगोंकी उत्तमता अनुत्तमताके विचारसे भी पटसनके कई भेद हैं। जेरे, उत्तरिया, देगवाल, देगो, घोर या डोरा, नारायनगंजी, निराजनगंजी, करोमगंजी, मीरगंजी। इनमें उत्तरिया घोर देगवाल सर्वोत्तम है। पटसनके रंगे भय हलीं या पोर्षीके रंग से कमजोर होते हैं। रंग इसकी रंगों पर चाहे जितना गहरा या हलका बढ़ाया जा सकता है। चमक, चिकनाई आदिमें पटसन रंगत न सुकाविना करता है। जिस कारखानेमें पटसनके सूत घोर कपड़े बनाये जाते हैं उसकी 'जूटमिल' कहते हैं और जिस यन्त्रमें दाब पड़वा कर रंगोंको सुलायम और चमकोला बनाया जाता है उसे 'जूटप्रेस' कहते हैं।

उपरोक्त द्रव्यादि कोड़ कर पाटसे एक प्रकारका मद्य तैयार होता है। पाट तन्तुके परित्यक्त भागोंके साथ सलकुडरिक एसिड मिलाने एक प्रकारका सकर बनता है। इसी सकरसे मद्य प्रस्तुत होता है। भनाजसे जो मद्य तैयार किया जाता है उससे यह बहुत कुछ मिलता जुलता है। इसे ब्रह्मदेजोंमें Gate's whiskey वा पाटका मद्य कहते हैं। इसका व्यवहार सलना अधिक नहीं होता है।

पाटन (सं० पु०) पाटयति दीप्यतीति पाट-युञ्।
महानिष्ठु। २ कटकान्तर। १ वायु। ४ पचादि
चालन। ५ मूलद्रव्यापचार। ६ रोष। ७ प्रामैक-
देश। (त्रि०) ८ छेदक। ९ भेदक।

पाटकरण (सं० पु०) गृह जातिके रागीका एक भेद।
पाटघर (सं० पु०) पाटयन् हिन्दू चरतीति चर-पचा-
द्यच्। छपोदरादित्वात् भाषुः। १ घोर। (त्रि०)
पटघरदेशमभव। पटघर देखी।

पाटन (सं० स्त्री०) पट-पिच-भावे ण्युट्। छेदन।

पाटन—प्रचीष्माणदेशके लघुवर्ग जिलात्तमं पाटन पर-
गनेका एक नगर। यह लोचनदेहे किनारे अवस्थित
है। यहां सुप्रसिद्ध फकीरखी समाधिसे निकट
दूर भूमि दो बार भेजा जगता है। इस भूखंडमें प्रायः
तीन लाख मनुष्य एकत्रित होते हैं। सर्वोका ऐसा
विश्वास है, कि उक्त मृत फकीर सम्पादयन्त शोगीको
पारोक्ष्य कर सकते हैं। इसीसे यहां जितने पागल
जाये जाते हैं उन्हीं समुल्लिखित छत्रमें रात भर बांध
रखते हैं। यहां एक अंगरेजी विद्यालय है।

पाटन—१ बम्बई प्रदेशके पन्तर्गत सतारा जिलेका एक
उपविभाग। यह पचा० १७° ८' से १७° १४' उ० और
देशा० ७१° १८' से ७४° ४' पू०के मध्य अवस्थित है।
भूपरिमाण ४१८ वर्ग मील और जनसंख्या साठसे ऊपर
है। इसका अधिकांश स्थान पर्वतपूर्ण है। पूर्वको
घोर कोयना, तारसो घोर कोल उपत्यका कृष्णगदीको
समतलभूमिसे मिल गई है। इस उपविभागके पूर्वी
भागमें खार घोर ईष उपत्यका होती है। गदीके तीर-
वर्ती स्थान छोड़ कर अन्य स्थानोंमें पोम्बेकानमें जल
दुष्प्राप्य हो जाता है। यहांकी बावडवा गौतम घोर
स्वास्थ्यकर है, किन्तु सर्पाकानमें ज्वरका प्रादुर्भाव देखा
जाता है। इसमें ८ नगर और २०१ ग्राम मिलते हैं।

२ उक्त उपविभागका एक प्रधान नगर। यह पचा०
१०° २२' उ० और देशा० ७१° ३८' पू०के मध्य सतारा
नगरसे २५ मील दक्षिण-पश्चिम कोयना घोर घेरना नदी
के समुद्रमध्य पर अवस्थित है। यह नगर दो
विभाजित है—एक भागमें डाकघर, सरकारी
स्कूल, बाजार और टका

दूरमें भागमें रामपुर नामक एक सुन्दर उपवन है।
पाटन—१ गुजरातके पन्तर्गत खरीदा राज्यका एक
उपविभाग। भूपरिमाण ४०१ वर्ग मील और जनसंख्या
प्रायः १०४१३६ है। इसमें पाटन घोर वलिसना नाम-
के २ शहर तथा १४० ग्राम मिलते हैं। मरुस्थली नदी
उपविभागके मध्य हो कर बह गई है। यहांका राज्य
प्रायः ३२६००० रु० है।

२ उक्त उपविभागका एक प्रधान शहर। यह पचा०
२१° ५१' उ० और देशा० ७२° १०' पू० बनावगदीकी
गोखा सरस्वती नदीके किनारे अवस्थित है। यहां
जैनेके घनेक पुस्तकालय हैं। इन पुस्तकालयोंमें जो
प्राचीन ग्रन्थ हैं, वे ताड़के पत्तों पर लिखे हुए हैं। घोर
बहुत पावधानोंसे रक्षित हैं। नगरके बाहर सुन्दर
धर्म्यादिके घनेक विहार नजर आते हैं। पन्तर्गतवाङ्-
पाटन गुजरातका एक पति प्राचीन घोर विख्यात नगर
है। ७४६ ई० १२८४ ई० तक यहां राजपूतवंशीय राजाओं-
की राजधानी थी और सुप्रसिद्धी राज्यके समय भी
यह एक प्रधान स्थान माना जाता था। इस महारमें
राजा मोमचैनको रानी उदयमतीका धनाया दूषा
तालाब बना भी वर्त्तमान है। यह तालाब ११वीं
शताब्दीमें खुदवाया गया था और रानीबाग नामसे
प्रसिद्ध है। सोलहवीं शतके राजा जयसिंह द्विजने
मालवाके राजा यशोवर्मणके विरुद्ध युद्धयात्रा करने
पहले यहां 'महल जिङ्ग तालाब' नामका एक जलाशय
शिवके उद्देश्यसे बनवाया था। प्रभो इसका नाम
निगान भी गरी है, किन्तु मेदानीके बोधमें सुप्रसिद्ध
राजप्राभाटका खंडहर दीख पड़ता है। इसी जला-
शयके किनारे 'दुमायु' घोर पकवरदे मन्त्री बेगमचा
महा प्राते समय मारे गये थे। यहां वाघ राजाका
(१४६० ई०) एक समाधिस्तम्भ है। नगरके दक्षिण
छाँ मरोवर नामका एक बड़ा तालाब है। कहते हैं, कि
यह मरोवर किमो सुप्रसिद्धीमें खुदवाया था। यहांमें
तनवार, देशम घोर घामोनें तें पार होते हैं। पापुनिज
नगर महाराष्ट्रमें बनाया गया है। यह चारों घोर
घाघोरेमें परिवर्तित है। यहां डाकघर, पन्तर्गत
तथा भाषा मोलनेके अनेक

पाटन (किगोरोपाटन) - राजपूताने के सुन्दिराज्यका एक प्रधान ग्राम। यह अक्षा० २५° १०' उ० और देशा० ७५° ५८' पू० के मध्य अवस्थित होने के कारण, अवस्थित है। किगोरोपाटन यति प्राचीन नगर समझा जाता है। यहां तक कि ऐतिहासिकोंने महाभारत के समयमें यह नगर विद्यमान था, ऐसा बताया है। किन्तु नगर की वास्तुति देखनेमें यह उतना पुराना प्रतीत नहीं होता। यहां दो प्राचीन निपियाँ मिलती हैं, एक ३५ सप्तम्वर्षी की है दूसरी १५२ की एक निजटवर्षी मन्दिरमें। प्रभोगे बहुत पक्षों पर श्वराम नामक एक व्यक्ति एक महादेवका मन्दिर बनवाया था जो प्रामगः नष्टभूत हो गया। योही कव-पालने राजत्वकालमें यह किरने बनाया गया। कवपाल-ने विनामक महाराज रतनजीने किगोरोदेवके मन्दिरकी नींव डालने ल डालने प्राणत्याग किया। बादमें कव-पालने उस अपूरे कामको पूरा किया था। मन्दिरमें विष्णुकी एक मूर्ति है।

पाटन - राजपूताने के जयपुर राज्य के अन्तर्गत तुषारवती जिलेकी एक जागीर। चौरवर्गने जय दिल्ली पर अधि-कार जमाया, तब तुषारवर्गीय राजगण दिल्ली की-कर-हमो जागीरमें आ कर रहने लगे। तभीसे यह स्थान उनकी अधिकांशमें बना पा रहा है।

पाटन - मध्यप्रदेश के अन्तर्गत जयपुर जिलेका एक ग्राम। यहां अनाजका सामान्य वाणिज्य होता है।

पाटन - नेपालका सबसे बड़ा शहर। यह अक्षा० २७° ४१' उ० और देशा० ८५° २०' पू० के मध्य, राजधानी काठमाण्डूमे १२ मील दक्षिणपूर्व बाधमती नदीके दाहिने किनारे उच्चभूमि पर अवस्थित है। नेपाल जय करनेके पहले तीन भागोंमें विभक्त था और नेपाल-वर्गीय एक राजा यहां बस करती थी। इस समय यह नगर अत्यन्त सन्वृद्धि सम्पन्न है। १७६८ ई० में पृथ्वी-नारायणने यह नगर अच्छी तरह मूटा और प्रधान प्रधान अधिकाशियों की मार डाला। यद्यपि प्राचीन नगरकी अधिकाशियोंकी संख्या अभी ६०००० से कम नहीं है, तो भी नगरका पूर्ण मोन्द्य नहीं है। नगर-के गृह मन्दिरादि भवन की जानसे दिनों दिन इसको

थो मट होती जा रहा है। इससे दरबारगृह और मन्दिर क्रमशः भवन हो गये हैं और नेपाल लोग पर्या-भावसे उनका जीर्णोद्धार नहीं कर सकते। नगर-अधिकारके समय मन्दिरमें जितनी जागीर संश्लिष्ट थी, सभी पृथ्वीनारायणने खीन ली; केवलमाय हिन्दू मन्दिरको कुछ जागीरमें उन्होंने हाथ नहीं लगाया था। इसी कारण हिन्दू मन्दिर आज भी उन्नत दगामें है। किन्तु बौद्ध मन्दिरका प्रायः अधिकांश भवन हो गया है। अधि-वासियोंकी तुलनामें नगर बहुत ही बड़ा है। अधिकांश गृह शूयावस्थामें दीप्त पड़ते हैं। चारों ओर खण्डहर की नजर पते हैं। नगरकी वास्तुति गोलाकार सुरक्ष-सी है। दरबारस्थान नगरके मध्यस्थानमें अवस्थित है। नगरका चौरके द्वारमें रास्ता था जहाँ मिल गया है। शहरका पय विस्तृत तो है, पर परिष्कार नहीं रहता। दरबार स्थानका उत्तर भाग अभी भग्नावस्थामें पड़ा है। पश्चिम भागमें देवतलो नामक एक पञ्चतन मन्दिर है। दक्षिण भाग पूर्ण रूपसे विध्वस्त हो गया है। पश्चिम भागमें राजप्रासाद अवस्थित है। पाटनके निवासीमें अधि-कांश बौद्ध और राजगण हिन्दू धर्मावलम्बी थे। नगरके अन्यथा भागमें चतुर्दीक्ष भूमिमें ऊपर बहुतसे मन्दिर हैं। दरबार-स्थानके दक्षिण-पूर्व कोणमें जो चतुर्दीक्ष भूमि है, वहाँ उक्तवर्षे समय, मरत्येन्दुनायका रथ जा कर ठहरता है। यहां एक झरना है। अनेक चतु-र्दीक्ष भूमिमें ऊपर बौद्ध मन्दिर हैं जिन्हें विहार कहते हैं। पहले इन विहारोंमें बौद्ध-उदासी और उनके शिष्य रहते थे। नेपालमें बौद्धधर्म की चवनतिके साथ साथ इन विहारोंकी भी चवनति हो गई है। प्रधान विहार-की संख्या प्रायः पन्द्रह और सुद्विहारकी संख्या तीस अधिक है। ये सब विहार प्रायः हिनल और दृष्टक-निर्मित हैं। हरदेशमें अनेक देवदेवियोंको प्रतिमुर्तियाँ जोदित हैं। नगरके बहिर्भागमें बड़े बड़े चार बौद्ध मन्दिर और एक हिन्दू देवी मन्दिर है। इनका दूसरा नाम सलितपत्तन भी है। राजा ललित-ने यह नगर बसाया था, इस कारण यह नाम पड़ा है। यह शहर राजधानी काठमाण्डू के साथ एक सेतु-मे संयुक्त है।

घाटन (हि० स्त्री०) १ पाटनीकी क्रिया वा भाव, घटाव ।
२ मजानकी पहली मंजिलसे ऊपरकी मंजिल । ३ जो
कुछ पाट कर बनाया जाय, कच्ची या पक्की इत । ४
सर्पका बिप उत्तारनेके सम्बन्ध एक भेद । जिनकी
बाँपने काटा हो उसके कानके पास पाटनसम्बन्ध बिस्त्रा
कर पड़ा जाता है ।

पाटना (हि० क्ति०) १ किसी नेचे स्थानकी उसके पास
पासके धरातलके बराबर कर देना । २ छस करना,
चोचना । ३ दो दोबाराके बीच या किसी गहरे स्थान-
के पार पार धरना, लकड़ोंके बच्चे बाँटि बिछा कर
पाधार बनाना । ४ किसी चीजको रस्तेपर कर देना,
टैर लगा देना ।

पाटनी—पूर्व यज्ञवासो एक निम्नजाति । स्थानभेदसे ये
लोग पाटनी, पाटनी और डोमपाटनी कहलाते हैं ।
नाय चलाना, मछली पकड़ना और टोकरे बनाना इनका
जातीय व्यवसाय है ।

इनके शरीरकी गठन देख कर कोई कोई पाश्चात्य
मानवतत्त्वविद् इन्हें द्राविड़जाति सम्भूत बतलाते हैं ।
किसीका विश्राम है, कि ये लोग पहले डोम थे, आज
भी रत्नपुर बाँटि उनके स्थानोंमें ये लोग डोमपाटनी कह-
लाते हैं । कहीं कहीं लोग इन्हें गङ्गापुत्र या घाटमाभी
भी कहते हैं । परशुरामकी जातिमालाके मतसे
रत्नके पोरस और मध्यकन्याके गर्भसे इस जातिकी
उत्पत्ति है । किन्तु पाटनी लोगोंका कहना है, कि उनके
बाँटिपुत्रय माधवने मिथिला जाते समय श्रीरामचन्द्रकी
पार किया था । श्रीरामचन्द्रके मार्गमें ही उनके नाव
सोनेमें परिणत हो गई थी । किन्तु माधव इन्में समझ
न सका और 'मैंरा सर्वनाश हुआ'; ऐसा कह कर
बिनाप करने लगा । इस पर रामचन्द्रजी बोले, "तुम्हारे
नाय शय सोना हो गई है, तुम्हें इसकी कुछ भी खबर
नहीं ?" तुम्हारे इस निष्ठुरताके कारण तुम्हारी ममी
रंगर नाश चलायेंगे । मरनेके बाद तुम स्वर्गमें जा
कर यंत्ररानी मदीका पाटनी होगी ।"

इसके बीच जातिवर्गके सम्बन्धमें एक प्रवाद सुना जाता
है—राजा वत्ससेनने पद्मावती नामक एक पाटनी-
कन्याके रूप पर मोहित हो कर उससे विवाह कर

लिया । उसके पाकपय—उत्सवके समय पाटनी लोग
यथासमय यहाँ पहुँच न सके, इस कारण उनके
मिनती पतित और नेच जातिमें ही गई ।

पाटपाट (म० क्ति०) पतिपय पट ।

पाटभट्टी (हि० स्त्री०) पटारी, प्रधान रानी ।

पाटरानी (हि० स्त्री०) वह रानी जो राजाके साथ
मंत्रासन पर बैठ सकती है, प्रधान रानी ।

पाटन (म० स्त्री०) पाटनी वर्गाद्व्याप्तीति पटन-पमं
पादित्वाटच् । १ पाटनीपुत्र । इस पुत्र की कोई कोई
गुनावपुत्र भी कहते हैं ।

'पाटलाशोकवृक्षैः कुर्वैः इहैरपि ॥' (भाग० ४।१।१५)

२ श्रेतरत्नवर्ण, रत्नना और लाल रंग मिश्रित
जो रंग बनता है उसके पाटनवर्ण कहते हैं, गुलाबी
रंग । ३ पाशुधान्य । गुण—पशुपुण्य, वहनिगन्धो और
त्रिदोषकारक । ४ वृषविशेष, पाटनका पेड़ । पाटन
देखो । ५ रोहिण्यष्टक । (ति०) ६ पाटनवर्णयुक्त ।

पाटनक (म० क्ति०) पाटन-स्वार्थे-हन् । पाटन ।

पाटनकोट (म० पु०) एक प्रकार का कोड़ा ।

पाटनद्रुम (म० पु०) पाटनवृक्ष पाटनपुण्यद्रुमी वृक्ष ।
सुवागवृक्ष, गजचम्प ।

पाटना (म० स्त्री०) पाटनी वर्गाद्व्याप्तीति । १ दुर्गा ।
२ पुण्यवृक्षविशेष, पाटनका पेड़ । यह भिन्न भिन्न देशों-
भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है । यथा, तामिल—पट्टि, तैमूर—
कलंगर और कनिगोडू, चेदू, महाराष्ट्र—पाटनी,
बनाहो कादरो ।

संस्कृत पश्या—पाटन, पमोघा, पाचस्थानी, फले-
रुहा, कण्डूवृक्षा, कुवेराक्षा, शम्भुपुत्री, कुम्भिका, सुपु-
षिका, वनस्पद्रुती, स्थानी, तिरगन्धा, पम्पुवासी, काम-
हृती, मधुद्रुती, कालास्थानी, पतिवत्तमा, कामद्रुती,
कुम्भी, तोयाधिवामिनी । गुण—तिक्त, कटु, स्रग्, कटु,
वात, शोफ, पापान, वमि, श्वास और मज्जिपातनायक ।
भावप्रकाशके मतमें—तुवर, पशुपुत्र, त्रिदोष, पहवि,
त्रिधा और दृष्टानामागक । फूलका गुण—अप्राय,
मधुर, शीतल, बन्ध, कफ और पित्तनाशक । इससे
कनका गुण—पित्त, पतिसार और दाहनायक, हिक्का
और कफपित्तकारक ।

इस हस्तको उत्पत्तिको विवरण वामनपुराणमें इस प्रकार लिखा है,—भगवान् ब्रह्मा शिवलिङ्ग-पूजादिको विविका निर्णय कर जब स्वधाम छोड़ गये, तब महादेव वरुण विचरण करने लगे। इसी बीच कन्दर्पने घनशुभ्र में तीर छड़ा कर ज्यों ही महादेव पर कोंकना घाटा, त्यों ही महादेवको कोपहृष्टि लक्ष पर पड़ो मोह बह दग्धप्राय हो गया। धनुष, उसके द्वाशने गिर कर पांच टुकड़ोंमें हो गया। जिस स्थान पर सुष्टिवह था, वहाँमें सम्पकहस्त, जहाँ शम्भाकार वस्त्रन श्याम वस्त्रभूषित था वहाँमें वकुल पोर जहाँ इन्दुनीलविभूषित-कोटो यो वहाँमें पाटलोहस्त उत्पन्न हुआ। (वामनपुराण ५ अ०) सरत्तानोत्र । धगगिकारिका । धृ श्चेतपाटलहस्त । इ सुप्रकलहस्त । ० हहकोलानन्दवर्णित एक तीर्थ । यहाँ पाटलेश्वरोद्देवो अवस्थान करतो है ।

पाट्या (हि० पु०) एक प्रकारका बड़िया मोटा। यह भारतमें ही मुख्य करके खाद्यमें लाया जाता है। यह बंक गीनेछे कुछ दलका, भीर सस्ता होता है।

पाठनादि (सं० पु०) विख्यादिदगमूल कथाय । यह
गोथनागक है ।

पाठशालाप्रवेशनिका (मं० स्त्री०) प्रकाशित ।

पाठशालाप्रवेशनिमित्त (मं० स्की०) पाठशालाप्रवेश सचिवा
सौदम्यं यत्र । पद्मनाभ ।

पाटशाभ (स० पु०) रक्षासुक ।

पाटलावती (सः स्त्री०) १ नदीभेद । २ दुर्गा ।

पाटलि (सं० स्त्री०) पाटिभावेऽवय, पाटो दोत्रिष्ठां
लातीति ला-इ (भव इ। उ० ४।३८) १ पाटसागुप्यवय ।
२ घण्टापाटलि । ३ कटभोवय । ४ सूक्ष्मवय ।

पाटलिक (स० पु०) पाटि शाहु० मलि. ततः संज्ञायां
कम् । अन्य धर्मज्ञ ।

पाटलिपुत्र (स० स्त्री०) पाटलीपुत्र, स्वनामख्यात नगर-
भेद । पर्याय—कुसुमपुर, पुष्पपुर पाटलिपुत्रक ।

महाण्डपुराणमें लिखा है—

“उदायी ममिता तस्मात् प्रयोविशत् समा नृपः ।

स वै प्रावरं राजा पृथिव्यां कुटुमाह्वयम् ।

गंगाया दक्षिणे कूळे चतुरस्रं करिष्यति ॥”

संदायो २९ वर्ष राज्य करंगे । वे ही गङ्गाके दक्षिने

किन्तु चतुरस्र कुसुमपुर नगरका निर्माण करेंगे ।
जनोंके स्वविरासलोचरित्रमें लिखा है—

पुष्पमद्रपुरमें पुष्पकेतु नामक एक राजा रहते थे। उनको पद्मिका नाम या पुष्पवती। इनके गर्भसे पुष्प-दूत नामक एक पुत्र और पुष्पचूला नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। पुष्पवतीने जैनागम भिन्न और समीको कट्टप्रद समझ कर आश्वकीधर्म ग्रहण किया। पोछे वे कितने आश्वकीके साथ गङ्गाके किनारे प्रयागतीर्थमें चारि।

यहां गङ्गागर्भमें अस्मितापुत्रको देह पर्यवसित हुई । उनके मस्तकको मकरादि लज्जान्तु नदो, त्रिनारे घनोत्त लायें । किसी एक दिन दैवयोगसे उनको मस्तक पर पाटलावृक्ष गिर पड़ा । कुछ दिन बाद मस्तकको खोपड़ोको भेद कर एक पाटलावृक्ष निकल आया । यह पाटलावृक्ष क्षमयः बहुत विशाल हो गया । किसी एक भौमतिकने पाटलोवृक्षका प्रभाव जान कर कहा था, कि यह स्थान सब प्रकारको सम्पत्तियोंसे सम्पन्न होगा । राजा उदयोक्तो जब इसको खबर लगी, तब उन्होंने पाटलावृक्षको पूर्व दिक्से पश्चिम तथा उत्तर और दक्षिण क्षमये एक चतुस्त्रसुर बसाया । पाटलोवृक्षसे इस नगरका भारश्रु हुआ था, इस कारण इसका नाम पाटलोपुत्र पड़ा । राजा उदयोक्ते इस सुरमें बड़े बड़े जैनमन्दिर, गज और अश्वशालाशुल प्रकाण्ड प्रकाण्ड राजप्रासाद, नाना प्रकारको शोधशाला, पण्यशाला, शोधशाला और सहस्रोपुरादि निर्माण किये । यह नगर देखनेसे मानस पड़ता है, मानो साक्षात् चाण्डालधर्मके विस्तारके लिये ही यह प्रतिष्ठित हुआ है ।

बौद्धों का 'महापरिनिब्बानसूत्र' नामक पाणिग्रन्थ पढ़नेसे इस प्रकार जाना जाता है,—भगवान् बुद्ध शेष वार मालन्दारसे वैश्याली जाते समय पहले पाटको ग्राममें गये। यहां अधिवासियोंने एक 'मवस्यागार' वा विद्यामागार निर्माण किया था। यह स्थान वैश्याली घोर राजगृहके मध्यवर्ती सड़क पर अवस्थित था। जब इस विद्यामागारमें बुद्धदेव ठहरे हुए थे, तब उन्होंने कहा था, कि इस ग्राममें बहुजनकोषं नगर होगा और यह स्थान चम्पि, जन तथा विद्यासद्यतकताका प्राचीन मंड

मङ्गेला । इस समय मंगधराजके दो मन्त्री सुनोध चोर विसमकर हजिगोके पाकमन्त्रसे देमकी रक्षा करनेके लिये नगर बना रहे थे । इसी नगरद्वार से कर बुद्ध देव गुजरे । जहाँ से मदी पार हुए थे, वर स्थान गीतमघाट नामसे प्रसिद्ध हुआ ।

महावंशमें भी लिखा है,—महाराज पञ्जात-गवुक पुत्र सदय (सदायी)-ने यह पाटलीपुत्र नगर बनाया । महाराज चन्द्रगुप्त चोर सनके पोते चमोकेके समय इस नगरीकी यष्टि स्थापित हुई थी । इस समय यौवका यवमराजद्वारा पाटलीपुत्रकी राजसभामें रहता था । योक्तद्वारा मंगधराजकी वर्षा नामे जाना जाता है, कि इस नगरकी लम्बाई ८० एडिया (भाग: ८ कोस) तथा चौड़ाई १५ एडिया थी और यह चारों ओर खाई-से परिवेष्टित था । समस्त राजधानीका व्यवसन प्रायः २२० एडिया वा २५½ कोस था । योक्त ऐतिहासिक मोरियसने लिखा है, कि हिरण्यवाह (Kinnabara) चोर गङ्गाके मध्यमे निकट पाटलीपुत्र अवस्थित रहा । महाभागमें पत्तञ्जलिने भी लिखा है, 'अनुशोण पाटलिपुत्र' अर्थात् योक्तके ऊपर पाटलिपुत्र बना हुआ था । योक्त चोर हिरण्यवाह एक ही मदी है ।

दिव्यदोरसने लिखा है—हराकलिन (हलराम) ने यह नगर बनाया । किन्तु इसके मूलमें कोई ऐतिहासिकता नहीं है ।

भविष्य ब्रह्मवर्णमें पाटलीपुत्रकी आसीत्पत्तिबं मङ्गलमें इस प्रकार लिखा है—

'यद्भूमिके निकट गङ्गाके दहिने किनारे पाटलीपुत्र नामक एक परम सुन्दर नगर है । कुप्रनाभके पुत्र महावक्त्र-पराक्रान्त गांधि नामक एक राजा थे । उनसे सर्वदृष्ट्यास्वित एक कन्या थी जिमका नाम पाटली था । यह कन्या विष्णुमित्रसे बड़े चोर विविध विद्यासे विभूषित थी । एक दिन वेतापुत्रके शेष समयमें कोण्डिरमुनिके पुत्र शिवाह करनेके लिये आवासमुनिसे आश्रममें मन्त्र लेने गये । आवासमुनिने उन्हें आकर्षणसे लिहविद्या चोर मन्त्रादि सिखा दिये । चलनसे मुनिपुत्र जनविद्या से कर वंशसे मंगधराजकी चम दिये । वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा, कि एक रमणीय आश्रममें

कामशास्त्रामिश्र चोर विविधकन्यापुत्र कामिनीके कामदमनद्वारे मुक्तिवाप्त करनेके समान चरन कामक एक मुनि वास करते हैं । मुनिपुत्र यत्नतःप्राप्तने टारपरिवह करनेके लिये शय-मुनिसे आश्रममें पहुँच चोर मुनिसे एक कन्याके लिये प्रार्थना की । चरनने कहा, 'हे मुनिपुत्र ! पाटली नामक गांधिराजके एक परम सुन्दरी कन्या है । वह कन्या विद्या चोर कन्या सौन्दर्यके चतुष्टयको पर चतुष्टयगोत्र है । पतः के वल ! तुम सम्भवतः उसे हरण कर अपने स्त्री बनाओ ।' शयनके बादमें मुनिपुत्र हज्जरीमें गांधिराज-भवन पहुँच चोर मन्त्रालय द्वारा चलापुत्रके किसी घरमें कन्याको सुरा पाकागण से कर वंशमें सह गये । रात भर इसी प्रकार भ्रमण करते करते जब मधरा हुआ, तब वे भागीरथीके दक्षिण पार्श्व कच्छभूमि पर एक निविड वनमें पतित हुए । वहाँ पाटलीने मुनिपुत्रसे कहा, 'हे प्राणेश ! इस दोनोंके नाम पर यहाँ एक उत्तम नगरका निर्माण कोजिये । पाटलीकी बात सुन कर मुनिपुत्रने मन्त्रालयमें वहाँके जंगलकी काट कर पाटलीपुत्र नामक एक नगर बनाया । तभीसे यह नगर पाटलीपुत्र नामसे प्रसिद्ध हुआ है । इस मंगरके मध्यमें चोर भी उनके भविष्यद्वारी हैं जिनमेंसे एकसे पता चलता है, कि हम नगरमें सज्जियों का नामक नामक एक महाजानी पता लगे । जन्म लेनेके साथ से ही मानवका पञ्चान दूर करने चोर विषय-वामनाका स्थान कर माना स्थानमें भ्रमण करने ।

मंगल्यमोजके वर्षा नामे मानस होता है, कि सोय वंशके समय पाटलीपुत्रमें (Palibothra) काठ निर्मित गृहादि शोभित थे । सोयराजने अपने रत्नके लिये प्रस्तारके पास चोर कुल प्रस्तारगृह बनवाये थे ।

चोमपरिव्राजक फाहियान (३०६-४४५ ई. के मध्य) पाटलीपुत्र देख कर ऐसा निप गये हैं—

'इस नगरमें महाराज चमोके राज्य करते थे । नगरके मध्यमनमें राजमार्गसे चमन्तिन था । मन्त्राट-चमोकेके बादमें यत्नतः द्वारा इसका खाई की गई थी बनाया गया था । बड़े बड़े पत्तारोंमें प्राकार, तोरण

भीर होर दंस प्रकार बनाये गये हैं, कि देखनेमें हो मानम पड़ता है, कि वे मानवजन नहीं हैं।

३० ई०में चोनपरिभाजक 'यूननुवड्ड' पाटलीपुत्र पधारे थे। उन्होंने लिखा है, 'गङ्गाके दक्षिण ७० लीग विस्तृत प्राचीन नगर अवस्थित है। यद्यपि यह प्राचीन नगर बहुत पड़ने की मानवशून्य और विध्वस्त हो गया है, तो भी इससे प्राचीनकी भित्ति विद्यमान है। पूर्व समयमें यहाँ राजधानीमें घनको पुष्प विनोष रहते थे, इस कारण यह नगर पुष्पपुर या कुसुमपुर नामसे पुकारा जाता था।'

पाटलीपुत्रकी नामोत्पत्तिसे सम्बन्धमें उक्त चोनपरिभाजकने ऐसा लिखा है, 'एक भयंकर ग्राह्यवित् और बहुशुभशाली ब्राह्मण थे। यथासमय उनकी विवाह नहीं होनेके कारण वे मन हो मन बहुत दुःख करते थे। एक दिन उनके आश्रममें डोली-ठोलीमें एक पाटली वृक्षके तले उनकी क्वात्रिम-विवाह कर दिया। ब्राह्मणको सचमुच ऐसा विश्वास हो गया, मानो कन्याके माता-पिताने ही उन्हें एक सुन्दरी कन्या प्रदान की है। क्रमशः सूर्य पस्त हो चले। उनके साथी लोग सभी घर लौटे पर उक्त ब्राह्मण लकी पाटलीवृक्षके तले ही बैठे रहें; रातको देवप्रभातसे वहाँ प्रकाश हो उठा। ब्राह्मणने देखा, कि सचमुच एक वृहत् भा कर उन्हें कन्या दान कर रहा है। यहाँ कुछ दिन रहनेके बाद ब्राह्मण अपने घर गये और भाग्योपवर्गको विवाहका मन्वाह कष्ट सुनाया। दोहे वे उन्हें ले कर लकी पाटलीवनमें भाये। पूर्व स्थानमें पहुँच कर पट्टालिका और ब्राह्मणको वधुकी देख कर वे सबके सब विस्मित हो पड़े। वधुके पिताने था कर उनका घण्टे बाद सख्खा किया। वे सभी मुलकित हो अपने अपने घर लौटे। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया। यथासमय ब्राह्मणके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उन्होंने एक दिन पत्नीसे कहा, मैं तुम्हारे दिव्यदेहको मट्टा नहीं कर सकता; किन्तु ऐसे निर्जन स्थानमें कब तक रहूँगा?' पत्नीकी बात सुन कर वह पिताने जा बोली। मसुरने जमाईके रहनेके लिये एक ही दिनके मध्य अनेक लोगोंको सहायतासे एक सुन्दर पट्टालिका बना दी। पाटलीपुत्रके

नोचे ब्राह्मणका विवाह हुआ था और वहाँ उनका घर भी बनाया गया, इस कारण यह स्थान कुसुमपुरने बदलेमें 'पाटलीपुत्रपुर' नामसे प्रसिद्ध हुआ।

यूननुवड्डने यहाँ प्राचीन प्रासादके ध्वंसावशेषके मध्य उच्च पयोक्तृत्व, बहुशत सङ्काशम, बहुलपुष्प और देवमन्दिरका मन्वावशेष देखा था। उनके समयमें उक्त प्राचीन पाटलीपुत्रके उत्तर गङ्गाके किनारे प्रायः महत्त्व नष्टविशिष्ट एक सुदृढनगर अवस्थित था।

उपरोक्त वर्णनमें जाना जाता है, कि ३० ई०में गताब्दीके प्रथम भाग तक पाटलीपुत्र एक महानगरमें गिना जाता था। ७वीं शताब्दीके पहले ही इसका ध्वंस हो चुका था और इस प्रकार वृहदेवका भविष्य वाक्य भी सफल हुआ। चोन लेखक मतोननिनने लिखा है, कि ७३६ ई०में 'होल' (हिरण्य वा हिरण्यवाह) नदीका किनारा तोड़ कर यह पत्तर्हित हो गया। इससे कोई कोई अनुमान करते हैं, कि शीघ्र वा हिरण्यवाह नदीकी गतिके परिवर्तनके साथ प्राचीन पाटलीपुत्रका विलोप हो गया। (१)

सम्भवतः इस समय प्राचीन पाटलीपुत्रसंविहित चीनपरिव्रजकवर्णित वही सुदृढ नगर पाटलीपुत्र कहलाता होगा। क्योंकि उसके बाद पालराज धर्मपालके शासनमें भी उनकी राजधानी पाटलीपुत्रका उल्लेख पाया जाता है; सम्भवतः यह नवपाटलीपुत्र होगा। यह पाटलीपुत्र भी कुछ समय तक सन्तत दृश्यां था। यहाँके ब्राह्मण पण्डितगण विदेशीय हिन्दूराजाओंसे सम्मानलभ करते थे। गुर्जरके राष्ट्रकूटराज नित्यवर्षमें पाटलीपुत्र-विनिर्गुत वस्त्रपभूषणके पुत्र विहगभट्टकी ८२६ शकमें साट-देयके चत्तार्गत्त तैलपाम दान किया था (२)। किन्तु इस

(१) कोण नदीकी गति अनेक परिवर्तित हुई है। जो शीघ्र एक समय पाटलीपुत्रके ठीक पार्श्वमें बहती थी, अभी वह पटनाके पश्चिम १२ मील दूर पड़ी गई है।

छोखनदीके गति-परिवर्तनका विस्तृत विवरण Coningham's Arch. Sur. Reports, Vols. VIII and XI द्रष्टव्य।

(२) Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society, Vol. XVIII

पाय क्य देखा जाता है। समतल प्रदेशके अधिवासो हमेशा घोड़े को पीठ पर भ्रमण करते हैं, इसीसे उन्हें पाटागोनिया कहते हैं।

पाठगोविन्दाके अधिवाशो बहुत लम्बे होते हैं। इनकी ल'चाई रुः फुटमे कम नहीं होती। ये लोग गिकारमें बड़े निहडम्त होते हैं। इन लोगोंमें सङ्घ-विवाह प्रचलित है और चोरी छिपि बहुत आदरणीय समझी जाती है। यहां तक कि पात्र चोरो करमेंमें जब तक पका नहीं हो जाता, तब तक उसका विवाह होता ही नहीं। ये लोग प्रायः चमड़ेके तब्युमें वास करते हैं।

पाटिका (मं० प्लो०) १ एक दिनको समदूरो । २ एक पोधा । ३ काल या क्षितिका ।

पाटित (स० वि०) पाठ्यते अ इति-पठ विच्-ज्ञा । छत-
पाटन, पाटा कुपा । पर्याय—दाहित, भिन्न ।

पाटियाक—पूर्व वक्त्राणो एक जाति । ये लोग अपनेको कायस्थ बतलाते हैं, लेकिन उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता । ये लोग अक्सर घटाई बुन कर अपना गुजारा चलाते हैं ।

पाटो (स' स्त्री) पाटंतीति पाटि-इत् (स' वाचस्पत्यु-
 इत् । वणं वा ११७) क्रिया वा डोप् । १ बलात्पु, धरेटो ।
 २ मरुक्रम, परिपाटो, रीति । ३ गणनादिका क्रम,
 जीङ्, बाकौ, शुभा, भाग आदिका क्रम । ४ अशो,
 ग्रास्त, आवलि ।

पाँठो (बिं० पु०) १ लकड़ोको वृक्ष प्रायः लक्ष्मीतरो पक्ष। जिस पर विद्यारथन करनेवाले छात्र गुह्यमे पाठ लेते वा लिखनेका अभ्यास करीते हैं, तथ्या। २ पाठ, सवध। ३ लकड़ोका वृक्ष गोलो, बिपटा वा चौकोर पतला बल्लो जो खाटकी लम्बाईके चलमें दोनो ओर रहता है। ४ चटाई। ५ मांगिके दोनो ओर तेल, गोद वा लकड़ो सङ्गत्याचें कंधो द्वारा बँठाए हुए बाल जो देखनेमें बराबर मालूम हों, पंथी, पंथिया। ६ श्वप्रेत-का गरिवाका प्रत्येक भाषा भाग। ७ जंतो। ८ गिला, घटान। ९ मछलियाँ पकड़नेके लिए रहने पात्रोको मटोके बीच या छीको टहनियाँ आदिषु रोक कर एक पतल शस्त्रविनिकारने ओर वही पहरा बिकानेकी क्रिया।

पाटीकूट (मं० पु०) पाटीं कुटतेनि कुटक । चित्रकवृक्ष ।
पाटीगणित (मं० स्तो०) पाव्या परिपाव्या गणितं ।
गणितशास्त्र, गणितविद्या । सीताशतीकी टीकांमि पाटी-
गणितका ऐमा ग्रंथं देखनेमें पाता है, “पाटीनामसंस्कृत-
व्यवकलितगुणमजनाद्योगां क्रमः, तस्या युक्तं गणितं पाटी-
गणितं ।” (श्रीलक्ष्मीटीका)

पाटो शब्दसे सङ्कलन, व्यवकलन, भाग, गुण आदि-
का क्रम समझा जाता है और जो इस क्रम द्वारा युक्त
अर्थात् क्रमानुसार गणित है, उसको पाटोगणित
कहते हैं।

पाटीर (स० पु०) चन्दनविशेष, एक प्रकारका चन्दन ।
पाटुपट (स० त्रि०) पाटो-भूषणियासनात् णिलुक्, हित्-
सभ्यामस्य उक्त्वा । पाटकां ।

पाटुर (सं० पु०) पम्मादिकी पञ्चरास्थिका निःकटस्थ
प्रत्यङ्गमिषेय, पशु आदिके शरीरका वक्षः अंग जो समस्त
पंजरकी हड्डियोंके निकट रहता है ।

पाटनो (हि० पु०) वह मल्लाह जो किसी घाटका ठेकेदार हो ।

पाटेश्वर—धतारासे ७ मील दक्षिण पूर्वमें अवस्थित एक पहाड़। इसके उत्तर पश्चिमभागमें देगांव, निगड़ो घोर भातगांवके सहस्रस्थान पर बहुतसे गुहामन्दिर हैं। यहाँ जानिमें देगांवसे जो रास्ता चला गया है वही सबसे सुविधाजनक है। हमो रास्ते पर गणपतिकी एक प्रकाण्ड प्रतिमूर्ति है। जहाँ पहाड़ टालावां हो गया है, वहाँ एक छोटे गहलमें हवकी प्रतिमूर्ति घोर एक पुष्करिणी देखी जाती है। इसके पूर्वमें गोसायियोंका एक मठ घोर दक्षिणपूर्वमें महादेवका मन्दिर है। इस मन्दिरके पूरवशाले घरमें रमकोवा घोर पश्चिमशाले घरमें गहड़की प्रतिमूर्ति स्थापित है। मन्दिरके मध्यभागमें पाटेश्वरके पश्चिम पांवतोको प्रतिमूर्ति विद्यमान है। एतद्विष गणपति, माहति, जटायाह्वर, विष्णु आदिके विग्रह हैं। सभी मन्दिर घोर प्राङ्गण प्रस्तरनिर्मित हैं। मन्दिरनिर्माता का नाम परशुराम नारायण है। इस मन्दिरसे प्रायः १०० गज दूर पर बहुतसो गुहाएं देखी जाती हैं जिनमें धर्मस्थ निद्रा विद्यमान है। यहाँसे छोड़ी हो दूर पर पग्निका मन्दिर है जिसमें अग्निदेवकी प्रतिमूर्ति स्थापित है।

अन्तः कृत्तिकी नितान्त प्राप्यव्यवस्था हुई थी। अष्टाध्यायी मोस्टटुकर और जर्मन पण्डित लिबिच (Lieblich) ने पाणिनि तथा कार्त्तयायनके समयकी भाषाको इस प्रकार विभिनता दिखलाई है।

१ पाणिनिके समयमें व्याकरण सम्बन्धीय जो सब नियम प्रचलित थे, वे कार्त्तयायनके समयमें बहुत और प्रचलित हुए थे।

२। पाणिनिके व्यवहृत अनेक शब्दार्थ कार्त्तयायनके समयमें प्रचलित नहीं थे।

३। पाणिनिके समयमें जिस शब्दका जो पर्य प्रचलित था, कार्त्तयायनके समयमें उसका बहुत रूपान्तर हो गया।

४ पाणिनिके समयमें जो शब्दशास्त्र पढ़ा जाता था, वह कार्त्तयायनके समयमें बिलकुल अपरिज्ञात था।

उपरोक्त आलोचनासे यहो प्रतिपन्न होता है, कि पाणिनि और कार्त्तयायन को दो नौ वर्षोंके पार्श्व पौष्टिक नहीं है। पाणिनि कार्त्तयायनके सौक्यों वर्ष पहलेके है, इसमें शन्देह नहीं।

पाणिनि, शाङ्गि और जैमिनि।

किसी प्राचाय्य पण्डितने लिखा है, कि पाणिनिके पहले व्याङ्गिका 'म'द' नामक एक ग्रन्थ प्रचलित था। मालूम पड़ता है, कि कार्त्तयायनप्रागर्क गल्पों को ऐसा मिथ्याता हुआ है। शाङ्गि पाणिनिके पूर्ववर्ती थे, पाणिनीय व्याकरण वा दूसरे किसी ग्रन्थसे उनका प्रभाव नहीं मिलता, बल्कि महाभाष्यकारने व्याङ्गिकी पाणिनिके परवर्ती यत्ना कर हो उल्लेख किया है—

"भाषिणः पाणिनीय-मयरी। गौतमीयाः, एवं चर्चि-मिश्र-सर्गि-पूर्वदानी, तत्र न ह्यवसे कस्य पूर्वदस्य एवमेव भवितव्यमिति।" (११।२६ मूलमें महाभाष्य) शक्ति-कार-के "सम्बद्धित्व" (२।१।१४) दस-सूत्रके अनुना। पञ्चमिने पाणिगलि प्रभृति को अपने अपने प्राचार्य के दोषोपर्यन्तक बनाना कर हो छिद्र किया है (३)। इस-के अनुसार पाणिगलिके बाद पाणिनि और पाणिनिके बाद शाङ्गि होते हैं।

पाणिनि और यास्क।

पण्डित सत्यव्रत सामयमीने यह दिखाने को चेष्टा की है, कि कार्त्तयायनके बहुत पहले यास्क हुए, बाद यास्कके बहुत पहले पाणिनि और पाणिनिके बहुत पहले वेदमंडिता। उन्होंने इस सम्बन्धमें ऐसा प्रमाण दिया है, षट्कर्म-हिता (८।१।१५) में 'सूत्रो' शब्द का प्रयोग है, किन्तु इस समय सूत्रों शब्दसे सूत्रों को ऐसा पर्य प्रचलित न था, पाणिनिके समयमें प्रचलित हुआ। यास्कमें भी पाणिनिके अनुवर्ती हो कर 'सूत्रो-सूत्रस्य पत्नी' (१३।१।१०) ऐसा पर्य लगाया है। फिर यह देख कर कार्त्तयायनने "सूत्र ददेवताम् पार्" (शांति-६।१।१८) यह सूत्र किया है।

पाणिनि कार्त्तयायन और यास्कके बहुत पूर्ववर्ती हैं, इसकी अनेक प्रमाण मिलते हैं,—पाणिनिमुद्रमें सप्त शब्दकी ट्टिका विधान महा है। उनके समयमें 'प्रथम' 'वर्णम्' 'वत्सलार्थम्' इत्यादिका प्रयोग देना जाना है। किन्तु निहलने जाना जाता है, कि यास्कके समयमें 'वर्णार्थम्' का प्रयोग करना था। उनके बहुत-परवर्ती कार्त्तयायनने 'द्वन्द्वार्थम्' न' इत्यादि (१।१।८९) शक्ति-कमूत करके 'प्राप्य' शब्दका साधन किया है। किन्तु उनके समयमें नितान्त प्रचलित था, इस कारण उन्होंने 'वर्णार्थ' शब्द साधने को चेष्टा न की।

यास्क पाणिनिके परवर्ती थे, इसका स्पष्ट प्रमाण पाया गया है। निहलने कई जगह पाणिनिका सूत्र उद्धृत प्रथवा उनको महत्त्वपूर्ण छानि लिये हैं। विशेषतः निहलने कई स्थानोंमें "द्विपोरारिणि बन्धे-पिट" (पा १।१।८९) यह पाणिनीय सूत्र उद्धृत करने से यास्क पाणिनिके परवर्ती हैं, इसमें शरा भी शन्देह नहीं रहता। फिर भी निहलको प्रायशः प्रकृतिके सम्बन्धमें यास्कने "कालापल कार्त्तयायनस्य" इत्यादि उक्ति द्वारा निहल आ व्याकरणका परिमिटलक्ष्य है, यह विद्वत् किया है।

अब यह जाना गया, कि पाणिनि यास्कके पूर्ववर्ती थे; किन्तु जितने पूर्ववर्ती हैं, यास्क यास्क सामुम नहीं। 'अभिपुत्रिणि शिव' (८।१।१५) 'आदित्यस्य' इत्यादि (८।१।१८) इत्यादि सूत्रोंमें पाणिनिने सुविह्वर, काह्वर

भीर' प्लुतका नामोक्तेषु किया है। किन्तु "एनेः खः" (१।१।२८) यह सूत्र प्रणयन करके भी उन्होंने जनमेजयका नामोक्तेषु नहीं किया। उनके 'वाराणस्यशिलास्त्रिभ्यां मिथु-नटपूययो' (४।३।११०) इत्यादि सूत्रोंमें वाराणस्य व्यासका नामोक्तेषु रहने पर भी उनके पुत्र शुक्रदेव (वेद्यासकि) का नाम नहीं है। इससे कोई कोई प्रयुमान करते हैं, कि व्यास और युधिष्ठिरके बाद, शुक्रदेवादिके समयमें भीर परोक्षितपुत्र जनमेजयके कुछ पूर्व पाणिनि आविर्भूत हुए थे। उनके समयमें चार वेद, ऐतरेयब्राह्मण, बृहदारण्यक उपनिषद्, पङ्क-दशम, गालव, गोतम आदिका धर्मशास्त्र विशेष प्रचलित था। किन्तु उस समय भी अधिकांश उपनिषद्, वेदके कोई कोई प्रातिशाख्य, भारण्यक, ऋग्वेद, सूत्र और आजकलकी ऋग्वेदोक्तमनुसंहिता प्रच-लित न थी। उनके समयमें लिपिकार्य आरो-या। पञ्चावके किमो किसी क्षत्रमें 'यवनानो' लिपिका प्रचार था। उनके पूर्ववर्ती ग्रायिकोंके मध्य शाक्योंने वेदका पदपाठ आविष्कार किया, वाभ्य और गालवने क्षमापाठ प्रकाशित किया। काम-छात्र भीमासके जैसा गण्य हुए थे, पाणिनिने साम तन्त्रका प्रचार किया और शाकटायनने एक असम्पूर्ण ऋकतन्त्र व्याकरणकी रचना की। किन्तु पाणिनिके पहले भीर किसीने भी ऐसा सर्वाङ्गासुन्दर व्याकरण प्रकाशित नहीं किया।

कोई कोई एक उल्टा झोकेके आधार पर कहते हैं, कि पाणिनिके पहले 'माहुर्य' नामक एक बृहत् व्याक-रण रचा गया था। उनमें जो रत्न है, पाणिनिके गोसूत्रमें उसका रहना सम्भव नहीं।

उक्त उल्टा वाक्य यथार्थमें उल्टा है। यह प्रासुनिक समयमें किसी पाणिनिहोसे रचा गया है, इसमें शन्दे नहीं। वास्तविकमें माहुर्य नामक किसी स्तन्य व्याकरणका अस्तित्व ही नहीं है। प्रसिद्ध पण्डित मधुसूदन सरस्वतीने अपने प्रयानभेद नामक ग्रन्थमें पाणिनीय षष्ठाध्यायी, उसके ऊपर आत्मायनरचित वाचिक और उसके ऊपर पतञ्जलिकृत महाभाष्य इन तीन ग्रन्थोंकी वेदाङ्ग और 'माहुर्यव्याकरण' वनमाया

है। पाणिनिने ही सबसे पहले सर्वाङ्ग सुन्दर व्याकरण प्रकाशित किया था, इस कारण विद्वत्समाजमें ये ही संस्कृत भाषाके आदि व्याकरणकर्ताके जैसा कीर्तिता भीर समाहत होते आ रहे हैं।

पातालविषय और जाम्बवतीविषय आदि व्याक-रणकर्त्ताके कल्पित नहीं समझे जाते। पर हा, दुम्भ, राजशेखर, श्रीधरदास प्रभृतीकी उक्तियोंसे बोध होता है, कि १०वीं शताब्दीके भी बहुत पहले वे दो काव्य रचे गये थे। उन दो काव्योंके रचयिताके नाम भी पाणिनि रहनेके कारण परमर्षी पाण्डितोंने पाणिनि कविके कवित्व पर सुध हो कर उन्हें षष्ठा-ध्यायि-रचयितामें अभिन्न ही समझ लिया था।

पाणिनीय दर्शन।

पाणिनीय दर्शन नामक एक दर्शनका विषय सर्व-दर्शनसंघट्टकारने प्रकाशित किया है। सर्वदर्शन-संघट्टके मतमें इस दर्शनमें क्या वैदिक, क्या मौक्तिक, सभी संस्कृत शब्द व्युत्पादित हुए हैं। ऐसा कोई संस्कृत शब्द ही नहीं जिसके साथ पाणिनि-दर्शनका सम्पर्क न हो। फलतः कौंसा भी संस्कृत शब्द क्यों न हो, अनुसन्धान करनेसे एक प्रकार सभी शब्द साधित और व्युत्पादित हो सकती है। पाणिनिदर्शनके समान समस्त पद-साधनविषयमें भीर कोई भी दूसरा प्रयत्न नहीं है। कलापादि अस्यान्य प्रासुनिक व्याक-रण द्वारा भी कितने पद साधित हो सकते हैं, पर उन सब व्याकरणों द्वारा वेदशास्त्राकरणेषु धार्मिक लोगोंका सम्पूर्ण उपकार नहीं भूलकता। क्योंकि प्रासुनिक वैद्याकरणियोंने वैदिक शब्दसाधनके उपाय-रूप स्तन्य सुवाटिकी रचना न की। व्याकरणकी महत्प्रतीक्षा करनेके लिये वैद्याकरणियोंने वैदिक प्रकरण न रचा। इस दर्शन (वैदिक और मौक्तिक)-में सभी संस्कृत शब्द साधित और व्युत्पादित हो जाने-से इसके शब्दानुशासन और वशाकरण ये दो नाम पड़े हैं।

वशाकरणयात्रा प्रधान वेदाङ्ग है पर्याप्त वेदके शिवा, कल्प, वशाकरण, निरुक्त, हन्दीपय और ध्योतिप-भेदमें जो छः अङ्ग हैं, उनमेंसे प्रधान अङ्ग वशाकरण है।

स्वतन्त्र उचित को नितान्त प्रापश्यता हुई हो। अथवा एक मोहट्ट कर धोर जर्मन पण्डित लिबिच (Liebich) ने पाणिनि तथा कारवायनके समग्रको भाषाको इस प्रकार विभिनता दिखलाई है।

१ पाणिनिके समयमें व्याकरण सम्बन्धीय जो सब नियम प्रचलित थे, वे कारवायनके समयमें पशुत-धोर प्रचलित हुए थे।

२। पाणिनिके व्यवहृत चनेक शब्दार्थ कारवायनके समयमें प्रचलित नहीं थे।

३। पाणिनिके समयमें जिन शब्दका जो चर्च प्रचलित था, कारवायनके समयमें उसका बहुत क्वात्सर हो गया।

४ पाणिनिके समयमें जो शब्दशान् पढ़ा जाता था, वह कारवायनके समयमें बिलकुल अपरिज्ञात था।

उपरोक्त आलोचनासे यहो प्रतिपन्न होता है, कि पाणिनि धोर कात्यायन हो दो मो वर्णों के चार्गे पौके के नहीं है। पाणिनि कारवायनके सेकड़ों वर्ष पहलेके है, इसमें सन्देह नहीं।

पाणिने, वशादि औ-गेनक।

हिमी प्राचात्य पण्डितने लिखा है, कि पाणिनिके पहले व्याहिका 'संस्कृत' नामक एक ग्रन्थ वर्तमान था। मानूस पढ़ता है, कि कदाचित् भागवत गण्य हो एषा मिद्वान्त हुआ है। वशादि पाणिनिके पूर्ववर्ती थे, पाणिनोय व्याकरण वा दूसरे किसी ग्रन्थसे उसका प्रमाण नहीं मिलता, बल्कि महाभाष्यकारने व्याहिको पाणिनिके परवर्ती बतला कर जो उल्लेख किया है—

"भाषिण्य-पाणिनीय-वर्णः। गौरीशः, एवं वरं वरि-
शिरा वर्णानि पूर्ववदिति, तत्र न ह्यपि कस्य पूर्वोदस्य इति
भविष्यति।" (१।१।२६ सूत्रने महाभाष्य) याति ककार-
के 'पञ्चदित्त' (२।१।१४) इस शब्दके पशुमार
पतञ्जलिने पाणिगणि प्रभृति को अपने अपने प्राचार्य के
गोशर्प-मूलक बतला कर जो उल्लेख किया है (०)। इस-
के पशुमार पाणिनिके बाद पाणिनि धोर पाणिनिके
बाद वशादि नहीं है।

पाणिनि धोर प्राक।

पण्डित मन्मथन सामर्थ्यने यह दिखाने को चेष्टा की है, कि कारवायनके बहुत पहले प्राकृत हुए, प्राकृतके बहुत पहले पाणिनि धोर पाणिनिके बहुत पहले वेद-संहिता। उन्होंने इस सम्बन्धमें ऐसा प्रमाण दिया है, अक-संहिता (८।१।१५) में 'मृगो' शब्द प्रयोग है, किन्तु इस समय-मृगों शब्दने मृगों को नहीं ऐसा चर्च प्रचलित न था, पाणिनिके समयमें प्रचलित हुआ। यास्कने भी पाणिनिके पशुवर्ती को 'मृगो-सूक्ष्म पत्नी' (१।१।१०) एषा चर्च लगाया है। कि यह देल पर कारवायनने 'मृग दूरेवताम् प्रा' (गानि ६।१।१५) यह मूल किया है।

पाणिनि कात्यायन धोर यास्कके बहुत पूर्ववर्ती थे, इसको चनेक प्रमाण मिलने हैं,—पाणिनिग्रन्थमें अथ शब्दको उहिका विधान नहीं है। उनके समयमें 'मर्षम्' 'मर्षम्' 'वस्तुमर्षम्' इत्यादिका प्रयोग देखा जाता है। किन्तु निरुक्तने जाना जाता है, कि यास्कके समयमें 'मर्षान्' का प्रयोग चला था। उनसे बहुत परवर्ती कात्यायनने 'मृगदाम्' 'मृग' इत्यादि (१।१।१५) याति कस्य करके 'मर्ष' शब्दका साधन किया है। किन्तु उनके समयमें नितान्त प्रचलित था, इस कारण उन्होंने 'मर्षान्' शब्द साधने को चेष्टा न की।

यास्क पाणिनिके परवर्ती थे, इसका स्पष्ट प्रमाण पाया गया है। निरुक्तने कई जगह पाणिनिका मूल उद्धृत चला उनको महजबोय उल्लेख नहीं है। विशेषतः निरुक्तके कई जगहों में 'पुषोरायिनि यको-
दि' (पा १।१।१०६) यह पाणिनोय मूल उद्धृत करने-
से यास्क पाणिनिके परवर्ती थे, इसमें शरा भी सन्देह नहीं रहता। फिर भी निरुक्तको प्राच्यशक्तिके सम्बन्ध-
में यास्कने 'मृगदाम्' 'मृग' 'मृगदाम्' इत्यादि उल्लेख द्वारा निरुक्त का व्याकरणका परिमिटलक्ष्य है, यह विद्वान् किया है।

यह यह जगह गया, कि पाणिनि यास्कके पूर्ववर्ती थे; किन्तु कितने पूर्ववर्ती थे, यास्क मात्र मानूस नहीं। 'मनुविष्णु शिखर' (१।१।१५) 'मृगदाम्' 'मृग' 'मृगदाम्' इत्यादि उल्लेख से पाणिनिके सुविधित, काहने

और पलुनका नामोल्लेख किया है। किन्तु "एनेः सन्" (१।१।२८) यह सूत्र प्रणयन करके भी उन्होंने जनमेजयका नामोल्लेख नहीं किया। उनके 'पाराशर्यशिल्पिभ्यां शिल्प-नटपूजयो' (४।३।११०) इत्यादि सूत्रों में पाराशर्य व्यासका नामोल्लेख रहने पर भी उनके पुत्र शुकदेव (वेदाधिक) का नाम नहीं है। इससे कोई कोई पशुमान करते हैं, कि व्यास और युधिष्ठिरके बाद, शुकदेवादिके समयमें और परीक्षितपुत्र जनमेजयके कुछ पूर्व पाणिनि आधिभूत हुए थे। उनके समयमें चार वेद, ऐतरेयब्राह्मण, सहस्राष्टक उपनिषद्, पङ्क-दग्गन, गालव, गोतम आदिका धर्मशास्त्र विशेष प्रचलित था। किन्तु उस समय भी अधिकांश उपनिषद्, वेदके कोई कोई प्रातिशाख्य, भारण्यक, क्रिट्, सूत्र और भाजकनको भृगुगोतममनुषंहिता प्रच-लित न थी। उनके समयमें लिपिकायं जारी था। पञ्चाङ्गके क्रिमो किसी प्र'गमें 'यवनानो' लिपिका प्रचार था। उनके पूर्ववर्ती शाब्दिकोंके मध्य शाकल्यने वेदका पदपाठ आविष्कार किया, बाभ्रव्य और गालवने क्षमपाठ प्रकाशित किया। काम-छात्र सीमांसकके जैसा गण्य हुए थे, पाणिनिने साम तन्त्रका प्रचार किया और शाकटायनने एक सप्तमूय ऋक्तन्त्र व्याकरणकी रचना की। किन्तु पाणिनिके पहले और किसीने भी ऐसा सर्वाङ्गासुन्दर व्याकरण प्रकाशित नहीं किया।

कोई कोई एक स्रष्टा श्रोकके आधार पर कहते हैं, कि पाणिनिके पहले 'माहेय' नामक एक वृहत् व्याक-रण रचा गया था। उसमें जो रत्न है, पाणिनिकुल गोक्षदमें समका रहना सम्भव नहीं।

एक वृहत् वाक्य यदायंमें स्रष्टा है। वह पाणिनिक समयमें किनो पाणिनिहोसे रचा गया है, इसमें शन्दे नहीं। साम्प्रतिकमें माहेय नामक किसी स्तन्य व्याकरणका प्रसिद्ध हो नहीं है। प्रसिद्ध पण्डित मधुपूदन सरस्वतीने 'अपने प्रस्थानभेद नामक ग्रन्थमें पाणिनीय पट्टाध्यायो, उसके ऊपर आत्मायनरचित वाचिक और उसके ऊपर पतञ्जलिकृत महाभाष्य इन तीन ग्रन्थोंकी वेदाङ्ग और 'माहेयव्याकरण' वनमाया

है। पाणिनिने ही सबसे पहले सर्वाङ्ग सुन्दर व्याकरण प्रकाशित किया था, इस कारण विद्वत्समाजमें ये ही मंस्कृत भाषाके आदि व्याकरणकर्ताके जैसा कोर्त्तित और समाहत होते आ रहे हैं।

पातालविजय और जाम्बूवतीविजय आदि व्याक-रणकर्त्ताके करप्रसूत नहीं समझे जाते। पर हां, हेमन्त, राजशेखर, श्रीधरदास प्रभृतिकी ठक्तियोंसे बोध होता है, कि ईश्वरी गताष्टीके भी बहुत पहले ये दो काव्य रचे गये थे। उन दो काव्योंके रचयिताके नाम भी पाणिनि रहनेके कारण परधर्त्ता वाच्योंने पाणिनि कविके कवित्व पर सुध हो कर उन्हें 'पट्टा-ध्यायि-रचयितासे चमिन्न ही समझ लिया था।

पाणिनीय दर्शन ।

पाणिनीय दर्शन नामक एक दर्शनका विषय सर्व-दर्शनसंश्लेषकारोंने प्रकाशित किया है। सर्वदर्शन-संश्लेषके मतसे इस दर्शनमें क्या वैदिक, क्या लौकिक, सभी मंस्कृत शब्द व्युत्पादित हुए हैं। ऐसा कोई मंस्कृत शब्द ही नहीं जिसके साथ पाणिनिदर्शनका सम्पर्क न हो। कलतः कौसा भी मंस्कृत शब्द क्यो न हो, पशुसंभन करनेसे एक प्रकार सभी शब्द साधित और व्युत्पादित हो सकते हैं। पाणिनिदर्शनके समान समस्त पद-साधनविषयमें और कोई भी दूसरा ग्रन्थ नहीं है। कलापादि व्याख्या धातुनिक व्याक-रण द्वारा भी कितने पद साधित हो सकते हैं, पर उन सब व्याकरणों द्वारा वेदशास्त्राकरणेषु धार्मिक जनोंका सम्पूर्ण उपकार नहीं भक्तकता। योंकि धातुनिक वैयाकरणियोंने वैदिक शब्दसाधनके उपाय-रूप स्वतन्त्र सूत्रादिकी रचना न की। व्याकरणकी सहाय्यबोध करनेके लिये वैयाकरणियोंने वैदिक प्रकरण न रचा। इस दर्शन (वैदिक और लौकिक) में सभी मंस्कृत शब्द साधित और व्युत्पादित हो जाने-से इसके शब्दानुयासने और वाचकरण ये दो नाम पड़े हैं।

वाचकरणयात्र प्रधान वेदाङ्ग है पर्याय वेदके विद्या, कल्प, वाचकरण, निरुक्त, हन्दीपत्य और व्योतिय-भेदमें जो छः अङ्ग हैं, उनमेंसे प्रधान अङ्ग वाचकरण है।

प्रकार द्वारा स्फोटकी कृत्रिमता स्फुटता उत्पन्न होने पर भी सम्पूर्ण स्फुटता उत्पन्न नहीं होती; पीछे द्वितीय घोर तृतीयदिदि वर्ष द्वारा स्फुटतर घोर स्फुटतम हो कर स्फोट यन्त्रका बोध होता है। कृत्रिमता स्फुट होनेसे हो जो स्फोट अर्थबोधक होता है, मो नहीं। जिस प्रकार नोच, पोत घोर रत्नादि वष के साक्षिध्वजयतः एक स्फटिक मणि ही कभी नोच, कभी पोत घोर कभी रत्नरूपमें प्रतीयमान होता है, उसी प्रकार स्फोट एकमात्र होने पर भी घट घोर पटादिकमें विभिन्न वष द्वारा अभिष्यत् हो कर घट घोर पटादि रूप भिन्न भिन्न अर्थका बोधक होता है।

इस स्फोटकी हो आदिक्तेनि प्रष्टिदानन्द ब्रह्म बतलाया है। सुतरां शब्दशास्त्रकी आलोचना करते करते क्रमशः पविद्याकी निवृत्ति हो कर सुतिष्ठ प्राप्त होता है। अतः व्याकरण शास्त्रनका फल जो सुतिष्ठ है, उसे भी प्राचीन पण्डितोंने एकवाक्यसे स्वीकार किया है। व्याकरणशास्त्र सुतिका द्वारस्वरूप, वाङ्मनापक चिकित्सा-रूप घोर सभी विद्यामें पवित्र है। अथवा यह व्याकरण-शास्त्र सिद्धिनीदानका प्रथम पदार्थ स्थान है अर्थात् जो निवृत्ति होनेका अभिलाषो है उसे प्रथमतः व्याकरणकी अपासना करना होता है। यह पाणिनिदर्शन मोक्षमार्ग-के मध्य सरल राजमार्ग स्वरूप है। (उपदर्शनसंग्रह)

पाणिनि मुनिने जिस षष्ठाध्यायी व्याकरणकी रचना की है, वही पाणिनिदर्शन है। इसमें संज्ञा, सन्धि, धातु, समास, कृत, तद्धित आदि वशाकरणेष्ट सभी विषय सन्निवेशित हुए हैं। विस्तार हो जानेके भयसे सब विषय नहीं दिखलाये गये। इस पाणिनिदर्शनका तात्पर्य वाक्यपदीय ब्रह्म काण्डमें भर्तृहरिने विस्तारित भावमें लिखा है। व्याकरण देखो।

पाणिनी (स० स्त्री०) नीलापराजिता ।
पाणिनीय (स० त्रि०) पाणिनिना प्रोक्तं उपदिष्टं वा पाणिनि ह (बुद्धिः । वा ४।२।१४) १ पाणिनिजत । २ पाणिनिमोक्त, पाणिनिका कहा हुआ । ३ पाणिनिभक्त, पाणिनिमें भक्ति रखनेवाला । ४ पाणिनिका अन्य पदने-साक्षा ।

पाणिनीयदर्शन (स० पु०) पाणिनिका षष्ठाध्यायी

व्याकरण । "सर्वदर्शनसंग्रह"कारने पाणिनीय व्याकरणकी भी दर्शनको श्रेणीमें स्थान दिया है। इस दर्शनके मतसे स्फोट नामक निरवयव नित्य शब्द ही जगत्का आदि कारण रूप परब्रह्म है। पाणिनि देखो।
पाणिभ्यम् (स० त्रि०) पाणि, धमतोति या शब्दादि-मयोगयोः स्वयं, सुम्व (उभे पर्येस्वदपाणिभ्यमाथ । वा ३।२।३०) १ हस्तकर्म सम्बन्धीय पणिमयोगकर्त्ता, पाणितापक । २ पाणिद्वारा शब्दकर्त्ता, पाणिवादक ।
पाणिभ्य (स० त्रि०) पाणिभ्यां धयति पिबतीति घेट पाने "नाहो शुनोस्तनुकरमुष्टिपाणिनासिकात् धमश्" इति सूत्रात् स्वयं प्रत्ययेन साधुः । पाणि द्वारा पानकर्त्ता पाणिपय—पञ्चाशक भस्मर्गत कर्षात् जितेका एक उप-विभाग घोर नगर । पानीपत देखो।

पाणिपल्लव (स० पु०) अङ्गुलि, चमलिया ।
पाणिपात्र (स० त्रि०) पाणिरिव पात्रं यस्य । जिसके हस्ततल पात्रस्वरूप हो ।
पाणिपाद (स० स्त्री०) पायो च पादो च द्वयीः समा-हारः ततः एकोवत् । पाणि घोर पादशा समाहार ।
पाणिपीडन (स० स्त्री०) पाणिः पीडनं पङ्कणं यत्र । १ पाणिपङ्कण, विवाह । २ क्रीडाधि द्वारा हस्तमर्दन, क्रोध, पचास्ताप आदिके कारण हाथ मनना ।

पाणिप्रणयिन् (स० स्त्री०) स्त्री ।
पाणिप्रदान (स० स्त्री०) १ हस्तदान । २ हस्त द्वारा शपथ करना ।
पाणिपथ (स० पु०) पाणिपथ्यतेऽत्र पथं पाधारे चञ्चु । विवाह ।

पाणिभुज (स० पु०) पाणिनेव भुज्यते दीयतेऽनेन चावादि ४२१, यदा पाणिरिव भुज्यते यदादिस्मिन् व्यवहियते भुज-क्षिप । १ उद्धृत्स्वरूप, मूलरक्षा पेट ।
पाणिना भुज्ज्ते भुज-क्षिप । (त्रि०) २ पाणिकरणक-भोक्ता ।

पाणिमणिका (स० स्त्री०) मणिवस्त्रास्थि ।
पाणिमय (स० पु०) करच्छद्वय ।
पाणिमट (स० पु०) पाणि-मृदातोति पाणि-मृदु-पण्य (कर्मण्य-वा ३।२।११) करमर्दक, करीटा ।
पाणिमानिक (स० पु०) तोपकद्वय, दो तोते ।

जिस प्रकार यज्ञादिरूप कर्म के प्रधान अङ्ग को निष्पत्ति होनेसे भस्मान्ध गुणीभूत अङ्ग के अनुष्ठान के लिये स्वादि-स्वरूप प्रकृत फल की कोई हानि नहीं होती, उसी प्रकार जो वस्ति पट्टक वेद के अध्ययन में अग्रत हो कर वेदाङ्ग का प्रधान वाक्यरक्षणार्थ अध्ययन करता है, उसकी भी पट्टक वेदाध्ययन के लिये प्रकृत फलप्राप्तिविषय में कोई हानि नहीं होती। अतः सभी अनुष्ठानों के लिये वाक्यरक्षणार्थ का पाठ आवश्यकतया और हितकर है, यह सिद्ध हुआ। इस दृश नका अध्यायन करने और संस्कृत भाषा में व्युत्पत्ति करनेसे नाना उपकार और वेदादि-शास्त्रों को रचा होती है तथा साधुशब्दों के प्रयोगादि द्वारा जननमात्र में असीम सुखान्ति, असामान्य सम्मान और समष्टि विद्याभोग कर अन्त में स्वर्ग प्राप्त होता है। पाणिनिदर्शन पट्टने में ये सब अभीष्ट लाभ होते हैं।

“एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः सुष्ठुपुनः त्वं लोके कामधुग् भव-तीति” (सर्वदर्शनसू०) एक शब्द यदि सम्यक् प्रकार से ज्ञात हो कर यथायथ प्रयुक्त हो, तो वह शब्द स्वर्ग और लोक में कामधुग् होता है। श्रुति में लिखा है—

“यद्यपि नृणां श्रयो अल्पः पादा द्वे शीर्षेः सहस्रश्रयो अल्पः।

विधायादौ इदमो रोचतेति मही देवो मर्त्ये आधियैश्च॥”

(श्रुति)

भाष्यकार ने इसकी जो व्याख्या की है, वह इस प्रकार है,—इस पाणिनिदर्शन के चार अङ्ग अर्थात् चार पद हैं,—ज्ञातनाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात; लङ्गादि विषय भूत, भविष्यत् और वक्त मानकाल इष्टे पाठस्वरूप है। ध्यङ्ग और व्यञ्जक के भेद से दो शोष-देय है, यह नित्य और अनित्य है। समस्त तिङ्गों काय सुप्रभृति सप्तविभिन्न समष्टिस्वायत्त है। उरः, कण्ठ और शिर इम तीन जगज्जो में यह ब्रह्म है। प्रसिद्ध उपम-रूप में आरोपित हुआ है अर्थात् पर्यबोधपूर्वक शब्दादि-के उच्चारणादि करनेसे साक्षात् फलप्रद होता है, नहीं तो केवल रोच्ये अर्थात् शब्दकर्मा। महीदेव—समष्टि मरणधर्मा अनुष्ठान के प्रति पाठ्य हो।

इस दृश न के मत से जगत्का निर्माणस्वरूप स्कोटाख्य निरवयव नित्यशब्द ही परब्रह्म है।

“अनादिनिधनं महाशब्दतत्त्वं ब्रह्मरूपं।

निश्चयेत्सर्वभावेन प्रक्रियां जगती यतः॥” (सर्वदर्शनसू०)

अक्षरशब्दतत्त्व ही अनादि निधन ब्रह्म है जिससे अर्थात् जिस शब्दतत्त्व से जागतिक प्रक्रियाएँ पर्यभावेन निवर्तित हुआ करती हैं।

इस मत से शब्द दो प्रकारका है—नित्य और अनित्य। नित्यशब्द स्कोट है, तन्निष्ठ वर्णात्मक शब्द-समुह अनित्य। वर्णातिरिक्त स्कोटात्मक जो एक नित्य-शब्द है, उसके विषय में अनेक युक्तियाँ प्रदर्शित हुई हैं। इनमें से प्रधान युक्ति यह है, कि यदि स्कोट लोकार न किया जाय, तो केवल वर्णात्मक शब्द द्वारा किमो तरह पर्यबोध नहीं हो सकता। और भी, यह सभी लोकार करते हैं, कि अकार, गकार, नकार और हकार ये चार वण स्वरूप जो अक्षर शब्द है, उससे वज्रिता बोध होता है। किन्तु वह केवल उन चार वर्णों द्वारा सम्पादित नहीं हो सकता। कारण, यदि उन चार वर्णों को प्रत्येक वर्ण द्वारा वज्रिता बोध होता, तो केवल अकार अथवा गकारका उच्चारण करनेसे ही वज्रिता बोध नहीं होता है, सो क्यों? इस दोषपरिहार के लिये दो चारों वर्णों एकत्र हो कर वज्रिता ज्ञान उत्पन्न कर देते हैं। यह कहना भी बालकता प्रकाशमान है, क्योंकि सभी वर्णों काय विनाशो है, अनेक वर्णों की उत्पत्ति के समय पहले के वर्ण विनष्ट हो जाते हैं। सुता पर्यबोधकी बात तो दूर रहे, उनके एकत्र प्रवृत्ति ही सम्भावना नहीं रहती। इससे यह स्वीकार करना पड़ेगा, कि उन चार वर्णों द्वारा प्रथमतः स्कोट की प्रति वज्रिता अर्थात् स्फुटता उत्पन्न होती है, ओछे स्फुटस्कोट द्वारा वज्रिता बोध होता है।

यहाँ पर कोई कोई पूर्वोक्त रीतिक्रम से पूर्वपक्ष करते हैं, कि प्रत्येक वर्ण द्वारा स्कोटकी प्रतिवर्तित स्वीकार करनेसे पूर्वोक्त प्रत्येक वर्ण द्वारा पर्यबोधसंकीर्ण दोष होता है और समुदाय वर्णों द्वारा प्रतिवर्तित स्वीकार करनेसे भी वही दोष होता है। अतएव जब दोनों ही पक्ष में यह दोष है, तब स्कोट स्वीकार का प्रयोजन ही क्या? इसका सिद्धान्त ऐसा है, जिस प्रकार एक बार पाठ द्वारा ही पाठ्यग्रन्थका तात्पर्य अवधारित नहीं होता, किन्तु बार बार पालोचना द्वारा वह दृष्टरूप में अवधारित होता है, उसी प्रकार प्रथमवर्ण

शकार द्वारा स्फोटकी क्रियावात् स्फुटता उत्पन्न होने पर भी सम्पूर्ण स्फुटता उत्पन्न नहीं होती। पीछे द्वितीय घोर तृतीयोपादि वर्ण द्वारा स्फुटतर घोर स्फुटतम हो कर स्फोट वृद्धि का बोध होता है। क्रियावात् स्फुट होनेसे हो जो स्फोट अर्थ बोधक होता है, भी नहीं। जिस प्रकार नील, पोत घोर रक्तादि वर्ण के सान्निध्यवशतः एक एकटिक सन्धि हो कभी नील, कभी पोत घोर कभी रक्तद्वयमें प्रतीयमान होती है, उसी प्रकार स्फोट एकमात्र होने पर भी घट घोर पटादिकद्वयमें विभिन्न वर्ण द्वारा समिश्रित हो कर घट घोर पटादि-रूप भिन्न भिन्न अर्थ का बोधक होता है।

इस स्फोटको हो शाब्दिकीने सञ्चिदानन्द ब्रह्म वत-लाया है। सुतरां शब्दशास्त्रकी भावोचना करते करते क्रमशः पविद्याकी निवृत्ति हो कर सुतिवद प्राप्त होता है। अतः व्याकरण शास्त्रमका फल जो सुति है, उसे भी प्राचीन पण्डितोंने एकवाक्यसे स्वीकार किया है। व्याकरणशास्त्र सुतिका द्वारस्वरूप, वाङ्मनापक चिकित्सा-तुल्य घोर सभी विद्यामें पवित्र है। अथवा यह व्याकरण-शास्त्र सिद्धिनीपानका प्रथम पदार्पण स्थान है अर्थात् जो निह होनेका अभिन्नायो है उसे प्रथमतः व्याकरणको उपपत्ति करनी होती है। यह पाणिनिदर्शन मोक्षमार्ग-के मध्य सरल राजमार्ग स्वरूप है। (सर्वदर्शनसंग्रह)

पाणिनि मुनिने जिस षष्ठाध्यायी व्याकरणकी रचना की है, वही पाणिनिदर्शन है। इसमें संज्ञा, सन्धि, धातु, समास, कृत, तद्धित आदि वशाकरणेत्त सभी विषय सन्निवेशित हुए हैं। विस्तार हो जानेके भयसे सब विषय नहीं दिखलाये गये। इस पाणिनिदर्शनका तात्पर्य वाक्यपदीय ब्रह्म षाण्डिमें भर्तृहरिने विस्तारित भावमें लिखा है। व्याकरण देखो।

पाणिनी (सं० स्त्री०) नौतापराजिता ।

पाणिनीय (सं० लि०) पाणिनिना प्रोक्तं उपदिष्टं वा पाणिनि ह (वदन्त्यः । पा ३।२।१४) १ पाणिनिकृत । २ पाणिनिप्रोक्त, पाणिनिका कहा हुआ । ३ पाणिनिभक्त, पाणिनिमें भक्ति रखनेवाला । ४ पाणिनिका अन्य पदने-पाला ।

पाणिनीयदर्शन (सं० पु०) पाणिनिका षष्ठाध्यायी

व्याकरण । “सर्वदृश नृसंग्रह”कारने पाणिनीय व्याक-रणको भी दर्शनको श्रेणीमें स्थान दिया है। इस दर्शनके मतसे स्फोट नामक निरवयव नित्य शब्द ही जगत्का पादि कारण रूप परब्रह्म है। पाणिनि देखो। पाणिन्यम् (सं० लि०) पाणिं, धर्मतोति या शब्दानि-मयोगयोः स्वयं, सुम्व (उभे पदोरेत्यदपाणिन्यमात्र । पा ३।२।३०) १ हस्तकर्म सम्बन्धीय पणिनमयोगकर्ता, पाणितापक । २ पाणिद्वारा शब्दकर्ता, पाणिवाटक । पाणिन्यय (सं० लि०) पाणिभ्यां धयति विवर्तते घट पाने “माहो शुभेस्तनुकरमुष्टिपाणिनासिकात् प्रमथ” इति सूत्रात् स्वयं प्रत्ययेन साधुः । पाणि द्वारा पानकर्ता पाणिपय—पञ्चाशकं अन्तर्गत कर्णास्र जितिका एक उप-विभाग घोर नगर । पानीपत देखो।

पाणिपल्लव (सं० पु०) अङ्गुलि, उगन्तिश्री ।

पाणिपात्र (सं० लि०) पाणिरिव पात्रं यस्य । जिनके हस्ततल पात्रस्वरूप हो ।

पाणिपाद (सं० स्त्री०) पायो च पादो च द्वयोः समा-हारः ततः स्त्रीबलं । पाणि घोर पादका समाहार । पाणिपोद्गम (सं० स्त्री०) पाणेः पोद्गमं पदहनं यत् । १ पाणियहण, विवाह । २ क्रीडादि द्वारा हस्तमर्दन, लोभ, पक्षात्पाद आदिके कारण हाथ मन्थना ।

पाणिप्रणयिन् (सं० स्त्री०) स्त्री ।

पाणिप्रदान (सं० स्त्री०) १ हस्तदान । २ हस्त द्वारा उपदेश करना ।

पाणिवन्ध (सं० पु०) पाणिवन्धतेऽत्र बन्ध बाधारे चञ्चु । विवाह ।

पाणिभुज (सं० पु०) पाणिनेव भुज्यते दीयतेऽनेन चावादि हस्त, यदा पाणिरिव भुज्यते यदादिस्त्रिणि व्यवहियते भुज-क्षिप । १ उड्डयनवृत्त, मूलरका पेड़ । पाणिना भुङ्क्ते भुज-क्षिप । (लि०) २ पाणिकरणक-मोक्षाः ।

पाणिमणिका (सं० स्त्री०) सन्धिबन्धास्थि ।

पाणिमय (सं० पु०) करप्लवट् ।

पाणिमर्द (सं० पु०) पाणिं मृदातोति पाणि-मृद-भण् (कर्षण्यः । पा ३।२।१) करमर्दक, करोटा ।

पाणिमानिक (सं० पु०) लोभकहय, दी तोने ।

पाणिमुक्त (म० षको०) पाणिभ्यां मुक्तं परित्यक्तं । पञ्च, हृदियार ।

पाणिमुख (स० त्रि०) पाणिः त्रिप्रापाणि मुखमिव येषां । पितृगण ।

पाणिमूल (म० स्त्री०) बाहुमूल, कलाह ।

पाणिरुह (म० पु०) पाणी रोहतीति रुह-क (इयुवधत्ते । पा ३।१।१३५) १ नख, नाखून । २ चङ्कु, छि, छंगली । ३ मन्त्री नामक गन्धद्रव्य ।

पाणिवाद (स० त्रि०) पाणिं पाणिना वा वादयतीति वद-णिच् प्रण । १ पाणिच, रुदङ्ग, डोल आदि बजाने-वाला । २ हस्तावाहक, ताली बजानेवाला । पाणिना वादते इति वद-णिच्-कर्मणि घञः । (स्त्री०) ३ रुदङ्गादि, रुदङ्ग, डोल आदि बाजे ।

पाणिरखा (स० स्त्री०) इथेली परको लकीरे ।

पाणिवादक (स० त्रि०) पाणिं पाणिना वा वादयतीति वद-णिच्-प्रणुक् । १ पाणिवाद, रुदङ्ग आदि बजाने-वाला । २ ताली बजानेवाला ।

पाणिसंप्रपण (स० स्त्री०) १ हाथ प्रकट्ठना । २ हाथ हुमाना ।

पाणिसर्ग्या (स० स्त्री०) पाणिभ्यां सृज्यतेऽस्ती 'पाणो सृजिष्णु' वाच्यः इति श्वत् प्रत्ययेन साधुः । (चञोः कः विष्णोः । पा ७।१।५२) इति कुल । १ रज्जु, रस्सी ।

पाणिलिनिक (स० त्रि०) पाणिलिनः प्रयोजनमस्य ठक् । हस्ताललायक, ताली बजानेवाला ।

पाणिहता (स० स्त्री०) पुंस्कारिणो । ललितविस्तरमे लिखा है, कि देवतासैन्य एक बार हाथसे धूम्रको ठोका दिया जिससे वहाँ एक पुंस्कारियो निकल आई ।

पाणिहातो — हुगली जिलेमें मागोरखीके किनारे अवस्थित एक ग्राम ।

पाणिहोम (स० पु०) प्राणी होमः ०-तत् । एक विशेष होम जो अधिकारी ब्राह्मणके हाथसे किया जाता है ।

पाणो (हि० पु०) पाणि देखो ।

पाणीतह (स० पु०) कुमारानुचरभेदः, कात्तिभेदका एक गण ।

पाणीतल (स० स्त्री०) पाणितलं निपातनाम् दीर्घः । तोलकदण्ड, दो तले ।

पाणोसर्ग्या (म० स्त्री०) वदवज्जटण, एक प्रकारको घास ।

पाणोकरण (म० स्त्री०) पाणो क्रियतेऽनेन 'भस्मिन्' वा, 'क-च्युट्, समस्यः' प्रलुक् । विवाह, पाणिग्रहण ।

पाण्ड (म० त्रि०) 'पाण्ड' एव स्तार्थे प्रण । १ पण्ड, नपुंसक, रिजडा ।

पाण्डक (म० पु०) एक वैदिकाचार्य ।

पाण्डर (स० स्त्री०) पाण्डरो वर्णोऽस्य स्थिति भवः । १ कुन्दपुष्प । २ गेरिक, गेरू । (पु०) पाण्डरः शुक्ल-वर्णः अस्तरस्थिति भवः । ३ मूत्रककटच, मूत्रश । पण्डि-भर, दीर्घश्च । ४ शुक्लवर्ण, मन्दिर रंग । ५ पर्वतविशेष, पुराणानुसार एक पर्वतका नाम जो मेरु पर्वतके पश्चिममें है । ६ ऐरावत कुलीयक्ष नाम विशेष, महाभारतके अनुसार ऐरावतके कुलमें उत्पन्न एक हाथीका नाम । ७ पक्षिविशेष, ज्योतिषास्त्रमें लिखा है, कि यह पक्षी जिसके चर पर बैठता है, उसके चरमें विपदकी ओरङ्का होता है ।

“पुष्टः कंकः कपोतश्च उलूकः श्वेन एव च ।

चिल्लश्च चर्मचिरुडश्च भारः पाण्डर एव च ॥

एते वस्य पतन्येते गेहं तस्य विपद्यते ॥ ”

(ज्योतिषास्त्र)

८ पाण्डो । (त्रि०) ८-तण्णविशिष्ट, समेद रंगका ।

पाण्डरपुष्पिका (म० स्त्री०) पाण्डरं शुक्लवर्णं पुष्पं यस्याः कथं ततः कापि पत इत्यं । शीतलाह्वय ।

पाण्डरा (म० स्त्री०) कः हाथवालो पशुपाणिनी शक्ति-मूर्त्ति । इनके मस्तक पर अमिताभ बुद्धकी मूर्त्ति रहती है । बाएँ हाथमें चोतलको तरफ एक पदार्थ, दक्षिण ओरके एक हाथमें चक्र, महाह्रुड और तर्जनीके मध्य मणि रहती है । एतद्विष दोनो वगलमें दो स्त्री-मूर्त्ति खड़ी हैं । दाहिने ओरकी स्त्रीके हाथमें एक चोतल और मणि तथा बाईं ओरकी स्त्रीके बाएँ हाथमें मश और दाहिने हाथमें, मोलाकार एक पदार्थ है । इस प्रकारकी प्रतिमूर्त्ति कुर्कहार और नैपालमें पाई गई है । किसी किसीका कहना है, कि यह बुद्ध-पश्चि-तामकी शक्ति है ।

पाण्डव (स० पु०) पाण्डोत्पादनाख्यया प्रसिद्धस्य राज्ञो-
ऽपत्यं पाण्डुः भज. (ओरु. पा ४२।११) १ पाण्डुः
नन्दन, पाण्डुः राजाके क्षेत्रज्ञ धर्मादिते जात युधि-
ष्ठिरादि पुत्रगण । पाण्डवों की उत्पत्तिका विषय महा-
भारतमें इस प्रकार लिखा है :-

धर्मोत्तमा पाण्डु मांघ्री घोर कुन्ती नामक दो पत्नियों-
के साथ भरल्लमें रहते थे । सुनिके गावसे पाण्डु की
सन्तानोत्पादनगति रुक हो गई थी : ' इतीशे ये हमेशा
उदास रह जाते थे । पुत्र नहीं होनेसे मनुष्य विष्ट-
कृत्यसे उदास नहीं पाता, इस कारण एक दिन पाण्डु ने
धर्मपत्नी कुन्तीको निर्जन स्थानमें बुला कर कहा, 'कुन्ति !
मैं सुनिके गावसे पुत्रोत्पादनमें अक्षम हूँ, अतएव तुम इस
आपत्तिकात्ममें पुत्रोत्पादनको चेष्टा करो । देखो ! धर्म-
वादिगण सदासे कहते आये हैं, कि सन्तान इस त्रिलोक-
के मध्य धर्मगय प्रतिष्ठा स्वरूप है । यागानुष्ठान,
दान और तपस्या उत्तमरूपसे अनुष्ठित होने पर भी
निःसन्तान व्यक्तिके लिये यह पवित्रकागे नहीं होती ।
यहां तक कि निःसन्तान व्यक्तिका कोई भी लोक शुभा-
वह नहीं है ।' कुन्ती पाण्डुको यह बात सुन कर
बहुत नन्त्र खरसे बोली, 'हे धर्मज्ञ ! मैं आपको धर्म-
पत्नी हूँ और आप पर ही अवलम्ब है ; तब फिर इस
प्रकार मुझे कहना आपको उचित नहीं । क्योंकि
आपके लिये मैं अभी भी परयुद्धके साथ गमन करने को
इच्छा नहीं रखती ।' धर्मज्ञ पाण्डु ने कुन्तीदेवीके इस
प्रकार युक्तियुक्त वाक्य सुन कर पुनः उनसे उत्तम
धर्मसंयुक्त वाक्य कहा, 'कुन्ति ! तुमने जो कुछ कहा
यह सत्य है ; किन्तु हे राजपुत्रि ! वेदविद्वगण यह भी कहते
हैं, कि धर्म ही चाहें अधर्म, भर्ता भार्यामें जैसा
कहेगी, भार्याको वैसा हो करना कर्तव्य है । विधे-
र्वतः सुनिके गावसे पुत्रोत्पादनगति सुभवे जरा भी रुक
न गई है, अथवा पुत्रगणोंका अभिषेक निःशस्त्र प्रत्यक्ष
है, सो हे शुभे ! मैं पुत्रदर्शनको कामनासे तुम्हें
प्रसन्न करना हूँ । सुनें ! तुम मेरे नियोगानुसार
समधिक तपःसम्पन्न ब्राह्मणसे गुणवान् पुत्र-उत्पादन
करो । तुम्हें से मैं पुत्रवान् व्यक्तियोंको गति लाभ
करूंगा ।' पतिव्रता कुन्ती स्वामीके ऐसे विविध उपदेय-

पूर्व वाक्य सुन कर बोली, 'राजन् ! मैं वात्स्यावस्थामें
अब पित्तके चर हो, उन्ही समय मैंने अभियोगवर्गमें
दुर्वास कष्टिको परितुष्ट किया था । इस पर उन्होंने
मुझे अभिचारमन्त्रयुक्त वरदान दे कर कहा था, 'तुम
इस मन्त्र द्वारा जिस किसी देवताका आह्वान करोगी, वे
चाहे मकाम हो चाहे प्रकाम, उन्ही समय तुम्हारे यगो-
भूत हो जायेंगे और उन्हींके कृपाप्रसादसे तुम्हें
पुत्र होगा ।' अतः हे राजन् ! ब्राह्मणका वाक्य श्रुत्य
होनेको नहीं । अभी वही समय था उपस्थित हुआ है ।
यदि आपकी प्रवृत्ति हो, तो उस मन्त्र द्वारा किनो
देवताका आह्वान करके और तदनुकूल कार्य कर सकूँ ।'
इस पर पाण्डु ने कहा, 'हे शुभे ! तुम अभी इस विषयमें
यत्नवशो होवी और धर्मका आह्वान कर सन्तानोत्पादन
करो । क्योंकि धर्म ही देवताओंमें पुण्यात्मा है । वे
हम लोगोंको किसी तरह अधर्मयुक्त नहीं करेंगे
और जनता भी ऐसे धर्म ही समझेगी । धर्मप्रदत्त पुत्र
'नियय हो धार्मिक होगा ।' पतिव्रता कुन्ती स्वामीके
ऐसे वाक्य सुन कर प्रणतिपूर्वक उनको आदेशानु-
वर्तिनी हुई ।

कुन्तीने जब सुना कि आश्विनोने एक वर्षका गर्भधारण
किया है, तब उन्होंने गर्भके लिये प्रसन्न धर्मका आह्वान
कर उन्ही समय उनको पूजा की । अनन्तर मन्त्रके प्रभाव-
से धर्मदेव सूर्यतुल्य विमान पर चढ़ कुन्तीके समीप
पहुँचे और सुनकराते हुए बोले, 'कुन्ति ! तुम्हें क्या
वाहिए ? कुन्तीने धर्मदेवसे पुत्रको प्रार्थना की । अनन्तर
कुन्तीने योगमूर्तिधारी धर्मके सहयोगसे स्वर्गप्राप्ति
हितकर एक पुत्र प्राप्त किया । कार्त्तिक मासकी शुक्ल
पञ्चमीको चन्द्रयुक्त व्येष्टानक्षत्रमें अभिजित् नामक षष्ठम
सुहृत्तमें दोपहरके समय कुन्तीने पुत्र प्राप्त किया । पुत्रके
जन्मते ही आकाशवाणी हुई, 'किं पाण्डुका यह
प्रथम पुत्र धर्मपरायण व्यक्तिशैल्येष्ठ, विक्रान्त, नरो-
त्तम, मूर्धण्डस्तथा यक्षाधिपति, त्रिलोकविभूत तथा
'युविष्ठिर' नामसे प्रसिद्ध होगा । पाण्डु ने यह धर्म-
परायण पुत्र पा कर पुनः कुन्तीमें कहा, 'पण्डित लोग
सखिज आतियों वलिष्ठ कहा करते हैं, अतएव तुम
ऐक्य बनवान् पुत्रके लिये प्रार्थना करो ।' अनन्तर

कुन्तीने ईश्वरको यह बात सुन कर यायुका आश्विन किया और उनकी पूजादि कर लज्जावतमुखी हो कुछ सुपकारतो हुई दोनों, 'हे सुरीतम ! मुझे महाकाय बलवान् सर्वद्वयप्रभञ्जन एक पुत्र दोजिए।' इस वायुसे महाबाहु भीमपराक्रम भोमने जन्म ग्रहण किया। इस समय आकाशवाणी हुई, कि यह बालक बलवान्में अष्ट होगा। भोमने जन्म लेते न लेते एक बहुत घटना घटी। कुन्ती बाघको आगझासे उद्दिग्ध हो सहसा उठ खड़ी हुई। अपनी गोदमें सोये हुए लकड़दरका उन्हें लगा भी जान न रहा। भीम जब पक्षतके ऊपर गिरा, तब उसके गालस्थानसे सभी शिवाएं चूर चूर हो गईं। यह पक्षत व्यापार देख कर पाण्डु बड़े ही प्रसन्न हुए। इसी दिन दुर्विधनका भी जन्म हुआ।

पाण्डु इन दो पुत्रोंको पा कर पुनः सोचने लगे, कि किस प्रकार एक और प्रधान तथा लोकप्रिय पुत्र उत्पन्न हो। इन्द्रदेवताओंके राजा और प्रधान हैं, वे अपरिमेय बल और उल्लासमय हैं तथा उनकी वीर्य और श्रुति अपरिमेय हैं। अतएव इन्द्र द्वारा एक और पुत्र उत्पादन करनेसे मेरे मनोरथ सफल हो जायेंगे। बाद पाण्डुने ऋषियोंसे सलाह ले कर कुन्तीके माथ एक वर्ष तक इन्द्रको माराधना की। इन्द्रने प्रसन्न हो कर पाण्डुको अभिलषित कर दिया। इस पर पाण्डुने कुन्तीसे कहा, 'देवराज इन्द्र परितुष्ट हुए हैं, अतः अभिलषित पुत्र उत्पादन करो।' यह सुन कर कुन्तीने इन्द्रका आश्विन किया जिससे अश्विन उत्पन्न हुए। इस पुत्रके जन्म होते ही आकाशमण्डल महागभीर शब्दसे गूँज उठा और आकाशवाणी हुई कि यह पुत्र कार्तवीर्यसहस्र वीर्यवान्, शिवितुल्य पराक्रमशाली और पुरन्दर सहाय प्रजेय होगा। यह पुत्र सब प्रकारके सदुपयोगसे सम्पन्न हो कर इस जगत्तलमें विशेष ख्याति लाभ करेगा। इसके बाद आकाशमण्डलमें तुमुन्न शब्दसे दुन्दुभि बजने लगे, महाकोलाहल शब्द हो उठा, अनवरत पुष्पवृष्टि होने लगी, अप्सरागण नाचने लगीं और नाना प्रकारकी शुभमूचक घटनावली उपस्थित हुई।

पौके पाण्डुने पुनः पुत्रलोभसे धर्मपत्नी कुन्तीसे

नियोग करने लगे इच्छा प्रकट की। इस पर कुन्ती दोनों, 'धर्मवैतागण पापदकालमें भी चतुर्थ पुत्रको प्रयत्न नहीं करते; कारण चतुर्थ पुत्रके संसर्गसे खेरिबे और पञ्चम पुत्रके संसर्गसे वैशा होतो है। हे विद्वन् ! आप यह धर्म जानते हुए भी क्यों प्रमादयुक्तकी तरह इसका अतिक्रम करते और फिरसे सन्तानके लिये मुझे कहते हैं। पाण्डु कुन्ती तो यह धर्म सङ्गत कथा सुन कर स्थिर हुए और दोनों पुत्रके साथ दिन बिताते गये।

एक दिन माद्रोने पाण्डुको निज नरदेगमें देख कर कहा, 'महाभाग ! मेरे लिये यह बड़े ही दुःखकी बात है, कि हम दोनों पत्नी समान हैं, किन्तु प्रभो भाग्यक्रमसे कुन्तीके गर्भसे आपने पुत्र हुए हैं। कुन्ती यदि मेरे लिये सन्तानोत्पत्तिका उपाय कर दे, तो मैं बड़े उपजात होऊँगी और उससे आपका भी हितसाधन होगा। कुन्ती मेरी सपत्नी है, इस कारण उससे मेरी नहीं पटतो। यदि आप उससे कहें, तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो सकता है।' इस पर पाण्डुने पाण्डादित हो कुन्तीको एकात्ममें ले जाकर कहा, 'हे कवयाणि ! जिससे मेरा धर्म निश्चित न हो जाय और मेरे पूर्वपुत्रोंके तथा तुम्हारे पिण्डलोपको सन्तानना न रहे, मेरी प्रीतिके लिये वैसा हो एक कर्म तुम्हें करना होगा। अतः माद्रोके गर्भसे जिससे हमें एक पुत्र हो जाय, उसका कोई उपाय कर दो।' इस पर कुन्ती राजी हो गईं और माद्रोको बुला कर कहा, 'तुम अपने इच्छानुसार किसी एक देवताका स्मरण करो, उससे तुम्हें एक पुत्र प्राप्त होगा।' तब माद्रोने मन हो मन सोच विचार कर अश्विनो कुमारका स्मरण किया। अश्विनो कुमारने वहाँ पहुँच कर नहुन और सहदेव नामक निरुपमरूपसम्पन्न दो यमपुत्र उत्पादन किये। उसी समय आकाशवाणी हुई, कि सत्वरूपगुणोपेत ये दोनों कुमार तेज और रूपसम्पत्ति द्वारा अश्विनो कुमारको भी अतिक्रम कर जायेंगे। वहाँके ब्राह्मणोंने ये सब बहुत कार्य देख कर प्रसन्न हो भागीवार्द दिया और बालकोंका नाम रखा। कुन्ती के पुत्रोंमेंसे बड़ेका नाम युधिष्ठिर, मध्यमका नाम भीमसेन तथा लघुका नाम अर्जुन और माद्रोके दोनों पुत्रोंमेंसे बड़ेका नाम नकुल तथा चतुर्थ पुत्रका नाम

कुन्तोनि स्वाभिमोको यद्दं वांते सुंनं कां र्यायुंकां भाङ्गान
 क्रिया धीर उन्तो पूजादि कर लज्जाश्रमतमुष्ठी हो
 कुकु सुभकरातो दुई बोनीं, 'हे सुतोत्तम ! तुमि महा-
 काय बलवान् सर्वद्वर्षप्रभञ्जन एक पुत्र दोजिए ।' इस
 वापुसे महाबाहु भीमपराक्रम भोमने जन्म ग्रहण किया ।
 इस समय आकाशवाणी हुई, कि यह बालक बलवानोमें
 श्रेष्ठ होगा । भीमके जन्म लेते न लेते एक बहुत घटना
 घटी । कुन्ती बाघको आगहवासे उद्दिग्ध हो सड़सा उठ
 खड़ी हुई । अपनी गोदमें मोथे हुए हकींदरका उन्हे
 जरा भी ज्ञान न रहा । भीम जब पत्रंतके ऊपर
 गिरा, तब उसके गालस्थलसे सभी शिलाएं धूर धूर हो
 गईं । यह पड़त व्यापार देख कर पाण्डु बड़े ही प्रसन्न
 हुए । इसी दिन दुर्वाधनका भी जन्म हुआ ।

पाण्डु इन दो पुत्रोंको पा कर पुनः सोचने लगे,
 कि किस प्रकार एक और प्रधान तथा लोकश्रेष्ठ पुत्र
 उत्पन्न हो । इन्द्रदेवताओंके राजा और प्रधान हैं, वे
 अपरिमेय बल और उक्ताहसम्पन्न हैं तथा उनका वीर्य
 और श्रुति अपरमेय हैं । अतएव इन्द्र द्वारा एक और
 पुत्र उत्पादन करनेसे मेरे अमोघ सफल हो जायेंगे ।
 बाद पाण्डुने ऋषियोंसे सलाह ले कर कुन्तीके साथ
 एक वर्ष तक इन्द्रको प्रार्थना की । इन्द्रने प्रसन्न हो
 कर पाण्डुको अभिषिप्त वर दिया । इस पर पाण्डुने
 कुन्तीसे कहा, 'देवराज इन्द्र परितुष्ट हुए हैं, अतः अति-
 श्रुति पुत्र उत्पादन करो ।' यह सुन कर कुन्तीने
 इन्द्रका आह्वान किया जिसने प्रसन्न हो उत्पन्न हुए । इस
 पुत्रके जन्म होती हो आकाशमण्डल महागम्भीर शब्दमें
 गूँज उठा और आकाशवाणी हुई कि यह पुत्र काश-
 वीर्यवृद्ध वीर्यवान्, शिवितुल्य पराक्रमशाली और
 पुरन्दर सट्टम प्रजिय होगा । यह पुत्र सब प्रकारके
 सद्गुणोंसे सम्पन्न हो कर इस जगतीतलमें विशेष ख्याति
 लाभ करेगा । इसके बाद आकाशमण्डलमें तुमुन
 शब्दसे दुन्दुभि वजने लगे, महाकोलाहल शब्द हो
 उठा, अनवरत पुष्पहट्ट होने लगे, अप्सरागण नाचने
 लगीं और नाना प्रकारकी शम्भूचक्र घटनावली उप-
 स्थित हुई ।

वोहे पाण्डुने पुनः पुत्रकोभने, धर्मपत्नी कुन्तीसे

नियोग करनेकी इच्छा प्रकट की । इस पर कुन्ती बोली,
 'धर्मवैत्तागण्य आपदकालमें भी चतुर्थ पुत्रको प्रसंसा-
 नहीं करती; कारण चतुर्थ पुत्रपक्षे संसर्गसे खेरिने
 और पञ्चम पुत्रपक्षे संसर्गसे निश्चा होतो है । हे विद्वन् !
 आप यह धर्म जानते हुए भी क्यों प्रमादप्रसूती तरह
 इसका पतिक्रम करते और फिरने सन्तानके लिये मुझे
 कहते हैं । पाण्डु कुन्तीतो यह धर्म सङ्गत कथा सुन
 कर स्थिर हुए और दोनों पुत्रके साथ दिन बिताते लगे ।

एक दिन माद्रोने पाण्डुको निज नरदेगमें देख कर
 कहा, 'महाभाग ! मेरे लिये यह बड़े ही दुःखकी बात
 है, कि हम दोनों पत्नी समान हैं, किन्तु अभी भाव्य-
 क्रमसे कुन्तीके गर्भसे प्रापते पुत्र हुए हैं । कुन्ती यदि
 मेरे लिये सन्तानोत्पत्ति का उपाय कर दे, तो मैं बड़े उप-
 कृत होऊँगी और उससे आपका भी हितसाधन होगा ।
 कुन्ती मेरी सपत्नी है, इस कारण उससे मेरी नहीं
 पटती । यदि आप उससे कहें, तो मेरा मनोराय सिद्ध हो
 सकता है ।' इस पर पाण्डुने पाण्डुद्वितीय कुन्तीको
 एकाक्षरमें ले जाकर कहा, 'हे कथयिणि ! जिससे मेरा बन्ध
 निश्चित न हो जाय और मेरे पूर्वपुत्रोंके तथा तुम्हारे
 पिण्डलोपको सहायना न रहे, मेरी प्रीतिके लिये वैशा
 हो एक कर्म तुम्हें करना होगा । अतः माद्रीके गर्भसे
 जिससे हमें एक पुत्र हो जाय, उसका कोई उपाय कर
 दो ।' इस पर कुन्ती राजो हो गईं और माद्रीको बुला
 कर कहा, 'तुम अपने इच्छानुसार किसी एक देवताका
 स्मरण करो, उससे तुम्हें एक पुत्र प्राप्त होगा ।' तब
 माद्रीने मन हो मन सोच विचार कर अश्विनोत्तमरका
 स्मरण किया । अश्विनोत्तमरने वहाँ पहुँच कर नहुष
 और सहदेव नामक निरुपमरूपसम्पन्न दो यमपुत्र
 उत्पादन किये । उसी समय आकाशवाणी हुई, कि
 सत्वरूपगुणोपेत ये दोनों कुमार तेज और रूपसम्पत्ति
 द्वारा अश्विनोत्तमरको भी पतिक्रम कर जायेंगे ।
 वहाँके ब्राह्मणोंने ये सब बहुत कार्य देख कर प्रसन्न
 हो आशीर्वाद दिया और बालकोंका नाम रखा । कुन्ती
 के पुत्रोंमेंसे बड़ेका नाम युधिष्ठिर, मध्यमका नाम भीम-
 सेन तथा तृतीयका नाम धृष्टंन और माद्रीके दोनों पुत्रों
 मेंसे पूर्व पुत्रका नाम नकुल तथा अपर पुत्रका नाम

सहदेव रक्षा गया। पाण्डु के ये पाँच पुत्र वचपनमे हो बलशाली थे। यही पञ्चपुत्र पञ्चपाण्डव नामसे प्रसिद्ध हुए।

(भारत भाषावर्ष १२६, १२१, १२२, १२३ व०)

पाण्डवोंका विशेष विवरण पाण्डु और तत्पुत्र ग्रन्थमें देखो।

२ टेसेमोवर्णित (पञ्चावका) हिदास्से (वितस्ता) नदीतोरवर्ती एक जनपद और इसके वासी। (Pa-duovoi)

पाण्डवगढ़—वर्ष ६ प्रदेशका एक दुर्ग। कहते हैं, कि पन-हालके सरदार भोजने इस दुर्गका निर्माण किया। १६४८ ई०में यह दुर्ग बीजापुर राजाके अधीन था। १६७६ ई०में मिर्जाजीने इस दुर्ग पर अपना अधिकार जमाया। १७०१ ई०में यह गढ़ पोरकनीवके सेनापतिके हाथ सुपुटे किया गया। १७१२ ई०में मालाजी विखनाथने महराष्ट्र-सेनापति चन्द्रसेन गडवके डरसे भाग कर इस गढ़में आश्रय लिया था। पीछे शैबतरावने अहमद नगरसे वा कर उसको सहायता की थी। १८१० ई०में ब्रम्हकालके विद्रोहके समय विद्रोहियोंने इस दुर्गको अपनाया। पीछे १८१८ ई०के पश्चिम मार्गमें मेजर टैडसे यह दुर्ग अधिकृत हुआ। यहाँ प्रहृतसो गुहाएँ हैं जिनमें शिवलिंग प्रतिष्ठित हैं।

पाण्डवनगर (सं० पु०) दिल्ली।

पाण्डवाभोज (सं० पु०) यमोः अमयं लातीति ला-क, पाण्डवोऽभोजो यस्मात्, वा पाण्डवानामभियममयं लातीति वा। श्लो०।

पाण्डवायन (सं० पु०) पाण्डवानामयनं रचयं यस्मात्। श्लो०।

पाण्डविक (सं० पु०) लायचटक, कानो गोरिया।

पाण्डवीय (सं० वि०) पाण्डवस्येदं, 'सदाच्छ' इति पांडव ह। पांडव सम्बन्धीय।

पाण्डवीय (सं० वि०) पाण्डोरिय इत्यञ्, डीप च, पाण्डवी, कुन्तो, माद्री च तयोः पर्य' इति टक्। १ पाण्डव। २ अभिमन्यु के पुत्र राजा परीक्षित।

पाण्डार (सं० पु० स्त्री०) पण्डस्यापत्यं, पारक्। पण्डका पत्य।

पाण्डि (सं० पु०) शोधविशेष।

पाण्डित्य (सं० स्त्री०) पण्डितस्य भावः कर्म वा (वर्णद्वयः) स्वयं च। पा १।१२२१। पण्डित-यञ्। पण्डितोंका धर्म वा कर्म, विद्वत्ता, पण्डिताई।

पाण्डु (सं० पु०) पण्डितो (मृगशृङ्गादयः) षण् १।३०। इति कुप्रथयः, निपातनात् धातोर्दीर्घः य। १ पाण्डुरक्तो-क्षुप। २ पटोल, परवल। ३ शुक्ल पीत मिश्रितवर्ण। पर्याय—हरित, पाण्डुर, पाण्डर। रक्त और पीत मिश्रित वर्ण हो पाण्डुर कहाता है। अमरटीकानें भरतने लिखा है—

‘पाण्डुरस्तुरपीतभागी प्रत्युपचन्द्रवत्।

पाण्डु पीतभागादौः केनकीधूलिप्रभिनः ॥’

रक्त और पीतमिश्रित वर्ण हो पाण्डुर वर्ण है। यह देखनेमें प्रयुक्तकालके चन्द्रमा-सा लगता है। ४ स्वनामस्थान नृपति। इसी नृपतिने पाण्डवोंग सत्पत्न हुआ है। महाराज शान्तनुके पुत्र विचित्रवीर्य के चैत्रमें वसन्तदेवसे इस राजाने जन्मग्रहण किया था। सदा-भारतमें इसका विषय इस प्रकार लिखा हैः—

महाराज विचित्रवीर्यने काशिराजको पत्निका और अस्मानिका नामक दो कन्याका पाणिग्रहण किया। विचित्रवीर्य उन दो स्त्रियोंके साथ एकादिप्रसूतसे सात वर्ष तक विहार करके योगनकालमें हो भयङ्कर यक्ष-रोगसे आत्मान्त हुए। उनके प्रकारकी विलिप्ता करने पर भी वह शान्त न हुआ। चकालनें ही वे इस कान-रोगके करालगालमें फँस कर अस्मानित सूर्यको तरह अदृश्य हो गये।

विचित्रवीर्यको माता सखवती पुत्रशोकने निरामृत कातर हो गईं। अनन्तर दोनों पुत्रवधुओंकी पालासन दे कर उन्होंने भोजनसे कहा, ‘हे भारत! कुशवंशोय शान्तनु राजाका वंश, कोसि और पिण्ड एकमात्र तुम पर ही प्रतिष्ठित है। तुम सब प्रकारके धर्मसे अवगत हो। इस कारण मैं विशेष चाहता हों कर तुम्हें किसी एक धर्मकार्यमें नियुक्त करूँगी। यह कार्य धर्मोत्सार करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। हे पुण्डरीक! तुम्हारे मित्र भाई मेरे पुत्र विचित्रवीर्य जिना कोई पुत्र छोड़े ही वचपनमें स्वर्गधामको चले गये हैं। तुम्हारे भाईकी दोनों महिमी रूपयोगने-सम्पन्नो है पर पुत्रकी कामना

करती है। अतः तुमने मेरा अयुरोच है, कि वंशपरम्परा की रक्षाके लिये मेरे नियोगानुसार उन दो वधूओंसे पुत्र उत्पादन करके धर्मको रक्षा करो तथा विवाह करके राज्य पर अभिहित हो भारतराज्य चलाओ।

माता और सुहृदोंके इस प्रकार अनेक धर्ममयुक्त वचन कहने पर भीष्म विनयपूर्वक नम्रताके साथ माता-से बोले, 'माता! आपने जो कुछ कहा, वह धर्मयुक्त है, इसमें सन्देह नहीं। पर हे माता! आपके लिये मैंने जो साथ प्रतिज्ञा की थी वह किसीसे क्षिप्त नहीं है। अतएव मैं सत्यसौ रक्षाके लिये ब्रह्मोक्त तो दूर रहूँ, यहाँ तक कि अतिदुर्लभ देवलोकाका भी राज्य परित्याग कर सकता हूँ अथवा इससे अधिक और जो भी सकता है, उसका भी त्याग कर सकता हूँ। परन्तु सत्य प्रथमे मैं कभी भी विचलित न होऊँगा।

सत्यवतीने भीष्मको ऐसी कठोर प्रतिज्ञा सुन कर कहा, 'तुम्हारा कहना तो बिलकुल सत्य है, पर शान्तनुवंशकी आपदबन्धा पर जरा विचार कर जो युक्तिसिद्ध हो, वही करो।' इस पर भीष्म बोले, 'माता! भारतवंशकी सन्तानवृद्धिके लिए उपयुक्त उपाय कहता हूँ, सुनिये। किसी गुणवान् ब्राह्मणकी धन दारा निमन्त्रण कर विचित्र वीर्यके क्षेत्रमें पुत्रोत्पादन कोजिए।' इस पर लज्जामें स्खलितवाक्य हो सत्यवतीने भीष्मसे कहा, 'भारत! तुम जो कुछ कहते हो, वह सभी युक्तियुक्त है। परन्तु तुम्हारे प्रति विश्वासके हेतु हमारे वंशकी विस्तृतिके लिये जो मैं कहूँगी, उस आपदमर्माका तुम प्रत्याख्यान नहीं कर सकते। हमारे वंशमें तुम हो धर्म, तुम ही मत्स्य और तुम ही एक परमगति हुए हो। अतएव मेरा मत्स्य वाक्य श्रवण कर जो कर्त्तव्य हो, वही करो।

मेरे पिता धार्मिक थे। उनके धर्मकर्मके लिये एक नाव थी। एक दिन नवयौवनकालमें पिताके बटले में ही नाव खेनेके लिये गई हुई थी, उसी समय परमवि परागर यमुनानदी पर होनेके लिये मेरी नाव पर चढ़ गयी। मैं उन्हें नदीके पार कर रही थी, इसी समय वे कामात हो मुझी मीठी मीठी बातेंसे प्रलोभित करने लगे। आपके भयमें मेरा कुछ भी वग न चला। अनन्तर उन्होंने चारों ओर प्रत्यक्षकार फैला दिया जिससे तमिष

भी दिखाई न पड़ने लगा। पहले मेरे शरीरसे अपकृत मत्स्यगन्ध निकलतो थी, सो उन्होंने मत्स्यके बलसे उसे दूर कर दिया और उसके बटलेमें सोरभ प्रदान का मुक्तसे कहा, 'तुम इस यमुनाहोममें हो इस गर्भका परित्याग कर पुनः कन्यावस्त्रांमें हो रहोगी।' इतना कह कर महर्षि चक्र टिपे और मेरे गर्भसे एक महायोगी मर्षिने जन्म लिया जो ह्येयन कहलाये। वही भगवान् ऋषि तपोबलसे चारों ओरोंका विभाग कर स्वाम नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। मेरे बादेगातुमार वे तुम्हारे भाईके क्षेत्रमें उत्तम पुत्रोत्पादन कर सकते हैं। उन्होंने हमसे पहले कहा था, 'प्रयोजन पढ़ने पर मुझी स्मरण करना, मैं उसी समय पड़ूँ आलगा।' यदि तुम कहो, तो इसी समय उनका स्मरण करती हूँ। इस पर भीष्म सहमत हो गए। अतः सत्यवतीने व्रात देवका स्मरण किया। व्रातदेवने उसी समय उपस्थित हो कर मातासे निवेदन किया, 'माता! किस लिए आपने मेरा स्मरण किया है, जप करके कहें, मैं इसी समय उसे कर डालता हूँ।' इस पर सत्यवतीने कहा, 'देवविधानक्रमसे तुम मेरा प्रथम पुत्र हो और विचित्र वीर्य कनिष्ठ था। यह शान्तनुतनय सत्यविक्रम भीष्म मत्स्यप्रतिज्ञाके लिये राज्यवासन था अपत्य उत्पादन करने में सहमत नहीं है। अतएव हे पुत्रव! मैं जो कहती हूँ, भी सुनो। अपने भ्राता विचित्रवीर्यके प्रति जो शान्तनुवन्ध, कुद्वेगश्च तथा प्रजापालनके लिए मेरा नियोग तुम्हें सम्पादन करना, ठीक है। तुम्हारे कनिष्ठ भ्राताके देवकन्यासहगो रूपयौवनसम्पत्ता दो भागों में धर्मानुसार पुत्रको अभिलाषिणी है। तुम अभिमत प्राप्त हो, अतएव उन दो महर्षियोंसे इस कुलके तथा वंश परम्परा विस्तारके उपयुक्त सन्तान-उत्पादन करो।' व्रातदेवने इसे स्वीकार कर लिया और कहा, 'दोनों वधू एक यय तक व्रत धारण किये रहें। देखो उन्हें मित्रावरुण सटम पुत्र प्रदान करूँगा। व्रतानुष्ठान किये दिना कामिनी मेरे निकट नहीं आ सकती।' इस पर सत्यवती बोली, 'पुत्र! देविश्रा जिससे अभी गर्भवती हो जायें, वही उपाय करो। राज्यमें राजाके नहीं रहने पर प्रजा पनाय हो कर विनष्ट हो जायगी, सभी क्रियाएँ लुप्त हो

जायंगी, छटि नही' होगी और पोछे देवगण अस्तित्व ही जायंगी। सुतरां तुम चमो इन्हें गर्भावधारण कराओ।' व्यासने 'वैसा हो होगा' यह कह कर पड़ने अश्विनिकाके गर्भमें छतराष्ट्रकी उपादन किया। छतराष्ट्र देखो।

पोछे अश्विनिकाके ऋतुसंज्ञा होने पर सत्यवतोने उससे कहा, 'तुम्हारे एक देवर हैं जो सोच दोपहर रात ही तुम्हारे पास पायंगे। तुम प्रसन्न हो कर उनको प्रतीक्षा करना।' मर्षि सत्त समयमें अश्विनिकाके निकट पहुँचे। अश्विनिका ऋषिका स्वरूप देख कर डर के मारे पाण्डुवर्ण ही गई। व्यासने उसे भोला, विषया और पाण्डुवर्ण देख कर कहा, 'तुम सुखी विषय देख कर पाण्डुवर्ण हुई हो, इस कारण तुम्हारा पुत्र भी पाण्डुवर्ण होगा और पोछे 'पाण्डु' नामसे प्रसिद्ध होगा।' इतना कह कर व्यासदेव जब घरसे निकल पड़े, नव सत्यवतोने उन्हें सन्तानका विषय पूछा। व्यासदेवने वानक्या पाण्डुवर्ण होनेका विषय कह सुनाया। अनन्तर यथाकालमें अश्विनिकाने उत्तम-श्रेष्ठ पाण्डुवर्ण एक कुमार प्रसव किया। भागे चल कर बड़े पुत्र पाण्डु कहलाये।

छतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर जन्मने ही भोमकट्टक पुत्रवत् प्रतिपालित, स्वजातिविहित सन्ताननियमसे संस्कृत, जस और अश्विनिकाने निरत तथा अस और व्यायामकुशल हो कर व्यायाममें योग्यताका प्राप्त हुए। पाण्डु धनुर्वेदादि सभी शास्त्रोंमें पारदर्शी हो उठे। कुन्तीभी जन्मा कुन्तीने स्वधर्म में पाण्डुकी हो बरसात पढ़ाई। इसी प्रकार कुन्तीके साथ पाण्डुका विवाह हुआ। पोछे भीष्मदेवने मद्रकन्या माद्रिके साथ पाण्डुका एक और विवाह कर दिया। पाण्डुकी ये दोनों पत्नियाँ असामान्य रूपवती और नानाविध सदगुणसम्पन्ना थीं। अनन्तर पाण्डु कुन्ती और माद्रिके साथ भानन्दपूर्वक रहने लगे। भायोंके साथ तीस वर्ष तक विहार करके इन्होंने भूमण्डल ओतनेके लिये यात्रा कर दी।

भूमण्डल पर जितने राजा थे सभी पाण्डु द्वारा पराभूत हुए। राजाधोने इन्हें क्षताञ्जलिपुटसे प्रणाम करे मण्डपमण्डपानादि उपद्रोह दे सन्तोषविधान

किया। सभी कहने लगे कि शास्त्रनुकी कीर्ति नटप्राय हो गई थी; सभी पाण्डुने उसका पुनरुद्धार किया। जिन सब राजाधोने कुलवीका धन और राज्य हरण किया था, पाण्डुने निजसुखलने उन्हें परान्त कर सब लोटा लिया। इस प्रकार पाण्डुने विजयनाम कर हस्तिनापुर प्रवेश किया। अनन्तर धर्मोत्तम पाण्डुने छतराष्ट्रको आश्रय कर साधुवन-विजित धनराशि भोग्यको, सत्यवतोकी और माता अश्विनिकाकी उपहार में दे दी। छतराष्ट्रने औरवर पाण्डुकी विक्रमार्जित धनराशिसे पाँच महायज्ञ किये। इन पाँच महायज्ञमें इतना धन खर्च हुआ था कि उससे शतसहस्र दक्षिणायु शत अक्षयि हो सकत थे।

अनन्तर निरमल पाण्डु कुन्ती और माद्रिके साथ जङ्गल चले गये। वहाँसे सुखसेवा प्राप्तानिष्ठ और श्रमयोग्यता परित्याग कर यत्नयुग्मवास्तव ही भानन्दसे रहने लगे। एक दिन राजा पाण्डुने श्रमयोग्यता निमित्त मद्यारण्यमें विचरण करने करते एक दूधपति श्रमकी देखा जो मैथुनधर्ममें पास्त था। पोछे इन्होंने तोछा और पाशग पञ्चमर द्वारा उस श्रम और श्रमोकी विह कर डाका। कोई महाविज्ञानी तपोधन ऋषिपुत्र श्रम रूप धारण कर भायोंके साथ लोड़ा कर रहे थे—वे दोनों बड़े श्रम और श्रमो थे। शराघातसे शराकुल हो कर वे ध्वजे पर गिर पड़े और मनुष्यकी बोलीमें विलाप करते हुए उन्होंने पाण्डुसे कहा, 'राजन्! कामशोध युक्त बुद्धिहीन पापसक्त-व्यक्ति भी ऐसा श्रम काम नहीं करते। तुमने श्रमवध किया है, इस कारण मैं तुम्हारे निन्दा नहीं करता; पर ऐसे समयमें निद्राचरण न कर मेरे मैथुनकाल तक तुम्हें डहर जाना उचित था। मैं कुतूहलकाल ही कर इस श्रमोसे सन्तान उत्पादन करनेके लिये मैथुनधारण कर रहा था, पर तुमने उसे विफल कर दिया। कुतूहलमें तो तुमने जन्म लिया है, पर यह तुम्हारे लिये उपयुक्त कर्म नहीं हुआ। गान्धर्व और धर्मार्थतत्त्वविद् तथा श्रीवभोगके विशेषज्ञ हो कर भी तुमने जो पक्षवर्त्य कर्म किया सो ठीक नहीं। मैं श्रमयोग्यता फलमूलाहारी सुनि हूँ, मेरा नाम किन्दम है। मैं लोकसन्नासे श्रमोमें मैथुनधारण कर रहा

था। मेरे अहमिकात्ममें ही तुमने मेरा प्राणसंहार किया—
अग्न्यायणमें तुमने मेरा वध किया, इस कारण तुम्हें
ब्रह्मदण्डका पाप न लगेगा। किन्तु तुमने जो यह निष्ठुर
व्यवहार किया, इस पर तुम्हें श्राप देता हूँ कि तुम जब
जो-सं-सर्ग करोगे, तब मेरे सदृश अहम सगंध
मृत्युमुकुटमें पतित होगे। जिस कान्ताके साथ तुम सं-सर्ग
करोगे, वोही वध भी भक्तिपूर्वक तुम्हारे अनुगामीनो
होगा।' इस प्रकार श्राप देते हुए अग्न्यायणीभूमिके
प्राणपथे रुक पड़े गये।

तदनन्तर पाण्डु ने उस मृत ऋषिको प्रतिश्रुत कर
भार्येके साथ अनुतप्त और दुःखित हो बहुत विलाप किया
और मन ही मन यह स्थापित कर लिया कि भिषाच्यमका
अवतलन करके ही इस पापका प्रायश्चित्त कहेंगे।
यह सोच कर पाण्डु ने अपने तथा अपने दोनों स्त्रियों-
के शरीर पर जो कुछ भाभूषण थे उन्हें ब्राह्मणको दान
दे अनुचरोंके कक्षा, 'तुम लोग दक्षिणापुर जा कर यह
खबर दो, कि पाण्डु ने धर्म, काम और परम प्रियतम
स्त्राके संमगीदिका परित्याग कर प्रव्रज्यायम अवतलन
किया है और वे सबके सब जंगल चले गये हैं।' ब्राह्मण
पति जो अनुचरण दक्षिणापुरको चले दिये। इधर
पांडु फलमूलाहारो हो दोनों पत्नियोंके साथ नागमत
पथ त पर जा कर रहने लगे। 'यहां पांडु कठोर तपो-
नुष्ठान करके ब्रह्मर्षि सदृश हो उठे। एक दिन पांडु ने
स्वर्गपुर जानिको दृष्ट्वा ऋषियोंके सामने प्रकट की।
इस पर ऋषियोंने उन्हें निषेध कर दिया और कहा कि
अपुत्र व्रत्तिके लिये स्वर्ग जानिका द्वार नहीं है। यह
सुन कर पांडु ने स्वर्गमें ब्राह्मण द्वारा पुनर्त्पादन करने-
का पक्का विचार कर लिया और यह व्रतान्त कुन्तीको
एकान्तमें कह सुनाया। पतिव्रता कुन्तीने स्वामीके
अभिप्रायानुसार धर्म, वांछु और इन्द्रके यथाक्रम बुधधिर,
भीम तथा अर्जुन नामक तीन पुत्र और माद्रोने अश्विनो-
कुमारके नकुल तथा सहदेव नामक दो पुत्र प्रसव किये।
पाण्डव देवो।

पाण्डु के ये पांचो पुत्र पञ्चपाण्डव नामसे प्रसिद्ध
हुए। इन पुत्रोंको देख कर पांडु पर्वतके ऊपर सुखमें
काश्यापन करने लगे।

एक दिन प्रायियोंके समीपनकारी वनस्तत्तुमें
पाण्डु भार्येके साथ विचरण कर रहे थे। इस समय
सभी दिशाएं सुषुप्तस्थिते आमोदित थीं, कोकिलका
कुहूरव प्रतिध्वनित होता था, मधुकरनिकर गूल भी
थे, मृदुमधुरमलय पवनहिलोचने सुप्तमें थे, पराग
भङ्गता था, इस प्रकार वनस्तका सर्वतोभावेन विकास
देख पांडुके हृदयमें मर्ममयका वावस्थान हुआ। माद्रो भी
राजाके पोछे पोछे विचरण कर रहे थे। राजा निजान
स्थानमें कमलकोचना खतनाको देखते हो डठान् अधोर
हो उठे, किसी भी तरह धैर्य रख न सके। सुतरां उन्होंने
एकाकिनो धर्मपत्नीको वत्सपूर्वक धारण किया। इस
समय देवो माद्रो यथासाध्य प्रतिषेध करने लगे,
किन्तु राजा नितान्त कामपोहित थे उन्हें करा भी पारी
पोछेकी सुधि न थी। सुतरां जीवनशतकारो पूर्वाक्ष पति-
श्रापके भयने उनके हृदयमें स्थान न पाया। उस समय
मदनके प्राणानुवर्ती पांडुने विधिसे प्रेरित हो कर ही
मानो श्रावजन्म भयका परित्याग किया और जीवननाम-
के लिये हो वे वत्सपूर्वक माद्रोको धारण कर मैथुन-
धर्मके अनुगामी हुए। उस कालका पुत्रको बुद्धि
साक्षात्कालसे विमोहित हो कर इन्द्रियधाम मग्न-
पूर्वक चेतन्यके साथ विनष्ट हुई। सुतरां वह परम-
धर्मात्मा कुनन्दन पांडु भार्येके साथ सहज हो कर काश-
धर्ममें निरोजित हुए। अनन्तर माद्रो हस्तेन भूषण-
का आनिष्ठन कर पुनः पुनः उच्चैःस्वरसे पार्श्वनाद
करने लगे। पोछे पुर्वीके साथ कुन्ती और माद्रोके दोनों
पुत्र यह शोकसूचक शब्द सुन कर जहां राजा मरे पड़े थे
वहां पहुंच गये। माद्रोवे कुल व्रतान्त सुन कर वे सबके
सब भारी विलाप करने लगे। बाद कुन्तीने माद्रोके
कहा, 'मैं सती होतो हूँ, वृक्षकीका प्रतिपानन
करना।' इस पर माद्रो बोले, 'मैंने स्वामीको पतन
रखा है—भाग्यने नहीं दिया है, पतन मैं ही सती होजाने
कारण मैं कामरससे तप्त हो न होने पाई थी, कि इसी
बोझमें मैं इस दशाको प्राप्त हुए। तुम बड़ी हो, अतएव
मुझे ही सती होनेको आज्ञा दो। मेरे ही साथ गमन
करते हुए वे विनष्ट हुए हैं, पतन इतना अनुगमन करना
मेरा ही अधिकार है और आज्ञा भी यही कहता है।'

इतना कह कर मद्रराजदुष्टता सभी समय चिन्तानिरुप-
नरथेष्ठ पाण्डुको भगुनामिनी हुई ।

पश्चात्तर महर्षिगण कुन्ती, पञ्चपाण्डव और उन दो-
स्त देशको ले कर इस्तिनापुर गये । वहाँ पहुँच कर
उन्होंने बाध्योपास्य सारा हस्तान्तर भोग्य और धृतराष्ट्रसे
कह सुनाया । सभी पाण्डुके लिये शोक प्रकाश करने
लगे । पोक्षे धृतराष्ट्रने विदुरको पाण्डुका प्रेतकार्य करने-
का आदेश दिया । विदुरने आज्ञा पाते ही भोग्यके साथ
परमपवित्र स्थानमें पाण्डुका सत्कारकर्म किया । पञ्च-
पाण्डव भोग्य और धृतराष्ट्रके यज्ञसे शगिफलाको तरह
दिनों दिन बढ़ने लगे । (भारत आदिपर्व १०२से १२० अ०)

५ नागभेद । ६ श्वेतहस्त । ७ विसर्पण । ८ रोग-
विशेष, पाण्डुरोग । सुनुतमें पाण्डुरोगका विषय इस
प्रकार लिखा है,—

अतिरिक्त श्लोच'सर्ग', अन्न, लक्षण और मद्यमेवम,
श्रुत्तिकाभक्षण, दिवानिद्रा और' अतिशय तोष्यद्रव्यता
सेवन, इन सब कारणोंसे रक्तदूषित हो कर त्वरू पाण्डु-
वर्ण हो जाता है । त्वरूके पाण्डुवर्ण होनेसे ही पाण्डु-
रोग उत्पन्न होता है । यह रोग चार प्रकारका माना
गया है, प्रथम, प्रथम, दोषजन्य तोष प्रकारका, सवि-
पातजन्य एक प्रकार । चारों प्रकारमें ही पाण्डुभाव-
की अधिकता होनेके कारण इसे पांडुरोग कहते हैं ।
त्वरूका स्फोटन अर्थात् चमड़े का फट जाना, श्लेष्म,
गात्रका अवसाद, श्रुत्तिकाभक्षण, अस्तिगीलकका शोथ,
मूलपुरीषकी पीतवर्णता और अज्ञात' ये सब पांडुरोग-
के पूर्वरूप हैं । कामल, कुम्भकामल, हलोमक और
साधक ये सब पांडुरोगके अन्तर्गत माने गये हैं ।

चक्षु और देह क्षयवर्ण, गिरासमूहमें आकीर्ण
और सुरीप, मूत्र, मूत्र तथा मुख क्षयवर्ण और
अन्यान्य वायुजन्य उपद्रव होनेसे उसे वायुज पांडु,
चक्षु और देह पीतवर्ण, गिरासमूहमें आकीर्ण
और सुरीप, मूत्र तथा मूत्र पीतवर्ण और पित्तजन्य
अन्यान्य उपद्रव होनेसे उसे पित्तजपाण्डु कहते हैं ।
सविपातज पांडुरोगमें सभी प्रकारके लक्षण देखे
जाते हैं ।

पांडुरोगके शेषमें पित्तलक्षण, अन्न और मद्य आदि

पित्तकर द्रव्यका महत्ता सेवन करनेसे मुख पांडुवर्ण
हो जाता है । विशेषतः प्रथमावस्थामें तन्द्रा और दुःख-
लता होती है । जब उसमें शोथ और श्रमिस्थानमें वेदना
मालूम पड़े, तब उसे कुम्भकामल कहते हैं । इसमें
अहमर्द, ज्वर, श्वस, अवसाद, तन्द्रा और ज्वर आदि
लक्षण रहनेमें उसे साधक और वातपित्तका लक्षण
अधिक रहनेमें हलोमक कहते हैं । इसमें अग्नि, विपासा,
भयम, ज्वर, ऊर्ध्वगत पोड़ा, अग्निमान्द्य, अण्डगत शोथ,
दुर्बलता, मूर्च्छा, क्षान्ति और हृदयकी पोड़ा आदि
उपद्रव होते हैं ।

भावप्रकाशमें पांडुरोगका विषय इस प्रकार लिखा
है,—पांडुरोग पाँच प्रकारका है, यथा—वातज, पित्तज
कफज, सविपातज और श्रुत्तिका भक्षणगत । कोई
कोई कहते हैं, कि श्रुत्तिकाभक्षण द्वारा धातु दूषित हो
कर पांडुरोग उत्पन्न होता है । सुतरा श्रुत्तिकाभक्षण पांडु-
रोग दोषज पांडुसे प्रयुक्त नहीं है । ऐसा नहीं होने पर
भी उससे प्रयुक्तरूपसे निर्दोष कारिका कारण यह है,
कि श्रुत्तिकाभक्षण द्वारा दूषितश्लेष्मकेवल पांडुरोग को उत्पन्न
करता है, दूसरा रोग नहीं ।

इस रोगका निदान—मेषून, अन्न और लक्षण'सुख
द्रव्य, मद्यभजन, श्रुत्तिकाभक्षण, दिवानिद्रा और अतिशय
तोष्यद्रव्य सेवन द्वारा दुष्ट दोष रक्तसे दूषित करने
चर्मकी पाण्डुवर्ण बना देता है । पाण्डुरोग होनेके
पहले निम्नलिखित लक्षण देखनेमें आते हैं । यथा—
चर्म ईद्विदार, श्लेष्म, अज्ञावसाद, श्रुत्तिकाभक्षण-
के श्लेष्म और चक्षुगीलकमें शोथ तथा मनमूत्रकी पीत-
वर्णता और भुक्तद्रव्यका अपाक होना ।

वातज पाण्डुका लक्षण—वातिक पाण्डुरोगमें चर्म,
मूल और चक्षु आदि रुख, क्षय वा अरुणवर्ण, क्षय,
शरीरवेदना, अनाह, श्वस और शून्यादि होता है । पांडु-
वर्णका उत्पन्न कर क्षय वा अरुणवर्ण नहीं होता और
यदि ऐसा भी हो, तो उसे पाण्डुरोग नहीं कह सकते ।
क्योंकि सुनुतमें लिखा है, कि सभी प्रकारके पाण्डुरोग
में पांडुता अधिक रहती है, इसीसे उसको पांडुरोग
कहते हैं । अतएव यहाँ पर पाण्डुवर्णके साथ क्षय वा
अरुणवर्ण समझना चाहिये ।

योग्यतः प्रो र मधुमह सेवन करे। दोष छोड़ा छोड़ा करके घटाना चाहिये, एकरागी घटानेसे शरीर क्षीण हो जाता है। आमलकीरस और दधुरमका मध्य प्रसृत कर मधुके साथ भोजन वा हृदयो, कण्ठकारी, हरिद्रा, शुक्राक्षा, दाहिम और काकमाची इन सबके कक तथा कायके साथ घृत पाक करके सेवन विशेष है। दुग्धके साथ यथासाधा पिप्पलीका सेवन करनेसे यह रोग प्रगमित होता है। यष्टिमधुके साथ और चूर्णका समान भागमें मधुके साथ लेहन, त्रिफला और लोहचूर्णका दोषकाल तक गोमूत्रके साथ सेवन, प्रवाल, सुता, रमाञ्जन, मधुचूर्ण, काञ्चन और गिरि-श्लिष्कालेहन, चर्मेर कागविष्टा, विट्मन्त्रण, हरिद्रा और मन्थव प्रत्येकका एक एक पल चूर्ण मिला कर मधुके साथ लेहन, लोहमण्डर, चित्रक, विडङ्ग, हरीतकी और त्रिकटु ये सब समभाग और सबके समान कर्ण साक्षिक की गोमूत्रके साथ पाक करके मधुमह पचलेह प्रसृत करे। विमोतक, लोहमण्डर, कचूर और तिल इनके चूर्णकी यष्टि गुड़में मिला कर गोली बनावे। पोछे तन्त्रके साथ छसका सेवन करे। इससे प्रति प्रवन्त पाण्डु भी जाता रहता है। सज्जिमिष्टो, विडङ्ग और चिरायता मक्खकी मिला कर उरदके समान गोली बनावे। पोछे लण जलके साथ छसे सेवन करनेसे यह रोग निवृत्त होता है। सर्वा, हरिद्रा और आमलकीकी साम दिन तक गोमूत्रमें भावित कर लेहन करना चाहिये।

दुग्धमन्थ और चीनेके मूलको दो तोले गरम जलके साथ भयवा होहि जनके वीर्य और लवणका दुग्धके साथ सेवन करे। न्यग्रोधादिका गीतल काय चीनी और मधुके साथ पान करे। विडङ्ग, मोया, त्रिफला, सज्जवायन, पदपक, त्रिकटु और मञ्जिता, इनका चूर्ण गुड़मकरा, घृत, मधु और सारगणके साथमें पाक करके लेह प्रसृतपुत्रक चण्डागटनिके पात्रमें रखे। इसका सेवन करनेसे पाण्डु, कामला और शीयकी मारित होती है। (चन्द्र चिकि० ४५ अ०)

भारप्रकाशके मतसे विविध—ज्वरित लोहकी गोमूत्रमें ० दिन भावना दे कर दुग्धके साथ यथाभावात् सेवन

करनेसे पाण्डु रोग प्रगमित होता है। गोमूत्रसाधित मण्डर गुड़के साथ खानेसे पाण्डु और परिणामगुन नष्ट होता है। मण्डरको ० चार सन्तप्त करके गोमूत्रके मधु डाल कर गोधन करे। अनन्तर उसका चूर्ण, घृत और मधु मिश्रित कर लेहन करनेसे पाण्डु रोग चंगा हो जाता है।

इस पाण्डुरोगमें पुनर्णवादि मण्डर प्रति उत्तम औषध है। इससे प्रसून प्रणाली—४८ पल मण्डरको १८२ पल गोमूत्रमें पाक करे। आमलकाकर्म पुनर्ण-यादिका चूर्ण यथा—पुनर्णवा, निलोय, त्रिकटु, विडङ्ग, देवदारु, चोता, कुट, हरिद्रा, दाहहरिद्रा, त्रिफला, दन्तो, चर्मे, इन्द्रयय, कटुकी, पिप्पलीमूल, मोया, कर्कट-शुद्धी, क्षणजीरा, सज्जवायन और कायफन इन सब द्रव्योंका चूर्ण एक एक पल करके २४ पल प्रसृत करे। पोछे गुड़की साथ गोली बना कर तन्त्रद्वारा आनोदन पूर्वक पान करना होता है। इस औषधकी स्वयं पश्चिमोक्तमार्गसे बनाया है। इससे पाण्डु, कामल, हलीमक, क्वर, काय, युष्मा आदि रोग प्रगमित होते हैं। नवायसचूर्ण सेवनसे भी यह रोग जाता रहता है।

त्रिफला, गुल्मच, भयवा दाहहरिद्रा वा निम्बके गीतकयायमें मधु डालकर सबेरे पान करनेसे कामला रोग विनष्ट होता है। त्रिफला, गुल्मच, चण्डू, चिरायता और निम्ब इसके साथमें मधु डाल कर सेवन करनेसे पाण्डु, कामला और हलीमक दूर हो जाता है।

त्रिकटु, त्रिफला, मोया, विडङ्ग, चर्मे, चोता, दाह-हरिद्रा, दाहचोनी, स्वर्णसाक्षिक, पिप्पलीमूल और देवदारु प्रत्येकका दो दो पल सर्वात् २८ पल ले कर पृथक् रूपसे चूर्ण करे। पोछे सभी औषधोंसे दिगुण परिमाण शोधित भस्म मण्डर ५४ पल, पाठ गुण सर्वात् एक मन सोलह सेर गोमूत्रके साथ पाक करे। पोछे उपरिक्त त्रिफलादि की पाचन पाकमें डाल कर उतार ले और दो तोलेकी गोली बनावे।

रोगीको अग्नि के बसाधनके अनुसार मात्रा निर्धारित करके तन्त्रके साथ सेवन करावे। औषध जीर्ण होने पर हितकर पया सेवनोय है। यह औषध पाण्डु रोगमें विशेष फलप्रद है। पाण्डु रोगीको घव, गोधूम और

वित्तज पाण्डुरोगमें चर्म नख, मंज और मूत्र, तथा सम्पुष्पा शरीर पीतवर्ण हो जाता है । शरीरमें जनन होती है, प्यास अधिक लगती है और ज्वर आ जाता है ।

कफज पाण्डुरोगका लक्षण—यदि मित पाण्डुरोगमें कफयास, शोथ, तन्द्रा, आनस्य और शरीर अतिग्रथ मुक्त तथा चर्म, मूत्र, चक्षु और मुखका वर्ण सफेद हो जाता है । जो पाण्डुरोगके हेतुकर सब प्रकारके द्रव्य सेवन करता है उसका शोथ (वायु, पित्त और कफ) दूषित हो कर पित्त दुःख त्वेदोपि पाण्डुरोग उत्पादन करता है । इसमें विदोषके मिलित लक्षण देखनेमें आते हैं ।

श्लेष्मिकाभक्षणकारी मनुष्यकी वायु, पित्त वा कफ कुपित होता है अर्थात् कफाय श्लेष्मिकाद्वारा वायु, चार श्लेष्मिका द्वारा पित्त और मधु श्लेष्मिका द्वारा कफ कुपित हो जाता है । श्लेष्मिका अपने रक्तगुण द्वारा रक्त रक्तादि धातु समूह और भुक्तद्रव्यको कफ करके खर्च पचक रक्त कर रक्तवहादि स्त्रीतोंको पूरण और रक्त कातो है तथा इन्द्रियांका वल, तेज, बोध और भोजोधातु नष्ट करके शीघ्र ही वल, वर्ण और पान्निनामक पाण्डुरोग उत्पादन कर देती है । इसमें तन्द्रा, आनस्य, कोस, खास, शूल और सर्वदा श्वसि होती है तथा पेटके भीतर कीड़े लापव होते हैं । पल्लिगोमक, गण्ड, भ्रू, पद, नाभि और शिग्रुदेशमें शोथ होता है तथा रक्त और कफ समन्वित मल बहुत निकलता है ।

पाण्डुरोगका शफर लक्षण—पाण्डुरोगमें ज्वर, श्वसि, ज्ञान, वमि, विपासा और क्षान्ति होनेसे तथा रोगी के शोण और इन्द्रियशक्तिविहीन होनेसे उसे परिश्रम कर देना चाहिये । विदोषज पाण्डु भी चिकित्साके विधिभूत है । बहुत दिनोंका पाण्डुरोग यदि कालक्रमसे समस्त धातुओंकी अतिग्रथ रक्त बहा देवा सदाशुभमें परिणत हो जाय, तो उसे श्वसि जानना चाहिये । अचिरात् पाण्डु यदि शोथयुक्त हो, तो मोक्ष शोथ नही है । पाण्डुरोगीको यदि हरिचूर्ण कफशुद्ध चयच विवश होइया होइया मल निकले, तो रोगको श्वसि जानना चाहिये । जो पाण्डुरोगी अत्यन्त क्षान्ति, वमि, मुर्च्छा और विपासासे अभिभूत हो तथा चर्मद्वारा

जिसका शरीर अत्यन्त प्रसिक्तो तरह मालूम पड़े, उसका रोग भी श्वसि है । जिसके दन्त, नख और चक्षु पाण्डुवर्ण हो तथा समस्त चक्षु पाण्डुवर्ण होव पड़े उसके भी जीनेको आशा नहीं रहती ।

जिस पाण्डुरोगीके हस्तपदादिमें शोथ और शरीरका मध्यदेश शोण हो जाय अथवा हस्तपदादि शोण और शरीरके मध्यदेशमें शोथ हो जाय, उसका रोग शरीर नही होगा, ऐसा जानना चाहिये । जिस पाण्डुरोगीके गुच्छ, मुख, शिग्रु और शिग्रुदेशमें शोथ हो जाय तथा खानि, संज्ञाह्रिय, अन्तर और ज्वर हो, तो रोगीको चाहिये कि उसको चिकित्सा न करे ।

पाण्डुरोगान्त वाक्छि यदि पित्तकारक सामग्रियों अधिक मात्रामें सेवन करे, तो उसके वक्षि पित्त उसके रक्त और मांसकी दूषित करके कामजरीगोके उत्पादन करता है कामजरीगोके चक्षु, चर्म, नख पर्यन्त हरिद्रावर्ण, मल और मूत्र पीत वा रक्तवर्ण तथा शरीर वैगमे जैसा वर्ण विग्रहित हो जाता है । इसके अन्तर्वा इन्द्रिय शक्तिका क्षास, दाह, भुक्तद्रव्यका अपाक, दुर्बलता और देखी-श्वस्य सचता तथा श्वसि होती है ।

कामजरीगोका विवरण कामका शब्दमें देखो । पाण्डुरोगीका वर्ण यदि हरित, श्याम और पीतवर्ण हो तथा वल और रक्तानका ज्ञान, मन्दानि, श्रुद्वैगुल ज्वर, स्त्रीप्रसङ्गमें प्रतुसाह, शरीरवेदना, श्याम, विपासा, श्वसि और भ्रम उपस्थित हो, तो उसे हस्तीमक कहते हैं । हस्तीमकरीग वायु और पित्तसे उत्पन्न होता है ।

पाण्डुरोगी चिकित्सा—पाण्डुरोगमें दोषका विचार कर घृतके साथ ऊर्ध्व अधोभाग संशोधन और प्रचुर परिमाणमें घृत मधुके साथ हरीतकीचूर्णका सेवन विधेय है । हरिद्रा अथवा त्रिफलाके साथ पाक किया घृता घृत अथवा तिलैक घृतका पान हितकर है । विरचक द्रव्यका घृतके साथ पाक करके अथवा घृतके साथ विरचक द्रव्य सेवन करनेसे भी यह रोग प्रशमित होता है । ४ तोले निषोद्यको गोमूत्रमें पाक कर उसे अथवा धारस्वधादिने क्षाथकी पान करे । कौह रंज, त्रिकटु और विदुष, इनके चूर्णकी घृत और मधुके साथ वा त्रिफलायुक्त हरिद्रा वा शाल्वविहित अथ

योग्यत और मधुमेह सेवन करे। दोष थोड़ा थोड़ा करके घटाना चाहिये, एकवारगी घटानेसे ग़रोर चोप हो जाता है। कामलाकीरव और रक्तुरमका मस्य प्रसुत कर मधुके साथ भोजन वा लडकी, कण्टकारी, हरिद्रा, शकान्ता, दाहिम और काकमाची इन सबके कक तया कायके साथ घृत-पाक करके सेवन विशेष है। दुधके साथ यथासाध पियतोजका सेवन करनेसे यह रोग प्रशमित होता है। यष्टिमधुके साथ चूर्णका समान भागमें मधुके साथ लेइन, त्रिफला और लोहचूर्णका दीर्घकाल तक गोमूत्रके साथ सेवन, प्रवाल, मुक्ता, रसायन, मधुबूष, काचन और गिरि-शृङ्गिकादिजन, सबसेर कागविडा, मिटलवण, हरिद्रा और मन्थव प्रत्येकका एक एक पल चूर्ण मिला कर मधुके साथ लेइन, लोहमण्डर, चित्रक, विडङ्ग, हरीतकी और त्रिकटु ये सब समभाग और सबके समान स्वर्णमालिन्की गोमूत्रके साथ पाक करके मधुमेह अवलेहः प्रसुत करे। विभोतक, लोहमल, कवर और तिल इनके चूर्णको यष्टि गुड़में मिला कर गोली बनावे। पोछे तन्त्रके साथ इसका सेवन करे। इससे प्रति प्रबल पाण्डु हो जाता रहता है। सज्जोमिष्टी, विडङ्ग और चिरायता सबको मिला कर चरदके समान गोली बनावे। पोछे वण्णजलके साथ छने सेवन करनेसे यह रोग निवृत्त होता है। मर्वा, हरिद्रा और आम्रमकीकी मात दिन तक गोमूत्रमें भावित कर लेइन करना चाहिये।

धृग्यग्ना और घीतिके मूलको दो तोले गरम जलके साथ धधवा मोहिजनके बीज और लवणका दुधके साथ सेवन करे। न्यग्रोधादिका ग्रीतल साथ लोहो और मधुके साथ पान करे। विडङ्ग, मोया, त्रिफला, अजवायन, पदपक्ष, त्रिकटु और मर्याजता, इनका चूर्ण गुहमकरा, हृत, मधु और सारगणके साथमें पाक करके लेहः प्रसुतपूर्वक धण्टागटलिके पात्रमें रखे। इसका सेवन करनेसे पाण्डु, कामला और गोथकी गान्ति होती है। (पञ्चर विधि० ४५ ग०)

मारुतकागके मने पिष्टिका—जारित लोहकी गोमूत्रमें ० दिन भावना के कर दुधके साथ यथासाधमें सेवन

करनेसे पाण्डु रोग प्रशमित होता है। गोमूत्रसाधित मण्डर गुड़के साथ खानेसे पाण्डु और परिणाममूल नष्ट होता है। मण्डरकी ७ बार सन्तत करके गोमूत्रके मधव डाल कर गोधन करे। पुनस्त रसका चूर्ण, हृत और मधु मिश्रित कर लेइन करनेसे पाण्डुरोग चंगा हो जाता है।

इस पाण्डुरोगमें पुनर्वादि मंडर प्रति वत्सम औषध है। इससे प्रसुत प्रणाली—४८ पल मंडरकी १८२ पन गोमूत्रमें पाक करे। कामलाकमें पुनर्वादि का चूर्ण यथा—पुनर्वा, निसेध, त्रिकटु, विडङ्ग, देवदारु, चोता, कुट, हरिद्रा, दाहहरिद्रा, त्रिफला, दन्तो, चर्द, इन्द्रयय, कटुको, पियतोजमूल, मोया कर्कट-शृङ्गी, कण्णजीरा, अजवायन और कायकन इन सब द्रव्योंका चूर्ण एक एक पल करके २४ पल प्रसुत करे। पोछे गुड़के साथ गोली बना कर तन्त्रद्वारा आलोहन-पूर्वक पान करना होता है। इस औषधकी स्वयं अग्निनोक्तमारने बनाया है। इससे पाण्डु, कामला, हलीमक, कवर, काप, यक्षा आदि रोग प्रशमित होते हैं। नवायसचूर्ण सेवनसे भी यह रोग जाता रहता है।

त्रिफला, गुण्ड चयवा दाहहरिद्रा वा निम्बके गीतकपायमें मधु डालकर सबेरे पान करनेसे कामला रोग विनष्ट होता है। त्रिफला, गुण्ड, चड्डू, चिरायता और निम्ब इसके साथमें मधु डाल कर सेवन करनेसे पाण्डु, कामला और हलीमक दूर हो जाता है।

त्रिकटु, त्रिफला, मोया, विडङ्ग, चर्द, चोता, दाह-हरिद्रा, दाहचोगी, स्वर्णमालिक, पियतोजमूल और देवदारु प्रत्येकका दो दो पल सर्वात् २८ पल ले कर पृथक् रूपसे चूर्ण करे। पोछे सभी औषधोंसे दिगुण परिमाण गोधित भञ्जन सट्टम मंडर ५६ पल, पाठ गुण सर्वात् एक मन सोनह सेर गोमूत्रके साथ पाक करे। पोछे उपरिष्ठ त्रिफलादिकी पायस पाकमें डाल कर उत्तार ले और दो तोलेकी गोली बनावे।

रोगीको धनि के घसालके अनुसार मात्रा निर्धारित करके तन्त्रके साथ सेवन करावे। औषध जीर्ण होने पर हितकर पथ सेवनीय है। यह औषध पाण्डुरोगमें विर्य पकनप्रद है। पाण्डुरोगीको यव, गोधूम और

यासितगुलकृत भय, जाङ्गलमांस तथा मृग, परहर और ममूर आदिका पाहार दिया जा सकता है। (मास प्रकाश पाण्डुरोगविज्ञान)

भैषज्यरत्नावलीके पाण्डुरोगाधिकारमें लिखा है, कि चिकित्सासाध्य पाण्डुरोगमें पहले पञ्चतन्त्रादि द्रव्यका सेवन, वमन और विरेचन करावे। पोछे मधुके साथ ज्वरोतकी चर्ष पाटिको व्यवस्था कर दे। इस रोगमें हरेद्राका छाया और कल्कमें सिद्ध त्रिफलाका छाया या कल्कमें सिद्ध विरेचक द्रव्य पक्कहत भयवा वाताधिकारोक्त तन्दुक द्रव्य वा द्रव्यके साथ विरेचक औषध सेवनीय है।

वातज पाण्डुरोगमें क्षिप्त क्षिप्ता, पैत्तिकमें तित्त पथच गोतप्त, शैमिकमें कट और रुष्ण उष्ण तथा मिश्रपोढ़ा में नियत क्रिया करनी होगी।

पाण्डुरोगमें भस्त्रन, मल्ल, नवायमलोह, विह-त्रयादि लोह, पुनर्णवादि मण्डूर, पञ्चामृत लोह मण्डूर, चन्द्रसूर्यमकरस, प्राणवल्लभरस, पञ्चामनवटी, पाण्डु-मन्दनरस, त्र्यम्बादि मण्डूर, पुनर्णवातेह, हरिद्राद्य-द्रव्य, मूषाद्युक्त, श्लोषाद्युक्त और पानन्दोदयरस ये सब औषध पाण्डुरोगमें हितकर है। इन सब औषधकी प्रस्तुत प्रणाली वही सब शरीरों में देखो। (भैषज्यरत्नाम्)

रवेन्द्रसारसंघके पाण्डुरोगाधिकारमें निम्नादि लोह, धात्रीलोह, पञ्चामनवटी, प्राणवल्लभरस, त्रिक-लयादिलोह, विहङ्गादिलोह, शैलोक्त सुन्दररस, दाहोदि-लोह, चन्द्रसूर्यमकरस, पाण्डुमन्दनरस, मण्डूरवल्गु वटक, कृष्णामन्दरस, समोहलोह और त्र्यम्बादि-मण्डूर ये सब औषध तथा इनकी प्रस्तुतप्रणाली लिखी है। (रवेन्द्रसारसंघ)

यूरोपीय पण्डितगण पाण्डुरोग (Jaundice) का विषय इस प्रकार बतलाते हैं। पित्तनिःस्त्रावकी स्थिति वा अवस्थाके कारण जब रक्तके साथ पित्त मिलित हो कर चक्षु, गात्रचर्म और मुखकी पोतवर्ण कर देता है, तब उसे जण्डिस (Jaundice) कहते हैं। किसी क्रियाका कहना है, कि अवस्थावशतः पित्त-कोष और पित्तनालीके पित्तसे परिपूर्ण हो जाने पर मूत्र और निम्नीटिक द्रव्य पित्तका रंग प्रोषित हो कर

चर्मोद पोतवर्ण हो जाता है। फिर कोई कोई कहते हैं, कि स्वभावतः प्रोषितमेंसे पित्तका वर्ण ज पदार्थ यकृत द्वारा वहर्गित हो जाता है। किन्तु यदि किसी कारणवश यकृतकी क्रियाका व्यतिक्रम हो जाय, तो रक्तमें क्रमशः पित्तका वर्ण ज पदार्थ सञ्चित हो जाता है और उसीसे चर्मोद देखनेमें पोतवर्ण लगते हैं।

इस व्याधिके उत्पन्न होनेसे चर्म, मस्तिष्क, छात्र-समुच्च और यकृतादि पोतवर्ण हो जाता है। अवस्था-जनित योढ़ा होनेसे यकृत और पित्ताधार वर्धित होता है। योढ़ाकी प्रथमावस्थामें मूत्र पीताम् होता है; पोछे क्रमशः चर्म पोतवर्णमें परिणत हो जाता है। शीघ्र और दन्तामोही इसी वर्णको हो जाती है। मूत्रका भी रंग मूत्र मिश्र रंगोंमें पलट जाता। रासायनिक परीक्षा करनेसे इसमें पित्त और पित्ताम्ल पाया जाता है। मन कठिन, दुर्बल्युक्त और शब्द कर्दम-सा हो जाता है। तैलाक्त पदार्थोंमें अवधि, तिलोद्धार आदि लक्षण देखे जाते हैं। चर्म, मार, दुष्ण और प्रत्यक्षमें पित्त दिखाई देता है। धीरे धीरे चर्मकण्डूयन प्रारम्भ होता है। अतिसमा, दुर्बलता, प्रलाप आदि मस्तिष्ककी विकृति भी लक्षित होने लगती है।

चिकित्सा।—अवस्थाजनित योढ़ा दूर करनेके लिये भन्त, त्वक और मूत्रयन्त्रकी क्रिया बढ़ानेकी चेष्टा करनी चाहिये। त्वककी क्रिया सुचारु रूपसे करनेके लिये उष्ण जलमें स्नान तथा गात्रकण्डूयन निवारण करनेके लिये जलमें एक्जिलान् दे कर स्नान करना कर्तव्य है। कण्डू परिहार करनेके लिये मृदुविरेचक और खनिज जल (Mineral water) की व्यवस्था करे। लोहघटित औषध और भग्यान्त्र वृत्तकारक औषध व्यवस्थाय है। पित्तनिःसारक औषधकी व्यवस्था करनी होगी। इन सब औषधोंमें स्युपिल, टैरेकसेसोई, नाईट्रोम्यूरियेटिक एसिड डिन, पडोफिलिन, पाइ-रिडिन आदि प्रधान है। यकृतका प्रदोष रहने पर गरम जलका सेवन देना होता है। पाहाराय तरल और बेलकारक औषध व्यवस्थाय है। चरबी और शर्करायुक्त द्रव्य बिलकुल निषिद्ध है।

शास्तातपोध कर्मविपाकमें लिखा है, कि संपर्क भय

करनेसे पाण्डुरोग होता है । "१२३ निरुते चैव पाण्डु-
रोगः प्रजापते ॥" (श्रुता०) (स्त्री०) ८ साधवर्षी ।

१० पाण्डुवर्ष स्त्री । ११ देशभेद । (त्रि०) १२ पाण्डु-
वर्ष युक्त ।

पाण्डुक (स० पु०) पाण्डु संज्ञार्थ कन् । १ पाण्डुरोग ।
२ पाण्डु राजा । ३ पाण्डुवर्ष । ४ पटोत्र, परबल । ५
सर्जरस ।

पाण्डुकण्टक (स० पु०) पाण्डुवर्षानि कण्टकान्यस्य
पदार्थात् ।

पाण्डुकम्बल (स० पु०) पाण्डुवर्षः कम्बलः कर्मधा०
१ श्वेतमाधार, राजास्तरण-कम्बलभेद, शाल । २ प्रस्तर-
भेद, एक प्रकारका पत्थर ।

पाण्डुकम्बलित् (स० पु०) पाण्डुवर्षकम्बलेन परिहृतः
पाण्डुकम्बल इति (पाण्डुवर्षादिभिः । वा ४१२१)
१ पाण्डुवर्ष कम्बलाहत रथ । (त्रि०) २ पाण्डुकम्बल-
युक्त ।

पाण्डुकरण (स० स्त्री०) पाण्डुकर्म । पाण्डुकर्म देको ।
पाण्डुकर्मन् (स० स्त्री०) शक्रवर्षसम्पादनं सुश्रुतोक्त
वर्षको षष्ठकमप्यधिक्रियामेद, सुश्रुतके अनुसार वर्ष
चिकित्साका एक षष्ठ । इसमें कोड़के चक्के हो जानी
पर उसके कासे दागको चोपधको सहायतासे दूर करते
थोर वहाँके चमड़ेको फिर गरीरके वर्षका कर देते हैं ।

सुश्रुतमें लिखा है, कि यदि कोड़के चक्के हो जानी
पर दुर्दृष्टताके कारण, उनके स्थान पर काला दाग हो,
तो कड़वी सूँवोको तोड़ कर उसमें बकरोका घूँस डाल
दे और दूधमें सात दिन तक रोहिणो फल भिगोए रखे ।
इसके बगलतर सप्त फलको गोना हो पोस कर कोड़के
दाग पर लगावे तो वह दाग दूर हो जायगा ।

पाण्डुश्चर—युष्मद्वैयके कुमाय विभागके अन्तर्गत
गदभात जिलेमें अवस्थित एक पुण्यस्थान । प्रवाद है,
कि पाण्डवोंने यहाँ कठोर व्रतका अचलध्वज किया था,
इसमें इसका नाम पाण्डुकेचर पड़ा है । यहाँ योग-
वदरीके मन्दिरमें विष्णुपूजा होती है । यह विग्रह
मनुष्यको तरह बड़ा और इसका कुक्षि पंख सोनेका बना
हुआ है । कहते हैं, कि यह प्रतिमूर्ति आकाशसे पृथ्वी पर
गिरी थी । योगवदरीके मन्दिरमें राजा अजित मूरदेवकी

एक खोदित मूर्ति पार्श्व में है । उस मूर्तिमें लिखा है, कि
राजा अजित मूरदेवने उत्तरायण संक्रान्तिके दिन मारा-
यणको तीन घाम दाग दिये थे । वह उत्तरायण
संक्रान्ति मान म पहता है, कि २३ ई०की २२वीं
दिमम्बरको पड़ी थी ।

पाण्डुचूमा (स० स्त्री०) इक्ष्वाकुपुरका एक नाम ।

पाण्डुनक्ष (स० पु०) पाण्डुवर्ष स्तनः कर्मधा० । धव-
ल्ल, धोखा पेड़ ।

पाण्डुता (स० स्त्री०) पाण्डु-भावि तल, क्षिया टाप ।

पाण्डुत्व, पोलापन ।

पाण्डुनीय (स० स्त्री०) तोर्यभेद ।

पाण्डुदुक्कन (स० स्त्री०) पाण्डुवर्ष दुक्कन । पाण्डुवर्ष-
दुक्कन ।

पाण्डुनाम (स० पु०) पाण्डुवर्षः नाम इव, वा नाम इव
पाण्डुरिति राजदन्तादिवत् समासः । १ पुनागवृक्ष । २
श्वेतचक्षुः, सफेद रंगका हाथी । ३ श्वेत सर्प, सफेद
रंगका साँप ।

पाण्डुपञ्चाननरस (स० पु०) चोपधविशेष । प्रसुत
प्रणाली—लोह, भस्म और भास्व प्रत्येक एक पत्र ।
त्रिकटु, त्रिकला, दन्तोमल, चर्द, कणजीरा, चोता-
मल, हरिद्रा, दासहरिद्रा, निमोथमूल, मानमूल,
इन्द्रिय, कुटकी, देवदाह, वच, मोघा, प्रत्येक २
तोला कुल जितना हो उससे दूना म'डूर, म'डूरसे ८ गुण
गोमय । पहले गोमयमें म'डूरपाक करे । पाक
विह हो जानी पर लोह और भस्म पादि द्रव्य चमने डाल
दे । यहो पाण्डुपञ्चाननरस है । इसका चतुर्पान
वर्ण लाल बतलाया गया है । सबसे सठ कर इस
चोपधका सेवन करके पाण्डु, हसीमक पादिरोग
जाती रहती है । पाण्डुरोगाधिकारमें यह एक उत्तम
चोपध है । (श्रेयचरितम्—पाण्डुरोगः)

पाण्डुपत्नी (स० स्त्री०) पाण्डुपत्नस्य इति जातित्वात्
कोप । रेणुका नामक मन्त्रद्रव्य । पर्याय—राजपुत्री,
नन्दिनी, कपिला, दिवा, भद्रमगन्धा, कोली, चरणका ।

पाण्डुपुत्र (स० पु०) पाण्डुके पुत्र, पाण्डव ।

पाण्डुपुत्रा (स० स्त्री०) कर्कटिका, ककड़ी ।

पाण्डुप्रहारिणी (स० स्त्री०) शिष्टपुत्रीवृत्तः ।

पाण्डुपृष्ठ (स० त्रि०) पाण्डु पृष्ठ यस्य । १ पाण्डु वर्ण पृष्ठयुक्त, जिसकी पोठ सफेद हो । २ अकर्मण्य, निष्काम ।

पाण्डुफल (स० पु०) पाण्डु नि फलानि यस्य । १ पटोल, परवल । स्त्रियां टाप । २ चिमिंटा ।

पाण्डुफल (स० पु०) परवल ।

पाण्डुभाव (स० पु०) पाण्डुता ।

पाण्डुभूमि (स० त्रि०) पाण्डुभूमिरत्र (कृष्णोदकपाण्डु-सहस्राध्वंशमूर्तेः शिष्यते । पा ५।१।५५) इत्यस्य वात्ति-कोत्तरा चच, समासः । पाण्डुवर्ण भूमियुक्त देग ।

पाण्डुमत्स्य (स० पु०) शुक्लमत्स्य, सफेद मछली ।

पाण्डुमृत्तिका (स० त्रि०) पाण्डुः मृत्तिका यत्र । पाण्डु-वर्ण मृत्तिकायुक्त ।

पाण्डुमृत्तिका (स० स्त्री०) १ श्वेतखरी, खड़िया, दुधिया मट्टी । २ रामरज, पोलो मट्टी ।

पाण्डुमृत् (स० स्त्री०) पाण्डुः पाण्डुवर्णा मृत् मृत्तिका यत्र । १ पाण्डुभूमि । २ घटो, घड़ी ।

पाण्डुमेवास-वन्द्यईप्रदेशके रेवाकान्य विभागके अन्तर्गत २६ तालुकान्योका नाम । परिमाणफल १४७ वर्ग मील है । जनवास सुखकर है । प्रत्येक मध्य धान, ईख और जूतरो प्रधान है ।

पाण्डुर (स० पु०) पाण्डुरस्यास्तीति (वागवाङ् पाण्डु-प्रथम । पा ५।२।१००) इत्यस्य वात्ति-कोत्तरा च । १ श्वेत-पोत मिश्रितवर्ण । २ श्वेतवर्ण, सफेद रंग । ३ कामला रोग । ४ म्रितरोग । ५ मापपणी । ६ भववृक्ष, धोका पेड़ । ७ भववृक्षान्नान्न, सफेद च्वार । ८ कपोत, कबूतर । ९ मनुष्यकण्ठ । १० शुक्ल-खड़ो, सफेद खड़िया । ११ वक, बगना । १२ सितोदपर्वतके पश्चिममें अवस्थित पर्वतमेद । १३ श्वेतकुष्ठ, सफेद कीड़ । १४ कात्ति-वृक्षके एक गणका नाम । (त्रि०) १५ पोखा, जड़ । १६ श्वेत, सफेद ।

पाण्डुरङ्ग (स० पु०) १ पटङ्ग, एक प्रकारका नाग । यह वैद्यकी अनुसार तिल और खटु तथा क्षमि, श्लेष्मा और कफकी नाग करनेवाला माना जाता है । २ विष्णु-का अवतारमेद । इस नामकी विष्णुमूर्ति का कोलापुरके

अन्तर्गत पण्डरी नामक स्थानमें पूजन होता है । इसी मूर्ति के नामसे 'पण्डरी' ग्रामका पाण्डुरङ्ग नाम पड़ा है । स्कन्दपुराणीय पाण्डुरङ्गमाहात्म्यमें इस स्थान की उक्त देवताका माहात्म्य कथित है ।

पाण्डुरङ्ग-१ पञ्चरत्नप्रकाश नामक संस्करणवर्षके रच-यिता । २ 'ग्रन्थैतजलभात' नामक संस्कृत ग्रन्थकार । इनके पिताका नाम नारायण था । किसी काममें है, कि पानन्दतोष विरचित विष्णुतत्त्वनिर्णयको 'विष्णुतापय-निर्णय' नामक जो टीका है, वह इसीकी रचना हुई है ।

पाण्डुरक्तद (स० पु०) रक्तकण्ठ ।

पाण्डुरता (स० स्त्री०) पाण्डुर-भावे तन, टाप । पाण्डुरका भाव वा धर्म ।

पाण्डुरहम (स० पु०) कुटजवृक्ष, सुईका पेड़, कुरैया ।

पाण्डुरपृष्ठ (स० त्रि०) पाण्डुर पृष्ठ यस्य । दुग्धगण्ड्य, पाण्डुर पृष्ठयुक्त, जिसकी पोठ सफेद हो ।

पाण्डुरफली (स० स्त्री०) पाण्डुर फल यस्याः टोप । सुदृढ चपभेद, एक छोटा चप ।

पाण्डुरा (स० स्त्री०) १ मापपणी, मापवन । २ शुक्ल-युष्मिकवृक्ष । ३ कर्कोटिका, ककड़ी ।

पाण्डुराग (स० पु०) दमनक चप, दोनों ।

पाण्डुरागप्रिय (स० पु०) बकुलवृक्ष, मोनसिरोका पेड़ ।

पाण्डुरेच (स० पु०) पाण्डुरः पाण्डुरवर्णः इत्तुः कर्मधा० । श्वेत इत्तु, सफेद ईख ।

पाण्डुरोग (स० पु०) स्वनामख्यात रोग । पाण्डु रोगी ।

पाण्डुलिपि (स० पु०) पाण्डुलेख, लेख प्रादिका वह पत्रका रूप जो काट काट या चटाने बढ़ाने प्रादिके लिये तैयार किया जाय, सघोदा ।

पाण्डुलेख (स० पु०) पाण्डुलिपि, सघोदा ।

पाण्डुलोमश (स० स्त्री०) पाण्डु नि लोमानोव अङ्गाव्य-स्वस्थाः । १ मापपणी, मापवन । (त्रि०) २ पाण्डुवर्ण-लोमयुक्त, जिसके रोए सफेद हों ।

पाण्डुलोमा (स० स्त्री०) पाण्डु नि लोमानोव अङ्गाव्य-स्वस्थाः । १ मापपणी, मापवन । (त्रि०) २ पाण्डुवर्ण-लोमयुक्त, जिसके रोए सफेद हों ।

पाण्डुवा (स० पु०) वह जमीन जिसकी सीटोमें बाज

भी मिला हो, वलुई मरीवालो जमोन, दोमट जमोन ।
पाण्डुशर्करा (स० स्त्री०) पाण्डुः शर्करा इव यस्यां
-रोगावस्थायां । रोगविशेषः एक प्रकारका प्रमेह ।

पाण्डुशर्किला (स० स्त्री०) द्रोणदो ।

पाण्डुमोपाक (स० पु०) प्राचीन कालकी एक-वर्ण-
संकर जाति । इसकी उत्पत्ति मनुके अनुसार वैदेहो-
माता और चण्डाल पितासे है । कहते हैं, कि इस
जातिके लोग चांमको 'चोजी' दोरिया, टोकरा आदि बना
कर अपना निर्वाह करते थे ।

“बगहाला पाण्डुगैपकसवकुवाक्यवहायान् ।”

(भा० १२।१८२६)

पाण्डुसुदनरस (स० पु०) पाण्डुरोगनाशक औषधविशेष ।
प्रसून प्रणाली—गरा, गन्धक, ताम्र, जयपाल और
गुग्गुलुके समान भागकी चीकें साथ मर्दन कर गोली
बनावे । इस गोलीका प्रतिदिन सेवन करनेसे पाण्डुरोग
अतिशीघ्र प्रशमित होता है । इसमें गीतन, जलपान और
आज्जाहार निषेध है ।

पाण्डर (स० पु०) पाण्डुः दिगोऽभिजगोऽस्य तस्य राजा
भा उच्यते । १ पाण्डुदेशवासी । २ पाण्डुदेशके राजा ।
ब्रह्मसंहितामें यह देश दक्षिणको और निर्दिष्ट हुआ
है । (बृ० त्रै० १४ भ०)

पाण्डर दक्षिणात्यके दक्षिणसोमास्थित समुद्रतट-
वर्ती एक प्राचीन राज्य है । यह प्राचीन द्रविड़का
मवं दक्षिण भाग है । वर्तमान तिरुवाङ्कूर और
मद्राजके दक्षिण, कीचीन राज्यके पूर्व तथा यहांके मन्नार
सुपागरके उत्तर जो विस्तीर्ण भूभाग है, वही एक
समय प्राचीन पाण्डरदेश कहा जाता था ।

पाण्डरदेश पति प्राचीनकालसे भारतीय भाषाओंके
निकट परिचित है । पाणिनिकी अष्टाध्यायीमें इस जन-
पदका उल्लेख है । रामायणके समय इस प्रदेशके एक
और केरल और दूसरे और चीन जनपद विस्तृत था ।

रामायणसे जाना जाता है, कि इस प्रदेशमें चित्त-
चन्दनवन द्वारा समाच्छाया और प्रच्छन्नहोषादि-
विशिष्टा ताम्रार्णवदो प्रवाहित थी, पांड्यनगर प्राकार
द्वारा परिवेष्टित था । इसका पुनर्धार सुल्लामणि विभू-
षित और सुवर्णनिर्मित कपाट द्वारा अलङ्कृत था । इनके
बाद ही समुद्र विस्तृत था ।

महाभारतमें लिखा है, “युधिष्ठिरके राजसूययज्ञ-
कालमें चोलराज और पांड्यराज मलयगिरिसे हेमकुम्भ-
प्रमाणित चन्दनरस, दूर्वागिरिसे चन्दनागुमभार, समु-
ज्ज्वल मणिरत्न और सुवर्णवर्णित सुज्ज्वल आदि संग्रह
कर उपस्थित तो हुए थे, पर वे द्वारनाभ कर न सके ।”

“मलयार्दुगैवै च चन्दनागुमभवयान् ।

मणिरत्नानि भास्वन्ति काञ्चनं सुवर्णवस्त्रम् ॥

चोलराज्यवर्षि द्वारे केमते न ह्युपस्थितौ ।”

(महाभारत २।५१।३४-३५)

महाभारतके उक्त वर्णनमें जाना जाता है, कि उस
समय पाण्डरदेशमें कोई भी भाव्य राज राजत्व नहीं
करते थे । यदि ऐसा होता, तो वे कदापि इन्द्रप्रश्नके द्वार
परसे लौट नहीं आते । पर हां, यह स्थान बहुत प्राचीन
कालसे हो किसी सभ्यदिशाको जाति द्वारा ग्रामित होता
था, इसका रामायणसे हम लोगोंकी पता लगता है । किसे
किसी प्राध्यात्य ऐतिहासिकका विश्वास है, कि पुराणमें
जिस द्राविड़ और चोलजातिका उल्लेख है, वही पाण्डर
समझो जाती है । किन्तु पाण्डर और चोल जो स्वतन्त्र
जनपद हैं, वह अपरोक्ष महाभारत और रामायणसे
प्रमाणित होता है । प्राचीन शिलालिपिसे जाना जाता
है, कि चोलदेशकी राजधानी काञ्ची और पाण्डर देशकी
राजधानी मयुरापुरो (मदुरा) किसी समय रामेश्वरमें
थी ।

द्रावी, क्षित्री, झूठाई आदि प्राध्यात्य ऐतिहासिकोंके
वर्णनसे भी प्राचीन पाण्डरराज्यसे सम्बन्धमें कुछ कुछ
जाना जाता है ।

द्रावी और इन्डोमैथिलसे लिखा है, कि (रोमक-
राज) अगस्तस गोजर जिस समय अतिवृद्ध नगरमें
रहते थे, उस समय उनके निकट पाण्डियनराजने दूत
भेजा था । रोमाधिपनिको पाण्डरराजने यह कह
कर पत्र लिखा, कि वे ६०० राजाओंके ऊपर कष्ट त्व
करते और अगस्तसके साथ मित्रता करना चाहते हैं ।
अगस्तसके (Zarmanocheus = छागमर्मा) नामक
भरोच (Baragaza)-यात्री एक व्यक्ति वह पत्र ले कर
गये थे । वे अगस्तसके साथ एथेन्स नगर पहुंचे ।
यहां उन्होंने कल्यान (Calanus)-की तरह रोमक

सम्राट् के सामने चित्तार्थें बैठ कर शरीर परित्याग किया। उनका समाधिस्थान झटके के समय तक 'भारतीय समाधि' नामसे प्रसिद्ध था। मेगास्थनीजने 'पाण्डियन्' (Pandion), पेरिप्लसने पाण्डिमण्डल (Pandimandal) और टलेमोने Pandionis Mediterranea तथा Modura Regia Pandionis नामोंसे इस राज्य का उल्लेख किया है। टलेमिकाथित Modura राज भी 'मदुरा' नामसे प्रसिद्ध है। पेरिप्लसने लिखा है, कि कुमारी (Comari) और कुमारीके निकटवर्त्ती कोलखी (Kol-khi) प्रादि स्थान पाण्डियनराजके अधीन थे। पेरिप्लसके समय मलबार, उपमहासेल का मदुरा और तिरुवेली तकके सभी स्थान पाण्डिराजके अन्तर्गत रहे तथा कोलखी नगर सुका आहरणके लिये प्रसिद्ध था।

उपनिवेश छन्द देखो।

मदुराके समीप नदीगर्भमें रोमकों की अनेक ताम्र-मुद्रा पाई गई हैं। इससे बहुतोंका अनुमान है, कि मदुरामें रोमकोंने उपनिवेश स्थापन किया था।

पूर्वकालमें रोमकोंके साथ पश्चिम-भारतका जो विद्वल वाणिज्य चलता था, उसमें रुन्दे नहीं। पाण्डिराजके मध्य कोलखी एक प्रधान वाणिज्य स्थान समझा जाता था।

पाण्ड जो एक अति प्राचीन राज्य था, उसका प्रमाण सिंहलदेशीय महाकाव्य महावंश नामक ग्रन्थमें भी मिलता है। इस ग्रन्थका प्रथमांश महानाम द्वारा ४५८ से ४७७ ई० के मध्य रचा गया। इस ग्रन्थके अनुसार सिंहल देशके प्रथम राजा विजयने पाण्डिराज-जन्याका पाण्डिग्रहण किया था।

देशीय और विदेशीय प्राचीन ग्रन्थोंमें कई जगह पाण्डिराज्यका उल्लेख रहने पर भी पाण्डिराज्योंका धारावाहिक इतिहास नहीं मिलता। दालिंधाव्यके इतिहास-लेखकोंने कितनी ही प्राख्यायिकाओंसे राजाओंकी जो तालिका दी है उसे ऐतिहासिक नहीं मान सकते। उसकी गिनती प्राख्यायिकाओं की गई। लेकिन उनमेंसे जो ऐतिहासिक सत्य है, उसीकी तालिका यहां दी जाती है:—

१। कुलशेखर, ये चन्द्रवंशीय और मदुराके प्रतिष्ठाता थे।

२। मलयध्वज—चीनराज सुरसेनकी कन्या काशन-सम्भाके साथ इनका विवाह हुआ था। इनके एक भो पुत्र ज्ञ था, केवल तत्कालके नामकी एक कन्या थी।

३। तत्कालके—कहते हैं, कि इनका सुन्दर नामक क्षत्रियों शिवके साथ विवाह हुआ था। किसीका कहना है, कि सिंहलके राजा विजयने, इनको व्याप्त था। ये मोनालो और इनके ज़ामो सुन्दर नामसे राज भी मदुरामें प्रजित हैं।

४। वरपाण्ड (धारधारो)—काकोपुरके चोह-राज सोमशेखरको कन्या काम्तिमतीको इन्होंने व्याप्त था। इस समय पांड्य, चोल और चेर राजाओंके मध्य अच्छा सन्धान था।

५। चौर पांड्य।

६। पश्चिम पांड्य।

७। विक्रम पांड्य—इनके समयमें चोलोंने जैन धर्मका अवलम्बन और मदुरा पर आक्रमण किया था।

८। राजशेखरपांड्य—विद्वान् और दीर्घजीवी थे।

९। कुलोत्तुङ्ग पांड्य।

१०। अनन्तमुण्ड पांड्य—इनके शासनकालमें जैनों ने पुनः मदुरा पर आक्रमण किया।

११। कुलभूषण पांड्य—इनके समयमें चेदिदेश-निवासी एक श्वरने मदुरा पर आक्रमण और प्रविष्ट किया। किन्तु वे सिंहसे मारे गये और राजधानी बहुत के हाथ जाने न पाई। चोलोंने श्वरधन अवलम्बन किया था। पांड्योंके साथ उनका उत्तना सन्धान नहीं था।

१२। राजेन्द्र पांड्य—चोल और पांड्योंके मध्य पर्यन्त सन्धान था। किन्तु जबसे राजसिंहने प्रवृत्तता करके चोलराज-जन्याको व्याप्त था, तबसे दोनोंकी नहीं पटती थी। चोलोंने पांड्यराज्य पर आक्रमण किया, किन्तु वे ही परास्त हुए।

१३। राजेश पांड्य।

१४। राज्यगम्भीर पांड्य।

१५। पार्वत्यगम्भीर पांड्य।

१६। पुनरुत्त पांथ।

१७ पांथव शपताका पांथ।

१८। सुन्दरेश्वर पादशेखर पांथ—इन्होंने अनेक मन्दिर बनवाये। इनके समयमें चोलोंने पांथराज्य पर आक्रमण किया। पांथराजने पराजित हो कर मदुरा नगरमें शरण ली। किन्तु चोलाधिपति दुर्गके एक गढ़में गिर कर पक्षत्वकी प्राप्त हुए और उनको सेना नगरका संशोधन परित्याग कर बापिस चलो गई।

१९। वरगुण पांथ—इन्होंने चोला और तोण्ड-मण्डलको मदुराराज्यभूत किया। विषयात गायक भद्र इन्होंने समयमें वर्त्तमान थे। चोलोंने जब पांथराज्य पर चढ़ाई करना चाहा, तब वरगुणने उन्हें आक्रमण करने परान्त किया और चोलाजदमें मार भगाया। भद्र चेरराजके मित्र भोजी गये और उन्हें वहां बहुत सख्य उपडोकन मिले।

२०। राजराज पांथ।

२१। सुगुण पांथ।

२२। चित्रव्रत पांथ।

२३। चित्रभूषण पांथ।

२४। चित्रध्वज पांथ।

२५। चित्रवर्मा पांथ।

२६। चित्रसेन पांथ।

२७। चित्रविक्रम पांथ।

२८। राजमासण्ड पांथ।

२९। राजचूडामणि पांथ।

३०। राजगार्दूल पांथ।

३१। द्विजराज कुलोत्तुङ्ग पांथ।

३२। आगुध प्रबोव पांथ।

३३। राजकुञ्जर पांथ।

३४। परराज भयङ्कर पांथ।

३५। उद्यसेन पांथ।

३६। महासेन पांथ।

३७। शत्रुघ्न पांथ।

३८। भीमराय पांथ।

३९। भीमपराक्रम पांथ।

४०। प्रतापमासण्ड पांथ।

४१। विक्रमकक्ष पांथ।

४२। युद्धकोनाहल पांथ।

४३। अतुनविक्रम पांथ।

४४। आतुनकीर्ति पांथ।

४५। कीर्ति विभूषण पांथ—इनके शासनकालमें

महाप्रलय उपस्थित हुआ था जिसमें सभी मनुष्य विध्वंस हुए थे। मदुराके यह राजवंश अपनेकी चन्द्रवंशोद्भव वतजाते थे। इसने जाना जाता है, कि मदुरामें कोई नूतन वंश राज्य करते थे और वे अपनेकी मित्रमन पर दृढ़ करनेके लिये पुरातन वंशोद्भव कहा करते थे।

४६। वंशशेखर पांथ—इन्होंने मदुरा नगरको शत्रुके हाथसे बचानेके लिये चारों ओर खाई खुदवाई और दुर्ग निर्माण किये। चोलराज त्रिभुवन पांथराज पर आक्रमण किया, किन्तु पराजित हो कर वे कीट जानीको बाध्य हुए। बाध्यशास्त्रकी सक्तिके लिये इन्होंने तामिल विद्यालयका संस्थापन किया।

४७। वंशचूडामणि पांथ।

४८। प्रतापगुरसेन पांथ।

४९। वंशध्वज पांथ।

५०। विपुमर्दन पांथ।

५१। चोलवंशान्तक पांथ।

५२। चेर-वंशान्तक पांथ।

५३। पांडववंश पांथ।

५४। वंशचूडामणि पांथ।

५५। पांडिखर पांथ।

५६। कुलध्वज पांथ।

५७। वंशविभूषण पांथ।

५८। सीमचूडामणि पांथ।

५९। कुलचूडामणि पांथ।

६०। राजचूडामणि पांथ।

६१। भूपचूडामणि पांथ।

६२। कुलेशपांथ—ये विद्वान् थे, पर चतुर्विध गवित थे।

६३। परिमर्दन पांथ—इनके सुचतुर भन्वो माणिक्यने किसे दीपसे भागत जो नौको तर्कवितर्कमें परास्त किया था। काशिके चोलराजने जो न धर्मका

परित्याग किया। उनके बादियसे चोलनिवासी जैन कोलहूम में पीस डाले गये।

६४। जयन्त्राघ पांड्य।

६५। वीरवाहु पांड्य।

६६। विक्रम पांड्य।

६७। सुरभि पांड्य।

६८। कुटुम पांड्य।

६९। कपूर पांड्य।

७०। कारुण्य पांड्य।

७१। पुरोत्तम पांड्य।

७२। शत्रुशासन पांड्य।

७३। कुल या सुन्दर पाण्ड्य। कुल तामिलभाषामें कूल वा सुन्दरपाण्ड्य नामसे विख्यात हैं। इन्होंने चोलराजको परास्त कर उनकी कन्या धनितेश्वरीका पाणिग्रहण किया और चोलराजमन्त्रीको अपना प्रधान मन्त्री बनाया। पाण्ड्यराजके जैनधर्म अवलम्बन करने पर उनकी स्त्रोने विख्यात शैवपुरोहित ज्ञानसम्बन्धमूर्तिको वुलवाया। इस शैवपुरोहितको शत्रुकन्यासे राजाने जैनधर्मका परिश्रम किया और उस समय जितने जैन थे, सबोंको मरवा डाला। इन्होंने चोलराज्य तत्ता तञ्जौर और उरेशुर नगरको भस्मसात् किया। इनके शासनकालमें मदुरामें शरवदेशीय लोग रहते थे।

७४। वीरपाण्ड्य चोल—इन्होंने चोलदेशमें राज्य करना प्रारम्भ किया। ये पाण्ड्यदेशके प्राचीन राजवंशके शेष राजा थे।

कुल वा सुन्दर पांड्यके सम्बन्धमें ऐतिहासिकोंके मध्य नाना प्रकारके मतभेद हैं, किन्तु इस छोटे प्रश्नमें उनकी विचार करना असम्भव है। लेकिन इस सम्बन्धमें इतना तो अवश्य कहा जा सकता है, कि सुन्दर पांड्य नामक कई एक राजाओंने राज्य किया था और इसका प्रमाण भी मिलता है। राजेन्द्र कुलोत्तुङ्ग चोलके छोटे भाईने अपना नाम सुन्दर पांड्य रखा था। वे ग्यारहवीं शताब्दीके शेष और बारहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें जीवित थे। अमीरखुसरू आदि सुसलमान ऐतिहासिकोंने ऐसा उल्लेख किया है, कि १२११ ई०में मदुरामें सुन्दर पांड्य नामक एक राजा राज्य करते थे।

इनके बन्नावा और भी कितने राजाओंके नाम सुन्दर पांड्य थे, इसमें सन्देह नहीं। मार्कोपोलोने अपने जलयात्रावर्णनके समय जो 'सुन्दरबुन्दि' (Sender Bunti) नामक उल्लेख किया है, उससे सुन्दर पांड्यका ही बोध होता है। चिदम्बरमें श्री खोदित लिपि है उसमें लिखा है, कि राजेन्द्र वा कोप्परदेशीयमार्ति पांड्यराज्य जीतनेके बाद अपने कनिष्ठ भ्राता गङ्ग कोण्डमचोलको वहाँका राजा बनाया, और उनका नाम 'सुन्दर पांड्यचोल' रखा। पांड्यवंशके शेष राजा निःसन्तान थे तथा उनके मरने पर उनके जारज पुत्रोंमें विवाद खड़ा हुआ और जिसने जहाँ सुविधा पाई उसने वहाँ अपना अधिकार जमा लिया।

किन्ती कियो पुरातत्त्वविदका कहना है, कि पांड्यदेशमें कुल ४१ राजा राज्य करते थे जिनको तालिका नोचे दी जाती है। शीतान नामक ग्रन्थके साथ टेनर साहबकी प्रकाशित इस्तलिखित पुस्तककी तालिका मिला कर देखनेके मालूम पड़ता है, कि पहले २४ और अन्तिम राजाका नाम ठोक दिया गया है। किन्तु ११ ४१ राजाओंको तालिकामें कुछ भ्रम रह सकता है। क्योंकि खोदित लिपिमें जो सब नाम पाये गये हैं उनके साथ इस तालिकाके नाम नहीं मिलते।

१। सोमशेखर पांड्य। इस राजपुत्रने पल्लव पांड्यविंदासन पर अधिकार किया, वह ४ वर्ष बादिसम्मत है। इन्होंने २० वर्ष राज्य किया।

२। कपूरसुन्दर पांड्य।

३। कुमारशेखर पांड्य।

४। कुमारसुन्दर पांड्य।

५। सुन्दरराज पाण्ड्य।

६। यण्ण खराज पांड्य।

७। मेरुसुन्दर पांड्य। इस राजाने चोल और चेर राज्यको अपने अधीन कर लिया था।

८। इन्द्रधर्म पांड्य। इन्होंने चोलराजको कारागारसे छुड़ा कर स्वराज्यमें बनाया और उनको कन्यासे विवाह कर लिया।

९। चन्द्रकुलदीप पांड्य।

१०। गीनकेतन पांड्य।

११। मोनध्वज पांडव। इन्होंने चोदराज-कन्याका पाणिग्रहण किया। चोदराजकी कोई सत्त्वानादि न रहनेके कारण इन्होंने छोटे लड़के चोददेगमें राज्य करने मने।

१२। मकरध्वज पांडव। ये दिग्मित्रयो थे।

१३। मातंग्य पांडव।

१४। कुवलयानन्द पांडव। ये समुद्रमें बहुत दूर तक वाणिज्य करते थे और वाणिज्य द्वारा ही इन्होंने प्रचुर धन कमा लिया था। किन्तु देशदुर्योगसे समुद्रमें ही इनके प्राण निकले। इनके एक कन्या थी जिसका विवाह कुण्डल पांडवमें हुआ था।

१५। कुण्डल पाण्डव। इन्होंने मदुराका शासन करनेमें अभिप्रेता प्रकट की।

१६। शत्रुभीकर पाण्डव।

१७। शत्रुसंहार पाण्डव।

१८। वीरवर्म पाण्डव। इन्होंने मलयपालदेश फतह किया।

१९। वीरबाहु पाण्डव।

२०। सुकुटबद्ध पांडव। ये चीनीके भाय युद्धमें मारे गये।

२१। इक्ष्मिण पांडव।

२२। वर्मकुलोत्सु पांडव—इन्होंने चीनीको पराया किया।

२३। भति वीरराम पांडव। इन्होंने चीनीकी सहायतासे पनेक देग जीते थे।

२४। कुलवर्धन पांडव।

२५। सोमशेखर पांडव।

२६। सोमसुन्दर पांडव।

२७। राजाज पांडव।

२८। राजकुम्हार पांडव।

२९। राजशेखर पांडव।

३०। राजवर्म पांडव।

३१। रामवर्म पांडव।

३२। भरतराज पांडव।

३३। कुमारसिंह पांडव।

३४। वीरसेन पांडव।

३५। प्रतापराज पांडव।

३६। वीरगुणराज पांडव।

३७। कुमारचन्द्र पांडव।

३८। वरतुङ पांडव।

३९। चन्द्रशेखर पांडव।

४०। सोमशेखर पांडव।

४१। पराक्रम पांडव—कहते हैं, कि इन्होंने कितने वैदेशिकोंको युद्धमें परास्त कर सिंहासन पर अधि-कार जमाया था। इनके पहले देशमें पराजयता फेली हुई थी। ये सुप्रसन्नमान सेनापति मालिक नायक (मालिक कापुर) द्वारा देशसे निकाल दिये गये।

ऊपर जो ४१ राजाओंकी तालिका दे गई है, वह उतनी भ्रान्तिमूलक प्रतीत नहीं होती। जो कुछ हो, खोदित लिपि और वैदेशिक ग्रन्थकारोंसे पया संग्रह किया जा सकता है, वही देखना चाहिये। सिंहल-देशीय इतिहासमें लिखा है, कि ८४० ई०में पांडवराज-ने सिंहलको राजधानी पर आक्रमण किया, किन्तु प्रचुर शय पा कर वे स्वदेश लौट गये। इसके कुछ दिन बाद पांडवराजपुत्र विद्रोही हुए और सिंहलवासियोंकी सहायतासे मदुरा नगर पर अधिकार जमाया गया उसे अच्छी तरह लूटा भी।

चोदराधिति राजराज (१०२३-१०६४) और राजेन्द्रकुलोत्सुङ्गके (१०६४-१११३) शासनकालमें सिंहलवासियोंके भाय चीनोंका पनेक बार युद्ध हुआ। सिंहलदेशके इतिहासमें पांडवोंका कोई उल्लेख नहीं रहनेके कारण ऐसा अनुमान किया जाता है, कि पांडव-राज्य इस समय सम्पूर्णरूपसे चीनोंके अधीन था। १०६४ ई० पांडवदेशके प्राचीन राजवंशके शेप राजाका शासनकाल है, ऐसा बहुतेरे अनुमान करते हैं। लेकिन यह कहाँ तक सत्य है, कह नहीं सकते। पर ११, विद-स्वरमें जो खोदित लिपि है, उसके पढ़नेसे जाना जाता है, कि चोदराज राजेन्द्रने पांडवदेशके राजा विक्रम-पांडवके पुत्र वीरपांडवको परास्त करके पांडवराज्य अधिकार किया था। इस खोदित लिपिमें राजेन्द्रका नाम 'कीपरकेगरो' लिखा है। राजा राजेन्द्रके सम्बन्ध-में और भी कितनी खोदित लिपियां पांडवराज्यकी शय

सोमा कुमारिका भन्तरीपके निष्ठ एक पुरातन मन्दिर-
में पाई गई हैं। इससे पांड्यराज्य किस प्रकार निस्तेज
हो गया था, यह जाना जाता है। राजेन्द्र चोलके
राजत्वके पहले सिंहालहोपमें तरह तरहका गोलमाल
उपस्थित हुआ। चतुर्थ मिहिन्दु (महेन्द्र) १०२३ ई०-
में सिंहासन पर बैठे। इस समय सिंहालहोपमें वास
करनेके लिये इतने मनुष्य दफ्ते हुए, कि १०३२ ई०में
उन्होंने ही प्रधानता लाभ की और मिहिन्दु भाग जाने-
को बाध्य हुए। इनके २६ वर्ष बाद अर्थात् १०५८ ई०में
चोलोंने राजा मिहिन्दुको कैद कर भारतवर्ष भेज
दिया और सिंहालहोपका शासन करनेके लिये एक
चोलराज-प्रतिनिधिको नियुक्त किया। राजेन्द्रचोलको
मृत्युके बाद १०८१ ई०में सिंहाल-राजपुत्र वीरचोडने
बहुत कष्टसे चोलोंको मार भगाया और अन्तर्देशमें फिरसे
स्वाधीनता स्थापित की। इस समय सिंहालहोपके भिन्न
भिन्न भागोंमें विष्णुमपाण्ड्य, लक्ष्मणांड्य, पराक्रमपांड्य
आदि नामोंके कितने पांड्यराजाओंने राज्य किया।

पाण्ड्यदेशके राजा कुलमेखरने सिंहालधिपति परा-
क्रमवाहुके शत्रुओंको सहायता की थी, इस कारण
पराक्रमवाहुने शत्रुओंका दमन वाके पाण्ड्यराजके
विरुद्ध युद्धयात्रा की और रामेश्वर तथा उसके निकट-
वर्ती स्थान जीन लिये। पांड्यराज सिंहासनच्युत हुए
और उनकी जगह पर उनके पुत्र वीरपांड्य बिठाए
गये। कुलमेखर चोलोंकी सहायतासे पुनः सिंहासन
पानेकी कोशिश करने लगे, किन्तु उनकी मनोरथ पूरा
न हुआ। वे सम्पूर्णरूपसे पराजित हुए और अन्तमें
पालसमर्पण करनेको बाध्य हुए। पराक्रमवाहुने उन
पर दया दर्शाते हुए उन्हें स्वराज्य पर प्रतिष्ठित किया
और चोलराज्यका जो भाग सिंहालवासियोंने जीत लिया
था उसे दिलवा दिया। यह घटना ११०१ वा ११०३
ई०में हुई थी। इसका प्रमाण सिंहालहोपमें दम्बूल
नामक स्थानकी खोजित लिपिसे मिलता है। उस लिपि-
में यह भी लिखा है, कि पराक्रमवाहुने रामेश्वरमें
निःशस्त्रशरका मन्दिर बनवाया और कुछ काल तक
वहीं वास किया।

कुछ वर्ष पहले मद्रास जिलेके तिरुमङ्गल तालुकमें

जो सब खोजित लिपियां पाई गई हैं उनमें लिखा है,
कि कुलमेखर १२०० ई०में पांड्य सिंहासन पर बैठे
और १२१३ ई० तक उन्होंने राज्य किया। पराक्रम-
वाहुका जिस समय शासन आरम्भ हुआ था, वह समय
यदि ठीक हो, तो जो कुलमेखर पराक्रमवाहुसे पराजित
हुए वे इनके उत्तराधिकारी थे, ऐसा अनुमान किया
जाता है।

प्रसिद्ध भ्रमणकारी मार्को पोलोने मद्रासस्थके
सम्बन्धमें जो लिखा है उसे पढ़नेसे जाना जाता है, कि
१२८२ ई०में सुन्दर पांड्यदेव मद्रासमें राज्य करते थे।
सुसलमान इतिहासमें बता वाचक और खुशकूके मतसे
सुन्दरपांड्यका १२८३ ई०में देहावत हुआ।

सत्त दो इतिहासवेत्ताके मतानुसार "कलेशदिवर"
(कुलमेखरदेव) ने ४० वर्षसे ज्यादा दिन तक राज्य
किया और १३१० ई०में वे अपने पुत्र सुन्दरसे मार दिये
गये। पिछड़ता सुन्दरने १३१० ई०में मद्रासके सिंहासन
पर बैठ कर अपने भाई वीरको परास्त किया। वेहि
जब वीरने भी मगारवन्तलको सहायतासे उन्हें पराजय
किया, तब वे जान बूझ कर दिल्लीकी भागे। इस प्रकार
वीरने सिंहासन प्राप्त किया। किन्तु पलायन होन खिलजीके
सेनापति मालिक काफुरने वीरको परास्त कर मद्रासको
अच्छी तरह लूटा। सुन्दरने चरोकना नामक स्थान
सुसलमानोंको छोड़ दिया। इसके अनन्तर नाना
प्रकारका गोलमाल उपस्थित हुआ। चोलराज्य अन्त-
म्राय हो गया और विजयनगर राज्यके समुत्थान तक
देशमें अराजकता फैली रही। इस समय प्राचीन पांड्य
राज्य विपर्यस्त हो गया था, इसमें संदेह नहीं।

पांड्यदेशमें जिन सब सुसलमान राजाओंने राज्य
किया था, उनकी तालिका नीचे दी जाती है।

मालिक नायककापुर	१३१०-१३१६ ई० तक
अलाउद्दीन खाँ	१३१६-१३१८ "
चतुस्रहोद खाँ	१३१८-१३२३ "
(उनके जमाई) कुतबसहोद खाँ	१३२३-१३२० "
नकलसहोद खाँ	१३२७-१३३४ "
सवाद मलिक	}
आहद मलिक	
	१३३४-१३४६ "

फन्दक मल्लिक १३४६-१३५८ ई० तक
१३०२ ई०में कम्पन उदयरने मद्रुराका मिहामन
वसपूर्वक कला किया। (मध्यवर्ती १४ वर्ष का विषय
कुछ भी मालूम नहीं।) काञ्चीपुरमें जो खोदित लिपि
पाई गई है उसमें लिखा है, कि कम्पन उदयर मद्रुराके
निकाटवर्ती किसी स्थानसे सुभलमानके साथ युद्ध करने
प्राये थे। इससे जाना जाता है, कि वे विजयनगरके
राजा तुक्करायसे भेजे गये थे (१३५०-१३७८)। १३७०
ई०के बादसे तथा १६२३ ई० तक खोदित लिपिमें पांडों
का भी विषय लिखा है, वह परस्पर विरुद्ध है। मद्रुरामें
उदयरवंशीय निम्नलिखित तीन राजाओंने राज्य
किया—

पहले कम्पन, दोहे उनके लड़के एम्बन और तब
एम्बनके श्यामका परकाश। १४०४ ई०में परकाश
का राजत्व शेष हुआ। किन्तु काञ्चीपुर और अन्यत्र
स्थानीकी खोदित लिपिमें एक और वंशने मद्रुरामें
राज्य किया था, ऐसा लिखा है। इनके बाद नायकका
प्रथम उल्लेख देखा जाता है।

लक्ष्म नायक } दोशेने मिस कर १४०४-१४५१
मत्तन नायक } ई० तक राज्य किया।

१४५१ ई०में लक्ष्मनायक प्राचीन पाण्ड्यराज-
वंशीय चार राजपुत्रोंकी मद्रुरा लाए। इनमेंसे
जो सर्वप्रथम थे, उनका जन्म पाण्ड्यराजकी ओरस
और किसी नर्त्तकीके गर्भसे हुआ था। वे सभी राजा
हुए और सबोंने मिस कर ४८ वर्ष तक राज्य किया।
इनके नामोंकी तालिका नीचे दी जाती है,—

सुन्दर तोड़ महाविवरनाथ राय }
कल्लोपर सोमनार } १४५१—१४८८
पञ्जाद वेङ्गमल }
सुत्तरस तिरुमले मद्रा विरवनाथ राय :

इस समय विजयनगरके राजगण सहाप्रताप-
गोत्री हो उठे थे। उन्होंने पाण्ड्य और चीनराज्य पर
अधिकार जमा लिया था। १४८८ ई०में नायकवंशीय
एक राजाने पा कर सिंहासन पर अधिकार जमाया।
नायकवंशमें निम्नलिखित कुछ राजाओंने राज्य किया,—

नरस नायक	१४८८—१५००।
तेथ नायक	१५००—१५१५।
नरस पिळै	१५१५—१५१८।

(नरस पिळै किस प्रकार राजा हुए, मालूम नहीं।
१५१५ और १५१६ ई०की जो सब खोदित लिपियाँ पाई
गई हैं, उनमें नरसपिळै विजयनगरके राजा विख्यात
छायदेवरायके श्रूय थे, ऐसा लिखा है।)

कुक्कुळ तिम्य नायकन्	१५१८-१५२४।
कच्चियम कामेय नायकन्	१५२४-१५२६।
चिम्प नायकन्	१५२६-१५३०।
पय्यकारे वेय्य नायकन्	१५३०-१५३५।
विश्वनाथ नायकन् अय्यर	१५३५-१५४४।
वरदय्य नायकन्	१५४४-१५४५।
दुम्बिळ नायकन्	१५४५-१५४६।
विश्वनाथ नायकन्	१५४६-१५४७।
विठ्ठलराज	१५४७-१५५८।

इनके भत्तावा तीन और नायकवंशीय राजाओंने
राज्य किया। बाद पांड्यवंशीय एक राजा हुए थे जिन-
को तञ्जौरके राजाने राज्यसे निष्काश दिया था। दोहे
विजयनगरके सेनापति विजयोने तञ्जौरराजकी पराभूत
किया। विजयनगरके सेनापतिके पुत्रने पिताकी परा-
जित करके सिंहासनको भगनाया। इनका नाम था
विश्वनाथ नायक।

इन नायकवंशीय राजाओंके समसामयिक कितने
ही पांड्यराजोंके नाम पाये जाते हैं। इससे जाना
जाता है, कि पांड्यवंशीय या तो यद्यार्थमें देगके
राजा थे या पांड्यदेगके दक्षिण भागमें राज्य करते थे
और मद्रुरा तथा उसके निकटवर्ती स्थान नायकोंके
पक्षीन था। बहुतोंका यह भी अनुमान है, कि इस
समय पांड्यवंशीय लोग जीवितमात्र थे, राज्यके मध्य
उनका किसी प्रकारका प्रभुत्व न था। जो कुछ हो, नीचे
पांड्यराजोंका विषय लिखा जाता है। पराक्रम
पांड्यने १५६५ ई०से राज्य करना आरम्भ किया।
दक्षिण विशाखाके पन्नागत कोटार नामक स्थानसे
प्राप्त खोदित लिपि उनके ५५ वर्ष (१६०० ई०)में
लक्ष्योण हुई। इस समयके सुसलमान-इतिहासमें
लिखा है, कि बांझनोवंशीय मुजाहिद गाहने १६०४

ई०में विजयनगर और कमारिका अन्तर्गणके मध्यवर्ती स्थान लूटा ।

रामनादको निकटवर्ती तिरुत्तरकोशमङ्ग, नामक स्थानमें जो खोदित लिपि पाई गई है, उससे १३०४ से लेकर १४३१ ई०के मध्यवर्ती समयका कुछ इतिहास मिलता है । इस खोदित लिपिके अनुसार वीर पांड्य १३८३ ई०में और कुलशेखर १४०२ ई०में राज्य करते थे ।

पोदन पेरुमन्न पराक्रम पांडियन् १४५१ ई०से राज्य करने लगे थे । प्रवाद है, कि पोदनके पहले उनको पिना काशीरुण्डपराक्रम पांडियन् राज्य करते थे ।

वीरपांड्य का शासनकाल १४३० ई०से आरम्भ हुआ । एक खोदित लिपिसे जाना जाता है, कि १४८० ई०में भी वीरपांड्य नामक एक राजा राज्य करते थे ।

पराक्रम पांड्य १५१६ ई०में राजा हुए । उन्होंने कब तक राज्य किया, मालूम नहीं । पीछे बल्लभदेव या अतिवीरराम १५६५ ई०में राजा हुए । तेन्नायोमें वल्लभदेवकी जो खोदित लिपि है उसमें १५६२ ई०से इनका राज्याश्रय लिखा है । तञ्जोर जिलेके एक मठमें जो खोदित लिपि है उसमें लिखा है, कि अतिवीररामका १६१० ई०में देहान्त हुआ । इनके बाद सुन्दर पांड्य राजा हुए । ये अत्यन्त विद्योत्साही थे और इनकी रचित कविता आज भी बहुत आदरसे पढ़ी जाती है ।

ऊपर जो विवरण दिया गया है, उसके विरुद्ध मत-प्रकाशक कितनी खोदित लिपि भी देखी जाती है । किरिवल्लु-वन्दनम्पूर नामक स्थानमें जो खोदित लिपि है उसमें, वरतुङ्ग, राम, वीरपांड्य यथाक्रम १५०८, १५८५, १५८८ ई०में राज्य करते थे, ऐसा लिखा है । इसके बाद सुन्दर पांड्यने १६१०से १६२३ ई० तक राज्य किया । मडुर और रामनाद देखो ।

पाण्ड्यवाट (स० पु०) पाण्ड्यस्थित सुल्लाका आकार-भेद ।

पाण्ड्य—वराकरसे ८ मील पश्चिम और चैण्डेड्ड रोडसे छेड़ मील उत्तरमें अवस्थित एक गण्डग्राम । मानभूम जिलेके राजा यहां रहते हैं । यहां बहुतसे प्राचीन

मन्दिर देखे जाते हैं । पूर्वकालमें यह एक प्रधान स्थान था । एक मन्दिरने जोष्य संस्कारके समय एक खोदित लिपि पाई गई थी । प्रवाद है, कि पाण्ड्योंने यह मन्दिर बनवाया था और उन्हींके नाम पर पाण्ड्य नामको उत्पत्ति हुई है ।

पाण्ड्यधन—काश्मोरके अन्तर्गत एक पुरातन ग्राम । यहां जो मन्दिर है, वह काश्मोरो स्थान्य और गिन्ना-नेपुल्लाका एक उज्ज्वल दृष्टान्त है । यह मन्दिर एक मुश्किलोके मध्य अवस्थित है । मन्दिरमें तेर कर या नाव द्वारा जाना होता है । पहले यह मन्दिर तिम-जिला था, लेकिन अभी ऊपरी भाग गिर पड़ा है ।

पाय्य (स० त्रि०) पण्य व्यवहारसुचोः ख्यत् । सुच, प्रयत्ना करनी योग्य ।

पाय्यास्थ (स० पु०) पाण्ड्यस्थ आस्थं यस्य । ब्राह्मण ।

पात (स० पु०) पत-घञ् । १ पतन, गिरनेकी क्रिया या भाव । पातयति चन्द्रधर्षणं छादयतीति पत-णिच्-अच् । २ राहु । ३ खगोलमें वह स्थान जहां नक्षत्रोंकी कक्षाएँ क्षान्तिवृत्तकी काट कर ऊपर चढ़ती या नीचे आती हैं । यह स्थान बराबर बदलता रहता है और इनकी गति वक्र अर्थात् पूर्वसे पश्चिमकी है । इस स्थानका अधिकृता देवता राहु है । ४ गिरनेकी क्रिया या भाव । जैसे, चतुर्पात, रत्नपात । ५ टूट कर गिरनेकी क्रिया या भाव । जैसे, उल्लापात, दूधपात । ६ नाग, ध्वज, ज्योति, जैसे, देहपात । ७ पड़ना या जा लगना । जैसे, दृष्टिपात, भूसिपात । (त्रि०) ८ त्राता, बचानेवाला । ९ पतनकत्ति, गिरानेवाला ।

पात (द्वि० पु०) १ कानमें पहननेका एक गहना, पत्ता । २ चायनी, क्रिचाम, पत । ३ कवि । ४ पत्र, पत्ता ।

पातक (स० क्ल०) पातयति अधोगमयति दुःकृतिश-कारिणामिति, पत-णिच्-खुन् । नरकवाचनं पापं, वह कर्म जिसके करनेसे नरक जाना पड़े । पर्याय—अधम, दुष्कृत, दुरित, पाप, एनश्, पापान्, किल्बिषः, कलुष, किल्ब, कल्मष, वृजिन, तमस, अंशु, कल्का, अध, पद ।

प्रायश्चित्तविवेकके मतानुसार पातकको ८ भेद हैं यथा—१ अतिपातक, २ महापातक, ३ अनुपातक,

४ उपवीतक, ५ सङ्घरीकरण, ६ पपातिकरण, ७ जाति-
भ्रंशकर, ८ मलावह और ९ प्रकीर्णक ।

इन सब पापोंका विवरण तत्त्व शब्दमें देखो ।

काग और वायानग्रहगत दश प्रकारके पाप हैं, यथा—
पदत्तका उपादान, अथै धदि वा, परदारगमन, ये तीन
कायिक पातक ; पाण्ड्य, पशव्य, पैश्व्य और असम्बन्ध
प्रभाव ये चार वाङ्मय पातक और दूसरेके द्रव्य पर अभि-
ध्यान, मन ही मन अनिष्ट चिन्ता और मिथ्याभिनवेश
ये तीन मानसिक पातक हैं ।

पातकका विवरण पाप शब्दमें देखो ।

पातकिञ्च (स० त्रि०) पातकोऽस्यास्तीति इति । पातक-
युक्त, पापी, कुकर्मी, बदकार ।

पातकुलम्दा—मध्यप्रदेशके भन्तगंत शम्भलपुर जिलेकी
एक प्राचीन जमीर । यह शम्भलपुर नगरसे ६५ मील
दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है । यहांके अधिवासिगण
क्षयिकायं करते जोविका-निर्वाह करते हैं और सरदार
गोन्द्वशीय हैं । इन्होंने १८५८ ई०के गठरमें विद्रोहियों-
का नाश दिया था । किन्तु ब्रिटिश-गवर्नरने यह अप-
राध पीछे माफ कर दिया ।

पातकोट—मन्दाजप्रदेशके कन्नूल जिलान्तर्गत एक ग्राम
यह नन्दिकोटकरसे १० मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित
है । यहांके तीन मन्दिरोंमें तीन खोदित लिपि देखी
जाती हैं ।

पातगुण्डा—मन्दाजप्रदेशका एक ग्राम । यह रावपुरसे ८
मील दक्षिण-पूर्वमें पड़ता है । यहां एक खोदित
लिपि है ।

पातघावरा (हि० वि०) वह मनुष्य जो घटके खट्कने
पर भी बड़हा जाय, बहुत अधिक डरपोक ।

पातज्ञ (स० पु०) पतङ्गस्य सूत्रस्थापत्य इज् (अत-
१५ । ग ४।१।१५) १ मने सर । २ यम । ३ कर्ष । ४
वैषम्यत मुनि । ५ सुधीव ।

पातञ्जल (स० क्री०) पतञ्जलिना स्नानामविश्रुतमह-
विष्णा प्रणीतं प्रोक्तं वा शब्द । १ पाणिनिपुत्र और
उसका याति कथ्याख्यानरूप ग्रन्थ । वरप्रति देखो ।

२ पतञ्जलिसुनिप्रणीत पादचतुष्टयात्मक योगकाण्ड-
निरूपक दर्शन शास्त्रविशेष । (पहले इन दर्शनशास्त्रका

परिचय दे कर भूमिमें पतञ्जलि और पातञ्जलदर्शनका
जम्भितिकाल लिखा जायगा ।)

भगवान् पतञ्जलिसुनिसे प्रणीत होनेके कारण इस
दर्शनका नाम पातञ्जलदर्शन पड़ा है और इसमें योग-
वा विषय विशेषरूपसे निर्दिष्ट रहनेके कारण यह योग-
शास्त्र नामसे भी प्रसिद्ध है ; पदार्थनिर्णयविषयमें
सांख्यदर्शनके साथ एकमत है, इसीसे इसको 'सांख्य-
प्रवचन' भी कहते हैं ।

पातञ्जलदर्शनका मुख्य विषय ।

सांख्यमतप्रवर्तक महर्षि कपिलने जिस प्रकार प्रकृति
और महत्तत्त्व आदि पचौध तत्त्वोंकी स्वीकार किया है,
उसी प्रकार पतञ्जलिके मतानुसार भी वही पचौध तत्त्व
हैं । कपिल जीवातिरिक्त सब नियन्ता, सब व्यापक, सब
शलिमान् जोकातोत परमेश्वरकी सत्ता स्वीकार नहीं
करते, पर भगवान् पतञ्जलिके युक्तिप्रदर्शन-पूर्वक
ईश्वरकी सत्ता प्रतिपादन की है । इसीसे कपिलदर्शन
को कोई कोई निरोधर सांख्य और पातञ्जलदर्शनकी
सेखर सांख्य कहा करते हैं ।

सांख्यदर्शनका विषय सांख्यदर्शनमें देखो ।

पातञ्जलदर्शन चार पादोंमें विभक्त है । प्रथमे प्रथम
पादमें योगशास्त्र करनेकी प्रतिज्ञा, योगके लक्षण, योगके
पञ्चाधारण उपाय स्वरूप जो अभ्यास और वैराग्य हैं,
उनका स्वरूप और भेद, सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात भेद-
में समाधिभिभाग, सविस्तार योगोपाय, ईश्वरका स्वरूप
और प्रमाण, उनकी उपासना और तत्फल, चित्तविशेष,
दुःखादि, विक्षतवैषेय और दुःखादिका निराकरणोपाय
तथा समाधिप्रभेद आदि विषय प्रदर्शित हुए हैं ।
द्वितीय पादमें क्रियायोग, क्लेशका निर्देश, स्वरूप, कारण
और फल, कर्मका प्रभेद, कारण, स्वरूप और फल,
विपाकका कारण और स्वरूप, तत्त्वज्ञानरूप विधेक-
स्थानिका धन्तरह और वहिरहभेदके कारण जो यम-
नियमादि हैं, उनका स्वरूप और फल तथा प्रासनदि-
का लक्षण, कारण और फल; तृतीय पादमें योगके अन्त-
रहस्वरूप जो धारणा, ध्यान और समाधि हैं, उनका
स्वरूप, परिणाम और प्रभेद तथा विभूतिपदवाच्यकी
मिद्धि और चतुर्थ पादमें सिद्धिपक्ष, विज्ञानवाद

निराकरण, साकारवाद संस्थापन और केवल्य प्रदयित हुआ है। ये चारों वाद यथाक्रम योगपाद, साधनपाद, विभूतिपाद और केवल्यपाद नामसे पुकारे जाते हैं।

महर्षि पतञ्जलिने छब्बोस तत्त्व स्वीकार किये हैं। इन छब्बोस तत्त्वोंमें सभी पदार्थ अन्तर्भूत हुए हैं। इनकी सिया और पदार्थ नहीं हैं। बोबोस तत्त्व और पुरुष ये पचोस तत्त्व सांख्यदर्शनमें विशेषरूपसे दिखलाये गये हैं। इन सब तरंगोंका विषय सांख्यदर्शन शब्दमें देखो। पतञ्जलिने मतसे छब्बोसवां तत्त्व परमेश्वर है।

योगका लक्षण।

मनकी वृत्तियोंको रोकनेका नाम योग है। योग शब्दके अनेक अर्थ रहने पर भी यहां चित्तवृत्तिके निरोधको अर्थात् विषयसुखसे प्रवृत्तचित्तको रोकने और ध्येय वस्तुमें स्थापित कर तन्मात्रके ध्यानविशेषको योग कहते हैं। अन्तःकरणका नाम चित्त है। योगियोंके मतसे मनोवृत्ति अस्थिर होने पर भी उनके अवस्था-विभाग अनेक नहीं हैं।

चित्तका भेद और लक्षण।

चित्त, मूढ़, विचित्र, एकाग्र और निरुद्धके भेदसे चित्तको अवस्था पांच प्रकारकी है। मनुष्यके कितने ही प्रकारकी मनोवृत्तिवा क्यों न हो, वे इन्हीं पांचके अन्तर्गत हैं।

रजोगुणका उद्रेक होनेसे जिस अवस्थामें चित्त अस्थिर हो कर सुखदुःखादिजनक विषयमें प्रवृत्त होता है अर्थात् जिस अवस्थामें मन स्थिर नहीं रहता, एक विषयमें निविष्ट नहीं होता, यह ही, वह ही कह कर सर्वदा अस्थिर रह जाँकको तरह एक आधार छोड़ कर दूसरा और दूसरा छोड़ कर तीसरा पकड़नेमें स्थितिस्थिर रहता है, वही चित्तकी विज्ञावस्था है।

जब मन कर्तव्याकर्तव्यको भ्रमाद्य करके काम-क्रोधादिके बगोभूत तथा मित्रा और तन्त्राके अधीन होता है—पालस्यादि विविध तमोमय वा अज्ञानमय अवस्थामें निमग्न रहता है, तब उसे मूढ़ावस्था कहते हैं। तमोगुणकी उद्भ्रान्तानिबन्धन कर्तव्याकर्तव्य विचारमें मूढ़ हो कर क्रोधादिब्रमता चित्तका सर्वदा निरुद्ध कार्यमें प्रवृत्त होना ही मूढ़ावस्था है।

विचित्रावस्थाके साथ पूर्वोक्त विज्ञावस्थाका बहुत ही कम प्रभेद है। यह प्रभेद यह है, कि चित्तके पूर्वोक्त प्रकार चक्षुष्यके मध्य क्षणिक स्थिरता है। मनका स्वभाव चञ्चल होने पर भी बीच-बीचमें यह स्थिर हो जाता है, उस प्रकार स्थिर होनेका नाम ही विचित्र है। चित्त जब दुःखजनक विषयका परित्याग कर सुखजनक वस्तुमें स्थिर होता है, चिन्तामय चक्षुष्यका परित्याग कर चक्षुष्यको लिये अक्षतध्वनगुण्य सरीखा हो जाता है वा केवलमात्र सुखाद्यादिमें निमग्न रहता है, तब उसका विचित्रावस्था कहते हैं।

एकाग्र और एकतान ये दो शब्द एक ही अर्थमें प्रयुक्त होते हैं। चित्त जब किसी एक वास्तु वस्तु पर या आभ्यन्तरीय वस्तुका अवलम्बन कर निर्विशेष निष्कल निष्कम्प दीर्घगुणाकी तरह स्थिर वा अविकम्पित भावमें वर्तमान रहता है अथवा चित्तको राजसमो-वृत्तिके अभिभूत हो जानेसे केवलमात्र सात्त्विकवृत्तिका उदय होता है, तब एकाग्र अवस्था हुई है, ऐसा जानना होगा।

एकाग्र अवस्थाके साथ निरुद्धावस्थाके अनेक प्रभेद हैं। एकाग्र अवस्थामें चित्तका कोई न कोई अवलम्बन अवश्य रहता है, पर निरुद्धावस्थामें यह नहीं रहता। उस समय चित्त अपने कारणोभूत प्रवृत्तियों को प्राप्त कर कृतकार्यको तरह निर्विघ्न रहता है—दुःख-सुखको तरह केवलमात्र संस्कारभावात्मक हो कर रहता है। सुतां उस समय उसका किसी भी प्रकार विरहण परिणाम नहीं रहता। ऐसी अवस्थाका नाम निरुद्धावस्था है। इन पांच प्रकारकी चित्तवृत्तियोंमें प्रथमोक्त तीन अवस्थाके साथ योगका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। योगसे सुख होता है, यह जान कर विचित्र चित्तमें कभी योगमग्न हो भी सकता है, पर वह स्थायी नहीं होता। इस कारण पूर्वोक्त तीन अवस्था योगकी उपयोगी नहीं हैं। एकाग्र और निरुद्ध इन दो अवस्थामें योग होता है। इन दोनोंमें निरुद्ध अवस्था ही एकमात्र श्रेष्ठ है। यह निरुद्ध अवस्था सदाशिव बोधगम्य होनेकी नहीं। यह अवस्था पाँचके लिये योगीको पहले उपाय द्वारा चित्तको चित्त, मूढ़ और

विविध व्यवस्था दूर करनी होती है। जब निरुद्ध व्यवस्था का चरम होता है, तब मुख्य दृष्टव्यरूपमें व्यवस्थान करते हैं। उस समय और किसी प्रकार का चिन्तका धर्म नहीं रहता। यही व्यवस्था योगीका चरम उद्देश्य है। इस समय चित्त भी कोई व्यवस्था हो नहीं रहती।

विविधता।

चित्तकी व्यवस्थाविशेषको चित्तवृत्ति कहते हैं। यह चित्तवृत्ति पाँच प्रकारकी है जिनमेंसे फिर प्रत्येकके दो भेद हैं, क्लिष्ट और अक्लृष्ट। क्लेमादावृत्त होनेके कारण क्लिष्ट और ज्ञेय (संसारदुःख) नामक होनेके कारण अक्लृष्ट नाम पड़ा है। विषयके साथ सम्पर्क होने की वृत्ति जिस विषयाकारको प्राप्त होता है, उसके उस विषयाकारप्राप्ति होने का नाम ही वृत्ति है। दिव्य इन्द्रिय और बहिःस्थ विषय इन दोनोंके सम्बन्ध-वशतः मनकी विविध व्यवस्था वा परिणाम होते हैं। इन सब मन्-परिणामका नाम ही वृत्ति है और इसकी हम लोग ज्ञान कहते हैं। विषय अनख्य है, सुतारा वृत्ति भी असंख्य है। वृत्ति प्रसंख्य होने पर भी उसकी व्यंजनी वा प्रकारगत विभाग प्रसंख्य नहीं है। यह क्लिष्ट और अक्लृष्ट इन दो भागोंमें विभक्त हो जा सकते हैं। राग, द्वेष, काम, क्रोध आदि वृत्तिशरीर ज्ञेय अर्थात् संसारी दुःखको कारण हैं, इस हेतु उन्हें क्लिष्ट और अक्लृष्ट, भक्ति, कल्याण आदि वृत्तिशरीर ज्ञेयकी विपरीत अर्थात् दुःख निवृत्तिरूप मोक्षको कारण हैं अतः उन्हें अक्लृष्ट कहते हैं। विलुप्त वृत्तिशरीर ज्ञेय और अक्लृष्ट वृत्तिशरीर अर्थात् देव हैं। योगके समय इन क्लिष्ट और अक्लृष्ट सभी प्रकारकी वृत्तियाँ रोकनी होती हैं।

जिन पाँच प्रकारकी चित्तवृत्तिशरीरों का नाम शब्द, रस, स्पर्श, रस, विषय, विकल्प, निद्रा और स्मृतिवृत्ति। इनमेंसे प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम ये तीन प्रकारकी प्रमाणवृत्ति हैं। प्रमाण देखो।

मिथ्या-ज्ञान या भ्रमज्ञानको विपर्यय कहते हैं। जो ज्ञान विषयद्वयके बाद अभ्यन्तर हो जाता है, उस ज्ञानका नाम विपर्यय है। जैसे—रज्जु सर्प, शृङ्ग-रजत या महामतेचिका प्रवृत्ति। वस्तु नहीं है अथवा शब्दजन्य एक प्रकारकी मनोवृत्ति उत्पन्न होती है, ऐसी

मनोवृत्तिका नाम विपर्यय है। इसका दृष्टान्त आकाश-कुसुम है। आकाशकुसुम नहीं है, अथवा यह सुनते ही मनमें एक प्रकारकी वृत्ति उत्पन्न होती है। जिसमें सभी मनोवृत्तिशरीर चीन रहती हैं, उन अज्ञानका भ्रमसम्बन्ध कर जब मनोवृत्ति उदित रहती है, तब उसे निद्रा कहते हैं। वस्तुसे एक बार अनुभूत अर्थानुप्रमाणवृत्तिमें आरुद्ध होनेसे वह फिर नहीं आती—संस्काररूपमें प्रतिष्ठित रहती है, उसीको स्मृति कहते हैं। तात्पर्य यह कि आश्रय व्यवस्थामें जो देखा और सुना जाता है, वृत्तिमें उसका संस्कार भाव्य होता है। उद्योगिक उपस्थित होने पर वह संस्कार वा शक्तिविशेष प्रवृत्त हो कर चित्तमें उस पूर्वानुभूत वस्तुका स्वरूप पुनर्दित कर देता है। इसीका नाम स्मृति है।

अभ्यास और वैराग्य।

अभ्यास और वैराग्य द्वारा उक्त सभी प्रकारकी वृत्तिशरीरों का निरोध होता है। जिससे राजस और तामस-वृत्तिका उदय न हो ऐसे यत्नविशेषको अभ्यास कहते हैं। अभ्यासका संप्रतिक्षण यह है, कि विषयाभिनिवेशका त्याग कर चित्तको यत्नपूर्वक बार बार एकाग्र करना और उसके पूर्वसाधक यमनियमादि योगाङ्गों का अनुष्ठान करना। जिस प्रकार यज्ञ द्वारा चित्तको एकाग्रता प्रतिष्ठित होती है, उसी प्रकार यज्ञ और तद्रूप अनुष्ठान करनेका नाम अभ्यास है। इस अभ्यासकी दीर्घकाल तक यदि यत्नपूर्वक कर सके, तो क्रमशः दृढ़ वा अविवर्धित हो जाता है। दृढ़ विषय और प्राज्ञ-प्रतिपाद्य विषय युगपत् उभय विषयोंमें ही सम्पूर्ण-रूपसे निरुद्ध होनेसे वशीकार नामका वैराग्य उत्पन्न होता है। ऐहिक और पारलौकिक सुखभोगेच्छाका परित्याग करनेसे क्रमशः विलुप्त वैराग्य होता है। अनेक चेष्टा करने पर वैराग्य उपस्थित होता है। उसके बाद अर्थात् उस प्रकारके परवैराग्यके उत्पन्न होने पर ही भावसे आप मुख्यवृत्ति वा प्रकृतिपुरुषका पार्थक्यज्ञान (साक्षात्कार) होता है। उस समय उससे गुण अर्थात् प्रकृतिके प्रति भी विलक्षण उत्पन्न होती है। प्राकृतिक ऐश्वर्य उस समय उसे और प्रतीकित कर नहीं सकता। सुतारां से निर्विघ्ने निरोधसमाधिका आश्रय करके कात्यायनापात करनेमें समर्थ होने है।

समाधि ।

समाधि सम्प्रज्ञात और पञ्चमज्ञात भेदसे दो प्रकारकी है । वितर्क, विचार, आनन्द और श्रमिता इन चार प्रकारोंको सबस्था या प्रभेदके रहनेके कारण सम्प्रज्ञात समाधि पुनः चार भागोंमें विभक्त हुई है । भाव्य-पदार्थके विषयतः ज्ञान रहता है, इस कारण प्रथमोक्त समाधिका नाम सम्प्रज्ञात और किसी प्रकारकी वृत्ति वा ज्ञान नहीं रहनेके कारण शेषोक्त समाधिका नाम अप्रमज्ञात है । समाधि देखो ।

अप्रमज्ञात समाधि ही निर्बीज समाधि है, सम्प्रज्ञात वही नहीं है । सम्प्रज्ञात समाधि भी दो प्रकारकी है, विदेह-लय और प्रकृति-लय । जो सुसुप्त है, वे इसकी किसी प्रकार भी इच्छा नहीं करते । जो विदेहलय और प्रकृतिलय नहीं हैं, अर्थात् जो कौशल्याभिलाषी हैं, उनके क्रमशः व्यङ्गा, वीर्य, स्मृति, प्रज्ञा और समाधि उत्पन्न होती है । प्रथमतः योगिके प्रति आत्मतत्त्व, साक्षात्कारके प्रति व्यङ्गा, पौष्टि वीर्य, वीर्यके बाद स्मृति, स्मृतिके बाद एकाग्रता, एकाग्रताके बाद तद्विषयक प्रज्ञा और प्रज्ञालाभके बाद ही उनके उत्कृष्टतम समाधि उत्पन्न होती है, उसीसे वे प्रकृतिनिःसृजता वा कौशल्यालाभ करते हैं । कार्यप्रवृत्तिके मूलोद्भूत संस्कारविशेषका नाम सम्बन्ध है । यह सम्बन्ध जिनका तीव्र है, उन्हें शोष ही समाधि लाभ होती है । महर्षि पतञ्जलिने समाधिलाभका एक सुगम उपाय निर्धारण किया है । वह उपाय है एकमात्र ईश्वरोपासना ।

ईश्वर और ईश्वरोपासना ।

ईश्वरोपासना करनेमें कायिक, वाचिक और मानसिक सभी व्यापार ईश्वरके अधीन हैं, ऐसा समझो । जब जो कार्य करे, फलके प्रति दृष्टि न रखे और सुखको अनुसन्धान किये बिना सभी कार्य उस परमगुरु परमेश्वर पर सौंप दे । सभी समय केवल ईश्वरका ध्यान करे । भ्रकपट और पुलकित हो कर इस प्रकार अनवरत करनेसे ईश्वरोपासना सिद्ध होगी । उस समय यह ज्ञानना चाहिये, कि अभिलषित सिद्धिमें और अधिक

विसम्ब नहीं है । ईश्वर क्या है ? जय-तक इसका कुछ बोध नहीं होगा, तब तक उनके प्रति विशिष्ट भाव होनेकी सम्भावना नहीं है । इसीसे भगवान् पतञ्जलिने ईश्वरका लक्षण इस प्रकार निर्देश किया है,—अज्ञेय, कर्म, विपाक और प्राप्य जिन्हें, स्वयं नहीं कर सकता, निश्चित संसारी आत्मा और सुतात्माओं को पृथक् वा स्वतन्त्र हैं, वे ही ईश्वर हैं । ईश्वर देखो ।

ये परमेश्वर नित्य, निरतिशय, समाधि और धनन्त हैं । उनमें निरतिशय ज्ञान रहनेके कारण वे सर्वज्ञ हैं अर्थात् उनमें सर्वज्ञताका अनुमापन परिपूर्ण ज्ञानशक्ति विद्यमान है, अन्य आत्माओं में वह नहीं है । जिस प्रकार अल्पताका चूहान्त दृष्टान्त परमाणु और वृहत्त्वको गैर सीमा आकाश है, उसी प्रकार ज्ञानशक्तिकी अल्पताकी पराकाष्ठा सुदृजोव और उसके भातिग्रयकी पराकाष्ठा ईश्वर है । वे पूर्व पूर्व सृष्टिकर्ताओंके भी गुरु अर्थात् उपदेष्टा हैं । किसी कालके द्वारा वे पश्चिन्न नहीं हैं, सभी कालोंमें उनको विद्यमानता है । उनके वाचक शब्द प्रणव है, उस प्रणव मन्त्रका लय और उसके अर्थका ध्यान करना ही उनकी उपासना है । सर्वदा प्रणवजप और प्रणवार्थ ध्यान करते करते चित्त जब निमल हो जाता है, तब उस प्रत्यक्ष चेतन्यका ज्ञान अर्थात् शरीरान्तर्गत आत्मसम्बन्धोप यथायं ध्यान उत्पन्न होता है । बाद और कोई भी विघ्न नहीं रहता तथा निर्भिन्नसे समाधि लाभ होती है ।

समाधिका विघ्न ।

अयोगी सबस्था (विषयभोगवस्था) में यथायं आत्मज्ञान और समाधिलाभ नहीं होनेका जो कारण है उसका नाम विघ्न है । विघ्न भनेक है, किन्तु प्रधान विघ्न ये ही हैं—व्याधि, स्त्रय न, संशय, प्रमाद, पालस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अनन्य-भूमिकत्व और अनवस्थितत्व । धातुवैषम्य, निमित्त-ज्वरादिकी व्याधि, अकर्मण्यताकी स्त्यान, योग किया जाय वा नहीं इत्यादि सन्देहकी संशय, अनवधानताकी प्रमाद, योगसाधनमें औदासीन्यकी पालस्य, योगमें प्रवृत्तिके अभावके हेतुद्भूत चित्तके सुहृत्त्वकी अविरति, योगज्ञ भ्रान्तिकी भ्रान्तिदर्शन, समाधि भूमिकी अपाधिकी

अनन्यभूमिकत्व और समाधिमें चित्तके अस्वैर्य की अन-
वस्थितत्व कहते हैं। रजोग्रन्थ अस्थिरता वा चञ्चलचित्ता
योग वा समाधिका प्रबल विघ्न है। चित्त स्थिर नहीं
होने के और भी बितने कारण हैं। दुःख, दोष नश्य,
अज्ञकथन, श्वाभ, प्रशवास ये भी विघ्नों के जनक और
समाधिक प्रबल विघ्न हैं।

चिताप्रता।

ये सब विघ्न निवारण के लिये एकतत्त्व अभ्यास करे।
ध्यानके समय मन जिससे दूर हो और न जाय—उसो
वशुमें स्थिर रहे, इस पर विशेष स्थान रखना उचित है।
इसके अलावा और भी एक उपाय है; यथा—सुख, दुःख,
पुण्य और पाप विषयमें यथाक्रम मैत्री, करुणा, मुदिता
‘और उपेक्षा’ को भावना करे; क्योंकि इसीसे चित्त भी
प्रसन्नता होती है। एकाग्रता शिवाको पहले चित्तको
परिष्कार करना होता है। परपरिष्कृत वा मलिन चित्त
सूक्ष्म वशु के ग्रहणमें असमर्थ हो कर इतन्मत्तः विचित्र
होता है—स्थिर वा समाहित नहीं होता। इसीसे दूसरे-
के सुख, दुःख, पुण्य और पापके प्रति मैत्री, करुणा,
मुदिता और उपेक्षा करना ही श्रेय है। दूसरेका सुख देख
कर सुखी होने ‘और ईर्ष्या नहीं’ करनेसे ईर्ष्यामत्त दूर हो
जाता है। दूसरेके दुःख पर दुःखी होनेसे विद्वेषमत्त
वा परापकारचिन्ता भी नहीं रहती, दूसरेके पुण्य पर
प्रसन्न होनेसे प्रसूयामत्त जाता रहता है। इसीसे
सुखित्तके प्रति मैत्री, दुःखित्तके प्रति करुणा, पुण्यवान्-
के प्रति मुदिता और पापों के प्रति उपेक्षा करना ही
योगशास्त्रका मत है।

चित्त निमग्न होने पर उसे स्थिर वा एकतान करने-
का एकमात्र प्राणायाम ही सुगम उपाय है। पहले
शास्त्रोक्त प्राणायामा अवलम्बन करके सुषुप्तिदेवकी
क्रमशः नासिका द्वारा मृत्युमय वाह्यावायु ग्रहण, पश्चात्
परिमितरूपसे उस वायुका धारण अनन्तर उसका धीरे
धीरे परित्याग करना होता है। प्राणायाम देवे।

यह प्राणायाम यदि सुविधि हो, तो मनका जो कुछ
विषय है, वह दूर हो जाता है। निर्दोष और निर्वि-
घ्न चित्त उस समय पापसे आप सुप्रसन्न, सुप्रकाश

वा एकाग्रयोग्य हो जाता है। इस प्रकार करते करते
विषयवतो प्रवृत्ति अर्थात् गन्धादि साक्षात्काररूप प्रज्ञा
उत्पन्न होती है; मन उसीमें स्थिर हो जाता है। इस
उपाय द्वारा चित्तके निमग्न होने पर उसका यथेच्छ-
प्रयोग किया जाता है। निमग्न चित्त जब जिस विषय-
की पकड़ें, उस समय उसी विषयमें वह स्थिर और
तन्मय हो जायगा। इससे क्रमशः चित्तमें एकाग्रता दिनों-
दिन बढ़ती रहेंगे। इस प्रकार एकाग्रताकी वृद्धि होनेसे
हृत्तत्पक्षके मध्य एक प्रकारकी ज्योति वा आलोकता
उदय होता है। उस ज्योति वा आलोककी तुलना
है दो नहो। यह निस्तारण और निष्कामोक्त चोरोदाणव-
तुल्य मनोहर और प्रशान्त है। इस आलोक वा ज्योतिसे
उदय होनेसे और कोई भी शोक रहने नहीं पाता।
इसीसे उस आलोकका ‘विशोक’ नाम रखा गया है।
ऐसी अवस्था होने पर सम्प्रज्ञात समाधि वा उत्कृष्टतम
योग शोभ ही उपस्थित होता है।

भगवान् पतञ्जलिने चित्तको स्थिर करनेका एक
और सुगम उपाय बतलाया है। वह इस प्रकार है—
जिस किसी मनोवश वशुका स्मरण होनेसे मन प्रसन्न
और शान्त होता है, एकाग्रता शिवाको निमित्त
उसका भी ध्यान श्रेय है। ‘पूर्वोक्त मैत्री भावनादि
द्वारा चित्तके निमग्न और वाञ्छित तत्त्वमें उत्कृष्ट मनो-
निवेश वा एकाग्रता अभ्यास सिद्ध होने पर चित्त
स्थिरसमावकी प्राप्त होता है। उस समय सूक्ष्मतम
परमाणुमें से कर हृदयतम परमात्मा पर्यन्त सभी वशु
उसके आद्य, प्रकाश वा दृश्य हो जाती हैं। उस
समय चित्त हरितशून्य हो कर शक्तिमणिकी तरह
तन्मयभाव धारणमें लक्ष्य होता है। एकाग्र शिवाका
नियम यह है, कि पहले आद्य अर्थात् ज्ञेय पदार्थका
अवलम्बन करके एकाग्रता-प्रभ्यास करना होता है।
ज्ञेय वशु दो प्रकारकी है, स्थूल और सूक्ष्म। प्रथमतः
स्थूलमें चित्तस्थिरता धारण करना होता है, वह अभ्यस्त
ही जाने पर क्रमशः मन, बुद्धि, चक्षुश्च पादि प्राप्य-
न्तरोक्ष सूक्ष्म वशुका अवलम्बन करना होता है।
हृदयमें चित्तस्थैर्य दृढ़ होनेसे जीवात्माका मननय
होता है, धीरे धीरे सम्प्रज्ञात समाधि लाभ होती है।

समाधिके भेद और अवस्था ।

समाधि फिर चार प्रकार की है—सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार और निर्विचार । चित्त जब स्थूलमें तन्मय होता है, तब यदि उसके साथ विकल्पज्ञान रहे, तो वह तन्मयता सवितर्क और यदि विकल्प ज्ञान न रहे, तो वह निर्वितर्क है । सविचार और निर्विचार योग भी इसी प्रकार है । इन दोनोंके मालम्बनोप विषय सूक्ष्म वस्तु है । इनमेंसे प्रथम पञ्चभूत है, तदपेक्षा सूक्ष्म तन्मात्र और इन्द्रिय, तदपेक्षा सूक्ष्म अहं-तत्त्व, पीछे महत्तत्त्व और सबसे अन्तमें प्रकृति है । सूक्ष्म विषयक योगकी सीमा यहाँ तक है सही, किन्तु परमात्म योग वा परब्रह्मयोग इससे भी सूक्ष्म और सूक्ष्म है ।

यही चार प्रकारकी समाधि सभीजसमाधि है । इन सब समाधियोंमें संचार, वस्थाना योज रहता है । इस चार प्रकारकी समाधियोंमें निर्विचार समाधि ही थोड़ा है । इस निर्विचारके भलीभांति अभ्यस्त होनेसे जो चित्तका स्वरूपस्थित प्रकाश दृढ़ होता है—कोई दोष वा किसी प्रकारका क्षेय अथवा मांसीय रहने नहीं पाता । सब प्रतापक विसृष्टत्व उस समय नितान्त निमग्न हो जाता है और आत्मा भी विज्ञात होती है । इस समय जो उत्कृष्ट और निर्मल प्रज्ञा अर्थात् ज्ञानालोक प्राविर्भूत होता है, उसका नाम समाधिप्रज्ञा है । इस समाधिप्रज्ञाका दूषण नाम ऋतभराप्रज्ञा है । यह प्रज्ञा क्षेयक ऋत अर्थात् सत्यको ही प्रकाश करती है । उस समय भ्रम और प्रमादका क्षेय भी गहीं रहता । योगिगण इस ऋतभराप्रज्ञा द्वारा सभी वस्तुत्वकी यथावत् साक्षात्कार करते हैं । इस प्रज्ञाके साथ अन्य किसी भी प्रज्ञाकी तुलना नहीं होती । यह सम्प्रज्ञातवृत्ति जब निरुद्ध होती है, तब सर्वनिरोध नामक निर्विज-समाधि उत्पन्न होती है । योगी लोग बहुकालसे निरोधाभ्यास करते थे, अभी उस अभ्यासके बलसे सनके चित्तका वह अवलम्बन भी निरुद्ध वा विलीन हो गया । चित्त जिस बीजका अवलम्बन करके वर्तमान था, वह भी जब नष्ट हो गया, तब योगी हृष्ट है, ऐसा स्थिर करना होगा । ज्यों ही परिपाककी प्राप्ति हुई, तब

जन्मभूमि प्रकृतिका आश्रय लिखा । प्रकृति मोक्षतन्त्र हुई और परमात्मा भी प्रकृतिके बन्धनसे मुक्त हुए । उसके फिर शरीर वा जन्ममरण कुछ भी नहीं होता । यही पुरुषका प्रधान चक्षुष्य है और इसी लिये योगकी आवश्यकता हुई ।

क्रियायोग और ज्ञानयोग ।

समाधि लाभ करनेमें पहले क्रियायोग आवश्यक है । योग दो प्रकारका है, ज्ञानयोग और क्रियायोग । पहले जिन सब योगोंकी कथा लिखी गई वे ज्ञानयोग हैं; ज्ञानयोगके अधिकारी सभी नहीं हैं । जिनका चित्त निर्मल हुआ है वे पहले क्रियायोगका अनुष्ठान करें । तपस्या, स्वाध्याय (वेदाभ्यास) और ईश्वरप्रणिधान इन तीन प्रकारकी क्रियाओंका नाम क्रियायोग है । अष्टांगपूर्वक शास्त्रीक व्रतादिका अनुष्ठान करनेका नाम तपस्या, प्रणव आदि ईश्वरवाचक मन्त्रका जप अर्थात् अष्टमरणपूर्वक उच्चारण और अष्टांगमयास्त्रके समा-नुष्ठानमें रहनेका नाम स्वाध्याय तथा भक्तिव्यष्टापूर्वक ईश्वरार्पितचित्त हो कर कार्य करनेका नाम ईश्वर-प्रणिधान है । यही क्रियायोग एकमात्र समाधि होनेके पूर्वनिमित्त और क्षेयविनाशका प्रधान कारण है । उक्त तीन प्रकार अथवा तीन प्रकारमेंसे किसी एक प्रकारके क्रियायोगका अवलम्बन करके उसका अभ्यास करनेसे धीरे धीरे वह दृढ़ हो जाता है । इस समय सभी फलेय चोष हो जाते हैं और समाधिगति भी उत्पन्न होती है । फलेय कितने प्रकारका है, भगवान् पतञ्जलिनने उसका विषय दस प्रकारका कहा है,—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन पाँच प्रकारके मनोधर्मका नाम फलेय है । यह पाँच प्रकारका फलेय अर्थार्थज्ञान वा मिथ्याज्ञान छोड़ कर और कुछ भी नहीं है । यह मिथ्या ज्ञान जिससे न बढ़े, उसके प्रति प्रत्येकका ध्यान रखना आवश्यक है । चित्तके फलेय नामक धर्मोंको दण्ड कर सकनेसे ही योगी हो जाता है । फलेयके मध्य अविद्या हो

नित्य, शुचि, सुख और शांतता ज्ञानका

यह कि जो निमित्त स्वप्न

नहीं है, उसमें उसका ज्ञान होनेका नाम अविद्या है। यही अविद्या अन्त्याय फलेशममूढकी जड़ है। इसी अविद्यासे अन्त्याय वशेष उपस्थित होती है। जोव देहग्रहणके साथ ही साथ अविद्याके यमोभूत हो कर अस्मिताके अधीन हो जाता है। दृक्प्रति जो दर्शन-शक्ति के साथ एकीभूतकी तरह प्रकाश पाती है, दोनोंकी इस एकीभाव प्राप्ति का नाम अस्मिता है। आत्माका नाम दृक्शक्ति और बुद्धितत्त्वका नाम दर्शन शक्ति है। चित्स्वरूप आत्मा बुद्धिहस्तिमें प्रतिबिम्बित होती है, इस कारण यह बुद्धिहस्ति प्रकाश पाती है। जोवको अपनी बुद्धि वा चित्तकी चेतन्यसे प्रयत्न नहीं जानना पर्यात् बुद्धिके प्रति जो अक्षुण्ण 'मैं' ज्ञान आरोपित हुआ है, वही मैं और मेरो इत्याकार प्रतीतिका नाम अस्मिता है। इस अस्मितासे राग नामक फलेशकी उत्पत्ति होती है। सुखके अनुशय (अनुवृत्ति) का नाम राग है। सुखका एक बार अनुभव करनेसे पुनः उसे पानेकी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। इसी आसक्ति-विशेषका नाम राग है। इसी रागसे क्रमशः द्वेषकी उत्पत्ति होती है। दुःखजनक विषयमें जो विद्वेष भाव है, उसे द्वेष कहते हैं। इस द्वेषके रहनेसे ही मनुष्य क्रोधकर यागादिमें प्रवृत्त नहीं होते। चित्तमें यह द्वेष बहमूल हो कर वर्तमान रहनेमें ऐी जोव अभिनिवेशके लिये बाध्य होता है। अभिनिवेशकालक्षण इस प्रकार है,—बार बार मरणदुःखभोग करनेसे चित्तमें तत्तावतका स स्तार वा वासना संचित वा बहमूल होती वा रही है। इन्हीं सब वासनाओंका नाम स्वरस है। इस स्वरस्य द्वारा ज्ञानी अज्ञानी सभी जीवोंके चित्तमें उस प्रकारका भाव पर्यात् फलस्वरूपमें मरणदुःखकी कथा वा स्मृति नामक सूत्राकारा वृत्ति बाध्द होती है। इस बाध्द वृत्तिक का नाम अभिनिवेश है। एक बार दुःखका अनुभव होनेसे उस दुःखवदवृत्तिके प्रति विद्वेष और यह जिससे फिर न हो, उसके प्रति चेष्टा वा इच्छाविशेष उत्पन्न होती है। दुःखका अन्त मरण है, पूर्व जन्ममें अनुभूत जो असद्य मरण दुःख है उसकी वासनावशतः पर्यात् उसके स्मरणवशतः इस जन्ममें जो मर्त्तिका भय उपस्थित होता है, उसे अभिनिवेश कहते

हैं। इस जगत्में प्राणोमात्रके हो अन्तःकरणमें अभिनिवेश सर्वदा जागरूक रहता है। यह पञ्चमिध क्रोध क्रियायोग द्वारा एकबारगी नष्ट तो नहीं होते, पर इस क्रियायोगके अनुष्ठानसे सूक्ष्म हो जाते हैं। जब ये सूक्ष्म हो जायेंगे, तब इन्हे प्रतिबोधपरिणाम द्वारा चित्तसे दूर करना होगा। चित्त जब समाधि-पनलसे दग्ध हो कर खोय कारण अस्मितामें लीन होगा, तब उसके समस्त क्रोधसंस्कार आपसे आप तिरोहित हो जायेंगे। क्रोधको वृद्धि पर्यात् सुख दुःखादिके भाकारका परिणाम केवल ध्यान द्वारा ही तिरोहित होता है। क्रोधवृद्धिके विनाशके लिये पहली क्रियायोग और पीछे ध्यानयोग अवलम्बनीय है।

इन सब क्रोधोंका मूल कर्माशय है। यह कर्माशय दो प्रकारका है, दृष्टजन्मवेदनीय और अदृष्टजन्मवेदनीय। वर्तमान शरीर द्वारा कृत दृष्टजन्मवेदनीय और जन्मान्तरीय शरीर द्वारा कृत अदृष्टजन्मवेदनीय है। यदि क्रियाशेष और ध्यानयोगादि द्वारा क्रोध-समूहको दग्ध न किया जाय, तो चिरकाल तक शुभाशुभ कर्मोंमें जड़ित रहना पड़ेगा—कभी भी समाधि वा मुक्ति लाभ नहीं होगा। यदि क्रोध और क्रोध-मूल कर्माशय विगोण हो जाय, तो समाधि समोपवर्ती कह कर स्थिर करना होगा। जिसके कोई क्रोध नहीं है, वह किस लिये आसक्तिपूर्वक कार्य करेगा? जिसके कोई स्मृति नहीं है, कामना नहीं है, राग वा द्वेष नहीं है, उसे द्वेष वा विषयोपवृत्तिमें मनोविकार ना सुख दुःख की क्या होगा? जिसके कोई उद्वेग नहीं है, उसे द्वेषके प्रभाव वा प्रभाविसे कुछ भी शोक नहीं होगा। वह अनायास और निदोषसे सुखासीन हो कर सहायिका अनुभव कर सकता है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

मूल पर्यात् कर्माशय रहनेसे ही उसे विषाक पर्यात् फलस्वरूप जाति, जन्म, मरण, जीवन और भोग कर्मना ही होगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं। इस जाति प्रवृत्तिका फल बाध्द और परित्याप है। क्योंकि यह पुण्य और पापरूप कारणसे उत्पन्न होता है। इसीसे इसके परिणाममें दुःख है, वर्तमान पर्यात् भोगकालमें

दुःख है और पचात् वा स्मरणकालमें भी दुःख है। योगी लोग सांसारिक सुखमें दुःख मिला हुआ जान कर उस सुखको दुःख ही समझते हैं। योगियोंका मनो-विकार नष्ट होनेसे ही उन्हें सुख है। ईश्वर और पाप्मनस्वमें चित्त स्थिर होनेसे ही सुख है, मनोव्यय होनेसे उन्हें और भी सुख है। वह सुख दृश्य भोगमें नहीं है, इसी कारण वे दृश्य समुदायकी दुःखमें गिरती करते हैं।

इनके मतसे भगवत्तत्त्वात् भविष्यत् दुःख ही होय है। जिससे भविष्यत् और दुःख न हो, वही करना कर्त्तव्य है। योगीको भगवत्तत्त्वात् भविष्यत् दुःख निवारणको चेष्टा करनी चाहिये। द्रष्टा आत्मा और दृश्य भक्ताःकरण इन दोनोंका संयोग रहना ही दुःखका कारण है। भक्ताःकरण (सुखि)-के साथ पुरुषका संयोग रहनेसे ही दुःखादि उत्पन्न होते हैं। बुद्धि के ऊपर पुरुष वा आत्माकी अभेद भ्रान्ति वा भक्त्यसम्पर्क कल्पित हुआ है, इसी कारण पुरुष सुखदुःखादि विकारमें विकृतप्रपञ्च हुए हैं। वस्तुतः उसके सुखदुःखादि कुछ भी नहीं है।

प्रकृत और मदुत्पन्न जो कुछ भूतभौतिक हैं, वे सभी पुरुषके भोग और अपवर्गके निमित्त हुए हैं। ये पविष्विकीके भोग और विष्वेकीके मोक्ष उत्पादन करते हैं। जडस्वभाव जोह जिस प्रकार सम्पूर्ण रूपसे इच्छा विहीन और चतुर्गुणिरहित हो कर भी सुखश्रुके निकट प्रवृत्त और सक्रिय होता है, उसी प्रकार प्रकृति भी विदात्माके सन्निधानवशतः सुखदुःखादि नाना आकारोंमें परिणत होती है। किन्तु जड़ोंने योगादि द्वारा इन्हें प्रकृतिका धर्म स्थिर किया है, उसके और कोई यत्नवादि नहीं हैं।

इस प्रकार संयोगका मूल कारण पविद्या है अर्थात् भ्रान्तिज्ञान वा भ्रान्तिज्ञानका संस्कार है। योगाभ्यास द्वारा वह पविद्या यदि विनष्ट हो जाय, तो उस पुरुषके साथ प्रकृतिसंयोग वा भोक्तृभोग्यभाव नहीं रहता। अतः पुरुष उस समय मुक्त हो जाते हैं। जडस्वभाव वर्जित हो कर भी वे उस समय अपने चिद्व्यवस्थाभाव में प्रतिष्ठित रहते हैं। योगी जो कोई कार्य करें, उन्हें

इस प्रकार ज्ञान रहना चाहिये मानो उनके पविद्यानाश हो कर विष्वेकलाभ हुआ है। योगाङ्गानुष्ठान द्वारा चित्तकी स्थिरता नष्ट होने पर ज्ञानको दीप्ति होती है और उस दीप्ति वा उस प्रकाशकी प्रवर्धना विष्वेक स्थापित है। उल्लाट अर्थात् पूर्वक योगाङ्गका अनुष्ठान करते करते क्रमशः थोड़ा थोड़ा करते चित्तमन उन्मूर्जित होता है। उस समय प्रकाशगति धीरे धीरे बढ़ती जाती है, पीछे विष्वेकस्थापित हो कर पाप्ममाप्ता होता है।

योगाङ्गका विवर ।

यम, नियम, ध्यान, धारणा, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और मन्त्रज्ञात समाधि ये योगाङ्ग हैं। इनमें कोई तो योगका साक्षात्कार या कोई परमारा सम्बन्धमें उपकारक मात्र है। भगवान् पतञ्जलिने यमादिका लक्षण इस प्रकार बतलाया है,—

‘अहिंसा’, सत्य, असतोय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच प्रकारके कार्योंका नाम यम है। इन यम नामक योगाङ्गके साथ साथ नियम नामक योगाङ्गानुष्ठान सर्वथा प्रयोजनीय है। शौच, स्तोत्र, तपस्या, ज्ञानाभ्यास और ईश्वरप्रणिधान इन पांच प्रकारको शिष्टांगिका नाम नियम है। इन सब योगाङ्गानुष्ठानके समय वितर्क उपस्थित होता है। वितर्क योगका एक प्रधान विघ्न है। हिंसा और द्वेष प्रवृत्ति तामस-मनोवृत्तिका नाम वितर्क है। यह फिर तीन प्रकारका है, स्नेहापूर्वक वा स्वयंजित, दूसरे अमुराधेय ज्ञात और अमुराधेयान्तर द्वारा निष्पादित। ये तीनों वितर्क योगके लिये परिहाय हैं। यमादि साधन पूर्ण होने पर इस प्रकार फल हुआ करता है।

पहले अहिंसा—चित्तके हिंसाग्रन्थ होनेसे अहिंसा धर्म यदि प्रबल पराकाष्ठाको प्राप्त हो, तो उसके निकट हिंस्र जन्तु अहिंस्र हो कर रहेगा। जिस योगीने अहिंसा प्रतिष्ठित की है, केसा ही हिंस्र क्यों न हो उसके निकट हिंस्र स्वभावका परित्याग करेगा ही। यही कारण है, कि तपोवनमें योगियोंको तपोमहिमासे हिंस्र जन्तुगण अपने हिंस्र स्वभावका परित्याग कर निरपराध करते हैं।

वाक्य और मनसे मिथ्याशून्यताको मन्त्र कहते हैं। जिस योगीको यह सत्यप्रतिष्ठा हुई है, ये जिस किसी वाक्यको प्रयोग करेंगे, वही सत्य होगा। यदि वे कहें, कि वय्याके पुत्र होगे, तो उनके वाक्यवशसे निश्चय यैसा ही होगा।

परद्वय पचहरण स्वरूप वीर्यके अभ्यासको अस्त्य कहते हैं। अस्त्य प्रतिष्ठित होनेसे और कुछ भी अप्राप्त नहीं रहता—अमृत्य रहनादि भी असोपपन्न पड़ जाता है। कोई भी रत्नादि दुष्प्राप्य नहीं रहता। इन्द्रियदोषशून्यताको ब्रह्मचर्य कहते हैं। यह ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठित होनेसे वीर्य लाभ होता है। ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठित योगीके एक ऐसी ससाधारण शक्ति उत्पन्न होती है, कि वे जिसको जो उपदेश देंगे, वह फलोन्मूल होता है। योगीकी जब पचहरण वृत्ति स्थिर वा दृढ़ होगी, तब उनके अतीत, अनागत और वर्तमान जन्मवृत्तान्त स्मरण होगा। उस समय उनके कुछ भी कर्ण्य रहने न पायेगा।

शौचमिद्वि द्वारा अपने शरीरके प्रति तुच्छज्ञान उत्पन्न होता है और परसहज्य भी निवृत्त होता है। शौच दो प्रकारका है, बाह्य शौच और आभ्यन्तर शौच। इनमेंसे बाह्य शौचका अभ्यास करने करते आत्मशरीरके प्रति एक प्रकारकी घृणा उत्पन्न होती है।

उस समय और जलवृद्धवृद्धके समान मरणधर्मी तथा मन्मृदादिसय अशुभविकार शरीरके प्रति कोई प्राप्ति वा चाहद न हो रहता एवं परशरीरसंघर्षकी इच्छा भी निवृत्त होती है। आभ्यन्तर शौचका आरम्भ करनेसे पहले सच्चशक्ति, पीछे हीमनस्य, एकाग्रता, इन्द्रियजय और आत्मदर्शनकी समता उत्पन्न होती है। भावशुद्धिप अभ्यन्तर शौच जब चरमसोमाकी प्राप्ति होता है, तब अन्तःकरण ऐसा यत्नपूर्व सुखमय और प्रकाशमय हो जाता है, कि उस समय कुछ भी खेदाशुभं नहीं करता—सम्यक् पूर्ण और परितोष रहता है। इस पूर्ण परितोषका नाम है हीमनस्य। हीमनस्यके उत्पन्न होनेसे एकाग्रशक्ति प्रादुर्भूत होती है। अथवा एकाग्र हो कर सहज हो जाती है। एकाग्रशक्तिके उत्पन्न होनेसे इन्द्रियजय होती है।

इसी इन्द्रियजयमें चित्त आत्मदर्शनमें समर्थ होता है। सन्तोष सिद्ध होने पर योगी एक प्रकारका अनुपम सुख प्राप्त करता है। वह सुख विषयनिरपेक्ष है। तपस्या दृढ़ होनेसे शरीर और मनका शक्तिप्रतिबन्धक वा आनका आवरण नष्ट हो जाता है। सुतरां तपःसिद्ध योगी शरीर और इन्द्रियके ऊपर यथेच्छरूपसे समताका परिचालन कर सकते हैं। उस समय उनके इच्छानुसार शरीर चण वा दृढ़ हो सकता है। योगीके स्वाध्याय द्वारा इष्टदेवता-दर्शनमें समता उत्पन्न होती है। ईश्वर-प्रणिधानमें जब चित्तनिवेश परिपक्वताकी प्राप्त होता है, तब अन्य कोई माधन नहीं करने पर भी सल्लभ समाधि लाभ होती है। जिस योगीने ईश्वरका प्रणिधान किया है, उन्हें और कोई योगानुष्ठान नहीं करना होता। एक ईश्वरप्रणिधानसे ही सभी योगमाधन होते हैं। जिससे शरीरमें किसी प्रकारका लक्ष्य उपस्थित न हो, ऐसे भावमें उपदेशन करनेका नाम धामन है। योगका उपकारक धामन शीखना विशेष कष्टजनक तो है, पर इनका अभ्यास हो जानेसे यह स्थिर और सुखजनक हो जाता है। योगका आसन जब तक उत्तम रूपसे प्राप्य नहीं होते, तब तक वे विप्रकारो होते हैं। इसी लिए पहले दृढ़तर यत्नपूर्वक जिसमें आसन शीघ्र लय हो जाय वही करना योगियोंके लिये सर्वोत्तमविषय है। आसनके जय हो जाने पर शीतशीष्मादि द्वारा अभिहत होता नहीं पड़ता और प्राणायाममें भी विशेष सहायता पड़ती है। आत्म-प्राप्तिका स्वाभाविक शक्तिभङ्ग कर देनेमें उसे शास्त्रीय नियमके अधीन करने वा स्थानविरोधमें विध्न करनेका नाम प्राणायाम है। धामन सिद्ध होनेसे जो यह दुःसाध्य कार्य सहजमें हो जाता है, नहीं तो यह बड़ा ही दुष्कर है। प्राणायाम तीन प्रकारका है, बाह्यवृत्ति, आभ्यन्तरवृत्ति और स्तम्भवृत्ति। ये त्रिविध प्राणायाम देह, कान और संख्या द्वारा दीर्घ तथा सूक्ष्मरूपमें सिद्ध होने देखे जाते हैं। प्राणायाम सिद्ध होनेसे ही चित्तकी यथेच्छरूपसे नियोग किया जाता है।

इसी प्रकार यम, नियम, धामन और प्राणायाम द्वारा प्रत्याहार नामक योगाङ्ग चतुष्टय हो जाता है।

दुःख है और पश्चात् वा स्मरणकालमें भी दुःख है। योगी लोग सांसारिक सुखमें दुःख मिला हुआ जान कर उस सुखको दुःख ही समझते हैं। योगियों का मनो-विकार नष्ट होनेसे ही उन्हें सुख है। ईश्वर और आत्मतत्त्वमें चित्त स्थिर होनेसे ही सुख है, मनोन्मथ होनेसे उन्हें और भी सुख है। वह सुख दृग्ग भोगमें नहीं है, इसी कारण वे दृश्य समुदायको दुःखमें गिनती करते हैं।

इनके मतसे अनागत अर्थात् भविष्यत् दुःख ही है य है। जिससे भविष्यमें और दुःख न हो, वही करना कर्त्तव्य है। योगीको अनागत अर्थात् भविष्यत् दुःख निवारणको चेष्टा करनी चाहिये। दृष्टा आत्मा और दृश्य अन्तःकरण इन दोनोंका संयोग रहना ही दुःखका कारण है। अन्तःकरण (बुद्धि) के साथ पुरुषका संयोग रहनेसे ही दुःखादि उत्पन्न होते हैं। बुद्धि के ऊपर पुरुष वा आत्माकी अभीष्ट आन्ति वा आत्मसम्पर्क कल्पित हुआ है, इसी कारण पुरुष सुखदुःखादि विकारमें विक्षतप्राय हुए हैं। 'वस्तुतः' उसके सुखदुःखादि कुछ भी नहीं है।

प्रकृत और तदुत्पन्न जो कुछ भूतभोक्तृ हैं, वे सभी पुरुषके भोग और अपवर्गके निमित्त हुए हैं। ये अविवेकीके भोग और विवेकीके मोक्ष उत्पादन करते हैं। जड़स्वभाव लोह जिस प्रकार सम्पूर्ण रूपसे दृच्छा विहीन और चलत्गतिरहित हो कर भी सुष्यकके निकट प्रचलित और सक्षिप्त होता है, उसी प्रकार प्रकृति भी विदात्माके सन्निधानवशतः सुखदुःखादि नामा आकारोंमें परिणत होती है। किन्तु जिनोंने योगादि द्वारा इन्हे प्रकृतिका धर्म स्थिर किया है, उसके और कोई धन्यपादि नहीं है।

इस प्रकार संयोगका मूल कारण अविद्या है अर्थात् भ्रान्तिज्ञान वा भ्रान्तिज्ञानका संस्कार है। योगाभ्यास द्वारा वह अविद्या यदि विनष्ट हो जाय, तो उस पुरुषके साथ प्रकृतिसंयोग वा भोक्तृभोग्यभाव नहीं रहता। सुतरां पुरुष उस समय मुक्त हो जाते हैं। जड़स्वभाव-वर्जित हो कर भी वे उस समय अपने चिद्वन स्वभाव में प्रतिष्ठित रहते हैं। योगी जो कोई कार्य करे, उन्हें

इस प्रकार ज्ञान रहना चाहिये मानो उनके प्रविद्यानाम हो कर विवेकनाम हुआ है। योगाङ्गमुद्धान द्वारा चित्तकी मलिनता नष्ट होने पर ज्ञानको दोषि होतो है और उस दोषि वा उस प्रकाशकी शोभनीमा विवेक स्थापित है। उल्लङ्घ्य अष्टाध्याय योगाङ्गका अनुष्ठान करते करते क्रमशः छोड़ा छोड़ा करते चित्तमन उन्मार्जित होता है। उस समय प्रकाशगति धीरे धीरे बढ़तो जाता है, पीछे विवेकस्थिति हो कर आत्मसाक्षात् होता है।

योगाङ्गका विवर ।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और नमश्चात समाधि ये योगाङ्ग हैं। इनमें कोई तो योगका साक्षात्कार या कोई परम्परा सम्बन्धमें उपकारक मात्र है। भगवान्, पतञ्जलिने यमादिका लक्षण इस प्रकार बतलाया है,—

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच प्रकारके कार्यों का नाम यम है। इस यम नामक योगाङ्गके साथ साथ नियम नामक योगाङ्गमुद्धान सर्वथा प्रयोजनीय है। शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान इन पांच प्रकारको क्षिप्तिकी नाम नियम है। इन सब योगाङ्गमुद्धानके समय वितर्क उपस्थित होता है। वितर्क योगका एक प्रधान विघ्न है। हिंसा और हेतु प्रवृत्ति तामस-मनोवृत्तिका नाम वितर्क है। यह फिर तीन प्रकारका है, स्नेच्छापूर्वक वा स्वयं कृत, दूसरेके अशुभोपदेष्टा और अनुमोदनादि द्वारा निष्पादित। ये तीनों वितर्क योगीके विघ्ने परिहाय हैं। यमादि साधन पूर्ण होने पर इस प्रकार फल हुआ करता है।

पहले अहिंसा—चित्तके हिंसाशून्य होनेसे अहिंसा धर्म यदि प्रबल पराकाष्ठाको प्राप्त हो, तो उसके निकट हिंसा जन्तु अहिंसा ही कर रहेगा। जिस योगीने अहिंसा प्रतिष्ठित की है, कोसा ही हिंसा क्यों न हो उसके निकट हिंसा स्वभावका परित्याग करेगा ही। यही कारण है, कि तपोधनमें योगियोंको तपोमहिमासे हिंसा जन्तुगण अपने हिंसा स्वभावका परित्याग कर निश्चय करते हैं।

वाक्य और मनमें मिथ्याश्रुत्यताको मत्व कहते हैं। जिस योगीकी यह मत्वप्रतिष्ठा हुई है, वे जिस किसी वाक्यका प्रयोग करेंगे, वही मत्व होगा। यदि वे कहें, कि वाक्यकी पुष्ट होगी, तो उनके वाक्यवचने निश्चय सैसा ही होगा।

परद्वय उपहरण स्वरूप चोयके समावकी अस्तीय कहते हैं। अस्तीय प्रतिष्ठित होनेसे और कुछ भी अप्राप्त नहीं रहता—अस्तूय रहता भी समोपमें पहुँच जाता है। कोई भी रहतादि दुःप्राप्य नहीं रहता। इन्द्रियदोषश्रुत्यताको—ब्रह्मचर्य कहते हैं। यह ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठित होनेसे वीर्यलाभ होता है। ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठित योगीके एक ऐसी अपाधारण शक्ति उत्पन्न होती है, कि वे जिसको जो उपदेश देंगे, वह फलोन्भूत होगा ही। योगीकी जब परपरिग्रह शक्ति स्थिर वा दृढ़ होगी, तब उनके अतीत, अनागत और वर्तमान सम्बन्धसात् स्मरण होगा। उस समय उनसे कुछ भी अप्राप्त रहने न पायेगा।

शौचसिद्धिद्वारा अपने शरीरके प्रति तुच्छज्ञान उत्पन्न होता है और परासङ्गता भी निवृत्त होती है। शौच दो प्रकारका है, बाह्य शौच और आन्तरिक शौच। इनमेंसे बाह्य शौचका अभ्यास करते करते आत्मशरीरके प्रति एक प्रकारकी छुपा उत्पन्न होती है।

उस समय और जलवृद्धिद्वारा समान सरणधर्मी तथा मनसृष्टादिमय अवधिकार शरीरके प्रति कोई आस्था वा आदर नहीं रहता, एवं परशरीरसंभर्गकी इच्छा भी निवृत्त होती है। आन्तरिक शौचका पारश्वाकारानेसे पहले सत्वशक्ति, पीछे क्षीमनस्य, एकाग्रता, इन्द्रियजय और आत्मदर्शनकी क्षमता उत्पन्न होती है। भावशुद्धिद्वय आन्तरिक शौच अथ चरमसोमाकी प्राप्ति होता है, तब अन्तःकरण ऐसा अभूतपूर्व शुद्धमय और प्रकाशमय हो जाता है, कि उस समय कुछ भी खिदा-गुणव नहीं करता—सर्वदा पूर्ण और परितोष रहता है। इस पूर्ण परितोषिका नाम है क्षीमनस्य। क्षीमनस्यसे उत्पन्न होनेसे एकाग्रशक्ति प्रादुर्भूत होती है, पथया एकाग्र हो कर सहज हो जाती है। एकाग्रशक्तिके उत्पन्न होनेसे इन्द्रियजय होती है।

इसी इन्द्रियजयसे चित्त आत्मदर्शनमें समर्थ होता है। सन्तोष सिद्ध होने पर योगी एक प्रकारका अनुपम सुख प्राप्त करता है। वह सुख विषयनिरपेक्ष है। तपस्यादृढ़ होनेसे शरीर और मनका शक्तिप्रतिव्यक्त वा ज्ञानका आवरण नष्ट हो जाता है। सुतरां तपःसिद्धयोगी शरीर और इन्द्रियके ऊपर यथेच्छरूपमें क्षमताका परिचालन कर सकते हैं। उस समय उनके इच्छानुसार शरीर चण वा दृढ़ हो सकता है। योगीके स्वाध्याय द्वारा दृष्टदेवतादर्शनमें क्षमता उत्पन्न होती है। ईश्वरप्रणिधानमें जब चित्तनिरोध परिपक्वताकी प्राप्ति होता है, तब अन्य कोई साधन नहीं करने पर भी उत्कृष्ट समाधि लाभ होती है। जिस योगीने ईश्वरका प्रणिधान किया है, उन्हें और कोई योगानुष्ठान नहीं करना होता। एक ईश्वरप्रणिधानमें ही सभी योगसाधन होती हैं। जिससे शरीरमें किसी प्रकारका रुद्धम उपस्थित न हो, ऐसे भावमें उपदेशन करनेका नाम आसन है। योगका उपकारक आसन तोखना विशेष कष्टजनक तो है, पर इनका अभ्यास हो जानेसे यह स्थिर और सुखजनक हो जाता है। योगाङ्ग आसन जब तक उत्तम रूपसे प्राप्य नहीं होती, तब तक वे विप्रकारो होते हैं। इसी लिए पहली दृढ़तर यद्यप्युक्त जिसमें आसन, शीघ्र जय हो जाय वही करना योगिनीके लिये सर्वसोभावसे विधेय है। आसनके जय हो जाने पर शीतशीतादि द्वारा अभिहत होना नहीं पड़ता और प्राणायाममें भी विशेष सहायता पहुँचती है। श्वास-प्रश्वासका स्वाभाविक गतिभङ्ग कर देनेसे उसे शास्त्रोक्त नियमके अधीन करने वा स्थानविशेषमें विधृत करनेका नाम प्राणायाम है। आसन सिद्ध होनेसे जो यह दुःप्राप्य कार्य सहजमें हो जाता है, नहीं तो यह महा ही दुष्कर है। प्राणायाम तीन प्रकारका है, प्राचक्षरित, आभ्यन्तरवृत्ति और स्थावृत्ति। ये त्रिविध प्राणायाम देह, कान और संख्या द्वारा दीर्घ तथा सूक्ष्मरूपमें सिद्ध होने देखे जाते हैं। प्राणायाम सिद्ध होनेसे ही चित्तकी यथेच्छरूपमें नियोग किया जाता है।

इस प्रकार यम, नियम, आसन और प्राणायाम द्वारा प्रत्याहार नामक योगाङ्ग पतिसहज हो जाता है।

चक्षुरादि इन्द्रिय जिस रूपादिके प्रति धारित होते हैं, उस धोरसे वषट्कौशिकिको लोटा सेनेका नाम प्रत्याहार है। इस प्रत्याहार द्वारा इन्द्रियां वगोभूत हो जाती हैं, उस समय समाधि हाथके तले हैं, ऐसा कहने में भी कोई शङ्का नहीं। प्रकृतिको दशोभूत करनेका प्रधान उपाय योग है। योग एक तत्त्वस्वरूप है, यमनियमादि अनुष्ठान उसके उपादक वीज हैं, आसन और प्राणायामादि द्वारा यह प्रवृत्ति, प्रत्याहारादि द्वारा पुष्पित होती धारणा, ध्यान और समाधि द्वारा फलवान् हो जाता है। चित्तको देशविशेषमें बांध रखनेका नाम धारणा है। रागद्वेषादिशून्य हो कर पूर्वोक्त प्रकारकी मैत्रादि भावना द्वारा निर्मल चित्त भी यमनियमादिवे सिद्ध किंहीं एक योगासन पर बैठ प्राणायामादि अनुष्ठान द्वारा इन्द्रियोंकी स्व स्व कृतिका प्रत्याहार करके उसे चित्तके निकट समर्पण करना योग। जैसे चित्तको किसी एक वस्तुमें दृढरूपसे धारण करनेका नाम धारणा है। यह धारणा स्थायी होने पर क्षम्यः ध्यानपदवाच्य हो जाता है। अर्थात् उस धारणीय पदार्थमें यदि प्रत्यक्ष (चित्तवृत्ति)की एकतानता उत्पन्न हो, तो यह ध्यान कहता है। धीरे धीरे यह ध्यान जब केवल मात्र ध्येय वस्तुमें ही उद्भासित या प्रकाशित करेगा, अपने स्वरूपता में ध्यान करता है इत्यादि प्रकारका भेदज्ञान लुप्त कर देगा, तब उसे समाधि कहेंगे।

ध्यानके दृढ़ होनेसे ही उसकी परिणाम दशा में, अन्य ध्यानका रहना तो दूर रहे, ध्यानज्ञान भी नहीं रहता। समझा कारण यह है, कि चित्त उस समय सम्पूर्णरूपसे ध्येय वस्तुमें लीन रहता और ध्येय स्वरूप वा धियाकारको प्राप्त होता है। सुतरां चित्त स्वरूप शून्यकी तरह—नहीं रहनेके समान हो जाता है, अतएव उस समय और कोई ज्ञान नहीं रहता। इस प्रकार चित्तवस्था उपस्थित होनेसे ही समाधि हुई, ऐसा स्थिर करना होगा।

भगवान् पतञ्जलिने धारणा, ध्यान और समाधि इन तीनोंका नाम संयम रखा है। इस संयमके जय होनेसे प्रज्ञा नामक उत्कृष्ट बुद्धिका प्रकाश प्रादुर्भूत होता है।

यह संयम नामक योगाङ्ग पूर्वोक्त यमनियमादिकी

अपेक्षा समाधिका अन्तर्ङ्ग अर्थात् (साक्षात्) साधन है। यमनियमादि द्वारा शरीरको जड़ता निवृत्ति, इन्द्रियकी तोच्छनां धोर चित्तको निर्मलता उपस्थित होने है। संयम द्वारा चित्तको सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म पदार्थोंमें समाहित किया जाता है। सुतरां पूर्वोक्त षड् समाधिका बहिरङ्गसाधन और संयम उसका अन्तरङ्गसाधन है।

चित्तके चित्तादि राजविक परिणामका नाम व्युत्थान और केवलमात्र विशुद्ध सत्त्व परिणामका नाम निरोध है। चित्तको सम्पन्नात प्रवृत्त्या और पूर्वोक्त प्रकारको वैशद्य प्रवृत्त्या ये दोनों ही यथाक्रम व्युत्थान और निरोध हैं। जब इन दो परिणामोंका संस्कार यथाक्रम अभिभूत और प्रादुर्भूत होता है, तब व्युत्थान संस्कार अभिभूत हो कर निरोध संस्कार प्रुट हो जाता है। उस समय चित्त विरोध नामक अवसरका अनुगत होता है। ऐसे अनुगत अर्थात् ऐवो अवसर-प्राप्ति वा सुखोच्चाव प्राप्ति का नाम निरोधपरिणाम है। संस्कार दृढ़ होनेसे ही उसकी प्रभावसे निरोधपरिणाम को प्रोक्तान्तादित्वा वा स्वैयं प्रवाह स्वप्न होता है।

संयम द्वारा चित्तगत सभी कर्मसंस्कार (धर्माधर्म वा पापपुण्य) प्रत्यक्ष होते हैं और उस समय योगी पूर्वजन्मका वृत्तान्त जान सकते हैं। जीवन पूर्वजन्म और इस जन्ममें जो कुछ कर्म किये हैं और कर रहा है, वे सभी उसकी चित्तवेत्तमें प्रति स्पष्टभावे लोभमें भटुरगति की तरह संस्काररूपमें निहित रहते हैं। वे सब संस्कार उस समय प्रत्यक्ष तो तरह बोध होते हैं और इससे योगी सभी वृत्तान्त जान सकते हैं। सब समय उसकी पूर्वजन्म और इस जन्मके सभी वृत्तान्त स्मरण हो पाते हैं। इस स्मरणकी सिद्धांतके विवाद स्वरूप कर्मफलदि कुछ भी भोग करने नहीं होते।

चित्त-संयम।

भगवान् लैगोपथ्यके संयम द्वारा प्राक्कनिष्ठ संस्कार साक्षात् करने पर उन्हें दमकल्पका अन्तर्गत स्मरण हुआ था। एक दिन भावय नामक किसी योगीमें जेगीपथ्यसे पूछा था, 'भगवान्! आप दमकल्प तक बार बार सुर, नर और तिर्यक योनिमें उत्पन्न हुए थे, पदव आपकी बुद्धि अभिहत नहीं हुई। आपने किस जन्ममें

किम् शरीरं हि स प्रकारं सुखं भोर दुःखं वा अनुभवं किय-
' सो इमे कृपा कर कहिये ।' इस पर जैगोपस्थने कहा
था, 'भाग्यम् ! मैंने बार बार देखा, मनुष्य और पश्यादि
को कर जो कुछ अनुभव किया, वह सभी दुःख है, एक
प्रो सुख नहीं ।' भावस्थने फिर पूछा, 'तब क्या
प्रकृतियमित्व जिसके प्रभावसे लोगोंके इच्छानुसार
को दिव्य और पंचम भोग उपस्थित होते हैं, भाष-
के निकट सुख नहीं है ?' भगवान् जैगोपस्थ कोने,
'प्रकृतिव्यग्रता सुख तो है, पर वह लौकिक सुखको
प्रेषणा उत्पन्न है, कैवल्यको प्रेषणा नहीं । कैवल्यको
साथ तुलना करनेमें वह दुःख समझा जाना है, सुख
नहीं । जीवका जब तक लक्षणांशो मूढ स्थित नहीं
होगा, तब तक सभी दुःख हैं ।'

संयमसंस्कार साक्षात् कर सकनेने ही इस प्रकार
पुनः प्रमादिका ज्ञान हुआ करता है । संस्कारके
साक्षात् होने पर परचित्तज्ञान तो होता है, पर उसके
आनन्दमोहा (उस समय जो विषय सोचते हैं उनका)
ज्ञान नहीं होता, क्योंकि वे सब विषय उसके ताल्का-
लिक संयमके पविषय हैं । उन्होंने उस समय संस्कार-
के प्रति जो संयम किया था, अन्य किसीके भी प्रति
नहीं । सुतरां वे जो सोचते हैं, योगी वह जान नहीं
सकते । वे सब जाननेके लिये पृथक् प्रणिधान वा
संयमकी आवश्यकता है ।

योगी यदि कामके प्रति संयमका प्रयोग करे,
तो अप्रतिज्ञान (मृत्युविषयक ज्ञान) हो सकता है ।
उस समय वे मृत्यु ज्ञान होगी इत्यादि विषय प्रत्यक्ष
रूपसे देख सकते हैं । योगीके पूर्वोक्त मोहों, कष्टों
और सुदृष्टि नामक मनोभाव विशेषके प्रति संयमी
होनेसे उस भावकी उत्पत्तिता होती है । उस समय वे
उस भावमें वसोयान् करते हैं । भावमात्रमें वसो-
यान् हो सकनेने हो वे प्राणिमात्रके सुखदाता और
सुदृष्ट हो जाते हैं तथा इच्छामात्रमें ही दुःखित जीवका
दुःखोद्धार किया जाता है । अतएव कहाँ क्या होता
है, किस नियमसे किस भावमें सांसारिक कार्य चलता
है, मूर्खसंयमी योगी वह अच्छी तरह जान सकते हैं ।
चन्द्रमें चित्तसंयमसे तारामण्डलका यथार्थ तत्त्व प्रतिभास

होता है और ध्रुवतारमें लग्नसंयमी होनेसे तारोंकी गति
मात्र मालूम हो जाती है ।

शरीरके महास्थूलमें नाडोमंडल है । इस नाडो
मंडल वा नाभिकक्षेत्रे चित्तसंयम करनेसे कायव्यूह
अर्थात् शारीरिक संस्थान ज्ञान हो सकता है ।

कण्टकूपके मोचे और उपदेशमें क्रम नामक नाडो
है । इस नाडोमें चित्तसंयम करनेसे शरीर और मनको
स्थिरता उत्पन्न होती है । मूर्धस्थित तेश्रोविशेषमें क्षत-
संयमी होनेसे सिद्धपुरुषोंके दर्शन और उनके साथ
सम्भाषणादि किये जाते हैं । योगी यदि प्रतिभाके प्रति
चित्तसंयम करे, तो सभी विदित हो सकते हैं । संयम
द्वारा इत्यादि प्रकारकी सामर्थ्य लाभ हुआ करती है ।
अर्द्धचन्द्रमें अक्षविपत मनोवृत्तिका नाम महाविदेह है ।
इस महाविदेह नामक धारणाविशेषमें संयमी होनेसे
प्रकाशका आवरण चय होता है । प्रत्येक भूतके स्थूल,
सूक्ष्म, सूक्ष्म, अन्वयित्व और अर्थवत्त्व ये पाँच प्रकारके
रूप वा अवस्थाविशेष हैं । इसकी प्रति संयम करनेसे
भूतको जय होती है । इन्ने महाभूतजय भो कहते हैं ।

अष्टसिद्धि और उर्वके लाभका उपाय ।

महाभूतजय होने पर अणिमादि अष्टसिद्धि वा
अष्टैश्वर्य लाभ होते हैं । अणिमा, क्षिप्वा, महिमा,
प्राप्ति, प्राकाश, वसित्व, ईशित्व और यन्त्रकामावसा-
यिता इन आठ प्रकारको महासिद्धियोंका नाम ऐश्वर्य
है । ऐश्वर्यके इस प्रकार स्वतःविह- अष्टमहागुण है ।
वे सब गुण वा तत्त्वद्वय गुण भाषनवत्त्वसे अन्य प्रत्यक्ष
भी आविष्ट होते हैं । सुतरां वे सब महागुण ऐश्वर्य
नामसे प्रसिद्ध हैं । संयम द्वारा यदि भूतका प्रागुक्त
स्वरूप जय किया जाय, तो उसके प्रथमोक्त चतुर्विध
महासिद्धि; संयम द्वारा यदि प्रागुक्तभूतको स्वरूप-
अवस्था साक्षात् की जाय, तो प्राकाश नामक महासिद्धि;
भूतसमूहका समूहविजित होनेसे वसित्व नामक
महासिद्धि ; अन्वयरूप विजित होनेसे ईशित्वनिधि और
अर्थवत्स्वरूप विजित होनेसे यन्त्रकामावसायिता
नामक चरम ऐश्वर्य लाभ होता है । अणिमानिधि
चायतन वा प्रमाणमें वृद्ध होने पर भी संयमवन्ध
पण होनेकी शक्ति है । यहां तक कि योगी यदि अणिमा

और भावशुद्धि समानरूपमें साधित होनेसे भाव्याका कैवल्य होता है तथा इसीको मोक्ष कहते हैं। समस्त योगी और प्रत्येक पुरुषकी यही परम लक्ष्य है।

पूर्वाक्त सभी सिद्धियाँ जन्म, मोषध, मन्त्र, तपस्या और समाधिसे उत्पन्न होती देखी जाती हैं। सभी स्थितियोंके संचारका कारण एकमात्र प्रकृति और पुरुष संयोग है। वह प्रकृतिपुरुषसंयोग पूर्वाक्त अविवक्षितताको दृष्टा करता है। उस अविवक्षितताको विनाशक केवल विवेकख्याति है। एतद्विषय अविवक्षाका अनुमूलक उपायान्तर नहीं है। प्रकृति प्रकृति लक्षणद्वारा पुरुष पुरुषभूत है, ऐसे ज्ञानका नाम ही तत्त्वज्ञान या विवेकख्याति है। जिस प्रकार धन होनेसे निर्धनताका लक्षण है नही रहता, उसी प्रकार अविवक्षा-विरोधी विवेकख्याति जिसको चित्तभूमिमें उपस्थित होती है, उसके विरुद्ध अविवक्षा तिरोहित हो जाती है। अविवक्षा, विनष्ट होनेसे तत्त्वार्थ प्रकृति और पुरुषसंयोग भी विनष्ट होगा। ऐसा होनेसे ही संचारका अनुलोच्छेद होगा। इस प्रकार विवेकख्याति द्वारा संचारको निवृत्ति होनेसे ही पुरुषका कैवल्य होता है।

१. अर्थात्, निवृत्ति उसके प्रतिविम्बसे स्वच्छस्फटिक भी रत्न प्रतीयमान होता है। अर्थात् दूर स्फटिक कभी भी रत्न प्रतीयमान नहीं होता, प्रत्युत उसको अध्यात्मिक शून्यताका ही अनुभव होता है। सभी प्रकार पुरुषके निर्माण और स्वच्छ होने पर भी वे संचारदशाओं की चित्तगत सुखदुःखादिके आभासमात्रमें ही सुखी हैं, मैं दुःखी हैं, मैं कर्मा हूँ, इत्यादि भ्रम-मार्गमें लिप्त होते हैं। संचारके निवृत्ति होने पर और इस प्रकार भ्रमिमान उत्पन्न नहीं होता। उन समय पुरुषकी स्वाभाविक चिन्मात्रस्वरूप केवलरूपता ही रहती है। वह केवल रूप कैवल्य वा सुप्ति कहाता है। कैवल्यनाम ही योगीका एकमात्र चरमोद्देश है। भगवान् पतञ्जलिनै कैवल्यपदमें कैवल्यका ही स्वरूप निर्देश किया है। विस्तारही जानिके भयसे उस विषय पर और अधिक विचार नहीं किया गया। त्रिगुणा प्रकृति और तत्त्वसूता बुद्धि अपने स्व-

यवोभूत किन्नी एक गुणके विकारसे, विज्ञान ही कर रूपान्तर वा विज्ञानिकी प्राप्त होती है, चित्तस्वरूप पुरुष उस प्रकार विज्ञान नहीं होते। सूर्य जिस प्रकार निर्मल लक्ष्मी प्रतिविम्बित होते हैं, पुरुष भी उसी प्रकार प्रकृतिमें प्रतिविम्बित हुआ करते हैं। विवेकख्याति द्वारा लक्षणः पुरुषके कैवल्य लाभ करने पर प्रकृतिमें भी फिर प्रतिविम्बित नहीं होते। पहले ही कहा जा चुका है, 'तदा दृष्टः स्वस्वैकदश्याम्।' (पात. सूत्र) उस समय वे केवल एकमात्र दृष्टस्वरूपमें अवस्थान करते हैं। योगका यही चरमफल है।

चिकित्सा शास्त्र जिन प्रकार रोग, रोगहेतु, चारोग्य और चारोग्यहेतुमिदमे चतुष्टय है, उसी प्रकार वह योगशास्त्र भी है, हैयहेतु, मोक्ष और मोक्षहेतु नामक चतुष्टय है। दुःखमय संचार ही हैय है। यही संचार एकमात्र दुःखका कारण है। जब तक संचार-निवृत्ति नहीं होगी, तब तक दुःखके हाथसे निवृत्ति-लाभका कोई उपाय नहीं। इसीसे हैय दुःख-भनागत भनागत दुःख ही हैय पदवाच्य है। जिससे और भाव्यदुःख न हो, वही करना आवश्यक है। प्रकृति और पुरुषसंयोग ही हैयका हेतु है, दुःखका एकमात्र कारण प्रकृति और पुरुषका संयोग है। जब तक प्रकृति और पुरुषका संयोग रहेगा, तब तक दुःखका हेतु रहेगा ही।

प्रकृति और पुरुषसंयोग-निवृत्तिरूप कैवल्य ही मोक्ष है। योगादि द्वारा प्रकृति पार पुरुषसंयोग निवृत्ति ही कर मोक्ष वा कैवल्य होता है। मोक्षका कारण ही एकमात्र विवेकख्याति है। मोक्षलाभ करनेमें जिनसे विवेकख्याति हो, उसके प्रति चेष्टा करना ही सर्वोत्तमोपपन्न विधेय है। यही साध्यमें हैय, हैयहेतु, दान और दानोपाय नामसे भविष्यत दृष्टा है। (पातञ्जलदर्शन)

पतञ्जलिका परिचय और आधिभौतिकपरिचय। योगसुखकार पतञ्जलिका परिचय बहुत ही अप्यष्ट है। वे किस समय आविर्भूत हुए थे, ठीक ठीक मान लें नहीं। किन्तु कहा है, कि पतञ्जलि स्वयं श्रेष्ठ वा धनन्त देव हैं। पञ्चगुह्यमयने कात्यायनको वेदान्तमणिकोके भाष्यमें लिखा है—

शक्ति लाभ कर सके, तो वे संयमरोचिका अवलम्बन
कारके संयमलोक जा सकते हैं।

सहिमा गुह्यभार होने पर भी प्रतिग्रह लघु होनेकी
सामर्थ्य है। महिमा छुद्र हो कर भी पर्वतादि प्रमाण
होनेकी शक्ति है। ऐसे कोई कोई गरिमासिद्धि कहते
हैं। प्राप्ति अर्थात् इच्छामात्रमें दूरस्थ वस्तुको निकट
मानेकी शक्ति है। प्राकाम्य इच्छाशक्तिका अर्थावात
है, मनमें जब जो इच्छा होगी, वही इच्छा पूर्ण करनेमें
सामर्थ्य है। वगित भुज और भौतिक पदार्थोंकी योगी-
भूत करनेकी शक्ति है। ईशित्व सभी भूतादि पदार्थोंकी
प्रति कर्तृत्व करनेकी शक्ति है। यत्र कामावसायित्व
सत्यसङ्कल्पता, भुज और भौतिक वस्तुके प्रति वे जब
जिस शक्तिके उद्देश्यसे सङ्कल्प करते हैं, वे सब वस्तुएं
उसी समय तद्रूप शक्तिविशिष्ट हो जाती हैं। योगी
इसके धर्मसे विषयको अमृत और अमृतकी विषय कर
सकते हैं।

यद्यप्यष्ट महासिद्धि लाभ होने पर उसके साथ साथ
और भी दो सिद्धि होती हैं। भूतगुण द्वारा उनको
शरीरिक क्रियाका प्रतिबन्धक नहीं होना और शरीर-
सम्पत्ति उत्तम होना ये दो सिद्धियाँ कायसम्पत् और
कायिक धर्मकी अर्थावात कहलाती हैं। रूप, लावण्य,
बल, वष्यतुल्य दृढ़शरीर वा वेगशालिता प्रभृति शरी-
रिक गुण विशेषका नाम कायसम्पत् है। योगी
दृष्ट्यादि जय द्वारा जब प्रकृति और उपरका पार्यव-
ज्ञान अनुभव करते हैं, तब उनकी अविद्या नष्ट हो जाती
है और कैवल्य तथा स्वरूपप्रतिष्ठारूप स्थितिप्राप्त-
लाभ होता है। सुतरां उस समय वे सुख वा कृतकृत्य
हो जाते हैं।

चार प्रकारके योगियोंका लक्षण।

योगसिद्धिके पहले नाना प्रकारके विघ्न और प्रलो-
भन या उपस्थित होते हैं। इस समय योगीको
प्रलुब्ध या विघ्नमयसे योगका परित्याग न करना चाहिये।
योगी अवस्थाकी अनुसार चार प्रकारके हैं। तदनुसार
उनके भिन्न भिन्न नाम पड़े हैं। यथा—प्रथमकल्पिक,
मधुभूमिक, प्रज्ञाज्योति और अतिक्रान्तभावनीय।

जो केवल योगाभ्यासमें लगे रहते हैं, उनका योग

अविचलित वा दृढ़ नहीं होता। अथवाभ्यासमें रत रह
कर जो संयमकान्तमें किसी प्रकारकी सिद्धि नहीं
देखते, केवलमात्र उनका अल्प ज्ञानालोक प्रकाशित
होता है। ऐसे योगीका नाम प्रथमकल्पिक है। जिन्होंने
इस अवस्थाका पतिक्रम कर मधुमती नामक अवस्था
प्राप्त है, पूर्वोक्ति कृतधरा नामक प्रज्ञा जय कर भक्त
और इन्द्रियोंकी वशीभूत किया है, उन्हें मधुभूमिक
योगी कहते हैं। जो इस अवस्थाका पतिक्रम कर देव-
तासंज्ञा सबोधन हुए हैं और पूर्वोक्ति क्षाण्ड संयमके
विषयमें सिद्ध होनेके लिये तत्पर हैं, उनका नाम प्रज्ञा-
ज्योति है। जो इस अवस्थाका भी पतिक्रम कर अंतर्यामि
विवेकज्ञानसम्पन्न हुए हैं और जिनकी समाधिकान्तमें
किसी प्रकारकी विघ्नगद्गा अवग्रह नहीं होती, उनका
नाम अतिक्रान्तभावनीय है।

इस चतुर्विध योगियोंके सन्ध्यो जो प्रथमकल्पिक
है, वे कोई सिद्धिरूप वा देवदर्शन नहीं पाते।
सुतरां देवगण कर्तृक उनको आमन्त्रण वा मनोभंगही-
न अवावना नहीं है। देवगण केवल पूर्वोक्ति मधुभूमिकादि
तिविधं योगियोंको ही प्रलोभित और आमन्त्रित
करते हैं। योगियों यदि उन सब दिव्यमोग और भूत
पदार्थोंके दर्शन कर विमोहित हो जायें, तो उनका
योग भ्रष्ट हो जायगा। उनका योगादृष्ट अवस्थामें
किसी प्रकार भूत वा अलौकिक दृश्य देख कर उस पर
सुख होना विद्वद्भंगमात्र है। क्योंकि ऐसा होनेसे
उनका जो संसार है, वही संसार रह गया। कैवल्य-
लाभकी भाया सुदूरपराहत होगी।

योगीके क्रमगत तारक ज्ञान लाभ होता है। यह
ज्ञान संसारसमुद्रमें तरण करता है, इस कारण उभका
तारक नाम पड़ा है। योगवस्तुसे बुद्धितत्त्व निर्मल होने
पर बुद्धिनिष्ठ रजः और तमोगुण निःशेषमें विदूरित
होता है। उस समय और किसी प्रकारकी हृत्ति उदित
नहीं होती—उस समय बुद्धि स्थिर, मधीर, निश्चय और
निर्मल रहती है। सुतरां निष्ठितिक अवस्था प्राप्त होती
है। बुद्धिद्वयमें तद्रूप अवस्था होनेका नाम सत्त्वशुद्धि
है। जिस श्रित्यशुद्ध आत्माके कवित भोग तिरोहित
होता है उसीका दूसरा नाम आरमशुद्धि है। सत्त्वशुद्धि

और प्राकृतिक समानरूपमें साधित होनेसे प्राणाका कैवल्य होता है तथा इषीको मोक्ष कहते हैं। समस्त योगी और प्रत्येक पुरुषका यही परम लक्ष्य है।

पूर्वोक्त सभी सिद्धियाँ जन्म, शोष, मन्त्र, तपस्या और समाधिसे स्वयं होती देखी जाती हैं। सभी व्यक्तियोंके संसारका कारण एकमात्र प्रकृति और पुरुष संयोग है। यह प्रकृतिपुरुषसंयोग पूर्वोक्त पविद्या-व्ययतः हो हुआ करता है। उस पविद्याको विनाशक केवल विवेकख्याति है। एतद्विषय पविद्याका अन्तर्गत स्वरूपान्तर नहीं है। प्रकृति प्रकृति अक्षयदायक है पुरुष पुरुषभूत है, ऐसे ज्ञानका नाम ही तत्त्वज्ञान या विवेकख्याति है। जिस प्रकार धन होनेसे निर्धनताका स्वरूप दैन्य नहीं रहता, उसी प्रकार पविद्या-विरोधी विवेकख्याति जिसकी चित्तभूमिमें स्थापित होती है, उसके चित्तसे पविद्या तिरोहित हो जाती है। पविद्याकी विनष्ट होनेसे तत्त्वाय प्रकृति और पुरुषसंयोग भी विनष्ट होगा। ऐसा होनेसे ही संसारका मूलोच्छेद होगा। इस प्रकार विवेकख्याति द्वारा संसारकी निवृत्ति होनेसे ही पुरुषका कैवल्य होता है।

कैवल्य।

जवाबे निम्न उसकी प्रतिविम्बसे स्वच्छस्रष्टिक भी रक्त-प्रतीयमान होता है। जवाबे दूर स्फटिक कभी मोररक्त प्रतीयमान नहीं होता, प्रत्युत उसको श्यामाविक शून्यताका ही अनुभव होता है। उसी प्रकार पुरुषसंनिर्गम और स्वच्छ होने पर भी वे संसारदशांमें ही चित्तगत सुखदुःखादिके प्राभासमात्रमें ही सुखी हैं; मैं दुःखी हैं; मैं कर्मा हूँ, इत्यादि भिन्नाभिनिर्गम होती हैं। संसारके निवृत्ति होने पर और इस प्रकार भविष्यमान उत्पन्न नहीं होता। उस समय पुरुषकी स्वाभाविक चिन्मात्रस्वरूप कैवल्यरूपता ही रहती है। वही केवल रूप कैवल्य वा मुक्ति कहता है। कैवल्यनाम ही योगीका एकमात्र चरमोद्देश्य है। भगवान् पतञ्जलिने कैवल्यवादीमें कैवल्यका ही स्वरूप निर्देश किया है। विस्तार ही जानेके मयमें उस विषय पर और अधिक विचार नहीं किया गया। विमुक्ता प्रकृति और तत्पक्षता बुद्धि अपने अपने

यथोभूत किसी-एक गुणके विकारसे विवर्तित हो कर रूपान्तर वा विवर्तितकी प्राप्त होती है, चित्तस्वरूप पुरुष उस प्रकार विवर्तित नहीं होते। सूर्य जिस प्रकार निर्मल जलमें प्रतिविम्बित होते हैं, पुरुष भी उसी प्रकार प्रकृतिमें प्रतिविम्बित हुआ करते हैं। विवेकख्याति द्वारा क्रमशः पुरुषके कैवल्य लाभ करने पर प्रकृतिमें वे फिर प्रतिविम्बित नहीं होते। पहले हो कड़ा जा चुका है, 'तदा दण्डः स्वल्पेन दृश्यते।' (पातञ्जल) उस समय के केवल एकमात्र दृष्टस्वरूपमें अवस्थान करते हैं। योगका यही चरमफल है।

चिकित्सा शास्त्र जिस प्रकार रोग, रोगहेतु, चारोग्य और चारोग्यहेतुमेंद्वे चतुर्थ है, उसी प्रकार यह योगशास्त्र भी है, हैयहेतु, मोक्ष और मोक्षहेतु नामक चतुर्थ है। दुःखमय संसार ही हैय है। यही संसार एकमात्र दुःखका कारण है। जब तक संसार निवृत्ति नहीं होगी, तब तक दुःखके हाथसे निवृत्ति-लाभका कोई उपाय नहीं। इसीसे 'हेतुं दुःखमनागतं' अनागत दुःख ही हैय पदवाच्य है। निरपेक्ष और भाविष्यददुःख न हो, वही काना पावम्नक है। प्रकृति और पुरुषसंयोग ही हैयका हेतु है, दुःखका एकमात्र कारण प्रकृति और पुरुषका संयोग है। जब तक प्रकृति और पुरुषका संयोग रहेगा, तब तक दुःखका हेतु रहेगा ही।

प्रकृति और पुरुषसंयोग-निवृत्तिरूप कैवल्य ही मोक्ष है। योगादि द्वारा प्रकृति और पुरुषसंयोग निवृत्त हो कर मोक्ष वा कैवल्य होता है। मोक्षका कारण ही एकमात्र विवेकख्याति है। मोक्षलाभ करनेमें जिससे विवेकख्याति ही, उसके प्रति चेष्टा करना ही सर्वोत्तमोपायसे विधि है। यही सांख्यमें हैय, हैयहेतु, हान और हानोपाय नामसे परिचित हुआ है। (पातञ्जल-४)

पतञ्जलिपरिचय और आतिर्भावकालनिर्णय।

योगसूत्रकार पतञ्जलि का परिचय बड़ा ही अस्पष्ट है। वे किस समय प्राविर्भूत हुए थे, ठीक ठीक मालूम नहीं। किसीका कहना है, कि पतञ्जलि स्वयं शिव वा अनन्त देव हैं। यह पुरुषार्थने ज्ञात्या-यनको वेदायुक्तमणिकाने माध्यमें किया है—

“यद्यप्रणीतानि वाक्शानि भगवान्नु पतञ्जलिः ।
योगार्थः स्वयं कर्त्ता योगशास्त्रनिदानयोः ॥”

जिनके बनावे हुए वाक्शौकी भगवान् पतञ्जलिने व्याख्या की, वे ही स्वयं योगाचार्य, निदान और योगशास्त्रके प्रणेता हैं ।

पदसुगमिष्यका कहना है, कि पातञ्जलयोगसूत्रकार पतञ्जलिने पाणिनि व्याकरणके व्याख्यास्वरूप महाभाष्य और वैश्वस्यको रचना की । किन्तु हम लोगोंने खालसे योगसूत्रकार पतञ्जलि और महाभाष्यकार पतञ्जलि ये दोनों एक व्यक्ति नहीं थे । क्योंकि महाभाष्यकारके बहुत पहले कात्यायनने अपने वात्सिक (६११.८) में पतञ्जलिका स्पष्ट नामोल्लेख किया है ।

एतस्मिन् कात्यायनके वात्सिकमें योगशास्त्रप्रतिपाद्य धर्मेक शब्द भी देखे जाते हैं । मतः योगसूत्रकार पतञ्जलि कात्यायनके पूर्ववर्त्ति थे, इसमें जरा भी संदेह नहीं ।

किसी किसीका मत है, कि योगसूत्रकार पतञ्जलि पाणिनिके पूर्वतन थे । किन्तु यह ठोक प्रतीत नहीं होता । पाणिनिने कहीं पर भी पतञ्जलि या पातञ्जल शब्दका उल्लेख नहीं किया । लेकिन योगशास्त्रका मूलसंस्कृत पाणिनिके पहले भी प्रचलित रह सकता है ।

किसीका कहना है, कि छहदारण्यक उपनिषद्में जिस काव्य पतञ्जलका नाम है, वे ही योगशास्त्रकार पतञ्जलि हैं । किन्तु इस सम्बन्धमें अनुमानके भिन्न कोई प्रमाण नहीं है । छहदारण्यक-प्रणीत महर्षि याज्ञवल्क्य योगशास्त्रप्रचारक थे, किन्तु पतञ्जलिका नाम तक भी छहदारण्यकमें नहीं है । खेताम्बर और गर्भ, निरालम्ब, योगविद्या, योगतत्त्व प्रभृति आश्विन्य उपनिषद्में योगतत्त्वका स्पष्ट आभास पाया जाता है, किन्तु वह पतञ्जलि प्रवर्तित योगसूत्रमूलक है वा नहीं, ठोक ठोक मालूम नहीं ।

ब्रह्माण्डपुराणमें एक संहिताकार पतञ्जलिका इस प्रकार परिचय है—

“(१) पराशरपुत्र वेदव्यास, उनके शिष्य (२) जैमिनि, जैमिनि के पुत्र (३) समन्त, समन्त के पुत्र (४) सुत्वा

सुत्वा के पुत्र (५) सुकर्म, सुकर्मके शिष्य (६) पोषिन्नि वा पोषिन्नि, इनके शिष्य (७) कुशुमि, कुशुमिके पुत्र (८) पराशर, पराशरके पुत्र (९) प्राचीनयोग और प्राचीनयोगके पुत्र (१०) पञ्जलि ।

ब्रह्माण्डपुराणके संहिताकार पतञ्जलि, सामवेदके कौशुमभाष्यप्रवर्त्तक कुशुमिके प्रपौत्र और पराशरके पौत्र कहला कर ‘कौशुमं पाराशर्य’ नामसे भी परिचित हुए हैं । (ब्रह्माण्डपुराण अनुवर्ग गाद ६५।१।)

पुराणमें कोई कोई नाम रूपकभावमें वर्णित हुआ करता है । इनमें मानम होता है, कि पतञ्जलिके पिता प्राचीनयोगका नाम भी रूपक है । सम्भवतः इन्होंने प्राचीन योगमार्गका चर-स्वन किया होगा इसीसे इनका नाम ‘प्राचीनयोग’ पड़ा ।

किसी किसीने लिखा है, कि पराशरपुत्र व्यासने अपने वेदान्तसूत्र (२।१।१)में ‘एवेन योगः प्रत्युक्तः इत्यादि’ उक्ति द्वारा पतञ्जलिप्रवर्तित योगसूत्रका ही उल्लेख किया है । किन्तु उपरोक्त तालिका द्वारा जब देखा जाता है, कि पाराशर्य व्यास पतञ्जलिके ऊर्ध्वतन १०म पुत्र थे तब प्राचीनयोगके पुत्र पतञ्जलि किस प्रकार वेदान्तसूत्रकथित योगमार्गके प्रवर्त्तक हो सकते हैं ? हम लोगोंका विश्वास है, कि वेदान्तसूत्रकारने प्राचीन योगका विषय ही संक्षेप किया है, किन्तु उस समय भी पातञ्जल योगसूत्र रचिन नहीं हुआ था । याज्ञवल्क्य-संहिता, महाभारत आदि ब्रह्मचोदन ग्रन्थोंमें जाना जाता है कि महर्षि याज्ञवल्क्य भारद्वाजने भी योगशास्त्रका प्रचार किया । ब्रह्माण्ड प्रभृति पुराणोंमें मालूम होता है, कि वे पाराशर्य व्यासके समसामयिक थे । योगियाज्ञवल्क्य नामक योगशास्त्रमें लिखा है, कि महर्षि याज्ञवल्क्यने ही सबसे पहले योगशास्त्रका प्रचार किया । इनसे कोई होता है, कि वेदान्तसूत्र प्रथित होनेके समय याज्ञवल्क्यका योगशास्त्र प्रचलित हुआ था । उनसे बहुत पहले पतञ्जलिने निरोधर सांख्यमत समर्थन करके उसे प्रथममूलक मेहरद्वयमें परिणत करनेके लिये ‘सांख्य-प्रवचनयोगसूत्र’ नाम दे कर मत्प्रवर्त्तन किया । उन्होंने पूर्वतन योगियोंका मत ही विशदरूपमें और परिमलभावमें प्रचार किया, इस कारण उनका मत ‘पातञ्जलदर्शन’

नामसे प्रसिद्ध है जो पदार्थों के मध्य सर्वश्रेष्ठ दर्शन है। योग और योगशास्त्र शब्दमें अन्तरास्य विवरण देखा।

पतञ्जलिनं त्रिस्र योगसंज्ञको रचना की है उसको ऊपर भाष्य और चर्चों द्वारा रचो गई हैं, यथा—

१। व्याख्यारचित पातञ्जल-सांख्यप्रवचनभाष्य और वैयक्तिक भाष्य।

२। विज्ञानभित्तुरचित योगवार्तिक।

३। वाचस्पतिमिरचित पातञ्जलसूत्रभाष्यव्याख्या तिलक।

४। ज्ञानेश्वर या नागोजी रचित पातञ्जलसंस्कृत-भाष्यव्याख्या।

५। चन्द्ररचित योगसंज्ञाचन्द्रिका या योग-चन्द्रिका।

६। मानन्दमिरचित योगसंज्ञाकर। (योग-सूत्रवृत्ति)।

७। उदयहर-रचित योगवृत्तिग्रन्थ।

८। रामानन्दमिरचित योगसूत्रवृत्ति।

९। रामानन्दद्वारा रचित व्याख्यारचित या नव-योगसंज्ञा।

१०। गणेशद्वारा रचित पातञ्जलवृत्ति।

११। रामानन्दमिरचित योगसूत्रवृत्ति।

१२। नारायणभट्ट या नागयथेन्द्रसरस्वतीरचित योगसूत्रवृत्ति।

१३। भवदेवकी पातञ्जलीयांभिनवभाष्य।

१४। भवदेवरचित योगसूत्रवृत्तिटिप्पण।

१५। भोजराजकी राजमार्ग।

१६। महादेवरचित योगसूत्रवृत्ति।

१७। रामानन्दसरस्वतीरचित योगसंज्ञा (वैयक्तिक भाष्यसम्मत)।

१८। रामानन्दरचित योगसंज्ञाभाष्य।

१९। उदयन शङ्कररचित योगसूत्रवृत्ति।

२०। मङ्गल या शिवशङ्कररचित योगवृत्ति।

२१। सदाशिवरचित पातञ्जलसूत्रवृत्ति।

२२। राघवानन्दयतिरचित पातञ्जलसंस्कृत।

२३। श्रीधरानन्दयतिरचित पातञ्जलसंस्कृतभाष्य।

प्रायः पञ्चाशीति नामक एक योगग्रन्थ देखा जाता है। शिवोक्त मतसे यह ग्रन्थ पतञ्जलिप्रणीत और वेष्णुसम-परिष्कारक है। अभिनवगुप्तरचित ग्रन्थमत-प्रमाण एक और योगग्रन्थ मिलता है।

पातञ्जल (मं० पु०) पतञ्जो तच्छब्दोऽस्यवाध्याये चतु-
र्वाके वा विमुक्तादित्वाद्यन्। (ग ५।२।११) १ पतञ्जि
शब्दयुक्त प्रमाण। २ चतुर्वाक।

पातन (सं० कौ०) पत-णिच् भावे लृट्। १ पारके
पाठ संस्कारोंमें वे पाँचवा संस्कार। इनके तीन भेद
हैं—कर्धपातन, अधःपातन और तिर्यक्पातन।

कर्धपातन—तीन भाग पारद और एक भाग ताम्र
चूर्णको मिला कर जड़ोरो नीचके रखमें रखे पीत
पिण्डाकार बनावे। पीछे निम्नभागमें उस पिण्डको
रख कर कर्धभागके नीचे लेप लगावे और ऊपरसे
पानी भर दे। अनन्तर सम्बन्धानको अच्छी तरह धुव
कर अभिनवनापसे पारद साधारण करे। ऐसा करनेसे
निम्नदेशमें ताम्रवह यज्ञादि द्रव्य गिर पड़ेगा और
कर्धदेशमें समस्तक वज्रित निर्मल पारद स्रुत
पायागा। यही कर्धपातन है।

अधःपातन—गन्धक और जम्बीर रखके साथ
पारदको एक दिन तक घोंट कर पिण्डाकार बनावे।
अनन्तर शुद्धिस्थान, सोहज्जन, चपामर्ग, सैन्धवस्रवण
और श्वेतवर्णको एक साथ पोस कर उसमें मिला दे।
पीछे कर्धभागके अधरभागमें लेप और अधोभागमें जल
देवे। बाद दोनों भागके सम्बन्धनमें लेप दे कर
ऊपर भाग पर चम्पि रख दे। पीछे पुनः देनेसे कर्ध-
भागमेंसे पारद जलमें गिर पड़ेगा। इसी अधःपातन
पारदको काममें लाना चाहिये।

तिर्यक्पातन—एक घड़ेमें पारद और दूधरेमें जल
भर दे। इन दोनों घड़ोंको तिर्यक्भावमें रख कर
मुखस्थि पर लेप लगावे। पीछे पारदपूर्ण घड़के नीचे
पीच देनेसे पारद तिर्यक्भावमें जलमें गिर पड़ेगा।
यही तिर्यक्पातन है। (रत्नेश्वरच०) २ विस्तारण।
३ विस्फारण। ४ विनाशन। ५ पतनकारक।

पातनेय (सं० वि०) पत-णिच्-प्रत्यये। पातनयोग्य,
गिराने लायक।

“यद्यप्रणीतानि शास्त्राणि भगवान्मु पतञ्जलिः ।

योगानर्थः स्वयं कृती योगशास्त्रनिदानयोः ॥”

जिनके बनाये हुए वाक्यों को भगवान् पतञ्जलिने व्याख्या की, वे ही स्वयं योगाचार्य, निदान और योगशास्त्रके प्रणेता हैं ।

पट्ट.गुणशिक्षका कहना है, कि पातञ्जलयोगसूत्रकार पतञ्जलिने पाणिनि व्याकरणके व्याख्यानस्वरूप ‘महाभाष्य’ और वैद्यक ग्रन्थको रचना की । किन्तु हम लोगोंके ख्यातिसे योगसूत्रकार पतञ्जलि और महाभाष्यकार पतञ्जलि ये दोनों एक व्यक्ति नहीं थे । क्योंकि महाभाष्यकारके बहुत पहले कात्यायनने अपने वात्सिक (६।१।८७) में पतञ्जलिका स्पष्ट नामोल्लेख किया है ।

एतद्विन्न कात्यायनके वात्सिकमें योगशास्त्रप्रतिपाद्य चर्चक शब्द भी देखे जाते हैं । अतः योगसूत्रकार पतञ्जलि कात्यायनके पूर्ववर्ती थे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं ।

किसी किसीका मत है, कि योगसूत्रकार पतञ्जलि पाणिनिके पूर्वतन थे । किन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता । पाणिनिने कहीं पर भी पतञ्जलि या पातञ्जल वदवा पातञ्जलदर्शन-प्रतिपाद्य किसी पारिभाषिक शब्दका उल्लेख नहीं किया । निश्चिन योगशास्त्रका मूलतत्त्व पाणिनिके पहले भी प्रचलित रह सकता है ।

किसीका कहना है, कि हठदारण्यक उपनिषद्में जिस काव्य पतञ्जलका नाम है, वे ही योगशास्त्रकार पतञ्जलि हैं । किन्तु इस सम्बन्धमें अनुमानके भिन्न कोई प्रमाण नहीं है । हठदारण्यक-अर्णित महर्षि याज्ञवल्क्य योगशास्त्रप्रचारक थे, किन्तु पतञ्जलिका नाम तक भी हठदारण्यकमें नहीं है । श्वेताश्वर और गर्भ, निरालम्ब, योगमित्रा, योगतत्त्व प्रभृति आचार्यण उपनिषद्में योगतत्त्वका स्पष्ट आभास पाया जाता है, किन्तु वह पतञ्जलि प्रवर्तित योगसूत्रमूलक है या नहीं, ठीक ठीक मालूम नहीं ।

ब्रह्माण्डपुराणमें एक संहिताकार पतञ्जलिका इस प्रकार परिचय है :—

“(१) पराग्ररपुत्र वेदव्यास, उनके शिष्य (२) जैमिनि, जैमिनिके पुत्र (३) सुमन्तु, सुमन्तुके पुत्र (४) सुत्वा-

सुत्वाके पुत्र (५) सुकर्मा, सुकर्माके शिष्य (६) पौलिहि वा पौलिहि, इनके शिष्य (७) कुशुमि, कुशुमिके पुत्र (८) पराग्रर, पराग्ररके पुत्र (९) प्राचीनयोग और प्राचीनयोगके पुत्र (१०) पञ्जलि ।

ब्रह्माण्डपुराणोक्त संहिताकार पतञ्जलि सामवेदके कोशसुगन्धामवर्त्तक कुशुमिके प्रपौत्र और पराग्ररके पुत्र कहना कर ‘कोशसुं पाराग्रय’ नामसे भी परिचित हुए हैं । (ब्रह्माण्डपुराण अनुपंगम ६५।११)

पुराणमें कोई कोई नाम उक्तभावमें वर्णित हुआ करता है । इससे मालूम होता है, कि पतञ्जलिके पिता प्राचीनयोगका नाम भी रूपक है । सम्भवतः उन्होंने प्राचीन योगमार्गका प्रवर्धन किया होगा इसीसे इनका नाम ‘प्राचीनयोग’ पड़ा ।

किसी किसीने लिखा है, कि पराग्ररपुत्र व्यासने अपने वेदान्तसूत्र (२।१।३)में ‘एवेन योगः प्रयुक्तः इत्यादि उक्ति द्वारा पतञ्जलिप्रवर्तित योगसूत्रका ही उल्लेख किया है । किन्तु उपरोक्त तालिका द्वारा ज्ञात होता है, कि पाराग्रय व्यास पतञ्जलिके ऊर्ध्वतन १०म पुत्र थे तब प्राचीनयोगके पुत्र पतञ्जलि किस प्रकार वेदान्तसूत्रवर्णित योगमार्गके प्रवर्त्तक हो सकते हैं ? हम लोगोंका विश्वास है, कि वेदान्तसूत्रकारने प्राचीन योगका विषय ही उल्लेख किया है, किन्तु उस समय भी पातञ्जल योगसूत्र रचिन नहीं हुआ था । याज्ञवल्क्य संहिता, महाभारत यादि बहुत प्राचीन ग्रन्थोंसे जाना जाता है कि महर्षि याज्ञवल्क्य पारण्यकने भी योगशास्त्रका प्रचार किया । ब्रह्माण्ड प्रभृति पुराणोंमें मालूम होता है, कि वे पाराग्रय व्यासके समसामयिक थे । योगीयाज्ञवल्क्य नामक योगशास्त्रमें लिखा है, कि महर्षि याज्ञवल्क्यने ही सबसे पहले योगशास्त्रका प्रचार किया । इससे स्पष्ट होता है, कि वेदान्तसूत्र वर्णित होनेके समय याज्ञवल्क्यका योगशास्त्र प्रचलित हुआ था । उनसे बहुत पहले पतञ्जलिने निरोधर सांख्यमत प्रवर्धन करके उसे प्रयत्नमूलक सेखरदर्शनमें परिणत करनेके लिये ‘सांख्य-प्रवचनयोगसूत्र’ नाम दे कर मत-प्रवर्त्तन किया । उन्होंने पूर्वतन योगियोंका मत ही विशदरूपसे और परिमलभावमें प्रचार किया, हम कारण उनका मत ‘पातञ्जलदर्शन’

पातवर्दी (हि० स्त्री०) एक नकशा । इसमें किसी जाय-
दादकी वंदाजन मालियत और उस पर जितना देना
या कर्ज हो, वह लिखा रहता है ।

पातवर्ति (सं० स्त्री०) पत-पिच्छ-लक्ष् । पातनकर्त्ता,
सिरानेवाला ।

पातराज (सं० पु०) एक प्रकारका सप ।

पातव्य (सं० स्त्री०) पातनशील ।

पातव्य (सं० स्त्री०) पातव्य । १ रचितव्य, रचा करने
योग्य । २ पानयोग्य, पीने लायक ।

पातगाह (हि० पु०) यादगाह देखो ।

पातगाही (हि० वि०) यादगाही देखो ।

पाता (हि० वि०) १ रचा करनेवाला । २ पीनेवाला ।

पातावा (जा० पु०) १ भोजा । २ चमड़ेका वह लम्बा
टुकड़ा जो ठोले जूतोंको सुप्त करनेके लिये उसमें डाला
जाता है, सुखतवा ।

पातामाढ़ी—पासामके ग्वालपाड़ा जिलेका एक ग्राम ।
यह भुवड़ोचे ८ मील दक्षिण ब्रह्मपुत्रनदीके किनारे
प्रवस्थित है । यहांके काफी पाटकी रफ्तानी होती
है । यहां एक डाकघर है और प्रति सप्ताह एक बड़ी
हाट लगती है ।

पातार (हि० पु०) पाताल देखो ।

पातारी—मन्त्रवार जातिकी एक जाति । इस जाति-
निर्देशक पातारी शब्दकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें दो मत
हैं । किसीका कहना है, कि संस्लान पतवर्षिक
अर्थात् लेखक शब्दसे इसकी उत्पत्ति हुई है । इससे
साबित होता है, कि ये लोग पड़ले गौन्द मन्त्रवारोंके
पुरोहित थे और यथावलि-लेखकका काम करते थे ।
फिर कोई गौन्द भाषाके पात (पवित्र स्थान) शब्दसे
पातारी शब्दकी उत्पत्ति बतलाते हैं ।

मिर्जापुरके पातारो चार श्रेणियोंमें विभक्त हैं ।
इन चार भागोंके फिर कई एक भाग हैं ।

पातारी लोगोंका कहना है, कि ये लोग पड़ले
मन्त्रवार थे और सभी सान भाष्योंके वंशधर थे । पुरो-
हितका चर्माव हो जानेसे इन्होंने कनिष्ठ भाईके वंश-
धरकी पुरोहितके कार्य पर नियुक्त किया । तभीसे
मन्त्रवार लोग इनकी पुरोहिता करते पा रहे हैं ।

इनकी विवाह-पद्धति मन्त्रवारोंकी विवाहपद्धति-
सी है । लेकिन मन्त्रवारोंने इन लोगोंमें कभी धर्ममें
को विबाह होता है । इन लोगोंमें बहुत विवाह और
विधवा-विवाह प्रचलित है । ये लोग हिन्दू मन्त्र-
वाधायोंकी तरह शवके वस्त्रादि ग्रहण करते हैं, इस
कारण लोग इन्हें छुपाकी दृष्टिसे देखते हैं ।

पाताल (सं० स्त्री०) पतनवर्दिम्-दुष्क्रियवत् । इति
पत कात्पञ्च, (पतिवर्दिभ्यामात्पञ्च । उष्ण १/१११)
पादस्थ तले वर्त्तते इति पृथोदरादित्वात् साधुरित्तेः ।
१ विवर, गुफा, भिन्न । २ बहुवानत् । ३ बालकके
लग्नचे चौथा स्थान । ४ स्वनाम ख्यात भुवनविशेष,
पृथ्वीके नीचेके सात लोकोंमेंसे सातवां । प्रयोग—
प्रथोभुवन, बलिसप्त, रसातल, नागलोक, प्रधा, उरग-
स्थान ।

पाताल सात भागें गये हैं—पतन, नितल, वितल,
गमस्त्रिमत्, तन, सुतल और पाताल ।

“अतलं नितलञ्चैव वितलञ्च गमस्त्रिमम् ।
तलं सुतलगतौ पातालानि तु सप्त वै ॥” (उद्देशभा०)
पञ्चपुराण पातालखण्डमें इस प्रकार लिखा है,—

पाताल ७ है, पड़ला पतल, छूरा, वितल, तीवरा
सुतल, चौथा तनातल, पाँचवां महातल, छठी रसातल
और सातवां पाताल । ये सात पाताल स्वर्गके अधिक
सुखकर स्थान हैं, इन्हींके इनका सुनिर्गोने विश्वस्वर्ग
नाम रखा है । यह पाताल सम्यग्भयन, उद्यान, विहार,
पातौड़ और चखर आदि द्वारा सुगोभित हैं । प्रथो
देगमें दययोजन विस्तृत जो स्थान है, उसे पतल
कहते हैं । इस पतल नामक पातालमें मयपुर महाभाय
रहता है । यह महाभाय एक प्रकारकी भाषाकी सृष्टि
करता है । इसके प्रथोदेगमें प्रयुन योजनविस्तृत
वितल नामक पाताल है जहाँ भगवान् हाटकेतर बर
और सुपावर्द प्रभृति भूतगण तथा स्वयं भवनी वास
करते हैं । यहां हाटकी नामक एक प्रति विस्तृत
सुतल नामकी पाताल है । इस सुतल पातालमें स्वयं
यनि वास करते हैं । भूतल पातालके प्रथोदेगमें तना-
तल पाताल है । यहां मायाकी पात्रप्रखण्ड मयदानव
प्रतिष्ठित हैं । इसके निम्नदेगमें महातल नामका

पाताल है; जहाँ सर्पगण कुट्टे, खं और वम्बु, वायव्यो सहित गुरुकुल भयसे भोत हो कर वास करते हैं। इसके तलदेशमें रसातल है। यहाँ दानवगण इन्द्रके भयसे भोत हो कर रहते हैं। इसके मो तलदेशमें जो पाताल है; यहाँ विरर्यष्ट नागलोकके सभी अधिपति विद्यमान हैं। (पद्यपुत्राण पाताल ० १, २, ३ अ०)

अग्निपुराणमें लिखा है; कि पतल, सुतल, वितल, गमस्तिमन्तु, महातल, रसातल और पाताल ये सात पाताल हैं। इन सात पातालोंमें यथाक्रम रुक्म, शिखा, नील, रक्त, पीत, खेत और क्षण ये सात प्रकारकी मृत्तिका हैं।

विष्णु पुराणके मतसे पतल, वितल, नितल, गमस्तिमन्तु, महातल, सुतल और पाताल ये सात पाताल हैं। इन सब पातालोंमेंसे प्रत्येक पातालका परिमाण एक योजन है। इनकी भूमि यथाक्रम क्षण, शक, अरुण, पीत, शकरा, शैल और काष्ठनगमें हैं। इन पातालोंमें महा-नाग और सर्पगण वास करते हैं। ये सब पाताल स्वर्ग-लोकसे भी बहुत ऊँचे हैं। स्वर्ग और चन्द्रमा यहाँ प्रकाश-मोक्ष देते हैं, गरमी तथा सर्दी नहीं दे सकते। इन पातालोंके नीचे ग्रीवाख्या की तामसो तनु है, पण्डितगण जिन पतल कहते हैं, जिन्हें पतलदेवकी कणामणिके अग्रभाग पर यह छवो कुसुमकी तरङ्ग विद्यमान है, उस पतलदेवके चोखे और शक्तिका पार पाना किसीमें सामर्थ्य नहीं है। जिस समय पतलदेव मेदाभूषित-लोचन हो कर जंमोई होते हैं, उस समय पर्वत और तोयनिधि आदिके साथ छवो का उठतो है।

(विष्णुपुराण ० १ अ०)
पातालका विषय देवीभागवतमें इस प्रकार लिखा है;—पतलीसके अधोदेशमें छवियों से योजन विस्तृत है। इस छविके नीचे सात विध हैं जिन्हें पाताल कहते हैं। इनमेंसे प्रत्येकका आयाम और उच्छाय अयुत योजन है। इन सब स्थानोंमें सभी समय सब प्रकारका सुखभोग किया जाता है। इन सात पातालोंमेंसे पहले पातालका नाम पतल, दूसरेका वितल, तीसरेका सुतल, चौथेका महातल, पाँचवेंका महातल, छठेका रसातल और सातवेंका नम्र पाताल है। ये सब पाताल विस्-

स्वर्ग नामसे प्रसिद्ध हैं और स्वर्गसे भी समधिक सुखप्रद है। यह पाताल काम, भोग, ऐश्वर्य और सुखसमृद्धिसे परिपूर्ण है। यहाँ सबजानो दैत्य, दानव और सर्पगण पुत्रकुलवादि के साथ वास करते हैं। ये सभी मायायो, अप्रतिहत-संकल्प तथा वासनाविग्रिष्ट हैं। यहाँ सब कोई सब समय आनन्दपूर्वक वास करते हैं। मायाके अधोधर मयदानवने इन सब विधोंमें इच्छा-नुसार नाना प्रकारकी पुरी, मणिरत्नसे सुशोभित हजारों विचित्र वाद्यगण, अष्टालिका और समस्त गीत निर्माण किये हैं। यह स्थान विविध क्षत्रिम भूमिभागसे समा-कीर्ण और विवरपतियोंके सङ्कट गृहपरम्परासे अल-ङ्कृत है। पातालकी जलराशि नाना जामोय विहङ्गवर्गसे विमण्डित, उद-रसङ्कलितसे परिपूर्ण और पाठीन-मख्यीसे समलङ्कृत है। यह स्थान सब तरहसे सुखप्रद है। दिन वा रात कभी भी यहाँ किसी प्रकारका भय नहीं रहता। सर्पोंकी शिरोमणिकी आलोकप्रभासे कभी भी यहाँ अन्धकार नहीं होता। यहाँ आदिश्याधि नहीं है। अधिक क्या, बलपलित, ज्वर, जोषता, विषयता आदि व्योषस्या यहाँके अधिवासियोंको कोई क्षोभ नहीं दे सकते। यहाँ एकमात्र भगवान्की तेज तथा सदगन्धकसे सिवा और किसीसे उन्हें श्रेष्ठ्युभय नहीं रहता। क्योंकि भगवान्का तेज प्रविष्ट होनेसे भय-वशतः उनको समर्थियोंका गर्भपात हो जाता है।

पतल पातालमें मयपुत्र बल वास करते हैं। इन्हींने ८६ प्रकारकी मायाकी सृष्टि कर रखी है। इनके द्वारा सभी प्रकारके प्रयोजन वा चमोष्ट सिद्ध होते हैं।

मायावी इनकी किसी न किसी मायाका पब-लम्बन करते हैं। इस परम मायाबोजनके जूभास्याग करनेके बाद सर्वलोक मोहजनक त्रिविध रमणी उत्पन्न हुई थी। इन तीनोंका नाम है पुच्छलो, स्वरेषी और कामिनी। जब कोई पुच्छ मिल जाता, सभी कामि-नियाँ उसे प्रलोभित करके सम्यक्प्रकारसे आनाप और विभ्रमादिके साथ प्रमत्त करती हैं। इन प्रकार हाटकरसका उपयोग करनेमें तो अपने मनमें समझते हैं, कि मैं स्वयं ईश्वर हूँ, मिष्ट हो गया हूँ तथा अपने-की ऐश्वर्य विग्रिष्ट समझ कर बार बार इसी प्रकार कहा करते हैं।

पातवंदो (हि० स्त्री०) एक नकशा । इसमें किसी जाय-
दादबी प्रदाजन मानियत और उस पर जितना देना
या कर्ज हो, वह लिखा रहता है ।

पातविट (सं० त्रि०) पत-विच्-टच् । पातनकर्त्ता,
गिरानेवाला ।

पातराज (सं० पु०) एक प्रकारका सप ।

पातव्य (सं० स्त्री०) पातग्यीन ।

पातव्य (सं० त्रि०) पातव्य । १ रचितव्य, रचा करने
योग्य । २ पानयोग्य, पीने लायक ।

पातगाह (हि० पु०) गार्गाह देखो ।

पातगाही (हि० त्रि०) गार्गाही देखो ।

पाता (हि० वि०) १ रचा करनेवाला । २ पीनेवाला ।

पातावा (फ्रा० पु०) १ मोजा । २ चमड़ेका वह लम्बा
टुकड़ा जो दोसे जूतोंको सुस्त करनेके लिये उसमें डाला
जाता है, सुखतला ।

पातांसाढ़ी—भासासके ग्वालपाड़ा जिलेका एक थाम ।
यह घुबड़ोसे ८ मोल दक्षिण नद्यप्रान्तके किनारे
प्रवस्थित है । यहाँवे काफ़ी पाटकी रफ्तानी होती
है । यहाँ एक डाकघर है और प्रति सप्ताह एक बड़ी
हाट लगती है ।

पातार (हि० पु०) पाताल देखो ।

पातारी—मन्त्रधार जातिकी एक शाखा । इस जाति
निर्देशक पातारी शब्दको उत्पत्तिके सम्बन्धमें दो मत
हैं । किसीका कहना है, कि संस्थान पत्रवर्षिक
पधार्त्त लेखक शब्दमें इसको उत्पत्ति हुई है । इससे
साधित होता है, कि ये लोग पहले गोम्द मन्त्रधारिकी
पुरोहित थे और वंशावलि-लेखकका काम करते थे ।
फिर कोई गोम्द भाषाके पात (पवित्र स्थान) शब्दमें
पातारी शब्दकी उत्पत्ति बतलाते हैं ।

मिर्जापुरके पातारी चार श्रेणियोंमें विभक्त हैं ।
इन चार भागोंके फिर कई एक थाक हैं ।

पातारी लोगोंका कहना है, कि ये लोग पहले
मन्त्रधार थे और सभी सात भाइयोंके वंशधर थे । पुरो-
हितका प्रभाव हो जानेसे इन्होंने कनिष्ठ भाईके वंश-
धरकी पुरोहितके कार्य पर नियुक्त किया । तभीसे
मन्त्रधार लोग इनकी पुरोहिता करते पा रहे हैं ।

इनकी विवाह-पद्धति मन्त्रधारियों की विवाहपद्धति-
सी है । लेकिन मन्त्रधारोंने इन लोगोंमें कभी इसमें
को नियाह होता है । इन लोगोंमें बहुत विवाह और
विधवा-विवाह प्रचलित है । ये लोग हिन्दू महा-
शास्त्रियोंकी तरह शवके वस्त्रादि ग्रहण करते हैं, इस
कारण लोग इन्हें छपाकी दृष्टिमें देखते हैं ।

पाताल (सं० स्त्री०) पतम्यस्मिन् दुष्क्रियावत् इति
पत-पातञ्ज, (पतिवर्णिभ्यामात्म् । उष् १/१/१६)
पादस्थ तन्ने वर्त्तते इति एषोदरादित्वात् साधुरिच्ये ।
१ विवर, गुफा, घिस । २ बहुवान्त । ३ बालकके
लम्बसे चौथा स्थान । ४ स्वनाम स्यात् सुवनविशेष,
सुथोके नौचेके सात लोकोंमेंसे सातवां । पद्यो—
पद्योसुवन, वसिनन्द, रसातल, नागलोक, पद्य, उरग-
स्थान ।

पाताल नाम माने गये हैं—पतल, नितल, वितल,
गभस्तिमल, तट, सुतल और पाताल ।

“अतलं नितलञ्चैव वितलञ्च गभस्तिमलम् ।

तलं घृतलग्नतले वातालानि तु सप्त वै ॥” (शुद्धरत्ना०)

पद्मपुराण पातालखण्डमें इस प्रकार लिखा है,—

पाताल ७ है, पडसा पतल, दूसरा वितल, तीसरा
सुतल, चौथा तनातल, पाँचवां महातल, छठा रसातल
और सातवां वाताल । ये सात पाताल स्वर्गके पश्चिम
सुवर्गके स्थान हैं, इसीसे इनका सुनियोनि वितलस्वर्ग
नाम रखा है । यह पाताल समुद्रमंथन, उद्यान, विहार,
भास्कीर्ण और श्वत्वर आदि द्वारा सुगोमित है । पद्यो-
देगमें दग्योनन विस्तृत जो स्थान है, उसे पतल
कहते हैं । इस पतल नामक पातालमें मयपुर महासागर
रहता है । यह महासागर ६६ प्रकारको मायाकी दृष्टि
करता है । इसके पद्योदेगमें पद्युत योजनविस्तृत
वितल नामक पाताल है जहाँ भगवान् साठकेवर हैं
और सुपाखंड प्रभृति सुनयन तथा स्वयं भवानी वास
करती हैं । यहाँ हाठको नामक एक पति विस्तृत
सुनल नामको पाताल है । इस सुतल पातालमें स्वयं
यनि वास करते हैं । सुतल पातालके पद्योदेगमें तला-
तल पाताल है । यहाँ मायाके पान्यप्रसवप मयदानव
प्रतिष्ठित हैं । इसके निम्नदेशमें महानन्त नामका

पत पातच, पातांनं नाम यन्त्रं । १ भोपध पाकायं यन्त्रविशेष, यत्र यन्त्र जिसके द्वारा कड़ो भोपधियां पिचलाई जाती हैं । २ इस यन्त्रमें एक शीशो या मटोका बरतन ऊपर और नीचे रहता है । दोनोंके सुंठ एक दूसरेसे संलग्न रहते हैं और संमिथल पर कपड़ मटो कर दी जाती है । ऊपरवाली शीशो वा बरतनमें भोपधि रहती है और सुंठ पर कपड़ को वारीक साख-वाली डाट लगा दी जाती है । नीचे पात्रके सुंठ पर डाट नहीं रहती । फिर नीचेके पात्रको एक गह्वेमें रख देते हैं और उसके गले तक मटो या बालू भर देते हैं । ऊपरके पात्रको सब भोरसे कंडों या उपनोंसे ढक कर पाग लगा देते हैं । इस गलीमें भोपधि पिचल कर नीचेके पात्रमें धा जाती है । २ वहु यन्त्र जिसमें ऊपरके पात्रमें जल रहता है, नीचेके पात्रको भांच दो जाती है और बीचमें रसकी सिद्धि होती है ।

पातालवासिनी (स० स्त्री०) नागयज्ञोत्तमा ।

पाताली (हि० स्त्री०) ताड़के फलके गूदेकी घनाई हुई टिकिया । इसे शरीर लोग सुखा कर खानेकी काममें लाते हैं ।

पातालीकम् (स० पु०) पातालमोकः स्थानः यस्येति । १ भेषाग । २ वस्त्रि । (त्रि०) ३ पातालवासिनाय, जिसका घर पातालीमें हो ।

पाति (स० पु०) पाति रचतीति पा-पति (पठेतिः । उण् ५।१) प्रभु, स्वामी ।

पाति (हि० स्त्री०) १ पत्नी, पण, दत्त । २ पत्रिका, पत्र, चिट्ठी ।

पातिज (स० पु०) पातः पतनं कृते निमज्जोन्मज्जन-मिवावस्थेति पात-ठन् । शिशुमार, समू नामक जल-जन्तु (Gangetic porpoise) ।

पातित (स० त्रि०) पत-णिच्-त्वा । १ निक्षिप्त । २ रुधिर-क्षत ।

पातित्य (स० स्त्री०) पतिन-घाज् । १ पतित होने या गिरनेका भाव, गिरावट । २ संघःपतन, नीच या कुमार्गी होनेका भाव ।

पातिन् (स० त्रि०) पतनशील, गिरनेवाला ।

पातिनी (स० स्त्री०) पातिः सम्पातिः पवित्रं भीष्मदेव,

सी-ड, डीए च । १ पत्नी पकड़नेका फंदा । पातिः स्वामी लोचनेत्या । २ नारी । ३ मृत्पात्रभेद, चट्टी ।

पातिव्रत (स० पु०) पातिव्रत्य देखो ।

पातिव्रत्य (स० स्त्री०) पतिव्रता भावे पात्र । पतिव्रता होनेका भाव । स्त्रियोंका पातिव्रत्य हो एक धर्म है । पतिव्रता देखो ।

पातिषाहि (स० पु०) बादशाह देखो ।

पाती (हि० स्त्री०) १ प्रतिष्ठा, इज्जत, सज्जा । २ पत्र, चिट्ठी । ३ छक्के पत्ते, पत्ती ।

पातुज (स० त्रि०) पति सकञ् (लघतपरश्चेति । पा १।२।५४) १ पतनशील, गिरनेवाला । (पु०) २ प्रगत, भू ना । ३ जलच्छद्मी, जलहाथी ।

पातुर—धरारके बगोला जिलास्तगत बलापुर तालुकका एक शहर । यह बला २०' २०' उ० और देगा ७३' ५८' पू० के मध्य अवस्थित है । जनसंख्या क्रः हजारके करीब है । इस नगरको लोग पातुर श्रेष्ठ बाबू लक्षा करते हैं । प्रवाद है कि श्रेष्ठ अवधुल पञ्चोत्र नामक एक सुसलमान फकीर जो श्रेष्ठ बाबू नामसे प्रसिद्ध थे १३७८ ई० में दिल्लीसे यहां आ कर रहने लगे । एक समय इन्होंने महम्मद बिन तुगलकको सख्त् रोगसे बचा दिया था, इस कारण महम्मद इनको बड़ा पतिर करते थे । यहां दस वर्ष रहनेके बाद इनको मृत्यु हो गई । महम्मदने उनकी कब्र पर एक समाधि मन्दिर बनवा दिया और शहरका नाम पातुर श्रेष्ठ बाबू रखा । उस समाधि-मन्दिरका १६०६-७ में बेराम खांति लड़के खान-इ-खान-खानासे मस्जिद हुआ । प्रति वर्ष जनवरी मासमें यहां एक भारी मेला लगता है । यहां बोहोला एक विहार भी है ।

पातुर (स० स्त्री०) विश्वास, रंडो ।

पातुरनी (हि० स्त्री०) पातुर देखो ।

पात्त (स० पु०) पापियोंका संहार करनेवाला, पापियोंका ज्ञान ।

पात्ता—सारन जिलेका एक ग्राम । यहांसे प्रति वर्ष प्रायः ५२०० मन चावलकी रफ्ताने होती है ।

पाट (स० त्रि०) पाति रचति पिबति या पाट्यत् । १ रचक, बघनेवाला । (पु०) २ ग्रन्थपत्र । ३ टहनभेद ।

द्वितीय विवरका नाम वितन है। यह वितन भूतनके अधोदेगमें प्रतिष्ठित है। सर्वदेवपूजित भगवान् भय हाटकेयर नाम ग्रन्थ कर स्वकीय पाप देमि परिहृत हो मजापति ब्रह्माको सृष्टिके समीप सन्निध नर्घ भवानोके साथ वहाँ विराजमान है। इन दोनोंके योगसे सप्तम हाटकी नामकी नदी बहती है। इस नदीसे हाटक नामक मुख्य भाविपूजित होता है। देवीकी स्त्रियाँ इस मोने ही बड़े यज्ञसे धारण करती हैं।

वितनके अधोदेगमें मूलन प्रतिष्ठित है। यह पत्नान्त विवरमें अष्ट माना गया है। वैरोज्ज वनि इस मूलनमें धान करते हैं और वो छो यहाँके अधिपति हैं। मूलन मय प्रकारकी मूल-समृद्धिसे परिपूर्ण है। इतने पैखरीको कथा क्या कही जाय, स्वयं भगवान् विष्णु पाठ पढ़ कर चक्र ले कर पहरा देते हैं। किसी समय रागा राग टिखत्रमें बाहर निकले थे। इन्होंने जब इस मूलनमें प्रवेश किया, तब भगवान् हरिने भक्तके प्रति दया दर्शा कर वादाहुट छद्मा उन्हें अयुत योजन दूर फेंक दिया था। वनि वासुदेवके प्रसादसे मूलन-राज्यके राजपद पर प्रतिष्ठित हैं।

इस मूलनके अधोवर्ती विवरका नाम तलातल है। त्रिपुराधिपति दानवेन्द्र मय इस पर आधिपत्य करते हैं। महादेव इनके दोनों पुत्रोंको दण्ड कर पत्नमें इनकी भक्तिसे प्रसन्न हो गये थे और उन्हें फिर जिता दिया था। यह मय मायाविदोंका आचार्य और विविध मायावी-मं निपुण है। भयङ्करव्रतति वाले निगाचरनिकर सर्व प्रकारकी कार्यसमृद्धिके लिये इनकी उपासना किया करते हैं।

इस तलातलके बाद परम विख्यात महातल है। यहाँ क्रोधपाथर्ग कष्टके चपल्य सर्पगण वास करते हैं। इनके पनेक मस्तक हैं। कुक्क, तच्छक, सुपेथ और कालिय नामक सर्प प्रधान हैं। ये हमेशा गड़ड़के भयसे छद्म रहते हैं। ये सब नागगण अपने अपने पुत्र कलत्रादिके परिहृत हो सुखसे विहार करते हैं।

महातलके अधोवर्ती विवरका नाम रसातल है। देव, दानव और पाणि नामक चण्डरगण यहाँके अधिपति हैं। भवावा इनके हरिणपुत्रिवायो

निवातकचयगण और देवताओंके प्रतिद्वन्द्वी कालिय नामक चसुरगण वांछ करते हैं। ये सबके सब बड़े तंजस्त्री हैं। भगवान्के तंजनेसे हतबिक्रम हो कर इन विवरमें वास करते हैं।

इसके अधोदेगमें पाताल है। इस पातालमें नाग-लोके अधिपति वासुतोके सामने सर्पगण और गह, कुलिय, श्वेत, धनञ्जय, महागह, धृतराष्ट्र, गहवृद्ध, कलाम्ब प्रभृति परम समर्थविशिष्ट सुविमान कथा-सम्पन्न और अत्युत्कृष्ट विपुल सर्पगण निवास करते हैं। इस पातालके मूलपदेगमें तीव्र हजार योजन प्रसर पर भगवान्की चतुर्भुजा तनीप्रयो कला विराजती है। (देवीभाग ८१८, १, २० अ०)

इसके सिवा पातालका विस्तृत विवरण महत्पु० पू० अ०, महापु० १९ अ०, एतापु० १ अ० और जैनग्रन्थ 'लोहवर्ण' नामक ग्रन्थमें देखो।

पातालकेतु (सं० पु०) पातालवासी दैत्यभेद।

पातालखण्ड (सं० पु०) पाताललोक।

पातालगङ्गाद्वार (सं० पु०) पातालगङ्गी सता।

पातालगङ्गो (सं० स्त्री०) १ सताविगेप, किरिटा, किरिटा। पर्याय—वस्त्रानदी, मोमवस्त्रो, तिकाङ्गा, मेघकामिषा, तार्का, सोमपर्णी, गङ्गो, दीर्घकान्ता, दृढ़कान्ता, महावली, दीर्घवली, दृढ़नता। गुण—सधर, पित, दाह, चन्द्रोप और विपदोपनाशक, सज्जर, सत्पण तथा रुचिकर। २ तिकालाया तितलीकी।

पातालमुखी (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी सता। यह प्रायः खेतमें होती है और इसमें पीने रंगके बिच्छू, डंककेसे काटे होते हैं। वैद्यकमें इसे चरपरी, कड़वी, विपदोपनाशक तथा प्रसून कानोन पतिचार, दानकी जड़ता और सूजन; पत्तोना तथा प्रलापली ज्वरकी दूर करनेवाली माना है। पर्याय—गर्जालाव, भुतमुखी, देवी, यक्षोक्तभवा, दिव्यमुखी, नागमुखी, शक्तचप-समुद्रवा।

पातालनिलय (सं० पु०) पाताले पाताल वा निमग्नो यस्य। १ दंत्य। २ सर्प।

पातालनृपति (सं० पु०) जीवक, सीसा।

पातालनग्न (सं० स्त्री०) पातलि शारपाद्यं पारदादि

पतं बालच, पातालं नाम यन्त्रं । १ शोध पाकायं
यन्त्रविशेष, यत्र यन्त्र जिसके द्वारा कड़ो भोपधियां
पिचलाई जाती हैं । इस यन्त्रमें एक शीशो या मट्टीका
बरतन ऊपर और नीचे रहता है । दोनोंके मुँह एक
दूसरेसे संलग्न रहते हैं और संस्थल पर कपड़ मट्टी
कर दी जाती है । ऊपरवाली शीशो या बरतनमें
भोपधि रहतो है और मुँह पर कपड़ेको बारीक स्याख-
वाली ढाट लगा दी जाती है । नीचे पात्रके मुँह पर
ढाट नहीं रहती । फिर नीचेके पात्रको एक गड्ढेमें
रख देते हैं और उसके गले तक मट्टी या बालू भर देते
हैं । ऊपरके पात्रको क्षय औरसे कड़ों या छपनीसे ठक
कर भाग लगा देते हैं । इस गड्ढेमें भोपधि पिचल
कर नीचेके पात्रमें आ जाती है । २ वड यन्त्र जिसमें
ऊपरसे पात्रमें जल रहता है, नीचेके पात्रको भाँच दो
जातो है और बोचमें रसकी सिद्धि होती है ।

पातालवासिनी (स० स्त्री०) नागयक्षोत्तमा ।

पाताही (हि० स्त्री०) ताड़के फलके गूदेकी घनाई हुई
टिकिया । इसे गरीब लोग सुखा कर खानेकी काममें
लाते हैं ।

पातालोकम् (स० पु०) पाताललोकः स्थानः यस्येति ।

१ शेषनाग । २ बलि । (त्रि०) ३ पातालवासिमात्र,
जिसका घर पातालमें हो ।

पाति (स० पु०) पाति रक्षतोति पा-पति (पतेरतिः । उण्
५।१) प्रभु, स्वामी ।

पाति (हि० स्त्री०) १ पत्नी, पण, दन । २ पत्रिका, पत्र,
चिट्ठी ।

पातिक (स० पु०) पातः पतनं जले निमज्जानोत्पन्न-
मेवाव्यस्येति पात-ठन् । शिशुमार, सूँस नामक जल-
जन्तु (Gangetic porpoise) ।

पातित (स० त्रि०) पत-णिच्-त्वा । १ निवृत्त । २ रुध-
ः क्षत ।

पातिव (स० स्त्री०) पतिव-पात्र । १ पतिव होने या
गिरनेका भाव, गिरावट । २ संघःपतन, नीचे या
कुमार्ग होनेका भाव ।

पातिन् (स० त्रि०) पतनशील, गिरनेवाला ।

पातिको (स० स्त्री०) पातिः स्यातिः पचिष्ये नीयतेऽस्य,

लो-ड, डीपू च । १ पत्नी एकद्वन्द्वका फंटा । पातिः
स्वामी नीयतेऽस्या । २ नारी । ३ मृत्पात्रभेद, चट्टी ।

पातिव्रत (स० पु०) पातिव्रत्य देखो ।

पातिव्रत्य (स० स्त्री०) पतिव्रता भाव पात्र । पतिव्रता
होनेका भाव । स्त्रियोंका पातिव्रत्य हो एक धर्म है ।

पतिव्रता देखो ।

पातिसाहि (स० पु०) बादशाह देखो ।

पातो (हि० स्त्री०) १ प्रतिष्ठा, इज्जत, सज्जा । २ पत्र,
चिट्ठी । ३ छक्के पत्ते, पत्ती ।

पातुक (स० त्रि०) पति-उक्कञ् (लघपतरदशेति । पा
३।१।५४) पतनशील, गिरनेवाला । (पु०) २ प्रमात,
भ्रमा । ३ जलचक्र, जलहाथी ।

पातुर—घरारके पकोला जिलान्तर्गत बलापुर तालुकका
एक शहर । यह पचा० २०° २०' उ० और देशा० ७५°
५८' पू० के मध्य अवस्थित है । जनसंख्या ६५ हजारके
करीब है । इस नगरको लोग पातुर गेख बाबू लक्ष्मी
करते हैं । प्रवाद है, कि शेष अवधुत पत्रोत्र नामका
एक सुसलमान फकीर जो गेख बाबू नामसे प्रसिद्ध थे
१३७८ ई० में दिल्लीमें यहां आ कर रहने लगे । एक
समय इन्हीं मसखंद बिन तुगलकको मरु रोगसे
बचा दिया था, इस कारण मसखंद इनको बड़ी खतिर
करते थे । यहां दस वर्ष रहनेके बाद इनको मृत्यु हो
गई । मसखंदने इनको कब्र पर एक समाधि मन्दिर
बनवा दिया और शहरका नाम पातुर गेख बाबू रखा ।
उस समाधि-मन्दिरका १६०६-७ में बेराम-खानेके लड़के
खान-इ-खान-खानासे संस्कार हुआ । प्रति वर्ष जनवरी
मासमें यहां एक भारी मेला लगता है । यहां बोहोला
एक विहार भी है ।

पातुर (स० स्त्री०) श्रेष्ठ, रहने ।

पातुरनी (हि० स्त्री०) पत्नी देखो ।

पास (स० पु०) पापियोंका चहार करनेवाला, पापियों-
का खाना ।

पासा—सारन त्रिलोका एक ग्राम । यहां प्रति वर्ष
प्रायः ५२०० मन चावलकी रफ्तानी होती है ।

पाट (स० त्रि०) पाति रक्षति पिबति या पा-ट्ठच् । १
उच्चक, बधनेवाला । (पु०) २ गन्धर्व । ३ लघभेद ।

पाणिगणक (सं० स्त्री०) पाणिगणकस्य भावः उदुगात्रादि-
त्वात् पञ्च । (पा ५।१।२८) - सेनागणक कर्म पौर
सका भाव ।

पत्नीवत (सं० पुं०) पत्नी विद्यतेऽस्य मत्पुत्र, संस्य य,
तच्छब्दोऽभ्यस्य विसृज्यादित्वादेशः । पत्नीवच्छब्दयुक्त । १
अध्याय । २ पशुवाक ।

पत्नीगाल (सं० त्रि०) पत्नीगाला सम्बन्धोय ।

पात्य (सं० स्त्री०) पत्युर्भावाः यत् । १ पतित, पतिन
होनेका भाव । २ पतनीय, गिरनेयोग्य ।

पात्र (सं० त्रि०) पाति रक्षति क्रियाभाधेयं वा विवन्त्य-
नेनेति वा पट्ठन् (सर्वपाठभ्यः ढ्रन् । षण् ४।१५८) । १
नाना गुणालङ्कृत, नाना गुणसम्पन्न । (स्त्री०) २
पार्थिवधृत वस्तु, वह वस्तु जिसमें कुछ रखा जा सके ।
पर्याय—धमन्न, भोजन, भाण्ड, कोष, कोप, पात्री,
कोमी, कोपी, कोपिका, कोपिक । १ योग्य । ४ राज-
मन्त्रो । ५ तोरहवात्तर, गदीके दोनों किनारों के बीचका
स्थान, पाट । ६ पर्ण, पत्ता । ७ नाटयानुकर्त्ता, नाटकके
नायक नायिका आदि । ८ पादक परिमाण । वैद्यकमें
एक तोल जो चार सेरके बराबर होती है । ९ खुवादि,
यज्ञोप होमादि साधन । इस पात्रका लक्षण कात्यायन
यौतसूत्र (१।३।११) पौर इसके भाष्यमें विशेषरूपसे
वर्णित है । धर्मप्रदीपमें लिखा है—

“आज्यस्थाली च कर्तव्या तैजसद्रव्यसमवा ।

महीमयी वा कर्तव्या सर्वास्त्याज्याहुतीषु च ॥

आज्यस्थाल्याः प्रमाणं तु यथाशाम्नु कारयेत् ।

सुरावामनां भद्राभाज्यस्थालीं प्रवक्षते ॥”

पात्यस्थाली तैजसद्रव्यकी होवे, सामावमें स्थलमय
की भी हो सकती है । इसका परिमाण इच्छा पर
निर्भर है । यह सुदृढ़ पौर चमन होवे ।

देवीपुराणमें लिखा है—हम अथवा श्रेष्ठ पात्रसे
अर्घ्य देनेसे पाप, राज्य पौर पुत्रादि लाभ, ताम्रशत्रुसे
भीमाभ्य पौर स्थलमयपात्रसे धर्म लाभ होता है । विवाह,
यज्ञ, याद पौर प्रतिष्ठा आदिमें पात्र देना होता है ।
बिना पात्रसे वे सब कार्य निष्फल होते । इससे
पात्रको येष्ट यज्ञात्र बतसाया है । देवपुत्राज्ञा ३६
चंगलीका पात्र प्रयुक्त पौर २७ चंगलीका मध्यम बतसाया

गया है । इस पात्रको नाना प्रकारका तथा विविध रूपोंका
सनाया चाहिये । इसकी साक्षिपत्र, शङ्ख या नैकोत्प-
खी होनी चाहिये । जो बिना पात्रका पशुधान करते हैं,
उनकी सभी क्रियाएँ निष्फल होती हैं । (देवीपुराण)
पात्रक (सं० स्त्री०) १-स्यातो, हाँड़ी आदि पात्र । २
वह पात्र जिसमें मोख मांग कर रखी जाय ।

पात्रकटक (सं० पुं० स्त्री०) भिवापात्रका कट्टा ।

पात्रट (सं० पुं०) पात्रा द्रव्यपिशित वा पटतीति पट-
पञ्च । १-कर्पटक, भिखमंगा । (त्रि०) २-कंग, दुबला
पतला ।

पात्रटोर (सं० पुं०) पात्रेव रत्नविशेष विवक्षित वा पटतीति
पट-वाहुकोत् ईरन् । १-सचित व्याघ्रपशुसम्बन्धी,
वह मन्त्रो जो यथोपयुक्त कार्य करता है । २-कोइरात्र ।
३-काँस्यपात्र । ४-रजतपात्र । ५-मिहाण । ६-पात्रक ।
७-पिङ्गाग । ८-वायस । ९-कह । १०-स्त्रिंशो ज्ञातिस्वात्
कोय । १०-धारका ।

पात्रतरङ्ग (सं० पुं०) प्राचीनकालका तात्त देनेका एक
प्रकारका वाजा ।

पात्रता (सं० स्त्री०) पात्रस्य भावः, पात्र-भाषे तन्म, स्त्रिया
टाप् । १-पात्रत्व, उपयुक्तता, पात्रका धर्म ।

“अपात्रः पत्रोपाति यत्र पात्रो न विद्यते ।”

(उज्ज्वल ४।१५८)

जहाँ उपयुक्त पात्र नहीं मिलता, वहाँ अपात्र भी
पात्र समझा जाता है । केवल विद्याद्वारा हो नहीं,
तपस्या द्वारा भी पात्रता लाभ होती है ।

“न विद्या देवतया तपसा वापि पात्रता ।

यत्र वृत्तमिमे घोमे तद्विवात्र प्रदीप्तिम् ॥”

(याह १।२००)

पात्रत्व (सं० पुं०) पात्रता, पत्र होने का भाव ।

पात्रद्वयक—चम्पूप्रदेहको एक नरत्न को जाति । ये नगर
पौर बड़े बड़े धाममें रहते हैं । कथाको इनकी भाषा
है पौर मल्लहारो देव वपास्य देवता हैं । ये लोग देखने
में सुखी पौर परिहार परिच्छेद होती हैं । रत्नधा पह-
नावा इस पञ्चनकी ब्राह्मणकन्या मरोखा है । लिखन
पर्वोदि उपनयनमें नाच करनेके लिये ये मृदुमूय्य योगाङ्क
पहन लेते हैं । नृचंगीत ही इनका प्रधान व्यवसाय है ।

अधो नच करती है, तब इनका भाई या पुत्र डोल और सारङ्गो बजाता है। ये लोग प्रतिधर्मपरायण होनी और बिना देवपूजाके लल तक भो नहीं पोतो है। हिन्दू-पात्रद्वय ब्राह्मणोंको भक्ति करती और गुरुषे मन्त्र सेती है। इनका भूतप्रेतादिमें खूब विश्वास है। सन्तान-के जन्म सेने पर ये सोनेकी पांगुठोसे उसको नाक छूतों और माङ्गुछेदन करनेके पहने सुखमें मधु डाल देतो है। पांचवें दिन पछोदेवोको पूजा होतो है और तीरहवें दिन सन्तान का नामकरण तथा तीसरे मासमें कर्णबोध होता है। जब कन्या सात वर्षको होती है, तब शुभ-दिन देख कर अन्यान्य गुरु किशो रिमन्तिन होती है। इस दिन कन्या स्नान करके वाद्ययन्त्र नूपुर आदिकी पूजा करतो है और उसी दिनसे नाच गान सोखना पारम्भ कर देतो है। बारह वर्षको उमरमें यह मादल नामक वाद्ययन्त्रके साथ व्याहो-जानी और उस उपनयनमें ब्राह्मणको दान दिया जाता तथा भोज, नाच, गान आदि बड़े धूमधामसे होता है। कन्याका प्रथम ऋतु-काल उपस्थित होनेके पहले ही एक प्रणयी चुन लिया जाता है और प्रथम ऋतु होनेके बाद चौथे दिनसे कन्याको लक्ष पुत्रके साथ क्रमसे कम एक भास तक सहवासके लिये छोड़ दिया जाता है। पोछे कन्या यावज्जीवन उसका स्थान करती है। इस जातिमें कन्या-ही मातृ-सम्पत्तिको उत्तराधिकारिणी होती है।

पात्रदुहरस (सं० पु०) केशवदासके मतमें एक प्रकारका रसदोष। इसमें कवि जिस वस्तुको जो सा समझता है रचानमें उसकी विह्वल कर जाता है। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं,—

‘रूप कृपानी मानी, प्रेतरख लटायनी, प्रायलिको गंगानी
 हो पानी सम जानिये। स्वारथ निगानी परवारथमें स्वपानी
 कानकी कदानी केशोदास जग मानिये। सुखन उरझानी, सुषा
 हो सुषार मानी सहस सगानी, खानी झानी सुख दानिये। गौरा
 और गिरा सगानी मोहे, पुनि मूख पानी, ऐसी बानी मेरी रानी
 विपुले पदानिये। (केदार)।

पात्रपात्र (सं० पु०) भेषजादि परिष्कार का साध।
 पात्रपात्रि (सं० पु०) छोटे छोटे बच्चोंका चण्टकारो
 उपदेवभेद।

पात्रपात्र (सं० पु०) पात्रं पालयतीति पाल ‘कर्मण्यन’
 इति षण्। पात्ररक्षक।
 पात्रयेप (सं० पु०) खा कर छोड़ा हुआ पचादि, उच्छिष्ट,
 जूठा।
 पात्रसंस्कार (सं० पु०) संस्क्रियते इति सम्+क्रि+घञ्।
 पात्रस्य संस्कारः, शुद्धिः। १ माजनशुद्धि, पात्रशुद्धि।
 २ पुरोडित।
 पात्रमञ्जर (सं० पु०) मञ्जराभोजनके बाद पात्रस्थाना-
 न्तरकरण, खानिके बाद जूठे वातनोंको पलग सटा कर
 रखना।
 पात्रसात् (सं० व्य०) पात्र देयार्थं चसात्। सत्पात्रमें देय,
 सत्पात्रमें स्थल।
 पात्रहस्त (सं० वि०) जिसके हाथमें पात्र हो।
 पात्रासादन (सं० क्त०) पात्र.णामासादनं इ-तत्।
 यत्रपात्र हो यथास्थान रखना।
 पात्रि—१ बम्बई प्रदेशके काठियावाड़की पन्तगत भातावर
 विभागका एक छोटा राज्य। परिमाण ४० वर्ग मील
 है। राज्यको चाय ८००० रु० है जिनमेंसे ५२२५ रु०
 छटिय-गवर्मेण्टको करमें देने पहते हैं।
 २ बम्बईके पहमदवाद जिलान्तर्गत विरामगांव
 तालुकका एक शहर। यह पचा० २१° ११' ३०"
 और देशा० ७१° ५१' ५०" पहमदनगर शहरसे ५८ मील
 पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या ६५ हजारके करीब
 है। नगर प्राचोरसे बिरा है और इसके मध्य भागमें
 एक गढ़ है। रुहे, मल्ल, और गुड्ड यहाँकी प्रधान वाणिज्य
 वस्तु है। यहाँ एक डाकघर है।
 पात्रिक (सं० वि०) पात्रस्य बापः ऊन्, पात्रभाप सौत्रादि
 स्त्रियां जातिस्त्वान् डोष, पात्रिको पात्रं संभरति, चप-
 हरति पाहरति वा उञ्च। पात्रापहारकादि।
 पात्रिन् (सं० वि०) पात्र-प्रस्त्यर्थं इनि। १ पात्रियुक्त,
 जिसके पास बरतन हो। २ जिसके पास सुयोग्य मनुष्य
 हो। (को०) ३ छोटे छोटे बरतन। ४ एक छोटा भट्ठा
 जिसे एक स्थानसे दूसरे स्थान पर सटा कर ले जा
 सकते हैं।
 पात्रिय (सं० क्त०) पात्रमर्हति यात्र-व (यत्रादर्थः)। पा-
 ५१।१८० १ पात्राह, पात्रके योग्य। २ जिसके साथ एक-
 यात्रीमें भोजन किया जा सके, सहभोजी।

पात्रीय (स० त्रि०) पात्र-य (आट्टकविडसारा
होऽन्तरस्था । पा ५।१।५३) पात्रावधारकादि ।

पात्रीय (स० स्त्री०) पात्रे साधु पात्र-वाहुनकात् च्छ । १
यज्ञपात्र । (त्रि०) २ पात्रमन्थनीय ।

पात्रीर (स० पु०) पात्रे राति, पात्री रातो वा रा-क ।
यज्ञद्रव्य ।

पात्रे बहुल (स० पु०) पात्रे भोजनसमये एव बहुलाः
नतु कार्यं, पात्रे समितादित्वात् पात्रेपे गम्ये शलुक-
समानः । वे जो काम काज कुछ भो नहीं करते, पर
शान्तिक समय उपस्थित हो जाते हैं ।

पात्रे समित (स० त्रि०) पात्रे भोजन-समये एव समितः
सङ्गतः, पात्रे समितादित्वात् शलुक समासः । १ कार्य-
कालमें प्रथम और भोजनके समयमें सङ्गत अर्थात् जो
भोजनकालमें उपस्थित हो जाते हैं, पर कार्य कालमें
नहीं रहते । (पु०) २ पापविशेष ।

“निधाय हृदये पारं यः परं संसृति स्वयं ।

स पात्रे समितोऽप्यस्याह— ॥” (शरद्वारा)

३ सक्त लक्षणोक्त पापयुक्त पुरुष । जो मनुष्य हृदयमें
पाप रख कर मोठो बातें करता है, उसे पात्रे समित
कहते हैं ।

पात्रे समितादि (स० पु०) पात्रेपे पर्थे शलुक समा-
सादि निमित्त शब्दगणभेद । गण ये हैं—पात्रे समित,
पात्रे बहुल, उदुम्बरमगक, उदुम्बरकर्मि, कूपे कच्छप,
अवटकच्छप, क्रूरमण्डूक, कुशमण्डूक, उदपान-
मण्डूक, नगरकाक, नगरवायम, मातरिपुरुष, पिण्डो
शूर, पितारिगूर, गेहेशूर, गेहेनदी, गेहेस्वोडो, गेहे-
विजिती, गेहेव्याह, गेहेमेहो, गेहेदाहो, गेहेहम,
गेहेष्ट, गेहेहम, पाखनिकवक, गोठेशूर, गोठे विजिती,
गोठेस्वोडो, गोठेपट्ट, गोठेवण्डित, गोठेगवम, कर्णे-
रिटिरा, कर्णे शुरुशुग ।” (पालिनीय गणराट)

पात्रोपहरण (स० क्री०) पात्रस्य पात्राकं वा उप-
करणं उपभूषणं । पात्र का उपभूषण, कोहो चाटि
पदार्थ जिन्हें टांक कर सरतानोंकी सजाते हैं ।

पात्र (स० क्री०) पततीति पत-क्त्रि, पतं प्रघ-पतनां
लपं प्रायते ये-क, ततः स्वायं प्रघात्यन् । पापि त्राता,
वह जो पापियोंकी बचाता हो ।

पात्रता (स० स्त्री०) पात्रस्य भावः तन्, टाप् । विद्या-
तपस्याधारयुक्ता ।

पात्रा (स० त्रि०) पात्र यत् (पात्रादांय । पा ५।१।५८)
पात्रिय, पात्राहं ।

पाय (स० स्त्री०) १ जल, पानो । (पु०) पातोति पा-
खुट, निपतनात् साधुः । २ सूर्य । ३ चर्म ।
४ पासाग । ५ वायु । ६ पथ ।

पाय (हि० पु०) भागं, रास्ता, राह ।

पायना (हि० त्रि०) १ ठीक पीट कर सुडोल करना,
गढ़ना, बनाना । २ किसीको पीटना, ठीकना, मारना ।
३ किसी मोलको यत्तुमें बाँचेकी द्वारा या बिना बाँचेके
छाँचेसे धोप, पीट या दबा कर बड़ी बड़ो टिकिया या
पट्टी बनाना ।

पायनाय (स० पु०) समुद्र ।

पायनिधि (स० पु०) समुद्र ।

पायनवत्—बम्बईप्रदेशवासी एक जाति । ये लोग पूना
जिल्लेमें सब जगह देखे जाते हैं । इनका पहनावा महा-
राष्ट्रीयके जैसा होता है । ये लोग परिष्कार परिकल्प,
परिश्रमो, मितश्रयो, सुश्रुत और संतिथय होते हैं ।
पत्थरमें देवतः जन्तु प्रादिजो मूर्त्ति खोदना हो इनका
जातिगत व्यवसाय है । ये लोग हिन्दू-देवदेवोंकी पूजा
करते हैं । इनमें विषय विवाह प्रचलित है, किन्तु ये
विवाह शानि निर्वन्धनानमें ही सम्पन्न होता है । ये
लोग मृतदेवका सत्कार करते हैं । जातिमें दम्पती भी इन
लोगोंमें प्रचल है ।

पायन (स० क्री०) पाति रवति जोषामति पा पसन्-
छुट्च (उरुहं छुट्च । उग्न ४।२०४) १-जल । २ पथ ।
३ पासाग ।

पायनपति (स० पु०) वरुण ।

पाया (हि० पु०) १ एक तोल जो एक दोन कणों चार
सेरको होता है । इसका व्यवहार देहरादून प्रांतमें प्रथ-
म नापनेके लिये होता है । २ खनिदानमें राशि मापनेका
एक बड़ा टोकरा । मायः यह टोकरा किसी नियत
मानका नहीं होता । लोग इच्छानुसार भिन्न भिन्न
मानोंका व्यवहार करते हैं । यह पैतका बना जाता है
और इसकी बाढ़ बिलकुल सीधी होती है । कहीं कहीं

इसे लोग चमड़े से मढ़ मो लेते हैं। इसका दूसरा नाम प्राची और नलो है। ३ उतनी भूमि जितनीमें एक पाया भन्त, बोया जा सकता हो। ४ इसकी खेती जिसमें फल जड़ा, रहता है। ५ कोनदू हांकनेवाला। ६ भन्त में लगनेवाला एक छोटा कोड़ा।

पाथि (हि० पु०) १ समुद्र। २ आँख। ३ प्राचीनकालका एक प्रकारका शरवत। यह मड़े के पानो और दूध आदिको मिला कर बनाया जाता था और इससे पिछ-तर्पण किया जाता था, कोलाह। ४ घाव परको पगड़ी, खुरंड।

पथिक् (सं० पु० स्त्री०) पथिकस्याभ्यं पथिक-गिवा दिव्याद्रथ, (पा ४।१।१२) पथिकका अपत्य।

पाथिकायं (सं० पु०) पथिकार-कुवादित्वात् लृ। (पा ४।१।५१) पथिकारका अपत्य वा भग्न।

पाथिक्य (सं० स्त्री०) पथिकस्य भावः पुरोहितादित्वात् यक्, (पा ५।१।२८) पथिकत्व।

पाथिस् (सं० पु०) पथिस्ति नद्यादि जलमाकर्षतीति पा-इति युगानमस्य (उग, २।१।५) १ समुद्र। २ चतु, कोला। ३ कोलाह। ४ घाव परको पगड़ी, खुरंड।

पाथेय (सं० क्ली०) पथि साधुरिति पथिन्-ठञ्, (अथितिविधितपदेठञ्)। (पा ४।१।०४) १ पथिस्थि-तस्य द्रव्य, वह द्रव्य जो पथिक राह खर्च के लिये ले जाता है, राहखर्च। २ वह भोजन जो पथिक अपने साथ मार्गमें खाने के लिये बांध कर ले जाता है, राह-का कलेवा। ३ कन्याराशि।

पाथिप्रक (सं० त्रि०) पाथेय भूमादित्वात् पुञ्। (पा ४।२।२०) पथका सम्बन्धयुक्त, जिसके पास राह खर्च हो।

पाथोज (सं० क्ली०) पाथिज जले आयते इति जन-ङ। कमल, पद्म।

पाथोद (सं० पु०) पाथो जलं ददातीति दा-ञ। मेघ, बादल।

पाथोधर (सं० पु०) धरति धारयतीति धा-घृ-घञ्। पाथो धर, पाथो धारयतीति धारि-घञ्, छव्य इत्येके। मेघ, बादल।

पाथोधि (सं० पु०) पाथोधि धीयन्तेऽत्र धा-कि। समुद्र।

पाथोनिधि (सं० पु०) पाथोधि जलानि निधीयन्तेऽस्मिन् इति नि-धा-कि। समुद्र।

पाथोमाज् (सं० त्रि०) पथ वा स्थानभोगो।

पाथ्य (सं० त्रि०) पाथसि भावः वेदे अन्। १ भाकागमें रहनेवाला। २ चवामें रहनेवाला। ३ द्रव्याकागमें रहनेवाला।

पाद (सं० पु०) पद-कारये घञ्, पथने गभ्यते चर्नेनेति वा घञ्। १ चरण, पैर, पांव। गर्भस्थित बालकके हितोय मासमें पैर होता है। पथीय—पत्त, पडिघ, चरण, पंक्ति।

पाद द्वारा पाद भाक्तमण, उच्छिष्ट लहान और संहत पाधि द्वारा गिरःकण्डूयन नहीं करना चाहिये। दूसरे शास्त्रमें पाद चालनादिको भी निषिद्ध बतलाया है।

कभी भी पाद द्वारा पादचालन नहीं करना चाहिये। दोनों पैर चर्मिमें प्रतापन और कांस्यवात्रमें धारण करना मना है। ब्रह्मण, गो, अग्नि, नृप और सूर्यको और भूल कर भी पादप्रसारण न करे। २ ऋग्वेदीय मन्त्र-चतुर्थांग। ३ श्लोकचतुर्थांग। ४ पुत्र। ५ वृक्षमूल। ६ तुरीयांग। ७ चतुर्थ भाग। ८ शैलप्रस्थल पर्वत। ९ महाद्विके समीप अवस्थित सुदृ पर्वत। १० मयूख। ११ किरण। १२ शिव। १३ चिकित्साके चार भग। सुश्रुतमें लिखा है, कि वेद्य, रोगो, औषध और परि-चारक ये चार पाद चिकित्साकार्य-साधनके उपयोगी हैं। वेद्य यदि गुणवान् हो और रोगी श्रेय तीन गुणविशिष्ट हो, तो कठिनसे कठिन रोग भी छोड़े ही समयमें पारोग्य हो जाता है। जिस प्रकार उद्गाता, होता और ब्रह्मा इन तीनोंके रहने पर भी बिना पाचार्यके यज्ञ नहीं होता, उसी प्रकार चिकित्साके श्रेय तीन पाद गुणविशिष्ट होने पर भी बिना वेद्यके चिकित्सा-कार्य सम्भव हो ही नहीं सकता। जो वेद्य शास्त्रार्थ-पारदर्शी, दृढकर्मा, स्वर्ण कार्यक्षम, लघुहृत्ता, शुचि, शूर, औषध और यन्त्र आदि चिकित्साके सब प्रकार उप-करणोंसे सुसज्जित, प्रशुल्लभमति, बुद्धिमान्, व्यवसायी, विशारद और सत्यधर्मपरायण हो, वे ही चिकित्सा-कार्यके प्रथम पाद गिने जाते हैं। जो रोगी पाशुभान्, बुद्धिमान्, साध्व, द्रव्यवान्, भास्तिक और वेद्यके मताद-

गाम्नी है, वो चिकित्साकाय के द्वितीय पाद तथा जो प्रोषण प्रयत्नादेशमें उत्पन्न और उत्तम दिनमें चलायी गई हो, जो मनको भीतिकर, गन्धवर्णरसविशिष्ट, दीपघ्न, शूलान्निकर हो जो विपर्ययमें भी कोई विकार न करती हो तथा उपयुक्त काल और उपयुक्त मात्रामें रोगीको दी जाती हो, वही चिकित्साका तृतीय पाद है। जो परिवारक स्निग्ध, वनवान्, रोगीके प्रति यत्नशील हो। जो दूसरेको निन्दा न करते हो, जो वैद्य-वाक्यके अनुगामी और कठिन परिश्रमी हो, वो ही परिवारक चिकित्साकाय के चतुर्थ पाद मतलाये गये है।

(सुश्रुतहृत्परिधान ३४ अ०)

१४ प्रयोगविशेष, पुस्तकका विशेष अर्थ। जैसे, पातञ्जलका समाधिपाद, साधनपाद आदि। १५ ऋषि-विशेष। पद भावे घञ्, १६ गमन, पदको क्रिया। यह शब्द जब किसीके नाम या पदके अन्तमें लगाया जाता है, तब वक्ताका उसके प्रति श्रव्यता संशयान्भाव तथा अज्ञा प्रकट करता है। जैसे, कुमारिलपाद, शुक्रपाद, आचार्यपाद, आदि।

पाद (वि० पु०) अधोवायु, वह वायु जो शुद्धाके मार्गसे निकले, गोज्ञ।

पादक (सं० त्रि०) पादे गमने कुशलः आकर्मोदित्वात् कन् (पा ५।२।१४) १ गमनकुशल, जो खूब चलता हो। २ चतुर्थश, चौपाई। (पु०) स्वर्णाय-कन्। ३ शुद्धपद, छोटो पैर।

पादकटज (सं० पु०) पादस्य कटक इवेति। नूपुर। इसकी आकृतिका एक प्रकारका मड़ना जो पैरमें पहना जाता है। इसका पर्याय हंसक है।

पादकीलिका (अ० स्त्री०) नूपुर।

पादकण (सं० पु०) एक प्राग्वहिक वस्तु। यह वस्तु चार दिनोंका होता है। इसमें पहले दिन तक एक बार दिनमें, दूसरे दिन एक बार रातमें खा कर फिर तीसरे दिन उपवासित अथ भोजन करके चौथे दिन उपवास किया जाता है। इस वस्तुकी दूसरी विधि भी मिलती है। इसमें पहले दिन रातमें एक बारका परमा दुधा भोजन कर दूसरे दिन उपवास किया जाता है। तीसरे और चौथे दिन फिर यही विधि क्रमसे दुहराई जाती है।

पादकर्मिक (सं० त्रि०) पदकर्म अधीते वेदे वा उक्-यादित्वात् ठक्। (पा ४।२।६०) जो पदकर्मका प्रत्ययन करते वा जानते हो।

पादक्षेप (सं० पु०) पादस्य क्षेपः। पदविशेष।

पादगण्डर (सं० पु०) गन्धने चर्षते पूयस्त्रादि गन्धात् यत्वं वा पादे गङ्ग-किरञ्, ततो राजदन्तादिपत् पर-निपातनात् साधुः। श्लोपद, पोलगंध। श्लो १६ रेको।

पादगृह्य (सं० पु०) गृह्यः पादः मधुरस्य सकादित्वात् पूर्वनिपातः। गृह्यपाद।

पादयन्त्रि (सं० पु०) पादस्य पन्त्रिरिव। १ शुष्क, एही और दुहीके बीचका स्थान।

पादयहण (सं० स्त्री०) पादयोष हणमिति, यह-भाव-ल्युट्। अभिवादन, पैर छू कर प्रणाम करना। जिसके हाथमें सनिधा, जल, जलका चढ़ा, फूल, अथ तथा अक्षतमें कोई पदार्थ हो, जो पश्चि हो, जो जप वा पिठकार्य करता हो, उसका पैर न छूना चाहिये।

अभिवादन और प्रणाम देखो।

पादयश्चिन् (सं० त्रि०) पाद-प्रह-णिनि। जो पादयहण करता हो।

पादघृत (सं० की०) पादघोले पनायं घृतं मञ्जकोपि। दोनों पादके अभ्यञ्जनार्थं घृत।

पादचतुर (सं० पु०) पादे पदव्यापारे गमनादौ चतुरः। पादचतुर देखो।

पादचत्वर (सं० पु०) १ क्षाय, बकरा। २ अग्न्यह्नयः पोषणका पेड़। ३ बालका भीटा। ४ चीला। (त्रि०) ५ दूसरेका दोम कहनेवाला, चुगलखोर।

पादचारिन् (सं० पु०) पद्मां चरतीति चर-गती णिनि। १ पदाति, पैदल। (त्रि०) २ पद द्वारा गमनयोगी, जो पैरोंसे चलता हो।

पादचिह्न (सं० स्त्री०) पादयोचिह्नं चतुर्त्वं। दोनों पैरका निशान।

पादज (सं० पु०) पादाभ्यां जायते जन-ङ्। १ पादप्राप्त शूद्र। प्रजाके पादसे शूद्रको उत्पत्ति हुई है, इससे पादज शब्दसे शूद्रका बोध हुआ है। (त्रि०) २ पादोद्भवमात्र, जो पैरोंसे उत्पन्न हुआ हो।

पादजल (सं० स्त्री०) पादप्रक्षालन जल मध्यमो-
कमंधा० । १ पादोदक, वह जल जिसमें किसीके पैर
छोए गए हैं । २ तक्र, मट्ठा । (वि०) ३ चतुर्थशमित
जलयुक्त ।

पादजाह (सं० स्त्री०) पादस्य मुनं कर्णोदित्वान् जाहञ्च
(पां० ५।२।२४) पादमूल ।

पादटीका (सं० स्त्री०) यह टिप्पणो जो किसी भाग,
पुस्तकके नीचे लिखी गई हो, फुटनोट ।

पादतल (सं० स्त्री०) पादस्य तल । चरणया अधोपथ्यं
पैरका तलवा ।

पादतल (सं० अव्य०) पाद-तल्लि । पादगे वा पादगे ।

पादतल (सं० त्रि०) पादो तलवते तल-क । १ पादरक्षक,
जो पैरको रक्षा करे । (स्त्री०) पादशोष्माणं वस्त्रम् ।
२ पादुका, खड्कान, जूता ।

पादक्षाय (सं० पु०) पादन देशो ।

पादक्षयित (सं० त्रि०) पदाक्षान्त, पदक्षयित, पैरमें
कुचला हुआ ।

पाददारिका (सं० स्त्री०) पादगत सुद्वेगमेद, विचार
नामका रोग । इसमें पैरका तलवा स्थान स्थानमें फट
जाता है ।

पाददाह (सं० पु०) पादो दहति पाद-दह-घञ् । सुशु-
तोक्त वातव्याधिभेद, सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका
रोग । यह पित्तरक्तके साथ वायु मिननेके कारण होता
है । इसमें पैरोंके तलवींमें जलन होता है ।

पादधावन (सं० पु०) १ पैर धोनेकी क्रिया । २ यह
बालू या मट्टी जिसको लगा कर पैर धोया जाय ।

पादधावनिका (सं० स्त्री०) पैर धोनेके लिये बालू या
मट्टी ।

पादनख (सं० पु०) पैरकी सगलखोंका नाखून ।

पादगा (सं० स्त्री०) अपानवायुका त्याग करना, वायु
कोड़ना ।

पादनासिका (सं० त्रि०) पदानसहारभेद, पैरमें पदनने-
का गहना ।

पादनिष्ठ (सं० त्रि०) गायत्रीभेद ।

पादनिष्क (सं० पु०) निष्कका चौथाई भाग ।

पादन्यास (सं० पु०) पादयोः न्यासः इ-तत् । १ पाद-
विषे, पैर रखना । २ दाय, नाचना ।

पादप (सं० पु०) पादेन मूलैर्न पिवति रसानिति पा-क ।
१ वृक्ष, पेड़ । वृक्ष अपनी जड़ या पैरके द्वारा रस खींचते
हैं, अतः ये पादप कहलाते हैं । पादो पाति रसतोति पा-
रचये क । २ पादपीठ, पीड़ा । ३ द्रुमोत्पन्न, कनिशारी ।

पादपखण्ड (सं० स्त्री०) पादप-समुह खण्ड च । पादप-
समूह, जङ्गल ।

पादपक्षति (सं० स्त्री०) १ पदपक्षति, रास्ता । २ पगडंडी ।

पादपक्ष (सं० स्त्री०) पादो पक्षमेव । चरणपक्ष, चरणकमल ।

पादपक्ष (सं० स्त्री०) पादपे द्वे रोदतोति पक्ष-क ।
चन्द्राकण्ड, बाँदा नामका पेड़ ।

पादपा (सं० स्त्री०) पादो पाति रसतोति पा-क-टाप् ।
पादुका ।

पादपाय (सं० पु०) पादस्य पायः । अश्वदास, यह रस्सी
जिससे घोड़ोंके पिछले दोनों पैर बांधे जाते हैं, पिछाड़ी ।

पादपाथी (सं० स्त्री०) पादपाग-स्त्रियां गोरादित्वात्
होय । १ शृङ्खला, कोई चिकड़ी या मिकड़ । २ पैड़ी ।

पादपीठ (सं० स्त्री०) पादस्य पीठम् । पादस्थापनासन,
पैरका आसन, पीड़ा ।

पादपीठिका (सं० स्त्री०) पादपीठं साधरत्वेनास्यस्या
इति पाद-पीठ-ठन् । १ नायिकादिमिष्य, नाईकी मिहो ।
२ पादपीठ, पीड़ा ।

पादपूरण (सं० स्त्री०) पादस्य पूरणं इ-तत् । १ किसी
झीर या कबिताके किसी चरणको पूरा करना । २ वह
अक्षर या शब्द जो किसी पदको पूरा करनेके लिये वसने
रखा जाय ।

पादप्रक्षालन (सं० स्त्री०) पादयोः प्रक्षालनम् । चरण-
धावन, पैर धोना । इसमें शिधाजनक, पवित्र और आयुष्कर
तथा शल्लकी और कलिपापनाशक गुण माना गया है ।

"पादप्रक्षालनं पाद-मलरोगप्रभाहं ।

चक्षुप्रसादनं रूपं रक्षोर्जं श्रितिवर्दनं ॥"

(सुश्रुतचिकि० २४ अ०)

आधिकतस्वमें लिखा है, कि आचमन करनेके पहले
पाणि और पाद धो लेना उचित है । देवलने लिखा है, कि
पूर्वमुख खड़े हो कर पादप्रक्षालन करना चाहिये ।
देवकार्यमें उत्तरमुख हो कर और पिछकार्यमें दक्षिण
मुख हो कर पादप्रक्षालन प्रसिद्ध है ।

पादोदकका माहात्म्य सभी शास्त्रोंमें वर्णित है । मसूद्दी मास्यगणना जिस प्रकार व्यवस्थित है, पादोदकका माहात्म्य लिखना भी उसी प्रकार है, विज्ञेयतः पादोदक यदि तुलसीदल मिश्रित हो, तो समझी बात और क्या कहो जाय । इससे शत चान्द्रायणका फल प्राप्य होता है ।

विष्णुका पादोदक पान कर मोक्षप्रप्तः जो पशुचि-
गृह्णामि पुनः पाचमन करते हैं, वे ब्रह्मज्ञा होते हैं ।

(हरिवंशिका)

“विष्णोः पादोदकं पीत्वा पश्चादशुचिर्गच्छति ।

आयामति न यो मोहात् प्रपन्नः स निगद्यते ॥

श्रुतिश्च भगवान् पवित्रो भगवत्पादो पवित्रो पादोदकं
पवित्रं न तराग्न आचमनीयं यथा हि धोम इति । सौर्वर्ण्यं च—

“विष्णुपादोदकं पीत्वा भक्तपादोदकं तथा ।

य आचामति संमोहात् प्रपन्नः स निगद्यते ॥”

(हरिवंशिका)

पादोदर (स० पु० स्त्री०) पाद उदरे यस्य । सर्प, साव ।

पादोपजीविन् (स० पु०) सन्देशवद्, दूत ।

पादत (स० स्त्री०) पदतनी सन्तुष्टः भिद्यतात्वादृष्टः ।

(पा १।२।२८) पदतिममूढः ।

पाद्य (स० स्त्री०) पादार्थमुदकं पादयत् (पादार्थो-
भ्याम्बु । पा ५।१।३५) पादप्रचालनार्थं जल, वह
जल जिसमें पूजनार्थ स्थापित या देवताके पैर धोए जायं ।
पोद्गोपचारमें पहिले जल, दोसरे स्वागत और अन्तमें
पाद्य तथा दशोपचारपूजामें पहिले हो पाद्य देना
होता है । दुर्गास्तोत्रपदतिमें लिखा है—

“पादार्थमुदकं पाद्यं केवलं जलमेव सत्” (दुर्गाश्रवण०)

स्थानं नैवारितं पापस्य देहिनी देहमभ्यसतः ।

सवासाभ्यन्तरे यस्य दशार्तं पादोदकेन वै ॥

पादोदकं विष्णुनैवेद्यमुदरे यस्य तिष्ठति ।

नान्यं समते पार्थ इवमेव विनोदयति ॥

महागणपदमस्तौ भक्तौ रोगघनेति ।

द्वेः पादोदकं पीत्वा मुष्यते नात्र संशयः ॥

शिवा तिष्ठते येषां निधं पादोदकं द्वेः ।

किं कल्पितं ते लोके लीयंहेटी मनोरथैः ॥”

(हरिम० पून २८२पु०)

रघुनन्दनने लिखा है, कि ग्रामाक, दूर्ध, पद्म पोर
विशुक्ताश्वा इनके साथ मिला हुआ जल देवपूजाका
पाद्य कहलाता है ।

पात्रमें कांके पाद्य देना होता है । यह पात्र मोक्ष,
ताम्र, रजत वा सुवर्णका होना चाहिये । इसका
विस्तार ६ पङ्क्तु, तत्त्व ४ पङ्क्तु, पोट एक पङ्क्तु
और मासिका ४ पङ्क्तु लकी जानाये । सभी देवपूजामें
ऐसा ही पाद्य-पात्र देना होता है । जिस जलमें देवताके
पैर धोए जायें हैं, उससे हाथ नहीं धोए जा सकते ।
यहो कारण है, कि पैर धोनेके जलको ‘पाद्य’ और
हाथ धोनेके जलको ‘पच’ कहते हैं ।

पाद्यत (स० त्रि०) पाद्य प्रसारवचनायं वत्
(स्थानादिभ्यः प्रसारवने क्तः । पा १।१३) पाद्यप्रकार, पाद्य
होनेका एक भेद ।

पोद्यार्घ (स० पु०) १ पैर तथा हाथ धोने या धुलानेका
जल । २ वह धन या सम्पति जो किसीकी पूजामें दो
जाय, भेंट । ३ पूजासामग्री ।

पाचा (हि० पु०) १ पाचार्य, व्याध्याय । २ पण्डित ।

पान (स० स्त्री०) पा-पाने भावे वृद्धः । १ द्रवद्रव्यका
गलाघःकरण, किमो द्रवपदार्थको गलेके नीचे घूट
घूट करके चतारना, पीना । २ भोजन, पानोक्ता वस्तु,
काटोरा, म्यादा । पा-रचये भावे वृद्धः । ३ रचय, रचा ।
पीयते खगादिभिर्यत्र, पा पशिकरणे-व्यटः । ४ कुआ,
महर । पीयते यत्, कम-वि वृद्धः । ५ जय । ६ शोषिह,
कलवा । ७ मद्यपान, शराव पीना । मद्यपानको सभी
शास्त्रोंमें निषिद्ध बताया है ।

“गन्धमाः शिरोधरं मद्यं न भक्षयन् ।

एतत्कृतम् विधातुं चेदुष्ये कामने गणे ॥”

(मनु १।१०)

मद्यपान, पचक्रोडा, स्तोत्रश्रीय पोर मद्यया ये सब
कामज व्यसन हैं । मद्यपानका अन्याय विधान मद्यपान-
वृद्धमें देखो । ८ निःशवास । ९ पश्चत्वा नोद्याप्रता मया
दग व्यापारभेट, वह एक जो मद्योक्तीको गरम करके
द्रव पदार्थमें बुझानेसे पानी है, पानी, पाव । खड पोर
पशि पादिमें पान देनेसे उनको चार तज हो जाती है ।
शराव-हिता पोर शुकनोतिमें इस प्रकार लिखा है—

पद्वत्त उत्तमरूपसे प्रसृत करनेमें पहले यह आंगना धावश्यक है, कि कौन सोहाय्य किस प्रकार और कितनी धार दण्ड करके पोटना होता है। पद्वत्त-केवल पानके गुणसे ही दृढ़ और तीव्र धारयुक्त होती है। इसीसे पद्वत्तनिर्माताको पहले पानके विषयेसे अच्छी तरह जान-कार होना चाहिये। पान यदि उत्तमरूपसे दिया जाय, तो पद्वत्त प्रति प्रगस्त होता है। पानके पाकेका विषय केवल सुननेसे ही मालूम नहीं हो सकता, बल्कि अपने पाँखोंसे देखने और खर्च करनेसे उसका पूरा ज्ञान होता है। पान देनेकी संस्कृतमें पायन भी कहते हैं। पद्वत्तादि प्रसृत होने पर उसे परिरक्षक करके धारके मुख पर लपेटे अथवा कोई दूसरा चारमृत्तिकाद्वय लगावे। पीछे उस प्रकृत धारकी अग्निमें दण्ड करके जल वा किसी अन्य तरल पदार्थमें डुबो दे, इसीको पायन वा पान कहते हैं।

दृढत्व-हिताभि पानका विषय इस प्रकार लिखा है— जो लक्ष्मी लाभ करना चाहते हैं वे अपने शस्त्रमें हथिर दारा, जो गुणवान् पुत्रको कामना करते हैं, वे दूत द्वारा और जो पचय वित्तके अभिलाषी हैं वे अपने शस्त्रमें कल द्वारा पान दे। शूकाचार्य का भी यही मत है। यदि छोड़ी, जटनी और हयनोके दूधसे पान दिया जाय, तो पानकाय द्वारा मस्यकरूपसे पथको विधि होती है। मस्यपित्त, हरिणी, छोड़ी और बकरीके दूधसे साथ ताड़ी मिला कर पान देनेसे शस्त्र ऐसा तीव्र हो जाता है, कि उससे हाथोकी छड़ भी काट सकते हैं। अकयनके दूध, दण्ड में पशुकी काखी, पारावत और चूहेकी मिठाकी एक साथ मिला कर तैलमयित शस्त्रकी धार पर प्रसेव दे। पीछे उसमें किसी पूर्वोक्त द्रव्य द्वारा पान करे। इस प्रकार पान करनेसे उसकी धार इतनी दृढ़ हो जाती है, कि पत्थर पर भावात करनेमें भी उसका कोई नुकसान नहीं होता देखेकी जड़की राख और मूँकी मित्रा कर किसी वर-तनमें एक दिन तक रख छोड़ो। दूसरे दिन उसका पान देनेसे शस्त्रकी धार बड़ी ही दृढ़ हो जाती है और पत्थर पर तो क्या यहाँ तक कि लोहे पर भावात करने-से भी वह नहीं टूटती।

इसके सिवा पान देनेकी और भी अनेक विधि हैं, किन्तु वे सब पान तीरके फलमें व्यञ्जित होती हैं। विष अथवा विषयतु द्रव्यका पान देनेसे वह गन्ध बढ़ा भीषण हो जाता है। उससे भावातमें यदि थोड़ा भी रक्त निकले, तो उसे प्राणसंसारक जानना चाहिये। अस्त्रमें पान देनेके समय विविध प्रकारको गन्ध-निक्षेपों है। उस गन्धसे अस्त्रका भविष्यत् शुभाशुभ जाना जाता है और पानके समय अस्त्रकी ओर दण्ड करना होता है, उस समय जो वायु या रक्त निकलता है, उससे भी भविष्यत् शुभाशुभ अनुमित होता है। यथा— करधोर, उत्पन्न, हृदिमद, हृन्, कुहू, म और चम्पाको तरङ्ग गन्ध-निर्गमनेसे उस पद्वत्तकी शुभदायक समझना चाहिये। यदि गोंमूल अथवा पद्म, भेद, फूल, चरबो, रक्त वा चोरेके समान गन्ध निकले, तो वह पद्वत्त अशुभ होता है। दाहकाष्ठमें यदि बेदुर्ग, कनक वा विद्युत्को तरङ्गकांक्षिण हो, तो शुभ अन्यथा अशुभ समझा जाता है।

अशुभतम लिखा है, कि रोगोके अग्नादि छेद वा भेद करनेमें शस्त्रोका व्यवहार धावश्यक है, इस कारण सबसे पहले लक्ष्मी उपाय करना चाहिये जिससे उसकी धार तीव्र रहे। इसी धारके लिये शस्त्रमें पायन पर्याप्त पान देना होता है। यह पान तोग प्रकारका है, चार, कल और तैल। पान देनेमें शस्त्रकी अग्निमें दण्ड करते प्रयोजनानुसार चारजलमें, विषद, जलमें अथवा तैलमें डुबोना होता है। शस्त्र अथवा अस्त्रोके दिन करनेमें शस्त्रमें चारपान, भोवके छेदन, भेदन वा पाटन करनेमें विषद जल-पान और गिरा विद अथवा छायाछेदन करनेमें तैलपान प्रयुक्त है। (अशुभ सूत्रपान ८ अ०)

शस्त्र देखो।

१० पेशद्रव्य, पीनेका पदार्थ। ११ मध्य, शराय। १२ जल, पानी। १३ प्यास, पोसाला। १४ जय। (वि०) पानि रचतीति पान्य। १५ रक्षाकर्ता, रक्षा करनेवाला, अचानेवाला।

पान (हि० पु०) १ पत्ता। २ एक प्रसिद्ध मत्ता जिसका पत्तीका बोझ बना कर खाते हैं। विशेष विवरण सामुद्रिक-चन्द्रमें देखो। ३ पानके आकारकी चोको या ताशीज जो चारमें रहती है। ४ तामके

पादोदकका माहात्म्य सभी शास्त्रोंमें वर्णित है। मनुस्मृतिको मध्यगणना जिस प्रकार अत्यन्त है, पादोदकका माहात्म्य लिखना भी उसी प्रकार है, विशेषतः पादोदक यदि तुलसीदल मिश्रित हो, तो उसकी वात और क्या कही जाय। इससे अंत चान्द्रायणका फल प्राप्त होता है।

विष्णुका पादोदक पान कर मोहवशतः जो यशुचि-ग्रहासे पुनः पाचमन करते हैं, वे ब्रह्मदा होते हैं।

(हरिभक्तिवि०)

“विष्णोः पादोदकं पीत्वा पश्चादशुचिर्भूयः।

आचामति च यो मोहात् ब्रह्महा स निगद्यते॥

धृतिश्च भगवान् पवित्रो भगवत्परां पवित्रौ पादोदकं पवित्रं न तस्यान आचमनीयं यथा हि सोम इति। तौर्वर्णे च—

“विष्णुशर्वाङ्कं पीत्वा मन्त्रपादोदकं तपः।

य आचामति संमोहात् ब्रह्महा स निगद्यते॥”

(हरिभक्तिविलास)

पादोदर (सं० पु० स्त्री०) पाद सदरे यस्य। सर्प, सांप।

पादोपजोविन् (सं० पु०) सन्तुष्टवद्, दूत।

पादत (सं० व्री०) पदतौनीं ममूहः भिचारत्वादयः।

(पा १।२।३८) पदतिममूहः।

पाद्य (सं० व्री०) पादार्घ्यमुदकं पाद-यत् (पादार्घ्य-भ्याञ्च)। पा ५।१।५) पादप्रचालनायं जल, वह जल जिससे पूजनोद्योग्य किंवा देवताके पैर धोए जायें। पोद्गोपचारमें पहली चामन, पीछे स्वागत और अन्तमें पाद्य तथा दशोपचारपूजामें पहली हो पाद्य देना होता है। दुर्गास्तोत्रपद्धतिमें लिखा है—

“पादार्घ्यमुदकं पाद्यं केवलं जलमेव तत्” (दुर्गास्तोत्र०)

स्थानं निवारित पापस्य देहिनां देहमन्वतः।

सवासाभ्यन्तरे यस्य दशासं पादोदकेन वै॥

पादोदकं विष्णुर्नैवेद्यमुदरे यस्य तिष्ठति।

नाश्रयं लभते पार्थ स्वयमेव विनश्यति॥

महापापमहमस्ती व्याप्ती रोगगतैरपि।

हरेः पादोदकं पीत्वा मुच्यते नात्र संशयः॥

शिखा तिष्ठते येषां निःशं पादोदकं हरेः॥

किं करिष्यति ते लोके तीर्थं कौटी मनोरथैः॥”

(हरिमं० पूट स्कन्दपु०)

रघुनन्दनने लिखा है, कि श्यामाक, दूर्वा, पद्म और विष्णुकाशा इनके साथ मिला हुआ जल देवपूजाका पाद्य कहलाता है।

पात्रमें करके पाद्य देना होता है। यह पात्र लोह, ताम्र, रजत या सुवर्णका होता चाहिये। इसका विस्तार ६ अङ्गुल, उत्तर ४ अङ्गुल, चौड़ा एक अङ्गुल और नासिका ४ अङ्गुलकी बनाने। सभी देवपूजामें देना ही पाद्य-पात्र देना होता है। जिस जलसे देवताके पैर धोए जाते हैं उससे हाथ नहीं धोए जा सकते। यही कारण है, कि पैर धोनेके जलको ‘पाद्य’ और हाथ धोनेके जलको ‘पर्व’ कहते हैं।

पाद्यार्घ्य (सं० त्रि०) पाद्य प्रकारवचनार्थं कन् (इत्युदात्तिः प्रकाशवने कन्। १।५।१) पाद्यप्रकार, पाद्य होनेका एक भेद।

पोद्यार्घ्य (सं० पु०) १ पैर तथा हाथ धोने या स्नानका जल। २ वह धन या सम्पत्ति जो किसीकी पूजामें दी जाय, भेंट। ३ पूजासामग्री।

पाद्या (हिं० पु०) १ पाचार्य, उपाध्याय। २ पण्डित।

पान (सं० क्लो०) पा-पाने भावे क्युट्। १ द्रवद्रव्यका गलायःकरण, किन्तो द्रवपदार्थको गलेके नीचे घूट घूट करके उतारना, पीना। २ भोजन, पानोका वरतन, कटोरा, प्याला। पा-रचये भावे क्युट्। ३ रक्षणे, रक्षा। पीयते खगादिभिर्यत्र, पा पशिकरणे-क्युट्। ४ कुशा, नहर। पीयते यत्, कर्मणि क्युट्। ५ जल। ६ शोण्डिक, कलवार। ७ मद्यपान, शराब पीना। मद्यपानको सभी शास्त्रोंमें निषिद्ध बतलाया है।

“पानमक्षः क्षिपेद् द्रव्यं यथा न यथाकम्।

एतदकथितम् विधातुं चतुर्षु कालेषु गणे॥”

(मनु १।५०)

मद्यपान, चचकोड़ा, स्त्रोस्मयोग और मृगया ये सब कामज व्यसन हैं। मद्यपानका अन्त्यार्थ विवर्ण मद्यपान-शब्दमें देखो। ८ निःश्वास। ९ चरित्रका तोषाप्रता सम्पादन व्यापारभेट, यह चमक-जो मस्त्रोंकी गरम करके द्रव पदार्थमें बुझानेसे प्राप्त है, पानो, पाव। खड और पशु आदिमें पान देनेसे उनको चार तेज हो जाते हैं। शराबसे चिता और शुकनीतिमें इस प्रकार लिखा है—

पक्ष्म उत्तमरूपसे प्रस्तुत करनेमें पड़ते। यह जानना आवश्यक है, कि कौन जोड़ाष्ट्र किधों प्रकार और कितनी बार दण्ड करके पीटना होता है । पक्ष्म-केवल पानके गुणसे ही दृढ़ और तीव्र धारयुक्त होते हैं । इसीसे पक्ष्मनिर्माताको पहले पानके निरूपसे अच्छी तरह जान-कार होना चाहिये । पान यदि उत्तमरूपसे दिया जाय, तो पक्ष्म प्रति प्रगट्ट होता है । पानके पाकेका विषय केवल सुननेसे ही मांगूर भंजों हो सकता, बल्कि अपने आँखोंसे देखने और छेंचें करनेसे उसका पूरा ज्ञान होता है । पान देनेकी संज्ञातमें पायन भी कहते हैं । पक्षादि प्रस्तुत होने पर उसे परीक्षण करके धारके मुख पर लवण चूँचका कोई दूसरा चारमृत्तिकाद्वय लगावे । पीछे उस प्रकृत धारकी धम्मिमें दण्ड करके जल वा किसी अन्य तरल पदार्थमें डुबो दे, इसीको पायन वा पान कहते हैं ।

इस पद्धति में पानका विषय इस प्रकार लिखा है— जो लक्ष्मी खाभ करना चाहते हैं वे अपने शस्त्रमें बधिर हाथ, जो गुणवान् पुत्रको कामना करते हैं, वे छत द्वारा और जो पचय वित्तके अभिनायो हैं वे अपने शस्त्रमें जल द्वारा पान दे। शूद्राचार्य का भी यही मत है। यदि छोड़ी, जटनौ और हयनोके दूधसे पान दिया जाय, तो पानकाय द्वारा सम्मकरूपसे पचयको मिश्रित होती है। मत्स्यपित्त, हरिणी, घोड़ी और बकरीके दूधके साथ ताड़ो मिला कर पान देनेसे शस्त्र ऐसा तोख्य हो जाता है, कि उससे हाथोकी चूड़ भी काट सकतें हैं। चकवनके दूध, दग्ध मेघशुकी काबो, पारावत और चूड़की मिश्राकी एक साथ मिला कर तैलमयित शस्त्रकी धार पर प्रलेप दे। पीछे उसमें किसी पूर्वोक्त द्रव्य द्वारा पान करे। इस प्रकार पान करनेसे उसकी धार इतनी दृढ़ हो जाती है, कि पत्थर पर आघात करनेसे भी उसका कोई नुकसान नहीं होता। केलेकी लवुकी राख और मट्टकी मिश्रा कर किसी वस्तुमें एक दिन तक रख छोड़े। दूसरे दिन उसका पान देनेसे शस्त्रकी धार बड़ी ही दृढ़ हो जाती है और पत्थर पर तो क्या यहां तक कि लोहे पर आघात करनेसे भी वह नहीं टटती।

इसके विषय 'पान देनेकी घोर भी घनेक विधि है, किन्तु ये सब पान तोरके फलमें व्यञ्जित होते हैं। विष अथवा विषवत् द्रव्यका पान देनेसे यह गन्त वृद्धा मोक्ष हो जाता है। उससे वाद्यतमे यदि थोड़ा भी रक्त निकले, तो उसे प्राणसंसारक आनतां चांक्षिये। अन्तमें पान देनेके समय विविध प्रकारको गन्ध निरुद्ध हो है। उस गन्धसे पक्षको भविष्यत् शुभाशुभ जाना जाता है घोर पानके समय अष्टत्रयी जो दग्ध करना होता है, उस समय जो सा चषं वा रंग निरुद्धता है, उससे भी भविष्यत् शुभाशुभ अनुमित होता है। यथा - कारघोर, उत्पल, हस्तिमद, हृन्, कुङ्कुम घोर चम्पाको तरङ्ग गन्ध निरुद्धनेसे उस पक्षको शुभदायक समझता चाहिये। यदि गो-मूत्र अथवा पद्म, मेद, फूस, वरयो, रक्त वा घोरके समान गन्ध निकले, तो वक्ष भक्ष प्रशुभ होता है। दाहकालमें यदि बेटुई, कानक वा विद्युत्को तरङ्गको र्चिणं हो, तो शुभ चम्पया प्रशुभ समझा जाता है।

सूत्रमें लिखा है; कि रोगोके व्याधि छिद वा भेद करनमें शस्त्रोका व्यवहार आवश्यक है, इस कारण सबसे पहले वही उपाय करना चाहिये जिससे उनको चार-तेज रहे। इसी चारके लिये शस्त्रोंमें पायन प्रयात् पान देना होता है। यह पान तोम प्रकारका है, चार, जल और तैल। पान देनेमें शस्त्रको चन्निमें दृढ़ करने प्रयोजनानुसार चारशस्त्रमें, विशुद्ध। जस्में चयया तेजमें शुद्धोना होता है। शस्त्र चयवा अस्थिक्षेदन करनमें शस्त्रमें चारपान, मोक्षके छेदन, भेदन वा पाटन करनेमें विशुद्ध जल-पान और गिरा विह चयवा स्नायुक्षेदन करनमें तैलपान प्रयुक्त है। (सूत्र सूत्रस्थान ८ अ०)

पत्तोंके चार भेदोंमेंसे एक। इसमें परते पर पानके आकारकी लाल बूटियाँ बनी रहती हैं। पूँजुतेमें पानके आकारका बड़े रंगीन या सफेद चमड़ेका कुड़ा जो एड़ीके पीछे लंगमा है। इन्हें गून। (स्त्री) ७ सुनकी माँड़ीसे तर करके ताना करना।

पान—उड़ीसासे उत्तर और कोटानागपुरके दक्षिण तथा पश्चिम प्रदेशवासी मोचजातिविशेष। स्थानभेदसे ये लोग पंडा, पौड, पाँव, बराहक और सहोते कहलाते हैं। उड़ीसामें इनके पाँच विभाग हैं—मोड़पान वा उड़ियापान, धूनीपान, बेलपान वा राजपान, पान-बेणव और पत्रदिया।

साधारणतः पूर्ण वयस्क नहीं होनेसे पान-बालिका का विवाह नहीं होता। मोड़पानयोगीके सन्निधिली व्यक्तिगते मध्य केवल वार्यविवाह प्रचलित है। उड़ीसाके पानबेणव ही पानोंको पुरोहिताई करते हैं। कोटानागपुरके नामेहर पान भी यह कार्य करते हैं। घर द्वारा कन्याके मस्तक पर सिन्दूरदाग और कर तथा कन्याका हस्तस्थान हो इनके विवाहका प्रधान भङ्ग है। इन लोगोंमें विधवा-विवाह प्रचलित है। मृतस्वामिकी छोटे भाईसे विवाह करना ही युक्तियुक्त है। परित्यक्ता रमणी फिरसे विवाह कर सकती है।

स्थानभेदसे इनके मध्य नाना प्रकारके निजट्ट सिन्दूरधर्म प्रचलित है। उड़ीसा और सिंदूरधर्ममें पान लोग बेणवधर्मका पालन करते हैं और मृतदेह गाड़ते हैं। लोहरदंगामें दाह और समाधि दोनों ही प्रचलित हैं।

सामाजिक विषयमें पान लोग भक्ति निजट्ट होते हैं। ये लोग गाय, सूअर आदिका मांस खाते और शराब पीते हैं।

पानक (घं० स्त्री०) पानाय कायतेति, को० क। पानद्रव्य-विशेष, विशेष क्रियासे बनाया हुआ खटा तरल पदार्थ जो पीनेके काममें आता है, पना।

पानीय, पानक और मद्य मद्यके बरतनमें देना चाहिए। पानक मद्यका व्यवहार पुलिङ्गमें भी होता है। पानक और प्रपाथका एकवर्णीय शब्द है।

भावप्रकाशमें लिखा है,—परिष्कृत चोनी शोतन जलमें घोल कर उसमें हलायच, खैर, कपूर और

मिर्च मिशानेसे उषेःशर्करोदक वा चीनीका पना कहते हैं। गुण—शुक्रवर्धक, शीतल, सारक, बलकारक, रुचिजनक, संपु, मधुररस, वातघ्न, रक्तपित्तनाशक तथा मूर्च्छा, वमि, पिपासा, दाह और ज्वरनाशक।

पान्मफलका पना—कसे पामको पानोमें सिद्ध कर हाथसे खूब मथ दे। बाद उसमें चोनी, ठंडा पानो, कपूर और मिर्च मिला दे। इसीको पान्मफलका पानक कहते हैं। भोमसेनकृत यह पानक भिन्नान्य पानककी अपेक्षा श्रेष्ठ है। गुण—परायत्न विनाशक और बलकर तथा इसका सेवन करनेसे इन्द्रियाँ शीघ्र ही परिणत होती हैं।

निम्बफल-पानक वा नीबूका पना—एक भाग कागुको नीबूके रसमें छः भाग चोनीका रस मिला कर उसमें लवङ्ग और मिर्च डालनेसे उत्कृष्ट पानक बनता है। गुण—परायत्न भञ्जक, वायुनाशक, अग्निप्रदोपक, रुचिकारक तथा सभी वायुरोग द्रव्यका परिपाकजनक।

अम्लिषापानक वा पकी हुई इसलोकका पना—पकी हुई इसलोकका पानोमें अच्छी तरह मथ कर उसमें चोनी, मिर्च, लवङ्ग और कपूर मिला दे। लव यह उत्तम सुगन्धयुक्त हो जाय, तब इसे प्रसुत हुआ-सा जानना चाहिए। गुण—वायुनाशक, किञ्चित् पित्त और कफकारक, परायत्न रुचिकर और अग्निप्रदोपक।

धन्याकपानक या धनियेका पना—धनियेकी भत्ती भाँति पीस कर कपड़ेमें डाल ले। बाद इसमें चोनीका पना और कपूर आदि सुगन्ध द्रव्य मिला कर मिश्रीके एक नये बरतनमें रखे। इसी प्रकार यह पानक बनता है। यह पित्तनाशक माना गया है।

सद्युतमें लिखा है, कि अम्लोत्सृगता वा अम्लविहीन मोड़पानक (शुद्धका पना) शुष्पका और मूलद्रव्यिकर है। वह मिश्री, द्राक्षा और शर्करा युक्त होनेसे अम्लरस-विशिष्ट, तोषण और शोतन होता है। द्राक्षाका पानक यम, मूर्च्छा, दाह और ज्वरनाशक तथा पथक और कोलका पानक सुवर्णप्रिय और पित्तको माना गया है।

इसके सिवा बामट सूत्रस्थानके कठे अर्थार्थमें और भी अनेक प्रकारके पानकका विषय लिखा है, विस्तारके अभ्यसे यह यहाँ नहीं दिया गया।

पानकपूर (स० पु०) स्नानमन्त्रात् वृत्तः ।

पानकी (स० स्त्री०) पाण्डुरोगभेदः ।

पानकुम्भ (स० पु०) पानपात्र, जलका कलसः ।

पानगोष्ठिका (स० स्त्री०) पानस्य पानाय वा गोष्ठिका ।

पानसभा, यह स्थान जहाँ ताम्बिक लोग एकत्र हो कर मद्यपान तथा कुछ पूजन आदि करते हैं। इसका पर्याय चापान है।

श्यामारहस्यमें लिखा है, कि पहले सब कोई चक्राकारमें वा पंक्तिरूपमें भिन्न भिन्न आसन पर पद्यान्न लगाए बैठे। उनकी ललाटमें चन्दन और मस्तक पर पुष्प सुगोमित रहे। यदि इस चक्रके मध्य शुद्ध हो, तो गन्धादि द्वारा उनकी पूजा करे और उनके पात्रमें पुष्प दे कर उन्हें प्रणाम करे; यदि चक्रके मध्य शुद्ध न हो, तो उस पात्रकी जलमें फेंक देवे। इस प्रकार उपवेशन करके पात्रमें मद्य भर कर ज्येष्ठादिनामके गीता पढ़ कर दे। शालासुरास पानपात्रों की वन्दना करने होता है। दूसरे तन्त्रशास्त्रमें लिखा है, कि मस्तक पर बिन्दुर तिलक भी देना होता है।

मद्यपान देखो।

पानठ (स० स्त्री०) पाने कुम्भः बाहुलकात् षष्ठः, पानकुम्भः ।

पानडो (हि० स्त्री०) एक प्रकारकी सुगन्धित पत्ती जो प्रायः मोठे पेष पदार्थों तथा तेज और चञ्चल आदिमें उन्हें सुगन्धित करनेके लिये कीटी जाती है।

पानदान (हि० पु०) १ यह डिब्बा जिसमें पान और उसके लगानकी सामग्री रखी जाती है, पानडब्बा। २ यह डिब्बिया जिसमें पानके बीड़े रखे जाते हैं, गिलोरी-पान, खासदान।

पानदोष (स० पु०) मद्यपानका व्यसन, शराबखोरीकी रीति।

पानन (हि० पु०) हिमालयकी तराई और उत्तरीय भागमें भिन्न भिन्न प्रांतोंमें मिलनेवाला मक्कोने-आकारका एक प्रकारका पेड़। इसकी पत्तियाँ जाड़ोंमें झड़ जाती हैं। मक्को पेड़ोंमें पर सास रंगकी चिकनी और भारी होती है और बहुत दिन तक रहती है। इस लकड़ीमें सजावटकी चीजें गाड़ी तथा घरके सज्ज

वनाए जाते हैं। इसका गोद दयाके काममें आता है।

पानप (स० स्त्री०) पान पेष मद्यादि विषयित पानपिक। -सुरापायी, शराबी, पियङ्गु।

पानपात्र (स० स्त्री०) पानस्य पेशमद्यादेः पात्रं । १ मद्यपानपात्र, यह पात्र जिसमें मद्यपान किया जाता है। पर्याय-चपक, सरक, चतुर्तर्पण, चतुर्तर्प, पारी और पारीक।

—“वदायन्मथे सुरा पानपात्रं पनापिपः ।”

(पार्क ८२/१९)

जब भगवती सहिपासुरके साथ युद्ध करने चली थीं, उस समय कुबेरने भगवतीकी पानपात्र दिया था।

मद्यपान देखो।

मद्यपान करने समय एक आसन पर बैठ कर सुयक्ष्ण पत्र पात्रमें मद्यपान करना चाहिये। एक पात्रमें पान करनेसे नरककी गति होती है। २ पानभाजन, गिलास। पानभाजन (स० स्त्री०) पानाय पानस्य वा भाजनं पात्रं । दानपत्रि, काँवा।

पानभाण्ड (स० स्त्री०) पानस्य पानाय वा भाण्डं । पानपात्रं ।

पानभू (स० स्त्री०) पानभूमि, यह स्थान जहाँ एकत्र हो कर लोग शराब पीते हैं।

पानभूमि (स० स्त्री०) पानभू देखो।

पानमङ्गल (स० स्त्री०) पानगोष्ठी । पानगोष्ठी देखो।

पानमद (स० पु०) मद्य।

पानमात्रा (स० स्त्री०) पानस्य मात्रा । सुरापानमें प्रगल्भ मात्रा। परिमाणसे यदि मद्यपान किया जाय, तो उससे दृष्टि सुव्यव नहीं होती और न मन भी विचलित होता है। परिमाण मद्यपान की अच्छा है। इसका विपरीत होनेसे वह मद्य विष सह्य हो जाता है।

—“मात्रम चखे दृष्टिः पावम क्षोभते मनः ।”

पानमात्रा पर वाञ्छ विपरीता विरोधना ॥ (धौनक)

पानमन्त्रिज (स० पु०) शराब से चनेवाला, कलहार।

पानमन्त्रिम (स० पु०) मद्यपानजान रोगभेदः ।

पानमन्त्रिम देखो।

पानगोष्ठ (स० स्त्री०) पाने गोष्ठः अन्तः । सुरादि पानद्वय, जो शराब खूब पीता हो।

पानसः (सं० वं०) पानसस्य इदं, पानसफले भवे-
तांफलस्य विकार-इति वा चण् । ११ पानसभव मन्दा,
प्राचीनकालको एक प्रकारको शराब जो पानस (कटहल)
से बनाई जाती थी । (वि०) २ पानससम्बन्धी, कटहलसे
सम्बन्ध रखनेवाला ।

पानहो (हि० स्त्री०) क्षुत्ता ।

पाना (हि० क्रि०) १ पपने पास या अधिकारमें करना,
प्राप्त करना, लाभ करना, हासिल करना । २ भेद पाना,
पता पाना । ३ मात्ता करना, देखना । ४ अनुभव
करना, भोगना, उठाना । ५ कृतकर्मका भला या बुरा
परिणाम भोगना । ६ किसीको दी हुई चीज वापस
मिलना या कोई कोई हुई चीज फिर मिलना । ७ पास
तक पहुँचना । ८ भोजन करना, आहार करना,
खाना । ९ ज्ञान प्राप्त करना, समझना, जानना ।
१० समय होना, सकना । ११ पास तक पहुँचना ।
१२ किनो बातमें, किसीके बराबर पहुँचना । (वि०)
१३ पानिका एक, पावना । १४ प्राप्त, जिसे पानिका
कहा हो ।

पानागढ़—१ मध्यप्रदेशके जलन्धपुर जिल्लागत एक जन्तपुर
तहसीलका एक नगर । यह भूभाग २६° ३०' ४०" और
देशां ८०° २' ५०" के मध्य जलन्धपुर नगरसे ८ मील
पूर्वमें अवस्थित है । निकटवर्ती खानमें लोहा पाया
जाता है । यहां ईखकी खेती होती है ।

२ बंगाल देशमें वर्तमान जिल्लागत एक प्राचीन
शहर बर्हिष्ण ।

पानागार (सं० पु०) पानस्य आगार इत्यतः । पानगृह,
वह घर जहाँ बहुतसे लोग मिल कर शराब पीते हैं ।

पानात्वय (सं० पु०) पानात्वयोः—आत्मी योऽत्ययः,
रोगविशेष । मृदात्ययरोगः, मृदापानजनित रोग-
का विषय स्रुतमें इस प्रकार लिखा है,—अतिरिक्त
मृदापानने तरु-तरुकी मोड़-उत्पन्न होती है ।
पानजन्य रोग चार प्रकारका है—पानात्वयः, परमद,
पानाजीर्ण और पानविभ्रम । इनमेंसे स्रुत, प्रह-
मद, हृदयमें वेदना, तीव्र और कम्प ये सब वायुज
मृदात्ययके लक्षण ; खेदः, प्रलापः, मुखगोष, दाह,
मूर्च्छा, मुख और चक्षुकी पीतवर्णता ये सब पित्तज

पानात्वयके लक्षण ; वमन, शीत और कफस्राव आदि
जन्य पानात्वयके लक्षण और सतिपातजमें उक्त सभी
लक्षण देखे जाते हैं । शरीर चण और भार, मुख-
वैरस्य, श्लेष्माकी अधिकता, पशुचि और मलमूत्रोप-
से सब परमदके लक्षण ; दृष्ट्या, शिरोवेदना, सन्निभेद,
पाथान, अन्धरसका उद्गीरण और गात्रव्याना ये
सब पानाजीर्णके लक्षण हैं । यह रोग पित्तके बिगड़नेसे
होता है । हृदयमें वेदना, वमन, खर, मूर्च्छा, कफ-
स्राव, अर्धगत रोग, विदाह, सुरा, चक्षु वा चक्षुजात
भ्रष्टद्रव्यमें होय ये सब पानविभ्रमके लक्षण ; पथरोध
खून और उत्तरोष्ठका अपेक्षाकृत सुदृढ़ होना, प्रतिगम-
शील, दाह और मुखका तैलाक्त होना ये सब सतिपातके
लक्षण हैं । उक्त सभी लक्षण होनेसे रोगीको ससाध्य
जानना चाहिये । पानाहत होनेसे जिह्वा, जीह और
दन्त क्षण्य वा नीलवर्ण ; नेत्र पीत और रक्ताभयुक्त,
हिक्का, खर, वमन, कम्प, पाष्वांशुल, काग और श्वस-
न ये सब लक्षण होते हैं ।

इसकी चिकित्सा—पुष्क, मिर्च, आद्रक, यमानी, कुष्ठ,
शिवचल ये सब द्रव्य प्रचुर परिमाणमें संयोग करके
मद्यपान करनेसे वायुको शान्ति होती है ; पथवा
द्राक्षा, यमानी, कचूर, हींग और शिवचलके साथ पान
करे । आम्नातक, दाहिम, मातुलह रत्न सबकी आधुप-
वर्गके मांसके साथ सेवन, पित्तप्रवणताको जगह
मधुरमर्गका क्षाथ, गन्ध द्रव्य और मधु तथा शर्कराके
साथ सेवन एवं प्रचुर परिमाणमें श्वरसके साथ मद्य-
पान करके थोड़ा देर बाद वमन करे । लाव और
तीतरके मांसका रस और अन्धरहित मुरवय, घृत
और चीनीके साथ सेवन विधेय है । कफ जन्य पाना-
त्वयमें विस्फुल्ल और वेतसके रसके साथ मद्यपान
करके कफका त्याग करते रहें । तिल और कटु द्रव्यके
साथ यूस, यवाक, जाड़लमांस और श्लेष्मायुक्त
अन्यान्य द्रव्यका सेवन करे । सर्वदोषज होनेसे पूर्वोक्त
सभी क्रियाएँ और हिदोषज होनेसे दोषकी प्रधानताका
विश्राद कर प्रतिक्रिया करनी होती है ।

पानात्वयमें ये सब योग विशेष उपकारी हैं—शुद्ध
लव, नागकेशर, पिप्पली, इलायची, यष्टिमधु, धनित्र,

क्षयज्वरक पीर मिर्चका चूण समान भाग ले कर प्रचुर कपिलरस, जल पीर पक्षपकके साथ संयोग करके पान करे । शीघ्र, पद्म, करवीर, अम्यान्तलजल पुष्प, पद्मकाष्ठ पीर सारिकादिगण इन सबके साथ शीतल जलका सेवन करे । यष्टिमधु, कटुको, द्राक्षा, खोरेका मूल, कपासका मूल पीर गोखरू इनका समान भाग ले कर पानीय प्रस्तुत करे । गाभारो, देवदारु, विटलवण, दाहिम, पिप्पली पीर द्राक्षा इनके जलमें पानक प्रस्तुत करके खोजपुरके रसके साथ पान करनेसे पानजन्य रोगकी शान्ति होती है । द्राक्षा, चीनो, मधु, क्षयज्वरा, धमिये, पिप्पली पीर विटलके साथ अथवा फलाभक्त रस पीर शीघ्रके साथ पानीय प्रस्तुत करके पान करनेसे पानात्यय रोग प्रशमित होता है । तित्तोको, चणामाग, झूटजबोज, लकपुष्प पीर उडुम्बरकी दूधमें पाक करके पाय भर पो लेनेके बाद वसन कर दे । पीके सुशोस्तके बाद मद्यपान करे ।

गुहत्वक, पिप्पली, नागकेशर, विटलवण, हिड्ड, मिर्च पीर इलायची इन सबके साथ फलाभक्त पान अथवा उपोदकके साथ सैन्धव, विटलवण, गुहत्वक, चव्य, इलायची, हींग, पिप्पली, पिप्पलीमूल, कचूर पीर गुहके साथ भोजन करनेसे यह रोग बहुत कुछ चंगा हो जाता है । अथवा द्राक्षा, कपिल पीर दाहिम इनका पानक प्रस्तुत कर पान करनेसे पानविन्मको शान्ति होती है । अथवा प्रचुर परिमाणमें मधु, गजरा, आम्बान्तल पीर कोसके रसके साथ पानक ; अथवा खजूर, वेत, करीर, पक्षपक, द्राक्षा, मिष्ट, चीनो, गाभारो वा यष्टिमधु पीर उत्पलकी ठण्डे पानीमें मिला कर पान करे । मोरिउषका मधुर, मृणाल, जोरक, नागकेशर, तेजपत्र, पद्म, पद्मकाष्ठ, आम्बान्तक, करञ्ज, कपिल, कोन, हलांस, वेतकल, जोरक पीर दाहिम इनके सेवनसे पानात्यय प्रशमित होता है । मनोहारिणी कामिनोका समागम भी पानात्ययमें विधेय है ।

दाहिम पीर भट्ठा, प्रभृति अम्लफलका रस, चीनो, दाहचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर, जोरक, पिप्पली, मिर्च इनके चूर्णका समान भाग ले कर पान

करे । मोथा, यष्टिमधु, मावा, दाहचीनी, वहुवार वृचाक्षुर, क्षयज्वरक, द्राक्षा, पिप्पली पीर नागकेशर इन्हें दूधमें पानीकृत करके कुछ गरम रहते हो सुरा वा आसवके साथ प्रचुर परिमाणमें पान करे । जब तक यह विधिपूर्वक प्रस्तुत नहीं किया जायगा, तब तक इसके सेवनसे कोई फल नहीं होता है ।

मद्यविरत व्यक्ति यदि सद्यः अधिक परिमाणमें मद्य पान करे, तो पानात्ययजन्य विकार उत्पन्न होता है । मद्यकी चर्म्मनि बाधवोगयुग्मे जनवाही स्त्रोत शुष्क हो कर टूटपा पड़ा होता है । इस समय रक्त, शीघ्र, पद्ममूत्र पीर सुदृढकीके साथ हिमजल प्रस्तुत करके पिप्पली मिला कर पान करे । हृत, तैल, चरबो, सज्जा पीर दधिको मृद्वाराजद्वये साथ पान कर पञ्चनका व्यवहार करनेमें बिद्व और यवके द्वायमें सर्वगन्धा घोल कर पीर पाक कर व्यवहार करे । रसविगिट भोजन तथा शीतल पीर सुगन्धि पानक दोषानुसार प्रयोध्य है ।

पानजन्य उत्पत्ता पित्तरक्तसे ग्रह हो कर त्वकमें बाध्य होता है पीर घोरतर दाह उत्पन्न करती है । इसमें भी पित्तजन्य दाहकी तरह चिकित्सा विधेय है । प्रथमतः सर्वाङ्गमें चन्दनलेपन, शिमिरीदक पीर शीतल द्रव्यसे शय्या प्रस्तुत करके उस पर शयन, चार पीर मृणालवन्मयपुष्प कामिनोका साथ, उपलभ्यया पर शयन करके नलिनोपम भोजन, अभिन्नपित्त गन्धसेवन, कमलकल्लारदल उच्चारित वनानिलसेवन इस तरह नाना प्रकारकी विलासोपयोगी मत्स्यजिवा पीर उससे साथ साथ कामिनोका प्रहस्य ये सब क्रियाएँ विविध क्लिप्त करे ।

पित्तजन्य पानात्ययमें कामिनोसम्प्रापण वा संश्रय विधेय उपकारो है । सब देहस्थित रक्त उद्भिन्न हो कर पतिगय दग्ध होनेसे देह पीर दोनों नेत्र तात्त्वण, सुवस्त्रगन्धविगिट तथा शरीर चर्म्मनिकोष्णकी तरह दग्ध हो जाता है । ऐसे चलन्तमें रोगीके दोषानुसार आहारकी व्यवस्था करनी चाहिये ।

ममस्थानमें पमिघात जन्य जो दाह उत्पन्न होता है, वह पशाय है । बाहरमें शीतल पीर भीतरमें दाह रहने पर उसे भी पशाय समझना चाहिये ।

प्रणाली—अम्भ, मण्डूर, विडङ्ग प्रत्येक १ पल, चट्ट, त्रिकटु, त्रिकणा, केसरका मूल, दन्तोमूल, भोगा, पीपर, चोता-मूल, मानकशू, शूल, शुक्लमूत्रिका मूल, निषोथका मूल, डुरडुरका मूल, पुनर्षवाणा मूल-प्रत्येक २ तोला, रस १ तोला, गन्धक १ तोला इन सब द्रव्योंको भट्टरक के रसमें घोस कर गोली बनावे। इस गोली का सेवन करनेसे शूलपित्त, अश्वि और प्रधयो आदि रोग बहुत जल्द दूर हो जाते हैं। इस औषधके सेवनकालमें जल-धौत भक्ष, दधि और काँसो आदि पय्य हैं तथा पानीफल शुद्ध, नारियल, दुग्ध और सब प्रकारको दाल निषिद्ध है। (भैषज्यारत्ना० अम्भपित्त०) रसेन्द्रधारसंघट्टमें इसी औषधको अश्वि-अधिकाशमें पानीयभक्तवटी बत-लाया है।

अन्यविध प्रसृत प्रणाली—निमोय, भोगा, जरीतकी, चामलकी, बहेड़ा, सोंठ, पोपर और मिर्च पाठ तोला, पारद और गन्धक प्रत्येक ४ तोला, लौह, अभ्र, विडङ्ग प्रत्येक १६ तोला, इन सब द्रव्योंको एक साथ मिला दे, पीछे त्रिकणाके क्षायमें मर्दन कर गोली बनावे। इसका अनुपान मद्धा है। बहुत सवेरे उठ कर इस औषधका सेवन करनी होता है। इसके सेवन करनेसे शूलपित्त, शूल, पायस, कुष्ठ, वृद्धि और मलहरको वेदना, खास, कास, कुष्ठ और प्रधयो आदि रोग दूर हो जाते हैं।

(रसेन्द्रधारसं० अम्भपित्त०)

पानीयमूलक (सं० जतो०) पानीयनेत्र मूल यस्त ततः कप। सोमराजो, वकुची।

पानीयवटिका (सं० स्त्री०) औषधविधि। प्रसृत प्रणाली—४ माथा रस ले कर पदने खाल ईंटके चूरे छे छे मले। पीछे उस ईंटके धूरको अपघारित करने कामरखके रसमें, भट्टरकके रसमें, कनकधतूरेके पत्रके रसमें, वोजतालुकमूलके रसमें और छनकुमारोके रसमें यथाक्रम मर्दन करे। पीछे चायसके जलमें गन्धक डाल कर उसे लोड़ते बरतनमें रखे और बाँव पर चढ़ावे। तरब हो जाने पर उसमें चोतिका रस डाल कर उसे ठंडा करे। पीछे ४ माथा गन्धक और पूर्वोक्त गोवित पारा एकत्र कर काजल बनावे। शोधित सुखे ताँब-पत्रमें काजल लेप कर उसे भामके पत्रांते घने डूरे

दोनेमें रखे और नीचेसे बाँव दे। ऐसा करनेसे शूल मरने ताँब महम हो जायगा। लोडचूरे १ माथा, खर्ष-माँचिक १ माथा, उक्त प्रकारको ताँबमहम ४ माथा इन सबको एक साथ मर्दन कर शङ्कराज, सन्दाह, ज्योतिष्मती, साक्षचोता, सिद्धि, काकमचिका, नीलवृक्ष और हस्तिचूर्णसत्ता प्रत्येकके एक एक पल रससे ताँब-दण्ड द्वारा एक एक दिन मर्दन करे।

पूर्वोक्त १२ प्रकारके द्रव्योंके रसमें एक एक दिन मर्दन और शुष्क करके उसमें ४ माथा त्रिकटु, चूण मिला दे। पीछे जलमें मल कर और छायामें सुखा कर चरेसों बराबरको गोली बनावे। साविपातिका ज्वरमें जब रोगी भोजन हो जाय, तब उसे गोली खिचा कर मोटे कपड़े से ऊपरसे ढँक दे। यदि रोगी उसी समय मलमूत्र त्याग करे, जो जानना चाहिये कि रोग बहुत जड़ दूर हो जायगा। पीछे रोगीको दधिपूत भक्ष और पेषिका परिमाणमें जल दे कर अम्भके निमित्त वातनाशक तैल दे। ऐसा करनेसे ज्वरातिशार और साविपातिका ज्वरादि प्रगमित होते हैं।

अन्य प्रकारको प्रसृत प्रणाली—अजयकी, भाकन्द, सन्दाह, चट्टूस, बला, नाटाकरंज, डुङ्गडुङ्ग, चोता, जालो, वनसपत्र, शङ्कराज, दन्तो, निषोय, भमलतावके पत्र, अमरकन्द, त्रिपुरभण्डिका, पिपली, गन्धपिपली, काकमचिका, कनकधतूरा, सिद्धि, खेत मपरजिना, इनमेंसे प्रत्येकका रस यथाक्रम एक एक कप से कर प्रन्तरपात्रमें लोहदण्डसे अच्छी तरह चोटे और तब धूप में सुखने दे। अनन्तर उसके साथ क्रम क्रमसे डुरडुरका दूध, अकषण और बटका दूध मिला कर मर्दन करे और उसे पिण्डाकृतिका बनावे। तदनन्तर पारद ४ माथा और गन्धक ४ माथाका कलत बना कर उस पिण्डके साथ अच्छी तरह मिला दे। बाद वैक्राता, शतोक्ष, कुचन, अभ्र, शङ्कोविश, हरिताल, गरत, खर्ष माचिक और मन्दिशिका प्रत्येक द्रव्य ४ माथा से कर पूर्वोक्त द्रव्यके साथ मिलावे और अम्भतोषिकीके रसमें घाट कर तिल भरकी गोली बनावे। प्रतिदिन २० गोली करके भट्टरकके रस या जलके साथ रोगीको सेवन करावे। साविपातिका विचारने ११ विधये कतव्य है।

इमं शोधनं चैव न करानि मे पुनः पुनः अधिकं परिमाण-
मं जलपानं करानां होता है । जगत्के सपकारके लिये
स्वयं शोधनायने यह पानीयवटिका बनाई है ।

(भैषज्यसूत्रम् अत्रापिच०)

पानीयवटिका (सं० स्त्री०) पानीयं यथंयति प्रका-
शयतीति वषि-खलु, टाप-अतः इत्वं । बालुका, बालू ।
पानीयगालिका (सं० स्त्री०) पानीयस्य जलस्य वितर-
णाय गालिका गालागट्टह । जलावस्थानगट्टह, वह
स्थान जहाँ प्यासीको पानी पिलाया जाता है । जो
पानीयगाला प्रयुक्त करते हैं, उन्हें भवय स्वर्ग प्राप्त
होता है ।

“कूपारामप्रपादति तथा वृक्षशिरोरुचः ।

कूपारप्रदः धेनुका विषमालोखल्लेखनम् ॥”

(ब्रह्मवैवर्त)

हिमाद्रिके दानवखण्डमें भविष्यपुराणोक्त इमं पानीय-
गालिकाको दानविधि इस प्रकार लिखे है,—भोज चाल
में इमे जलच्छत्र कहते हैं । यह जलच्छत्र दान विधिय
पुण्यजनक है । कादगुप्त मास भोज जाने पर पुरके मध्य
पथ या चैत्यवृक्षके तले एक सुन्दर घनच्छत्राय मण्डप
प्रयुक्त करे । इसमें जलयुक्त सविस्त्र भोर नाना प्रकारके
खाद्य द्रव्य रखे । जिन दिन पानीयगालिका स्थापन करे,
उस दिन ब्राह्मणादिको भोजन भी कराया जाता है ।
इस पानीयगालिकाको यदि छे मके तो चार मास, नहीं
तो तीन पक्ष तक भी चलाये । सभी ब्राह्मणोंको भर पीट
पिला कर सुशीतल जल देवे । इस विधिके चतुस्वार
पोषमन्त्रमें जो पानीयगालिका करते हैं, उन्हें शत
कपिला-दानका फल प्राप्त होता है और भक्तों के दिव्य
विमान पर चढ़ कर स्वर्गको जाते हैं तथा तीस कोटो
वर्ष तक यक्षगन्धर्वादिमे सेवित हो कर स्वर्गमें प्रवेशान
करते हैं । (हेमाद्रि दनसं०)

पानीयगोत (सं० लि०) जो बहुत शीतल हो ।

पानीवाधरथ (सं० पु०) जलाधरथ ।

पानीयामनक (सं० स्त्री०) पानीयमामनकं पानीयाख्यं
भामनकं वा । माघोनामनक, पानी पावना । इसका
गुण—दोषत्रय घोर अरुणामक, सुखशुद्धि घोर मन्त्रवद-
कारक, पञ्च तथा व्रात ।

पानीवात (सं० पु०) पानीयसम्भूत वातः । कन्दनिमेष,
पानी भानू नामक कंद । पर्याय—जनातु, क्षुपातु,
वातुक । गुण—त्रिदोषनाशक घोर भस्मवर्णकारक ।
पानीयात्रा (सं० स्त्री०) पानीयं जलं पशनातीति पग-
बाहुलकात् न, ततटाप् । वस्त्रजा, एक प्रकारकी
घाम ।

पानीर (हि० पु०) पानके पखेको पकीहो ।

पान्तिनाम—प्रक्रिकाके नियमके अन्तर्गत पानिक-
सन्ध्या नगरके एक प्रसिद्ध दार्शनिक पण्डित । प्रायः
१८० ई०में पाप मन्त्रवार-उपज्ञानके ईसाइयाने पंथुरोबसे
ईसा-धर्म प्रचारके लिये उन्हाहित हुए । दोहरे पापने
भारतवर्षकी यात्रा की । किन्तु पाप यद्यार्थमें भारतवर्ष
पहुँचे थे वा नहीं, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता ।

पान्य (सं० लि०) पयिकुपयनं, पान्यान् निरयं गच्छतीति
(यथो न निरयं । प ५।१।७१) पयः पान्य च इत्यनेन पान्या-
देशे कृते य । १ पयिक । २ वियोगो, विरही ।

पान्यनिवास (सं० पु०) पान्यानां निवासः । पयिकोंके
ठहरनेका स्थान, सराय, चहो ।

पान्यगाला (सं० स्त्री०) पान्यानां शाला इ-तत् । पयिकों-
के आहागट्टि करनेका स्थान, सराय, चहो ।

पान्यायन (सं० लि०) पयोदूरदेगादि, पयिन् पचादि-
त्वात् फञ्, पन्यादेशः । (प ४।२।८०) मार्गसे पदूर
देगादि ।

पान्यरुना—मध्यप्रदेशके छिन्दवाड़ा जिलान्तर्गत मोसर
तहसीलका एक ग्राम । यह पक्षां० २१° ११' ४०" और
देशां० ७८° ३२' ००" छिन्दवाड़ा ग्रामसे ५४ मील दक्षिण-
पश्चिम आसनटोके किनारे अवस्थित है । जलसंख्या
जो हजारके करीब है । १८६० ई०में यहां स्थानिकपञ्चोटी
स्थापित हुई है । यहां रहनेके दो कारखाने, सरकारी
विद्यालय, थाना, डाकघंशखा और एक सराय है ।

पाचागारि (सं० पु० स्त्री०) पचागारस्य ऋषेत्परां युवा
इज्ज । गोत्रप्रवर्तक पचागार ऋषिका गोत्राण्य ।

पादर (हि० पु०) एक प्रकारका सरपत ।

पाप (सं० स्त्री०) पाति रक्षति परमादात्मनमिति पा-प
पानीविषम्पः पः । वृत् ३।२३ १ अचमं, दुरदृष्ट । पर्याय—
पङ्क, पापन, कित्तिवध, क्लेशव, छलिन, कुलुप, पनस, पच,

अहंसा, दुरित, दुःखता, पातक, मूला, कल, शल्य, पापक ।

निषिद्ध कर्म के अनुष्ठान और विहित कर्म के अनुष्ठानसे पाप होता है । शास्त्रमें जो सब कार्य निषिद्ध वतलाये हैं यदि वे सब कार्य किये जायें और जो कार्य विहित हैं वे यदि न किये जायें, तो पाप होता है । जिस कार्य द्वारा दुःखोत्पत्ति होती है, वही पाप-पदवाच्य है । पापानुष्ठान करनेसे उसका फलभोग अवश्यभावो है ।

महानिर्गुणतन्त्रमें पापोत्पत्तिके सन्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—निषिद्ध कर्म के अनुष्ठान और विहित कर्म के त्यागसे पापोत्पत्ति होती है । जीवगण इस पापके फलमें क्लेश, शोक और पीड़ादि पाते हैं । यह पाप दो प्रकारका है, निजका अनिष्टजनन और परका अनिष्टोत्पादन । जिससे निजका अनिष्ट-साधन यथा दुष्टदृष्ट और रोग आदि हो उसे स्वानिष्टजनन पाप तथा जिससे परका अनिष्ट हो उसे परानिष्टोत्पादन पाप कहते हैं । परके अनिष्ट द्वारा जो पाप होता है, राज्यासन द्वारा उस पापसे मुक्ति होती है । स्वानिष्ट-मात्रजनन पाप प्रायश्चित्त या समाधि द्वारा निराकृत होता है । जो पाप दण्ड और प्रायश्चित्त द्वारा दूर न हो उससे नरक होता है ।

महाभारत-शान्तिपर्वके राजधर्माध्यायमें इस प्रकार लिखा है ।

एक दिन युधिष्ठिरने व्यासदेवसे पूछा या 'भगवन् । इन स'भारमें कौन कौन कार्य करनेसे मानवगण पापी होते हैं और कौन कौन कार्य नहीं करनेसे वे मुक्त हो सकते हैं ?' उत्तरमें वेदव्यासने कहा, जो मनुष्य विधिबिहित कार्य का अनुष्ठान, निषिद्ध कार्य का अनुष्ठान और कपटका व्यवहार करते हैं, वे ही पापी हो कर प्रायश्चित्ता गुष्ठानके अधिकारी हैं । जो मनुष्य कपटका व्यवहार करते हैं, जो ब्रह्मचारी हो कर स्त्रीद्वयके बाद विद्याधन परसे उठते और सूर्यास्तके समय से जाते हैं, जो कुलश और श्रावदत्त हैं, जो बड़े भाईके रहते अपना विवाह कर लेते हैं, जो ब्रह्महत्या और परनिन्दा करते हैं तथा जो श्वशुरकी जोष्टा कन्याके भनूदा रहते हो अनिष्टका पापिग्रहण करते हैं, वे ही पापभागी होते हैं ।

अतर्ध्व, दयातिहरया, अपात्रमें दान, सत्पात्रमें हण-यता, जीवका प्राणसंहार, मांसविक्रय, वेदविक्रय, पति-परित्याग, गुरु और स्त्रीका प्राणसंहार, विना कारणके ही पशुवैदन, गृहदाह, मिथ्यावाक्यप्रयोग, गुरुके प्रति अत्याचार और मर्त्याका सहन, इन सबको पापी में गिनतो को गई है । जो इन सब पापकार्यका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें प्रायश्चित्त करना होता है ।

स्वधर्मपरित्याग, परधर्म-आश्रय, अज्ञानजनन, अभिमानजन्य, शरणागत व्यक्ति का परित्याग, भूल्योके भरणपोषणमें अन्याया, लवणादि विक्रय, तीर्थस्थोनिषध, समता रहते गोघ्राणादि मित्य देव वस्तुका अप्रदान, दक्षिणादानमें पराश्रयता, ब्राह्मणकी अवमानना, अनुप-युक्त समयमें पुत्रोंको विभाल्य धनदान, गुरुपत्नीहरण और यथामयमें धर्मपत्नीका सहवास परिध्याग, ये सब भी पाप समझे जाते हैं । इनके अनुष्ठानसे प्रायश्चित्त करना होता है ।

अब यहां पर कुलम करने पर भी जो पाप नहीं समझा जाता वही लिखा जाता है । वेदपाग ब्राह्मण यदि जिवंसापरवश हो कर परस्त्र पश्यपूर्वक संपा-में कृत पड़े, तो उसका विनाश करने तथा स्वधर्मभ्रष्ट पातता से ब्राह्मणको मारनेमें कोई पाप नहीं होता । अज्ञानतया वा लकट पोड़ाके समय सुविषे चक चिक-करके नियोगानुसार मदिरापान और गुरुके चात्रानुसार गुरुपत्नीगमन करनेसे पापभागी होना नहीं पड़ता । मर्त्यो उहालहने शिष्य द्वारा ही अपने पुत्र श्वेतकेतुकी उत्पादिन किया था । जो व्यक्त गुरुके निमित्त पापन-कालमें ब्राह्मण भिक्षु अन्य जाति का धन हरण करते हैं, उन्हें सौर्वजनित पाप नहीं लगता । भोगाभिलाषसे चोरो करनेमें उसका फलभोग अवश्यभावो है । अपने तथा दूसरेकी प्राणरक्षा, गुरुका कार्यसाधन, विवाहसम्या-दन और स्त्रीके सन्तोषसाधनके निमित्त मिथ्यावाक्य प्रयोग, ज्येष्ठ भ्राताके पतिन होने पर वा प्रपन्न्य अव-लम्बन करने पर उसको अनुदूषावस्थामें कनिष्ठका पाणि-ग्रहण और अभिधांचित हो कर परस्त्रोत्सर्ग, ये सब कार्य करनेसे पाप नहीं होता है । अज्ञानताप्रयुक्त अयोग्य ब्राह्मणकी धनदान और सत्पात्रमें अप्रदान,

व्यभिचारिणी स्त्रोका परित्याग, मोक्षरमका तत्त्व जान कर उसका विक्रय, चमसर्ग श्रृत्यका परित्याग तथा गोरक्षार्थ धनदाह करनेमें कोई पाप नहीं लगता ।

मनुष्य यदि एक बार पाप करके फिरसे पापमें प्रवृत्त न होवे, तो वे तपस्या और दान द्वारा उस पूर्वकृत पाप-से छुटकारा पा सकते हैं । पाप किये जाने पर दृष्टान्त, शास्त्र, युक्ति और प्रज्ञापतिनिर्दिष्ट विधिसे चतुस्रार प्रायश्चित्त करना होता है ।

जो ब्राह्मण षड्विंश, सितभाषी और परिमितभोजी को कर पवित्रस्थानमें गायत्री वा जप करे, उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं । द्विजगण यदि घनाढ्य स्थानमें उपवेशन, रात्रिको वहां निद्राशिवन, दिन भोजनमें तीन तीन बार अन्नपरिधानपूर्वक स्नान तथा स्त्री, शूद्र और पतित स्पर्शिकी साथ वात्सापका परित्याग करे, तो वे अज्ञानजन पापसे मुक्तिप्राप्त कर सकते हैं ।

जो चरितरिक्त पाप वा पुण्यका अनुष्ठान करे, उसे दुःखका चरितरिक्त फलभोग करना ही होता है । पाप-कार्यसे विरत हो कर सुभकार्यका अनुष्ठान और धन-दान करनेसे मनुष्य निष्पाप हो सकते हैं । महापातक भिन्न सभी पापोंका प्रायश्चित्त है । अन्त्याश्रय भूषामस्य और वाय्यावाय्य विषयमें ज्ञानकृत और अज्ञानकृत यही दो प्रकारके पाप हैं । ज्ञानकृत पाप शुद्ध और अज्ञानकृत पाप लघु माना गया है । आस्तिक और श्रद्धास्मिन् मनुष्य विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करनेसे ही पापसे मुक्त हो सकते हैं । प्रायश्चित्तका विषय प्रायश्चित्त मन्त्रदेखो ।

दानधर्म पञ्चोपायमें लिखा है,—पाप दश प्रकारका है—प्राणोहरण, चोरी और परदार ये तीन प्रकारके पाप काविक, अथवा प्रज्ञा, वाह्य, पेश्य और मिथ्या वाक्यकथन ये चार प्रकारके पाप वाचिक तथा परधनमें चिन्ता, सर्वलोभमें दयागम्यता और कर्मका फल ही, इस प्रकार चिन्ता ये तीन प्रकारके पाप मानसिक हैं । (महाभारत)

वराहपुराणके मधुरामाहासमें लिखा है कि अन्य-जन्ममें पाप करनेसे तीर्थस्थानमें वृद्ध प्रशमित होता है और तीर्थस्थानमें जो पाप किया जाता है, यह वयस्त्रेप हो जाता है । किन्तु मधुरापुरोमें पाप करनेसे वृद्ध मधुरामें

ही निराकृत होता है । महापुण्यगदा इस पुरोमें किसी-का भी पाप रहने नहीं पाता ।

“अन्यत्र हि कृते पापं तीर्थमाश्रय गच्छति ।

तीर्थे तु बाह्वतं पापं वज्रतेजो भविष्यति ॥

मनुष्यापं कृतं पापं तत्रैव न विनश्यति ।

एषा पुत्री महापुण्या यस्यां पापं न विद्यते ॥”

(मधुपाम ०)

मनुष्य-हितामें लिखा है, कि पाप अतिपातक, महा-पातक और अनुपातकमन्त्रसे विभिन्न प्रकारका है । इनमेंसे अतिपातक ही विशेष गुरुतर है ।

पापका साधारण लक्षण इस प्रकार निर्देश किया जा सकता है । शास्त्रविहित कर्मके नहीं करने और निन्दित कर्मका सेवन करने तथा हृदियमें परधन आना होनेका नाम ही पाप है । पापका फल अन-भ्युदय है । इसीसे पापका प्रायश्चित्त करना होता है । पापको निष्कृति नहीं होनेसे निन्दनीय लक्षणयुक्त हो कर जन्मग्रहण करना पड़ता है । ब्रह्महंशा, सुरापान, ब्राह्मणका सुवर्णहरण, विमारुदगमन और इन सब पाप-कारो व्यक्तियोंके साथ क्रमिक एक वर्ष तक संसर्गसे जो पाप होता है, उसे महापातक कहते हैं । परधन आश्रय, जतानेके लिये मिथ्याभाषण, राजाके निकट दूतके श्रुत्युपनक दोषोद्घाटन और श्रुत्यन्वयमें अनोक्तकथन ये सब भी ब्रह्महत्याके समान पाप हैं । पगभ्यास हेतु ब्राह्मणका वेदविस्मरण, वेदनिन्दा, साचरक्षकमें मिथ्याकथन, मित्रवध, लहसुन और प्याज आदि शक्ति तथा विद्या-मूलादि पञ्चाय द्रव्यका भोजन ये छः सुरापानके समान पाप हैं । गच्छित वस्तुका अपहरण, अन्न, द्रव्य, भूमि, हीरक और मलिका अप-हरण ये सब सुवर्ण सुराके समान पाप हैं । सहोदर भगिनी, कुमारी, चण्डाली, सखा वा पुत्रवधूमें रतःपेक शुरुषक्रीडनके समान पाप माना गया है । गौहत्या, अयाज्ययाजन, परस्त्रीगमन, चापविक्रय, पिता-माता और गुरुत्याग, स्वाध्याय और स्वात्मोन्नित्याग, सुतत्याग पर्याप्त पुत्रका जातवर्मादि संस्कार नहीं करना, उदेषका विवाह हुए बिना कनिष्ठका विवाह, परजन्मका कन्यावधन, ऋद्धि द्वारा जीविका, ब्रह्मचारीका स्त्री-

....., भार.

..... दराश।

पुनः । १ पापान्नाति
नन्वे माना दुषा एक
वपादान किवस पा
मय वाम तुचिस्थित पाप
करके चन्द्रे गलित सुषा हाहा
होता है । भूतशक्ति प्रकरणमें
मन्दुर वाम कृत्तिमें रहता है । इसका
चोरक्षय है । इमने मन्दा
हाथमें सुषा दोष, हृदय सुरापान
युक्त तथा दोनों पैर उसके संसर्गयुक्त
हैं, रोम प्रत्यक्ष हैं, रोम उपपातक हैं, चक्षु
रहस्य हैं । यह पापपुरुष खत घोर चर्म
का है तथा क्रुद्ध रहता है । इसी प्रकार भयहाराक्षति
पापपुरुष ध्यान करना होता है ।

[illegible]

पापफल (स०) फल ।
पापः फलं फल
हो उच

$\frac{1}{2} \ln \frac{1}{2}$

पापमय (स० त्रि०) पापमे शीतशीत, पापमे भरा हुआ ।
पापमित्र (स० स्त्री०) पापकर्म का सहचर वा मित्र ।
पापमुक्त (स० त्रि०) पापाशुक्तः । निष्पाप, पापसे मुक्त ।
पापकर्त्ता पाप करके यदि उसे सबके सामने प्रकट कर दे
अथवा उसके लिये प्रनुताप, तपस्या, अध्ययन वा दान
करे, तो वह पापमे मुक्त हो सकता है ।

“सपापनेननुतापेन तपस्याध्ययनेन च ।

पापकृरमुच्यते पापात्तथा दानेन चागदि ॥”

(मनु)

पराहसुराणामे पापमोचनका विषय इस प्रकार लिखा
है—जो सर्वभूतार्थमें समदर्शी, जितेन्द्रिय और ज्ञानवान्
है, वे पापमे मुक्त होते हैं । जो पचस्य और चयके
गुणगुण-परिच्छाता हैं, जिसका और सोममे वर्जित है तथा
जो शुद्धशुद्धापापरायण आदि सद्गुणोंसे सम्पन्न है वह
पापमे मुक्त होते हैं, इत्यादि । प्रायश्चित्त देखो ।

पापमोचन—प्रायश्चित्त भक्तगण एक तोयस्थान । नर-
हरि नामक एक ब्राह्मणने ब्रह्मवध चोरो आदि
पनेक पाप किये थे । पीछे इस तीर्थमें स्नान
करनेसे उसके सब पाप दूर हो गये और भक्तमें उसे
स्वर्गको प्राप्ति हुई । तभीसे यह स्थान पापमोचन
नामसे प्रसिद्ध है । माघमासके कृष्णपक्षमें यहां पनेक
यात्री इकट्ठे होते हैं ।

पापमोचनो (स० स्त्री०) चैत्र कृष्णपक्षको एकादशमी ।
पापयज्ञम् (स० पु०) १ वासुमन्त्रतत्स्थित पूज्य गणपदे ।
२ राजयज्ञा, चयरीग, तपेदिक ।

पापयोनि (स० स्त्री०) पापा गच्छां योनिः । १ तिर्यक्
योनि । २ पापहेतुक जन्मभेद ।

मोचनगण पापानुष्ठान द्वारा विविध पापयोनिमें जन्म
लेते हैं । याज्ञवल्क्यस्मृतियोंमें इस पापयोनिमें उत्पत्ति-
का विषय इस प्रकार लिखा है—पातकियण पात-
कानि तेष दुःखावध दारुण नरकयन्त्रणाका भोग
करनेके बाद इस संसारमें पापयोनि प्राप्त करते हैं ।
ब्रह्मघाती व्यक्ति मृग, कुक्षुर, मूकर पशुवा चट्टयोनिमें;
सुरापायी व्यक्ति गटैभ, पुच्छम वा वृषयोनिमें; सुवर्ण चोर
कर्मिकोटा वा पतङ्गयोनिमें और विमादगामो यथाक्रम
मृग, पुच्छम और लता हो कर जन्म ग्रहण करते हैं । जो

परस्त्री वा ब्रह्महत्या अपहरण करते, उन्हें जनगून्ध
अरक्ष्यपदेष्टामे ब्रह्माचमः । जो पर होय रत्न हरण करे
उन्हें हेमकारक नामक पक्षीजानि चोर जो पद्मागत
हरण करते उन्हें जलगून्ध अरक्ष्यपदेष्टामे ब्रह्मगञ्ज होना
पड़ता है । रत्न चुरानिसे हेमकार नामक पक्षीयोनिमें
पद्महरण करनेसे मयूरयोनिमें, उत्तम गन्ध चुरानिसे
कुण्डरयोनिमें, धान्य चुरानिसे मृषिकयोनिमें, रथादि-
धान्य चुरानिसे चट्टयोनिमें, फल चुरानिसे इन्द्रयोनिमें,
जल चुरानिसे माकटविल नामक पक्षीयोनिमें, दुग्ध चुरानि-
से काकयोनिमें, सुपानादि गृध्रोपकरण दूध चुरानिसे
गृध्रयोनिमें, मोहरण करनेसे गेघाघोनिमें, पन्थिहरण
करनेसे वक्रयोनिमें, दण्ड आदि ता रग चुरानिसे कुक्षुर-
योनिमें चोर लवण चुरानिसे विरो नामक श्रोत्रयोनिमें
जन्म होता है । (याज्ञवल्क्य सं० २ अ०)

पापयोनिमें जन्म होनेका कारण दो पाप हैं । जो
जैना कर्म करते हैं, वे वैमो हो योनिमें जन्म लेते हैं ।
उल्लूक कर्म करनेसे उल्लूकयोनि तथा चण्डाल कर्म
करनेसे पापयोनि प्राप्त होती है । यदि देवकर्मसे पापा-
नुष्ठित हो, तो प्रायश्चित्त करना आवश्यक है ।

विष्णुस्मृतियोंमें लिखा है, कि पापिगण नरकमें पाप-
का फल भोग करके पीछे तिर्यक्, पादि पापयोनिमें
जन्म लेते हैं । अतिपातकियण स्यावरयोनिमें, महा-
पातकियण क्षमियोनिमें, अतुपातकियण पक्षियोनिमें, उप-
पातकियण जलजयोनिमें, जातिभ्रंशकर पापिगण जल-
चरयोनिमें, सङ्घरीकरण पापिगण मृगयोनिमें और अपा-
लोकरण पापिगण मनुष्यके मध्य अस्त्वगजानिमें जन्म लेते
हैं । प्रकीर्ण पापसे नाना प्रकार हो हिंस्रकृयादयोनि-
में जन्म होता है । शमोज्य पक्ष पशुवा चमत्तय द्रव्य
खानिसे हस्ति, चोर, श्रेणपयो आदि योनि प्राप्त होती है
निर्वा यदि ये सब पाप करें, तो वे पूर्वोक्त जन्मोंको
भावीं होती हैं । (विष्णु सं० ४६ अ०)

पाप (हि० पु०) पापु देखो ।

पापराजपुरम्—तक्षोर जिनमें कुम्भकोणम् तालुकके
भक्तगण एक प्राचीन ग्राम । यह कुम्भकोणसे ६ मोल
दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है । यहांके प्राचीन गिर-
मन्दिरमें खोदित लिपि उल्लोख्य है ।

पापरोग (सं० पु०) पापाङ्गुवो रोगः। १ मसुरीरोग, वसन्तरोग, छोटी माता। २ पापविशेषकृत रोगभेद, वह रोग जो कोई विशेष पाप करनेसे होता है।

विष्णुसंहितामें लिखा है, कि पापिण्य पाप करने पक्षे नरकभोग करते हैं, वेष्टि तिर्यक, आदि योनिष्विं जन्मग्रहण कर पापरोगग्रस्त हो मानवयोनिमें जन्म लेते हैं। पतिपातकी कुलो, ब्रह्मवातो यच्चारोगो, सुरापायो ग्वावदना, स्वर्णहारी कुनखी, विमादगामी भनाहृतलिङ्ग, पिशुनको नासिका दुर्गन्धयुक्त, सूचक भूतिवक्त्र, धान्यचोर चङ्गहीन, वस्त्रापहारक खिन्नरोगी, अस्त्रापहारक पङ्क, देवता और ब्राह्मणकीयक मूक, विपदाता लोलजिह्व, अग्निदाना उन्मत्त, गुरुके प्रति-कुलाचारी अपहमारोगो, गोघातो घ्न्य, दीपनिर्वाणकारी काण, चार्दुविका (कुशीदजीवी) भ्रामररोगी, एकाकी मिष्टभोजी वातगुदमरोगी और ब्रह्मचारी हो कर सन्तो-सन्धोग करनेसे श्लोपदरोगी होता है। इस प्रकार पापकर्म विशेषसे रोगान्वित, अन्ध, कुल, खल, एक-लोचन, वामन, चक्षुर, मूक, दुर्बल वा लोधादि हो कर जन्म ग्रहण करते हैं। (विष्णुसं० ४६ अ०)

पापसे ही रोग होता है। अतः सर्वदा प्रत्येक व्यक्तिका पापकी प्रति विदित्य होना आवश्यक है। कर्मविपाक शब्दमें पापेद्भूत रोगका विशेष विवरण देखो।

पापरोगिन् (सं० त्रि०) पापरोगीऽस्यास्तीति इति। पाप-रोगग्रस्त, जिसे कोई पापरोग हुआ हो।

पापर्वि (सं० स्त्री०) पापानां ऋद्विद्विद्यैत्र। ऋगशा-खाष्टि, शिकार। ऋगयासे पापकी ऋद्वि (बढ़ती) होना माना गया है, इससे उसकी पापर्वि, वृद्धा हुई।

पापल (सं० स्त्री०) १ परिमाणविशेष। (त्रि०) पाप-लातीति ला-क। पापयाहक।

पापलेन (फा० पु०) सुतो-लपङ्गा, एक प्रकारका डोरिया।

पापलोक (सं० पु०) नरक, पापियोंके रहनेका स्थान।

पापलोक्य (सं० त्रि०) नरकसम्बन्धी।

पापवसोयस् (सं० त्रि०) विपर्यस्त।

पापवस्त्रस्य (सं० स्त्री०) विषयः।

पापवाद (सं० पु०) प्रथमसूचक शब्द, अमङ्गल ध्वनि, कौवे आदिकी ऐसी बोली जो प्रथमसूचक मानो जाय।

पापविनाशन (सं० स्त्री०) पापस्य विनाशनं यत्। १ तीर्थभेद। (त्रि०) २ जहाँ पाप विनष्ट हो।

पापविनिश्चय (सं० त्रि०) पापः पापे वा विनिश्चयः यश्च। पापकार्यमें कृतमङ्गल्य, जिसको ने पाप करना ठान लिया है।

पापग्रमनौ (सं० स्त्री०) पापं ग्रम्यतेऽनयेति ग्रम-विच्, करणे क्रियां ङीप्, १ शमोष्ठक। (त्रि०) २ पापनाशिनौ, पापनिवारिणी।

पापशौल (सं० त्रि०) पापः शौलं स्वभावो यस्य। दुष्ट-स्वभाव, निन्दितात्मा।

पापशोधन (सं० पु०) १ पापदूरीकरण, पापनाश। २ तीर्थस्थान।

पापसंश्रमन (सं० स्त्री०) पापस्य संश्रमनम्। पापदूरी-करण, वह जिससे पाप दूर हो।

पापसङ्कल्प (सं० त्रि०) पापः पापे वा सङ्कल्पः यश्च। पापविषयमें कृतनिश्चय, जिसने पाप करनेका यत्न करा-कर लिया हो।

पापसम (सं० अश्व०) पापेन तुल्यं तिष्ठन्वादिवाद्-व्ययी-भावः। पापतुल्य, पापसदृश।

पापसंश्रित (सं० त्रि०) तुल्यपापी, समदोषमें दोषी।

पापसूदन (सं० त्रि०) पापं नूदयति पाप-सूद-सु। पापनाशक।

पापसूदनतीर्थ (सं० स्त्री०) राजतरङ्गिणी-वर्णित पाप-नाशक तीर्थभेद।

पापहन् (सं० त्रि०) पापं हन्ति हन-णिप्। पापनाशक।

पापहर (सं० त्रि०) हरतोति हरः पापस्य हरः। १ पापनाशक, पापहारक। स्त्रियां टाप्, २ नदीविशेष।

पापहा (ङि० ङि०) पापहन् देखो।

पापाख्या (सं० स्त्री०) पापं आख्याति आ-ख्या-क, स्त्रियां टाप्। बुधकी गतिभेद। जब बुध हस्ता, श्रुवराधा वा ज्येष्ठा-नक्षत्रमें रहता है, उस समय बुधकी गतिको पापाख्या गति कहते हैं।

पापाङ्गु (सं० स्त्री०) आश्विनमासकी शुक्ला एकादमी।

पापा (सं० स्त्री०) पापास्था देखो ।

पापा (हि० पु०) १ एक छोटा कोड़ा । यह चार बाजरे चादितो फननमें प्रायः उस वर्ष लग जाता है जिस वर्ष बरसात अधिक होती है । २ बर्षोंका एक जामा-दिक मोल या शब्द जिससे वे बान्सी भूषोचित करते हैं, बावा, बावू । इस समय प्रायः यूरोपियों को के बंधे इस शब्द का प्रयोग करते हैं । ३ माखनकात्में विग्रह पादरियों पोर बर्षोंमानमें केवल यूनानो पादरियोंके एक विशेष वर्ग को सम्मानसूचक उपाधि ।

पापाचार (सं० त्रि०) १ पापकार्यकाचो, दुराचारो, पापो । (पु०) २ पापका आवरण, पापकार्य ।

पापात्मन् (सं० त्रि०) पापः पापविशिष्टः आत्मा यस्य, पापे भ्रमे आत्मा यस्येति वा । पापो, पापिष्ठ ।

पापपुराणके क्रियायोगसारमें लिखा है, कि पापियोंके पद योजन विच्छेद सब प्रकारके दुःखमय स्थान हैं, कहीं वे पवस्थान करते हैं । इनमेंसे कहीं पविन जलतो है, कहीं सन्तप्त कर्म है, कहीं तान्त्राशुका है, कहीं शस्त्रवृष्टि पोर कहीं पापापवर्षण तथा जलदग्निको वृष्टि हो रही है । इन्हीं सब कष्टकर स्थानोंमें पापी वास करते हैं ।

पापान्त (सं० स्त्री०) पापं भग्नयतीति भक्त 'कर्मस्थ' इति भक्त । तोयविशेष । इसका नामान्तर पृथुदक पोर भग्नशीर्ष है । इस तोयमें स्नान करनेसे सभी पाप दूर हो जाते हैं तथा मन हो मन जो चिन्ता को जाती है, वह फनोभूत होती है ।

“सहितोयं तु यः स्नाति भक्ष्यानी जितेन्द्रियः ।

य प्राप्नोति तरो निर्वं मनसा विमलितं कलम् ॥

तस्य तीर्थं वृद्धिवातं पापान्तं नाम नागतः ।

यस्यैव यद्वत्तुल्यं सपु शुद्धाव नै नवी ॥”

(बामनपु० ३८)

पापापुरो (सं० स्त्री०) अपावपुरो, भौ नोका एक पुच्छवैव । पापा देखो ।

पापागय (सं० पु०) पाप पागयः यस्य । पापाका, अपा-मिक, दुष्ट, पापिष्ठ ।

पापाह (सं० पु०) पापमशब्दत्वात् गच्छः यद्वाः टप्पसमा-नातः । १ भगोव दिव, भूतकृत्काक । २ निम्दिन दिन, पयम दिन ।

पापघ्नी (सं० पु०) सर्प, सर्प ।

पाविन् (सं० पु०) पापमस्यस्येति पाव-रनि । पावयुक्त, पाविद पाविनी—मन्त्राज प्रदेशके कोथम्बपुर जिलेके धारापुरम् तालुकके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम । यह काङ्गप्रमसे ३ कोस उत्तरपूर्वमें अवस्थित है । यहां तीन पति प्राचीन शिव पोर विष्णु मन्दिर हैं जिनमें अनेक गिना-निर्गिया देखी जाती हैं । ग्रामके मध्य एक पुरातन समाधि-स्तम्भ है ।

पापिष्ठ (सं० त्रि०) पतिग्रयेन पापो पाप इष्टम् । पति-ग्रय पापयुक्त, बहुत बड़ा पापो, बहुत बड़ा गुनहगार । पापी (हि० वि०) १ पापयुक्त, पाप करनेवाला । २ क्रूर, निर्दय । (पु०) ३ वह जो पाप करता हो, अप-राधी, दुराचारी ।

पापोयस् (सं० त्रि०) पयमेयामतिग्रयेन पापो पाप-ईयवन् । १ पतिग्रय पापो । क्षिर्वा-डीय । २ पापोयसो । पापोय (का० पु०) उपागह, जूना ।

पाप्मन् (हि० पु०) पा-मपिन् (नापन् सीमिति । वन, २१५०) पुनागमे निपातनात् साधुः । पाप ।

पाप्मा (हि० पु०) १ पाप । (वि०) २ पापी ।

पावद (का० वि०) १ वह, चलाधोन, कौद । २ जो किमो वस्तु का अनुसरण करनेके लिये बाध्य हो । ३ आचरणमें किमो विषय बातको नियमपूर्वक रक्षा करनेवाला ।

(पु०) ४ सेवक, नोकर, दास । ५ घोड़ेकी पिछाड़ी ।

पावदो (का० स्त्री०) १ यवता, पधोमता । २ नियमित-रूपमें किसी बातका अनुसरण । ३ किसी वस्तुके अनु-सरणकी आवश्यकता । ४ मजदूरो, लाचारो ।

पावदा—मत्स्यविशेष । अंगरेजी मत्स्यतत्त्वविदोंने इस मत्स्य-ज्ञान का Callichrous नाम रखा है । यह मात प्रकार है, गाङ्गापावदा, सिन्धुपावदा, खोनपावदा, दागोपावदा, मन्दाजो पावदा, मलवारोपावदा पोर देगोपावदा ।

गाङ्गापावदा—गाङ्गानदीमें पाया जाता है । इसके ऊपरको दन्तपाटि अवच्छिन्न है ।

सिन्धुपावदा—सिन्धु देशकी सिन्धु नदीमें पाया जाता है । चांदीकी तरह यह मकेद दोष पहता है । इसके पर पोर गरीरमें गहरे कालि रंगका दाग रहता है ।

खोनपावदा—यह उके मुट लम्बा होता है । इसकी नाकके दोनों बगल दो पंखों दात है ; किन्तु वे अदि-

पापरोग (सं० पु०) पापाङ्गो रोगः । १ महारोग, वसन्तरोग, छोटी माता । २ पापविशेषकृत रोगभेद, वह रोग जो कोई विशेष पाप करनेसे होता है ।

विष्णुसंहितामें लिखा है, कि पापिण्य पाप करने पहले नरकभोग करते हैं, वोही तिर्यक, आदि योनिषोंमें जन्मग्रहण कर पापरोगग्रस्त हो मानवयोनिमें जन्म लेते हैं । अतिपातको कुठो, ब्रह्मघातो यक्षारोगो, सुरापायो श्यावदन्त, स्वर्णहारी कुनखो, विमाट्ठगामी अनाहतसिद्ध, पिशुनको नासिका दुर्गन्धयुक्त, सूचक पूतिवक्त्र, धाम्यवोर चङ्गहोन, वस्त्रापहारक शिवरोगो, भस्त्रापहारक पङ्क, देवता और ब्राह्मणस्त्रीशक मूक, विपदाता लोलजिह्व, अग्निदाता उन्मत्त, शुक्ले प्रति-कुलाचारी अपस्माररोगो, गोघातो गन्ध, दीपनिर्वाणकारी काण, बार्धुपिका (कुगोदजीवो) आमररोगो, एकाकी मिष्टभोजी वातगुल्मरोगी और ब्रह्मचारी हो कर स्त्री-सन्धोग करनेसे श्लेष्मदरोगो होता है । इस प्रकार पापकर्म विशेषसे रोगान्वित, अन्ध, कुल, खल्ल, एक-लोचन, वामन, वधिर, मूक, दुर्बल वा स्त्रीवादि हो कर जन्म ग्रहण करते हैं । (विष्णुसं० ४६ अ०)

पापसे ही रोग होता है । अतः सर्वदा प्रत्येक व्यक्ति का पापके प्रति विवक्ष्य होना आवश्यक है ।

कर्मविपाक शब्दमें पापेद्भार रोगका विशेष विवरण देखो ।

पापरोगिन् (सं० त्रि०) पापरोगोऽस्यास्तीति इति । पाप-रोगग्रस्त, जिसे कोई पापरोग हुआ हो ।

पापहिं (सं० स्त्री०) पापानां ऋद्धिर्हि द्रियं त । अग्रश, आछेष्ट, शिकार । अग्रयासे पापकी ऋद्धि (वृद्धि) होना माना गया है, इसीसे उसकी पापहिं संज्ञा हुई ।

पापल (सं० स्त्री०) १ परिमाणविशेष । (त्रि०) पाप-लातीति ला-क । पापग्राहक ।

पापलेन (फा० पु०) सुतो-कपड़ा, एक प्रकारका डोरिया ।

पापलोक (सं० पु०) नरक, पापियोंके रहनेका स्थान ।

पापलोच्य (सं० त्रि०) नरकसम्बन्धी ।

पापवसीयस, (सं० त्रि०) विषयं यः ।

पापवस्यस (सं० स्त्री०) विषय यः ।

पापवाद (सं० पु०) पापमसूचक शब्द, अमङ्गल अति, कौंसे पादिको ऐसी बोलो जो पापमसूचक मानो जाय ।

पापविनाशन (सं० स्त्री०) पापस्य विनाशनं यत् । १ तीर्थभेद । (त्रि०) २ जहां पाप विनष्ट हो ।

पापविनिश्चय (सं० त्रि०) पापः पापे वा विनिश्चयः यत् । पापकार्यमें कृतमहत्त्व, जिन्होंने पाप करना ठान लिया है ।

पापग्रमनी (सं० स्त्री०) पापं ग्रम्यतेऽनयेति ग्रम-विध, करणे क्रियां लोप । १ ग्रमोत्थ । (त्रि०) २ पापनामिणी, पापनिवारिणी ।

पापशील (सं० त्रि०) पापः शीलं स्वभावो यस्य । दुष्ट-स्वभाव, निन्दितात्मा ।

पापशोधन (सं० पु०) १ पापदूरीकरण, पापनाश । २ तीर्थस्नान ।

पापसंशमन (सं० स्त्री०) पापस्य संशमनम् । पापदूरीकरण, वह जिससे पाप दूर हो ।

पापसहस्य (सं० त्रि०) पापः पापे वा सहस्यः यत् । पापविषयमें कृतनिश्चय, जिसने पाप करनेका पक्का इरादा कर लिया हो ।

पापसम (सं० अर्थ०) पापेन तुल्यं तिष्ठत्वादिवा-व्ययो-भावः । पापतुल्य, पापसदृश ।

पापसन्नित (सं० त्रि०) तुल्यपापौ, समदोषमें दोषो । पापसूदन (सं० त्रि०) पापं सूदयति पाप-सूदयु । पापनाशक ।

पापसूदनतीर्थ (सं० स्त्री०) राजतरङ्गिणी-वर्णित पाप-नाशक तीर्थभेद ।

पापहन् (सं० त्रि०) पापं हन्ति हन-क्षिप् । पापनाशक ।

पापहर (सं० त्रि०) हरतोति हरः पापस्य हरः । १

पापनाशक, पापहारक । स्त्रियां टाप् । २ नदीविशेष ।

पापहा (हि० वि०) पापहन् देखो ।

पापाख्या (सं० स्त्री०) पापं आख्याति आ-ख्या-क, स्त्रियां

टाप् । बुधको गतिभेद । जब बुध हस्ता, अमरावा वा

उपेक्षा नक्षत्रमें रहता है, उस समय बुधकी गतिको

पापाख्या गति कहते हैं ।

पापाङ्ग्या (सं० स्त्री०) आश्विनमासकी शुक्ला एकादमी ।

पापा (स० स्त्रो०) पापवशा देखो ।

पापा (हि० पु०) १ एक कोटा कोड़ा । यह ज्वार बाजरे आदिको फलनमें प्रायः उस वर्ष लग जाता है जिसे वर्ष बरसात अधिक होती है । २ यहाँका एक आभा-
विक बोलया शब्द जिससे वे बाजरी सम्बोधित करते हैं, बावा, बावू । इस समय प्रायः यूरोपियनों को के बड़े इस शब्द का प्रयोग करते हैं । ३ प्राचीनकालमें विगप पादरियों को बत्तमानमें केवल युवानों पादरियों के एक विशेष वर्ग को सम्मानसूचक उपाधि ।

पापावार (स० स्त्रि०) १ पापकायकारो, दुराचारो, पापो । (पु०) २ पापका पाचरण, पापकाय ।

पापात्मन् (स० स्त्रि०) पापः पापविशिष्टः आत्मा यस्य, पापे अधर्म आत्मा यस्येति वा । पापो, पापिष्ठा ।

प्रायश्चित्तपुराणके क्रियायोगप्रारम्भे लिखा है, कि पापियोंके ८५ योजना विरुद्ध सब प्रकारके दुःखमय क्षान हैं, जहाँ वे अवस्थान करते हैं । इनमेंसे कहीं धमि जनतो है, कहीं सन्तत कदम है, कहीं तान्त्रिकाला है, कहीं शस्त्रदृष्टि और कहीं पापव्यवर्णन तथा जलदमिकी छटि हो रही है । इनमें सब कष्टकर स्थानोंमें पापो वास करते हैं ।

पापान्त (स० स्त्रो०) पापं वन्त्यतीति वन्त्य 'कर्मस्य' इति ऋण । तोयविशेष । इसका नामान्तर पुष्टदक और अनुकीर्ण है । इस तोयमें स्नान करनेसे सभी पाप दूर हो जाते हैं तथा मन हो मन जो चिन्ता को जाता है, वह फलभूत होती है ।

"तद्विस्तृतिं पुनः स्नाति भवन्तो जितेन्द्रियः ।

स प्राप्नोति नरो निरर्थं मनसा विवर्तितं कर्म ॥

तादृ सीधं सुविद्वत् पापान्तं नाम नामतः ।

वस्येह यद्वृत्तस्य सपु सुप्राय वै नरी ॥"

(बामनपु० ३८)

पापापुरी (स० स्त्रो०) पापापुरी, जै नौका एक पुरवैव । पावा देखो ।

पापाशय (स० पु०) पाप आशयः यस्य । पापात्मा, पापा-
मिश्र, दुष्ट, पापिष्ठ ।

पापाह (स० पु०) पापमहत्वात् गच्छः बहः षष्ठ्यमा-
सातः । १ अशुच दिन, शूतकाल । २ निन्दित दिन,
पशुम दिन ।

पापघ्नी (स० पु०) सर्प, साँप ।

पापिन् (सं० पु०) पापमस्त्येति पाप-इति । पापयुक्त, पापित
पापिनी—मन्त्राज प्रदेशके कीयम्बपुर जिलेके धारापुरम्
तालुकके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम । यह काङ्गवमसे
३ कोस उत्तरपूर्वमें अवस्थित है । यहाँ लोग पति
प्राचीन शिव धोर विष्णु, मन्दिर हैं जिनमें धनक गिता-
निधियाँ देखी जाती हैं । ग्रामके मध्य एक पुरातन समाधि-
स्तम्भ है ।

पापिष्ठ (स० स्त्रि०) पतिग्रयेन पापो पाप इच्छन् । पति-
ग्रय पापयुक्त, बहुत बड़ा पापो, बहुत बड़ा गुनहवार ।
पापो (हि० वि०) १ पापयुक्त, पाप करनेवाला । २
झूठ, निर्दय । (पु०) ३ वह जो पाप करता हो, अप-
राधी, दुराचारी ।

पापोयमन् (स० स्त्रि०) पशुमेपापमितिग्रयेन पापो पाप-
इच्छन् । १ पतिग्रय पापो । क्षिया-क्षीय । २ पापोयसो ।

पापोम (फा० पु०) चवानह, जूता ।

पापमन् (हि० पु०) पा-अभिन् (नामन् कीमिति । ऋण-
५१५०) पुगागमे निपातनात् साधुः । पाप ।

पाप्मा (हि० पु०) १ पाप । (वि०) २ पापी ।

पावद (फा० वि०) १ बह, अश्वधोम, कौद । २ जो किसी
वस्तुका अनुसरण करनेके लिये बाध्य हो । ३ पाचरणमें
किसी विशेष बातको नियमपूर्वक रचा करनेवाला ।
(पु०) ४ खेवक, नोकर, दास । ५ घोड़ेको पिशाड़ो ।
पावदो (फा० स्त्रो०) १ बहता, चबोतता । २ नियमित-
रूपमें किसी बातका अनुसरण । ३ किसी वस्तुके अनु-
सरणकी आवश्यकता । ४ मनुवरो, साचारी ।

पावदा—मत्स्यविशेष । अंगरेजी मत्स्यतत्त्वविदोंने इस मत्स्य-
जानि का Callichrous नाम रखा है । यह मात प्रकार
है, गार्हपावदा, सिन्धुपावदा, बोलपावदा, दागोपावदा,
मन्त्राजो पावदा, मन्त्रारोपावदा और देगोपावदा ।

गार्हपावदा—गार्हानदीमें पाया जाता है । इसके
ऊपरको दन्तपाटि अविच्छिन्न है ।

सिन्धुपावदा—सिन्धु नदीमें पाया
जाता है । चाँदीकी तरह यह भस्म दोष पहता है ।
इसके पर धोर शरीरमें मछरी काली रंगका दाग रहता है ।

बोलपावदा—यह डेढ़ फुट लम्बा होता है । इसकी
नाकके दोनों धगध दो पांती दाँत हैं ; किन्तु वे पचि-

पापरोग (स० पु०) पापाङ्गुलो रोगः । १ मसुरीरोग, सन्तरीरोग, छोटी माता । २ पापविशेषकृत रोगभेद, वह रोग जो कोई विशेष पाप करनेसे होता है ।

विष्णुसंहितामें लिखा है, कि पापिण्य पाप करने पड़ने नरकभोग करते हैं, पीछे तिर्यक, आदि योनिषोंमें जन्मग्रहण कर पापरोगग्रस्त हो मानवयोनिमें जन्म लेते हैं । अतिपातकी कुदो, ब्रह्मघातो यक्षारोगी, सुरापायी श्यावदन्त, स्वर्णहारो कुनखी, विमाट्टगामी अनाहतलिङ्ग, पिशुनको नासिका दुर्गन्धयुक्त, सूचक मूतिवक्त्र, धान्यचोर चण्डहीन, वस्त्रापहारक स्त्रिवरोगी, अखापहारक पल्लु, देवता और ब्राह्मणकोशक मूक, विपदाता लोकाजिह्व, अग्निदाता उन्मत्त, गुरुके प्रति कृताचारी अपहमारोगी, गोघाती चन्ध, दीपनिर्वाणकारी काण, चारुपिका (कुयीदजोवी) भ्रामररोगी, एकाकी मिष्टभोजी वातगुल्मरोगी और ब्रह्मचारी हो कर स्त्री-संभोग करनेसे श्लेष्मदरोगी होता है । इस प्रकार पापकर्म विशेषसे रोगान्वित, अन्ध, कुल, खज्ज, एक-लोचन, वामन, वधिर, मूक, दुर्बल वा लोधादि हो कर जन्म ग्रहण करते हैं । (विष्णुसं० ४६ अ०)

पापसे ही रोग होता है । अतः सर्वदा प्रत्येक व्यक्तिका पापको प्रति विद्युष्य होना आवश्यक है ।

कर्मविपाक शब्दमें पापोग्रह रोगका विशेष विवरण देखो ।

पापरोगिन् (स० त्रि०) पापरोगीऽस्यास्तीति इति । पाप-रोगग्रस्त, जिसे कोई पापरोग हुआ हो ।

पापद्वि (स० स्त्री०) पापानां ऋद्धिद्वयित्व । अग्राश, आखिट, शिक्कार । अग्राशसे पापकी ऋद्धि (वृद्धि) होना माना गया है, इससे इसको पापद्वि, नञा हुई ।

पापल (स० स्त्री०) १ परिमाणविशेष । (त्रि०) पाप-लातीति ला-क । पापघाटक ।

पापलेन (फा० पु०) सुतो-कपड़ा, एक प्रकारका डोरिया ।

पापलोक (स० पु०) नरक, पापियोंके रहनेका स्थान ।

पापलोक्य (स० त्रि०) नरकसम्बन्धी ।

पापवर्षीयस् (स० त्रि०) विपर्यस्ता ।

पापवस्त्रस (स० स्त्री०) विषयय ।

पापवाद (स० पु०) अशुभसूचक शब्द, अशुभलक्षण, कोई आदिकी ऐसी बोलो को अशुभसूचक मानो जाय ।

पापविनाशन (स० स्त्री०) पापस्य विनाशनं यत् । १ तीर्थभेद । (त्रि०) २ जहाँ पाप विनष्ट हो ।

पापविनिश्चय (स० त्रि०) पापः पापे वा विनिश्चयः यत् । पापकार्यमें कृतपद्वत्य, जिसकी नि पाप करना ठान लिया है ।

पापग्रमनी (स० स्त्री०) पापं ग्रम्यतेऽनयेति ग्रम-विच्, कारणे स्त्रियां डोप, १ गमोष्ठक । (त्रि०) २ पापनाशनी, पापनिवारिणी ।

पापशील (स० त्रि०) पापः शीलं स्वभावो यस्य । दुष्ट-स्वभाव, निन्दितारम्भा ।

पापशोधन (स० पु०) १ पापदूरीकरण, पापनाश । २ तीर्थस्थान ।

पापसंगमन (स० स्त्री०) पापस्य संगमनम् । पापदूरी-करण, वह जिससे पाप दूर हो ।

पापसहस्र (स० त्रि०) पापः पापे वा सहस्रः यस्य । पापविषयमें कृतानिश्चय, जिसने पाप करनेका पक्का इरादा कर लिया हो ।

पापसम (स० अर्थ०) पापिनं तुल्यं तिष्ठन्, आदित्वाद-व्ययो-भावः । पापतुल्य, पापसदृश ।

पापसंश्रित (स० त्रि०) तुल्यपापी, समदोषमें दोषी ।

पापसूदन (स० त्रि०) पापं मूदयति पाप-सूद द्यु । पापनाशक ।

पापसूदनतीर्थ (स० स्त्री०) राजतरङ्गिणी-वर्धितं पाप-नाशक तीर्थभेद ।

पापहन् (स० त्रि०) पापं हन्ति हन्-विप् । पापनाशक । पापहर (स० त्रि०) हरतोति हरः पापस्य हरः । १ पापनाशक, पापहारक । स्त्रियां टाप्, २ नदीविशेष ।

पापहा (हि० वि०) पापहन् देखो ।

पापाख्या (स० स्त्री०) पापं आख्याति आ-ख्या-क, स्त्रियां टाप् । बुधकी गतिभेद । जब बुध हस्ता, अशुक्रा वा ज्येष्ठा नक्षत्रमें रहता है, उस समय बुधकी गतिकी पापाख्या गति कहते हैं ।

पापाङ्गुया (स० स्त्री०) आग्निनाशकी शक्ता एकादमी ।

पावना, बेलझूटी और उरवाड़ा वाणिज्यविषयमें श्रेष्ठ है। इन सब स्थानोंमें पाटकी घामटनो ज्यादा है। पाट छोड़ कर तमाकू, मरसों, तिल, तोसो, चावल, हलदी, चटरक और घमड़की भी घामटनी होती है।

तख्तुन ही इस जिलेके अधिवासियोंका प्रधान व्यापार है। चावलके मध्य ग्रामन और घाठन प्रधान हैं। मटर, उड़द, हलदी आदिकी फसल भी यहाँ अच्छी लगती है।

पावनाका कपड़ा बहुत मशहूर है। पावना शहर और उससे सात सोना पूर्ववर्ती दोगाछी ग्राममें पड़ने बहुतसे ताँतो रहते थे। वे एक समय बहुत बढ़िया कपड़ा बुनते थे; एक जोड़ा साड़ी या धोती (१८) से २०) ४० तकमें बिकती थी। किन्तु सभी मैन्चेस्टरके कारण इसकी खपत नहीं होती। फलतः उक्त ताँतोगण निरुत्साह हो कर उल्टूट वलन नहीं बुनते। बहुतोंने तो वस्त्र बुनना ही छोड़ दिया है।

इस जिलेमें २ शहर और १०२० ग्राम लगते हैं; जनसंख्या करीब १४२०४१ है। इनमेंसे मुसलमानोंको संख्या अधिक होने पर भी वे सभी विषयोंमें हिन्दुओंसे निष्ठा हैं।

यहाँके अधिवासियोंका क़भाव शान्त है। १८०१ ई०में यहाँ एक बार प्रजा-विद्रोह हुआ था।

इस जिलेमें बरगाहत या बरगादा श्रेष्ठीकी क़वियीबी है; ये जीतदारीकी जमीन पावाद करते हैं। जीतदार-गण बांधा बोज देते और मानपुजारी नहीं लेते हैं; फसल तो पार ही जाने पर दो समान भागोंमें बाँटी जाती है।

क़वियीबी भिन्न इस जिलेके अमजीवियोंकी अवस्था भी उतनी बुरी नहीं है। मजदूर साधारणतः दारिद्र्य भाँनें साढ़े चार पाने तक दैनिक उपार्जन करते हैं।

क़वि और अमजीवियोंकी अवस्था मन्द नहीं है। कारण और ज़िन्की जैसा यहाँ दुर्भिक्षका प्रकोप नहीं देखा जाता। इस जिलेमें देवल दो बार दुर्भिक्ष पड़ा है, एक बार १८०४ ई०में और दूसरी बार १८८० ई०में।

इस जिलेमें पावना, घाटमोहर, दुनाई, मधुरा, मिराजगञ्ज, गाहजादपुर, रायगञ्ज और उरवाड़ा नामके टाँने लगते हैं। यहाँ जिलेमें ३८ परगने और २ म्युनिसिपलिटियाँ हैं।

पावना जिलेका जनवायु स्वास्थ्यकर है। मिराजगञ्ज मछलियोंको कई जगह मनेरियाप्रधान होने पर भी पावना सदरके अनेक व्यापार, विशेषतः पश्चिम प्रान्तस्थित ग्राम विशेष स्वास्थ्यकर हैं।

जिलेमें मूकान आदिका उपद्रव भी कम होता है। १८०२ ई०के सितम्बरमासमें एक बार भारी मूकान आया था जिसमें अनेकीं हल और चर तहस नहस हो गये थे, बहुत-से पशु मारे गये, जलमग्न हो गई थीं और बड़ी बड़ी डोमर भी टूट फूट गई थीं।

इस जिलेमें जाने पानेकी बड़ी असुविधा है। पहले ही कहा जा चुका है, कि इस जिलेके पश्चिम प्रान्तस्थित सारा घाट भिन्न और कहीं भी लोहबन्ध नहीं है। पावना शहर जानेमें उत्तरवर्ती रेलवेकी कुटिया स्टेशनसे डोमर पर जाना होता है। किन्तु फल-वर्ती स्थानोंमें स्मरण करना बड़ा भी असुविधाजनक है। यहाँ एक भी घटिया सड़क नहीं है। जाने पानेके लिये छोटी छोटी नदो नहर आदि तो हैं; पर उस हो कर जानेमें बड़ी दिक्कत उठानो पड़ती है और साथ साथ अधिक समय भी बरबाद होता है। पावना शहरसे पूर्ववर्ती दोगाछी ग्राम तक जो रास्ता गया है वह सुन्दर है। राजगाछो रोड नामक पावना शहरसे जिलेके पश्चिम प्रान्त तक १० मोल क्षत्र्यो जो सड़क चली गई है, उसकी अवस्था अति शोचनीय है।

पावना और मिराजगञ्जके मध्यवर्ती रास्ता असम्पूर्ण है और उतना सुगम भी नहीं है। पावना शहरसे ताँतोमन्द ग्रन्थ 'ताँतोमन्दरोड' नामक पथ उतना खराब नहीं है। कुटियासे जो डोमर पावना जाती है वह वर्षाकाल भिन्न अन्य समयमें वाजितपुर नामक पटानदोके एकघाट स्टेशन पर रहती है। वाजितपुरमें पावना शहर तक जो रास्ता गया है, वह एक तरफसे अच्छा है। कारण, साढ़े चार धर्मधारियोंकी अनेक समय इसी पथमें जलना पाना होता है।

पावना जिलेसे पटमन, चावल, चने, उड़द, तोसो, कसौय और तेनहनकी रफ्तकी होती है।

२ पावना जिलेका एक उपविभाग। यह पचास २१४८ से २४२१ व० और दैर्घ्य ८८१ से ८८४५

क्लिन्न नहीं है। इस का भी वर्ष चाँदी-सा संकेत है। इस प्रकारका मत्स्य समस्त भारतवर्ष, सिंहाल और आसाम से ले कर मलयद्वीपपुञ्ज तक पाया जाता है।

देशोपावदा—गङ्गा और यमुना नदीमें तथा ब्रह्मदेशमें पाया जाता है। इसका वर्ष रौप्य सट्टम शुभ्र है, किन्तु स्कन्धदेशमें एक दाग रहता है।

मन्द्राजीपावदा—मन्द्राज, आसाम और ब्रह्मदेशमें पाया जाता है। यह भी चाँदी-सा संकेत मालूम पड़ता है, किन्तु नेस्टण्डके मध्यभागके ऊपर स्कन्धदेशके चारों ओर कृष्णवर्ण दाग है। नासिकारन्ध्रके दोनों ओर दाँतकी पाँती है, किन्तु वह मध्यभागमें अविविच्छिन्न नहीं है।

मलवारोपावदा—मलवार उपकूलमें पाया जाता है। इसका रंग लाल धूसरवर्ण लिए पोला होता है। नासिकारन्ध्रके ऊपरी भागमें दाँत होते हैं, किन्तु वे अविविच्छिन्न नहीं हैं। इस प्रकारका मत्स्य २० इंच तक लम्बा हो सकता है।

देशोपावदा—यह पञ्जाबकी सिन्धुनदीमें, हरिद्वारमें, गङ्गा जहाँ हिमालयपर्वतसे निकली है उस स्थान पर, उड़ीसा, दार्जिलिङ्ग और आसामकी ब्रह्मपुत्र नदीमें पाया जाता है। यह भिन्न भिन्न रंगका होता है। जम्बत-पुरमें की देशोपावदा पाया जाता है, उसको पीठ पर काला दाग है। दन्त नासिकारन्ध्रके दोनों ओर दो भागोंमें त्र्योषोवह, किन्तु विच्छिन्न हैं।

पावना—१ राजशाही और कूचबिहार विभागके दक्षिण-पूर्व स्थित एक जिला। इसके उत्तरमें राजशाही, बगुड़ा और मैमनसिंह जिला; पूर्वमें यमुनानदी; दक्षिणमें पद्मावती तथा पश्चिममें राजशाही और नदिया जिला है। यह पद्मानदी द्वारा राजशाही और नदिया जिलेसे तथा यमुना नदी द्वारा मैमनसिंह और ठाका जिलेसे भलग होता है। जिलेका सदर पावना शहर होमें है। यह इच्छामती नदीके किनारे भन्ना ० २३' ४५" से २४' ४५" उ० और देशां ८८° १' से ८८° ५३' पू०में अवस्थित है। भूपरिणाम १८३८ वर्ग मील है। यह जिलेका राजनैतिक प्रधाननगर होमें पर भी वाणिज्य त्रिपथमें सिराजगञ्ज ही प्रधान नगर है।

गङ्गा और ब्रह्मपुत्रके सङ्गमस्थल पर पावना

जिला बसा हुआ है। यद्यो दो नदियाँ इस जिलेको प्रधान हैं। गङ्गा यहाँ पद्मा नामसे और ब्रह्मपुत्र यमुना नामसे प्रसिद्ध है। पद्माकी प्रधान शाखा इच्छामती शहरके बीच ही कर बहती हुई ब्रह्मपुत्र का शाखा हरामागरमें मिल गई है। इनके पलाया यहाँ बहुत सी छोटी छोटी नदियाँ और खाइयाँ हैं। यहाँ भूनेत्र बांध और सखिम घाट हैं। वर्षाकालमें नावसे सिवा और कोई दूसरी सवारी जाने जानिकी नहीं मिलती।

पावना पहले राजशाही जिलेके अन्तर्भूत था। यह रानीमवाकोकी जमींदारीका एक भूगम मात्र है। फागुनमासे जब उस सुनिश्चित जमींदारीका बहुत कुछ भूगम नोलास हो गया, तब पावना राजशाहीसे स्वतन्त्र हुआ। १८३२ ई०में यह नूतन जिलेमें परिणत हो कर जोयापट मजिस्ट्रेट और डिप्टी कलक्टरकी अधीन हुआ। १८५८ ई०में पूर्णकामता प्राप्त एक मजिस्ट्रेट कलक्टरके हाथ इस जिलेका भार सौंपा गया। वर्त्तमान समयमें यहाँ एक सेशन जज, एक मजिस्ट्रेट कलक्टर, दो डिप्टी मजिस्ट्रेट, एक सब-जज, सुन्सफ, एक जिलेकी पुलिसका प्रधान साइब कमिचारी और एक सिलिलसाज्मन रहते हैं। यहाँ के सेशन जज, दो बगुड़ाके दरबारका कार्य करते हैं। यहाँ एक मध्यवर्ती कारागार है। १८४५ ई०में सिराजगञ्ज महकूमा स्थापित हुआ। उसी समयसे सिराजगञ्ज की कमयः ओहडि हुई और वर्त्तमान समयमें यह जिलेका सर्वप्रधान स्थान हो उठा है।

इस जिलेकी पूर्व सीमाका भूनेत्र परिवर्तन हुआ है। १८२४ ई०में कुष्ठिया महकूमा पावनासे हथक करके नदिया जिलेके अन्तर्भूत किया गया। १९०१ ई०में पांथा थाना फरीदपुरके गोपालन्द महकूमे और कुमारखालो थाना कुष्ठिया महकूमेके अधीन हो जानेसे भी पद्मानदी जिलेकी दक्षिणी सीमामें पड़ती है।

इस जिलेके प्रधान नगर नदीके किनारे अवस्थित हैं। इनमेंसे यमुनातीरवर्ती सिराजगञ्ज पटसन व्यवसायमें विशेष प्रधान है। यहाँ प्रतिवर्ष दो लाख मन पटसनकी आमदनी होती है। सिराजगञ्जके बाद ही शाहजादपुर,

पावना, बेलहटी और उबपाड़ा वाणिज्यविषयमें अच्छे हैं । इन सब स्थानोंमें पाटकी घामदनी ज्यादा है । पाट कोड़ कर तमाकू, धरसी, तिल, तौसी, चावल, हलदी, चटरक और चमड़की भी घामदनी होती है ।

तदनुस हो इस जिलेके अधिवासियोंका प्रधान प्याय है । चावलके साथ घामन और चाउस प्रधान हैं । मटर, उड़द, हलदी आदिको फसल भी यहाँ अच्छी लगती है ।

पावनाका कपड़ा बहुत समझर है । पावना शहर और उससे सात मील पूर्ववर्ती दोगाकी घाममें पहले बहुतसे तौली रहते थे । वे एक समय बहुत बढिया कपड़ा बुनते थे; एक कोड़ा माटो या धोती (१८) से २०) ६० तकमें बिकती थी । किन्तु यहाँ मैग्नेटिक कारण इसको खपत नहीं होती । फलतः उक्त तौलियोंके निरन्तर हो कर एकदृष्ट बखर नहीं बुनते । बहुतोंने तो बखर बुनना ही छोड़ दिया है ।

इस जिलेमें २ शहर और १०२० घाम लगते हैं । जनसंख्या करीब १४२०४६१ है । इनमेंसे मुख्यमानोंको संख्या अधिक होने पर भी वे सभी विषयोंमें हिन्दुओंसे मिलते हैं ।

यहाँके अधिकांशियोंका स्त्रमाव शान्त है । १८०३ ई०में यहाँ एक बार मज्रा-विद्रोह हुआ था ।

इस जिलेमें बरगाहत वा बरगादा अथवा कृषिजीवो है; वे जोतदारोंकी जमीन खावाइ करते हैं । जोतदार-गण बांधा बोज देते और मानपुजारी नहीं लेते हैं; फसल तैयार हो जाने पर दो समान भागोंमें बांटो जातो है ।

कृषिजीवो भिन्न इस जिलेके असजीवियोंको भवस्था भी खतनी बुरी नहीं है । मजदूर साधारणतः दारू खानेसे साढ़े चार घाने तक दैनिक उपार्जन करते हैं ।

कृषि और असजीवियोंकी भवस्था मन्द नहीं है; कारण और जिलेके जोसा यहाँ दुर्भिक्षका प्रकोप नहीं देखा जाता । इन जिलेमें केवल दो बार दुर्भिक्ष पड़ा है, एक बार १८०४ ई०में और दूसरी बार १८८० ई०में ।

इस जिलेमें पावना, घाटमोहर, दुनाई, मधुप, सिराजगञ्ज, ग्राहजालपुर, रायगञ्ज और उबपाड़ा नामके घाने लगते हैं । सारे जिलेमें ३८ परगने और २ म्यूनिस्पलिटीयाँ हैं ।

पावना जिलेका जनबाधु स्वास्थ्यकर है । सिराजगञ्ज महकूमोंको कई जगह मन्त्रिरियाप्रधान होने पर भी पावना शहरके भूतके स्थान, विविधतः पश्चिम प्रान्तास्थित घाम विशेष स्वास्थ्यकर हैं ।

जिलेमें तूफान आदिका उपद्रव भी कम होता है । १८०२ ई०के सितम्बरमासमें एक बार भारी तूफान आया था जिससे घनेकी हल और चर तहस नहस हो गये थे, बहुतसं स्थल नावे जलमग्न हो गई थीं और बड़े बड़े छोरम भी टूट फूट गई थीं ।

इस जिलेमें जाने घानेको बड़ो अनुविधा है । पहले ही कहा जा चुका है, कि इस जिलेके पश्चिम प्रान्तस्थित वारा घाट भिन्न और कहीं भी लोहबर्त नहीं है । पावना शहर जानेमें उत्तरवर्त रेलवेकी कृष्टिया स्टेशनसे छोरम पर जाना होता है । किन्तु पन्त-यतीं स्थानोंमें भ्रमण करना बड़ा ही अनुविधाजनक है । यहाँ एक भी बढिया सड़क नहीं है । जाने घानेके लिये छोटी छोटी नदी नहर आदि तो हैं, पर उस को कर जानेमें बड़ी दिक्कत छटानो पड़तो है और साथ साथ अधिक समय भी बरबाद होता है । पावना शहरसे पूर्ववर्ती दोगाकी घाम तक जो रास्ता गया है वह सुन्दर है । राजगाहो रोड नामक पावना शहरसे जिलेके पश्चिम प्रान्त तक ६० मील लम्बी जो सड़क बनो गई है, उसकी प्रथमा पति शीघ्रनीय है ।

पावना और सिराजगञ्जके मध्यवर्ती रास्ता प्रथम्यून है और उतना सुगम भी नहीं है । पावना शहरसे तातोवन्द पर्यन्त 'तातोवन्दरोड' नामक पथ उतना खराब नहीं है । कृष्टियामे जो छोरम पावना जातो है वह वर्षाकाल भिन्न अन्य समयमें वाजितपुर नामक पठानदोके एकघाट स्टेशन पर रहती है । वाजितपुरमें पावना शहर तक जो रास्ता गया है, वह एक तरहसे अच्छा है । कारण, सोहब खम घारियोंकी पनेक समय इन्हीं पथमें जाना घाना होता है ।

पावना जिलेमें पटसन, चावल, चने, उड़द, तौली, कनाय और तेलहनकी रफतमी होती है ।

२ पावना जिलेका एक उपविभाग । यह पंचा० २६'४८" से २६'२१" ०" और देशा० ८८'१" से ८८'४४"

पूर्व के मध्य प्रस्थित है। म्यूरिमाण ४४२ वर्ग मील और जनसंख्या प्रायः ५८६७९८ है। इसमें पावना नामक एक शहर और १६५८ ग्राम लगते हैं।

१ पावना उपविभागका एक शहर। यह भन्सा ० २४' १' उ० और देशा ० ८८' १६' पू०, इच्छामती नदी के किनारे प्रस्थित है। जनसंख्या घनत्व का कारण है। यहां १८०६ ई० में म्यूरिमाण लिटो स्थापित हुई है। पहले यह शहर डूब जाया करता था, घनत्व बांध हो जाने से लोगों का कष्ट दूर हो गया। यहां सरकारी भवन और कारागार है। १८८८ ई० में एक कालेज भी खुला है। शहर का जनवायु स्वास्थ्यकर है।

पावोर (हि० पु०) कटारों प्रथवा डोलो डोलनालों की घोल-चाल में वह स्थान जहाँ कुछ प्रथिक पानो हो।

पाम (हि० स्त्री०) १ वह डोरो जो मोटे किनारे की धाड़ के किनारों पर मजबूती के लिये बुनते समय डाल दो जाती है। २ लड़, रस्से, डोरो। (पु०) ३ दानेदार चकत्ते या पुंसियां जो चमड़े पर दो जाती हैं। ४ खाज, खुजली।

पामन (सं० पु०) पाम। इन्ग्लिश इन्-टक्। गन्धक।

पामनी (सं० स्त्री०) पामन-टिखा डोव। कुटकी।

पामड़ा (हि० पु०) पाम'डा देशी।

पामन् (सं० स्त्री०) पाम'ननिन्। १ विचर्चिका, खाज, खुजली। २ पाम देशी।

पामन (सं० स्त्री०) पामाच्यस्य इति (लोमादि पामादि पिच्छादिभ्यः कानेत्वः। पा ५।२।१०० इत्यस्य वासिकोक्त्या 'पामादिभ्यो नः) न। पामरोगविशिष्ट, जिसे या ज़िम में पामरोग हुआ हो। इसका पर्याय कच्छर है।

पामपुर—काश्मीर का एक नगर। यह झेतमनदी के बाएँ किनारे बसा हुआ है और यहां मुसलमानों की दो मस्जिदें हैं। यहां जाफरान भी उपजता है। राजतरङ्गिणी में यह स्थान 'पमपुर' नाम से लिखा हुआ है।

पामर (सं० स्त्री०) पाम-पापादिदोराक्षमस्थिते पामन्- (गर्वादिभ्यो रः। पा ४।२।८०) इत्यस्य चाचिकीकृता

र, ततो न लोपे साधुः। १ खल, दुष्ट कर्मोन्, पाजी। २ नीच, नीच कुल या वर्ग में उत्पन्न। ३ प्रथम, पावित्र, दुर्बल। ४ मूर्ख, निर्बुद्धि, चमू।

पामरयोग (सं० पु०) एक प्रकार का निरुद्ध योग।

इसके द्वारा भारतवर्ष के नट, बाजीगर आदि पद्धत पद्धत लोग के खेल किया करते हैं। उसके साधन से अनेक रोगों का नाश और पद्धत शक्तियों की प्राप्ति होना माना जाता है। कुछ लोग इसे मिस्मिरिजम के समतुल्य मानते हैं।

पामरी (हि० स्त्री०) १ उग्रता, दुष्टता। २ पाव'की देशी पामरीदोग (सं० स्त्री०) पामर' उग्ररति उत्प-ध-पू,

ततो पामादित्वात् टाप्। गुडूची, गुडूच।

पामवत् (सं० स्त्री०) पाम विद्यतेऽस्य पाम-मत्तुप, मस्य च। पामरोगी।

पामा (सं० स्त्री०) पामन (पाम। पा ४।२।११) इति न लोपे, नलोपे साधुः। कच्छ, एक प्रकार का सुहृद्-भेद। भावप्रसाध में इसका मत्तुप इस प्रकार लिखा है—जिन कुठ में फोड़ें में प्रत्यक्ष खाज और जड़न हो

तथा जिससे हमेशा पोप और रक्षादि निकलता रहे उसे पामा कहते हैं। इसको चिकित्सा—गोरा ८ तोला और सिन्दूर ४ तोला इन्हें बांधवेर तेज में पाक करके प्रयोग करने से पामरोग प्रशमित होता है। मस्जिदा, त्रिफला, लाक्षा, विषलाङ्गला, हरिद्रा और गन्धक इनका चण करके रोड़की सत्ताप में तैलाक करे। पीछे इसका प्रयोग करने से पामरोग प्रतिघोष विनष्ट हो जाता है।

इस तैलाका नाम आदित्यपाक तैल है। नैस्यव, चक्रमर्द, सर्वप और पिप्पली इन्हें काँजो से पोष कर चतुर्दशान में लगाने से पामा और कच्छ रोग प्रशमित होता है।

सर्वप तैल ४ सेर, कल्पाय मिर्च, निबोय, मोथा, हरिताल, मनःशिला, देवदारु, हरिद्रा और दावहरिद्रा, लटामांसे, कुठ, चन्दन, गोपालक कटो, कारवीर, चक-

वनका दूध और गोमय रस प्रत्येक द्रव्य टाई तोला, विष एक छटाक, जल १६ सेर, गोमूत्र ८ सेर। यथाविधान इस तैलाका पाक कर गरीर में लगाना होता है। इससे कुछ, शिथिल, चतुर्दश विषयता, कच्छ और पामा आदि रोग प्रतिघोष प्रशमित होते हैं।

सर्वप तैल १६ सेर, कल्पाय मिर्च, निबोय, दस्तो, पञ्चवक्का दूध, गोमय रस, देवदारु, हरिद्रा, लटामांसे, कुठ, चन्दन, गोपालक कटो, कारवीर, हरिताल, मनः-

शिला, चीता, विषलाङ्गला, मोथा, विडङ्ग, चक्रमर्द,

गिरीप, कूटज, मिश्र, गुनख, धूर, श्यामावता, उहर-
करञ्ज, खदिर, सोमराजो, घघ और ज्योतिषतो प्रत्येक
पाघ पाव और विप एक पाव, गोमूत्र एक मग चौबोस
सेर। इस तैलको यथाविधान मृदु चमिके उत्तापने
पाक करके शरीरमें लगानेसे कुष्ठ, व्रण, पामा, विष-
चिका आदि रोग प्रशमित होते हैं और इससे बन्धो,
पक्षित और सुखशय्य नष्ट होता तथा सुकुमारता बढ़ती
है। प्रथम वयस्का स्त्री यदि इस तैलको नम से, तो
दृढावस्थामें समके स्नान नहीं नवते। (भाववकाश)

भावप्रकाशके संधारणपत्रमें और भी बनेक औषधका
विषय लिखा है, विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं
लिखा गया। सभी वैद्यक ग्रन्थोंके कुठाधिकारमें इसके
लक्षण और चिकित्सादि लिखी है।

गदहपुराणमें लिखा है—

‘हरिद्रा हरितालकं च दूर्वागोमूत्रसैन्धवम् ।

अथ लेवो हृदि दद्दुं पामानं वै गदं तथा ॥

माहिषं गधगीतकं च सिन्दूरकं मीनकम् ।

पामा शिकेपिता मन्थेत् बहुलाऽपि वृषजम् ॥”

(गदहपु० ११४ अ०)

हरिद्रा, हरिताल, दूर्वा, गोमूत्र और सैन्धव एकत्र
करके प्रसेप देनेसे यह प्रशमित होता है। माहिष जव-
नोन, सिन्दूर और सरोवक इन्हें एकत्र करके प्रसेप
देनेसे पामारोग नष्ट होता है।

पामादि (घं० पु०) पाणिग्रह्य गणभेद। पामन, पामन,
धेमन, श्लेष्मन्, कद्र, वलि, भासन, उषन् और क्रमि
ये सब पामादिगण हैं।

पामारि (घं० पु०) पामायाः परिः। गन्धक। गन्धक
विष देनेसे पामा जाती रहती है, इससे इसको पामारि
कहते हैं।

पामास (हिं० वि०) १ पादाक्रान्त, घटदलित, परचे
मत्ता हुआ। २ मत्तानास, चोपट, घरघाट।

पामानो (फा० स्त्री०) नाश, बरबादी, तबाही।

पामिदो—सम्राज प्रदेशके जमखपुर जिलासर्गात गूती
तालुकका एक नगर। यह पचा० १४° ५०' उ० और
देशा० ७०° १६' पू०, गूनी शहरसे १४ मील दक्षिण पेश्वर
नदीसे किनारे अवस्थित है। जनसंख्या १०,६५० है।

यह स्थान अत्यन्त अस्वास्थ्यकर है। यहां बनेक
तांतो वास करते हैं।

पामोर—पश्चिमाके मध्यवर्ती एक उच्च भूभाग। पुराणमें
यह उपमर नामसे वर्णित है। पामोर शब्दसे पमो जन-
मानवको वासहीन उच्चभूमि समझी जाती है। लेफ्टे-
नैण्ट कडने १८वीं शताब्दीके पारम्भमें पामोर उपविभाग-
में गिरि चरित्रवैश कर आश्रम नदीका उत्पत्तिस्थल
आविष्कार किया। पामोरके पश्चिमभागमें प्रसिद्ध तार-
कन्द और कागगर तककी भूमि क्षमगः इस प्रकार उन्नत
होनी गई है, कि जपर चढ़ते समय यह नहीं माकूम
पड़ता कि किस जगहको जमोन जं चो और किम जगह
को नीचो है। यह स्थान समुद्रपृष्ठसे १५०० फुट ऊँचा
है। जपर पड़ने पर विस्तृत प्रान्तर नयनगोचर होता
है। इस प्रान्तरके एक और जलस्रोत नदी बहती है और
दूबरी और कागगरका गिरीभाग वा चित्रल उपत्यका
विद्यमान है। पामोरप्रदेशका परिमाण ७०० या ८००
मोल होता। यह प्रदेश वर्षातसे परिपूर्ण है। कोषामान
ग्रहको ऊँचाई २२५५० फुट, गुरुल पर्वतको ऊँचाई
२०८०० फुट और सुखाग पर्वतको ऊँचाई २५४००
फुट है। इन सब पर्वतोंका जपरीभाग तुपारवे इमेगा
डका रहता है। पामोरको उपनगराभूमि अधिकांश
पशुपरा है। इस उपत्यकासे प्राक्खस और जलस्रोत
यारकन्द और कागगर प्रदेशको समी नदियां तथा
विन्धुनदीके मिलित प्रदेशको शाखा निकली है।
पामोरकी उपत्यका १२००० फुट तक ऊँची टेला
जाती है। यह प्रदेश ऊँचसे परिपूर्ण है और इन सब
ऊँचोंसे चार बड़ी बड़ी नदियां उत्पन्न हुई हैं। पचा०
३०° १४' उत्तर और देशा० ७४° १८' पू० तथा समुद्रपृष्ठ-
से १३५०० फुटकी ऊँचाई पर पामोरकुल नामक एक
कोटा ऊँच है। इस ऊँचके पश्चिमभागसे प्राक्खस नदीकी
दो शाखाएँ निकली हैं। दीपकालमें वहाँ ठकैतोंका
मारो उत्पन्न होता जाता है।

पामोरके पूर्वभागमें दोनर नामका जो पर्वत है,
वह उत्तरमें विद्यनगर और दक्षिणमें कपूणनगर तक
विस्तृत है। ७वीं शताब्दीमें यूपनसुवंगने दोनर
ज्योको पोलीवे और पामोरका पोमिको नामसे उल्लेख
किया है।

पामौर घाटी का आदि निवास-स्थान था, ऐसा बहुतरे अनुमान करते हैं। आर्य देखो।

पामोज (हिं० पु०) १ एक प्रकारका कबूतर। इसकी पेरकी उंगलियाँ तक परोंसे ढकी रहती हैं। २ वह घोड़ा जो सवारोंके समय सवारोंकी पिंडलीकी अपने मुँहसे पकड़ता है।

पाम्बम्—मन्द्राज प्रदेशके पन्तर्गत मदुरा जिलेका एक नगर। यह भूभा० ८° १०' उ० और देशा० ७८° १५' पू०, रामेश्वर द्वीपके पश्चिम प्रान्तमें अवस्थित है। भारत और रामेश्वर द्वीपके मध्यवर्ती पाम्बमपणालीके नामसे इस नगरका नामकरण हुआ है। यहाँके अधिवासी 'लम्बय' कहलाते हैं। वर्षभरमें छः मास सिंहाल द्वीपका राजकाय इसी स्थानमें सम्पन्न होता है। उस समय यहाँ धार्मिक तीर्थयात्री समागम होते हैं जिससे शहरको जनसंख्या दूनो बढ़ जाती है। एक समय यह स्थान मुक्ता आहरणके लिये विख्यात था। पूर्व-कालमें रामनदके राजागण विपदकालमें यहाँ आश्रय ग्रहण करते थे। रामेश्वरमें उनका राजप्रामाद था। इस शहरमें जो आलोकगट्ट है उसको जं चाई ८७ फुट है।

पाम्बम्-भारत और सिंहाल द्वीपके मध्यवर्ती कृत्रिम खाल। यह खाल मदुरा जिले और रामेश्वर द्वीपके बीचमें अवस्थित है। भूविद्याविशारदोंने इस स्थानको परीक्षा करके कहा है, कि पहले रामेश्वर द्वीप मदुरा जिलेके साथ संलग्न था।

रामेश्वर द्वीपमें जो सब खोदित लिपि हैं उनमें लिखा है, कि १४८० ई०में यहाँ भारो तुफान आया था जिससे यह योजना टूट फूट गया है। इस भूतत्त्वस्थानका संस्कार करनेके लिये कई बार चेष्टा की गई, पर बार बार तुफानके आनेसे सब चेष्टा निष्फल गई। पहले इस स्थान ही कर जहाजादि आ जा नहीं सकती थी, किन्तु जबसे यह स्थान प्रशस्त बना दिया गया है, तबसे छोटे छोटे जहाज बखूबीसे आते जाते हैं। अभी इस खानकी लम्बाई ४२३२ फुट और चौड़ाई ८० फुट है। इसके दक्षिण एक खाल और भी है जिसकी लम्बाई २१०० फुट और चौड़ाई १५० फुट है। इस खानका नाम कल-कड़ो पय है।

पायत (हिं० स्त्री०) पायती देखो।

पायता (हिं० पु०) १ पलंग या चारपाईका वह भाग जिधर पैर रहता है, मिरहानिका उलटा। २ वह दिशा जिधर से निवालेकी पेर छी।

पायंतो (हिं० स्त्री०) पैताना, पायंता।

पायंदाज (फा० पु०) पेर पोंछनेका विधान, फर्ग के किनारेका वह मोटा कपड़ा जिसपर पर पोंछ कर तब फर्ग पर जाते हैं।

पायंपसारी (हिं० स्त्री०) निमंलोजा पीधा और फल।

पाय (सं० स्त्री०) १ जन। २ परिमाण। ३ पान।

पायक (सं० त्रि०) पानकार, पोनेवाला।

पायक (हिं० पु०) १ धावन, दून, हरकारा। २ दाग, सेवक। ३ पेदल सिपाही।

पायखाना (हिं० पु०) पाखाना देखो।

पायगुड़—लघुगुह्यन्दुमें खरकी प्रयेता।

पायजामा (हिं० पु०) पाजामा देखो।

पायजेश (हिं० स्त्री०) पाजेश देखो।

पायठ (हिं० स्त्री०) पाइठ देखो।

पायड़ा (हिं० पु०) पैड़ा देखो।

पायतावा (फा० पु०) खोखोको तरहका पैरका एक पहनावा जिससे उंगलियोंसे लेकर पूरी या आधी टांगी ढकी रहती है, मोजा, लुरीव।

पायदार (फा० वि०) बहुत दिनों तक टिकनेवाला, दृढ़, मजबूत।

पायशरी (फा० स्त्री०) दृढ़ता, मजबूती।

पायन (सं० स्त्री०) पान।

पायनघाट—इसके पन्तर्गत, एक उपत्यका। इसी उपत्यकासे पूर्णानंदो निकतो है। यह भूभा० २०° २०' से २८° १०' उ० तथा देशा० ७१° १०' से ७८° पू० के मध्य अजंटागिरि और गावगढ़ गिरिके मध्य अवस्थित है। अमरावती तक इस उपत्यकाका दृष्टभाग क्रमोन्वतान्वत है। अमरावतीके बाद सुदूर गिरिमाता की कर उत्तर-पश्चिमकी ओर यह फैली हुई है। पर्वतका सान्निध्य छोड़ कर पायनघाटका पन्थान्य स्थान मत्तत चर्चरा है। यहाँ, जिसनी नदियाँ हैं, पूर्णा छोड़ कर सभी प्रोसकालमें सूख जाती हैं। शरत्कालमें यह

उपलब्धका विविध गस्तोंसे हरीभरी दीव पड़ती है, किन्तु योग्यकालमें वे नौ गोभा नहीं रहते ।

पायना (सं० स्त्री०) पा०णिच्-भावे युच् स्त्रियां टाप् ।

‘सप्तादिभिं धार करना, शान देना । शान देहो ।

पायना—युक्तप्रदेशके पल्लवत गोरखपुर जिलेको देवरिया तहसीलका एक नगर । यह गोरखपुरसे ४ मील दक्षिण-पूर्व गोपना नदीके बाएँ किनारे अवस्थित है । इस स्थानके पनेक अधिवासी भोजनजनकार्य करते हैं । यहाँके अधिवासियोंमें राजपूत और भदौर प्रधान हैं । सिपाहो-विद्रोहके समय पयनाके जमींदारोंने चंगरेजमहर्षिपट्टका एक रसदपूर्ण वाण्योय मकट लूट लिया था । इस कारण ब्रिटिश सरकारने यह नगर उनसे छीन कर मजहोलके राजाको दे दिया ।

पायपोय (हिं० पु०) पायोय देखो ।

पायमाल (फ्रा० वि०) १ पेरोंसे रोँदा हुआ । २

बिनट, बरबाद ।

पायमाली (फ्रा० स्त्री०) १ दुर्गति, अधोगति । २ लाश, बरबादी, खराबी ।

पायरा (हिं० पु०) १ घोड़ेको जीन या चारजामेके दोनों ओर लटकता हुआ पड़ा या तसमेंमें लगा हुआ लोहेका आधार जिस पर सवारके पैर टिके रहते हैं, रकाश । २ एक प्रकारका कबूतर ।

पायल (हिं० स्त्री०) १ नूपुर, पाजिब । २ बांसकी सोड़ी । ३ तेज चलनेवाली जयनी । ४ वह मधा कर्मके समय जिसके पैर पहले बाहर हैं ।

पायस (सं० पु० स्त्री०) पयसा विकारः घण्ट । १ परमाय, खोर । हिन्दीमें यह शब्द स्त्रीलिङ्गमें माना गया है । दूधसे तैयार होनेके कारण इसका नाम पायस पड़ा है ।

“वायसं परमपन्नं स्वाद्य धीरिकापि तदुच्यते ॥”

(भाष्य० पूर्णख०)

इसकी पाकप्रणाली—विशेष घृतके भाय तण्डुल मिला कर उसे चंदेपत्र दुग्धमें सिद्ध करे । जब अच्छी तरह सिद्ध हो जाय, तब सोनी और सोडाकत कर उसे छतार से । यही विशद पायस है । इसका गुण—दुग्धाण, गरीरका उपलब्धकारक, बलवर्धक, विटम्बो

और रक्तपित्त, पानि तथा वायुनाशक । (भाष्य०)

पाकराजीश्वरमें लिखा है—

‘मत्तसत्तण्डुलो घृतः परितुष्टो घृतेन च ।

कण्ड्ययुक्तो दुग्धेन पायितः पायसो भवेत् ॥

पायसः कफहृदययो विष्टम्नी मधुरो गुहः ॥”

(वाकाजेश्वर)

पतत तण्डुलको अच्छी तरह धो कर घीमें भुग ले । पछे उसे दुग्धमें पाक करनेसे हो पायस तैयार हो जायगा । यह कफकारक, बलकर, विटम्बो, मधुर और गुह माना गया है । क्लृप्तपुराणके पल्लवत काद्योखण्डमें लिखा है, कि जो पिररके लहनेसे भक्तिपूर्वक पायसका तिल और मधुसंयुक्त करके गह्वाजलमें निक्षेप करते हैं उसको पितर को वर्ष तक परित्यक्त रहते हैं और इस प्रकार परित्यक्त हो कर विविध भोग प्रदान करते हैं ।

“पितृनुदित्व यो मक्ष्या पायसं मधुसंयुतम् ।

गुहसंपित्तैः सार्द्धं गन्धमसि पितृसिधेः ॥

तृप्ता भवन्ति पितरस्तस्य वर्षद्वयं हरे ।

वन्द्यन्ति विनिवात् कामात् परितुष्टाः पितामहाः ॥”

(काशीहा० २० अ०)

(त्रि०) २ पयोविकार ।

“कन्दुपक्षवति तैलेन त्वयं स्थापकः ।

द्विजैरेतां भोगवति शूद्रोहृत्तान्पयि ॥”

(तिमिरवर्धन वराहपु०)

कन्दुपक्ष, पायस, दधि और शालू ये सब द्रव्य शूद्रके गृहमें प्रस्तुत होने पर सो दियगण उन्हें खा सकते हैं । इस वचनके अनुसार जिसको कियोका कहना है, कि शूद्रप्रस्तुत पायस यदि ज्ञातपण भोजन करें, तो कोई दोष नहीं । लेकिन पायस शब्दका अर्थ है पयोविकार अर्थात् दुग्धका द्रव्य औरदि । पायसका ऐसा अर्थ करनेसे कोई मोक्षमान नहीं रहता । शूद्रगृहमें और पादि भोजनका निषेध नहीं है ।

मनुमें लिखा है, कि दियगण ऐसे सन्तानके लिये प्रार्थना करते हैं जो मया त्रयोदशोमें पायस द्वारा त्याग कर सके ।

“अग्निः सङ्कटे जायतो नो दद्यात् त्रयोदशी ।

पायसं मधु घृतिभ्यां प्राङ्काये कुट्टमस्तथ ॥”

पायस द्वारा आह करनेसे पित्तगण एक वर्ष तक परित्यक्त होते हैं।

“सर्वद्वारान्तु गन्धेन पयसा पायसेन च।”

(मनु ११२०१)

(पु०) ३ सलईका गौद जो विरोजकी तरहका होता है।

पायसिक (सं० त्रि०) पायसो भक्षिरस्य (अथवा दध्वा पा ४१२।१०४) इत्यस्य वासिंकोत्पत्तिः । पायसं भक्षियुक्तं ।

पाया (हि० पु०) १ पलंग, कुर्सी, चौकी, तख्त आदिमें खड़े उठे या खंभेके आकारका वह भाग जिसके सहारे उसीका दाँचा या तख्त ऊपर उठारा रहता है, गोड़ा, पावा । २ सीढ़ी, जोमा । ३ स्तम्भ, खंभा । ४ पद, दरजा, ओहदा, रतबा ।

पायिक (सं० पु०) १ पदातिक, पदेल-सिपाही । २ दूत, चर ।

पायित (सं० त्रि०) पा-णिच्-लृट् । शान दिया हुआ ।

पायिन् (सं० त्रि०) पानकारो, पौनश्वाला ।

पायिनी—मनवार उपक्रममें पालनकीटानगरके निकटवर्ती एक पुण्यक्षेत्र । पुष्करखण्डमें इसका सादाकार वर्णित है ।

पायु (सं० पु०) पानि रक्षेति, यरोर मलनिर्माणेनेति, (कृपाभाति । उण् १।१) इत्युण्, ततः । आवो युक् निच्-हो । पा आ३।१३ इति युक् । १ मनहार, गुना । पर्याय—प्रपान, गुद, व्युत्ति, पशोधम, स्फुटार, त्रिवलोक, वलि । गर्भस्थित बालकके यह सख्य मासमें होता है । पायु एक कर्मन्दिश्य है । सांख्यके मतानुसार यह द्वारसे हम इन्द्रियकी उत्पत्ति होती है ।

“प्रकृतेर्महान् महतीऽहं करस्तेस्मादिकद्वेन्द्रियाणि ।”

(तत्त्वको०)

रजोगुणामर्मे पायुको उत्पत्तिः होता है ।

“जोऽहं पञ्चभित्तवो कनार कर्मेन्द्रियाणि तु ।

वाक्प्राणपादगुणस्थानि चानाणि जह्मिरे ॥” (पञ्चद०)

२ स्त्रनामख्यात भगवान्पुत्र । (त्रि०) ३ पालक ।

पायुचालनभूमि (सं० स्त्री०) पायुचालनस्थ भूमिः । वह स्थान जहाँ सख्यमृत त्याग किया जाता है, पाखाना ।

पायुचालनवेष्टमन् (सं० स्त्री०) पायुचालनस्थ वेष्टमन् । मलमूत्र त्यागगृह, पाखाना ।

पायुभेद (सं० पु०) चन्द्रग्रहणके मोचका एक प्रकार । इसमें मोच या तो नैर्ऋतकोण या वायुकोणमें होता है । यदि नैर्ऋतकोणमें मोच हो, तो उसे दक्षिण पायुभेद और यदि वायुकोणमें हो तो वाम पायुभेद कहते हैं । इन दोनों प्रकारके मोचोंसे सामान्य गुह्यपीडा और सुष्टि होती है ।

पाय्य (सं० स्त्री०) मीयतेऽनेनेति सा-पाने (पापसात्र-व्येति । पा १।१।२८) इति निपातनात् पत्यं युगागमश्च । १ परिमाण । २ पान । ३ जल । (त्रि०) ४ निन्दनीय । ५ पाययितव्य ।

पार (सं० स्त्री०) पारयतीति पार ‘पचाद्यच्’ इति षच् । १ परतीर, नदीका किनारा । (पु०) पूर्यतेऽनेनेति घृ-ञञ् । २ पारद, पारा ३ प्रान्तभाग, क्षीर । ४ छदार । ५ और, तारा ।

पारक (सं० पु०) सुवर्ण, सीमा ।

पारक (सं० त्रि०) घृ-पूस्ती, पालने प्रीतो व्यायामे च षञ्ज् । १ पूतिकारक, पूस्ति करनेवाला । २ पालनकारक, पालन करनेवाला । ३ प्रीतिकारक, प्रीति करनेवाला । ४ पार करनेवाला । ५ छदार करनेवाला । ६ पट्ट, निपुण ।

पारकाम (सं० त्रि०) जो दूसरे पार जाना चाहता हो । पारक्य (सं० स्त्री०) पर-कमे मोक्षाय हितं, पर-पञ्च-कुक्च । १ परलोकहितकर्म, वह पुण्यकार्य जिनसे परलोक सुधरना है । (त्रि०) २ परकीय, दूसरेका, पराया ।

पारखद (हि० पु०) पारख देखो ।

पारखी (हि० पु०) १ वह जिसे परख या पड़वान हो, वह जिसमें परीक्षा करनेकी योग्यता हो । २ परीचक, जांचनेवाला, परखनेवाला ।

पारग (सं० त्रि०) पारं गच्छतीति पार-गम-ङ् । (जस्ता-त्यन्ताद्यद्वारस्त्वनेत्येष ङः । पा १।२।४८) १ पारगामी, पार जानेवाला । २ समर्थ, कामकी पूरा करनेवाला । ३ पूरा जानकार ।

पारगत (सं० पु०) आस्तादेः भविष्याया वां पारं गतः ।

१ जिन। (त्रि०) २ जिनने पार किया हो। ३ जिनने किसी विषयको चादिसे चला तक पूरा किया हो। ४ समर्थ। ५ पूरा ज्ञानकार।

पारघाट—पश्चिमघाटपर्वतस्य एक गिरिसदृष्ट। मासकम् नामक स्थानसे ५ मील पश्चिम पारपर और पेटपर नामके दो ग्राम हैं। इन्हीं दो ग्रामोंके निकटसे तथा प्रतापगढ़के ठीक दक्षिणसे यह गिरिसदृष्ट पारघाट हो कर निम्न पहाड़के ऊपरसे कोढ़ण प्रदेश तक चला गया है। पहाड़ पर हम पथको वक्रगति होनेके कारण चंगरेज लोग इस गिरिसदृष्टको 'कक'स्कू पास' (Corkscrew pass) कहते हैं। पहले इस राह हो कर गवादि पथ और कमान चादि जा सकते थे। इस गिरिसदृष्टके भिन्न भिन्न स्थानोंमें शृङ्खल वृक्ष करनेका घर था। भोजपुर राज्यके सुसज्जमान सेनापति चक्रवर्तियों प्रतापगढ़में शिवाजीसे सुलझाकर करनेके लिये इसी राह हो कर गए थे। कुम्भरलो और फिटजेरण्ड नामक गिरिसदृष्टमें रास्ता प्रलुप्त होनेके पहले कोढ़ण प्रदेश जानेका एकमात्र यही प्रधान पथ था।

पारङ्ग—एक गिरिपथ। यह पञ्जाबमें काङ्गरा जिलेमें तो कर लड़ाखेके रूपसे तक विस्तृत है। यह पञ्जा० १२° ११' ४०" और देशा० ७८° १' पू०के मध्य समुद्र-पृष्ठसे १४४०० फुट ऊँचे पर अवस्थित है। इस पथ हो कर हमरी गो और छोटे छोटे घोड़े ला सकते हैं।

पारवा (का० पु०) १ टुकड़ा, खण्ड। २ कपड़ा, घट। ३ योगाक, पहराया। ४ एक प्रकारका रेशमी कपड़ा। ५ कूपके मुँहके किनारे पर भोतरकी और कुछ बढ़ा कर रखे हुई पटिया या लकड़ी जिसके उस पारसे डोरी लटका कर पानी खींचा जाता है।

पारज. (सं० पु०) पारयतीति पार कर्मसमाप्ती. निचु-चजि (गारेजि: ७. ११. ३५) णिलोपः। सुवर्णं, सोना। पारजायिक (सं० पु०) परजायां गच्छतीति परजाया-ठक् पारदारिक, परस्त्रीगामी।

पारटाट (सं० पु०) प्रसार, पसर।

पारण (सं० षली०) पार-भावे ष्ट, १ किसी व्रत या उपवासके दूसरे दिन किया जानेवाला पहना भोजन और तत्सम्बन्धी कार्य। पारण देखो। (पु०) पारयतीति

पार-णित्-लु। २ भोज, खादन। ३ घटपिमेद ४ व्रत करनेको किया या भाव। ५ पूरा करनेको किया या भाव, समाप्ति, खातमा।

पारणा (सं० षली०) पार-युच्-टाण्। उपवास व्रतके दूसरे दिनका प्रथम भोजन, व्रतान्त भोजन।

"गर्ह्ये पावने पुंश्च सर्वे गारण्यानम्।

उपवासं भूयत फलं शुद्धिकारणम्॥

सर्वेष्वेवोपासुषु दिवापारणमेवरेते।

अथवा फलहातिः द्वाहते पारणवारणम्॥" इत्यादि।

(महावैवर्त श्रीकृष्णजन्मखं ० ८ अ०)

पारण पतिव्रत पवित्र और पापमयागक है। उपवासके बाद दिनको पारणा करनेको होती है। पारणा नहीं करनेसे कुछ भी फल नहीं होता। रोहिणोव्रत (अमाष्टमी) भिन्न अन्य सभी उपवासोंमें दिनको पारणा करने चाहिये। रोहिणोव्रतमें रातको पारणा करनेसे भी महाभागमें कभी नहीं करने चाहिये।

पूर्वाङ्गमें देवता और ब्राह्मणोंको भक्षण करके तब पारणा करने चाहिये। अमाष्टमीव्रतको पारणाका विषय हम प्रकार लिखा है—घटमो और रोहिणोके रहते पारणा न करे। जब तक घटमो वा रोहिणो रहेगो, उसमें मध्य विगियता यह है, कि यदि डेढ़ पहर रातके बीच तबि और नक्षत्रका वियोग न हो, तो भी प्रातःकालमें उखवादि करके उससे बाद पारणा करे; उखव करके पारणा करना शास्त्रमध्यत है। डेढ़ पहर के बीच यदि इस प्रकार हो, तो भी पूर्वाङ्गमें पारणा न करे।

महाष्टमीके उपवासका पारण। नवमीके दिन नवरी मख्य और मांसादि द्वारा पारण करना शास्त्रमध्यत है। इस दिन ब्राह्मणको परितोषकपसे भोजन करा कर पोछे आप भोजन करे।

"महर्ष्यां उपोष्यैव नवस्यावरेदिति।

मासमांशोपहारेण द्वाप्त्यन्येषु व्रतमम्॥

नेत्रैश्च विनिषान्ते स्वयं मुञ्जीत नामयथा॥"

(निघित्तर)

किन्तु स्त्रियोंको घटमोके पारणमें मांस पचना मना है, वे केवल मख्य द्वारा पारणा कर सकते हैं। धर्मिक

स्त्रियोंकी माँव खाना शास्त्रमें निषिद्ध बताया है । रामनवमीको नवमीके दिन उपवास करके दशमीके दिन पारण करना होता है । एकादशीका उपवास करके द्वादशीके दिन पारणा विधेय है । द्वादशीका लहान करके पारणा न करे, करनेसे विशेष अनिष्ट होता है । किन्तु द्वादशीका प्रथमपाद हरिवासर कहलाता है, इसीसे प्रथमपादका त्याग कर पोछे पारणा करे ।

“महाहानिकरि ह्येषा द्वादशी संविता शुभाम् ।”

विष्णु धर्मात्तरमें—

“द्वादश्याः प्रथमः पारो हरिवासरवैहितः ।

तमतिक्रम्य कुर्यात् पारणं विष्णुतत्परः ॥” (तिष्ठादितर)

श्रवणद्वादशीका पारणकाल—जहाँ तिथि और नक्षत्र के संयोगमें उपवास हो, वहाँ जब तक दोनोंका लय न हो जाय, तब तक पारण निषिद्ध है । किन्तु इसमें विशेषता यह है, कि यदि नक्षत्रकी छद्मि हो, तो तिथिचयमें अर्थात् एकादशीके अग्रमगमें पारण करे ; द्वादशीका लहान कभी भी न करे । शिवरात्रिके उपवासमें भी तिथिके अन्तमें पारण करना होता है ॥

पारणके दिन निम्नलिखित वारह द्रव्यैः शौचकी लिये विशेष निषिद्ध हैं ; कसिके चरतनमें भोजन, माँस, सुरा, मधु, लोम, निम्बाभाषण, वारायाम, सुरतक्रोडा, दिवानिद्रा, अस्नान, शिलापिष्टवस्तु और मसूर ।

सूरिधर्मोपमें लिखा है, कि चणक, कोरदूपक (कोद्रव), शाक और पराश्र पारणाके दिनमें भक्षण नहीं करना चाहिये ।

* “अथ द्वादशपुंदासपारणकालः ।

तिथिनक्षत्रसंयोगे उपवासी यदा भवेत् ।

तावदेव न भोक्तव्यं यान्येकस्य संख्यः ।

विशेषेण महीपालप्रवर्णं वदन्ते यदि ।

तिथिसंयोगे भोक्तव्यं द्वादशी नैव लभयेत् ॥”

† कांस्य मांसं सुरां लोहं लोमं विततपापणम् ।

वारायामं य एवमायं दिवास्ननं तयाजनम् ॥

शिलापिष्टं मसूरिश्च द्वादशैस्तानि वैष्यवः ।

द्वादश्यां चैवेवैभिरं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥”

पारणि (सं० पु०) पारणस्य ऋषेरपत्यं इज्ज । (भा० ५२।११) पारण ऋषिका अपत्य ।

पारण्यो (सं० त्रि०) पारणं भनोयर् । पारण्यस्य पूरा करने लायक ।

पारत (सं० पु०) त्रिविधस्याधि मङ्गटादिभ्यः पारं तनोतीति तन-ङ । १ पारद । पारद देखो । २ जनपदभेद ।

पारतन्त्र्य (सं० क्लो०) परतन्त्रस्य भावः परतन्त्र-प्राप्ति । परतन्त्रता, पराधीनता ।

पारत्रिक (सं० त्रि०) परत्र भवः पारत्र-ठक् । १ पार-लौकिक, परलोकसम्बन्धो । २ परलोकभव, मरने पोछे उत्तम गति देनेवाला ।

पारथ (हि० पु०) पार्थ देखो ।

पारद (सं० पु०) जरामरचसङ्गटादिभ्यः पारं ददातीति दा-ङ्क । धातुविशेष, पारा । पर्याय—रसमात्र, रसनाथ, महारस, रस, महातिजः, रमलेह, रसोत्तम, सुतराट, चपल, जैत्र, शिवबीज, शिव, अमृतं, रवेन्द्र, लोकेश, दुर्बेर, प्रभु, रुद्रज, हरतिजः, रसधातु, स्कन्द, स्कन्दगिर, देव, दिव्यरस, रसायनयन्त्र, योगोद, सुनक, सिद्धधातु, पारत, हरबीज, रजसल, शिवबीज, शिवाष्टय ।

शुण—कामि और कुशनायक, चक्षुका हितकर और रक्षायन । पारद भस्म होने पर उसका पूर्ण बोध तीन मास तक रहता है । राजनिर्घण्टमें पारदकी नाम-निर्दिष्ट इस प्रकार लिखी है । त्रिविधस्याधि और जरा मरणादि मङ्गलकालमें यह मानवगणको पार दाम करता है, इसीसे इसका पारदे नाम पड़ा ।

“त्रिविधस्याधिमयोद्वयमजरारव कटेऽपि मर्येभ्यः ।

पारं ददाति यस्मात्तत्सादृश्यं पारदः कथितः ॥”

(राजनि०)

पारदकी उत्पत्तिके विषयमें भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है—महादेवका शुक्रं पृथ्वी पर गिरा । उसी शुक्रसे पारदकी उत्पत्ति हुई है । शिवशरीरजात सार पदार्थसे उत्पन्न होनेके कारण इसका यणं श्वेत है ।

सूरिधर्मोप—

कांस्यं मांसमसूरिश्च चणक कोरदूपकम् ।

पाकं मधु पराश्रं श्लेजद्वयकस्तम् त्रिष्वपि ॥”

(तिष्ठादितर)

यह शिववीर्यात्मक पारद चैत्रभेदमें चार प्रकारका है, श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण । ये चार प्रकारके पारद यथाक्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहलाते हैं अर्थात् शुक्लवर्ण पारद ब्राह्मण, रक्तवर्ण पारद क्षत्रिय, पीतवर्ण पारद वैश्य और कृष्णवर्ण पारद शूद्र है । इन चार प्रकारके पारदोंके मध्य रोगनाशविषयमें श्वेतवर्ण पारद ही प्रसिद्ध है तथा रक्तवर्ण पारद रसायनमें पीतवर्ण पारद धातुभेदमें और कृष्णवर्ण पारद आकाश गति-साधन विषयमें हितकर है । रमेन्द्र, महारस, जपल, शिववीर्य, रस, सूत और शिवपर्यायक गन्ध सभी पारदोंके नाम हैं । यह पारद मधुरादि कं रसयुक्त, क्षिप्त, त्रिदोषनाशक, रसायन, योगवाहो, शुक्लवर्षक, चक्षुका हितकर, समस्त रोगनाशक और कुष्ठरोगमें विषेय हितकर है ।

स्वच्छपारद मधुरतुल्य, यहपारद जमादनसह्य और रक्षितपारद स्वयं महेन्द्र है । मूर्च्छित पारद रोगनाशक, वज्रपारद आकाशगतिसाधक तथा मारित पारद ज्वरनाशक माना गया है । इसी कारण पारद अत्यन्त हितकर है । जो सब रोग अर्थात् हैं, जिसो भी प्रकारकी चिकित्सासे आरोग्य नहीं होति, वही पारदके प्रयोगसे मनुष्य, हस्ती और अश्वके ये सब रोग विरक्त हो जाते हैं ।

पारदमें स्वभावतः मल, विष, यक्षि, प्रसार, चाण्डाल्य, वज्र और नाग ये मम दोष अवस्थित हैं । पारदके ये सब दोष परिहार किये बिना सेवन करनेसे मलदोषसे मूर्च्छा, विषदोषसे मृत्यु, यक्षिदोषसे चित्त कष्टतम गात्रदाह, प्रसारदोषसे शरीरकी कष्टता, चाण्डाल्यदोषसे पोषण, वज्रदोषसे कुष्ठ और नागदोषसे पण्डता होती है । इन्हीं कारण पारदशोधन करना सर्वसोमायमें विषेय है ।

पारदमें यक्षि, विष और मम ये तीनों ही दोष प्रधान हैं । इन तीनों दोषोंसे यथाक्रम सन्नाप, मृत्यु और मूर्च्छा उत्पन्न होती है । यैद्योनि पारदके अन्यथा दोष भी वर्णन किये हैं, किन्तु उक्त तीनों ही दोष विशेष अनिष्टजनक हैं । जो मनुष्य पारदका दोष शोधन किये बिना ही सेवन करते हैं, उनके अतिशयकर रोग

और शरीरका विनाश होता है । (भावप्र० पूर्वप्र०) यह धातु चातुर्माचोनकासमें प्रचलित है । यह अक्षर तरल अवस्थामें हो देखा जाता है । पारद-खानके मध्य खेनदेगके अलमादेन नामक स्थानमें कार्ष्णि-व-साय इन्द्रियको खान सर्वापेक्षा विख्यात है । छं प्रो, द्वाग्धनमेनिया और जमनोके अन्तर्गत डिउवाण्डम् नामक स्थानमें भी पारदका खान है । एक समय चीन और जापानमें येष्ट पारद मिलता था ।

पाद्याल्य पदार्थ वित् प्रानोका कहना है, कि कालिय नामक एक अथेनोपने ५०५ ई०में पारदमें हिङ्गुल प्रसृत करने को प्रयासो आदिभार को । प्रानोने पालमादनको पारदखानका विषय उल्लेख किया है । ला प्रे (La Play) नामक एक फारसी भूतत्वविदने इन खानका परिदृश्यन किया था । उन्होंने यह भी लिखा है कि यहाँ ७०० मनुष्य कार्यमें नियुक्त थे और प्रतिवर्ष २२४४०० पौंड पारद खानसे निकाला जाता था ।

पारद जब खानमें निकाला जाता है, उस समय उसमें गन्धक लोह रजत आदि धातु मिश्रित रहती हैं । पोक्षि मम धातु पृथक् पृथक् कर लो जाते हैं । पारदकी अर्थात् धातुसे पृथक् करनेके लिये विविध उपाय अवलम्बित हुआ है ।

अपरिष्कृत पारदकी लोहसे साथ किसी आधुन पात्र के मध्य रख कर धूपमें छोड़ देते हैं । गरमो पा कर गन्धक लोहके साथ मिश्र जाता है और पारद पलग हो जाता है ।

पारद तरल और चोदके जैसा सफेद होता है । यह गन्ध और स्वादविहीन है तथा वायुके स्पर्शमें बहुत ही कम विकारयुक्त होता है, जलस्पर्शसे तो बह भी नहीं । इसका प्रायेधिक शुद्ध ११° ५६८ है । यह १०° तापमें खोल उठता और ४०° डिग्रीमें जम जाता है । कठिन अवस्थामें इसमें सोसकको तरल आवाज निकलती है और बड़ बुरीसे काटा जाता है ।

पारद ताप और विद्युत्का परिवाहक है, किन्तु चातुर्माच परिमाणमें ताप घट्ट कर सकता है । ३२° में २१२ डिग्री तक तापके उपयोगसे पारद समपरिमाणमें वर्धित होता है । विषुव-अवस्थामें इसके अल्पपरिमाणमें

रहनेसे वह गोताकृति धारण करता है । अपरिष्कृत पारद परिशुत कर लेनेसे विशुद्ध होता है । कभी कभी तो यह नाइद्रिक एसिडके संयोगसे विशुद्ध किया जाता है ।

पहले जो कहा जा चुका है, कि खानमें पारद प्रायः गन्धकके साथ मिला रहता है । इस मिश्रित पदार्थ को हिङ्गुल कहते हैं ।

बाजारमें जो सब पारद विकते हैं, वे हिङ्गुलसे संशुद्ध होते हैं । भारतवर्षमें पारदको खान अधिक नहीं है । नेपालमें कहीं कहीं इसकी खान देखी जाती है । अधिकांश पारद चीन और स्पेनदेशसे यहां आता है । हिङ्गुल समुद्र और सागर होता है । नाइद्रिक वा हाइड्रोक्लोरिक एसिड इसके ऊपर कोई काम नहीं करता, किन्तु दोनों एसिड मिला कर हिङ्गुलके १०० भागमें १४-२५ भाग गन्धक और ८५ भाग पारद है ।

क्लोरिनके मिश्रणसे जो पारद प्राप्त होता है, उसे क्लोराइड-आब-मर्कुरो वा हर्नमर्कुरो कहते हैं । क्लोराइड आब-मर्कुरोमें १०० भागके मध्य क्लोरिन १४-८८ और पारद ८५-११ भाग है ।

इसके अतिरिक्त पारद रजत, आयोडिन, सिलेनाइड आदि पदार्थोंके साथ मिश्रित प्रवस्थामें पाया जाता है । पारद अत्यन्त प्रयोजनीय धातु है । यह अनेक कार्योंमें व्यवहृत होता है । दर्पण बनाने, खनिज खनन और शीश्योंको विशुद्ध करने, कलई करनेमें तथा अनेक रोगोंमें भी इसका व्यवहार होता है ।

पारदमें रोगनाशक शक्ति है, यह भारतवर्ष, अरब और पारस्यदेशके लोग बहुत पहिलेसे ही जानते हैं । वे लोग यह भी स्वीकार करते हैं, कि पूर्वदेशीय लोग सबसे पहिले पारदका महाव्याधि प्रवृत्ति चर्मरोग, चिकित्सामें व्यवहार करते थे । अरब वा भारतवर्षके लोगोंने इस गुणका सबसे पहिले आविष्कार किया था वा नहीं, वह आज तक भी स्थिर नहीं हुआ है । यूरोपमें पन्द्रहवीं शताब्दीके शेष भागमें पारदका व्यवहार पहिले पहिले औषधमें किया गया ।

सबसे प्राचीन संस्कृत चिकित्साग्रन्थ चरकमें पारदका उल्लेख देखा जाता है । चरकने पारदके बदलेमें 'रस'

शब्दका व्यवहार किया है, किन्तु रस शब्दका अर्थ पारद है वा नहीं, इसमें बहुतोंको संदेह है । पाठवीं शताब्दीमें हम देखके चिकित्सकोंको 'पारद' शब्दका व्यवहार करते देखा जाता है ।

यूरोपीय चिकित्सक अनेक रोगोंमें पारदका प्रयोग करते हैं । पारद और पारदमे जो सब मिश्रपदार्थ उत्पन्न होते हैं, उन्हें शरीरमें लगनेसे कुछ काल तक किसी प्रकारकी जलन नहीं होती, पर वाष्पप्रयोग करनेमें पारदघटित वीर्यवान् औषधोंका बहुत होमिथारीसे व्यवहार करना कर्त्तव्य है । अन्तरोगमें पारदसे प्रसृत औषधका प्रयोग करनेसे चार प्रकारके फल उपस्थित होते हैं । यह सङ्कोचक, प्रदाहनाशक, उत्तेजक और पचननिवारकका कार्य करता है । पारदका वाष्प और धातुप्रकारके प्रयोग होता है । पारद अम्यांश धातु और मूलपदार्थके साथ मिश्रित रहता है, यह पहले ही कहा जा चुका है ।

कैसे पारदको स्नान पिल प्रसृत करनेमें जरूरत पड़ती है । स्नानपिल जुलाहके लिये व्यवहृत होता है । उपदंश रोगमें स्नानपिलका कुनेन और अफोमके साथ रोगीको सेवन कराया जाता है । स्नानपिलका कई दिन तक लगातार व्यवहार करनेसे दांतकी जड़ सूज जाती है और मुखसे रास टपकने लगती है । ऐसे अवस्था होनेसे पारदका सेवन बन्द कर देना उचित है । पहले स्नानपिल चिकित्सिकोंसे सावधानी से मालूम किया जाता था, किन्तु अभी परोक्षा द्वारा यह स्थिर हुआ है, कि पारदके व्यवहारसे पिलनिःसारणका परिमाण घट्य हो जाता है । पर ही, इसका व्यवहार करनेसे शरीरके अम्यांश यन्त्रोंके कार्यावरोधक दूषित पदार्थ देखे निकल आते हैं । स्नानपिलके व्यवहारसे अत्यन्त यातनाप्रद प्रदाह नष्ट होता है । एतद्वरत्त यज्ञत और मूलधन्यके सङ्घटित होने पर इसका प्रयोग विशेष लाभदायक है । उपदंश, शीघ्र आदि रोगोंमें स्नानपिल व्यवहृत होता है ।

अत्यन्त दुर्बलत्वस्थामें, अवसर्वावस्थामें, पयसा रोग जब अत्यन्त पुरातन हो जाय, वे सो अवस्थामें स्नानपिलका प्रयोग निषिद्ध है ।

स्नानपिलका अधिक मात्रामें सेवन करनेसे मुखसे रास

बहुत निकलती है, रक्त कम हो जाता है, शरीरमें फोड़े निकल जाते हैं तथा पचाघात यदि सावयविक विकार आविर्भूत होते हैं। केवल एक म्ल पिलका सेवन करने से किसी किछोके सुखसे रक्त निकलती है। इस म्ल पिलका बड़ी सावधानीसे व्यवहार करना कर्त्तव्य है।

कच्चे पारेसे प्रेषावडर नामक घोर एक प्रकारको चोपध बनती है। यह चोपध बनानिमें २ पौंस खट्टो घोर १ पौंस पारा से कर घिसना होता है। पोछे घिसते घिसते जब पारदविष्टु घट्टा हो जाय, तब यह चोपध तैयार होती है। यह चोपध अत्यन्त प्रयोजनीय है। जहाँ पारदघटित अस्थायी चोपधोंका व्यवहार नहीं किया जा सकता; वहाँ प्रेषावडरका प्रयोग किया जाता है। इसकी मात्रा १ से २ घेन तक है। प्रेषावडर धातु-परिवर्तक घोर श्लेष्मविरोधक है। इसके अतिरिक्त यह यकृतविकार घोर चर्मरोगमें व्यवहृत होता है।

पारद घोर फ्लोरिनके संयोगसे जो दो पदार्थ उत्पन्न होते हैं। उनमेंसे एकका नाम पारस्फोराइड आक्सीजनरी घोर दूसरेका नाम सल्फोसोराइड आक्सीजनरी वा कैलोमेल है।

पारस्फोराइड-आक्सीजनरी अत्यन्त पचननिवारक घोर पारदघटित चोपधोंकी अपेक्षा बोर्यवान् है। १००० भाग जलसे साथ १ भाग पारस्फोराइड मिला कर सतस्थान साफ किया जाता है। इस सौम्यका उपदंशजनित क्षतमें व्यवहार करनेसे भारी उपकार होता है। इसके सिवा इससे दाढ़ भी कोई जाती है। उपदंश घोर किसी किसी उदरामयरोगमें इसका आभ्यन्तरिक प्रयोग होता है।

कैलोमेलका बाह्य घोर आभ्यन्तरिक प्रयोग किया जाता है। आभ्यन्तरिक प्रयोगमें अतिविरोधक, धातुपरिवर्तक घोर उपदंशविपनायक है। यह मफेद चर्क जैसा होता है घोर इसमें कोई स्वाद तथा गन्ध नहीं रहती है। यह अति सुन्दरविरोधक, मूत्रकारक घोर यकृतके कार्यको हृदि करता है। कैलोमेलका फ्लोमके माध्यमिता कर वातरोग घोर आभ्यन्तरिक प्रदाहमें प्रयोग किया जाता है। इसका दो या तीन दिनमें अधिक व्यवहार करना उपचित नहीं। अधिक दिन व्यवहार

करनेसे सुख हो कर राल निकलती है। मन्त्रिकविकार में, वातश्लेष्मरोगमें घोर प्रेगमें कैलोमेल कमो कभी रोगीको सेवन कराया जाता है। पान्थोयप्वर (Typhoid fever) के प्रथम सप्ताहमें यदि कैलोमेल दो या तीन बार सेवन कराया जाय, तो ज्वरका प्रकोप बहुत घट जाता है। चर्मरोगमें कैलोमेलका मलमल करके प्रयोग करनेसे उपकार होता है। छोटे छोटे बच्चों के पचमें कभी कभी कैलोमेलका सेवन अत्यन्त उपकारी है। १ से २ घेन कैलोमेल शर्कराके माध्यमिताके अल्प भाग पर लगाया जाता है। पर हाँ, अधिक मात्रा में सेवन करनेसे अनिष्ट होता है, अर्थात् उपसे नेह खराब हो जाता है।

पारद फ्लोरिन व्यतीत अलज्जन, पाथेडिन, पामोनिया आदि पदार्थोंके साथ संयुक्त रहता है। इस मिश्रित पदार्थका उपदंश घोर चर्मरोगमें व्यवहार किया जाता है।

पारदघटित चोपध बहुत सावधानीसे व्यवहार करना कर्त्तव्य है। यदि रोगी अत्यन्त दुर्बल वा रक्तहीन हो जाय, तो इसका सेवन विषकुल निविष्ट है। यद्यपि यह उपदंशरोगमें अधिक परिमाणमें व्यवहृत होता है, तो भी प्रत्यक्षकालमें रोगीको अवस्था पर अच्छे तरह विचार कर इनका व्यवहार करना कर्त्तव्य है। पारदघटित चोपध अधिक दिन तक सेवन करनेसे बच्चोंके दाँत खराब हो जाते हैं।

रेमेन्डपारमंशहमें पारदका विषय इस प्रकार लिखा है—इसके मध्य पारद सबसे अंश है। तत्त्वविदों ने साथ घोर असाधारणमें पारदको व्यवस्था की है। इसीसे अन्यान्य धातुओंको अपेक्षा पारद अंश है। इनमें से भस्म पारद जरा घोर धातुविनाशक, मूर्च्छित पारद वराधिघातक माना गया है। रेमेन्ड, पारद, घृत, सूत-राज, सूतक, शिखरज; घोर रप ये सात पारदके नामा-न्तर हैं। किछो किमोके मतसे पारदके नाम ये हैं—शिवबीज, रस, सत, रेमेन्ड घोर शिवपर्यायक शब्द।

पादहा लक्षण।—जिध पारदका प्रभुभांग सुनोत तथा वहिभांग उज्ज्वल हो घोर मध्याह्न सूर्यकी किरणके जैसा चमके उसी पारदकी चोपधके लिये ग्रहण करना

चाहिये। जो पारद धूस्रवर्ण, जिसका वहिर्भाग पाण्डुवर्ण प्रथवा जो नाना वर्णों से रञ्जित हो, वह औषधमें प्रयुक्त नहीं है। पारदका जब तक शोधन न किया, तब तक उसका व्यवहार बिलकुल मना है। क्योंकि पारदमें सोसक, रङ्ग, मल, वज्रि, चाक्षुश्य, विष आदि दोष रहते हैं जिनसे व्रण, कुष्ठ, दाह, ज्वर, वीर्यनाश, मृत्यु और स्फोट आदि रोग हो सकते हैं।

इस कारण चिकित्सकों को चाहिये, कि वे पहले पारदका भस्मीभूति संशोधन करके तब प्रयोग करें। विशुद्ध पारद चमूतके समान और दोषयुक्त पारद विपके समान है। निर्दोष पारदसे जरा, ब्राधि, यहाँ तक कि मृत्यु भी रुक जा सकती है। अतः पारदका पहले शोधन कर लेना अवश्य कर्तव्य है।

पारदशोधन।—सुभ नक्षत्रमें ८०० तोला वा ४००, २००, ८५ वा ४० तोला विशुद्ध पारद ग्रहण करके शोधन करे। ८ तोलेसे कम पारदशोधन वैद्यगायानुमोदित नहीं है। किसी किमोका कहना है, कि औषध प्रसृत करनेमें जितने पारदकी आवश्यकता हो उतना पारद शोधन किया जा सकता है। विषचिकित्सक विशुद्ध दिनमें मत्तिपूर्वक विष्णुका स्मरण करते कुमारी और बटुकार्चन करे। पोछे चार अङ्गुल परिमित गभीर लोह वा पाषाणनिर्मित ढ़ड़ खलमें निज मन्त्रसे रक्षा विधान करके अनन्य चित्तसे पारदशोधन करे। पारद-शोधनमें लिखित रचामन्त्रसे रक्षाकार्य करना होता है। मन्त्र—

“अघोरेश्वरोऽयं घोरेश्वरो घोरघोर तरेभ्यः।

सर्वतः सर्वभ्यो नमस्ते हरहृषेभ्यः॥”

पारदकी तप्तवृत्तविधि।—झागविष्टा और तुपकी अग्निगर्त के मध्य रख कर उसके ऊपर खलस्थापन करे, इसीकी तप्तवृत्त कहते हैं।

पारदकी निगड़।—अकवन, और धूरके दूध, पलागवीज, गुग्गुलु और द्विगुणसंयुक्त लवणके साथ पारद मर्दन करना होता है। यह पारदकी श्रेष्ठ निगड़ है।

पारदकी साधारण शब्धि।—पारदभारणद्रव्यके चूर्ण की पौडगीय पारदमें मिला कर प्रत्येक द्रव्य प्रतिदिन

सात बार करके मर्दन करे। यही साधारणशब्धि है।

पारदका विविध शोधन।—मेघरोम, हरिद्रा, इटक-चूर्ण, कानिष्ठ इन सब द्रव्योंसे पारदकी एक दिन मर्दन करके कांजोसे धो डाले। इससे पारदका नोसदोष जाता रहता है। इस प्रकार मंगिरन और भाकड़ाचूर्ण से वज्रदोष, सोनालुचूर्णसे मल, चोताचूर्णसे यक्षिदोष, कण्डूचूर्णसे चाक्षुश्यदोष, विकलाचूर्णसे विषदोष, विकटचूर्णसे गिरिदोष और मोसुरचूर्णके साथ मर्दन करनेसे अनेक अग्निदोष नष्ट होता है। प्रत्येक दोषमें तद्वापनिवारकचूर्ण पौडगीय और छतकुमारीके साथ मर्दन करके उख कांजो द्वारा मृत्पात्रमें प्रक्षालन करे। ऐसा करनेसे सभी पारद दोषवर्जित और विशुद्ध हो जाते हैं।

पारदशोधन विषयमें अनेक मत हैं जो संक्षिप्त भावमें नीचे दिये जाते हैं।

मतान्तर—खेतचन्दन, देवदारु, काकजङ्घा, जयन्तो, तालमुन्नी और छतकुमारीके रसमें एक दिन मर्दन, पोछे उसे यन्त्रपातन करके शोधनार्थ पारदका प्रयोग किया जा सकता है।

मतान्तर—हरिद्राचूर्ण और छतकुमारीके रसमें पारदको एक दिन मर्दन करके यन्त्रपातन करनेसे पारद विशुद्ध होता है।

मतान्तर—पारदका हादगीय गन्धक और पारदकी एक साथ मिश्रित करके जंघरी नोबूके रसमें दोपहर तक मर्दन करे, पोछे सात बार यन्त्रपातन करनेसे पारद विशुद्ध होता है।

अन्यप्रकार—जयन्तो, एरण्ड और प्रदरक प्रत्येक का रस क्षमगुं नात सात बार प्रदान करके जब तक यह सुख न जाय, तब तक मचते रहें। पोछे मट्टीके बरतनमें कांजोसे प्रक्षालन करनेसे वह विशुद्ध होता है। इस प्रकार शोधित पारद औषध प्रसृत कालमें प्रयुक्त है।

मतान्तर—हरिद्रा, इटक, कानिष्ठ और कज्जी इन सब द्रव्योंके साथ पारद मर्दन करके पोछे मेघरोम, हरीतकी, शामसकी, बहेड़ा, चोता, छतकुमारी, सोंठ, घोषर और मिर्चके साथ मर्दन करनेसे पारद विशुद्ध होता है।

हृतकुमारिका रस, चीतेका ज्ञाथ और काकश्लिका-
का रस इन सब द्रव्योंसे एक एक दिन मर्दन करनेसे
पारद विशुद्ध होता है ।

ग्रन्थप्रकार—लङ्गसुने रस, पानके रस पथव-
त्रिकलाके ज्ञाथके साथ मर्दन करके कज्जोमें घोलने
पारदका सब दोष दूर हो जाता है ।

पारद जर्ध्वपातन, पथःपातन और तिर्यक्पातन
आदि द्वारा विशुद्ध होता है ।

जर्ध्वपातन यथा—तीन भाग पारद और एक भाग
ताम्रचूर्ण की मिना कर जम्बोरो नीबूके रसमें मर्दन
करके पिण्डाकार बनाये । पीछे निम्नभागमें उस पिण्डकी
रख कर जर्ध्वभाण्डके नीचे द्रवनेपनपूर्ण क उसके ऊपर
जल दे और सन्ध्याभ्यास की दृढ़वह करके अग्निपत्रा-
से पारद काहरण करे । नीबूकी और ताम्रसह ब्रह्मादि
दोष गिर पड़ेगा और ऊपरकी और समस्तकुक्कर्मित
निर्मल पारद स्रष्टायेगा । इस प्रक्रियासे पारद ऊपर-
की और लठता है, इसी कारण इसका नाम जर्ध्वपातन
पड़ा है ।

पथःपातन—गन्धक और जम्बोरो नीबूके
रसके साथ पारद एक दिन मर्दन कर पड़ने पिण्डा-
कार बनाये । बाद शुकग्निसा, सोडिजन, अपा
मार्ग, सैन्धवतवण, इतिसर्वप इन सब द्रव्योंकी
एक साथ पोस कर उसके साथ मिलावे । अनन्तर
जर्ध्वभाण्डके मध्यभागमें लेप दे कर पथोभाण्डमें जल
दे । पीछे दोनों भाण्डके सन्ध्याभ्यासमें लेप दे कर गर्तके
मध्य उस यन्त्रकी रखे और ऊपरी भाग पर अग्नि दे
कर घुट दे । ऐसा करनेसे पारद ऊपरसे नीचे जलमें
गिरता है । नीबूकी और पारके गिरनेसे इसे पथःपातन
कहते हैं ।

तिर्यक्पातन—एक घड़ेमें पारा और दूसरे घड़ेमें
जल रख कर दोनोंको तिर्यक्भावमें एकत्र करे ।
पीछे सुतसन्धिमें लेप दे कर पारदपूर्ण घड़ेके नीचे
पांच दे । ऐसा करनेसे पारा तिर्यक्भावमें जलके
मध्य गिरता है और इसका तिर्यक्पातन नाम पड़नेका
यहो कारण है ।

पारदका बोधन—पारदे ज्ञाय मोषा और रागा

मिना रहता है । यह दोष विविध पातन द्वारा दूर हो
जाता है । इन सब प्रक्रियाओंमें कहीं कहीं निन्द्य
पारद पण्डित्यकी प्राप्त होता है । इस दोषका नाश करनेके
लिये बोधन आवश्यक है । नाशयनको खोपड़ी पथव-
कांचके वरातनमें पारा रख कर जलापन करे । पीछे
गजदन्त परिमाणके गर्तमें तीन दिन तक रखनेसे
पारिका पण्डित्य दोष दूर हो जाता है ।

पारा चटकर्म द्वारा विशुद्ध होता है । चटकर्म ये
है—खेदन, मर्दन, उत्थापन, पातन, बोधन, नियामन
और दोषन । हिङ्गुनीयोन पारदप्रकरणकी जगह
जम्बोरो और कागजो मोबूके रसमें एक दिन तक
हिङ्गुन मर्दन करके जर्ध्वपातन यन्त्रमें विशुद्ध पारद
प्रत्यक्ष करे । यह पारद न ग घोर ब्रह्मादि दोष रहित
तथा रसकर्ममें प्रयुक्त है ।

हिङ्गुनालट पारद—हिङ्गुलकी खण्ड खण्ड करके
मृत्पत्रमें रखे और तीन दिन तक जम्बोरो मोबूके रसमें
भावना है । पीछे घमसोनीके रसमें मात बार भावना दे
कर जम्बोरो और चाँदोरो मोबूके रसमें हुणो दे और हाँडो-
के मध्य रख दे । इसके बाद हाँडोकी पैटोमें खड़ो लगा
कर ऊपरसे दहनरख दे और सन्ध्याभ्यासमें लेप करे । पीछे
हाँडोके नीचे पांच और ऊपरवासे वरातनमें गोतल जन
दे । जलके उष्ण हो जाने पर उसे फेंक दे और बार बार
गोतलजन देते रहें । इस प्रकार तीन बार करनेका नियम
है । इससे निर्मल पारा जर्ध्वपातन हो कर जब खड़ो
लगे हुए वरातनमें संलग्न हो जाय, तब उसे ग्रहण करे ।
यह पारद बोधनका दोषहोन और सकल गुणसम्पन्न है ।
इस पर कोई कोई कहते हैं, कि पलता मदार और
जम्बोरो मोबूके रसमें एक एक पहर तक हिङ्गुलकी
मर्दन करके जर्ध्वपातनयन्त्रमें पारद ग्रहण करे ।

पारदकी मूर्च्छना ।—गन्धक और पारदकी मर्दन
कर कज्जली करे । घनचापण्यादि दोषरहित होनेसे
उसे मूर्च्छित पारद कहते हैं ।

मृतपारद या पारदमम ।—पारद १६ तोला,
गन्धक ८ तोला इन्हें हृतकुमारोके रसमें एक दिन मर्दन
कर मृगयन्त्रमें एक दिन तक घुटपाक करनेसे पारद
मृत होता है ।

मत्तान्तरमे—पानके रसमें पारदको मदन कर ककंठाके खोलमें उसे भर दे और वस्त्रके ऊपर मटोका लेप दे कर एक दिन गजपुट प्रदान करनेसे पारद मृत होता है। यह मध्यपारद योगवाही और सभी कार्योंमें प्रयोज्य है।

पद्मप्रकार—पारद तीन भाग, गन्धक तीन भाग, सोमक दो घाना भर दूहे एकत्र कर बोलतमें रखे। पीके मट्टा मिली हुए वस्त्रसे बोलतमें लेप दे कर खंडोसे सुंघ वन्द कर दे। पनन्तर बोलतको हांडोके मध्य रख कर उस हांडीको वालू से भर दे और तीन दिन तक पांच दे। बादमें वन्मुक्तपुष्प सदृश पशुपथर्ण पारद मध्यका प्रहण कर सभी रोगोंमें प्रयोग करे।

पारदभस्म—सोहागा, मधु, लाक्षा, मेघरोम और भृङ्गशर्करा इन सब द्रव्योंके साथ पारिकी एक दिन मदन कर बालुकायन्त्रमें एक दिन सम्पुट करे। ऐसा करनेसे विशुद्ध कपूर सदृश भस्म उत्पन्न होती है।

पारदभस्म—खेत, पीत वा क्षण यही तीन प्रकारको पारदभस्म होती है। पारदको खेतभस्मको सुधानिधिरस वा रसकपूर कहते हैं। पोशुलवर्ण और सैन्य लवणको पारिकी साथ मिला कर छूहरके दूधमें बार बार मदन करे। पीछे उसे लोहेके बरतनमें रख कर खड़ीसे सुंघ वन्द कर दे और लवणपूर्ण भाण्डके मध्य उसे रख कर एक दिन तक पांच देते रहें। ऐसा करनेसे उसका वर्ण कुन्द वा चन्द्रमहग हो जाता है, इसीको पारदकी खेतभस्म कहते हैं। प्रातःकालमें खवङ्गके साथ छरत्ती भर इसका सेवन करनेसे दो प्रहरके मध्य कर्षा विरेचन होता है। इसमें पुनः पुनः शीतल जलसेवन विधेय है।

पीतभस्म पारद—समान अंश पारद और गन्धक छस्त्रिसुण्डलता तथा भूम्यामलकीके रसमें सात दिन तक मदन कर मुखवदपूर्वक बालुकायन्त्रमें धोती पांचदे दिन रात पाक करे। ऐसा करनेसे पारदकी पीतभस्म प्रसृत होती है। इस भस्मका रसो भर परिमाणमें गानके माथ सेवन करनेसे सुधा, सब प्रकारके उदररोग, शूलभङ्गादि दोष और जराका नाश होता है। इसे कोई कोई मर्वाहसुन्दर कहते हैं।

[सूत्रभस्म पारद—समान भाग धान्याभ्र और पारद-

को मारक द्रव्यरसमें एक दिन तक मदन करके उसके कल्कमें वस्त्रका लेप दे। पीछे यत्तो प्रसृत करके उसे बार बार रेंडोके तेलसे सींचते रहें। बादमें पांच दे कर उस पथःपातित द्रव्यपार्थको किनो बरतनमें रखे और नियामक द्रव्यसे एक दिन मदन कर कन्दुकाय-यन्त्रमें पातन करे। इस प्रकार पारदकी क्षणमध्य प्रसृत होती है। इसका रोगविशेषमें प्रयोग करनेसे बड़ा ही उपकार होता है।

पारदसेवनसे बुद्धि, स्मृति, प्रभा, कान्ति और धर्म आदिको वृद्धि होती है। पारदसेवोके लिये लकाराष्टक द्रव्य पार्थीय कुष्माण्ड, ककंडो, कसमो, कलिङ्ग, कर्ला, कुसुम्बिका, ककंठा और काकमक्षिका ये द्वा प्रकारके द्रव्य विशेष निषिद्ध हैं। (रघुप्रशारसंग्रह)

भावप्रकाशमें लिखा है कि खेदन, मदन, मुखन, कर्षापातन और पथपातन प्रभृति द्वारा पारद संगीधित होता है।

पारदका खेदन नामा प्रकारका है। धान ले कर उसकी भूवी पल्लव के द। पीछे उसे जलसे साथ किसी एक मटोके बरतनमें रख छोड़ें। पनन्तर जब उसमें भस्मरसका स्वाद था जाय, तब उसमें भृङ्गरस, मुण्डि, खेतापराजिता, पुनर्णवा, ब्राह्मोद्याक, गन्धनाकुलि, महावला, यतावरी, विफला, मौलापराजिता, हंसपदो और चीता ये सब द्रव्य एकत्र कूट कर डाल दे। इसे धान्यान्त्र कहते हैं। यह धान्यान्त्र पारदके खेदनादि सभी कार्योंमें व्यवहृत होता है। धान्यान्त्रके अभावमें अत्यन्त भस्मभावापन्न आरनालका भी प्रयोग किया जा सकता है।

सौंठ, पोपर, सैन्य, रायसरसी, हरिद्रा, हरीतोकी, बहेड़ा, आमलकी, पदरक, महावला, नागवला, नट नामक शाक, पुनर्णवा, मेघप्रह, चीता और निमादल ये सब द्रव्य समान भागमें ले कर पांचे सबको एक साथ मिला दे या नहीं मिलावे, धान्यान्त्रके साथ पीस कर उसके चूर्णमें थूड़ विपरिमित पधस्त्रलेपन करे। पीछे वस्त्रके मध्य पारद रख कर बांध दे। पनन्तर एक पात्रमें भस्म भर कर दोलायन्त्रमें पारदको तीन दिन तक पाक करनेसे ही खेदन सिद्ध होता।

अन्यविध—मूलक, चीता, भैरव, चोठ, पीपर, मिर्च, अदरक, सरसो ये सब द्रव्य तथा पारदका सोनहवां भाग ले कर एक टुकड़े कपड़े में बांध दे। पोछे उसे काँजीके मधु डाल कर दोनायन्त्रमें एक दिन तक पाक करने से पारदका स्वेदन होता है। पारद स्वेदन द्वारा तीव्र और मर्दन द्वारा निमल हो जाता है।

पारदका मर्दन।—पहले पारद-चूर्ण और सुरखो द्वारा, पोछे दधि, गुह, सैन्धव, सरसो और कानिछ द्वारा पारदको मर्दन करे। अन्य प्रकार—छतकुमारी, चीता, सरसो, इहती और त्रिकलाका ज्ञाय ये सब द्रव्य एकत्र कर पारदके साथ तीन दिन तक मर्दन करनेसे पारिका समस्त मल दूर हो जाता है।

पारदका मूर्च्छन।—सोठ, पीपर, मिर्च, हरीतकी, महुड़ा, धामसको, बन्धाहन्द्, इहती कण्टकारी, चीता, लण, हरिद्रा, यवचार, छतकुमारी, भकवन और धतूरेके पत्तोंका रस घयवा इन सब द्रव्योंका काढ़ा करके उसमें पारदको सात बार मर्दन करे। इसी प्रकार पारदका मूर्च्छन होता है। इससे पारदके सभी दोष निराकृत होते हैं।

ज्वर्धपातन।—तृतिया, लणसाक्षिक और छतकुमारीके रस द्वारा पारदको इन प्रकार मर्दन करे कि पारद धृक्क रूपसे दृष्टिगोचर न हो। पोछे विद्याधर यन्त्रमें उसका ज्वर्धपातन करे।

अधःपातन।—त्रिकला, सोडिछन, चीता, सैन्धव और सरसो इन सब द्रव्यों द्वारा ज्ञाय प्रसृत करके उसमें पारदको भलीभाँति पोसे। अनन्तर यन्त्रके उपरिस्थित पात्रमें लेप दे कर उससे द्वारा भूधरयन्त्रमें पाक करनेसे पारदका अधःपातन होता है। खेदनादि द्वारा संशोधित पारद सभी कार्योंमें प्रयोजित हो सकता है।

पारदकी सुख्यदोषनाशक शोधनविधि।—पारदका मलदोष छतकुमारी द्वारा, अग्निदोष त्रिकला द्वारा और विषदोष चीता द्वारा नष्ट होता है। अतएव इन सब द्रव्योंको एकत्र कर पारदकी सात बार मूर्च्छित करनेसे सभी दोष निराकृत होते हैं।

पारदका दोषनाशक अंतिम विधय।—छतकुमारी, चीता, लक्ष्मण, इहती और त्रिकला इन सब द्रव्योंका

ज्ञाय प्रसृत करके उससे तीन दिन तक पारदको मर्दन करे। इस प्रकार पारदके सभी दोष दूर हो जाते हैं।

छतकुमारी और हरिद्रा चूर्ण द्वारा एक दिन तक पारदमर्दन करे, पोछे वक्षोपिधके ज्ञाय द्वारा स्वेदित हो जानेसे यह पारद पुनः वलवान् हो जाता है। नागफली, इमली, वण्था, मृद्वराज और मुञ्जक इन सब द्रव्योंके ज्ञायसे स्वेदिन होने पर भी पारद मजो होता है और चित्रकके रस द्वारा स्वेदित होने पर यत्र पयान् दक्षिमाण हो जाता है।

पारदकी मारणविधि।—कानिछ, पारद, गन्धक और निशादस इनके समान भागको एक साथ मिला कर एक पहर तक मर्दन करे। पोछे एक बोलनमें उस पारदादिको भर कर वलवण्ड और मृत्तिका द्वारा बोलनमें लेप दे कर सुखा ले। इसके बाद एक हाँड़ो के पथोद्वेगके ठोक मध्यस्थानमें एक छिद्र करे और उस छिद्रके ऊपर बोलन बँटा कर बोलनके चारों ओर बालू भर दे। बालू उसी परिमाणमें देना होगा जिनसे बोलनका गला तक ढँक जाय। अतन्तर उस हाँड़ोकी चट्टी पर रख कर धीरे धीरे बाँध दे। इस प्रकार मारण पहर तक पाक करनेसे पारद भस्म होता है। अनन्तर इसे उतार ले और शीतल हो जाने पर ज्वर्धगत गन्धकका परिष्कार करके अथोद्वेगस्थित मारित पारदको ग्रहण करे। यह मारित पारद उपयुक्त मात्रा में यथाविहित अनुपातके साथ सभी कार्योंमें प्रयोग किया जा सकता है।

अन्यविध—अपामार्गके बोजसे दो मूपा प्रसृत करे। पोछे काकडूभरके दूधमिश्रित पारदको उस दो मूपाओंके मध्य डाल दे। अनन्तर द्रोणपुष्पोत्त, विदुष और परिमेदक चूर्ण करके उक्त मूपाके गोखे और ऊपर बँटन कर मृत्तिका-निर्मित मूपाके मध्यां स्थापन करे। बादमें घुटपाक करनेसे पारद भस्म होता है। यह यथाविधि प्रयुक्त होनेसे विशेष फलप्रद होता है।

मारित और मूर्च्छित पारदका गुण।—पारदको मिश्रद्रव्यसे मारित और मूर्च्छित होने पर निम्नलिखित उपकार होता है। यह पारद क्षमिनाशक, कुटापहारक, जघ्नापद, दर्शनमक्षिबद्धक, मरुयुगाशक, पतियय मोचक, श्वेत,

योगवाजी, वार्द्धक्यायक, स्मरणशक्ति और श्रीजी-
धातुवर्धक, वृद्धि, रूप, धातु और शीघ्रजनक माना
गया है। यह पारद सभी दोषों का नाशक है, यहाँ तक
कि यह मृत्यु का भी नाश कर सकता है। जो कोई
असाधारण व्याधि किसी शीघ्रघने शरीर में नहीं होती, वह
पारदका सेवन करनेसे निराकृत होती है।

(भावप्र० पूर्वखण्ड)

पारद शोधित होने पर अमृतके समान हो जाता है।
रसके मध्य पारद प्रधान है। इसीसे वैद्यकग्रन्थमें पारद-
का 'रस' नाम रखा गया है। रसेन्द्रनारस'ग्रन्थमें जो सब
शोधक लिखी हैं उनमेंसे प्रायः सभी शोधकोंमें पारद है।
जिन सब शोधकोंमें पारद है, वे प्रायः बलकार होती हैं।

हिङ्गुलसे पारा ग्रहण किया जाता है। हिङ्गुलीय
पारद सब प्रकारका दोषनाशक है। अतएव यह पारद
सभी कार्योंमें नियोग किया जा सकता है।

रसेन्द्रदार्शनिके मतानुसार पारदमें मर्बोको सृष्टि
हुई है। पारद ही आत्मासूत्रा है। इसका विशेष
विराग रसेन्द्रवारदर्शनमें देखो।

प्राणतोषिणी और आलकाभेदनम्में पारदके शिव-
लिङ्ग-निर्माण-विधानका विषय इस प्रकार लिखा है—

पारदका शिवनिर्माण करनेमें नाना प्रकारका
विघ्न उपस्थित होता है। इसीसे पारदशिवलिङ्गके निर्माण-
के समयमें शान्ति स्वरूपयनादि करने होती हैं। पारद
साक्षात् शिवशोक्तरूप है। इसीसे कभी इसे ताड़न
न करे। ताड़न करनेसे पित्तनाश और तरङ्ग तरङ्गके
रोग अथवा मृत्यु भी हो सकती है।

“पारदे शिवनिर्माणे नानाविधं भयः शिवे।

अतएव महेशानि। शान्तिस्वरूपयनकृत्वेत्॥

पारदं शिवधीर्न हि ताडनं नहि कारयेत्।

ताडनाद्वित्तनाशः स्यात् साधनाद्वितहीनता॥”

(भावप्र० ८ पटल)

जिसे भी लिखा है,—सखी और नारायण पारद-
शिवलिङ्गके यत्नात्मक एक चंग में लगे हैं। क्योंकि
प्रकार स्वयं, विष्णु, आकार कालिका, रकार साक्षात्
शिव और, दकार मन्ना है। इसीसे पारद मन्ना, विष्णु
और शिवात्मक है। जो अपने जीवनमें एक बार भी

पारदशिवलिङ्गको पूजा करते हैं, वे धन्य, शान्ति, मन्नावेत्ता
और पृथ्वीके राजा हो कर सर्वोपे पूजित होते हैं।

“पारदस्य यत्नात्सर्वो लक्ष्मीनारायणो नहि।

पकारं विष्णुकाञ्चन आकारं कालिका स्वयम्॥

रेफं शिवं दकारञ्च मन्ना न चास्वयम्॥

पारदं परमेष्ठानि। मन्नाविष्णुशिवात्मकम्॥

यो यजेत् पारदं शिवं स एव शम्भुरभवः।

आत्मनमन्ये यो देवि एकदा यदि पूजयेत्॥

स एव धर्मो देवेभिः। स शान्ति स च तरावित्॥

स मन्नावेत्ता स धनी स राजा मुनि पूज्यते॥”

(प्राणतोषिणीयुत मातृकागेदत० ८ पटल)

पारदका शिव प्रसूत करने समय दोषशोधकाने
१२ शिवपूजा, जप और होतादि करने होते हैं। इस
प्रकार शिवपूजादि करके पारद श्राद्धरूप करे और उसके
ऊपर एक ही पाठ बार जप करे। पोलि प्रथम मन्त्रसे
उस पारदको क्षिप्रिदृष्टापावरस द्वारा कदमके समान
बनावे। बादमें यह निर्माण योग्य हो जाने पर इसीसे
शिवलिङ्ग प्रसूत करे। इस पारदलिङ्गका पूजन करनेमें
सभी पाप दूर हो जाते हैं।

(प्राणतोषिणी० मातृकामेदत० ८ प०)

२ स्वेच्छा जातिविशेष, सगरराजने इस जातिकी
मन्त्रक सुद्धा दिया था, तभीसे ये लोग सुक्तनेय हैं।

“कौता दरा दवां सरा वैयामकास्तया।

ओइवता इविभागा पारदाः सह वाहाकेः॥”

(मातृ १५।१।१)

पारद (Parthia)—उक्त पारदजातिकी निवासभूमि
एक प्राचीन देश। यह कासीयवागरके दक्षिण-
पूर्वमें अवस्थित है। प्राचीन कोशाकार गिलालिपिमें
यह 'पार्थिव', संस्कृत साहित्यमें 'पथ्व' और गुप्त
सम्राट् की गिलालिपिमें 'पार्थिव' नामसे उक्त हुआ है।
सुपसिद्ध ऐतिहासिक जिनोका कहना है, कि इसके
पूर्वमें पराई, दक्षिणमें कर्मेनाई और एरियानो,
पश्चिममें प्रतिनि तथा उत्तरमें शिरकानाई नदी है।
हेकटमिलन इसका प्रधान और एकमात्र प्रसिद्ध नगर
है। इसका चंगरेजो नाम पार्थिया (Parthia) है।
पारदके अधिवासिगण मकन्दगोत्र हैं। ये लोग

पारम्य मन्त्राटके प्रधान थे। जरसेन भोर दरारुण की सेनाके साथ ये लोग लड़ने गये थे। पारद देगने राजा सुमनिह अनेकमन्दरके एक चतप वा सामन्त मात्र थे। अनेकमन्दरको मृत्यु के बाद पारदवासियोंने भन्तिगोनन भोर भिन्तिभोरसको यशता स्वीकार को थी। अन्तमें २५६ ई०के पहले इन्होंने सोरियाके राजाओंको वशयत परित्याग कर प्रथम पागलैगरी गाननाभोन स्वाधोन राज्य संस्थापन किया। इस समयसे पारदराज्य क्षमया वृद्धित हो कर यल्लेटिस नदीसे लै कर सिन्धु नद तक भोर सासुस नदीसे लै कर पारस्योपसागर तक फैल गया था।

पारदराज्य ई०पू० मन् २५६के पहलेसे २२६ तक स्थायी रहा। प्रथम पागलैगरी, प्रथम मितदात भोर द्वितीय क्लवरतीगरी समयमें यह यल्लेटिस भोर सिन्धुनद तक विस्तृत था। ई०पू० ५६के पहले रोमक सेनापति क्लासस के मारे जाने तथा उसके सैन्यदलके भ्रंश हो जानेसे पारदवासियोंका प्रभुत्व भोर भी बढ़ गया। रोमके प्रधान सेनापति सीजर भोर मोजरके बीच जब लड़ाई हुई, तब पारदके पक्षिवासियोंने पम्पोका पक्ष अवलम्बन किया था। सीजरकी मृत्यु के बाद इन लोगोंने मूठव भोर केससको सहायता की। ई०पू० ३०के पहले से पारदराज्यमें अन्तर्निर्णय पारम्य हुआ। पाल्वर २१७ ई०में पारदराज्यके श्रेष्ठ सम्राट् पार्सवनके शासन-अरसेन नामक किसी सेनापतिने पारदराज्यका यह गोचयोग देख कर स्वयं एक नूतन वंश स्थापन करना चाहा भोर पारसिकोंकी अपनी सहायताके लिये बुलाया। पारसिकोंने एक लक्ष मैन्यदल संग्रह करके क्षमया तीन युद्धमें पारदवासियोंको परास्त किया। बादमें पार्स-जरसेनने पारदराजाका समस्त राज्य छीन लिया भोर नूतन पारम्यराज्यकी प्रतिष्ठा की।

पहली और पारस्य देशों।

पारदण्डक (स० पु०) देगविशेष।

पारदमंक (स० त्रि०) पारं दमयतीति दमि-भ्युट्। जिसके भीतरसे लै कर प्रजापकी किरनोके आ सकनेके कारण सब पारकी वस्तुएं दिवाई दे।

पारदमंग (स० त्रि०) सन्तान, पारगामो।

पारदमंग (स० त्रि०) पारं पयति द्यमिनि। १ पर पारद्वटा। २ परिसामदमो। ३ विश्व। ४ पट्ट, समय। पारदारिक (स० पु०) परेवां अन्तेवां दारान् गच्छन्तीति परदार (गच्छती परदारिभ्यः। प ७, १० वा) इत्यस्य वाचिंकोत्तरा उक्त्। परदारस्त, परसोगामो। जो परदारस्त हैं उनके यम, यो आदि समो नष्ट होती हैं। परदार-गमन समो ग्राह्योंने निविह बतलाया गया है।

"यः परलोपु निरवस्थः धीर्वा कुतो वशः।

स च निन्यः पापयुक्तः पश्यवर्षवैवमाह च ॥"

(मद्रवै-मयो २१)

पारदार्य (स० त्रि०) परदार दारा यस्य सपरदारः तस्य कर्मेति व्यञ्ज। परदारगमन, व्यभिचार।

पारदहन् (स० त्रि०) पारं दहन् इत्यभूते जानिप्। पारद्वटा, जिह्वीने पारदमंग किया हो।

पारदेष्ट (स० त्रि०) परदेष्ट गत इत्यर्थे व्यञ्ज, प्रत्यय निष्पन्नः। १ भोषित, पारदेष्टिक, पथिक। परदेष्टे भवः व्यञ्ज। २ परदेष्टनात।

पारधी (हि० पु०) १ दृष्टो आदि की धीटने पक्ष-पक्षियोंकी पकड़ने या मारनेवाला, बहलिया। २ गिकारो। ३ अहोरो, हत्यारा, बंधिक। (स्त्रो०) ४ धीट, आह। पारन (हि० पु०) बारण देहो।

पारना (हि० त्रि०) १ डातना, गिराना। २ लीटाना। ३ कुतो या लड़ाईमें गिराना। ४ किसी वस्तुको दूसरे वस्तुसे रखने, उठराने या मिनानेके लिये सममें गिराना या रखना। ५ जमोन पर लम्बा डातना, लड़ा या उठा रहने देना। ६ सचि आदिमें डातन कर या किसी वस्तु पर जमा कर कोई वस्तु तैयार करना। ७ पत्रावस्था आदि उपस्थित होना, बुरो बात घटित करना। ८ किसी वस्तु या विषयके भीतर लेना, ग्रामित करना। ९ भरोर पर धारण करना, पचनना। १० रखना।

पारनेष्ट (स० त्रि०) पारं नेष्ट नो दृष्ट्। पारनयनकारी, दूसरे किनारे लै जानेवाला।

पारवती (हि० स्त्रो०) पार्वती देखो।

पारमहंस्य (स० त्रि०) परमहंसे गन्तव्यं परमहंस्य भावः परमहंसेन ज्ञेयं यत् प्राप्यमिति या परमहंस-व्यञ्ज। १ परमहंस स्वयंभो। २ परमप्रधान। ३ प्रत्यङ्गनिष्ठाव्य। ४ ज्ञानरूप।

पारमाण्विकर्षण (सं० क्री०) पारमाण्विकों का परस्पर
आकर्षण । (Molecular attraction) ।

पारमार्थिक (सं० त्रि०) परमार्थीय परमपुरुषार्थीय
हितं इति-ठक् । १ परमार्थशुक्त, परमार्थ सम्बन्धी ।
२ साध्याधिक, जो केवल प्रतीति या भ्रम न हो । ३
परस्पर विभक्त । ४ स्वाभाविक ।

पारम्परोप (सं० त्रि०) परम्पराया आगतः खञ् ।
परम्पराक्रमसे आगत ।

पारम्पर्य (सं० क्री०) परम्पराया आगतम्, ण्यञ्, ततो
चतुर्वर्णादित्वात् ष्यञ्, परम्परा स्त्रिये वाञ्, वा । १
आन्नाय । २ कुलक्रम । ३ परम्पराका माव ।

पारम्पर्योपदेश (सं० पु०) पारम्पर्येण गुरुपरम्पराया प्राप्तः
उपदेशः । उपदेशपरम्परा । पर्याय—ऐतिह्य, इतिह ।
इमं वृत्त पर यक्षवास करता है, ऐसा वृत्त लोग कहा
करते हैं, इस प्रकारका एक प्रवाद है और बहुत दिनोंसे
चला आ रहा है । ऐसे प्रवादका नाम ऐतिह्य वा पारम्प-
र्योपदेश है । किसी किसी दृश नकारने इस ऐतिह्य का
एक प्रमाण बतलाया है ।

पारयिष्णु (सं० त्रि०) पारयुति पार-यिष्-इण्यच्
(गेहृददति । पा ३।१।१३०) पारयमनने समयं, पार-
गामो ।

पारयुगोन् (सं० त्रि०) पारयुगे साधुः परयुग-वञ्
(प्रतिजनादिभ्यः घञ् । पा ४।४।१९) परयुगमें उत्तम ।

पारलोकि (सं० त्रि०) परलोके भवः, परलोकाय हितः
परलोक टक् । (अनुगतोकादीनाम्ब । पा ४।१।२०) इति
सुखे पोषयपदसृजिः । १ परलोके सम्बन्धी । २ परलोकमें
शुभ फल देनेवाला ।

पारवत (सं० पु०) पारावत, कवृत् ।

पारवश (सं० क्री०) परवशस्य भावः खञ् । पारतन्त्र्य,
परवशता ।

पारश्वगङ्—बम्बईप्रदेशके बैलगाँव जिलान्तर्गत एक मह-
कुमा । यह वृत्त जिसके दक्षिण-पूर्व कोणमें अवस्थित है ।
उत्तरसे दक्षिण पूर्व तक एक छोटे पहाड़से यह स्थान
प्रायः दो समान खण्डोंमें विभक्त है । मालप्रधानदी इस मह-
कुमेरे ठोका बीच की झर यह गई है । पोषकासके पक्षसे
ही यहाँ की छोटी छोटी नदियाँ चब जाती हैं और पुष्क-

रियो भी पलायनकर हो जाती है । इस स्थानके उत्तर
ओर पूर्वमें पक्ष वृष्टिपात होने पर भी दक्षिण ओर
पश्चिमकी ओर सद्यादि वर्षातके निकटवर्ती प्रदेशोंमें
काफो वर्षा होती है । मोन्दित प्राय इस महकुमेका
सदर है । यहाँ एक दोबागो, तथा १ फीजदारो
पदान्त ओर समथ मङ्कुमेमें ७ थाने हैं ।

पारश्वनाथ (पार्श्वनाथ)—हजारोबाग-जिलेके पूर्व
मानभूम जिलेके निकटवर्ती एक पहाड़ । यह जै नीका
तोय स्थान है और पञ्चा० २३°५०'३५"उ० तथा देगा०
८६°१०'३०"पू०के मध्य, समुद्रगर्भसे ४४८८ फुट ऊँचा
है । यह पहाड़ देखनेमें बड़ा ही सुन्दर है । जो एक
बार उसे देख चुके हैं, वे इसके मोन्द्यमें मृग्य हो गये
हैं । पक्षसे यह लङ्गलमे आहत था । किन्तु अभी
जपर जानिके लिये सुन्दर पत्र बना दिया गया है । इसके
शिखर देखीको जैन लोग 'ममैतशिखर' कहते हैं ।

यह पहाड़ दृष्ट-इण्डियन रेलवेको गिरोडोह नामक
स्टेशनसे १८ मील दूर है । स्टेशनसे यहाँ जानेके लिये पक्षो
सड़क बना दो गई है । १८५८ ई०में यह यूरोपीय
सेनिकोंके रहनेके लिये स्थाप्यकर स्थान समझा गया
और उसी साल वाकोपयोगी स्टेशन ही बनाये गये ।
किन्तु प्रभुर परमाण्वमें जल तथा चक्रवर्त्तमानके
लिये उपयुक्त यथेष्ट स्थान नहीं मिलनेके कारण १८८८
ई०में यह छोड़ दिया गया । पक्षने जहाँ सेनिक
कर्मचारियोंका आवास रह गया, अभी वही डाक-बङ्गला
हो गया है ।

यहाँ प्रतिवर्ष प्रायः दस हजार तोय यात्री समागत
होते हैं । अभी यहाँ पनेन जैन-मन्दिर बनाये गये
हैं । पार्श्वनाथ देखो ।

पारश्व (सं० पु० क्री०) १ सङ्घोष जातिमिद, ब्राह्मण
विता और शूद्रा मातासे उत्पन्न पुरुष या जाति ।

“यं ब्राह्मणम्पुत्रं प्रायां कायादुत्पद्येत धृतम् ।

स पारश्वेश शब्दस्मात् पारश्वः सृजतः ॥”

(मनु १।१७०)

ब्राह्मण कामवशतः शूद्रामे जो पुत्र उत्पन्न करते
हैं, वही पारश्व कहलाता है । पार या आदिदि
कार्यमें पारम होने पर भी वह शत्रु पर्याप्त मरुतु उत्प-

ई, याकादि किसी कार्यमें पारग नहीं होता इससे उसका पारगम नाम पड़ा है। वास्तविकयुद्धितामें लिखा है, कि ब्राह्मणके चौरस चौर शूद्राके गर्भसे जो जाति उत्पन्न होती है, उसे निपाद वा पारगम कहते हैं। (यज्ञवल्क्य १८१) २ परश्वी-तनय, पराई स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र। ३ कोह, लोहा। ४ एक देशका नाम जहां मोती निकलते थे। ५ परशुसम्बन्धीय शस्त्र।

पारगवायन (सं० पु०) पारगवण्य गोत्रापत्यं युवादि षष्ठ्यन्तो कञ्। (पा ४।१।१००) पारगवका युवा गोत्रापत्य।

पारशीक (सं० पु०) पारशीक इषोदरादित्वात् साधु।

पारशीक, देशभेद।

पारश्वध (सं० पु०) पारश्वधेन युज्यतेऽथो पारश्वधः प्रह-
रणमभ्येति वा पारश्वध-मण्। पारश्वधारी, कुठारधारी।

पारश्वधिक (सं० पु०) पारश्वधः प्रहरणमण्य (पराश्व-
धद्वयुक्। पा ४।१।५८) पारश्वहेतिक, कुठारधारी।

पर्याय—पारश्वध, पारश्वधावुध।

पारश्वय (सं० स्त्री०) सुवर्ण, लोहा।

पारस (हिं० पु०) १ एक कल्पित पत्थर, स्वर्णमणि।

इसके विषयमें प्रसिद्ध है, कि यदि लोहा उसमें कुत्ताया जाय, तो सोना हो जाता है। इस प्रकारके पत्थरको बात फारस, परब तथा युरोपमें भी रसायनियों पर्यात् कोमिया जमानेवालीकी बीच प्रसिद्ध थी। युरोपमें कुछ लोग इसकी खोजमें कुछ दैवान भी हुए। इसके रूप रंग आदि तक कुछ लोगोंने लिखे। पर धनमें सब त्याग हो त्याग निकला। हिन्दुस्तानमें अब तक भी बहुतसे लोग नेपासमें इसके होनेका विश्वास रखते हैं। २ परधन 'सामदायक' चौर उपयोगी वस्तु। ३ यामिके लिये लगाया हुआ भोजन, परसा हुआ खाना। ४ पत्तन जिसमें खानेके लिये पकवान, मिठाई आदि हो। ५ बादास या चूबानीकी जातिका एक सम्भोजन पटाही पैड़। यह देखनेमें टाकके पैड़-सा जान पड़ता है। चौर बिमानप पर मित्युके किनारेसे से कर सिद्धि तक होता है। इसमेंसे एक प्रकारका मोट चौर जहरीला रेत निकलता है। यह तेल टवाके काममें लाया जाता है। इसे गोदकृदाक चौर कामन भी कहते

हैं। ६ हिन्दुस्तानके पश्चिम सिन्धुनद चौर पकमानि-
स्तानके चामे पकनेवाला एक देश। पारस देशी।
(वि०) ७ तन्दुरन्त, मीरोग, चंगा।

पारमनाथ (हिं० पु०) पारमनाथ देशी।

पारसिक (सं० पु०) पारसीक इषोदरादि० साधुः।
पारसीक। पारसीक देशी।

पारवी—पारस्यका एक प्रादिम अधिवासी। इसका वर्ण-
मान प्रधान वास्तव्यान् गुजरात चौर बम्बई है। पारस्य
राज्यके पारम (Persia) नामक स्थानमें इनका याम
था, इस कारण ये पारसी कहलाये। पारसीकदेशके
किनारे जो सब भाग्यं रहते थे इनका एक भाग
पूर्वको चौर भारतवर्षमें चौर दूसरा भाग पश्चिमको
चौर चला गया। जो सब भाग्यं पश्चिमको चौर चले गये
थे, पारसी उनके वंशोद्भूत हैं। करीब ७२० ई०में
पारसीके पारस्य जौतने पर पारसिकोंमेंसे बहुतोंने
सुसलमानों धर्म ग्रहण किया। जिनोंने अपने प्राचीन
जहलुलधर्मका परित्याग कर सुसलमानों धर्मग्रहण
कारनेसे पक्षीकार किया था, वे पारस्यके भाग कर पक्षी
खुरादानमें जा कर रहने लगे। यहाँ प्रायः एक भी
वर्ष रहनेके बाद वे पारस्य उपसागरके धर्मज्ञापो-
में चले गये चौर वहाँ बन्दूक सर्व तैयार रहे। पोर्तु-
गेज गुजरातके उत्तर पश्चिमदिक्त्व दीज नामक होपमें
वास करने लगे। इसके कुछ समय बाद वे गुजरातके
दक्षिण प्रायमें जा कर बिरहयायी भावसे रहने लगे हैं।
पक्षी वे लोग बम्बई प्रदेशके अनेक स्थानोंमें भी फैल
गये हैं।

सुसलमानोंके पत्त्याचारसे जो सब पारसी स्वदेश-
का परित्याग कर भारतवर्ष आये, वे अपने जातीय
चरित्र चौर धर्मको पाज भी पक्षुष-भावसे रचा करती
हैं। ये लोग पहले पोतलिकता परिग्राम वा "एकेश-
द्वितीय" भगवान्के सिवा चौर किसीकी भी उपासना
नहीं करते थे। भारतवर्षमें आ कर पोतलिक हिन्दुओं-
के सख्तवसे ये लोग यद्यपि अभी धार्मिक पोतलिक
हो गये हैं, तो भी इनका पूर्वविग्राम ल्योंका त्याग
बना है—कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ है। पहले
ये लोग मुर्ति बना कर उसकी पूजा तो करते थे, पर

घृय, चन्द्र, धृतिशे, भग्नि, वायु आदिके उद्देशसे बलि नहीं चढ़ाते थे। इन लोगोंकी बलिदान-प्रथा कुछ और ही प्रकारकी थी। ये लोग बिना वेदो प्रसूत वा भग्नि प्रवृत्तित किये ही बलिके पशुको एक पवित्र स्थानमें ले जा कर खता द्वारा उसे बांध देते और देवताके उद्देशसे मन्त्रपाठ करके बलिदान करते थे। पवित्र चिन्ता, पवित्र वाक्य और पवित्र कार्य इन तीनोंसे उनको समस्त नाति स्मृति होती थी। वे लोग झूठ बोलना ना पसन्द करते थे। ऋषयग्रहण भी उनमें निकट सर्वथा निन्दनीय था क्योंकि ऋषीको बाध्य हो कर झूठ बोलना पड़ता था। उपासना करनेके पहले ये लोग हाथ और पैरको धो कर उपवीत खीन लेते और उपासनाके श्रेष्ठ होने पर फिरसे उसे पहन लेते हैं। उपासनाके पारम्पर्य 'सारश' नामक स्तर्गीय दूतको स्तुति करते हैं। स्त्रियां भी उपासना करती हैं। अग्निपूजा किये बिना ये लोग किसी भी देवताका पूजन नहीं करते।

भारतवर्षीय पारसीगण अपनी तोच्छुद्धि, शक्ति और व्यवसायवृद्धि-प्रभावसे एक धनवान् और समताशाली जाति गिने जाते हैं। ये लोग स्वधर्मका परित्याग कर कभी भी अन्य धर्म ग्रहण नहीं करते। पारसी पिताके औरन और हिन्दू मां सुपुत्रमान माताके गर्भसे जिन सब पारसियोंने जन्मग्रहण किया है, उन्हें स्वजातिके मध्य स्थान देने और उपवीत ग्रहण करनेके विषयमें ये लोग विशेष आपत्ति करते हैं।

पारसीगण जरयुस्त्रमणोत इक्कीस धर्मग्रन्थोंका उल्लेख करते हैं। इस ग्रन्थसमूहका नाम नस्त है। इसमेंसे पनेत्र ग्रन्थ अभी नष्ट हो गये हैं। इनके तीन प्रधान ग्रन्थोंके नाम ये हैं—

(१) पांच गाथा अर्थात् सङ्गीत। यह यपन नामक ग्रन्थका उपासना-ग्रन्थमात्र है।

(२) वन्दिदाद अर्थात् कुछ भाईन।

(३) यस्त अर्थात् दृश्यपूर्ण ग्रन्थ और अन्यान् देवताका स्तोत्र। एतद्भिन्नविस्वाद नामक एक और भी ग्रन्थ है।

इनमेंसे केवल वन्दिदाद ग्रन्थ सम्पूर्ण है, अन्य तीन-का अंशमात्र अवशिष्ट है। योक्त, रोमक और वर्तमान

सभी पारसियोंका कहना है, कि जरयुस्त्र (Zoroaster) इन सब ग्रन्थके प्रणेता हैं।

पारसियोंकी विशेष उपासनाका नाम पहनवेये वा हनोवर है। इस उपासनाके इक्कीस शब्द हैं, प्रत्येक जोरयुस्त्रियोंका पवित्र मन्त्र है। इन इक्कीस शब्दोंमें पूर्वज्ञान नस्त नामक इक्कीस धर्मग्रन्थोंकी कथा है। यह उपासना गोचे सिखी जाती है।

"यथा यह वे रीति, अथा यतुग, यगङ्ग चोह हवा, बंहेउम दजदा मन हो, स्तवधोयनानाम् पंहेउम सजदे, यगथे म्वा पहरादया, यिम द्रेगुयोदधह वास्तारेम।"

अर्थात्—जगदीश्वरको इच्छाका तरह सृष्टिका भी पक्षित्व है, क्योंकि यह सत्यसे उत्पन्न हुई है। इन जगत्में चिन्ता या कार्यमें जो अच्छा कदम कर सृष्ट हुआ है, उसका मूल अद्वैतमण्ड है। जब हम लोग दरिद्रको सहायता करने जाते हैं, उस समय अद्वैतको राजस्व प्रदान करते हैं।

वर्तमान पारसी धर्मानुसार ७ अग्निग्रन्थ (ग्रन्थ) हैं, ऐसा अनुमान किया जाता है। इन्हें पारसी लोग अविनश्वर पवित्र पदार्थ समझते हैं।

उत्सवादि—१ पर्वि-वेदिक-यमग उत्सव। अग्नि-देवता पर्वि-वेदिक अग्निग्रन्थके सम्मानार्थ पारसी लोग यह उत्सव करते हैं। इस दिन ये लोग अग्नि-मन्दिरमें दल बांध कर जगदीश्वरको उपासना करते हैं।

२ पाव अदु-द-सुर यमन—पाव नामक समुद्र देवताके सम्मानार्थ यह उत्सव किया जाता है। पारसी लोग इस उपलक्षमें किसी समुद्र वा नदीके किनारे जा कर जगदीश्वरको उपासना करते हैं। अम्बेइगढ़के मंदिरमें इस उपलक्षमें एक बड़ा मेला लगता है।

३ अमरदाद-खाल-पर्वोह—अमरदाद-खाल नामक उत्सवका अंशमात्र है। पारसियोंके सप्तम अग्निग्रन्थका नाम अमरदाद है।

४ पतेति गोरोज वा नववर्षोत्सव। पारसीराज यजदेजार्दके सम्मानार्थ श्लोक प्रत्येकको यह मेला लगता है। इस उपलक्षमें पारसी लोग सर्वोपे मिलते और दरिद्रोंको दान देते हैं।

५ रातिवर उत्सव। यह भी पारसियोंके अग्नि-

देवता यदि वेष्टने के सम्मानार्थ होता है।

६ खुरदाद-माल उदाहृतः जरयुक्तके सम्मानार्थ किया जाता है। इन सब उक्तवर्गों में पारसी लोग अधिक बाह्योद्गम्य नहीं दिखाते।

मृतककार—पारसीरोगियों को चिकित्साका भार जिन सब चिकित्सकों के हाथ रहता है, उन्हें पड़ने को कह दिया जाता है, कि वे यदि देखें कि रोगी के बचने की आशा नहीं है, तो पहले ही उसको खबर दें। रोगी को गिर्वाणस्थान में होम (सोम) जल पान कराया जाता है। पीछे उसको मृत्यु होने पर एक निम्नतम गृह की सभी द्रव्यों को स्थानान्तरित करके उसमें मृतदेह रखा जाता है। द्रव्यादि स्थानान्तरित करनेका कारण यह है, कि पारसी लोग मृतदेह को बहुत अपवित्र समझते हैं। बव्बई में 'निसस सत्तर' नामक एक श्रेणी के पारसी हैं जिनका काम केवल मृतदेहका वहन करना है। 'निसस' शब्द का अर्थ अपवित्र है। वे लोग 'मैतगृह' नामक पारसियों के मृतकालागृह में मृत देह को ले जाकर रखते हैं। पारसी इस मैतगृह की 'दीखमा' कहते हैं। कुल मिला कर यह मैतगृह (Tower of silence) है, जिनमें एक दण्डित व्यक्तियों के लिये और शेष पाँच जनसाधारण के लिये निर्दिष्ट हैं। शेषोक्त गृह सनवार पर्वत के शिखर देग पर एक सुन्दर उद्यान के मध्य स्थापित है। यहां बहुत स्थूल शकुनो और गृध्रियों रहती हैं। प्रधान मैतगृहका व्यास प्रायः ८० फुट मात्र है। यह कोणाकृत और प्रस्तरनिर्मित है। इसकी ठीक मध्यस्थान में दस फुट गहरा एक कूप है। यह कूप मैतगृह के तलदेग तक चला गया है। इस कोणाकृत गृह के चारों ओर एक अण्डोष प्रस्तरनिर्मित प्राचीर है जिससे यह दुर्ग-सा दीख पड़ता है। पारसी-गण पृथिवी को अपवित्र समझते हैं, इसी लिये जिसमें मृतदेहका दूषित पदार्थ उसमें मिश्रित न हो सके, उसी में मैतगृह की प्रस्तर पर बनाया है। इस गृह के मध्य तीन समकेंद्रिक हस्ताकार में अर्जित, २० मृतदेह रखने को जगह है। यह समकेंद्रिक हस्त के चारों ओर पथ है जिसके साथ एक दूसरा पथ बाहर के एक द्वार के साथ संलग्न है। द्वार से कर मृतदेह दोनों के मैतगृह की मध्य

खल्लन्दनासे प्रवेश कर सकते हैं। समकेंद्रिक दोनों हस्तों में से बाहर वाले चरम पर पृथ्वी की मृतदेह, मध्य चरम में स्त्रियों की मृतदेह और कूर्च निकटस्थ सुन्दरतम हस्त में शिशु की मृतदेह रखी जाती है। मृतदेह को मैतगृह में लाते समय सबसे पहले एक व्यक्ति दो एक रोटी ले कर आगे बढ़ता है। पीछे मयवाहक, उनके बाद एक श्वेतवर्ण कुम्हार और सबसे पीछे शम्भु-परिच्छदपरिहित पुण्डितगण और मृतव्यक्ति के धामोय वस्तुधान्यगण आगमन करते हैं। मृतदेह को हस्तम मैतगृह के वहिर्द्वारे ६० हाथ की दूरी पर रख कर कुम्हार को उनके समीप से ला कर दिखाया जाता है। बाद में उसे रोटी खाने की दी जाती है। पारसीगण इस प्रथा को 'सगदाद' कहते हैं। इसके बाद मयवाहक मैतगृह के मध्य मृतदेह को ले जा कर घनाट्ट कर रखते हैं। इस कार्य के शेष जो जानिये हैं वे सब गृहका त्याग कर निकटवर्ती एक जनाग्रयण में स्नान करते और परिधेय वस्त्रों को वहीं छोड़ जाते हैं। मृतदेह को मैतगृह में रखने के साथ ही शकुनो गृध्र प्रादि पक्ष परसे नीचे उतरते और उसे कद्दाला-वशिष्ट कर डालते हैं। इसके तीन वा चार सप्ताह बाद वह कद्दाल मैतगृहमध्यस्थ कूप के मध्य पथप्रारित किया जाता है जहाँ वह सदा के लिये रह जाता है।

श्राद्धावस्थामें पारसी बालक और बालिका दोनों ही श्रम कुरता पहनते हैं। बालक की सातवें वर्ष (क: वर्ष तीन मास) में यज्ञोपवीत दिया जाता है। इसी समयसे वे श्रमो कुरतेका परित्याग कर सदगे (बादर) नामक पवित्र कुरतेका व्यवहार करते हैं। पारसी बालकों की धर्म-शिक्षा-प्रथाओं में सबसे पति महीन है। वे अन्ध-धवस्ता के कुछ स्त्रीय सुपुत्र्य कर लेते हैं, पर उसका एक वर्ष भी समझन सकते हैं। कुछ दिन दृष्ट, इस प्रथावकी पूर्ण करने के लिये पारसियों ने पत्नी के छेदा की है। पत्नी बालकों को जरयुक्त धर्म के सभी विषयों को शिक्षा दी जाती है।

पारसी भूस्वपान नहीं करते। गोमूत्र उनके निकट पवित्र समझा जाता है। इसीसे निर्दिष्टक बाद वे गोमूत्र से कर हाथ और सुं हैं देते, पीछे उन्हें भी

डालते हैं। प्रत्येक धार्मिक पारसीको दिनमें सोनह बार सपासगा करनी होती है।

सन्तान होनेके बाद १० दिन तक पारसिक रमणियोंकी सवसे प्रथक रचना पड़ता है।

पारसियोंमें सद्य-विवाह और बाद्य विवाह प्रचलित है। वधू जब तक सवंप्राप्त नहीं होती, तब तक स्वामीके घर नहीं जाती है। समे पारसी-स्त्रियों प्रायः पतिव्रता होती हैं। ये स्वामीको नाम ले कर नहीं पुकारतीं। गो और शूकरका मांस-भक्षण पारसियोंके पक्षमें निषिद्ध है। ये लोग गाराब खूब पीते हैं और खानेके पहले मनोश्चरण करते हैं।

पारसियोंमें विवाहप्रथा कोई शुक्तर विषय नहीं समझा जाता। यह दोनों पक्षकी सम्प्रतिके ऊपर निर्भर है। विवाहके उपलक्षमें पक्षपर आमोद प्रमोद हुआ करता है। भतीजे और बहिनके मध्य भी विवाह हो सकता है। पूर्वकालमें पिताकी मृत्यु होने पर विमाताका पाणिग्रहण निषिद्ध न था।

पारसीगण अपने प्रत्येक राजाके शासनकालसे श्रद्धाकी गणना करते थे। उनके प्रेराजा यजदेजार्देके समयसे आज तक १२४५-४६ शक हुए हैं। प्रति वर्ष ३६५ दिनोंका होता है और सौरवस्सरके साथ सामञ्जस रखनेके लिये १२० वर्षके बाद १ मास जोड़ दिया जाता है। एक वर्ष १२ मासोंमें विभक्त है। प्रति मास ३० दिनोंका होता है। वर्षके ३६५ दिन पूर्ण करनेके लिये ग्रेप मासमें ५ दिन जोड़ दिये जाते हैं। पारसी मासके नाम ये हैं—फरवरदिन, अर्दिबेस्ता, खुदी, तिर, अमरदाद, शरिवर, मेहेर, पावन, आदर, दे, बाह्यण और अशफन्दार।

भारतवर्षीय पारसी शासनयाही बारसमी और कादिमी वा चुरिगर नामक दो सभ्यताओंमें विभक्त हैं। अधिकतर पारसी प्रथम सभ्यतावशुक्त हैं। यह अंधो-विभाग १८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें खिर हुआ था।

शक्तगणना और सपासगाप्रवृत्तिसे विषयमें सामान्य प्रमेदके सिवा दोनों दलमें विषये पाषाण्य नहीं है।

पारसी (-सं० स्त्री०) पारस्वभावा, पारस्यदेशभव विधादि। पारस्य भाषाका अध्ययन शुभ दिन देख कर करना होता है।

“येखादेबा मणाम्बा रवती मरान्दये।

विशाखाचोत्तराषाढा दशमे पाववासे ॥

उन्ने दिवरे सचन्द्रे च पारसीरवौ पठे ॥”

(गणपति-सुहृत्तन्त्रिनामनि)

ज्येष्ठा, अश्लेषा, मघा, मूला, रेवती, भरणी, विशाखा उत्तराषाढा और श्रतमिया मलत्रमें, शनि, मङ्गल और रविचारमें, सचन्द्र स्थिर सङ्गमें भरणी और पारसीका अध्ययन करना चाहिये। पारस्यभाषाके प्रथममें यहो दिन उत्तम है।

पारस्य शब्दके शेषमें पारस्य-बाहिलका विशयमें देशी पारसीक (सं० पुं०) १ देगविशेष, पारस्य देग। पारस्य देशका निवासी। २ पारस्य देशका बोझ। पर्याय—बानायुज, पराइन, बाह्यन। पारसीकयमाना (सं० स्त्री०) पारस्यदेशीय टमाकी विशेष, खुराशानो अन्नवायन। यह पाचक और रुचिकर है। वैद्यकनिषण्डके मतसे इसका गुण—अग्निदीप्तिकर, उपर, लघु, तिदीप, अजीर्ण, कृमि, और आमनाशक।

पारसीकवचा (सं० स्त्री०) खेतवच, खुरासानोवच।

पारसीकेय (सं० स्त्री०) १ पारसीजसम्बन्धीय, पारस्य

देशसम्बन्धी। (स्त्री०) २ कुटुम्ब

पारस्कर (सं० पुं०) पार करीति। १ पारस्कर दला

सहायन। २ देशभेद, एक देशका प्राचीन नाम

२ गृह्यसूत्रकारक सुनिभेद।

पारस्करादि (सं० पुं०) पाणिनीय गणपाठोक्त

गणभेद। यथा—पारस्कोदेश, कारस्कोरुह, यस्मात्

किष्क, प्रमाण, किष्कित्या, गुहा।

पारस्कोषेय (सं० स्त्री०) परस्त्रिया जाता (कलाशा

नामिन्। वा ४११/१९६) इति टक, इनडादिग, म

समयपदसङ्घः। पारस्कोसुत, पारस्कोस्त्रीसे सप्त

पुत्र, नारजपुत्र।

पारस्यरिक (सं० स्त्री०) पारस्यभाषा, भाषिका।

पारस्य—देशभेद। इसका दूसरा नाम ईरान है

भेमी पारस्य और ईरान ये दोनों शब्द एक सम

व्यवहृत होने पर भी समय शब्दकी उत्पत्तिके सम्बन्ध

अनेक गोकमात्र है।

नामोल्लिखित

कोषाकार ग्रिनामिनि पारस (सैटिन भाषामे - पारसि शब्द) प्रचलित है और प्राचीनकालमें इस राज्यके उत्तर माद एवं उत्तर-पश्चिममें शुवकी (सुसियाना) राज्य था। इसको पूर्वतन राजधानीका नाम पारस-पली (Persopolis) है।

पहले पहले अखमनीय (Achaemenian) ने उक्त पारस (Persis) नामक स्थानसे आ कर जो साम्राज्य स्थापित किया और जहां शासनीय (Sassanian) राज्यकी उत्पत्ति हुई, उसे पारस वा पारसि राज्य और उसकी अधिवासियोंको 'पारसय' कहते थे। इस प्रकार पारस वा पारसि नामक स्थानसे इन दो साम्राज्यों की उत्पत्ति हुई थी, इस कारण से दो साम्राज्य 'पारसय' वा पारस्य नामसे प्रसिद्ध हुए।

पहले ईरान शब्दसे कुर्दिस्थानमें जे कर चकगानि-स्तान तकके भूभागका बोध होता था। कुर्दिस्थानके निकटवर्ती जो ईरान अधिराज्य है, वह भाग लोगोंकी आदि-निवास भूमि समझी जाती है। हिरो-दोटसने लिखा है, कि राजा दरायुस अपनेको पारस्य-राजपुत्र पारसोक और पार्यपुत्र पार्य कहते थे तथा प्राचीन उच्च वंशोद्भव मनुष्य अपने नामके पहले पार्य शब्द लगाते थे। अर्थात्, आरियारान (Ariaranes), आरियारगनीस (Ariavargenis)। पार्य लोग जहां रहते थे उस स्थानका नाम आर्याना वा आरियाना (Ariana) है।

प्राचीन मुद्रा और कोटित विविध लिखा है, कि पर्देगौर एरानराज्यके सर्वप्रधान राजा थे। उनकी सेनापति एरान कहलाता था। मत् ५०० वर्षोंसे पारस्य-देशके लोगोंने एरानके बदलेमें ईरान शब्दका व्यवहार करना प्रारंभ कर दिया है।

प्राचीन ईरान वा उत्तर-महाराज्य।

दिव्यजयो अलेक्सन्दरकी मृत्युके बाद बाबिसन-निवासी बेरोसस (Berossus) लिख गये हैं, कि ईसा-जन्मके प्रायः २००० वर्ष पहले मिदस (मद्र) जाति ने बाबिसन पर अधिकार किया और उसके ८ राजाओं ने यहां २२४ वर्ष तक राज्य किया। किन्तु यह जाति

ईरानी थी वा नहीं इस विषयमें बहुतांश मतभेद है। जो कुछ हो, ईरानराज्यके मध्य चलेक छोटे छोटे राज्य थे और इसके पूर्वभागमें पसुस, मदीके समीप बख्तर (Bactria) नामक जो राज्य था, उसका विशेष प्रभाव मिलता है।

ईरानी प्रदेशके छोटे छोटे राज्य एक समय एगमतान (Ecbatana) नामक साम्राज्यके अन्तर्गत थे। इस साम्राज्यका विवरण बहुत कम जाना जाता है। इस राज्यपतनके बहुत समय बाद दोष इतिहासवेत्ता हिरोदोटस और टिसियसने पूर्वदेशीय लोगोंके सुवर्ण पाट्यायिका सुन कर जो इतिहास लिखा है, उसका अधिकांश चमूखत और अधिग्राह्य है। इन दो इतिहास लेखकोंके मध्य जैसे मतभेद देखा जाता है उसमें बोध होता है, कि उन दोनोंने जो प्रचलित पाट्यायिका सुन कर अपना अपना इतिहास लिखा है।

हिरोदोटसके मतसे ॥ और टिसियसके मतसे ८ राजाओंने मिदीयाने राज्य किया। टिसियसका इतिहास निम्नोक्त ध्वंससे प्रारंभ हुआ है। हिरोदोटसके मतसे फ्रारतिय (Phraortes) के पुत्र दिवकेस (Deioceus) ने मिदीयाराज्य सबसे पहले संस्थापन किया। मिदीयाराज्यकी प्रतिष्ठाके पहले आसिरीय (वा प्राचीन असुर) राज्य पत्यन्त प्रबल था। इस समय मिदीया छोटे छोटे राज्योंमें विभक्त था। असुरराजने मिदीय-राज्यको अपने अधीनमें लानेके लिये अपने वार चेटा को। किन्तु सम्यक् रूपसे ये फलीभूत न हुए। दिवकसके स्त्रापीन होनेके पहले असुरराज्यमें आजाकना फैली थी, ऐसा प्रतीत होता है। दिवकसने ईसा-जन्मके पहले ७०८ से ६५६ ई० तक राज्य किया। वे यद्यपि स्त्रापीन थे, तो भी असुरोंके निकट पुनः पुनः वश्रता स्वीकार करनेको बाध्य हुए। उनकी बाद तीन राजाओंने राज्य किया। अनन्तर फ्रारतिय (Phraortes) ने ई० मत् ६५६ से ६४० के पहले तक राजकाय चलाया। उन्होंने पारस्य और मिदीयाके दक्षिण-पूर्व भागको जीत कर मिदीयाराज्यका पुटिभाजन किया। दरायुस (Darius) की खोजित लिपि पढ़नेमें जाना जाता है, कि इस समय पारस्यदेश छोटे छोटे अंगोंमें विभक्त और भिन्न भिन्न राजाओंके अधीन था।

पारस्यदेश जोते जीनेके बाद प्रवेरतिगने एक एक करके घनेक राज्य जीते, किन्तु अन्तमें असुरोंके साथ युद्धमें मारे गये।

प्रवेरतिगकी मृत्युके बाद थोरवर हुवचत्र (Cyaxares) उनके उत्तराधिकारी हुए, हुवचत्रके समय मिदीयगण अति प्रतापशाली हो गये। वे दल-बलके साथ निनिमी जीतनेके लिये पंचसर हुए और अनेक युद्धोंमें इन्होंने विजय पाई। किन्तु इस समय शक लोग (Scythians) मिदीय-साम्राज्यमें लूटपाट मचाते थे, इस कारण हुवचत्रकी स्वदेश कोटना पड़ा। अन्त शकगण किस देशसे आये थे, साधूम नहीं। लेकिन बहुतसे अनुमान करते हैं, कि ये लोग कार्पेथिय कटकके पूर्वमें अवस्थित तुर्कस्तानके अधिराज्यप्रदेशसे पहले पहल आये। शकोंके साथ संघाममें हुवचत्र जयलाम कर आये। अन्तमें उन्होंने शकोंके हाथसे निष्कृति पानेके लिये सन्धि करनेका बहाना कर शक-सेनापतियोंको आमन्त्रण किया और विषाक्त पानीय द्रव्यका सेवन करा कर उनके प्राण ले लिये। इस प्रकार मिदीय-अधिपतिने शकोंके हाथसे छुटकारा पा कर बाबिलनराजको-सहायतासे ईसाजन्मके पहले ६०० ई०में निनिमीको तहम नहस कर डाला। असुरराज्यका अधिकांश उनके हाथ लगा और बहुत कम भाग बाबिलनराजकी मिला।

इसके बाद हुवचत्र मिदीयोंके साथ लड़ाईमें लग गये। उनके अधीनस्थ कितने शककर्माचारियोंने भग्न-कर मिदीयराजका आश्रय ग्रहण किया। यही ले कर दोनोंमें युद्ध उपस्थित हुआ। इस युद्धके पहले हुवचत्रने पार्सेनिया और कप्पाटोकियाको जीत लिया था। मिदीयोंके साथ पाँच वर्ष तक युद्ध होता रहा। अन्तमें युद्धके समय दार्शनिक थेसिस (Thales)की सविश्व-दृष्टिको अनुसार सूर्यग्रहण लगा। मिदीय लोग भयभीत हो कर सन्धि करनेको बाध्य हुए। गणना द्वारा यह स्थिर हुआ है, कि यह सूर्यग्रहण ५८४ ख० पू०में हुआ था। इसकी कुछ समय बाद हुवचत्रकी मृत्यु हुई। पीछे उनके लड़के अस्थियुग (Astyages) सिंहासन पर बैठे।

अस्थियुगका विषय बहुत कम जाना जाता है। इस समय मिदीयसाम्राज्य सम्यताके सोपान पर बहुत दूर चढ़ गया था। पारस्यदेशके अधिशामियोंने मिदीय लोगोंसे राजनीतिक और युद्धसम्बन्धोप-निवृत्तियों, वंशभूषा आदि सोखी थी। मिदीयोंको निर्मित पद्यात्मिकादिका भग्नावशेष अभी देखा नहीं आता, केवल उनके निर्मित लक्ष्मणाय सिंहासनों का ही भग्नावशेष पड़ा है। प्राचीन पारसियोंके पुरोहितकी मधुसू कहते हैं। हिरोदोटसकी मतसे पहले पारसिक पुरोहितगण मिदीयोंमेंसे चुने जाते थे। इससे साधूम होता है, कि मिदीय वा उत्तरमध्यकी राजाओंने ही सबसे पहले लघुस्व-धर्म स्थापित किया।

पारस्य राज्य।

अस्थियुगके बाद मिदीय-साम्राज्यका अक्षयपतन हुआ और कुरुस (Cyrus) सिंहासन पर अधिकृत हुए। इसी समयसे पारस्यराज्यका प्रथम मूलपान हुआ। कुरुसका जन्म राजवंशमें हुआ था। कम्बुजोय (Cambyses) उनके पिता थे। बेहिसतून नामक स्थानमें दरागुसकी जी. खोदित लिपि है उसमें कुरुसकी वंशावली इस प्रकार पाई जाती है:—

अखमनिश (Achaemenes)

१ चिश्पेस (Teispes)

२ कम्बुजोय (Cambyses)

३ कुरुस (Cyrus)

४ चिश्पेस (Teispes)

५ कुरुस आरामिनस (Artabanus)

६ कम्बुजोय ह्यस्तास्प (Hystaspes)

७ कुरुस (Cyrus the great)

८ दरागुस (Darius)

अखमनिश (Achaemenes) इस राजवंशके आदि पुरुष थे। इनके बाद चिश्पेस (Teispes) राजा हुए। वे मिदीयसाम्राज्य स्थापनके पहले ७२० ख० पू०में जीवित थे। कुरुसकी विजयलिपि

मान्य होता है, कि उनके पूर्वप्रदत्त पारस्यदेशके राजा नहीं थे, केवलमात्र पनसुन नामक नगर उनके अधिकारमें था। हिरोदोतमने लिखा है, कि कुरुस इस्तुमिगुकी कन्यासे उत्पन्न हुए थे। किन्तु यह कहाँ तक सत्य है, कह नहीं सकते। कुरुसने पारमिकोंकी सहायतासे इस्तुमिगुके विरुद्ध अस्त्र धारण किया। उन्हें दमन करनेके लिये हर्पाग (Harpagus) भेजे गये। किन्तु हर्पागके साथ कुरुसका पड़यन्त्र रहनेके कारण मिदीयसैन्यके एक अंगने विमर्शसञ्चालकतापूर्वक युद्धकालमें कुरुसका पक्ष अवलम्बन किया और अर्धगिष्ट सेना भाग जानिकी बाध्य हुई। पीछे इस्तुमिगुने स्वयं कुरुसको विरुद्ध युद्धयात्रा की। अन्तमें पराजित होर बन्दी हुए। बाबिलनके शिंलाफलकमें लिखा है, कि मिदीय-साम्राज्यका पतन ५५८ ख० पू०में हुआ था। कुरुस इन युद्धके बाद हगमतान (Ecbatana) जीत कर पनसुनकी लौट गये।

कुरुस (Cyrus)।

(राज्यकाल ५५८ ख० पू० से ५२९ ख० पू० तक)

हगमतान जीतनेके बाद कुरुस मिदीय साम्राज्यके अधीश्वर हुए। किन्तु इन समय साम्राज्यके दूरवर्ती स्थानोंमें विद्रोह उपस्थित हो गया। कुरुस वही सुदिकलमे इन सब प्रदेशोंका शासन करनेमें समर्थ हुए।

राज्यमें सर्वत्र शांति स्थापित हो जाने पर कुरुसने मिदीय प्रदेशके अधिराज धनकुबेर कीरेगास्यके विरुद्ध युद्धयात्रा की। कपदुक् (Cappadocia) नामक प्रदेशमें प्रथम युद्धउपस्थित हुआ। इसमें कीरेगास्य पराजित हो कर मृत; सैन्य संघट्टके लिये स्वदेशकी लौट। किन्तु कुरुसने दलबलके साथ उनका पोछा कर सम्पूर्ण रूपसे उन्हें पराजित होर कौट किया। कुरुसने पहले कीरेगास्यकी धनमें दम्भ करनेका पाद्रेय दिया, पर पश्चात् उन्हें क्षमा प्रदान की। ५४६ वा ५४० ख० पू०में कीरेगास्यकी पराजय हुई।

मिदीयोंको स्वाधोभता मोप हो जानेसे बाद एगियाधानो वीक (यवन)भीतोके माय कुरुसका निजट खड़ा हुआ। सोकीने द्युक्त पहले एगिया-सारनरमें उप-

निवेश संस्थापन किया था। कालक्रममें यह प्रदेश बहुभगरपूर्ण होर सन्तुष्टिवालो हो उठा। मिदीयगण इन योकीकी धीरे धीरे अपने दगमें लाये थे। किन्तु कीरेगास्यको पराजयके बाद उन्होंने कुरुसके अधीन रहनेमें अनिच्छा प्रकट की थी। कुरुसने बहुत कोशिश काकी योकीकी अधोभताप्राप्तिमें भाव्य किया। योक्त लोग प्रति वर्ष कर देने होर युद्धके समय रणतरे दे कर सहायता करनेमें राजी हुए। पारमिक लोग योकीको पञ्चरपहति होर धर्ममें हस्तक्षेप नहीं करेंगे, यह भी स्वीर हुआ।

योक्त लोगोंको पराजयके बाद कुरुसने बाबिलन पर अधिकार जमाया। बाबिलनराज शासकमरण करनेकी बाध्य हुए। अन्तर कुरुसने बाबिलनके मिश्रवर्ती स्थानोंकी जीत लिया। फिनिक (Phoenicians) हमिदाद पादि जातियोंने उनको अधोभता स्वीकार की थी।

इरायुसकी खोदित लिपिमें देखा जाता है, कि पारस्यदेशके समस्त भूभाग, उत्तरमें अक्षु (Oxus) नदीके तीरवर्ती स्थान होर पश्चिममें अफगानिस्तानका अधिकांश कुरुसके अधिकारमें था। कहते हैं, कि कुरुसने भारतवर्ष पर भी आक्रमण किया था, पर वे अतिकाय न हो सके थे।

कुरुसकी मृत्युको सम्बन्धमें नाना प्रकारकी गल्प प्रचलित हैं; पर वे अपने राज्यके उत्तर-पूर्व किमी अमध्य जातिके साथ युद्धमें मारे गये थे, केवल यही प्रवाद सत्य प्रतीत होता है। कुरुसकी मृत्युके बाद कम्बुजीय (Cambyses) ने पिताको मृतदेहकी सन्देश स्वीकार समाधिस्थ किया था। सुर्वीय नामक स्थानमें उन समाधिका चिह्न आज भी विद्यमान है। यहाँ एक स्तम्भमें लिखा है, "हम कुरुस राजा अथमनियके अंश सम्भूत हैं।" पारमिकगण होर हिरोदोस, जेनोफन पादि ऐतिहासिकोंने इन्हें एक चादर राजा मान कर अत्यन्त सुप्रासि की है। वे एक प्रवलपराक्रान्त राजनीतिज्ञराजा थे, इसमें सन्देह नहीं।

कम्बुजीय (Cambyses)

कुरुस ५२८ ई०सन्तुके पहले यर्दिय (Smerdis) होर कम्बुजीय नामक दो पुत्र छोड़ कर परलोककी

मिथारि। उनको मृत्युको बाद दोनों भाइयों में विवाद खड़ा हुआ। दरायुसको खोदित लिपिमें लिखा है, कि कम्बुजोय क्लिपके अपने भाईको मार कर मिहामन पर बैठे। सिंहासन पानेके बाद वे मिथदेश जीतनेके लिये अग्रसर हुए थे। मिथ प्राचीनकालसे ही सस्यदि-मानो देश समझा जाता था। इसी कारण कम्बुजोयको मिथ जीतनेको इच्छा हुई। मिथमें पेलुसियन नामक स्थानमें घनघोर युद्ध हुआ। इस युद्धमें मिथराज मर्यकूपसे पराजित हो कर अपने राजधानी मेम्फिस नगरको भाग गये। मेम्फिस नगर बहुत ही जड़द शत्रुके हाथ आ गया। पारस्यराजने मिथवासियोंके प्रति भयावहकी पराकाष्ठा दिखाई दी। पीछे मिथराज सामनेनितस (Psamenitus) मारे गये। एतद्विषय देवमन्दिरका लूटना, भूमर्भमें रक्षित मृतदेह (Mummy) का दाहन, मिथवासियोंके सपास्य हनन, लोक-हत्या आदि नाना प्रकारके भयावह कार्य हुए थे। पारस्य-राजने इजिप्टराजको दो कन्याओंका पाणिपट्टण किया।

जब कम्बुजोय मिथमें बसा था, उस समय सड़मा ल्होने सुना कि गोमाता नामक एक वाक्त्रिने 'वर्दिय' नाम धारण करके सिंहासन पर प्रधिकार कर लिया है। यह सन्वाद पति हो वे उसी समय स्वदेशको चल दिये। किन्तु अपने राज्यमें लौटने में न पाये, कि राहमें ही वे करालकात्तिके गालमें पति हुए।

कम्बुजोयकी मृत्युके बाद गोमाता पारस्यका शासन करने लगी और सबोंने ल्हो राजा मान लिया। ल्होने राजस्वकी दर बहुत घटा दी और छोड़े हो दिन क अन्ध की मर्भजनप्रिय हो उठे। किन्तु प्राचीन राज-वंशोद्भव मनुष्य उनसे प्रति विद्रोहो थे। अन्तमें मात व्यक्तियोंके पहलुस्वसे ५२१ ख्रिपूर्वाब्दे भारतमें गोमाता मारे गये और दरायुस (Darius) राजपद पर अभि-पूजित हुए।

दरायुसका दा रायपुस (पूजित नाम दरायुस Darius)।

दरायुसने सिंहासन पा कर कुदसको कन्या और कम्बुजोय तथा राव्यापहारक वर्दियको पत्नी पत्नीप्राप्ति विवाह किया और जिन लः वाक्त्रियोंको सहायतासे ल्होने राजानाम किया थी उनमेंसे एककी बालवर्ष

समेत मरवा डाला। योड़े हो समयमें मरवा ल्हो और चशान्ति को न गई। पार्थिया, बाबिलन, पर्मे-निया, मिदीया आदि प्रदेश स्वाधीन हो गये। एक वाक्त्रि 'वर्दिय' नाम धारण कर दरायुसने विपन्न ल्हो हुए। बहुतसे लोग उनके साथ मिल गये। दरायुसने अथम और बुद्धिकीश्वरने यह विद्रोहान्त प्रयत्न किया। पार्थियोय-विद्रोहदमनके बाद दरायुसने कई एक युद्धोंमें बाबिलनराजको परास्त किया और बहुत दिन तक नगरको घेरे रहनेके बाद बाबिलन पर आधि-कार जमाया। इस समय ल्होने सुना, कि मिदीयाके प्रवर्तरी विद्रोही हुए हैं और पार्थिव तथा बरकानगण (Hyrcanians) ने उनका साथ दिया है। दरायुसने विद्रोहदमनके लिये कई दल सेना भेजी, पर वे शत्रु-को हाथने पराजित हुईं। अन्तमें दरायुसने स्वर्ग मिदीयाको युद्धसेवमें उपस्थित हो कर शत्रुओंको परास्त किया।

इस प्रकार माना स्थानोंमें विद्रोहदमनके बाद दरायुसने सुचारुरूपसे राज्य चलाये पर ध्यान दिया। भविष्य-में जिससे किसी प्रकारका मोलमान न हो, उनके लिये ल्होने अपने विद्रोह राज्यको जमाना पंशोंमें विभक्त किया और प्रत्येक स्थानमें एक एक सत्रप (Satrap) वा शासनकर्त्ता रखा। ये सब शासनकर्त्ता किसी भी प्रकार विद्रोहाचरण न कर सकें, इसकी लिये उनकी देखरेख में एक कर्मचारी नियुक्त किया गया। सत्रपके अधीन सेना तो रहनी थी, पर उनके शासितप्रदेशमें जो सब दुर्ग थे, वे राजाके पखोन ही रहते थे। इसकी पन्नावा दरायुसने प्रत्येक विभागात् राजस्व निश्चिदित कर दिया। शेषोक्त कार्यके लिये पारसिकगण दरायुस पर अत्यन्त चपसन्त हुए। जो कुछ ल्हो, दरायुसने पूर्व प्र-पूजित विधिव्यवस्थाको धनक उत्पत्ति को, इसमें सन्देह नहीं। इसकी बाद वे राज्य फैलानेमें अग्रसर हुए। बेहस्तून नामक स्थानमें जो कोषाकार लिपि है, उसे पढ़नेसे मात्तम होता है, कि ल्होने मित्थुनदीको तीर-भूमिका आविष्कार कर पीछे भारतवर्ष जीता था, किन्तु यह धम लक है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। मानम पड़ता है, कि ल्होने मित्थुनोत्तर-प्रदेश जीता

या घोर वही विभाग भारतवर्ष नामसे वर्णित हुआ है।

इस समय शकजाति अत्यन्त पराक्रमशाली हो उठे थी। 'दरायुसने उन्हें दमन करनेको इच्छामें प्र३५ ख० पूर्वार्द्धमें उनके विरुद्ध युद्धयात्रा कर दी। उन्होंने पुनः की सभारे बखीरस प्रणाली घोर दानियुवनदी पार कर शत्रुके राज्यमें प्रवेश किया। उस समय शक लोग भ्रमणशोच जाति समझे जाते थे। किसी स्थानमें ये लोग स्थायिभावसे नहीं रहते थे। सुतरां दरायुसने उन्हें सम्मुखयुद्धमें न पाया। अन्तमें अब दुर्गमपथयमसे तथा रोगप्रभावसे बहुत-से सेना विनष्ट हुई, तब दरायुस स्वदेश लौट जानेकी बाधर हुए। इतने दिनों तक पारसिक लोग जो पजेय समझे जाते थे, वरु इस युद्धमें बहुत कुछ खर्च हो गया।

इस समय योन (Ionian) और अन्योन्य पारस्यवासी ग्रीक लोगोंने पारस्यराजकी विरुद्ध अश्वधारण किया। एथेन्सके अधिवासियोंने उन लोगोंको सहायतामें बीस जमी जहाज भेजे थे। ग्रीक लोगोंने मिल कर साईसनगरमें घेरा डाला और उसे जीत लिया। किन्तु नगरस्थ दुर्ग की जीत न सकें। इस युद्धमें पारसिकोंकी शौर्यवसाका परिचय पा कर एथेन्सका नौबेनावगं स्वदेश लौटनेकी बाधा हुआ। किन्तु तिस पर भी एशियावासी ग्रीक युद्धसे न हटे। सालामिसके निकट जनयुद्धमें उन्होंने पारसिकोंको परास्त किया, पर स्वयंयुद्धमें (मिलेत्तस नगरमें) उन्होंने पारसिकों से हार खाई।

ग्रीक लोग बहुत दिनोंसे शत्रुके आक्रमणसे मिले-तसनगरबा रक्षा करते आ रहे थे। अन्तमें पारसिकोंने दूरीपोय ग्रीक लोगोंकी सहायता और विश्वासघात-कृतार्थ नगर पर अपनी मोटी जमा ली। पीछे उन्होंने नगरको तहस नहस कर डाला और ग्रीकगण पारसिकोंसे बगीभूत हुए।

प्रथम युद्धमें एथेन्सके अधिवासियोंने जो यवनोंकी सहायता की थी, उस अपराधमें दरायुसके जमाई मार्टीनियमने एथेनीयोंको उपयुक्त शांति देनेके लिये युद्धयात्रा कर दी। उन्होंने माघसको जीता और रट्टिया नगरको ध्वंस कर डाला। किन्तु सुप्रसिद्ध मार-

थनके युद्धमें सम्पूर्णरूपसे पराजित हो जानेसे ग्रीक लोग विजयाकांक्षा त्याग देनेकी बाध्य हुए।

कम्बुजीयके समयसे ही मिथ पारसिकोंके अधिकांश था। दरायुसने जोसमदीसे ली कर लोहित समुद्र तक एक नहर कटवाई थी और राज्यकी उत्पत्तिमें भी विशेष चेष्टा की थी। किन्तु पारसिकलोग मिथवासियोंके इतने प्रभोतिभाजन हो गये थे, कि ४८६ ख० पूर्वार्द्धमें वे यवनों से विद्रोही हो गये। दरायुसका विद्रोहदमनके पहले ही ४८५ ख० पूर्वार्द्धमें शरीरावसान हुआ।

असमनोयवग्रीक मध्य दरायुस सर्वप्रधान राजा थे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। वे जैसे बुद्धिमान थे, वैसे ही अश्वमयील भी थे। ग्रीकलोग माधारणतः पारसिकोंसे लड़ा कर लेते थे; किन्तु एल्लादलसने अपने अन्तमें दरायुसकी श्रेष्ठ बतलाया है।

खार्पा वा खर्पा (Xerxes) ४८५-४७९ ख० प।

दरायुसको मृत्युके बाद उनके बड़े सड़के स्वार्पा राजगो पर बैठे। दरायुसकी मृत्युके कुछ पक्षों ही विद्रोह उपस्थित हुआ था। स्वार्पा ४८४ ख० पूर्वार्द्धमें इस विद्रोहदमनमें समर्थ हुए और उन्होंने अपने भाई अश्वमनियकी इजिप्टका शासनकर्ता बना कर भेजा। इस समय बाबिलनमें विद्रोह चल रहा था। स्वार्पा ने बाबिलनको जीत कर वहाँ जितने उपासनामन्दिर थे उन्हें तोड़ फोड़ डाला और अधिवासियोंके प्रति औरतर अत्याचार किया।

माराथनके युद्धमें पारसिकोंने ग्रीक लोगोंके हाथमें ली निवृत्तभोग किया था, उसे वे भूनी नहीं थे। स्वार्पा ने इस अपमानका बदला देनेके लिये सहाय किया और चारों ओरसे सैन्यसंग्रह करमा पारस्य कर दिया। सादिम नामक स्थानमें वे भारी सेनाको एकत्र कर योम जोतनेके लिये प्रथम हुए। वे प्रसिद्ध यार्मपनी नामक गिरिपथमें अश्वमनियक मार्टनोको परास्त करनेमें समर्थ तो हुए थे, पर सालामिस युद्धमें वे सम्पूर्णरूपसे परास्त हो स्वदेश लौटनेकी बाध्य हुए। ४८० ख० पूर्वार्द्धमें मार्टनियम पारसिकसेनापति साय प्रोटिया-युद्धमें पराजित हुए और ४८० ख० पूर्वार्द्धमें मार डाले गये।

इस समय एथेनोयगण जलपथमें अत्यन्त प्रबल हो उठे थे। उन्होंने किमन (Cimon) के अधीन पारसिकों के जंगो महाजका पोखा किया और उन्हें तहस नहस कर डाला। इस सङ्घर्ष के बाद यूरॉपमें पारसिकों की प्रधानता एक तरहसे विलुप्त हो गई।

अथार्थो पहले सार्दिस् नामक स्थानमें गये, किन्तु एगियासि योकी के आगमनसे डर कर वे अपनी राजधानी छोड़ जानेकी भाव्य हुए। उस समय उनके शरीररक्षक प्रधान सेनापति पार्सीवनसने अर्तक्षत्र के साथ पहुँचकर उनके अन्तःपुरके मध्य उन्हें तथा उनके बड़े सङ्घ के दरायुधकी छिपके मार डाला।

अर्तक्षत्र (Artaxerxes) ४६४-४४५ ई.पू०।

सिंहसन पर बैठ कर अर्तक्षत्रने पहले पार्सीवनस की ही मार डाला। इस समय अर्तक्षत्रके बड़े भाई ह्यस्तारस (Hystaspes) वज्रिवाके शासनकर्ता थे। जब उन्होंने सुना कि उनके छोटे भाईने राजपद प्राप्त किया है, तब वे विद्रोही हो गये और उपरोक्त दोनों युद्धोंमें हार मान कर भाग चले।

अर्तक्षत्रकी सभामें थीसके विख्यात वीर थेमिस्टोक्लिस (Themistocles) स्वदेशके अनिष्टसाधनकी दृष्टासे पड़ चुके। पारस्यराजने उनको खूब खातिर की और मन्दरनदी तीरस्थ सैमनेसिया नामक स्थान तथा दो और नगर उन्हें बर्षा किया।

इस घटनाके बाद इजिप्टदेशमें घोर तर विद्रोह उत्पन्न हुआ। विद्रोहीके हाथसे दरायुधके पुत्र पल्लमनिय मारे गये। लिविशाके राजा समेतिकस (Sammethius) के पुत्र इनरस (Inarus) मिथके राजा हुए। इस समय पारसिकों के साथ एथेनोयोंका विवाद चल रहा था। मिथवासियाकी ओरसे सहायता माँगने पर २०० एथेनीय जंगो महाज मिथदेशमें भेजे गये। उपस्थित मोयोदासों के साथ विद्रोहीदलने मैफिसनगर और दुर्गको घेर लिया।

अर्तक्षत्रने मेगबुसस (Megabyzus) के अधीन एक दल भेजा। घोरतर युद्धके बाद मिथवासी दलबलके साथ पराजित हुए और इनरस गल्लके हाथमें फँसे तथा यमपुर भेज दिये गये। इसके

कुछ समय बाद एथेनोयों के साथ पारसिकों की सन्धि हुई। इस सन्धिके बाद पारसिक लोगोंने फिर कभी भी यवनों (Ionian) के साथ भोषण युद्ध न किया। पारस्याधिप योक्सेनासों के शीर्ष पर सुप्त हो कर उन्हें अपने सैन्यदलमें नियुक्त करने लगे।

इस समय पारस्यराज्य अथःपतनोन्मुख हो गया था, इसमें अरा भी सन्देह नहीं। निहेमियाका विवरण पढ़नेसे मानस होता है, कि यहाँ तो भूताना दिनों दिन अमकातर, अन्तस और विनासी हो तो जा रही थी।

अर्तक्षत्र अत्यन्त दुर्बलदृश्य और व्यथनासक्त थे। राजकार्यमें उनकी कुछ भी समझता या समझाना था। राजकार्य देखनेका भार कर्मचारियों के ऊपर ही सौंपा गया था। ४२४ ई.पू० योक्सेसने उनका देशान्तरण करा।

उनकी मृत्युके बाद उनके सङ्घके २५ अथार्थो राजा तो हुए, पर थोड़े ही दिनों के अन्दर वे अपने एक भाईके हाथसे मारे गये। इस दृष्टाकारोंने प्रायः छः मान तक राज्य किया, देखे उसके भाई ओकस (Ochus) उसकी इत्था कर दारयुध नामधारण करके सिंहासन पर बैठे।

२५ दारयुध (दारयुध Darius)

दारयुधकी राजपद पर अचिन्तित देख उनके भाई गिरोय देशमें विद्रोहो हो गये। किन्तु दारयुधने उनकी अधोगत्य योक्सेनाकी धन से कर बगोभूत कर लिया और बहुत पासानोंने विद्रोहियोंका दमन किया। ४१० ई.पू० योक्सेसने सामान्य विद्रोहके बाद मिय स्वाधीन हो गया।

पियोपनिसस-युद्धके बाद एथेनोयों के अथःपतनोन्मुख हो जानेके बाद और उसका अधिकार बहुत कुछ जाता रहा। इसी सुयोगमें जब पारसिक लोग समुद्रतीरवर्ती स्थानों की अधिकारमें लानेके लिये प्रयासो हुए, तब तिगफना और फर्णावाज नामक दो पारसिक शासनकर्ताओंके बीच विवाद खड़ा हुआ और दोनोंने जो आर्टानोंने सहायता माँगी। आर्टानोंने पश्चिमतर समतागाली तिगफना (Tissaphernes) का पक्ष पकड़कर लिया और अन्तः यह ठहरो, कि एगियाससमें, जिनमें योक्सेनगर है, उन्हें तिगफना पक्ष करने और उसके

श्रीमन्मन्त्रो सेलुकने सबी की युद्धमें परास्त कर
एकाधिरय लाभ किया। अनेकमन्दर सिन्धुनदी तक
पपना अधिकार फैला कर वहाँ एक टन शोकसेना
छोड़ गये थे। किन्तु उनके शत्रुके बाद जो पन्थिप्रव
उपस्थित हुआ, उसमें हिन्दुषीने शोकसेनाको मार कर
सौर्ययोग्य राजाकी अधीनता स्वीकार की।

सेलुकम सौर्यराजके साथ युद्ध करनेके निम्न
सिन्धुनदी पार हुए, किन्तु मगधराजके साथ उनकी
सन्धि हो गई। इन सन्धिके अनुसार सेलुकको ५००
जंगीसहाय और सौर्यराजकी सिन्धुनदीके निकट-
पर्वी प्रदेश राज्य मित्रा और विशदके समय एक दूसरेको
सहायता करने, ऐसा दोनोंने पट्टाकार किया।

सेलुकने अपने राज्यको (२ भागों में विभक्त कर
प्रत्येक भागमें एक सत्रप वा शासनकर्त्ता नियुक्त
किया। उन्होंने तादपिस नदीके किनारे सेलुकिया
नामको राजधानी बसाई। किन्तु योसमें युद्ध उपस्थित
हो जानेसे वे सीरियाके पन्थिप्रव अन्तिओक (Antioch)
नगरमें ही राजधानी ठहारा लीतो वाध्य हुए। यहाँ
कुछकाल तक राज्य करनेके बाद वे २८० ख०
पूर्वार्द्धमें मारे गये।

अन्तिओक (Antiochus) २८०-२६१ ख० पू०।

अन्तिओक सेलुकको तरह राज्यभोग नहीं थे।
वे एशियास्थ समस्त प्रोकराज्यकी तीन भागोंमें विभक्त
करके उसका एकांग से कर राज्य करते थे।

उन्होंने पनेक नगर बसाये, शोक उपनिवेश स्थापित
किया और सिन्धुयामें प्रायः १०२ मील तक दीर्घ प्राचीर
बनवाया। उनके अङ्के सङ्घोंने जय पित्तके विरुद्ध
पक्षधारेण किया, तब उन्होंने अपने हाथसे उसका
सम्पूर्ण काट डाला। २६१ ख० पू० में अन्तिओकको शत्रु
हूँ। पीछे उनके सिन्धुयामें अन्तिओक नाम धारण कर
सिन्धुयाम पर बैठे।

भारतवर्षमें इस समयको जो ख्रीष्टाब्द तिथि है उसमें
अन्तिओकका नाम देखनेमें पाता है। सेलुकने सौर्य-
राजके साथ सन्धिले सम्बन्धित करके उनके अधीन
मगधसेना नामक एक दूतरी रख डेड़ा था। सौर्य-
राजकी शत्रुके बाद उनके सौर्य राजाओंके साथ

प्रोकराज्योंका सम्बन्ध सहाय या शत्रु के एक दूसरेके
पास दूत भेजा करते थे। अगोष्ठी बोद्धधर्ममें दीक्षित
हो कर जिन समय अपने पन्थिप्रव का प्रचार करना
आरम्भ किया, उस समय अन्तिओकने उनके कार्य पर
विशेष सहानुभूति प्रकट की थी।

२५ अन्तिओक (Antiochus II)

२६१-२४६ ख० पू०।

२५ अन्तिओक अत्यन्त सुरासक्त और भोक्ता थे। वे
पपना समय वस्तुसंग्रह यात्रा चामोद-प्रसीधमें विनाते थे।
उनके राज्यके प्रथम भागमें जो ईरान का नगर-प्रदेश
भाग राज्यसे विच्छिन्न हो गया और अन्तिओक नाम-
कर्त्ताने स्वाधीनता प्राप्त करने को। इनके कुछ समय
बाद ही पार्थियन विद्रोहो हो गये। पार्थियन
(Parthians) अन्त्योस ज्ञाति थे और पञ्चवारण
हाथ जोड़कर निर्वासित करके थे। पार्थियन और तिरि-
दत नामक (Tiridates) नामक दो भाई अन्तिओकमें
शोक नदीके किनारे मरेगी चराया करते थे। एक
दिन इस प्रदेशके शासनकर्त्ताने अपने कनिष्ठ भाईका
अपमान किया जिससे वे विद्रोहो हो गये। पीछे उन्होंने
शासनकर्त्ता को मार कर पार्थियनकी पपना राजा बननाते
हुए तत्काल घोषणा कर दो (२५० ख० पू०)। इस
विद्रोहदमनका और कोई सुयोग उपस्थित न हुआ।

२६ सेलुक (Seleucus II)

२४६-२२६ ख० पू०।

२६ अन्तिओककी शत्रुके बाद सिन्धुयाम ले कर
उनके पुत्रोंमें विवाद खड़ा हुआ। कालिनिक्त (Calli-
nicus) को प्रोचनसे दक्षिण राज्याने अन्तिओक तत्क
मृता। २६ सेलुक पिताका सिन्धुयाम वा कर भाईके
हाथ युद्धमें लग गये। २२६ ख० पू० में पञ्चरा नामक
स्वामि जो युद्ध हुआ उसमें सेलुकम परास्त हुए और पीछे
मालूम हो गया कि वे मारे भी गये। यह सम्वाद पाते
हूँ पार्थियन राजा तिरिदत (Tiridates) ने दक्षिणसे
साथ प्रोकराज्यमें प्रवेश किया और चामोदगोदमको मार
कर उनके पक्षधर प्रदेश पर अधिकार जमा किया।
सेलुकने अपने भाई और दक्षिण राज्याके साथ सन्धि
स्थापन करके २२८ ख० पू० पूर्वार्द्धमें तिरिदतके विरुद्ध युद्ध

यावा को। किन्तु इन युद्धों में वे सम्पूर्ण रूप से परास्त हुए। इस समय अन्तिओक नगरों चारों ओर प्रगल्भी फेन गई जिससे वे स्रोत जानिको बाध्य हुए और पारसियों से प्रपमान का बदला न चुका सके।

२४ सेलुकस की मृत्यु के बाद उनके पुत्र सेोतारने इस सेलुकस की उपाधि धारण कर सिंहासन पर आरोहण किया (२२५-२२१ ख० पू०)। किन्तु उनकी कसौ छत्रमें मृत्यु हो जानिसे मागनस इस अन्तिओक के नाम से सिंहासन पर प्रसिद्ध हुए।

१५ अन्तिओक (Antiochus III)

२२१-१८७ ख० पू०।

इस अन्तिओक पहले साइलस के शासनकाल के पद पर अधिष्ठित थे। सभी उन्हें सिंहासन पर समाधीन देख मिश्रिया के शासनकर्त्ता मोननने उनके भाई निकन्दर से मिल कर राजसेनापतिको पराम्श किया और सेलुकिया जाता। पीछे उन्होंने राजीवधि ग्रहण की। साइलस और समस्त सुसियाना प्रदेश, परपोटमिया, मेसोपोटमिया आदि स्थान शीघ्र ही उनके हाथ लगे। अन्तिओकने मृत्युओं की इस प्रकार जयलाम करते देख स्वयं तायपोस नदी पार कर मोलन के भागने के पथ को घेर लिया। मोलन बाध्य हो कर युद्ध करने लगे और अन्तिमें सम्पूर्ण रूप से परास्त और निहत हुए। इस युद्ध के बाद इस अन्तिओक सेलुकिया गये और वहाँ राज्यशासन का सुवन्दोबस्त करके अपनी राजधानी को लीटे।

अन्तिओकको बहन फार्मिनिया के अधिपतिकी स्त्री थी। फार्मिनियापति प्लोके पट्टवन्ध से मारे गये। अन्तिओकने फार्मिनिया जा कर सभी विवाद शांत किया और पीछे बहुसंख्यक सेना से कर पार्ष्वीवराज्यमें चुन पड़े। युद्धमें पार्ष्वीवराज्य सम्पूर्ण रूप से परास्त हुए और पीछे उन्हें प्रभोमता स्वीकार करने पड़ी। पार्ष्वीकों का युद्ध समाप्त हो जानि पर अन्तिओक यत्तिथाराज्यावहारक यथेदेमस (Euthydemus) के साथ युद्धमें प्रवृत्त हुए और वहाँ युद्धमें रत्ने के बाद सन्धि स्थापित हुई। सन्धि के अनुसार अन्तिओकने यथेदेमस की यत्तिथाराजा माना और उनके पुत्र के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया। यत्तिथारे राजा इसके बदले में

अपनी समस्त रणहस्ती, मेसार्गोको रसद और कुछ पद देने की वाद्य हुए। इसके अन्तर्वा विपद् के समय एक दूसरे की सहायता करेंगे, यह भी श्रि कर दिया। इस सन्धि के बाद अन्तिओक काबुल चले गये और वहाँ उन्होंने भारतवर्षीय राजा सुभगसेन के साथ मित्रता कर ली। पीछे राजा से १५० रणहस्ती उपहारमें पा कर वे स्वदेश को चले गये।

अन्तिओक जीवन के शेषभागमें रोमकों के साथ युद्ध में परास्त हुए और बहुत धन दे कर अपनी जान भी रिहाई पाई। प्रथम युद्धको इच्छासे उन्होंने सुभा पा कर बेलदेवका मन्दिर लूटा। इस स्थान के अधिवासी गण उनका यह कार्य देख कर बड़े विगड़ और पीछे उन्होंने शासनभार छोड़ दिया।

४४ सेलुकस (Seleucus Philopator IV)

अन्तिओक की मृत्यु के बाद ४४ सेलुकसने १८७ ख० पू० से १७५ ख० पू० तक राज्य किया। इनकी मृत्यु के बाद ४४ अन्तिओक (Epihanes) सिंहासन पर बैठे और प्रजाको भलाई का उपाय सोचने लगे। किन्तु राजकीय के प्रथम श्रेणी हो जानिसे उन्होंने फार्मिनिया में प्रवेश कर वहाँ के शासनकर्त्ता को कैद किया और बहुत से मन्दिर लूटे। इस प्रकार प्रवृत्त प्रथम युद्ध कर वे स्वदेश को लीटे। ऐसे प्रथम विरुद्ध कार्य पर उनके सब प्रयत्न और विद्रोहों हुए। इन विद्रोहदमन के पहले ४४ अन्तिओक का देहान्त हुआ (१६४ ख० पू०)।

उनके नाबालिग पुत्र यूपेटर ५५ अन्तिओक नाम धारण कर सिंहासन पर बैठे। किन्तु दो वर्ष बाद ही वे देमितर सेोतार के हाथ में मारे गये।

देमितरसेोतार (Demetrius Sotor)

१६२-१५० ख० पू०।

देमितर को राजपद पर प्रतिष्ठित होने में रोमकों के साथ उनका विवाद खड़ा हुआ। रोमकों ने युद्धमें जयलाम किया और चारों ओर उनकी मृत्युओं की समाप्ति जिससे देमितर बलहीन हो गया। मिश्रिया के शासनकर्त्ताने इस सुयोगमें अपना अधिकार बढ़ाना चाहा और इसी काममें वे रोमनगर गये तथा वहाँ १६१ ख० पू० या १६२ राजा बन गये। पीछे उन्होंने फार्मिनिया के शासनकर्त्ता के साथ सन्धि कर की जिससे

मिदोया के पार्थिवर्षी स्थान के अधिवासियों ने इनकी वग्यता स्वीकार की। इसके कुछ समय बाद बाबिलन इनके दखल में आ गया। इस प्रकार राजास्य देख कर देमित्र दलबल के साथ रणस्थल में पहुँचे और युद्ध में उन्होंने मिदोया के शासनकर्त्ता का विनाश किया।

१२३० अन्तिमोक्त के बाद में पार्थिव अधिपति शान्त भाव से राज्य करने से और १०१ ख० पू० तक उन्होंने राज्य फैलाने की जरा भी चेष्टा नहीं की। १०१ ख० पू० की पार्थिव नरपति प्रवृत्ति (Phraates) की मृत्यु के बाद इनके भाई मित्रदात सिंहासन पर अधिकार हुए। मित्रदात बुद्धिमान और साहसी थे। उन्होंने राजपद पर प्रतिष्ठित हो कर राज्यविस्तार की ओर ध्यान दिया।

इस समय बक्षियाधिपति यथैदम के पुत्र देमित्र (Demetrius = देवमित्र) भारत जोतने के लिये बगैर हुए। उन्होंने पञ्जाब जोत कर शकल में पिता के नाम पर राजधानी बनाई और सिन्धु नदी पार कर पश्चात्, सुराष्ट्र तथा मलकच्छ फतह किया था। किन्तु अन्त में यूक्लातिडेस् नामक एक व्यक्ति ने इनसे बक्षिया-राज्य छीन लिया।

इसके कुछ समय बाद बक्षियान में अन्तिमोक्त उपस्थित हुआ जो यूक्लातिडेस् (Uratides) की मृत्यु के बाद और भी भयङ्कर हो उठा। किसी किसी ऐतिहासिक ने लिखा है, कि मित्रदात ने ये मीकों में भारतवर्ष तक अपना राज फैला लिया था। वही उन्होंने पूर्व भाग में इस प्रकार विजय प्राप्त करके पोकसान्नाज की ओर दृष्टि डाली। १३० ख० पूर्व में एक व्यक्ति अपने की अन्तिमोक्त यथै-किने के पुत्र बतला कर उपस्थित हुए। उन्होंने पार्थिवर्षी राजाओं की सहायता से देमित्र की युद्ध में परास्त कर मार डाला और सिंहासन पर अधिकार कर १४५ ख० पू० तक राज्य किया। अन्त में वे टलेमो के साथ युद्ध में परास्त हुए और भागते समय इनके मित्रदार बन गये। इनकी मृत्यु के बाद २५ देमित्र (Demetrius) ने राज्य नाम किया। इनके आचरण से भी इतने चमत्कृत हुए, कि गोत्र ही एक व्यक्ति सिंहासनप्राप्ति हो कर यहाँ उपस्थित हुआ। अर्थात् की सत्ता से उन्होंने राजी-

अधिग्रहण की। पार्थिव युद्ध के बाद सीरिया का अधि-क्षेत्र देमित्र के हाथ से निकल पड़ा।

जिस समय एगियास पोकसान्नाज की पत्नी शोचनीय दगा हो गई थी, उस समय मित्रदात ने मिदोय पर आक्रमण किया। इस युद्ध में वे सफल बान हो कर भरकन प्रदेश की चन दिये। इसके बाद बाबिलन इनके हाथ लगा। अन्त में १४० ख० पू० में जब देमित्र के सेनापति इनसे परास्त हुए, तब एगियास समस्त सीरिया प्रदेश मित्रदात के हाथ आया।

देमित्र ने यौक और माकिदनी की सहायता से पुनः राज्य पाने की चेष्टा की। पार्थिव गण कई एक युद्ध में इनसे परास्त हुए; किन्तु ११८ ख० पू० में मित्रदात के सेनापति से देमित्र की भारी सेना विनष्ट हुई और पाप बन्दे हुए। मित्रदात ने समुचित सम्मान दिवना कर बरकल में सत्ता वापस आन निर्दिष्ट कर दिया और उन्हें अपना जमाई बना लिया। इसी समय में एगियास पोकसान्नाज सदा के लिये विलुप्त हो गया।

१२५ ख० पूर्व में टलेमो के मित्रदात का परीरा-वसान हुआ। वे ही पार्थिव (Parthian) साम्राज्य के स्थापयिता तथा म्यायवरायण और दयालु भी थे। उन्होंने अत्यन्त देवी की सज्जत पद्धति अपनाये राज्य में प्रचलित की।

पार्थिव (Parthian) राजा थे।

ईरान में माकिदनिया-राज्य के अधःपन्न के साथ साथ पूर्व ईरान में भी स्वाधीनता हो चबाना हुआ। १५० ख० पू० तक स्वाधीन बक्षियाज के अधःपन्न जाता है। तत्पश्चात् प्राचीन सुशान की ओर किसी भी स्वाधीन राजा का नाम नहीं मिलता।

मित्रदात की मृत्यु के बाद इनके पुत्र पिता के उत्तराधिकारी हुए और पिता की तरह राज्यवृद्धि करने लगे। इस समय की ओर सब सुझाए जाते हैं। इनमें लिखा है, कि उन्होंने शकी (Scythian) से आगियास नामक स्थान बलपूर्वक अधिकार किया था। इस समय सेलुकस के बगैर अपना पार्थिव पुनः स्थापन करने के लिये अगिमेय चेष्टा कर रहे थे। २३० अन्तिमोक्त ने पहले सीरियामें विद्रोह दमन करके

चारित। पोर जेहनकर हो दहन क्रिया। पोडे ८०००० सेनाके साथ जे पार्थिवोंके विरुद्ध पधरा हुए। पार्थिवोंके विरोधो करने राजा उभरे जा मिले। महा जाव (Great Zab) पोर अन्य दो युद्धोंमें पार्थिवोंको पराजित होने पर अन्तिमोक्तने मिदोयामें प्रवेश किया। वहाँ शीत ऋतुके आगमन पर दहननकी साथ वे उठरे हो ये, कि उसो समय सन्धि का प्रस्ताव पेश हुआ। अन्तिमोक्तने अपने तत्कालीन पन्थाव पेश किया। पर पार्थिवोंको बंद मंजूर न हुआ। योकोको पसंद यवहारने इस स्थानके अधिवासो परागत उत्पन्न हो उठे पोर मिदिनने द्विप कर पार्थिवोंके सन्धि कर लो। पार्थिवोंने एकाएक उनके शिविर पर आवा बोल दिया पोर उन्हें अच्छी तरह डराया। इसमें उनकी प्रयत्न मधो सेना विनष्ट हुई पोर वे शत्रुके हाथ बन्धे होनेके मगरे पड़ाइ परने जमीन पर झूट पड़े पोर पक्षवहो प्राप्त हुए।

अम अन्तिमोक्तके साथ युद्धकात्तने देमिनने सुक्ति पाईयो। युद्ध ममाय हो जाने पर फ्रांसोंने उन्हें फिरने पकड़नेको चेष्टा की। इसो समय उनके राज्यके पूर्वार्धमें चोरतार विपद उपस्थित हुई। उन्होंने पकड़ने धन को कर शक्तोंको सहायता पड़चने का वचन दिया था, किन्तु समय भले तर उठने परगो प्रीति का वातन न किया। इस पर यक्ष लोग बड़े विगड़े पोर उनके राज्यमें लूटमार करने लगे। शक्तोंके साथ युद्धमें फ्रांसो सम्पूर्णरूपे परास्त हुए पोर सारे भा गये।

२म अर्थवान (Artabanus I.)

फ्रांसोको अश्वुको बाद अर्थवान राजा हुए। कोई कोई कहते हैं, कि शक्त लोग जयनाभने मनुष्ट हो कर स्वदेशगो छोड़ गये। किन्तु का यह भी संभव है, कि अर्थवानने प्रति वर्ष उन्हें का देना छोड़ार किया था। इनके राज्यक्षेत्रमें मिलुक्तियाँ के अधि। मिदिनने परागत उपोहित हो राज्य परारक यथिमेरा हो प्रति निरुर भयसे रह्या को। अर्थवानने हत्या कारियोंको उनको पाँच निकाल देने का डर दिनाया, पर तो शत्रो जातिने साथ युद्धमें निरत हो जानेसे उनकी हत्या पूरी न हो सकी। उनके पुत्रका नाम २म मित्रदात था।

२म मित्रदात (Mithradates II)

२म मित्रदातने पार्थिव-साम्राज्यको पकड़ने की तरफ ध्यान कर दिया। कहते हैं, कि उन्होंने परागत साइप्रस को पार्थिवोंको राजाओंको परागत किया पोर यूलैटिस नदी तक अपना राज्य फैलाया। मीथोरेमिसा पार्थिव-राज्यके अन्तर्गत ही जानेसे रोमनों के साथ उनका संबंध पड़ना संभव हुआ पोर ८२ ख्रि० पूर्वमें सुल्ला (Sulla) जब लयादोकियाको घाटे, उस समय अश्वुत्व सहायनके लिये मित्रदात का दूत उनके समीप पड़ा। मित्रदात इस समय कम्पागिनको राजाके साथ लड़ाईमें लगने हुए थे। मालूम होता है, कि रोमकगण शत्रुओंको कितने प्रकारको सहायता न पड़े चाहें, इसो आग्रहसे दूत भेजा गया था।

२म अर्थवान (Artabanus II.)

मित्रदातको मृत्युको बाद २म अर्थवान विंजानन पर बैठे। इस समय पार्थिवोंके राजाने सम्राट् को उग्रविधाय को पोर वे इनने प्रतापगता को उठे थे, कि अर्थवान उनसे वाश सन्धि करनेको बाधर हुए। इसके कुछ समय बाद पार्थिवराज्य अन्तिमोक्त पोर महि-शत्रुके आक्रमणसे भयभय हो गया। अर्थवान ७० ख्रि० पूर्वको पवसिद सिनात्रस (Arsacid Sinatruces) अस्सो वर्षको अवस्थामें राजगद्दी पर बैठे पोर वहाँ ७ वर्ष तक राज्य किया।

३म फालि (Pheantos III.)

एगियामें रोमकसेनापति लुल्लस (Lucullus) के आगमनके कुछ पक्षसे फ्रांसोने राज्यभार वहन किया। ६८ ख्रि० पूर्वमें मित्रदात पोर तायग्रेनिउ दोनोंने रोमकोंके विरुद्ध उनमें सहायता मांगी। किंतु उन्होंने सहायता देना नामंजूर किया। कुछ मास तक निरपेक्षतासे रह कर अस्सो वर्षोंके पशुलोचने वे पार्थिवोंके पा चलाई करनेके लिये तय्यत हो गये। पार्थिवोंके अधिपतिने पुत्रने पिताके साथ विवाद करके पार्थिव देशमें आग्रह किया पोर वहाँ फ्रांसोको कन्यामे अगला विवाह हुआ। पुत्रके आगमन पर पिता पार्थिव प्रदेशको भाग गये। किन्तु इस समय फ्रांसोको सन्देश छोड़ा कर तायग्रेनिउ ने उनके पुत्रको अच्छी तरह डराया। परन्तु पम्पेने

(Baryares) नामक एक व्यक्ति राजाको सपाधि प्रस्थापित की। मिदोयार्क शासनकर्त्ता उन्हें पकड़ कर अनेकसन्दर्भके समोप लाये। अनेकसन्दर्भके बादमें उन्हें प्राणदण्ड मिला। इस घटनाके बाद पारस्यदेशमें प्राक-शासनकाल आरम्भ हुआ।

भौकशासन।

गोथामेलामें ग्रामके बाद अनेकसन्दर्भके अपनेको एगियाके सम्प्रदाय बना कर घोषणा कर दो (२३१ ई. पू.)। अनेकसन्दर्भके बादमें राजाशासकके अन्तर्गत चोर बेचसके निहत होने पर पारसिकगण सदाके लिये अपने स्वाधीनता लोभ हो गई, यह चक्रो तरङ्ग समझ सके। अनेकसन्दर्भके देखो।

अनेकसन्दर्भके अपने इस बहुविस्मयन राज्यको सुशासित रखनेके लिये अनेक नगर संस्थापन किये चोर प्रत्येक नगरमें प्रौक्तमैना रख दो। बाविलन नगरमें उनको राजधानी हुई। भविष्यमें किसी प्रकारका मोलमात्र उपस्थित न हो, इसके लिये उन्होंने सारे राज्यको चौदह भागमें विभक्त कर प्रत्येक भागमें एक एक शासनकर्त्ता नियुक्त किया। यह शासनकर्त्ता पद प्रोक्त चोर पारसिक दोनों जातिसे लोगोंको ही प्राप्त हुआ था। शासनकर्त्ताओंकी अपने प्रदेशके सेनिकोंके ऊपर किसी प्रकारकी समता न थी; केवल देगशासनका भार उनके ऊपर लोपा गया था। वे अपने इच्छानुसार वैदेशिक सैन्यनियोग, अपने नाम पर सुदामप्रचलन प्रवृत्त कार्य नहीं कर सकते थे। प्रत्येकको निर्दिष्ट दरमे राजस्व देना पड़ता था। अनेकसन्दर्भके राजसत्तास्थितिमें ऐसा सुन्दर नियम बनाया, कि सूर्यके समय उनके कोषागारमें ११२८५१५ रुपये उभरते।

साक्रिदन्तमें अपने राजाको चिरस्थायी करनेके लिये प्रोक्त चोर पारसिकोंके मध्य जातिगत प्रभेद सदा दिया चोर जिसने वे सब एक जातिके समझि जा सके उसके लिये विशेष चेष्टा की। इस कारण उन्होंने ३००० पारसिक सेनाको प्रोक्त प्रवाह अनुसार पुनर्विधानमें सुगमिल किया। इसका ही हमेंनाके समान समान होता था। इस समय जातिओंके मध्य जिससे किसी प्रकारका विद्वेष न रहे, उसके लिये उन्होंने प्रोक्त

चोर पारसिकोंके मध्य विवाहप्रथा अपनाई तथा इस विषयमें सदा ह देनेके लिये सदा तोम पारसिक सम-स्थितोंका पालनप्रधान किया।

मित्रके प्रयागुधार अनेकसन्दर्भके जब अपनेको आमन-लुपिटेरके पुत चोर राजाको सपाध्य बनना कर घोषित किया, तब बहुतमे लोग इसे स्वीकारनेको बाध्य हो हुए, पर अत्युत्तम चोर पारसिक धर्मधर्मको मनुष्य इस पर घोरतर विद्रोही हो उठे।

पारस्यजयके बाद अनेकसन्दर्भके अत्यन्त विनाशो चो सुरामत हो गए। अनेक प्रकारके आर्थिक प्रत्या-धारने चोर अत्युत्तम जनक बाविलननगरमें बाध जानेसे ३२३ ई. पू. पूर्वाब्देके जून मासमें वे स्वार्थोक्तमें घोषित हुए चोर कुल टिकके बाद कुटिल कात्तके गानमें कहे।

पारसिक चोर प्रोक्त एक जातिभुक्त करनेको इच्छा अनेकसन्दर्भके अत्यन्त प्रवृत्त थे; इसके लिये उन्होंने अनेक तरङ्गके सपाध्य प्रवृत्तप्रधान किये थे। किन्तु किसी भी तरह के जनकार्य न हो सके। उनके सेनापति चोर सत्यवर्ग इस विषयके पक्षपाती नहीं थे, इन लिये वे अनेकसन्दर्भके प्रति अत्यन्त प्रवृत्त हुए थे। साक्रिदन्तवासिगण पारसिकोंको अनेका अधिक संख्यामें ही हो नहीं। उनको संख्या बहुत सीद्धी थी चोर पारसिकोंके संख्यामें वे विनाशो होने लगे। अनेकसन्दर्भके पारसिकोंके आचार व्यवहारने ऐसे अनुशासो हो उठे थे, कि वे पारसिक प्रवृत्ताया प्रवृत्त चोर पारसिक भाषामें ही बात चाल करते थे। पारसिक-सेनापति अनेकसन्दर्भके अभिसन्धि समझ कर उनके प्रति अत्युत्तम हो गये थे चोर तमाम यह घोषणा कर दो कि अनेकसन्दर्भके आचारका पालन कोई भी न करे। अत्यन्त राज्य भरमें विद्रोहजनक धक्का उठा। अनेकसन्दर्भके अपने सेनापतिओंके ऐसे व्यवहारने निम्नात्त सुख चोर सम-हृत हुए थे।

उक्त महावीरसे निम्नात्तावाक्यामें आचार्याग किया। उनको सूर्यके बाद पारस्यमें ४२ वर्ष तक चोरातर चलाविश्री होता रहा। एगियामहादेशमें सभी प्रोक्तगणसत्ताओं चोरे चोरे स्वाधीनता अत्युत्तम करके अत्युत्तम युद्धमें प्रवृत्त हो गये। बाविलनमें

धर्मको सहायता को और तायब्रेनिम रोमको के छाव
आत्ममर्षण करनेको बाध्य हुए। तमोने उनके प्रति-
पक्षान दिखता कर उन्हें फिरमे राजपद पर प्रतिष्ठत
किया और समने पुत्रको जंजोरने बांध रखा।

रोमकों'ने जव देखा, कि अथ प्रवतीमे सजायता
मेनेको कोई जरूरत नहीं है, तब से उनके राज्यमें घुस
पड़े। रोमकों'ने इस कार्यमें पापत्ति करके प्रवतीने
पम्पोंके निकट दून भेजा, लेकिन कोई फल न निकला।
इस खूटू-पूँको रोमिया प्रदेशमें पाथिबंनि तायथेनिम
को परास्त किया। पोछे पम्पोंने सघार्य हो कर देनो'के
धीच भगड़ा तो कर दिया। प्रवती ५० खूटू-पूँमें
पपने दो मुत्रों'मे सारे गये। पाथिब-राजवं'गने अथः-
पतनका यज्ञो प्रथम सुत्रपात था।

૧મ બોરોદ (Order I)

क्षत्रपति की मार जानें पर पिछवासी १२ घोरोदने मिले।
मनको सुगोमित किया और पत्नी भाईको मिदीयाका
शासनकर्ता बनया। किन्तु शिवोक्त राजपुत्रके प्रत्याचार
कारण पर उन्होंने रोमकों से सहायता मांगी। रोमकों ने
मित्र जा कर घोरोदके विरुद्ध पञ्चशरणा किया और
युद्धमें उन्हें हराया। घोरोदने सुवेना नामक ठिको
उच्च श्रेणीय पार्थिवको सहायतामें पुनः राज्यनाम किया
और लोहाईमें द्वार मानने पर उनके भाईने चातनमम-
र्षण किया। पाखिरको से ५४ वर्ष पूर्व मरे गये।
इसके बाद ईसा-सैनापति क्रैसस (Cressus) ने
युद्धमें पासानीसे जय हासिल की, इसी पाशासे सेने-
पेटेमिया पर आक्रमण कर दिया और चत्तमख्यक
पार्थिव सेनाको पराजित किया। इस समय घोरोद और
उनके भाईके बीच विवाद चल रहा था। क्रैसस घोरोद-
के भाईको साथ न मिला कर सेनेपेटेमियामें बहुत सी
रोमकसेनाको रख लीट पाये। पार्थिव सुवेनसे जब
रोमकसेनाको पकड़ लिया, तब क्रैसस उनके सहा-
यता करनेके लिए आगे बढ़े। किन्तु कारी नामक
स्त्रालूम जो लोहाई दुर्ग, उसमें ही जान ले कर मारी।
लोटने समय पार्थिवों के आक्रमणमें उनके अधिकारी
सेना सारे गई और बाप शत्रुके हाथों में गये तथा
मारे गये।

पाथि वगण दण जजनाम के बाद ५२ खू० २०० में पुन. रोम को पर आक्रमण करके मोरिशको लूटने लगे। किंतु लौटने समय रोमकमैनाएतिने पाथि यों का पय रोक कर अस्तिगोनिया नामक स्थानमें उधे' सच्ची तरह पराना किश। इस समय मेनो ग्रेमियाको शासन-कर्त्ताने नव राजपुत्र के नाम पर होयारो १५ किया तब ओरोदेन अपने पुत्र को राजधानीमें बुला लिया।

रोमनों के सहायक ममय परमेश्वरों के चले रहने
 थे। पार्थिवगण ऐसे सुयोग्य भोक्तृ कर गये थे।
 यमोर्गे को ज्ञाते विद्वत् पार्थिवो सहायता मांगे।
 किन्तु जब उन्होंने पार्थिवों को भोजन देना न चाहा,
 तब पार्थिवगण सहायता देने के इच्छा करने लगे। जब
 कारण पार्थिवों के साथ रोमनों की सहायता छिड़ गई।
 कई एक छोटे छोटे सहायकों के बाद गिन्टारम के
 निकट पार्थिवगण सम्प्रत्यक्ष परान्त हुए और
 पोरोट के पुत्र पत्तोराम मारे गये।

बूढ़े घोतेदने पुत्रलोभके चक्षुस कातर हो दित य पुत्र प्रवृत्तीको योषवाज्य पर समिपित किया । प्राप्तीने एक एक करके सब भाइयोंको सरना म्नाता । पाछे ही पिताको भी दृष्टा कर ३० वर्ष० पूर्णवर्द्धने राजनिष्ठा सन पर बैठे ।

४५ प्रश्नी (Phraates IV) ।

भीरोदक के समय पार्थिवराज्य उद्धतक' चरमभोमा तक पहुँच गया था। उनको मृत्युकी याद पार्थिव-राज्यकी चरगति होने लगी। गद्दो पर बैठ कर प्रवृत्तो-ने सभी समतापव लोभो' और चरने प्राप्तव्यस्त पुर्न-को मार डाला। बहुतने लोगो'ने भाग कर रोमरू सेना-पनि घाटिनोका पाशव निथा। घाटिनो उन लोगो'को लभोजमाने सादसो हो पार्थिवराज्य पर आक्रमण करने-के लिये चरधर हुए। परोराको मृत्युकी याद पार्थि-नियो'ने रोमको'के माय मिदता कर लो थो। घाटिनो मन्थप्रस्तावने पार्थिवो'को व्याघ्रत रघु मेन्य मंचड करने लगे और ३६ खू० पू०में ६००० पटानिक, ४०००० घमाशोहो तथा पन्थान्य राजन्यो'के माय प्ररतो-ने नगरगी घेर लिया। मिटोयाको राजा चरवाहदेम और प्रवतो एकत्र मिल कर युद्धमें प्रस्था हुए। घाटिनो

परात हो कर वही मुश्किलने पार्मेनिया के शासनागम में पड़ चुके। यदि पार्मेनिया के राजा इस समय सहायता न करते, तो मियथ या कि रोमकनेना ध्वंसावस्था हो जाती है।

अजनाभाडे वाद प्रवृत्ति और अर्थावधान के मध्य तुल्यत दृष्टिका भाग से कर विवाद खड़ा हुआ। मिथोया के अधिपतिने पाटनो में मन्थि हा प्रदान किया। रोमकों ने उनको सहायता में सेना भेजी, किन्तु आक-गिप्रस नामक स्थान में युद्ध के बाद रोमकनेना स्वदेश लौटने की बाध्य हुई। इसके कुछ समय बाद ही पार्मेनिया और मिथोया पार्थियों के हाथ लगी।

इस प्रकार उपर्युक्त अजनाभाडे प्रवृत्ति अर्थावधान गति और यथेच्छाचारो हो उठे। उनसे आचरण पर प्रयास पर्यन्त रुक चुके और प्रहायभावे विद्रोही हो कर लवों ने तिरिदत (Tiridates) के ऊपर मन्थिपर आक्रमण का भार सौंपा। किन्तु उन्होंने २० खू० पूर्वार्द्ध में पराजित हो कर रोमकनेनापति अर्थावधान को ग्रहण की। उन्होंने पारसों को सहायता में वृषो वार सिंहासन पनको चेष्टा की। प्रवृत्ति अर्थावधान का शासनागम हो कर भाग जानिको बाध्य हुए और तिरिदत उनको जगह पर बैठे। कुछ काल तक नाना स्थानों में भ्रमण करके फ्रातीने अन्त में गकों से सहायता मांगी। गकों की विद्वष्टता पाठिनो की गति रोकने को तिरिदत ने गति न दी और वे जान से कर रोमकसमूह चमटसको ग्रहण में पड़ चुके। किन्तु चमटस उन्हें किसी प्रकारको मदद देने में इनकार करते गये। २० खू० पूर्वार्द्ध में रोमकों के साथ फ्रातीने मन्थि कर की। उनका मृत्यु के बाद भाइयों ने मिस्र में किसी प्रकारका विवाद खड़ा न हो, उसके लिये लवों ने छोटे लड़के को अपने पास रख चमटस परिवार मगों की रोमनगर भेज दिया। उनके कनिष्ठ पुत्र ५म प्रवृत्तिने हद पिताको श्रद्धा कर पिट्टे हका उपयुक्त प्रतिगोध प्रदान किया था।

५म फ्राती (Phraate v)।

प्रवृत्तिने सिंहासन पर अधिष्ठित हो कर पार्मेनिया प्रलय करना चाहा। किन्तु युद्ध में पराजित हो कर वे रोमनगर को गये। चमटसको राज्यविस्तार को

इच्छा न थी। प्रवृत्तिने जब यह स्वीकार किया, कि वे फिर पार्मेनिया पर अधिकार करने को चेष्टा न करेंगे, तब चमटसने उन्हें मुक्ति प्रदान की। स्वदेश लौटने पर प्रवृत्ति का विमाता के साथ विवाद हुआ, किन्तु ग्रीस की विद्रोह उपस्थित हो जाने से वे रोम में आ लिये और वहीं उनको मृत्यु हुई।

राजसिंहासन शुन्य हो जाने पर पार्थियों ने २५ ओगेद (Oradse II) को बुलाया। किन्तु उनके निष्ठुर चार यथेच्छाचार पर सभी चमन हो गए। एक दिन वे गिकार करने को बाहर निकले और वहीं मृत्यु के गिकार बन गये। उनको मृत्यु के बाद राजपति चर-तर अराजकता फैल गई। ४५ प्रवृत्तिने एक पुत्र आहत हो कर रोम में पार्थियों को चले गये। किन्तु पश्चिम काल तक विदेश में रहने से स्वदेश की प्रति उनकी कुछ भी समझा न रह्यो। पार्थियों ने उनकी ऐसी आचार्य पर झुंड हो कर अर्थावधान नामक एक व्यक्ति को राजपति पर प्रतिष्ठित करना चाहा। अर्थावधान पहले तो डार गये, पर पीछे लवों को जीत चुके।

२५ अर्थावधान (Artabanus III)

अर्थावधान पति चतुर और उद्यमगोचर राजा थे। उन्होंने जीवन स्वराज्य को ही रक्षा की थी सो नहीं, छातर विद्रोह की समय वैदेशिक राजाओं ने विरोधता रोमकों के साथ युद्ध में विजयो भी हुए थे। पार्मेनिया का प्रभुत्व ही कर रोमकों के साथ उनकी प्रथम विवाद उपस्थित हुआ। रोमकों ने पारसोदियन-अधिपति की भाई मिस्रदानका पार्मेनिया का सिंहासन देना चाहा और इनके लिये उन्होंने पारसोदियनो से उनको मदद देने का अनुरोध किया।

अर्थावधान प्रथम युद्ध में पराजित हो कर भाग जानिको बाध्य हुए। मिथोया, पाठिन, पादि काल ग्रीस को मियदत को हाथ लगे। पार्थियों ने चमटस आतिगों को सहायता में लवों ने पुनः स्वराज्य धार पाया। ये ३० ई.पू. में कुछ समय के लिये राज्य शुन्य हुए थे। रोमकों के शास्त्रविधान में अर्थावधान को एकान्त इच्छा थी; किन्तु पारो और विद्रोह उपस्थित हो जाने से उनकी इच्छा पूर्ण न हुई। अन्त में

दोनो पक्षों में सन्धि स्थापित हुई। ४० ई० में उन्होंने प्राणत्याग किया।

गोतार्ज और वरदानिष (Gotarzes and Vardanes)।

पनवान को मृत्यु के बाद वरदानिष ने कुछ काल तक राज्य किया, लेकिन वे शीघ्र ही राज्यच्युत हुए। गोतार्ज ४१ ई० में सिंहासन पर बैठे। किन्तु उनके निष्ठुर व्यवहारसे प्रजा बड़ी असमरत हुई और उन्होंने वरदानिष का पक्ष अवलम्बन किया। अन्तिम में दोनों सेनाओं के मध्य हुई, किन्तु युद्ध के प्रारम्भ में ही सन्धि हो गई। वरदानिष ने सिंहासन और गोतार्ज ने वरदान प्राप्त किया। अनन्तर वरदानिष ने सेलुकिया नगर पर आक्रमण किया और ७ वर्ष तक अवरोध के बाद उसे अपने दखल में कर लिया।

गोतार्ज ४५ ई० में पुनः विद्रोही हुए और अपने नाम पर सिक्का चलाने लगे। वरदानिष ने उन्हें एरेन्दिन नामक गिरिपर्वत परागता तो किया, पर लोटदे समय गोतार्ज ने राह में उन्हें मार डाला।

वरदानिष की मृत्यु के बाद गोतार्ज ने पुनः सिंहासन की अधिकार किया। मगोट्रिक्स के साथ उनके सम्बन्धों को परिशुद्ध न हुआ। उन्होंने फिर से मध्य एशिया पर करना आरम्भ कर दिया, इन पर मिहिरदात पार्थिव राज्य प्रेष करने के लिये भेजे गये। रोम-गण मिहिरदात के साथ जितगमा तक पाये थे, किन्तु मिहिरदात मेसोपोटेमिया के गाननकासी की विमान-घातकता से गोतार्ज के हाथ बन्दी हुए। गोतार्ज का ५१ ई० में देहांत हुआ।

१२५ ब०१५१ (Volgases I.)।

गोतार्ज की मृत्यु के बाद अवपतनपति २५ मनेमिस सिंहासन पर बैठे। किन्तु ३ वर्ष राज्य करने के बाद उनके मृत्यु हो गई और उनके बड़े सड़के १२ मनेमिस राजा २६ पर अभिविक्त हुए। अपने भाव-पूर्ण के साथ जिनसे किमो प्रकारका विवाद न हो, इस लिये उन्होंने अपने भाई पकोरा को मिदिया और तिरि-दात की पार्थिव प्रदेश प्रदान किया। किन्तु रोमक पार्थिवों में अपने समता को चण्डल रखने की इच्छा से राज्याकांक्षी वरदानिष को पुनः क्षिप कर नवायता

करने लगे। ५८ ई० में वलकागोने अपने भाई को पार्थिवों के सिंहासन पर बिठाया, उसके बाद रोमकों के साथ सन्धि हुई। सन्धिके अनुसार तिरि-दात ने रोमक-स्वाट से गाननदण्ड प्रेष किया।

वरकानपतिने तिरोही की कर ११ ई० में स्थाप-नताका प्राप्त की। उन्होंने पलान नामक जातिको अपने राज्य के मध्य ही कर जानकी अनुपति दी। मिदीयामें आकर उन लोगों ने देग लूटना आरम्भ कर दिया और राजभ्राता पकोरा को राज्यसे निकाल भगाया। वलकागोने विद्रुम पड़ कर रोमकों से सहायता मांगी, किन्तु उनकी प्रार्थना स्वीकृत न हुई। पलान ७६ ई० में पलानगण प्रचुर धर्मसंपन्न करके स्वदेश लौटे।

पलान निग्रह के बाद वलकागो की मृत्यु हुई। मृत्यु के बाद २५ वलकागो और २५ पकोरा नामक दो राजाओं ने एकत्र राज्य किया। पलान ८२ ई० की पार्थिवान (Artabanus I.) ने सिंहासन प्राप्त किया।

इस समय पार्थिव राज्य बहुत विस्तृत था। पार्थिव और वरदान के राजा चोनमवाट की धपठेननादि भेजा करते थे। ८७ ई० में चीन ने रोमक-स्वाट के निकट प्रेरित दूत भूमिप्राप्ति पर तन पड़वा। किन्तु समुद्रपथ के कारण चयन विद्रुम-गण प्राप्त कर के स्वदेश लौटे।

इस समय तक यमेटिन नदी रोमक-स्वाट की पूर्व सीमा के रूप में गिनी जाती थी, किन्तु मवाट एगन पार्थिवों में रोमक-गण की वजह से करने में लिये ११२ ई० की पार्थिवान पर प्रेष किया और बिना छुड़ा वराश के ही पार्थिवान नामक स्थान जीता। लेकिन धीरे धीरे पार्थिवान, मेसोपोटेमिया, पार्थिविया आदि स्थान फलक करने पर पार्थिवगण पार्थिवों के कारण रोमकों की किसी प्रकार की बाधा न दे सके। जब एगन पार्थिव-वपमाग के किनारे पड़वा, तब सभी विजितप्रदेशों में विद्रोहान्त प्रथम छटा और रोमक-मनपति माक्सिमस (Maximus) युद्ध में मारे गये। एगन रोमकों को विद्रुम-गण से नष्ट कर लौट पाये और

सेसोप्टेमिया के पन्तगत पत्रा नामक स्थान की घेरा लिया, किन्तु उस पर अधिकार जमा न सके। ११० ई० में एमन की मृत्यु होने पर हाद्रियन (Hadrian) ने ममो रोमकसेना की सहायता से युवा लिया।

३२ वलकासी (Volgases III)।

३२ वलकासी १४८ ई० में परलोक को सिधारे। पीछे उनके लड़के डेय वलकासी ने सिंहासन को सुगोभित किया। वह दूज दिनों में पार्स में लिया जीतने की उनकी इच्छा थी। १६२ ई० में रोमक सम्राट् मार्कस अन्निनस नामक मृत्यु हुई। इस सुयोग में वलकासी ने पार्स में लिया जा कर यहाँ के अधिकारियों को मार भगाया और पकोरा की पार्स में लिया का सिंहासन प्रदान किया। कप्पादोकिया की रोमकसेना युद्ध में एक लड़के निर्मूल हो गई और उक्त प्रदेश को पार्सियों के हाथ लगा। रोमक सेना की पराजय सुन कर इजिप्ट के रस एगियासुस की पट्टी से इस समय रोमकसेना की भयानकता को जानने पर वे नन्धिका प्रस्ताव करने को बाध्य हुए। किन्तु वलकासी ने इसमें अपनी प्रतिष्ठा प्रकट की। वेरसने शान्त हो पार्सियों की पराजय कर पार्स में लिया, सेसोप्टेमिया, बाविलन प्रादि प्रदेशों की जीत लिया। अन्त में १६६ ई० को सन्धि स्थापित हुई और तदनुसार रोमक की सेसोप्टेमिया प्रदेश मिला।

३४ वलकासी (Volgases IV)

३४ वलकासी की मृत्यु के बाद ३४ वलकासी सिंहासन पर अधिकार हुए। इस समय रोम में अन्तर्विषय उपस्थित हुआ और वलकासी ने पेनिनिया गिर (Peesennius-Niger) का पक्ष पकड़ लिया। किन्तु गिर की पराजय के बाद उसके प्रतिस्पर्धी सिवरस (Saverus) ने सेसोप्टेमिया पर कब्जा की और उसे जीत लिया। पार्सियों ने सेसोप्टेमिया अधिकार के समय किसी प्रकार का विपत्ता नहीं किया। किन्तु १८६ ई० में सिवरस जब पान्थिनियों के साथ लड़ाई में लगे हुए थे, उस समय पार्सियों ने सेसोप्टेमिया लूटा और सेंटिमनगर में घेरा डाला। सिवरस को भागमन पर पार्सियों ने पुनः पलायन हुए और सेंटिमिया तथा कोषी नगर रोम की ओर

हाथ लगा। २०१ ई० में मिरसने पत्रा नगर को घेरा लिया, किन्तु पराजित हो कर वे भाग जाने की बाधा हुए।

३५ वलकासी (Volgases V)।

३५ वलकासी की मृत्यु के बाद उनके लड़के डेय वलकासी ने राज्य पाया। २०३ ई० में पार्स में विद्रोह हुए और घेरे घेरे समतायासी हो उठे। अन्त में वलकासी को बाविलन प्रदेश में पाया गया पड़ा। इस समय पार्स में रोम की का युद्ध हुआ। पार्स में रोमक सम्राट् के साथ अपनी कन्या का विवाह नहीं देना ही इस विवाद का मुख्य कारण था। इसमें रोमक सम्राट् मारे गये और उनके दो सेनापतियों के पुत्र पराजित होने पर विवाद का प्रयोजन हुआ।

पारसो (Persis) के शासक एगाने को पार्स में साम्राज्य की ध्वंस कर डाला। पारसो लोगों की प्रमुख धर्म में प्रगाढ़ भक्ति थी। इष्टन नामक पान्थन के लोगों को पनाहिष पनाहिषा देश का मन्दिर था। इस मन्दिर के पुरोहित का नाम था गामन। इसी में किसी राजकन्या के विवाह कर अपने वंश को प्रतिष्ठा को दो। उनके वंशधर दिना दिन समतायासी होते जाते थे और पार्स में उनकी उपेक्षा करते पा रहे थे। अन्त में उनकी पदशोर की युद्ध में पार्स में रोम की मार कर पार्स में पान्थन अपने दखल में कर लिया (२२० ई० में)। इस समय पार्सियों का राज्यावसान हुआ।

शासनीय राज्यपाल।

पार्स में सम्राट् के समय पारसो प्रदेश एक छोटा राज्य में गिरा जाता था। यहाँ के राजपण पार्स में राजाओं को पान्थन पान्थन पान्थन करते थे। इसी मताद्धी के प्रारम्भ में पारसो राज्य के छोटे छोटे पान्थन में गिरने पर यहाँ के राजा इनको ही मारे थे। पारस नामक एक राजा विराजपट्ट के मिहट राज्य करते थे। उन्होंने इष्टन नामक स्थान को जीत कर यहाँ अपनी राजधानी बनाई। पारस के पिता का नाम गामन था, इसी से इस वंश का नाम गामन पड़ा। पारस के पुत्र का नाम गामनुर और गामनुर के पुत्र का नाम पदशोर था। पदशोर की प्रकृतित गामन में लिखा है, कि वे २११ वा

२१२ ई०में पार्थिवमिंहामन पर समासोन थे। जर्-
य धर्ममें उनको प्रगट भक्ति थी। उनके शासन-
कालमें पुरोहितगण अति चमत्तागो हो उठे। उन्हीं
न कमीन, सुमियाना आदि स्थान अपने अधिकारमें
कर लिये। अर्द्धगोरकी समता दिनोंदिन वर्धित होती
देख रोमकगण उनके प्रतिद्वन्द्वी हो उठे और २१३ ई०में
अलेक्सन्दर सेवेरस (Alexanders Severus) ने युद्धमें
उन्हें परास्त किया। इसके बाद रोमक और ग्रासनीयों के
घोष बेरिभाव कभी विद्युत्त नहीं हुआ। दोनों पक्षमें

इमेया लड़ाई होती थी। इष्टस नामक स्थानमें
नाममात्रता उनको राजधानी थी, सभी राजकाय
टिसिफोन (Ctesiphon) नामक स्थानमें होता था।
अर्द्धगोरकी मृत्युके समय ग्रासनीय साम्राज्य बहुत दूर
तक फैला हुआ था। जो सब देश अर्द्धगोरके जयोपार्जित
कद कर अभिहित हैं, वे यद्यपि उनके परवर्ती
राजाओंसे अधिकृत हुए थे। जो कुछ ही, अर्द्धगोरने जो
विच्छिन्न राज्य संस्थापित किया था, वह चार सौ वर्ष
तक वसमान था।



अहुमन्द कर्तृक १५ वर्षक्षत्रको शत्रुपुत्र प्रदान। (वाहुर)

अर्द्धगोरके जोते जो उनके लड़के शाहपुर योवराज्य
पर बसिपित हुए थे। पिताकी मृत्युके बाद वे मिंहा-
मन पर अधिष्ठित हुए। उनके राजत्वके प्रारम्भमें ही
रोमकोंके साथ उनका विवाद लड़ा हुआ। शाहपुरने
दलबलके साथ अन्तिधोक नगरमें प्रवेश किया, किन्तु वे
रोमकोंमें परास्त हुए। रोमक सेनापति सुलियस जब
गामनीय राजधानी पर आक्रमण करनेका उद्योग कर
रहे थे, उसी समय एक घर उन्के प्रायका ग्राहक
हुआ। उनको मृत्युके बाद गामनीयोंके साथ सन्धि
स्थापित हुई। सन्धिके अनुसार शाहपुरको पार्थिविया
घोर में सेवेरेमिया मिला। अनन्तर २१२ ई०में रोमकों-
के साथ युद्ध हुआ हुआ जिसमें रोमकमन्त्राट, सवे-

रियस (Valerian) गामनीयोंके हाथ बन्दो हुए;
किन्तु शाहपुरने पराजित हो कर अपने गेट दिव्वाड़े।
रोमकोंने उनके राजप्रभे प्रवेश कर राजधानीको
अच्छी तरह नष्ट। इस समय गामनीयराज ऐसे
बन गोर पर्य होन हा गये थे, कि रोमकोंके साथ युद्ध
करनेको उनमें जरा भी शक्ति न रह गई। रोमकगण
बिना शक टोकके ही गामनीय राज्य नष्ट कर अन्त-
की प्राप्ति गये।

शाहपुरके राजत्वके प्रथम भागमें मन्त्रिकोय सम्प्रदायके
प्रवर्तक मन्त्रिने अपने मतका प्रचार करना आरम्भ
किया। इस समय गामनीय स्थानचको प्रष्ट उन्नति
साधित हुई। शाहपुर नामक स्थानमें इन भव प्राचीन
कोशियोंका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है।

शाहपुरकी मृत्यु के बाद २०२२ से ११० ई० तक ४ राजाओं ने राज्य किया। उनके शासनकालमें कोई विगीत सत्ते का योग्य घटना न घटी। अतः इस समयका कोई विगीत विवरण भी नहीं मिलता।

११० ई० में २२ शाहपुरने राज्यनाम किया। शाहपुर नावागिग थे, इसलिये राजकाय उनको माता ही जानातो था। इस समय रोमक राज्यमें ईसा-धर्म बहुत बढ़ा बढ़ा था। पोतलिकधर्म की प्रचलति थी। ११२ ई० में जब रोमकी के साथ युद्ध उपस्थित हुआ, तब पारसिक ईसाई उनके प्रति सद्गानुभूति दिखलाते थे, इस कारण उन पर घोरतर परयाचार नारा हुआ। उनका सदासनामन्दिर तोड़ फोड़ डाला गया और स कहो पुरोहित प्रसारावागमे मार डाले गये। ११७ ई० में रोमकी के साथ युद्ध किया तो शाहपुर उनके सेनापति के साथ रणक्षेत्रमें उपस्थित हुए। २५ वर्ष के बाद इस युद्धका प्रथम भाग हुआ। शाहपुरने कई बार रोमकी को युद्धमें परास्त किया था, किन्तु रोमकी का दुर्ग बहुत हीने के कारण भी विजयनाम न कर सका। अन्तमें रोमकसम्राट् क्लियुयने शाहपुरीय-राजधानी पर आक्रमण करने के लिये शत्रु-राज्यमें प्रवेश किया। किन्तु राजधानी सुरक्षित [देख लो] लौट जाना पड़ा। लौटते समय शत्रुने उनकी अधिकांश सेना बिलत कर डाली और अन्तमें पाप भी मारे गये। उनकी मृत्यु के बाद रोमकी के साथ शाहपुरकी गन्धि हुई। इस सन्धिके अनुसार शाहपुरकी तावपीन नदीको पूर्वदिक्स्थ भूमि और भी लोटेमियाका कुछ भाग प्राप्त हुआ। सन्धिमें यह भी शर्त थी, कि रोमकगण पार्सिनियाधितिकी किमो प्रसारकी सहायता न देंगे। इस सन्धिगतमें तदा पार्सिनियाधितिकी उनके हाथ मन्दे होने पर भी शाहपुर पार्सिनिया पर अधिकार न कर सके। पार्सिनिया छोटे छोटे राज्यों में विभक्त था और यहाँ के ईसाई लोग रोमकी के पक्षपाती थे। रोमकगण द्वेष कर उनकी सहायता करते थे।

१०१ ई० में रोमकसेनामें प्रकाशदपने नामयोग सेनाका नामना किया था। किन्तु इस समय गण

सोनी के रोमकसाम्राज्य पर आक्रमण करनेमें दोनों पक्षमें फिरने सन्धि हो गई। १०८ ई० में २२ शाहपुर कराल कालकी गान्तमें पतित हुए।

२२ शाहपुरकी मृत्यु के बाद द्वितीय पदोहीने और पदोहीरके बाद २२ शाहपुरने राजा किया। इन लोगों के शासनकालमें कोई विगीत घटना न घटी।

२२ शाहपुरकी पुत्र यजदेवाद १०८ ई० में राजा हुए। पारसिक लोग उन्हें बुद्धिमान् पर पार्सिक समझते थे। वृद्धवर्माशम्वियों के प्रति अनुग्रह दिखलाना ही इसका कारण समझा जाता था।

२२ शाहपुरकी राजत्वकालमें ईसा लोग उपद्रवना-कालमें एकत्र हो सकते थे। वेष्टि उनके प्रधान धर्म-याजक दोस्तकार्यमें नियुक्त हो कर रोमदेशकी गये। ४०८ ई० में रोमकसम्राट् के साथ उनकी मित्रता हुई। इस कारण पारस्यके सम्राज्ञा लोग उन पर पत्न्या प्रसन्न हुए और बर्तमान प्रदेशमें रहते समय उन लोगों के राजत्वमें रहना उनकी मृत्यु हो गई।

पिताका मृत्यु-सन्वाद या फर ४४१ शाहपुरने पार्सिनिया में राजधानीको और यात्रा की, किन्तु वे राहमें ही मारे गये। उनके मरने के बाद गुस्तार नामक एक राजा सिंहासन पर बैठे। किन्तु शाहपुरके भाई बहरमदे राज्यप्राप्ति होने पर वे राज्यद छोड़ देरकी बाध्य हुए।

बहरमदे सबसे प्रमुखाधिका और कामिगोरे सत्ता-वामप्रिय थे। राजपद पर प्रतिष्ठित होने के साथ ही वे ईसाईयों के प्रति अत्याचार करने लगे। वेष्टि उन्होंने रोमकी के साथ विवाद डाल दिया। उनके सेनापति रोमकाधोन तमस्राजिनोपन पर अधिकार किया।

४२२ ई० में दोनों पक्षमें सन्धि हो गई। इस सन्धिके अनुसार ईसाईयों के उपर जो अत्याचार होता था, वह कुछ समयके लिये बन्द रहा। जनसारा रूप आर्थिक साथ पारसिकों के विवादका प्रथम प्रथम हुआ। इस लोग बलिया और समरे पार्सि प्रदेशों में रहते थे। उनके साथ पार्सि शताब्दी के मध्य भाग तक युद्ध चलता रहा। बहरमदेकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र २२ यजदेवाद राजा हुए। इनके समयमें ईसाईयों के

ऊँरे पत्ता गार होनेके कारण पार्सोनियाँ विद्रोह उपस्थित हुआ। पार्सों उनको धर्ममें किसी प्रकारका हस्तक्षेप न किया जायगा, ऐसा खोकार कर लेने पर विद्रोहान्त गाना हुआ। यज्ञदेजादकी मृत्युके बाद उन ने दो पुत्रोंमें विवाद खड़ा हुआ। विरोज क्षत्रको पद्मायतामे पदमें भारिका विनाग कर सिंहासन पर बैठे। किन्तु मिंहासनप्राप्तिकी बाद हथोंकी साथ पुनः युद्ध छिड़ गया। कई एक युद्धोंमें विरोजको जीत तो होती गई, पर मरुभूमिमें युद्ध होनेके कारण उन्हें बड़े बड़े

सुभीचरों लठानी पड़ी थी। इस कारण वे हथोंमें सन्धि करनेको बाध्य हुए। ४८४ ई०में विरोजके सन्धि-भङ्ग करने पर क्रिमे विरोध उपस्थित हुआ। इस युद्धमें विरोज पराजित होर निरुद्ध हुआ। हथोंने पारस्यमें प्रवेग कर नगरग्राम लूटा और पत्ताचार पारम्भ किया। पारसिकोंके प्रति वर्ष कर देनेमें स्वीकार करने पर क्षत्र लोग स्वदेशकी लौटे। विरोजकी मृत्युके बाद उनके भाई बलाग गहो पर बैठे, किन्तु पारसिक पुरोहितोंके विपक्षानुसार करनेमें ये थोड़े दिनोंके मर गये राज्य-रहित हुए।



तक-र-केला भा १म खण्डका भाग प्राचीन ।

विरोजके पुत्र १म कषाध ४८८ ई०में सिंहासन पर पधिरुढ़ हुए। पुरोहित होर सभ्यता पारसिकोंकी प्रधानता खर्च करना ही उनका प्रधान लक्ष्य था। किन्तु इसमें राज्य भरमें विद्रोहान्त धक्का लगा और पाप मृत्युको हाथ बन्दे हुए। पोजे कषाधने भाग कर हथोंको शरण ली और उनको सहायतामे लड़ने में पुनः राज्य-लाम किया। ५०२ ई०में वे इच्छापूर्वक रोमनोंके साथ युद्धमें प्रवृत्त हुए थे। लकोंने पहले पार्सोनियाँको राजधानी पर पधिरा किया। यह युद्ध ही बाद ५०६ ई०में दोनों पक्षमें सन्धि स्थापित हुई। ५३१ ई०में कषाधने पोगिया जीतनेको चेता की, किन्तु उनकी

सभी चेताएँ निरुद्ध हुईं। ५३१ ई०में उनकी मृत्यु हुई और उनके विध्वंस्त पुत्र समक सिंहासन पर बैठे। शान्तेय राजाओंके साथ खमरु सन्धिप्रधान थे। इन्होंने अपने पारे राज्यको साथ कर राजस्वका परिमाण निर्धारित कर दिया जिसमें राजकोषको विवेक रखति हुई। उनके शासत्वकालमें महर काटना, पुन बनाना और नदीमें बांध देना आदि अनेक हितकर कार्य क्रिये गये। ईसाई तथा पन्थान्ध धर्मावलम्बी उनके शासन-समयमें मरुभूमि गिरापड़ थी। पापत्य सभ्यताके प्रति उनका विरोध ध्यान था। इस कारण उन्होंने अपने राज्यमें पापत्य शब्द-उपदेश और गिरानियाँ

वन प्रयाग किया। ५३२ ई० में रोमकों के साथ उनको मिला हुआ। इस समय के पनुमार उन्होंने रोमकों को कई एक स्थान प्रत्यर्पण किये और रोमकगण भी प्रति-वर्ष कर देने को राजी हुए। इस समय प्रांतिक प्राकमण-से होने राज्य भी निरापद करके समझने ५४० ई० में सीरोय पर प्राकमण किया। अन्तिमोक्त नगर उनके हाथ लगा और वहाँ उन्होंने प्रचुर धन प्राप्त किया। कुछ वर्ष बाद समझने नाजिस्तान जा कर येशा नामक स्थान पर अधिकार जमाया। इस समय में मोपेटेमिया प्रदेश में युद्ध चल रहा था। अन्त में ५४८ ई० में रोमकों ने काफी धन दे कर पाँच वर्ष के लिये मंथि कर ली।

इस समय पस्तु नदी के किनारे वाक्कन राज्य प्रदल हो गया। समझने वहाँ के अधिवासियों को समोभूत कर लिया था। उनका राज्य इस समय मित्युनदी तक विस्तृत था। ५७० ई० में उन्होंने रोमन प्रदेश को दखल किया। रोमकों ने वाक्कन और रोमन के देश-द्वयो को भी सहायता दी थी, उसने निम्न प्रसक्त के साथ पुनः सज्जा विवाद किया। रोमकों ने निमि-विम नगर को घेर लिया, किन्तु जीत न सके। समझने ५७३ ई० में दारा पर दखल जमाया। ५७५ ई० में उन्होंने कप्यान्तिका तक रुद्धम बढ़ाया था, किन्तु यहाँ रोमकों को प्रबल देख उन्हें लौट जाना पड़ा। रोमक-गण उनका घोटा करने हुए पारस्य अधिकांश भाग आर्मे-निया तक पहुँचे। किन्तु दूसरे वर्ष समझने उन्हें राजा के मार भगाया। ५७८ ई० में ताद्वेरियस (Tiberius) ने रोमक साम्राज्य को प्राप्त किया और समझने की शुरुआत हुई।

समझने की शुरुआत बाद होरमज्द मिर्दासन पर है। इस समय भी रोमकों के साथ युद्ध चल रहा था। तुर्कों लोग इस समय भागे हो गये, किन्तु पारसिक सेनापति बहराम के साथ उनको पूरी हार हुई और कर देना उन्होंने कबूल किया। इसी बाद बहराम रोमकों के विरुद्ध भेजे गये, किन्तु युद्ध में पराजित होने के बाद होर-मज्द ने उन्हें पट्टणुन और पपमानित किया। बह-राम इस अवमानना से नाराज हुआ किन्तु निम्नो के लिये विद्रोही हुए। होरमज्द की पुत्र २५ वर्ष की उम्र में उसका साथ दिया।

पश्चात् होरमज्द राजा हुए तो २८० ई० में निधन हुए। होरमज्द की मृत्यु के बाद २५ वर्ष (पारस) और बहराम के बीच मिर्दासन के कर भगवा होना हुआ। २५ वर्ष की युद्ध में हार पा कर मासि (Maurice) की मृत्यु भी और पश्चात् मारियस नामक अन्य पारसिकों को सहायता में पैदा राज्य का उद्धार किया। बहराम तुर्किस्तान को भाग गये। समझने अपने को निरापद करने के लिये एक हजार रोमकों को शरीर छोड़ दिया। ६०२ ई० में मारियस के मारे जाने पर फ्लोस (Phocas) उनके राजमिर्दासन पर अधिकार हुए। समझने मारियस की पुत्र को सहायता देने के लिये चयन हुए। ६०४ ई० में रोमकों के विरुद्ध युद्ध चल रहा था। २६ वर्ष तक यह युद्ध चलता रहा। प्रथम युद्ध में रोमकगण विपक्ष हो पड़े और इनके दमस्कस, जेरुसलम, मिस्र आदि स्थान पारसिकों के हाथ आये। अन्त में हेरकलियस (Heraclius) की कोशिश से रोमको मास्यनक्षी सुवर्ण हुआ। ६२० ई० में पसक्त वगैरे परास्त हुए और राजधानी छोड़ कर भाग गये। हिन्दु कुछ समय के बाद हो मृत्यु की हार में पड़ कर उन्होंने पाण विचर्जन किया। २५ वर्ष की मृत्यु के बाद कबाधने राजा हो कर रोमकों के साथ मंथि कर ली। परन्तु कुछ समय के पश्चात् समय भी न होने पाया था, कि उनका राज्य सुदूर जाता रहा—ये मृत्यु के बाद ही मारि गये। बाद २५ प्रदेशों पर साल वर्ष की अवस्थान में गद्दी पर बैठे। इस समय पारस्य राज्य में तमाम परा-कता फैल गई, सभी राजगण ही चयनित की कोशिश करने लगे। ये अपने अपने पवित्रत राजपुत्रों के वि-सुन पर दिखाना चाहते थे। अन्त में चनेक इत्याकाण्ड के बाद ६३२ ई० में महरारक की पुत्र यमदशार्द ने राजमिर्दासन प्राप्त किया। इस समय सुवर्णमान भी पस्यत प्रबल हो कर उपर्युक्त पारसिकों को परा-स्त करने लगे। अन्त में कादिमिरको लड़ाई में यमदशार्द को ठोठ दिखाने पर ताद्वेरियस नदी का समस्त उद-वर्धन भाग सुवर्णमानों के हाथ लगा। ६४२ ई० में मिर्दास-के युद्ध में पारसिक सेना एक प्रकार से विध्वस्त हो गई और सभी शासनोप राज्य परकों के हाथ आया।

खलीफाओंका अधिकार ।

पारस्यमें शासनको दो चमता विलुप्त होने पर फरबोने सभी अधिशासियों को बन्धुत्वक सुगमताओं धर्ममें दोषित किया । इस समयसे लेकर १०० वर्ष तक पारस्यदेश खलीफाओंके अधीन रहा । फोमर, चौथमानफनो और फोस्मदोय खलीफाओंके समयमें (१३४६ से ७५० ई० तक) पारस्यदेश खलीफा-साम्राज्यके एकामरकममें गिना जाता था और इस स्थानका राज-काय खलीफाओंके लिये एक शासनकर्त्ता नियुक्त होते थे । ७५० ई०में खलीफा बल्बासके बन्धुओंने बागदादमें राजधानी बसाई और इस समयसे खुरासान उन लोगोंका पर्यन्त प्रिय स्थान हो गया । खलीफा देखो ।

खलीफाओंको चमनति होने पर पारस्यके अन्यान्य प्रदेशोंके शासनकर्त्तानि स्वाधीनता प्रवृत्तत्वन की, इस कारण बहुतसे छोटे छोटे राज्य स्थापित हुए । इस समय पारस्यदेश नाममात्रका खलीफाके अधीन था । इन सब छोटे छोटे राज्योंके मध्य खुरासानमें तेहर बन्धुओंने ८२० से ८७२ ई० तक सिद्धान, पार, इराक आदि स्थानोंमें चक्रोंने ८५८ से ८७२ ई० तक पश्चिमपारस्यमें दक्षिणदिशि ८२३ से १०५५ ई० तक राज्यशासन किया । ये सब छोटे छोटे राज्य चमनमें लक्ष-लुप्त जातिसे विध्वस्त हुई । इनो सेलजुक जातिनी एक माथा खारिजस नामक स्थानमें राज्य करतो थे । उन्होंने क्रमशः चमतामाथो को कर पारस्यके अधिकांश स्थानों पर अधिकार कर लिया और गजनों तथा खेरिबी-को पारस्यमें मार भगाया । किन्तु कुछ समय बाद सेल-लुकगण अन्यान्य जातियोंके साथ चङ्गोज खाँके हाथ परास्त होई अग्राम हुए । चङ्गोजखाँके बन्धुओंने १२३३ से १३४४ ई० तक राज्य किया । पोले उनको चमता विलुप्त हो जानसे इसस्थानावगण प्रवृत्त हो उठे । इस समय तेमूरलङ्गने पारस्यदेश पर आक्रमण कर समस्त चन्द्रराज्योंको ध्वंस कर हाजा पोर वर्त्तमान पारस्य-साम्राज्यको नीचे डाली ।

वर्त्तमान पारस्य-राज्यका इतिहास ।

वर्त्तमान पारस्य राज्यका इतिहास नामा विमोचि नामक घटना और हत्याकाण्डपूर्ण है । तेमूरलङ्गके मरणसे

ही वर्त्तमान युग पारस्य हुआ है । तेमूर पोर उनके बन्धुओंका विषय आक्रमणाम प्रथममें लिखा है ।

तेमूर विख्यात दिग्विजयो थे । उन्होंने १२२१ ई०में खुरासान, मसन्दारन पोर पोले एशियामाइनर, चकगा-निधान, भारतवर्ष आदि देशों पर अधिकार किया । भारतवर्षके इतिहासमें उनका आक्रमण विद्वत्जनमानमें वर्णित है । उनको मृत्युके पहले अफगाणदेश से कर हर्जाम तक उनको आक्रमण मर गयो । तेमूरके जीने-जो उनके तोहरे लड़के मोरनाइन पारस्यके एक बन्धुका शासनभार ग्रहण किया था । किन्तु उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो जानसे बागदाददेश पारस्यराज्यो विच्छिन्न हो गया । अपने मृत्युकाक्रममें तेमूरने १७५५ ई० में पोर-सहस्रद नामक एक पौरुषो उत्तराधिकारी बनाया था, किन्तु मोरनाके पुत्र इस पर बड़े चमत्कृत हुए और उन्होंने बन्धुत्वक विवासन पर अधिकार कर १४०८ ई० तक राज्य किया । पोले तेमूरके चौथे पुत्रके शासकत्वने उनके भगा कर राज्यभार ग्रहण किया ।

शाहसुख (१४०८-१४५५ ई०) साहजो, दयालु और लोचने स्थानके थे । उनके मरणमें समरकन्दमें होरट-में राजधानी उठ पाई । ३५ वर्ष राज्य करनेके बाद शाहसुखकी मृत्यु हुई । पोले उनके लड़के अलुगबेग भिन्दासन पर बैठे । विधान पोर काश्ग्याक्रममें उनका विमोच समुगम था । उनके राजत्वकालमें समरकन्द नगरमें विद्यालय पोर मानसन्दिर स्थापित हुए । अलुग-बेग अपने पुत्रके हाथसे मार गये । इस घटनाके लः मास बाद अलुगबेगके पुत्रने सैनिकोंके हाथमें प्राण विसर्जन किया । पोले राजपुत्रोंमें विवाद बढ़ा हुआ । बहुत खनखराओंके बाद अलुग मिर्जा १४८७ ई०में राजा हुए । उन्होंने १५०५ ई० तक होरटमें राज्य किया । वे बड़े विद्यासाक्षी थे । उनकी मर्मासे चलेक ऐतिहासिक पोर आस्थास्वविहारद पण्डित पञ्जारे थे । कविओंके ज्ञानी पोर इतिहास प्रवीण रहे । तेमूरके उपार्जित सुनिष्ठोर्ण साम्राज्यको सुगमित रखना उनके बन्धुओंको शक्तिसे बाहर था । पारस्यके पश्चिम भागमें अज्ञानहमन नामक एक तुर्कमिरदार स्वाधीन पोर अत्यन्त प्रचन हो उठा और समस्त पारस्य

प्रदेशको चरने क्षीण कर दिया। उन्नामन (इमेन एमन) को समामे भिन्नमने पनेक बार दून भेज गये थे। १४८१ ई०में उन्नामनको म्नेने विषमभोगने पवने प्रामोका साथ घर लिया। उनको मृत्युके बाद राज्य भरमें घोरतर पराजयता फैल गई। पनेक हत्याकाण्डको बाद पलायन नामक एक राजपुत्र मिहामन का पक्षिष्ठन हुए।

प्रकीर्ण (१४८८-१०११ ई०)

सुको लोम पवने काशोयच्छके दक्षिण-पश्चिममें रहने थे। उनको धर्मभोरता घोर पवित्र प्रभावका विषय चुन कर ते मूर सुक्तिगोके निरुद्ध गये घोर उन लोगके प्रति उन्नेने प्रगाढ़ भाति दिखताई। इनके वर्गमें इन्द्रा-एन सुकोका जन्म हुआ। ये घटारह वर्षको उमरमें घर छोड़ कर गोजान चले गये। वहाँ उन्नेने पदर-मृत्वाह मेना संघर्ष कर काशोयच्छके तोरपती वाजू नगर पर पक्षिहार किया। इनके बाद सुमाखो नगर उनके हाथ लगा। पक्षिहारो १४८८ ई०में प्रतासुव को लड़नेमें पराजित कर के पारस्यके गाह-उद पर पक्षिस्थित हुए। पलायनने दियावधिर नामक स्थानमें पालय पक्ष्य किया, किन्तु उनके भाई सुराद एक दिन मेना के कर हत्याकरने जा भिड़े। पीछे वे भी पराजित होकर भाई-के निरुद्ध गये। पक्षो दोनों भाई इन्द्रा-एनके हाथमें मारि गये। १५०१ ई०में इन्द्रा-एनने तान्त्रिजने का कर १५०० ई०तक निरुद्धवधे राज्य किया। १५०० ई०के बाद उजयकीने प्रा कर घोर पलायन घोर लड़ाई दान दी। १५०८ ई०में पक्षोत्र जोह वंशोय गाह-व गने समरकन्द, तामशन्द पादि स्थान जोत कर पुरा-तान पर पक्षमग किया, किन्तु थोड़े ही समयकी बाद वे दूगरो गगह चले गये। १५१० ई०में पुरासागमें उजयकीका दूसरो बार उत्पान पारस्य हुआ। उज-योह मेना देग लूटनेमें व्यय हो कर जिवर तिघर चली गई। ऐसे समयमें इन्द्रा-एन गाहने उन पर पक्षमव कर गज्जमें उन्ने पलायन किया। गाहवेग सामने समय पक्षी घोर मार डाले गये। इन घटनाके बाद हर्ष सुलतान समोमके साथ विरोध घेदा हुआ। सुक्तिगोने धर्मोत्र को कर सुधा मुमलमानोंके ऊपर

बठोर पक्ष्यचार करना पारस्य कर दिया। इनके इन्द्रा-एनके वड़े विगडे घोर ४०००० सुक्तिगोके मान लाग किये। यको लड़ाईका कारण था। समोमके वधुपत्यक मेनाके साथ पारस्यराज्यमें प्रवेश करने पर इन्द्रा-एनने १५१४ ई०में दलबलके साथ घोर नामक स्थानमें सुलतानका सामना किया। लड़ाईमें इन्द्रा-एन की हार हुई। सुलतान राजधानीमें पुन वड़े घोर प्रभु-पक्ष्य-उन्ने कर लड़ेग लोटे। १५१८ ई०में समोमको मृत्युके बाद इन्द्रा-एनने पुन पराजयका उद्धार किया। १५२४ ई०में उनको मृत्यु हुई। ये पक्ष्य-सुधमसुगोको घोर प्रजापिय थे। पक्ष्य-उन्ने 'मिषाके राजा' कहा करते थे। इन्द्रा-एनको मृत्युके बाद उनके पुत्र तमाख गाह गहो पर बैठे। १५४१ ई०में सुलतान-सम्बन्ध-कुमायुने उनका पक्ष्य लिया। इनके उन्ने १५५८ ई०में तुलकको सुलतानको पुत्र मिद्रोको हुए घोर पिताने पराजित हो कर पारस्य-गोहरी पारस्यमें पक्ष्ये। इन्द्रा-एनको पक्षिहारो पक्षिहारोने १५६१ ई०में पारस्यके गाहने पक्षिहारको सुविधाने निवे पक्षोने जिनकिमन नामक एक दून को भेजा, किन्तु कोई फल न निकला।

१५०६ ई०में तमाखका देहान्त हुआ। पीछे उनके पुत्रा 'मिहामन'के किये निपाद लड़ा हुआ। पक्ष्यमें उनके पक्ष्य पुत्र २५ इन्द्रा-एनने पक्ष्य-जानि को सहायतासे पक्ष्य भादमीको पराजित कर पक्ष्य-प्रम किया। इन्द्रोने दो वर्षों में मोयम राजा किया था। २५ इन्द्रा-एनके बाद उनके वड़े लड़के मध्याद मित्रो राजपद पर पक्षिष्ठन हुए। मध्याद के राजत्वकालमें पक्षो घोर लड़ाई व्यवस्थित हुई घोर इन समय उनके पुत्र भी मिद्रोको हो लड़े। उनके वड़े लड़के हमजा मित्रोने मिद्रोद्विषाका दमन किया। किन्तु वे जीय-ने मारि गये घोर पुन गोततान गद हुआ। पक्ष्यमें पक्ष्यमने राजागो-रवरीको सहायतासे मद्रोको हरा कर १५८६ ई०में मिहामनको पराजित।

१५८० ई०में वे उजयकीके साथ लड़ाईमें प्रता हुए घोर उनमें दरीम तथा पुरासाग में किया। पुरा-सागमें पक्ष्यने व्याधो प्रभुत्वको लक्ष्य मध्याद को हराया

यहो एक एक मिनार को, पोर चपने रहने के लिये एक प्रामाद भी बनवाया। १६०१ ई० में तुर्कों सुलतान के साथ फिर से युद्ध फिड़ा। इस युद्ध में सुलतान को सेना पराजित हुई। अन्त में सुलतान ने सन्धि कर ली। सन्धि के अनुसार तुर्क शाधिपने गाहको पूर्वाधिगत स्थान छोटा दिया। १६०८ ई० में उन्हीं सुगनों को हाथ में कन्दहार का युद्ध कर दिया। ७० वर्षों को अवस्थामे १६२८ ई० में उन्हीं ने जोषम-नीना सम्राट की। ये सुकोषगं के मन्त्रिप्रधान राजा थे। उनका यश चारों ओर फैल गया था। उनके राजत्वकाल में पारस्यराज-समामें बहुत कुछ, रुधिया, मीन, जालेण्ड, पुर्नगान और भारतवर्ष आदि देशों में दूत भेजे थे। पछिको दो सुविधा के लिये उन्हीं ने पनेक पाल-निवास, पय पोर सेतु बनवाये थे। बड़े लड़के, सुकोमित्रों पोर उनके दो छोटे भाइयों का इत्याकाय, छोड़ कर उनका चरित निरकलह था। अन्तिम कालमें उन्हीं ने पुत्र को मृत्यु पर खूब प्रयास प किया था पोर अपने पापों-प्राय-विपत्तय प सुकोमित्रों को पुत्र को अपना उत्तराधिकारी चुन रहा था।

अन्त में को मृत्यु के बाद सुकोमित्रों ने पुत्र नाम-मिजाने १४ वर्ष राज्य किया। ये अत्यन्त निहुर राजा थे। इनके राजत्वकालमें मिजाने को पसत् काय किसे गए थे। १६४१ ई० में नाममित्रों को मृत्यु हुई। बाद में उनके पुत्र २५ वर्ष मने राज्यभार प्राप्त किया। अन्त में मोलह वर्ष को अवस्थामे कन्दहार जीता। उनकी समामें फारसी राजदूत भेजे थे। अन्त में १६६८ ई० में कालकाल के गाल में पतित हुए।

२५ वर्षानको मृत्यु के बाद सुनेमान ने पारस्य का शाहपद प्राप्त किया। ये दुर्बल हृदय, अल्पज्ञ, पोर निहुर थे। उनके समयमें उन्हीं ने पुनः सुरामान पर चढ़ाई को पोर कायचक, तुर्कों ने कापीयष्टका तीरसर्प भूभाग लूटा। १६८४ ई० में सुनेमान को मृत्यु हुई।

सुनेमान की मृत्यु के बाद शाहसुनेन पारस्य के सिंहासन पर बैठे। सुनेन अत्यन्त शक्त पोर दुर्बल थे। उन्हीं ने राजसत्ता मध्य सुरामान बन्द किया। १०१०

ई० में मादुताई जातिने कीरट में विद्रोही हो कर चपनी स्वाधीनता घोषणा कर दी। कुद जातिने हामदन पोर उन्हीं ने सुरामान को लूटा।

१०२१ ई० में महमूद ने अफगान सेना की ले कर पारस्य पर आक्रमण किया। उन्हीं ने गाहको सेना को परास्त कर कर्मान जीता पोर इराकन में चर छाता। सुनेनगाह अन्त में मृत्यु के हाथ अवसमर्पण करने को बाध्य हुए। महमूद ने नगर में प्रवेश कर समस्त सम्पत्तियों पोर राजसंगियों को हत्या करके राजमुकुट धारण किया। १०२५ ई० में महमूद की मृत्यु होने पर उनके भाई आसराफ पारस्य के शाहपद पर अधिष्ठित हुए।

किन्तु पारस्य में अफगान की प्रधानता ग्रीव हो बिलुप्त हो गई। सुनेन को राजाभ्युत्तिके बाद २५ तमारापने 'गाह' को उपाधि धारण को पोर मजन्दयान नामक स्थान में भाग कर सेना संघट्ट करने लगे। १०२७ ई० में नादिरगाह उनसे आ मिले। नादिरगाह देतो।

पहले तमस्वने नादिर को सहायतासे सुरामान में अफगानों को परास्त किया। आसराफने भागते समय कुछ सुनेन को मार डाला। पीछे से को कन्दहार पड़ने समय मृत्यु के हाथसे मारे गये। अन्त में २५ तमारा पारस्य के अधिपति हुए। किन्तु उपाधिनानो नादिरने ग्रीव हो उन्हीं सिंहासनभूत करके अत्यन्त राजपुत्र को समिपित किया। आखिर १०३६ ई० में इस राजपुत्र को मृत्यु होने पर नादिरने स्वयं गाहको उपाधि धारण करके राजपद धारण किया। इसी समयमें पारस्य में सुकोषगं की प्रधानता बिलुप्त हुई।

नादिरगाहने १०३६ ई० में मोघन नामक स्थान में बड़ी भूमिधाम को साथ राजमुकुट धारण किया। तदनन्तर उन्हीं ने कन्दहार पोर दिलो तक अपना आधिपत्य विस्तार किया। नादिरगाह अपने विपुल विराट देतो।

नादिर के भाई इब्राहिम, फाँके तुर्कियों को हाथसे मारे जान पर नादिर उन्हें हसन करने के लिये पयसर हुए। प्रथम युद्धमें नादिर को सेना पराजित पोर विपुल हुई। नादिर जब अपनी सेना को मजामता पड़ जाने के लिये पयसर हुए, उस समय उन्हीं गहरी चोट लगे। नादिर को अपने पुत्र रिजाकुली पर कन्देष्ट हुआ पोर

[उन्होंने सभे मार डी डाला । इस घटनाके बाद सन्तोने तुर्कीके सुल्तानके साथ मन्त्रि व्यापन को पोर दिने दिन के अशासारी तथा सम्बन्धित होने गये । नादिरके जीवनका निवसान सुबसे नहीं होता । पछि सन्तोने विद्वत् किसी प्रकार पहुँचने को जाने, इस भयसे सन्तोने अपने सम्भारों को गोप्य कर डाला । अन्तमें उनके पत्राचारसे सबके सब विगड़ गये पोर १७४० ई०में पाप गमपुर के में हमान बने ।

नादिरको मृत्युके बाद पारसमें तेरह वर्ष तक घोर-तर अराजकता उपस्थित हुई । नादिरका मृत्यु-सम्बाद पा कर अफगानिस्तानमें अहमद अब्दाली स्वाधीन हो गये । इन्होंने नादिरके पुत्र पोर भतीजोंमें विंदासन को कर विवाद खड़ा हुआ । अन्तमें पनोमर्दान अदिलशाह नाम धारण कर विंदासन पर अधिकार पोर गीत हो शाहखाने विंदासनपुत्र भी लिखे गये ।

शाहखाने सुकीर्षयके शिव राजा पुत्रेनगाहके पीछे थे । प्रजा उन्हें विंदासनमोम देख बड़ो हो प्रसन्न । हुई । किन्तु ये राजकार्यमें बड़े पटु न थे, इसलिये पारो पोर विद्रोह उपस्थित हुआ । विद्रोहो सेवदमद-मन्त्रे उन्हें बाराह कर पन्ना बना दिया । अन्तमें उनके सेनापति युसुफखाने सेवद मन्त्रमदको मार कर उन्हें छुड़ाया । उस समय पारस्यराज्यमें पोर भी गौत-मान उपस्थित हुआ । पन्नागाह पन्नागेने पुरावान पर अपने गोदो सम्राट् पोर समस्तपक्ष सेनापतियोंने पापमर्ग राज्य बाँट लिया । सभी समय पारस्यके विंदासनके लिये मील समुच्च प्रतिद्वन्द्वी हो ठहे । आखिरकार करीब पाने सन्तोको पराजित कर विंदासन पर अधिकार किया पोर मिराजमें अपने राजधानी बसाई । यहाँ मकील या राजप्रतिनिधिते अपने १८ वर्ष राज्य कर १७०८ ई०में वे हम कोकते चल बसे ।

करीब पानेकी मृत्युके बाद पुनः अराजकता फैली । करीबके भाई जाकोने राजेराजि पकड़ को । किन्तु वे मोघ की पराजित पोर निहत हुए । जाकोबा मृत्युके बाद नादिर का मिराजमें पा कर राजा हुए, किन्तु वे

भी पन्नामें जाकोके भतीजे पनो मुरादके हाथसे पराजित पोर निहत हुए । बाद पनो मुरादने १७२२ ई०में 'माह'पद प्राप्त किया । उन्होंने मन्त्रदरानमें पागा मन्त्रमदको कई एक युद्धमें तो हराया, पर इस्लाम मोहने समय वे मारे गए । उनके मृत्युके बाद दो राजा पारसके विंदासन पर बैठे । उनके मरने पर सन्तोके बन्तो को राजा हुए । सन्तोकेपनो मानागुणवन्धन के पोर उनकी राजपदप्राप्तिमें प्रजा पत्तना पाजादित हुई थी । पागामन्त्रमदने इस समय दलबलके साथ मिराजको चोर लिया, किन्तु कुछ समय बाद उनके तेहरानमें पने जामिने सन्तोके पनोने कुछ राजकी लिये मानामोम दिया था । १७८२ ई०में पागामन्त्रमद फिरने पा धमके, किन्तु पराजित हो कर कोट जामिनी भाग्य हुए । पागामन्त्रमदके तोहरो कर समस्त मिराजके निहत पाने पर सन्तोके पनोने कुछ सेनाको साथ से रातकी मृत्युगिरिमें प्रवेश किया पोर सवे क्षिप्त भिन्न कर डाला । किन्तु सुबह होने पर मन्त्रमदने पनो सेनाको ईशरोपासना करने को पासा दो । सन्तोकेने जब देखा, कि मन्त्रमदकी सेना पुनः दहको हो गई है, तब वे डरके मारे भी दो स्वार हो गये । ऐसा करनेसे सन्तोके भाग्यने पन्ना छाया-सन्तोने भग कर कन्धहारमें जाशय लिया । यहाँ १७८४ ई०में दल्योहारको इच्छासे वे पारस पाये पोर कार्माननगरको अपने कब्जेमें कर लिया । पागामन्त्रमदके मगरावरोध करने पर त्रिशासक-तकताने मगरका दर मग पाने पन्ना हुए । सन्तोके केवल तीन पक्षपारीके साथ मन्त्रमदको भिद कर भाग गये । इस पर मन्त्रमदने पत्तना लुट हो कर पनेज मगरपानियोंको मार डाला । सन्तोकेपनो जब कार्माननगरमें रहते पित्त बढीके मन्त्रमदको हाथसे उगडो मृत्यु हुई ।

बाबरपक्ष ।

सन्तोकेपनोको मृत्युके बाद पागामन्त्रमदको कार्मान बहुत बड़ गई पोर इसके साथ साथ रुसियाईप्रति प्रति उनके विरुद्ध सत्यक हुआ । इस समय जर्मनीके शासनकर्ता डेगासियनने पारसके पनोमर्दानमें मुच होनेके लिये रुसियाको अधिकारी नेदिरको मार डाला । पागामन्त्रमदने उन्हें अर-रुस्ये माँट पाने पोर बन्तो

पधोनता खोकार करनेकी कहा, किन्तु उसका कोई उत्तर न पा कर वे युद्धके निधे प्रयुक्त हो गये। उन्होंने होराक्षिपयके पधोनस्य जज्ञियन सेनाको पराजित कर रुसियाके पन्तगंत तिकलिमनगर पर अधिकार किया। इस पर रुसियाके साथ कलह पैदा हुआ। रुस-सेना-पति बाज़ू पोर सुमाधोने नगरको जीत लिया, किन्तु इस समय रुसमन्त्राग्री के घेरिनकी मृत्यु हो जानेसे युद्ध बन्द हो गया। तिकलिमन लूटनेके बाद आगामह-मदने 'माह'को सपाधि धारण की और तेहरानमें राज-घासी बसाई। १७८६ ई०में खुरासान प्रदेश उनके अधीन आ गया। इस समय रुस लोग फिरसे युद्धके निधे उपस्थित हो गये। आगामहमद सेन्य वंशधर करके उनके विरुद्ध जा, हो रके थे कि इसी समय गिरिदके मन्त्र दगाउ उनके मृत्यु हुई। आगामहमदको मृत्यु के बाद से निहोमें गोसमाल उपस्थित हुआ, किन्तु प्रधान मन्त्री हाजी इब्राहिम पोर मिर्जामहमद खाँके बुद्धि-कोशलसे सभी गोसमाल दूर हो गया और आगामह-मदको। तोने कर्तव्यको विहासन पर बैठे।

कर्तव्य की राजा होने पर जगह जगह विद्रोह उप-स्थित हुआ और खुरासानमें शाहफुलकी पुत्र नादिर-मिर्जाने संधानता चकलमन की। किन्तु कर्तव्यको आगमन पर सर्वोने उनके पश्यता खोकार कर ली। इस समय जज्ञियाकी राजाने रुसके आरके सपथ सिंहासन छोड़ दिया, किन्तु उनके भाई इसमें सहमता न हुए और वहाँमें रुसके विरुद्ध सपाध धारण किया। युद्धमें उन्होंने हार खा कर पारस्यके शाहका पथ चकलमन किया। पर फिर दोनोंमें युद्ध छिड़ गया। इस युद्धमें पारसिकोंमें लूथ बोला दिखलाई पर उनके चेष्टा फल-मता न हुई। अन्तमें १८११ ई०को सन्धि स्थापित हुई। सन्धिसे पनुषार जज्ञिया आदिके अधिकार भुक्त हुआ। १८२१ ई०में दोनों राज्यको सोमा से कर फिरसे युद्ध पारस्य हुआ। पारसिकोंको विजय तो हुई, पर गोम हो कर्तव्यकी पोत्र महमद मिर्जाने अधीन पराजित हुए। १८२० ई०में पुनः सन्धि हुई और तदनुसार पारस्यके शाह फेरानको ० प्रदेश, एरबन और गलिचेवन नामक दोनों स्थान तथा

युद्धका सर्व मोन करोड़ रुपये देनेको बाध्य हुए। १८२१ ई०में तुर्कोंके साथ विवाद पैदा हुआ। तुर्क-लोग पारसिक बन्धक पोर तोपयात्रीके प्रति सत्या-चार करते थे। पारस्य-शाहने बारम्बार मना करने पर भी जब कोई प्रतिकार न हुआ, तब लड़ाई छिड़ गई। तुर्कियोंने पराजित हो कर सन्धि कर ली। सन्धिके अनुसार पारसिकोंके प्रति किसी प्रकारका सत्याचार वा सपथा करपथन करेगी, ऐसा उन्होंने खोकार किया। इस घटनाके बाद कर्तव्यकोने खुरासान पोर मनाद जीन कर होरटको यात्रा को पोर पनु-धन हाथ कर प्रदेश नाटे। कर्तव्यकोने राजत्व हानमें इङ्गलैण्ड पोर भारतवर्षसे पारस्यराजसभामें दूत गया था।

कर्तव्यकोने १८३४ ई०में मरने पर उनके पुत्र महमद शाह विहासन पर बैठे। उन्होंने चकलानेने होरट, कन्दहार पोर गजनी खादि स्थान पानेको इच्छासे समन्वय होरटको पवरोध किया, किन्तु चकलानेने चंगरेज गोशमालसे परिचालित हो कर उनके पराजित किया। अन्तमें चंगरेजोंको मध्यस्थतामें सन्धि स्थापित हुई। १८३८ ई०में कर्तव्यकोको मृत्यु हुई और पोहे नसरउद्दीन शाह पारस्यके सिंहासन पर बैठे। उनके राजत्व हानमें खुरासानमें विद्रोह, बायो जातिका विद्रोह पोर इङ्गलैण्डके साथ युद्ध उपस्थित हुआ। खुरासान पोर बायो जातिका विद्रोह बहुत ज़बद हो निवारित हुआ। ज़िमिशाके युद्धकालमें पारस्यके शाहने ज़ारके प्रति सहाय-भूति दिखाई और पुरा कर उनके मित्रता कर ली। इस पर चंगरेज लोग उन पर बड़े बिगड़े। अन्तमें १८५१ ई०को शाहको होरट अधिकार करने पर चंगरेजोंने युद्धकी घोषणा कर दो और भारतवर्षसे पारस्यमें सेना भेजी गई। युद्धमें पारस्यको हार हुई। आखिर १८५० ई०में दोनों जातिके बीच सन्धि हो गई।

वर्तमान पारस्यका शासित्व विवरण।

ईरा-जम्मेके बहुत पक्षसे पारस्यराज्य पश्चिममें भूमध्य-सागरसे लो कर पूर्वमें सिन्धु नदी तक और उत्तरमें काकसस पर्वतमालासे लो कर दक्षिणमें गारव्योपनागर तक विस्तृत था। उत्तरपूर्वी पोर पठारपूर्वी गताश्रीमें

नियुक्त होते और कभी भी विप्रासघातकताका काम नहीं करते हैं। दाहिनीका मूत्र १५ से ४०० ग्राम तक है; हिन्दु दाहिनीका इसकी अपेक्षा बहुत कम है। पारसिकगण अपनी देह तथा अपना पहरावा हमेशा साफ धुया रहते हैं। निष्ठुरता हममें एकपर दोनो नहीं जाती। अपराधो कदापि प्राचीन कारागृह नहीं रहते—प्रत्येक नयनमें से वे लोग छोड़ दिए जाते हैं।

येथूरा।

पारसिक एकसर सूचिकायचित्त होना कुर्त्ता और पायजामा पहने हुए रहते हैं, कभी कभी साटनका कुर्त्ता भी व्यवहारमें आते हैं। सुरोहितगण गिर पर मसलिनको पहनते हैं। सघण्डय कमचाही चमड़ेके कमरबंदका इसीमान करते हैं। साधारण मनुष्य गिरका मध्यभाग या समूचा सुंघा डालते हैं। 'काकुल' वा प्रायः दो फीट लम्बा एक गुच्छा वाल मस्तकके उपरिभागमें रखा जाता है। इन लोगोंका विप्रास है, कि मरने पर मध्यमद इस वालको एकट्ठ कर जलतमें से जाते हैं। स्त्रियोंके पहरावेमें बहुत कुछ बदल बदन हुआ है। यहांकी स्त्रियोंका धर्म सुविबिह है। ये सब एकसर ग्रीसिन वा विरान पहनती हैं। विरान गलेसे से कर कुटनेके कुछ ऊपर तक जाता है और गरीरका अवशिष्ट भाग खुला रहता है। गिर पर ने रंगमी या खुशहा रुमान लपेट कर दुड्डो के नीचे गांठ दे देतो हैं। इनके शिवा शिवां हार बाजू, बाला आदि तरङ्ग तरङ्गके चनहार पहनती हैं। समस्तके उपलक्षमें से अपने सुलमणलको चित्रित और दोनों नयनोंको कलननागने रन्ध्रिन करतो हैं। ये सब शिवां देखनेमें एकसर खर्च होतो है। इनके बाल बहुत लम्बे होते हैं। सबसे बाहर निकलनेमें वे मनुष्य गरीरको कपड़े से ढक लेतो हैं, बसल दोनों पांखोंको जगह पर दो छेद रहते हैं। पारस्य देशमें सात वर्ष तक कन्याको पुत्रके जेसा और पुत्रको कन्याके जेसा पहनाया पहनाते हैं।

पारस्य वा ईरानी भाषा।

प्राचीन ईरान राज्यमें जितने प्रकारकी भाषा प्रचलित थी, पारस्य भाषा को उनको अहू है। इनमें

पारस्य भाषाके बदलेमें इसे ईरानी भाषा कहना अधिक है। इन्द्रयुरोपीय नामक जो सात प्रादिभाषा है, ईरानी भाषा उनमेंसे एक है। यद्यपि इन सात भाषाओंका परस्पर सम्बन्ध मध्यवर्द्धमें प्राप्त भी खोजत नहीं हुआ, तो भी इस भाषा और प्राचीन संस्कृत भाषाके मध्य जैसा सोसाहस्य देखा जाता है, उससे मान्यम पड़ता है, कि ये दोनों भाषा एक ही मूल भाषासे उत्पन्न और कालक्रमसे परिपुष्ट हो कर एक ही गई हैं। इन दो भाषाओंमें प्रत्येकता यह है, कि संस्कृत भाषामें जहां वाक्यके पहले 'चा' उपर 'व' है, प्राचीन ईरानी वा अहू भाषामें वहां 'ह' वा वर्गके चतुर्थ वर्गकी जगह अहू भाषामें वर्गका दसोवर्षर् वा क, ट, प, को जगह जन्ममें ख, घ, फ व्यवहृत हुआ है। यथा—

संस्कृत	जन्म	प्राचीन पारस्य	वर्तमान पारस्य
सिन्धु	हिन्दु	हिन्दु	हिन्दु
सम	हम	हम	हम
भूमि	भूमि	भूमि	भूमि
धाता	दात	दात	दात
धर्म	गरेम	गर्म	गर्म
प्रथम	प्रथम	प्रथम	प्रथम
कतु	यूतु		

यास्तके निरुक्तसे जाना जाता है, कि एक समय कम्बोज देशमें संस्कृत-भाषा प्रचलित थी। पारस्य भा जो संस्कृतानुसृष्ट कोह भाषा प्रचलित थी, वह यास्तके बहुवचनों पारस्यको कोसाहार मिलानिविधे लक्ष्य कुह पाभास पाया जाता है। पड़ते ईरानमें अहू भाषा प्रचलित थी। अहू नाम सार्वक नहीं है, इगहा प्रकृत धर्म व्याख्यानुसृत है। प्राचीन मन्त्रपूजक पारसिकोंको यहदा नामक धर्मपण्डित इस भाषामें लिखा है। अवन्ता धर्म पण्ठा दोनोंके बहुत पहले एक दूसरी भाषामें भाषा वा धर्ममोत रचा गया था। यह भाषा अहूदा प्राचीन प्राकृतिक शिवा और कुह नहीं है। भाषाकी भाषाके साथ प्राचीन वैदिक संस्कृतका सम्बन्ध सोसाहस्य देखा जाता है। बहुत दोहा मन्त्र परिचर्त्तन करनेमें भाषा प्राचीन वैदिक साकका साकार साधन करतो है। भाषा देखा।

जरघृभ्र-धर्मावसथो जन्द भावा नहीँ समभक्त सके,
तब पवस्ता प्रत्य पक्षरौ भावामें पनुवादिन हुआ। जन्द
भावा संस्कृत भाषाको तरङ्ग प्रत्यन्त प्राचीन है, किन्तु
वैयकरणिक पोल्यारमें संस्कृतको प्रवेशा बहुत निरुद्ध
है। पारस्य भाषा को पारसिकों को प्रादिभाषा है,
पक्षमनीय वंशके राजत्वकालमें खोदित विविधा रमो
भावामें लिखी गई हैं। मध्य पोर जन्दभाषाके साथ
इसका एकमात्र प्रभेद यह है, कि इन भाषामें २५ वर्ण
हैं पोर जन्द भाषामें व्यवहृत 'ए' वा ओकारको जगह
प्राचीन पारस्य भाषामें 'ध' व्यवहृत होता है। यथा—
जन्द 'विगम', पुरातन प्राचीन पारस्य 'विगम्', संस्कृत
'विगम'। अथवा जन्द भाषाका 'ज' पुरातन पारस्य
भाषामें 'द' व्यवहृत होता है, यथा—संस्कृत 'हृत्',
जन्द 'हृत्', प्राचीन पारस्य 'दत्'। अथमनीय वंश-
ध्वंसके बाद पाँच सौ वर्ष तक प्राचीन पारस्यभाषामें
लिखित कोई ग्रन्थ वा खोदित विविधा प्रादि कुछ भी नहीं
मिलती।

मध्य समयको पारस्य भाषाको पनेत्र रूपान्तर को
गये हैं। पक्षरौ भाषा इस भाषाके साथ बहुत कुछ
मिलती सुनती है। पक्षी देखो।

इस समय व्याकरणके नियम बहुत संश्लेष किये गये।
विशेष पदके एक पोर बहुवचनमें रूपान्तर विरलकुल
उठ गया।

प्राधुनिक पारस्यभाषा फारसीको समयसे पारस्य
हुई है। व्याकरणके नियमानुयायी शब्दप्रयोग अभी पोर
भी कम हो गया है एवं उक्त प्रत्यकारके समयसे पारस्य
भाषाका घोड़ा को परिवर्तन हुआ है। इस समय
अरबी-भाषाको उत्पत्ति है पोर बातचीतमें उसका
व्यवहार को जानिये नव पारस्यभाषामें पनेत्र अरबी शब्द
प्रविष्ट हुए हैं। सत्तारपगत प्रभेदके मध्य पक्षसे प्राचीन
पारस्यभाषामें जहाँ क, त, प सत्तारित होता था, अभी
वहाँ ग, द, ब सत्तारित होने लगा है। यथा—

प्राचीन पारस्य वा जन्द	पक्षरौ	नव पारस्य
पाप (सिये)	पाय	पाप
द्रो (कर्य)	डोन	खोद

एतद्विध अन्वय सामान्य प्रयुक्त है।

साहित्य।

पारस्यभाषामें साधारणतः किस समय उत्पत्ति
हुई, उसके सम्बन्धमें ऐतिहासिक दृष्टि मध्य समयमें देखा
जाता है। बहुतों का कहना है, कि ४२० ई०में मान-
मोय-व मोय राजा पक्षम बहुरामने पारस्यभाषा उत्पन्न
किया। कोई कोई कहते हैं, कि समरकन्दके नियन्त्र-
कर्त्ता समन्दरावने पनुवामने पारस्यभाषामें प्रथम
प्रयत्न को रचना को। एक प्रस्तावोटीकी शुरु-
आद ८०८ ई०में पञ्चाप नामक एक शक्तिने पुरातन
में यथार्थमें पद्यरचना करनेका प्रारम्भ किया पोर इस
मध्य अरबीभाषाको प्रधानतासे पारस्यभाषाको उत्पत्ति
करनेमें यद्यपि नव कोई विद्विषय को गये थे, तो भी
यह विस्मृत विषय न हुई थी। इस समय पारस्य
भाषामें बहुत कम प्रथादि लिखे जाते थे। १०४
शताब्दीके पहले चार प्रकारके पद्योंकी सृष्टि हुई।
यथा—कशोश (शोकध्वज वा शनैःपुनः), गजन
(गोत), द्वाह (एक प्रकारका छंटा पद्य) पोर प्रम-
नवो (पथारकन्द)। ११वीं शताब्दीके बादसे मन्दा-
काव्यरचनाका प्रथम सृष्टिपात हुआ। इस प्रथाका प्रथम
अभी सभी देशोंमें फैला हुआ है।

नीतिगर्भ पोर धर्मसूत्रक प्रथमो रचना सुक-
वंशके राजत्वकालमें प्रकाशित हुई। इस समय फार-
सुल्तान पोर सुनिस्तान प्रथम रचे गये। इन दोनों प्रथा-
के पश्चात् धर्मभाव पोर भाषा-नैपुण्यको प्रयत्ना अभी
देखाके लोग करते हैं। पद्यमें मनका भाव सुनिगदना-
से प्रकाशित करनेमें हाफिज पारसिक कविता का पदि-
तीय है। वर्त्तमान शताब्दीके प्रारम्भमें पारस्यमें नाट्य-
का प्रारम्भ हुआ है। अभी नाटक प्रायः पद्यमें निहित
पोर धर्मविषयक प्रवादमें सृष्टोत हैं। ऐतिहासिक भी
पारसिकोंने निपुणता दिखाई है, काफ़राना प्रादि
प्रथम इनके मन्त्रमें हैं। पारस्यभाषामें संस्कृत सामान्य
पोर महाभारत प्रादि पनेत्र प्रथम पनुवादिन हुए हैं।

पूर्वतन पारसिकोंका धर्म पोर देवदत्त।

प्रायः पोर पारसिकमध्य बहुत दिनोंसे मरुत थे,
यह दोनों जातिको भाषा पोर पाचार-प्राचार्य प्रम-
चित होता है। पारसिकदेशमें बहुत भी विद्वान्निधि

नियुक्त होते और कभी भी विखासघातकताका काम नहीं करते हैं। दासियोंका मूल्य १५० से ४०० रु० तक है; किन्तु दासोंका इसकी अपेक्षा बहुत कम है। पारसिकगण अपनी देह तथा अपना पहरावा इतना साफ सुथरा रखते हैं। निष्ठुरता इनमें एकदम देखी नहीं जाती। अपराधी कदापि आजीवन कारागृह नहीं रहते—प्रत्येक नववर्षमें वे लोग छोड़ दिए जाते हैं।

वैयभूषा।

पारसिक एकदम सुविचार्यचित्त डीला कुर्ता और पायजामा पहने हुए रहते हैं, कभी कभी साटनका कुर्ता भी व्यवहारमें लाते हैं। पुरोहितगण सिर पर मसलिनकी पगड़ी पहनते हैं। सचपदस्य कमचारी चमड़ेके कमरबंदका इस्तेमाल करते हैं। साधारण मनुष्य सिरका मध्यभाग वा समूचा मुँहवा डालते हैं। 'काकुल' वा प्रायः दो फीट लम्बा एक शुक्ला वाल मस्तकके उपरिभागमें रखा जाता है। इन लोगोंका विखास है, कि मरने पर मर्याद इस बालको पकड़ कर अन्तर्गते ले जाते हैं। स्त्रियोंके पहरावेमें बहुत कुछ बदल बदन हुआ है। यहाँकी स्त्रियोंका वेश कविबद्ध है। वे सब एकदम ग्रेमिज वा पिरान पहनती हैं। पिरान गलेसे ले कर घुटनीके ऊपर तक जाता है और शरीरका अवशिष्ट भाग खुला रहता है। शिर पर वे रेशमी या सूतीका रुमाल लपेट कर ठुडोके नीचे गाँठ दे देती हैं। इसके सिवा शिर्षा डार बानू, बाक्ता आदि तरह तरहकी शनहार पहनती हैं। समस्तके उपलक्षमें ये अपनी मुखमण्डलकी चितित और दोनों गयनीको कञ्जनागवे रञ्जित करती हैं। ये सब स्त्रियाँ देखनेमें एकदम खूब होती हैं। इनके बाल बहुत लम्बे होते हैं। घरसे बाहर निकलनेमें वे समुचे शरीरको कपड़ोंसे ढक लेती हैं, केवल दोनों आँखोंको जगह पर दो छेद रहते हैं। पारस्य देशमें सात वर्ष तक कन्याको पुत्रके जैसा और पुत्रको कन्याके जैसा पहनावा पहनाते हैं।

पारस्य वा ईरानी भाषा।

प्राचीन ईरान राज्यमें जितने प्रकारकी भाषा प्रचलित थी, पारस्य भाषा ही उनकी जड़ है। इसीसे

पारस्य भाषाके बदलेमें इसे ईरानी भाषा कहना उचित है। इन्द्रयूरोपीय नामक जो सात प्रादिभाषा हैं, ईरानी भाषा उनमेंसे एक है। यद्यपि इन सात भाषाओंका परस्पर सम्बन्ध सम्यक् रूपसे आज भी स्फुटत नहीं हुआ, तो भी इस भाषा और प्राचीन संस्कृत भाषाके मध्य जैसा सौसादृश्य देखा जाता है, उससे मालूम पड़ता है, कि ये दोनों भाषा एक ही मूल भाषासे उत्पन्न और कालक्रमसे परिपुष्ट हो कर प्रत्यक्ष हो गई हैं। इन दो भाषाओंमें प्रत्यक्षता यह है, कि संस्कृत भाषा में जहाँ वाक्यके पहले आद्यपर 'स' है, प्राचीन ईरानी वा जड़ भाषा में वहाँ 'ह' वा वर्गके चतुर्थ वर्षकी जगह जन्द् भाषा में वर्गका दसोपवर्ष वा क, ट, प-को जगह जन्द् में छ, घ, फ व्यवहृत हुआ है। यथा—

संस्कृत	जन्द्	प्राचीन पारस्य	वर्तमान पारस्य
सिन्धु	हिन्दु	हिन्दु	हिन्द
सम	हम	हम	हम्
भूमि	भूमि	भूमि	भूम
दाता	दात	दात	दाद्
धर्म	गरीम	गर्म	गम्
प्रथम	प्रथीम	प्रतम	प्रदुम्
क्रतु	खतु		

यास्कके निरुक्तसे ज्ञाना जाता है, कि एक समय कम्बोज देशमें संस्कृत भाषा प्रचलित थी। पारस्य भाषा जो संस्कृतानुरूप कोई भाषा प्रचलित थी, वह यास्कके बहुपरवर्त्तकी पारस्यको कोलाकार गिनागिनिसे उसका कुछ आभास पाया जाता है। पड़ते ईरानमें जन्द् भाषा प्रचलित थी। जन्द् नाम सार्थक नहीं है, इसका प्रकृत अर्थ व्याख्यापुस्तक है। प्राचीन पवित्रग्रन्थ पारसिकोंकी अवस्था नामक धर्मग्रन्थ इस भाषा में लिखा है। अवस्था ग्रन्थ प्रणीत होनेके बहुत पहले एक दूसरी भाषा में गाया या धर्मगीत रचा गया था। यह भाषा जन्द्को प्राचीन प्राकृतिके सिवा और कुछ नहीं है। गाथाकी भाषाके साथ प्राचीन वैदिक संस्कृत भी अत्यन्त सौसादृश्य देखा जाता है। बहुत मोड़ा जन्द् परिवर्त्तन करनेसे गाथा प्राचीन वैदिक शाकका आकार धारण करती है। गाथा देखा।

पादित ।

जरथुश्च-धर्मोक्तयो जन्म भाषा नहीं समझ सके, तब चरस्ता ग्रन्थ पढ़ने भाषा में अनुवादित हुआ । जन्म भाषा संस्कृत भाषाको तरह चरस्ता प्राचीन है, किन्तु वेदाङ्गणिक पोल्थ में संस्कृतको अपेक्षा बहुत गिराट है । पारस्य भाषा को पारसिकों को पादिभाषा है, पञ्चमनीय वर्गके राजत्वकालमें खोदित लिपियाँ इसी भाषा में लिखी गई हैं । मध्य पोर जन्मभाषाको साथ हमका एकमात्र प्रभेद यह है, कि इन भाषा में २४ वर्ण हैं पोर जन्म भाषा में व्यवहृत 'ए' वा ओकारको जगह प्राचीन पारस्य भाषा में 'व' व्यवहृत होता है । यथा— जन्म 'विगम', पुरातन प्राचीन पारस्य 'विगम्', संस्कृत 'विगम्' । यथा जन्म भाषाका 'ज' पुरातन पारस्य भाषा में 'द' व्यवहृत होता है, यथा— संस्कृत 'इक्ष्वा', जन्म 'इक्ष्वा', प्राचीन पारस्य 'इक्ष्वा' । चरमनीय वर्ग-धर्मको बाद पाँच सो वर्ष तक प्राचीन पारस्यभाषा में लिखित कोई ग्रन्थ वा खोदित लिपि पादि कुछ भी नहीं मिलती ।

मध्य समयको पारस्य भाषाको अनेक रूपान्तर हो गये हैं । पञ्चवी भाषा इस भाषाके साथ बहुत कुछ मिलती जुलती है । पढ़नी देवो ।

इस समय व्याकरणके नियम बहुत संक्षेप किये गये । विविध पदके एक पोर बहुवचनमें रूपान्तर विवक्षित रह गया ।

साधुनिक पारस्यभाषा फ़ारसीके समयसे पारस्य हुई है । व्याकरणके नियमानुयायी शब्दप्रयोग अभी पोर भी कम हो गया है एवं उक्त ग्रन्थकारके समयसे पारस्य भाषाका थोड़ा हो परिवर्तन हुआ है । इस समय चरबी-भाषाकी उत्पत्ति है पोर बातचीतमें उसका व्यवहार हो जानेसे नव पारस्यभाषा में अनेक चरबी शब्द प्रविष्ट हुए हैं । उच्चारणगत प्रभेदके मध्य पदसे प्राचीन पारस्यभाषा में जहाँ क, त, प उच्चारित होता था, अभी नहीं म, द, व उच्चारित होने लगा है । यथा—

प्राचीन पारस्य वा जन्म	पञ्चवी	नव पारस्य
पाप (किये)	पाप	पाप
ज्ञानी (व्यर्थ)	ज्ञानी	खोद

एतद्विन्न चर्याय्य सामान्य प्रयुक्ता है ।

पारस्यभाषा में काश्गाभाषाकी जिस समय उत्पत्ति हुई, उससे सम्बन्धमें ऐतिहासिक होने मध्य मतमें ट टिया जाता है । बहुतांश कहना है, कि ४२० ई० में गाम-मोय-वर्गोय राजा प्रथम बहरामने पदग्रहण किया । कोई कोई कहते हैं, कि ममरशन्दने नियन्त्रण सर्वोत्तम-निवासो पवुनहकने पारस्यभाषा में प्रथम प्रयुक्त हो रचना की । इस प्रचारमोदकी मृदु बाद २०० ई० में यज्जाव गामक एक शक्तिसे पुरातन में यथायथं पदग्रहण करनेका पारस्य किया पोर इस समय चरबीभाषाको प्रधानतासे पारस्यभाषाकी उत्पत्ति करनेमें यद्यपि सब कोई विवक्षितय हो गये थे, तो भी यह विवक्षित विवृण न हुई थी । इस समय पारस्य भाषा में बहुत कम संवादित लिखि जाती थी । १०३१ मताब्दीके पहले चार प्रकारसे पद्योनी खूट हुई यथा—कशोदा (शोकसूचक वा इनेवपूर्ण), गजग (गीत), खोद (एक प्रकारका कटा पद्य) पोर मन-मयो (पयारशब्द) । ११वीं मताब्दीके बादसे मन्हा-काश्ग-रचनाका प्रथम सूत्रपात हुआ । इस संयत्ता यद्य अभी अभी दिग्गम में फैला हुआ है ।

गीतगम पोर धर्ममूलक पद्यको रचना सुने-वर्गके राजत्वकालसे प्रचलित हुई । इस समय मादि मुस्लिम पोर मुस्लिमान ग्रंथ रचे गये । इन दोनों ग्रंथोंके पवित्र धर्मभाष पोर भाषा-ने पुष्प हो प्रयत्ना अभी देशोंके लोग करते हैं । पद्यमें मनका भाष सुनिगदकारसे प्रकाशित करनेसे हाकिम पारसिक कविता । पवितीय है । वर्तमान मताब्दीके पारस्यमें पारस्यमें नाटकका पारस्य हुआ है । अभी नाटक प्रायः पद्यमें लिखित पोर धर्मविषयक प्रवादने रहते हैं । इतिहासमें भी पारसिकोंने निपुणता दिखाई है, जाकारामा पादि ग्रंथ इसीके नमूने हैं । पारस्यभाषा में संस्कृत रामायण पोर महाभारत पादि अनेक ग्रंथ अनुवादित हुए हैं ।

पूर्वज पारसिकोंका धर्म पोर देवतार ।

धर्म पोर पारसिकगण बहुत दिनोंसे संघट्ट थे, यह दोनों जातिको भाषा पोर पाचार-पाचाराने प्रमोदित होता है । पारसिकदेशमें बहुत भी मितालिपियाँ

नियुक्त होते और कभी भी विश्वासघातकताका काम नहीं करते हैं। दासियोंका मूल्य १५० से ४०० रु० तक है; किन्तु दासोंका इसकी अपेक्षा बहुत कम है। पारसिकगण अपनी देश तथा अपना पहरावा हमेशा साफ सुथरा रखते हैं। निष्ठुरता हममें एकसर देखी नहीं जाती। अपना भी कदापि आजीवन कारागृह नहीं रहते—प्रत्येक नयनवर्ष में वे लोग छोड़ दिए जाते हैं।

वेष्टभूषा।

पारसिक एकसर सूचिकायं चित्त डोला कुर्ता और पायजामा पहने हुए रहते हैं, कभी कभी साटनका कुर्ता भी व्यवहारमें लाते हैं। पुरोहितगण सिर पर मसलिनकी पगड़ी पहनते हैं। सबपदस्थ कमचारी चमड़ेके कमरबंदका इस्तेमाल करते हैं। साधारण मनुष्य सिरका मध्यभाग वा समूचा सुँढ़वा डालते हैं। "काकुल" वा प्रायः दो फीट लम्बा एक गुच्छा वाल मसलके उपरिभागमें रखा जाता है। इन लोगोंका विश्वास है, कि मरने पर मरहमद इस वालकी एकट्ट कर लक्ष्मते" ले जाते हैं। स्त्रियोंके पहरावेमें बहुत कुछ बदल बदल हुआ है। यहाँकी स्त्रियोंका वेश सचिविरुद्ध है। वे सब एकसर शैमिज वा पिरान पहनती हैं। पिरान गलेसे ले कर घुटनेके ऊपर ऊपर तक जाता है और शरीरका अवशिष्ट भाग खुला रहता है। शिर पर वे रेशमी या सूतीका रुमाल लपेट कर ठुडोके नाच गाँठ दे देती हैं। इनके सिवा स्त्रियाँ डार बानू, बान्ना आदि तरह तरहकी चतुर्हार पहनती हैं। उत्तरेके उपलक्षमें वे अपनी मुखमण्डलकी चित्रित और दोनों नयनोंकी कल्लनभागसे रक्षित करती हैं। ये सब स्त्रियाँ देखनेमें एकसर खूब होती हैं। इनके बाल बहुत लम्बे होते हैं। घरसे बाहर निकलनेमें वे समुचे शरीरकी कपड़ोंसे ढक लेती हैं, केवल दोनों आँखोंको जगह पर दो छेद रहते हैं। पारस्य देशमें सात वर्ष तक कन्याकी पुत्रके जो सा और पुत्रकी कन्याके जो सा पहनावा पहनाते हैं।

पारस्य वा ईरानी भाषा।

प्राचीन ईरान राज्यमें प्रितने प्रकारकी भाषा प्रचलित थी, पारस्य भाषा ही उनमें से एक है। इसीसे

पारस्य भाषाके बदलेमें इसे ईरानी भाषा कहना सचित है। इन्दोयूरोपीय नामकी जो सात आदिभाषा हैं, ईरानी भाषा उनमेंसे एक है। यद्यपि इन सात भाषाओंका परस्पर सम्बन्ध सम्यक् रूपसे आज भी स्मृत नहीं हुआ, तो भी इस भाषा और प्राचीन संस्कृत भाषाके मध्य जैसा सोसादृश्य देखा जाता है, उससे मालूम पड़ता है, कि ये दोनों भाषा एक ही मूल भाषासे उत्पन्न और कालक्रमसे परिपुष्ट हो कर प्रत्यक्ष हो गई हैं। इन दो भाषाओंमें प्रवृत्ता यह है, कि संस्कृत भाषा में जहाँ वाक्यके पहले आद्यपर 'स' है, प्राचीन ईरानी वा लट् भाषा में वहाँ "ह" वा वर्गके चतुर्थ वर्णकी जगह जन्द् भाषा में वर्गका दत्तोपवर्ण वा क, ट, प, को जगह जन्द् में ख, घ, फ व्यवहृत हुआ है। यथा—

संस्कृत	जन्द्	प्राचीन पारस्य	वर्तमान पारस्य
सिन्धु	हिन्दु	हिन्दु	हिन्द
सम	हम	हम	हम्
भूमि	बुमि	बूमि	बूम
दाता	दात	दात	दाद
धर्म	गरिम	गर्म	गर्म
प्रथम	प्रतम	प्रतम	प्रतुम्
क्रतु	ख्रतु		

यास्तके निरुद्धसे जाना जाता है, कि एक समय कम्बोज देशमें संस्कृत भाषा प्रचलित थी। पारस्य भाषा जो संस्कृतानुरूप कोई भाषा प्रचलित थी, वह यास्तके बहुपदवर्णों पारस्यको जोलाकार मिलानिविधे सबका कुछ भाषा पाया जाता है। पड़ते ईरानमें जन्द् भाषा प्रचलित थी। जन्द् नाम सार्धक नहीं है, इण्डा प्रकृत अथे ब्याख्यापुस्तक है। प्राचीन अग्निपूजक पारसिकोंकी अवस्था नामक धर्मग्रन्थ इस भाषा में लिखा है। अवस्था ग्रन्थ प्रथोत होनेके बहुत पहले एक दूसरी भाषा में गाया वा धर्मगीत रचा गया था। यह भाषा जन्द्को प्राचीन भाषातिके सिवा और कुछ नहीं है। गाथाकी भाषाके साथ प्राचीन वैदिक संस्कृत भाषा जैसा सोसादृश्य देखा जाता है। बहुत छोड़ा जन्द् परिवर्तन करनेसे गाथा प्राचीन वैदिक शास्त्रका आकार धारण करती है। गाथा देखा।

जरयुद्ध-धर्मावस्थो जन्द भाषा नहीं समझ सके, तब चरस्ता पश्य पञ्चवो भाषामें पशुवादिन हुआ। जन्द भाषा संस्कृत भाषाको तरह पश्यता प्राचीन है, किन्तु वैयकरणिक पोल्सर्गमें संस्कृतकी अपेक्षा बहुत निकट है। पारस्य भाषा को पारसिकों की प्रादिभाषा है, पञ्चमनीय वर्गके राजत्वकालमें खोदित लिपियाँ रमो भाषामें लिखी गई हैं। मध्य पोर जन्दभाषाके साथ इसका एकमात्र प्रभेद यह है, कि इन भाषामें २४ वर्ण हैं पोर जन्द भाषामें व्यवहृत 'ए' वा चोकारकी जगह प्राचीन पारस्य भाषामें 'य' व्यवहृत होता है। यथा—जन्द 'वेगम', पुरातन प्राचीन पारस्य 'वेगम्', संस्कृत 'वेगम्'। यथावा जन्द भाषाका 'ज' पुरातन पारस्य भाषामें 'द' व्यवहृत होता है, यथा—संस्कृत 'हस्त', जन्द 'जस्त', प्राचीन पारस्य 'दस्त'। पञ्चमनीय वर्ग-ज'सके बाद पाँच सो वर्ष तक प्राचीन पारस्यभाषामें लिखित कोई पत्र वा खोदित लिपि पादि कुछ भी नहीं मिलती।

मध्य समयकी पारस्य भाषाके पनेक रूपान्तर को मये हैं। पञ्चवो भाषा इन भाषाके साथ बहुत कुछ मिलती जुगती है। पढ़ी देखो।

इस समय व्याकरणके नियम बहुत सँघेय किये गये। विदेशीय पदके एक पोर बहुवचनमें रूपान्तर बिलकुल उठ गया।

प्राथमिक पारस्यभाषा फ़िरोजोके समयमें पारस्य हुई है। व्याकरणके नियमानुयायी शब्दप्रयोग सभी पोर भी कम हो गया है एवं उक्त शब्दकारके समयमें पारस्य भाषाका घोड़ा को परिवर्तन हुआ है। इस समय अरबी-भाषाकी सहायता है पोर बातचीतमें उसका व्यवहार को जानिये नव पारस्यभाषामें पनेक अरबी शब्द प्रविष्ट हुए हैं। उच्चारणगत प्रभेदके मध्य पहले प्राचीन पारस्यभाषामें जहाँ क, त, प उच्चारित होता था, सभी वहाँ ग, द, ब उच्चारित होने लगा है। यथा—

प्राचीन पारस्य वा जन्द	पञ्चवो	नव पारस्य
पाप (लिये)	पाप	पाब
हमो (सर्प)	होत	होद

एतद्विषय अन्यत्र सामान्य दृश्यता है।

साहित्य।

पारस्यभाषामें काश्गारियाकी किछ समय सम्पत्ति हुई, उसने सम्पत्तिमें ऐतिहासिकोंके मध्य सनभेद दिखा जाता है। बहुतीका कहना है, कि ४२० ई०में मान-नीय-वर्गीय राजा पश्चिम बहरामने पारस्यका उद्धार किया। कोई-कोई कहते हैं, कि ममरकन्दके निकट-वर्ती सन्द-निवासो पशुनदफने पारस्यभाषामें प्रथम पद्यपद्य हो रचना की। उक्त पद्य-रमोदो को सुनके बाद ८०८ ई०में पञ्चम नामक एक शक्तिने सुगंधान में यथार्थमें पद्यरचना करनेका पारम्भ किया पोर इस समय पारस्यभाषाको प्रधानतामें पारस्यभाषाको सहायता करनेमें यद्यपि मध कोई सिद्धिपद्य को मये थे, तो भी यह बिलक्षण बिलुप्त न हुई थी। इस समय पारस्य भाषामें बहुत कम प्रयोगादि लिखे जाते थे। १०५५ गताब्दीके पहले चार प्रकाशके पद्योंमें छिट्टि हुई, यथा—जशोदा (शोकचूच वा दनेपचूच), गजन (गोत), रुगई (एक प्रकाशका कंठा पद्य) पोर मम-नवो (पद्यारम्भ)। ११वीं गताब्दीके बादमें महा-काव्य-रचनाका प्रथम सुत्रपान हुआ। इस प्रयोगका प्रथम सभी सभी देशोंमें फैला हुआ है।

नीतिगर्भ पोर धर्मसूत्रक प्रयोग रचना सुन-वर्गके राजत्वकालमें प्रकाशित हुई। इस समय भाट्टि सुप्ताम पोर गुलिस्तान प्रयोग रचे गये। इन दोनों प्रयोगोंके पवित्र धर्मभाव पोर भाषा-नैपुण्यकी प्रशंसा गमा दियाके लीम करते हैं। पद्यमें मनका भाव सुनिगदका-से प्रकाशित करनेमें हाफिज पारसिक कविप्रान्ति पदितोय थे। वर्तमान गताब्दीके प्रारम्भमें पारस्यमें नाटक-का प्रारम्भ हुआ है। सभी नाटक प्रायः पद्यमें मिलित पोर धर्मविषयक प्रवादमें रहते हैं। ऐतिहासिक भा पारसिकोंने निपुणता दिखाई है, काफिरामा पादि प्रयोग इनके मन्त्रों हैं। पारस्यभाषामें संस्कृत रामायण पोर महाभारत पादि पनेक प्रयोग पशुवादिन हुए हैं।

पूर्वतन पारसिकोंका प्रयोग पोर देवतर।

प्रायः पोर पारसिकगण बहुत दिनोंमें संसृष्ट थे, यह दोनों जातियो भाषा पोर पाचार-परम्परामें प्रभावित होता है। पारसिकदेशमें बहुत सो मित्राभिप्राय

पाता है। 'हरखरतो' बरखनो गन्ध का हो रूपकार है। कारण पारमिकगण 'म' का उच्चारण 'ह' के जैसा करते हैं। जैसे—मोम, मित्र और सुखनु हो जगह पारमिकगण होम, हिन्दू और सुखनुम करते हैं। 'ह' इस वर्ण को जगह वाच्यता भाषामें 'म' होता है। यथा—दशर और स्वधातको जगह 'सुप्र' और 'सधात' हुआ करता है। इसी प्रकार सरय और सममित्र आदि गन्ध पदस्थानोंमें 'हरय' और 'हसहेन्दु' नाममें प्रयुक्त हुए हैं।

हिन्दू और पारमिक जाति में प्राचीन धर्मादिका जो सा सुवात्त माहस्य है, उसे भी इस विषयमें विवेच्य प्रयुक्त कहना होगा। पारमिक और हिन्दूमें बहुत दिनों तक एक साथ वास किया था, सुता दोनों एक धर्म और एक प्रकारको पाच रसपात्रोंके प्रयुक्त चलते थे। आर्योंके वेद और पारमिकोंके पदस्थानोंके प्रयोगतत्त्व जिन सब विषयोंका साहस्य देखनेमें आता है, वह सभी पति प्राचीनकालका धर्म है, यह विषय स्पष्ट कह सकते हैं।

वेदमें मित्र और सुख नामक दो देवताओंका उल्लेख है। इन दोनोंके उद्देशमें पनेक धर्म वेदमें अभिहित हैं। अथवाग्रासमें और अर्तचर (Ara-
-porues) नामक पारमिक राजाका शिवाभिषिक्त तथा हरीशेतव आदि लोक अन्धकारोंके अन्तमें पारमिकगण मित्र नामक देवताविषयके उपासक माने गये हैं। आर्योंके वक्ष्य और मित्र देवताके साथ पदुरमन्द तथा मित्र देवता माहस्य है। वक्ष्य और पदुरमन्द दोनों हो अग्नि अपने उपासकोंके पापके क्षमा और अन्धकार्य ऐश्वर्ययुक्तसम्पन्न प्रधान देवता माने गये हैं।

वक्ष्य देव असुर कह कर प्रसिद्ध थे। गुग-
कासोन पारमिकोंके अन्धकार्य उपास्यदेवताका नाम पदुर था। पारमिक असुरप्रधान अर्थात् पदुरमन्द अतिगव
उत्पत्तय कर पदुरारो पारमिकोंके पद पर अतिप्रति-
रूप हैं। पारमिक पदुरमन्द गन्ध संस्कृत असुर
सिद्ध गन्धके प्रयुक्त है। असुर और पदुर गन्ध
एक ही है, इनमें जरा भी अन्तर नहीं। संस्कृत

सिद्ध गन्धका अर्थ है प्रज्ञा और वाचस्ति त 'मन्त्र' का अर्थवान्।

वक्ष्य और पदुरमन्द एक देवताका नाम होगा सम्भव है। किन्तु मित्र और मित्र देव अमित्र हैं इसमें कुछ भी अन्तर नहीं। वेदमें 'द्वितामि कर्षो' कर्षो मित्रको दियामिमानी देवता मतलाया है। (ऋ-
१२५।५, ८।१०, १२ इत्यादि) मित्र गन्धका अर्थ अर्थ और वक्ष्य है। संस्कृत मित्र गन्ध के दोनो अर्थ ही प्रसिद्ध हैं। मित्र और मित्र दोनों ही हिन्दू और पारमिकोंके संस्कृतिकालमें साधारण देवता थे, इसमें अन्तर करनेका कोई कारण नहीं। प्राचीन पारमिक-
गण हिन्दुओंको तरह वायु, अर्थ, अग्नि और पृथ्वी आदि उपासनामें प्रयुक्त थे। वेदिक अग्निहोत्रियों को तरह पारमिकगण भी काठमें काठ रमक कर अग्नि निजातते थे और अपने घरमें सभी अग्नि को स्थापना करते थे।

अथवाके अन्तर्गत साथ परिच्छेदमें लिखा है, कि जस्तुश्रुतिप्रतिपत्तिमें अग्निवाजको विवेक प्रशंसा को है और अपने अर्थ नामक सम्प्रदाय को अतिशक्ति प्रसिद्धि और अज्ञा करनेका उपाय दिया है। पारमिक अर्थ और वेदिक प्रजापति 'अग्नि' ये दोनों एक हैं, ऐसा अनुमान करना असम्भव नहीं है। वेदमें अग्निदेव के साथ अग्निवाजको विवेक चरितता है और अग्निविषय में अग्निदेवको प्रतिष्ठा मतलाया है। (ऋ-१।१।१-२) अग्नि के साथ अग्निवाज विवेक सम्भव था। वे कभी कभी अग्नि के प्रतिनिधित्वमें देवकाय करते थे, इस प्रकार अनेक प्रसङ्ग वेद और निरुक्त आदिमें मिलते हैं। इन सबको ध्यानपूर्वक करना करनेसे 'अर्थ' और 'अग्नि' एक हैं, इसमें कुछ भी अन्तर नहीं। पारमिक और हिन्दू जब अग्निचित थे उस समय अग्नि के अर्थपरम्पराक्रमसे इस प्रकार अग्नि को उपासना प्रचलित हुई है, यह अनुमान सुनिश्चित है।

पारमिकोंके अथवाग्रासमें 'रन्ध्र', 'अर्थ' और 'नामोष्ठ' इत्यादि ये तीन नाम वेदिक रन्ध्र, अर्थ और 'नामस्य' अन्तर्गत साथ एक कह कर स्मरण किया जा सकता है। अग्नि नामक दो देवताओंका नाम नामस्य है। हिन्दू और

प्रागैविक्रमे परस्परं विघाटावसम्बादसे शब्द, इन्द्र पोर
नास्त्य ये मय प्रवृत्ताये दैत्यस्वरूप वर्णित प्रूप हैं।

पञ्चम्याने मध्य 'वधु' 'होम' 'परमहति' 'पञ्चम्य' मन्त्र
'नः' 'यः' 'उ' 'व' नामक जितने देवता और देवदूत का वर्णन
है। वेदमें ये सब देवता यथाक्रम वायु, सोम, परमति,
अथ मन्त्र और 'नाग' म नामसे प्रसिद्ध हैं। कारण दानो
मंत्रों में ये सब देवता केवल नामके ही नहीं हैं, कायोंदि
भी उक्त एतत्तु हैं। पारसिक 'वधु' बहुत स्थित और सर्व
गामो वा सर्वग्यापो हैं। वे जपरा भाग पर्याप्त गगन-
मण्डलमें काम करते हैं। वैदिक वायुदेव भी इनके लक्षणा-
प्रमाणों हैं। वेदमें भी परमतिको एक उग्राय देवता वत-
तु या है। पारसिक 'परमहति' देवता वा देवगणित
संख्या हैं। वैदिक परमति और पारसिक परमहति
शब्द का पर्याय एक है। दोनों के जो मतमें परमति का
पर्याय हुआ है। शास्त्रमें हुआ गोक्षपतारिणी मागो गई है
पण ताके मतमें भी हुआ गोक्षपण है। इस दिग्में
विवाहके समय 'पर्यमन्' देवता मंत्राणा मन्त्रादि पढ़
जाते हैं। पारसिक मतमें भी ठीक वैसा हो रहा
है। वैदिक नरायण शब्द 'भग्नि, पुनन् और
मन्त्राणावति प्रभृति अर्थकानि देवताओं के विशेषण-
रूपमें व्यवहृत हुआ है। पारसिक 'नद' 'गर्ह' 'पद' -
शब्दों के दूतसंख्या हैं; वेदमें 'अग्नि और पुनन् देवताका
इसी प्रकार दोषः शब्दों में उल्लेख किया जाता है।

इन्द्र तान सात्तर ह्रस्वणुं पोर इमंका सायदितक-
 र्प धेरश्रूय है। भवस्तानं इन्द्र की देखत वतनाया
 है। किन्तु उगकी मतसे धेरश्रूय पूज्य पोर भक्ति-
 भाजन यज्ञतविनयके जैसे चरित्रित हैं। ये सब
 देवता हिन्दू पोर पारसिकके संस्कृतकालक उपास्य
 देवता थे, ऐसा अनुमान किया जाता है। यद्यपि
 'भग' पोर सायदितक 'बग' ये दोनों एक हैं। वैदिक
 'भग' एक सायदित्यका नाम है पोर सायदितक 'बग'
 अर्थ देवतासुचक।

वैदिक देवताओं से क्या इह है और व्यवस्थित भी
नियम है, कि इह रतुपंनि पदरमंडल प्रसिद्धि और
अरय प्राधमके तत्त्वोंको प्रसिद्धि दिया। यहो इह
प्रति तैत्तिरीय देवता है। अब किहू और पारमिष्ठा-

गण संसद में, ऐसे समयों में एक ही धर्म का।
प्रमगः हिन्दू धर्म पारसिक के विभिन्न स्थानों में रहने
पारसिकगण उसका धर्म भूत गये हैं, ऐसा अनुमान
किया जाता है।

उभयजातीय देवताओं को मंझा पौर स्वरूप विवश-
में जैसे सोमादृष्ट है, उनके क्रियाकलापमें भी वेष्टा
हो सादृश्य देखा जाता है। इस विषय पर कुछ पौर
कह देना उचित है।

पञ्चशतीं भूत्विक्का नाम 'पायूय' पोर कत्विक्क,
विशेषका नाम 'जोता' है। ये दोनों वैदिक 'पययन्' पोर 'जाता' शब्दके हो पशुसूक्त हैं। पारसिकाके निगा-
कलापके पशुशोकालमें दुध, नवनोत, मांस, घस, सोमगाछा, सोमरस, हयशंस, पक्षपुच्छ पोर पिटक-
प्रभृति व्यवहृत होते हैं। हिन्दुओंके वैदिक यज्ञादि
कार्यमें भी वही सब द्रव्य पावश्यक हैं।

सोमयाग एक वैदिक प्रधान यज्ञ है। वेदानुसार 'ओम' और पारमिक शास्त्रानुसार 'हाम' एक अद्विष्ट नाम है। उभय शास्त्रानुसार वह सुवर्णसदृश रक्षित मादक और रोगान्नाशक है। यह सोम स्वास्थ्यदायक और चमरत्वविधायक 'एव' एक परमपूजनीय देवता है। इसका रस विदित, यधानवे और मन्त्रनूत करने मान करणा होता है। दोनों ही शास्त्रों में सब कथाएँ एकवचनमें खोजते पाई हैं।

पारसिकगण जिस क्रियायि सोमरसका निवेदन
करके व्यवहार करते हैं, उसका नाम है 'रजिपने'।
उसमें ज्वातिष्टोम नामक वैदिक क्रिया का प्रायः सभी
लक्षण लक्षित होते हैं।

पारशक्तियोग और भी पवित्र शिक्षाओं का समुदाय
करते हैं जिनका नाम है पाशुपत, दक्ष और नारद।
गर्व। ये ताना बंदोक्त प्रामो, दृष्टयोपमाव और
प्राप्तमध्य यागके समान समझे जाते हैं। पारसी देशों।

उपनयन विषयमें भी इन दोनों जातिके मन्त्र मन्त्र
 देखा जाता है। श्राव्योंका निर्दिष्ट वयसक भोतर भी
 उपनयन मन्त्रकार होता है। पारसिकों में भी यही नियम
 देखनेमें आता है। भारतवर्षिय पारसिक समुदाय
 वर्षमें पोर कर्मान्देशोय पारसिक दशमवर्षमें उपनयन

एक प्रतिज्ञावलीमें एक साक लिखा है 'हम लोगोंने देतापोंको उग्रामना परिश्रम करके चदुर-मण्डकी उग्रामनाका प्रथमस्वन किया पो। हम लोग देवताओंके गन्धु को कर चदुरके भक्त तथा धर्म-धर्मोंके स्तावन और तपावन हुए।' (यज्ञ १२ अ०।)

पुराण और ब्राह्मणादिमें वर्णित देशचरके बृह-विश्वराममें भी परमियोंका धर्मघटन विशेषतः स्तान्त्रिकी लक्षित होता है। हिन्दुओं पर परमियोंका यही धर्मविषय देव्याचुरमंशाम है।

पुराण और महाभारतमें हिन्दुधर्मोप-वृद्धिमें लोगोंने स्तौभावापय होनेको कथा देखनेमें पातो है। शापट पारमरुगण भी वही सत्य हो सती है।

इन दोनोंके मध्य विरोध होनेका क्या कारण था, उसका निर्णय काला बहुत कठिन है। पर हां, पारमि-यका ईशानो जातियोंके मतानुसार धर्ममंश्यापन और अतिरिक्त विस्तार प्रवृत्ति प्रवृत्ति हो विरोध और विच्छेदका कारण हो सकता है। यद्यपि एक दिनमें वा एक प्रमुखमें यह सङ्घर्षापार संघटित नहीं हुआ, तो भी प्रथम धामुमार जगत् स्त्रियतम नामक महाका-ह-हम गुरुवर विषयक प्रवृत्ति के, ऐसा प्रमुखान किया जा सकता है। जब पायंगण पञ्चदश प्रदेगमें रहते थे, वही समय यह शोचनीय विस्फोट उपस्थित हुआ। हमो विषय विशेषके प्रभावसे हिन्दु और पारसीगण विभक्तुल स्त्रतन्त्र हो गये हैं।

अथुपारिपतमक प्रवृत्ति सत्यशायिनी वेदिक पादों काय प्रयुक्त हो कर यथा पूर्ववाम महाक निज कोड़ दिया। प्रथमः वे पविमासर होते हुए बाह्यो-कादि गानः देगोंमें श्रमण और प्रवृत्ति और पारस्य-देगमें और वहां उनका नाम पारसी पड़ा। उन लोगोंके गोवर्धन और प्रामाण्यतिने भारत पानो-कित हो रहा।

पारस्यकुसीन (मं० पु०) पारस्य कुने भवः, प्रतिज्ञादि-स्वामि पञ्च, ततः पारस्यकुसीत पञ्चक, समासः। परकुसाप्य टणकपुत्रा ट।

पारस्य (मं० ति०) पारस्य नामक पञ्चगव्य-सम्बन्धोप।

पारस्य (मं० ति०) परमहंससम्बन्धोप।

पारा (मं० धी०) पारोडप्यया इत्यच् ततटाप। गडोविमोप। यह नदी पारिपात पर्यन्तमे निकली है।

पारा—मानभूमि जिल्ला एट ग्राम। यह मेदनीपुरमें काश्मीर जनेडे राप्ती पर प्रचलित है। पारासे पाथ मोक्ष दूर एक मन्दिर है जहां पञ्चभुजा भिन्दके जवा केडो कुंहे एक देवमूर्ति प्रतिष्ठित है। भिन्दके दोनों पार्श्वमें दो बगल और मराहके जगर दो हाथो हैं। यहां ती छोदित लिपि है हमके पनेन पञ्चर विलुप्त हो गये हैं। चन्द्रतपके मध्यभागमें वेण्णकाविषय है। इनके विशा यहां और भी कितने मन्दिर देखनेमें पाते हैं जिनमेंसे अधिकांश पथेवाकृत पाथुनिक हैं। पश्चिम भागमें जो मन्दिर है, वह कानूकप्रद और देखनेमें उत्तम खराब नहीं है। इन सब मन्दिरोंमें राधारणका मन्दिर सन सुन्दर और काव्यपूर्ण लिपि है। पान तक हमका कोई पठित नहीं हुआ है।

यहां सर्वाधिक प्रचलित और दृश्य पदार्थ इटक-और प्रस्तरनिर्मित दो मन्दिर प्रमाण हैं। प्रस्तर-निर्मित मन्दिर एक समय चत्वरुल छह पा, पमो इम-का प्रथम ऊपरी भाग देखनेमें पता है। मन्दिराग्नमें खादित प्रतिमूर्ति जल और पाथुमे विभट हो गई है। मानसिंह जब बङ्गदेगमें रहते थे, उस समय इस मन्दिरका जोरसंस्कार हुआ था। मन्दिरके मध्य कणपथवर पर छोदित दो भुजाशाली एक गज लक्ष्मका प्रतिमूर्ति है। लक्ष्मीके मन्दाक पर माना धारण किये हुए दो हाथो प्रवर्तित हैं। लक्ष्मी को गज टूट गई है। मानस पड़ता है, कि बङ्गदेगमें मान-सिंहके शासनके पहले सुप्रसमानने यह कार्य किया गया है। मन्दिरका पथ डाल पमो महीके मोचे प्रायः १ फुट धर्म गया है। इस मन्दिरके निष्ठ इटक-निर्मित एक और मन्दिर विराजमान है। इस मन्दिरके इटकका परिमाण १० इंच लम्बा और ११ इंच चौड़ा है। यही यहाँका सबसे पुराना मन्दिर है। इटकनिर्मित होने पर भी इनका धर्म टूटा फूटा नहीं है। मन्दिरके मध्य हिस्सा देवोमूर्ति प्रतिष्ठित है। मन्दिरका शिखर देखनेमें बड़ा ही सुन्दर लगता है।

है; पारमिकों ने भी ऐसे सन्ध्याधर्म एक पर्वतविशेष का अस्तित्व स्वीकार किया है। दोनों के ही समर्थक पर्वत देवताओं को निशानभूमि है।

हिन्दू और पारमिक के ज्ञातोद्यधर्म का विषय जो कुछ लिखा गया, समग्र विचार करनेसे मालूम पड़ता है, कि दोनों ही जाति एक समय वैदिकधर्म का पालन और सूर्य, वायु तथा अग्नि आदिको उपासना करते थे। जान पड़ता है, कि किसी कारणविशेषसे तथा विभिन्न देशों में अवस्थान करनेसे वे दोनों जातियाँ विभक्त हो गई हैं। इनके विवाद और विद्वेष के प्रत्येक कारण हिन्दू और पारमिक दोनों ही शास्त्रों में ज्ञातस्थान हैं।

हिन्दुओं और पारमिकों के ज्ञातोद्यधर्म के प्रत्येक विषयों में जैना समाधारण ऐसा देखा जाता है, ठीक वैसा ही प्रत्येक विषयों में फिर वैपरोत्य भी है। वैदिक देव शब्द पूजाशब्द और देवतापतिपादक है, किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से देव शब्द और इदानीन्तन पारमिक देव शब्द दैत्यवाचक है। इन्द्र, शंख और नाभस्त्य वेदोक्त देवता हैं, किन्तु अवस्थानों से सब दैत्य-निर्केतन और निरयमदन में निर्वासित हुए हैं। इन्होंने यथाक्रम दैत्याधिपति चण्डप्रमदयुक्तो मन्त्रिसभा के हितोद्य, हितोद्य और चतुर्थ सभासदका पावन परिषद किया है।

सोमयाग एक प्रधान वैदिक क्रिया है। जस्युप्य दिवसमें पूर्व ज्ञातोद्य उस क्रियाका परित्याग कर सोम-दक्षपानको भूयसो, निन्दा को है। क्षमया पापसमें विवाद करके पारमिकों ने हिन्दू देवताओं का और हिन्दुओं ने पारमिक देवताओं का निन्दावाद करनेमें एक भी कसर छोड़ा नहीं। इस प्रकार दोनों जातियों के बीच विवाह ने भी पदचरण धारण किया और दोनों जातियाँ परस्पर विभक्त हो गई हैं।

आध्यात्मिक 'महुर' शब्दका अर्थ प्रभु और जीविम-मान है। पारमिकों के देवताका नाम चतुर और प्रधान देवताका नाम चतुरमउ है। सायणाचार्य ने वेद-अंशितामें कई जगह 'चतुर' का अर्थ सगाया है सब कोनों के प्राणदाता। सुतायह देवगुणवाचक है। अग्येदमंशिता के १३५१८ शब्द के भाष्यमें 'चतुर' सर्व

भगवत् और दयाम शब्दों में भी चतुर शब्द का अर्थ देव सविष्टि रूप है। उत्तरकाशीन हिन्दुशास्त्रकारोंने चतुर को देवताओं और देव तथा देवताओं का चतुरविधा उपासना कर वर्णन किया है, किन्तु समस्त वेद अंशितामें चतुर शब्दका उल्लेख देवताओं में नहीं आता, यह मनुष्य अत्यधिक विषय है, हममें मन्द न हो। चतुरने जब पारमिकों के 'महुर' को देवताका अर्थ दत्त किया, उस समय के वा उस वाद के हिन्दुओं ने पारमिकों के प्रति विद्वेषवगत; चतुरविधाओं 'चतुर' नामसे अपने देवताको आख्या प्रदान की, ऐसा चतुरनाम नितान्त प्रमत्त नहीं है। क्षमया इमो प्रहार एकने चतुरको निन्दा को है।

इस जिन प्रकार अवस्थानों रचयिताने वेदोक्त क्रिया और उचित नामक परमायुर्धर्मा अतिथियों को निन्दा को है। उधर उपा प्रकार भारतीय, हिन्दू अतिथिने जस्युप्यधर्म देवताओं का आचार्य तिरस्कार किया है। उन मन्त्रशायों के प्रथम अत्यन्त नाम मय है जिसे सन्ध्याधर्म मचवा कहते हैं। कानाजार-गिलातियमें यह नाम मयुप्य कह कर उल्लिखित है। उन मन्त्रशायों के और और भूयताविशेषता नाम कहा था, कब था, यथा—कषावास्त्य, कषदुधन, कषउग। ये माधक, स्वधर्म चक्र वा राजपवित्रय ये। वेदमंशितामें उनके प्रस्तावक मनुष्य कषासक नामसे प्रिय है। अवस्था क रचयिताने जिस प्रकार इन्द्रादि हिन्दू देवताओं को दुराका दैत्यरूप वतलाया है, उनी प्रकार चतुरों ने भी उल्लिखित मचवा और कषासक का इन्द्रविशेष तथा इन्द्रदेव को उनके विनाशकारी वतला कर उल्लेख किया है। (५५११४१)

इन सब विषयों का विवेचन पक्षों को करना करने से हममें ज्ञाना प्रकार मन्द उल्लिखित होते हैं। इससे पापमें पाप यह प्रतीत होता है, कि जिन प्रकार हमने देवताओं का अवलम्बन करके अपने पूर्वज देवताओं का दैत्य वतलाया था, उनी प्रकार हिन्दू और पारमिक धर्म निवन्धन विमलवादन; परस्पर विद्वेष, वायव्य कर इस प्रकार उल्लिखित प्रदान हुए थे। यही तब कि, अवस्था प्रस्ताव यथाविधि है।

एक प्रतिष्ठापनोमे' हाफ साफ लिखा है 'हम लोगो'ने देताया'को उगमना परिधाय करके चदर मरुटकी सपामना का चवनचवन किया पो। हम लोग देवताओं'के गयु हो कर चदर'के भक्त तथा चमोप-देवता'के स्तायक चोर सपामक हुए।' (चन १२ अ०)

पुराण चोर ब्राह्मणादिमे' सर्चित देशचरके युद्ध-विशरणमे' भो पारसिको'का चम'च'टन ज़िरोचतुतात्त ही ललित होता है। हिन्दुओं' पर पारसिकों'का यही धर्मविषय द दियाचुर'स'याम है।

पुराण चोर महाभारतमे' हिन्दु'संगोय चदनमे लोगो'र क्लृष्टभावापन्न होनेको कथा देखनेमे' पातो है। शायद पारसिकगण भी उनके मध्य हो सकते हैं।

इन दोनों'के मध्या विरोध होनेका क्या कारण था, उसका निर्णय करना बहुत कठिन है। पर हाँ, पारसिक धर्मात्मा ईशानो जातियाँ'के मतानुसार धर्म'संस्थापन चोर क्रिया'य'के विस्तर प्रवृत्तन प्रवृत्ति हो विरोध चोर विच्छेदका कारण हो सकता है। यद्यपि एक दिनमे' या एक प्रमुखमे' यह संस्थापना संघटित नहीं हुआ, तो भी चय याचुमार जगत् स्थितिसम नामक महाकाव्य इन गुरुवर विषयक प्रवृत्ति के, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। जब पाय'गय पञ्चाट प्रदेशमे' रहते थे, उसी समय यह कीवभाव विरह्याट उपस्थित हुआ। इसी विषय विरोधके प्रभावसे हिन्दु चोर धारवागण विनकुल स्वतन्त्र हो गये हैं।

अथयुधामिपतमः प्रवृत्ति सन्मदायिषो'ने वेदिक चापों'र साथ दृष्टक ही कर अपना पूर्वभाव महाह मि छोड़ दिया। क्षमगः वे पयिमांशर होते हुए बाह्यो-काटि नागः देगो'र श्रमण चोर अवस्थान कर पारस्य-देगमे' चोर बहा'उनका नाम पारसो पड़ा। उन लोगो'के गोय'सोय' चोर प्रामाज्यातिने भारत पानो-कित हो रहा।

पारस्यकुलीन (मं० पु०) पारस्य कुले भवः, प्रतिप्रनाटि-त्वात् चञ्चुः। ततः पारस्यकुलीनं पल्लवं समासः। पारकुलापय टक्कपुत्रा द।

पारस्य (मं० दि०)। पारस्य नामक जूनीरिय-सम्बन्धोप।

पारह'स्य (मं० दि०) परमहंससम्बन्धोप।

पारा (मं० चो०) पागोऽप्यस्या इयन् ततः टप। मटोविशेष। यह मटो पारिपात्र पर्वतमे' निकली है।

पारा—मानभूम जिल्लाका एक ग्राम। यह मेटनीपुरमे' काश्मीर जमिने' राखे पर चयव्यति है। पारामे' चाध मोन दूर एक मन्दिर है जहाँ चदभुश मि'ह'के लग्न केहो चुके एक देवमुर्ति प्रतिष्ठित है। मि'ह'के दोनों पार्श्वमे' दो बगव चोर बराह'के लग्न दो हाथो' हैं। यहाँ जो खोदित लिपि है उनके चनेन चसर विगुल हो गयी हैं। चन्द्रातपके मध्यभागमे' चण्वाकाविषय है। इनके मिश्र यहाँ चोर भी कितने मन्दिर देखनेमे' पाते हैं जिनमे'मे' पधिकांश पपेवाजत पाधुमिक हैं। पयिम भागमे' जो मन्दिर है, यह कानूहकप्रद चोर दिवनेमे' सतना खराब नहीं है। इन सब मन्दिरोंमे' राधारणका मन्दिर सतन सुन्दर चोर काश्वावे'लवि है। पाज तक उसका कोई पमिट नहीं हुआ है।

यहाँ सर्वाधिक प्रचोम चोर दृष्टश्य पदार्थो' इटक-चोर प्रस्तरनिर्मित दो मन्दिर प्रमान हैं। प्रस्तर निर्मित मन्दिर एक समय चलात्त लहनु था, चमो हम-का चवन जपरो भाग देखनेमे' पाता है। मन्दिराग्रमे' स्थापित पतिमुर्ति जल चोर चायुमे' विगट हो गई है। सानोम'क जब चन्द्रदेगमे' रहते थे, उन समय इन मन्दिरका जोष'संस्कार हुआ था। मन्दिरके मध्य छापयवर पर खोदित दो मुक्ताशानो एक गज लक्ष्मीका प्रतिमुर्ति है। लक्ष्मीके मयाक पर साना धारण किये हुए दो हाथो' चयवसित हैं। लक्ष्मीो' नाह टूट गई है। सानूम पड़ता है, कि चन्द्रदेगमे' सान-सि'ह'के पाकनगके पहले सुनलमानों'ने यह कार्य किया गया है। मन्दिरका पय'हाग चमो महे'के मोदे प्रायः १ फुट धंन गया है। इस मन्दिरके निकट इटक-निर्मित एक चोर मन्दिर विराजमान है। इन मन्दिरके इटकका परिमाण १० इंच लम्बा चोर ११ इंच चौड़ा है। यहाँ यहाँका मयने पुराना मन्दिर है। इटकनिर्मित होने पर भी इनका चंग टूटा कूटा नहीं है। मन्दिरके मध्य दिग्मुखा देवोर्ति प्रतिष्ठित है। मन्दिरका मिश्र देखनेमे' बड़ा ही सुन्दर लगता है।

पामनें स्यादिके रहनेसे इसका कुछ अंश टूट फट गया है।

इन मन्दिरके निकट दो छोटे छोटे स्तम्भ हैं। प्रवाद है, कि इन दो स्तम्भोंके ऊपर एक टेढ़ी लोचो घोर नरमांसालुना रहिषो नामक एक राक्षसो उन टेढ़ी लोचो मनुष्यका खूब खर खातो थो। अति प्रताका सय न हो, इन भगवत यज्ञी राजाने राजसाते निकट प्रति दिन एक एक मनुष्य भोजनेको प्रतिष्ठा को। एक दिन एक परिवारको भारी पड़े। ओ सबके सब गोहल गमने डूब गये। उन्हें ऐसी पराधाम देखे उन पशुवारका हृदय दामने विवश आया घोर वह खर उन राक्षसोके पा जने को राजो हो गया। यह पशो एक मुठो लोहे चने घोर दूधोमें धमन चने नी कर राजसात धार गया। उसने लोहे चने राजोका दे नर कडा, जिसका भोजन पशुके शेष कोमा वह दूधोको भक्षण करेगा। राक्षसोको डार हुई घोर वह पशुवारक भगवत भाग कर एक धोरो पाटके गोचे छिर उयो। गोरक राजसातेको कुत्ताके साथ उमका तनागने जिसका घोर जब वह राक्षस नामक स्थानमें जंगलके बीच हो कर पारहा था, उसो समय वह कुत्ता ममे पत्थर हो गया। राक्षसोने जिस धोरो पाटके रखा पाई थो उसे धनभूतका राजा बना दिया। धनभूतके राजा जातिने रक्त हैं थो। राक्षसो रहिषो उओ छपास्य देवो है। रहिषो-मन्दिरने नियमितरूपे सरवलि होता थो। थो भगवत मन्दिरको लाड़ छोड़ डाला है।

पारापतमें राधारमणको जो मन्दिर है, उने है, मानसिके शासनकालमें पुष्योत्तमदामने उने बनाया।

पारा (६० पु०) १ चांदीको तरब सकेट पार चमकतो एक घातु। विरोध विषय गाद मन्त्रों देहो। (६० पु०) २ टुकड़ा। १ वर छोटो टाबार आ चुने गारेने जोड़ कर न सगे हो केवल पारोके टुकड़े एक दूसरे पर रख कर बनाई गई हो। ऐसी दोबार बनाये प्रादि हो रक्षाके लिये चारों घोर बनाई जाते हैं।

पारापत-चण्डर राजाघोने प्राचीन राजधानी। वह पनवरने २० मोत दक्षिण-पश्चिममें एक पहाड़े ऊपर पनवरिण घोर चारों घोर प्राचीरने सुरक्षित है। मोनकण्ड-महादेवके मन्दिरके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है।

नगरका भनायमें प्रायः एक मोत तक विस्तृत है। कहते हैं, कि इन स्थानका दुा प्राचीर जयपुरके राजा सपुर्नन्दसे बनाया गया है। नगरके लक्ष्मणमें मन्मथ नामक एक सुन्दर पुष्करिणी है। नगरका एक प्रसिद्ध जयपुरके महाराज जयसिंहके नाम पर पुकारा जाता है। इससे मान्य पड़ता है, कि पारापत गतमानादिके पक्षसे पक्षि स्थान था। नगरके मध्य भागमें खोरा नामक जो पुष्करिणी है, उसका बहुतो गार्व देवमन्दिरने सुगोभित है। भग्नावशेषके मध्य उत्कृष्ट पट्टि काटि विद्यमान हैं। यहाँके एक मन्दिरमें भोमहाय को जैन मूर्ति है, उसको ऊँचाई १५ फुट २ इंच है।

पारापतके मोनकण्ड मन्दिर राजा पनवरिणसे बनाया गया है। इन मन्दिरमें एक खोदितलिपि पाई गई थो जो पनवरने वरमान है। मन्दिरमें गणिका प्रतिवृत्तिने निकट जो खोदित लिपि है वर १-१० मन्त्रको लिखा हुई है।

मन्दिरमें विचलित प्रतिष्ठित है। पक्षमण्डपके मध्य ओर मन्दिरमें प्रवेश करने पड़ता है। पक्षमण्डपके बाट मोनक स्तम्भोंके ऊपर महामण्डप सिंहासित है। मन्दिरके महामण्डपके पवित्र स्थानके स्तम्भ ६० फुट ऊँचे हैं। इनके दक्षिणमें चंटाइन विषम, उत्तरमें नरविहमति पार पूरको पार चंटाइन मूर्ति है। इन मन्दिरोंके स्तम्भोंके ऊपर पवित्र है तथा इनको धाड़ १८ फुट पार ऊँचाई ४२ फुट है।

मन्दिरके प्रवेशात् राजा पनवरिणका विषय कुछ भी मान्य नहीं। पर ही वे एक चण्डरके राजा थे, इनसे मन्दिर बना। परंतु के लिये चनेक मन्दिर पार विषयका भग्नावशेष है।

पारापत (६० पु०) पारे गिरिनयादिवारे वा पारापत, पतति आभादिनि पत-पत्त। पारापत।

पारावार (मं० पु०) पाराय पारायस्थिति पय
(भरी आतिथ्योद्ग) वा ५१।१।२७) पारावार।

पारायण (मं० स्त्री०) पारं सम तिमशते गच्छति
प्राप्तिं न वादिजादनः । १ सम्यग्ता, समाप्ति । २
समय वांर कर किंवे प्रत्यक्ष पाद्योपान पाठ ।

"इत्येव प्रज्ञानं शान्तं पारायणं तदा ॥"

(देवीन, ग० ३१२।१०)

पारायण (पुं० पाठ) करनेमें ब्राह्मणकी वरण
करना होता है पर्याप्त शुभवान् ब्राह्मणने जयर भार
सोया जाता है ।

पद्मपुराणके पातान्त्रकण्डमें लिखा है, कि शुक्-
देवने ७ दिनमें भागवतका पाठ करके परोक्षिकी
समाया या । 'यदि कोई इस भागवतका पाठ कराना
चाहे, तो ब्राह्मण द्वारा करावे' । जो इस भागवतका
पाठ कराते वा सुनते हैं, उनकी सखा सुखि होती है ।

इसी प्रकारके पाठको पारायण कहते हैं । इस पारा-
यणमें पाठक बहुत सवरे 'निरक्षक्यादि समाग्र करके
जायमें कुछ से देवता, दिन और गुरुकी सम्झार करे ।
पेक्षे भगवान् विष्णुका ध्यान करके देवायन और शुक्देव
आदिकी भक्तिपूर्वक प्रणाम करे । अनन्तर प्रथम
दिनमें 'हिरण्यचक्र तत्र पाठ, द्वितीय दिनमें भरतका
चरित, तृतीय दिनमें अष्टमन्य', चतुर्थ दिनमें हरि-

जनम, पञ्चम दिनमें कृष्णपोहरण, षष्ठ दिनमें 'देव-
संवाद' और सप्तम दिनमें समाप्त करना होता है ।
पाठके समय पद्यावर्ग शेषमें विश्राम करे, यदि देवात्
पथर यह संधा हो विश्राम किया जाय, तो पुन पथरायके
आरम्भमें पाठ करना होगा । जिसमें पथर दोष हो, इस
प्रकार साक मात पढ़ना उचित है । श्रोतृगण पूर्व-
सुख बैठ कर भक्तिपूर्वक श्रवण करे, पाठ शेष हो जाने
पर पण्डितको उपयुक्त दक्षिणा दे । जो इस प्रकार
पारायण या भागवतका पाठ करने पथवा भक्तिपूर्वक
सुनते हैं, उन्हें 'दण्डी' प्राप्त होती है । जहाँ भागवत-
पाठ होता है, वहाँ देवता, सुनि और तपोधनादि उप-

स्थित रहते हैं । (पद्म० पातान्त्र० पारायणवा० ७१५०)
पद्मपुराणमें उत्तरखण्डके द्वाते पथरायमें पारायणका
विशेष विवरण लिखा है, विस्तार हो जानेसे भयमे
यहाँ कुछ नहीं दिया गया ।

पद्मपुराणमें उत्तरखण्डके द्वाते पथरायमें पारायणका
विशेष विवरण लिखा है, विस्तार हो जानेसे भयमे
यहाँ कुछ नहीं दिया गया ।

पद्मपुराणमें उत्तरखण्डके द्वाते पथरायमें पारायणका
विशेष विवरण लिखा है, विस्तार हो जानेसे भयमे
यहाँ कुछ नहीं दिया गया ।

मं० कल्पपूर्वक भागवतादि पुष्पाणा पाद्योपान
पाठ होनेसे ही समे पारायण कहते हैं । पुराण-
पाठमें पाठक, धारक, श्रोता और जनसाधारण जिनमें
अक्षी तरह समझ सके, सबके लिये कथक विग्रह
करना होता है । किसे प्रकारका विग्रह उपस्थित न
हो, इसलिये नारायणकी सुनको दान और चण्डी-
पाठादि करना आवश्यक है । जो यह पारायण दे-
वी और जो पाठादि करें, उन्हें 'द्विपरागो' होता पड़ता
है । ये लोग रात्रिमें कुछ भी खा नहीं सकते । इस
समय सभी पति पवित्र भावमें रहें—काम, क्रोध,
मद, मोम, दुश्म आदिका परिश्रयण करे । वे शास्त्र, पय-
हायण और माहादि पुण्य माममें पारायण प्रमत्त है ।
विवाहादिमें जैसा दम्भ किया जाता है, वैसा ही
उत्सव इसमें भी विधेय है ।

पारायणिक (मं० पु०) पारायणं वर्तयति पारायण-ठस्य
(पारायण-पुत्रायेति) वा ५१।१।२७) १ पाठक, पाठ करने
वाला, पाद्योपान पढ़नेवाला । २ छात्र ।

पारायण्य (मं० स्त्री०) पारायणमन्त्रेदं तदधिकृत्य वा
प्रवृत्तं पारायण्यम् । १ पारायणमन्त्रयो । २ पारायण-
पन्थाधिकारमें प्रवृत्त पन्थमिदं ।

पारायक (मं० पु०) पृ-अञ्, पार+पूतिं कृच्छ्रतोति
कृच्छ्रकञ् । प्रान्तर ।

पाराहत (मं० पु०) चङ्गल, गिला ।
पाराण्य (मं० स्त्री०) पारायणमन्त्रोय ।

पारावत (मं० पु०) पारि गिरिदुर्गनाद्यादिपरपारि प्रापत-
नीति या पत-पञ्च सुयोदरादित्वात् पञ्च व । १ पश्चिमीय,
कबूतर । पर्याय—हृदयकण्ठ, कपोल, रत्नकोषन, रभस,
पारपत, ककरव, अक्षयकोषन, मदनकाकुरव, कामो,
रत्नचण, मदनमोहन, वाग्विलासो, कण्ठोरव, शृङ्गकरी-
तक । २ परेश, पण्डित । ३ मन्त्र, मन्त्र । ४ तन्त्र, त-
न्त्रका पेड़ । ५ गिरि, पर्वत । ६ नागविशेष, एक नाग
का नाम । ७ सुशुभोक्त पथरायके मध्य एक द्वा ।
एक प्रकारका पहा पटार्य । ८ दत्तात्रेयकी मुकु ।

पारावतक (मं० पु०) मोक्षधाम्यविशेष, एक प्रकारका
धान ।

पारावतकनिका (मं० स्त्री०) महाज्योतिषिणी जता, गङ्गी
मायकनिकी ।

पारावतघ्नी (स० स्त्री०) पारावतं इति इत-ठक घृषो-
दशादित्वात् साधुः । १ मरुत्वतोन्दो । २ दारावारावतिनी ।
पारावतपटो (स० स्त्री०) पारावतस्थेय पादोमुत्तं यमराः
डोप, ततो पदमः । १ पारावताङ्गि, मालकंगनी । २
काश्चिद्वा ।

पारावतगह्वत् (स० स्त्री०) कपोतविष्टा, कबूतरका गू ।
यह अग्रित रत्नदोपनाशक माना गया है ।

पारावताङ्गि (स० स्त्री०) पारावतस्य अङ्गि रिय अङ्गि-
मूलं यस्याः । १ ज्योतिषतोस्तता, मालकंगनी । २ महा-
ज्योतिषतोस्तता, बड़ो मालकंगनी ३ काकजङ्घा ।

पारावताङ्गिपिच्छ (स० पु०) पारावताङ्गिरिय पिच्छः
पचातुप्रदेशो यस्य । पारावतभेद, बागटादका कबूतर ।

पारावतो (स० स्त्री०) पारावतस्थेय ध्वनिरस्यस्या इति
अच् ततो डोप । १ गोपनीय, खालीका गीत । २ नदी-
भेद, एक नदीका नाम । ३ लवकोफत, हरका रेश्मि ।

पारावर (स० पु०) १ भूधामगह्वत् । २ पारावार ।

पारावर्य (स० अश्व०) सर्वतोभावे, सध्यस्वरूपे ।

पारावार (स० स्त्री०) पारं नद्यादिपरवारं घातुषोनीति
आ-ट-अण् । १ तटद्वय, पार पार, वार पार । २
सीमा, भस्मा, छद । ३ समुद्र ।

पारावार—१ मन्दाजमटेशके अन्तर्गत त्रियाङ्गुल
राज्यका एक उपविभाग । क्षेत्रफल ४० वर्गमील है ।
यहाँ अधिक मनुष्योंका वास है ।

२ उक्त उपविभागका एक प्रधान नगर । यह पचा०
१०° १०' स० घोर देगा० ७६° १६' पू० के मध्य अवस्थित
है । यह वाणिज्यका एक प्रधान स्थान है । पहले
यहाँ सेना रहती थी । टोपूस्ततानने इस नगरका
अधिकारी तोड़ कोड़ डाला है ।

पारावारोप (स० त्रि०) पारावारं गच्छतीति पारावार-
अ (राट्प्रासारवाय पठो । पा ४।२।१३ वा)
इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या छ । १ तटद्वयमानो, पार पार
करनेवाला । २ समुद्रमासी ।

पारावर (स० पु०) पारावरस्थावयं पुमान् पारावर-अण्
(अण्प्रत्ययेति । पा ४।१।११०)-१ श्यामदेव । २
परमात्मन इत्यभिहितविशेषः । कनिकात्मने यद्यो
परागम्यति तमधिकं प्रामाण्यं है ।

“इते तु मानवी धर्मव्रथायां गौतमः स्मृतः ।

द्वारे संश्लिखितः कस्य परावर इत्युक्तः ॥”

(पारावतद्विधा)

(स्त्री०) पारावरस्य लतमिति अण् । ३ व्यामरचित मिह-
सुव । ४ उपपुराणविशेष । ५ चक्रस्तोत्र छतविशेष । ६
परावरका कावचममूह । ७ परावरचित ज्योतिषग्रन्थ । यह
कृष्ण, हठ घोर हठत्वं यद्यो तोन प्रकारका देगा जाता
है । परमसुख, भैरव, लक्ष्मोपति, शोषोविनाम, महा-
नन्द आदि रचित पारावरोहोराहो टोका पार जाता
है । यौलक्ष्य शक्तने हठत्वं पारावरको टोका मिली है ।

८ परावरका पुत्र या-वर्गज । ९ योगोपदेश मानस
योगमात्रके रचयिता । (त्रि०) १० परावरसम्बन्धोप ।

परावरकल्पिक- (स० त्रि०) परावरकृतः कल्पसा-
द्वैत्यवोति या - (विद्यालक्षणकलाभ्यामेति अण्प्रत्यये । पा ४।१।
६० वा) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या ठक । १ परावरकल्पा-
ज्यायो । २ परावरकल्पवेत्ता ।

पारावरि (स० पु०) परावरस्थावयत् कत इत् । पा
४।१।८५ । १ नदवाव । २ सुखदेव । (त्रि०) ३ परा-
वरसम्बन्धो ।

पारावरिन् (स० पु०) पारावर्यं वा मोक्षं मिश्रणवोति
इति पारावर्यं णिनि ततो यतोऽप । १ मस्तरा । २
चतुर्थीयमो, बंदशासक शारीरकसूत्रक मिश्रमुद्रका
अध्ययन करनेवाला ।

परावरोप (स० त्रि०) परावरस्थावयत् देगादिः लगामादि-
त्वात् कण् । (पा ४।२।१००) परावरक समीपमा प्रदेश
आदि ।

पारावर्य (स० पु०) परावरस्थावयत् परावर (गौतमी-
यम् । पा ४।१।१५) इति यज् । वरावदेव ।

पारि (स० स्त्री०) सुरापानपात्र, प्याला ।

पारिकर्मिक (स० त्रि०) परिकर्मणि निपुणः ठक् ।
परिकर्मकार्यमें निपुण ।

पारिकाङ्क्षित् (स० पु०) परयति संसारात् तरयति वा
पार ब्रह्मज्ञानं तत् काङ्क्षात काङ्क्ष-णिनि । तदवस्था, यति-
भेद ब्रह्मज्ञानका अभिलाषा ।

पारिकुट (स० पु०) शेषक, भूय ।

पारिकृद—इहोसाके चत्वार्यंश चित्काभोक्तके पुर्वं मं चय-
स्थित द्वा० पु० ज। यहाँ नमक तैयार होता है। शीघ्रके
पारिभाषे चित्काभोक्तके जल माया जाता। और उसीमे
नमक निकास जाता है। वर्षाकालमें यह कार्य बन्द
हो जाता है। यदि किसी प्रकारका विष उद्यम्यित न
हो, तो १५ दिनमें यहो ८०० टन नमक तैयार हो
सकता है। काला पहाड़के भयमे जगन्नाथदेव यहाँ
क्षिपा कर रखे गये थे।

पारिचित (स० पु०) १ परिचितपुत्र जनमेजय। २
अथर्वसंहिताके २०।२०।१० मन्त्रका नाम।

पारिचितोय (स० पु०) पारिचितके भावात्।

पारिख (स० त्रि०) परिखायां भवः पल्लवादिवात् अण्।

(पा १।१।१०) परिखाभयः परिखामन्वयो, परिखाका।

पारिखेय (स० त्रि०) परिखा प्रयोजनमर्थकम्। परि-
खायै स्थलादि।

पारिगर्भिक (स० पु०) १ कपोत, कवूतर। २ परि-
गर्भिक रोग।

पारिषामिक (स० त्रि०) पारिषामे भवः ठञ्। शामके
परितोभय, जो गाँवके चारों ओर हो।

पारिजात (स० पु०) पारमवशास्तीति पारो समुद्रप-
त्तात् जातः। १ पारिभद्रवृक्ष, सुरतक। समुद्र समुद्रके
समय यह वृक्ष उत्पन्न हुआ था, इस कारण इनका
पारिजात नाम पड़ा है।

"ततोऽबद्ध पारिजातः दूरतोऽभिभूयन्।

पूरुषार्थिनो योर्ध्वः शश्वदु भुवि यथा भवन्॥"

(भाष्यत ८।८१६)

पारिजात समुद्र समुद्रमें धरे निकला था और इन्द्रकी
चमरावतीनगरीमें परिगोभित था। हरिवंशमें इसकी
वर्णना और हरणका विषय इस प्रकार लिखा है,—

एक दिन श्रीकृष्ण कृष्णिके माघ एक पावन पर-
वैठे परमानन्दित हो बातचीत कर रहे थे; इसी बीच
मारदजी वहाँ पहुँच गये। श्रीकृष्ण जब मारदकी
यथाशक्ति प्रशंसा कर चुके, तब मारदने उन्हें एक
पारिजात पुष्प प्रदान किया। भगवान् ने उसी समय वह
पुष्प कृष्णिके दे दिया। कृष्ण ने उस पुष्पको
नन्दन पर धारण किया जिसने उसकी शोभा

और भी बढ़ गई। मारदने कृष्णिके कहा, 'देवो-
पतिव्रते। आजसे यह पारिजात तुम्हारे संसारमें परम-
पवित्र हुआ। यह पुष्प कभी भी नष्ट नही होता
और एक वर्ष तक अमिमत गन्ध प्रदान करता है।
इच्छानुसार इससे शैत्य और उष्णता आदि प्राप्त
हो सकते हैं। इस पुष्पसे जिस किसी गन्धकी
अमिलापा की जाय उसी समय वह मिलती है। यह
शोभायुक्त आभार और धार्मिकोंका धर्मप्रद है। इस
पुष्पके धारण करनेसे अथम मति दूर हो जाती है।
जहाँ यह पुष्प रहता है वहाँ किसी प्रकारको दुर्गन्ध
नहीं रहती और सद्गन्धसे चारों दिशाएँ आनीत
होती हैं। जिस घरमें यह रहता है वहाँ रोगियोंको भी
जल्दतर नहीं पड़ती। यहाँ तक कि, इस पारिजातसे
जो कुछ माँगा जाय, वह उसी समय मिल जाता है।
यह पुष्प एक वर्षसे ज्यादा किसीके पास नहीं रहता।
अबो प्रसूति सब कोई इसे धारण करते हैं। एक वर्ष
बाद यह फिर अपने स्वयंमें संलग्न हो जाता है।' मारद
इस प्रकार पुष्पका शुभाशुभौत्पत्ति कर ही रहे थे, कि
इसी बीच सत्यभामाको एक दासी वहाँ आ पहुँची।
उसने जब देखा कि कृष्णने कृष्णिके पारिजात दिया
है, तब वह सत्यभामामें यह कथा जा बोली। यह
सम्वाद पाते ही सत्यभामा शोक और सज्जामें अमिभूत
हो गईं और क्रीडने लगीं जो रोपागारमें जा भर पड़
रहीं। भगवान् को जब यह बात मालम हुआ, तब वे
सत्यभामाके पास गये और माता प्रकारकी मात्स्यना टि
कर बोले, 'इस पुष्पका हृष स्वर्गसे ला कर तुम्हारे द्वार
पर स्थापित कर दूँगा।' यह सुन कर सत्यभामाका क्रोध
कुछ शान्त हुआ। इसी बीच मारदजी वहाँ पहुँच
गये और उन्होंने पारिजात वृक्षकी उत्पत्तिका विषय
इस प्रकार कहा।

किसी समय मरुचिन्मन्त्र काव्यने चटित पर-
मस हो कर वर माँगेको कहा। इस पर चटितने
माँगा की, 'यदि पाप सुभ पर प्रसव है, तो यन्ने धर
दोजिब जिसमें मैं अमिमत भूषणसे भूषित हो सकूँ,
चिरदिन स्थिरयोगना हो कर प्रतिपरायणा और धर्म-
शीला रहूँ, रोगियोंकादिने कभी भी अमिभूत न होऊँ,

मेरे इच्छानुसार नृत्य गीत धारण हो जाय और मेरी मोहाव्यवस्थाही दिनोंदिन हृदि हो।

इस पर तपं निधि कथ्यमाने पटितको प्रियकामना करके सर्वकामवद विद्याना परम सुदृश्य पारिजात नामक एक वृक्षकी सृष्टि हो। इस वृक्षमें सभी प्रकारके पुष्प फूलों हुए हैं। इसकी एक शाखामें पारिजात पुष्प, दूसरीमें पद्म और तीसरी शाखामें तरुण तरुणके पुष्प मोभा दे रहे हैं। इसी प्रकार पारिजात वृक्षको उत्पत्ति हुई। यह वृक्ष मन्त्रादि दूसरे किनारे उत्पन्न हुआ था, इस कारण इसका पारिजात नाम पड़ा है। मन्दार-पुष्प भी उसमें प्रसूतित होता है, इस कारण इसका दूसरा नाम मन्दार भी है। यह वृक्ष तीन नक्षत्रोंमें प्रविष्ट है, क्रोविदार, पारिजात और मन्दार।

नारदने जब इस प्रकार पारिजात वृक्षका विषय कह कर स्वर्ग आनेकी अनुमति मांगी, तब श्रोत्रियने कहा, 'पाप स्वर्ग' तो जाति है, पर इन्द्रसे कह कर पारिजात वृक्ष मेरे लिये अवश्य लेते पायेंगे। इन्द्रने विनियत करने पर निश्चय है, कि मैं इसे देनेमें प्रसन्न नहीं करूँगे। मैंने सत्यव्रतामाके द्वार पर यह वृक्ष स्थापन करनेकी उम्मेद प्रतिष्ठा की है। मैं अभी भी प्रभाव नहीं बोलता जिसमें मेरी बात रह जाय, वही उपाय करूँगे। पापका प्रयाय सर्व प्रभाव है, यदि पाप चेष्टा करेगी, तो इसका मिलना दुर्लभ नहीं है। मैं इन्द्रका छोटा भाई हूँ, मेरी प्रार्थना से कभी भी पक्षीकार नहीं करूँगे। श्रोत्रियने इसका सुन कर नारदने कहा, 'मैं इन्द्रमें यह वृक्ष लानेकी विनियत चेष्टा करूँगा, लेकिन जहाँ तक मैं समझता हूँ कि मैं इसे देने नहीं। क्योंकि पक्षी यह वृक्ष एक बार भष्ट हो गया था। जो देखता और दामनीमें मिल कर पक्षीचर्म मन्दागिरिसे समुद्र मध्य कर इसे निहाला। उस समय महादेवने मन्दारगिरि पर ही उस वृक्षको पारोपण करनेके लिये दूत भेजा। इसी बीच इन्द्र महादेवके पास पहुँच गये और यह वृक्ष टगने मांग लिया। तभीसे यह इन्द्राशक्ति क्रोडावृक्षद्वयमें नहीं बर्तमान है।

जमापत्ति प्रसादके मन्त्रीप्रनाथ मन्दार वन्दर पर

तो ही चीन विद्वान् स्थानमें प्रति विस्फोर्ण एक पारिजात वनकी सृष्टि को। वह वन ऐसा निविष्ट हो गया है, कि वहाँ चन्द्र और सूर्यकी किरण पुनर्ने नहीं पाते। यहाँ तक कि मन्दागिरि की गति भी रुक हो गई है। यहाँ गीत वा ठगका जरा भी प्रभाव नहीं है। महादेवके तेजःप्रभावे यह वन स्वयं प्रभासी हो कर मोभा पाया है। उस पारिजात-वनमें प्रमथोंके साथ महादेव तथा मेरे विद्या और किमोहा जानेका अधिकार नहीं है। यहाँ पारिजातवृक्षवत् प्रमथोंको पमितवित रत्न प्रदान करते हैं। उन सब रत्नोंका प्रमथवत् हो उपभोग करते हैं। उस पारिजात वनका गुण, सोरभ और प्रभाव इस पारिजातके कहीं बड़ा बढ़ा है। वहाँ सभी पारिजातवृक्ष सुप्ति परियष्ट कर प्रमथोंके साथ निरन्तर महादेवको उपासना करते हैं। ये सब वृक्ष पार्श्वतोके भी प्रिय हैं।

एक दिन पारिजात वनमें वृक्षोंसे दण्डित हो इस पारिजातवनमें प्रवेश किया। वह पुरातना किमोके हाथसे मरनेवाला नहीं था। उसका वन हवादारने भी दशगुना व्यादा था। इस वनमें प्रवेश करनेके बाद ही वह महादेवके हाथसे मारा गया। पतएव भी भी पापकी पारिजात वृक्ष देगे, ऐसा सुनि विज्ञान नहीं होता। ज्ञानने पुनः नारदने कहा, 'यदि इन्द्र स्वर्गमें इसे न देगे, तो मैं उनसे साथ प्रवया युद्ध करूँगा। किन्तु पाप यह विषय समझे पारिजात कश्चित्नाँ ऐसा ही करूँगा' यह कह कर नारद स्वर्गको चतुर्दिवे। वहाँ पहुँच पर नारदने पापोपान्त सब हलाल इन्द्रसे कह सुनाया। इस पर इन्द्रने कहा, 'यह पारिजात स्वर्गकी समुल्लेख सृष्टि है, मायोंकोसमें इसका कोई भी पक्ष नहीं दिया जा सकता। इसकी स्वर्गसे निकल जाने पर फिर कोई भी स्वर्गका आधार नहीं करेगा। इस पारिजातके प्रभावसे समुल्लेख लोक में रह कर स्वर्गसुलका अनुभव कर सकेंगे। यदि मैं यह पारिजात पापको दे दूँ, तो देववत् भुक्त पर चसमृत हो जायेंगे। इन सब कारणोंसे मैं पारिजात नहीं दे सकता।' यन्ममें नारदने कहा, यदि पाप इसे मध्यमें न देगे, तो ज्ञानके साथ पापका युद्ध होगा।

यस पाप पच्छो तरु सोच विचार कर उत्तर दे' और मैं
 क्षणमें जा कर कहूँ ।' इन्द्रने जवाब दिया, 'पाप क्षणमें
 यह जा कर कह देवें, कि जब मैं स्वर्गका अधिपति
 हूँ, तब साध्य रहते किसेभी मो पारिजात नहीं दे
 सकता । इसी लिये यदि क्षणमें सहना भी पड़े, तो
 मैं हटूँगा नहीं । पारिजातके स्वर्गमें चले जानि पा
 धीरे धीरे हम लोगों का भी प्रभाव जाता रहेगा, तब
 स्वर्ग और मर्त्य एक हो जायगा । स्वर्गके लिये फिर
 कोई भी यज्ञ दिका प्रयुक्त न हो' करेगा । स्वर्गकी
 गौरवशास्त्रात्मकता सेना पवना कर्त्तव्य है । यही पाप जाकर
 क्षणमें कह दें, हम पर क्षणको जैसे अभिरुचि हो,
 वैसा करें ।' अनन्तर नारद ऋषि का पाये और क्षणमें
 सब वानें कह सुनाई ।' क्षणमें अथ देखा कि भद्र बिना
 युद्ध लिये पारिजात हाथ नहीं पा सकता, तब वे युद्धकी
 तैयारी करने लगे । सर्वोंने फिर नारदसे कहा, 'पाप
 एक बार और स्वर्ग जाय' तथा इन्द्रसे कहे कि वं
 सुभने कभी भी युद्धमें जीत नहीं सकती, तब
 फिर क्यों युद्ध करके पापको मैं तो ही हरा-
 को तैयार हूँ । कनिष्ठ भाई जान कर यदि वे सुनि
 पारिजात दे देंगे तो कोई कुछ न कहेगा और सभी
 मोक्षमात्र जाता रहेगा । इतना कहने पर भी यदि
 वे अनिच्छा प्रकट करें, तो युद्धके लिए तैयार रहने कह
 दीजियेगा; मैं मोक्ष हो युद्धमात्र कहूँगा ।' नारदने
 पुनः स्वर्ग जा कर इन्द्रसे यह बात कही । पराक्रमी
 इन्द्रने देखा कि अब युद्ध अवश्यभावो है, तब सर्वोंमें
 वृहस्पतिकी बुद्धि कर कुल वृक्षान्त उनमें कह सुनाया । हम
 पर वृहस्पतिने कहा, 'उधर मैं ब्रह्मलोह गया और उधर
 तुम सुभने बिना पूरि मन्त्रमन्त्रोंका विषम प्रयत्न कर
 बैठे हुए हो, पयसा इसमें तुम्हारा दोष हो क्या दिया
 जाय, भविष्य हो समस्त घटनाका मूल है । जो कुछ
 हो, सभी तुम जहाँ तक सको, समुद्र जनादेनके साथ
 युद्ध करनेको तैयार हो जावो । मैं भी दूसरा उपाय
 देखता हूँ ।' इतना कह कर वृहस्पति चोरी-सुआगर-
 को चल दिये और वहाँ पहुँच कर कण्ठमें कुल वृक्षान्त
 कह सुनाया । कण्ठमें कहा, 'इन्द्रने अर देव-
 यामोंको प्रयुक्त पापको कामना की है, तब सुनि

भाषने हम प्रहारको घटना घटनेको हो, हममें सन्देह
 नहीं । मैंने उस दोषमात्रिके लिये उपशमप्रत पारण्य
 कर दिया पर उसमें कुछ भी पच्छा फल न निकला ।
 मैंने जिस दोषको पागडा को घो, वही पा घटा । तो
 भी घेठा करता हूँ, यदि देवपतिमूल न हुआ, तो एक
 तरफसे दोनोंको निरस्त कर सकूँगा ।' अनन्तर
 कण्ठ पदितिके साथ महादेवका स्तव करने लगे ।
 महादेव प्रसन्न हो वहाँ पहुँचे और बोले, 'तुमने जिस
 कारण मोक्ष स्तव किया है, वह मैं पच्छो तरु जानता
 हूँ । इन्द्र और उपेन्द्र ग्रीष्म ही स्वास्थ्य लाभ करेंगे ।
 किन्तु क्षण पारिजात से जाय'गे, इसमें जरूरी भी सन्देह
 नहीं । महादेवने तपःप्रदोष देवयामोंकी भार्याके
 पानिकी इच्छा की थी, सभी तपोवनके भाषने ऐसी
 घटना घटी है । जो कुछ हो, इसके लिये विन्ता करने-
 की कोई जरूरत नहीं ।' यह सुन कर जयपति
 वृहस्पतिने प्रस्थान किया ।

इधर भगवान् ओल्लख रैवतकपवत पर गिरकारके
 बजाने गये और वहाँने मात्यकिनी पपने रथ पर रिठा
 पारिजात चुरानेके लिये देवोद्यानमें सुने । वनके
 चारों ओर देवयोद्धाओंका कड़ा पहरा बँठा हुआ था ।
 क्षणमें उन सब देवरक्षकोंके समक्षमें हो पवनोना-
 क्रमसे पारिजाततटको खड़ा कर गङ्गुकी पोठ पर
 रख दिया । इस समय पारिजात मूर्त्ति धारण कर
 किशकिके निकट पहुँचा । क्षणमें उसे सात्वता दे लार
 पमय दान दिया । अनन्तर पारिजातको प्रस्थान
 करते देख ओल्लख पमरावनोंका प्रदक्षिण करने लगे ।
 बादमें पारिजाततटके इन्द्रके पास जा कर इसकी
 खबर दी । इन्द्र क्षणमें साथ युद्ध करनेको तैयार हो
 गये । दोनोंमें घमसान युद्ध होने लगा । इस भय-
 डार युद्धमें सारा संसार ध्वंसावस्थामें पहुँच गया,
 घोकड़ों कोतिकमण्डल स्वर्गभ्रष्ट हो कर भूतल पर
 गिरने लगे, जनके लपरी भाग पर प्रसन्न चमि धधक
 लगे । जगत्को रक्षाके लिये ब्रह्मने महादेव कण्ठमें
 बुद्धि कर कहा, 'तुम वधू पदितिके साथ युद्धक्षममें
 जावो और अपने दोनों सहकोंको निवारण करो ।'
 हम पर पदिति और कण्ठमें युद्धक्षममें जा कर दोनों

पुत्रोंको युद्धमें रोका । यन्त्रमें दोनोंने माता और पिताके घरवाँकी मन्दरा की । चदिनिने इन्द्र और लक्ष्मि कहा, 'तुम दोनों महीदर हो कर क्यों पयसीदरके जीवा-मन्दर हो हो ? जो कुछ हो, इन्द्र ! तुम यमो लक्ष्मि की पारिजात दे दो और लक्ष्मि ! तुम पारिजात से कर दारका जालो, यमू मल्लभाभाका चिरामिकयित पुत्ररुद्ध समग्र हो आने पर पुनः इस पारिजातको मन्दनवनमें यथास्थान पर रख देना, भूलना नहीं ।' लक्ष्मि पारिजात छत्र से कर दारका पड़ूँ, यहाँसुन कर यादवगण फूँसे न समझे । मल्लभाभा भी पारिजात का कर बहुत प्रसन्न हुईं और पुष्पादि द्वारा पुजादि करने लगे ।

(हरिवंश १२३ अध्याय ११४ अ०)

विष्णुपुराणमें पारिजातहरणका उपाख्यान ठोक इस प्रकार मणों है । इसमें लिखा है, कि लक्ष्मि मल्लभाभाके साथ इन्द्रलोक गये । वहाँ इन्द्रने इनका विमोचनकार किया । पछि लक्ष्मि और मल्लभाभा ने लक्ष्मिपरिद्वयके समय मन्दनवनमें पारिजातछत्र देखा । इनको पापापय मल्लि विमोहित हो कर मल्लभाभा ने इसे दारकापुरो से जानिके लिये लक्ष्मि विमोचन यमूरोध किया । श्रोलक्ष्मि उनके यमूरोधसे छत्रको उखाड़ लिया और मल्लभाभा पीठ पर रख कर दारकापुरोकी रवाना हुए । इस पर पारिजातके रचतांने इन्द्रसे जा कर इसकी पुर दो । इन्द्र बड़ी विगड़े और लक्ष्मि मल्लभाभाके लिये भा डटे । युद्धमें इन्द्र पराजित हुए और लक्ष्मि पारिजात से कर दारकाको पाये ।

(विष्णु० पञ्चम अ० १०-११ अ०)

इस पारिजातहरणका उपलक्ष्य करके बहुतोंने कवि संज्ञकभाषामें काव्य, नाटक या रूपककी रचना कर गये हैं ।

२ पुरावत-कुलजात नागविमोच, पुरावतकी कुलका एक जायो । ३ अरिपविमोच । ४ तन्मयाश्रयविमोच, एक तन्मयाश्रयका नाम । ५ सितोद पर्वतकी पविम-स्थित पर्वतमें । ६ कामरूपय शैलमें । ७ धर्म-माश्रयिन्विमोच । ८ पारिभट, फरहट । ९ सतिताम्र भरदाज मुनि-कुलज राजमें । विमोचकके पुत्र । १० चम्पकमुनिगोत्रय कुमारिकाभक्त नृपमें ।

११ परजाता, हरमिगार । १२ कोविदार, कचमार । पारिजातक (यं० पु०) पारिजातभूतः पारिजातः स्यात् कनू । १ देवतक, फरहट । पर्वत—मन्दार, पारिभट । २ परजाता, हरमिगार ।

पारिजातकमय (यं० लि०) पारिजात छत्रसे मयट । पारिजातछत्रप । प्यियां छोपू । पारिजातमही माना ।

पारिजातवन (यं० स्त्री०) -मिताम्र पर्वतके उपरिलिखनमें ।

पारिजातवत् (यं० लि०) पारिजात-समुप रूपय । पारिजातविगिट ।

पारिजातभरतनी (यं० स्त्री०) पारिजातवरी, मर-रुतमें । इसकी मल्लिका विमोच तन्मभाभा ने इस प्रकार लिखा है,—'प्रीं प्रो' प्रो' प्रो' प्रो' सरस्वती नमः' इमी मल्लिके इस सरस्वतीका पूजन करना होता है । प्रातःकालादि करनेके बाद 'अर्घ्यादिव्यास' और 'अर्घ्य' तथा कराङ्ग व्यास करके मूल पूजा करनी होती है । ध्यान इस प्रकार है—

"ईशानुदा हरहितहरेन्दुकुम्भावता
ब्रह्मी मन्दरिनततरुणी नीलबदेन्दुकेवा ।
विद्यापीणामृतमयपटाक्षरा पीतहरां
धैताक्षस्या मन्दमिषय प्राप्ते भारती रंजतः ॥"

(तन्मभाभा)

इस मल्लिके ध्यान करके एकादशाक्षरी मल्लिके पूजा करने होती है । एकादशाक्षरी मल्लिके यथा—'प्रीं प्रो' प्रो' प्रो' प्रो' सरस्वती नमः' । पुरस्कार करनेमें यह १२ लाघार प्रपना होता है । 'आमृतपुष्प, आनन्दपुष्प वा चम्पकपुष्प द्वारा ८ हस्तार बार होम विधेय है ।

इस सरस्वतीकी पूजा आनन्दपुष्प या चम्पकपुष्प द्वारा करने की जाती है । (तन्मभाभा)

पारिषाद्य (यं० लि०) पारिषदे विद्याश्रयते समं पारिषद-पञ्च । पारिषदपञ्च धनादि ।

पारिषाद्य (यं० लि०) पारिषाद्यमहंतीति पारिषाद्य-पञ्च । गृहोद्धारय मय्यामन कुम्भ और कटादि, घर गृहस्थीका सामान । जैसे, चापादि, धरतल, पहाड़ इत्यादि ।

पारित्या (सं० स्त्री०) परित्यागभूता परित्या स्वार्थे
प्यञ् । सोमन्तिकारित्य स्वर्णोदिरचित पट्टिका।
सिर पर चानोके ऊपर पङ्कनेका छिर्योका गहना।
इसका पर्याय बालपाश्या है।

पारितोषिक (सं० लि०) परितोषणं नखं परितोषादागतं
या परितोष ठक् । १ मोतिकर, आनन्दकर । (पु०)
२ वह धन या वस्तु जो किसी पर परितुष्ट या प्रसन्न हो
कर उसे दौ जाय, इनाम ।

पारिधेय (सं० लि०) परिधो भयः शुभादित्यात् ठक् ।
परिधिमय ।

पारिध्वजिक (सं० पु०) ध्वजपादक ।

पारिन्द्र (सं० पु०) पारोन्द्र पृषोदरादित्यात् साधुः ।
नि० ।

पारिपत्यिक (सं० पु०) परिपत्यं पत्यानं वज्रं यित्वा
व्याप्य वा तिष्ठति परिपत्यं हन्तीति वा ठक्, (परि-
पत्यप्य तिष्ठति । वा ३४१३६) १ स्त्रायो । २ डाकू,
चोर, बटपार ।

पारिपाय्य (सं० स्त्री०) परिपाय्यैव स्वार्थे प्यञ् । सुशु-
द्धता, पारपाटो ।

पारिपात्र (सं० पु०) पर्वतभेद, मत्स्यकुलाचलमेंसे एक ।
इस पारिपात्र पर्वतसे निम्ननिम्नित नदियाँ निकलती
हैं—वेदकश्रुति, वेदवती, वृत्रघ्ना, विष्णु, वेणव, सान-
न्दिनी, सदानारा, महो, पारा, चर्मण्वती, नृती, विदिगा,
वेदवती, मिमा और अचर्णी ।

(मार्ण्डेयपुराण ५०।१८-२०)

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि महर्षि और मानव
जाति इसी पर्वत पर रहती है ।

“महर्षी मानवश्चैव पारिपात्रनेवाग्निः ॥”

(विष्णुपुराण)

सहस्रं हिताके समये यह पर्वत क्षीणविभागके
महादिमें चयस्थित है । (हरिवंश १० व०)

इस पर्वतका नामान्तर पारिपात्र है । पुराणादि
प्राचीन ग्रन्थोंमें पारिपात्र, और पारिपात्र इन दोनों
नामोंका उल्लेख देवनेमें पाता है । (भागवत ८।१२।२)

इसका वर्तमान नाम पयार है । अयपुर और मार-
याहके मध्याभागमें जो पर्वतस्थ है बिहल है उसके

दक्षिण भागकी वायरमिरिमाना कहते हैं । रतिहाम-
वेत्ता टवेमोने प्रापिप्राताई (Prapiotai) जातिका
याम नर्मदानदोको उपत्यकामें स्थिर किया है । मानस
होना है, कि पारिपात्रपर्वतके दक्षिणामो को ‘प्रापि-
प्राताई’ कहल्लते हैं । इन गिरिमानाका भूभाग घोर-
परिप्राजक युएनबुगन्नाह समयमें पारिपात्र नामसे प्रसिद्ध
था । पारिपात्र देखो ।

पारिपात्रक (सं० पु०) पारिपात्र स्वार्थे कन् । पारिपात्र-
पथतः ।

पारिपात्रिक (सं० पु०) पारिपात्रपथंत ।

पारिपात्र (सं० स्त्री०) पारिपट्ट, अनुचर, परदली ।

पारिपात्रिक (सं० पु०) परिपात्रं वर्णं इति परि-
पात्रं ठक् । (परिमुक्त । वा ३४५।२८) १ नटभेद,
नटशर्क पथिनयमें एक विभेय नट जो स्थापकका
अनुचर होता है । यह भी प्रस्तावनामें सूत्रधार, नटो
आदि कहलाता है । २ पात्रमें बटस्थानका। सेव-
कादि, पात्र कड़ा रहनेवाला सेवक ।

परिपेत (सं० लि०) परिवेत्तव । परिवेत्त देनो ।

परिप्रेक्ष (सं० लि०) परि-प्रेक्ष, ततः प्रप्रेक्षित-
दण्य । १ चक्षत । २ आकुल । (स्त्री०) ३ तार्थविशेष ।
यह तीर्थ लिखोकेविषयत है । यहाँ चानेमें पथिनटीम
और पतिपात्र यज्ञका फल प्राप्त होता है ।

“यतः पारिप्रेक्ष पट्टत तीर्थे त्रेलोक्याभिभूतम् ॥”

अग्निहोत्रातिपात्राणां कलं प्रप्रेक्षि मात ॥”

(भारत शां० १।२)

(पु०) ४ जलपथो । ५ पथमं सत्यतरोय प्रकृति-
विशेष । ६ पथमं यदि यज्ञमें उपायें पाएयानभेद,
पथमं यदि यज्ञमें कहा जानेवाला एक पाएयान ।
७ गोयान, नाथ, लहाज ।

परिप्रेक्षगत (सं० लि०) नौकास्थित ।

परिप्रेक्षनेत्र (सं० स्त्री०) चक्षुः ।

परिप्रेक्षोय (सं० स्त्री०) परिप्रेक्ष पाएयानसह लाय-
होमभेद ।

परिप्रावा (सं० पु०) १ हंस । (स्त्री०) २ चक्षुः ।
३ आकुलता ।

परिवर्ह (सं० पु०) १ विवाहमें देय उपद्रोहनादि ।
२ गहकका एक पुत्र ।

पारिभट्ट (मं० पु०) परिभो भट्टमहामात्, परिभट्टमनः
मत्त दित्वाट्ठम् । १ वृषविषये, करदद । पयाय-निष
तम्, मन्दार, पारिभातक, रत्नकुम्भ, लम्बि, बद्धपुष्प,
रत्नमेव । इनका वैज्ञानिक नाम है Erythrina
Indica, मं० The Indian Coral tree, यह वृक्ष
भारत और मध्यदेशों में मध्य जगह उत्पन्न होता है । बहुत
से लोग इसे उद्यानमें लगाते हैं । इस वृक्षमें एक प्रकार
का लताविह्वलवर्ण का गीट निकलता है । रंगके काय-
में इनको लाल वा रक्त रंग होता है । वैद्य हर्षे मतमें
इसका गुण-आम, उष्ण, ग्रीव, मंद पोर लुप्तमागक
माना गया है । इसका पुष्प वितरोग पोर कर्ण वाधि-
मागक है । (भावप्रकाश)

इसमें पत्रका प्रत्येक द्वेनेमें सर्वांग वातारोग प्रशमन
होता है पोर इनका कलन चक्षुरोगमें विषये हितकर
है । (सुधतमूत्र ११ अ०)

यस्यैव न विरक्त्य इति मते रक्तत्वक्, विलस्य वा-
क्वरमागक है । पत्तिर्वाका प्रत्येक शृङ्गारजनित विदारिका-
में प्रयोग किया जाता है । ताको पत्तिर्वाका रस योजक-
त्वक्षरोगमें प्रयोज्य है । कर्णरोगमें कर्णके भीतर इस
रसकी विष्कायो देनेमें व्युप्त उपकार होता है । दन्त-
मूलमें यदि दर्द हो, तो यह रस लगा देनेमें दर्द बहुत
छुट जाता रहता है ।

कहीं कहीं इनको चरो पत्तिर्वाक्यम्नमें व्यवहृत
होते हैं । त्रिवि-पञ्चो पञ्चतमें इसको पत्तिर्वा
गपाटिकी वृक्षट्ठ प्याय ममको जाते हैं ।

इसकी मकड़ी इसकी होने पर भी बहुत मज्जत
होती है पोर उसमें इनका वक्त्र, छिन्नोने पाटि बनाने
जाते हैं ।

२ देवदारु । १ मरुतप्लव । ३ मान्दमिहोपसि
यज्जवाट्ठं एक पुत्रका नाम । ४ कुलोपध । (मं० पु०) ० उपपद्यविषय । यह रत्न अत्यन्त
निर्मल, लज्जे समान दृक्पद, हरिदम्ब, अन्यत्वा टोति-
युक्त पोर देनेमें बड़ा ही मन्मोह होता है ।
पारिमद्रक (मं० पु०) पारिभट्ट एव क्वायें कम् । १ देव-
दावकुच । २ निष्युच । ३ कुलोपध ।
पारिभाय (मं० लो०) परिभायाय योगादिनामाय हितम्,

परिभट्ट-यज् । १ कुलोपध, कुट नामको चोपधि । २
परिभू या नामिन होने का भाव ।

पारिभायिक (मं० लो०) परिभायाय पागतम् परिभाया-
ठम् । परिभाया द्वारा चर्च्योपधक पद । जिन म
मध्यिका ज्ञान परिभया द्वारा हो, उसे पारिभायिक
कहते हैं । शक्तिवादमें मदाधरने लिखा है, कि पापुनिक
महोत्तका नाम परिभाया है । इस परिभाया द्वारा
चर्च्योपधक पद पारिभायिक कहनाता है ।

पारिमाण्डव्य (मं० कौ०) परिमाण्डव्य परमाण्वोऽव-
यम् । अणु या परमाणुका परिमाण ।

पारिमुचिक (मं० लि०) परिमुचं वर्तते इति ठम्,
(परिमुदाय । पा ४ ४२८) सम्मुखवर्ती, सामने रहनेवाला

पारियात (मं० पु०) १ पर्वातविषय । पारिभट्ट देव । २
चोमपरिवातक य एनपुवङ्गमर्जित एक राग्य । चोम-

परिवातकमें लिखा है, कि इसमें चारों ओरका परिमाण
५०० वर्गमोल पोर रासधानाको परिधि प्रायः तीन मोल

है । इस देवमें एक प्रकारका धन उपजता है जो
६० दिनों को पकता है । जनवायु उष्ण है तथा यहाँ

लोग मज्जत पोर मोथो होते हैं । ये लोग विद्याभ्यास
नहीं हैं चोम विधर्मियोंके प्रति सम्मान दिवशति है ।

राजा नास्तिक वैश्य हैं पोर चयका साक्षतो तदा पुत्र-
प्रिय है । इस देवमें पाठ-मङ्गाराम ये जिनमेंवे अधि-

कांग टूट फूट गया है । चोमपरिवातकके समयों
यहाँ कोनवाल जोरगण रहते थे । उस समय यहाँ १०

देवमन्दिर थे । मथुरामें प्रायः १०० मोल दूरमें पारि-
याय अवस्थित है ।

पारियानिक (मं० पु०) पारिधानं प्रयोजनमस्य परिधान
ठम् । भाग्यवान्, योग्य वध ।

पारिरक्त (मं० पु०) पारिरक्त पारिमानमिति परि रक्त-
पुत्र, जन्मप्रादित्वाट्ठम् । तदर्थो, मापु ।

पारिम (मं० पु०) परिम पदार्थों निशानित्वाट्ठम् ।
(पा ४ ४११२) परितः घाटका चान्य ।

पारिमित्य (मं० कौ०) परिमित अयम् । परिमितता ।
पारिप्लव्य (मं० कौ०) परिप्लव्य दृष्टादित्वाट्ठम् । अयम् ।

(पा ४ ४११२) परिप्लव्यका भाव, कहे भाईके-पदमें
कोटिका विवाद ।

पारिव्राजक (सं० स्त्री०) पारिव्राजकस्य भावः सुवादि-
त्वदण्य । पारिव्राजकका भावः सन्ध्याय ।

पारिव्राज्य (सं० स्त्री०) १ पारिव्राजकका कर्म या भाव ।
२ भ्रमत्यत्रविशेषः ।

पारिग (सं० पु०) भ्रमत्यत्रविशेषः, पारिसपोषण,
पासपोषण । पर्याय—कसोम, साविचुत, कमण्डलु,
गदभाण्ड, कन्दरान, कपोतन, सुपायक । गुण—दुर्जर,
स्निग्धस्निग्ध, शुक्रपोर स्नेहावर्धक । इसके फलका
गुण—पान, मूल, मधुर, कपाय पोर रुखादु ।

पारिगोक्ष (सं० पु०) पिष्टकविशेषः, एक प्रकारका
पूसा या मालपूषा ।

पारिगोक्ष्य (सं० स्त्री०) परिगोषण्यञ् । परिगोष
पचतिटोम ।

पारिपत्क (सं० पु०) परिपदं तत्पतिपादकं ग्रन्थ-
मधोति वेत्ति का उक्त्यादित्वात् ठक् । १ परिपद-
ग्रन्थाधरेता । २ परिपदग्रन्थवेत्ता ।

पारिपद (सं० पु०) परिपदि साधुः वा परिपदि तिष्ठति
यः, परिपद-ण्य । १ सभास्य, सभामं बैठनेवाला, सभ्य
पंच । पर्याय—सभ्य, सभास्यार, सभासत्, परिपदक,
पर्यहन, पारिपद्य, पार्यद । २ चातुषादिवर्गः । (स्त्री०)
३ परिपदग्रन्थवेत्ता ।

पारिपदक (सं० स्त्री०) परिपदा-कृतम् कुलासादित्वात्
कुम् । (वा ४।१।१८) परिपदकचूर्क कृत । पचवे
किया हुआ ।

पारिपद्य (सं० पु०) परिपदं समवेति-ण्य (परिपदो ण्यः)
वा ४।४।४४) पारिपद, सभ्य ।

पारिसपोषण (हि० पु०) मिंडोको जातिका एक पेड़ ।
इसमें कठामके डोडके पातारका फल लगता है जो
खानेमें खाया जाता है । इसमें मिंडोके समान ही
सुन्दर पौध दसोंके बड़े बड़े फूल लगते हैं । इसकी
लकड़ मोठी पोर कानका रंग मोठा कसोसा होता है ।
वेद्यतमें इसके फल मुद्रवान, लामिन्न, शुक्रवर्धक पोर
कफकारक कई गये हैं ।

पारिसोर् (सं० स्त्री०) परिसोरं सोरं वज्रद्विधा भयम्
परिसोर ण्य । (गम्भीरात्पठ्यः । वा ४।१।५८) हल-
वजनदार भय, जो हलको खोले न सपना को
कहे, तिरोका पावन ।

परिहृण्य (सं० स्त्री०) परिहृणु प्रतिमुखादित्वात् जर ।
वा ४।१।५८) हनुका उपरिभय ।

परिहारिक (सं० स्त्री०) परिहारे साधुः परिहार-टञ् ।

परिहारकर्ता, परिहार करनेवाला ।

परिहायं (सं० पु०) परिहृयते इति परि-हृ-ल्यत्
ततः प्रज्ञादित्वात्पठ्यः । १ वन्य, हाथका कड़ा । (स्त्री०) २
परिहारत्व ।

परिहास्य (सं० स्त्री०) परिहासण्यञ् । १ परिहासका
भाव । २ परिहास द्वारा कृत ।

पारी (सं० स्त्री०) पारयत्यनयेति पृ-णिव-घञ्, ततो
होय् । १ पूर । २ जलसमूह । ३ पारो । ४
हस्तिपादरज्जु । ५ पात्रो । ६ पारग । ७ पान-
पात्र । ८ दोहनपात्र ।

पारो (हि० स्त्री०) १ पारो, बीसरो । बारी देशो । २
शुद्ध आदिका जमाया हुआ बड़ा टोका ।

पारीक्षित (सं० पु०) परोक्षितोऽपत्यं इत्यर्थे ण्य । १

परीक्षितका अपत्य, जनमेजय । २ परीक्षितराज ।

पारीण (सं० स्त्री०) पारं गामोति पार-ण्य । पार-
गमनकारी, पारगामी ।

पारोषाह्य (सं० स्त्री०) पृक्षोपकरणं, पृक्षनामयो ।

पारोम् (सं० पु०) पारि पशुपत्य इन्द्रः । १ सिंह ।
२ राजगज सर्प ।

पारोरण्य (सं० पु०) पारो जलपूर रण्य-यमः । १ जलठ,
कहुपा । २ दण्ड । ३ पटगाक ।

पारीग (सं० पु०) पारिसपोषणका पेड़ ।

पाय (सं० पु०) पिवति रमानिति पा-य (पाहुनछाद
पिवतेन । ण्य ४।१०१) १ पानि । २ पयः ।

पायच्छेप (सं० स्त्री०) मामभेदः ।

पायच्छेपि (सं० पु०) पयःपापेदः ।

पादक—जवमानके दक्षिणमें पचमियन एक प्राचीन ग्राम ।
देवायलो पोर ब्रह्मचर्यमें इस ग्रामका नियम है ।

पादक (सं० पु०) १ पुत्रविशेषः । (स्त्री०) २ कठर ।

पादक्य (सं० स्त्री०) पदवय भावः पदवयञ् । १
प्रिय वाका भावक, वाक्यको प्रियता । इसका पर्याय
पतिवाद है । पादक्य चतुर्विध वाक्यवाचकमें एक है ।

“परायणमनसो वैदुःस्त्रेवादि सर्वतः ।

असम्भवप्रकारेण बाह्यं ह्यवयवविषयम् ॥^{१०} :

(निमित्त)

पक्षवाक्यप्रयोग, चन्द्रत, पेशुय और समस्यम
प्रमाण से चार प्रकारके पाप वाच्य हैं। २ इन्द्रा
यन। ३ अगुह। (पु०) ४ तृहस्वनि।

पारिगाह (स० च०) गङ्गायाः पारं 'पारं मध्ये वह्यं
वा' इत्यर्थेमायाः । गङ्गादे दूरे किनारे ।

पारैरक (मं० पु०) यथाशब्देः पारमोर्त्तं गच्छतीति ईर-
वृज्। एवञ्च, एक प्रकारको सप्तवारया कटार।

पारिवत (मं० पु०-११००) १ जलप्रचमभेद, एक प्रसारका
 समकद । इससे दो भेद हैं, महापारिवत और क्षय-
 पारिवत । इसका गुण—मधुर, क्षमिणाग्न, वातहर,
 वल्लभारक, दृढ्या, प्वर और दाहनाग्न, हृद्य, मूर्च्छा,
 भ्रम, श्म और शीघ्रनाग्न, ग्रिध, रुचिकर और योग्य-
 यकै है । महापारिवतका गुण—वम, और पुष्टिकारक,
 मूर्च्छा और ज्वरनाग्न ।

२ दीपाक्षरमय शुक्ल दीपाक्षरमं] होनेवालो एक प्रकारकी पञ्जर ।

पारसिधु (स० पृष्ठः) सिन्धोः पारं ततोऽयशोभावः ।
सिन्धुके दृष्टरे किमारे ।

पारोक्ष (मं० द्वि०) परोक्ष-पक्षः । परोक्ष सत्यवर्धीयः ।

पारोक्ष्य (सं० वि०) परोक्ष-व्यञ्ज । अक्षुब्धे अतीव ।

पारोक्षा—बम्बई प्रदेश के पन्नागंत प्वान्देग जिसका एक
नगर। यह बर्षा २० ५१ २० ७० बोर दिशा ०५
१४ १० ५०, ध्रुवियावे २२ ३० ५० पूर्व पोर मनावर मृगन-
गे २२ ३० ५० पश्चिममे बर्षादिग है। जिनमे त्वा ग्यारह
हजारके लगभग है। पारोक्षा पर्वते एक मण्डपाम या,
पेले हरिसदागिब दासोदरने हमे नगरमे परिचय
दिया। यहाँ जो दुर्ग है वह लष्का बनाया हुआ
है। गदरके समय यहाँके पश्चिमतिने पंगरेजीके दिवह
पन्नाधारण किया था, इस कारण यह नगर लम्बे लोत
निया गया बोर दुर्ग तोड़ छोड़ छापा गया। यहाँ
गो, हई पोर मण्डका विद्यमान पाविष्य होता है। यहाँ
डाक्टर बोर एक है।

पारोक्ष्यं (मं० बन्नी०) प्रवाद ।

पार्थ (भ० पु०) बड़ा बगीचा, छपरान ।

પાઠક-નવપાઠક દેસો ।

पागड़—एक दुर्ग । यह विसंगामधे १५ मील पश्चिम
सहायवतके यन्त्रोपरि सप्तद्वारधे २००० फुट ऊँचे पर
स्थित है । दुर्गपर चढ़नेके लिये पहाड़ पर कीड़ी
बना दो गई है । दुर्ग चौर प्रवेष्टार परभी शोभा-
वत्यामें पड़ा है । दुर्गके मध्य भवानीका मन्दिर
चौर दो कमाल वर्तमान है । १८८० ई०में यह दुर्ग
मियाजोके अधीन था । १८५८ ई०में यह बाकाजो पेशवाके
भतीजे सदाशिवरायके हाथ ली जा गया । १८४४ ई०में
ब्रिटिशोंने इस दुर्ग पर पारमेश्वर खरनको बैठा कर दो,
पर उसका उद्देश्य सिद्ध न हुआ ।

पाघंठ (सं० वृत्तो०) पादे घटते इति अथ, ततः एवो-
दरादिस्वात् साधुः । पांथ, भस्म, राख ।

पञ्चम्य (सं० त्रि०) पञ्चम्य-यम् । १ पञ्चम्यसम्बन्धोऽयम् ।
(बन्धो०) २ सप्तविंशोऽयम् ।

पार्टी (पं० स्त्री०) १ मण्डली, दल । २ भोज, दावत ।

पाणि (म० वि०) प्रब० सोद० शिवादित्वादन. । १ प्रब०
सम्यग्भी । २ पाणिमे पागत ।

पापेरे—१ स्वयं प्रदेसके सहस्रदमगर जिनामगत एक
तालुक। यह पचा० १८° ५०' से १८° २१' ७०" तथा देश०
७४° ११' से ७४° ४४' पूरके मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण
७२७ वर्गमील घोर जंगलसे घिरा सघन जंगलके कारण
है। यह स्थान पंचमत्तल घोर पर्वतसे परिपूर्ण है।
यहां बहुत सी पक्षिचक्राएं हैं जिनमेंसे सबसे लंबोका-
नाम जानकर है। यह समुद्रतलसे प्रायः २८०० फुट ऊंचो
है। तालुकके मध्य को कर बहुत-सी नदियां बहती हैं।
यहां को प्रधान उपज बाजरा, गन्ना घोर सरद है। पक्का
झाड़के मध्य पकड़ो, रूखो कपड़ा घोर कच्चा प्रधान है।

३ सत्र ताम्रकका एक गहर । यह सचा १८" लं
 चोर देगा ०३" ३१" पू० के मध्य चक्रमदनपरवे । २
 मीन देखिये यमिन चोर मारोना शृंगमने १३ मीन
 यमिमने धवलित है । लमण'व्या पाव हजारे से लग्न है ।
 यहाँ चनेक सत्रमथ'का माथ है । इनमें विचित्र
 धर्य विद्याच चोर प्रसारक है । १८०४-०३ ई० में इन को
 वे माथ लपको'का विवाह रचलित हुआ था, लेकिन

पुल्लिखके वल्लभ वह बढ़ने नहीं पाया। यहाँ प्रति रवि-
वारको षाट लगती है।

पार्थर नगरके समीप दो सुन्दर नदियोंके सहस्रमयन
पर सहस्रमेखर वा त्रिभुजमेखरका मन्दिर अवस्थित है।
मन्दिरका अधिकांश टूट फूट गया है, केवल सामनेका
प्रवेशद्वार पूर्ववत् बना है। नगरसे कुछ दूर नागनाथ
महादेवका प्राचीन मन्दिर है। यहाँ जो श्लोदित लिपि
है, वह १०१५ शकमें लिखी गई है। नगरद्वारके सहि-
भांगमें घनिक स्तम्भ हैं। कहते हैं, कि ये सब स्तम्भ
एक राजसके मृत्युपलङ्गमें बनाये गये थे।

१ बम्बईके सूरत जिलेका एक पर्वत। यह पश्चा-
२०१४७० बीर देगा ०२१५००, गुनसारसे ४ मील
दक्षिण-पूर्व बीर बम्बईसे १५० मील उत्तरेमें अवस्थित
है। यह समुद्रपृष्ठसे ५०० फुट ऊँचा है।

पार्थ (सं० पु०) १ पृथिवीपति। पृथाया पथ्यं पुमान्,
मिवादिवादन। २ पृथापुत्र, पशुन। ३ पशुन-
पुत्र।

पार्थिव (सं० स्त्री०) १ पृथक् होनेका भाव, भेद। २
वियोग, लुटाई।

पार्थपुर (सं० स्त्री०) नगरभेद।

पार्थम्य (सं० त्रि०) पार्थ स्वरूपे मयट्। पार्थ स्वरूप।

पार्थव (सं० स्त्री०) पृथोर्भावः पृट्-पथ्। १ पृथुत्वा,
विगमता, स्थूलता, मोटाई। (त्रि०) २ पृथु-
राजसम्बन्धी।

पार्थव्यवस (सं० पु०) पृथुव्यवसायका व्यवस्था।

पार्थसारथि (सं० पु०) श्रेष्ठव्यथ।

पार्थसारथिमिश्र—एक विख्यात सोमोसक, यथापति
मिश्रके पुत्र। पाप ग्यायत्रमात्रा नामक तन्त्रशास्त्रिकको
टीका, तन्त्रग्रन्थ वा शास्त्रोपेक्षा नामक त्रैमिनिपुत्रकी
टीका, ग्यायत्रमात्रा नामक सोमोसक्रीकवाणिकको
टीका आदि ग्रन्थ बना कर विख्यात हो गये हैं।

पार्थिव (सं० स्त्री०) पृथिव्या विकारा पृथिव्या भूयमिति
वा पञ्च। १ तगरपुत्र। (पु०) पृथिव्या ईश्वरः

(उल्लेखः।। वा शास्त्रोपेक्षा) इत्यत्र। २ पृथिवीपति,
राजा। ३ पत्न्यविशेषः पार्थिववत्सरसे समो देवमिति

पृथिवी शस्यमालिनी होती है। ४ मङ्गलपद। ५
महोका वरतन। ६ पार्थिवलिङ्ग, महोका मिवलिङ्ग
जिसे पूजनका बड़ा फल माना जाता है। (त्रि०)
७ पृथिवीसम्बन्धी। ८ पृथ्वी सत्यम्, महो पादिका
बना हुआ, जैसे पार्थिव शरीर। ९ राजाके योग्य,
राजसी।

पार्थिवज (सं० स्त्री०) पशुनत्वत्, पशुन पेड़का
क्षिप्तका।

पार्थिवता (सं० स्त्री०) पार्थिवस्य भावः तन् ततो-
टाप्। पार्थिवका भाव, पार्थिवत्व।

पार्थिवा (सं० स्त्री०) सोराष्ट्रमृत्तिका।

पार्थिवी (सं० स्त्री०) पृथिव्याः भवा (विश्ववितीति। पा
४।१।८१) इत्यस्य पार्थिवीकृत्या पञ्च, ततो ङोप्। १
सीता। २ सम्राट्, पार्वती।

पार्थिव्य (सं० पु०) पृथिवीके नाम।

पार्थ (सं० पु०) पृथोपत्यं वा यत्, पृथिवीगोत्रव
पृथमेद।

पार्थर (सं० पु०) यम।

पार्थ (सं० पु०) पार्थे भवः पृथक्। रुद्रभेद।

पार्थालिक (सं० त्रि०) पार्थालि देव स्थायक सा पृथग्व्यस्य
मन्त्रादित्वादन। १ सम्पूर्ण। (पु०) २ मृगभेद।

पार्थालिकोट—मध्यप्रदेशके बन्ना राज्यके उत्तर-पश्चिम
सीमास्तरत्तों एक जमींदारी। इसके पशोप मात
ग्राम है। भूपरिमाण ५०० वर्गमील है। इसका
प्रधान पाम पार्थालिकोट है जो पश्चात् १८४०७० बीर
देगा ८०० ४३५०० के मध्य अवस्थित है।

पार्थालिकोट (सं० स्त्री०) वह समा जो देश या राज्यके
शासनके नियम नियम बनावे। इस शब्दका प्रयोग विभि-
न्नतः पार्थाली राज्यको शासन-व्यवस्था निर्धारित
करनेवाली महामात्राके नियम होता है। इसके सदस्य
जनताके मित्र मित्र वर्गी द्वारा चुने जाते हैं। पार्थाली-
शासनाध्यके भीतर कनाडा आदि स्वराज्यपात देशोंको
सेको समझौतेके नियम भी यह शब्द पाता है।

पार्थव (सं० पु०) पृथिवी पृथिव्योगः इत्यत्र। १ मृग-
विशेष। पृथिवी कियते यत् इत्यत्र। २ सम्राट्पादि
पृथगामाग्यमें कर्त्तव्यथाह, वह बाद जो किमो
पृथक् किया जाय।

विषादके बाद राजने मर्दानी मुंहमांगा दान दे कर विदा दिया ।

इस प्रकार कुछ दिन बीत गये । एक दिन पार्श्व-
नाथने थोड़े पर बैठ कर जय काग्यपुगेको धीरे दृष्टि
दाकी तब उन्होंने देखा कि कामोपुत्रासी लीग झुलके
झुलत नागा प्रकारके धूसीवरण से ढाई रङ्गे हैं ।
पार्श्वनाथके वचनोक्ति पुरीके पात्रमिह मरुतस्य धीरे
मनुष्यके आनेका कारण पूछने पर उनमेंसे एकने जवाब
दिया, 'ममो ! इस पुरा में कठ नामक एक वाति पञ्चानि
द्वारा तपस्या कर रहे हैं । उनको सेवा करनेके लिये
हो ये गये वहाँ जाते हैं ।' यह सुन कर पार्श्वनाथ
बड़े आश्चर्यस्थित हुए और मनुष्यके साथ वहाँ पहुँच
कर उन्होंने देखा कि मनुष्य एक वाति पञ्चानि द्वारा
तपस्या कर रहा है । कुछ काम बाद ज्ञानी पार्श्वनाथ
वस्त्रिहृत्तमं एक महासर्पको दृष्टमान देख दयाकुल
हृदयने कहने लगे, "यहा कैसा पञ्चान ! दयाहीन
धर्म कभी भी धर्म नहीं हो सकता" इत्यादि । धर्म
धीरे दयासम्यग्योय अनिहो उपदेष्टा दे कर भी वहाँसे
चल दिये । एक दिन पार्श्वनाथ अपने ओकरोंके साथ
उद्यानवाटिकाको देखने गये । वहाँ उद्यानशालक उद्यान-
के रमणीय कलपुष्पादिगत प्राकृतिक सभी मोन्द्यं पार्श्व-
नाथको दिखाने लगा । उद्यानके बीचमें एक प्रासाद
था, पार्श्वनाथ उद्यानको गोमा देवते देवते वहाँ था
पहुँचे । प्रासादको द्विपो एक दोवारमें तोड़कर
नेमिको चरितरागि विदित देख कर, उन्होंने अपने मनमें
विचिन्तकी आशय दिया और वे मन को मन कहने लगे,
'महा ! इस महापुरुष नेमिका संसार-वैराग्य जगत्में
पतुलतोय है । इस महान पवस्थाने हो ये
संसारको चरितरागि समझ कर सभी विषयोंसे विमुक्त
हुए थे और उन्होंने निमज्जमायके कठोर प्रतीका पव-
स्थान दिया था ।' पार्श्वनाथ मन को मन नेमिको इस
प्रकार वैराग्यको कदा मोक्ष हो रहे है, कि वस्त्रोक्त-
ने मारतनादि देवगण या कर उन्हें नमस्कार रूख
कहने लगे, 'ममो ! इस जगत्का मोक्षनाल हैदम
करनेमें पात्रके विषा और द्विपोमें सामर्थ्य नहीं ।
अतएव तिस्रोहीके उपकारके निमित्त पात्र तोषको

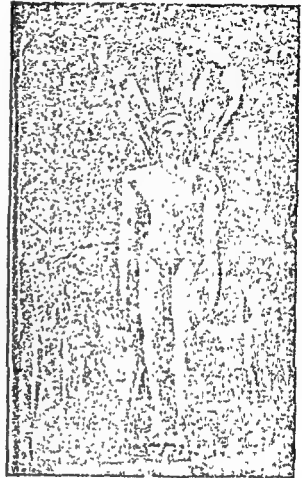
प्रवर्तना कीजिए ।' इतना कह कर देवगण लगेको
चल दिये । इधर पार्श्वनाथने भी सभी विषयनोंका परि-
रयाग करके संसारमें था कर देहगण जन्ममरणादि
नामाविष कष्टमोग परते हैं, उनका किम उपायने पञ्चान-
मोक्ष दूर हो, यह सोचते सोचते राति मातौत की । पन-
मर मूर्खोदय होने पर वे प्रातःकालादि कर माता
पिताके पास गये ।

वे मातापिताके निकट अपने दोषाका विषय पूछ
कर दरिद्रोंको प्रभूत परिमाणमें धन वितरण करने लगे ।
उनके धनवर्षणसे जगत्को दारिद्र्यामय दानानि प्र-
मित हुई । यहाँ तक कि मयोद्विष तदन्तर्गत वधाने
एविवी भी माता पुनर्जित हो कर उनके दानका अभि-
मन्दन करने लगे । पार्श्वनाथके दोषानुलोक्षमें देव
देवको राजाधानि या कर योगदान किया । तरह तरहके
नृत्य, गीत, वाद्य धीरे जय शब्दके कामोन्मयो गुञ्ज
उठी । इस समय पार्श्वनाथो एक गिरिका में बैठ कर
संयम करनेके लिये एक रमणीय आश्रममें गये और
विद्यादानवस्तुषु पंचमासको लक्षा एकादशो तिथि
सुष्ठित हो दोषित हुए । इसके बाद दूसरे दिन कोव-
कठ नामक स्थानमें धन्यके गृहमें उपस्थित हुए । पार्श्व-
नाथको अपने घरमें पाये देख धन्य कृतिन समावे
धीरे आनन्दके साथ उन्होंने सामोमोका पारबन्ध
येव किया । पार्श्वनाथने लडा बैठ कर पारबन्ध किया
था, धन्यने वहाँ उनका एक पादपीठ संस्थापन कर
दिया । वीक्षे पार्श्वनाथ विविध धार्मिक और नगर्भि
विषय करने लगे । वे धीरे धीरे धरित्रीको तरह सब
सह्यो उठे, मरुत्तालोम वस्त्रिको तरह निमग्न हो
गये, वस्त्रिके समान, नेत्रको, वायुको तरह परातपतपति
धीरे पात्रागको तरह निरालस्य हो उठे । पार्श्वनाथ
परपवित्रासने इस धरित्रीको वस्त्रि कहने लगे । वे
कुल नामक सरमोके जिहारे प्रतिमाकथमें रहने लगे ।
इस प्रकार पार्श्वनाथो वस्त्रिहृत्तमो, विषादुरी,
कीदाम्य धीरे राजपुर धादि पनेत्र हीने
अमय कर वहाँ पतितका उद्यान धीरे वहाँ प्रतिमा
कथमें परपटान करने लगे । राजपुरमें उन्होंने एक सुनि-
मत प्राकृतिक उद्यान किया । वहाँका भोज कुलूटेनर

नामने प्रसिद्ध हुआ। पोछे पार्श्वनाथ उष पूर्वाह्न कठके साथ कर्मकरणमें सुप्त हुए। पनकराये कामोधात्मके किमो पाश्र्वमर्म पदुं च कर तपस्या करने लगे। वहाँ धातकी हल्ले गोचरे उनके चौरासो दिन ब्रत गये। चैत्रमासकी कृष्णचतुर्थी तिथि हो जब चन्द्रमा विग्राहानलत्रमें गये, तब पार्श्वनाथने पूर्वाह्न समयमें यत्नस्तवभय वैद्यमज्ञान प्राप्त किया। ज्ञाननाभके बाट वे षडैतमय हो कर त्रैकालिक सभी विषय ज्ञान गये और सभीके दर्शन करने लगे। क्रमशः उनका भौतिक माहात्म्य प्रकाशित होत लगा। एक दिन राजा चन्द्रसेन उद्यान पालके सुखमें पुत्रकी वीभल-कथा सुन कर बड़े ही प्रसन्न हुए तथा वागादिमो भी प्रभावतीके भानन्दका भी पारावार न रहा। पनकरा राजा चन्द्रसेन हाथो पोछे नाना-प्रकारके राजोपकरण ले कर वामादेवोके साथ उनकी वन्दना करने गये और विविध दाव करने लगे। प्रभु पार्श्वनाथने भी पिता की वदुत-की धर्मकथाएं कहते कहते प्रमत्ताधीन धर्मक धर्म-प्रस्ताव किये थे।

तदनन्तर पार्श्वनाथो विष्णुके कल्याणको कामनासे पुनः दिग दियान्तरमें र्थटन करने लगे। एक दिन भ्रमण करने करते वे पुनः दिगमें पदुं च। कुछ दिन बाद वहाँने वे तास्त्रलोकको चले दिये। वहाँ सागरदत्त नामक एक युवक आरक हो कर पार्श्वनाथके निश्चिन्त उपस्थित हुए। पार्श्वनाथकी धर्मका विषय पूछ कर वे लक्ष्मि औषधमर्म टोलित हुए। पोछे शिव, सुन्दर, सोम्य और जय नामक और भी धर्मजिज्ञासु पार्श्वनाथके गिण्य बने। पार्श्वनाथ वहाँसे क्रमशः आगुप्तो पदुं च और वहाँ लक्ष्मि विमो धनाढ्य यशच पण्डित वसुदत्त नामक युवकको विविध धर्मिक उपदेश दिये। इस प्रकार पार्श्वनाथ तमाम विचरण करने लगे। बाद-नाथके कोषमज्ञान नाम करनिक दिनसे हो वसुदत्तक दावक, भाधु, शपि, माधो, और कोषमी बाद उनके परगत हुए थे। प्रभु पार्श्वनाथ क्रमशः अपनी निर्विकल्प निकट समस्त कर भक्तिशिर पर चले गये। इनके पागमन पर शौराज नामा कृष्ण कर्ममें पूर्ण हो गया। किशोरगण नाम करने लगे। सुन्दरके भाग सुरगण वहाँ पदुं च गये। प्रभु पार्श्वनाथने याचक

मासकी शरणाष्टमोके दिन यथा मल्लके योगमें योगावनमनपूर्वक स्तोत्र देखा परित्याग कर मुख्य-लोकेमें प्रस्थान किया। (पार्श्वनाथ)



कौशलीके पार्श्वनाथ ।

अकस्मात्सिद्धि के मतानुसार पार्श्वनाथ विष्णुमेंको औरत और ब्रह्मोके गर्भमें उत्पन्न हुए थे।

“नील श्रीपार्श्वनाथो विष्णुर्नृणात्मने ।

ब्रह्मर्गमे जगन्नाथोऽवतरति-ति मुञ्चते ॥”

(पार्श्वनाथचरित १.१.१२)

दिगम्बर जैन-शास्त्रोके अनुसार दोपारनाथ नामो-नी नीलचरित इस प्रकार है—

अंतिम तोषाद्वर नीलपानीरण्यामोके त्रियांबकामने २५० साल पदने दोपारनाथ जन्म पागपसो-मन्त्रोने राजा विश्वसेनकी रानी वामादेवोकी उदरसे हुआ था। जिस समय वह भगवतः देवर्षि पार्श्वनाथने माताके गर्भमें पाये उसी रातके अंतिम पदनामें माता

पामा देवी की मोनक बग्न दिवस दे पडे । सबने पहिने
 चलेनि पामा नानुय सुन्दर विमान बाइ हायां देखि । फिर
 दुपार ता हयन, जे मरगोहित कीमरी, कमलावन पर
 घाम करतो मज्जा, दोपुगमाणाए, सुपमगहन, चन्द्रम-
 न्दम, जसमें सोपा करतो दुई दो मरुनिया, जसमें भर
 दो सुपमगहन, जसमें मोमापमान मरीवर, मरुतोने
 मन्द माला दुपा ममुद्र, मुन्द्र भिषामन, स्वर्गिय विमान,
 नानुयता भयन, देहापमान बर्योको रागि, शिष्टम
 जसता पतिने मोनक रक्क देनि । दुन मरुत एकमे
 चलेनि चलेनि सुपम प्रेम कला हयन देना । इसको
 बाद जगती मिट्टा भट्ट हो गई । ये मादिलोको मन्द
 पोर पदमो नीति को गाद-यवनमें जाग ठठो । नित्य
 क्रियापति कर चुकने पर हस्तिका फल पुष्प के लिए ये
 पतिको पाम गई । अथपिज्ञानधारी राजा विजयनेने
 हम हस्तप्रदमनका फल विस्तारपूर्वक बताया पोर कहा
 कि दुष्टदे गमंगे परमपुत्र्य गोपद्वार भगवान्का जन्म
 पीगा । हमने वाट गमं दिन पर दिन घुमने लगा ।
 स्वर्गको देवाङ्गनाए तथा हविक वर्तन पर चलेनाको
 कुमारिकाए, जो गमं भगवान्को अथगोष्ठी होनिवे
 पर माग पहिने हो माताको सेवामें तत्पर हो गई थीं,
 पोर भी भक्तिपूर्ण सेवा करने लगीं । जिन दिन पार्श्व
 भगवान् माता वामाकी गमंमें पावे वह ये ज्ञान् लज्ज-
 दिव्या थी । तथैमहीने पोपल्लव एकादगीकी भग-
 वान्का जन्म हुआ । उस समय तोनों को ६ चामन्दने
 पोतरीन हो गये । स्वर्गमें देवीने धर्मका पारावार
 न रखा, गरकनामियोंकी भां कुट्ट डेर तक सुवर्णाति
 मिल गई । स्वर्गवासी देखकने ठाठ वाठने या कर
 भगवान्का जन्मकल्याण मनाया । पारावतीमें वा कर
 दन्दने मयाका श्रुतिपाठहमें भंजा । माताको माया-
 मिट्टमें सुना कर पोर लतिन पुत्र लकने पाम रख कर
 मया भगवान्को ले पाई । ममदा डेर मुनेक वर्तन पर
 पार्श्वनाथकी भं गये पोर वहाँ वहीने विधिपूर्वक एक
 हजार पाउ लललीमें अभिषेक किया । हमको बाद
 माताकी मदारी राजा विजयनेको दरबारमें या कर
 दन्दने सब हुनाय सुना कर पार्श्व प्रकट किया । मन्-
 माय पोर पोर चलेनि ली: सब लकी पात लकी लय

दुई सब वहीमें पार्श्व धारण किये । तिमोरानका
 पाने पर गिताने पावने विचार करनेकी पाम माका,
 परत प्रमु विरहमे, मंसर ही दना दो विपन्न मोनेही
 नीरमना जानने ये, हमने विनाइ लाले विरे
 विन्दुम राणी भूने ।

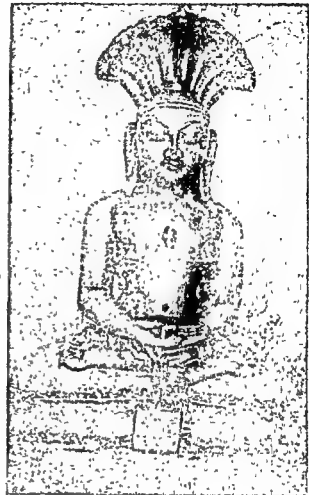


पार्श्वनाथ नरनाथन पार्श्वनाथ ।

एक दिन की बात है कि—सम समय एक रात्री
 की रात जागे पर मवार हो गता विमान पर
 ये । मागने एक जटाधारी तपस्वी को प्रार्थना लपके
 देवा । भगवान्ने हम मवार जागे हो नावदताको
 देग कर जटाधारीने कहा—जादे । मरत रमा
 हम दिन्दुन गमं लकने, जोकोने जिनमें लकने
 लक पाम लकने, जसमें मोमापमान मरीवर

भी बोला—तब तो इतना कठिन तब कर रहे हैं और इस लड़के को हमने जाया को कट छोटा दाख रखा है ? भगवान् ने विवाद करना पसन्द न कर जनते हुए लड़के को और उर कहा—देखो ! हमने ये दो माय किम प्रकार जन कर प्राण छोड़ रहे हैं । जटाधारी भगवान् ने वचन को मया ज्ञान मन की भन चहुत दिभता । मरते समय भगवान् की दर्शनने सारी मायिनी धरती और पद्मावती हुए । जटाधारी तो माय पहिले जन्मका भगवान् का गच्छ था, वह भायुते पचने मरा और कायकनका प्रभावने भूमकेतु नामका देव हुआ । भगवान् विराज हो स्वर्ग होलित हुए । उस समय ब्रह्मलोकको देवी ने वेराग्य हो मुष्टि और स्वर्गवासी देवी ने लखन मनाया था । दो उपरासते बाद भगवान् का प्रथम आहार सेठ धनदत्त की घर हुआ और पक्ष-चर्य-छटि हुई । जिस दिन भगवान् ने होला लो वह पोषकण एकादमी था । एक दिन भगवान् जलनकी बीध ध्यानस्थ थे, ऊपरसे भूतबूँ जटाधारी कमठकी जोय भूमकेतु का ज्ञान हुआ । भगवान् ने प्रभावने विमानकी गति रुक गई । पर देख भूमकेतु ने कथका ठिकाना न रहा । उसने पुत्रो पर आ भगवान् पर उपनम करना प्रारम्भ किया । तोण्ड हुआ चढ़ने लगी, पानी सूजनधार घरमने लगा, बिगनी चमकने लगी, भूत वेलात नाचने लगे और कांकर पत्थर घरमने लगे । यह सब होते हुए भी प्रभु पादव्या ध्यान विचलित न हुआ । वे निर्मल भावने सब सहने लगे । इतनेमें अिन भाव मायिनी के जोय धापोन्द्र पद्मावती हुए वे ये माहाय्य करने पावे । कन्होंने भगवान् को अपने गिर पर सधर उठा लिया और ऊपर अपने कणका ऊँचे ताल दिया जिसमें भगवान् की नीचे ऊपर किसी तरफसे बाधा न हो सके । यह देख भूमकेतु उर कर भाग गया । पार्श्वनाथको मूर्ति पर मर्का-मा जो पक्ष चहुँत रहता है वह इसी बातका द्योतक है । उपनमके गट हो जाने पर पादवप्रभु की कवचलक्षण उचप हुआ और हँसोने का घर ममवसाय भासा हो रचना की । यह दिन चैत्र-लगा चतुर्थी था । रविके बाद प्रभुने नागा देवी में विहार किया । प्रायुकी समाप्ति समाप पाने पर व

मन्दिगवर पर्वत पर या कर विराजमान हुए और वही मुक्ति प्राप्त हो । यह दिन चायण शुक्लमसमी था । इस समय देवी ने या कर अन्तिम संस्कार किया ।
(पं० मृगराज-इन पायेनरित)



शारदादेवी की पार्श्वनाथ ।

कल्पसुवर्ण ज्ञाना जाता है, कि पार्श्वनाथने गो सध-
वी उन्नये ७७० ई० मन्की पहने निर्वाणताम किया ।
विशेष विवरण जैन कथमें देखे ।

पार्श्वपरिवर्त्तन (पं० बने०) पार्श्व पार्श्व या परिवर्त्तन । १ कटिदास, कर्णिकापिमुक्ति । २ समवभोट । भाद्रपामकी सुक्ला एकादमीके दिन भगवान् विष्णुने पार्श्व-परिवर्त्तन करके दाहिनी दाधट की घो, रंगीने इस दिन वेष्णुयन्त्रीम उल्लभ मनाते है । जो वेष्णुय यह लक्ष्य करते हैं, उन के मागे पाव जड़ने गट हो जाते हैं ।

यो बोवा—मैं तो इतना कठिन तप कर रहा हूँ और इस लड़के को इससे जायाँ को कष्ट होना पड़ा रहा है । भगवान्‌ने विशाद करना पसन्द न कर जलते हुए लकड़ को चीर कर कसा-देखो ! इसमें ये दो माग किस प्रकार जन कर प्राण छोड़ रहे हैं । जटाधारी भगवान्‌के वचन-को सच्चा जान सन हो भग्न प्रवृत्त दिग्भा । मरते समय भगवान्‌के दर्शनमें साँर माँविको धरणाद्र और पद्मावतो पुत्र । जटार रोस, जोय पड़िने जन्मका भगवान्‌का गजु था, यह प्रायुक्त चरने मरा और कायकनेगके प्रभावसे भूमके तु नामका देव हुआ । भगवान्‌ विरक्त हो हृष्य होकित हुए । उस समय मन्त्रालोकको देवो'ने वैराग्यको पुष्टि और स्वर्गवासो देवो'ने उत्सव मनाया था । दो उपवासने बाद भगवान्‌का प्रथम आहार सेठ धनदत्त ने घर हुआ और पञ्चार्थ-हटि हुई । जिस दिन भगवान्‌ने दीक्षा ली वह पौषकण्य एकादमी था । एक दिन भगवान्‌ जङ्गलको बीच ध्यानस्थ थे, ऊपरसे भूतदूत जटाधरो कमठको जोय भूमकेतु'रा जाना हुआ । भगवान्‌के प्रभावने विमानको गति रुक गई । यह देख भूमकेतु ने क्रोधका ठिकाना न रहा । उसने पूज्यो पर था भगवान्‌ पर उपनग करना प्रारम्भ किया । तोछा हवा बहने लगी, पानी सूखनधार बरगने लगा, विजसो चमकने लगी, सूत विलान नाचने लगी और कपूर पत्थर चरभने लगी । यह सब बोते हुए भी प्रभु पादरक्षा धराग विचलिन न हुआ । ये निर्ममल भावने क्षम सहने लगे । इतनेमें जिन भाव माँविको के जाय धाणोन्द्र पद्मावतो भूए छि ये माहाय्य करने चाहे । कृष्णि भगवान्‌को पदने गिर पर पंथर चटा लिया और ऊपर पदने कणका छत्र तान दिया जिसने भगवान्‌को नीचे ऊपर किसी तरफसे बाधा न हो सक । यह देख भूमकेतु डर कर भाग गया । पार्श्वनाथको मूर्ति पर स्पर्शका-मा जो पाय पद्धित रहता है वह इसी बातका द्योतक है । उपसर्गके गट हो जाने पर पारवप्रभु की कवचजाल तपस हुआ और देशो'ने था पर समयसाथ भमा को रचना को । यह दिन चैत्र-क्षण पतुर्गे था । 'उरके बाद प्रभुने, जाना देशो'ने विहार किया । पायुकी समाप्ति समाप्त पाने पर व

ममदे'गवर पर्वत पर था कर विराजमान हुए और वक्षमें मुक्ति प्राप्त की । यह दिन चायन शुक्लपक्षमें था । इन समय देशो'ने था कर चामिम संस्कार किया ।
(पं० भूपरदास-इत पारिवर्तित)



बारिदासे पानी पार्श्वनाथ ।

कल्पसूत्रमें जाना जाता है, कि पार्श्वनाथने सो सध-वी उम्मेने ७७७ ई० मन्‌के रहने निर्वाण नाम किया ।

विशेष विवरण पद ४२में देखा ।

पार्श्वपरिवर्तन (पं० कने०) पार्श्व पार्श्वनाथ परिवर्तन । १ कटिदान, कर्णिकापट्टिस्थि । २ उत्सवमेद । भाद्रपामको शुक्ल एकादमीके दिन भगवान्‌ विष्णुने पार्श्वपरिवर्तन करके टाहिने कायट ली थी, इसीमें इस दिन वैष्णव लोग उन्मय मनाते हैं । जो वैष्णव यह उत्सव करते हैं, उनके समो पाप जड़ने नट हो जाते हैं ।

पार्श्वोपान्त (मं० वि०) पार्श्व या निःकटमे पाया दृष्टा ।
 पार्श्वोपान्त (मं० वि०) निःकटमे उपस्थित, दक्षिण ।
 पार्श्वोपान्त (मं० स्त्री०) पार्श्वस्थ स्थिति । शरीरपार्श्व-
 स्थित स्थिति, पक्षोको दृष्टो । इसका पर्याय पर्याय है ।
 पार्श्विक (मं० वि०) पार्श्व-ठक् । १ पार्श्वज्ञान । २
 पार्श्वसम्बन्धो । (पु०) ३ वह जो दन्त्यादि कण्ठ कमानि-
 को किन्तु रक्तता है । ४ मङ्गल । ५ घोषावाज,
 ठग । ६ एक विख्यात भोर प्राचीन लोहावाय ।
 पार्श्वकादमी (मं० स्त्री०) पार्श्वसम्बन्धितो हरेः पार्श्व-
 पर्यन्तं नजन्ता एकादमी । भद्रपक्षा-एकादमी ।
 भद्रपक्षमासो शरणा-एकादमीयो हरिका पार्श्वपरि-
 वर्तन होता है, इसीसे इसको पार्श्वकादमी कहते हैं ।
 पार्श्वोदरमिथ (मं० पु०) पार्श्वोदरस्थ ताभ्यां पोषाति
 भोक्षारमिति-मी क । कर्कट ।
 पार्श्व (मं० पु०) स्पर्श भोर मन्थ ।
 पार्श्विक (मं० पु०) प्रवर-कटिभिद ।
 पार्श्व (मं० वि०) दृष्टस्य विराट्दृष्टस्येदं षण् । १
 विराट् दृष्टमन्थो । (पु०) २ विराटके पुत्र दृष्टयुम्न ।
 पार्श्वी (मं० स्त्री०) श्लेषो ।
 पार्श्व (मं० पु०) परिवद, मोडो ।
 पार्श्व (मं० पु०) परिवद प्रयोदशदित्वात् साधुः वा
 पार्श्व साधुः पार्श्वो-ण । १ पार्श्वद । योक्तव्यके
 पार्श्वदत्ता विवरण साद्विप्राणके १म अध्यायमे वर्णित
 है । २ मन्त्रो । ३ दर्शक । ४ स्थाननामा व्यक्ति ।
 ५ प्रातिपदिक । ६ पक्षभिद ।
 पार्श्वदंश (मं० वि०) दृष्टदंशे भवः कक्षादित्वाटञ् ।
 दृष्टदंश वा विष्टुका षण्भय ।
 पार्श्वदक (मं० पु०) पार्श्वदक ।
 पार्श्वदत्ता (मं० स्त्री०) पार्श्वदस्य भावः, तल, स्त्रियां
 टाप् । पार्श्वद ।
 पार्श्वदृष्ट (मं० पु०) दृष्टदृष्टस्य बाहोर्दृष्टमभेदस्य वेदं
 षण् । १ बाहुसम्बन्धो । २ दृष्टमभेदसम्बन्धो । ३
 मोक्षप्रवर्तक ऋषिभिद ।
 पार्श्वोदय (मं० वि०) द्दिशो व्याकरणका सूत्रानु-
 मोदित ।
 पार्श्व (मं० पु०) पार्श्व साधुः पार्श्वदस्य । १ पार्श्वद ।
 २ देवमुत्तर ।

पार्श्वदण (मं० पु०) वेदोक्त व्यक्तभिद ।
 पार्श्विका (मं० स्त्री०) पार्श्विको षण्त्व स्त्री ।
 पार्श्वेय (मं० वि०) दृष्टि वा पञ्चरके मध्यवर्ती ।
 पार्श्विक (मं० वि०) दृष्टे पङ्क्ति भवः, ठञ् । दृष्ट्य
 नमक पङ्क्तिमन्थो ।
 पार्श्व (मं० पु० स्त्री०) दृष्टते भूम्य दिकमनेनेति
 दृष्ट (दृष्टि पृथि पार्श्विभूमे । ३ ४५२) इति नि-
 प्रत्येन निपातनात् साधु । १ मुद्रका अधोभाव, एङो ।
 २ मन्थदृष्ट । ३ दृष्ट । ४ जिगोषा । (स्त्री०) ५ उन्नत
 स्त्री । ६ कुम्तो ।
 पार्श्वोत्तम (मं० पु०) विश्वदेवभिद ।
 पार्श्वोत्तरण (मं० स्त्री०) पार्श्वः पश्चमन् । पार्श्विका
 यक्ष, मन्थ दृष्टादिका पश्चम ।
 पार्श्वोत्तराह (मं० पु०) पार्श्वो मन्थदृष्टे दृष्टातीति
 षण्-षण् । १ पश्चदृष्टयाहो, दृष्टस्थित गन्तु । २ द्वादश
 मन्त्राके राजवक्तके मन्थ दृष्टयाहो दृष्ट ।
 पार्श्वोत्तर (मं० स्त्री०) पार्श्वोत्तराति वे-क । वह वेना
 जो पोछितो भोर रसा करतो है ।
 पार्श्वोत्तराह (मं० वि०) पार्श्वो वहति षण्-षण् ।
 दृष्टस्य कार्यनिर्वाहक, जो पोछे रह कर कार्य सम्पन्न
 करता है ।
 पार्श्वोत्तरि (मं० वि०) पार्श्वोत्तराहस्य निष्ठादित्वात्
 षण् । पार्श्वोत्तर ।
 पार्श्वोत्तर (मं० पु०) १ मुनिदा, बंधो दृष्ट गठो । २ कर्म
 रयाना करनिके लिखे बंधा दृष्टा मुनिदा या गठो ।
 पार्श्व (मं० पु०) पालपतोति पालि षण् । १ पतदृष्ट,
 लोकदान, योगदान । २ पालक, पालनकर्ता । ३
 चित्तकलत्र, चेतिका पैदा । ४ दक्षानका एक प्रसिद्ध
 राजवंश जिसने साङ्गे तोन घो वधं तत्र यज्ञ भोर सम-
 भि राध्य किया । पालाशवंश देखो ।
 पाल (हिं० पु०) १ फलको गरीयो पङ्क्ति कर पकाने-
 के लिये पत्ते बिछा कर रगुनीको विधि । २ पलो-
 को पकानेके लिये झूठा या पत्ते पादि बिछा कर
 बनाया दृष्टा स्थान । ३ तम्बू, गामियाना, चंदोरा ।
 ४ गाङ्गे या पालको खादि टाकनेवा कपड़ा, पोछार । ५
 वह मन्थ चोड़ा कपड़ा जिसे नायके मधुसूदने लगा कर

जबसे यह राज्य छटिग-गवर्मेण्डके हाथ आया है, तबसे इसकी अवधि होती जा रही है। यहाँका राजस्व लगभग २०४००० रु० है। पाल्लुद्रव्यके सधर नोन, चानो, रॉय और गन्ध प्रधान है।

२ उक्त तालुकका एक महर। यह भचा० १८० ३६ रु० और देगा० ८३४८० पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या इस महरके करीब है। यहाँ मध-मस्तिष्ठेट-को कचरर, डाकघर और चंगरेजो स्कूल है।

पाल भोक्क—मन्द्राजप्रदेशके गोदावरी निलान्तगत नरमपुर तालुकका एक महर। यह भचा० १६० ३१ रु० और देगा० ८१० ४४ पू० नरमपुर महरसे ६ सोन उभरें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १०८८८ है। उच्च नौगै-ने १०वीं गताष्टीमें सबसे पहले यहाँ एक व्यापिककी बोडो खी नो जो १७८३ ई०में चंगरेजोंके हाथ आ गई। यहाँके समाधिसेत्रमें १६६२ ई०में उच्च नौगैके निमित्त प्रस्तरफलक पाये जाते हैं।

पालगिरि—ठंडागमे २६ सोन पश्चिममें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। यहाँ दो खोदिन निधि हैं। यहाँके विष्णुमन्दिरकी खोदित निधिमें विजयनगरके राजा भरसिंहरायके एक दानका विषय लिखा है।

पालघाट—१ मद्रासमें मलवार जिलेका एक तपविभाग इसमें पालघाट भी प्रोन्नानो नामके दो तालुक लगते हैं।

२ उक्त तपविभागका एक तालुक। यह भचा० १०० २५ रु० १०० ५८ रु० तथा देगा० ७६० २५ रु० ७६० ५१ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ३८००८८ है।

३ उक्त तालुकका एक महर। यह भचा० १०० ४६ रु० और देगा० ७६० ३२ पू०, मद्रासके नरमपुरसे ३१५ सोन पूर्वमें अवस्थित है। यहाँकी जनसंख्या प्रायः ४४१०० है जिसमें हिन्दूकी संख्या उभरा है। मद्राज विगविद्यालयके अधीन यहाँ रिटोरिया नामका एक कालिज है जो १८६६ ई०में स्थापित हुआ है। यह स्थान विन्नाडुडु और पुनं औरने मलवारपर्वतका दार-स्वरूप है। पहले यहाँ एक दुर्ग था जो अभी छोड़ दिया गया है। यहाँ स्थानियन्टो, डाकघर और तारघर है।

पालघाटचेरो—पालघाटके निरुटवर्ती एक दुर्ग। १७८३ ई०में ठोपू सुनतानके साथ गुडतानमें इस दुर्गमें दुर्ग पर स्थान कुनठन माहवने परिवार जमाया। यह दुर्ग मलवार, करमज्जल, पानीवाट, कोनोन और त्रिवाडुडु राज्यके प्रवेगपथ पर अवस्थित है।

पालघ (मं० पु०) पालं चिखं इतीति उच्यते, १। पलाक, खुमो। २ जनपथ।

पालह (मं० पु०) पाल रक्षति सम्पदादित्यात् शिष्ट, निम चक्षते इति चक्ष-वञ्। १ शब्दो, पालका भाग। २ खाजपलो। ३ एक रत्न जो काला, बरा और लाल होता है।

पालहो (मं० प्यो०) पालह गोरादित्यात् डीप्। १ पालकशाक। २ कुन्दक नामका मन्थद्रव्य।

पालडा (मं० प्यो०) पालह स्थाप्यं पञ्ज। १ माक भेट, पालकशाक। पशय—पल्लवा, मधुरा, सुरगवत्ता, सुपत्रा, स्त्रियवत्ता, पालाण, मास्यरत्ता। गुण—हृषत् कटु, मधुर, पथ्य, शीतल, रक्तपित्तनाशक, पाकक, घाम-तर्पण।

पालडा (मं० प्यो०) पालह दियं पत्रादित्यात् टाप। १ कुन्दक। २ पालहवार, पालकी।

पालट (हिं० प्यो०) १ पट्टेवाजी की एक चोट का नाम। २ पाला हुआ मटका।

पालहा (हिं० पु०) पल्लव देवी।

पालतो (मं० प्यो०) जोड़ या सोमनके तटने।

पालगु (हिं० पि०) पाला हुआ, पोता हुआ।

पालशो (हिं० प्यो०) पश-मन, कमलासन, एक प्रकारका बैठना। इसमें दोनों जंघे दोनों पार फेंका कर जमीन पर रखते हैं और घुटनों परमें दोनों टांगें मोड़ कर बायाँ पैर दाहिने जंघे पर और दाहिने बाएँ पर टिकाते हैं।

पालदेव—बुद्धेयवर्णकी एक पक्षि-जाति। इसका भ्रूवरेमाण २८ लमजेन है। १८०२ ई०में यह स्थान दामिन्नर पक्षिगर्भ प्रशान दरशावर्धनो पक्षि किया गया था। किन्तु इस पक्षि-जाति के पक्षि जगत्साथ। इसीने १८०३ ई०में रायबरादुरकी उपाधि ग्रहण की है। यहाँकी जनसंख्या लगभग ४५८८ है।

०१.५१' से ०२.४५' पू० के मध्य अवस्थित है। इस राज्य में १ शहर और ४४१ ग्राम मिलते हैं। राज्य का दक्षिण और पूर्व भाग जङ्गल से परिपूर्ण है। समस्त ग्राम विच्छिन्न भाव में अवस्थित और बहुत छोटे छोटे हैं। यहाँ की वर्षातमना पर सबेरा घाटि चरते हैं। उत्तर-पश्चिम भाग समतल और बालुका मय है। दक्षिण और पूर्व भाग की जमीन उर्वरा है जिससे वहाँ काफी पैसाज उत्पन्न होता है। चाय तथा माधारणतः शुष्क और लवण है। खरका प्रादुर्भाव प्रत्यक्ष पश्चिम है और वृष्टिपात २६ इंच है। उत्पन्न द्रव्यों में महुँ, धन और ईश प्रधान है। पालनपुर के राजा चक्रपाल वंशोद्भूत हैं। मन्नाट, हुमायूँ के शासनकाल में इनके पूर्व पूर्वोक्ति विहार पर अधिकार किया था। मन्नाट, चक्रवर के समय गजनी खाने चक्रपाली की पराजित कर दोबारा को उपाधि पाई और पेशवे लाडो के शासनकर्ता बनाये गये। १६८२ ई० में उनके वंशधरने मन्नाट, और इजिप्त में पालनपुर घाटि पनेज स्थान जमीन में प्राप्त किये। किन्तु मारवाड़ के राठौरों का प्रताप सदा न कर सकने के कारण उन लोगों ने पालनपुर में आश्रय प्राप्त किया। १८१२ ई० में जब फिरोज खाँ चपनो सिन्धु सेना में मारे गये, तब उनके पुत्र फते खाने पञ्चरत्न में सहायता माँगी। तदनुसार पञ्चरत्न जनरल हलमिसकी उनको सहायता में भेजा। सहायता पा कर फतेखाँ १८१९ ई० में राजसिंहासन पर बैठे। पालनपुर के राजा वृष्टिगवर्धन की ओर से ११ सलामी तोपें पाते हैं। राज्य की आय कुल ४४५०००० रु० की है जिनमें से ४१०५०० रु० बड़ोटा के गायकवाड़ की कर में देने पड़ते हैं। राज्य की सैन्य सख्या २८४ पञ्चारी की और ६८० पञ्चारी है।

२ पालनपुर राज्य का शहर और राजधानी। यह पचा० २४.८' उ० और देगा० ०२.२८' पू०, दिशा से १८ मील पूर्व में अवस्थित है। जनसंख्या करीब २१०८२ है। हिन्दू की संख्या सबसे अधिक है। नगर स्वास्थ्यकर नहीं है और खरका अधिक प्रकीर्ण देखा जाता है। यहाँ चिकित्सालय, डाकघर, तारघर, विद्यालय और साधारण पाठशाला हैं।

पालना (हि० कि०) १ पालन करना, भोजन मनु घाटि दे कर जीवनरक्षा करना। २ पशु पक्षी घाटि हो रक्षना। ३ पशु कुल पाचरण द्वारा किमी बात की रक्षा या निर्वाह करना, न टालना। (पु०) ४ रक्षितों के सहारे टंगा हुआ एक प्रकार का गहरा खुटोना या बिन्दुरा। इस पर बर्षों की सुला कर खरने उधर छुनाते हैं।

पालनोका (सं० श्लो०) दावमाना स्त्रा।

पालनोय (सं० त्रि०) पाल-पनोयः। पालनोयः।

पालनकोटा—मन्नाजपदेश के सिन्धु बेसी जिले का एक नगर और कनकगोका मंदर। यह पचा० ८०.४४' उ० और देगा० ००.४५' पू० के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १८५४५ है जिनमें से हिन्दू की संख्या ज्यादा है। पहले यहाँ एक दुर्ग था जो अभी भग्नावस्थामें पड़ा है। यहाँ का जनबाहु स्वास्थ्यकर होने के कारण साहब कम चारो यहाँ आ कर रहते हैं। यहाँ १८६६ ई० में म्युनिस्पलिटि स्थापित हुई है। राजस्व तोष हजार रुपये से अधिक है।

पालनौर—१ मन्नाजपदेश के पालनौर उत्तर पक्षाट जिले का एक तालुकवा उपविभाग। भूपरिमाण ४४० वर्ग मील और प्राय ५८४१० रु० की है। यह तालुक समुद्र सतह से २०० फुट उच्च सहिचुर पश्चिम जामें अवस्थित है। टोपू सुलतान के राज्य विभाग के समय वृष्टिगवर्धन महुँ की यह तालुक मिला था।

२ उक्त तालुक का मंदर। यह पचा० १३.११' उ० और देगा० ०८.४०' १०' पू०, चित्तूर से २६ मील पश्चिम मागनी गिरिनद के ऊपरी भाग में अवस्थित है। यहाँ का जनबाहु पत्यस्त स्वास्थ्यकर है। मोसमिरी पौधा वान में परिपत होने के पहले मन्नाज में निहिलो के पंगरेज कम चारो बाबुसेवन से लिये यहाँ पाते थे। यह एक वाणिज्य प्रधान स्थान है।

पालनपुर—पञ्चायत के पालनौर का शहर जिले का एक नगर। यह पचा० ११.४८' से १२.२८' उ० तथा देगा० ०६.३३' से ०७.२' पू० के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २४४९ वर्ग मील है। १८६८ ई० में गवर्नर ने मन्नाजपदेश के गाय वाणिज्य को लयित करने के लिये यहाँ वाणिज्य मंडली की स्थापना की, लेकिन पालन में मन्ना-

- ८। महीपाल १०१५ ई०। ८६५ ई०।
 १०। नयपाल १०४० ॥ विग्रहपाल २५ ८८० ॥।
 ११। विग्रहपाल (२५) महीपाल १०१५ ॥।
 १२। नयपाल १०४० ॥।
 १३। विग्रहपाल २५ १०५५ ॥।
 १४। महेन्द्रपाल १०८५ ॥।
 १५। रामपाल १११० ॥।
 १६। मदनपाल ११२५ ॥।
 १७। गोविन्दपाल ११६१ ॥।
 १८। इन्द्रचूष १२०० ॥।

राजेन्द्रनाथके मतमें २५ विग्रहपालके बाद दो एक राजाओंने राज्य किया। छोटे पालराजलक्ष्मी भेन-राजाओंकी छाया लगे। प्रगततत्त्ववित् कर्मिहमके मतमें गोपाल सगंधके राजा होने पर भी धर्मपाल ही यथायथं पारिन्द्र पर अधिकार कर समस्त गौड़के अधीन रह गए थे। प्रथमतः ८२० ई०में धर्मपालका राज्यशासिकात्त्व स्वीकार करने पर भी फिर अन्तमें उन्होंने कहा है, कि धर्मपाल यथायथं ८२१ ई०को राजनिर्वाहसमय पर बैठे थे। इसी प्रकार उन्होंने मदनपालका अभिषेककाल १११६ ई०में स्थिर किया है। उनके मतमें सुमन्महा-पाशमन पर ही पालराज्यो जीव राजा इन्द्रचूष राज्य छोड़ बैठे थे।

पुराविद् होनेसे साहच्य उपरोक्त किसी भी मतको समर्थन नहीं देता। उनका कहना है, कि पालराजाओंने गहरनाड़ राजपूतवंशमें जन्म लिया था। जिस वंशमें कछोजके जीव राजा जयचन्द्र उत्पन्न हुए थे, उसी वंशमें पालराजाओंका जन्म हुआ है। इस सम्बन्धमें उन्होंने गौड़ और कछोजके राजाओंकी एक तालिका दी है और उसके साथ साथ पालराजाओंका कालनिर्णय भी किया है। उक्त तालिका इस प्रकार है—

१ गोपाल	८०६ ई०
२ धर्मपाल	वाकपाल ८२६ ॥
१ देवपाल (नयपाल)	जयपाल ८५६ ॥

४ विग्रहपाल (वा गुरुपाल)	राज्यपाल ८८१ ई०
नारायण (वह)	५ महीपाल (पारायसी) १००६ ई०

(आशुते परवर्ती पालराजगण) चन्द्रदेव (कछोज)
 अन्तमें उन्होंने लिखा है, कि १०वीं और ११वीं शताब्दी में गौड़ पारायसी तथा पटना ये तीनों स्थान बौद्ध पाल-राजाओंके अधिकारक्षेत्र थे। किन्तु नारायणपालके समय वहमें ब्राह्मणशासन तथा विहार और पयोध्यामें बौद्धशासन जारी था। महीपालके बाद विहार तद्ग्रीय बौद्धराजाओंके शासनार्थसे रहने पर भी महीपालके पुत्र चन्द्रदेवके समयमें कान्यकुब्ज ब्राह्मणके शासनार्थसे हुआ था। उन्होंने यह भी लिखा है, कि उक्त नारायणपालके समयमें ही बङ्ग में गङ्गाके अधीन हुआ।

उपरोक्त प्रगततत्त्वविद्ओंके बाद पालराजाओंका प्रगत इतिहास और चाविर्भावकालका निर्णय करनेमें किसी ने सतना यत्न नहीं किया। केवल अष्टपाल किलहोर्न साहबने महीपाल देवके तान्त्रशासनके पाठोद्धारकालमें पालराजाओंकी इस प्रकार संशोधित तालिका प्रकाशित की है—

१, गोपाल	
२, धर्मपाल	वाकपाल
१, देवपाल	१, जयपाल
	४, विग्रहपाल
	५, नारायणपाल
	६, राजपाल
	७, गोपाल २५
	८, विग्रहपाल २५
	९, महीपाल
	१०, नयपाल
	११, विग्रहपाल २५

ही जाय, यही प्रथा है। मेरे राज्यमें वरनकुहर नामक एक सौदर्याङ्गुल आये हुए हैं। आपके कोई भी सभा-पण्डित या हर उनके साथ शासन-प्राम कर सकते हैं। इस सभा-प्राममें जिनके पक्षकी चार होंगी, वे बिना किसी आपत्तिके अपना राज्य छोड़ देंगे। इस प्रकार धर्मके आज्ञान पर पारमराजके पक्षमें ब्ययमहि आकर विचार-सभा-प्राममें प्रवृत्त हुए। वाक्पतिने कोमलसे ब्ययमहि को जोत दूँ। धर्म अपना राज्य कसौजाधिपतिने हाथ समर्पण करनेको बाध्य हुए। किन्तु पारमराजने ब्ययमहिने पादशेर्षे धर्मराजको गोष्ठ-राज्य प्रत्यर्पण किया। ८८० विक्रम सम्वत् (८३४ ई०) को मगधतोषमें पारमराजको मृत्यु हुई।

जैन हरिवंशमें लिखा है, कि ७५५ मकाब्दको उत्तर देशमें इन्द्रायुध नामक एक राजा राज्य करते थे।

जैनग्रन्थमें जो समय इन्द्रायुधका राज्यकाल निर्णित हुआ है, प्रभावकचरितादि नामा जैनग्रन्थोंसे ठीक उसी समयमें पारमराजका आधिपत्यकाल होता है। इन्द्रायुध को नारायणपात्रके ताम्रगासनमें इन्द्रराज नामसे वर्णित हुए हैं। धर्मपाल एक कहर बोध और कसौजाधिति पारमराज जैनधर्माभिरागो थे।

ब्ययमहिप्रचरित, प्रभावकचरित और प्रबन्ध कोषमें और भी लिखा है, कि पारमराजके पुत्र दन्तुकका पाटलीपुत्र नगरमें निवास हुआ था। वे पिछले पो और नितान्त पश्चार्मिक थे। उनके आधिपत्यकालमें उनके छोटे लड़के भोजदेवने अपने ननिहाल पाटलीपुत्रमें पाण्ड्य लिया था। पारमराजकी ताम्रगासनमें लिखा है, कि धर्मपालने पिता चक्रायुधको पुनः काव्यकुल राज्य दान किया था, इस पर पञ्चालवासिगण बड़े प्रसन्न हुए थे। शास्त्र भण्डारकरने स्वीकार किया है, कि प्रायः ७२३ ई०में कसौजराज योगेश्वरका देहान्त हुआ था।

इधर जैनग्रन्थानुसार ८३४ ई०में उनके लड़के पारमराजकी मृत्यु हुई। इस हिसाबसे पारमराजका राज्यकाल प्रायः ८३ वर्ष होता है, पर यह सम्भवतः प्रतीत नहीं होता। जैन हरिवंशके मतमें इन्द्रायुध ७८३ ई०को उत्तरदेशमें राज्य करते थे। इसमें स्वीकार करना पड़ेगा, कि उनके पक्षमें पारमराज राजा

हूए थे और उनके पिताने प्रायस्त्रय किया था। इस प्रकार ७७५ ई०में पारमराजका राज्यारोहणकाल अनुमान किया जा सकता है। जैनग्रन्थमें उनके पुत्र दन्तुकको पिछले पिता और पश्चार्मिकताका प्रसङ्ग रहनेके कारण अधिक संभव है, कि यही दन्तुक पित्राज्य कोन कर इन्द्रायुध या इन्द्रगजके नामसे पसिद्ध थे। यही धर्मपालने इस दुर्गुप्त इन्द्रराजको परास्त कर उनके पिता चक्रायुध (पारमराज)की किरसे कसौजराज्यमें प्रतिष्ठित किया। संभावतः यह घटना ७८३ ई०के कुछ बाद सम्भव ७८७ ई०में घटी होगी। दन्तुकने राज्यकालमें उनके लड़के भोजदेवने जो पाटलीपुत्रमें मातृकासनमें पाण्ड्य प्रवृत्त किया था, इस प्रसङ्गमें जाना जाता है, कि उस समय भी पाटलीपुत्रमें पाल राजधानी थी।

उपर्युक्त विवरणसे यही जाना जा सकता है, कि धर्मपाल देव प्रायः ७८३ ई०में पाटलीपुत्रके मिश्रासन पर पसिद्ध हुए और ७८७ ई०के बाद उन्होंने पौण्ड्र, चर्ननादि पर अधिकार जमाया।

आनिमपुरसे पश्चिमत ताम्रगासनमें सनका ३२ राज्याङ्ग निर्दिष्ट है। इस हिसाबमें उन्होंने ३२ वर्षोंसे अधिक समय प्रायः ४० वर्ष तक राज्यशासन किया था, यह स्वीकार किया जा सकता है।

दोपहर ओझानके इतिहासलेखक मोटदेवीय पण्डितके मतसे राजा धर्मपालने विक्रमगिना नामक विहार स्थापित किया और १०८ चौद्वार्याके भरण-पोषणके लिये बहुत-सी जमीन दान की। यहां चार मन्दिरोंके प्रायः २०० भिक्षु वाकरप, दर्शन और वनिकर्मको शिक्षा पाते थे।

धर्मपाल स्वयं बोध होने पर भी ब्राह्मणोंका यदित पारर करते थे। बालेन्द्रकुलपक्षोंमें लिखा है, कि उन्होंने भट्टनारायणके पुत्र पादिगोई शोभाको गङ्गाके किनारे धर्मसार नामक स्थान दान किया था। धर्मपालने ताम्रगासनमें भी जाना जाता है, कि महाबल-स्वाधिति नारायण वर्माके पत्नीरूपसे पौण्ड्र वर्दनभूति-के पश्चात् ४ ग्राम नारायणपुत्रकने माट देशके ब्राह्मणोंको प्रदान किये थे।

हे । इसमें प्रमुखान किया जाता है कि देवपालके राजपत्नी काननमें ही राज्यपाल काननवासमें पतित हुए । जो कुछ हो, वदामकी गहदुम्भान्निविमें देवपालके बाद हो गोह्राधिप गुरपालका नाम पाया जाता है, किन्तु शिलालिपिमें गुरपाल किनके पुत्र थे, यह स्पष्ट नहीं लिखा है । देवपालके बाद ही इनका प्रसङ्ग रहनेके कारण किसी किसीने इनके देवपालका पुत्र प्रथवा १म विग्रहपालका नामान्तर माना है । पहला प्रमुखान बहुत कुछ सम्भव है, किन्तु दूसरे प्रमुखानकी कोई साधकता नहीं । इस विचारमें हम लोग गुरपालकी देवपालके वंशधर वा उत्तराधिकारी मानते हैं ।

गहदुम्भान्निविमें लिखा है, कि गुरपाल मानी साक्षात् इन्द्र पौर प्रजाप्रिय थे । उनके उपदेष्टा वा मन्त्री का नाम वेदारमित्र था । वेदारमित्रके ऊपर निर्भर करके गोहुराजने उल्लग, हून, द्राविड पौर गुजरात्रका दर्पपूर्ण किया था । इन्होंने कबसे कब तक राज्य किया, ठोक ठोक मान्य नहीं ।

१म विग्रहपाल ।

इसके बाद हम लोग जयपालके पुत्र १म विग्रहपाल की गोहुराजपत्नी सिंहासन पर अभिषिक्त देखते हैं । नारायणपालके ताम्रगासनमें लिखा है, कि उन्होंने प्रजातपस्वकी सेवा जन्मग्रहण किया था । ऐह्यराजकन्या इनकी स्त्री थी जिसको गर्भमें सुप्रसिद्ध नारायणपालदेवका जन्म हुआ ।

विश्वामे ७ मोन दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित घोपरावामे बन्वासनविहार है जिसके भ्रंसावशेषमें उक्त विग्रहपालकी चनेक रोप्यमुद्राएं पाविष्कृत हुई हैं । वहाँ ही ही पावर्षका विषय है, कि उनकी मुद्रा परच्यके चम्पुपालक शासनीय वा शकराश्रमगकी मुद्राके सदृश है । मुद्राके लपर दाहिनी घगलमें चम्पट राजमुण्ड है और उसके माघ 'यो' एवं नीचे 'विग्रह' ये मध शब्द मिले हुए हैं । मुद्राकी पीठ पर शासनीयकी चम्पिपूजाकी वेदी और दोनों पार्श्वमें होता तथा चण्ड्यकी मूर्ति है । बीचमें 'म' चर राट्टा हुआ है जो सम्भवतः विग्रहपालका राज्य मगधनिर्देशक है ।

जिनके पौर पररावर प्रसन्नविदीने ८१० ई०में

विग्रहपालका राज्यारोहणकान स्थिर किया है । किन्तु युक्तप्रदेशके सोयहोकी ग्राममें पाविष्कृत शिलालिपिमें जाना जाता है, कि ८१५ म०व०में (८०८ ई०में) 'विग्रहपालद्रुम्भ' वा विग्रहपालका मुद्रा विमोच प्रचलित थी । इस दिमावने विग्रहपाल हमसे भी पहले राज्या करने थे, इसमें संन्देह नहीं ।



विग्रहपालकी मुद्रा ।

नारायणपालदेव ।

१म विग्रहपालके बाद उनके लड़के नारायणपालने पावनसिंहासन चलावत किया । भागलपुरमें प्राप्त उनके ताम्रगासनमें जाना जाता है, कि वे एक परमधार्मिक, परम दयालु, प्रजाप्रिय और महावीर थे । तत्परवर्त्ती अन्य पावनराज्योंके ताम्रगासनमें लिखा है, कि उन्होंने अपने चरित्र द्वारा श्यामाशुमार प्राप्त धनासन चलावत किया है । उनके प्रधान मन्त्री पूर्वार्द्ध केदारमित्रके पुत्र गुरवमित्र थे । गुरवमित्रने ही बदालमें गहदुम्भान्निविहित किया था ।

राजराज ।

नारायणपालके बाद राज्यपाल सिंहासन पर बैठे । मदनपालके ताम्रगासनमें लिखा है, कि उन्होंने समुद्रके मूलदेशकी तरफ पति प्रभोरगर्भयुक्ताजनाय पौर कुलपर्वतके समान प्रकीर्तविशिष्ट देवानयकी प्रतिष्ठा की और इसीसे इनका नाम तमाम फेले गया था । उन्होंने राष्ट्रकूटराज तुद्रकी कन्या भाग्यदेवीका पाविषहण किया । भाग्यदेवीके गर्भमें २५ गोपालदेव उत्पन्न हुए । राज्यपालने कब तक राज्य किया, ठोक ठोक मान्य नहीं ।

२५ गोपालदेव ।

राज्यपालके बाद उनके लड़के २५ गोपाल राज्यधिकारी हुए । महापाल और मदनपालके ताम्रगासनमें मान्य होता है, कि गोपालने बहुत दिन तक राज्यभोग किया था ।

पान राजाओंके अधिकारी ताम्रगासनमें धर्मपालके एक कनिष्ठ भाई गुणवान् और धीरवान् वाक्पाव-देव था तथा धर्मपालने ताम्रगासनमें उनको पुत्र युवराज विभुवनपालका उत्तराधिकारी है। किन्तु वाक्पाव और विभुवनपालने किसी समय राज्य किया था वा नहीं, उनका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

देवपाल देव ।

धर्मपालके बाद देवपालको हम लोग पालराजामन पर अभिषिक्त देखते हैं। देवपालके सुहृदसे प्राप्त (१३ सप्तम् पक्षित) ताम्रगासनमें लिखा है, कि धर्मपालने राष्ट्रकुट्टराज परवर्षको कन्या रसादेविका पाणिग्रहण किया। उसी राजकन्याके गर्भसे देवपाल उत्पन्न हुए। मधोपाल मादि परवर्षी पालराजाओंके ताम्रगासनमें लिखा है, कि वाक्पालसे जयगोल जयपालने जन्मग्रहण किया। योक्तृचरित्र द्वारा जिन प्रकार जगत् पवित्र होता है, उसी प्रकार हम जयपालचरित्रसे जगत् पवित्रोक्त हुआ था। इनकेने धर्मदेष्टाओं पर शासन किया था और शत्रुओंको परास्त कर पूर्ण देवपालकी अग्नि भुवन राज्यसुखका भोग कराया था।

‘पूर्वज’ देवपालका उत्तराधिकारी देख कर पूर्वज प्रत्यक्षविदोंने देवपालको जयपालके सहोदर और वाक्पालके पुत्र वतसाया है; किन्तु देवपाल जयपालके सहोदर नहीं थे, यह देवपालके ताम्रगासनमें ही जाना जाता है। देवपाल जयपालसे बड़े थे, इसी कारण ‘पूर्वज’ शब्द व्यवहृत हुआ है।

देवपालने जो अपने वरुण भाई जयपालकी मशायतामें राज्यलक्ष्मीका उपभोग किया था, सो नहीं; क्योंकि ताम्रगासनसे जाना जाता है, कि वे एक महाद्विगजयी राजा थे। गजरासे सेतुबन्ध तक उनका राज्य विस्तृत था। नारायणपालके ताम्रगासनमें लिखा है, कि देवपालके आदेशसे जयपालने जयको पागा छोड़ दी। उनका नाम सुनते ही उत्तराधिकारी अपना पुर छोड़ कर बहुत दूर भाग गये थे। प्रागज्योतिषाधिपतिने उनकी आशा गिरोधार्य कर धामन्तोंके साथ भयानकता स्वीकार की थी।

किन्तु यदातमे पाणिग्रहण गृहस्थभक्तिमें निष्ठा है, कि प्रागज्य-वर्गोय मन्त्रो धर्मपालके मोक्षीपनसे राजा देवपालने रवाना हिमालय तक और पश्चिमदिने उदयगिरि वरुणालय, मसुद्र तक सभी राज्य करद किये थे। देवपाल स्वयं भोगत होने पर भी ब्राह्मण साधारणकी विशेष भक्ति व्यक्त करते थे। राष्ट्रीय-वाङ्मय-कुलाचार्य हरिमियने लिखा है—

देवपालसे देवपाल गौडराज्यमें प्रथम राजा हुए थे। ये प्रजा, वाक्य, विवेक और मोक्षविनयमन्त्र, शुभाग्र्य तथा श्रीमान् थे। कुलधर्ममें भी इनकी विधि व्यवस्था थी।

देवपालके समयमें लक्ष्मी धोवराजोंके शिलाफलक में लिखा है, कि उत्तरावधके नगरधर नामक स्थानसे सर्वशास्त्रविद् धोरदेवका देवपालने यथेष्ट सम्मान किया था। धोरदेव पालराजके समुद्रगृहे बहुत दिनों तक यशोवर्मपुर-विहारमें रहे थे।

प्रत्यक्षविद् कनिष्ठमने उक्त यशोवर्मपुरको वस्तमान विहार बतलाया है, किन्तु जहाने यह शिलाफलक पाया गया है, वही धोवराजों धाम यशोवर्मपुर समझा जाता है। वाक्पालके गौडवधकाव्यमें लिखा है, कि कान्यकुलपति यशोवर्मदेवने गौड जीत कर किसी गौडपतिका विनाश किया था। बहुत सम्भव है, कि वही यशोवर्मदेव अपने नाम पर नगर बसा कर गौडविजय-कोसिकी रचा कर गये हैं। पक्षिने ही लिखा जा चुका है, कि जेनपन्थानुसार ८१४ ई. में यशोवर्मपुत्र धामराज (चक्रावध) ने मगधतोषमें प्रागत्याग किया। धोरदेवकी शिलालिपिमें ‘यशोवर्मपुर’ पश्चिम तीर्थक्षेत्रमें वर्णित हुआ है। उनके समयमें यहाँ वज्रासनविहार बनाया गया था। इससे मालूम पड़ता है, कि देवपालके राजत्वकालमें धामराजने पिष्टस्थापित यशोवर्मपुरमें पथवा जेनतीर्थ पावापुरोमें प्रागत्याग किया था।

१४ देवपाल ।

सुहृदसे प्राप्त देवपालके ताम्रगासनमें लिखा है, कि देवपालने अपने धार्मिकपुत्र राज्यपालकी शिक्षाउन पर अभिषिक्त किया। किन्तु तत्पश्चात् किसी ताम्रगासन या शिलालिपिमें युवराज राज्यपालका राजत्वप्रसन्न नहीं

ऐ। हममें अनुमान किया जाता है कि देवपालको राजतल-
कालमें ही राज्यपाल कालग्राममें पतित हुए। जो कुछ हो,
वदालकी गुरुद्वाराभित्तिमें देवपालके बाद हो गोदाधिप
गुरपालका नाम पाया जाता है, किन्तु शिलानिधिमें गुर-
पाल कितने पुत्र थे, यह स्पष्ट नहीं लिखा है। देवपालके
बाद ही इनका प्रसङ्ग रहनेके कारण किशो किशोने इन्हें
देवपालका पुत्र अथवा हम विग्रहपालका नामान्तर माना
है। पहला अनुमान बहुत कुछ सम्भव है, किन्तु दूसरे
अनुमानको कोई साक्ष्यता नहीं। हम इसावसे
हम लोग गुरपालको देवपालके वंशधर वा उत्तराधि-
कारी मानते हैं।

गुरुद्वाराभित्तिमें लिखा है, कि गुरपाल मानो
साक्षात् इन्द्र और प्रजापति थे। उनको उपदेष्टा वा मन्त्री
का नाम कदारमिय था। कदारमियके ऊपर निर्भर
करके गोद्वाराजने उत्पन्न, हन, द्राविड़ और गुर्जरराज-
का दर्पवर्ण किया था। इन्होंने कबसे कब तक राज्य
किया, ठीक ठीक मान्य नहीं।

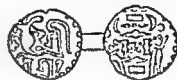
१म विग्रहपाल।

इसके बाद हम लोग जयपालके पुत्र १म विग्रहपाल
को गोद्वारागधके मिहंछल पर अभिषिक्त देखते हैं।
नारायणपालके ताम्रशासनमें लिखा है, कि उन्होंने
पञ्जातयुद्धके जैन जयमहेश्वर किया था। ऐह्यराज-
कन्या इनकी स्त्री थी जिसके गर्भसे शुभमिन्द्र नारायण-
पालदेवका जन्म हुआ।

विहारमें ० मोल दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित घोषराजिनि
व्यासनविहार है जिसके ध्वंसावशेषमें उक्त विग्रह-
पालकी अनेक रोममुद्राएं पाविष्कृत हुई हैं। वहाँ हो
ही पायवर्ण किया है, कि उनकी मुद्रा पारस्यके चम्पु-
पालक शासनीय वा शकराजवंशकी मुद्राके सदृश है।
मुद्राके ऊपर दाहिनी ओर शक राजमुण्ड है और
उनके नाथ 'श्री' एवं नीचे 'विग्रह' ये शब्द लिखे हुए
हैं। मुद्राकी पीठ पर शासनीयकी चम्पुपूजाकी वेदो
और दोनो पार्श्वों में होता तथा चम्पुयुद्धकी मूर्ति है।
बीचमें 'म' पक्षर खुदा हुआ है जो सम्भवतः विग्रह-
पालका राज्य समर्पितदेवक है।

जिनके बाद और चपरापर प्रसङ्गविदोने ८१० ई०में

विग्रहपालका राजागोहवत्तान स्थिर किया है।
किन्तु मुद्राके मोहोको धाममें पाविष्कृत मिला-
निधिमें जाना जाता है, कि ८६५ म०सममें (८०८ ई०में)
'विग्रहपालदेव' वा विग्रहपालके मुद्रा विग्रह प्रचलित
थी। हम इसावसे विग्रहपाल हममें भी पहले राजा
करते थे, हममें मन्देह नहीं।



विग्रहपालकी मुद्रा।

नारायणपालदेव।

१म विग्रहपालके बाद उनके लड़के नारायणपालने
पञ्जमिहंछल पर अभिषिक्त किया। भागलपुरमें प्राप्त उनके
ताम्रशासनमें जाना जाता है, कि वे एक परमधार्मिक,
परम दयालु, प्रजापति और महावीर थे। तत्पुत्रवर्त्तो
अथ पालराजाओंके ताम्रशासनमें लिखा है, कि
उन्होंने अपने चरित्र द्वारा श्रद्धालुमान प्राप्त धर्मासन
पलङ्कित किया है। उनके प्रधान मन्त्री पूर्वाक्ष
कदारमियके पुत्र गुरवमिय थे। गुर्वमियने ही
वदालमें गुरुद्वाराभित्ति स्थापित किया था।

राज्यान्त।

नारायणपालके बाद राज्यपाल निहामन पर बैठे।
मदनपालके ताम्रशासनमें लिखा है, कि उन्होंने मनुष्यके
मूलदेशको तरह प्रति ममोरगर्भ युक्ताजनाय और कुल-
पर्वतके समान प्रकोटविशिष्ट दिवानयकी प्रतिष्ठा की
और इसीसे इनका नाम तसाम फल गया था। उन्होंने
राष्ट्रकूटराज राजाकी कन्या भाग्यदेविका पाविग्रह
किया। भाग्यदेविके गर्भसे २य गोपालदेव उत्पन्न हुए।
राज्यपालने कब तक राज्य किया, ठीक ठीक मान्य
नहीं।

२य गोपालदेव।

राज्यपालके बाद उनके लड़के २य गोपाल राजा-
धिकारी हुए। महीपाल और मदनपालके ताम्रशासन-
में मान्य होता है, कि गोपालने बहुत दिन तक राज्य-
भोग किया था।

पान राजाधिकांश अधिकांश ताम्रगामनमें धर्मपालके एक कनिष्ठ भाई गुणवान् भोर वीर्यवान् वाक्पाल-देवका तथा धर्मपालके ताम्रगामनमें उनके पुत्र युवराज विभुवनराजका उत्तरेष्ट है। किन्तु वाक्पाल भोर विभुवनपालने किसी समय राज्य किया था वा नहीं, उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

देवपाल देव।

धर्मपालके बाद देवपालको हम लोग पालराज-सन पर अभिषिक्त देखते हैं। देवपालके सुहृदसे प्राप्त (१३ सख्यत् पद्धति) ताम्रगामनमें लिखा है, कि धर्मपालने राष्ट्रकुटाराज परवलको कन्या रसादियोका पणिग्रहण किया। उसी राजकन्याके गर्भसे देवपाल उत्पन्न हुए। सशोपाल भादि परवर्त्ती पालराजाओंके ताम्रगामनमें लिखा है, कि वाक्पालसे जयगोल जयपालने जन्मग्रहण किया। ओक्षणचरित्र द्वारा जिस प्रकार जगत् पवित्र होता है, उसी प्रकार हम जयपाल-चरित्रसे जगत् पवित्रोक्त हुआ था। इन्हीं धर्म-देष्टाओं पर शासन किया था भोर गोलोंकी परास्त कर पूर्वाज देवपालको अग्र्य भुवन राज्यसुखका भोग कराया था।

‘पूर्वज’ देवपालका उत्तरेष्ट देख कर पूर्वीत प्रत्यक्षविदोंने देवपालको जयपालके सशोदर भोर वाक्पालके पुत्र बतलाया है; किन्तु देवपाल जयपालके सशोदर नहीं थे, यह देवपालके ताम्रगामनसे ही जाना जाता है। देवपाल जयपालसे बड़े थे, इसी कारण ‘पूर्वज’ शब्द व्यवहृत हुआ है।

देवपालने जो अपने चचेरे भाई जयपालकी महारथानामें राज्यसम्मोका उपभोग किया था, सो नहीं; सन्धीके ताम्रगामनसे जाना जाता है, कि वे एक महारथविजयी राजा थे। गङ्गासे सेतुबन्ध तक उनकी राज्य विस्तृत था। नारायणपालके ताम्रगामनमें लिखा है, कि देवपालके बादगमे जयपालने जयको आगा छोड़ दी। उनकी नाम सुनते ही सत्ताधिपति अपने पुर छोड़ कर बहुत दूर भाग गये थे। प्रागज्योतिषाधिपतिने उनकी आशा गिरोधार्य कर नामन्तोके साथ अधीनता स्वीकार की थी।

किन्तु यद्वानसे चाविस्तृत गहड़वाभनिधिमें लिखा है, कि पाण्डित्य-वंशोद्यमन्तो धर्मपालके मोतिकोदन्तसे राजा देवपालने देवामे हिमानय तक भोर पक्षगिरिमें उदयगिरि वरुणानय ममुद्र तक सभी राज्य करद किये थे। देवपाल स्वयं सीगत होने पर भी ब्राह्मण माधारेणकी विशेष भक्ति श्रद्धा करते थे। राष्ट्रग-ब्राह्मण-कुलाचार्य हरिसिन्धने लिखा है—

देवपालसे देवपाल गोह्वराजने प्रथम राजा हुए थे। ये प्रजा, वाक्, विवेक भोर शोचविनयसम्पन्न, शुभाग्य तथा योमान् थे। कुलधर्ममें भी इनको विशेष श्रद्धा थी।

देवपालके समयमें उत्कीर्ण चोपरानांश गिताफसक में लिखा है, कि उत्तरावधके नगरधर नामक स्थानसे सर्वशास्त्रविद् भोरदेवका देवपालने घण्टे सम्मान किया था। भोरदेव पालराजके भनुग्रहसे बहुत दिनों तक यशोवर्मपुर-विहारमें रहे थे।

प्रत्यक्षविद् कनिष्ठमने उक्त यशोवर्मपुरकी वस्तुमान विहार बतलाया है, किन्तु जहाँसे वह गिताफसक पाया गया है, वही चोपरानांश ग्राम यशोवर्मपुर समझा जाता है। वाक्पतिके गोह्वरकाव्यमें लिखा है, कि कान्यकुलपति यशोवर्मदेवने गौड़ जीत कर किसी गौड़पतिका विनाश किया था। बहुत सम्भव है, कि वही यशोवर्मदेव अपने नाम पर नगर बसा कर गोह्वरजय-कोत्तिकी रक्षा कर गये हैं। पश्चिमे ही लिखा जा चुका है, कि जेयग्यानुवार ८१४ ई०में यशोवर्मपुत्र धामराज (चक्रायुध)ने समग्रतीर्थमें प्रागत्याग किया। भोरदेवकी गितालिपिमें ‘यशोवर्मपुर’ पवित्र तीर्थस्थानमें वर्णित हुआ है। उनके समयमें यहाँ बप्पासनविहार बनाया गया था। इसने मानस पट्टा है, कि देवपालके राजत्वकालमें धामराजने पिष्टस्थापित यशोवर्मपुरमें पथका क्षेत्रीय पाषाणपुरीमें प्रागत्याग किया था।

१म शृंगाल।

सुहृदसे प्राप्त देवपालके ताम्रगामनमें लिखा है, कि देवपालने अपने धार्मिकपुत्र राज्यपालकी शिक्षामन पर अभिषिक्त किया। किन्तु तत्परवर्त्ती किसी ताम्रगामन वा गितालिपिमें युवराज राज्यपालका राजत्वप्रमाण नहीं

है। इसमें अनुमान किया जाता है कि देवपालको राजतल कालमें ही राज्यपाल कालयासनमें पतित हुए। जो कुछ छोटे बटालकी गुरुद्वारा अभिनिर्दिष्ट देवपालके बाद ही गौड़राज्य गुरुपालका नाम पाया जाता है, किन्तु ग्रिन्थानिर्दिष्ट गुरुपाल किनके पुत्र थे, यह स्पष्ट नहीं लिखा है। देवपालके बाद ही इनका प्रसन्न रहनेके कारण किसी किसीने इन्हें देवपालका पुत्र प्रथम ही देवपालका नामान्तर माना है। पहला अनुमान बहुत कुछ सम्भव है, किन्तु दूसरे अनुमानको कोई साक्ष्यता नहीं। हम इसीप्रकार हीम लोग गुरुपालको देवपालके वंशधर या उत्तराधिकारी मानते हैं।

गुरुद्वारा अभिनिर्दिष्ट लिखा है, कि गुरुपाल जामो माघात् इन्द्र पौर प्रजाप्रिय थे। उनके उपदेष्टा या मन्त्री का नाम केदारमित्र था। केदारमित्रके ऊपर निर्भर करके गौड़राजने उत्कल, हन, द्राविड पौर गुजराजका दर्पपूर्ण किया था। इन्होंने कबसे कब तक राज्य किया, ठीक ठीक मान्य नहीं।

१म विमह्वार।

इसके बाद हम लोग जयपालको पुत्र १म विमह्वार को गौड़मगधके सिंहासन पर अभिषिक्त देखते हैं। नारायणपालको ताम्रशासनमें लिखा है, कि उन्होंने प्रजातन्त्रको जैसा जन्मग्रहण किया था। देवराजकन्या इनकी स्त्री थी जिसके गर्भमें सुप्रसिद्ध नारायणपालदेवका जन्म हुआ।

विहारमें ७ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित घोपरावर्नि बन्ध्यासनविहार है जिसके धर्मशास्त्रोंमें उक्त विमह्वारपालकी अनेक रोममुद्राएं आविष्कृत हुई हैं। बड़े छोटे पाथर्वका विषय है, कि उनकी मुद्रा पारवर्त्यके शम्भुपालक शासनीय या शकराज्यगंको मुद्राके सदृश है। मुद्राके ऊपर दाहिनी ओर जन्म प्रसन्न राजमुद्रा है और उसके साथ 'ओ' एवं 'मी' के 'विमह' से शब्द गूढ़ लिखे हुए हैं। मुद्राकी पीठ पर ग्रामनीयोंकी पवित्रपूजाकी वेदों और दोनों पात्रोंमें होता तथा अध्वर्योंकी मूर्ति है। बीचमें 'म' पक्षर पृथक् हुआ है जो संभावना: विमह्वारपालका राज्य मगधनिर्देशक है।

किंजल्म पौर शयराज प्रयत्नविदोंमें ८१० ई० में

विमह्वारपालका राज्यशिलालेखकाल स्थिर किया है। किन्तु गुरुपदेष्टाके सोहोको घामने आविष्कृत ग्रिन्थानिर्दिष्ट जाना जाता है, कि ८६५ मगधतमें (८०० ई० में) 'विमह्वारपाल' या विमह्वारपालको मुद्रा विमोच प्रचलित थी। हम इसीप्रकार विमह्वारपाल हमने भी पहले राजा करते थे, इसमें संदेह नहीं।



विमह्वारकी मुद्रा।

नारायणपालके।

१म विमह्वारपालके बाद उनके लड़के नारायणपालने पाणिनिदान प्रचलित किया। भागसपुरमें प्राप्त उनके ताम्रशासनमें जाना जाता है, कि वे एक परमधार्मिक, परम दयालु, प्रजाप्रिय पौर महावीर थे। तत्पुत्रवर्त्ति अन्य पालराजाओंके ताम्रशासनमें लिखा है, कि उनकी शक्ति चरित्र द्वारा शायदनुसार प्राप्त धर्मात्मक प्रचलित किया है। उनके प्रधान मन्त्री पुष्योत्त केदारमित्रके पुत्र गुरुवर्मिय थे। गुरुवर्मियने ही बटालमें गुरुद्वारा स्थापित किया था।

राज्यपाल।

नारायणपालके बाद राज्यपाल निंदासन पर बैठे। मदनपालके ताम्रशासनमें लिखा है, कि उन्होंने सतुद्रके मूलदेशको तरह पति गभोरगर्भयुक्तज्ञानमय पौर कुलपर्वतके समान प्रकीर्तिविशिष्ट देवालयकी प्रतिष्ठा की और इसीमें इनका नाम समाप्त फल गया था। उन्होंने राष्ट्रकूटराज तुङ्गकी कन्या भाग्यदेशीका विवाह किया। भाग्यदेशीके गर्भमें २य गोपालदेव उत्पन्न हुए। राज्यपालने कब तक राज्य किया, ठीक ठीक मान्य नहीं।

२य गोपालदेव।

राज्यपालके बाद उनके लड़के २य गोपाल राज्यपालके हुए। महीपाल पौर मदनपालके ताम्रशासनमें मान्य होता है, कि गोपालने बहुत दिन तक राज्यभोग किया था।

२५ विग्रहालदेव ।

२५ गोपालने बाद उनके लड़के २५ विग्र पालने पाधिपच नाम किया । मदनपालने ताम्रगामनने लिखा है कि, इनके पिता पतिभय विग्र, निमलचक्रि, सुपण्डित और दाता थे ।

१५ महिषासुरदेव ।

२५ विग्रपालने बाद उनके लड़के १५ महोपाल राजा हुए । मदनपालने ताम्रगामनने लिखा है, कि उन्होंने राज्य पा कर मनुष्यों को विनाश किया तथा निज साधुव्रतने अनधिकृत और विलुप्त राज्यका उद्धार किया ।

१०८१ सन्वत्में उत्तोर १५ महोपालदेवकी मित्यातिपिमे जाना जाता है, कि उनका राज्य बाराणसी तक विस्तृत था । उन्होंने तथा उनके दोनों लड़के स्थिरपाल और वसन्तपालने कामोमें ईशान और चित्रघण्टादि से कर्तुं कीर्तिरत्न अर्थात् किये ।

राजिन्द्रचोलने द्विविजयप्रायक तिरुमलयको गिरि-तिपिमे जाना जाता है, कि उस समय गौड़ और बङ्ग-देग कोटि कोटि स्वाधीन वा सामन्ताज्योंमें विभक्त था । इस समय दण्डभुक्ति वा दण्डविहार (वर्तमान बिहार) में धर्मपाल, बङ्गमें गोविन्द चन्द्र, दक्षिणराष्ट्रमें रणशूर और उत्तरराष्ट्रमें महोपाल राज्य करते थे । राजिन्द्र-चोलने महोपाल पादि-उक्त राजाओंको परास्त किया था । प्रायः ८५४ शक (१०३२ ई०) में महोपालको पराजय हुई । प्रव्रतचक्रि कनिङ्गमने महोपालको ४८ वर्षों इति लोदित तिपि पाई है । तारानाथके मतमें महोपालने ५२ वर्ष राज्य किया । घोरराजाके बन्ध्यासह-विहारके ध्वंसावशेषमें महोपालदेवको मुद्रा पाई गई है । उनके राजत्वकालमें सुपमिह बौद्धताम्विक टोप द्वार श्रीचानने स्थाति नाम को । महोपालने उन्हें विष्णुमगिजा बुलाया और वहाँके सर्वप्रधान पांचाशे-पद पर अभिषिक्त किया । उस समय विष्णुमगिजामें ५० प्रधान पण्डित रहते थे । मुर्गिदाबाद पादि गाना स्थानोंमें महोपालप्रतिष्ठित चनेक पुष्करिणी हैं । मुर्गिदा-बादके चलागत गौसाबादके निकट 'महोपाल' नामक एक पति प्राचीन ग्राम है । प्रवाद है, कि यहां

महोपालकी राजधानी थी । तिब्बनके मोह ऐतिहासिकों-के मतमें गौड़ाधिप महोपाल भोटराज ला-लामाके सम-सामयिक थे ।

नयपालदेव ।

१५ महोपालने बाद नयपालदेव राजा हुए । मदनपालने ताम्रगामनने ये 'बहुगुणयोगी' स्थिररत्न-चोर भनुराजके पाधार माने गये हैं । श्रीचान पतोयके जीवनव्रत-लेखक भोटदेगोय पण्डितके मतमें नयपाल-राज दीपचुर श्रीचानकी प्रधान इष्टदेव समझते थे और चनेक चार विष्णुमगिजा जा कर उनके पदचरणों में बैठ परमाय चरित्त सुनते थे । नयपालके उत्साह-चोर श्रीचानके यत्नमें इस समय ताम्बिक मन्त्रा गौड़में तमाम प्रचार हो गया था । तिब्बन यदि दूर-दूर-देगोंमें से कर्तुं पण्डित ताम्बिक उपदेग प्रव्रत करते । किये विष्णुमगिजा पाते थे । स्वादिन्दू, स्वाबोह-सभो ताम्बिक तारादेवो (गति - हो उपास्य) चोर ताम्बिक गूढसाधनमें पायक प्रकाश करते थे । श्रीचानने जीवनलेखकने लिखा है, कि इस समय काका राजाके साथ समधाधिप नयपालका चोरतर गंयाम चक्र रहा था । वहने मगधमें न्यदलने को शत्रुके हाथमें अपने पराजय स्वीकार को । बहुगुण राजधानी तक प्रच-मर हुए थे । चलाते समधाधिपकी विजय हुई । श्रीचानके विशेष यत्नमें सन्धि स्थापित हुई और दोनों राजा मित्रतापाममें पावक हुए । श्रीचानने नयपालको जो मह मागमें उपदेग दिष्टा, वह श्रीचानके 'विमल-रत्न-लेखन' नामक ग्रन्थमें लिखा है । यह पत्र तिब्बनके भाषामें अनुवादित हुआ है ।

नयपालने राजत्वकालमें श्रीचानने तिब्बनकी यात्रा को चोर वर्षों १०५१ ई०में इस लोकका परित्याग किया ।

२५ विग्रहालदेव ।

नयपालने बाद ताम्रगामनने २५ विग्रपालका नाम पाया जाता है । दिनारपुरके चलागत चामगौड़में उक्त २५ विग्रहालका ताम्रगामन पाया गया है । मदनपालने ताम्रगामनने लिखा है—'को सर्वदा स्वर्गपुरुषो पुत्रानि भनुराज ये, जिनका साधुव्रत किसी

दिया नहीं था, यद्यत्त युद्धकारी शत्रु कुलके जो कान-
स्वरूप थे, जो चारों ओरके पाथ्य थे, जिनको यगी-
रामिने दृष्टगन्ध ध्वनित हुआ था, उन्हींके
ताम्बगामनमें जाना जाता है, कि बोधधर्मावनको होने
पर भी उन्होंने वेदान्त-न्याय-मीमांसा आदि माध्वविद्
ब्राह्मणकी शासन द्वारा ग्रामदान किया है।

२५ महीपातदेव ।

मदनपालके ताम्बगामनमें जाना जाता है, कि विषह-
पालके बाद उनके लड़के २५ महीपाल राजमिहामन-
पर बैठे। धीरे धीरे इनको कौत्सि तमाम कौन गई।
दिशाभपुर और रङ्गपुरके नामा स्थानोंमें हिनोय मही
पालप्रतिष्ठित ग्राम और चैकड़ों मरोवर पञ्च भी गोमा
पाते हैं। चेत्यदेवके आदिर्भावेके पूर्व यद्यत्त हम
महीपालको कौत्सि गङ्गाप्रदेशमें घर घर गाई जाती
थी। रङ्गपुर पञ्चालमें प्रसिद्ध है, कि राजा हानेके कुछ
बड़े बाद ही महीपालने मन्त्रोत्सवमें लक्षण किया।

२६ शरपालदेव ।

२६ महीपालके बाद २६ शरपालने राजमन्यो
प्राप्त की। मदनपालके ताम्बगामनके मतानुसार शर-
पाल इन्द्रके समान महिमाशाली, प्रतापशाली आभार,
पहिरोय, महामाहमो और गुणस्वरूप थे। इनके
राज्यकाजकी १२ वें वर्षमें उत्कीर्ण एक शिलानिधि
पाई गई है।

रामपालदेव ।

२७ शरपालके बाद उनके भाई रामपाल मिहामन
पर बैठे। उक्त ताम्बगामनमें लिखा है—उनके पिता
जगत्पालनमें निरत रहते थे। शीघ्रकालमें ही वे
अपने तीज द्वारा शत्रुओंको समस्त करके धार रटे
थे। गौड़ और वङ्गके नामा स्थानोंमें रामपालको
कौत्सि देखा जाता है। विक्रमपुरके पञ्चमत्त रामपाल
नामक प्राचीन ग्राम इन्हीं रामपालके नामको घोषणा
करता है। यह स्थान मदनपालके ताम्बगामन और
मेकशभोदया नामक शत्रुमें रामावती नगरी
नाममें प्रसिद्ध है। कामरूपवर्ष यैश्वदेवके
ताम्बगामनमें लिखा है, कि पालराज रामपालने
मिथिलावर्षति भोमको विनाश किया था। रामपाल-

चरित नामक एक दार्शनिकाथ पाया गया है। जसमें
रामपालदेवको कौत्सि गाया वर्णित है। उनके
सन्तोका नाम था योगदेव। मेकशभोदयामें लिखा है,
कि रामपालको मृत्युके बाद विप्रशमेन राजा हुए।

कुमारपालदेव ।

रामपालके बाद उनके लड़के कुमारपाल राज्य-
धिकारी हुए। इनके राजत्वकालमें मेनरागपटोप
महाराज विजयनेनका अभ्युदय हुआ। हम समय
गोहराजका उत्तरांग पालराजने अधिकारभुक्त होने
पर भी गौड़का दक्षिणीय उत्तरराज्यदेव मेनराजके
अधिकार था। कुमारपालको निज पिटराजवरकाके
विधे मेनराजको साथ विपुल संशय करना पड़ा था।
मदनपालके ताम्बगामनमें लिखा है, कि उन्होंने अपने
आयतभुक्तियों द्वारा बलवान् शत्रुओंका यशःसागर
पान किया था और नरेन्द्रवृद्धोंके कपोल पर कर्तूरके
पक्ष और मकरोके विरुद्ध विषयमें विपुल कौत्सि साम
की थी। देवपादाके गिराफतमें लिखा है, कि
विजयनेन गौड़वर्षको पाकमण करनेके लिये उनकी
पीठा किया था और कामरूप वर्षको मार भगाया था।

यैश्वदेवके ताम्बगामनमें लिखा है, कि कुमारपालने
अपने मन्त्रो बोधिवेवके पुत्र (पूर्ववर्ष योगदेवके पोत्र)
यैश्वदेवकी तिम्यदेवके स्थान पर प्राच्यप्रदेशका शासन
करनेके लिये नियुक्त किया। बहुत संशय है, कि
प्राच्यव्योतिष (कामरूप) प्रदेशके शासनकर्त्ता तिम्य-
देव अथ विजयनेनमें परास्त हुए, तब उन पर विरक्त हो
कर पालराज कुमारपालने उनके स्थान पर यैश्वदेव-
को नियुक्त किया होगा।

२८ गोरामदेव ।

कुमारपालके बाद उनके लड़के २८ गोपाल-
देव राजा हुए। शीघ्रकालमें ही इनको प्रतिभा
अमकतो थी। राजा हो कर इन्हीं पञ्च नाम खस
मिया।

मदनपालदेव ।

२९ गोपालके बाद उनके पिछले और रामपालके
पुत्र मदनपाल मिहामन पर बैठे। उनके ताम्बगामनमें
जाना जाता है, कि रामावती (वर्त्तमान रामपाल)

२५ विमलदेव ।

२५ गोपालके बाद उनके लड़के २५ विषय पालने पाधिपत्य नाम किया । मदनपालके ताम्रग्राममें लिखा है कि, इनके पिता अतिशय प्रिय, निर्मलचरित्र, सुपण्डित और दाता थे ।

१म महिपालदेव ।

२५ विषयपालके बाद उनके लड़के १म महोपाल राजगद्दी पर बैठे । मदनपालके ताम्रग्राममें लिखा है, कि इनोंने राज्य पर कर गलुषोंको विनाश किया तथा निज बाहुशक्तिसे पनघिजन और विलुप्त राज्यका उद्धार किया ।

१०८३ सम्बत्में उत्क्राण्ड १म महोपालदेवको गिना-निधिमें जाना जाता है, कि उनका राज्य वाराणसी तक विस्तृत था । उन्होंने तथा उनके दोनों लड़के खिल-पाल और बलपालने कागोमें ईशान और विश्वघटादि नौ कछों को लिख कर वापिस लिखे ।

विजयपालके विरि-

महोपालकी राजधानी थी । तत्पश्चात् घोड़ ऐतिहासिकों के मतसे गोदाधिय महोपाल मोटवाज ना-नामाके सम-नामाधिक थे ।

महोपालदेव ।

१म महोपालके बाद नरपालदेव राजा हुए । मदनपालके ताम्रग्राममें ये 'सहगुणयोगी' खिखरजनि और चतुरांगके पाधार माने गये हैं । योज्ञान पत्नीयके जोवनवृत्त-सिखर मोटदेवीय पण्डितोंके मतसे नरपाल-राज दीपकर योज्ञानकी प्रथम इष्टदेव समझने से पोर अनेक बार विजयगिता आ कर उनके पदमनत्र बैठ परमाय' उद्देश्य सुनते थे । नरपालके उत्साह और योज्ञानके यत्नसे इस समय ताम्रिक मगना गौड़में तमाम प्रसार हो गया था । तत्पश्चात् यदि 'मतीताम्' देवीसे सौं कछों पण्डित ताम्रिक बरन्दिभूमि पश्चिम कास-लिगे विजयगिता पाते थे फारभुक्त थे । पश्चिम मगध के सभी ताम्रिक तारादेवों ई०में प्रिय पालराज गोविन्दपाल-ताम्रिक गूढ़ साधु के उपासे समस्त उत्तर गौड़ या बरेल-की पत्नी के लड़के के लड़के कर ली थी । बरेलभूमि पर पवि-

नरपालके बाद बलपालदेव बरेल-नामाको के मगध-राज्यमें समर्थ हुए थे । जो कुछ देविन्दपालके दो पालगौरवविषयक लिखे हैं वे यही हैं ।

नरपालके पावरराजोंकी राज्यपाल-निर्देश-पत्रोंके एक प्रकार स्थिर हो सकती है—

राज्यपाल ।

दिया नहीं था, अथवा युद्धकारो शत्रु कुलके जो कान-
स्पर्श हो, जो चारा वर्ष के प्राय्य थे, जिनको यशो-
रामिने दिव्यगुण धनान्ति-दृष्टा था, उन्को
ताम्रगामने जाना जाता है, कि मोहधर्मोचनको होने
पर भी उन्कोने वेदान्त-न्याय-मोक्षोपादि शास्त्रविद
शास्त्रकी शानन दास ग्राम दान किया है।

२५ महीपालदेव ।

मदनपालके ताम्रगामने जाना जाता है, कि विषय-
पालके बाद उनके लड़के २५ महीपाल राजविंशमन-
पर बैठे। धीरे धीरे इनकी कौत्ति तमाम फैल गई।
दिनागपुर पोर रजपुरके नाम स्थानीने दितोय मही
पालप्रतिष्ठित ग्राम पोर से कहीं सरोवर पास भी गोमा
ति ॥ चेत्यदेवके पारिभाषिके पूर्व पद्यन्त इस
पालसद्वारा—उन्कोनाय सद्गालने घर घर गाई जातो
सत्ता २१ ८ से २१ ६ है, कि राजा जिनके कुछ
पूर्व मध्य अवस्थित है। सासधर्म ग्रहण किया।

पोर जनसंख्या प्रायः २१५१

उत्तरमें छोटागागपुरका बोनाई राज्य, पूर्व पालकी
राज्य, दक्षिणमें तालुका पोर पश्चिममें बामरा राज्य है।
इसके उत्तरमें बहुत से पहाड़ हैं जिनमेंसे मलयगिरि
सर्वप्रधान है। यद्यपि जंगलमें सर्वोत्कृष्ट ग्रान्थक
पाये जाते हैं। इस राज्यमें शस्त्रादिको उपज संतोष-
जनक नहीं है। बाहरमें स्थानीय राजाका वास है।
पहले यह राज्य केवन्धर राज्यके अधीन था। किन्तु
एक समय केवन्धरके राजाने पालसद्वारके राजाकी
स्त्रीधर्म ग्राह्य करनेकी बाध्य किया, इस पर दोहरे
विवाद खड़ा हुआ। फलतः पालसद्वार राज्य केवन्धर
राजराजो अधीनतासे मुक्त हो गया। यहाँके राजा अभी
पञ्चरज गवर्मेष्टकी ली कर देते हैं, वह केवन्धर राजा-
के नामसे लमा कर लिया जाता है। १८६० ई०में जब
केवन्धरमें विद्रोह उपस्थित हुआ था, तब पालसद्वारके
राजाने पंगरेजीकी अच्छी सहायता की थी। इस
कारण इटिग-गवर्मेष्टने इनके 'राजा' बहादुरकी
सप्राप्ति दी है। राजाके १० अर्ध पोर ५० पुनिम
कर्मचारी हैं।

पालाग (मं० पु०) पालागल देवी।

चरित नामक एक द्वात्रिंशत् पाया गया है। जिनमें
रामपालदेवकी कौत्ति गाया वर्णित है। उनके
गन्तीका नाम था योगदेव। मेरुशमोदगामे निवा है,
कि रामपालकी मृत्युके बाद विषयमेन गंगा पु।

कुमारपालदेव ।

रामपालके बाद उनके लड़के कुमारपाल राज्य-
धिकारी हुए। इनके राज्यकालमें मेनरागप्रतोप
महाराज विजयदेवका पञ्चद्वय हुआ। इस समय
गोइराज्यका उत्तरांग पालराजके अधिकारभुक्त होने
पर भी गोइराज्य दक्षिण उत्तरराज्यदेव मेनराजके
अधिकार था। कुमारपालकी निज पित्रराज्यराजके
निज मेनराजके साथ विपुल संपादन करना पड़ा था।
मदनपालके ताम्रगामने निवा है, कि उन्कोने अपने
पायतमजुखोव दाया बनवान् शत्रुको का यगःसागर
पान किया था पोर नरेन्द्रपुर्षोके कपोल पर कर्पूरके
पत्र पोर मकरोके विजय विषयमें विपुल कौत्ति नाम
की थी। देवपाक्षीके शिष्टभरनेकी बड़ी बरतन। यह
विश्रुति किशो मिहोका गोल दोवारके रूपमें होता है। १०

कुशो लड़ने या कसरत करनेकी जगह, पहाड़।

पालाग (हि० स्त्री०) प्रथम, दण्डवत, नमस्कार।

पालागल (मं० पु०) १ दून। २ मिथ्या संवाद-दाता।

पालाग (हि० पु०) पालन देवी।

पालार—महिपुर राजराजे निगंत एक नदी। इसकी
लम्बाई १५ मोल है। पानी पोर सेवर इगकी प्रवाह
शाला है। इस नदीकी किनारे लखपुर, यनियेमूनी,
पञ्चूर, वैजूर, भाकंट, बिहलपतम आदि नगर बसे
हुए हैं। इस नदीसे नहर काट कर जल लाया जाता
है। तामिस भायामे पाला ग्रन्थका पद्य दुपनदी है।

पालाग (मं० स्त्री०) पलागलदेमिति पद्य। १

तमासपल, तेजपला। पलागल्य विचारः पवयगो वा

पद्य। २ पलागल्यय, पायादृष्ट। १ तदिकार।

पलागः तदर्थः सत्यमेति पद्य। (पु०) ४ हरि-

दर्थः। (ति०) १ हरिदयविधि, हर रंगका।

पालागल (मं० ति०) पलागल्य पदार्थमादि पला-

गदित्वा कक्। (पा १।२।५०) पलाय मज्जित

द्विगतिः।

पानागसण्ड (मं० पु०) १ मंगधदेश । २ पनागसमूह ।

पानागि (मं० पु०) पनागनोखपर कृत्रिमदे ।

पानागो (मं० पु०) चोरोहृष, खिरनो ।

पानाग्र (मं० दि०) पनागिन निर्हृत्त मन्त्रादिद्वारा

एव । पनागनिर्हृत्त, पनाग द्वारा निर्हृत्त ।

पानिर्हिर (मं० पु०) मण्डलिचर्मदे ।

पानि—प्राचीनकालमें पानिया महादेशमें जो सब भाषाएँ

प्रचलित थीं 'पानि' उन्हींको प्रत्यय है । पश्चिममें

वक्षिया (वाक्षिक) से पूर्वमें कम्बोज (कम्बोजिया)

तक एक समय यह भाषा प्रचलित थी, प्राचीन गिना-

निपिसे उसका गण्डेय प्रमाण मिलता है । कहते हैं,

कि ईसाजन्मके पहले इन्हीं गताब्दीमें बुद्धदेव और

उनके शिष्यगण इसी भाषामें धर्मप्रचार करते थे । सभी

धर्मशास्त्रियोंके लिये इस लोग जिस प्रकार संस्कृत

भाषाकी पानोचना किया करते हैं, सिंहल, मद्रा, म्याम

आदि प्रदेशोंके पण्डितगण भी उसी प्रकार पानिभाषाकी

पानोचना करते हैं ।

पानिभाषाके वर्णोंको संख्या ४१ है, मसान्तर

१८ । इनमेंसे ८ स्वर और ३१ व्यञ्जनवर्ण हैं ।

स्वरवर्ण यथा,—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ ।

व्यञ्जनवर्ण यथा,—

क, ख, ग, घ, ङ ।

च, छ, ज, झ, ञ ।

ट, ठ, ड, ढ, ण ।

त, थ, द, ध, न ।

प, फ, ब, भ, म ।

य, र, ल, व ।

श, ष ।

ये सब वर्ण कण्ठज,तालुज,घोष्ठज,मूर्धज,दन्तज,कण्ठतालुज,कण्ठोष्ठज,दन्तोष्ठज इत्यादि भेदसे षाठ श्रेणियोंमें विभक्त हैं ।

पानिभाषामें पुं, स्त्री और वस्तुव ये तीन लिङ्ग

सत्तम, मध्यम और प्रथम ये तीन वृत्तयः एक और बह्वृ

ये दो वचन तथा षठमा (कर्ता), कृष्य (कर्म), करण,

सम्पदान (सम्पदान), पपादान, सामी (सम्बन्ध),

पोकामो वा पाधारी (अधिकरण) और पान्यधन

(मन्त्रोधन) ये षाठ काल विद्यमान हैं ।

दो पदार्थोंके मध्य एकका सक्रय जाननेमें विशेषणके उत्तर "तस्" वा "इयो" प्रत्यय और बहुवचने मध्य एकका सक्रय जाननेमें "तम" वा "इत्" प्रत्यय लगाया जाता है । जैसे—पापतरो, पापियो, पापतमो, पापिदो ।

सभी धातु मवाटि (म्वादि), रुधादि, दिधादि, स्वादि, क्रियादि (क्तादि), तनादि और घुधादि (घुरादि) इन्हीं सात वर्णोंमें विभक्त हैं । धातुविशेषके उत्तर पर-म-पद (परस्मैपद) वा, धतनोपद (धातनोपद) लगाया जाता है ।

वत्समाना (वत्समाना), दीयतमो (द्वादामो), परोक्षता (परोक्षा) वज्रतमो, (वज्रतमो), भविष्यतो (भविष्यत्) और कालातिवसि रन कः प्रकारकी विभक्तिवाँकी सहायतासे कालका व्यवहार निश्चय होता है ।

सभी धातु कच्चे, कर्म और भाववाच्यमें व्यवहृत होते हैं । जैसे—घा (खा) धातुका भाववाच्यमें घीयते ऐसा रूप होता ।

योगःपुन्यार्थमें धातुका द्वित्व होता है, जैसे मय, धातुवे लाज्यपति और गम्, धातुवे जंगमति इत्यादि । इच्छार्थमें वचन और प्रेरणार्थमें विभक्त धातुका प्रयोग होता है ।

सकल यथा,—विभावति (वा), बुभुक्षति (भुज),

विजन्त यथा—गमयति, गमेति, गच्छापेति, गच्छापयति (गम्) ।

विशेष शब्दमें नाम धातुको उपपत्ति होती है, जैसे—पुतोयति (पुत्, पुत) ।

संस्कृतमें जहाँ गण्ड प्रत्यय का प्रयोग होता है, पानि भाषामें वहाँ धातु और वचन तथा महां गानध् प्रत्ययका प्रयोग होता है, वहाँ मान और पान लगाया जाता है । जैसे—गच्छतो इत्यादि ।

धतोत ज्ञानबोधक संस्कृत "त" प्रत्ययके वटनेमें पानिभाषामें "त" और "न" प्रयुक्त होता है, जैसे कनो (जनः), दिवो (दत्तः) इत्यादि । फिर "त" और "न" के उत्तर "वत्" वा "वन्त" प्रत्ययका योग करनेमें दो "तवत्" प्रत्ययका कार्य निश्चय होता है । जैसे हुन-वन्तो इत्यादि ।

विधायकं य, तस्य (तच्च, तस्य) चोर पणोय प्रपद्य
मगाया जाता है। जे से—मज्झो इत्यादि।

पश्चात्तर पयं मत्वा, य, त्वान चोर तुल्य प्रपद्य मगता
है। जे से—यतिमित्वा (यतिस्त्रता), निष्पद्य (निपाद्य),
कत्वान, कातुल (कत्वा)।

निमित्तायमं तु, तवे चोर तुये मगाया जाता है।
जे से—गन्तु, चीतये (चीतुं), गणितुये (गणयितुं)
इत्यादि।

तो (तम्), त, या, दा, धा, सो (मत्तु) इत्यादि
तद्विहितप्रत्यय विभिन्न पद्यों में प्रयुक्त होते हैं; जैसे—ततो
(तत्ता), तत्त, तया, कदा, एकधा, बहुषो (बहुधा)।

प्रति, पति, पनु, पय, पयि, पभि, पव, पा, प
(पद्), पव, दु, निर, नि, प (म), पटि (प्रति), परा,
परि, वि, सम् चोर सु ये बोम विमर्ग है।

पाणिभाषा में हृद, तप, पुरिम (तत्पुरुष), कर्मधारय
(कर्मधारय), दिगु (दिगु), पश्ययोभावन, बहुव्रीहि
(बहुव्रीहि) इत्यादि समास विद्यमान हैं।

पाणिभाषा में जो सब व्याकरण देखने में पाने हैं
उनमें से कुछ के नाम गोचे दिये जाते हैं;—

१। कत्वायन (कात्वायनकां) सुगमिकल्पम्
(सुगमिकल्प)।

२। मोमगन्नायन (मोदगन्नायन) प्रणोत व्याकरण।

३। कपमिद्विधायन।

४। तुल्यगोति व्याकरण।

५। शब्दगोति व्याकरण।

६। पदसाधनो व्याकरण।

७। शालावतार व्याकरण।

इस सब व्याकरणों में कत्वायनो (कात्वायन) प्रणोत
सुगमिकल्प व्याकरण को प्राचीनतम है। अब यह
जानना चाहिये, कि कात्वायन कब उत्पन्न हुए। उनके
व्याकरण की व्याख्या लिखते समय टीकाकारों ने सुक्तकण-
से कहा है, कि कात्वायन भगवान् बुद्ध के पन्थतम ग्रन्थ
में। बुद्धदेव जिस भाषा में धर्मोपदेश दिया करते थे, वह
काननसभे कृतान्तरित चोर बुद्धों को जायगो, इस
पागद्वासे वर्तने पंथने ग्रन्थ कात्वायनको उस भाषा-
की रीति चोर नियम मन्त्राकारने ध्रुवित करने एक
व्याकरण लिखने का आदेश किया।

निर्वाणदेवोय महात्मा नामक पण्डितने ४१०-४१२
ई-में महावंग नामक जिस सुप्रसिद्ध इतिहासका प्रण-
यन किया, उसमें मतने बुद्धदेवने ईसा-जन्मके ६२३
वर्ष पहले जन्मग्रहण तथा ५४३ वर्ष पहले देहत्याग
किया। अतएव कात्वायन ईसा-जन्मके पहले कठो
गताब्दों में विद्यमान थे।

निर्वाण, ब्रह्म चोर ग्रामदेगके प्रयाद चोर धर्म-
ग्रन्थने जाना जाता है, कि बुद्धनिर्वाणके बाद ४५० वर्ष
तक पण्डितमण्य कात्वायन व्याकरणको मुद्रपातुकमने
सुव्यव करने पा रहे थे। ईसा-जन्मके ६२ वर्ष पहले
वह व्याकरण सभने पहने निर्विषय हुआ।

कात्वायनव्याकरणके द्वितीय पद्यायके एतेय परि-
च्छेदके १०० सूत्रों में निम्नलिखित वाक्य दृष्टान्तक
उद्धृत हुए हैं।

“क यतोयि सम् देवानम् पिय विपुल।”

हे देवताओं के प्रिय तिथ! तुम कदा गये हो?

पूर्वोक्त महावंग-ग्रन्थ पढ़नेमें सामान्य होता है,

कि “देवानम् पियतिष्ठम” (तिथो १०० ई-सन्तके पहले
निर्वाणमें राजमानन करते थे। पणोकराजने पुत्र
मनेन्द्र इस समय बोद्धधर्म प्रचारके लिये प्रगच्छे निर्वाण-
में तिस्रस (तिथ) राजाके समोप गये थे।

उद्धृत वाक्यमें “देवानम् पिय तिष्ठम” इस नामका
उत्पन्न देव कर बहुतेरे अनुमान कर सकते हैं, कि
तिष्ठम पद्यों ईसा-जन्मके पहले ३०० ई-के परवर्त्तो-
कालमें कात्वायन प्रादुर्भूत हुए थे। किन्तु यह प्रमाण
सङ्गत-सा प्रतीत नहीं होता। क्योंकि पहले हो कहा
जा चुका है, कि पादिकल्पमें कात्वायनका व्याकरण
कीर्तने स्थितिपर पर विचार करता था। ईसा-
जन्मके ६२ वर्ष पहले यह व्याकरण पहने पहल निर्वि-
षय हुआ। उभरे पहले हो किनो पण्डितने उदाहरणके
बहाने उद्धृत वाक्य प्रस्तुत किया था।

मुद्रवोप ईसा-जन्मके ६०० वर्ष पहले कात्वायन-
व्याकरण में कर ब्रह्मदेव गये। वही उर्ध्वनि ब्राह्मोभाषा में
उपका अनुवाद किया। इस समय पाणिभाषा में लक्ष्मी
एक टीका भी रची थी।

परलोकागत साकुर बुद्धदेव सभने कात्वायनग्रन्थों

पानि शब्दने प्रकृतिप्रत्ययका निरूपण करनेके लिये मे कहीं पण्डितों ने चेष्टा की है, पर कोई भी अभ्रान्त सत्य पर पहुँच नहीं सके हैं। किसीका कहना है, कि मगधका प्राचीन नाम पानाग है; इसी पानाग प्रदेशकी भाषा पानिभाषा है। कोई कोई पञ्चोकी भाषा को ही पानिभाषा कहते हैं और पञ्चो शब्दके अपभ्रंशमे पानि शब्द निकला है। किसीका अनुमान है, कि दुर्ग-वाचक पानि शब्दमे भाषावाचक पानि शब्द हो उत्पत्ति हुई है। कोई कोई पालेटाइन, पानाटाइन, पण्डो और पानिटुर नगरमे पानिभाषाकी उत्पत्ति मानते हैं। पाटनो-पुत्रकी भी भाषाको भी पानिभाषा कह सकते हैं। शोक लोग पाटनोपुत्रकी पानिवोशरा कहते थे। जिनोका मत है, कि पाटनो शब्दके अपभ्रंशमे पानि शब्द हो उत्पत्ति होना असम्भव नहीं है।

कोई कोई पानि शब्दका अर्थ 'थोथो बतलाते हैं, यथा—“भावावपानि व्यापानां तदा भाति निवेसितः।” अर्थात् राजाके व्यापारके लिये गृहस्थको बनाई गई थो। किसीका कहना है, कि जो भाषा सत्य अर्थको रक्षा करती है, उसे पानिभाषा कहते हैं। कोई कोई पानिशब्दका अर्थ मूलपत्र, मूलपाठ, मूलपद इत्यादि बतलाते हैं। यथा—

“नेप पालियं न अदृष्टवार्तां दिग्वृत्तिः।”

भगोकराजाके समयमें लिखित जो एक प्रश्नर पाया गया है, उसमें इस प्रकार लिखा है:—

“दिग् व हेग् व में पानिगे वरेप।”

इस प्रकार तुम लोग हमारा शासन विज्ञापन करो।

बहुतेका कहना है, कि ईसा क्रमके पहले ३०० ई०में पयोकराजके पुत्र महेन्द्र पालियनोंको सिंहल ले गये। उस समय सिंहल-वासियोंने उन मगधियोंका सिंहली भाषामें अनुवाद किया। अनुवादके बाद सिंहलमें पानिबन्ध मूलपत्र समझा जाने लगा। तभीमे पानि शब्द का अर्थ मूलपत्र रहा है।

कई मगध, मगध और पानिभाषाका परस्पर

• Vide Journal of the Royal Asiatic Society for

1000, part 1.

सम्बन्ध निरूपण करनेके लिये बहुतसे पण्डितोंने अपने प्रतिभाका परिचय दिया है। किसीका कहना है, कि संस्कृतभाषामें पानिभाषाकी उत्पत्ति हुई है। फिर कोई कहते हैं, कि पानिभाषामें ही संस्कृतभाषाकी उत्पत्ति हुई है। इन सब परस्पर विरोधी मतमसूझके मध्य सामञ्जस्य स्थापन करके पण्डितोंने कहा है, कि संस्कृत और पानि दोनों महोदर भगिनो हैं। ये दोनों भाषा एक पाय (वेदिक) भाषामें निकली हैं।

पानि और मगधो एक भाषा है वा नहीं, इसका भी निरूपण नहीं हुआ है। साहित्यद्वयें सामक संस्कृत धनुहार अथके भाषाविभागबन्धन, अध्यायमें इस प्रकार लिखा है:—

“भोजका मागधी भाषा राजान पुत्रवारिणाम्।

चेतना राजपुत्राणां वेधिका पार्थमागधी ॥”

(साहित्यदर्पण)

गाटकके अभिनयकालमें राजाके भक्तपुर-चारियोंकी मागधो भाषामें और चेट, राजपुत्र तथा वणिकोंको पार्थमागधो भाषामें कथोपकथन करना चाहिये।

यहां पर दर्पणकारने पार्थमागधो शब्दमे पानि भाषाका लक्ष्य किया है, यह प्रतीत नहीं होता।

कितने पानियनोंके मतमे पानि और मगधो एक भाषा नहीं है। मगध देशकी भाषाको मगधो और साकेत अर्थात् अयोध्याप्रदेशकी भाषाको 'साकेत' (सकट) कहते हैं। पालिटोकाकारोंने लिखा है, कि सकटभाषा ही संस्कृत भाषा है। मागधो सकटभाषामें तथा पानि मगधो और सकट इन दोनोंमें पृथक् है। कुछ और बोधिमत्त्वोंकी भाषा ही पानि है। यह मानवकी भाषा नहीं है। शेष बुद्धिने सगंधराशमें बाध किया था, इस कारण बहुतोंने मगधो और पानि इन दोनोंकी एक भाषा माना है और बहुतोंने पानि मगधो इन नाममे पानिभाषाका लक्ष्य किया है। किन्तु यह मत असम्यक् है। समर्थनमें साफ साफ लिखा है, कि मगधोभाषा मानवकी और पानिभाषा देव-मगध तथा बुद्धमगधकी भाषा है।

इस मतके स्पष्ट पर पानियनोंमें निम्नलिखित साप्यायिका पाई जाती है:—

पालि-वाक्यरूपमें पालिनिने अनेक पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त किये हैं (१)।

सोमपरिव्राजक यत्नसुवर्गेन भास्वत्प्रमणकान (६२८-६४५ ई०) में पयोकराशेनिर्मित एक विहारमें कथायनोत्पन्न एक धर्मपत्र देवा था। यह पत्र बुद्धजन्मके ३०० वर्ष पीछे रचा गया था, यही सोम-परिव्राजकका मत है। उनका कहना है, कि बुद्धदेव ईसा-जन्मके पहले ८१० ई० में उत्पन्न हुए थे। सुतरां यह धर्मपत्र ईसा-जन्मके पहले ५५० ई० में रचा गया था। जो कुछ भी, उस धर्मपत्रके प्रेषिता कथा-यनो और पालिवाक्यरूपके रचयिता काव्यायन ये दोनों एक व्यक्ति थे वा नहीं, इसका पता नहीं चलता।

किमो किमोका कहना है, कि पालिवाक्यरूपके प्रेषिता काव्यायनो, और प्राज्ञनप्रकाश, (प्राज्ञन व्याकरण)-के रचयिता वररवि एक ही व्यक्ति थे। उद्धत्कथाके प्रस्तावनेमें पता चलता है, कि वररविका दूसरा नाम काव्यायन था। ये जो रत्नों में अन्यतम रखे, अतएव कालिदासके समसामयिक थे। किन्तु पालिवाक्यको सम्बन्ध-पासोचना करनेसे यह स्पष्ट प्रतीत होता कि वररवि और काव्यायन एक व्यक्ति नहीं थे। उद्धत्कथामें जिस काव्यायन-वररविका उल्लेख है, वे पालि-वाक्यरूपके प्रेषिता नहीं हैं।

काव्यायनके पालिवाक्यरूपमें निम्नलिखित विषय पानोचित हुए हैं:—

१म अध्यायमें	वर्षे और सन्धि।
२य "	शब्दरूप।
३य "	कारक।
४य "	समास।
५म "	तद्धित प्रत्यय।
६ठ "	धातु।
७म "	तिङ्शतप्रत्यय।
८म "	लघादिप्रत्यय।

(१) भारत उद्धत्कथ यह मत प्रतीयमान नहीं है, क्योंकि पालिनिने ही ही काव्यायनका नाम था उनका पालिवाक्यरूप ६२९१ नहीं है। पालिनिने समय पालिभाषा प्रयुक्त ही नहीं हुई थी। पालिनि देखो।

द्वितीय व्याकरणके रचयिता भोगुल्लायन (मोदुल्ल-व्यायन) ११५८-११८६ ई० में जीवित थे।

अथो पालिप्रत्य मारतवर्षमें भागरो पत्तरमें, सिं हक-में सिं हको पत्तरमें, ब्रह्मदेगमें भागरो पत्तरमें, गामदेग-में कम्बोज वा कम्बा पत्तरमें और युरोशमें भागरो तथा रोमक पत्तरमें सुद्धित होते हैं। प्राचीनकालमें पालि-भाषाके प्रत्य ७३३ पत्तरमें लिखे जाते थे। पच्छी तरह मालूम नहीं। लेकिन इतना तो पथप्र कष्ट सकते हैं, कि यह भागरो, सिं हको या भागरो पत्तरमें नहीं लिखे जाते थे। उहोमा, विहार, इलाहाबाद, दिल्ली, पन्ना, गुजरात, पञ्चगानिखान आदि प्रदेशोंमें जो सब श्रद्धित लिपियां पाणिग्रन्थ हुई हैं उनमें ईसा-जन्मके पूर्व ३२० और ४५० शताब्दीके पालि पत्तरका निदर्शन पाया जाता है। यक्षियाके राजा ईसाजन्मके पहले दूसरे शताब्दी-में यक्षिया राज्यमें व्यवहृत मुद्राके एक पात्र पर पालि पत्तर और दूसरे पर योक्त पत्तर समिश्रित करते थे। जिस समय अलेक्जन्दर (Alexander) ने भारत पर आक्रमण किया, उसको बहुत पहले करनन्द नामक राजा मगधमें राज्य करते थे। करनन्दके समयको अनेक मुद्राएँ पाई गई हैं जिनको एक पात्र पर भारतीय पालि और दूसरे पर सेमितिक पालि पत्तर खोदित हैं। निम्नोभोगगरके इटककलधमें जिस प्रकार किमो-काय पत्तर खोदित थे, यह सेमितिक-पालि पत्तर भी उसी प्रकारके हैं। आसुर (Assyrian) पत्तरके 'र' बाद के साथ प्रस्तरकनकखोदित 'र' बाद पालि पत्तरोंका मोमाहृष्ट देव कर यदुरे अनुमान करते हैं, कि पालि पत्तर कोलरुयो लिपिमें लिखे जाते हैं। जो कुछ भी, यह निःसन्देह कहा जा सकता है, कि दो हजार वर्ष पहले कम्बोजके कावुन पर्वत समस्त प्रदेशोंमें पालि पत्तर व्यवहृत होते थे। सर्वथा देखो।

प्राचीन ताम्रग्रामण, प्रस्तरलिपि, इटकलिपि आदिका पर्ववैषय करके पाषाण्य पण्डितोंने विद्यान्त किया है, कि प्राचीन पालि पत्तर मरुतरेवा, त्रिभुज, समकोको अनुभुज, उत्त और विन्दु आदिको पाञ्चतिके मध्य में फिर कण्ठ, तालू, मोठ, दन्त इत्यादिके माथ में इन सब पाञ्चतिकाका यणमन्त्र नामग्रन्थ है।

पाणि शब्दके प्रकृतिप्रत्ययका निरूपण करनेके लिये मैं कहीं पाण्डितो'ने चेष्टा की है, पर कोई भी चम्पान्त सत्य पर पहुँच नहीं सके हैं। किसीका कहना है, कि मगधका प्राचीन नाम पान्नाग है; इन्हीं पान्नाग प्रदेशकी भाषा पाणिभाषा है। कोई कोई पम्पोंकी भाषाको ही पाणिभाषा कहते हैं और पम्पों शब्दके अपभ्रंशमें पाणि शब्द निकला है। किसीका अनुमान है, कि दुर्ग-वाचक पाणि शब्दमें भाषावाचक पाणि शब्दको उत्पत्ति हुई है। कोई कोई पालिष्टाइन, पालाटाइन, पम्पों और पानिटुर नगरमें पाणिभाषाकी उत्पत्ति मानते हैं। पाटनो-पुत्रकी ४ भाषाको भी पाणिभाषा कह सकते हैं। योंक लोग पाटनोपुत्रकी पाणिबोधरा कहते थे। किसीका मत है, कि पाटनो शब्दके अपभ्रंशमें पाणि शब्दको उत्पत्ति होना प्रबन्धन नहीं है।

कोई कोई पाणि शब्दका अर्थ 'येथो बतलाते हैं, यथा—“आवावशति व्यापानां तदा श्रुति निगमिता।” अर्थात् राजाके व्याधीने लिये शहरमें जो बसाई गई थी। किसीका कहना है, कि जो भाषा छत्त अर्थको रक्षा करती है, उसे पाणिभाषा कहते हैं। कोई कोई पाणिशब्दका अर्थ मूलप्रत्य, मूलपाठ, मूलवद इत्यादि बतलाते हैं। यथा—

“नेप पाणिं न लट्ठकपाणिं दिग्गति।”

पम्पोंकराजाके समयमें लिखित जो एक प्रस्तर पाया गया है, उसमें इस प्रकार लिखा है:—

“द्विमू य देवमू व में पाणिगे बदेम।”

इस प्रकार तुम लोग हमारा शासन विज्ञापन करो।

बहुतोंका कहना है, कि ईसा जन्मके पहले ३०० ई०में पम्पोंकराजके पुत्र महेन्द्र पाणिप्रत्यो'को सि'हन ले गये। उस समय सि'हन-वासिने' उस सब प्रत्यो'का सि'हनी भाषामें अनुवाद किया। अनुवादके बाद सि'हनमें पाणिप्रत्य मूलप्रत्य समझा जाने लगा। तभीमें पाणि शब्दका अर्थ मूलप्रत्य पड़ा है।

कई वर्ष हुए, संस्कृत और पाणिभाषाका परस्पर

• Vide Journal of the Royal Asiatic Society for 1800, part 1.

सम्बन्ध निरूपण करनेके लिये बहुतोंने पाण्डितो'ने पम्पों प्रतिभाका परिचय दिया है। किसीका कहना है, कि संस्कृतभाषामें पाणिभाषाको उत्पत्ति हुई है। फिर कोई कहते हैं, कि पाणिभाषामें ही संस्कृतभाषाको उत्पत्ति हुई है। इन सब परस्पर विरोधी मतमसूजे में मध्य मार्गप्रत्य संस्थापन करके पाण्डितो'ने कहा है, कि संस्कृत और पाणि दोनों' मसोदर भगिनो' हैं। ये दोनों' भाषा एक पार्थ (वैदिक) भाषामें निकली हैं।

पाणि और मागधी एक भाषा है या नहीं, इसका भी निरूपण नहीं हुआ है। साहित्यद्वय नामक संस्कृत धनद्वार अत्यन्त भाषाविभागवर्णन, अध्यायमें इस प्रकार लिखा है:—

“अनेका मागधी भाषा राज,शतपुराणिनाम्।

चेरनां राजपुत्राणां त्रेष्ठिनां चार्द्धमागधी ॥”

(साहित्यदर्पण)

नाटकमें अधिनयकालमें राजाके चत्तःपुर-चारियों'को मागधी भाषामें और चेट, राजपुत्र तथा वणिकों'को चर्द्धमागधी भाषामें कथोपकथन करना चाहिये।

यहाँ पर दर्पणकारने चर्द्धमागधी शब्दमें पाणि भाषाका मूल्य किया है, यह प्रतीत नहीं होता।

कितने पाणिप्रत्यो'के मतमें पाणि और मागधी एक भाषा नहीं है। मगध देशको भाषाको मागधी और चाकेत अर्थात् पयोच्याप्रदेशको भाषाको 'मावेत' (मकट) कहते हैं। पाण्डितो'काहोंने लिखा है, कि मकटभाषा ही संस्कृत भाषा है। मागधी मकटभाषामें तथा पाणि मागधी और मकट इन दोनों'में दृश्य है। कुछ और बोधिमत्त्वों'को भाषा को पाणि है। यह मानवकी भाषा नहीं है। येप बुद्धिने मगधराष्ट्रमें वाच किया था, इस कारण बहुतों'ने मागधी, और पाणि इन दोनों'की एक भाषा माना है और बहुतों'ने पाणि मागधी इस नाममें पाणिभाषाका मूल्य किया है। किन्तु यह मत अमूल्य है। धर्मप्रत्यमें साफ साफ लिखा है, कि मागधीभाषा मानवकी और पाणिभाषा देव-ग्य तथा बुद्धग्यकी भाषा है।

इस मतके स्वल्प पर पाणिप्रत्यो'में निम्नलिखित आध्यात्मिका पार्क जातो है:—

“प्रथम बुद्धके आदिभोजके पहले स्त्रीरूपको पाया-
देवताने जगत्-सृष्टिको दृष्टा प्रकट की। इन्हीं
पहले जो जन्तुओंको सृष्टि करके उनका भोजन भोजन
नाम रखा। उन्होंने जिन भाषाओंमें उन जन्तुओंका नाम
रखा या वही पालिभाषाका प्रथम प्रकाश है। अनन्तर
बुद्धोंने पालिभूत हो कर सभी भाषा पहचान को और
सभी भाषाओंको पहचानते उनका धर्म प्रचारित हुआ।

कुछ समय हुए, कुछ देवताने तो जन्तुओंको
सृष्टि की जिनमेंसे एक पुरुष, एक स्त्री और एक स्त्रीय
था। स्त्री और पुरुष दोनों ही स्त्रीयको छपा करते
थे। इस कारण स्त्रीयने स्त्रीयवशतः पुरुषको मार डाला।
उन पुरुषके ७ पुत्र और १ कन्या थी। मृत्युके पहले
तब पुरुष पायादेवताको प्रथम सृष्टि जो जन्तुओंको
सबसे सन्तानके समीप लाया था। सन्तानगण उन जो
जन्तुओंको साथ छोड़ा करते थे और उन्हें देख कर
जिन जो नामोंका उच्चारण किया था, वही मागधोभाषा-
को भित्ति है। अतएव मागधोभाषा मानवके उत्पन्न
हुई है। पहले ही कथा जा चुका है, कि पायादेवोंने
स्त्रिय जिन जो नामोंका उच्चारण किया था उन्होंने पालि-
भाषाको उत्पत्ति हुई है। सुतरां पालिभाषा देवभाषा है।

उक्त चर्चमें चर्चकारोंने पालि और मागधोभाषा पर
स्तर समेट दिखानेको लिये कः उदाहरण दिये हैं—

संस्कृत	पालि	मागधो।
मग	मस	मो।
सुव्रत	सुवस	मन्।
कुम्भ (ट)	कुम्भ	री।
पत्र	पस, स	संग।
मन्	सन्	मन्।
प्यास	प्यासको	यो।

उल्लिखित उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट प्रतीत होता,
कि मागधो और पालि एक भाषा नहीं है। बहूनीका
कहना है, कि मगधमें तीन चार भाषा प्रचलित थीं,
पालि उनमेंकी अन्यतम है। यह भाषा पहले नगदा
को, पोंडे नद्य बुद्धदेवने जब इस भाषाओंमें धर्मप्रचार
किया, तब यह प्रचार हो गई।

किर ‘प्रयोगसिद्धि’, ‘पट्टिसम्भवा चतुषाव’ ‘विमल’

चतुषाव’ पाणि पालि ग्रन्थोंमें वर्णित है, कि पालि और
मागधो एक ही भाषा है और वही जगत्को मूलभाषा
है। पालिमें ही चत्वार्यम्भ का ही उत्पत्ति हुई है।

कपायन (काश्यायन) ने इस भाषाके सम्प्रभवे
लिखा है—

“वा मागधी मूलभाषा नरा या आदिहिरा।

मागधा च अनुवृत्ताया मन्त्रुदा पालि पादरे ॥”

(कपायन)

जगत्में एक ही भाषा है जो सभी भाषाओं जड़
है। पहले हमने लिखा और कोहो भी भाषा न हो।
कल्पके प्रारम्भमें मनुष्य और ब्रह्मचर्यण इसी भाषामें
बोल-चाल करते थे। बुद्धगण भी इसी भाषाको ज्ञातमें
जाते थे। इसका नाम मागधो-भाषा है।

‘विमल’ चतुषाव’ नामक पालिग्रन्थमें निम्नलिखित
श्रुतिगो उद्धृत हुई हैं :—

‘सन्तान पितामाताको’ गोदमें प्रतिपालित होती
है। माता पिता यदि परिभाषकगण निम्नस्थानोंके
सामने तरह तरहको कथाएं बोलते हैं। सन्तान पिता-
माताके उच्चारित शब्दोंका बारम्बार सुन कर उन्हें ब्रह्म-
चर्यण करता है। इस प्रकार वे पिता माताके चतु-
स्वरूप पर सभी भाषा सीख लेते हैं। दमिस (द्राविड़)
देशीय स्त्रोत्रोंका साथ यदि अन्यदेशीय किसी पुरुषका
विवाह हो, तो दोनों ही संयोगमें जो सन्तान उत्पन्न
होगी, वह किस भाषामें बोल-चाल करेगी? यदि वह
सन्तान माताके समीप रहे, तो दामिल-भाषाओंमें और
यदि बचपन ही पिताके यज्ञमें पालित हो, तो अन्य
भाषाओंमें बोलेंगी। यदि वह सन्तान पिता और माता
किसीके भी समीप न रहे, तो ब्रह्मचर्यण मागधो भाषाओं
बोलेंगी। फिर भी, यदि कोई गिर निज मननमें रहित हो,
तो वह भी धारण पाप मागधोभाषा ही उच्चारण करेगा।
यह भाषा स्वयं और नरक सभी भयङ्कर प्रचलित है।
किरात, चम्बक, योगक, दमिस पादि और जो पठो-
रह भाषा प्रचलित है वे सभी ज्ञानक्रममें परिवर्तित
होंगे, पर मागधो भाषा स्थिर और अपरिवर्तनीय
है। ब्राह्मण और चार्मण्य इसी भाषाको ज्ञातमें जाते
हैं। बुद्धगणने भी इसी भाषाओंमें लिखितकको रचना की

है। मोहधर्मका निगूढ़ तत्त्व मागधोके सिवा और किसी भी भाषा में सुन्दररूपसे प्रकाशित नहीं हो सकता।

पालि और मागधी एक भाषा है वा नहीं, इस सम्बन्धमें कोई निश्चित भाषा तत्त्व प्रकाशित नहीं हुआ।

किन्नरान पालि मृत भाषा हो गई है। यहाँका वज्जना, महाप्राज्ञो आदि भाषा में पालिभाषाका निदर्शन लक्षित होता है। सिंहल, ब्रह्म, श्याम, चीन आदि देशों में आज काल इनके प्राचीन पालियन्त्र भाषिज्जत हो रहे हैं।

१८८० पोर १८८८ ई० में सम्पाट, १४वें जुई (Lui) ने महात्मा लालुवर (Laloubr) को दूत बना कर श्यामदेश भेजा था। इसी समय यूरोपवासियों ने सबसे पहले पालिभाषाका अनुमन्थान पाया। तभीसे इङ्गलैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, रूसिया आदि देशों में पण्डितगण पालिभाषा और बोद्धशास्त्र को कर समालोचना करते पा रहे हैं। ये लोग पालिभाषाके जिनसे पुनः प्रचार हो, इसके लिये विमोच चेष्टा करते हैं।

पालि (सं० छो०) पादशते इति पालपालने इच्छ (बाहुल्यकारकविशेषात्)। उ० ४१२८) १ कर्ण-मत्ताय, कानकी लो, कानके पुटके मोचिका सुकायम समझा। २ कर्णरोगभेद, कानका एक रोग।

पुटके जिस निचले भागमें छिद करके बालियाँ आदि पड़नी जाती हैं उसे पालि कहते हैं। कान छिदने समय सज्जनातावशतः यदि शिरादि बिह हो जाय, तो समये माना प्रकाशके उपद्रव होते हैं।

कर्णको पालिदेशमें जो सब रोग होते हैं, उनका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है,—वायु, पित्त और कफ इन तीनोंमें से दो पदवा मुखके कुपित होनेसे कर्णको पालिदेशमें माना प्रकाशके रोग उत्पन्न होते हैं। जैसे, उत्पाटक जिसमें शिराधराहट होती है, कण्डू जिसमें चुनमो होती है, चण्डिका जिसमें जगह जगह गठि-वी पड़ जाती है, श्याव जिसमें समझा खासा हो जाता है, छावो जिसमें बराबर चुनमो होती और पनवा बहा करता है।

उत्पाटक रोगमें—पराङ्, धुना, पढ़ार, पञ्चवर्गको

काल इन मुखकी जनके साथ एकत्र पोम कर प्रवेष्ट देने से पदवा इनकी द्वारा तेज पाक करने देनेसे ये सब रोग प्रशमित होते हैं।

श्यामरोगमें—राक्षा, श्यामालता, हरिद्रा, पनना-मूल इन सबका प्रयोग देनेसे पदवा पाक तेजका दवा-जार करनेसे श्यावरोग जाता रहता है।

कण्डू रोगमें—एकवर्ग, रसाञ्जन, मधु और चण्डकाँशी इन सब द्रव्योंको एकत्र पोम कर प्रवेष्ट देना होता है।

२ चण्डि, कौला। ३ पडकि, खेवा, कतार। ४ चह्रमोट। ५ आतश्मत्तु खो, वह चौरत जिनको दाढ़ीमें बांध हो। ६ पाल, किनारा। ७ सैतु, पुन। ८ क्षतिभोजन, वह बंधा हुआ भोजन जो काल या मद्यपारोको मुखकुलमें भिजता था। ८ प्रमंसा, तारोफ। १० लक्ष्म, गोद। ११ मोसा, बट। १२ मैङ्ग, बांध। १३ देग, बटभोई। १४ एक तीस जो एक प्रत्येक बराबर होती थी। १५ परिधि। १६ ऊँ या चौर।

पालि—राजपूतानेके बोधपुर राज्यका एक नगर। यह पचा० २५°४०' उ० पोर देगा० ७१°१८' पू० बाँदीनदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। जनसंख्या दस हजार से ऊपर है। पश्चिम राजपूतानेके मध्य यह एक प्रधान वाणिज्यस्थान है। पहले यह नगर दोबारने चिरा था, किन्तु राजपूत राजाओंके परस्पर युद्धसे यहाँ तत्काल नष्ट हो गया है। नगरको वर्तमान पाय दस लाख रुपयेकी है। १८८२ ई० में यह नगर राजपूताना-मानव संसदकी एक शाखासे संयुक्त हुई है।

पालि—१ पयोध्याके पक्षार्थन हरदोरे जिसात्तार्गन बाह्या-बाद तक्षोलका एक परगना। २५ परगनेके पूर्वकी कर गारा नदी बह गई है। नदीके चरमें पक्षोम, तमाऊ, साग पक्षोको पक्षम पक्षो व्यगतो है। परगनेका पन्थाय काल जगन्मये पूर्व है। भूपरिमाण ७१ वर्गमील है।

२ पक्ष तक्षोलका एक नगर पोर पालि परगनेका सदर। यह पचा० २०°२१' उ० पोर देगा० ७८°१३' पू० के मध्य अवस्थित है। देशीय राजाओंके समयमें यह

मयूरिगामी नगर था, जित्नु यमो दीनयो हो गया है।
यहां दो ममजिद और एक हिन्दू-मन्दिर है। गहरमें
मोटा जपड़ा लेंदर होता है।

पानि—कोय ज्ञातिको एक गाँवा। मानदह पञ्चनमें
इन लोमोका वास है। कोय देखो।

पानिक (मं० पु०) १ पनंग, चारपाई। २ पान हो।

पानिका (मं० स्तो०) पानिरेव, स्वामि कन् टा. प।

१ पयि, परदा कोना। २ कर्षण। ३ दधादि

दिहो, दहो पादि काटनेका जोहार। पर्याय—कुला-

जिना। ४ पाननकर्षी, पानन करनेवाली।

पानिगुग—मयूराके सेनानिवेशमे ३ मीलकी दूरी पर

पर्वतगत एक गण्डग्राम। यहां एक प्राचीन स्तूप है

जिसमें कितने पुरातन भग्नस्तम्भ और एक नागिनो-

मूर्ति पाई गई है।

पानिगञ्ज—पटना जिलेकः एक छोटा नगर। यह गोप-

नदीके किनारे अवस्थित है। यहां एक घाता है।

पानित (मं० लि०) गान-क। १ रचित, पाला हुआ।

(पु०) २ मोष्टुवभोय लृपभेद। ३ देगभेद। ४

गाछोटवृक्ष, महीड़ा। क्षिया टापू। ५ कुमागानुवर

मात्रभेद। ६ कायस्थोको उपधाविशेष।

पातितामा—१ मयूरमदेशके अनामंत काठियावाड़ मोहिन-

वार विभागका एक देशीय राजा। यह पचा० २१

२३ मे २१ ४३ व० पोर देगा० ०१ ११ से ०२ पू०के

मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २२८८ वर्गमील है

इसमें दक्षिणमें बड़ोदा राज्या, उत्तर, पूर्व पोर पश्चिममें

भीमनगर राज्या है। राजाकी मध्य को कर गतखीनदो

और समको गान्वा राजबन तथा ग्वाही बहतो है।

यहांका जनशायु शुद्ध है और खरका प्रादुर्भाव

पत्तना अधिक देवा जाता है। यहांके राजा मोहन-

राजपूत वंशके हैं। इन्हें ८ सन्यासो तोषे मिलतो

हैं और योगपुर जेनेका अधिकार है। १८०५ ई०में

राजा ठाकुर साधव पाँच वर्षको एक पुत्रको जोड़

परलोक सिधारे। तब तब राजकुमार खानिग न हुआ,

तब तब पातितामा-राज्य हटिम-गवर्णको देखरेखमें

रहा। यमो यो पातितामा राज्यमिहामन पर

मुभीतित है। इनका जन्म १८०० ई०को १२

पमिसकी हुआ था। ठाकुर साधव मोहन योवरादुर

मिहजो मानमिहजो इनका पूरा नाम है। जनमख्या

५८०० है। सब प्रकारका पनाज, ईप और इरे

यहांकी प्रधान वपन है। राजाकी धामदो मगभग

पात लाख रुपयेकी है जिनमें १०१४५ ५० बरोडा-

के गायबवाड़ पोर जूनागढ़के नवाबकी करमें देने

पड़ते हैं। राज्यकी मध्य पश्चारोहो पोर पदातिमेना

मिना कर ११३ है। १८०३ ई०में यहाँ एक कारागार

भी स्थापित हुआ है जिनमें २६ कैदो रखे जाते हैं।

राज्य भरमें १८ स्कूल पोर १ परवनाल है।

२ उक्त पातितामा राज्यका प्रधान नगर। यह पचा०

२१ २१ व० पोर देगा० ०१ ४३ पू०के मध्य, पचमहा-

वाटसे १२० मील, बड़ोदासे १०५ पोर बम्बईमें भी १०५

मील दूर गजुख्य नामक पहाड़के पाददेग पर अव-

स्थित है। जनमख्या १२८०० है। यह स्थान समुद्र-

पृष्ठमें १८०० फुट ऊँचा है। जंगलोंको जो पक्ष पवित्र

वर्त है, उनमेंसे गजुख्य सर्वश्रेष्ठ है। यहां तोषे-

हर पादिनायका मन्दिर है। गजुख्य पर्वतका लपरो

भाग मन्दिरसे विभूयित है। यहां सोमनाथ नामक श्री

मन्दिर है वह २१ मील दूरसे देखा जाता है। समय

समय पर यहां बहुतसे स्वक तोषेयतिो समागम होत

हैं। पादिनायका मन्दिर रहनेमें प्रायः प्रथित जैन तोषे

दगमकी इच्छासे कमसे कम एक बार यहां अवगत पाने

हैं। जैनमन्दिर जोड़ कर गजुख्य पर्वत पर हिन्दू

पौर सुखलमान पौर देहरका मन्दिर है। पर्वत पर

चढ़नेके लिये सोझो लगे हुई है। समो मन्दिर मगर

पत्थरके बने हुए है। इन सब मन्दिरोंका मियनमें पुष्क

पौर दस स्थानको प्राकृतिक गोभा देखनेमें मन पानन्द-

सागरमें मोता पाने लगता है। मियमाछानित् कार्गु-

रन् इन सब मन्दिरोंको गोभा देख कर विस्मय हो गये

ये पौर कहा भी था, कि हिन्दुधर्मि से सब मन्दिर बन-

वादेमें नूतनत्व पौर मियनमें पुष्कको जेना पराकृष्टा

दिव्यार है, वेसो यूरोपमें मधायुगके बादसे पौर

कमो भी नहीं देखो गई। गजुख्य देखो।

पातितामंदार (हि० पु०) एक ममीना पेड़। इसकी

शाखाएँ पौर टहनियोंमें काँसे रंगके कीटि होते हैं।

दमकी पत्नियाँ एक सोकके दोनों धोर लगनीं
धोर तीन तीन एक साथ रहती हैं । फूलके
दम छोटे बड़े धोर लमबिहोन होती हैं । यह पेड़
ब्रह्मान्तर्गत मनुष्य तभी पाम लगता है । मन्दाज धोर
बरगाम भी दमकी कहें जातियाँ होती हैं । पालिख देतो
पालिख (मं० स्त्री०) पलितख भाव; पलित-खज. १
केशकी शुभतादि. बालकी मकेतो। पलितख
बटूरदेशादि मन्दागादित्वात् खज. २ पलितके मयिकट-
देशादि ।

पालिधा (मं० स्त्री०) पारिमद्रुप, करकटका पेड़ ।
पालिन् (मं० स्त्री०) पालयति पालि-निमित्त । १ पालक;
पालन करनेवाला । २ रक्षा करनेवाला, रखनेवाला ।
(पु०) ३ प्रदुकी पुत्रका नाम ।

पालिन्द (मं० पु०) पालयतीति पालि बाहुलकात्
किन्द च. । कुन्दक, कुँबू नामक सुगन्ध द्रव्य ।

पालिन्दो (मं० स्त्री०) पालिन्द गौरादित्वात् डोप. १
श्यामानता । २ भागी, वशी । ३ मृत चपराजिता । ४
प्रायमाणा जाता । ५ मानविकाव्रिता । ६ कारयेक,
करेला ।

पालिया—१ पयोपानके चिरो जिलासगत लम्बीपुर तह-
सीलका एक परगना । यह सुहेन धोर मारदा नदीके
बीच अवस्थित ।

२ लल परगनाका प्रधान नगर धोर सदर । यह
पचा० २५° २६' उ० तथा देगा० ८०° ५०' पू० के मध्य अव-
स्थित है । यहाँ दो हिन्दू-मन्दिर हैं ।

पालियाह—बम्बईप्रदेशके अन्तर्गत काठियावाड़के अन्तर्गत
वर विभागका एक सुदूर देशीय राज्य । परिमाण
फल २२० वर्गमील है । राज्यका राजस्व ४००८) रु०
है जिनमेंसे ८८०) रु० अंगरेज गवर्मेण्टको धोर ३२०) रु०
जुनागढ़के नवाबको करमें देने पड़ते हैं ।

पालिध (मं० स्त्री०) १ चिकनाई धोर समक, पोप ।
२ रोगन या ममता जिसको अगानेवे चिकनाई धोर
चमक पा जाय ।

पालिधायन (मं० पु०) मोक्षधर लविभट ।
पानो (मं० स्त्री०) १ धानिख देसो । (स्त्री०) धानि-
कादिकारादि का कोप. २ युवा । ३ धर्मश्रुयोपिन् ।
४ प्रेमी । ५ दयाली ।

पानो (हि० स्त्री०) १ वह स्थान जहाँ तोतर, पुनपुन,
बटेर पादि पक्षी जड़ाए जाते हैं । २ बरतनका टकर,
पारा, परई । ३ एक प्राचीन भाषा जिसमें सोरठ
धर्मग्रन्थ लिखे हुए हैं । बिसेर विवरण पालि ग्रन्थमें देखा ।
पानो—पयोधगाके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर । प्रसिद्ध
धोनपरिवाजक यूयनपुत्रने निवा है, कि यहाँ
युवराज सुदानने अपने पिताका जाये मालाजकी दान
कर दिया था, इस कारण वे पितासे तिरस्कृत धोर
निर्वासित हुए थे । नगरके समीप एक मन्दाराम है
जिसमें १५ बौद्ध-पुरोहित रहते हैं । ये सभी धोनपान-
मतावलम्बी हैं । पहले ईश्वर नामक एक पाचार्यने
यहाँ 'संयुक्तपविषम' इत्यादि ग्रन्थ प्रचलन किया । नगर-
के पूर्वद्वारके बाहर एक धोर मन्दाराम था जिनमें
५० मठवाला पाचार्य रहते थे । यहाँ राजा अशोकने
एक स्तूप बनवाया था । पालिनगरमें प्रायः ४ मील
उत्तर-पूर्वमें दयालीक पहाड़ है । सुदान पितासे
निर्वासित हो कर इसी पहाड़ पर रहते थे ।

पानी—बिलासपुर जिलेमें रतनपुरमें १२ मील उत्तर-
पूर्वमें अवस्थित एक सुप्रसिद्ध । इन पानके दक्षिण-
पूर्वमें जो पुष्करिणी है उसके किनारे अनेक प्राचीन
मन्दिर प्रतिष्ठित हैं । अधिकतर मन्दिर पानी तहस-
तहस हो गया है । सभी मन्दिर मन्त्रालय १०वें
शताब्दीमें बनाये गये थे । मन्दिरप्रायः द्वि-द्वितीयो
प्रतिमूर्ति खोदित है धोर मन्दिरके मध्य गिर, मग्रा
तथा विष्णुको मूर्ति स्थापित है ।

पानी—कोशमें पौड़ी दूर पूरव गया जामिके रास्ते पर
अवस्थित एक सुप्रसिद्ध । इस पानके पूर्व भागमें दो
मन्दिरोंका अन्नावशेष देखनेमें आता है । ये दोनों
मन्दिर एक समय अत्यन्त प्रकाष्ठ थे । यहाँ जो गिर-
लिङ्ग है उसको परिधि ५ फुट ०.२५ है । पानके
दूरमें भागमें पानको दो प्रतिमूर्ति धोर ए०८ मीस,
मन्दिरका अन्नावशेष देखनेमें आता है । ४००) ११

पानी—धोषपुर राज्यके अन्तर्गत एक नगर । १४ प्राय-
यह नगर प्राचीनवेष्टित था, किन्तु पानी टूट उभित करने-
है । पानीनगर दो भागोंमें विभक्त है । एक भाग धोर
जुनापानी या प्राचीनपानी धोर दूसरे भागमें ।

पावनगढ़—ब्रह्मदेवदेवके अन्तर्गत जोधहापुर राज्यमें एक पावनगढ़ दुर्ग । १८४४ ई०में अंग्रेजोंने इसे अपने अधिकारमें लिया ।

पावनता (सं० श्लो०) पवित्रता ।

पावनत्व (सं० श्लो०) पावनत्व भावः, त्व । पावनका भावः, पावनका धर्म ।

पावनध्वनि (सं० पु०) पावनः पवित्रजनको ध्वनिर्गन्ध । १ गङ्गा । गङ्गाको ध्वनि बहने पवित्र मानो गई है । २ पवित्र ध्वनि ।

पावना (हि० पु०) १ दूधरेसे रूपया आदि पानिका एक, लहना । २ रूपया जो दूधरेसे पाना हो, एकम जो दूधरेसे मूल्य करनी हो ।

पावनि (सं० पु०) पवनस्यापत्यं इव । पवनपुत्र, हनुमान् आदि ।

पावनी (सं० श्लो०) पावन-शोष । १ करोतरी, चङ्क । २ तुलसी । ३ माँस, माय । ४ गङ्गा । ५ गङ्गाका पंग-विषय । गङ्गाके स्त्रोत सात घोर विभक्त हैं जिनमेंसे ललिनी, कादिनी और पावनी पूर्वकी घोर चली गई है । ५ गाङ्गोदोपस्थित नदीविशेष, गाङ्गोदोपकी एक नदीका नाम । (त्रि०) ६ पवित्र करनेवाली, शुद्ध या साफ करनेवाली । ७ पवित्र, शुद्ध, पाक ।

पावमान (सं० त्रि०) पवमानमधिकृत्य प्रवृत्तं चण् । १ पवमान यज्ञादिके अधिकारमें प्रवृत्त मूल । किया होय । २ अटक भेद, धेदकी एक प्रथा ।

पावसुहर (हि० श्लो०) गाङ्गजङ्घि समयका मोनेका एक निष्ठा । इनका मूल्य एक पयाको या एक सुहरका योगाई होता था ।

पावस (हि० श्लो०) पावस देवी ।

पावसी (हि० श्लो०) एक दण्डका चौलाई निष्ठा, चार पानिका निष्ठा, चवथी ।

पावस (हि० श्लो०) नदीकान्त, पावन भाटीका महीना, बरमात ।

पावा—गोरखपुर जिलेका एक बड़ा गांव । यह गण्डक-नदीसे १२ मील पश्चिम और गोरखपुरसे ४० मील उत्तर पश्चिममें अवस्थित है । यहां कुछ भगवान् कुछ दिन रहे हैं और कुछ दिन निर्वाचके पोछे पावाके लोगोंने भी

कुछके गोरखा पंग मिला था जिनके उत्तर उत्तमि एक स्तूप खड़ा था । यह गाँव पाव मो इसी नामसे पुकारा जाता है ।

पावागढ़—ब्रह्मदेवदेवके अन्तर्गत पावनहालका एक पावनगढ़ दुर्ग । यह पचा० २२ ३१ स० पो० दिगा० ७५ ११ पू०, बड़ोदामे २८ मील पूर्वमें अवस्थित है । पर्वत बड़े ठण्डि पावत है, इस कारण दुर्गमें प्रवेश करना बहुत कठिन है । पर्वतके उत्तरी भाग पर कुछ हिन्दू-मन्दिर और दो बस्तरवाचारे घेदित मुसलमान-मन्दिर हैं । प्राचीन कोटिल निविमें यह पार्श्व दुर्ग 'पावकगढ़' नामसे प्रसिद्ध है । राजपूताने के बाद कबिसे समयमें तुषार-पंगोय रामगोड़ पावकगढ़के राजा थे । १३०० ई०के आरम्भमें चौहान राजपूतोंने इस दुर्ग पर अधिकार किया था । अहमदाबादके मुसलमान राजाधर्मी इस दुर्गकी जीतनेके लिये अनेक बार चेठा की थी, किन्तु वे सतकाय न हो सके थे । अन्तमें १४८४ ई०की तुषाना महरमुदने पावः दो वर्षतक चेरा डाले रहनेके बाद इसे जीता था । १५०३ ई०में यह दुर्ग पञ्चवर्षके बाद लगा । १७२० ई०में लखनौने इस स्थान पर महारा अधिकार लगा लिया । पोछे यह दुर्ग निम्निकाके अधिकारमें आया । निम्निकावे पंगरेजोंने १८०१ ई०में इसे जीत लिया । पोछे १८०४ ई०में यह पुनः निम्निकाको छोटा दिया गया । अन्तमें १८५१ ई०की पावनहालका शासन-भार ग्रहण करनेके समय यह किरने पंगरेजोंके हाथ लगा । पावनहालमें इस स्थानको पावधवा गाँवत रहनेके कारण बड़ोदामे पंगरेज कर्मचारी यहाँ आकर रहते हैं ।

पावापुरी—पटना जिलेके मध्य एक सुन्दर ग्राम । यह जनेका पति पवित्र तीर्थस्थान है । जनेगावमें यह स्थान पावापुरी नामसे प्रसिद्ध हुआ है । जनेके मंदिर तीर्थहर महावीर ज्योतिर्देवी स्थान पर निर्वाण प्राप्त किया था । महावीर देवी । इसीसे यहां अनेक जैन तीर्थयात्री समागम करते हैं । यहां दो जैन-मन्दिर हैं जिनमेंसे एक पुस्तकालयके मध्य अवस्थित है । मन्दिरमें जनेके लिये पुन बना हुआ है । दोनों मन्दिर पाव निध रोजे पर भी इनमें बहुत-सी पति प्राचीन प्रति-मुक्ति का देवी जाती हैं ।

पावाम (स० पु०) सुदृढपक्ष ।

पावित (स० क्लो०) दूषित ।

पावित्रायण (स० पु० क्लो०) पावित्रायण कथनोपाय ।
पञ्चादित्वात् फल् । पावित्रायणिका गोत्रायण ।

पावी (हि० क्लो०) एक प्रकारको मीना । इसको लम्बाई १०-१८ पञ्जुन होती है । यह ऋतुके अनुसार रंग बदला करती है और पंजाबके पतिरिक्त भारे भारतमें पाई जाती है । यह प्रायः ४ या ५ फीटें देती है ।

पाभोरवौ (स० क्लो०) १ शोधयित्वा । २ दिव्यावाक ।

पाप्य (स० त्रि०) पावित्राहं, पाक करने लायक ।

पाप (स० पु०) पापने यज्जन्तंनेति पाप-पञ्च । १ शब्द-भेद, पाप्य-जातियोंका एक प्रकारका युद्धास्त्र । २ शब्द-ययोग धनुर्वेदमें लिखा है—

“पापः सुगन्धवशो लोहपापुस्तिस्रोपश्वत् ।

प्रादेवतरिषिः शीघ्रमुत्तिष्ठामरणादिभः ॥”

इसके प्रथम पक्षि सुष्ण पक्ष लोह द्वारा निर्मित, द्वितीयपक्ष, प्रादेवपरिचित परिधिपक्ष और तिसरक गुणका द्वारा सुगोमित रहने है ।

पान्थेय धनुर्वेदमें पापक जो लक्षण है, वह देखनेसे साफ साफ प्रतीत होता है, कि यह पापाम्ब दो प्रकारका है । महाभारतादि ग्रन्थमें भी पापाम्ब नाम और पाप इन दो पृथक् पापाम्बोंका उल्लेख है । अतएव वेदग्रन्थानां पापाम्ब और पान्थेय धनुर्वेदोक्त पापाम्ब भिन्न है, इनमें संदेह नहीं ।

पान्थेयधनुर्वेदोक्त लक्षण—

“द्वयदशो मवेत् पाथो दूतः कुरुगस्तथा ।

शुभ्रतां गन्धुप्रमाणान्नमरणावशेषनाम् ॥

अथेवां सुदृढात्पक्षं दृढतं परिवेष्टितम् ।

तथा त्रिंशद्वयं पाथं पुनः कुर्यात् सुवर्तितम् ॥”

(अभिनवु०)

पापको दग हाथ मन्था बनाया चाहिये । यह हथ पाथो गोत्र रहे । इसका मुख काष्ठीरमम्, सुष्ठु नामक पक्षी, पक्षिमेषके श्वत्, पापाम्बक पक्ष बा चर्मविशेष द्वारा प्रसृत हो । एतद्विषय पन्थाय दृष्ट श्रुतिसे हमें तीव्रार कर भवते है । मुख वारोक ३० तन्तुओंकी भस्मीभूति पाक कर यह प्रसृत करना होता है ।

पापाम्बको क्रिया इस प्रकार है—युद्धकालमें हम पापको कण्टके पर रखे । प्रयोगके समय कुलाकृति करके मन्थकके लक्षण एक बार गुमा कर लिये करे । हम पाप प्रयोगकी तीन प्रकारकी गति है—मन-गन्ध, प्रथम और प्रव्रजत । हम सब गतियों द्वारा दृष्टानुसंग वस्त्रन करके समीपमें लाया जाता है । हम पन्थाय और भी श्वारक प्रकारकी क्रियाएं हैं, यथा—प्राहृत, पवाहृत, गृहीत, लघुमंजित, कर्षचित्त, पक्षचित्त, मन्थारित, विधारित, श्रुतपात, गजपात और पाहपाह । वेदग्रन्थानां मतसे—

“प्रमाणं वेदग्रन्थं कर्तव्यमेवेति ते ततः ।

योगः पापाम्बिताः लोके यथाः सुदृढपापिताः ॥

(वेदग्रन्थानां मतसे)

पक्षी प्रसारण, योके समीप शत्रुकी बैठन, पन्थार पन्थान्तर द्वारा कर्तन, पापको योके तीन प्रकारकी क्रियाएं कहे गये हैं, किन्तु ये सुदृष्ट योधाओंकी पापिता हैं ।

एक और प्रकारका पाप है जिसका युद्धग्रन्थ-विशारदोंने पांच प्रकारके कार्य स्थिर किये हैं । यथा—कुरु, पावत, विशान, तिरक, और श्वाभित । इसादिके परिशिष्टमें योगनमगास्त्रोक्त पापका विविध विवरण लिपा है ।

२ मृगविहगादि वधनरम्भ, पक्षपक्षियोंकी कंकानिका काज या फंदा । १ शत्रुमात्र, छोरा, रहती । ॥ शब्दके बाद पाप शब्द रहनेमें उनका पक्ष मन्थ होता है, यथा—कुरुपाप कुरुमन्थ । कर्षशब्दके बाद पाप शब्द रहनेमें शोभमांध होता है, यथा—कर्षपाप शोभमन्थ यथात् उद्यमकक्ष । निम्न अर्थमें काष्ठदि शब्दके पश्चात् पाप, प्रत्यय लगता है । यथा—काष्ठपाप पक्षकट काष्ठ । १ योगविशेष । पक्ष-पक्षराम रागियोंके रहनेमें पापाम्ब योग होता है ।

स्वप्नमें पाप देखनेमें पाप, रोग और धनपक्ष होता है और रोगो यदि पादस्वप्न देये, तो हमकी शत्रु होती है ।

“कारोद्यमनारिष्वपानाम्बं वक्रपक्ष पादस्वप्नवशा प्रवर्तते ।

तत्परादे रोगपक्षवत् वा रोगी मृगं वा तन्तुमृगिहटम् ॥”

(श्रुति श्रुति १५० १ अ०)

धनिये घोर कोमोके माथ पिलरोग तथा पोपर घोर
मधुको माथ नेमन करनेसे श्रेष्ठा पादि रोग दूर होती
हैं। अथ धर्मकारिने इस औषधका उपदेश दिया है।

(रसेन्द्रसार्यं अमीर्याभिः)

पाशुपतव्रत (मं० लो०) पाशुपतं पशुपतिमन्त्रं व्रतं ।

१ पशुपतिमन्त्रोद्य व्रतविधिः ।

“यथा वसुपतिर्निर्वाहं हारा सर्वमिदं” जगत् ।

न मित्येते पुनः सोऽपि यो नित्यं नवमाचरेत् ॥

इदं जगत्पुनः पापं पूरयन् कृतघ्न्य भवत् ।

तं पाशुपतं नाम कृत्वा इति द्वितीया ॥”

(अग्निपु० पाशुपतव्रतदानाध्यायः)

पाशुपतव्रतामुष्ठानसे इदं जगत् घोर परजगत्कृत पाप
विनाश होती है। यह व्रत यदि करना हो, तो द्वादशोंके
दिन उपवास, द्वादशोंके दिन ध्यायित अक्षय, चतुर्दशों-
के दिन नक्तभोजन, दोहे समावस्थामें यह व्रत करे।
इस व्रतमें सुवर्ण, रौप्य अथवा तांब्र दाहा रूप प्रभुत
करके सुवर्णका पत्र बनाये। उस पत्रके ऊपर सम-
घोर मन्त्रोक्तको मूर्ति चित्रित करके यथाविधान पूजा
करे। पूजादिके शेष होने पर निम्नलिखित मन्त्रमें
प्राथम्य करना होती है। मन्त्र यथा—

“मं गावर महादेव सर्वलोक वरावर ।

कहि मे सर्वपापानि पूजितिरिह पंचर ।

शंकाय नमस्तुभ्यं सर्वपापहाय न ।

यथा मम न पश्यामि तथा मे कृष्ण शंकर ।

धर्मदाता यथा हाम्यो न पश्यामि कदाचन ।

मन्त्रजितो यथा मन्त्रो तथा मे कृष्ण शंकर ॥

मंगलार प्रसादीश पशुपत नमस्तु ।

श्रीकृष्ण श्रीकृष्णस्वमुवाकान्त नवोऽस्तुते ॥”

इस प्रकार माथंगा करके ब्राह्मणकी हथादि दान
करना होता है। इस व्रतके करनेमें किसीकी भी यम-
हारका भय नहीं रहता। इस व्रतामुष्ठानाके समो
माघ दूर होती है घोर धनमें उन्हें खर्गको प्राप्ति
होती है। (अग्निपु० पाशुपतव्रतदानाध्यायः)

शिवपुराणकी बाहुमंजिहामें लिखा है—

“हृत्वा यं प्रवरपानि धर्मापविष्टमनम् ।

तत् पाशुपतं ध्येयमर्चयेदिति श्रुत्वा ॥” (हिरु०)

चेतमात्रकी योग्यतामें यह व्रत करना होता है।
यथाविधान मन्त्र करके उसीके चतुर्भार शिव-पूजा घोर
होमादि करने होती है। होमावसान पर होमकी मरम
घरीरमें अक्षय लगाये। यह व्रत पापनाशक भागा
गया है।

शिवपुराणकी बाहुमंजिहामें पूर्वखण्डके २८वें
पाद्याधमें इस व्रतका विषय विवरण लिखा है। विष्णु
हो जानेके भयमें वह यहाँ नहीं लिखा गया।

२ योगविधौ । इस योगका आर्य्य करनेमें
शेष हो मुक्तिप्राप्त होता है। शिवपुराणमें लिखा है,
“अपि योनि बाहुषे पूजा या, योष्ठ तत्त्वं क्या है ? जसने
करनेमें मोक्षकी प्राप्ति होती है।” इस पर बाहुने उत्तर
दिया था, “पाशुपत योग ही श्रेष्ठ है। पाशुपत योगी
मह प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त होते हैं। पशुपति शिव
को एकमात्र परम तत्त्व है। ये भालान् मोक्षपद है।
क्रिया, तपस्या, अथ, ध्यान घोर ज्ञान इन पांच कर्मों
द्वारा समकी प्राप्ति होती है। क्रियादि पंच कर्म द्वारा
इन्हीं प्राप्त कर सकने पर ये एकमात्र ज्ञानमन्त्र है।
यह ज्ञान परीक्ष घोर अपरोक्षके मंदमें दो प्रकारका है।
इस मतमें श्रुतिपतिवादिन परम घोर अपरम भेदमें
धर्म भी दो प्रकारका है। इन दोनोंमें योग ही परम-
धर्म है, तद्विषय धर्म अपरमपदवाच्य है। आगम
दो प्रकारका है, श्रौत घोर स्मृत्योत। इनमेंसे जो
श्रुतिसारमय है, वह श्रौत घोर तद्विषय स्मृत्योत। वह,
दक्षोक्त, अगस्त्य घोर उपमन्यु, इन चार परमपि योगी
मुखागममें पाशुपत ज्ञानका उपदेश दिया था। महा-
देवने अथ उन मन्त्रोंमें बाहुमंजिहामें जो कर उन
मन्त्रोंके द्वारा इस मन्त्रका उपदेश दिया। इसीमें यह
पाशुपतयोग सर्वश्रेष्ठ है।

यह पाशुपतयोग सामाजिकमय है जो अथ शिवमें
कीर्तित हुआ है। इस योगामुष्ठानमें शेषो प्रसा
उत्पन्न होती है। प्रसाके उत्पन्न होनेमें अति
श्रेष्ठ ज्ञानप्राप्त होता है। जब शिव समके प्रति प्रसन्न
होते हैं, तब योगी मुक्त हो कर शिवके समान हो जाते
हैं। शिव, अर्चकार, ब्रह्म, विष्णु, वितामह, संसार-

है। किसीका यह भी मत है, कि पदार्थसमूहके तत्त्व निर्वाचक शास्त्रका नाम दार्शनशास्त्र है (Philosophy is the thinking consideration of things)। किसी किसी सम्प्रदायके मतमें दार्शनशास्त्र विज्ञानशास्त्रसमूहका सामान्यविषयक शास्त्रविशेष है (Philosophy is the science of sciences i. e. Systematiser of sciences)। दार्शनिक कोमत (Comte) और हर्बर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer) को ज्योत्सु संज्ञा पर चयना चयना दार्शन बना गये हैं। कोमन-दार्शन विज्ञानसमूह स्वरविन्यासके सिवा और कुछ भी नहीं है। स्पेंसरने भी सामान्यविज्ञान मतका व्यवस्थान करके विज्ञानकी भित्तिका जपर अपने अपने दार्शनको भित्ति स्थापन की है। दोनों दार्शनिकोंने कोई भी पतौन्दिय पदार्थके अस्तित्व या उक्त पदार्थके अस्तित्व विज्ञानशास्त्री नहीं है। अन्तर्ध्यात स्पेंसरका दार्शनिक मत है। वे जागतिक व्यापारके प्रभावानमें एक महा-शक्ति (Force)-का अस्तित्व स्वीकार कर गये हैं। किन्तु इस महाशक्तिकी अर्थात् प्रज्ञात और अज्ञात (Unknown and Unknowable) बातभावा है। कोमत ऐसी किसी भी पतौन्दिय शक्तिकी स्वीकार नहीं करते। उनके मतमें ज्ञान प्रत्यक्षके मध्य सोमावद है। कोई कोई सम्प्रदाय मनोविज्ञानको दार्शनशास्त्र ही एक अर्थोंमें रख कर कहते हैं, कि मनोविज्ञान (Psychology) "ज्ञानतत्त्वका पदार्थ" है और उक्त शास्त्रकी सीमा की ज्ञानकी सीमा निर्देश करती है। ये लोग Metaphysics-की आवश्यकता स्वीकार नहीं करते। दार्शनिक द्रष्टा और तत्त्वसिद्धि पशुमानो अनट्ट-वाट्सन इस मतके प्रचार परिशेषक हैं। इकाटिंग दग नके प्रधान छल्लोयक दार्शनिक हेमिल्टन (Hamilton) अपने Metaphysics नामक ग्रन्थमें मनो-विज्ञानकी दग नशास्त्रका समुपपन्न बतला गये हैं। हेमिल्टनका दार्शनिकमत वास्तववाद (Natural Realism) होने पर भी वे दार्शनशास्त्रके तत्त्वनिर्वाच-विषयक अर्थ (Ontology or Metaphysics)का आवश्यकता परस्वीकार नहीं करते। इन्होंने अर्थ दार्शनिक सम्प्रदाय (English School of Philosophy,

the Empirical or the Sensational School as represented by Hume and Mill) प्रधानता पञ्चेववाद (Agosticism)के जपर प्रतिष्ठित है। यहाँ उनके मतमें इन्द्रियज्ञान (Sensation)की समष्टि नहीं है, ऐसा तत्त्वनिर्वाचक कोई शास्त्र (Metaphysics) नहीं हो सकता। इसीमें अनेक अर्थमें अन्तिम-ने इन्होंने अर्थ दार्शनको मनोविज्ञानके अन्तर्गत ले लिया है। अर्थनदेशीय दार्शन इसका विरोध भाव-पक्ष है, प्रधानतः अर्थन तत्त्वनिर्वाचविषयमें ही (Ontology) नियोजित हुआ है। अतः अर्थन दार्शन दग नशास्त्रके प्रतिपाद्य विषयमें विभिन्नमत प्रचलित है।

इस समस्त विरोधो मतसमूहके अर्थ तथा उनके सामान्य विधानकी चेष्टावे ही दग नशास्त्रकी व्यवधि और परिपुष्टि साधित हुई है। दग नशास्त्रकी व्यवधि का नाम इस प्रकार है—अथ किसी दार्शनिक मत-विशेष का प्रचार हुआ, तब ही एकदेशदमि लवके निये उक्त मत-का विरोधो मतवाद अस्थापित हुआ है। अतः दोनों मतके एकदेशदमि लव-खण्डन और उनका सामान्य विधान करके मतान्तरको घटि हुई है। जग-शास्त्रकी समालोचना कर देखनेमें मालूम पड़ेगा, कि व्यवधिका नाम ही इस प्रकार है। अर्थात् और मतका अन्तर्ध्यात रहने पर भी दग नशास्त्रका प्रतिपाद्य क्या है, इस अर्थमें विभिन्न सम्प्रदायके मध्य विरोध प्रभेद नहीं देखा जाता।

विज्ञान और दर्शनशास्त्रका प्रभेद।

विज्ञान और दार्शन दोनों शास्त्रोंके आलोच-विषयमें क्या प्रभेद है, यह मालूम होनेसे ही दोनोंकी व्यवधिता जानी जायगी।

विज्ञानका आलोच विषय क्या है? जैन और नहुप्रकृति को विज्ञानका आलोच विषय है। यह व्यापारजडमात्रक अर्थात् जैन और नहुप्रकृति ने कर गठित है। इसकी आर्थोवलो अनात्म नियमाशुसार साधित होती है। विज्ञान इस प्राकृतिक नियमोंका पारिष्कार है। यह उनके कार्यप्रणालीविषय और उक्त नियमोंको ही अनात्मतामें माननेको आनीय व्यवधि-म अनात्मता पद्विज्ञाता है। अतः, अर्थन, जैन और

है। किमोका यह भी मत है, कि पदार्थ समूहके लक्ष्य निर्वाचक शास्त्रका नाम दर्शनशास्त्र है (Philosophy is the thinking consideration of things)। किमो किमो सम्प्रदायके मतमें दर्शनशास्त्र विज्ञानशास्त्र समूहका सामान्यविधायक शास्त्रविशेष है (Philosophy is the science of sciences i. e. Systematiser of sciences)। दार्शनिक कोमत (Comte) और हर्बर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer) को ज्योत्सव संज्ञा पर चपला चपला दर्शन बना गये हैं। कोमल-दर्शन विज्ञानसमूह श्रवणविज्ञानके सिवा और कुछ भी

(Special Science) के अधिकार भुक्त है, उक्त प्रमाण-विषयोभूत व्यापारों (Facts) के प्रति प्रयत्नः लक्ष्य करते हैं। उन सबके ऊपर निर्भर करके उनके कार्य-कारणसम्बन्ध और जिन सब प्राकृतिक शक्तियोंमें उक्त व्यापार सम्बन्ध होते हैं, उनका भी निरूपण करते हैं। प्राकृतिक व्यापारोंके विज्ञानागुणोद्दिष्ट कार्य-कारण-सम्बन्धका निरूपण व्यतिरेको युक्ति (Induction) के माध्यमसे साधित हुआ करता है। सुतरां देखा जाता है, कि जड़विज्ञानकी उत्पत्ति प्रत्यक्षके ऊपर निर्भर करके ही साधित हुई है।

मनोविज्ञान (Empirical Psychology) की उत्पत्तिका क्रम भी वही प्रकार है। इस शास्त्रमें मनकी परोक्षद्वय कोई पदार्थविशेष (as super-sensuous object or noumenon) न मान कर चक्षुष्यान्व दृश्यव्यापारदाय (as sensuous object or Phenomenon) माना है। मनका अव्यवहार (State of Consciousness) प्रयत्नः परीक्षण करके जिन किम नियमके अनुसार उक्त व्यापार निर्वाहित होता है, उनमें सम्बन्धमें अनुसन्धान और पालोचना की गई है। मनकी गति और मानसिक विकासका क्रम (Development of mind) जिन प्रकार है, मानसिक उत्पत्ति किस किस चरित्रके माध्यम है, मनकी क्रियाएँ किस किस नियमके अधीन हैं, इन सब विषयोंकी सीमांश मनोविज्ञानका प्राचीन विषय है। जिन परीक्षाप्राप्तकी (Experimental) का प्रावण करके

the Empirical or the Sensationist School as represented by Hume and Mill) प्रधानतः पन्थेयवाद (Agosticism) के ऊपर प्रतिष्ठित है। सुतरां मनके मतमें इन्द्रियज्ञान (Sensation) की समष्टि नहीं है, ऐसा तत्त्वनिर्वाचक कोई शास्त्र (Metaphysics) नहीं हो सकता। इसीमें चनेत्र जर्मन पण्डितों ने दृष्टान्तद्वय दर्शनकी मनोविज्ञानके पक्षपात ले लिया है। जर्मनदेशीय दर्शन इसका विरोध भाषा पक्ष है, प्रधानतः जर्मन तत्त्वनिर्वाचकविषयमें ही (Ontology) नियोजित हुआ है। अतः उस देशमें दर्शनशास्त्रके प्रतिपाद्य विषयमें विभिन्नमत प्रचलित है।

इस समस्त विरोधो मतसमूहके संघर्ष तथा इनके निष्कर्षों - मनकी चेष्टासे ही दर्शनशास्त्रकी उत्पत्ति शास्त्रमें पालोचित हुई है। दृष्टान्तशास्त्रकी उत्पत्तिका शास्त्रका नाम शरीरविज्ञानसमूह (as biological psychology) एवं शरीरविज्ञान मनोविज्ञानशास्त्रके सहायका विषय इसके अधिकार-भुक्त है।

मनोविज्ञानशास्त्रके सिद्धान्तोंके सम्बन्धमें मतभेद नहीं रहने पर भी भिन्न भिन्न व्यक्तियोंके दार्शनिकोंने उक्त सिद्धान्त भिन्न भिन्न भावमें प्रकट किया है। जड़वाद पण्डितोंमें (Materialists) मनकी जड़का रूपान्तर माना है। सुतरां उनके मतमें शरीर और मनमें कोई प्रकृतियुक्त भेद नहीं रह सकता। मानसिक शक्ति (Mental Energy) जड़ोपशक्ति (Physical Energy) के उत्पन्न हुई है। मन मस्तिष्कका व्यापार-मात्र (A function of the brains) है। मनो-विज्ञानके सिद्धान्तसम्बन्धमें पर्यस्परानुशील रह सकता, किन्तु मन जड़का रूपान्तर है, ऐसा बहुतेरे दार्शनिकोंका नहीं करते। मध्यजगत्वादी दार्शनिकगण (Realists) शरीर और मनकी घनिष्ठताके सम्बन्धमें सन्देह ही नहीं करते, पर दोनोंके तात्त्विक एकत्व (Essential identity) सम्बन्धमें उन्हें गूढ़तर प्राप्ति है। उनका कहना है, कि मन जड़में उत्पन्न नहीं होता, दोनोंका प्रभेद प्रकृतियुक्त है लेकिन देह और मनमें क्रियागत वृत्ति देयः जानो है, उनका

कारण दुर्लभ और सरलाने कहायोग है। हेतु यो। मनका सम्बन्ध किम प्रकार स्थापित हुआ है मन-माध्यमों को भिन्न भिन्न दार्शनिक मत है, यह पद-स्थान परीक्षित होता है।

कमोचन या समिपति (Evolution) काटोके मानने मन जगद्विज्ञानका एक स्वर या मापान है। प्रकृतिशास्त्रमें उच्चनिर्माणके मध्य स्तरों भी जगद्विज्ञान नहीं है। जड़में उद्भिद्, उद्भिद्में प्राणी, प्राणी-जन्तु (Life) में मनोजन्तु (Mind) का विकास प्राग्वहिक रूपमें साधित हुआ है। दार्शनिक दर्शक स्वभावमें प्राणि जगद्विज्ञानका एक दर्शन (Synthetic Philosophy) के पानर्तक मनोविज्ञान नामक (Principles of Psychology) पद्धति जिस प्रकार उत्पत्ति के स्तरों अनुसार मनका विकास साधित हुआ है, उसे दिधानिकी चेष्टा की है। समिपतिवाद (Evolution Theory as held by the Materialists) को यदि माय मान लिया जाय, तो जड़में मनका विकास है, यह सिद्धान्त प्रयोगों के लिये करना पड़ेगा। स्वभाव परमिपतिवादों को भी पर उक्त मतका सम्पूर्ण रूपसे सम-र्थन नहीं कर सकते। अन्तराली स्वीकार किया है, कि मनोजन्तु और जगद्विज्ञानमें जगत्तक सामान्यता काको है। एकसे दूसरे के लक्षणसम्बन्धमें कुछ निर्यास नहीं किया जाता। मैकिन पद्धति दर्शनमें उन्होंने यह दिखवाया है, कि जगत्तक मनो स्तरोंमें उत्पत्तिका क्रम एक मात्र है। प्रकृतिशास्त्र और मनोशास्त्रों की उत्पत्ति एक ही प्रवाहों के प्रसरण पर साधित हुई है। किन्तु मन और जड़ दोनोंमें प्रकृतिगत कोई सामान्यत्व विद्यमान नहीं किया जाता। एकसमि (Identity) और टिन्डल यदि पण्डित जड़वादों पर जगत्तक उक्त मतका सम्पूर्ण रूपसे समर्थन नहीं करने। विभीत जड़में मनकी उत्पत्ति हुई है, इस पर विश्वास करते हैं और उक्त मतमें कुछ भी सामान्यत्व नहीं देखते। वे मनकी उत्पत्ति समिपति मानते हैं।

मन और जड़का सम्बन्धित्व दर्शनशास्त्रका प्राचीन विषय है, मनोविज्ञानका पश्चात्तत्त्व विषय नहीं। मनोविज्ञान केवल मनके प्रति प्रकाश रक्षता है।

मनके व्यापक प्रति (What is mind) का लक्ष्य मान मनका सम्बन्ध का है, इस मन प्रयोगों को मनोमा-मनाविज्ञान-मन्त्रके पानर्तक नहीं है। दर्शन प्रकाश मनोविज्ञान कम मनो-विज्ञानविज्ञान (Consciousness Experience) के प्रकाश और पण्डित विषय। पण्डित नहीं करता। इसका लक्षणप्रकाश दर्शन मानने के द्वारा ही हुआ करता है। जगत्तक विज्ञान प्रकाश या जगत्तक प्रसरण के लिये मन एक प्रकाश पर प्रकाश है यही पण्डित निर्यास मन विज्ञानका प्रकाश है।

दर्शनशास्त्र और मनोविज्ञानके लक्ष्य, परिहार और पण्डित सम्बन्धमें विचार प्रमेद दिक्कतों का प्रकाश विज्ञानप्रवृत्ति पण्डित मानने का भाव दर्शनशास्त्रका प्रमेद क्या है, यह पण्डित की कथा का प्रकाश है। मनका दर्शनशास्त्रके प्रकाश और पण्डित सम्बन्धमें प्रकाश कानेका कोई विषय प्रकाश नहीं रहा। इसमें बाद प्रकाश-विज्ञानके पण्डितदर्शनका इतिहास और विभिन्न दार्शनिक मनोका उत्पत्ति विषय जाता है।

मानवकालिके पश्चात्तत्त्वके प्रतिने प्रकाश बाद दार्शनिक मत माननेके मनमें प्रकाशित हुआ, इसमें सम्बन्धमें इतिहास-लेखकने माक माक नहीं किया है। इति-हासमें उद्भिदिता दर्शनप्रकाश और मानव-मनो दार्शनिक सम्बन्ध का माय दोनों का लक्ष्य मध्य पश्चात्तत्त्व प्रमेद होता है। यह प्रमेदप्रकाशों में मानवका लक्षण बहुत ऊँचा है। मानव उक्त ही कर भी प्रकाशित निर्यास है और प्रकाशितप्रकाशों की निर्यास के लिये पण्डित दर्शनशास्त्र मान निर्यासित करने हैं। मानवको एक प्रकाश प्रमेदता है। प्रकाशित प्रकाश मानव मन पश्चात्तत्त्वका लक्षण मानने का प्रकाश है।

मानवका प्रकाश प्रमेदप्रकाश पश्चात्तत्त्व है और इसी प्रकाशों प्रकाशमें मानव प्रमेद मध्य प्रमेदप्रकाश प्रमेदप्रकाशों है। प्रमेद प्रकाश मानवके प्रकाश है। प्रकाश मानवको एक प्रकाशप्रकाश प्रकाश प्रमेद विज्ञान है। मानवको प्रकाश प्रमेद प्रकाशप्रकाशों की निर्यासित करके प्रकाश नहीं होता, केवल प्रकाश मानो मानव प्रमेदप्रकाश प्रमेदप्रकाश नहीं पाने, यह प्रकाश केवल प्रकाशित प्रकाशों की प्रकाशप्रकाश है।

मानवको ज्ञान परिधि और भी बहुत दूर तक विस्तृत है। मानव केवल समतागतो जोड़ को नहीं है, प्राध्यात्मिक शक्ति (Spiritual being) भी है। इसी प्राध्यात्मिक शक्तिवशमे मानवका द्वैतभाव है, इसी शक्तिवशमे मानव जगत्के मध्य ओटजोव है और इसी शक्तिवशमे मानव पारम्य दार्शनिक (Born philosopher) है। मानव का धर्म और नैतिक जीवन (Religion and Morality) इसी प्राध्यात्मिक शक्तिमे उत्पन्न है।

मानव-एटिको पाटिमे दो दार्शनिक है। इतिहास के क्रमो भी इसका अनुसन्धान करनेमे मानव एकमात्र प्राणिमो युगोमे प्राध्यात्मिक विकासको और मानवको चेतना प्रभावित हुई है। मनुष्य कहने पाया, उसका कर्तव्य क्या है, उसका भविष्य क्या है, एतजोके साथ समता कोमा सम्बन्ध है, यह प्रश्न मानवके मनमे प्रति प्राचोन कालमे उदित हुआ था। बहुत; इस प्रश्नका समने एक बार भी उदय नहीं हुआ, ऐसा मानवजीवन वस अभ्यस्तताका विषय है। दार्शनिक स्पेन्सर द्वारा उल्लिखित पादिम मनुष्य (Primitive man)के ऐतिहासिक चरित्रमे नहीं है, यह स्पेन्सरका मनःकल्पित पदार्थ-विशेष है। मानवको प्रजाशक्तिके साथ मानवके दार्शनिक ज्ञानका नित्य सम्बन्ध है। युग और स्थितिपरम्पराने यह जीवन विकासका प्रवृत्ति का रखा है। पर इति, स्थितिगत प्रतिभा और साम्योपमा द्वारा दार्शनिक ज्ञानका भी विकास साधित हुआ है, उसका धार्मिक विकास के निमित्त करना ही दर्शनशास्त्रके इतिहासका लक्ष्य है।

प्रतीत्य मध्यका कोमाभूमि दोमदेगमे प्रतीत्य दर्शनका प्रथम उदय हुआ। समता यूरोप जव पश्चिम पश्चिम-कारने प्राकृत्य था, उस समय मध्यका पानोके दोम-देगमे लक्ष्मणरूपमे विकीर्ण होता था। गोप, योग, ज्ञान और धर्ममे यूरोपने यूरोप भरमे गोप स्थान प्राप्त किया था। योग ही यूरोपीय मध्यकाका पश्चिमी और दिशागुह है। यूरोप प्राप्त भी समता पदानुसरण करता है। इतिहास, ग्राम्य, दर्शन और राजनीतिको दोषा योगमे यूरोपने पचने पचन प्राप्त को है। जोमके महाकाव्यो यूरोप प्राप्त तक नहीं भूत रहता।

एथेन्स का क्रोमं थियेटर और पश्चिम मोघराज प्राप्त भी मध्यमव्यवस्थाको चरमोपतिता प्राप्त प्रदान करने को है। प्रेटी और चरिट्टनके समावने पूर्वापेक्षा और भी पनेक प्रवर्धन किया है।

पहलो योगके दुष्प्रभाव, पश्चिमपश्चिम पश्चिमपश्चिम और यूरोपीय शक्तिपुत्रके मध्य नगण्य गिने जाने पर भी यदि यूरोपीय मध्यकाके मूलका पश्चिमपश्चिम किया जाय, तो पोकटिमे दो समता अनुसन्धान लेना होगा। मध्यमान समयमे लो जो राज्यमानवताको एथेन्सके विभिन्न देशोमे प्रचलित है, यदि देखा जाय, तो वह मूलका रोम पर पोकटिमे विभिन्न कालीन मानवताको दावा-मात्र है।

प्रतीत्यदर्शन ।

पल्लित थैलिस (Thales) के पश्चिमपश्चिम पाय पोकटिमे पश्चिम यूरोपमे पचने पचन दर्शनशास्त्रका प्रचार हुआ।

पोकटिदर्शन प्रचलितानिग्रनिमित्त तोन युगोमे विभक्त किया जा सकता है।

१। सकेटिपका पूर्वकालीन दार्शनिक युग (पश्चिम-मे ले कर मोफिट सम्बन्ध तक) ।

२। सकेटिप प्रचलित दार्शनिक युग (प्रेटी और चरिट्टन-दर्शन इसके पश्चात्त है।

३। चरिट्टनका पश्चिमी दार्शनिक युग।

सकेटिपका पूर्वकालीन दार्शनिक युग ।

जागतिक प्रकृतिका मूल्योपप दो सकेटिपके पूर्व-पश्चिमी दार्शनिको मूल्य लक्ष्य था। सुतरां तत्त्वज्ञान दर्शनशास्त्रमूल्य भी विशेषतः योग-दर्शन (Ionic Philosophy) जगत्सृजनोपप मास्त्र (Cosmogony) के रूपमे परिणत हुआ था।

मानवका नयन एटिपो पर पानिभूत होने को प्राकृतिक मोद्दर्ममण्डार मानव-मनको प्राकृत करता है। यह मानव प्रकृतिके एक नयन मोद्दर्म पर मन को करपने प्राप्ताको पोकटिना है। मानव-मनको यह प्रतीत्य पश्चिम जगत्के पश्चिमयुगको प्रवर्धक है।

पोकटि इस मोद्दर्ममादके दूर होने पर मानव-

भागने पन्तर्गत क्रोटोना (Crotona) नगरमें होता था। राजनीतिक विप्लवमें विध्वस्त दक्षिण इटलीके राजनीतिक सम्बन्धानके लिये उन्होंने एक सम्प्रदाय गठन किया। पवित्र जीवन-यापन और परस्परके प्रति प्रकृतिमय प्रणय इस सम्प्रदायके लोगोंका प्रथम प्रतिपाद्य विषय था। उक्त सम्प्रदाय राजनीतिक किमो उच्चतमाधुन्यमें कृतकार्यें दूषा वा नहीं, उनमें सम्बन्धमें कोई विरोध प्रमाण नहीं मिलता। पोथोगोरसके जीवनकी प्रमाणयोग्य घटना यहाँ पर पर्यवसित होती है। इसमें प्रतिरिक्त जो सुननेमें आता है, वह किंवदन्ती मात्र है।

पोथोगोरसके दार्शनिक मतके सम्बन्धमें भी ज्ञान प्रकाशका मतभेद देखा जाता है। पोथोगोरस व्यक्तियोग्य दृग्मन्त्री कहें तब उन्नति कर गये हैं, उसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु इनके सम्प्रदायमें उसको जैसी परिणति साधित हुई है, उसका विवरण मिलता है। फारोलौस (Philoless), आरकोटस (Archytas) और यूरोटस (Eurytas) इन तीन दार्शनिक पण्डितोंमें उक्त दृग्मन्त्री सम्बन्धमें कोई कोई ज्ञानव्यवस्था प्रवर्तित हो जाता है और यही दार्शनिक पण्डित उक्त दृग्मन्त्रीके सम्बन्धमें जहाँ तक उन्नति विज्ञान कर गये हैं, उनकी उन्नति वही तक पर्यवसित होती है।

पोथोगोरस दृग्मन्त्रीके मतमें संख्या ही (Number) प्रागतिक वस्तुसमूहका प्रथम स्वरूप है। पदार्थ-मात्र ही किमो न किमो प्रकार आकारविशिष्ट है और वह आकार संख्या द्वारा निर्दिष्ट ही सकता है। अतः पदार्थ-मात्र ही संख्याके अधोक्त है अर्थात् संख्या ही उसका प्रकृत-स्वरूप है।

पोथोगोरस दार्शनिकगण संख्या कहनेमें संख्या वागनिर्दिष्ट पदार्थ (Actually material principle) प्रथम। वस्तुमात्रका ही अनीन्द्रिय स्वरूपत्व (Ideal Principle) समझते थे, इसके सम्बन्धमें विभिन्न मत थे। किन्तु उक्त दार्शनिकोंके मतका प्रकटता-निवन्धन किसी स्थिर सिद्धान्त पर नहीं पहुँचता।

केवल पोथोगोरस दृग्मन्त्री ही नहीं, बल्कि

सक्रोस्टिमके पूर्वकालीन समस्त दार्शनिक मनोका विरोध प्रकट यह है, कि प्रकृतिके सदैवप्रकाशके ऊपर (The eternal aspect of nature) पर्याप्त प्रकृतिकी जो दिग्ग मयमें पड़ने मानसचक्र पर प्रतिभाज होती है, उसीके ऊपर उन लोगोंका विभिन्न मत प्रतिष्ठित है। जगत्के प्रति दृष्टिपात करनेमें जगत्की विचित्रता पर आश्चर्य होता पड़ता है। पीछे गौर कर देनामें इस विचित्रताके मध्य सुन्दर सामन्त्र्य देखा जाता है और विचित्रताके मध्य यह जो सामन्त्र्य (Harmony) है उसी पर जगत्का मोह्य है। पोथोगोरस दार्शनिकोंकी दृष्टि जगत्के इस सामन्त्र्य (Harmony and Proportion) की ओर आकृष्ट हुई है और इस सामन्त्र्यके ऊपर दृष्टि रख कर उनके संख्यावाद (Number theory) प्रतिष्ठित हुए हैं।

पोथोगोरस पण्डितोंका जगत्सत्त्व भी (Cosmology) इसी सामन्त्र्यवाद-भित्तिके ऊपर स्थापित है। और और जगत्सत्त्वका मध्य भी सुन्दर सामन्त्र्य (Harmony) है। जगत्का विभिन्न राशिचक्र (Spheres) एक अन्तर्गत केन्द्रकी घटन करके अपने अपने प्रचलय (Orbit) पर परिभ्रमण करता है। इस अन्तर्गत केन्द्रमें ताप, धातुक और जीवन (Life) जगत्के अन्त्या अन्तर्गत परिष्कार दूषा है।

पोथोगोरस दृग्मन्त्री संख्यावाद (Number theory) प्रथम महोत्सव महोत्सववाद (Symbolism) में पर्यवसित हुआ था। संख्या ही वस्तुकी स्वरूप है, इस तत्त्वके ऊपर निर्भर करके उक्त दार्शनिकगण आत्मा (Soul), न्याय (Justice) आदि पदार्थोंको भी संख्या द्वारा परिचित कर गये हैं। जैसे—किमो किमो पण्डितके मतमें है संख्या द्वारा न्याय शब्द समझा जाता है और किमोके मतमें है संख्या उक्त शब्दको बोधक है इत्यादि। कहना नहीं पड़ेगा, कि इस प्रकार अर्थ-शून्य भित्तिके ऊपर स्थापित दृग्मन्त्री किमो तरह व्यापित नहीं रह सकता।

पोथोगोरस दृग्मन्त्रीके मोनितत्व (Ethics) के सम्बन्धमें भी उल्लेखयोग्य विरोध कुछ भी नहीं है। आत्म-संयम (Self-control asceticism) और पवित्र-

भागदे पन्तोनंत क्रोटोना (Crotona) नगरमें होता था। राजनीतिक विप्लवमें विध्वस्त टूटचिप्ट इतनीके राजनीतिक सम्बन्धानके लिये उन्हेंने एक सम्प्रदाय गठन किया। पवित्र जीवन-यापन और परस्परके प्रति अलगाव प्रणय इस सम्प्रदायके लोगोंका प्रथम प्रति-पक्ष विषय था। उक्त सम्प्रदाय राजनीतिक क्रिमो उन्नतिमाधुनमें हतकाय दुषा वा नहीं, उसके सम्बन्धमें कोई विमोच प्रभाव नहीं मिलता। योद्यागोरोसके जीवनकी प्रभावशाली घटना यहाँ पर पर्यवसित होती है। इसके पतिरिक्त जो सुननेमें आता है, वह किंव-दन्ती मात्र है।

योद्यागोरोसके दार्शनिक मतके सम्बन्धमें भी ज्ञान प्रकाशका मतभेद देखा जाता है। योद्यागोरोस व्यक्तियोग दृगन्ती कहाँ तक उत्पत्ति कर गये हैं, उसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु इनके सम्प्रदायसे उसको जो भी परिणति माधुन हुई है, उसका विवरण मिलता है। फाइलोलस (Philolaus), आरकोटस (Archytas) और यूरोटस (Eurytas) इन तीन दार्शनिक पण्डितोंमें उक्त दृगन्तीके सम्बन्धमें कोई भी ज्ञानव्यवस्था प्रवर्तित हो जाता है और यही दार्शनिक पण्डित उक्त दृगन्तीके सम्बन्धमें कहाँ तक उत्पत्ति विधान कर गये हैं, उनको उत्पत्ति नहीं तक पर्यवसित होती है।

योद्यागोरोस दृगन्तीके मतसे संख्या की (Number) आधुनिक वस्तुमात्रका प्रकृत स्वरूप है। पदार्थ-मात्र की किसी न किसी प्रकार आकारविशिष्ट है और वह आकार संख्या द्वारा निर्दिष्ट हो सकता है। धृतराष्ट्र पदार्थ-मात्र को संख्याके प्रयोग से प्रमाणित करता है। यद्यपि प्रकृत-स्वरूप है।

योद्यागोरोस दार्शनिकगण संख्या कहनेसे संख्या दार्शनिक पदार्थ (Actually material principle) प्रकृत वस्तुमात्रका ही अन्तर्भाव प्रकृतत्व (Ideal Principle) समझने से, इसकी सम्बन्धमें विभिन्न मत हैं। किन्तु उक्त दार्शनिकोंके मतका अन्तर्भाव-निश्चय किसी स्वरूप विद्याका पर नहीं पहुँचता।

केवल योद्यागोरोस दृगन्ती को नहीं, बल्कि

सक्रोडिमके पूर्वकासोन समस्त दार्शनिक मतोंका विवेचन प्रत्यक्ष यह है, कि प्रकृतिके वरिष्ठकायसे ऊपर (The eternal aspect of nature) प्रमाण प्रकृतिकी ओर दिया सबसे पहले मानवचर्य पर प्रतिमान होती है, उसीके ऊपर उन लोगोंका विभिन्न मत प्रतिष्ठित है। जगत्के प्रति दृष्टिपात करनेसे जगत्को विचित्रता पर प्रभाव होता पड़ता है। गीह गोर लक्ष देगनेसे इस विचित्रताके मध्य सुन्दर सामन्त्र्य देखा जाता है और विचित्रताके मध्य सुन्दर सामन्त्र्य (Harmony) है उसी पर जगत्का सीधै है। योद्यागोरोस दार्शनिकोंकी दृष्टि जगत्के इस सामन्त्र्य (Harmony and Proportion) की ओर आकृष्ट हुई है और इस सामन्त्र्यके ऊपर दृष्टि रख कर उसके संख्यावाद (Number theory) प्रतिष्ठित हुए हैं।

योद्यागोरोस पण्डितोंका जगत्स्वरूप भी (Cosmology) इसी सामन्त्र्यवाद-भित्तिके ऊपर स्थापित है। और और जगत्जगत्के मध्य भी सुन्दर सामन्त्र्य (Harmony) है। जगत्का विभिन्न राशिकृत (Spheres) एक अन्तर्भाव केन्द्रकी घूर्णन करके अपने अपने चरचर (Orbit) पर परिभ्रमण करता है। इस अन्तर्भाव केन्द्रमें ताप, पानीक और जीवन (Life) जगत्के अन्तर्भाव प्रमाणों पर आधारित हुआ है।

योद्यागोरोस दृगन्तीका संख्यावाद (Number theory) अन्तर्भाव संख्याके अन्तर्भाव (Symbolism) में पर्यवसित हुआ था। संख्या की वस्तुको प्रकृत है, इस तत्त्वके ऊपर निर्भर करने के उक्त दार्शनिकगण आत्मा (Soul), न्याय (Justice) आदि शब्दोंकी भी संख्या द्वारा अभिव्यक्ति कर गये हैं। जैसे—किसी किसी पण्डित-के मतसे है संख्या द्वारा न्याय शब्द समझा जाता है और किसीके मतसे है संख्या उक्त शब्दकी बोधक है इत्यादि। कहना नहीं पड़ेगा, कि इस प्रकार प्रत्येक अन्तर्भाव के ऊपर स्थापित दृगन्तीका किसी तरह स्थापित नहीं रह सकता।

योद्यागोरोस दृगन्तीके नीतिशास्त्र (Ethics) के सम्बन्धमें भी उल्लेखयोग्य विवेचन कुछ भी नहीं है। आत्म-संयम (Self-control asceticism) और पवित्र-

भागके चक्रांगत क्रोटीना (Crotóna) नगरमें सोना था। राजनीतिक विषयमें विख्यात टलिय इटलीके राजनीतिक सम्प्रदायके सिधे उन्में एक सम्प्रदाय गठन किया। पवित्र जीवन-यापन और परस्परके प्रति प्रकृतिम प्रणय इस सम्प्रदायके लोगोंका प्रमुख प्रतिपाद्य विषय था। उक्त सम्प्रदाय राजनीतिक क्रियो लक्षितमाधुर्मे स्तकायों द्वारा वा नहीं, उनके सम्बन्धमें कोई विरोध प्रमाण नहीं मिलता। पोथागोरसके जीवनकी प्रमाणयोग्य घटना यहीं पर पर्यवसित होती है। इसके पतिरिक्त जो सुननेमें आता है, वह किंवदन्ती मात्र है।

पोथगोरसके दार्शनिक मतको सम्बन्धमें सो माना गया दूसरी वस्तुका अस्तित्व स्वीकार किया जाये, तो बहुत विरोध (Contradictions) पा लड़ा होता है।

जैसेमें दिखताया है, कि बहुत्व, गति (Movement) आदि पदार्थोंके अस्तित्व नहीं है। जैसे—बहुता अस्तित्व स्वीकार करने पर बहुको पक्षक एकको समष्टि मानना पड़ेगा। किन्तु यह एक भी परिमाणविशिष्ट (Having magnitude) है, अतः बहुको समष्टि है। इस प्रकार जब तब परिमाण रहेगा, तब तक उसे बहुको समष्टि मानना पड़ेगा। किन्तु प्रकृत जो एक (Actual unit) है अतः बहुको समष्टि नहीं है, वह अविभाज्य है; किन्तु परिमाण रहनेमें ही उसे विभाज्य मानना होगा; अतएव बहु, जो इस प्रकार किन्तु परिमाणमय एककी समष्टि है, वह भी परिमाणमय है। किन्तु ऐसा निर्देश पाया है, इस कारण बहुता (Many) अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता। जिनका गति-सम्बन्धीय प्रमाण भी इसी पायाया है। विद्यार्थके भयमें वस्तुका अस्तित्व नहीं किया गया। परिष्टटन जिनकी लक्षणा (Dialectics) का प्रवक्तृ मान गये हैं। जिनो को इथोपेटम नके सम्बन्धीय ग्रन्थ 'दार्शनिक' है।

हेराक्लिटस (Heraclitus) प्रसिद्ध दार्शनिक मने। एफिसस (Ephesus) निवासो दार्शनिक हेराक्लिटसने इस मतका प्रचार किया। पृ० पू० २५०

मकोटिमको पूर्वकालीन समस्त दार्शनिक मतोंका विरोध प्रत्यक्ष यह है, कि प्रकृतिके बहिःप्रकाशके ऊपर (The eternal aspect of nature) पर्याप्त प्रकृतिको जो दिशा सबसे पहले मानप्रवच पर प्रतिमान होती है, उसीके ऊपर उन लोगोंका विभिन्न मत प्रतिष्ठित है। अतएव प्रति दृष्टिपात करनेमें जगत्को विविधता पर प्रवृत्त होना पड़ता है। पीछे गौर कर देखनेमें इस विविधताके मध्य सुन्दर सामन्वय देखा जाता है और विविधताके मध्य यह जो सामन्वय (Harmony) है उसी पर जगत्का शान्ति है। पोथगोरसके दार्शनिकोंको दृष्टि अतएव इस सामन्वय (Harmony and Proportion) की ओर आकृष्ट हुई है और इस सामन्वयके ऊपर दृष्टि रख कर उनके संप्रदायवाद कहना है, कि आगेकी प्रतिष्ठित हुए है।

प्रभावयुक्त और विद्यत परिवर्तनमयी (Cosmoflux) है। अतएव कोई भी पदार्थ सुस्थिर है। एक प्रवृत्तिमें नहीं रहता; जागतिक पदार्थ का स्थायित्व (Permanence) असम्भव है। परिवर्तन ही जगत्का सनातन नियम है। अतएव अस्तु और अस्तुमें अस्तमाला होता है, ऐसे परिवर्तनमें ही जगत् चलता है। जगत्का यह परिवर्तन लक्ष्योपे दो पदार्थोंके संयोगमें (Opposing adversatives) साधित होता है। इसीमें हेरोक्लिटसने कहा है, कि द्वन्द्व ही सभी पदार्थोंका जनक है (Strife is the father of things)। जगत्का बहुत्व से ही जगत्का एकत्व है। कारण बहुत्व वा द्वित्व नहीं रहनेमें एकत्व नहीं हो सकता। हेरोक्लिटसने अग्नि को जागतिक परिवर्तन का शक्तिभूत मान गये हैं। अग्निमें सभी पदार्थोंको लयपति है। अग्निमें दो पदार्थ मात्रका लय है और सभी पदार्थोंमें अग्नि प्रवृत्तभावमें विद्यमान है। अतएव यह निश्चित अग्नि उद्गम ही कर फिर निर्वापित हो जातो है। यही अग्नि उद्गम ही कर जागतिक पदार्थोंमें परिवर्तन होता है।

हेरोक्लिटसका कहना है, कि हम लोग इन्द्रिय ज्ञानके योग्यभूत न होकर प्रज्ञा (Reason) का प्राप्य प्रवच करीम। प्रज्ञाजनित ज्ञानमें ही हम लोगोंके

परमाणु मम वही गति वा ध्यानका परिवर्तन म किम प्रकार होता है, उसके विषयमें डिमोक्रीटमने कहा है, कि विभिन्न आकृतिविगट परमाणु गून्ध-मागरमें (Vacuum) बहते थे। इस परमाणु-मम वही गतिविगट होनेसे वे एक दूसरेके साथ प्रतिलो-त हो कर (Collided) गून्धमें अमथ करतें हैं और एक आकृतिविगट (Like shaped) परमाणु मिल कर भिन्न धर्मात्मा एव नाना जातीय पदार्थों की सृष्टि करतें हैं। उन्होंने परमाणुमम वही गतिकी कारण बतलाते समय कहा है, कि परमाणुमम वही अनिश्चित धर्म से ही यह मत संवर्धित हुआ है। निवर्तन वा देव (Necessity or chance) वस्तुतः परम्परका कोई दूसरा मूल निर्देश नहीं किया जाता। डिमोक्रीटम निरी-श्वरवाद (Atheism) और प्रकृतिवाद (Naturalism) की सूचना कर गये हैं। उनका कहना है, कि प्रचलित बहुदेववाद (Polytheism) भयमें उत्पन्न हुआ है।

पहले की कथा आ चुका है, कि परमाणुवादमें भी द्यौय और दैराह्लाददोय-दग्गनके सामन्त्रस्य विधान की चेष्टा की गई है। डिमोक्रीटमोक्त परमाणु दोनों मतके मध्य स्थानीय है। सभी परमाणुके चविभाज्यताके कारण वे द्यौयदग्गनोक्त सत् (Being) को, फिर उनके वाक्पर मिश्रजनिम परिवर्तनके कारण हुआ-हटिषके विभाग वा परिणाम (Becoming) को स्थानीय हैं। परमाणु समूहका संयोगवियोग छोड़ कर उत्पत्तिविनाश जगत्में नहीं है। यही मत द्यौय दग्गनके मतमें मिलता है। फिर परमाणु समूहकी गति और परस्परके साथ मिलने समय यह दैराह्लाद उसको दग्गनोक्त नामके स्थानीय है।

अनाक्सगोरस (Anaxagoras) का शार्मिक मत।

पनाक्सगोरस पू० पू० ५०० ई० में क्लिजोमिनि (Clazomenae) नगरमें उत्पन्न हुए थे। पारम्पर्य युद्धके बाद वे एथेन्सनगरमें जा कर रहने लगे। पोले प्रचलित धर्ममत के विरुद्ध अपना मत प्रजागित करनेके कारण वे एथेन्स नगर छोड़ देनेकी बाध्य हुए। पनाक्सर उन्होंने पयमें कीवकता पचमिट समय लैम्पसैकस (Lampascus) नगरमें मरते दिये। दार्शनिक पनाक्सगोरसने की

पहले पहले एथेन्स नगरकी दग्गनगोक्त केन्द्रभूमि में परिणत किया।

परमाणुवादी दार्शनिकोंकी तरफ पनाक्सगोरस पदार्थका उत्पत्ति-विनाश कीकार नहीं करते। उनका कहना है, कि उत्पत्तिविनाश कानिसे हम लोग की समझते हैं, यह पदार्थका संयोग वियोगमात्र है। शक्ति (force) के संयोगसे यह संयोगवियोग माधित होता है। पनाक्सगोरसके मतमें यह शक्ति परमाणुनादित्योके अहित जड़गति वा देव (necessity) नहीं है, यह दैराह्लाद-शक्ति है।

पनाक्सगोरसने हम शक्तिका 'नोस' (Nous) नाम रखा है। वे हम शक्तिको भव जगदयत्तमान और मम वस्तुओंकी सारभूत-कार्यकारी शक्तियोंका मूल मान गये हैं। इस दैराह्लादय शक्ति द्वारा नियन्त्रित हो कर जगत्स्थापार चलता है। जिस भावमें पनाक्सगोरसने हम शक्तिकी पवतारणा की है, उसमें जोष होता है, कि वे यथार्थमें जगत्के विधाता नहीं हैं। उन्होंने केवल जगत्की सूचना कर दी है। पनाक्सगोरसको 'नोस' गति वा शक्ति नियन्त्रा है, उसने शक्तिहीन जड़में केवल शक्ति प्रदान की है (Mover of matter)। हमने जूटो परिटलन पाटि दार्शनिकोंने कहा है, कि पनाक्सगोरसने गिण्यमानके हिस्सासे सृष्टितत्त्वकी व्याख्या की है (Mechanical explanation of the world)।

पनाक्सगोरसके मतमें सृष्टिके प्राक्कालमें काग-तिह सभी पदार्थ पति सूक्ष्माभासमें एक दूसरेके साथ मिश्रित थे। पोले 'नोस'ने इन विभिन्न पदार्थोंकी वियोग करके सृष्टिकाय गीय किया। पहले इन मिश्रित पदार्थोंके मण्ड (Chaotic mass) पावत (Vortex) उत्पन्न होती हैं और पावत की वेगसे एक जातीय पदार्थ इस पदार्थ समष्टिमें विद्युत् की कर एकत्र मिल जाते हैं। इसी प्रकार विभिन्न पदार्थोंकी सृष्टि होती है। प्राचियोंमें भी नोस विभिन्न मात्रा और विभिन्न शक्ति का पात्रय से कर विद्यमान है। इस प्रकार देखा जाता है, कि नोस या दैराह्लादय शक्ति सृष्टितत्त्वका-विधान करके हम सृष्टिके मध्य समुपवित की हुई है।

परमाणु सम दृष्टी गति वा स्थानका परिवर्तन जिस प्रकार होता है, उसके विषयमें डिमोक्रीटमने कहा है, कि विभिन्न आकृतिविगट परमाणु शून्य-मागरमें (Vacuum) चलते हैं। इस परमाणु-सम दृष्टे गतिविगट होनेसे वे एक दूसरेके साथ प्रतिकट हो कर (Collided) गत्यामें अमथ्य करते हैं और एक आकृतिविगट (Like shaped) परमाणु मिल कर भिन्न धर्मकाल्पक माना जातीय पदार्थों की सृष्टि करते हैं। उन्होंने परमाणुसम दृष्टी गतिकी कारण बतलाते समय कहा है, कि परमाणुसम दृष्टे अन्तर्निहित धर्म से ही यह मत प्रचलित हुआ है। निवर्ति या दैव (Necessity or chance) वास्तव परम्पराका कोई दूसरा मूल निर्देश नहीं किया जाता। डिमोक्रीटम निरीश्वरवाद (Atheism) और प्रकृतिवाद (Naturalism) की सूचना कर गये हैं। उनका कहना है, कि प्रचलित बहुदेववाद (Polytheism) भ्रमसे उत्पन्न हुआ है।

पहले ही कहा जा चुका है, कि परमाणुवादमें भी इनीय और हेराक्लीटोय-दर्शनके सामान्य विधानकी चेष्टा की गई है। डिमोक्रीटमोक्त परमाणु दोनों मतके मध्य स्थानीय है। सभी परमाणुके अविभाज्यताके कारण वे इनीयदर्शनोक्त अस्तु (Being)के, फिर उनके परस्पर मिश्रणजनित परिवर्तनके कारण हेराक्लीटसके विकास वा परिवर्तन (Becoming) के स्थानीय हैं। परमाणु समूहका संयोगवियोग छोड़ कर उत्पत्तिविनाश जगत्में नहीं है। यहो मत इनीय दर्शनके मतमें मिलता है। फिर परमाणु समूहकी गति और परस्परकी साथ मिलने समय वह हेराक्लीटसके दृगन्त नामके स्थानीय है।

अनाखगोरा (Anaxagoras) का दार्शनिक मत।

अनाखगोरस मृत ५०० ई.पू.के जोमिनि (Clazomenae) नगरमें उत्पन्न हुए हैं। पारम्पर्य युद्धके बाद वे एरेनासनगरमें आ कर रहने लगे। पोले प्रचलित धर्ममत के विरुद्ध अपना मत प्रकाशित करनेके कारण वे एरेनास नगर छोड़ देनेकी बाध्य हुए। अन्ततः उन्होंने अपने जीवनका अवशिष्ट समय लैम्पसकेस (Lampsacus) नगरमें प्रतीत किया। दार्शनिक अनाखगोरसने की

समस्त पदार्थ एरेनास नगरकी दृगन्त नामकी केन्द्रभूमि में परिचित किया।

परमाणुवादो दार्शनिकोंकी तरफ अनाखगोरस पदार्थका उत्पत्ति-विनाश कीकार नहीं करते। उनका कहना है, कि उत्पत्तिविनाश करनेमें हम लोग की समझते हैं, वह पदार्थका संयोग वियोगमात्र है। शक्ति (force)के संयोगसे यह संयोगवियोग माधित होता है। अनाखगोरसके मतमें यह शक्ति परमाणुवादियोंके कथित जड़गति वा दैव (necessity) नहीं है, यह दृक्कामय-शक्ति है।

अनाखगोरसने इस शक्तिका 'नोस' (Nous) नाम रखा है। वे इस शक्तिको सब जगत्प्रचलमान और सब वस्तुओंकी सारभूम-कार्यकारी शक्तियोंका मूल मान गये हैं। इस दृक्कामय शक्ति द्वारा नियन्त्रित हो कर जगत्स्थापार चलता है। जिस भावमें अनाखगोरसने इस शक्तिकी प्रवर्तना को है, उसमें शोध होता है, कि वे शरीरमें जगत्के विधाता नहीं हैं। उन्होंने केवल जगत्की सूचना कर दी है। अनाखगोरसको 'नोस' गति वा शक्ति नियन्त्रा है, उसने शक्तिहीन जड़में केवल शक्ति प्रदान की है (Mover of matter)। इसीसे जड़ो परिरटन आदि दार्शनिकोंने कहा है, कि अनाखगोरसने मित्यज्ञानके विषयसे सृष्टिरचकी व्याख्या की है (Mechanical explanation of the world)।

अनाखगोरसके मतमें सृष्टिके प्राक्कालमें काग-तिर सभी पदार्थ अति घूर्णनावर्तमें एक दूसरेके साथ मिश्रित हैं। पोले 'नोस'ने इन विभिन्न पदार्थोंकी वियोग करके सृष्टिकाय रीप किया। पहले इन मिश्रित पदार्थोंके मध्य (Chaotic mass) घूर्णन (Vortex) उत्पन्न होता है और घूर्णनके वेगमें एक जातीय पदार्थ इस पदार्थ समष्टिमें विशुद्ध हो कर एकत्र मिल जाते हैं। इसी प्रकार विभिन्न पदार्थोंकी सृष्टि होती है। प्राचीनमें भी नोस विभिन्न मात्ता और विभिन्न शक्ति का पायय से कर विधनाम है। इस प्रकार देवा जाता है, कि नोस वा दृक्कामय शक्ति सृष्टिरचका-दिधान करके इस सृष्टिके मध्य घूर्णनरट को दृष्ट है।

मनमें मत्त्वज्ञानका उदय होता है और वयापारका प्रजन तात्पर्य जाननेमें आता है ।

इलोय दगन (Eleatic Philosophy) और हेरोफलाइटस-प्रवर्तित दगन परस्पर विरुद्धमतावलम्बको है । इलोयदगन निकगण एकमात्र सत् (Being) का अस्तित्व स्वीकार कर और सभी भ्रमको उड़ा देना चाहते हैं । हेरोफलाइटसका कहना है, कि जगत्में शुद्ध सत् (Pure being, existence pure and simple) किसी पदार्थका अस्तित्व नहीं है । परिवर्त्तन वा विकास हो (Becoming) जगत्का नियम है । इसी-उद्गमनके मतसे वास्तवजगत्के मध्य को परिवर्त्तन और वैचित्र्य देखा जाता है, वह भ्रम है; केवल सत् हो (Being) वस्तुमान है । हेरोफलाइटस यह भी कहते हैं, कि जागतिक पदार्थोंके स्थायित्व (Permanence) में विश्वास भ्रममात्र है । परवर्त्ती विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायने इन दो विरोधों मतोंका सामञ्जस्य स्थापन करनेकी कोशिश की है । इनमेंसे यौक दार्शनिक एम्पेडक्लिज (Empedocles) प्रधान है ।

एम्पेडक्लिजका दार्शनिक मत ।

ग. ० पू. ४४४ ई. में दार्शनिक एम्पेडक्लिजम विद्यमान थे । इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी कह कर प्रनिदयी । वे राजनीतिज्ञ, कवि, वाग्म्य, विज्ञानवित् और दार्शनिक थे ।

एम्पेडक्लिजने अपने दर्शनमें इलोय-दर्शन और हेरोफलाइटोयदर्शनका विरोध भञ्जन करनेकी चेष्टा की है । उनका कहना है, कि जो जो वस्तु पहले न थी, उसकी उत्पत्ति हो हो नहीं सकती और सत्य वस्तुका विनाश भी असम्भव है । इसीसे एम्पेडक्लिजने पदार्थोंकी स्थिति, अणु, तेज और मरुत् इन चार मूल पदार्थोंका अस्तित्व स्वीकार कर लिया है । एम्पेडक्लिजके ये चार मूल पदार्थ उनके मतमें इलोय-उद्गमन सत् (Being) के स्थानोप हैं । वास्तवजगत् इन दो चार पदार्थोंके योगसे उत्पन्न हुआ है । इस योगसाधनमें दो काय कारो-गतिधर्मोंका प्रयोजन पड़ा है । इनमेंसे एक आकषणशक्ति है जिसका एम्पेडक्लिजने प्रेम वा प्रीति (Love or friendship) नाम रखा है, दूसरा

द्वन्द्व या वियोग (Strife) विकषण-शक्ति है । एम्पेडक्लिजके मतानुसार प्रारम्भिक जगत् (Primitive world) का नाम स्फैरस (Sphairos) है । यह आदिमजगत् पहले आकषणशक्ति (Friendship) के अधीन था, पछि विकषण-शक्ति (Strife) ने इस जगत्के मध्य प्रवेश लाभ करके जगत्का वैचित्र्य और बहुलसाधन किया । यह विकषण शक्ति (Strife) हेरोफलाइटसकथित परिणाम (Heraclitean flux) के स्थानीय है ।

एम्पेडक्लिज-कथित ये चार मूलपदार्थ योग-दायक निर्दोष कथित सम्प्रदाय के सम्प्रदायी नहीं हैं । एम्पेडक्लिजके मूलपदार्थ का किसी प्रकार परिवर्त्तन नहीं हो सकता । केवल एक दूसरेके साथ अपने-आपकी स्थिति बिना मिल सकता है । जगत् को उत्पत्ति और विनाश-प्रमाणों इन चार पदार्थोंके योग वियोगके कारण हुआ करती है ।

परमाणुवाद (Atomism) ।

दाश निक लिउसिपस (Leucippus) और डिमोक्रिटस (Democritus) इस दार्शनिक मतको स्थापना कर गये हैं । इनके मध्य डिमोक्रिटस ही समधिक प्रसिद्ध थे । उन्होंने ख. पू. ४८३ में आब्डेरा (Abdera) नगरमें जन्मग्रहण किया । एम्पेडक्लिजको तरह वे लोग भी उपरि-उक्त विरोधों दोनों मतोंके सामञ्जस्य विधानमें प्रयासो हुए थे ।

इनके मतानुसार सृष्टि जड़ोप-परमाणु की जगत्का मूल है । सभी परमाणु परिवर्त्तनहीन और अविभाज्य सृष्टि जड़ पदार्थ हैं । इनमें शुष्कता कोई प्रभेद नहीं है, केवल आकृति, परिमाण और गुरुत्व का पावक है । परन्तु पृथिवी पर जो विभिन्न शुष्क पदार्थ विभिन्न पदार्थोंका समावेश देखनेमें आता है, वह इसी एक धम विभिन्न परमाणुसमूहके विभिन्न समावेश (Combination or change of position) से उत्पन्न हुआ है । सुतरां इनके मतसे उत्पत्ति वा विकास (Becoming) परमाणुसमूहका स्थानपरिवर्त्तनमात्र है ।

परमाणुमय दृष्टी गति या स्थानका परिवर्तन म किंच प्रकार होता है, उसके विषयमें डिमोक्रिटमने कहा है, कि विभिन्न घातविधिगत परमाणु गूथ्य-सागरमें (Vacuum) बहते थे। इस परमाणु-मय दृष्टी गतिविधिगत होनेसे वे एक दूसरेके साथ प्रतियोगिता (Collided) गन्तमें अभ्यस्य करते हैं और एक पाकृत्यविधिगत (Like shaped) परमाणु, मिल कर भिन्न धर्मकाला एवम् नाना जातीय पदार्थोंकी सृष्टि करते हैं। उन्होंने परमाणुमय दृष्टी गतिजा कारण बतलाते समय कहा है, कि परमाणुमय दृष्टी अनानिहित धर्म से ही यह सत् संचलित हुआ है। निवर्ति या दैव (Necessity or chance) वस्तुतः परस्परका कोई दूसरा मूल निर्देशन नहीं किया जाता। डिमोक्रिटम निराश्रयवाद (Atheism) और प्रकृतिवाद (Naturalism) की सूचना कर गये हैं। उनका कहना है, कि प्रचलित बहुदेववाद (Polytheism) भ्रममें लपक चुका है।

पहले ही कहा जा चुका है, कि परमाणुवादमें भी द्रव्य और हेराक्लीटोय-दृग्मनके सामन्तस्य विधानकी चेष्टा की गई है। डिमोक्रिटमोक्त परमाणु दोनों मतके मध्य स्थानीय है। सभी परमाणुके अविभाज्यताके कारण वे द्रव्यदृग्मनोक्त सत् (Being)के, किन्तु उनके परस्पर मिश्रणजनित परिवर्तनके कारण हेराक्लीटमके विकास या परिणाम (Becoming)के स्थानीय हैं। परमाणुमय दृष्टीका संयोगविधोग छोड़ कर सत्त्वविभाग जगत्में नहीं है। यहो सत् द्रव्यदृग्मनके मतमें मिलता है। कि परमाणुमय दृष्टीकी गति और परस्परके साथ मिलने समय यह हेराक्लीटसके दृग्मनोक्त नामके स्थानीय हैं।

अनाक्सगोरस (Anaxagoras) का दार्शनिक मत।

अनाक्सगोरस पू० पू० ५०० ई० में क्लेज़ोमिनि (Clazomenae) नगरमें उत्पन्न हुए थे। पारस्य युद्धके बाद वे एफेसोनगरमें जा कर रहने लगे। पोले प्रचलित धर्ममत के विरुद्ध अपना मत प्रकाशित करनेके कारण वे एफेस नगर छोड़ देनेकी बाध्य हुए। अनाक्सगोरसने अपने जीवनका अन्तिम समय लैम्पसकेस (Lampacae) नगरमें व्यतीत किया। दार्शनिक अनाक्सगोरसने की

मनसे पहले एफेस नगरकी दृग्मनादृष्टी केन्द्रभूमि में परिणत किया।

परमाणुवादो दार्शनिकोंको तरह अनाक्सगोरस पदार्थका सत्त्वविभाग स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है, कि सत्त्वविभाग करनेसे हम लोग की समझने हैं, यह पदार्थका संयोग विधोगमात्र है। शक्ति (force)के संयोगसे यह संयोगविधोग साधित होता है। अनाक्सगोरसके मतमें यह शक्ति परमाणुवादियोंके अर्थित जड़शक्ति या दैव (necessity) नहीं है, यह दृष्ट्यामय-शक्ति है।

अनाक्सगोरसने इस शक्तिका 'नोस' (Nous) नाम रखा है। वे इस शक्तिको सब जगत्त्वसंगमान और सब वस्तुओंकी सारभूत-कार्यकारी शक्तियोंका मूल मान गये हैं। इस दृष्ट्यामय शक्ति द्वारा नियन्त्रित हो कर जगत्त्वसाधारण्य बनता है। जिस भावमें अनाक्सगोरसने इस शक्तिकी व्यवस्था की है, उसमें शोध होता है, कि वे यद्यपि जगत्त्वके विधाता नहीं हैं। उन्होंने केवल जगत्त्वकी सूचना कर दी है। अनाक्सगोरसको 'नोस' गति या शक्ति नियन्ता है, उसमें शक्तिहीन जड़में केवल शक्ति प्रदान की है (Mover of matter)। हमोंने ब्रूटो परिदृष्टल बादि दार्शनिकोंमें कहा है, कि अनाक्सगोरसने मिश्रणजनित हेराक्लीटमके सृष्टितत्त्वकी व्याख्या की है (Mechanical explanation of the world)।

अनाक्सगोरसके मतमें सृष्टिकी प्राक्कालमें अनाक्सगोरसको पदार्थ सत्त्वविभागमें एक दूसरेके साथ मिश्रित है। पोले 'नोस'ने इन विभिन्न पदार्थोंकी विधोग करने सृष्टिकाय शोध किया। पहले इन मिश्रित पदार्थोंके मध्य (Chaotic mass) घावत (Vortex) उत्पन्न होता है और घावतके योगमें एक जातीय पदार्थ इस पदार्थ समष्टिमें विद्युत्त हो कर एकत्र मिल जाते हैं। इसी प्रकार विभिन्न पदार्थोंकी सृष्टि होती है। प्राक्कालमें भी नोस विभिन्न मात्ता और विभिन्न शक्ति का घावत से कर विद्यमान है। इस प्रकार देवा जाता है, कि नोस या दृष्ट्यामय शक्ति सृष्टितत्त्वसाधारण्य करके हम सृष्टिके मध्य प्रगति की हुई है।

मनमें मत्त्व ज्ञानका उद्भूत होता है और वशापात्रका प्रकृत तात्पर्य जाननेमें आता है।

इलेय दार्शनिक (Eleatic Philosophy) और हेरोफलाइटस-प्रवर्तित दार्शनिक परम्परा विश्वमतावलम्बी है। इलेयदार्शनिक गण एकमात्र सत् (Being) का अस्तित्व स्वीकार कर और सभी भ्रमको उड़ा देना चाहते हैं। हेरोफलाइटसका कहना है, कि जगत्में शुद्ध सत् (Pure being, existence pure and simple) किसी पदार्थका अस्तित्व नहीं है। परिवर्तन वा विकास हो (Becoming) जगत्का नियम है। इलेय-दार्शनिक मतमें वास्तवजगत्के मध्य जो परिवर्तन और वैचित्र्य देखा जाता है, वह भ्रम है; केवल सत् (Being) वर्तमान है। हेरोफलाइटस-सं-पाश्याने हैं, कि जागतिक पदार्थोंके जागतिक मत कभी भी में विश्राम भङ्ग नहीं कर सका। मोफिट आख्या-सत्त्व-पनका गहोर ज्ञानविशिष्ट पण्डित विद्यमान तो थे, पर उस सम्प्रदायमें भी अधिकांश मनुष्य वैश्व प्रतिभासम्पन्न और सत्यानुसन्धामु-नहों होनेके कारण सोफिस्टिका मत कुतर्कके वायुरावृत्त कथित हुआ करता है। मोफिट शब्दका, वर्तमान अर्थ कुतर्क-कारी है।

समय विशेषका चित्र जातीय जीवनमें, शिष्टसाहित्य-में प्रतिफलित हुआ करता है। प्राचीन समयके प्रति दृष्टिपात करनेसे, दर्शनकी प्रवर्तनिका कारण स्पष्ट रूपमें साम्प्रदायिक नहीं हो सकता। उस समय शोक-जातीय जीवनमें अधोगतिक निम्न स्तरमें अवतरण किया था। समाजभ्रम, नैतिकभ्रम और राजनैतिक-भ्रम गिरावट हो गया था। हिंस्र, द्रुप, आत्मभरिता और अन्तर्विवादेन समाजको उल्लङ्घनप्राय कर डाला था। राजनैतिक पुरुष अपने अपने प्रधानता स्थापन करनेमें यत्नवान् थे। साधारण लोग स्वातन्त्र्यावलम्बी थे, दूसरेकी अधीनता स्वीकार करना नहीं चाहते थे; सुतरां इस मन्यका चित्र बड़ा ही शोचनीय था।

सोफिस्टोंका दार्शनिक मत।

पूर्व दार्शनिक सम्प्रदायोंके मतसे मनुष्य जगत्का शुद्ध पश्चिमोप है। मनुष्यका अस्तित्व जगत्के अस्तित्वके

दृष्ट या विशेष (Strife) विरुद्ध-प्रति है। एम्पिडक्लिजने वतलाये हुए प्रादिम जनत् (Primitive world) का नाम स्फेयरस (Sphairos) है। यह प्रादिमजगत् पहले आरुपण्यगति (Friendship) के अधीन था, वही विरुद्ध-प्रति (Strife) ने इस जगत्के मध्य प्रवेश लाकर जगत्का वैचित्र्य और बहुत्वसाधन किया। यह विरुद्ध-प्रति (Strife) हेरोफलाइटसकथित परिणाम (Heraclitean flux) के स्थानीय है।

एम्पिडक्लिज का अस्तित्व नहीं रह सकता। एक जगत् जिस प्रकार प्रतीयमान होता है, जगत्को मैं उसी प्रकार जानता हूँ। ज्ञान प्रत्येक वस्तु-का निजायत्त है। दो वस्तु एक भावमें एक वस्तुकी मध्ये देखते, सुतरां कोई साधारण ज्ञान (Universal knowledge) अर्थात् जो ज्ञान दोनों ही वस्तुके पक्षमें है, ऐसा ज्ञान हो ही नहीं सकता। नैतिक और सामाजिक जीवनके सम्बन्धमें भी उनका मत इसी प्रकार है। सुतरां वे सामाजिक, उच्छृङ्खलताका एक प्रकारसे समर्थन कर गये हैं। मानवका मन जगत्के नियम पर न चल कर जगत्के ऊपर नियम स्थापन करना चाहता है। हेरोफलाइटसका परिवर्तनवाद (Flux), और जिमोके वास्तवजगत्को अस्तित्व-प्रमाण तर्कयुक्त एवं अनान्वयमोरस-प्रवर्तित वस्तुके ऊपर ज्ञानको प्रधानता (Nous) इन दार्शनिक मतकी सूचना कर गये हैं। सोफिस्टिकाने प्रधान दोष यह है, कि इसका अर्थ ही जो कुतर्क-राजिक मध्य टक गण है। जनसाधारण इसका अर्थ ही स्वीकार नहीं करते, केवल जिन सब तर्कोंका आश्रय करते उन्हें दार्शनिकगण इस मतके स्थापनमें प्रयासों हुए हैं, उनके दोष वे ग्रहण करते हैं। सोफिस्टोंकी कुतर्कप्रियता और वस्तुनिष्ठ नैतिक प्रवर्तन इसकी लिये बहुत कुछ दायी है।

अनेक सोफिस्ट पण्डित सर्वशास्त्रविशारद थे और सभी विषयोंके अध्यापना-कार्यमें नियुक्त रहते थे। धन ले कर वे शिक्षा देते एवं धन और सम्मान लाभकी आशयसे सभी कार्य-भम्पन करते थे। इनके

परमाणुसमूहकी गति या स्थानका परिवर्तन किम प्रकार होता है, उसके विषयमें हिमोलिटमने कहा है, कि विभिन्न चाकृतिविगिट परमाणु गून्-मागरमें (Vacuum) रहते थे। इस परमाणु-समूहके गतिविगिट होनेसे ये एक दूसरेके साथ प्रति-हत हो कर (Collided) गून्में भ्रमण करते हैं और एक चाकृतिविगिट (Like shaped) परमाणु, मिन कर भिन्न धर्मात्मकताएँ बना जाती हैं वदार्थोंकी सृष्टि करते हैं। उन्हीं परमाणुसमूहकी गतिका कारण sure of all things) चेतानुसंगसमूहके चेतानुसंग चेतानुसंग मनुष्यके चेतने के कारण निर्भर है। इन्द्रिय जनिमान लेकर हम मोहोंके साथ वादाजगत्का सम्पर्क है और इन्द्रियजनित ज्ञान भी सबसे समान नहीं है, भिन्नधातिका मिश्र प्रकारका है। जिसे जो सा ज्ञान है, उसके लिये सही सत्य है। एक वस्तुके सम्बन्धमें विभिन्न मत बात होने पर भी दोनोंकी ही सत्य मानना पड़ेगा। यथोक्ति प्रत्येकका ज्ञान अपने अपने अनुभवसिद्ध है। नीतिसे सम्बन्धमें भी इसी प्रकार भला बुरा खरा कर किसीटा सत्यत्व नहीं है। परन्तु सबने मिस कर वा प्रभुत्ववाको वास्तविक पदने छुड़को दुःखके साथ मिलाकर कतिने नियम (Positive Statute) विधिवत् क्रिये हैं और वही नियम सुख-दुःखानुसार भले बुरे कह जाते हैं। नीतिसे सम्बन्धमें मोटागोरसका मन पूरे तटस्थता होने पर भी उसका जीवन निरुत्सह था।

जार्जिय (Georgias)

ये सारनोतिथ और अमहार शायद्विन्धि। ये सिरा-स्यम (Syracuse) में प्रसिद्धि अपनी जन्मभूमि निमिषीके चतुर्गत्त सियनसियम (Leontium) नगर-का उद्धार करनेकी इच्छामें ४२ वर्ष-पूर्वार्द्धमें एथेन्स नगर आये। उनकी मृत्युतामासा भाषाको सच्छास को पाषण्डारिक टटाने लिये प्रसिद्ध थी। दुर्गन्ध-भरभरमें थे इलीय-मन्मदायोक्त दार्शनिक जिमोके मना समझते थे। उन्हीं दार्शनिक वास्तवका नाम इकति वा चमत्त वा (Of the Non-existent, or of Nature)। इस पदार्थमें वर्तमान दिव्यतावा है, कि किसी वस्तुकी अस्तित्व नहीं रह सकता। क्योंकि जिन वस्तु वस्तुवा

सबसे पहले दियेया नगरोकी दग मनाछत्रो केन्द्रभूमि-में परिवर्तन क्रिया।

परमाणुवादी दार्शनिकोंकी तरह चनाकागोरस पदार्थका उत्पत्ति-विनाश स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है, कि उत्पत्तिविनाश करनेमें हम भोग जो समझते हैं, वह पदार्थका संयोग वियोगमात्र है। शक्ति (force)के संयोगमें यह संयोगविधोग माधित होता है। चनाकागोरसके मतमें यह शक्ति परमाणुवादीयोंके अर्थित जड़शक्ति वा देव (necessity) नहीं है, यह इच्छासय-शक्ति है।

चनाकागोरसने इस शक्तिका 'नौस' (Nous) नाम रखा है। ये इस शक्तिको भव जगदसर्वसाम और सब धर्मात्मक समेतारभूत-कार्यकारी शक्तियोंका मूल मान मङ्गल, जन्ममृत्यु, प्रभृति-शक्ति द्वारा नियन्त्रित हो कर मोहोसा देवनेमें पातो है। प्रोडिकसमें, चनाकागोरसने विषयका विशेष प्रकट देखा जाता है। इससे है कि किमोने उनके सत्केटिसकी मुक्त (predecessor) माना है।

योक साहित्यमिष्यकी उत्पत्ति सोक्रेटि पण्डितोंके द्वारा बहुत कुछ साधित हुई है। भाषाको उत्पत्ति-साधन सम्बन्धमें सोक्रेटि पण्डितगण विविध यत्न-वाग्धे।

सोक्रैटि-प्रकारित दर्शन (Socratic Philosophy)।

पाषण्डोष (Self-consciousness)के समर्थन-में

हो सोक्रेटोके दार्शनिक मतका विशेषत्व है। किन्तु उक्त दार्शनिकोंका अर्थित पाषण्डोष तात्त्विक पाषण्डाग्रज (absolute subjectivity) नहीं है। पाषण्डाग्रज (absolute subjectivity) को मात्र (empirical, egoistic subjectivity) है। इतरा इस मतानुसार केवल पाषण्डाग्रज अथवा कल्याणन-निर्भर नहीं करना; वास्तविक बोधके लिये निर्भर करता है। पत-एव इतरा प्रतीति के निकट मतत्व है, अथवा नामका कोई पदार्थ संसारमें नहीं है।

इस प्रकार दुर्गन्धमिति पर जिसको प्रकार का प्रमाण प्रदत्त नहीं हो सकता। सत्केटिसने इस प्रकार की प्रतीति दिखाई है। उन्हीं प्रतीति प्रमाणोंका निरर्थक सुन्दारे प्रयत्न इतरा

ऊपर निर्भर नहीं करता। सतयाव्येयण ही ज्ञानका धर्म है। यह ज्ञान (Reason) सार्वजनिक (Universal) है, सतय भी तुम्हारे लिये एक चौर पन्थके लिये पन्थरूप है, यह भी सार्वसाधारणकी शक्ति है। वास्तविक निजस्व सम्पत्ति होने पर सतय कह कर किसी पदार्थका अस्तित्व नहीं रह सकता या चौर रहने पर भी यह जनसाधारणका बोधगम्य नहीं होता। प्रत्येक मनुष्यका विश्वास है, कि जो उसकी निकट सतय नामसे प्रतीयमान होता है, वह केशव उसीके लिये सत्य है, जो नहीं, पन्थ ज्ञानविशिष्ट वास्तविक लिये भी (Rational being) सतय है। सुतरां सक्लेटिसके ज्ञानकी प्रकृति पर ही सतयका मूल निहित है। सक्लेटिस ज्ञानके सार्वभौमत्व (Universality) और वास्तवता (Objectivity) को प्रमाणित करके वास्तवज्ञानवाद (philosophy of objective thought) को प्रतिष्ठा कर गये हैं।

उन्होंने सोफिस्टों के दमनका एकदिवसित्व प्रमाणित करके उक्त दमनका अभाव पूर्ण किया है। सक्लेटिसका दार्शनिक मत सोफिस्टोंको दार्शनिक भित्ति के ऊपर प्रतिष्ठित है। इसीसे कोई कोई उन्हें सोफिस्टदशभुक्त मानते हैं।

सक्लेटिसके अभ्युदयके साथ शोकदर्शनकी हितोद्युगका आरम्भ होता है। प्रेटी और परिष्टल-का दर्शन सक्लेटिसके दार्शनिक मतकी चरमपरिणति है।

सक्लेटिसके दार्शनिक मतकी अपेक्षा सक्लेटिसके वास्तविक जीवनकी साथ जनता समधिक परिचित है। उनके जीवनमें उनका दार्शनिक मत प्रतिफलित हुआ था। प्राचीनकालमें जो सब महापुरुष जन्मग्रन्थ करके यूरोपकी मुख्यभूमि घेना गये हैं, उनकी कथा स्मृतिपथ पर उदित होनेसे सबसे पहले ज्ञानगिरीमणि सक्लेटिसका ही स्मरण होगा है। सक्लेटिस यूरोप-वासीकी पाठशाला जीवनकी पराकाष्ठा दिखा गये हैं। इस सच्चिदानन्दमण्डित महापुरुषकी ज्ञानप्रतिमाने तदनौत्तम प्राप्तिराज्यमें किम प्रकार प्रभुता विस्तार की थी, वह तत्परवर्त्ति दार्शनिक मत देखनेसे ज्ञात हो जाता है।

चौर दार्शनिक प्रेटीने ही उसे विस्तारपूर्वक दिखानेकी चेष्टा की है।

सक्लेटिस ४६८ ई. सन्के पहले सोक्रोनिमकस (Sophroneiscus) नामक एक भास्करके चौरस चौर किनारिडि (Plinarenarete) नामक धात्रीके गर्भमें उत्पन्न हुए थे। शैशवकालमें उनकी पित्रवशवसाय पचनस्वन किया। योमके पाक्रागलिस (Acropolis) में उनकी खोदित मोन मूर्ति या बहुत समय तक विद्यमान थी।

सक्लेटिसके बचपनका हाल पक्षत मान्य नहीं है। कहते हैं, कि उन्होंने सोफिस्ट प्रोडिकस (Prodicus) चौर मनीतस डामन (Ammon) से वात्सल्यग्राह्य पाई थी। किन्तु वह गिरा उनसे जीवनकी स्थायी भित्ति स्वरूपमें न हुई। सक्लेटिसका दार्शनिक मत किसी दमनग्रन्थ या वास्तविक जीवनके निकट रहनेका नहीं है। अपने मानसिक उत्पत्ति उनकी अपनी तोच्छासे चौर पधारवसायकी शुद्ध साधन की थी। योही ही समस्त सक्लेटिस साधारण गिराज्ञान में नियुक्त हुए।

हाट, बाजार, जिमनासियम (Gymnasium) आदि प्रकाश स्थानोंमें सभी श्रेणीकी लोगोंके साथ वे अपने दार्शनिक मतमें बहस करते थे। उनकी शिक्षा-पणालो अभिनव-दृष्टिको थी। असाध्य दार्शनिकीकी तरह वे वागाडम्बरके साथ अपने मतके प्रचारमें प्रवृत्त नहीं होते थे। पहले पद्धतामें भान करके जिस किसी व्यक्ति के निकट वे धर्म विषयक सामाजिक वा वैयक्तिक कोई प्रश्न उठाते थे, यदि जिज्ञासित व्यक्ति उनका उत्तर दे देता, तो उनका सत्यासत्य विचार करनेके लिये तर्काल विस्तार करके वे उक्त व्यक्ति को भ्रष्टता लक्ष्मीके द्वारा प्रमाणित करते थे। सक्लेटिसके इस पद्धता-भावकी 'सक्लेटिसका शैष' (Socratic Irony) कहते हैं। सक्लेटिस अपने इस प्रचारकार्यमें दुःख या लज्जित विषयकी मरत्त भावमें समझते थे। इसीसे उनके समयमें जनसाधारणका शिक्षाविस्तारकार्य उनके लिये सत्यतः सुगम हो गया। साधारण युवकी का मन अपनेप्राप्त करके होता है, सुतरां सत्यग्रहणमें पराङ्मुख नहीं भ्रान्त कर सकते हैं। युवकी के मध्य अपना प्रचारकार्य अधिक परिमाणमें विस्तारित किया। धनक मन्त्रान्त-वर्गीय पाथेनीय

युवक जनते विषय इन गये थे। पालमिडियाडिज (Alcibiades), जेनोफन (Xenophon) और ड्रेटो जनमें पन्थतम थे।

किन्तु मल्लेटिफका यह साधु चरित्र जनतामें यथा-भावेन प्रचलित न किया। जनसाधारणने उन्हें धर्मद्वेषी और नूतन धर्मस्थापक समझ लिया था। कवि अरिस्टोफन (Aristophanes)-ने अपने "क्लाउड्स" (Clouds) नामक व्यंग्यमें मल्लेटिफको इस भावमें चित्रित किया है। इसके २४ वर्ष बाद मल्लेटिफ धर्मद्वेषी और युवकोंकी इशकविरत पथश्रम शिक्षादानकी अपराध पर दण्डित हुए। सच पूछिये तो मल्लेटिफने किसी नूतन धर्मका प्रचार न किया—वे प्रचलित धर्मसमूहों की पक्षपाती थे। लेकिन पथश्रम प्रतिभाकी शुद्ध चर्चने धर्मकी पुरानाहित मूल्यों को और भी लज्जित कर दिया था। उक्त अपराध पर मल्लेटिफको नियमिना कर मार डालनेकी आज्ञा हुई। अपने जीवनके शेष कालमें उन्होंने पथश्रम नैतिक उत्थानिका चरम उत्कर्ष दिखाया है। यदि वे समा-पार्श्व होते तो निश्चय था कि वे प्राणदण्डाद्वारे सुकलाम कर सकते थे। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया, केवल इतना ही कहा, कि जिसे उन्होंने साथ समझ कर विश्राम किया है, उसके लिये वे जनसाधारणको निकट धर्मवादकी पाठ है, न कि समाभिचारों। पलायन, दास प्राणरक्षाकी सुविधा रहते हुए भी उन्होंने सत्तर वर्षों पथश्रम अथवा-मदनये विषयान करके हम शरर देहका त्याग किया।

मल्लेटिफ का दार्शनिक मत ।

मल्लेटिफ अपने दार्शनिक मतके मध्यममें कोई भी पक्ष न रख गये हैं। उनके जीवनका सर्वप्रथम भी यही था, ऐसा प्रतीत नहीं होता। प्रचलित पक्ष-कार्यमें ही वे व्यस्त रहते थे। जेनोफन-प्रणीत लघु-जोतनचरित (Memorabilia) और ड्रेटोके व्यंग्यमें उनके दार्शनिक मतका आभाव पाया जाता है। ड्रेटोके निज दार्शनिक मतके साथ मल्लेटिफका मत मिश्रित होता सम्भव था, हम काय जेनोफनका पक्ष ही अधिक प्रामाण्य है।

पुनर्प्रचलित दार्शनिकमतप्रमाणमूलके विषयानः मल्लेटिफके दार्शनिक मतमूलके स्पष्टतममें मल्लेटिफके दार्शनिकपक्षका अधिकारिय नियोजित हुआ है। मल्लेटिफके समयमें दार्शनिकपक्षकी दृष्टि मल्लेटिफके पदार्थ-मत् (Mind or Microcosm)में लाई गई है। पालमिडिज (Know Thyself) मल्लेटिफके मतमें दार्शनिकपक्षका मूल है। दार्शनिकपक्षके इस पक्षप्रकारकी पक्ष मल्लेटिफको इनकी दूर तक दृष्टि थी, कि वे वास्तवगतके सम्पूर्ण उपेक्षा कर गये हैं। उनके मतमें वास्तवगतमें कुछ भा भावने ही नहीं है। मल्लेटिफका दार्शनिक मतप्रकारकी पक्ष जरा भी पक्षप्रकार न हुआ; मानवजीवन ही मल्लेटिफके दार्शनिक पालमिडिज विषय था, इसीमें उनके दार्शनिक नैतिकत्व (morality) ने प्रधान स्थान प्राप्त किया है। उनके मानव-जीवनका नैतिक भाग ही पक्षप्रकार परिष्कृत है।

मल्लेटिफके विषय मतावलम्बी होने पर भी मल्लेटिफने उनका मत अधिक परिमाणमें प्रदर्शित किया है। मल्लेटिफका मत है, कि सभी नैतिक कार्य जागरण (Conscious action) हैं। उनके मतमें कोई भी इच्छापूर्वक पक्षप्रकार नहीं करता। यह मत अधिकारमें मल्लेटिफ मतके जैसा है।

मल्लेटिफके मतानुसार ज्ञान ही धर्मका स्वरूप (Knowledge is virtue) है, पक्षप्रकार जागरण है। मल्लेटिफके इस धर्मधर्मकी व्याख्याकी प्राथमिक शक्तिगत विज्ञान समझते हैं। उन लोगोंका कहना है, कि मल्लेटिफ मनको इच्छाप्रकारकी पक्ष (Impulsive side of mind) दृष्टिपात नहीं करते, किन्तु मल्लेटिफका मत हिन्दूधर्मके साथ मिलता है। हिन्दूधर्मके मतमें प्रकृत ज्ञान पक्ष पक्षप्रकार एकल पक्षप्रकार सम्भव है। मल्लेटिफके मतानुसार व्यापक जैसा धर्मधर्म (Universal) है, नैतिक ज्ञान ही धर्म ही है। यह व्यक्तिगत इच्छा या बोध (Opinion)-के ऊपर निर्भर नहीं करता, धर्मधर्मधर्मका इनकी प्रकृतिक है।

परिष्कृत कहना है, कि मल्लेटिफ की तर्क-साधनानुसंगित तर्कसाधनानुसंगित (Logical definition) है

प्रथम प्रवर्तक थे। नर्क धारण करनेके पक्ष में सक्लेटिस सभी वस्तुका नाम ने कर विचार करते थे। एक जातिकी वस्तुओंमें जिन जिन साधारण धर्मोंके रहनेसे वे एक नामसे पुकारी जाते हैं, वही साधारण गुण (The Universals, the notion) उस नामके प्रवर्तक हैं। एतद्विषय अन्योन्य सन्ध्यात्मक युक्तिप्रणाली (The Method of induction)-का उन्होंने ही प्रवर्तन किया।

इसके पहले कहा जा चुका है, कि सक्लेटिस किमो विमोघ साम्प्रदायिक मतकी गठन नहीं कर गए थे। पूर्व दर्शन सम्प्रदायोंकी एकदमदमिता देख कर उसीमेंगे मत्वायकी ग्रहण करना ही उनका उद्देश्य था। अतथा इसकी जिन सब दार्शनिक मतोंका वे प्रचार कर गये हैं, मनुष्यकी आध्यात्मिक और नैतिक जीवनकी सम्बन्धमें ही उनमेंसे अधिकतम प्रयुक्त हुआ है। अतएव सक्लेटिसके दर्शनमें किसी साम्प्रदायिक एकताके नहीं रहनेसे उनकी मृत्युके बाद उनको गिन विभिन्न सम्प्रदायोंमें विभक्त हो गये हैं। इनमेंसे निम्नलिखित चार सम्प्रदायोंने विमोघ ख्याति प्राप्त की है:—

(१) अण्टिस्थिनिस् (Antisthenes) : प्रवर्तित नैतिक सम्प्रदाय (Cynics)।

(२) अरिस्टिप्पस (Aristippus) : स्वापित सिनैटिक सम्प्रदाय (Cyrenaics)।

(३) मेगारिक-स्वापित मेगारिक सम्प्रदाय (Megarics)।

(४) एव' जेटी, ये सक्लेटिसकी मतकी सर्वांगमें ग्रहण करते हैं।

सिनैटिक-सम्प्रदाय।

दार्शनिक अण्टिस्थिनिस् इस मतके प्रवर्तक थे। वे पहले सोफिस्ट दर्शनमें रहे, पीछे सक्लेटिसके मतावलम्बी हुए। एथेन्सके सिनोसर्गेस (Cynosarges) नामक स्थानमें उन्होंने दर्शनचतुष्टय ठीकी स्थापना की, इस कारण उसीके नामानुसार उस सम्प्रदायका सिनैटिक नाम पड़ा है।

अण्टिस्थिनिस् दार्शनिक भाषामें सक्लेटिसके

नैतिक भाषाका प्रचार कर गये हैं (An abstract expression of Socratic moral ideal)। उनके मतमें विषयवासनासे मुक्तिलभ करना ही धर्मका स्वरूप है और चमत्कारसे मुक्तिलभ करना ही जीवनका उद्देश्य है। कोमने विषयकी प्रति हम लोगोंकी दृष्टिकी बाध कर रखी है। ज्ञानो वाक्ति इस विषय-वासनासे मुक्त हो कर ही परमसुखार्थ ज्ञान प्राप्त करते हैं। वे स्वाधीन हैं—विषय-वासनाके दाम नहीं हैं। वे स्पृहाहीन हैं। देग, वंश, धन, मान आदि विषयोंमें आसक्तिहीन हैं। ऐसे ज्ञानि वाक्ति ही अण्टिस्थिनिस्के मतमें प्रकट सुखी हैं।

अण्टिस्थिनिस्के सक्लेटिसके मतका एकग्राम ग्रहण किया है। उनके दर्शनमें सक्लेटिसके दर्शन की तरह सर्वभौमत्व नहीं देखा जाता। सक्लेटिसका दर्शन कभी भी ऐसी वैराग्यप्रवणताकी आवश्यक प्रदान नहीं करता। सक्लेटिसके मतसे सुख या आनन्दका मूल धर्मोंकी भित्तिके ऊपर प्रतिष्ठित है, इसकी लिये संसारवैराग्यकी आवश्यकता नहीं है। धर्म-प्रतिष्ठित सुख संसारके सभी स्तरोंमें पाया जा सकता है। सिनैटिकोंके यह वैराग्य-प्रवणता उत्तरोत्तर हृदि लाभ करके संसारहीनमें परिणत हुई थी। यही तक कि ज्ञानोपासना उन मनुष्योंके लिये निष्कत समझा जाता था। सिनोपी नगरवासी दार्शनिक डायोजिनिस (Diogenes of Sinope) अपने जीवनमें इस संसारहीनकी पराकाष्ठा दिखाना गये हैं।

सिरेनिक सम्प्रदाय (The Cyrenaics)।

इस सम्प्रदायकी प्रवर्तक अरिस्टिप्पस, Aristippus) सिनैटिकी (Cyrene) नामक स्थानमें रहने थे, इस कारण इस स्थानके नामानुसार इस सम्प्रदायका नाम पड़ा है। अरिस्टिप्पस इन्हीं सोफिस्टदर्शनप्रवर्तक थे। यदि यथायथमें देखा जाय, तो इनके साथ सक्लेटिसका मत कुछ भी नहीं मिलता। अरिस्टिप्पसके मतमें सुखभोग ही जीवनका धर्म उद्देश्य है। सुख कहनेसे वे दैहिक भोगवासना समझते थे। वे अपने जीवनमें इसका प्रकट परिचय दे गये हैं। उनके मतमें ही नैतिक बन्धन सुखकी अनारकी स्वरूप है,

उमका कोई रूप सारयता नहीं है। किन्तु पाण्डि-
पन सामोकर्य, सामसंयम, मिताचार पण्डितकी
सुपका मेतु बतना गये है। इस मन्त्रदाययुक्त दार्ग-
निक विपोहोरम (Theodora) का कहना है, कि
साधु उद्देश्यमें प्रवेष्टित हो कर कार्य करनेमें मनमें जो
पानन्दका उदय होता है, वही प्रकृत सुख है।
हिजियम (Hegias) का कहना है, कि सुखियों पर
सुखनाम पदम्बर है; दुःखनिवृत्ति को सुखको

पदार्थ देख कर उन पदार्थों के मन्त्र
है हम लोग उसे समझ सकते हैं और इस सादृश्य-
मयता की वी एक जातिको बलु है, ऐसा प्रतीत होता
है। एक जातिको मनुके मन्त्र यह जो प्रकृतियत
सादृश्य है, इसीका नाम उक्त मनुसाक्षका मोहन भाव
या धारणा है। मर्कटिककी मतानुसार यदि
बलु देख कर हम लोगों के मनमें ऐसी धारणा वा
मोहनका उदय न होता, तो बलुघान भी ही नहीं
सकता। ज्ञानके मन्त्र ऐसा एक "माधारण भाव"
(Universal i. e. conceptual element) है जो
हृदियम ज्ञानके मन्त्र ऐरा माधन करता है, ऐसे एक
पदार्थका रहना सामान्य है। बलुके इस माधा-
रण भाव (General notion) का निर्देश करनेमें जो
मर्कटिककी मतानुसार बलुको संज्ञा निर्देश हो जाती
है। प्रोटोने मर्कटिककी इस मतकी अपने भाववादतत्त्व
(Doctrine of ideas) में समर्पणित किया है।

इस समयका सर्वप्रथम ग्रन्थ थिरेटिस्टम् (The-
aetetus) है। इस ग्रन्थमें मोकिष्ट प्रोटागोरसकी
ज्ञानतत्त्वसम्बन्धमें समामोचना करके उसका दीप
प्रतिपन्न किया गया है। मोकिष्ट (Sophist) नामक
ग्रन्थमें माया वा भ्रम (Appearance) को धामोचना
है। परागिराहक ग्रन्थमें उनके मतकी समामोचना
देवी जाती है।

प्रोटोके दार्शनिक मत विस्तारके उत्तीयभारम
प्रथम युगका कल्पनाप्राप्त्युक्त और सर्व-मन्त्रको तया
दितोय युगकी दार्शनिक मन्त्रयथा इस दोनोका समा-
बोध देवनेमें जाता है। इस समयका ग्रन्थ देखनेमें
साफ साफ जात होता है, कि प्रोटोने मर्कटिक-प्रव-

त्वेटी और थिरेटिस्टन योक्त दार्शनिक जगत्के चन्द्र-
सूर्यविषय है। उन दोनोका दार्शनिक मत पात्र
तक सो पाठ्याध्ययनदे उत्तर पसुपभाषमें प्रमुखविस्तार
करना पार रहा है। मन्त्रावुक्तो कुम्भटिका चला-
हित की कर वे उत्पन्नपादामें प्रकाश पाते हैं।
यूरोपका नवयुग कुछ चर्चामें (Renaissance)
प्रोक्तद्वयन, माहित्य और मित्र (Revival of
Classical Literature and Art) के चतुर्गोलनके
फलमें प्रवर्तित हुआ था।

ज्ञान-मिरोमिचि प्रोटो ४२८ गृ० पूर्वाब्देमें एतद्मन्त्र
विशिष्ट भद्रग्राममें उत्पन्न हुए। न-भ्रान्त मन्त्रमें
(Objective) ग्रन्थ वचनमें जो उक्त मित्रा दो ज्ञाने
द्वयमें उक्तोमें मन्त्र-वचनमें उक्तोमें मर्कटिकका
ज्ञान समुद्धर्म इस भाषणात्, तत्क उक्तोमें मित्रा
प्रोटोने Phedrus और मन्त्रयत् राज
दोनों ग्रन्थमें प्रवर्तित पान्द्वारिक व्याप्ति-
का जिस प्रकार न-भ्रान्तिक रीतिमें प्रयोग का
योग, उनको मोर्मासा जो है और यह प्रतिपन्न किया है,
कि यन्मर्माहित "वाहडिग" वा भाव (The true Eros
or Idea) के प्रति दृष्टि नहीं रखनेमें किमो विषय-
को प्रकृत विज्ञानमन्त्रम मोर्मासा नहीं होती। फिडो
(Phaedo) नामक ग्रन्थमें पाकाके पमरव मन्त्रमें
धानोचना है। फिलेबस (Philebus) नामक ग्रन्थमें
प्रोटोने परममन्त्र क्या है? इस तत्त्वकी मोर्मासा
को है और रिपब्लिक (Republic) तथा टिमियम
(Timaeus) नामक दोनो ग्रन्थोंमें अपने राजनैतिक
मन्त्रों पत्रारपण का है।

प्रथम पण्डितोंने प्रोटोके दार्शनिक विभिन्न प्रमाणों-
के अनुसार विभक्त किया है। किन्तु दार्शनिक थिरेटि-
स्टने प्रोटोने दार्शनिक व्यायविषयक (Dialectic or
logic), जड़तत्त्वविषयक (Physics) और नीतितत्त्व-
विषयक (Ethics) इन तीन भागोंमें बाँटा है।

प्रोटोने व्याय वा तत्त्वशास्त्र (Dialectic) इस
पाठ्याका प्रति विस्तोर्माभाषमें प्रयोग किया है। उनका
व्यायवद्वय दार्शनिक नामाकारमात्र है। धीन कोचमें
उक्तोमें व्यायवापका दार्शनिक नामाकारमात्र मान लिया
है। इस व्यायवापका प्रोटोने बलुके प्रथम पदपमन्त्रमें

पानोपना को है (The Science or what absolutely is, or of the ideas) ।

प्रकृत ज्ञानका मूल्य क्या है, उसका विचार हम चर्चमें किया गया है । दार्शनिक प्रोटागोरसके मतमें व्यक्तिगत इन्द्रियज्ञान (Sensuous perception) प्रकृत ज्ञान है । प्रोटोने थियेटेटस (Theaetetus) ग्रन्थमें लिखा है, कि ऐसी प्रतिज्ञाको यदि मत्स्य मान लिया जाय, तो पक्षिक पक्षके समस्तपूर्ण ज्ञानको मत्स्य स्वीकार करना पड़ेगा । प्रत्येक व्यक्ति का ज्ञान उसके पक्षमें मत्स्य कह कर स्वीकार करनेमें सत्यनिरूपण सुधा है । भ्रम कह कर किसी पदार्थ का अस्तित्व नहीं रहता । हमके प्रतिरिक्त प्रोटागोरस अपने विरुद्ध मतावलम्बीको भ्रान्त नहीं कह सकते, क्योंकि उनके मतमें सभी व्यक्ति का ज्ञान उसके लिये सत्य है ।

द्वितीयतः प्रोटागोरसका मत स्वीकार करनेमें इन्द्रियजनित ज्ञान (Perception) उत्पन्न हो ही नहीं सकता । इन्द्रियजनित ज्ञान दृष्टा और दृष्ट वस्तुके संयोगसे उत्पन्न होता है । किन्तु प्रोटागोरसका कहना है, कि यादवस्तु इतनी परिवर्तनशील है, कि उसका सुझाव भर भी असुभव नहीं किया जा सकता । ऐसा होनेमें उनका तथ्याकथित ज्ञान नहीं है, ऐसा पड़ेगा । व्यक्तिगत इन्द्रियज्ञान प्रकृत ज्ञान प्रोटागोरस किस प्रकार उत्पन्न होता है, उसे विप्रयुक्त, इन्द्रियसे जो मन उन भ्रम विषयोंका सभी विषयके ज्ञानमें परिबोधमें ज्ञान उत्पन्न नहीं प्राप्त वस्तुका प्रकृत स्वरूप हम प्रोटागोरसके मतका अनुसरण पादर्य (Standard of truth) के इस प्रकार युक्ति परम्परा द्वारा प्रोटोने की समारम्भ प्रतियोग करके का पार्थक्य निर्देश किया है ।

प्रोटोने मतमें ज्ञानका एतद् दो प्रकारका है, इन्द्रियज्ञान और विज्ञान । इन्द्रियज्ञान पक्ष्यादि और परिवर्तनशील है तथा वाद्यज्ञानसे स्थिर होनेके कारण समस्तपूर्ण है । सृष्टिका यह परिणाम जिसके ऊपर पार्थक्य आरोप नहीं है, जो परिवर्तन, भ्रान्ति, भ्रमता है उसी पदार्थके प्रति विज्ञानको (Rational thought) दृष्टि निबद्ध है । विरुद्धज्ञान वाद्य वस्तुके ऊपर निर्भर नहीं करता । वाद्य वस्तुके संस्वरचोम परम पदार्थका ज्ञान ही विरुद्ध ज्ञान है । सुतरां प्रोटोने मतानुसार ज्ञान (Thought) और विज्ञान (Science) में प्रभेद यह है, कि ज्ञान पर्याप्त, इन्द्रियज्ञान ज्ञान पक्ष्य और विज्ञान नित्य ज्ञान है ।

प्रोटो प्रवर्तित भाववाद (Ideal Theory) है । इत्योदयनके पन्तर्विरोधके सामक्ष्यके लिये प्रोटोने अपने भाववादकी पक्षधारणा की है । इत्योदयन समुदायमुक्त पण्डितोंने वाद्य जगत् वा पक्षुका अस्तित्व स्वीकार करके भी दूसरे तरफसे उसे फिर स्वीकार किया है । सफ़्टिडने अपने परमिनिडस (Parmenides) नामक ग्रन्थमें उक्त मतकी समानोचना करते समय कहा है, कि पक्षु (Non-being) को स्वीकार नहीं कर सकते । इत्योदयनके मत है ; वस्तुका (Manifold, multi-स्तित्व नहीं है । इत्योदयन इस एक

O.

(Many) का सामक्ष्य विधान है, कि दोनोंका एक ही नहीं रहने । क्या पक्षुका हो जाना जा किया जाय, पड़ेगा । इत्योदयन ही निरर्थक है, प्रोटोने जिस उद्यमसे वद्वत्तेगा । पक्षुका अस्तित्व

कोकार करना पड़ेगा। चपत्ते मछो रहने पर चपत्ते के सम्बन्धमें भारवा क्रियो प्रकार हम सोचने में मछो रह सकतो। लेकिन ऐसा जो कहा जाता है, कि चपत्ते वा मछोका चरित्तत्व मछो है। यह देखल सत्के साथ तुलना करनेमे जाना जाता है। चपत्तेका चरित्तत्व अन्य प्रकारका (Different order of existence) है। द्रव्योद्यममछो समानोपमाके उपलक्ष्यमें छोटोने तत्प्रवर्तित 'चारडिया' क्या है, उसका परिचय दिया है। छोटोका 'चारडिया' द्रव्योद्यममछे सत्के समुच्चय है। वास्तवगतके चरित्तत्वके मछा हो कर चारडियाके मोहन वा सापका चरित्तत्व ध्वनित होता है और त्रिम परिमाणमें चारडिया वा मोहन वास्तवगतके साथ संकट है, वास्तवगत भी उसी परिमाणमें साथ है।

आदिवाका स्वल्प—छोटोके मतमें चारडिया वा भाव जगत् वैचित्तका एकत्वस्वरूप है। चर्यात् चारडियाके रहनेमें एक जातीयवदाधके मछा एकत्व है और इस चारडिया (Notion or bound of Unity) को उपलब्धि होने पर उनके एक जातीयत्व सम्बन्धमें हम सोचोका ज्ञान उत्पन्न होता है (in a subjective reference, the ideas are principles of cognition)। चारडियाके चरित्तत्व सम्बन्धमें छोटोका मत सतना सुष्टर मछो है। छोटोने चारडियाको तदन्तर्गत पदार्थोकी पादम-प्रतिकृति (Archetypes) और इन पादम प्रतिकृतियोंका चरयोरी चरित्तत्व स्वीकार किया है। उन्होंने टेविमका चारडिया, गथावा चारडिया, वनका चारडिया, सान्ध्यका चारडिया, मङ्गलका चारडिया आदि पदार्थ जगत्मात्रके हो चारडियाका उल्लेख किया है। यही हव चारडिया वास्तवगतके समान समुचित हो कर चरने चरित्तत्वके मितिरस्वरूप हो गये है।

हम सब चारडियाओंमें जो चारडिया चर्यावा चारडियाका मूल है, जिसका चरित्तत्व स्वीकार करनेमें चर्यावा चारडियाओंका चरित्तत्व पापमें पाप प्रतिपन्न होता है, यही चारडिया सब ग्रेड है। 'मिच' (The good) यही छोटोके सान्धुवार सब ग्रेड चारडिया है। यह मङ्गलका चरित्तत्व स्वीकार करनेमें सब चोर

सुन्दर (The true and the beautiful) इन दो भावोंके एवं यावतोप चर्यावा भावोंके चारडियाका चरित्तत्व स्वीकार करना पड़ता है। छोटोका कहना है, कि सूर्य त्रिम प्रकार केवल हम सोचोकी ही दृष्टि-शक्ति मछो है, पदार्थमात्रको ही उत्पत्ति और दृष्टिवा चारव है, उसी प्रकार मङ्गल (The idea of the good) केवल हम सोचोकी विज्ञानशक्ति (Scientific cognition) के ही मछो, पदार्थमात्रके ही चरित्तत्वका निदान है। सूर्य त्रिम प्रकार दृष्टिके हेतु हो कर भी चरयोरी दृष्टिके बहिर्भूत है, मङ्गल भी उसी प्रकार विज्ञानशक्तिका हेतु हो कर स्वयं विज्ञानमें बहिर्भूत है।

छोटोने हव मङ्गलमय स्वल्पको (The idea of the good) ईश्वर कतजाहा है। हव मङ्गलमय स्वल्पका व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य (Personality) उनके दमनमें चर्याको तरङ्ग लागी मछो जाता। सहाय ईश्वर (Personal God) के स्वत्वमें चर्याके कुछ हो स्वल्पभावमें निर्देश मछो किया।

छोटोका चर्याव (Physis)।

चारडियाके चर्या वा दमनमें चर्यावाभावे जो सान्धुवार मोहोय, चोर यलके साथ जगत्स्वरूप समुच्चय मछो किया। उन्होंने पहले जो कहा है, कि जगत्स्वरूप दृष्टिगत ज्ञानसाधक है, प्रज्ञाशक्ति (Reason) यही कार्यकारी मछो है। टिमियस (Timaeus) नामक चर्यामें छोटोने चर्यामें जगत्स्वरूपको चर्यावाका को है। हम चर्याके चर्यावाको चर्यावाज्ञानमूलक, चर्यावा कर हवके दमनमें का निर्णय करना कठिन है। छोटोने पहले जो जगत्-निर्माचकारी डेमियर्गस (Demiurgus) नामक एक विधावपुत्रका चरित्तत्व स्वीकार किया है। हम सुष्टरको बुद्धि चोर निर्माचकोमछे जगत्में हव प्रकार सम्पूर्णता लाभ को है। यह डेमियर्गस जगत्को उद्भावो शक्ति (The Moving deliberating principle—the world-former) है। पहले जगत्का कुछ भी न था, केवल जगत्का चादिकाचस्वरूप जगत्का चारडिया चर्यामान या एवं पाकार चोर मोमाहोन प्रकृति विद्यामान थी। वह विद्याना सुष्टरके हव 'मङ्गलम'के सब

ग्रहणा स्थापित करके सृष्टि विधान करनेके लिये विग्र-
प्राप्त वा जगत्प्रगति (World-soul) की सृष्टि को । इस
विग्रप्राप्तने सहरागिके मध्य गति (Motion) और
ग्रहणाका उद्योग करके यह, मध्य, प्रत्यो और अन्त-
रीचकी रचना की है । सहरागिसे चित्ति, चर, तेज और
महत्त्वं ये चार भूत पदार्थ विद्याय प्राप्त करके दोहो
वह्निका और प्राचोत्तमकी सृष्टि हुई है । जगत को
विद्याग्रप्राप्तको सम्यक् शोचोपय के अनुसार साधित
हुई है वा एक हो बारने सृष्टि हुई है, इसको सम्यक्-
मि ज़ेटीने कुछ भी साक साक नहीं बतलाया । ज़ेटी-
के मतमें मन्त्रज्ञके स्थापनमन्त्रके लिये जगतकी सृष्टि
(The self-realisation of the idea of the good)
हुई है ।

ज़ेटीके मतानुसार आत्मा (Soul) जड़ और आर-
डिआको मध्यवर्ती है । आत्मा ही इन दोनों के
मध्य मध्य स्थापित करता है । प्रज्ञाप्रगतिग्रग-
आत्मानि देवभाव (Divine element) वर्तमान है,
किर देव संयुक्त होनेके कारण आत्मा संयुक्त
नहीं है । आत्मा देखके सुख पर सुखी और दुःख
पर दुःखी है, सुखी यह वह है । प्रज्ञा रहनेमें आत्मा
इस यथावस्था में सुखी लाभ करके अपना स्थाप
(Ideal state) पानेके लिये चेष्टा करता है । देखवद
होनेके कारण आत्माके वासना उत्पन्न होती है । वासना-
विरहित विमुक्त आत्मा (Pure soul) देखवदके बाद
अपनी स्वरूप अवस्था पाती है । आत्माका धर्म प्रज्ञा
(Reason) है और आत्माके देहाभिमानसे इन्द्रिय
ज्ञान (Sensuous knowledge) उत्पन्न होता है ।
ज़ेटीने इसी प्रकार विषय-ज्ञान (Sange) और प्रज्ञाको
उत्पत्ति बतसाई है ।

नीतिरत्न (Ethics)

जीवनका चरम उद्देश्य क्या है ? इस विषयका निर्णय
करना हो-ज़ेटीके नीतिरत्न (thics) का उद्देश्य है ।
ज़ेटीके मतमें मन्त्रज्ञको जीवनका परम पुद्गल्य है ।
परममन्त्र क्या है, (What is the summum bonum)
नीतिरत्नके प्रपञ्चमें ये इस विषयको सीमा-
रूप गये हैं । उन्होंने अपने नीतिक विषयको सीमा-
रूप गये हैं । उन्होंने अपने नीतिक विषयको सीमा-

भी भाववाद (Ideal Theory) का प्रयोग किया है ।
जीवनका परमपुद्गल्य क्या है, इसको सीमा-
रूप गये हैं, कि "प्राद्विद्य" अवस्था (Exalta-
tion into the ideal being) अर्थात् देव विमुक्त
अवस्थामें आत्मा जिम प्राद्विद्या स्वरूप अवस्था-
में विद्यमान रहती है, वैसे वाध्यात्मिक अवस्थाका
प्राप्त होना जीवनका परमपुद्गल्य है, और यही जीवनका
परम मन्त्र है ।

ज़ेटीने कहा है, कि धर्म द्वारा (Virtue) यह
परममन्त्र प्राप्त होता है । उन्होंने पहले सन्तुष्टिमें
मनका अनुसरण करते कहा है, कि धर्म ज्ञान के जरूर
निर्भर करता है और अन्त्याय विषयको तरफ धर्म भी
विद्याका विषय हो सकता है । दोहो-उन्होंने यह मत
परिचयन करके नूतन मतका प्रचार किया । इस
मतमें धर्मवृत्ति चार है, प्रज्ञा (Reason) के धर्मज्ञान
(Wisdom) है, साहसिकी हम लोगोंको महत्त्व विषयका
प्राप्त कर सम्भला देता है । साहसिकता (Courage)
हृदय (Heart) का और मितव्ययिता (Tempe-
rance) इन्द्रिय वृत्तिका धर्म है । धर्म व्यावृत्ति
(Justice) आत्माकी निष्ठाकर है और वह अन्त्याय
धर्मवृत्तियोंको नियन्त्रित करती है, धर्मवृत्तियों के
मध्य यही सर्वश्रेष्ठ है ।

रिपब्लिक (Republic) नामक ग्रन्थमें ज़ेटीने
अपने राजनैतिक मतका प्रतिपादन किया है । राज-
नीति (Politics) की प्राचीन योः दार्शनिकों के मतमें
नीतिरत्नकी ग्रंथ सीमा है । प्राचीन योःसमें व्यक्तिगत
स्वातन्त्र्य (Individualism) नामक कोई पदार्थ
नहीं था । बालुक्य जिस प्रकार बालुकाराजिता छोटा
पंग है, व्यक्तिगत जीवन भी उसी प्रकार जातीय
जीवनका एक छोटा पंगभूत था । मरि-प्रारंभ
तुलनामें जिस प्रकार किसी व्यक्तिगतकी आवश्यकता
है, उसी प्रकार जातिकी तुलनामें व्यक्तिगत जीवनकी
भी है । निम्न सुद-परिधिः मध्य व्यक्तिता जो अपना
कोई विशेष अधिकार है तथा उस अधिकारमें जो
जातीय समता इच्छाये नहीं कर सकती, प्राचीन
योःसमें यह धारणा नहीं थी ।

अंटीने अपनी राजनैतिक शासनतन्त्र (Ideal state) इसी पाटन पर गठित किया है। एथेन्स में जो शासनतन्त्र की हदिय परने राज्य (Republic) में चरित को है, वह यद्यपि तद्देशीय और सामोयोगी है, हम-में मन्द है नहीं। मान्य पड़ता है, कि योक्त जातिको हम समथकी ऐथेनैतिकी जिये चरित पाटन पाकाय-कुसुमवत् हो गया था। प्राचीन स्पार्टा (Sparta) और एथेनैतिक सामाजिक नियमों के प्रति दृष्टिगत करने-से ज्ञात होता है, कि हममें भी अंटीने शासनतन्त्रको तरह व्यक्तित्व स्वातन्त्र्यका स्थान नहीं है। अंटीने मतमें शासनप्रधानों (State)-ने व्यक्तित्व को बनने विता, माता और मित्रकका स्थान अधिकार किया है। शासनतन्त्र को साधारण विचारों और साधारण चर्चा-लय है। शासनतन्त्र ऐसे स्वाधिकायको प्रभावशालि द्वारा नियमित होना आवश्यक है। ऐसी शासनप्रधानोंमें वास्तविक 'देश्य' या स्वेच्छाचारिताका प्रभाव नहीं है; समस्त वास्तविकी ज्ञानीयत्वमें परिणत करना होता। जो जाति (State)-का नहीं है, वह वास्तविकी भी नहीं हो सकता। यहां तक कि धर्म जीवन और धर्मवृत्ति ज्ञानीय जीवनमें वास्तविकी जीवनमें केवल प्रतिकल्पित होती है। उनका उत्पत्ति-स्थान ज्ञानीय जीवन-और प्रभावस्थान वास्तविकी जीवन है।

ऐथेनैतिक अपने साधारण तन्त्रमें वास्तविकी सम्पत्ति (Private property) और मार्गस्थ जीवनको आवश्यकता स्वीकार नहीं की है। लोगोंकी विद्या-दृष्टिमें निर्मादित लोगों और जोन किम व्यवसायका व्यवसायन करेगा, दृष्ट को उसका निर्देश कर देगा। विवाह प्रभृति सभी व्यवहारोंमें दृष्टिमें अनुमति को लायगी। सब व्यक्तिभूत लोगोंकी व्यवसाय, मजदूरीवाक, पढ़ायाक, दार्शनिक और गृहविद्या पादि मोक्षकी होगी। ऐथेनैतिकी जातिको व्यवसाय और गृहविद्यामें विद्या देनेको पादा दो है। यहां तक कि किम समय विवाह करना होगा, किम समय मत्तानोपस्थित और मार्गस्थ विधि है। हम सब विषयोंमें भी दृष्टिमें अनुमति लेना पड़ेगी।

ऐथेनैतिकी अनुमोदित शासनप्रधानों प्राथमिकतन्त्र (Aristocratic) है। एथेनैतिकी शासनतन्त्र (Democracy)-

की शासनप्रधानोंकी दुरवस्था देख कर वे एक शासन-तन्त्र के विषय प्रस्तावों न थे। एथेनैतिकी अनुमोदित शासनतन्त्रकी ऐथेनैतिकी वंगन प्राथमिकतन्त्र के उपर प्रतिष्ठित नहीं किया। उनके मतमें ज्ञानी वास्तविकी दार्शनिक है और जो प्रभावशालि है, वे दृष्टिमें दाग नहीं है—वे शासन को देनेके अनुमति पाय है। समस्ततन्त्रमें ऐथेनैतिकी जिव प्रकार ज्ञान (intellect), हृदयवृत्ति (feeling or heart) और दृष्टिबोध (sense) इन तीनों प्रभावशालि निर्देश किया है। अपने शासनतन्त्रमें भी हम तीन वृत्तियोंमें एक-एकके प्राथमिकतन्त्र प्रभावशालि सभी प्रकार तीन व्यक्तिविभाग किया है, यथा—मानव-वृत्ति, सामरिक सम्प्रदाय और अस्मत्तिसम्प्रदाय। हम तीन व्यक्तिमें तीन धर्मवृत्तियों (Virtues)-ने विकास प्राप्त किया है। शासनतन्त्रों ज्ञान (Reason)-के योद्धासम्प्रदाय वीरत्व (Courage)-के और अस्मत्तियों सम्प्रदाय मित्तार (Temperance)-के प्रतिभू है। प्रभावशालि धर्मव्याय (Justice) ने हम तीन धर्मोंको नियमित करने राज्यके सधर स्थापित को है।

ऐथेनैतिकी हम सब राजनैतिक नियमों द्वारा ज्ञानीय-महत्त्वमें अनुमति प्राप्त करने विकासका प्रभाव प्रभाव कर दिया है।

उपरिष्ठत प्रभावमें यह देखा गया, कि ऐथेनैतिकी समय में दर्शनशास्त्र मार्गव्यवस्था को उठा था। उन्होंने प्रतिकल्पित दर्शनतन्त्र का अनुसरण कर सब भविष्य के ज्ञान विज्ञानवर्धन उपायमें अपना दर्शन प्रतिष्ठित किया। प्रतिकल्पित जिव व्यवस्था प्राथमिकतन्त्र प्रदान किया है, ऐथेनैतिकी प्रतिभा उसे मार्गशालि करके भूल गई है।

ऐथेनैतिकी श्रुतिकी बादमें जो उनके दर्शन-व्यवस्थाओं (other Academy)-को प्रभावशालि प्रभावशालि था। उनके विचारोंमें अन्तर्गत ऐथेनैतिकी मत त्याग कर पोषा-गौरवका मत विवेचन, तन्त्रवर्धन व व्याख्या पादि मत प्रभाव किया। उनमेंमें बहुतरे प्रभावशालि हो गये हैं। कुछ समय बाद ऐथेनैतिकी मत क्रिमे ज्ञानी-को रखा है। दार्शनिक प्रभाव (Grantor)-ने

थरिस्टम चरमे दर्शन (Metaphysics) और
न्याय इन दो शास्त्रों की मोला स्पष्टकरने निर्देश नहीं
करा गये हैं। उनमें प्रत्येकका पानोच विषय एक
दूसरे में मध्य मन्विष्ट किया है। थरिस्टमका न्याय
मत (Logic) उनमें थारगेनम (Organon) नामक
ग्रन्थमें निविष्ट है।

મિટાક્રિતિશ્વ વચ્ચે પરિટ્ટન થવને પાનોવા
 વિષયનો નિર્દિષ્ટ પ્રવાનોને અનુસાર સંલિધેશ ન કર
 શકે । મૂળ હકેશ્વકે પ્રતિ સ્વરૂપ રહેને મો વિષયોને
 ક્ષત્રમજ્જ પોર પાવેલિક સ્વસ્થકા અમાવ દેવા જાતા
 હે । મેટાક્રિતિશ્વકે પ્રયમાગને પાનિટ્ટનને પૂર્વજર્ણ
 દર્શનમતીની સમાનોવના ની હે । રોહે વનકે અવને
 મતાનુસાર દર્શનમાસ્ત્રકો મૂળપરિણામોકા સર્ગિ
 વેશ કિયા થયા હે । તતોથ મમમે અધોસ્વવિરોધ-
 પ્રવાનો (The principle of contradiction)
 પોર સંજ્ઞાપવાનોકે સમસ્થે પાનોવના હે । પદાર્થ
 (notion of substance) થયા હે । પદાર્થ માત્રકા
 સ્વરૂપ (Essence) કોંકા હે । વિરામાવસ્થા (Poten-
 tiality) પોર વિકાગાવસ્થા (Actuality)
 થયા હે ।

परिष्टटन और प्रोटो चीजों के दार्शनिक समर्थन का वास्तविक है, यह परिष्टटन द्वारा प्रोटो के भाववाद (Ideal Theory) को समीचीन देखने में ही जाना जा सकता है। परिष्टटनका कहना है, कि प्रोटो ने अपने भाववाद में इन्द्रियवादा गदावी के ऊपर परमत्व और अनादित्व आरोप किया है पर्याप्त प्रोटो ने जिस भाव में आइडियालीका अस्तित्व प्रतिपक्ष किया है उसमें है इन्द्रियवादा-उदास (Things of sense immortalized and eternalized) समझी जाती है। इसके प्रति रिश प्रोटो-कथित आइडियालीके निराकरण (Movement) नहीं है। अज्ञानमूल के साथ इसका सम्बन्ध किम प्रकार स्थापित हुआ है, प्रोटो ने समझा जोई स्वरूप का यह नहीं समझाया। प्रोटो ने कहा है, कि पथिक आधुनिक पदार्थ तत्त्वज्ञान 'आइडियाली' से 'सोभित' (Participate in the idea) है, किन्तु आइष्टटन का कहना है कि प्रोटो-कथित आइडिया अज्ञानमूल

नहीं है, सुनारी जड़पदार्थों का ये इतने पंगोभूत है
 यह किम प्रकार मान्य हो सकता है। पादडिग
 सम्पूर्ण जिज्ञासोत्तर वस्तु है। इनमें कोई कार्यकार
 लमना नहीं है। यनारी जड़पदार्थों के माध्यमता कोई
 मंशोधनमाधन करनेमें किसी एक लक्ष्य पदार्थ को वाच-
 य्यकरता है, एनेटो ऐसे किमो पदार्थ का पक्षित्व कोकार
 नहीं करते। पारिष्टटनके मतमें पादडिगपक्ष का पक्षित्व
 कोकार करनेका कोई प्रयोजन नहीं, क्योंकि पाद-
 डिगपक्षों लक्षणार्थ जड़पदार्थों को पक्षिता पक्षित्व
 कोई गुण या शक्ति नहीं है। ऐसे पक्षितापक्ष पदार्थ का
 पक्षित्व कोकार करना दिव्यमामत्र है। पारिष्टटनके
 मतानुसार ये सब पादडिग (Ideas or notions)
 कोई जड़ानिरिक्त पदार्थ नहीं (Transcendent)
 है, उनका पक्षित्व जड़पदार्थों के पक्षानिहित (Imma-
 nent) है। एनेटोकी तरह पारिष्टटनमें भी कोकार
 किया है, किं वस्तुके भावमें ही वस्तुका पक्ष उपपन्न
 होता है पक्षानि वस्तुके पक्षानिहित पादडिग या भाव
 पक्षों के मतमें वस्तु ही का वस्तु वस्तुमें पक्ष उपपन्न
 करता है (The true nature of a thing is known
 and shown only in the notion)। दार्शनिक
 शक्तेटिम परन्तु वस्तु यही मत प्रचार कर गये हैं।
 एनेटोने शक्तेटिम-कथित हम भोगन (Notion) के
 मंश हमने जड़ानिरिक्त वस्तुत्व पक्षितापक्ष (Objective
 reality) को प्रतिपक्ष करने पक्षिता भावमात्र (Ideal
 Theory) स्थापित किया।

प्लेटोके साहजिक्ये चोर इन्द्रियाश्च पदार्थके चोर-
इव मध्यस्थो मन्वानोऽयमा लो जगद परिष्टम्भे
पदार्थ (Matter) चोर मूर्ति (Form) यो मध्य-
स्थित्वेति विद्या है परिष्टम्भे मूर्ति (Form)-को
प्लेटोके साहजिक्ये स्थान एव रूपम् है । मूर्ति पदार्थमे-
व मध्य गते के चोर मूर्ति हो यद्युच्यते तद्वत् निर्दिष्ट
करती है । परिष्टम्भे साहजिक्ये कारण भवताये है,
कारणन वा साहजिक्ये (Formal cause), समवाय
कारण (Material cause), जिन मूर्ति मध्यस्थित्वे
समवाय मूर्ति द्रव्य है जगद निर्मित कारण (Efficient
cause) चोर जिन मध्यस्थित्वे यद्वत् समवाय

नवसे पड़ने प्लेटोके मतकी निवृत्ति की। यथार्थ में प्लेटिस्टमकी ही प्लेटोका शिष्य कह सकते हैं।

अरिस्टल (Aristotle)

टागनिकेजगरी प्लेटिस्टमने ३८४ ख. पू. पूर्व में थेन (Thrace) देशके टागिरे (Stagira) नगरमें जन्मग्रहण किया। उनमें पिता निकोमैकस (Nicomachus) माकिटमके राजा पामिपटस (Amyntas) के चिकित्सक थे। कैंची संमरमें प्लेटोके घर कर प्लेटिस्टमने सत्तरह वर्षको अवस्थामें एथेंस जा प्लेटोका शिष्यत्वं ग्रहण किया और वहाँ दो बीस वर्ष तक ठहरे। गुरुशिष्योका परस्पर कैसा सम्बन्ध था, उसकी विषयमें विमर्श होते हैं। कोई कहते हैं, कि प्लेटिस्टमने प्लेटोके परंपरा ग्रहण की। किन्ती लिखीने प्लेटिस्टमकी अज्ञातप्रगाटीवने दोषो इनाया है। जो कुछ ही, प्लेटोकी शिष्यत्वं बाँटे प्लेटिस्टम प्लेटिस्टमके (Prince of Athens) राजा कारमिपसकी संभामें गये।

यहाँ था कर उन्होंने राजाको बहुत जोशियस (Pythias) का परिचय किया। जोशियसकी शिष्यत्वं बाद उन्होंने पुनः प्लेटिस्टम नामके एक समर्थीकी सेवा की। इस समर्थीके गर्भसे पुनः एक पुत्र हुआ जिसका नाम निकोमैकस (Nicomachus) रखा गया। ३४३ ख. पू. पूर्व में माकिटम-अधिपति फिलिपने प्लेटिस्टमकी अपने पुत्र प्लेटिस्टमके शिष्यतामें नियुक्त किया। प्लेटिस्टम फिलिप और पामिकससंदर दोनोकी ही भक्ति और सभासके प्राप्त बन गये। पामिकससंदर जब पारसियाजयकी यात्रा निकले, तब प्लेटिस्टमने एथेंस का कर लीसियस (Lyceum) नामक चतुष्पाठमें पाठ्यापना कार्य आरम्भ कर दिया। तैरह वर्ष पठ्यापनाके बाद एथेंसवासियोंके अनुरोध होने परने एथेंस छोड़ कर चले गये। ३२३ ख. पू. पूर्व में उन्होंने यवियाज अन्तर्गत चालिस (Chalcis) नगरमें देशयाग किया।

प्लेटिस्टम यथेष्ट प्लेटोके शिष्य थे, तो भी दोनों का दार्शनिक मत एक नहीं है और दोनोंकी दार्शनिक मतप्रचारप्रवासीमें विवेक विभिन्नता देखी जाती

है। प्लेटिस्टमने प्लेटोकी तरह कल्पनाशुद्धि देनेमें नहीं आता। प्लेटोने प्रमाणान्वितने और प्लेटिस्टमने बुद्धिबलने पर्याप्त विस्तार और शक्ति द्वारा अपने दार्शनिक मतका प्रचार किया था। प्लेटोके दार्शनिकी गति पाश्चात्तिता 'Idealism' की ओर है। उन्होंने पाश्चात्तिकताकी अत्यन्त करके समझे अन्यान्य समस्त पदार्थों की उत्पत्ति निर्देश (deduce) की है। प्लेटिस्टमने वास्तवताकी ओर नीतियोंकी दृष्टि आकर्षण की है, बाह्यजगत्की सत्य माना है, बाह्य जगत्का चर्चिता उनमें निकट वास्तव पदार्थ है, जगत्का कोई भी पदार्थ नमकी उपेक्षाका विषय न था। बाह्यजगत्की व्याख्या प्लेटिस्टमने दार्शनिक प्रमाण आलोचना विषय है। इस संबंधमें प्रसारिनी दृष्टिविभाग प्लेटिस्टम अपने प्रकारके विज्ञान भाषाकी प्रवर्तना कर गये हैं। उन्होंने तर्कशास्त्र (Logic) को प्रणयन न किया, बल्कि प्राकृतिक विज्ञान (Natural History), समीक्षित विज्ञान (Empirical Psychology) और नीतिशास्त्र (Theory of morals) उन्हींकी कृति हैं।

मेटाफिजिक्स (Metaphysics) नामक ग्रन्थमें प्लेटिस्टमने अपने दार्शनिक तत्त्वज्ञानमूलक चर्चाकी अवतारणा की है। मेटाफिजिक्स यह नाम प्लेटिस्टमके भाष्यकारोंने ही रखा है। प्लेटिस्टम इसे प्रथम वा मूल दर्शन कहते गये (First philosophy) है। विज्ञानशास्त्रके साथ दार्शनिक गद्यसंबन्धमें प्लेटिस्टमने कहा है, कि शिष्य विवेक विज्ञानका अधिकार प्रकृतिक विवेक सोमा द्वारा निर्दिष्ट है। दार्शनिक अधिकार इसी जड़ प्रकृति मूल पर है। पदार्थ मात्र ही अस्तित्व से कर विज्ञानका अधिकार है। किन्तु केवल जड़ प्रकृति से का जड़ प्रवर्तित नहीं हुई। यावत्तय आधुनिक अस्तित्वका मूलमूल्य जड़ने प्रतिरिक्त एक तारिक्त पदार्थ (Essence) का अस्तित्व है। यह तारिक्त पदार्थ ईश्वर ही है। प्लेटिस्टमने उन्हीं ईश्वरकी दार्शनिक प्रतिपाद्य विषय कहा है। इसीमें प्लेटिस्टमने अपने दर्शनका ईश्वरत्व (Theology) नाम रखा है।

परिष्टटन अपने दर्शन' (Metaphysics) और न्याय इन दो शास्त्रीकी सोमा स्पष्टरूपमें निर्देश नहीं कर गये हैं। उन्होंने प्रत्येकका पानोप्य विषय एक दूसरेके समान परिचित किया है। परिष्टटनका न्याय मत (Logic) उनके चारोनेमन (Organon) नामक ग्रन्थमें लिखित है।

मेटाफिजिक्स ग्रन्थमें परिष्टटन अपने पानोप्य विषयकी निर्दिष्ट प्रणालीकी अनुसार व्यवस्था न कर सके। मूल उद्देश्यके प्रति लक्ष्य रहने भी विषयोंमें क्रमबद्ध और पारंपरिक व्यवस्था का समाप देना जाता है। मेटाफिजिक्सके प्रथमार्धमें परिष्टटनने पूर्ववर्ती दर्शनमतोंकी समालोचना की है। शेष उनके अपने मतानुसार दर्शनशास्त्रको मूलप्रतिष्ठापिका मग्न वैग किया गया है। तत्तीय भागमें अर्थोपपत्ति-प्रणाली (The principle of contradiction) और संप्रामाण्यकी सत्यतामें पानोप्य है। पदार्थ (otion of substance) क्या है? पदार्थ मानका स्वरूप (Essence) कैसा है? विभाव्यता (Potentiality) और विकासव्यवस्था (Actuality) क्या है?

परिष्टटन और प्लेटो दोनोंके दार्शनिक मतमें बड़ा वाचस्प है, वह परिष्टटन द्वारा प्लेटोके भाववाद (Ideal Theory) को समालोचना देखनेमें की आजाजा सकता है। परिष्टटनका कहना है, कि प्लेटोने अपने भाववादमें इन्द्रियग्राह्य पदार्थोंके लार समस्त और अनादित्व आरोप किया है अर्थात् ऐंटीमें जिस आधारमें पारडियाओंका पक्षित्व प्रतिपन्न किया है उसमें है इन्द्रियपार-पदार्थ (Things of sense immortalized and eternalized) समझे जाते हैं। इसके प्रतिरिक्त ऐंटी-पक्षित पारडियाओंके क्षियागति (More mortal) नहीं है। अद्वयगतके साथ इनका अन्वय जिस प्रकार स्थापित हुआ है, ऐंटीमें समझा कोई तपस्व काश नहीं बतलाया। ऐंटीमें कहा है, कि अनेक नागतिक पदार्थ तदन्तर्गत 'पारडिया'के 'पंगोमृत' (Participate in the idea) है, किन्तु पारिष्टटन का कहना है कि ऐंटी-पक्षित पारडिया अद्वयगत

नहीं है; उनका अद्वयगत मान्य हो इनके पंगोमृत है यह किस प्रकार मान्य हो सकता है। पारडिया मध्यम क्षियागोन पक्ष है। इनमें कोई कार्यरत समता नहीं है। उनका अद्वयगतके साथ इनका कोई मंगोमपान करनेमें किसे एक लोच्य पदार्थ की बात-प्रत्यक्षा है, ऐंटीमें ऐसे किसे पदार्थका पक्षित्व स्वीकार नहीं करते। पारिष्टटनके मतमें पारडियाओंका पक्षित्व स्वीकार करनेका कोई प्रयोगन नहीं, क्योंकि पारडियाओंमें तदन्तर्गत अद्वयगतको अपने पक्षित्व कोई सुख या शक्ति नहीं है। ऐसे पक्षित्व पदार्थका पक्षित्व स्वीकार करना द्विधर्ममात्र है। परिष्टटनके मतानुसार ये सब 'पारडिया' (Ideas or notions) कोई अद्वयगतिक पदार्थ नहीं (Transcendent) है, उनका पक्षित्व अद्वयगतके पक्षित्वित (Immanent) है। ऐंटीको तरह परिष्टटनमें भी स्वीकार किया है, कि वस्तुके भावमें ही वस्तुका ज्ञान प्राप्त होता है अर्थात् वस्तुके पक्षित्वित पारडिया या भाव दर्शनके मतमें उद्भव ही कर हम वस्तुमें ज्ञान प्राप्त करता है (The true nature of a thing is known and shown only in the notion)। दार्शनिक सन्नोटिमें पक्षी पहल यही मत प्रचार कर गये हैं। ऐंटीमें सन्नोटि-पक्षित हम ज्ञान (Notion) में ज्ञा इनके अद्वयगतिक स्वरूप पक्षित्व (Objective reality) को प्रतिपन्न करके अपना भाववाद (Ideal Theory) स्थापित किया।

ऐंटीके पारडिया और इन्द्रियग्राह्य पदार्थके परस्पर सम्बन्धको समालोचना की जगह परिष्टटनने पदार्थ (Matter) और मूर्ति (Form) यही सम्बन्ध निश्चय किया है। परिष्टटनने मूर्ति (Form) को ऐंटीके पारडियाके स्थान पर रखा है। मूर्ति पदार्थमें स्वरूप नहीं है और मूर्ति ही वस्तुका स्वरूप निर्देश करती है। परिष्टटनने बार प्रकारके कारण बतलाये हैं, कारण वा बाह्यकारण (Formal cause), समान्य कारण (Material cause), जिस शक्ति परयोगमें समान्य शक्तिन हुआ है वह निमित्त कारण (Efficient cause) और जिस उद्देश्यमें यह समान्य

साधित हुआ है, वह प्रत्यक्षित उद्देश्य भी अनि-
सिक्त कारण (Final cause) है। इन चार कारणों का
विश्लेषण करने में मूर्ति (Form) और पदार्थ (Mat-
ter) ये दो विषय मूल में देखने में आते हैं। समवाय-
कारण और निमित्त-कारण (Efficient and final
cause) मूर्ति (Form) के आश्रित हैं और सम-
वायकारण पदार्थ (Matter) को निर्देश करता है।
भास्कर की चोदित मूर्ति को प्रकृति और उक्त मूर्ति
का कारण है। अतः भास्कर निमित्त कारण,
मूर्ति को प्रकृति वाह्य और मूर्ति कारण, इन
दोनों को एक स्थान में मान सकते हैं। भास्कर प्रस्तर-
खण्डका कारण नहीं है, अतः वह एक समवाय-
कारण (Material cause) है।

परिष्ठातृ के मत में प्रत्येक जागतिक पदार्थ रूप
(Form) और जड़ (Matter) के समावेश से गठित
हुआ है। स्वयं पदार्थ (Matter without form)
जगत में कल्पना की सामग्री है, केवल परिचित हो
कर हमें कोई विवेक या उपाधि नहीं है (With-
out predication or determination)। जाग-
तिक प्रत्येक पदार्थ का सत्त्वस्वरूप है ऐसे निरुपाधि
पदार्थ का परिष्ठातृ में मूलपदार्थ (Materia prima)
नाम रखा है। रूपहीन पदार्थ जिस प्रकार नहीं
देखा जाता, पदार्थहीन रूप भी (Form without
matter) उसी प्रकार है। शुद्धरूप (Pure form)
नाम का अर्थ तो कोई विवेक नहीं है, ऐसा पदार्थ
जगत् में नहीं मिलता। विषय वा पदार्थ रूप (Form)
को विद्युदावस्था (in pure notion) में रहने नहीं
देता।

परिष्ठातृ में रूप और जड़ के सम्बन्ध में जगत् की
विकाशप्रक्रिया (development) को व्याख्या की है।
वह सम्बन्ध पदिकावस्था के साथ विकाशप्रक्रिया
सम्बन्धमात्र (The relation of potentiality to
actuality) है। विषय के रूप प्रकृत का नाम विकास
(becoming) है। योजक सत्य रूप कारणवत्ता (as
potentiality) है। यह योजक तब तक परिष्ठातृ
होता है, तब वह योजक विकाशवत्ता (Actual

existence) है। प्रत्यक्षित फारम कारणवत्ता का
उद्घोषण करके विकाशप्रक्रिया में परिष्ठातृ करता है।
परिष्ठातृ का फारम वा रूप कहने में इच्छित को विषयो-
भूत वाह्य प्रकृति का बोध नहीं होता। परि-
ष्ठातृ के मतानुसार फारम कहने में विकाशप्रक्रिया वा
विकाश का कारण समझा जाता है। भास्कर को
कल्पनामय देवमूर्ति पदार्थ चोदित देवमूर्ति का
कारण है। इसी जगत् चेतो और परिष्ठातृ के मत
का प्रकृत पार्थक्य देखने में आता है। चेतो के पाह-
डिया को तरह परिष्ठातृ का फारम वा पाहडिया कार्य-
शील गतिगुण नहीं है। फारम को सत्तावस्था को
(Potentiality) विकाशवत्ता को परिष्ठातृ (Actua-
lity) साधन करता है।

सूक्ष्म और विकाशवत्ता के सम्बन्ध में जो परिष्ठातृ-
ने ईश्वर का पक्षित समभावित किया है। तोन
यों की युक्तिका अवलम्बन करके ये चयना मत प्रतिपन्न
कर गये हैं।

जगत्तरु में परिष्ठातृ ने दिखसाया है, कि सत्य-
तावस्थाने विकाशवत्ता को साधन करने से निम्न एक
विशयगति को आवश्यकता को कारण करने में पड़ेगी।
क्योंकि विकाशप्रक्रिया गति के नहीं रहने में सत्तावस्था
किस प्रकार, हो सकती वह मान्य नहीं होता।
ईश्वर की यह विकाशप्रक्रिया गति है। जागतिक
गति को कार्यकारित्व को कारण करने में, इस गति-
को नियामक एक गति (Principle of move-
ment) पदार्थ वस्तुमान है, ऐसा मानना होगा, कारण
परिवर्तित गति विवेक को तोपादक नहीं है। दिव्य
प्रमाण (Ontological argument) में परिष्ठातृ ने
दिखाया है, कि वह गति सम्पूर्ण विकाशमान
(Pure actuality) है, क्योंकि पदिकावस्था
(potentiality) में तब तक पदिकावस्था पारोप हो
जाती है। निम्न विकाश प्रक्रिया भी नहीं हुआ है,
तब विकाश परिवर्तित हो भी सकता है और नहीं
भी हो सकता है। अतः जो पदिकावस्था विकाशप्रक्रिया
है वह विकाशमान है जो पदिकावस्था ईश्वर का रूप है।
अतः नैतिक विचार (Moral argument) में भी

ईश्वरकी सम्पूर्णता और विकासवस्था स्वीकार करने पड़ेगी। कारण जो वस्तु अविकामावस्थामें है, उसके सम्बन्धमें दो विषय भाव की धारोप किये जा सकते हैं। जो अविकाम साधु पचाधु दोनों ही हो सकते हैं, किन्तु जो विकासमान है, उसके सम्बन्धमें ऐसे परस्पर-विरोधी दो विरोधक विस्तृत प्रयुक्त नहीं हो सकते। अतएव विकासवस्था अविकामावस्थाको अपेक्षा उत्कृष्ट है; ईश्वर सम्पूर्ण है, अतएव विकासमान है और इसलिये विरोधावस्थाको पतित है। ईश्वर तीनों 'कारणों' (the efficient, the notional, the final) के भेदसे शक्तिस्वरूप (the prime-mover) ज्ञानस्वरूप (purely intelligible) और मूल-स्वरूप ज्ञान (primitive good) है।

पहले ही कहा जा चुका है, कि परिष्टलनके मतमें यावन्तीय ज्ञानात्मक व्यापारों विकासका एक धारा बाह्यक क्रम है। जड़ (Matter) की रूप (Form) से रूपान्तरमें परिणति, यही विकासप्रणालीका मूल है। मनुष्य की इस विकासको चरम परिणति है। परिष्टलनके मतानुसार पुद्ब (Man made) की परिणति द्वारा प्राकृतिक परिणति सम्पूर्णता प्राप्त होती है; जोशक्ति परमपूर्ण है। जड़ प्रकृतिकी समय सेटा इस पुद्ब विकासको और धावित होती है। जो कोई वस्तु इसके भीतर है, उसका जीवन स्थैर्य समझना चाहिये।

पनसार परिष्टलनके गति (Motion), देय या स्थान (Space) और काल (Time) इन तीन वस्तुओं की प्रकृतिक सम्बन्धों परीक्षण को है। गति (Motion) द्वारा विकास-व्यापार (Transition from potentiality to actuality) साधित हुआ करता है। गति-शक्तिका प्रसार भी स्थानसाधित है, इसीसे स्थान वा देय की परिष्टलनके गति का सम्भाव्य पदार्थ (Possibility of motion) कहा है। ज्ञान गति का परिमाण (Measure of motion) है। ये तीनों ही पर्योम हैं।

परिष्टलनके 'पम', जगत्तत्त्व (Cosmology) सम्बन्धीय पममें कहा है, कि गतिशक्तिकी प्रकृति और प्रक्रियानुसार जगत्समस्त काव्य साधित हुआ है। इनके

मतानुसार पञ्चावत (Uninterrupted), स्वसम्पूर्ण (Self-complete) और वृत्ताकार (Circular) गति ही सबसे श्रेष्ठ है। जगत्तत्त्वा जो गोमल (Sphere) सर्वापेक्षा इस गतिकी साधित है, वह सर्वापेक्षा सम्पूर्ण है और जो गोमल इस गतिकी परमपेक्षा है, वह गोमल सर्वापेक्षा परमपूर्ण है। स्वर्ग जगत्तत्त्व मान्दस्य (Periphery) में अवस्थित है, इस कारण यह सर्वापेक्षा सम्पूर्ण है और पृथिवी केन्द्र पर अवस्थित है, इस कारण गति का प्रभाव पञ्चम पञ्च हीनेगे यह सर्वापेक्षा परमपूर्ण है। जलमय स्वर्ग के निकट रहनेके कारण परे-पाकृत सम्पूर्ण है और परमपञ्च पृथिवी के निकट रहनेके कारण जलमय की अपेक्षा परमपूर्ण है। स्वर्ग के सभी पदार्थ सम्पूर्ण हैं, यहाँ जड़पदार्थ नहीं है। स्थिर (Ether) जगत्तत्त्व मूल पदार्थ है और यहाँ के सभी पदार्थ चरम हैं। स्वर्ग जगत्तत्त्वों निवासक शक्ति (Prime mover) के साक्षात् प्रभावधोन है। पृथिवी के इस शक्तिसे दूर रहने कारण यह स्थान परमपूर्णता का आधार है। यहाँ के पदार्थ स्थूल जड़ और यावन्तीय द्रव्य को उत्पत्ति-विनाशशील है।

परिष्टलनके प्राकृतिक विकासके अरभित वतमान समय कहा है कि चेतन पदार्थ इस विकासप्रणालीमें सर्वापेक्षा निश्चयार है। चेतन पदार्थसेमूल विभिन्न पदार्थों के नियन्त्रण स्वयं हुआ है। यह नियन्त्रण ज्ञान उत्पत्तिविकाशके निश्चयार ही सुचना करता है। चेतन पदार्थ इसके जगत्तत्त्वमें अवस्थित है। यहाँ पर विकास-प्रणाली वाह्य विषयके ऊपर निर्भर नहीं करती, यहाँ गतिशक्ति जोशको और संरक्षणीयशक्ति (Animating and conservative principle) कार्य करती है। उद्भिद्जन्यत्व वाक्ता केवल संरक्षक और पुष्टिमाधनके शक्तिस्वरूपमें वर्तमान है। प्राणीजगत्तत्त्व निश्चयारमें इन्द्रियबोध (Sensation) का उदय हुआ है। इस विकासको मनुष्यमें परिणति हुई है। मनुष्यमें इस सब शक्तियों पर्याप्त जोशको, संरक्षक और बोधशक्ति (Reason) के प्रतिष्ठित एक चोटी शक्तिका विकास पाया जाता है जिसका नाम है, प्रज्ञा-शक्ति (Reason)। यह शक्ति स्वयंसाय है, जड़से पर-

क्षिप्त है। सुगम देखने भाव हमेशा कोई सम्बन्ध नहीं है। देहात्म होने पर प्रज्ञा विनष्ट नहीं होती। ईश्वर का माय प्रकृतिका जैसा सम्बन्ध है, आत्मा (Soul) का माय प्रज्ञा (Reason) का भी वैसा ही सम्बन्ध है।

परिष्ठटनका दर्शन वास्तव-वाटमूलक (Realism) भित्तिके ऊपर प्रतिष्ठित होनेके कारण उन्होंने ऐदोकी तरह नैतिनस्व पर जड़तत्त्व का सम्बन्ध विक्षिप्त नहीं दिया। मनुष्यका स्वरूप कौसा है, उसे निर्देश करनेमें ऐदोने मनुष्यके आध्यात्मिक स्वरूप पारद्विया (The-ides of the good) की व्यवहारका को है। परिष्ठटन सत्त सत्तका अनुमोदन नहीं करते। इस ओवीका प्रकृत मनुष्य क्या है, जोयमने इस तत्त्वका मु पविष्कार कर गये हैं। परिष्ठटनने विज्ञानके हिमावसे नैति-तत्त्वका प्रचार किया है; मानवके चक्षमें यथायमें रित जनक क्या (Morality in the life of man) के वैधन वही विचार किया है। जगत्में मनुष्यका स्वरूप क्या (not the good in relation to the uni-verse) है, इस तथ्यको भीमाना नहीं को। नैतिक जीवन, इनके मतमें पति प्राकृतिक (Supernatural) जीवन नहीं है, यह जीवनका ही विकासमात्र है।

सक्रैटिसके मतमें ज्ञान ही धर्म-वृत्तिका स्वरूप (Virtue is knowledge) है। इसको समालोचनामें परिष्ठटनने कहा है, कि ज्ञानको प्रधानता स्थापन करनेमें सक्रैटिस सहजात वृत्ति (Natural instincts) काह कर जो कुछ जीवनीकी नियामकवृत्ति है, उस पर नक्ष्य नहीं करते। इनके प्रवृत्तियोंके घमने हम लोग कभी कभी ज्ञानके विपरीत कार्य किया करते हैं। ज्ञान द्वारा पनियन्तित हो पोर स्वभावकी पतित्वन करके ये वृत्तियाँ को कार्य करती हैं, वही नैतिक हिमावसे समद्वनजनक है। इस वृत्तियोंके रहनेमें ज्ञान-के विपरीत कार्य करना सक्रैटिसने जैसा असम्भव समझा है, वैसा असम्भव नहीं है। मनुष्यको प्रवृत्तियों की स्वभावता रितमाधक है, इनका यथायथ प्रयोग होनेमें ही मनुष्यकी उत्पत्ति होती है। केवल ज्ञानमें मनुष्यकी उत्पत्ति नहीं है। सुगम केवल ज्ञानचर्चामें धर्म नहीं है, प्रवृत्तिके अनुमोदनमें धर्म है। ज्ञान

प्रवृत्तियोंका नियामकमात्र है। सक्रैटिसने तत्त्वहिन्-की ही (Rational insight) धर्म का नियन्त्रास्वरूप माना है। परिष्ठटनके मतमें तत्त्वहिन् नैतिक जीवन का फलस्वरूप है। जीवनका यह मनुष्य क्या है (What is the summum bonum of life), इस तत्त्वके आलोचनाक्रममें इनकी कहा है कि सुख ही (Happiness) जीवनका यह मनुष्य है। सुखको प्रकृति एक तरहको है जिसका निर्देश करने समय इनकी कहा है, कि विभिन्न प्रकृतिके अनुसार सुख भी विभिन्न है। मनुष्यके लिए हर्षितज्ञान मूल प्रकृत सुख नहीं है। कारण, यह भी इस मूलके अधिकारी है। प्रज्ञाज्ञान मूल मानवका प्रकृत सुख है, प्रज्ञा-नियन्त्रित कार्य (Rational)के जो सुखोत्पत्ति होती है पर्याप्त जो सुख इस कर्मके फलस्वरूप है (Result and not the end in view) वही प्रकृत सुख है।

धर्म-वृत्ति या सदगुण (Notion of virtue) क्या है, इसकी सम्बन्धमें परिष्ठटनने कहा है, कि प्रज्ञा-ज्ञानकर्मके पुनः पुनः अनुमोदनमें निष्ठ गुण या प्रवृत्तिका उदय होता है, वही धर्म-वृत्ति (Virtue) है; प्रत्येक कार्य यथायथ फलकाहा करने साधिन द्वारा करता है; किन्तु कार्यका फल यदि यथायथ नहीं कर मातामें दोष (Defect) पड़ता बहुत (Excess) हो तो कार्य असम्पूर्ण हुआ, ऐसा कहना होगा। फलकी परवृत्ता पोर अधिकता इन दोनोंका मध्यय अनुसरण (Observance of a due mean) धर्म-वृत्तिकी प्रकृतिका स्वरूप है। यह मध्यरागि (Mean) नहीं के घममें समान नहीं है। दूसरी धर्म-वृत्तिके घममें एक प्रकारका नहीं है। सुदृष्टका धर्म एक प्रकार, प्रोजा अन्य प्रकारका पोर बालकका धर्म दोनोंके धर्मोंमें स्वतन्त्र है।

जीवनके निम्न निम्न पवस्थानुसार धर्म-वृत्तियाँ भी निम्न निम्न हैं। पवस्थाके वैधित्यके हेतु समस्त धर्म-वृत्तियोंका निर्णय करना नठिन है, इसीमें जीवनके स्वार्थ माधेमें प्रधान प्रधान धर्मोंका परिष्ठटनने निर्देश किया है। जैसे मूल पोर दुःख दोनोंकी उदाय संघर्षमें देखनेमें पति है। इस दोनोंकी नैतिक

मध्यमार्थ (Moral mean) निर्देश करनेमें यह कहना पड़ेगा, कि दुःख भय करना भी अनुचित है। शिकुण भय नहीं भी करना अनुचित है; इन दोनोंका मध्यम दृढ़ता (Fortitude) है। सुख प्रति पोशाकोय भी वाञ्छनीय नहीं है और सुख प्रति अत्यासक्ति भी उसी प्रकार है। इन दोनोंका मध्यम मित्तार (Temperance) है। ऐसे उपायका व्यवहार करके परिष्टनने धर्मवृत्तियोंका निर्देश और समझा देनेको विभाग किया है। समूहों में सामाजिक शिक्षा देनेकी आवश्यकता नहीं की, केवल साधारण भावसे पोषणका को है।

धर्म पद्धति सुख परिष्टनके मतमें सामाजिक पद्धति राजनैतिक जीवन भिन्न व्यक्तिगत जीवनमें प्रभाव है। मानवका धर्मधर्म अन्त्यात्म मानवोंके साथ सम्बन्धमें उत्पन्न हुआ करता है, मानवका सुख भी उसी प्रकार अन्त्यात्म मानवसापेक्ष है। समाज भिन्न समूहोंके समुदाय कहें। यह अन्त्यात्म प्राणियोंको तरह एक प्राणीमात्र है। समूह जन्मने ही एक सामाजिक जीव (Corporate being) है; इसमें 'स्टेट' या राज्यतन्त्र व्यक्ति या वर्ग (Family)-को पक्षों में बाँटा है। व्यक्तिगत जीवन इस राजनैतिक जीवनका समान्य प्रमाण है। स्टेटोंको तरह परिष्टनके मतमें मानवजीवनको नैतिक स्वार्थ और सम्पूर्णताका विधान करना राज्यतन्त्रका प्रथम कर्तव्य है। लेकिन इसकी निम्न ही व्यक्तिगत और वर्गगत लाक्षणिकताको विचारकर विचार कर जाननेके पक्षपातों नहीं हैं। राज्यतन्त्र इनके मतमें एक सम्प्रदाय नहीं (Unity of being) है—सम्प्रदाय-समूहोंके मिलने उत्पन्न है। प्राणी व्यक्तिगतोंके द्वारा ही शासनतन्त्र परिवर्तित होता रहता है। परिष्टन राजतन्त्र (Monarchy) और अतिराजतन्त्र (Aristocracy) शासनप्रणालीके पक्षपाती हैं। उनका कहना है, कि जो राज्य धर्मपरिपालन है, चाहे एक द्वारा ही चाहे अधिक द्वारा, नहीं राज्य उत्तम है। दार्शनिक शिक्षासे शासनतन्त्र उत्तम है, उसका निर्णय करनेकी उम्मीदें भीमानी नहीं की। उन्होंने देग-काज-पातानुसार शासनतन्त्रका निर्णय करने कहा है।

परिष्टनको दृष्टिकोण से वह एक सम्प्रदायवादी व्यक्तिगत दर्शनकी विशेष प्रवृत्ति न कर सकें। परिष्टनको स्थापित दर्शनसम्प्रदायका नाम पेरिपेटेटिक सम्प्रदाय (Peripatetic school) है। दर्शनको पक्षों में विचारणात्मक प्रभाव इस सम्प्रदायमें विशेष रूपसे लक्षित होता है। व्यक्ति दृष्टि (Strato) परिष्टनको एक दैतवादका परिहार कर प्रकृति (Nature)को ही सभी पदार्थोंका कारण और नियन्ता कह गये हैं।

परिष्टनको बाद जिन सब दार्शनिक सम्प्रदायोंको छुट्टी हुई, उन सब सम्प्रदायोंमें 'स्टेट' और परिष्टनके दर्शनकी तरह सर्वभौम भाव नहीं दिया जाता। सोफिस्टोंको तरह इनके दर्शनमें भी आत्मा (Self or subject) ही प्रधान नहीं है। किन्तु सोफिस्टोंको तरह इस आत्माका प्रकार नहीं है। व्यक्तिगतमें प्रवृत्ति नहीं होता। इन सब दर्शन-सम्प्रदायके मतमें सभी जागतिक पदार्थ आत्मनःसारवत् तत्वावधूत हैं। जो पदार्थ आत्माके पक्षमें प्रवृत्ति नहीं है, उसका अस्तित्व निश्चय है। इस प्रकार दार्शनिक मत सर्वोच्च और एकदमदर्शी होने पर भी वहमें जिन प्रकार दर्शनमतवाद और समुदायका धर्म तथा सामाजिक जीवन स्वतन्त्र था, परिष्टनके परमर्षी दर्शन सम्प्रदायोंमें दर्शन उसी प्रकार दिव्य ज्ञानप्रदायक शास्त्रविषय न हो कर जीवनके साथ एकीभूत हुआ था।

परिष्टनके गणनीय चार दार्शनिक सम्प्रदाय प्रसिद्ध हैं—टोइक दर्शन, एलिफ्टोइक दर्शन, इरेटिक दर्शन और अस्टेटिक दर्शन। यद्यपि इनका अन्तिम विचार नीचे दिया जाता है।

टोइक (Stoic) दर्शन।

दार्शनिक सेनो (Zeno) इस सम्प्रदायके प्रवर्तक थे। उन्होंने ई. पू. पूर्वार्द्ध में साइप्रस द्वीपके पणार्थ निटियस (Citium) नगरमें जन्मग्रहण किया था। वे पहले पनेक दर्शन सम्प्रदायवादी हुए थे। सिक (Cynic), मेगारिक (Megaric) और एकेडमिक (Academic) इन सब सम्प्रदायोंका

विद्यार्थक प्रकाश करने के बाद साधोन्मासमें से अपने मतका प्रचार करने लगे : एरेस्तस टोपा (Stoa) नामक एक धर्म में उनको दर्शनवस्तुपाठो यो, इसी धर्मा के नामानुसार उनके दर्शन मतका टोइकदर्शन नाम पड़ा है। यहाँ १२ वर्ष पञ्चापना करके पति हस्तारक्षणमें चर्चने देखाया दिया। उनका पवित्र जीवन यौन मोर्ती के दृष्टांशका स्थल था।

उन्होंने ही कहा था खुदा है, कि हम सब स्रष्टाओं के मतमें दर्शनानुसार जीवनको व्यवस्था करवाया था। जीवनमें हममें जो प्रयोजनोप नहीं है, ऐसे ज्ञान वा विद्याही आवश्यकता दब चो यो के पण्डितगण ही साध नहीं करते। तर्कशास्त्र (Logic) टोइकों के मतमें मन्वज्ज्ञान का आधारभूत है, प्रकृतितत्त्व (Physics) जगत्प्रकृति का तत्त्व निर्णयपाठो और नैतिकत्व (Ethics) का ज्ञान है,—हम सब तत्त्वों का जीवनमें प्रयोग करके जीवनका उद्देश्य साधन करना। टोइकदर्शनमें व्याख्य और जटिलता (Logic and physics) को नैतिकत्व (Ethics) का प्रधानत्व (subsidiary) बनवाया गया है।

व्याख्यार्थमें टोइक पण्डितोंने मन्वज्ज्ञान और विद्याका रहस्य निर्णय करनेको चेष्टा की है। इन्द्रियज्ञानको ही हमोंने मन्वज्ज्ञान माना है। विद्याम (Power of conviction) ही मन्वज्ज्ञान की शक्ति है। जो मन्व है उस पर विद्या विद्याम किये हम लोग नहीं रह सकते।

जटिलता सम्बन्धमें भी वे सब जटिलता (Materiality) हैं। जन्म भिन्न विनोय पदार्थों का पण्डित वे लोग स्वकार नहीं करते। सभी वस्तु गरीबधारी हैं, यद्यपि कि चाया भी (Soul) एक प्रकारको जड़ है, लेकिन वह वस्तु और वस्तु जड़में स्वतन्त्र पदार्थ है। ईश्वर जगत्में स्वतन्त्र नहीं है, एक के सिवा दूसरेका पण्डित सम्भव नहीं है। हम जगत्में ईश्वर सभी विषयों के नियामकत्व है। कामनिष्ठ नियमव्यवस्था में विद्याका रहस्य है एवं वे सुख और दुःख के मूल कारण बनन ज्ञानमयत्वमें विद्यामान है। ईश्वरार्थको तरह यह मन्वज्ज्ञान

भी सभी सभी ईश्वरों को पण्डित वा तादरवद्वय, सभी ज्ञाननिक आध्यात्मिक वादरवद्वय (Spiritual breath) बनना गया है। जिन प्रकार ईश्वरार्थको मतमें पण्डितमें सभी पदार्थों को उत्पत्ति होनी है, फिर वे सब पदार्थ पण्डितों को मन्व हो जाते हैं, उनमें प्रकार ईश्वरों को सभी पदार्थों को उत्पत्ति है और योई ईश्वरों को वे मन्व हो जाते हैं। टोइक पण्डितों ने दुर्गोत्पत्ति और मन्व (Cycles) स्वीकार किया है।

टोइक सम्प्रदायका नैतिकत्व भी (Ethics) हम जटिलताको भित्ति के ऊपर स्थापित है। जगत्को खुदका और जगत्को पण्डितों के ज्ञानका अनुवर्तन करना ही टोइकों के मतमें जीवनका रहस्य ज्ञान है। पण्डितों का अनुवर्तन करो (Follow nature) पण्डित प्रकृतिदत्त स्वाभाविक वृत्तियों के नियोगानुसार चलो, यही टोइक नैतिकता मन्व मन्व है। प्रमाणिक (Reason) तुम्हारे प्रकृतिदत्त शक्ति है, सुतरां प्रमाणिक नियमानुसार चलो (Follow reason)। ऐसा होनेसे ही तुम प्रकृतिक अनुवर्तन बन सकोगे। टोइकों के मतमें धर्मवृत्ति (Virtue) और सुख (Happiness) जोई विनोय सम्भव नहीं है। परन्तु सुख नैतिक जीवनका शक्तिकारक है। प्रकृतिक मन्व अनुवर्तन कोई स्थान नहीं है, सुख प्रकृतिक मन्व नहीं है, दयादि। उपरि उक्त नैतिक मन्वों के ही टोइकों के नैतिक मन्वों की शक्ति का विनय पर विनय पाया जाता है। पण्डित मन्व सुख दुःख नैतिक जीवनका मन्व नहीं है, जो प्रकृतिक नहीं है, वह नैतिक विनोयमन्व नहीं है। मन्व। सुतरां सुखमात्रिक दिन दुःखविनोयन पण्डित पर जो सब कार्य किये जाते हैं उनको टोइकों के मतमें नैतिक कार्य में गिनती नहीं हो सकती। केवल एकमात्र धर्म (Virtue) में सुख (Right) मन्व है। सुख बाहर विनोय के ऊपर निर्भर नहीं करता। प्रमाणिकता ही पर बनना ही धर्म का रहस्य है, यही विनोय के प्रतिगुण पण्डितों के वाद (Vice) होता है—प्रमाणिकता भी विनोय पण्डितों में यह वाद गिना जायागा। सभी धर्म वाद और सुख के मन्व नहीं हैं। प्रमाणिकता मन्व (Right) और सभी वादधर्म भी एक ही

मीचमें लाव है। माताको किसी प्रकार तारतम्य नहीं है, इन्के एरोस्कोका सुटमूख (Stoical paradox) कहते हैं। ज्ञानरत्नमें वास्तवका टमग करना ही यथायं धर्म है। मनुष्यका कर्त्तव्य दो प्रकारका है, एक अपने प्रति और दूसरा दूसरेके प्रति। चास्कराण धर्म प्रशिक्षिका मनुष्यके इत्यादि अपने प्रति तथा यथायथ भावमें न्याय और दयादासिद्धके माथ सामाजिक जीवन निर्वोद करना दूसरेके प्रति कर्त्तव्य है। राजा या शासनतन्त्र मनुष्यके सामाजिक जीवनका विकास-मात्र है।

टाइको के मतमें ज्ञानो व्यक्ति सृष्टिका धारभूत है। ज्ञानीके कुछ भी क्षिया नहीं है। वे प्रकृतिके प्रत्येक तथ्यके चक्षुगत हैं। ज्ञानो व्यक्ति नैतिक हिमावने सम्पूर्ण है। वे भय, हय, चमयं चादि रिपुधोके बयो-भूत नहीं हैं—किमो भी विषयों वह नहीं है, इस कारण वे सम्पूर्ण स्वाधीन हैं। उन्होंने यह दिखानेको चेष्टा की है, कि प्रजा और धर्म ज्ञानिनिमि प्रतिष्ठित है इस कारण वे ही प्रकृत सुखी हैं। जीवनको नैतिक धराकाष्ठाका प्रसार करना एरोस्-दगमनका उद्देश्य है और धोक्तजातिके चक्षुपतनके समय भी उन्होंने इस नैतिक पादगंको विलहून चक्षुस रखा है।

एपिक्युरीय दर्शन (Epicurian Philosophy)

दार्शनिक एपिक्युरस इस दर्शन-मन्त्रदायके प्रवर्तक थे। उन्होंने ३४२ ई. पू. पूर्वाब्देमें व्यास-नामक दोषमें जन्म लिया था। उनके पिता एटोस छोड़कर उक्त दोषमें था कर रहने लगे थे। ३६ वर्षको अवस्थामें उन्होंने एटोस था कर अपने दार्शनिक मतका प्रचार करना चारम्भ किया। जीवनके शेषकाल तक वे इसी कार्यमें लगे रहें। ३०० ई. पू. पूर्वाब्देमें उनका देहांत हुआ।

एपिक्युरसमें दर्शनगोष्ठाको श्री मंसा प्रदान की है, उसीमें उनका दार्शनिक मत उपमन्त्र होता है। उनके मतमें तब और ज्ञानना पायय करके सुखा-अवस्था ही दम गमायाका उद्देश्य है। सुतरां एरोस्कोका तरह इनके मतमें भी दर्शनगोष्ठा केवल ज्ञानप्रदायका साधन ही नहीं है, जीवनका निरूपण करणो विषय भी

है। इनके मतमें सुख को जीवनका धर्म मन्त्र है और उसे प्राप्त करनेके निचे मन्त्रांशो प्रापचयने चेष्टा करना उचित है। सुतरां दर्शनगोष्ठाका प्रशोभून न्याय वा तर्कशास्त्र (Logic) और जड़तत्त्व नातितत्वका भावनमात्र है। एपिक्युरीय दर्शनका मग अपने हीगमें एरोस्-दर्शनका विरोधी है।

एहले कडा जा चुका है, कि एपिक्युरस सुखको ही (happiness) जीवनका धर्म मन्त्रमन्त्ररूप बतला गये हैं। एरिस्टटलको तरह उन्होंने चक्षुमात्रायाही इन्द्रियगत सुखको प्रकृत सुख नहीं माना है। दुःखमय परिचामहेतु इन्द्रियलुब्धको प्रकृत सुख नहीं कह सकते।

व्याधि-परागान्ति (Permanent tranquil satisfaction) प्रकृत सुख है। इस सुखको छागवृद्धि नहीं है, यह दुःख-मंभित है; क्योंकि यह तादावियय के छपर निर्भर नहीं करता। प्रकृत सुख प्रम करनेमें धारवासा पायय लेना योग, इन्द्रियका दाम ही धर रहनेमें काम नहीं चलेगा। ज्ञानो चरित्य विषयसुख का परिचाम कर इस गि य सुखताममें प्रनो रहते हैं। यह परागान्ति पञ्चाक्षरदायके औस तादाविययको उचित व्यवृति चर्यात् परिवर्त्तनके नावेय नहीं है। ज्ञानो व्यक्ति को गति देहिक यन्त्रवांन मध्य भी चर्याहत रहतो है। धर्म सुखका सेतुद्वय है। बिना धर्मके प्रकृतसुख प्राप्त नहीं हो सकता। सुखके बाहर विषय-नावेय नहीं होने पर भी इन्द्रियज्ञान सुख विलहून चक्षुमात्रा विषय नहीं है। ज्ञा चामोट निर्देय है, अवका उपभोग करनेमें कोई पाय नहीं। मनुष्यको सामाजिक चेष्टा दुःख-निष्ठतिओ और दोड़ गई है। दुःखको निष्ठति ही सुख है, इस दुःखनिष्ठतिका नाम गान्ति है। गान्तिको ही प्रकृत सुख कहते हैं। निष्ठति-मन्त्रक सुख (Negative pleasure) इसी गान्तिका नामान्तर है, प्रशिक्षिम यत् सुख (Positive pleasure) दुःखामंभित नहीं है।

ऐपिक्युरीय दर्शनगोष्ठाका उद्देश्य।

पूर्वज दार्शनिक दोनों मनीओ तरह व्यक्तिगत जीवनका धर्म पुद्गायं निरूपण करना इस दर्शनगोष्ठाका

नामान्तर है। इस समाधि चरव्याप्ती उक्त दार्शनिक
मय ध्यानवृत्तय पक्षका वस्तुता मये है। इस चरव्याप्ती
शक्ति को जीवका चरम अन्तर है और इसी को प्रकृति
शक्ति कहते हैं। विक' वैराग्य (Sceptical apathy)-
मे शक्ति प्राप्त नहीं होती।

श्रुतेष्टानिक पक्षमें निचे जगत्सर्वमे जगत्का
विग्रहाय (World-soul) और जगत्को विग्रहप्रा
(World-reason) इन दो शक्तियोंके प्रतिष्ठित एक
हीखरी शक्तिका भी प्रतिष्ठित स्वीकार किया है। यही
शक्ति अपर दो शक्तियोंको जगत् है। प्रज्ञाशक्ति हेतुमायके
अपर प्रतिष्ठित है, 'इसमें प्रज्ञा और ज्ञेय ये दोनों ही
भाव वर्तमान रहते हैं। सुतरां जगत्में बहुल (Mani-
fold) में प्रज्ञाशक्ति युक्त नहीं है। एनोतिमय इन नून
शक्तिका यथाय' स्वल्प स्वल्पमे लगे' वतना मये
है। समता मत संश्लेषण: इस प्रकार है—यह मूल-
शक्ति ज्ञान (Thought) और इच्छाशक्ति (will)
नहीं है। क्योंकि ईश्वरमें ज्ञानका आरोप करनेमें
समता भी ज्ञेय पदार्थ है, ऐसा स्वीकार करना पड़ता
है। जगत्में इच्छाशक्ति आरोप करनेमें भी समता
अपर कार्यजनित समतामको चेता आरोप की
जाती है। दोनों ही प्रभावसुखक हैं। सुतरां ये चरम-
वर्तमान हैं। इसीमे समता किसीका भी आरोप
नहीं किया जाता। किन्तु भी प्रज्ञाका विमेषण
(Predicate) इस शक्तिके सम्बन्धमें प्रयुक्त नहीं की
सकता। क्योंकि विमेषण मात्र ही सुख है और इसीमे
सोमासुखक है। इस प्रकार एनोतिमय ईश्वरके निरु-
पक्षता प्रतिपादन कर मये हैं।

इस निरुपक्षतामें किंच प्रकार इस सुखमय जगत्को
क्षिति हुई है, समता सम्बन्धमें सोमासा करते समय
एनोतिमय पक्षमें विकीरणवाद (Theory of eman-
ation) का प्रतिष्ठित किया है। पक्षमें त्रिप्रकार
माय विकीरण होता है, उनमें प्रकाश ईश्वरके
जगत्का विग्रह हुआ है। ईश्वरमें पक्षमे ही
प्रज्ञाशक्ति (Reason) विकीरण हुई है। आद्य-
जगत्के सभी पदार्थ, वाहिका स्वल्प प्रज्ञाशक्ति
विकीरित हैं। यही पर श्रुतेष्टानिक पक्षमें नि

प्रोटोके मायवाद (Theory of ideas) का प्रयोग किया
है। इस प्रज्ञाशक्तिमें पुनः विग्रहाय (World-soul)
विकीरण हुआ है। इस विग्रहायने वाहिकाओंके समुच्चय
बाहर पदार्थोंको सृष्टि करके जगत्का विग्रह साधन
किया है। मानवको चारुता प्रज्ञाजगत् और बाहर-जगत्
इन दोनोंको सम्बन्धित है। इसीमे मानवको ध्यातार्थ में
वाहिकाओंके और सामादिक वाहिकाओंके (World
of sense) इन दोनों भावका समान्य देखा जाता है।
मानवार्थमा वाहिकाओंके पदार्थ है। केवल नियतिमय
(through inner-necessity) में वसने बाहर-जगत्में
प्रमय किया है। मानवार्थमाके पक्षमें यह कहावत्या है।
इस कहावत्यामें सुक्त हो कर वाहिकाओंके प्रवेगताम
करना ही मानवार्थमाका परमपदार्थ है। बाहर
वस्तुमें इन्द्रियवृत्तियोंको निरोध करनेपर इस कहावत्या-
के सुक्त हो सकते हैं। पञ्चात्मजगत् (World of
ideas) में प्रवेगताम करनेमें निखिल सोम्य' और मङ्गल-
के वाहिकाओंके ईश्वरमें लयमात्र, प्रज्ञाशक्तिकाम और
निर्वासोप काम होता है ("Our soul reaches
thence the ultimate end of every wish and
longing, ecstatic vision of the One, union
with God, unconscious absorption, disappear-
ance in God")। सुतरां देखा जाता है, कि पक्षमे
वाद व्यापनमें निचे श्रुतेष्टानिक प्रज्ञा मत म

श्रुतेष्टानिक दर्शन पक्ष दर्शनको निचे
ईश्वरार्थका प्रभाव जब दिनों दिन बढ़ता
जाताजगत्में विग्रह खड़ा हुआ। जगत्तम चम
स्वतन्त्र भावोन मत और धार विरुद्ध होता गया।
जगत्तम हटानमें समुच्चय पक्ष और
ज्ञानवर्तोंमें स्वतन्त्र हो पड़े। जगत्तमें बहुत
वाद ऐसा कोई परिदृष्टान्त होनेमें नहीं और स्वतन्त्र
जाता है। पक्षमे दर्शनमा सम सम्यक्की विमेष
ही जातो है। प्राचीन मतोंमें सदायको भी
जगत्तम पक्षमे रहता, ऐसा प्रमाण नहीं को प्राचीन
सुतरां ऐसो पक्षमे वाहिकाओंके प्रवेगताम और निवास
पक्षमायो है। प्रज्ञावाहिका ईश्वरमें निवास पक्षमे

भी उद्देश्य है। एलिय नामक स्थानके अधिवासी दार्म-
निक प्यर्रो (Pyrrho of Elis) इस मतके प्रतिष्ठाता
थे। इस सम्प्रदायके मतमें भी मनुष्य की ज्ञोवनका अन्ध
है। सुचने ज्ञोवन अतीत करनेमें आगतिक समस्त
पदार्थोंक प्रकृत तत्त्वों ज्ञानकार होना आवश्यक
है। किन्तु इस सम्प्रदायके मतमें मनुष्यका ज्ञान
भीमावह है। तादा मनुष्योंका प्रकृतस्वरूप क्या है,
इस ज्ञान छद्मे नहीं ज्ञान सकते। वे जिन भावमें इस
भीषोंके निकट प्रतिभात होती है (as they appear
to us) केवल वही इस ज्ञान ज्ञानते हैं। किसी
पदार्थ सम्बन्धमें निश्चित रूपसे कुछ भी ज्ञान नहीं
जाता, इसीमें एक ही मनुष्य सम्बन्धमें दो परस्पर
विरोधी मतोंकी उत्पत्ति सम्भव है। ज्ञानकी ऐसी अनि-
श्चयताकी कारण किसी प्रकाशका मत प्रकाशित नहीं
करना ही प्रकृत ज्ञानो अतिथीका कर्णार्थ है और यही
स्केप्टिकोंके मतमें मनुष्यका साधन है। क्योंकि किसी
प्रकारका मत प्रकाशित नहीं करमेसे ही विज्ञाको
स्वाधीनता प्रकृत रहती है; विज्ञाको स्वाधीनता
ही ज्ञानाकी गति है। इन्द्रियज्ञानकी प्रकृताके दम
कारण है, यह इसी अन्वेष्य दार्मनिकोंमें निर्देश किया
है। ये सब कारण स्केप्टिक-द्वेष (Sceptical tropes)
नामसे प्रसिद्ध हैं। विज्ञान ही ज्ञानके मयमें उनकी
मदिसार उनके ही किया गया। उनकी संक्षेप समं
यत्, कि इन्द्रियज्ञानकी निमित्तता, अतिविशेषकी इन्द्रिय-
शक्तिकी विमित्तता, पदार्थसमस्तका व्यापनपरिचय,
दार्मनिकोंके तत्त्वज्ञानिक मानसिक प्रकृता, बर्ण, ताप आदि
के योग तथा मनुष्यकी विमित्तता आदि कारणोंसे
एक मनुष्य सम्बन्धमें विमित्त प्रकृताकी उत्पत्ति
होती है।

आधुनिक काव्यमें जिन सब स्केप्टिक पण्डितोंमें जय
दहन किया, उनके सब एनैडिडिमुस (Enaidemius),
आग्रिप्पा (Agrippa), सेक्सटस एम्पिरिकस (Sex-
tus Empiricus) आदि विज्ञान हैं।

न्युप्लेटनिक दर्शन (Neoplatonism)

हेनकादोकी पापतिकी दूर कर छेटी और पणि-
ट्टनकी तरह एक हेनकादकी मूलतत्त्व प्रतिपादन

दर्शन (Absolute philosophy) का प्रचार करना
हो इस सम्प्रदायका उद्देश्य है। इजिप्टके पलासते
लाइकोपॉलिस (Lycopolis) निवासी दार्मनिक
प्लोटिनस (Plotinus) इस मतको पूर्ण रूपसे कर
गये हैं।

प्लोटिनसने (२०५-२७० ई०के) अलेक्जेंड्रिया
(Alexandria) नगरमें दार्मनिक आम्मोनियस सेकस
(Ammonius Saccas)के निकट दर्शनशास्त्र पचयन
किया। ४० वर्षकी उमरमें वे रोमनरा जा कर पञ्चा-
पनाकार्यमें निगुप्त हुए। वे दर्शनमें सम्बन्धमें कितने
ही प्रत्यक्ष गये हैं; उनकी मूल्यके बाद उनके गिय
प्रसिद्ध दार्मनिक प्रकाशरी (Porphyry)ने उनके प्रत्यक्ष
प्रकाशित किये। छवो गताद्धोंमें न्युप्लेटनिकदर्शन रोममें
पदिसमें प्रचारित हुआ। थियोसोफी (Theosophy),
इन्द्रजाल और भोजविद्या (Theurgy) इन सब विषयों
का प्रभाव न्युप्लेटनिक दर्शनमें विनिवृत्तसे ललित
होता है।

स्केप्टिक दर्शनमें ज्ञान और सब विषयोंके प्रति
चोदासीन्य की गतिज्ञा निदान विवेचित हुआ था।
किन्तु न्युप्लेटनिक पण्डितोंके मतमें यह गतिज्ञा प्रकृत
स्वभाव नहीं है, ऐसे चोदासीन्यमें गतिज्ञान नहीं
किया जा सकता, पञ्चाति प्रत्यक्ष भावमें एक ज्ञानी है।
संशयच्छेद नहीं होनेमें प्रकृत गतिज्ञानात्मक नहीं किया
जा सकता। किसी ज्ञान दाग यह संशयच्छेद सम्भव
पर नहीं है। न्युप्लेटनिक पण्डितोंके मतमें पञ्चाती
पञ्चात्मिक प्रकृता (ecstasy or rapture) का
संशयच्छेद होनेमें यह गतिज्ञानात्मक किया जाता है।
इस प्रकृतामें ज्ञान और छेप, दृष्टा और दृश्य पदार्थोंमें
प्रकृता नहीं रहती। सभी हेनमावरदिन ही ज्ञानते
हैं, यही प्रकृत ज्ञानकी प्रकृता है। प्लोटिनसके मतमें
प्रमाद द्वारा मनुष्य प्रकृत ज्ञान उपलब्ध नहीं होता,
क्योंकि उनके मतमें प्रकृत ज्ञानमें हेनभाव नहीं रह
सकता। निश्चय ज्ञानमें प्रमादिक (Reason) का
सभी जगह पञ्चात्मिक देखा जाता है। एक प्रमाद प्रमाद
पञ्चात्मिक पदार्थोंका पञ्चात्मिक नहीं रहता। ईश्वरमें समाधि
(absorption into divinity) ही प्रकृता

मीमांसे है। इस समाधि अवस्थाकी उक्त दार्शनिक दृष्टि आनन्दमय अवस्था बनना गयी है। इस अवस्थाको शक्ति की ओरका प्रथम अग्रसर है और इसीको प्रकृति शक्ति कहते हैं। मिके मेराय (Sceptical apathy) से शक्ति प्राप्त नहीं होती।

न्यूटनेटानिक पण्डितोंने अपने जगत्तत्त्व में जगत्का विश्वमाय (World-soul) और जगत्को विश्वव्या (World-reason) इन दो शक्तियों के प्रतिरूप एक तीसरी शक्तिका भी प्रतिरूप कोकार किया है। यही शक्ति चरम दो शक्तियों को अग्र है। प्रकाशित हैतभावने ऊपर प्रतिष्ठित है, इसमें ज्ञाता और ज्ञेय ये दोनों ही भाव वर्तमान रहते हैं। सुतरां जगत्में बहुत (Main-field) में प्रकाशित युक्त नहीं है। एनोडिनस ह-मून शक्तिका यथायं स्वल्प स्वल्पसे नहीं बनना गये हैं। सत्ता मत संशयतः इस प्रकार है—यह मूल-शक्ति ज्ञान (Thought) और इच्छाशक्त (will) नहीं है। क्योंकि ईश्वरमें ज्ञानका आरोप करनेसे उनके भी ज्ञेय पदार्थ है, ऐसा कोकार करना प्रवृत्त है। उनमें ईश्वरशक्ति आरोप करनेसे भी उनके ऊपर कार्यजनित फलनामकी चेष्टा आरोप की जाती है। दोनों ही समावृत्तक हैं, सुतरां वे परस्पर-संताप्यक हैं। इसीसे उनमें किसीका भी आरोप नहीं किया जाता। किसी भी प्रकारका विवेचन (Predicate) इस शक्तिके सम्बन्धमें प्रयुक्त नहीं की गेकता। क्योंकि विवेचन मात्र को श्रुत है और इसीसे सोमावृत्तक है। इस प्रकार एनोडिनस ईश्वरदे निरु-चलक प्रतिपादन कर गये हैं।

इस निरुचरवने किम प्रकार इस श्रुतमय जगत्को छिटि हुई है, समझे सम्बन्धमें सोमाभा करते समय एनोडिनस अपने विकीरणाद (Theory of emanation) का प्रतिपक्ष किया है। अन्तिमें जिस प्रकार नाप विकीरण होता है, उसी प्रकार ईश्वरमें जगत्का विचार हुआ है। ईश्वरमें पहले ही प्रकाशित (Reason) विकीरण हुई है। जगत्-जगत्में सभी पदार्थ बाह्यीश्वर स्वल्प प्रकाशित अवस्थित हैं। यही पर न्यूटनेटानिक पण्डितोंने

प्रोटोके भाववाद (Theory of ideas) का प्रयोग किया है। इस प्रकाशमय पुनः विश्वमाय (World-soul) विकीरण हुआ है। इस विश्वमायने बाह्यीश्वरके समुद्रप बाहर पदार्थोंको छिटि करके जगत्का विचार माधन किया है। मानवको आत्मा प्रकाशजगत् और बाहर-जगत् इन दोनोंको सम्भवती है। इसीसे मानवको आत्मामें भी आध्यात्मिक और सामाजिक वा बहिर्जगतिक (World of sense) इन दोनों भावका समावेश देना जाता है। मानवमाय आध्यात्मिक पदार्थ है। अन्तर्निहितत्व (through inner-necessity) में इसने बाह्यजगत्में प्रकाश किया है। मानवमायने प्रथम यह कहावला है। इस कहावलासे सुक्त हो कर आध्यात्मिक प्रवेशनाम करना ही मानवमायका परमपदार्थ है। बाहर-जगत्में इन्द्रियशक्तियोंको निरोध करनेपर इस कहावलासे सुक्त हो सकते हैं। विश्वमाय (World of ideas) में प्रवेशनाम करनेमें निवृत्त मोक्ष्य और सत्ता-के आचारस्वरूप ईश्वरमें लयप्राप्ति, प्रकाशानन्दताम और निर्वचमोक्ष लाभ होता है ("Our soul reaches thence the ultimate end of every wish and longing, ecstatic vision of the One, union with God, unconscious absorption, disappearance in God")। सुतरां देखा जाता है, कि यहैत-वाद व्यापनने निवे न्यूटनेटानिकका मत प्रतिष्ठित हुआ था।

श्रुतेटानिक दर्शन प्रोक्त दर्शनकी प्रीति सोमा के। ईसाधर्मका प्रभाव लय दिने दिन बढ़ता गया, अर्थात् ज्ञानाश्रममें विज्ञान बढ़ा हुआ। जन्तुन धर्मके प्रचुर-श्रोतमें प्राचीन मत और धार विरुद्ध होता गया। धर्मके उत्पत्त हटानसे-मनुष्य-युक्त और जीवनीशक्तिमान ज्ञानधर्ममें दोषवद हो पड़े। जगत्में बहुत समय बाद ऐसा कोई परिवर्तन होनेसे सभी और श्रोत माट जाता है। ए-देष्टर्मिता सम समयको विवेक लयव हो-जाती है। प्राचीन मतांके ललाशही भी मनुष्य सम समय पदार्थ लोभ, प्रीति पाया नहीं को जाती। सुतरां प्रीति पदार्थमें शोकदग्धनही पवनन और विनाप पदार्थभावी है। यथाया हर्ष-राजनेति ध्यःतन

में दर्शा है। एलिज नामक स्थानके अधिवासी दार्म-
निक पादरी (Pythagoras of Elis) इस मतके प्रतिपाता
थे। इस सम्प्रदायके मतमें भी मृत्यु ही जीवनका अन्त
है। मृत्युपश्चात् जीवन अतीत करनेमें जागतिक समस्त
पदार्थोंके प्रकृत तत्त्वसे आनन्द प्राप्त होना आवश्यक
है। किन्तु इस सम्प्रदायके मतमें मनुष्यका ज्ञान
सीमाबद्ध है। बाह्य वस्तुओंका प्रकृतस्वरूप क्या है,
इस ज्ञान उसे नहीं प्राप्त सकते। वे जिस भावमें इस
लोकीके निकट प्रतिभास होते हैं (as they appear
to us) केवल वही इस ज्ञान के अन्तर्गत है। किसी
पदार्थ सम्बन्धमें नियत रूपसे कुछ भी जाना नहीं
जाता, हमें केवल एक ही वस्तुके सम्बन्धमें दो परस्पर
विरोधी समझों की उत्पत्ति सम्भव है। ज्ञानकी ऐसी प्रति-
पत्ति का कारण किसी प्रकारका मत प्रकाशित नहीं
करना ही प्रकृत ज्ञानोक्तियोंका कर्तव्य है और यही
है प्लेटो के मतमें मृत्युका माध्यम है। क्योंकि किसी
प्रकारका मत प्रकाशित नहीं करनेसे ही चित्ताको
स्वाधीनता प्रदान रहती है। चित्ताको स्वाधीनता
ही आत्माकी शक्ति है। इन्द्रियज्ञानकी दृष्टिकोणों से हम
सारा है, यह हमें प्रत्यक्ष दार्मनिकी में निर्देश दिया
है। वे सब कारण सैप्टिक-ट्रोप (Sceptical tropes)
नामसे प्रसिद्ध हैं। विचार ही ज्ञानके अन्तर्गत समस्त
अविचार लक्ष्य नहीं किया गया। समस्त सत्य समं-
तर, कि इन्द्रियज्ञानकी विभक्तता, व्यक्तिविशेषको इन्द्रिय-
शक्ति को विभक्तता, पदार्थसमूहका व्यापकविषय,
दार्मनिक तत्त्वज्ञानिक मानसिक व्यवस्था, अर्थ, ताप आदि
के योग तथा मृत्युदार्मनिकी विभक्तता आदि कारणोंसे
एक मनुष्यके सम्बन्धमें विभिन्न धारणाओं की उत्पत्ति
होती है।

माघोन नामके जिन सब सैप्टिक पण्डितोंने कल्प
सहस्र किया, उनके सब पण्डितोंमें (Æneidesmus),
आग्रिपा (Agrippa), मेकटस एम्पिरिकस (Sex-
tus Empiricus) आदि विख्यात हैं।

न्यूप्लेटनिक दर्शन (Neoplatonism)

हेलासकी आधुनिकी दूर-दूर ड्रोटी और एलि-
जटनको तरह एक हीलासके मूलतत्त्व प्रतिपादक

दर्शन (Absolute philosophy) का प्रचार करना
ही इस सम्प्रदायका उद्देश्य है। इन्द्रियके अन्तर्गत
न्यायकी पोलिस (Lycopolis) निवासो दार्मनिक
प्लोटिनस (Plotinus) इस मतको पूर्ण रूपसे प्रचार
किये हैं।

प्लोटिनसने (२०५-२७० ई.पू.) अलेक्जान्द्रिया
(Alexandria) शहरमें दार्मनिक आनन्दिषम सैकस
(Ammonius Saccas) के निकट दार्मनिक पण्डित
किया। ४० वर्षको उमरमें ही रोमनवासी काकर पञ्चा-
पनाकार्यमें निवृत्त हुए। वे दर्शनके सम्बन्धमें कितने
ही ग्रन्थ रच गये हैं। उनको मुख्यतः बाह्य जगत् के
प्रति दार्मनिक परकाशरी (Porphyry) ने एक ग्रन्थ
प्रकाशित किये। इसी ग्रन्थमें प्लोटिनस दर्शन रोममें
प्रचलित प्रचारित हुआ। धर्मशास्त्री (Theosophy),
इन्द्रजाल और भोजनविद्या (Theurgy) इस सब विषयों
का समावेश प्लोटिनस दार्मनिक दर्शनमें निहितकर्मसे किये
होता है।

प्लोटिनस दर्शनमें ज्ञान और अर्थ विषयोंके प्रति
चोदासोम्य की शक्ति का निदान विवेचित हुआ था।
किन्तु प्लोटिनस पण्डितोंमें मतमें यह शक्ति का प्रकृत
स्वभाव नहीं है, ऐसे चोदासोम्य से शक्ति प्राप्त नहीं
किया जा सकता, अतः अतः प्रत्यक्ष भावों से ही ज्ञान
मध्यस्थित नहीं होनेसे प्रकृत शक्ति प्राप्त नहीं
जा सकती। किन्तु ज्ञान दाग यह मध्यस्थित सम्भव
वा नहीं है। प्लोटिनस पण्डितोंमें मतमें आत्माकी
आनन्दस्य अवस्था (ecstasy or rapture) द्वारा
मध्यस्थित होनेसे यह शक्ति प्राप्त किया जाता है।
इस अवस्थामें ज्ञान और अर्थ, दृष्टा और दृश्य पदार्थोंमें
प्रत्यक्षता नहीं रहती। सभी हेलासवारिधियों को ज्ञान
है, यही प्रकृत ज्ञानको अवस्था है। प्लोटिनसके मतमें
प्रमाण द्वारा मनुष्यका प्रकृत ज्ञान सम्भव नहीं होता,
क्योंकि उनके मतमें प्रकृत ज्ञानमें हेलासमान नहीं रह
सकता। विषय ज्ञानमें प्रमाण (Reason) का
सभी जगत् आनन्दकार देना जाता है। एक प्रमाण
अन्त्यान्त पदार्थोंका अन्तिम नहीं रहता। इसमें समाधि
(absorption into divinity) ही अवस्था है।

मोमाकार है। इस ममाधि पक्षस्थाको उक्त दार्शनिक मध्य पक्षान्दमय पक्षस्था बतला गये हैं। इस पक्षस्थाको प्रान्ति को जीवना परम लक्ष्य है और इसीकी प्रकृति शान्ति कहते हैं। मित्र वे शान्ति (Sceptical apathy) ने शान्ति प्राप्त नहीं होती।

न्यू एंटेनिज पण्डितोंने अपने जगतसर्वत्र जगत्का विश्वमाय (World-soul) और जगत्को विश्वप्रज्ञा (World-reason) इन दो शक्तियोंके प्रतिरिक्त एक तीसरी शक्तिका भी प्रतिफल स्वीकार किया है। यही शक्ति ऊपर दो शक्तियोंको जड़ है। प्रज्ञाशक्ति ईशमायके ऊपर प्रतिष्ठित है, इसमें ज्ञाता और ज्ञेय ये दोनों ही भाव वर्तमान रहते हैं। सुतरां जगत्में बहुत्व (Manifold) से प्रज्ञाशक्ति युक्त नहीं है। एंटेनिज इस मूल शक्तिका यथार्थ स्वरूप स्वरूपसे नहीं बतला गये हैं। उनका मत संक्षेपतः इस प्रकार है—यह मूल-शक्ति ज्ञान (Thought) और इच्छाशक्ति (will) नहीं है। क्योंकि ईश्वरमें ज्ञानका आरोप करनेसे उनको भी ज्ञेय पदार्थ है, ऐसा स्वीकार करना पड़ता है। उनमें इच्छाशक्ति आरोप करनेसे भी उनके ऊपर कार्यजनित कलनामकी चेष्टा आरोप की जाती है; दोनों ही सम्भाव्यत्व हैं, सुतरां वे परस्पर-वर्तमानत्व हैं। इसीसे उनमें किसीका भी आरोप नहीं किया जाता। किन्तु भी प्रज्ञाका विशेषण (Predicatio) इस शक्तिसे सम्बन्धमें प्रयुक्त नहीं की सकती। क्योंकि विशेषण मात्र ही युक्त है और इसीसे मोमावृत्त है। इस प्रकार एंटेनिज ईश्वरके निम्न-पक्षकी प्रतिपादन कर गये हैं।

इस निम्न-पक्षमें किम प्रकार इस गुणमय जगत्को सृष्टि हुई है, समस्त सम्बन्धमें मोमाका करत सम्बन्ध एंटेनिज अपने विकोरकवाद (Theory of emanation) का प्रतिपक्ष किया है। पक्षिसे ज्ञान प्रकार ताप विकोर होता है, उसी प्रकार ईश्वरके जगत्का विकास हुआ है। ईश्वरमें पहले ही प्रज्ञाशक्ति (Reason), विकोर हुई है। ज्ञान-जगत्के सभी पदार्थ वास्तविक स्वरूप प्रज्ञाशक्ति-प्रकटनित हैं। यही पर न्यू एंटेनिज पण्डितोंने

ऑटोके मातवाद (Theory of ideas) का प्रयोग किया है। इस प्रज्ञाशक्तिसे पुनः विश्वमाय (World-soul) विकोर हुआ है। इस विश्वमायने वास्तविकीके समुद्रप वाह्य पदार्थोंको सृष्टि करके जगत्का विकास साधन किया है। मानवको पारमा प्रज्ञाजगत् और वाह्य-जगत् इन दोनोंको सम्भवर्त्ती है। इसीसे मानवको पारामि भी पार्थ्यात्मिक और सांसारिक वा बहिर्जगतिक (World of sense) इन दोनों भावका समावेश देखा जाता है। मानवपारमा पार्थ्यात्मिक पदार्थ है। केवल नियतिमय (through inner necessity) से इसमें वाह्यजगत्में प्रवेश किया है। मानवपारमाके पक्षमें यह कहावला है। इस कहावलासे मुक्त हो कर पार्थ्यात्मिक प्रवेशसाधन करना ही मानवपारमाका परमपदार्थ है। वाह्य वस्तुसे इन्द्रियवृत्तिमेंको निरोध करनेपर इस कहावला-से मुक्त हो सकते हैं। पार्थ्यात्मजगत् (World of ideas)में प्रवेशसाधन करनेसे निखिल मोन्द्य और मूल-के वास्तवस्वरूप ईश्वरमें समामानि, प्रज्ञानान्दसाधन और निर्विषमोद्य साधन होता है ("Our soul reaches thence the ultimate end of every wish and longing, ecstatic vision of the One, union with God, unconscious absorption, disappearance in God")। सुतरां देखा जाता है, कि मन्दै-वाद व्यापनके लिये न्यू एंटेनिजका मत प्रतिष्ठित हुआ था।

युंटेनिज दर्शन शोक दर्शनका शीघ्र मोमा है। ईश्वरधर्मका प्रभाव जब दिनों दिन बढ़ता गया, जब ज्ञानाभावमें विभ्रल पड़ा हुआ। मूलतः धर्मके प्रभु-स्वीतने प्राचीन मत धीरे धीरे विभ्रल होता गया। धर्मके जगत्गत इष्टान्तमें मनुष्य युक्त और जीवभोग्यशक्ति ज्ञानवर्त्तमें मोतवृत्त हो पड़े। जगत्में बहुत समय बाद ऐसा कोई परिवर्तन होनेसे उसी और स्वीत पाट जाता है; परदेयदर्शिता उस समयको विशेष लक्षण हो जाती है। प्राचीन मतांके ज्ञानाभावकी भी मनुष्य उस समय पक्ष्य करेगा, ऐसी चामा नहीं की जाती। सुतरां इसी पक्ष्यधर्म वास्तविकीके पक्षधर्म और विमोद्य पक्ष्यधर्मों है। पक्षधर्म ईश्वरके दार्शनिक पक्षधर्म

मीमांसी है। इस समाधि चरित्राको उक्त दार्शनिक गण चानन्दस्य प्रवृत्ता वृत्ता गये हैं। इस प्रवृत्ताको प्राप्ति को जीवका परम लक्ष्य है और इसी को प्रकृति प्राप्ति कहते हैं। सिके वैराग्य (Sceptical apathy) से प्राप्ति प्राप्त नहीं होती।

न्यूट्रैटालिक पण्डितोंने अपने जगत्सन्धे जगत्का विश्वप्राण (World-soul) और जगत्को विश्वप्राण (World-reason) इन दो शक्तियों के प्रतिष्ठित एक तीसरी शक्तिका भी प्रतिष्ठित छोकार किया है। यही शक्ति अपर दो शक्तियों को जड़ है। प्रज्ञाशक्ति हेतुभाव के ऊपर प्रतिष्ठित है, इसमें ज्ञाता और ज्ञेय दोनो भी भाव वर्तमान रहते हैं। सुतरां-जगत्में बहुत्व (Manifold) से प्रज्ञाशक्ति युक्त नहीं है। एनेटिज्म इस नूतन शक्तिका यथार्थ स्वरूप स्वरूपके नहीं, वतना गये हैं। उसका मत संक्षेपतः इस प्रकार है—यह मूल-शक्ति ज्ञान (Thought) और इच्छाशक्ति (will) नहीं है। क्योंकि ईश्वरमें ज्ञानका आरोप करनेसे एकको भी ज्ञेय पदार्थ है, ऐसा छोकार करना पड़ता है। जगत्में इच्छाशक्ति आरोप करनेसे भी एकके ऊपर कार्यजनित फलभावको चेष्टा आरोप की जाती है। दोनो ही प्रभावपूर्ण हैं। सुतरां वे समन्वय-वैतालुचक हैं। इसीसे एकमें किसीका भी आरोप नहीं किया जाता। किसी भी प्रकारका विमेषण (Predicate) इस शक्ति सम्बन्धमें प्रयुक्त नहीं की सकता। क्योंकि विमेषण मात्र को गुण है और इसीसे जोमाधुचक है। इस प्रकार एनेटिज्म ईश्वरके निर्गुणत्वका प्रतिपादन कर गये हैं।

इस निर्गुणत्वमें किम प्रकार इस गुणमय जगत्को सृष्टि हुई है, समस्त सम्बन्धमें मीमांसा करने समय एनेटिज्म अपने विकोरणवाद (Theory of emanation) का प्रतिपन्न किया है। अन्तिमें जिस प्रकार ताप विकीर्ण होता है, उसी प्रकार ईश्वरमें जगत्का विकास हुआ है। ईश्वरमें परम ज्ञेय प्रज्ञाशक्ति (Reason) विकीर्ण हुई है। वास्तव-जगत्में सभी पदार्थ वास्तविक स्वरूप प्रज्ञाशक्ति के प्रकटित हैं। यहाँ पर न्यूट्रैटालिक पण्डितोंने

थेओरी ऑफ़ आइडिया (Theory of ideas) का प्रयोग किया है। इस प्रज्ञाशक्तिसे पुनः विश्वप्राण (World-soul) विकीर्ण हुआ है। इस विश्वप्राणसे वास्तविकों के समुद्रप वास्तव पदार्थों को सृष्टि करके जगत्का विकास साधन किया है। मानवको चारमा प्रज्ञाशक्त्य और वास्तव-जगत् इन दोनोंको सम्बन्धित है। इसीसे मानवको धारामां भी वास्तविक और सार्वत्रिक वा सार्वजनिक (World of sense) इन दोनों भावका समावेश देखा जाता है। मानवचरमा वास्तविक पदार्थ है। केवल नियतिवश (through inner necessity) से उसमें वास्तव-जगत्में प्रवेश किया है। मानवचरमाके पक्षमें यह वक्तव्यवस्था है। इस वक्तव्यवस्थासे मुक्त हो कर वास्तविक प्रवेशकाम करना जो मानवचरमाका परमसुखपाथ है। वास्तव-जगत्से ईश्वरशक्तियोंको निरोध करनेपर इस वक्तव्यवस्थासे मुक्त हो सकते हैं। अन्तरिमजगत् (World of ideas) में प्रवेशकाम करनेसे निश्चिन्त मोक्षार्थ और महान-के वास्तविक स्वरूप ईश्वरमें लयप्राप्ति, प्रज्ञानानन्दान्न और निर्विकल लय प्राप्त होता है ("Our soul reaches thence the ultimate end of every wish and longing, ecstatic vision of the One, union with God, unconscious absorption, disappearance in God")। सुतरां देखा जाता है, कि यह ईश्वर वास्तविक जगत् के जगत् न्यूट्रैटालिकका मत प्रतिष्ठित हुआ था।

न्यूट्रैटालिक दर्शन शोक दर्शनको भीय जोमा है। ईसाधर्मका प्रभाव जब दिनों दिन बढ़ता गया, तब प्रज्ञानार्थमें विज्ञान खड़ा हुआ। नूतन धर्म के प्रसार-क्षेत्रसे प्राचीन मत और धर्म विमुक्त होता गया। धर्म के लक्ष्यका दृष्टिकोणसे समुदाय शक्त और जीवनीयताहीन मानवचरमां दोषयुक्त हो पड़े। जगत्में बहुत समय बाद ऐसा कोई परिवर्तन होनेसे उसी और द्योतक होता है; यद्यपि दर्शन, सम-समयको विशेष लक्ष्य हो जाता है। प्राचीन मतांके सत्यांशों को भी समुदाय सम-समय सक्षम करेगा, ऐसा वादा नहीं की जाता। सुतरां ऐश्वर्य चरममें शोकदर्शन ही प्रवर्तित होकर विनाश प्रवृत्तिभावों है। प्रस्ताव इससे दार्शनिक प्रवर्तित

विस्तृत कर दिया था। पोलो विज्ञानकी उत्पत्ति जगत्को घोर दर्शनको दृष्टि प्राकटित की। वर्तमान दर्शनशास्त्रके प्रतिष्ठाता बेकन (Bacon)-का मत विज्ञानकी भित्तिकाँ ऊपर प्रतिष्ठित है। जो अभिज्ञता-मूलक (based upon experience) है, वही सत्य है, यही मत प्रदत्त हो उठा। चिरातुगत विज्ञानके विरुद्ध प्रतिक्रियाको प्रवृत्तनां होनेसे यह प्रतिक्रिया यथोचित सोमाको पार कर घोर भी बहुत दूर घागे नहु गई है। दार्शनिक बेकन (Bacon) और देकार्ट (Descartes) दोनोंके ही दर्शनमें इस प्रतिक्रियाका प्राबल्य देखा जाता है। इसीसे दोनों ही अपने अपने प्रतिष्ठित प्रधानतया अभिनव निदर्शनको प्रतिष्ठा कर गये हैं। वे लोग अतीत विज्ञानसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखते। बेकनके मतसे प्रकृत तत्त्वको पर्यालोचना अत्यविश्वास और भ्रम परगोदम करनेका प्रकट उपाय है। देकार्टने संशयको ही सत्यपथका प्रदर्शक बतसाया है।

बेकन-प्रवर्तित-दर्शन।

दार्शनिक लार्ड बेकनने १५६१ ई० में जन्मग्रहण करने १६२६ ई० में मानवनीत्याशेष को। वे इङ्ग्लैण्डके अभिजात-वंशीय थे। विद्याभ्रमणके बाद संसारमें प्रविष्ट हो कर वे उस राजकार्यमें नियुक्त हुए थे। पसाधारण धीगतिस्मय और ज्ञानी होने पर भी उनकी नैतिक जीवन निष्कलङ्क न था। उनके ग्रन्थपाठ और चरित्रकी पर्यालोचना करनेसे दोनोंमें बहुत पृथक्ता देखा जाती है। मित्रदोष, विज्ञानघातकता और प्रबोध उपायसे पर्यग्रहण करके वे अपने जीवनकी जगत्की निकट झुँक कर गये हैं।

पहले कहा जा चुका है, कि बेकनका दर्शन अभिज्ञतामूलक है। बेकनका कहना है, कि उनके समयमें विज्ञानशास्त्र अवनतिकी चरमसोमा तक पहुँच गया था। इस समयका दर्शनशास्त्र भी न्यायशास्त्रके मकड़के जाल स्वरूप था। इस प्रकारके दर्शन और विज्ञानसे सत्यका प्रचार होना अशक्य है और मूल मतोंका भ्रामक संशोधन भी सभी प्रकार पसाधारण है। सुतरां न तत्तत्पत्त्या प्रवर्तित दर्शनका प्रचार

अवश्यभावो हुआ था। इसी उद्देश्यसे प्रबोधित हो कर बेकनने अपने दर्शनका प्रचार किया।

बेकनने दर्शनशास्त्रका नूतन पथ (Method) दिखानेके निम्न दोर किसी नूतन दार्शनिक तत्त्वका प्रचार नहीं किया। प्रचलित पत्त्यासमूहके दोषचामनका उपाय तथा सत्यान्वेषणका प्रधान अन्तराध का है उन सबका निर्णय करनेमें ही उनके दर्शनका अधिकारिण खप गया है। बाह्यजगत्के प्रति उपस्था बेकनके मतमें सत्यान्वेषणके पथ पर कण्टक स्वरूप है और विज्ञानशास्त्रोंकी अवनतिके अत्यान्व कारणीयमें यहो प्रधानतम कारण है। अत्यान्व जिन सब कारणीयोंसे विज्ञानको अवनति हुई है, उनमेंसे निम्नलिखित प्रधान हैं। प्रथमतः अज्ञपदार्थों की घोर मनुष्यकी दृष्टि पालाट होनेसे मनुष्यकी प्राध्यात्मिक अवगति होगी, ऐसा विज्ञान अज्ञवस्तुके प्रति अवज्ञाभाव, ऐमे विज्ञानका कारण है।

द्वितीयतः शौक्ति और धर्मजात कुसंस्कार सत्यान्वेषणका प्रधान गन्तु है। विरोधतः जब याज्ञिक-सम्प्रदाय का विरोध प्रभाव था, उस समय ये विज्ञानचर्चा में विरोध बाधा देते थे।

तृतीयतः प्राचीनतत्त्वके प्रति लोगोंका प्रगाढ़ विश्वास और कतिपय दार्शनिक मतोंका प्रभाव विज्ञानचर्चाका कण्टकस्वरूप हो गया था। अज्ञाता इसके जिन सब कारणीय भ्रमप्रमादकी उत्पत्ति होती है, उसका बेकनने 'पाइडल्स' (Idols) नाम रखा है। भ्रान्ति-उत्पादक पाइडल चार प्रकारका है, जातिगत भ्रम (Idols of the tribe) अर्थात् मनुष्यजातिमात्र हो जिस भ्रमके अधोक्ष है, वही भ्रम; व्यक्तिगत भ्रम (Idols of den) अर्थात् जो भ्रम देग, काल, पात्रके ऊपर निर्भर करता है; स्थानोद्य भ्रम (Idols of the market-place)—श्रद्धार्थके अनिश्चयत्व-हेतु इन सब भ्रमोंकी उत्पत्ति होती है अर्थात् एक ही शब्द विभिन्न व्यक्तियोंमें विभिन्न धर्ममें व्यवहृत हो कर एक दूसरेके मध्य भ्रम उत्पन्न करता है। भ्रान्त दार्शनिक सम्प्रदायों की सब भ्रम रङ्गालयमें अभिनेतृवर्ग की तरह सत्यस्वरूप प्रचारित होते हैं, वही भ्रम सांप्रदायिक भ्रम (Idols of the theatre) है।

न तब दार्शनिक तथ्यको स्पष्टता नूतन दार्शनिक पद्धति मिले जो प्राच्य जगत के कालों के निकट उपलब्ध है। चर्च में अपने दार्शनिकों के बीच में निज दार्शनिक पद्धति बनाया है। वेकले के मत में मध्यमानता प्रसार अभिज्ञता-मापक है। अभिज्ञता इन्द्रियज्ञान (Observation) और युक्ति (Reflection) इन दोनों विधियों के ऊपर निर्भर करती है। इन्द्रिय द्वारा वाह्य जगत् को सब विषय हम लोग ग्रहण करते हैं, युक्ति द्वारा उनका मत्तामस निदण्ड करना आवश्यक है। उनके मत में इण्डक्शन (Induction) पर्याप्त व्याप्तिमान है। युक्ति की सहायता से जो सभी विषयों का मत्तामस निदण्ड पित होता है। इसका विस्तृत विवरण भाष्य शब्दों के आधार पर व्याख्यान में देखो।

दार्शनिक विज्ञान में इन इण्डक्शन युक्तिका यथावत् प्रयोग करने के लिये अपने जन्मवाचक्य में (Novum organum) को सब पद्धति बनाया है, उन सब पद्धतियों को इण्डक्शन का नियम कहते (Canons of induction) हैं। विस्तृत विवरण भाष्य शब्दों में देखो।

वेकले-प्रवर्तित दर्शन को समस्त भित्ति इसी इण्डक्शन के ऊपर प्रतिष्ठित होने के कारण उनकी दर्शन की इण्डक्टिव दर्शन (Inductive philosophy) कहते हैं। इस दर्शन के मत में अभिज्ञता (experience) दर्शन का सब होने के कारण यह दार्शनिक सम्प्रदाय का नामान्तर एम्पिरिकल वा अभिज्ञतामापक दर्शन (Empirical or experiential philosophy) है। वेकले-प्रतिष्ठित दर्शन की वर्तमान व्याख्या चर्च में दर्शन (English philosophy) है। वेकले के उद्धृत होने पर भी ह्यूम और मिल (Hume and J. S. Mill) द्वारा इन दर्शन को परिचित साधित हुई थी।

पहले कहा जा चुका है, कि वेकले के विषय अभिज्ञता प्रकाश के अनुसार दर्शन की वास्तविकता पर प्रदर्शन किया है। उनके मत में अनुसरण करने के दार्शनिक तत्त्व का उद्घाटन तत्परवर्ती दार्शनिक पद्धतियों द्वारा साधित हुआ है।

नाइ (John Locke)।

पण्डित जॉन नाइ (John Locke) के दर्शन

प्रदर्शित पद्धति अनुसरण करने के प्रकाश दर्शन बना गये हैं। ये १६३२ ई. को प्रिन्टन नगर में छपाई हुई थी। इसी में वेकले विधिशास्त्रात्मक पद्धति प्रारम्भ किया। तन्मूलक नहीं रहने के कारण इसी में विधिशास्त्रात्मक व्यवसाय छोड़ दिया और साहित्यवेदान्त अपना जीवन यात्रा में किया। उस समय के प्रसिद्ध राजपुत्र शैफ्ट्सबरी (Earl of Shaftesbury) के प्राच्य में पा कर वे तत्कालीन विद्वान् समाज में सुपरिचित हुए। १६७० ई. में कुछ वस्तुओं के जनने से वे अपना दार्शनिक ग्रन्थ "Essay concerning human understanding" नामक ग्रन्थ में निवेदन करने को तैयार हो गये। १६८० ई. में उनका यह रचनाकार्य समाप्त हुआ। १७०४ ई. में नाक की सूख्य हुई। आपकी दार्शनिक रचना बड़ी ही प्राञ्जल है। आपने सरल और विज्ञानमय भाषा में आधार पर अपना मत प्रसार किया है।

ज्ञानतत्त्व की (Theory of knowledge) नाक प्रवर्तित दर्शन का प्रधान शास्त्र विषय है। ज्ञान का उत्पत्तिनिर्णय करने में नाक ने दो विधियों की व्यवस्था की है। प्रथमतः इनैट वाह्यिया पर्याप्त जितनी व्यवसाय धारणा को समझे हो उद्भूत है और जो वास्तविक विषय उत्पत्तिनाम नहीं करती, नाक ऐसे इनैट-वाह्यिया (innate idea) का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। द्वितीयतः उनमें मत में ज्ञान (Knowledge) मात्र की अभिज्ञता में उत्पन्न हुई है।

इनैट व्युत्पत्ति के मध्य में नाक का कहना है मनुष्य को विज्ञान करने है, कि वास्तव जगत् मनुष्य के ज्ञान को वास्तव से कर जगत् से तो है, ये वास्तव स्वतः विद्वत् है—इसमें प्रमाणों को ही नष्ट करने नहीं। ये सब वास्तव जो मन की प्रवर्तित है, इनमें सार्वजनिकत्व (universality) को समझ एक प्रमाण है। नाक कहते हैं, कि इनमें सार्वजनिकत्व को तत्काल पर मान लेने पर भी यदि अन्य किसी उपाय में इनका सार्वजनिकत्व प्रतिपन्न किया जा सके, तो ऐसे इनैट व्यवसायों का अस्तित्व नहीं; किन्तु यथावत् से सार्वजनिक नहीं है। नाक के मतानुसार इसी में विषय का सार्वजनिकत्व नहीं है। नैतिक नीतियों में सर्ववादी मध्यम नहीं

है। ज्ञानराज्यके मूलसूत्र (यथा एक वस्तुका एक समयमें रहना और नहीं रहना असम्भव है, जिसका अस्तित्व है, वह वस्तुमान (what is is) इत्यादि) विषयोंकी भी इनेट वा मनःप्रकृतिसिद्ध नहीं कह सकते। यदि ऐसा होता, तो बालक और भाज्यम-निष्ठ मनुष्योंकी भी ये सब तथ्य माहूम हो सकते थे। यलावा इसके जो इनेट है, वह ज्ञान विकासकी पहली ही प्रतिभात हुआ करता है। किन्तु उपरि-उक्त तथ्योंका विकास समयसापेक्ष है सुतरां ये इनेट नहीं; क्योंकि जो मनमें है (To be in the mind) वह एक प्रकारसे ज्ञानकी विषयोद्भूत है। हम लोगोके मनमें ये भाव वस्तुमान हैं अथवा हम लोग इनसे अवगत नहीं हैं। लाक इस युक्तिको आक्षेपितो (Contradiction) समझते हैं। हम लोगोको ज्ञानमार्गिके सहीधनकानमें विशेष विशेष विषय (Particular facts of knowledge)का ज्ञान ही लाभ होता है। फिर जिसे हम लोग साधारण-ज्ञान कहते हैं वह विशेष विशेष विषयको ज्ञानकी सामान्यरूपे संलग्न हुआ करता है। यह इण्डक्शन (Induction) का फल है।

परन्तु हम लोगोके मानसिक भावोंकी उत्पत्ति किस प्रकार होती है, उसे लाकने सविस्तर दिखानेकी चेष्टा की है। मंचेपमें उनके मतका सरोदार करके लिखा जाता है।

लाकने कहा है, कि हम लोगका मन वा बुद्धिप्रतिपाद्यावस्थामें अनिश्चित प्रस्तरखण्ड (Tabula rasa) अथवा स्वच्छ दर्पणकी तरह रहती है—इसमें कोई पूर्व संस्कार नहीं रहता। समस्त ज्ञान अन्तर्क परवर्ती समयमें परिणत होता है। संस्कारविहीन स्वच्छ पदार्थस्वरूप मनमें किस प्रकार ज्ञानका उदय होता है, उसकी मौलिकाके समय लाकने कहा है, कि ज्ञानका उदय परिप्रतासापेक्ष है और परिप्रता दो प्रकारसे कार्य करी होती है; प्रथमतः अनुभूति (Sensation) द्वारा; द्वितीयतः अनुधान (Reflection) द्वारा। दर्पणके प्रतिबिम्बकी तरह इन्द्रियसे सहयोगसे हम लोगोके मनमें विषयकी मानस प्रतिकृतिका उदय होता

है और आत्मा हम लोगोकी अन्तर्दृष्टि (introspection) का सहीधन करके मनकी प्रक्रियाओंके प्रति दृष्टि आकर्षण करती है। मानस प्रतिकृतिका ही लाकने 'आइडिया' (Idea) कहा है। लाकने मतसे आइडिया दो प्रकारका है, सरल (Simple) और जटिल (Complex)। सरल आइडियाओंमें कोई तो एक इन्द्रिय-ज्ञानसम्भूत, कोई दो वा उनसे अधिक इन्द्रियज्ञानकी समष्टिसे उत्पन्न हुआ है। कोई कोई आइडिया इन्द्रिय-ज्ञान और अनुधान (Reflection) इन दो प्रक्रियाओंके सहयोगसे और कोई केवल अनुधानसे ही उत्पन्न हुआ है। जटिल आइडियाओं (Complex idea) मेंसे कितने सरल आइडियाके संयोगसे पैदा हुए हैं। इन जटिल आइडियाओंको लाकने तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया है, पदार्थ समूहका प्रकृतिबोधक (Ideas of modes), पदार्थ समूहका स्वरूपबोधक (Ideas of substances) और पदार्थ समूहका सम्बन्धबोधक (Ideas of relations)। द्रव्यमनुष्यका दृश्य, आकृति, परिमाण प्रभृति स्थान और कालपरिमाण-सम्बन्ध तथा अनुभूति (Perception), स्मृति (memory) प्रभृति मानसिक प्रकृतिसम्बन्धों समस्त आइडिया प्रथम श्रेणीके अन्तर्गत हैं अर्थात् वे सब पदार्थ-समूहके प्रकृति-सर्वक आइडिया (Ideas of modes) हैं। पदार्थ समूहका स्वरूप बोधा है, इसका तत्त्वनिर्णय करनेमें लाकने कहा है, कि इन्द्रियज्ञानसे हम लोग वैयक्त कितने गुणों (Qualities)का अस्तित्व जान सकते हैं। ये सब गुण समवेत भावमें हम लोगोके निकट प्रकाशित होते हैं और वे गुण फिर ऐसे भावमें एक दूसरेके साथ संयुक्त देखे जाते हैं, कि उनकी उत्पत्ति एक समझी जाती है। इन सब गुणोंकी जाधीन वा स्वप्रकाश नहीं कहा जा सकता। यही कारण है, कि दार्शनिक लाकने गुणमनुष्यके आधारको (Substratum) द्रव्य (Substance) कहा है। लाकने मतसे द्रव्य गुणमनुष्यके बन्धनोत्पन्न है और वे गुण द्रव्यत्वके विकाससाधक हैं। गुणोंके पभावमें हम लोगोको द्रव्योंकी किसी प्रकार धारणा नहीं हो सकती। गुणकी आधार समझ कर हम लोग द्रव्यका

जो ज्ञान पाते हैं, उसकी प्रतिरिक्त वाह्यजगत्में उसका अस्तित्व कोसा है, यह हम लोग नहीं जानते। साक का अहमा है, किंजिम प्रकार विभिन्न पद्यों के योग-से शब्दको, उपपत्ति होती है, उसी प्रकार परस्पर सम्बन्ध-के कारण मूल धोर जटिन आइडियाओं के सहयोगसे हम लोगों को ज्ञानोपत्ति दृष्टा करते हैं।

उपरि उक्त विवरणसे यह देखा जाता है, कि साक-के मतानुसार इन्द्रियज्ञान ही समस्त ज्ञानका मूल है। इस दार्शनिक मतका मूलमूल (जो इन्द्रियमूलक नहीं है, मनोजगत्में उसका अस्तित्व नहीं है), (Nihil est in intellectu, quod non furit in sensu) हम विषयमें साक्ष्य प्रदान करता है। हमने भित्तिये साक्ष्यमें अपने दर्शनको विस्तारित किया है। साकके दर्शनकी शेष भागमें जड़वाद (Materialism) का प्रभाव विलक्षण देखा जाता है। साकने साक्षा-की भी एक प्रकारका पदार्थ विशेष माना है। वे जड़पदार्थके प्रतिरिक्त किन्ही प्रकार आध्यात्मिक पदार्थ-का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। उन्होंने ऐसे मतका भी प्रचार किया है, कि ईश्वरने जड़ (matter) में ज्ञानशक्ति (intellect) निहित की है ('It is not remote from our comprehension to conceive that God should super-add to matter another substance with a faculty of thinking.')

साकको दर्शनमें जड़वादकी पूर्वसूचना रहने पर भी इसमें हम प्रवर्तित, संशयवाद (Scepticism) का बीज अन्तर्निहित है। द्रव्यका स्वरूप निर्णय करते समय (What is the notion of substance) साकने कहा है, कि द्रव्यकी हम लोग गुणका आधार मानते हैं। इसके पलावा अर्थात् गुणके मध्य ही कर इसका जो अर्थ प्रकाश पाता है, उसकी प्रतिरिक्त द्रव्यके स्वरूप सम्बन्धमें हम लोग धोर कुछ भी अधिक नहीं जान सकते; केवल इतना ही जानते हैं, कि द्रव्य (Matter) हमसे स्वतन्त्र पदार्थ है। हमका अस्तित्व वाह्यजगत्में धोर गुणकी सहायतासे हम लोगोंके मनो-राशयमें अपने अस्तित्वका ज्ञान उद्योत कर देता है। द्रव्य-समस्तके गुणोंका स्वरूप कोसा है अर्थात् वे

हम लोगोंके निकट जिस प्रकार प्रतीयमान होते हैं, वाह्य जगत्में क्या उनका अस्तित्व भी उसी प्रकार है? आइडिया (Ideas) क्या सभी वस्तुओंकी यथायथ प्रतिरिक्ति (Resemblance) है? हम प्रयोगोंकी सीमासा करते समय साकने गुणमूलका धोर प्रथा-युयायी विभाग बतलाया है। उसीने कहा है, कि द्रव्यज्ञानगुण (Sensible qualities of matter) प्रादिम (primary) धोर अमान्तर (secondary) के भेदसे दो प्रकारका है। प्रादिम गुण वस्तुका स्वरूप निर्देश करते हैं। वस्तुसमूहका दैर्घ्य, विस्तार, बंध अवस्थिति आकृति सम्बन्धोद्य जितने गुण हैं, वे इसी श्रेणीके अन्तर्गत हैं। अमान्तर गुण (Secondary qualities)के साथ वाह्यवस्तुओंका किसी प्रकार सादृश्य (Resemblance) नहीं है, केवल वाह्यवस्तुके साथ कार्यकारणगत सम्बन्ध रहनेसे सिद्ध सामन्तर्य (Correspondence) ही है। ये अमान्तर गुण इन्द्रियसमूहके लपर आह्वयवस्तुकी क्रिया (Sense affections)से उत्पन्न होते हैं। आह्वयवस्तुके साथ हमका सादृश्यगत कोई सम्बन्ध नहीं है, जैसे पदार्थमनुहका वर्ण (colour) इत्यादि। ये सब साकके मतमें वस्तुकी आकृतिकी तरह वस्तुकी यथायथ प्रतिरिक्ति नहीं है; वस्तुसे उत्पादित इन्द्रियज्ञानमात्र (Sense affections) है। साकके परवर्ती दार्शनिक वर्कानोंने अपने दृष्टिज्ञानतत्त्व (Theory of vision) में उसके इन दो प्रकारके विभागोंका असारत्व प्रतिपन्न करने अपने मतकी प्रतिष्ठा की है।

बार्कली।

किसी किसी दर्शन-इतिहासविदने दार्शनिक शाकली (Berkeley)की साकके परवर्ती धोर इम्पिरिकल दर्शन सम्प्रदायभूत (Empirical philosophy) न मान कर निवर्तनिक परवर्ती धोर आइडियलिस्ट-द्रव्य नमम्प्रदायभूत माना है। बार्कलीका दार्शनिक मत आइडियलिज्म वा विज्ञानवाद (Idealism) होने पर भी साकको दार्शनिक भित्तिये वे उक्त मत पर पड़ते हैं, इस कारण हम लोगोंने उन्हें लिबनिज (Leibnitz) के परवर्ती धोर तत्त्वप्रवर्तित दर्शन-सम्प्रदायभूत न

मान कर लाकके परकासवर्ती माना है। बाक'लोके दग्गनके ऊपर लिबनिजके दग्गनका प्रभाव कोसा है तथा लाकके दग्गनका ही प्रभाव किस प्रकार है, उसके प्रति लक्ष्य करनेसे इस मोतासाका याथार्थ्य उपलब्ध होता है।

बाक'लोने पायरलेण्डके चन्तःपातो किलकेनो (Kilkenny) काउण्टीमें १६८५ ई०को जन्मग्रहण किया। १७०० ई०में वे डब्लिन नगरके ट्रिनिटी कालेजमें भर्त्ती हुए। यहां उन्होंने १२ वर्ष विद्याभ्यासमें बिताये। इस समय ट्रिनिटी कालेजमें वेंचन और देकाट'का दग्गन तथा न्यू टन और लिबनिजकी प्राविप्रियाका विषय पढ़ाया जाता था। लाकको दग्गन पुस्तक (Essay on human understanding) इसी स्थानमें प्रचलित हुई। बाक'लो न्यू टन, देकाट' और मसब्रान्स (Malebranche) के ग्रन्थोंसे विशेष परिचित थे; यह उनको पूर्व रचनासे जाना जाता है।

डब्लिनमें रहते समय उन्होंने अपने दग्गन मतके संपन्न परतीन पुस्तक बनाईं। १७०८ ई०में उनको दृष्टि तत्त्व (Essay towards a new theory of Vision) और १७१० ई०में ज्ञानतत्त्व (Principles of Human Knowledge) नामक पुस्तक प्रकाशित हुईं।

१७१३ ई०में बाक'लो लण्डन गये। तमोसे ले कर बीस वर्ष तक उन्होंने इङ्गलैण्ड और यूरोंपके अन्धान्य प्रदेशोंमें तथा अमेरिकामें भ्रमण किया। १७२४ ई०में वे डेरोनगरके धर्माचार्य (Dean of Derry) नियुक्त हुए। उन्होंने बार्मुडसद्वीप (Bermudas Island) में सभ्यता और धर्मप्रचार करनेके लिए कालेज खोलना चाहा; इसी सहर्षसे वे ४५ वर्षको अवस्थामें उक्त द्वीप गये। जब कष्टपूर्ण उक्त कालेजका वर्यभार ग्रहण करनेमें राजीब हुए, तब वे तीन वर्ष रोडद्वीपमें रह कर बिकसमनोरथ हो स्वदेश लौटे। अपने जीवनका शेष बीस वर्ष उन्होंने पायरलेण्डके क्लायनो (Cloyne) नामक स्थानके विधवापद पर व्यतीत किया। १७५३ ई०को पास्फोर्ड नगरमें प्रायका देहावत हुआ।

बाक'लोका जीवन भी उनके दार्शनिक मतोंके अनुरूप था। प्राजीवन वे आध्यात्मिकतामें निमग्न रहे।

ध्यानमग्न योगीकी तरह वे व्यवहारिक विभावने भी बाह्यजगत्का अस्तित्व नहीं मानते थे। उनका जीवन नैतिक पवित्र जीवनका प्रादुर्गम्य था। ज्ञान और धर्मसे उनका जीवन देवभावमें पूर्ण हुआ था।

पहले कहा जा चुका है, कि लाक'को दग्गनके ऊपर बाक'लोने अपने दग्गनकी भित्ति प्रतिष्ठित की है। लाक' जटुजगत्का अस्तित्व परवीकार नहीं करते थे। उन्होंने कहा है, कि जटुजगत्का उपपन्न प्रकृत अस्तित्व है। बाक'लोने, जटुजगत्का अस्तित्व है वा नहीं पहचने इस प्रश्नका उत्थापन न करके प्रकृत अस्तित्व (Real existence) किसे कहते हैं, उसका स्वरूप कोसा है, इसी विषयकी मोमांसा की है। इसी मोमांसासे उनके प्रवर्तित ज्ञानतत्त्व (Theory of knowledge) का प्रचार हुआ है। लाक'ने कहा है, कि बाह्यजगत् हम लोगोंके ज्ञानका विषय और गिदान दोनों ही है। अनेक वस्तुका समूह ही हम लोगोंको इन्द्रियोंके ऊपर कार्य करके हम लोगोंमें अनुभूति (Perception) उत्पन्न कर देता है। बाक'लोने लाक'के उक्त दग्गनमतका अमरान्व प्रतिपन्न किया है बाक'लोका कहना है, कि लाक'के मतानुसार आइडिया वा मानसिक प्रतिकृति ही (Ideas) पदार्थ समूहकी ज्ञानसञ्चक हैं और आइडिया मनोजगत्की वस्तु है, किन्तु मैं कहते हैं, कि बाह्य पदार्थोंमें इन मानसिक प्रतिकृतियोंकी सृष्टि की है। मानसिक प्रतिकृति (Idea) और बाह्यजगत्के मध्य कार्यकारणका सम्बन्ध है, एक दूसरेका जनयिता है। बाक'लो लाक'का यह अन्वयजनकत्व सम्बन्ध स्वीकार नहीं करते। बाक'लोने कहा है, कि गुणकी प्रतीति की है मो पदार्थ (Abstract matter) हम लोगोंके ज्ञानका विषय नहीं है, हम लोग किसी भी तरह इसका अस्तित्व नहीं जान सकते हैं। अपने मनोजगत्की छोड़ कर अन्य किसी पदार्थके अस्तित्वसे प्रसंगत होना हम लोगोंके विषे प्रसम्भव है। बाह्य गन्धका स्वरूपार्थ क्या है, बाक'लो उसका निर्धारण कर गये हैं। बाक'लोने कहा है, कि बाह्यजगत् मनोजगत्की ही कल्पनाकी वस्तु है।

वाह्यजगत्के सम्बन्धमें हम लोगों के प्रत्यक्षज्ञान नहीं है, हम लोगों का यह विश्वास बाक'लोनि मतमें प्रमूलक है। इन्द्रिय ज्ञानमें हम लोग साक्षात् सम्बन्धमें वाह्य जगत्का ज्ञानलाभ करते हैं; यह विश्वास प्रायः अविश्वेदितरूपमें स्वीकृत हुआ करता है।

बाक'लोका कथन है, कि हम विश्वासस्था मूल गौर कर देखनेसे इसका असारत्व प्रतिपन्न होगा। अनुभूति (Perception) कहनेसे हम लोग क्या समझते हैं? अनुभूति क्या हम लोगों के मनकी अवस्था विशेष नहीं है? यदि नहीं है, तो वाह्यजगत् का अस्तित्व कहाँसे पाया? साक प्रभृति दार्शनिकों का कहना है, कि वाह्यजगत्में ही हम लोगों के अग्निन्द्रिय समूहका विकास साधन करके हम लोगों के मनमें वाह्य जगत्के ज्ञानका विकास कर दिया है। बाक'लोने इस मतके विरुद्ध दो आपत्ति की है। वाह्यजगत्में जो हम लोगों के इन्द्रियज्ञानका उद्बोध कर दिया है, इस प्रकार कार्यकारण सम्बन्धका स्वीकार बाक'लोके मतसे अवश्व है।

वाह्यवस्तु जो मनोराज्यके दूसरे किनारे है, वह किस प्रकार मनके ऊपर कार्यकारी होगा। बाक'लो उसे बुद्धिका अतीत समझ कर विश्वास करते हैं। जड़ और मन (Matter and mind) का कार्यकारण सम्बन्ध ज्ञान सायोजित ज्ञान है। वाह्यजगत् कहनेसे मनुष्य जो समझते हैं, यथायमें यदि देखा जाय, तो उनके अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है; वह मनका भाव विशेष है, इसलिये मनोजगत्की वस्तु है। बोधका विषयमात्र ही मनोराज्यको वस्तु है। वाह्यजगत् भी हम लोगों के बोधका विषय है। सुतरां यह भी हम लोगों के मनोराज्यके अन्तर्हित है। द्वितीयतः बाक'लो कहते हैं—लोगों का प्रचलित विश्वास इस प्रकार है, कि दर्पणमें प्रतिबिम्बकी तरह हम लोगों के मनमें वाह्यजगत्की प्रतिरूपि मनुष्य है। दर्पणका प्रतिबिम्ब जिस प्रकार अपनी वस्तुके अनुरूप है, वाह्य जगत्का मानसिक चित्र भी उसी प्रकार वाह्यजगत्के अनुरूप है। बाक'लोका कहना है, कि साकने उन्हें इस मतका प्रतिपक्ष करते समय अपने मतमें ही अनान्य विरोध

(Contradiction) दोषों की प्रतिष्ठा की है। साक सेकण्डरी वा अचान्तर गुणों (Secondary qualities) को मनकी अवस्थाविशेष मान गये हैं। किन्तु प्राथमरी वा आदिम गुणों को (Primary qualities) उन्होंने केवल मनकी अवस्था ही नहीं कहा, बल्कि उन्हें वाह्यवस्तुको यथायथ प्रकृति निर्देश को है। बाक'लो प्राथमरी गुणों का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है, कि हम लोग जिन्हें वाह्य वस्तुका गुण समझ कर विश्वास करते हैं, वह गुणमात्र ही मनकी अवस्थाविशेष है। इनके मध्य प्राथमरी और सेकण्डरी ऐसा पाय'व्य निर्देश नहीं किया जाता। पुनः प्राथमरी वा आदिम गुण वस्तुकी यथायथ प्रतिरूपि प्रदान करता है; ऐसे निर्देशका यथायथ कोई चयन ही नहीं सकता। आइडिया वा मानसिक भाव किस प्रकार वाह्यवस्तुकी प्रतिरूपि हो सकता है? इस वाक्यके स्वरूपको उपलब्धि नहीं की जाती। मनकी क्रिया मनके ऊपर ही सम्भव है, वाह्यवस्तु आइडिया वा मानसिक भाव इनके मध्य किस प्रकार यथायथ सादृश्य (Resemblance) रह सकता है। उक्त प्रकारकी युक्तियोंका प्रयोग करके बाक'लोने यह प्रतिपक्ष किया है, कि वाह्यजगत् और मन इन दो विभिन्न प्रकृतिक पदार्थों के मध्य किसी प्रकारकी क्रिया नहीं हो सकती। सुतरां सीमा के ऊपर कठिन पदार्थ की व्यापकी तरह हम लोगों के मनके ऊपर वाह्यजगत्का संस्कार पड़ता है, ऐसा प्रचलित विश्वास भित्ति हीन है।

पर हाँ, वाह्यजगत्का यह दृश्यपट कहाँसे पाया? हम लोगों को अनुभूति की उत्पत्ति कहाँसे हुई? इस प्रश्न की सीमासा बाक'लो कर गये हैं। बाक'लोका कहना है, कि वाह्यजगत्का ज्ञान मनसे पाप हो पाप प्रकृत नहीं होता, मन स्वयं इनका सृष्टिकर्ता नहीं है, दूसरे किसी मध्यस्थ मनसे हम लोग ये सब ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसका दूसरा नाम ईश्वर है। वाह्य जगत् कह कर जो हम लोगों का विश्वास है, ईश्वरमें वह आइडियास्वरूपमें विराजमान है। वे इन्द्रियों के उद्बोध (Sensation) द्वारा हम लोगों के मनमें इस

पारडिशाका उद्बोधन कर देते हैं। सुवर्ण वास्तुको के समान वायजगत् वस्तुतः कल्पनाकी सामग्री नहीं है, इसका प्रकृत अस्तित्व है, पर यह अस्तित्व प्रचलित विश्वासमग्न अस्तित्व नहीं है—यह आध्यात्मिक अस्तित्व (Ideal existences) है।

इस प्रकार दार्शनिक मतानुसार वस्तुको स्वरूप सम्बन्धमें कौसा मत होगा, यह सचजनें ही अनुमान किया जा सकता है। बाकंलोका कल्पना है, कि वस्तुका ज्ञान ही उसका स्वरूप (Esse is percipi) है; यथावा इसकी वस्तुका किसी प्रकार अतिमानम अस्तित्व (Extra-mental existence) नहीं है। बाकंलोने अपने दृष्टितत्त्व (Theory of vision) में प्रचलित विश्वासको असारत्व की प्रमाणित किया है। लौकिक विश्वास इस प्रकार है, कि दृष्टिगति ही वस्तुको दूरत्व, आकृति आदिका ज्ञान उत्पन्न कर देती है। बाकंलोने दृष्टिगति को ऊपर इस प्रकार आख्या स्थापन करनेमें सतर्क कर दिया है। उनका कहना है, कि वर्णबोध (Colour-sensation) को निम्ना दृष्टिगति और किसी विषयकी साक्षात् सम्बन्धमें कुछ भी नहीं बताया सकती। परन्तु हम लोग जो दृष्टिगतिमें दूरत्वका निर्णय करते हैं, वह केवल अनुमान (Inference) को ऊपर निर्भर करके। यथार्थमें मानव श्रियो की क्रियाएं हम लोगों की दूरत्वका बोध बहुत कुछ कर देती हैं। दृष्टिगति केवल इन क्रियाओं (Muscular exertion) की स्थितिको बढ़ाती है।

बाकंलोने इसी प्रकार मनुष्य अध्यात्म-दर्शनको सृष्टि की है, इसमें जड़का कोई स्थान नहीं है। केवल परमात्मा (The great spirit) और सभी जीवात्मा (Spirits) वर्तमान हैं। समस्त जीवात्माका ज्ञान परमात्मा में उत्पन्न होता है। जगत् में इस ज्ञानकी विकासकी मित्रा और दूसरा पदार्थ नहीं है। यदि देखा जाय तो बाकंलोका दर्शन भारतीय-वेदान्तदर्शनका समस्थानीय है—दोनों ही मतमें वायजगत् ब्रह्म या माया है। किन्तु इस मायाका मो अस्तित्व है—यह भी ईश्वरसृष्ट है। बाकंलोने वायजगत्का आध्यात्मिक अस्तित्व स्वीकार किया है।

हमको दर्शनमें ही एम्पिरिकल दर्शन (Empirical philosophy) को परिणति साधित हुई थी। पीके जेम्स मिल (James Mill), जान स्टुअर्ट मिल (John Stuart Mill) और अलेक्सन्दर बेन (Alexander Bain) ने हमूका ही दार्शनिक मत पुनः प्रवर्तित हुआ था। सामान्य जगति और परिवर्तित व्यवहार इन लोगों ने हमूका मत सर्वतोभावेमें अनुवर्तित किया है।

यथार्थमें हमूको ही लाक के प्रकृत अनुवर्तक कह सकते हैं। बाकंलोने लाक के दर्शनका अन्त विरोध लक्ष्य करके जिस दार्शनिक मतका प्रचार किया है, उसे आइडियलिज्म (Idealism) भिन्न एम्पिरिज्म वा सेन्सेसनिज्म (Empiricism or sensationism) कहते हैं। केवल ऐतिहासिक औपचारिकी प्रति लक्ष्य रख कर हम लोगों ने बाकंलोका नाम लाक के बाद सन्निविष्ट किया है।

लाकने जिस भित्तिके ऊपर अपना समस्त दर्शन गठित किया है उसमें उनके पक्षमें वायजगत्का अस्तित्व प्रतिपन्न करना एक प्रकारसे अनभव्य है। दार्शनिक हमूने लाक के दर्शनको यह पसकृति प्रतिपन्न करके अपने दर्शनको प्रतिष्ठा की है। बाकंलोने लाक के दर्शनको अनभक्ति देख कर उसे निराकरणको इच्छामें जिन दर्शनका प्रचार किया है, दार्शनिक हमूको मतमें यह भी आन्तिम लक्ष्य है।

डेविड ह्यूम (David Hume)

डेविड ह्यूम (David Hume) ने १७११ ई० को एडिन्बरा नगरमें जन्म लिया। पार्ले-श्वसतायी होनेके उद्देश्यसे उन्होंने प्रथमतः पार्ले पढ़ना आरम्भ किया, किन्तु अन्तमें वे वाणिज्य कार्यमें लग गये। १७५२ ई० में वे एडिन्बराको साधारण पुस्तकालयकी अध्याक्षकी पद पर नियुक्त हुए। यहाँ उन्होंने इङ्ग्लैण्डका इतिहास (History of England) नामक विख्यात ग्रन्थकी रचना की। इसकी बाद वे दो एक उच्चकार्यों पर भी नियुक्त हुए थे। १७७० ई० में उन्होंने अण्डर सेक्रेटरी-फॉर स्टेट (Under-Secretary of State) का पद ग्रहण किया। अपने

कीवन्ता ग्रंथ भाग चर्चो'ने दर्शन और इतिहासको पालोचनार्थ विताया। १७०६ ई०में उनको मृत्यु हुई।

ह्यूम्सके दर्शनमें अज्ञेयवाद और सशयवाद (Agnosticism and Scepticism) भी शोथ खान पाया है। ह्यूम्सने बाइबलगत, ईश्वर और प्रायः इन तीनोंको अस्तित्वकी बिल्कुल पालोकार किया है। उनका कहना है, कि इन तीनों वस्तुओंका अस्तित्व खोका; वारनिका कोई कारण भी देखनेमें नहीं पाता और न इनको अस्तित्वको सम्बन्धमें कोई प्रमाण ही मिलता है।

कार्यकारणज्ञान (Theory of causality) को सम्बन्धमें न तब मतका प्रचार करके ह्यूम्सने अपने दार्शनिक मतकी प्रतिष्ठा की है।

ह्यूम्सका कहना है, कि केवल इन्द्रियज्ञान (Sensation) को सम्बन्धमें हम लोगोंको मायात् सम्बन्धमें समझना है, किन्तु इसमें बाइबलगतको अस्तित्व पर किस प्रकार विश्वास पाया? लाजका मत पबलमेशन करनेसे यह कहना पड़ेगा कि बाइबलगत ही हम ज्ञानका कारण है। किन्तु ह्यूम्सके निकट उक्त मत समीचीन नहीं समझे जानेके कारण चर्चो'ने कार्यकारण ज्ञानका स्वरूप कैसा है, इस सम्बन्धमें पालोचना की है।

ह्यूम्स कहते हैं, कि प्रचलित विश्वासमें तब जन्मलक्षका सम्बन्ध कार्यकारणके सम्बन्धका प्रकृत स्वरूप है। कारणके कार्यको उत्पत्ति हुई है, यह लौकिक विश्वास प्रचलित है। एकही दृष्टिमें उत्पत्ति हुई है, यह ज्ञानका हम लोगोंके पक्षमें अनुभव है। हम लोग केवल घटनाके पोषाधिक प्रतीतिजन करते हैं।

केवल घटनाका पोषाधिक अनुमीलन करने हम लोग एक घटना दूसरीका जनक है, ऐसे कार्यकारण सम्बन्ध ज्ञान पर पहुँचते हैं। कारणमें कोई अन्तर्निहित शक्ति है, यही शक्ति कार्यको उत्पादक है, ऐसा विश्वास प्रचलित है। ह्यूम्सका कहना है, कि हम लोग प्राकृतिक शक्तिप्रत्यक्ष मनके इच्छाधोने है, अर्थात् हम लोग इच्छाधुसार वहकी चालना कर सकते हैं। हम प्राकृतिकसे हम लोग अपर वस्तुकी अन्तर्निहित शक्ति पर विश्वास करते हैं। ह्यूम्स शक्ति नामक किसी पदार्थ

पर विश्वास नहीं करते। उनका कहना है, कि जिन जिन घटनाओं हम लोग शक्ति-साधित समझ कर विश्वास करते हैं, विश्लेषण कर देखनेमें उनमें पोषाधिक सम्बन्ध व्यतीत और कुछ भी देखनेमें नहीं पाता शक्ति किस प्रकार कार्य उत्पादन करती है, उसके सम्बन्धमें हम लोगोंके कोई ज्ञान नहीं है, केवल पोषाधिक ज्ञानसे हम लोगोंको शक्तिमें विश्वास हुआ है। हम लोग जय चाहें, हाथ पैरका मञ्चालन कर सकते हैं। साधारण विश्वासके मतसे इच्छा ही शक्तिकी प्रतीति है, किन्तु विषयज्ञा धृक्स्वरूपसे विश्लेषण करके देखनेमें उक्त मतका अमरत्व प्रतिपन्न होगा। हम लोग इच्छाधुसार हाथका मञ्चालन कर सकते हैं। इस व्यापारसे दो घटना मिलित होती हैं पहली घटना हम लोगोंकी इच्छा वा मानसिक भाव और दूसरी इच्छासञ्चालन-कार्य है। इन दोनों घटनाके पोषाधिक सम्बन्धविचारित्वके ऊपर निर्भर करके हम लोगोंकी शक्ति नामक अज्ञेय पदार्थ पर विश्वास हुआ है। जिस समय इच्छासञ्चालनकी इच्छा हुई, उसी समय इच्छासञ्चालनकार्य भी सम्पन्न हुआ है। ऐसे घटनाको बार बार अनुवृत्ति (Repetition) से हम लोगोंको विश्वास होता है, कि हमने प्राप्तिप्राप्त शक्ति द्वारा ही इच्छासञ्चालन कार्य सम्पन्न किया है। जागतिक अन्याय कार्यकारणकी जगह शक्तिप्रयोग करनेसे विश्वास इनो प्रकारको प्राकृतिकके उपमान (Analogy) पर पैदा हुआ है। जिन साधारण वाक्यमें कार्यकारण सम्बन्धता अविचारित्व (Necessity or invariability) कहते हैं, ह्यूम्सके मतसे कार्यकारणका यह अव्यभिचारित्वज्ञान प्रभावज्ञात (Due to custom) है। हम लोगोंने किसी पूर्ववर्ती घटना-विशेषके बाद को परवर्ती घटनाका सहज बार बार देखा है, इसी कारण पूर्वके होनेसे परवर्ती होगा ही हम प्रकार विश्वास करते हैं। इसके प्रतिरुद्ध नियति नामक किसी अज्ञेयशक्तिकी दुष्कृत्य वधनको ह्यूम्स खोकार नहीं करते। दार्शनिक ज्ञान टूटाटूटा मिल, वन आदि दार्शनिक पण्डितोंने आशिक परिवर्तनके साथ ह्यूम्सका यह मत ग्रहण किया है। न्याय शब्दमें प्राकृतिकभाव देका।

प्रधानता प्राप्त की है; यहाँ तक कि प्रत्यक्षप्रतीति का अस्तित्व वास्तविक प्रतीति की ही निर्देश पर देना है। वैज्ञानिक प्रतीति दृश्य वस्तुप्रदायक। परन्तु इसके विशिष्ट विपरीत है। इस दृश्य में प्रतीति (experience) ही हम लोगों के ज्ञान की मूलभूमि बतसाई गई है। किन्तु हम लोगों की प्रतीति की उत्पत्ति किस प्रकार हुई है और इसके मध्य कितना सत्याय है, वैज्ञानिक इन भव विषयों को सोचता नहीं को। वह नि प्रतीति को अन्तःनिहित मान लिया है। देकार्ट के मत में प्रतीति ज्ञान की मूलभूमि (ultimate principle) नहीं है; वह एक क्रियात्मक है और इसका एक कर्ता है, यही कर्ता ज्ञान का मूलधार है। अतएव प्रतीति ज्ञान मूलज्ञान नहीं है, अपने ज्ञान (Self-consciousness) को मूल ज्ञान का मूल है।

रेना देकार्ट (René Descartes) ने १५८६ ई. को फ्रांस के टूरैन (Touraine) प्रदेश के पन्तःपाती ला-हे (La Haye) नामक स्थान में जन्म ग्रहण किया। ला फ्लेची (La Fleche) नामक स्थान में जेसुइट मन्त्रालय में प्रतिष्ठित एक विद्यालय में उन्होंने पढ़ना सिखना सीखा। कुछ काल पेरिस में रह कर वे नीदरलैंड (Netherlands) के सामरिक विभाग में प्रविष्ट हुए। योही उन्होंने बर्मरिया के सामरिक विभाग में भी कुछ दिन तक कार्य किया। १६२५ ई. में पेरिस सौटने के बाद उन्होंने ज्ञानतत्व को पालीचन में ध्यान दिया। ज्ञान-वर्धन के लक्ष्य के लक्ष्य में उन्होंने अपना कामस्थान छोड़ा। पेरिस में प्रायः ४ वर्ष रहने के बाद वे डालेफ्ट-दिग गये और वहाँ बीस वर्ष तक ठहरा। इतने दिनों तक वे बसधारण मनोयोग के साथ दर्शनशास्त्र की आलोचना में नियुक्त रहे। १६४८ ई. में खोडनकी रानी क्रिस्टीना (Queen Christina) से परिचित हो कर वे ट्राकहाउस नगर गये और वहाँ कुछ दिन रहने के बाद १६५० ई. को मृत्यु सुख में पतित हुए।

दाग मिक देकार्ट 'पन्थग्राधारण प्रतिभा के अधिकारी थे। उनकी प्रतिभा मय तो सुखी थी। वे दार्शनिक, गणितज्ञ, चिकित्सक, ज्योतिषी और गणितशास्त्रज्ञ थे। उनके विपरीत को उन्होंने अस्मिता को खूब को यो। विशेष-

तः गणितशास्त्र की अस्मिता के लिये मारा भँसार देकार्ट की निकट विरक्त थी है। वस्तुमान समय को विशेष-मूलक धुंधले दृश्य-वस्तु की व्याप्ति (Analytical Geometry of Conics) देकार्ट की ही बनाई हुई है।

देकार्ट को दर्शन मूल्य में प्रत्याविचार (Discussion Method), दृश्य तत्त्व (Principles of Philosophy) और दर्शन विज्ञान का दर्शन विवेक (Meditation of the First Philosophy) यही सब ग्रन्थ प्रधान हैं।

पहले कहा जा चुका है, कि देकार्ट ने भावज्ञान (self-consciousness) को सर्व ज्ञानमूल और संशय-रहित निष्पत्ति माना है तथा इसी भावज्ञान की भित्ति से अन्यथा पदार्थों का अस्तित्व निर्णय किया है। देकार्ट का कहना है, कि भावज्ञान की अस्तित्व से हम लोग पहले ईश्वर के अस्तित्व और योही वास्तविक अस्तित्वज्ञान (Nature) पर पहुँचते हैं।

प्रथमतः जिस पदार्थ का अवलम्बन करके देकार्ट ने ईश्वर का अस्तित्व समझाया है, यही 'संवेदने' के लिये लिखते हैं।

हम लोगों का मानसिक भाव या आरडिया (ideas) देकार्ट के मत में तीन श्रेणियों में विभक्त है। पहला इन्द्रियगत मानसिक भाव (adventitious ideas) है, यह भाव हम लोगों के मन के ऊपर बाह्यजगत् के वस्तुओं से उत्पन्न हुआ है। अतएव वे सब भाव हम लोगों के इच्छाधीन या मन के स्वभाव नहीं हैं। दूसरा आन्तरिक मानसिक भाव है। ये भाव बाह्य जगत् की क्रिया में नहीं, मन की क्रिया से उत्पन्न हुए हैं। तीसरा मन के सांख्यिक भाव (innate ideas) हैं। ये भाव न तो बाह्यजगत् से और न मध्य मन की क्रिया ही (activities of the mind) से उत्पन्न हुए हैं—ये हम लोगों के सहजात (inborn) हैं; हम लोगों के मनःप्रकृतिक अन्तर्गत हैं।

देकार्ट के मत में ईश्वरज्ञान प्रत्यक्ष तीन श्रेणियों में से श्रेष्ठ श्रेष्ठ के अन्तर्गत है पर्याप्त ईश्वरज्ञान मन की सांख्यिक या इन्निट (innate) ज्ञान है। सांख्यिक ज्ञान का निर्णय उत्पन्न यह कि यह ज्ञान प्रमाणों

पतित चोर तश्वरहित है। सांख्यिक ज्ञान मात्र ही अस्तित्वसाधक है। ज्ञान को ज्ञेय पदार्थ का अस्तित्व बतला देता है (the mere idea involves its own objective truth)।

ईश्वरज्ञान किन प्रकार सांख्यिक ज्ञान है, देकार्ट ने निम्नलिखित युक्तिसे यह दिखाना दिया है। देकार्ट का कहना है, कि ईश्वरको पूर्णताका आधार समझ कर हम लोग विश्वास करते हैं। किन्तु अस्तित्व (existence) पूर्णता (perfection) का एक अङ्ग है। क्योंकि, जिसका अस्तित्व नहीं है, उसके सम्बन्धमें सम्पूर्ण शब्द प्रयुक्त नहीं हो सकता और जो अस्तित्वहीन हुआ, उसको पूर्णता को किस प्रकार रहे। ईश्वर सम्पूर्ण है, इसलिये ईश्वर है ऐसा अवश्य कह सकते हैं।

उपरि-उक्त युक्तिको सिया देकार्ट ने एक और स्वामन्त्र युक्ति से समतारणा को है। ईश्वरका अनादि, अनन्त, नित्य, पुण इत्यादि कह कर जो ज्ञान है, देकार्ट कहते हैं, कि उस ज्ञानको उत्पत्ति किस प्रकार हुई? बाह्य-जगत्से इस ज्ञानको उत्पत्ति नहीं हुई, क्योंकि बाह्य-जगत्में सभी अमोम और अशुद्ध हैं। मासिक कल्पना भी यह ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ है, कारण कल्पना भी अविश्रुतासाधक है। सुतरां यह ज्ञान हम लोगोंका सहजान (inborn) है। किन्तु यह ज्ञान सांख्यिक होने पर भी, इसका उत्पत्तिस्थल कहाँ है, यह विषयको मोमोमार्में देकार्ट ने कहा है, कि कारणके तारतम्यानुसार काय का तारतम्य हुआ करता है। सुतरां ईश्वर अनादि, अनन्त, सम्पूर्ण है। ऐसी ज्ञानका मूल अनादि, अनन्त और सम्पूर्ण ईश्वरके सिवा और कोई भी वस्तु नहीं हो सकती। ईश्वरज्ञान ईश्वरका अस्तित्व बतला देता है। यह ज्ञान स्वप्रकाश है।

देकार्ट ने उपरि-उक्त जिन सब युक्तियोंका अवलम्बन करके ईश्वरका अस्तित्व समसाधित किया है उन्हें साधारणतः अण्टोलॉजिकल वा अंधाकामूलक युक्ति (Ontological arguments) कहते हैं।

ईश्वरके अस्तित्वसे देकार्ट ने बाह्यजगत्का अस्तित्व प्रमाणित किया है। देकार्ट का कहना है, कि जो

सम्पूर्ण जोव है वे नैतिक हिमाश्वसे भी सम्पूर्ण हैं; अतएव वे हम लोगोंके मनमें भ्रम पैदा नहीं करेंगे। ईश्वरने हम लोगोंको जो कुछ ज्ञान वा विश्वास दिया है, यह ज्ञान कभी भी मिथ्या नहीं हो सकता। कारण ईश्वर नैतिक हिमाश्वसे सम्पूर्ण है। बाह्यजगत्के अस्तित्व पर जो विश्वास है वह भी देकार्ट के मतमें इसी श्रेणीका है; सुतरां यह भी मिथ्या नहीं हो सकता। देकार्ट ने ईश्वरको इस त्रिआभाषिक निष्ठाको 'ईश्वरको नैतिक निष्ठा' (Veracity of God) कहा है।

ईश्वरने हम लोगोंके मनमें बाह्यजगत्का ज्ञानका उदय कर दिया है। अतएव देकार्ट के मतमें यह ज्ञान मिथ्या नहीं हो सकता। अब यह जानना है, कि भ्रमको उत्पत्ति किस प्रकार हुई? इस तत्त्वसे प्रसङ्गमें उन्होंने कहा है, कि अज्ञान और हम लोगोंके मानसिक भावोंकी अस्पष्टता (Want of clearness and distinctness) से भ्रमको उत्पत्ति हुई है। असाधकता यही पादम है, कि मनका जो भाव जिस परिमाणमें स्पष्ट है वह उन्हीं परिमाणमें गतर है। हम लोगोंको सतरमें अस्पष्टता करनेके परिमाणमें ईश्वरने हम लोगोंको मानसिक अस्पष्टताओंको सृष्टि नहीं की। मानसिक भावोंके परस्पर अन्विष्टसे स्पष्टता प्राप्त हो कर भ्रमको उत्पत्ति हुआ करता है।

बाह्यजगत्का अस्तित्व प्रतिपक्ष करके बाह्यजगत्का स्वरूप क्या है, इस सम्बन्धमें देकार्ट कहते हैं, कि विस्तृति (extension) बाह्यजगत्का प्रतिलिखित विशेष लक्षण है। बाह्य पदार्थके वर्ण, आकृति आदि गुण प्रकाश्यों हैं, किन्तु विस्तृतिके स्थायित्व या नाशको अभावमात्र नहीं है। विस्तृति (extension) जड़का स्वरूप लक्षण है, इस कारण देकार्ट के मतानुसार अणुपदार्थविहीन स्थान (vacuum or empty space) जगत्में नहीं है। जहाँ विस्तृति है, वहाँ जड़पदार्थ भी विद्यमान है। अतएव देकार्ट के मतमें सारा संसार अवच्छेदविहीन जड़ शक्तिसे परिपूर्ण है। यही कारण है, कि देकार्ट ने परमाणु नामक छोटे छोटे अणुविन्दुओंका अस्तित्व अस्वीकार किया है। किन्तु सारा संसार यदि अणुशक्तिसे पूर्ण रहे, तो गति

(Movement) जिस प्रकार सम्भव है। इस प्रश्नके उत्तरमें देकार्टने कहा है, कि जगत्की यह समुद्रोपम जड़-राशि घायल (Vortex) वेगसे घूमती है और यही घायल समुद्र जगत्की गति का कारण है। यह उप-ग्रहादि इन्हीं घायल वेगसे चालित होती हैं। देकार्ट के मतमें यह गतिगति जड़में घायल ही घायल उपपन्न होती है, किन्तु दूसरी गति में नियोजित हुई है। ईश्वरने ही घायल योगसे जड़पदार्थमें गतिगति दी है।

विद्यति जिन प्रकार जड़का स्वरूप लक्षण है, उसी प्रकार ज्ञान (Thought) वा सत्यत्व अथवा चेतन्य मतका स्वरूप लक्षण है। किन्तु चेतन्य (Thought) और विस्तृति (Extension) के मध्य कोई सम्बन्ध नहीं है। जो चेतन्य है वह व्यापक पदार्थ नहीं है। व्यापक पदार्थ भी चेतन्यका स्वरूप नहीं है। सुतरां मन और जड़ इन दो विभिन्न प्रकृतिक पदार्थों का सम्बन्ध किस प्रकार साधित हुआ है? देकार्ट के मतमें मस्तिष्कको सहायतासे शरीर और मन का सुतरां जड़ और मन का सम्बन्ध है अर्थात् परस्परके ऊपर क्रिया प्रतिक्रिया स्थापित हुई है। मस्तिष्कके केन्द्रस्थान पर 'पिनियल ग्लान्ड' (Pineal gland) नामक एक स्थान है। यहाँ मस्तिष्कके दो भाग परस्पर संयुक्त हुए हैं। देकार्ट का कहना है, कि इन्हीं पिनियल ग्लान्डमें मनके साथ शरीर का संयोग हुआ है। मनमें किन्हीं प्रकारको इच्छा का उदय होनेसे वह इच्छा उक्त स्थान पर या तर शारीरिक चेष्टा में पर्यवसित होती है। फिर या शरीरके ऊपर अपनी अपनी क्रिया दिखानेसे शरीर का वह व्यापक पिनियल ग्लान्डमें पहुँच कर वाह्य वस्तु का ज्ञान और उसके क्रियाजनित सुख दुःख का ज्ञान उत्पन्न कर देता है।

मन और जड़का पूर्वीति यद्यो एकमात्र सम्बन्धके सिवा दूसरा और कोई सम्बन्ध नहीं है। ये दो सम्पूर्ण विभिन्न प्रकृतिक पदार्थ हैं और अपने अपने नियमा-नुसार चालित होती हैं। इसी कारण देकार्ट जड़ प्रकृति-की कार्याय को या किन्हीं प्राकृतिक गति (Spiritual agency) को स्वीकार नहीं करते। जगत्की समस्त व्यापक ही जड़ प्रकृति में नियमानुसार (Mechanical

la ra) साधित होता है और जड़ जगत् पर्यवसित-सर्व-का नियोगन्धन (Automaton) विधायक है। जो-शरीर जड़जगत्के पर्यवसित है, इस कारण देकार्टने उसे भी इसी अर्थसे पर्यवसित मान लिया है। देकार्ट के मतसे प्राण जड़ प्रकृतिक प्रयोगसे ही, मनके साथ सम्बन्ध कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। सुतरां प्राणको रखाके लिये जो सब शारीरिक क्रियाएँ साधित हुई हैं, वे मनके प्रज्ञांतरणने यन्त्रको तरह साधित हुआ करती हैं। इस लोको के भुवन्दरी का परिवाक और रक्तव्यासन क्रिया किस प्रकार साधित होता है वह इस लोको नहीं जानते। जो शरीरको यान्त्रिकता (Animal automatisis) सम्बन्धसे इन मतको लक्ष्य परवर्त्ती किन्हीं किन्हीं दार्शनिक और विज्ञानविदों ने पटन किया है।

देकार्टने अपने दृष्टान्तके जिन चारों मनस्त्व (Psychology) को आलोचना की है, उसी चारों मनस्त्व निशर्थाका अपोविमान भी बतलाया है। उन्होंने इस लोको के ज्ञानवृत्तिको (Cognition) प्रथमतः कार्यकारण (Action) और भावमूलक (Passio) इन दो विभागोंमें विभक्त किया है। उपरि-उक्त दो विभागोंका पुनः अपोविभाग करके उन्होंने मनको क्रियाओंको पुनः निम्ननिमित्त (1) अपोविभाग विभक्त किया है—(१) प्राकृतिकवस्तु, (२) स्वाभाविक वृत्तियाँ (Natural appetites), (३) भाव-सम्बन्ध वृत्तियाँ (The passions), (४) कल्पना-शक्ति (imagination), (५) प्रज्ञागति (Reason or intellect) चार (६) इच्छागति (The will)। जिनमें वे यह प्रयत्न करने लगे थे सब विभाग साधित हुए हैं, उन्हें निर्देश करते समय देकार्टने कहा है, कि ज्ञानमूलक वृत्तियों का साहाय्यगतात्ता सम्बन्ध है। ये सब साहाय्यगतात्ता प्रतिक्रिया प्रदान करते हैं। इच्छामूलक तथा भावमूलक क्रियाएँ (olitions and passions) पराधीनतासे साहाय्यगतात्ता साधन संचालित होने पर भी मुख्यतः प्राणको ऊपर निर्भर करती हैं।

पुनः निर्मित मूलक वृत्तियों (Passions) को आलो-

चेनाके समय देकाट, मनस्तत्त्वके क्षेत्रमें मोतितत्व (Ethics) पर पड़चुं हैं। देकाटके मतमें भाव-मूलक कृतियाँ छः हैं, विस्मय (Wonder), प्रेम (Love), विद्वेष वा घृणा (Hate), वासना (Desire), आनन्द (Joy) और दुःख (Sorrow)। अध्यात्मिक घटना मध्यमोच्चर होने पर विस्मयका आविर्भाव होता है। विस्मय हम लोगोंके मनमें विचाराधुनार होता है और भक्तिरूप पथका प्रवर्तकी बढ़ाता है। महत्त्वजनक पदार्थके प्रति हम लोगोंका मन आकृष्ट होनेसे हम लोगोंके मनमें प्रेम (Love) का विकास होता है और समस्तजनक वा चित्तशर-पदार्थके प्रति जो विरक्ति उत्पन्न होती है, वह हम लोगोंके मनमें घृणाका स्वरूप-क्रिया करती है। वासनासे आशा (Hopes) और आशा पूर्ण होनेके सम्बन्धमें संशयके उपस्थित होने पर सचेष्ट-भय (Fear) का विकास होता है। आशाके पूर्ण होनेसे आनन्द (Joy) को उत्पत्ति होती है और आशाके भङ्ग होनेसे विषाद (Grief) का स्वरूप होता है। आनन्द जीवनके पक्षमें महत्त्वकर और विषाद दुःखजनक है। जब आनन्द ही जीवनका सारगर्भ महत्त्व है, तब आनन्दताम ही जीवनका सुख उद्देश्य है। देकाट के मतसे आनन्द निर्विकल्पात्मक है। प्रवृत्तियोंको संयत करनेसे (subjections of the passions) आनन्द को उत्पत्ति होती है।

देकाटके मतमें विवेकज्ञानजनित शान्ति सुख ही (Peace of conscience) प्रकृत सुख है और धर्म द्वारा ही यह सुख प्राप्त किया जा सकता है।

देकाटने अपने दार्शनिक मन और जड़को परस्पर क्रियाके सम्बन्धमें श्रुतिउद्धृत मोर्माभा नहीं की है। उन्होंने मन और जड़ दोनोंको ही दो स्वतन्त्र, स्वाधीन, विभिन्न प्रजातिक पदार्थ स्वीकार किया है। प्रथम एक पदार्थके ऊपर चपरो क्रियाशक्ति दिव्यता है उसको जो व्याख्या करनेमें को है, उसे प्रकृत मोर्माभा नहीं कह सकते हैं। उसके परपत्ती-पार्थनिक-ज्यूजिक्स (Gen-jinx) ने पहले ही यह पार्थनिक उद्घाटन लो-है।

ज्यूजिक्स।

ज्यूजिक्सका स्वयं हम विषयमें जिम सिद्धान्त पर पड़चुं हैं उसका नाम निमित्तवाद (Occasionalism) है। ज्यूजिक्सका कहना है, कि मन और जड़ ये दोनों विभिन्न प्रवृत्तिते हैं तथा स्वतन्त्र और स्वाधीन पदार्थ हो कर अपनेमें एक दूसरे पर क्रियाशक्ति प्रदान करता है, ऐसा विश्वास प्रसङ्गत है। मन जड़के ऊपर प्रथवा जड़ मनके ऊपर विन्दुमात्र भो क्रियाशाली नहीं है। किन्तु प्रचलित लौकिक विश्वास है, कि हम लोग इच्छामात्र जड़जगत्में परिवर्तन-साधन कर सकते हैं, पर्यन्तोचना करनेसे इस बातका प्रकृत तत्पर्य मान्य हो जायगा। मैं इच्छामात्र-हस्तसत्त्व लान कर सकता हूँ, इस वाक्यका प्रकृत तत्पर्य क्या है, पहले यही देखना चाहिये। हस्तसत्त्वालन करनेकी इच्छा-मनको एक क्रिया विधिय है और हस्तसत्त्वालनक्रिया जड़जगत्को क्रिया है। प्रथम प्रश्न यह उठता है, कि हम लोगोंकी क्रिया-किस प्रकार जड़जगत्को क्रियाका उत्पादन कर सकती है? ज्यूजिक्सका कहना है, कि ईश्वर ही इन दोनोंको क्रिया-उत्पत्तिके निमित्त वा साधन हैं। साक्षात् सम्बन्धमें मन और जड़के मध्य किसी-प्रकारको क्रिया नहीं हो सकती। जब हमारे मनमें हस्तसत्त्वालन करनेकी इच्छा होती है, तब ही ईश्वर हमारे हाथमें यह क्रियाशुश्रूषा-गतिशक्ति प्रदान करते हैं और कार्य-इतना जल्द-सम्पन्न हो जाता है, कि इस गतिशक्तिकी मनुष्यके स्वयं की प्रवर्तना को है, ऐसा विश्वास उत्पन्न कर देते हैं। वाह्यजगत्की-क्रियाशक्तिकी ज्ञान-भो-होती प्रकार बुझा करता है। हम लोगोंको इच्छा और प्राकृतिक व्यापार केवल ईश्वरको कार्यशक्तिकी वृद्धा-देता (Causal occasionals) है।

ज्यूजिक्सके दार्शनिक जिस प्रकार स्पिनोजा (Spinoza)-प्रवर्तित-चर्चतत्वादका पथ परिवर्तार कर दिया वह उनके दार्शनिक-विचार पढ़नेमें मालूम हो जाता है। ज्यूजिक्सने स्वतन्त्र-साधनके मध्य एक मात्र ईश्वरको ही क्रियाशक्ति बनलाया है। प्रथम सभी पदार्थ समान और समन्वय हैं, इस कारण वे क्रियाशाली नहीं (Passive) हैं। सुतरां जागतिक

(Mouvement) जिस प्रकार संभव है। इस प्रश्नके उत्तरमें देकाटने कहा है, कि जगतको यह समुद्रोपम जड़-राशि घायस्त (Vortex) घेरेगी घूमती है और यही घायस्तमंडल जागतिक गतिकारण है। यह उप-ग्रहादि हमो पायस्त घेरेमें चालित होते हैं। देकाटने मतमें यह गतिगति जड़में घाय की घाय उत्पन्न होती है, किमो दूसरी गतिमें नियोजित हुई है। ईश्वरने ही घायस्त योगमें जड़पदार्थमें गतिगति दी है।

विस्तृति जिस प्रकार जड़का स्वरूप लक्षण है, उसी प्रकार चिन्तन (Thought) वा गतिव्युत्पन्न चेतन्य मतका स्वरूप लक्षण है। किन्तु चेतन्य (Thought) और विस्तृति (Extension) के मध्य कोई संबंध नहीं है। जो चेतन्य है वह व्यापकता नहीं करता, व्यापक पदार्थ भी ज्ञेयके ऊपर हम लोगोंका कोई सम्बन्ध नहीं है। विषयवासनाका परिहार बार ईश्वरके पर निर्भर करके जीवनयापन करना जीवनका स्थायी उद्देश्य है। ईश्वरमें निरक्षय प्रेम (Self-renouncing love) और प्रज्ञानवृत्ति की कर चेतना धर्म का स्वरूप है। ईश्वरके प्रति वग्राभाव (humility) धर्मसमूहका विशेषांग है। मानव साधारणता सुखान्वयी है, इस कारण वे पशुछी हैं। सुखका छायाको तरह पशुगमन करनेमें वह भ्रष्टाई हो जाता है। धर्मजनित विमल भावना ही प्रकृत सुख है। सुख धर्म का फलस्वरूप (result) है, धर्म का उद्देश्य (aim) नहीं है। स्पिनोजसका नैतिक मत स्पिनोजा (Spinoza) और काण्ट (Kant) के नैतिक मतोंके जोता है। स्पिनोजाकी तरह उन्होंने भी ईश्वर प्रेम ही को सब धर्मोंका सार बतलाया है तथा काण्टके मतानुयायी नैतिक नियमोंका अन्वयिधारित स्वोक्तार किया है।

व्यक्तिगत जगत्में एक मात्र ईश्वरका कार्यकारित्व प्रतिपादन करके जिम यह तत्वादकी सूचना कर गये हैं वह धर्मशास्त्रमें ईश्वरवाच्यमूलक है। किन्तु दार्शनिक स्पिनोजाने जिम यह तत्वादकी प्रतिष्ठा की, वह प्रकृतितत्वादमूलक (of a naturalistic character) है।

la va) साधित होना है और अज्ञानगत पदार्थगति-समूहका नियोगमन (Automaton) विशेष है। जोवगरीर जड़प्रत्ययके समान है, इस कारण देकाटने उन्हें मो इसी प्रकारके भ्रमगत मान लिया है। देकाटने मतमें प्राण अज्ञप्रकृतिका अंगविशेष है, मनके साथ इनका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। सुतरां प्राणको रवाके लिये जो मज गरीरक शिवाय साधित हुई है, वे मनके पञ्चातसारके अन्तर्गत साधित हुए पावतो हैं। हम लोगोंके भ्रष्टाचारोंका परिवाक और अज्ञानजनित शिवाय किस प्रकार साधित होता है वह हम लोगोंको जानते हैं। जोवगरीरकी पार्थिवता स्वजातिवैयों प्रकाशमयामें उन्हें विषयवाच्यमय है। इस घटनाके बाद नाना स्थानोंमें परिभ्रमण कर (१७) ईश्वरी हेतुगमनमें उनका दिशान्तर हुआ।

स्पिनोजाने जो सब दर्शनपत्र बनाये हैं उनमें 'एथिक्स' (Ethics) नामक ग्रन्थ ही विशेष प्रामाण्य है। इस ग्रन्थमें उन्होंने अपने दर्शन सविस्तार लिखा है।

देकाटका दार्शनिक मत पढ़नेमें स्पिनोजाके दर्शनशास्त्रमें अनुदाग उत्पन्न होता है। व्युत्पत्तिकसूत्री तरह उन्होंने भी देकाट दर्शनके पक्षगत पंगुका प्रतिवाद किया। गणितशास्त्रीका प्रमाण प्रकाश मनुष्य कर स्पिनोजाने गणितशास्त्रीका प्रमाण प्रकाशका आदर्श स्वीकार किया है। गणितशास्त्रीका प्रमाणको अनुयायी दर्शनप्रत्ययके प्रकारको इच्छा उनकी बलवती हुई। उनका मत है, कि ऐसे भावोंमें दर्शनशास्त्रका प्रणयन करनेसे सब संशयमें पार किसी प्रकारका मतवैयर्थ्य नहीं रहेगा। हमो विश्वासको यथार्थता ही कर उन्होंने अपने दर्शनमें भी इस प्रथाको अनुवर्तन किया है। व्यापकतान्त्रिक जिम प्रकार संज्ञा, स्वीकृत विषय और स्वतंत्रत्वको सहायतासे समस्त प्रतिपाद समभावित की गई है, उसी प्रकार स्पिनोजाने भी लक्ष पवित्रवादित मूलमूलोंका अवलम्बन करके उनमें सभी अन्वय विषयोंको प्रमाणित करनेकी चेष्टा की है। हममें यह साफ साफ मान्य होना, कि स्पिनोजाका दर्शनविज्ञान समस्त तथ्यायका अवलम्बन करके बनाया

चेताके समय देहाट, मनस्तत्त्वके क्षेत्रमें मोतितत्त्व (Ethics) पर पहुँचे हैं। देहाटके मतमें भाव-मूलक छठवीं छः है, विस्मय (Wonder), प्रेम (Love), विद्वेष या घृणा (Hate), वासना (Desire), आनन्द (Joy) और दुःख (Sorrow)। अस्वाभाविक चरित्रा नवनगोर होने पर विस्मयना आविर्भाव होता है। विस्मय हम लोगोंके मनमें विषयाशुभार होता है और भक्तिरम्य पथवा प्रवृत्तियोंको बढ़ाता है। मनुजजनक पदार्थके प्रति हम लोगोंका मन प्रकट होनेसे हम लोगोंके मनमें प्रेम (Love) का विज्ञान होता है और अमृतलज्ज को एक ओरसे देखनेसे उनको यथायथ मोमांसा नहीं होगा। एक ही विषयको भिन्न-भिन्न ओरसे देख कर उस विषयका याशय्य मान्य हो जायगा। किन्तु फलसे यह साधित होता है, कि स्थितीजा एक ही विषयको मोमांसामें एक सूत्रका प्रयत्न करने के जिस सिद्धान्त पर पहुँचे हैं, प्रयास सूत्रका प्रयत्न करने के इसी विषयके विपरीत सिद्धान्त पर उपनोत हुए हैं। इस प्रकार उनके मतमें प्रत्यय विरोध दोष समेत हैं। गणितके प्रयुक्तपर पर दर्शनका रक्षा जाना हो सक्त दीयोंका कारण है।

स्थितीजाका दार्शनिक मत उनके जीवितकालमें कालोपयोगी नहीं होनेसे समझा विशेषरूपसे धादर नहीं हुआ। वर्तमान शताब्दीके प्रथम भागमें काण्टके प्रवृत्तों दर्शनमन्त्रदायिकी आविर्भावके बादसे मतके ऐक्यनिश्चयने स्थितीजाके दर्शनसुधोमण्डलकी दृष्टि प्राकर्षण की है। स्थितीजाके दर्शनमें स्पेन्सर, वेन धादि प्रचीत मताविज्ञानशास्त्रके प्रत्येक पूर्वभास अलक्षित हैं।

स्थितीजाने अपने दर्शनमें आलोचित विषयोंको निम्नलिखित ५ भागोंमें बाँटा है।

(१) ईश्वर और जगत् ।

(२) आत्माकी प्रकृति और उत्पत्ति-निर्णय ।

(३) मानसिक भावों (feelings) की उत्पत्ति और प्रकृतिनिर्णय ।

ज्योतिष ।

ज्योतिष स्वयं हम विषयमें जिस सिद्धान्त पर पहुँचे हैं, उसका नाम निमित्तवाद (Occasionalism) है। ज्योतिषका कहना है, कि मन और जड़ ये दोनों विभिन्न प्रकृति हैं तथा स्वतन्त्र और स्वाधीन पदार्थ हो कर अपनेसे एक दूसरे पर क्रियाशक्ति प्रकाश करता है, ऐसा विश्वास प्रसङ्गत है। मन जड़के ऊपर प्रयत्न जड़ मनके ऊपर विन्दुमात्र हो क्रियाशाली नहीं है। किन्तु प्रवर्तित लौकिक विज्ञान है, कि हम लोग इच्छामात्र जड़जगत्में परिवर्तन साधन कर सकते हैं, पर्यालोचना करनेसे इस बातका प्रकृत तात्पर्य मान्य हो जायगा। मैं इच्छामात्र प्रयत्न करने कर सकता हूँ, और जड़का तात्पर्य क्या है, पहले यही देखना मोमांसा को है, स्थितीजा। स्थितीजा हमको एक मतको एक प्रकारको प्रतिष्ठा है। स्थितीजाको कि "ईश्वर करते हैं" और "मैं नहीं" जानता हूँ। स्थितीजाको प्रायः समर्थ सूत्रक हैं। स्थितीजा उपरि-उक्त विषयों जिस मोमांस पर पहुँचे हैं, वह दोनोंसे स्वतन्त्र हैं। कहते हैं, कि मन और जड़ नामक दो पृथक् पदार्थ (substance) विद्यमान नहीं हैं; यह एक ही पदार्थको दो विभिन्न दिक्मात्र है। सुतरां हम लोगोंके निवृत्त हो मनको ऊपर जड़की क्रिया या जड़को ऊपर मनको क्रियाके जैसा प्रतीयमान होता है, वह हम लोग एक पदार्थको विभिन्न ओरसे देखते हैं, इसलिये ऐसा मान्य पड़ता है। एक ओर देखनेसे जो विस्तृतिशायी (जड़) (Extension) है वही दूसरी ओर ज्ञानशायी (चित्) (Thought) प्रतीयमान होता है। स्थितीजाके मतसे जगत्में दो स्वाधीन पदार्थ परस्पर क्रियाविशिष्ट पदार्थोंका अस्तित्व नहीं रह सकता। क्योंकि परस्पर क्रियाशाली होनेसे उनको स्वाधीनताका अस्तित्व रहा कहाँ? स्थितीजाके मतसे जगत्में एकमात्र पदार्थ (Substance) विद्यमान है। और आत्मिक सभी पदार्थ इनो पदार्थके विभिन्न गुणायुक्तका विकासमात्र है। संसारमें जो नानात्व कह कर हम लोगोंका विश्वास है, वह भ्रममात्र है। ईश्वरतत्त्वकी आलोचनाके समय स्थितीजाने पहले ही

पदार्थ (Substance) को सत्ता प्रदान को है। स्विनोजाने मतमें जो स्वाधोन और स्वप्रकाय है चर्चा जिसका पक्षित्व और किसी पदार्थके पक्षित्व पर निर्भर नहीं करता तथा जो अन्य किसी वस्तुको सहायतासे प्रकाशित नहीं होता, वह द्रव्य कहलाता है ("By substance I mean that which exists in or by itself and is conceived in or by itself")। ईश्वर गण्ड स्विनोजाने मतमें हम पदार्थका निर्मातर-मात्र है। पदार्थ एक, एक चर्चित और चलाता है। क्योंकि सत्ता होनेमें पदार्थ वा ईश्वरमें सोमाका आरोप किया गया। जो प्रमाण है उसके स्वाधोनत्व कहां? पक्षित्व वह पदार्थ नहीं कहला सकता। पदार्थ सब विषयोंका कारण हो कर भी स्वयं कारणरहित (Uncoupled) है। पदार्थ स्वयं हो पक्षित्व का कारण (causative) है। स्विनोजाने ईश्वरको जो सत्ता प्रदान को है उसमें उन्होंने ईश्वरको पनादि एवं चलात् पदार्थ बनाया है।

ईश्वरमें किस प्रकार जगत्की उत्पत्ति हुई है, उसकी सोमांशमें स्विनोजाने कहा है, कि ईश्वरमें जगत्की सृष्टि नहीं की चर्चा जगत् ईश्वरमें स्वतन्त्र एक सृष्ट पदार्थ नहीं है। जगत् ईश्वरको प्रकृतिका स कीभूत है और प्रकृतिके साथ जड़ित है। जगत् प्रकृतिका धर्म है, एकको दूसरेमें विद्युत करने का उपाय नहीं है।

यह प्रश्न उठ सकता है, कि यदि एक पदार्थ वा ईश्वर भिन्न द्वितीय कदाका पक्षित्व नहीं है, तो जगत्में विभिन्न धर्मांशका विभिन्न पदार्थोंका पक्षित्व कहांसे आया? स्विनोजाने मतमें इस प्रश्नकी सोमांश यह कि जगत्में जो सब पदार्थ विभिन्न समझे जाते हैं, वे स्वरूपतः विभिन्न नहीं हैं, एक ही पदार्थके विभिन्न गुणयोगमें विकस्यमात्र हैं।

गुण (Attributes) किसे कहते हैं और इस गुण-तन्मूलाका स्वरूप को सा है? स्विनोजाने इस विषयका ऐसा सिद्धांत किया है। बुद्धि द्वारा जिसे हम लोग पदार्थका भार समझते हैं चर्चा जिसको जे कर पदार्थ वा पदार्थत्व है, उसीका नाम गुण है ("By attri-

bute I mean that which the intellect perceives as contributing the essence of substance")। गुणाधर्मो नहीं रहनेसे हम लोग पदार्थका स्वरूप नहीं जान सकते थे। गुणको रहनेसे ही पदार्थ हम-लोगोंके निकट प्रकाश पाता है। पदार्थ पनादि और चलात् होनेके कारण गुणाधर्मोंसे ही पनादि तथा चलात् है। ईश्वरमें प्रत्येक गुण ही पनादि चलात् रूपमें विराजमान है। ईश्वरका गुण चलात् है, इसीलिए हम लोग समस्त गुण में ही जानते, केवल दो गुणोंमें हम लोग चलात् हैं। पक्षिता विस्तृति (extension) है। यह हम लोगोंके निकट बाह्यजगत् रूपमें प्रतिपन्न होता है। दूसरेका नाम चलात् (Thought) है, यह हम लोगोंके मनोराज्यके पक्षित्व ही कहांसे देना है।

स्विनोजाने एक जगह ईश्वर वा पदार्थकी निश्चय (indeterminacy) कहा है। कारण ईश्वरमें यदि उपाधिका आरोप किया जाय, तो उसमें सोमा का निर्देश किया जाता है। क्योंकि उपाधिसात्र ही सोमा-सूचक (Every determination is limitation) है। फिर दूसरी जगह उन्होंने ईश्वरको चलात्गुणका आधार बनाया है। चलात् एवं चलात्के मतमें ईश्वर चलात् उपाधिविशिष्ट है। इन दोनों मतों का किस प्रकार सामञ्जस्य विधान किया जाता है, इस विषयको सोमांशमें भिन्न भिन्न पण्डितोंने भिन्न भिन्न मत प्रकाशित किया है। एक श्रेणीके पण्डितोंका मत है, कि जिसे हम लोग गुण कहते हैं, यद्यपि उसका ईश्वरमें पक्षित्व नहीं है। हम लोगोंके मनमें जो ईश्वर में केवल गुणाधर्मोंका आरोप किया है। चर्चात् हम लोग ईश्वरका पक्षित्व उपलब्ध करते समय जिस गुण द्वारा उसका अनुभव करते हैं वह हम लोगोंके मनको क्रिया वा धर्मविशेष है। दूसरी श्रेणीके पण्डित कहते हैं, कि गुण केवल हम लोगोंके मनका धर्म वा चलात् ही नहीं है, ईश्वरमें इनका पक्षित्व भी है। स्विनोजाने स्पष्टभावमें गुणाधर्मोंको पदार्थका प्रकृतिकारण कह गये हैं। फिर स्विनोजाने जगत् पदार्थ वा ईश्वरको चलात् गुणके चलात् आधारके

स्वरूप सत्ता गये हैं; तब ऐसे निर्देश से सचीमत्व का आरोप नहीं हो सकता। शेषोक्त मत अनेकाग्रमें समोचन होने पर भी स्पिनोजाके दर्शनमें जो इन विभिन्न मतोंकी सूचना है, उसमें संदेह नहीं।

प्रभो प्रश्न यह हो सकता है, कि जब ईश्वर एक अद्वितीय और अनन्त गुणके आधार हैं एवं जगत्में अन्य पदार्थों का अस्तित्व नहीं है, तब जगत्में इन समस्त गुणमय सचीम पदार्थों का आविर्भाव किस प्रकार हुआ ? इस प्रश्न के उत्तरमें स्पिनोजाने कहा है, कि जगत्में जो सब वस्तु हम लोगों के निकट दृश्य, दृश्यक, तथा स्वाधीन समझी जाती हैं, स्वस्वतः वे दृश्यक नहीं हैं और जगत्में एक भिन्न दो स्वाधीन द्रव्यों (Substances) का अस्तित्व सम्भव नहीं है। इसलिये वे सब हम एक तथा अद्वितीय पदार्थोंकी विभिन्न अवस्था (Modes) मात्र हैं। सोमाविशिष्ट होनेसे जागतिक सभी पदार्थ स्वप्रकाश नहीं हैं, परन्तु पदार्थोंकी सहायतासे जिनसे वे सब स्वयं हम लोगों के निकट दृश्य नहीं हो सकते। हम अनेकों सभी वस्तुएं समीप हैं, इसलिये वे एक दूसरीकी सीमा निर्देश कर देती हैं और उनमेंसे प्रत्येककी निर्दिष्ट सीमासे हम लोगोंकी इन वस्तुओंका ज्ञान उत्पन्न होता है। यद्यपि यदि देखा जाय, तो कतिमात्रा जिस प्रकार ससृष्टकी है, जागतिक सभी पदार्थों की सभी प्रकार ईश्वरकी ही अवस्था विशेष है।

पहले कहा जा चुका है, कि ईश्वरके अनन्त गुणके मध्य विस्तृति (Extension) और ज्ञान (Thought) इन दोनों में हम लोग अवगत हैं। गति (Motion) और स्थिति (Rest) ये दो विस्तृति गुणोंकी दो विशिष्ट अवस्था (Modes) हैं। बुद्धि और इच्छा (Understanding and will) ज्ञान वा चेतन्यकी अवस्था मात्र है। ये सब वस्तु विचार और नियतिके अधीन हैं। ईश्वर सभी विषयोंके नियन्ता है, उन्हें नियन्त्रित करनेकी कोई वस्तु विद्यमान नहीं है। ईश्वर आदि प्रकृति हैं—वे बुद्धि, इच्छाशक्ति, गतिशक्ति आदि परिवर्तनमूलक गुणोंके अधीन हैं। सुतरां स्पिनोजाके मतसे ईश्वर जगत्के आदि पदार्थस्वरूप (Substance) हैं, वं जगत्में एकमात्र कारणस्वरूप वा शक्तिस्वरूप

(Power) तथा चेतन्यस्वरूप (Universal consciousness) है।

वाद्य और अन्तर्गतके समस्त व्यापार स्पिनोजाके मतमें कार्यकारण सम्बन्धके सहयोगसे नियन्त्रित होते पा रहे हैं। गुणमय जगत्का कोई भी व्यापार स्वनियन्त्रित नहीं है। वाद्य और अन्तर्गतोंकी कार्याधिनोके प्रति दृष्टिपात करनेसे यह अच्छी तरह समझा जाता है, कि कार्यकारणका यह अन्तर्गत ही कारण अस्तित्व विस्तृत है। गुणमय जगत्का कारणसम ह आदि कारण (First or ultimate cause) नहीं है, ये सब प्रथम कारणमात्र (Second causes) हैं। वाद्य और अन्तर्गतोंका कार्यकारणशृङ्खला समाप्तान्तर भावमें चलता है, किन्तु एकके उपर दूसरेकी कोई कार्यकारी समझ नहीं है। जड़जगत्में कारणमात्र जो जड़ है और मनोजगत्में एक मानसिक भाव दूसरे मानसिक भावका कारण है। मानसिकभावका जड़कारण नहीं हो सकता। लेकिन दोनोंके मध्य जो सम्बन्ध है, स्पिनोजाके मतमें वह परस्पर दोनोंके प्रति कार्यकारित्वशक्तिसे नियंत्रित नहीं है। एक ही पदार्थोंके दो दिक्मात्र हैं, इसीसे ऐसे सम्बन्धका ज्ञान उत्पन्न होता है। यदि एक दिक्मात्र देखा जाय, तो जो मनोजगत् है वही दूसरे दिक्मात्रसे जड़जगत्के वेषा प्रतीतमान होगा। चेतन्य और जड़ एक ही पदार्थोंका विभिन्न प्रकाशमात्र है, सुतरां उनमें मध्य यदि एकता भी रहे, तो प्रायश्चित्त हो गया।

आत्माका स्वरूप कौन सा है ? हम सम्बन्धमें स्पिनोजाका कहना है, कि जिस प्रकार विभिन्न जड़परमाणुके संयोगसे शरीरकी उत्पत्ति हुई है, उसी प्रकार विभिन्न मानसिक भावोंके संयोगसे आत्माका उद्भव हुआ है। स्पिनोजाने मन और जड़का जो सा सम्बन्ध नियन्त्रित किया है, उससे दोनों ही मिलकुल एक दूसरेसे विच्छिन्न करना असंभव है। जहाँ एक रहता, वहाँ दूसरेका अस्तित्व अवश्यभाव है। जहाँ जड़ है वहाँ मन भी है और जहाँ मन है वहाँ जड़का अस्तित्व भूयः निश्चित है। अतएव स्पिनोजाके मतमें आत्माका स्वरूप भी मिलकुल जड़जगत्में विच्छिन्न नहीं है। स्पिनोजा आत्माकी शरीरकी मानसिक प्रकृति (idea of actual body)

वतता गये हैं। उनके मतमें शरीर भी मानसिक-भावा-
नुयायी-प्रतिफलितिके नियमानुसार अङ्गजगत्को विस्तृति-
मात्र है। स्विनोजाने पाश्चात्ताका जैसा स्वरूप बतलाया
है, उससे पाश्चात्ताकी स्वतन्त्रताकी रक्षा किसी भी मतमें
नहीं की जाती। मानसिक भावसमष्टि (Totality of
idea) में कर यदि पाश्चात्ताका अस्तित्व सम्पूर्ण रूप
से, तो चामचेतन्य (Self-consciousness) का स्थान
रहा कहा? चामज्ञान को सर्वज्ञानका मूल है।
स्विनोजाने के मतमें पाश्चात्ताका चामज्ञानका अस्तित्व
स्वीकार करनेका कोई उपाय नहीं है।

ज्ञानार्जनी हस्तियों (Cognitive faculties) को
आलोचना कालमें स्विनोजाने कहा है, कि हम लोगों-
की ज्ञानार्जनी-हस्तियोंको क्रिया बाधपर्यन्त तो हम
अपिधियोंमें विभक्त को जा सकते हैं।

प्रथम इन्द्रियज्ञान, द्वितीयतः प्रज्ञाज्ञान ज्ञान,
तृतीयतः महज वा स्वतःसिद्ध ज्ञान। हममेंसे द्वितीय
घोर तृतीय अर्थोका ज्ञान—प्रज्ञाज्ञान (rational
knowledge) घोर महज (intuitive knowledge)
ये दोनों ही प्रभामत घोर सत्यनिर्णायक हैं। तृतीय
अर्थोके ज्ञान अर्थात् इन्द्रियज्ञान ज्ञानसे हम लोगों के
भ्रमकी उत्पत्ति हुई है। इन्द्रियज्ञान ज्ञानमात्र को
असम्पूर्ण है, क्योंकि इन्द्रियज्ञान ज्ञान पदार्थका एक-
देशदर्शी है। किन्तु इन्द्रियज्ञान ज्ञान असम्पूर्ण
होनेके कारण विलकुल भ्रमपूर्ण नहीं है। हम
असम्पूर्ण ज्ञानकी लक्ष हम लोग सम्पूर्ण समझ का
प्रवण करते हैं, तब ही भ्रमका उदय होता है। इन्द्रिय
ज्ञान ज्ञान हम लोगों की पदार्थसमझकी केवल
अवस्था ज्ञान करता है, उसका स्वरूप जानने नहीं
देता। प्रत्यक्षज्ञान हम लोगों की अमीशमलके परिचयसे
सबका स्वरूप निर्देश करता है। इन्द्रियज्ञान ज्ञानसे
ऐसे ज्ञानके उदय होनेको सम्भावना नहीं; प्रज्ञा (rea-
son) से ही ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है।

भावमत्तक हस्तियों (Passions and emotions)-
के आलोचना कालमें स्विनोजाने बहुत कुछ देखाई को
मतका अनुवर्तन किया है। किन्तु दोनोंमें प्रधान प्रमेद
यही है, कि देखाई में जिस प्रकार इच्छाशक्तिकी स्वत-

न्त्रता घोर स्वाधीनता (Freedom of the will)
स्वीकार की है, स्विनोजाने उस प्रकार इच्छाशक्तिकी
स्वाधीनताकी स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है,
कि जागतिक समो वस्तु नियन्त्रित होने पा रहे हैं,
काई भी वस्तु नियन्त्रित नहीं है। मानवकी इच्छा-
शक्ति भी इसी अर्थोको अन्तर्गत है, इस-
लिये व्यक्तिगत नहीं है। बाह्यजगत्में जिस प्रकार प्रत्येक वस्तु
का कारण विद्यमान है, अन्तर्जगत्में उस प्रकार
नहीं है।

जगत्में जितने वस्तु हैं सबोंको अपने अपने
जीवनके आधारकी घोर विलक्षण चेष्टा है। किन्तु
भी वस्तुका विनाश स्वयंमें प्रवर्तित नहीं होता,
बाह्यकारण द्वारा संघटित रूप करता है। मनुष्यकी
इच्छाशक्ति (Voluntas) को स्वाभाविक गति भी
हमी घोर है। यह इच्छाशक्ति जब मानसिक प्रवृत्ति-
मात्र है, तब हमका नाम मासण्डस वा वासना (Desire)
है घोर इच्छाशक्ति की जीवन संरक्षणो चेष्टा जब वहि-
जगत्में प्रकाश पातो है, तब हम स्वाभाविक हृति
(appetite) कहते हैं।

एतद्विषयगत सुख दुःखबोध वासनाके साथ जड़ित है।
स्विनोजाने मतमें सुख (pleasure) जीवनीशक्तिकी
हृति घोर दुःख जीवनीशक्तिका ज्ञान करता है। हम
लोगोंको समस्त शारीरिक हस्तियों द्वारा जीवनसंरक्षण-
काय माधित होता है घोर सुखदुःख-बोध विषयको
मात्रा निर्देश कर देता है। यही कारण है, कि हम
लोग स्वाभाविक सुखकामना घोर दुःखनिवृत्तिको चेष्टा
करते हैं। जिस वस्तु द्वारा हम लोगों के सुखको
हृति होता है उसमें प्रति अनुप्राण (love) घोर जो
हम लोगों के सुखका अनुप्राण प्रथम दुःखका प्रवर्तक
है उसमें प्रति द्वेष वा विराग (hate) उत्पन्न होता है।

मनुष्यको समो कार्यवाही क्या आत्मसाधको
घोर नियोजित है? परार्थ परता क्या मानवकी स्वाभाव-
गत नहीं है? इस प्रश्नके उत्तरमें स्विनोजाने कहा
है, कि मानवजीवनका परम मङ्गल अन्यान्य सुखों के
साथ जड़ित है घोर सबों के सुखवर्द्धन-व्यतीत यह प्राप्त
नहीं होता।

स्विनोजाने नैतिक लक्ष्यसे प्रप्रेषित हो कर अपने दमनशास्त्रका प्रयत्न किया है। उनके मतसे दमनशास्त्र मनुष्य तत्त्वज्ञानका अभिव्यक्ति के रूप में नैतिक उत्पत्तिको धारण करता है। नैतिक सम्पूर्णता हो स्विकारके मतसे जीवनका सार लक्ष्य है। इससे उन्होंने अपने दमनके मूलप्रत्ययका 'नैतिक' (ethics) का नैतिकशास्त्र नाम रखा है। उनके मतका दमनार्थ नैतिकशास्त्रका सहायक मान है।

स्विनोजाने मतसे मानवजीवनको सम्पूर्णता (Perfection) नैतिक कार्यावलीको कहते हैं। यह सम्पूर्णता जिस प्रकार प्राप्त की जा सकती है, उसके उत्तर में उन्होंने कहा है, कि सम्पूर्णता नाम प्रयत्नसाधक है; जिस वस्तुका जिस परिमाणमें प्रयत्न (Activity) है, वह उसी परिमाणमें सम्पूर्ण है। किन्तु प्रयत्नका मूल कहा है? इसके उत्तरमें उनका कहना है कि जिस वस्तुको कार्यावली जिस परिमाणमें स्वीकृत है, वह वस्तु उस परिमाणमें क्रियाशील है। मानव-मनकी ज्ञान-जनक क्षमता (Cognitive faculties) क्रियाशील, किन्तु भावमूलक क्षमता (Affections or passions) क्रियाशील नहीं हैं।

स्विनोजाने हम लोगों की इच्छाशक्ति (will) को ज्ञान-मूलक बताया है। इच्छामें ज्ञानकी नियमित करनेकी क्षमता नहीं है, परन्तु वह ज्ञान द्वारा नियमित हुआ करता है। किसी विषयको स्वीकृत वा अस्वीकृत इच्छाकी क्षमतासाधक है। जिसे सत्य समझ कर स्वीकार (Affirm) नहीं करना स्विकारके मतसे असम्भव है। इच्छाके दो पक्ष हैं, वासना (desire) और चेष्टा (volition)। हममेंसे वासना इन्द्रियज्ञान और कल्पना मूलक ज्ञान (perception and imaginary) द्वारा नियमित हुआ करता है एवं चेष्टा (volition proper) प्रज्ञाननियमित है। सामान्य मूलक ज्ञान निरन्तर वस्तुकी ओर दौड़ता है; किन्तु अविनियमित प्रज्ञानमूलक ज्ञानका विषय है। सम्पूर्ण ज्ञानसे हम लोगों के विषय-वासना उत्पन्न होती है। जब प्रज्ञानशक्ति द्वारा हम लोग हम ज्ञानका प्रत्यक्ष रूप प्राप्त करते हैं, तब हम

लोगों की विषयवासनाको नियंत्रित होती है। सत्यासत्यनिर्णायक ज्ञान भी स्विकारोपसंघि प्रज्ञाशक्तिसाधक है। मानवका मन जितनी ही वस्तुओं का स्वरूपत्व उपलब्ध करता है, उतनी ही उसकी प्रकृति ईश्वरकी ओर दौड़ती है। ईश्वरके साथ वस्तुओं का सम्बन्ध क्या है? इसका निर्णय कर सकनेसे ही वस्तुओं के स्वरूप ज्ञान को उपलब्धि होती है।

प्रज्ञासे ईश्वरके प्रति जो प्रेम उत्पन्न होती है ('intellectual love towards God') वही स्विकारके मतसे सब धर्मों का सार है। धर्मों के समान दूसरा कुछ भी नहीं है, इससे धर्मों का पुरस्कार धर्म ही है। ईश्वरमेंसे हममें शान्ति का विकास होता है और इसी प्रेमसे प्रकृत स्वाधीनता प्राप्त की जाती है। ऐसी अवस्थामें 'पाप' का विनाश नहीं है। क्योंकि ईश्वरके प्रति मानवका जो प्रेम है वह ईश्वरके अपने ही प्रति अपने प्रेमसाथ है और ईश्वरका निजके प्रति प्रेम अविनियमित है।

इससे कहा जा सकता है, कि सन्नोतिवको तरह स्विकारके मतसे नैतिकत्वको ज्ञानमूलक भित्तिके ऊपर प्रतिष्ठित किया है। स्विकारके मतसे ज्ञाननियमित ज्ञानमूलक क्रियाशीलताओं को तरह नैतिकत्व व्यापारों को भी वैश्वानिक व्यापारों को है। संसारको ज्ञानमूलक व्यवस्थाओं के लक्ष्य नैतिक जीवनको व्यवस्थाको स्विकारके मतसे व्यवस्था मान है, उनका प्रकृतितत्त्व विशेषत्व कुछ भी नहीं है। ज्ञानमूलक व्यवस्थाओं की उत्पत्ति जिस प्रकार कारण सहयोगसे हुआ करता है, नैतिक व्यवस्था भी उस नियमका कुछ व्यतिरेक नहीं है। इन विषयों में धर्मधर्मों का स्वरूप क्या है, स्विकारके मतसे निर्णय करने की चेष्टा की है। स्विकारके मतसे जो जीवनके पक्षमें हितकर है, वही धर्म है। जीवनके पक्षमें हितकर कहनेसे हम लोग क्या समझते हैं? इसके उत्तरमें उन्होंने कहा है, कि जो हम लोगों के 'पाप' रक्षणमें सहायता पहुँचाता है, जो हम लोगों के जीवनको सम्पूर्णता की ओर ले जाता है और जो हम लोगों के ज्ञानको हित करता है, वही हम लोगों के पक्षमें हितकर तथा मङ्गलजनक है। ज्ञानका अन्तरात्मक ही हम लोगों के

पक्षमें समझनजनक है। कारण, ज्ञान हो इच्छाशक्ति-
को नियन्त्रित करके हम लोगोंको जीवनको सम्पूर्णता-
की ओर ले जाता है।

जीवनको नैतिक दृष्टि सिपनोजाके मतमें जागतिक
पक्ष सम्पूर्णताकी तरह सम्पूर्णतामात्र है।
पक्षान्वेन नैतिक दृष्टि स्वयम् होती है। पाप ज्ञानकृत
नहीं है, तमःसे यह उत्पन्न हुआ है। अतः पाप भ्रम
विशेष मात्र है।

सिपनोजाके इच्छाशक्तिको सम्पूर्ण स्वाधोनता
(Freedom of the Human will) स्वीकार नहीं
को है। उनका कहना है, कि मानव जब जगत्का
एक अंग विधेय है, तब हमको सम्पूर्ण स्वाधोनता
स्वीकार करना असम्भव है। परन्तु मनुष्यजीवनका
एक भागो उद्देश्य है और बाधा विपन्नता पतिक्रम करने
सब उद्देश्यकी सफल करनेके लिये उसको स्वाभाविक
चेष्टा है। मनुष्य-जीवन जिस परिमाणमें प्रज्ञाननियन्त्रित
पर्याप्त स्वनिर्णयित (Self-determined) है, उसी परि-
माणमें उसे स्वाधोन कह सकते हैं। सिपनोजाके मतमें
स्वाधोनता शब्दका प्रकृत अर्थ आत्म-नियन्त्रण (Self-
determinism) है। हम लोगोंका मन प्रज्ञा-नियन्त्रित
हो कर जो हम लोगोंके पक्षमें मङ्गलजनक ज्ञान करता
है, उससे प्रति यह हम लोगोंको प्रवृत्ति पैदा कर
देता है।

आत्मिकतम अमरत्व (Immortality of the in-
dividual) के सम्बन्धमें सिपनोजाके मतमें किसी प्रकार-
का स्पष्ट निर्देश नहीं मिलता। आत्माकी समी
कार्यावली ईश्वरमें पर्यवसित होती है, हम कारण
ईश्वरमें आत्माका साथ नहीं हो सकता (exist eter-
nally in god)। किन्तु यहां पर आत्मामें वास्त-
विक स्वतन्त्र अस्तित्व रह सकता है या नहीं, इस विषय-
में सिपनोजाके कुछ भी नहीं कहा है।

सिपनोजाके मतमें जगत मङ्गलमय ईश्वरका स्वरूप
है, इस कारण जगत्में समझन नामक किसी पदार्थ-
का अस्तित्व नहीं है। जगत्को प्रत्यक्ष क्रिया
मङ्गलाभिमुखी है। जगत् में समझन (evil) का

अस्तित्व स्वीकार करनेमें ईश्वरको समझनका कदा-
मानना पड़ता है। हम लोग भ्रमवशतः जगत्में
समझनको अच्छा विद्यमान देख सकते हैं।
समझन नामक किसी पदार्थकी भावात् निर्देश नहीं
की जा सकती। जो एकने लिये समझनजनक है, वही
जगत्के लिये मङ्गलजनक हो सकता है, फिर जो एक
वास्तविक पक्षमें समझनजनक है, वह बोले उसीके पक्षमें
मङ्गलजनक हो है। एकपर कष्टदायक बतला कर
हम लोग अनेक परिणाममधुर पदार्थोंकी भी समझन
कहा करते हैं। जगत्में कोई भी पदार्थ बिल्कुल
समझन नहीं है। यहां तक कि पाप भी समझनका
आधार समझा जाता है, यह भी सम्पूर्ण रूपसे मङ्गलमे
निष्पन्न नहीं है। परन्तु, पुण्यकी तुल्यतामें यह मङ्गलमे
बहुत कुछ कम है, इसीसे पापका स्वरूप इतना छुपित
समझा गया है। मत. (good) और असत्य (bad)
में भी ऐसा ही प्रभेद देखा जाता है। पक्षमें ही कहा
जा चुका है, कि सिपनोजाके मतमें जगत्में समझनका
अस्तित्व नहीं है, इसीसे सिपनोजाके जिस वस्तुका जिस
परिमाणमें अस्तित्व है, उसे उसी परिमाणमें मङ्गलजनक
कहा है। पुण्यका अस्तित्व पापको पक्षमें अधिक
(possess greater degree of reality) है। इस
कारण पुण्य पाप की पक्षमें अधिक मङ्गलजनक है और
पाप भी बिल्कुल अस्तित्वविहीन नहीं है। अतएव
पापमें भी मङ्गलका अंग है। फिर भी व्यक्तिगत
जीवनके पक्षमें जो सब समझन समझते जाते हैं, वे
अपरिहार्य हैं। यह समझन हम लोगोंके स्वाभाविक
समीपत्व (finitude) का अवधारक है। जिस
सब पदार्थों द्वारा हम लोगोंका जीवन भीमावह है,
वही सब पदार्थ हम लोगोंके ऊपर अपने अपने क्रिया-
शक्ति विस्तार कर हम लोगोंको समावेश पक्षमें विधत्त
करके समझन उत्पादन करते हैं। मनुष्यको पाप-
प्रवृत्ति बाह्यजगत्के कार्यमें उद्भूत हुई है और जो
वास्तविक जिस परिमाणमें प्रज्ञाधोन है, वह उसी परिमाणमें
पापविमुक्त है।

पक्षमें कहा जा चुका है, कि सिपनोजाके मतमें
जो वास्तविक समझन है, जगत्के पक्षमें यह समझन

नहीं है। ईश्वर संपूर्ण है, अतएव उनसे जो जगत् उत्पन्न हुआ है, वही सर्वोत्कृष्ट है। इससे उत्कृष्ट जगत्की कल्पना करना भी हम लोगोँके पक्षमें असंभव है।

उपरि-वृत्त संचित विवरणमें स्पिनोजाके रचित भदेतवाद (Pantheism) और हम भदेतवादके अनुसार वे अन्यान्य विषयोंमें जिस सोमासा पर पहुँचे हैं, उसका थोड़ा आभास दिया गया। दार्शनिक मलब्रांन्स (Malebranche) का दर्शन देकाटके दर्शनके आधार पर प्रयोज्य होने पर भी ऐतिहासिक ज्ञानके अनुसार वे उनका दार्शनिक मत स्पिनोजाके दर्शनको बाद सन्निविष्ट किया गया।

मलब्रांन्स।

मलब्रांन्सके दार्शनिक मतके साथ बाकलोकाल मत बहुत कुछ मिलता जुलता है। मलब्रांन्सके मतसे हम लोगोँको ईश्वरोपलब्ध मनोप्रायोग (intuitively) से साक्षात् सम्बन्ध (immediately) साधित हुआ करतो है।

ज्ञान ही मानवधामाका प्रकृत स्वरूप है। ज्ञानमय आत्मा वाह्यजगत्के विषयोंसे अवगत है,—इस विषयकी सीमासामें मलब्रांन्सने कहा है, कि आदित्या या मानसिक प्रतिज्ञाति (idea) द्वारा हम लोगोँको वाह्यजगत्का ज्ञानसाम होता है। किन्तु वाह्यजगत्की प्रतिज्ञाति किस प्रकार हम लोगोँके मनमें उदित होती है? इसके उत्तरमें उनका कहना है, कि ये सब हमें लोग ईश्वरसे प्राप्त करते हैं। ईश्वरने जिस आदर्श पर वाह्यजगत्की सृष्टि की है, वाह्यजगत्की उसी आदर्श-रूप मानसिकप्रतिज्ञाति (Idea) ईश्वरकी आध्यात्मिक प्रकृति (Spiritual nature) के अन्तर्निहित है एवं अपनी आध्यात्मिक प्रकृतिवशतः हम लोग इन सब मानसिक प्रतिज्ञातियोंके योगसे वाह्यजगत्का विषय जानते हैं, नहीं तो साक्षात् सम्बन्धमें हम लोगोँके वाह्यजगत्का कुछ भी ज्ञान न रहता। अतएव मलब्रांन्सके मतमें ईश्वर ही समस्त ज्ञानका स्रोत है और ईश्वरमें ही समस्त ज्ञानकी परिणति हुई है।

मलब्रांन्सका नैतिकमत भी पूर्वीक मतके अनुरूप है। अतिगत ज्ञानको परिणति जिस प्रकार साधित होती है, नैतिक जीवनकी परिणति भी उसी प्रकार है। हम लोगोँके अतिगत जीवनके अन्ततत्त्वमें ईश्वरके प्रति स्वाभाविक अनुराग है। ईश्वरानुराग हम लोगोँके नैतिक जीवनका मूल रहस्य है और यही हम लोगोँका परमसद्गुण (highest good) है। हम लोगोँका इस स्वाभाविक प्रवृत्तिके रहते हुए भी मतिविषय क्यों होता है? इसके उत्तरमें उनको कहा है, कि देह-सम्बन्ध रहनेसे ही हम लोग पाप और भ्रमके अधीन होते हैं। शत्रु, रक्षकके लिये हम लोग पापके वशवर्ती नहीं हैं, शत्रुके अधीन होनेसे हम लोग पापके वशवर्ती होते हैं। हम लोगोँको शारीरिक वार्थवत्ता हम लोगोँको प्रवृत्तियोंका कारण नहीं है, उपलक्ष (Occasion) मात्र है। शरीर और मनके सम्बन्ध विषयमें मलब्रांन्स क्यूँकस-प्रतिष्ठित निमित्तवाद (Occasionalism)-का समर्थन कर गये हैं। लागतिक अन्यान्य घटनाओंकी तरह ईश्वर हम लोगोँकी शारीरिक क्रियाओंके भी कारण हैं। ईश्वरकी प्रति अनुपराका जो प्रेम है, मलब्रांन्सके मतसे वह ईश्वरके अपने प्रति अपने आसुरात्मिका नामान्तर मात्र है। क्योंकि मानवधामा समूह परमात्मिका अंशविशेष है। अंशसमूहका संपूर्णके प्रति तथा संपूर्णका अंशके प्रति जो प्रेम है, वह संपूर्णके अपने प्रति प्रेमके दो विभिन्न दिक्-मात्र हैं।

उपरि-वृत्त मतवाद भदेतवादका परिपोषक है। मलब्रांन्सने हमें की ओर (From the theological stand-point) से इस मतकी प्रतिष्ठा करनेकी कोशिश की है।

लिबनेज (Leibnitz)।

पहले कहा आ चुका है, कि स्पिनोजाके परवर्ती दार्शनिकोंके मध्य लिबनेज (Leibnitz)-का दर्शन विशेष चर्चोयोग्य है। स्पिनोजाने जिस प्रकार अपने दर्शनमें एक (one)में किस प्रकार बहुत (many)-का विस्तार हुआ है, उसे दिखानेको चेष्टा की है, लिबनेजने इसका विपरीत पक्ष अवलम्बन करके बहुत

(Maya) का स्वरूप क्या है तथा ब्रह्मत्वके संयोगमें ही जो एकत्वका ज्ञान हुआ है, उसे सप्रमादित करने को कोमिग की है।

जड़वाद (Materialism) की धार से निम्नलिखित प्रपञ्च दर्शन प्रचार नहीं किया। उनके मतमें बहु (Many) जड़वादी पण्डितोंसे घोर एम्पिरिकल दार्शनिक पण्डितोंसे प्रतिष्ठित परमाणु नहीं है। निम्नलिखित दर्शन अध्यात्मवादमूलक—(Idealistic) है। उन्होंने जड़मतको परमाणुसमूहकी समष्टि माना कर साधारणिक शक्तियोंका विकासस्थान माना है। जो जड़जगत् जड़वादो पण्डितोंके मतसे चेतन्यहीन है, निम्नलिखित मतसे बड़ी जगत् चेतन्यका आधार है। जड़वादो पण्डितोंके मतसे मन जड़प्रदायका रूपान्तर मात्र है। एम्पिरिकल दर्शनके मतसे मन प्रयमावस्थामें क्रियाशील है। बाहरजगतमें मर्गमें अपनी क्रिया करने का मनका जड़स्वरूप दूर किया है तथा मनको चेष्टायुक्त घोर क्रियामोक्ष बना डाला है। निम्नलिखित प्रभृति अध्यात्मपण्डितोंके मतसे मन जड़-प्रकृतिका रूपान्तरमात्र नहीं है, प्रत्युत जड़प्रकृतिका अस्तित्व घोर ज्ञान हम लोगोंके मन-साधने है। सम्पूर्ण जड़वाद घोर असंपूर्ण अध्यात्मवाद के दोनों ही मत एकदेशदर्शी हैं। प्रथमीक सतावनवीं पण्डितोंने मनका स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार किया है। उनके मतसे एक जड़ प्रदाय छोड़ कर जगत्में दूसरो बहुतका अस्तित्व है ही नहीं। द्वितीय श्रेणीके पण्डितोंने उसी प्रकार मनको सिवा अन्य किसी पदार्थका अस्तित्व स्वीकार नहीं किया है। यह श्रेणीक दार्शनिक मन अध्यात्मवाद (Idealism) कहलाता है। साधारणतः यह एक नामसे परिचित होने पर भी इसके मध्य अनेक साम्प्रदायिक प्रकारभेद हैं। निम्नलिखित विशेष दार्शनिक मत क्या है, वह संक्षेपमें लिखा गया जाता है

दार्शनिक गोट्टफ्राइड विल्हेल्म लिबनिज (Gottfried Wilhelm Leibniz) ने १६४४ ई० में लिबनिज नगर में जन्म ग्रहण किया। उनके पिता एक स्थान में पद्यापनाका कार्य करते थे। पारस व्यवसायी होमिके अभिषाय में उन्होंने १६६१ ई० में वार्डन पद तथा पारस

कर दिया। १९६३ ई० की दशक में व्यापक सुधार
उपाधि पाने के लिये छात्रों ने एक प्रयत्न किया। कर P.H.
D. की पाठ्या प्राप्त की।

द्वय प्रथममें लन्दे भावी दमनमत हा पनेक सामान
पाया जाता है । लिपजिकने वे जेना (Jena) पोर
पोले जेनामे आल्डोर्फ (Alldorf) नगरको गये ।
यहां लन्दे ने फार्डन परोक्षामें उत्तीर्ण हो कर डि. एल्.
(D. L.) की उपाधि पाई थी । लिपजिकने जोविता
निर्वाहके तिये किमी निगमेय हस्तिका, पब्लिश्वन न
किया । वे जर्मनी पोर भियेना पादि स्थानोंको रात-
समाते जा कर राजसभामंद तथा दीयकर्म प्रभृति पनेक
उच्च राजकीय कार्योंमें निरुक्त हुए थे । १७७२ ई. में
फ्रांसके सम्राट्, १४वें लुई (Louis XIV) को
जर्मनी पोर आक्रमण करनेसे रोकने तथा भिय प
आक्रमण करनेका परामर्श देनेके तिये लिपजिक
पेरिस नगर गये । वहांसे वे लखन पा कर
बिचारपुरागे डाक जान फ्रेडरिक (John Frederic)
के मल्लिकरूप निरुक्त हो हेनोवर (Hanover)
नगरमें पधारे । लन्दे जोधनको गोदाबध्यासा अधिकारी
हमी स्थानमें व्यतीत हुआ ।

१७३६ ई. में एन ली म्यूडर द्वारा। लिबनिज प्रूमिया-
की निरूपणे रानी सोफिया चार्लोट (Sophia Charlotte) के
त्रियोग प्रीतिभाजन थे और इनके प्रवर्तन वशतः ली
एन ली अपने विषयविशेष (Theodicaea) नामक दार्शनिक
ग्रन्थको रचना की। मिथेना नगरों में रहते समय
विन्स यूजिन (Prince Eugene) ने उन्हें अपने
प्रभानुयायी एक दार्शनिक ग्रन्थ प्रदान की जिसे अनुरोध
किया। तदनुसार मनाडोलोजी (Monadologie) नामक
दार्शनिक ग्रन्थ रचा गया। लिबनिज को ऐसे दो सौ भाषाओं
में व्यापक पण्डित पात्रः दृष्टिगोचर नहीं होते। केवल
दार्शनिक ग्रन्थ ही नहीं, इतिहास, गणित आदि प्रयोग
विषयों में भी वे अपने कृत्य रचना करते हैं। माधुर्य भाव में
न्यूटन (Newton) के साहाय्य निरपेक्ष ही कर उन्हें
अपने प्रभानुसार डिफरेंसियल-कालकुलस (Differential-
calculus) नामक गणितग्रन्थके मूलन तत्त्वका
संस्थापन किया।

देकाट' और. स्विनोजाकी तरह लिवनिजने भी पदार्थका (substance) स्वरूप को सा है। इस तत्त्व को से कर अपना दर्शन प्रारम्भ किया है। देकाट-विस्तृति (extension)-को पदार्थका स्वरूप बतला गये हैं। स्विनोजाके मतमें हम लोग ईश्वर कहनेमें जो समझते हैं, वही प्रकृत पदार्थ (substance) है और जगत्में एक ही पदार्थ विद्यमान है, दूसरे पदार्थका अस्तित्व हो नहीं है। लिवनिजका मत इन दोनों मतमें विभिन्न है। उनके मतमें पदार्थ एक भी नहीं है और विस्तृति भी पदार्थकी प्रकृत स्वरूप नहीं है। संसारमें अस्मत्त्व पदार्थ विद्यमान हैं। इन संप्रत्यक्ष पदार्थोंका लिवनिजने मनाड (Monad) नाम रखा है।

लिवनिज द्वारा प्रतिष्ठित ये मनाड जड़वादो पण्डितोंके कथित परमाणुसमूह (Atoms) के स्थानोय नहीं हैं। जड़ोप-परमाणु सुद्रादपि सुद्र होने पर भी जड़पदार्थ कह कर स्थाति करनेमें उनका पुनः विभाग किया जा सकता है, किन्तु मनाड विभाज्य नहीं है; इनका सूक्ष्म अस्तित्व विभाज्य नहीं है। इसीसे लिवनिजने इन मनाडको जड़तोत सूक्ष्मपदार्थ-विशेष (Metaphysical points) स्वीकार किया है। इसके अलावा परमाणुसमूहके मध्य जिस प्रकार गुणानुसार कोई श्रेणी विभाग नहीं है, सभी परमाणु एकस्वभाववालाका हैं, किन्तु मनाड उस प्रकार नहीं है, मनाडोंके गुणानुसार पार्थक्य है; एक मनाड दूसरेके पदार्थ नहीं है। संसारमें किसी दो वस्तुमें स्वभावगत एकता नहीं है। यह मनाड सर्वोत्तम स्वनिश्चित है, एक ही ऊपर दूसरेकी क्रियाशक्ति नहीं है।

मनाडका प्रकृतस्वरूप लिवनिजके मतमें स्वाधीन अर्थात् अनन्य-निर्भर है। किन्तु स्वाधीन अस्तित्व (Independent existence) स्वनिश्चित-कार्यावली (Self-activity) के ऊपर निर्भर करता है। शक्ति (Force or power) स्वनिश्चित, कार्यावलीको जड़ है; सुतरां शक्ति स्वाधीन अस्तित्वकी प्रभूत है, अतएव मनाडसमूहका प्रकृतस्वरूप है। लिवनिजके मतों प्रत्येक मनाडके मध्य शक्ति अन्तर्निहित है। धनुसको छोरीके टटनेमें प्रच्छन्न शक्ति बाधाविमुक्त हो जाती है;

उस समय धनुस् जिस प्रकार पहलूकी तरह सीधा हो जाता है, उसी प्रकार मनाडोंको अन्तर्निहित शक्ति भी बाधाविमुक्त हो कर कार्यक्षम हो जाती है।

पछले कहा जा चुका है, कि लिवनिजके मतमें जगत्में मनाड अतोत अन्य पदार्थका अस्तित्व नहीं है। सारा संसार मनाडसमूहको समष्टिमात्र है। निर्जीव जड़पदार्थमें से कर शक्तिके बाधास्वरूप ईश्वर तक सभी लिवनिजके मतमें एक एक मनाड है। पछले लिखा गया है, कि एक मनाडके ऊपर दूसरेकी क्रियाशक्ति नहीं है। यदि ऐसा हो, तो किन प्रकार परस्पर क्रियाकी प्रतीति उभय होतो है? इनके उत्तरमें लिवनिजने कहा है, कि एक मनाडमें जगत्के समस्त चित्र प्रतिफलित हुए हैं। ("Mirrors the whole universe")। किन्तु मनाडके प्रकृतगत गुणानुसार ऐसी शक्तिका भी तारतम्य है।

लिवनिजकथित मनाड पाश्चात्तिक पदार्थ विषय में जगत्में कहीं भी चेतन्यका विनकुल विशेष नहीं है। केवल मनाडोंके प्रकृतगत पांचव्यानुसार चित्तवृत्तिके विकासकी धृक्ता है। लिवनिजके मतमें मानवात्मा (Human-soul) एक मनाडविशेष है, इनमें चित्तशक्तिका विकास प्रतीकात्ममें सम्पूर्ण है। फिर जिन्हें हम लोग निर्जीव जड़पदार्थ कहते हैं, लिवनिजके मतमें वे मोह वा निद्रावशमें सुप्तचेतन्य मनाडसमूह-विशेष (Sleeping monads) हैं। इन सबमें उत्तरा-त्तर क्रममें चित्तशक्तिका क्रम विकास साधित हो कर पोछे ईश्वरमें इनका पूर्णविकास साधित हुआ है। शक्ति मनाडोंका प्रकृत स्वरूप है, इस कारण जगत्में कहीं भी शक्तिके अस्तित्वका अभाव नहीं है। यह शक्ति विभिन्न प्रकृतिके मनाडोंमें विभिन्न क्रिया उत्पन्न करती है। चेतनविहीन जड़में यह शक्ति शक्तिका काम (Motion) देती है; फिर वद्विद जगत्में यह जीवनसंवेदीनो और जीवनरक्षणी शक्तिस्वरूप कार्य करती है। इतर प्राणोजगत्में चित्तशक्तिका विकासमात्र हुआ है, सुतरां यह शक्ति प्राणोजगत्में चित्तशक्तिस्वरूप स्फुरित है। मानवमें इस शक्तिका नामान्तर प्रसा (Reason) है।

निवर्तिनके मतमें जागतिक प्रत्येक वस्तु मनाड-
मनुष्यके योगमें उत्पन्न हुई है। प्रत्येक मनाडमें जो
चित्प्रगति का परिणत है, इस प्रकार मनुष्यमें यह अनु-
मान किया जा सकता है, कि मनाडमनुष्यको समष्टि
का एक प्रत्येक जागतिक पदार्थ अन्तर्भव्य है।
निवर्तिनके मतमें पूर्वाक्त प्रगति का निदान अन्तर्भव्य
है। उनका कहना है, कि मनुष्यपूर्ण पुनर्निर्माणके
मनुष्यको जोधित रहने पर भी जिस प्रकार पुनर्निर्माण-
को जोधित नहीं कर सकते, पूर्वाक्त मनुष्यमनुष्यमें भी
उसी प्रकारको युक्ति प्रयोज्य है।

इसके पहले कहा जा चुका है, कि निवर्तिनके
मतमें एक मनाडके ऊपर अन्य मनाडकी क्रियाशक्ति
नहीं है, किन्तु हम लोग इसको पर जो कार्यकारण
सम्बन्ध तथा परस्पर क्रियाशक्तिका विकास देखते हैं,
उसकी उत्पत्ति कहाँ है? हम प्रश्नके उत्तरमें निव-
र्तिनके कहना है, कि इस सब मनाडोंके मध्य पूर्वप्रति-
ष्ठित एक सुन्दर सामन्तत्व (Pro-established har-
mony) है। इस अन्तर्निहित धर्मवस्तु: एकको
दूसरेको ऊपर कार्यकारी समता नहीं रहने पर भी
यथावश्यक कार्यकारण सम्बन्धको तरह कार्य करती
है और इसीसे प्रचलित विश्वास है, कि एक वस्तु को
को दूसरी वस्तुको ऊपर कार्यकारी समता है। यह
ऐसा प्रश्न हो सकता है, कि यदि एक वस्तुको
ऊपर दूसरी वस्तुको किसी प्रकारको समता नहीं है,
तो मन (Mind) और जड़ (matter) का सम्बन्ध
किस प्रकार स्थापित हुआ? निवर्तिनके इस विषय
की मोर्मावा अपने साधारण दृग्मनसको अनुसार भी
है। उन्होंने कहा है, कि मन और जड़का सम्बन्ध तीन
स्वायत्त प्रतिष्ठित हुआ है, यह कल्पना की जा सकती
है। प्रथमतः देकाटको मतमें मन और जड़ दोनोंको
ऊपर दोनोंको ही क्रियाशक्ति (inter-action) है।
निवर्तिन इस मतको मारवचा स्वीकार नहीं करते।
द्वितीयतः गैलिनोस (Gailinox) प्रतिष्ठित निमित्त-
वाद (Occasionalism) है; इस मतमें अनुसार
मन और जड़के मध्य साक्षात्-सम्बन्धमें कोई सम्बन्ध
नहीं है, ईश्वर ही एकके अनुयायी परिवर्तन दूसरे-

में साधन करते हैं। निवर्तिन इस मतको भी
मनोचोन नहीं समझते। उनके मतमें ईश्वरके प्रतिष्ठित
नियमानुसार जब सभी व्यापार साधित होते हैं, तब
सामान्य कार्यावलीसे उन्हें साधनभूत स्वायत्तस्वरूप de-
pend on machines) प्रतिष्ठित करना ईश्वर नामका पद-
मान्यत्व है। निवर्तिनके निम्न प्रस्तुत सामन्तत्व-
वाद (Theory of pre established harmony)-
के अनुसार इस विषयकी मोर्मावा की है। उनका
कहना है, कि मन और जड़के मध्य एक ऐसा सम्बन्ध
पड़नेसे प्रतिष्ठित है, कि एक समय मिलित दो चरित्रा-
यत्नको तरह वे एक ही नियममें चलते हैं। मन और
जड़ दोनों ही स्वयं स्वयं नियमानुसार चलते हैं, एकको
दूसरेके ऊपर कोई क्रियाशक्ति नहीं है, यद्यपि पूर्वप्रति-
ष्ठित सामन्तत्वके गुणसे एकको क्रिया लोक दूसरेको
अनुसर है। वास्तविक पर जो विश्वास है, वह
इस दार्शनिक मतमें मनुष्यमें अनुमित हो सकता है।
निवर्तिनके मतमें वास्तविक पर जो विश्वास है, वह
केवल शरीर है जो मनाडोंके योगमें बना है। उन सब
मनाडोंमें वास्तविक विद्युत् होनेको लोग मान्य करते हैं।

अपने धर्मोंकी तत्त्वज्ञानमूलक (Ontological)
चर्चामें जिस प्रकार निवर्तिनके द्वितीयतः का विषय मत
प्रचलित किया है, उसी प्रकार ज्ञानतत्त्व (Theory
of knowledge) के सम्बन्धमें उन्होंने लॉक (Locke)-
की विपरीत मतका पचार किया है। निवर्तिनके एक
प्रश्नमें साक्षात् मतका पण्डित करके ईश्वर पाइडिया वा
स्वतन्त्र मानसिक भावों (Innate ideas) का
परिचित प्रमाणित करनेको चेष्टा की है।

निवर्तिनके मतमें पाद प्रकृतत्वमें ईश्वर पाइडि-
याकोका स्वरूप पण्डित कर सकते हैं। ईश्वर पाइ-
डिया प्रमाणवस्थामें मनमें सम्पूर्ण भावमें नहीं रहता,
पण्डित वा अविकसित अवस्थामें रह कर क्रमशः पूर्णता
प्राप्त करता है। निवर्तिनके मतमें ज्ञानप्रगत्ता
मनुष्य व्यापार एक दिशावर्त ईश्वर है, क्योंकि वास्तव-
जगत्को जब मनको ऊपर कोई कार्यकारी शक्ति नहीं
है, तब सभी ज्ञान मनमें उत्पन्न हुए हैं।

लिवनिजने थियोडिसो (Theodicee) नामक ग्रन्थमें अपने धर्मनिरासक मतको निमित्तक लिये है। उनके जितने दर्शन ग्रन्थ हैं, उनमेंसे यही ग्रन्थ अत्यन्त निष्ठुर है। ईश्वर का स्वयं क्या है? इस सम्बन्धमें लिवनिजने मतोंकी कोई एकता नहीं देखी जाती। एक जगह उन्होंने ईश्वरको सम्पूर्ण मनाड (Perfect monad) बताया है और दूसरी जगह कहा है, कि अनिष्ट जिस प्रकार स्फुटित निकलते हैं, उसी प्रकार ईश्वरसे समस्त मनाडोंकी उत्पत्ति हुई है। मान्य होता है, कि उनके मनाडलोगी (Monadologie) ग्रन्थकी असम्पूर्णता ऐसे अवागमनका कारण है।

जगत्की माय ईश्वरका सम्बन्ध क्या है? इस विषयको सोमार्सने लिवनिजने जागतिक व्यापारमें ईश्वरका ज्ञान, कौशल और ऐश्वर्यिक प्रज्ञाका अस्तित्व प्रतिपन्न करनेकी चेष्टा की है। थियोडिसी तरह लिवनिजने भी प्रत्येक कार्यमें ईश्वरके सङ्कलनमयत्वकी सूचना दिखाई है।

अमङ्गलकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई? इस प्रश्नकी सोमार्सने लिवनिजने तीन श्रेणीके अमङ्गलका उल्लेख किया है। प्रथमतः प्राकृतिक—दैव अमङ्गल (Metaphysical evil) है। इस श्रेणीके अमङ्गल अपरिहार्य हैं, क्योंकि ये सब हम लोगोंको अतीत सत्त्वमय वा अमर्याद (Finitude and imperfection) से उत्पन्न हुए हैं। दूसरी ये हम लोगोंके स्वभावके अनिवार्य हैं। तृतीयतः प्राकृतिक अमङ्गल वा दुःख (Physical evil), जो अपरिहार्य नहीं है। हम लोगोंकी पापसे निष्ठुर करनेके अभिप्रायसे ईश्वरने शास्त्रस्वरूप इन सब दुःखोंका विधान किया है।

तृतीयतः नैतिक अमङ्गल (Moral evil) है, ईश्वरने हम जातिके अमङ्गलका विधान नहीं किया है। यदि इस श्रेणीका अमङ्गल ईश्वरानुमोदित नहीं है, तो इसका उत्पत्तिस्थान कहाँ है? इस विषयके सोमार्सका लिवनिजने विभिन्न श्रेणीके तर्कोंको व्यवहार किया है। एक जगह उन्होंने कहा है, कि नैतिक अमङ्गल हम लोगोंकी स्वाधीन इच्छाशक्ति (Free-will) का व्यवहार फलसांकेतिक है। यदि इच्छाशक्ति को स्वतंत्र

माना न रहे, तो हम लोगोंके कार्यान्वयोंमें दायित्व रहने पर भी हम लोग पापपुण्य और धर्मधर्मके लिये दायी नहीं हैं। दूसरी नैतिक अमङ्गल धर्मका ऐतुस्वरूप है कि दूसरी जगह उन्होंने नैतिक अमङ्गलको प्राकृतिक अमङ्गल (Metaphysical evil) बताया है। नैतिक अमङ्गलका प्रजन अस्तित्व नहीं है, यह जीवनका कालायाम संश्लेषण है। बिना वस्तु के ज्ञानका जिस प्रकार अस्तित्व नहीं रहता, वैसे अस्तित्वमें भी उसी प्रकार के भादव्य के कारण पुण्यको भार भी उच्चयन कर दिया है।

दार्शनिक उत्तर।

लिवनिजने 'मनानुवर्त्ती दार्शनिकी' में मध्य उल्फ (Wolff)-को का नाम अधिक विख्यात है। क्रिश्चियन उल्फ (Christian Wolff) ने १६७९ ई. में जर्मनी में अन्तर्गत ब्रेस्लान (Breslau) नामक स्थानमें जन्म ग्रहण किया। वे हालो (Halle) नगरमें दर्शनशास्त्र के अध्यापकके पद पर नियुक्त थे। ईसाधर्मके विरुद्ध मत प्रकाशित करनेके अपराधमें दो दिनके अन्दर उन्हें प्रमिया राज्य छोड़ देने का हुक्म हुआ। सम्राट् फ्रेडरिक (Frederic II) ने प्रमिया में सिंहासन पर बैठे, तब उन्होंने दार्शनिक उल्फको अपने राज्यमें बुलाया। योसे राजाने उन्हें बैरन (Baron) की उपाधि दे कर अभिजात श्रेणीयुक्त किया था। १७५४ ई. में उनकी मृत्यु हुई।

उल्फने लिवनिजका दार्शनिक मत को सारानुमूल्यत्व में ग्रहण किया है। उन्होंने किसी भी नूतन दर्शनिक मतका प्रचार नहीं किया। उल्फने जो प्रश्न पकले दर्शनशास्त्रका सङ्कीर्ण सोमार्सने उद्धार कर सभी विषयों की दर्शनशास्त्रके अन्तर्भूत मान कर प्रचार किया था। जर्मन भाषामें दर्शनशास्त्रका प्रचार उल्फ द्वारा जो पकले प्रकृत प्रवर्तित हुआ।

उल्फने दर्शनशास्त्रकी सध्याय विषयका ज्ञान-दायक शास्त्र (The Science of the possible) बताया है। उनके मतमें जो विषय सम्भव-सम्भावनीय होता है, वह विरोधके अतीत (involve no contradiction) है। उल्फने दर्शनशास्त्रकी दो भाषाएँ विभक्त

दिया है :—पहला दर्शनशास्त्र का तत्त्वज्ञानमूलक भाग (practical philosophy or metaphysics) और दूसरा दर्शनशास्त्र का धर्म भाग जो मानव मन के प्रवृत्ति-मूलक भाग (Volitional faculties) के ऊपर प्रतिष्ठित हुआ है। इस भाग का सर्वप्रथम कार्यमूलक दर्शन (practical philosophy) नाम दिया है। वस्तुतः (Ontology), जगत्तत्त्व (Cosmology), मनशास्त्र (Psychology), प्राकृतिक धर्मतत्त्व (Natural theology) ये सब प्रयोगिक भागों में तत्त्वज्ञानमूलक दर्शन (Theoretical philosophy) के अन्तर्गत हैं। नीतितत्त्व (Ethics), आर्थनीतितत्त्व (Economic), और राजनीति-तत्त्व (Politics) इतिवर्ग में प्रयोगिक कार्यमूलक दर्शन (practical philosophy) के अन्तर्गत माने गये हैं।

अपने दर्शन के वस्तुतत्त्वमूलक भाग (Ontological portion) में सर्वप्रथम कैटेगोरी (Categories) प्रयोगित प्रदायक समुदाय के साधारण लक्षणानुसार उनके दो विभागों में सम्मन्वित आलोचना की है :—स्वयं स्वयं के वास्तव्य-स्वभावप्रयोगों में विशेष निरूपण देते।

उक्तके मतमें प्रगत परिवर्तनयोग्य वस्तुओं को समष्टिमात्र है। किन्तु ये सब वस्तु परस्पर सम्मन्वितव्य हैं, एक वस्तु का मूल या भित्ति दूसरे के ऊपर निहित है। जिस प्रकाश (mode) का प्रकाशमान करके यह दिख रहा गया है, उस प्रकाश की कोई भी रूप परिवर्तन नहीं है, वह सदा एक भावमें रहता है विषयों में यह प्रकाशित कार्यप्रकाशों जगत्-प्रकृतिका प्रकाश स्वरूप है। उक्तमें निश्चिन्त-कथित मनाओं के सम्मन्वित भाव माफ़ कुछ भी नहीं कहा है। 'सर्व' में जिसको वस्तुमात्र (Simple being) स्वीकार किया है, वे दर्शनप्रतिष्ठित जगत्तत्त्वों के प्रमाणानुसार हैं। नीतितत्त्व (Ethics) में उन्होंने 'सुख-तत्त्व (Happiness-theory)' प्रयोगित प्रमाणों के अन्तर्गत प्रत्येक कार्य का, सुखी नीतिप्रकाशों का भी उद्देश्य है, इस मतका अर्थ यह है कि प्रत्येक कार्य का उद्देश्य है, कि सुखपूर्वताप्राप्त (The Attainment of perfection) इस लोगों के जीवनका परम उद्देश्य है और प्रत्येक

नैतिक कार्य की भित्ति इस उद्देश्य के प्रति सत्य रूप में प्रतिष्ठित है। अपने धर्मतत्त्व (Theology) में उन्होंने जगत्तत्त्वमूलक युक्ति (Cosmological argument) का प्रयोजन करके ईश्वरका अस्तित्व प्रमाणित किया है। जगत् ईश्वरसृष्ट है, ईश्वरने निज सम्पूर्णता प्राप्त की विषयों की सृष्टि की है।

उक्तके मतानुवर्ती पण्डितों के मध्य वमगाटेन (Baumgarten), बिलफिंगर (Bilfinger), थमिंग (Thumming) और बायमैस्टर (Baumeister) को सम्मिलित विख्यात हैं।

विभिन्न और उक्तके दर्शनिक मत-प्रचारकों बाद १५वीं शताब्दी के मध्य भागमें जर्मन लोगों में एक दर्शनिक सम्प्रदाय का आविर्भाव हुआ जिसका नाम था जर्मन प्रकाशमयता (German illumination) या जर्मन-ज्ञानात्मक। इस दर्शनिक सम्प्रदायने दर्शन-शास्त्र की कोई विशेष उन्नति न की और न कोई परिष्कार ही किया। दर्शनशास्त्रप्रतिष्ठित ज्ञानमूलक-लोचन में प्रयोग करके जीवनको उन्नत करना ही इस सम्प्रदाय के विशेष लक्ष्यका विषय था। दर्शनिकमत-विषयमें यह सम्प्रदाय फ्रांसीसी-प्रकाशमयता (French illumination) के सम्पूर्ण विपरीत मतानुसार है। प्रकाशके उक्त दर्शनिक-सम्प्रदाय 'जगत्तत्त्व' का प्रचार कर गये हैं। जर्मन पण्डितगण आदर्शवाद (idealism) की परम सीमा पर पहुँचे हैं। सोफिस्टों की तरह इस सम्प्रदाय के पण्डितों के मतमें भी व्यक्तिगत-प्राप्ति को सब विषयों का प्रधान विषय (subject) है। अतएव दर्शनशास्त्रमें भी इस व्यक्तिगत-आत्मत्व (empirical subjectivity) के ऊपर सत्य रूप कर सभी विषय आलोचित हुए हैं। आत्मका अन्तर्गत इस दर्शनिक सम्प्रदायका एक प्रधान आलोच्य विषय था। ईश्वरके सम्मन्वित आलोचना इस दर्शनिक सम्प्रदायने प्रवर्तित नहीं की, क्योंकि उनमें मतमें ईश्वर का सर्वप्रमाण विषयभूत नहीं है। दर्शनिक मतों का इस समय जगत्तत्त्व में प्रचार हो जानेसे दर्शनिक विचारमयों को गमोस्ताका प्राप्त हुआ था। इस सम्प्रदायने दर्शनशास्त्र की कोई विशेष उन्नति नहीं की।

थोमस अबट (Thomas Abbt), एन्गेन (Engel), स्टिनबट (Stienbat) आदि पण्डितगण इनो सम्प्रदायके प्रसङ्गत थे। मेण्डेलसन (Mendelssohn) और रिमारस (Reimarus) इस सम्प्रदायके मध्य सर्वप्रियता समधिक प्रसिद्ध रहे। अनेक दर्शन-इतिहासवेत्ताने दार्शनिक लेसिंग (Lessing) को भी इसी सम्प्रदायके प्रस्तुत किया है।

लेसिंग ने हिपनोजा और लिबनिजके मतका साम-प्रत्यक्ष विधान करनेकी चेष्टा की है। लेसिंग ने ईश्वरकी सर्वव्यापी सर्वतो-महोद्यान वतलाया है। उनके पक्षि-तीय होने पर भी सभी वस्तु सन्तो में निहित हैं।

लेसिंग (Lessing) के ग्रन्थों में दर्शनार्थ पति सामान्य है। प्रकृतित ईसाधर्मका प्रकृतस्वरूप और आध्यात्मिक तात्पर्य क्या है; इनकी सब धर्मतत्त्व और शिष्टपरीन्द्य (Aesthetics) की आलोचनाने उनके ग्रन्थका अधिकार्य शेष हुआ है।

काण्ट (Kant)

दार्शनिक काण्टकी आविर्भावसे यूरोपीय दर्शन-जगत्में युमान्तर उपस्थित हुआ। काण्टकी आविर्भावकी पहली विभिन्न दर्शन-सम्प्रदायसमूह एक ऐश्वर्यमयकी चरम सीमा पर पहुँचे हुए थे। वास्तववाद (Realism) 'अज्ञानवाद' और प्रवर्तित अधश्चिन्तनवाद भी (Idealism) 'अज्ञानवाद' (Empirical egoism or subjectivity) में परिणत हुआ था। इन दोनों मतका एकद्वैतमय परिहार करके सामान्य विज्ञानकी लिये काण्टने अपने दर्शनकी रचना की।

काण्टने स्वयं कहा है, कि हमके अज्ञेयवाद (Scepticism) ने उनके दार्शनिक मतकी उत्पत्ति कर डाली है। हमके प्रवर्तित दार्शनिकमतकी प्रतिक्रिया (Reaction) दो मार्गों में विभक्त हो कर प्रसारित हुई थी। इनमेंसे दार्शनिक काण्ट एक मत-के और एकान्तके प्रहरीय दार्शनिक रीड (Reid) दूसरे मत-के प्रवर्तक थे। यही आध्यात्मिक-इका-टिपदर्शन (Scottish Philosophy) नामसे प्रसिद्धि प्राप्त करता है।

यह काण्ट-प्रवर्तित दर्शनका सर्वप्रथम विवरण दिया जायगा। ऐतिहासिक नियमसे यदि देखा जाय, तो काण्ट एक और मित्रविच और उल्लूक तथा दूरीय और हमके परवर्ती थे। किन्तु उनका दार्शनिक मत पूर्वोक्त किसी दार्शनिक मतसे उद्भूत नहीं है और वे किसीके भी दार्शनिक मतके अनुवर्ती नहीं हुए। वे स्वावलम्बिय पन्नानुसार अपने दर्शनका प्रचार कर गये हैं।

इमानुएल काण्ट (Immanuel Kant) ने १७२४ ई० में कनिग्सबर्ग नगरमें जन्मग्रहण किया। उनके पिता धर्मग्रन्थमाया थे। माता उनकी धर्मश्रीला, गुणवती और सुदिनगो रमणी थीं। काण्ट भी मातृ-प्रकृतिसे ही इन सब गुणोंके अधिकारी हुए थे।

१७४० ई० में धर्मशास्त्र नीखनेके परिणामसे वे स्थानीय विश्वविद्यालयमें भर्त्ता हुए। किन्तु धर्म-तत्त्वभूतक ग्रन्थावली समूहका एकद्वैतमयत्व, अन्ध-विश्वास और अयोग्यता सीमाया उनके पक्षमें प्रीति-जनक नहीं धनिके कारण उनकी दर्शनग्रन्थ, गणित, अज्ञानविज्ञान आदिकी बहुत प्रावधानसे प्राप्तिपना की। विश्वविद्यालयकी शिक्षा समाप्त होने पर वे कनिग्स-बर्गके निकटवर्ती कितने भाद्र परिवारोंके गृहशिक्षक रूपमें नियुक्त हुए। १७५५ ई० में वे स्वयं प्रवृत्त हो कर कनिग्सबर्ग नगरमें दर्शन, व्याय, गणित, विज्ञान आदि शास्त्रोंके अध्यापनकार्यमें लग गये। १७७० ई० में काण्ट विश्वविद्यालयकी ओरने दर्शनग्रन्थकी अध्यापक नियुक्त हुए और १७८७ ई० तक इस पद पर प्रतिष्ठित रह कर कार्यव्ययत; इस पद की कुछ दिनों बाध हुए। जीवनका अवशिष्टकाल सन्तोने एक निश्चल स्थानमें ज्ञानचर्चामें बिताया था। शक्ति (18), एनलार्गेन (Enlargen) आदि स्थानोंसे दर्शन-अध्यापकता पद ग्रहण करनेका अनुरोध पाने पर भी वे कनिग्सबर्ग छोड़ कर कहीं जानेकी राजी न हुए। उनका भौतिकी ज्ञान वतना संकीर्ण न था, यह उनकी प्राकृतिक अनुभवविषयक प्रज्ञाता पद्धति साफ साफ प्रतीत होता है। जीवितकालमें ही काण्ट-की ख्याति इतनी दूर तक फैल गई थी, कि बहुत दूरसे

स्वीकार किया है। परन्तु साधारण विज्ञान के मतानुसार जगत, कहने में जो समझा जाता है तथा जगत्का ज्ञान हम लोगों को पूर्वरूप में है, ऐसे दिग्भासकों जो कोई भित्ति नहीं है, उसे उन्होंने दिवाने की चेष्टा की है।

ज्ञानवृत्तिकी (Cognitive faculty) काण्टने नामान्वयता दो चर्चाओं में विभक्त किया है। इन्द्रियज्ञान वा इन्द्रियबोध (Sense), और प्रज्ञाजनितज्ञान (Understanding)। "क्रिटिक पाथ प्योर रीजन" के प्रथमार्थ में उन्होंने इन्द्रियज्ञान सागरी बाधोचना की है। इस चर्चा का नाम है ट्रान्सेन्डेण्टल एस्थेटिक (transcendental aesthetic) वा अनुभूतिज्ञान और दूसरे का ट्रान्सेन्डेण्टल एनालिटिक (transcendental analytic) वा बुद्धिज्ञान।

ट्रान्सेन्डेण्टल एस्थेटिक नामक चर्चा में काण्टने पहले दो काल (Time) और देय (Space) के स्वरूप-सम्बन्ध में सीमांका की है। काण्ट के मत में देय और कालका वस्तुगत कोई अस्तित्व (extramental existence) नहीं है। चाण्डविषय ग्रहण करने के क्रिये मन के उक्त दो सांख्यिक धर्म-विशेष (Innate-forms of sensuous intuition) हैं। जिन सब युक्तियों का प्रयत्न करने के काण्टने इन दो पदार्थों का वस्तुगत अस्तित्व प्रमाणित किया है, विस्तार की जानिके भय में उनका उल्लेख यहाँ संक्षेप में किया जाता है। देय के सम्बन्ध (Space) में उन्होंने जो युक्ति निकाली थी, उसीका उल्लेख यहाँ दिया जाता है।

काण्टका कहना है, कि वाह्यजगत्का ज्ञान ही (Experience) देयका मानसिक अस्तित्व प्रमाणित करता है। वाह्यवस्तु कहने में साधारणतः क्या समझा जाता है, इसका अनुसन्धान करने में उक्त रहस्य-प्रच्छेदों तरह-माछूम की जायगा। वाह्यवस्तु कहने में मैं साधारणतः मुझे जोड़ कर और किसी पदार्थ (something external to me) का अस्तित्व नहीं समझते। 'मुझ' में प्रत्यक्ष, यह जो ज्ञान है, वह देय के अस्तित्व को सूचना करता है। हम लोगों के वाह्यविषयका ज्ञान होने के पहले 'वाह्य' कहने में क्या समझा जाता

है (notion of externality) ? वाह्य इस शब्द का ज्ञान यदि हम लोगों के पहले उत्पन्न नहीं होता, तो वाह्यवस्तु कहने में किसी पदार्थ का ज्ञान नहीं हो सकता था। किन्तु वाह्य एक शब्द का ज्ञान भी देय (Space) का ज्ञाननिर्देशक है। देयका ज्ञान नहीं रहने में वाह्य शब्दका प्रकृत अर्थ हम लोग नहीं समझ सकते थे। सुतरां देयका ज्ञान (notion of space) वाह्यजगत् में गृहीत नहीं हुआ है, वरन् वह वाह्य-वस्तुबोधका बोधानवरूप है।

काण्टने और भी कहा है, कि यदि देय और कालका ज्ञान वाह्यजगत् में गृहीत होता, तो हम लोगों का देय और काल सम्बन्धीय ज्ञान इन्द्रियगत छोटे छोटे ज्ञानों के समष्टिके योग में उत्पन्न होता। काण्ट के मत में देय और कालज्ञान इस प्रकार समष्टिबोधका ज्ञान (Totality) नहीं है; देय और कालका समस्त ज्ञान हम लोगों के मन में पहले से ही हुआ करता है। जिसे हम लोग देय और कालका चर्चा समझते हैं, यह इस समस्त ज्ञान की सीमावद्ध करके उत्पन्न हुआ है। अतएव देय और कालज्ञान चर्चा ज्ञान-वस्तुबोध का समष्टि नहीं है, समस्त ज्ञान की सीमावद्ध करने में चर्चा विशेषका पर्याप्त छोटे छोटे देय और काल-ज्ञानों का विलीन होना है। देय और कालज्ञान काण्ट के मत में, मानो मन के पहले दो मोल और कालबर्ध विभिन्न चर्चों के कांथ हैं—वाह्यजगत्का विषय जानने में इन चर्चों की सहायता में देखना होगा। किन्तु ऐसे पदार्थ के मध्य हो कर वाह्यजगत्का ज्ञान प्रविज्ञानमार्थ में नहीं आ सकता, वरन् की बिलुप्ति होती है। यह वर्ण-विलुप्ति हम लोगों के पक्ष में इतनी दूर तक लाभविक्रि हो गई है, कि इसी की हम लोग वस्तुका स्वरूप जान कर ग्रहण करते हैं। देय और काल की सांख्यिकता प्रमाणित करने में काण्टने अन्य युक्तिका प्रयत्न करने किया है। उनका कहना है, कि देय और काल की सांख्यिकता स्वीकार नहीं करने में विशुद्ध गणितशास्त्र (pure mathematics) का अस्तित्व सम्भव नहीं होता। गणितशास्त्र की मोलानुसिक विषय की यदि प्रमान्त मूल मान-निर्णय जाय, तो उनका ऐसी भित्तिके ऊपर प्रति

त्रि कोना घायग्रह है, वो भित्ति म्यायी घोर पर
यत्न न विरत है। कारण, काण्डने समने देय घोर
कान दो बांभिटिस्ता (Apriority) गणितग्राहको
माया भित्ति है। पुरातन नियम होकर एमथिटिक
(Aesthetic) नामक चयने-घोर किन्ही विषयको
पानोचना नहीं है।

ट्रान्सेन्डेण्टल एनालिटिक (Transcendental
Analytic) नामक पंजमें कोटिगरी (Categories)
या पदार्थभूमिके साधारण व्यवस्थमें पानोचना है।

मग्न घटके वास्तव्य स्थान प्रत्यये विवेक विवरण देखो।

काण्डने १२ कोटिगरी या पदार्थका उत्पन्न किया
है। ये कोटिगरी बाह्य जगत्सम्बन्धोय पदार्थ नहों हैं,
मनको चत्तानिहित भावविषय (Pure notions) हैं।
माह्य जगत् जव हम भोगिके मनमें प्रवेश करता है, तब
यह पदार्थ इन्द्रियबोधमात्र (Manifold of senses) है।
पेकि हमने ऊपर कोटिगरी पदार्थ माननिक भावोंको
पारोव होनेमें यह इन्द्रियबोध वस्तुज्ञानमें परिवर्तन हो
जाता है।

समो प्रश्न यह उठता है, कि कोटिगरी जब हम
भोगोंको मनको प्रकृतितगत हैं, तब ये बाह्यवस्तुको
ऊपर किस प्रकार कार्य करी होती हैं। इसके सम्बन्धमें
काण्डने ऐसा सिद्धांत किया है—इन्द्रिययोगसे बाह्य-
वस्तुको हम भोगोंको मनको ऊपर जो क्रिया (Affec-
tions of the mind) होती है, वह इन्द्रियभूमिमात्र
है। मनको प्रकाशित भावोंको मनमय किस प्रकार
हमको माय साधित होता है? इस विषयकी सोचीसामं
काण्डने पत्र घोर तत्त्वको पानोचनाको है। इन्द्रियगत
वस्तुभूति (The sensuous element of knowledge)
घोर मनके प्राथमिक भावों (Apriori notion) का
समन्वयविधान करनेमें एक घोर उत्तमोय पदार्थका
पश्चित्त स्वीकार करना पड़ेगा। इस उत्तमोय पदार्थ-
को प्रकृतिका उत्तर-रूप दोनों प्रकृति के समानोय-
भूत होगा पाव्यक्त है। इस समन्वयकारक उत्तमोय
पदार्थका काण्डने स्केमा (Schema) नाम रखा
है। स्कोमा—अन्वय—अनुपस्थित—रूप—प्राकृतिक
(Form) है। काण्डने समने देय (Space) घोर

काल (Time) हम दोनों पदार्थोंके योगमें हम
मोनोंको इन्द्रियगत वस्तुभूति (manifold of senses)
वस्तुज्ञानमें परिवर्तन होती है। देय घोर कालको योगमें
हो हम भोग कोटिगरीको बाह्यवस्तुको ऊपर पारोव
कर सकते हैं। कालका जो गुण रहनेमें (the qua-
lity of time) हम भोग बाह्यवस्तुको विषयमें जान-
कार हुए हैं, काण्डने समने सम गुणको स्कोमा
कहा है। काण्डने मतानुसार हम भोगोंको संख्या-
ज्ञान है जो कालको इसी स्कोमाके उत्पन्न होता है।
स्कोमाको तरह व्यवस्थितमात्रमें चलनेके कारण काल-
को घम और कालकी हम थोपीयइ गति (series in
time) में संख्याज्ञानको उत्पत्ति हुई है। संख्यामसूत्र
कितने एकत्व (unit) को समष्टिमात्र है। किन्तु यह
एकत्व ज्ञान किस प्रकार उत्पन्न हुआ? इस प्रश्नके
उत्तरमें काण्डना कहना है, कि यदि समको ज्ञान
पारव होनेके माय ही पवकई हो माय, तो एकत्वका
ज्ञान उत्पन्न होता है (If the movement of thou-
ght is arrested in the very beginning thence
arises the notion of unity) घोर यदि चिन्ता-
गतिका प्रसार रुक न करके कुछ क्षण तक रुक पवस्था-
में देखा जाय, तो परम्पराक्रमसे इन्द्रियज्ञानगतित चमि-
यता समूह (A succession of sensuous expe-
riences) में बहुत्वज्ञान (notion of plurality) की तथा
इस चमिप्रतावम वस्तुको समष्टिमें सादृश्य (Totality)
ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। काण्डने हम संख्याज्ञानको
काल संख्यामसूत्र स्कोमा (schema of time) कहा है।
हम भोगोंको माननिक प्रक्रिया मात्र ही कालसे साधित
होती है; मनको ऐसी पवस्थाको कल्पना करना दुर्द्व
है, जिस समय हम भोगोंका मन किन्ही मो विषयकी
चिन्ता नहीं करता है। मनको इस चिन्ताका विषय
समो कालमें एक नहों है। चिन्ताके विषयका तारतम्य,
विषयके गुणको विभिन्नता पदार्थ जो मय वस्तु तत्त्वमा-
यिक चिन्ताको विषयोभूत है वही वस्तुबोध तार-
तम्य निर्दिष्ट किया जाता है। समयमें वस्तुसमन्वयके
गुणतत्त्वमें हम भोगोंकी जिस पवस्थाको उत्पत्ति हुई
है, काण्डने सम गुणमसूत्र स्कोमा (Schema of qua-

lity) धर्तनाया है। फिर भी मनके प्रक्रियाशालीन हम लोग देखते हैं, कि कोई विषय मध्य या अधिक समय के लिये हम-लोगोंके मनमें अधिकतर क्रिये हुए है (Persisting for a longer or shorter period); हम-लोगों-ऐसी अवस्था (This passive state) होनेमें हम-लोगोंको द्रव्यत्व की धारणा (notion of substance) होती है। वे कहते हैं, कि हमकी ऐसी अवस्था होनेमें हम लोग इसके ऊपर द्रव्यत्व की केंद्रितरी प्रयोग करते हैं और हममें हम-लोगोंको वस्तुता अस्तित्व ज्ञान (notion of substantiality or reality) उत्पन्न होता है।

हम-लोगोंको चिन्ताके विषय भी हम-लोगोंके मनमें समीप बिलकुल पहुँचने नहीं पाते। हममें मध्य एक पोषोषण है। जहाँ यह पोषोषणभाव दृढ़वद् है, यहाँ हम-लोगोंके कार्यकारण ज्ञान (notion of causality) की उत्पत्ति होती है अर्थात् हम-लोग कार्यकारण ज्ञान सूक्ष्म केंद्रितरीका आरोध करते हैं।

इस प्रकार काण्टने दिखाया है कि एक ज्ञानज्ञानने की केंद्रितरीके साथ इन्द्रियगत बाह्य अनुभूति (sensible experience) का सम्बन्ध साधन किया है। ज्ञानज्ञान-वाह्यजन्यसे समीकृतमें प्रवेश करनेका प्रयत्न है। काण्टने इस ज्ञानज्ञानको 'समन्वित पदार्थों' (Category)-के साथ किस प्रकार समन्वित किया है विस्तारके भेदमें हमका उल्लेख नहीं किया गया।

सुतरा काण्टना मत अनुसरण करनेसे हम-लोग देखते हैं, कि बाह्यजन्यमें हम-लोग केवल इन्द्रिय अनुभूति प्राप्त करते हैं, बाह्यजन्य में कि हम-लोगोंके इन्द्रियबोधका उदाहरण कर देता है और कुछ भी नहीं। केवल इन्द्रियजन्य अनुभूति ही ज्ञानप्रदायक नहीं है, इससे हम-लोग कोई भी विषय नहीं ज्ञान सकते। बाह्यजन्यका अस्तित्व छोड़ कर (Bare existence) हम-लोग बाह्यजन्यके और किसीमें अवगत नहीं है। काण्ट इसी प्रकार अज्ञेयवाद (Agnosticism) को सूचना कर गये हैं। अर्थात् हम-लोग बाह्यजन्य सम-भूत है, वह हम-लोगोंका मनःकल्पित पदार्थ मात्र है। कोपर्निकस (Copernicus) ज्योतिषकी दृष्टिको

जो जो मत प्रचार कर गये हैं, काण्टना दृष्टान्तमें भी तदनुसृत है। कोपर्निकसने जिस प्रकार सूर्यको ही सौरजगत्का केन्द्र बतलाया है, उसी प्रकार काण्टने भी जड़जन्यको सब विषयोंका केन्द्र मान कर मनकी ही केन्द्र स्थिर किया है। सौरजगत्का प्रवर्तमान जिस प्रकार सूर्यकी चर्या करके निर्दिष्ट होता है, उसी प्रकार मनके नियमासुसार हम-लोगोंको ज्ञान-राज्यका स्वरूप निर्दिष्ट हुआ करता है।

देव (Space), काल (Time) और केंद्रितरी (Pure notions or the categories of the understanding) हम-लोगोंकी इन्द्रियजन्य अनुभूति (sensations) के ऊपर प्रयुक्त है। यह परस्परकी सन्धिमें किस प्रकार बाह्यजन्यका ज्ञान उत्पन्न करता है, वह इसके पक्षमें लिखा जा चुका है। किन्तु अभिज्ञता (experience) बाह्यजन्यके ऊपर निर्भर नहीं करती है और न यह बाह्यजन्यको समष्टिमात्र (Heap of perceptions) हो है। अभिज्ञताके मध्य एक सामन्वय और ऐक्य (Harmony and co-ordination) है। इस सामन्वयकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई है, काण्टकी तत्सम्बन्धकी सोचांग सन्धिमें निविष्ट की जाती है।

प्रथमतः काण्टका कहना है, कि हम-लोगोंके बाह्यजन्य-सम्बन्धीय ज्ञानमात्र ही देव और काल-परिपक्ष है। किन्तु देव और काल दोनोंको ही विस्तृति (Have extensive magnitude) है। सुतरा हम-लोगोंके बाह्यजन्य-सम्बन्धीय ज्ञानमात्र ही विस्तृति-मूलक है। हम-लोग इन्द्रिययोगसे जिन सब पदार्थोंका विषय जानते हैं, उन सबका पदार्थोंकी विस्तृति है। इस अतःमिद प्रतिज्ञान काण्टके मतसे गणित-शास्त्रकी भित्तिको प्रतिष्ठा की है। काण्टने उक्त प्रतिज्ञा का नाम रखा है इन्द्रियज्ञान-विषयक स्वतःसिद्ध प्रतिज्ञा (The axiom of sensible representation)। कहना नहीं पड़ेगा, कि यह प्रतिज्ञा हम-लोगोंके बाह्यजन्यसम्बन्धीय ज्ञानमात्रके सम्बन्धमें ही प्रयोज्य हो सकती है।

किन्तु उपरि उक्त विस्तृतिमूलक दिक् (Extensive magnitude) हम-लोगोंकी अभिज्ञताकी एक दिक्

जिस प्रकार कैटिगरी (categories) का पदार्थ हम लोगों की बुद्धिगतिक चतुर्गत्त है, उसी प्रकार हम लोगों की चतुर्गत्त में भी (reason) जिसने निर्दिष्ट पारद्विधा है। बुद्धिगत की जिस प्रकार कैटिगरी (understanding) के प्रयोगमें अभिज्ञताके मूलस्वरूप अतःसिद्ध प्रतिज्ञा (axioms of the understanding) की उत्पत्ति हुई है, उसी प्रकार प्रज्ञागतिक पारद्विधाके प्रयोगमें बुद्धिज्ञान अतःसिद्ध प्रतिज्ञाके मूलस्वरूप और ऐतच्छी साधनभूत प्रतिज्ञा (principle) की उत्पत्ति हुई है। प्रज्ञागतिकी यह साधारण क्रिया (principles) बुद्धिज्ञान प्रक्रियाका मूल (in which the axioms of the understanding reach their ultimate unity) है। हम लोगों की बुद्धिगतिक प्रयोगमें कैटिगरी जिस प्रकार वास्तवगतज्ञान प्राप्त करता है, उस प्रकार हम लोगों की प्रज्ञागतिक प्रयोगमें पारद्विधा जिसमें विविध ज्ञानका जन्म नहीं है, केवल बुद्धिगतिक (understanding) की प्रक्रियाका नियामकमात्र (regulative principles of the understanding) है। हम लोगों की इन्द्रियज्ञान ज्ञानमात्र की सीमावध (conditions) है। हम सीमावध ज्ञानके सीमावधकी ओर निर्देश करके ज्ञानका सामञ्जस्य विधान करना प्रज्ञागतिका कार्य है (to find for the conditioned knowledge of the understanding the unconditioned and so completed the unity of knowledge in general)।

प्रज्ञागतिक एकत्व सम्बन्धीय ज्ञानमें हम लोगों के भ्रमकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। कैटिगरीका प्रयोग वा प्रयोगप्रयोग होनेमें ही भ्रमकी उत्पत्ति होती है। जो वस्तु अभिज्ञताके विषयीभूत है, उसमें सम्बन्ध के टिगरी प्रयुक्त हो सकते हैं। जो वस्तु अभिज्ञताके विषयीभूत नहीं है उसमें सम्बन्ध प्रयुक्त होनेमें भ्रमका उत्पत्ति होता है। हम भ्रम वा माया को काण्टने दृष्टांश (transcendental show) कहा है। कैटिगरीकी प्रज्ञागतिकता प्रयोगमें निश्चितिजन तीन भ्रमों उत्पत्ति हुई है। प्रथम पाश्चात् के पश्चात्तमें हम लोग

पचगत है पर्याप्त यह हम लोगों के ज्ञानके विषयीभूत है। हम भ्रमात्मक विज्ञानको काण्टने सम्बन्धमूलक पारद्विधा वा ज्ञान (the psychological idea) कहा है। द्वितीयतः सगुणज्ञान पर्याप्त जगत् सम्बन्धमें हम लोगों के प्रज्ञतज्ञान है, यही विज्ञान (the cosmological idea)। तृतीयतः ईश्वरके अस्तित्वमें हम लोग पचगत हैं, ऐसा विज्ञान (the theological idea of God)। काण्टने कहा है, कि ज्ञानकी ओर ही कर देखनेमें हम लोगों के अस्तित्व सम्बन्धमें कोई प्रमाण नहीं है, किन्तु हमने अस्तित्व के विषयमें हम लोग पचगत हैं। हम लोगों का यह जो विज्ञान है, जो भ्रमात्मक है। काण्टने सबसे पाश्चात् के पश्चात्तत्वात् प्रकृति को सब प्रमाण प्रदर्शित हुआ करते हैं वे भी भ्रमात्मक हैं।

काण्टका कहना है, कि मैं सोचता हूँ वा गिरे चेतन्य है (I think) इसके निश्चय पारमात्मिकत्वमें हम लोगों के ओर कोई ज्ञान नहीं है। मैं सोचता हूँ इसलिये मैं वा पाश्चात् नामक किसी पदार्थका अस्तित्व है। हम प्रकारकी गुणि भ्रमपूर्ण है। गिरी जीवमें जो रूप है, ऐसी कल्पना तथा वयार्थमें जो रूपका अस्तित्व, हम दोनों विषयमें विस्तर प्रतीत है। पाश्चात् के ज्ञानात्मक अस्तित्व है, यह विज्ञान और पाश्चात् के वास्तविक ज्ञानात्मक अस्तित्व ये दोनों एक नहीं हैं। किन्तु हम भ्रमात्मक बुद्धिके अनुसार ज्ञान और प्रकृत अस्तित्वके मध्य कोई फाट्टा नहीं बननाई ज्ञानों, ज्ञानों का प्रकृत अस्तित्वस्वरूप माना गया है। फिर पदार्थमें पाश्चात् के ऐसा अस्तित्व रहने पर भी, यह हम लोगों के ज्ञानकी विषयीभूत नहीं हो सकती। पाश्चात् के ज्ञानों के ज्ञानके विषयीभूत होनेमें पश्चात् पदार्थों को तरह हम भी कैटिगरीप्रयुक्त के प्रयोग होता पड़ता है। किन्तु हम प्रकारकी प्रकृति प्राप्त होता प्रमाण है। ज्ञान ज्ञान ज्ञान के विषयीभूत नहीं हो सकते। पाश्चात् के ज्ञानके विषयीभूत होनेमें एक ही मनुष्य में ज्ञान और ज्ञानका विषय होता पड़ता है। हम प्रकारकी धारणा सम्पूर्ण पश्चात्त है। कल्पनाहलमें गिरी और पाश्चात् के पदार्थका अनु-

मित हो सकती है। किन्तु इसलिये पथरोरों काका प्रकृत पक्षित स्वीकार नहीं किया जा सकता। उपरि-
उक्त युक्तियोंकी सहायतासे काण्डने यह प्रतिपन्न किया
है, कि काकाका पक्षित्व हम लोगोंके ज्ञानके विषयो-
भूत नहीं है और काकाका ऐसा पक्षित्व स्वीकार करके
उस सिद्धिसे ऊपर जो मनोविज्ञानशास्त्र (Rational
psychology)की प्रतिष्ठा हुई है, ऐसे मनोविज्ञान-
की सीमासा भी भ्रमात्मक है। परन्तु ऐसे शास्त्रको
साधकता यह है, कि यह हम लोगोंको प्रसांगिकी
सीमा निर्देश (Limits) कर देता है।

काण्डके मतसे जगत् और जागतिक पदार्थोंके
स्वरूपसे हम लोग पथगत नहीं हो सकते। इन सब
पतौन्द्रिय पदार्थोंके सम्बन्धमें जो हमारे ज्ञानके विषयो-
भूत नहीं हैं, कटिगरी प्रयुक्त होनेसे कितने परस्पर
विरोधितो (autinomies)की उत्पत्ति होती है।
जैसे—जगत्के देशतः और कालतः आदि हैं (has
beginning in time and limits in space) तथा
जगत् उद्गम और काल सम्बन्धमें आदि नहीं है। इन
दोनों विरोधों मतीको जगत्सम्बन्धमें साधकता समान है।
विद्वान् जो जानिके भयसे सभी प्रकारकी पाण्डित्यियों
(autenemies)का रक्षक नहीं किया गया। इन
सब विरोधों मतीको पथतारणा करके काण्डने यह प्रति-
पादन किया है, कि जो सब वस्तु हम लोगोंके ज्ञानकी
विषयीभूत हैं, वही के सम्बन्धमें कटिगरी प्रयुक्त हो सकती
है। जो ज्ञानके विषय हैं, उन समस्त अतिमानव
पदार्थों (extra-mental existences)के सम्बन्धमें
यदि कटिगरीका प्रयोग किया जाय, तो पूर्वोक्त रूपसे
विरोधको उत्पत्ति होता है। सुतरां जगत्का प्रकृत-
स्वरूप काण्डके मतसे ज्ञानकी विषयीभूत नहीं है।

ईश्वरके अस्तित्व सम्बन्धमें भी काण्डका मत पूर्वोक्त
प्रकारका है। ज्ञानको और देखनेसे ईश्वरके अस्तित्व
का कोई प्रमाण नहीं मिलता। साधारणतः ईश्वरका
अस्तित्व प्रमाणित करनेके लिये जो सब युक्तियाँ प्रयुक्त
हुआ करती हैं, वे भ्रमात्मक हैं। काण्डका कहना है, कि
ईश्वरका अस्तित्व प्रमाणित करनेके लिये साधारणतः
तीन श्रेणियोंकी युक्तियों पथतारणा देखी जाती है।

प्रथम तत्त्वज्ञानमूलक या अण्टोलॉजिकल युक्ति (Onto-
logical argument)। यह युक्ति यों है—हम लोगोंके
मनमें सर्वापेक्षा नित्य और सत्य पदार्थ (a being the
most real of all)-के अस्तित्व सम्बन्धमें धारणा या
विश्वास है। किन्तु जो सत्य है, उसका अस्तित्व भी
अवश्यभावो है, सुतरां ईश्वरका अस्तित्व है। काण्डका
कहना है, कि केवल अस्तित्वमात्र (Bare existence)
कहनेसे उस वस्तुका कोई ज्ञान हमलोगोंके नहीं
होता। फिर 'अण्टोलॉजिकल' युक्तिपूर्ण भ्रम क्यों है ?
इसके उत्तरमें काण्डने कहा है, कि यह युक्ति ईश्वरके
अस्तित्व सम्बन्धीय धारणाप्रमाणसे ईश्वरका प्रकृत
अस्तित्व (from idea to actual existence) प्रति-
पादन करनेकी कोशिश करती है। ईश्वर सत्य है, ऐसी
हम लोगोंको धारणा है, सुतरां इस धारणाका अस्तित्व
स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु धारणाको अस्तित्व
से धारणाको निर्दिष्ट वस्तुका अस्तित्व स्वीकार करने-
का कोई कारण देखनेमें नहीं आता। द्वितीयतः
ईश्वरका अस्तित्व प्रमाणित करनेके लिये जगत्सत्त्व-
मूलक युक्तियाँ (cosmological argument) प्रयुक्त
हुआ करती हैं। इस श्रेणियोंकी युक्तिने जागतिक कार्य-
कारण सम्बन्धसे ईश्वरका अस्तित्व प्रतिपन्न किया है।
जागतिक सभी कार्यावली कारण-प्रयोगसे संचलित हुई
है। जागतिक व्यापार कार्यकारणको श्रृङ्खलामात्र है
और ईश्वर इस कार्यकारण श्रृङ्खलाके शिरोदेश पर
वर्तमान है। वे आदिकारण स्वरूप (the first-
cause) हैं। ईश्वर स्वयं कारणके विषयीभूत नहीं
हैं। काण्डका कहना है, कि कार्यकारण श्रृङ्खलाका
अन्तम न कह कर उसके बदले ईश्वर श्रृङ्खला ही प्रयोग
किया गया है। कार्यकारणसम्बन्ध-ज्ञान (Category
of Causality) हम लोगोंके इन्द्रिय ज्ञानके लिए ही
प्रयुक्त हो सकता है, किन्तु इन्द्रिय ज्ञानसे हम लोग
किस प्रकार ईश्वरज्ञानको समझ सकेंगे, यही विषेय
विषय है। परन्तु एक आदिकारणके अस्तित्वका
स्वीकार करनेसे भी 'ईश्वर है' ऐसा प्रतिपन्न करनेमें
पुनः तत्त्वज्ञानमूलक या अण्टोलॉजिकल युक्ति (Onto-
logical argument)का आश्रय लेना पड़ता है,

पथ सुगम हो जाते हैं। ये तीनों आस्ट्रिया हम लोगों के ज्ञानराज्यमें एक स्थापन के माधनभूत हैं।

अभी यह स्मरण रखना चाहिये, कि आत्मा जगत् और ईश्वर हम लोगों के ज्ञान के वदिभूत होने पर भी उनका जो अस्तित्व नहीं है, यह निर्देश नहीं किया जा सकता। ये हम लोगों के ज्ञान के विषयोभूत नहीं हैं, इसका प्रकृत तात्पर्य यह, कि ये सब हम लोगों के ज्ञान के नियमाधोक्त नहीं हैं। ज्ञान के हिसाबसे इनका अस्तित्व अवगत नहीं होने पर भी, काण्टने दूसरे हिसाबसे इसका अस्तित्व प्रतिपादन किया है।

इसके बाद "प्रज्ञागतिका ज्ञान विचार" (critique of the pure speculative Reason) नामक ग्रन्थ का संचित सार दिया जाता है। इसमें यह देखा जायगा, कि ज्ञानतत्त्व (theory of knowledge) प्रतिपादन ही इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य है और ज्ञान मूलक छत्ति ही (cognitive faculties) इसका प्रधान आलोच्य है। "प्रज्ञागतिका क्रियागतिका विचार" (Critique of Practical Reason) नामक ग्रन्थमें हम लोगों के इच्छाछत्ति (Conotion or Volition) के प्रवृत्तिमयधर्मों पर आलोचना की गई है।

इच्छा प्रज्ञागतिकी प्रवृत्ति निर्देश कर देती है। प्रज्ञा इच्छा के उपयोगसे क्रियायोग्य हो कर क्रियात्मक की छत्ति करती है।

प्रज्ञागतिका कार्य यहाँ पर 'सृष्टिकानोय' (Creative, not regulative) है। प्रज्ञागतिकी अपनी इच्छागतिका उद्बोधन करके अपनी इच्छा को कार्य में परिणत करती है। अतः इच्छा बाह्यवस्तु-प्रणीत होती है।

पहले यह प्रतिपादित हुआ है, कि काण्ट के मतानुसार प्रज्ञा का ज्ञानमूलक अंश (Speculative reason) वस्तु का स्वरूपज्ञान प्रदान नहीं कर सकता। किन्तु प्रज्ञा की क्रियागतिका (Practical reason) जिस प्रकार इस ज्ञानात्मक माया को वदिभूत है और जिस प्रकार हम लोगों की स्वतन्त्रज्ञान देती है, काण्टने अपने ग्रन्थ के इस अंशमें इसका प्रतिपादन किया है।

बाह्यजगत् की यदि हम लोग अपने ज्ञान के विषयों भूत मान लें, तो उसे अपने सामयिक नियमों के अधीन

करना होगा। अतएव बाह्यजगत् की अवस्थामें रूपान्तरित हो कर हम लोगों के मनोराज्यमें प्रवेगनाम करता है। यथार्थमें बाह्यजगत् तब कर हम नीति का जो विधान है, वह मनस्कविद्य है। केवल अस्तित्व छोड़ कर हम लोग इसका और कोई विषय नहीं जानते। किन्तु हम लोगों की इच्छामूलक कार्यबलों हम लोगों के मनमें उत्पन्न हो कर केवल बाह्यजगत् में प्रकाश पाते हैं। इस कारण हम लोगों की इच्छाछत्ति आत्मा का प्रकृत स्वरूप निर्देश करती है।

बाह्यज्ञान की उत्पत्ति मन और बाह्यजगत् के संयोगसे हुई है। किन्तु इच्छात्मक कार्यबलों (vountary actions) को उत्पत्तिका हेतु माना है। प्रत्यक्ष देखनेमें आता है, कि हम लोगों को इच्छाछत्ति सभी समय प्रज्ञानियमित हो कर कार्य नहीं करती। बाह्यवस्तुओं में भी अनेक समय हम लोगों को इच्छा की गतिकी नियन्त्रित करती है। काण्ट का कहना है, कि हम लोगों को प्रवृत्ति सर्वथा प्रज्ञायोग्य (Rational) नहीं है। इन्द्रियछत्ति के अधीन होने के कारण (Sensuous nature), बाह्यजगत् हम लोगों को इच्छा के ऊपर प्रभाव डालता है। हमारी सुखतामकी इच्छा बाह्यवस्तुपरवर्तित है। किन्तु नैतिक नियमावली ही (moral laws) हम लोगों को इच्छाछत्तिकी प्रधान नियामक है। इच्छाछत्ति के पक्षमें नैतिकयासन अनतिक्रमणीय है। इसको क्षमता और सारवत्त्वात्मक स्वीकार करने का कोई उपाय नहीं। नैतिकयासन प्रभु की तरह इच्छाछत्ति के ऊपर आदेश करता है और यह आदेश सर्ववशको अपेक्षा नहीं रखता। the moral law is a categorical imperative)। नैतिकयासन सिद्ध अवस्थितगत इच्छा के नियामक नहीं है, प्रज्ञायोग्यतामकी ही इच्छाछत्ति नैतिक नियम के शासनाधोक्त है। अतएव नैतिक नियम सार्वभौम (universal) है। नैतिक शासन-प्रज्ञाशक्तिका स्ववर्तित नियममात्र (autonomy of practical reason) है। काण्टने नैतिक कार्य को निम्नलिखित लक्षण समुदाय है,—किसी कार्य को सम्पन्न करनेमें उस कार्य का प्रतीक इच्छा के अन्तर्हित मिलित वा नैतिक मूल यदि सार्वभौमत्वमें

प्रयोजन हो, तो यह कार्य यथार्थमें नैतिकप्रयत्न होगा।

नैतिकशासन सुषुप्तःपरिचित है। सुषुप्तात्मको धामामे या दुःसुनिद्रितिके विषे काण्टका मत है, कि नैतिककार्यं पशुप्रति नहीं होता। हम लोगों को ईश्वरावृत्ति जब वास्तव्युत्प्रेषित होती है, तब सुषुप्तात्म हो हमारे कार्यावलीका परम मन्त्र हो जाता है। सुषुप्तात्मके उत्प्रेषणे कार्यनिर्वाह व्यवसायात्मिका-मुद्रिमूलक नैतिक नियमको पशुध्यामन सामान्यामके ऊपर दृष्टिमान नहीं करता, यह सर्वथा निश्चित है। यदि कालमात्र व्यक्तित्व सुषुप्तःतुको छाया नैतिक-कार्यके ऊपर पतित हो, तो उसी समय कार्यको नैतिक प्रकृति निमग्न हो जाती है। यद्यपि प्रति मानवक को स्वामात्मको मोति (self-love) है, उसे भी काण्टने एक मनुष्यनहीं मानता। नैतिक शासन सुषुप्तात्मा ही नहीं है, इस कारण काण्टके मतानुसार नैतिक-शासन स्वतः ही हम लोगों के प्रेमको सामर्थ्य नहीं है, भक्ति को सामर्थ्य है। उसी प्रकार कर्तव्यकार्यका भी हम लोग चिन्तित करने में माय पालन करते हैं।

नैतिक शासनके अस्तित्वमें काण्टने आत्मा और ईश्वरका अस्तित्व प्रतिपन्न किया है। काण्टका कहना है, कि जीवनका सर्वश्रेष्ठ मङ्गल क्या है? इस प्रश्नके उत्तरमें सुषुप्तधर्मको (Virtue) जीवनका परममङ्गल नहीं कह सकते। सुषुप्तविश्व धर्म मङ्गलपदवाच्य नहीं है। सुतरां सुषुप्तनिमित्त धर्म ही जीवनका सर्वश्रेष्ठ मङ्गल है। काण्टने पहले ही कहा है, कि धर्म पर्याप्त नैतिक कार्यावलीके साथ सुषुप्तका कोई प्रकृतितत्त्व सम्बन्ध नहीं है; धर्म सुषुप्तका जनक नहीं है। किन्तु जीवनका भी परममङ्गल है, यह धर्म और सुषुप्त दोनों की पराकाष्ठा (Supreme virtue and Supreme felicity) है। किन्तु यही प्रश्न यह हो सकता है, कि इस प्रकार दो विभिन्न प्राकृतिक पदार्थोंका संयोग किस प्रकार साधित हुआ है? काण्टका कहना है, कि इस प्रश्नकी यथावत् समाप्ति करनेमें ईश्वरका अस्तित्व को ही करना पड़ेगा (Postulate the existence of God)। नैतिक चाहेदिक का पालन हम लोगोंको परममङ्गल कर्तव्य है। अतएव हम सब

आर्थिका परिचयान यदि सुषुप्तमय न हो, तो नैतिक जीवनकी कोई भित्ति नहीं रहती। कारण, परिचयान-विशम पदार्थसे प्रति मानव इष्टवत्का स्वाभाविक प्राप्ति नहीं रह सकती। हमें ईश्वरमें धर्म और सुषुप्तके मन्त्रा संयोग स्थापन कर दिया है। सुषुप्तात्मके विषे धर्म पशुप्रति नहीं होता। सुषुप्त पशुप्रति प्रमङ्गलका फलमात्र (Felicity not the motive but result of virtuous action) है।

धर्मतत्त्वमें काण्टने आत्माका अमरत्व (Immortality of the soul) प्रतिपन्न किया है। धर्मको पराकाष्ठा या सम्पूर्णतामात्र यदि जीवनका परम उत्प्रेषण हो, तो इस प्रकारकी व्यवस्थामात्र काण्टके मतमें एक जन्ममें सम्भव नहीं है, अगमात्तरका अस्तित्व परममङ्गल होकार्य है। मनुष्य ईश्वरपदमात्र है, एक जन्ममें धर्म की सामान्य उत्पत्ति ही जीवनमें सम्भव है। एक जीवनको उत्पत्तिकी सामान्यवत्त्व मान लेनेमें धर्मस्य जन्ममें हम लोग धर्म की पादमंथ्यानीय पूर्व-मात्रा पर पक्ष्य मन्त्र हैं। यह धर्मस्य जन्मपक्ष्य एक ही आत्मके पक्षमें विधाय है। सुतरां परममङ्गल प्राप्ति यदि यथार्थमें जीवनका अस्तित्वमात्र ही हो, तो आत्माका परममङ्गल धर्ममङ्गल होकार्य करना पड़ेगा।

उपरिष्ठक प्रस्तावने देना जाता है, कि काण्टने नादृष्टानकी दृष्टिमें जिन सब पदार्थोंका अस्तित्व धर्मो-कार किया है, नैतिकज्ञानको महाप्राप्तिमें उनका अस्तित्व प्रतिपन्न किया है। हमें ईश्वरका पशुप्रति-दित प्राण और नैतिक जगत्का प्राण्य प्रतीयमान होता है।

काण्टने यद्यपि नैतिकतत्त्वमें जिन प्रकार नैतिक जीवनका प्रयोजनित भाव (Rationalistic side) परिरुद्ध कर दिया है, धर्मतत्त्व सम्बन्धमें काण्टका मत भी उसी प्रकार है। "Religion within the Limits of Mere Reason" नामक ग्रन्थमें काण्टने धर्मके वरुद्ध ईश्वरस्य नैतिक शासनको ही धर्मका प्रकृतवस्तुत्व बतलाया है। कर्तव्य धर्म ही काण्टके मतमें धर्मका मन्त्र है। किन्तु कर्तव्यधर्मको ईश्वरका चाहेदिक ज्ञान का पीछे उगला पालन करनेमें

उपे पादिष्ट धर्म (Revealed Religion) और किसी कर्म की कर्त्तव्य समझ कर उसने अनुष्ठान करनेके पोछे यदि कर्म की ईश्वरादिष्ट समझा जाय, तो उक्त रूपके धर्म की प्राकृतिक-धर्म (natural religion) कहते हैं। धर्म सम्प्रदाय (church) काण्टके मतसे ईश्वर-प्रवर्तित नैतिकशासनाधीन समाजमात्र (Union of all good men under the moral government of God) है। प्रज्ञासम्पन्न विश्वास (rational belief) धर्म सम्प्रदाय (church) की भित्ति स्वरूप है और इसी प्रकारका विश्वास धर्म सम्प्रदायके सार-भोमत्वकी सूचना करता है। क्योंकि जो विश्वास प्रज्ञासम्पन्न है, वह सर्ववादीमन्यत है। इस प्रकार मतभेद होनेके कारणका एकान्त असम्भाव है। इनके बाद काण्टने प्रकृत धर्म सम्प्रदायके लक्षण बतलाये हैं जिनका सखे विस्तार हो जानेके भयसे नहीं किया गया।

काण्टने 'क्रिटिक पार्थ प्योर रीजन' (The Critique of Pure Reason) नामक ग्रन्थामें हम लोगोंकी ज्ञानवृत्तिके सम्बन्ध (understanding) में आलोचना की है। उनके दृग्मनके द्वितीयार्थमें प्रज्ञाकी क्रियाशक्ति (will) के सम्बन्धमें तथा उक्त ग्रन्थके तृतीय भाग "अनुभूति-वृत्तिका विचार" (The Critique of Judgment) नामक अंशमें अनुभूति (feelings) के सम्बन्धमें आलोचना की गई है। यह अंश पूर्ववर्ती दोनों अंगका संयोग विधान करता है। क्योंकि हम लोगोंकी अनुभूतिवृत्ति (feeling) बुद्धिवृत्ति और रज्जावृत्ति (Cognition and volition) की मध्यपर्यायभूत है। अनुभूति, हृदिमूलकज्ञान (Judgment) बुद्धिवृत्ति (Understanding) और प्रज्ञा (reason) के मध्य स्थानीय है। बुद्धिवृत्ति वाद्यज्ञगत्वा ज्ञान और प्रज्ञाकी क्रियाशक्ति नैतिकज्ञगत्वा क्रियाबलका परिचय देती है। दोनोंमें किसी विशेष सम्बन्धका अस्तित्व नहीं देखा जाता। किन्तु अनुभूतिमूलक ज्ञान (Judgment) सार्वभौमके हिमावसे किसी विशेष पदार्थमें रह कर उसकी प्रकृति निरूपण करता है।

इस अंतिके अर्थात् अनुभवमूलक ज्ञानवृत्ति (Judgment) के समये हम लोग बाह्यप्रकृतिके वस्तुके

मध्य एकत्वका मूल (ground of unity) देख पाते हैं। प्रकृतितत्त्व एकत्व किम प्रकार प्रकाश पाता है, इसकी पर्यालोचना करनेमें यह जाना जाता है, कि प्रकृतिके अन्तर्निहित शिल्पकौशल (the notion of design in nature) प्रकृतिके एकत्व का परिचय देता है। साधारणतः शिल्पकौशल वा design कहनेसे हम लोग जो समझते हैं, वह मान्य हो जानेसे ही उक्त प्रकृति के एकत्व वाच्यका याथार्थ्य प्रतिपन्न होगा। ज्ञानकी ओरसे देखनेसे (on the subjective side) शिल्पकौशल वा डिजाइन का अर्थ होता है एक स्व-मन्मूर्त और उद्देश्योक्तभाव (a definite idea) प्रकृतिमें उस भावकी अभिव्यक्ति ही प्रकृतिके अन्तर्निहित शिल्पकौशलका प्रकृत स्वरूप है। किन्तु प्रकृतिमें इस अभिव्यक्ति की प्रक्रिया किस प्रकार होती है? हम लोग साधारणतः जहां शिल्प कौशल देख पाते हैं, वहां एक अन्तर्निहित उद्देश्य (end) का अस्तित्व भी अवश्यभावसे ही और अन्तर्निहित यह उद्देश्य सभी प्रक्रियाओं का बन्धनशक्तिस्वरूप (bond of unity) है। मूलउद्देश्य नहीं जाननेसे हम लोग केवल प्रक्रिया का अंग देख कर शिल्पकौशलका ज्ञान नहीं जान सकते। शिल्पीका उद्देश्य क्या है तथा इस उद्देश्यकी कार्यपरिणति जहां तक साधित हुई है, यह जाने बिना केवल प्रापश्य अंग देख कर विषयका याथार्थ्य ज्ञानना असम्भव है। अतः अन्तर्निहित उद्देश्यका विकास ही शिल्पकौशलका मूल और उपादान उद्देश्य विकासका साधनभूत है।

जगतमें साधारणतः उद्देश्य और तत्समाधनभूत उपादानका सामञ्जस्य (adoption of means to end) प्रायः दृष्टिगोचर हुआ करता है। काण्टके मतसे यह प्राकृतिक सामञ्जस्य दो प्रकारसे गृहीत हो सकता है, प्रथमतः हम लोगोंकी मनोवृत्तिके ऊपर इनका कार्य किम प्रकार है, उनका निर्णय (subjectively conceived), द्वितीयतः पदार्थगत प्रकृति-निर्णय (objectively conceived)। पहलेसे हम लोगोंके 'सौन्दर्य ज्ञान' (aesthetic judgment) की ओर दृष्टिसे उद्देश्यसूचक ज्ञान (teleological judgment) की उत्पत्ति हुई है।

सौन्दर्यज्ञानविचार (Critique of Aesthetic judgment) नामक ग्रंथमें सौन्दर्यको प्रकृतिके सम्बन्धमें आलोचना है। काण्टका कहना है, कि सौन्दर्यज्ञान जब हमलोगोंकी उपनिबद्धे ऊपर भनेकायमें निर्भर करता है, तब सौन्दर्यका प्रकृतितत्त्व जाननेमें हम लोगोंके सौन्दर्यज्ञानका विशेषण आर्थशून्य है। काण्टकी मोर्मांशाका फल बहुत मंछोपमें लिखा जाता है।

पहला, सुन्दर वस्तु (the beautiful) मनमें आपही आप स्वायं संस्त्रवहीन आनन्दको बढ़ाती है। जो हमारे तथा दूसरे व्यक्ति के पक्षमें हितकर वा मनोमद है वरमं हम लोगोंका स्वायं संस्त्र है। सुन्दर वस्तु देखनेसे जो आनन्द उत्पन्न होता है, उसमें ऐसा भाव नहीं है। सुन्दर वस्तु आप ही आप आनन्द देती है। केवल आनन्द देती है, इसी कारण सुन्दर वस्तु जो हम लोगोंकी प्रीतिजनक है भी नहीं, प्रीतिजनकत्व इसका स्वभावगत है। दूसरा, सुन्दर वस्तु देखनेमें जो आनन्द होता है, वह सार्वजनिक (universal) है, व्यक्तिगत आह्लाद नहीं है। जो वस्तु मेरे पक्षमें प्रीतिकर है, वह दूसरेके पक्षमें प्रीतिकर नहीं भी हो सकती है। किन्तु जो सुन्दर है, वह सबके पक्षमें प्रीतिजनक है। तीसरा, वस्तु विरूपका उद्देश्य (end) सौन्दर्यका स्वरूप नहीं है, आकारगत सामञ्जस्य सौन्दर्यका प्रकृतिस्वरूप है। चौथा, सुन्दर वस्तुकी हृदयप्राप्ति आवश्यक (necessary) है। सौन्दर्यके उपरि-उक्त लक्षण बतला कर काण्टने महामहिम वस्तु (the sublime) का स्वरूप निर्देश किया है। उन्होंने कहा है, कि महामहिमत्व (sublimity) प्रकृतिका अन्तर्निहित भाव नहीं है, यह केवल हम लोगोंके मानसिकभाव प्रकृति पर प्रतिबिम्बित है। वास्तव्योन्नत समुद्र विस्मय और महिमामण्डित नहीं है, उसे देख कर हम लोगोंकी मनमें जो भाव उदय होता है, वही महामहिम (sublime) है। विस्तार ही ज्ञानके भयसे अन्यान्य लक्षणोंका उद्देश्य नहीं किया गया।

उद्देश्यसूचक ज्ञानविचार नामक ग्रंथ (critique of teleological judgment) में उद्देश्य और तत्साधनभूत उपादानके सामञ्जस्य (objective adaptation)

सम्बन्धमें पर्यालोचना की गई है, प्राकृतिक सामञ्जस्य दो प्रकारका है, बाह्य (external adaptation) और आन्तरिक (internal adaptation)। एक उद्देश्यके प्रति लक्ष्य करने तत्साधनोद्देश्यसे विभिन्न वस्तुओंके मध्य सम्बन्ध स्थापित होनेसे उसे बाह्य सामञ्जस्य कहते हैं। जैसे, समुद्रतीरस्थ बालुकाराशि वाहनवृक्षकी वृद्धिको उपयोगी है। आन्तरिक सामञ्जस्यके बिना विभिन्न पदार्थयोगका उद्देश्य सञ्चित नहीं होता, उद्देश्य (end) अन्तर्निहित रह कर तत्साधनभूत उपादानोंको नियन्त्रित करता है और प्राणीके शरीरमें इस योगका सामञ्जस्य देखनेमें पाया है। शरीरके सभी कार्य प्राण संस्थितिके ऊपर संचा करके निर्वाहित होते हैं और प्राण शरीरके ऊपर प्रभाव डाल कर अपने क्रिया नियन्त्रित करता है। इसी प्रकार दोनोंकी क्रिया और प्रतिक्रियाके सामञ्जस्यकी दृष्टि हुई है।

काण्टके दर्शनमें यूरोपीय दार्शनिकजगत्में जो सी अपने गोटी जमाई थी, अन्य किसी दर्शनके भाग्यमें बेरा बढा न था। दार्शनिक प्रयास केमिनव मतके वैचित्र्यके कारण प्रसिद्ध व्यक्तिमात्रकी ही दृष्टि दर्शनग्रन्थकी ओर आकृष्ट हुई थी। काण्टके मतानुवर्त्ती पण्डितोंके मध्य रिनहोल्ड (Reinhold), बार्डिली (Bardili), शुलज (Schulze), फ्राइज (Fries), क्रूग (Krug), बाउटरवेक (Bouterweck) आदि पण्डित ही विशेष प्रसिद्ध हैं। उपरि-उक्त पण्डितगण काण्टोय दर्शनका समर्थन और व्याख्या कर गये हैं।

काण्टकी दार्शनिक भित्तिके ऊपर जो अपने दर्शनको प्रतिष्ठा कर गये हैं, उन दार्शनिकोंके मध्य फिकटे (Fichte) का नाम सर्वश्रेष्ठ प्रसिद्ध है।

फिकटे-प्रवर्तित दर्शन काण्टके दर्शनका साक्षात् फलस्वरूप है। काण्टके प्रवर्तित दार्शनिकोंके मध्य द्वैतवाद (Dualism) का समावेश देखा जाता है। फिकटेके मतानुसार काण्टके दर्शनको मूलभित्ति ज्ञानतत्त्व (Theory of knowledge) की पर्यालोचना करनेसे इस द्वैतवादका पक्षिल स्वरूप नहीं किया जा सकता। फिकटेने कहा है, कि काण्टदर्शनकी मूलभित्तिके यदि न्यायमय प्रमाणोंसे प्रमाणित न हो

जाय, तो फिकटेके सम्प्रवर्तित मत धर्मात् तत्त्व-
र्णित पक्ष तत्वाद पर पहुँचना पड़ेगा।

फिकटेका दर्शन काण्टोय दर्शनके ऊपर प्रति-
ष्ठित है, यह पहले ही कहा जा चुका है। अतः
फिकटेकी काण्टके साथ एक खोखीके दार्शनिकोक्ति
गिन सकते हैं। किन्तु इस खोखीके दार्शनिकगण
काण्टके दार्शनिक मतको कुछ भी ग्रहण नहीं करते।
दार्शनिक जैकबि (Jacobi) इस सम्प्रदायके प्रवर्णो
हैं। काण्टने अपने दर्शन (Critique of Pure Reason) में
जिस प्रत्येकवादाका प्रसार किया है, उससे लोगोंने मनमें
पागलता और भौतिका सञ्चार होता है। ज्ञान (em-
pirical knowledge) ईश्वर और आत्माके अस्तित्व का
विषय कुछ भी नहीं जानता, मानवके मनमें यह
विश्वास निराशा और विपदाका सञ्चार करता है। यद्यपि
'प्रैकटिकल रिजन' धर्ममें काण्ट ईश्वर और आत्माके
अस्तित्वको प्रतिष्ठा कर गये हैं, किन्तु वह प्रमाण
हारा रहित न हो कर स्वीकृत विषयके जैसा
रहते हुए है, इस कारण ऐसे अस्तित्व-स्वीकारमें
मनुष्यके मनको परिपुष्ट नहीं कर सकता। जैकबि
(Jacobi) प्रवर्तित दर्शन काण्टोय दर्शनकी प्रति-
क्रियासे सत्यक हुआ है। काण्टके मतसे जो प्रमाणके
विषयीभूत है, वह विश्वासयोग्य नहीं है धर्मात् उसके
ऊपर हम लोगोंका विश्वास नहीं हो सकता। जैकबि
ने इसका विपरीत मत प्रसार किया है। उनका कहना
है, कि जो हमारे ज्ञानकी उच्चसोमा पर अवस्थित है,
जैसे आस्तिक्य ज्ञान इत्यादि, वह प्रमाणके पतीत
है; प्रमाणकी प्रक्रियाओंको इस ज्ञान पर पहुँच नहीं
सकते। सुतार् इस सब विषयोंका ज्ञान हम लोगोंका
अनुभूतिमूलक ज्ञान (feeling) है, मनका, अति-
रिक्त आस्तिक्य बुद्धि (belief or intuitive cogni-
tion) के ऊपर निर्भर करता है। जैकबिने काण्ट-
दर्शनका प्रतिपाद करके स्वप्रवर्तित इस आस्तिक्य
निष्ठासमलक, दर्शन (Faith philosophy) का
प्रसार किया है।

फिकटे-प्रवर्तित दर्शन (Fichtean Philosophy)।

काण्ट वादग्रन्थके अस्तित्वको स्वीकार करने

कार न कर सके थे। वादग्रन्थका स्वयं हम लोगोंने
प्रवर्ण्य होने पर भी वादग्रन्थ हम लोगोंने मनके ऊपर
अपना प्रभाव डालता है। वादग्रन्थकी प्रकृति
नये ज्ञानने पर भी मनके ऊपर क्रिया (Outer in-
pact) हम लोग सफल कर सकते हैं। फिकटेके
मतसे काण्टके निर्दिष्ट वादग्रन्थका अस्तित्व भ्रमा-
त्मक है। हम लोगोंने स्वतन्त्र तथा विभिन्न प्रकृतिक
वादग्रन्थ नामक किन्ने पदार्थका अस्तित्व निर्देश
करना प्रसङ्गत है। किन्ने प्रकारकी युक्तिवा प्रकृतिक
कारके फिकटे उपरि लक्ष्य तत्त्व पर पहुँचे हैं, सचिमें
उसका उल्लेख किया जाता है।

हम लोगोंके इन्द्रियज्ञानके प्रत्येक कार्यमें (in-
every perception), ज्ञाता (subject or ego)
और ज्ञानका विषय (Object or non-ego) ये दोनों
धर्म विद्यमान हैं। ये दोनों ही धर्म इतना ही स्पष्टना
करते हैं तथा इन दोनोंमेंसे एक दूसरेका स्वप्नरूप है
या दूसरेसे भाविभूत हुआ है, यदि इसे प्रमाणित कर
सकें, तो चर्चतत्वाद मतको प्रतिष्ठा होगी। यदि ज्ञाता
धर्मात् मन (ego) अथवा पदार्थ धर्मात् वादग्रन्थ
(non-ego)से सत्यक हुआ है, यदि यह प्रतिपन्न क्रिया
जाय धर्मात् मन कहका विकारमात्र है, स्वतन्त्र कोई
पदार्थ नहीं है यह दिखाया जाय तो जड़वाद (mat-
terialism) को प्रतिष्ठा होगी। अथवा अथवा पदार्थ (non-
ego) ज्ञातासे स्वतन्त्र हुआ है धर्मात् वादग्रन्थ, मनसे
कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है, यह प्रतिपन्न होनेसे
अध्यात्मवाद वा आदर्शवाद (idealism) को
प्रतिष्ठा हुई ऐसा सम्भनना चाहिये। फिकटे शेषोक्त
मनके प्रवर्तक है। उन्होंने कहा है, कि काण्टने ज।
वस्तुके स्वरूप (things in themselves)का अस्तित्व
स्वीकार किया है। उसका मूल क्या है? काण्टका
कहना है, कि वस्तुके स्वरूपमें हम लोगोंको इन्द्रि-
यानुभूति (sensation) का उद्बोधन किया है। फिकटे
कहते हैं, कि इन्द्रियानुभूतिसमूह (sensation) का
कारण निर्देश करनेमें वादग्रन्थको अस्तित्व प्रपन्न
अभावक है। वादग्रन्थ जो मनसे स्वतन्त्र पदा-
र्य है, किस प्रकार मनके ऊपर अपनी क्रिया फोला सकता

हे ? सुतरां 'वाह्यजगतः मनःछट पदार्थ' है, अति-
मागम पदार्थ नहीं (not a tramental thing) है।

फिकटेका दादा है, कि आत्मा (ego) सब
'वस्तु' का सत्ताधार है और इसीसे सभी विषयों की
उत्पत्ति हुई है। यह आत्मा कहनेसे व्यक्तिगत आत्म-
ज्ञान (individual ego) का बोध नहीं होता,
विश्वजनिक ज्ञान से मूलस्वरूप परमात्मा वा मूलप्रज्ञा-
शक्ति (universal ego or universal reason) का
बोध होता है। दार्शनिक फिकटे ही सबसे पहले
डायलैक्टिक प्रथा (Dialectic method) का सूत्र-
पात कर गये हैं। काण्टने अपने दार्शनिक मतके प्रचार-
में फिकटे की तरह किसी एक तत्त्व (principle) की
अवतारणासे अन्यान्य तत्त्वों का अस्तित्व प्रमाणित
(deduce) न करके अभिज्ञानमूलक प्रथा (Empiri-
cal method) के ऊपर बिलकुल निर्भर किया है।
फिकटेके मतसे ज्ञानका क्रम इस प्रकार है, दो विरोधी
पक्षों वा प्रतिपक्षोंके समन्वय (synthesis) से तृतीय
पक्ष की अर्थात् समन्वय पक्ष की उत्पत्ति हुई है। यह
तृतीय प्रतिपक्ष अपर दोनों की समाधारमात्र (mere
juxtaposition) नहीं है। तृतीय प्रतिपक्ष नूतनतत्त्व-
की अवतारणा करती है। इसी प्रकार द्वितीय समन्वय
पक्ष की विरोधी प्रतिपक्षा का स्थापन करके दोनोंके योगसे
फिर तृतीय समन्वय पक्ष (third synthesis) की
उत्पत्ति होती है। ज्ञानका परवर्तीक्रम भी इसी प्रकार
है। फिकटेने एकत्वज्ञान (the principle of iden-
tity) को हम लौगीक ज्ञानका मूल वस्तुसाधक है।
एकत्वज्ञान सश्रय के अतीत है, इसके नहीं रहनेसे हम
लौगीक ज्ञानसाधक ही नहीं रह सकते। फिकटे-प्रव-
र्तित यह सूत्र क—क, इसी आधारमें निर्देश किया
जा सकता है। अथवापन = अथवापन, इस प्रतिपक्ष
द्वारा अथवापन का अर्थ ज्ञानका मूल है, वह सचि-
त होता है। यह प्रतिपक्ष आत्मज्ञानका कर्ता और निधय
दोनों ही है। द्वितीय तत्त्व भा फिकटेने निम्नलिखित
प्रकारमें प्रकाशित किया है, क—न नहीं है—क
(Non—A is not = A) अर्थात् उक्त प्रतिपक्ष अन्त-
र्भावमें निरपेक्ष नहीं है, क्योंकि क—क, अर्थात् क—

खतन्त्र वस्तुके अस्तित्वकी यदि कल्पना की जाय, तो
पहले क—का अस्तित्व स्वीकार करना पड़ेगा। क्योंकि
क के बीधा है, यह नहीं जाननेसे क—के ज्ञान की संभा-
सना नहीं। अनात्म वस्तु नहीं है = आत्मा (non-ego
is not = ego); इस प्रतिपक्षसे यह जाना जाता है, कि
अन्तर्मासे स्वतन्त्र वस्तु का अस्तित्वज्ञान आत्मज्ञानके ऊपर
निर्भर करता है। क्योंकि आत्मा (ego) क्या है,
यह ज्ञान पंजरी नहीं होनेसे अनात्मवस्तु (non-ego)-
का ज्ञान हो को नहीं सकता। सुतरां आत्माके अस्तित्व
ज्ञान (ego) की पहली प्रतिपक्ष कानो होगी। उपरोक्त
दो प्रतिपक्ष, फिकटेके मतमें यथाक्रम पूर्वपक्ष (thesis)
और उत्तरपक्ष (antithesis) की स्थानीय है। सुतरां
देखा जाता है, कि फिकटेने द्वितीय प्रतिपक्षमें आत्म-
ज्ञान और अनात्मज्ञानमूलक (ego and non ego)
हेतुवादका मन्त्रिय किया है। यदि आत्मज्ञान ही
सभी ज्ञानों का मूल हो और आत्माका अन्य निरपेक्ष
अस्तित्व सबसे पहले स्वीकार करना पड़े, तो अनात्म-
वस्तु (non-ego) के अस्तित्वज्ञानकी उत्पत्ति किध
प्रकार साधित हुई है ? अनात्म वस्तु का अर्थ आत्माका
विपरीत धर्मात्मक है। किन्तु अस्तित्व यदि एकमात्र
स्वीकार ही न किया जाय, तो अनात्म वस्तु आत्माके
ही अन्तर्गत है, ऐसा स्वीकार करना पड़ेगा। किन्तु
अनात्म कहनेसे आत्माका विपरीतप्रवर्तक पदार्थ
समझा जाता है, इसीसे दोनों की एकत्र संगति
(position and contraposition) अनौप्यविरोधकी
सूचना करती है। फिकटेने द्वितीय प्रतिपक्ष की अवतार-
णाके समर्थ इस हेतुज्ञानपुनः विरोधतत्त्व (the pri-
nciple of contradiction) का मन्त्रिय किया है।
तृतीय प्रतिपक्षमें उन्होंने प्रथम प्रतिपक्ष पूर्वपक्ष और
द्वितीय प्रतिपक्ष उत्तरपक्ष, इन दोनों पक्षका समन्वय
साधन किया है। द्वितीय प्रतिपक्षमें विरोधसमन्वयका
स्थूल मर्म इस प्रकार है, —अनात्म वस्तु (non-ego)
यथावर्तमें आत्मातिरिक्त कोई पदार्थ नहीं है। यह
आत्माका ही अर्थ विशेष है। हम लोगों के ज्ञानराज्यमें
ज्ञाता और ज्ञेय, आत्म और अनात्म ये दो भेद ललित
होते हैं। फिकटेके मतमें यह भेदज्ञान के अन्तर्गत

है। ज्ञानराज्यमें प्राप्त होने पर ही इस भेदज्ञानकी सृष्टि की है ("In the ego I oppose to the divisible ego = divisible non-ego")। सुतरां वाद्य-जगत् प्राप्तिकी स्वनिवृत्ति सीमासाधक है अर्थात् प्राप्त्या अपनेको ही सीमाबंध करके वाद्यजगत् रूपमें प्रतीयमान हुई है।

फिकटेने मतका सार यों है—आदि कारणस्वरूप एकमात्र परमात्मा (absolute ego) विद्यमान है; चैतन्य ही हमका स्वरूप है। किन्तु चित्ता रहनेसे चित्ताके विषयका अस्तित्व भी उसको साथ साथ रखनेकार करना होगा। परमात्मा स्वयं ही निज चित्ताके विषय है। प्रकृति (nature) और पुनः (mind) चैतन्य और ज्ञातारूपमें परमात्मा-स्वरूपमें प्रतिबिम्बकी तरह आत्म-स्वरूपका अनुभव करते हैं। आत्मस्वरूपानुभव आत्म-ज्ञान (Self-consciousness) का फल है; जीवामा- (finite egos) में आत्मज्ञानका विकास हुआ है। किन्तु परमात्मा (absolute egos) जो आत्मज्ञानमय ही समष्टिमात्र है, सुतरां जीवामात्मज्ञान आत्मज्ञानमात्र होनेसे ही परमात्माकी स्वरूपानुभूति नहीं होती। अनन्त आत्मज्ञान (infinite and absolute self-consciousness) का उदय होनेसे परमात्माकी आत्मज्ञान-भूतियों सम्पूर्णता होती है। इसी उद्देश्यका उदय करके विकास कार्य चलता है।

फिकटेने अपने दर्शनके क्रियात्मकमूलक अंश (Practical Philosophy) में ज्ञानतत्त्वमूलक अंशका तत्त्वसमूह व्यक्तिगत जीवनके क्रियाकलापमें आरोप किया है। उनके दर्शनके इस अंशमें नैतिकत्व, समाज-तत्त्व और राजनीति सम्बन्धमें आलोचना है।

धर्मतत्त्वकी आलोचनाके समय फिकटेने जगत्की नैतिक व्यवस्थाकी ईश्वरका स्वरूप (God is the moral order of the universe) बतलाया है। उनके मतसे ईश्वरका अर्थ स्वरूप हम लोगोंकी धारणाके बहिर्भूत है। धर्मागुप्त कार्य द्वारा हम लोगोंके अन्तर्निहित ईश्वरत्व जगत्त हुआ करता है। क्राण्टिकी तरह फिकटेने नैतिकता (morality) को ही धर्म (religion) का मूल बतलाया है। धर्मनैतिक स्वतन्त्र दूसरा

कोई पदार्थ ही नहीं है। ईश्वरीयवस्तु दोनोंका ही उद्देश्य है। नैतिकजो धर्म कार्य द्वारा और धर्म-जीवनमें विद्यासक के समूह ईश्वरकी प्राप्ति होती है परवर्ती पाश्चात्य धर्मनैतिकोंका मत यूरोपीय दर्शन धर्ममें देता।

पाश्चात्यवैदिक (मं० पु०) पाशात्यः वैदिकः कर्मधा० । १ पश्चिमदेशभव वेदाध्यायी पद्यवा वेदवित् ब्राह्मण, पश्चिम देशके वेद पढ़नेवाले पद्यवा वेद जाननेवाले ब्राह्मण । २ बङ्गवासी ब्राह्मणग्रन्थोद्भेद, बङ्गालमें रहनेवाले ब्राह्मणकी एक श्रेणी ।

वैदिक कुलमध्यरोमें लिखा है, कि पूर्व समयमें गोहृ देयमें त्रिविक्रम नामक चन्द्रवंशीय एक बड़े प्रतापी राजा रहते थे। साक्षात् हमकी तरफ रूप-गुणवती उनके एक स्त्री थी। उस स्त्रीके गर्भसे विमलसेन नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उपर्युक्त समयमें विमलसेन विविध विद्यागुणसे विभूषित हो पैदल सिंहासन पर पवित्र हुए। ये प्रजापति का भक्तोभाति प्रतिपालन करते हुए सुखपूर्वक पृथिवीका शासन करने लगे। कुछ दिन बाद राजा विमलसेनके पौरस और महिषी गुणवती मासतीके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न हुए। इनमेंसे बड़े का मन्त्रवर्मा और छोटीका श्यामल वर्मा नाम रखा गया। महर्षि राजोचित धैर्य बोधोदि निखिल गुणके आकर थे। अतः पिताकी मृत्युके बाद ये दो सिंहासन पर पवित्रित हुए। श्यामल वर्मा भी अपने बड़े भाईकी तरह नाना गुणोंसे सम्पन्न थे। इनमें बड़े भाई मन्त्रवर्मकी पितृपद पर अभिषिक्त देव दिग्विजय करनेका महत्त्व किया। अतः वे बहुत-सी सेना इकट्ठी कर अपनी पुरोसे बाहर निकली और देशदेशान्तरके राजाओंके साथ युद्ध कर जयलाभ करने लगे। अन्तमें अपने तीसरे पराक्रमसे अपने राजा-ओंको पराजित कर ये सदैव जीते। यहां गोहृके अन्तर्गत विष्णुपुर नामक स्थानके समुपय उपान्त भागमें एक पुरो निर्माय कर प्रजापालन करते हुए स्वर्गसे रहने लगे। उस समय काशीनगरीमें नैलधन्व नामक सर्वगुण सम्पन्न एक राजा राज्य करते थे। एक दिन इन्होंने अपनी कन्या विद्यादेके सम्बन्धमें, उपर्युक्त ज्ञान तथा पात्रके विषयमें पण्डितोंसे पूछा। पण्डितगण

राजों के कुलगोत्रमें धर्मिष्ठ थे, यतः उन्हें को बात सुन कर कहने लगे, "राजन् ! श्यामलवर्मा नामक एक चन्द्रगोत्र राजा राजोचित सभी गुणों से विभूषित हैं । हम लोगों को तो वे हो आपको कन्या के उपयुक्त वर जंचते हैं ।" राजा नौलकण्ठने ब्राह्मण-पण्डितों के मुख से श्यामलवर्मा को वे भी कोत्ति कथा सुन कर मोनन्दचित्तने उन्हें को कन्या प्रदान करनेको इच्छा प्रकट की और तत्क्षणत् कई एक कार्यकुशल दूतोंको भेजदेग भेजा । दूतगण यथासमय वहां पहुंचे और विनीत भावसे गोड़ा-धिपति का स्तब्ध करने लगे । राजा श्यामलवर्माने उनको नाम धाम तथा शान्ति का कारण पूछा । इस पर दूतों ने सब वृत्तान्त निवेदन कर शान्ति में विवाहका प्रस्ताव किया । राजा श्यामलवर्मा समस्त होने पर नौलकण्ठको सुन्दरी कन्या के साथ उनका विवाहकार्य संपन्न हुआ । विवाह कर श्यामलवर्मा काग्रेस गोड़की भाए । कुछ दिन बाद एक समय दिनों की रैनको प्रोभाटकी शिखर पर शकुनि नामक एक पक्षी आ बैठा । उसी समय से राज्यमें नाना प्रकारको अशान्तिका संचार होने लगा । इस पर राजा श्यामलवर्माने कुछ प्रधान-प्रधान पण्डितों से घर पर शकुनि के बैठनेसे क्या क्या अमङ्गल हो सकता है, इस विषयमें प्रश्न किया । बाद उससे ठहो परि रंभपतन हो उत्पातका कारण है, ऐसा सुन कर उन्होंने गोड़वासी ब्राह्मणों से शान्तिविधान करनेका अनुरोध किया । राजाको प्रायः ना पर नदानीस्तन गोड़वासी ब्राह्मणों ने उत्तर दिया, "शान्तिक ब्राह्मणकी मित्र शान्ति संस्थापित होना असमभव है ।" राजा क्रमशः नाना प्रकारकी विज्ञा का प्रादुर्भाव देख बड़े हो चिन्तित हुए और परामर्श कर पक्षी के साथ ससुराल का मोक्ष पड़चे । वहाँ अपने श्वशुर काग्रेसपतिके निकट उन्होंने उक्त वृत्ता प्रकाशित की । काग्रेसपतिने यह मोक्ष संज्ञा सुन कर कई एक ऐसे ब्राह्मणों को सुलवा मंगाया और उन लोगों से शान्तिविधानके लिए गोड़जानेका अनुरोध किया । उन स्वल्पदिनसदृश ब्राह्मणों को गोड़ शान्तिमें सम्मन होने पर पक्षी गोड़ेश्वर खदेग भाए और एक यज्ञका आयोजन करने लगे । पक्षी उहोंने उन पक्षुगोत्रोद्भव पण्डितशाली पाँच ब्राह्मणों को चुन-

राशि प्रत्यक्ष करने हुए उन्हें खदेग बुलाया । उन पाँच ब्राह्मणों के नाम ये थे—यगोधर, वेदगर्भ, रत्नगर्भ, शोमान् और वेदान्तवागीश । इनमें से यगोधर ऋग्वेदो शुकगोत्रीय, वेदगर्भ शाण्डिल्य गोत्रीय, रत्नगर्भ धर्मिष्ठ गोत्रीय, वेदान्तवागीश सायण गोत्रीय और शोमान् सामवेदी भरद्वाजगोत्रीय थे । वे सबके सब ब्राह्मणविद्या और विखिलयास्त्रमें पारदर्शी थे । १००१ अक्षको गोड़देशमें उन पाँचों का पदार्पण हुआ । राजाने उन सब ब्राह्मणों द्वारा यथाविधि यज्ञ कर स्वराज्यमें शान्ति-विधान किया । वे पाँच ब्राह्मण ही वर्तमान श्रेय पाश्चात्य वेदिकों के पादिपुरुष माने जाते हैं ।

राजा श्यामलवर्माने उन पाँच ब्राह्मणोंका वरुदेशमें वसानेके लिए यज्ञके दक्षिणास्वरूप उनको सामन्तधार, जयारि, चलाधि, दधोचि, मध्यभाग, मरीचि, शान्ताली, ब्रह्मपुर, पाखरा, पानकुण्ड, कोटालोपाड़, चन्द्रोप, नवहोप और गौराली ये चोदक ग्राम दिए । उक्त ब्राह्मण-गण यज्ञके समाप्त होने पर अपने देशको चली गए; किन्तु वहाँके ब्राह्मणोंने इन लोगोंका पूर्ववत् सम्मानादर न किया । यतः वे अपने अपने पुत्रकुलत्वादिको साथ ले बहावे पुनः वरुदेश आए । उन लोगोंके अपने देशसे लौट जाने पर राजाने पूर्वप्रदत्त चोदक ग्रामोंमें से यगोधरको चन्द्रोप, कोटालोपाड़ा और सामन्तधार ; वेदगर्भको मध्यभाग, पाखरा और पानकुण्ड ; रत्नगर्भको शान्ताधि, गौराली और जयारि शोमान्को दधोचि और नवहोप तथा वेदान्तवागीशको मरीचि शान्ताली और ब्रह्मपुर विभाग कर दिये । बाद उनमेंसे यगोधर सामन्तधारमें, वेदगर्भ पाखरामें, रत्नगर्भ गौरालीमें, शोमान् नवहोपमें और वेदान्तवागीश शान्तालीमें रहने लगे ।

उक्त कुलवंश्वारोंमें दूसरी जगह लिखा है, कि शुक और शौनक एक नहीं थे । शुकगोत्रीय यगोधर अपने पुत्र कुलत्वादिके साथ सामन्तधारमें वास करते थे । इसी समय एक दिन इनके पूर्व मित्र यगोधर नामक शौनकगोत्रीय एक दूसरे ब्राह्मण वहां पहुंचे । शुकयगोधर बहुत दिनोंके बाद अपने मित्रों देख कर बड़े आनन्दित हुए । बाद शौनकगोत्रीय यगोधरने कहा,

“मित्र ! बहुत दिनों तक आपने मुलाकात न होने के कारण मेरा चित्त व्याकुल हो गया था । विशेषतः मर्यादा में स्त्री-पुत्र होने की ओर भी व्याकुल हो गया हूँ । अब कहीं जाऊँ, या कहीं इत्यादि चिन्ता में मेरा चित्त हमेशा सन्तप्त रहता है, इसीलिए मैं निर्याग हो आपके दरबार में लिये गेहूँ देना चाहता हूँ । अब मेरी या गति होगी, कृपया चेतना दें ।” इस पर प्रयोजित यशोधर ने अपने घर में आकर करने के लिये उनसे अनुमति ली । शीघ्र ही यशोधर मित्र की बात सुन अपने देव के परित्याग करने और अन्त्यर्थात्मान में आबद्ध हो वहीं रहने की आज्ञा दी । ये भी आज्ञा, पुण्यात्मा और धर्मिक थे । उन्होंने वस्त्र वस्त्रों पर राजा की शूद्र समस्त वस्त्रों का दान कर दिया । इसके बाद शून्य-श्रीय यशोधर ने अपने मित्र शीनकगोत्रिय यशोधर को अपना आश्रयान सामन्तसार प्रदान किया और राजानु-मन्त्रित हो वहाँ की अन्त्यात्मा ब्राह्मणों से कहा, “ये मेरे मित्र हैं तथा स्वर्गशास्त्र में व्युत्पन्न और देवभक्त भी हैं । इनको मति सर्वदा धर्मकार्य में लित रहती है । आप लोग उन्हें सुभक्त हो के सा ममभक्ति में । ये शीनकगोत्रिय होने पर भी मेरे गोत्र की तरह सम्मानित होंगे तथा हम क्षीणिक सभी कुलसन्तान पुष्टीकार में लिये रहेंगे । ऐसा होने से ही इनके साधु हम क्षीणिकों की परम्परा प्रीति रहेंगे ।” इनके यशोधर की बात सुन समागत सभी ब्राह्मण इस विषय में सन्तुष्टि प्रकाश कर अपने अपने स्थानों पर चले गए । अनन्तर कुछ दिन बाद यशोधर-गोत्रिय एक ब्राह्मण स्त्रीपुत्रादिकों से कर गोहृदिगमने आकर करने के लिए आए । उनके एक परम सुन्दरी कन्या थी । शीनकगोत्रिय यशोधर उस कन्या का पाणिग्रहण कर मित्रानुग्रह से सामन्तसार में हो आकर करने लगे तथा मित्र के आदेशानुसार वैदिकों का कुल सन्तान लिख रहे लगे । इनका प्रधान कार्य ठहराया गया ।

उक्त कुलमन्त्री भी एक जगह यशोधर विषय में इस प्रकार लिखा है,—

यशोधरिय ब्राह्मणों के पाने के बाद जो काव्यकुल प्रशस्ति स्थापित की जा कर गोहृदिगमने रहने लगे, वे

यशोधरिय कहलाये । ये सब ब्राह्मण भी वेदवित् और धर्म निष्ठ थे तथा क्रियाकर्म के भेद से उत्तम, मध्यम और नीच इन तीन प्रकार में विभक्त हुए हैं । कन्यावेद्य, महाज्ञ, वशिष्ठ, शीनक, काव्य, वास्य, वृत्तगौत्रिक और गौतम ये कई एक गोत्र हैं । इनके पत्न्या परागर, प्रमित्र, वृद्ध, सङ्घर्ष, रथीतर, आर्षेय और कौत्रिक आदि गोत्र भी देखे जाते हैं ।

उपयुक्त गोत्रों के मध्य कन्यावेद्य सामवेदो, शीनक ऋग्वेदो, महाज्ञ यजुर्वेदो तथा गौतम सामवेदो और यजुर्वेदो हैं । वशिष्ठ, काव्य, वास्य और रथीतर ये सभी यजुर्वेदो माने जाते हैं ।

यजुर्वेदो मोदगल्य, ऋग्वेदो गौतम और वशिष्ठ ऋग्वेदो एक गोत्र गङ्गातीरवासी हैं ।

समाप्तियों के कुलप्रत्यय से उक्त विवरण कुछ भिन्न रूप में देखा जाता है । सामन्तचरित में लिखा है,— “गोहृदिगमने कायोधर अयस्यक्षी कन्या का पाणिग्रहण किया । देवात् एक दिन उनके प्रासाद के ऊपर गिर बैठे । इसीलिए राजाने गोहृदिगमने ब्राह्मणों को आकर शान्ति कार्य करवाया, किन्तु उससे भी धीरतर उत्पन्न हुए न हुए । बाद ब्राह्मणों ने राजा से कहा, “हमने सुना है, कि यह निरन्तर देव है । अतः आप जहद हो शान्तिक ब्राह्मणों को मंगाने, तब यह उत्पन्न हुए होगा ।” राजा जानते थे, कि शान्तिक ब्राह्मण इस देश में नहीं आये, अतः उन्होंने अपनी स्त्री की विवाह भेज दिया । कुछ दिन बाद वहाँ रह कर राजाने पत्नी के व्रतसङ्कल्पनादि सम्पन्न करके वहाँ से अपने स्त्री द्वारा कायोधर के निकट एक शान्तिक ब्राह्मण को प्रार्थना की । कायोधर ने कन्या के साथ एक वेदवित् ब्राह्मण की भेंट दिया जिनका नाम यशोधर था । वे क्षत्रीय, शीनक-गोत्र, अयस्य, ऋग्वेदो और साङ्ख्यिकेयपारदर्शी थे । वाराणसी के पश्चिम में पश्चिम काशीवली नामक समाज में उनका वास था । १००१ शक में वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को यशोधर स्त्रीपुत्र के साथ वहाँ के अन्त्यात्मा कुलसन्तान पवारी । यहाँ उन्होंने महाज्ञ के आश्रय कर दिया । मन्त्र के प्रभाव से वह पूर्वपति गृह

पुनः प्रासाद पर लाया गया और यज्ञस्थलमें उसे मार कर जीवित कर दिया गया। इस प्रकार यज्ञके सुगन्धच होने पर सभी उत्पन्न हुए। अब शशासद्वर्धमानि पत्यन्त मनुष्ट हो उन्हे ताम्रगामन द्वारा रङ्गनेके लिये ग्राम टान किया। अब वहाँ पर यशोधर पुत्रदारादिके साथ रहने लगे, किन्तु वहाँ और साम्निह ब्राह्मण न रहनेके कारण इन्होंने राजासे कहा, कि साम्निह ब्राह्मणके बिना किस प्रकार मेरी सन्तानका विवाह होगा? इन पर राजा प्रसन्न हो बोले, "बाप अपने इच्छा सुसार साम्निह ब्राह्मणोंको ला सकते हैं। मैं उन्हें रहनेके लिए भी स्थान दूंगा।" बाट यशोधर पुनः निज देग जा कर १००२ शकमें मनुष्य और परिवारादिके साथ चार गोत्रके चार नामवेदो साम्निह ब्राह्मणोंको लाये जिनके नाम ये थे,—वाण्डिल्यगोत्रके वेदगर्भ, वशिष्ठगोत्रके कात्तिक, सावर्णगोत्रके प्रपन्नाभ और भरद्वाज गोत्रके जितामित्र। राजाने इन चार ब्राह्मणोंके मध्य वेदगर्भ और उनके पुत्रादिको भानाधि, पानकुण्ड, पाण्डु और मध्यभाग ये चार ग्राम; वशिष्ठगोत्रोय कात्तिक और उनके तीन पुत्रोंको जयारि, गौराभि, शान्तक, ब्रह्मपुर और चन्द्रदोष; सावर्णगोत्रोय प्रपन्नाभको मन्वदोष और दधौचि तथा भरद्वाजगोत्रोय जितामित्रको कोटालियाड़ और दधौचि नामक ग्राम वासाय प्रदान किये। यशोधरको सामन्तमार ग्राम मिला और वे ही संशोके समाजप्रधान वा समाजपति हुए।

जाधरकृत पाश्चात्यकुलदेपिका में लिखा है,—
"पञ्चगोत्रके आगमनक बहुत दिन बाद पाश्चात्यवेदिक-को अन्य शाखा पञ्चगोत्रोय के मनुष्य कान्यकुलसे आये थे। उनमेंसे क्षत्र्यादेयगोत्र रूपराम १२०४ शकको जयारि नामक स्थानमें, गौतम गोत्रक वैष्णवानन्द १२०५ शकको कोटालीपाड़ामें, काश्यपगोत्रक राममारा-यण १२०७ शकको नवदोषमें, वात्स्यगोत्रोय क्षयाचार्य (कपाट) १२०८ शकको चन्द्रदोषमें, वरखगोत्रक मुकुन्द पाचार्य १२०८ शकको मध्यभाग नामक स्थानमें और रथीतरगोत्रक माधवमिय १२१० शकको नवदोष समाजमें उपस्थित हुए थे। इनके मध्य रूपराम, वैष्णवानन्द और मनारायण ये तीन मनुष्य सामवेदी तथा

कप, मुकुन्द और माधवमिय ये तीन यजुर्वेदी थे। इन लोगोंने सामन्तमारके शोनकगोत्रोय समाजपतियोंता आग्रह ग्रहण किया। उन लोगोंके यज्ञवेद्ये पूर्वागत पाश्चात्यवेदिकोंके साथ सम्बन्धपूर्ण था वद हुए। मन्वदोषमें निज प्रकार रादो और वारिष्टके मध्य कुलोत्त और योदियविभाग किया है। उसी प्रकार पाश्चात्यवेदिकसमाजमें पञ्चगोत्र कुलोत्त होनेके कारण मानगोय और पञ्चगोत्र उनमें सम्मानमें कुछ हीन हैं।"

शान्तक-समाजके रूपरामकृत वेदिक कुलराशिमें पाण्डु-समाजके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है,—

किसी समय पाण्डुके चण्डोदास नामक एक पाण्डित्यगोत्रोय सम्मानित ब्राह्मण रहते थे। सृष्टिधर, नारायण और गङ्गेय नामक उनके तीन पुत्र थे। इन तीन पुत्रोंमेंसे गङ्गेय सर्वोच्चोपाध रूपवान् थे। राजा नामक किसी सुमलमानने उनके साथ अपने कन्याका विवाह कर उन्हें यवनसमाजभुक्त कर लिया। गङ्गेय जतिभ्रष्ट हो यवनसमाजमें जगन्नाथ कारफरमा नामसे प्रसिद्ध हुए। नारायणके पुत्र ध्रुवानन्द सुसलमानोंके भयसे भोत हो कर भोजिखरमें जा रहने लगे। चण्डोदासके कुछ पुत्र सृष्टिधर कहीं दूसरी जगह न जा कर अपने जतिपियोंको परित्यक्त सम्पत्तिके लाभमें घाण्डुमें ही बन गए। सृष्टिधर यवनसंगसे दूषित हुए हैं, ऐसा समझ कर तदानीमान वेदिकोंने सम्बन्धादि द्वारा उन्हें फिर समाजभुक्त न किया। अतः सृष्टिधर विशेष चिन्तित हुए। क्रमशः सृष्टिधरकी दो कन्याएं विवाहयोग्य हो गईं। उसी समय एक सुन्दर ब्राह्मण सृष्टिधरके यहाँ प्रतिष्ठित हुए। सृष्टिधरने विधिवत्तक परिचर्या कर उस ब्राह्मणका परिचय पूछा। इस पर उसने कहा, 'मेरा नाम हरिहर है और पश्चात्ति मेरी माटी नहो हुई है।' सृष्टिधरने ऐसा ज्ञान उसकेको कन्या प्रदान करना चाहा और हरिहरने अपना प्रतिग्रह प्रकाश कर उन्हें अपने घर पर हो रहनेका अनुरोध किया। हरिहर वहाँ रहने लगे। इधर सृष्टिधर समाजशोधनमें लग्युक्त हो चौदह समाजस्थ वेदिकोंके सम्मोष गए और विनोद हो बोले, कि यवनके ससंगसे सुद वे दूषित नहीं हुए हैं। वेदिकोंने सृष्टि-

धरकी बात सुन सके' दोषी न ठहराया और सब मिल कर पाखड़ाको चले। वहाँ जा कर भी छटिधर दंगी नहीं है, ऐसा सक्ते साल न हुआ। बाद छटिधर के घर का कर उन लोगो'ने कन्या-विवाहको तैयारी देख छटिधरसे पातक। परिचय पूछा। छटिधरने अपनी दो कन्याओंके भावों पर हरिहरका नाम न परिचय दिया। हरिहरका परिचय सुन समागत वैदिको'ने कह छो वहाँसे चले देना ही स्थिर किया, परन्तु चली जानेसे छटिधर पूर्ववत् दोषी ही रहेगा, ऐसा सोच उनमेंसे अधिक रह गया। पर शीनकगोत्रो'मेंसे एकने भी ऐसे गहि'त कार्यमें योग न दिया, वे सबके सब चले हो दिये। इधर शीनकगोत्र भिन्न अन्य जिन सब वैदिको'ने छटिधरके घरका परित्याग न किया, वे भ्रष्टात कुलश्रीन हरिहरको कन्या देना सुनिश्चित है या नहीं, ऐसा सोच ही रहे थे, कि इतनेमें मामके दो भ्राजाजगोत्रो'य जगन्नाथ नामक एक प्राज्ञान सभामें बैठे हुए सबों'से हरिहरका परिचय कहने लगे। उसने यह जाना गया, कि हरिहरने पूर्वपुरुषने कात्तिक कथानुसार यजुर्वेदो' भांरहाज गोत्रीय रत्नगर्भ शनक-यगोधरको अपनी कन्या प्रदान की थी। उस कन्याके गर्भसे यगोधरके हरिनाम प्रभूति अनेक पुत्र उत्पन्न हुए जिनमेंसे ज्येष्ठ पुत्रका नाम था वत्सराज। वत्सराजका पुत्र दिनकर, दिनकरका पशुपति और पशुपतिक पुत्र श्रीवति था। यही श्रीवति नवदीपसे कोटालोपाड़में जा कर रहने लगे। इनके पुत्र राघवानन्द नि'हने गेेतमगोत्रीय वैष्णवानन्द मित्यरी कन्यासे विवाह किया जिसके गर्भसे रामनद्र और जनार्दन नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनमेंसे बड़े रामनद्रके पुत्र ही हरिहर थे। जगन्नाथ इस प्रकार परिचय दे अन्त में सभामें बैठे हुए सबों'को सत्य पर कहने लगे, "आप लोगो'ने मेरो एक भा'य ना यह है, कि मेरे दो लड़को'के वैराग्या वलम्बनसे मेरा कुलध्वंस हुआ है। अतः यह शनकगोत्रीय हरिहर हम लोगो'के समाजामुपवनसे पशुगोत्रके मध्य परिगणित हो।" उनही प्रा'यना पर सभास्थ वैदिको'ने सगत हो कहा, "तब इस हरिहरको ही हम लोगो'ने गोत्रोपति बनया। सबसे ये ही पशुगोत्र

और हम लोगो'के तुल्य आदरणीय हुए।" ऐसा कह कर उन सबों'ने छटिधरको हरिहरके साथ कन्याका विवाह करनेकी अनुमति दे। छटिधरने अनुमति पा कर गद्ग। और काशी नामकी दोनों कन्याएं हरिहरको समर्पण कीं। हरिहर दो पदोंके साथ स्वदेश आए। छटिधर निषेध ही पाखड़में ही रहने लगे। शीनकगोत्रीय यह उच्छान्त सुन कर शनको'कभी भी पशुगोत्र कह कर खोकार नहीं करेगी और न उनके साथ आदान प्रदान ही करे'गे, सबों'ने परस्पर ऐसी प्रतिज्ञा की।

(वैदिक कुलार्णव)

कोटालोपाड़के शनको'की अनुमोदित कुलमन्त्रो'में लिखा है,—“हरिहरके विवाहमें चौदहों समाजने योगदान किया था। ये राजा श्यामलवर्मा द्वारा आये हुए यगोधरमित्यके प्रकृत वंशधर थे, हमलिये सबों'ने इन्हीं'की गोष्ठोपतित्वका वरण किया। उसी समयसे हरिहरके पुत्रादि ही गोष्ठोपति कह कर समाजमें सम्मानित हुए। हमसे सामन्तसारके शीनक-गोत्रीय समाजदारोंकी अभोष्टविधि न होनेके कारण वे हरिहरको ह्वा मिन्दा करने लगे। यद्यार्थमें कोटालोपाड़के शनक और सामन्तसारके शीनकके मध्य पात्र तक प्रतिद्वन्द्विताका झगड़ नहीं हुआ है। पर भी वे एक दूसरेकी निन्दा करनेमें सु'ह नहीं मोड़ते हैं। गद्याव्य वैदिको'मेंसे बहुतांश कहना है, कि सामन्तसारके समाजपति ही पूर्वोपदे वैदिको'के कुलशास्त्रकी रक्षा करते थे; किन्तु हरिहरका गोष्ठोपतित्व तथा उसके लिए हमने मनोमान्यता होनेके लिये समाजपतियो'ने शनकादिका कुलध्वंस क्षिप्त रखा है।

पशुगोत्रके आनेके बाद और भी कितने गोत्र आ कर पाश्चात्यवैदिक समाजमें मिल गए हैं। किन्तु पशुगोत्र और पशुगोत्रके साथ उनका शिथिल सम्बन्ध नहीं है। दो एक जगह भ्रम्य होने पर भी वह अत्यन्त मिश्र हो मगभा'जाता है। वत्तमान समयमें भी देखा जाता है, कि जहाँ जहाँ पशुगोत्रका वास है वहाँ पशुगोत्रके सिवा और सभी पशुगोत्र कहलाते हैं। परन्तु जहाँ पशुगोत्र नहीं हैं, वहाँ आधरणतः सभी वैदिक नामों प्रसिद्ध हैं।

पञ्चगोत्रीय अपनो प्रधानता जमानेको लिए कहा करते हैं—

‘पठगोत्र वैदिक पञ्चगोत्रमे कामी भो धन ग्रहण नहीं कर सकते, यरं पठगोत्रीय हो पञ्चगोत्रीयको धन देंगे, ऐसी रीति समाजमें प्रचलित है।’ पञ्चगोत्रव्य वैदिकगण मटा सम्मपरायण होनेके कारण मर्यापिता खोठ है। क्रमगः पञ्चगोत्रीय वैदिकमेंसे कार्यानुसार जिसने उत्पत्ता वा जिसने होनता लाभ को है। समाजमें बहुत दिन पीछे इन पञ्चगोत्रीयोंके मध्य जो दूसरेको पत्रोन हो रहते थे, वे यदि स्वधर्मपरायण हो, तो वे मध्यमें हैं।

समाजवासी पञ्चगोत्रीय वैदिकगण यदि निन्दित पाचारपरायण हो, तो वे स्वाधोन होने पर भी मध्यमें होंगे।

वैदिकगण कन्याग्रहणमें कुन नहीं देखते, किन्तु दानके समय कुल, ग्रील और विद्या आदिका विचार करते हैं। भले बुरेकी विवेचना न कर कन्यादान करने-से वे समाजमें निन्दनीय और श्लेषभूत कहलाते हैं। इसीलिए सभी उनका परित्याग भी करते हैं। यदि कोई देवात्, होमवधमें दश वर्षको कन्या दान करे, तो वे पाचात्य वैदिकोंके मध्य निन्दित होते हैं। दश वर्षके पथ्यन्तर ही ग्रीलादिका विचार करना चाहिए; किन्तु कन्या जय बारह वर्ष की हो जाय, तब कुछ विचारनेको जरूरत नहीं, सिर्फ ब्राह्मण देख कर कन्यादान करना उचित है। कर्त्तास्वयं विवाहका सम्बन्ध न करे जिसो सामाजिक बन्धु द्वारा समझा अनुष्ठान कराना चाहिए। यदि कोई ऐसा न करे, तो वह निन्दित और पथ्यवहार्य होता है।

प्रवरादिके भेदमें शुनक दो प्रकारके हैं। वैदिकोंने मध्य यदि कोई कन्या विक्रय करे, तो वह पतित तथा समाजव्यक्त होगा और यदि कोई पाचात्यवैदिक चारण वर्षको कन्या दान न करे, तो उसे वैदिकगण समाजमें दान नहीं देंगे, ऐसा पाचार व्यवहार आज भी प्रचलित है। विशेष विवरण इलीन कन्वमें देखो।

पञ्चत्याकरसम्भव (सं० हो०) पाचात्य पश्चिमदिगम्भे

पाकरे मध्य उत्पत्तिर्यस्य। साक्षरो लक्षण। पर्याय—
रोमक, रामलक्षण।

पाशय (सं० स्त्री०) पाशानां समूहः पाश—य (गद्या-
दिभ्यः, यः पा ४:२।४८)। पाशममूहः।
पापक (सं० पु०) पपनि वक्षान्ति चरणी पग वन्धे-
खत्त। पादाभरणविधेय, परेमें पड़नेका एक गड़ना।
पापण्ड (सं० पु०) पापं सनेति दयं नमं संगीदिना ददा-
तीति यण्, ङ प्रयोदरादित्वात्, च घुः, वा पाति रक्षति
दुःकृतिभ्य इति पाणि१, पा वेदधर्मस्तं यण्डयति खण्ड-
यति, निष्कन करोतीति घञ्, १ वेदाचारपरित्यागो,
वेदविषय पाचरण करनेवाला, मिथ्यधर्मों, झूठा मत
माननेवाला। पापण्डका लक्षण—

“गलनाथ त्रयीधर्मः पाशधेन निगद्यते।

तं यण्डयति ते यस्मात् पापण्डास्तेन हेतुना ॥

नानामतवरा नाना-वेदाः पापण्डिनो मताः ॥”

त्रयी धर्म पर्याय वैदिक धर्म गलन करनेको ‘पा’ कहते हैं। जो इस पा (वेदाचार)-का खण्डन करते, वे पापण्ड कहलाते हैं। पापण्डो लोग नाना प्रकारके धर्म और मतधारण कर कर उधर घूमा करते हैं। बोध और ज्ञानोंके लिए पापः इस शब्दको व्यवहार हुआ है। पर्याय—बोध त्वणकादि, सर्वविहिन्, कोनिक और पापण्डिक। बोध, लोग वैदिक मतको ग्रामाथारूपमें स्वीकार नहीं करते, इसलिए वे ब्राह्मणों द्वारा पापण्ड कहा जाते हैं।

शास्त्रकारोंने पापण्डियोंसे जोतनेका निषेध किया है। यज्ञदक्षित हो कर इन लोगोंके साथ बातचीत करने प्रववा इनके कर्त्तव्ये क्षिप्र-हानि होती है। यदि प्रकस्मात् इनके भेंट हो जाय, तो भूय-दयं न कर लेना उचित है। शास्त्रज्ञ व्यक्ति मात्र ही पापण्डियोंसे भजन रहते हैं। सभी पापण्डिकधर्मों और नाना वेगधारों होते हैं; अतः उनका संघर्ष दलपूर्वक छोड़ देना चाहिए।

“एवञ्च पापण्डमर्षं सङ्गं भवति मरः।

कारं श्लेषजन्यं तो ज्ञान मोहजन्यं दासपरो ॥”

(व्यासु० क्रियायोगपा० १४ अ०)

मनुने कहा है, क्रिकितव, जुषारो, नटहस्तिजोवि,
क्ररवेष्ट चोरादि और पापण्ड (बोधादि-वेदविरोध)

को राज्यसे निकाल देना चाहिये । ये प्रच्छन्न तत्त्व राख्यमें रह कर भले मानुसोंको कष्ट दिया करते हैं ।

(मनु ८।२२५-२६)

जो स्वधर्मभ्रष्ट है और नाना प्रकारके निषिद्ध कर्मों का अनुष्ठान करते हैं, प्रथमा जो धर्म का बाहरो बांड स्वर दिखा कर द्विपे रूपसे धारण करते हैं; राजकारों-ने स्वर्णोंको पापण्डु बतलाया है ।

२ धर्मध्वजो, कपटधेश्वर, दौंगो आदमो, झूठा आह्वय खड़ा करनेवाला, लोभो को ठगने और धोखा देनेके लिए, माधुसो का-सा रूप, ग बनायेवाला । ३ सम्प्रदाय, सत, पत्य ।

पशोकके शिला लोखोंमें इस शब्दका व्यवहार इसी अर्थमें प्रतीत होता है । 'पण्ड' अर्थ प्राचीन ज्ञान पड़ता है, जोकि इस शब्दको उर अर्थमें लेने लगे । पापण्डका विशेषण बनता है पापण्डो । 'इसपे इसका सम्प्रदाय' वाचक होना सिद्ध होता है । गये गये सम्प्रदायों के खड़े होने पर यह वैदिक लोग साम्प्रदायिकोंको तुच्छ दृष्टिसे देखते थे ।

पापण्डक (सं० पु०) पापण्ड एव स्वार्थे कन् । पापण्ड । पापण्डिन् (सं० पु०) पा-त्रयोधमं पण्डयतीति पण्ड णिनि । पापण्ड, वेदाधार परित्यागो, वेद विरुद्ध मत और आचरण ग्रहण करनेवाला, झूठा मत मानने-वाला ।

"पापण्डिनो विद्वन्मरण वेदादृष्टप्रसिक्तान् ठठान् ।

हेतुकान् वक्तव्यतां वादमग्निनापि नाचयेत् ॥"

(मनु० ४।२०)

पशुप्रायमें तत्परक्षण्डके ४२वें अध्यायमें पापण्डियों-के आचरणका विषय इस प्रकार लिखा है,—

जो अज्ञानमोहित हो भगवान् नारायण भिन्न अन्य देव-वन्दनोय है, ऐसा कहें, जो कपालमें मरम और पशुधारण करें, जो अवैदिक निह्नी अर्थात् वेदोचित चिह्न धारण न करें तथा वेदाचार न मानें, जो वानप्रस्थायम छोड़ जटावस्त्र धारण करें, सर्वदा अवैदिक शिष्टाकर्मके अनुष्ठानमें रजि रहें, जो ब्राह्मण घरिके दियतम शङ्ख, चक्र और ऊर्ध्वपुण्ड्रिक के चिह्न धारण न करें तथा जो अति और इत्यति-वक्त

आधारके अनुष्ठान न चले, जो यज्ञमें विशुद्धी शूद्र दूधरके चंद्रशेखर होमदान करें, जो नारायणको ब्रह्मा और रुद्र-दिके तुल्य मानें, जो भक्तिहोम दो वेदविहित यज्ञादिका अनुष्ठान करें तथा जो मन, वाचा, काय और कर्म-द्वारा भगवान्के प्रति अनास्था दिखावे, ये सब पापण्डो कहलाते हैं । फिर भी, जो जोषद्वन्द्वक, जोष-भक्षक, पशुपतिग्रहण, देवल, ग्रामयाज्ञक, भ्रष्टाचार, नानादेवता पूजक, देवताका उच्छिष्ट और व्याडादिमोक्षी शूद्रको तरह क्रियारत, विविध अमत्कार्योन्, अमचार-भोजो होम, मोह, मट, क्रोध और कामादिपुल्ल तथा पारदारिक हैं, वे भी पापण्डो हैं । जो आश्रमके धर्मका प्रतिपालन नहीं करते हैं, जो ब्राह्मण समो बाजे खाते वा वेशते हैं, जो अश्वत्थ, तुलसी, तोयस्थानादि, महाशुद्ध, सरस्वती तथा गङ्गादि नदीको सेवा नहीं करते हैं, इनको भी गिनती पापण्डियोंमें है । अग्निजोषो, मनोजोषो, धावक, पाचक और मादक द्रव्यभोजो वे ब्राह्मण पापण्डो कहलाता है ।

पापण्डोका संसर्ग वा असंजो गृहमें पान और भोजनादि निषिद्ध है । यदि देवात् लोभ वा मोह-वशतः उसने यहां अस्वपानादि भोजन किया जाय, तो परम वैष्णव भी इन पापसे पापण्ड होगे । असत्का संसर्ग करनेसे पाप और नाना प्रकारके अनिष्ट होते हैं । इसलिए पापण्डियों का संसर्ग इतना निम्नित बतलाया है । युक्तिकल्पतरुके मतसे पापण्डियोंको परराष्ट्रमें भेज देना चाहिये ।

"शक्रुष्टोय तथा सुत्रान् इत्याद्यातस्वभाषिणः ।

पापण्डिनस्तापसादीन् परराष्ट्रेषु योजयेत् ॥"

(युक्तिकल्पतरु)

पापाण (सं० पु०) पपणिं वोडयत्यनेनेति पप-पोडने बाहुलकात् आनच्-पणेण्य । उण् १।०) मच गित् । १ प्रस्तर, पत्यर, शिला । पर्याय—प्राय, उपल, अमन्त, गिफा, टपद, टण्डक, प्रस्तर, पाराकुल, पारटोट, अरमक, काचक । २ देवताप्रतिमा । देवताप्रतिमा पापाणको बनाई जाती है, उसीसे पापाण शब्दसे देवप्रतिमाका भी बोध होता है । ३ शम्भक । ४ पक्षे और नौलमका एक दोष । ५ धातुवादिभेदक ।

पाषाणकदली (स० स्त्री०) कदलीभेद, पहाड़ी केला ।
 पाषाणकुन्दक (स० पु०) पाषाणभेदक ।
 पाषाणगर्दभ (स० पु०) हनुसन्निजात सुद्रोशविशेष,
 दाढ़ सूजनका रोग । वायु और कफके विगड़नेसे इन्के
 सन्निस्थानमें यह रोग होता है । इसमें दाढ़ सूज जाती
 और बहुत पोड़ा होती है । औषधप्रकाशमें इसका
 लक्षण और चिकित्सा इस प्रकार है,—वायु और कफके
 प्रकोपसे हनुदेगको सन्निधमें पल्पवेदनामुख स्थिर पथच
 दिनभर जो शोथ होती है, उसे पाषाणगर्दभ कहते हैं ।

इसको चिकित्सा—सूचिकित्सा पाषाणगर्दभरोगमें
 पहले स्वेदप्रदान, पीछे मन्त्रिस्ता, वैर, हरिद्रा, हरिताम्र
 और देवदारु इन सबको पोष कर प्रलेप दे तथा वात-
 श्लेष्मिक शोथनाशक अन्यान्त्र ककका भी प्रलेप
 प्रयोध्य है । इससे सूजन बहुत जल्द दब जाती है ।
 यदि यह पक जाय, तो शस्त्रप्रयोग करके प्रथको तरह
 चिकित्सा करनी होती है । अपक्व अवस्थामें कलीका
 (जो) द्वारा रक्तमोचन करानेसे बिना पीपधके ही यह
 रोग प्रशमित हो जाता है ।

(भावप्रकाश चतुर्थभा० सुद्रोशभा०)

पाषाणगेरिक (स० स्त्री०) गिरिस्तिका, गेरू ।
 पाषाणचतुर्दशी (स० स्त्री०) पाषाणसाध्या पाषाणवत्
 पितृकर्मजनसाध्या चतुर्दशी । अपराधाय मासको
 शक्ताचतुर्दशी । इस तिथिको स्त्रियां गौरीका पूजन
 करके रातको पाषाण (पत्थरके टोकीं) के आकारको
 घड़ियां बना कर खाते हैं ।

पाषाणजतु (स० स्त्री०) शिलाजतु ।
 पाषाणदारक (स० पु०) दारयति विदारयतीति द-णिच्-
 लृट्, पाषाणस्य दारकः । टण्ड, टांकी, छेनी ।
 पाषाणदारण (स० पु०) दारयतीति द-णिच्-लृट्,
 पाषाणस्य दारणः विदारकः । पाषाणभेदनाश्र, टांकी,
 छेनी ।

पाषाणमिद (स० पु०) १ पाषाणभेद । २ कुल्ल, कुल्लो ।
 पाषाणमिम (स० पु०) पीपचविशेष । प्रसुत प्रजाको—
 १ पल पारां, २ पल गन्धक, ३ पल शिलाजित इन सबको
 एक साथ मिला कर यथाक्रम श्वेतपुनर्वा, चक्रस और
 श्वेतपराजिताके रसमें एक दिन तक मलीमांस घोटि ।

पीछे एक बरतनमें रख कर दीनायन्त्रका स्वेद दे । तद-
 न्तर मूषावन्त्रा और खीरेकी लड़की सूखके साथ पीस
 कर दो रसीकी गोली बनावे । कुल्लोके काढ़के साथ
 इसका सेवन करनसे चर्मरोगी रोग शान्त होता है । इससे
 पाषाणरोग निराकृत होता है, इस कारण इसका
 पाषाणमिम नाम पड़ा है । (भैषज्यरत्न० भागपे अष्टि०)
 पाषाणभेद (स० पु०) एक पोषा जो अपने पत्तियोंकी
 सुन्दरताके लिये बगीचोंमें लगाया जाता है ।

पाषाणभेदन देखो ।

पाषाणभेदन (स० पु०) पाषाण चर्मरोगी मिनतीति
 मिद-ल्यु । हृचविशेष, पथरचूर, पथरचट । पर्याय—
 चर्ममल, शिलाभेद, चर्मभेदक, खीता, उपलभेदो, पल-
 मित, शिलागमज । इसका गुण—मधुर, तिक्त, मेघ,
 लघ्ना, दाह, मूलकंक्ष और चर्मरोगनाशक ।

भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—कषाय, वात-
 मोघन, भेदन, शय, गुल्म, मूलकंक्ष, चर्मरोग, हृद्रोग,
 शोनिरोग, प्रमेह, झोडा, मूल और मूषनाशक ।

पाषाणभेदिन् (स० पु०) पाषाण चर्मरोगी मिनतीति
 मिद-णिनि । हृचविशेष, पथानभेद, पथरचूर ।
 पर्याय—चर्मभेद, शिलाभेद, चर्ममिद । मित्र मित्र
 देशमें यह मित्र मित्र नामसे प्रसिद्ध है, यथा—
 बङ्गालमें पथरचूर, पाथरकूचा, हिमसागर । हिन्दो,
 महाराष्ट्र और बम्बई पञ्चनमें पथरचूर ; मेसूरमें
 पिच्छिचेट्ट, चक्रेजीते (*Coleus aromaticus*) ।

यूरोपीय चन्द्रवेत्ताओंके मतसे इस हृचका आदि-
 स्थान मज्जासंघीय है । अभी भारतवर्षके सभी स्थानोंमें
 यह हृच देखा जाता है । पीपकालमें इसका शीतल
 जल बहुतसे लोग पीते हैं । इसीसे इसका हिमसागर
 नाम पड़ा है, ऐसा अनुमान किया जाता है । इसको
 गाछा और पत्तियोंमें एक प्रकारकी गन्ध है । इसीसे
 बहुतरे पत्तियोंकी सुगंध कर खाते हैं और उनका रस
 देशीय मराठोंमें श्वेतजतु करते हैं ।

भारतवासी बहुत पहलेसे इस पेड़के गुणगुणसे
 अवगत हैं । चरक (११४ अ०) में इसका उल्लेख है ।
 राजनिघण्टुके मतसे पाषाणभेदो तीन प्रकारका है,
 यथा—बटपत्ती, शिलावट्टक और पाषाणभेदो । इन

मौलो का गुण—मधुर, तिक्त, मेघ्न, कृष्ण, दाह, मूत्र-
कृच्छ और पश्मरीनायक तथा शीतल है। सावप्रकाशके
मग्नमें इसका गुण—शीतल, तिक्त, कषाय, वस्तिशोधक,
भेदक, पथ, गुण, कृच्छ, पश्मरी रुद्धोग, योनिरोग,
प्रमेह, श्लेष्म, मूत्र और मूत्रनायक, श्वाप्रहर, सञ्चित-
रुद्धोग, उपदमार और साधेपरोरमें हितकर तथा श्वात-
शान्तिकर। (सावप्रकाश)

लोमोन्मोचनमें यह बहुत बड़ा, कास, पुरातन
रुद्धोग, मूत्र और अपराध, साधेपक रोगोंमें व्यवहृत
होता है। डाक्टर डाक्टरके मतमें इसमें सादृशता-
गति यथेष्ट है। हेमो डाक्टर मनीषायोगमें इसका
स्वभार धरते हैं। डाक्टर डाक्टरके इसको सादृशता
स्वोत्कार नहीं करते। इसका लक्षण है, कि इसके
पचनवासी जिस परिमाणमें इसे काम लाते हैं, उससे
कुछ भी नगा नहीं पाता। परन्तु, अधिक व्यवहार
करनेसे मग्न स्वस्थ हो सकता है। हेमोय किसी
किसी डाक्टरके मतमें इसकी शोचकत्व रोगमें चक्षु-
की प्रचकके ऊपर और सोचे इसका प्रकोप दिया जाता
है। पुरातन मनीषायोगमें यह विषय उपकारी माना
गया है।

पापापदोग (सं० पु०) पश्मरीरोग, पथरी।

पापापचक्षुकर (सं० पु०) पश्मरीरोगाधिकारमें लोप-
विषय। इनकी प्रसूत प्रकाशों एक भाग पारद, दो
भाग मत्स्यकी श्लेष्म पुनर्प्राप्त करने में एक दिन सदन
करके पुनर्व्यवहार। पीले उसे भूधरयन्त्रमें प्राक करके
दो रत्ती की गोली बनाते। गुड़ और शोचकके साथ
इसका स्वेपन करनेसे पश्मरी और अक्षिगूल तिराजत
होता है। (रघुवाराह उपमर्षिका)

पापापविष (सं० लो०) दाहप्रोचमद।

पापापचक्षुवर्जनी (सं० लो०) प्रवाल, मृगा।

पापापान्तर (सं० पु०) प्रमत्तकलत्र।

पापापी (सं० लो०) पात्राय अन्वार्थ लोप। यह
पात्राय, पदरका दुकका की तीलनेके काममें आवे,
भाट, बटखरा।

पापी (सं० लो०) पाकते प्रयत्न बनया पाक-वर्ज
करके चक्षु डोप। १ मग्न। २ मग्न।

पापी (सं० लो०) साममद।

पावंग (सं० पु०) १ तराजूकी हाड़ी बराबर न होना।
२ वह लोभ जिसे तराजूके घूर्णकों का बोझ बराबर करने-
के लिये तराजूकी लोतीमें इसको पक्षको तरफ बांध
देते हैं।

पास (सं० पु०) १ माया। २ यास, साल धमाणा।

पास (सं० पु०) १ बमल, और, तरफ। २ सामोप्य,
निकटता, समीपता। ३ अधिकार, कक्षा। (पथ्य०)
४ निकट, समोप, बगलमें। ५ अधिकारमें, कक्षमें।
६ सम्बोधन कार्य किसेके प्रति, किसेसे। (सं० पु०)
७ ममनाधिकारपत्र, राहदारोंका परवाना (वि०) ८ पार
किया हुआ, से किया हुआ। ९ सवतिक्तममें कोई
निर्दिष्ट स्थिति पार किया हुआ, किसे दर्जके आगे गया
हुआ। १० सञ्जीव, सफलीभूत, इन्तजानमें काम आ।
११ लौकिक, मंगल। १२ प्रचलित, चलता, जारी। १३
चामेके ऊपर उससे आसनेका काम। १४ भेड़ोंके बाल
कतरनेकी कौशिका दस्ता।

पासना (सं० लो०) यन्त्रोंमें कूच पाना।

पासनो (सं० लो०) पञ्चपासन, बर्षोंको पहले पहल
पनात्र पटानेकी रीति। अथवायनके दिन बालकके
सामने अनेक बस्तुएं रख कर मङ्गल देवते हैं, कि किस
बस्तु पर उसका पहले हाथ पड़ता है। उससे यह समझा
जाता है, कि वही उसको जीविका दोगे।

पासवद (सं० पु०) दूरी वृत्तके कारचको यह सकड़ी
जिससे वे बंधी रहती हैं और जो नीचे ऊपर बाधा
करती है।

पासवृक (सं० पु०) १ वह पुस्तक जिसमें किसी प्रकारके
ज्ञान देना हिसाव किताब हो। २ यह वही या किताब
जिसमें सोदागर उधार लो गई चीजोंके नाम लिख कर
खोदोदारके पास दस्तखत करानेके लिये भेजता है। ३
वह किताब जिसमें किसी बंधका हिसाव किताब
रहता है।

पासा (सं० पु०) १ हाथीदांत या हड्डीके लँगनोंके
बराबर छः पहले टुकड़े। इन टुकड़ोंके पहलों पर
विदिया बनी ओता-६ और एक चौसरके खेलनेमें
खेलाही बायीं बायीं दोनों हैं। जिस बंध य पड़ते हैं

पापाणकदली (सं० स्त्री०) कदलीभेद, पहाड़ी बेला ।
 पापाणकुन्दक (सं० पुं०) पापाणभेदक ।
 पापाणगर्दभ (सं० पुं०) हनुमन्विजात सुद्रोर्गविशेष,
 दाढ़ सूजनका रोग । वायु और कफके विगड़नेसे इनके
 सन्धिस्थानमें यह रोग होता है । इसमें दाढ़ सूज जाती
 और बहुत पोड़ा होता है । आवप्रकाशमें इसका
 लक्षण और चिकित्सा इस प्रकार है,—वायु और कफके
 प्रकोपसे हनुदेगको मन्थिमें पल्पवेदनायुक्त स्थिर भयच
 हिनय जो शोथ होता है, उसे पापाण-गर्दभ कहते हैं ।

इसको चिकित्सा—सुचिकित्सक पापाणगर्दभरोगमें
 पहले खेदप्रदान, पीछे मनःशिक्षा, वैर, हरिद्रा, हरिताम्र
 और देवदारु इन सबको पोष कर प्रलेप दे तथा वात-
 श्लेष्मिक शोथनाशक अन्त्यान्त कचकका भी प्रलेप
 प्रयोक्त्य है । इससे सूजन बहुत जल्द दब जाती है ।
 यदि यह पक जाय, तो शस्त्रप्रयोग करके प्रथको तरह
 चिकित्सा करनेको होता है । अथवा प्रथममें जलोका
 (जोक) द्वारा रक्तमोचन करानेसे बिना शोधक ही यह
 रोग प्रशमित हो जाता है ।

(भावप्रकाश-चतुर्थभा० सुद्रोर्गा०)

पापाणनैरिक (सं० स्त्री०) गिरिस्तिका, गेरू ।
 पापाणचतुर्दशी (सं० स्त्री०) पापाणसाध्य पापाणवत्
 पिष्टकभोजनसाधन चतुर्दशी । अथवा पापाण भासको
 शक्ताचतुर्दशी । इस तिथिको स्त्रियां गौरीका पूजन
 करके रातको पापाण (पत्थरके टोंकी) के भाकारको
 बड़ियां बना कर खाते हैं ।

पापाणजतु (सं० स्त्री०) शिलाजतु ।
 पापाणदारक (सं० पुं०) दारयति विदारयतीति द-णिच्-
 ण्यत्, पापाणस्य दारकः । टण्डु, टांकी, छेनी ।
 पापाणदारक (सं० पुं०) दारयतीति द-णिच्-ण्यत्,
 पापाणस्य दारकः विदारकः । पापाणभेदनाक्ष, टांकी,
 छेनी ।

पापाणमिद (सं० पुं०) १ पापाणभेद । २ कुलस्य, कुलधो ।
 पापाणमिम (सं० पुं०) शोधविशेष । प्रस्तुत प्रश्नाको—
 १ पल पारा, २ पल गन्धक, १ पल शिलाजित इन सबको
 एक साथ मिला कर यथाक्रम श्वेतपुनर्षा, चक्रस और
 श्वेतपराजिताके रसमें एक दिन तक मलीर्माति घटि ।

पीछे एक बरतनमें रख कर दोनायेन्मका खेद दे । तद-
 न्तर भूषावला और खीरेको जड़को धूषके साथ पीस
 कर दो रत्तीकी गोली बनावे । कुलधोके काढ़ेके साथ
 इसका सेवन करनेसे चर्मरोग शान्त होता है । इसमें
 पापाणरोग निराकृत होता है, इस कारण इसका
 पापाणमिम नाम पड़ा है । (भैषज्यरत्न० अष्टमोऽध्यायः)
 पापाणभेद (सं० पुं०) एक योषा जो अपनी पत्तियोंकी
 सुन्दरताके लिये धनीघोंमें लगाया जाता है ।

पापाणभेदन देखो ।

पापाणभेदन (सं० पुं०) पापाण चर्मरोग भिन्नशीति
 भिद-च्यु । हृषविशेष, पथरचूर, पथरचट । पंथाय-
 चर्ममन्त्र, शिलाभेद, चर्मभेदक, खीता, चपलभेदो, पल-
 मित्, शिलागमज । इसका गुण—मधुर, तिक्त, मेघ,
 लघ्ना, दाह, मूत्रकण्डू और चर्मरोगनाशक ।

भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—कषाय, वात-
 शोधन, मर्दक, पंथ, गुल्म, मूत्रकण्डू, चर्मरोग, हृद्दोग,
 शोनिरोग, प्रमेह, शोषा, शूल और लघनाशक ।

पापाणभेदिन (सं० पुं०) पापाण चर्मरोग भिन्नशीति
 भिद-विनि । हृषविशेष, पथानभेद, पथरचूर ।
 पंथाय-चर्मभेद, शिलाभेद, चर्मभिद । भिन्न भिन्न
 देशमें यह भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है, यथा—
 बङ्गालमें पंथरचूर, पाथरकुवा, हिमसागर । हिन्दी,
 महाराष्ट्री और बम्बई अञ्चलमें पथरचूर ; तेल्ङ्गमें
 पिण्डिचेई ; पञ्जबीमें (Coleus aromaticus) ।

यूरोपीय संस्कृतिशास्त्रियोंके मतसे इस वृक्षका प्रादि-
 स्थान मल्लभासदीप है । यही भारतवर्षके सभी स्थानोंमें
 यह वृक्ष दिखा जाता है । योषकालमें इसका शीतल
 लक्ष बहुतसे लोग पीते हैं । इससे इसका हिमसागर
 नाम पड़ा है । ऐसा चतुर्मान किया जाता है । इसकी
 शाखा और पत्तियोंमें एक प्रकारकी गन्ध है । इसीसे
 बहुतरे पत्तियोंकी सुगंध कर खाते हैं और उनका रस
 देसीय शराबमें ध्वज्जत करते हैं ।

भारतवर्षाकी बहुत जगहसे इस पेड़के गुणागुणसे
 प्रबलत है । चरक (१४ ब०)-में इसका उल्लेख है ।
 राजनिघण्टुके मतसे पापाणभेदो तीन प्रकारका है,
 यथा—भटपत्ती, शिलावत्तक और पापाणभेदो । इन

मौली का गुण—मधुर, तिक्त, मेहघ्न, दृग्घा, दाह, मूल-
कृच्छ्र और चर्मरोगनाशक तथा शीतल है । आश्वपक्वायके
मनमें इसका गुण—मोतल, तिक्त, कषाय, वस्तिशोधक,
भेदक, पथ, गुण, कृच्छ्र चर्मरोग हृदोग, योनिरोग,
प्रमेह, श्लीहा, शूल और मूत्रनाशक, मूत्राशय, सक्षित-
क्षेत्र, अपवमार और पाचिप्रयोगमें हितकर तथा मात-
शान्तिकर । (भावप्रकाश)

कोजोनचोनमें यह मेह घ्राह, काच, पुरातन
प्रमेहा, शूल और अपराध पाचिपक रोगोंमें व्यवहृत
होता है । डाक्टर डाक्टर मतमें इसमें मादकता-
शक्ति यथेष्ट है । देसी डाक्टर मजीथीरोगमें इसका
व्यवहार करते हैं । डाक्टर काइमक इसको मादकता
स्वीकार नहीं करते । इसका कृष्णता है, कि कृष्ण
पचनवासी जिस परिमाणमें इसे काज करते हैं, उससे
कुछ भी नया नहीं पाता । घर का, अधिक व्यवहार
करनेसे मृदा-मलस्य प्राप्त होता है । देसी किसी
किसी डाक्टरके मतमें मज्जके योजकत्व रोगमें प्रच-
ली प्रसक्तके ज्वर और जोड़े इसका प्रयोग दिया जाता
है । पुरातन मजीथीरोगमें यह विमिश्र उपकारी माना
गया है ।

पायाणरोग (स० पु०) चर्मरोग, पंथरी ।
पायाणवन्धकार (स० पु०) चर्मरोगाधिकारमें जो वध-
विमिश्र । इसकी प्रसृत प्रणाली—एक भाग पारद, दो
भाग शुद्ध मज्जा प्रसृत प्रणाली के रसमें एक दिन मदन
करके पुटवद करे । पीछे उसे भूधरयन्त्रमें प्राक करके
दो रत्तीकी गोली बनाई । शुद्ध और मोलककी साथ
इसका प्रयोग करनेसे चर्मरोग और मज्जामूल तिराकत
होता है । (रघुवार्धक अथर्वचिन्ता)

पायाणवध (स० स्त्री०) दाहमोचभेद ।
पायाणवन्धवन्धनी (स० स्त्री०) पाला, मृगा ।
पायाणवन्ध (स० पु०) प्रमाणावध ।
पायाण (स० स्त्री०) पायाण वन्धनी की वृद्ध-
प्राप्ति, पाला का दूकड़ा को तोलनेके काममें आवे,
भाट, बटखरा ।
पायो (स० स्त्री०) पायते प्रपति प्रमया पाय-वन्ध
करके घञ् डोप । १ मज्जा । २ पिला ।

पायोध (स० स्त्री०) सामभेद ।
पायंग (प्रा० पु०) १ तराजूकी डांडी सरानर न होना ।
२ वह शीक जिसे तराजूके पन्नीका बोझ बराबर करने-
के लिये तराजूको ओतीमें घनके पन्नीको तरफ बांध
देते हैं ।

पाय (स० पु०) १ याग । २ सास, लात धमाका ।
पाय (हि० पु०) १ बगल, और, तरफ । २ सामोप्य,
निकटता, समीपता । ३ अधिकार, कक्षा । (यश०)
४ निकट, समोप, बगलमें । ५ अधिकारमें, कक्षमें ।
६ सम्बोधन करके किसीके प्रति, किसीसे । (य० पु०)
७ मन्त्राधिकारप्रत्य, राजदारीका परवाना (वि०) ८ पार
किया हुआ, तो किया हुआ । ९ समतिक्रममें कोई
निर्दिष्ट स्थिति पार किया हुआ, जिससे दूरजके आगे गया
हुआ । १० स्त्रीण, सफलीभूत, हस्तदानमें काम । ११
१२ स्त्रीकृत, मंजूर । १३ प्रचलित, चलता, जारी । १४
आपके ऊपर उपलब्ध नमानेका काम । १५ भेड़ोंके बाल
कतरनेकी कौचोका दस्त ।

पायना (हि० स्त्री०) धनीमें लूभ भाग ।
पायनो (हि० स्त्री०) प्रज्वालयत, बलकी पहले पहल
चलाय प्रज्वालीनीति । अथवायनके दिन बालकके
सामने अनेक वस्तुएं रख कर गुरुन देवते हैं, कि जिस
वस्तु पर समका पहले हाथ पड़ता है । उससे यह समझा
जाता है, कि वही उसको जीविका देगा ।

पायवद (हि० पु०) दूरी दुर्गनेके कारके को यह लकड़ी
जिससे वे बंधो रहती हैं और जो नीचे जपर जाया
करती है ।

पायवत् (य० पु०) १ वह पुस्तक जिसमें किसी प्रकारके
ज्ञान देतका हिस्सा किताब हो । २ वह वही या किताब
जिसमें छोटागर सधार लो गई चीजोंके नाम-लिख कर
खोदारे पाय दस्तखत करानेके लिये भेजता है । ३
वह किताब जिसमें किसी बौद्धका हिस्सा किताब
रहता है ।

पाय (हि० पु०) १ हाथीदात या हड्डीके लंगलीके
बराबर छः पहले टुकड़े । इन टुकड़ोंके पणतो पर
विदिग्ध बली होता है और एक चौमरके खेलनेमें
खेलाड़ी बारी बारी में खेलते हैं । जिस बल से पड़ते हैं

चभीने पनुसार विमात पर गोटीयां चली जाती हैं और अन्तमें द्वार जोत होती है। २ मोटो वस्तुके आकारमें खाई हुई वस्तु, कामो, गुला। ३ वह खेल जो पाखो में खेला जाता है, बीसरका खेल। बीसर देखो। ४ पोतल या कनिंका चोखूटा लम्बा ठप्पा। इसमें छोटी छोटी गोल गड्ढे बने होते हैं। घुंघरू या मोलं घुंठो बनानेमें सुनार मोनेके पत्तरको इसी पर रख कर ठोकते हैं।

पासानार (हि० पु०) १ पाखेकी गोटी। २ पाखेका दिन।

पासिका (हि० स्त्री०) पाग, फंदा, जाल।

पासी (हि० पु०) १ जाल या फंदा डाल कर चिड़िया पकड़नेवाला, बकलिया। २ एक नीच और अमृश्य जाति। इस जातिके लोग मयुरासे पूरवकी ओर पाये जाते हैं। ये लोग मूपर पालते और कहीं कहीं ताड़ परने ताड़ो निकालनेका काम करते हैं। प्राचीन कालमें इनके पुर्वज प्रायदण्ड पाये हुए अपराधियों के गलेमें फाँसोका फंदा लगाते थे, इसीसे यह नाम पड़ा। (स्त्री०) ३ पाग, फंदा, फाँस। ४ घास बाँधनेकी जासी। ५ थोड़े के पैर बाँधनेकी रस्सी, पिछाड़ी।

पास्य (स० त्रि०) पस्त्ये गृह्ये वसति मयिकोरण् । गृह्यामी।

पाह (हि० स्त्री०) एक प्रकारका पत्थर। इससे लोग, फिटकरी और अफीमकी धिम कर भाँव पर चढ़ानेका लेप बनाते हैं।

पाहन (हि० पु०) प्रस्तर, पत्थर।

पाहरा—दुन्देलखण्डके अन्तर्गत एक सुदूर राज्य। यहाँके राजा चौबीस शीशर है। राज्यकी परिमाण १० वर्ग मील है। राजस्व प्रायः (१०००) रु० है। पाहरखास इस राज्यकी राजधानी है।

पाहा (हि० पु०) पानकी बेली या किसी जूँको फलकी खिलीके बीचका रास्ता, सड़।

पाहाड (स० पु०) ब्रह्मदायवृक्ष।

पाहात (स० पु०) पाह भततीति भत भच् । ब्रह्मदान-वृक्ष, गङ्गुलका पेड़।

पाहि—एक संस्कृत पद जिसका अर्थ है, 'रक्षा करने' 'वधाकी'।

पाही (हि० स्त्री०) वह खिली जिनका किसान दूसरे गाँवमें रहता हो।

पाहुना (हि० पु०) १ अतिथि, अन्त्यागत। २ आमाता, दामाद।

पाहुने (हि० स्त्री०) १ स्त्री अतिथि, मेहमान औरत। २ अतिथि, मेहमानदारी, अतिथिकी पाटर संस्कार, खातिर तवाजा।

पाहुर (हि० पु०) १ भेट, नजर। २ वह वस्तु या धन जो किसी सम्बन्धी या दूत मित्रके यहाँ व्यवहारमें भेजा जाय, सोगात।

पाइ (हि० पु०) मनुष्य, यज्ञि, गण्ड।

पिंजरा (हि० पु०) रस्मियोंके आधार पर टंगा हुआ छोटोना जिस पर बर्तोंकी सुना कर ब्रह्मसे उधर भुनाते हैं, भूना, पालना।

पिंजड़ा (हि० पु०) पिंजरा देखो।

पिंजरा (हि० पु०) मोह, हाँस आदिकी तीलियोंका बना हुआ भाँवा जिसमें पखो पाले जाते हैं।

पिंजरापोल (हि० पु०) पशुशाका, गोमाला जहाँ पालने के लिये गाय, बेल आदि घोषाए रखे जाते हैं।

पिंजारी (हि० स्त्री०) त्रायमाण नामकी कीपध, गुर-बियाणी।

पिंजियारा (हि० पु०) रुई ओटनेवाला।

पिंङ्कलूर (हि० स्त्री०) एक प्रकारकी लकूर जिसके फल मोठे होते हैं और इन फलोंका गुड़ भी बनता है, सरक, सेंधो।

पिंङ्गी (हि० स्त्री०) पिंङ्गी देखो।

पिंङ्गी (हि० स्त्री०) टाँगका ऊपरी पिछला भाग जो भाँगल होता है, छूटनेके पीछेके गड्ढे कीचका भाँग जिसमें चढ़ाव संतार होता है।

पिंङ्गाही (हि० स्त्री०) एक प्रकारका कपड़ा।

पिंङ्गा (हि० पु०) १ गीत मटोल टुकड़ा, टेला या लोटा, लुगटा। २ ठोस या मोला वस्तुका टुकड़ा। ३ शरीर, देह। ४ मधु मिला मिनी हुई खीर आदिका मोल लोटा जो आदमें पितरोंकी अर्पित किया जाता है। ५ द्वितीयकी शुभेन्द्र, धरम। ६ पिंङ्ग देखो।

पिंङ्गारा (हि० पु०) १ एक भाग जो वेद्यकमें अतिन

बीर पिच्छनागक माना गया है। २ दक्षिणकी एक जाति जो बहुत दिनों तक मध्यप्रदेश तथा गौर और स्थानोंमें लूट पाट किया करती थी। पिछुवारी देखो

विहारी (हि० पु०) दक्षिणको एक जाति जो पहने कर्पाट, महराष्ट्र आदिमें बसती और खेतों बारी करती थी, पीछे पवसर या कर लूट मार करने लगी और सुनलमान हो गई। विशेष विवरण पिछुवारी शब्दमें देखो।

विहिया (हि० स्त्री०) १ गोली भुरभुरो वखुका मुट्ठोसे बांधा हुआ लम्बीतरा टुकड़ा, कश्मीरों में (पं०)। २ लपेटे हुए घृत, सुतलो या रस्सोका छोटा गोला। ३ शुद्धकी कश्मीरों में भी, सुडो।

विशन (हि० स्त्री०) पेशपम देखो।

विम (हि० वि०) १ विष देखो। (पु०) २ विष देखो।

विमरवा (हि० पु०) १ पति देखो। (वि०) २ प्यारा देखो।

विमरिया (हि० पु०) पोखी रंगका घेले जो बहुत मजबूत और तेज चलनेवाला होता है।

विमरो (हि० स्त्री०) १ रश्मीकी रंगमें रंगी हुई धोती जो विवाहके समयमें वर या बधू को पहनाई जाती है। २ पोखी रंगी हुई बड़ धोती जो प्रायः देहाती स्त्रियां गंगाजीकी चढ़ाती हैं। (वि०) ३ पीली देखो।

विभाज (हि० पु०) प्याज देखो।

विभाना (हि० स्त्री०) भिकाना देखो।

विभानो (हि० पु०) भियानो देखो।

विभार (हि० पु०) प्यार देखो।

विभारा (हि० वि०) प्यारा देखो।

विभाघ (हि० स्त्री०) प्याघ देखो।

विभामा (हि० वि०) प्यारा देखो।

विठ (हि० पु०) पति, खादिद।

विडनी (हि० स्त्री०) पनी देखो।

विक (स० पु०) अपि कायति शब्दायते इति अपि-कै-क (भाष्यकोषार्णव)। पा ३।१।२९ प्रपेदकार लोपः।

विक्रिज, कोयल। मोमसाके माध्यकार शवर स्वामीने विक, तामरस, जैम आदि कुछ शब्दोंको संस्कृत भाषासे गृहीत बनाया है।

विमदेव (स० पु०) पाम्बट्ट, पामका पेड़।

विक्रिय (स० पु०) १ वचनान्न। २ पाम्बट्ट, पामका पेड़।

विमिया (स० स्त्री०) १ महाजम्बू, महा नामन। विकस्य प्रिया। २ कोकिला।

विजम्बू (स० पु०) पिकाना वम्बुरिख। पाम्बट्ट, पामका पेड़। द्रवका पर्वीय विक्रयाम्य है।

विजम्बुका (स० स्त्री०) भूमिजम्बुका, वन-जामन।

विजम्बुकाय (स० पु०) पिकाना महोदवी यत्।

पाम्बट्ट, पामका पेड़।

विकराग (स० पु०) पिकाना रागोऽनुरागो यत्। वा पिको राख्यते यत्, रज्ज-घञ्। पाम्बट्ट, पामका पेड़।

विकवत्तम (स० पु०) पिकाना वत्तमः। पाम्बट्ट, पामका पेड़।

विकाच (स० पु०) विकस्य चाचिकोचनं तद्वत् वर्णो यस्य पञ्चमासात्तः। १ रीचनीहल। २ ताक-मखाना। (वि०) विकस्य भक्षोय चाचि यस्य। ३ विकवत् रक्तनिव-युक्त, जिमकी चाँखे कोयलकी तरह लाल हो।

विकाह (स० पु०) विकस्य चहमिव अह्न यस्य। चातक पक्षी।

विकानन्द (स० पु०) विकानामानन्दो यस्मिन्। वसन्त ऋतु।

विकिन—चीन-साम्राज्यको राजधानी। चीन देखो।

विकी (स० स्त्री०) विक-स्त्रियां नोप्। कोकिला, कीयल।

विहुरस (स० पु०) मद्य, शराब।

विरेघणा (स० स्त्री०) विकस्य ईक्षणं लोचनं तद्वत् वर्णो यस्य। १ ताक-मखाना। (वि०) २ जिमकी चाँखे कोयलकी-सी हो।

विक (स० पु०) विक-इत्यव्ययस्येन कायतोति कै-क। वा विक इव कायतोति कै-क, प्रपोदरादित्वात् साधु-रित्येक। हस्तिनागक, शत्रोका पक्षा।

विका (स० स्त्री०) सुकाया परिमाणभेद।

पिछुवा—युक्तप्रदेशके मोरट जिलान्तर्गत एक नगर। यह पचा० २८°४२' ४५" उ० और देशा० ७६° १' पू०के मध्य, मोरटके १८ मोल दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहांकी म्युनिसिपैलिटीकी वार्षिक आय ६६५० रु० की है। यहां लपटे दुनईकी कल है और चमड़ा तथा जूता भी प्रसृत होता है। सिपाही-विद्रोहके बाद भीसेल साहबने

निष्ठवर्ती ११ यामोके साथ माघ दस नगरको भी खरोटा था। यहाँ दो हिन्दू, मन्दिर, याता, झाकचर और दो सराय हैं।

विषयनाम (हि० लि०) १ द्रुमोभूत होना, तापके कारण किसी घन पदार्थका द्रवरूपमें होना, गरमोमें किसी चीजका गल कर पानोसा हो जाना। २ चित्तमें दया उत्पन्न होना, किसीकी दया पर करुणा उत्पन्न होना, पछीजना।

विषयनाम (हि० लि०) ॥ दयाई करना, किसीके मनमें दया उत्पन्न करना। २ किसी कड़े पदार्थको गरमो पड़वा कर द्रव रूपमें लाना, किसी चीजको गरमो पड़वा कर पानोके रूपमें लाना।

पिङ्ग (मं० स्त्री०) पिङ्गतीति पिङ्ग वर्षे षष्ठ्यङ्कादित्वात् कृत्स्नम्। १ वालक, बाला। २ हरिताल, हरताल। ३ मेघा। (पु०) ४ चूड़ा, मूसा। ५ पिङ्गलवर्ण, मोसारंग। (त्रि०) ६ पोला, पोलापन लिए भूसा। ७ दीपमिखाके रंगका, भूरापन लिए लाल, तामड़ा।

पिङ्गकपिमा (चं० स्त्री०) पिङ्गा कपिमा च। 'वर्णो यथो-
मेति समासः। १ तेलपायिका, तेलपावो, तेलचटा, गुबरेकोई पाकारका एक कौड़ा जिसका रंग काला और तामड़ा होता है। २ पिङ्गलवर्ण युक्त या कृपिम-
वर्ण युक्त, पोले या भूरे रंगका।

पिङ्गचतुस्र (चं० पु०) पिङ्गे चतुस्रो यस्याः। १ कुशीर, जल नामक जलजन्तु, नाक। (त्रि०) २ पिङ्गनेत्र, जिसकी पंखि भूरे या तामड़े रंगकी हो।

पिङ्गजठ (चं० पु०) पिङ्गा पिङ्गलवर्णा जठा यस्य। यिह, महादेव।

पिङ्गतीर्थ (चं० स्त्री०) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

पिङ्गभास (चं० पु०) गोधेरक आतिभेद।

पिङ्गमूल (चं० स्त्री०) गन्ध, गाजर।

पिङ्गर (मं० पु०) पिङ्गल।

पिङ्गल (मं० पु०) पिङ्गो वर्णोऽस्योऽतीति पिङ्ग (पिङ्गा हिमन्व । वा ५।२।२७) इति सप्त। १ पिङ्गलवर्ण, मोला और पोला मिना चूड़ा रंग। यर्णीय—कहारा, कृपिम, पिङ्ग, पिङ्गह, कड़, मोलपोत, रोचनोभ, कनक-
पिङ्गल। (इन्द्रो) पिङ्ग, रोचना, पाण्डू, कड़, और

कनकपिङ्गल। (नामगाल) २ नागभेद, एक नागका नाम। ३ रुद्र। ४ चण्डाशुपारिपात्रिक, सूर्यका एक पारिपात्रिक या गण। ५ निधिमद, एक निधिका नाम। ६ कवि, मन्दर। ७ जनि। ८ सुनिविशेय, एक सुनिका नाम। ९ नकुल, नेवला। १० खापरविश-
विशेय, एक प्रकारका खापर विष। ११ सखू पक्षी। १२ यक्ष विशेय, एक यक्षका नाम। १३ पर्वतविशेय, एक पहाड़का नाम। १४ प्रभावादि यष्टिर्षके जलमय एक मृदाग्रस्तम वष। पिङ्गल संप्रसारमें देगभङ्ग और जर्मटानटोके किनारे प्रकाश होता है। १५ पिङ्गला-
चार्यकृत मन्त्रतत्त्वहृदोपन्य विशेय पिङ्गलने प्राकृत भाषामें भी एक हृदोपन्य प्रणयन किया है। प्राकृत-
हृदोपन्यके मध्य यशो घन्य सर्वोत्कृष्ट है। पिङ्गल नाग-
की नामसे प्रसिद्ध है। इनका हृदोपन्य वेदाङ्गके मध्य-
गिना जाता है। किसीका कहना है, कि पिङ्गलाचार्य
ही महाभाष्यकार पतञ्जलि हैं। किन्तु यह केवल प्रवाद-
का प्रतीत होता है। पिङ्गलके हृदोपन्यकी बहुतसी
टोका पाई जाती हैं जिनमेंसे निम्नलिखित उल्लेख योग्य हैं—

लक्ष्मोनायकृत चन्द्रोष्णकृत पिङ्गलभाष्येऽतीति।
चित्रसेन, पद्मप्रभसुरि, पद्मपति, वाणनाथ, चोपति,
मयुरानाथ शुक्ल और मनोहर लखारचित पिङ्गलटोका,
रविकरकृत पिङ्गलसारविक्रमिनी, राजीन्द्रदयाशुभान-
रचित पिङ्गलतत्त्व प्रकाशिका, लक्ष्मोनायकृत (१५००
ई० में रचित) पिङ्गलप्रदीप, तंमोधरका पिङ्गलप्रकाश,
वामनाचार्यका पिङ्गलप्रकाश, विद्यानिवासरुत विङ्ग-
नायकृत पिङ्गलमतप्रकाश, हलायुधकी सूतसञ्जीवनी,
पिङ्गलभाष्य और पिङ्गलवार्तिक। १६ कई एक प्राचीन
कवियोंके नाम। १७ भारतके उत्तर-पश्चिममें अवस्थित
एक देग। (बनी०) १८ पिचल, पीतल। १९ हरि-
ताल, हरताल। २० पेचक, सख। २१ छोरी, खस। २२
रहना। २३ मण्डलिक वर्ष विशेय, एक प्रकारका
फनदार शीप। २४ कवि, मन्दर। (त्रि०) २५
पीत, पीला, भूरापन लिए लाल, दीपमिखाके रंगका
तामड़ा। २६ भूरापन लिए पोला, चंघनी रंगका, लदे
रंगका।

पिङ्गल (मं० पु०) पिङ्गलन्नायं कन्। १ पिङ्गल-
पदार्थ। २ यक्षभेद, एक देवताका नाम।

पिङ्गलनामक (स० पु०) शिवायस ।

पिङ्गलपत्तन—चन्द्रहोवने चन्द्रगर्त एक गण्डग्राम । इसकी समोप हो पिङ्गलानन्दो बहती है ।

पिङ्गललोह (स० वृत्तो०) पिङ्गल लोहमिव नित्य कर्मधः० । विचन, पोतन ।

पिङ्गला (स० स्त्री०) पिङ्गल-टाण । १ धामनाख्य दक्षिण-दिग्गजकी स्त्री । २ लक्ष्मणका एक नाम । ३ वेश्या-विशेष ।

‘क्यौ मुनौ लिपिभेदे पिङ्गला कुमुदप्रियाम् ।

कदापिकाशं वैश्याशं नाहोभेदे...’ (हेम)

सांख्यदर्शनके सूत्रमें पिङ्गला नामक वेश्याका नामोल्लेख देखनेमें आता है । निराशा सुखी विपत्तयः (सांख्यशील ४ परि) आशाका परित्याग करनेसे ही सुख मिलता है, जिस प्रकार पिङ्गलाने आशाविरहित हो सुख प्राप्ति किया था ।

भोगवतकी एकदम स्तम्भ मष्टम अध्यायमें इस पिङ्गला वेश्याकी व्याख्यायिका ३३ प्रकार लिखी है—
विदेहनगरमें पिङ्गला नामकी एक वेश्या रहती थी । एक दिन वह अपने कान्तको रतिस्थानमें लिये जा रही थी, इसी बीचमें किसी धनोद्योक्त पर उसकी निगाह पड़ी । उसे देखते ही वह धन पानेकी आशासे कभी घर कभी बाहर होने लगी, पर वह कान्त नहीं आया । आशाकी वशवर्त्ती हो कर वह रात भर उसीकी बिन्तामें पड़ी रही । कान्तकी नहीं आनेसे पिङ्गलाने निर्वृत्त उपस्थित हुआ और वह इस प्रकार चिन्ता करने लगी—“कान्ता-धिनी हो कर मैंने रात भर जग भर जितोया, तिष्ठ पर भी कान्त-समागम-सुख मेरे भाग्यमें न बढा । किन्तु मैं को सो नासमर्थ हूँ, कि धासमें कान्त रहते उसे पवचान न सके । जिनके समागमसे सभी प्रकारके भूमिलाय सिद्ध हो सकते थे, वैसे कान्तका परित्याग कर मैंने अज्ञानान्त हो भकामद दुःखमय शोक तथा मोहमद कान्तके लिये इतना कष्ट उठाया ।” अन्तमें पूर्वजन्मकी सुकृतिके कारण पिङ्गलाने मोहरहित हो आत्मज्ञान लाभ किया । योही उसे इस प्रकार ज्ञान हो गया, कि “आशा की सारे दुःखोंका मूल है । जिन्होंने सब प्रकारकी आशा छोड़ दी है, वे ही सुखी हैं । मैं आशामें प्रलुब्ध हो कर

दुःखभोग कर रही थी, अब आशाविरहित हो सुखी हुई ।” इस प्रकार पिङ्गला भगवान्की प्रति विच सम-पण कर सुखसे सोई थी ।

महाभारतके शान्तिपर्वमें इस प्रकार लिखा है—

भीष्मदेवने युधिष्ठिरकी मोक्षधर्मका उपदेश देते समय इस पिङ्गला वेश्याका उदाहरण दे कर कहा था, “यहिले पिङ्गला नामक एक वेश्या मद्धत-स्थानमें अपने प्रियतमसे वंचित हो नितान्त दुःखित बैठे थी । इसी क्षणके समय उसे आत्मज्ञान हो गया और बहुत शोभ करके कहने लगी, जो सर्वान्तर्यामी निर्बिकार पुण्य भरे हृदयमें वास करते हैं, मैंने कामादि द्वारा उन्हें अब तक समाच्छन्न कर रखा था । एक दिन भी मैं हृदया नन्दकर परमात्माको गणपपवन न हुई । आज मैं आत्म-ज्ञान बलसे पञ्चानन्दाश्रयुक्त नवहार-वन्द्यवटवत् समाच्छन्न करूंगी । पहले मैं जिन कामांकी प्रति प्रयत्नरत हुई थी, वे यदि इस समय भा जाय, त. कभी भी मैं उन्हें कान्त समझ कर धार नहीं कर सकती । अभी मुझे आत्मज्ञान हो गया है । अतएव वे नारकद्वयी धूर्त फिरसे मुझे बचान नहीं कर सकते । देवबल और जन्मान्तरोग पुण्यबलसे अनर्थ भी भव्यरूपमें परिणत होता है । आज मैंने ज्ञानबलसे विषयशान्तनाका परित्याग और जितेन्द्रियता प्राप्त की है । आशा-विहीन महारमा हो स्वच्छन्दतासे सोते हैं । आशा-परित्यागकी अपेक्षा परमसुखका कारण और कुछ भी नहीं है ।” पिङ्गला इस प्रकार आशाका परित्याग कर परमसुखसे मोई थी । (भारत वासिपर्वे १७४ का०)

पिङ्गलाके अध्याय कर्म द्वारा जोवनयात्रा करने पर भी उसे पूर्वजन्मकी सुकृतिके कारण ऐसा वैश्या सत्यम् हुषा था और इसीसे वे योही परमसुखसे रहने लगे थी ।

४ नाही भेद, मरीरमें पिङ्गला, इहा पिङ्गला और सुपुत्रा नामकी तीन प्रधान नाहिया हैं ।

“दक्षिणः स्थितः सूर्या दामभागे निशाकः ।

नाहीदक्षविदुस्तासु मुख्यास्तितः प्रकीर्तिताः ॥

इहा नामे तनोमये सुपुत्रा विगलारे ।

मन्था तांस्त्वपि नाही द्यादमिन्धोमस्त्वरुपिणी ॥”

(चारदातिवट)

नाडो दग है जिनमें इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना यही तीन प्रधान हैं। शरीर के याम भागमें इडा नाड़ी, मध्यको और सुषुम्ना और दक्षिण को और पिङ्गला नाड़ी व्यवस्थित है।

निम्नतर तन्त्रके प्रथम पटलमें लिखा है, कि इडा आदि ले कर दग नाड़ियाँ हैं जिनमेंसे इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना वज्र, विष्णु और शिवरूपिणी हैं। योगार्णवमें लिखा है, कि पिङ्गलानाड़ी मितरत्नाभा है और दक्षिण पार्श्वदेगमें व्यवस्थित है।

दूसरे तन्त्रमें लिखा है, कि इडानाडोमें चन्द्र और पिङ्गलानाडोमें सूर्य रहते हैं।

जब पिङ्गलानाडोका कार्य होता है, तब दक्षिण नाविका घुट हो कर श्वांन निकलता है। इस पिङ्गलानाडोके वहनकालमें कौन कौन कार्य करनेमें शुभ होता है, उसका विषय प्रायतोगिणीमें इस प्रकार लिखा है,—

कठिन और क्षूर विद्यादिका पठन और पाठन, श्लोसक, वेद्यागमन, नौकादिरोक्षण, सुरापान, वीरमन्त्र उपासन, गन्धबोका नमर ध्वंश और विषदान, शास्त्राभ्यास और गमन, शृगादिपशुविक्रय, काष्ठ, पाषाण और रत्नादिका घर्षण, गोत्याभ्यास, दुर्ग और पर्वतारोहण, स्नान, गजाश्वादि रथवाहन, मारण, मोहन, स्तम्भन, विद्वेष, उच्चाटन, मगोकरण, क्रय, विक्रय, प्रेरण, धाकपण, राजदर्शन आदि कार्य करनेमें शुभ होता है।

(प्राणतोगिणी)

पिङ्गलानाडोके दिवता शिव है और गुण वस्य है। इसका उदयकाल दिवाभाग माना गया है। स्थिति चार दण्डमात्र है।

५ पञ्चभेद। ६ राजनीति। ७ शिंशपात्रुच, गोगमका पेड। ८ गीरीचन।

पिङ्गलाक्ष (मं० पु०) पिङ्गला उलो।

पिङ्गलानदी—१ राजमहलके उत्तर अंगसे निकली हुई एक स्त्रीनम्बती जो गङ्गामें मिल गई है। २ नदीभेद, एक नदीका नाम।

पिङ्गलानन्द (मं० स्त्री०) तन्त्रविशेष, एक तन्त्रका नाम।

पिङ्गलिका (मं० स्त्री०) पिङ्गली वर्षाऽप्लव्या इति पिङ्गल-उत्पत्ति। १ यलाका, बलला। २ कोटविशेष, मखी-

की जातिका एक कोटा जिसके काटनेमें जलन और सूजन होती है।

पिङ्गलित (मं० वि०) पिङ्गली तदर्थोऽप्लव्या, तारकादि-त्वादित च। पिङ्गलवर्णयुक्त, पिङ्गल वर्णका।

पिङ्गलेश्वर (सं० स्त्री०) तोर्यभेद।

पिङ्गलोचन (सं० वि०) पिङ्गे लोचने यस्य। पिङ्गल-वर्ण चक्षुयुक्त, पिङ्गलाक्ष।

पिङ्गवर्णक (सं० स्त्री०) गर्जरमुल, गजरको जड़।

पिङ्गवार (सं० पु०) पिङ्गमेव चारो यस्य। हरिनाले, चरताल।

पिङ्गवफटिक (मं० पु०) पिङ्गः पिङ्गल वर्णः, वफटिकः। गोमेदमांस।

पिङ्ग (सं० स्त्री०) पिङ्गे वर्षाऽप्लव्या इति प्रच., टाप, च। १ गोरोचन। २ हिङ्गु, हिंग। ३ शालिका। ४ चण्डिका देवी। ५ हरिद्रा, हरी। ६ वंशलोचन। ७ खनामख्याता तपस्विनी। पिङ्गा जिन पायममें रहती थी, खानक्रमसे यह तोर्यमें गिना जाने लगा है। यह तोर्य शायतन हो पवित्र है और इसमें खानादि करनेसे नमो पाप जाने रहते हैं तथा भेकड़ी कपिला घेनुदानका फलश्राभ होता है। उन्मानक देवी। ८ रत्ना-वाहिनी नाडो। (पु०) ९ यह पुरुष जिसके पैर टेढ़े हैं।

पिङ्गाक्ष (मं० पु०) पिङ्गं अक्षि यस्य, पञ्चममामासा।

१ गिन, मण्डप। २ कुम्भीर, गङ्गा नामक जलजन्तु, नाड। ३ विडाल, बिडाल। (वि०) पिङ्गलनेत्र, जिसकी आंखें भूरो या तामड़े रंगकी हैं।

पिङ्गाक्षी (मं० स्त्री०) कुमारानुचर-माष्टभेद, कुमारकी अनुचरी एक माष्टका।

पिङ्गाण (मं० पु०) काच।

पिङ्गाग (मं० पु०) पिङ्गं वर्णमयूते इति प्रच., १ पञ्जोपति, गांवका मुखिया या चौधरी। २ मस्यभेद, एक प्रकारकी मक्खनी। इसे यज्ञान्ती पाद्माम कहते हैं। ३ आर्यध्वज, घोषा गोना।

पिङ्गाशी (मं० स्त्री०) पिङ्गाश-होषः। नौविका, नौल-का पेड़।

पिङ्गाक्ष्य (स० पु०) पिङ्गाक्ष्यं वदनमस्य । पिङ्गाक्ष्य नामको मुखको ।

पिङ्गाक्ष (स० पु०) पक्षिविशेष, एक चिह्नयाका नाम ।

पिङ्गो (स० स्त्री०) पिङ्गो वर्णोऽस्य इति भवः, ततो गौरादित्वात् ङात्, प्रमोक्ष, प्रमोक्षो पेट ।

पिङ्गस्य (स० पु०) पिङ्गानि पिङ्गलवर्णानि ईक्षयानि यस्य । १ गिय, महादेव । २ कुशीर, नल्ल नामक जल-जम्बू, नाक । (द्वि०) पिङ्गलनेत्र ।

पिङ्गश (स० पु०) पञ्चिका नामान्तर, पञ्चिका एक नाम ।

पिचक (हि० स्त्री०) पिचकारी रोक ।

पिचकना (हि० स्त्री०) फूले या चमरे छुट्न तलका दब जाना ।

पिचकवाता (हि० स्त्री०) पिचकानिका काम दूधरेवे कारणा, किछो दूधरेको पिचकानिमें प्रवृत्त करना ।

पिचका (हि० पु०) बड़ी पिचकारी ।

पिचकाना (हि० स्त्री०) फूले या चमरे छुट्न तलको भीतरको चोर दवाना ।

पिचकारी (हि० स्त्री०) एक प्रकारका लकदार यन्त्र जिसका व्यवहार जल या किछो दूधरे तरल पदार्थको (नल्लमें) छौंच कर कोरवे किछो चोर के कनिमें होता है । यह प्रायः बाँस, लोहे, पीतल, शोथे, टील आदि पदार्थको बना होता है । इसमें एक लम्बा खोल्ला लक होता है जिसमें एक चोर बहुत छोटा छिद होता है चोर दूसरी कोरका सुँघ खुला रहता है । इस नल्लमें एक छोट लगा दो जातो है जिसके ऊपर चबे बाने पोछे चटाने या बटानेके लिये दलित समेत कोई छड़ लगा रहतो है । अब पिचकारीका बारीक छेदवाला सिरा पानी भयवा किछो दूधरे तरल पदार्थमें रख कर दल्लेकी सहायतासे भीतरवालो छोटको ऊपर हो चोर छौंचते है, तब नीचे के बारीक छेदमेंसे तरलपदार्थ उस नल्लमें भर जाता है चोर जब पोछेके छस छोटकी दबते है, तब नल्लमें भरा हुआ तरलपदार्थ कोरसे निकल कर कुछ दूरी पर जा गिरता है । साधारणतः इसका प्रयोग होलियोंमें रँग घववा मल्लिकोंमें गुलाब-जल आदि छोड़नेके लिये होता है । किन्तु पाक लक मकान आदि

घोने चोर पाग तुलानेके लिये बड़ी बड़ी पिचकारियों चोर कुबम आदि घोनेके लिये छोटी पिचकारियाँका भी उपयोग होने लगा है । इसके बसाया फिलजान एवा ऐसी पिचकारी चको है जिसके भाग एक छेददार छई लगे होते है । इस पिचकारोको छईको शरीरके किछी चट्टमें जरासा जुभा कर पनेक रोगीको भोपधियाँका रक्तमें प्रवेश हो कराया जाता है ।

पिचण्ड (स० पु०) अपि चण्डातेऽनेनेति अपि चङ्-कोपे चण्, अपरेऽक्षोपः । १ पशुका भयव्य । २ चदर, पेट ।

पिचण्डक (स० द्वि०) पिचण्डे कुशला भाकपादित्वात् कन् । (पा ५।२।१४) १ चदरभारि, चदरपूरणमें कुशक, पेट । २ कोकिलाचण्डक ।

पिचण्डिक (स० द्वि०) पिचण्डोऽस्यास्तीति तुम्हादित्वात् ठन् (तुम्हादिभ्य इत्थ । पा ५।२।१७) तुम्हिल, तीद-वाला ।

पिचण्डिन (स० द्वि०) पिचण्डे चक्षयं तुम्हादित्वात् इनि (पा ५।२।१७) तुम्हिल, तीदवाला ।

पिचण्डिल (स० त्रि०) पिचण्डे चक्षयं इत्थन् । तुम्हिल, बड़े पेटवाला ।

पिचपिचा (हि० वि०) पिचपिचा देखो ।

पिचपिचाना (हि० स्त्री०) घाव या किसी चोर चोर्जमेंसे बराबर थोड़ा थोड़ा पदार्थ रसना, पानो निकलना ।

पिचपिचाष्ट (हि० स्त्री०) गोले या चार्द्र रहनेका भाव, पिचपिचानिका भाव ।

पिचरिया (हि० स्त्री०) एक प्रकारका छोटा कोरह जिसकी कोठो बहुत छोटी होती है ।

पिचलना (हि० स्त्री०) डकलना देखो ।

पिचवय (हि० पु०) चटहण ।

पिचय्य (स० पु०) पिचवे तुषाय साधुः पिचु-यत् । लापस, कपास ।

पिचिण्ड (स० पु०) १ चदर, पेट । २ पशुको भयव्य ।

पिचिण्डवत् (स० द्वि०) पिचिण्ड-भेत्तुप्, मस्येय ।

पिचिण्डुक्क ।

पिचिण्डिका (स० स्त्री०) पिचिण्डे इव पिण्डात्कगिर दूर इवेति, पिचिण्ड-ठन् । पिचिण्डिका, लाँघलो चड्यो ।

विचित्रिहस (सं० पु०) चतुर्विधः विचित्रः उदरमस्य
सुम्दादित्वादिभ्यः । हृष्टदुरयुक्त, बद्धे पेटवान्ना, तौद-
वान्ना । पर्याय—विचित्रिहस, हृष्टकृत्ति, सुम्दी, सुम्दिह,
सुम्दिह, उदरी घोर उदरिह ।

विष्णु (सं० पु०) पेशतीति विष्णु मर्दनं नृगत्यादित्वात्-
कु । १ कार्पासतून, रुई । २ कुष्ठरोगभेद, एक प्रकारका
कोड़ । ३ परमाणु विशेष, तोलकद्वय, एक तोल जो दो
तोलेके बराबर होतो है । ४ असुरविशेष, एक असुरका
नाम । ५ भैरव । ६ गन्धर्भभेद, एक प्रकारका धान । ७
विक्रिस्तोषयोगो पञ्चक्रमके पन्तर्गत क्रियाविशेष ।

“कामिनां प्रतिशोभाय कर्त्तव्यः स्नेहो विधिः ।

क्रमः कार्यव्यतः स्नेहपिबुभित्त्वं भवेत् ।

शरत्की शिबिनी जम्बुधरवक् पञ्चवक्कैः ॥

कवयैः साधितैः स्नेहः पिबुः रयाद्विस्तारः ॥”

(विद्याचक्रपाणि)

विष्णु (सं० पु०) विष्णुरिव कायतीति कौ-क । मदन-
हृद्य, मीमंलका पेट ।

विष्णुक्रिया (हिं० स्त्री०) १ छोटी पिचकारी । २ वह
शुक्तिया (कवा) जिसमें केवल गृह घोर खींट भरो
जाती है ।

विष्णुकीय (सं० स्त्री०) विष्णु सल्लरादित्वात्-क (ः)कारादि
देशादिभ्यः । वा ४।१।१० । पिष्णुका सदूरभव ।

विष्णुका (हिं० पु०) १ गोसङ्ख्या । २ पिचकारी ।

विष्णुतून (सं० स्त्री०) पिबोस्तूनम् । तून, रुई ।

विष्णुमर्द (सं० पु०) विष्णु कुष्ठविशेष मर्दनयति नृगतीति
वा, नृद-पण् । निम्बहृत्त, नीमका पेट । पर्याय—
कोटयं, निम्ब, कविट, वरत्तका, दद्रुक्ष, हिरुन्याम
घो। सर्वतोभद्र ।

“शक्ततामुपकाराय दुर्जनानां विभूतयः ।

विष्णुमर्दः कलाजोऽपि काकोरोध मुनये ॥”

(देवीगीता २।४।१२)

विष्णुन (सं० पु०) विष्णु लातीति ला-क । १ भावुकवृत्त,
भावका पेट । २ अन्तर्वायम । ३ समुद्रफल । ४ रुई ।
५ गोताघोर ।

विष्णुवर्त्त (सं० स्त्री०) तूनवर्त्त, रुईकी बत्ती ।

विष्णु (हिं० पु०) कर्प, १६ मासकी तोल । पर्याय—

पच, तिलुक, विडाल, पारङ्क, सुवर्ण, वसपद घोर
उदुम्बर ।

विष्णुका (हिं० पु०) विष्णुका देशो

विघोतरसो (हिं० पु०) सो घोर पाच, एक सो पाचको
संख्या, (पचाइ) ।

विषट (सं० स्त्री०) विष्णु-भटन् । १ सोमक, सोसा । २
रङ्ग, रंगा । (पु०) १ नेत्र रोगभेद, पाँखका एक रोग ।

विषर (सं० पु०) विषट देखो ।

विषा (सं० स्त्री०) सुतापरिमाणभेद ।

विषिट (सं० पु०) कोटभेद, एक प्रकारका कीड़ा ।

विषिट प्रभृति अग्निप्रकृतिके कोट हैं । इनके काटनेसे
पित्तजन्यरोग होता है ।

विषित (सं० स्त्री०) १ सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका
चाव या चत । यह शरीरके किसी भाग पर किसी भारो
बलकी चोट लगने-पड़वा दाव पड़नेके कारण होता
है । जो स्थान दबता है वह जोस कर चिपटा हो जाता
है घोर प्रायः उस स्थानकी हड्डीकी भी यही दबा होती
है, चमड़ा कट जाता है घोर कटा हुआ भाग कधिर
तथा मज्जासे चिपचिपा चना रहता है । २ वह वस्तु जो
दब कर पिचक गई हो या चिपटो हो गई हो । (वि०)
३ पिचका हुआ, दबा हुआ, जो दब कर चिपटा हो
गया हो ।

विषी (हिं० स्त्री०) विषित देखो ।

विष्क (सं० पु०) विष्कतीति विष्क पच । १ काङ्गूल,
ऐसी पूँछ जिस पर बाल हों, किसी पपकी पूँछ । २
मयूरपूँछ, मोरकी पूँछ । पर्याय—मिषण्ड, बह, मिषि-
पुच्छ घोर मिषण्डक । ३ चूड़ा, मोरकी चोटी । ४
मोचरस ।

विष्कक (सं० पु०) विष्क-कन् । १ मोचरस । २ काङ्गूल,
पूँछ । (स्त्री०) ३ मयूरपूँछ, मोरकी पूँछ ।

विष्कतिका (सं० स्त्री०) मीमस, मिमिषा ।

विष्कन (सं० स्त्री०) पच्यत पीतून, किसी वस्तुको
बहुत दबाना, दबा कर चिपटा करनेकी क्रिया ।

विष्कपादिन् (सं० स्त्री०) सधामक पादरोगाक्रान्त पच,
विष्कपाद रोगवृत्त धोड़ा ।

विष्कषण (सं० पु०) विष्क षाय दब यस्य । स्नेहयको,
दाज ।

पिच्छमार (सं० पु०) मयूरपुच्छ, मोरकी पूँछ।
 पिच्छस (सं० पु०) १ वासुकिवंशोय संप्रभेद, वासुकि-
 वंशका एक संप्र। २ मोचरस। ३ भाकाश्वेली, भकाश-
 वेल। ४ शीगम, शिशिपा हथ।
 पिच्छल (हिं० वि०) १ जिस परसे पेर रपट या फिसल
 जाय, रपटनवाला, चिकना। २ पिच्छा देखो।
 पिच्छलच्छदा (सं० स्त्री०) १ उपोदिका शाक, पोय। २
 बदरीहथ, बरका पेड़।
 पिच्छलत्वक (सं० पु०) १ नागरह्ण हथ, नारंगोका पेड़।
 २ नागरह्णत्वक, नारंगोकी छाल।
 पिच्छलदत्ता (सं० स्त्री०) पिच्छलच्छदा देखो।
 पिच्छलपाद (सं० पु०) दोड़ो के पैरमें होनेवाला रोग।
 पिच्छलबीज (सं० पु०) वनपनस, पनार।
 पिच्छा (सं० स्त्री०) पिच्छ भण्डादित्वात् टाप्, १
 शास्मली। २ पूग, घुपारो। ३ कोय। ४ मोचरस। ५
 भक्तसम्भूतमण्ड, भात या वासलका माँड़। ६ पत्ति।
 ७ पञ्चपदामय, पिच्छलपाद। ८ चोलिका। ९ फण-
 माला। १० शिशिपाहथ, शीगम। ११ कतकहथ,
 निर्मलीका पेड़। १२ भाकामलता, भकाशवेल।
 १३ मडा। १४ नारंगोका पेड़।
 पिच्छादि (सं० पु०) पाणिनि-उक्त गणभेद। गण यथा—
 पिच्छा, वरस, घूषक, घूषक, वण, चदक, पङ्क और
 प्रज्ञा।
 पिच्छावस्ति (सं० स्त्री०) पिच्छस वस्ति
 पिच्छिका (सं० स्त्री०) पिच्छ मयूर-वर्ष भक्ष्यव्रति,
 पिच्छ-ठन्। १ चामर, चंवर। २ मोरछन। ३ उनको
 चंवरों को जैन साधु अपने पास रखते हैं।
 पिच्छितिका (सं० स्त्री०) शिशिपा, शीगम।
 पिच्छल (सं० वि०) पिच्छा भक्तसम्भूतमण्ड भक्ष्यव्रति
 पिच्छादित्वादित्वात्। १ भक्तमण्डयुक्त, भातके माँड़से
 चुपड़ा हुआ। २ सरस और शिथिल (द्रव्य), गोला
 और चिकना। ३ मण्डयुक्त भक्त, माँड़ मिसा
 हुआ भात। ४ जनयुक्त व्याञ्जन, पानी मिली हुई
 तरकारी। पर्याय—विजिल, विजयिन, विजिन, विजल,
 रज्ज और सालसीक। ५ पिच्छल, फिसलनेवाला,
 जिस पर पड़नेसे पेर रपट; जिस पर कोई वस्तु ठहर

न सके। ६ चूड़ा युक्त, जिसके सिर पर चूड़ा हो। ७
 खड़ा, कोमल, फूला हुआ और लफकारो (पु०) ८
 श्लेष्मान्तकृच्छ, लसीहा। ९ स्निग्ध सरस व्याञ्जन।
 पिच्छलक (सं० पु०) पिच्छलः सन् कारयतीति कौ०।
 १ धन्वनहथ, धामिनका पेड़। २ शास्मलीहथ। ३
 मोचरस।
 पिच्छलच्छदा (सं० स्त्री०) पिच्छलच्छदो यस्याः। १
 उपोदको शाक, पोय साग। २ बदरी हथ, बरका।
 पिच्छलत्वको (सं० पु० स्त्री०) पिच्छला त्वक् यस्य।
 १ नागरह्ण हथ, नारंगोका पेड़।
 पिच्छलदत्ता (सं० स्त्री०) पिच्छलच्छदा देखो।
 पिच्छलवस्ति (सं० स्त्री०) पिच्छलवस्तिभेद, पिच्छलवस्ति-
 का एक भेद। सुश्रुतमें लिखा है, कि भारत्वध, गेय-
 शास्मलो और धन्वन इन सबके चट्टुरको दूधमें पाक कर-
 के मधु और रक्तके साथ प्रयोग करना चाहिए। अथवा
 बराह, महिय, मेघ, विहस, कस्तूरी मृग वा कुलुट इन
 सबके केवलमात्र सघोजात रक्त वा घण्टे का वस्ति-
 कार्यमें प्रयोग करना होगा। ऐसे वस्तिप्रयोगका नाम
 पिच्छलवस्ति है। (ब्रुहत् चिकि० ३८ अ०)
 भावप्रकाशके मतसे—भूमि कुम्भाण्ड, नारङ्गो और
 शास्मलीहथके चट्टुरको दूधके साथ सिद्ध कर मधु और
 रक्तके साथ जो वस्ति प्रयोग कौ जातो है, उसे पिच्छल-
 वस्ति कहते हैं। छाग, भेष और क्षत्रसार मृगके रक्तके
 साथ पिच्छलवस्ति प्रयोज्य है। इसका नामा बारह
 घंटा या छेड़ से बतलाई गई है। (भावप्र० पूर्ववर्ष०)
 पिच्छलसार (सं० पु०) पिच्छलः सारो यस्य। मोचरस।
 पिच्छला (सं० स्त्री०) पिच्छा, इलच, ततटाप्। १
 पोतिका, पोईकी बेल। २ शिशिपा, शीगम। ३ शास्मली
 सेमल। ४ कोकिलाच, तालमखाना। ५ हथिकाचुप,
 हथिकाकी जड़ी। ६ शूलोत्थ, शूलाघात। ७ पतसो।
 ८ उपोदिका, पोईसाग। ९ पनार। १० परसो। ११
 कामरूपके भन्तगंत एक खैर। (त्रि०) १२ पिच्छल देखो।
 पङ्कहना (हिं० क्रि०) १ श्रेष्ठाने पागे या बराबर न
 रहना। २ पोछे रह जाना, साथ साथ, बराबर या पागे
 न रहना।
 पिच्छना (हिं० पु०) १ सेवक, नौकर, खिदमतगार। २

पात्रित, पधीन, वह मनुष्य जो किसीके पीछे पीछे चलते। ३ चतुर्गामी, चतुर्दशी, शिष्य, वह मनुष्य जो अपने स्वतन्त्र विचार या सिद्धांत न रखता हो, बल्कि हमेशा किसी दूसरेकी सलाहके अनुसार काम करे। किसीका सत्तानुयायी, शागिर्द, चेला।

पिङ्गलो (हि० स्त्री०) १ पिङ्गल देखो। २ चतुर्दशी, चतुर्गामी, चतुर्दशी होना, चतुर्गामी करना।

पिङ्गलू (हि० पु०) पिङ्गल देखो।

पिङ्गलना (हि० स्त्री०) पीछेकी ओर घटना या सुटना।

पिङ्गलवादि (हि० स्त्री०) १ जादूगरनी। २ चुड़ैल। हमके सम्बन्धमें लोगोंको धारणा है, कि हमके पैरोंमें एड़ो भागे और पङ्के पीछेकी ओर होते हैं।

पिङ्गला (हि० स्त्री०) १ पञ्चादशी, अस्तके भाग या अष्टमिका, अस्तकी ओरका, किसी वस्तुके उत्तर भागसे सम्बन्ध रखनेवाला। २ अगस्तका सप्ताह, पीछेकी ओरका, जो किसी वस्तुकी पीठकी ओर पड़ता हो। ३ जो घटना, स्थिति आदिके क्रममें किसीके अथवा उसके पीछे पड़ता हो, जिसके पहले या पूर्वमें कुछ और हो चुका हो, बादका, पड़लाका सप्ताह, अगस्तका। ४ गत वार्तामेंसे अन्तिम या अस्तकी ओरका, सबसे निकटस्थ भूतकालका, अगस्तकालका जो अस्तमानके ठीक पहले रहा हो। ५ गत, बीता हुआ, पुराना, गुजरा हुआ। (पु०) ६ वह स्थान जो रोजीके दिनोंमें सुसलमान लोग कुछ रात रहते खाते हैं, सहरो। ७ एक दिन पक्षके पड़ा हुआ पाठ, पिङ्गले दिनका पड़ा हुआ सबक, शामीयता।

पिङ्गलार (हि० स्त्री०) पीछेकी ओर लटकनेका परदा।

पिङ्गलड़ा (हि० पु०) १ किसी मकानके पृष्ठभागसे लटकी हुई लता, घरके पीछेका स्थान या जमीन, घरकी पीठकी ओरका खासी स्थान। २ घरका पृष्ठ भाग, घरका पृष्ठ भाग की मुख्य द्वारकी विशेष दिशामें हो, किसी मकानका पीछेका भाग।

पिङ्गलार (हि० पु०) पिङ्गल देखो।

पिङ्गली (हि० स्त्री०) १ पृष्ठ भाग, पिङ्गला भाग, पीछेका दिशा। २ अष्टमकी जिससे छोड़के पिङ्गले पर चलते हैं। ३ पश्चिममें सबसे अन्तिमका स्थिति।

पिङ्गल (हि० स्त्री०) पहचान देखो।

पिङ्गलना (हि० स्त्री०) पहचानना देखो।

पिङ्गली (हि० स्त्री०) पिङ्गली देखो।

पिङ्गली (हि० स्त्री०) किसीके सुझावों, ओर जिसको पोट पड़ती हो, किसी वस्तुको न देखता हुआ, जिसने अपना मुँह पीछे कर लिया हो।

पिङ्गली (हि० स्त्री०) पीछेकी ओर।

पिङ्गली (हि० स्त्री०) पीछेकी ओर।

पिङ्गली (हि० स्त्री०) पिङ्गली देखो।

पिङ्गली (हि० स्त्री०) पीछेकी ओरसे, पीछेकी तरफ।

पिङ्गली (हि० पु०) पुनर्वासी चादर, मरदाना दुपटा।

पिङ्गली (हि० स्त्री०) १ अयोध्या चादर, अयोध्या, वह वस्त्र जिसे वे सबसे ऊपर ओढ़ते हैं। २ पीठनेका वस्त्र, कोई कपड़ा जो ऊपरसे डाल लिया जाय।

पिङ्गल (सं० पु०) स्वर्णोद्यम्य विद्यामित्रवाच्य नृगभेद। इनके पुनर्वासी नाम सुदास था।

पिङ्गल (सं० पु०) अविभेद, एकत्विका नाम।

पिङ्गलस्य गोतावस्य पञ्चादित्वात् कञ् (पा ३।१।१०) गोतावस्य—पिङ्गल ऋषिकी अन्तिम या अन्तिम।

पिङ्गल (सं० स्त्री०) पिङ्गल वस्त्र, ततो भावी वस्त्र। १ वस्त्र, ताकत। २ वस्त्र। ३ कपूरभेद, एक प्रकारका कपूर।

— (हि०) ४ व्याकुल।

पिङ्गल (सं० स्त्री०) हरिताल, हरताल।

पिङ्गल (सं० पु०) पिङ्गलति नेत्रं दूषयति पिङ्गलति नेत्रं मनः कोचक, पांशुका मल।

पिङ्गल (सं० स्त्री०) पिङ्गलेनेति पिङ्गलस्तीति लरवे लुट्। काप्यस्फोटनपद, वह चतुष्टय, या कमान जिससे ध्वनिसे रहते चलते हैं, धनको। प्रयोग—पिङ्गल, लुलस्फोटनशामूक।

पिङ्गल (सं० स्त्री०) पिङ्गलतो नवो वा वादुककान्तरः, (उग्ररत्न १।१२) १ हरिताल, हरताल। २ स्वर्ण, सोना। ३ नागकेसर। ४ पक्षी प्रभृतिका वस्त्रनटक, पिङ्गल। ५ कायास्त्रिभुज, शरीरके भीतरका इन्द्रियाका ठहर, पंजर। (पु०) ६ अग्नभेद, एक प्रकारका चोड़ा। ७ पीठरत्न वस्त्र, पीठा पीठ वाले रंग। ८ सुमेरुके पश्चिमपार्श्वस्थित पर्वतविशेष, सुमेरुके पश्चिम

रही नामका एक पहाड़। (हि०) ९ पीठ, पीना,

१० लसाई या भूरापन लिए पोला, सुंघनिया कटे रंगका । ११ भूरापन लिए लाल रंगका ।

पिञ्जर—बरारके भन्तगंत चकोला जिलेका एक ग्राम । यह घघा २० ३३ स० चौर देया ७७ १० पू० के मध्य, चकोला नगरसे २४ मील पूर्वमें अवस्थित है । १७२७ ई०में माधोजी भोसलाने इस स्थानके अधिवासियों पर अधिक कर लगा दिया था जिससे इस ग्रामकी अवगति देखी गई थी । यहां एक सुन्दर मन्दिर है जिसमें अनेक खोदित शिवियां हैं ।

पिञ्जरक (स० स्त्री०) पिञ्जरमेव सार्थं कन् । १ हरिताल, हरताल । (पु०) २ यवतविशेष, एक पहाड़का नाम ।

पिञ्जरता (स० स्त्री०) पिञ्जरस्य भावः पिञ्जर-तन् । पिञ्जरका भाव या धर्म ।

पिञ्जरा—वर्षाई प्रदेगवासी सुसन्मान जातिभेद । यह कई धन कर जीविका निर्वाह करता है, इसीसे इसका नाम "पिञ्जरा" पड़ा । इस देशमें इसे धुनिया कहते हैं । ये सब पक्षमें हिन्दू, सि०, सैकिक, पोरबुजिबके प्रभावसे चर्चामें सुसन्मानो धर्म ग्रहण किया है । इनकी रहन-सहन और पहरावा बहुत कुछ मराठी कुनवियोंसे मिलता मिलता है । सब कामकी भक्ति करते हैं । विवाहके समय कामीके निकट नाम लिखाना पड़ता है तथा सामाजिक गोसमाल कामी ही भिटा देते हैं ।

पिञ्जल (स० क्ली०) पिञ्जि हिंसायां सर्थे च कञ्च । १ कुम्पल । २ हरिताल, हरताल । (पु०) ३ अत्यन्त व्याकुल, सैन्यादि । ४ जलवेतल, जलवेतल । (त्रि०) ५ व्याकुल, चवराया हुआ, जिसका चेहरा पोला या फोका पड़ गया हो ।

पिञ्जलक (स० त्रि०) अत्यन्त व्याकुल, बहुत चवराया हुआ ।

पिञ्जली (स० क्ली०) पिञ्जल स्त्रियां क्लीब । कुमान्तर-वेदित-प्रदेगमात्र सायकृत्पत्रद्वय, नोक सहित एक एक बोलके एकमें बंधे हुए दो कुमोंको जूरी जिसका काम थाय या बीममें पड़ता है ।

पिञ्जा (स० स्त्री०) १ हरिद्रा, हजदो । २ गुला, कई ।

पिञ्जाग (स० क्ली०) सख, सोना ।

पिञ्जका (स० स्त्री०) पिञ्जयतीति पिञ्जि-खुत्त, टापि अत इत्वं । तृप्तनालिका, कईको पोली बत्ती जिससे कानमें पर बड़ बड़ कर मत निकलते हैं, पूनी ।

पिञ्जल (स० क्ली०) पिञ्जयतीति पिञ्जि सलच्, (गिञ्जा-दिभ्य ऊपोलचौ । उण्, ४।९०) तृप्तयत्तिं का, कईकी बत्ती । पिञ्ज्व (स० पु०) पिञ्जयति हिनप्ति कर्षो इति पिञ्जि बाहुलकात् उयण् । कर्षमल, कानको मेल, छूट ।

पिञ्जेट (स० पु०) पिञ्जट पृषोदरादित्वात् साधु । नेत्रमल, चांछका कीचड़ ।

पिञ्जोला (स० स्त्री०) पिञ्जयतीति पिञ्जि बाहुलकात् ओल-टाप् । पत्रकाहला ।

पिञ्जोर—पञ्जाब प्रदेशके पटियाला राज्यके भन्तगंत एक प्राचीन ग्राम । यह घघा ३० ४८ स० चौर देया ७६ ५८ पू० कला नदीके सहम पर अवस्थित है । यहां पटियालाराजका प्रमोदभवन और कैलिकानन्द है । यह नगरकी बैसे पूर्व की नहीं है । चारों ओर विस्तृत रवापर्य और मिश्वनपुष्पयुक्त प्राचीन कौत्तिका वनसायशेष पड़ा है । यहां एक पुरातन दुर्ग था जिसे सिन्धियाके फरासी-सेनानायकने तहस तहस कर ढासा है ।

पिटंत (हिं० स्त्री०) पेटनीको क्षिप्य या भाव, मारकूट, मारघोट ।

पिट (स० क्ली०) पेटति संहतो भवति पिट-क । १ टाल । (पु०) पेटनि द्रव्यान्तरेः सहितो भवतीति पिट-क । २ पेट, पिठारा ।

पिटक (स० पु० क्ली०) पेटतीति पिट-कन् । १ वंश-वेत्तादिमय समूहक, बांस, बेल आदिका बना पिठारा । यथाय—पेटक, पेड़ा, मञ्जूषा, पेट, पेटिका, तरि, तरो और पेटिका । २ विष्कोट, फुटिया, पुंखो । स्थान-विशेषमें पिटक होनेसे शुभाग्भूफल होता है । हजख-हितामें इसके फलका विषय इस प्रकार लिखा है,—

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंको यथाक्रम खेत, रत्त, पोत और क्षयवर्ष पिटक होनेसे लाभ, किन्तु अन्यरूप होनेसे अशुभ होता है । यह पिटकसमूह रम्योप और सुचिकल दोष पड़ता है ।

मस्तक पर पिटक होनेसे अवसृज्य, मूर्धदेशमें होनेसे

सोभाय्यसोभ चोर भूयुगलमें होनिसे दुर्भाग्य तथा प्रिय-
जनसे विधोष होता है। इसी प्रकार दोनों भो'हो'र
सोच या मयनपुटयन होनिसे शोक, सत्ताटासिदेश
न होनिसे प्रयत्ना, पशुजल निथतन स्थान पर होनिसे
चिन्ता, नासिका तथा गण्डदेशमें होनिसे वसन चोर शुभ
फल, दोनों चोट पर होनिसे लाभ, चिकुतसंगत होनिसे
पचनोभ, कण'देगमें होनिसे कण'भूयष चोर चामप्रान
लाभ होता है। मन्दक, सन्ध, पोरा, हृदय, कुष
(स्थनाय) पाय' चोर वस'स्थलमें पिटक होनिसे यथा-
क्रम प्रयोधात, पाधात, सुत, तनयलोभ, शोक चोर प्रिय-
प्राप्ति होती है। रुक्म्य चर होनिसे वारम्बार भिचार्य
भ्रमण चोर विनाग तथा कचमें होनिसे बहुविध सुख,
यादुयुगलमें होनिसे दुःख चोर गमनाय, मणिवन्धमें
होनिसे संयम, दोनों बाहुके निकटस्थ होनिसे भूषणादि
लाभ, करदेय, चङ्गुलि वा उदरमें पिटक होनिसे क्रमगः
धनप्राप्ति, सोभाय्य चोर शोक होता है।

नाभिमें पिटक होनिसे उत्तम पाग चोर चमलाभ तथा
चक्के नोचि होनिसे चोरों द्वारा धननाग, वस्त्रों होनिसे
धनप्राप्य लाभ, मेट'में होनिसे युवतो चोर सुन्दर
तनय लाभ, जहृदयस्थ होनिसे यान चोर घामन लाभ,
जातुदयस्थित होनिसे मन्त्र द्वारा सति, दोनों जट्टांमें
होनिसे मन्त्रचन चोर गुरुदशमें होनिसे वन्धनज पत्नीश
होता है।

स्तनक, पायि' चोर पादजातमें होनिसे धननाग तथा
पगस्यागमन, चङ्गुलिमसूत्रमें होनिसे वन्धन चोर चङ्गुठ
में होनिसे जालिनाक द्वारा पुजित होता है।

चङ्गुविषयमें पिटक होनिसे इस प्रकार फल होता
है। पकले जो घाघ्राय चोर सविध पादि जालिका विषय
उल्लिखित हुआ है, उसे जगमनघरागुवारसे जानना
होगा, वर्णानुसारमें नहीं।

पुष्यको दाहिनी चोर जो पिटक होता है उसे 'वत्पा-
तगण्ड' चोर बाई' चोर पिटकको 'अभिधात' कहते
हैं। पुष्योके निचे ऐसे पिटक शुभपद हैं, किन्तु मिथो-
के सम्बन्धमें इसका विपरीत फल प्राप्तना चाहिए। जनके
मामभागस्थ पिटक को शुभपद है। १ बोड्याचमेट,
रोट्टी'का एक भाग। निपिटक देखो। ४ पाभूयष जो
भ्रमामे लगाया जाता है।

पिटका (पं० स्त्रो०) पिटका, विटारो। २ मसुरिका,
वसना, कुं'लो।

पिटका (पं० स्त्रो०) पिटकानां समुदा, पागादिलात् य
(पा ४।२।५८) द्विधां टाप। पिटकमसुर, कुं'लो।

पिटकाय (सं० पुं०) पय'तोर्मि'मत्ता, एक प्रकारको
मच्छो।

पिटकाकी (सं० स्त्रो०) इन्द्रबाधपो'नता, इन्द्रायन।

पिटना (हिं० क्रि०) १ पाधात महना, मार खाना,
ठोंका खाना। २ पाधात या कर पावान करना,
वजना। (पुं०) ३ एक चोखार जिससे किसी वस्तुको
विधोषत; चूने आदिकी बनी हुई कतको राज लोग
पोटमें हैं, पोटेनका चोखार, घापो।

पिटपिट (हिं० स्त्रो०) किसी छोटी चोखके गिरने या
चलके पाधातका शब्द, पिट पिट शब्द।

पिटपिया (हिं० स्त्रो०) पिथरी देशी।

पिटवागा (हिं० क्रि०) १ दूसरेको पोटेनमें प्रभन करना,
पोटेनका काम किसी दूसरेसे कराना। २ चम्बके द्वारा
किसी पर पाधात कराना, किसीके पिटने या मारे
जानेका कारण होना, मार खिलवाना, कुटवाना, ठोंक-
वाना। ३ वजवाना। जैसे, ठोंको पिटवाना।

पिटारै (हिं० स्त्रो०) १ प्रकार, पाधात, मारकूट। २
पोटेनका काम या भाव। ३ पिटवानकी मजदूरी। ४
पोटेनकी मजदूरी। ५ मारनेका पुरस्कार।

पिटापिट (हिं० स्त्रो०) किसी वस्तुकी कुछ समय तक
बराबर पोटेना, मारपोट, मारकूट।

पिटारा (हिं० पुं०) बैत, बाँध, मूँज आदिके गरम
खिलकीसे बना हुआ एक प्रकारका एक बड़ा सं'पुट या
ठकनेदार पात्र। अर्थात् जिसका घेरा गोल, तल बिलकुल
चिपटा चोर ठकना टालुनां गोश प्रयत्ना बोवमें ठठा हुआ
होता है। यहसे इसका व्यवहार बहुत होता था, पर
तब तबके ई'कोंका प्रचार हो जानेसे रनका व्यवहार
घटता जाता है। बाँध आदिकी पयेचा मूँज चोर
धे'नका पिटारा अधिक मजबूत होता है। मजबूतीके
लिए एकसर इसकी चमड़े या किसी मोटे कपड़ेमें
मदना देते हैं। आज कल मोड़ते पतने गोश तारोंमें
भी पिटारै बनाते हैं।

पिटारी (हि० स्त्री०) १ छोटा पिटारा, भाँपी । २ पान दान, पान रखनेका बरतन ।

पिड़क (स० स्त्री०) किड़क प्रयोदरादित्वात् कस्य षः । दन्तकिड़क, दाँतको सेल ।

पिडस (हि० स्त्री०) गोक या दुःखसे छातो पीटनेकी क्रिया ।

पिडिक (स० स्त्री०) पिड-रन्, स्त्रायं कन् । कुहन द्वारा चषाणवेक्षण ।

पिडू (हि० स्त्री०) मार खानेका चष्यस्त, जो प्रायः पीटा जाय ।

पिडो (हि० स्त्री०) पीटी देहो ।

पिडू (हि० पु०) १ सहायक, मददगार । २ चतुयायी, पीछे चलनेवाला, पिछला । १ एक साथ मिल कर खेलनेवाला, खेलमें साथ रहनेवाला । ४ किसी खिलाड़ी या बह काश्त साथो जिसकी बारीमें बह खय खेलता है । जब दोनों पक्षों के खिलाड़ियों की संख्या बराबर नहीं होती, तब म्यून संख्यक पक्षके एक दो खिलाड़ी अपने अपने साथ एक एक पिडू मान लेते हैं और अपने बारी खेल चुकने पर दूसरी बार उस पिडू की बारी ले कर खेलते हैं ।

पिठ (स० पु०) १ पोड़ा, दुःख । २ देवनल ।

पिठर (स० स्त्री०) पिठरतीति रा-का । १ सुप्ता, सोया । २ सन्धनदण्ड, सधानो । (पु०) पिठ्यते क्षिप्यतेतिनेति पिठ करन् । ३ गृहभेद, एक प्रकारका घर । पर्याय—कुद्वह, उहाट । ४ खाली, घाली । ५ चर्मविषय । ६ दानवविषय, एक दानव ।

पिठरक (स० पु०) १ एक नागका नाम । २ धानो ।

पिठरपाक (स० पु०) भिन्न भिन्न परमाणुओं के गुणों में तेजके संयोगसे फिर फार होना ।

पिठरिका (स० स्त्री०) खाली, पान, घाली ।

पिठरो (स० स्त्री०) पिठर स्त्रियां ङोष् । १ स्थानो, घाली । २ राजमुकुट ।

पिठवन (हि० स्त्री०) प्रुष्टिपर्णी, पिठोनी, एक प्रसिद्ध लता जो बीपक्षके काममें आती है । पर्याय—कृष्णवर्ण, कदला, कौटुक, दोषपर्णी, चित्रपर्णी, तन्वी चक्रपर्णी, चक्रकुण्डा, पन्डिका, कलमी, व्याट, क मेखला, चमनो, प्रयक-

पर्णी, निंहुच्छी, प्रुष्टिपर्णी, त्रिपर्णी, पिठपर्णी, गुहा, ब्रह्मपर्णी, लाडूलिका, निंहुसुषो, चंमिपर्णी, विश्वपर्णी, लाडूनी, शृगालस्त्या, चतिगुहा और चटिला ।

यह पक्षिम और बङ्गालमें बहुतायतसे पाई जाती है, परन्तु दक्षिणमें नहीं दिखाई पड़ती । इसके पत्ते छोटे, गोल गोल होते हैं तथा एक एक छाड़ोमें तीन तीन लगते हैं । इसके फूल सफेद और गोल होते हैं । जड़ कम मिचनेके कारण इसकी लता ही प्रायः काममें लाई जाती है । वैद्यकमें इसकी मोयंजनक, चारक, सधुर, सिदोपनाशक, उष्ण, कटु, तिक्त तथा दाह, श्वर, खासवमन, वातरक्त, टप्पा, मूत्र, रक्तातिसार और उन्माद आदिका नाशक बतलाया है ।

पिठापुर—१ मन्द्राजप्रदेशके चन्नागंत गोदावरी जिलेका एक तालुक या उपविभाग । भूपरिमाण २०० वर्ग मील है । यहांके राजाके पूर्वपुत्रय प्रयोगाने पाये हैं ।

२ उक्त तालुकका प्रधान नगर । यह सन् १७७७ ई० ख्रि० २२१६ ई० के मध्य अवस्थित है । पिठापुरके जमोदार यहाँ रहते हैं ।

पिठापुर—१ चडलके चन्नागंत एक प्राचीन ग्राम । २ कामरूपके चन्नागंत एक ग्राम ।

पिठी (हि० स्त्री०) पिठो देखी ।

पिठोनस (स० पु०) एक ऋषि ।

पिठोनी (हि० स्त्री०) पिठवन देखी ।

पिठोरो (हि० स्त्री०) पीठोनी बनी हुई खानेकी कोरे चीज ।

पिड़क (स० पु०) पीड़यति पीड़यन्तु ल, निपातनात् साधुः । स्कोटक, छोटा फोड़ा, फुंसी ।

पिड़का (स० स्त्री०) पीड़यतीति पीड़यन्तु ल-टाप,

निपातनात् साधुः । स्कोटकविणय, छोटा फोड़ा, फुंसी ।

छोटा छोटा जो ज्वर निकलता है उसे पिड़का कहते हैं ।

सूत्रादि वैद्यकग्रन्थमें रोगभेदसे, नामा प्रकारकी

पिड़काका उल्लेख है । सूत्रमें भगन्दररोगमें लिखा है,

कि गुदामागमें जो कभी कभी सूजन पड़ जाती और शीघ्र

ही दब भी जाती है, उसे पिड़का कहते हैं । यह पिड़का

भगन्दरसे भिन्न है । किन्तो किसी पिड़कामें भगन्दर

होता है । जो दो ग्रहों से परिमित स्थानमें निकलता

है । इसमें श्वर भी आ जाता है ।

इस प्रकार प्रमेह रोगमें भी दश प्रकारकी पुं प्रिया होती हैं जिसके नाम ये हैं,—शराविका, कच्छपिका, जालिनी, विगता, बलजी, मसूरिका, सर्पपिका, पुतिषी, विदरिका और विद्रधि। कुष्ठरोगमें भी इसी तरह नाना प्रकारकी पिडकाएं उत्पन्न होती हैं।

पिडकालिका (सं० स्त्री०) निम्नमूल, आंखका कीचड़।
पिडकावत् (सं० लि०) पिडका विद्यतेऽथ पिडका मत्तुप, मस्य व। पिडका-पक्षय इति। पिडकारोगयुक्त, जिसे फोड़ा हुआ है इति।

पिडकिन् (सं० लि०) पिडका मस्यय इति। पिडका रोगयुक्त, जिसे पिडकाकी बीमारी हुई हो।

पिडगुरासा—दाक्षिणात्यके कृष्णाजिलान्तर्गत दाक्षिण्यसे १२ मील दक्षिणापूर्व में अवस्थित एक भूति प्राचीन ग्राम। यहाँ बहुतसे पुराने मन्दिरोंका भवसावभेष और कई एक प्राचीन शिवमन्दिर हैं। भमरावतीके बौद्धस्तूपकी तरह यहाँ भी एक स्तूप निकला है। विस्तृत विवरण Sewell's List of Antiquarian Remains Vol. I. appendix. ph. XXVI ff. में देखो।

पिड्ड (हि० स्त्री०) १ जिसको छोटे यंत्रका आकार जो छोटे पीढ़े के समान हो, वह ढांचा जिस पर कोई छोटा यन्त्र रखा रहै। २ छोटा पीढ़ा या पाटा।

पिड्डी (हि० स्त्री०) १ मछिया। २ पीड़ी देखो।

पिण्ड (सं० पुं० स्त्री०) पिण्डने संज्ञतो भवतीति विडि संज्ञतो भवः। १ प्राचीन। २ आद्ययुगे द्रव्यनिमित्त विवक्षितकार पित्रादिके सद्देशसे देय अन्न, वह प्रभ जो आद्यके वषे हुए द्रव्यसे विवक्षितके आकारका पिता आदिके सद्देशसे दिया जाता है। कात्यायनने यजुर्वेदियोंके आद्यादि स्थल पर पिण्ड शब्दको स्त्रीलिङ्ग और गोमिलने सामवेदियोंके लिये पुलिङ्ग निर्देश किया है।

आद्यादिमें यथाविधान आहुत कर पिता और पितामह आदिको पिण्डदान करना होता है। पिण्डदानादिसे पिण्डको परिचुष्ट होती है, इति लिख। पिण्डको हकी पिण्डदान करना पुत्रका भवश्य कातव्य है। शास्त्रमें पुत्रोत्पादनके लिए दारुणिता और पिण्डके लिए पशुकी प्रायश्चित्ताता है। पुत्र यदि यथाविधान पिण्डगणके सद्देशसे पिण्डदान करे, तो पिण्डगण पुत्रमात्र नरकसे उद्धार पाते हैं।

“मभ्यान्वितिसंयुक्तं सर्वव्यञ्जनसंयुतम्।

चण्णमादाय पिण्डं कृत्वा विवक्षितोत्तमम्॥

इथात् पितामहादिभ्यो दर्भमूलाद् यथाक्रमम्॥”

(भाद्रतत्त्व)

कुछ उष्ण भस्म में मधु, घो घीर तिलके साथ सब प्रकारके व्यञ्जनोंको मिला कर उसे विवक्षितके प्रमाणका बनावे। पिण्ड प्रसृत कर यथाविधान पिण्ड प्रसृतिके सद्देशसे कुशमूल पर दान करना होता है। पूर्वोक्त स्त्रीकेमें जो पितामह पद प्रयुक्त हुआ है, उसे पिण्ड पद समझना होगा। पिण्डकी आकृति गोल होनेके कारणसे ही इसका नाम पिण्ड पड़ा है। आद्यादिमें पहले भस्मद्रव्यकी पिण्डदान करना होता है, बाद पिता और पितामह आदि को। शास्त्रमें पिण्डका अष्टाङ्ग नाम रखा है।

“तिलमश्व घनीयं धूपं घीर्षं पयस्तथा।

मधुसर्पिः सैन्धव्युक्तं पिण्डप्रमाणमुच्यते॥” (तिलकीषेत्)

तिल, प्रभ, पानीय, धूप, दोष, दूध, मधु, सर्पिः और मण्ड (गुड़) ये सब पिण्डके अङ्ग हैं। पिण्डमें चरद निमिष्ट है। आद्यादिमें लिये मद्य लैसा पस्यय है, पिण्डमें चरद भी वैसा ही है।

“मांसपेषु यथा मर्षे तथा माषोऽपि निपिड्यते॥”

(इत्युक्तम्)

पिण्डका परिमाण—विषय, कपित्थ (केय) वा सुरगोके अङ्गुलके सहस्र पदमा पायनं वा शिरफनकी लैसा करना चाहिये। अन्त्येष्टिपद्धतिमें भस्मने लिखा है, कि सविष्टीकरण और एकोष्टि आद्यमें कपित्थप्रमाणका पिण्ड, प्रत्यक्ष और मांसित आद्यमें नारिकेल फलके सहस्र पिण्ड, तीर्थोदित्य पर या समावस्थानों जो आहुत होता है, उसमें सुरगोके अङ्गुलके सहस्र तथा मन्त्रालया और गयाआद्यमें पायलेके सहस्र पिण्ड बनाना चाहिये।

४ पिण्डप्रमाणमेव, हेमाद्रवेति॥—

“अपित्तवित्त्वमात्रान् वा पिण्डान् इथात् विधानतः।

कुशकुण्डलप्रमाणान् वायलकेवेदरेः पुनरान्॥”

अन्त्येष्टिपद्धतौ अष्टाङ्ग—

“एकोष्टिं अर्घ्ये तु अर्घ्यमनु विधीयते।

नारिकेलप्रमाणान् प्रत्यक्षे वासिके तथा॥

विण्डदान द्रव्य ।—सद्यः पापम, संज्ञ, चर, सतिव
मण्डल और गोधूम द्वारा विण्डदान किया जाता है ।

“गणसेवाव्ययुक्तेन चकटुना चरणा तथा ।

पिण्डदानं तद्वैद्य गोधूमैरित्तमभिधितिः ॥”

देवोपरागमै—

“नक्तमिः, पिण्डदानश्च देवायैः पापघने च ।

कलेश्वरमुनिभिः शोकं विध्याकेन युजेन वा ॥”

(निर्णयसिन्धुः)

चक्र आदिके प्रभावमं कलादि द्वारा भी विण्ड दिया
जा सकता है । आशुतत्त्वधृत भयोध्याकाण्डेय वचनमें
लिखा है—

“पिण्डं बहुरिमं विष्णुर्कर्मसंस्तरे ।

नृप्य पिण्डं सतो राम इदं वचनमनवीर्य ।

इदं मुंछ महाराज । प्रीतो वदन्ता वयं ।

पदनाः पुष्पा राजस्तदनाः पिण्डदेवताः ॥”

शमचन्दने फल द्वारा पिण्डदान दिया था । मनुष्य
को खाते हैं, उसी द्वारा पिण्डदान करने और
बड़ी बलु चमके परम आदरको होती है । दक्षिण वा
पश्चिममुखमें पिण्डादिके चक्षुषे पिण्डदान देना होता
है ।

मृत्युके बाद भी तो देहमें पूरक पिण्ड देना होता
है । मानवकी श्मशानालक्ष्मी, १७ पाठे कौपिक देहके
भस्मोभूत होनेके बाद एक एक पिण्ड द्वारा उसकी सभी
अङ्ग पूरक करने होते हैं । दम पिण्डदान करनेमें मृत-
व्यक्तिके सभी अङ्ग पूरे हो जाते हैं ।

तीर्थे दूर्गे च संश्रिते कुक्कुटोऽङ्ग प्रमाणता ।

महालये, गवाश्रिते कुक्कुटोऽङ्ग प्रमाणता ।

यत्र स्थुनैवः पिण्डदानं निरवकाशयोगः ।

अत्र वैद्यो मयेत् पिण्डदानं लांस्त्रिधिसः ॥

अतः पिण्ड देयं ब्रह्मपुत्र उच्यते ॥” (देवादि)

“ब्राह्मणे दशपिण्डास्तु क्षत्रिये द्वादश स्थाता ।

वैश्ये पञ्चदश श्रोत्राः क्षत्रे त्रिंशत् प्रकीर्तिताः ॥”

मृत्युके तथापि—

“प्रेतेभ्यः सर्वभूतेभ्यः पिण्डान् दद्यात् दशैव सुता”

(देवादिभ्यः पारस्कर-वचन)

हेमाद्रिमें लिखा है,—ब्राह्मणको दश, क्षत्रिणको
बारह, वैश्यको पन्द्रह और शूद्रको नौम पूरकपिण्ड देने
चाहिये । शास्त्रमें ऐसी उक्ति रहने पर भी यः मत
अर्थवादी सम्यक्त नहीं है । दूसरे वचनमें लिखा है,—
“सभी वर्णके प्रेतोंके दश पिण्ड द्वारा पूरक पिण्ड
होता है । यही मत शास्त्रमध्यमें है और इस देखमें प्रच-
लित भी देखनेमें आता है ।

दशपिण्डका अंग्याश्रय विषय दशपिण्डमें देवो ।

गयाचैवमें आकर पिण्डपितामह आदिजो पिण्ड
दान करनेके बाद अपना पिण्ड दिया जा सकता
है । इस प्रकार पिण्डदान द्वारा भी पिण्डगण प्रेतभोजके
मुक्तिनाम कर सकते हैं । ४ संस्त । ५ धन । ६ शील,
सुरमकी । ७ धन । ८ देहदेह । ९ मृतेदेह ।
१० देहमात्र । ११ पत्रे हुए चावल खीर आदिका हाथसे
बांधा हुआ गोल लोटा जो आहमें पितरोंको भर्पित
किया जाता है । १२ गोल, कोई गोल द्रव्यखंड, गोल
मटोल टुकड़ा । १३ सिक्का । १४ कवायुष्य । १५
तन्द यथा—चन्दपिण्ड । १६ कयन । १७ गजकुम्भ ।
१८ मदनहृत् । १९ निषाध । २० उदरतलविषय । यह
कुण्डला, पाटल और हरित् इन तीन वर्णका तथा
बहुत मजबूत होता है । २१ जीविका, बाहार, भोजन ।
पिण्डक (सं० क्लो०) पिण्ड इव कायतोति क्लो० ।
१ शील, सुरमकी । २ पिण्डमूल, पिण्डालु । ३ गोल ।
४ यमस्थ बालकको तोमरे महीनेमें हाथ, पैर और
मस्तकका पश्चिपिण्ड होता है । (पु०) ५ गिह नामक
गन्धद्रव्य, गिनारस । ६ विषाच । ७ पिण्डालु । पिण्ड
स्वायं क्लु । ८ कवेस ।

पिण्डकन्द (सं० पु०) पिण्डाकारः कन्दः । पिण्डालु ।

पिण्डककंटी (सं० क्लो०) विनायतो पेठा ।

पिण्डका (सं० क्लो०) मण्डिका, छोटी चिचक ।

पिण्डखजूर (सं० पु०) पिण्डवत् खजूरः । खनामप्यात
खजूर, पिण्डखजूर । खजूरदकी ।

पिण्डखजूरौ (सं० स्तो०) पिण्डखजूरं स्विर्गं डोए ।

पिण्डखजूर, पिण्डखजूर । पर्याय—शोना, स्वपिण्डा,
मधुरयवा, फलपुष्पा, मोदुरिण्डा, दधन, पिण्डा,
खजूरिका, राजजम्बू आदिपिण्डो । इसका धुप—नाक्य,

शोथ, पित्त, दाहान्ति, खास और भ्रमनाशक तथा वीर्य वृद्धिकर ।

भावप्रकाशके मतमें—पिण्डखज र पचिमो देशोंमें उत्पन्न होता है । इसका गुण—योतवीर्य, मधुर रस, मधुर विपाक, तिग्म, रुचिकारक, हृदयवाहो, अतः पौर स्यनाशक, गुरु, वृद्धिकर, रक्तपित्तनाशक, पुष्टिकर विटभो, शक्तवर्धक, बलकारक एवं कोष्ठगत वायु, वमि, कक, क्षर, चतोसार, क्षुधा, तृष्णा, कास, श्वास, मसता, मूर्च्छा, आमपैक्षिक और मदास्यरोगनाशक है ।

एक और प्रकारभी पिण्डखजूरो है जिसे सुनिपाळा कहते हैं । पर्याय—खदुका और दलहीनकला । गुण—आन्ति, भ्रान्ति, दाह, मूर्च्छा और रक्तपित्तनाशक ।

(भावप्रकाश) खूर देखो ।

पिण्डगुड चिका (स० स्त्री०) कन्दगुडची ।

पिण्डगोल (स० पु०) पिण्डवत् संहतो गोलः । गम्भरस ।

पिण्डज (स० पु०) वह जन्तु जो गम से अङ्के रूपमें न निकले, बने बनाए शरीरके रूपमें निकले, सब अङ्गोंके जन्म पर गम से सजीव निकलनेवाला जन्तु ।

पिण्डतगर (स० पु०) तगरपुत्र, तगरका फूल ।

पिण्डतज्जक (स० पु०) पिण्डं तज्जयति तज्ज वाहुं लक । पिण्डलेपभाभि हसप्रणिमामहन्ति तौल पुत्रव ।

पिण्डतोल (स० बली०) तौल-शोपधमेष्ट । यह वातरक्तवाधिकारमें प्रयोज्य है । प्रसून प्रणाली—ऊट तैल एक डब्बा तथा मोम, मखिहा, धूना और अनन्तमूल प्रत्येक एक छटाक ले कर यथाविधान इस तैलको प्रसून करे । इसकी मात्राग्र करमेंसे वातरक्तरोग जाता रहता है ।

पिण्डतैलक (स० पु०) पिण्डवत् तैलं यस्य कर्प । १ तुषक । २ छिन्नक, शिलाशस ।

पिण्डत्व (स० बली०) पिण्डस्य भावः । पिण्डका भाव, पिण्डका धर्म ।

पिण्डद (स० पु०) पिण्डं ददातीति दा-क । १ पिण्डदान-कर्त्ता, पिण्डदान करनेवाला ।

‘डेमात्रवत्पुष्पः पित्रायाः पिण्डमागिनः ।

पिण्डः यस्तपस्तेषां सापिण्ड्यं साप्तपौषम् ॥”

(श्रुतिवत्)

२ पिण्डदातामात्र, जो यथायथं पिण्डदानका अधिकारी हो ।

पिण्डदात (स० त्रि०) पिण्ड-दा-तव । पिण्डदाता, पिण्ड देनेवाला ।

पिण्डदादन खां—पञ्चावके मिलम जिसकी एक तहसील ।

यह भन्ना ३२ २६ से ३२ ४८ स० और देशा ० ०२ ३२ से ०३ २२ पू०के मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण ८८० वर्ग मील है । इसमें २४४ ग्राम और एक ग्रहण लगत हैं । सविजात द्रव्यके मध्य गेहूँ, बाजरा, जौ, ज्वार, चना, ईँड़े और शाकसब्जों प्रधान हैं । देगशासनके लिए एक कमिश्नर, तहसीलदार और सुफ्फन नियुक्त हैं ।

तहसीलके मध्य पिण्डदादन खां नगर है । सर्वाधिकार सन्निवासी, वाणिज्य-प्रधान और सदर है । यह भन्ना ३२ ३५ स० और देशा ० ०३ ५ २० पू०के मध्य, पाल्टे ज (लवण पर्वत) से ५ मील दूरमें अवस्थित है ।

१६२१ ई०में दादन खाने इस नगरकी बसाया । उसकी बगधर बाज भी इस नगरमें रहते हैं । लोकसंख्या १५०५५ है ।

म्य निविपालिटोकी, प्राय तीस हजार रुपये से भी ज्यादा है । निकटवर्ती पर्वतसे प्रचुर परिमाणमें लमक मिलता है । इस नगरमें सुन्दर बरतन तैयार होते हैं जिनका पञ्जाबमें सब जगह आदर होता है । ग्रामद्वीके द्रव्यसे मध्य विनायतो चीज, टाबुका लोहा, जस्ता, रेशम, पगमीना द्रव्य आदि प्रधान हैं ।

रक्तनी द्रव्योंमें धो, शस्य और तैलादि की प्रधान है । यहाँ बहुत अच्छी नाव तैयार की जाती है । मियानीमें रेल हो जानेके कारण इस स्थानके वाणिज्यको विशेष अवसरित हुई है । प्रधान प्रधान पेशालिकाओंमें से सरकारी कचहरी, जूटधम-प्रचारगृह और चिकित्सालय ही सबसेख्योय्य है ।

पिण्डदान (स० बली०) पिण्डस्य दानं । पिण्डप्रदान, पितरोंके सहयोगसे पिण्ड देनेका काम जो आदर्श किया जाता है ।

पिण्डनिर्वपण (स० बली०) पिण्डस्य निर्वपणम् ।

पिण्डदानार्थ, पावणविधि द्वारा कृत आहुति, वह आहुति जो पिण्डदानके लिये पावणकी विधिसे किया जाय ।

“वहपिण्डक्रियायान्तु कृतायामस्य पतैतः ।

अन्यथाहना कार्यं पिण्डनिर्वपणं मुनेः ॥” (मनु ११.४८)

“पिण्डनिर्वपणं पावणविधिना नादं ॥” (कृष्णक)

पिण्डपद (म० स्त्री०) पिण्डस्य संहतस्य पदम् । १
 अङ्गविशेष, एक प्रकार का अङ्ग ।
 “हृतादिर्विहितो गवन्स्य बन्धः”
 हनुः स्वयस्यमिदं युग्मघरेक्षितम् ।
 एकीकृतं रसनिशाकरयुग्मं भुञ्ज-
 शेवं ततो भवति पिण्डादं गृह्यम् ॥” (ज्योतिषसूत्र)
 २ पिण्डस्थान, पिण्डको जगह ।

पिण्डपात (म० पु०) १ पिण्डदान । २ भिक्षादान ।
 पिण्डपात्र (म० स्त्री०) पिण्डस्यपात्रम् । १ पिण्डप्रदानपात्र,
 वह बरतन जिसमें पिण्ड दिया जाता है । कुम्हरी बिल्का
 कर लकड़ों के लिये पिण्डदान करना होता है । २ भिक्षा-
 पात्र ।

पिण्डपाद (स० पु०) पिण्ड दत्त पादो यस्य । हस्तो,
 हाथो ।

पिण्डपिण्डयज्ञ (म० पु०) पिण्डेः पितृणां यज्ञः ।
 मार्गिक ऋतुस्त्रीका कर्त्तव्य पिण्डयज्ञः क पिण्डदानात्मक
 यज्ञभेदः । प्रभावस्यास्ति चपराक्रमे सान्निहोको यस्य
 यज्ञस्य अनुष्ठानं कर्या आदिष्ट । इस यज्ञमें पितरोंके
 सहैश्वर्यसे पिण्डदान करना होता है इतिहास इसका
 नाम पिण्डपिण्डयज्ञ पड़ा है ।

“अथरात्रि पिण्डपुण्ड्रपञ्चदशभिर्नैऽमावास्यायां ॥”
 (काला० श्री० ५।१।५)

पिण्डपुष्प (स० स्त्री०) पिण्ड दत्त पुष्पं पुष्पशुक्ली
 यस्य । १ अग्नौकपुष्प, अग्नौका फूल । २ जवापुष्प,
 जवपुष्प, देवीफूल । ३ पद्मपुष्प, कमलका फूल । ४ तगर-
 पुष्प, तगरका फूल । ५ टाडिमठस्य, बनारसका पेड़ ।

पिण्डपुष्पक (स० पु०) पिण्डपुष्पमिषं प्रतिकृतिः (श्वे-
 तप्रिहोती । पा ५।१।१९) इति कन् । बाहू, क, वधुषा काम ।

पिण्डफल (म० स्त्री०) कद्दू ।

पिण्डफला (स० स्त्री०) पिण्ड दत्त फलं यस्यः । कडुतुम्बी,
 कडु ईरुबी, कडुआ घोषा, तिलवीको ।

पिण्डबीज (स० पु०) कर्षिकारका वृक्ष, कनेरका पेड़ ।

पिण्डबीजक (स० पु०) पिण्डवत् बीजानि यस्य कर्ष ।
 कर्षिकावृक्ष, कनेरका पेड़ ।

पिण्डभाज (स० स्त्री०) पिण्डं भजते भज-पिण्ड । पिण्ड-
 भोजी, पिण्ड खानेवाला ।

पिण्डभूति (म० स्त्री०) जीवनधारणोपाय, जीविका ।
 पिण्डमय (स० स्त्री०) पिण्डलक्ष्मं मयट् । १ पिण्डलक्ष्म,
 पिण्डके लैसा । २ मोल मटोस टुकड़ा ।
 पिण्डमाद्योपजीविन् (स० स्त्री०) पिण्डमाद्येण उपजीवति
 सप-जीव-णिनि । पिण्डमाद्य-भोजी, जो केवल पिण्ड
 खा कर जीविका निर्वाह करता हो ।

“हृताधिकारां मरिणां पिण्डमाद्योप जीविनीम् ।
 परितृप्तानामभ्युपार्गं वाद्येद्वयमिचारीणीम् ॥”
 (याज्ञ० १।१००)

पिण्डसुप्ता (म० स्त्री०) पिण्डवत् स्थूला सुप्ता । नागर-
 सुप्ता, नागर मोथा ।

पिण्डमूल (स० स्त्री०) पिण्डमिव मूलं यस्य । १ मन्त्र,
 ग्राह्य । २ मूलकभेद, एक प्रकारका मूल, शलगम ।
 पर्याय—गजानन, पिण्डक और पिण्डमूलक । गुण—कटु,
 लघु, शुष्म और वातादि दोषनाशक ।

पिण्डयज्ञ (स० पु०) पिण्डेन-यज्ञः । पिण्डदानरूप यज्ञ,
 आह । आहमें पिण्डदान करना होता है, वमलिय उसका
 नाम पिण्डयज्ञ पड़ा ।

पिण्डयोनि (स० स्त्री०) योनिरोग भेदः ।

पिण्डरोग (स० पु०) १ कुष्ठ, कौढ़ । २ वह रोग जो
 शरीरमें घेर किए हो ।

पिण्डरोगी (स० स्त्री०) रुग्ण शरीरका ।

पिण्डरोगिण्यक (स० पु०) विकृततुल्य, कंठार, बज ।

पिण्डल (म० पु०) पिण्ड संहतो बाहुलकात् कलत् ।
 सेतु, पुल ।

पिण्डलोप (स० पु०) पिण्डस्य लोपः कर्षसंज्ञनाय
 भेदः । १ कर्षसंज्ञापिण्डमभेदः । २ तद्भागे हृदयप्रतिता-
 मभादि तोन पुरुष, पिण्डदानमें पिण्डका एक विशेष भाग
 जो हृदयप्रतितामह आदि तोन पुरुषोंको दिया जाता है ।

पिण्डलोप (स० पु०) पिण्डस्य लोपः । पिण्डका लोप,
 वंशलोप, निशंश । वंशलोप होनेसे ही पिण्डका लोप
 होता है, इसी कारण पिण्डलोप शब्दसे वंशलोप समझा
 जाता है ।

पिण्डशर्करा (स० स्त्री०) खटोयक रा ।

पिण्डन (स० पु०) पिण्डेन परदत्तप्राप्तेन मनोति जीव-
 तोति सन-ड । भिक्षाशी, भिक्षोपजोशी, भिक्षा दारा
 जीविका निर्वाह करनेवाला ।

पिण्डसम्बन्ध (स० पु०) पिण्डेन देहेन देयपिण्डेन वा सम्बन्धः । १ देहकी साथ जन्यजननकारूप सम्बन्ध । २ देय पिण्डके दाहत्वमोक्षत्वका सम्बन्ध ।

पिण्डसम्बन्धिन् (स० त्रि०) पिण्डसम्बन्धोऽस्यास्तीति इति । पिण्डसम्बन्धयुक्त, पिता भैर पितामहादि ।

“पिता पितामहश्च सौम्य प्रतितामहाः ।

पिण्डसम्बन्धिपते स्ते वेतिहाः पुरुषाश्चः ॥”

(मार्क० पु० ३।१३)

पिण्डशेषण (स० पु०) नागभेद, एक प्रकार का नाग ।

पिण्डस्य (स० त्रि०) पिण्ड-स्या-क । स० युक्त, एकत्र स्थित, एक साथ मिला हुआ ।

पिण्डहरिद्रा (स० स्त्री०) शत्रुहरिद्रा ।

पिण्डा (स० स्त्री०) पिण्ड-टाप् । १ पिण्डायस, इस-पात । २ कस्तूरीभेद, एक प्रकारकी कस्तूरी । ३ हरिद्रा, हल्दी । ४ वंशपत्री-छत्र ।

पिण्डाकार (स० त्रि०) गोल बंधे हुए लोहेके आकारका, गोल ।

पिण्डाङ्गन (स० स्त्री०) अङ्गनविशेष, एक प्रकारका अङ्गन ।

पिण्डात (स० पु०) पिण्ड इस भूमि साहचर्यमनुकरोति भान-पच् । मिष्टान्न, मिलास ।

पिण्डान्वाहार्यक (स० स्त्री०) आहभेद । साम्निक् ब्राह्मणोंकी प्रभावस्थाने पिण्डयज्ञ समाप्त कर पिण्डान्वाहार्यक नामक आहुति करना चाहिए । पिण्डपिण्डयज्ञके बाद यह अनुष्ठित होता है इसीलिए इसका नाम पिण्डान्वाहार्यक पड़ा है ।

पिण्डलोकके पहले श्रेष्ठ मास मासमें जो आहुति विहित है प्रणिष्ठित लोग उसे ही प्रान्वाहार्य आहुति कहते हैं । यह आहुति सामिपादि द्वारा करना होता है ।

पिण्डान्वाहार्यक आहुति प्रवक्ष्य कर्त्तव्य है । इस आहुति देवकार्यमें दी और पिण्डकार्यमें तीन ब्राह्मण, प्रशक्ता देवपक्षमें एक ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये । धनधान्य ज्यों पर जो इसमें पक्कि ब्राह्मणोंको भोजन नहीं कराना चाहिये । क्योंकि अनेक ब्राह्मण होनेसे उनको सेवा, देयकान्त शडाशुद्ध और प्राजापत्यविचार एवं पावोंके सम्बन्धमें कोई नियम नहीं रहता । विशेषविवरण-भास्व शब्दमें देखो ।

पिण्डापा (स० स्त्री०) नाहीरिङ्ग ।

पिण्डाभा (स० स्त्री०) शक्राभेद, एक प्रकारका शुद्ध ।

पिण्डाभ (स० स्त्री०) पिण्डवत् भस्म, मेषजलसम्बन्धि द्रव्यम् । घनोपल, मोला ।

पिण्डाभृता (स० स्त्री०) कन्दशुद्धी ।

पिण्डाङ्ग (स० स्त्री०) चाङ्गिरो, लङ्गुच, भस्मवेतस, लम्बीर, कपूर, नारदफल और पाहुच इन सब द्रव्योंके बराबर बराबर भागकी मिलानिसे पिण्डाङ्ग बनता है ।

पिण्डायस (स० स्त्री०) पिण्ड स० हतमायसम् । तीक्ष्ण-लौह, इसपात ।

पिण्डार (स० स्त्री०) पिण्ड स० हतसृज्यतोति क-पच । (कर्म० १।२।१) १ फलमाकविशेष, एक प्रकारका फलशाम्भ, पिण्डारा । इसका शुष्क-मौलन, बलकर, पित्तनामक और क्विकारक तथा पाकमें लघु एवं विषनाशक होता है । २ अणुषक । ३ गोप-गाय, भँसका चरवाहा । ४ दुग्धभेद । ५ विह्वल, हल । ६ एक सर्पका नाम । ७ कण्ठमदगृह्य । ८ तोयविशेष, एक तोयका नाम । पिण्डारक देखो ।

पिण्डारक (स० पु०) १ नागभेद, एक नागका नाम । २ ङ्गिभेद । ३ वसुदेव और रोहिणीके एक पुत्रका नाम । ४ मुखतोया नदभेद, एक पवित्र नदका नाम । ५ महाभारतवर्णित एक पावोय तोय । यह गुजरातकी प्रान्तसीमा पर समुद्रतटसे एक कोस दूरमें अभा हुआ है और अभी भी पिण्डारक नामसे प्रसिद्ध है । स्कन्दपुराणके प्रभावखण्ड, क्षिप्रपुराण और जैनिगीके लहन्हरिवर्णनमें इस तोयका महामय वर्णित है । यह प्रमाण २२-१८-७ और देगा १८-२४ गुजरात उपद्वीपके मध्य ठोक उत्तर पश्चिम प्रान्तमें अवस्थित है । इस तोयमें एकाग्रस्रवण है । प्रवाद है, कि पण्डितगण वनवासके समय इसी तोयमें स्नान कर गो-हत्याजनिष्ठ प्राणसे मुक्त हुए थे ।

पिण्डारा—अथोक्तकवासो ऽप्यविक्रयो जातिविशेष । घाम काट कर बेचना को इनका कार्य और एकमात्र उपजीविका है । ये लोग पहले हिन्दू थे, पीछे मुसलमान हो गये हैं । ये अपनेकी सुकी आहुतिके इतिहास सम्प्रदायमुक्त वस्तुवाते हैं । १८वीं शताब्दीके पारम्पर्यमें इन्होंने इन

बांध कर भारतवर्ष को प्रायः सभी स्थानों पर शासन व्यवस्था किया और लूट पाट तथा ध्वजों का गमना कर लोगों को तबाह कर डाला था। विशेष विवरण पिण्डारी ग्रन्थ में देखो। ये लोग इन्दीयुद्ध दोनों ही लक्ष्य, सुदृढ़ और कालि होने हैं। वेगभूषा उतना खराब नहीं है। दोनों कमंड और परिश्रमशील होते हैं। प्रतिरिक्त शराव पोना और परिश्रम रहना इनका सामाजिक गुण है।

अपनी जाति में ही विवाह-ग्राह्य चलते हैं। विवाह और शास्त्र में जो ये लोग काजों को बुलाते हैं, दूसरे कर्मों में नहीं। सुनसमानों से इनमें यह भेद है, कि ये गो मीन नहीं खाते और देवताओं की पूजा तथा व्रत, उपवास आदि करते हैं। नाना जातिके नियमों से इस सङ्घर्ष जातिकी उत्पत्ति हुई है।

पिण्डारी - कर्णाटकवासियों के जातिविशेष। नाना जातियों से यह सङ्घर्ष जाति उत्पन्न हुई है। पिण्डारियों में बहुतों का कहना है, कि पतिश्रम मध्य-प्रायों की कारण इनका यह नाम पड़ा है।

एक समय समस्त मध्य भारत इस दुर्दांत दृष्ट्यु-जातिके उत्पातों से व्यतिथस्त हो गया था।

पिण्डारों के अत्याचार, दृष्ट्यु-जन और दृष्ट्यु-वृत्तिकी भारतवासियों काज भी भूने नहीं है।

१५८८ ई. की औरंगजेब के शासनकाल के इतिहास में सबसे पहले 'पुनपा पिण्डारों' का नाम आया है। इस पिण्डारों सरदार ने लुण्ठिकार आदि औरंगजेब के सेना-पतिश्रमों में घमनाम युद्ध किया था। किरिस्तान लिखा है, कि इन दृष्ट्यु-सरदारों ने शाहजहाँ के राज्यकाल में कर्णा-टक की लूट कर वेङ्ग पर अधिकार किया था। इसी समय से सामान्य दृष्ट्युवृत्ति द्वारा ये लोग घोर घोर मर-हटों की सेना में भर्ती हो कर विषम आत्माचारों और निदार्ण प्रमाणों का हो उठे। जिस समय सुगल लोग दक्षिणात्य में अधिकार फैला रहे थे, उस समय पिण्डारी मरहटों से मिल गये थे। पानौपतकी लड़ाई में विजय और हुन नामक दो पिण्डारों सरदार पन्द्रह हजार सवारों के साथ उपस्थित थे।

पुनपा के समय से ही यह दृष्ट्युसमूह कई एक दलों में विभक्त हो कर चारों ओर घेर लूट पाट करने

लगा था। पानौपतकी लड़ाई के बाद से इन्होंने मालव के निकट पा कर उपनिवेश बनाया।

१८वीं शताब्दी के शेष भाग में और घोर वारण नामक दो सरदारों के अत्याचारों का पता सुना जाता है। दोनों के पुत्रों ने भी पेट्टक व्यवसाय में खूब नाम कमा लिया था। परन्तु इनके सम्मान जातिके लेशा वंश-परम्परा को कोई सरदार नहीं हो सकता था। इनमें से जो विशेष चतुर, बुद्धिमान, वसुधालो और दृष्ट्युताम विद्वद्भक्त होता, वही प्रायः सरदार होता था।

पहले ये लोग कर्णाटक और महाराष्ट्र में खेतों चारों करते थे, पीछे पश्चिम पा कर लूट मार करने लगे और सुखसमान हो गये। कोई सम्मान मरहटा इस निम्न-व्योधा का सच नहीं देता था। मरहटा जातिके अन्ध-दृष्टिके समय से लोग किसी महाराष्ट्र सरदार की सेवामें रहते थे और बिना वेतन के ही काम कान किया करते थे। दोनों में यह बात पकी हो गई थी, कि इन्हें सर-दारों की नजर और लूट के मानका आधा हिस्सा देना होगा। मरहटों ने आग्रह पा कर ये लोग घोर घोर दुर्दृष्ट और भीतिजनक हो उठे। पिण्डारियों के मध्य कमरे कम चारों चरानों से रहते थे। प्रत्येक चरानों से ही हाथ में बांधका बना हुआ पद १२ हाथ लम्बा एक तेज बरका और पन्द्रह आदमों के भीतर एक ही हाथ में बन्दूक रहती थी। अलावा इसके और सभी पिण्डारों प्रायः अग्नित और टट्ट पर जाते थे। इन लोगों का काम था लूटका मान देना, चिन्ता चिन्ता कर लोगों को डराना, घर में आग लगाना और चारों घोर रह कर संवाद देना। ऐसे अग्नित मनुष्य साथ ले कर भी ये इनमें तेजों से चलते थे, कि उसे खोचने से विस्मित होना पड़ता है। किसी किसी अंगरेज सेनाध्यक्ष ने इन दृष्ट्यु लोगों का पोछा करते देखा है, कि सभी दुर्गम प्रदेशों में जहाँ कोई अन्धारी हो नहीं जा सकता, वैसे पहाड़ों प्रदेशों में भी ये लोग छोड़ पर चढ़ कर एक दिन में २० कोस तक चले गये हैं। इस चिपगामिता के कारण कोई भी इन्हें सहज में नहीं पकड़ सकता था। इसी कारण मानव होता है, कि लुण्ठिकारों का होकर और माधोजी सिन्धियाने इन्हें अपने यहाँ सेना में भर्ती किया था। दोनों दलों की

पिंडारो सेना यथाक्रम 'होलकरग्राहो' और 'सिन्धिया-ग्राही' नामसे प्रसिद्ध हो गई थी।

सिन्धियाग्राहो पिंडारियों के मध्य चोतू और करोम खाँ नामका दो विख्यात सादार थे। चोतू का जाटकुलमें जन्म हुआ था। दुर्भाग्यवश एक पिंडारो-दलपतिने इसे खरोदा था और उसी चोतूने अपने भावी जीवनकी हृत्ति सीखी थी। कालक्रमसे यह भी एक दलपति हो गया। दोस्ताराव सिन्धियाने प्रसन्न हो कर उसे एक जागोर और 'नवाब' की उपाधि दे दी। इसके साथ साथ उसका भाग्य चमक उठा और कई एक स्थानों पर अधिकार करने इतने अच्छी रकम इकट्ठी कर ली। अब इसके अभ्युदयसे सिन्धिया तक भी काँप उठा। दोस्तारावने उस स्थान, देनेका लोभ दिखा कर अपने शिबिरमें उसे बुलाया और कैद कर लिया। चोतूने सिन्धियाको सात लाख रुपये देकर छ मघ के बाद मुक्ति पाई थी। मुक्तिलाभ करके ही उसने हृदयमें प्रतिष्ठासाल धक्का उठा। उसने बातचीतमें १२००० पन्नारोही संघर्ष कर लिये और सिन्धियाके पश्चिमत प्रदेशों पर दाक्षिण प्रत्याचार चारम्भ कर दिया। अन्तमें सिन्धियाने भूपालके पश्चिम प्रांतवर्ती प्रदेशमें और मो पाँच जागोर दे कर उससे पिंड छड़ाया। नम दोहे किनारे निमारमें चोतूका किला था, किन्तु निकटवर्ती शतवास (शतवर्ष) नामक स्थानमें ही वह हमेशा रहा करता था। किसी किवी अंग्रेज ऐतिहासिकने लिखा है, कि यदि इस चोतूके साथ उपयुक्त राजनोति और समरनोतिकुशल मनुष्य रहता, तो सारे भारतवर्ष पर अग्रान्ति फैल जाती, इसमें सन्देह नहीं। अन्तमें चोतूके ऊपर हटिग-गध-मैण्टकी हडि पड़ी। अंग्रेजोंने नाने जाँ कर उस पर आक्रमण कर दिया। चोतू प्राणके भयसे अपने बाल बच्चोंके साथ जंगल भागा जहाँ वह जंगली बाघका गिकार बन गया।

पिंडारियोंके दूसरे प्रश्न सरदारका नाम था करोम खाँ। यह रोहिला जातिका था। जिस समय निजामने दोस्ताराव सिन्धियासे युद्धमें हार खा कर कुर्दामांसे सन्धि कर ली, उस समय करोम खाँने सिन्धियाके दलमें रह कर प्रभुत धनसमृद्ध दाग भावी

सीमाग्निका उपाय कर रहा था। भूपाल राजवंशकी एक कुमारीके साथ उसका विवाह हुआ। अब यह क्रमशः अनेक पन्नारोही, पदार्ति और कुछ कमान संघ कर अत्यन्त प्रबल हो उठा। दोस्ताराव तक भी इसके डरसे काँपने लग गये थे। यहाँ तक, कि उन्होंने आखिर करोमकी उच्चस्थान देनेका लोभ दिखा कर कैद कर लिया। उस समय करोमकी माता सुजादनपुरमें थी। पुत्रका यह दाक्षिण संवाद पाते ही वह अपनी विपुल धनसम्पत्तिके साथ कोटाके जातिमसिंहजी शरणमें पहुँचो। आखिर करोमने छ लाख रुपये दे कर सिन्धियाके कारागारसे छुटकारा पाया।

अपने दलमें शामिल होते ही करोमने अपनी मुक्ति धारण कर ली। चोतूने भी उसका साथ दिया। इस बार दोनोंने मिल कर सिन्धियाका यथोचित अग्निष्ट करनेमें एक भी कसर उठा न रखी। विजयादशमीके दिन उन्होंने प्रायः ६०००० सेना इकट्ठी कर ली। इस प्रकार प्रभुत शय और बल समूह काफ़ी करोम खाँने राघोजी भाँसलाके राज्य पर अधिकार करनेकी इच्छा की थी। राघोजीने चोतूकी कुछ जागोर में टोढ़ी जिसे उसने स्वयं अपना लिया, करोमकी उसका कुछ भी अंश नहीं दिया। इस पर दोनों सरदारोंने मतमुटाव हो गई। आखिर दोनोंका जो अधःपतन हुआ, उसका कारण भी यही था।

जब दोनों दलमें विवाद चल रहा था, तब सिन्धियाके सेनापति अवाधूने करोम पर हमला कर दिया। चोतू भी इस समय छिपके सिन्धियाकी सहायता पहुँचा रहे थे। करोम परास्त हो कर पड़ने कोटा भागा। जब वहाँ भी सुविधा नहीं देखी, तब अमीर खाँकी शरण ली। किन्तु अमीर खाँने कोयलसे उसे कैद कर होत्रकरके हाथ सुपुर्द कर दिया। इस समय करोमके दलका बहुत कुछ हस्तभङ्ग हो गया। तोन वर्ष बाद मुक्ति पा कर करोम अपने अग्रगण्य दलको ले कर होत्र-सरदारके पुत्र दोस्त महम्मद और जामिशमहम्मदसे जामिना। इस समय चोतूके दलमें १५०००, करोम खाँ दलमें ४२०० और दोस्त तथा बासिल महम्मदके दलमें ७००० सेना थी। अन्तर्वा इधर छोटो छोटो सरदारोंका

कला से कर विण्दारी दस्यु लोगो की संख्या प्रायः ३४००० हो गई थी ।

१८०८ और १८१२ ई० में विण्दारियों ने हटिग-राज्य में घुस कर दस्युवृत्ति और लुप्टन द्वारा नौ कड़ों ग्राम जला डाले । इनका बदला लेने के लिये हटिग-गवर्मेण्ट भी बिलकुल तैयार हो गई । १८१२ ई० में दोस्त और बाबिल महय्यदके इसको ध्वंस करने के लिये बड़े साट छेड़ने सेना और बुन्देलखण्ड में सेना भेजी । पोलि रोम खाँ की पकड़ने के लिये कर्णेल सालकोम भेजे गये । उनके सदोगने मध्यभारत में जो विण्दारीका भारो पत्थाचार होता था, सो दूर हुआ । करीम खाँ ने निरुपाय की कर्णेल सालकोम के निकट आत्मसमर्पण किया । किन्तु इतना होने पर भी दूसरे दूसरे स्थानों में विण्दारी पत्थाचार पूर्ववत् चल ही रहा था । १८१५ ई० में प्रायः ८००० विण्दारी नर्मदा पार कर मजर प्रदेस पर टूट पड़े और पोलि कल्याण किनारे पड़े थे । यहाँ नदी पार करने की सुविधा न थी, इस कारण वे सबके सब टिड्डो दलको तरह बड़े बड़े नगरों और ग्रामों में घुस कर लूट पाट करने लगे । इस समय गोदावरी और बरदा किनारे के प्रायः सभी जनपद इन दुर्गों के चङ्गुल में पकड़े थे । इस बार किमीनी भी उनको गति रोकने का हुक्मा इस लई किया । फलतः वे प्रचुर धनराज को कर दे-रोकटोक घर कोटे । इस बार वे और भी उत्साहित हो गये और प्रायः दस हजार विण्दारी गङ्गा की समीप पक्ष्मन की सीमा पर जा घमके । ११वीं माघ की एक दिन में ३२ मोत चल कर चर्मीन ८२ ग्रामों की सजाहू डाला और निरक्षर अधिवासियोंका यथासर्वस्व क्षिप्त करने लिये ऐसा भोषण पत्थाचार किया था, कि उसका वर्णन करने में लोकनी रुक जाती है । इस समय से कड़ों ग्राम विषम, दस्यु और यथामवस्थहीन हो गये थे । कहते हैं, कि १२ दिन के भीतर दस्युलोगों के हाथ से १८२ मनुष्य बड़ी सुती तरह मारे गये, ५०५ धायल हुए और ३४०३ मनुष्य उनके और पत्थाचार से तंग तंग पा गये थे । राक्षसों के राजे सेना में उन्हें रोका तो सही, पर कुछ कर न सका । नूटके मानके साथ वे बड़ी धूमधाम से घर लौटे ।

परी हटिग-गवर्मेण्ट ने उन्हें समुल नष्ट करने के लिये दस्यु देश में सेना भेजी, केवल इतना ही नहीं, दुरारो पर्वत प्रदेश में, निविड़ भरखल प्रदेश में, जहाँ जहाँ विण्दारियोंका मखान मिलता था, वहाँ वहाँ कड़ा पहरा बैठा दिया । उस समय मार्क्सिंस थाव छेड़िस वड़े नाट थे । उनका यह कार्य दिगदितकर होने पर भी विनायत से शासनसभा के समुपनि केनिङ्गने उनके प्रति विरक्त हो कर कहला भेजा, 'विण्दारियों की निम्न करने के अनिश्चित अभिप्राय से भूल कर भी संघाम नहीं करना । ऐसे कार्य में प्रपर देगोय राजाओं के सन्देशका कारण हो सकता है और उससे हम लोग के विपक्ष गुरुका दल उठ सकता है ।' बड़े साटने भी जो उसका यथोचित उत्तर दिया था, वह यों है, 'उन दस्यु लोगों का जब तक दमन नहीं किया जायगा, तब तक न तो प्रजा सुख से रहेंगे और न हटिगराज्य की प्रभुता की जड़ हो मजबूत हो सकती है । प्रायः है, कि विण्दारियों को समुल नष्ट करने के लिये पक्षधारण करने की प्रभुमति देनी । बड़े साट चलेमावरा ने भी विण्दारियों की दमन करनेका नया कानून चलाया था । उस समय विण्दारी सरदारों में से बहुतों ने महाराष्ट्र सामन्तों की शरण ली थी और बहुतों ने हटिग के हाथ से महाराष्ट्र जातिके पक्ष पतन के साथ यह विण्दारी दस्युदल क्षमयः विरुद्ध हो गया ।

पिण्डालु (स० पु०) पिण्डालु स्थूल प्रातुः । १ कन्द-गुड़घो, एक प्रकारका मफलतायु या रतानू । २ कन्दभेद-एक प्रकारका कन्द या मधुरकन्द जिसके ऊपर कड़े कड़े सूत्र से होते हैं । यह खाने में मोठा होता है और खाने पर खोया जाता है, स्रग्धो पिण्डिया । संस्कृत-गणेश—पञ्चिना, पिण्डकन्द, पन्थि, रोमग, रोमकन्द, रोमातु, ताम्रमूलपत्र, नानाकन्द और पिण्डक । गुण-मधुर, शीतल, मूलकण्ड, दाह, शोथ और प्रमेहनाशक, बलकर सम्पन्न तथा शुष्क । इसे महाराष्ट्र देश में पेण्डालु, कनिंश में चिनिहेंडन और संकल में धरा-पानू कहते हैं । इसे कोई पिण्डाल भी कहा करते हैं ।

पिण्डालुक (स० बली०) पिण्डालुविक प्रतिकृतिः द्वाय

कन् । पास विग्रह, एक प्रकारका धान । इसका गुण-
कफनाशक, शुद्ध और वातप्रकोपण है ।

पिण्डायकरण—नोर्भेद, एक तोहफा का नाम । यहाँ धन्या-
देवो प्रतिष्ठित है ।

पिण्डाय (स० पु०) मिश्रक, मिश्रायी ।

पिण्डागिन (स० पु०) १ पिण्डभोजी, पिण्ड खानेवाला ।

२ मिश्रक, मिश्रायी ।

पिण्डामय (स० पु०) प्रचणो रोगमें प्रयुज्य पासवविग्रह ।
प्रसृत प्रणाली—चरक चिकित्सा स्थानमें १८वें अध्यायमें
लिखा है, कि पिण्डालोकक, शुद्ध और मधु इन सबों का
दो दो भाग ली कर चार भाग पानोके साथ एक बरतन-
में इसीसे दिन भरवा एक महीना तक लोको मध्य
रखना चाहिए ।

पिण्डाक्ष (स० स्त्री०) तगरपादुक ।

पिण्डाक्षा (स० स्त्री०) पिण्डा कस्तूरीविशेषमाह्वयते
स्वर्गते स्वर्गस्थेनेति क्वेक । नाडौडिङ्ग ।

पिण्डि (स० स्त्री०) पिण्डि-सङ्गतो हन् । पिण्डिका
पावका ठेला ।

पिण्डिका (स० स्त्री०) पिण्डान्ते सङ्गतानि भवन्ति,
पिण्डान्ते राशौ-क्रियन्ते वा चराणि यस्यां, पिण्ड-घञ्,
गौरादित्वात् ङीप् ततः कन्, क्लृप्त । १ रथनाभि,
पद्मिदेके मोक्षका बड़ गोस भाग जिसमें धुरो पहनाई
जाती है । २ पिण्ड, गोस मटोल टुकड़ा, पिण्डो । ३
पिण्डिका । ४ खेतास्त्रिका, दमली । ५ पोठ, पेदो,
बड़ पिण्डो जिस पर देवमूर्ति स्थापित की जाती है ।
इसे यज्ञपूर्वक बनाया चाहिये ।

पनिपुरायमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—
पिण्डिका प्रतिमाके बराबर लम्बी, प्रतिमाके पाधे बरा-
बर ऊँची और चौसर पद्मगुल होने चाहिए । इसको
पश्चःस्थित दो पंक्ति छोड़ कर उत्तरके ऊर्ध्वमें उभय
पार्श्वके मध्यस्थित सभी कोष्ठ और ऊपरकी दो पंक्ति
छोड़ कर पश्चोद्देशमें जो सब कोष्ठ हैं, उनमें मध्य उभय
पार्श्वस्थित कोष्ठका मध्यदेश समभागमें मार्जित करना
चाहिए । अनन्तर उस उभय कोष्ठके मध्यगत चतुष्क-
हको मार्जित कर ऊर्ध्व दो पंक्तियोंकी चार भागमें
विभक्त करे । एक भागमात्र मेकला और उसके पश्च

परिमाणमें खात तदा दोनों पार्श्वमें बराबर बराबर कर-
के एक एक भाग छोड़ देना होता है । इस प्रकारको
पिण्डिका नामा प्रकारकी होती है ।

देवताकी पिण्डिका किस प्रणालीमें बनानी चाहिए
उसका विषय कहा जाता है ।

पिण्डिका सम्बन्धमें प्रतिमाके समान और चौड़ाईमें
उसकी पाधो या तीन भागका एक भाग होगी । इस
पिण्डिकाके तीन भागका एक भाग मेकला-निर्माण और
उत्तर भाग लुक् ऊँचा कर उसीके बराबर गड्ढा बनाया
चाहिए । सम्बन्धके चतुर्थभागमें प्रणालीका निर्माण
स्थान और तत्संयोगमें जलनिर्माण मार्ग प्रसृत करना
होगा । पिण्डिका प्रतिमाकी पाधो वा बराबर भी
बंगई जा सकती है ।

हरिको पिण्डिका जिस प्रकार बनानेसे सुयोग्य हो,
उसी प्रकार विषय है । सभी देवताकी पिण्डिका विष्णु-
पिण्डिकाकी जैसे और देवियोंकी लक्ष्मीपिण्डिकाकी
जैसी होगी । (अमिपु० ५५ अ०)

किस भागमें प्रतिमा तथा कोम कोन पिण्डिका
स्थापित करने चाहिए, उसका विवरण अग्निपुराणके
१०वें अध्यायमें, मत्स्यपुराणमें तथा हयग्रीवपुराणमें
लिखा है । १ लिङ्गपोठ । २ गौरीपट्ट । ३ छोटा टिला
या लोटा, सुगदो ।

पिण्डित (स० वि०) पिण्डितः । १ गणित । २ घन,
पिण्डके रूपमें बंधा हुआ, दबा कर घनोद्भूत किया
हुआ । ३ संहत पिण्डोके रूपमें सपेटा हुआ । ४
सुखित, सुखा किया हुआ । (पु०) ५ तुल्य, मिलानस ।
६ कोषधातु, काँसा ।

पिण्डितमूल्य (स० स्त्री०) ज्यादा दाम ।

पिण्डिततेज (स० स्त्री०) मिलानस ।

पिण्डित् (स० वि०) पिण्डोऽप्यास्तीति इति । गौरी ।

“यथा सूर्यं विना भूमिगृहे दीपविवर्जितम् ।

पिण्डहीनो यथा पिण्डी जप्यो धोत्वा विना तथा ॥”

पिण्डिनो (स० स्त्री०) पिरिकिषिक, अपराजितालता ।

पिरिटोराज—सच्चाद्रिखंडवर्षित राजभेद, कामुंकराज-
के पुत्रका नाम ।

पिण्डिरिका (स० स्त्री०) १ मञ्जिष्ठा, मजीठ । २ तण्डु-
लीयक, चोलाईका साग ।

पिण्डिल (स० पु०) पिण्डवदाकृतिरस्यस्येति पिण्ड-इत्यच् ।
१ सेतु । २ गणक ।

पिण्डिला (स० स्त्री०) पिण्डिल-टाप । कर्कटोमेद,
ककड़ी ।

पिण्डो (स० स्त्री०) पिण्डाकारोऽस्यस्या इति चच् ततो
ङीप् । १ पिंडोतगर, एक प्रकारका तगर फूल, हजारा
तगर । २ पलाशु, कहु, लोको, घाया । ३ खजूर-
विशेष, एक प्रकारको खजूर । ४ ज्ञान-निरूपणार्थ-
कोपन्यास । ५ पिंडिका, चक्रनेमि । ६ पिंड, ठोस
या गोली वस्तुका छोटा गोला मटोल टुकड़ा, छोटा टेला
या लौंदा, लुगदी । ७ कस कर सपेटे हुए धत, रस्सी
बादिका गोला लच्छा । ८ बड़ वेदो जिस पर वलिदान
विधाय जाता है ।

पिण्डोकरण (स० स्त्री०) पिण्डः पिण्डः सम्पद्यमानः,
पिंड भूततडावे ष्व । पड़ते जो पिंड नहीं था, उसे
पिंड करना ।

पिण्डोजह (स० पु०) ऋषिमिद, एक ऋषिका नाम ।
तस्य गोमापत्य इव । पैडिजहि, पिंडोजहकी सम्मान ।

पिण्डोतक (स० पु०) पिण्डोत्सवपिण्डं तनोतीति
तन-ङ, संज्ञाया कन् । १ मदनहृत्, मीनफल । २ ज्ञान-
मदन । ३ पिंडोतगर, तगरपाटुका, हजारा तगर ।

पिण्डोतगर (स० पु०) पिण्डा पुष्पावच्छेदेन स्वल्पपिण्डेन
उपलक्षितस्तगरः । तगरविशेष, हजारा तगर ।

पिण्डोतगरक (स० पु०) पिण्डोतगर-स्वार्थं संज्ञाया वा
कन् । तगर, हजारा तगर ।

पिण्डोतह (स० पु०) पिण्डा उपलक्षितस्तह । महांपिण्डो-
हृत् ।

पिण्डोपप (स० पु०) पिण्डोवत् पुष्पं पुष्पस्तवको यस्य ।
भूमिकहृत् ।

पिण्डोर (स० पु०) पिण्डोवत् पिंडाकारानि फलानि
इत्येतोति ईर-विच्-अच् । १ दाडिम्बहृत्, अगार । २
समुद्रफेन । (त्रि०) ३ नीरस ।

पिण्डोगुर (स० पु०) पिण्डां पिण्डाकारे भोजने एव
गुरः प्रतिनिपुणः नान्यत् आर्वादाविति भावः । १ कण्टह-

में भवस्थान कर परदेवो, घर हीमें बैठे बैठे बहादुरो
दिखानेवाला, बाहर बा कर फुफ न कर सकनेवाला ।
पर्याय—गेहेनहीं, गेहेशूर ।

२ केवल भोजन विषयमें गुर, खानेमें बहादुर, पेट ।

पिण्डोद्वहा (स० स्त्री०) सुरा, मदिरा ।

पिण्डोपनियद (स० स्त्री०) उपनियदभेद ।

पिण्डोनि (स० स्त्री०) १ भुक्तमनुजित, थालो या पत्तल
परका सब जो खानेसे बचा हो, इठन । (पु०) २
चट, कांट ।

पिण्डा (स० स्त्री०) पण्यते स्तूयते रोगक्षत्वेन पण्य-
निपातभादत इत् । ज्योतिषातीतता, मालकंगनी ।

पिण्डाक (स० पु० स्त्री०) पिण्टीति पिप् संचूर्णनं,
(पिण्डाकारश्च । अ० ४१५) इति भ्रूकप्रत्ययेन निपात-
नात् साधुः । १ तिलकहृत्, तिल या सरसोको खत्ती । २
तैलकिट । इसका गुण—रत्नाकिट, रुच, विष्टभी घोर
हृष्टविघातक है । शास्त्रमें पिण्डाक खाना निषिद्ध
है । खानेसे प्रायश्चित्त करना होता है । ३ हिङ्गु, हौंग ।

४ वाक्कीक, डंगर । ५ मित्रक, गिलारस । ६ मिखाजीत ।

पितपापहृ (हि० पु०) एक क्षुप या भाड़ जिसका
उपयोग भोपधने रूपमें होता है । इसे दहनपापहृता भो
कहते हैं । संस्कृत पर्याय—रत्नपुष्पक, पितारि, श्रोत-
वह्नम, कटुपत्र, नक्ष, प्रगन्ध, सुतिक्त, पर्यट, वरतिक्त,
पांशुपर्याय, कवचनामक, त्रियष्टि, तिक्त, चरक, चरक,
चरक, श्रोत, द्रव्याग्नि, रेणु, श्रोतप्रिय, पांश, कलपाङ्क,
यमकण्टक घोर क्षणमाय ।

यह दो प्रकारका होता है—एकमें लाल फूल लगते
हैं घोर दूसरेमें गोले लाल फूलवाला अधिक गुणदायक
माना जाता है । वैद्यकमें इसकी श्रोतल, कडुधा, मल-
रोधक, वातकी कुपितकारक, हलका तथा भ्रम, मद,
प्रेमिद्ध, छया, पिच्छ, कफ, श्वर, रक्तविकार, प्रवृत्ति, दाह,
रत्नाग्नि घोर रक्तपित्तकी नष्ट करनेवाला माना है ।

पितर (हि० पु०) मृत पूर्वपुत्र, मरे हुए पुत्रके जिनके
नाम पर याद वा जलदान किया जाता है ।

विशेष पिण्ड शब्दमें देखो ।

पितरपति (हि० पु०) यमराज ।

पितराहं (हि० स्त्री०) पोतकका असाव, किसी प्याह

सुखी खाद और गन्धमें यह विकार जो पीतनके वरतनमें अधिक समय तक रहने से उत्पन्न हो जाय।

पितराई (हि० स्त्रो०) पीतनका खाद, पीतनका कमाव, पितराइय। जैसे, दशमें पितराई उत्तर भाई है।

पितरिशूर (म० पु०) पितरि शूर, पात्रे समितादित्वाद-सुकसमासः। पितरिपयमें शूर, पित्तिके निकट और, यह जो पित्तिके सामने खूब दहले कूटे, परन्तु वैषा काम न करे।

पतरिहा (हि० स्त्रो०) १ पीतनका बना हुआ, पीतनका।

(पु०) २ पीतनका चड़ा।

पितससुर (हि० पु०) पित्तिका ससुर देखो।

पिता (हि० पु०) जन्म दे कर पालन पोषण करनेवाला, बाप, जनक। विशेष विवरण पितु शब्दमें देखो।

पितापुत्र (म० पु०) पिता पुत्रय द्वाहे भूषण पदे मानङ्ग।

१ पिता और पुत्र, बाप और बेटा। महाभारतमें शान्ति पर्वके मीक्षधर्मवर्षाध्यायमें पितापुत्रका एक इतिहास लिखा है। (वि०) २ पिता तथा पुत्रसे जागत।

पितामह (म० पु०) पितुः पितेति (पितृभ्यमातुलमातामह-वितामहाः। पा ४।२।३९) इत्यत्र 'माहपितृभ्यां पितरि

डामहच,' इति यात्ति कोशशा डामहच। १ जज्जा,

विधाता। मरौधि आदि पितृगणके पिता वज्जा है।

२ पिताका पिता, दादा। ३ श्वित्र, महादेव। ४ धर्म-

शास्त्रकार ऋषिर्भद्र, एक ऋषि जिन्होंने एक धर्म शास्त्र

बनाया था। यह धर्म शास्त्र मदनपारिजात, रघुनन्दन,

कमलाकर आदिके ग्रन्थमें उद्धृत हुआ है। ५ ज्योतिष-

शास्त्रकार। इनका ज्योतिष हिमाद्रिमस्तुतिके ग्रन्थमें

उद्धृत हुआ है। ६ भीम। ७ सुभ्रूवण, भृज

घास।

पितामही (म० स्त्री०) पितामह-डोय। पितामहपत्नी,

पितामहकी स्त्री, दादी।

“मातामही मातुलानी तथा मातुल सोदराः।

श्वभूः पितामही ज्येष्ठा यात्री च शूद्रः स्त्रीषु ॥”

(कौर्म उ० ११ अ०)

वीर यदि पितामहका धन पापमें खटि, तो पिता-

महकी मातुल्य भाग देना होगा।

“अवृताधपितुः पार्षथः समानांताः प्रकीर्तिताः।

पितामहस्य चोत्तमा मातुल्यताः प्रकीर्तिताः ॥”

(दायभागवत व्याख्यान)

पितारो—१ मयोध्याप्रदेशके उनाव जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह उनावसे दो कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। उनाव नगरके व्यापिता उनावन्तसिंहके समयमें ही यह प्राचीन ग्राम प्रसिद्ध है। २ उन्नत नगरमें सम-ग्रतो अथो ब्राह्मणका एक गांव।

पितिया (हि० पु०) पित्तिका भाई, चाचा, चचा।

पितियानी (हि० स्त्री०) चाचाकी स्त्री, चाची, चची।

पितियाससुर (हि० पु०) स्त्री या पित्तिका चाचा, ससुर-

का भाई, चचिया ससुर।

पितियासाम (हि० स्त्री०) स्त्री या पित्तिका चाची, ससुरकी

भाईकी स्त्री, चचिया साम।

पितिहारा—सागर जिलेका एक छोटा राज्य। भूपरिमाण

१२० वर्ग मील है। यहाँ की आय लगभग २४७२०

रुपयेकी है। इसमें ८६ ग्राम समेत हैं। पहले यह

देवकीके अन्तर्गत था। प्रायः १७१० ई०में गोडभा-

मारके गौडराजने देवकी पर अधिकार जमाया। बाद

मरहट्टोंने उन्हें मार भगाया। इस पर उनके पुत्र राज्यके

चारी और लूट पाट मचाने लगे। उन्हें शासक कारनेके

लिये मरहट्टा-मरदारने उनके पितिहारा, सुपार,

केशकी और तरारा आदि नामक पाठ गांवकी सम्पत्ति

दी। १७४० ई०में गोडपतिकी मृत्यु हुई। बाद उनके

पुत्र किरात निहने मरहट्टाईसे १७८८ ई०में बहाई

आदि ५१ गांव प्राप्त किए।

१८१८ ई०में ब्रिटिश-सरकारके सागर जिले पर दखल

करने पर भी उन्होंने गौडराजकी सम्पत्तिमें हथक

डास। किन्तु उनके मरने पर बहाईकी अन्तर्गत १०

गांव ब्रिटिश-सरकारने अपने कब्जेमें कर लिये तथा धुची

खुची सम्पत्ति गौडराजके पुत्र बनवन्तसिंहके पास रही।

मर्मदाके किनारे पितिहारा ग्राममें राजप्रासाद है।

इस गांवमें प्रायः हजार मनुष्योंका नाम है।

पितु (म० पु०) पान-पत्रे तुम्हें छपोदरादित्वात् साधुः।

पस, पनाज।

पितु (हि० पु०) पिता-देखो।

पितृपुत्र (स० पु०) पितुः पुत्रः ततोऽनुक्तसमाप्तः ।
विख्यात पितासे कल्पेय पुत्र, योग्य पिताका योग्य पुत्र ।
पितृपुत्र (स० स्त्री०) पितुः सखा, भक्त, समाप्तः,
ततः पत्न्य । पित्रभगिनो, पिताश्री वदन, पोनी ।
पितृपुत्र (स० स्त्री०) भक्त्या अप्रसाधक ।
पितृभक्त (स० स्त्री०) अप्रसाधक ।
पितृपुत्र (स० स्त्री०) पितुना पत्न्येन विभक्त, भृङ्गपुत्र,
तुल्य । अप्रसाधक द्वारा जगत्प्रधारणकारी ।
पितृपुत्र (स० स्त्री०) पितुः भक्त्युत्प । हविर्भक्षण अप्रसाधक
अपेक्षित ।
पितृपुत्र (स० पु०) ऋक्, यजुर्, सामादि प्रथम मण्डलकी
१८७ सूक्तका नाम ।

पितृ (स० पु०) पाति रक्षयपत्न्यं यः, पा हव । (नपुं०-
स्त्री०) पितृपुत्र, मातापुत्र, पितृपुत्र । उण् २।१६) इति
हव प्रत्ययेन (नवातमात् साधुः । १ सत्यादक, पिता,
बाप, जनक, जो पुत्रका पालन-पोषण करता है । पाल्य-
तात, जनक, प्रसवित, वधा, जनयिता, गुरु, जन्मद,
जन्य, जनित, दोनी और वध ।

संसारमें पिता सर्वोपेक्षा पूजनोय है । लक्ष्मीके
प्रभावसे मनुष्य इस संसारका दर्शन करती है । वे जन्म
दाता होनेके कारण जनक, रक्षण करनेके कारण पिता
और विस्तार करनेके कारण तात कहलाते हैं ।

“मायः पूज्य सर्वेभ्यः सर्वेषां जनको भवेत् ।

गरी यस्य प्रसादेन सर्वान् पश्यति मानवः ॥

जनको जन्मदाता व रक्षणका पिता तुल्य ।

तातो विश्वीं करणान् कलशं सा प्रजापतिः ॥”

(ब्रह्मवैवर्तपु० मणपर्व०)

उपाध्याय, ज्येष्ठभ्राता, भ्रातापति, मातुल, श्वशुर,
रक्षक, और ज्येष्ठ पित्र्य ये सब पिताके तुल्य हैं । इन
सबके साथ पिताके कैसा व्यवहार रखना उचित है ।
पिता, माता और भावाचार्य ये तीनों महापुरुष हैं ।

तन्महाराज लिखा है, कि सत्यादक पिताकी चर्चे का
मन्त्रदाता पिता अधिक उचित है ।

“उपादकमहाराजोर्गीरीगन्धर्वः पिता ।

वस्माद्यन्मैतं सवतं पित्र्यधिकं शुभम् ॥”

(तन्महाराज)

चाणक्यने पांच प्रकारका पिता बतलाया है,—

“अप्रदाता मर्षेयताया यस्य कन्या विवाहिता ।

जनयिता चोपेता च, पचैते विद्वत्स्मृताः ॥”

अप्रदाता, मर्षयता, श्वशुर, जनक, और उपेता
ये पांच पिता हैं ।

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें सप्तपिताका विषय लिखा है,—

“अप्रदातामप्रदाता च ज्ञानदाता मन्त्रप्रदः ।

जन्मदो मन्त्रदो ज्येष्ठभ्राता च विद्वत् स्मृताः ॥”

(ब्रह्मवैवर्तपु० श्रीकृष्णज० १५ अ०)

कन्यादाता, अप्रदाता, ज्ञानदाता, मन्त्रप्रदाता, जन्म-
दाता, मन्त्रदाता और ज्येष्ठभ्राता ये पांच पिताके
सदृश हैं ।

गुरुपुराणमें इकतीस प्रकारके पिता निर्दिष्ट हैं,
यथा,—विश्व, विश्वभृत्, चाराध, धर्म, धन्य, शुभांजन,
भूमिद, भूमिभृत्, भूति, कल्याण, कल्याद, कल्यातर,
कल्यातराय, कल्यादेतु, अनघ, धर, धरेण्य, वरद,
पुष्टिद, विश्वपाता, धाता, महात्मा, महिमा, महि-
मावान्, महावल, सुखद, धनद, धन्य, धर्मद और
भूमिद ।

पिताकी जीवित रहने पर दोनो बाह्य, निमित्तधारण
नहीं करना चाहिए ।

“न बाह्येति लक्ष्मं कुर्यात् यस्य जीवति पिता स्थितः

तथा ज्येष्ठः सोदरश्च यस्य जीवति च तथा ॥”

(बृहद्वैवर्तपु०)

पुत्रके पुण्य वा पाप करने पर पिता भी लक्षकी
भाग्य होती है । मार्कण्डेयपुराणकी ८३वें अध्यायमें
पितृगणकी स्तुति और नामसंख्या आदिका विषय
निर्दिष्ट है । विस्तारके भयसे यहाँ नहीं लिखा गया ।

२ किसी व्यक्ति के मृत बाप, दादा परदादा आदि ।
३ किसी व्यक्ति के ऐसा मृत पूर्वपुरुष जिसका प्रेतत्व
हट चुका हो ।

अन्त्येष्टि-कर्म वा प्रेतकर्म सम्बन्धी ग्रन्थोंमें लिखा
है, कि मृत्यु और शवदाहके बाद मृत व्यक्तिकी प्राति-
वाहिक टेढ़ मिलती है । इसके उपरान्त जब उसके
पुत्रादि उनके निमित्त दणगात्रका पिंडदान करते हैं,
तब दणपिंडसे कामय, उसके शरीरके दण पङ्क गति

कर उसको एक नया शरीर प्राप्त होता है। इस देहमें उसकी प्रेत गन्ता होती है। योद्धा याद और मण्डनके द्वारा क्रमशः उसका यह शरीर भी छूट जाता है और वह एक नया भोगदेह प्राप्त कर अपने बाप, दादा और परदादा आदिके साथ पित्रलोकमें वास करते हैं। प्रथमा कर्म संस्कारानुसार स्वर्ग नरक आदिमें सुख दुःख आदिका भोग करता है। इसी अवस्थामें उसे पित्र कहते हैं। जब तक प्रेतभाव बना रहता है, तब तक मृत व्यक्ति पित्र संज्ञा पानेका अधिकारी नहीं होता। इसीलिए सविडोकरणके पक्षमें जहाँ जहाँ जरूरत पड़ती है प्रेत नामसे ही उसका सम्बोधन किया जाता है। पितरों पर्याप्त प्रेतत्वसे छूटे हुए पूर्वजोंकी दृष्टिके लिए आद्य, तर्पण आदि करना पुत्रादिका कर्त्तव्य माना गया है।

विशेष विवरण आदमें देखो।

४ एक प्रकारके देवता जो सब जीवोंके आदिपूर्वज माने गये हैं। मनुस्मृतिके लिखा है, कि ऋषियोंसे पितर, पितरसे देवता और देवताओंसे सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गमजगत्की उत्पत्ति हुई है। ब्रह्माके पुत्र मनु हुए। मनुके भरोचि, अग्नि आदि पुत्रोंकी पुत्रपरम्परा हो देवता, दानव, दैत्य, मनुष्य आदिके मूल प्रणय या पितर हैं। विराटपुत्र सोमवदगण साध्यगणके; अत्रिपुत्र वहि-पदगण दैत्य, दानव, वस, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, सुपर्ण, किन्नर और मनुष्योंके; कविपुत्र मोमपा आश्रयोंके; अङ्गिराके पुत्र इविभुज क्षत्रियोंके; पुलस्त्यके पुत्र आज्यपा वैश्योंके और वसिष्ठपुत्र कालिन शूद्रोंके पितर हैं। ये सब मुख्य पितर हैं। इनके पुत्र पोतादि भी अपने अपने वर्गके पितर हैं। हिजोंके लिए देवकायसे पित्रकाय का अधिक महत्व है। पितरोंके निमित्त जलदानमात्र करनेमें भी अत्यय सुख मिलता है।

पित्रन्त्रण (सं० पु०) धर्मशास्त्रानुसार मनुष्यके तीन ऋणोंमेंसे एक जिसे से कर वह जन्मग्रहण करता है। पुत्र उत्पन्न करनेसे इस ऋणसे मुक्ति होती है।

पित्रक (सं० त्रि०) पितुः सम्बन्धि पितृरागतं वेति पित्रकम् वा पेटिक प्रपोदरादित्वात् साधुः । १ पित्रसम्बन्धी, पेटक, पिताका । २ पित्रदत्त, पिताका दिया हुआ ।

पित्रकर्म न (सं० स्त्री०) पितृनुद्दिश्य कर्म । आदादि । पित्रगणके उद्देशसे तथा पितामह, माता और माता-मह आदिके उद्देशसे जो आद्य तर्पण आदि किये जाते हैं उन्हें पित्रकर्म कहते हैं।

पित्रकल्प (सं० पु०) पितृनुद्दिश्य कल्पो विधानः । १ पितरोंके आदादि कार्य । २ पितरोंकी उत्पत्ति आदिके ज्ञापक ग्रन्थभेद । (त्रि०) । पितृणामीपदूषः कल्पश्च । ३ पित्रतुल्य, पिताके सदृश ।

पित्रकानन (सं० स्त्री०) पितृणां काननमिव । श्रमग्राम । पित्रकार्यं (सं० स्त्री०) पितृनुद्दिश्य कार्यं । पित्रकर्म, आदादि ।

पित्रकुल (सं० पु०) पिताके वंशके लोक, बाप, दादा, परदादा या उनके भाई बन्धुओं आदिका कुल, बापकी ओरसे सम्बन्धी ।

पित्रकुल्या (सं० स्त्री०) पित्रकृता कुल्या । तीर्थभेद, महाभारतमें वर्णित एक तीर्थस्थान ।

पित्रकृत (सं० त्रि०) पित्रा कृतः । पित्रपुत्रप द्वारा अनु-ष्ठित, पूर्वपुरुषों द्वारा किया हुआ ।

पित्रकृत्य (सं० स्त्री०) पितृनुद्दिश्य कृत्ये । पित्रकार्ये, आदादि ।

पित्रगण (सं० पु०) पितृणां गणः इत्यत् । मनुपुत्र मरोचि आदिके पुत्र । विशेष विवरण पितृ सम्बन्धे देखो ।

पित्रगाथा (सं० स्त्री०) पित्रभिः पठिता गाथा । पित्रगण द्वारा पठित श्लोक समुदाय, पितरों द्वारा पठित कुछ विशेष श्लोक या गाथा । भिन्न भिन्न पुराणोंके मतसे ये गाथाएँ भिन्न भिन्न हैं। मार्कण्डेयपुराणके ३२वें अध्यायमें पित्रगाथा इस प्रकार लिखी है,—

पितृगाथास्तथैवाय गीयन्ते श्रद्धादिभिः ।

या गीताः पितृभिः पूर्वैरेतस्याधीन महीरते ॥

कदा नः वयस्यवर्षेषु कल्पविद्विषितायुतः ।

यौ योगियुक्तौ तेषां भुवि पित्रं प्रदास्यति ॥

यथायामयथा पित्रं वज्रनाभं महाहविः ।

कालवार्कं सितवर्कं वा कृषरे वा वसुतपे ॥

वैश्वदेवरूपं सोमरूपं सन्नामधं महा हविः ।

विश्वामित्रं स्वर्गला आर्यैरुवाचमुवाच ॥

दद्यात् धाद्वं सरोदशार्कं मयाद्यं च यथादिधि ।

मनुष्यैश्च मनुष्यैः वायवे दक्षिणायने ॥”

पितृगीता (स० स्त्री०) पिताको माहात्म्यवृत्त गीता, एक विशेष गीता जिसमें पितरों का माहात्म्य दिया गया है । यह बराहपुराणमें वर्णित हुई है ।

पितृष्टक (स० वली०) पितृणां षट्क । १ श्रमयान ।

२ पितृवैष्णव, वापका चर, यौधर, नैहर, मावका ।

पितृष्टक (स० पु०) १ स्कन्दपुराण चर भेद, सुश्रुतके अनुसार कान्तिदेयके छन पञ्चचरोमेंसे एक जो कुछ लोगोंके उत्पादक माने गए हैं । २ वात्सल्यभेद ।

पितृघात (ध० पु०) पिताकी हत्या करना, बापकी मार डालना ।

पितृतर्पण (ध० वली०) पितृणां तर्पणं वा पितृणां तर्पणं हस्तिवैष्णवात् । १ पितरोंके चह्नेश्वे किया जाने-वाला जलदान । तर्पण द्वारा पितृगण परितप्त होते हैं ।

विशेष विवरण तर्पण शब्दमें देखो ।

२ पितृतोष । तर्जनी और अङ्गुष्ठके मध्यभागमें पितृतोष है । पितरोंके चह्नेश्वे जो दानादि किया जाता है, उसे पितृतोष द्वारा करना चाहिये । ३ तिल ।

पितृतिथि (स० स्त्री०) पितृप्रिया तिथिरिति मन्त्रलो० । समावस्था । पितरोंकी समावस्था बहुत प्रिय है और आह वादि कार्य इसी तिथिकी करनी चाहिये और इनोलिए इसका नाम पितृतिथि है ।

पितृतोष (स० स्त्री०) पितृप्रियं तोषं । गया । गयामें पिण्डदान करनेसे पितृगण प्रेतलोकसे उद्धार पाते हैं, इसीलिए गया पितृलोकका प्रत्यक्ष प्रिय तोष है ।

मत्स्यपुराणमें आहकल्पके २२वें अध्यायमें गया आदि २२२ पितृतोषोंका सूत्र देवनेमें पाता है । यथा—१ गया, २ वाराणसी, ३ विमलेश्वर, ४ प्रयाग, ५ घटेश्वर, ६ दशमनेत्र, ७ गङ्गाहार, ८ नन्दा, ९ कालिका, १० मायापुरी, ११ मित्रपद, १२ वेदाङ्ग, १३ गङ्गासागर, १४ ब्रह्मवरोवर, १५ नैमिष, १६ गङ्गाह्वय, १७ यज्ञधरा, १८ नैमिषारण्य, १९ दक्षमतो, २० कुश-चेद्र, २१ सरयु, २२ दशवती, २३ यमुना, २४ देविका, २५ कालो, २६ चन्द्रभागा, २७ ह्यहती, २८ वेणुमतो, २९ वेदवती, ३० जम्बूसार्ग, ३१ नौलकण्ठ, ३२ रुद्रधर, ३३ मानसरोवर, ३४ मन्दाकिनो, ३५ चण्डोद, ३६

विषाधा, ३७ सरस्वती, ३८ मित्रपद, ३९ वेदानाथ, ४० गिरा, ४१ महाकाल, ४२ कालेश्वर, ४३ वंशोद्भेद, ४४ हरोद्भेद, ४५ गङ्गाह्वेद, ४६ भद्रेश्वर, ४७ विष्णु-पद, ४८ नर्मदाहार, ४९ गोदावर, ५० कावेरी, ५१ कपि-लोदक, ५२ सधेद, ५३ चण्डवगा, ५४ शमरकण्ठक, ५५ शुकतोष, ५६ कावावरोहण, ५७ चर्मगतो, ५८ गामतो, ५९ वरुणा, ६० श्रीमन्व, ६१ भैरव, ६२ भृगु-तुष्ट, ६३ गौरीतोष, ६४ वैनायक, ६५ भद्रेश्वर, ६६ पाण्डुर, ६७ तपती, ६८ मूलतापी, ६९ पयोणी, ७० पयोणोष्णम्, ७१ महाबोधि, ७२ पाटला, ७३ नागोष्ण, ७४ भवन्तिका, ७५ वेणा, ७६ महाशाल, ७७ महावट, ७८ दशार्ण, ७९ शतशृङ्ग, ८० शताङ्गा, ८१ विश्वपद, ८२ अङ्गरवाहिका, ८३ शोण, ८४ चर्वरा, ८५ कालिका, ८६ वितस्ता, ८७ द्रोणी, ८८ वाटनदी, ८९ धारा, ९० चोरनदी, ९१ गोकर्ण, ९२ गजकर्ण, ९३ पुष्पवोत्तम, ९४ हारका, ९५ कृष्णतोष, ९६ चर्वदसरस्वती, ९७ मणिमतो, ९८ गिरिकर्णिका, ९९ धृतपापा, १०० दक्षिण-समुद्र, १०१ मेघकर, १०२ मन्दोदरी तोष, १०३ चम्पा, १०४ सामलनाथ, १०५ महागङ्गा नदी, १०६ चक्रवाक, १०७ चर्मकोट, १०८ जम्बेश्वर, १०९ कर्ण, ११० त्रिपुर, १११ शिवेश्वर, ११२ यौधेय, ११३ गङ्गा, ११४ गारुडि, ११५ महेश्वर, ११६ श्रोत्र, ११७ तुङ्गभद्रा, ११८ भोमरथो, ११९ भोमेश्वर, १२० जयवेणा, १२१ कावेरी, १२२ कुडला, १२३ गोदावरी, १२४ त्रिसन्ध्या-तोष, १२५ तैयम्बक, १२६ ओषधी, १२७ ताम्रपर्णी, १२८ जयातोष, १२९ मत्स्यनदी, १३० शिवधारा, १३१ भद्रतोष, १३२ पम्पातोष, १३३ रामेश्वर, १३४ पला-पुर, १३५ अलपुर, १३६ पद्मभुत, १३७ अमलपुर, १३८ आम्नातेश्वर, १३९ एकाग्रक, १४० गोवर्द्धन, १४१ हरिश्चन्द्र, १४२ कपुचन्द्र, १४३ धृष्टक, १४४ सहस्राक्ष, १४५ विष्णुवाच, १४६ कदलीनदी, १४७ रामाधिनाथ, १४८ होमिनिष्णम्, १४९ इन्द्रकोल, १५० महागङ्गा, १५१ प्रियमेलक, १५२ वाहुदा, १५३ सिद्धवन, १५४ पाण्डवत, १५५ पार्वतिका, १५६ सर्वान्तरज्जलावहा, १५७ ताम्रदम्बरतोष, १५८ हव्यकव्यवरोध, १५९ सहस्रलिङ्ग, १६० राघवेश्वर, १६१ सेन्द्रफेना, १६२ पुष्कर, १६३

गान्धाम, १६४ सोमयान, १६५ सारस्वत, १६६ स्वामी-
तोय, १६७ मलयद्वारा, १६८ कोगिको, १६९ चन्द्रिका,
१७० वैदर्भी, १७१ वरा, १७२ पयाय्यो, १७३ कावेरो,
१७४ जालन्धर, १७५ नोहटंड, १७६ चित्रकूट, १७७
विश्वयोग, १७८ नदोत्त, १७९ कुलाम्ब, १८० उव गो-
पुलिग, १८१ मंभारमोचन, १८२ कण्ठमोचन, १८३
अष्टहास, १८४ मोतमंखर, १८५ वगिष्ठतोय, १८६
हारीत, १८७ ब्रह्मावस, १८८ कुयानस, १८९ हयतोय,
१९० पिंडारक, १९१ गहोहार, १९२ चण्डेश्वर, १९३
विल्वक, १९४ नोलपवत, १९५ धरणीतोय, १९६ राम-
तोय, १९७ अश्वतोय, १९८ वेदगिरा, १९९ भोगवतो.
२०० वसुप्रदा, २०१ द्वागामांड, २०२ खदरीतोय, २०३
गणतोय, २०४ जयता, २०५ विजय, २०६ सुक्रतोय, २०७
ओपतितोय, २०८ रवेतक, २०९ शारदातोय, २१०
भद्रकालेश्वर, २११ वैकुण्ठतोय, २१२ भोमश्वर, २१३
माहृष्टक, २१४ करवीरपुर, २१५ कुशेश्वर, २१६ गौरी-
शिवर, २१७ नकुलीगतोय, २१८ कदमाक, २१९
टंडिपुष्कर, २२० पुंडरीकपुर, २२१ समनोदावरीतोय
और २२२ सब तोयों श्रेयश्वर ।

इन सब तोयों का सामोच्चारण और सब तोयों में
जा कर पितरों का पिंडदान करनेसे वे अमयस्वर्ग को
चले जाते हैं ।

पितृत्व (स० स्त्री०) पितृ-भावे त्व । पिताका भाव या
धन, पितृ या पिता होनेको स्थिति ।

पितृदत्त (स० पु०) पिता दत्ता दत्त या अर्पित ।

पितृदान (स० स्त्री०) पितरि विद्मि वा दानम् । पितादि-
के उद्देश्यसे अथवा दान, पितरों के उद्देश्यसे किया
जानेवाला दान, वह दान जो मृत पूर्वजों के उद्देश्यसे
किया जाय । पर्याय—निधाप, निषपन, पोरपितृदानक ।

पितृदानक (स० स्त्री०) पितृदान स्वाद्यं कन् । पितृ-
उद्देश्यक दान, पितरों के उद्देश्यसे किया जानेवाला
दान ।

पितृदाय (स० पु०) पितुः दायः धनं । पितृधन, पितासे
प्राप्त धन वा सम्पत्ति, वशोता ।

पितृदिन (स० पुल्लि०) पितृणां दिनं । १ अमावस्या ।
२ पक्षद्वयात्मक तत्सम्यन्धीय दिन ।

पितृदेव (स० पु०) पितृविज्ञाता देवः । पितृदेवके
पश्चिदातो देवता, अग्निभ्रातादि पितृदेव । पितापुत्र
देवः । पितृदेवता, पिता देवतास्वरूप है ।

पितृदेवत (स० द्वि०) पितृदेवता-सम्बन्धीय, पितृ-
देवतादिकी प्रीतिकामनाके लिए अनुष्ठित यज्ञादि,
पितरोंकी प्रसन्नताके लिए किया जानेवाला यज्ञका
अनुष्ठान आदि ।

पितृदेवत्व (स० द्वि०) पितृदेवत्व ।

पितृदेवत (स० पु०) १ मघानक्षत्र । २ यम ।

पितृदेवत्व (स० द्वि०) पितृदेवता सम्बन्धीय ।

पितृनाथ (स० पु०) १ यमराज । २ अर्धमा नामक
पितर जो सब पितरों में अधिक माने जाते हैं ।

पितृपक्ष (स० पु०) पितृप्रियः पक्षः । १ गोत्र आश्विन-
का कृष्णपक्ष, आश्विन या कुषारका कृष्णपक्ष, आश्विन-
की कृष्ण प्रतिपदासे अमावास्या तकका समय, प्रेत-
पक्ष ।

यह पक्ष पितरोंकी प्रतिग्रह प्रिय माना गया है ।
कहा जाता है, कि इसमें उनके निमित्त आहुति पादि
करनेसे वे अत्यन्त समुत्तुष्ट होते हैं । इसीसे इसका नाम
पितृपक्ष हुआ है । प्रतिपदासे अमावास्या तक नित्य
उनके निमित्त तिलतर्पण और अमावास्याको पाषाण-
विधिसे तोन पीढ़ी ऊपर तकके मृत पूर्वजोंका आहुति
किया जाता है । भिन्न भिन्न पूर्वजोंको मृत्युतिथियोंको
भी उनके निमित्त इस पक्षमें आहुति करते हैं । पर यह
आहुति एतद्विद न हो कर ब्रह्मपुराणिक ही होता है । इन
पन्द्रह दिनोंमें आहार और विहारमें प्रायः अगोचरके
नियमोंका पालन किया जाता है । २ पितृकुल,
पिताके सम्बन्धी, पिताकी ओरके लोग ।

पितृपति (स० पु०) पितृणां पतिः । यम । यम पितरोंके
प्रमुखस्वरूप है ।

पितृपट (स० पु०) १ पितृत्व, पितर होनेको स्थिति या
भाव । २ पितरोंका लोक या देश ।

पितृपितु (स० पु०) पितुः पिता । पितामह, पितरोंके
पिता, नान्ना ।

पितृपूजन (स० स्त्री०) पितृणां पूजनं यज्ञः । आहुति
कांय ।

पितृपैतामह (सं० वि०) पिता और पितामहमन्त्रभ्योय,
जिसका सम्बन्ध बाप दादासे ही, बाप दादाका, पिता
और पितामह द्वारा अनुष्ठित ।

पितृपैतामहिक (सं० वि०) पिता और पितामहादि-
सम्बन्धोय ।

पितृप्रसू (सं० स्त्री०) पितृणां प्रसूः मातेव । १ मन्त्र्या ।
पितृलक्ष्यमेतन्मन्त्र्यागामिनोः तिथिको याज्ञाना और प्रेत-
क्षायमें माताको नार्हें, उपकारिणो होनेके कारण सम्प्रदा-
का नाम पितृप्रसू हुआ है । पितुः प्रसूः इत्यतः ।

२ पितामही, बापकी माँ, दादी ।

पितृप्रिय (सं० पु०) पितृणां प्रियः । १ शृङ्गाराज, भंगरेगा,
भंगरा । (स्त्री०) २ सगत्यावस्था ।

पितृवन्धु (सं० पु०) पितृवन्धुः । पितामह, पितामहीके
भगिनौपुत्र और पिताके मातुलपुत्र, ये सब शास्त्रोक्त
पितृवन्धु हैं । पिताके साथ जिसको अच्छी जान पहचान
है, उसे भी पितृवन्धु कहते हैं ।

पितृवाच्य (सं० पु०) पितृवाच्यः । पितृवन्धु ।

पितृभक्ति (सं० स्त्री०) १ पिताकी भक्ति, पितामें पूज्य
बुद्धि । २ पुत्रका पिताके प्रति कर्त्तव्य ।

पितृभृति—कात्यायनश्रौतसूत्रके एक प्राचीन भाष्यकार ।
शास्त्रिकदेव और धनस्तने कात्यायनश्रौतसूत्रके भाष्यमें
तथा देवभद्र प्रयोगसारमें इनका मत बहुत किया है ।

पितृभोजन (सं० पु०) पितृभिरभुज्यते इति भुज, कर्मणि
बहुट् । १ माष, सरद । पितृदेव्यक दानमें यह प्रशस्त
होनेके कारण इसका नाम पितृभोजन पड़ा है । भुज,
भावे बहुट्, पितृणां भोजनम् । (स्त्री०) २ पितरोंकी
भीज्य वस्तु ।

पितृभ्रातृ (सं० पु०) पितृभ्राता इत्यतः । पितृव्य, बापका
भाई, चाचा, बचा ।

पितृमृत् (सं० वि०) पिता विद्यतेऽस्य मत्तुप् । पितृमुक्त,
जिसके बाप हो ।

पितृमन्दिर (सं० स्त्री०) पितृमन्दिर, पिताका घर ।

पितृमेध (सं० पु०) पितृ-उद्देश्यसे अनुष्ठित अग्न्येष्टि कर्म-
मेध ।

पितरोंको मृत्युके बादमें दण्डराजके मन्त्र पढ़ यज्ञ
किया जाता है । यह याज्ञमे भिन्न है । अग्निदान पण्ड्या

दण्ड पिंडदान घाटि कर्म भी इसी पितृमेधके अन्तर्गत
है । इसमें भी वैदिक मन्त्रपाठ होता है ।

अग्न्येष्टि किया देखो ।

तत्त्वितोय प्रारण्यक और कात्यायन श्रौतसूत्र
(२१।११) में इनका प्रथम आभास पाया जाता है । गौतम
और ऋष्यकेयोगे प्रणीत पितृमेधसूत्रमें, मार्ग गोपालकृत
पितृमेधभाष्यमें और गोपालयज्वर, वैश्वदेवाय तथा वैदिक-
सार्वभौम प्रणीत पितृमेधप्रयोग वा पितृमेधमार-
ग्यमें इस यज्ञका विस्तृत विवरण लिखा है ।

पितृयज्ञ (सं० पु०) पितृभ्यः पितृमुद्दिश्य यो यज्ञः ।
पितृतर्पण, तर्पणादि । पितरोंके उद्देश्यसे जो तर्पण किया
जाता है, उसे पितृयज्ञ कहते हैं । यह यज्ञ महायज्ञके
अन्तर्गत है । प्रतिदिन इस यज्ञका करना उचित है ।

पितृयाण (सं० पु०) पितरौ यान्ति पनेन या-करणं
बहुट्, संज्ञालात् णत्वम् । १ पितरोंका चन्द्रलोकगमन
मार्ग, मृत्युके बाद जीवके जानेका वह मार्ग जिससे
वह चन्द्रमाकी प्राप्त होता है, वह मार्ग वा रास्ता जिससे
जा कर नृन व्यक्तिको निश्चित काल तक स्वर्ग आदिमें
सुखभोग कर पुनः मन्वरात्में जाना पड़ता है । ब्राह्मण्य
उपनिषद्में इसका विवरण इस प्रकार लिखा है,—

पितरोंके चन्द्रलोकप्राप्तक कर्म और यात्राप्रकार
विषय इस प्रकार है,—जो ऋषय इष्टापूर्त्त और
दान धर्मात् अन्विहोत्रादि वैदिक कर्म, बापो-कूप-
तडागादि निर्माण तथा यथाशक्ति पूज्योंको द्रव्य सम्भोग
प्रतिपादन इत्यादिक्रमसे उपानमा करते हैं, वे पहली
धूमामिमानिने देवताको प्राप्त होते हैं । बाद बह्वि
रात्रि अर्थात् रात्रिदेवता और रात्रिने दूसरे देवताकी
प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार क्षणपक्ष और दक्षिणायन
धूमामिमानिने देवताओंको भी प्राप्त हो कर, वेछि
बह्विने वे पितृलोक जाते हैं । पितृलोकमें पशुखान कर
बह्विसे आकाश और आकाशमें एकचारगो चन्द्रमाकी
हो प्रभः होते हैं । अन्तरोक्षमें परिदृश्यमान यह
चन्द्रमा मन्त्राणोंके राजा और इन्द्रादि देवगणके भव-
स्वरूप है । देवगण इच्छते हैं, पतएव कर्मिण्य
धूमादिसे जा कर चन्द्रवरुण होनेके कारण देवताओंसे
भी दायी जाते हैं धर्मात् देवताओंके उपभोग्य हो
ये सनके साथ सुखसे विहार करते हैं ।

२ पित्रलोक-गमनमान, पितरलोक जाने का रास्ता ।
 पितृगज (सं० पु०) पितृणां राजा टच-समाधान्तः । यम ।
 पितृरिष्ट (सं० पु०) पितुः रिष्टं भ्रमझलं यत् ।
 पिताका भ्रमझल-जनक योगवियोग । ऐसे योगमें जन्म
 होनेसे जात बालकके पिताको मृत्यु होती है,
 इसी कारण इसको पितृरिष्ट कहते हैं । पञ्चसूरा-
 मतमें पितृरिष्ट का विषय इस प्रकार लिखा है । दिनमें
 प्रसव होनेसे सूर्य और रात्रिमें प्रसव होनेसे गनि
 बालकके पिता होते हैं । दिवा-प्रसवमें गनि पिता और
 रात्रि प्रसवमें रवि पिताके भाई होते हैं ।

जात बालकके छठे और आठवें स्थानमें रवि यदि
 मङ्गल द्वारा देखे जाय और यदि उदस्यति तया शुक्रकी
 दृष्टि न रहे, तो जातबालकके पिताको मृत्यु होती है ।
 लग्नके आठवें स्थानमें चन्द्र, दूसरे स्थानमें शुक्र तथा राहु
 और गनि एवं मङ्गलके निमज्जितमें रहनेसे सप्ताहकी
 चन्द्र की जातबालकके पिताको मृत्यु होती है । जन्म-
 लग्नके आठवें स्थानमें यदि मङ्गल, वारहवें स्थानमें
 दो वा तीन पापग्रह रहे और इन सब स्थानमें यदि
 शुभग्रहकी दृष्टि न पड़ती हो, तो जातबालकके पिताकी
 मृत्यु होगी । यदि सूर्य जातबालकके लग्नके आठवें
 स्थान पचवा राहुके साथ मिल कर जन्मलग्नमें रहे,
 तो चाहे बालकके पिताकी या सखीकी मृत्यु होती
 है । (पञ्चसूरा)

पितृमृत्युमें लिखा है,—जातबालकके लग्नकी
 धनमें सूर्य, गनि, छठे स्थानमें चन्द्र यदि शुभग्रह
 द्वारा जातबालकके पिताको मृत्यु होती है ।
 यदि जातबालकके पिताकी मृत्यु होती है ।
 जातबालकके पिताकी मृत्यु होती है ।
 जातबालकके पिताकी मृत्यु होती है ।

पितृदण्ड (सं० पु०) पितृणां दण्डः । यम ।
 पितृदिन (सं० पु०) पितृणां दिनः । यम ।
 पितृदण्ड (सं० पु०) पितृणां दण्डः । यम ।
 पितृदण्ड (सं० पु०) पितृणां दण्डः । यम ।

रिटभङ्ग का विषय लिखा है । विस्तारके भयसे यहाँ
 नहीं दिया गया ।

पितृरूप (सं० पु०) ईषदूतः जनकः, पितृरूप गिरः ।
 गिर, महादेव । रुद्र सबको पिता है, इसलिये ये
 पितृरूप हैं ।

पितृलोक (सं० पु०) पितृणां लोकः । पितरों का लोक,
 यह स्थान जहाँ पितृगण रहते हैं । यह चन्द्रलोकके ऊपर
 अवस्थित है । अथर्ववेदमें जो उदस्यतो, पोतुमती और
 प्रयो ये तीन कथाएँ पितृलोककी कहो गई हैं उनमें
 चन्द्रमा प्रथम कथामें और पितृ लोक या प्रयो तीसरी
 कथामें कहा गया है ।

पितृवत् (सं० चम्य०) पिताइव, इवायं वति ।
 पितृवत्, पिताके सदृश ।

पितृवन (सं० स्त्री०) पितृणां वनमिव । इमस्थान ।
 पितृवनेचर (सं० पु०) पितृवने स्मरगामे चरतोति (चरेत्) ।
 पा ३२।१३ चर-ट, अलुक्-समासा । स्मरगानवासे
 गिर, स्मरगानमें वसनेवासे गिर ।

पितृवर्त्ती (सं० पु०) ब्रह्मदत्त नामक वृषभेद, ब्रह्मदत्त
 नामका एक राजा ।

पितृवसति (सं० स्त्री०) पितृणां वसतिर्ग्रामः । शवश्रम-
 स्थान, स्मरगान ।

पितृविच (सं० स्त्री०) पितादिपरम्परासम्पन्न धन, पैठक-
 धन, बाप दादों को सम्पत्ति, मोरुगो जायदाद ।

पितृव्य (सं० पु०) पितृभ्राता (रितृभ्यः मातुल-मातावह-
 पितामहाः । पा ३।२।३३ इत्यत्र वासिं कोत्तरा पितृ-
 व्यत् । पिताके भ्राता, पिताके भाई, चाचा, काका ।

पितृधर्मन् (सं० पु०) दानवभेद, एक राक्षसका नाम ।
 पितृश्रवण (सं० लि०) जिस पुत्र द्वारा पिता प्रथित
 जाते हैं ।

पितृपद (सं० पु०) पद-विगरणादिषु पितृ-पद-क्तिम् ।
 १ पितृसमीप, पितृगृह, बाप का घर, मेका, पोहर ।

पितृपदन (सं० स्त्री०) जितः भोदन्ति चपविगम्यन्त्र
 सद-बाधारे रुद्र, वेदे पत्नं । कुम ।

पितृपत्य (सं० स्त्री०) पितृ-पत्न्या मग्नौ (मातापितृभ्यां
 स्वर्गः । पा ८।१।८४ इति पत्यं । पिताकी बहन, पौथी,
 भूषा ।

पितृव्यस्त्री (स० त्रि०) पितृव्यसुरवर्य पितृव्यस्त्री ।
पितृभागिनेय, पिताका भाजा, वृषाका भेटा, फुफिरा
भाई ।

पितृव्यस्त्री (स० पु०) घग्घ, निभातोति सविमलुक्क,
विशुः सविमः । पितृव्यस्य, पिताके सदृश । पर्याय—
मनोजव, मनोवधम ।

पितृव्य (स० स्त्री०) सते इति सूत्रं ननी, पितृणां सुमन-
नोय । १ सधवा । पितरं सते क्रिय । २ पितामही,
दादी ।

पितृव्य (स० पु०) एक वैदिक मन्त्रसमूह ।

पितृव्य (स० पु०) पितृन् वृत्ति हन-क्रिय । पितृव्यता,
पितृघातो, पिताको हत्या करनेवाला ।

पितृव्य (स० पु०) पितृनामधेयनेति पितृ-कर्मणे
क्रिय । १ दक्षिणकर्ण, दाहिना कान । २ पितरों की
देय वस्तु, पितरों की देने योग्य वस्तु ।

पितृव्य (स० स्त्री०) परलोकगत पितरोंका आत्मान,
पितरोंकी हुकाम ।

पितृ (स० स्त्री०) अपि होयते प्रकृतावस्थया रक्षते
विकृतावस्थया नाशते वा शरीरं वेदति दे, प्रालने दो
छेदने वा क्र, (अद् वषणन्ता । पा ३।३।३०) । इति
तादेयः अनेरक्षोपः । शरीरस्य धातुविशेष । पर्याय—
मायु, पञ्चवल्, तेजस, तिलधातु, उच्यन्, अग्नि, अमन ।

पितृ तिल, अमरस, सारक, उष्ण, द्रव और तीक्ष्ण
होता है । अमनशालम, वर्षात्म समर्थमें अक्षरान्ति और
मध्याह्निकको पितृ विगड़ जाता है ।

वायु, पितृ और कफ ये तीनों ही शरीरवोधक
मूल हैं । इन तीनों धातुके प्रथमि, रहनेसे किसी
प्रकारकी व्याधि नहीं होती । इन तीनों धातुका वैषम्य
ही बीड़ाका स्रोत है । अथवा और वायुधातु विषय अथवा
और वायु मधमें देको । इन तीनों धातुओंमेंसे प्रत्येकका
प्रत्येकका साथ सम्बन्ध है । किन्तु इन तीनोंमेंसे जब
जिसको अधिकता होती है, तब उसको अनुसार शारी-
रिक लक्षण दीप्त पड़ते हैं ।

सद्युतमें लिखा है,—राग, पाक, भोजः पथवा तेजः,
मिधा और उष्णकारिता, जिस द्रव पांच गुणोंमें विभक्त
हो कर अग्निवायु द्वारा शारीरिक कार्य सम्पादन

करता है । शरीरमें पितृका सय होनेसे अग्नि की उष्णता
मन्द होती है । इससे शरीर प्रमाहीन हो जाता है ।
जो सब वस्तु पितृव्यके हैं उनका सेवन करनेसे पितृ
प्रथमि होता है । पितृकी हृदि होनेसे शरीरमें पोत-
वर्ण भामा, सन्ध्या, शीतल द्रव्यमें अभिजात, निद्राका
अवस्था, बलहानि, मुच्छा, इन्द्रियकी दुर्बलता, विद्या,
मूल और चक्षु पोतवर्ण हो जाते हैं । ऐसी अवस्थामें
पितृनामक द्रव्य सेवनीय है ।

शरीरमें पितृ पांच जगह रहतो है । यथा—यज्ञत-
ज्ञोका, हृदय, इति, त्वक, और अमाशयका मध्याह्न ।
जिस प्रकार अग्नि, सूर्य और वायु ये तीनों सूर्य, वायु-
पांच और सञ्चालनक्रिया द्वारा इस जगत्कल्प विराट-
देहको धारण किये हुए हैं, उसी प्रकार वायु पितृ और
कफ प्राणियोंकी देहको धारण करता है ।

अभी देखना चाहिये, कि देहमें पितृके प्रतिरिक्त
और कोई अग्नि है वा नहीं, या पितृ की अग्नि है ?
इस पर यह स्थिर हुआ है, कि पितृ जोड़ कर देहमें और
किसी प्रकारकी अग्नि नहीं है । पितृ आग्नेय पदार्थ
है । दहन और परिपाक विषयमें पितृ ही अधिकतर रक्ष
कर अग्नि की तरह कार्य करता है, इसीकी प्रत्यापत्ति
करते हैं । कारण, पहले देहमें अग्नि का मान्य होनेसे
जिससे पितृका हृदि हो, ऐसा ही द्रव्य सेवन किया
जाता है और अग्नि की अत्यन्त हृदि होनेसे शीतल क्रिया
द्वारा ही उनका प्रतिहार करना होता है । दूसरे, आग्ने-
माहिमें लिखा है, पितृ भिन्न देहमें और किसी प्रकारकी
अग्नि का अधिकार नहीं है । पितृमाय और आमाशयके
मध्य रह कर पितृ किस प्रणालीसे चारों प्रकारके आहार
को परिपाक करता है और किस प्रणालीके अनुसार
आहारान्वित रक्त की परिपाक तथा मूत्र और पुरीष
आदिको एक दूसरेसे प्रत्यक्ष करता है, यह प्रत्यक्ष तो
नहीं होता, पर पितृ ही ये सब कार्य संचालकपे करता
है, यह स्थिर हो चुका है । पितृ उक्त स्थानमें रह कर
ही अग्नि क्रिया द्वारा देहमें भोज चार पितृ स्थानकी
क्रियाको सहायता प्रदत्त करता है । उस पितृ और आमा-
शयके मध्यस्थित पितृमें पाचक नामकी अग्नि रहती है ।
यज्ञत और ज्ञोकाके मध्य की पितृ रहता है, उसे रक्षक

चमि कहते हैं। यंको रज्जुकामि चाक्षरमंभूत रमको मान बना देते हैं। जो पित्त हृदयस्थानमें संस्थित है उसे साधकामि कहते हैं। इस साधकामिने मनके समीप भिन्नायं पुण होते हैं। जो पित्त दृष्टिस्थानमें अधिष्ठित है, उसका नाम आनीचक चमि है। इसी आनीचक चमि द्वारा पटायांका रूप प्रयथा प्रतिबिम्ब गृह्यते होता है। जो पित्त त्वकमें रहता है, उसका नाम आजाजक चमि है। तोलमदन, भवगाहन, आलेपन आदि क्रिया द्वारा जो सब रसिह पादि द्रव्य शरीरमें रहित होते हैं, इस विरा द्वारा उन सब द्रव्योंका परिपक्व और देहकी छायाका प्रकाश होता है।

पित्त तोषण गुण और प्रतिगन्धविशिष्ट, नील भवया पीतवर्ण तथा तक्ष है। पित्त जल उष्ण होता, तब वह कटुरसविशिष्ट और लज्य विद्रव्य होता तब अम्लरस विशिष्ट हो जाता है।

पित्त विगहनेके कारण—लोध, शोक, विस्तार, उपवास, अग्निदाह, मेथुन, उदरगमन अथवा कटु, अम्ल, लवण, तीक्ष्ण, उष्ण, सघु, विटाही, तिक्तले, पिच्छाक, कुलत्प, स्याप, गोधा, मल्ल, क्षाम या मेघमांस, दधि, तक्ष, जेना, जालो, सुरा या सुराको कोई विकृति और अम्लरसविशिष्ट, महा और रोद्धका उत्थाप इन सब द्वारा पित्त विगह जाता है। विशेषतः उष्ण क्रिया करनेसे वा उष्णकाल होनेसे मेघावसानमें, मध्याह्नकाल या अक्षरात्रमें तथा भुक्तद्रव्य परिपाक होनेके समय पित्तका प्रकोप होता है। पित्तका प्रकोप होनेसे ही रक्त कुपित हो जाता है। पित्तके कुपित होनेसे शरीरको उष्णता, सर्वाङ्गदाह और धूसीभार होता है।

(धृष्ट सूत्रस्थान ५१ अ०)

भाष्यप्रमाणके मतसे पित्तका स्वरूप—पित्त, उष्ण, द्रव, पीत और नीलवर्ण अर्थात् निरामयित पीतवर्ण, मसपित्त नीलवर्ण, रजोगुणात्मक, सारक, कटुरस, सघु, सिध और अम्लविपाक है।

शरीरके मध्य स्थानविशेषमें रहने और उस पदार्थकी क्रियाके कारण पित्तके पांच स्वतन्त्र नाम पड़े हैं। यथा—पाचकपित्त अन्नाग्नयमें, रज्जुपित्त यक्ष्मप्रोक्षामे, साधक उदरमें, आनीचक दोनों नेत्रोंमें और आजाजक सर्वशरीरस्थित अर्धमें अवस्थित है।

पाचकपित्त भुक्तद्रव्यका परिपाक करता है, अपरापर चमिका अर्थात् भूतान्नि और धात्वन्तिका वल बढ़ाता है तथा रम, मूल और मनको विरेचन कर डालता है। यह पित्त आमाशय और पक्वाग्नयमें भोज्य, भंज्य, चप्य, लेह्य, चोष्य और पेय इस पद्धतिसे आहारका परिपाक करता है तथा रम, मूल और मनको प्रयत्न कर देता है। अन्नाग्नयस्थ पित्त अपनी शक्ति द्वारा रमको रक्षित करता, हृदयस्थित कफ और तमोगुणकी हठाता, रूपप्रदण करता, शृङ्गनाभि आदि अङ्गलेपादि की परिपाक करता, देहकी गोमांकी बढ़ाता तथा विगोप विगोप विरिक्त के स्थानोंमें सहायता पहुँचाता है। रज्जुकादि अवशिष्ट पित्त (आवासस्थान) यक्ष्मप्रोक्षादि स्थानोंमें उपस्थित हो कर उस उस स्थानके रमरज्जुकादि जाय द्वारा उपकार करता है तथा गोपाणि अर्थात् भोम प्रभृति पञ्चमहाभूतान्नि और सप्तधात्वन्तिका वल बढ़ाता है।

चरकमें पञ्चमहाविश्वान्तिका विषय उल्लिखित है, यथा—भोमाग्नि, आपाग्नि, तैजस चमि, वायव्य चमि और वायव्य चमि। वायव्यमें शिवा है, कि दीप, धातु और मन इनको उत्पन्न ही चमि है। अतएव पाचक चमि सप्तधातुयुक्त सप्तचमिका भी बन बढ़ाती है। जिस प्रकार गृहप्रति रत्न (संघ कात्मादि) रत्नको तत्त्व दूर देख तत्त्व प्रकाश करता है और दीपके आकाश द्वारा दूरदेश प्रदीप्त होता है, उसी प्रकार पाचक पित्त अन्नाग्नयमें रह कर वयकीय चमिके तेज द्वारा अपरापर चमिके वलकी वृद्धि करता है।

वाभटने और भी कहा है, कि सभी प्रकारकी अग्नियोंमें सबसे पचनेवाली पाचक चमि, ही अष्ट है। ये पाचक चमि अपर चमिका आधारस्वरूप है। क्योंकि इस चमिके वृद्धिचयसे अपर चमिकी वृद्धि और चय हुआ करता है। वाभटने फिर भी कहा है, कि पाचकामि तिलंगमण्य है। जब यह चमि विकृत नहीं होती है, तब सुधा, लघ्न्य, क्षिप, गोमूत्र, मेघा, मुदि, गोय और देहकी कोमलता उत्पन्न तथा पाक वा अर्थादि द्वारा पाशुकुल्य बनती है।

पित्त पांच प्रकारका है, यह पढ़ने से पता जा चुका है। इनमें पक्वाग्नय और आमाशयमें अम्लरसान्निही

पित्त रहता है, यह प्रत्यक्षादि पक्ष भूतात्मक होने पर भी अग्निगुणकी अधिकताके कारण जलोभोग्गोने हो कर पाकादि कर्मसम्पादन करता है। इसीसे इसका अग्नि नाम पड़ा है। जो पित्त श्वेतको पचाता है और श्वेतके सारभाग तथा मत्तभागको घृथक्, घृथक् करता है, घथक् पकायय और आमाशयके मध्य रह कर अवशिष्ट पित्तकी अधिकतर बल प्रदान कर सकना उपकार करता है, यह आमवाचक नामसे मग्न रह है।

सभी जगह पित्तको अग्नि बतलाया है। इनसे यह स्पष्ट हो सकता है, कि पित्त भिन्न अग्नि प्रत्यक् पदार्थ है अथवा पित्त ही अग्नि है। इस स्पष्टिको दूर करनेके लिये यह कहा गया है, कि पित्तकी उत्पत्ति क्रिया द्वारा बाह्य परिपाक, रमरञ्जन, रूपदग्न आदि कार्य होनेसे यह त्रिषय की बोध होता है, कि पित्त व्योतत अन्य अग्नि है ही नहीं। इसीसे अग्निस्वरूप पित्तका स्थानसेवे पाचक, रञ्जक, साधक, आतोचक और भ्राजक नाम निर्दिष्ट हुआ है। यहाँ पर यह आपत्ति होती है, कि यदि पित्त और अग्नि अन्भिन्न है, तो स्थानविशेषमें जो लिखा है, कि घृतपित्तनाशक और अग्निहा-उद्दीपक, मध्य पित्तकारक अथवा अग्निदीप्तिकर नहीं है। पित्तकी अधिकता होनेसे तोष्णान्नि एवं पित्त और वायुकी समता होनेसे समान्नि होता है। फिर जो लिखा है, कि पित्त द्रव, स्थिष्य और पथोगामी है। अग्नि इसको विपरीत है अर्थात् रुद्ध, रुच्य और जर्हगामी है। ये सब पित्त और अग्नि यदि एक हो, तो ये सब वाक्य किस प्रकार सङ्गत हुए ?

इसके उत्तरमें केवल यही कहना पर्याप्त होगा, कि पित्त ही अग्नि का आधार है। अन्य अन्य पक्षोंमें इसका विशेष प्रमाण भी मिलता है। अग्नि और पित्त दोनों ही विभिन्न गुणयुक्त हैं। ऐसे विवाद पर यही स्थिर हुआ है, कि तेजोमय पित्तको उष्मा ही अग्नि है। कुक्षिस्थित यह अग्नि घनत्वोद्धार से ही शरीरमें सञ्चारण करती है। यही राश्याग्नि, राशोष्मा, पक्वा, ओष्ण और अनन्यगत वादि नामोंसे पुकारा जाता है।

फिर किसी किसीका कहना है, कि नाभिके किञ्चन

वामपाश्वर्त्तिमें सोममण्डल है। इस सोममण्डलके भीतर सूर्यमण्डल है। इस सूर्यमण्डलमें काचपात्राच्छादित दोषकी तरह जरायु द्वारा आच्छादित हो कर अग्नि रहती है।

वेद्यक मधुकोपमें लिखा है, कि संयुक्त द्रवभाग और तेजोभाग इस समुदायत्मक पित्तका तेजोभाग ही अग्नि है। इस कारण पित्तको भी अग्नि कहा जाता है। जिस प्रकार अथर्वनाम अग्निमन्त्र लौह है, उसी प्रकार तेजोयुक्त पित्त ही अग्नि नामसे प्रसिद्ध है। स्थूल अग्नि पित्तसे भिन्न पदार्थ है, इसमें जरा भी स्पष्ट नहीं।

शरीरको नाभिके मध्य सोममण्डल है जिसके भीतर फिर सूर्यमण्डल है। समो सूर्यमण्डलके मध्य प्रदोषकी तरह मनुष्यको जठराग्नि रहती है। जिस प्रकार सूर्य स्वर्गमें रह कर अपने प्रखर निरण द्वारा समस्त पद्वन और सरोवरादिको सुखा देता है, उसी प्रकार देहियोंको नाभिमध्य अग्निमग्निका द्वारा समस्त भुक्त द्रव्य परिपाक होता है। यह अग्नि स्थूलकाय व्यक्तियोंके शरीरमें यथप्रमाण और कोष्णकायोंके शरीरमें तिस्रप्रमाण है। लम्बि कौट और पतञ्ज आदिके शरीरमें यह बालुका कण प्रमाणमें रहती है।

रञ्जक पित्त—जिस पित्त द्वारा बाह्यरजात रम रञ्जित अर्थात् रक्षाधारमें परिणत होता है, उसीका नाम रञ्जक पित्त है।

साधक पित्त—जिस पित्त द्वारा बुद्धि बोधा और स्मृति उत्पन्न होती है, उसे साधक पित्त कहते हैं।

आलोचक पित्त—जिस पित्त द्वारा रूपदग्न नक्षिया का निर्वाह होता है, उसका नाम आलोचक पित्त है।

भ्राजक पित्त—भ्राजक पित्त शरीरको योभाको बढ़ाता और प्रलेपन तथा अभ्यङ्ग द्रव्यको पचाता है।

पित्तप्रशोधका कारण—रुटुरस, अम्लरस और लवणयुक्त द्रव्य, अणुद्रव्य, विटाहो (जिस द्रव्यका सेवन करनेसे अस्फोहार, पिपासा और हृदयमें दाह होता है तथा देहमें पंचता है, उसे विटाहो कहते हैं) तीक्ष्ण द्रव्य, तीक्ष्ण, क्षात्र, उपवास, वेदः, स्त्रीवर्जन, क्रुधा और लज्जाका योग कारण, व्यायाम अर्थात् मध्यमश्रमका सेवन करनेसे पित्त विगुह्ण जाया है।

गरत् पोर चीस ऋतुमें दो पहर दिन पोर दो पहर रातको पित्तका प्रकोप होता है। चरद, तिल, कुलयो, मल्लो, भैरवाका दही, पोर गायका मूत्रा सेवन करनेसे पित्त विगड़ जाता है।

पित्त-प्रगमनका सपाय—तिल, मधुर पोर कपाय रस, शीतलयायु, छाया, रात्रि, व्यञ्जन, चन्द्रकिरण, भूमिशङ्क, कुहारेका जल, पत्र, स्त्रीका गायस्पर्श, घृत, दुग्ध, विरेचन, परिपेक, रक्तमोक्ष पोर प्रदेह चादि (चाहार, विहार पोर चोपध सेवन) द्वारा पित्त प्रशमित होता है।

पित्तको हृदि होनेसे मल, मूत्र, नेत्र पोर शरीर पीतवर्ण, इन्द्रियकी चोपता, मोताभिन्नाय, सन्नाय, मूर्च्छा पोर मूत्रको अव्यवता होती है। पित्तचोष होनेसे तिल, माष पोर कुलयो, पिटकादि, दहीका पानो, घमन्याक, तक्र, काँजो, दही, कटु पन्ना पोर लवणरस, लण्य द्रव्य, तीक्ष्ण पोर विदारिद्र्य, क्रोध, लण्यकाल तथा लण्यदेय चादि सेवन करनेको पित्तचोष रोमीको इच्छा बनी रहती है। ऐसो अवस्थामें पित्तवर्णक वस्तुका सेवन करनेसे पित्तकी शमता होती है।

“पित्तप्रकृतिको यादक तादधीय निगच्छते।

लङ्कालग्नितो गौरः क्रोधी स्वेदी च बुद्धिमान्॥

बहुमुक्त तापनेत्र च स्वनेत्रोतीति परधति।

एवविधो भवेद्बस्तु पित्तप्रकृतिको वरः॥” (भावप्र०)

पित्तप्रकृतिक लोगोका विषय सिखा जाता है। क्रेशका चक्रात्ममें शुक्लवर्ण होना, सर्वदा स्वेदनिर्गम पोर चतु रक्तवर्ण, गौर वर्ण, क्रोधमोक्ष, बुद्धिमान्, अधिक भोजन शक्तिव्यय पोर स्वप्नावस्थामें नचत्तादि ज्योतिर्मय पदार्थ दर्शन ये सब लक्षणक्राका होनेसे पित्तप्रकृतिक जानना होगा।

पित्त स्वयं चर्मिलरूप है, इसकी उत्पत्ति अग्निसे होती है। पित्तविकारमयतः व्याप्तिमात्र ही तोम लक्षणा पोर तोषासुधाविमिट हो जाता है, उसका पञ्च गोरत्व पोर वयं करनेसे लण्य मालूम पड़ता है। हृत्, पद पोर चतु ताम्र वर्णके-से हो जाते हैं तथा वह पराक्रमशाली, परिमाणो, क्रेश विज्ञलवर्ण पोर शरीर पल्लोमविमिट दिखाई देता है। स्तोमप्रकृ, पुष्प-मास्यादिधारण पोर सुगन्धित द्रव्योंका चतुलेपन करने-

की उसकी प्रबल इच्छा रहती है तथा वह सञ्चरि, पवित्र हृदय, पायित-प्रतिपासक, सम्पत्तिविमिट, साहसी पोर वलवान होता है। भीत शत्रु पोर भी सहायता पङ्कचानेसे वह कुण्ठित नहीं होता। मेधावी पोर उसकी सम्यक्ता बल्यन तथा गात्रमांस पल्लोम-विमिन भावापन हो जाता है। ऐसा मनुष्य प्रायः स्त्रियोंका प्रिय नहीं होता। वह अव्यय शक्तविमिट पोर अव्यय रमण्य होता है। पित्तकी अधिकतासे बान सकंद हो जाते हैं पोर व्यङ्ग तथा नौलिकारोग उत्पन्न होता है। वह मधुर, कपाय, तिल पोर शीतल द्रव्य खाता पसन्द करता है। गर्मी बरदाहक नहीं कर सकता, शरीरसे हमेशा दुर्गन्धित पसोना निकलता रहता है। मल, क्रोध, पान, भोजन पोर र्पा अधिक रहती है। स्वप्ने वह कर्णिकाका फूल, पनाग्रफूल, दिग्दाह, उन्मादात, विद्युत्, सूर्य पोर अग्नि देखता है। उसका चतु पिङ्गलवर्ण, चक्षु, सूक्ष्म पोर पद पल्लोम-विमिट होते हैं। चक्षुमें उष्ण जगनेसे सुख मालूम होता है, क्रोध पाने पर, शराव पीने पर पोर सूर्यकी किरण जगने पर चतु सवो समय कास हो जाते हैं। पित्तप्रकृतिक व्यक्ति मधुर परमाशुविमिट पोर मधुर वस्तुयुक्त होते हैं। शास्त्रादिमें पक्खित पोर वल्लोमोक्ष, व्याघ्र, भवत्क, बाना, विह्वल पोर भूतादिको पित्तप्रकृतिका वतनाया है। (भावप्र० पूर्व पोर मन्त्रः०)

चरकमें पित्तका विकास ४० प्रकारका निर्दिष्ट हुआ है। विस्तार हो जानेके भयने उसका उल्लेख नहीं किया गया। (चरक सू० ४० ज० और विमान म० ४०)

राजवर्णमें पित्तगुणको जगह इस प्रकार सिखा है,—

“सर्वं पित्तवर्णवारं कुतुहलमपराधम्।

चक्षुषं च दृष्टिगोच्यमुग्धादक्षिभिरात्मनम्॥”

(राजवर्णम्)

सभी प्रकारका पित्त अपरमार, कुष्ठ पोर दुष्ट, प्रपनाग्रक, चक्षु, कटु, तीक्ष्ण, लण्य, सप्ताद पोर क्रिमिनाग्रक है।

पाश्चात्यक मतमें पित्त शरीराभ्यन्तरस्थ तेजोवृद्धिकर धातुविशेष है। संवृत्तमें इसका दूसरा नाम पाचकान्द्रि-

भो. है। इसका वर्ण पीत और भोजन है। यह रस तिक्ताम्ल सारक, उष्ण और द्रव्य-पदार्थ है। आयुर्वेद के मतसे पित्त का यथावयव लक्षण ऊपर लिखा जा चुका है। डाक्टरी मतसे शरीरमें पित्तरसका संचार होनेसे नाना प्रकारकी पीड़ा उत्पन्न होती है। किन्तु तब रसाधिक्य साधारणतः यकृतके मध्य भाग पर ही कर विशेष विशेष रोग उत्पादन करता है। यथाकृतके बाढ़ पर्याप्त भाद्र मासमें साधारणतः मनुष्यके शरीरमें पित्तकी अधिकता देखी जाती है। इसीसे एक समयमें दोपहर दिन और दोपहर रातको भोजन करना मना है। सुप्रायुष्ये कुछ पहले जलयोग नहीं करनेसे पित्त उत्पन्न होता है। भाद्रमासमें खीरा खानेसे पित्तवृद्धि होती है।

किंच किंच औषधका व्यवहार करनेसे पित्तवृद्धि और पित्तनाश होता है, मंत्रों से उसको एक तालिका दी गई है,—

पित्तनिःसारक औषध (Cholagogues) यथा—
 शु-पित्त, पे-पाचण्डर, कोलेमेल, पडपित्तन, एलोज, जुलाह, कससिन्धु, कसचिकम्, इपिकाकुपाना, नाइड्रो-
 हाइड्रोक्लोरिक एसिडडिल, सलफेट और फस्फेट भाव-
 सोडियम, बेजेट, भाव सोडियम वा एमोनियम, सालि-
 सिलेट भाव सोडियम, इरगिनिन, पाइरिडिन, इनिडे-
 निन, जगन्यापिडिन, क्रोटनपाएल, सेना, टार्टरिट
 भाव सोडा, टैराकसेकम्, हाइड्राटिन इत्यादि।

पित्तदमनकारक औषध (Anti-cholagogues) यथा—
 अफीम, मर्कुरिया, एसिटेट, भाव लेड प्रभृति।

पित्तनाशके लिये द्रव्योपमतादुषार क्रितको टोटका औषधों का व्यवहार होता है। पित्तजित द्रव्यपदके प्रदाहमें हिंसा सागका रस और कच्चा दुध हितकर माना गया है। धनियाँ और पल्लवों की एकत्र छिड़ कर उसका प्रतिदिन सेवन करनेसे तथा चिरायतेका जल और मिश्रीका शरबत और नोमकी पालियाँ आदि तिक्त द्रव्यों का व्यवहार करनेसे पित्तनाश होता है।

पित्तस्त्रावकी स्वस्थता या अवस्थाके कारण रक्तके साथ पित्त मिल कर रक्तके योजकत्व, रस और मूलको पीला बना देता है। किसी किसी चिकित्सकके मतसे पित्तका वर्ण ज पदार्थ और पित्तनाश यकृतमें

उत्पादित होता है। यदि अवस्थाके कारण पित्तकोप वा पित्तको नष्टि पित्तसे परिपूर्ण हो जाय, तो गिरा और लसीका नाड़ी (Lymphatic) द्वारा पित्तका रंग शोधित हो कर रस और निःस्त्र पित्तको विकृत कर देता है। अपरापर चिकित्सकोंके मतसे स्वभावतः ही शोधितमें पित्तका वर्ण ज पदार्थ रहता है और वह यकृत ही कर निकल जाता है। यदि किसी कारणवश यकृतकी क्रियाकार व्यतिक्रम हो जाय, तो रक्तमें क्रमशः वर्ण ज पदार्थ संचित हो कर सम्पूर्ण शरीरको पीतवर्ण बना देता है। डेपार्टिक डाक्ट वा यकृतप्रणालीके मध्य पित्ताशमरी वा गाढ़े पित्तके अवस्था अवस्थामें रहनेमें पाण्डुरोगकी उत्पत्ति होती है।

पेरि हेपेटाइटिस (Peri Hepatitis) वा यकृत-
 तोष रोगमें यकृतके आवरण की झिल्ली और ग्लोस्सम कैपसिलमें या कभी लिवरके मध्य जलन दे कर स्कोटक उत्पन्न होता है। स्कोटकके बीचकी पीप रक्त पित्तके मेलसे विकृत हो कर नाना वर्णों की दोष पड़ती है। सुपरेटिव हेपेटाइटिस (Suppurative Hepatitis) रोगमें यकृतके डेपार्टिक डाक्टके मध्य पित्तपथरीके संस्थापन हेतु पित्तकोषमें जलन और पीपका संचार होता है। पित्तकोषमें जलन देनेसे जो स्कोटक पैदा होता है वह मछाकृति (Pyriform)-सा होख पड़ता है। पित्ताधारका प्रवल प्रदाह होनेसे शरीरमें तरङ्ग तरङ्गकी पीड़ा वा पड़चती है। पित्तपथरी द्वारा निस्टिक डाक्ट अवस्था होनेसे एक व्याधि होनेको सम्भावना है। इस समय पित्ताधारके निष्ठ भागमें वेदना और कुछ उच्चता महसूस होती है। एवम् करनेसे वेदना बढ़ती है और अभ्यन्तरस्थ तरङ्ग पदार्थकी प्रवृत्ति और वृद्धि समझी जाती है। पीछे उनको मध्य पीपका संचार होनेसे जीत और कम्प द्वारा चर या जाता है। पित्ताधार जब पीपमें भर जाता है, तब यह कभी कभी विदीर्ण हो कर गुरुतर हो जाता है। पित्ताधारमें जलन देनेसे पहले पित्तपथरीसंघर्षके सभी लक्षण पड़च जाते हैं। किन्तु कमना प्रथवा यकृतका विवर्धन नहीं देखा जाता।

पित्ताधारके बहुकालस्थायी प्रदाह वा गोयरीग

गरत घोर पीस करतुमें दो पहर दिन घोर दो पहर रातको वितका प्रकोप होता है। उरद, तिल, कुसुयो, महुओ, भैसका टहो, घोर गायका महुा सेवन करनेसे वित विगड़ जाता है।

पित्त-प्रगमनका सपाय—तिल, मधुर घोर कषाय रस, शीतलवायु, छाया, रात्रि, ध्वजन, चन्द्रकिरण, भूमिस्टह, कुहारेका जल, पत्र, स्त्रीका गात्रस्पर्श, छत, दुग्ध, विरेचन, परिवर्क, रक्तमोचन घोर प्रदेह घादि (पाशार, विहार घोर चोषध सेवन) द्वारा वित प्रगमित होता है।

वितको हृदि होनेसे मल, मूत्र, नेत्र घोर शरीर पीत-वर्ण, श्मिद्वयकी क्षीणता, शोताभिनाय, सक्ताप, मूर्च्छा घोर मूत्रकी चरवता होती है। वितचोष होनेसे तिल, माष घोर कुसुयो, पिटकादि, दहीका पानो, यम्यमाक, तक्र, काजी, दही, कटु पत्र घोर सवयरस, उष्ण द्रव्य, तीक्ष्ण घोर विटाहिद्रव्य, क्षोध, उष्णकाल तथा उष्णदेश घादि सेवन करनेको वितचोष रोगीको इच्छा बनी रहती है। ऐसे पक्षधामें वितवर्क चतुष्टय सेवन करनेसे वितकी शमता होती है।

“वितप्रकृतिको वारह तादधीत्य निगद्यते।

लङ्कावस्थितो गौरः कोषो स्वेरी यः पुट्टिमान् ॥

बहुमुह्वास्त्रनेत्रय इत्येव योदीधि परपति।

एवंविधो भवेद्दुष्टतः पित्तप्रकृतिको नरः ॥” (भावप्र०)

वितप्रकृतिक कोगोका विषय लिखा जाता है।

नेत्रका चकासमें शुषलवर्ण होना, सर्वदा खेदनिर्गम घोर चतु रक्तवर्ण, गौर वर्ण, क्षोधशोथ, पुट्टिमान्, अधिक भोजन शक्तिधम्य घोर स्त्रावस्थामें लज्जादि ज्योतिर्मय पदार्थ दग्गन से सब लक्षणकाल होनेसे वितप्रकृतिक जानना होगा।

वित स्त्रय चर्मरुप है, इसकी उत्पत्ति चर्मसे होती है। वित्तधिकावयवतः व्यक्तित्व ही तोत्र द्रव्या घोर तोष्यद्रव्याविष्ट हो जाता है, उसका पत्र मोरवर्ण घोर रङ्ग करनेसे उष्ण मालूम पड़ता है। हस्त, पद घोर चतु ताम्र वर्ण कहे हो जाते हैं तथा वह पराक्रममावी, चर्ममावी, वैश पिङ्गलवर्ण घोर शरीर पत्तरोमविष्ट दिखाने देता है। स्तोमसङ्ग, पुष्प-मास्यादिधारण घोर सुगन्धित द्रव्योंका अनुसेवन करने-

की उसकी प्रवक्त इच्छा रहती है तथा वह सशक्ति, पवित्र हृदय, पायित-प्रतिपासक, सम्पत्तिविष्ट, साक्षी घोर वलवान होता है। शीत शत्रु पीको भी सहायता पङ्कचनेसे वह कुण्ठित नहीं होता। मेधाघो घोर उसकी सम्बिका मन्थन तथा गात्रमांस पक्षक-शिविन भावापन्न हो जाता है। ऐसा मनुष्य प्रायः स्त्रियोंका प्रिय नहीं होता। वह चन्द चक्रविष्ट घोर चन्द-रमसेच्छु होता है। वित्तकी अधिकतासे दास सकेद हो जाते हैं घोर गृह तथा बीतिकारोम उत्पन्न होता है। वह मधुर, कषाय, तिल घोर शीतल द्रव्य खाना पसन्द करता है। गर्मी बरटाक नहीं कर सकता, शरीरसे हमेशा दुर्गन्धित पमोना निकलता रहता है। मल, क्षोध, पान, भोजन घोर ईर्ष्या अधिक रहती है। स्रग्ने वह कर्णिकाका फूल, पलायक फूल, दिग्दाह, सङ्कापात, विद्युत, सूर्य घोर अग्नि देखता है। उमका चतु पिङ्गलवर्ण, चक्षु, सूक्ष्म घोर पत्र पक्षिरोम-विष्ट होते हैं। चतुमें दण्ड लगनेसे सुख मालूम होता है, क्षोध घाने पर, शराब पीने पर घोर सूर्यकी किरण लगने पर चतु उसी समय झाल हो जाते हैं। वितप्रकृतिक व्यक्त मधम परमायुर्विष्ट घोर मधम वल्युक्त होते हैं। शास्त्रादिमें पण्डित घोर कर्त्तव्यमोह, वद्याग्र, भवन्क, वाना, विद्याल घोर भूतादिको वितप्रकृतिका बतलाया है। (भावप्र० पूर्व और मधम०)

चरकमें वितका विकाः ४० प्रकारका निर्दिष्ट हुआ है। विस्तार हो जानेके मयने उसका वर्णन नहीं किया गया। (चरक सू० ४० ल० और विमान ८ ल०)

राजवत्तममें वितगुणकी जगह इस प्रकार लिखा है,—

“सर्वं वितवयवमार कुहकुहमगाहय।

चतुर्ध्वं कटुनीहोष्णमुग्धमदकिमिनामनम् ॥”

(राजवत्तम)

सभी प्रकारका वित चपस्मार, कुष्ठ घोर दुष्ट, मयनागक, चतुष्ण, कटु, तोषण, उष्ण, उष्माद घोर किमिनामक है।

वाचाय्यदे मतमें वित शरीराभ्यन्तरस्थ तीक्ष्णहिकर घातुविभेद है। संस्कृतमें इसका दूसरा नाम वाचकान्ति

भो है। इसका वर्ण पीत और मोल है। यह रस तिक्ताम्ल सारक, रूखा और द्रव्य-पदाय है। आयुर्वेदके मतसे पित्तका यथायथ लक्षण ऊपर लिखा जा चुका है। डाक्टरी मतसे शरीरमें पित्तरसका संचार होनेसे नाना प्रकारकी बीड़ा उत्पन्न होती है। किन्तु ब्रह्म रसाधिक्य साधारणतः यकृतके मध्य बाह्य हो कर विमोघ विमोघ रोग उत्पादन करता है। यद्योक्तयुक्त वाद पर्याप्त भाद मासमें साधारणतः मनुष्यके शरीरमें पित्तभी अधिकता देखी जाती है। इससे कुछ समयमें दोपहर दिन और दोपहर रातकी भोजन करना मना है। सुपेयके कुछ पहले जलशोध नहीं करनेसे, पित्त उत्पन्न होता है। भाद्रमासमें खीरा खानेसे पित्तवृद्धि होती है।

किस किस बीधका व्यवहार करनेसे पित्तवृद्धि और पित्तनाश होता है, नीचे उसको एक तालिका दी गई है,—

पित्तनिःसारक बीध (Cholagogues) यथा—
 चूचु, पित्त, ग्रे-ग्राउंडर, कोलेमेल, पडपित्तन, एलोज, जूलाब, कसोडिय, कलचिकम्, इपिकाकुपाना, नाइट्रो-हाइड्रोक्लोरिक एसिडलिन, सलफेट और फस्फेट भाव-सोडियम, वैजयेट, भाव सोडियम वा एमोनियम, सालि-सिलेट भाव सोडियम, इडनिसिन, भाइरिडिन, इनिडे-जिन, जगन्याण्डिन, क्रोटनबाएल, सेना, टाटारिट भाव सोडा, टैराकथिकम्, हाइड्राटिन इत्यादि।

पित्तदमनकारक बीध (Anti-cholagogues) अफीम, मर्जिया, एसिटेट भाव सेड प्रभृति।

पित्तनाशके लिये द्रव्यसत्तानुसार क्रितको टोटका बीधधिया व्यवहृत होती है। पित्तजनित द्रव्यपदके प्रदाहमें हिंवा सागका रस और कच्चा दूध हितकर माना गया है। घनिये और पलतेकी एकल विट कर उसका प्रतिदिन सेवन करनेसे तथा चिरायतेका जल और मिथीका शरबत और नोमकी पाँचवाँ पाँच तिक्त द्रव्यो-का व्यवहार करनेसे पित्तनाश होता है।

पित्तस्त्रावकी स्वयत्ता वा अव्यवहृतके कारण रक्तके साथ पित्त मिल कर रक्तके योजकत्वक, चर्म और मूत्रको पीला बना देता है। किसी किसी चिकित्सकके मतसे पित्तका वर्णज पदार्थ और पित्ताम्ल यकृतमें

उत्पादित होता है। यदि अव्यवहृतके कारण पित्तकोष वा पित्तको नन्विर्वा पित्तसे परिपूर्ण हो जाय, तो गिरा और लसीका नाड़ी (Lymphatic) द्वारा पित्तका रंग घोषित हो कर चर्म और निःस्थान पित्तको विकृत कर देता है। अपरापर चिकित्सकोंके मतमें स्वभावनः हो घोषितमें पित्तका वर्णज पदार्थ रहता है और वह यकृत हो कर निकल जाता है। यदि किसी कारणवश यकृतकी क्षियाकर व्यतिक्रम हो जाय, तो रक्तमें क्रमशः वर्णज पदार्थ संचित हो कर सम्पूर्ण शरीरकी पीतवर्ण बना देता है। हेपेटिक डाकट वा यकृतप्रणालीके मध्य पित्ताशमरो वा गाढ़े पित्तके अव्यवहृत अवस्थामें रहनेसे पाण्डुरोगकी उत्पत्ति होती है।

पेरि हेपेटाइटिस (Peri Hepatitis) वा यकृत-तौष रोगमें यकृतके आवरण भिन्नो और ग्लोब्स कौपिडनमें या कभी लक्षितके मध्य जलन दे कर स्फोटक उत्पन्न होता है। स्फोटकके बीचकी पीप रक्त पित्तके मेलसे विकृत हो कर नाना वर्णोंकी दोष पड़ती है। सुपेयटिस हेपेटाइटिस (Suppurative Hepatitis) रोगमें यकृतके हेपेटिक डाकटके मध्य पित्तपथरीके संस्थापन हेतु पित्तकोयमें जलन और पीपका संचार होता है। पित्तकोयमें जलन देनेसे जो स्फोटक पड़े होता है वह मठाकृति (Pyriform) का दोष पड़ता है। पित्ताधारका प्रवण प्रदाह होनेसे शरीरमें तरल तरलकी पीड़ा या पड़ती है। पित्तपथरी द्वारा मिस्टिक डाकट अव्यवहृत होनेसे रक्त व्यापि होनेको सम्भावना है। इस समय पित्ताधारकी निकट प्रायन्त वेदना और कुछ चक्षुता मालूम होती है। एवम् करनेसे वेदना बढ़ती है और अव्यवहार तरल पदार्थकी अवयवति और वृद्धि सम्पत्ती जाती है। योके रक्तके मध्य पीपका संचार होनेसे जीत और कम्प द्वारा रक्त या जाता है। पित्ताधार जब पीपमें सर जाता है, तब यह कभी कभी विटो हो कर गुरुतर हो जाता है। पित्ताधारमें जलन देनेसे पहले पित्तपथरीसंघट्टके समो लक्षण पड़ते जाते हैं। किन्तु कमका प्रयत्न यकृतका विवेदन नहीं देखा जाता।

पित्ताधारके, बहुकालस्थायी प्रदाह वा मोथरोग

गरु पोर सीध करतुमें दो पहर दिन पोर दो पहर रातको पित्तका प्रकोप होता है। सरद, तिल, कुसुमो, मल्लो, भैरवा दही, पोर मायका मूत्र सेवन करनेसे पित्त विघट्न जाता है।

पित्त-प्रगमनका सपाय—तिक्त, मधुर पोर खटाव रस, शीतलवायु, छाया, रात्रि, प्यजन, चन्द्रकिरण, भूमिरुद्ध, कुहारेका जल, पत्र, स्त्रीका मातस्पर्श, छत, दुग्ध, विरेचन, परिवर्क, शूलोच्च पोर प्रदेश आदि (आहार, विहार पोर पोषक सेवन) द्वारा पित्त प्रगमित होता है।

पित्तको हृदि होनेसे मल, मूत्र, नेत्र पोर शरीर पीतवर्ण, इन्द्रियकी क्षोणता, शोताभिलाष, सन्ताप, मूर्च्छा पोर मूत्रको चरपता होनी है। पित्तपोष होनेसे तिक्त, माय पोर कुसुमो, पित्तकादि, दहीका पाणो, भस्मशाक, तक्र, कांजो, दही, कटु पक्ष पोर लवणरस, उष्ण द्रव्य, तीक्ष्ण पोर विदारिद्र्य, क्रोध, उष्णकाल तथा उष्णदेश आदि सेवन करनेका पित्तपोष रोगीको इच्छा होनी रहती है। ऐसे पक्षधर्म पित्तवर्क वसुधा सेवन करनेसे पित्तकी प्रगता होती है।

“पित्तप्रकृतिषो वारक तारथीय निगद्यते।

अहावरसितो गौरः कोषो रवेदी च वृद्धिमान्॥

बहुभुक् तामनेत्रय स्वप्ने ऋशीषि परपति।

एवंविधो भवेद्दृष्टु पित्तप्रकृतिषो नरः॥” (भावप्र०)

पित्तप्रकृतिक लोगोंका विषय सिखा जाता है। केमका चकासमें मुखलवण होता, सदा खेदनिर्गम पोर चतुर रत्नवर्ण, गौर वर्ण, क्रोधशोच, वृद्धिमान्, अधिक भोजन शक्तिधर्म पोर स्रग्वावस्थामें लज्जादि क्षोर्तिमय पदार्थ दर्शन से सब लक्षणकाल होनेसे पित्तप्रकृतिक जानना होता।

पित्त स्वयं चर्मरुप है, इसकी उत्पत्ति चर्मसे होती है। पित्ताधिकारमनः स्थितिमात्र ही तोत्र लक्षणा पोर तोच्छुधाविमिट हो जाता है, उसका पक्ष गोरवर्ण पोर रंग करनेसे उष्ण मांसम पड़ता है। हृत्, पट पोर चतुर्ताम्र वर्णके हो जाते हैं तथा वह पराक्रमवादी, चर्ममानी, केम पित्रलवण पोर शरीर चर्मरोगविमिट दिखाई देता है। स्तोमसह, पुष्प-मास्यादिधारण पोर सुगन्धित द्रव्योंका चतुर्सेवन करने-

की उसकी प्रवृत्ति रहती है तथा वह सन्निध, पवित्र हृदय, पयित-प्रतिपासक, सम्पत्तिविमिट, साधवी पोर वनवान होता है। भोत मृदु पोर भी सहायता पक्ष जानेसे वह कुण्ठित नहीं होता। मधामो पोर उसकी सन्धिका बन्धन तथा गात्रमन चक्षुःशिविल मावापक हो जाता है। ऐसा मनुष्य प्रायः स्त्रियोंका प्रिय नहीं होता। वह पक्ष पक्षविमिट पोर पक्ष रम्येषु होता है। पित्तकी पक्षकतासे बात सकोट हो जाते हैं पोर शब्द तथा मौलिकारोग उत्पन्न होता है। वह मधुर, लवाय, तिक्त पोर शीतल द्रव्य खाना पसन्द करता है। गर्मी बरदाह नहीं कर सकता, शरीरसे हमेशा दुर्गन्धित पसोमा निकलता रहता है। मल, क्रोध, पान, भोजन पोर ईर्ष्या अधिक रहती है। स्रग्ने वह कर्षिकाका फूल, पलायक, दिग्दाह, स्रक्पात, विधुत, सूर्य पोर चर्म देखता है। उसका चतुर् विप्रवर्ण, चक्षुः, सूक्ष्म पोर पक्ष पक्षलोम विमिट होते हैं। चतुर्में उष्ण लगनेसे सुख मांसम होता है, क्रोध जाने पर, शराव पीने पर पोर सूर्यकी किरण लगने पर चतुर् उसी समय जाल हो जाते हैं। पित्तप्रकृतिक स्थिति मधरम परमाधुविमिट पोर मधरम बलशुभ्र होते हैं। शास्त्रादिमें पण्डित पोर बन्धुमोक्ष, व्रथा, भवन्क, वाना, विद्वान् पोर भूतादिको पित्तप्रकृतिका बतलाया है। (भावप्र० पूर्व और भावप्र०)

चरकमें पित्तका विकार ४० प्रकारका निर्दिष्ट हुआ है। विस्तार हो जानेके भयने उसका उल्लेख नहीं किया गया। (चरक सू० ४० न० और रिमान न० ४०)

राजयक्षमें पित्तगुणकी जगह २२ प्रकार लिखा है,—

“४० पित्तगुणद्वारः कुष्ठद्वारमात्रम्।

चतुर्ष्वं कटुतीक्ष्णोष्णपुष्पमाहनिपायनम्॥”

(राजयक्षम्)

सभी प्रकारका पित्त चपस्मार, कुष्ठ पोर दुष्ट, मयनागर, चतुर्ष्व, कटु, तीक्ष्ण, उष्ण, स्रग्माह पोर क्रिमिनाशक है।

पायायके मतसे पित्त शरीराभ्यन्तरका तीक्ष्णहृत्कार धातुविषय है। संस्कृतमें इसका दूसरा नाम पाचकान्ति

भो है। इसका वर्ण पीत और नोल है। यह रस तिक्ताम्ल सारक, लघु और द्रव-पदार्थ है। आयुर्वेदके मतसे पित्तका यथायथ लक्षण ऊपर लिखा जा चुका है। डाक्टरी मतसे शरीरमें पित्तरसका सञ्चार होनेसे नाना प्रकारकी पीड़ा उत्पन्न होती है। किन्तु यह रसाधिक्य साधारणतः यकृतके मध्य भागके हो कर विमेष विमेष रोग उत्पादन करता है। सर्वाङ्गतुल्य बाढ़ धर्मात् भाद्र मासमें साधारणतः मनुष्यके शरीरमें पित्तकी अधिकता देखी जाती है। इसीसे उक्त समयमें दोपहर दिन और दोपहर रातकी भोजन करना मना है। सूर्योदयके कुछ पहले जलशोध नहीं करनेसे पित्त उत्पन्न होता है। भाद्रमासमें खीरा छानिसे पित्तवृद्धि होती है।

किस किस पोषका व्यवहार करनेसे पित्तवृद्धि और पित्ताग्नि होता है, नीचे उसकी एक तालिका दी गई है—

विशनिःसारक औषध (Cholagogues) यथा—
 शुद्धपित्त, पे-पाउडर, कोलमेन, पड्डिलन, एलोज, लुसाय, कलसिय, कलचिकम, इविकाकुपाना, नाइट्रो-हाइड्रोक्लोरिक एसिडडिल, सलफेट और फस्फेट भाव-सोडियम, बेजयेट, भाव सोडियम वा एमोनियम, सालि-सिलेट भाव सोडियम, इठिमिन, पाइरिडिन, इनिडे-लिन, जगम्याण्डिन, कोटनचाएन, सेना, टार्टरट भाव सोडा, टैराक्वेकन, हाइड्राटिन इत्यादि।

पित्तदमनकारक औषध (Anti-cholagogues) यथा—
 अफीम, मर्कुरिया, एसिटेट भाव लेड प्रभृति।

पित्तभागके लिये देशीयमतानुसार, कितनी टोटका औषधियाँ व्यवहृत होती हैं। पित्तजनित रुद्धपदके प्रदाहमें हिंवा सागका रस और कच्चा दूध हितकर माना गया है। सन्निधे और पलतकी एकत्र विष्ट कर उसका प्रतिदिन सेवन करनेसे तथा चिरायतेका जल और मिथीका भरत और नोमकी पचियाँ पादि तिल द्रव्योंका व्यवहार करनेसे पित्तभाग होता है।

पित्तस्त्रावकी स्वपता या अवबृद्धताके कारण रक्तके साथ पित्त मिला कर चक्षुके योजकत्वक, धम और मूलकी पीड़ा बना देता है। किसी किसी चिकित्सकके मतसे पित्तका वर्णन पदार्थ, और पित्ताग्नि यकृतमें

उत्पादित होता है। यदि अवबृद्धताके कारण पित्तकोष वा पित्तको नजियाँ पित्तसे परिपूर्ण हो जाय, तो गिरा और लसीका नाड़ी (Lymphatic) द्वारा पित्तका रंग शोधित हो कर चर्म और निःसृत पित्तको विकृत कर देता है। अपरापर चिकित्सकीके मतसे स्वभावतः हो शोधितमें पित्तका वर्णन पदार्थ रहता है और वह यकृत हो कर निकल जाता है। यदि किसी कारणवश यकृतकी क्रियाकार व्यतिरिक्त हो जाय, तो रक्तमें क्रमशः वर्णन पदार्थ संचित हो कर सम्पूर्ण शरीरकी पीतवर्ण बना देता है। हिपाटिक डाक्ट वा यकृतप्रणालीके मध्य पित्ताशमरी वा गाढ़े पित्तके अवबृद्ध अवस्थामें रहनेसे पाण्डुरोगकी उत्पत्ति होती है।

पेरि हिपाटाइटिस (Peri Hepatitis) वा यकृत-रोगमें यकृतके आवरण भिन्ना और स्त्रोमस को पसिडकमें या कभी सडिडकमें मध्य जलन दे कर स्फोटक उत्पन्न होता है। स्फोटकके बीचकी पीव रक्त पित्तके मेलसे विकृत हो कर, नाना वर्णोंकी दोष पड़ती है। सुपरेटिब हिपाटाइटिस (Suppurative Hepatitis) रोगमें यकृतके हिपाटिक डाक्टके मध्य पित्तपथरीके संस्थापन हेतु पित्तकोषमें जलन और पोषका सञ्चार होता है। पित्तकोषमें जलन देनेसे जो स्फोटक पैदा होता है वह मडाकृति (Pyriform) का दोष पड़ता है। पित्ताधारका प्रवक्त प्रदाह होनेसे शरीरमें तरह तरहकी पीड़ा या पड़चती है। पित्तपथरी द्वारा निष्क्रिय डाक्ट अवबृद्ध होनेसे उक्त व्याधि होनेको सम्भावना है। इस समय पित्ताधारकी निकट पथ्यन्त वेदना और कुछ उन्नता मानस होती है। स्वयं करनेसे वेदना बढ़ती है और अभ्यस्त्राव तरल पदार्थकी प्रवर्तन और हृदि समझी जाती है। बोद्धे उनके मध्य पोषका सञ्चार होनेसे शीत और कम्प द्वारा ज्वर या जाता है। पित्ताधार जब पोषी भर जाता है, तब यह कभी कभी विदीर्ष हो कर शुक्ल हो जाता है। पित्ताधारमें जलन देनेके पहले पित्तपथरीसञ्चयके समो लक्षण पड़च जाते हैं। किन्तु कममा अथवा यकृतका विवर्द्धन नहीं देखा जाता।

पित्ताधारके बड़कालकायो प्रदाह वा शोथरोग

(Hydrops Vesicae Fellenae) :- हा कारण-मिट्टिका-
हाट पश्चात् दिन तक पथरुह रहनेसे विज्ञाधारके मध्य
निरम्ब वा मानोडिक्न रमके जो मा तरल पदार्थ संचित
होता है और उसने वह क्रमशः रुद्धि पा कर फट
जाता है। इस समय विज्ञाधारके निम्न एक मण्डकार
(Pyriform) उभता दोख पड़ती है। इस स्थान पर
चाघात करनेसे रोगी कमनासे घटना अनुभव करता है।
जब पथरा यज्ञतका शिवहन नहीं रहता। किन्तु
बोच बोचमें उल्ल संचित रहके सुख जाने पर विज्ञाधार
मद्ध चित हो जाता है।

चिकित्सकगण पित्त (Bile) को परोक्षार्थ निम्न-
लिखित दो उपायका प्रयत्न करने हैं:-

जिमेलिन् टेस्ट (Gemelin's test) :- एक कांचके
वर्तनमें पित्तयुक्त मूत्रको कुछ बूंद रख कर उसमें एक
बूंद नाइट्रिकएसिड डालनेसे वह रामधनुषके जो मा
विविध वर्णका हो जाता है अर्थात् पहले लाल, पछि
नील और अन्तमें सफेद वर्ण हो कर प्रहस्य हो
जाता है।

पेटेन्कोफर टेस्ट (Pettenkofer's test) :- एक
झुबमें कुछ मूत्र ले कर उसमें १० बूंद इथासकि-
डेरिक एसिड और १२ घन घनो मिलावे। पछि
उस झुबमें धीमे साँघ दे। यदि वह पहले लाल और
पछि बैंगनी रंगमें पलट जाय, तो उसमें पित्ताम्ल है,
ऐसा जानना चाहिये। मूत्रमें मिट्टिन, मिश्रित और
टारोमिन रहनेसे मूत्रका निम्नभाग सज्जवर्ण दाख
पड़ता है।

आयुर्वेदके मतसे पित्त रोग दो प्रकारका है-
शोथपित्त और घनपित्त। शोथपित्त रोगमें हरिद्रापण्ड
और हृदय रुद्धि पण्ड ही उत्पन्न होय है। असावा
रसके हरिद्रा और दूर्वाको एक साथ-घोल कर प्रत्ये
दिनेसे अथवा पदमार और सौम्यमयुक्त तेल छाननेसे
रोग गट हो जाता है। मण्यारोका मूल पीष कर
पूतके साथ ७ दिन सेवन करनेसे अथवा गन्धपूत २
तोला और मिर्च २ तोला सबैरे छाननेसे शोथपित्त
पारोम्य होता है। उरदे (Trypanolobus) पादि विज्ञा
रोगों को भी मय प्रयुक्त हो सकते हैं। घनपित्त-वि-

कारमें दमाह, पक्षनिश्वादि चूर्ण, पविपत्तिकर चूर्ण,
पिप्पलीखण्ड, हृदय पिप्पलीखण्ड, एण्डोमण्ड, गतावरी
घृत, मारायघृत, मितामण्ड, सोभायएण्डोमोदक,
अमरपित्तात्मकमोदक, सप्ततोमद्रोह, पानोय भक्षवटी
और बटिका, हृदय सुधावतीगुड़िका, स्वस्थसुधावती
गुड़िका, कोलाविनास, अमरपित्तात्मकमोद, पञ्चामन-
गुड़िका, भास्कराश्वामन, त्रिकतामण्ड और विट्पतेन
पादि चोषणोपाययोग्य मात्रासे सेवन वा मदन
करनेसे विशेष उपचार होता है। जईगत अमरपित्त
रोगमें वसन और पयोगत अमरपित्तमें मृदु विरेचन,
स्त्रेक्षितिया और अनुवासन यथाथम व्यवहये है।
चिरोत्पन्न अमरपित्तमें निरुहण (पिचकारो) का प्रयोग
करे। इस रोगमें निरुहण धाहार और पागोय विशेष
उपकारक है। एकप्रधान अमरपित्तमें पटोलपत्र, निम्ब
पत्र, मदनफल, मधु और सौम्यसत्व दारु वसन करावे।
विरेचनको लक्ष्यता होने पर मधु और चावनेके रसके
साथ निरोधका चूर्ण खानेकी दे। वातप्रधान अमर-
पित्तमें चोरो और मधुके साथ खोईका चूर्ण खिलावे।
भूमो रहित जो, हृदयका पतल और पोषता कुल मिला
कर दो तोला, पाकाय लस ३३ सेर, गेय साध पाव
प्रक्षेप दारचोनी, तैलपात, इलायचीका चूर्ण और मधु
इस चोषधका पान करनेसे अमरपित्त दूर हो जाता है।
इसका पथ मृगका जून है। पटोलपत्र और खंडके
ममान भागमें अथवा उल्ल द्रव्यको धनियेके साथ सिह
करके काढ़ा सेवन करनेसे एकपित्त पारोम्य हो जाता
है। पटोलपत्र, मोठ, गुनच और कटनीके ममान
भागको या जी, पोश और पटोलपत्र कुल मिला कर
दो तोलाको निह करके मधुके साथ काढ़ा पानेसे
अमरपित्त जनित मूल, दाह, वमि, चर्बि पादि रोग
जाते रहते हैं। इस रोगमें पुलाता चावल, जो, मीह,
लंगनो मांसका जूस, गरम जलको ठंडा करके पीना,
चोरो और मधुके साथ मत्त, वस, करीला, परवल,
बेतका अथभाग, पक्का कुहड़ा, मोवा, मातुक्रमाक,
अनार पादि सभी प्रकारके निरुहण पथ है।

पित्त रोगों में Billimas Liver, जो, परमर, पमरदि
काय, पाथय रोग पादि चोषय दे। त्रिअम मला

ध्यातिका लिये शैत्यक्रिया उपकारो है। पित्तज्वरको चित्त बरहे सुना दे। पोछे उसके नामिल्ल पर ताँबे या काँसेके बरतनसे ठंढा जल गिराते रहे, ऐसा करनेसे दाहशक्ति घट जाती है। पनागपुष्प वा मोमकी हरी पत्तियोंको काँजोके साथ पोस कर फेन निकाले। पोछे इस फेनकी रोगोके शरीरमें लगानेसे दाह निवृत्त हो जाता है।

वातपित्त ज्वरमें नशाङ्गकाय, शुद्ध्यादि काय, हृत् शुद्ध्यादि, घनचन्दनादि और सुप्तादि औषधका प्रयोग कर विशेष लाभ पाया गया है।

पित्ताक्त ज्वरमें घृताष्टक और कण्टकारीदि औषधके प्रयोगसे दाह, ज्वरा, चरुचि, वमि, काय और पाण्डू-मूल दूर होता है। पाकाशयसे ज्वर रक्त निकलता है, तब उसे रक्तपित्त (Haematomesia) कहते हैं।

रक्तपित्त देखो।

पित्तकफज्वर (सं० पु०) पित्तश्लेष्मज्वर, पित्त और कफका दुखार।

पित्तकर (सं० त्रि०) पित्तजनक द्रव्य, पित्तको बढ़ाने या उत्पन्न करनेवाला द्रव्य। जैसे, वाँसका गया कला आदि।

पित्तकास (सं० पु०) पित्तजन्य कासरोगभेद, पित्तके औषधसे उत्पन्न वाँसी या कास रोग। छातीमें दाह, ज्वर, सुँड़ खुँखना, सुँड़का खाद तीता होना, प्यास लगना, शरीरमें जलन होना, खनिके साथ पीला और कड़वा कफ निकलना तथा क्रमशः शरीरका पाण्डूवर्ण होने जाना आदि इस रोगके लक्षण हैं।

पित्तकासांत्तकरस (सं० पु०) औषधविशेष, एक प्रकारकी दवा। प्रसृत प्रपात्रो—ताम्ब, पन्थ और कामलोड़की काशकाशुम्भक रसमें पोस कर चकपुष्प और भग्लवेतसके रसमें दो दिन तक भावना देना चाहिए। इस औषधके सेवनसे पित्तकास, श्वासकास, अग्निमान्द और कषयरोग जाता रहता है। (चैत्र० काजनि०)

पित्तगन्दिन् (सं० त्रि०) पित्तगन्ध-पञ्चमे हनि। पित्त-रोगी, पित्तरोगयुक्त, जिसे पित्तकी बीमारी हुई हो। पित्तघ्न (सं० त्रि०) पित्त हन्ति, घट्ट टक। १. पित्तनागक-द्रव्य, जिसके सेवनसे पित्त जाता रहते। मधुर, तिक्त

और कषाय द्रव्यमात्र पित्तघ्न है। (को०) २. दृग, घी।

पित्तघ्नो (सं० स्त्री०) पित्तघ्न स्त्रियां टाप। शुद्ध, च। पित्तज्वर (सं० पु०) पित्तनिमित्तकी ज्वरा; पित्त-जन्यज्वर, पित्तप्रद्विसे उत्पन्न ज्वर, वह ज्वर जो पित्तके दोष या प्रकोपसे उत्पन्न हो, पित्तक ज्वर।

कोमल नारियलके सेवनसे पित्तज्वर और मूत्रदोष जाता रहता है। (धजनि०)

भावप्रकाशमें लिखा है, कि इस रोगमें पित्तप्रद्वि होती है। पाहार और विहार द्वारा वर्द्धित पित्त भ्रामा-शयमें जाता है और कीटस्थ भस्मकी नष्टासे निजाल कर बाहरकी ओर फँसता तथा रक्तकी क्षुब्ध कर ज्वर पैदा करता है।

यहो कारण है, कि पित्तप्रद्वि (जड़पिण्ड) कीटस्थित भस्मकी बाहर निजाल नहीं सकता। वैद्यकशास्त्रमें लिखा है, कि पित्त, क्षण, मल और धातु ये सब गतिगति-हीन हैं। ये मेषकी तरह वायु द्वारा जिस स्थान पर लाये जाते हैं वही स्थान पर रह जाते हैं। पित्त वायुकी सहायतासे ज्वर उत्पादन करता है।

पित्तज्वर होनेके पहले दोनों आँखोंमें जलन और ज्वरका सामान्य लक्षण दिखाई पड़ता है। यह ज्वर अत्यन्त तीक्ष्ण और वेगवान् है। अतीशय, निद्राकी अशक्ता, कण्ठ, मोठ, मुख और नाकका पकासा जान पड़ना, पसोना निकलना, प्रसोप, सुँड़का खाद कड़वा हो जाना, मूर्च्छा, दाह, मत्तता, प्यास, मल, मूत्र और आँखोंमें हृदको-खोरगत होना तथा भ्रम होना, आदि इस ज्वरके लक्षण हैं। इस ज्वरमें जब पित्त कफके स्थानमें जाता है, तब वमन होता है। शुशुनकी मत्तायुद्धार पित्तज्वरमें दस दिन तक उपवास कर औषध सेवन विधेय है।

तिकादिजाय, पपटादि काय, द्राक्षादिजाय, पटोलादि काय, शुद्ध्यादि काय, ज्वेरादि काय प्रभृति औषध-के सेवनसे पित्तज्वर प्रशमित होता है। अत्यन्त दाह होनेसे सुशोभित कुशुगुगमाम्बिता प्रशस्तानितम्वतो चन्दनचर्चिता शीतलाहो कोके पांशुङ्गनसे दाह जाता रहता है। अश्याम्ब विशेष विषयज्वर हृदये देखो।

उत्पत्ति है। इस व्यवधानों से ताँबा और लकड़ा मिलने रहने पर भी प्रयोजनानुसार समका भाग मिल मिल हुआ करता है। दो भाग ताँबा और एक भाग लकड़ा मिलनेसे साधारण पीतल तैयार होता है। इसमें एक प्रकारका जरद पदार्थ मिलानेसे सफेद पीतल (Yellow brass) बनता है। बन्दूक आदिके लिए जो पीतल तैयार किया जाता है, उसमें १०वां भाग टोम या सोडा मिलाया पड़ता है। वसंमान समयमें जिस पीतलका प्यादा इस्तेमाल देखनेमें आता है, वह सिलेमाइन (Colamine) कार्बोनेट-धातु जिङ्क (Carbonate of Zinc), चारकोल (Charcoal) और पत्थरी ताँबेकी धूलोंकी एक साथ गलानेसे बनता है। इसका रंग जरद और बढ़िया पालिशके लायक होता है। ठंडा होने पर इसे पीट कर लकड़ा किया जा सकता है, किन्तु ताँबेकी चमकेचा यह सज्जत होता है।

मिल मिल स्थानोंमें इस धातुकी मिल मिल नाम है। पोल-होयातुङ्क, पोल्म्याज—Missing, Messing, Gilkoper वा Geelkoper; क्रासी—Cuivre, Jaune, Laiton; जर्मन—Messing; हिब्रु—Nehest; इटली—Ottone; ग्रीक—Orichalcum, Aurichalcum; हस—Selenoimjed; स्पेन—Laton, Azofar, मलय—कुनिङ्गन लोयाङ्ग, तम्रशकुनिङ्ग; तामिल पिस्तल; तेलगू—इताङ्ग।

साधारणतः पिस्तल दो प्रकारका होता है, भरप और रांगा। भरप पिस्तल पिस्तलवर्ण और कठिन तथा रांगा पिस्तल मृदु और स्वर्णवर्ण होता है। राज-निघण्टुकी मतानुसार शुक्लवर्ण और स्वर्णवर्णकी भेदमें यह दो प्रकारका है। इनमेंसे जो शुक्लवर्ण है वह स्निग्ध, मृदु, सरङ्ग और इनमें सुसम तार प्रसृत होता है तथा जो स्वर्णवर्ण है, वह स्वच्छ और प्रकृत रंगिका होता है।

साधुतत्त्वविदों (Metalurgists) के मध्य पीतल धातु के छे बहुत मोतमाल है। सेकडे पीछे ६३ से ९१ अंश ताँबा और १०९ अंश जस्ता मिलानेसे बढ़िया पीतल बनता है। देवत स्वच्छदेवमें उसमें ११ भाग टोम वा कीडा मिलाया जा सकता है।

बन्दूकादिके सिवा कानचक्षुमें दृढ़ पीतलको जड़रतें पड़ती हैं। पदक वा प्रतिमूर्ति बनानेमें भी पिस्तल काममें आता है, उसे ब्रॉन्ज (Bronze) कहते हैं। इसका व्यवहार बहुधा घाबी, कठोरे, गिन्नास, गगरी, हंडे आदि वस्तुओं बनानेमें होता है। पञ्जाब प्रदेशमें छोटे छोटे झुग्गादि प्रसृत करनेकी निम्ने बरतकी अधिवासो गलानेके समय नामा भागोंमें 'कुष' 'साय' आदि निक्षेप पिस्तल प्रसृत करते हैं। परन्तु गगरी आदि प्रसृत करनेके लिए वे यूरोपसे लाये हुए पीतलको पदरोंकी काममें लाते हैं। सुमधुर वाद्यके लिए 'कून्वा खनि' और छण्टेके लिए 'रीई' नामक पीतल ठामते हैं। इस प्रकार पावग्रकोय द्रव्य बनानेके निम्ने देगोय कसेरे मिश्र मिश्र भागमें उसी उनी द्रव्यको धातु प्रसृत करते हैं। धातु-लोहम (Gunmetal) द्रव्यझा (Pewter), लोधा (Bell-metal) इत्यादि। करताल बनानेमें पीतलके साथ रोव्यका मिश्रण पावग्रक है। पीतलको बार बार गलानेसे उसमें लकड़ा भाग कम हो जाता है और धातु अधिष्ठातृ सुसाधन हो जाते हैं। यही कारण है, कि कसेरे खोग चक्रधर पुराने बरतनको तलाशमें इधर उधर घूम करती हैं। रातिका भाग अधिक होनेसे पीतलमें कुछ सफेदी और सोबेका भाग अधिक होनेसे लालो आ जाते हैं। परन्तु इसमें यदि निकलका मिला दिया जाय, तो इसका रंग जर्मनी सिलवर (German silver) के समान हो जाता है।

तेजसादिके लिए पिस्तलके पत्तारके सिवा इससे तार तैयार किया जाता है जो धूलो आदि पदार्थारका उपयोग होता है। बारीक तार पालपोल, भारीकी पिन, सितार प्रभृति वाद्ययन्त्रादिकी तन्त्राद्यमें व्यवहृत होता है। चीन देशमें एक प्रकारका सुसम पिस्तल-पत्र प्रसृत हो कर आता है जिसमें स्वर्णवर्ण फूल काट कर गाछ पर चढ़ाया जाता और विवाह तथा धर्म्यादिमें बंधनेके लिए नगरों या गाँवोंमें लाया जाता है। पोल-घाबी इस स्वर्णपुष्पसे देवादिकी पूजा भी करते हैं।

पिस्तलका पायुर्वेद-मन्त्रात्ता गुणगुण और उसकी शोधनप्रणाली निम्नी जाती है।

सैद्यकके मतमें इसका गुण—निष्ठ, मोतम, सवर्ण-

रस, शोधन, पाण्डू, वात, कृमि, ग्रीहा और पित्तनाशक है। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे—राजपित्तको कपिला और तन्नापित्तको पिङ्गला कहते हैं। पीतल तांबा और लक्षा इन दोनों धातुओंको उपधातु है। सुतरां इसका गुण संपादन-कारणकी तरह संयुक्त रहनेसे इसमें प्रतिरिक्त गुण है। पित्तल भूलोभांति विगोहित नहीं होनेसे वह विषके समान अनिष्टप्रद, किन्तु उत्तम रूपसे गोहित होनेसे वह गुणयुक्त होता है। इसका गुण—रस, तिक्त, लवणरस, शोधनसारण, पाण्डू, और कृमिरोगनाशक तथा पतियय लेखन, गुणयुक्त नहीं है।

रत्नेन्द्रसारमें प्रह्वके मतसे—पीतल यदि शोधना हो, तो नीचे लिखी प्रणालीके अनुसार उसे शोधना चाहिए। पहले पीतलको पोट कर उस पर नमक और चाकड़के दूधका लेप चढ़ावे और तब भागमें दग्ध करे। बाद सल्फ्यूर परतोंके रसमें डाल देनेसे वह शोधित होता है।

मतान्तरसे—पित्तलके पत्तरको गोमूत्रमें डाल कड़ी आँधमें एक पहर तक पाक करनेसे उत्तम शोधन होता है।

दो गुण गन्धकी माय पावदको छतकुमारोके रसमें घोस कर उसे पीतलके परता पर लगा दे। पोछे लवणयन्त्रमें चार पहर तक पाक करे। ठंडा हो जानेके बाद उसे चूर कर रोगविशेषमें प्रयोग कर सकते हैं।

रत्नेन्द्रसारमें यहमें इसको शोधन-प्रणाली ताम्बकी तरह है। ताम्ब शब्द देखो।

२. भूजपत्र, भोजपत्र। ३. इतिहास, इरतान। (स्त्री०) ४. शालपर्णी, भरिषन। ५. जलपिप्पली, जल घीवर। (त्रि०) ६. पिप्पलुत्त। ७. शिततदिकर, जिससे पित्तदोष बढ़े, जिससे पित्तका समालो हो।

पित्तला (सं० स्त्री०) योनिरोगविशेष, योनिका एक रोग जो दूषित पित्तके कारण उत्पन्न होता है। इसका लक्षण—योनि चयन्त दाह और पाकविशिष्ट होती है। (युद्धत०)

भावप्रकाशके मतसे—जो योनि चयन्त दाह और पाकयुक्त हो तथा रक्तकी बहुत ज्वर हो, उसे पित्तला

कहते हैं। मोहितवरा प्रभृति योनिरोग भी पित्तके दूषित होनेसे उत्पन्न होते हैं। योनिरोग देखो।

“अथर्व पित्तला योनिर्दाहणकञ्चरान्विता।
चतसृष्वपि चाद्यात् पित्तलमिच्छेत् भवेत् ॥”

२. तोयपिप्पली, जल घीवर।

पित्तयत् (सं० त्रि०) पित्त-भतुप्, मध्य य। पित्तयुक्त। पित्तवग (सं० पु०) पित्तानां वर्गः। पित्तसमूह, पञ्चविध पित्त। यथा—मूत्र, गो, पशु, वृक्ष और वृद्धि इन पाँच प्रकारके जीवोंके पित्तभी पित्तवग कहते हैं। मतान्तरसे—सुघर, वकरे, भैंसे, मकली और मोरके पित्त पित्तवग के पञ्चगत्त माने गए हैं।

पित्तवक्षमा (सं० स्त्री०) क्षणान्तविषा, काला भतीस। पित्तविदाहदृष्टि (सं० पु०) पित्तेन विदग्धा दृष्टियत्र। दृष्टिरोगविशेष, चाँखका एक रोग जो दूषित पित्तके दृष्टिस्थानमें आ जानेसे होता है। इसमें दृष्टिस्थान पित्तजर्ण हो जाता है और नाथ हो सारे पदार्थ भी पीने दिखाई पड़ने लगते हैं। दोष चाँखके तीवरे पटल या परदेमें रहता है। इससे रोगको दिनमें नहीं सुभाई पड़ता, वह केवल रातमें देखता है।

पित्तविनाशन (सं० त्रि०) पित्तघ्न, पित्तनाशक द्रव्य, पित्तकी नाश करनेवाली चीज।

पित्तविवर्ण (सं० पु०) पित्तजन्य विमर्षरोग भेद, विमर्ष रोगका एक भेद। विमर्षरोग देखो।

पित्तवाधि (सं० पु०) पित्तजन्य रोग, पित्तदोषसे उत्पन्न रोग, पित्तके विगड़नेसे पैदा हुई बीमारी।

पित्तशूल (सं० स्त्री०) पित्तजन्य शूलरोग। इसका लक्षण—वायु, मूत्र और पुरोपका वेगधारण, प्रतिभोजन, पतिपाक नहीं होने पर पुनः भोजन खादि कारणों से वायु कुपित हो कर कोष्ठदेशमें शूल उत्पन्न करती है। यह पत्यक्त कष्टदायक है। यह शूल पित्तज होनेसे दृष्ट्या, दाह, मद, सूक्ष्मी, तीव्रशूल और शीतल द्रव्यमें अभिस्नाय तथा शीतन क्रियासे यातनाको शान्ति होती है। पित्तशूलमें यही सब लक्षण देखे जाते हैं।

पित्तशूलकी चिकित्सा—पित्तज शूलमें शीतल जलपान और ममो प्रकारके सण्ड द्रव्य वर्जनीय हैं। जहाँ वेदना होती हो, वहाँ मण्डि, रजत वा ताम्रपात्रकी

गोत्रन जनने पुनः कर लभके ऊपर रख देनेसे बिदना कम हो जातो है। गुड़, धान, जौ, दूध या छत पान, विरचन घोर जंगली मांसका भोजन विशेष उपकारक है। इस रोगमें मधो प्रकारके पित्तनामक द्रव्योंका सेवन घोर विपत्त्यर्थक द्रव्योंका त्याग विधेय है। पलायका जूस, फामला, दाग, खजूर घोर जनजात द्रव्य शूद्राटक प्रत्युत्तिका शक राके साथ पान करनेसे भारो उपकार मान्य पड़ता है। छुटत उत्तर १२ भ०) मूलरोग देखो।

भावप्रकाशके मतसे इसका लक्षण—चार, पत्यन्त तीक्ष्ण, चप, बिदाही, कटू, घोर पचनरमुक्त द्रव्य, तैल, राजमाप, मधुपादिका कटक, कुलयोका जूस, सोधोर, दिग्ध द्रव्य भक्षण, क्षीघ, पन्निसेवन, परिशम, रोद्रसेवन घोर परिशम सेवन इस सब कार्योंमें पित्त प्रकुपित हो कर नामि देगमें शूल उत्पन्न करता है। यह शूल पित्तमें उत्पन्न होता है, इस कारण इसे पित्तशूल कहते हैं। इनमें रोगोंके विनामा, दाह, चोटोदम, भ्रम घोर शीघ उत्पन्न होता है। मध्याह्नमें, रात्रिके मध्यभागमें, रात्रि घोर गरत् कालमें यह रोग बढ़ जाता है। शोतकालमें शोतल उपचार घोर सुमधुर चयच शोतन द्रव्य भक्षण द्वारा यह प्रशमित होता है। (भा० ३०)

हाइपो सलम, (Hepatic colic) मिटिक वा हिपाटिक हाइपो हो कर पतझोके मधो पित्तपथरोंके जानने प्रयदा उल्ल नलो हो कर गांठें पित्तके निकलने से जो वेदना उत्पन्न होती है, वही इसका कारण है। यन्त्रिके प्रयदा हो छेदे बाद पथरों भिन्न समय पित्तधार से डिउडिनमके मधो पित्त पाता है, तथा कभी कभी पथर शूलनके बाद रोगो पाकायकी क्रियाके व्यतिक्रम हेतु चटरोर देगमें पोर दक्षिणस्थ पाकयन्त्र वा यन्त्रकी क्रियाके व्यतिक्रम हेतु उपपन्न वा प्रदेगमें प्रयदा क्रमसे वेदना अनुभव करता है। यह वेदना खलन वा बिदापवत् है तथा गरीरके पयाहागमें घोर दक्षिण स्तम्भ तक फैल जातो है। हिपाटिक ग्रेकसस के साथ छेदिन नाम दा संयोग रहनेसे उल्ल प्रकारको दूरवर्ती वेदना उत्पन्न होती है। चटरोर मांसपेशीका पाचोप घोर जगके मधो पालटवत् वेदना उपस्थित होनेसे रोगी धैर्यन हो कर जमोन पर सीट जाता है। कुछ

प्रमय बाद वेदनाका ज्ञान तो होता है, पर १२ दिन तक उस स्थान पर सामान्य वेदना मान्य पड़ती है। वेदनाके समय उल्ल स्थान पर दबाव देनेसे वेदना बहुत कुछ दूर हो जातो है। मिटिक हाइपो का मधो हाइपो पित्तपथरोंके छट पानेसे भी वेदना छट जातो है। यदि उर तपदाय फिरने डिउडिनमके मिहट पावे, तो वेदना बढ़ जातो है। एक बड़ी पित्तपथरोंके निकलनेके बाद बहुत सी छोटी छोटी पथरियां ऐसे सुयोगमें बाहर निकल पाती हैं। पयादा इनके कभी कभी पित्तधार से मधो पित्तपथरोंके फिरने पानेसे वेदना सहसा उपशमित होती है। पयान्य लक्षणोंके मधो वमन, शोत, कप्य, मूर्च्छा घोर पाचोप तथा सामान्य ज्वरित मान रहता है। रोग कठिन होने पर वमन, हिक्का, हिमाह घोर पयान्य सुदुतर लक्षण दिखाई देने लगते हैं। यदि अनुभवान किया जाय, तो मजके साथ पित्तपथरों पाई जा सकते हैं। इस समय उर कुछ भी नहीं रहता।

इस रोगमें पारोप्य होनेको सुधावना ही अधिक है। कभी कभी उल्ल उपमग हो जाता है। पित्तपथरोंको निकालनेके लिये मृदुपरेचका प्रयोग पायप्रकार है। वेदना दूर करनेके लिये बहिःस्थान पर फोमण्ड, पुकटिष, निनिमण्ड बेनेडोना वा बोपियाई मदन एवं पाथमरिक् बेनेडोना, पकाय पोर हारपोसाप मम पादि व्यवस्थेय हैं। क्रिमो क्रिमो पित्तन तक मत है, कि पानिमपावन्, टायोण्डाइन, इयरमिकपर, क्षोरीकारम घोर चारपुल्ल पोपध तथा निवृत्ता पादि कई प्रकारके जनका पावहार करनेसे पित्तपथरों गल जातो है। हिमाह, वमन पादि लक्षण उपस्थित होने पर चलेजक पोपधका प्रयोग करे। पायन्त यन्त्रवा उपस्थित होने पर रोगीको सकिया घोर पथोरल हाइड्रोमका सेवन करावे। डा० मावटने वाइकाबेनेट पाव मोहाकी उल्ल जलके साथ सेवन करानेमें विशेष उपकार पाया है। यदि पोपका मधो जाय, तो पित्तपथरोंको छोकर वा पथर द्वारा काट डाले। पित्तधारसे पित्तपथरोंको निकालनेके लिये चलेजमान कालमें कलिफि टोटम पापरमनका पायदा दया है।

पित्तश्लेष्मण्वर (सं० पु०) पित्तकफप्रधान ज्वरभेद, यह ज्वर जो पित्त और कफ दोनोंकी अधिकता अथवा प्रकोपसे हुआ हो। सुषुप्ति कटुवापन, तन्द्रा, मोह, खानो, भक्त्यि, तृष्णा, घण्टिकटाह, और कुछ ठंडा लगना आदि इसके लक्षण हैं।

पित्तश्लेष्मावयव (सं० पु०) एक प्रकारका संचिपात ज्वर। इसमें शरीरके भीतर दाह और बाहर ठंडा रहता है। श्वास बहुत अधिक लगती है; नाड़ियों परसियों, छातों, सिर और गलेमें दाह रहता है, कफ और पित्त बहुत कटुसे बाहर निकलता है। मल पतला हो कर निकलता है, सस फूलोंसे और हृत्पत्रिकां आती हैं।

पित्तमशममय (सं० पु०) पित्तगान्तिकर दूषागण, भेद, पोषधियोंका एक वर्ग या समूह जिनमेंकी पोषधियां प्रकुपित पित्त से शान्त करनेवाली मानी जाती हैं। दूषधय—चन्दन, रक्तचन्दन, नेत्रबाला, खस, भक्त्युषो, विदारिकन्द, सतावर, गोंदो, मिशर; सफेद कमल, कुई, नीलकमल, बैला, कंठसागड़ा, दूध, मरीरफलो (भूय), कांकोल्यादिगण, न्यग्रोषादिगण और तृणपञ्चमूल। (इष्टत पूनर्य २९ अ०)

पित्तस्थान (सं० क्ली०) शरीरके वे पाँच स्थान जिनमें वैद्यकग्रन्थिके अनुसार पाचक, रणक आदि पाँच प्रकारके पित्त रहते हैं। ये स्थान पाचामय-पक्वामय, यकृतशोष, हृदय, दोनोंनित्र और त्वचा हैं।

पित्तस्त्राव (सं० पु०) नेत्रसन्निगत रोगभेद, एक नेत्र-रोग जिनमें नेत्र सन्निधे पोला या लोला और गरम पानी बहता है। (इष्टत उपपत्त १ अ०) नेत्ररोग देखो।

पित्तहन् (सं० पु०) पित्त हन्ति हन्-क्रिय। १ पपेटक, पित्तपापड़ा। २ पित्तनाशक द्रव्य।

पित्तहर (सं० पु०) हरनोति हर; पित्तस्य हर। १ कांकोल्यादिगण। २ समीर, खस।

पित्तहा (सं० पु०) पित्तहन् देखो।

पित्ता (हिं० पु०) १ पित्ताशय, जिगरमें वह थोड़ी जो जिसमें पित्त रहता है। पित्ताशय देखो। २ दाहस, हिमन्त, होशला। जैसे, उसका कितना पित्ता है जो दो दिन भी तुम्हारे भूकाबिले ठहर सके।

पित्ताण्ड (सं० पु०) पञ्चका पण्डस्कन्द रोग, चोढ़ाके भेडकीगमें होनेवाला एक रोग।

पित्तातिहार (सं० पु०) पित्तजन्य अतीवार रोग, यह अतिमार रोग जिसका कारण पित्तका प्रकोप या दोष होता है। मलका लाल, पीला अथवा हरा और दुर्गन्ध युक्त होना, मुदाका पके जाना, तृष्णा, मुच्छा और दाहकी अधिकता इस रोगके लक्षण हैं।

पित्तातुल्य (सं० पु०) पित्तातुल्य।

पित्ताभिम्यन्द (सं० पु०) सर्वगताक्षिरोगभेद, भाँखका एक रोग, पित्तकोपसे भाँख आता। भाँखोंका वय और पोतवर्ण होना, उनमें दाह और पकाय होना, उनसे धुआं उठना-सा जान पड़ना और बहुत अधिक पाँच गिरना इन रोगके प्रधान लक्षण हैं। (भावप्र० नेत्ररोगा०)

इसको चिकित्सा—इन पित्ताभिम्यन्दमें रक्तस्त्राव और विरेचन विशेष है। पित्तजन्य विषर् रोगाधिकारोक्त सभी पोषध इस रोगमें लाभदायक हैं। प्रियङ्गु, शालि, शैवाल, शैलज, दाक्षरिद्रा, इलायची, उत्पल, लोष, शंख, पपवत्, गकरा, कुय, इक्षु, ताल, वेतस, पद्महाड, द्राक्षा, मधु, चन्दन, यष्टिमधु, हरिद्रा और धनन्तमूल इन सब द्रव्योंमेंसे जो कुछ मिश्र, उनके द्वारा जो और बकरीका दूध पाक कर तपण, परिचिचन और नख प्रयोग हितकर है। इन रोगमें सब प्रकारको पित्तनाशक क्रिया, तीन दिन बाद उजली सरसोंका मस, मसको वा मधुयार्करके साथ पत्ताय वा शोषितका अञ्जन और मधुयार्करके साथ पालिन्दा वा यष्टिमधुकी रसक्रिया प्रयुक्त है। वैद्युय, स्फाटिक, वैद्युम, मौक्तिक, गङ्ग, चांदो या होनेका अञ्जन भी हितकर माना गया है।

(इष्टत उ० १० अ०)

चरक आदि ग्रन्थमें इस रोगको चिकित्साका विमेष विवरण लिखा है। विस्तारके भयसे यह यहाँ लिखा नहीं गया। नेत्ररोग देखो।

पित्ताति (सं० पु०) पित्तानामरिर्नागकः। १ पपेट, पित्तपापड़ा। २ लाक्षा, लाह। ३ वरचन्दन, पोला चन्दन।

पित्ताशय (सं० पु०) पित्तकोष, पित्तकी थैली। यह यकृत या जिगरमें पोछी और नोचिकी भोर होता है। यकृतमें पित्तका जितना भय भोजन पाककी आवश्यकतासे अधिक होता है वह इसीमें आ कर जमा रहता है।

पूतकी यह धाम प्रदान किया। सन्नेही ही लगभग १०५० ई० में यह दुर्ग बनवाया। यहाँ प्रत्येक छह छति-वारको हाट लगती है।

पिदही (हि० स्त्री०) । पिही देखो।

पिहा (हि० पु०) १ सुनेलकी ताँतमें यह निवाड़ बादिको गद्दी जिस पर गोलीको फेंकनेके समय रखते हैं, फटकना। २ पिही देखो।

पिही (हि० स्त्री०) । १ सयाकी जातिकी एक सुन्दर चिड़िया जो सयासे कुछ छोटी और कई रंगोंकी होती है। भावाज्जकी मोठी होती है। अपने चञ्चल खभावके कारण यह एक छान पर क्षण भर सो छिड़ हो कर नहीं बैठती, फुटकती रहती है, इसीसे इसे 'फुटकी' भी कहते हैं। २ बहुत ही तुच्छ और भगण्ड जाँव।

पिधातव्य (सं० त्रि०) अपि-धा-तव्य, अपेक्षारक्षोपः । पञ्चादनीय, टकने लायक।

पिधान (सं० स्त्री०) अपि-धा-लुट् । १ बाष्पादन, भावरण, पर्दा, गिराफ। २ छदन, टकन, टकना। ३ किवाड़। ४ खंजकोप, तलवारका झ्याल।

पिधानक (सं० पु०) पिधान-क । खंजकोप, तलवारका झ्याल।

पिम (सं० स्त्री०) पालपीन, लोह या पीतल बादिको बहुत छोटी कील जिससे कामज इत्यादि नली करते हैं।
पिमकाना (हि० त्रि०) १ क'धना, नौदमें भागीकी झुकना। २ चकोमके नयेमें सिरका झुका पड़ना, चफोमचोका नयीकी हालतमें भागीको और झुकना या क'धना।

पिमकी (हि० पु०) पिमकनेवाला चफोमचो, वह व्यक्ति जो चफोमके नयेमें पीनक लिया करे।

पिमपिन (हि० स्त्री०) १ रोगी या दुर्बल बच्चा रोना, बार बार धीमे धीरे चतुर्नासिक भावाज्जमें रोना, नकिया कर धीरे धीरे उठर उठर कर रोना, पिमपिन करके रोना। २ बर्षाका चतुर्नासिक और प्रणट स्तरमें उठर उठर कर रोनाका शब्द, रोगी या दुर्बल बच्चेकी रोनेका शब्द, नकिया कर धीमे धीरे थोड़ा रुक रुक कर रोनेकी भावाज्ज।

पिमपिनहा (हि० पु०) १ रोगी या दुर्बल वायक, कम-कोर या सोमार बच्चा। २ पिमपिन करनेवाला बच्चा, वह वायक जो धीरे समय रोया करे।

पिमपिनाना (हि० त्रि०) १ धीमे भावाज्जमें धीरे रुक रुक कर रोना, रोगी भयवा कमजोर बच्चेका रोना, चिलाकर रोनेमें प्रथमर्ध वालकका रोना। २ रोते समय नाकसे स्तर निकालना, पिमपिन शब्द करना।

पिमपिनाट (हि० स्त्री०) १ पिमपिन करके रोनेकी क्रिया या भाव। २ पिमपिन करके रोनेका शब्द।

पिमस (सं० पु०) पीनस देखो।

पिमसन (हि० स्त्री०) पेशन देखो।

पिमसिन (हि० स्त्री०) पेशन देखो।

पिनाक (सं० पु० स्त्री०) पाति रचित पनायते स्तूयते वा पाल वा पम-पाक प्रत्ययेन निपातनात् साधुः (पिनाकादयम् । उर्णः ४।१५) १ विषधनुः, महादेवका धनुष जिससे श्रीरामचन्द्रजीने जनकपुरमें तोड़ा था, अजगवः। २ शूल, मिश्रल। ३ कोई धनुष। ४ नीलाभ, नीला अभ्रक, एक प्रकारका अभ्रक।

पिनाकिन (सं० पु०) पिनाकोऽत्यस्येति इति । १ विष, पिनाकधारी, महादेव। २ रुद्रभेद। ३ एक प्रकारका प्राचीन बाजा जिसमें तार लगा रहता था और जो उसी तारकी छिड़नेसे बजता था।

पिनाकिनी—दाक्षिणात्यमें प्रवाहित एक नदी। यह नन्दीदुर्गसे निकली है। ब्रह्माण्डपुराणीय पिनाकिनी-महाभयमें इस पुण्यसलिलाका माहात्म्य वर्णित है।
पेमार देखो।

पिसस (हि० स्त्री०) पीनस देखो।

पिवा (हि० वि०) १ जो सदा रोता रहे, रोनेवाला, रोना। (पु०) २ धनुकी। ३ पोजन देखो।

पिवा (हि० स्त्री०) एक प्रकारकी मिठाई जो चाटे या धीरे भचचूर्णमें चीनी या गुड़ मिला कर बनाई जाती है।

पिन्वास (सं० स्त्री०) अपि गतो विज्ञातो व्यक्तगत्यात् न्यासा यस्य अपेक्षोपः । हिङ्, ईगम्।

पिन्व (सं० त्रि०) उभयपटो, पिन्वति-ते, पिप्विन्-न्ते । पिञ्चन, परिपूर्ण।

पिन्व (सं० त्रि०) पथान्त, प्रसारित।

पिन्वन (सं० स्त्री०) यक्षकर्ममें व्यवहार्य पात्रभेद, वह वस्तु जिधका यज्ञके कर्ममें इम्तिमान हो।

है। प्रसुत प्रणाली—पीपलका चूर्ण ४ पल, घी ६ पल, शतमूलीका रस ८ पल, चीनी ५२ सेर और दूध ५८ सेर इन द्रव्योंको यथानियम पकावे। बाद उसमें तेजपत्र, हलायची, मोथा, धनियाँ, खैर, बंशलोचन, जीरा, कासाजीरा, हड़ और भाँवला प्रत्येकका चूर्ण डेढ़ तोला ढाले और ठंडे होने पर १ पल मधु भी मिला दे। इस औषधका उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे अम्लपित्त, मूत्र, श्वेत, कृष्ण, वमि, पित्तमूत्र और अम्लमूत्र जाता रहता है तथा अत्यन्त अग्निवृद्धि होती है।

हृत् पिप्पलीखण्डकी प्रसुत प्रणाली—पीपल चूर्ण पाच सेर, घी ५१ सेर, चीनी ५२ सेर, शतमूलीका रस ५१ सेर, भाँवलाका रस ५२ सेर और दूध ५८ सेरको पाक कर उसमें गुड़त्वक्, तेजपत्र, हलायची, हड़, कालाजीरा, धनियाँ, मोथा, बंशलोचन और भाँवला प्रत्येक २ तोला, जीरा, कुट्ट, खैर और नागेश्वर प्रत्येक १ तोला ढाल दे। पाक समाप्तिसे बाद ठंडे होने पर जायकलचूर्ण, मिर्च चूर्ण और मधु प्रत्येक १ पल मिला दे। इस औषधका सेवन करनेसे अम्लपित्त, कृष्ण, श्वेत, और वमि आदि रोग घाना होते हैं और अग्नि-की वृद्धि होकर देहकी दृढि होती है।

(भैषज्यसूत्रा ० अम्लपित्ताधि०)

पिप्पलीप्लुत (म० वृत्तो०) हृत्पीपलभेद। प्रसुत प्रणाली—घी ५४ सेर, दूध ५१ सेर, कल्काय पीपल ११ सेर यथानियम पाक करना चाहिये। इसके सेवनसे यकृत, झोडा और अग्निमान्दादि प्रशमित होता है।

(भैषज्यसूत्रा ० श्लेष्माहृदधि०)

अम्लविध—घी ५४ सेर, पीपलका काय ५१ सेर, कल्काय पीपल ११ सेरकी मिला कर पाक करें। खव ठंडा होने पर उसमें ५१ सेर मधु मिला दे। इसका पेटुंगान पाच पाव दूध है। इसके सेवनसे परिणामशून्य लामा रहता है। (भैषज्यसूत्रा गुलाधि०)

पिप्पलीदध (स० वृत्तो०) पिप्पली और गजपिप्पली से दोनों द्रव्य।

पिप्पलीमूल (स० वृत्तो०) पिप्पली मूलमिध मूल यस्य। खनामल्यांत मूलमिधेयं, पिप्पलीमूल। इसे महाराष्ट्रमें पिप्पलीमूल। कनिष्ठमें पिप्पली सेवक। तेजपत्र

पिप्पलीदुख कश्चे हैं। संस्कृत पर्याय—प्रत्यिक, चटिका-गिर, पट्टपत्ति, मूल, कोलमूल, कटुपत्ति, कटुमूल, कटुपत्र, सर्वान्त्रिय, पत्राष्ट, विरूप, शोषभक्ष, सुगन्धि, प्रत्यिक और उषध। गुण—दीपन, कटु, पाचन लघु, रुच, पित्तकर, भेदक, कफ, वात, उदर, चानाह, शोरा, गुग्म, क्षमि, खास और चयनाग्नक तथा उष्ण और रोवन। (राजनि०)

पिप्पलीरसायन (स० वृत्तो०) मेधाकर रसायनविशेष। पिप्पलीको किंशुकचारमें भाजना दे कर पीछे उसे घीमें भून ले। यह मधु और चाँदे साथ भोजन करनेसे पहले तीन बार पूर्वाह्णमें खानेसे रसायन होता है। (परकचिकित्सा १ अ०)

पिप्पलीवर्धन (स० वृत्तो०) रसायनविशेष। इसका क्रम इस प्रकार है—पहले दिन १० पीपल, दूसरे दिन २०, तीसरे दिन ३०, चौथे दिन ४०, इसी प्रकार हर रोज दस दस बढ़ा कर दूधसे साथ क्रमागत १० दिन तक सेवन करें। बाद ११वें दिनसे फिर दस दस घटा कर पूर्ववत् दसकी वृद्धि करनी होती। इस प्रकार वृद्धि कर हजार तक पिप्पलीका सेवन किया जा सकता है। प्रत्येक दिन दस दस कर बढ़ानेसे प्रधान योग, लक्ष्म लक्ष कर बढ़ानेसे मध्यम और पाँच पाँच कर सेवन करनेसे पथम योग होता है। कहीं कहीं पर पाँच पाँच कर बढ़ानेका नियम है। इसका सेवन करनेसे बल और आयुकी वृद्धि होती तथा झोडादिरोग जाता रहता है।

पिप्पल्यादिकपाय (स० पु०) कपायभेद। यह वातश्व-भेदितकर है।

पिप्पल्यादिगण (स० पु०) सुश्रुतोक्तगणभेद, सुश्रुतके अनुसार औषधियोंका एक वर्ग। यथा—पिप्पली, पिप्पलीमूल, चोता, चदरुख, मिर्च, गजपिप्पली, हरेणु, हलायची, पत्रजवायन, इन्द्रजो, बाकनादि, जीरा, सरसों, बकायन, होंग, भांगो, मधुर, अतिविषा, वच, विडुश और कटकी ये सब द्रव्य पिप्पल्यादिगण हैं। यह कफ, प्रतिश्याय, वायु और अशुचिनाशक, अग्निदीप्तिकर, शुष्क और शुल्ल तथा शामपरिपाककर है।

पिप्पल्याधचूर्ण (स० वृत्तो०) चूर्णविधभेद। प्रसुत प्रणाली—पीपल, त्रिफला, देवदारु, खैर और पुनर्ग या प्रत्येक एक पल, विरुद्धक

एक माघ मीमन्ते यह चोपध प्रयुक्त होती है। सेवन-
मात्रा दो तोला घोर दमका चनुवान काजी है। इस
चोपधके सेवनकाशीन यथाप्यथा कोई नियम नहीं
है। इससे सेवनमें श्रोत्रघोर वातरोग आदि जाते
रहते हैं।

विष्णुसामन्त (मं० श्री०) तैलचोपधभेद। प्रयुक्त प्रणाली—
तिलतैल ३४ सेर, दूध ५८ सेर, कटकाय घीघन, यष्टि-
मधु, चींठ, सींठा; मदनफल, लव, कुट, पुष्करमूल,
चितामूल घोर देवदास कुल मिला कर एक सेर।
तैलपाकके नियमानुसार इस तैलको प्रयुक्त करना
चाहिये। इस तैलको चिकित्साके हेतुसे चर्मा घोर
पामाह आदि रोगोंको पीड़ा जातो रहती है।

विष्णुसामन्त (मं० श्री०) चोपधविशेष। प्रयुक्त
प्रणाली—घीघन, चिकित्सा, छाया, बेर-बीजका मूठा, मधु,
चींठी, निहङ्ग, कुट इत्यादि प्रत्येकका चर्ब एक तोला,
मोड़ पाठ तोला इन सबकी जलमें घोल कर पांच रत्ना-
के बराबरकी गोली बनानी चाहिये। दोषकी विवेचना
कर चनुपानविशेषमें इसका सेवन करनेमें हिक्का घोर
महाश्वसन पारोप्य होता है। हिक्काभोगकी यह एक
उत्कृष्ट चोपध है।

विष्णुसामन्त (मं० पु०) आसव चोपधविशेष। प्रयुक्त
प्रणाली—घीघन, मिर्च, चर्ब, हरिद्रा, चितामूल, सींठा,
निहङ्ग, सुपारी घोर सींठ, पाकनादि, चिकित्सा, यल
बालुन, उसकी जड़, लालचन्दन, कुट, लवङ्ग, तगर-
पादुका, जटामांसी, गुडलक, हलायघी, तैलघन, प्रियङ्गु,
घोर नागिगर प्रत्येकका चर्ब ४ तोला, जल १२८ सेर,
गुड १०१ सेर, धवईफल घोर दममूलद्राचा १० पल
इन सब द्रव्योंकी मिला कर मिर्चके बरतनमें एक मास-
तक रख छोड़ो। बाद उसका द्राग्य छान लो। इसी
नियममें यह आसव प्रयुक्त होता है। चर्मिके बलकी
विवेचना कर इसकी मात्रा लेई करनी चाहिये। इस
आसवके सेवनमें सय, गुग्गुली, काग, यहवी, पाण्डु,
आदि रोग जाते रहते हैं। यहवीरोगमें यह आसव
विशेष उपकारी है।

विष्णु (मं० श्री०) दलमल, दलकी मंज।

विष्णु (मं० पु०) चविभेद, एक वरी। विष्णु।

श्रीकण्ठ; विष्णु घोर दल पादि पाचियोंका दाहनेमें
रहना शुभ है।

विष्णु (मं० श्री०) विष्णु-टाण्ड। शीतकामना,
शीतीच्छा।

विष्णु (मं० श्री०) विष्णु-मन्त्रात्तु। शीतकामना
करनेमें इच्छुक, शीतिके प्रभिलाषी।

विष्णु (मं० पु०) चसुरभेद, एक राक्षसका नाम।

विष्णुनागर—मध्य भारतके भूपाल एजिप्ती के चत्तर्गत्त
एक सामन्त राज्य। यहाँके राजवंशियोंकी उपाधि
‘ठाकुर’ है। मानव प्रदेशमें मालि इत्यादि होने पर
विष्णुनिद्रास्थु चीतुके भाई राजन खा सामिक सेतन पर
रक्तस्थानके अधिकारी हुए। अपने मध्य जीवन तक
इन्होंने पंचैलकी साथ मिलता-भाव रखा घोर इसी
कारण पंचैलोंने रक्त तत्त्वसि तथा कारिया भील,
कारिया घोर काजुरी प्रदेश इनके पुत्रोंमें बाँट दिये थे।

विष्णु (मं० पु०) चविभेद दोषोपरि इति चवि-पु, छ,
चवि-लोपः। अतुमनि।

विष्णु (मं० श्री०) चवि-मन्त्रे द्रुपद, द्रुपदीदरादित्वात्
माधुः। अथवा द्रुपदे गन्धायमान।

विष्णुमान (मं० श्री०) चवि-मन्त्रे शानच, द्रुपदीदरादित्वात्
माधुः। अथवा गन्धायमान, जोरमें धावाज होता।

विष्णुरी (विष्णु) —छान्देश जिसके दाह प्रदेशके चत्त-
र्गत एक भोजराज्य। दाह देशों।

विष्णुसामन्तराज—बेरा राज्यके तुलदाना जिलामन्त
एक नगर। यह चत्ता २० ४१ ०० घोर देगा ० १३
पुंके मध्य अवस्थित है। वीरतसिंह नामक एक चर्चोर-
राज द्वारा यह नगर ८०० वर्ष पहले दयागङ्गा नदीके
किनारे बसाया गया है। विगत तत्ताप्रीके मध्य भागमें
दस्युके लज्जुरीसे रक्त नगर लसगा श्रीहीन हो गया।
अन्तर्में १८८० ई०में महादोत्रो मिश्रियाने गुजाम कादर
वैगकी परास्त कर पना जाते समय इस नगरमें
चोप बमन किया था। इसमें नगरकी चर्बमयदि
एकशामी विनष्ट हो गई। यहाँ वषटके लपर एक
देवमन्दिर है। १९१८ ई०में विष्णुन पण्डित मन्त्र-
देवाधाराय यहाँ वर्तमान थे। उनकी विष्णु पुत्रके
चर्ब मो देवी जाती है।

पिप्पलनेर—१ बम्बई प्रदेशकी खान्देय जिलेका एक उप-विभाग। यह सहादिको उपर और नीचे अवस्थित है। भूपरिमाण १३३८ वर्ग मील है। इसमें कुल २३६ ग्राम लगते हैं।

२ सत्त उपविभागका सदर और प्रधान नगर। यहां चाससे जो तेल तैयार होता है, वह विक्रयार्थ सुरत में जा जाता है। यहां एक प्राचीन दुर्ग अब भी उत्तमान है।

पिप्पलवट्टु—सतारा जिलेके अन्तर्गत एक गण्ड ग्राम। यहां नारायण पोवर नामक एक नौ वर्षका कृषक बालक विपत्तियों से घबराहनेमें विशेष पटुता दिखाने और देवताव्यवस्था रोगियोंको व्याधिमुक्त करनेके कारण बम्बई, कोलाबा, रत्नगिरि यहां तक कि सारे दक्षिणात्य प्रदेशमें प्रसिद्ध हो गया। लोग इसे नारायणका अवतार मानने लगे। इस भ्रमात्मक विश्वासके यथोद्भूत दो चारों ओरमें मूल्य लोग इस नतन देवता-पूजनके लिए आने लगे। १८८० ई०में एक मछली तब जन-साधारणको मुग्ध कर सका कि काटनेसे सत्त बालककी प्राणनायक बह गई। दक्षिणात्यवासियोंको विश्वास था, कि समाधिसे यह बालक पुनः देहावलम्बन कर स्थिति-लाभ करेगा; किन्तु जनकी आशा निराशामें परिणत हुई। अभी भी इस समाधि-मन्दिरमें बालक देवताके व्यवहार कते, कड़ो और बत्त रखे हुए हैं।

पिप्पलवन्दो—पूना जिलेके अन्तर्गत एक गण्ड ग्राम। पिप्पलदेवी—खान्देय जिलेके अन्तर्गत भोर्लोका एक सामन्त राज्य। राजा देखो।

पिय (हि० पु०) स्त्री, स्त्रीका पति।

पियदही—सम्प्रदायिक नामान्तर। प्रियदर्शी देखो।

पियर (हि० वि०) पीयर वा पीला देखो।

पियरई (हि० स्त्री०) पोलापन।

पियरई (हि० स्त्री०) पोलापन, जर्दी।

पियरो (हि० वि०) १ पीली देखो। (स्त्री०) २ पोले रंगो हुई होती। ३ पोलापन। ४ एक प्रकारका पोला रंग जो गायकी घासकी पत्तियों विलाकर उसमें मूखसे बनाया जाता है।

पियरोला (हि० पु०) पीले रंगकी एक चिड़िया जो मैनासे कुछ छोटी और जिसकी गोली बहुत मोटी होती है।

पियली (हि० स्त्री०) नारियलकी छोपरीका वह टुकड़ा जिसे बड़ई आदि घरमेंके छपरी सिरके कांटे पर इसलिये रख लेते हैं जिसमें छेद करनेके लिए बरसा सज्जमें चूम सके।

पियला (हि० पु०) १ दूधका बरत। २ पियरोला देखो।

पियवास (हि० पु०) पियावांवा देखो।

पिया (हि० पु०) पिय देखो।

पियादा (हि० पु०) प्यादा देखो।

पियाभा (हि० स्त्री०) पिलना देखो।

पियागो (ब० पु०) एक प्रकारका बड़ा मछली जो बाजारों में जके भाजारका होता है। इसके भीतर खरोंके लिए कई मोटे घतले तार होते हैं जिनका सम्बन्ध छपरको पटरियोंसे होता है। पटरियोंपर ठोकर लगनेसे खर निकलते हैं।

पियावांवा (हि० पु०) कुरवक, कटसरैया।

पियार (हि० पु०) १ एक प्रकारका पेड़। यह समोले भाकारका और देखनेमें महुवके पेड़-वा जाम पड़ता है। पत्तों में इसके महुवके पत्तोंसे मिलते जुलते हैं। वसन्तकालमें इसमें आमकी-सी मजूरियां लगती हैं जिनके झड़ने पर फलसेके बराबर गोच गोच फल लगते हैं। इन फलोंमें मोठे गूदेकी पत्तों तक होती है। जिसके नीचे बिपटे जोड़ होते हैं। इन बीजीकी गिरी छद्ममें बादाम-और पिस्तेकी समान मोठी होती है और मेंमें गिनी जाती है। यह मिठो चिरीजीके नामसे बिकती है। इसके पेड़ भारतवर्ष भरको विषय-यत दक्षिणके जङ्गलोंमें होते हैं। हिमालयके नीचे भी छोड़ी काँचई तक इसके पेड़ मिलते हैं, पर यह विशेषतः विषयवर्तक जङ्गलोंमें पाया जाता है। इसके छद्ममें चौरा लगानेसे एक प्रकारका बड़िया गौद निकलता है जो पानीमें बहुत कुछ घुल जाता है। कहीं कहीं यह गौद कपड़ेमें गाड़ी देनेके काममें आता है और छोटी इसका व्यवहार करते हैं। छाल और फल अच्छे वारणिशका काम दे सकते हैं। इसकी लकड़ी सतनो मजबूत नहीं होती पर लोग उससे छिलौने, मुठिया और दरवाजेके चौखटे आदि भी बनाते हैं। पत्तियों चारों काममें आते हैं। यह पेड़ जङ्गलोंमें

पाउने पाप दण्डता है, कहीं सगाया नहीं जाता। इसे कहीं कहीं प्यार भी कहते हैं। १ प्या देवो। (वि०) ३ प्यासा।

पियारा (वि० वि०) प्यास देखो।

पियारोबानो—दिप्पो-मस्राट, शाहजहान् के पुत्र गुजराती दूसरी प्यो। यह जैमो रूपवती यो' वैमो यो बुद्धिमत्ता भी यो। बहानके ध्यान ध्यानमें विविधतः बहधाम पोर पाराकान पञ्चनमें उनके मोक्षयका उल्लेख कर पनेर गीत पात्र भी सुननेमें पाते हैं। पाराकानमें गुजराती मृत्यु होने पर पियाराने मस्तरखण्डमें बगमा मिर पटक कर पालकिया की। उनको दो कल्प'ए' भी हम निरादय सज्जद पर पिय ल। कर परलोकाको सिधार गईं। पाराकान राजने उनको तोमरो लड़को-ई विवाह किया था। पियारोके गम पोर गुजराकें पोरमने दो सन्तान पोर भी उत्पन्न हुई यो

पियाह (म० पु०) पो-हिं'सायां बाहुलकात् पाहञ् । हिंस्त्र।

पियाल (म० पु०) पीयति तपयतीति पीय-कानन् श्रव्यय (पीयूकमिच्छां कात्तु इक्षः पञ्चधापट्य । वन. १।०१) इत्यभिधेय, चिरो'जीका पेड़। मध्याह्न—पारोको; पद्माक्षी—चिरानो; उत्पन्न—पह; तामिल—काटमरा। संस्कृत पर्याय—राजदल, मयकटु, धसुम्यट, राजातम, सन्न, कटु, धनु, पट, ऊसपक, धन्वपट, पिशा-लक, पारस्तम्भ, पार, बहुलवस्त्रकम पौर तापमेष्ट। इसका गुण—गिरा, कफ पोर पक्ष्मनामक है। कलका गुण—मधुर, छिद्य, हं'हय, वात पौर गितगामक, गुह, दाह-ल्लव, पोर दन्तागानिकर। इसको मध्याह्नका गुण—मधुर, हृद्य, रित तथा द्यापुनामक, हृद्य, प्रतिदुर्जर, छिद्य, विटभो पोर पात्रवर्णक है। (भावप्र० पूर्वपु०) इसका तेम त्रिभोगक तेसकी तरह गुणयुक्त है। गो'द सदरा-मयनामक पोर पोषा, मांस, पन्थ तथा सुन्ननमें दिन-कर है। विरिष विराम विषाह इत्यर्थ देखो।

पियाला (हिं० पु०) प्यास देखो।

पियालालिज (म० पु०) पियालकमसज्जा, पियार-बोल-का मूढ।

पियानो—२४ परमनेके चलनगत एक गाथा लदो। यह

भगोरपूरको निकट विद्याभरोमि निहम कर मातमा-ने दिरी है। विद्याधरके निकट इसकी चौड़ाई २० हाथ है परन्तु कमर; बढ़ते बढ़ते यह फिर १८ हाथ हो गई है। इस लदोमें भी पुन है उध पर दो का मातमाकी रेलगाड़ी गई है।

पियास (हिं० प्यो०) प्यास देखो।

पियासा (हिं० वि०) प्यास देखो।

पियामास (हिं० पु०) बड़ेछे या दसु'नकी जातिका एक बड़ा पेड़। संस्कृत पर्याय—वीरमास, वीरमार, विषय, वीरमासक, चवन पोर मरामर्ज।

यह पेड़ भारतवर्षके जङ्गलोंमें सब जगह पाया जाता है। इसके पत्ते भी बड़ेछेके पत्तोंके समान चौड़े चौड़े होते हैं जो गिरि वटपुमें भक्ष्य ज्ञाते हैं। फल भी बड़ेछेके समान होते पोर लडो जहाँ चमड़ा निभाने-के काममें पाते हैं। लडो इसको मजबूत होती पोर सक्तामें लगी है। मूम्न, गाड़ो पोर लान भी इस लडोको पच्छो होती है। इसकी छालमें पोसा रंग चलता है। रंगके पतिरिक्त छाल दुधामें काम पाती है। लाप भी इसमें चलता है। छोटानागपुर पोर मि'ह-भूमिमें चामपान टसरके कोप पियासालके पेड़ों पर पाने पाते हैं। वेद्यकमें पियासाल कीड, विषय, प्रमोह छमि, कफ पोर रक्तविषो दूर करनेवाला तथा लपना पोर कंगोकी हितकारी माना गया है। इसे मज भी कहते हैं।

पियूष (विं० पु०) पीव्य देखो।

पियूष (हिं० पु०) पीव्य देखा।

पिरको (हिं० प्यो०) कुंसा, फोड़िया।

पिरता (हिं० पु०) पटर या काटका टुकड़ा गिर पर दूरेको पुनो राग कर दशाते हैं।

पिरन (हिं० पु०) खोयागीका लंगड़ापन।

पिराक (हिं० पु०) एक पकवान, गोभ्रा, गोभिया। मदेको पतनी लोहके भोतर गुजो, पोषा, निवे पादि लोठिके साथ भरते हैं पोर उमे धरेचन्द्राकार मोड़ कर घोंमें तन कर निकाल लेते हैं।

पिराना (हिं० क्ति०) १ पौड़ा पशुभय दण्डा, सरानु-भूति करना, दुःख पसभना। २ पड़ित होना, दूरे-करना, दुःख।

पिरिच (हि० पु०) कटोरा, तश्तरी ।

पिरिया (हि० पु०) १ एक प्रकारका बाजरा । २ कुएँ से पानी निकालनेका रहट ।

पिरीता (हि० वि०) प्रिय, प्यारा ।

पिरोज (हि० पु०) कटोरा, तश्तरी ।

पिरोजन (हि० पु०) बालकके कान छेदनेकी रीति, कनछेदन ।

पिरोजा (का० पु०) हरापन लिए एक प्रकारका नीला पत्थर । पीरोजा देखो ।

पिरोड़ा (हि० स्त्री०) पोली लड़ो मिट्टीकी भूमि ।

पिरोना (हि० स्त्री०) १ तानी आदिकी छेदमें डालना, खुल, तानी आदिकी किनारी छेदके आर-पार निकालना । २ छेदके सहारे खुल तानी आदिमें फँसाना, खुल-तानी आदिमें पड़ना, गूँथना, जोड़ना ।

पिरोला (हि० पु०) पियरोला पत्ती ।

पिरोहना (हि० स्त्री०) पिरोना देखो ।

पिलई (हि० स्त्री०) बरबट, तापिल्ला

पिलक (हि० पु०) १ भवनक कव्तर । २ पोखी रंगकी एक चिड़िया जो मंगोचि कुक छोटी होती है और जिसका कण्ठहर बहुत मधुर है । यह जंगल में पेड़ों पर चौंक्ता बनाती है और तीन चार मँड देता है, पियरोला, लईक ।

पिलकना (हि० स्त्री०) १ लुटकाना, ठकेलना । २ गिराना ।

पिलकिया (हि० पु०) पोलापन लिए खाको रंगकी एक छोटी चिड़िया जो जाड़के दिनोंमें पञ्जाबमें आसाम तक दिखाई देती है । यह चट्टानों के नीचे बच्चे देती है ।

पिलखन (हि० पु०) पाकरका पंख ।

पिलखना—युक्तप्रदेशकी भलोगढ़ जिलान्तर्गत सिकन्दर-रायकी तहसीलका एक शहर । यह भद्यां २०° ५१' ४०" और देशां ७८° १०' ५०" भलोगढ़ शहरसे ११ मीलकी दूरी पर अवस्थित है । जनसंख्या ५१०८ है ।

पिलखना—युक्तप्रदेशके मोरट जिलान्तर्गत एक नगर, यह भद्यां २८° ४३' ४०" और देशां ७०° ४२' ५०" के मध्य मोरटसे ८५ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है । यहांके अधिवासी अक्सर ऊँटोंके कपड़े बुनते हैं और हथो-

लिए यहां लगभग १०० तान हैं । इसके अलावा यहां कूले और चमड़ेका भी कारबार है । सिपाही-विद्रोहके बाद मसूरी कोठेके अध्यक्षने इस नगरके माथ साथ १३ ग्राम और भी खरीदे थे । यहां हिन्दु, पोंके दो बड़े देवालय हैं ।

पिलड़ी (हि० स्त्री०) कीमा, मसालेदार कोमा ।

पिलचना (हि० स्त्री०) १ तप्पर होना, लीन होना, किसी काममें खूब लग जाना । २ दो आदमियोंका खूब मिहना, लिपटना, मुयना ।

पिलना (हि० स्त्री०) १ एकबारगी प्रवृत्त होना, एकबारगी लग जाना, भिड़ जाना, लिपट जाना । २ घेरा जाना, तलाश निकालनेके लिए दबाना । ३ किसी और एकबारगी टूट पड़ना, ठल पड़ना, झुक पड़ना, धँस जाना ।

पिलपिल (हि० वि०) पिलपिल देखो ।

पिलपिला (हि० वि०) इतना नरम और ठोका कि दबानेसे भीतरका रस या गूदा बाहर निकलने लगे, भीतरसे गोला और नरम ।

पिलपिलाना (हि० स्त्री०) भीतरसे रसदार या गूदेदार वस्तुको दबाना जिससे रस या गूदा ठोका हो कर बाहर निकलने लगे ।

पिलपिलाहट (हि० स्त्री०) दब कर गूदे या रसके ठोले चीनेके कारण आई हुई नरमी ।

पिलवाना (हि० स्त्री०) १ पिलानेका काम करना, दूररेकी पिलानेमें लगाना । २ पेलने या घेरनेका काम कराना, घेरवाना ।

पिलाना (हि० स्त्री०) १ पान कराना, पानेका काम कराना । २ पानेकी देना । ३ किसी छेदमें डाल देना, भीतर करना ।

पिलिन्दमक (स० पु०) यास्कबुद्धके एक शिष्यका नाम ।

पिलिप्पिन (स० स्त्री०) चिकण, चिकना ।

पिलिप्पित्—पीसीभीत देखो

पिलुंडा (हि० पु०) बुद्धिदा देखो ।

पिलु (स० पु०) रागिणीविधेय, एक रागिनी । यह सुवहमें गाया जाना है । पीछ देखी ।

पिलुक (स० पु०) अपि सातीति अपि-सा-वाहलकाम् छे अपरेक्षोप, ततः कन् । पीस का पेंड ।

पितुनी (मं० स्त्री०) मूर्धा, मरोहकली ।

पितुपर्वी (मं० स्त्री०) त्रिमोर्विष पापमस्याः क्षीप, । मूर्धा ।

पित्र (मं० पुं०) द्विषे चक्षुषो यथ्येति (इन् पिटिषिचि य ।

या शः १२१) इत्यत्र " द्विषस्व विस्त्रिष्यास्य चक्षुषी "

इति याति कोलाया पितादिभ्यः । १ छेदयुक्तं चक्षु, एक

नेत्ररोग त्रिममे चांयमे योहा योहा कीचटु बहा करता

६ चोर वे विपविषामी रहती है ।

नाम्नपाय पर शुभामूल, विमूल पाय मिचयुक्त

चारपाय विमै । इस प्रकार जो चक्षुत्र प्रद्युत होता है,

उमे चांयमे लगाने वित्ररोग जाता रहता है । (त्रि०)

२ विह्ररोगयुक्त ।

पित्रका (मं० स्त्री०) पित्रेण छेदयुक्त-चक्षुषा कायतीति

कै-क-टाप् । हृदिनी, हृदिनी ।

पित्रा (हिं० पुं०) कुत्तेका वधा ।

पित्र (हिं० पुं०) पिता पेरका मन्देद नाम कोहा जो

मड़े हुए मल या घाव आदिमें देखा जाता है ।

पित (हिं० पुं०) पित देखो ।

पिवाता (हिं० स्त्री०) पिताता ।

पिम (मं० त्रि०) पिम-कः । १ पावगिसुक्त, पापसे छुट-

कारा पाया हुआ । (कौ०) २ बहुदुष्ट । (पु०) ३ दह ।

पिमह (मं० पुं०) पिमहतीति विम (पिनादिभ्यः-पिट् ।

वृत् १२१०) इति सुत्रेण चक्षुषः स च कित् । १ विह्रल-

वर्ष, वीनापन निद भूरा रंग, धूमसा रंग । २ नाग-

भेद, एक नागका नाम । ३ मनुभेद । (त्रि०)

४ विह्रलवर्णयुक्त, भूरेपीले रंग का ।

पिमहक (मं० पुं०) पिमह-रवार्थे कः । १ विह्रल देखो ।

२ विष्णु, भगवान् ।

पिमहगुटि (मं० त्रि०) भ्रमल-जल-वि-विह्र, पिमह

इव भुटिः भारभूतो यस्य । ईषद्रहवर्ष, कुक्ष नाम

रंगका ।

पिमहसति (मं० त्रि०) पिमहः बहुदुषो सतिधनं यस्य

बहुपमस्यामी, बहुत धनका मालिक ।

पिमहद्वय (मं० त्रि०) पिमहः द्वयं यस्य । द्विरद्वय, पीतवर्ण, दोसे रंगका ।

पिमहमह्य । (मं० त्रि०) नामा रूप, अनेक प्रकारका

द्वय ।

विमहाय (मं० पुं०) विह्रलवर्ष चक्षु, वीनापन निद भूरा रंगका कोहा ।

विमहिका (मं० स्त्री०) विमहः बहुदुषः गिबतीति गिन-

च-मुम-च । १ रोति, पित्तन, पोतन । २ नावा ।

विमाच (मं० पुं०) विमितं मांसमजातीति विमित-मम-

च-त्तः प्रयोदशदित्यात् गितभागस्य भोगः चमभागक

माषादिभ्यः । १ देवयोनिनिमेष, एक होम देवयोनि ।

विमाचगव यस्य चोर राक्षसमे निक्षट है । ये चक्षुक्त

चक्षुषि, मरदेगनिवासी चोर गन्दे कहें गए हैं । २

प्रेत, भूत ।

उद्धितधर्म निषा है—प्रशोषात्तद्वि नूनं दिन

जिमके छद्मेग्रमे हृष साष्टन नहीं होता, समके छद्मेग्रमे

यदि नेकहों यादका चक्षुष्ठान क्यों न हो, तो भी समे

विमाचयोनिमें जन्म सेना पड़ता है ।

"अतोवात्तादित्येति वस्य भोग्यमते हृषः ।

विमाचं नवेतस्य इतिः भावसाधेति ॥"

(छटिपत्र)

विमाचक (मं० त्रि०) विमाचः तन्निवारणं कुगमः,

पाकपादित्यात् कन् । १ विमाच-निवारक-कुगम, भूत

प्रेत पादिको भगानेवासा चोभा । विमाच इव कायति-

कै-कः । २ विमाचतुल्य यस्य गुणक पादि । ३ धर्मत-

विमेष, एक पहाड़ जहाँ समाधिपति कुपेरका नाम है ।

विमाचकपुर—मगरभेद, एक मगरका नाम ।

विमाचकिन् (मं० पुं०) विमाचाः कृत्यस्तेति (बासादी-

वागम्यां कृष्ण् । या शः १२१२८) इत्यत्र "विमाचाच"

इति याति कोलाया इतिः कुक्ष, य । कुपेर ।

विमाचक (मं० पुं०) माघोद्वेष, मिहोरका पेड़ ।

विमाचपट (मं० पुं०) भूतवहनिमेष । इस पट दादा

भाक्काका दोनेसे ऊपर, पटपभायो, परिवर्तनायो,

माराई दुर्गाय, चक्षुक्त चक्षुषि चोर चक्षुक्त, बहुभोजन-

कील, विमनयनालोपवर्षे चोर कभी घूमता या

कभी रोता है ।

विमाचप (मं० पुं०) विमाचः इति इम टक् । १ मीन-

नयं, पोली घरमी । पोली घरमीसे भूतविमाच भाग

जाता है, इसीनिमेष इसका नाम विमाचप पड़ा है ।

(त्रि०) २ विमाचकी नट वा दूर करदेनाका ।

पिशाचचर्या (स० स्त्री) श्लेश्मान-वेधन; जैसा शिवजी करते हैं ।

पिशाचता (स० स्त्री) पिशाचस्य भावः तल्ल स्त्रियां टाप् । पिशाचत्व, पिशाचका भाव या धर्म ।

पिशाचद्रु (स० पु०) पिशाचानां द्रुः, पिशाचप्रियः द्रुवः, निविडत्वादभ्यकारत्वात् पशुचिह्नान्-जातत्वात् । शाखोटवृक्ष, सिहोरका पेड़ ।

पिशाचमोचन (स० स्त्री०) रुक्मद्वाराद्योक्त प्राचीन मोचन-भेद । परागमनन्दन व्यास चण्डाक्षणे रुद्रके समोप व्याधेश्वरकी पूजा कर इस तोय में कपटेश्वर लिङ्गदर्शन के लिए पाए थे । यहाँ काश, देवपिङ्गलपत्र और कपर्दी-श्वर लिङ्गकी पूजा करनेसे रुद्रशेषकी प्राप्ति होती है ।

पिशाचवृक्ष (स० पु०) पिशाचानां वृक्षः, पिशाचप्रियो वृक्षो वा । शाखोटवृक्ष, सिहोरका पेड़ ।

पिशाचसम (स० स्त्री०) पिशाचानां समः, समाने स्त्रीत्वम् । पिशाचोंकी सम ।

पिशाचाक्षय (स० पु०) पिशाचानामाक्षय । पिशाचोंका चर ।

पिशाचि (स० पु०) पिशाचविशेष ।

पिशाचिका (स० स्त्री०) स स्म जटामासो, कोटो जटामासो ।

पिशाचो (स० स्त्री०) पिशाच-डीपः । १ पिशाच-स्त्री । पिशाचवद्वन्मोक्षस्येति अथ, ततो डोप तद्वद् गन्ध-गुहत्वात् सयात् । २ गन्धमांसी, जटामासो ।

पिषिक (स० पु०) देशविशेष, एक देशका नाम । उद्यत्-संहितामें इसका उल्लेख आया है । यह देश कूर्म-विभागके १३, १३ और १४ नक्षत्रमें अवस्थित है ।

पिषित (स० स्त्री०) पिशति-पचयवोभयति-पिष-इतन्, सच कित् वा पिशते स्मेति श् । मांस, गोष्ठ ।

पिषितभुज (स० त्रि०) पिषित भुज-क्रिये । मांसकी, मांस खानेवाला ।

पिषितरोहिणी (स० स्त्री०) मांसरोहिणी ।

पिषितां (स० स्त्री०) पिषितवद्वन्मोक्षस्येति अथ, टाप् । जटामासो, जटामासो ।

पिषितामन (स० त्रि०) मांसभोजी, गोष्ठ खानेवाला ।

पिषिताग्नि (स० त्रि०) मांसभक्षक, गोष्ठ खानेवाला ।

पिषितोटक (स० स्त्री०) कुङ्कुम, केसर ।

पिषिनी (स० स्त्री०) पिषी देखो ।

पिषो (स० स्त्री०) पिशतीति पिष-क, गौरादित्वात्-डोप् । जटामासी, जटामासो ।

पिषोल (स० स्त्री०) पिष वाङ्-ईत् । मृगमयपात्र, मिटोका प्याला या कटोरा ।

पिषुन (स० स्त्री०) पिशतीति पिष-अनन्, स च कित् । (भुषिपिषिमिषः शिवः । उण्, ३।५५) १ कुङ्कुम, केसर । पर्याय—बुद्धय, रत्न, काश्मोर, पीतक, सङ्कोच, पिषुन, घोर, बाङ्गोंका घोर शोणित । २ कपिवृक्ष, नारद । ३ काक, कोषा । ४ पशुधृक्का पुत्र । ५ कौशिकके एक पुत्रका नाम । ६ परस्पर भेदशेष, दुर्जन, इधरकी उधर लगाने-वाला, एककी बुराई दूसरेसे करके भेद डालनेवाला, गुगलुखोर, खल । संस्कृत पर्याय—दिगिह, सूचक, कर्णजप, दुर्जन, दुर्विध, विश्वकट्टु घोर खल तथा अनौचित्यप्रसोधक । ७ नर, दुष्ट । ८ नगर । ९ कापीस, कपास ।

पिषुनता (स० स्त्री०) पिषुनस्य भावः तल्ल, स्त्रियां टाप् । क्रूरता, खलता, गुगलुखेरी ।

पिषुना (स० स्त्री०) पिषुनटाप् । पृष्ठा, पसधंग ।

पिषोभमाद (स० पु०) एक प्रकारका उभमाद या पागल-पन जिसमें रोगी प्रायः खोंवरकी जाध उठाए रहता है, अचिकित्सकता घोर भोजन करता है, रोता तथा गंदा रहता है ।

पिषोर (हि० पु०) हिमालयकी एक भाड़ी जिसकी टहनियोंसे बोझ बांधते हैं और टोकरे आदि बनाते हैं ।

पिपीन—दक्षिण अफगानिस्तानका एक जिला । यह अक्षां० ३०° १०' से ३१° १५' उ० और देशा० ६६° १०' से ६७° ५०' पू० के मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण ३६०० वर्ग मील है । सोरा जिला समतल और समुद्रतटसे प्रायः ५-६ हजार फुट ऊँचा है । उत्तर और पूर्वी श्वर्ती उपविभाग अपेक्षाकृत उन्नत है । पूर्व दिक्का श्वराजा अमरान नामक गिरिपङ्क्त ८८६४ फुट और उत्तरका तोवा नामक शृङ्ग प्रायः ८००० फुट ऊँचा है । अन्तर्वा इससे उत्तरमें कण्डूघोर दक्षिणमें तकातु नामक पर्वत आकाशसे बाँध कर रहता है ।

१८वीं शताब्दीमें यह स्थान बहमनपुरा दुर्गपोके
पधिकासे था। १७२० ई०में बहमनपुराके एकका कुल
पंग गोलातके मोर नामिने लोको चर्चय दिया। यथो-
क्त वंशके पधःपुत्रके बाद पोन्डा राजा बहमनपुराके
पुत्रोंमें राज्यविभक्त हो गया। इस समय विपरीत प्रदेश
अन्धारके सरदारोंके अधिकासे था। १८०१ ई०में
कोण्टा नगर चम्परेजीके अधिकासे हुआ। इसी वर
काकुलके समोरेने पयसा मन्त्र मट हो जानेके भयसे
पुनः आन्दोलन किया। किन्तु उनके विरोध चेष्टा करने
पर भी इस प्रदेश को कर से चम्परेजी-नेमाका पाना
जाना पड़ कर न सका। १८०८ ई०में छत्रिग-नेमाने
विपरीत पर अधिकार किया। १८०८ ई०की २५वीं मई-
को गण्डामरुसमिके पनुसार यह प्रदेश चम्परेजीके हाथ
लगा। तबसे यह प्रदेश चम्परेजी अधिकासे था।
तबसे यहाँ कोई छत्रिगपुत्र सटन नहीं पड़ो है। इससे
१८२० ई०में कन्नार नगरमें याकुम खाँसे चम्परेजी नेमा
परबल होने पर बशाश चम्परेजी-पर्वतवासों कायक-
जाई जातिसे चम्परेजीके विरुद्ध लड़ो हुई। वेहे एक
यकुम खाँकी पराजयके साथ साथ विरोधियोंके जमरत
के कर द्वारा यह विद्रोह माना हुआ था।

इस प्रदेशमें पापकजाई, तरिग, सेयद और काकर
जाति की प्रधान हैं। पापकजाई जाति दुर्गामों ओ-
भक्त और बरकजाई माधामन्मूल है। तरिगप एक
जातिके तीर माधामूल हैं। सेयद और काकर जाति
बाबिन्ध तथा लपिजाति हैं। देगीय व्यवहारमें सबके
मिना यहाँ बाबिन्धवाँ कोई द्रव्य प्रयुक्त नहीं होता है।
काकर, पापकजाई और तरिगप प्रायः कार्योपजमें
भातवर्ष पाया करते हैं। सेयदोंके मध्य पापकजाई
की प्रधान व्यवसाय है। गन्नेर जमरतके
पजिष्टके पयोगसे एक जी पजिष्ट
त्रिमा मानित होता है। विपरीत
पजिष्टका पावाम है। यहाँ
राजकोष और तहसीलदारी का
बाबिन्ध, मध्य पापकजाई
प्रकारका कर नहीं देते हैं। योम
का देगीय लोगोंमें प्रचुर, चट्टाम

यहलकी बिलति प्रवृत्ति रोग फैल जाति है। शीतकालमें
माधारपनः किफड़ेके मध्य जनन और यथादि किफड़ेके
तपक रोग देगीय लोगोंके मशामक है। इन्में लोको
माईं यहाँ भी चार पट्ट हैं; किन्तु योमके मामान्य
रक्षापने दाहक शीतके प्रापत्यके कारण महाममें हो
कठिन रोग हो जाता है।

विट (मं० लो०) विपरीत ज्योति विमन्त्र। १ मोमक,
मोसा। २ विटक, विटो, पोडो।

“अमारदृष्टं पुनं रिटं विटारु पुनं पय।
पयगोदृष्टं मांसे मांसादृष्टं पुनम्।
पुनारदृष्टं वरं सर्वनाम्न व य मधमाय ॥”

(राजतरंग)

पयसे विटक पाठ गुणा फलप्रद है, उसी तरह
विटके दुग्ध, दुग्धमें मांस और मानमें घी पाठ गुणा
पयिक गुणयुक्त है। शरीरमें तेल लगानेमें घीसे भी पाठ
गुणा पयिक उपकार होता है। ३ कचोरी वा पुषा,
रोट। (वि०) चर्चित, विषा हुआ।

विटक (मं० वलो०) विटमय प्रतिकृतिः इत्यर्थे कन्।

१ निवृत्तार्थः। पु०) विटानां विहारः (गङ्गा) वा
१३११४१ इति कन्। २ विट, पोडो, विटो। पयार्थ—
पुष, पापुष, पयुष और विट। विटक बहुत ताकता
होता है। राजवल्गमके मन्त्रमें विटकका गुण—पापकर,
रुच, विदाहो, शुद्ध और दुर्गर है। मानि दास को
विटक प्रयुक्त होता है वह एक और विपरीतमक है।
दानकी पोडो शुद्ध, विटभी और वापुर्बक, मयुक्त तिम,
विटक बलकर, शुद्ध, संहार और हृद्यः; निहंका विटक
शुद्ध, तपक, हृदय और प्रमदक तथा और, पूत और
विटक कककाक, रक्त और
मक, हृद्य, पापु, विपरीतमक
ये वा पुषा, रोट।

विपरीत, मन्त्रको तरह
है।

मं०)

अम

द्विपशतुर्ध्वं स्वच्छं चोर (सप्तम मासवृद्धि-होती है, तब उसे पिष्टकाच नेत्ररोग कहते हैं।

इसकी चिकित्सा-पीपल, सफेद मिर्च। सेन्धव चोर भागर इन सब द्रव्योंका बराबर हिस्सा से एक साथ पीसना चाहिए। बाद उसे मातुलज रस द्वारा अच्छेन प्रस्तुत कर पाँचमं देनेसे पिष्टक रोग जाता रहता है।

“देहो सितमरिचं सैन्धवं भागर समं।

मातुलजरसेऽपिष्टमर्जनं पिष्टकापहम् ॥”

(वैद्यकचर्याणि)

५. शीपक, सौमा धातु। ६. यामिभङ्गविशेष, विशेष प्रकारका पश्चिभङ्ग। ७. मन्दिरुच।

पिष्टप (स० पु०-कली०) विशल्यत्र सूक्ष्मतिन इति (विष्टपिष्टपविशिवेत्तः। वण. १।१४५) इति; कप. प्रत्ययेन निपातनात् साधुः। भुवन, लोक।

पिष्टपचन (स० कली०) पच्यतेऽनेति पच भावारे ल्युट्, पिष्टस्य पचनम्। पिष्टपाकपात्र, पीठो पकानेका वरतन। पर्याय-कटजोप, कटवीप चौर पिष्टपाकभट्ट।

पिष्टपाकभट्ट (स० कली०) पिष्टपाकं क्षदभिहितो भावः द्रव्यवत् प्रकाशते इति न्यायात् पच्यमानपिष्टं विभर्ति भ्रंक्षिप, तुक, च। पिष्टपाकपात्र, पीठो पकानेका वरतन।

पिष्टपिण्ड (स० पु०) पुरोडाश, पिष्टक, पीठो।

पिष्टपुर-मन्नाज प्रदेशके गोदावरी जिल्लाकर्मत एक जमींदारी चौर प्रधान नगर। यह काकनाडसे ६ कोस उत्तर-पूर्व पचा० १०, ६ स० चौर देशा० २२-१८ पू०के मध्य अवस्थित है। इसका वर्त्तमान नाम पिष्टपुरम् है। यह नगर बहुत पुराना है। भूसा-वशेष ही इसका निर्माण है। महाराज ससुदयुक्तके इलाहाबाद-स्थाभिलिपिगाठसे जाना जाता है, कि उन्होंने दक्षिणापथभ्रमणके समय पिष्टपुरराज महेंद्रको पराजित किया था। पहले चालुक्यवंशके प्रतिष्ठाता कुञ्जविष्णुवर्मनके भाई राजा सत्याश्रयके राजत्वकाल (५८४ ई०)में सखीय गिलासिपिमें पिष्टपुर दुर्गके अधिकारी कथा लिखी है। इसके बाद ५५६ शक-संवत्में यह राज्य पश्चिम चालुक्यराज रय पुलकेशीके अधिकारभक्त हुआ। यहां एक प्राचीन देवीमूर्ति

प्रतिष्ठित थी। स्थानविशेषसे वे पिष्टपुरो वा पिष्टपुरिका देवोके नामसे प्रसिद्ध थीं। छहह्रासि १३॥ कोस दक्षिण-पूर्व मानपुर नगरमें इनका पीठ या जिसे जमसाधारण पवित्र तीर्थस्थान मानते थे। यष्टासे प्राचीन सर्वप्रधान मन्दिरके ध्वजस्तम्भमें १११३ शकमें चोलराज द्वारा, ११०८ चौर ११२४ शकमें राजा (विमला-दित्यके जिमाता) राजराजको समयमें सखीय तीम प्राचीन मिसासिपि है।

पिष्टपुर (स० पु०) पिष्टः पूरते इति पूरि कर्मणि णप्। १ बटक, बड़ो, बरो। २ पिष्टकयमोप, एक प्रकारका पीठो। पर्याय-घृतपुर, घृतशर चौर घासिक।

पिष्टपेषण (स० पु०) १ पिष्टे, दुपको पीसना। २ कठो जातको फिर फिर कहना।

पिष्टमय (स० त्रि०) पिष्टस्य विकारः मयट्। पिष्टविकार भस्मादि।

पिष्टमेह (स० पु०) पिष्टमेह रोगो।

पिष्टमेह (स० पु०) प्रमेहरोगविशेष, एक प्रकारका प्रमेह जिसमें चावलके पानीके समान पदार्थ मूत्रके साथ गिरता है। यह पिष्टमेह, प्रोभाके कारण हुआ करता है।

हरिद्रा चौर दाहहरिद्राके साथ कसे सौ चीजका सेवन करनेसे पिष्टमेह जाता रहता है।

पिष्टमेहिन (स० पु०) पिष्टमेह सेकति निहन्तिनि। पिष्टमेहरीगयम्, वह जिसे पिष्टमेह नामक रोग हुआ हो। पिष्टयोगि (स० पु०) खर्पर्योलिका, रोट, कचोरो या पूषा।

पिष्टवत् (स० त्रि०) पिष्ट-भतुप, मस्य व। एत, वज्रला, सफेद।

पिष्टवर्ति (स० पु०) वर्त्तयतीति वर्त्ति-इन्। सुष्ठ तथा मस्रादिका पिष्ट, मृग चौर ममर आदिको पीठो। पर्याय-चमसि।

पिष्टवैलत (स० स्त्री०) पिष्टाक, पीठोका भव।

पिष्टसोरभ (स० पु०) पिष्टेन पेषणेन सोरभं यस्य। चन्दन। इसे पीसनेसे सुगन्ध निकलती है, इसी कारण इसका नाम पिष्टसोरभ पड़ा है।

पिष्टात (स० पु०) पिष्टं भतति गच्छन्तीति भत-णच्। पटवाससर्प, वस्त्रादि, रंगानेके लिए गन्धद्रव्यचर्पः

गुणक, पत्थर। पत्थर—पट्टासक, भूमिगुच्छक।
 पिटासक (सं० पु०) मन्थक।
 पिटासिका (सं० स्त्री०) मन्थन।
 पिटिका (सं० स्त्री०) पिटमुल्लसिकारपत्तेनादापरयेति
 टम्। चामरानि यथाईदृक् सदाभीर या यमलोचन।
 पिटिका (सं० स्त्री०) पिटं घेयं माधनतया चम्पयथा
 इति पिठ-उत्पत्तिः। पिटिद्वय, पोठो, दामखी-दि०।
 दामखी पालोमें मिनी कर चममे भुनी गिरास लेनी
 चारिए। बाट चमे मिना पर पोसनेने पिटिका तैयार
 होती है।
 पिटोड़ी (सं० स्त्री०) अतिरामोका पोषा।
 पिटोदक (सं० स्त्री०) पिटमिश्रितमुदबम्। चूचं-
 तण्डुलमिश्रित जल, पोमे दूध चावलका पानी।
 पिमङ्ग (सं० पु०) पिम-पञ्च, क्रिय। शिख देवो।
 पिमनहारो (हिं० स्त्री०) पाटा पोसनेवालो, यह ली
 क्रिमको जोमिका पाटा पोसनेने जलती हो।
 पिमना (हिं० स्त्री०) १ पिम कर तैयार होनेवालो
 वस्तुका तैयार होना। २ रगड़ दबावसे टूट कर मधीन
 टुकड़ोंमें होना, दाव या रगड़ का कर मुख्य वस्तुमें
 विभक्त होना, चूचं होना, चूर चूर भूल-मा हो जाना।
 ३ परिश्रमसे चालना जाना होना, चालना जाना, चक
 कर चंदम होना। ४ कुचन जाना, दब जाना। ५ चोड़न
 होना, चोर कष्ट, दुःख या हानि उठाना।
 पिमनावा (हिं० स्त्री०) पोसनेका काम कराना।
 पिमाई (हिं० स्त्री०) १ पोसनेकी क्रिया या भाव। २
 पाटा पोसनेका धंधा, चको पोसनेका काम। ३ पोसने-
 को मजदूरी। ४ पोसनेका व्यवसाय या काम। ५
 चालना अधिक ज़रम, बहुत कड़ी मिहनत। जैसे, यहाँ
 मोहों करना बहुत पिमाई है।
 पिमाच (हिं० पु०) पिमाच देवो।
 पिमान (हिं० पु०) चयका शारीक पिमा दूध या चूचं,
 भ्रमको तरह पिमाई चलाकरी चुकनी, पाटा।
 पिमिया (हिं० पु०) एक प्रकारका छोटा चोर सुलायम
 सिंह।
 पिमो (हिं० स्त्री०) सिंह।
 पिमन (हिं० पु०) पिमन देवो।

पिमुनाई (हिं० स्त्री०) सरपट्टी का एक छोटा टुकड़ा
 जिस पर कई मूँचे कर पूनी बनाते हैं।
 पिमेरा (हिं० पु०) एक प्रकारका निग। इसके लप-
 का पिरेगा भूरा चोर मोचिका जाना होता है। इसकी
 लंबाई १ फुट चोर लम्बाई २ फुट होती है। यह
 दाँवभारतमें पाया जाता है। यह बहुत डरपोक होता
 चोर सुगमतासे चाला जा सकता है। यह टिगरी या डर
 कहीं नहीं निकलता चोर पट्टाकी चलाकों को चकमें
 रहता है।
 पिमोनी (हिं० स्त्री०) १ परिश्रमका काम, कठिन काम।
 २ पोसनेका काम, चको पोसनेका धंधा।
 पिमो (सं० स्त्री०) विस्तार।
 पिमर (का० वि०) विस्तरे रंगका, पोसायन लिए
 दरा।
 विस्तार (हिं० पु०) काकड़ाको जानिका एक छोटा पेड़।
 यह हमिरक, ग्राम, पुरासान चोर इटाकरी से कर
 चकगानिस्तान तक यहाँ बहुत होता है चोर इसके
 फलको गिरो चकई मोचोंमें है। पत्ती इसके गुणधोनीके
 पत्तोंमें जैसे चोड़ें चोड़ें होती हैं चोर एक मोचमें
 तीन तीन जगे रहते हैं। पत्ती पर जगे बहुत खट होती
 हैं। फल देखनेमें मोहवकरी-म समते हैं। इसी सरपट्टी-
 के समान एक प्रकारका गंडल चम पेड़में भी निह-
 मता है। विस्तरे पत्ती पर भी काकड़ाओंमेंको तरह
 एक प्रकारकी माँको मो समतो है जो विगोपतः रंगम-
 को रंगईमें काम पातो है। विस्तरे मोचमें बहुत
 मा तेज निकलता है जो दमाके काममें पाता है।
 विस्तोम (हिं० स्त्री०) छोटी बट्टक, तमना।
 विस्तो (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका सिंह।
 विस्त (हिं० पु०) चकनेवाला एक छोटा छोड़ा जो
 मच्छुकीकी तरह खाटा चोर रख पाता है, कुटकी।
 विस्तका (हिं० स्त्री०) मोर, चोपन चोर पड़ीके पादि
 सुन्दर चट्टामे दियीका पोसना।
 विस्त (हिं० पु०) चमके लपट जो पत्ती बिहाई जाती है।
 विस्तन (हिं० पु०) बरतनका टहन, टाकनिको बट्ट,
 टहन।
 विस्तो—हिं० स्त्री०—यदिगं चरदीई हिंसे चलावेत
 गादाबाद तहसीलका एक पालना।

२ उक्त शाहाबाद तहसीलका सदर और प्रधान नगर। यह बच्चा २० ३० १५ ८० और दिया ८० १४ २५ पूंके मध्य अवस्थित है। यहां पूर्व-समुद्रिने बहुत-से निदगन पाये जाते हैं। भकवर शाहके प्रधान-मन्त्री सदर-जहानको बनाई एक मस्जिद और कन्न आज भो टो टो फूटी चवखामें पड़ी है। सुम-लमानोंके समयमें यहां सबसे अच्छी तलवार और 'दश-तार' नामक मगहर पगड़ी बनाई जाती थी। अभी पूर्वकी समृद्धि जातो रही तथा तलवार बनानेके उपयोगी रूपात और देखे नहीं जाते।

विहित (सं० त्रि०) अपि धोयते स्मृति धा-क्त, (रघुवेदि०)। पा ७।४।३२ इति ऋदिगः, अथे रक्षोपः। १ आकादित, द्विपा हुआ। पर्याय—संज्ञित, रुद्ध, आहत, संहत, क्षय, क्षणित, अपभारित, एतद्धित और तिरोधान।

(पु०) २ अर्थानुसार जिसमें किसीकी मनका कोई भाव जान कर क्रिया द्वारा अपना भाव प्रकट करना व्यर्थ न किया जाय।

पिहुवा (हिं० पु०) एक चिड़िया।

पिहोज—गायकवाड़ राज्यके बरोदा विभागके अन्तर्गत एक नगर। यह बच्चा २२ ४० ८० और दिया ७२ ४८ पूंके मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ३२८८ है। यहां एक वर्षावृत्त रक्षक है।

पिहोली (हिं० पु०) एक प्रकारका पौधा। यह मध्य-प्रदेश और बरारसे ली कर बम्बईके आस पास तक होता है। यह पानके बाड़ुमें लगाया जाता है। इसकी पत्तियोंसे बड़ी अच्छी सुगन्ध निकलती है। इन पत्तियोंसे दूध बनाया जाता है जो पचोलीकी गाम्मे मशहूर है।

प्रचौली देखो।

पिहोवा—कर्णाल जिनका एक देगन पेशवा देवो।

पींग (हिं० स्त्री०) पेंग देखो।

पींजना (हिं० क्ति०) रुई धुनना।

पींजरा (हिं० पु०) पिंजड़ा देखो।

पींड (हिं० पु०) १ किसी पीली वस्तुका गोला, पिंडो।

पिंड २ चखेका मध्य भाग, बेलन। ३ पिण्डवज्र नामक फल। ४ देह, शरीर, पिंड। ५ छच्छेह, छल्ला धड़, तना, पेडी। ६ कोरह के चारों ओर गोली मिट्टीका

बनाया हुआ घेरा जिससे ईखकी अंगारियां या छोटे टुकड़े छटक कर बाहर नहीं निकलने पाते। ७ पीछ देखो।

पोहो (हिं० स्त्री०) पिंही देखो।

पोहुरी (हिं० स्त्री०) पिण्डुली देखो।

पो (हिं० पु०) १ पोहोकी बोली। २ पिय देखा।

पोक (हिं० स्त्री०) १ पानके रंगसे रंगा हुआ एक, एकसे मिला हुआ पानका रस, चबाए हुए मोड़े या शिकोरीका रस। २ पहली बारका रंग, वह रंग जो कपड़ेको पहली बार रंगने से होनेमें बढ़ता है। ३ अमृतमल, जल मोच, जलखुवावड़, नाइमवार।

पोकदान (हिं० पु०) एक विशेष प्रकारका बमो हुआ वह बरतन या पात्र जिसमें पानको पोक या थको छोड़ो जाती है, उमासदान।

पोकना (हिं० क्ति०) पिहिकना, पपीहें या कोयलका बोलना।

पीका (हिं० पु०) पल्लव, किसी वृक्षका नया कोमल पत्ता, कोपल।

पीच (सं० पु०) पधरचिबुक, नीचेका जघड़ा।

पीच (हिं० स्त्री०) भातका पचाव, मांड़।

पीचू (हिं० पु०) १ करोलका पका फल, पका कणड़ा या टेंटी। २ एक प्रकारका भाड़, जरदानू, धोन्।

पीक (हिं० स्त्री०) १ पीच, मांड़। २ पचिशकी डुम।

पीका (हिं० पु०) १ पचात् भाग, किसी मनुष्य या वस्तुका वह भाग जो सामनेकी विरुद्ध दिशामें हो, किसी व्यक्ति या वस्तुके पीछेकी ओरका भाग, पुष्ट। २ पीछे पीछे चल कर किसीके साथ लगे रहनेका भाव। ३ किसी घटनाका पचात्पत्ती काल, किसी घटनाके बादका समय।

पीक (हिं० क्ति० वि०) पीछे देखो।

पीछे (हिं० अव्य०) १ अन्तमें, आखिरमें। २ पानेकी पथवा पीठकी विरुद्ध दिशामें, पीछेकी ओर कुछ दूर पर। ३ जिधर सुं हो उसकी विरुद्ध दिशामें, पीछे या सामनेका चलता, पीठकी ओर। ४ किसीकी अविद्यमानता, किसीकी अनुपस्थिति या अभावमें, पीठ पीछे। ५ देग या कालक्रममें किसीके पचात् या उपरान्त, स्थिति या घटनाके विचारसे किसीके अनन्तर कुछ दूर या कुछ देर बाद,

मुमान, चमोर। धनीय-पटमासक, भूमिमुच्छेद।
 विटालक (सं० पु०) मन्त्रचूर्ण।
 विटालिका (सं० स्त्री०) मन्त्र।
 विटिक (सं० स्त्री०) विटमुपनिवारणतन्त्रादिर्येति
 टम्। चावलीनि बगई हुई तदाभीर या बंमलोचन।
 विटिका (सं० स्त्री०) विटं विषयं साधनतया चम्पयश
 रति विड-रुम्, तनटाः। विटद्विदम, पोरो, टानथो-डि०।
 दासको पातोमें मिमो कर लघुमे भुवो निहात सेमो
 चारिए। बाट लसे मिना पर पोसनेमे विटिका तैयार
 होती है।
 विटोको (सं० स्त्री०) खेतारकोका पोषा।
 विटोदक (सं० स्त्री०) विटनिशितमुदकम्। चूर्ण-
 तण्डुलमिश्रित जल, पोसे हुए चावलका पावो।
 विमङ्ग (सं० पु०) विम-चन्द्र, क्रिय। विमङ्ग देवो।
 विमनहाग (हि० स्त्री०) पाटा पोसनेवालो, यह स्त्री
 जिसको जोमिका पाटा पोसनेसे भलभी हो।
 विमना (हि० स्त्री०) १ विम कर तैयार होनेवाली
 वस्तुका तैयार होना। २ रगड़ दबावसे टूट कर महीन
 टुकड़ोंमें होना, टाव या रगड़ खा कर सुष्प लच्छुमिं
 बिभल होना, चर्च होना, खर कर धूल-मा हो जाना।
 ३ परिश्रमसे चलाता खाला होना, चलाता खाला, धक
 कर धंदम होना। ४ कुपन जाना, दब जाना। ५ पोड़ित
 होना, घोर कष्ट, दुःख या दानि लडाना।
 विमनाना (हि० स्त्री०) पोसनेका काम कराना।
 विमार्द्र (हि० स्त्री०) १ पोसनेकी क्रिया या भाव। २
 पाटा पोसनेका बंधा, चक्री पोसनेका काम। ३ पोसने-
 को मजदूरी। ४ पोसनेका व्यवसाय या काम। ५
 चलाता चरित जल, बड़ी कड़ा मिहमत। जैसे, यहाँ
 मोहरी करना बड़ी विमार्द्र है।
 विमाप (हि० पु०) विमाप होनी।
 विमान (हि० पु०) चलाका गारीक विमा हुपा चूर्ण,
 धूलको तरह विमो हुई चलाजकी बुकनी, पाटा।
 विमिदा (हि० पु०) एक प्रकारका छोटा घोर सुखायम
 मिह।
 विमो (हि० स्त्री०) मिह।
 विमृण (हि० पु०) विमृण देवो।

विम्वरह (हि० स्त्री०) मरव-डि०। एक छोटा टुकड़ा
 जिन पर बई खिटे कर मुनी बगति है।
 विम्वरा (हि० पु०) एक प्रकारका निरम। हमसे ऊपर-
 का दिव्य भूरा घोर लोचका कासा होता है। रवर्षी
 जंघाई १ फुट घोर मम्वार २ फुट दोली है। यह
 दक्षिण भारतमें पाया जाता है। यह बड़ा करवो होता
 घोर सुगमतासे चाला जा सकता है। यह दिनकी राह
 कही नहीं निकलना घोर चमरही चहागोको चार्म
 रहता है।
 विमोनी (हि० स्त्री०) १ पश्चिमया काम, कठिन काम।
 २ पोसनेका काम, चक्री पोसनेका धंधा।
 विमो (सं० स्त्री०) विमना।
 विम्वर (सं० वि०) विम्वर रंगका, पोसायन निव
 दरा।
 विम्वरा (हि० पु०) काकड़ाको जातिका एक छोटा पेड़।
 यह दमिरक, आम, पुरामाल और इटाकमे से कर
 चलायानिस्तान तक पाया बहुत होता है। घोर हमसे
 फलको गिने पच्छे मोहमें है। यहाँ हमसे गुलपोमोके
 पत्तोंके जैसे चौड़े चौड़े होते हैं घोर एक मोहमें
 तीन तीन लगे रहते हैं। यहाँ पर लगे हट्ट लवट होती
 हैं। फल देपनेमें बहुतके-से लगते हैं। हमो मरतमो-
 के समान एक प्रकारका गोट कम पेड़मे भी निक-
 लता है। विम्वरके पत्तों पर भी काकड़ापोगीकी तरह
 एक प्रकारकी नाबो मो जमनी है जो विमोपत, रमम-
 की रंगईमें काम पातो है। विम्वरके भाजमे बहुत-
 सा तेल निकलता है जो दनाके काममें आता है।
 विम्वाल (हि० स्त्री०) छोटी बटुक, लमचा।
 विम्वो (हि० स्त्री०) एक प्रकारका मिह।
 विम्वु (हि० पु०) चट्टनेवाला एक छोटा चौड़ा जो
 मच्छड़ोंकी तरह वाटता घोर रह पाता है, फुटकी।
 विडकना (हि० स्त्री०) मोर, कोयल और पपीके पादि
 सुन्दर गजबामे पक्षियोंका कोलना।
 विडरा (हि० पु०) पानके ऊपर भी पानी बिहाई जानी है।
 विडाल (हि० पु०) बरतनका टपन, टाँकनीकी बटु,
 टकना।
 विडालो—१ पपीचा मदेमके बरदोई मिहमे चलायन
 राधाबाद तदमीकका एक चमना।

विद्यो ननु ता व्यापारो यथावर्ती व्याप या ज्ञानम् । १
 मारणेद्यानं, मर ज्ञानं पर, इम कोकमेन रक्ष तासि को
 द्यामे । ० निमित्त, कारण, बदोक्त, बाह्यो, विष,
 सातिर, चर ।

दोत्रन (हि० पु०) भेदोक्त बाध पुनश्चनेको पुनश्चो ।

दोत्र (हि० पु०) निरुद्धो ।

दोत्रा (हि० पु०) निरुद्धा देवो ।

दोत्रन (हि० पु०) निरुद्धा देवो ।

दोत्रा (हि० नि०) १ व्यापार पदं वा कर किमो वपु-
 को कोलाया या बद्धाया, चोत्रो चोद्धा या विपटा करमा ।

२ किमो वपु पर चोत्र पदं चाना, माया । ३ येन केन
 प्रकारेण व्यापितं करमा, किमो न किमो प्रकार प्राप्त
 कर सेना, कटकार सेना । ४ प्रकार करमा, किमो को

प्रोक्तो चोत्र पदवा चोद्धा पदं चाना, किमो कोवपारी
 पर व्यापार करमा, माया, कोला । ५ येन केन
 प्रकारेण किमो कामको समाप्त या सम्पन्न कर सेना,

किमो न किमो प्रकार कर दानमा या कर सेना, । (पु०)
 ६ पादद्, सुवीर्य, पादक । ७ व्यापुको, मातम, विहम ।

दोत्रनिकपम- निमित्तानि दोत्रो ।

दोत्र (म० कवी०) छन्दःप्रविशत्यविमिति, विट-
 चम् । (इत्यम् । पा ३३३३३) बाहुलकात् इत्यारव्य
 दोत्रोः पदमा पोष्यतेति चोद्धा, मां बाहुलकात् ठक ।

१ उपपत्त्यापद, चोद्धा, चोको । प्रयाय-पामन, पदामन,
 चोत्र, विट । २ प्रतिपत्तिं कुपामन प्रपत्ति पामन ।

प्रयाय-निट, सुयो । पदामन साधुपत्तिं चोत्रो
 चोत्र-ठ न लक्षण होता है ।

३ चोत्रो दत्ता याचनेत्यादिवाच्यं ज्ञानीवाच्यं प्रतिपत्तिं चोत्रो ।
 चोत्रो दत्ता प्रतिपत्तिं चोत्रो दत्ता याचनेत्यादिवाच्यं चोत्रो ।

चोत्रो दत्ता प्रतिपत्तिं चोत्रो दत्ता याचनेत्यादिवाच्यं चोत्रो ।
 चोत्रो दत्ता प्रतिपत्तिं चोत्रो दत्ता याचनेत्यादिवाच्यं चोत्रो ।

चोत्रो दत्ता प्रतिपत्तिं चोत्रो दत्ता याचनेत्यादिवाच्यं चोत्रो ।
 चोत्रो दत्ता प्रतिपत्तिं चोत्रो दत्ता याचनेत्यादिवाच्यं चोत्रो ।

चोत्रो दत्ता प्रतिपत्तिं चोत्रो दत्ता याचनेत्यादिवाच्यं चोत्रो ।
 चोत्रो दत्ता प्रतिपत्तिं चोत्रो दत्ता याचनेत्यादिवाच्यं चोत्रो ।

चोत्रो दत्ता प्रतिपत्तिं चोत्रो दत्ता याचनेत्यादिवाच्यं चोत्रो ।
 चोत्रो दत्ता प्रतिपत्तिं चोत्रो दत्ता याचनेत्यादिवाच्यं चोत्रो ।

चोत्रो दत्ता प्रतिपत्तिं चोत्रो दत्ता याचनेत्यादिवाच्यं चोत्रो ।
 चोत्रो दत्ता प्रतिपत्तिं चोत्रो दत्ता याचनेत्यादिवाच्यं चोत्रो ।

सुपयोक्त कहते हैं । यथावा इत्ये सुप, जप, दम, निदि
 चोर सम्पत् नामक चोर भी पाँच पोठ है । इन पाँचों
 में प्रत्येक पोठ क्रमशः धन, भोग, सुख, विषय चो
 वाप्तिनकदायक है । जो पोठ सम्पत् चोर चोद्धा-
 र्थ समान है, वही सुपदायक है, यथावा विप्र मत्ता-
 इन करता है ।

जो पोठ सम्पत् चोद्धा में दो हाथ चोर ल'बाई में
 पाप हाथ हो, उसे जारक तथा जो सम्पत्, चोद्धा
 चोर ल'बाई में बार हाथ हो, उसे राजपौठ कहते हैं ।
 यह राजपौठ समो प्रकारका चर-प्रदान करता है चोर
 इसी पर राजाधीनता प्राप्तकरता समिये करता है ।
 सम्पत्, चोद्धा चोर ल'बाई में जो पोठ हा' हाथ हो,
 समका नाम बेसिपोठ है । यह बेसिपोठ राजाधीन
 पितृविरोधके लिये ही बनाया जाता है ।

सम्पत्, चोद्धा चोर ल'बाई में जो पोठ च हाथ
 हो, उसे पद्मपोठ कहते हैं । यह पोठ विविध सुखदायक
 माना गया है । राजपौठ कनक दास चोर जय तथा
 सुपपोठ शैव्य द्वारा बनाया चाहिये । जल तोमर पोठ
 केवल राजाधीन हो व्यवहार्य है । राजपौठके पात्र
 कहते हैं चोर जयपोठके पुत्री, भोगी जानी है । जारक-
 में मत्तनाम होता है चोर सुपपोठमें सुख मिलता है ।
 शैव्यपोठमें बीस चोर धनपति तथा ताम्रपोठमें तिन
 चोर मत्त-सुख होता है । जो पोठ ल'बाटन कार्थ में
 तथा यथावत् समो कार्थ में समय है । इनके प्रतिपत्ति
 पोठक, सोम चोर रामे यदि यथावत् पात्रधर्म के
 रूप पोठ मत्त, मत्त, मत्त प्रदान करते हैं ।

विशेषण-—विशेषणपोठ भी पूर्वोक्त पात्रपोठकी
 तरह सुप चोर परिमाण कामना चाहिये । मित्रानिमित्त
 राजपौठ केवल दम्पका ही होता है, दूसरे किसीका भी
 नहीं । इसी प्रकार सुप चन्द्रादिका भी एक एक पोठ
 है । इनमेंसे सुपका पोठरागमें, पद्मका चन्द्राकागमें,
 राजका मरकतमें, मयिका नीलकागमें, बुधका गो-
 मिदकमें, शरवणिका कटिकमें, दक्षका मेघुमें चोर
 मत्तका पोठ प्रदानमें बनाया जाता है । यथावा इत्ये
 चर पद्म में जो व्यक्त विष पदकी दमार्थ प्राप्त सेवा
 उपका कभी पदके सम्पत्ति में निर्दिष्ट पोठ व्यवहार्य

होगा, किन्तु स्फटिकपीठ जितितपितो'के ही व्यव-
हाय हैं। राजाओं'के भविष्य, यात्रा उत्सव, जय,
काय'पयवा मंत्रांम आदि विषयोंमें भव्यस्तान्तरचित
पीठ ही प्रयुक्त है। राजाओं'की वर्षाकालमें गावहर्चित
पीठ पर तथा मेघ-गोज भके समय विग्रह रत्नमय पीठ
पर बैठना चाहिये। एतद्विन्न विलोमकालीन उनके
साधारण प्रस्तरनिर्मित पीठ ही प्रयुक्त हैं।

काष्ठपीठ।—काष्ठपीठका भी पक्षिकी तरह परिमाण
जानना चाहिये। गाभारीनिर्मित जयपीठ सम्पत्ति
और सुखकर, जारक-रोमनायक, सुख ग्रन्थनायक,
सिद्धिसर्पाय नायक और वैरनिवारक है। गाभारी
हृत्तकी तरह पनस, चन्दन और बकुल आदि हृत्तों'से भी
जय, जारक और शुभादि नामक पीठ बनता है। इन
सब पीठों'का भी जितिविशेष है विशेष विशेष फल
कहा गया है। एतद्विन्न सुगन्धि कुसुमशोभी ओ सब
सारवान हृत्त हैं, उनसे प्रस्तुत पीठों'का भी बकुलकी
तरह-गुणागुण जानना चाहिये। इसी प्रकार न्युद
पयवा लघु जो सब शुक्ल काष्ठ हैं, तत्तिर्मित पीठों'का
भी गाभारी-काष्ठजाल पीठों'की तरह कार्य और गुण है।
इनके बाद जो सब हृत्त फलवान, सारवान और रत्नवान-
सारविशिष्ट हैं, उनसे प्रस्तुत पीठकी भी पानसपीठके
जैसे गुणशास्त्री समझना चाहिये।

निर्मित पीठ।—सब प्रकारके धातुजाल पीठों'के मध्य
कीर्तनिर्मित पीठकी ही शास्त्रों'में निन्दित वतलाया है।
इसी प्रकार शिलापीठमें शार्कर और कर्करपीठ वज-
नीय हैं। काष्ठपीठके मध्य सारहीन और पत्यन्त सार-
वान तथा विषहृत्तजालपीठ दोषाह है।

“निर्धनो निर्दिष्टः पीठो लोहपथः सर्वथा दुजे।

शिलोपः शार्करो बर्जरः कर्करश्च निषेधतः॥

काष्ठेषु च पीठेषु साधारण नातिशयिणः॥” तथाहि—

“धामजम्बुकुन्दम्यानामार्चनं धंसनायम्॥”

(युक्तिरसह)

भोजना मत कुक्ष'और है। उनका कहना है, कि
गुरुपीठ ही गौरवजनक और लघुपीठ लाघवकर है।

“गुरुः पीठो गोस्वाम्य लघुकीर्तयकारकः॥” (भोज)

पीठके सम्यग्धर्मे पराशरने इस प्रकार कहा है,—

जो पीठ न तो पयिहोन है और न पत्यन्त पयिगाली
ही है, वही सुख और सम्पत्तिका कारण होना है।
शिशोण धातु, शिला और काष्ठ द्वारा पीठकी तरह
भन्ध जो सब वस्तु बनाते हैं, उनका भी गुण दोष और
परिमाण साधारण पीठकी तरह ही आदिष्ट हुआ है।
जो विधि-भनुसार पीठके गुण दोष पर विचार कर
व्यवहार करते हैं, वे ही लक्ष्मी पाते हैं। लक्ष्मी
कभी भी उनका घर नहीं छोड़ती। जो व्यक्ति-पञ्चान
पयवा मोहवशतः शास्त्रविधिका सहज कर पीठके
सम्यग्धर्मे पयिगाली व्यवहार करते हैं, उनकी लक्ष्मी, प्रायः,
वस और कुल एकबारगी विनष्ट हो जाता है।—

“नामभिनोतिप्रविद्य ना शुर्ववमाहतिः।

पीठः स्यात् शुल्लम्पद्वै नातिरीर्यो न वानतः॥

ये चाम्ये पीठसदृशा दृष्याः शित्पविनिर्निताः।

गुणान्दोषांश्च धान्ध तेषां पीठवदादिशेत्॥

विचारयन्नि विधिरा यः शुद्धपीठमाचरेत्।

तस्य लक्ष्मीरियं वैश्व कदाचिन् विदुष्यति॥

महानादपवा मोहात् योऽप्यपि पीठमाचरेत्।

एतानि तस्य नश्यन्ति लक्ष्मीरायुर्वै कुले॥”

(युक्तिरसह पराशर)

इयथीयपञ्चरात्र और ज्ञानरत्नकीर्तने इस पीठका
विषय बहुत बड़ा चढ़ा कर लिखा है।

इ सम्यग्धर्मे निमित्त उपस्थान-भेद। जिन सब
स्थानोंमें रह कर अर्पादि करके सिद्ध होते हैं, वे सब
स्थान पीठ नामसे प्रसिद्ध हैं। ४ दक्षयज्ञके बाद विष्णुके
चक्रसे सतीका अक्षययज्ञ जहां जहां गिरा था, वही
स्थान देवापीठ नामसे स्थात हुआ है। इन सब स्थानों-
की पूज्यता और पवित्रताके सम्यग्धर्मे पुराणादिमें इस
प्रकार लिखा है,—सत्ययुगमें एक समय दक्षप्रजापतिने
शिवसे अवमानित हो लक्ष्मि नामक एक यज्ञका
आरम्भ किया। प्रजापति दक्षने उस यज्ञमें शिव और
अपनी कन्या सतीकी छोड़ कर यावत् त्रिभुवन-वासी-
की निमन्त्रण किया। पित्राजयमें महाशमारीहसे यज्ञ
हो रहा है, यह सुन कर सतीने निमन्त्रण नहीं पाने पर
भी पित्रहृद ज्ञा यज्ञ देखना चाहा और महादेवके
निकट अपना भविष्य प्रकट किया। शिवको तो पक्षे

[illegible]

- ७४। पयोयी
७५। कृतग्रीव
७६। कार्त्तिक
७७। उत्पलावर्त्तक
७८। शेषसङ्ग्रह
७९। सिद्धवन
८०। भरतायम
८१। जालन्धर
८२। किष्किन्धवर्षत
८३। देवदारुवन
८४। काश्मोरमण्डल
८५। हिमाद्रि
८६। कपालमोचन
८७। कावावरीवृष
८८। शङ्खोद्धार
८९। पिण्डारक
९०। चन्द्रभागा
९१। चण्डोद
९२। वेष्ठा
९३। बदरी
९४। उत्तरकुर्व
९५। कुरदीप
९६। हंसकूट
९७। कुसुद
९८। अश्वत्थ
९९। कुर्वराज्य
१००। वैदेवदन
१०१। शिवसन्धि
१०२। देवलोच
१०३। अश्विमुख
१०४। सुपत्तिम्ब
१०५। माण्डमथा
१०६। सतीमथा
१०७। स्त्रीमथा
१०८। चित्तम
- पिङ्गसिखरो।
सि'ङ्गिका।
चतिशङ्खरी।
सोमा।
सुभद्रा।
सञ्जो।
शनङ्गा।
विश्वमुखो।
तारा।
शुष्टि।
सिधा।
भीमादेवो, तुष्टि,
विश्वेश्वरो।
शुष्टि।
माता।
धरी।
धृति।
कक्षा।
शिवधारिणो।
चन्द्रता।
सर्वश्री।
भोपधि।
कुसोदका।
मर्मपा।
सत्यवादिनो।
वन्दनीया।
निधि।
गायत्री।
पार्यतो।
इन्द्राणो।
सरस्वता।
प्रभा।
संयुक्ता।
भरुन्धती।
तिलोत्तमा।
वज्रकलाधोर
शरीरिणी शक्ति।

एकान्तमन्त्रे पीठ नामों के और पीठके देवताओं का स्मरण करनेसे देहिमात्र हो निम्निल पापमें मुक्त हो कर देवी लोक जाते हैं। यात्रा करके इन सब स्थानोंमें जा कर यदि कोई पुरस्करण आदि सत्कार्य करे, तो उनके सभी कार्य सिद्ध होते हैं। (देवीमा० ७३० अ०)

कुलिकातन्त्रके ७म पटलमें जो सब स्थान सिद्ध पीठ बतलाये गये हैं, उनके नाम नीचे दिये जाते हैं—

मायावती, मधुपुरी, काशी, गोरक्षचारिणी, डिङ्गला, जलन्धर, ज्वालामुखी, जगदसम्भव, रामगिरि, गोदावरी, नेपाल, कर्णखण्ड, महाकर्ण, चण्डोद, कुसुमेव, सिङ्गल, मण्डिपुर, हृषीकेश, प्रयाग, तपोवन, बदरी, त्रिवेणी, गङ्गासागरसङ्ग्रह, नारिकेला, विरजा, कमला, विभक्ता, माङ्गलतोपुरी, वाराणसी, त्रिपुरा, वामनती, नोलवाचिनी, गोवर्द्धन, विन्ध्यगिरि, कामरूप, चण्डाकर्ण, चण्डयपोव, साधव, सौराष्ट्रम और वैद्यनाथ। एतन्निव पुष्कर, गया-चौख, चण्डयवट, वराहपर्वत, चमरसण्टक, नर्मदा, यमुना, पिङ्गा, गङ्गादाह, विदेवक, श्रीमोलपर्वत, कलम्ब, कुलिक, श्रुगुत्तर, वेदार, कौन्त्या, ललिता, सुगन्धा, शङ्कशरोरु, कर्णतोय, महागङ्गा, मण्डिकायम, कुमार, प्रभास, सरस्वती, अगस्त्याश्रम, कन्याश्रम, कौपिकी, सरयू, ज्योतिषर, कासीदक, उत्तरमानस, वैद्यनाथ, कालज्जरगिरि, रामोद्भेद, गङ्गोद्भेद, भद्रेश्वर, लक्ष्मी-उद्भेद, कावरी, सोमेश्वर, शक्ततीर्थ, पटना, महावीधि, नगतीर्थ, रामेश्वर, मेघवन, ऐश्वर्यवन, गोवर्द्धन, पञ्चमिय, हरिश्चन्द्र, प्रयूदक, इन्द्रनील, महानाद, मेनाक, पञ्चाक्षर, पञ्चवटी, पर्वटिका, गङ्गाविषयप्रसङ्ग, प्रियनाद, यट, गङ्गा, रामाचल, कृष्णमोचन, मोतमेश्वर तीर्थ, वशिष्ठतीर्थ, चारित, ब्रह्मावर्त्त, कुमावर्त्त हंसतीर्थ, पिण्डारकवन, हरिहार, बदरीतीर्थ, रामतीर्थ, जयन्त, विजयन्त, विजया, सारदातीर्थ, भद्रकालेश्वर, अश्वतीर्थ, श्रीवती नदी, अश्वप्रदतीर्थ, सप्तगोदावर, किङ्गीतीर्थ, किरीटतीर्थ, विशालतीर्थ, हन्दावन और गणेश्वरतीर्थ।

इन सब स्थानोंमें देवगण, महर्षिगण, पित्रगण और अन्यान्य सिद्धगण हमेशा वास करते हैं। अतः और भक्ति-युक्त हो कर इन सब स्थानोंमें धर्म कर्म करनेसे शीघ्र ही सिद्धि लाभ होता है। कुलिकातन्त्रमें पूर्वोक्त पीठस्थान

ऐलापुर

पियालमाग

गोवर्ग

हरिसन्द

पुरखन्द

स्यदक

मेनाक

इन्दनील

महानाद

महावन

पञ्चाक्षरः

पञ्चवटी

वटिका

सर्ववर्ष

सङ्गम

विश्व

नन्दवट

गङ्गावाटावन

पार्यावर्त

स्यमोचन

पट्टाव

तन्म

वशिष्ठ

हारित

महाराष्ट

कुशावर्त

महातीर्थ

पिण्डारवन

गङ्गाधार

वीरा

{ दुर्गा,
सुवेगा,
सुरसुन्दरी ।

{ कात्यायनी,
महादेवी ।

शुभेश्वरी ।

पुरेश्वरी ।

महावेगा ।

पखिलवर्हिनी ।

{ महाकान्ता,
रत्नवेगा ।

माहेश्वरी ।

महातेजा ।

सारङ्गा ।

तमास्वनी ।

वटीमी ।

सुरङ्गिणी ।

विश्वगङ्गा ।

विश्ववासिनी ।

महानन्दा ।

गिवा ।

महार्या ।

विस्तृति ।

सामुष्ठा ।

{ श्रीगोतीश्वरी ।
वेदमयी ।
महाविद्या ।

पञ्चवती ।

हरिणाद्यो ।

{ मञ्जेश्वरी ।
गायत्री ।
गावित्री ।

कुशमिया ।

हृषीकेश्वरी ।

{ सुरमा ।
सन्धा ।

{ नारायणी ।
वैष्णवी ।

वदरीतीर्थ

रामतीर्थ

जयन्त

वैजयन्त

सारदा

सुभद्र

भद्राकाटेश्वर

हयतीर्थ

विदिग्धा

वेदमस्तक

सुवती

महानदी

त्रिपाद

क्षामिङ्ग

मातृदेश

करवीरपुर

मानव

सप्तगोदावरतीर्थ

देवर्षि

अयोध्या—भवानो,

सधुरा—साधवी,

हन्दावन—हन्दा, गोपेश्वरी, राधा, कात्यायनी, महा-

माया, भद्रकाली, कलावती, चन्द्रमाला, महा-

योगा, महायोगिन्यधीश्वरी, वज्रेश्वरी, योगोदा,

वज्रमोकुलेश्वरी ।

काञ्ची

अवन्ती

विद्यापुर

नीलपर्वत

सेतुबन्ध

पुण्योत्तम

नागापुरी

भद्राङ्ग

तमोलिति

श्रीविद्या ।

महाधृति ।

जयन्ती ।

{ अपराजिता ।
विजया ।
महापुष्टि ।

सारदा ।

भद्रदा ।

{ मन्था, महाभद्रा
महाकाली ।

गर्वेश्वरी ।

वददा ।

वेदमाता ।

महाविद्या ।

महोदया ।

चण्डा ।

वसिमिया ।

अगमाता ।

मती ।

रङ्गिणी ।

परमेश्वरी ।

पखिलेश्वरी ।

जयमङ्गला ।

देवकी, यादवेश्वरी ।

तथा और भी जो सब स्थान एवं तदधिप्राप्ती देवताओंके नाम हैं, वे भी लिखिद्वय किये गये हैं:—

पुष्कर	कमलाक्षी ।
गया	गयेश्वरी ।
पञ्चयट	पञ्चया ।
धर्मरूपक	धर्मरानी ।
वराहपर्वत	वाराही ।
नर्मदा	नर्मदा ।
यमुनामल	जालिन्दी ।
गङ्गा	शिवाम्बिका ।
देविकायाम	पद्मा ।
सरयूतीर	शारदा ।
श्रीर	कनकेश्वरी ।
समुद्रवङ्गम	ज्योतिर्मयी ।
श्रीपर्वत	श्री ।
कालोदक	काली ।
महातीर्थ	महोदरी ।
उत्तरमानस	नीला ।
मतङ्ग	मातङ्गिनी ।
विष्णुपाद	शुभाक्षि ।
स्वर्गसाग	स्वर्गदा ।
गोदावरी	गवेश्वरी ।
गोमती	विमुक्ति ।
विपाशा	महावशा ।
शतद्रु	शतरूपा ।
चन्द्रभागा	चन्द्रभागा ।
परावती	परावती ।
सिद्धितीर	सिद्धिदा ।
पञ्चनद	{ दया, दक्षिणा ।
भोजस	वीर्यदा ।
तीर्थसङ्ग्राम	सङ्ग्रामा ।
बाहुदा	भक्तता ।
पुरुषोत्तम	परप्रेमदा ।
भारतायाम	भारती ।
नेमिपारण्य	सुकृपा ।
जम्बू	वाण्डरानना ।

विद्याला	विद्यालक्ष्मी ।
मुण्डपुष्ट	शिवाम्बिका ।
कनकचुल	{ यज्ञा, मनीष्वरी, सुहृद्वि ।
मानस सरोवर	{ सुवैशा, सुमसा, गौरी ।
मन्दापूर	महानन्दा ।
कलितपूर	कलित ।
ब्रह्मशिरः	ब्रह्माक्षी ।
इन्दुमती	पूर्णमा ।
सिन्धु	भक्तिप्रिया ।
जाङ्गवी-सङ्ग्राम	{ हक्ति, लक्ष्मी ।
बहुसिता	पुष्पा ।
प्रया	पावनाग्निनी ।
यक्ष्महरण	घोररूपा ।
स्वर्गोद्भेद	{ महाकासी ।
महावन	प्रवला ।
भद्रेश्वर	{ भद्रा, भद्रकाली ।
विष्णुपद	विष्णुप्रिया ।
नर्मदोद्भेद	दाक्षिणा ।
कावरी	कपिलेश्वरी ।
कृष्णवेला	भेदिनी ।
संभेद	शुभवाग्निनी ।
शक्रतीर्थ	यक्षा ।
प्रभास	ईश्वरी ।
महाबोधि	महाबुद्धि ।
पाटक	पाटलेश्वरी ।
नागतीर्थ	{ सुवसा, नागेशी ।
मदनिका	{ मदनो, प्रमदा, मदनिका ।
मेघवास	{ मेघस्वना, विष्णु, सोदोमिनी ।
रामेश्वर	महाबुद्धि ।

शिलापुर	बीरा ।
पियालमार्ग	{ दुर्गा, सुखेशा, सुरसुन्दरी ।
गोवर्धन	{ कात्यायनी, महादेवी ।
हरिधन्व	शुभेश्वरी ।
पुरसन्ध	पुरेश्वरी ।
पृथ्वी	महादेवी ।
मेनाक	अखिलवर्द्धिनी ।
इन्द्रनील	{ महाकाला, रत्नवेशा ।
महालाद	माहेश्वरी ।
महावन	महातीजा ।
अष्टाधरः	सारङ्ग ।
पञ्चवटी	तपस्वनी ।
वटिका	वटीशी ।
सर्ववर्ष	सुरेश्वरी ।
सहस्र	विश्वगङ्गा ।
विश्व	विश्ववासिनी ।
नन्दवट	महानन्दा ।
गङ्गावाटीचन	शिव ।
पायोवत्	महाय्या ।
नृपनीचन	विभुति ।
अष्टहास	चामुण्डा ।
तन्त्र	{ श्रीगौतमेश्वरी । वेदमयी । महाविद्या ।
वशिष्ठ	परमेश्वरी ।
हरित	हरिणाथी ।
महावत्	{ नृगेश्वरी । गायत्री । गायत्री ।
कुशावत्	कुशप्रिया ।
महातीर्थ	हंसेश्वरी ।
पितृहासकन	{ सुरमा । धन्या ।
गङ्गाहार	{ नारायणी । वैष्णवी ।

चदरीतीर्थ	श्रीविद्या ।
रामतीर्थ	महाधृति ।
जयन्त	जयन्ती ।
वैजयन्त	{ अपराजिता । विजया । महाशुद्धि ।
सारदा	सारदा ।
सुभद्र	भद्रदा ।
भद्राकारेश्वर	{ मध्या, महाभद्रा महाकाशी ।
हृयतीर्थ	गर्वेश्वरी ।
विदिशा	वेददा ।
वेदमस्तक	वेदमाता ।
शुक्ती	महाविद्या ।
महानदी	महोदया ।
त्रिपाद	षण्ढा ।
कामकिङ्क	वलिप्रिया ।
मातृदेश	अगन्माता ।
करवीरपुर	मती ।
मानव	रक्षिणी ।
सप्तगोदावरतीर्थ	परमेश्वरी ।
देवर्षि	अखिलेश्वरी ।
अयोध्या—भवानो,	जयमङ्गला ।
सधुरा—माधवी,	देवकी, यादवेश्वरी ।
हृन्दावन—हृन्दा, गोपेश्वरी, राधा, कात्यायनी, महा-	
माया, भद्रकाली, कालावती, चन्द्रमाला, महा-	
योगा, महायोगिन्यश्वरी, वरेश्वरी, योगोदा,	
वज्रगोकुलेश्वरी ।	
काञ्ची	कनककाञ्ची ।
धवन्तो	अतिशयनी ।
विद्यापुर	विद्या ।
नीलपर्वत	विमला ।
सेतुबन्ध	रामेश्वरी ।
पुत्रपोत्तम	विमला ।
नागापुरी	विरजा ।
भद्राक्ष	भद्रकर्षिका ।
तमोचिति	तमोनी ।

तथा भीर भी ओ सब स्त्रीए एव' तदविज्ञासी देवताकोनि
नाम है, वो भी लिपिबद्ध किये गये हैं:—

पुष्कर	कमलाक्षी ।
गया	गयेश्वरी ।
चक्षुष्य	चक्षुषी ।
चमरकण्ठक	चमरी ।
वराहपर्वत	वाराही ।
नर्मदा	नर्मदा ।
यमुनाजल	जालिन्दे ।
गङ्गा	गङ्गा ।
द्विजलिकायम	यम ।
सरयूतीर	शारदा ।
शोच	कनकेश्वरी ।
समुद्रसङ्गम	लोतिमयी ।
श्रीपर्वत	श्री ।
कालोदक	काली ।
महातीर्थ	महोदरी ।
सप्तरमानस	नीला ।
मतङ्ग	मातङ्गिनी ।
विष्णुपाद	शुक्लपिङ्ग ।
स्वर्गमाग	स्वर्गदा ।
गोदावरी	गङ्गाेश्वरी ।
गोमती	विशुद्धि ।
विषाखा	महावला ।
शतद्रु	शतद्रुणी ।
चन्द्रभागा	चन्द्रभागा ।
ऐरावती	ऐरावती ।
सिद्धितीर	सिद्धिदा ।
पञ्चगद	{ दक्षा, दक्षिणा ।
भोजन	वीर्यदा ।
तोषसङ्गम	सङ्गमा ।
बाहुदा	भनन्ता ।
पुरुषोत्तम	पुरुषोत्तमा ।
भरतायम	भारती ।
नेमिपारण्य	सुकथा ।
पाण्ड	पाण्डवाना ।

विद्याला	विद्यानाक्षी ।
मुष्टपुष्ट	गिवाभिका ।
कनकल	{ यक्षा, मनीश्वरी, शिवशक्ति ।
मानस सरोवर	{ सुवेगा, सुमला, गोरी ।
मन्दापुर	मङ्गलमन्दा ।
ललितापुर	ललिता ।
नङ्गाशिरः	नङ्गाणी ।
इन्दुमती	पूर्णमा ।
सिन्धु	शक्तिप्रिया ।
जाङ्गवी-सङ्गम	{ वृत्ति, स्वधा ।
वहुसिता	पुष्पा ।
प्रया	पापनाशिनी ।
शङ्ख-चरण	घोररुपा ।
खर्गोद्दे	महाकाली ।
महावन	प्रवला ।
भद्रेश्वर	{ भद्रा, भद्रकाली ।
विष्णुपद	विष्णुप्रिया ।
नर्मदोद्दे	दाक्षणा ।
कावेरी	कपिलेश्वरी ।
जम्बूवेष्ठा	भेदिनी ।
संभेद	शमवाशिनी ।
शुक्लतीर्थ	यक्षा ।
प्रभास	ईश्वरी ।
महाबोधि	महासुद्धि ।
पाटल	पाटलेश्वरी ।
नागतीर्थ	{ सुदक्षा, गान्धारी ।
मदन्ति	{ मदन्ती, प्रमदा, मदन्तिका ।
मेघवाध	{ मेघरचना, विष्णु, श्रीदामिनी ।
रामेश्वर	महाशक्ति ।

ऐलापुर	वीरा ।
पियालसाग	{ दुर्गा, सुवशा, सुरसुन्दरो ।
गोमहंन	{ कात्यायनो, महादेवो ।
हरिचन्द्र	शुभेश्वरो ।
पुरचन्द्र	पुरेश्वरो ।
पृथुदक	महावेगा ।
सेनाक	अखिलवर्हिनी ।
इन्द्रनील	{ महाकान्ता, रत्नवशा ।
महानाद	माहेश्वरी ।
महावन	महातेजा ।
अष्टाक्षरः	सारङ्ग ।
पञ्चवटी	तयस्वनी ।
वटिका	वटीशी ।
सर्ववर्ण	सुरङ्गिणी ।
सहस्र	विश्वरङ्गा ।
विश्वर	विश्ववाचिनी ।
नन्दवट	महानन्दा ।
गङ्गावाटाचल	मिवा ।
आर्यावर्त	महाय्या ।
वदयमोचन	विमुक्ति ।
अट्टहास	चामुण्डा ।
तन्त्र	{ श्रीगीतेश्वरी । वेदमयी । महाविद्या ।
वशिष्ठ	अरुन्धती ।
हारित	हरिपात्री ।
अष्टाक्षर	{ अजेयरी । गायत्री । शक्ति ।
कुमावर्त	कुम्भप्रिया ।
महातीर्थ	हृदयेश्वरी ।
पिङ्गारकवन	{ सुरमा । धन्या ।
गङ्गाहार	{ नारायणी । वैष्णवी ।

बदरीतीर्थ	श्रीविद्या ।
रामतीर्थ	महाधृति ।
जयन्त	जयन्ती ।
वैजयन्त	{ अपराजिता । विजया । महाशक्ति ।
छारदा	छारदा ।
सुभद्र	भद्रदा ।
भद्राकालेश्वर	{ मध्या, महाभद्रा महाकाली ।
हयतीर्थ	गवेष्वरी ।
विदिशा	वेददा ।
वेदमस्तक	वेदमाता ।
सुवती	महाविद्या ।
महानदी	महोदया ।
त्रिपाद	चण्डा ।
कागसिङ्ग	वसिप्रिया ।
भास्वदेश	अगमाता ।
करवीरपुर	सती ।
मानव	रङ्गिणी ।
सप्तगोदावरतीर्थ	परमेश्वरी ।
देवर्षि	अखिलेश्वरी ।
अयोध्या—मवानो,	जयमङ्गला ।
मथुरा—माधवी,	देवकी, यादवेश्वरी ।
हृन्दावन—हृन्दा, गोपेश्वरी, राधा, कात्यायनी, महा-	
माया, भद्रकाली, कलावती, चन्द्रमाक्ष, महा-	
योगा, महायोगिन्यश्वरी, वन्द्येश्वरी, योगोदा,	
वज्रगीकुलेश्वरी ।	
काञ्ची	कनककाञ्ची ।
अवन्ती	अतिशयनी ।
विद्यापुर	विद्या ।
नीलवर्ण	विमला ।
सेतुबन्ध	रामेश्वरी ।
पुष्पोत्तम	विमला ।
नागापुरी	विराजा ।
भद्राश्व	भद्रकर्मिका ।
तमोलिप्ति	तमोनी ।

सागरमङ्गल	स्वाहा ।
मङ्गलश्री	मङ्गला ।
राट्ट	मङ्गलचण्डिका ।
शिवपीठ	स्वाभावसुखी ।
मन्दर	भुवनेश्वरी ।
कामीघाट	गुह्यकाली, महेश्वरी ।
करोट	किरीटेश्वरी, महादेवी ।

इसके बाद पर्यान्त पीठस्थान और तदधिष्ठित-शिव तथा शक्ति के नाम दिये जाते हैं—

स्थान ।	देवता ।	शिव ।
चमरीश	चण्डिका (माहेश्वरी)	कुम्भसुन्दर ।
प्रभास	पुष्करेश्वरी	सोमनाथ ।
निमिष	प्रभा, शिवानी	महेश्वर ।
पुष्कर	पुरङ्गता	राजगन्धि ।
श्रीपर्वत	मायावी, शङ्करी	त्रिपुरास्वक, श्रीमेश्वर ।
रुद्रेश्वर	त्रिशूलिनी	त्रिशूली ।
पास्तातकेश्वर	सूक्ष्मा	सूक्ष्म ।
गणेश्वर	मङ्गला	प्रणितामेव ।
कुवचेश्वर	स्याणमिया	स्याण ।
शृङ्गनाभ	स्वायम्भूषा	स्वयम्भू ।
कनकेश्वर	शिवशक्तभा	उद्य ।
पट्टहास	महानन्दा	महानन्द ।
विमलेश्वर	विश्वमिया	विश्वगम्भू ।
महेश्वर	महानाका	महाशक्त ।
भोमपीठ	भोमेश्वरी	भोमेश्वर ।
वह्नापथ	भुवनेश्वरी	भव ।
चन्द्रिकट	वद्राणी	महायोगी ।
श्विमुख	विशालाक्षी	महादेव ।
महामाया	महामाया	रुद्र ।
भद्रकण	भद्रा, कर्णिका	महादेव ।
सुपर्ण	उत्पन्ना	सङ्गन्नाथ ।
स्याणपीठ	श्रीधरा	स्याण ।
कमलाक्षपीठ	कमलाक्षी	कमल ।
परण	सन्ध्या	जर्जरता ।
सापीठ	पीठसुखेश्वरी	महाकीट ।

(कुम्भसुन्दर ७५०)

पीठके नाम-सम्बन्धमें इस प्रकार नामा-धर्मों नामा-प्रकारके मत देखे जाते हैं । दुःखका विषय है, कि इन सब धर्मोंमें कुछ भी एकता नहीं है । चण्डामणि पादि तन्त्रोंमें जो इकावन पीठोंकी कथा है, यह पहले हो कहा जा चुका है; किन्तु उसके साथ चमटा-मङ्गलकी पीठ-संख्या नहीं मिलती । भारतचन्द्रके धर्ममें जिन सब पीठों के नाम प्रकाशित हुए हैं, उनमेंसे ८ का विलक्षण नहीं है । उसका कारण भी साफ साफ मान्य नहीं होता । सर्वेति दय चंगोकी दय पीठ माना है । और पीठ स्थानमें दय महाविद्यादेवी और दय भैरवकी देवस्वरूपमें निर्देश किया है । किन्तु इस सम्बन्धमें पुनश्च मतभेद देखा जाता है । तन्त्रके मतमें जहाँ दयाशक्ति गिरी हैं, वहाँ भैरवकी नाम कमला वा कल्याणी और भैरवका नाम वैशोमीश्वर पड़ा है । फिर चण्डामणि-तन्त्रमें लिखा है, कि कामाख्यामें ही केवल दय महा-विद्याकी मूर्ति है । प्रवाद है, कि फावगुन और चैत्रमास कोट कर धर्म-मसयमें उसके दर्शन नहीं होते ।

शिवरचित नामक धर्ममें नामा-धर्मोंका व्यवसायन करके कुल ७० पीठोंका वर्णन है जिनमेंसे ५१ महापीठ और शेष १९ उपपीठ हैं । यथा—

महापीठ ।

	चण्डक नाम	जहाँ वे गिरे हैं	भैरवकी नाम	भैरवकी नाम
१	अक्षरध	चिह्नना	कीटो	भौमतीधन
२	त्रिनेत्र	सर्कर	महामर्दिगो	मौधीय
३	नेत्रागता	तारा	तारिणी	उन्मत्त
४	वामकण	भरतीघाट	चवर्ण	वामेश
५	दक्षिणकण	श्रीपर्वत	सुन्दर	सुन्दरानन्द
६	नामिका	सुगन्धा	सुन्दर	वामेश
७	मन्त्र	वक्रगाय	पावशर	वक्रगाय
८	वामकण	गोदावरी	विश्वमात्रका	विश्वेश
९	दक्षिणकण	गण्डकी	गण्डकीचण्डी	वक्रगाय
१०	जर्जरदन्त	पनस	नारायणी	मन्त्रेश
११	चण्डीदन्त	पञ्चभार	वाराणसी	महाेश्वर
१२	त्रिङ्गा	स्वाभावसुखी	पन्थिका	पट्टेश्वर
१३	कण्ठ	कामोद	महामाया	विश्वेश

१४	वीरवा	श्रीहर्ष	महापद्म	सर्वोत्तम	४५	वासपद	तिरहुते	धर्मगौ	धर्म
१५	श्रीधर	भैरवपर्वत	भयन्ती	मन्त्रकर्ण	४६	दक्षिणपद	त्रिपुरा	त्रिपुरा	नल
१६	धर्म	प्रभास	चन्द्रभागा	वक्रतुण्ड	४७	दक्षिण- पदाङ्गुलि	चौरघास	योगाश	चौरखण्ड
१७	धर्म	प्रभासखण्ड	सिद्धेश्वरो	सिद्धेश्वर	४८	दक्षिण- पदाङ्गुलि	कानीवाट	कानिका	नकुलेश
१८	चिदुक्त	जनस्थान	भ्रातरी	विक्रताल	४९	वासपुनः	विमान	भीमरुपा	कपाली
१९	दक्षिण- पदाङ्गुलि	प्रयाग	कमला	वेणोमाधव	५०	दक्षिणपुनः	कुम्हिन	सम्भरी वा विमला	सम्भर
२०	दक्षिण- पदाङ्गुलि	मान- सरोवर	दावायणो	हर	५१	वासपदा- ङ्गुलि	विजयेश्वर	विजयशक्तिनी	पुण्यभाजन
२१	दक्षिण- पदाङ्गुलि	चन्द्रपाम	भवानो	चन्द्रशेखर	उपपीठ ।				
२२	वासपुनः	मिथिला	महादेवो	महोदर					
२३	दक्षिणपुनः	रत्नावली	मिथवा	मिथवा कुमार					
२४	वासपुनः	सण्णिक	गणेशो	गणेश वा सर्वोत्तम	१	किरीट	किरीटकोष	भुवनेश्वरी	किरीटो
२५	दक्षिण- मणिक	मणिक	सावित्री	सावित्री	२	कैय	कैयजाल	धर्मा	भूतेश
२६	वासपुनः	उजालि	मङ्गलचण्डो	कपिलाश्वर	३	कुण्डल	वाराणसी	विद्यानाथी	काकभैरव
२७	दक्षिण- कपूर	रणखण्ड	बहुमन्त्री	महाकाश	४	वासपुनः	उत्तरा	उत्तरिणी	उत्तरादन
२८	वासपुनः	बहुला	बहुला	भीमक	५	दक्षिणपुनः	ननस्थान	भ्रमरी	विष्णुपति
२९	दक्षिणपुनः	वक्रेश्वर	वक्रेश्वरो	वक्रेश्वर	६	भोगेश	भट्टहास	पुष्करा	विष्णुनाथ
३०	वासपुनः	जालन्धर	त्रिपुरामातुलो	भोगेश	७	दन्ता	सहर	शूरेश	शूरेश
३१	दक्षिणपुनः	रामगिरि	मिथानो	चण्ड	८	चक्रिष्ट	नोखाचल	विमला	जगन्नाथ
३२	हृदय	वैद्यनाथ	नवदुर्गा वा नवदुर्गा	वैद्यनाथ	९	कण्ठहार	भयोध्या	भक्तपुष्पा	हरिहर
३३	शुद्ध	वैद्यनाथ	विपुला	यमनकर्म	१०	हाराश	नन्दपुर	नन्दिनो	नन्देश्वर
३४	नामि	वल्गुन	विजया	जय	११	श्रीश्री	श्रीश्री	सर्वेश्वरो	चर्चितानन्द
३५	जठर	हरिहार	भैरवो	वक्र	१२	मिथोश	कालोपीठ	चण्डेश्वरो	चण्डेश्वर
३६	कुचि	कोकानुख	कोकेश्वरो	कोकेश्वर	१३	पञ्च	चक्रहोष	चक्रधारिणी	शूलपाणि
३७	कल	काकोदेय	वैद्यनाथ	कुच	१४	पाणिपद्म	यमो	यमोश्वरी	मृचण्ड
३८	वासपुनः	कालमाधव	कालो	भक्तिताङ्ग	१५	कराश	सतीचल	सुनन्दा	सुनन्द
३९	दक्षिण- नितम्ब	नमदा	सोखाची	भद्रदेव	१६	स्वाश्याश	हन्दावन	कुमारी	कुमार
४०	महासुद्ध	कामरूप	कामाख्या	वाराणन्द वा समानन्द	१७	चर्वो	गौरीश्वर	युगाद्या	भीम
४१	वासपुनः	मानय	शुभचण्डी	ताम्र	१८	मिरानलि	ननहाटी	सैफालिका	योगीश
४२	दक्षिणपुनः	विस्तीर्ण	चण्डिका	सदानन्द	१९	कल्याण	सर्वशोभ	विश्वमाता	दण्डपाणि
४३	वासपुनः	नायकी	जयश्री	क्रमदीश्वर	२०	नितम्बा	शोष	भद्रा	भद्रेश्वरी
४४	दक्षिणपुनः	नैपाल	महाभाया	कपाली	२१	पदश	त्रिस्तोता	पावती	भैरवेश्वर
			वा नवदुर्गा		२२	नपुर	जडा	दन्ताची	रत्नेश्वर
					२३	चर्मो	कटक	कटकाशी	वासदेव
					२४	लोम	पुण्ड्र	सर्वोद्योगो	सर्व
					२५	मोमखण्ड	तेजस्व	चण्डदायिका	चण्डेश्वर
					२६	मंगनाथ	श्वेतवर्ण	लया	महाभीम

पक्ष में जिन सब पीठस्थानोंके नाम लिखे गये हैं, मानवमात्र हो यदि उन सब स्थानोंमें जा कर दान, होम, जप और स्नान करें, तो वे अक्षयपुण्य संचय कर सकते हैं।

(फाजिनापुराण १८, ५० और ६१ अध्यायमें पीठके विषयमें अनेक कथाएँ लिखी हैं।)

५ किसी मूर्तिके नीचेका आधारपिण्ड, मूर्तिको सब धामनयन भाग जिसके ऊपर वह खड़ी रहती है। ६ किसी वस्तुको रहनेकी जगह। ७ ति'हासन, राजासन, बेदी, देवपीठ। ८ प्रदेश, प्रांत। ९ बैठनेका एक विशेष ढंग, एक धामन। १० कंसको एक मन्त्रोका नाम। ११ एक विशेष ससुर। १२ वृत्तके किसी अंगका पूरक।

पीठ (हिं० स्त्री०) प्राणियोंके शरीरमें घेटीकी दूसरी ओर का भाग जो मनुष्यमें पीछेकी ओर ओर तिर्यक पड़्यो, पक्षियों, कोड़े मछोड़े आदिमें शरीरमें ऊपरकी ओर पड़ता है। पृष्ठ देखो। २ किसी वस्तुकी अनावटका ऊपरी भाग, घेटीका समता।

पीठक (सं० पु०) १ धामन, चौकी, पीड़ा। २ छल्ल धामन।

पीठकामोजा (हिं० पु०) कुश्तीका एक घे'च। इसमें जब जोड़ कंधे पर बायाँ हाथ रखने पाता है, तब दाहिने हाथसे उबकी उठा कर ससटा देते हैं और कलाईके ऊपरके भागको इस प्रकार पकड़ते हैं, कि अपनी कोड़नी उसके कंधेके पास जा पहुँचती है, फिर भट पेंतरा बदन कर जोड़को पीठ पर जानेके इरादेसे बहते हुए बाएँ हाथसे बाएँ पाँवका मोजा उठा कर गिरा देते हैं।

पीठकंड'डे (हिं० पु०) कुश्तीका एक घे'च। इसमें जब खिलाड़ी जोड़की पीठ पर होता है, तब गड़'खी बगलसे ले जा कर दोनों हाथ गढ़न पर चढ़ाने चाहिये और गढ़नकी टबाने हुए भीतरी चढ़ानी टांग मार कर गिराना चाहिये।

पीठकेलि (सं० पु०) पीठे धामने केला नर्मादि यस्य। पीठमर्द-नायक।

पीठग (सं० त्रि०) पीठे गच्छतीति गम-उ। १ पीठगामो, पीठसे चलनेवाला। २ पीठसर्प, जफा, सगढ़ा।

पीठगर्भ (सं० पु०) १ देवमूर्तिकी प्रतिष्ठाके लिए मूल-देख्य गर्भ, यह गढ़ा जो मूर्तिकी अमानिके लिए पीठ (धामन) पर खोद कर बनाया जाता है। २ पीठ-विबर।

पीठवक्र (सं० पु०) रथविशेष, प्राचीनकासका एक प्रकारका रथ।

पीठदेवता (सं० स्त्री०) आधारशक्ति पादि देवता। पीठनायिका (सं० स्त्री०) १ किसी पीठस्थानकी अधि-ष्ठात्रीदेवी। २ भगवती, दुर्गा।

पीठन्यास (सं० पु०) पीठे न्यासः। तन्त्रसारोक्त न्यासमीद, एक प्रकारका तन्त्रोक्त न्यास जो प्रायः सभी तान्त्रिक पूजाओंमें आवश्यक है। आधारशक्ति पादि पीठदेवताके प्रत्यक्ष पादि नमोऽस्त द्वारा अर्थात् मन्त्रके पादिमें ओं ओर अन्तमें नमः शब्द उच्चारण कर न्यास करना होता है। प्रायः सभी पूजाओंमें पीठन्यास आवश्यक है। तन्त्रसारमें इस न्यासका विशेष विवरण लिखा है।

न्यास शब्द देखो।

पीठपुरि—दाक्षिणात्यके अन्तर्गत एक प्राचीन धाम। विष्टुर देखो।

पीठभू (सं० स्त्री०) प्राकारसमीपस्थ भूभाग, प्राचीरके पास पासकी जमीन।

पीठमर्द (सं० पु०) मृदातीति मृद-घञ्, पीठस्य धास-मस्य मर्दः। १ नायकविशेष, नायकके चार माथाओंमेंसे एक जो बचनचातुरीसे नायिकाका मानमोचन करनेमें समर्थ हो। पीठमर्द नायक नायकसे साधारण गुणसे अल्प गुणविशिष्ट और नायकका प्रधान सहायक है। यथा, रामचन्द्र, सुग्रीव आदि। इसका लक्षण—

“दृशुर्बलिन इषात् तस्य आशंसिकेऽतिबृत्ते वृ।

किञ्चित्तद् गुणहीनः सहाय एवास्व पीठमर्दकः॥”

(साहित्यदर्पण)

रथमश्वरीके मतसे—यह नायक कुपित, क्षोभसादक और नर्मसंचित है। २ नायकमित्र। ३ पति छट, बहुत दोष।

पीठविबर (सं० पु०) पीठगर्भ देखो।

पीठवर्ष (सं० त्रि०) पीठे वर्षति सप्त-घञ्। वर्ष, सगढ़ा।

पीठसर्पिन् (सं० द्वि०) पीठेन सर्पेतीति शृणु-पिनि ।
खड्ग, लंगड़ा । पर्याय—पांशुर ।

पीठस्थान (सं० स्त्री०) पीठस्य स्थानम् । १ देवताधिष्ठित
स्थान । पीठ देखो । २ सिंहासनवत्तीक्ष्णोके अनुसार
प्रतिष्ठान (आधुनिक भूँखी) का एक नाम ।

पीठा (हिं० पुं०) एक पकवान । यह चाटेकी छोड़्योंमें
जने या छरदको पीठो भर कर बनाया जाता है । पीठोमें
भजक, मसाला आदि दे कर चाटेकी छोड़्योंमें उसे भरते
हैं और फिर छोड़का मुँह बन्द कर उसे गोल, चौकोर,
या चिपटा कर लेते हैं । फिर उस सबको एक बरतनमें
पानीके साथ भाग पर चढ़ा देते हैं । कोई कोई उसे
पानीमें न उबाल कर केवल भाप पर पकाते हैं । चीमें
नुपक कर खानेसे यह अधिक स्वादिष्ट हो जाता है ।
पूरवकी तरफ इसकी फरा या फारा भी कहते हैं ।
कदाचित् इस नामकरणका कारण यह हो कि एक जानी
पर छोड़का पीठ फट जाता है और पीठी भसकने लगती
है । २ पीठी । ३ पठा देखो ।

पीठि (हिं० स्त्री०) पीठ देखो ।

पीठिका (सं० स्त्री०) १ आसन, चौको, पीठी । २ मूर्ति
वा स्तुभादिका मूलभाग । ३ अंग, अवयव ।

पीठी (सं० स्त्री०) पीठ हव्यार्थे स्त्री० । १ आसन,
पीठी ।

पीठी (हिं० स्त्री०) पानीमें भिगो कर पीसी हुई दान
विशेषतः छरद या गुँगकी दाल जो बरे, पकौड़ी आदि
बनाने प्रयत्नवा कचौरीमें भरनेके काममें आती है ।

पीड़ा (हिं० स्त्री०) १ खिर या बाँझों पर बाँधा जानेवाला
एक प्रकारका पाशुपत्य । २ पीड़ा देखो । ३ मिट्टीका
आधार जिसे छड़ेकी पीठ कर बढ़ाते समय उसके भीतर
रख लेते हैं ।

पीड़क (सं० पुं०) १ यन्त्रणादाता, दुःखदायी, पीड़ा देने
या पड़वानेवाला । २ अत्याचारी, उत्पीड़क, सतांनेवाला ।
३ प्रत्यक्ष आदि चर्मरोगविशेष । बालक और बालि-
कादिने ताण्डदेशमें पीड़क रोग होता है । ताण्डपीठक देखो
पीड़न (सं० स्त्री०) पीड़नाथे अथवा हे या भावे-क्युट् ।
१ अत्यादिसम्बन्ध देशकी परस्पर द्वारा पीड़न, परराष्ट्र-
पीड़न, आक्रमण द्वारा किसी देशको बर्बाद करना । २

दुःख देना, यन्त्रणा पड़वाना, तत्कलीक देना । ३
मर्दन, दवानेकी क्रिया, किमो वस्तुको दबाना, चांपना ।
४ सच्छेद, विनाश । ५ अभिभव, तिरोभाव, छोप ।
६ सायहग्रहण, सूर्य, चन्द्र आदिका ग्रहण । ७ निपीड़न,
पेरना, पेलना । ८ किसी वस्तुकी भलीभाँति पकड़ना,
दबोचना । ९ छोड़ेकी पोव निकालनेके लिए दबाना ।
१० उत्पीड़न, अत्याचार ।

पीड़नीय (सं० द्वि०) पीड़-अनीयर् । १ पीड़ा, पीड़न
करने योग्य, दुःख पड़वाने लायक । (पुं०) २ मन्त्री
और सेनासे रहित राजा । ३ चार प्रकारके शत्रुओंमें
एक ।

पीड़ा (सं० स्त्री०) पीड़नमिति पीड़-पङ् । शारीरिक
या मानसिक क्षोभका अनुभव, वेदना, व्यथा, तत्कलीक ।
संस्कृत पर्याय—बाधा, व्यथा, दुःख, अमानस्य, प्रसू-
तिज, कष्ट, क्लृप्ति, आभील, चबाधा, आमानस्य, रजः,
वेदना, आर्त्ति, तीद, श्वा ।

शरीरादिमें जनक तरहके रोग हैं । शरीरगत रोग
ही पीड़ा कहलाता है । पीड़ामात्र ही कष्टदायक है ।

शास्त्रोक्त नियमोंका लङ्घन करनेसे पीड़ा उत्पन्न
होती है । आत्माके पीड़नकी ही पीड़ा कहते हैं ।
दुःखमात्र ही पीड़ा पदवाच्य है । यह दुःख वा पीड़ा
आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिकके भेदसे तीन
प्रकारकी है । आध्यात्मिक प्रकृति दुःखका विवरण दुःख
शब्दमें देखो ।

पीड़ाका मूलकारण अधर्म है । अधर्म पाचरणसे
दुरदृष्ट उत्पन्न होता है । दुरदृष्टवृत्तः ही रोग, शोक
आदि तरह तरहकी पीड़ाएं होती हैं । जिससे दुरदृष्ट
उत्पन्न न हो सके, ऐसा ही पाचरण विधेय है ।

वात, पित्त और श्लेष्मा ही सभी रोगों वा पीड़ाओं-
का मूल है । सभी पीड़ाओंमें इनका लक्षण देखनेमें
आता है । यह जगत् जिध प्रकार सत्त्व, रजः और
तमः इन तीन गुणोंके बिना नहीं रह सकता, उसी
प्रकार देहव्यति रोग वायु, पित्त और कफ ये तीन छोड़
कर और किसी भी उत्पन्न नहीं होता । दोष, धातु
और मर्मेके परस्पर सम्बन्धभेद, स्थानभेद और कारण
भेदसे देहव्यति रोग जनक प्रकारका होता है । सत्रधातुके

दूषित होनेसे जो सब रोग उत्पन्न होते हैं, वे रक्तज, रक्तज, मर्मज, मेदज, पित्तज, मूत्रज और श्लेष्मज आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे रक्तचातुके दूषित होनेसे पचने पर्यङ्ग, पक्षि, पपाक, पद्मसर्प, खर, हस्तज, पक्ष्म, शरीरको सुक्ष्मता, पाण्डू, छद्मोग, मार्म का उप-रोग, लज्जाता, मुखको क्षिरमत्ता, पचमन्त्रता, पचान्तमें पचनेका मुकुटना और जलका पचना आदि विकार उत्पन्न होते हैं। शोणितके दूषित होनेसे कुष्ठ, पीडक, विमर्षभोजिका, निज, व्यङ्ग, मूत्रस्र, शीघ्रा, गुदम, वातरक्त, प्रमां और रक्तपित्त आदि रोगोंकी उत्पत्ति होती है। मांसके दूषित होनेसे पचिर्मांस, पर्वद, पचिर्निद्रा, गन्धगण्डिका आदि मांस सघात आदि विकार, मेदके दूषित होनेसे ग्रन्थि, हाड, गन्धगण्ड, मूत्र, पोषकोप, मधुमेह, अतिशय लता और अतिशय घमनिर्गम प्रवृत्ति विकसित। अस्थिके दूषित होनेसे पथ्यस्थि, पथिदन्त, अस्थितोद और कुम्भ आदि विकार। मज्जाके दूषित होनेसे तमोदृष्टि, मूर्च्छा, भ्रम, शरीरको सुक्ष्मता, चर और जङ्गाकी स्थलता आदि पीड़ा। श्लेष्मके दूषित होनेसे श्लेष्मता, श्लेष्मशरीर और श्लेष्ममेष प्रवृत्ति पीड़ा तथा मलाशयके दूषित होनेसे त्वक, रोग, मूलरुद्ध वा अतिशय निःशरण्यादि पीड़ा उत्पन्न होती है।

शारीरिक किमो इन्द्रिय स्थानके दूषित होनेसे इन्द्रिय-कार्यको अप्रवृत्ति पचवा स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। दोष कृपित हो कर शरीरके सब स्थानोंमें दीवृता है। शरीरके मध्य जिन स्थानमें घन कृपित होयके सङ्गमें अन्य दोष विद्युष हो जाता है, उड़ी स्थानमें पीड़ाकी उत्पत्ति देखी जाती है।

इस प्रकार सम्बद्ध होता है, कि खरप्रवृत्ति रोग वायु, पित्त तथा कफ इन तीनों दोषोंका नित्य प्राप्य किया करते हैं। किन्तु निरन्तर प्राप्य एकान्त पच-भव है, क्योंकि ऐसा होनेसे सभी प्राणियोंको नित्य पीड़ित रहना पड़ता है। वायु, पित्त और कफ खरका प्रवृत्त मत्पत्र होने पर भी यह पचवात्तरभावमें खरादि-म-रोगोंका निमित्त नहीं रहता। जिन प्रकार विद्युत्, वात, वर्षा और वन ये सब प्राकृतिक बौद्ध कर प्राप्य प्रकाश नहीं पाते, पचय वे नित्य प्राकृतिकमें नहीं रहते,

किमो अन्य कारणके योगमें प्राकृतिकमें उत्पन्न होते हैं, खर भी उन्हीं प्रकार अन्य कारणमें वायु, पित्त और कफ का प्राप्य में खर प्रताप पाते हैं। तरङ्ग पचवा बुद्धुद निम प्रकार जलसे निम्न नहीं है प्रपच जलके रहनेमें ही उसमें निरवच्छिन्न तरङ्ग या बुद्धुद नहीं रहता, अन्य कारणमें वे जलमें उत्पन्न होते हैं, उन्हीं प्रकार खरादि पीड़ा भी अन्य कारणयोगमें वायु, पित्त और कफसे विगहनेमें प्रकाशित होती है।

पुरुषमें जब दुःखभोग होता है तब उसे पीड़ा कहते हैं। पक्षि निष्ठा जा चुका है, कि दुःख तीन प्रकारका है, प्राध्यात्मिक, प्राधिदैविक, और प्राधिभौतिक। ये तीनों प्रकारके दुःख सात प्रकारकी व्याधिग्रामें प्रवृत्ति होते हैं। उनके नाम हैं प्रादिबलजात, जलबलजात, दीध-बलजात, सघातबलजात, कालबलजात और स्वाभाविक-जात। श्लेष्मोपित्त दोषमें कुल चर्म प्रवृत्ति की प्रवृत्ति पीड़ा होती है, उसे प्रादिबलजात कहते हैं। प्रादिबलजात पीड़ा दो प्रकारकी है—मात्र और पित्तदोषजात। मात्रदोष प्रवृत्त जलमान्ध, वधिर, मूत्र और वामन प्रवृत्ति। मात्र-दोष दो प्रकारका है, रम और दीधदन्तनित। पातक पचवा मिथ्या-प्राकार विहार-जनित रोग ही दीधबलजात है। यह रोग दो प्रकारका है, शारीरिक और मानसिक। शारीरिक दोषकी भी फिर दो भेद हैं, प्रासाग्य प्रायित और पक्षाग्य प्रायित। ये सब पीड़ा प्राध्यात्मिक नामसे प्रसिद्ध हैं।

प्रागन्तु रोग ही सघातबलजात व्याधि है। प्रागन्तु व्याधि दो प्रकारकी है—मत्पत्रातजनित और हिंस्-जन्तुजात। प्रागन्तु पीड़ा दो प्राधिभौतिक है। शीत, ज्वर, वात, वर्षा आदि कारणोंमें जो पीड़ा होती है, उसे कालबलजात पीड़ा कहते हैं। यह पीड़ा फिर दो प्रकारकी है—खरुपिप्रप्य और स्वाभाविक खरु-ज्जित। देवद्वेष्ट और पचिर्मापप्रवृत्त पचवा पचव-वेदोक्त पचिर्माप तथा उपमर्गजनित पीड़ा देव बल-जनित कहनाती है। प्राधिदैविक पीड़ा भी दो प्रकारकी है—मत्पत्रात और पितावादिजन। दुष्ठा, पितावा, जरा, मृत्यु और निद्रा आदि स्वाभाविकजात पीड़ा है। फिर इसके भी दो भेद हैं, कालजात और प्रकाशजात।

जाय यत्न करने पर भी जिसका निवारण नहीं किया जा सकता, मरु-कालजन्म और जो बिना यत्नके ही होती है, वही स्यात्सम्भूत पीड़ा है ।

(वृषत सुखत्या० २५ अ०)

१ कृपा, दया । २ शिरोमाला, सिरमें लपेटो हुई माला । ३ एक सुगन्धित चोपधि, घृण सरल ।

"पीडा कृपा शिरोमाला उपमैसारुद्रपु १" (मेदिनी)

पीडाभञ्जीरसं (सं० पु०) रक्षोघमभेदः प्रस्तुत प्रणाली—
पञ्चमस्य तीनभाग, पारद एक भाग, गन्धक एक भाग,
जायफल बीज दो भाग, टङ्कणसार तीन भाग इन सब
द्रव्योंको जम्बरीके रसमें घोस कर चोपध तैयार करनी
चाहिए । इसको माला बिरके बराबर तथा अनुपान
शुद्धकाष्ठिक है । इसके सेवनसे ज्वररोग जाता रहता है ।
पीडास्थान (सं० स्त्री०) पीड़ायां स्थानं ६-तत् । पीडा
का स्थान । रात्रिके उपचय पर्याप्त लगनेसे तोखरे, छठे,
दशमं और द्वादशमं स्थानके प्रतिरिक्त स्थानको पीडास्थान
कहते हैं, परमू भ्रमर्षीके स्थान ।

पीडितः (सं० लि०) पीडितः पथवा पीडास्थ जातिति
तारकादित्वादितच । १ व्यथित, दुःखित, जिसे व्याधा
या पीडा पहुँची हो, क्लेशयुक्त । २ पीडायुक्त, रुज,
रोगी, बीमार । ३ चण्डिक, नष्ट किया हुआ । ४ मर्दित,
दबाया हुआ, जिसपर दाव पहुँचाया गया हो । भावे-त्त ।
(बली०) ५ पीडा, दुःख । ६ स्त्रियोंके कानका छेद,
कर्णभेद । (पु०) ७ तन्त्रवागीश मन्त्रभेद, तन्त्रधारमें
दिए हुए एक प्रकारके मन्त्र ।

पीडुरी (हि० स्त्री०) पिंडी देखो ।

पीडा (हि० पु०) चौकीके आकारका आसन विशेषतः
हिन्दु लोग इस पर भोजन करते समय बैठते हैं । इसकी
सम्झाई छेद दो छाय, चौड़ाई दोन या एक छाय और
जंघाई चार छः पङ्क्तिके लगभग अधिक नहीं होती ।
अधिकतर यह कामकी लकड़ीसे बनाया जाता है । धनी
लोग संगमरमर और राजा महाराज शीने चाँदी आदिके
भी पीढ़े बनवाते हैं, पीठक पीठ ।

पीडी (हि० स्त्री०) १ किसी वंश या कुलमें किसी
विशेष व्यक्तिसे आरम्भ करके उससे ऊपर या नीचेके
पुरुषोंका गणनाक्रमसे निश्चित स्थान, किसी विशेष कुल-

की परम्परामें किसी विशेष व्यक्तिकी सन्ततिका क्रमागत
स्थान, किसी व्यक्तिसे या उसकी कुलपरम्परामें किसी
विशेष व्यक्तिसे आरम्भ करके बाप, दादे, परदादे आदि
पथवा बेटे, पोते, परपोते आदिके क्रमसे पहला दूसरा
चौथा आदि कोई स्थान, पुत्र । पीडोका हिंसाय ऊपर
और नीचे दोनों ओर चलता है । किसी व्यक्तिसे पिता
और पितामह जिन प्रकार क्रमसे समझी पहली और
दूसरी पीढ़ीमें है, उसी प्रकार उससे पुत्र और पोत्र भी
हैं । परन्तु अधिकतर स्थानोंमें चकेता पीडी शब्द नीचेके
क्रमका ही बोधक होता है ; ऊपरकी क्रमका सूचक
बमानेके लिए प्रायः इसके प्रागे "ऊपरको" ऐसा विशेष-
पथ लगा देते हैं । यह शब्द मनुष्यों कीके लिए नहीं
बल्कि सब पिण्डज तथा चण्डज प्राणियोंके लिए भी
प्रयुक्त हो सकता है ।

२ किसी जाति, देश पथवा लोकमण्डल मात्रके
बीच किसी कालविशेषमें होनेवाला समस्त समुदाय,
आशविशेषमें किसी विशेष जाति, देश पथवा समस्त
वंशधरमें वर्तमान व्यक्तियों पथवा जीवों आदिशा
समुदाय, किसी विशेष समयमें वर्ग विशेषके व्यक्तियों-
को समष्टि, सन्तति । ३ किसी विशेष व्यक्ति पथवा
प्राणीका सन्तति समुदाय । ४ छोटा पीडा ।

पीत (सं० स्त्री०) पा भावे-त्त । १ पान । पीती वर्षो-
ऽस्यास्तोति च पीताम्रत्वादस्य तथात्वं । २ हरिताल,
हरताल । ३ हरिचन्दन ।

(पु०) पिवति वर्षान्तरमिति या कर्त्तरि कौषादिकः
त्त । ४ वर्ष विशेष, पीता रंग, हल्दी रंग । प्रयोग—
गौर, हरिद्राभ, कुसुम, भट्टी, गाछोट और उपपराग ।
कविकल्पसतामें पीकी वस्तुजा रस प्रकार नासोकेख
देखनेमें पाता है—१ ब्रह्मा, २ जीव, ३ इन्द्र, ४ गण्ड, ५
इन्दुराज, ६ जटा, ७ गीरो, ८ बापर, ९ गोमूत्र, १०
मधु, ११ बीररस, १२ रजः, १३ हरिद्रा, १४ रोचना, १५
गीत, १६ गन्धक, १७ जीव १८ चम्पक, १९ किल्लरक,
२० वल्कल, २१ शालि, २२ हरिताल, २३ समामिला, २४
कणिकार, २५ चक्रवाक, २६ बायर, २७ शारिकासुख,
२८ केयवाशक, २९ मण्डक, ३० सराग और ३१ कन-
कादि । काव्यमें से च पौतवर्ष काइ कर वर्णित रूप है ।

पीतकेशवाचक इत्यमोर, दिव्यराज, कपट, मधु, हरि, तारुण्य, ऐमस्तोम, भटापट, मङ्गारजत, चन्द्र चोर कसधोत। पीतग्यामवाचक—ज्याम्बर, मधुजित, ध्यान्तजेट, निशुत्काता, ध्यान्तदेवी, हरि चोर स्वर्ण-वच्छावा। ५ पञ्चविधये, एक यहाङ्कना नाम। ६ येतसपता, येतकी सता। ७ पुष्परागमयि, पुष्पराज। ८ गमिधानविधये। ९ नन्दित्त, तुन। १० सोमसता-भट, एक प्रकारकी सोमसता। ११ पीतक्षिणी, पीनी कटसरया। १२ पद्मकाष्ठ, पदमाख। १३ पीतोभीर, पीता सत। १४ कुसुम, कुसुम। १५ प्रवाल, मुंगा। १६ पीतचन्दन। १७ चटोस या डेरका पेड़। १८ सिरीषाका पेड़। १९ धूपसाल। २० कविलवण, भूरा रंग।

(वि०) पीतवर्णोऽस्यास्तीति, चच। २१ पीतवर्णयुक्त, पीते रंगका। पाक्षमपिक्त। २२ कृतपान, पिता पुषा, जिसका पान किया गया हो। २३ कापिल, भूरे रंगका। पीतक (म० स्त्री०) पीत (वाचविश्व कन्। पा ५।१।२९) इति स्थाये कन्। १ हरिताल, हरताल। २ पीतेन पीतवर्णेन कायतीति कौक। ३ कुङ्कुम, केसर। ४ पगुल, पगर। ५ पद्मकाष्ठ, पदमाख। ६ पित्तल, पीतल, ६ मासिक, मोमासाखी। ७ नन्दित्त, तुन। ८ पीतशाल। ९ श्लोषाकवृक्ष, शोलापाठा। १० हरिद्रु, हलदुषा। ११ किङ्किरातवृक्ष। १२ विजयमार। पीतेन पीतवर्णेन रक्तमिति पीत (साधारोवनात्, इत्थं। पा ५।२।१२) इत्यस्य पीताम् कन्, इति कर्त्तिकीत्या कन्। १३ पीतवर्णरञ्जित, पीते रंगमे रंगा हुआ। १४ पीत-वर्णनिगट। (पु०) पीत स्थाय कन्। १५ पीतवर्ण, पीता। १६ कर्षूरमेढ, एक प्रकारका वृक्ष। १७ सध, गहद। १८ गजरेमूल, गाजर। १९ पीत जीक, सफेद जीरा। २० पीतलोष, पीतो लोष। २१ किरातकि, चिरापता।

पीतकपुष्प (म० स्त्री०) कृष्णवर्णमेट, एक प्रकारकी शोभन। प्रसुत प्रपाजो—मेनसिल, यवचार, हरिताल, सेन्धव चोर दोर्गत्वक, इन सबको बराबर बराबर भाग चूर्ण कर सीनामापीडे साथ मिलावे। बाद छतप्रच्छ होरा मुक्ति कावेवे यह चूर्ण प्रसुत होता है। यह गुणयोगमें विमोह उपकारक है।

(बराह विधित्तित्तमान २६ अ०)

पीतकटकी (म० स्त्री०) पीतरोहिणी।

पीतकटको (म० स्त्री०) पीता कटकीति नित्यकर्मधा०। स्वर्णकटकी, चम्पककटकी, सोमकेला।

पीतकट्टम (म० पु०) पीतकोट्टमः। हरिद्रुतल, हलदुषा।

पीतकट्ट (म० पु०) पीतः कट्टोऽस्य। गजरेमूलक, गाजर।

पीतकरवीरक (म० पु०) पीतः करवीर इति नित्यकर्म-धारयः, ततः स्थाये कन्। पीतवर्ण करवीरपुष्पवृक्ष, पीता कनेर, पीसे फलकी केला। धर्माय—पीतप्रचक, सुगन्धि-कुसुम। यह सामान्य करवीरके जैसे गुणयुक्त है।

पीतका (म० स्त्री०) पीतक-टाप। १ हरिद्रा, हल्दी। २ टाकहरिद्रा। ३ स्वर्णयुष्मिका, सोनयुष्मी। ४ कुप्याण्ड। ५ घोषानता। ६ कठनरेया। ७ हनुका, पीरे साग। ८ भ्रतपट्टी नामक कोट। इसके बाटनेसे शरीरमें पीड़ा होती है तथा वमन, गिरागुल चोर दोनों बाँखोंका लाल होना आदि उपद्रव होते हैं। इसमें कुटज, खसकी कड़, पद्मकाष्ठ, चणोर, गिरीष, गेलु, अवासाग, कटुख चोर सङ्गन्तयक, ये सब हितकर हैं। (इत्युत-इहस्थो ८ अथाय) इसका नामान्तर पीतिका है।

पीतकाक्षन (म० पु०) पीतपुष्प काक्षनमिदं। शुष्प—पाही, दीपन, त्र्यशेषक, मूलकच्छ, कफ चोर वायुनागक।

पीतकावता (म० स्त्री०) पित्तज्वरोगमेट, पित्तको एक बीमारी। इसमें शरीर पीला हो जाता है।

पीतकावेर (म० स्त्री०) कुक्षित शरीर शरीर कावेर, पीत कावेर कुक्षितशरीरमपि यस्याम्। १ कुङ्कुम, केसर। २ पित्तल, पीतल।

पीतकाष्ठ (म० स्त्री०) पीतकाष्ठमिति नित्यकर्मधा०। १ पीतचन्दन, पीला चन्दन। २ पद्मकाष्ठ, पद्माख। पीतकोला (म० स्त्री०) पीता कोला कोमलतुषा वर्तते। पावत्त कीसता, भगवतपत्नी।

पीतकुरवक (म० पु०) पीतः कुरवकः। पीतक्षिणी पुष्प, पीनी कटसरया।

पीतकुण्ड (म० पु०) पीनी कटसरया।

पीतकुप्याण्ड (म० स्त्री०) पीतः कुप्याण्ड कर्मधा० वैदिक कुप्याण्ड, पीता कुप्या। इसकी तरकारी कावे

जाती है। गुण—गुण, श्वेतान्त पिच्छवर्धक, श्वनिमान्द्राकर, स्वादु, श्लेष्मानागक और वायुवृद्धिकर।

पीतकुसुम (स० पु०) पीतभिष्णोक्षुण, पीली कटुधरेया।

पीतकंदार (स० पु०) एक प्रकारका धान।

पीतगन्ध (स० स्त्री०) पीतमय च गन्धं गन्धशुक्तं ।

पीतचन्दन, पीला चन्दन, हरिचन्दन।

पीतगन्धक (स० पु०) गन्धक।

पीतघोषा (स० स्त्री०) पीतानि पुष्पाणि सम्यस्या इति पीता, पीतपुष्पा, पीता घोषा कमंधा० । पीतपुष्प, एक प्रकारकी तुरई।

पीतचन्दन (स० स्त्री०) पीतं पीतवर्णं चन्दनमिति

कामंधा० । पीतवर्णं चन्दन, पीला चन्दन। यह चन्दन

द्राविड देशमें कम्बजक कहलाता है। पर्याय—पीतगन्ध, कालीय, पीतक, साधवमिय, कालीयक, पीतकाष्ठ और धरं । (राजनि०) कालीयक, कालीय, पीताम, हरिचन्दन, हरिमिय, कालासार, कालानुषाक । यह लाल चन्दन जैसा गुणविशिष्ट है। (भावप्र०)

राजनिवण्ड के मतसे इनका गुण—शीतल, तिक्त, कृष्ण, श्लेष्म, कण्डू, विचर्चिका, दहृ और क्षमिनागक तथा कान्तिकर।

पीतचम्पक (स० पु०) पीतं चम्पकमिव मिथ्या यस्य ।

१ प्रदीप, दीया, चिराग । पीतं चम्पकं तत् पुष्पमस्य ।

२ पीतवर्ण, चम्पकपुष्पवत्, पीली चंपा।

पीतचोप (स० पु०) पलाशका फूल, टेपु।

पीतजाति (स० स्त्री०) श्वणं जातिवत् ।

पीतभिष्णो (स० स्त्री०) १ पीतपुष्पं भिष्णोक्षुण, पीले फूलवाली कटुधरेया। २ क्षुरिका कहती, एक प्रकारकी कटाई।

पीततण्डुल (स० पु०) पीततण्डुली यस्य । १ कड़ुली धान्य, कौशुन धान। २ सजतल, साजहल।

पीततण्डुका (स० स्त्री०) पीततण्डुल-टाप । चरिका हल, एक प्रकारकी कटाई।

पीततण्डुलिका (स० स्त्री०) सज या साजहल, मान।

पीतता (स० स्त्री०) पीतस्य भावः, पीत-तल-टाप ।

हरिद्रामता, पीतका भाव, पीलापन, जदी।

पीततण्ड (स० पु०) पीतं तण्डु यस्य । कारण्डप पत्तो, बया पत्तो। पर्याय—वधुवर्धक और सुगुण्ड।

पीततेषा (स० स्त्री०) १ श्वोतिषतीक्ष्णता, मानकं गनी ।

२ महाश्वोतिषती, बड़ी मानकं गनी।

पीतल (हि० पु०) पीतला देको।

पीतदन्तता (स० स्त्री०) पित्तजन्य दन्तरोगविशेष, दांतोंका एक पिचज रोग जिसमें दांत पीले पड़ जाते हैं।

पीतदाह (स० स्त्री०) पीतस्य तत् दाहं चेति कर्मधा० । १

देवदाह, देवदार । २ सरलकाष्ठ, धूपसरल । ३ हरिद्रा,

हल्दी । ४ हरिद्र, वृष, हलदुषा । ५ किराततिक्तक,

चिरायता । ६ पूतिकारण, वायुकरं ।

पीतदीप्ता (स० स्त्री०) दीप्तांशे एकं देवता ।

पीतदुग्धा (स० स्त्री०) १ स्वर्णं चीरी, चीन । २ चीरिणी,

एक प्रकारकी कटेहरी । ३ सातना, एक प्रकारका घृह ।

पीतं दुग्धं यस्याः । ४ पाहितागवी, धेनुधा, जिस

गायका दूध बन्धक रखा हो।

पीतद्रु (स० पु०) पीतो दुरिति नित्यकर्मधारयः । १

देवदारुमेद, एक प्रकारका देवदार, धूपसरल । २

दाहहरिद्रा, दाहहल्दी।

पीतद्रुम (स० पु०) पीतद्रुं देवो ।

पीतधातु (हि० पु०) पीतचन्दन, रामरज।

पीतन (स० स्त्री०) पीतं करोतीति तत्करोतीति णिच्,

ततो ल्यं वा पीतं पीतवर्णं नयतीति नौ-ङ । १ कुङ्कुम,

क्षीर । २ हरिताल, हरिताल । ३ देवदाह । ४ पान्ना-

तकण्डक, पामड़ा । ५ ज्वरहृष, पाकड़ ।

पीतनक (स० पु०) पीतन एक, पीतन-साधं कम् ।

पीतन देखी।

पीतनखता (स० स्त्री०) पित्तजन्य नखरोगमेद ।

पीतनाम (स० पु०) सुद्र पन्थ, बंडहर, लकड़ ।

पीतनी (स० स्त्री०) पीतन-स्त्रियां डीप । मानवर्षी,

सरिचन।

पीतनील (स० पु०) १ नीले और पीले रंगके संयोगसे

बना हुआ रंग, हरा रंग । (त्रि०) २ हरितवर्ण, हरे

रंगका।

पीतनेत्रता (स० स्त्री०) पीतं नेत्रं यस्य, तस्य भावः,

तल-टाप । पित्तजन्य नेत्ररोग।

पीतपराग (स० पु०) पद्मकेसर, कमलका केसर, किङ्क-

जर्जक।

वीतपर्वी (सं० स्त्री०) वीतानि वीतवर्णानि पर्वानि यस्याः
 स्त्री० । गिरिणी, हृदिकासी ।
 वीतपाकिन् (सं० पुं०) वाद्यात्मकभेदः ।
 वीतपाठिन् (सं० पुं०) चित्रकहस्य ।
 वीतपादप (सं० पुं०) १ श्लोकाकहस्य, सोनापाठा । २
 मोधहस्य, मोधहस्य ।
 वीतपादा (सं० स्त्री०) वीती पादो यस्याः । १ शारिका
 पक्षी, मैना । (वि०) २ वीतधरयुक्त, त्रिभुजे चरण
 वीसे हो ।
 वीतपुत्र (सं० स्त्री०) वीतानि पुत्रानि यस्याः । १ पादुका-
 हस्य । २ कृष्णमाण्ड, चिया तोरई । ३ हरिद्राभ कुसुममात्र ।
 (पुं०) ४ कर्पिकारहस्य, कनेर । ५ चम्पकहस्य, चंपा ।
 ६ वीतभिक्षी, वीने फूलकी कटखरेया । ७ इन्द्रवीरहस्य,
 हिंमोट । ८ पिण्डीतकभेद, तगर । ९ राजकोपातकी,
 रगत नामक पुष्प । १० काञ्चनाहस्य, लाज कचनार । ११
 पीठा ।
 वीतपुत्रक (सं० पुं०) १ बबूहस्य, बबूलका पेड़ । २
 भीतपुत्र देवी ।
 वीतपुत्रका (सं० स्त्री०) वीतपुत्रक स्त्रियां टाप् ।
 कर्कटीभेद, जंगली ककड़ी ।
 वीतपुत्रा (सं० स्त्री०) वीत' पुत्र' यस्याः । १ इन्द्र-
 वाहचौलता, इन्द्रायण । २ कोपातकीलता, तोरई । ३
 वीतपुत्रवाहस्य, सड़देवी । ४ वीतभिक्षी, वीने फूल-
 की कटखरेया । ५ भिक्षीपीठा । ६ पादुकी, चरहर ।
 ७ वीतकरवीर, पोले फूलका कनेर । ८ स्वर्णशुशिका,
 सोनशुडी । ९ गणेशारिका, गनिवारका पेड़ ।
 वीतपुत्रो (सं० स्त्री०) वीत' पुत्र' यस्याः, जातित्वात्
 डोप् । १ महावन्ता । २ त्रुपुटी, खीरा । ३ इन्द्रवाहचो-
 लता, इन्द्रायण । ४ शङ्खपुष्पी, श्वेत चपराजिता । ५
 महाकोपातकी, बड़ी तोरई । ६ वीतयुशिका, सोनशुडी ।
 ७ चतुर्वर्णा । ८ महागण्डहस्य, सड़देवी ।
 वीतपुत्रा (सं० स्त्री०) महाटिकाभेद, एक प्रकारकी
 कोड़ी जिसकी पोठ पोली होती है ।
 वीतप्रसव (सं० पुं०) १ वीतकरवीर हस्य, पोसा कनेर । २
 हिङ्गपत्र ।
 वीतकन (सं० पुं०) वीतानि कनानि यस्याः । १ ग्राहोट-

हस्य, सिहोर । २ धवहस्य । ३ कमरहस्य, कमाण ।
 वीतकनक (सं० पुं०) वीतकन एव स्वार्थे कन् । १
 रीठा । २ वीतकन देवी ।
 वीतकन (सं० पुं०) चरिटकहस्य, रीठा ।
 वीतवनि (सं० पुं०) गन्धक ।
 वीतवासुका (सं० स्त्री०) वीता वासुदेव चर्चनरत्नो
 यस्याः । १ हरिद्रा, हलदी । २ वीतवर्ण' मिकता, पीना
 बाल ।
 वीतवीजा (सं० पुं०) वीत' वीज' यस्याः । १ मेयिका,
 मंथी । (वि०) २ वीतवर्ण' वीजयुक्त, पीने रंगका
 वीजयाना ।
 वीतभद्रक (सं० पुं०) देवमूर्त हस्य, एक प्रकारका बबूल ।
 वीतभद्रमन् (सं० स्त्री०) वीत' भद्रम' । पारिकी भर्ग कर
 चये वीजा करना । पारिकी इस प्रकार भर्ग करना होता
 है जिससे यह भद्रम वीतवर्णका हो जाय ।

विशेष पारदवाच्यं देवो ।

वीतभद्राज (सं० पुं०) वीतो भद्राजः । वीतपुत्र भद्र-
 राजपुत्र, वीला भंगरा । पयोय—स्वर्णभद्रार, हरि-
 प्रिय, देवप्रिय, मन्दवीर्य, पावन । शुष्क—तिक्त, हृष्ट,
 चक्षुष्या, देवप्रसन्न, कफ, काम और शोकात्मक ।
 वीतम (वि० वि० पुं०) भिन्नम देवी ।
 वीतमणि (सं० पुं०) वीतो मणिमिति कर्मधा० । पुष्कराग-
 मणि, पुष्कराज ।
 वीतमण्ड—राष्ट्रीयशैली प्राश्नलीला एक गाँव ।
 वीतमण्डलदर्शन (सं० पुं०) वीतमण्डलगीत ।
 वीतमण्डक (सं० पुं०) वीत मण्डकः, कर्मधा० ।
 स्वर्णमण्डक, सोना पेण ।
 वीतमण्डक (सं० पुं०) वीत' मण्डक' यस्य । हृदयग्रेन
 पक्षी, एक प्रकारका वाज ।
 वीतमाचिक (सं० स्त्री०) वीत' माचिकम् । स्वर्ण-
 माचिक, सोनामाचो ।
 वीतमुण्ड (सं० पुं०) वीत' मुण्ड' यस्य । हरिभेद, एक
 प्रकारका हरिन ।
 वीतमुद्र (सं० पुं०) वीतः वीतवर्णी मुद्रः । मृद्विमेय,
 एक प्रकारका मृग, सोनामृग । पशोय—वध, पक्षोर,
 प्रयत्न, जय और मारद ।

पोतम्रता (स० स्त्री०) पोतं मूलं यस्य, तस्य भावः,
रह-टाप, पिच्छ म्रतारोगभेद । इस रोगमें पेशाब
पोछा चतरता है ।

पोतमूलक (स० फली०) पोतं मूलं यस्य, कप । गलेर,
गाजर ।

पोतमूलो (स० स्त्री०) रचक मूलविशेष, रेवटवीनी ।
इसका गुण—वल्ब र, मृदुरेचक, भोजोष, भतोभार,
शनिमान्दर और पदविनाशक है ।

पोतमूलो पीतमूलो च वल्बा घातदुरेचनी ।

हर्षाशोभमतीसारं वल्लिपादमरोषकम् ॥

(वैद्यकनि०)

पीतयूथी (स० स्त्री०) पोतायूथी । खंभेय यूथी, सोना-
जूथी ।

पीतर (हि० पु०) पीतल देखी ।

पीतरत्न (स० फली०) पोतं रत्नमिति 'वर्णो वर्णनेति'
समासः । १ पुष्पागनेषि, पुष्कराज । २ पद्मकाष्ठ, पद्माक्ष ।

पीतरत्न (स० पु०) पीतमणि, पुष्कराज ।

पीतरश्मा (स० स्त्री०) पीता रश्मा यत्र । सुवर्णकदली-
हृत् ।

पीतरस (स० पु०) कर्मरु, देसरु ।

पीतराम (स० स्त्री०) पीतो रामो वर्णो यस्य । १ किञ्चुर्वेक,
पद्मकेसर । २ सिकण्डरु, भोम । (पु०) ३ पीतवर्णं युक्त,
पीतैरंगका, पीला ।

पीतरौहिणो (स० स्त्री०) पोता सतो रोहतीति रह-
णिनि जोषः । १ पोतकट की, पीतो कट की । २ कुम्भर,
गंभीरी ।

पीतल (स० पु०) पीतं लालीति ला-क । १ पीतवर्ण,
पीला रंग । २ पित्तल, एक धातुका नाम । (त्रि०) ३
पीतवर्णं विमिश्रित, पीले रंगका ।

पीतल (हि० पु०) एक प्रसिद्ध खण्डधातु जो तांबे और
जस्तो के संयोगसे बनती है । इसमें कभी कभी रंगि या
सोनेका भी कुछ भाग मिलाया जाता है । यह तांबे की
भरेवा कुछ अधिक दृढ़ होती है । इसमें चाकरो, कटोरे,
गिलास, छेडे, गगरे आदि बरतन बनाये जाते हैं ।
देवताओं की मूर्तियाँ, शिंहासन, घंटे, અનેક
मकारके वाद्य, घन्ट, लाले, कल्लेके कुछ पुरजे और

गरीबों के लिये गहने भी पीतलसे बनाये जाते हैं ।
पीतलकी बनी चीजें लोहेकी चीजोंकी भरेवा कुछ
अधिक टिकाऊ होती हैं, कारण उनमें मोरचा नहीं
लगता । विशेष विवरण पित्तल शब्दमें देखो ।

पीतलक (स० फली०) पीतलोऽनं पीतेन वर्णेन कायति
प्रकाशते इति कै-क । पित्तल, पीतल ।

पीतलोह (स० फली०) पोतं लोहमिति नित्यकर्मधा० ।
पित्तल, पीतल ।

पीतवर्ण (स० पु०) १ स्वर्णमण्डूक, पीला मंडक । २
ताम्रवृक्ष, ताड़ । ३ कदम्बवृक्ष, कदम्ब । ४ हरिद्रवृक्ष,
हलदुषा । ५ काश्वरवृक्ष, लाल कचनार । (लो०) ६
मनःगिला, मैनसिल । ७ पीतचन्दन । ८ कुडम,
केशर ।

पीतवल्ली (स० स्त्री०) बाकागलता, बाकागवेल ।

पीतधान (हि० पु०) हाथीकी दोनों आँखोंके बीचकी
जगह ।

पीतवालुका (स० स्त्री०) हलदी ।

पीतवासस (स० पु०) पीतं वासो वर्णं यस्य । १
श्रीकृष्ण । (त्रि०) २ पीतवस्त्रयुक्त, पीले कपड़े पहनने-
वाला ।

पीतवितृक्ता (स० स्त्री०) पित्तविकारज रोग ।

पीतविन्दु (स० पु०) विष्णुके चरण-चिह्नमिसे एक ।

पीतवीजा (स० स्त्री०) मेघो ।

पीतवृक्ष (स० पु०) पीतो वृक्षः । १ श्लोमाकवृक्ष, सोना-
पाठा । २ पीतलोहवृक्ष । ३ सरलदेवदाह, धूपसरल ।

पीतशाल (स० पु०) असनवृक्ष, विजयधार । इसकी
छालका काष्ठ उदरामयंभायक और प्रसिद्ध नाड़ीवृक्षमें
हितकर है ।

पीतशालक (स० पु०) पीतशाल देखो ।

पीतशालि (स० पु०) पीतः शालिः । सूक्ष्मधान्य, महीन
धान ।

पीतसरा (हि० पु०) ससुरका भाई, चचियाँ ससुर ।

पीतसराचर (स० पु०) पीतमिण्टी, पीली कटमरैया ।

पीतसार (स० स्त्री०) पीतः सारो यस्य । १ पीतवर्ण
चन्दनकाष्ठ, हरिचन्दन । (पु०) २ मनयज, मनयागिरि
चन्दन । ३ गोमदेकमणि । ४ पद्मोदवृक्ष, पद्मोल,

देहा । ५ तुल्यः । ६ वीरकः । ७ विरक्तः, शिवा-
रसः ।

पीनमारक (मं० पु०) पीतः मारी यस्य, कपः । १ निम्ब-
लघु, नीमका पेड़ । २ चटोडलघु, टेंद्रीका पेड़ ।

पीतमारि (मं० स्त्री०) पीतं पीतवर्णं मारि प्राप्नोतीति-
श्र-पिति । स्त्रीतोडलघु, काला सुरमा ।

पीतमारिक (मं० पु०) पीतवर्णं देवो ।

पीतमान (मं० पु०) विजयसार ।

पीतमासक (मं० पु०) पीतवर्णं देवो ।

पीतमकम्ब (मं० पु०) पीतः स्वयं यस्मै । १ हरिद्राभ
स्वयंयुक्त लक्ष्मण । २ गुकर, सपर ।

पीतमकटिक (मं० पु०) पीतः स्वकटिकः । पुत्ररागमणि,
सुखराग ।

पीतमकोट (मं० पु०) पीतः स्वकोटः । १ पीतवर्णस्कोटक,
लुगली, खमरागेम । २ दद्रु, दाद ।

पीतहरित (मं० पु०) पीतम्, हरितम् 'वर्णवर्ण'नेति
समासः । पीत चौर हरिद्वर्णं, पीना चौर कुरा रंग ।

पीता (मं० स्त्री०) पीतो सर्वोऽस्त्वस्या इति पञ्च, टाप ।

१ हरिद्रा, कलदी । २ दाहहरिद्रा दाहकलदी । ३
महाज्योतिर्मनीषता, बडी मासकंगली । ४ गोरोचना ।

५ मियङ्ग । ६ वनवीरमुरक, जंगली विजोपा-नीबू ।
७ कपिलनिर्गन्धवा, भूरे रंगका गोमय । ८ अतिविषा,
पत्तीघ । ९ स्वर्णकदली, पीना कला । १० हरिताम,
हरिताल । ११ पीतशक्ति कल्याण गाढ, जड़ चर्मकी ।

१२ धूलक, राल । १३ देवदारु, देवदार । १४ शासपर्वी ।

१५ चण्डगन्धा, चमगंध । १६ पाकागन्ता पाकासनेल ।
(त्रि०) १७ पीतवर्णयुक्त, पीते रंगकी, पीने रंगवाली ।

पीताम्ब (मं० पु०) पीतं चम्बं यस्य । १ ग्वालाकलह,
सोनापाठा । २ पीतभीषमलघु । ३ पीतमङ्गलक, पीना
मेटक । ४ नागरकलह, नारंगीका पेड़ । (स्त्री०) ५

हरिद्रा, कलदी ।

पीताम्बि (मं० पु०) पीतः चम्बिः समुद्रो येन । चण्डक-
मुनि । चण्डकमुनि समुद्रको पो गये थे, इसीसे वे
पीताम्बि कहलाते हैं । अगस्त्य तथ्ये देवो ।

पीताम्ब (मं० पु० स्त्री०) १ पीतचन्दन, पीना चन्दन ।
पीतम्ब पीतवर्णं चामा इव चामा यस्य । (त्रि०)

२ पीतवर्णं चामायुक्त, जिसमेंसे पीको चामा निकलती
है, पीतवर्ण, पीला ।

पीताम्ब (मं० स्त्री०) पीतं चम्बं । पीतवर्णं चम्बमेव,
एक प्रकारका चम्ब जो पीना होता है ।

पीताम्बर (मं० पु०) पीतं चम्बरं वस्त्रं यस्य । १ विष्णु,
कृष्ण । २ शैल्युप, मट । (स्त्री०) पीतं चम्बरं कर्मचारी ।

३ पीतवसन, पीना कपड़ा । ४ मरटाभी रंगमी धोती
जिसे हिन्दू लोग पूजापाठ, संस्कार, भोजन आदिसे

समय पहनते हैं । इस वस्त्रका व्यवहार भारतमें बहुत
प्राचीनकालसे होता है । पहले शायद पीली रंगमी

धोती ही पीतम्बर कहते थे पर अब साफ, पीलो,
हरी आदि रंगोंकी रंगमी धोतियां भी पीताम्बर कह-

लाती हैं । (त्रि०) ५ पीतवस्त्रयुक्त, पीते कपड़ेवाला,
पीताम्बर धोती ।

पीताम्बर—कई एक संस्कृत ग्रन्थोंमें नाम । १ अति
कृष्णवर्णयुक्त एक कवि । २ चण्डममस्मरिणी प्रयोग । ३

गीतगोविन्दकी टीकाके रचयिता । ४ दुर्गासम्बन्धके
नामक द्वैती भाषास्यके एक टीकाकार । ५ रत्नमञ्जरी-

टीकाके रचयिता । ६ सत्कीर्तिचन्द्रोदयके प्रयोग ।

७ गायत्री मन्त्रोंके एक टीकाकार । ८ यदुपतिके पुत्र
चौर विद्वत्के प्रयोग । इन्होंने ब्रह्माचार्यके पुत्रियत्र द

सर्वाभिद नामक ग्रन्थकी एक टीका लिखी है । भाग-
मततत्त्व दोषप्रकाशमाधवभट्ट नामक ग्रन्थ भी इन्हींका

बनाया है ।

पीताम्बरभट्ट—काश्याके पुत्र । इन्होंने चर्मचर्म नामक
एक संस्कृत ग्रन्थकी रचना की है ।

पीताम्बरसित—सुप्रसिद्ध राजा राजेन्द्रनाथ मिश्रके प्रविता-
मह । बहिसाके मिश्रवंशमें इन्होंने लक्ष्मणचण्ड किया

था । इनके पितामह सुशोभाराम चौर प्रवितामह राम-
राम दोनंनि से मुनि टाबाद नवाबके यहां दीवान पद

पर नियुक्त हो कर शायदहादुरको नवाबि पाई थे ।
पीताम्बरने अपने बुद्धिमत्ता चौर भौतिकके प्रभावसे

घोड़ी से उन्नत पारस्यभाषामें पाण्डित्य प्राप्त किया
था । आप पहले दिवलोके दरबारमें चण्डोयाके नवाब
बजोरके यहां बकीत नियुक्त हुए । दिल्लीमें ग्राह पालन-
में आपकी कार्यक्षमता पर सुख हो कर आपकी निध-

जारी-मनसबदार' अर्थात् तीन हजार सेनाका अधिनायक बनाया और राजबहादुरकी सपाधि प्रदान की। पीछे आपकी मर्यादा-रक्षाके लिये ही दोषावले भन्तर्गत करा नामक जिला आगौरस्वरूप दिया। आपके दो सहोदर भाई बादशाहके अनुग्रहसे रायबहादुर हुए थे।

१६८४ ई०में कागोशज चेतसिहने जब अंगरेजोंके विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी तब आपने अंगरेज सेनापति जनरल पामटकी १५ ले ११मनगर दुर्गमें घेर डाला। इस समय आपने अंगरेजराजकी गोरव-रक्षाके लिए कोई कसर छोड़ा न रही। युद्ध समाप्त होने पर आप १७८८ या १७८८ ई०में कलकत्ते लौटे। इसके तीन वर्ष बाद ही आपने वैष्णवधर्म ग्रहण किया।

आप जिस समय दिल्ली दरबारसे चलन हुए, उस समय प्रयोध्याके नवाब राजा-उद्दोलाके यहाँ आपका ८०००००० रु० पावना था। उसे वसूल कर आप कलकत्ते आये। आपकी कागो लामौरसे भी लगभग द्वाई लाख रुपयेकी भाय थी, किन्तु महाराष्ट्र युद्धके समय वह जमीर हाथसे जाती रही।

राजा पीताम्बरने वैष्णवोंकी योग्यता धारण कर अपना मकान जो कलकत्तेके मछुवाबाजारमें था छोड़ दिया और छूँड़ा बागानमें जा कर रहने लगे। इस समय आपकी शास्त्रवेत्ता और ईश्वरसिन्हाके सिवा और कोई काम न था। १८०६ ई०में आप हम्दायमचन्द्र नामक एक पुत्र छोड़ परलोक सिधारे।

पीताम्बरधारी—काव्य-व्यक्ति और साहित्यिक रचयिता। पीताम्बर सिंह—आवाके अधिपति। इन्होंने खिरा कुण्डल-पुरका बौद्ध-मन्दिर तोड़ कर आवामें अपने मकानके समीप कई एक मन्दिर और घर बनवाये थे।

पीताम्बर (सं० पु०) पीतस्मिगटी क्षुप, पीली कटसरैया। पीताम्बर (सं० पु०) पीतः अक्षयः 'वर्णो वर्ण' निति समासः। १ पीत और अक्षयवर्ण, पीलापन लिए हुए साक्षर्य। (त्रि०) २ पीतरत्नमिथित वर्णयुक्त, पीलापन लिए हुए साक्षर रंगकी।

पीताम्बरकीर्ण (सं० पु०) पीतः श्वलोकीर्ण यस्य। पित्त-लम्प्य-दृष्टिरोगः। इस रोगके होनेसे दृष्टि पीली हो जाती है।

पीतारमन् (सं० पु०) पीतः अश्मा पुष्परागमणि, पुष्प-राज।

पीताम्बर (सं० पु०) सज्ज १४, राज।

पीति (सं० पु०) पितृतीति पा० कश्चि (पुमास्यागतेति। पा ६।४।६। इति इत्वं। १ चोटक, चोड़ा। (स्त्री०) पा-भावे तिन्। २ पान, पीना। पीयतेऽन्येति कश्चि तिम्। ३ शृङ्गा, छूँड़ा। ४ गति।

पीतिका (सं० स्त्री०) पीतवर्णाऽऽव्यस्या इति ठन्। १ हरिद्रा, हरेदी। २ दाहहरिद्रा, दाहहलदी। ३ स्वर्णयुष्मी, सोनज हीं।

पीतिन् (सं० पु०) पीतं पानं प्राप्नुयैवास्त्यस्येति, रनि।

१ पीति। २ चोटक, चोड़ा।

पीतिनी (सं० स्त्री०) पीतिन् स्त्रियां ङीप्। शालपर्णी क्षुप।

पीतो (सं०-पु०) पीतिन् देखो।

पीतु (सं० पु०) पीतति रसादोऽनिति पा०-तुन् (पा कश्चि वन १०१) सध कित् कित्वात् इत्वं। १ सूर्य। २ अग्नि। ३ यूपति।

पीतुदाह (सं० पु०) पीतुरिव अग्नि-तुल्यं सूर्याभं वा दाह यस्य। १ उदुम्बर, गूलर। २ देवदाह, देवदार। पीतास्थिरक (सं० त्रि०) पीता स्थिरः, मयूर्यवत्कादित्वात् समासः कन्। पानोत्तर-स्थिरोभूत।

पीथ (सं० स्त्री०) पीयते इति पा०-थक। (पानुपदीति। वृ २।०)। १ लज्ज, पानी। २ छत, घो। पितृती रसादो-निति पा०-कश्चि रियक। ३ सूर्य। ४ अग्नि। ५ कान। पीथि (सं० पु०) पीति प्रयोगादित्वात् तस्य घ। पीति, चोड़ा।

पीथिन् (सं० त्रि०) पीतिन् प्रयोदरा० साधुः।

पीतिन् देखो।

पीदडी (हिं० स्त्री०) पीरी देखो।

पीन (सं० त्रि०) पीय हस्ती त् (अदितश्च। पा ८।२।४५) इति निष्ठतकारस्य नः, ततो दीर्घः। १ खल, मोटा, कठिन। २ प्रवृद्ध, मुष्ट। ३ सम्पन्न, भरा पूरा। (स्त्री०) भाव त्। ४ खलता, मोटाई।

पीनक (हिं० स्त्री०) १-अफीमसे नगमें लघना, नगकी हालतमें अफीमचीका आगेकी और कंक भुक्त पड़ना।

टिंग। ५ गुणक। ६ बीजक। ७ निष्क, शिवा-
रव।
पीनमारक (मं० पु०) पीनः मागे यस्य, कण्ठ। १ निम्ब-
लव, नीमका पेड़। २ पट्टोष्ठक, टेंकेका पेड़।
पीनमारि (मं० स्त्री०) पीतं पीतवर्णं सति प्राप्नोति नि-
श्चयिनि। स्त्रीऽप्युक्त, कामा सुरमा।
पीनमारिक (मं० पु०) पीतवर्णं देवो।
पीनमान (मं० पु०) विप्रयमार।
पीनमानक (मं० पु०) पीनमान देवो।
पीनरक्त (मं० पु०) पीतः रक्तस्यो यस्य। १ हरिद्राम
रक्तमयुक्तं लक्षणेद। २ गुकर, सुपर।
पीनरक्तिक (मं० पु०) पीतः रक्तिकः। पुं० प्रागमणि,
पुष्पाग्र।
पीनरफोट (मं० पु०) पीतः रफोट। १ पीतवर्णं रफोटक,
पुष्पमो, लम्परागो। २ दद्रु, दाद।
पीनहरित (मं० पु०) पीतम्, हरितम् 'वर्णो वर्णो'नेति
समासः। पीन पीर हरिद्वर्णं, पीना पीर हरा रंग।
पीता (मं० स्त्री०) पीतो वर्णोऽस्त्वस्या इति चच्, टाप्।
१ हरिद्रा, हलदी। २ दाहहरिद्रा दाहहलदी। ३
महाभ्योतिष्मतीक्ष्णा, बड़ी मानकंगनी। ४ गोरोचना।
५ मिषङ्ग। ६ यन्त्रोत्पूरक, जंगली बिजोरा-नीबू।
७ कपिलशिंगा, भूरे रंगका गीमम। ८ पतिविद्या,
पत्नीप। ९ हर्षकदली, पीना बेला। १० हरिताल,
हरताल। ११ पीनशक्ति फलका गाढ, जट्टं लमेसी।
१२ धूलक, राल। १३ देवदाह, देवदार। १४ शालपर्णी।
१५ चमरगन्धा, चमरगंध। १६ पाकागन्धा पाकामेले।
(त्रि०) १७ पीतवर्णं युक्त, पीने रंगकी, पीने रंगवाली।
पीताम्बर (मं० पु०) पीतं चम्बरं यस्य। १ श्यामाकृत्य,
सोनापाठा। २ पीतकीश्वर। ३ पीतमण्डक, पीना
मंडक। ४ नागरकृत्य, नागरीका पेड़। (स्त्री०) ५
हरिद्रा, हलदी।
पीताम्बि (मं० पु०) पीतः पम्बिः समुद्रो येन। चमर-
मुनि। चमरमुनि समुद्रकी पो गये थे, इसीसे वे
पीताम्बि कहलाते हैं। अथर्व गणने देवो।
पीताम्बर (मं० पु० स्त्री०) १ पीतचन्द्र, पीना चन्द्र।
पीतस्य पीतवर्णस्य चामा इव चामा यस्य। (त्रि०)

२ पीतवर्ण चामायुक्त, जिससे वे पीलो चामा निकलती
हो, पीतवर्ण, पीला।
पीताम्बर (मं० स्त्री०) पीतं चम्बरं। पीतवर्णं चम्बरमेव,
एक प्रकारका चम्बर जो पीला होता है।
पीताम्बर (मं० पु०) पीतं चम्बरं यस्य यस्य। १ निष्क,
लवण। २ गेमुय, मट। (स्त्री०) पीतं चम्बरं कर्मचा०।
३ पीतवन, पीना कपड़ा। ४ गरटाभी रंगमी धोती
जिसे हिन्दू लोग पूजापाठ, संस्कार, भोजन आदिमें
समय पर पहने हैं। इस वस्त्रका व्यवहार भारतमें बहुत
प्राचीनकालसे होता है। पहले मायद पीकी रंगमी
धोती होती थी पीतम्बर कहते थे पर अब लाल, पीलो,
हरी आदि रंगकी रंगमी धोतियां भी पीताम्बर कह-
लाती हैं। (त्रि०) ५ पीतवस्तु, पीने धनके लाला,
पीताम्बर धोती।
पीताम्बर—कई एक संस्कृत शब्दोंके नाम। १ मणि
कण्ठमूलभूत एक कवि। २ यमुपमम्बर की प्रथिता। ३
गीतगीतिका की टीकाके रचयिता। ४ दुर्गावन्दनके दिवा
नामके देवी माहात्म्यके एक टीकाकार। ५ रत्नमञ्जरी
टीकाके रचयिता। ६ सत्कीर्ति चन्द्रोदयके प्रथिता।
७ गाथा मन्त्रोंके एक टीकाकार। ८ यदुवतिसे पुत्र
पीर निहन्ते गे गिण्य। इन्होंने लक्ष्मणाचार्यके पुत्रमन्त्र
मयांशुदेव नामक शब्दोंकी एक टीका लिखी है। भाग-
वततत्त्व दोषप्रकाशानुसंधान नामक शब्दों भी इन्होंने
लिखा है।
पीताम्बरमह—काश्रवके पुत्र। इन्होंने धर्मार्थ नामक
एक संस्कृत शब्दोंके रचना की है।
पीताम्बरमित—सुप्रसिद्ध राजा राजेन्द्रनाथ मिश्रके प्रथिता-
मह। बह्मिनी मिश्रवर्गमें इन्होंने जन्मप्रश्न किया
था। इनके पितामह प्रद्योत्ताराम पीर प्रथितामह राम-
राम दीर्घोंने ही सुग्रीवाचार्य नवाबके यहां दोबाल पद
पर नियुक्त की कर रायबहादुरकी सहायि पाई थी।
पीताम्बरने अपना बुद्धिमत्ता पीर धीमदिके प्रभावसे
छोड़ी थी तबमें पारसभाषामें पण्डित्य काम किया
था। पाप पक्षमें दिग्गोके दरबारमें पण्डित्यके नवाब
बजोरके यहां बकील नियुक्त हुए। दिग्गोवर गाढ चालन-
में पापकी कार्यदृष्टता पर मुक्त हो कर पापकी 'मिह-

कारी-मनसबदार' अर्थात् तोन हजार सेनाका अधिनायक बनाया और राजबहादुरकी उपाधि प्रदान की। पीके आपकी मर्माहाराका लिये ही दीपावले अन्तर्गत करा नामक जिला जागीरस्वरूप दिया। आपके दो सहोदर भाई बादशाहके अनुग्रहसे रायबहादुर हुए थे।

१८२६ ई०में काशीराज चेतसिंहने जब अंगरेजोंके विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी तब आपने अंगरेज सेनापति जनरल दामदको १५ से ११मनगर दुर्गमें घेर डाला। इस समय आपने अंगरेजराजकी गौरव-रक्षाके लिए कोई कसर छोड़ा नहीं। युद्ध समाप्त होने पर आप १८८० या १७८८ ई०में कलकत्ते लौटे। इनके तीन वर्ष बाद ही आपने वैष्णवधर्म ग्रहण किया।

आप जिस समय दिल्ली दरबारसे चलते हुए, उस समय प्रयोध्याके नवम राजा-वहोशाने यहाँ आपका ८०००००० रु० पावना था। उसे वसूल कर आप कलकत्ते आये। आपके काराही जागीरसे भी लगभग द्वाँई लाख रुपयेकी आय थी, किन्तु महाराष्ट्र युद्धके समय सब जागीर हाथसे जाती रही।

राजा पोताम्बरने वैष्णवोंको योगाक धारण कर अपना मकान श्री कलकत्तेके मङ्गलपाशाजामे था छोड़ दिया और छँड़ा बागानमें जा कर रहने लगे। इस समय आपकी शास्त्रधर्मा और ईश्वरचिन्ताके सिवा और कोई काम न था। १८०६ ई०में आप हन्दावनचन्द्र नामक एक पुत्र छोड़ प्रसन्नोक्त विधारे।

पोताम्बरधर्मा—छावच्छ्रुत्यासि और सारस'यहके रचयिता। पोताम्बर सिंह—आपके अधिपति। इन्होंने खैरा कुण्डल-पुरवा बौद्ध-मन्दिर तोड़ कर आपासमें अपने मकानके समीप कई एक मन्दिर और चर बनवाये थे।

पोताम्बर (सं० पु०) पीतस्मिगरी क्षुप, पोखी कटसरैया। पोताम्बर (सं० पु०) पीतः अरुणः 'वर्णवर्ण'निति' समासः। १ पीत और अरुणवर्ण, पीताम्रन लिए हुए सागराग। (त्रि०) २ पीतरक्तमिश्रित वर्णयुक्त, पीताम्रन लिए हुए काल रंगका।

पोतामकीकन (सं० पु०) पीतं भवनोक्तं यस्य। पित्त-लघ्य दृष्टिरोग। इस रोगके होनेसे दृष्टि पीकी ही लगती है।

पोतामन (सं० पु०) पीतः पश्मा पुष्परामणि, पुष्प-राज।

पोताम्बर (सं० पु०) सर्जरम्, राज।

पीत (सं० पु०) पित्तोति पांशुजिह्व, (युवाध्यागतेति। पा ६।४।६६) इति इत्वं। १ घोटक, घोड़ा। (स्त्री०) पा-भावं क्तिन्। २ पान, पीना। पीयतेऽन्येति कर्त्तव्ये क्तिन्। ३ शृणु, सुँड। ४ गति।

पीतिका (सं० स्त्री०) पीतवर्णोऽस्थस्या इति उन्। १ हरिद्रा, हल्दी। २ दारुहरिद्रं, दारुहमदी। ३ स्वर्णयूथी, सोनज हीं।

पीतिन् (सं० पु०) पीतं पानं प्राप्नुयैवास्त्यस्येति, इति। १ पीत। २ घोटक, घोड़ा।

पीतिनी (सं० स्त्री०) पीतिन् स्त्रियां ङीप्। प्राक्पर्वी क्षुप।

पीतो (सं० पु०) पीतिन् देखो।

पीतु (सं० पु०) पीयति रसादो निति पा-लुन् (या क्वि वण १७१) सच कित् कित्वात् ईत्वं। १ सूर्य। २ पनि। ३ यूक्षपति।

पीतुदाह (सं० पु०) पीतुद्वि चमि-तुल्यं सूर्याभं वा दाह यस्य। १ लुङ्गवर, मूलर। २ देवदाह, देवदार। पीताम्बरक (सं० त्रि०) पीत्वा स्त्रियः, मयूरस्यं वकारादि-त्वात् समासः कन्। पानोच्चर स्थिरोभूत।

पीथं (सं० स्त्री०) पीयथे इति पा-यक (पातुर्वीति) कण् २।७)। १ जल, पानी। २ छत, चो। पिवनी रवाद्रो-निति पा-कस्तिरि यक। ३ मूर्य। ४ पति। ५ काल। पीथि (सं० पु०) पीति-येपानपादित्वात् तस्य थ। पीति, घोड़ा।

पीथिन् (सं० त्रि०) पीतिन् प्रयोदरां प्रापुः। पीतिन् देखो।

पीदही (सं० स्त्री०) पीरी देखो।

पीन (सं० त्रि०) व्याघ्र उद्धी क (भोदितश्च)। पा ८।२।४५) इति निहातकारस्य ना, ततो दीर्घः। १ खून, मोटा, कठिन। २ प्रहृष्ट, पुष्ट। ३ सम्पन्न, भरा पूरा। (स्त्री०) भावं क्त्वा। ४ खूनला, मोटाई।

पीनक (सं० स्त्री०) १ अमीमते नगमें लंघना, मग-की हाथमें अमीमचीका आगेकी और मुँह मुँह पड़ना।

१ लघना, मोट्टे पानेमे पानिबो खोर मुक मुक पड़ना।
पोनता (घं ६३०) पोमय भावः, भावे तन्-टाप्।
व्यभता, मोटाई।

पोनद्रु (मं० पु०) सरनक्षत्र ।

पोमना (दि० त्रि०) पीमना देखो ।

पीनर (स० वि०) पीनर चट्टानदेगादि चट्टानादित्वात् ।
(वा ४२०) । पीनर मविच्छेद देगादि ।

पौनस (म० पु०) पौनं स्थूनामपि जनं स्वति नाग्रय-
नीति मो-ज । नासिकारोपविशिय, नासका एक रोग ।
पर्याय—प्रतिग्राय, पपौनस, प्रतिग्र्या शीर नासिका-
मय ।

इसका लक्षण—इसमें नाकके मथने शुष्क, कफमें भारी हृदय पीर क्लिप्त अथात् नीचे रहती है तथा उर्ध्वमें जलन भी रहती है पीर नाककी नाथ या वायु पद-धानको गति नष्ट हो जाती है। इस पीनसरीरमें वात पीर कफको प्रक्षोभनासे जुकामके लक्षण प्रायः मिलते हैं।

पानपीनसका कलत्र—मस्तककी शुरुता, अरुधि,
नामिकासे स्त्राय, स्वभङ्ग और वारम्बार निष्ठोदन
होनेसे उसे अथवा पीनस कहते है।

पक्षीमनसा लक्ष्य—पूर्वीक पामपोमके लक्ष्यके
जो सा कफ गाढ़ा हो कर नामास्थिमें संलग्न होर स्वर
प्रमथ तथा श्लेष्माका वर्ष विद्युद होनिसे पक्षीमनस
समझना चाहिये । (भावप्र०)

महदपुराणमे लिखा ६—

“विष्णो विरुद्धा चूर्णं मधुमेधं च संयुतम् ।

दशरोगग्रस्त्यास-पौषरीनचङ्क-भवेत् ॥”

विषमि वीर विफलाचर्या मधु तथा मैथुनं
साध प्रयोग करनमें घीतसरीग जाता रहता है ।

चरक चिकित्सितम् २४^{थं} अध्यायम् चोर उग्र-
तमा २४^{थं} अध्यायम् इमं योगसंयोगी चिकित्सादिका
विशेष विवरण लिखा है । नानागण देखो ।

योग्य (हि० इत्थं०) पामकी ।

पीनसा (सं० स्तो०) पीनस-टापु । ककटो, ककटो ।

पोलमिम् (मं० ति०) पोलम कल्प्यते इत् । पोलमगोमी,
पोलममे पोलिम, जिमे पोलमरीग इत्यादी ।

पोना (हि० कि०) १ पंच घटांश को सुप्त दाता घटय
 करना, जल या जल संग्रह घटायी सुष्टि दाता घटके
 मोन पदुषाणा, किमी तरन यष्टुको घट घट करके
 गयेके लोचि घटारना, पाम करना, घटना । २ किमी
 मनोविकारका कुछ मो यष्टुभज न करना, मनोभावहीन
 रहने देना, कुछ मो शेष या बाको न रहना । ३ किमी
 मनोविकारो मोतर दो मोतर दबा देना, मनोभावशो
 बिना प्रकट किये को नष्ट कर देना, मारना । ४ किमी
 मध्यम्यमें सवैया मोन धारण कर देना, किमी कार्यके
 मध्यम्यमें यष्टन या कार्यमें कुछ न करना, किमी घटना-
 के मध्यम्यमें अपनो नियति ऐसी कर लीना जिससे उसमें
 पूर्ण पसम्यस्य प्रकट हो, पूर्ण सपेक्षा करना, किमी
 किमी बातको दबा देना । ५ घटमान, गाली पादि पर
 लोथ या उत्तेजना न प्रकट करना, तब जाना, बरदाश्त
 करना । ६ सुराजन करना, मद्य पोना, शराव पोना । ७
 मोषय करना, मोसुना, चूसना । ८ भूखपान करना,
 दूध, पुष्ट पादिका धुमां भीतर खींचना । (पु०) ९
 तिल, तोरी पादिली पसी । १० डाट, डडा ।

पोना (दि० स्त्री०) पोना, तीसी या तिन पादिको लुलो ।

पोनोभो (म० स्तो०) षोणं सुखमवुधो यस्याः । (बृहस्पतेरु
 षणो श्रीष । या ४१।१५) इति । टीका, (बृहस्पतेरु । या
 ५३।१३१) - इति षष्ठोऽध्यायस्य षष्ठोऽङ्गिरसादेशः ।
 योवायुनो गाभिः, बहू माय निमगा यम बहुम वृक्षा इ ।

पौष (वि० स्त्री०) कट्टे फोड़े या घावों की गहराई निकलने-
वाला भक्षित्वसदर पदार्थ । यह दूषित रक्तही रहता
है । इसमें रक्त के अंतर्गत्वही अधिकतासे होते हैं ।
जबकि पचाना इसमें गरीरके सड़े हुए पद गट्ट वट्टों
की रक्तस्रावों की कुछ मात्रा में रहता है । गरीरके
किसी भागमें इस पदार्थके जमा हो जानेसे ही पच-या
फोड़ा होता है और अब तक यह निकल नहीं जाता,
तब तक बहुत गट्ट होता है ।

પીપર (.ઈં • પુ •) જોત દેશો ।

वीरपते (हि० पु०) कानने पहनेका एक धाम्पते ।

पौषशामुस (हि० पु०) पौषशामुस ।

पोषण (मं० पु०) चर्चा पत्रांतोस पृ० १२, अशीसोय
दीवंच । इतर पुढा होटा पावत ।

पीपरि (हि० पु०) पीरक देखो ।

पीपल (हि० पु०) १ वरगदकी जातिका एक प्रसिद्ध वृक्ष जो भारतमें प्रायः सभी स्थानोंमें बहुतायतसे पाया जाता है । विशेष विषरूप पिप्पल शब्दमें देखो । (स्त्री०) २ एक नृत्ता जिनको कलियाँ प्रसिद्ध पीपधि हैं ।

पिपली देखो ।

पीपलामूल (हि० पु०) एक प्रसिद्ध औषधि जो पीपल-औषधि की जड़ है । आयुर्वेदके अनुसार पीपलामूल गरम, तीक्ष्ण, चरपरा, रुख, दस्तावर, पाचक, पित्तको क्षुब्ध करनेवाला, रैचक तथा ग्रीवा, उदररोग, शुष्म, श्वास, क्षम, वात, कफ, आनाह, चयुरोग, भ्रम, खाँसी और मूलको दूर करनेवाला माना जाता है । इसे पीपरा-मूल भी कहते हैं ।

पीपा (हि० पु०) बड़े डोलके आकारका या चौकोर काठ या लोहे का बरतन । इसमें शराब तैल आदि तरल पदार्थ रखे और चालान किया जाता है । बरसातके सिवा अन्य दिनोंमें बड़े बड़े पीपोंको यंत्रितमें बिछा कर नदियों पर पुन भी बनाये जाते हैं ।

पीपाजी—गाङ्गरोलके एक हिन्दू राजा । पहले ये महापात्र थे । एक दिन एक वैष्णवीसाधु उनके यहां प्रतिष्ठित हुए । राजाने उनकी भजना करके सामान्य खाद्यद्रव्य खाने को दिया । साधुने उसे खाती लिया, पर तृप्त न हुए । राजाको क्षणभङ्गि होन जान कर और वैष्णव सेवामें उनकी संतुष्टि नहीं है, ऐसा देख कर वे मन ही मन बड़े क्रोध हुए । साधु, राजाजी देवीका लक्षणवाच समझ कर, देवीकी स्तुति करने लगे, 'देवि ! यदि राजाकी मति पक्क हो जाय और क्षण तथा काली यह भेदज्ञान जाता रहे, तो भोगवर्ज्य, धन, राज्य समी सफल होगा । फिर क्या था, प्रायः ना सुनते हो भगवती लाकिनो, योगिनो और शक्तिनो की साथ से राजाके वक्षस पर चढ़ बैठो और क्रीडासे खेलने लगीं, 'रे मूढ़ ! तूने भक्त्याभिमानसे क्षणमत्र साधुकी भजना की है । इस कारण कल सबरे विद्यावनसे उठ कर पापके प्रतियोगिरूप वैष्णवचरणमें प्रविष्टा करना और पतनो पेटराय स्वोकार कर चला मांगना, नहीं तो तुम्हें पर पापदका पहाड़ टट गिरगा ।' स्वप्नादिष्ट

राजा ज्यों ही सबरे विद्यावन परसे उठे, त्यों ही उन्होंने वैष्णवके चरणोंमें प्रणाम कर चला प्रायः नाको । देवीके अनुग्रहसे क्षणमत्र लाम करके राजाके दिश्य चक्षु पुन गये । उन्होंने राज्यसम्पदको अनर्थका मूल समझ कर संनारायण त्याग करनेका व्रतस्थ किया । किन्तु अपने आराध्य महामायाको छूटित किये बिना गृहत्याग करना उन्होंने युक्तियुक्त न समझा और जिनको लक्षणसे वे इस सारधनका उपभोग कर सकें, ऐसे गुण कहाँ मिलेंगे, उसके लिये महामायाको प्रायः नाको । देवीने राजाको कायोधाममें रामानन्दका शिष्यत्व ग्रहण करनेका उपदेश दिया । तदनुसार राजा चला गये और रामानन्दसे दीक्षित हुए । गुहकी लक्षणसे उन्होंने परमपद प्राप्त किया । अनन्तर राजा गुहके आदेशानुसार घर छोड़ कर हरिकी सेवामें लग गये । अन्तःपुरचारियों रमणियोंके पारस्मिक मन्त्रलविधानके लिये उन्होंने रामानन्दको कायोधामसे बुलाया । गुहने पा कर रमणियोंको दोषा दो । सातो रानो वैराग्यका चमत्कर्म करके राजाके साथ चलनेके लिए इच्छुक हुईं । राजाने सबोंको मन-वैजमें उनके साथ चलनेका वर । सबसे पहले भीता नामकी छोटी रानी भलद्वार और जरीने कपड़ेकी फँक कर क्षणविरहमें व्रमस हो राजाको पुनर्गामिनी हुई । पहले वे दोनों द्वारका चले । यहाँ क्षणको न देख राजा क्षितप्राय हो गये और लोगोंसे दूर होने लगे, क्षण कहाँ ? उन्होंने उत्तर दिया, क्षणकी भाँकी सातवीं रातके बाद द्वारवती क्षणके साथ सागरगर्भमें लोन हो गई हैं । यह सुनते हो राजा और रानी जलमें बूढ़ पहुँचें । नारायणने गुहलक्ष्मणसे उन्हें दर्शन दिये । बाद क्षणकी प्राप्तिसे वे पुनः द्वारकाके किनारे उतरे । राजा द्वारका-पुरीको प्रकाश करनेके लिए रणकोड़को और चौकसजी नामक दो विप्रह मूर्तियोंको स्थापना कर तीर्थपर्यटन-को निकले ।

जङ्गलमें भ्रमण करते-समय एक व्याघ्र उन्हें पकड़ने पाया । राजाने उसके कानोंमें क्षणमन्त्र फँक दिया और वह भाग चला । अन्त्यावनके शेषमायोहटमें ही समेत राजा श्रीधर नामक एक हरिद्व वैष्णवमार्गके घर प्रतिष्ठित हुए । उस समय मार्गवर्षके चरमें खानेकी

२ लघन, मोटरे पानेमे पायेकी चोर छुह छुह पड़ना ।
पीनता (सं० स्त्री०) पीनत्व भावः, भावे तन्मूटाव ।
प्युसता, मोटाई ।

पीनद्व (सं० पु०) मरलक्ष्य ।

पीनता (हि० क्लि०) पीनता देखी ।

पीनर (सं० क्लि०) पीनत्व चट्टरदेगादि चपदादित्वात्-र
(पा ४२८०) । पीन-सविच्छट्ट देगादि ।

पीनम (सं० पु०) पीनं स्युलमपि जन्मं स्वति नाशय-
तीति मोक्षः । नाशिकारोगविशेष, नाकका एक रोग ।
पर्याय—प्रतिग्राह, अपीनम, प्रतिग्राह चोर नाशिका-
मय ।

इसका लक्षण—इसमें नाकके मयने शुष्क, कफसे
भरे हुए चोर जिस पर्याप्त नीचे रहते हैं तथा उनमें
जलन भी रहती है चोर नाककी प्रायः या बास-पह-
चाननेकी शक्ति नष्ट हो जाती है । इस पीनमरोगमें घात
चोर कफके प्रक्षोषवासे लुकामके लक्षण प्रायः
मिलते हैं ।

पामपीनमका लक्षण—प्रसूतकी सुरता, चरुचि,
नामिकामे स्वाय, स्त्राभ्र चोर कारवार निष्ठोजन
कीसे उसे चपक पीनम कहते हैं ।

पहपीनमका लक्षण—पूर्वात पामपीनमके लक्षणके
जैसा कफ गाढ़ा हो कर मासारम्रमें संलग्न चोर स्त्र
प्रसक्त तथा स्त्रेष्वाका वर्ष विषय कीमे पामपीनम
समझना चाहिये । (भावप्र०)

गहड़पुराणमें लिखा है—

“चित्ती प्रिकता कूर्म मधुगन्धसंयुक्तम् ।

सर्वरोगहरश्चाप-मोचपीनमहृन्मयेव ॥”

पिप्पली चोर त्रिकफाच-पंजा मधु तथा सैन्धवे
भाय प्रयोग करनेमें पीनमरोग जाता रहता है ।

चरक चिकित्सितस्थान २४में अध्यायमें चोर उत्तर-
तन्त्रके २४में अध्यायमें इस पीनमरोगकी चिकित्सादिका
विमोच विवरण लिखा है । नाशारीय देखी ।

पीनघ (हि० स्त्री०) पानकी ।

पीनघा (सं० स्त्री०) पीनघ-टाप । कंकटो, ककड़ी ।

पीननिम् (सं० क्लि०) पीनम चपकने दन् । पीनमरोगी,
पीनममे पीडित, जिसे पीनमरोग हुआ हो ।

पीना (हि० क्लि०) १ पेष पटाये की मुख दाग पड़ने
करना, मय या जल सहम संयुक्ती मुँहके दाग पेटके
भीना पड़ना, किसी तरफ मनुकी घूँट घूँट करके
गलेके गोले छनारना, पान करना, घूँटना । २ किसी
मनोविकारका कुछ भी अनुभव न करना, मनोभावहीन
रहने देना, कुछ भी मय या बाकी न रहना । ३-किसी
मनोविकार भी मोतर की मोतर देना देना, मनोभावकी
विना प्रकट किये हो नष्ट कर देना, मारना । ४ किसी
मन्वन्धमें सत्र या मोन धारण कर लेना, किसी कार्यके
मन्वन्धमें बचन या कार्यमें कुछ न करना, किसी घटना-
के मन्वन्धमें चपको ग्यति देना करना जिसमें समये
पूर्व समन्वय प्रकट हो, पूर्व उपेक्षा करना, किसी
किसी घातको देना देना । ५ चमकाना, मांसो पादि पर
लोष या उच्छेजना न प्रकट करना, सह जाना, बरदास्त
करना । ६ सुराशन करना, मय पीना, शराब पीना । ७
शोष करना, मोसना, चूसना । ८-धूस्रपान करना,
दुकी, चुष्ट पादिका धुआँ भीतर खींचना । (पु०) ९
तिष्ठ, सोभी पादिकी खसी । १० डाट, छटा ।

पीनो (हि० स्त्री०) पीन, सोभी या तिष्ठ पादिकी खसी ।

पीनोभो (सं० स्त्री०) पीनं स्युलमधो यस्याः (बहुव्रीह
की शीव । पा ४।१।१५) इति ङीप्, (उपोद्गन् । पा
५।३।११) इति उपोऽङ्यस्य बहुव्रीहिनडादेः ।
पीनोभो नामि, वह नाय जिगका घन बहुत बढ़ा हो ।

पीप (हि० स्त्री०) कूटे फोड़ो या घावके भीतरमें निकलने-
वाला फिद लक्ष्मण पदार्थ । यह द्रवित रक्तकी दवा-
नार है । इसमें रक्तके मोतक्षय की अधिकतामें होते हैं ।
इसके चमकाना इसमें गरीरके सके हुए चोर नष्ट घटकी
चोर तन्मूवीका भी कुछ लाभ पंग रहता है । गरीरके
किसी भागमें इस पदार्थके जमा हो जानेमें ही मय या
फोड़ा होता है चोर मय तक यह निकल नहीं जाता,
तब तक प्रसूत कट होता है ।

पीपर (हि० पु०) पीत देखी ।

पीपधन (हि० पु०) काममें पड़नेका एक धाम्युध ।

पीपामूल (हि० पु०) पीपामूल ।

पीपरि (सं० पु०) चपि, पिपतिंति पृ-इन्, पंवरलो-
दीर्घय । इन्द्र प्रजा छोटा पायक ।

सब द्रव्यों का बराबर भाग ले कर शूरण (धोन), दन्तोमुन, मुण्डोरी, काकमाची, रुद्रराज, चाकन्द और चित्रक इन सब द्रव्यों को रसमें सात बार पीस कर गोली बनावे। इस औषध के सेवनसे शूलरोग प्रशमित होता है। (रघुविजयाम्)

पीयूषोत्था (सं० प्लो०) धानम् मिस्त्री (Eulophia campestris)। यह सब्जकर माना गया है।

वीर—सुषुप्तमानों के धर्मगुरु। जो प्राणोत्थन ईश्वर चिन्ता में अपना समय बिताते हैं, ऐसे संसारवासी सुषुप्तमान संन्यासी को वीर कहते हैं। पारस्विके खुदगण सब बीर हवा नरनारीमात्रको ही वीर कहा करते हैं। साधु वीर-गण अन्ध्यागत पातुरों को औषधदाते और वीर साधारण व्यक्तियों को ईश्वरतत्त्व का उपदेश तथा भविष्यवाणी बतला कर पूज्य हो गये हैं। क्या हिन्दू, क्या सुषुप्तमान सभी पोरों की पूजा करते हैं। यहां तक कि, कोई कोई हिन्दू वीरका प्रवाद तक भी लाते हैं। कहीं कहीं बन्ध्या रमणियां सन्तान के लिये वीरको पूजा करतीं। पथवा सिरने चढ़ाती हैं। जहां जहां सुषुप्तमान साधु-गण रहते हैं, वही स्थान तथा उनके समाधिस्थान जन-साधारण के पादरथ हैं। इन सब समाधिस्थानों में कहीं कहीं जायिक सेना भी लगता है जिसमें लाखों खपर पादसौ इकट्ठे होते हैं। वीर-सुगिन्द शब्द का अर्थ मोक्ष पथप्रदर्शक तथा वीर-प्रो-सुगिन्द-शब्द का अर्थ माननीय धर्मोपदेयक है। कहीं कहीं धनी वीर माने व्यक्तियों को इसी उपाधिसे सम्मान करते हैं। नीचे कुछ सुषुप्तमान पोरों के नाम और उनकी दरगाह लिखी जाती है।

- १। वीर, फूहू-मैनपुरी जिले के रामोश्राम में।
- २। वीर साहब—सुजयपुरनगर जिले के भौसवाल ग्राम में। यहां एक मंजरा लगता है।
- ३। वीर कपानी—सजीमगढ़ जिले की महम्मदाबाद और मोहन तहसील में।
- ४। वीर मरदनासहिद—शहरानपुर जिले के सिर-सिवा पत्तन में। ये किलकिला मोहब नामसे परिचित है। यहां ये गोगा चौहान वीर सुषुप्तमान-समाज में गोगा वीर वा वीर जाहिर नामसे पूजित होते हैं।
- ५। वीर मुखारकगाह—हमीरपुर जिले की महोवा तहसील में।

६। वीर महम्मद—सुजयपुरनगर जिले के भावन ग्राम में सखाट, बालमगौरने १११४ हिजरी में इनके स्मरणार्थ एक मसजिद बनवाई थी।

- ७। वीर सर्वाणो—जलालन जिले के भोरोई नगर में।
- ८। वीर ताजबाज—सहितपुर जिले के ताजबाज नगर में।

९। वीर एकदिनसाहब—२४ परगने के काली-पाड़ा ग्राम में।

- १०। वीर बदरछहोन—बारासात, पृथिवी।
- ११। वीर फलो—खुलना जिले में।
- १२। वीर मंघो—कराचो के प्रकोष्ठ पथिम में। यहां प्रतिवर्ष बहुत स्थूल सुषुप्तमान जमा होते हैं। यहां का गरम सोता वीर मन्जर-तालाब भी देखने लायक है।
- १३। वीर-वीरव, वीरव-द-पोर वा वीर-द-दस्तगौर—एक विख्यात सुषुप्तमान फकीर। ये सर्वत्र पूजित हैं। ये चिन्तानवासी वीर सुकिमत से प्रचारकर्त्ता थे। वाग-दाद में अब ये पढ़ने गये तब वहीं उनकी श्रद्धा और समाधि हुई थी। प्रसिद्ध कवि सादी के भाव गुरु थे। प्रतिवर्ष १२वीं रवि लग्नशानी में इनके स्मरणार्थ एक मेला लगता है।

१४। वीर गाजीसाहब—२४ परगने के बाबईपुर में। दाक्षिणात्य में बम्बई प्रदेश के अन्तर्गत कोजापुर, भारवाड़, पूना, गिन्नु, भद्रमदाबाद आदि जिलों में अनेक साधु व्यक्तियों के समाधिमन्दिर वा मसजिद हैं। जिनमें से निम्नलिखित दरगाह विशेष सम्यह हैं।

वीर शमीन—बीजापुर, १५५० ई. में यहाँ पादिल शाहसे निर्मित।

वीर अमरकगाह, वीर फजलशाह, वीर हबीषगाह, वीर ईमानशाह, वीर कायमदिन, वीर कायमशाह वीर कुमालशाह, वीर कायमोभा, वीर महम्मदशाह, वीर महम्मदकमान, वीर नूहोतानी, वीर पांदगाह।

किसी व्यक्ति को उच्चधार्मिक संसक्त कर जब हम लोग उनकी हंसी उड़ाते हैं, तब कहते हैं मशायख "वीर त पगखर"। सुषुप्तमान धर्मशास्त्र में दोनो ही स्वतन्त्र बतलाये गये हैं। ये स्पष्ट देखो।

भारतवर्ष के आजा खानों में इनको वीर वा फकीर-

काई चीज न हो। ब्राह्मणेनि परित्यक्त कष्टको बंध कर
पतिव्रता मन्थार दिया घोर पाप मंगो हो रहैं।
पादारंभ समय पाणी घाटसो एक पाव भोजन करेगे,
रसके लिये पीपलको ब्राह्मणने चतुरोद्व लिखा। किन्तु
ब्राह्मणो नंगो हो, सन्धाने बाहर निकल न सकी।
मोताने चन्दे चोख कर बाहर किया घोर अपमान पाधा
कपड़ा दे कर उनको लाज बचाई। सोठते समय उन्को-
ने माधु मेघनके दारिद्र्य मोचनके लिये श्रीकृष्णको
पूजि की।

पीयर्षा—एक विदुषो। ये बहुतसे सो अच्छी २ कविताएँ
बना गई हैं। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं,—

बसत प्रपन्न इन बंधनके बंध पड़्यो परदारात भव

आनत पुआई की।

परभन हरे परमीरनको बरत जात गय मोक्ष स्वात छरलेख

न मझाई की॥

होंगो दियात तब मुक्तके न भारे उभाह छुट्टर कहन केसा

केत राई राई की।

हरी तौ करे दिगम्बर दमो न मनि पाव यो मति आने

उदा राम पीयर्षा की॥

पीव (हिं० पु०) पीर देखो।

पीय (हिं० पु०) पिय देखो।

पीयन्तु (सं० लि०) वो हिंसापूर्ण वादुलकात् कातु।

हिंसापूर्ण शत्रु, आगे दुश्मन।

पीयस (हिं० लि०) पीसा देखो।

पीसा (हिं० पु०) पिय देखो।

पीयु (सं० पु०) पिबनेनि पा-कू- निपातनात् युगागमः,

ईत्वं चानादिना (सह छन्दो योऽनु गीर्धु छिद्र। इय, १।१०)

१ काक, समय २ मूर्ध। ३ मिठोयन, एक। ४ काक,

कोपा। ५ पेष, मज्ज। (लि०) ६ हिंसक, हिंसा

करनेवाला। ७ मतिभूल, विवद।

पीयसा (सं० स्त्री०) प्रसभेद, एक प्रकारका पाकड़।

पायसा मन्दई, पाट बन मन्दका 'न' बतल होता है।

यथा, 'पीयूषावधम्'।

पीयसिन्ध (सं० लि०) पीयसा तन्मा पदूरदेमादि कागा-

दिलादिल (वा ४।२।५०) पीयूषाके समीप देमादि।

पीयूष (हिं० पु०) पीयूष देखो।

पीयूष (सं० स्त्री०) पीयूष इति पीय मोक्षपातु कथन।

(पीयूषवत्, ३५, ४।५६) १ चन्द्र, युगा। २ दुग्ध,

दूध। ३ नवप्रयुता गामिका मरुतिनाभ्यन्तरोप दुग्ध,

नई म्याई दूध गायका प्रथममे मांसमे दिन ततका दूध,

उम गायका दूध जिमे म्याए मात दिनमे पथिक न

दूधा हो। मैथवर्मे लिखा है, ति एसा दूध दाहकारक,

फल, रक्तको क्षुपित करनेवाला घोर विषकारक होता

है। ऐसा दूध चर्करा लोग नहीं पीते क्योंकि यह स्वास्थ्य-

के लिये हानिकारक माना जाता है।

पीयूषमदम (सं० पु०) पीयूषममृतमयं मदः किरणं

यस्य, वा पीयूषमिव मदी यस्य। चन्द्र, चांद। इनको

किरण चन्द्रस्तुल्य है।

पीयूषरवि (सं० पु०) पीयूषं पीयूषमयो रवियर्थे

१ चन्द्र, चांद। पीयूषे चन्द्रते रवियर्थे। २ चन्द्र-

मिव, चन्द्रका-वा-नेवाला।

पीयूषवर्ष (सं० पु०) पीयूषं वर्षति ह्यव-पन्नः। १

चन्द्रमा, चांद। ५ वर्ष, वर्ष। ३ चन्द्रमौल नामक

चमड़ाप्रत्येके प्रणिता। ४ एक दण्डका नाम जिसके

प्रत्येक चरणमे १०-८-विग्राममे १८ मांशाएँ घोर चक्रमे

गुप्त सप्त होता है। ५मे चान्द्रवर्ष मो कहते हैं।

पीयूषलोचन (सं० पु०) रसपथविनीय, एक प्रकारको

दवा। ६चुन प्रणाली—पारा, गन्धक, चक्रपथ, रोय,

मोक्ष, मोक्षाना, रसायन-घोर साक्षिक प्रत्येक पांथ

तोला। मरुत, चन्द्र, सोया, पाकगादि और, धनिया

बराहकास्ता, पतोल, मोध, कूटन, चन्द्रको, दाहकोनी,

जायफल, कीठ, शेलर्षाठ, सुगन्धबाला, पनारको हान,

धरईकल यो। कुट प्रत्येक एक तोला, इन सब द्रव्यों-

को मिलावरोके रसमे भावना दे। बाद चक्रोके दूधमे

पीय कर जनेके यावत मोनो बनावे। इसका अनुपात

पानिमे घटाया शैल घोर गुड है। इन पीयूषका नेबन

हरनेमे भी प्रकार ३ पतोल घोर घटको रोग जाता

रहता है। यह चान्द्रवर्षक घोर चन्द्रिदोषक है।

(येरुशालासं मरुतिविधिवा।)

पीयूषसिन्धुरस (सं० पु०) रसोपभेद। परतुन प्रणाली—

मातुकायन्त्रमे वक्त्रमुच गन्धकके साथ माल किया, २।

पाद, मर्च, मोक्ष मरुत, चक्रमरुत घोर गन्धक इन

५४ ग्राम लगते हैं; जिनमेंसे ४८में चतुर्विध, १में ब्राह्मण, २में कायस्थ और १ गावमें सुसलमान बसते हैं।
 पीरनाबालिग (फा० वि०) बुद्धिभट्ट बूढ़ा, ऐसा ठहरे जो वधोक्ते काम और बातें करे, सठियाया हुआ बुढ़ा।
 पीरपञ्चाल—(साधुपवत) काश्मीर राज्य के अन्तर्गत एक पर्वतमाता। उक्त राज्यके दक्षिण-पश्चिममें पञ्चाव-को सीमाना पर यह अवस्थित है। मारमुत्ता गिरिसदृष्टसे मन्दनसारवा पीरपञ्चाल तक यह २० कोस विस्तृत है। इसका सर्वोच्चशिखर समुद्रपृष्ठसे १६४०० फुट ऊँचा है। पीरपञ्चाल गिरिपथ पर किसी सुसलमान साधु वा पीर की कब्र है। धर्मप्राण सुसलमान पयिकगण अपने अपने अभीष्ट प्रार्थना करनेके लिए इस पवित्र क्षेत्रमें आते हैं। यहाँसे काश्मीर-गुजरात तक एक सीधा रास्ता चला गया है। पीरहिन्दनके ऊपरका रास्ता सुन्दर दृश्यपूर्ण अधिपत्यकामय है जिसे हिन्दू लोग "छोना-गली" कहते हैं। परित्राजकीके पदोंसे जानिके लिए यहाँ पथ विशेष सुविधाजनक है। वर्ष भरमें प्रायः १ मास तक यह रास्ता बन्द रहता है। चैत्र वा वैशाखमासमें इस राहसे लोगोंकी आने जानेमें कोई कष्ट नहीं पड़ता। काश्मीरके शालिमार उद्यान और लाहौरके ग्राहदेरा मिनारसे यह रास्ता दिखाई देता है।
 पीरपैतो—बिहार और उड़ीषाके भागलपुर जिलान्तर्गत एक समृद्धिशाली ग्राम। यह अर्ध-२५ १८ स० और देशा० ८० २५ पू०के मध्य अवस्थित है। यहाँ इष्ट-दृष्टिया रेविका एक स्टेमन है। स्टेमनसे १ कोसकी दूरी पर ग्राम पीर प्रायः साधुओंसे विष्टत एक बाजार है। इस बाजारमें स्थानीय द्रव्योंकी छोटी सामदगी और रफ्तगी देखी जाती है। यहाँ पथरकी काट कर बिक्रीके लिये तैयार किया जाता है। पीर (बाबा) पैतोके नामसे इस स्थानका नाम पड़ा है। उक्त पीरकी मसजिद बड़ी ही सुन्दर है और आज तक भी विद्यमान है। जन-संख्या करीब तीन हजार है।
 पीरबदर—एक सुसलमान फकीर। बङ्गालके अन्तर्गत चट्टग्राममें इनका समाधिमन्दिर विद्यमान है। जिस प्रक्षरखण्डके ऊपर बदर साहब बैठते थे, यहाँ आज भी नाना स्थानोंसे मनुष्योंका समागम होता है।

पीरवावा—बुनैर-नगरस्थित एक सुसलमान तीर्थ। यहाँ सत्त साधुके समाधिमन्दिरमें ४१५ सो फकीर रहते हैं।
 पीरबुस—मन्दाकिन-प्रदेशके गञ्जाम जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। बेमन-सिंहराज-प्रतिष्ठित यहाँका वैद्य-नाथेश्वर शिवमन्दिर लगभग ६५० वर्षका प्राचीन है।
 पीरमहम्मद—जहाङ्गोरमित्राके पुत्र और अमीर तेमूरके प्रपौत्र। इन्होंने पितामहके भारतगमनके पहले ७८८ हिजरीमें भारतवर्ष आ कर मुलानाप्रदेश पर अधिकार किया था। तेमूर उपयुक्त पौत्रको रामसुकुट प्रदान कर परलोक सिधारे। उस समय महम्मद कश्मीरमें थे। उनका भाई खलोज सुलतान मैन्यदनभुक्त था। अतः उसने सैन्यदल और अपरापर सरदारोंको अपने दलमें मिला कर राजधानी सगरकन्द नगर पर चढ़ाई कर दी। दोनों भाइयोंमें घोरतर युद्ध हुआ। युद्धमें सुलतानको जीत हुई। महम्मद अपने मन्त्रोंके पट्टमन्त्र-कुक्षकमें फँस कर तेमूरको मृत्युके छः मास बाद ८०८ हिजरीमें इस लोकसे चल बसे।
 पीरमहम्मदशियाणी—एक सुसलमान-वेनापति। ये पीरबुस जीके अधीन राजपुत्र राजाके विरुद्ध पाषाण और कालुन-प्रदेशमें युद्धकार्यमें नियुक्त थे। नूहर-बगधर ज़ाफिद (याफिज) से ये अपना उत्पत्ति बतलाते हैं। दिल्लीकी निकटवर्ती अष्टाशान ग्राम इन्होंने बनाया गया है।
 पीरमहम्मदशियाणी—बाबूका नामक जनपदका एक सुसलमान राजा। ये १५२ हिजरीमें विद्यमान थे। जब दिल्लीखर हुमायुनने कामरान् पर आक्रमण किया था, तब इन्होंने दल बलसे साथ बदाशान जा कर उन्हीं सहायता पड़वाई थी। सुलगमेनाई भाग जाने पर घोरो घोर बकायन मौजा कामरान् के अधिकारभुक्त हुए। मन्दाकिन हुमायुन, पीरमहम्मदके आचरण पर क्रुद्ध हो बाबूका पर चढ़ाई करनेकी छद्मता हुए। दोनोंमें घमसान युद्ध हुआ। अन्तमें पीरमहम्मद परास्त हो कर राजधानीकी चम्पत हुए।
 पीरमहम्मदशाह—एक पीरजादा। १०८८ ई०में इनकी मृत्यु हुई थी।
 पीरमहम्मदशियाणी—खानखाना बहराम शांकी बकीत-इ सुलालक पर्याप्त व्यवस्थासहित। खानखाना सत्त

को दरगाह देखनेमें आते हैं। एक एक वीरका मारवाय मोमामय है और जहाँ तक उनकी महिमा जाहिर है, वहाँ तक उनकी याद है। बहाल या एह-वामके वीर प्यमें जो स्थानमें विषय पादमें पूजित होते हैं। कभी भी युद्धभेद या विचारवानो या सर लमें योग नहीं देते। किन्तु पाँच वीरोंको कदा भारतनयमें किसीने भी हिलो नहीं है। कौन कौन पाँच वीर थे और वे पाँच वीर हुए हैं, हम विषयमें मत-भेद हैं। वाँचवीर देखो।

कोई कोई बराहच नगरको गाजी मोर्चा, उनके भोजी वीर हजिरी, सख्तजवाही वीर जहान, जोगपुरके वीर महम्मद तथा एक वीर को कर पक्षीरकी कल्पना करते हैं।

वीर (चिं० धी०) १ दूरकी वीड़ा या कट देख कर सख्त वीड़ा, दूरकी दुरासि दुःखानुभव महाभूमि, कदवा, दया, कमददी। २ वीही, दुःख, दुर्द, तकलीफ। ३ प्रसव-वीड़ा, यथा जननेको समयकी वीड़ा।

यद्यपि सजमाया, पक्षी कोनी और वट्टी तोनी भायाची-को किरियेमें बहुतायनके इस जम्हका प्रयोग किया है और शिरीको बोनपासमें पत्र भी इनका बहुत व्यव-हार होता है, तथापि गद्यमें इसका व्यवहार साधं नहीं होता।

(पु०) ४ मूसनमानोको धर्मगुह। ५ परकीजका मांगेदंग, धर्मगुह।

वीर (का० पु०) १ अद्भुत, मोमवारका दिन। (वि०) २ महामा, मिद। ३ पूरा, चालाक, लमाद। ४ लड़, कुटा, बड़ा कुतुह।

वीरपत्नी—एक सुमनमान माधु। इनका प्रकृत नाम या महम्मद ताहिर। ये बहाधिर या जहाजुदे दोबान थे। सम्भवतः १४४८ ई०में मरा जहाजुके पूर्व वीर परबकीजकमें दे दियामान थे। बागोरहाट नगरमें मरा जहाजु-मददे पक्षिम इनेश समाधिस्तिर है।

वीरपत्नीजबिरीये—एक सुमनमान पक्षीकार, कसर-कल-मातुष नामक पक्षीके रचयिता। १०६४ ई०में साधोरनगरमें इनकी कब्र हुई।

वीरकदशाहाब—एक सुमनमान माधु। बाराहत पक्ष-

विभागके बाराहपुर परगनेके पक्षगत काजीपाड़ा ग्राममें इनकी दरगाह है। प्रतिवर्ष पोषमासमें इनके उत्सवमें एक बड़ा मेला लगता है जिसमें हिन्दू वीर सुमनमान दोनों ही समागम होते हैं। इनके जन्म-महम्मदमें इस प्रकार संवाद है—भाइनील नामक एक राजा था। उनके कोई सन्तान न होनेके कारण रामी पक्षि-मुरी बहुत चिन्तित रहती थी। पतः पुत्रकी कामना-में वे सखा, चादि तोयं चेत गई और वहाँ १६ वर्ष तक ईश्वरकी स्तुति करती रही। बादमें एक वृत्तमें था कर रामीके कहा, 'तुम केवल दारिद्र्यमें सिधे एक पुत्र पा सकती हो।' देखते-देखते पक्षिहित होने पर रामी घर लौटी। यद्यपि रामीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसे दारिद्र्य के बाद देखते-देखते गृहमल्लय धारण कर उठा लेकिन वीर एक मुन्हाके घर रह दिया। मुन्हाके बड़े यत्ने पाठ वर्ष तक उस गिरफ्तार पालन पोषण किया। एक दिन वे रात्रि पर गवार की बानर-पुरकी गये। वहाँ गया वार कर उकीने श्रोत्रजगपुरमें पाद पीके घर भोजन करना चाहा। पादके सार मूर पानि ऐसे मोटे तगड़े पादमोकी भोजन न दिया और कहा, 'आपो हम मोर्गेको सख्तदमें काम करो, तब खाना मिलेगा।' सालकमें पयनी पक्षीकिल चतना दिखानेके लिये एक कोय मग पयलीको उठा कर मघ-जिदके मिशर पर रख दिया। पक्षि बह दिक्कतमें मह-नाम धारण कर काजीपाड़ामें छोटी मोर्गाके घर गये और मयिनी खानेमें निमुक्त हुए। समयः उनके पक्ष-द्रव्ये सख्त हो छोटी मोर्गाने उनके दक्ष देना चाहा, पर सालकके चातुरी जालमें पक्षी पक्षिभूत हो पक्ष-में चार मान ली। एकदमाकी मृदुके बाद पक्षके छपर समजिद बन गई गई। समजिदका पक्ष पक्षीके लिये छोटी-मोर्गाके वंशधरानि पावः १०० जीवा-निष्पन्न लसीके ही है।

वीरकादा (का० पु०) चिथी वीर या, धर्मगुहकी मन्तान।

वीरदार—नामरूपके पक्षगत एक स्थान। वीरनगर—पक्षीपक्षदेसके मोनापुर जिलागत एक परगना। भूविमाप ४४ वर्गमान है। इसमें कुल

सफ़रानेकी प्रपना धर्ममत-समझा कर ग्रिथ बना लिया था। बाद सत्त नाम ग्रहण कर इन्होंने विशेष प्रसिद्धि पाई थी।

घोरवन्दनो—नोपाखानो जिसान्तगत एक नदी।

स्वारके समय इसमें बड़े बड़े नावें आ जा सकती हैं।

घोरशह—ब्रह्मसूक्त के अक्षराध्यान्तगत कण दुर्गके मध्यस्थ एक सुमनसमान पक्षीकी कण।

घोराई (वि० पु०) एक जाति जिसकी ओविका घोरोके गीत गानेसे चलती है, डकाली।

घोरामीड—इजिप्त देशके पश्चिमगत नील नदीके तीरवर्ती कितने कोणाकार प्रभु-निर्मित समाधिस्थल। इजिप्तके प्राचीनतम राजाओंकी मृतदेह यहाँ इसीके गर्भमें निहित होती थी। इनके निर्माण-समयमें बहुतेका मतभेद है। बहुत-इजिप्तवासियोंके धर्मग्रन्थके आदेशानुसार धनी व्यक्तिगण ये सब महाकौर्तियाँ कर्त्तव्यमें निर्माण कर गये हैं। उनका विश्वास है, कि ऐसे स्थानमें निहित होनेसे वे पुनः प्रगतीतल पर लौट सकेंगे हैं।

नीलनदीके किनारे से कर दक्षिण भूमिकी जातिकी कर्त्तव्य सत्तर तक विस्तृत भूमि पर प्रथम प्रायः ७० घोरामीड वर्त्तमान हैं। प्राधुनिक राजव्यवस्था कितने घोरामीडों को तोड़ फोड़ कर उनके प्रस्तरादिसे कई आधुनिकों बना रहे हैं। नीलनदीके पश्चिमकूल पर कायरो नगरके समीप समस्त बड़े-तीन घोरामीड देखे जाते हैं। इन सबको प्राचीनता, उच्चता और भित्तिके विषयकी जानकारी करनेसे आश्चर्यान्वित होना पड़ता है। इसीसे यह जगतकी भौतिकीय कौर्तियोंमेंसे एक कौर्ति-समझी गई है। मेट्रमका घोरामीड ईसा क्रमके पाँच हजार वर्ष पहलेका बना हुआ है। घोरामीडकी आकृति Δ त्रिकोणकी तरह है।

प्रायः तीस घोरामीड कायरो के पास ही घोरामीड निर्मित देखे जाते हैं। जो जिन नामक स्थानका घोरामीड ४६१ फुट लंबा और तलदेश ७४६ फुट लम्बा है। इसके पत्थर बहुत बड़े बड़े हैं। एक आदमी एक पत्थर नहीं उठा सकता। 'दि ट्रेज-घोरामीड' खुदुर (Gheops of Dynasty iv) मसजिद नामसे प्रसिद्ध है।

नहरके निकट जो घोरामीड है, उनमेंसे प्रत्येक

अभ्यन्तर एक एक समाधिगर्भ है और प्रवेशद्वार उत्तरकी ओर है। चौक ऐतिहासिक चिह्नोदोतवने लिखा है, कि इससे एक पत्थरको दो हजार मनुष्य तीन वर्ष में कर्म-स्थान पर टी कर लाये थे। यह पत्थरका टुकड़ा १२ हाथ लम्बा और १४ हाथ चौड़ा था।

घोराको—ब्रह्मसूक्त के राष्ट्रीय ब्राह्मणोंका एक शास्त्र। सुसलमान संस्मर्यसे इस शास्त्रकी उत्पत्ति हुई है। कौषल ब्राह्मणोंमें नहीं, कायस्थ, नापित आदि जातियोंमें भी घोराकी-शास्त्र है। किन्तु ब्राह्मणों के मध्य इस शास्त्रकी जैसी स्तम्भता है, वैसे ही और किसी जातिमें नहीं है।

इस शास्त्रकी उत्पत्तिके विषयमें नाना प्रकारकी किम्बदन्ती प्रचलित है। किन्तु उनमेंसे जिसकी साथ ऐतिहासिक कथाका संस्मर्य है, वंशगत कथाका मिल है, उसीका सबसे यहाँ किया जाता है। प्रायः पाँच सौ वर्ष पहले खाँ जहान्-पली नामक एक व्यक्ति दिल्ली दरबारसे सुन्दरबनकी आबाद कारनेकी सनद ले कर यमीर आये। ये यमीरके एक प्रान्तसे रास्ता निकाल कर दोनों ओर बंन काटते हुए अचमर होने लगे। जङ्गल पथमें अलका अभाव होनेसे प्रति पाद कीसकी दूरी पर एक एक पुष्करिणी खोदी गई। इस प्रकार वर्त्तमान खुलना जिसके बाँवर-घाट महकूमे तकका स्थान परिष्कार कर उन्होंने यहाँ जमींदारी बसाई। इनका जमींदारीके आश-पास यमीरके चण्डिया प्रगणिके जमींदार राय-वीरवीरके सिवा और कोई भी प्रबल जमींदार न थे। खाँ जहान्-पलीने जमींदारीकी स्थापना करके उसका कुल भार इन्हीं वीरवीरके हाथ सुपुर्द किया। खाँ जहान्-पली पति विस्वोर्ष जङ्गलके अधिपति होनेसे भीषण ही नवाब खाँ जहान्-पली ही उठे। अब उन्हें हिन्दूकी सुसलमान वर्णनेकी पुन लगी। एक ब्राह्मण इन समय नवाब खाँ जहान्-पली पति प्रियपात्र बन गये थे। इन्होंने ही अन्तर्गत नवाबके अनुरोधसे सुसलमानोंके धर्म ग्रहण किया और प्रपना नाम महम्मद-ताहिर रखा। महम्मद-ताहिर बड़े ही कष्ट सुसलमान हो गये। इनके खोमसे नवाब खाँ जहान्-पलीने इस अंशमें तीन सौ साठ मसजिदों तथा अन्यान्य कौर्तियोंकी स्थापना की। धीरे धीरे महम्मद ताहिर नवाबके

द्विदिन बादकी सभासमे लाये थे। पहले जय मे निकारमें पड़ गये थे, तब हमी व्यक्तित्वमें उभरे दमकम कर्मचारी तब भोजन कराया था। इस तब हारका समर्थ करके हमने शिवाजीको भी पोर सुनतामको सप्राप्त हो गी। हमी सम्राट, मेनापति पादि राज-कोय कर्मचारियोंको हमने के पास पावेंदमय भोजन से रोते थे। इस उद्यम समामने भूविष को हलका मस्तिष्क गरम हो गया। अब के घरने बाहर तब भी नहीं निकलते थे। जब कोई बगल पावेंदमय कर कर उनके समोप जाता था, तब वे हम पर जान हो मर्गे देते थे। एक दिन पानपाना स्वयं उनका थोड़ा घर गये पोर दोरने मुनाकत करना चाहा। परन्तु हारगामने भोतर क्षान्ति मना किया पोर जगो जगह सब तक उबरने कहा, जब तब यह धीरको हमको खबर दे कर मोट न पावे। इस पर बहराम बड़े बिरुद्ध पोर जगोमें पोरके राजकोय कर्म पोर सप्राप्त होम सो तथा समके साथ साथ पनाका, पामामोटा पोर जय-टका पादि मानपुत्र समबाध धाविष देतेको कहका भेजा। पोरसम्प्रदाय उनके पोरों पर गिर पड़े पोर अनुमय विषय करने मगे, पर उन्हेने एक भो न सुनो। कुछ समय तक हमी चबलामें रज कर पानपानामने उन्हे पनाकादुगेने सुनवाया पोर सप्राप्त मकाको भेज दिया। किन्तु जय के गुजरात पड़ने, तब उन्हे मान्यम पड़ा, कि बहराम पोरको पदस्थति हो गई। अब फिर क्या था, ने सभी समय राजपामाटकी मोटे पोर दिवली पा कर उन्हेने मामिर-उल-मुदली सप्राप्त तथा पनाकादि नायक पाई। पदस्थति के बाद पानपाना मकाकी पोर भाग रहे थे, उन्हे पकड़नेके लिये एक दल भेजा भेजी गई।

१६१२ ई० में उन्हेने मारपुरके निकट मान-राज बालबहादुरकी मुद्रासे पनाका किया। यहके बाद उनको पनाका दममनेसे पकड़के साथ पनाका कोनेके भण्डे पानपाना कर डाली। मित्रयममदके दिवली पड़नेको भी १६१८ दिवलीमें मकाट, स्वयं मानपको पोर पदमर हुए। पोरसम्प्रदाय मानपके जगोहारीकी साथ कर मकाट के मामने हुए। इस समय सभीकी राज-

परिपश्य पोर पामादि हमामने मिले थे। हमने बाद १६१८ दिवली (१६१२ ई० में वे मानपके मायकल) पद पर पामित्तरी पानी (गाम्देम) मुरदनपुरमें विद्योदममकी गये। पहले हमने पोरजगमदुर्गमें पनाका पोर के पोर पर पामोको पोर जानि समय सुनतामपुरको दमन कर लिया। मरदानदी पार कर हमने राजमें पनेकी पाम पोर मगरकी जमा डाला, मुर्दानपुर मगर पर चढाई करके मार काटका पाम दमन दे दिया। मकड़ी मुका, पामिग पोर मयटके मकाक मने मामने काटका टेर कर टिरे गये। इस समय पामो पोर मुर्दानपुरके मामनकाजाने तथा पुरतन मानपराज बालबहादुर पोर पानपाना जगोहारीने मिल कर पोरमहमदके विरुद्ध पनाकाया किया। बालबहादुरी सप्राप्त न देव पोरसम्प्रदाय मायको पोर भाग गये। किन्तु मरदानदी पार करने समय वे जलमें डूब मरे। यहकरके राजपने पथम वर्ष (१६१२ ई०) में उन्हेने पदमर पति पामिग पोरके विरुद्ध पनाकाया को थी। इस युद्धमें हमने भाग जाने पर भी पोरके कितने पनाकाक मुमलमान परिवार उनको करानपाने निकार बने, समकी समार गयी।

वीरमान (हि० पु०) परवान, पदमका) मकाक कपा मके दूव के कटे मिलके कोने मिली पर मका, बने रहते है पोर मिल पर पान सप्राप्त जानी है।

वीरमुरमिद (का० पु०) मुन, पुरमोय, मकाका पनाका पामने टरजमें बहन बहा। हमने पनाका रातापी, बाटमारी पोर बहने लिय भी इसका प्रयोग किया जाता है।

वीरमिट—मकाक मदेमके विरुद्ध कुराका एक पामोय मकाकनियाम। यह पनाका १६१८ ई० पोर देमा १८० पु० के मये पामित्त है। पनाकी सपनाका माय तोम हजार पुर लको है। हमने पारी पोर लमाम १६ हजार कीट लमोनें जानी साथ सपनाकी है। पामो, मिममम पोर मपुरा जानि पनाका बहा की मुद्रा है। पनाकदमने पनाकीका पाम है पोर काकी मुद्राको पद बहो पामुत है।

वीरसंगीत—एक हिन्दुमानपामो मदिन। हमने मका

इस मोलमासमें रायचौधरी वंश ही भारतीय स्वतंत्रता से परिचित हो जानेके कारण एक स्वतंत्रतावाक में हो गये । पीरघोषके सन्तानसे यह मोलमास हुआ था, इस कारण लोगोंने रायचौधरी वंशका 'पीरालो' नाम रखा ।

पीरी (फा० खी०) १ हवावस्था, बुढ़ाया । २ कुम्भत, हजारा, ठेका । ३ प्रमाणिक शक्ति या संकेत कार्य, चमत्कार, कारामात । ४ भूतता, चालाकी । ५ शुद्धवाई, चिकी चूड़नेका चधा या येश ।

पीरी (हि० वि०) पीली देखो ।

पीर (हि० पु०) एक प्रकारका सुगंध । इस शब्दका पुराना रूप 'पीरू' है ; पर भव इसी रूपमें ही अधिक प्रचलित है ।

पिरीजपुर—ब्रह्मन्त्रों बाहरगंज जिलेका एक उपविभाग । क्षेत्रमात्र ६८२ वर्गमील और जनसंख्या ८४५ है । काहना नदीमें दसमुक्तिदमनके लिए ही यह उपविभाग स्थापित हुआ । 'पीरीजपुर', मठवाड़ी, भाण्डारिया और खरूपकाटी नामक स्थानमें पुलिसका पड़ा है ।

पीरीजा (हि० पु०) पीरीजा देखो ।

पीरीसर वा पीरान—सुसज्जमान सांघु वा फकीरोंकी अधिकृत निशान जनीन । यह जमीन सम्पत्तिवाली सुसज्जमानोंने समय समय पर दान की है ।

पील (फा० पु०) १ हड्डि, गज, हाथी । २ शतरंजके खेलका एक मोहरा जो तिरका चलता और तिरका ही मारता है । इसकी पील, फोला, पीला और कंठ भी कहते हैं । विशेष विवरण शतरंज शब्दमें देखो ।

पील (हि० पु०) १ कोड़ा । २ पीछ देखो ।

पीलक (सं० पु०) पीलकित्तभातीति पील-कृत् । १ रोषक । २ पिपोलिका, कीड़ा । ३ कायस्थोंकी एक पद्धति ।

पीलक (हि० पु०) एक प्रकारका पीले रंगका पंथी जिससे डेने कासे और छोटे लास होती है ।

पीलखी (हि० पु०) एक प्रकारका लक ।

पीलवात (हि० पु०) हाथीवान, पीलवान, महावत ।

पीलवात (हि० पु०) श्मोषद, एक प्रसिद्ध रोग, पीलवा ।

इस रोगमें घुटनेके नीचे एक या दोनों पैर सूज जाते हैं । सूजन जब पुरानी हो जाती है, तब उसमें खूनसही और घाव भी हो जाता है । सूजन पहले पैरके पिछले भागसे शुरू होती है, फिर धीरे धीरे सारी टांगमें व्याप्त हो जाती है । पहले ज्वर और जिस पैरमें यह रोग होनेवाला रहता है उसके पट्टमें गिरती निकलती है जिसमें घसघो पोड़ा होती है । वातको अधिकतामें सूजन काली, फटी, रुखी और तीव्र वेदनायुक्त; रक्तको अधिकतामें पीछी, कोमल और दाहयुक्त तथा कफको अधिकतामें चिकनी, कठिन, सफेद या पाण्डुवर्ण और भारी होती है । यदि बहुत जल्दी इसका उपाय न किया जाय, तो यह रोग प्रमाथ्य हो जाता है । सोड़वाने देयोंमें यह रोग अधिक होता है । कई भाषाओंका मत है, कि गन्ना, नाक, काग, डोठ, हाथ आदिकों सूजन भी इसीके प्रसंगमें है ।

पीलवान (हि० पु०) पीलवान देखो ।

पीलवान (हि० पु०) हाथीवान, पीलवान, महावत ।

पीला (सं० खी०) १ होमौष द्रव्यमैदं । २ पिपोलिका ।

पीला (हि० पु०) १ एक प्रकारका रंग जो हमदी या सोनेसे रंगसे मिलता लुलता है और जो हमदी, हरविंगार आदिसे बनाया जाता है । २ शतरंजका एक मोहरा । पील देखो । (वि०) १ पीतवर्ण, जिसका रंग पीला हो, जड़ । ३ कान्तिहोन, निस्तेज, रक्तका चमोव-सूचकवैत, ऐसा सफेद जिसमें सुखों या चमक न हो, धुंधला सफेद ।

पीलाकनेर (हि० पु०) कनेरके दो भेदोंमेंसे एक । इसका फूल पीला और शर्करामें छंटेके समान होता है । साल कनेरकी पपेया इसका पैड़ कुछ अधिक लंबा होता है । बैद्यकवे अनुसार इसके गुण भी सफेद कनेरके समान ही होते हैं । कनेर देखो ।

पीलाजी—पेशवा बाजीरावके एक महाराष्ट्रीय जादुनका पुत्र । महम्मद शाहके राजत्वके उत्तरार्द्धमें वर्णमें इति-महोदया, काबुलोन खाँ और पंजाबमें गंधे साथ नरवार प्रदेशमें इनका भीषण संग्राम हुआ । युद्धमें इन्हींकी जीत हुई । रक्तम चलीकी पराप्त कर इन्हींमें पड़-मदावाँद और बर्बादीके योग्य वृत्ति जितोको सटो ।

यही वन गये। सुमनमान भीम दूध के पीरपनी कहा करने से, कारण दूधों में दूध-नाम-धर्म को सुख मोहति को दी।

पीरपनीने यही वन कर राय चौधरी वंश के बहनों को प्रयाग प्रयाग कहीं पर पार पयने पानीपत को निज धर्म पर निरुद्ध किया। राय चौधरीपाराने के मध्य कामदेव राय चौधरी पीर जयदेव राय चौधरी पच्छे कोहदे पर थे। एक दिन रोजाके समय पीरपनी बरामदे पर बैठे हुए थे। कामदेव, जयदेव भी उनके पास ही पड़े थे। इसी बीच में किसी काम-चालीने पयने बगोबेले पुनःपुनः मोझा कर पीरपनीको भीट दिया। मोझा सुन कर पीरपनीने कहा, पाह, कैसे सुगंध। राय चौधरी निहायान हिन्दू थे। वे पयने धर्म की तरफ धूमरे धर्म की ओर गया करते थे। कामदेव राय चौधरीने रोजाके दिन पीरपनीको मोझा पायाच' कहे देव कर कहा, 'दुष्ट'। पायने यह क्या किया? रोजाके दिन मोझा पायाच कहे लिया? 'दरमं दोय क्या है' यही-ने पूछा। कामदेवने उत्तर दिया, 'हम मोमोंका माझ कहता है, कि पाच पक्ष भोजनके समान है।' यह सुन कर पीरपनी बड़े विगड़े, पर मोझी की डेर बाद माझ हो गयी। उन्होंने समझा, कि कामदेव उन्हें पूर्ण प्राज्ञवत्त्वका प्रत्यक्ष दिया कर वंशो उड़ाते हैं। इन कारण पीरपनीने इनका बदला पुनःमा पाहा। उस दिनको मजमिस टूट जाने पर यही दोनों राय चौधरीके सर्वनाममें लन गये। उन्होंने चौधरीके मजमिस परामर्श कर यह स्थिर किया, कि उन्हें आतिथ्य करमा को जोड़ प्रतिगोचर लेना होगा।

यह परामर्श स्थिर हो जाने पर यही पीरपनीने एक दिन हिन्दू मुसलमान समस्त काम-चालीने तथा धनी प्रजाको दरबारमें बुलाया। दरबार-घरक पास ही एक बड़े कमरेमें उन्होंने सुगन्धित मगस, मज्जुल, प्याज आदि जाल कर मोमोंका पकानेका दूध दिया। दरबार-घरक सम गन्धे पानीपत हो गया। प्रत्येक काम-चालीने तथा पीर की मज्ज बनी मीठ दूध में सबोंने मज्जके मारे खुदकेसे पयनी पयनी माझ बंद कर ली। काम-देव पीर जयदेव भी दूध पचानामें बैठे हुए थे, जब-

किन्तु यहीके सामने विरहि-प्रकाश करने लगे। पीर-पनीने सुनकरा कर कहा, 'चौधरी। बात क्या है?' कामदेवने मुँह थिड़ा कर उत्तर दिया, 'मोमोंका मज्ज पाता है।' इस पर यहीने कहा, जब पहले मज्ज में कर पीर मुसलमान पकड़ा दिया, तब पाया भोजन हो गया। इस कारण पात्र सबोंको जानि गई, क्या हिन्दू माझ प्याज हो कहता है न? चौधरीने बिहे दो दलमें लनका पच समर्थन किया। किंवा पा, यहीर तो यह चाहते हो, उन्हें हिन्दू दिया, 'जमादार! पकड़ो इन दोनों बदमाशोंको।' वे दोनों पकड़े गये पीर लनके मुँहमें मोमोंका दूध दिया गया। गुस्तर विपद् समझ कर यहाँ पीर नितने बैठे थे, सबके सब भाग पते। पामस आतकीय लोमोंने सुयोग वा कर राय चौधरीके वंशों पतिग ठहराया पीर उन्हें पाच पाचार व्यवहार बन्द कर दिया। कामदेव पीर जयदेवके मुँहमें मोमोंका दिया गया है, यह सुन कर दोनों भाइयोंको देम म आतिथ्यमें भी छोड़ दिया। पत्तमें सुमनमान वन कर उन्होंने मयाचकी राय भी। नयाच पा-जहानपनीने उनका यथाक्रम कामावहोन का चौधरी पीर जमावहोन का चौधरी नाम रखा तथा यहीरे १ कोष दूर बिदिया पाममें लातीर दे कर उन्हें बेमाया।

जमावहोन का पीर जमावहोन का चौधरी निहायान हिन्दू थे। गुस्तरा वं मुसलमान हो कर भी हिन्दू-पाचारवे ही पयने लगे। लनका वंश पात्र भी लन पाममें मोझू है। बहुत समय तक इनके वंश में गोपाल वही, जहादन का पादि नाम रहे। ये थे। बिनाहमें पाहु। विहित होता था, लता खिया लनकी लनमें लन देती थी, पछोत्र पीर गिराति करती थी। पच्छ मुसलमानोंके पात्र प्रादीन प्रदान नहीं होता था, दोनों भाइयोंके वंशमें ही बिबाह चलता था। लनका लन दोनों भाइयोंका वंश पतपीरा, मागुला, बहदिमा कहकर, दुनेनुर पीर बिदिया पादि स्थानोंमें लेन गया है। निरु तोय पानीपत यव दूध, कि इनके मज्ज हिन्दू नाम पीर हिन्दू-पाचार व्यवहारका पीर हो गया है।

इस मोलमालमें रायचौधरी वंश की भावीय स्वजनों के विलम्ब हो जाने के कारण एक स्वतन्त्र थाक में हो गये । पीरचौकी सरावतये यह मोलमाल हुआ था, इस कारण लोगों ने रायचौधरी वंशका 'पीरालो' नाम रखा ।

पीरी (फा० स्त्री०) १ छद्मवस्त्र, मुद्रांश । २ कुम्भमत, अज्ञारा, ठेका । ३ अस्मानुविक शक्ति या संसके कार्य, चमत्कार, करामातः । ४ धूर्तता, चालाकी । ५ शुरुवात, शेषां सुरुनेका प्रधाया पेशा ।

पीरी (हि० वि०) पीली देखो ।

पीरु (हि० पु०) एक प्रकारका सुगन्ध । इस शब्दका पुराना रूप 'पीलु' है ; पर यह स्त्री रूपमें ही अधिक प्रचलित है ।

पिरीजपुर—बङ्गालके बाखरगंज जिलेका एक उपविभाग । भूपरिमाण ६८२ वर्गमील और जनसंख्या ८४६ है । काङ्गना नदीमें देवबुद्धिदमनके लिए ही यह उपविभाग स्थापित हुआ । 'पीरीजपुर' मठवाड़ी, भाण्डारिया और खरूपकाटी नामक स्थानमें पुलिसका प्रहरी है ।

पीरीजा (हि० पु०) कीरीजा देखो ।

पीरीसर या पीरान—सुसम्मान साधु वा फकीरोंकी अधिकृत-निष्कर्ष जमीन । यह जमीन सम्प्रतिमानो मूलसलमानोने समय समय पर दान की है ।

पीर (फा० पु०) १ इच्छा, गन्तः, वांछी । २ शतरंजके खेलका एक मोहरा जो तिरका चलता और तिरका ही मारता है । इसकी फील, मोला, पीला और कट भी कहते हैं । विशेष विवरण शतरंज शब्दमें देखो ।

पील (हि० पु०) १ कोड़ा । २ पीछे देखो ।

पीलक (सं० पु०) पीलित-स्तम्भातीति-पील-ण्युत् । १ रोषक । २ पिपोलिका, कीड़ा । ३ कायस्थोकी एक पशुति ।

पीलक (हि० पु०) एक प्रकारका पीले रंगका पशु जिसके डेने काले और ऊँचे लाल होती है ।

पीलखो (हि० पु०) एक प्रकारका वृक्ष ।

पीलपाल (हि० पु०) चांदीवान, पीलवान, मडावत ।

पीलपाव (हि० पु०) शोषक, एक प्रविण रोग, पीलपाव ।

इस रोगमें घुटनेके जोड़े एक या दोनों पर सज जाते हैं । सजन जब पुरानी हो जाती है, तब उसमें खुरली और घाव भी हो जाता है । सजन पहले परके पिकले भागसे शुरू होती है, फिर धीरे धीरे सारी टांगमें व्याप्त हो जाती है । पहले त्वर और जिस पैरमें यह रोग होनेवाला रहता है उसके घट्टे में गिलटी निकलती है जिसमें पसल्यो पड़ती है । बातको अधिकतामें सजन काली, फटी, रुखी और तीव्र वेदनायुक्त, रिक्तकी प्रधिकतामें पींडी, कोमल और दाहयुक्त तथा कफकी अधिकतामें चिकनी, कठिन, सफेद या पाण्डुवर्ण और भारी होती है । यदि बहुत जल्दी इसका उपाय न किया जाय, तो यह रोग प्रमाथ्य हो जाता है । सोड़वाले दिनोंमें यह रोग अधिक होता है । कड़े भाचार्यों का मत है, कि गन्ना, नाक, कान, होठ, हाथ आदिकी सजन भी इसीके प्रसारण है ।

पीलवान (हि० पु०) पीलवान देखो ।

पीलवान (हि० पु०) चांदीवान, पीलवान, मडावत ।

पीला (सं० स्त्री०) १ होमीय द्रव्यमंदे । २ पिपोलिका ।

पीला (हि० पु०) १ एक प्रकारका रंग जो हलदी या सोनेके रंगसे मिलता सुनता है और जो हलदी, हरिणगर आदिसे बनाया जाता है । २ शतरंजका एक मोहरा । पील देखो । (वि०) ३ पीलवर्ण, जिसका रंग पीला हो, लट । ४ कान्तिहीन, निरतेज, रत्नका प्रभाव-संस्कृतसे, पीला सफेद जिसमें सुखी या चमक न हो, धुंधला सफेद ।

पीलाकनेर (हि० पु०) कनेरके दो भेदोंमेंसे एक । इसका फूल पीला और आकारमें घंटीके समान होता है । सोले कनेरकी अपेक्षा इसका पैङ्ग कुछ अधिक लंबा होता है । बौद्धके अनुसार इसके गुण भी सफेद कनेरके समान ही होते हैं । कनेर देखो ।

पीलाजी—पेशवा बाजीरावके एक महाराष्ट्रीय जादुमंका पुत्र । महम्मद शाहके राजत्वके उत्तरार्द्धमें वर्तमान इति-मद्दुहोला; कान्तिहीन और पीर पश्यतजंगके साथ नरवार प्रदेशमें इनका भीषण संघर्ष हुआ । युद्धमें इसीकी जीत हुई । रक्तमंशवीको पराप्त कर इसीने पह-मदावांश-पीर बर्हिदिक पोर्णवर्ती जिलेको सटी ।

इस मोलसामने रायचौधरी वंश ही भागीय स्वजनों से परित्यक्त हो जाने के कारण एक स्वतन्त्र थाक न हो गये । पीरधनी के उत्पातसे यह मोलसामल हुआ था; इस कारण लोगोंने रायचौधरी वंशका 'पीराजी' नाम रखा ।

पीरी (फा० स्त्री०) १ ठंडावस्था, ठण्डाई । २ दुर्लभत, हजारों, ठेका । ३ अमानुषिक शक्ति या उसके कार्य, समकार, करामात । ४ धूर्तता, चालाकी । ५ शुद्धाई, सेवा मूलनेका धंधा या पेशा ।

पीरी (हि० वि०) पीरी देखो ।

पीर (हि० पु०) एक प्रकारका सुगंध । इस शब्दका पुराना रूप 'पीलू' है ; पर अब इसी रूपमें ही अधिक प्रचलित है ।

पीरोजपुर—बङ्गालके बाहरमंजं जिलेका एक उपविभाग । सुपरिभाष ६८२-वर्गमील और जनसंख्या ८४६ है । काङ्गना नदीमें दक्षुवृत्तदिमेंसे लिए ही यह उपविभाग स्थापित हुआ । पीरोजपुर, मठवाड़ी, भाण्डारिया और लक्ष्मणगंजी नामके स्थानमें पुलिसका पड़ा है ।

पीरोजा (हि० पु०) कीरोजा देखो ।

पीरोसर वा पीरान—सुसज्जमान साधु वा फकीरोंकी अधिकृत निष्कार लीला । यह लीला सम्प्रतिमाली मुसलमानोंने समय समय पर दान की है ।

पील (फा० पु०) १ इच्छा, मर्ज, इच्छा । २ शतरंजके खेलका एक मोहरा जो तिरछा चलता और तिरछा ही मारता है । इसकी पील, पीला, पीला और कंठ भी कहते हैं । शिष्यविवरण अठरव शब्दमें देखो ।

पील (हि० पु०) १ कोड़ा । २ पीठ देखो ।

पीलक (सं० पु०) पीलनि स्तम्भातीति-पील-यलुक् । १ रोषक । २ पिपेलिका, कीड़ा । ३ कायस्थोंकी एक पद्धति ।

पीलक (हि० पु०) एक प्रकारका पीले रंगका पत्ती जिसके छेने काले और क्रीमि लाल होती है ।

पीलका (हि० पु०) एक प्रकारका लकड़ा ।

पीलपास (हि० पु०) हाथीवान, पीलवान, महावत ।

पीलपाव (हि० पु०) शक्कीपद, एक प्रसिद्ध रोग, फीजपा ।

इस रोगमें घुटनेके मोचे एक या दोनों पर सज जाते हैं । सूजन जब पुरानी हो जाती है, तब उसमें खूबसी और घाव भी हो जाता है । सूजन पहले घेरके पिछले भागसे शुरू होती है, फिर धीरे धीरे सारी टांगमें व्याप्त हो जाती है । पहले ऊपर और जिस पैरमें यह रोग होनेवाला रहता है उसके पट्टेमें गिलटी निकलती है जिसमें पसछा पोड़ा होती है । बातको अधिकतामें सूजन काली, फटी, रूखी और तीव्र वेदनायुक्त, जिसकी अधिकतामें पीठ, कोमल और दाढ़युक्त तथा कफकी अधिकतामें बिकनी, कठिन, सफेद या पाण्डुराभ और भारी होती है । यदि बहुत जल्दी इसका उपाय न किया जाय, तो यह रोग घमाय्य हो जाता है । छोड़वाने देगोंमें यह रोग अधिक होता है । कई प्राचार्यों का मत है, कि गन्ध, नाक, बाल, छोट, हाथ आदिकों सूजन भी इसीके प्रसरणत है ।

पीलवान (हि० पु०) पीलवान देखो ।

पीलवान (हि० पु०) हाथीवान, कीलवान, महावत ।

पीला (सं० स्त्री०) १ होमीय द्रव्यमेंद । २ पिपेलिका ।

पीला (हि० पु०) १ एक प्रकारका रंग जो हलदी या सोनेके रंगसे मिलता चलता है और जो हलदी, हरिणार आदिसे बनाया जाता है । २ शतरंजका एक मोहरा । पील देखो । (वि०) १ पीतवर्ण, जिसका रंग पीला हो, जड़ । ४ कान्तिहीन; निश्चेत, रक्तका अभाव-म सुकर्मते, ऐसा सफेद जिसमें सुखी या चमक न हो, धुंधला सफेद ।

पीलाकनिर (हि० पु०) कनिरके दो गंदोंमेंसे एक । इसका फूल पीला और आकारमें चंटीके समान होता है । सोले कनिरकी अपेक्षा इसका पेंड़ कुछ अधिक ऊँचा होता है । चैद्यकके अनुसार इसमें गुण भी सफेद कनिरके समान ही होते हैं । कने देखो ।

पीलाजी—पेशवा बाजीरायके एक महाराष्ट्रीय जादुनका पुत्र । महम्मद शाहके राजत्वके उत्तरार्द्धमें वर्षमें इति-मदुहीला; कांस्वृष्टीन खो और पंथरतजगके साथ नरवार प्रदेशमें इनका भीषण संग्राम हुआ । युद्धमें इन्हींकी जीत हुई । इतना भलीकी पराजित कर इन्होंने चह-मदाबादे और बर्गोदके पार्श्ववर्षी जिलोंकी सटा ।

पुगाना (हि० कि०) १ गोवीकी खेलमें गोवीका गट्टेमें डालना । २ पूरा करना, पुजाना ।

पुगाम—ब्रह्मदेयान्तर्गत ऐरावतीनदी-तीरवर्ती एक प्राचीन नगर । पनग देखो ।

पुषा—काश्मीर राज्यके अन्तर्गत एक उपत्यका । यहाँ सोडागा (Borax) से परिपूर्ण एक छोटा झरु है । इस झरुके जिस भागमें सोडागा और सोरेट-भाय-सोडा मिलता है, वहाँ सिन्धुगामी एक जलस्रोतके सिवा कई अन्य प्रसवण हैं जिनसे जलविद्युतका काम होता है । झरुगमें और तीरवर्ती समतलभूमिमेंसे जो सोडागा और श्वेत लवण खोद कर लाया जाता है उसमें कई चीजें मिली रहती हैं । प्रति वर्ष यहाँसे लगभग २० हजार सन सोडागा निकाला जाता और मोधनाथ नरपुर, रामपुर और कुलू आदि स्थानोंमें भेजा जाता है । वहाँ यह प्रागमें मोधित हो कर प्रकृति सोडागके आकारमें बाजारमें विक्रता है । अभी तिब्बत और चीनशास्त्रान्तर्गत पन्तर्गत रोदक नामक स्थानसे पषेप्राकृत उत्कृष्ट श्वेत लवण और सोडागा मिलने लगा है जिससे पुषाके वाणिज्यका फ़ास हो गया है । रोदकका सोडागा ऐसा निर्मल होता है, कि उसे मोधने की आवश्यकता नहीं पड़ती । मोति नामक गिरिपथ हो कर उत्त लवण और सोडागा भारतवर्षमें और यहाँसे यूरोपखण्डमें भेजा जाता है ।

पुहोर (सं० स्त्री०) पुमियं चोर । पुरुषप्रिय चोर ।
पुह (सं० पुं०) पुमांसं खनतीति खन ड । १ बाण-मूल, चाणक्य पिछली भाग जिसमें पर खोचि रहते थे ।

२ मङ्गलाचार ।

पुहतीर्थ (सं० स्त्री०) रामजन्त तीर्थभेद ।

पुहित (सं० त्रि०) पुह-इतच । पुहपुह शब्द, जिसमें पर लगे हैं ।

पुहिततीर्थ (सं० स्त्री०) तीर्थभेद, रामतीर्थ ।

पुहोट (सं० पुं०) पुनचत्र ।

पुह (सं० पुं०) पुनो० पुन पुनोदरादित्वात् संधः । समूह ।

पुहुर—मन्दाज प्रदेशके उत्तर पारकोट जिलान्तर्गत एक तहसील और जमींदारी । यह पचा० १३° १०' से १३° ४०' उ० तथा देगा० ७०° २२' से ७८° पू० पराङ्कके

ऊपर अवस्थित है । भूपरिमाण ६४८ वर्ग मील और जनसंख्या लाखके करीब है । इसमें एक नगर और ५६४ ग्राम लगे हैं । जमींदारी १३वीं शताब्दीमें स्थापित हुई है । यहाँके जमींदारने महिसुरकी सहाय्यमें कान-वालिसको रसद दे कर सहायता पहुँचाई थी । उन्होंने तथा उनके उत्तराधिकारियोंने बहुत दिनों तक मुन्दाजियों के रूपमें राज्यशासन किया । १८२८ ई०में उत्त जमींदारको निःसन्तानावस्थामें मृत्यु हुई, वीर राजगढ़के लिये चापसमें तत्कार लड़ी । अन्तमें जमींदारोंके यथार्थ उत्तराधिकारी उनके भाई उधराये गये । १८६१ ई०में ब्रिटिश गवर्नमेंटको औरसे लगे स्थाई सनद दी गई । यहाँ के जमींदार सिद्दायत खैलीके हैं ।

२ उत्त जमींदारी और तहसीलका सदर । यह पचा० १३° २२' उ० और देगा० ७८° १५' पू०के मध्य समुद्रपृष्ठसे २००० फुट ऊँचे में अवस्थित है । पहले एक समय इस नगरने अपूर्व यौ धारण की थी । वत्समान जमींदारको राजभवन इसी नगरमें विद्यमान है । एक पुरातन किताब, राजप्रासाद और मसजिद आज भी अन्नावस्थामें पड़ी है, किन्तु उनमें उत्तना गिरिपथातुर्य दिखाई नहीं देता । एतद्भिन्न काशीविश्वेश्वर, सोमेश्वर, माणिक्येश्वरदराज, रामलामी आदि मन्दिरोंमें तथा 'कोनेरु' दानाङ्गण और पायशास्त्रामें कई एक शिलालेखियाँ हैं । कहते हैं, कि माणिक्येश्वरदराजलामीका मन्दिर राजा जनमेजयका बनाया हुआ है ।

१३वीं शताब्दीके मध्यभागमें सीताप्य गोमो बाबू नामक वत्समान वंशके कोई पूर्वपुरुष प्रभुसंस्थिति काम कर इस प्रदेशमें बस गये । १२४८ ई०में अफ़ग़ानि सुल्तान नगर और दुर्ग बनवाया । १४१८ ई०में उत्त वंशके प्रधान व्यक्ति तिमप्पगोनि बाबूने कोलर नगर और दुर्ग की स्थापना की थी । उनकी मृत्युके बाद उनके लड़के इमहि तिमप्प राजगद्दी पर बैठे । इस समय राजा छणदेवराय विजय नगरमें राज्य करते थे । इमहिने आदिलशाही राजाओंके विपक्षमें घमसान युद्ध किया और अपने-अधिकारको अक्षुण्ण रखनेके लिये १५१० ई०में ३ दुर्ग बनवाये । उनके लड़के चिकराय तिमप्प राजसम्पन्नित हुए और अपने बाबूबलसे अनेक स्थानों

प्रभावविशिष्ट है। इसके बाद पश्चिमदिक्की अमेरिका के अन्तर्गत मेक्सिको के गोल्फ गुप्पराग की जनसाधारणकी आदरकी बात है। एतद्विषय इङ्ग्लैण्ड, जर्मनी, रूस आदि यूरोप के आना खानों में तथा चिन्हल आदि भारतीय लोगों में निम्न गुणविशिष्ट आना वर्षों के पुखराज देवने में पाते हैं।

प्राचीन हिन्दू ग्रन्थ में पुखराज-पिटदो (Pittdoh) नाम से उल्लिखित है। पश्चित्तत्पर आरमयिक इसे संस्कृत वीत शब्द से उत्पन्न वतसाते है। क्योंकि कितने पुखराज भी पोताम वर्षों से देखे जाते हैं। उक्त महात्मनी यह भी कहा है, कि पीको का तोपाजियन (Topazion) हिन्दू (Pittdoh or Tipdoh) शब्दका रूपान्तरमात्र है। हिन्दू उनका तोपाजियन (बर्तमान Perdot) अथवा Topaz (गुप्पराग) से स्वतन्त्र है। प्राचीन सभ्यजनमें रोमन और पीको के मध्य भारतीय पुखराज Chrysolite नाम से प्रसिद्ध था। बाइबल ग्रन्थ में भी इस पत्थरका उल्लेख है। सभ्ययुग में यह साधु जेम्स (Apostle James the younger) का चिह्न समझा जाता था। औरकादि मक्की तरङ्ग इसे भी इन्धुगुप आकारों में कल द्वारा काटते और पालिश करते हैं। विस्तृत विवरण औरक शब्द में देखो।

पत्थर आदिकी सुन्दर आकार में सुचारु रूप से काट कर उसकी ज्योति बढ़ाने के लिये अनेक नियम प्रचलित हैं। पूर्व काल में औरक, पुखराज, चूना पत्थर आदि मुख्य-जीवपत्थरों के ऊपर नक्काशी काड़ी जाती थी। उस समय के नक्काश ऐसे सुकोशल से उसके ऊपर नाम प्रथवा और कोई विषय कोटते थे, कि उसे देख कर विस्मयान्वित होना पड़ता था। किन्तु अभी उनका यह हनूर जाता रहा। पीको के मध्य अभी आना मूर्ति या चित्र-कोटित पुखराज-पत्थर देखे जाते हैं। सम्राट् हाड्रियन (Hadrianus Guildamus of Naples) के गुप्परागनिर्मित मोहरकी एक चगुटी थी। उस चगुटी पर 'Natura deficit Fortuna mutatur Deus omnia Cernit' आदि बातें तीन पंक्तियों में लिखी हैं। पेरिसमहर के राजकीय पुखाकागार में पुखराज निर्मित एक कलिय-की एक चगुटी (signet-ring) और डान् कारकीकी

प्रतिमूर्ति तथा एक और पत्थरकी मूर्ति विद्यमान है। सेण्टपिटर्स महानगरी में पत्थर के एक टुकड़े पर आना कारकायों के मध्य एक नक्षत्र मण्डल (constellation of series) चित्रित है। एक पारसी जहोरी के पास पुखराजका एक तावीज है जिसके ऊपर परवी अक्षरों में ईश्वर की सिद्धका मूल है ऐसा लिखा है। सेलनी (cellini) ने लिखा है, कि जब वे (१५२४-२६ ई० में) रोमनगर आये, तब उन्होंने सरस्वतीमूर्ति-कोटित एक पत्थर पाया था।

औरकादिकी तरह पुखराज भी अन्यकारों में प्रकाश देता है। लेडी हिल्डगार्ड (Lady Hildegard, wife of Theodoric Count of Holland) ने जो पुखराज मोन्सियर एडेलवाट (Monsieur Adelbert) को दिया था उसमें ऐसा ज्योति थी, कि बिना प्रदीप-लोक के गानकी किताबें आदि पढ़ी जाती थीं।

प्राचीन आर्यवंद-शास्त्र के मत से पुखराजका गुण—पक्व, शीतल, वानस्प, शीत, दीपन। शोधित रत्नमन्त्र में मधुर, सारक, चक्षुका हितकर, शीतशय, और विषनाशक आदि गुण देखा जाता है। इयमें पहनने से प्रायः शी और प्रज्ञाकी वृद्धि होती है। यह मङ्गलजनक, मनोहर और सहृदयविनाशक है। रत्नमासाकार के मत में हृद-स्यतिके सन्तोषार्थ गुप्पराग प्रदान करने से दीपका प्रति-कार होता है। जिस समय से यह विषय को तथा वस्तुतः जन्म में डुबो देते हैं उसे समझा जाता है। उत्तमरूप में (१५०० ई० में) कारनेसे, डिका, पणिद्रा

उज्ज्वलता, स्वच्छता, रंग-हीता है। भ्रमणकारी टिभर-सम्राट् और जेवकी-सभामें आये थे, तब रोम-रत्नी वा १५० कैरेट वजनका एक पुखराज देखा था। शोभावन्दरने सम्राट् ने यह पत्थर साख ८० हजार रुपये में खरीदा था।

पुलोकिक—मै नपुरी के रहनेवाले एक ब्राह्मण कवि। इन्होंने सन्वत् ८०३ में जन्मग्रहण किया था। इनकी गिनती तोष कविकों-अथर्वी की गई है। यों तो ये कई एक ग्रन्थ बना गये हैं, पर अभी एक भी ग्रन्थ देखने में नहीं आता।

पुराणा ('वि' क्रि०) १ गोलीकी खेलमें गोलीका गड्डेमें डालना । २ पूरा करना, पुजाना ।

पुराण—महादेशान्तर्गत ऐरावतीनदी-तीरवर्ती एक प्राचीन नगर । पन्ना देखो ।

पुषा—काश्मीर राज्यके अन्तर्गत एक उपत्यका । यहाँ सोडागा (Borax) से पूर्ण एक छोटा झर है । इस झरके जिस भागमें सोडागा और बोरैट-आम-सोडा

मिश्रता है, वहाँ विन्धुगामो एक जनस्त्रोतके सिवा कई अन्य प्रसवण हैं जिनसे जनविखनका काम होता है । झरगर्भे और तीरवर्ती समतलभूमिमें जो सोडागा और श्वेत लवण खोद कर लाया जाता है उसमें कई चीजें मिली रहती हैं । प्रति वर्ष यहाँसे लगभग २० हजार मन सोडागा निकासी जाता और मोघनार्थ नरपुर, रामपुर और कुलू आदि स्थानोंमें भेजा जाता है । वहाँ यह प्रागमें घोषित हो कर प्रकृत सोडागके आकारमें राजारमें बिकता है । सभी तिब्बत और चीनशास्त्राचारके अन्तर्गत रोदक नामक स्थानसे अपेक्षाकृत उत्कृष्ट श्वेत लवण और सोडागा मिलने लगा है जिससे पुषाके वाणिज्यका ह्रास हो गया है । रोदकका सोडागा ऐसा निर्मल होता है, कि उसे मोघन की आवश्यकता नहीं पड़ती ।

भोति नामक गिरिपथ हो कर उत्त लवण और सोडागा भारतवर्षमें और यहाँसे यूरोपवर्षमें भेजा जाता है । पुहोर (स० क्री०) पु'प्रिय' चोर' । पुषप्रिय चोर । पुह (म० पु०) पुमस' खनतीति खन ड । १ बाण-कूल, बाणवा पिछला भाग जिसमें पर खोसे रहते थे । २ मङ्गलाचार ।

पुहतीर्थ (स० क्री०) रामकृत तीर्थभेद । पुहित (म० त्रि०) पुह-प्रतच । पुहपुक्त शर, जिसमें पर सभी हैं ।

पुहिततीर्थ (स० क्री०) तीर्थभेद, रामतीर्थ ।

पुहोट (स० पु०) पुनघत ।

पुह (म० पु० क्री०) पुह प्रयोदरादित्वात् साधुः । ममूह ।

पुहुर—मध्य प्रदेशके उत्तर पारकोट जिलान्तर्गत एक तटवीस और जमींदारी । यह पचा० १३° १०' से १३° ४०' से तथा देशा० ७२° २२' से ७८° पू० पंहाड़के

ऊपर अवस्थित है । सूपरिमाण ६४८ वर्ग मील और जनसंख्या लाखके करीब है । इसमें एक नगर और ५६४ ग्राम अवस्थित हैं । जमींदारों १३वीं शताब्दीमें स्थापित हुई है । यहाँके जमींदारोंने महिसुरकी लड़ाईमें कान-वालिस्को रणद दे कर सहायता पड़वाई थी । उन्होंने तथा उनके उत्तराधिकारियोंने बहुत दिनों तक मुघलाजियों के रूपमें राज्यशासन किया । १८२८ ई०में उत्त जमींदारोंके निःसत्तानावस्थामें मृत्यु हुई, पीछे राजगहोके लिये आपसमें तकरार लड़ी । अन्तमें जमींदारोंके धनार्थ उत्तराधिकारी उनके भाई ठहराये गये । १८६१ ई०में ब्रिटिश गवर्नमेंण्टको औरसे उन्हें खार्डसनद दी गई । यहाँ के जमींदार लिहायत योकी हैं ।

२ उत्त जमींदारों और तटवीसका सहर । यह पचा० १३° २२' से और देशा० ७८° ३५' पू०के मध्य समुद्रपृष्ठसे २००० फुट ऊँचे में अवस्थित है । पहले एक समय इस नगरने अपूर्व श्री धारण की थी । वर्तमान जमींदारोंके राजभवन इसी नगरमें विद्यमान है । एक पुरातन किला, राजवासाद और मसजिद आज भी मन्मावस्थामें पड़ी है, किन्तु उनमें उतना गिरावलापुर्ण दिखाई नहीं देता । एतद्विष काशीविश्वेश्वर, सोमेश्वर, माणिक्येश्वरदराराज, रामलामो आदि मन्दिरोंमें तथा 'कोनेक' स्नानगृह और पायथानामें कई एक विस्तारिणों हैं । कहते हैं, कि माणिक्येश्वरदराराजलामीका मन्दिर राजा जनमेजयका वर्णाया हुआ है ।

१३वीं शताब्दीके मध्यभागमें सीताप गोनो बाबू नामक वर्तमान वंशके कोई पूर्वपुरुष प्रचुर सम्पत्ति लाभ कर इस प्रदेशमें बस गये । १२४८ ई०में उन्होंने सुजतर नगर और दुर्ग बनवाया । १४१८ ई०में उत्त वंशके प्रधान व्यक्ति तिमम्पगोन बाबूने कोसर नगर और दुर्गकी स्थापना की थी । उनकी मृत्युके बाद उनके लड़के इमहि तिमम्प राजगहो पर बैठे । इस समय राजा छप्पदेवराय विजय नगरमें राज्य करते थे । इमहिने आदिनागहो राजाओंके विपक्षमें घमसान युद्ध किया और अपने अधिकारको संस्थाप रखनेके लिये १५१० ई०में ३ दुर्ग बनवाये । उनके लड़के चिकराय तिमम्प राजसम्मानित हुए और अपने बाबुदत्तसे अनेक स्थानों

प्रभावविशिष्ट है। इसके बाद पश्चिमदिशि की अमेरिका के अन्तर्गत मेक्सिको देशीय एक पुष्पराज की जनसंधारणकी आधारकी बात है। एतद्विषय इन्फोर्मा, जर्मनी, रूस आदि यूरोप के आना खानों में तथा सिंगल आदि भारतीय देशों में निरूपित पुष्पविशिष्ट आना वहाँ के पुष्कराज देखने में आते हैं।

प्राचीन हिन्दू ग्रन्थों में पुष्कराज-पिटदो (Pittboh) नाम से उल्लिखित है। पश्चिमतन्त्र पारमपिक, इसे संस्कृत वीत ग्रन्थों के अन्तर्गत वर्तमान में है। यद्यपि कितने पुष्कराज भी वीतान वहाँ से देखे जाते हैं। उक्त महात्मनि यह भी कहा है, कि यीकी का तोपाजियन (Topazion) हिन्दू (Pittboh or Tipdoh) ग्रन्थों का रूपान्तरमात्र है। हिन्दू उनका तोपाजियन (अर्थात् Perdot) अथवा Topaz (पुष्पराज) से स्वतन्त्र है। प्राचीन अन्धजंगल में रोमन और यीकी के मध्य भारतीय पुष्कराज Chrysolite नाम से प्रसिद्ध था। बाइबल ग्रन्थों में भी इस पत्थर का उल्लेख है। मध्यायुग में यह साधु जेम्स (Apostle James the younger) का चिह्न समझा जाता था। होरकादि मन्त्रिकी तरह इसे भी इन्ध्यायुग का कारागारों में कल द्वारा काटते और पालिश करते हैं। विस्तृत विवरण होरक ग्रन्थों में देखो।

पत्थर आदिकी सुन्दर आकारों में सुचारु रूप से काट कर उसकी ज्योति बढ़ाने के लिये अनेक नियम प्रचलित हैं। पुनः कारमें होरक, पुष्कराज, चूना पत्थर आदि मुख्य-विशेषपत्थरों के ऊपर नक्काशी काटी जाती थी। उस समय के नक्काश ऐसे सुकीर्ण से उसके ऊपर नाम प्रथवा और कोई विषय कोदते थे, कि उसे देख कर विस्मयान्वित होता पड़ता था। किन्तु अभी उनका वह स्वरूप नहीं रहा। यीकी के मध्य अभी आना मूर्ति या चित्र-कोदित पुष्कराज-पत्थर देखे जाते हैं। सम्राट, हाड्रियन (Hadrianus Guildmus of Naples) के पुष्प-रागनिर्मित मोहरकी एक चंगुली थी। उस चंगुली पर 'Natura deficit Fortuna mutatur Deus omnia Cernit' आदि बातें तीन पंक्तियों में लिखी हैं। पेरिसमहर के राजकीय पुष्पकारागारों में पुष्कराज निर्मित एक कलिय-की एक चंगुली (aigret-ring) और हान कारकी

प्रतिमूर्ति तथा एक और पत्थरकी मूर्ति विद्यमान है। सेण्टपिटर्स महानगरी में पत्थर के एक टुकड़े पर आना कारकायों के मध्य एक नक्षत्र मण्डल (constellation of serius) चित्रित है। एक पारसी लघुगीत के पास पुष्कराजका एक तावीज है जिसके ऊपर परवी अक्षरों में 'ईश्वर ही शिष्टका मूल है' ऐसा लिखा है। सेल्लिनी (cellini) ने लिखा है, कि जब वे (१५२४-२६ ई० में) रोमनगर आये, तब उन्होंने सरस्वतीमूर्ति-कोदित एक पत्थर पाया था।

होरकाटिकी तरह पुष्कराज भी अन्धकार में प्रकाश देता है। लेडी हिल्डगार्ड (Lady Hildegard, wife of Theodoric Count of Holland) ने जो पुष्कराज मोन्सियर एडेलबर्ट (Monsieur Adelbert) को दिया था उसमें ऐसी ज्योति थी, कि बिना प्रदीप-लोक के गानकी किताबें आदि पढ़ी जाती थीं।

प्राचीन चायुर्वेद शास्त्र के मत में पुष्कराजका गुण—पक्व, शीतल, वातघ्न, पित्त, दीपन। मोक्षित रत्नमन्त्र में मधुर, सारक, चक्षु का हितकर, शीतवीर्य और विपनायक आदि गुण देखा जाता है। हाथ में पहनने से प्रायः शी और प्रज्ञा की वृद्धि होती है। यह मन्त्रलज्जक, मनोह और सहृदयविनायक है। रत्नमासाकार के मत में यह अति के सन्तोषार्थ पुष्पराज प्रदान करने से दीपका प्रति-कार होता है। विषसंशय से यह विषय हो जाता है तथा उत्तम जन्म में डूबी देने से यह उसका ताप विनष्ट कर डालता है। उत्तमरूप से चणू कर मदिरा के साथ सेवन करने से हृदिक, अग्निद्रा आदि रोग जाते रहते हैं।

उज्ज्वलता, स्वच्छता, रङ्ग आदि देख कर इसका मोक्ष होता है। अन्धकारों टिभरनियर जब १६६५ ई० में सम्राट, होरजिजकी सभा में आये थे, तब उन्होंने १८१ रत्नी वा १५० कैरट वजनका एक पुष्कराज देखा था। गोबायन्दर ने सम्राट ने यह पत्थर १ लाख ८० हजार रुपये में खरीदा था।

पुष्पकवि—मैनुरी के रहनेवाले एक ब्राह्मण कवि। इन्होंने सम्बत् ८०१ में जन्मग्रहण किया था। इनकी गिनती तीस कविको अर्थों में की गई है। यी तो ये कई एक ग्रन्थ बना गये हैं, पर अभी एक भी ग्रन्थ देखने में नहीं आता।

पुराणा (वि० क्रि०) १ मोलीकी खेलमें मोलीका गड्डेमें डालना । २ पूरा करना, पुजाना ।

पुराण—ब्रह्मदिशान्तर्गत ऐरावतीनदी-तीरवर्त्ती एक प्राचीन नगर । पनगा देखो ।

पुषा—काशीर राज्यके अन्तर्गत एक उपत्यका । यहाँ मोहागा (Morax) से परिपूर्ण एक छोटा झर है । इस झरके जिस भागमें मोहागा और बोरैट-पाव-सोडा मिलता है, वहाँ हिन्दुगामी एक जलस्रोतके सिवा कई उष्ण प्रसवण हैं जिनसे जलविद्युतका काम होता है ।

झरममें और तीरवर्त्ती समतलभूमिमेंसे जो मोहागा और श्वेत लवण खोद कर लाया जाता है उसमें कई चीजें मिली रहती हैं । प्रति वर्ष यहाँसे लगभग २० हजार मन मोहागा निकाला जाता और शोधनाथ नरपुर, रामपुर और कुलू आदि स्थानोंमें भेजा जाता है । वहाँ यह भागमें घोषित हो कर प्रकट हो मोहागके आचारमें बाजारमें विकता है । अभी तिब्बत और चीनशास्त्राध्यके अन्तर्गत रोदक नामक स्थानसे अपेक्षाकृत उत्कृष्ट श्वेत लवण और मोहागा मिलने लगा है जिससे पुषाके वाणिज्यका ह्रास हो गया है । रोदकका मोहागा ऐसा निर्मल होता है, कि उसे मोघने की आवश्यकता नहीं पड़ती । मोति नामक गिरिपथ हो कर उत्त लवण और मोहागा भारतवर्षमें और यहाँसे यूरोपवर्षमें भेजा जाता है ।

पुङ्ग (स० क्री०) पुंलिय चोर । पुङ्गपुलिय चोर । पुङ्ग (स० पु०) पुनसि खननीति खन ड । १ बाण, मूल, बाणव । विद्वत्ता भाग जिसमें पर छोड़े रहते थे । २ मङ्गलाचार ।

पुङ्गतीर्थ (स० क्री०) रामस्त तीर्थभेद ।

पुङ्गित (स० क्रि०) पुङ्ग-इतत् । पुङ्गयुक्त शर, जिसमें पर लगे हों ।

पुङ्गितोर्थ (स० क्री०) तीर्थभेद, रामतीर्थ ।

पुङ्गट (स० पु०) पुनचत्र ।

पुङ्ग (स० पु० क्री०) पुङ्ग यथोदरादित्वात् साधुः । समृद्ध ।

पुङ्गनर—मन्दाज प्रदेशके उत्तर पारकोट जिधान्तर्गत एक तहसील और जमींदारी । यह अक्षा० १३° १०' से १३° ४०' तथा देशा० ७८° २२' से ७८° ५०' पंहाड़के

ऊपर अवस्थित है । भूपरिमाण ६४८ वर्ग मील और जनसंख्या साठके करोड़ है । इसमें एक नगर और ५६४ ग्राम समेत हैं । जमींदारो १३वीं गताब्दीमें स्थापित हुई है । यहाँके जमींदारने महिसुरकी लड़ाईमें कान-वालिसकी रसद दे कर सहायता पढ़ाई थी । उन्होंने तथा उनके उत्तराधिकारियोंने बहुत दिनों तक मुन्ताजिरी के रूपमें राज्यशासन किया । १८२८ ई०में उक्त जमींदारकी निःसन्तानावस्थामें मृत्यु हुई, पीछे राजगहोरे लिये आपसमें तकरार लगी । अन्तमें जमींदारीके यथार्थ उत्तराधिकारो उनके भाई ठहराये गये । १८६१ ई०में ब्रिटिश गवर्नमेंटको मोरसे उनके स्वायत्त सन्तद दी गई । यहाँ के जमींदार तिह्रायत अफीको हैं ।

२ उक्त जमींदारो और तहसीलका सदर । यह अक्षा० १३° २२' उ० और देशा० ७८° २५' पू०के मध्य समुद्रपृष्ठसे २००० फुट ऊँचे में अवस्थित है । पहले एक समय इस नगरने अपूर्व श्री धारण की थी । वक्तमान जमींदारको राजभवन इसी नगरमें विद्यमान है । एक पुरातन किला, राजमासद और मसजिद आज भी भव्य-वस्थामें पड़ी है, किन्तु उनमें उत्तना शिष्टाचार दिखाई नहीं देता । एतद्विषय काशीविश्वेश्वर, सोमेश्वर, माणिक्यनरदराज, रामस्वामी आदि मन्दिरोंमें तथा 'कोनेक' स्नान कुण्ड और पाण्ड्यानामों कई एक विशालविशाल हैं । कथते हैं, कि माणिक्यनरदराजजामीका मन्दिर राजा जनमें जयका बनाया हुआ है ।

१३वीं गताब्दीके मध्यभागमें सीताप्य गोनो बाबू नामक वक्तमान वंशके कोई पूर्वपुरुष प्रचुर सम्पत्ति लाभ कर इस प्रदेशमें बस गये । १२४८ ई०में उन्होंने सुङ्ग-तुर नगर और दुर्ग बनवाया । १४१८ ई०में उक्त वंशके प्रधान व्यक्ति तिमप्पगोनि बाबूने कोल्लर नगर और दुर्ग की स्थापना की थी । उनकी मृत्युके बाद उनके लड़के इम्मडि तिमप्प्य राजगद्दी पर बैठे । इस समय राजा छत्तदेवराय विजय नगरमें राज्य करते थे । इम्मडिने आदिलशाही राजाओंके विपक्षमें घमसान युद्ध किया और अपने अधिकारको संरक्षण रखनेके लिये १५१० ई०में ३ दुर्ग बनवाये । उनके लड़के चिक्कराय तिमप्प्य राजसम्मानित हुए और अपने बाबुवत्सवें अनेक स्थानों

पर अधिकार कर बैठे। उनकी राजत्वकालमें पुद्गल नगर बसाया गया। उनकी मृत्युकी बाद उनके लड़के विक्रमराय वासव सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। १६३८ ई० में मूसलमानोंने इस सम्पत्तिका कुछ भूखण्ड लब्ध कर लिया और प्रशमिष्टायिके लिये उन्हें एक सनद दे दी। १६४२ ई० में मरहटोंने इस राज्य पर अधिकार जमाया। सुमनमानराजने उनके लड़के वीर विक्रमराय के साथ भण्डा सद्व्यवहार किया था, किन्तु उसके बदले में जब जमींदार हम्मड़ विक्रमराय राजकर देनेमें असमर्थ हो गये, तब उनको पुन्यंतन सम्पत्तिका कुछ भूखण्ड राजकीयमें ले लिया गया। १७१३ ई० में कड़ापाकी नवाबने मरहटोंके कबलसे यह स्थान छीन लिया। १७५५ ई० में मरहटोंके साथ कड़ापा नगरमें युद्ध हुआ। हम्मड़के पुत्र नवाबके पक्षमें लड़ कर प्राण गंवाये। १७०८ ई० में हैदरअलीने यहांके पोलिगरको संधेय पराला कर पुद्गलूर पर अधिकार किया। उनके गोलामख के बाद १७७८ ई० में भंगरेजी सहायतासे यहांके पोलिगरने अपनी सम्पत्तिका पुनरुद्धार किया। १७८० ई० में हैदरके साथ किसी पुद्गलूर जमींदारका युद्ध हुआ। युद्धमें जमींदारकी मारि जाने पर उनके लड़के उक्त सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हुए। किन्तु राजकर देनेमें असमर्थता प्रकट कर के भाग गये और भंगरेजीके साथ मिल कर टोपू सुलतानको विरुद्ध युद्ध ठान दिया। विधवात वन्दिवासकी युद्धमें इन्होंने चम्पेजीकी सहायता की थी। टोपूकी मृत्युके बाद उन्होंने पेटलक सम्पत्ति का अधिकार पाया। किन्तु सम्पत्तिका इन्हें वृजाना देना पड़ता है। अभी नगरकी दिनों दिन चरति होती जा रही है। प्रतिवर्ष वैशाखमें यहां एक भाग्य मेला लगता है जिसमें दूर दूर स्थानोंके मवेशी विक्रमके लिये आते हैं। जमींदारप्रमादके प्राक्षुणमें कीर्ति और नृत पणपची आदि रचित है।

पुद्गल (सं० पु०) पुद्ग देवसमूह जाति आदत्त इति पुद्गल-नामक। भाषा।

पुद्गल (सं० पु०) पुमान् गीः (गोदितल्लुकि पा ५।४।८२) इति टच०। १ इप०, वेस। पुद्गल शब्द संस्तर पदस्व होनेसे अर्थात् यह शब्द किसी पद या शब्दके आगे लगनेसे

अपठका अर्थ होता है। यथा, नरपुद्गल, मोरपुद्गल। २ भोवचमदे, एक भोवचका नाम।

पुद्गलकेतु (सं० पु०) पुद्गलः द्वयः केतुरस्य। द्वयध्वज, शिव।

पुचकार (हि० स्त्री०) प्यार जतानेके लिये भोठोसे निकाला हुआ चुमनेका सा शब्द, चुमकार।

पुचकारना (हि० क्रि०) चुमनेका-सा शब्द निकाल कर प्यार जताना, चुमकारना।

पुचकारी (हि० स्त्री०) प्यार जतानेके लिये भोठोसे निकाला हुआ चुमनेका सा शब्द चुमकार।

पुचरम (हि० पु०) कई धातुसंज्ञा मेल, ऐसी धातु जिसमें मिलावट हो।

पुचराना (हि० क्रि०) पोतना, पुचारा देना।

पुचारा (हि० पु०) १ भीने कपड़े में पंखनेका काम, किसी वस्तुके ऊपर पानीसे तर कपड़ा फेरनेकी क्रिया। २ वह गीली कपड़ा जिसमें पोतते या पुचारा देते हैं। ३ हलकी पुताई या लिपाई, पतला लेप करनेका काम, पोता। ४ लेप करने या पोतनेके लिये पानीमें घोली हुई वस्तु। ५ किसी वस्तुके ऊपर कोई गीली वस्तु फेर कर चढ़ाई हुई पतली तड़, हलका लेप। ६ प्रश्न करनेवाले वचन, किसीको प्रत्युत्तर या मननिके लिये कहे हुए मीठी और सुशान वचन। ७ दंगी हुई बन्दूक या तोपकी गरम नलीको ठंडी करनेके लिये उस पर गोला कपड़ा डालनेकी क्रिया। ८ किसी और प्रवृत्त करनेवाले वचन, उल्लाह बड़ानेवाली बात, नकावा। ९ भठोई प्रशंसा, ठकुरसुहातो, चापलूसी, सुशामद।

पुच्छ (सं० स्त्री० पु०) पुच्छतोति पुच्छः पच०। १ लाङ्गूल, पूँछ, दुम। २ पथाङ्गण, जिसो वस्तुका पिच्छा भाग। ३ लोमवत् लाङ्गूल, रोय दार पूँछ। ४ कपाल।

पुच्छकण्ठक (सं० पु०) पुच्छे कण्ठो यच्च। वृषिक।

पुच्छटि (सं० स्त्री०) पुच्छे प्रमादे भटतोति भटगती इन्। भङ्गलिमोटन, चंगली भटकाना।

पुच्छटो (सं० स्त्री०) पुच्छटि-स्त्रियां डोप०। चंगली भटकाना।

पच्छशा (सं० स्त्री०) पच्छमिव ददातीति दा-क०। लसका-कन्द।

पुच्छधि (सं० पु०) पुच्छं धीयतेऽह पुच्छ-धाकि । रोम-
युक्त-भयवध, रोएंदार, प्रह ।

पुच्छतप्त (सं० पु०) तप्तः स्वर्णीय नामभेद ।

पुच्छफल (सं० पु०) बटरोष्ठ, बेरका पेंड ।

पुच्छमूल (सं० स्त्री०) पुच्छस्य मूलं । पुच्छका मूल,
पूछकी जड़ ।

पुच्छल (हिं० वि०) पूछदार, दुमबाला ।

पुच्छिका (सं० स्त्री०) मायपर्णी, जंगली लहसु ।

पुच्छिन् (सं० पु०) पुच्छ-रनि । १ पकड़ल, पाक,
भदार । २ झुंझ, सुगी । (त्रि०) ३ शकल्लुयुक्त दुम-
दार, पूछवाला ।

पुच्छी (हिं० पु०) पुच्छिन् देखो ।

पुच्छेखर (सं० पु०) तीर्थस्थानभेद, एक तीर्थका
नाम ।

पुष्का (हिं० पु०) १ प्रायित, चावल लू, विकलम,
खुशामदे पोछे लगा रहनेवाला । २ साथ न छोड़ने-
वाला, बराबर पोछे लगा रहनेवाला, हमेशा साथमें
दिखाई पड़नेवाला । ३ साथमें जुड़ी-या लगे हुई वस्तु
या व्यक्ति जिसकी सतत आवश्यकता न हो । ४ लम्बी
दुम, बड़ी पूछ । ५ पूछकी तरह जोड़ी हुई वस्तु । ६ लप-
टनकी भाई चोरका छूटा ।

पुष्कार (हिं० पु०) १ आदर करनेवाला, पूकनेवाला,
खोज खबर लेनेवाला । २ पुष्कार देखो ।

पुष्किया (हिं० पु०) दुवा, भेड़ा ।

पुष्कैया (हिं० पु०) ध्यान देनेवाला, पूकनेवाला, खोज-
खबर लेनेवाला ।

पुष्कता (हिं० स्त्री०) १ प्राधनाका विषय होना, पूजा
करना । २ सम्मानित होना, आदर होना ।

पुष्कवान (हिं० स्त्री०) १ आराधन कराना, पूजन कराना,
पूजा करनेमें प्रवृत्त करना । २ अपनी सेवा-श्रद्धा
कराना, आदर सम्मान कराना । ३ पूजाप्रतिष्ठा लेना,
अपनी पूजा कराना ।

पुष्करि (हिं० स्त्री०) १ पूजनेकी मजदूरी या दाम । २
पूजनेका भाव या क्रिया । ३ पूजा करनेकी क्रिया या
भाव । ४ पूजा करनेकी मजदूरी ।

पुष्कामा (हिं० स्त्री०) १ पूजामें प्रवृत्त या नियुक्त करना,

दूसरेसे पूजा कराना । २ अपनी पूजाप्रतिष्ठा कराना,
आदर सम्मान प्राप्त करना, भेंट चढ़वाना । ३ धन
वसूल करना । ४ किसी का बगैरे आदिकी बराबर
करना, भर देना । ५ परिपूर्ण करना, सफल करना । ६
पूर्ति करना, पूरा करना, कामी दूर करना ।

पुजापा (हिं० पु०) १ देवपूजनकी सामग्री, पूजाका
सामान, जैसे नैवेद्य, पक्षपात्र, फूलपत्र, चरचा
-इत्यादि । २ पूजाकी सामग्री रखनेकी भोली, पुजाही ।

पुजारो (हिं० पु०) किसी देवमूर्ति की सेवा-श्रद्धा
करनेवाला, पूजा करनेवाला, जो पूजा करता हो ।

पुजाही (हिं० स्त्री०) पूजाकी सामग्री रखनेका पात्र
वा भोली ।

पुजरी (हिं० पु०) पुजारी देखो ।

पुजैया (हिं० पु०) १ पूरा करनेवाला, भरनेवाला । २
पूजा करनेवाला । (स्त्री०) ३ पुजारी देखो ।

पुजोरा (हिं० पु०) १ पूजनके समय देवताकी अर्पित
करनेका सामान । २ पूजा, पचा ।

पुञ्ज—काश्मीर राज्यके पुञ्जशायीका एक प्रसिद्ध शहर ।
यह पचा २६° ४५' ४०" और देशा ७४° ८' पू० समुद्र-
पृष्ठसे ३३०० फुट ऊँचेमें बसा हुआ है । जनसंख्या
आठ हजारसे ऊपर है । शहरके दक्षिण-पश्चिम कोनेमें
एक दुर्ग है । उस दुर्गमें राजा रहते हैं । यहांकी भाषा
ब्रजा, पच्छी है, परागर्मी हृदय व्यादा पड़तो है ।

पुञ्ज (सं० पु०) पिञ्जते पिञ्जयतीति वा पिञ्जि-भष-
प्रबोदरादित्वात् साधुः । समूह, राशि, स्तूप, टिरा ।

पुञ्ज—गुजरातवासी एक राजपूत राजा । इंदौरमें
इनकी राजधानी थी । इनके पिता राजा रघुमल्लने ८१४
हिजरीमें दिल्लीके पठान-सल्ताट, सुलतान नासीरउद्दीन
अहमदसे विरुद्ध अस्वधारण किया था । उस युद्धमें
उनकी पूरी हार हुई थी । अन्तमें उन्होंने अपनी भूल
स्वीकार कर सुलतानकी शरणार्थता कर दे उनसे समा-
प्रायना की । पिताके मरने पर पुञ्जराज इंदौरमें
मिर्जापुर पर बैठे । उस समय उनके अधीन लगभग
२००० यशरोही सैन्य थी । ८१६ हिजरीमें सल्ताट
नासीरउद्दीनके हाथसे पुञ्जराजका अधिकार लेनेके
लिये भासवराज, सुलतान, बोरुने एक बहुरंग राई ।

पर अधिकार कर बैठे। चढ़ी के राजत्वकालमें पुङ्गुर-
नगर बसाया गया। चनकी मरुकी बाद चनके लड़के
चिकराय वासव सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। १६३८
ई०में मूसलमानों ने इस सम्पत्तिका कुछ भू-दखल
कर लिया और प्रशिक्षाधिकार लिये उन्हें एक-सद दे
दी। १६४२ ई०में मरहटों ने इस राज्य पर अधिकार
लमाया। मुसलमानराजने चनके लड़के वीर चिकराय-
के साथ अच्छा सद्भावधार किया था, किन्तु उसकी बदले-
में जब जमींदार हम्मड़ चिकराय राजकर देनेमें
प्रसमर्थ हो गये, तब चनको पुनः तन सम्पत्तिका कुछ
भू-राजकीयमें ले लिया गया। १७१३ ई०में कड़ापा-
की नवाबने मरहटों की कबलमें यह स्थान छीन लिया।
१७५५ ई०में मरहटों के साथ कड़ापा नगरमें युद्ध
झिड़ा। हम्मड़ के पुत्र नवाब के पक्षमें लड़ कर प्राण
गँवाये। १७०८ ई०में हैदरअली ने यहां की पोलिगरको
समर्थन परास्त कर पुङ्गुर पर अधिकार किया। चनके
गोलमाल के बाद १७७८ ई०में भंगरजी महायतसे
यहां की पोलिगरने अपनी सम्पत्तिका पुनरुद्धार किया।
१७८० ई०में हैदर के साथ फिरसे पुङ्गुर जमींदारका
युद्ध झिड़ा। युद्धमें जमींदारकी मारि जाने पर चनके
लड़के लाल सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हुए। किन्तु राज-
कर देनेमें प्रसमर्थता प्रकट कर वे भाग गये और
भंगरजी के साथ मिल कर ठोपू सुल्तानके विरुद्ध युद्ध
ढाल दिया। विरघात बन्दिवासकी युद्धमें इन्होंने अपने जी-
की बहायता की थी। ठोपू की मृत्यु के बाद चनोने
पेटक सम्पत्ति का अधिकार पाया। किन्तु सम्पत्तिका
इन्हे खजाना देना पड़ता है। अभी नगरकी दिनों दिन
चपति होती जा रही है। प्रतिवर्ष वे शाखमें यहां एक
भांगे मेला लगता है जिसमें दूर दूर स्थानों की भव्य
विक्रीके लिये आते हैं। जमींदारप्रासादके प्राङ्गणमें
जीवित और मृत पशुपक्षी आदि रक्षित हैं।

पुङ्गुर (सं० पु०) पुङ्ग देगसमूह आति चादत्ते इति
पुङ्गुरा-का। चाप्ता।

पुङ्गुर (सं० पु०) पुमान् गौः (गोरुदितलुकि पा ५।४।८२)
इति टच०। १ हप०, बैल। पुङ्गुर शब्द चत्तर पदस्य
दोनेषु पर्याय शब्द किसी पद या शब्दके भाग समन्वये

शब्दको प्रयत्न देता है। यथा, गरपुङ्गुर, चोरपुङ्गुर। २
शोधभेद, एक शोधका नाम।

पुङ्गुरकेतु (सं० पु०) पुङ्गुरः तपः केतुरस्य। तपश्चक्र,
शिव।

पुचकार (हिं० स्त्री०) प्यार जतानेके लिए श्रोतोंसे
निकाला हुआ चुमनेका सा शब्द, चुमकार।

पुचकारना (हिं० क्रि०) चुमनेका-सा शब्द निकाल कर
प्यार जताना, चुमकारना।

पुचकारी (हिं० स्त्री०) प्यार जतानेके लिए श्रोतोंसे
निकाला हुआ चुमनेका सा शब्द चुमकर।

पुचरस (हिं० पु०) कई धातुर्षोभा मेल, ऐसी धातु
जिसमें मिलावट हो।

पुचारना (हिं० क्रि०) पोतना, पुचारा देना।

पुचारा (हिं० पु०) १ भोजी कपड़े में पंक्तिरका काम,
किसी वस्तुके ऊपर पानीमें तर कपड़ा फेरनेकी
क्रिया। २ वह मौला कपड़ा जिसमें पोतते या पुचारा
देते हैं। ३ हलकी पुतई या लिपाई, पतला लेप करने-
का काम, पोता। ४ लेप करने या पोतनेके लिए
पानीमें छोली हुई वस्तु। ५ किसी वस्तुके ऊपर कोई
गीली वस्तु फेर कर चढ़ाई हुई पतली तर, हलका
लेप। ६ प्रसन्न करनेवाले वचन, किसीकी प्रशंसा या
मनानेके लिए कहे हुए मीठे और सुहाते वचन। ७
दमो हुई बन्दूक या तोपकी गरम नलीको ठंडी करनेके
लिए उस पर गोला कपड़ा डालनेकी क्रिया। ८ किसी
और प्रवृत्त करनेवाले वचन, उल्लाह बढ़ानेवाली बात,
नदावा। ९ भठी प्रगंसा, ठकुरसुहातो, चापन मी,
सुगामद।

पुच्छ (सं० स्त्री० पु०) पुच्छतोति पुच्छ-पच। १ लाङ्गूल,
पूँछ, दुम। २ पद्याभाग, किसी वस्तुका पिछला भाग।
३ लोमवत् लाङ्गूल, रोपेदार पूँछ। ४ कपाल।

पुच्छकण्टक (सं० पु०) पुच्छ कण्टको यस्य। हरिक।
पुच्छटि (सं० स्त्री०) पुच्छ प्रभादे पटतोति भटगती
इन्। भट्ट, लिमोटन, चंगो मटकाना।

पुच्छटो (सं० स्त्री०) पुच्छटि-स्त्रियं डोप। टंगली
मटकाना।

पुच्छश (सं० स्त्री०) पुच्छमिव ददातीति दा-क। लसना-
कन्द।

पुच्छि (सं० पु०) पुच्छ धीयतेऽयं पुच्छ-धाकि । रोम-
युक्त भवयव, रोमदारः पङ्क ।

पुच्छन्त (सं० पु०) तच्छब्दशेष नागभेद ।

पुच्छफल (सं० पु०) वदरोष्ठ, बेरका पेड़ ।

पुच्छमूल (सं० स्त्री०) पुच्छस्य मूलं । पुच्छकी मूल,
पूँछकी लड़ ।

पुच्छल (हिं० वि०) पूँछदार, दुमवाला ।

पुच्छिका (सं० स्त्री०) सायमणी, जंगली चट्ट ।

पुच्छिन (सं० पु०) पुच्छ-इति । १ चक्राष्टक, पाक,
मदार । २ कुकूट, सुग्री । (त्रि०) १ शङ्खलुयुक्त दुम-
दारः पूँछवाला ।

पुच्छी (हिं० पु०) प्रच्छिन्न देखो ।

पुच्छखर (सं० पु०) तीक्ष्णानभेद, एक तीर्थका
नाम ।

पुच्छा (हिं० पु०) १ भाषित, चावलस, पिछलन,
खुगामदसे पोछे लगा रहनेवाला । २ सायन छोड़ने-
वाला, बराबर पोछे लगा रहनेवाला, हमेशा सायमें
दिखाई पड़नेवाला । ३ सायमें लुढ़ी या लगे हुई वस्तु
या व्यक्ति जिनकी चेतना बाधप्रयुक्तता न हो । ४ लम्बी
दुम, घड़ी पूँछ । ५ पूँछकी तरह जोड़ी हुई वस्तु । ६ लप-
टनकी बाईं ओरका भाग ।

पुछार (हिं० पु०) १ आदर करनेवाला, पूँछनेवाला,
खोज खबर लेनेवाला । २ पुछार देखो ।

पुछिया (हिं० पु०) दुःखा भेदा ।

पुछैया (हिं० पु०) ध्यान देनेवाला, पूँछनेवाला, खोज
खबर लेनेवाला ।

पुजना (हिं० स्त्री०) १. पाराधनाका विधाय होना, पूजा
करना । २ सम्मानित होना, भाटत होना ।

पुजवान (हिं० स्त्री०) १ पाराधन कराना, पूजन कराना,
पूजा करनेमें प्रवृत्त करना । २ अपनी सेवा-शुश्रूषा
कराना, आदर सम्मान कराना । ३ पूजाप्रतिष्ठा लेना,
अपनी पूजा कराना ।

पुजारी (हिं० स्त्री०) १ पूजनेकी मजदूरी या दाम । २
पूजनेका भाव या क्रिया । ३ पूजा करनेकी क्रिया या
भाव । ४ पूजा करनेकी मजदूरी ।

पुजाना (हिं० स्त्री०) १ पूजामें प्रवृत्त या नियुक्त करना,

दूसरे पूजा कराना । २ अपनी पूजाप्रतिष्ठा कराना,
आदर सम्मान प्राप्त कराना, भेंट चढ़वाना । ३ धन
वसूल करना । ४ किसी घाव गद्दे आदिकी बराबर
करना, भर देना । ५ परिपूर्ण करना, सफल करना । ६
पूर्ति करना, पूरा करना, कमी दूर करना ।

पुजाया (हिं० पु०) १ देवपूजनकी सामग्री, पूजाका
सामान, जैसे नैवेद्य, पञ्चपात्र, फूलपात्र, चरघा-
दियादि । २ पूजाकी सामग्री रखनेकी भोली, पुजाही ।

पुजारो (हिं० पु०) किसी देवमूर्ति की सेवा-शुश्रूषा
करनेवाला, पूजा करनेवाला, जो पूजा करता हो ।

पुजाही (हिं० स्त्री०) पूजाकी सामग्री रखनेका पात्र
वा यैली ।

पुजारी (हिं० पु०) पुजारी देखो ।

पुजैया (हिं० पु०) १ पूरा करनेवाला, भरनेवाला । २
पूजा करनेवाला । (स्त्री०) ३ पुजारी देखो ।

पुजोरा (हिं० पु०) १ पूजनके समय देवताकी अर्पित
करनेका सामान । २ पूजा, चर्चा ।

पुञ्ज—काश्मीर राज्यके पुञ्जनागौरका एक प्रसिद्ध शहर ।
यह प्रचा० ३३° ४५' उ० और देशा० ७४° २' पू० समुद्र-
स्तरसे ३३०० फुट ऊँचेमें बसा हुआ है । जनसंख्या
पाठ हजारमें ऊपर है । शहरके दक्षिण-पश्चिम कोनेमें
एक दुर्ग है । उस दुर्गमें राजा रहते हैं । यहाँकी भाषा
हिमाचली है, पर गर्मीहदसे श्पादा पड़ती है ।

पुञ्ज (सं० पु०) पिच्छते पिच्छयतीति वा पिञ्ज-पक्ष-
प्रयोदरादित्वात् साधुः । समूह, शक्ति, संपूर्ण, टैरा ।

पुञ्ज—गुजरातवासी एक राजपूत राजा । इंदारपुरमें
इनकी राजधानी थी । इनके पिता राजा रणमल्लने ८१४
हिजरीमें दिल्लीके पठान-क़्वाट सुलतान नासीरउद्दीन
अहमदके विरुद्ध अस्त्रधारण किया था । उस युद्धमें
उनकी पूरी शारही थी । यन्तमें उनकी अपनी भूल
स्वीकार कर सुलतानकी शयामश्रम कर दे उनसे क्षमा
प्राप्त की । पिताके मरने पर पुञ्जराज इंदारपुरके
विजयनगर पर बैठे । उस समय उनके पथोन लगभग
२००० घातारोड़ी सेना थी । ८१६ हिजरीमें क़्वाट
नासीरउद्दीनके हाथसे गुजरातका अधिकार लेनेके
लिये मालवराज सुलतान कीचलने एक बड़ेयत्न रचा ।

इसमें पुञ्जराज चादि हिन्दू-राजाधेनि भी भाग दिया । ८२८ हिजरीमें सुलतान अल्लाह स्वयं दमनकरके साथ पहुँचे और विश्वेश्वरका दमन किया । पुञ्जराज चादि हिन्दू-राजाधेनि वंचावका कोई रास्ता न देख दिक्षोश्चरकी शरण को । किन्तु ८२८ हिजरीमें सुलतान अल्लाहने पुनः इदारपुर पर आक्रमण कर दिया । इस बार पुञ्जराज अपने जान-ले कर एवं तमय जहल-को भोगे । दिक्षोश्चरके आदेशानुसार उसका राज्य मरु-भूमिमें परिणत किया गया । ८२९ हिजरीमें इन्होंने फिर अपना मस्तक उठाया इस बार शत्रुदलकी हार हुई । आखिर सबोंने मिल कर पुञ्जराजको तंग तंग कर डाला । पुञ्जराज एक सङ्कोष गिरीषधमें जा छिपे हाथी पर सवार हो विषय मेगाने बड़ी तेजीसे उनका पीछा किया । पुञ्जका घोड़ा हाथीको देख कर भड़क उठा और गिरिगह्वरमें भारीहो समेत झड़ पड़ा । यहीं पर पुञ्जकी कीवनीला शेष हुई । दूसरे दिन सुबहकी एक काठूरिया पुञ्जका मस्तक काट कर सम्राट्की पास लाया । सम्राट्ने पुञ्जराजको देख अपने मन्त्रीके समीप उनकी श्मश्रु प्रशंसा की थी । बाद इदार पर दखल जमा कर सम्राट्ने बहाका शासन-भार उनके पुत्र और राज्यके हाथ समर्पण किया ।

पुञ्जदल (स० वली०) सुनिषण शाक, सुसनाका साग । पुञ्जराज (स० पु०) पुञ्जानी राजा, टचसुमासन्तः । १ दसपति, सरदार । २ एक अन्यकार । ये मन्त्रवारकी श्रीमालव-भणभूत थे । इनके पिताका नाम था जीव-निन्द । इन्होंने ध्वनिप्रदीप, मिश्रप्रबोधालङ्कार और सार-ध्वन्यप्रतिभा टीका नामक तीन ग्रन्थ और हलराजकी सहायतासे हरिकारिका-टीका रची है । ३ गम्भीरी-प्रकाशके प्रणेता ।

पुञ्जगम् (स० अर्थ०) पुञ्ज धारार्थ चणस । पुञ्ज पुञ्ज, रागि रागि, टेरका टेर, बहुत-सं ।

पुञ्जाजि—चापोत्कृष्टवर्गीय एक राजा । चापोरुट और चावडा देखो ।

पुञ्जातक (स० पु०) हृत्तमिद, जीवन नामक पौड़ ।

पुञ्जि (स० पु०) पिञ्जयति पिञ्जि हिंसावनदाननिकेतने इन् एपीदरादित्वात् साधु । सम ह, टेर ।

पुञ्जिक (स० पु०) पुञ्जीभूत तुपार, जमो हुई रफ ।

पुञ्जिकलना (स० स्त्री०) अप्सरो भेद, एक अप्सराका नाम ।

पुञ्जिकाम्पना (स० स्त्री०) अप्सरोभेद, एक अप्सरा ।

पुञ्जिष्ठ (स० पु०) पुञ्जो तिष्ठति स्था-क, अन्वाम्ब-त्वा-दिना पत्य । पञ्चिपुञ्जघातक ।

पुञ्जोल (स० पु०) पिलि बाहुलकात् इस, एषोदरादि-त्वात् साधु । पिञ्जल ।

पुट (स० वली०) पुटतीति पुट, सञ्ज्ञेपे-क । १ जातीफल, जायफल । २ खुर, घोड़ेकी टाप । ३ दोग, कटोरा । ४ आच्छादन, ठाकनेवाली वस्तु । ५ दोनिके आकारकी वस्तु, कटोरीकी तरहकी चीज । ६ कटोरीके आकारके दो बराबर बरतनोंकी सुँघ मिना कर जोड़नेसे बना हुआ बंद घेरा, संपुट । ७ भन्तःपट, चतुरोटा । ८ एक वर्ष-वृत्त जिसके प्रत्येक चरणमें दो नगण, एक मगण और एक यगण होता है । ९ बोधध पक्षानेका पात विशेष ।

भावप्रकाशके मतसे—रसप्रदीपोक्त धात्वादि सार-बोधयुक्त पुटका विधान इस प्रकार है । सारित कीड़ादि यद्यपि फिरसे किसी तरह प्रकृतित्व नहीं किया जाता और जलमें गिरानेसे तेरने लगता है, तो भी यही प्रकृति सारित और अष्टगुणदायक है । यह गुण पुट द्वारा ही होता है । निम्नलिखित प्रणालीसे पुट करना होता है ।

दो हाथ लम्बा, दो हाथ चौड़ा, दो हाथ गहरा एक चौवूटा गद्दा खोद कर उसमें बिना पये हुए हजार चपले डाल दे । उपरकी ऊपर बोधधका सुँघबन्द बरतन रख दे और ऊपरसे भी चारों ओर पाँच वी चपले डाल कर घाग लगा दे । दवा एक लायगी । इस प्रणालीसे जो पुट किया जाता है, उसे महापुट कहते हैं । अलावा इसके गजपुट, कौंकटपुट और भाण्ड पुट हैं । सवा हाथ लम्बा, सवा हाथ चौड़ा, सवा हाथ गहरा एक गद्दा बना कर उसमें पाँच वी चपले डाल दे । पीछे बोधधका सुँघबन्द बरतन उस चपली पर रख दे । अनन्तर ऊपरसे और पाँच वी चपले डाल कर घाग लगा दे । इसे गजपुट कहते हैं । सब प्रकारके पुटोंमें गजपुट अष्ट है ।

कौकुट्टादिपुट्ट—परंजि (कनिष्ठाङ्गुल भिन्न सुट्टि-परिमाण) कुण्डमें पाक करनेसे बाराहपुट्ट, वितस्ति परिमाण कुण्डमें पाक करनेसे कौकुट्टपुट्ट, किन्तु किसी किन्हीं पण्डितके मतसे १६ षष्ठ्युल कुण्डमें पाक करनेसे भी कौकुट्टपुट्ट होता है।

कपोतपुट्ट—षष्ठकोण कुण्डके मध्य पुट्ट द्वारा जो पाक किया जाता है, उसे कपोतपुट्ट कहते हैं। गोचारण-भूमिस्थ गोके खुर द्वारा कुचसे हुए गोमय चूर्ण को गोबर कहते हैं। यह गोबर रससाधनमें प्रयुक्त है।

वृहत्भाण्डवित् भोवचक्रा गोबर द्वारा जो पुट्टपाक किया जाता है, उसे गोबरपुट्ट कहते हैं। गोबरपुट्टसे पारा भस्म हो जाता है। सुपूरण एक बड़े बरतनमें दवा रख कर उसमें पन्नि डाल दे। ऊपरसे एक दूसरा बरतन ठक दे। इस प्रकार जो पाक किया जाता है उसे भाण्डपुट्ट कहते हैं। (भावप्र० द्वितीयभाग पुट्टविधि)

पुट्ट (हि० पु०) १. किसी वस्तुसे तर करने या उसको हलका भेल करनेके लिये डाला हुआ छोटा, हलका हिरकाव। २. अस्त्रमात्रामें मियण, बहुत हलका भेल देनेके लिये घुसे हुए रंग या और किसी पतली चीजमें डुबाना।

पुट्टक (सं० स्त्री०) पुटवत् कायतीति क०क। १ पत्र, कमल। २ पुट्टदीवी।

पुट्टकन्द (सं० पु०) पुट्टमिव कन्दोऽयम्। कीलकन्द, बाराहीकन्द।

पुट्टकित (सं० त्रि०) पुट्टक-इतच्। आशय, भावित।

पुट्टकनी (सं० स्त्री०) पुट्टकानि सक्तयन्ति पुट्टक-इति। (उष्करविशेषे देखे। पा ५।२।१५) स्त्रियां डोप। १ पक्ष-युक्त देग, कमलीमें भरा हुआ देश। २ पत्थिनी, कमलिनी। ३ पक्षसमुह। ४ पक्षलता।

पुट्टको (हि० स्त्री०) १ देवी आपत्ति, स्वप्नात, भांफत, गजव। २ प्राकटिमक मृदु, मोन जो एकबारगी पा पड़े। ३ पोतकी, गठरी। ४ बैसन या भाटा जो तर-कारीके रसेको गाढ़ा करनेके लिए मिठा दिया जाता है, भांलन।

पुट्टपीव (सं० पु०) पुट्टमिव पीवा यस्मै। १ गर्गरी, गगरी। २ ताम्रकुम्भ, ताम्रका घड़ा।

पुट्टपत्नी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका पत्रगाक।

पुट्टपाक (सं० पु०) पुट्टेन पाकः। १ पुट्ट द्वारा भीषण पाक, पत्तेके दोनेमें रख कर भीषण पकानिका विधान। भाव-प्रकाशमें पुट्टपाकका विषय इस प्रकार लिखा है—

“पुट्टपाकस्य कदस्य स्वरसो एतन्ते पयः।

अतस्तुपुट्टपाकानां युक्तिरनोच्यते मया ॥” (भावप्र०)

पुट्टपाक करके किस किस द्रव्यका स्वरस ग्रहण करना होता है, जैसे चमका विधान लिखा जाता है।

‘पकाई जानिवाकी भीषणकी गंभारी, बरगद, जामुन, बादिके पत्तेमें चारों चोरसे लपेट दे और कस कर बांध दे। फिर पत्तेके ऊपर गोली मिट्टीका दो षंशुल मोटा लेप कर दे। फिर उस पिण्डको चपत्तेकी पागमें डाल दे। जब मिट्टी पक कर लाल हो जाय, तब समझे कि दवा पक गई। पीछे एक पल उसका रस ले कर उसमें एक कप मधु डाल दे।”

२ नेत्रप्रसाधनका उपायविधिय।

येक आशोतनं पिण्डी विहासस्तर्पणं तथा।

पुट्टपाकोऽन्यथैभिः कल्पैर्नैतनुपावरेत् ॥” (भावप्र०)

येक, आशोतन और पुट्टपाकप्रभृति द्वारा नेत्रका प्रसाधन करना चाहिए।

इसका विधान इस प्रकार है—स्निग्ध मांस २ पल, दूसरा द्रव्य एक पल और द्रव्यपादार्थ ४ पल, इन सब द्रव्यों को एक साथ पोष कर आलीढन करे। पीछे पुट्टपाकके विभागानुसार पत्र द्वारा घेष्टन कर पाक करे। अनन्तर रोगीको चित सुला कर तर्पणीत विधानानुसार उसका रस रोगीके नेत्रमें डाल दे।

यह पुट्टपाक तीन प्रकारका है—स्निग्ध, लेखन और रोपण। अत्यन्त रुच व्यक्तिके पक्षमें स्निग्ध पुट्टपाक, स्निग्ध व्यक्तिके पक्षमें लेखन पुट्टपाक और दृष्टिबल जनार्थ रक्त-पित्तव्रण और वायु प्रशमनके लिये रोपण-पुट्टपाक विधिय है। स्नेह, मांस, चरबी, मज्जा, भेद और मधुर भीषण द्वारा स्निग्ध पुट्टपाक प्रयुक्त करके दो दो उच्चारण करने-में जितना समय संगता है उतने समय तक उसे नेत्रमें घारण किये हुए रहे। जंगली प्राणीका यकृत और मांस लेखन-गुणयुक्त द्रव्य, क्षण्यलोहचूर्ण, ताम्र, शङ्ख, प्रवाल, सन्ध्य, ससुद्रफेन, हिवाकस, रसास्त्राण और दधीका पानी

मृत्युके बाद उक्त स्थानका करसंबंध कष्टदायक हो गया था। क्रमशः सुवेदारोंने पंचयत्य करके दिखोके राजकीयमें कर भेजना बन्द कर दिया। सुवेदारोंका दमन करनेके लिये सन्मार्टने एक सेनापक्ष भेजा। वे दस बलके साथ बल्लाचायके पोचममें पहुँचे। उक्त देव-दुख ब्राह्मणने अतिथि-सत्कार अच्छी तरह किया, पीछे पानिका कारण पूछा। ब्राह्मणके भागीबोदसे सुइमें सेना-पतिको जीत हुई। पीछे उन्होंने सन्मार्टसे लखनपुरका अधिकार पा उक्त ब्राह्मणको दान दे दिया। बाबाय ठाकुरने जमींदारों तो पक्ष कर लो, पर विषय-मदमें लिस रह कर लोनेनै चय अपने दख जोवनको उच्छृंखल करना न चाहा। अतः उनके लड़के योग्य बरने कोयल क्रमसे उक्त सम्पत्तिका भोग किया। उनको मृत्यु होने पर उनके छोटे लड़के मौलाखर सम्पत्तिके अधिकारी हुए। इहाँके समयमें उक्त जमींदारोंकी बीड़ि हुई थी। उनके पालन पालनमें समाटवे राजाका खिताब पाया। पीछे उनके लड़के रतिकान्त अपने काम दोषसे राजाकी उपाधि न पा सके। उनके अधीनस्थ व्यक्ति उनके ठाकुर कहना करते थे। उनके लड़के रामचन्द्रने राधागोविन्दकी मूर्ति स्थापित की मरनारायण, दयनारायण और जयनारायण ठाकुर नामके रामचन्द्रके तीन पुत्र थे। नाटोरंराजेश्वरके प्रतिभाता रघुनन्दनके पिता कामदेव मरनारायणके अधीन बाई-हाटोके लड़के लंदार पद पर नियुक्त थे। मरनारायणके मरने पर दयनारायण सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हुए। उनके अधीन उक्त रघुनन्दनने पुण्यवधसे क्रमशः सुमिंदा-घाट दरबारमें वकासतो-पद प्राप्त किया। नाटोरे देखो।

ठाकुर पानन्दनारायणने लार्ड कान्ग बालिसे लखन-पुर परगनेका चिरस्थायी बन्दोबस्त कर लिया। उनके मंथर राजनारायणने छटिम-गंममेंपटवे राजा बहादुरकी उपाधि पाई। १२१४ सालमें राजा जगनारायणने पुखुरिया, काजीहाट, भवानन्ददिया, कालिधाम कालिधामा आदि चौर भी कितनी सम्पत्ति खरीदी। याराणधो-धाममें उनका निर्मित घाट चौर भतिथिगाला आज भी वसंत माग है। बिहार प्रदेशमें फल्गु नदीके किनारे जो भतिथिगाला है, वह वहीं की कीर्ति है। १२१६ सालमें उन्होंने राजाकी उपाधि वसंत कर ली। १२२३

सालमें उनकी मृत्यु होनेके बाद उनकी विधवा पत्नीने पुटियामें एक गिरमन्दिर बनवाया। मृत राजा योगेन्द्र-नारायण रायकी विधवा पत्नीका नाम महारानी मरत-सन्दरी था। दानकर्ममें वे मुक्तहस्त थीं। दुमिंचके समय तथा दातव्यसमितिमें उक्त महाशया प्रभुर धन दान कर गई हैं।

पुटी (सं० खो०) पुटनीति पुट-क, गौगदितान् डोप। १ कोपीन, खंगोटो। २ पाच्छादक १ छोटा कटोरा, छोटा दोना। ४ पुड़िया।

पुटोन (सं० पु०) द्विबाह्वीमें शीरो बैठाने या लज्जहीके जोड़, छेद, दरार आदि भरनेमें काम आनेवाला एक मसाला। यह मसाला जो पनसोके तेलमें खरिया मिठी मिमा कर बनाया जाता है।

पुटोटाज (सं० कनो०) पुटं संक्षिप्तसुटजमिव। खेतच्छत्र।

पुटोदक (सं० पु०) पुटे अन्तर्गुलजात्रमध्य उदक यत्न। नारिकेल, नारियल।

पुटो (हिं० खो०) मछलियोंके पकड़नेका भावा।

पुटो (हिं० पु०) १ घोषाया विमोचन; घोड़ोंका चूतक। २ चूतकका जपरो कुंछ कड़ा भाग। ३ किसी पुन्यकी जिदका पिछला भाग। ४ पुट्टे परका मज-बूत चमड़ा। ५ घोड़ोंकी संख्याके लिए शब्द।

पुटो (हिं० खो०) बेलगाड़ीके पहिएके चौरका एक भाग जिसमें चौरा चौर गज घुसे रहते हैं। किसी पहिएमें चार किसीमें छः ऐसे भाग मिल कर पूरा चौर बनाता है।

पुटवाल (हिं० पु०) १ पृष्ठरक्षक, मददगार, भले बुरे काममें किसीका साथ देनेवाला। २ चारोंके दलका वह व्यक्ति आदमी जो वेधके सुँह पर पहरके लिए खड़ा रहता है।

पुट्टा (हिं० पु०) १ बड़ी पुड़िया या बंडल। २ वह चमड़ा जिससे ढोल मड़ा जाता है।

पुड़िया (हिं० खो०) १ आधार स्थान, भण्डार, खान। २ मोड़ या लपेट कर संपुटके आकारका किया हुआ कागज या पत्ता जिसके भीतर कोई चीज रखी जाय। ३ पुड़ियामें लपेटो हुई देवाकी एक खुराक या मावा।

पुट्टी (हिं० खो०) मछ चमड़ा जिससे ढोल मड़ा जाता है।

पुण्ड (सं० पु०) पुण्यते इति पुडि मदे घञ्। १ तिष्ठक,

इन सब द्रव्यों द्वारा पुटपाक प्रसृत करके, सो उच्चारण करनेमें जितना समय लगता है, उतने समय तक तथा दुग्ध, चंगनी प्राणोकी मज्जा और छत एवं तिल द्रव्य द्वारा रोपण पुटपाक प्रसृत करके तोन सो वाक्योच्चारण समय तक नेत्रमें धारण करे। तिल द्रव्य से सब है—गुग्गुलु, अमृता, परबल, नीम और कण्टकारी।

परिधायित पुटपाकके प्रयोग द्वारा यदि कोई उपद्रव हो जाय, तो तर्पणोक्त क्रिया द्वारा उसका प्रतिकार करना होता है। तर्पण प्रथम पुटपाक-प्रयोगके बाद तेजस्कर पदार्थ तथा वायु, पाकाग, दर्पण और दौति गीत पदार्थ नहीं देखना चाहिये। (रहेन्द्रसार)

रहेन्द्रसार (सं० पहलें मतसे—एक हाथका गड्ढा बना कर अपने, भूसी प्रथम काठसे उसका अर्धोपर भर दे। पोछे सबके ऊपर लोहा और भूसी पादि डाल कर ढाग लगा दे। चार पहर दिन वा रात तक इस प्रकार पुटपाक करके द्रव्यको भस्म करना होता है। पुटपाकमें जो द्रव्य ऊपरमें रहता है वह भस्म हो जाता है और नीचेका द्रव्य ग्रहण करनेसे औषध स्वयंवीर्य होती है। जब यह सुगंध हो जाय तब राखको बलग फेंक कर औषध ग्रहण करे।

रसायनमें पुटपाक—भूमिकुपाण्ड, पिण्डखजूर, गन्तमूला, अहिराज, चौरिगा, मिनावा, गुडूबी, चोता, इस्किण, पलाश, तालमूली, यटिमधु, मुण्डरी और केयराज ये सब पदार्थ रसायनमें पुट देने होते हैं।

(रहेन्द्रसारसेवह)

चक्रवाणि पादिके वैद्यक ग्रन्थोंमें भी इस पुटपाकका विधाय विवरण लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे उसका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया।

पुटमिद (सं० वि०) पुटमिद-क्षिप, पुटमिदक पाषाण, पुटमिद (सं० पु०) पुट संचित भिनत्तीति मिद-अण, (वर्धमान्) पा ३।१।१। १ नदीवक्त्र, नदी पादिका चक्रकार ललावर्त्त, जलका भंवर।

“प्रमृतेन हि मलिनान्मनितानां माधन्यसुप्रधानि।

कालिन्दीपुटमिदः कालिपुटमिदेन सवति॥”

(आयोषधः ३।१८)

२ पत्तन, नगर। ३ पातोद्य।

पुटमिदक (सं० वली०) पुटमिद पाषाण, परतदार पत्थर जो बाधा पुरसा छोड़ने पर जमीनके भीतर मिले। जिस जगह छोड़नेसे जल निकलेगा इसका विचार जिस सद-कार्गुल प्रकरणमें है, उसीमें इसका उल्लेख है।

पुटमिदन (सं० वली०) पुटमिदखुरे मिधति इति मिद-व्युट, नगर।

पुटरिया (हि० वली०) पोटी देखो।

पुटरी (हि० वली०) पोटी।

पुटापुटिका (सं० वली०) पुट पुटा संचितो पचात् अणु-टिका मन्थनो०। पहले संचित और पीछे पत संचित।

पुटापु (सं० पु०) पुट संचित पातुः कोनकम्।

पुटान (हि० पु०) पोटा देखो।

पुटिका (सं० वली०) पुट मन्थन इति ठन्। १ एका, इकोयचो। २ कपुट, पुटिया।

पुटिन (सं० वली०) पुट ज्ञानमस्येति पुट-इतत्, वा पुट-त्त। १ इत्तपुट। (वि०) २ पाटित, पटा हुआ। ३ स्थान, सिला हुआ। ४ बंद। ५ जो विमट कर दोनके बाँकारका हो गया हो। ६ सङ्घटित, सङ्गठित हुआ। ७ पाँचवें प्रथमादियुक्त मन्त्रादि, जिस मन्त्रके पाँच और अक्षरों प्रथमादि रहें।

पुटिनो (सं० वली०) केनी नामकी मिठाई।

पुटिया (हि० वली०) एक प्रकारकी छोटी मक्खनी।

पुटिया—१ बङ्गालके चम्पनगर राजमाहिला—एक उप-विभाग।

२ एक उपविभागका एक नगर। यह कोषालिया और नाटोरे स्थानांभगमें अवस्थित है। यहाँके सम्पत्तिमाली राजवंशीयगण ठाकुर कहलाते हैं। सुविमल प्रसादजीके उभय तीरवर्ती, सख्तरपुर, परगना हो इनकी प्रधान सम्पत्ति है। कहते हैं, कि सुविमलदादा राजसरकारके कर्मदान कर्मचारी ग्रेज सख्तर द्वारा उन्होंने उक्त सम्पत्ति पाई है। पुटिया-राजवंशीको उपसिद्धि सम्बन्धमें एक गल्प इस प्रकार प्रचलित है। पहले पुटियानगरमें बन्नाचार्य नामक एक कविमुत्तम ब्राह्मण रहते थे। कुछ समय बाद ससारी कुल पर सात मार उन्होंने मानसल भवजनन किया।—यह के उपनामों द्वारा समय ईश्वर चिन्तामें विताने लगे। इस समय सख्तर यात्री दिल्लीश्वर से सख्तरपुर परगनेकी जागीर समद मिली। सख्तरकी

मृत्युके बाद उक्त स्थानका करसंघ कष्टदायक हो गया था। क्रमशः सुवेदारोंने पड़वण्य करके दिकोने राजकोषमें कर भेजना बन्द कर दिया। सुवेदारोंका दमन कानेके लिये सम्भाटने एक सेनापत्र भेजा। वे दल बलके साथ बलाघातके पायमें पहुँचे। उक्त देव-सुव्य ब्राह्मणने प्रतिवि-सत्कार अच्छी तरह किया, पोछे पानिका कारण पूछा। ब्राह्मणके पायीबोधसे युद्धमें सेनापतिको जीत हुई। पोछे उन्होंने सम्भाटसे सत्कारपुरका अधिकार पा उक्त ब्राह्मणको दान दे दिया। पाचार्य ठाकुरने जमींदारों तो ग्रहण कर लो, पर विषय-मदमें लिस रह कर उन्होंने धर्म धर्मने उक्त जीवणको उच्छेदक करना न चाहा। अतः उनके लड़के जीता बरने कोशल क्रमसे उक्त सम्पत्तिका भोग किया। उनही मृत्यु होने पर उनके छोटे लड़के भीवावर सम्पत्तिके अधिकारी हुए। इन्होंने समयमें उक्त जमींदारोंकी शीशुई हुई थी। उनके भ्रातृज भानन्दने सम्भाटसे राजाका खिताब पाया। पोछे उनके लड़के रतिकाल धर्मने कामदेवसे राजाकी उपाधि न पा सके। उनके अधीनस्थ व्यक्त उनके ठाकुर कष्ट करते थे। उनके लड़के रामचन्द्रने राधागोविन्दकी मूर्तिस्थापन की नरनारायण, दणनारायण और जयनारायण ठाकुर नामके रामचन्द्रके तीन पुत्र थे। नाटोरंजणके प्रतिठाला रघुनन्दनसे पिता कामदेव नरनारायणके अधीन बाहर-हाटोके लड़कोलंदार पर पर नियुक्त थे। नरनारायणके मरने पर दणनारायण सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हुए। उनके अधीन उक्त रघुनन्दनने पुणवयसे क्रमशः सुविदा-बाद दरबारमें बकासो-पद प्राप्त किया। नाटो देखो। ठाकुर भानन्दनारायणने शाह कांन बांससे सत्कार-पुर परगनेका धिरसायी बन्दीबन्ध कर लिया। उनके वंशधर राजनारायणने इष्टि-गवर्धने राजा बहादुरकी सहायि पाई। १२१४ मासमें राजा जगनारायणने पुण-रिया, काजीहाट, भगनन्ददिया, कालियाम कालिसफा प्रादि और भी कितनी सम्पत्ति खरीदी। शाराणधी-धाममें उनका निमित्त घाट और प्रतिविगाला बाज भी बस मान है। बिहार प्रदेशमें फल्गु नदीके किनारे जो प्रतिविगाला है, वह उनकी की कीर्ति है। १२१६ सालमें उन्होंने राजाकी सहायि वंशगत कर की। १२२३

सालमें उनकी मृत्यु होनेके बाद उनकी विधवा पत्नीने पुटियामें एक शिवमन्दिर बनवाया। मृत राजा योगेन्द्र-नारायण रायकी विधवा पत्नीका नाम महारानी शरत्-सुन्दरी था। दानकर्ममें वे मुक्तहस्त थीं। दुर्भिक्षके समय तथा दातव्यसमितिमें उक्त महामया प्रचुर धन दान कर गई हैं।

पुटो (स० खो०) पुटतीति पुट-क, गीगादित्यात् डोप। १ कोपीन, लंगोटो। २ बाक्कादक १ छोटा कटोरा, छोटा दोना। ४ पुटिया।

पुटोन (प० पु०) शिवाङ्गिमें शीगे बैठाने या लकड़ीके जोड़, छेद, दरार प्रादि भग्नेमें काम पानेवाला एक मसाना। यह सगला जो धनसीके तेलमें छुरिया मिट्टी मिला कर बनाया जाता है।

पुटोटज (स० खो०) पुट० स० शिष्टसुटजमिव। श्वेतच्छत्र। पुटोदक (स० पु०) पुट० शरत्पुलपात्रमथी उदक यक्ष। नारिकेल, नारियल।

पुटो (हि० खो०) मल्लियार्थके एकलुनेका भाषा। पुटो (हि० पु०) १ चौपायो विशेषतः घोड़ोंका चूतड़। २ चूतड़का ऊपरी कुछ कड़ा भाग। ३ किसी पुष्पकी जिह्वाका पिछला भाग। ४ पुटि परका मज-बूत चमड़ा। ५ घोड़ोंको सँझाके लिए शब्द।

पुटो (हि० खो०) बैनावाहीके पहिएके घेरेका एक भाग जिसमें चारा और गज घुसे रहते हैं। किसी पहिएमें चार किसीमें छः ऐसे भाग मिल कर पूरा घेरा बनता है।

पुटशाल (हि० पु०) १ छठरचक, मददगार, भले घुरे काममें किसीका सहा देनेवाला। २ चारोंके दलका वह वलिष्ठ पादमो जो संधके मुँह पर पहरेके लिए खड़ा रहता है।

पुट्टा (हि० पु०) १ बड़ी पुटिया या बंडल। २ वह चमड़ा जिससे टोस मढ़ा जाता है।

पुट्टिया (हि० खो०) १ बाधार स्थान, भण्डार, खान। २ मोड़ या संपेट कर संपुटके आकारका क्रिया हुआ कागज या पत्ता जिसके भीतर कोई चीज रखी जाय। ३ पुट्टियामें संपेटे हुई दवाकी एक खुराक या मावा। पुट्टी (हि० खो०) वह चमड़ा जिससे टोस मढ़ा जाता है। पुण्ड (स० पु०) पुण्यति इति पुण्डि मदे चम। १ त्रिक,

टीका, चन्दन, केसर आदि पोत कर मस्तक या शरीर पर बनाया हुआ चिह्न । २ दक्षिणकी एक छाति जो पङ्कने पङ्कन रंगमके कीड़े पाकनेका काम करती थी ।

पुण्डरीक—संस्कृत और हिन्दीके एक प्राचीन कवि । ये राजनेके रहनेवाले थे और स० ७७० में इनका जन्म हुआ था । उस समयके भवन्तो-राज भागमिहके ये दरबारी कवि थे । राजासे ही इन्होंने काव्यकी शिक्षा पाई थी । पङ्कने पङ्कन इन्होंने ही हिन्दी भाषामें कविता की । क्योंकि इनके पङ्कनेके अन्य किसी कविका पता नहीं लगता । इनका दूसरा नाम पुष्पभाट था ।

पुण्डरिन् (स० पु०) पुण्डं तिलकच्युत्ततोति ऋग्निनि ।
क्षुद्रविप, पुंडरिया । पर्याय—पोण्डरीक, पुण्डरीक,
पुण्डरीयक, प्रणोण्डरीक, चक्षुष्य, पोण्डयं, तालपुष्पक,
सालपुष्प, दृष्टिस्त, स्यसपत्र और सालक । इसकी
पत्तियां शालपर्णीकी पत्तियोंकी सी होती हैं । इसमें एक
प्रकारकी सुगन्ध रहती है । यह पौधा छाँची और मनुष्य-
नि चक्षुरोगमें हितकर है ।

पुण्डरीक (स० क०) पुण्ड मर्दं (कर्करीशदश्वव । उण्
४।२०) इति ईकन् प्रत्ययेन निपातनात् साधुः । १ खेत-
पत्र, सफेद कमल । पर्याय—सिताश्रीक, शतपत्र, महा-
पत्र, सिताम्बुज । विशेष विवरण अंतर्गममें देखो ।

“पुण्डरीकातवर्णसं विरक्तवर्णानामरः ।

कद्रुर्विडम्बयानास न पुनः प्राप तच्छिवम् ॥”

(१७० १।१३)

२ पद्मभाट, कमल । ३ श्वेतच्छत्र, सफेद छाता ।
४ भेषजभेद, एक प्रकारकी दवा । ५ मात प्रकारकी
कुष्ठमेंसे एक श्वेत कुष्ठ, सफेद कीड़ा । इसका लक्षण—
“वर्धनं कार्थगर्तं पुण्डरीकं दशोगमम् ।

घोदघेपद्वय वरागङ्ग पुण्डरीकं तदुच्यते ॥” (निदाव)

जिम कुष्ठमें उहते मण्डल साल कमलके पत्तोंकी
तरङ्ग श्वेत और रक्तवर्ण होती हैं, उसे पुण्डरीक कुष्ठ
कहते हैं । (पु०) पुण्डरीकवद् यथोक्त्येति श्रुत्वा । ६
अग्निशोणस्थित दिग्गज, अग्निशोणके दिग्गजका नाम ।
७ व्याघ्र, बाघ । ८ कोपकारभेद, रंगमका कीड़ा । ९
वाज पत्थी । १० जैनियोंके एक गणधर । ११ राजलक्ष्मण,
सफेद रंगका साँव । १२ गजधर, आसिदोंका धर । १३

दमनकहूच, दोनेका पौधा । १४ धान्यावध व, एक प्रकार
का धान । १५ कमण्डलु । १६ श्वेतवर्ण, सफेद रंग ।
१८ कोषहीनस्थित पत्र त्रिविध, कोषहीनका एक पत्र ।
१९ तिलक । २० एक प्रकारका घाम, सफेदा । २१
सफेद रंगका छाँची । २२ पत्रि, पाग । २३ बाण, शर ।
२४ प्राकाश ।

२५ तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम । शक्तपक्षकी
दशमी तिथिकी इस पुण्डरीकतीर्थमें स्नानदानादि करदे-
ने भविष्य पुण्य होता है ।

“शुक्राक्षे दशम्यां च पुण्डरीकं समाविशत् ।

तस स्नानात् नरो राक्षसः पुण्डरीकलं लभेत् ॥”

(भागवत ३।१०।१०)

२६ यज्ञविशेष, एक यज्ञ । २७ नागविशेष, एक
नागका नाम । २८ गमचन्दनं शीघ्र वृषविशेष । २९
गर्गरा, चीनी । ३० पात्रा, घों । ३१ इक्षु, एक प्रकारकी
इँख । (श्री०) ३२ वणिठकी बच्चा । ३३ एक पक्षरा ।
(त्रि०) ३४ पुण्डरीकविहित ।

पुण्डरीक—१ नाटकलक्षण नामक काव्यके रचयिता ।

२ रत्नाची, देवताके भक्त और भद्रसुनिके कुलोद्भव
एक क्षत्रिय राजा ।

३ पोट, जेलिया और कैदखानोंकी पदवी ।
पुण्डरीक (स० पु०) पूज्यजातीय जलचरभेद । यह
पक्षी संधातचारी है । इसकी मांसमें रक्तपित्तनाशक,
श्रीतल, स्निग्ध, हृष्य, वायुनाशक और मलमूत्र वर्धक गुण
माना गया है ।

पुण्डरीकपु—जनपदभेद । स्कन्दपुराणानुगत पुण्ड-
रीकपुर माहात्म्यमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है ।
पुण्डरीकसुखी (स० श्री०) निषिध लशोकाभेद, विष-
रहित जीक । जिस जीकका मूँगकी तरह दंत तथा
कमलकी तरह सुंदर रहता है, उसे पुण्डरीकसुखी
कहते हैं ।

पुण्डरीकविहङ्ग—एक विख्यात पण्डित । ये कर्णाटकवासी
साधवर्षिद राजके पुत्र और सम्राट् पकवरके सभा-
पण्डित थे । इन्होंने अनेक अनिषेय, रागमञ्जरी, गीत-
बोधिनो, नाममाला और यह रागचन्द्रोदय नामक पाँच
सङ्गीतविषयक ग्रन्थ बनाये हैं ।

पुण्डरीकविद्यानिधि—चहदामवासी महाप्रभुके एक प्रधान भक्त। स्वरूपनिर्णयमें ये द्वयेभानु राजाके स्वरूप कहें गए हैं। श्रीमहाप्रभु राधाभाषमें ईहें 'पिना' कह कर सम्बोधन करते थे।

पुण्डरीकाक्ष (सं० को०) पुण्डरीकवदक्षिणी यस्मात्, पञ्च. समानास्तः। १ पुण्डरीय, पुण्डरीक। (पु०) पुण्डरीकवदक्षिणी नन्वे यस्य। २ गिण्डु, नारायण।

‘पुण्डरीकं परं धाम नित्यमक्षरमव्ययः।

सद्भावात् पुण्डरीकाक्षो दत्तुमिच्छामासैनः॥”

(मातृ ५।३।१५)

जो अपवित्र पदार्थ पवित्र किसी भी अवस्थामें पुण्डरीकाक्षका स्मरण करता है, उसको वाङ्मय और अभ्यन्तर-शुद्धि होती है।

“अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।

यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स वाङ्मयशतः शुचिः॥”

(वामनपु० ३३ अ०)

पूजादि प्रत्येक कार्य करनेके पहले यह मन्त्र-पाठ करना होता है। २ जनशर पञ्चविंश, एक प्रकारका लक्ष्मण पक्षी। ४ शम्भके भोड़ें, पाननिवासी एक जाति। (त्रि०) ५ जिसके नेत्र कमलके समान हैं।

पुण्डरीकाक्ष—१ एक पण्डित। इनके पिताका नाम श्रीकण्ठ था। इनोंने कलापदेविका नामक एक भद्रिकाव्यको, टीका, कातनपरिणिष्ट टीका और वल्लभ्यविषय नामक ग्रन्थ रचाये हैं।

२ सुनिविशय। इनका विवाह व्यासकोके साथ हुआ था।

३ पौदजातिकी एक शाखा। पौदा देखो।

पुण्डरीयक, (सं० क्लो०) स्थूलपद्म, पुण्डरीका पौधा।

पुण्डरीय (सं० क्लो०) प्रयोग्यरोक, पुण्डरीका पौधा।

पुण्डरू—विहारवासी गार्ग्योपि ब्राह्मणोंका एक पुराण था।

पुण्डरीय (सं० को०) पुण्डरीति, पुण्ड्र-प्रच., तस्यायः प्रधानः, शक्यत्वादित्यात् साधुः। मण्डरीक, पुण्डरीका पौधा। पुण्डरीक देखो।

पुण्ड्र (सं० पु०) पुण्ड्रान्ते-गुह्यमर्थायार्थं चूर्णक्रियन् इति पुण्ड्रं मर्गं रक्तं, (स्वामिनिष्ठायां)। वण. २।१३। १

इहोमद, एक प्रकारकी ईख, पौधा। २ दैत्यविशेष, एक राक्षसका नाम। ३ पतिमुल्लस, तिमिरहृत्। ४ माधवोत्तमा। ५ चित्र, इक्ष्मि, कीड़ा। ७ पुण्डरीक। चन्दन केसर आदिकी रेखाओंसे शरीर पर बनाया हुआ चिह्न, तिलक, टीका। ८ भूमन्। ९ तिलकहृत्, तिलका पेड़। १० हलह्वय, पाकर, पकड़। ११ श्वेतकमल। १२ अश्वदेहस्थित चिह्नविशेष।

विशेष विवरण पुण्ड्रक शब्दमें देखो।

१३ अनिराजका जित्त पुत्रविशेष, अनिराजकी पुत्र एक दैत्यका नाम जिसके नाम पर देवका नाम पड़ा। अक्षिराजके पद्म, वज्र, कनिष्ठ, पुण्ड्र और सुष्ठ नामक पुत्र थे। ये पुत्रगण जिस जिस स्थानमें बाम करते थे, वही स्थान उसी उनी नाममें प्रसिद्ध हुआ और इसी प्रकार वज्र, वज्र आदि देग हुए हैं।

पुण्ड्र—पुराणादिबर्णित जनपदविशेष और ४९ जनपदमें रहनेवालोंका एक जाति। ऋग्वेदके ऐतरेय-ब्राह्मणमें सबसे पहले इसी जातिका उल्लेख पाया जाता है। ऐतरेय ब्राह्मणमें लिखा है—

“ऋषि विश्वामित्रके सौ पुत्र थे जिनमेंसे पचास मधुच्छन्दाकी चपेला समरमें बड़े और श्रेष्ठ पचास उमरी छोटे थे। ज्येष्ठगण श्रुतःशेपके अभिषेक पर सम्पुष्ट नहीं हुए, इस पर विश्वामित्रने उन्हें शाप दिया, ‘तुम लोगोंके वंशधरगण अन्यत्र रहेंगे।’ ये ही सब अश्व, पुण्ड्र श्वर, मूर्तिव इत्यादि अति नीच जातिके हुए। इसी प्रकार विश्वामित्रके पुत्रोंमें दस्युगण उत्पन्न हुए हैं।

महाभारतमें भी पुण्ड्र जातिकी दस्युमें गिनतीकी गई है, यथा—

“अवना किराता गान्धारावीनाः शबरधरैः।

शकारतुण्डा कंठाय लङ्कायाश्चप्रमदकाः॥

पौंड्रः पुन्दिदा रमठाः दाम्भोजधैव सर्वतः।

अश्वश्वप्रसूताश्च वैद्याः शूद्राश्च मानवाः॥

कथं वर्माधरिष्यन्ति सर्वेविषय वासिनः।

मद्रिषेध कथं स्थाप्याः सर्वे ये दत्तुजीविनः॥”

(शान्तिप० ६५ अ०)

यवन, शिरान, गाम्भार, चीन, श्वर, श्वर, शक, तुषार, कड, पङ्क, अश्व, अश्व, पण्ड्र, पुन्दि, रमठ

भी वायोज, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रसे प्रसृत मानव गण को धर्म का पाचरण करने तथा दस्यु को विधोषा होने में किम नियमसे बाधन करेगा ? दस्यु का धर्म दस्यु भद्रमें रहे।

मनुष्यद्विताके मतसे सभी पोट्टूदि पुत्र समर्थमें क्षत्रिय थे, मोक्ष संस्कार और ब्राह्मणको समावने उपलब्धको प्राप्त हुए हैं।

“अनरेन्दु क्रियालो राक्षसाः क्षत्रियजातवः।

हृषिकेशं गता लोके ब्राह्मणादर्थमेव च ॥

पौंड्रकायोद्धद्विष्टाः दाम्बोजा यवनाः दृष्टाः।

पाराक्षाः बहुबाधिनः किराता दम्बाः खंसाः ॥”

(मनु० १० व०-४४)

महाभारतकारने भी पोट्टूको एक जगह उपलब्ध प्राप्त क्षत्रिय जाति बतलाया है। किन्तु समापर्वमें फिर तीन प्रकारके पुण्ड्रोंका उल्लेख है। यथा—

“गोड्डिकाः कुवङ्गराक्षैव शकाश्चैव विशाङ्गपते।

अंगः बंगश्च पुंड्रश्च शान्त्यया गयास्तथा ॥

सुजातवः भेलिमातः मेयोधः शङ्खापरिगः।

आहर्षुः क्षत्रियाः वित्तं शरंशोऽज्ञातं इक्ष्वे ॥

बंगः क्षत्रियाः मगधराजानां लिप्ताः पुण्ड्रकाः।

दौबालिकाः सागरकाः पयोर्गाः यौवनास्तथा ॥

कर्णप्रहरणार्थैव बहुवस्तनं भारत।

तत्रत्याः द्वापराक्षैः श्रेष्ठ्यन्ते राजशासनान् ॥

हस्तकालः सुवलयस्ततो द्वापराध्यात्म्यम् ॥”

(समापर्व ५२।१६-१८)

पोट्टू, कुक्षर और गक प्रभृति, पद्म, वङ्ग, पुण्ड्र, माणवन्ध और गय नामका जनपदवासो सुजातिमें तथा गोहीमन्ध, योद्ध तथा माणधरो क्षत्रियोंमें शुधुष्ठिरके मिमिक्ष प्रभुर धन इकट्ठा किया था। किन्तु जब वङ्ग, कलिङ्ग, मगध, ताम्रलिप्त, सुपुण्ड्र, दौबालिक, पयोर्ग, मगध और बहुसंख्यक कर्णप्रहरणगण उसे ले कर राजदरबारमें पहुँचे, तब द्वापराक्षोने कहा था, “तुम लोग यदि कुछ काश ठहर जाओ और सुन्दर उपहार हमें भी दो, तो द्वार छोड़ेंगे, चलाया नहीं।

महाभारतके उक्त प्रमाणसे पोट्टू, पुण्ड्र और सुपुण्ड्र इन तीन जातियोंका समेक पाया जाता है। इनमेंसे पोट्टूकगण गक, दरदादिके साथ मिले रहनेके

कारण मनुष्यद्वितावर्णित पोट्टू नामक उपलब्ध प्राप्त क्षत्रिय समझे जाते हैं। किन्तु पपर पुण्ड्रगण छट्ट सुक्षत्रिय कह कर ही वर्णित हुए हैं, इसी कारण द्वारपालने उन्हें भीतर जानेसे नहीं रोका था। पान्तु सागरकादि, गौच जातिके साथ सुपुण्ड्रोंको द्वारपालने भीतर जानेसे रोका था। इस विषयसे सुपुण्ड्र हीन जातिके प्रतीत होते हैं।

कथं पर्वमें लिखा है, कि कुक्ष, पाञ्चाल, गहरा, मत्स्य, जेमिन्, भोगल, काग, पोट्टू, कलिङ्ग, मगध और चेदिदेगीय सभी महात्मा पुण्ड्र पुरातन धर्मसे अच्छी तरह जानकार हैं और तदनुसार कार्य करती हैं।

कथं पर्वमें पोट्टूगण सुजातीय समझे जाते हैं। सम्भवतः इनके साथ उपलब्ध प्राप्त पोट्टूको पद्यवा गौच सुपुण्ड्रोंका सम्बन्ध नहीं है।

किर महाभारतके आदिपर्वमें लिखा है,—“क्षत्रिय राज वलिके एक भो पुत्र न था। एक दिन गङ्गाके किनारे था कर उन्हींने देखा कि एक चम्य क्षत्रिय नदी-स्नानमें बैठते पार रहे हैं। धार्मिक राजा उसी समय उन्हीं जनसे निकाल पपने घर ले गये। उन चम्य-क्षत्रियका नाम दीर्घतमा था। राजाने उन्हें अपने क्षेत्रमें सुयोत्पादन करनेका अनुमति किया। क्षत्रियके सम्मत होने पर राजाने रानी सुदेण्याको उनके पास भेजा। किन्तु क्षत्रियको चम्य और वङ्ग देव कर राजमहिषोने स्वयं न जा कर एक दासोको उनके पास भेज दिया। क्षत्रियने उस शूद्राधोनिसे ११ पुत्र उत्पादन किये। वलिराजको जब राजाके पाचरण मानूस हुआ, तब उन्हींने किर क्षत्रियको प्रसन्न कर सुदेण्याको उनके पास भेज दिया। क्षत्रिय दीर्घतमाने सुदेण्या देवीका पद्मस्पर्श कर कहा, “तुम्हारे गर्भमें आदित्यके समान क्षेत्रको पांच पुत्र उत्पन्न होंगे। वे पांच पुत्र पद्म, वङ्ग, कलिङ्ग, पुण्ड्र और सुगन्ध नामसे प्रसिद्ध होंगे। इस भूमण्डल पर उनके नाम पर एक एक देश विख्यात होगा।” इसी प्रकार महर्षिजति वनिराजका वंश प्रसिद्ध हुआ था।

हरिवंशमें लिखा है, कि उक्त महाराज वनि एक परमयोगी थे। उनके वंशधर पांच पुत्र हुए—पद्म, वङ्ग, सुण्ड्र, पुण्ड्र और कलिङ्ग। ये ही पांच महाराज वतिके

चतुर्विंशत्सन्तानं च; किन्तु वंशधर पुत्रोने कालक्रममे
ब्राह्मणत्व प्राप्त किया।

आदिपर्व और हरिवंशमें यह स्पष्ट आता गया, कि
मनुमोक्त पोण्ड्रू सिवा एक और पोण्ड्रू था। वे वलिक
पुत्र पुण्ड्र के वंशधर थे। महापर्वमें वे दो लोग सृजान्ति
और चतुर्विंश माने गये हैं। वलिकपुत्र पुण्ड्र से पुण्ड्र-देवज्ञा
नाम पड़ा था और यहाँ उनके वंशधर रहते, ये, द्रुप, द्रुप
कारण यह स्थान पोण्ड्रू कहलाया। मत्स्य, मार्कण्डेय
और ब्रह्माण्डपुराणमें यह जनपद प्राच्यदेश वा पूर्व-
भारत के अन्तर्गत माना गया है।

“आग्नेयोलिपाथ पौण्ड्रश्च विदेहास्तामलिपकः।

माला मागधगोतमदाः प्राच्या जना वाः मृत्याः॥”

(महा० १।४८।५८, वामन ११।१५, मार्कण्डेय ५८।११,
मत्स्य १११।४५)

द्वार विष्णु और मार्कण्डेयपुराणमें, दक्षिणात्योके
साथ पुण्ड्र-देशका वर्णन है,—

“पुण्ड्रश्च करैराक्षैश्च गोलाग्रस्ततैश्च॥” (मार्कण्डेय ५७)

“पुण्ड्रः कर्तिसा मगधा दक्षिणात्याश्च, सर्वथाः॥”

(विष्णु ०. १।१।१५)

भविष्यत्पुराणके, ब्रह्माण्डखण्डमें, लिखा है, कि
भारतका पूर्वार्ध पुण्ड्र-देश सात खण्डोंमें विभक्त है,
यथा—गोड, वरेन्द्र, निहति, सुल्लके, निकट, वनसमा-
च्छन्न चारिखण्ड, वराहभूमि, वर्धमान, और विन्ध्यपाद-
स्थित विन्ध्यपारग।

उक्त भागोंके निर्देशसे पता लगता है, कि इसके
उत्तरमें ब्रह्मपुत्र और हिमालयका पूर्वार्ध, पश्चिममें
विहार, रेवा और कुन्देलखण्ड तथा दक्षिणमें गङ्गासागर
है। इसके मध्य सुमि दावादा, राजमाही, दिनाजपुर,
रङ्गपुर, मटियाका कुछ भूभाग, वीरभूम, वर्धमान, मेदिनी-
पुरका कुछ भूभाग, जङ्गलमहल, रामगिर, पञ्चशूट और
पलामूका कुछ भूभाग है।

ब्रह्माण्डखण्डका वर्णन पत्रसे यह १५वीं अथवा १६वीं
शताब्दीकी, रचना है, ऐसा प्रतीत होता है। इस प्रकार
ब्रह्माण्डखण्डका सीमा-निर्देश सावधानीसे ग्रहण करना
उचित है। विभिन्न पौण्ड्र-देशोंके विभिन्न समयकी
सीमा ब्रह्माण्डखण्डकारोंने एक एक करके प्रकाशित

की है। पहले ही लिखा जा चुका है कि महाभारतमें
पौण्ड्रिक, पुण्ड्र और सुपुण्ड्रक इन तीन जनपदोंका
उल्लेख है। इसमें मधर विष्णुपुराणमें दक्षिणात्यके
साथ जिम पुण्ड्रका उल्लेख है, सम्भवतः वही पुण्ड्र-समा-
पर्वमें सुपुण्ड्रक नामसे वर्णित है। फिर वैश्वामित्रके
पुत्र पुण्ड्रगण ऐतरेय ब्राह्मणमें ‘उदन्त्य’ अर्थात् प्रायस्त
नोच जातिभय’ बतलाये गये हैं।

ब्राह्मणपुराणमें लिखा है,—

उदन्त्य दिनवतः शैलानुसरत्य च दक्षिणे।

पुण्ड्रं नाम समाख्यातं नगरं तत्र वै श्वेतम्॥”

(अनुवंश्या ५५।४८)

उत्तरदिक्कर्त्ता हिमालयके दक्षिण पुण्ड्र नामक एक
नगर है। सम्भवतः मनुमोक्त उपसत्व प्राप्त पौण्ड्र जाति
उसी उत्तर दिशाकी होगी। समापर्वमें ये शकादिक
साथ उक्त हुए हैं। पुण्ड्र नामक चतुर्विंश जातिके निवास-
भूत प्राच्यदेशात्कर्त्ता पोण्ड्रू चक्र और वङ्गका मधर
कर्त्ता माना जाता है। अभी ब्रह्माण्डखण्डकी सहायतासे
होन पुण्ड्रोंकी वर्तमान अवस्थिति इस प्रकार स्थिर कर
सकते हैं,—

१। पौण्ड्रू वा पोण्ड्रू—दिनाजपुर और रङ्गपुर-
के उत्तर तथा हिमालय प्रदेशके पूर्वमें।

२। पुण्ड्र वा पोण्ड्रू—पश्चिममें चक्र वा भागलपुर
जिला, पूर्वमें वङ्ग (ठाका और मैसमसिंह जिला),
उत्तरमें दिनाजपुरका कुछ भूभाग, मालदह, राजमाही,
सुमि दावादा, वीरभूम और वर्धमानका कुछ भूभाग।

३। सुपुण्ड्रू—(दक्षिणपुण्ड्र) वर्धमानका दक्षि-
णार्ध, जङ्गलमहल और मेदिनीपुरका पश्चिमांश।

पुण्ड्र वा पोण्ड्रू शब्दके अपभ्रंशसे पुण्ड्रा, पेंड्रा,
पोण्ड्रा या इत्यादि नाम पड़े होंगे। आज भी वर्धमानमें
पुण्ड्रा, २४ परगनेमें पेंड्रा मानभूममें पांडरा, पटनाकी
निकट पांडरक आदि नामावली प्राचीन पुण्ड्र वा पौण्ड्र-
का ही प्रामाण्य देती है। जो कुछ ही, इनमें पुण्ड्र वा
पौण्ड्र नामक जनपद ही विशेष प्रसिद्ध है। एकीकी
राजधानी पुण्ड्र-वर्धन या पौण्ड्र-वर्धन है।

पुण्ड्रवर्धन और पाण्डमा देवी।

यभी पोट्टूकजातिका निदर्शन नहीं मिलता है। पोट्टूकी प्राचीनतम राजधानी पुंड्रवर्धन वा पंडुपाका भगवतीय प्रांत भी देखनेमें आता है, किन्तु पुंड्र नामक सखिय जाति भी काननगर्भमें विनोद हो गई है। २४ परगने और सामदर जिनमें इच्छोजीवी और क्षपिजीवी पूंड़ा नामको एक नीच जाति देखी जाती है। इनमेंसे बहुतसे पदने भी प्राचीन पोट्टू जातिको मन्तान बतलाते हैं। पोट्टू जातिके मध्य भी एक साक पदनेको प्राचीन पोट्टूजातिका बतलाता है। किन्तु ये सब निम्न श्रेणी-भुज जातियां महाभारतोत्तर सुपुंड्रक जाति समझी जाती हैं। पोट्टूक बाहरी देखो।

पुरातन (म० पु०) पुंड्र द्रव प्रतिज्ञातिः (इव प्रतिज्ञातिः प० १।१।८५) इति कन्। १ माधवीनता। २ तिलकहृत्। पुंड्र-प्रायं कन्। १ इच्छुर्भद, एक प्रकारको ईश, पोट्टू। पर्याय—रसाक, इच्छुवाटी और इच्छुगोनि। गुण—मधुर, मीनस, क्वचिकारक, शृद्ध, विषदाहनागक, कृष्ण और तेजोवलावियर्हक। ४ तिलक, टोका। प्राप्तिगोकी कर्ज-पुंड्रक करना चाहिए। तिलक देखो। (कली०) ५ पश्चिमोत्तरस्थित चिह्नविशेष, घोड़ेको शरीरका एक चिह्न जो रीएँको रंगको भेदने होता है। पश्चिमोत्तरमें इस चिह्नता विषय इस प्रकार लिखा है,—शक्ति, शङ्ख, गदा, खड्ग, पद्म, चक्र, भङ्गुश और शरासन सहस्र चिह्न-को पुंड्रक कहते हैं। मत्स्य, शृङ्गार, प्रासाद, माला, विदो, धूप और शीतल सहस्रगाकार जो सब पुंड्रक चिह्न हैं, वे भी शुभफलदा होती हैं। जिन घोड़ोंके मन्तक, ललाट और वदन पर सरल पुंड्रक रहता है, वह घोड़ा चायल प्रशस्त माना जाता है। पर्वत, इन्दु, पताका और स्त्रकट्टाम सहस्र चिह्नवाले घोड़े भी महानसूचक हैं। प्रथम पुंड्रका विषय इस प्रकार लिखा है,—काक, कङ्क, कवच, चङ्क, शृङ्ग तथा मोमामुभङ्ग, चसित, वीत और रत्नवर्ण, तिर्यकामागो, विच्छिन्न, शृङ्खल तथा पागसहस्र, शृङ्गाय और वाम देहस्थित जो पुंड्रक होते हैं, वे शुभदायक नहीं हैं। जिन घोड़ोंकी जिह्वा कर्मप और हृदय होती तथा जिसके भ्रमवर्ण सहस्र पुंड्रीक होते वह पशुशला माना गया है। पुंड्रदेशका राजा।

पुरातन (स० की०) पुंड्रक-टार। १ माधवीनता। २ तिलकहृत्। ३ शृङ्गजाति पुष्पहृत्। पुण्ड्रकेलि (स० पु०) पुंड्र इच्छुविशेष के लिये द्य। इच्छी, छावी। पुण्ड्रनगर (स० की०) पुंड्रदेशकी राजधानी। पुण्ड्रवर्धन—पुंड्रदेशकी प्राचीन राजधानी। पाणिनिके पाठ्यापीके मध्य यह स्थान 'गोहपुरी' नामसे प्रसिद्ध है। प्राचीन ग्रन्थमें पुंड्रवर्धन और पौंड्रवर्धन दोनों ही नाम देखे जाते हैं।

अब प्रश्न उठता है, कि गौरवर्धनसे गोहकी राजधानी पुंड्रवर्धन कहाँ है? हम पौंड्रवर्धन के वर्तमान अवस्थिति-निर्णयके सम्यक्में धर्मतत्त्वविदोंका एक मत नहीं है। कोई कहते हैं, कि राजपुत्रके मध्य पौंड्रवर्धन अवस्थित था। फिर किसीका कहना है, कि बर्हन्कुटी नामक स्थान ही प्राचीन पौंड्रवर्धनका बहुत कुछ निर्देश करता है। कोई यह कि पावना शहरको ही प्राचीन पौंड्रवर्धन बतलाते हैं। किसीका मत है, कि करतोवा नदीके किनारे बगुहावे ७ मील उत्तर और बर्हन्कुटीसे १२ मील दक्षिण महाद्वारामगढ़ नामक जो एक पति प्राचीन स्थान है, वही पुराने पौंड्रवर्धन नामसे प्रसिद्ध था। किन्तु हम लोगोंके स्थानसे हममेंसे एक भी ठीक नहीं है।

कलहणको राजतरङ्गिणी पढ़तेसे जाना जाता है, कि पवीं गताम्नेमें गोह नामक भूभागको राजधानीका नाम था पौंड्रवर्धन। कथामरिसुमांगर पदनेमें मान्य होता है, कि पौंड्रनगरी गङ्गासे घोड़ी की दूर पर अवस्थित थी। चोनपरिवाजक य एमचवर्धने इस नगरमें था कर चनेक नौकावाहन देखे थे। उन्होंने गङ्गा पार कर पौंड्रवर्धन राज्यमें प्रवेश किया था। राजतरङ्गिणीमें लिखा है, कि जयादेव गङ्गाके किनारे तक मेनाचीकी विदा कर लक्ष्मेश्वरी गोहकी राजधानी पौंड्रवर्धन नगर पहुँचे। ऊपरमें जो सब विभिन्न मत उद्धृत किये हैं, पावना व्यतीत और कोई भी स्थान गङ्गाके निकटवर्ती नहीं है। फिर पावनाके पुरातत्त्व और भूतत्त्वकी शालीचन करनेमें यह पति प्राचीन स्थानके को सा प्रतीत नहीं होता।

प्रसिद्ध मानदण्ड नगरसे दो कोस उत्तर-पूर्व और गोडनगरसे ८ कोस उत्तर फिरोजाबाद नामका एक पति प्राचीन स्थान है। स्थानीय लोग इस स्थानको पो'कोबा या पांडुपा कहा करते हैं। इस स्थानसे एक कोस उत्तरपश्चिम-पूर मानदण्डसे दई कीमे उत्तरमें वरदीपारो पु'कोबाका भग्नावशेष विद्यमान है। पो'कोबा पश्चिम पांडुपा शब्द में पु'वर्द्धन पश्चिम पु'डु-वर्द्धन शब्दका ही प्रपञ्चन समझा जाता है। स्थानीय लोगों का कहना है, कि यहाँ पनेक हिन्दू राजगण पाणि-पत्य कर गये हैं। प्राचीन हिन्दू कोर्त्तिका वंशाव-शेष, बहुते भास्कर पोर प्रिथ्वसमीयुक्त भग्नमन्दिरादि-का निदर्शन पोर बहुसंख्यक जूयतहागादिका प्राचीन गर्भ/यहाँके हिन्दूराजत्वकी प्रतीति कोर्त्तिका विमोच-रूपसे घोषणा करती है। यह ध्वंसावशेष पु'कोबाके पारशीपारोसे दक्षिण पश्चिम गङ्गातट पर्यन्त प्रायः १२ कोस तक फैला हुआ है।

चीनपरिव्राजक यूचनचुवङ्ग जस पोंडुवर्द्धन राज-धामकी प्राये, उस समय इसका प्रायतन प्रायः २३ कोस विस्तृत था। उस समय यहाँ तक्षान-वाटकादि समा-स्तुदित तथा बहुसंख्यक लोगों का वास था। उन्हींमें यहाँ होनयान पोर महायान-मतावलम्बी बोद्धों का प्रायः २० गङ्गाराम, सैकड़ों हिन्दू देवालय, पनेकी हिन्दू शायंनिका का समानेय पोर बहुसंख्यक दिगम्बर निर्वा-न्ही का वास देखा था। चीन-परिव्राजक ने पोंडुवर्द्धनकी दृष्टिष्ट समृद्धि तो देखी थी, पर उस समय पोंडुवर्द्धन स्वार्थीन राज्य नहीं समझा जाता था और प्रायतनमें भी छोटा ही था। काश्मीरराज जय दिव्यने भी यहाँ पा कर प्रभुर विभूति संदर्शन की थी। उस समय भी गौड़ाधिप जयन्त एक सामान्य राजा समझे जाते थे। किन्तु जब वे पञ्चगोत्रके पञ्चोत्तर हुए, उस समय उनके राज्यकी सन्धि परममोमानक पड़ चु गई थी, इसमें सन्देह नहीं। वर्त्तमान पु'कोबा नामक स्थान, जिते इस कीम प्राचीन पोण्डुवर्द्धन नगर कहते हैं गङ्गास्त्रोतसे प्रायः ७८ कोस दूर पट गया है। किन्तु यहाँकी नदी-की प्रवृत्ति जै वी पाल काल है, वेनी पहले न थी। वर्त्तमान मानदा गंहरा परपारमें की कालिन्दी नदी

बहती है, एक समय भागीरथी इसी पक्षसे हो कर बहती थी। मानदण्डसे दो कोस पश्चिम भागीरथीपुर नामक एक गण्डयाम है। वहाँसे थोड़ा दूर पर भागीरथी नामक एक छोटी स्त्रोतस्त्रोत दक्षिणकी ओर बहती हुई बूढ़ी गङ्गामें मिल गई है। वहाँका विश्वास है, कि पहले इसी भागीरथी हो कर गङ्गाका मूलस्त्रोत बहता था और मानदण्डसे पाण्डुमें प्रवाहित महानन्दासे थोड़ी ही दूर पर कालिन्दीके साथ मिल गया था। सुतां बहुजगत् कोष विख्यात पोंडुवर्द्धन नगर गङ्गाके समीप तथा महानन्दाके तटसे वर्त्तमान वरदीपारो पर्यन्त सुवि-स्तृत था, यह असम्भव नहीं। पु'कोबाके वरदीपारोसे एक कोस उत्तर-पूर्वमें होमदीधी वा होमदीधी नामक एक प्राचीन स्थान है। किसे किसोका कहना है, कि यहाँ पाटिशूरसे लाये हुए पांच ब्राह्मण होम करते थे।

हिन्दू, बौद्ध और जैन इन तीनों सम्प्रदायके निकट पु'डुवर्द्धन एक समय पवित्र पुण्यस्थान समझा जाता था। स्कन्दपुराणीय प्रभासपर्वणमें लिखा है, कि यहाँ 'मन्दार' नामक शिवमूर्ति विद्यमान है। देवीभागवत-के मतानुसार सतीके खाँडित देहशेष जो १०८ पीठ उत्पन्न हुए उनमेंसे पु'डुवर्द्धन एक है। यहाँ पाटसा नामक देवीमूर्ति अवस्थान करती है। (वे.भा. ७।३० अ०) इस स्कन्दपुराणीय देवाण्डमें पु'डुवर्द्धनकी यज्ञकारी चक्रवर्त्ती राजाशोक प्राचीन निवासस्थान मतसाया है। ७वीं शताब्दीमें जिस समय चीनपरि-व्राजक यूचनचुवङ्ग यहाँ प्राये, उस समय पूर्वभारतके पनेक विख्यात बोद्धाचार्य यहाँ रहते थे। पु'डुवर्द्धन नगरसे प्रायः दईकोस पश्चिम गगनसर्गि चूड़ाविस्तृत वाग्निभा-गङ्गागमकी निकट उन्होंने भयोकराजनिमित्त स्तूप और सुहृत् बोधिसत्वमूर्ति समन्वित एक बौद्ध विहार देखा था। इस चीनपरिव्राजकने लिखा है, कि यहाँ भयोकराजने स्तूप बनवाया है, वहाँ पहले तथगत (बुद्ध)-ने तीन मांस तक धर्मोपदेश दिया था। चां-तु-मीस्थमें यहाँ पारो और उज्ज्वल पातीके दृष्टिगोचर होता है। पहले लिखा जा चुका है, कि चीनपरिव्राजकने यहाँ सर्वोपेक्षा बहुसंख्यक निर्वाण (जैन) देखे थे। यथायथमें जैनोंके कर्त्तव्य नामक धर्मपत्रमें 'पु'डु-

‘समी पो’द्विजातिका निदर्शन नहीं मिलता है।
 पो’द्वि की प्राचीनतम राजधानी पु’द्वहन वा प’दुषाका
 भग्नावशेष आज भी देखनेमें आता है, किन्तु पु’द्व नामक
 पुराण ज्ञाति भी काननगर्भमें विनोद हो गई है। २४
 पुराणों में मानदृष्टि जिनमें द्रुपदीयों और क्षत्रियों की
 पूजा नामकी एक नौव आति देखी जाती है। इनमेंसे
 अर्जुनरे पदने की प्राचीन पो’द्व ज्ञातिको मरुतन इतलाने
 है। पो’द्व ज्ञातिके मध्य भी एक थाक ‘पदनेकी प्राचीन
 पो’द्वज्ञातिका बतलाता है। किन्तु ये सब निम्न श्रेणी-
 भूत ज्ञातियां महाभारतमें सुपु’द्व ज्ञाति समझी जाती
 है। पो’द्वक वारुदेव देखो।

पुराण (मं० पु०) पु’द्व द्रव प्रतिकृतिः (१५ प्रतिहृती।
 पा० १।१।८९) इति कन्। १ माधवीलता। २ तिलकहृत्।
 पु’द्वस्त्रायं कन्। १ इक्षुभेद, एक प्रकारकी ईंध, पो’द्व।
 पर्याय—रसाक, द्रुपदीयों और द्रुपदीयों। गुण—मधुर,
 मीठा, कृषिकारक, मृदु, विषदाहनामक, हृद्य और
 तेजोवर्धक। ४ तिलक, टोका। प्राण्यकी कर्ष-
 पु’द्वक करना चाहिए। तिलक देखो। (पत्नी०) ५
 पद्मगरोरस्थित विह्वलिये, घोड़े की शरीरका एक
 चिह्न जो रोएँ के रंगकी भेदने होता है। पद्मवर्धकमें
 इस चिह्न का विषय इस प्रकार लिखा है,—शक्ति, गङ्गा,
 गदा, खड्ग, पद्म, चक्र, भद्रगुण और शरासन सह्य चिह्न-
 की पु’द्वक कहते हैं। मत्स्य, अर्जुन, पाषाण, माना,
 विदो, धूप और श्रीरत्न सहशकार जो सब पु’द्वक चिह्न
 हैं, वे भी शुभफलदा होते हैं। जिस घोड़े की मस्तक,
 कलाट और पदन पर सरल पु’द्वक रहता है, वह घोड़ा
 ‘अयन्त प्रशस्त माना जाता है। पर्वत, इन्द्र, पताका
 और स्रक्ताम सह्य विह्वलिये घोड़े भी मङ्गलमूचक
 हैं। अथवा पु’द्वक विषय इस प्रकार लिखा है,—
 काक, कर्क, कर्क, कर्क, कर्क, कर्क तथा गोमायुधन,
 पक्षि, पीत और रक्तवर्ण, तिर्यकागामी, विह्वल,
 अर्जुन तथा पागसह्य, भूलाय और वाम देखित जो
 पु’द्वक होते हैं, वे शुभदायक नहीं हैं। जिस घोड़े की
 जिह्वा कम्पन और दृष्टि होती तथा जिसके भस्मवर्ण
 सह्य पु’द्वक होते वह ‘अप्रशस्त माना गया है।
 पु’द्वक राजा।

पुराण (मं० श्री०) पु’द्वक-टार। १ माधवीलता।
 २ तिलकहृत्। १ द्रुपदज्ञाति पुष्पहृत्।
 पु’द्वक-टार (मं० पु०) पु’द्व द्रुपदविशेष के लिये द्रव्य।
 द्रुपदी, द्रुपदी।

पुराण-पुराण—पु’द्वक-टार की प्राचीन राजधानी। पाणिनि
 पट्टाध्यायीके मध्य यक्ष स्थान ‘गोद्वपु’ नामसे प्रसिद्ध है।
 प्राचीन यक्षमें पु’द्वक-टार और पो’द्वक-टार दोनों की
 नाम देखे जाते हैं।

यक्ष प्रसिद्धता है, कि गो’द्वक-टार गो’द्वकी राज-
 धानी पु’द्वक-टार कहा है। इस पो’द्वक-टार के वर्तमान
 अवस्थिति-निर्णयके मध्यस्थमें ऐतत्त्वविदों का एक मत
 नहीं है। कोई कहते हैं, कि रङ्गपुरके मध्य पो’द्व-
 क-टार अवस्थित था। फिर किसीका कहना है, कि
 वह नकुटी नामक स्थान की प्राचीन पो’द्वक-टार
 बहुत कुछ निर्देश करता है। कोई यह कि पावना
 शहरकी ही प्राचीन पो’द्वक-टार बतलाते हैं। किसीका
 मत है, कि करतोषा नदीके किनारे वसुधामे ७ मील
 उत्तर और वह नकुटीसे १२ मील दक्षिण महास्थानगढ़
 नामकी एक पति प्राचीन स्थान है, वही पदने
 पो’द्वक-टार नामसे प्रसिद्ध था। किन्तु हम लोगों के
 स्थानसे हमसे एक भी ठीक नहीं है।

कलहणकी राजतरङ्गिणी पदसे जाना जाता है,
 कि पदने शताब्दीमें गो’द्व नामक भूभागकी राजधानी का
 नाम था पो’द्वक-टार। कथारितुसागर पदनेसे मान्य
 होता है, कि पो’द्वक-टार गङ्गासे थोड़ी ही दूर पर
 अवस्थित थी। चीनपरिव्राजक यचनचङ्गने इस
 नगरमें आकर पदने नामकी गो’द्वक-टार देखी थी।
 राजतरङ्गिणीमें लिखा है, कि जयप्रिय गङ्गाके किनारे
 तक मेनापो की विदा कर कपिलेश्वर गो’द्वकी राजधानी
 पो’द्वक-टार नगर पदने। ऊपरमें जो सब विभिन्न मत
 उद्धृत किये हैं, पावना स्थान और कोई भी स्थान
 गङ्गाके निकटवर्ती नहीं है। फिर पावनाके पुरा-
 तत्व और भूतत्वकी जानकारी करनेसे यह पति प्राचीन
 स्थानके जो भी प्रतीत नहीं होता।

पवित्र मानदह नगरसे दो कोस उत्तर-पूर्व और गोडनगरसे ८ कोस उत्तर किराजाबाद नामका एक प्रति प्राचीन स्थान है। स्थानीय लोग इस स्थानको पो'होवा या पांडुपा कहा करते हैं। इस स्थानसे एक कोस उत्तरपश्चिम और मानदहसे ढाई कोस उत्तरमें बरदोपारी पु'डु'वाका भग्नावशेष विद्यमान है। पो'होवा पद्य या पांडुपा शब्द पो'डु'वर्धन पद्य या पु'डु'वर्धन शब्दका ही अपभ्रंश समझा जाता है। स्थानीय लोगों का कहना है, कि यहां पनेक हिन्दू राजागण प्राचीन पत्न कर गये हैं। प्राचीन हिन्दू कौत्सिका वंशवर्धन, बहुतां भास्कर और शिवभक्तियुक्त भनमन्द्यादिका निदर्शन और बहुपत्न्यक कृतपङ्गादिका प्राचीन नाम यहां के हिन्दू राजत्वको प्रतीति कौत्सिकी विशेष रूपसे घोषणा करता है। यह पत्नसावयव पु'डु'वाका बरदोपारीसे दक्षिण पश्चिम गङ्गातट पर्यन्त प्रायः १२ कोस तक फैला हुआ है।

चीनपरिभाषक यूएनसुवङ्ग यहाँ पो'डु'वर्धन राजधानी बताये, उस समय इका प्रायतन प्रायः २॥ कोस विस्तृत था। उस समय यहाँ तङ्गाग-वाटकादि समाच्छादित तथा बहुपत्न्यक लोगों का वास था। उन्हींमें यहाँ होमयान और महायान-सत्तावलम्बी बौद्धों के प्रायः २० मठाराम, चैत्रको हिन्दू देवालय, पनेको हिन्दू हार्थनिका समावेग और बहुपत्न्यक दिगम्बर निर्भन्ता का वास देखा गया। चीन-परिभाषकने पो'डु'वर्धनको यथैव सन्धिहीन देखा, पर उस समय पो'डु'वर्धन प्राचीन राज्य नहीं समझा जाता था और प्रायतनमें भी छोटा ही था। काश्मीरराज जय दित्यने भी यहाँ या कर प्रचुर विभूति संदर्भन की थी। उस समय भी गोहाधिय जयन्त एक सामान्य राजा समझे जाते थे। किन्तु जब कि पक्षगोडके पक्षोत्तर हुए, उस समय उनसे राज्यकी सन्धि परमेशोमा तक पहुँच गई, जो इसमें सन्देह नहीं। वर्तमान पु'डु'वा नामक स्थान, जिसे हम कोम प्राचीन पो'डु'वर्धन नगर कहते हैं गङ्गास्त्रोतसे प्रायः ७८ कोस दूर है। किन्तु यहाँकी नदीकी अवस्था जेरी पत्न कल है, वही पहली नदी थी। वर्तमान मानदा गहरसे परपारमें जो कालिन्दी नदी

बहती है, एक समय भागीरथी इसी पक्ष से ही कर बहती थी। मानदहसे दो कोस पश्चिम भागीरथीपुर नामक एक गण्डधाम है। वहाँसे थोड़ा दूर पर भागीरथी नामक एक छोटी स्त्रोतस्त्रोत दक्षिणकी ओर बहती हुई बूढ़ी गङ्गामें मिल गई है। बूढ़ीका विश्वास है, कि पहले इसी भागीरथी ही कर गङ्गाका मूलस्त्रोत बहता था और मानदह पर्यन्त प्रवाहित महानन्दामें थोड़ी ही दूर पर कालिन्दीके साथ मिल गया था। सुतां बहुजगत् कोण विख्यात पो'डु'वर्धन नगर गङ्गाके समीप तथा महानन्दानदीके तटसे वर्तमान बरदोपारी पर्यन्त सुविस्तृत था, यह पक्षश्रव नहीं। पु'डु'वाके बरदोपारीसे एक कोस उत्तर-पूर्वमें होमदोषी या होमदीषी नामक एक प्राचीन स्थान है। किसी किसीका कहना है, कि यहाँ चादिगुरसे लाये हुए पंच ब्राह्मण होम करते थे।

हिन्दू, बौद्ध और जैन इन तीनों सम्प्रदायके निकट पु'डु'वर्धन एक समय पवित्र पुण्यस्थान समझा जाता था। स्कन्दपुराणमें प्रभासपर्वमें लिखा है, कि यहाँ 'मन्दार' नामक शिवमूर्ति विद्यमान है। देवीभागवत के मतानुसार सतीके खंडित देशमेंसे जो १०८ पीठ उत्पन्न हुए उनमेंसे पु'डु'वर्धन एक है। यहाँ पाटला नामक देवीमूर्ति अवस्थान करती है। (वे० भा० ५।१० अ०) इधर स्कन्दपुराणीय रेवाखंडमें पु'डु'वर्धनकी यज्ञकारी चक्रवर्ती राजाओंका प्राचीन निवासस्थान बतसाया है। ७वीं शताब्दीमें जिस समय चीनपरिभाषक यूएनसुवङ्ग यहाँ आये, उस समय पूर्वभारतके पनेक विख्यात बौद्धाचार्य यहाँ रहते थे। पु'डु'वर्धन नगरसे प्रायः ढाईकोस पश्चिम गगनसर्गो ब्रह्मविहङ्गित वाग्मि-भङ्गारामके निकट उर्ध्वमें पयोकराजनिर्मित स्तूप और सुहृत् बौद्धिस्त्वमूर्ति समन्वित एक बौद्ध विहार देखा था। इस चीनपरिभाषकने लिखा है, कि जहाँ पयोकराजने स्तूप बनवाया है, यहाँ पहले तथागत (बुद्ध) ने तीन मास तक धर्मोपदेश दिया था। चातुर्मास्यमें यहाँ चारों ओर उज्ज्वल प्रामोद दृष्टिगोचर होता है। पहले लिखा जा चुका है, कि चीनपरिभाषकने यहाँ सर्वोपचा बहुपत्न्यक निर्भन्त (जैन) देखे थे। यथायथं जैनोके कल्पवृक्ष नामक धर्मधर्ममें पु'डु'

पभी पो'इज्जातिका निदयंग नदीं मिपता है। पो'इकी प्राचीनतम राजधानी पु'इवर्धन वा प'हुपाका मनावरीय राजा भी देवनेमें पाता है, किन्तु पु'इ नामक क्षत्रिय जाति भी काननगर्भमें विनोद हो गई है। २४ पागने पोर मानदर जिसमें इन्दुमेरी पोर लपिनीवी पू'इ नामको एक नीच जाति देखी जाती है। इनमेंसे बहुतरे पपने भी प्राचीन पो'इ जातिको पक्कान सतनाते हैं। शोड जातिको मध्य भी एक याक-पपनेको प्राचीन पो'इजातिका बतनाता है। किन्तु ये सब निम्न श्रेणी-भुक्त जातियाँ महाभारतमें सुपु'इक जाति समझी जाती हैं। पो'इक वाइदेन देखो।

पुराण (मं० पु०) पु'इ इव प्रतिष्ठाति: (इव प्रतिष्ठो। वा ३।१८९) इति कन्। १ माधवीसता। २ तिलकहृत्। पु'इ-खायं कन्। ३ इन्दुभेद, एक प्रकारको ईख, पो'इ। पर्याय—रसाह, इन्दुवाटी पोर इन्दुगोमि। गुण—मधुर, शीतल, रसिकारक, शूद्र, विषदाहनायक, हृष्य पोर तेजोवन्धिवर्धक। ४ तिलक, टोका। प्राप्तिगोको कार्य-पु'इक करना चाहिए। तिलक देखो। (फली०) ५ चमरगरीरस्थित विहृद्विषय, घोड़ेको शरीरका एक चिह्न जो गेएको रंगको भेदमें होता है। चमरवेद्यकमें इस चिह्न का विषय इस प्रकार लिखा है,—शक्ति, गड, गदा, खड्ग, पद्म, चक्र, पङ्कज पोर मरासन सद्य चिह्न-को पु'इक कहते हैं। मत्स्य, भृङ्गार, प्रासाद, माना, विदो, धूप पोर शीतल सहसाकार जो सब पु'इक चिह्न हैं, वे भी समझन्द होते हैं। जिस घोड़ेके मस्तक, ललाट पोर बदन पर सरल पु'इक रहता है, वह घोड़ा अत्यन्त प्रशस्त माना जाता है। पर्वत, इन्दु, पताका पोर खरुटास सद्य विहवामे घोड़े भी मङ्गलमूलक हैं। चमर पु'इकका विषय इस प्रकार लिखा है,—काय, शूद्र, कवच, चरि, शूद्र तथा गोमायुभट्ट, पशित, पीत पोर रत्नवर्ण, तिर्यकागामी, विच्छिन्न, शूद्र तथा पाणसद्य, शूद्राश्व पोर शाम देहस्थित जो पु'इक होते हैं, वे समदायक नहीं हैं। जिस घोड़ेको जिह्वा कस्मय पोर रुद्ध होती तथा जिसके भस्मवर्ण सद्य पु'इक होते वह चमरमा माना गया है। पु'इदेयका राजा।

पुराण (सं० श्री०) पु'इक-टार। १ माधवीसता। २ तिलकहृत्। ३ चमरजाति पुष्पहृत्। पु'इकेलि (सं० पु०) पु'इ इन्दुविषये केनियं स्य। हस्ती, हाथी।

पुराणनगर (मं० श्री०) पु'इदेयकी राजधानी।

पुराणवर्धन—पु'इदेयकी प्राचीन राजधानी। पाणिनि के षटाध्यायीके मध्य यह स्थान 'गोहपुर' नामसे प्रसिद्ध है। प्राचीन ग्रन्थमें पु'इवर्धन पोर पौडवर्धन दोनों ही नाम देखे जाते हैं।

यह ग्रन्थ ठहता है, कि गोदेवर्धनमें गोहकी राजधानी पु'इवर्धन कहते हैं। संत पौडवर्धनके वर्तमान पवस्थिति-निर्णयके सम्बन्धमें यज्ञतत्त्वविदों का एक मत नहीं है। कोई कहते हैं, कि रत्नपुरके मध्य पौडवर्धन पवस्थित था। फिर किसीका कहना है, कि वर्धनकुटी नामक स्थान ही प्राचीन पौडवर्धनका बहुत कुछ निर्देश करता है। कोई यह कि पावन शहरको ही प्राचीन पौडवर्धन समझते हैं। किसीका मत है, कि करतोपा नदीके किनारे बगुहासे ० मील उत्तर पोर वर्धनकुटीसे १२ मील दक्षिण महास्थानगढ़ नामक जो एक प्रति प्राचीन स्थान है, वही पुराने पौडवर्धन नामसे प्रसिद्ध था। किन्तु इस लोगोके स्थानसे हममेंसे एक भी ठीक नहीं है।

कसकणको राजतरङ्गिणी पढ़सेवे ज्ञात जाता है, कि पर्वी गतान्देमें गोह नामक भूभागकी राजधानीका नाम था पौडवर्धन। कथानरित्तसागर पढ़नेमें मान्य होता है, कि पौडनगरी गङ्गासे घोड़ी ही दूर पर अवस्थित थी। चीनपरिव्राजक यचनचवर्धन इस नगरमें था कर पदेक नौकाशाला देखे थे। उन्होंने गङ्गा पार कर पौडवर्धन राज्यमें प्रवेश किया था। राजतरङ्गिणीमें लिखा है, कि जया देव गङ्गाके किनारे तक मेलापोको विदा कर हृषिकेशमें गोहकी राजधानी पौडवर्धन नगर पढ़से। जपरमें जो सब विभिन्न मत उद्धृत किये हैं, पावना ध्येय पोर कोई भी स्थान गङ्गाके निकटवर्ती नहीं है। फिर पावनाके पुरातत्त्व पोर भूतत्त्वको ध्यानसे करनेसे यह प्रति प्राचीन स्थानके जो प्रति नहीं होती।

प्रसिद्ध मानदण्ड नगरसे दो कोस उत्तर-पूर्व और गोहनगरसे ८ कोस उत्तर किराणाबाद नामका एक प्रति प्राचीन स्थान है। स्थानीय लोग इस स्थानको पोड़ोवा या पोड़ु पा कहा करते हैं। इस स्थानसे एक कोस उत्तर-पश्चिम और मानदण्डसे ढाई कोस उत्तरसे वरदोपारी पुड़ोवाका भग्नावशेष विद्यमान है। पोड़ोवा पश्चिम पोड़ु पा शब्द पोड़ु वृद्धन पंथवा पुंड्र वृद्धन मण्डला से उपपन्न समझा जाता है। स्थानीय लोगों का कहना है, कि यहां पनेक हिन्दू राजगण प्राधिपत्य कर गये हैं। प्राचीन हिन्दू कौत्सिका वंशवांश, बहुतों भास्कर और शिवसमोयुक्त भग्नमन्दिरादिका निद्रमन और बहुसंख्यक कुपतङ्गादिका प्राचीन गर्भ यहां किन्दूराजत्वको प्रतीत कौत्सिका विमोपकृषि घोषणा करता है। यह वंशवांशमें पुड़ोवाके वरदोपारीसे दक्षिण पश्चिम गङ्गातट पर्यन्त प्रायः १२ कोस तक फैला हुआ है।

चीनपरिव्राजक यूचनचुवङ्ग जब पोडुवृद्धन राजधानी पाये, उस समय ६११ का प्रत्येक प्रायः २१ कोस विस्तृत था। उस समय यहां तङ्गा-वाटकादि समाप्त दित तथा बहुसंख्यक लोगों का वास था। उन्होंने यहां होनयान और महायान सत्तावलम्बी बौद्धों के प्रायः २० गङ्गाराम, सैकड़ी हिन्दू देवालय, पनेको हिन्दू शायंनिका का समानेय और बहुसंख्यक दिगम्बर निर्माणा का वास देखा था। चीन-परिव्राजकने पोडुवृद्धनको यथेष्ट सम्बद्धि तो देखी थी, पर उस समय पोडुवृद्धन प्राचीन राज्य नहीं समझा जाता था और प्रायतनमें भी छोटा ही था। काश्मीरराज जय दियने भी यहां था कर मन्दिर विमूर्ति संदर्शन की थी। उस समय भी गोष्ठाधिप कथम्बर एक सामान्य राजा समझे जाते थे। किन्तु जब से पञ्चगोत्रके प्रयोगरूप, उस समय उनके राज्यकी सम्बद्धि चरमसोमा तक पहुँच गई थी, इसमें सन्देह नहीं। वर्तमान पुड़ोवा नामक स्थान, जिसे हम लोग प्राचीन पोडुवृद्धन नगर कहते हैं गङ्गास्तीतसे प्रायः ७८ कोस दूर है। किन्तु यहांकी नदीकी व्यवस्था जैसी पाल्म कल है, वही पहले न थी। वर्तमान मानदा नहरके उपपारमें जो कालिन्दी नदी

बहती है, एक समय भागीरथी इसे पश्चिम की कर बहती थी। मानदण्डसे दो कोस पश्चिम भागीरथीपुर नामक एक गण्डपाम है। वहांसे थोड़ा दूर पर भागीरथी नामक एक छोटी स्तोतस्वी दक्षिणकी ओर बहती हुई नदी गङ्गामें मिल गई है। वर्तमान विश्वास है, कि पहले इसी भागीरथी की कर गङ्गाका मूलस्त्रोत बहता था और मानदण्डसे पार्श्वमें प्रवाहित महानन्दासे थोड़ी ही दूर पर कालिन्दीके साथ मिल गया था। सुतार्ग बहुजनार्ग कोण विश्वात पोडुवृद्धन नगर गङ्गाके समीप तथा महानन्दासे तटसे वर्तमान वरदोपारी पर्यन्त सुविस्तृत था, यह पक्षभव नहीं। पुड़ोवाके वरदोपारीसे एक कोस उत्तर-पूर्वमें होमदोषी या होमदोषी नामक एक प्राचीन स्थान है। किसी किसीका कहना है, कि यहां पाटिगूरसे लाये हुए पाँच राजाण्य होम करते थे।

हिन्दू, बौद्ध और जैन तीन संप्रदायके निकट पुडुवृद्धन एक समय पवित्र पुण्यस्थान समझा जाता था। स्कन्दपुराणमें प्रमाणोंमें लिखा है, कि यहां 'मन्दार' नामक शिवमूर्ति विद्यमान है। देवीभागवतके मतानुसार सतीके खांडित देशांसे जो १०८ पीठ उत्पन्न हुए उनमेंसे पुडुवृद्धन एक है। यहां पाटला नामक देवीमूर्ति व्यवस्थान करती है। (वे.मा. ५।२. ५०) इधर स्कन्दपुराणीय देवाण्डमें पुडुवृद्धनको यज्ञकारी चक्रवर्ती राजाओंका प्राचीन निवासस्थान बतलाया है। ७वीं शताब्दीमें जिस समय चीनपरिव्राजक यूचनचुवङ्ग यहां पाये, उस समय पूर्व भारतके पनेक विख्यात बौद्धाचार्य यहां रहते थे। पुडुवृद्धन नगरसे प्रायः ढाई कोस पश्चिम गगनस्यारी वृद्धादिद्विज वाग्निभा-मङ्गलरामके निकट उन्होंने पयोकराजनिर्मित स्तूप और सुहृत् बोधिसत्वमूर्ति भग्नचित्त एक बोध विहार देखा था। इस चीनपरिव्राजकने लिखा है, कि जहां पयोकराजने स्तूप बनवाया है, वहां पहले तयागत (बुद्ध) ने तीन मास तक धर्मोपदेश दिया था। चातुर्मासमें वहां चारों ओर उज्ज्वल पामोक्त दृष्टिगोचर होता है। पहले लिखा जा चुका है, कि चीनपरिव्राजकने यहां सर्वापेक्षा बहुसंख्यक निर्माण (जैन) देखे थे। यथायथं जैनोके कल्पवृक्ष नामक धर्मपथमें पुडु-

पभी पौंड्रकजाति का निदर्शन नहीं मिलता है। पौंड्रकी प्राचीनतम राजधानी पुण्ड्रवर्धन वा पण्डुपाका भगवद्गीता का जन्म भू देवने में पाता है, किन्तु पुण्ड्र नामक पत्थि जाति भी काननभूमि विनोद ही गई है। २४ परगने और मानदह जिले में रघुबीबी और लपिजीबी पुंड्रा नामको एक नीच जाति देखी जाती है। इनमें से बहुतरे पपने ने प्राचीन पौंड्र जातिको मरान वनजाते हैं। पौंड्र जातिके मध्य भी एक टाक पपनेको प्राचीन पौंड्रजातिका वतनाता है। किन्तु ये सब निम्न श्रेणी भुक्त जातियां महाभारतको सुपुंड्रक जाति समझी जाती हैं। पौंड्रक बावरी देखो।

पुण्ड्रक (मं० पु०) पुण्ड्र इव प्रतिज्ञातिः (इव प्रतिज्ञाती। पा ४।१।८९) इति कन्। १ माधवोत्तमा। २ तिलकवच। पुण्ड्र-कार्य कन्। ३ इत्यभेद, एक प्रकारको इव, पौंड्रा। पर्याय—रसाक, इत्युवाटी और इत्युवाटी। गुण—मधुर, मीनस, रुचिकारक, मृदु, पित्तदाहनागक, हृष्य और तेजोवन्निबद्धक। ४ तिलक, टोका। प्राप्तिगको लब्ध-पुण्ड्रक करना चाहिए। तिलक देखो। (पत्नी०) ५ पञ्चगव्योत्थित विह्विग्रेष, घोड़े के शरीरका एक चिह्न जो रोएँ के रंगके भेदसे होता है। पञ्चव्यक्तमें इन चिह्नों का विषय इस प्रकार लिखा है,—शक्ति, गङ्गा, गदा, खड्ग, पद्म, चक्र, पद्मस्य और मरायन सहस्र चिह्न-को पुण्ड्रक कहते हैं। मत्स्य, भृङ्गार, प्रापाद, माला, घेदो, धूप और शीतल सहस्रकार जो सब पुण्ड्रक चिह्न हैं, ये भी समझनद होते हैं। जिस घोड़े के मस्तक, मलाट और वदन पर सरल पुण्ड्रक रहता है, वह घोड़ा चायन्त प्रसन्न माना जाता है। पर्वत, इन्दु, पताका और स्त्रक दाम सहस्र विह्वाने घोड़े भी मन्त्रसूचक हैं। पशुम पुण्ड्रका विषय इस प्रकार लिखा है,—काक, बह्म, कवच, भद्रि, यष्ट तथा मोमापुन्यग, पक्षित, वीत और रत्नवर्ण, तिष्ठकागमो, विच्छिन्न, शृङ्खल तथा पागसहस्र, श्लाघा और वाम दिक्षित जो पुण्ड्रक होते हैं, ये समदायक नहीं हैं। जिस घोड़े की जिह्वा कर्मप और हृदय होती तथा जिसके मध्यवर्ण सहस्र पुण्ड्रक होते वह पञ्चमसा माना गया है। पुण्ड्रेयका राजा।

पुण्ड्रका (मं० स्त्री०) पुण्ड्रक-टाका। १ माधवोत्तमा। २ तिलकवच। ३ शक्तजाति पुण्ड्रक। पुण्ड्रकैलि (मं० पु०) पुण्ड्र इत्युवाटी के लिये इव। वस्त्री, हावी।

पुण्ड्रनगर (मं० स्त्री०) पुण्ड्रेयकी राजधानी।

पुण्ड्रवर्धन—पुण्ड्रेयकी प्राचीन राजधानी। पालिके पटायाथैने मध्य यह स्थान 'गोहपुर' नामसे प्रसिद्ध है। प्राचीन यन्त्रों पुण्ड्रवर्धन और पौंड्रवर्धन दोनों ही नाम देखे जाते हैं।

यह प्रश्न उठता है, कि गोरखपुरी गोहुरी राजधानी पुण्ड्रवर्धन कहाँ है? उस पौंड्रवर्धन के वर्तमान अवस्थिति-निर्णयके सम्बन्धमें यत्नतत्त्वविदों का एक मत नहीं है। कोई कहते हैं कि रघुपुत्रके मध्य पौंड्रवर्धन अवस्थित था। फिर किसीका कहना है कि वर्धनकुटी नामक स्थान ही प्राचीन पौंड्रवर्धनका बहुत कुछ निर्देश करता है। कोई यह कि पविना शहरको ही प्राचीन पौंड्रवर्धन वतनाते हैं। किसीका मत है, कि करतोपा नदीके किनारे वगुड़ाये ० मील उत्तर और वर्धनकुटीसे १२ मील दक्षिण महास्थानगढ़ नामक जो एक पत्थि प्राचीन स्थान है, वही पुराने पौंड्रवर्धन नामसे प्रसिद्ध था। किन्तु इन लोगों के स्थानसे हममें से एक भी ठीक नहीं है।

कलहणकी राजतरङ्गिणी पढ़से ज्ञाना जाता है, कि पर्वी शताब्दीमें गोहुर नामक भूभागको राजधानीका नाम था पौंड्रवर्धन। कथारितुसागर पढ़नेमें मान्य होता है, कि पौंड्रनगरी गङ्गासे घोड़ी की दूर पर अवस्थित थी। चीनपरिव्राजक यचनचङ्गने इस नगरमें था कर पनेक लोकार्थव्य देखे थे। उन्होंने गङ्गा पार कर पौंड्रवर्धन राज्यमें प्रवेश लिया था। राजतरङ्गिणीमें लिखा है, कि जया दत्त गङ्गाके किनारे तक मेनापो की विदा कर क्षयभोग गोहुरी राजधानी पौंड्रवर्धन नगर पढ़से। जयमें जो सब विभिन्न मत उद्भूत किये हैं, पावना व्यतीत और कोई भी स्थान गङ्गाके निकटवर्ती नहीं है। फिर पावनाके पुरातत्त्व और भूतत्त्वकी प्राचीनता करनेसे यह पत्थि प्राचीन स्थानके जो प्रातीत नहीं होता।

व्रतका विषय पूछा, तब उन्होंने कहा था, 'तपके प्रभावसे मैंने इस व्रतका विधान जो सा देखा है, नहीं कहती हूँ,— जो मारी यह व्रत करना चाहते, सब बहुत सख्खे विद्या-वर्गसे उठ कर पक्षसे खामीसे अनुमति ले। पोछे इससुरके चर्योंमें बन्धना कर अन्त और दुःखयुक्त उमरके पत्रकी प्रदण करके धैर्यके दक्षिण मृद्धमें अभिषेक करे। अनन्तर उस जलको ले कर पक्षसे स्वामी-के, पोछे अपने मस्तक पर छिड़क दे। कारण, यह जल सभी तीर्थोंके जलसे प्रविष्ट है। व्रतके दिन पक्षसे शुक्लाक्षर परिधान करना जो विधेय है, किन्तु उसके नोचि करुदेश तक पाच्छादन करके एक घोर यज्ञ पढ़ने। पादरसाद्यं हृषमय पादुकाका भी व्यवहार किया जा सकता है।

अवसागप इषी तिथिसे १ वर्ष, ६ मास वा १ मास रहनेके बाद र्यारह गार्भी क्रियोंको खयं निमन्त्रण दे कर बुलावे। उनके भाने पर प्रथमतः देवकाष्ठानुसार मृत्प दे कर उन्हें खरोद ले। अनन्तर श्लिष्टप्रोचय द्वारा उन सब स्त्रियोंको आचार्यको दे दे। फिर आचार्यसे निष्कट-दानमें उन्हें खरोद कर अपने अपने स्वामीके हाथ प्रपण करे। पोछे एक मास वीत जाने पर यज्ञनयनी तिथि की यथाविधि पूजादि समाप्त कर व्रत उद्यापन करना होता है।

यह व्रत तीन दिन तक करनेका नियम है। व्रतके दिन स्वामीकी भी चोरकर्म कराके विवाहकी तरह एकत्र स्नान, एकत्र भोजनार परिधान और माताधारण विधेय है। स्नानके समय व्रतधारणके लक्षपूर्व कलस अपने हाथमें ले कर स्वामीके चर्योंमें प्रभाव करे और यथाविहित मन्त्रसे उन्हें स्नान करावे। स्नान करा चुकनेके बाद स्वामी की स्वयंजित स्वनिर्मित युगल यज्ञ दे। यदि किसी विप्रवयसः ऐसा न हो सके, तो वे स्वजित सप्तमिश्रित संयुक्त एक शम्भवर्ण वस्त्र दे सकती हैं।

अनन्तर शराधार जितेन्द्रिय ब्राह्मणकी भर्ताके साथ भोजन करावे। पोछे उस ब्राह्मणकी वस्त्रयुगल, शय्या, पान, गृह, धान्य, दासदासी, यथाशक्ति भोजनार प्रभृति देवे। दानकी जितनी बश है ही उनमें भान और

तिन मिठा करके विविध वर्णके वस्त्रोंसे पाच्छादन कर दान करना कर्त्तव्य है। समर्थ होने पर हाथी और घोड़े भी दान करे। अभावमें गो-दान अवश्य कर्त्तव्य है। इस व्रतमें सेरो (पार्वतीकी) और महादेवकी पूजा करनी होती है। लवण, नवनीत, गुड़, मधु, सुवर्ण, सभी प्रकारके गन्धद्रव्य, सभी प्रकारके रस तथा किसी भी अभिषिक्त द्रव्य द्वारा पूजन करना चाहिए है। काल, देश और विभवकी अनुसार योद्धा या बहुत जो कुछ दान करना हो, भर्त्तासे अनुमति ले ले। निम्न-पात्र, कपिलधेनु, कांस्य, लघ्वाजिन, सवस्त्रजनपत्र, दर्पण और मयूरपुच्छ ये सब वस्तु अवश्य देने होते हैं। अतोपलक्षमें इन सब वस्तुओंका दान करनेसे सभी अभि-लाष पूर्ण होते हैं। जो जो उक्त वस्तु दान कर सकती हैं, वे पुरनारियोंमें श्रेष्ठा, पुत्रवती, धनशालिनी, सोमाय्य और रूपवती तथा मुक्तश्रमा होती हैं। इच्छानुसार वे कन्यारत्न भी पा सकती हैं। भागे व्रत कर सब कन्या भी गुणमें उनकी समान होगी।

यह पुण्यकर्म सबसे पहले मैंने किया था; इसीसे इसका दूसरा नाम 'समाप्त भी है। स्त्रियोंके लिये यह व्रत पति उत्पन्न और सब प्रकारके समोद फलदायक माना गया है। पतएव श्रीमात्रकी ही इसका अनुष्ठान विधेय है। व्रतकी समाप्ति पर स्त्रियोंकी भोजन करावे और देवकाष्ठानुसार उन्हें अभिषिक्त वस्तु प्रदान करे। व्रतके निमित्त जो सब द्रव्यादि साधे जायेंगे, उनमेंसे कोई एक द्रव्य वे ब्राह्मणको जो पसन्द करे दे दे। अनन्तर उन्हें पायस भोजन कराके यथाशक्ति दक्षिणा देने होती है। विवेक विवरण इतिवत् १६५-१६८ अध्यायमें देखो।

पुण्यकर्म (सं० पु०) पुण्यानां कर्मा इत्यम् । पुण्य-कर्मकारण, पुण्य या शुभ काम करनेवाला । पुण्यकर्मन् (सं० क्तो०) पुण्यं पुण्यजनकं कर्म । १ शुभकर्म । जिस कार्यके अनुष्ठानसे पुण्य होता है, उसे पुण्यकर्म कहते हैं । (ति०) पुण्यं कर्म यस्य । २ पुण्यकर्मकारो, पुण्य या शुभ काम करनेवाला । पुण्यकाल (सं० पु०) पुण्यनिमित्त कालः काकभेदः । पुण्य-जनक काल, शुभ समय । शुभ प्रभृतिकी राशिविवेचन

वर्द्धनो' नामक एक जैन शास्त्राका उल्लेख मिलता है। ईसा-जन्मके दो सौ वर्ष पहले इस शास्त्राकी उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार जाना जाता है, कि इसके भी वर्द्धन पहले पुण्डरीकनगर स्थापित हुआ था। एक समय भारतके चार प्रांतमें पुण्डरीकनवासी ब्राह्मणोंका गुप्त बाटुर था। राष्ट्रकूटराज नित्यवर्षने ८५५ तकमें कोशवदोजित नामक एक पुण्डरीकनवासी औद्योगिक मोक्षीय शास्त्राकी स्वरान्धने हुसा कर भूमि दान की थी।

पुण्डरीक रा (मं० स्त्री०) पुण्डरीकभयमर्करा। १ ईश्वरका गुह। गुह—स्निग्ध, मौन, जय तथा अश्विमें हितकर। २ अश्विपुत्र मर्करा।

पुण्ड्राक्ष (मं० पुं०) पुंडरीकहृत्, पुंडरीका।

पुण्य (मं० स्त्री०) पूयतेऽनेनित् पूयत् पुण्यम् अस्वय (पुत्रोपलब्धिराशय। ण. ५।१५)। १ शमाष्ट, मला काम, धर्मका कार्य। पर्याय—धर्म, श्रेय, सुकृत, लय। जिस लीके कार्यका अनुष्ठान किया जाय, उसके लिए एक अष्ट लक्षण होता ही है। जिस कर्मका अनुष्ठान शमाष्ट होता है, उसे पुण्य और अष्टाष्टलक्षणकी पाव कहते हैं। पावका विषय पाप शब्दमें देखो।

पाप तथा पुण्य धर्म और अधर्मवद वाच्य है। पुण्य कर्मका परिणाम सुख है और पापका दुःख। पुण्य-कर्मकी अनुष्ठानसे स्वर्गादिका भोग होता है। बाद पुण्यके बीच होनेसे पृथिवी पर जन्मग्रहण करना पड़ता है। श्रुतिमें लिखा है,—“क्षीने पुन्ये सर्वलोके विनाशितः” सुखाभिलाषी मनुष्यमात्रकी हो पुण्यकर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। पुण्य कारण है और सुख भोग उसका कार्य।

पणने किये हुए पुण्यकी कोर्गेके सामने प्रकट नहीं करना चाहिये, करनेसे उसका लय होता है।

पुण्यकर्म कर उसका विषय स्वयं कीर्तन करनेसे पाप्माभिमन बढ़ता है; इसीलिए शास्त्रकारोंने वैसा करनेसे निषेध किया है। ब्राह्मण-प्रभृति चार वर्णोंके यशशास्त्र पात्रमधर्मका प्रतिपालन करनेसे पुण्य और शास्त्र विधानका कलन करनेसे ही पाप होता है।

पर्याप्त धर्मकार्यके अनुष्ठानसे, शास्त्रानुसार चर्चनेसे पुण्य और इसका प्रतिफल स्वर्गमें पाव होता है। १ धर्मकार्यका शिरोव-विवरण धर्म शब्दमें देखो। २ शोभनकर्म, धर्म कर्मका समुच्च। ३ पावन, शुद्धि। (वि०) ४ धर्म विहित, शुभ, पवित्र, भला, अच्छा। ५ सुन्दर। ६ सुगम्य।

पुण्यक (मं० स्त्री०) पुण्यक कायति-क-क। १ धर्म, अनुष्ठान पादि जिनसे पुण्य होता है। २ विपु।

पुण्यकव्रत (मं० स्त्री०) पुण्यक नामव्रत। स्त्रीकर्त्तव्य-व्रतविशेष।

इस व्रतका अनुष्ठान करनेसे किया उचिततम पुत्र लाभ करती है। ब्राह्मणवर्तपुराणमें इस व्रतका विधान इस प्रकार लिखा है,—विशुद्धकालमें मांघमासकी शुक्ल-त्रयोदशीको इस व्रतका आरम्भ करके एक वर्ष तक अन्नना होता है। व्रत पूर्व दिन उपवास रह कर व्रतके दिन स्नानादि करनेके बाद यथानियम प्रातःकालादि अन्नपान करे। पीछे पुरोहितको वर्ष और क्षत्रिय वाचन करके क्षणका दोड़गोपचारसे पूजन और होम-पवादि करे। इस व्रतका आरम्भ करके एक वर्ष तक पक्षी, माल इविषयास भोजन,—पेछे ५ मास फलादि भोजन, १५ दिन त्रिवर्मांजन और उसके बाद १५ दिन जला पी कर रहना पड़ता है। इस व्रतानुष्ठानके समय सभी प्रकारकी विवाहसिद्धा विमोचरूपसे निषिद्ध है। कोम, मोर, काम, क्रोध, भय, शोक, विवाद और कलह आदिका परित्याग करना होता है। अतारम्भके समय यदि किसी तरह इन्द्रियादिके अधीन हो, तो व्रतका कोई फल नहीं होता। यथानियम व्रतप्रतिष्ठा करके ब्राह्मणकी दुर्निवा देखे।

की भक्तिपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान करनेसे, हरिके हरिके प्रति दृढ़-भक्ति उत्पन्न होती है, हरिके सहज प्रसन्नता होता है तथा कोन्द्य, स्वामिभोग्य, ऐश्वर्य और विपुल धन हाथ लगता है एवं जन्म जन्ममें सभी प्रकारके अमिताय सिद्ध होते हैं।

चित्त संश्लेषमें यह व्रतविधान लिखा गया। विधेय विवरण गणपतिखण्डके ३० अध्यायमें लिखा है।

हरिवंशमें इस व्रतका विधान इस प्रकार लिखा है,—शोभनान्दिनी अश्वत्थतीने जय पायनीसे इस पुण्य

व्रतका विषय प्रष्टा, तब उन्होंने कहा था, 'तपके प्रभावसे मैंने इस व्रतका विधान जैसा देखा है, वही कहतो हूँ,— जो गरीबी यह व्रत करना चाहे, वह बहुत सबेरे निष्ठा-वनसे उठ कर पहले स्वामीसे अनुमति ले। पोछे इससे पहले घरघोमें वस्त्राभूषण कर घबन और कुशयुक्त उमरके पत्रको ग्रहण करके सितुके दक्षिण मूढ़में अभिषेक करे। घनस्तर उष जलको ले कर पहले स्वामी-को, पोछे अपने मस्तक पर छिड़क दे। कारण, यह जल सभी तीर्थोंके जलसे अधिक है। व्रतके दिन पहले शुक्लाब्ज परिधान करना जो विधि है, किन्तु उनके लोके जलदेय तक आच्छादन करके एक घोर वस्त्र पहने। पादरक्षाएँ लक्षणमय पादुकांका भी व्यवहार किया जा सकता है।

अवकाशय इसी नियमसे १ वर्ष, ६ मास वा १ मास रहनेके बाद ग्यारह सांख्यी श्रियोको लय निमग्न्य दे कर मुलावे। उनके घनि पर प्रयमतः देयकाशानुसार मृष्य दे कर उन्हें खरोद ले। घनस्तर घनिलभोक्ष्य द्वारा उन सब श्रियोको आचार्यको दे दे। फिर आचार्यसे निष्काम-दानमें उन्हें खरोद कर अपने अपने स्वामीको दाय प्रार्थन करे। पोछे एक मास बीत जाने पर अन्ननवमो तिथिसे यथाविधि पूजादि समाप्त कर व्रत उद्यापन करना होता है।

यह व्रत तीन दिन तक करनेका नियम है। व्रतके दिन स्वामीको भी चौरकर्म कराके विवाहको तरह एकत्र स्नान, एकत्र पत्रद्वार परिधान और मांसधारण विधेय है। स्नानके समय व्रतधारको जलपूष कंसर अपने हाथों ले कर स्वामीको लक्ष्मीमें प्रणाम करे और यथाविहित मन्त्रोंसे उन्हें स्नान करावे। स्नान करा चुकनेके बाद स्वामी को स्वयंजल ध्वनिर्मित युगल वस्त्र दे। यदि किसी विघ्नवशतः ऐसा न हो सके, तो वे स्वतन्त्र सममिथित अनुकूल एक शम्भवर्ण वस्त्र दे सकती हैं।

अनन्तर श्रावण जतिन्द्रिय ब्राह्मणको भक्तिके साथ भोजन करावे। पोछे उस ब्राह्मणको वस्त्रयुगल, गंधा, पान, मृद, शाल्य, दाहदासी, यथाशक्ति धनद्वार प्रभृति देवे। दानकी जितनी वस्तुएँ हों उनमें धान और

तिन भिन्ना करके विविध वर्षके वस्त्रोंसे आच्छादन कर दान करना कर्त्तव्य है। समर्थ होने पर चाही और छोड़े भी दान करे। अभावमें गो-दान अवश्य कर्त्तव्य है। इस व्रतमें मेरो (पार्वतको) और महेश्वरकी पूजा करना होती है। लवण, नवनीत, गुड़, मधु, सुवर्ण, सभी प्रकारके गन्धद्रव्य, सभी प्रकारके रस तथा किसी भी अभिषिक्त द्रव्य द्वारा पूजन करना चांछिप है। काल, देश और विभवके अनुसार घोड़ा या बहुत जो कुछ दान करना हो, भक्तिसि अनुमति ले ले। तिच-पात्र, कपिलसितु, काश्य, लवणाग्नि, सर्वधनजपत्र, द्रव्य और मयूपुच्छ ये सब वस्तु अवश्य देने होती हैं। अतोपलक्षमें इन सब वस्तुओंका दान करनेसे सभी अभि-लाष पूर्ण होती है। जो जो उक्त वस्तु दान कर सकती है, वे पुरनारियोंमें श्रेष्ठा, पुत्रवती, धनशालिनी, शोभाय और ह्यवतो तथा मुक्तइच्छा होती हैं। इच्छाशुभार के कन्यारत्न भी पा सकती हैं। घागी चल कर वह कन्या भी गुणमें उन्होंने समान होती।

यह पुण्यकर्म सबसे पहले मैंने किया था; इसीसे इसका दूसरा नाम समाव्रत भी है। श्रियोके लिये यह व्रत प्रति सद्व्रत और सब प्रकारके समोष्ट फलदायक माना गया है। अतएव श्रीमात्रको ही इसका अनुष्ठान विधेय है। व्रतकी समाप्ति पर श्रियोको भोजन करावे और देयकाशानुसार उन्हें अभिनयित वस्तु प्रदान करे। व्रतके निमित्त जो सब द्रव्यादि लाये जायेंगे, उनमेंसे कोई एक द्रव्य वे ब्राह्मणको जो पसन्द करें दे दे। अनन्तर उन्हें पायस भोजन कराके यथाशक्ति दक्षिणा देने होती है। विवेक विवरण हरिवंश १५-११८ अध्यायमें देखो।

पुण्यकर्म (सं० पु०) पुण्यानां कर्त्ता इतत् । पुण्य-कर्मकारक, पुण्य या शुभ काम करनेवाला।

पुण्यकर्मन् (सं० स्त्री०) पुण्यं पुण्यजनकं कर्म । शुभकर्म । जिस कार्यके अनुष्ठानसे पुण्य होता है, उसे पुण्यकर्म कहते हैं। (त्रि०) पुण्यं कर्म यस्य ।

२ पुण्यकर्मकारो, पुण्य या शुभ काम करनेवाला।

पुण्यकाल (सं० पु०) पुण्यनिमित्तकालः कामदेवः । पुण्य-जनक काल, शुभ समय । सुप्रसिद्धतको रामविमोचन

प्रवेग-निवन्धन को पवित्र काल होता है, उन्हें पुष्पकाल कहते हैं। ऐसे समयमें ज्ञान दान आदि शुभ काम करने कोति है। संवाति प्रदक्षिण शुभकाल का शिव वस्तु सन्निहित हो।

पुष्पकालता (मं० स्त्री०) पुष्पकालका भाव, तत्-टाप्। पुष्पकालत्व, पुष्पकालका कार्य वा धर्म।

पुष्पकोत्पन्न (मं० पुं०) पुष्प पुष्पजनक कोत्पन्न यस्य। १ विष्णु। (स्त्री०) पुष्पस्य कोत्पन्न। २ पुष्पकथन। (त्रि०) ३ पुष्पजनक कोत्पन्नयुक्त।

पुष्पकोत्ति (मं० पुं०) पुष्पा कोत्ति यस्य। १ पुष्प-श्लोक, जिसके कोत्पन्नमें पुष्प होता है। २ विष्णु। ३ बुद्धका नामान्तर। (स्त्री०) पुष्पा कोत्तिः। ४ पुष्प-लज्जिका कोत्ति।

पुष्पलत् (मं० त्रि०) पुष्प करोति स्मेति पुष्प लृप्ति। (प्रयोगवन्तप्रत्यये क्तः। वा ३।२।५) ततो तुगागमः। पुष्पलता, धार्मिक, जो हमेशा पुष्प काम करता हो।

पुष्पलया (मं० स्त्री०) पुष्पकर्म, शुभ काम।

पुष्पलये (मं० स्त्री०) पुष्पलये लोके। १ पुष्पभूमि, पायावर्त्त। २ पुष्पजनक स्थान, जहाँ जानिके पुष्प होता है, तीर्थ। ३ शाकबुद्धका नामान्तर।

पुष्पाग्न्य (मं० पुं०) पुष्पः पवित्रो ज्वल्य गन्धो यस्य। १ चम्पक, चंदा। पुष्पः गन्धः। २ पवित्र गन्ध।

पुष्पाग्न्या (मं० स्त्री०) पुष्पाग्न्य-टाप्। कार्ययुक्तिका, सोनाज कीका फल।

पुष्पाग्न्यि (मं० त्रि०) पुष्पः दमानः गन्धो लेशोऽस्य इत्यमासात्। १ दमावहलोगयुक्त। २ पवित्र गन्धयुक्त।

पुष्पागमो (मं० स्त्री०) गङ्गा।

पुष्पाट्ट (मं० स्त्री०) पुष्प पवित्र गृह। पुष्पाशाला, पवित्र गृह।

पुष्पजन (मं० पुं०) पुष्पः विरहलवणया पापो चासौ लज्जति। १ राघवः। पुष्पाश्रितो जनः। २ सच्चन, धर्मात्मा। ३ यक्ष।

पुष्पजनेश्वर (मं० पुं०) पुष्पजनना यक्षानामेश्वरः। कुबेर।

पुष्पाजित (मं० पुं०) पुष्पैर्जित जितः पायसीकृतः। चन्द्र-कोकादि चित्रका प्राति पुष्प द्वारा जोती है। पुष्पके

चौक होने पर चन्द्रकोकादिसे पुष्प पुष्पों पर लक्ष्मणवत् चरणा पड़ता है।

पुष्पाता (मं० स्त्री०) पुष्पाका भाव, तत्-टाप्। पुष्पात्व, पुष्पाकारका भाव।

पुष्पाट्टव (मं० स्त्री०) पुष्प पवित्र गृह। श्रुति कुग।

पुष्पादग्न (मं० त्रि०) पुष्प शुभजनक दग्धन यस्य। १ जिसके दग्धनी पुष्प हो, जिसके दग्धनका फल शुभ या अच्छा हो। २ चायपत्ती, नीलकण्ठ। विजया दशमी-के दिन इसके दग्धनमें लोग पुष्प मानते हैं।

पुष्पादृष्ट (मं० त्रि०) पुष्पादृष्ट, पुष्पादाता।

पुष्पादाय (मं० पुं०) दयाकरत्वभेद।

पुष्पादामन (मं० पुं०) १ कुमारानुवरभेद, कार्तिक के चतुर्दशका नाम। (त्रि०) २ पुष्पादायक नाम।

पुष्पापुष्प (मं० पुं०) १ सत्त्वोक्त, साधु व्यक्ति। २ पवित्रचेता व्यक्ति।

पुष्पाप्रताप (मं० पुं०) पुष्पाप्रताप वलवान्।

पुष्पाप्रद (मं० त्रि०) पुष्पाप्रददातोति दा-क। पुष्पादान-कारी, पुष्प देनेवाला।

पुष्पाप्रसव (मं० पुं०) बोधोक्ति एक देवताका नाम।

पुष्पाफल (मं० पुं०) पुष्पाणि दमानि फलानि यस्य। १ लक्ष्मी-पाशाम वनभद्र, लक्ष्मीके रहनेवाला वन। इसका दूसरा नाम लक्ष्मणाम भी है। पुष्पाफल पुष्पाश्रय फलमिति भावः। (स्त्री०) २ धर्मजन्य फल, पुष्पाश्रयके चतुष्पादका फल।

पुष्पाभाज (मं० त्रि०) पुष्पा भजतीति भज-त्वि। पुष्पा-रिष्ट, पुष्पाका।

पुष्पाभू (मं० स्त्री०) पुष्पाश्रय पुष्पाश्रयादिका वा भूमीति। पायावर्त्तदेम। शास्त्रमें पायावर्त्तदेम पुष्पाभूमि नामसे प्रसिद्ध है।

पुष्पाभूमि (मं० स्त्री०) पुष्पाश्रय पुष्पाश्रयादिका वा भूमिः। १ पायावर्त्तदेम। २ पुत्रसु-पुत्रवती स्त्री।

पुष्पाभय (मं० त्रि०) पुष्पाश्रयके भयट्। पुष्पाश्रयके। पुष्पाभित—बोधोक्ति सत्ताईसमें धर्मशुद्ध वा क्लृप्ति। ये दासिगाथवासी एक चरित्र-सन्तान थे। भारतके पूर्ववर्ती देशोंमें अमर कर ये १८८ ई०में परलोककी सिधार गए।

पुण्ययज्ञस्य (सं० पु०) १ चोटी के ग्यारहवें धर्म शुभ । ये चोमदेयके कुपुत् नगरमें धर्म प्रचार तकें मध्य मंगहर से तथा इनका चोमदेयोय नाम कुनय-वी था । (वि०) २ पुण्ययोगोयुक्त ।

पुण्यराज—भक्त हरिकृत वाक्य पदोय ग्रन्थके टोकाधार । पुण्यराज (सं० पु०) पुण्या रात्रिः चच 'समाधान', रात्रान्तात् पुंस्त्व' । पुण्या रात्रि, पवित्रा रजनी, शुभ-प्रद रात ।

पुण्यलोक (सं० पु०) पुण्यप्रायः लोकः । १ पुण्यद्वारा प्राप्त लोक, चन्द्रलोक आदि । पुण्यकर्म के कारनेसे जिस लोकमें गति होती है, उसे पुण्यलोक कहते हैं । पुण्य लोका कर्मधा० । २ धर्म भिष्ठ मनुष्य, धार्मिक व्यक्ति ।

पुण्यवत् (सं० वि०) पुण्यमव्याप्तोति पुण्यमनुष्य, मध्य व । पुण्ययुक्त, धर्मात्मा । प्रयोग—सुकती, धन्य, सुकृत, पुण्यकृत, धर्मवान्, श्रेयस्वान्, उपवान् इत्यादि ।

पुण्यधर्मन् (सं० पु०) विदेहराजके पुत्रका नाम । पुण्यवान् (हि० वि०) धर्मात्मा, पुण्य करनेवाला । पुण्यगङ्गुल (सं० स्त्री०) पुण्यसूचक गङ्गुल । १ शुभ-सूचक गङ्गुल, शुभ चिह्न । (वि०) २ शुभ साधन ।

पुण्यगाला (सं० स्त्री०) पुण्यगाला घटहं कर्मधा० । पवित्र घटह, पाक घर ।

पुण्यगीत (सं० वि०) पुण्य गीतयतोति गीत-पद्य, वा पुण्य पवित्र गीत स्वभाव यस्य । १ नियतपुण्या-गुणवायी, पुण्य स्वभाव, अच्छा चालचलन वाला ।

पुण्यगीत (सं० स्त्री०) पुण्यगीत-टा । गावयो ।

पुण्यद्रोक्त (सं० पु०) पुण्य पुण्यदायकः द्रोक्तोद्यम चरितं वा यस्य । १ विष्णु । २ बुधिष्ठिर । ३ नल राजा । (वि०) ४ पुण्य चरित या भावचरणवाला, जिसका सुन्दर चरित या योग हो, जिसका जीवनवृत्तात् पवित्र और मिष्टादायक हो ।

पुण्यरत्नीका (सं० स्त्री०) पुण्यरत्नीक-स्त्रियां टाप् । १ द्रोपदी । २ नीता ।

पुण्यसम (सं० पथ०) पुण्य समं यत्, तिष्ठद्गु पथ्ययी० । तुल्यपुण्या, पुण्याके जेसा ।

पुण्यमहम (सं० पथ०) नीलकण्ठताजिकोक्त सहस्रमेत । नीलकण्ठ ताजिकमें ५० प्रकारके सहस्र हैं जिनमेंसे

पुण्यसहस्र प्रथम है । इस ता पानयनप्रकार इस तरह है—दिवा और रात्रि दोनों समय सहस्रका साधन किया जा सकता है । दिनको सहस्र साधन करनेमें पहले चन्द्र-स्फुट करे, पीछे उसमेंसे रविस्फुट घटा कर चरमिष्टाहमें लग्नस्फुट जोड़ दे और रात्रिकालमें रविस्फुटमेंसे चन्द्र-स्फुट घटा कर चरमिष्टाहमें लग्नस्फुट जोड़नेसे जो फल होता है, उसका नाम पुण्यसहस्र है । किन्तु गोध्यागि यथांति जिसे वियोग किया गया है, उससे ले कर शुद्ध रागि (जिस रागिमेंसे वियोग किया गया है) तक यदि लग्न न रहे, तो उक्त सहस्रमें एक जोड़ना होता है । फिर गोध्या और गृहारागिसे मध्य यदि लग्न रहे, तो एकका योग देना नहीं पड़ता ।

पुण्यवह—जन्मकालमें पठ, चष्टम और द्वादशस्य को कर वर्षप्रवेश कालमें यदि पापघटके दृष्ट वा युक्त हो, तो उस वर्षमें धर्म, धर्म और सुखको हानि होती है । परन्तु सहसाधिपतिके प्रसागत होने पर भी उक्त प्रकारका फल नहीं होता । जन्मकालमें चयवा वर्ष प्रवेशकालमें यदि पुण्यसहस्र चलवान् भिन्न स्वामी वा शुभप्रद द्वारा दृष्ट चयवा युक्त हो, तो धर्मद्विष्ट और धनान्न होता है । इसका विपरीत होनेसे फल भी विपरीत मिलता है । पुण्यसहस्र यदि लग्नक पठ, चष्टम वा द्वादशस्य हो, तो धर्म, भाग्य और धनकी हानि होता है । इस समय शुभप्रद वा सहसाधिपतिको दृष्टि वा योग रहनेसे, वर्षके शेषभागमें सुख और धर्मादि होता है । पुण्यसहस्र यदि पापयुक्त शुभप्रदके दृष्ट हो, तो पहले समुभ और पाछे शुभ और यदि समुभयुक्त तथा पापदृष्ट हो तो पहले शुभ और पीछे समुभ होता है ।

जिस वर्षमें पुण्यसहस्र शुभ होगा, उस वर्षका फल भी शुभ जानना चाहिये । प्रथम होनेसे फल भी प्रथम होता है । वर्षप्रवेश और कोषोसे इस सहस्र फलादिको गणना की जाती है । सहस्र देशो ।

पुण्यसागर (सं० पु०) पुण्यसागरः ।

पुण्यसागर महाप्रशोधनाय—एक जैन पण्डित । ये 'त्रिनद' सूरिसे शिष्य थे । अल्लसोराधिपति भीमराजके राजत्वमें १६७५ संवत्को इन्होंने जय्य दोपप्रप्ति नामक जैनग्रन्थको एक टीका और इत्तिकी रचना की ।

पुत्त (सं० स्त्री०) पुत्र-पुत्रकाम् लुति प्रयोदरादित्वात् साधुः । १ नरकभेदः । पुत्रोत्पत्ति द्वारा दस नरकके मानवपण निष्कृति लाभ करते हैं । (ति०) २ कुलित, खराब ।

पुत्रिया (हि० स्त्री०) पुतली देखो ।

पुतरी (हि० स्त्री०) पुतली देखो ।

पुतला (हि० पु०) नकड़ो, मिट्टी, धातु, कपड़े आदिका बना हुआ पुत्रपदा काकार या मूर्ति, विग्रहपतः वह मूर्ति जो विनोद या क्रीड़ाके लिये हो ।

पुतली (हि० स्त्री०) १ लकड़ी, मिट्टा, धातु, कपड़े आदिको बना हुआ स्त्रीको आकृति या मूर्ति, गुड़िया । २ पालिका काका भाग । इसके बोचने एक छेद होता है जिससे जो कर प्रतापकी किरणें भीतर जाती हैं और पदार्थोंका प्रतिबिम्ब उपस्थित करते हैं । दूसरेकी बाँध पर दृष्टि गड़ा कर देखनेवालेको इस काले मण्डलके बोचके तिरमें अपना प्रतिबिम्ब पुतलीके आकारका दिखाई पड़ता है, इसीसे यह नाम पड़ा है । ३ बोड़के टापका वह भाग जो भेटककी तरह निकला होता है । ४ कपड़ा डुननेकी कला या मयीन । ५ किसी स्त्रीको सुकुमारता और सुन्दरता सूचित करनेके लिये व्यवहृत शब्द, जैसे, वह स्त्री क्या है, पुतली है ।

पुताई (हि० स्त्री०) १ किसी गौलो वस्तुको तह बढ़ानेका काम, पोतनेको क्रिया या भाव । २ दोवार आदि पर मिट्टी गोबर चूना आदि पोतनेका काम । ३ पोतनेकी मजदूरी ।

पुतारा (हि० पु०) १ किसी वस्तुके ऊपर पानीसे तर कपड़ा करनेकी क्रिया, भोनी कपड़ेसे पोछनेका काम । २ पोतनेका तर कपड़ा ।

पुतर-दालिषाथमें मन्तवार जिसके कालिकट तालुका-भाग तक एक नगर । यह कालिकटमें ६। ४० मील दूरी पर अवस्थित है । यहांके मन्दिरमें प्राचीन तामिल अक्षर में लिखी हुई एक शिलालिपि है ।

पुत्त-एक राजपूत-सामन्त । सोलहवर्षकी अवस्थामें उन्होंने चित्तोर-रक्षाका भार ग्रहण किया था । इसी समय इनका विवाह हुआ, नवपरिणीता विद्युतमा वधूको छोड़ कर वे को रणक्षेत्रमें चला पड़े, इस पर उनकी वीरमत्ता छर गई,

कि यावत् कहीं उनके हृदयमें क्रोध और चाञ्चल्य स्थान न ले ले । इस आग्रहासे वे बालिका वधुमताको रणक्षेत्रमें सम्मिलित कर समरप्राङ्गणमें उपस्थित हो गई । आत्मसन्तुष्टि के कारण कवचसे राजपूतानेकी प्रधान राजधानी चित्तोर मगरोका रक्षा-भार एक मात्र बालक पुत्र, राज-माता और कुमारों राजपूत बालिकाके सहाय पर सौंपा गया । निर्भय राजपूत योद्धागण दोनों रमणियोंको असीम वीरतासे सन्तुष्टित हो जाताय गौरवरक्षाके लिये प्राणपणसे कोशिश करने लगे । उन्होंने सत्त वीररमणियोंको घोरतर युद्ध करके शत्रुकी शान्ति पक्षमें जीवन दान करते देखा था । अन्तमें सोलह वर्षके बालक पुत्र माता और स्त्रीको निहत देख दिग्विदिग्भ्रान्त शत्रु सन्तुष्टिकी तरह रणक्षेत्रमें झूट पड़े । इस युद्धमें पुत्तने आत्मजीवन दान करके इस लोककी ज्वालासे निष्कृति लाभ की थी ।

पुत्तल (सं० पु०) पुत्त-गतौ भावे घञ्, पुत्तं गमनं श्चाति भव्यस्मादिति कान्ठ । प्रसादि निर्मित प्रतिमूर्ति, पुतला ।

पुत्तलक (सं० पु०) पुत्तल संघाया कन् । पुत्तल शब्दाद्यं, पुतला ।

पुत्तलिका (सं० स्त्री०) पुत्तली एव स्थायं कन्, टाप, ततो ईकारस्य क्तत्वं । लण, कान्ठ, वृत्तिका, प्रस्तर धातु वा रक्षादि निर्मित प्रतिमूर्ति, लकड़ी, मिट्टी, धातु, कपड़े आदिको बना हुआ मूर्ति, गुड़िया ।

पुत्तली (सं० स्त्री०) पुत्तल-डोप । यदादिनिर्मित प्रतिमूर्ति ।

पुत्तलीपूजक (सं० पु०) पुत्तलीनां पूजकः । वह जो पुतलीकी पूजा करते हैं । जो देवप्रतिमाका पूजन करते हैं, उन्हें विधर्मी लोग पुत्तलीपूजक कहते हैं ।

पुत्तलीपूजा (सं० स्त्री०) पुत्तलीनां पूजा । पुतलीकी पूजा ।

पुत्तिका (सं० स्त्री०) पुत्तं इत्यन्तौ भ्रमपदस्यस्या इति पुत्तलन्, तत्प्राय । १ मधुमल्लिकाविशेष, एक प्रकारकी मधुमल्ली । इसका पर्याय पतङ्गिका है । २ विपौलिकामेद, दोमक । पुत्तिका जिम प्रकार घोर

घोरे बन्धन प्रभु करती है, मानवगणको परलोक-
के निवे प्रभो प्रभार घोरे घोरे धर्मसूत्र करना चाहिये ।
पुनर-१ मन्त्राजमदेयके दत्तियकपाङ्गा जितानागत तप्य-
नाइटी तालुकका प्रधान नगर घोर सदर । यह पचा-
१२ ४६ वं घोर देगा ०५ १२ पू० के मध्य अवस्थित
है । पहले कृंगराण्यको सोमान्त रचाके लिये इसको
सैन्यमावे मस्यामने गिनती होती थी । १८३० ई० में
यहाँ घोर राष्ट्रविद्रुह हुआ था । उसी जित विद्रोही दमके
चत्वार घोर नररक्त मे नगरने घोरे घोरे बोलसूत्रद्वय
धारण कर लिया था । इसके बाद १८५८ ई० में पंग-
१३ राजने यहाँ सेना रखनेका पड़ा बनाया है । यहाँ-
की प्राचीन मन्दिरमें एक चरुष्ट मिलाजिबे खोदित है ।
जलनरत्या चार हजारको करीब है ।

२ मानवार जिसके कीडम तालुकके पन्नागत
एक ग्राम । यहाँ पर्वतके लपर गुहा देखनेमें आता है ।

३ उल जिसके पासघाट तालुकका एक नगर ।
यह पालघाटने १ कोष उत्तर रेलवे-स्टेशनके समीप
अवस्थित है । यहाँके प्राचीन विष्णुनाथ-मन्दिरके पूर्व
प्रकारमें एक मिलाजिबे है ।

४ मन्त्राजमदेयके मधुरा जितानागत तिहमझसम्
तालुकका प्रधान नगर ।

पुन (स० पु०) १ लनसे पञ्चम स्थान । पुनाति विज-
दीगिति पूरु, धातोञ्ज धात्वञ्ज । (पुने ६४५५ । वन
४१६४) स्वजन्यपुण्य, ईटा, झड़का । पर्याय—नगय,
धनू, पाकज, दायाद, सुत, तनुज, कुलाधारक, नन्दन,
भाक्जमन्, द्वितीय, प्रसूति, स्वज, पयस्य ।

'पुन' शब्दकी उत्पत्ति के लिये यह कल्पना की गई
है, कि जो पुत्रास नरकने उधार करे, उसको पुनरा
पुन है ।

स्वयं मन्त्राने कहा है, कि सुत पिताको पुत्रास नरक-
से लाय करता है, इसीसे पुन नाम पड़ा है ।

मनुष्य-हितानि लिखा है—

पुनके उत्पन्न होनेसे खगिति ओकोंकी प्राप्ति होती
है, पुनके पुन अर्थात् पुन उत्पन्न होनेसे मदाके लिये
स्वयं ओकमें रूप होता है । यदि यदि प्रयोज्य उत्पन्न
हो, तो पादित्य ओककी प्राप्ति होती है ।

मनुने बारह प्रकारके पुन कहे हैं, यथा—घोर,
सैन्य, दत्तक, क्षत्रिम, गृहीत्य, पयसि, कामोम,
महोद, क्षीत, वीनमय, स्वयं दत्त घोर मोद्र ।

इसमेंसे विवाहित जो सबका ओके गम से जो पुन
उत्पन्न होता है, उसे घोरमपुन कहते हैं । घोरस ही
सबसे श्रेष्ठ घोर मुख्य पुन है । पुनशान पयस्यामें मृत,
मनुष्यक पयसा प्रसव विराधी व्याधियुक्त व्यक्तिकी मर्त्या
स्वधर्मवै अनुसार गुरुजन द्वारा निरुक्त हो कर ली पुन
उत्पन्न करती है, वह पुन सैन्य है । मोद्र सिया हुआ
पुन दत्तक कहलाता है । किसी पुनगुपीने युक्त व्यक्तिकी
यदि कोई अपने पुनके स्थान पर नियत करे तो वह
क्षत्रिम पुन होगा । जिसकी स्त्रीको किसी स्वजातीय
या घरके पुनपयै ही पुन उत्पन्न हो, पर यह नियत नहीं,
कि जिससे, तो वह उसका गृहीत्य पुन कहा जायगा ।
जिसे माता पिता दोनोंने या एकने त्याग दिया हो घोर
नोसरेने प्रहय किया हो वह उस प्रहय करनेवालेका पय-
सि पुन होगा । जिस कन्याने अपने भावके घर कुमारी
अस्थानमें ही गुप्त संयोगसे पुन उत्पन्न किया हो, उस
कन्याका यह पुन उससे विवाहित प्रतिभा कामोम पुन
कहा जायगा । पहिलेसे गर्भवती कन्याका जिस पुनपयै
साथ विवाह होगा, गर्भजात पुन उस पुनपयसा महोद पुन
होगा । माता पिताकी मृत्यु दे कर जिसे मोन से वह
क्षीत पुन कहलाता है । जो जो पति द्वारा त्याग, प्रहय
विधवा या स्वच्छाचारिणी हो कर पर पुनपयसाग
द्वारा पुन उत्पन्न करती है, उसे वीनमय पुन कहते हैं ।
मातृव्यविहीन पयसा माता पिताका त्याग हुआ यदि
किसीने स्वयं जा कर कहे कि, "मैं पायका पुन हुआ"
तो वह स्वयं दत्त पुन कहलाता है । विवाहिता मूर्खों
घोर भ्राष्ट्रवर्क संयोगसे जो पुन उत्पन्न होता है, उसे
पारम्य वा मोद्र पुन कहते हैं ।

ये जो बारह प्रकारके पुन कहे गये, उनमेंसे घोर, सैन्य,
दत्तक, क्षत्रिम, गृहीत्य घोर पयसि प्रयोग
परिचय से मधु-दायाद घोर मान्य हैं । मोद्र कामोम,
महोद, क्षीत, वीनमय, स्वयं दत्त घोर मोद्र ये नव पेशक
धर्म पश्चिमारी नहीं हो सकते । ये दत्त मान्य
अर्थात् आकादिके पश्चिमारी मान्य हैं ।

सब प्रकार के पुत्रोंमें भी शीघ्र पुत्र हो सर्वोपेक्षा
श्रेष्ठ है। मनुने कहा है,—

मनुष्य जिन प्रकार घड़े के द्वारा समुद्र पार करने-
में मन्द फल पाते है अर्थात् लघु जाते हैं, उसी प्रकार
सौत्रजादि निन्दित पुत्र द्वारा पाये उक्तोर्ण होनेमें
मन्द फल प्रप्त होता है अर्थात् घोर पापमें लिप्त
होना पड़ता है।

सौत्रजादि जिन प्रकार पुत्रोंका उल्लेख किया गया
है, शास्त्रकारोंने उन्हें शीघ्र पुत्र के प्रतिनिधि बताया
है; अर्थात् आहतपादि शास्त्रोंमें जो पद न हो, दशो-
क्तिसे पण्डितोंने सौत्रजादि प्रकार के पुत्रोंको निधि प्रदान
की है।

शीघ्र-पुत्र प्रसङ्गमें सौत्रजादि अन्य वीर्योपपन्न जो
सब पुत्र कहें गये हैं, यदि कोई शृङ्खला शीघ्र पुत्र के
रहते हैं सब पुत्र प्रसङ्गमें ही, तो ये शृङ्खलाके पुत्र न ही
उपादायके हो पुत्र होंगे। एक विद्वान् शेषोपपन्न सहोदरों
मध्य यदि एक पुत्रवान् हो, तो उस भ्रातृपुत्र द्वारा सभी
पुत्रवान् होंगे अर्थात् भ्रातृपुत्रके रहते अन्य पुत्रप्रतिनिधि
करना कर्तव्य नहीं है, क्योंकि भ्रातृपुत्र ही उनकी
विम्बप्रद घोर भग्नकर है।

इसी प्रकार स्त्रियोंमें भी यदि एक पत्नी पुत्रवती हो
तो उस पुत्र द्वारा ही सभी पुत्रवती होंगे अर्थात् सपत्नी
पुत्र रहते स्त्रियोंकी भी कोई दत्तकादि पुत्र रखना
चित्त नहीं।

पद्मपुराणके प्रकृति खंडमें शीघ्र भी। चार प्रकारके
पुत्रोंका उल्लेख देखनेमें आता है, यथा—शृणवस्वस्थी
पुत्र, न्यासस्वस्थी पुत्र, रिपुपुत्र और प्रियपुत्र।

श्यामस्वस्थी पुत्र।—यदि कोई श्याम पूर्ण वा इस
जन्ममें किसी निकट कोई नशु श्याम (घात) रखे
और जिसके निकट न्यास रखा जाय, वह यदि श्याम-
स्वामीकी उग/कर गच्छिष्य वसु स्वयं ले न, तो न्याम-
स्वामी पराजयमें सम है वही पुत्ररूपमें जन्म लेता है
और रूपगुणसम्पन्न हो कर भक्तिपूर्वक प्रतिदिन
प्रियवाक्यसे पिताको प्रसन्न रखता है। पिता भी पुत्रके
पुत्रोचित व्यवहार और भूमधिक स्नेहममतासे पुत्र-
गतपाप हो सर्वदा पानन्द-मागरमें गोता खाते है।

इस प्रकार कर्मणः पुत्ररूपो न्यासस्थामो जय देवता
है, कि उसके प्रति पिताका गहरा प्रेम हो गया और
उसके भरण-पोषणमें गच्छित धनका उपयोग भी कर
सुका, तब वह अकालमें अपना देहत्याग कर देता है।
इस प्रकार श्यामापहरणमें जैसा दुःख उसे हुआ था,
पितृरूपो श्यामापहारको वैसा ही बट दे कर वह
चला जाता है। पिता पुत्रकी मृत्यु देख जब वा पुत्र
कह कर रोते हैं, तब वह 'कोन किसका पुत्र है' यह
कह कर हास्य करता है और कहता है, 'पहले तुमने
मैंरा श्यामापहरण कर मुझे जंसा कष्ट दिया है, उसके
प्रतिफलमें आज मैं तुम्हें वैसा ही दुःख और विगाचत्व
प्रदान कर अपने घर जाता हूँ—मैं किसीका पुत्र
नहीं हूँ'।

शृणवस्वस्थी पुत्र।—यदि कोई मनुष्य किसीके कृपा
को कर मर जाय, तो कृपादाता उसमें यहाँ पुत्र, भाँदे
अथवा पितृरूपमें जन्म लेता है। वह वादरमें ही उसका
मित्र, पर भोतरसे शत्रु बना रहता है। पुत्ररूपी शृणवदाता
सर्वदा क्रूरता और निष्ठुरताका आशय लेता है,
किसीका भी गुण नहीं समझता। वह माता, पिता
आदि स्वजनोके प्रति निरन्तर निष्ठुर वाक्यका प्रयोग
किया करता है, प्रतिदिन मित्रभोजन और नाना प्रकार-
की विस्मयितासे लगा रहता है। वह पुत्र सब समय
यथादि निन्दित कार्योंमें भागल्ल हो कर घरसे द्रव्यादि
चुरा ले जाता है। इस पर माता पिता यदि पुत्रको
निषेध करें, तो वह उनको एक भी नहीं सुनता, उल्टे
माता-पिताको ही दुर्वाक्य कहता है। यहाँ तब कि
कोड़े चाबुक आदिकी मार भो दे कर उन्हें जर्जरित
कर डालता है। शृणवस्वस्थी पुत्र दिनों दिन माता-
पिताकी तरह तरहके कष्ट देता है और कहा करता है,
कि इस शृङ्खलादिमें जो कुछ वस्तु है, वह मेरी है,
तुम लोगोका इसमें कोई अधिकार नहीं है। माता-
पिता पुत्रके ऐसे व्यवहार पर हमेशा दुःखमें समय
जिताते हैं। माता पिताके मरने पर भी वह पुत्र घृणा
और स्नेहमय्य हो कर उनको पारलौकिक आवादि
किसी भी कार्यका अनुष्ठान नहीं करता।

रिपुपुत्र।—रिपुपुत्र वचनमें ही रिपु ही तरह व्यव-

जा करता है, कोड़ा करने करने भी मातापिताको माँ पर लगा हुआ भाग जाता है और फिर कुछ देरके बाद उनके पास लौट जाता है। विपुत्र जब भी माता-पिता की नहीं होता, हमेशा कोको को कर और कम किया करता है। इस प्रकार पुत्रों के माता स्वभाव का सब विषय और माताको माँ पर सब चला जाता है।

प्रियपुत्र।—प्रियपुत्र जन्ममात्र ही वात्सल्यमाने मानने और कोटन द्वारा माता पिताका प्रीतिभाजन होता है। पीछे सप्रेम प्रेम भी कर भक्ति, सुख, पा, स्नेह और प्रिय स्थापन पादि द्वारा उन्हें प्रसन्न रखनेकी कोशिश करता है। चलकर माता पिताको स्थापु होने पर भी वह स्नेहमग्न होता है और भक्तिपूर्वक दुःखित चित्तमें उनके आदर और विनम्रता पादि ओरेंदेखिके कम विनिवृत्तमें रहता है।

इस बार पुत्रों के चमत्कार। उदासीन पुत्र नामक एक और भी पुत्रका उल्लेख देखनेमें आता है। यह पुत्र बात टिन उदासीन भावमें रहता है, किसीके कोई वस्तु नहीं माँगता और न किसीको कुछ देता भी है। इसके किसी विषयमें कंधे चपचा परितुष्ट नहीं है। उदासीन पुत्र एक व्यापकता त्याग कर किसी दूसरे व्यापकता चला भी नहीं जाता, सभी विषयोंमें उदासीनता प्रकट करता है।

पुत्र जिन प्रकार स्थापनस्थित होता है, उन्हीं प्रकार भागी, पितामाता, स्वयंभू, स्थापन एवं सुरंग, गज, मरिचो और दासा ये सब भी स्थापनस्थितों को कर रहते हैं वहाँ स्थापनस्थित कर मर जाते हैं। वृत्तदाता जिन प्रकार परमार्थमें वृत्तवृत्तोंका प्रवृत्तमें रहता है, भागी, पितामाता पादि भा सबी प्रकार जन्म लेते हैं।

“एवा पुतासुवा भावी पितामाताय वत्सवत्।

मृत्वासाये माहावताः पशवस्तुगावस्तथा।

मत्तः मरिचो दाम्पत्यं स्वयंभूविभवस्तनीव”

(५८३३३३ मृत्ति १० अ०)

भूमिपत्रमें दूसरी प्रकट सुपुत्र के स्वभावकी सम्प्रतिभं भगवान् ब्रह्मदेव कहते हैं—ओ पुत्र प्राणी, सुविमान्, तन्मो और नामों की, जिनकी साम्यापुत्रकारण और मरपुत्रमें साम्य रहनेकी, ओ पुत्र सभी कार्योंमें धर्मोपस्थित, विदाध्ययनमें तत्पर, सभी माताका वत्स,

देवता और माताका पुत्र, दाता, गानो, विषमापी, मतत विष्णुपानप्राप्त्य और मर्त्यता गाना, दाता, सुदृढ़, मातापिताका सुख, पा, स्नेह, स्वयंभूवत्, कुत-तारक और कुलका परिपोषक होगा, वही पुत्र सुपुत्र और सर्वजनका सुपदाता है।

माताके सुपुत्रकी भी अद्भुतशक्ति वतमाव है। पुत्र-तोयं समो नीवांश्च योऽयं तीर्थं है। सन्तुष्टपुत्र परम तोयं वा कर पूर्वपुत्रवत्पुत्र सुविमान् करने के और विना भी पित्रवत्पुत्रमें सुख लेते हैं। रहते हैं, नि पुराणकर्म वेद शास्त्रा धर्मोपस्थितों को और कोई धर्म नहीं मानते थे; तो भी वे सुदृढ़, साम्यापुत्र पुत्रोत्तम द्वारा पुत्र को कर परमपदमें प्रमोद हो गये थे।

पुत्रके ये शेष होनेपर पुत्र, पुत्रवत्पुत्र साध पाते हैं। केवल दत्तता ही नहीं, हमके अधस्तन वंशधर भी पति पति को कर वत्तर पाते हैं।

“वेदवो यदि पुत्रः स्यात् स तां गतिं पूर्वमाप्नु।

विमुक्तवत्तता वंशावतारवत्तपतिप्राप्तयः”

(५८३३३३ मृत्ति १०)

सुपुत्रके जन्म लेने पर मनुष्य जिन प्रकार सभी विषयोंमें सुख पाते हैं, सुपुत्रके जन्म लेने पर उन्हीं प्रकार वे पद पदमें दुःख भोगते हैं। सुपुत्र द्वारा मातापिता चपको जोषहान् को तरह तत्पुत्र कट पाते हैं, पीछे वात्सल्यमें भी उन्हें नरककी प्राप्ति होती है। सुपुत्रके जन्म लेने पर पुत्रपुत्रवत्पुत्र पति दुःखिभावमें धारम्भा और नरकमें पतित होते हैं। जिन प्रकार कोई मृदु शक्ति सम्पुत्रका द्वारा नदी धार इतने समय जन्ममें दुःख जाता है, सभी प्रकार पिता भी सुपुत्र द्वारा नरकमें साध तो क्या पावेन, पश्यतमम नामक और नरकमें निमग्न होते हैं। पुत्रके जन्म लेने को विनामममम सन्दिग्ध हो यह भोजने है, कि “यह पुत्र क्या सुपुत्र को कर हम मोर्तोंकी नरकमें मिरचिगा चपचा ये पद को कर मर्त्य पदवा-येता।”

प्रकटने मर्त्यपुत्राधिक प्रकृतियुक्तमें माता प्रकारके पुत्रोंका उल्लेख है। यथा—वरज, दीर्घज, सेतज, दासज, विद्यापहीता, मन्मथहीता और कन्यापहीता।

‘वरजो यौवनेनैव क्षीयति; वालं कर्त्तव्यम् ।

विद्यामन्त्रमुतानाद्यन् प्रहीता सप्तमः पुत्रः ॥”

(प्रकृत्या ० ५६ अ०)

पुत्रका सुख देखनेसे मातापिताको पुण्य होता है ।

ब्रह्मवैवर्तपुराणके मणपतिखण्डमें लिखा है—

पार्श्वतोने पुत्रप्रसवके बाद महादेवसे कहा था. “हे प्राणेश्वर ! तुम कल्प कल्पमें जिसकी कामना करते हो, आज घर या कर तपस्याके फलस्वरूप उस पवित्र पुत्र-सुखके दर्शन कर लो ।” पुत्र पिताको पुण्यम नरक और इस संसारसे परित्राण करता है । सर्व तीर्थोंमें स्नान, दक्षिणापूर्वक यज्ञसम्पादन, विधिमत्त दान, पुष्टिवा-प्रदक्षिण, सर्वविध तपस्या, अनशनव्रत, देवताकी सेवा और ब्राह्मणभोजन ये सब कार्य करनेसे जो पुण्य होता है, सत्पुत्रप्राप्तिसे उससे भी अधिक पुण्य प्राप्त होता है ।

धनधान्यादि सभी वस्तु पुत्रहीतुक्त हुआ करती है । पुत्र जिसका अपभोग नहीं करता, वह निष्फल है । एक मापी सौ कूपसे अधिक है, एक सरोवर सौ मापीके समान है और भी सरोवरमें एक यज्ञ अधिक है । किन्तु एकमात्र सत्पुत्र को यज्ञोंमें भी अधिक है । अपने प्राणसे भी बड़ कर सत्पुत्र सुख प्रदान करता है । पिता-माताके सम्बन्धमें सत्पुत्र भिन्न और कोई श्रेष्ठ वान्यव न कभी हुआ है और न होगा ।

मातापिता सत्पुत्रमें पराजित हो कर भी परम आनन्दित होते हैं ।

“नन्दः सपुत्रको हृष्टं सभायां साधुलोचनं ।

आनन्दपुत्रका मनुजः सति पुत्रैः पराजिताः ॥”

(मनुस्मृति ० धीकृष्णजन्म ० ११ अ०)

एक पुत्रके विद्यमान रहने पर भी अनेक पुत्रोंकी कामना करना उचित है । क्योंकि अनेक पुत्र रहनेसे उनमेंसे यदि एक भी पुत्र सत्पुत्र निकले, तो वह गथा-क्षेत्रगमन मभूति सत्क्रिया द्वारा अपने वितरोंका सञ्चार कर सकता है ।

“एवमेषा सहस्रः पुत्रा ययत्येको ययां ब्रजेत् ।

यजेद् वा नश्येयेन गीर्त्तं ता ह्यमुष्यजेत् ॥”

(मातृपुत्र ० ११ अ०)

गुणहीन अनेक पुत्र न हो कर यदि गुणवाली एक ही पुत्र हो, तो उसीसे कुल भूषित होता है ।

“एकेनापि सुहृत्तेण पुत्रितेन सुगमिष्या ।

यनं सुप्रसिद्धं सर्वं सुपुत्रेण कृत्तं यथा ॥

एकोहि पुत्रवान् पुत्रो निर्गुणेन सतेन किम् ।

यश्चो हस्ति तमाल्येको न च ज्योतिः सहस्रतः ॥”

(गृह्यसु० ११४-१५ अ०)

पाँच वर्ष तक पुत्रका स्नानन-पानन करे, दश वर्ष तक ताड़ना करे, पीछे सोलह वर्षकी उमरमें पुत्रको साथ मित्र-सा आचरण करना उचित है ।

पुत्र जन्म ले कर यदि क्रमशः सद्गुणमम्पन्न हो और परिमितकाल तक जीवित रहे, तो वही पितामाताका आनन्दप्रदायक होता है । अन्यथा पुत्र शत्रुकी तरह सभी विषयोंमें उन्हें दुःख पहुँचाता है ।

“सालयेत् परुषवर्षाणि दशवर्षाणि तत्रयेत् ।

प्राप्ते तु बोद्धे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ॥

आयमानो हरेरारान् वर्द्धमानो हरेदन्म् ।

निवमानो हरेत् प्राणान् वासित पुत्रसमोऽपि ॥”

(गृह्यसु० ११४-१५ अ०)

सात वर्षे यपुराणमें साधारणतः उत्तम, मध्यम और अधम इन तीन प्रकारके पुत्रोंका उल्लेख है । इनमेंसे जो पुत्र पूर्वोपाजित पैदाहवन, योग्य और यशकी पत्तुष्ट-भावसे रक्षा कर सकता है, उसे मध्यम ; जो अपनी शक्तिसे पिताको उपाजित धनको वृद्धि कर सकता है, उसे उत्तम और जो पुत्र पैदाहवन, योग्य और यशकी धीरे धीरे नष्ट कर डालता है, उसे अधम कहते हैं ।

“यदुवासे यशः पित्रा यनं यौवैयपापि ना ।

तप्त हावयते यस्तु स नरो मध्यमः हृद्यतः ॥

तद्दीर्घायुर्लभिकं यस्तु पुनरप्येत एवसकितः ।

निश्चययति तं प्राज्ञा वरन्ति नःसुतम् ॥

यः पित्रा सत्पुत्रात्तानि धनवीर्यवशांति न ।

न्यूनतां नयति प्राज्ञास्तमाहुः पुत्रावधम् ॥”

(मार्कण्डेयपु०)

मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि पुत्र अनेक रहने पर भी कनिष्ठपुत्र यदि पिता माताका आज्ञाकारी हो, तो वही पुत्र पैदाहवन राज्यका अधिकारी हो सकता है ।

१ सप्तममेद । पुत्रसप्तमे वेतो ।

पुत्रता (स० स्त्री०) पुत्रस्य भावः, पुत्रभावे तत्तत्तापः ।
 पुत्रका भावः, पुत्रका धर्मः, पुत्रका कार्यः ।
 पुत्रदा (स० स्त्री०) पुत्रं गर्भे ददाति सेवनेनेति दा-
 क्तत्वात् । १ अश्वत्थार्ककोटकी, बामक ककोड़ा ।
 २ सत्त्वोक्तम् । ३ गर्भदात्री स्तूपः । ४ श्वेतकण्टकारी,
 मफेद भटकटैया । ५ लोवन्ती ।
 पुत्रदात्री (स० स्त्री०) पुत्रं ददाति सेवनेनेति दा-
 क्तत्वात् । मानवप्रभिर्यज्ञाविशेषः, एकं यज्ञं तां मानवा-
 म्नेह्योतीति । पश्या—वाताश्वी, अश्वी, श्वेतपुष्टिका,
 हतपञ्च, प्रतिगन्ध्यासु, वैश्वीजाता, सुवर्णरी । शुष्ण—वात,
 कटु, उष्ण और कफनाशक, सर्वदा पण्य और वन्या-
 होवनायक । २ अश्वत्थार्ककोटकी । ३ श्वेतकण्टकारी ।
 पुत्रविष्ट (स० स्त्री०) रक्त, रङ्गा ।
 पुत्रपुत्रिणी (स० स्त्री०) धर्ममाता ।
 पुत्रपौत्र (स० स्त्री०) पुत्रस्य पौत्रस्य तयोः समाहारः, गवा-
 र्वादिस्त्र्याः समाहारश्च । (पा १।४।१२) पुत्र और पौत्र-
 का समाहारः ।
 पुत्रपौत्रिण (स० स्त्री०) पौत्रपौत्रकामिक, पुरुषानु-
 क्रामिक, वंशपरम्परायि ।
 पुत्रपौत्रोत्थ (स० स्त्री०) पुत्रपौत्रं तदनुभवति च ।
 (पा १।४।१०) पुत्रपौत्रं पश्यन्तमामो ।
 पुत्रपौत्रयता (स० स्त्री०) पुत्रपौत्रोत्थ-भावे तत्तत्ता-
 पः । पुत्रपौत्रगामिता ।
 पुत्रपदा (स० स्त्री०) १ चविका, बरहंटा । २ श्वेतकण्टकारी,
 मफेद भटकटैया । ३ अश्वत्थार्ककोटकी, बामक ककोड़ा ।
 पुत्रमित्र (स० पुं०) १ पञ्चोद्भेदः । पुत्रस्य मित्रः । २
 पुत्रका मित्रः ।
 पुत्रभद्र (स० स्त्री०) पुत्रस्य भद्रं यस्याः । हृदयकोवन्ती
 कता, बड़ो लोवनी ।
 पुत्रभाव (स० पुं०) पुत्रस्य भावः । १ पुत्रत्व । २ ज्योतीत
 पञ्चम भावः ।

सम्बन्धे पञ्चमस्यागको पुत्रस्थान कहते हैं । इस
 पञ्चमस्थानमें ज्योतिषस्य पञ्चितीको बुद्धि, संचार, पुण्य,
 मन्त्र, विद्या, विनय और नीति चादिकी पानो-
 चना करनी चाहिये । इस पुत्रभाव द्वारा किसके जितने
 पुत्र वा कन्या होगे तथा कौन व्यक्ति निःसन्तान होगा,

यह जाना जाता है । यदि लग्नपति लग्नमें, द्वितीय
 अथवा तृतीय गृहमें रहे, तो प्रथममें पुत्र और
 यदि वह लग्नाधिप चतुर्थ भवनमें रहे, तो द्वितीयमें
 पुत्र होगा । यदि चतुर्थ गृहमें शुक्र रहे अथवा
 उसमें दृष्टि पड़े, तो पुत्रयोग होता है । इनका
 विपरीत होनेसे अर्थात् अशुभग्रह का अस्थान या दृष्टि
 रहनेसे अपुत्रत्व योग होता है । यदि पुत्रभावमें आधि-
 पति यह वा अन्य किसी शुभग्रहकी दृष्टि पड़े अथवा
 शुभग्रह उस स्थानमें रहे, तो पुत्रपद धनक सन्तान
 होती है । वह स्थान यदि तत्त्वस्थानमें दृष्ट न हो कर
 क्षूरग्रहसे दृष्ट हो, तो सन्तानकी क्षमता क्षीण होती है ।
 लग्नाधिपति यदि लग्नमें द्वितीय अथवा तृतीय स्थानमें
 रहे, तो द्वितीय और तृतीयदि गर्भमें पुत्र उत्पन्न होगा ।
 शुक्र, मङ्गल और चन्द्र ये तीनों ग्रह यदि हस्तगत राशियों
 रहे, तो प्रथम गर्भमें पुत्र होता है । किन्तु यदि उक्त
 तीनों ग्रह धनुराशियुक्त हों, तो प्रथम वा गर्भमें पुत्र
 नहीं होता । पुत्रभावमें जितने पदोंमें दृष्टि पड़ती
 है, मनुष्यके उतने ही सन्तान होती है । इसमें विशेष-
 यता यह है, कि पुत्रग्रहको दृष्टिसे पुत्र और पौत्रग्रहों
 दृष्टिसे कन्या होती है । किमोक्ता मत्त यह भी है, कि
 सन्तानभावके पक्षमें समान संख्यक सन्तान होती हैं । पञ्चम
 स्थानमें जिस जिन ग्रहों दृष्टि पड़ती है, वे यदि उक्त
 और मित्र गृहस्थित हों, तो शुभफल और यदि नीच
 मङ्गल गृहगत हों, तो अशुभ फल होता है । पञ्चम-
 स्थानके नागवर्ण्यक अथवा उस स्थानमें जितने शुभ
 ग्रहोंकी दृष्टि है, उससे दूगुनी सन्तान उत्पन्न होती है ।
 सुतभवनमें पापग्रहको दृष्टि वा योग द्वारा सन्तान क्षय
 वा हन्य होता है । शुभाशुभ पक्षमें योग वा दृष्टिसे
 मध्यविध सन्तान क्षया करती है ।

यदि शुभमन्त्रन किन्ने पापग्रहका गृह हो, उसमें
 किसी पापग्रहका योग रहे और शुभग्रहकी दृष्टि नहीं
 पड़ती हो, तो उस व्यक्तिके कोई सन्तान नहीं होती ।
 जिसके जन्मकालमें सन्तानके समान स्थानमें शुक्र, दशममें
 चन्द्र और चतुर्थ स्थानमें पापग्रह रहे, तो वह व्यक्ति
 निरय हो सन्तानविहीन होगा है ।

यदि पुत्रभाव शुक्रका नवांग हो और उस पर शुक्रको

हटि पड़ती हो, तो पत्नीक सन्मान पचवा उस पंगके समान
स्थान होनी है। ये सब समान जन्मरत, पौष्टिक
या: दास्यकर्ममें निरत रहनेमें, ऐसा जानना होगा।
मन्त्र-मन्त्राजका पवित्रता यह जिस स्थानमें रहेगा, उस
स्थानमें पद्म, पद्म वा दादम गृहमें यदि कोई पद्म
पर रहे, तो समुद्रमें पुत्र नहीं होता और यदि हो भी
जाय, तो वह जीवित नहीं रहेगा। यदि इसलान्
पद्म स्थानका पवित्रता हो कर दगम स्थानमें रहे और
नृपपवित्रता एकादश गृहमें तथा उस एकादश गृहमें
यदि पापवह रहता हो और वह पापवह नष्ट तथा
दशगृहस्थान स्थित हो, तो पुत्र जन्म नहीं नेता। यदि
चन्द्रमा में पद्मस्थानमें बुध रहे और वह स्थान यदि
पापवहका गृह हो, तो पुत्र वा कन्या कुछ भी नहीं
जाये। चन्द्रमा में पद्म स्थानमें यदि पापवह रहे, तो
पुत्रकी ओर यदि पद्म वा एकादश स्थानमें रहे,
तो कन्याकी प्राप्ति होती है। शुभभवन शुद्ध वा
चन्द्रके वर्ष पचवा शुद्ध वा चन्द्रके सोलिस वा शुद्ध होनेसे
तथा वह स्थान समरामिका वर्ग होनेसे कन्या और
विषम रामिका वर्ग होनेसे पुत्र होता है। जिसका
पुत्रस्थान गनिका गृह हो और गनिपुत्र हो वा गनिकी
हटि पड़ती हो, वह व्यक्ति दण्डकपुत्र लाभ करेगा।
इस प्रकार बुधके पद्माधिति और पद्म गृहस्थित
पचवा पद्मगृह पर हटि पड़नेसे समुद्र ज्ञात पुत्र प्राप्त
करता है। यदि पुत्रभवनमें गनिके वर्ग पर कोई
पद्म रहता हो और सुंघ पर चन्द्र हो हटि पड़ती हो,
वा रवि जटल हटि गृहके वर्ग पर किसी पद्मका
संस्थान हो, तो पुनर्भव पुत्र लाभ होता है।
पुत्रभाव यदि गनिका गृह हो और उस पर रवि, बुध
वा मङ्गलकी हटि पड़ती हो पचना उस स्थानमें गनि
कर्त्तृक हटि बुधका वर्गभूत कोई पद्म रहता हो, तो
पुत्र पुत्रलाभ होता है। किसी पुत्रवर्ग पद्म भावके
नवानमें शुभपक्षको हटि पड़ कर जिनसे पद्म पक्षांकी
हटि पड़ती हो, उनको जो बार उस पुत्रवर्गी पक्षांका
वर्ग प्राप्त होता है। उदाहरण कर्त्तृक हटि पुत्रभवनका
मङ्गल पुनः पुनः ज्ञात भावकी गट्ट कर जानना है,
किर यदि वह मङ्गल पद्म पर शुद्ध हो हटि पड़े, तो

मङ्गल भावजालक गट्ट हो जाता है। (वातकावर्य)

इस प्रकार पुत्रभावके सभी विषय ज्ञाने ज्ञाने है।
जिस जिस पक्षादिका विषय लिखा गया, उनका स्फुट
करके फलका विचार करना होता है, क्योंकि पक्षादिकी
स्फुट गणना किये बिना फल ठीक ठीक नहीं निकलता।
पुत्रस्थानमें किस पक्षके रहनेसे और जिस पक्षको
हटिने के वा फल होता है, उसका भी विषय पति,
संसेपमें लिखा जाता है।

अथवास्तवमें यदि पद्म गृहमें सूर्य हो और वह गृह
निजका हो, तो उस स्थानका प्रथम पुत्र गट्ट होता है,
किन्तु पन्थान् पुत्र जीवित रहने है। वह पद्मगृह सूर्य यदि
स्फुटगत हो, तो गर्भमें ही सन्तान निरत हो जाती है।
सूर्यके पुत्रस्थानमें रहनेसे मानव वास्तुतात्तमें सुप्रभोगी
होता है, पर वह भनवान् जन्म नहीं होता और योगन-
कासमें जन्मा दुःख भोगता है। समस्त केवल एक पुत्र
होता है, वह भी गुरुवर्धित, चतुर्नविश, निराल्,
क्षिप और मनिनवषपरिधायी तथा क्षुब्धवर्मा।

अथवास्तवमें चन्द्रमाके पुत्रस्थानमें रहनेसे मानव
प्रेमप्रधान, सुखी और बहुपुत्रसम्पन्न होता है तथा
उसे परमदयवती माया प्राप्त होती है। किन्तु उस
चन्द्रमाके चतुर्गोन होनेसे वा वह स्थान पद्म वा मङ्गल-
गृह होनेसे सबका सब सुख जाता रहता है।

अथवास्तवमें यदि मङ्गल पुत्रस्थानमें हो और वह
मङ्गल मङ्गल कर्त्तृक हटि हो कर मङ्गलभावेमें रहि
पचवा नीच स्थानस्थित हो, तो उस स्थानके पुत्रगोन
होता है। मङ्गलके पुत्रस्थानमें रहनेसे वह पुत्रगोन,
धनगोन और दुःखभोगी होता है। किन्तु यदि वह
स्थान निरवह-गुह स्थान हो, तो समस्त मायावी
मनिनवषित एव पुत्र उत्पन्न होता है।

अनुसन्धानमें यदि बुध पुत्रस्थानमें रह कर पापवह-
में हटि पचवा पापवहगुह हो, तो सुभोग पुत्र जन्म
नेता है। इसका विषय नीचे पुत्र वा तो सर जाता
या विमङ्गल होता हो नहीं।

अथवास्तवमें उदयनिके पुत्रस्थानमें रहनेसे समुद्र
अन्यामी, बहुमाया और पुत्रपुत्र तथा समस्त नष्ट
होता है।

जन्मकालमें शुक्रके पुत्रस्थानमें रहनेसे मनुष्य बहु-
कन्याविशिष्ट, अल्पपुत्रयुक्त, दाता, भोक्ता, शुषवान्,
धनवान्, और सतत दुःखान्वित होता है। जन्मकालमें
शनि यदि पुत्रस्थानमें हो और वह पुत्रस्थान यदि शनिका
ग्रह नष्ट हो, तो ममो पुत्र नष्ट हो जाते हैं। वह पुत्र-
स्थान यदि शनिका सप्तस्थान हो और शनि सप्तपुत्र
वसवान् रहे, तो केवल एक पुत्रपुत्र जन्म लेता है।

जन्मकालमें राहुके पुत्रस्थानमें रहनेसे मनुष्यके केवल
एक मन्त्रिन दोन पुत्र होमा ऐसा जानना चाहिये।
किन्तु पक्षम स्थान यदि चन्द्रका नष्ट हो, तो एक भी
सन्तान नहीं होती। (ज्योतिःकल्पलता)

पुत्रमञ्जरी (स० स्त्री०) पुत्रदात्री।

पुत्रमय (स० त्रि०) पुत्रस्वरूपे मयट्। पुत्रस्वरूप, पुत्रके
समान।

पुत्रवत् (स० त्रि०) पुत्रो विधत्तेऽस्य मनुष्य, मस्य व। १
पुत्रयुक्त। २ पुत्रतुल्य, पुत्रसदृश।

पुत्रवत्ता (स० त्रि०) जिसकी पुत्र हो, पुत्रवत्ता।

पुत्रवत्तन (स० त्रि०) पुत्रवत्तनः। पुत्रके प्राप्त भविष्य
स्नेहयुक्त।

पुत्रवधू (स० स्त्री०) पुत्रस्य वधूः। पुत्रकी पत्नी,
पत्नी।

पुत्रवध (स० त्रि०) पुत्रोऽप्यस्य वधवः। पुत्रयुक्त, जिसके
पुत्र हो।

पुत्रविध (स० स्त्री०) पुत्रलाभ।

पुत्रग्रहो (स० स्त्री०) पुत्रं पवित्रं गृह्णामिष पुत्रं यस्याः
गौरादित्वात् स्त्रीयः। पञ्चग्रही, मेघादि गौ।

पुत्रश्रेणी (स० स्त्री०) १ श्रुतिकर्णो, मृगाश्री। २
क्षयादस्त्रीक्षुपः। ३ भजश्री।

पुत्रसख (स० पु०) पुत्रार्था सखा, तत्तद्वत्, सगासन्तः।
पुत्रका सखा, मित्र, दोस्त।

पुत्रसद्विन् (स० पु०) पुत्रो पुत्रोत्पादन मङ्गरी। वह जो
दृष्टिको स्त्रीसे पुत्रोत्पादन करता है।

पुत्रसहस्र (स० स्त्री०) नीलकण्ठनाजि दोन सहस्रभेद।
नीलकण्ठने ५० प्रकारके सहस्र वस्तुवाये हैं जिनमेंसे
पुत्रसहस्र एक है।

दिन अथवा रातको लक्ष्मिस्तस्फुटमेंसे चन्द्रस्फुट

विशेष करके अवशिष्ट अक्षकी लग्नस्फुटके साथ योग
करनेसे जो फल होगा वही पुत्रसहस्र है।

पुत्रसहस्रमें शुभग्रह और उसके स्वामिग्रहका योग
तथा दृष्टि रहनेसे पुत्रलाभ होता है। फिर पापयुक्त और
शुभग्रहके योगविशेषसे पहले पुत्र दुःख और पीछे सख
पाता है। पापयुक्त और पापग्रहके साथ इमराफ योग
होनेसे पुत्रनाश होता है। सहस्राधिपतिके अन्तर्गत और
दुर्बल रहने पर भी पुत्रका अष्टम अवश्याभावी है।
जन्मकालमें पुत्रस्थानाधिपति यदि अष्टमवश्याका जन्म
पुत्रसहस्राधिपति का और उस पुत्रसहस्रमें यदि शुभग्रह
की स्नेहदृष्टि पड़ती हो, तो सम्भवा चाहिये कि उन
वर्षमें अवश्य पुत्रलाभ होगा। (नीलकण्ठनाजः) सहस्र
देखो। अष्टमवश्यामें उन मध्य सहस्राध्या विचार करके
फलाफल स्थिर करना होता है।

पुत्रस (स० स्त्री०) पुत्रं सृते इति सूक्ष्मपः। पुत्रनिका।

पुत्रहत (स० त्रि०) १ जिसका पुत्र मारा गया हो।
(पु०) २ मृगिह।

पुत्राचार्य (स० पु०) पुत्र आचार्योऽध्यापको यस्य। वह
जो पुत्रके निकट अध्ययन करता है।

पुत्रादिन् (स० पु०) पुत्रमस्ति, अदःगिनि। पुत्रभक्षक,
बेटेको खानेवाला।

पुत्रवादा (स० त्रि०) पुत्रस्य अर्थं तदुपहृतमवससीति
ददःग्रहः। पुत्रग्रहभोजो, पुत्रका अन्न खानेवाला। इ-
का पर्याय कुटीचक है।

पुत्रिका (स० स्त्री०) पुत्रो रक्षार्थं कन्, टापः। (के०गः।
वा ७।१।३) इति कृत्वाः। १ कन्या, बेटा। पर्याय—
आत्मजा, दुर्जिता, पुत्री, तनुजा, सुता, पत्न्य, पुत्रका,
स्वजा, तनया, नन्दिनी। २ पुत्रके स्वाम पर भारी
हुई कन्या।

“अपुत्रोऽनेन विधिना पुत्रो कृत्वात् पुत्रिकाम्।

वदपर्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात् स्वपादरे ॥

अनेन तु विधानेन पुत्रा चक्रेऽय पुत्रिकाः।

विद्वद्वर्ये स्वर्गवर्ण स्वयं दक्षः प्रजापतिः ॥

पुत्र पुत्रात् तिमरं पुत्र न हो, नर कन्याको पुत्रः। यथात् पुत्रपुत्रे वदन् कर मकरा है। इनका विधान मनुने दम प्रकार प्रमाण है। विवाहके समय यह कामनामें यह शिष्य का है कि 'कन्यायाः प्रो पुत्र भोगा नर मेरा 'दशधा' यथात् मुझे 'पुत्र' देने वाला हो। मेरा सम्पत्ति का अधिकारी होगा। दस प्रकार पत्तिने तिम मंगलदिके निये इनो प्रकार धर्म हो दम हो। कायवादि हो पनेक कन्याएं दान की थीं। नर कन्यापतिने तिम नर पुत्रोने प्रभाववत्त किया था, वे छोड़े दस विष्णुपद हुए थे। इन नियममें यदि कन्या दान न की जाय, तो कन्या हो विष्ठाधिकारियों होगी। किन्तु पुत्रिका बना कर यदि कन्या का विवाह किया जाय, तो उस कन्या का पुत्र विष्ठाधिकारी होता है।

इन नियममें पुत्रिका बना कर उसके बाद यदि उस व्यक्ति के पुत्र हो जाय, तो पुत्र और पुत्रिका दोनोंकी ही ममान धन मिलेगा। पुत्रकह कर उसको कोई प्रधानता न रहनी। किन्तु कन्या यद्यपि बड़ी है, तो भी उदार विषयों यथात् पुत्राभ्यासके लक्षण करनेमें समर्थ श्रेष्ठता न रहनी, क्योंकि रिश्वती या श्रेष्ठत्व पादरवीय नहीं है।

“पुत्रिकावो वृत्तायान्तरि पुत्रोपपन्नः।

समाप्त विभागाः स्यान्त्येष्टता मारित रिश्वतीः॥”

(मनु ८।१३)

पुत्रिका यदि पपुत्र अवस्थामें यथात् विना कोई मन्त्रा होके मर जाय, तो उसका स्वामी पारी ममानिका अधिकारी होगा।

“अनुप्रावो मृतमप्यु पुत्रिकागो वपुःपुत्रः।

यनं तपुत्रिका मनी इत्येता विधापुत्रः॥”

(मनु ८।१३)

पुत्रिका म प्रसा कर गति विवाह किया जाय, तो उसका स्वामी किसी प्रकार पनाधिकारी नहीं हो सकता। पुत्रो म पतिव्रताका दान (दत्त प्रहरी) न होना। दत्त कन्यापुत्रः। पुत्रिका, पुत्रको पुत्रिका। न पानकी पुत्रिका। कन्याका विध, स्वामी तसमीर।

पुत्रिकापुत्र (पुत्र पुत्र) पुत्रिकागो पुत्रः वा पुत्रिक पुत्रः, पुत्रिकायाः अनेकपुत्रः पुत्रो वहि मनीः पुत्रो मविष्य-नेति पुत्रपुत्रपुत्रे म कन्यायाः पुत्राणाः पुत्रः। कन्यायाः पुत्रो पुत्रो ममान ममान मया हो यो सम्पत्ति का अधिकारी हो।

“अनुप्रावो मृतमप्यु पुत्रो वपुःपुत्रः॥”

अतो यो मारित पुत्रः म मे पुत्रो मनीः॥”

(रिश्व)

अनुप्रावो पनेकता यह कन्या पुत्रो दान जाता है। इस कन्याके गर्भमें जो पुत्र होगा, वह मर पुत्र-मदप होगा, यथा पुत्रका हो पुत्र होगा। क्योंकि पुत्र और कन्या एक सामान्य-वत्त होगी है, इनकी दोनों ही ममान हैं। पुत्रका पुत्र और पुत्रिकाका पुत्र यथात् पुत्र और पुत्रिका इन दोनोंमें कोई मने नहीं है।

ममाना और दासभाग पादिमें यह मोमामिन हुआ है, कि पुत्रिका पुत्रधन वा मन्त्रो है।

मनुपुत्रमें विधा है, कि पुत्रिका बना देनेके बाद यदि वह पपुत्रा या मृतपुत्रा हो मर पानो ममान कर, तो उसका स्वामी सम्पत्ति का अधिकारी हो ममाना है। मनु का यह मत दासभागमें लिखन हुआ है, क्योंकि वेदोनिम वचनमें विधा है,—

“प्रेतावो पुत्रिकावो पुत्र म मनी, इत्यमर्षि।

अनुप्रावो वपुःपुत्रो वा वपुःपुत्रः मनी तपुःपुत्रा॥”

अनुप्रावो लिखित वचनमें वपुःपुत्र “प्रेतावो पुत्रिका वापुःपुत्रो मनी इत्यमर्षिवपुःपुत्राः॥” पुत्रिकाको मनुपुत्रो म मनी ममाना स्वामी सम्पत्ति का अधिकारी नहीं होगा। ऐसा होनेमें वपुःपुत्र विद्वत् मत प्रतीत होगा है। क्योंकि मनुने कहा है, कि उसका स्वामी विना किसी प्रकार का विचार बिने ही पनपकन न ममाना है। किन्तु मनु विविधादि वचनमें इनका विपरीत देखा जाता है। इनमें दास मने इनका मोमामा ममान प्रकार को है। यपुत्र शक्ति पुत्रिका कर ममाना है, कायन समो पुत्र ममाना नहीं होता। पुत्रिकाके गर्भमें जो पुत्र होगा वह उसका अनुप्राव यथात् पुत्रिके दान वाला होगा। इन्हीं वद व्यक्ति नियम हो पुत्र-ममानाकादि

निष्कृति पावेगा। यही कारण है, कि यह पुत्र सम्पदा-धिकारी होता है। किन्तु पुत्रिकाको यदि निःसन्ताना-वस्थामें मृत्यु हो जाय, तो फिर पिछादिकी सम्भावना नहीं रहती। इस कारण उसका स्वामी धनका अधिकारी नहीं हो सकता। निज मुख्य उद्देश्यसे उसने पुत्रिका बनाई, उसका यह उद्देश्य फलोभूत नहीं हुआ, इस कारण पुत्रिकाका स्वामी धनका किसी हानतसे अधिकारी नहीं हो सकता (दायभाग)। इसका विशेष विवरण मिताशरा और दायभाग आदिमें लिखा है। आज कल पुत्रिकारूपकी प्रथा प्रचलित नहीं है। मनु आदि धर्मशास्त्र कोषकर पुरातन काव्य और इतिहास आदिमें भी यह प्रसङ्ग देखनेमें नहीं आता।

पुत्रितामस्तु (सं० पु०) पुत्रिकायाः भर्ता। पुत्रिकाका स्वामी।

पुत्रितामस्तु (सं० स्त्री०) पुत्रिकायाः कन्यायाः प्रसूजनी।

पुत्रिका-जननी। इसका पर्याय धनस है।

पुत्रिकाशत (सं० पु०) पुत्रिकायाः शतः। पुत्रिकाका पुत्र। पुत्रिकापुत्रपुत्र।

पुत्रिन् (सं० पु०) पुत्रोऽस्या भवतीति पुत्र-इति-कीय। पुत्रपुत्र, पुत्रपुत्र।

पुत्री (सं० स्त्री०) पुत्रकोन् (आहूत)राशज्योदीन्। वा ३।१।१ वा गौरादिनात् ङोप्। सुता, कन्या, बेटा।

पुत्रीय (सं० स्त्री०) पुत्रस्य निमित्तं संयोग उत्पातो वा 'पुत्राच्छ' इति छ। १ पुत्रनिमित्तं संयोग। २ पुत्रनिमित्त उत्पात। पुत्रस्योदं छ। १ पुत्रसम्बन्धो।

पुत्रीया (सं० स्त्री०) पुत्रकामकी इच्छा।

पुत्रीयिष्ठ (सं० स्त्री०) पुत्रीय-उत्पत्ति। पुत्रीय-पुत्राभि-कायी।

पुत्रेष्टि (सं० स्त्री०) पुत्रनिमित्तका इष्टिरिति मध्यपद-कोवि कर्मधा०। पुत्रनिमित्तक यागविशेष, एक प्रकार-का यज्ञ जो पुत्रकी कामनासे किया जाता है।

पुत्राभिलाषनं यौतुष्ट (२।१।८) में इस यज्ञका विधान लिखा है। पुत्राभिलाषोको यह यज्ञ भवत्य करना चाहिये।

पत्नीके मरुत होने पर पुत्राभिलाषो यथाविधान पुत्रेष्टि कार्य करने पत्नीके साथ सहवास करे। चरकके

शरीरस्थान कम पश्चायमें इस पुत्रेष्टिका विषय लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां उसका उल्लेख नहीं किया गया।

पुत्रेष्टिका (सं० स्त्री०) पुत्रेष्टि कार्ये कन् टाप्, च। पुत्रनिमित्तक यागविशेष।

पुत्रेष्ट्या (सं० स्त्री०) पुत्रस्य यवणा। पुत्रेष्ट्या।

पुत्रोत्सव—पुत्रके जन्मादिमें किये जानेका उत्सव। पुत्रके जन्मादि उपलक्षमें जो सब कार्य किये जाते हैं उसे और पुत्रके पन्नाश्रयसे ले कर विवाह तक पुत्रसम्बन्धीय सभी कार्योंको पुत्रोत्सव कहते हैं। बहुत प्राचीन कालसे ही हिन्दू-समाजमें यह पुत्रोत्सव प्रथा चली आ रही है। वर्तमान समयमें दाक्षिणात्य आदि देशोंमें ही इसका विशेष प्रचलन देखा जाता है। दाक्षिणात्य-वासो ब्राह्मणोंके घर पुत्र जन्म होने पर छ दिन आभीय वन्मुवाश्रय और पश्चायमेंको चोनी मछी आदि मिष्टान्नदान वित्तका एकान्त कार्य है। प्यार-इवें दिग प्रसुतिके शरीरमें तिलतेल लगा कर स्नान कराया जाता है, इसी दिन प्रयोगदान भी होता है। छठे दिन 'पुत्राश्रय वाचनम्' नामसे प्रसिद्ध है। अनन्तर जात-वालकका 'नामकरण' करके उस दिन प्रयागम वन्मुवाश्रयोंके सामने माताको गोदमें पुत्रको सुखा रखते हैं और उपस्थित सभी धर्मि हरिद्वारस्नित आवल प्रसुति और पुत्रके मस्तक पर हस्तस्पर्श कर आशीर्वाद करते हैं। अनन्तर दरिद्रोंको मिष्टान्नदान और आभीय स्नानोंको भोजन देना होता है। इस दिन नाच गान तथा तरह तरहके पानोद-प्रमोद होते हैं। कन्याके जन्म होने पर इस प्रकारका उत्सव नहीं होता। कारण उसका विश्वास है, कि एकमात्र पुत्रसे ही मनुष्य 'स्वर्ग-लोक' वा इन्द्रपुरी जा सकते हैं। भगवान्गानि देको।

पुत्र (सं० स्त्री०) पुत्रस्य निमित्तं संयोग उत्पातो वंति, पुत्र यत्। १ पुत्रीय, पुत्रनिमित्त संयोग। २ पुत्रनिमित्त उत्पात।

पुद्गलपट्ट—उत्तर पार्कट जिलेके विस्तृत तालुकका एक नगर। यह चण्डिका और पोयिनो नदोंके सङ्गम-स्थल पर अवस्थित है। यहां नदोंके किनारे दोतराज-कृत एक मन्दिर और उसमें बल्कीय विस्तारवि पाज भी विद्यमान है।

પુરોના (૧૫૦ પુ.) એક હોગા હોય. એક જગીર જમીન
 ૩૨ જેમના છે હો. જગીર પધિકારને પધિકાર એક યા જેક
 વિત્તો જગા જાગા છે. રમકી પતિવો હો ટાકે પદ્મ
 ખર્ચો હોર દેવ પોતે હો પદ્મ ન તક હોઈ તથા કિનાર
 વા મટારદાર હોર દેવને પુરુષો હોતો છે. પતિવો-
 ને વધુને ગમ્ય નિજમનો છે. જમીને લેગ વધે પટનો
 વાદિને લેગ જર હાવને છે. પુરોનાના પોત નહો
 હોયા જાતા. એક રેટમાં જો લગાયા જાતા છે. પુરોના-
 ના પૂજ્ય મહેદ હોતા છે હોર હોજ કોટિ હોટિ હોત
 છે. પુરોના લેગ પ્રકારના હોતા છે. માધાણ, વજાકો
 હોર મનુરોના. જમપુરોનાકો પતિવો કુલ વજો હોતો
 છે. પુરોના રાજિકાર, ધર્મીનામાગ હોર વામનો
 રોકનવાના છે. એક પોષા હિન્દુસ્તાનને વાજરને માવા
 ગયા છે. પ્રાચીન યજ્ઞોને રમકા ઓળખ નહોં મિલતા
 છે. એક વિવામિટકો જાતિકા હો હોયા છે.

પુરુષોત્તમ-મહાત્મ્ય પ્રદેશને વનગર્ભ એક મામલરાય.
 એક વજા. ૧૦૦ મે ૧૦૪૪ મે ગયા છે. ૧૦૦૦ મે
 ૦૦૦ ૧૨૫ મે મધ્ય વનગર્ભ છે. રમકે હતાર હોર
 પધિકારે વિનિભાવો દિતા, રાજીને મદુરા હોર પૂર્વે
 તજીર છે. મુવરિમાળ ૧૧૦૪ મેગમોલ છે.

મિલેકા પધિકાર મામલ મનગલ છે હોર હોવ
 હોગને વનમામા મો મોમા દેતો છે. રમ વજા નેતો
 વા કુલ માધીન દુર્ગ મો વિચમાન છે. રાજ્ય મરને
 પ્રાણ: તોન જગાર મુજરિનો રંગો. રાજિકાર્ય હોક
 જર વજા નવા, વજા, પટાર હોર રમકો નવા મો
 પ્રમુલ હોતે છે. વજા જગલ જગલ મોટીકો વાન વાદે
 જાતો છે. વા કોદે મો જમે મામને નહોં જાતે. વજાના
 જમવા વજાવજર છે. મામલ વજાને વજાનો વજાનો
 મહો વજાનો. કારણ એક રાજ્ય મનુરુ વજા મહો
 જમા હવા છે. માવિ ક હટિ માત રર વજા છે.

વજાને મરદાર તોજમાન મામને વરિવિત છે.
 ૧૦૧૨ મે મા વિવજાવજોને વજાવજો મમજ રમકો
 મુદિત મરમેળ મો વજાનો મહાવજા વજાવજો. એક
 વજાવજોને હોજ વિમાન હોર વજાવજાનો હમિ હરે.
 એક વજાવજોને વજાવજોને વજાવજા મો મહો
 વિમાન હોર હોવજાનો હોર વજાવજોને હોવ જો

મુજ હિરા વજાને મો રમકોને વજાવજોને વજાનો મહાવજા
 હો હો. ૧૦૧૨ મે ૧૦ મે તજાવજાન પ્રમાવજાને
 મામ વિમાનેજાવજા હોર દુર્ગ વજાનો વજાને મુરુકો-
 હોર રાજને મુદિત મરમેળને વિરેદન હિવા. એક
 મે વજાવજો, લેગલ જર હોર માટ મોટિમકો મુદને
 મહાવજા દેનેક કારણ મહાવજા મરમેળને હમકો મોન
 પૂરો હો હો. હિન્દુ મરને વજાવજો, કિ વજા રાજા
 મરિવજાને પ્રમાવજા હવા વજાવજા હોતે. મો કોટ,
 વજાવજોને વજાવજાને વજાવજાને હમકો મરિવજા હોન મો
 માવજો.

રાજા રામવજા તોજમાન વજાવજાને વજાવજોને
 એક વજાવજા હો હો. એક વજા રાજ્યને હમો કારણ
 મહાવજા મામને મરને છે. હિન્દુ વજાવજાને મરિવજાને
 રમકાર એ વજાવજોને વજાવજાને હમકો વજાવજાને
 માવજો છે.

વજામાન રાજા રામવજાને માતો છે. રમકા મામ છે
 'રિજ રાજને રાજ ઓમાતેજ મેર મોજમાન વજા-
 દુર' રમકા જમ ૧૦૦૧ મે ૧૦ મે તજાવજાને વજા
 વા. રાજા રામવજાને રમ ૧૦૦૦ મે ૧૦ મે વિવા વા.
 રમકો માધીનને રમકો વિવા મેગ વજાવજો, કિ નિ-
 વજા વાદે હોવાન છે. રમ ૧૨ મોવો મહાવજા
 મિલતો છે. રમકે વજાને ૧૨૫ વજાવજા, ૧૨ વજા-
 રોનો હોર ૧૨૫ મિલિવજા મેગ છે. વજાવજા વજા-
 વજા રમક હોર વજાવજા મો છે. વજાવજાને વજા
 વજાને હો રાજાવજાને વજા છે. રાજાનો વજા-
 વજાવજા વજાવજા છે.

એક રાજ્યને ૧ મરદાર હોર ૧૦૦ વજાવજાને છે.
 જમવજા વજા વજાવજાને છે. મેકકો વજા ૮૨
 હિન્દુ હોર મેવને મુમનમાન, રેવાર તથા વજાવજા
 જાવિવો છે. રાજ્યને વજા વજા હોર વજાવજાને વજા
 રાજ્યકાર્ય મહા હારા વજાવજાને હોતા છે. વજા મહાને
 રાજા, હોવાન હોર વજાવજાને પ્રમાવજા છે. કમિને
 કમિલ મામલને હો મુદિત મરમેળને મહાવજા મહો વજા
 છે. રાજ્યને વિમાન: મરમાને વિમાન પ્રમાવજા છે. રેટર
 રાજિકા મિલકા મો વજાવજાને વિમાન વજાવજાને હમકો
 વજા મિલકા મરમાને વજાને વિમાન હોવજા મામલ મામલ

आता है। उस भिक्षु ने एक पुत्र को जो न हो, वहीं यह पल्लवार होता है जो पुनरुत्पत्ति नहीं है, विभिन्न मध्ये प्रयोगों में बोध होता है, ऐसे पल्लवार को पुनरुत्पत्ति नहीं है। इसका उदाहरण इस प्रकार है—
 'मुज्झकुण्डली' एक शिष्याश्रमश्रीतयः :
 जगत्पति सदापाददत्तवैतोहरः शिवः ॥"
 (वाहिसर० १०० पं०)

मुज्झ और कुण्डली दोनों ही मध्ये का अर्थ सर्व है। वास्तव में देखने से पुनरुत्पत्ति का बोध होता है, पर यद्यपि यह नहीं है, 'मुज्झकुण्डली' का यहाँ पर ऐसा अर्थ होगा, मुज्झकुण्डल विद्यमान है जिससे, यही मुज्झकुण्डली है। यह महादेवता विषय है किन्तु यहाँ पर पुनरुत्पत्ति का भाव हो जाने से यह पल्लवार हुआ। इसी प्रकार श्रमो, श्रमार्थ और श्रमार्थ, 'श्रम' और शिव 'पादात्' और 'समात्' इत्यादि मध्ये पादात्तः एकाग्र की तरह मतीयमान होने के कारण पुनरुत्पत्ति का नाम पल्लवार हुआ।

पुनरुत्पत्ति (सं० स्त्री०) एक बार को कभी हुई बात को फिर कहना, कह चुप बचन को दोहराना।

पुनरुत्पत्ति (सं० स्त्री०) पुनर्वा ररति, पुनर्जन्म सिद्धान्तकारीका कहना है, कि उत्पत्तिको पुनर्वा ररति नहीं हो सकती।

पुनरुत्पत्ति (सं० पुं०) पुनर्जन्म।

पुनरुत्पत्त्युत (सं० लि०) फिरसे योजित, फिरसे जोड़ना।

पुनरुत्पत्ति (सं० पुं०) पुनरागमन।

पुनर्गमन (सं० स्त्री०) पुनर्वा ररत।

पुनर्गमन (सं० स्त्री०) १ फिरसे लेना। २ पुनरुत्पत्ति।

पुनर्गमन (सं० स्त्री०) पुनर्भूयो अर्थ। फिरसे उत्पत्ति। एक शरीर कटने पर दूसरा शरीर धारण।

पुनर्गमन (सं० लि०) फिरसे उत्पत्ति।

पुनर्गमन (सं० पुं०) नव, नायून।

पुनर्गमन (सं० स्त्री०) द्वितीय पुनरपि नवा, वा पुनर्गमन।

पुनर्गमन (सं० पुं०) नव, नायून।

पुनर्गमन (सं० स्त्री०) द्वितीय पुनरपि नवा, वा पुनर्गमन।

पुनर्गमन (सं० पुं०) नव, नायून।

पुनर्गमन (सं० स्त्री०) द्वितीय पुनरपि नवा, वा पुनर्गमन।

इस पुनःप्रकारमें सिरोमुच्छ्रान्त, भेषजना मदा दत्त-
धारण, भिक्षु वीर कष्टवर्षकी वायव्यवृत्ता नहीं होती।

पुन (हि० पु०) पुनः, पुनः, पुनः।

पुनः—भूतानराज्यकी ऐतिहासिक राजधानी। यह पचा-
२० १६ चौर देगा ८८ ११ पू० दुर्गमो नदीके बाएँ
किनारे अवस्थित है।

पुनरा (हि० जि०) पुनरा मरना कहना, पुनरा जीवन
प्राप्त कर कहना।

पुनपुन—दक्षिण विशार वा प्राचीन मगध राज्यकी एक
नदी। यह गंगा नदीके दक्षिण भागमें निकलती है
और पवित्र मानी जाती है। इससे किनारे लोग सिन्धु-
दान करते हैं। वर्षाकाल छोड़ और सभी ऋतुओंमें
इसमें जल नहीं रहता।

पुनमङ्ग—मन्द्राज प्रदेशके चेन्नै नगर निवासागत छेदा-
घट तालुकका प्रधान नगर और घेन्वावास। यह पचा-
३० २४ ० १० चौर देगा ८० ८ ११ पू० मन्द्राज
महानगरीमें प्रायः ६० कोष पश्चिममें अवस्थित है।
मन्द्राज और मद्रासके पार्श्वोंमें घेनाके मध्य जग कीर्ति
कीमार पड़ता है, तब उसे 'विजिज्याय' दूरी नगरके
पश्चिमभागेमें मानते हैं। इसीलिए पुनमं दुर्गके ऊपर एक
सुन्दर परवराज भी बनाया गया है। कर्णाटक युद्धके
समय इस दुर्गके नाममें घोरतर युद्ध हुआ था; उसी
समय इसकी चारों ओरकी घाटि घाटि नष्ट भूट गई
थी।

पुनर (सं० पञ्च०) पुनरापन पुनरीति इति पुनः शब्दलकारात्
पर, पञ्च दत्तव्य। १ अथपुन, द्वितीय। २ भेद। ३
पक्षधारण। ४ पक्षान्तर। ५ पक्षिकार। ६ विमेष।

पुनरपगम (सं० पु०) पुनर्भूयः अपगमः। पुनर्वाप गमन,
जिसे जाना।

पुनरपि (सं० अथ०) पुनरीति, जिसे।

पुनरभिधान (सं० क्री०) पुनर्भूयः अभिधानं अथवा।
पुनर्वाप कथन, जिसे कहना।

पुनरभिधेय (सं० पु०) पुनः अभिधेयः। पुनर्वाप
अभिधेय।

पुनरपिता (सं० क्री०) पुनर्भूयः अपिता। पुनर्वाप
अपिता, जिसे मापना करनेवाला।

पुनरपि (सं० पु०) पुनरुपनिषत् मन्त्रोपनिषत्। पुनर्वाप।

पुनरागत (सं० जि०) पुनर्वाप आगत, प्रयागत।

पुनरागम (सं० पु०) पुनर्वाप आगम, जिसे जाना।

पुनरागमन (सं० क्री०) पुनः पुनर्वाप आगमन। १
द्वितीय बार आगमन, जिसे जाना। २ फिर अगम
लेना, मन्त्रादि फिर जाना।

पुनरागमिन् (सं० जि०) जिसे जानेवाला।

पुनरादाय (सं० पञ्च०) पुनर्वाप दाय, जिसे देना।

पुनरादि (सं० जि०) प्रथम, पहला।

पुनराधान (सं० क्री०) पुनर्भूयः आधानं। पुनर्वाप
आधान, जोत या समाप्त वस्तुका जिसे पक्ष।

"आधारे पुनर्वापि ददायीत्यर्थः।

पुनर्वापिः कर्णात् पुनराधानमेव।"

(पृष्ठ ५११६)

पक्षीकी मृत्यु होने पर लक्ष्मण दाइकर्ममें पक्षि
पवित्र करके गृहस्थ जिसे विवाह और पक्षि पक्ष
कर सकता है।

पुनराधेय (सं० क्री०) पुनर्भूयः आधेयं आध्याधानं।
१ जोतकर्मभेद, पुनर्वाप आध्याधान। २ भोगवाग-
भेद।

पुनराधेयक (सं० क्री०) पुनराधेय आधेयं कम्। पुनरा-
धानकारी।

पुनराधेयिक (सं० जि०) पुनराधेय, पुनर्वाप आध्याधान
सम्बन्धीय।

पुनरापन (सं० क्री०) पुनरापन, जिसे जाना।

पुनरापन (सं० क्री०) १ पुनर्वाप, जिसे पक्षकृता।
२ मारण, हिंसा।

पुनरापन (सं० क्री०) १ पुनर्वाप आधान, पुनरा-
गमन। २ पुनर्वाप, कहना।

पुनरापनिम् (सं० जि०) पुनः पुनर्वापमापनं या ह्य-
विनि। भूयाभूयः आगमना, फिर फिर कर जाने
वाला। जोत एक बार मरता है, फिर अगम लेता है।
इस प्रकार बार बार अगम लेनेके कारण मानवकी पुन-
रापनी कहते हैं।

"आपदपुनरापनोवा पुनरापनोऽपि।

आपदेव ह्यपीति पुनरापनं न विदितं।"

(पृष्ठ ५११६)

• ब्रह्ममे भुवनवासी सभी मनुष्य क्रिमे जन्मग्रहण करते हैं। किन्तु जो भगवान् के साथ मिल सकते हैं, उनका पुनर्वार जन्म नहीं होता।

पुनरावृत्त (सं० त्रि०) १ पुनरुच्चारित, फिरसे कहा हुआ ।

२ फिरसे घूमा हुआ, फिरसे घूम कर आया हुआ ।

पुनरावृत्ति (मं० स्त्री०) पुनः पावृत्तिः । १ पुनर्जन्म,
फिरसे जन्म लेना । २ पुनरुच्चारण, दोहराना । ३ क्रिये
द्वय कामको फिर करना । ४ फिरसे घूम कर घाना ।

पुनराहार (स० पु०) पुनः पुनर्वाचं आहारो भोजनं ।
द्वितीय बार भोजन, फिरसे खाना ।

पुनस्त (स० क्षी०) वचभावे त पुनः पुनर्विं उक्तं ।
१ पुनर्विं कथन, फिरसे कहना । २ पुनर्विं कथित
शब्द और अर्थ ।

“इदार्थयोः पुनर्वचनं पुनरुक्तमन्यत्रानुवादात् ।”

(ਗੈਰਮ ਖਾਧ-ਪ੍ਰਦ)

शब्द की रचना जो पुनः कथन होता है, उसका नाम पुनरुक्त है। एक शब्दका दो बार प्रयोग करनेसे यथा एक पर्य भिन्न शब्द द्वारा दो बार चमकित होनेसे पुनरुक्त होता है। इस प्रकारका पुनरुक्त शास्त्र में दूषणोप है। (वि०) १ फिरसे कहा हुआ। ४. एक बारका कहा हुआ।

पुनरुत्पत्तिः (पु० पु०) पुनरुत्पत्तिः जन्म यस्य । दिज्ञाति,
 ज्ञातृणः । ब्राह्मणिका मोक्षोपपत्तिः द्वारा पुनर्वा जन्म
 जाता है, इतीदं पुनरुत्पत्तिः प्रपञ्चे दिज्ञातिका बोध
 होता है ।

पुनश्चत्ता (सं० स्त्री०) पुनश्चत्तस्य भावः तत्प-टाप ।
पुनश्चत्ता भावः, पुनश्चत्ता कथन । साहित्यदर्पणम्
पुनश्चत्ताको दोष बतथाया है । एक वाक्यका पुनर्हरण
काम कीजने को यह दोष होता है । काव्यादिमें यह
दोष निन्दनीय है ।

पुनरुक्तवदाभास (सं० पु०) पुनरुक्तवत् आभासो यत् ।
 सर्व प्रत्यक्षार जितमे शब्द सुननेमे पुनरुक्ति-मे ज्ञान पट्टे
 परम्पु श्रयायं मे न की । इतिहास सत्य —

“आपाततो मर्त्यस्य पौनरुक्त्यावभासनम् ।

पुनरुक्तवदामासः स भिक्षाकार शब्दवः ॥”

(आदित्यद० १०म परि०)

आपाततः जर्वा भिन्नाकार मण्ड द्वारा पीनवत्तको

Vol. XIII. 158

तरह भ्रम हो, वहाँ यह पलटवार होता है।
यथार्थ में तो पुनरुत्थ नहीं है, विभिन्न मण्डके प्रयोगसे
पुनरुत्थ का बोध होता है, ऐसे पलटवार की पुनरुत्थवदा-
भास कहते हैं। इसका सदाहरण इस प्रकार है—

“भुजङ्गकुण्डली” ५ क शशिधुवाग्रसीतग्रः :

जगन्त्यपि सदापायादव्याप्तेतोहरः शिवः ॥”

(पाठित्यद० १०म परि०)

सुजङ्घा चोर कुण्डलो दीनो की शब्दा का 'य' सप है ।
 पाषाणतः देखनेसे पुनरुक्तता कीच होता है, पर यथाय-
 में से नहीं है, 'सुजङ्घाकुण्डलो' का यहाँ पर ऐसा
 यथ' होगा, सुजङ्घा कुण्डल विद्यमान है जिसने, घे-
 ही सुजङ्घाकुण्डलो है । यह महादेव का विशेषण है ।
 किन्तु यहाँ पर पुनरुक्तता पाषाण हो जानेसे यह चल-
 द्वाङ्ग हुआ । इनो प्रकार शयो, सुभ्रांशु चोर शीतगु, 'हर
 चोर शिव' 'पायात्' चोर 'पचयात्' इत्यादि शब्द प्राण-
 ततः एकाय' की तरह प्रतीयमान होनेके कारण पुनरुक्त-
 वदामात्र पचकार हुआ ।

पुनरुत्थि (स० स्त्री०) एक बारको कही दुई बारको
फिर कहना, कहं हुए बचनको दोहराना ।

पुनरुत्पत्ति (सं० द्रो०) पुनर्धार अर्थात्, पुनर्जन्म ।
सिद्धान्तकारोंका कहना है, कि उत्पन्नको पुनर्धार उत्पत्ति
नहीं हो सकती ।

पुनरुत्सृष्ट (सं० पु०) पणभेद ।

पुनरुत्थान (सं • वि •) फिरेने योजित, फिरेने जोडना ।

पुनरुपागम (मं० पु०) पुनरागमन ।

पुनर्गमन (स० स्त्री०) पुनर्धार गमन ।

पुनर्ग्रहण (सं० स्त्री०) १ फिरसे लेना । २ पुनर्ग्रहण ।

પુનર્જન્મ (સં. ક્ષી.) પુનર્મૂલ્યો જન્મ । ફિરસે સત્પત્તિ,
 એક શરીર કુટને પર દુસરા શરીર ધારણ ।

पुनर्जात (सं० वि०) फिरमे उत्पन्न ।

पुनर्णव (सं० पु०) नख, भाखुल ।

पुनर्नवा (सं० स्त्री०) द्विनायां पुनरपि नवा, वा पुनर्भूयोभूयः नूयते स्तूयते इति नु-प्रत्यय, ततटाप, नुना-दित्वात् न कत्वं । याकविषये, एक छोटा घोडा जिसकी पत्नियां चौलाईकी पत्नियोंकी-सी मोल मोल होती हैं । संस्कृत पर्याय—श्रीयस्त्री, वर्षाभू, प्रादयापयो, कटिस्त्रिज्ज । श्वेत पुनर्नवाको पर्याय—हृबिरा, विग-

इस पुस्तकके अन्तर्गत विविध प्रकार के प्रश्न आते हैं। इनमें से
कुछ प्रश्नों का उत्तर देने में आपको कुछ दिक्कत हो सकती है।

सुख (हि. सु.) सुखः, चर्त्त. सुखः ।

पुनः—श्रीगुरुदेवो नमः । श्रीगुरुदेवो नमः । श्रीगुरुदेवो नमः ।
१०७ । श्रीगुरुदेवो नमः । श्रीगुरुदेवो नमः । श्रीगुरुदेवो नमः ।
१०८ । श्रीगुरुदेवो नमः । श्रीगुरुदेवो नमः । श्रीगुरुदेवो नमः ।

द्वयः (२० लिः) मुद्रा ५५५, मुद्रा ५५५
मुद्रा ५५५, मुद्रा ५५५

सुसुप्ता—हृदय विहार वा प्रयोग प्रत्यक्ष वाक्यको एक
प्रकार । एक शब्द किम्वेदो हृदय प्रकाशो निजकर्मो के
कोर परिवर्तनको कार्यो है । इसको बिनाई ओल प्रिय-
काय कहते है । कर्माकाय कोइ कोर यंत्रो कायकोई
इसमें काम प्रयोग इत्यादि ।

[illegible][illegible]

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

पुनः (७०० अक्षर) शुद्धीकरण, विरचितः ।
 पुनः (७०० अक्षर) पुनः शुद्धीकरण, विरचितः ।
 पुनः (७०० अक्षर) विरचितः ।

पुनर्विनिर्माण (४० पू.) पुनः निर्माणः । पुनर्वा
निर्माणः ।

दुर्गादेवि (१००) दुर्गादेवि (१००) दुर्गादेवि (१००)
दुर्गादेवि (१००) दुर्गादेवि (१००) दुर्गादेवि (१००)

दुःखसुख (अं० २०) दुःखसुखी (अं० २०) दुःखसुखी (अं० २०)
दुःखसुख (अं० २०) दुःखसुखी (अं० २०) दुःखसुखी (अं० २०)

[illegible]

ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਭਾਗ ਆਰਾਮ, ਕਿਰਮੇ ਆਮ। ੨ ਕਿਰਮੇ ਆਮ
ਮੇਲ, ਮੰਗਾਰਮੇ ਕਿਰ ਆਮ।

पुनःप्राप्तिम् (अ० वि०) त्रिभिः पाठैः प्राप्य ।
 पुनःप्राप्य (अ० पाठः) पुनःप्राप्य, त्रिभिः पाठैः ।

सुभादि (अं वि०) उपम, उपम ।
सुभादि (अं वि०) उपम, उपम । सुभादि

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ਪ੍ਰਸੰਨ੍ਹਾਦਿਤੀ ਸ਼ਰੀਰ ਪੁਰਾਣਾਮੰਤ੍ਰ ॥ ੩੧ ॥

पयोनि शृणु, होमि पा लयने दाहकर्ममं चमि

आदिम काल में यह विचार था कि यदि कोई व्यक्ति अपने जीवन में
अपने भाग्य को बदलना चाहे।

१. शीतलजम्भेदः पुनर्वातः पाण्ड्याभानः । २. श्रीमदाश्व-
मेधः ।

पुनराधिकार (पं० बमो०) पुनराधिकार आर्थी ३३३ । पुनरा-

पुनर्परीक्षित (७०० ति०) पुनर्परीक्षित, पुनर्परीक्षित आचार्य

दुःसायन (मं० बली०) दुःसायन, त्रिदश सायन ।

३. गारक, हिंसा ।

वर्गः । ३. यन्त्रम्, जलम् ।

विनि । भूषाभूषः पागला, जिह जिह खर पाग-

[illegible]

॥ वाचं धेनुमुपासीत ॥

(नीच ४११)

ब्राह्मणे भुवनवासी सभी मनुष्य फिरसे जन्मग्रहण करते हैं। किन्तु जो भगवान् के साथ मिल सकते हैं, उनका पुनर्नव जन्म नहीं होता।

पुनरावृत्त (सं० द्वि०) १ पुनर्द्वारित, फिरसे कहा हुआ। २ फिरसे घूमा हुआ, फिरसे घूम कर पाया हुआ।

पुनरावृत्ति (सं० स्त्री०) पुनः आवृत्तिः। १ पुनर्जन्म, फिरसे जन्म लेना। २ पुनरुत्थारण, दोहराना। ३ किये हुए कामको फिर करना। ४ फिरसे घूम कर घाना।

पुनराहार (सं० पु०) पुनः पुनर्नव आहारो भोजनं। द्वितीय बार भोजन, फिरसे खाना।

पुनरुत्त (सं० स्त्री०) मन्त्र-भाषे त पुनः पुनर्नव उत्तं। १ पुनर्नव कथन, फिरसे कहना। २ पुनर्नव कथित शब्द और धर्म।

“रक्षार्थयोः पुनर्नवन पुनरुत्तमन्यानुवादात्।”

(गीतम ५।५०-५८)

शब्द और धर्मका जो पुनः कथन होता है, उसका नाम पुनरुत्त है। एक शब्दका दो बार प्रयोग करनेसे पद्यमें एक धर्म भिन्न शब्द द्वारा दो बार अभिव्यक्ति होनेसे पुनरुत्त होता है। इस प्रकारका पुनरुत्त शास्त्रमें दूयंयोग है। (द्वि०) १ फिरसे कहा हुआ। ४ एक बारका कहा हुआ।

पुनरुत्तजन्म (सं० पु०) पुनरुत्तं जन्म यस्य। द्विजति, ब्राह्मणः। ब्राह्मणोंका मोक्षोपनयन द्वारा पुनर्नव जन्म होता है, इसीसे पुनरुत्तजन्म शब्दसे द्विजातिका बोध होता है।

पुनरुत्तता (सं० स्त्री०) पुनरुत्तस्य भावः तत्त्व-रूपः। पुनरुत्तका भाव, पुनरुत्तका कथन। साहित्यदर्पणमें पुनरुत्तताको दीव वतसाया है। एक वाक्यका पुनर्नव कथन होनेसे जो यह दीव होता है। काव्यादिमें यह दोष निन्दनीय है।

पुनरुत्तवदाभास (सं० पु०) पुनरुत्तवत् आभासो यत्। यह अन्तर्द्वार जिनमें शब्द सुननेसे पुनरुत्त-त्रो ज्ञान पड़े, परन्तु ध्यायमें न हो। इसका लक्षण—

“आपाततो मदर्पस्य पौनरुत्तवदाभासवन्।

पुनरुत्तवदाभासः स मिधाकार शब्दतः॥”

(चादिलह १० म परि०)

आपाततः कदाचिन्नाकार शब्द द्वारा पौनरुत्तको

तरङ्ग भयन हो, वहाँ यह अन्तर्द्वार होता है। यथायथं जो पुनरुत्त नहीं है, विभिन्न शब्दसे प्रयोगसे पुनरुत्त-का बोध होता है, ऐसे अन्तर्द्वारको पुनरुत्तवदाभास कहते हैं। इसका उदाहरण इस प्रकार है—

“सुजङ्गकुण्डकी मयः शक्तिप्रभोऽशीतपुः।

अन्यथैव सदापावदववाच्येतोहरा शिवः॥”

(भारिलह १० म परि०)

सुजङ्ग और कुण्डकी दोनों ही शब्दका अर्थ सर्प है। आपाततः देखनेसे पुनरुत्तका बोध होता है, पर यथायथं में तो नहीं है, ‘सुजङ्गकुण्डकी’ का यहाँ पर ऐसा अर्थ होगा, सुजङ्ग रूप कुण्डल विद्यमान है जिससे, ये ही सुजङ्गकुण्डको हैं। यह महादेवका विमेषण है। किन्तु यहाँ पर पुनरुत्तका आभास हो जानेसे यह अन्तर्द्वार हुआ। इसी प्रकार शरी, शम्भाय और गीतपु, ‘हर और शिव’ ‘दायात्’ और ‘अस्यात्’ इत्यादि शब्द आपाततः एकान्वय को तरङ्ग प्रतीयमान होनेसे कारण पुनरुत्त-वदाभास अन्तर्द्वार हुआ।

पुनरुत्ति (सं० स्त्री०) एक बारको कही हुई बातको फिर कहना, कह कर घटनको दोहराना।

पुनरुत्तपत्ति (सं० स्त्री०) पुनर्नव उत्पत्ति, पुनर्जन्म। सिद्धान्तकारोंका कहना है, कि उत्पन्नको पुनर्नव उत्पत्ति नहीं हो सकती।

पुनरुत्तच्छट (सं० पु०) पञ्चमिदं।

पुनरुत्तस्युत (सं० द्वि०) फिरसे योजित, फिरसे जोड़ना।

पुनरुत्तगम (सं० पु०) पुनरागमन।

पुनर्गमन (सं० स्त्री०) पुनर्नव गमन।

पुनर्नव (सं० स्त्री०) १ फिरसे लेना। २ पुनरुत्त।

पुनर्जन्म (सं० स्त्री०) पुनर्नव जन्म। फिरसे उत्पत्ति, एक शरीर कटने पर दूसरा शरीर धारण।

पुनर्जात (सं० द्वि०) फिरसे उत्पन्न।

पुनर्नव (सं० पु०) मन्त्र, नाखून।

पुनर्नवा (सं० स्त्री०) किन्नायां पुनरपि नवा, वा पुनर्नवोभूयः नूयते नूयते इति लुचप, ततश्च, लुचप-दित्वा नू नूयते। शाकविशेष, एक छोटा पौधा जिसकी पत्तियाँ चौलाईकी पत्तियोंकी-सी गोल-गोल होती हैं। संस्कृत पर्याय—श्रीधन्नी, धर्माभू, प्राङ्गपायणो, कठिन्धक। श्वेत पुनर्नवाके पर्याय—हडिरा, चिगा-

गुलच्छ, देवदाह और टगमूल कुन मिला कर ८ सेर, पाक का जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। भदरकका रस ४ सेर। १२॥ सेर पुराने गुडको घोल कर छान ले और दोनों रसमें डाल कर पाक करे। अनन्तर जब वह गाढ़ा हो जाय, तब उसमें त्रिकटु, श्लायचो, तेजपत्र, गुडत्वक् और चर्द प्रत्येक कक्षा पूर्ण २ तोला मिला दे। शीतल होने पर १ सेर मधु मिला कर उतार ले। इस औषधके सेवनसे शीघ्र चादि नाना प्रकारके रोग जाति रहते हैं और वर्ष तथा प्रसिद्धि होती है।

पुनर्नैवाधवृत्त (सं० क्ली०) हृत्तोषधभेद । प्रस्तुत प्रणाली—दशमूल ६० पल, जल ५१२ पल, शेष १२८ पल, घृत ३२ पल, नक्षत्रार्थ पुनर्नैवाधमूल, चित्रकमूल, देवदाह, पक्षकोल, यवचार और हरीतकी प्रत्येक ८ तोला उसमें मिलावे। पीछे यथानियम यह औषध प्रस्तुत करे। इस द्रव्यके सेवनसे शीघ्र प्रयत्नित होता है।

पुनर्नैवाधक (सं० पु०) शीघ्ररोगमें कषाय औषधविशेष । प्रस्तुत प्रणाली—पुनर्नैवा, निम्बमूलकी छाल, पटोलपत्र, छोट, कटकी, गुलच्छ, दाहहरिद्रा और हरीतकी, कुन मिला कर २ तोला, जल पाच सेर, शेष पाच पाय। इस ज्ञायाका पान करनेसे सर्वाङ्गिक शीघ्र, उदरो, पाष्णमूल, श्वास और पाण्डू रोग अच्छे हो जाते हैं।

पुनर्नैवाधचूर्ण (सं० क्ली०) चूर्णोषधभेद । प्रस्तुत प्रणाली—पुनर्नैवा, देवदाह, हरीतकी, पाकनादि, बिस्वमूल, गोक्षुर, हृत्ती, कण्टकारी, हरिद्रा, दाह हरिद्रा, वीपक, गजपोषक, चोतामूल और भट्टसुतकी छाल इन सबका समान चूर्ण करे। पीछे उपयुक्त मात्रामें गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे शीघ्र, उदरो और व्रण प्रशान्त होते हैं।

पुनर्नैवाधितेस (सं० क्ली०) तैलौषधभेद । प्रस्तुत प्रणाली—तेल ४ सेर, क्षायाय पुनर्नैवा १२४ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। कच्छद्रव्य—त्रिकटु, त्रिकला, कर्कटशृङ्गे, धनिया, कटफल, कछूर, दाहहरिद्रा, प्रियङ्गु, पत्रकाष्ठ, ऐणुक, कुट, पुनर्नैवा, यमानी, लण-कीरा, श्लायचो, गुडत्वक्, मोष, तेजपत्र, नागेश्वर, वच, पिपपामूल, चर्द, चोतामूल, सीया, गुलकगो, मञ्जिष्ठा, राक्षा, पुरातमा प्रत्येक दो तोला। पीछे यथानियम

इस तैलका पाक करे। इस तैलके पानसे शीघ्र, पाण्डू और उदररोग चादि नाना प्रकारकी बीड़ाएं दूर होती हैं। (भैषज्यरत्ना तोष ०४०)

पुनर्निश्कत (सं० त्रि०) पुनर्धार संस्कृत, जोष संस्कार।

पुनर्वाच (सं० त्रि०) पुनर्धार बालकत्व प्राप्त, हृदावस्थामें बालककी तरह भावप्रकाश।

पुनर्भव (सं० पु०) किन्तोऽपि पुनर्भवतोति भू-पक्ष् । १ नख, नाखून । २ रत्न पुनर्नैवा । ३ पुनरुत्पत्ति, फिर होना । (त्रि०) पुनर्भवतोति भू-पक्ष् । ४ पुनर्धार जात, जो फिर हुआ हो।

पुनर्भविन् (सं० पु०) पुनर्भवः पुनः पुनरुत्पत्तिरुच्यतेति पुनर्भव इति। चात्मा। चात्मा बार बार जन्म लेती है, इसीसे 'पुनर्भविन्' शब्दसे आत्माका बोध होता है।

पुनर्भव (सं० पु०) पुनर्धार जन्म, मृत्युके बाद फिरसे जन्म।

पुनर्भाविन् (सं० त्रि०) फिरसे जन्मयुक्त।

पुनर्भू (सं० क्ली०) पुनर्भवति जायात्वेनेति भू द्वि२ । १ द्विरुद्गा, यह विधवा जो जिसका विवाह पहली पतिके मरने पर दूसरे पुरुषसे हो। इसका पर्याय दिधिपु है। समरटीकाकार भरतने (२१२१में) पुनर्भूशब्दकी इस प्रकार व्युत्पत्ति की है—

“अक्षतयोनित्वात् विधवा पुनरुद्यते इत्यक्षान्तर्य भूवा अन्वय्य अनर्भवतोति विधिपु पुनर्भूः ॥” विवाहिता स्त्री विधवा हो कर यदि फिरसे विवाह करे, तो उसे पुनर्भू कहते हैं। मिताचराने चरुमार पुनर्भू तीन प्रकारकी होती है। जिसका पहली पतिसे वैधव्य विवाह भर हुआ हो, समागम न हुआ है, दूसरा विवाह होने पर वह अक्षतयोनि स्त्री प्रथमा पुनर्भू होगी। विधवा हो जाने पर जिसके घरिखके विगड़नेका डर गुरुजनोंकी हो उसका यदि वे पुनर्विवाह कर दें, तो वह द्वितीया पुनर्भू होगी। विधवा हो कर व्यभिचार करनेवाली स्त्रीका यदि फिर विवाह कर दिया जाय, तो वह तृतीया-पुनर्भू होगी। इस पुनर्भूकी शास्त्रमें विमोष निन्दित वतलाया है। (त्रि०) २ पुनर्धार जात, जो फिरसे हुआ हो। (क्ली०) ३ पुनर्नैवा । ४ मद्रा ।

सं० २२ १४ ८० तथा देया १० २६ पू०के मध्य
खण्डा नगरसे १६ कोस दूरमें अवस्थित है। सुपर-
बंशोय राजपूत-भरदारोंके अधीन इस नगरने विमोघ
प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। १०३० ई०में सरदार रामकुमार-
सिंह यहाँ एक दुर्ग बना गये हैं। १८५० ई०के मद्रमें
भंगरेजीने इस नगरमें भाग्य लिया था। पिण्डारियोंके
अत्याचारसे यह नगर शीत हो गया। १८४६ ई०में
कानून प्रो० यहाँकी पुष्करियोंका लोप संस्कार कर
गये हैं। प्रतिगनिवारको यहाँ एक हाट लगती है।

पुनि (हिं जिं वि०) फिर फिरसे, दोबारा।

पुनी (हिं खो०) पूर्विमा, पुनी।

पुनीन (हिं वि०) पवित्र, पाक।

पुन्नाम्ना—मध्य प्रदेशके बलमनगर जिलान्तर्गत एक
नगर। यह संवा० १८ ४६ ८० तथा देया ८४ १०
पू० कीपरगांव मध्यसे १२ मील दक्षिण-पूर्व गोदावरी-
के किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ५८८० है। यहाँ
गोदावरीके किनारे प्रायः १४ प्रधान मन्दिर हैं, सबोंकी
सीढ़ी गोदावरीमें लगी हुई है। उक्त मन्दिरोंमें हन्दो-
की रानी चण्डीबाई (१०६५-८५ ई०में) और विष्णु-
रामदुमल-प्रतिष्ठित मन्दिर की सुन्दर है। दाक्षिणार्थके
विख्यात साधु चण्डीदेव का बनाया हुआ मन्दिर सबसे
प्रधान है। एतद्भिन्न मन्त्रियाँ, बालाजी, भद्रकाली, गङ्गा,
गोपालकृष्ण, जगद्धा, कालभैरव, काशीविश्वेश्वर,
केशवराज, महाशक्ति गङ्गा, रामचन्द्र, रामेश्वर और
त्रिम्बकेश्वर नामक देवालय भी देखनेमें आते हैं।

पुन्दरी (पुण्डरी)—राजपूत जातिकी एक शाखा जो
दक्षिण अफ्रीके पन्नामें है। सात सौ वर्ष पहले
दक्षिण राजपूतगण विमोघ प्रतिपत्ति और सम्भवके साथ
अपनी औरत दिखला गये हैं। राजस्थानके सुप्रसिद्ध
कविगण आज भी इन दक्षिण-राजपूतोंकी गुणगर्मा
गाया करते हैं। जब चौहान-सम्राट्, पुष्पवीराज दिल्लीके
सिंहासन पर अधिकृत थे, उस समय उक्त दक्षिणगण
अयागा नामक स्थानका शासन करते रहे। ये लोग
सम्राट्, पुष्पवीराजके अधीनस्थ सामन्तोंमें सर्व-प्रधान थे।
उक्त दक्षिणगणके तीन भाइयोंने दिल्लीखरके अधीन उक्त
पद प्राप्त किया था। अब कोषाक्ष महामन्त्रीके पद पर,

मध्यम पुन्दरी-अधिनायक हो कर समस्त साहोबके
सोमान्त पर नियुक्त थे और हस्तोय वा कमिष्ठ चांदराय,
कन्या नदीके किनारे जो लड़ाई होती थी, उसीमें
पुष्पवीराजके प्रधान सहकारी थे। तबकाती-नासिरो पढ़ने-
से जाना जाता है, कि साहसुद्दोनेकी जीवनीलेखक
सुसन्तमान ऐतिहासिकोंने विख्यात दक्षिण-और चांद-
रायकी खण्डेराय नामसे भी उल्लेख किया है। चौहान
राजपूतोंकी अवनतिके साथ साथ प्रतिभाशाली पराक्रान्त
दक्षिणगणका भी चिराग सुप्त गया। सम्भवतः सोमान्त-
वासी-पुन्दरी वंशोद्भव राजपूतगण पुन्दरी नामसे अपना
परिचय दिया करते हैं।

यानेश्वर, कुचैत, कर्णाल और अम्बाला आदि स्थानों-
में जो सब पुन्दरी-राजपूत पक्षे वास करते थे, अन्तर् में
पञ्जाबदेशमें-पुन्दरी कहलाते हैं। पुण्डरी, रक्षा, चात्री
और पुण्ड्रक नगर उनके अधिकारभुक्त था। चौहान-
राज राना हररायने उन्हें भगा कर उक्त स्थानको अपने
अधीन कर लिया। इस कारण वे यमुनाके दूसरे किनारे
जा कर रहनेकी बाध्य हुए। इसी समयसे इन प्रदेशमें
पुन्दरी-राजपूत रहने लगे।

दोषाववासी पुन्दरीका कहना है, कि उनके राजा
सरदार दासराज सिंह पक्षीगढ़ जिलेके पान्नाबाद परगनेके
अन्तर्गत गभीर नगरमें रहते थे। उन्होंने नगरस्थापित
किये अपने भाई विजयके नामानुसार उक्त नगरमें
विजयगढ़ नामक एक दुर्ग बनवाया था। १८०१ ई०में
कनक गार्हज तथा और भी कितने भंगरेज सेनापतिकी
मुख्यके बाद विजयगढ़ दुर्ग भंगरेजोंके हाथ लगा। वेष्टि
पक्षीगढ़राजने उसे प्राधाधिकृतिको दान दे दिया। पुन्दरी
लोग उक्त अफ्रीके सभी राजपूत-घरोंमें आदान-प्रदान
करते हैं।

उत्तर-दोषाववासी पुन्दरीगण वरगुजर, चौहान,
गङ्गोत्, काठिया, तोमर, खोकर और भट्टराजपूतोंके
घरमें लड़कों देते तथा उक्त सात घर छोड़ कर बंज-
बंशोय राजपूतोंकी लड़की लेते हैं। युक्त प्रदेशमें प्रायः
५६ हजार पुन्दरी राजपूतोंका वास है जिनमेंसे २०
हजारने इसलाम धर्म का भाग्य ग्रहण किया है।

पुन्दरी—पञ्जाब प्रदेशके कर्णाल जिलान्तर्गत एक नगर।

पुष्पागक शर (स० व०) पुष्पागस्थ को शर । पुष्पाग-
पुष्पाग किष्पक, पुष्पागफूलका पत्राग ।
पुष्पागपुष्प (स० लो०) पुष्पागकुसुम ।
पुष्पाट (स० पु०) पुष्पाट्ट पटोदरादित्वात् डस्य ट । १
चक्रमदं, चक्रमङ्कका पोषा । इसकी पत्तियोंका रस
दादमें सगनिसे दाद जाती रहती है । २ कर्नाटकके
पास एक देश । ३ दिग्गम्भर जैन सभप्रदायका एक
संघ । जैनहरिवंशके कर्त्ता जिनसेनाचार्य इसी
संघके थे ।

पुष्पाङ्क (स० पु०) पुष्पाङ्ग नाङ्गयतीति मङ्-भङ्गे ण्य ।
(कर्मण्य । पा ३।२।१) चक्रमदं, चक्रमङ्क ।

पुष्पाङ्क—एक प्राचीन हिन्दूराज्य । यहाँ जिस वंशके राजा
राज्य करते थे, वह वंश पुष्पाङ्क्य वंश कहलाता है ।
वर्त्तमान कम्बजि और शारदी नदीके सङ्गमस्थलके
समीप इन्दिनाङ्क नाममें आज भी पुराने प्राचीन कोसि-
योंका निदर्शन देखनेमें आता है । पुष्पाङ्क राजवंशमें
महेश्वरराजवंशीय राजागण अपनी उत्पत्ति बतलाते हैं ।
इसो गताष्टके एक ग्राममें निम्नलिखित पुष्पाट राजाओं
के नाम पाये जाते हैं,—१ काश्यपराष्ट्रवर्मा, २ लम्बे-
पुत्र नामदत्त, ३ नामदत्तके पुत्र सिङ्गवर्मा ४ सिङ्ग-
वर्माके पुत्र (नाम मालूम नहीं), ५ सिङ्गवर्माके पोत्र
रविवर्मा ।

एक समय पुष्पाट राजवंश राष्ट्रकूट राजाओंके
अधीन थे । परन्तु मिसालिपि पढ़नेसे मालूम होता है
कि राष्ट्रराजने स्कन्दवर्माको परास्त कर उसको कन्यासे
विवाह किया और उसका राज्य अपने अधिकारमें कर
लिया ।

पुष्पामन् (स० पु०) १ पुष्पागवृक्ष । मुदिति नामा अर्थः ।
२ नरकभेद, पुष्पाम नरक ।

पुष्पामनरक (स० पु०) पुष्पामा नामो नरकयेति । नरक-
विशेष । पुत्रोपनिषद् द्वारा मानवगण इस नरकसे निष्कृति
लाभ करते हैं ।

पुष्पामपुराण (५८ पृ०) में लिखा है, कि शीलहप्रकारके
कारणसे मनुष्य इस नरकका भोग करते हैं—परदारगमन,
पापघेमा और समस्त भूतोंके प्रति परधृता, इससे प्रथम
पुष्पाम नरक होता है । फलस्तेय, फलाहं वस्तु और वृक्षका

उत्पादन, इससे द्वितीय नरक; निन्दनीय वस्तुका घटण,
पक्षध्याका वध वा वधून और यहेतुक विवाहसे तृतीय
नरक; सभी जीवोंके प्रति भय प्रदर्शन, मानवका
ऐश्वर्यनाश और निजधर्मका नाश, इससे चतुर्थ नरक;
मारण, मित्रके प्रति कौटिल्य, मित्राभिगाप और मित्रवस्तु
एकाकी भक्षण, इससे पञ्चम नरक । यन्त्रकार प्ररोहण,
योगनाश, यमन, सुखययानके हरण आदिमें षष्ठ नरक;
राजभागका हरण, राजजायानिर्वेक्षण और राज्यका
अहितकारित्व, इसमें सप्तम नरक; श्लथता, लोलुपता
और लज्जधर्मका अथ नाशन तथा माना प्रनारक काम
करनेसे अष्टम नरक; लज्जालहरण, नाश्रयकी निन्दा और
नाश्रयके विरोधसे नवम नरक; शिष्टाचारविनाश,
मित्रहण, मित्रवध, शत्रुवैर्य और धर्मभ्रान्तता, इससे
दशम नरक । पटङ्गनिधन और पाङ्गुण्यका प्रतिषेध,
इससे एकादश नरक; अनाचार, अशक्तिकार और संस्कार-
हीनता, इससे द्वादश नरक; धर्मापेक्षामुक्ती हानि, अप-
वर्गका हरण और अर्थहरण करनेमें बुद्धिदान, इससे
त्रयोदश नरक; जो वर्जनीय और दोषज है, उसका
अनुष्ठान और धर्महीनता, इससे चतुर्दश नरक;
निष्ठाहीनता, अज्ञान, अग्रभावज्ञ, अग्रोध, असत्य-
वचन और निन्दनीयका अनुष्ठान करनेसे पञ्चदश
नरक; आलस्य, सबके प्रति आक्रोश, पाततायिता,
गृहमें अग्निदान, परदारमें इच्छा, ईर्ष्याभाव और सभ्य-
जनके प्रति शोदस्य, इससे षोडश नरक होता है ।

पूर्वेक्षित पाप करनेसे यही मोक्ष प्रकारके पुष्पाम-
नरक होते हैं । यह नरक पत्यन्त कष्टप्रद है । पुत्र
जन्म ले कर इन सब पापोंसे ब्राह्म करता है ।

पुष्प (हि० पु०) पुष्प देवो ।

पुष्पपाल—जयसमयमें देके एक राजाका नाम । इनके
पिताका नाम था साखनसेन । पिताको मृत्यु होने
पर ये जयसमयमें विहासन पर बैठे । परन्तु
ये बड़े क्रोधी और रुखे स्वभावके थे । इनके व्यवहारोंसे
सभी नाममात्र परसंन रहना करते थे, इन्होंने इनको
सामन्तोंने राज्यसे भलग कर दिया । राज्यभ्रष्ट हो
कर ये जयसमयमें देके पास किसी गाँवमें जा कर रहने
लगे । इनका समय १३वीं शताब्दीका पश्चिम भाग है ।
पुष्पनी (हि० स्त्री०) वर्षाकी पतली पोखी नदी ।

राज्यमें मिला लिया। वे शैव थे। सिंहापात्रिया नगरमें पात्र तौपतिकी प्रतिष्ठाके लिये उन्हीं ने जो मन्दिर बनवाया, वहाँ उनके जीवनकी अपूर्व कौर्त्ति है। उनके पुत्र मूलदेव निज महिमागुणके भुवनपाल नामसे प्रसिद्ध हुए। उनके आश्रम देवपाल दानमें कण, रथमें चक्र और सत्यमें धर्म राज सहज थे। पिताके मरनेके बाद पद्मपालने द्वंद्व और राजदण्ड प्राप्त किया। बाद दासि-पाल्यविजयमें जा कर वे बनार्यके साथ सहे। मिथ, ब्रह्मा, विश्व, लक्ष्मी और नरसिंह मूर्त्ति स्थापन तथा पद्मत्व निमित्तसे वे राज्यपालन करके वे प्रजा-पग के प्रीतिपात्र हो गये। पन्तमें अनुष्ठित क्रिया-कलापके कलत्तामसे यशस्वी हो प्रमुक्त सबस्थानमें उन्हीं ने इस नग्न देवका वरिष्ठाग किया। पोके उनके भाई सूर्यपालके पुत्र श्रीमन्महाराज महीपालदेव राजसिंहासन पर बैठे। उन्हीं ने नागा प्रकारके सत्तामनुष्ठान करके अच्छा नाम कमा लिया। और पद्म-नाथ नामक एक विष्णु धरती स्थापना करके मन्दिरके खर्च के लिये ब्रह्मपुर जिला दान कर दिया।

वज्रदामकी जैनमूर्त्ति के पाददेशमें लिखित १०१४ सम्वत् और महीपालदेवके समयमें उत्कीर्ण शिलालिपि की तारीख ११५० सम्वत् है—इन दोनों के व्यवधान से कल्पना करनेसे पुराव-यका राजत्वकाल ११४ वर्ष से कुछ अधिक होता है। कारण, वज्रदामके राज्याधिकार और मृत्युका समय इस लोगों की मानस गती। डा० कनिहमने उपरि-ल्ल दिसावे ० राजाओंके राजत्व की एक तालिका दी है—

महीपालके बाद उनके पुत्र भुवनपाल उन्हें मनोरथ पिलसिंहासन पर बैठे। वे कायस्थ प्रतिपालक थे। वे व्यावधर्म में दीक्षित हो वे मधु राधात्ममें जा कर रहने लगे थे। कुछ वर्ष राज्य करनेके बाद उन्हीं ने अपने पुत्र

* सम्वत् ८२५ ई० में; वज्रदाम ८५०-९८० ई० में। इनके राज्यकालमें कच्छराज्यावंधके आधिराज का प्रकट प्रत्यक्ष हुआ। मंगलराज ८८० ई०; किरितराज ८८५ ई०; भुवन-पाल १०१० ई०; देवपाल १०३० ई०; पद्मपाल १०५० ई०; महीपालदेव १०५५-११५० ई०; भुवनपाल उन्हें मनोरथ १०१५ ई०; मधुसूदन ११४४ ई०।

मधुसूदन पर राज्यभार पर्यंत किया। मधुसूदन सिंहा-सन पर कब बैठे, ठीक ठीक मानस नहीं। केवल-मात्र ११६१ विक्रम सम्वत्में महादेव-मन्दिर प्रतिष्ठाके उपलक्ष्यमें तत्पदत्त एक शिलालिपि उत्कीर्ण है। इससे बहुत कुछ अनुमान किया जाता है, कि महीपालदेवके राजत्वके कर्मसे कम १२ वर्ष बाद मधुसूदनने राज्य-शासन किया था। मधुसूदनके पद्मपुत्र वंशधरोंने प्रायः सो वर्ष तक राज्य किया। किन्तु उनकी प्रकृत इतिहास नहीं मिलता। इसके बाद स्वाधिराज्यमें तीसरे वंशीय राजपूतोंका अभ्युदय हुआ। तोमर देशों।

पुरः (हि० पञ्च०) १ माघी २ पद्मे।
पुरःसर (हि० वि०) १ पद्मपद्म, पद्मपा। २ मंगो, माघी। ३ समन्वित, सहित। (पु०) ४ पद्मगमन। ५ साय।

पुर (सं० लो०) विपरीति मूलविभूजादित्वात् क पद्मया पुरति पद्म गच्छति पुर-क (शुभ्रक प्रीतिः कः। १। ३। १। ११५) १ नव वही बली जहां कई धामों या वस्ति-यों के लोगोंको व्यवहार आदिके लिये जाना पड़ता हो, नगर, शहर, कववा। संस्कार पर्याय—पुर, पुर्णि, नगर, पत्तन, स्थानोद्य, कटक, पट, निगम, पुटभेदन। पुर की जिस प्रकार सुरचित रहना होता है, उसका विषय मनुने इस प्रकार लिखा है,—

“मनुर्दुर्गं गहीर्दुर्गं नव दुर्गं बार्धमेव वा।
दुर्गं गिरिदुर्गं वा समप्रियं वसेत् पुनः ॥”
(मनुसं० ७, ७०)

संस्थापित हो पुरका भोग कर सकते हैं। मनु-संहितामें लिखा है,—

“दक्षी कुलम्बु मुञ्जीत विधी पञ्चकुलाति च।
प्रायः प्रायश्चित्तपथः पद्मप्रापिपतिः पुनः ॥” (७। ११८)

१ टिफेनेयरका कहना है, कि शिरीश्वर स्वामिनीने पुराणेसे गवाजिर छीन कर तोमर राजपूतोंके हाथ लगा दिया। फिहिस्तामें लिखा है, कि कुतब-उद्दीनने ११९३ ई०में बान्दियर दुर्ग पर दख्त बनाया। कुतब की मृत्युके बाद एक तोमरराजने अलतमशकी स्वाधीनता स्वीकार कर उनसे सफ़्फ़ प्रदेहाका शासन कर्तुव प्राप्त किया। किन्तु कुतबके आक्रमणके पहले यहां कच्छराज्यावंधीय मधुसूदनके बंधुपर राज्य काठे थे या अन्य किसी वंशके राजा, इसका ठीक ठीक पता लगाना कठिन है।

पुरुरा (हि० पु०) १ पूर्वज, पूर्व मुख्य, जैसे—बाप, दादा, परदादा, इत्यादि । २ घरका बड़ा, बूढ़ा ।

पुरा (स० त्रि०) पुरं गच्छतीति गम-ङ । नगरगामो ।

पुरगावण (स० पु०) वनभेद ।

पुरगुप्त—गुप्तवंशोप एक राजा । ये स्तुत्यगुप्तके कनिष्ठ भ्राता थे ।

पुरगुर (हि० पु०) एक पेड़ जो बंगालके उत्तर-पूर्व होता है । यह पेड़ धौलोसे बहुत कुछ मिलता जुलता है । इसकी लकड़ी खेतोंके सामान और खिलौने बाँट बनानेके काम आते हैं ।

पुरगाम—दाक्षिणात्यके प्रसिद्ध एक ग्राम ।

पुरवज (हि० स्त्री०) १ सुमकार, सुवकार । २ सखा, दास, बड़ासा । ३ प्रउपोषण, माहवाही, हिमायत, तरफ-दारो । ४ प्रेरणा, उपजावा ।

पुरच्छत्र (स० पु०) १ छत्र, ढलविशेष । २ स्तम्भ ।

पुरजा (का० पु०) १ खण्ड, टुकड़ा । २ चिद्विषयके मूलोप, शक्ति । ३ कतरन, धल्ली, फटा, टुकड़ा, कल्ल । ४ अवयव, अङ्ग, अंग, भाग ।

पुरजित् (स० पु०) १ एक राजा । पुरं त्रिपुरासुरं जितवान् । २ त्रिपुराणि शिव । ३ ज्ञानके एक धर्म जो जाम्बवतीसे उत्पन्न हुए थे ।

पुरज्योतिस् (स० पु०) पुरं प्रजुरं ज्योतिरस्य, अग्नि । आग ।

पुरज्ज (स० पु०) पुरं देवदेव जनयतीति जनि बाहुल-कात्-ङ । जोष ।

श्रीमद्भागवतमें इस पुरज्जका उपाख्यान अति विस्तृतभावमें वर्णित है । यहाँ पर संक्षेपमें उनका विषय लिखा जाता है ।

नारदने प्राचीनवर्षके पुत्र प्रचेताधीशे यह उपा-ध्यान वर्णन करते हुए कहा था, 'हे राजन् । पञ्चाल-देगमें पुरज्ज नामक महायज्ञकी एक राजा रहते थे । उनके एक मित्र थे, जिनका नाम और काम कोई नहीं जानता था । पुरज्जने अपने भोगस्थानका अन्वेषण करते हुए मारी छत्ती पर अग्रज क्रिया, किन्तु उपयुक्त स्थान उन्हें कहीं भी न मिला । छत्ती पर जितने ज्ञान उन्होंने देखे, एक भी पक्षमें न पाया । तब वे

निराम हो पुनः पर्यटन करने लगे । एक समय हिमा-लयके दक्षिण सानुध्यकमें वे भारतवर्षका पुर उनके नयनगोचर हुआ । वह पुर सर्वलक्षणसम्पन्न था । वहाँ त्वक् भादि अवयवव्यव प्राचीर और उपवन अष्टा-श्लोकासे सुशोभित था । इन्द्रियरूपगवाच और वहिर्दार देदीप्यमान होता था । आधार चक्रादि ५५ स्तंभोंरोप्य और लौहमय शिखरयुक्त शृङ्ग सर्वतोभावेमें शोभा देता था । सब मिला कर पुरको शोभा अति मनोहारिणी थी, इसमें शन्देह नहीं ।

उस वनके वहिर्भागमें भी एक बहुत मनोरम उपवन था । पुरज्जने इस उपवनमें आ कर एक उत्तम प्रमदाको देख पाया । उस प्रमदाके साथ दम्प-भृत्य थे । प्रत्येक भृत्य मेकड़ों गायिका पति था । वह प्रमदा प्रमोदा और कामरूपिणी थी । पाँच मस्तक-वाला एक सर्प द्वारपाल हो कर उसका रक्षणविलय करता था । वह प्रमदा किसी दूसरे कामके लिये नहीं चरन् पतिकी ओजमें ही उस उपवनमें घाँटें हुई थी । वह प्रमदाका रूपवती और रमणीजनसलामभूता थी । पुरज्ज इस प्रमदाको देख अधीर हो उठे और परिचय पूछ कर उससे कहा, 'हे सुन्दरि । मैं अश्वीर हूँ और मेरा काम अति महत् है । लक्ष्मी विष्णुकी तरह तुम मेरे साथ रह कर इस पुरीको सज्जित करती रहो । तुम्हें देख कर मैं जितान्त अधीर हो गया हूँ ।' इस पर वह हँसती हुई बोली, हे पुरुषोत्तम ! मेरा और पापका कर्त्ता कौन है, जो मैं नहीं जानती, जिससे मोक्ष और नाम होता है, मैं उससे भी प्रवगत नहीं ; किन्तु जब भावनें सुभक्त प्रका है, तब इसका उत्तर देती हूँ, ध्यान दे कर सुनिये ।

'ये सब मेरे सखा हैं और ये नारियाँ मेरी सखी हैं । यह सर्प इन पुरीका पालनकर्त्ता है, जयमें सो जानती हूँ तब यह पहरा देता है । जो कुछ भी पात्र मेरा परम भाग्य है जो भाग यहाँ पधारे हैं, पापकी हो यह नवहारविशिष्ट पुरी है । भाग्य सो वर्ष तक यहाँ सुखसे रहिये । मैं बापका समित्यित भोग खा देती हूँ, भाग्यवश कौनिये ।' इस प्रकार उस दम्पतिने जिस पुरीमें प्रवेश किया, उसमें प्रथम, द्वयम्, त्रयम्, विषयका-पञ्चः

‘हम’ पूर्व तन। पुरुषभावका स्मरण दिना कर कहा,
‘सबे।’ तुम अपने ही क्या समझते हो? क्या किसी भी
एक स्थिति में वायु तुम्हारी मित्रता थी, ऐसा स्मरण होता
है? तुम मुझे परिचायक करके स्थानको खोज करते
करते संसारकी भोगमें रत हो गये थे। मैं पौर तुम
दोनों ही मानसमरोवरमें दो-हके रूपमें रहते थे। हम
दोनों बिना घरके हो सड़कर पथी महाप्रलय तक
एक साथ रहे। तुम धीन हो, जो मैं जानता हूँ। तुम्हें
सुखभोगकी इच्छा हुई थी इसीसे तुमने मुझे छोड़ दिया
था। धीरे तुमने धूलो पर पाँटन किया, उस समय किसी
एक अवस्थाके स्थान पर तुम्हारी निगाह पड़ी, क्या यह
तुम्हें स्मरण है? यह स्थान बड़ा ही चमत्कार था, उसमें
पाँच उपवन, जो हार और एक पावनकर्ता, सोन
कोष्ठ और छः कुल थे। वहाँ छह पाँच पौर उसकी
प्रकृति पाँच तथा बुद्धिद्वय एक स्त्री उसको स्वामिनी
थी। पाँच इन्द्रियविषय की उक्त धाराएँ उपवन थे, प्राण
उसके द्वार थे, तेज, ज्ञान पौर सब ये तीनों तीन कोष्ठ
थे। सभी इन्द्रियाँ वहाँ कुल थीं। क्रियाशक्ति की
पाँच छह थीं पौर पञ्चभूत की पाँच प्रकृति थे। पुरुष
प्रकृतिके वशवर्ती हो कर हो वहाँ प्रविष्ट होते हैं,
धुनरा पाखाकी पचचान नहीं सकते, तुमने वहाँ उस
स्त्रीसे सखाम किया था, इसीसे तुम्हारा प्रसन्नता जाता
रहा। उस नागिके सङ्गमसे ही तुम्हारी ऐसी जलत-हुई
है। तुम विश्वराजको दुष्टता वा मलयध्वजकी पत्नी
नहीं हो। ये सब भुक्ति वद मायाके विनाशमात्र हैं।
तुम अपने ही पूर्व जन्मका पुरुष पौर सभी स्त्री सम-
झते हो, पर तुम न तो पुरुष हो और न स्त्री। तुम
पौर हम दोनों को शून्य तथा ज्ञानरूप हैं। तुम हमसे
भिन्न नहीं हो पौर न हम ही तुमसे भिन्न हैं। इस पर
यदि तुम कहो, कि हम दोनों एक हैं पण्य तुम सर्वत्र
पौर हम सर्वत्र हैं, तो ऐसी प्रमेदका कारण क्या है?
किन्तु ये सचे। यदि सोहा गौर कर देखो, तो यह
पागलता समझकर प्रतीत होगी। कारण, पुरुष अपने
एक देहको मादग में निमज्ज, महत् पौर स्थिर देखता
है पौर ज्ञानसाधारणको इसका विपरीत दिखाई देता
है। इस प्रकार देख यदि उपाधिभेदसे भिन्न हो, तो

हम दोनों को विभिन्नता भी उसी प्रकार होगी। इस
प्रकार उपदेश देनेके बाद उनका चक्षुष दूर हुआ पौर
पूर्वजन्मका स्मरण हो जानेसे पूर्वतन सभी हस्तान्त
पापसे पाप याद चाने लगे।

पुरुषार्थके उपाख्यानमें पाखाका संसार पौर
उसका मोक्ष ये दोनों ही दिखाये गये। सब इस
उपाख्यानका प्रकृतस्वरूप कहा जाता है जो हस्तान्त
तोरे पर वर्णित हुआ है। हमें भी पुरुषार्थ वतनाये
गए हैं उनका नाम पुरुष है। ये पुरुष अर्थात् देहकी
प्रकृति करते हैं, इसीसे उनका नाम पुरुष पड़ा है।
यह पुरुष नामा प्रकारके हैं। जो अभिज्ञात शब्दसे परि-
चित हुए हैं, वे ईश्वर हैं, पुरुषके सखा हैं। ईश्वर
अर्थात् हैं, जो ईश्वर नामादिने ज्ञान नहीं सकता, इस
कारणसे परिचित हैं। पुरुषता यद्यपि पुरुषार्थ प्रकृति
कारणके कारण पुरुषार्थ नाम पड़ा है, तो भी ये ज्ञान
प्रकृतिके समस्त गुण सम्पूर्ण रूपसे ग्रहण करना चाहते
हैं, तब गवद्वारयुक्त पुरुष ग्रहण करते हैं। पुरुषार्थकी
स्त्री प्रमेदका जो बात कही गई है, यह प्रमेद
बुद्धि है। बुद्धिसे ही ‘हम’ पौर ‘हमारा’ बादि ज्ञान
होता है। पुरुषार्थ उस बुद्धिमें परिचित हो कर हो देहमें
इन्द्रियगण द्वारा उन सब विषयोंका भोग करते हैं। फिर
सखा पौर सखी नामने जो परिचित हुए हैं, उसका
अर्थ इस प्रकार है—सभी इन्द्रियाँ उसकी सखा हैं पौर
इन्द्रियोंकी वृत्ति ही उसकी सखी है। ज्ञान पौर काम
उन्हींसे उत्पन्न होता है। पञ्चगिरा सर्वका पर्य प्राप्त
है। प्राणकी पाँच प्रकारकी वृत्तियाँ हैं, इसीसे यह
पञ्चगिरा सर्वके समान है। स्मरण नायकता पर्य मन
है। पञ्चान शब्दसे शब्दादि पाँच विषयोंका बोध होता
है। पुरुषार्थने जिस पन्नाः पुरमें प्रवेश किया, उस पन्नाः-
पुर शब्दका अर्थ हृदय है पौर सर्वतोमुख जिस मनका
उल्लेख किया गया है उसका गुण है सत्य, राजः पौर
तमः। इन्हीं तीनोंसे पुरुष मोक्ष वा प्रमेदताको प्राप्त
होता है। बुद्धि जिस भावमें दिखाई देती है, पुरुष
भी उसी भावमें दीखता है।

पुरुषार्थ जिस रथ पर सवार हो गिराको निकले
है, वह रथ यही देह है, इन्द्रियाँ सह रथके भाग हैं।



पुरन्दर—१ एक प्राचीन हिन्दू राज। ये महादेवके उपासक और कृष्णसुनिके कुलजात थे। मेघादीके बाद ये राजसिंहासन पर बैठे। (सहादि ३१८४) २ बङ्गालके प्रसिद्ध एक छोटी नदी।

पुरन्दराय (सं० पु०) इन्द्रका धनुष।

पुरन्दरदास—कण्ठ-देववासी एक कवि।

पुरन्दरपुरी (सं० पु०) इन्द्रपुरी।

पुरन्दरा (सं० स्त्री०) पुरंदारयति प्रवाहैरिति, दारिद्र्य, तलहाय। गङ्गा।

पुरन्दर—१ बम्बई प्रदेशके पुना जिलात्मगत एक उप-विभाग। यह पचा० १८°६' से १८°२०' उ० और देगा० ७३°५१' से ७४°१८' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४७० वर्ग मील है और जनसंख्या सत्तर हजारसे ऊपर है। इसमें कुल १ शहर और ८० ग्राम मिलते हैं। पूर्व तीपेरिस्थ गासबडनगर ही इसका सदर है। मद्रास की दोनों शाखाएँ उत्तर पूर्व और दक्षिण-पश्चिममें विस्तृत हो जानने कारण समस्त जयों भाग उपर्युक्त भूमिमें परिणत हो गया है। भोमा और नोरा तथा कंदा और गङ्गोनी नामक नदी पहाड़की मध्य हो कर बहती है। वर्षातको भिन्न भिन्न शिखरों पर मलहारगढ़ और भूलेखर तथा धवलेश्वर देवमन्दिर निर्मित है। दक्षिणदिक्पूर्वी शिखरोंपर अवस्थित पुरन्दर और वज्रीरगढ़ नामक दुर्ग अपना सिर उठाये देश-गौरवकी रक्षा करता है। नदी आदि के सिवा खेतों वारोंके लिये यहाँ १६७७ कुप हैं। यहाँ ईखसे प्रसृत चीनोद्भूतगुल्लट होती है। समुद्रतटसे उत्तर पर अवस्थान, निर्वाहिक जनसंख्यापन और जलमय पार्षथ उपर्युक्त आदि के अधिष्ठान हेतु यह स्थान जिला भरमें अतोव मनोरम और सर्वोपेक्षा स्वास्थकर है।

२ उक्त पुरन्दर और वज्रीरगढ़ दुर्गोपस्थित स्थान। यह पचा० १८°१६' ३१' उ० तथा देगा० ७४°०' ४५' पू०के मध्य समुद्रतटसे ४४७२ और समतल क्षेत्रसे २३६ फुट ऊँचेमें अवस्थित है।

पूर्वार्द्ध दोनों दुर्गोंके मध्य पुरन्दर ही प्रमुख विख्यात है। दुर्ग प्राकारका कोई कोई भाग टूट फूट कर पहाड़ पर ही दूर उधर गिर पड़ा है। पुरन्दर पूर्वत-

को दो शिखर हैं। सर्वोच्च शिखर पर महादेव मन्दिर प्रतिष्ठित है और इसी पश्चिम पुरन्दर दुर्गका उत्तम पश्चि स्थानित है। मन्दिरसे २०० फुट नीचे सत्तादिक स्थान गंगा पर सरल सोपान उदय भूमि है। इस सुविस्तृत समतल स्थान पर सेनाओंकी क़ाम्यो है। इसके पूर्व भागमें सेनाका वासभवन और पश्चिमभागमें पोड़िन सेनामन्दिरा आरोग्य मन्दिर है। गुरुके छांगसे देगरचा करनेके लिये उसका उत्तर भाग प्राचीरपरिवेष्टित तथा बुज-परिमोहित है। दारदेगके दोनों पाङ्गमें बुज है। सोपानस्तरका जिला 'माची' कहलाता है। छोड़ा चकर मारनेमें 'दिल्ली' द्वार मिलता है। उससे ठाक सामने ही बुज विद्यमान है। एतद्विषय वहा दरवाजा, और दिण्डो दरवाजा, गणेशद्वार और 'बावता' या पताका बुज, फतेहबुज, कोहणो बुज, हाथी और जेठोबुज नामक और भी पनेक बुज हैं। १६४८ ई०में शिवाजीके पिता शाहजी गणेशद्वारके निकटवर्ती एक छोटे घरमें महमूदके कारावद्ध हुए थे। पताका बुजके समीप आवाजी पुरन्दरका प्रासाद और साङ्गनिर्मित राजभवन देखनेमें आता है। माचीसोपानस्तरसे चवतरण करके पताका-बुजके नीचे भैरवदरवाजा और सबसे नीचे सोनो-द्वार वर्तमान है। यहाँ महाराष्ट्र सेनापति बीनोवाला (Quarter-master General) की बहालिका थी। सभी वर एक बड़े बग़निमें परिणत हो गई है। पलाउहीन होमिन गङ्गा बाङ्गणीके राजत्वकालसे ही पुरन्दरदुर्गका उत्कृष्ट मिलता है। उक्त सुप्रसन्न-राजने कार्यो नदीमें से कर पुरन्दर गिरिमात्ता तक विरलत महाराष्ट्रदेवकी अपने अधिकारमें कर लिया और १६५० ई०में पुरन्दर दुर्ग-परिखा तथा प्राकारादि द्वारा उसे सुरक्षित किया। १६८४ ई०में बाङ्गणीराज १म महमूद कस्तूरक इसका कोष मस्तार तथा जगह जगह बुज परिमोहित हुआ। १६८६ ई०में निजाम-शाहोराज पदमटने इस दुर्ग पर अधिकार जमाया। प्रायः सौ वर्ष तक यह निजामशाहियोंके ही अधीन रहा।

दोनी बुज बनावेके समय बार बार दूट जाया करता था। एक दिन विदरराजको स्वप्न हुआ कि किसीके ध्वंश पुत्र और

कर नामाने दुर्गमें आश्रय लिया । १८१० ई०में त्रिभुवञ्जो देवनिवासि वटकेमें चंगरेज शासनकर्त्ता मि० एन्फिण्डोमने बाजीरावसे यह दुर्ग बन्धकस्वरूप प्राप्त किया । कुछ समय बाद ही बाजीरावने उसे पुनः वापिस कर दिया । मराठोंके श्रेष्ठ युद्धमें सिद्दहद दुर्ग छाव था जामेने चंगरेजोंसेना पुरस्वर और वज्रगढ़की ओर घुसने लुई । इधर सहद भाववद्ध दुर्गके भीतरसे भरवी ओर हिन्दुस्तानी सेनानि बसोम साहससे युद्ध किया था । पत्तनमें वज्रगढ़ चंगरेजोंके हाथ आ गया । कोई दूसरा उपाय न देख पुरस्वर दुर्गके अध्यापक चंगरेजों अधीनता स्वीकार करनेकी बाधा हुए । राघोसो भाङ्गियाके प्रवीणता दुर्गमें विद्रोहो दल उत्तेजित हो कर पोछे दुर्गवासियोंके प्रति भयानाचार न कर सके, इस भयसे १८४५ ई०में ब्रिटिश गवर्नमेंटने वहाँ एक दल सेना रख छोड़ी ।

पुरन्धि (स० स्त्री०) १ इटका समूहधारक । २ प्रभूता-बुद्धि । ३ धावा-प्रवृत्ति, स्तब्ध और प्रवृत्ति ।

पुरन्धिवत् (स० वि०) पुरन्धिः परस्वरूपेति मतुप, मस्य वा । बुद्धियुक्त, धामत्, अमनमन्द ।

पुरन्धि (स० स्त्री०) पुरन्धि देखो ।

पुरन्ध्री (स० स्त्री०) स्वजनसहितं पुरं भारयतीति ध्वज-खण्ड । गौरादिखात् स्त्रीय, प्रवीदरादिखात् ऋषो वा । १ पति पुत्र दुहितादिवती, पति, पुत्र कन्या आदिसे भरो पूरी स्त्री । इसका पर्याय कुटुम्बिनो है । २ स्त्री-मात्र ।

पुरपात्त (स० पु०) पुरं नगरं देहं वा पात्यतीति पात्ति-षण् । १ नगरपाल, कीर्तपात्त । २ देहपात्तक जीव ।

पुरपत्ता (हि० वि०) पूर्वका, पहिलीका । २ पूर्वजन्म-सम्बन्धी, पूर्वजन्मका ।

पुरपा (हि० स्त्री०) पुरपा देखो ।

पुरपिवा (हि० वि०) पूर्वदेशमें उत्पन्न वा रहनेवाला, पूर्वका ।

पुरपिवा (हि० वि०) पुरपिवा देखो ।

पुरपो (हि० वि०) पुरपो देखो ।

पुरभिद् (स० पु०) पुराणि त्रिपुरासुरपुराणि भिनत्ति भिद्-किप् । महादेव, शिव । इन्होंने चण्डिका त्रिपुर

नाग किया था, इस कारण इनका पुरभिद् नाम पड़ा है । पुरमण्डन—चन्द्रवर्णोय एक नरपति । आप कामाक्षी देवताके भक्त और कश्यप मुनिके कुलसे थे ।

पुरमण्डन—राजपूतानिके चत्तमंगत एक जनपद ।

पुरमयन (स० पु०) पुरं त्रिपुरायां मय्याति मय इयु । शिव, महादेव ।

पुरमयनवसम (स० पु०) दाहागुह ।

पुरमागं (स० पु०) पुरस्थ मागं । नगरका पथ ।

पुरमानिनी (स० स्त्री०) मन्दोमद ।

पुरय (स० पु०) त्र्यभेद, एक राजाका नाम ।

पुररत्त (स० पु०) पुरं रत्तति रत्त-षण् । नगररक्षक ।

पुररत्तिन् (स० वि०) पुर-रत्त-णि । पुररत्ताकारी, नगरको रक्षा करनेवाला ।

पुरला (स० स्त्री०) दुर्गा ।

पुरवद्या (हि० स्त्री०) प्रवारे देखो ।

पुरवट (हि० पु०) चमड़ेका बहुत बड़ा डोल । इसे कुएंमें डाल कर धँसोंकी सहायतासे खेतकी सिंचाई आदिसे किये जाने लगेचते हैं, चरवा, मोट ।

पुरवा (हि० पु०) १ छोटा गाँव, पुग, खेड़ा । २ पूर्व दिशासे चन्नेधात्री वायु, पूर्वको हवा । ३ पशुभोका एक रोग जो पुराकी वायु चलनेसे उत्पन्न होता है । इसमें पण्डवा गन्ता फूल खाता है और उसके पेटमें पौड़ा होती है । ४ मिट्टी का बूझड़, कुहियवा ।

पुरवाई (हि० स्त्री०) पूर्वकी वायु, वह हवा जो पूर्वसे चलती है ।

पुरवाता (हि० वि०) पुरा कागता ।

पुरवात्त—उहोकावाची वनिया जातिकी एक माया । बाराणसी धाममें भी इनका वास है । २० थाका इनमें देखे जाते हैं, जिनमेंसे कुछ वैष्णव और शैव सभी जैन हैं । हिन्दूको संख्या ३१ हजार और जैनकी १६ हजार है ।

पुरवासिन् (स० वि०) पुरे वसति वस-णिनि । नगर-वासी, नगरमें रहनेवाली ।

पुरवेया (हि० स्त्री०) प्रवाह देखो ।

पुरवासन (स० पु०) पुरं माप्ति गाम्-इयु । महादेव ।

पुरस्वरण (स० स्त्री०) पुरस्वर भागे इयु । १ ध्वज

एतद्भिन्नं मधु, क्षार, लवण, तैल, ताम्बूल, काय-
पान, दिवाभोजन, मांस, मृच्छन, माष, पाटक, मसर,
कोदण्ड, चणक, पशुपित अन्न और स्नेहगुण्य घषवा
कोटदूयित वस्तु भो परित्याज्य है । (योगिनोत्तर)

रामार्चनचन्द्रिकामे लिखा है—पुरश्चरणाभिनायो
मानव मेधुन, मेधुनगोष्ठो और उसको वातको समानो-
धनाका विलकुल परिधाय करे । ऋतुज्ञान व्यतीत और
मङ्गल न करे तथा चौरकर्म, तैलस्नान, बिना निवे-
दन किये भोजन, चमङ्गलित कार्य और मर्द्दनादिका
त्याग विधेय है । एतद्भिन्न पञ्चगव्य द्वारा स्नान, मन्त्र-
जप जल और अन्न द्वारा स्नान, आचमन और भोजन
तथा यथाविधि त्रिसन्ध्यादेवको पर्व ना करे । ऋद्धिका
तात्पर्य यह कि पवित्रतासे रह कर मन्त्रजप करना
होता है । जपके समय किसी भी प्रकार शब्दका उच्चा-
रण करना निषिद्ध है ।

“अपवित्रकरो नमः शिरसि प्रातुगोष्णि वा ।

प्रलम्ब प्रजयेद्वायुं तावत् निष्कलमुच्यते ॥”

(रामार्चनचन्द्रिका)

नारदोपतन्त्रमे लिखा है—पाषाणव्यक्ति मृदु, लघु,
सुपक्व और लघु तथा जिससे रन्ध्रियकी छिन्न न हो, वैसी
हो वस्तु भोजन करे ।

“सुदु धोमां सुवक्त्रं कुर्वातै लघुभोजनम् ।

नेत्रिग्र्याणां यथावृद्धितया भुञ्जीत पाषाणः ॥”

(नारदोपतन्त्र)

मिच्छादि निज पक्ष द्वारा जीवन रक्षा करके धर्म
कर्म करना ही कर्त्तव्य है ।

धर्मयोग व्यक्ति परावृत्ता विलकुल त्याग कर दे ।
परावृत्ति परिपुष्ट हो कर धर्मसंघ्य करनेसे सम्पूर्ण फल
साम नहीं किया जा सकता । चाहे पुरश्चरण हो या
अन्य कोई धर्म कर्म क्यों न हो, पण्यसे पाजित हो
कर उसका कोई भी कार्य करना सङ्गत नहीं है । यदि
कोई पराजयपुष्ट धर्मसंघ्य करना चाहे, तो समस्त
सञ्चित धर्मका पाषाण फल भग्नताकी प्राप्त होता है ।

पराकादिको जो सिद्धिविषयमें प्रतिज्ज्ञ वतताया है,
सह कुत्सापर्वमें निष्कित दूरपावर्तौवाक्यमें भी जाना
जाता है, यथा—

“विष्ठा दग्वा परायेन कौ दग्धौ प्रतिपदात् ।

परसीभिर्नो दग्धं कथं सिद्धिरानने ॥” (कुलागव)

केवल पक्ष हो नहीं, धर्म होइकर दूसरेसे कोई भी
वस्तु ग्रहण करना माधुषीका कर्त्तव्य नहीं है । एकात्म
धर्मभाव होने पर पुर्णमा पर्वदिन छोड़ कर तोय-
चित्त बाहर जा साधु कोई भी सत्प्रतिग्रह कर सकते
हैं । यदि वे इसमें भी असमर्थ हों, तो प्रतिदिन किसी
पवित्र दातासे दिन भरका भोजन मांग लिया करें । यदि
वे रागामिभूत हो अधिक भोजन संयज करें, तो शत-
कल्पमें भी सिद्धिनाम नहीं होता ।

“विहाय बर्हं नहि वस्तु किञ्चित् प्राहं परैभ्यः सति धम्मवे च ।

अधम्मवे सीर्यवहिपिण्डदात् पर्वतिरिक्त प्रतिष्ठप कणात् ॥

तत्तावमर्थोऽनुदिनं पिण्डदात् याचेत यावद्दिनमात्रमेव ॥

यहासि रागादधिकं न सिद्धिः प्रजायते कश्चात्तैरनुष्ठ ॥”

(कुलागवतन्त्र)

जपते समय यदि एक बार भी अन्य किसी शब्दका
उच्चारण किया जाय, तो जपकर्त्ता प्रणव उच्चारण करें
और यदि पारमव शब्द उच्चारित हो, तो उसी समय
प्राणायाम कर लें ।

“सकृदुचरिते शब्दे प्रणवं समुदीयेत् ।

श्रीके पाशधवे शब्दे प्राणायामे सकृच्चरेत् ॥”

(कुलागवतन्त्र)

जाप पर बैठ कर प्रत्याप करनेसे पुनः आचमन और
पञ्चन्यास करके जप करना होता है । स्तु और पञ्चम
स्थान छूनेमें भी वही नियम पालनीय है । पुरश्चरण-
ज्ञत व्यक्ति वल नियमादिका कभी भी उल्लङ्घन न करे ।
बिष्ठा, मृच्छत्याग और गङ्गादिपुष्ट होकर यदि कोई धर्म
कर्म करे, तो उसके जपार्चनादि सभी कार्य अपवित्र
होते हैं । यदि जपकर्त्ताका वक्ष और किमादि मलिन हो
तथा मुखसे दुर्गन्ध निकलती हो, तो उसके पाराध्य
देवता की वसे दण्ड करनेमें प्रवृत्त हो जाते हैं । जपमें
प्रवृत्त हो कर पानपय, जन्धव, मित्रा, क्षुत्, निष्पीवन,
भय, नीचाङ्गस्यन और क्षीप करना निषिद्ध है ।

जपकर्त्ता पुरश्चरणचिह्निके किये जपके समय धीरे
या द्रुतभावसे परित्याग कर यथोक्त संख्यक जप
करनेमें प्रवृत्त हो जाय । अङ्गपूर्वक देवता, गुरु और

अपने समय यदि मारजार, कुकुर, कौब, कुकुर, गुर, बानर पशुवा-गर्भ पर दृष्टि पड़ जाय, तो पुनर्जन्म पाषाणन करके जप करना होता है तथा इन्हें स्पर्श करनेसे भी स्नान करके पवित्र होना उचित है।

सभी प्रकारके जपजर्मों में ही नियमका पालन करना होता है। किन्तु मानसजपमें कोई नियम पालन करनेकी जरूरत नहीं। मानसजपमें मन्त्री व्यक्ति चाहे शक्ति रहे या शक्ति, राज चलते हो पशुवा हो रहे हो, एकमात्र जपमें मन्त्रका हो वे बलस्वजन करके सर्वदा मनहो मन पश्चात् करते हैं। मानसजपमें देव वा काल-विषयमें भी किसी नियमका पालन करनेकी जरूरत नहीं। सभी देवोंमें सभी समय जप किया जा सकता है, इसमें कोई दोष नहीं।

जप-प्रकारका विषय शिवधर्म में इस प्रकार लिखा है,—हिज यदि जपगुह्य हो, तो वे सभी यज्ञोंका फल लाभ कर सकते हैं। सर्वदा जप द्वारा देवताका स्तुति करनेसे देवता प्रसन्न हो कर सभी अभिलाष पुरा करते और शाश्वती सुख देते हैं।

“जपगुह्यो विजगुह्योऽस्तितयहृत् कमेत्।

सर्वेश्वरमे वदन्तानां गान्धर्वोऽपि महाफलः॥

जपेन देवता निर्वैश्वर्यानां प्रकीर्तिः।

प्रसन्ना विदुषां कानां ह्यगम्यजिह्वं शश्वती ॥”

(शिवधर्म)

पञ्चपुराणमें इस प्रकार लिखा है—यज्ञ, शिव, विष्णु, ब्रह्म पशुवा भयङ्कर सर्प इनमेंसे कोई भी जप-निरत व्यक्तिका अगुह्य नहीं कर सकता, बल्कि वे भीत हो कर दूर दूर भाग जाते हैं।

“मधुराः पिशाचाश्च शराः सर्वाश्च मीषणाः।

आपि नोपसर्पन्ति भयभीताः समन्ततः ॥” (पञ्च०)

सब प्रकारके जन्म, यज्ञ और तपस्यामें जपयज्ञ ही श्रेष्ठ है। सब माहात्म्य केवल वाचिक जपयज्ञके सम्यग्में ही निर्दिष्ट हुआ है। उपाय और मानस-जपयज्ञका माहात्म्य सबसे भी अधिक है।

“वायव्यः कर्माणाः स्युः प्रसिद्धाणि तपसि च।

सर्वे ते जपवद्वयं कुरु बार्हिष्ठि योद्धता ॥”

माहात्म्यं वाचिकस्यैतज्जपवद्वयं कीर्तितं।

तस्माच्छ्रुतगुणोपायः सर्वो मानसः स्मृतः ॥”

(गार्ग्य और गार्ग्य ५०)

वाचिक, उपाय और मानस इन तीन प्रकारके जपों में वाचिक मारणमें, उपाय पुष्टिकाममें और मानस जप सिद्धिकामनामें प्रयुक्त है।

“मानसः सिद्धिकामागं पुष्टिकामैर्वाद्युक्तः।

वाचिको मारणे चैव प्रशस्तो जप ईरितः ॥” (तन्त्र)

पञ्चराष्ट्रिका नाम जप है। यह जप मानस, उपाय और वाचिकके मध्ये तीन प्रकारका है। इन तीन प्रकारके जपों में बुद्धिपूर्वक वर्षा और पदसम्पत्ति पञ्चराष्ट्रिका की प्रवृत्ति करने की उच्चारण किया जाता है, उसे मानसजप कहते हैं। मानसजपकी ही सर्वोत्तम श्रेष्ठ बतलाया गया है।

“जपः सादृश्यादुत्तिर्नामोपायवाचिकैः।

उच्यतेऽयं दिव्य मानसः स जपः स्मृतः ॥” (गीतगीय)

मन्त्रनिर्णयमें लिखा है—मन ही मन मन्त्रवर्णकी चिन्ता करनेका नाम मानसजप है। देवताके प्रति चित्तसमर्पण करके जिज्ञा और शोध दोनोंकी कुछ परिवाचना तथा जपकालमें मन्त्रवर्णकी कुछ वर्षा गोचरता होनेसे उसे उपाय जप कहते हैं। एतद्भूमिग वाक्य द्वारा जो मन्त्र उच्चारण किया जाता है, उसका नाम वाचिक जप है।

“मानसं मन्त्रवर्णस्य चित्तनं मानसः स्मृतः।

त्रिहोत्रे चालयेत् किञ्चिद् देवतागतमानसः ॥

किञ्चित् भवयोग्यः स्यात् उपायः स जपः स्मृतः।

मन्त्रमुच्चारयेद्वा वाचिकः स जपः स्मृतः ॥”

(मन्त्रनिर्णय)

फिर दूसरी जगह लिखा है, कि जो जप निज कर्ण-का श्रोत्र पर है उसे मानस, जो निज कर्णका गोचरी-भूत है, उसे उपाय और जो उच्चारित वाक्य पश्य व्यति भी सुन सके, उसे वाचिक जप कहते हैं।

“निश्चयं गोचरी यो मानसः स जपः स्मृतः।

उपायुर्निष्कर्णस्य गोचरः स प्रकीर्तितः ॥

निगद्यतु जनेष्वपि किमोऽयं जपः स्मृतः ॥” (तन्त्राष्टक)

किया जाय, उसीके दत्तिय हस्तमें वह जप समर्पण करना होता है। किन्तु गति विषय होनेसे गन्ध, घन्त और कुशोदक द्वारा देवताके वासहस्तमें जप समर्पण करना कर्त्तव्य है। जपके यदि और अन्तमें जपका उद्देश्य समझ कर तीन तीन बार प्राणायाम करना पड़ता है।

जप करनेमें जपकी संख्या रखनी होती है। अथवा, हस्तपर्व, धान्य, चन्दन, पुष्प वा मृत्तिका इन सबमें जपकी संख्या रखना नियम है। लाक्षा, कुशोद, मिन्दूर, गोमय और करीब इन सबको मिश्रित कर गोली बनावे, पके उसी गोलीसे जपकी संख्या रखना कर्त्तव्य है।

जपकर्त्ता प्रतिदिन जितना जप करे गे, जप ग्रेप हो जाने पर प्रत्येक दिन उसके दशांशानुक्रममें होम, तर्पण और घमियेक करना होता है। जपके न्यूनार्धित्वप्रशमनके लिये प्रतिदिन ब्राह्मण भोजन कराना विधेय है।

गुह्यमाज्ञातन्त्रमें लिखा है,—जिस देवताका जिस परिमाणमें जप वतनाया गया है, जपके अन्तमें प्रतिदिन उससे दशांशानुक्रमसे उस देवताका यथोक्त होमादि करना होगा।

पुरश्चरणचन्द्रिकामें लिखा है,—प्रतिदिन जिस परिमाणमें जप हो, उसका दशांश होम करे; अथवा लक्ष जप पूर्ण होने पर ही होम करना चाहिए।

सनतकुमारवैद्यके मतसे,—जपकर्त्ता जयका ओं जो बह्म होन होगा, उसका दूना जप करे। यह नियम ब्राह्मणके लिये ही जानना चाहिये। किन्तु यदि होम न कर सके, तो ब्राह्मणपत्नीकी होमसंख्याका चौगुना जप विधेय है। एतद्विषय चरित्र और वैश्यपत्त्रियोंकी क्रमशः छः और आठगुना जप करना प्रवृत्त है। शूद्र यदि ब्राह्मण वा चरित्र अथवा वैश्यका ध्यायित हो, तो जपके पात्रयमें रक्ष कर जप किया जायगा, उसके सम्बन्धमें जो नियम निर्दिष्ट हुआ है, उसे भी उसी नियमसे चलना होगा। परन्तु शूद्र यदि किसीसे भी पात्रयमें न रक्ष कर जप करे, तो उसे दशगुण जप करना होगा। शूद्र यदि ब्राह्मणका श्राव्य हो, तो उसके पक्षमें ब्राह्मणपत्नीके समान जप प्रवृत्त है।

चार बात यह है, कि होमाभावमें ब्राह्मणकी द्विगुण,

ब्राह्मणपत्नीकी चार गुण, तथा चरित्र, वैश्य और शूद्रकी क्रमशः तीन, चार और पांच गुण जप करना होगा। सभी जगह स्त्रियोंकी पुरुषसे दूना जप करनेकी लिखा है।

इधर योगिनीहृदय और कुत्साणवर्त्मभो लिखा है, कि ब्राह्मण यदि होमक्रममें अक्षत हो, तो उन्हें द्विगुण जप करना होगा। ब्राह्मण भिक्षु इतरवर्ण अर्थात् चरित्र, वैश्य और शूद्रके लिये क्रमशः तीन, चार और पांच गुण जप करना विधेय है।

योगिकर्मप्रकाशना विप्रार्ण द्विगुणो जपः।

इतरैर्यान्तु वर्णानां त्रिगुणारिः धनीरितः ॥

(योगिनीहृदय)

“वदपदं गीहीनं स्यात् तदसंख्याद्विगुणो जपः।

कुर्वीत त्रिचतुश्चैव यथासंकेतं द्विजान्धवा ॥”

(कुत्साणवर्तन)

अगस्त्यसंहिताके मतसे,—यदि जपकर्त्ता होम, पूजा अथवा तर्पण करनेमें भी असमर्थता प्रकट करे, तो निर्दिष्ट संख्यक जप और ब्राह्मणाराधन, ये दो कर्म करनेसे भी उनका पुरश्चरण सिद्ध होता है।

“यदि होमेऽप्यसक्तः एवात् पूजार्थां तर्पणेऽपि वा।

तावत् संवत्सरेणैव ब्राह्मणाराधनेन च।

अथैवद्वयेनैव पुरश्चरणार्थं वै ॥” (अगस्त्यसं.)

वीरतन्त्रके मतसे,—जपविषयमें स्त्रियोंकी पूजादि किसी भी नियमका पालन करनेकी आवश्यकता नहीं। केवल जप करनेसे ही स्त्रियोंकी मन्त्रसिद्धि होगी। पूजादिके जितने नियम हैं, वे सभी पुरुषके लिये निर्दिष्ट हुए हैं।

“नियमः पुरुषे हेतो न योषितुः कदाचन।

न न्यासो योषितामत्र न ध्यानं न च पूजनं।

केवलं जपामेव मन्त्राः शिष्टानि योषितां ॥”

(वीरतन्त्र)

वीरतन्त्रमें ही दूसरी जगह लिखा है, कि शूद्रकी यथायोग्य दत्तिया और अन्नवस्त्रादि द्वारा परितुष्ट करना चाहिये। शूद्रके मन्त्र होनेसे ही मन्त्रसिद्धि होगी।

“गुरुने दक्षिणां दद्यात् भोक्ताप्राजादक्षिणिः।

गुरुवत्तोयमात्रेण मन्त्रसिद्धिर्निवेदध ॥” (वीरतन्त्र)

योगिनीहृदयके मतसे,—शूद्रके परमाणमें शूद्रपुत्र

अभिमानित करके निम्नलिखित पाठ द्वारा दर्शो दिगाए
खनन करे। मन्त्र यथा—

“ओं ये चात्र विघ्नकृत्तारो भुवि विघ्नन्तरीडयाः।

विघ्नभृताश्च ये चात्र ये मम मन्त्रस्य सिद्धिषु॥

मयैतत् कीर्तितं क्षेत्रं गरीलज्य विद्वतः।

अथर्चयन्तु ते सर्वे निविघ्नं सिद्धिरस्तु मे॥”

अनन्तर चन दश कीलकीं पर ओं नमो बुद्धर्चनाय
अन्त्राय कर्त्तुं इस मन्त्र द्वारा चण्डीकी पूजा करके पूर्वोदि
क्षमसे इन्द्रादि लोकपालीका आवाहन करे। पोछे
पक्षोपचारसे पूजा करके मध्यस्थलमें चैत्रपालकी पूजा
और सङ्कल्प करनेके बाद सर्व विघ्नयिनागके लिये वेदीके
मध्य पक्षोपचार द्वारा गणपतिकी पूजा करना होती है।
सङ्कल्प यथा,—ओं भवैवाहि अमुक गोत्रां श्रीअमुकदेववर्मा
महर्षीत्यामुकमन्त्रपुत्राणां लक्ष्मीं सर्वान्घ्ननिवार्यान् गणेश-
पूजामहं करिष्ये।

अनन्तर मासभक्षादि द्वारा पूजित देवताओंको
बलि चढ़ावे। पोछे—

“ओं ये रौद्रा रौद्रकर्मणो रौद्रस्थाननिवासिनः।

मातरोऽप्युमकृपाश्च कृपापितृवत्तव्य ये॥

विघ्नभृताश्च ये चात्र ये विघ्नविघ्नं घ्नमात्रिताः।

सर्वे ते भीतमनसाः प्रतिगृह्णन्ति मे बलिं॥”

इस मन्त्रका पाठ करनेके बाद दमटिक, लक्ष्म भूतोंको
बलि प्रदान करके गायत्री जप करना होता है।

“प्रातः शान्ताया गायत्र्याः सहस्रे प्रयतो जयेत्।

शान्ताशास्त्रेण पापस्य क्षयार्थं प्रथमं ततः॥”

(निष्पाठाचार्य)

इस गायत्री जपमें भी पहले सङ्कल्प कर लेना होता
है। सङ्कल्प यथा—“ओं भवैवाहि अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेव
वर्मा शान्ताशास्त्रपाठकृत्तामोऽगोत्रसदृशगायत्रीजपमनुत्तमाय-
त्रीजपं वा महं करिष्ये॥” इस प्रकार सङ्कल्प करके गायत्री
जप करे। उस दिन उपवास या हविष खा कर रहना
पड़ता है। दूसरे दिन मासमुहूर्त्तमें स्नानादि सभी
कार्य करके अस्तिपाचनपूर्वक पुरस्करणका सङ्कल्प
करना होता है, यथा,—

“विष्णुः ओम् भवैवाहि अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेववर्मा अमुक

देवताया अमुकमन्त्रसिद्धिप्रतिषिद्धताशेषपापस्य पूर्वकृतमन्त्र-
सिद्धिर्नामोऽप्ययं यथाकालेन सेव्यपति तावत्कालममुक
देवताया अमुकमन्त्रस्यैवसङ्कल्पवत्तदज्ञाज्ञातोऽदृशोऽतर्प-
णतद्दृशांशानिरेतदृशांशः सङ्कल्पमोक्तनरपुत्रायणमहं करिष्ये।

यह सङ्कल्प करके पोछे भूतशुद्धि, प्राश्नायामादि
तथा जो जिस देवताके सपासक है, वी उसी देवताके
मुद्राभन्धन तथा पूजनके चमूधार पूजा करे। पोछे
प्रदीप प्रज्वलित कर प्रातःकालसे ले कर मध्यदिन
पर्यन्त जप करते रहें। अनन्तर दशग्राहकमसे होम,
तर्पण, अभिषेक और ब्रह्मण भोजन कराना प्राव-
श्यक है।

तर्पणको सम्बन्धमें लिखा है, कि भक्तिगुल हो कर
लक्षके मध्य देवताका आवाहन करे और लक्ष द्वारा ही
पाद्यादि दानसे परिवारके साथ पूजा करे। पोछे चन्दन-
मिश्रित तीर्थजल द्वारा होमके दर्शगसे परदेवताका
तर्पण और सङ्ख्या पूर्ण हो जानी पर चण्डीदि परिवार
को भी फिरसे एक एक चण्डीदि दान दे कर विसर्जन
करना होता है।

विष्णुका तर्पण करनेमें पहले मूलमन्त्रका उच्चारण
करके “ओं अमुकं तर्पयामि नमः” इस वाक्य द्वारा
तर्पण करना होता है।

“आरौ मन्त्रं यदुवाच धीपूर्वं कृष्णमिन्द्रपि।

तर्पयामि पदकरोक्ष्णो नमोऽन्तं तर्पयेन्नरः॥”

(गौतमीय)

शक्ति विषयमें भी पहले मूलमन्त्रका उच्चारण करके
‘अमुक देवता तर्पयामि’ इस वाक्यसे तर्पण करना
चाहिए।

“तर्पयामि पदकरोक्ष्णो मन्त्रागते श्वेतु नामधु।

स्त्रिणीयातेषु चेतरेषु तर्पणस्य मनुमनः॥” (गौतमीय)

सक्त शक्तिविषयका तर्पणवाक्यमन्त्रमन्त्रं नीततन्त्र
और विद्यादेशरतन्त्रमें कुछ प्रयत्नता देखी जाती है।
सक्त दोनों तन्त्रोंमें लिखा है, कि पहले मूलमन्त्रका
उच्चारण करके पोछे ‘अमुकी तर्पयामि स्वाहा’ यह
वाक्य कहना होता है।

एकान्त भावश्यक है। आदिदिने अनुरोधसे यदि कोई व्यक्ति जप न करे, तो वह देवताद्रोही सात पोढ़ी तन भोगीगामी होता है।

‘आदादेऽनुरोधन यदि जप्यं लजेवः’

य मनेत् देवताद्रोही पितृन् वस नयत्यधः ॥”

(सनतकुमारीय)

यद्यप्येवं सक्त वचनही सीमांशमें ऐसा निर्धारित हुआ है, कि यदि पुरश्चरणका पारम्भ ही जानिके बाद ग्रहण ही भोर सम समय यदि कोई आदादि करने-की आवश्यकता पान पड़े, तो जपका परित्याग न करे।

क्रियाधारको मतसे जप हीमादि पञ्चाङ्ग-उपासनाकी ही पुरश्चरण वतकाया है। किन्तु ग्रहण-कारणमें पुरश्चरण शब्दको गोप्य समझना चाहिये। ग्रहणमें जप ही प्रधान है।

ये दो प्रकारके पुरश्चरण छोड़ कर तन्मादिमें भोर भी जाना प्रकारके पुरश्चरणोंका उल्लेख देखनेमें आता है। इनमेंसे महादेवने पाव'तोंके पूजनमें पर राशि, नक्षत्र भोर तिथ्यादिविशेषसे जितने जपोंके नियमानुसार जितने प्रकारके पुरश्चरणोंका उल्लेख किया है, वही नीचे दिते हैं—

राशिके नाम	जपसंख्या।
मेष	दश सहस्र।
वृष	दो अयुत।
मिथुन	तीन अयुत।
कर्कट	प्रत्यह सहस्र।
मि'ह	दो अयुत।
कन्या	१२ सहस्र।
तुला	प्रत्यह सहस्र।
हस्तिक	{ एक अयुत। यह जप श्रद्धा पर बैठ कर करना होता है।
धनुः	१ अयुत।
मकर	४ अयुत।
कुम्भ	१ अयुत।
मीन	२ अयुत।

नक्षत्रविशेषसे जप यथा—

महर्षिके नाम

अरुणदेवा ।

शस्त्रिनी	१ हजार।
भरणी	२ हजार।
कृत्तिका	३ हजार।
रोहिणी	१ हजार अथवा १ मी।
मृगशीर्ष	५ हजार।
आर्द्रा	६ हजार।
पुनर्वसु	१ हजार।
पुष्या	७ हजार।
अश्लेषा	६ हजार।
मघा	१० हजार।
पूर्वाषाढा पूर्वभाद्रपद पूर्वफल्गुनी	} ११ हजार।
उत्तराषाढा उत्तरभाद्रपद उत्तरफल्गुनी	
हस्ता	१२ हजार।
चित्रा	२ हजार।
विशाखा	४ हजार।
अनुराधा	४ हजार।
ज्येष्ठा	२ हजार।
मूला	५ हजार।
शतभिषा	२ हजार।
श्रवती	४ हजार।

(स्वतन्त्ररूप)

देवताभेदसे मन्त्रादि भोर जपसंख्यादिकी विभि-
न्नाता निर्दिष्ट हुई है। मन्त्र शब्द देखो।

पुनश्चद (सं० पु०) पुनश्चदति कादयतीति छद अक्ष,
धा पुरोऽप्रतद्वद्धाः पत्राण्यस्य। दण्डविशेष, क्रम वा
हामकी तरफकी एक घास। पत्राण्य—दर्भ, शग, सोम-
पत्र, परातृग्रिय।

पुरषा (दि० पु०) पुनश्च देवी।

पुरष (सं० अथ०) पूर्वस्मिन् पूर्वस्मात् पूर्व एव
पूर्वस्याः पूर्वस्यामित्यादि पूर्व-पश्चि-तदयोगेन पुरश्चत्वा-
देशश्च। (पूर्वाचारवराणामपि पुरश्चत्वेन। पा ५।१।१८)
१ अयतः, पङ्क्तौ, चामे। २ पूर्वकी भोर, पूर्वकाल-
में, पूर्वदेशमें। ३ प्रथमकालमें। ४ पुराण। ५
पतीताथ।

सुनिधो' और राजाओं की वृत्तान्त आदि रहते हैं, पुराणों कथाओं की पीढ़ी।

पुराण शब्द का अर्थ पूर्व ज्ञान है। तदनुसार पहले 'पुराण' कहने से प्राचीन आख्यायिकादि-सम्बन्धित ग्रन्थ-विशेष समझा जाता था। अथर्ववेद, अथर्वशास्त्राण्य, बृहदारण्यक, छान्दोग्योपनिषद्, तैत्तिरीय आरण्यक, भाष्यनायनश्रुतसूत्र, आपस्तम्बधर्मसूत्र, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत आदि प्रायः आतिथी के सुप्राचीन शास्त्रग्रन्थों में पुराणप्रसङ्ग है।

उत्पत्ति—निर्णय

अथर्वस्मृतिज्ञानि मतमें 'यज्ञको उत्प्लिष्टसे यज्ञवेदको प्रायः ऋक्, साम, छन्द और पुराण उत्पन्न हुआ था।' (१)

अथर्वशास्त्राण्यमें लिखा है, 'पुराण वेद है, यह वही वेद है; ऐसा कह कर अथर्वपुराणका जीर्णन किया करते हैं।' (२)

बृहदारण्यक और अथर्वशास्त्राण्यमें दूसरी जगह लिखा है, 'भार्गवाहवे उत्पन्न अग्निसे जिस प्रकार इष्टक, इष्टक धूम निकला करता है, उसी प्रकार इस प्रदान भूतको निम्नासवे ऋग्वेद, यज्ञवेद, सामवेद, अथर्वान्निरस, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान और अनुशास्त्रानि निकले हैं—ये सभी इनके निम्नास हैं।' (३)

यहाँ पर बृहदारण्यक भाष्यमें बह्मराचार्य ने निम्नास का अर्थ समझाया है, 'जो निम्ना यज्ञको पुरुषसे उत्पन्न हो।' (४)

(१) 'ऋक्, सामानि छन्दसि पुराणि यज्ञा सह।'

(अथर्व ११।७।२४)

(२) 'अथर्व्युक्तास्यै वै पश्यतो राजेसाह.....पुराणं वेदं वोऽयमिति किञ्चित् पुराणमाचक्षीत।'

(अथर्वशास्त्राण्य १३।१।१३)

(३) 'य यथा भार्गवाग्नेरभ्यादितात् पुण्यधूमा विनिर्गच्छि एव वा अरेऽस्य गहरो भूतस्य निश्चितमेतद् गह्वरेऽपि युजवेदं सामवेदोऽयमग्निरेव इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राणि त्रयस्याहयानानि द्वाहयानानि अत्येव एतानि सर्वानि निश्चितानि।' (बृहदारण्यक १।१।१०) = अथर्व १३।१।१०।

(४) 'निश्चितमिव निश्चितम्। यथा अथर्वतैत्तिरीय पुराण-

छान्दोग्योपनिषद्को मतमें—इतिहास और पुराण वेदसमूहका पञ्चम वेद है। (५)

पुराण कहनेसे जो सा हम लोगों की आधुनिक शास्त्रका बोध होता है, उक्त वैदिक प्रमाण देखनेसे वह वैसा आधुनिक प्रतीत नहीं होता। वैदिककालमें 'पुराण' प्रचलित था और वेदको तब प्रायः समाजमें उमका प्रादुर होता था, इसीसे पुराणको पञ्चमवेद स्वरूप माना गया था। उपरोक्त बृहदारण्यक और शाङ्कर-भाष्यकी पालोचना करनेसे ऐसा मानसूय पड़ता है, कि भगवान् के प्रयत्नसे जिस प्रकार चारों वेद उत्पन्न हुए थे, पुराणकी उत्पत्ति भी उसी प्रकार है।

ब्रह्मसूत्रभाष्यमें सीमांतककी सुत्र (पूर्वपक्ष) में बह्मराचार्य कहते हैं, 'इतिहासपुराणमपि पौरुषेवावात् प्रमाणान्तरभूततामाकांक्षते' (१।३।३२) अर्थात्, इतिहास और पुराणकी भी पौरुषेयके जो सा प्रमाणात्तरभूतता (अर्थात् वेदके आदर्शोपप्राप्तिके जो सा) स्थोकार करना होगा।

सायणाचार्य ने वेदभाष्यमें लिखा है—

'देवाभ्याः संवत्ता आद्यमिलादय इतिहासः। इदं वा अग्ने-
नैव किञ्चिन्वादीदित्यादिर्कं जगताः प्रागवस्थाप्राग्वन्मयं सर्वप्रति-
वादकं वापयजतं पुराणम्।' (ऐतरेय ब्राह्मणोपक्रम)

वेदकी अन्तर्गत देवासुरकी युद्ध-वर्णन इत्यादिका नाम इतिहास है। इसके और पहले यह पश्य या और कुछ भी न था, इत्यादि जगत्की प्रथम अवस्थाका चारण्य करके सृष्टिप्रक्रिया विवरणका नाम पुराण है।

बह्मराचार्य ने भी बृहदारण्यक भाष्यमें लिखा है—

'इतिहास इत्युक्तेष्वुक्तवदोः संवादादिर्देवीहोवाया इत्यादि
ब्राह्मणमेव पुराणमब्रह्म इदमेव आदीदित्यादि।' (१)

(बृहदारण्यकभाष्य १।३।१०)

अथर्वी और पुरुरवाके कथोपकथनादिस्वरूप ब्राह्मण-
भागका नाम इतिहास है और 'मनसे पहले एकमात्र

निधातो भवत्येव वा। पुराणं अथर्व वा इदमेव आदीद
इत्यादि।' (शंकरभाष्य)

(५) 'य होवाय अथर्वेदं मगधोऽप्येति यज्ञोदं सामवेदं प्राय-
स्वेन यजुर्वेदमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्।'

(छान्दोग्य ३।७।१३)

स्मृत्या जगद् च सुनोन् प्रति देवसुतसुतः ।
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्ततः ॥
कालेनापश्यन् दृष्ट्वा पुराणस्य ततो मुनिः ।
व्यासकृपे विभुं कृत्वा संहर्षे स मुनि मुने ॥
चतुर्लक्षप्रमाणेन दापरे दापरे वदतः ।
तदष्टादशधा कृत्वा भूर्भुवःस्थिम् प्रभाष्यते ॥
पद्यापि देवलोके तच्छ्रुत्वाकोटो प्रविस्तरम् ।
तदेवास्मिन् चतुर्लक्षं विभक्तं निवेदितः ॥
पुराणानि दशोच्यते च साम्प्रतं तद्विदोच्यते ॥

(रैवामाहास्य १।२१-३०)

इस रैवामाहास्यमें साफ लिखा है, कि सत्यवतो-
नन्दन वसन्त षष्ठादश-पुराणके जन्मा हैं ।
“षष्ठादश पुराणानां जन्मा सत्यवतोसुतः ॥” (रैवाण्ड)
पञ्चपुराणके छट्छिखण्डमें भी रैवामाहास्य समर्थित
हुआ है—

“प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्तदा ।
कालेनापश्यन् दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुः ॥
व्यासकृपे तदा ब्रह्मा संप्रदायं मुनि मुने ।
चतुर्लक्षप्रमाणेन दापरे दापरे विभुः ।
तदष्टादशधा कृत्वा भूर्भुवःस्थिम् प्रकाशते ॥”

(छट्छिख १ पं०)

चतुरोक्त पुराणवचनके ऊपर निर्भर करके बहुतेरे
लक्षणोपायन वेदव्यासको ही षष्ठादश पुराणके
रचयिता मानते हैं । क्या सचमुच १८ पुराण एक व्यक्ति-
के बनाये हुए हैं ? पण्डितवर स्वर्गीय ईश्वरचन्द्र
विद्यासागर महाशयने लिखा है,—

“सभी पुराणोंकी अपेक्षा विष्णुपुराणकी रचना
प्राचीन प्रतीत होती है । जितने पुराण हैं सभी वेद-
व्यासप्रणीत कह कर प्रसिद्ध हैं; पर उनकी रचनामें एक
दूसरेके साथ इतनी विभिन्नता है, कि वे एक व्यक्तिके
रचे हुए प्रतीत नहीं होते । विष्णुपुराण, भागवत और
ब्रह्मवैवर्तपुराणका एक एक अर्थ पढ़नेसे भास म
होता है, कि वे तीनों एक लेखनीके मुखसे निर्गमित
नहीं हो सकते । विष्णुपुराण आदिके साथ महाभारत-
की रचनामें इतनी विभिन्नता है, कि जिक्रिने विष्णु-
पुराण, पद्यवा भागवत या ब्रह्मवैवर्तपुराणकी रचना
की है महाभारत समझा बनाया हुआ नहीं है ॥”

मत्स्यपुराणमें लिखा है,—

“पुराणामेकमेवासीत् तदा कल्पात्तरेऽनघ ।
त्रिवर्गमाधनं पुण्यं शतकीर्तिप्रविस्तरम् ॥
निर्दग्धेषु च लोकेषु वाजिरूपेण वै मया ।
अत्रानि चतुरो वेदाः पुराणं व्यायविस्तरम् ॥
मीमांसा धर्मशास्त्रश्च परैश्चैव मया कृतम् ।
मत्स्यरूपेण च पुनः कल्पादाबुदकाय वै ॥”

(५।३।७०)

मत्स्यपुराणमें साफ साफ लिखा है, कि मयसे पहले
केवल एक पुराण था । सभी एकमे धीरे धीरे १८
पुराण उत्पन्न हुए हैं, पहले १८ पुराण थे और व्यास-
ने जो उन षष्ठादशोंकी रचना नहीं की, इस सम्बन्धमें
परवर्ती विष्णुपुराण और ब्रह्माण्डपुराणका निवरण
पढ़नेमें ही सदेह दूर हो जायगा ।

ब्रह्माण्डपुराणमें (६) इस प्रकार लिखा है—

“प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
अनन्तरश्च वज्रो भेदास्तस्य विनिस्तृताः ॥”

(१।५८)

सभी शास्त्रोंके पहले ब्रह्मसे पुराणकी उत्पत्ति हुई
है । पछि उनके मुखसे सभी वेद निकले । फिर दूसरी
जगह (६।५ पं०) लिखा है, कि वेदव्यासने ही एक
मात्र पुराणसंहिताका प्रचार किया । (७)

विष्णुपुराणमें स्पष्ट लिखा है—

(६) कल्पावक विलम्ब और राजा राजेन्द्रकासप्रमुख आदि
पुराणिद्वय राजकी वायुपुराण समझ कर महा प्रथमे पढ़ गये
हैं । अभी जो सब पुराण प्रचलित हैं, उनमेंसे एक ही पुराण
सर्वलोकामें पञ्चलक्षणाकाष्ठ और सर्व प्राचीन है, ऐसा
बहुतेरे स्वीकार किया है ।

(७) ब्रह्माण्डपुराणमें चार संहितामूलक पुराणसंहिताका
प्रसंग है, किन्तु उसमें षष्ठादश पुराणका कुछ भी प्रसंग नहीं है ।
विष्णुपुराणके टीकाकार श्रीधरस्वामीके मतसे “एतेषां संहितानां
चतुष्टयेन सारोदात्मनिर्दिष्टं विष्णुपुराणं केचित् संहितानां
चतुष्टयेन इदमायं ब्रह्ममुच्यते इति वदन्ति ॥” अर्थात् इन चार
संहिताओंके सारोदात्मस्वरूप वह विष्णुपुराण है । फिर किसी
किसीका कहना है, कि इन चार संहिताओंकी पहचानसे यह
आदि वायुपुराण हुआ है ।

हुए होते, तो इस प्रकारका सादृश्य नहीं हो सकता था।

विष्णुपुराणमें यथाक्रम जो १८ पुराणोंके नाम हैं, वे इस प्रकार, हैं—“प्रथम ब्राह्म, द्वितीय पद्म, तृतीय वैष्णव (वा विष्णुपुराण), चतुर्थ शैव, पञ्चम भागवत, षष्ठ नारदीय, सप्तम मार्कण्डेय, अष्टम धाम्नेय, नवम भविष्य, दशम ब्रह्मवैवर्त, एकादश खंड, द्वादश वाराह, त्रयोदश स्कान्द, चतुर्दश वामन, पञ्चदश कौर्म, षोडश मात्स्य, सप्तदश मारुतु और अष्टादश ब्रह्माण्ड । इन्होंने सब पुराणोंमें सगं, प्रतिसगं, वंश, सम्बन्ध और वंशानुवर्तित कथित हुए हैं। ईंमें सर्वेय। तुमसे जिन पुराणका ज्ञान कष्टता है, उसका नाम विष्णुपुराण है। यह पञ्चपुराणके बाद रचा गया है।”

विष्णुपुराणके एक प्रमाण द्वारा मालूम होता है, कि एक ही समय १८ पुराण संहलित नहीं हुए। पहले ब्रह्मपुराण, पीछे पद्म, उसके बाद विष्णु इसी प्रकार क्रमशः १८ पुराण संहलित और प्रचारित हुए थे।

शैव, भागवत, नारदीय, धाम्नेय, ब्राह्मवैवर्त, खंड, वाराह, कौर्म, मात्स्य और पञ्चपुराणदिनें अप्रपयात् जिस प्रकार अठारह पुराणोंका उल्लेख है, उसकी एक तालिका दूसरे छठमें दी गई है।

तालिका देखनेसे मालूम हो जायगा, कि पुराणके अप्रपयात् सम्बन्धमें सर्वोका एक मत नहीं है। इस हिंसासे कौन पुराण पहले और कौन पीछे रचा गया है, यह ठोस ठोस नहीं कह सकते। पर हां जब विष्णुपुराणके साथ पश्चिकांग पुराणोंका मोल खाता है, तब विष्णुपुराणके जो सा उन्हे भी प्रामाणिक मान सकते हैं ? परन्तु जब प्रत्येक पुराणका पाठ किया जाता है, तब कुछ और तरङ्गना मान्न पड़ता है। जैसे, विष्णुपुराणमें लिखा है,—इसके पहले ब्रह्म और पद्मपुराण संहलित हुआ था, किन्तु जो सब पुराण उसके पीछे प्रचारित हुए हैं, उन सब पुराणोंका नाम विष्णुपुराणमें किस प्रकार पाया ? अप्रपयात् पुराण-सम्बन्धमें भी ऐसा ही है। वे सब नामोंके ही नहीं हैं, एक पुराणसे दूसरे पुराणके विवरणदि बह त भी देखे जाते हैं। यथा वामनपुराणमें—

“शृणुष्यावहितो भूत्वा तथामेतां पुरातनान्।
प्रोक्तामादिपुराणे च श्रुत्वा व्याकल्पिता ॥”

(१ पृ० ।

यहां वामनपुराणमें आदिपुराणसे कथासंग्रह है। इसी प्रकार वराहपुराणमें—

“रविं प्रपच्छ धर्ममा पुराणं सूर्यभाषितम्।
भविष्यत्पुराणमिति श्रुत्वां श्रुत्वा पुनर्नवम् ॥”

(१७०५१)

इस प्रकार नारदीय इठें और मात्स्य १६वें पुराणमें गिने जाने पर भी इन दोनों पुराणोंमें अष्टादश पुराणोंके ही प्रतिपाद्य विषयका उल्लेख है। इस प्रकार पुराणको भवस्था देख कर पाश्चात्य पण्डितों और देशीय पुराविदोंने वर्त्तमान पुराणोंको नितान्त साधुनिकता स्वीकार की है।

अष्टादश पुराण कबके हैं ?

विष्णुपुराणके प्रसिद्ध अनुवादक विनसन साहब प्रचलित १८ पुराणोंकी बाकीबना करके जिस सिद्धान्त पर पहुँचे हैं, वह इस प्रकार है—

“१८ ब्रह्मपुराण—उल्लसकं जगन्नायमाकार्यका कौत्सल करमा हां ब्रह्मपुराणका उद्देश्य है। पुराणके लक्षण इसमें नहीं है। उल्लसकं मान्द्रादिका विवरण देखनेसे मालूम पड़ता है, कि यह पुराण १२वां और १४वो शताब्दीके पहलेका रचा हुआ नहीं है।

२४ पद्मपुराण—इस पुराणके सभी खण्ड पढ़नेसे यह नहीं मालूम होता कि, किस खण्डमें पुराणका प्रकृत लक्षण है। किन्तु खण्डमें जैनियोंके पाचार व्यवहारका कथा, किशोमें भारतमें स्किच्छका प्रादुर्भाव और आधुनिक वैष्णवोंके विष्णुदि धारणका ऐंसा कथा है जिसे पढ़नेसे कभी भी यह प्राचीन पुराणके जैसा प्रतीत नहीं होता। पद्मपुराणका क्रियायोगसार पढ़नेसे यह आधुनिक रचनाके जैसा बोध होता है। पद्मपुराणका कोई भा खण्ड १२वो शताब्दीके पहलेका नहीं है। यहाँ तक कि दशका निप खण्ड १४वो वा १६वो शताब्दीका रचा हुआ हो सकता है।

४४ विष्णुपुराण—इस पुराणमें बौद्ध और जैनप्रसङ्ग हैं। बौद्धगण भारतमें १२ शताब्दी तक वर्त्तमान थे।

विभिन्न पुराणमें बंगाल पुराणोंका नाम और ओजसांतया ।

[illegible]

संभवतः उसने पहले यह पुराण रचा गया होगा। कुछ पाण्डवके महाभारतके ले कर राजवंश तत्काले सा राज्य-कांत निर्णीत हुआ है, उसमें कलिका ४१४६ वर्ष १०४५ ई० पाई जाती है। उस समय विष्णुपुराणका रचनाकाल अनुमान करना संभव नहीं है।

४ वायुपुराण—यही जो सब पुराण प्रचलित है, उनमें से यही वायु पर्व प्राचीन, और मूल पुराणका सर्वोत्तम-युक्त है।

५ श्रीमद्भागवत—कोई कोई इस पुराणकी ओपदेवकी रचना मानते हैं। इस हिसाबसे यह पुराण १२वीं शताब्दीमें रचा गया होगा, इसमें संदेह नहीं।

६ नारदीयपुराण—इसमें पुराणके लक्षण नहीं है। आलोचना करनेमें यह प्राधुनिक भक्तिप्रवृत्त समझा जाता है। भारतवर्ष सुमत्तमानके बाद पानेके बाद यह पुराण रचा गया है। इसके शेषार्थमें लिखा है—गो-घातक और देवनिन्दकके निकट कोई भी इस पुराणका पाठन करे। संभवतः यह पुराण १६वीं या १७वीं शताब्दीका संघर्ष है।

सुहृद्भारदोय नामक और एक पुराण पाया जाता है। यह भी पूर्वोक्त भारदोय पुराणके समान्योका ग्रन्थ है। इस पुराणका अधिकार्य विष्णुकी स्तुति और भेषाधिके कर्मा व्याकृत्य श्रुतिर्गर्भित है। देखनेसे ही यह प्राधुनिक ग्रन्थ समझा जाता है।

७ मार्कण्डेयपुराण—यही हम लोग जो मार्कण्डेय-पुराण पाते हैं, वह सम्पूर्ण नहीं है। ब्रह्म, वसु और भारदोयको संवेत्ता यह पुराण प्रति प्राचीन है। शायद यह ८वीं या १०वीं शताब्दीमें रचा गया होगा।

८ भगवद्गीता—बहुशान्तिविषयक इस पुराणकी आलोचना करनेमें इसे मूल पुराण या प्रति प्राचीन संघर्ष नहीं कह सकते। इतिहास, ऋग्वेद, वशाकरण और तान्त्रिक पूजादि प्रचलित होनेके बाद यह पुराण संहतित हुआ है। पर हां, प्राधुनिक कालमें संहतित होने पर भी इसमें अनेक प्राचीन कथाओंको समा-कोचना करनेके कारण यह ग्रन्थ प्रति मूल्यवान् है।

९ भविष्यपुराण—यही जो भविष्यपुराण प्रचलित देखा जाता है, उसे 'पुराण' नहीं कह सकते। इसमें

प्रथमार्थमें सृष्टिचक्रका वर्णन संक्षेपमें रहने पर भी प्रच-ग्रिष्ट अंश प्रायः व्रतपूजादि वर्णनसे परिपूर्ण है। भविष्यपुराणमें भी किन्तु व्रत पूजादि वर्णित हुई है।

१० ब्रह्मवैवर्तपुराण—मत्स्यपुराणमें ब्रह्मवैवर्तके जो लक्षण निर्णीत हुए हैं, उनके साथ यही ब्रह्मवैवर्तका कुछ भी मेल नहीं है। वर्तमान ब्रह्मवैवर्तकी आलोचना करनेमें यह पुराणको तरह कुछ भी मान्य नहीं पड़ता।

११ लिङ्गपुराण—इसे पुराण तो नहीं, एक कर्मग्रन्थ कह सकते हैं। योगशिक्षताकी रक्षाके लिये इसमें पुराणकी कथा संयोजित हुई है। इसमें अनेक पुरा-तन शिव चालानाका वर्णन रहने पर भी, इसका अधि-कांश गितात्मक प्राधुनिक कालमें रचा गया है, इसमें संदेह नहीं।

१२ वराहपुराण—लिङ्गपुराणके जैसे इस वराह-पुराणको प्रकृत पुराण न कह कर एक कर्मग्रन्थ कह सकते हैं। १२वीं शताब्दीके प्रसिद्ध यथेष्ट रामानुजके समयका प्राभाव इस पुराणमें है।

१३ स्कन्दपुराण—यह पुराण माना खण्डोंमें विभक्त है, जिनमेंसे स्कन्दखण्ड, काशीखण्ड इत्यादि विशेष प्रचलित हैं। स्कन्दखण्डमें जगन्नाथका माहात्म्य वर्णित है।

१४ वामनपुराण—इसमें प्रतिपाद्य विषयादिकी आलो-चना करनेमें इसे भी पुराण नहीं कह सकते। यह तीन चार भी वर्ष पहले किसी काशीवासी ब्राह्मणसे संघ-टोत हुआ है।

१५ कूर्मपुराण—इस पुराणमें भैरव, वाम, वामन आदि तन्त्राध्यात्मिका संक्षेप है। यह ग्रन्थ प्राचीन नहीं हो सकता। कारण, तान्त्रिक, शाक्त और जैनधर्मदाय-की सत्यतिके बहुत बोधे यह पुराण रचा गया है।

१६ मत्स्यपुराण—इस पुराणमें नाना विषय रहने पर भी महापुराणके इसमें पाँच लक्षण हैं। किन्तु पद्म-पुराणसे इस पुराणके संहतित होने और सप्तपुराणोंकी वर्णना रहनेके कारण यह तनका प्राचीन प्रतीत नहीं होता।

१७ गरुडपुराण—मत्स्यपुराणमें गरुडपुराण की

अथ तत्र चन्द्रमारा है, तब तक चरही हजार गड-
मेवो सुनिगण सूर्य (चर्यमा) के दक्षिणपथका भाग्य
किये हुए है। ये लोग क्रियावान् हैं और अमाननाम
करते हैं। लोकव्यवहार, भूतारभक्ष क्रिया, इच्छा-
होम रति, मोक्षोपयोग, काम और विषयसेवा इन
सब कार्योंसे वे सिद्ध हो अमाननाम करते हैं। उन
प्रजाभिलाषो सुनियोंने दापरयुगमें जन्मग्रहण किया था।
नागवीर्यके उत्तर और सप्तर्षि मण्डपके दक्षिण ओ पथ
है, वही देवयान नामक सूर्य का उत्तर पथ कहलाता
है। वहाँ जितेन्द्रिय निम्नलक्ष्मावसम्पन्न सिद्ध ब्रह्म-
चारिण्य वास करते हैं। ये सन्तानको कामना नहीं
करते। मृत्युको चन्दोंने जोत लिया है। वे चरही हजार
जन्म रता सुनि प्रलयकाल तक चर्यमाके उत्तरपथमें
रहते हैं। इन सब कार्योंसे पवित्र हो कर चन्दोंने
चमरत्वनाम किया है। प्रलयकाल तक चर्यमाको
ही चमरत्व कहते हैं। (विष्णुपुराण १८८० और मत्स्य-
पुराणमें भी १२५१०२-११० उक्त लोक हैं।)

चमी पापमत्स्यके धर्म सुबोले वचनसे यह प्रमाणित
हुआ, कि यद्यार्थमें धर्म सुवर्चनके समय पुराण प्रच-
लित था और उस पुराणका विषय सामान्य भाषा छोड़
कर किसी प्रथमें ब्रह्माण्ड, विष्णु और मत्स्यपुराणसे
विभिन्न नहीं था। पर जहाँ इन बौद्ध तीन पुराणोंके
सभी प्रथम धर्म सुवर्चनकासमें प्रचलित थे वा नहीं,
उक्त तीन माकूम नहीं।

ब्रह्माण्डपुराणमें और एक जगह इसी प्रकारका
श्लोक देखनेमें आता है। यथा—

“चटामीतिसहस्राणि मोताणि गडमेधिनाम्।
चर्यमूचो दक्षिणा ये तु विद्वयान् समाश्रिताः॥
दाराग्निहोत्रिचर्यते ये वे प्रजाहृतवः स्मृताः॥
गडमेधिनाम्नु संप्रियाः समयानाम्याययन्ति ये।
चटामीतिसहस्राणि निहिता उत्तरायने॥
ये न्युयन्ते दिवं प्राप्ता कथय ऊर्ध्वरेनसः।

(६५।१०-४)

ब्रह्माण्डपुराणके उक्त श्लोकोके भाव धर्म सुवर्चन-उद्धृत
पुराणवचनका यथेष्ट साक्ष्य है।

पद्मपुराणके छटिपञ्चममें भी इसी प्रकारका श्लोक
है, यथा—

चटामीतिसहस्राणां यतोनाम धर्मरेतसाम्।
स्मृतं येषां तु तत्स्थानं तदेव शुद्धशान्तिनाम्॥”

(११५०)

ऊपर हो कहा जा चुका है, कि पहले कबल एक
पुराण प्रहितता थी, वही वेदव्यासका सङ्कलन है। अभी
कोई कोई कह सकते हैं, कि शायद धर्म सुवर्चनके सभी
पुराण प्रहिततासे वचन उद्धृत किया होगा। उस समय
क्या राजकालके जैसे चट्टादश पुराण प्रचलित थे ? यदि
ये, तो उसका प्रमाण क्या ? चापस्तम्भ धर्म सुवर्चनके पहले
एकाधिक पुराण प्रचलित था, यह उक्त धर्म सुवर्चन ही
जाना जाता है।

इस धर्म सुवर्चनमें भविष्यत्पुराणमें प्रमाण उद्धृत
हुआ है, यथा—

“वाभूतसप्तवासे स्वर्गजितः।

पुनः सर्गं बीजाय भवकोति भविष्यत्पुराणि॥”

(चापस्तम्भधर्म सुवर्चन १२४।५-६)

अर्थात् चन्दोंने (विष्णुपुराण) प्रलयकाल तक स्वर्ग को जीता
है, अर्थात् ये प्रलयकाल तक स्वर्गमें वास करते हैं।
फिरसे वे छटिकासमें बीजाय होतें हैं, भविष्यत्पुराणमें
यह कथा लिखी है।

ब्रह्माण्डपुराणमें इसका विस्तृत प्रसङ्ग देखा जाता है।

“कथमस्यादौ क्षतयुगे प्रथमे सोऽध्वजतु प्रजाः॥
प्रायुक्तं या मया तुभ्यं पूर्वकालं प्रजास्तु ताः।
तस्मिन् सर्वेषां मया तु कथं दग्धास्तदान्निगा॥
अप्राप्ता वास्तयोक्तो जनकोक्तं समाश्रिताः।
प्रवृत्तौ पुनः सर्गं बीजाय ता भवन्ति हि॥
बीजाय न स्थितास्तत्र पुनः सर्गं स्य कारणात्॥
ततस्ताः सत्यमात्रस्तु यन्मामाद्यं भवन्ति हि॥”

(चतुर्थ पर्व ८२-२५)

कथमसे चारुधर्म प्रजापतिने सत्ययुगमें पहले प्रजाको
छटि की। पहले जिन सब प्रजाको कथा लिखी गई है,
वे ही सत्ययुगकी प्रजा हैं। इस युगमें जो तपोलोक न
जा सकने पर जनकोकमें रहते थे, वे जो सम्यक्त कान्तिसे
दग्ध हो कर योजके लिये फिरसे छट होतें हैं और
सन्तानादि द्वारा छटिको हवि करते हैं।

अब यह जाना गया, कि चापस्तम्भधर्म सुवर्चनके
लिखी (चतुर्दिग्ध) पुराण और भविष्यत्पुराणसे प्रमाण

नहीं है। कबीर डेढ़ दो हजार वर्ष हुए, यह ग्रन्थ यन्त्र-दीप लाया गया। हमने भी पहले यह पुराण सङ्कलित हुआ था, हममें सन्देह नहीं।

पण्डितवर विलसन, डेवर चादि पण्डितगण स्कन्द-पुराणको पुराणके सत्य स्थान देना ही नहीं चाहते। उन-की मतसे यह पुस्तक यह ग्रन्थ नितान्त आधुनिक है। किन्तु हम लोग इस ग्रन्थको किसी ज्ञानतसे प्रमाणों नहीं मान सकते। सम्प्रति महासहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री महाशयने निदानसे ७३० शताब्दीका लिखा हुआ स्कन्दपुराणपर गन्दिदेश्वर माहात्म्य का एक ग्रन्थ पाया है। विष्णुदीप भाष्योक्तमें भी ८३२ गजका लिखा हुआ स्कन्दपुराणपर काशीवण्डका एक ग्रन्थ मौजूद है। इन सब प्रमाणोंसे आज कालके प्रचलित मूल स्कन्दपुराणको नितान्त आधुनिक नहीं मान सकते। स्कन्दपुराण जो ७३० शताब्दीके भी पहले प्रचलित हुआ था, हममें सन्देह नहीं।*

एतद्विज्ञ गङ्गाचायकत्तु का मार्कण्डेयपुराणसे (१) बचन, ७३० शताब्दीमें बाणकट्टे का मार्कण्डेयपुराणके द्वितीयप्रकाशमें विषयमग्न और पवनप्रोक्तपुराणका संक्षेप (२) बाणके समसामयिक मयूरभट्टकट्टे का पुराणसे चयनगतका विवरणमग्न, ७३० समय ब्रह्मगुप्तसे विष्णुधर्मोत्तरपुराणके साधारण ब्रह्मसिद्धान्त-रचना, ११वीं शताब्दीमें अनेकगुणों कट्टे का चादित्य, बाण, मत्स्य, विष्णु और विष्णुधर्मोत्तरपुराणसे प्रमाण उद्धार, १२वीं शताब्दीमें गोड़ाधिप बल्लासेन कथक उनके दानभागमें ब्रह्ममत्स्य, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, वराह, स्कन्द और विष्णुधर्मोत्तरपुराण तथा बाण, कालिका, नन्दि, आरविह और शास्त्रवत्पुराणसे नाना वचन प्रमाणादि द्वारा यह अथर्वशेकार करना पड़ेगा, कि अध्यापक विश्वमन और अथर्वकुमारप्रमुख पण्डितोंका मत प्रायः नहीं है। पटादगपुराण जो गङ्गाचायक, बाणभट्ट आदिके भी पहले सङ्कलित हुए थे,

हममें सन्देह नहीं। विष्णुपुराणका पटादगपुराणका उत्पत्ति-परम्पर्य यदि प्रकृत हो, तो पलातः प्रापस्तम्भ-धर्मगूढ रचित होनेके पहले ही मूल ८ पुराण सङ्कलित हुए थे, यह स्वीकार किया जा सकता है। ऐसा होनेसे प्रधान प्रधान पुराणोंका प्रथम सङ्कलनकाल वैदिकयुगके कुछ बाद ही पड़ता है।

परी प्रश्न उठता है, कि जो पटादग महापुराण अभी प्रचलित देखे जाते हैं, वे क्या वर्तमानव्यक्त प्राचीनता उस पूर्वतन कालमें भी प्रचलित थे? वर्तमानपुराणोंकी प्राचीनता करनेसे यह कामो स्वीकार नहीं किया जा सकता।

प्रकृत पञ्चतन्त्राश्रमात् ब्रह्माण्ड, विष्णु और मत्स्य पुराणमें भविष्यराजवंशप्रसङ्गमें जो सब ऐतिहासिक कथाएँ विवृत हुई हैं उन्हें पढ़नेसे उक्त मूल तीन पुराणोंकी किसी ज्ञानतसे ६वीं शताब्दीके पहलेका नहीं कहा सकते। उन तीनोंमें गुप्तसम्राट् और उनके समसामयिक राजाओंका स्पष्ट प्रसङ्ग है। ६वीं शताब्दीके मध्य-भागमें गुप्तसम्राटोंका गौरवरवि चम्पू हुआ था। अथर्वतः इसी समय पुराणीय भविष्यराजवंशस्थान लिखा गया होगा। विशेषतः तत्परवर्षी कालसे राज-वंशका प्रसङ्ग नहीं रहनेके कारण उस समय (६वीं शताब्दीमें) वह अंग रचा गया था, हममें कोई सन्देह रहने नहीं जाता। अब प्रश्न यह है, कि जब ६वीं शताब्दीको कथा उन तीन पुराणोंमें मिलती है, तब किस प्रकार कहा जायगा, कि उक्त पुराण प्रापस्तम्भधर्मवृत्त-रचित होनेके पहले वैदिकयुगके निकटवर्ती समयमें सङ्कलित हुए थे? इसका उत्तर इस प्रकार है—

वात्सिहोवसे जो ब्रह्माण्डपुराण पाया गया है, उसमें भविष्यराजवंशप्रसङ्ग नहीं है। उस ब्रह्माण्डपुराणमें प्रापस्तम्भजीय जनमें प्रथम प्रतीक पद्मिनीमहत्त्वका कथन नाम तक पाया जाता है। पहले कहा जा चुका है, कि प्रथम शताब्दीमें भारतके ब्रह्माण्डपुराण यथोप गया था। अतएव प्रथम शताब्दीमें जो ब्रह्माण्डपुराण प्रचलित रहा, उनमें भविष्यराजवंशविषयक अंग नहीं था। हम ज्योतिषी ब्रह्माण्डपुराणके जो सब प्राचीन ग्रन्थ मिले हैं, उनमें भविष्यराजवंश-वर्णनके पहलेको इस प्रकार स्वीकार्य की देखी जाती है—

* पीछे स्कन्दपुराणका विवरण द्रष्टव्य।

(१) Prof. Deussen's Das System Des Vedanta p. 86.

(२) बाणभट्टा ओहवर्षित १५ पृष्ठ।



वाचिकसे उसका प्रमाण मिलता है। भट्टकुमारिने एक जगह लिखा है, 'पृथिवीनिभाग, वंशानुक्रमण, देशकालपरिमाण, भावीकृत्यन इत्यादि पुराणके विषय है।' (१)

विभिन्न पुराण विभिन्न सम्प्रदायके ज्ञायमें पड़ कर घसली चीजमें नकली चीज झाड़नेके समान हो गया है। खाटकी झाला कर शूद्र सोना निकाल लेना साधारण बात नहीं है। घटादगपुराण प्रथमावस्थामें कोसा था, मत्स्य-पुराणमें उसका परिचय है। परवर्ती संशोधितकृपण। परिचय नादौयपुराणके उपविभागछण्डमें बहुत बढ़ा बढ़ा कर लिखा है (२), यद्यप्यहण उसके परिचयादि लिखि जायगी।

पुराणकी प्रामाणिकता।

सुमतिह प्रलयकुमारदत्त महाययने लिखा है, "पुराणमें सृष्टि, विधेय सृष्टि, वंशविवरण, मन्वन्तर और प्रधान प्रधान वंशोद्भव व्यक्तियोंके चरित्रविषयका वृत्तान्त सविशेषित था। धर्मसंक्रान्त क्रियाकलापादिका उपदेश देना इसके एक भी विषयका उद्देश्य नहीं है। किन्तु आज यत्नेके प्रवृत्तिपुराण और उपपुराण देव-देवाके साहाय्यकयन, देवाचंसा, देवोद्भव और प्रत-नियमादिके विवरणसे ही परिपूर्ण हैं। उनमें पूर्वोक्त पञ्चलक्षणके अन्तर्गत जो जो विषय मिलते हैं, वे पाशु-पक्षिजन्तु हैं। यदि धर्मापदेशदान इदानीन्तन प्रच-लित पुराणकी तरह पूर्वतम पुराणका भी उद्देश्य रहता, तो वह सूतजातिका व्यवसाय न हो कर अधुनातन द्यूह-मण्यकयकी तरह वट्कर्मणकी द्यूह-मण्यकयकी ही वृत्तिविषयके कोसा व्यवस्थित होता। यदि, सुनि और उपर साधारण द्यूह-मण्यकी धर्मप्रसादान सूतादि निरुद्धजातिका व्यवसाय होना कभी भी सम्भव नहीं है।" (३)

संस्कृतविद् मुद्गरराहर्षने धात्रोचना करके कहा है,—“इतिहास और पुराण की प्राचीनतम संस्कृत ग्रन्थ

कभी भी नहीं मान सकती। कारण, जब ये सब ग्रन्थ सङ्गठित हुए थे, उनके पहले धर्मेक प्राचीन ग्रन्थ और गाथा प्रचलित थी, यह सभी ग्रन्थोंसे जाना जाता है।” “इतिहास और पुराणवृत्तान्तोंमें वैदिक मन्त्र यति प्राचीन हैं। वेदोंमें भारतके यति प्राचीन इतिवृत्तका प्रकृत ज्ञानलाभ होता है। किन्तु इतिहास और पुराण-संग्रहमें धर्मेक प्रकृत प्राचीन प्रवादमाला और ऐति-हासिकतत्त्वका समावेश रहने पर भी प्राधुनिक लेखकों-के रच्यनुसार उनमें धर्मेक कल्पित कथाएँ सन्निविष्ट हुई हैं। किन्तु वेदोंमें ऐसी घटना नहीं है। वेदोंमें प्राचीनतम कालसे ले कर आज तक कोई हेर फेर नहीं हुआ है।” *

उपरोक्त प्रमाण देखनेसे क्या पुराणोंकी प्रामाणिकता ग्रन्थमान सकती है? क्या यद्यप्यहणमें पुराण उपदेशमूलक ग्रन्थ नहीं है? क्या प्राचीनतम पुराणोंकी प्रकृत धर्म-ग्रन्थके हिसाबसे रचना नहीं हुई है? तब फिर लहदा-रखक, कान्दोश्य आदि उपनिषदोंमें पुराणकी किंच प्रकार पञ्चमवेद माना गया? मनुसंहितामें भाग भाग लिखा है, कि—याज्ञकालमें ब्राह्मणोंकी पुराण सुनाता चाहिये। पुराणकी यदि धर्म वा उपदेशमूलक ग्रन्थमें गिनती नहीं होती, तो उसमें ऐसा प्रसङ्ग क्यों पाया?

पुराण सूतमुनिर्गलित होने पर भी प्रामाणिक और घटादश्रित्याके अन्तर्गत हैं। भट्टकुमारिने पुराणोंकी प्रामाणिकता कीकार की है। भगवान् शङ्कराचार्यने इस विषयमें जो आलोचना की है, वह इस प्रकार है—

“इतिहासपुराणविषयकाव्यवहारेण मार्गेण सम्पादन् मन्त्राद्यं वादमूलकात् प्रवर्तते देवताविग्रहादि प्रपञ्चयितुम्। प्रवर्तयन्मन्त्रि सम्भवति। भवति हि अस्माकमवस्थायमपि चिरञ्जनानां प्रवर्तम्। तथा च व्यापारयो देवताभिः प्रवर्तये अवधारणीति समर्थे। यद्यु सूतविदानीन्तनामपि पूर्वोक्तवि नास्ति देशदिभिर्गतं सामर्थ्यमिति च जगद्भिर्गतिं प्रतिषेधन्। इदानीमपि च ज्ञानदापि सर्वमपि; अत्रिगो-हतीति ज्ञायन्। ततश्च राजगृहादिचोदना उपस्थाप्य। इदानी-मपि च अन्तर्देशपुराणविषयकयान् वर्णनवर्णनानां प्रति-

(१) तन्त्रशास्त्रिक ७८ पृष्ठ (बारापचीसे प्रकाशित)।

(२) परवर्तीविवरण इत्यम्।

(३) उपासक सम्प्रदाय २५ भाग १५० पृष्ठ।

जाता है। इसी प्रकार ब्रह्मर्षि-प्रवर्तक शक्य बुद्धकी जीवनीमें भी गिव, ब्रह्मा, नारायण पादि उपासक का प्रसङ्ग है। ईसा-जन्मके पहले इसी शताब्दीमें रचित ललितविस्तार और उसके भी पहले रचित पालि शोध-ग्रन्थोंमें भी गिव ब्रह्मादि हिन्दू देवताओं का नामोन्नेष है। जो नीचे प्राचीन पञ्चमें भी ऐसा ही पाया जाता है। इन सब प्रमाणोंमें यह कह सकते हैं, कि जैन और ब्रह्मर्षि की उत्पत्तिके पहले अन्ततः ख्रिष्टपूर्व ऽवी शताब्दीमें गिव, ब्रह्मा पादि देवीपासक वर्त्तमान थे। यहाँ तक कि आनाम और कस्योडियाये जो सब प्राचीन हिन्दू-गिलापि आविष्कृत हुई हैं उनमें स्पष्ट प्रमाण मिलता है, कि ख्रिष्टपूर्व पहली शताब्दीके भी बहुत पहले उस सूर पूर्व लघुपीपके पूर्व प्रान्तमें गिव ब्रह्मादिको उपासना प्रचलित थी।

एक प्रकारसे हम लोग कह सकते हैं, कि ईसा-जन्मके पहले ऽवी शताब्दीमें गिवब्रह्मादिको उपासना भारतवर्षमें प्रचलित थी और प्रत्येकदेवके उपासक एक एक विभिन्न सम्प्रदायभूत थे, यह भी अमश्व नहीं। सुतरां उन सब सम्प्रदायोंके मतपरिपोषक पुराण उस समय प्रचलित हो सकते हैं।

पुराणमें अवतारवाद।

अवतारवाद पुराणका एक प्रधान अङ्ग है। प्रायः सभी पुराणोंमें अवतारप्रसङ्ग है। गौतमपरिपोषक पुराणमें शिवको नामा अवतारको वर्णन है। इसी प्रकार वैष्णवपुराणोंमें विष्णु का नामा अवतार कीर्त्तित हुआ है। बहुतों का विश्वास है, कि अवतारवाद अधिक पुरातन नहीं है। जिस समय बुद्धदेव हिन्दू-समाजमें देवताके लेशे गण्य हुए, उसी समय अवतारवाद प्रचलित हुआ है। दशायतनको सम्बन्धमें यह बात बहुत कुछ लग सकती है। किन्तु प्रकृत अवतारवादकी सूचना, उसकी भी बहुत पहले वैदिक ग्रन्थमें ही देखी जाती है।

मत्स्यब्राह्मण (१८१२१०)में मत्स्यावतार, तैत्तिरीय ब्राह्मण (१२२१) और शतपथब्राह्मण (७१११५) में क्रमावतारका प्रसङ्ग, तैत्तिरीयसंहिता (७११५११), तैत्तिरीय ब्राह्मण (१११३५) और शतपथ-

ब्राह्मण (१४११२११) में वराहावतारका विषय, ऋक् संहिता, (१८२१०) और शतपथब्राह्मण (१२२५१०) में वामन अवतार, ऐतरेयब्राह्मणमें राममार्गरेय, छान्दोग्योपनिषद् (१११०) में देवकी-पुत्र कृष्ण और तैत्तिरीय ब्राह्मण (१०११४) में वासुदेव ओङ्कणका विवरण है। अधिकतर वैदिक ग्रन्थोंमें मतमें क्रमवराहादि जिन अवतारोंकी कथा लिखी है, वह ब्रह्माके अवतार हैं। किन्तु वेष्णोय पुराणोंमें वही विष्णुका अवतार कह कर वर्णित हुआ है।

फिर ब्रह्माण्डादि शैवपुराणोंमें शिवके भी अनेक अवतार माने गये हैं। इसी प्रकार भविष्यादि किसी किसी और पुराणोंमें सूर्य का अवतारप्रसङ्ग नहीं छोड़ा गया है। जिन प्रकार उधर ब्राह्म, वैष्णव, शैव और सोरगस्थने अपने अपने उपास्य देवताओंके महिमावोध-पात्र वर्णन माना अवतारोंको कथा कीर्त्तन की है, उसी प्रकार मार्कण्डेयादि शास्त्र पुराणोंमें भी देवो अवतारके प्रसङ्गकी कमी नहीं है।

पाश्चात्य पण्डितों तथा देशीय पण्डितोंमें जिसको किमोका विश्वास है, कि वैदिक ब्रह्मोपासना ही सब प्राचीन है; विष्णु, शिवादिको उपासना वे भी प्राचीन नहीं है। इसी कारण वैदिक ग्रन्थोंमें विष्णु और शिवकी उपासनाका कहीं भी वर्णन नहीं है। वैदिक ग्रन्थोंमें ब्रह्मा को ही नारायण माना गया है, किन्तु पश्चात् पश्चात् अनेकतरग्रन्थोंमें वे ही विष्णुको नामावलीके मध्य गृहीत हुए हैं।

वेदमें विष्णुका प्रसंग।

ब्रह्मा को आर्यसत्त्वान् मन्त्रातिके प्राचीनतर उपास्य देवता है, इसी कारण विष्णु, शिव पादिको उपासना अतनो अप्राचीन नहीं है।

ऋक्संहिताके ११२११४-२८, १८२१०, १८०१५८, ११५४१-६, ११५५१-६, ११५६१-६, ११६४३६, ११८६१०, २०१३, २०२१, २०६४, २१५४१८, ४५५१०, ४५२४, ४५३०, ४५८११, ८८८१२, इत्यादि श्लोकों में मन्त्रोंमें विष्णुका प्रसङ्ग देखनेमें आता है। सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेदोंमें भी विष्णुमाहात्म्यकायक मन्त्रोंका अभाव नहीं है।

त्रोषि पदा विचक्रमे विष्णुर्नौपा पदाभ्यः ।

पतो धर्मोषि धारयन् ॥" (१।२२।२८)

विष्णु ने हम जगत् पर तीन-पद विधेय किये थे । सारा संसार उनके धूलियुक्त पद द्वारा व्याप्त है । दुर्दैव और समस्त जगत्के रक्षाकारी विष्णुने धर्मरक्षणार्थ पृथिवी आदि स्थानों पर तीन पद विधेय किये थे ।

निरुक्तकारके उक्त दो पदोंको सोरसोत्तरूप रूपक व्याख्या करनेमें प्रयासी होने पर भी गतपञ्चाङ्गमर्थमें भी स्पष्ट उपाख्यान है, वह इस प्रकार है—

"देवाश्वा वा अष्टगण इमे प्राजापत्याः पशुधिरै । ततो देवा अश्वमिवाह्वरयहाह्वरा नेतिरेऽस्माकमेवेदं खड्गं धुरन्-मिति ॥१॥

ये होतुर्दोषां पृथिवी विमज्जामहेतां विमज्जोपजीवा नेति । तामोर्नैधर्ममिः पञ्चात्प्राकृभो विभुज्जाना अमीयुः ॥२॥

तद्देवाः क्षुभुयुर्विमज्जते ह वा इमावष्टगः पृथिवीमेत तदेषामो यमेनामृषा विमज्जते । के ततः साम यदस्यै न मजे महीति । ते यदस्यै विष्णुः पुरस्कलेयुः ॥३॥

ये होतुः अष्टगोऽस्यां पृथिव्यामात्रतास्वैव नोऽपस्यां भाग इति । तैः पुरा अचूदन्त इवोत्तुर्नैधर्ममिः विष्णुरभिरोत्तेतामृषोऽम इति ॥४॥

वामनो हि विष्णुगण । तद्देवा न जिह्मिहिरे महर्दे नोऽपुन्ये नो यद्वसन्तिमदुमिति ॥५॥

ये प्राकृष्वै विष्णु निपाय कन्दोमिःमितः पर्यगृह्ण गामयेण स्वाच्छन्दसा परिग्रहामीति दक्षिणतस्त्रैष्टुभेन स्वाच्छन्दसा परिग्रहामीति पञ्चाच्छन्देन स्वाच्छन्दसा परिग्रहामीत्युक्तता ॥६॥

तैः कन्दोमिःमितः परिग्रह अग्निं पुरस्तात् सवाचाप सेना-केतः भाग्यस्तत्रैकतेनेमां सर्वां पृथिवी समन्विदग ॥"

(अतपथः १।१।१।७)

देवता और असुर दोनों प्रजापतिकी सन्तान हैं । उन्होंने आपसमें विवाद किया था जिसमें देवताकी हार हुई थी । असुरोंने समझा, कि यह पृथिवी मिथ्य ही हम लोगोको है । पीछे उन्होंने कहा था, 'वावो ! हम लोग पृथिवीको आपसमें बांट ले' और उसीसे लीविकानिर्वाह करें ।' वे तपस्वमें पूर्व-पश्चिममें विभाग करने लगे । यह सुन कर देवताोंने आपसमें कहा, 'असुरगण पृथिवीका विभाग कर रहे

हैं, हम लोग भी उसी स्थान पर सब' ।' देवगण यज्ञ-रूपो विष्णुको चांगे करके उस स्थान पर पड़के और असुरोंने बोले, 'हम लोगोको भी पृथिवीका भाग दो ।' इस पर असुरोंने कहा, 'विष्णु जहाँ तक स्थान छेक सकेगे, उतना ही स्थान आप लोगोको मिलेगा ।' विष्णु वामन थे । देवताोंने यह बात स्वीकार कर ली । ये लोग आपसमें कहने लगे, कि असुरोंने हम लोगोको यज्ञपरि-मित स्थान दान कर दिया है, सुतरां यही यथेष्ट है । पीछे उन्होंने (देवताोंने) विष्णुको पूर्वकी ओर रख कर कन्द परित्त किया और कहा, 'तुमको दक्षिण की ओर गायत्रीछन्दसे, पश्चिमकी ओर त्रिष्टुभछन्दसे और उत्तरकी ओर जगतीछन्दसे हम लोग परिवे-ष्टित करते हैं ।' इस प्रकार उन्हें चारों ओर छन्दसे परिवेष्टित करके उन्होंने अग्निको पूर्वकी ओर प्रतिष्ठित किया । अनन्तर वे उनका पूजन और अन्न करते हुए चांगे बढ़ने लगे । इस पर उन्होंने समस्त भुवने अपने अधिकारमें कर लिया ।

पाचार्य पण्डितोंका विश्वास है, कि उक्त सोरसोक्ति और यज्ञमहिमाप्रतिपादक वैदिक उपाध्यायनसे वैकुण्ठ-बानो विष्णुकी बल-कृतता और वामनान्तार-विषयक कथा ही अद्भुत उपाख्यान की छटि हुई है ।

सभी पौराणिकगण यह स्वीकार करते हैं, कि पुराणोक्त अधिकांश उपाख्यान रूपक हैं । कथनें जो वैदिक प्रसङ्ग उद्धृत हुआ है, वामनपुराणमें उसी उपा-ख्यानका विवक्षित नामक वामन-पथसार प्रसङ्गमें विस्तृत भावने वर्णन किया गया है । वामनपुराणमें जाना जाता है, कि भगवान् विष्णुने एकाविंशवार वामनरूप धारण किया था । त्रिविक्रम नामक वामन पथसारमें उन्होंने भृश असुरकी कृत कर निपादके समस्त भुवन अधिकार कर लिया था । विस्तृतभावमें किसी पास्त्यायिकाका कोत्सन करान बंदका उद्देश्य नहीं है । वेदमें जो कथा अति संक्षेपमें किसी विशेष उद्देश्य पर लिखी है, पुराणमें यही कथा विस्तृत पास्त्यायिका रूपमें वर्णित हुई है । पौराणिक कवियोंके हाथमें जनसाधारणके कोमल उत्पादनके लिये छोटा विषय बड़ी पास्त्यायिका में परि-वर्त हो गया जो यह कोई बड़ी बात नहीं है । हम नहीं

महापुराण हैं, इस घोर जनता ध्यान नहीं है। यद्यपि दूसरे पुराणका नाम भी उन्होंने कभी सुना नहीं है। कहनेका तात्पर्य यह, कि यदि पूर्वकालमें सभी सम्प्रदाय सभी पुराणोंका अभ्यास करते थे, तो यद्यप्योगत शेष बाह्यमण नियम ही दूसरे २ पुराणोंके विषय जान सकते थे ? पूर्वकालमें पर्येक शाखा वा सम्प्रदाय अपनी शाखा वा सम्प्रदायके प्राचीय शास्त्रादिको ही प्राजीवन अध्ययन घोर तदनुसार क्रियादिका अनुष्ठान करते थे। दूसरी शाखा वा सम्प्रदायके यथको वे प्राचीय वा भव्य पाठ नहीं समझते थे। इनो कारण यद्यप्योगत मो भारतीय ब्राह्मणगण दूसरे पुराणको अपने साथ नहीं ले गये। वे लोग श्रेय थे, इस कारण शिवमाहात्म्य प्रधान ब्रह्माण्डपुराणको अपने साथ ले गये थे। यथायंमें विष्णु, मरुत्य आदि पुराणोंमें जिस प्रकार अष्टादश पुराणका नामोल्लेख है, ब्रह्माण्डपुराणके मध्य उस प्रकार ब्रह्माण्ड कोड़ कर शेष अष्टादश पुराणोंके नाम भी देखनेमें नहीं आते। इस हिसाबसे प्रचीं गतान्दोंके पक्षमें विष्णु, माह्यादि पुराणोंमें अपरापर पुराणोंका उल्लेख वा वा नहीं, सन्देह है।

एक पुराणमें जो अष्टादश पुराणोंका उल्लेख है, वह परवर्तीकालको योग्य है, इसमें सन्देह नहीं।

विभिन्न शास्त्र जो विभिन्न सम्प्रदायको सम्मत्ति है, भविष्य पुराणमें उसका बहुत कुछ आभास प्राप्त होता है,—

“जयोपजीवी यो विप्रः स महागुरुकथ्यते।

अष्टादश-पुराणानि रामस्य चरितं तथा ॥

विष्णुधर्मादित्यधर्मा गिवधर्माश्च भारत।

कारणं यदे पञ्चमस्तु महाभारतं स्मृतं ॥

सौराष्ट्र धर्मा राजेन्द्र नारदीत्या महीपते ॥

जयेति नाम एतेषां प्रवदन्ति मनोयिणः ॥”

(भविष्य २ अ०)

जय जिसकी उपजीविका है, उस ब्रह्मणको महागुरु कहते हैं। हे भारत ! अष्टादश पुराण घोर राम-चरित, विष्णुधर्म, आदित्यधर्म घोर गिवधर्म वा पञ्चमवेद कारण स्वरूप महाभारत तथा नारदकथित मोरोंका धर्म है (यह भविष्यपुराणमें कीर्तित हुआ

है।) मनोयिणी इन सब शास्त्रोंका जय नाम रखे है।

तब श्रोकमें मान्य होता है, कि वेष्णुआदि विभिन्न सम्प्रदायोंके लिये पुराणदि विभिन्न धर्मगण्य प्रचलित थे।

स्कन्दपुराणोय केदारखण्डमें स्पष्ट लिखा है—

“अष्टादश-पुराणेषु दशभिर्गोयते गिवः।

चतुर्भिर्भगवान् ब्रह्मा द्वाभ्यां देवौ तथा हरिः ॥”

(केदार १ अ०)

१८ पुराणोंमें दश पुराणोंमें गिव, चारमें ब्रह्मा, दोमें देवी भगवतो घोर दोमें विष्णु, माह्याय कीर्तित हुआ है।

इस सम्बन्धमें स्कन्दपुराणोय गिवरहखण्डके अन्तर्गत अष्टादशखण्डमें लिखा है—

“तत्र गोवामि गोयश्च भगिषाश्च द्विजोत्तमाः।

माकण्डेयं तथा कोङ्कं वाराहं स्कान्दमेव च ॥

माह्यायमन्यस्यो कोमं वामनश्च मुनोवराः।

ब्रह्माण्डश्च दशमो गिणि गोणि सचाणि संवशया ॥

यथानां महिमा सर्वैः गिवस्यैव प्रकाशते।

असाधारणया सूर्यां नात्रा साधारणेन च ॥

वदन्ति गिवमेतानि गिवस्तेषु प्रकाशते।

विष्णोर्देवैश्च तच्च तथा भागवतं तथा ॥

नारदीयपुराणश्च माह्ण्डं वैष्णवं विदुः।

ब्राह्मं पाण्डं ब्रह्मवेदे अन्ते रान्ते यमेककं ॥

सवितुर्ब्रह्म वैवस्वमेवमष्टादश स्मृतं।

अतारि वैष्णवानौगविष्णोः साम्यरानि ये ॥

ब्रह्मादिभ्योऽधिकं विष्णुं प्रवदन्ति जगत्पतिं।

ब्रह्मविष्णु महेशानां साम्यं ब्राह्मं पुराणके ॥

अन्योयामधिकं देवं ब्राह्मणं जगतां पतिं।

प्रवदन्ति दिगधीगं ब्रह्म वैष्णुगिशाञ्जम् ॥”

(सन्ध्याखण्ड २। १०३८)

गोव, भविष्य, माकण्डेय, कोङ्क, वाराह, स्कान्द, माह्या, कोमं, वामन घोर ब्रह्माण्ड ये दश पुराण श्रेय हैं। इन दशोंको श्रोकमें द्वा तोन साव है। इन मध ण्योमें गिवको महिमा भाई गई है। वैष्णव, भागवत, नारदीय घोर माह्ण्ड ये चार यैष्णव गण्य हैं। इनमें विष्णु महिमा प्रकाशित हुई है। ब्राह्म घोर पाण्ड दो ब्रह्माञ्ज, एकमात्र पान्तेय-पुराण अन्विके घोर ब्रह्मवैवस्व सविताके महिमा प्रका-

प्रचार, विमोचनः शिव, विष्णु, शिवर सनके शक्तियों का महिमाकीर्त्तन तथा पूजन-प्रचार वर्त्तमान पुराणों का प्रधान उद्देश्य है। भगवान् शङ्कराचार्य के भाविभाव के बहुत पक्षसे ही उक्त उद्देश्यमाधनार्थ बटादशपुराण प्रचलित हुए थे। उन बटादश पुराणों के सत्य मर्याद और नारदीयपुराणमें बहुत विस्तृत भावमें वर्णित हुए हैं। अतएव पुराण के आलोचना प्रसङ्गमें उस उस पुराण का विशेषत्व, ऐतिहासिकता और साम्प्रदायिकता निर्णय किया जायगा।

परस्पर पुराणों विरोध।

साम्प्रदायिकता को परस्पर पुराणवचनकी विरोधिता का कारण है। एक सम्प्रदायने जैसा समझा है, उस सम्प्रदाय के पक्षसम्बन्धित पुराणमें वैसा ही मत प्रचारित हुआ है। इनोन्निष्ठ एक पुराणमें किसी विषयको जैसी अवतारणा देखी जाती है दूसरे पुराणमें वही निम्नरूपमें वर्णित है। वर्त्तमान पुराणिक कथने हैं, कि कल्पभेदेसे हम प्रकार रचनाभेद ही इस विरोध-भङ्गनका कारण है। इस पर वी एक श्लोक देते हैं—

‘कचित्कचित् पुराणेषु विरोधो यदि सभ्यते।

कल्पभेदादिभिस्तत्र व्यवस्था सङ्गिरप्यते।’

नोचि १८ पुराणों के अघ्यायानुसार विषयानुक्रम और अत्येक पुराणकी संक्षिप्त समालोचना दी गई है।

१म ब्रह्मपुराण।

इसके १मः सङ्कलाचरण, नैमिषारण्यवर्णन, लोम-वर्णनका पुराणकथनोपक्रम, सृष्टिकथनारम्भ, २ स्वायम्भुव मनुके साथ शतरुद्रका विवाह, त्रिशक्तोत्थान-पादकी उत्पत्ति, कामाख्यकन्याका जन्म, उत्थानपाद-वर्णन, पृथुजन्म, प्रचेतापीकी उत्पत्ति, दक्षका जन्म और दक्षसृष्टिकथन; ३ देवादिकी उत्पत्ति, दशरथ और शत्रुघ्नजन्म, दक्ष कर्त्तृक पटिकन्यासृष्टि, पटिकन्या-की सन्निधि और मरुद्गणकी उत्पत्ति; ४ ब्रह्मकर्त्तृक देवतापीका चपने चपने प्रदेयमें अभिवेक और पृथु-चरित; ५ सन्मत्तरकधारम्भ, महाप्रलय और पल्ल पल्ल-वधन; ६ सूर्यवर्णकथन, छाया और सञ्जाका चरित

तथा यमुनादि सूर्यकन्यापीका वर्णन; ७ वैवस्वतमनु-वर्णन, कुवल्यावचरित, पुष्पुमार और तदुद्देश्य राजापी-का संक्षिप्त वर्णन, सचरित और मातवचरित-कथन; ८ सत्यव्रतका त्रिशङ्कनाम पढ़नेका कारण, हरियम्भ, सगर और भगोरथका विवरण, गङ्गाका भागीरथी नामकरण; ९ सोम और बुधचरित; १० पुद्गरवाचरोन तथा पुद्गरवाका वर्णन, माधवचरित जमदग्नि, परशुराम और विश्वामित्रो-त्पादिकथन; ११ आयुर्के पञ्चपुत्रकी उत्पत्ति और रज-युक्तिवर्णन, धनिनाका वर्णन, धन्वन्तरिका जन्म और आयुर्वेदविभाग, १२ ययातिवर्णन, १३ पूषवर्णन, क्रांति-वीर्युत्थनका विवरण और तत्पत्ति आपव मुनिका गाय, १४ वसुदेवजन्म और उनकी पत्नियों का नामकीर्त्तन, १५ व्यामचरित, धन्व और देवाष्टकी महिमा, देवक-का सम्प्रजन्मनाम और कंसजन्मकथन, १६ मत्स्यजन्म-चरित, ह्यमन्तकीपाख्यान, कृष्ण के साथ जाय्यवती और सत्यशामाका विवाह, १७ शतधन्वा कर्त्तृक सत्ता-जितवचनिकवर्णन और पञ्च रथे निकट ह्यमन्तकमणि रत्नने की कथा, १८ भृगुसर्वर्णनमें मन्त्रोपवर्णन, १९ भारतवर्षवर्णन, २० ब्रह्म, शक्तिमत्, कुम्भ, क्रोड, शाक और पुष्करहोपवर्ष कोकाकोरुपवर्णनकथन, २१ पाता-नादि सप्तलोक वर्णन, २२ शीतवादि नरक, स्वर्गनरक-व्याख्या, २३ आकाश और पृथ्वीका प्रमाण, शीतवादि-मण्डल और भूगर्भ सप्तलोकका प्रमाण, महादिका उत्पत्तिवर्णन, २४ शिष्यारवत्त और भूवर्षव्यापन-निकृषण, २५ शरीरलोकवर्णन, २६ कृष्णवर्षायन-संवाद, २७ भरतखण्ड और तदन्तर्गत गिरिनदी देशादि वर्णन, २८ बौद्धदेवस्य ब्राह्मणप्रमाण, कोपा-दिष्ट और रामेश्वरलिङ्गवर्णन, २९ सूर्यपूजाभाषाव्य-३० सूर्यसे सर्वजगदुत्पत्ति, द्वादशादिपञ्च भुक्ति कथन और मित्र नामकसूर्य तथा नारदसंवाद, ३१ चन्द्रादि-क्रमसे द्वादशादिपञ्च नामकथन, ३२ पदितिकी सञ्चारणना, पदितिका सूर्यद्वय, पदितिके गर्भसे सूर्यका जन्म, दश्यादि सूर्यचरितवर्णन, ३३ ब्रह्मादि देवताओंको सूर्यका यशदान और सूर्यका पटोत्तर-गतनाम, ३४ रुद्रमहिमा, द्वापायणी संवाद, पायणी का आख्यान, ३५ उमाविदग्धसंवाद, मित्रायणतीसंवाद,

७ सुविपाके द्विपे पहले विषयके प्रत्येक ‘अध्याय’ में छिन्न कर केवल अध्याय-संख्या लिखी गई है।

कहें क कुबेरपराभव और कुबेरकी शिवसुति, ८८ चमि-
तीर्थोत्पत्तिकथन, ८८ कचोशमर्गके पुत्रोंके प्रति ऋषय-
मोचनार्थ दारुचप्रश्नमें उपदेश, उन लोगोंकी उपेक्षा-
उनके प्रति यिनरोका शीतमीरुनानमें बादेय, १००
वाल्खिल्योकी काश्यपके प्रति पुत्रोपादनकथा, सुपर्णका
जन्म, ऋषिसत्रमें कटु और सुपर्णका गमन, तत्प्रति-
नदी होजा ऐसा कह कर ऋषियोंका अभिग्राह, १०१
पुत्रवा-उर्वशो सन्वाद, सरस्वतीके प्रति वज्राका अभि-
ग्राह और श्लोकभाववर्णन, १०२ नृगक्षारो वज्राके
प्रति नृगव्याधक्षारो शिवकी उक्ति, सावित्राष्टि पञ्चनद
का वज्राके समीप गमन, १०३ श्रम्यादितीर्थवर्णन,
१०४ हरिचन्द्राख्यान, वरुणप्रसादसे हरिचन्द्रकी पुत्रप्राप्ति,
उनके पुत्र रोहितकी ले जानेके लिये वरुणकी प्रार्थना,
रोहितका जन गमन, अजीगर्भका पुत्रविक्रय,
अजीगर्भ पुत्र युनःशिवका विश्वामित्रानुग्रहलाभ और
विश्वामित्र द्वारा युनःशिवका ज्योत्सुत्वकथन, १०५
गङ्गासङ्गत मदनदीवर्णन, १०६ देवदानवकी मन्त्रणा,
समुद्रमन्थन, चन्द्रतोत्पत्ति, विष्णु कर्क राहुका, गिर-
न्धेद, राहुका अभिषेक, १०७ छद्मांगोत्सववाद, गङ्गाके
वरसे छद्माकी यौवनप्राप्ति और छद्मांगोत्सवसङ्घाट, १०८
इलातीर्थवर्णन और उसके प्रसङ्गमें दत्ताचार्यकीर्त्तन,
१०९ वक्रतीर्थवर्णन और उसके प्रसङ्गमें दक्षयज्ञकथन,
११० दधीचि, लोपासुता और दधीचिपुत्र पिप्पलादचरित
और पिप्पलेश्वरतीर्थवर्णन, १११ नागतीर्थकथन और
उसके प्रसङ्गमें सोमवंशीय शूरसेनराजाख्यान, ११२
माळतीर्थवर्णन, ११३ ब्रह्मतीर्थवर्णन, उसके प्रसङ्गमें
ब्रह्माका पञ्चमसुविदारण और शिवका ब्रह्मागिरीवारण-
वृत्तान्त, ११४ अविम्रतीर्थवर्णन, ११५ शिव तीर्थवर्णन,
११६ बहुवादितोर्थवर्णन, ११७ धाम्यतीर्थवर्णन और
तदुपलक्षमें दत्ताख्यान, ११८ धाम्यवादितोर्थकीर्त्तन और
तदुपलक्षमें भगवत् और पिप्पल नामक राक्षसाख्यान,
११९ सोम तीर्थवर्णन और उसके उपलक्षमें गङ्गाद्वारा
सोम और चोवधका विवाहवृत्तान्त, १२० धाम्यतीर्थवर्णन,
१२१ भरद्वाजकृत रवतीके साथ कठका विवाह, १२२ पूर्ण-
तीर्थवर्णन, तदुपलक्षमें अश्वत्थारिचन्दा और हृष्यसिद्धि
इन्द्राभिषेक, १२३ रामतीर्थवर्णन और तदुपलक्षमें राम-

चरितप्रसङ्ग, १२४ पुत्रतीर्थवर्णन और तदुपलक्षमें पर-
मेष्ठिपुत्राख्यान, १२५ यमतीर्थ और चमिस्ततीर्थवर्णन,
१२६ तपस्तीर्थवर्णन, १२७ देवतीर्थवर्णन और तद-
नुसार पाण्डिपेठशाख्यान, १२८ तपोवनादि तीर्थवर्णन
और संचिपमें कर्तिकेयाख्यान, १२९ गङ्गाकिना-सङ्गम-
वर्णन और तदुपलक्षमें इन्द्रमाहात्म्यप्रसङ्गमें किन नामक
नमुचिवध, हरिप्रदेतपुत्र महाशिव वध और इन्द्र-
वर्णित हृष्याख्यादिका माहात्म्य, १३० पापनश्यतीर्थ
और तदुपलक्षमें पापनश्यच्चरितकीर्त्तन, १३१ यमतीर्थ
वर्णन और तदुपलक्षमें मरमाख्यान, १३२ यक्षीसङ्गम-
माहात्म्य और तदुपलक्षमें विश्वावसुभार्याख्यान तथा
दुर्गातीर्थवर्णन, १३३ शक्ततीर्थवर्णन और तदुप-
लक्षमें भरद्वाजयज्ञवर्णन, १३४ वक्रतीर्थवर्णन और
तदुपलक्षमें वसिष्ठप्रसुत्वसुनिगणकृत यज्ञविवरण,
१३५ वाणीमङ्गमाख्यान और तदुपलक्षमें ज्योतिर्लिङ्ग-
प्रसङ्ग, १३६ विष्णुतीर्थवर्णन और तदुपलक्षमें मोक्षव्या-
ख्यान, १३७ लक्ष्मीतीर्थोदि षट्सहस्रतीर्थवर्णन,
तदुपलक्षमें लक्ष्मी और दरिद्राख्यान, १३८ भागुतीर्थ-
वर्णन और उसके प्रसङ्गमें मर्यादितराजचरित, १३९ खड्ग-
तीर्थवर्णन और तत्प्रसङ्गमें कवचसुत ऐन्दुमुनि-
चरित, १४० आर्द्रयतीर्थवर्णन और उसके प्रसङ्गमें
आर्द्रय ऋषिका पाख्यान, १४१ कपिलासङ्गमतीर्थ-
वर्णन और तत्प्रसङ्गमें कपिलासुति और हृष्यात्मका
संक्षेपचरितकथन, १४२ देवस्थान नामक तीर्थ और
उसके प्रसङ्गमें वैदिकेय राहुपुत्र मेघदान देवका चरित-
वर्णन, १४३ सिद्धतीर्थ और उसके प्रसङ्गमें रावणतप-
प्रभाववर्णन, १४४ वरुण्योत्सवमतीर्थ और उसके
प्रसङ्गमें अग्नि ऋषि तथा वकी कन्या प्रावेद्योका चरित-
वर्णन, १४५ माकण्ड्येतीर्थ और तत्प्रसङ्गमें माक-
ण्ड्यप्रभाववर्णन, १४६ कालध्वरतीर्थ और उसके
प्रसङ्गमें ययातिचरित, १४७ अश्वरीयुगमङ्गलतीर्थ और
उसके प्रसङ्गमें अश्वरीयुगके विश्वामित्रका तपोभङ्ग तथा
विश्वामित्रके यापये नदीद्वाराप्राप्ति, १४८ कोटितोर्थ और
उसके प्रसङ्गमें कवचसुत वरुणलोकचरित, १४९ नारविह-
तीर्थ और तत्प्रसङ्गमें नारविहर्षके हरिप्रसङ्गिपुत्रा
वधाख्यान, १५० यमाचतीर्थ और उसके प्रसङ्गमें युनः-

अनिरुद्ध-विवाहकथन, चित्रलेखाका आलेखनिर्माण-
कोमल, २०५ वाणपुरमें अनिरुद्धको खाना, २०६ कण्ड-
वलदेवका पुत्रार्थ आगमन, कण्डके साथ शहरका युद्ध,
कण्डका अनिरुद्धके साथ द्वारका-आगमन, २०७ पोण्डूक-
वासुदेववृत्तान्त, पोण्डूक और काशिराजवध, कण्डवक्त्रके
वारणसीदाह, पुनः कण्डके साथसे चक्रागमन, २०८ शम्भु
कच्छक दुर्गोधनकन्याहरण, दुर्गोधनादिकच्छक शम्भु-
निषण्ड, वलदेवके साथ कोरवोंका युद्ध और वलदेवका
हस्तिनापुर-अधिकार, कोरवोंको प्रार्थना, २०९ वलदेव-
कच्छक द्विविध वानरवध, २१० कण्डका द्वारकात्याग,
प्रभासमें यदुवशब्जस, २११ कण्डके धनुषप्रक्षेप लुब्धकका
खननगमन, २१२ हस्तिनी आदिका प्रवसान, मामोरीके
साथ चतुर्नका युद्ध, क्लृप्त्कच्छक यादवश्रीहरण,
चतुर्नविवाद और व्यासार्जुनसंवाद, पट्टावक्रचरित
कोत्तन, चतुर्नके मुखसे सभी वृत्तान्त सुन कर
दुधिष्ठिरको मान्यव समेत महाप्रस्थानोपक्रम, परीक्षितको
राज्य सौंप कर दुधिष्ठिरादिका वनगमन, कण्डचरित
समाप्ति, २१३ वराहावतार, वृषि-शवतार, वामना-
वतार, दत्तात्रेयावतार, कामदम्भावतार, दामरणि-
रामावतार, श्रीकृष्णवतार और कण्ववतारवर्णन,
२१४ नरक और यमलोकवर्णन, २१५ दक्षिणभागमें
जानेवाले प्राणियोंका होमवर्णन, चित्रशुभकृत पाप-
वर्णन, पातत्रागुसार नरकवासिकथन, २१६ व्यासकथित
धर्माचरण और सुगतिप्राप्तिवर्णन, २१७ नाना योगिने कर्म
प्रसङ्ग, २१८ भवदानसे शुभप्राप्तिकथा, २१९ आरुविधि
निरूपण, २२० प्रतिपदादि आहूतय और विष्टदान-
कथन, २२१ सदाचार और विमर्षसतियोग्य देवसमूह-
कथन, सनकावतार २२२ वर्षधर्मकथन २२३ ब्राह्मणों-
की शूद्रत्वप्राप्ति और शूद्रादिका उत्तम गतिप्राप्तिकथन,
सहरजातिसूचण, २२४ मानवधर्मफलकथन, २२५ देव-
लोकप्राप्ति और निरयमाप्तिकारण, २२६ वासुदेवमहिमा,
मनुवंश और वासुदेवपूजाकथन, २२७ विष्णुपूजाकथन-
प्रसङ्गमें सर्वश्री-मूखे ब्राह्मणसंवाद और शकटदानकथन,
२२८ कपालमोचनतीर्थ और लक्ष्मणकर्म सूर्यादिको पारा-
धना, कामदसमाख्याग और माधवाद्युर्माव, २२९ महा-
प्रलयवर्णन और कलित भविष्यकथन, २३० क्षीरयुगात्

और भविष्यकथन, २३१ प्राकृतधर्म, कथ्यमान और नेमि-
स्तिकलघुसूक्तकथन, २३२ प्राकृतधर्मप्रकृतकथन, २३३
प्रात्यस्तिक नय, आध्यात्मिक तापत्रय, आधिमोक्षिक ताप
और आधिदैविक तापवर्णन, सुक्तिज्ञानमहिमा, २३४ योगा
भ्यासफल, २३५ योग और साध्या निरूपण, २३६ मोक्ष
प्राप्ति और पञ्चमहाभूतकथन, २३७ सर्वधर्मका विमिश्र
धर्मनिरूपण, २३८ योगविधि निरूपण, २३९ सांख्यविधि-
निरूपण, २४० चराचरनिवारनिरूपण और चतुर्विंशति
तन्त्र प्रतिपादन, २४१ भूमिमानिषीका बहुविधसाधन-
कथन, २४२ सांख्यज्ञान और चैतन्यज्ञानसाधनकथन, २४३
धर्मदेमें सांख्ययोगकथन, २४४ जनकके प्रति विमिष्टकी
ब्रह्मके समीप महाप्राप्तप्राप्ति और ज्ञानप्राप्तिपरम्परा-
कथन, २४५ व्यासधर्मशास्त्र, ब्रह्मपुराणश्रवणफल और
धर्मप्रमंसा ।

पहले ही कहा जा चुका है, कि विलसत प्रसूख
पायाय पण्डितगण वृत्त ब्रह्मपुराणको न तो पञ्चसूचण-
ज्ञान पुराण और न मत्स्यपुराणवर्णित ब्रह्मपुराण ही
मानते हैं। अभी देखना चाहिये, कि मत्स्यपुराणमें
ब्रह्मका कौसा सूचण निर्दिष्ट हुआ है ।

“ब्रह्माणमिहितं पूर्वं यावन्मात्रमरीचये ।

ब्राह्मं निदधसाहसं पुराणं परिकीर्त्तते ॥”

(५१।१२)

पुराणकालमें ब्रह्माने मरीचिसे यह पुराण कहा था,
इस कारण इसका ब्राह्म नाम पड़ा है । इसकी श्लोक
संख्या १२००० है । इस प्रचलित ब्रह्मपुराणके १८
अध्यायमें ही लिखा है—

“कथयामि यथापूर्वं दत्ताष्टोत्सुनिसत्तमैः ।

घटः श्रोवाच भगवानकयोनिः वितामहः ॥”

(१।१३)

इस वचनके अनुसार अध्यापक विनयनने समझा
था, कि ब्रह्माने दत्तको जब यह पुराण सुनाया था, तब
मरीचिभूत ब्राह्म और दत्तभूत ब्राह्म एक नहीं हो
सकता । परन्तु आजकलके प्रचलित ब्रह्मपुराण
(२६।१६)-का निम्नलिखित श्लोक पढ़नेसे और कोई
सन्देह रहने नहीं जाता—

पाथात्य पण्डितों का कहना है, कि प्रचलित ब्रह्म-पुराणमें पुराणके पक्ष सधन नहीं हैं; क्या सधमुच यह ठीक है? किन्तु प्रचलित ब्रह्मपुराणकी ध्यानपूर्वक पालोचना करनेसे पञ्चलक्षणके सम्बन्धमें कोई संदेह रहने नहीं पाता। इस चार अध्यायमें सर्ग और प्रति-सर्ग वर्णन, प्रथम अध्यायमें मन्वन्तरकथा, तत्परवर्ती शताधिक अध्यायोंमें वैश्व और वैश्वानुचरित कीर्तित हुआ है।

आकलनका ब्रह्मपुराण कितना प्राचीन है? पाथात्य पण्डितोंने यह स्थिर किया है, कि १२वीं शताब्दीमें ब्रह्मपुराण संहतित हुआ है। किन्तु यह ठीक नहीं ज्ञात। कारण, १२वीं शताब्दीमें रचित दानसागरमें, ज्ञानाद्युक्तके ब्राह्मणसर्वस्वमें और उसके बाद के माद्रिके परिशिष्टखण्डमें प्रचलित ब्रह्मपुराणके श्लोक उद्धृत हुए हैं। इस हिंसावसे किस प्रकार कहा जा सकता है, कि प्रचलित ब्रह्मपुराण १२वीं शताब्दीमें रचा गया है?

इस पुराणके १०६वें अध्यायमें अनन्तवासुदेवमाहात्म्य वर्णित है। उल्लसके सुप्रसिद्ध भुवनेश्वरधर्ममें, पात्र भी इन अनन्तवासुदेवका मन्दिर विद्यमान है। ब्रह्माल-के सामवेदियोंके पद्धतिकार पद्मिनीय पण्डित भवदेव-भट्टने १२वीं शताब्दीको उक्त मन्दिर निर्माण किया था। वही ही पाथ्य का विषय है, कि ब्रह्मपुराणमें उक्त अनन्तवासुदेवमूर्तिको सपरित और माहात्म्यका वर्णन रहने पर भी मन्दिरका प्रसङ्ग ऊँक भी नहीं है। उक्त माहात्म्य रचित होनेके समय यदि मन्दिरका निर्माण हुआ रहता, तो निश्चय है, कि पुराणमें इस विषयका प्रसङ्ग रहता—छूटने नहीं पाता। इसके द्वारा भी माहात्म्यका रचनाकाल १२वीं शताब्दीके पूर्ववर्ती होता है। पुरुषोत्तम-माहात्म्यप्रसङ्गमें पुरुषोत्तम-प्रासादकी कथा रहने पर भी वह वर्तमान प्रासादके को का प्रतीत नहीं होता। 'माद्रिके' शब्दमें लिखा है, कि वर्तमान पुरुषोत्तम मन्दिर गङ्गेश्वर चौहानके समय में बना है। चौहान ८८८ गज पर्याप्त १००० ई. में काश्मीरके विजय पर अभिषिक्त हुए। उनका अनुमान है, कि इसके १०२ वर्ष बाद के आसन्न प्रमाण किया जा। इस

हिंसावसे ११०० से ११२२ ई. में उनके द्वारा पुरुषोत्तमका मन्दिर निर्मित हुआ होगा। चौहान और गोहाधिय बलानसेन दोनों समसामयिक थे। साथ साथ बलानसेन-ने अपने दानसागरमें प्रचलित ब्रह्मपुराणमें बचन उद्धृत किये हैं। इस हिंसावसे यह पथग्न स्वीकार करना पड़ेगा, कि वर्तमान प्रासाद निर्मित होनेके पहले ब्रह्मपुराण निःसन्देह प्रचलित हुआ था। मेनराज लक्षण-की विशानिधिमें भी इस पुरुषोत्तमसत्तका उल्लेख है। ७वीं शताब्दीमें चीनपरिव्राजक वुएनत्सुङ्ग चि-सि-ति-की (चित्रोत्पल, वर्तमान पुरीमें) का कर पाँच प्रासादोंको उल्लेख हुआ देख गये हैं। इनमेंसे कोई एक चूड़ा पुरुषोत्तमप्रासादको ही सकती है, पक्षभय नहीं। जगन्नाथ शहर ७०९ पृष्ठ देखो।

देवीय और विदेवीय प्रायः सभी पण्डितोंका कहना है, कि सभी जो विष्णुपुराण प्रचलित है वह ब्रह्म पादि सभी पुराणोंकी पथेका प्राचीन है। किन्तु हम इसका समय न तो कर सकते, वरन् ब्रह्मपुराणका लक्षणरित और विष्णुपुराणका लक्षणरित दोनोंका पाठ तथा ब्रह्मपुराणका पुरुषोत्तम माहात्म्य और नारदीय महापुराणका पुरुषोत्तममाहात्म्य मिला कर देखनेसे मालूम पड़ेगा, कि ब्रह्मपुराणके श्लोक ही पवित्र परिवर्तित आकारमें विष्णु और नारदपुराणमें किये गये हैं। इस हिंसावसे ब्रह्म, विष्णु और नारद इन तीन पुराणोंमें ब्रह्मपुराणकी ही पादि और सर्वप्राचीन पुराण स्वीकार किया जा सकता है। ब्रह्मपुराण की पछाटग पुराणके मध्य सर्वप्रथम है, यह विष्णुपुराणमें ही वर्णित है। ब्रह्मपुराण देख कर ही विष्णुपुराणमें लक्षणरित और नारदपुराणमें पुरुषोत्तममाहात्म्य वर्णित हुआ है, यह पहले ही कहा जा चुका है।

केवल इतना ही नहीं, इस ब्रह्मपुराणके पनेकः प्रसङ्ग महाभारतके अनुशासनपर्वमें पवित्र उद्धृत हुए हैं, इस ब्रह्मपुराणके २२१ से २२५ अध्याय और अनुशासनपर्वके १४२ से १४५ अध्यायके साथ तथा बृहत्समे २२६ अध्याय और अनुशासन पर्वके १४६ अध्यायके प्रत्येक श्लोकमें पवित्र मेल है। ये सब उद्धृत श्लोक देख कर कोई कोई यह भी कह सकते हैं, कि महाभारतने

पाचाय पण्डितों का कहना है, कि प्रचलित ब्रह्म-पुराणमें पुराणके पक्ष लक्षण नहीं है; क्या संभव यह ठीक है? किन्तु प्रचलित ब्रह्मपुराणकी ध्यानपूर्वक पालोचना करनेसे पक्षलक्षणके सम्बन्धमें कोई शन्दे रहने नहीं पाता। इस चार अध्यायमें सर्व भोर प्रति-सर्ग वर्णन, प्रम अध्यायमें मन्वन्तारकथा, तत्पुनर्वर्षा गताधिक अध्यायोंमें वंश भोर वंशानुवर्ति कौत्सित हुआ है।

आजकलका ब्रह्मपुराण कितना प्राचीन है? पाचाय पण्डितोंने यह स्थिर किया है, कि १३वीं शताब्दीमें ब्रह्मपुराण संहतित हुआ है। किन्तु यह ठीक नहीं ज्ञात। कारण, १२वीं शताब्दीमें रचित दानसागरमें, जलसमुद्रके सागरसर्वस्वमें भोर उसके बाद ब्रह्मादि परिमेषलक्ष्में प्रचलित ब्रह्मपुराणके श्लोक उद्धृत हुए हैं। इस हिंसावसे किस प्रकार कहा जा सकता है, कि प्रचलित ब्रह्मपुराण १३वीं शताब्दीमें रचा गया है? इस पुराणके १०६वें अध्यायमें अनन्तवासुदेवमाहात्म्य वर्णित है। उक्तलके सुप्रसिद्ध भुवनेश्वरलक्ष्में पात्र भो इन अनन्तवासुदेवका मन्दिर विद्यमान है। ब्रह्मलक्ष्में भामदेदीर्घके पदतिकार पहिलो पण्डित भामदेव भट्टने ११वीं शताब्दीको उक्त मन्दिर निर्माण किया था। वहाँ हो पाचायका विषय है, कि ब्रह्मपुराणमें उक्त अनन्तवासुदेवमूर्ति को उत्पत्ति भोर माहात्म्यका वर्णन रहने पर भो मन्दिरका प्रसङ्ग कुछ भो नहीं है। उक्त माहात्म्य रचित होनेके समय यदि मन्दिरका निर्माण हुआ रहता, तो निश्चय है, कि पुराणमें इस विषयका प्रसङ्ग रहता—छूटने नहीं पाता। इसके द्वारा भो माहात्म्यका रचनाकाल ११वीं शताब्दीके पूर्ववर्ती होता है। पुरवोत्तम-माहात्म्यप्रसङ्गमें पुरवोत्तम-प्रासादको कथा रहने पर भो वह वर्तमान प्रासादके लोपा प्रतीत नहीं होता। 'गङ्गाय' शब्दमें लिखा है, कि वर्तमान पुरवोत्तम मन्दिर गङ्गाधर चौहानवसे बनाया गया है। चौहान ८८८ गक वर्षात् १००० ई. में कलिङ्गके सिंहासन पर अभिविष्ट हुए। उनका चरित पढ़नेसे मान्य होता है, कि इसके ३०५ वर्ष पीछे उन्हीं उक्त पर आक्रमण किया था। इस

हिंसावसे ११०० से १११२ ई. में उनके द्वारा पुरवोत्तमका मन्दिर निर्मित हुआ होगा। चौहान भोर गौडावसे वल्लभसेन दोनों समसामयिक थे। साथ साथ यज्ञाजनेन पढ़ने दानसागरमें प्रचलित ब्रह्मपुराणसे वचन उद्धृत किये हैं। इस हिंसावसे यह पक्ष स्वीकार करना पड़ेगा, कि वर्तमान प्रासाद निर्मित होनेके पहले ब्रह्मपुराण निःसन्देह प्रचलित हुआ था। सेनराज लक्षणकी शिलालिपिमें भो इस पुरवोत्तमलक्ष्मेंका उल्लेख है। ७वीं शताब्दीमें चीनपरिभाषक यूएनचुङ्ग चिन्ति-लो (चित्रोत्पन्न, वर्तमान युरीमें) का कर पांच प्रासादोंको उल्लेख देखा गया है। इनमेंसे कोई एक चूड़ा पुरवोत्तमप्रासादको हो सकती है, असंभव नहीं। जगन्नाथ शब्द ५०९ पृष्ठ देखो।

द्वितीय भोर विदेशीय प्रायः सभी पण्डितोंका कहना है, कि सभी भो विष्णुपुराण प्रचलित है यह ब्रह्म पाटि सभी पुराणोंकी लोपा प्राचीन है। किन्तु हम इसका समर्थन नहीं कर सकते, वरन् ब्रह्मपुराणका लक्षणचरित भोर विष्णुपुराणका लक्षणचरित दोनोंका पाठ तथा ब्रह्मपुराणका पुरवोत्तम माहात्म्य भोर नारदीय महापुराणका पुरवोत्तममाहात्म्य मिला कर देखनेसे मान्य पड़ेगा, कि ब्रह्मपुराणके श्लोक ही पवित्र परिचरित आकारमें विष्णु भोर नारदपुराणमें लिखे गये हैं। इस हिंसावसे ब्रह्म, विष्णु भोर नारद इन तीन पुराणोंमें ब्रह्मपुराणकी ही पाटि भोर सर्वप्राचीन पुराण स्वीकार किया जा सकता है। ब्रह्मपुराण की षष्ठादश पुराणके मध्य सर्वप्रथम है, यह विष्णुपुराणमें हो वर्णित है। ब्रह्मपुराण देख कर हो विष्णुपुराणमें लक्षणचरित भोर नारदपुराणमें पुरवोत्तममाहात्म्य वर्णित हुआ है, यह पढ़ने ही कहा जा सका है।

को वस इतना हो नहीं, इस ब्रह्मपुराणके पतेक प्रसङ्ग महाभारतके पनुशासनपर्वमें पवित्र उद्धृत हुए हैं, इस ब्रह्मपुराणके २२३ से २२५ अध्याय भोर पनुशासनपर्वके १३३ से १३५ अध्यायके साथ तथा ५१५ में २२५ अध्याय भोर पनुशासन पर्वके १३५ अध्यायके अत्येक श्लोकमें पवित्र मिले हैं। ये सब उद्धृत श्लोक देख कर कोई कोई यह भी कह सकते हैं, कि महाभारतसे

को ब्रह्मपुराणमें 'वे सव श्लोक सविमं गित इव' हैं ।

किन्तु ब्रह्मपुराणमें—“इदं वैशारं देवि ब्रह्मं ब्रह्म-
हर्षम्” (१४१:१६) और “विनामरमुत्तोषं प्रवाचमिहि मे
मतिः” (१४१:१८) इत्यादि महाभारतोप श्लोक
देवनेने ब्रह्मका सत्य महाभारतमें उद्धृत किया है,
इसमें और कोई शङ्के नहीं रहता । वेदको ब्रह्मा
को पुराणका उद्देश्य है, यह पक्ष ही कहा जा चुका
है । इस ब्रह्मपुराणमें भी लिखा है—

“प्रादुर्भावाः पुरावेष्टु गोपयन् ब्रह्मवादिभिः ।

यत् देवा विमुञ्चन्ति प्रादुर्भावाभ्युत्थनम् ॥

पराचं वक्षते यत् वेदश्रुतिसमाहितम् ।

एतदुद्देशमात्रेण प्रादुर्भावाभ्युत्थनम् ॥”

(१४१:१६-१७)

यद्यपि इस ब्रह्मपुराणके तीर्थचर्चामण्डलमें
मेकड़ों वैदिक उपाख्यान या ब्रह्मपुराणित कोर्तित हुए
हैं । ब्रह्मचरिता, ऐतरेयब्राह्मण, गाढाण्य ब्राह्मण, गत-
पद्मब्राह्मण तथा हज्जदेवतामें जो सब वैदिक उपाख्यान
हैं, उन्हींमें अनेक उपाख्यान इस ब्रह्मपुराणमें संरक्षित
वा वर्जितताकरने मिलिये हुए हैं । इसमें वे सवि और
वामनाख्यान, परशुरामवाट, मुद्गरवा-उर्वशीमंवाट,
हरियन्द्र और रुद्रमेष-उपाख्यान, कजोपाख्यान, पाटि-
मेष और देवावि-उपाख्यान, उपाकविका उपाख्यान, सरमा-
ख्यान, गर्वाति-खानपरित, कवच-प्रेम-पसरित, पात्रेय
और उनको कन्या पात्रेयोंकी कथा, अज्ञेयकाख्यान,
पाटिहरण, गोकर्ण, अभिज्ञात पाटिका पाख्यान पढ़नेने
मान्य होना, कि वे सभी वैदिक ग्रन्थोंमें खंडीत हो
कर छोटे पुराणमें विस्तृत हुए हैं ।

ऐतरेयब्राह्मण (७:१५) और गाढाण्यब्राह्मण
(१५:२०)में जिस प्रकार राजा हरियन्द्र, उसके सङ्के रीति
और रुद्रमेषको कथा वर्णित हुई है, वही कथा कुछ बड़ा
बड़ा कर ब्रह्मपुराणमें वर्णित देखी जाती है । यद्यपि
ऐतरेयब्राह्मण और ब्रह्मपुराणके विवरणमें जो भी एकता है,
दूसरे हिस्से भी अन्यमें वे भी एकता नहीं है । यहाँ
तक कि, ब्रह्मपुराणमें इस प्रकारके उपाख्यानभागमें ऐसी
अनेक वैदिक कथाएँ हैं जिनका पर्व करनेमें प्राचार्य
ऐसादिक प्रकार हैं । जिनमें उपाख्येयका ब्रह्मच-

भाग नहीं पढ़ा है वे सबमें उक्त उपाख्यान प्रथम
खर चर्चमें, ऐसा बीच नहीं होता ।

उपाख्येय प्रमाणादि द्वारा यह प्रतिपन्न होता है, कि
पाटि ब्रह्मपुराण बहुत पक्षमें, यहाँ तक कि पाटन्य-
धर्मसंख्य रचित होनेके भी पक्षमें तथा गया था ।
इसीसे इस पुराणमें अनेक प्राचीन वैदिक उपाख्यान
और कहीं कहीं प्रायः प्रयोगपरिपूर्ण उपाख्यान संरक्षित
भावात् प्रयोग है ।

यह स्पष्ट यह होता है, कि इस लोग सभी जो
ब्रह्मपुराण देखते हैं, क्या इसी प्रकारमें उन समय यह
महापुराण प्रचलित था ? यद्यपि यहाँ प्राचीनता करनेने
वे सब चर्च करने प्राचीन प्रतीत नहीं होते । तीर्थ
माहात्म्यका उपक्रम और उसके प्रसङ्गमें वर्णित प्राचीन
पाख्यानिका, इन दोनोंकी प्राधान्य प्राचीनता करनेने
उन्हें एक समयकी रचना नहीं कह सकते । यद्यपि न
ख्यानमाहात्म्यका ऐसे विस्तृतभावमें वर्णन करना
प्राचीनतम पुराणोंका उद्देश्य था, ऐसा मान्य नहीं
पड़ता । अधिक स्पष्ट है, कि बोधधर्मकी प्रामाण्यताका
ज्ञान होनेने ब्रह्मपुराणमें पुनरुद्भव होने ही उन सब
माहात्म्य-रचनाओंका उद्देश्य है । प्राचीन बोधधर्म
और बोधधर्मज्ञानकी अन्तर्गतता पढ़नेमें पक्षी
तरह जाना जाता है, कि बोधधर्म हिन्दुधर्म से कर
कुमारिका तक फैल गया था । उस समय धार्मिक
बोद्धोंने भारतीय प्रायः सभी जनपदोंमें गान्धर्व और
बोधधर्मिका धार्मिक-प्रसङ्ग उत्थापन करके सभी
व्याप्तिकी एक प्रकारसे बोधधर्मवेधमें प्रविष्ट कर डाला
था । किन्तु उनके बाद जब ब्राह्मणोंका पक्ष्यद्वय हुआ,
तब उन्होंने भी इसका अर्थ प्रतिपन्न किया । बोद्धोंने
जहाँ एक तीर्थ स्थापन किया था, ब्राह्मणोंमें अपने
अपने प्राधान्य और उद्देश्यको निश्चित करने वहाँ मेकड़ों
तीर्थ प्राविष्टकार किन्ते और जनमाधारको अतिशय
पाठ्य करनेके लिये प्राचीन पुराणाख्यानके पाठ से
तीर्थमाहात्म्य जोड़ने करने लगे । यद्यपि ब्राह्मणधर्मके
पुनरुद्भवके साथ जितनी देवमूर्तियाँ प्रतिष्ठित होनी
थीं, उनका पूजा-प्रचार और उन्हींके नाम ब्राह्मणोंको
जाना प्रकारसे रहगिद्धिकी स्थापना रहनेने अनेक

माहात्म्य भी रचित होते थे। इस प्रकार प्राचीन पुराणों में नाना माहात्म्य का समावेश हुआ।

अधिकार्य पुराणों के मतानुसार ब्रह्मपुराण की श्लोक-संख्या १०००० है। किन्तु प्रवर्तित ब्रह्मपुराण में १३०-८० श्लोक देखे जाते हैं। अब देखना चाहिए, कि ब्रह्मपुराण में ११८३ अधिक श्लोक पाये हैं। इस विषय में तोय माहात्म्यप्रसङ्ग-प्रचलित पुराण में प्रायः ४००० श्लोक प्रवर्तित हुए हैं। सुतरां प्रवर्तित का अंश उत्तमा कम नहीं है। अब प्रश्न हो सकता है, कि प्रचलित अंश संयुक्त हो कर कितने दिन हुए कि ब्रह्मपुराण में वर्तमान आकार धारण किया है ?

इस पुराण के २१वें अध्याय में रामकृष्णदि अवतार के साथ कवकी अवतार का भी प्रसङ्ग है। किन्तु वहाँ की भाष्य का विषय है, कि उसमें बुढावतार का कुछ भी प्रसङ्ग नहीं है। प्रसिद्ध प्रजननवित् बुद्धर साहब ने प्रमाणित किया है, कि ८वीं शताब्दी में बुद्धदेव हिन्दुओं द्वारा अवतार में गण्य हुए। सुतरां बुद्धदेव का हिन्दु समाज में अवतार माने जाने के बहुत पहले यह पुराण सङ्कलित हुआ था, इसमें सन्देह नहीं। १०वीं शताब्दी की दाक्षिणात्य में ब्राह्मणभक्त सतवाहनवर्ग्य राजगण राज्य करते थे। महाराष्ट्र से कर मन्दाज तक इनका प्राधिपत्य फैला था। इस वर्ग के पूर्ववर्ती दाक्षिणात्य राजाओं में से अधिकार्य बौद्धधर्माग्राही या बौद्धधर्मावलम्बी थे। किन्तु सतवाहनवर्ग के समय दाक्षिणात्य में बौद्धप्रभाव का प्राव नहीं होने पर भी इन लोगों ने जिन प्रकार ब्राह्मणधर्म पर अनुसारा दिखलाया था, जिन प्रकार हजारों ब्राह्मणों ने इनसे वृत्ति पाई थी तथा सैकड़ों हिन्दुदेवालय प्रतिष्ठित हुए थे, उससे मालूम होता है, कि उस बौद्धप्रभाव के समयमें ही ये लोग ब्राह्मणधर्म स्थापन करनेमें प्रयत्न हुए थे।

इसी समय पुत्रमायी, उपवदात, गौतमीपुत्र गान्धर्वादि अनेक राजा 'विजयनरकटुम्बविदेव', 'ब्रह्मण्य' इत्यादि विग्रहों से विधेयित हुए हैं। वे सब राजन्य-समं देवब्राह्मण के चह्रमासे हजारों गोदान, सैकड़ों ग्राम और मन्दिर दान कर कोर्ति स्थापन कर गये हैं।

यद्यपि वे लोग बौद्धभित्तुकीका भी सम्मान करते थे, तो भी देवब्राह्मण के ऊपर उनकी प्रगाढ़ भक्ति और अनुसारा था—यहाँ तक कि, राजा उपवदात ने प्रभावसेवन पाठ ब्राह्मणों की पाठ कन्या देनेमें जरा भी सह्य न किया था। सुतरां इसी समय में ब्राह्मणधर्म के पुनरुद्भव का स्वप्नात कष्ट सकते हैं। इसी समय 'रामतोय' बादि किसी किसी तोय ने ख्याति प्राप्त की थी, उस समयको विचारित्वि इसका यथेष्ट प्रमाण मिलता है। इस लोग अनुमान करते हैं, कि इसा समय में ब्राह्मणधर्म के पुनरुद्भव के साथ साथ नाना तोयों की उत्पत्ति और नाना तोय माहात्म्यों की रचना हुई होगी। इस सातवाहनवर्ग की एक प्रधान शाखा का नाम गौतमी था। इस वर्ग में कुछ राजा भी गोखके साथ 'गौतमीपुत्र' नाम से परिचित हुए हैं। यह भी समभव नहीं, कि रूपकप्रिय पौराणिक ब्राह्मणों ने गोदावरीमाहात्म्य की इसी निवे 'गौतमीमाहात्म्य' से परिचित किया हो। ब्रह्मपुराण के सभी माहात्म्य एक समयमें सङ्कलित हुए थे, ऐसा शोध नहीं होता। परन्तु बुद्धदेव का हिन्दु समाज में अवतार माने जाने के पहले प्रायः ४वें शताब्दी के मध्य सभी माहात्म्य का ब्रह्मपुराणमें समावेश प्रवर्तित हुआ था।

पहले यह पुराण ब्राह्मणों द्वारा ब्रह्ममाहात्म्यसूक्त को कथ्यता था, स्कन्दपुराण से इनका प्रमाण मिलता है। किन्तु इस नवशतके धारणकालमें यह वैष्णवका पुराण कथ्यता में लगा।—

“पुराणं वैष्णवं त्वेत्तत् सर्वं किञ्चिद्विषयमात्रम्।”

(२४३।२०)

परवर्षीकालमें दाक्षिणात्य ब्राह्मणों ने अपिपुत्रमो-व्रत, कर्मविपाकसंहिता, काकहटोमाहात्म्य, चम्पा-पट्टोव्रत, नासिकोपाख्यान, प्रयागमाहात्म्य, क्षेत्रवण्डनं मन्नारिमाहात्म्य, मार्तण्डमाहात्म्य, मायापुरीमाहात्म्य, लक्ष्मीखण्ड, वेङ्कटगिरिमाहात्म्य, योद्धमाहात्म्य, श्रेत-गिरिमाहात्म्य, हन्तिगिरिमाहात्म्य बादि माहात्म्यों की ब्रह्मपुराण के पन्तगत मानेको चेष्टा की है, किन्तु इनका मूल ब्रह्मपुराणमें स्थान नहीं है। वे सब माहात्म्य ११ वीं या १२वीं शताब्दी की रचना प्रतीत होते हैं।

गोपकेश्वरके साथ यज्ञमें प्रहृत ब्रह्मके प्रति सावित्रीका
गोपदान, विष्णु कृत सावित्रीस्तोत्र, विष्णुका सावित्री-
वरेलाम, कार्तिकी पोष मासीको गायत्रीके उपदेशमें
ब्रह्मका व्रत; रुद्रकृत गायत्रीस्तव पोर वरलाम, १८ ब्रह्म-
यज्ञकथा, दानवोंके साथ विष्णु का कलह, पुष्करस्नानमें
सुखविरूप श्रविकी सुपुताप्राप्ति, प्राचीन सरस्वती-
चरित, मध्यमका ब्राह्मणका उपाख्यान, सरस्वती-
माहोत्स्यकथन, प्रसन्नलामसे उत्पत्त्यायमें भागमन, गङ्गा-
संवाद, समुद्रगमन पोर वक्ष्यामल पक्षवर्णन, सरस्वती-
की मन्दा नाम प्राप्ति, प्रमञ्जन राजाका उपाख्यान पोर
मन्दाका प्रसन्न, १८ तीर्थविभागवर्णन, हस्तासुरोपा-
ख्यान, दक्षीणिका पाख्यान, हस्तवधवर्णन, कालकेयो-
की समुद्रस्थिति, भगवत्याख्यान, विष्णुपर्वतकी मस्तक-
नति, भगवत्पूजा समुद्रप्राशन, कालियवधवृत्तान्त,
पुष्करमाहात्म्यप्राप्त पाख्यानिकाश्रम, भयदानादि-
प्रमंसा, मध्यम पुष्करप्रमंसा, २० दानप्रमंसाप्रसङ्गमें
पुष्पाङ्गन वृत्तिका पाख्यान, २१ धर्मभूति नामक
राजाख्यान, चौरधर्मकथन, विद्योकादि सप्तभोग-
कथा, २२ भगवत्चरित, गौरीव्रत पोर सारस्वतव्रतविधि,
२३ भीमदादगीव्रतकथनमें कण्ठपत्रियोंके तथा दालभ्य-
संवाद, दालभ्यकृत का वेश्याधर्मकथन, २४ भगवत्-
मयनव्रतविधि, तत्प्रसङ्गमें चोरमद्रोत्यतिकथन,
पादित्यरोहिणी, सलिता चोरः सोभागमयनव्रतविधि,
२५ वामनावतारकथन, २६ नागतोर्थोत्पत्ति, उसके
प्रसङ्गमें शिवदूतका पाख्यान, २७ व्रतपञ्चकका
पाख्यान, सुधाव्रततीर्थवर्णन, २८ मार्कण्डेयोत्पत्ति-
कथन, रामका देवागमनादिवर्णन, २९ ब्रह्मकृत यज्ञ-
कालवर्णन, ऋत्विक्परिमाणकथन, पुष्करमाहात्म्य,
३० विसहरोका उपाख्यान, विसहरोस्तोत्र, ब्रह्मविष्णुरुद्र
मूर्ति समुहका बहुभेदकथन, ३१ वैष्णवी चोर चामुण्डा
रूपी मूर्तिका देत्ववधवर्णन, महिषासुरवध, नवग्रह
व्रत पोर ब्रह्माण्डदानविधि, ३२, रामकृत गूढक-वधा-
ख्यान, ३३ राम-भगवत्संवादमें, चरित्रिका प्रतिपदा-
धिकार पोर व्रत नामक राजोपाख्यान, ३४ गृध्रोक्त का
ख्यान, ३५ काम्यकुलमें रामकृत का वामनप्रति-
ष्ठादि कथा, ३६ विष्णुकी नामसे हिरण्यपञ्चोत्पत्ति

कथा, ३७ मधुकैटभवध, प्राजापत्यसृष्टि, तारकामय-
संधाम, ३८ विष्णुकृत का इन्द्रादिका अधिकारप्रदान,
३९ तारकासुरकथा, ४० हिमानय पार्श्वत्युत्पत्तिकथा,
पार्श्वतोका विवाहवर्णन, ४१ कार्तिकेयोत्पत्ति पोर
तारकासुरवधकथा, ४२ हिरण्यकर्मिपुत्रधाख्यान, ४३
भयका सुराख्यान, गायत्री जपविधि, ४४ अधम ब्राह्मण
सत्तर्पण, तत्प्रसङ्गमें गृहोत्पत्तिकथन, ४५ चर्मिन्द-गर-
दादि ब्राह्मणवधसे वापामावकथन, मरय पोर गो-
माहात्म्य, ४६ सदाचारकथा, ४७ पितृमेवाग्र्यमाकथनमें
मूक, प्रतिप्रता, तुलाधार पोर मद्रोक्त उपाख्यान, ग्राह-
प्रमंसा, ४८ पतिव्रताकथनमें मान्डूयचरित, ४९ मङ्ग-
गमनविधि पोर श्लोघर्म, ५० तुलाधारचरित, पत्नीम
प्रमंसांमें गृहाख्यान, ५१ चरव्याधवर्णन, ५२ परम-
हंसाख्यान पोर कौहिल्यमाहात्म्य, ५३ पञ्चाख्यान, ५४
जलदानप्रमंसा, ५५ पञ्चत्यादिदानविधि, ५६ सेतुवन्ध-
कथा, श्रौत्रियगृहकरणफल, ५७ ब्रह्माचमाहात्म्य
पोर उसकी पाख्यानिका, ५८ धातोफल पोर तुलसी-
माहात्म्य, ५९ तुलसीस्तव, ६० गङ्गामाहात्म्य, ६१
गणेशकी चण्डपूजाकथा, गणेशस्तोत्र, ६२ नान्दीमुखादि
गणेशपूजा करनेमें फल पोर देवासुरप्रमंसांमें चिन्नरय-
कर्तृक कान्तकेयवधवृत्तान्त, ६३ कान्तकेयवधकथा,
६४ वल्लभमुचिवध, ६५ सुचिवध, ६६ कार्तिकेयकायसे
तारियवध, ६८ दुर्मुखवध, ६९ रय मुचिवध, ७० मधु-
देववध, ७१ हस्तासुरवध, ७२ गणेशकर्तृक जेपुरी
वध, ७३ बराहवधयोगी विष्णुका हिरण्याक्षवध, ७४
देवत्वभाववर्णन, प्रज्जादादिकी सुखप्राप्ति, भीष्म-
कर्ण-द्रोणादिका देवकथन, ७५ सूर्यचरित, ७६ बह-
विध सूर्यव्रतकथा, ७७ सूर्यमाहात्म्यमें मद्रेश्वर
राजाख्यान, ७८ भीमपूजा पोर भीमोद्देशमें दानविधि,
७९ भीम (मङ्गल)-की उत्पत्ति पोर पूजाकथन, ८०
चण्डिकामाहात्म्य, ८१ दुर्गापूजापद्धति, ८२ बुध-गुह
शुक्रादिकी पूजाविधि, नवग्रहमन्त्र, पद्मपुराणपठनका
फल, सृष्टिसृष्टका व्यवस्थावप पठन-फल।

२५ भूतलमें—१ ब्रह्मादिका जन्माक्षर, शिवधर्मो-
पुत्र विष्णुधर्मोदिका पाख्यान, २ धर्म पोर धर्मधर्मी
संवाद, ३ सेनका पोर विष्णुधर्मोसंवाद, ४ सोम

११३ नहुषके निकट भगोक्त सुन्दरीका गमन, ११४ नहुष
के साथ दानवीका युध, ११५ नहुषकत्क कृष्टदानव-
वध, ११६ इन्दुमतोका नहुषपुत्रसंग, ११७ भगोक्त-
सुन्दरीके साथ नहुषका विवाह, ११८ हृष्टपुत्र विदुषा-
ख्यान, ११९ कामोदोत्पत्तिकथन, १२० कामोदाख्य-
पुराण, १२१ विदुषवध, १२२ कुक्षलपत्नीच्यवन-
संवाद, १२३ वेणोपशान्तमें वेणकी ज्ञानप्राप्ति, १२४
पृथुके प्रति वेणकी आदिग, १२५ वेणका स्वर्गलाभ
पौर भूमिखण्डपाठकसः।

२५ स्वर्गसंग्रहमें—१ स्वर्गखण्डविधायुक्तम, शिववाक्या-
संवादमें दुःशमन्तचरित, शकुन्तलाका उपख्यान, २ कथ-
शकुन्तलासंवाद, शकुन्तलाका दुःशमन्तपुरमें पागमन, ३
दुःशमन्तका शकुन्तला यक्षमें प्रसीकार, शकुन्तलाका
दुःशमन्तपुरत्याग, शनकाशकुन्तलासंवाद, ४ शनकाके साथ
शकुन्तलाका स्वर्गगमन, ५ धौवरे दुःशमन्तकी प्रहरो
प्राप्ति, प्रहुरी (चंगूडी) देख कर दुःशमन्तका पूर्वकथा-
स्मरण पौर शकुन्तलाके लिये दाख्य मनस्ताप, भरत-
दुःशमन्तसंवाद, शकुन्तलाका समागम, ६ सपरिवार दुःशमन्त-
का निजान्त गमन, भरतका अभिषेक, भरताख्यान,
चन्द्रसूर्यादिका मण्डल परिमाण पौर वृत्तादिकथन,
भूलोकादिका परिमाण, ७ भूतपिशाचगन्धर्वादि लोक-
वर्णन, अश्वराजलोकवर्णनमें उषसी पुङ्गवका आख्यान,
८ सूर्यलोकवर्णन, परमेष्ठिनका शम्भुपुत्ररूपमें प्रादु-
र्भावाख्यान, ब्रह्मवर्णन, संयमनीपुरी, वरुणोपाख्यान,
१० गन्धर्वनीपुरी पौर वायुका आख्यान, कुबेर पौर
रावणोत्पत्तिवर्णन, ११ नक्षत्र, तारा पौर यक्षलोकादि-
वर्णन, १२ भुवलोकवर्णनमें भुवचरितोत्पत्ति, १३ भुव-
चरित, १४ स्वर्गलोक पौर महर्लोकवर्णन, १५ वैकुण्ठ-
लोकवर्णन, सगराख्यान कपिलशापसे सगरपुत्रनाश-
सत्ता, चंयमानकी उपपत्ति, असमञ्जका अभिषेक, १६
भंगीरयका जन्म पौर गङ्गागमन, १७ धनुस्मारचरित, १८
गिरि पौर उमीनशाख्यान, १९ मरुत्तचरित, २० मरुत्त
मरुत्तसंवाद, मरुत्तराजका यक्षराज, २१-२२ मरुत्तके
यक्षमें देवतापोंका आगमन पौर मरुत्तकी स्वर्गलोक-
प्राप्ति, २३ दिवोदासचरित, २४ हरिचन्द्रचरित, २५
माभ्याताका उपख्यान, २६ नारदमाभ्याससंवादमें

यूद्धापादिकी वर्षोत्पत्ति पौर वर्षधर्मकथन, २७
प्राथमधर्मनिरूपण पौर योगकथन, २८ चातुर्वर्त्यकी
धर्मप्रशंसा, २९ चातुर्वर्त्यका पाण्डिकृत्यवर्णन,
शासधामशिसामाशाख्य, ३० परलोकमाधन, सदाचार,
३१ ब्रह्मर्षीका भस्माभार सदाचारनिर्णय, ३२ ब्रह्म-
केतुका उपख्यान, ३३ दक्षयज्ञ, सतीका देख्याग,
दक्षमाधवर्णन, ३४ परलोकवर्णन, ३५ ब्रह्मप्राप्तनिर्णय,
३६ राजाका कर्त्तव्य, ३७ राजधर्मनिरूपण, ३८ राज-
साधारण धर्मकथन, ३९ प्रत्ययनक्षत्र, सोमविप्रोक्तविवाह,
माभ्याताका स्वर्गगमन, स्वर्गखण्डका पञ्चमस्क-वर्णन।

४० पातालसंग्रहमें—१ मृत्योन्मत्तसंवाद, शिवके
प्रति वाक्यात्मिका रामचरितप्रश्न, रावणवधके बाद राम-
का पयोध्याभिमुख गमन, सीताके साथ रामके भरता-
वास नन्दिग्रामदर्शन, २ श्रीरामभरतसमागम पौर
भरतके साथ रामका पयोध्या-पागमन, ३ रामका माण्ड-
दर्यन पौर दोराङ्गपानंवाद, ४ रामका राज्याभिषेक, ५
रामकर्त्तव्य सीतानिर्वासन पौर रामके निकट भगव्यका
पागमन, ६ भगव्यकर्त्तव्य कारण कुम्भकर्त्तव्य विमोचपादि-
का जन्मकथन, रावणकी माताके समोप प्रतिज्ञा, ७
रावणोदिका उपपत्ति, ब्रह्माका वरदान, रावणालाल,
देवतापोंका ब्रह्मलोकगमन, देवतापोंके साथ ब्रह्मा पौर
शिवका वैकुण्ठगमन विष्णुपुत्ति, विष्णुका रामरूपमें
प्रवतार, ८ रावणवधजनित ब्रह्महत्याके निष्कृति पानि-
के लिये रामका अश्वमेधयज्ञ, ९ अश्वमेधयाग, अश्व-
मेधयज्ञ, रामके प्रति ऋषियोंका वर्षाधर्मधर्मकथन, १०
रामकी यज्ञदोषा, स्वर्गलोकासह रामका कुण्डमण्डवादि-
कारण, अश्वरक्षाके लिये शत्रुप्रका गमन, ११ पुत्रला-
गमन पौर अश्वनिर्गम, १२ अश्विस्तुतमें अश्वगमन,
कामाचारचरित, लक्षके प्रवृत्तिमें सुमदराजचरित, १३
सुमटके कामाचारदर्शन, सुमदगदप्र समागम, शत्रु-
का अश्विस्तुतापुरीप्रवेश, १४ अश्वके साथ शत्रुप्रका
अश्वनाशमें गमन, अश्वनलुक्तव्याचरित, १५ अश्वनाके
साथ अश्वनका तपोभोगवर्णन, १६ ययातिपुत्रव्या-
चरित, अश्वनका रामयज्ञ देखनेके लिये गमन, १७
अश्वका वाजीपुरमें गमन, वाजीपुराविष विमल-
राजका शत्रुप्रकी सर्वस्व प्रदान, न. ल. गिरिमाशाख्य

पापदण्ड निरूपण, राधाभावात्मिका, गोपिकागण सञ्चय, बरमहाकृष्णसूक्तवर्णन, ७१ हृन्दावनमथुरादिदेवमहिमा गोपगणको उत्पत्ति, ७२ प्रधान कृष्णवक्त्रमोका वर्णन, ७३ मथुराहृन्दावनमहिमा, ७४ अर्जुनका राधानोक्त दग्धन, ज्योत्स्नासि, ७५ नारदके राधेको दग्धन, ज्योत्स्नासि, ७६ मन्वेयमें कृष्णचरित्रको चन, ७७ कृष्ण तोय, चोर कृष्णरूपवर्णन, ७८ शालग्रामनिर्णय, ७९ शालग्राममहिमा, वैष्णवोंको तिलकनिधि चोर वैष्णवोंका विविध नियम-निरूपण, ८० कलिस्तारक हरिनाममहिमा चोर हरिपूजाविधि, ८१ कृष्णमन्दोला, विधान चोर मन्त्रगन्धार्थनिरूपण, ८२ मन्त्रदोषाविधि, ८३ कृष्णका हृन्दावनमें देवन्दिनचर्यानिरूपण, तत्प्रसङ्गमें राधाविवासादिवर्णन, हृन्दावनमाहात्म्यसमाप्ति, ८४ वैशाख-माहात्म्य चारम्भ, वैष्णवधर्म-कथन, ८५ चत्वीशवारदशवाक्यमें भक्तिलक्षण चोर माधव-माधवमहिमा, ८६-८७ माधवमाधवप्रतिविधि, वैशाखस्नान-माहात्म्य, ८८ पापप्रममनाथस्तोत्र, तत्प्रसङ्गमें सुनिर्गमं चरित, ८९ वैशाख मासमें विविध व्रतनियमकथन, ९० विष्णुपूजाविधि, ९१ माधवमासमें माधवपूजा-कलित पुष्पमहिमा, तत्प्रसङ्गमें ब्राह्मणयमसंवाद, ९२-९३ नारकियोंका पप चोर स्वर्गियोंका पुष्प-निरूपण, वैष्णवोंका विविध नियमनिर्णय, ९४ माधव-माधव-स्नानप्रसङ्गमें धनधर्मोपनिषत्ति, ९५-९६ सहोदरराजचरित, वैशाखस्नान पुष्पादिवर्णन, ९७ विविध पापपुण्यकथन, ९८ सहोदरदत्त पुष्पफलसे नारकियोंको मुक्ति, ९९ विष्णुध्याननिरूपण, वैशाखमाहात्म्य समाप्ति, १०० रामचरितनिरूपणमें शिवका राम-सन्दिग्धान्तर, रामका विभोपवयनधातोय-ण, चट्टाद्वयपुराणनिवेदन, पुराणवर्णनविधि, विमोचन-मोचन, विमोचनप्रतिपाद्य पापज दुःपकथन, १०१ योगमका पुष्पकारीहणसे योगजननमें - गमन, रामका वैकुण्ठगमन, रामनमोस्तुतिवाद, आह्वान-निर्णय, गिरिनिर्वाणन, पूजनविधि, भस्ममहिमा, भस्ममाहात्म्यप्रसङ्गमें धनस्य नामक विप्रचरित, भस्म-स्नान, १०२ भस्ममहिमासे कुहरकी मुक्ति, सह-गामिनी श्रीमाहात्म्यवर्णनप्रसङ्गमें धन्यायाचरित, १०३

व्याघ्रप-मन्त्रास्त्यान, १०४ भस्मोत्पत्ति, भस्मादानाधारण पुष्पकथन, १०५ शिवलिङ्गाचरितप्रसङ्ग, १०६ पद्मिमुख नामक शिवगण कथनप्रसङ्गमें कारादिका नाम्नी वेष्म-चरित, १०७ हरनाममाहात्म्यप्रसङ्गमें विधूराजचरित, १०८ शिवनामप्रसङ्गमें देवरातसुता-कलाकाचरित, १०९ पुराणवर्णनमहिमा चोर चोरानिष्टपूजाविधि, ११०-१११ शिवपूजावर्णन, पुराणवर्णनपठनक्रममें भारतयवर्णविधि, महापुराण चोर उपपुराणका संख्याकथन, ११२ राम-जाम्बवत् संवादमें पुराकक्षीय रामायणकथन, ११३ देवपूजादि धर्मपुष्पप्रसङ्गमें मङ्गलपुत्र, पाकपका चरित, रामजन कोमल्य की आहविधि, कृष्णराजचरित, उप-हृत द्रष्टृपूजाकथनमें चैतानियद्याप्य चोर मन्दचरित, पातानलपण्डयवर्णन, पुराणवक्त्राका सत्कारकथन ।

धूम उत्पत्ति-धूम-नारदमाहेन्द्रवर्णन, उत्तर-वर्णनका विषयागुलाम, २ भद्रिकाश्रमवर्णन, ३ जालन्धर उपाख्यान, जालन्धरको वक्त्राके निकट यरमाप्ति, ४ जालन्धरका विवाहादि वर्णन, ५ इन्द्रके निकट जालन्धर-का दूतमेरण, ६ जालन्धरपक्षीय देवोंके साथ देवतादी-का युद्ध, ७ जलसे हीरकादि नानाधातुकी उत्पत्ति, ८ जालन्धरके निकट इन्द्रका पराभव, विष्णुकी मूर्च्छा चोर विष्णुका जालन्धरगृहवामरवर्णन, जालन्धरका राज्य-वर्णन, १० शङ्कराजत समस्तदेव तेशोमयचक्रविधाननिर्माण ११ धीर्ति-मुक्तोत्पत्तिवर्णन, १२ जालन्धरमन्यपराभव, १३ शङ्करयुद्धमें देवोंका पराभव, १४ मायागङ्गा चोर पावतोसंवाद, १५ जालन्धरपक्षी हन्ताका स्ववर्णन, हन्ताका राक्षसके हाथसे घनन, १६ तापमवेगधारी विष्णुकर्तृक हन्ताका मोचन, माया-जालन्धरगृहमें विष्णुका हन्तासह सङ्गम, हन्ताका देशत्याग चोर हन्ता-वन नामकथन, १७ भार्याका पातित्यमङ्गल सुननेके बाद जालन्धरका युद्धमें गमन, १८ जालन्धरके माय शङ्करका युद्ध, शुक कर्तृक मृतदेवकी पुनर्जीवनप्राप्ति १९ जाल-न्धरकी शिवसायुज्यप्राप्ति चोर सुनभोमाहात्म्य वर्णन, २० श्रीमीमाहात्म्य, २१-२२ हरिहरमाहात्म्य, २३ महाभाषात्म्य चोर गयामाहात्म्य, २४ सुनभोमाहात्म्य, २५ प्रयागमाहात्म्य, २६ सुनभोविश्रावत, २७ पञ्चदान-माहात्म्य, २८ इतिहासपुराणादिको पठनविधि, २९ इति-

पापदमन निरूपण, राधासाक्षात्, गोपिकागण मन्त्र, बरदाक्ष कृष्णस्वरूपवर्णन, ७१ हृन्दावनमधुरादिचैवमहिमा गोपगणको उत्पत्ति, ७२ प्रधान कृष्णवर्णको वर्णन, ७३ मधुराहृन्दावनमहिमा, ७४ अर्जुनका राधासौक दयन, श्रोत्रवर्ण, ७५ नारदके राधाको हृदयन, स्त्रीत्ववर्ण, ७६ मन्त्रेयने कृष्णचरित्रको जन्म, ७७ कृष्ण-तोयं चोर कृष्णरूपगुणवर्णन, ७८ ज्ञानग्रामनिर्णय, ७९ साक्षग्राममहिमा, वैष्णवोको तिलकनिधि चोर वैष्ण-वोका विविध नियम-निरूपण, ८० कनिसन्तारक हरि-नाममहिमा चोर हरिपूजाविधि, ८१ कृष्णमन्त्रदोषा, विधान चोर मन्त्रगव्यादिनिरूपण, ८२ मन्त्रदोषाविधि, ८३ कृष्णका हृन्दावनमें देवन्दिरघयोनिरूपण, तत्-प्रसङ्गमें राधाविलासादिवर्णन, हृन्दावनमाहात्म्य-समाप्ति, ८४ वैशाख-माहात्म्य चारण, वैष्णवधर्म-कथन, ८५ चण्डीनारदसंवादमें भक्तिप्रवण चोर माधव-मासमहिमा, ८६-८८ माधवमासव्रतविधि, वैशाख-रत्ना-माहात्म्य, ८८ पापप्रयमनाथं श्रोत्र, तत्प्रसङ्गमें मुनि-गणं चरित, ८९ वैशाख मासमें विविध व्रतनियमकथन, ९० विष्णुपूजाविधि, ९१ माधवमासमें माधवपूजा-कर्मित पुण्यमहिमा, तत्प्रसङ्गमें ब्राह्मणयमसंवाद, ९२-९३ नारकियोंका पपं चोर स्वर्गियोंका पुण्य-निरूपण, वैष्णवोका विविध नियमनिर्णय, ९४ माधव-मास-रत्नामप्रसङ्गमें धनधर्मविप्रचरित, ९५-९६ मङ्गी-रथराजचरित, वैशाख-रत्नाम पुण्यादिवर्णन, ९७ विविध पापपुण्यकथन, ९८ मङ्गीधरदत्त पुण्यफलसे नारकियोंको मुक्ति, ९९ विष्णुध्याननिरूपण, वैशाखमाहात्म्य समाप्ति, १०० रामचरितनिरूपणमें शिवका राम-मन्दिरागमन, रागका विभोषणमन्त्रधार्ताचरण, पटा-दगपुराणनिवेदन, पुराणयवनविधि, विभाषण-मोचन, विभावनाजमित पापज दुःपकथन, १०१ श्रीरामका पुण्यकारीहणसे श्रीरङ्गनगरमें गमन, रामका वैकुण्ठगमन, राममन्मोषवाद, यादवज्ञ-निर्णय, शिवसिद्धस्यावन, पूजनविधि, भक्तमहिमा, भक्तमाहात्म्यप्रसङ्गमें धनद्वय नामक विप्रचरित, भक्त-रत्नाम, १०२ भक्तमहिमामें कुहरको मुक्ति, मङ्गी-गासिनी श्रीमाहात्म्यवर्णनप्रसङ्गमें चण्डिकाचरित, १०३

यथायप-मन्मास्यावन, १०४ भस्मीयति, भस्मादाभधारण पुण्यकथन, १०५ शिवसिद्धाचरितप्रसङ्ग, १०६ चर्ममुत्र नामक शिवगण कथनप्रसङ्गमें कारादिका नाम्नी वैष्ण-चरित, १०७ हरनाममाहात्म्यप्रसङ्गमें विष्णुतराजचरित, १०८ शिवनामप्रसङ्गमें देवरातमुताकसाकाचरित, १०९ पुराणयवनमहिमा चोर चौराणि हृज्जाविधि, ११०-१११ शिवपूजावर्णन, पुराणयवनपठनक्रममें भारतयवनविधि, मधुराण चोर उपपुराणका संस्थाकथन, ११२ राम-जाम्बवत् संवादमें पुराकखीय रामायणकथन, ११३ देवपूजादि धर्मपुण्यप्रसङ्गमें मदनपुत्र, वासुदेवका चरित, रामजन कोमल्यो यादविधि, कृत्तराजमचरित, उप-दत्त द्रव्यपूजाकथनमें चैकितानियाप्राण चोर मन्त्रचरित, पातानलपण्डयवनफल, पुराणयवनाका सत्कारकथन ।

धूम उत्पत्त्युद्धर्त-नारदमाहृत्तरववाद, उत्तर-खण्डोक्त विदयानुक्रम, २ भदरिकायमचर्णन, ३ ज्ञानभर-उवाचयान, ज्ञानभरको मन्त्राके निकट धरमाप्ति, ४ ज्ञानभरका विवाहादि वर्णन, ५ इन्द्रके निकट ज्ञानभर-का दूतवेरण, ६ ज्ञानभरपत्नीय देवियोंके साथ देवताओं-का युद्ध, ७ बलसे हीरकादि नानाधातुकी उत्पत्ति, ८ ज्ञानभरके निकट इन्द्रका पराभव, विष्णुकी मूर्च्छा चोर विष्णुका ज्ञानभरगृहवामरवर्णन, ज्ञानभरका राज्य-वर्णन, १० शङ्करजन समस्तदेव तेश्रोमयचक्रविधाननिर्माण ११ कीर्तिमुक्तोत्पत्तिवर्णन, १२ ज्ञानभरमन्त्रयामभ, १३ शङ्करयुद्धमें देवियोंका पराभव, १४ मायागह्वर चोर पार्वतीसंवाद, १५ ज्ञानभरपत्नी हृन्दाका स्वप्नवर्णन, हृन्दाका राक्षसके हाथमें पतन, १६ तापवर्षाधारी विष्णुकर्तृक हृन्दाका मोचन, माया-ज्ञानभरद्वयमें विष्णुका हृन्दावह मन्त्र, हृन्दाका देशत्वान चोर हृन्दा-वन नामकथन, १७ भार्यका पातितत्वमन्त्र सुमनेके बाद ज्ञानभरका युद्धमें गमन, १८ ज्ञानभरके माय शङ्करका युद्ध, शुक कर्तृक श्रुतदेवियोंकी पुनर्जीवनप्राप्ति १९ ज्ञान-भरकी शिवमायुज्याप्राप्ति चोर सुनमीमाहात्म्य वर्णन, २० श्रीगैलमाहात्म्य, २१-२२ हरिद्वारमाहात्म्य, २३ गङ्गासाहात्म्य चोर गयामाहात्म्य, २४ सुनमीमाहात्म्य, २५ गयामाहात्म्य, २६ सुनमीशिवरात्रव्रत, २७ पञ्चदान-माहात्म्य, २८ इतिहासपुराणादिको पठनविधि, २९ इति-

सत्त्व राहुका यवरेदेमोत्पत्तिवर्णन, १०२ समस्त
देवताधीके तेज द्वारा शङ्करकण्ठक सुदर्शननिर्माण
घोर देवतोके साथ शिवसेव्यका युद्ध, १०३ नन्दो पादि-
का कावनेनि पादि पशुरीके साथ हृदयुद्ध, १०४ शिव-
कृत देतपराभव, शिव घोर जलश्वरका युद्ध, गान्धर्व-
मायावे शिवको सुम्भ करके शिवरूपमें जलश्वरका
पार्वतोके समीप गमन, पार्वतोका घनहान्न घोर
हंसरथ मात्रवे विष्णुका पार्वतोके समीप चामन, यक्ष
हस्तात्त सुन कर हृन्दाका सतीत्व नष्ट करनेके लिये
विष्णुका संकल्प, १०५ विष्णुकण्ठक जलश्वररूपमें
हृन्दाका सतीत्वगम, रतिके बाद विष्णुरूप देख कर
हृन्दाका क्षुब्ध होना घोर विष्णुके प्रति राक्षसकृत
भार्याहरणरूप अभिशाप तथा हृन्दाका अग्निप्रवेश,
चितामन्त्र लगा कर विष्णुका चिता पर वास, १०६
शङ्करकण्ठक जलश्वरवध, शङ्करके आदेशसे विष्णुका
मोह दूर करनेके लिये देवकृत) पादिमायाश्रोत,
१०७ श्रीरुद्रधारि धात्री प्रभृतिको देख कर विष्णुका
भ्रम, मातलीका यवरीषाखाप्राप्ति निर्देश, धात्री
घोर तुलसीमाहात्म्य, जलश्वराख्यान समाप्ति, १०८
कार्तिककर्मसंबोधक कलहोपाख्यानारम्भ, १०९ धर्म-
दक्षकण्ठक हादमाचल मन्त्र पढ़नेके बाद तुलसीयुक्त
लताभिषेचनसे राक्षसीको दिव्य देवप्राप्ति, ११० विष्णु-
दास ब्राह्मण घोर चोल नृपतिका बाध्यान, १११
विष्णुदास घोर चीन नृपतिका वंशुष्णगमन, मुहूर्त
गोतीरगणपती गिषागुप्तत्वका कारणकथन, ११२
कार्तिककर्मसंबोधक जय घोर विजयका पूर्वजन्म
वृत्तान्त, कलहाकी वंशुष्णप्राप्ति, ११३ कृष्णवेष्टादि
नदीकी उत्पत्ति कहनेमें बृह्मकण्ठक यक्षाख्यान-
वर्णन, यजुज्यपुत्रने दुर्मित्र, मरण घोर भय, इसकी
पश्यतमकी प्राप्ति तथा कृष्णवेष्टादिमाहात्म्य, ११४
श्रीकृष्णसत्यमासाववाद, ११५ महापातकी धनेश्वर-
का विप्राख्यान, ११६ धनेश्वरका नरकदर्शन घोर
कार्तिकप्रतपकसे यक्षजोकेमें गमन, ११७ कार्तिकव्रत-
की विधि, पाञ्चरा घोर वटव्रतविधि, ११८ गनिवार भिन्न
पञ्च वारमें पाञ्चरात्रक स्वर्ग गन्ती कनिका कारण-
निर्देश, ११९ कार्तिकस्नानविधि घोर वायव्यादि चतु-

विधस्नानकथन, १२० कार्तिकमें तिलसेवु पादि दानमें
महाफल, कार्तिक व्रतियोंका परावर्तनागादि नियम
तथा कार्तिकमें पूजादिविधकथन, १२१ माघस्नान
घोर शूकरसेव माहात्म्य तथा मासाविधि सप्तवारमें
व्रतका विधान, १२२ माघमासमिश्रावर्णनविधि घोर
माघपदाममें वासुदेवादि मूर्तिका लक्षण, १२३ धात्री-
च्छायामें पिण्डदानप्रवेश, कार्तिकमें कतपवादि
द्वारा पूजाविधि, दीपदानविधि घोर तदप्राप्तिका,
१२४ ज्योदश्यादि द्वितीया पर्यन्त दीपावलीदान-
विधि, राजकृत्य घोर यमदितियाकथन, १२५
प्रबोधिनीमाहात्म्य घोर तद्व्रतविधि, भोगप्रसक्त
व्रतविधि घोर कार्तिकमाहात्म्यकथन, १२६ विष्णु-
भक्तिका माहात्म्य घोर लक्षण एवं तत्पौनकी निम्न,
१२७ बालघाम यिन्तपूजाका फल, १२८ वनवासमुदेव-
का माहात्म्य घोर विष्णुस्मापका प्रकार, १२९ जम्बू-
दीपस्य समो तीर्थ घोर माहात्म्यकथन, १३० वंशवती-
माहात्म्य, १३१ नाभ्रमतो घोर तत्तोरस्य नीलकण्ठादि
तद्वर्णन माहात्म्य, १३२ मन्दि घोर कपासनीचन-
तीर्थका माहात्म्य, १३३ विकीर्णतीर्थ, ततोर्षादिका
माहात्म्य, १३४ पन्थितीर्थमाहात्म्य घोर तत्प्रसङ्गमें
कुकर्दम नृपाख्यान, १३५ डिण्णाश्रमतीर्थ घोर
धर्मावतीधामतीर्थकथन, तत्प्रसङ्गमें माण्डव्याख्यान,
१३६ कम्बुप्रवृत्ति तीर्थमाहात्म्य, महितीर्थमाहात्म्यमें
महिनामक कपिका बाध्यान, १३७ ब्रह्मवर्मा घोर
खण्डीतीर्थमाहात्म्य, १३८ सहमेश्वरतीर्थमाहात्म्य,
१३९ रुद्रमहालयतीर्थ, १४० खण्डीतीर्थमाहात्म्य,
१४१ सिन्धुवदनतीर्थमाहात्म्य, १४२ चन्दनेश्वर-
माहात्म्य, १४३ जम्बूतीर्थमाहात्म्य, १४४ हृन्दापदामतीर्थ
घोर धवलेश्वरतीर्थमाहात्म्य, तत्प्रसङ्गमें किरातप्राप्तिका,
१४५ कलमुनि-जम्बा घोर उद्यमहिमाख्यान, १४६
दुर्धर्षेश्वरमाहात्म्य, तत्प्रसङ्गमें वाद्यपत यक्ष द्वारा हृन्दा-
कण्ठक हनयवाख्यान, १४७ खण्डीतीर्थमाहात्म्य,
तत्प्रसङ्गमें चण्डकिराताख्यान, १४८ दुर्धर्षेश्वरतीर्थ-
माहात्म्य, १४९ चन्द्रमागमाहात्म्य, १५० पिण्डदा-
तीर्थमाहात्म्य, १५१ विष्णुमर्दानीतीर्थमाहात्म्य, १५२
विध्वंसमाहात्म्यमें कोटरासीसीम, १५३ नीयराजतीर्थ-

हासं चौर पुराणपठनम् महाफलप्राप्तिः, ३० गोपीचन्दन
माहात्म्य, ३१ दीपप्रतिविधान, ३२ जयाष्टमीव्रत, ३३
दागप्रगंसा, ३४ दशरथकृत गतिस्तोत्र, ३५ त्रिष्वंश-
कादशीव्रत, ३६ याज्ञिकादशी चौर त्वार्ष्यकादशी,
३७ समीपस्थकादशीव्रत, ३८ पञ्चवर्षिक्यादशीव्रत, ३९
एकादशीमाहात्म्य, ४० जयाविजया चौर जयन्त्यकादशी,
४१ अथशायनमासकी शुक्लपंचमी मोक्षा नाम्नी एका-
दशीका माहात्म्य, ४२ वीपकृष्ण सफला नाम्नी एकादशी
माहात्म्य, ४३ वीपशुक्ला पुत्रदा एकादशीमाहात्म्य, ४४
माघकृष्णा पटुतिना एकादशीमाहात्म्य, ४५ माघशुक्ला
जया एकादशीमाहात्म्य, ४६ फाल्गुन कृष्णविजया एका-
दशीमाहात्म्य, ४७ फाल्गुन शुक्ला चामलकी एकादशी-
माहात्म्य, ४८ चैत्रकृष्ण पापमोचनी एकादशीमाहात्म्य,
४९ चैत्रशुक्ला कामदा एकादशीमाहात्म्य, ५० वैशाख
कृष्ण वसुधैनी एकादशी माहात्म्य, ५१ वैशाखाशुक्ला
मोहिनी एकादशी माहात्म्य, ५२ ज्यैष्ठ्यकृष्णापरा एका-
दशीमाहात्म्य, ५३ ज्यैष्ठ्यशुक्ला निजला एकादशी
माहात्म्य, ५४ पादाशुक्ला योगिनी एकादशीमाहात्म्य,
५५ पादाशुक्ला शयनी एकादशीमाहात्म्य, ५६ यावन्-
शयना पुत्रदा एकादशीमाहात्म्य, ५७-५८ भाद्रपदकृष्णां
पञ्चा एकादशीमाहात्म्य, ५९ भाद्रपदशुक्ला पद्मनाभ
एकादशीमाहात्म्य, ६० भाद्रपदकृष्णा इन्द्रिा एकादशी-
माहात्म्य, ६१ भाद्रपदशुक्ला पापान्नाम एकादशीमाहात्म्य,
६२ कार्ति ककृष्णा रमा एकादशीमाहात्म्य, ६३
कार्ति कशुक्लाप्रवीधनी एकादशीमाहात्म्य, ६४ पुन-
रोत्तम मासकी कृष्णा कमला एकादशीका माहात्म्य
चौर एकादशीमाहात्म्यसमाप्ति, ६५-६६ चातुर्मास्यव्रत-
विधि, ६७ चातुर्मास्य व्रतोदयाव्रतविधि, ६८ सुदश-
सुनिका चाष्ट्याव्रत, व्रतस्थो व्रतविधि चौर गोपीचन्दन-
माहात्म्य, ६९ वैष्णवसप्तम्य चौर प्रगंसा, ७० अथ-
द्वादशीव्रतविधि चौर तत्प्रगंसावोधक चाष्ट्यायिका,
७१ जटोतिरात्र व्रतविधान, ७२ भगवानका नाम-
माहात्म्यकथन, पावंगो चौर महेन्द्रसंवादनं विष्णुका-
सहस्रनामस्तोत्रकथन तथा रामसहस्र नामकी साय
तुंवयता, ७३ विष्णुसहस्रनामकी प्रगंसा, ७४
पावंगोमहेन्द्रसंवादनं रामरक्षास्तोत्रकथन, ७५ धर्म-

प्रगंसा चौर अथमहेतु प्रयोगतिवर्णन, ७६ गजिकागदी
माहात्म्य चौर वसुमानप्रगंसा, ७७ भाष्यद्वयिका-
स्तोत्र, पाठविधि चौर फलकथन, ७८ अथपिण्डस्तोत्रफल
चौर चाष्ट्यायिका, ७९ अथामार्जस्तोत्र, ८० अथा-
मार्जन स्तोत्रपठनफल, चौर धारणपञ्चासी तथा बालकी-
की जयनगराके लिये स्तोत्रपाठका विधान, ८१ विष्णु-
माहात्म्य, विष्णुकी महामन्त्रप्रगंसा, विष्णुमाहात्म्य
ज्ञापक पुण्डरीकाक्षरा, नारदकथं क पुण्डरीकके प्रति
शास्त्राद्वयसंपदे, ८२ संक्षेपम् गङ्गामाहात्म्य, ८३
वैष्णवसप्तम्य, विष्णुमूर्ति चौर शास्त्रपामपूजाफल-
कथन, ८४ दासवैष्णव चौर भक्तका सत्पण, शूद्रादिका
दासत्व, नारदादिका वैष्णवत्व चौर प्रह्लाद आदिका
भक्तिवर्णन, ८५ चैत्रशुक्ला एकादशीकी दोहोस्तव-
विधि, ८६ चैत्रशुक्ला द्वादशीकी दमनकोस्तवविधि, ८७
देवशयनी उक्तम्, ८८ यावन्मं पवित्रारोपणविधि, प्रसङ्ग-
ज्ञानमं पवित्र करनेका प्रकारवर्णन । ८९ चैत्रादि मास
में चम्पकादि पुष्प द्वारा विष्णुपूजाविधि चौर फल, ९०
कार्तिकका माहात्म्यारम्भ, नारदाजीत कल्पवृक्षपुष्प
नहीं देनेसे क्रुद्ध सत्यभामाकी कृष्णकण्ठक स्नानस्य
कल्पवृक्षप्रदान, सत्यभामाका तुलापुष्पप्रदान चौर
कार्तिकप्रगंसावोधक सत्यभामाका पूर्वजयंकथन,
९१ सत्यभामाका पूर्वहस्तात्मकथन, ९२ शङ्ख-
सुराक्षप्रसङ्गमें शङ्खासुरकण्ठक वेदहरण चौर देव-
तापके प्रति विष्णुकृत कार्तिकप्रगंसावर्णन, ९३
मंथारूपधारी विष्णुकण्ठक शङ्खासुरवध, प्रयागोत्पत्ति-
वर्णन, कार्तिकव्रतविधिका श्रीचमत्प्रचारकथन,
९४ कार्तिकजन्मविधिबोधन, ९५ कार्तिकव्रतविधि-
का नियमकथन चौर प्रगंसावर्णन, ९६ कार्तिक-
व्रतका उद्यापन, ९७ तुलसीमाहात्म्य, जलम्बरा-
खण्डिका, शङ्करकी नीलकण्ठत्वप्राप्ति, जलम्बरो-
त्पत्तिवर्णन, ९८ जलम्बरकण्ठक देवतापक्षीका पराजय,
१०० देवकृत विष्णुस्तोत्र, विष्णुजलम्बरपुष्ट, स्तोत्र-
जलम्बरपुष्टमें विष्णुका वामाङ्गीकार, १०१ नारदके
मुखसे पावंगोका रूपातिशय सुन कर जलम्बरकण्ठक
शङ्करके समीप राखकी दूतस्वर्यो प्रेरण, कीर्तिमुखो-
त्पत्ति, उसकी पूजा नहीं करनेसे शिवपूजाका निश्च-

सत्त्व राहुका वर्षरदेमोत्पत्तिवर्षण, १०२ समस्त
देवताप्रीति तेज द्वारा शङ्करकूर्क क सुदृग्निर्माण
घोर देवतेति साय शिवसेव्यका युध, १०३ नन्दो भट्टि-
का कालनेमि पादि धनुर्तेति साय इन्द्रयुध, १०४ शिव-
कृत देवप्रभामय, शिव घोर जलश्वरका युध, गान्धर्व-
मायासे शिवकी मुग्ध करके शिवरूपमें जलश्वरका
पार्श्वतोके समीप गमन, पार्श्वतोका पल्लवोन्मूल घोर
हंमरण मात्रसे विष्णुका पार्श्वतोके समीप प्रागमन, यक्ष
पुंसात्स धून कर हृन्दाका मनीष्य गट करनेके लिये
विष्णुका संकट, १०५ विष्णुकूर्क क जलश्वररूपमें
हृन्दाका सतीत्वगम, रतिकी वाद विष्णुरूप देख कर
हृन्दाका क्षुब्ध होना घोर विष्णुकी प्रति राक्षसकृत
भोगांशुरूप पभिशाय तथा हृन्दाका अग्निप्रवेश,
वितामसम लगा कर विष्णुका चिता पर धास, १०६
शङ्करकूर्क क जलश्वरवध, शङ्करके वादेयसे विष्णुका
मोक्ष दूर करनेकी लिये देखकृत, पादिमायाश्लोक,
१०७ स्त्रीरूपधारि धात्री प्रभृतिकी देख कर विष्णुका
भ्रम, मासतोका वर्षरैमाहात्म्याप्रति निर्देश, धात्री
घोर तुलसीमाहात्म्य, जलश्वराख्यान समाप्ति, १०८
कात्तिकप्रमंसावोषक कलहोपाख्यानारम्भ, १०९ धर्म-
दत्तकूर्क क हादमाचर मन्त्र पढ़नेके बाद तुल्योत्तुल
जलामयेधनसे राक्षसीकी दिव्य देहप्राप्ति, ११० विष्णु-
दास ब्राह्मण घोर चोल नृपतिका पाख्यान, १११
विष्णुदास घोर चोल नृपतिका वैकुण्ठगमन, सुदन्त
गोत्रोद्योगणो गिवाश्रयत्वका कारणकथन, ११२
कात्तिकप्रमंसावोषक कय घोर विजयका पूर्वजन्म
वृत्तान्त, कलशकी वैकुण्ठप्राप्ति, ११३ कृष्णवैष्णवादि
नदीकी उत्पत्ति कथनेमें बृहन्माकूर्क क यथाख्यान-
वर्णन, धनुष्ययुजनेसे दुर्मिच, मरव घोर भय, इसकी
पश्यतमकी प्राप्ति तथा कृष्णवैष्णवादिमाहात्म्य, ११४
श्रीकृष्णसत्यभामासंवाद, ११५ महापातकी धनेश्वर-
का विप्राख्यान, ११६ धनेश्वरका नरकदुर्गम घोर
कात्तिकप्रमंसावोषक यक्षकीकमें गमन, ११७ कात्तिकप्रम-
की विधि, पश्यत घोर यक्षप्रतिविधि, ११८ शनिवार भिष
पश्य वारमें पश्यतयुध स्वयं नहीं करनेका कारण-
निर्देश, ११९ कात्तिककल्याणविधि घोर वायवादि चतु-

विघ्नहानकथन, १२० कात्तिकमें तिलसेतु पादि दानमें
महाफल, कात्तिक प्रतियोगी पराजयगादि नियम
तथा कात्तिकमें पूजादिविधिकथन, १२१ माघकल्याण
घोर शूकरसेव माहात्म्य तथा मासाविधि संप्रवासमें
प्रतका विधान, १२२ शालग्रामशिलावर्णविधि घोर
शालग्राममें वासुदेवादि मूर्तिका सत्पण, १२३ धात्री-
च्छायामें पिण्डदानप्रवृत्ति, कात्तिकमें कंत्यादि
द्वारा पूजाविधि, दीपदानविधि घोर तदाश्रयिका,
१२४ त्रयोदश्यादि द्वितीया पर्वण्य दोषावकीदान-
विधि, राजकर्मस्थ घोर यमदितियाकथन, १२५
प्रबोधिनीमाहात्म्य घोर तद्व्रतविधि, भोगपञ्चक
व्रतविधि घोर कात्तिकमाहात्म्यप्रवृत्त, १२६ विष्णु-
भक्तिका माहात्म्य घोर सत्पण एवं तत्तुल्यकी निष्ठा,
१२७ शालग्राम शिलापूजाका फल, १२८ पल्लवावुदेव-
का माहात्म्य घोर विष्णुहमरणका प्रकार, १२९ जम्बू-
दोषस्य समो तीर्थ घोर माहात्म्यकथन, १३० वेतवती-
माहात्म्य, १३१ साभ्रमतो घोर तत्तोरस्य नीलकण्ठादि
तत्पश्यका माहात्म्य, १३२ गन्धि घोर कपालमोचन-
तीर्थका माहात्म्य, १३३ विकीर्णतीर्थ, ततोपादिका
माहात्म्य, १३४ अमृततीर्थमाहात्म्य घोर तत्पश्यकमें
कुकर्दम नृपाख्यान, १३५ हिरण्यकेश्वरतीर्थ घोर
धर्मवतीधाम्रमतीर्थकथन, तत्पश्यकमें माण्डव्याख्यान,
१३६ कम्बुप्रभृति तीर्थमाहात्म्य, मङ्गितीर्थमाहात्म्यमें
मङ्गि पुनामक ऋषिका पाख्यान, १३७ ब्रह्मवती घोर
खण्डीतीर्थमाहात्म्य, १३८ ब्रह्मेश्वरतीर्थमाहात्म्य,
१३९ रुद्रमहालयतीर्थ, १४० खण्डीतीर्थमाहात्म्य,
१४१ विज्राङ्गवदनतीर्थमाहात्म्य, १४२ चन्द्रेश्वर-
माहात्म्य, १४३ जम्बूतीर्थमाहात्म्य, १४४ इन्द्रपामतीर्थ
घोर धनकेश्वरतीर्थमाहात्म्य, तत्पश्यकमें किरातखण्डिका,
१४५ कण्वमुनि-कन्या घोर हृदयभस्माख्यान, १४६
दुर्द्वयेश्वरमाहात्म्य, तत्पश्यकमें पायपत पक्ष द्वारा इन्द्र-
कश्यप हवयधाख्यान, १४७ खण्डवतीर्थमाहात्म्य,
तत्पश्यकमें खण्डकिराताख्यान, १४८ दुर्द्वयेश्वरतीर्थ-
माहात्म्य, १४९ चन्द्रभागामाहात्म्य, १५० पिण्डपाद-
तीर्थमाहात्म्य, १५१ पिण्डपदांकीतीर्थमाहात्म्य, १५२-
विहवैवमाहात्म्यमें कोटराचीश्लोक, १५३ गीर्णराजतीर्थ-

माहात्म्य, १५४ भोमतीर्थ, १५५ खडोतीर्थ, १५६ गोतीर्थ माहात्म्य, १५७ काश्यपतीर्थ माहात्म्य, १५८ भूता-
 स्वतीर्थ माहात्म्य, १५९ चटोदरमाहात्म्य, १६० वैद्य-
 नाथमाहात्म्य, १६१ देवतीर्थ माहात्म्य, १६२ चण्डेश्वरीतीर्थ
 माहात्म्य, १६३ गणपत्यतीर्थ, १६४ माध्वमतीतीर्थ
 माहात्म्य, १६५ वराहतीर्थ, १६६ सङ्गमतीर्थ, १६७
 पादित्यतीर्थ, १६८ नीलकण्ठतीर्थ, १६९ साम्भमती-
 सागरसङ्गममाहात्म्य, १७० नृसिंहतीर्थ माहात्म्य, १७१
 गोतामाहात्म्य, १७२ गोवाके द्वितीयाध्यायमाहात्म्यमे
 देवशर्माप्यान, १७३ तृतीयाध्यायमाहात्म्यमे जङ्गा-
 प्यान, १७४ चतुर्थाध्यायमाहात्म्यमे वदरोमोचन, १७५
 पञ्चमाध्यायमाहात्म्यमे कन्याश्रयान, १७६ षष्ठाध्याय-
 माहात्म्यमे जानश्रुति नृशङ्खान, १७७ सप्तमाध्याय-
 माहात्म्यमे तन्वास्थान, १७८ अष्टमाध्यायमाहात्म्यमे
 भावशर्मोप्यान, १७९ नवमाध्यायमाहात्म्य, १८०
 दशमाध्यायमाहात्म्य, १८१ विष्णुवनामक गीते कादगा-
 ध्यायमाहात्म्य और तदाश्रयिणी, १८२ द्वादशाध्याय
 माहात्म्य १८३ त्रयोदशाध्यायमाहात्म्य द्वात्रिंशत्तथा, १८४
 हरिदोषितपत्नीका व्यभिचारप्रसङ्ग, १८५ १८८ चतुर्दश-
 के अष्टादश अध्यायमाहात्म्य, १८८ भागवतमाहात्म्य
 और उसके प्रसङ्गमें भविष्यवृत्तकथन, १८९ नारदकृत क-
 भक्तिमाहात्म्यकथन, १८१ भक्तिका हरिदासचित्तमें सुनि-
 वर्णन, १८२ गोकर्णोप्यान, १८३ भागवतप्रसङ्गमें
 गोकर्ण सुनिर्वर्णन, १८४ भागवतप्रसङ्गमा, १८५ कान्तिन्दो
 माहात्म्य, १८६ विष्णुशर्माको युवजन्मस्मृति, भिन्नभिन्-
 का सुक्तिकथन, १८७ निगमोद्योतार्थप्रसङ्गमें शरभ
 नामक वैश्याख्यान, १८८ देवसकृत दिलोपाख्यान,
 १८९ रघुपतिपुत्र सगप्रसिद्ध दिलोपका गोप्रामादवर्णन,
 २०० शरभका इन्द्रप्रख्यगमन और वैकुण्ठप्राप्तिकथन,
 २०१ इन्द्रप्रख्यमाहात्म्य, शिवशर्मा विष्णुशर्माके वैकुण्ठ
 प्राप्तिकथन, २०२ हारकामाहात्म्य और उमर प्रसङ्गमें
 पुष्पे पुद्गलिका आख्यान, २०३ विमलाप्यान और मित्र-
 सत्तण, २०४ मरुदेशस्य राजभित्तिके प्रसङ्गमें उत्तम-
 लोकप्राप्तिवर्णन, २०५-२०६ इन्द्रप्रख्यगत कीशला-
 माहात्म्यमें सुकुन्दाख्यान, २०७ चण्डक नामक नायिका
 हास्यवधके कारण सर्पयात्रिमें जन्म और कीशलाप्रभाव-

में उसकी मुक्ति, २०८ कीशलाप्राप्त दाक्षिणात्य ब्राह्मण-
 कृत विष्णुस्तोत्र और दाक्षिणात्योका वैकुण्ठगमन,
 २०९ कान्तिन्दोतीरस्य मधुवनगत विद्यान्तिकीर्थ-
 माहात्म्य और तत्प्रसङ्गमें व्यभिचारिणी कुम्भनपत्नीका
 आख्यान और उसकी गोधावीनिप्राप्ति, २१० सप्त गोधा
 देख कर किवो मुनिपुत्रकामादुत्वज्ञान और गोधाकी
 उत्तमगति प्राप्ति, २११ स्वर्णिनी होनेके कारणकथनप्रसङ्गमें
 चन्द्रकृत शुक्रभार्याहरणप्रसङ्ग, २१२ इन्द्रप्रख्यगत वदरो-
 माहात्म्यमें देवदास नामक ब्राह्मणख्यान, २१३ हरि-
 हारमाहात्म्यमें कान्तिङ्ग-चण्डासाख्यान, २१४ पुष्कर-
 माहात्म्यमें पुण्डरीकाख्यान, २१५ भरतकृत पूर्वपुण्ड-
 और पुण्डरीकोकी सायुज्यप्राप्ति, २१६ प्रयागमाहात्म्यमें
 मोहिनीवैश्याका आख्यान, २१७ वोरवर्माको मणिप्रीका
 आख्यान, २१८ काशी, गोकर्ण, विषकाशी, हारका और
 भीमकुण्डादिकामाहात्म्य, चैत्रलक्ष्मचतुर्दशीमें इन्द्रप्रख्य-
 प्रदक्षिण फल, २१९ माधवमाहात्म्यमें देवतादि सुनि-
 काय सुतसंवाद, २२० माधवमाहात्म्यमें द्वितीयपञ्चम्या
 और माधवनाममाहात्म्य, २२१ माधवनामके विद्या-
 धरकी सुमुखत्वप्राप्ति, २२२ कुक्षमुनिपुत्र वत्साख्यान,
 २२३ उद्वाहयोज्य कन्यासत्तण और यथोप्या कन्याविवाह
 में महापातक, २२४ उच्य सुनिजन्मका सखीके साथ
 माधवखान, मृगशृङ्ग संवाद, मृगशृङ्गका मृगपुस्तन,
 गजमुक्ति, २२५ मृगशृङ्गकृत यमस्तोत्र और उच्य-
 कन्याकी पुनर्जीवनप्राप्ति, २२६ यमपुण्ड्रहस्तात्, २२७
 पापियोंका नरकभोग और कोटयोनि प्राप्तिकथन, २२८
 शालग्रामपूजाका एकादशवादि वृत्तकरण्यरूप साधन-
 कथन, २२९ कृतत्रेतादिकमये चतुर्गुणवर्णन, यमलोक-
 गत पुष्कर नामक विप्रका किरसे मृगयुकोत्तप्राप्त
 आख्यान, २३०-२३१ रामकटके वृद्ध ब्राह्मण सान्दी-
 पनिपुत्रका पुनरुज्जावन और क्षणसमागम, २३२
 उच्यकन्या सुहृत्ता और उसका तीन सखियोंके साथ
 मृगशृङ्गका विवाह, ब्राह्मणादि षष्ठविध विवाहसत्तण
 और तत्प्रसङ्गमें भीमरिकटके पचास राजकन्याओंका
 पाण्डिग्रहणख्यान, २३३ मृहस्यायमधम, २३४ पति-
 व्रताधर्म, २३५ मृगशृङ्गका चार पुत्रोंको उत्पत्ति, जेत-
 वराहकल्पमें कृष्णका भवमार, मृगशृङ्गपुत्र मृकण्डका

स्त्रिमास्येष्वसह काशीगमनं चौर काशीप्रगंसा, २३६
 मृकण्डुका पाख्यान, माकण्डुयोज्यति, माकण्डुयकटिक
 मृकण्डुयकटिक, माघघानादि पुष्पकथन, २३७ प्रधान
 प्रधान तीर्थमें माघघानविधि, माघमें विष्णुपूजाविधि,
 २३८ उत्तमगति-प्राप्ति का उपाय चौर पापकर्मनिष्पण,
 २३९ भीमकादगी यत्तकथा, २४० शिवरात्रिमाहात्म्य
 चौर सप्तके प्रसङ्गमें निपादका उपाख्यान, २४१ शिव-
 रात्रिविधि, २४२ तिलोत्तमाख्यानमें सुन्द चौर उप-
 सुन्दवाख्यान, २४३ कुण्डलचौर विकुण्डलका पाख्यान,
 २४४ विकुण्डलसमर्पणवादेमें यमलोक-गमनाभावकारण,
 तुलसीप्रगंसा चौर नरकप्राप्तिकर धर्मनिरूपण, २४५
 विकुण्डलसमर्पणवादेमें गङ्गाप्रगंसा, स्वर्गप्राप्तिका कारण,
 मातृसामयिकाकी मृत्यु दे कर लोदीनेमें महापातक,
 एकादशीयत्तनिबन्धन दुर्गतिनाश, विकुण्डलकटिक
 नरकपतित स्वप्नभोका उद्धार चौर श्रीकुण्डल तथा
 विकुण्डलका स्वर्गगमनकथन, २४६ माघस्नानमाहात्म्य-
 मञ्जमें काञ्चनसालिनीहात माघस्नान पुण्यसे राक्षसका
 मुक्तिकथन, २४७ माघस्नानप्रगंसा चौर गन्धर्वकन्या-
 ख्यान, २४८ गन्धर्वकन्याकटिक कामुक ऋषिपुत्रका
 विद्याच्योनि-गमनरूपमाप, लोमशका माघस्नानोपाय-
 कथन चौर ऋषिपुत्रकी श्रायमुक्ति, २४९ प्रयागस्नान-
 माहात्म्यमें भद्रक नामक माहात्म्याख्यान, देवयुतिहात
 योगसारस्तोत्र, २५० वेदनिधिलोमप्रगंसा, वेदनिधि-
 का गन्धर्वकन्याके साथ विवाह, माघमाहात्म्यप्रमास,
 २५१ विष्णुमन्त्रप्रगंसा, प्रतप्तशङ्खकाङ्कनविधि, ब्रह्म-
 गरीरमें विष्णु कटिक प्रस्तावकथन, इत चौर तदधि-
 कारियों परम धर्मकथन, २५२ विष्णुमूर्तिनिरूपण,
 महावक्त्राविवर्धनकी निम्दा, २५३ जडपुण्ड्रधारण-
 विधि, २५४ उपदिष्ट धर्मपुण्यको पुनर्विष्णु मन्त्र-
 प्रवचनविधि, इत्यादिमाहात्म्य महावक्त्रकथन, पञ्चाक्षरमन्त्र,
 २५५ विष्णुलक्षणकथन, त्रिपादिभूतिस्वरूपकथन, २५६
 महामायाकी प्रायमासे विष्णुकटिक सृष्टिवचन, २५७
 सविस्तार सृष्टिकथन, योगनिद्रामिभूत विष्णुके नामि-
 पञ्चमे यद्वासे कपालके खेदसे रुद्र, नैवेद्ये चन्द्र-
 पूर्णादि, सुधादिमें माहात्म्यादिकी उत्पत्ति, दशावतार,
 वैकुण्ठलोक चौर पञ्चाक्षर-जपमें वैकुण्ठप्राप्तिकथन,

२५८ सत्त्वान्तावर्चन, २५९ कूर्मावतारचरित, २६०
 मनुब्रह्मनाख्यान, २६१ विष्णुकटिक एकादशी चौर
 एकादशीप्रगंसा तथा देवताधीन कूर्मावतारमुक्ति, २६२
 एकादशीयत्तविधि, २६३ पापक्षित्तनचप चौर तामस-
 दमनस्मृति तथा पुरापादिका त्यागपत्रकथन, २६४
 वराहावतारचरित, २६५ मृगिहावतारचरित, २६६
 वामनावतारचरित, शशपक्षी पुत्ररूप विष्णुका
 प्रादुर्भावकथन, २६७ पटितगर्भमें विष्णुका वामन-
 रूपमें प्रादुर्भाव चौर वनिज्जना, २६८ परशुराम-
 चरित, २६९ रामचरित, २७०-२७१ लङ्काप्रतापगत
 रामका राज्याभ्युपेक्ष, शिवलत रामनीतामुक्ति, रामका
 परलोकगमन, २७२ श्रीहनुमचरित, २७३ रामलक्ष्मणे
 उपायन नामका चौर सुषुप्तलक्ष्यवादे पर्वण,
 २७४ रामलक्ष्मण माघ जरासन्धका युद्ध चौर रुक्मिणी-
 हरणप्रसङ्ग, २७५ स्वमन्त्र चौर पारिजातहरणउपा-
 ख्यान, २७६ जव-धनिशब्दका पाख्यान, २७७ लक्ष्म-
 णकटिक पाण्डु, यासुदेव चौर तत्सुतवध, २७८ जरा-
 सन्धवध, शिशुपालवध, दत्तात्रेयवध, सुदामाचरित,
 सुमतीपति, यदुवधवध, कृष्णराक्षसहात, भर्तृनका
 हारकागमन, भर्तृनमध्यामिनी लक्ष्मणपत्नियोंका वध,
 लक्ष्मणमन्त्रमहिमा इत्यादि कथन, २८० वैष्णवधारकथन,
 २८१ पावतीकृत विष्णुकी पूजा, रामचन्द्रका पटोत्तर-
 गतनाम, २८२ विष्णुका सर्वोत्तमवर्णन, विष्णुपूजाके
 वाद द्वितीयका उचितवचन ।

उपरमें पद्मपुराणका जो विषयानुक्रम दिया गया है
 उसके पातासङ्ग्रह चौर उत्तरखण्डके विषयोंको यदि
 पर्यालोचना की जाय, तो उसका पनेकाग कभी भी
 पुराणग्रन्थोंमें नहीं मिला जा सकता । यदि पद्मपुराणमें
 इन सब विषयोंका वर्णन था, ऐसा बोध नहीं होता ।
 प्रथम यह देखना चाहिये, कि मूलपद्मपुराणका लक्ष्य
 क्या है ? चौर उसमें कौन कौन विषय वर्णित हैं ।

मूलपुराण (५३१४) में लिखा है—

"एतदेव यदा पद्मभूदेरुत्पत्तौ जगत् ।

तदात्तान्ताग्र्यं नन्दं पापमिहृष्यते नृपे ॥

पापं तत् पक्षपाद्यम् स ह्यज्ञापोहयति ।"

इस पद्यकी अन्तर्भावना ५५००० है । इसमें हि-

दमयन्त्रे जगदुपलक्षितान् वर्णित है, इसीसे इस पुराणको पण्डितगण पाद्य कहते हैं

मत्स्यपुराण पद्मपुराणके जो मय सप्तम्य निर्देश करते हैं, पाञ्चकलके प्रचलित पद्मपुराणके छटिखण्डमें समका प्रभाव नहीं है। छटिखण्डके १६वें अध्यायमें दम हरिदमयपद्म और उसके मध्य जगदुपलक्षितको कथा विस्तृत भावमें वर्णित हुई है।

इस पद्मपुराणके प्रसंगत छटिखण्डमें लिखा है—

“एतदेव च वे मन्त्रा पाद्यं लोके जगदा वै ।
सर्वभूताय च तच्च पाद्यमित्युच्यते बुधैः ॥
पाद्यं तत्पद्मपद्माय च सप्तस्थाणीकं पश्यते ।
पद्ममिः पद्ममिः प्रोक्तं च वेपाद्यासकारणम् ॥
योष्करं प्रथमं पद्मं यतोत्पन्नः स्वयं विराट् ।
द्वितीयं तौ पद्मं पद्मं सप्तम्यथायम् ॥
तृतीयं पद्मं प्रथमं राजान्ता भूरिदक्षिणम् ।
चतुर्थं पद्मं चरितं चैव चतुर्थं परिकीर्त्तितम् ॥
पद्मं मोक्षतत्त्वं च सर्वं ब्रह्म निगद्यते ।
योष्करं त्वधा छटिः सर्वं वा मन्त्रकारिका ॥
देवतानां सुनौनाच्च पित्रवर्गस्तथाऽपराः ।
द्वितीये पद्मं तन्नाश्रयो वा सप्त च सागराः ॥
तृतीये रुद्रसर्गं दक्षसर्गं दक्षसर्गं च ।
चतुर्थं सप्तम्यो राजानां चतुर्थं वंशानुकीर्त्तनम् ॥
चतुर्थं सप्तम्यो राजानां चतुर्थं वंशानुकीर्त्तनम् ।
सप्तम्यो राजानां चतुर्थं वंशानुकीर्त्तनम् ॥
सर्वं भूतं पुण्यं विष्णुं कथयिष्यामि वो हिजाः ॥”

(छटिखण्ड १।१५।६०)

इस पुराणमें मन्त्रानि सर्वभूताय पद्मसप्तम्योय कथा लोकमें प्रकाशितकी थी, इसीसे इसका नाम पाद्य पड़ा है। इस पाद्यपुराणमें ५५००० श्लोक हैं। व्यासके शिष्य सर्वेपमें यह पांच पर्वमें विभक्त है। प्रथम योष्कर-पर्व, इस पर्वमें विराट्पुत्रकी उत्पत्ति विवृत हुई है। द्वितीय तौपर्व, इसमें समी ग्रहोंका वर्णन है, तृतीय पर्वमें प्रभूतदानकारी राजाओंका विवरण, चतुर्थ पर्वमें वंशानुचरित, पद्म पर्वमें मोक्षतत्त्व और सर्वब्रह्म निरूपित हुआ है। योष्कर वा प्रथमपर्वमें मन्त्रकृत नौ प्रकारकी छटिखण्ड नाम, देवता मुनि और पितरोंकी कथा, द्वितीयपर्वमें पर्वतसमूह, समस्त दीप और सप्तसागरका वर्णन, तृतीयपर्वमें रुद्रसर्ग और दक्षसर्ग, चतुर्थ पर्वमें राजाओंकी उत्पत्ति तथा सर्व वंशानुकीर्त्तन एवं पद्म पर्वमें चतुर्थ साधन मोक्षसाधनका परिचय वर्णित है।

छटिखण्डमें इस प्रकार पद्मपर्वोक्त पद्मपुराणका उल्लेख करने पर भी सभी हम लोगोंको पद्मपुराणमें ऐसा कोई पर्व देखनेमें नहीं आता। छटिखण्डमें इस प्रकार वर्णित होने पर भी उत्तरखण्डमें खण्डविभागका कुछ और तरहसे परिचय मिलता है। यथा—

दक्षिणात्यमें प्रचारित पद्मपुराणीय उत्तरखण्डमें—

प्रथमं छटिखण्डं द्वितीयं भूमिखण्डम् ।
पातालखण्डं तृतीयं स्यात्तु यं पुष्करं तथा ।
चत्वारं पद्मं प्रोक्तं खण्डान्यनुक्रमं वै ।
एतत् पद्मपुराणम् व्यासेन च महात्मना ॥
कृतं लोकहितायैव साक्षात्पश्येयं तथा ॥”

(१।६५-६८)

१म छटिखण्ड, २य भूमिखण्ड, ३य पातालखण्ड, ४य पुष्करखण्ड और पद्म उत्तरखण्ड है। लोकहित और साक्षात्के अर्थकारण महामा व्यास द्वारा खण्डानुक्रम पद्मपुराण रचा गया है।

सभी को पद्मखण्डका उल्लेख किया गया है, पाञ्चकलके प्रचलित पद्मपुराणमें पुष्करखण्डका विसृष्ट प्रभाव है। प्रचलित पद्मपुराणमें छटिखण्डके कुछ अध्यायोंमें पुष्कर साक्षात् वर्णित है।

किर गौडोय उत्तरखण्डमें इस प्रकार लिखा है—

“एतदादि पुराणं च कथितं बहुविधम् ।
पद्माख्यं सर्वपापघ्नं पद्मपर्वोक्तं हिजाः ॥
प्रथमं छटिखण्डं द्वितीयं भूमिखण्डम् ।
तृतीयं सप्तम्यं चतुर्थं पातालखण्डम् ॥
पद्मसुत्तरं खण्डं प्रत्येकं मोक्षदायकम् ।
परिमितं क्रियायोगसारं यन्त्राणि वा पुनः ॥”

यह पादिपुराण बहु विस्तृत है। इसका नाम पद्म है। यह पद्मपर्वोक्त और सर्वपापनाशक है। इनके पांच खण्ड हैं, प्रथम छटिखण्ड, द्वितीय भूमिखण्ड, तृतीय सप्तम्यं, ४य पातालखण्ड और ५म उत्तरखण्ड, इनमें से प्रत्येक खण्ड मोक्षदायक है। इसका परिमित क्रियायोगसार है।

गौडोय पाद्योत्तर खण्डमें जिस प्रकार खण्डविभागका वर्णन है, नारद पुराणमें भी ठीक उसी प्रकार पद्मखण्डात्मक पद्मपुराणका विषयानुक्रम दिया गया है जो इस प्रकार है—

“युष्मत् पुत्र । प्रवक्ष्यामि पुराणं पञ्चमं प्रिकम् ।
सहस्रपुण्यपदं नृणां श्रुत्वा पठतां मुदा ।
यथा पश्यन्त्यसि सवः शरीरोति निगद्यते ।
तथैव पश्यसि खड्गेदितं पापनाशनम् ॥
(१ म सुविशोडमे)

पुरुस्त्वेन तु भोषाय सृष्टिादिक्रमतो हिज ।
नामाख्यानेतिहासाद्यर्थयोक्तो धर्मविस्तारः ॥
पुष्करस्य तु माहात्म्यं विस्तरणं प्रकीर्तितम् ।
ब्रह्मयज्ञ विधानञ्च वेदपाठादिनक्षत्रम् ॥
दानानां कौत्सनं यज्ञव्रतानाञ्च पृथक् पृथक् ।
विवाहस्यैव जायाय तारकाख्यानकं महत् ॥
माहात्म्यञ्च गंधादिनां कीर्त्तितं सर्वं पुण्यदम् ।
कालकथादि-देशानां वधो यत् पृथक् पृथक् ॥
ग्रहाणां अर्चनं दानं यत् प्रोक्तं हिजोत्तमम् ।
तत्सृष्टिखड्गसृष्टिश्च व्याख्यानं सुमहार्त्तना ॥
(२ य भूमिशोडमे)

पितृमातादिपुण्यत्वे शिवभर्मकथा पुरा ।
सुव्रतस्य कथा पञ्चात, वृत्रस्य च वधस्तथा ॥
पृथो वै वैश्य चाख्यानं धर्माख्यानं ततः परम् ।
पितृपुत्रपुष्याख्यानं नक्षत्रस्य कथा ततः ॥
यथाति चरितञ्च व सुव्रतोय निरूपयम् ।
राज्ञां जैमिनिश्वादी वज्राद्यय कथायुतः ॥
काथाद्यमोक्तोदयौ तु उदरवधायिता ।
कामोदाख्यानकं तत् विदुर्द्वयधनं युतं ॥
कुण्डलस्य च श्वादाद्यवनेन महात्मना ।
सिद्धाख्यानं ततः प्रोक्तं खड्गस्यास्य प्रकीर्तनम् ।
सुतयोगकथं वादं भूमिखड्गमिदं स्मृतम् ।
(३ य स्वर्गपण्डिते)

ब्रह्माण्डोत्पत्तिरुद्दिता यत्पिभिद्य मोतिना ।
सभूमिभोक्तव्यं ख्यानं तोषाख्यानं ततः परम् ॥
नर्मदोपत्तिकथनं तत्तीर्थानां कथा पृथक् ।
कुर्वन्वादि तोषाणां कथा पुण्याः प्रकीर्त्ताः ताः ॥
कालिन्दी पुण्यकथनं कामोमाहात्म्यवर्णनम् ॥
मयायायेन माहात्म्यं प्रयागस्य च पुण्यकम् ।
वर्षादिमातुरोधने कर्मयोगनिरूपणम् ॥
आस जैमिनिश्वादाः पुण्यकर्म कथाश्चतः ।
समुद्रमगनाख्यानं व्रताख्यानं ततः परम् ॥
कृत्वा पञ्चाङ्गमाहात्म्यं स्तोत्रं सर्वावशाच्चतुः ।
यत्तत् सर्वाभिधं विप्र सर्वपातकनाशनम् ॥
(४ य पातामशोडमे)

रामाष्टमिधे प्रथमं रामराण्याभियेचनम् ।
पगल्याख्यागमञ्चैव वीरस्वाध्यायकौत्तं नम् ॥
पञ्चमं धोवदेगञ्च जयपर्व ततः परम् ।

नागा राजकथाः पुण्या जगसायानुवर्णनम् ॥
हृन्दावनस्य माहात्म्यं सर्वपापवनाशनम् ।
निर्यनोसातुकथनं यत् क्षत्र्यावतोरिणः ॥
माधवस्य नामाहात्म्यं स्नानदानायने फलम् ।
धरावराहन्वादी यमप्राप्त्ययोः कथा ॥
मन्वादी राजदृष्टानां कृष्णहोत निरूपणम् ।
शिवशम्भुसमायोगो दृष्टोप्याख्यानकस्ततः ॥
मह्यमाहात्म्यमनुलं शिवमाहात्म्यमुत्तमम् ।
देवरात्मनात्मनां पुराणस्य प्रमं मनम् ॥
गीतमाख्यानकञ्चैव शिवगीता ततः स्मृता ।
कल्याण्यो रामकथा भरहाज्यात्म स्थिता ॥
पातामशोडमेतदि श्रुत्वा प्राणिनां सदा ।
सर्वपापप्रमर्गं सर्वाभिष्टकमपदम् ॥
(५ म उत्तरपण्डिते)

पर्वताख्यानकं पूर्वं गोघ्नं प्रोक्तं शिवेन वै ।
जासम्भरकथा पञ्चाक्षी मे साध्यतु कौत्तं नम् ॥
सगरस्य कथा पुण्या ततः परमुद्दिशितम् ।
गङ्गाप्रयागकाशीनां गयायाधाधिपुण्यकम् ॥
पाश्चादिदानमाहात्म्यं तन्महावादाद्योव्रतम् ।
चतुर्विंशकादीनां माहात्म्यं पृथग्वीरितम् ॥
विष्णुधर्मसमाख्यानं विष्णु नामसङ्ग्रहकम् ।
कालिकव्रतमाहात्म्यं माघनामफलस्ततः ॥
कल्मषोदघ्न तोषाणां माहात्म्यं पापनाशनम् ।
साधनसाधन माहात्म्यं द्वाविंशोत्पत्तिवर्णनम् ॥
देवशर्मादिकाख्यानं गीतामाहात्म्यवर्णने ।
भक्तपञ्चाङ्गस्य माहात्म्यं श्रीमहागवतस्य च ॥
हृन्मपुण्यस्य माहात्म्यं बहुतोयकथाचितम् ।
मन्त्ररक्षाभिधानञ्च त्रिषाङ्गयनुवर्णनम् ॥
श्वतारकथा पुण्या मत्स्यादीनामतः परम् ।
रामनामगतं दिव्यं तन्माहात्म्यञ्च वाङ्मयं ॥
पौष्पञ्च भृगुणा श्रीविष्णोर्भवेत्य च ।
इत्येतदुत्तरं खण्डं पञ्चमं सर्वपुण्यदम् ॥

“ब्रह्मणे कथा, हे पुत्र । मनुष्यांका पश्चिपुण्यजनक
पथपुराण नामक पुराण कहता हूँ, सुनो ।

त्रिष प्रकार पञ्च इन्द्रियविगिष्ट सभी शरीरो कहताते
हैं, उस प्रकार पापनाशकारी यह पथपुराण पाँच खण्डों-
में वर्णित हुआ है । इनमेंसे प्रथम सृष्टिखण्डमें पुनस्त-
कण्ड कौष्मकी सृष्टादिक्रमसे नामाख्यान पौर इति-
हासके साथ विस्तार धर्मकथन, पुष्करमाहात्म्य, ब्रह्म-
यज्ञविधान, वेदपाठादिका कथन, दान पौर पृथक्,
पृथक् व्रत, यौजनाका विवाह पौर तारकाख्यान,

तारिणी कथा इस संस्करणमें वर्णित हुई है। ११वीं और १२वीं शताब्दीमें जब रामानुज और मध्वाचार्य का मत विशेष रूपसे प्रचलित हुआ, तब उनके साथ साथ पद्मपुराणके ४४^{वें} संस्करणका सुवर्पात हुआ। पाण्डनक्षत्र, मायावादनिन्दा, तामसपुराण वर्णना, कर्तृपण्ड, आदि वैष्णव विद्वद्धारणको कथा और हैतवाशकी सत्याति इत्यादिका वर्णन इस संस्करणमें नहीं था। किन्तु इस ४४^{वें} संस्करणकालमें उन सब आधुनिक कथाओंका समावेश हुआ। इस चतुर्थ संस्करणमें उत्तर खंडमें (१६१६-८८) लिखा है—

‘वदन्ति कथा, हि देवि। तामस शांस्त्रकी कथा, श्रवण करो। यह शास्त्र श्रवण करनेसे ही ज्ञानिवीक पातित्य उत्पन्न होता है। मैंने पहले भी य पाण्डपतादि शास्त्र कहा था। पीछे मेरी शक्तिमें भासत विशेषी जो सब तामस शास्त्र कहेंगे, वही सुनो। कथाटने वैशेषिक शास्त्र, गौतमने न्याय, कपिलने सांख्य, विषण्णने अतिगर्हित चार्वाकमत और दौर्धोंक विनायाय बुद्धरूपे विष्णुने नग्न नीलवस्त्रधारिणीका भस्म खोख शास्त्र कहा था। माया-वादरूप भस्म-शास्त्र प्रच्छन्न मोक्षके जंभा गण्य है। कलिकालमें मैंने ही ब्राह्मण-रूपमें इस मायावादका प्रचार किया है। उसमें लोकगर्हित श्रुति याच्योंका कटघर, कर्मखरूप परिव्याग, सर्वकर्मपरिभ्रष्टरूप विधर्मको कथा, परमात्मके साथ जोषको एकता, ब्रह्मका गिरुणरूप इत्यादि प्रतिपादित हुआ है। कलिकालमें लोगोंको मुग्ध करनेके लिये ही जगतमें इन सब शास्त्रोंका प्रचार हुआ है। मैं जगत-नाशके लिये इन सब भवेदिक वेदायं वत् महाशास्त्रको रचा करता हूँ। पूर्व कालमें जैमिनि ब्राह्मणने भी निरीश्र-वादका प्रचार करनेके लिये वेदकी कटघर युक्त पूर्व मीमांसा को है। मातस्य, कोमर, खग, श्रव, स्कान्द और धारणेय यही हैं तामसपुराण हैं। वैष्णव, नारदीय, भागवत, गरुड, पाद्म और वाराह ये हैं सात्विक एवं ब्रह्मांड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य सामंज और ब्राह्म ये हैं राजस शास्त्र हैं। सात्विक पुराण मोक्षदायक, राजस स्वर्गदायक और तामसपुराण नृकप्रतिष्ठाकारण है। इनो प्रकार बगिछ, हारोत,

व्यास, पराशर, भरद्वाज और कश्यप रचित हैं स्मृत की सात्विक हैं। याज्ञवल्क्य, आश्वेय, तैत्तिरीय, दाक्ष, काश्यायन और वेष्णव ये स्मृतियां स्वर्गदायक राजस तथा गौतम, वाहस्पति, मांज्यस्त, यम, गार्ह और उष-नस स्मृतियां नित्याग्रद तामस मान्ये गई हैं।

उक्त विवरण किसी भी मन्मदायो वा किसी माध-सतामसम्बोको रचना है। इन दोनों सम्प्रदायके लोग ब्रह्मराचार्य-प्रवर्तित मायावादको यथेष्ट निन्दा करते हैं। ब्रह्मराचार्यने उपनिषद्ग्रन्थमें जो श्रुतिशास्त्रों की है, ये लोग उसे भवेदिक समझते हैं। ११वीं और १२वीं शताब्दीमें उक्त दोनों मत बहुत प्रचलन हो उठा। विशेषतः १४वीं शताब्दीमें विज्ञानविष्णुने “मायावादमसंस्था” इत्यादि श्लोकावली प्रपने सांख्यप्रवचनभाष्यमें उद्धृत की है। इस हिमावसे उनके पहले थे सब श्लोक पद्मपुराणमें प्रचिन हुए हैं, इनमें सन्देह नहीं। इस प्रकार १२वीं वा १४वीं शताब्दीके किसी समय पद्म-पुराणने वर्तमानरूप धारण किया था, इसमें भी सन्देह नहीं होता। दाक्षिणात्यके पद्मपुराणमें जिस प्रकार बहु-संख्यक श्लोक प्रचिन हुए हैं, गौड़ीय पद्मपुराणमें उतने श्लोक प्रचिन न हो सके। दोनों स्थानके पद्मपुराणको अध्याय-संख्या नीचे दी जाती है।

गौड़ीयपद्मपुराणमें	दाक्षिणात्यपद्मपुराणमें
खटिखण्डमें ४६ अध्याय	खटिखण्डमें ८२ अध०
भूमिखण्डमें १०३ "	भूमिखण्डमें २१५ "
पातालखण्डमें ११२ "	पातालखण्डमें ११३ "
उत्तरखंडमें १०४ "	उत्तरखंडमें २८२ "

गौड़ीयपादके खण्डखंडमें केवल ४० अध्याय हैं। दाक्षिणात्यके पादमें इस स्वर्गखंडके बदले आदिखंडमें ६२ अध्याय और ब्रह्मखंडमें २६ अध्याय देखे जाते हैं। गौड़ीय पद्मपुराणके कुछ चर्चोंको पालोचना करनेसे मान्य होता है, कि नारदपुराणमें पद्मपुराणका जो आकार वर्णित हुआ है, गौड़ीय पद्मपुराणमें भी अधिक काल तक वंसा ही रूप था। गौड़ीय वैष्णवोंके प्रादुर्भावकालमें दाक्षिणात्य वैष्णवोंके संस्त्रवसे पाजकल-का पद्मपुराण भी विकृत हुआ था, इसमें सन्देह नहीं। इसी कारण अभी गौड़ीय स्वर्गखंड भी बहुत कुछ रूपा-

पादिवण्ड, भूमिवण्ड, ब्रह्मखण्ड, पांतालखण्ड, छट्टि-
खण्ड और उत्तखण्ड, इन षष्ठः खण्डोंमें पद्मपुराणकी
विभक्त कर लिया है ।

(पूनाके चानन्दायमसे जो पद्मपुराण प्रकाशित हुआ है,
यह इन्हीं छः खण्डोंमें विभक्त है । इसके पादिवण्ड और
ब्रह्मखण्डको गोतोय पौराणिकोंमेंसे कोई भी पाद्य कट
कर नहीं मानते । उत्त पादि और ब्रह्मखण्ड देखनेमें जो
बहु नितान्त आधुनिक ग्रन्थके जेमा प्रतीत होना है ।
नीचे इन दो खण्डोंकी विषयसूची दी गई है—

पादिवण्डमें—१ पद्मपुराणके खण्डविभाग, निर्णय
और पाठफल, २ प्राकृत सगर्वणन, ३ जनपद, नदो
और पर्वतादिवर्णन, ४ उत्तररूप प्रभृतिवर्णन, ५
रमणतादि वर्णन, ६ भारतवर्षवर्णन, ७ भारतका
चतुर्भुजवर्णन, ८ गोकर्षोपादिवर्णन, ९ शास्त्रमन्त्रि और
क्रोडशीपवर्णन, १० द्विजोपाख्यान, ११ पुष्करतोय-
माहात्म्य, १२ जम्बूद्वीपमाहात्म्य, १३-१५ नर्मदा
माहात्म्य, १६ कावेरीवृद्धमाहात्म्य, १७-१८ नर्मदा-
कुलस्य तोयं समुद्रवर्णन, १९ शुक्लतीर्थवर्णन, २०
भृगुतीर्थमाहात्म्य, २१ नर्मदास्य पञ्चतोयार्द्रि यदुतोय-
वर्णन, २२ नर्मदातीर्थमाहात्म्य, २३ नर्मदास्थान-
माहात्म्य, २४ चर्मपथतीर्थप्रतिष्ठितं गदोतीरस्य तोय-
वर्णन, २५ वितस्तामाहात्म्य, २६ शुक्लतीर्थमाहात्म्य, २७
स्यमतापञ्चकमाहात्म्य, २८ धर्मतीर्थ, नागतीर्थार्द्रि
माहात्म्य, २९ कालिन्दीतीर्थमाहात्म्य, ३०-३१
विजुण्णमाख्यान, ३२ सार्वभौम, गोमती पादि तीरस्य
तीर्थप्रसङ्ग, ३३ वाराणसीमाहात्म्य, ३४ चौकार-
माहात्म्य, ३५ कपालमोचनमाहात्म्य, ३६ मध्यमेखर
माहात्म्य, ३७ वाराणसीस्य तीर्थमाहात्म्य, ३८-३९ गया
प्रभृति चनेत्र तीर्थकथन, ४० तीर्थसेवादिफल, ४१-४२
प्रयागमाहात्म्य, ४३ प्रयागयात्राविधि, ४४ प्रयागयात्रा-
फल, ४५ चनामक फलवर्णन, ४६-४८ प्रयागमाहात्म्य,
५० तीर्थक्षत कर्मभोगकथन, ५१ कर्मयोग, ५२ नरक्षत
निर्णय, ५३ साध्वचार, ५४ द्विजकर्म कथन, ५५ वैष्णवा-
चार, ५६ द्विजका चर्मचारनिर्णय, ५७ दानधर्म, ५८
दानप्रणालयवर्णन, ५९ संन्यासवर्णन, ६० भिक्षा-
चर्या, ६१ विष्णुपदस्य ६२ पुराणोपाययकथनमें पाप-
कायेस्तोत्रकथन ।

प्रसङ्गमें—१ सुमग्नोन्नतस्य वादमें हरिमतिवर्णन और
वैष्णवका निरूपण, २ हरिमन्दिर सेवकमहिमा, दण्डक
नामक चोरचरित, ३ व्यासजी मिनिय वादमें कार्तिक-
माहात्म्यारम्भ, दोषदानमाहात्म्य, ४ ब्रह्मनारदन वादमें
जयतोव्रतमहिमा, ५ पुत्रजन्मोपाय, शोधननामक द्विज-
चरित, ६ वारनारीचरित, ७ राधाप्रणाष्टमी, राधाप्रणा-
ष्टमीके प्रभावसे कलावती नामक ब्राह्मण्याका उदयार,
समुद्रमथन खगारम्भ, इन्द्रके प्रति दुर्वासाका शपथ, विष्णुके
पादग्रसे समुद्रमथनोपक्रम, ८ क्रमके रूपमें हरिका
गिरिधारण, हरका विपदान और चनचमीको उत्पत्ति,
पेरावत, महालक्ष्मी और चरुतकी उत्पत्ति, विष्णुका
मोहिनीरूपधारण, राक्षसा गिरिच्छेद, समुद्रमथनकथा
समाप्त, ११ सुववारव्रत और तत्पुनश्च भद्रस्त्रवराज-
कन्या श्यामबालाका चरित, दोननाथराजका चरित,
गानवकर्मक नरमेधयज्ञनिरूपण, १२ क्षत्रप्रणाष्टमी-
व्रतमाहात्म्य और तत्पुनश्चमें चित्रनेन राजचरित, १४
ब्राह्मणमहिमा और उसके प्रसङ्गमें भोम नामक गृध्र-
चरित, १५ एकादशीमाहात्म्य और उसके प्रसङ्गमें नृजम-
येश्वर और उसकी पत्नी महाकृष्णका चरित, पूर्णमासी
विष्णुपूजाव्रत और उसके प्रसङ्गमें कान्हिजचरित,
१७ हरिचरणोदकवर्णन, उसके प्रसङ्गमें सुदर्शन विष-
चरित, १८ अयम्यामगम प्रायश्चित्त, १९ पञ्चमथपथ
प्रायश्चित्त, २० कार्तिकमहिमा, कार्तिकमें राधादामो-
दरपूजा, उसके प्रसङ्गमें गह्वर और उनको पत्नी कानि-
प्रियाका चरित, २१ कार्तिकमासव्रतविधि, २२ तुलसी
और धात्रीमहिमा, २३ विष्णुपञ्चकविधि और उसके
प्रभावसे दंडकचोरीद्वार, कार्तिकमाहात्म्यप्रसंगमाप्ति,
२४ गानाविधि दान और तत्फल, २५ हरिनाम महिमा
और पुराणयथार्थकथन, २६ प्रतिप्रावृत्तनदोष वर्णन-
में सुन्दरचरित, ब्रह्मवृत्त्यवफल ।)

पद्मपुराणका प्रथम संस्करण धर्मन्याये, रचनाकाल-
में और द्वितीय संस्करण ब्रह्मसूत्र धर्मके पुनरुद्बुदकालमें
प्रचलित हुआ था । तृतीय संस्करणका रूप नारदपुराण-
में वर्णित हुआ है । जिस समय ब्रह्मदेव हिन्दू समाज
में भगवद्गता कह कर गये हुए थे, सन्धवतः उसी समय
यह संस्करण हुआ होगा । कारण, विष्णुके एवमो भव-

बीति प्रद घोर सर्वपुण्यप्रद गवादिका माहात्म्य तथा कामकैयादि देतारका वध, चक्रवर्णकी चर्चना घोर दान इत्यादि पृथक् पृथक् रूपमें व्यास द्वारा इस ऋषिपुत्रमें निर्दिष्ट हुए हैं।

द्वितीय भूमिखण्डमें—जितामातादिको पूजा, शिव-शर्मकथा, सुव्रतकी कथा, हस्तवधकथा, पृथु घोर वंश-राजोपाख्यान तथा धर्मोपादान, पिङ्गव्यूहा, नहुषवत्सल, ययाति, युव घोर तोयनिद्रापथ, राजा घोर जैमिनि-संवाद, चतुर्गण्य दृष्टदेवचरित, चमूक सुन्दरीकी कथा, विद्वण्डवधसंयुक्त कामोदाख्यान घोर मांढाका अपनकुण्डलसंवाद है। तदनन्तर सिद्धाख्यान, सुत-श्रीनकसंवादमें इस भूमिखण्डका विषय विवृत हुआ है।

तृतीय स्वर्गखण्डमें—सौमि ऋषिसंवाद, ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, भूमिके साथ लोकसंस्थान, तीर्थोपादान, नर्मदा-का उत्पत्ति-कथन, उस तीर्थकी पृथक् कथा, कुश चेत्वादि सभी तीर्थोंकी पवित्रकथा, कामिन्दीको पुष्पकथा, कामी माहात्म्य, पवित्र गयामाहात्म्य, प्रयागमाहात्म्य, वर्षाश्रम-के चतुरोर्ध्वे कर्मयोगनिरूपण, पुष्पकथायुक्त श्याम घोर जैमिनिसंवाद, समुद्रमण्डाख्यान, प्रताख्यान, कज घोर पञ्चाङ्गमाहात्म्य, सर्वोपराधमन्त्रहस्तोत्र प्रभृति चर्चातत्त्वज्ञान कार्यका उल्लेख है।

चतुर्थ पातालखण्डमें—रामायणमेघ, रामका राज्या-भिषेक, चण्डस्तत्रका भागमन्त्र, दोहस्तत्रचरित, चण्डमे-धोपदेम, इत्यर्चया, नाना राजकथा, जगन्नाथोपादान, हन्दावनमाहात्म्य, ज्ञानावतारमें नित्यलोकावयन, भावव-स्तान, दान घोर पूजाफल, धरणीवराहसंवाद, यम घोर ब्राह्मणकी कथा, राजदूतकी संवाद, छण्डस्तोत्र, शिवशश्वसमायोग, दशोचिका आख्यान, भस्ममाहात्म्य, शिवमाहात्म्य, देवरातस्तोत्राख्यान, पुराणासत्रप्रसा, गीतमाख्यान, शिवगीता, मरहोज्ञानमय कल्पान्तरी रामकथा, सर्वपापनाशक घोर सर्वाभिष्ट-फलप्रद आदिका वृत्तान्त है।

पञ्चम उत्तरखण्डमें—गौरीके प्रति शिवयोज्य पर्वता-ख्यान, आलम्बरकथा, श्रीमत्माहात्म्य, सगरकी कथा, गङ्गाप्रयाग-कामी घोर गयाकी पुष्पकथा, २४ प्रकारकी पञ्चादमीकथा, पञ्चादमीमाहात्म्य, विष्णु धर्म, विष्णु का

सहस्रनाम, काविक प्रतमाहात्म्य, माधवस्तानफल, कम्बु दोषके भक्तार्थ पापनाशक तीर्थीका माहात्म्य, भास्वमतो-माहात्म्य, रुद्रिहोत्पत्ति, देवप्रमोदिकी कथा, गोता-माहात्म्य, भक्तार्यान, श्रीमद्भागवतका माहात्म्य, इन्द्रपुत्र माहात्म्य, बहुतीर्थकथा, मन्तरज, सिपाङ्गतिवर्णन, मत्स्यादिप्रमवे पुण्यमयी चवतारकथा, रामगतनाम घोर तन्माहात्म्य, भृगुको परोक्षा तथा योविष्णुका वैभव, इन सब पुण्यदायक विषयोंका उल्लेख है।

जयर जो सब प्रमाण उद्धृत हुए हैं, उन्हें धाज-कल्लके प्रचलित पद्मपुराणके साथ मिला कर देखनेसे हम लोगोंको मालूम होता है, कि यदि पद्मपुराणके सत्य घोर विषयादिका प्रचलित पद्मपुराणमें समा-वर्णन है। मरुत घोर नारदपुराणमें जो सब सत्य निर्दिष्ट हुए हैं उनमेंसे प्रायः सभी सत्य प्रचलित पद्म-पुराणमें मिलते हैं यद्यत् आदि पद्मपुराणके पनेक विषय प्रचलित पद्मपुराणमें दिये हुए हैं। किन्तु पहले पद्म-पुराणका जो सा खण्डविभाग था, सभी उसका सम्पूर्ण परिवर्तन हो गया है।

धाजकल्लका पद्मपुराण देखनेसे ही हम लोग पद्म-पुराणके तीन संस्कारोंका परिचय पाते हैं,—१म संस्कारमें पोष्करादि करके पांच पर्वमें पद्मपुराण विभक्त था, पांच खण्डमें नहीं। छटिखण्डसे हम लोग इस पद्मपुराणका पाठका सन्धान पाते हैं। विष्णुपुराणमें तत्पुर्ववर्ती निम्न पद्मपुराणका उल्लेख है, सम्भवतः वही पद्मपुराणक था। १म संस्कारमें पोष्कर प्रथम पर्वके जो सा गिने जाने पर भी, द्वितीय संस्कारमें पोष्कर फिर द्वितीयखण्डके मध्य परिगणित होता है तथा छटिखण्ड प्रथम पर्वका स्थान होता है। दक्षिणाय-में प्रचलित पाद्मोत्तरखण्डसे चतुर्था प्रमाण मिलता है। द्वितीय संस्कारमें पोष्करखण्डका जो पद दूपा, सम्भवतः यह छटिखण्डके पुष्करमाहात्म्यके भक्तार्थ रखा गया, स्वर्गखण्डसे चतुर्था स्थान दखल किया। गौडीय पद्म-पुराण घोर नारदपुराणसे इस द्वय संस्कारके सत्यआदि मिलते हैं। किन्तु इसके बाद भी ४वें संस्कारके दूपा। दक्षिणायगण स्वर्गखण्डको नहीं मानते। उन्होंने स्वर्गखण्डकी जगह ब्रह्मखण्ड माना है तथा यथाक्रम

निरति हो गया है, । नारदीय खगखंड के साथ सभी विषयों में उसका सेन नहीं खाता ।

क्रियायोगमार पद्मपुराणका परिमितस्वरूप है । इसमें वैष्णवी के क्रियाकांड और चिह्नादि धारण की कथा वर्णित हुई है । अष्टावक्र मिलननका विश्वास है, कि यह १५वीं गताष्टमें किसी ब्रह्मसीसे रचाया गया है । किन्तु जब उस समयके चैतन्यभक्त अनेक वैष्णव ग्रन्थकारोंने इस क्रियायोगधारसे प्रमाण उद्धृत किये हैं, तब यह ग्रन्थ उसके बहुत पहले रचा गया था, इसमें सन्देह नहीं ।

आजकल के किमो भी पद्मपुराणमें ५१००० श्लोक नहीं मिलते । बर्ये प्रायः जो पद्मपुराण सुद्धित हुआ है, उसमें ४८४५२ श्लोक देखे जाते हैं । पर हाँ, इसके साथ खगखंड और क्रियायोगधार के श्लोकीको एकत्र गणना करनेसे ५१००० हो सकते हैं । इसका होने पर भी यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि यदि पद्मपुराणका अधिकांश श्लोक लुप्त है और उसमें अनैकानिक अनिनय श्लोक संयोजित हुए हैं । स्कन्द-पुराणके गिवरहय खंडसे जाना जाता है, कि एक समय नृपतन पद्मपुराण ब्रह्माका माहात्म्यशुचि पद्यात् ब्रह्मग्रन्थके जैना गण्य था किन्तु सभी ब्रह्माका माहात्म्य लीप हो जानेसे यह कहकर वैष्णवीका ग्रन्थ हो गया है ।

निम्नलिखित सुद्ध ग्रन्थ पद्मपुराणके प्रसंगत माने गये हैं,—

पट्टमूर्तिपर्व, पद्योपमाहात्म्य, उष्यसारस्वमाहात्म्य, कालोपुरमाहात्म्य, कमलालयमाहात्म्य, कविनगीता, करधोरगीता, कर्मगीता, कल्याणकाण्ड, कायस्थोत्पत्ति और कायस्थप्रतिनिद्धपण, कालभरमाहात्म्य, कान्दि-माहात्म्य, कामोमाहात्म्य, योद्धव्यनक्षत्रमाहात्म्य, कंटार-कण्ठ, गणपतिउद्दसनाम, गीतमोमाहात्म्य, विजयुग कथा, जगन्नाथमाहात्म्य, तमसुद्धारणमाहात्म्य, तोयं माहात्म्य, ताम्रकमाहात्म्य, देविकामाहात्म्य, धर्माण्य-माहात्म्य, ध्यानयोगमार, पञ्चवटीमाहात्म्य, पुण्ड्रखंडोक्त पाणिनीमाहात्म्य, प्रयागमाहात्म्य, भक्तवत्सलमाहात्म्य, भस्ममाहात्म्य, भागवतमाहात्म्य, भीमाहात्म्य, भुतेन्द्र-तोयमाहात्म्य, मलमाघमाहात्म्य, नक्षत्रिणदसनामस्तोत्र,

यमुनामाहात्म्य, राजराजेश्वरयोगकथा, राममधुसनाम-स्तोत्र, रुक्माहृदकथा, रुद्रहृदय, रेणुकामहसनाम, विकृतजननयान्तिविधान, विभूतिमाहात्म्य, विष्णुमहस-नाम, हन्दावनमाहात्म्य, वेदहृदय, वेदान्तमार शिव-सहस्रनाम, वैद्योपाख्यान, वेतरिणोपगोपापनविधि, वेदानथमाहात्म्य, वेदान्तमाहात्म्य, गताश्वविजय, शिवगीता, शिवालयमाहात्म्य, शिवमहस्रनामस्तोत्र, मोनसास्तोत्र, मोपीपुरमाहात्म्य, श्वेतगिरिमाहात्म्य, सह्यद्रागमाष्टक, मतयोगख्यान, मरुत्तमाष्टक, मिथुना-गिरिमाहात्म्य, सुदर्शनमाहात्म्य, हनुमत्कथक, हरि-चन्दोपाख्यान, हरितालिकावतकथा, हर्षेश्वरमाहात्म्य, होलिकामाहात्म्य इत्यादि ।

इयं विष्णुपुराण ।

प्रचलित विष्णुपुराणमें शिवशक्तिकम इस प्रकार देखा जाना है—

प्रथमोपम—१म महाकाचरण, परावरके प्रति भवेद्य-को प्रयत्नज्ञाना, तत् प्रति परावरका उत्तरवाक्य, २ विष्णुसुति, सृष्टिप्रक्रिया, ३ ब्रह्माका सर्गादि क्षत्तृत्व-शक्तिका विवरण, ब्रह्माका पायुकथन, कल्याणमें खग-वर्णन, ५ देवदानवादि सृष्टिकथन, व्याधरादिशो सृष्टिकथा, ६ ब्राह्मणादि सृष्टिकथा, क्रियावान् ब्राह्म-णादिवर्णनका स्थाननिर्धारण, ७ म.नमप्रज्ञासृष्टि-वर्णन, रुद्रसृष्टिकथन, मुनिसृष्टिकथन, चतुर्विध प्रलयवृत्तान्त, ८ अरुणोपे भृगुका उत्पत्तिकीर्तन, ९ इन्द्रके प्रति दुर्वासको शपथकथा, त्रैलोक्यके श्लोकमन्त्र-हेतु यथादिका विप्र देव पर देवताचीका ब्रह्माके समीप गमन, विष्णुसुति, समुद्रमन्थन, योका समुत्थान, इन्द्रकी लज्जोत्पत्ति, १० भृगुवर्णने परावरवर्णका उत्पत्तिकथन, ११ भृगुवाचन, १२ भृगुका मधुनामक यमुनातटमें गमन, भृगुको उच्छ्रित तटस्थाने प्राप्तित-देवताचीका भगवत्के समीप गमन, भृगुको भगवदर-प्राप्ति, १३ भृगुवर्णकथन, योचनामर राजाका उपा-ख्यान, पृथुचरितकथन, १४ प्रचेता कथंके समुद्रजनमें तपयथा, १५ प्रचेताकी तपस्थाने प्रजापत्य, कण्डमुनिका चरित, मेघनयनकी महायत्नासे दक्षको प्रसन्नपि, १६ भवेद्यका पञ्चादिवयके प्रवृत्ति, १७ महादक्षचरित-

कथा, १८ प्रह्लादवधमें हिरण्यकशिपुकर्तृक मूढादिका निषेध, १८ प्रह्लादके प्रति हिरण्यकशिपुका यावत्, प्रह्लादकी विष्णुपुति, प्रह्लादस्तवसे परितुष्ट भगवान्का प्रह्लादकी श्वपदमर्दनान, हिरण्यकशिपुवध, २१ प्रह्लादकी वंशपरम्परा, २२ विष्णुका विमूर्तिवर्णन, परमात्माका सत्तुःप्रसारत्वकथन ।

४५ अंगमें—१ द्विपत्रके दश पुर्वीमेंसे तीनका योगवत्त्व कौत्तन, दूधका समदीपाधिपतिवत्त्वकथन, लम्बुहोपपति अमोक्षशालयामुद्योगमें गमन, भरतवंशविस्तार, २ भूमण्डलवर्णन, ३ भारतवर्षनिरूपण, ४ ब्रह्महोपवर्णन, गार्गसको होपवर्णन, कुण्डीपकथन, क्रोडहोपकथन, शकहाउनिवरण, पुस्तकहोपकथन, लोकाभोक्तृवर्णनतत्त्वान्त, ५ मत्तपातालकथन, चमत्तगुणवर्णन, ६ गरुडवर्णन, हरिभारतमरणमें गर्वप्राप्त्यिच्छा और पापचयकथा, ७ सूर्योदयहका संस्थानकथन, भूर्लोक और भुवर्लोकद्विका संस्थानवर्णन, ८ सूर्यरथ संस्थान, सूर्यका उदयास्तकथन, भातुका रात्रिभेदकथन, बालगणना और गङ्गाका उत्पत्तिवर्णन, ९ छटिकाकारणनिर्देश, १० सूर्यरथाधिष्ठातृगणका विवरण, ११ सूर्यरथ पर त्रयोमयी विष्णुगति का अवस्थानकथन, १२ चन्द्ररथवर्णन, चन्द्रता ज्ञापन और छटिकथन, बुधादिग्रहका रथवर्णन, प्रवहवायुकथन, विष्णुमहिमा, १३ लङ्घनरतोपाख्यान, सोबीरके प्रति भरतका तत्त्वज्ञानोपदेशारम्भ १४ भरतके प्रति सोबीरकी चाम्पवियक प्रशंसा, भरतका उत्तरप्रदान, १५ ऋभुनिदाघसंवाद, १६ ऋभुके समीप निदाघका पुनर्गमन, चाम्पतत्त्व विषयक उपदेश ।

४६ अंगमें—मन्वन्तरकथाव्यवस्था पर संक्षेपका प्रदन, अतः तत्त्व मनुका नामकथन, स्वाध्यायविधि मन्वन्तरकथा, २ भविष्य मन्वन्तरविषयिणी जिज्ञासा, सूर्यपत्नी ह्यायाका विशरण, सावर्णिमन्वन्तरकथन, अक्षरपरिमाण, ३ वेदस्थापना पटारिंशति नामकथन, कृष्णहोपानमोहाम्भार, निवृत्तिकथन, ४ यजुर्वेदगाथाविभाग, याज्ञवल्क्यके सूर्यस्तोत्र, ५ नामवेदका शाखाविभाग, अथर्ववेदका शाखाविभाग, पटारदशपुराणकथन, पुराणकथन, सतुदंश विद्या, पटारदशविद्या, ऋषिद्वय-

कथन, ७ यमगीता, ८ विष्णुपाराशरमन्त्र, विष्णुपूजाकी कस्त्युति, ब्राह्मणादिवर्णका धर्मकथन, ९ मन्त्रचर्चाकथन, गाहस्थ्यधर्मकथन, योगप्रत्यक्ष और भिन्नान्यवर्णन, १० ज्ञातकर्मोदिकथन, विवाहयोग्या कन्याका नक्षत्र, ११ गृहस्थका सदाचारकथन, मृतपुरीषोद्योगविधि, धनोपाजनविधि, स्नानविधि, १२ गृहस्थका विविधाचारकथन, १३ ज्ञातकर्मोदिकथन, प्रेतदाहविधि, शमोचप्रकरण, एकोदितविधि, मणिपञ्चकरणविधि, १४ ग्राहकनक्षत्र, विग्रेष ग्राहकालकथन, पितृगीता, १५ ग्राहकी श्राद्धशौका नक्षत्र, ग्राहके बाद निषिद्ध कर्मकथन, मातामहग्राहविधि, ग्राहप्रकरण, ण्डविण्डदानविधय, योगीश्वरमा, १६ ग्राहमें मधुर्मादि दानकथन, दृष्टादि ग्राहदग्धनमें दीपकथन, १७ नमननक्षत्र, भोगमणिगृहस्थाद, देवतापोंकी विष्णुपुति, मायासोहोपति, १८ असुरोंके प्रति मायोसोहकी उपदेशकथा, पाहृत्पदमोपति-कथन, बोधधर्मोत्पत्तिकथन, नमनतत्त्व दीपकथन, शनधनुनामक राजोपाख्यान ।

४७ अंगमें—१ वंशविस्तार, प्रशंसा, मनुवंशमरण और अवर्णकथन, ब्रह्माकी उत्पत्ति, दत्तादिकी उत्पत्ति, बुधके चौरस और इलाके गर्भमें पुनरुत्पत्ति का जन्मकथन, देवताके वंशमें देवताकी उत्पत्तिकथा, ऐश्वरीके साथ ब्रह्मदेवका विवाह, २ इक्ष्वाकुका जन्म, ककुत्स्थवंशविस्तारकथन, युवनाम्नोपाख्यान, मोभरिका उपाख्यान, ३ मोभरिका वनगमन, मोभरिचरित्रव्यवहारी कथन, सर्वविनाशमन्त्र, अमरकथा वंशविस्तार, त्रिगङ्गवृक्षमें वसतीत्यक्तिका, ४ समरवृक्षधर्मोत्पत्ति, विवरण, समरको अमृतमध्यकथा, मगरपुत्रोत्पत्ति मरणदृष्टता, भगीरथका गङ्गावनयन, रामादिका जन्मकथन, ५ निमिका यज्ञानुष्ठान, निमि और यगिठका पाप्मरशापसे देशत्याग, मित्रावरुणके प्रभावसे पुनः यगिठका जन्म, मोताशी उत्पत्ति, कुण्डलजन्मावधान, ६ चन्द्रवंशकथा, चन्द्रका युष्मन्तो हरपृथस्तान्, ताराका गर्भ, बुधकी उत्पत्ति, यज्ञमें अग्निवर्षकी उत्पत्ति, ७ पुनरुत्पत्ति वंशकीर्तन, कण्टकके गङ्गापान, जङ्गल वंशविवरण, जमदग्निविश्वामित्र आदिका जन्मकथन,

८ प्रायश्चित्तकथन, धर्मशस्त्रिका जन्म और तदर्थप्रवृत्तार-
कथन, ९ इन्द्रमहाध्याय, रजका दैत्यके साथ
युद्ध, चतुष्टयका वंशावलीकथन, १० नक्षत्रवंशानु-
चरित, यथासिका उपाख्यान, ११ यक्षका वंश,
कात्तवीर्यलुप्तका जन्म, १२ क्रोटका वंश, १३
समन्तोपाख्यान, क्षणिके साथ जाम्बवतीका विवाह,
क्षत्रकृष्ण मल्लभामाका पत्नियुद्ध, गान्दिनीका
उपाख्यान, १४ शिनिका वंशावली कीर्तन, पञ्चक-
वंशविस्तार, न्युनयपाका वंशकथन, मिथुनालोत्पत्ति,
१५ मिथुनात्तका सुत्तिकारणकथन, यक्षदेवपरिवर्त-
का नामकीर्तन, ओक्षणजन्मकथा, यक्षवंशोद्यम-
का संक्षान्तिरूपण, १६ तुर्वसुका वंश, १७ दुर्वाका
वंशविवरण, १८ यमुका वंशकथन, कर्णोत्पत्ति, १९
जन्म जयका वंशकथन, भरतका जन्मवृत्तान्त, वृद्धिपु-
का जन्म, कृपोकृतकी उत्पत्ति, जरासन्धकी उत्पत्ति,
२० जङ्गका वंश, पाण्डुवंशाख्यान, २१ भद्रि-
भूपालीका वंशाख्यान, प्ररोक्षिवंशकथन, २२ इक्ष्वाकु-
वंशीय भविष्यभूपालीका आख्यान, २३ वृद्धव-
वंशीय भविष्यभूपालकथन, २४ प्रद्योतवंशीय भविष्य-
भूपालविवरण, नन्द (मौर्य) वंशका इतिहास, भविष्य-
कालके विविधराजवंशका विवरण, कालप्रभावके
राजाकी चरितान्तरहेतुनिर्णय, कृतयुगारम्भसमय,
कलिका प्रादुर्भाव कालनिर्णय ।

धर्म भर्गमें—१. वसुदेवकृत देवकीका पाणि-
युद्ध, कर्मके भारसे निषेद्धित प्रयोजका देवके
समीप गमन, मन्त्राज्ञा विष्णुस्तोत्र, विष्णुका
कंसवधमें प्रहरीकार, २ यशोदागर्भसे योगनिद्राका
जन्म, देवकीगर्भमें भगवान्का प्रवेश, देवगण-
ज्ञात देवकीलुत्ति, ३ ओक्षणकी जन्मकथा, वासुदेव-
का मोक्षलगमन, कंसके प्रति शून्यमागप्रस्थापि महा-
मायाका उपदेयवाक्य, ४ पात्नराक्षस कंसका उपाय-
चिन्तन, देवकीयसुदेवका वन्धनसोचन, ५ पूतनावध,
६ शनककृष्ण क्षण द्वारा शकटपरिवर्तन, क्षत्रवन्-
रामका नामकरण, ७ कालियदमन, ८ धेनुकवध,
प्रत्यक्षसुरवधोपाख्यान, ९ शङ्खोत्थवनगन, क्षणिके
पादगर्भे गिरिपुत्रा, ११ इन्द्रका कोप, महाशक्तिकथन,

शिवहनधारण, १२ ओक्षणके समीप देवराजका पागमन,
पशु नरत्तावदेवराजका उपदेग, १३ रामवर्णन, गोपिणी
का भङ्गीतादिकथन, १४ भरिष्ठवध, १५ वंशके समीप
नारदका क्षणगुणकीर्तन, १६ कैशववध, १७ चक्रका हन्दा-
यनगमन, १८ ओक्षणाक रसवाद, ओक्षणाकी मधुशा-
यावा, राक्षसे यमुनाके जन्ममें चक्रके रामकृष्णमुक्ति
दर्शन, ओक्षणस्तोत्र, १९ रामकृष्णका मधुशप्रवेश, रजक-
वध, मानाकारणकथनमें गमन, २० कुत्तासे चन्दनाटि चतु-
र्नियमवध, धनुमानाप्रवेश, रत्नभूमिमें प्रवेश और कंस-
वध, २१ कंसपत्नियोंका विनाश, उपदेनाभिषेक, इन्द्रसे
सुधर्म की प्रायश्ना, २२ जरासन्धपराभव, २३ कालयवन-
की उत्पत्ति, कालयवनका मधुरागमन, कालयवनवध,
२४ वनदेवका हन्दावनमें पागमन, २५ वनदेवकी
जाकणोपासि, यमुनातृण, श्वेतोवरण, २६ हस्तिप्रो-
हरण, प्रद्युम्नोत्पत्ति, २७ प्रद्युम्नहरण, मत्स्यजठरमें
मायावतीकी प्रद्युम्नप्राप्ति, शस्त्रवध, २८ हस्तिवध, २९
देवराजका हारकागमन, ओक्षणकी पोषणमहत्त्व कथा
प्राप्ति, ३० क्षणका स्वर्गगमन, पारिजातहरण, इन्द्रादि-
की साथ ओक्षणाका युद्ध, देवगणकी पराजय, ३१ देव-
राजकी क्षमाप्रायश्ना, ओक्षणाका हारकामें प्रत्यागमन,
३२ क्षणमहिषियोंकी मन्तानोत्पत्ति, पाण्डुहविषरण,
जयाका स्वप्रदर्शन, ३३ अनिरुद्धहरण, माणपुरी-
वधरीक्ष, शिवकृष्णका युद्ध, वाणाका यादुवध, ३४
योगेश्वर का विराजवध, पारावभोटारण, ३५ माय-
वन्धन, वनदेवका हस्तिनापुरगमन, वनदेवकी कोप-
शान्ति, ३६ द्विददका तोरणा, द्विदवध, ३७ सुधमी-
त्पत्तिकथन, यदुवंशोद्यमका प्रभासतोर्षमें गमन,
यदुकुलचयकथन, ओक्षणाका कलेश्वरत्याग, ३८ चतुर्न-
कस का यादवगणका शस्त्राकारकथन, कलिका पागमन-
वृत्तान्त, पाभोराजमण, चतुर्नके प्रति ध्यानका उपदेग,
प्ररोक्षितका पमिषेक ।

१४ वंशमें—१ कलिका स्वदण्डवर्णन, कलिधर्म-
कथन, २ क्षणधर्ममें अधिक कलनाम, ३ क्षणकथन,
ब्रह्माका दिननिर्णय, ४ प्रत्यक्षमें ब्रह्माका पतनान, पातन-
प्रत्यय, ५ विविध दुःखकथन, गर्भजन्मादि दुःखकथन,
नरककथन, ६ चक्रके वधकीर्तन, ब्रह्मद्वय निदण्ड,

१ स्वाध्याययोगकथन, योगनिरूपण, वैश्वज्योवास्यान, चर्मधनुविभाग, प्रायश्चित्तपरिधानाय, चान्द्रिकामिममन, मन्त्रिगणके साध चान्द्रिकको मन्त्रया, ७ केमिध्वजका भास्वानकचनारम्भ, देहात्मवादिशोको निम्ना. योगविषयकप्रश्न, त्रिविध-भावना, ब्रह्मज्ञानकथन, निराकारवाद्या, साकार चारणा, वैश्वज्यका गृहगमन, गणपत्य चोर वैश्वज्यके मुक्तिकाम, ८ सर्वमाष्टापेसा विष्णुपुराणका श्रेष्ठ, पराशरके समीप मनेयका प्रश्न, कथितविषयका संक्षेपकथन, विष्णुनामस्मरण-माहात्म्य, विष्णुपुराणविषयक फलश्रुति, विष्णुमाहात्म्य कीर्तन ।

विष्णुपर्वोत्तरमें—ग्रतानोका जनमेजयसंवादेमें श्री-कृष्णाराधनोपयोगी क्रियायोगकथन, भगवत्माहात्म्य-कीर्तन, इन्द्ररूपधारी उपेन्द्रके साध तपधारी चम्प-रोप संवाद-कथनप्रसङ्गमें भक्तियोगमाहात्म्यकीर्तन, भक्तियोगका क्रियायोगाश्रितत्वकथन, शुकप्रह्लाद संवादमें भक्तियोगवर्णन, उपवासलक्षण, उपवासमें भगवत् प्रीत्याधायकत्वकथन, तत्पुनश्चर्चमें युगतिहादशी व्रतविधानकीर्तन, याग्युक्तो भविसुक्तिकारणकथन, एक-भक्तव्रतविधिका, द्वादशमासिक कृष्णाष्टमीव्रतविधि, चातुर्मास्यव्रतविधि, कुसातिहादशोव्रतविधिकथन, विजय-द्वादशीव्रतविधि, जयन्त्यष्टमीव्रतविधान, चरिते-कादशीव्रतविधान, हृत द्वारा विष्णुस्वपनविधि, विष्णु-व्रतविधि, मग्नानि द्वादशीव्रतविधि चोर गोविन्द-द्वादशीव्रतविधि, चतुर्दश्यादशीव्रतविधि, पापनाशिनी द्वादशी, पदद्वयव्रतविधि, मनोरथ द्वादशीव्रतकथा, अर्धशत-पोषमाश्वीर्यव्रतविधान, सुकन्यमामाश्रितव्रतविधान, पति-व्रतमा अर्धदिशकथन, श्लोचमंथनकथन, नरकवर्णन, पाप-विशेषमें नरकविशेषको कथा, नरवद्वादशीव्रतकथन, पाण्डुराका स्वस्ववर्णन, सनके साध चामात्र करनेमें प्रायश्चित्तविधान, मासचर्मपूजाविधि, साभारायणका उपा-स्यान, सर्ववाचमगमनविधि, नक्षत्रपुद्गलव्रतविधान, चरितव्रतविधि, देवगृहनेपनविधि, देवगृहमें दीप-दानविधिकथन, देवादिश्रुतिप्रशंसाकथन, तिलद्वादशी-व्रतविधान, चतुर्नभगवत्पंथादमें स्तोत्रमाहात्म्यकथन, भीरुभङ्गोत्तम, सुपूजाद्वादशीव्रतकथा, चण्डिपुरवा

पादिका मङ्गलस्तोत्रकथन, मूल्याध्यायककोचम, भगवन्मयनदिनोयावत्, संसारहेतु मुक्ताध्यायनकथन, श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवादमें याग्यपद्यायानकीर्तन, गोदान माहात्म्यादिकथन, दानमोक्ष-वृत्तचर्चादि निवम-फलकथन, द्रव्यदानविशेषमें विशेष फलकीर्तन, ह्या-दान निरूपण, विष्णुको भवमानगा चोर पूजाफल, विष्णु माहात्म्यकीर्तन, दानप्रशंसा, तपः प्रशंसा, सततप्रशंसा, उपवासप्रशंसा, एकभक्त्यादि प्रशंसा । ब्राह्मणादि यर्णान्यत्वप्राप्तिकारणवर्णन, सुवर्ण दानमाहात्म्यकीर्तन, विशेषरूपमें गोदानमाहात्म्यकथन, भूमिदानमाहात्म्य-कीर्तन, संघाममाहात्म्यकीर्तन, दण्डनीतिकथन, हरि-भक्तिमाहात्म्यकथन, युधिष्ठिरचण्डालप्रश्नसंवाद, जनक-गोताकथन, ऊर्मरहरयकथन, गजिन्द्रसौम्यविषाण, चतुस्त्रुतिकोर्तन, विप्रवञ्जरकथन, सारस्वतस्तन, विष्णु-टककथन, स्वयंसुरसंवादकथन, भक्तिमाहात्म्यादि-वर्णन, विष्णुश्लोकसंवाद, स्वधर्माचरणप्रशंसा, अदिति-स्तवकथन, यामनस्तवकथन, यमिचक्षुनविषाण, चक्रस्तवकीर्तन, उत्तरान्तिस्मरणकथन, धैर्यस्तवागंथा-कीर्तन, पुष्यादिविभागकीर्तन, मान्याताका राज्यप्राप्ति हेतुकथन, त्रिविक्रमवृत्तकथा, पदवृत्त-वृत्तकथन, गोदान-विधि, तिलधेनुदागविधि, हृतधेनुकल्पविधि, कर्णधेनु-दानविधि, कथनप्रसङ्गमें पुण्यगाथाकीर्तन, सुद्विप्रत-कथन, देवकीयूतकथन, प्रह्लादवर्णिमंवाद, पाप-प्रशमनस्तवकीर्तन, चन्द्रविधवापमगमनस्तव कथन, बृहद्देवस्तुतिदीर्घकीर्तन, पापक्षयीपायकथन, योगस्वरू-पादिकथन, यमनिग्रमादिमास्यान-निरूपण, वर्णाश्रम-धर्मकथन, नरनारायणव्यायन-प्रसङ्गमें उर्वशीका मन्थ-नादिकथन, विष्णुरूपदर्शनप्रसङ्ग, चतुर्गुणव्याख्यानकथन, विस्तारपूर्वक कलिधर्मकथा, तत्पुनश्चर्चमें नरगणका चरित्रवर्णन, शास्त्रमाहात्म्यकीर्तन, चतुर्कमथिका कथन ।

अब देखना चाहिये कि विष्णुपुराणके लक्षण दूसरे दूसरे पुराणोंमें किम प्रकार निर्दिष्ट हुए हैं ? मुख्य-पुराणके मतमें बराहकल्पवृत्तचक्राका चारभ करके परा-गर्ने त्रिसहस्रं चक्रित धर्मकथा प्रकाशित की है, वहीं खेण्व है । पंडित लोग इसको श्लोकमें क्या २३०००

वतकानि हैं । (१) नारदपुराणमें इस प्रकार प्रमुख है—

“मृगयन्त प्रवचामि पुराणं वैष्णवं महत् ।
 वयोविंशतिराहस्यं सर्वपातकनाशनम् ।
 यत्रादिभागि निर्दिष्टाः पट्टभाः शक्रजिनः ॥
 भैत्रेयायादिभिः तत्र पुराणस्यावतारिकाः ॥
 प्रथमांशं—पादिकारणसंग्रहं देवदेवीनां सन्धयः ।
 समुद्रमथनाख्यानं द्वादाशोऽंशं ततोऽध्यायः ॥
 ध्रुवस्य चरितं चैव पृथुचरितमेव च ।
 प्रचेतसं तथाख्यानं प्रह्लादस्य कथानकम् ॥
 पृथगराक्षधिकाराख्या प्रथमोऽयं हतोरितः ॥
 द्वितीयोऽंशं—प्रियव्रताख्याख्यानं दोषवर्णनिरूपणम् ।
 पातालनरकाख्यानं समुद्रमग्निरूपणम् ॥
 सूर्यादिकारणकथनं पृथग्वक्त्रसंयुतम् ।
 चरितं भरतस्याथ मुक्तिमार्गनिर्देशनम् ॥
 निदाचक्षुस्तु संवादो द्वितीयोऽयं कदाचित् ।
 तृतीयोऽंशं—
 मन्वन्तरममाख्यानं वेदव्यासावतारकम् ।
 नरकोद्धारकं कर्म गदितञ्च ततः पञ्चमं ॥
 सगरसौर्वर्णवादि सर्वधर्मनिरूपणम् ।
 ग्राहकस्य तथोद्दिष्टं वर्णाश्रमनिबन्धनम् ॥
 सदाचारस्य कथितो मायासोदकथा ततः ।
 हतोर्योऽयोऽयमुदितः सर्वपापप्रवाशनः ॥
 चतुर्थोऽंशं—
 सूर्यवंशकथापुण्या भोमयंशानुकीर्तनम् ।
 चतुर्थोऽंगी मुनिश्चैव नानाराजकथाचितम् ॥
 पञ्चमोऽंशं—
 कृष्णावतारमंत्रांशं गोकुलीयकथा ततः ।
 पूतनादिवधो वाक्यं कौमारोऽद्यादिर्षमम् ॥
 कौशेरी कंसहननं मायुरचरितं तथा ।
 ततस्तु योवने प्रोक्ता सांताहारवर्णनाम्ना ॥
 सर्वदं त्यज्यो यत्र विवाहाश्च पृथग्विधाः ।
 यत्रस्थित्वा लग्नायः कृष्णयोगेश्वरेश्वरः ॥
 भूमारक्षणं चलो परस्वहनादिभिः ।
 चंष्टावक्रोपनाख्यानं पञ्चमोऽयं हतोरितः ॥

- (१) बराहहस्तसुतामयमिहय बराहः ।
 भवप्रादुर्भावनिर्दिष्टोऽहं चैव निर्दिष्टः ॥
 नरोरिन्द्रिगिवाहं तत्रप्राज्ञं विदुषां ॥”

(मत्स्य)

वर्णनम्—

“कमिजं चरितं प्रोक्तं चातुर्विध्यं मयस्य च ।
 ब्रह्मज्ञानममुद्देशः साण्डिल्यस्य निरूपितः ॥
 केशिध्वजं चैव यत्रोऽयं परिकीर्तितः ॥
 उत्तरभागं—
 चतुर्धरसु मूलेन ग्रीनकादिभिराटरात् ।
 पृष्ठेऽन्योदिताः शम्भुदिव्यधर्मोत्तराङ्गाः ॥
 नानाधर्मकथाः पुण्या प्रतानि निधमाः यमाः ।
 धर्मशास्त्रं चार्थशास्त्रं वेदात्मं ज्योतिषं तथा ॥
 वंशाख्यानप्रकारणान् स्तोत्राणि मत्तयज्ञया ।
 नानाविद्याभ्यासाः प्रोक्ताः सर्वलोकापकारकाः ॥
 एतद्विष्णुपुराणं वै सर्वशास्त्राणां सङ्ग्रहं ॥

अर्थात्—कै वत्त । सुगो, मैं तुमने यह सर्वपापहर
 वयोविंशतिमहस्य श्लोकपूर्ण वैष्णवं महापुराण कहता
 हूँ । प्राचीनकालमें मत्स्यपुराणमें इसके प्रादिभागमें
 भैत्रेयके निरुद्ध पुराणको अवतारिकाको हः पद्योंमें
 निर्दिष्ट किया था ।

प्रादिकारण, सृष्टि, देवादिको उत्पत्ति, समुद्रमथन
 और द्वादाहिका उत्पत्ति, ध्रुव और पृथुचरित, प्रचेताका
 पाख्यान, प्रह्लादकथा और पृथक् पृथक् राज्या-
 धिकारवृत्तान्त, ये सभी प्रथमांशमें उक्त हुए हैं ।

प्रियव्रताख्यान, दोष-भोर वर्णन निरूपण, पाताल और
 नरकाख्यान, मत्तमग्निरूपण, पृथक् पृथक् सत्त्वयुक्त
 सूर्यादिका चारहवन, भरतचरित, मुक्तिमार्गनिर्देशन
 और प्रोक्तस्तुका संवाद, द्वितीयोऽंशमें यही सब उद्धृत
 हुए हैं ।

मन्वन्तराख्यान, वेदव्यासका अवतार, नरकोद्धारक
 कर्म, इसके बाद सगर और सोर्वर्णवादमें सर्वधर्मका
 निरूपण, वर्णाश्रमनिबन्धनमें ग्राहकस्यनिर्देश, सदाचार
 और मायासोदकथा, इन सबका अर्थ तृतीयोऽंशमें है ।
 यह अर्थ सचपापनाशक माना गया है । हे सुनिश्चिष्ट ।
 सूर्यवंशको पवित्र कथा और भोमयंशका पद्यकीर्तन
 तथा नाना प्रकारके राजाओंका उत्पत्ति मो हय चतु-
 र्थांशमें वर्णित हुआ है ।

प्रथमतः कृष्णावतारविषयक प्रश्न, पोलि गोकुलीय
 कथा, वाण्यकालमें पूतना प्रभृतिका वध, कौमारमें पचा-
 सुरादिको हत्या, कैशेरीमें कंसविनाश और मायुरचरित,

योगमें दारकापुरीकृत मोना, सर्वदेवत्वध, पृथक् पृथक् प्रहारका विचार, दारकापुरीमें रह कर कृष्ण के लिये गन्धमादि द्वारा भूमादरव्य-कारण और पटा-मकीय पाण्ड्यान आदि पञ्चम अंगमें विहित हुए हैं।

कनिष्ठातवरित, सप्तमी चतुर्विध चवथ्या एवं कोशिकजने माय धाण्डिकाका ब्रह्मज्ञान-मनुद्गम इत्यादि पञ्चांगमें परिकीर्तित हुए हैं।

अनन्तर अतगोनकादिकष्टक यन्त्रपुष्पक जिज्ञासित हो कर विष्णुधर्मोत्तर नामक परम पवित्र नामा प्रकारको धर्म कथा, व्रत, नियम, यम, धर्म शास्त्र, धर्म-शास्त्र, वेदाङ्ग, ज्योतिष, वेदाङ्गान, स्तोत्र, मन्त्र और सर्वलोकप्राप्तकारक नामाविध विद्या आदिका वर्णन इस अंगमें कीर्तित हुआ है।

मध्यमें विष्णु पुराणके जो सब लक्षण निर्दिष्ट हुए हैं प्रचलित विष्णुपुराणमें उनका समावेश नहीं है। यद्यपि वराहकल्पप्रसङ्गके बाद ही (१३।२५) यह पुराण आरम्भ हुआ है।

अनन्तर नारदपुराणमें जो विषयगुह्यक दिए गये हैं, वे भी यथायथ वर्णित देखे जाते हैं। किन्तु प्रधान गो-माल इलोक में कर २५००० के मध्य अष्टादश विनमनने केवल ७००० इलोक पाये हैं। अतः विष्णुधर्मोत्तरको विष्णुपुराणका उत्तर भाग नहीं माना है। इसीसे बोध होता है, कि इतने कम इलोक हुए हैं। किन्तु अद्भुत गारद पुराणीय नथन तथा पल्लवद्वयीकी उक्ति पढ़नेसे विष्णुधर्मोत्तरको विष्णुपुराणका उत्तरभाग माननेमें कोई आपत्ति नहीं रहती। आजकलके विष्णु-पुराण और विष्णुधर्मोत्तरको एकत्र करनेसे १५००० से अधिक इलोक नहीं मिलते। इस पर भी व्याधि ७००० इलोकोंकी कमी रह जाती है। इतने इलोक कहा गये, इसका निर्णय करना हम लोगोंकी सुदूर बुद्धिसे बाहर है। परन्तु आजकलका प्रचलित विष्णुधर्मोत्तर सम्पूर्ण पत्रके जेसा प्रतीत नहीं होता। नारदपुराणमें जो लक्षण निर्दिष्ट हुए हैं, उसके भी सभी लक्षण आज-कलके विष्णुधर्मोत्तरमें नहीं मिलते। जिस विष्णुधर्मोत्तरका ज्योतिषांग से कर ब्रह्मगुप्ते ब्रह्मसिद्धान्तकी रचना की है। नारदपुराणमें उसका परिचय रहने पर भी आज-

कलके विष्णुधर्मोत्तरमें उसके अधिकारका समावेश है।

अष्टादश विनमन और उनके अनुवर्ती पञ्च-कुमारदत्त महाभयका कहना है, कि इस पुराणमें बौद्ध और जैनधर्मोंका कोई स्थान नहीं है। बौद्धधर्मका यदि उस समय प्रचार नहीं रहता, तो ऐसे विद्वत् भावका समावेश नहीं होता। बौद्ध लोग १२वीं शताब्दी तक भारतवर्ष के किसी स्थानमें निवसित नहीं थे। इस विषयसे उसके कुछ पहले विष्णुपुराणका सङ्गति होना संभव है।

आदि वैष्णुपुराण धर्म मंत्रके रचनाकालमें प्रचलित था, यह पहले भी कहा जा चुका है। किन्तु आजकलके प्रचलित विष्णुपुराणमें जैन और बौद्धधर्म रहनेके कारण उसे किसी हालतमें उस धर्म-सूत्रगुह्यका पत्र नहीं मान सकते। परन्तु, अष्टादश विनमनप्रसङ्ग पण्डितोंने विष्णुपुराणका जो काल निर्दिष्ट किया है, उसे भी ठीक नहीं मान सकते। कारण, १२८ ई० में प्रसिद्ध आर्यज्योतिर्विद् ब्रह्मगुप्ते विष्णुधर्मोत्तरके आधार पर ब्रह्मसिद्धान्तकी रचना की है। एतद्विषय भविष्यराज-वर्णनको लगव गुप्त और तत्कालमयिक राजाओंका प्रसङ्ग रहनेके कारण उसे १३वीं शताब्दीके पहलेकी रचना नहीं कह सकते। फिर अष्टादश विनमनको उल्लेख ऊपर निर्भर करके उसे १२वीं वा उसके कुछ पूर्ववर्तीकालकी रचना भी नहीं मान सकते। क्योंकि, बौद्ध और जैनका प्रभाव ईसाजमानके बहुत पहलेसे ही प्रचलित होता है। अतएव भविष्यराज-वर्णन और ब्रह्मगुह्यकालके विष्णुधर्मोत्तरका उल्लेख रहनेसे हम लोग, विष्णुपुराणमें १३वीं शताब्दीके किसी समय वर्तमान आकार धारण किया होगा, ऐसा कह सकते हैं।

कन्यावर्णनाद्वय, कलियुगपाठ्याग, कृष्ण-लम्बाटमीव्रतकथा, जहमरताप्याग, देवोत्पत्ति, महादेव-स्तोत्र, सप्तोत्पत्ति, विष्णुपूजन, विष्णुगतनामस्तोत्र, विश्वस्तोत्र, समस्तलोक, सूर्यस्तोत्र, इत्यादि नामधेय छोटे छोटे अन्य विष्णुपुराणके अन्तर्गत माने जाते हैं। किन्तु ये सब अन्य आधुनिक कालके गने हुए हैं, ऐसा मान म पड़ता है।

हेमाद्रि चौर इत्यतिरत्नावलीकारने सहस्रिण-
पुराणमे श्लोक उद्धृत किये हैं । किन्तु यह पुराण अभी
नहीं मिलता ।

विष्णुपुराणकी बहुसंख्यक टीका देखी जाती हैं
जिनमेंसे चित्तसप्तसुनि, जगन्नाथपाठक, तृप्तिचमट,
रत्नगर्भ, विष्णुचिन्ति, ओधरस्वामी चौर सूर्यकरमिय-
की टीका उल्लेखयोग्य है ।

४र्थ श्रेय वा वायु ।

किमीका कहना है, कि श्रेय चौर वायुपुराण एक
है । फिर कोई कहते हैं, कि ये दोनों भिन्न पुराण हैं ।
विष्णु, पद्म, मार्कण्डेय, कोर्म, वराह, लिङ्ग, ब्रह्म-
वैवर्त, भागवत चौर एकन्दपुराणमें 'शिव' तथा मन्त्र,
नारद चौर देवीभागवतमें श्रेयकी जगद 'वायव्य'का
एवं मुद्गलपुराणमें शिव चौर वायु दोनोंका उल्लेख है ।
वायुपुराणीय विद्यासागराचार्यमें लिखा है—

“पुराणं यश्मयोक्तं हि चतुर्थं वायुमज्ञितम् ।
चतुर्विंशतिसाहस्रं शिवमाहात्म्यं संप्रतम् ॥
महिमाम् शिवस्याह पूर्वं पाराशरः पुरा ।
अपराहं तु देवाया माहात्म्यमनुलं सुते ॥
पुराणेषु त्तमं प्राहुः पुराणं वायुनोदितम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण शिवलोकमवाप्नुयात् ।
यथाशिवस्तथा श्रेयं पुराणं वायुनोदितम् ।
शिवभक्तिसमायोगात्मानन्दयविभूषितम् ॥”

चतुर्थं पुराणका नाम वायु है । इसमें २४०००
श्लोक चौर शिवमाहात्म्य हैं । पाराशरसुत साधुदेवायनने
इसके पूर्वभागमें शिवको महिमा चौर अपराहंमें वा उत्तर
भागमें चतुर्नगीश देवाका माहात्म्य प्रकाशित किया था ।
सभी पुराणोंमें यह वायुश्लोक पुराण श्रेष्ठ माना जाता
है । इसको कथा सुननेमें जो शिवलोककी प्राप्ति होती
है । शिव चौर वायुश्लोक शिवपुराण एक है । शिवभक्ति-
समायोगके कारण ही नाम पड़े हैं । विद्यासागराचार्यके
आश्रममें भी ऐसा ही कहा गया है—

“चतुर्थं वायुना श्लोकं वायव्योद्यमिति स्यूतम् ।
शिवभक्तिसमायोगात् श्रेयं तच्चापराधयः ॥
चतुर्विंशति मस्याहं सहस्राणि तु श्लोकानि ।
चतुर्विंशति म्याहं श्लोकानि ॥”

विद्याश्रमके सप्त यचनमें जाना जाता है, कि वायु
चौर शिवपुराण एक ही है । यह पूर्व चौर उत्तरभाग
तथा चार पर्वोंमें विभक्त है । नारदपुराणमें वायुपुराण-
का विषयातुक्रम इस प्रकार दिया गया है—

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पुराणं वायव्योद्यमम् ।
यस्मिन् श्रुते लभेदाम् रुद्रस्य परमात्मनः ॥
चतुर्विंशति साहस्रं तत् पुराणं प्रकीर्त्तितम् ।
श्लोकस्य प्रमत्तं धर्माप्युदाह माततः ॥
नृवायव्योद्यमदितं भागवद्वसमाचितम् ॥
(पूर्वभागमें)
स्वर्गादिनक्षत्रं यत् प्रोक्तमिन्द्रविस्तारम् ।
मन्त्रस्तरेषु वंशाद्यं गद्यां ये यत् कोर्त्तितम् ॥
गयासुरस्य हननं दिव्यतया यत् कोर्त्तितम् ॥
सामानाद्येव साहस्रस्य साधयित्वा कलापिकम् ॥
दानधर्मा राजधर्मा विस्तारैर्नोदितारुतथा ॥
भूपातालजकुल्योमचारिणां यत् निषेधः ।
मनादिनाद्यपूर्वादिषु विभाग समुदाहृतः ॥
(सदृशभागमें)
उत्तरं तस्य भागं तु नमंदातीत्यं वचनम् ।
शिवस्य संहितास्या वै विस्तरेण सुनोमर ॥
यो देवः सर्वदेवानां दुर्गतिं यः समाततः ।
यत् सर्वभूतानां यस्यास्तोत्रे तिष्ठति मन्तव्यम् ॥
इदं ब्रह्मा हरिदिं साक्षाद्येदं परोक्षः ।
इदं ब्रह्म निराहारं वैवर्त्यं नमंदात्मनः ।
ध्रुवं लोकहितायार्थं शिवेन स्मर्यते रतः ।
शक्तिः कापि सरिद्रूपा देवैर्यमवतारिता ॥
ये वसन्त्यन्तरे कृते रुद्रस्यानुचरा हि ते ।
वसन्ति वाय्वस्तोत्रे ये लोकं ते याप्ति वैष्णवम् ॥
श्रीहरेरजस्रस्य वायव्योद्यमं भागम् ।
मद्भासः पञ्च च विंशत्येतां पावनमगमा ॥
दशैकमुत्तरे तीरे त्रयोविंशति दक्षिणे ।
पञ्चविंशति भासः प्रोक्ता देवाभागरुद्रस्य ॥
सद्भूतैः सहितान्येव देवास्तोत्रेऽपि यत् ।
चतुर्गुणानि तीर्थानि प्रसिद्धानि च मन्ति हि ॥
पट्टितोऽनृक्षस्य पट्टिकोऽपि सुनोमर ।
सन्ति चास्यामि देवादास्तोरुगुणे पदे पदे ॥
संहितेयं महापुण्या शिवस्य परमात्मनः ।
नमदोचरितं यत् वायुना परिकीर्त्तितम् ॥”

हे विप्र । मैं तुममें वायव्य पुराण कहता हूँ,
सुनो । इसमें सुननेमें परमात्मा रुद्रका लोक प्राप्त होता
है । इस पुराणमें चौबीस हजार श्लोक हैं । मन्त-

अथमङ्गले वायुने यह पुराण कहा है। वायुपुराण दो भागमें विभक्त है। इसके पूर्व भागमें सर्गादि मन्त्र, मन्त्रार और राजादीका संग्रह विशेषरूपसे कीर्तित हुआ है। पौष्टि गणानुविभाग, सभी मामोंका साक्षात्स्य, माघ सामका फलाधिक्य, दानधर्म, राजधर्म और भूमि, पातान, दिक् तथा आकाश चारियोंका नियम एवं यज्ञादिका नियम वर्णित है।

हे सुनीयर ! इसके उत्तरभागमें नर्मदातीर्थ-वर्णन, गिरमहितास्थान और जो देव सर्व देवके दुर्विजय तथा मनातन हैं, वे सब प्रकारसे जिनके किनारे सर्वदा विराजमान हैं एवं जिस नर्मदाका कल साक्षात् मन्त्रा, विष्णु, शिव और मोक्षरूप हैं, उसका वर्णन कीर्तित हुआ है। नियम चोलोक्तितके निये भगवान् गङ्गने अपने शरीरसे कर्तृरूपमें जिसो एक गतिस्वरूप इस देवाको अवतारित किया है। जो इसकी उत्तरी किनारे पर बास करते हैं, उन्हें विष्णु-लोक प्राप्त होता है। कोटारिखरने जो कर पश्चिम भागर पर्यन्त नदीके पश्चिम पापनाशन सङ्गम हैं। उत्तरी किनारे ग्यारह और दक्षिणी किनारे तैंस सङ्गम हैं। उनमेंसे यही देवाभागरसङ्गम पौतौमर्वा सङ्गम कहलाता है। देवाके दोनों किनारे सङ्गमसह प्रसिद्ध चार सो तीर्थ विराजमान हैं। हे सुनीयर ! देवाके दोनों किनारे पद पद पर और भी साठ हजार तीर्थ विद्यमान हैं। महात्मा शिवकी यह महापुण्यमहिता है। इनमें वायुकर्णक नर्मदाचरित कीर्तित हुआ है।

नारदीयपुराणमें जो वायुपुराणकी पञ्चमखिला देखी जाती है, उसमें माघ देवाष्टमवर्तित वायु या शैवका विजय पाव्यय नहीं है। केवल इतना ही है, कि देवामें गयामाहात्म्यका प्रसङ्ग देखनेमें नहीं आता है। फिर नारदपुराणका कहना है, कि पूर्व भाग से गयामाहात्म्य है। किन्तु दुर्भाग्यवशसे हम स्वतन्त्र आकारमें ही वायुपुराणय गयामाहात्म्य और देवा या नर्मदा-माहात्म्य पाते हैं। परन्तु एकत्र देवामाहात्म्यवर्तित पञ्चपर्वोक्त वायुपुराणका तुल्यतन तब भी नहीं मिलता।

कलकत्ताको एमियाटिक सोसाइटीसे एक वायु-

पुराण नामका पत्र निकला है (१) किन्तु हममें से चार पत्र नहीं हैं अथवा पूर्व भागमें गया माहात्म्यकी वर्णना नहीं है। सम्पादकने अपने, दृष्टान्ते इनके अधेमें गयामाहात्म्य जोड़ दिया है। पतावा इसके 'गिरमहिता' वा देवामाहात्म्यका कोई जिक्र ही नहीं है। बम्बईनगर और कलकत्तामें शिवपुराण सुद्धित हुआ है। दुर्भाग्यक्रमसे हमने उसमें भी पूर्वोत्तर भाग और चार पत्र नहीं पाये। इस शिवपुराणकी वायुमहितामें लिखा है—

“तत्र गेव तुरीयं यच्छास्त्रं सर्वार्थसाधकम्।
अथलक्षप्रमाणं तद्व्यस्तं दादम संहितम् ॥ ४१ ॥
निर्मितं तच्छिष्येनैव तत्र धर्मः प्रतिष्ठितः।
तदुक्तेनैव धर्मेण गेवाद्योवर्षिका नराः ॥
एकजन्मनि मुच्यन्ते प्रसादात्, परमेष्ठिनः।
तस्माद्भूमिनि भन्विच्छन् शिवमेव समाश्रयेत्।
तमाश्रित्यैव देवानामपि मुक्तिर्वाभ्यासः।
यदिदं गेवमास्थानं पुराणं वेदमस्मिन् ॥
तस्य भेदान् समासेन श्रुतौ मे निबोधत।
विद्योत्तरं तथा रोद्धं येनायकमनुत्तमम् ॥
शोभं माटपुराणस्य रुद्धेकादमकं तथा।
कालसंयतवदस्य कोटिरुद्धाख्यमेव च ॥
सहस्रकोटोरुद्धाख्यं पाव्योयं ततः परम्।
धर्मसंज्ञं पुराणस्यैव वेदादममहिताः ॥ ४७ ॥
विद्योत्तरं दमसाहस्रमुदितं पत्रमवस्थाय।
रोद्धं येनायकस्यो माटकाख्यं ततः परम् ॥
प्रत्येकमटकाख्यं त्रयोदश सहस्रकम्।
रुद्धेकादमकाख्यं यत् कोटिकं पटसहस्रकम् ॥
यत रुद्धं दमसाख्यं कोटिरुद्धं तत्तद्वचः।
सहस्रकोटोरुद्धाख्यं दमसाहस्रकं तथा ॥
यदेतद्वायुना प्रोक्तं पञ्च भास्त्रमोदितम्।
तथा पञ्च सहस्रम् यदेतदमनाममम् ॥
तदेवं लक्षमुदितं गेवमाहात्म्यमहिता ॥ ५५ ॥
(वायुमं १ च०)

पुराणोंमें शैवपुराण शीघ्रा है। यह शायं वा गिरमहितासूचक तथा सर्वार्थसाधक है। इसकी अथलक्षप्रमाण साक्ष है और यह नारद संहिताकी विभक्त है। गेवधर्म प्रकाशार्थ शिव द्वारा यह रचा गया है। तदुक्त धर्मप्रभावसे देवर्षिक गेवगण एक

(१) मन्मथपुराणके विचारप्रयोगों इसकी विस्तृत प्रमा-
लोचना की गई है।

दो जन्ममें सुक्ति लाभ कर सकते हैं। वेदसंश्रित शैव नामका जो पुराण है, वह विद्येश्वर, रोद्र, विनायक, भोम, मातृ, एकादश-रुद्र, केशव, गतद्व, कोटिरुद्र, महेश्वर कोटिरुद्र, वायव्येय चोर धर्म इन बारह संहिताओंमें विभक्त है। इनके मध्य—

विद्येश्वरसंहिता	ग्रन्थसंख्या	१०००
रोद्रसंहिता	"	८०००
विनायकसंहिता	"	८०००
भोमसंहिता	"	८०००
मातृसंहिता	"	८०००
रुद्रकादशसंहिता	"	११०००
केशवसंहिता	"	१०००
गतद्वसंहिता	"	१००००
कोटिरुद्रसंहिता	"	१००००
महेश्वरकोटिरुद्रसंहिता	"	१००००
वायव्योक्तसंहिता	"	४०००
धर्मसंहिता	"	५०००

मोठ ग्रन्थसंख्या १०००००

ऊपर जो १२ बारह संहिताओंका उल्लेख किया गया, वह बारह संहिताओंका शिवपुराण प्रभो प्रचलित नहीं है। रोद्रसंहिता, विनायकसंहिता, मातृसंहिता और चार प्रकारकी रुद्रसंहिता ये सब संहिताएँ सुद्धि शिवपुराणमें नहीं है। बरबरेसे का शिवपुराण सुद्धि हुआ है, उसमें विद्येश्वर, भोम या भान, केशव, वायव्येय चोर धर्म आदि संहिताएँ देखी जाती हैं। यथाया इनके समस्तकुमार नामक एक चोर चरितरिक्त संहिता है। नारदपुराणमें जो उक्त रुद्रसंहिताएँ हैं, मातृसंहिता है, कि वे ही शिवसंहिता नामसे प्रसिद्ध हुई हैं। नर्मदासाधुस्य, नहीं तब सम्भव है, उस किसी संहिताके समानता होगा। साधुसाधुस्य चोर साधुसाधुस्य सततक पाया जाता है, किसी शिव पुराणके मध्य नहीं है।

प्रचलित शिवपुराणका विषयानुक्रम इस प्रकार है—

ज्ञानसंहिता ।

१ मूर्तके प्रति कथियाँ भा मध्य, मन्त्रागारद भंवादेन श्रुतिनिर्दिष्ट मादुर्भावकथन, १ योद्धारमादुर्भाव, शिव-

का मध्यमयत्न, मन्त्रां चोर श्रुतिके साथ शिवकी चरित प्रशुक्ति, ४ शिवसमाद, श्रुतिरुद्र शिवका स्तव, मन्त्रा चोर श्रुतिके प्रति शिवका वरदान, ५ मन्त्रा चोर श्रुतिके चंस्वररुद्ररूप धारयता कारणभेद, मन्त्राण्डको उत्पत्ति, ६ श्रुतिनिर्दिष्टके लिये कथियाँको श्रुति, ७ मन्त्रिणों दाचायचोका देवत्यागकथन, शिवपूजा विधान, ८ पावसागमत्यादि द्वारा शिवपूजाविधि, ९ तारक उपास्यानमें मन्त्राके समोप देवताओंका गमन, १० मन्त्रा चोर देवताओंका चंवाट, शिवकी तपश्चर्या, ११ मदनमभ्रम चोर पावतीका प्रत्यावर्तन, १२ पार्वती तपस्या, १३ पार्वतीको कठोर तपश्चर्यासे उसमदेवता चोर कथियाँका शिवके समोप गमन एवं शिवका मन्त्राचारो-वे ममें पावतीके समोप आगमन चोर पार्वतीके प्रति शिवकी उक्ति, १४ पार्वतीमंवाट, १५ शिवविवाह-का चयोज, १६ विवाह-व्यापारमें वर तथा उत्तरे सम-यातियोंका हिमालय नगरमें गमन, १७ शिवका विरूप देख कर भेनकाका खेद चोर पार्वतीके प्रति श्रान्तप-देय, १८ पार्वतीका परिचय, कार्त्तिकका जन्म, उसका दिवसेनापतित्व, तारकवध, २० त्रिपुरनागके लिये श्रुति-का उपायनिर्धारण, २१ श्रुतिरुद्र सुष्टिगदमंवाटका मोहउत्पादन, २२ श्रुतिप्रभृति देवताओंका श्रितस्तव, २३ श्रुतिरुद्रा विनिर्मित देवस्य रथ पर चारोहण करके शिवका त्रिपुरनाग, देवताओंका शिवस्तव चोर देवताओंको वरदान, २४ शिवकत्तक निद्रावर्तन-विशिकथन, २५ देवताओंके प्रति मन्त्राका शिवपूजा-विशिकथन, २६ पार्वतीका कत्तक शिवपूजाविधि, २७ योद्धारोपचारसे शिवपूजाकथन, २८ धान्यादि द्वारा शिवपूजाका कथविशेषकथन, २९ ज्ञानकोके भावसे शिवपूजाके केतकोकुसुमशय्यपर निषेध चोर राम-चन्द्रिचरण, ३१ ज्ञानच चोर चन्द्रिचरणके प्रति नारदका श्राप, ३२ श्रुतिपरित, ३३ श्रुतिपरित, शिव-गणको पराजय चोर शिवकत्तक श्रुतिगका गिरच्छेदन, ३४ श्रुतिगको गिरच्छेदवाता सुन कर देवोंका क्रोध, शिवकत्तक श्रुतिगका ओवनदान चोर माधवश्रुतिग, ३५ 'मे पहले विवाह कथन' पर से कर श्रुतिग चोर कर्त्तिकका विवाद तथा श्रुतिगको जन्म, ३६ श्रुतिगका

विनाशं मुनयः शान्तिं कर्त्तुं कथां श्रोतुं च तेषां पर-
ममनः, १० इन्द्राक्षधाराय साहाय्यवर्षेण, १८ प्रधान-
प्रधानं ज्योतिर्निष्ठां चोरं उपनिष्ठां नाम तथा श्याम-
या साहाय्यवर्षेण, १८ नन्दिश्रेष्ठोद्यं साहाय्य-
प्रमदः गोवत्सवर्षाट, ४० नन्दिश्रेष्ठोद्यं साहाय्य-
४१ उत्तमनिष्ठां प्रस्तावने पञ्चोत्तरमाहाय्यवर्षेण,
४२ ज्योतिर्निष्ठां मित्रं पन्थाय निष्ठां का इमिहानवर्षेण
एवं शिवनिष्ठां साहाय्यवर्षेण, ४३ चन्द्रशेखरवर्षेण
प्रमदः पञ्चमसद्वर्षाट्कथन, ४४ शिवशक्तिं प्र-
मदः हो ज्ञानिने दधोविस्तृतयद्वा द्वापकथन, ४५ सोम-
शेखरवर्षाट्कथनं ज्योतिर्निष्ठां चोत्पत्ति, ४६ महाभार-
तयोर्योद्धाशेखरका प्रादुर्भाव, ४७ कटारंशरौद्रात्म, ४८
भोगेश्वर प्रादुर्भावकथा, ४८ विजेश्वरमाहात्म्य-
पञ्चमोत्तरादिकथा, ५० गोरुके प्रति मित्रका आगाधेय-
माहात्म्यकात्तं, ५१ कामोदं मण्यमात्र मोक्षमात्रिका
विवरण, ५२ गौतमतत्त्वार्थ, गौतमचोत्तमाहात्म्यकथन,
५३ गौतमचोत्तमार्थं विमोक्षी गच्छं गुरुका, गौतमचरित,
५४ गौतमवर्षाट्कथन, गङ्गास्निग्ध, कुमावर्षाट्कथन, त्रयम्बक-
माहात्म्य, ५५ राघवपदवर्षाट्कथन, गोवत्सवर्षाट्कथन, ५६
नागेशमाहात्म्य, ५७ रामेश्वरमाहात्म्य, ५८ सुशेखर-
मियमाहात्म्य, ५८ शराष्टकवर्षेण निष्ठां का हरिण्युत्पत्ति
योरप्रवृत्ताद्वर्षाट्कथन, ६० प्रह्लादचरित्रं प्रह्लादयोर-
हरिण्युत्पत्तिवर्षाट्कथन, ६१ हरिण्युत्पत्तिवर्षाट्कथन, ६२
चरित, ६२ नन्दश्वरमाहात्म्य, ६३ पाण्डवगणकथनं
दुर्वासका मगोवविधान, ६४ व्यासको पाप्माने चतुर्न-
की शत्रुकोषं पर्वतं पर तपश्चोरा चोर इन्द्रममागम, ६५
गिर्यातुर्नक्षत्रं कृत्वा कृत्वा मृत्-देव्यवध, ६६ वायु-
मिहायं चतुर्नक्षत्रं भाग निज श्रुतका विद्याट्कथन सुन-
मित्रका मित्रकथने वर्षा गमन, ६७ मित्रकथने मित्रके
साय चतुर्नक्षत्रा संपाद, चतुर्नक्षत्रे प्रति मित्रका वरदान,
६८ पार्ष्णि-मित्रपूजनविधि, ६८ निम्नश्वरमाहात्म्य,
६९ मित्र कथनं विष्णुको सुदर्शनचक्रदान, ७१
मित्रका महत्तमः, ७२ विष्णुके प्रति मित्रका मित्रशक्ति-
प्रकरण, ७३ मित्रशक्तिप्रत उद्यापनविधि, ७४
व्याधकृत्वा मित्र-विश्वको प्रमं, ७५ मित्रशक्ति-
प्रतफलं मुनयः महापापो बेटनिधि विप्रकी मुक्ति, ७६

चार प्रकारकी मुक्ति चोर सद्गुणचरित्रकथन, ७७ मित्र-
कथनं विष्णु पादि देवताधोका उत्पत्तिप्रकरण, ७८
मित्रभक्तवत्सलमुनिवत्स साधकसद्गुण साधनकथनप्रत्य-
कथन, शान्तसंहितासमाप्ति ।

विश्वेश्वरसंहिता ।

१ सायमाधन-मित्रकथन, २ मन्मादिराष्टककथन,
३ श्वश्वर-मित्रकथनं मित्रपूजनकथनसाधनकथन,
४ सद्गुण चोर विष्णुको युद्धं प्रवृत्त देव कर देवताधोका
मित्रके मगोरा भागमन, तैजोमय मित्रनिष्ठां प्रादुर्भाव,
५ देव कर सद्गुण चोर विष्णुको मित्रादमाप्ति, ६
मित्रकथनं मन्मादिराष्टक सद्गुणका मित्रकथन, सद्गुणके
प्रति मित्रका चतुर्नक्षत्र, ७ सद्गुण चोर विष्णुको मित्रपूजा,
८ मित्रके प्रति मित्रका निष्ठापूजाप्रकरणकथन, ९ सद्गुण
चोर विष्णुके प्रति मित्रका सुदर्शन चक्रकथनप्रवृत्त
प्रवृत्तिवत्सलकथन, १० निष्ठाविधान, तत्पनिष्ठाविधि
चोर मुक्तिपूजाप्रकारकथन, १० मित्रचैत्रतोयं नैवनादि
माहात्म्य, ११ विप्रगणका महाचार, चोर निष्ठाकथनं
विषयकथन, १२ पञ्चमहावक्त्रकथन, वासरविषयं
देवपूजाका कर्त्तव्यताविधान, १३ देवविषयं पूजा-
फलकथन, १४ पार्ष्णिमित्रमापूजाविधि, १५ प्रवृ-
त्तिनिष्ठापूजाचोर मित्रभक्तका पूजाकथन, तत्पन
चोर मोक्षका स्वप्नकथन, निष्ठाकथन, विश्वेश्वर-
संहितासमाप्ति ।

वैष्णवसंहिता ।

१ सायमाधनं मुनिवीरं प्रति सुतका प्रवृत्ति कथना-
वर्षा, २ कर्त्तव्यमित्रके प्रति देशे हो प्रवृत्तिवादि
जिज्ञासा, ३ प्रवृत्तिवादि चोर मन्मादिराष्टककथन, प्रवृ-
त्तिवादि प्रकाशक थन्निष्ठनपरिपाटी, ४ प्रवृत्तिवादि, विविध
पूजन चोर श्यामाश्वरविधि, ६ श्वश्वर चोर सुशोदि-
पूजा, तदन्तर मण्यमित्रपूजाविधि, ७ सुशोके प्रति
वामदेवके प्रवृत्तिवादि मन्माजिज्ञासा, ८ वामदेव मुनिके
प्रति सुशोका प्रवृत्तिवादिनादि-विधान, ९ सुशोके उपदिष्ट
मार्गं प्रवृत्तिवादिना चोर मन्मादिराष्टकविधि, १० पञ्च-

० 'विष्णु', 'विष्णु' देवा नामान्तर नी पावा
काया है ।

विधाय परिधानं चोरं विवृतप्रणयार्थं कलातरवादि
विवृतिः, ११ योगपट्टादिकथनं, १२ यतिथीका चन्मेषेष्टि-
कम गतिकथनं, कोलायक-हिताममामि ।

सनत्कुमारसंहिता ।

१ नेमिपारण्यं सनत्कुमारका चागमनं, व्यासादि-
मुनिकां समागमं, ऋषियोका शिवपूजाविषयकं प्रश्नं,
२ पृथिव्यादिका मंथानक्षमादिकथनं, ३ प्रकृतिने-
महटादिक्रममेकगच्छति, महदोपवर्णनं, ४ चण्डोक्त-
वर्णनं, नरवादि विवृतिः, ५ ऊर्ध्वनोकयोगमाणाव्यवर्णनं,
६ रुद्रमाहात्म्यं, विरहलक्ष्मणं पञ्चमूर्तिवर्णनं, ७
रुद्रकीर्तनफलं, रुद्रका स्तवः, ८ सनत्कुमार-चरिता-
व्याख्यानं उन्मत्ता परमं सिद्धिप्राप्तिकथनं, ९ सनत्कुमारका
शिवसमर्थनादिकथनं, १० ब्रह्मलोकं, विष्णुलोकं चोर-
रुद्रलोकं निरूपणं, ११ रुद्रस्थान-भक्तकथनं, १२ सर्व-
श्रेष्ठं रुद्रस्थानकथनं, १३ विभोषणमहेश्वरसंवादः, १४
निद्रपूजा चोरं शिवनामचकीर्तनफलकथनं, १५ स्थान-
माहात्म्यकथनं, १६ तीर्थोदिकथनं, १७ पूर्वोक्त्यागमं
कथितं तोषमाहारमर, १८ व्यासकं प्रश्नं परं ब्रह्मा, विष्णु-
चोरं महेश्वर इति तोषोर्ध्वं कोनं प्रधानं हि, इति विषयं
सनत्कुमारका उत्तरकथनं, शिवसिद्धका माहात्म्यादि-
कथनं, १९ सिद्धस्थापनका फलं, २० शिवसतोपत्तर-
पूजाविधिः, २१ शिवदेव पुण्यादि निरूपणं, २२ विवृत-
रूपं सप्तमं चन्द्रमणिविकथनं, २३ सचिपं शिव-
प्राप्तिकरं धर्मं का उपदेष्टुं, २४ लक्षणाष्टमोक्तं, २५ चण-
दात्ममाहारमर, दानात्म्यप्रमंसा, २६ विविध धर्मकार्य-
का उपदेष्टुं, २७ विवृतपदं नियमफलकीर्तनं, २८
पार्वतीं प्रदद्यानुसारं शिवका चन्द्रमण्यलधारणं चोर-
विभोजन-कारणकथनं, २९ भक्तप्रमंसा चोरं भक्त-
धारणफलं, ३० निज पूजाफलकथनं, शिवकृतं निज-
जगन्मागवापहेतुनिर्देशः, ३१ शिवविभूतिकथनं, शिव-
प्राप्तिकलाकीर्तनं, ३२ प्रणवोपासनाका फलं चोरं देवता-
कीर्तनं, ३३ सप्तपञ्चाभादिक्रमकथनं, ३४ दुर्गासकं
प्रति शिवका ध्यानयोग-उपदेष्टुं, ३५ क्रिमे ध्यानवर्णनं,
चक्रकं पञ्चमं कागोपासनाविधिः, ३६ वायुमाहिकादि-
निरूपणं, ३७ ध्यानविधि प्रमंसा, ३८ प्राणायामनक्षत्र-
चोरं प्रणव उपपासनाकथनं, ३९ गराकरं सर्वदेवमय-

कोर्तनं, ४० सनत्कुमारकृतं का माहाविस्तारकथनं, ४१
चरणार्थं नीमं वादमे कागीमाहात्म्यं, ४२ शिवानुपपत्ति-
चरित्रेणगुणकका दण्डपाणित्व-कीर्तनं, ४३ माण्डूक्या-
स्थानं, पुत्रमह प्रतापमुकुट राजाका चोद्धारिणर दमनकं
निये कागैपुर चागमनं चोरं चोकार-स्तवः, ४४ विवृत्तर
चोकारिणरको भणना, ४५ चोकारिणरानामा गुण-
वाहनका इतिहासकीर्तनं, ४६ नन्दिशो दुर्गर तपस्या,
४७ नन्दिं प्रति शिवका वरदानं, ४८ महादेवका
स्वरणं चर देवतावांका वनं समाप चागमनं, ४९
शिवको चापावे देवगण कृतं नन्दिशो गाणपायं
भक्तिप्रक, स्तवकथनं, ५० नन्दिशो विवाहः, ५१ गो-
पकृष्णमाहात्म्यकीर्तनं, ५२ त्रिपुरवृत्तं, देवतावांको
स्तुतंते महेश्वरका स्तुतिः, ५३ त्रिपुरनागोपासना, नारदको
मन्त्रणसे मयादिका युवाद्यागं, ५४ त्रिपुरदाहः, ५५
पार्वतीं प्रदद्यानुसारं शिवका विप्रमाहात्म्यवर्णनं, ५६
सनत्कुमारका वाद्यपनयोगकथनं, ५७ देवीव्यत माहो-
विचरणं, ५८ विमलज्वालने दैवपट्टमासि प्रकारं, ५९
शिवस्थितिचक्रकथनं, सनत्कुमारसंहिता-समाप्तिः ।

वायव्योपमंहिता ।

पूर्वभागं—१ महादेवकं प्रसादं लब्धका पुत्रनामं,
वेदादिका ध्यवस्था, पुराणादिका प्रमंसा, २ ऋषियोका
ब्रह्मकं निकटं भवतारं लुप्तं करं ब्रह्मोपयुक्तसंवा-
नेमिपारण्यं गमनं, ३ नेमिपारण्यं का करं वायुके प्रति
कुम्भं प्रयत्तिज्वाला, ४ वाद्यपनत्व, मायास्वरूपवर्णनं,
५ वायुशक्तिं सन्निहन्तं शम्भुका कानन्दपद्मप्रसङ्गं, ६
कालमानकथनं, ७ सचिपं दैवशक्तिं गम्यादि स्तुति-
कथनं, पुष्पाधिष्ठितं प्रकृतं स्तुतिकथनं, ८ ब्रह्म का
वराहकथनं प्रादुर्भावं चोरं जगत्का व्यवस्थापनं, ९
शिवानुपपत्तिं ब्रह्माको जगत्स्तुतिः, ११ ब्रह्मा, विष्णु चोरं
शिवं पतं दुर्गका वगवर्तित्वं, चण्डाको रुद्रोत्पत्तिः,
१२ रुद्रस्तुतिं वादं ब्रह्मकं प्रति स्तुतिं का उपदेष्टुं,
१३ प्रजापतिं निये ब्रह्मकं स्तवने चण्डेगोमरप्रमाद-
नामं, १४ ब्रह्मकं प्रार्थनानुसारं रुद्राष्टकं गति-
रूपिणी स्त्रियोको स्तुतिः, १५ शिवकं वरमे ब्रह्माकृतं
स्वायम्भुवादि दारा मेघं स्तुतिः, १६ दसपञ्चलान्तं
पितरंका दसकं प्रति चमिमाप, सतीदेहव्यागं, १७ दस-

यक्षभञ्जने भित्ति शिवके योरभद्र चोर भद्रकायोको छति,
१८ दसपञ्चमास, १८ शिवके प्रमादसे चोरभद्रकचक्र
विष्णादिको पञ्चम, २० ब्रह्मादिपुन चोरभद्रकचक्र
देवतादिह शिवके समोप पातयन, दसके क्षागमुष्टका
विषयकयन, २१ शुभनिष्ठभक्तके भित्ति गोरोका कोयको
रूपमें पाविर्माण, २२ व्याघ्रके प्रति पावर्त्तोका चतुषष्ट,
२३ देवीका शिवके समोप गमन चोर व्याघ्रका भोम-
नयो नामकरण, २४ देवीके समोप शिवका पत्नि-
योमाःसह विगमपञ्चकयन, २५ शिवके गन्धर्वकयन,
जगतमें तद्वृत्तकोत्तम, २६ महर्षिगोत्रा शिवशरिराशु-
बाद, २० कृष्णके प्रत्यागुसार वायुका सविस्तर शिव-
तत्त्व चोर मूर्तिकारण-ज्ञानोपदेश, २८ कर्मोदि द्वारा
पाशुपतयोगमें मूर्तिनामकयन, २८ पाशुपतयनकयन,
भस्ममाहात्म्यम, ३० शिवके प्रमादसे शक्तिमुक्तको
चोरभद्रगति, सायवाद्य-महिता पूर्वभाग-ममाप्ति।

व्रतभाषा—१ श्वेतकल्पमें वायुकथित शिव-
माहात्म्यप्रसङ्गमें प्रथममें सुनियोके प्रथ पर सुतकी प्रति,
२ श्रीकृष्णके प्रति उपसम्युक्ता पाशुपतज्ञानकयन, ३
सुरेन्द्रादिपरोक्षा, ४ ब्रह्मा विष्णु आदि देवताओंका
शिवरूपत्वकयन, ५ समामहेयर-श्रुतिपुस्तक जगत्
प्रपञ्चकयन, ६ पापरादि भेदमें द्विविध ब्रह्मरूपका
व्यस्तविश्वकयन, ७ प्रणवका रूपकयन, ८
मनुष्यादिभक्षधन द्वारा शिवप्राप्तिसम्वकयन,
८ ब्रह्मादि देवदेवोंके प्रति गृहका वेदसारज्ञानका
उपदेश, १० द्वादशाधिकगत शिवायतारकस्यशीखर-
कयन, ११ देवीके प्रति शिवका सर्ववर्णित शिवधर्म-
कयन, १२ शिवपञ्चाशतसम्वकयन माहात्म्यकोत्तम,
१३ शिवमन्त्रपञ्चवादिकया, १४ दीक्षाप्रयोग, १५
षडभ्युदयशिवपूजाविधि, दहनपावनवादिकयन, १६
घोरीको मन्त्रमाधनविधि, १७ पवित्रेतादि संस्कार-
कयन, १८ शंभु कोनोंका आश्रित कर्म, १८ चतुर्थांग
चोर यक्षिणकयनक्रम, २० नामाविधि विधानमें हर-
पावर्त्तोको पूजाविधि, २१ होमकुण्डमानादिनिर्णय, २२
मातादि विशेषमें नैमित्तिक मयपूजाकयन, २३ शान्त्य
शिवपूजाकयन, २४ शिवस्तोत्र, २५ प्रकाशान्तरमें शिव-
पूजा, २६ शिवपूजाके फलमें ब्रह्मादिकी छ व पदमाप्ति,

२० ब्रह्मा चोर विष्णुको निद्रमायातृकारकया, २८
शिवप्रतिज्ञासम्योचनविधि, २८ योग उपदेश, ३०
सुनियोके समोप शिवशरित्वचर्चन चोर वायुका पञ्च-
धर्म, नन्दिसमागम, नन्दिका शिवकथाचर्चन, साय-
वाद्य-सहितोत्तर-भागममाप्ति।

धर्मसंहिता।

१ शिवमाहात्म्यनिरूपण, २ श्रीकृष्णको शिवमन्त्रप्रोक्षा,
३ त्रिपुरदाहचर्चन, ४ पञ्चकर्मदर्शन, ५ शुकका शिव-
कठमें गमन, शुकके प्रति देवीका चतुषष्ट, पञ्चकर्मविधि,
६ रुद्रदेव्यवध, ७ गोरोके चर्चमें दम्पतीका महा-
देवके साथ विहार, जपा-पत्ररुद्र सत्रम, शान्त्युद-
चर्चन, ८ कामतत्त्वादि निरूपण, ८ काम-प्रकार, १०
कामोत्पत्त्या, पांडुरोदयका वृत्तान्त, चौरका नन्दिके
रूपमें जन्म लेनेका कारण, शिवका कामचार, विद्विहव-
कयन, ११ कामविक्षम-कयनमें ब्रह्मादिका कामविक्षम-
कयन, १२ माहात्म्यकयनको कामसोमकया, १३ विष्वा-
मित्र आदिका कामविक्षमकोत्तम, १४ योरामका
कामाधीनत्वप्रस्थाप, १५ नित्यनैमित्तिक शिवपूजाविधि,
१६ गृहश्रित्यायोग चोर सनका फलकयन, १८ शिव-
भक्तपूजादिकलक्षणकयन, १८ विविध पापकयन, १८ पाप-
फलकयन, २० धर्मप्रवृत्ति, २१ पञ्चदानविधि, २२ जन्-
दान, तप चोर पुराणपाठका माहात्म्यकयन, २३ धर्म-
श्रवणमाहात्म्य, २४ महादानकयन, धर्मप्रवृत्ति, २५ सुव-
र्णोदि पुण्यदानकया, २६ कामारकृतिदानकया, २७
एक दिनको चाराधनमें गृहकी प्रसादकया, २८
शिवके महम् नाम, २८ धर्मोपदेश चोर तुलापुत्रदान-
विधि, ३० परशुरामकी तुलापुत्रदानकया, ३१ ब्रह्माण्ड
प्रवृत्ति, ३२ नरकादि कोत्तम, ३३ शोषादिकयन, ३४
भारतवर्षादिकी वर्णना, ३५ यदादिकया, शृंगुपयकी
उदाराकया, ३६ नन्दराजप्रभावकीर्त्तन, ३० पञ्चब्रह्मा-
न्याय, ३८ पञ्चब्रह्मविधान, ३८ मनुष्यव्यवस्था, ४०
पञ्चारकय, धामदेवकय, मद्योत्रागम्यादिकयन, ४१
ब्रह्मकाय, मंगममाहात्म्य, युद्धमें गरी दूध पालकी
सदृशतिनामकया ४२ मन्त्रारकया, ४३ कोत्तममादि-
कयन, ४४ पदभ्युदयदेवगणमयाद, ४५ विवाहकया, ४६
श्रुति, वायु प्रसापादिकयन, ४७ कामप्रवृत्ति

कथा, ४८ क्षायापुरुषकथन, ४९ धार्मिक-गतिकथा, शिखिपूजाका कारणनिर्देश, ५० विष्णु-कृत शिवका स्तव, शिखिपूजाफलकथन, ५१ सृष्टिकथन, ५२ प्रजा-पतिज्ञत सगं कथन, ५३ पृथुपुरादिकथा, ५४ देवदानव गन्धर्वोंका विद्वत्तत्त्वसे सृष्टिकथन, ५५ पाणिपत्य-कथना, ५६ पद्मवंशकथन, ५७ पृथुचरित, ५८ सत्यन्तरादिकौत्सन, ५९ संध्या और क्षायादिकी कथा, ६० सूर्यवंशवर्णना, ६१ सूर्यवंशवर्णन प्रसन्नमें सत्यव्रत और भगवादिनी कथा, ६२ विद्वत्तत्त्वव्यादि कथन, ६३ विद्वत्तत्त्ववर्णन, सुगियोंका लाज्यन्तप्राप्ति-कथन, ६४ साधुसङ्घसे उनका परमगतिप्राप्त, ६५ व्यास-का पूजाप्रकारकथन, धर्मसंहिता समाप्ति।

अब प्रश्न यह होता है, कि उक्त विषयोभूत शिव-पुराणकी इस भोग महापुराण मान सकते हैं वा नहीं ? भस्वपुराणमें लिखा है—

“श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान् वायुरिहावधीत् ।
यत् तदावधोयं द्वादशमाहात्म्यं संयुक्तम् ।
वसुविंशत् महत्काण्डं पुराणं तद्विधीयते ॥”

(५१।१८)

जिसमें श्वेतकल्प-प्रसङ्गमें वायुने धर्मकथा और द्वादशमाहात्म्यको वर्णना की है, वही वायु है । इसकी इकीकसंख्या २४००० है ।

शिवपुराणमें जिस वायुमंहिताका नाम पहली कथा का सुता है उस वायुमंहितामें वायुकृत श्वेतकल्प-प्रसङ्ग और द्वादशमाहात्म्य वर्णित है । एशियाटिक-सोसाइटीसे मुद्रित जानी वायुपुराणमें श्वेतकल्पप्रसङ्गमें वायुकृत कीर्ति भी मिलव नहीं है और न वह द्वादशमाहात्म्य, नारदपुराण पादिक कल्पवर्णसे हो मिलता है । इसीसे हम भोग उसे वायुपुराण कह कर नहीं मानते । किन्तु इस समय वायुमंहिताके ४४ अध्यायके पाठमें सारूप्य पड़ता है, शि श्वेतकल्पप्रसङ्गमें ही यह वायव्य द्वादशमाहात्म्य वर्णित हुआ है (१॥ ६७ वाय-

वीयमंहिताके उत्तरभाग-१म अध्यायमें शिव का नाम लिखा है—

“दक्षामि परमं पुण्यं पुराणं ब्रह्मसंभ्रितम् ।
शिवज्ञानार्थं वाचाहृत्कृतप्रदम् ।
मन्थार्थं व्याससंयुक्तं राममाधे विभूयितम् ।
श्वेतकल्पप्रसङ्गेन वायुना कथितं पुरा (१।२४)

इस वायुमंहितामें शिव और वायुपुराणके प्राचो-लक्षण हैं । किन्तु इसको इनाकमंध्या चार हजारमें अधिक नहीं होगी । जो शिवपुराण मुद्रित हुआ है उसको इनाकमंध्या प्रायः १८००० है । किन्तु इसके मध्य भी वायुमंहिता-वर्णित पनेत संहिताएं हैं । जहां तक सामान्य होता है, कि भीम मंहिताधीकी एकव करनेमें उनको संख्या २४ हजारमें अधिक हो सकती है । परन्तु इस मंहितायुक्त शिवपुराणके जो काव्य दोहोंकी कथा लिखी गई है, वह पादुम्वरसुप्तक परवर्त्तमानकी योजनाके जैसा प्रमेत होता है । द्वादशमाहात्म्यमें जिस पूर्वोत्तर भाग और पञ्चमोक्त शिवपुराणका सम्बन्ध है, वही सम्भवतः २४००० पद्यात्मक शिवपुराण है । द्वादशमाहात्म्य उन पद्यवर्ष वा पद्यमंहिताके मध्य द्विसोपर्वष पन्नागत है । (१) यदि शिव वा वायुपुराण एक है वा नहीं ऐसा तर्कवित्तक जब चल रहा था, मान्य होता है, उही समय यह द्वादशमाहात्म्य सङ्कलित हुआ है । (२) किन्तु इस समय गयामाहात्म्यायुक्त वा द्वादशमंहितात्मकके जैसा शिव-पुराण नहीं माना जाता है ।

(१) एक शिवपुराणव उत्तरखण्ड प्राया गया है । इसके मतसे—

“यत् पूर्वोत्तरं खण्डं शिवण चरितं बहु ।
शिवम तत् पुराणं हि पुराणप्रो वदन्ति हि ॥”

किन्तु इस हम नाम शिव पुराणमें जैसा समझते हैं । इसका विवरण पोछे दिया गया है ।

(२) इस रवा या नन्दमाहात्म्यमें १५५ अनुक्रम इस प्रकार देखा जाता है—

पुराणोत्पत्ति, सुधिरद्विर्भाव, पर्ववर्षादत्तं नन्दमाहात्म्य, कल्पसमुद्रव, मायूरकल्प, कूर्मकल्प, वक्रकल्प, मात्स्यकल्प और वाराहकल्पसमुद्रव, कविप्रायुषं और विष्णुकाव्यव, विष्णुसामन्त, करमदीपकल्प, मोन-गहासङ्घम प्रभृति माहात्म्य, मधुकायन, विरुद्विजयसे

एकीकविगतिकद्वयो विज्ञेयः श्वेतपोहितः ।
तस्मिन्कल्पे चतुर्वक्त्रा सृष्टकामोऽनन्यतः ।
अतो नाम सुनिर्भूता दिव्या वायुमुदीरयन् ।
दण्डेन प्रदटी तस्मै देवदेवो महेश्वरः ॥” (४५५)

मयामाहास्य किम प्रकार गोव मायपुराणि
मयुष्ट दृषा, यद् ज्ञानमा कठिन है । येष्वेवमि
विमोच वदेय्य साधनके जिये इमं माहास्यको रचना की

व्यासस्मरतीर्थ, रीवायावेरीमडम, मायाकोष्ठम, चण्ड-
वैनामडम, वरणीमडम, पित्रतोर्थ, चोडोरीमति,
कोटीमोर्थ, काकडद, नम्य वेय्यरतोर्थ, मायामतोर्थ
घोर कपिनामडममाहास्या, नरकवर्णन, मरोरव्यवस्था,
चमरीयारतोर्थमडम गोदानमहिमा, चणोवनिना-
तोर्थ, मन्त्रतोर्थ, मृगवनतोर्थ, मनोरवतोर्थ, चण्डार-
नतोर्थमडम, कृष्णारिवाधम, विल्लावक, सुवर्णदोष,
हिरण्यमर्भमडम, चमोरीयारतोर्थ, मायुरिवाधमडम,
महस्त्रावतोर्थ, भोगव्यवस्था, मरुता, मरुताद,
माहा, सोम, मज्जव्यवस्था, कपानमाचन, चनि, आदती-
मर, वाराह, देवपथ, यजन, दोहिकेय्य, विष्णु, योधन-
पुरमं माहोत्तर, रोहिणी, योगिन्मर, दाह, मन्त्रावर्ष, पत्रे-
मर, पादित्य, मेचनाद, नर्मदेय्य, कपिना, करण्डेय्य,
कुल्लेय्य, विष्णुमाह, विमलेय्य, पुत्ररियोधममाहास्य,
मूलमहमगा, चम्यककशरदान, चम्यकयुद्धमं मवी-
पथ, गोधाव्यमम, चम्यकवध, मूलमंदोवति, पात्र-
परासा, दानधर्म, दोघंतपाका चाप्याम, कटिपुत्रका
चर्मगमन, दीघंतपाका चर्मगमन, कामाराजमोच,
व्याधवाच, व्याधवर्गमन, मूलमंदमाहास्यमममि,
पादित्यमर, मकोय्य, कौटिल्य, कुमारेय्य, चमल्ले-
य्य, व्यासिन्मर, वीद्याय, वेदार, चामन्देय्य, माह,
नर्मदा, सुन्देय्य, चमडवाहोष्ठम, भोगिन्मर, चणु-
नेय्य, धर्मय्य, सुकेय्य, धनद, जटेश्वर, रवि, कामे-
य्य, मज्जलेय्य, कपिलेय्य, गोमालय्य, मणोय्य, निमके-
मर, गोमलेय्य, मज्जलेय्य, यदार, वराहमेय्य, मोम-
य्य, चन्द्रेय्य, चमरवोष्ठममं मकोय्य, नादेय्य,
वेद्याय, तैलोमाय, मागरेय्य, रामेय्य, कुभेय्य,
मेघेय्य, मधुचन्द्र, मन्दिरय्य, महोय्य, पावडेय्य,
कुवेर, जाप, इमुमन्मर, पूतिमर, भोमनाय, नन्दा,
पिङ्गलेश्वर, मरुमोचन, कपिलेय्य, चक्र, जगन्नाथो,
चण्डादित्य, यमहासेय्य, कडोडामर, मन्दिरय्य,
मदिरकमर, मन्मर, मार्कण्डेय्य, व्यास, कोटीय्य, प्रमे-
य्य, यडय्य, मागेय्य, वहुषंवाय्य, आलकेय्य, मगमघे-
य्य, चनमुषा, परण्डोष्ठम, सुवर्णमिहिय्य, चमिके-
य्य, करण्डेय्य, भरतेय्य, नागिन्मर, मुकुटेय्य,
सोमाम्यपुन्दरी, धनदेय्य, रोहिणेय्य, सेनापुरमं
चक्रतोर्थ, उत्तरेश्वर, भोगिन्मर, वदार, निम-
कह, मार्कण्डेय्य, धूतपापेय्य, पादिरसेय्य, कोटी-
य्य चणोनिजिय्य, चण्डारेश्वर, वन्देय्य, नर्मदेय्य,

है । यह वदेय्य घोर कृष्ण भी नहीं है, बिना इमके कि
मयामं वीर्यमावध्वंस होमेके बाद यह विष्णुभावा-
का प्रभाव दृषा, तब वीरदृष्टो मयामुक्त जवर विष्णु-

मज्जिन्मर, धातनी, वासनीमोय्य, कृष्णमिन्मर, पावड,
तिनोवनेय्य, कपिलेय्य, कण्डुय्य, चण्डप्रभास, कोह-
लेय्य, इन्द्रेय्य, वाहनेय्य, देवेय्य, मकोय्य, नागिन्मर,
गोतमय्य, चण्डेय्य, रामेय्य, मोव, नर्मदेय्य,
अपदेय्य, मागरेय्य, धोरादेय्य, भोगिन्मर, कोरिनापुरमं
चनि, कपिलेय्य, चम्योय्य, पादिरवाह, कोवेर, यम्य,
वातिन्मर, रामेय्य, कर्कटेय्य, मकोय्य, सोम, नन्दा-
कड, दादयो, जयवागद, मिश्र, योधनोपुरमं रामकश्य,
कपिलो, चण्डेय्य, मिहिय्य, तावेय्य, मिहिय्य,
वाहवेय्य, चण्डारक, मिहाराह, चण्डा, कुसुमेय्य,
कनकसेय्य, मनेय्य, भागसेय्य, पादित्येय्य घोर
चण्डार इत्यादि तोर्थ माहास्य, चापक्युष्टमिह, मयुमनी-
नडमेय्य, नर्मदेय्य, चमरकेय्य, मर्मय्य, गोपय्य,
मार्कण्डेय्य, कुडुमोष्ठम, मोरतोर्थ, माय्यादित्य,
मिहिय्य, गोपेय्य, कपिलेय्य, वेद्यानाय्य चण्डेय्य,
विहनेय्य, भूतोय्य, मन्त्रावर्ष, चण्डा, गोतमय्य,
दगाय्यमघ, अम्यकक, वेदार, धूतपाप, परण्डो, कनके-
य्य, आनेय्य, कामान्विह, मागय्य, चण्डा, चण्डेय्य,
चण्डेय्य, चण्डप्रभास, दादगादित्य, मिहिय्य,
कपिलेय्य, विविल्लम, विम्वर, नारायण, मूलमोचन,
चोनमोचन, चम, प्रभा, भास्कर, मूलमाम, कण्डे-
य्य, चण्डासेय्य, भूमवेय्य, मूर्नेय्य, मरुतम, दाह-
केय्य, चमिन्मर, मोममोचो, पाविन्मर, मातु,
महोय्य, देव, मित्रि, कोटी, पित्तमर, माण्डयेय्य,
चण्डेय्य, मिहिय्य, मटमटमात, कुरवाय्य,
टोटीका, चैवनाय, मुकन्या, चण्डेय्य, कण्डेय्य, भार-
भूति, सुन्देय्य, चण्डावाका इण्डियन्मर, चमरेय्य,
सुन्याय, मार्कण्डेय्य, गणितदेवो, चामतोय्य,
कण्डेय्य, चाकाटोय्य, म्कोय्य, चमरय्य, कपानय्य,
परण्डोष्ठम, रामपुहिन, जमदग्नि, रीवावाग, मुण्ड-
नेय्य, सुतेय्य, चमरेय्य, तिलदेय्य, वागधय्य, कोटी-
य्य, चक्रिका, विमलेय्य घोर चण्डार इत्यादि चनेक
तोर्थ माहास्य ।

नारदपुराणमे को माघ घोर मासमाहास्येय्यका
वनेप है, चन दोमंसे केवल माघमाहास्य पाया जाता
है । माघमाहास्य ३० वर्षायमं सम्पू ण है ।

माघमाहास्यमं—१ मज्जानारदमं वादमं माघमगा-
मयं, २ माघकथ, ३-४ सुधमं कन्या रोनिममो-

रूपी गदाधरका पादपद्म स्थापन करके विष्णुमाहात्म्य कीर्त्तित हुआ। जिस समय ब्राह्म, पद्म आदि विभिन्नसम्पदायके पुराणमें विष्णु वा वैष्णवमाहात्म्यसूक्त इत्येकान्वली प्रथित हो कर प्रत्येक पुराणमें नवकत्तेवर धारण किया था, सम्भवतः उसी समय या उसके बाद इनकी मङ्गलित हुआ होगा। इसी समय भावमाहात्म्य रचा गया, जिस वा वायुपुराणमें मध्य प्रथित करनेकी चेष्टा की गई। अधिक सम्भव है, कि वायुमंडिता ही वायु वा गिवपुराणका प्राचीनतम रूप है। धीरे धीरे हममें माना संहिता और माहात्म्य संयुक्त हो कर हमने विराटरूप धारण किया था। वैष्णवप्रधान नारदपुराणमें गयामाहात्म्य और मावमाहात्म्यकी साथमें अन्तर्गत करनेमें भी किसी शेषवर्त्यमें गयामाहात्म्य वा भावमाहात्म्य गिवपुराणके अन्तर्गत नहीं माना गया है। राजा राजेन्द्रनाथ मिश्रने यह दिखताया है, कि ८वीं शताब्दीके बाद गयामाहात्म्य रचा गया है, किन्तु ७वीं शताब्दीके प्रथम भागमें वाष्णभट्टके प्रत्यमें वायुपुराणका उल्लेख है।

महाकवि जालिंदरने इसी गिवपुराणको सहायता से अपने कुमारसम्भवकी रचना की है। चानमंडितामें ८वें से कर २४ अध्याय तकमें कुमारसम्भवका प्रसङ्ग है। सुद्धित गिवपुराणमें १२ संहिता मलों रहने पर भी पञ्चादशस्कन्ध, ओटिस्कन्ध, वतस्कन्ध आदि संहिताएँ अतन्त्र भाकार्य पाई जाते हैं।

निम्न लिखित ग्रन्थ वायुपुराणके अन्तर्गत माने गये हैं—

का आख्यान, रोमगर्क शापमें मर्त्ययोगिनाथ श्वेत-गुप्तकी माघस्नानहेतु मुक्ति, ६-७ शम दिन और पुण्य-सेवकथा, ८ गृहगतवसोपुसमद्रुचर सुमद्रुका उवाख्यान, ९ ऋषि प्रगाधगोत्र पारषिकी कथा, १०-११ कौमाकी-स्नानप्रसङ्गमें जायासि और शाण्डिल्य-गोत्र सुवसकी कथा, १२-१३ समकुमाण्ड और डाकिनो गणाख्यान, १४ तुण्डिल कमिन्ध, तीन गृहगिर और दो धोदुखरायकी कथा, १५ सुवससंवाद्में निषण्णकथन, शाण्डिल्यका दिष्टान्वेषण, १६-२४ प्रकृत विष्णुपूजाकथन, २५-२७ गालपसुनि कर्तव्य विष्णुमाहात्म्य और विष्णुपूजादि-कथन।

चामन्दकानन वा कावोमाहात्म्य, वेदारमाहात्म्य, गीतामाहात्म्य, गोस्तमोमाहात्म्य, तिनपद्मदानप्रयोग, तुलसीमाहात्म्य, दारकामाहात्म्य, भाववमाहात्म्य, राज-वृद्धमाहात्म्य, रुद्रकथन, सज्जोषंहिता, वेददेशवरम्भोद, प्रपन्नदानविधि, मोतातोषमाहात्म्य, इन्द्रमन्त्रकथन।

फिर निम्नलिखित छोटो छोटो ग्रन्थ गिवपुराणके अन्तर्गत हैं।

चविमुक्तमाहात्म्य, आदिचिदम्बामाहात्म्य, लक्ष्म-कनिताग्रत, छत्तीयाग्रत, वदरोवनमाहात्म्य, विद्वत्वन-माहात्म्य, भोमसंहिता, मधुरपुरमाहात्म्य, व्यासपूजन-संहिता, पाष्णसाधनखण्ड, कैमभानाधमाहात्म्य।

किन्तु उक्त ग्रन्थ देखनेमें मान्य होता है, कि वे पात्रकथनके हैं, इस कारण उन्हें पुराणके अन्तर्गत मानना सुविबुक्त नहीं है।

५म भागवत।

इस भागवतके महापुराणत्व और मौलिकत्वके सम्बन्धमें माना मत प्रचलित है। वैष्णव लोग तिल-सहिमाप्रकाशक श्रीमद्भागवतकी तथा भाक्त लोग शक्ति साधकामूर्त्य देवभागवतकी ही महापुराण मानते हैं। इस सम्बन्धमें धारोचना करनेके पहले दोनों भागवतमें कौन कौन विषय है, यह जान लेना आवश्यक है। क्योंकि हमने निवार करनेमें पीछे सहायता मिलेगी।

श्रीपद्मभागवत।

१म स्कन्धमें—१ मङ्गलाचरण, नैमिषीयोपाख्यान, ऋषिप्रश्न, २ ऋषिप्रश्नका उत्तर और भगवद्दर्शन, ३ अयतारकथन-प्रसङ्गमें भगवान्की चरित्रवर्णन, ४ तपस्यादि द्वारा विस्तवम्भोद नरा होनेमें वेदव्यासकी भागवतारम्भगृहति, ५ वेदव्यासके विस्तवमाहात्म्य नारद कर्त्तृक हरिसंकीर्तनका गौरव-वर्णन, ६ भगवत् परिचर्याका समाधारण कनकधन, उसमें विषयमें वेदव्यासके विग्राम जनार्णय नारदकर्त्तृक ह्वाच-संकीर्त्तनजनित पुष्पजन्ममन्त्र तत्त्व सोभागवतर्णन, ७ भागवतयुता राजा परोक्षिका जगद्गुह्यतावर्णन, निद्रित बाणकथनके विषय परशुरामाका दुष्कथन, ८ क्रीडाव्य चम्पयामाके पक्षमें शूकपक्ष-की रक्षा, कुलीका रतव और राजाका

मुनिविराजो निरुद्ध भीमका धर्मनिदधय, तत्कृतं क
 मोक्षयसुति पोर सनका सुनिवर्ण, १० क्षतकायं चो
 श्रीकृष्णका दृष्टिमापुरि दारकागमन, श्रीमधकृष्ण
 मय, ११ दारकागमो जनमय कृतं क मयमान
 ने-क्षणाका पुरोप्रथम, सनका रतिवर्ण, १२ परोक्षितका
 मयमियव, १३ विदुरके कश्चनेष धृतराष्ट्रका मरा-
 पयमनामं गिरम, १४ परिटटनके निधे राजा
 युधिष्ठिरको मरुत, पञ्चनके सुवने श्रीकृष्णका तिरो-
 धामतार्ता-मय, १५ चनोमण्डन पर वनिका प्रथम
 क्षीते द्वेप परोक्षितके बाघ राज्यभार मोघ कर राजा
 मुनिविराजा स्वर्गोदय, १६ कनि दारा विष को कर
 वृत्तिनी पोर धर्मका परोक्षितके समोप पागमन, १७
 परोक्षित दारा कनिनिपद्य, १८ परोक्षितके प्रति
 ब्रह्ममाय पोर उतका घोरव्य, १९ ब्रह्ममे देवपरित्यागके
 निधे मनिमवाहृत राजा परोक्षितका प्रागेपथेय पोर
 सनके समोप शकदेवका पागमन ।

२५ स्वयम्—१ कीर्त्तनप्रवणादि दारा भगवान्की
 धारणा पोर महापुदवसंस्थान-वर्णन, २ स्थूल धारणा
 द्वारा जित मनके सर्वात्म्यमी विष्णु धारणाकी कथा,
 ३ विष्णु भक्तकी विधेय कथा सुन कर राजाका तद्वत्ता-
 ठेक, ४ श्रीरक्षितेष्टि सटगादि विषयमे राजा
 परोक्षितका प्रथ, ब्रह्मनाद-मवादनं तदुत्तर दानार्थ
 शकदेवका मद्रनाचारण, ५ नारदके पुत्रने पर ब्रह्मा-
 की सटगादि, विलीला पोर विराटसृष्टिकथन, ६
 पञ्चात्मादिके भेदने विराटपुदवका विभूतिव्ययन,
 पुदवसुन द्वारा पूर्वोक्त विषयोंका हृत्तामस्यादन, ७
 ब्रह्मा कृतं क नारदके समोप भगवान्का मौलावतार-
 कथन, तद्वदवतारका कर्मप्रयोजन पोर सुववर्णन,
 ८ राजा परोक्षितका पुरावार्थविषयक प्रथ, ९ परो-
 क्षितके प्रयत्ना सत्तार देनेके निधे शकदेवकृतं क
 मयसुत भागवतकथन, १० भागवतमाला दारा
 शकदेवका राजप्रशोत्तराधारण ।

२६ स्वयम्—विदुर पोर उदयका मवादन, २
 श्रीकृष्णके विच्छेदने मोक्षात् उदयका विदुरके समोप
 श्रीकृष्णका वात्सपरिग्रमवर्णन, ३ उदयकृतं क श्रीकृष्ण-
 का मयरा पागमन, कर्मवर्णन पोर दारकाका कार्य-

वर्णन, ४ मयुका निधन सुन कर पाञ्चज्ञानविष्णु
 विदुरका उदयोदयेमे मतेयके निरुद्ध गमन, ५ विदुर-
 के प्रथ पर मतेयकृतं क भगवत्कीया पोर महाटाटि
 सृष्टिकथन, श्रीकृष्णका मय, ६ महाटाटिके दारमं
 पाण्डित क्षीनेके कारण विराट, पुदवकी सृष्टि, भगवत्-
 क्षत पाण्डितेवादिभेदकथन, ७ मतेय मुनिके वचन
 सुन कर पानन्दिन विदुरका नाना प्रथ, ८ जलमावि-
 भगवान्के नमिप्रथमे ब्रह्माका उदय, ब्रह्माकृतं क
 भगवान्की तत्त्वा, ९ श्रीकृष्णकी कामनामे ब्रह्मा-
 कृतं क भगवत्सुति, भगवत्सुततोप, १० प्राज्ञतादि
 भेदने दय प्रकारकी सृष्टिका वर्णन, ११ परमापु
 चादिने लक्ष्य दारा काननिदधय, गुण पोर मय-
 गरादिका कथ्यमानादिकथन, १२ ब्रह्माका सृष्टिवर्णन,
 १३ बराहकृपा भगवान्का कृतमना धराका
 उदय, हिरण्यचवध, १४ दितिकी कामनाके कथन
 द्वारा मयराकानमे सनका गर्भोत्पत्ति, १५ ब्रह्मा-
 कृतं क वेङ्कण्य देी विष्णुभूतोंका प्रापडतामकथन,
 १६ भगवान्का कृतमना विदिकी पागवना, दोनो
 भूतोंके प्रति करका पनुपय, वेङ्कण्यने सनका पतन,
 १७ भगवद्भूतोंका पनुपयमे जन्म, हिरण्यचका
 पद्वत प्रभाव, १८ पृथिवी-उदयकारो महापराहके
 माघ हिरण्यचका युद्ध, १९ ब्रह्माको प्रायश्चित्ते
 बराहकृतं क हिरण्यचवध, २० धूमप्रसावित मनु-
 वंशवर्णनार्थ सृष्टिप्रकरणासुप्रमाण, २१ भगवान्के
 प्रवादने कर्दम सृष्टिकी मनुज्याकी विवाहपटना,
 २२ भगवान्के पादेमानुमार मनुकृतं क कर्दमके बाघ
 कथामप्रदान, २३ तपके प्रभावने विमानदेयमे कर्दम
 पोर देववृत्तिका विचार, २४ देववृत्तिने गर्भके कथित-
 का जन्म पोर कथितके कश्चनेमे कर्दमका पद-
 त्रययुक्त प्रत्यक्षमगन, २५ जननीमे पुत्रे जानि पर कथित-
 का मयविमोचनकारो भक्तिमयकथन, २६ प्रकृति-
 पुदवविषयार्थ सात्त्विकनिदधय, २७ पुदव पोर
 प्रकृतिका विवेक दारा मोक्षोत्तिवर्णन, २८ धान-
 गोमित पट्टाभयोग दारा सर्वोपाधिविनिर्मुक्त स्वयं
 ज्ञानकथन, २९ मद्रियोग, वैराग्योपादानार्थ कान,
 वस पोर धो मसार-वर्णन, ३० पुदवकथादिने

चासकचिरा कामियोके तामसो गतिका विवरण, ११ मिश्रित पुण्याप दारा मनुष्योनि प्राप्तिरूप राजकी- गतिका विवरण, १२ धर्मानुष्ठान दारा सात्त्विकगणकी अर्द्धगति और तरवज्ञानविहीन स्थितिको पुनरावृत्तिका विवरण, १३ भगवान् कपिलके उपदेशसे देवदूतिका ज्ञानलाभ और जीवमुक्ति ।

४ प्र ६४४में—१ मनुकन्याओंका पृथक्, पृथक्, वंशवर्णन, २ भय और दृष्टिके परस्पर विरोधके मूल विश्वस्त्रटाओंका यज्ञस्तान्त, ३ दत्तयज्ञदर्शनायं नती- को विद्वष्टहमें गमनप्रार्थना, ३ गिरिशकच्छक निवा- रण, ४ भयके वाक्पका सङ्गठन करके भवानोका विद्व- ष्टहमें गमन और वित्तके उपमानसे देहत्याग, ५ सतीका देहत्याग सुन कर शङ्करका क्रोध, वीरभद्रदृष्टि, यज्ञनाभ और दत्तवध, ६ दत्तादिके जीवनदानार्थ देवमण-परिहृत ब्रह्माकी भव-सात्वना, ७ दत्तभवादिके स्तवसे भगवान् विष्णुका चाविर्भाव, उनको सहायतासे दत्त द्वारा यज्ञ- निष्पादन, ८ विमाताके वाक्प पर क्रोधित हो कर पुनि- श्चान्ता भूवकी तपस्या और हरिप्रोत्तिताम, ९ भगवान्की पाराशरानसे वरप्राप्त भूवका प्रतागमन और विद्वराज्य- पालन, १० भूवका पराक्रमवर्णन, ११ यज्ञगणका सद्य देख कर मनुका रणचैतने पागमन और तरवोपदेश दारा भूवकी उपामसे रोकना, १२ कुबेरकच्छक अभि- नन्दित भूवका स्वपुर प्रयागमन और यज्ञानुष्ठान, तदनन्तर हरिधामसे पारोक्ष्य, १३ भूववंशमें द्रुपदजन्म- कथाप्रसङ्गमें वैष्णविका चक्रका उत्पत्ति, १४ धृष्टराज्यका प्रमत्तगमन, ब्राह्मणगणकच्छक वैष्णवका राज्याभियेक, वैष्णवरित्त, ब्राह्मणगणकच्छक वैष्णव, १५ विप्रगण कच्छक मयमान वैष्णवद्विसे द्रुपका जन्म और राज्या- भियेक, १६ सुनियोके नियोगसे सत्तादिकच्छक ममाय-द्रुपका स्वाय, १७ प्रजागणकी सुधाकातर देख धरयो-वधाय द्रुपका सयोग, धरयोक्तक द्रुपका स्तव, १८ द्रुप प्रभृति कच्छक वसुधात्मादिभेदसे क्रममा पृथिवीदोहन, १९ परममधपञ्चमे चरवापहारी इन्द्र- वधाय द्रुपका उद्यम, ब्रह्माकच्छक तत्त्वविवरण, २० यज्ञमें चरदानप्रसङ्गमें भगवान्कच्छक द्रुपके प्रति साक्षात् उपदेश, द्रुपका स्तव, परस्परकी प्रीति, १२

महायज्ञमें देवता पादिको मभामें द्रुपकच्छक प्रजावा- चनुयासन, २२ भगवान्के पादेगसे द्रुपके प्रति मन- कुमारका परम ज्ञानोपदेश, २३ भावोंके साथ वनप्रस्थान करके समाधिप्रमासे द्रुपका वैकुण्ठगमन, २४ द्रुप- वंशकथा, द्रुपदोद प्राचीनवर्हिमें प्रचेतादिको उत्पत्ति और उनका रुद्रगोतावध, २५ प्रचेतागणके तपस्यामें प्रवृत्त होने पर प्राचीनवर्हिमें समीप नारदागमन और पुरश्चन-कथाच्छत्रसे विविधसंसारकथन, २६ पुरश्चनका शृंगयावर्षच्छत्रसे स्त्रप्र और जागरवावस्थाकथन, संसार प्रपञ्चकथन, २७ पुनकलतादिमें प्राप्त रहनेके कारण पुरश्चनका प्राप्तविस्मरण, गम्भीरपुत्र, कामकन्यादिके वषास्थान दारा स्वरासोगादिवर्णन, २८ पुरश्चनका पूर्व- देहताग, स्त्रीचिन्ताहेतु श्लोत्प्रप्राप्ति और चट्टवगतः ज्ञानोदयमें मुक्तिताम, २९ वषास्थानको घर्षव्याख्या दारा संसार चार सुखितात्पर्वकथन, ३० तपस्यामें तुष्ट रिशु- का वर पानिके बाद प्रचेतागणका दारपरिवर्त, राज्यकरण और पुत्रोत्पादन, ३१ दत्तके हाथ राज्यभार मांघ कर प्रचेतागणका वनगमन और नारदोक्त मोक्षकथन ।

४ प्र ६४५में—१ प्रियव्रतका राज्यभोग और ज्ञान- निष्ठा, २ चन्द्रोक्ष चरितवर्णन, पूर्णचिन्तनात्मक वषा- के गर्भसे उनका पुत्रोत्पादन, ३ चन्द्रोक्षपुत्र नामिका- महासावकचरित, यज्ञमें तुष्ट भगवान्का भवना पुत्रत्वस्वीकार, ४ संवत्सीके गर्भसे नामिपुत्र श्रवणका जन्म और राज्यवर्णन, ५ श्रवणकच्छक पुत्राके प्रति मोक्ष- प्रमोपदेश और वरमहंस्वज्ञानकथन, ६ श्रवणदेवका देहतागजन्मकथन, ७ राजा भरतका विवाह और हरि- चैत्रमें हरिभजनकथा, शागादिमें हरिपूजा, ८ भगवद्वक्ति- परावण भरतका श्रममिदरचपमें प्राप्त रहनेके कारण राजाको श्रमत्वप्राप्ति और देहताग, ९ मारुष कर्मफलसे भरतका जड़ विप्रकथन जन्मप्रवण, १० जड़भरत और रङ्गवत्पराशरान, ११ रङ्गनयकच्छक जिज्ञासित जड़- भरतका तत्त्वप्रति ज्ञानोपदेश, १२ रङ्गव राजासे पुनः जिज्ञासा करने पर जड़भरतकच्छक उनका सन्देहभञ्जन, १३ रङ्गव राजाके वैराग्य- दाब्बाय भरतकच्छक भवाटवीवर्णन, १४ द्रुपकथनमें वर्णित भवाटवीकी व्याख्या, १५ जड़भरतवंशमें उत्पन्न

युधिष्ठिरको निकट भीष्मका धर्मनिष्पण, तत्कृत्क श्रोत्रण्युति शीर उनका मुक्तिवर्णन, १० कृतकार्य, दो श्रोत्रकृष्णका हस्तिनापुरसे हारकागमन, श्लोचणकट क स्त्राय, ११ हारकावासी जनगण कर्त्तृक स्त्रयमान श्रोत्रण्यका पुरोप्रवेश, उनका रतियर्णन, १२ परीक्षितका जन्मविवरण, १३ विदुरके कहनेसे हृतराष्ट्रका महापथगमनार्थ निगम, १४ परिष्टदणनके लिये राजा युधिष्ठिरको शङ्का, यज्ञनके सुखसे श्रोत्रण्यका मित्रो-धानवार्त्ता-प्रवण, १५ बचनोमण्डल पर कलिका प्रवेश होते देख परीक्षितके हाथ राज्यभार सोप कर राजा युधिष्ठिरका स्वर्गरोहण, १६ कलि द्वारा विजय हो कर प्रथिवी शीर धर्मका परीक्षितके समीप भागमन, १७ परीक्षित द्वारा कलिनियह, १८ परीक्षितके प्रति ब्रह्मर्षा शीर उनका वैराग्य, १९ शङ्कामें देहपरित्यागके लिये मुनिगवाहृत राजा परीक्षितका प्राधोपवेश शीर उनके समीप शुकदेवका भागमन ।

२५ स्कन्धमें—१ कीर्त्तनश्रवणादि द्वारा भगवान्की धारणा शीर महापुरुषसंस्थान-वर्णन, २ स्थूल धारणा द्वारा जित मनके सर्वान्तर्गामी विष्णु धारणाकी कथा, ३ विष्णु भक्तकी विशेष कथा सुन कर राजाका तद्वक्तृ-द्वेक, ४ श्रीहरिचेष्टित छट्पादि विषयमें राजा परीक्षितका प्रश्न, ब्रह्मनारद-संवादमें तदुत्तर दानार्थ शुकदेवका मङ्गलाचरण, ५ नारदके पूछने पर ब्रह्माकी छट्पादि, हरिलीला शीर विराट्छटिकथन, ६ ब्रह्मात्मैकिके भेदसे विराट्पुरुषका विभूतिकथन, पुरुषसूक्ता द्वारा पूर्वोक्त विषयोंका दृढतामन्मादन, ७ ब्रह्मा कर्त्तृक नारदके समोप भगवान्का लीलावतार-कथन, तत्तदवतारका कर्मप्रयोजन शीर गुणवर्णन, ८ राजा परीक्षितका पुराणार्थविषयक प्रश्न, ९ परीक्षितके प्रश्नका उत्तर देनेके लिये शुकदेवकर्त्तृक भगवद्गुप्त भागवतकथन, १० भागवतव्याख्या द्वारा शुकदेवका राजप्रश्नोत्तरदानारम्भ ।

३५ स्कन्धमें—विदुर शीर उद्वेगका संवाद, २ श्रोत्रण्यके विच्छेदसे श्रोत्रात् उद्वेगका विदुरके समीप श्रोत्रण्यका वाक्यचरित्रवर्णन, ३ उद्वेगकटके श्रोत्रण्यका मथुरा भागमन, कंशवधादि शीर हारकाका कार्य-

वर्णन, ४ वन्धुका मिथन सुन कर भाकज्ञानलिप्सु विदुरका उद्देश्यदेशसे मैत्रेयके निकट गमन, ५ विदुरके प्रश्नपर मैत्रेयकर्त्तृक भगवत्कीला शीर महादादि छटिकथन, श्रोत्रण्यका स्तव, ६ महादादिके ईश्वरमें भाविष्ट होनेके कारण विराट् पुरुषको छटि, भगवत्कृत भाविदेवादिभेदकथन, ७ मैत्रेय मुनिके वचन सुन कर ध्यानन्दि विदुरका नाना प्रश्न, ८ जलमायि-भगवान्के नाभिवक्षसे ब्रह्माका उद्भव, ब्रह्माकर्त्तृक भगवान्को तपस्या, ९ लोकछटिकी कामगाथे ब्रह्माकर्त्तृक भगवत्सुति, भगवत्सन्तोष, १० प्राज्ञतादि भेदसे दश प्रकारकी छटिका वर्णन, ११ परमाणु पादिके लक्षण द्वारा कालनिष्पण, युग शीर मन्वन्तरादिका कल्पमानादिकथन, १२ ब्रह्माका छटिवर्णन, १३ वराहकृपी भगवान्कर्त्तृक जलमग्ना धराका उद्धार, हिरण्णाक्षवध, १४ दितिकी कामगाथे कश्यप द्वारा सन्ध्याकालमें उनको गर्भोत्पत्ति, १५ ब्रह्माकर्त्तृक वैकुण्ठस्थ दो विष्णुश्चर्योंका प्रापञ्चतान्तकथन, १६ भगवान्कर्त्तृक भुवतत विमोकी सांख्यना, दोनों श्चर्योंके प्रति हरिका चतुष्टय, वैकुण्ठसे उनका पतन, १७ भगवद्भूतोंका चसुररूपमें जन्म, हिरण्णाक्षका शङ्कृत प्रभाव, १८ पृथिवी-उद्धारकारी महावराहके साथ हिरण्णाक्षका युध, १९ ब्रह्माको प्रार्थनासे प्रादि वराहकर्त्तृक हिरण्णाक्षवध, २० पूर्वप्रस्तावित मनु-वंशवर्णनाथ छटिप्रकरणानुसरण, २१ भगवान्के प्रसादसे कर्दम ऋषिकी मनुकन्याकी विवाहचटना, २२ भगवान्की प्रादिप्राप्तसार मनुकटके कर्दमके हाथ कन्यासम्प्रदान, २३ तपके प्रभावसे विमानदेवमें कर्दम शीर देवहृतिका विहार, २४ देवहृतिके गर्भसे कपिलका जन्म शीर कपिलके कहनेसे कर्दमका ऋण-त्रयमुक्त प्रव्रज्यागमन, २५ जननीसे पूछे जाने पर कपिलका वन्धुविमोचनकारी भक्तिस्वर्णकथन, २६ प्रकृति-पुरुषविवेचनाय सांख्यतर्कनिष्पण, २७ पुरुष शीर प्रकृतिका विवेक द्वारा मोक्षरोतिवर्णन, २८ ध्यान-शोभित षष्ठाङ्गयोग द्वारा सर्वोपाधिविनिर्मुक्त स्वरूप ज्ञानकथन, २९ भक्तियोग, वैराग्योत्पादनार्थ काल, वल शीर घोर संसार-वर्णन, ३० पुत्रकलतादिमें

वासकविश्व कामियोके तामसो गतिका विवरण, ११ मिथिय पुष्पपाप दारा मनुष्ययोनि प्राप्तिरूप राजसी-
गतिको विवरण, १२ धर्मावुत्थान दारा सात्त्विकगणकी
जडगति और तत्त्वज्ञाननिहीन व्यक्तिकी पुनरावृत्तिका
विवरण, १३ भगवान् कपिलके उपदेशमें देवभूतिकी
ज्ञानलाभ और जोषभुक्ति ।

४४ स्कन्धमें—१ मनुकन्यापौत्रा पृथक्, पृथक्,
व'शयन', २ भय और दसके परस्पर विरोधके मूल
विश्वस्त्रटापीका यज्ञतत्त्वान्त, ३ दसयज्ञदश'मा' मत्तो-
को पित्रशृङ्गमें गमनप्रार्थना, ४ गिरिशकच्छ'क निवा-
रण, ४ भयके पायला चक्षुष्य करके भवानोका पित्र-
शृङ्गमें गमन और पिताके चपमानमें देहत्याग, ५ सतीका
देहत्याग सुन कर शङ्करका क्रोध, वोरभद्रसृष्टि, यज्ञभाग
और दसवध, ६ दशादिके जीवनदानार्थ' देवगण-परित्त
ब्रह्माकी भव-भावना, ७ दसभवादिके स्तवसे भगवान्
विष्णुका चाविर्भाव, उनको सहायतासे दस दारा यज्ञ-
निष्पादन, ८ विजाताके काश पर क्रोधित हो कर पुनि-
ष्क्रान्ता भूवर्गी तपस्या और हरिप्रोक्तताम, ९ भगवान् की
पाराधनमें वरप्राप्त भूवर्गी प्रतागमन और पित्रराज्य-
पालन, १० भूवर्गी पराक्रमवर्णन, ११ यज्ञगणका चय
देख कर मनुका रणक्षेत्रमें भागमन और तत्त्वोपदेश दारा
भूवर्गी संप्राममें राकना, १२ कुवैरकच्छ'क पमि-
नन्ति भवका स्वपुर प्रयागमन और यज्ञावुत्थान,
तद्वत्कर हरिधाममें पारोक्ष्य, १३ भूवर्गमें वृद्धजन्म-
कथाप्रसङ्गमें वेणु-विता चक्रका वृत्तान्त, १४ चक्रराज्यका
प्रवर्णन, ब्राह्मणगणकच्छ'क वैष्णवा राज्याभियेक,
वैष्णवरत्न, ब्राह्मणगणकच्छ'क वैष्णव, १५ विप्रगण-
कच्छ'क मयमान वैष्णवादिसे वृद्धका जन्म और राज्या-
भियेक, १६ मुनियोंके नियोगमें भूतादिकच्छ'क
ममाय-वृद्धका स्तव, १७ प्रजागणकी सुधाकातर देख
धरणी-वधाय' वृद्धका उद्योग, धरणीकच्छ'क वृद्धका
स्तव, १८ वृद्ध प्रभृति कच्छ'क वसपात्रादिमें दसै क्रममः
पृथिवीदोहन, १९ प्रथमध्वजमें परवापहारी इन्द्र-
वधाय' वृद्धका उद्यम, ब्रह्माकच्छ'क तमिवरण, २०
यज्ञमें वरदानप्रसङ्गमें भगवान् कच्छ'क वृद्धके प्रति
साक्षात् उपदेश, वृद्धका स्तव, परस्परकी प्रीति, २२

महायज्ञमें देवता पादिको मभामें वृद्धकच्छ'क प्रजाया
पनुयासन, २२ भगवान् के पादेगमें वृद्धके प्रति मनत्-
कुमारका परम ज्ञानोपदेश, २३ भार्याके साथ वनप्रस्थान
करके समाधिप्रमावसे वृद्धका वैकुण्ठगमन, २४ वृद्ध-
व'शक्या, वृद्धोत्त प्राचीनवर्हिमें प्रचेतादिकी उत्पत्ति
और उनका रुद्रगोतावयव, २५ प्रचेतागणके तपस्यामें
प्रवृत्त होने पर प्राचीनवर्हि'के समोप मारदागमन और
पुरस्चन-कथाच्छ'कसे विविधसंसारकथन, २६ पुरस्चनका
मृगयावर्णन छन्दसे स्वर और जागरणव्याख्यान, संसार
प्रपञ्चकथन, २७ पुत्रकलनादिमें पापश्र २४नेके कारण
पुरस्चनका पापविस्तरण, मन्त्रव'गुह, कालकन्यादिके
व्याख्यान दारा वयारोगादिवर्णन, २८ पुरस्चनका पूर्व-
देहताग, स्त्रीचिन्ताहेतु स्त्रीत्वप्राप्ति और चट्टवगतः
ज्ञानोदयमें सुक्तिताम, २९ व्याख्यातकी चर्चव्याख्या दारा
संसार और सुक्तितावर्णकथन, ३० तपस्यामें तुष्ट विष्णु-
का वर पानेके बाद प्रचेतागणका दापरिवह, राज्यकरण
और पुत्रीत्यादन, ३१ दसके हाथ राज्यभार मां'प कर
प्रचेतागणका वनवसन और मारदोश मोचकथन ।

४५ स्कन्धमें—१ विवदतका राज्यभोग और ज्ञान-
निष्ठा, २ धर्मोन्न चरितवर्णन, पूर्व'चिन्तामज्ज पण्डरा-
के गर्भमें उनका पुत्रोत्पादन, ३ पानोभपुत्र नामिका-
महत्वावहचरित्र, यज्ञमें तुष्ट भगवान् का भवना
पुत्रत्वस्वीकार, ४ मेखवतीके गर्भमें नामिपुत्र भवमका
जन्म और राज्यवर्णन, ५ वृद्धमकच्छ'क पुत्रके प्रति मोक्ष-
धर्मोपदेश और परमहंस्यज्ञानकथन, ६ वृद्धमदेवका
देहतागक्रमकथन, ७ राजा भरतका विवाह और हरि-
क्षेत्रमें हरिमज्जन कथा, यागादिमें हरिपूजा, ८ भगवत्प्रति-
परायण भरतका मृगमिष्टुरचरणमें पापश्र २४नेके कारण
राजाको मृगत्वप्राप्ति और देहताग, ९ पायक कम'फले
भरतका जड़ विप्रदयमें जन्मपण्य, १० जड़भरत और
रङ्गवत्पञ्चाशान, ११ रङ्गवत्कच्छ'क जिघ्रामित जड़-
भरतका तत्त्वप्रति ज्ञानोपदेश, १२ रङ्गवत् राजाके
पुनः जिघ्रामा करने पर जड़भरतकच्छ'क उनका
सन्देहभङ्गन, १३ रङ्गवत् राजाके वैराग्य-
दाव्याय भरतकच्छ'क महावीरवर्णन, १४ वृद्धकद्वयमें
वर्चित भवाटवीकी व्याख्या, १५ जड़भरतवर्णनमें उक्त

राजाओंका विवरण, १६ प्रियव्रतकी चरित्रप्रसङ्गमें हापादि-
का वर्णन, वध विषय जाननेकी इच्छासे परीक्षितका
प्रश्न और भुवनकोपवर्णन, जम्बूद्वीपकथन प्रस्तावमें
भगवान्का अवस्थान-वर्णन, १७ इलाहृतवर्षकी चारों ओर
गङ्गागमन और रुद्रकर्त्तृक सङ्घर्ष-वर्णन, १८ सुमेरुकी
पूर्वादिप्रसङ्गमें तीन ओर उत्तरवर्षावर्णन, सेव्यसेवक-
वर्णन, १९ क्रिष्णरूपवर्षा ओर भारतवर्षका सेव्य-
सेवककथन तथा भारतवर्षका श्रेष्ठत्वनिर्गुण, २०
सगरसङ्ग प्लवादि छः द्वीप और अन्तरवह्नि-
भीमादिक परिमाणानुसार लोकात्मिकपर्वतका स्थिति-
वर्णन, २१ कालचक्रप्रयोगसे अमण्योल सूर्यकी
गति, रागिचक्षुर और तटारा लोकयात्रानिर्गुण, २२
खगोलकी मध्य घूमयन्त्रादिका अवस्थान और उनकी
गतिके अनुसार मानवगणका दृष्टान्तिफल, २३ ज्योति-
श्चक्रका आश्रय, ध्रुवस्थान और ग्रहमार्गकी स्वरूपमें
भगवान्का स्थितिकथन, २४ सूर्यके नीचे राहु आदिका
अवस्थान और अतस्तदि अधोभुवन तथा तन्निवासोका
विवरण, २५ पातालके अधोभागमें शिवनाग अन्त किं
प्रकार है, उसका विवरण, २६ पातालके अधोभागमें
नरकोंका विवरण और वहाँ पापियोंका दण्ड।

१४ स्कन्धमें—१ अजामिल-कथा, अजामिल-मोच-
नार्थ यागत विष्णुभूतकी प्रश्न पर यमभूतकर्त्तृक धर्मादि
लक्षणकथन और अजामिलका पापवर्णन, २ विष्णुभूत-
गणकर्त्तृक यमभूतकी निकट हरिनाममहात्म्यवर्णन,
अजामिलकी विष्णुलोकप्राप्ति, ३ यमकर्त्तृक वैष्णव
धर्मोत्कर्षवर्णन और स्वीय दूतगणकी सात्वता, ४ प्रजा-
सृष्टिके लिये दक्षकल्क कंसगुहास्थ स्त्री द्वारा हरि-
का आराधन, ५ नारदकी कूटवाक्यसे पुत्रनाशका वृत्तान्त
सुन कर उनकी प्रति दक्षका अभिप्राय, ६ दक्षसृष्ट
कन्याओंका वर्णवर्णन, विश्वरूपोत्पत्ति, ७ ब्रह्मसृष्टि
कर्त्तृक परित्यक्त इन्द्रका देशभय दूर करनेके लिये
ब्रह्मोपदेशसे देवगण द्वारा विश्वरूपका परोक्षद्वयमें वरण,
८ विश्वरूपकर्त्तृक इन्द्रकी प्रति नारायण कवचोपदेश,
तद् द्वारा इन्द्रकी दानजय, ९ इन्द्रकर्त्तृक रोषवशतः
विश्वरूपहत्या, तटानी वृत्तासुरसृष्टि, भीत देवगणकी
भगवत्सृष्टि, १० भगवदोपदेशसे दण्ड-सुनिष्ठा अस्त्रि-

निर्मित वज्रधारक करके वृत्तासुरसङ्घ-देवेन्द्रका संघाम,
११ वज्रधारो इन्द्रके साथ युध्यमान वृत्तासुरकी भक्ति,
ज्ञान और विज्ञानसंज्ञान विचित्रकथा, १२ महायुद्धमें
स्वयं वृत्तकर्त्तृक सहाहित हो कर महेंद्रका वृत्तवध,
१३ वृत्तवधके बाद ब्रह्महत्याके भयसे इन्द्रका पलायन,
भगवान्कल्क के उनकी रक्षा, १४ वृत्तका पूर्वजन्मकथन,
वृत्तासुरवध पर चित्रकेतु राजाका शोक, १५ नारद और
अङ्गिराके तत्त्वोपदेशसे चित्रकेतुका शोकापनोदन, १६
मृत पुत्रकी उत्तिसे चित्रकेतुका शोक हान और तत्-
प्रति नारदका अनन्तचित्तविषो महाविद्योपदेश, १७
चित्रकेतुका महादेवकी प्रति उपहाम और समायापसे
वृत्तत्वप्राप्ति, १८ स्वर्ग-प्रसङ्गमें आदिश्व और अन्यान्य
देववंशकीर्त्तन, १९ दितिके प्रति कश्यपका लोकहितार्थ
हरितोषणव्रतकथा।

१५ स्कन्धमें—विष्णुभक्त प्रह्लादके प्रति हिरण्यकशिपु
का शत्रुताप्रकाशक पूर्ववृत्तान्त, २ हिरण्यकवध पर
कृत्स्न हिरण्यकशिपुका विजयतुविज्ञापन, हिरण्यकशिपु-
कर्त्तृक साधुओंके कदनाथ-दानवीर्य-प्रति उपदेश,
तत्त्वकथन द्वारा आत्मीय और बान्धवोंका शोकापनोदन,
३ हिरण्यकशिपुकी सप्त तपस्यासे जगत्का सन्नाप
देखनेके लिये ब्रह्माका आगमन और सुते हो कर तत्-
प्रति वरदान, ४ वरनामान्तर हिरण्यकशिपुका अक्षिप्त
लोकजय और विष्णुहो नर्ब-जनवीर्य, ५ शुद्धोपदेशका
परित्याग कर प्रह्लादकी विष्णुस्तवमें भक्ति, अक्षि-
प्तोपदि द्वारा उसके प्राप्य सिनेके लिये हिरण्यकशिपुका
यत्न, ६ देशवासिकाओंके प्रति प्रह्लादका नारदीय
उपदेश, ७ देशवासिनाओंके विरवानाथ प्रह्लाद
कर्त्तृक मातृगर्भमें रहते समय नारदोपदेशश्रवण
वृत्तान्तकथन, ८ प्रह्लादके वधमें उद्यत हिरण्यकशिपुका
वृष्टिहके हाथसे आत्मविनाश, ९ नरसिंहका कोप-
शान्त करनेके लिये ब्रह्माके कर्णसे प्रह्लादकर्त्तृक
भगवान्का स्तव, १० प्रह्लादके प्रति भगवान्का अनुग्रह
और अन्तर्धान, प्रसङ्गत रुद्रकी प्रति अनुग्रह-विवरण,
११ सामान्यतः मनुष्यधर्म और विशेषरूपसे वर्णधर्म,
तथा स्त्रीधर्मकथन, १२ ब्रह्मचारी और वानप्रस्थका
असाधारण धर्म एवं चारों आश्रमका साधारण धर्म-

कथन, १३ साधक और यतिका धर्म एवं पवधुमके
इतिहासकथन द्वारा सिद्धावस्थावर्णन, १४ गृहस्थका
धर्म एवं देवकावादिभेदसे विग्रेय विग्रेय कर्म, १५
सारमंत्र्यद्वय के सब वर्षाश्रमनिवन्धन साधनवर्णन।

८म स्कन्धमें—१ स्वायम्भूव, क्षात्रोचित, उत्तम और
ताम्रम इन चार मनुष्योंका निरूपण, २ गजेंद्रमोक्षण,
इन्द्रिणीके साथ झोड़ा करते हुए गजेंद्रका देवान्
पादसे पकड़ा जाना और गजेंद्रका हरिहरवध, ३
क्षत्रसे तुष्ट हो कर भगवान्कत्तूक गजेंद्रका मोक्षण
और देवलके शापसे घाघकी मुक्ति करण, ४ घाघ और
गजेंद्रके मध्य घाघकी फिरसे गन्धर्वत्वग्राम और
गजेंद्रका भगवत्प्राप्य हो कर तत्पदनाम, ५ पञ्चम
और षष्ठ मनुका विवरण तथा विभक्त शापसे शोभष्ट देव-
गणसङ्घ प्रज्ञाकत्तूक हरिहरवध, ६ विष्णुका आविर्भाव
हीनेके बाद पुनः देवगणकट्टक उनको सुति एवं पचुरी-
के साथ चम्पूतोत्पादनाय कथन, ७ चारादमदनमें काल-
कूटोत्पत्ति एवं उससे बहिन लोगोका भय देख रुद्र
कत्तूक तत्पान, ८ समुद्रमन्थनमें लक्षाका विष्णु की
वर्ण और धन्वन्तरिके साथ चम्पूतोत्पान, तदनन्तर विष्णु-
का मोहिनीरूपवर्णन, ९ सुष्य दानवगण कत्तूक
मोहिनीके साथ चम्पूतपात्रावर्णन और दानवोंका वधना
कर मोहिनीरूपमें देवताओंको चम्पूतदान, १० मत्सरके
कारण देवताओंके साथ दानवोंका समर और विषण्ण
देवताओंके मध्य विष्णुका आविर्भाव, ११ दानव-संहर
देख कर देवोंकत्तूक देवताओंकी निवारण तथा
मुक्ताचार्य द्वारा मृत देवोंका पुनर्जीवन, १२ मोहिनी-
रूप धारण करके भगवान् द्वारा त्रिपुरारोका मोहन, १३
समसांति पञ्चविध मन्त्रलक्षका प्रथम प्रथक विवरण,
१४ भगवत्पदमूर्ति सभी सम्पदादिना प्रथक प्रथक
कर्मादिवर्णन, १५ वनिका विष्णुजित यज्ञ और तत्
कत्तूक स्वर्गजय, १६ देवगणके चटमन हीने पर देव-
माता अदितिका शोक और उनको प्रायनामे वज्र-
कट्टक पयोप्रतोपदेय, १७ अदितिके पयोत्रत द्वारा उनको
कामना पुरी करनेके लिये भगवान् हरिक उतका पुत्र
कीकार, १८ वामनरूपमें चतुर्थो हो कर भगवान्का

चतुर्थमर्गमन्त्र और वनिका उन्हे हत्कार करके वरदान,
१९ वामनकत्तूक बलिसे समीप त्रिपादपरिमित भूमि-
याचन, दानार्थ वनिका पक्षीकार, गुरुका तद्विधारण,
२० भगवान्को कपटता जान लेने पर भी चतुर्थ भवने
वनिका प्रतिश्रुत दान, तदनन्तर महमा पञ्चतद्वर्णन
वामनको हृदि, २१ लोकके मध्य दनिका सन्धय
प्रकाशित करनेके लिये छतोय पादपुरुषकर्ममें विष्णु-
कत्तूक वनिका वधन, २२ पातानमें प्रत्यागमन
न्यूनता जान कर बलि प्रत वरदानपूर्वक भगवान्का
तद्द्वारपातनाकार, २३ पितृमहोके पाप वनिका
सुतन जानेमें इन्द्रका उपदेष्टव्य क्षमाराहपुत्रनर पूर्व-
वत् ऐश्वर्यभोग, २४ मत्स्यरूपो भगवान्का कोताव्रशान्त।

८म स्कन्धमें—१ वैवस्वतपुत्रको वंशवर्णनप्रसङ्गमें
इक्षोव्याख्यान, २ कट्पादिपञ्च मनुष्यका वंशविवरण,
३ सुकन्याख्यान और देवताख्यान समेत शर्पातिका
वंशविवरण, ४ मनुष्य गाभाग और गाभाग पुत्र चम्पू-
रोप की कथा, ५ विष्णु कत्तूको प्रमथ करके चम्पूरोपकी
कथा, ६ शगाटसे ले कर माथाद पर्यन्त चम्पूरोप वंश-
व्रशान्त और प्रसङ्गक्रमसे माथावृतनय पति सोमरिका
उपाख्यान, ७ माथाता की वंश व्रशान्तप्रसङ्गमें पुत्रकुण्ड
और हरियन्द्रका उपाख्यान, ८ रोहिताश्ववंग तथा
कापिलासिपम मगर-मन्त्रात्मिका विनाम्रशान्त, ९
छाहासे चम्पूमर्ग और भगोरपका गङ्गावधन, १०
छाहावधने शोरामचन्द्रका जन्म और रावणका वध
करके चम्पूतोत्पान समर पर्यन्त उनका वरित, ११ रासको
चम्पूतोत्पान स्थिति, चम्पूमेघ उष्मादिका चम्पूतान, १२
शोरामचन्द्र कुण्ड और इक्ष्वाकुपुत्र शगाटका वंशविवरण,
१३ इक्ष्वाकुपुत्र निमिका वंशविवरण, १४ छद्वन्ति-
को वनिका और सोमके चम्पूमेघसे पुत्रका जन्म, बुधके
शोरम और जवर्गोके गर्भमें पापुमुल्य प्रशुतिका
उत्पत्तिकथन, १५ ऐलपुत्रके वंशमें गंधिका जन्म, गांधि-
के रोहित सप्तान रामसे कापिलोपवध, १६ जमदग्नि-
जनन, परशुरामकट्टक बार बार चतुर्विध, शिर्षामित्र
वंशानुचरित, १७ पायुके पांच पुत्रोंमें से चम्पूतवादि
चारका वंशविवरण, १८ नहुषपुत्र ययातिका उपाख्यान,
१९ ययातिका वंशव्याप्य और निषेदाय विवर्णन

प्रति आत्मज्ञानात्कथन, २० पुनर्व्यविवरण और तद-
र्थाद्युपान्ततय भरतका यशःकीर्तन, २१ भरतका
वर्णविवरण और प्रसन्नक्रमसे रत्निदेव, भजमोद्गाटिका
कीर्तिवर्णन, २२ दिवोदासका वंश, अष्टवर्णशेय
जगत्समुपधिखरिदुर्धीधनादिका विवरण, २३ अनु, द्रष्टा
और तुल्यसुका वंश तथा व्यामघकी उत्पत्ति, यदुर्ग
विवरण, २४ रामकृष्णका लङ्का, विदर्भसुततयोत्पन्न
विविधवंश ।

१०म स्कन्धमें— १ देवकीके पुत्रके हाथसे कंसकी निज
मृत्युकथा सुन कर तत्काल ही देवकीके छः गर्भभाग,
२ कंसवधार्थ देवकीके गर्भमें भगवान् हरिका जन्म,
ब्रह्मादिकर्त्तृक लनका स्तव, देवकी सारंगमा, ३
भगवान्का निजरूपमें उद्भव, मातापिताकर्त्तृक लनकी
सुति और वासुदेवकट्टेक गोकुलमें पानयन, ४ चण्डिका
वांछ सुन कर कंसका भय और मन्त्रियोंकी कुम-
न्त्रणासे बालकादिकी चिन्तामें प्रवृत्ति, ५ पुत्रजातोत्सव-
समाप्त होनेके बाद नन्दका मधुरागमन और वासुदेव-
समागमोत्सव, ६ गोकुल-प्रत्यागमनकालमें नन्दका मृत-
राक्षसोदमर्ग और लनका विस्मय, ७ आकाशमें शकटो-
द्घोषण, सुनके मध्य विश्वप्रदर्शन प्रभृति लक्षणोक्ता
कथन, नन्दनन्दका नामकरण, बालक्रीडाके बहाने
मृगव्यामियोगरूपमें विश्वरूप निरूपण, ८ भाण्डभङ्गादि
देख कर गोपीकर्त्तृक ओलखणका वस्त्र, उनके उदर-
स्थित विश्वमिरीचणसे विस्मय, १०- ओलखणकर्त्तृक
जमबाहुमङ्गल, लन दोनोंका स्वरूपधारण, ओलखणका
स्तव, ११ इन्द्रावनमें ओलखणका गोचारण, ओलखण
कर्त्तृक वत्सासुर और वंकासुरवध, १२ अघासुरकट्टेक
सर्पशरीरधारण, गोवत्सप्रास, ओलखणकर्त्तृक लन-
का वध, १३ ब्रह्ममायासे गोपबालक और गोवत्स-
हरण, ओलखणकर्त्तृक कंसवध पूर्ववत् भाव-
रचा, १४ ओलखणकर्त्तृक धेतुकासुरमर्दन, कालिय-
नागसे गोपबालकोंकी रक्षा, १५ यमुनाप्रदमें ओलख-
णकर्त्तृक कालिप्रतिप्रह, उसकी परिमियोंके स्तवसे ओ-
लखणका करुण-प्रकाश, १७ नागालयसे कालियका निर्ग-
मन, ओलखणकर्त्तृक आन्तसुप्तवन्धुगणकी टावानलसे
परित्याग, १८ ओलखणकर्त्तृक वलभद्र द्वारा प्रसन्ना-

सुरवध, १८ ओलखणकर्त्तृक सुभारण्यमें गोप और
गोकुलवापियोंकी भरणाग्निसे रक्षाकरण, २० सर्पा और
गरुड ऋतुका शोभावर्णन, गोपगणसह रामकृष्णको
प्राष्टकालीन क्रीडा, २१ गरुडकालीन रम्यदृश्यावनमें
ओलखणका प्रवेश, लनकी वंशोद्भिन्नि लन कर गोपियोंका
गीत, २२ दक्षहरणकीला, गोपकन्यादिसे प्रति ओलख-
का वरदान, तदन्तर यज्ञशालामें गमन, २३ यज्ञदीप्तियों-
के निकट गोपालगणको पञ्चमिला, लनका पशुताप,
२४ ओलखणका इन्द्राचलनिवारण, ओलखणकर्त्तृक
गोवर्धनोत्सवप्रवर्तन, २५ इन्द्र द्वारा व्रजविनाशार्थ भय
ह्वर धारिवरण, ओलखणका गोवर्धनधारण और गोकुल
रक्षा, २६ ओलखणका भद्रतकमें देख कर गोपियोंका
विस्मय, नन्द द्वारा गगंकथित कृष्णका ऐश्वर्यवर्णन, २७
ओलखणका प्रमातावलोकनमें सुरभि और सुरेन्द्रकट्टेक
अभिप्रेक-महोत्सव, २८ वर्षणालयसे नन्दानयन, गोपीका
वैकुण्ठदर्शन, २९ लखणसंवादमें गोपोरासविहारकथन,
रासरश्मिमें ओलखणका अन्तर्धान, ३० गोपियोंका सम्पत्त-
भाव, ओलखणालेखण, ३१ गोपियोंका कृष्णगान और
तदागमनप्रार्थना, ३२ ओलखणका आधिर्भाव, और
गोपियोंके प्रति सारंगतना, ३३ गोपालललमध्यस्थ ओ-
लखणकी यमुना और लनकेलि, ३४ भगवान्कट्टेक
सर्पशरीर नन्दका मोचन और शङ्खचूड़वध, ३५ गोकुलमें
बालकीला, कृष्णगुणगान, ३६ अरिष्टवध, नारदवाक्यसे
रामकृष्णको वासुदेव-पुत्र जान कर कंसकट्टेक
तद्वधमन्त्रणा और कृष्णको पञ्चकालीने लिये पत्तूरके
प्रति आदि, ३७ ओलखणकर्त्तृक शेषोवध, व्योमासुर
संहार, ३८ पत्तूरका गोकुलगमन और ओलखणकर्त्तृक
उसका सम्मान, ३९ पत्तूरके साथ ओलखणकी मधुरा
यात्रा, गोपियोंकी खेदोक्ति, यमुनामें पत्तूरका विशु-
द्धोददर्शन, ४० ओलखणको ईश्वर जान कर सगुण-
निशुण्णके भेदसे पत्तूरका स्तव, ४१ ओलखणका मधुरा-
सन्दर्शन, पुरोप्रवेश, रजकवध, सुदामाके प्रति वरदान,
४२ कुजाकी ऋतुकरण, अनुमंजु और रत्निप्रदादि,
४३ गजेन्द्रवध, रामकृष्णका मत्सरहर्षमें प्रवेश, चानूके
साथ सभाषण, ४४ मत्सरवादिका मर्दन, ओलख-
णकर्त्तृक संपत्तियोंके प्रति आग्रासदान, रामकृष्ण

कलक विष्टमाष्टदशम, ४५ श्रीकृष्णकलक विष्टामाता-
की मान्वा नीर उद्योगेनाभियुक्त, ४६ उद्योगको व्रजपुरमें
प्रेरण, श्रीकृष्णकलक यमोदानन्दादिका शोकाप-
नोदन, ४७ कलक के पादोदये उद्योगकलक गोपिणीके
प्रति तत्त्वोपदेय, ४८ कुन्ताके माय विहार, चक्ररुका
मनोपूरण नीर पाण्डवसाम्बन्ध, ४९ चक्ररुका कृतिमा-
पुरगमन, तत्कलक पाण्डवोंके प्रति धृतराष्ट्रका वेदम्य-
व्यवहारदर्शनान्तर प्रत्यागमन, ५० श्रीकृष्णका जरा-
सन्धकी भयसे समुद्रमें दुर्गनिर्माण, शङ्खदण्डव-वधान्तर
जरासन्धवध, ५१ सुसुकुन्दकलक उद्योगवध, ५२
श्रीकृष्णका गमन, ब्राह्मणके सुखसे कृष्णकीका संवाद-
अवध, ५३ श्रीकृष्णका विदमनगर गमन, कृष्णकीहरण,
५४ श्रीकृष्णकलक कृष्णकोकी निजपुरमें आनयन नीर
कृष्णकोका पाणिप्रदण, ५५ श्रीकृष्णके मयूखका जन्म
नीर शम्बरकलक प्रयुक्तहरण, शम्बरवध, ५६ श्रीकृष्ण-
का मणिकरण, जाम्बवान नीर शत्रुजितकी कन्याप्राप्ति,
अनन्तर अन्य दारपण नीर स्वमन्त्रहरणदि द्वारा
पथका अनर्थता-अनयन, ५७ शतधन्वावध, चक्ररुका
पाण्डव मणिकरण, ५८ श्रीकृष्णकी कालिन्दीप्रसूति
पञ्चकन्याकी पाणिप्रदण, तत्रस्थिनी कालिन्दीका विवा-
हार्थ इन्द्रप्रस्थमें गमन, ५९ आह्निककलक भोमहनन,
तदाहृत सद्यः कन्या नीर स्वर्गमें पारिजातहरण,
सद्यः कन्यासद्यः, ६० श्रीकृष्णके परिणामसे कृष्णकी-
का वीर्य, प्रेमकलहमें उनको सम्मिलन, प्रेमकलहका
प्रेमवर्षण, ६१ श्रीकृष्णकी पुत्रप्राप्ति मन्तति नीर
अनिन्दविवाहमें वनरासकलक कृष्णकाशिश्रवध, भोजन
हजार एकमो पाठ शिवासे समुद्रभूत कोटी पुत्रप्राप्ति-
का विवाहवर्षण, ६२ जपाके माय रममाण अनिन्दका
वाणकलक पञ्चरात्र, अनिन्दके निधे वाणयादवयुद्धमें
श्रीकृष्णकी हरण, वाणराजका वाहुकलक, ६३ वाण-
यादवयुद्धमें माण्डव्यकलक वाणयादुच्छेत्ता हरिको
रुति, ६४ श्रीकृष्णकलक शृङ्गाका मायमोचन नीर ब्रह्म-
ण्डहरणोपलब्धि, विभूति-मदोन्नत यदुगणकी शृङ्गोदार-
प्रसङ्गमें विद्यादान, ६५ वनरासका गोकुलागमन नीर
गोपिणीके साथ रमण, मन्तावधनः कालिन्दी आकषण,
वनरासका हरिमवर्षण, ६६ श्रीकृष्णका कायोमें आग-

मन, पोष्णिक नीर काशिराजवध, सुदक्षिवध, ६७
वनरासकी रेत पर्वत पर क्षिपार्थ साथ लोढ़ा, विविद
वानरवध, ६८ युद्धमें लोचनकलक शम्भोवध, शम्भ-
मोचनाय वनरासका गमन, ६९ नारदकलक श्रीकृष्ण-
का श्रवण, ७० श्रीकृष्णके देवमन्त्र कर्मउपनयनमें दूत
नीर नारदके कार्यमें कार्यमन्त्रविचार नीर जगदोग्र-
का आह्वित तथा जगन्मन्त्रवचन देण कर नारदको
उक्ति, ७१ उद्योगको मन्त्रवासे श्रीकृष्णका इन्द्रप्रस्थगमन,
७२ श्रीकृष्ण नीर भोमका जरासन्धवध, ७३ श्रीकृष्णकलक
राजापाका मोचन नीर निजकृप मन्त्रगन, ७४ राजसूय
यज्ञागुहान, उस यज्ञमें वहने पूजामन्त्रमें वेदाराज
गिष्णुपानवध, ७५ शुद्धिहरिका पञ्चमयमन्त्र नीर दुर्गा-
धनका मानमन्त्र, ७६ उच्छिन्नाश्व मन्त्रावधमें द्यूतमन्त्रा-
प्रकारसे प्रयुक्तता रथवेष्टसे पञ्चमाय, ७७ श्रीकृष्ण-
कलक शम्बरवध, ७८ दन्तवध नीर विदुरप्रहत्या,
श्रीकृष्णकलक तत्पुरो आत्मवध, वनरासकलक वृत्तवध,
७९ वल्लभहनन नीर पण्डे तोयस्नानादि द्वारा मन्त्र-
की वृत्तवधान्नित पावसुक्ति, ८० श्रीकृष्णकलक ओदाम
नामक ब्राह्मणकी पूजा, ८१ श्रीकृष्णकलक स्वयं मन्त्रा
ओदाम ब्राह्मणका पुण्य मन्त्रमोजन नीर स्वर्ग इन्द्र-
दुर्गभक्ष्यनिदान, ८२ कुक्षेत्रमें रविप्रदये वृद्धिमासेश
नीर भूगणकी परस्पर कृष्णकथा, श्रीकृष्णका कुक्षेत्रमें
गमन, ८३ श्रीकृष्णमार्गमेंको द्रोपदीके निकट अपनो
अपनो वद-विषयक उक्ति, ८४ मुनि-समागत नीर वृ-
न्दादिक्का प्रस्थान, ८५ विष्टामाताकी मायनासे श्रीकृष्ण
वनरासकलक विष्टाकी आनन्दान नीर माताका वृत्तपुत्र
प्रदान, तत्पुत्रमें तत्त्वज्ञानोपदेय, ८६ पञ्चनक्षत्रक
सुमन्त्रहरण, श्रीकृष्णका निविजानगमन, भक्त नृप नीर
विषकी मद्गति प्रदान, ८७ नारदनारायणवचनवाद,
वेदकलक नारायणकी वृत्ति, ८८ विष्णुमन्त्रकी मुक्ति
नीर अन्य देवतामन्त्रका विभूतिप्राप्तिकथन, ८९ भृ-
गुकलक मुनिगीके निकट विष्णुका वल्लभतावर्णन, ९०
पुनर्वार संसेधमें कृष्णकीनी नीर यदुवर्षण ।

१११ स्वर्गमें—यदुवर्षणानयनेत मोचन कथाका उप-
लक्ष, २ नारदनिजप्रस्थानवादा, तत्पुत्रगमें यदुवर्षण
निकट भागवतचर्मप्रकाश, ३ मुनिवचनकलक माया,

तदुत्तरण, ब्रह्म भोर कम' इन चार प्रश्नाका उत्तरपदान, ४ जयन्तीनन्दन द्रविडसत्त्वमकट'क पयतारपटित काय-
विषयक प्रश्नाका उत्तर, ५ युग युगमें भक्तिहीन कनिहाधि-
कारियोंकी निष्ठा भोर उपयुक्त विष्णुपूजाविधि, ६ ब्रह्म
धामगमनार्थ' उदवकी हरिसे प्रार्थना, ७ उदवकी
आत्मज्ञानसिद्धिके लिये श्रीशृणुकरूढ'क अवधूत इतिहा-
सीत घट गुरुका विषयवर्णन, ८ अवधूत इतिहासप्रसङ्ग-
में श्रीकृष्ण'कट'क अवधूतगिद्यावर्णन, ९ श्रीकृष्णकट'क
कुररादिसे गिद्या करके यदुराजका कृतार्थता-वर्णन, १०
चतुर्वि'प्रति गुरुका उपदेशान सुन कर विशुद्धचित्त उदव-
का आत्मतत्त्वज्ञानसाधनरूप देहसम्बन्धविचार भोर आत्म
संसारस्वरूप नहीं है, यह मत-निरास, ११ वसुसुत
साधु भोर भक्तका लक्षण, १२ साधुसङ्गको महिमा भोर
कर्मविज्ञान, कर्मत्यागरूप व्यवस्थावर्णन, १३ सत्त्वशुद्धि-
द्वारा ज्ञानोदयका क्रम, १४ वेतिहास द्वारा चित्तगुण-
विश्लेषवर्णन, १५ भक्तिका साधनमें यत्नकथन, साधना-
सह ध्यानयोगवर्णन, १६ विष्णुपदप्राप्तिका 'वहिरङ्ग'-
साधन, चित्तधारणादुगत अष्टाध्यायकथन,
१७ ज्ञानवीर्यप्रभावादि विशेष द्वारा हरि आविर्भावयुक्त
भिर्भूतिवर्णन, १८ ब्रह्मचारी भोर ब्रह्मसौंका भक्ति-
लक्षण, स्वधर्म' विषयक उदवकी प्रश्न पर भगवान्कट'क
ह'सीत धर्मरूप वर्णनसविभागकथन, १९ वाचप्रत्य
भोर यतिधर्मनिर्णय, अधिकारविशेषमें 'धर्म'कथन,
२० पूर्व' निर्णीत ज्ञानादिके परित्यागरूपप्रयोजकथन, २०
अधिकारोंविशेषमें गुणदोषव्यवस्था, तत्त्वप्रसङ्गमें भक्ति-
योग, ज्ञानयोग भोर क्रियायोगकथन, क्रियायोग, ज्ञान-
योग भोर भक्तियोगमें अनधिकारी कामासक्त व्यक्तियोंके
सम्बन्धमें द्रष्टव्यादिका गुणदोषकथन, २२ तत्त्वसंस्था-
का भावरोच, प्रकृतिपुरुषविवेक भोर जन्ममृत्युकथन,
२३ भिद्युगीताकथन, तिरस्कार-सङ्गोपाय भोर बुद्धि
द्वारा मनका संयमवर्णन, २४ आत्मा भोर अन्य सभी
पदार्थोंको आविर्भाव-तिरोभावचिन्ता, तत्त्वप्रसङ्गमें
सांख्ययोगनिरूपण द्वारा मनका मोहनिवारण, २५ भ्रम-
वान्कट'क अन्तःकरणसम्भूत रुचादिगुणका उत्ति-
निरूपण, २६ दुष्ट संघर्षमें योगनिष्ठाका व्याघात भोर
साधुसङ्गसे तन्निष्ठाका पराकाष्ठावर्णन, दुष्टसंघर्षनिष्ठ-

स्वयं ऐसगीतवर्णन, २७ संक्षेपमें क्रियायोगवर्णन,
परमार्थ'निष्प'य, ज्ञानयोगका संक्षेपवर्णन, २८-२९ पूर्व-
कथित भक्तियोगका पुनर्वार संक्षेपवर्णन भोर योगकी
भक्ति होकर ज्ञान कर'सहस्रकट'क तद्विषयमें सुखो-
पायप्रशंजिज्ञासा, ३० सुषुप्तोत्पत्तिकी कथा, श्रीकृष्णकी
निजधाम गमनेच्छा, उसी सुषुप्तस्थलसे निज कुल संहार,
३१ यदुव'गको पुनर्वार देवभावप्राप्ति, श्रीकृष्णका
संशय भोर निज धाम गमन भोर वसुदेवादिका उगका
अनुगमन।

१२म स्कन्धमें—१ कृतिप्रभाववर्णन, वर्ण'साङ्ख्य-
कायन, भावो मागधव'श्रौय राजाकी नामकीर्तन,
कृष्णभक्ति व्यतीत मुक्तिका कोई अन्य पथ नहीं है, इस
का वर्णन, २ कलिका दापवृद्धि, अधिक पथतार'भोर
अधर्मिकोंका नाश, पुनर्वार सत्ययुगागमवर्णन, ३
भूमिगीत द्वारा राज्यका दावादिवर्णन, दोषपूर्ण कलिके
हरिका स्तवकायन, ४ नेमित्तिकादि चार प्रकार मय-
कथनपूर्वक हरिकीर्तन द्वारा संसार निस्तारवर्णन,
५ संक्षेपमें परब्रह्मोपदेश द्वारा राजाका तत्त्वज्ञानसे
व्युत्पन्ननिवारण, ६ राजा पराजितको मोक्षप्राप्ति, उसके
पुत्र जनमेजयका सर्पयज्ञ भोर शाखाविभागकथन
द्वारा व्यासदेवका वर्णन, ७ अथर्ववेदका विस्तार, पुराण
विभाग भोर तत्त्ववर्णन, भागवतयवणफलकथन, ८ मार्क-
ण्डेयका तपस्याचरण, कामादिसे असोहानारायणको स्तुति,
९ मार्कण्डेय मुक्तिका प्रलयसुदृढमें मायाविग्रहमें,
सुनिका मिष्ट भन्तरमें प्रथम भोर निर्गमवर्णन, १०
मिश्रका भागमन भोर मार्कण्डेयसम्भाषण, तत्त्वप्रति शिव
का वरदान, ११ महापुरुषवर्णन, प्रतिमास पृथक् पृथक्
पूजामें हरिके अवतारव्यूहका भाष्यान, मानव हो कर
भा मार्कण्डेयने जिस प्रकार अष्टत पाया था, उस क्रिया-
योगका साङ्गोपाङ्गवर्णन, १२ इस पुराणके प्रथम स्कन्धसे
ले कर उक्त सभी अर्थोंका सामान्य विशेषरूपमें एकत्र-
कथन, १३ यथाक्रम पुराणसंख्याकथन, श्रीमद्भागवत
सन्धका दानमाहात्म्यवर्णन।

देवीभागवत।

अथ देवीभागवतकी विषयसूची दो गातो है—

१म स्कन्धमें—१ सतके समीप गीतकादि व्यक्तियोंका

पुराणप्रश्न, पुराणप्रश्नप्रश्न, भागवतप्रश्न, २
भगवतोक्तौ स्मृति, प्रश्नका संख्यानिर्देश, पुराणसंख्य,
मोनकादि मुनिगणकत्वं नैमिषारण्यका माहात्म्य-
वर्णन, ३ अष्टादश महापुराणका नाम और संख्या-
कथन, उपपुराणका नामकथन, जिस जिस स्वरूपमें जिस
जिस व्यासकी उत्पत्ति हुई है, प्रश्नका विषय, भागवत
माहात्म्यकथन, ४ मृतके समीप शुक्रदेवब्रह्मविषयक
प्रश्न, व्यासदेवकी अपुत्रनिवन्धन चिन्ता, व्यासके समीप
नारदका पागमन, पुत्रके लिये नारदके निकट व्यासका
प्रश्न, हरिकी ध्यानसे देख कर ब्रह्माका संशय, विष्णु-
कत्वं गति जो देवीका कारण है, इस विषयका
वर्णन, देवोमाहात्म्यवर्णन, ५ ऋषियोंका वृषघोष-
विषयक प्रश्न, देवताओंका निद्रागत विष्णुके समीप
गमन, ब्रह्मादिदेवगणकत्वं भगवान्के निद्रामग्नमें
सन्निधा, प्रसीनाम कोटकी उत्पत्ति, विष्णुके क्षिप्रमहाका-
का अन्तर्धान, दुःखित देख और देवगणकत्वं जग-
द्व्यकाको स्मृति, देवताओंके प्रति आकाशवाणी, विष्णु-
सम्पत्कच्छेदनका कारण, देख वृषघोषको तपस्यादि,
वृषघोष देखका मस्तकच्छेदन और विष्णुके वीषादेममें
संशयजन, ऋषियोंका मधुकूटमधुहविषयक प्रश्न,
मधुकूटमकी उत्पत्ति, दोनों देवोंको निजोत्पत्तिका
कारणानुसन्धान, दोनों देवोंके सागबीजको उपपत्ति,
उनका विष्णुनाभि कमलौपच ब्रह्माकादर्शन, शुक्रके
लिये उनको ब्रह्माके निकट प्रायना, ब्रह्माकत्वं
विष्णुका स्तव, विष्णुका निद्राभक्त नहीं होनेसे ब्रह्मा-
कत्वं भगवतोका स्तव, विष्णुके शरीरसे योगनिद्राका
निराकरण और पारमार्थिक व्यवधान, ८ सृष्टिके समीप
ऋषियोंका शक्तिविषयकप्रश्न, शक्तिका प्रधानवर्णन,
विष्णुका निद्राभक्त, विष्णुके साथ मधुकूटमका युद्धो-
त्थाग, विष्णुकत्वं मधुमयाका स्तव, मधुकूटम-
घ, ९ ऋषियोंका शुक्रदेवोत्पत्ति विषयकप्रश्न, व्यास-
देवका भगवतोका पाराधनामें गमन, व्यासका पुनाचा
अपसरका दर्शन, ११ शुक्रस्मृतिप्रश्नो ताराके साथ चन्द्र-
का मिलन, चन्द्रके प्रति शुक्रस्मृतिका निरूपण, चन्द्र-
कत्वं शुक्रस्मृतिनिराकरण और इन्द्रकत्वं प्रधा-
न, चन्द्रकत्वं इन्द्रकत्वं निराकरण, चन्द्रके साथ

इन्द्रका युद्धोत्थाग, शुक्रकी उत्पत्ति, ११ सृष्ट्य राजाका
जनमगमन, सृष्ट्य राजाका समीपत्वनाम, सृष्ट्यराजा-
की इनामानप्राप्ति, इसाके साथ शुक्रका मिलन, पुत्रवा-
की उत्पत्ति, रत्नाकत्वं भगवतोका स्तव, सृष्ट्यराजा
की उत्पत्ति, १२ पुत्रवाके समीप कर्वांशोका नियम, कर्वांशो
की लानेके लिये गन्धर्वगणका पागमन, कर्वांशोका
अन्तर्धान, कुरुक्षेत्रमें पुत्रवाका किरसे कर्वांशोदर्शन,
१४ पुनाचोका शुक्रोत्पत्ति, शुक्रोत्पत्ति, शुक्रकी
शुक्रव्यासका चवसम्पन्न करनेके लिये व्यासका अनु-
रोध, शुक्रदेवका विवाह करनेमें पत्नीकार, १५ शुक्र-
देवका वैराग्य, व्यासके प्रति शुक्रदेवको उक्ति, शुक्रदे-
वके भागवतका अध्ययन करनेके लिये व्यासका अनुरोध,
वटपमायाया भगवान्का शोकाहं व्यवध, विष्णुके समीप
भगवतोका प्रादुर्भाव, १६ विष्णुको विप्रित देख कर
भगवतोको उक्ति, विष्णुकत्वं शोकाहं विषयमें प्रश्न,
शोकाहंका माहात्म्यवर्णन, ब्रह्माके निकट विष्णुकत्वं
भगवतोमाहात्म्यकोत्तन, भागवतका मध्य, शुक्रदेवकी
विरहित देख कर बोधसुख जनकके निकट गमनार्थ
व्यासका उपदेश, शुक्रकी मिथिला गमनेच्छा, १७
शुक्रका मिथिलागमन, शुक्रके साथ हारपासका कथोप-
कथन, शुक्रदेवका जनकवृद्धमें विद्याम, १८ शुक्रकी
पागमनवात्ता सुन कर सत्कार करनेकी इच्छासे राजा
जनकका उनके समीप गमन, शुक्रका पागमनकारण-
वर्णन, शुक्रके प्रति जनकका उपदेश, जनकके साथ शुक्र-
का विवाह, १९ शुक्रदेवका सन्देशनिराकरण, शुक्रदे-
वका विवाह, शुक्रको तपस्या और अन्तर्धान, व्यासदेवकी
पुत्र पुत्र पुकारने पर पत्नीतादिका प्रयुक्त दान, व्यासके
समीप महादेवगमन, व्यासदेवकत्वं शुक्रका क्षाया
दर्शन, २० पुत्रविरहातुर व्यासदेवका अन्तर्धान
दोषके साथ पागमन और दागराजके साथ मिलन,
भरस्त्रोको जिनारे व्यासका साथ, गन्तुनात्रका मृत्यु-
वर्णन, विराट्टदको राज्यप्राप्ति, विराट्टदके साथ
गन्धर्वविवाहदका युद्ध, विराट्टदकी मृत्यु और विजय-
वीर्यको राज्यप्राप्ति, क्षयस्वर्गमें मोक्षकत्वं परित्याग
कागोराजका कथाव्यवहार, मोक्षकत्वं कागोराज-
की ज्येष्ठकथाका गादवके समीप गमन, मोक्ष

घोर शास्त्रकर्मक निराकृत काशीराजकन्याकां तत्प्रथाय
वनगमन, विचित्रदीर्घकी मृत्यु, धृतराष्ट्र आदिकी
उत्पत्ति ।

२५ स्कन्धमें—१ ऋषियोंकी सत्यवतीविषयक प्रश्न,
उपरिचर नृपतिवृत्तान्त, मत्स्यराज घोर मत्स्यगन्धाकी
उत्पत्ति, २ पराशर मुनिका भागमन, कामोत्त पराशरके
प्रति मत्स्यगन्धाकी उक्ति, मत्स्यगन्धाकी योजनगन्धानाम-
प्राप्ति, व्यासदेवकी उत्पत्ति, ३ महाभिय नृपतिका ब्रह्म-
सदनगमन, महाभिय घोर गङ्गाके प्रति ब्रह्माका भूमिगाय,
पंडवसुका वशिष्ठस्थानमें गमन, दो नामक वसुक्तृक
वशिष्ठका मोहरण, वसुगणके प्रति वशिष्ठका शाप, गङ्गा
घोर वसुगणका मिलन, शन्तनुराजको उत्पत्ति, ४ शन्तनु-
राजकत्तक मानववर्षधारणो गङ्गाका विवाह, सप्त-
वसुगणको क्रमान्वय गङ्गागमने उत्पत्ति घोर तत्कत्तृक
जलमें निचे, भीष्मकी उत्पत्ति, भीष्मको पहण करके
गङ्गाका चत्वारिंश, शन्तनुराजको गङ्गासे पुनः भीष्म-
प्राप्ति, ५ शन्तनुराजको सत्यवती दर्शन, शन्तनुका
दाशगृहमें गमन, दाशके निकट सत्यवतीको प्रार्थना,
दाशके वाक्य पर शन्तनुकी चिन्ता घोर गृह-प्रयोगमन,
शन्तनुके प्रति भीष्मकी उक्ति, भीष्मका दाशगृहगमन,
भीष्मकी प्रतिज्ञा घोर सत्यवती पानयन, ६ कर्णोत्पत्ति
विवरण, दुर्वासामुनिका कुन्तिभोजगृहमें भागमन, कुन्ती-
को दुर्वासका मन्त्रदान, कुन्तीकत्तृक सूर्यका भाजन,
कर्णकी उत्पत्ति, मत्स्यपाककर्म कर्णकी गङ्गाजलमें
परिधाय, पाण्डुके साथ कुन्तीका विवाह, पाण्डुके प्रति
जगद्गुपी मुनिका शाप, युधिष्ठिर प्रभृतिकी उत्पत्ति,
पाण्डु की मृत्यु, पुत्रीके साथ कुन्तीका इक्ष्वाणु गमन,
७ परोक्षिकी उत्पत्ति, धृतराष्ट्रका वनगमन, विदुरकी
मृत्यु, देवीप्रसादसे युधिष्ठिर आदिके मृत-दुर्घोचनादि-
दर्शन, धृतराष्ट्रकी मृत्यु, यादवगण घोर रामकृत्यको
मृत्यु, अश्वत्थामाका दारकागमन घोर दक्षकर्मक कण-
पत्नीहरण, परोक्षिकी राज्यप्राप्ति, परोक्षिकर्मक
शमोकमुनिक गंधेमें सप प्रदान, परोक्षिके प्रति ब्रह्मागाय
रुद्रवृत्तान्तवर्णन, ८ रुद्रका विवाहीयोग, रुद्रपत्नीकी
सप दर्शनसे मृत्यु, रुद्रकर्मक पत्नीके जीवनदानका
बंध्यो, रुद्रपत्नीका जीवनसाध, परोक्षिकी तत्कर्मय

निवारणकी चेष्टा, १० दक्षकका भागमन घोर राक्षस-
कश्यप ब्राह्मणके दर्शन, तत्कका न्यग्रोधवृक्ष-
दर्शन, कश्यपकत्तृक वृक्षा जीवदान, कश्यपका
गृहप्रयोगमन, परोक्षिकी मन्त्रादि द्वारा विहित
देखे तत्ककी चिन्ता, पतुचर सर्पोंका ब्राह्मणके
वेशमें परोक्षिके समीप गमन, ब्राह्मणवृषधारी सर्पके
समीप राजाका फलग्रहण, राजाकी तत्कदर्शनसे मृत्यु,
११ जनमेजयको राज्यप्राप्ति, जनमेजय का विवाह,
उतङ्गमुनिका इक्ष्वाणु भागमन, उतङ्गमुनिके साथ
जनमेजयका कथोपकथन, रुद्रको सर्प जननमें प्रतिज्ञा,
डुग्धुम सर्पके साथ रुद्रका कथोपकथन, सर्पयज्ञारम्भ,
पास्तोक कर्मक सर्पयज्ञनिवारण, १२ जरतकासुमि-
कर्मक गर्तमें सम्भ्रमान पिङ्गगणका दर्शन, आदित्य-भक्ष
देख कर विनता घोर कट्टका कथोपकथन, सर्पगणके
प्रति कट्टका शाप, गङ्गाका रुद्रकी वधे मृत्यु पाहरण,
वासुकि प्रभृति सर्पगणका ब्रह्माके समीप गमन, जरत-
कासुमिका दारपरिग्रह, पास्तोककी उत्पत्ति, जनमे-
जयके प्रति भागवतश्रवणके लिये व्यासका आदेश ।

२५ स्कन्धमें—१ ब्रह्मा, विष्णु घोर महाश्वरके
विभूतिकथनमें व्यासके समीप जनमेजयका प्रश्न, व्यास-
देवका उत्तर, २ ब्रह्माके निकट नारदका चाराध्यानिर्णय-
प्रश्न, ब्रह्माका स्वकारण पञ्चोपपाप पञ्चसे नीचे भागमन,
ब्रह्माके शेषगायिजनादन दर्शन, ब्रह्मा घोर विष्णुके
समीप रुद्रका भागमन, ब्रह्मा, विष्णु घोर रुद्रके प्रति
देवीकी उक्ति, देवीदत्त विमान पर ब्रह्मादिका आरोहण,
३ विमान पर आरोहण कर ब्रह्मादिका नानाविध वस्तु-
दर्शन, अन्य ब्रह्मादर्शन, अन्य शिव दर्शन, अन्य विष्णु-
दर्शन, ब्रह्मादिका देवीदर्शन, ४ भगवतीके समीप गमन
नोद्यत ब्रह्मादिको रमणीयप्राप्ति, देवीपादपद्ममें निक्षि-
ब्रह्माण्डदर्शन, विष्णुकर्मक भगवतीकी स्तुति, ५ शिव-
कृत भगवतीस्तव, ब्रह्माकर्मक भगवतीस्तव, ६ ब्रह्मादि-
के प्रति भगवतीका उपदेश, ब्रह्माको महासरस्वती
प्रदान, विष्णुकी महालक्ष्मीप्रदान, महादेवको महाकाला
प्रदान, ब्रह्माको पुनर्वार पुरुषत्वप्राप्ति, ७ नियुक्तश्रव-
कथन, गुणप्रमेद द्वारा तत्त्वस्वरूपवर्णन, ८ गुणसमूहका
रूपसंख्यानवर्णन, ९ गुणनिरुक्ता सत्य, जनमेजयके

समीप व्यासकटक पाराशरिण्यं, १० मुनिसमाजमें पाराशरिण्यमें सन्दिहान जमदग्नि का प्रथ, श्रीमहा हारा पूर्व प्रथको श्रीमहा, सयव्रत सयवका उपाख्यान, विम-देवदत्त का पुत्र कामनासे यशारथ, देवदत्तके प्रति गोभिल का शप, देवदत्तको सुबोधत्ति, उत्तपका वेशस्य लाभके लिये वनगमन, ११ उत्तपको सयव्रतनामप्राप्ति, सयव्रतके सखतीभोजका उपाख्यान, श्रीमहाहृत्यमें सर्व जलप्राप्ति, देवीमाहात्म्य, १२ पद्मवायव्यविधिवर्णन, जन-मेजयके प्रति पद्मवायव्य करनेके लिये वेदव्यापका उपदेश, विष्णुके प्रति देववायो, १३ भूवसन्धिराजका वृत्तान्त, भूवसन्धिकी मृत्यु, नृपपुत्र सुदर्शनको राज्यप्रदानको मन्त्रणा, युधाजितका पागमन, वीरसेन का पागमन, १५ युधाजितपोर वीरसेन का युद्ध, वीरसेनको मृत्यु, सुदर्शन-को ले कर सोलावतीका प्रस्थान, सुदर्शनका भरद्वाजा-त्यममें वान, सुदर्शनविनागकी इच्छामें युधाजितका भर-द्वाजात्यममें वान, १६ सुदर्शन-विनागकी इच्छामें युधा-जितका भरद्वाजात्यममें गमन, जयद्रथका श्रेपदोहरण-तत्प्राप्त, १७ विश्वामित्रकथा, युधाजितका अमुरप्रत्यागमन, सुदर्शनको कामराजवीजप्राप्ति, कामीराजकथा शशि-कलाका सुदर्शनके प्रति भृगुराग, १८ शशिकलाका स्वयं वरीयोग, १९ सुदर्शनके प्रति शशिकलाका गाढ़ापुराग-वर्णन, सुदर्शन पोर पद्मान्य राजाओंका कामीमें पागमन, २० सुदर्शन पोर नृपगणका कथोपकथन, शशिकलाको स्वयस्वरसमामें पानिकी इच्छा, २१ कामोपतिके सुपक्षे उनकी कथाका पन्थ नृपतिकी वरण करनेकी पनिल्ला सुन कर युधाजितका तिस्कार, युद्धको भागहासे कामो-पतिकी कथाके प्रति उक्ति, २२ सुदर्शनका विदाह, कामोपतिकस्य का राजाओंको विदाह, २३ कामीमें सुदर्शनकी विदाह, युद्धकी इच्छामें अन्य राजाओंका पागमन, सुदर्शनके साथ राजाओं का युद्ध पोर देवोका पाविर्भाव, युधाजितकी मृत्यु, कामोपतिक कटक देवी-का स्तव, २४ दुर्गाका कामीमें वास, सुदर्शनका पयोधा पागमन, २५ सुदर्शनका पयोधामें देवीसापन, २६ नवरात्रप्रतिविधि, कुमारोविधिवर्णन, २७ वर्जनीय-कुमारोवर्णन, सुगोबधविक्रका उपाख्यान, २८ राम, लक्ष्मण, भरत पोर मनुष्यकी उत्पत्ति, रामका दण्ड-

काण्डमें गमन, मायाभगवत्, भिक्षुके धर्ममें रावणका परिचयदान, २९ मोताहरण, रामका जानकी पन्थव-का उद्योग, जटायुदर्शन, सुगोबधे साथ रामचन्द्रकी मित्रता, गोक्रान्ति रामके प्रति सत्प्रपक्षी उक्ति, ३० राम पोर सत्प्रपक्षे समीप नारदका पागमन, नवरात्रप्रत करनेका उपदेश, रामचन्द्रका व्रतविधान, रामके प्रति भगवतीका वाक्य, रामपक्ष ।

४४ स्तवमें—१ वेदव्यासके समीप जनमेजय-कस्य क छयावतारादि विषयका प्रश्न, २ कर्मकनका प्राधान्यनिर्णय, ३ कामप्रकस्य का वक्ष्यका हेतुहरण, कश्यपके प्रति लज्जाका शप, पुत्रके निमित्त दितिका व्रत-करण, पदितिका प्रति दितिका शप, दितिकी विधाके लिये उनके समीप इन्द्रका गमन, इन्द्रकस्य का वक्ष्य द्वारा दितिका गर्भच्छेदन, ४ काम्यका चोरसुशान्त सुन कर जनमेजयका संशय, मायाका प्राधान्यकोर्णन, ५ नरनारायणप्रसाद, कपिहयकी तपस्या देख कर इन्द्रकी चिन्ता, तपस्याभङ्ग करनेके लिये इन्द्रका पद्मरा-गणकी प्रेरण, ६ नरनारायणके पाशमें सहसा जलन-स्तुका पाविर्भाव, पञ्चकनकवस्तु देख कर नारायणकी विस्मय, कपिहयके सामने पद्मरागणका पागमन, कर्मगोकी उत्पत्ति, ७ समस्त ब्रह्माण्डका पद्मद्वारा-वृत्तावर्णन, ८ प्रह्लादका राज्यलाभ, प्रह्लादके समीप ज्ञानकी तोषीविषयक उक्ति, प्रह्लादका नेमिवा-रखमें पागमन, ९ प्रह्लादका नरनारायणदर्शन, प्रह्लादके साथ नरनारायण कपिज्ञा युद्ध, प्रह्लाद-के समीप विष्णुका पागमन, प्रह्लादके प्रति विष्णुकी उक्ति, १० प्रह्लादका इन्द्रके साथ युद्ध पोर पराजय तथा तपस्याके लिये गमन, पराजित देवोंका शुकके समीप गमन, ११ शक्राचार्यका पुत्रतामके लिये महादेवके समीप गमन, शुककी तपस्या, देवोहित देवोंका शुकजननीके समीप गमन, शुकजननीके साथ देवताओंका युद्ध, शुकजननीवध, १२ विष्णुके प्रति भृगुका शप, शुकजननीका जीवननाम, इन्द्रकस्य का शुकके समीप स्वकथा जयन्तीका प्रेरण, जयन्तीकस्य का शुककी परिचय, शक्राचार्यका वरनाम, शक्रा जयन्ती-की जयन्तीमें वरण, देवगणके समीप शुकके इन्द्रके

वृहस्पतिका भागमन, वृहस्पतिकी शक्तिके रूपमें देवो-
की वचना, शक्राचार्य का देव्यके समीप गमन और
स्वरूपधारिवृहस्पतिदर्शन, १४ देव्यो की प्रति, शक्रा-
चार्य की उक्ति, देव्यगणकृत्क शक्राचार्य का प्रत्या-
ख्यान, देव्यगणके प्रति शक्राचार्य का श्राप, प्रह्लाद
प्रभृति देव्यो का शक्तिके समीप गमन, शक्राचार्य का
पुनर्बार देव्यपचावलम्बन, १५ देवदानवयुद्ध, देवताओं-
की पराजय और इन्द्रकण्टक भगवतीका स्तुतिपाठ,
भगवतीका आविर्भाव, प्रह्लाद कण्टक भगवतीका
स्तव, देव्यो का पातासप्रवेश, १६ विष्णुका नाना-
प्रवतारकथन, १७ अष्टरागणके प्रति नारायणकी
उक्ति, सर्वश्रीको ली और अष्टमराशियों का स्वर्गगमन,
क्षणावतार विषयमें जनमेजयका प्रश्न, १८ भारद्वाज
युद्धोका स्वर्गहोकरनें गमन, देवताओं के साथ ब्रह्माका
विष्णुके समीप गमन, विष्णुका निजपराधीनत्वकथन,
१९ विष्णु प्रभृति देवगणकण्टक भगवतीकी स्तुति,
देवगणके प्रति भगवतीकी उक्ति, २० देवीमाहात्म्य,
वसुदेवके साथ देवकीका विवाह और कंसके प्रति
देवताओं, कंसका देवकीके जननमें उद्योग, कंसकी
प्रति वसुदेवकी उक्ति, कंसके हाथसे देवकीकी
स्तुति, २१ देवकीकी पुत्रोत्पत्ति, कंसकी पुत्रप्रदानके
लिये वासुदेव और देवकीका कथोपकथन, वसुदेवका
कंसकी पुत्रदान, कंसके समीप नारदका आगमन,
कंसकण्टक क्रमशः वसुदेवकी समीप पुत्रों की इत्या, २२
प्रह्लादगर्भहन्तान्त, मरुचिपुत्रों के प्रति ब्रह्माका श्राप और
उनका दैत्ययोनिमें जन्मग्रहण, विरिष्णुकशिपुको पुत्रोंकी
ब्रह्मासे वरप्राप्ति, पुत्रों के प्रति विरिष्णुकशिपुका श्राप,
प्रह्लादगर्भकी देवकीकी गर्भसे उत्पत्ति, देवताओं का
अश्रावतारकथन, असुरों का अश्रावतारकथन, २३
देवकीके अष्टम गर्भका आविर्भाव, देवकीकी आरा-
गारमें रचना, श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव, वसुदेवकण्टक
गोकुलमें स्वपुत्ररक्षण, गोकुलसे यमोदाकन्याका पान-
यन, कंसकण्टक कन्याविनाशका संयोग और कंसके
प्रति भगवतीकी उक्ति, पूतनाश्वेतक प्रभृति देव्योका
गोकुलगमन, २४ कृष्णका पूतनाश्वेतक, कृष्णवत्सलरामका
अथुरामि आगमन और कंसवध, कृष्णप्रभृतिका दारुयतो-

गमन, कृष्णश्रीहरण, प्रद्युम्नहरण और कृष्णकंस का
भगवतीका स्तव, २५ कृष्णका श्रीकमोद्वादि देख कर
जनमेजयका प्रश्न, व्यासका उत्तरप्रदान, कृष्णकी शिवा-
राधना, कृष्णके प्रति महादेवका वरदान, कृष्णके प्रति
देवोंकी उक्ति, महात्माया भगवतीका सर्वेश्वरत्व-
संस्थापन।
५म स्कन्धमें—१ सूतके समीप श्रीनकादि ऋषियोंका
कृष्णविषयक प्रश्न, व्यासके समीप जनमेजयका शिवा-
पासनाविषयक प्रश्न, विष्णुको सपत्नी ब्रह्मा प्राधान्य-
वर्णन, ब्रह्मादि स्वयं पथं न समस्त पदार्थोंका भावा-
धीनत्ववर्णन, २ व्यासके समीप जनमेजयकी देवी-
माहात्म्य-प्रवणेश्वा, महिषासुरकी तपश्चर्या, महिषासुर-
की वरप्राप्ति, रथ और करभकी तपस्या एवं करभ-
वध, रथका महिषलोक, रथासुरकी मृत्यु, महिषासुर
और रक्तवज्रकी उत्पत्ति, ३ महिषासुरका इन्द्रके समीप
दूतप्रेषण, इन्द्रकंस का दूतके समीप महिषासुरकी
निन्दा, महिषासुरके समीप दूतका प्रत्यागमन, दूतका
वाक्य सुन कर महिषासुरका युद्धोद्योग, देवताओं के
साथ इन्द्रकी मन्त्रणा, इन्द्रके प्रति वृहस्पतिका उपदेश,
४ ब्रह्माके निकट इन्द्रका गमन, इन्द्रके साथ ब्रह्माका
कौलास और तदनन्तर वैकुण्ठगमन, दानवों के साथ
देवताओंका युद्ध, विहङ्गाणाख्यका युद्ध, ताम्रासुरका युद्ध,
५ दिक्पालों के साथ महिषासुरका युद्ध, ७ देव और
दानव-सैन्यका तुलन युद्ध, महिषासुरका विभिन्न रूप-
ग्रहण कर तुलन युद्ध, देवताओंका रणभङ्ग, महिषासुर-
का इन्द्रपदग्रहण, देवगणकंस का ब्रह्माका स्तव, देव-
ताओंका ब्रह्मा और शंकर के साथ वैकुण्ठगमन, ८ विजय-
का विष्णुके समीप देवताओंका आगमन-हन्तान्तकथन,
विष्णुके साथ देवताओंकी महिषासुरवधकी मन्त्रणा,
प्रत्येक देवताके शरीरसे तीजकी उत्पत्ति, देवतीजसे
भगवतीकी उत्पत्ति, जिस देवसे भगवतीके किस
षड्भूती-उत्पत्ति हुई थी, उसका वर्णन, ९ देवताओं
के प्रति भगवतीका सर्वेश्वरसे अष्टाष्टकरण, शब्दावु-
सरण करनेके लिये महिषासुरका दूतप्रेषण, महिषा-
सुरकी निकट दूतका समस्त हन्तान्तकथन, देवी-
के समीप महिषासुरका दूतप्रेषण, १० देवताओंकी

राज्य प्रत्यपण करके महिषासुरको पाताम ज्ञानके लिये दूतके समीप भगवतीका कथन, महिषासुरके समीप दूतका भगवतीकथित वाक्यकथन, ११ मन्त्रियोंके साथ महिषासुरको मन्त्रणा, ताम्बासुरका युद्धमें गमन, ताम्बके समीप देवोंकी उक्ति, महिषासुरको पुनर्वार मन्त्रियोंके साथ मन्त्रणा, विद्यानाथकी उक्ति, दुर्मुखकी उक्ति, वास्तवकी उक्ति, दुर्देवकी उक्ति, १२ दास्तन की उक्ति, दुर्मुखका युद्धमें गमन, वास्तवका युद्ध, वास्तवकी स्तुति, दुर्मुखका युद्ध, दुर्मुखकी स्तुति, १३ विष्णुराज्य पोर ताम्बका सहाईमें गमन, चित्तुराज्य पोर ताम्बका युद्ध, चित्तुराज्य पोर ताम्बकी स्तुति, १४ चाम्बलोमा पोर, विद्यानाथका युद्धमें गमन, चाम्बलोमा पोर, विद्यानाथकी मन्त्रणा, विद्यानाथकी सहाई पोर, चाम्बलोमाकी सहाई, चाम्बलोमाकी स्तुति, दानव के नरका रणभङ्ग, १५ महिषासुरका मानवस्वधारण कर सहाईमें गमन, देवीके प्रति महिषासुरकी उक्ति, देवीके समीप महिषासुरका मन्दोदरी-उवाचन, मन्दोदरीका विद्याधीयोग, मन्दोदरीका विवाह करनेमें अनिच्छा प्रकट, वीरसेन नरपतिकी मन्दोदरी-दर्शन, वीरसेनकी विवाहेच्छा पोर मन्दोदरीकृतृक उसका प्रयास्यान, १६ मन्दोदरीकी भगिनी इन्दुमतीका स्वयम्बर, उक्त स्वयम्बरमें मन्दोदरीका विवाह, मन्दोदरीका चतुर्गाप, महिषासुरके प्रति देवीका तिरस्कार, महिषासुरका नाना रूप धारण कर देवीके साथ युद्ध, देवीकृतृक महिषासुरवध, १७ देवताघोंकी भगवती स्तुति, देवताघोंके प्रति भगवतीकी उक्ति, २० जनमेजयकृतृक देवीकीनाका माहाम्यकी स्तुति, पयोध्याधिवर्ति शत्रुघ्नकी महिषारण्यप्राप्ति, महिषासुरवधके लिये जगन्महल-वर्णन, २१ शुभनिगुप्त कथारथ पोर शुभनिगुप्तकी तपस्या, गुप्त पोर निगुप्तकी वरप्राप्ति, शुभकी स्वर्गविजय, २२ हृष्टवतिके साथ देवताघोंकी मन्त्रणा, देवताघोंके प्रति हृष्टवतिकी भगवत्पराधना-उपदेष्टा, देवगणकृतृक भगवतीका स्तुति, देवगणके समीप भगवतीका पारिवर्ण, २३ कोमिकी पोर कालिकाकी उत्पत्ति, चण्ड पोर मुण्डका चमिकादर्शनके बाद शुभके समीप गमन पोर देवीकी

उद्देश मानिका उपदेष्टाप्रदान, चमिकार निकट दूत सुघोषकी उक्ति, सुघोषके प्रति देवीकी उक्ति, २४ सुघोषके समीप देवीका प्रतिष्ठाकथन, दूनवाक्य सुन कर शुभ पोर निगुप्तका परामर्श, धूमलोचनका युद्धमें गमन, २५ धूमलोचनके प्रति देवीका मति, धूमलोचनका युद्ध, धूमलोचनवध, धूमलोचनवध सुन कर शुभ पोर निगुप्तका परामर्श, २६ चण्ड पोर मुण्डका युद्धमें गमन पोर देवीके प्रति उक्ति, चण्ड पोर मुण्डके प्रति देवीका तिरस्कार, चण्ड पोर मुण्डका देवीके मात्र युद्ध, शोभोका उत्पत्ति, चण्डसुवृद्धवध, देवीका चामुण्डानामकरण, २७ गुप्तके समीप रणभङ्ग सेव्यकी उक्ति, भगवत्सेव्यके प्रति शुभका तिरस्कार, रत्नवीजका युद्धमें गमन, देवीके प्रति रत्नवीजकी उक्ति, २८ शुभसेव्यका उवाच देव कर प्रज्ञाकी प्रादि देवगतिघोंका पागमन, मित्रदूतकी विवरण, दानवीके समीप मित्रका दौयकार्य, देवगतिघोंका युद्ध, २९ रत्नवीजका युद्धमें पागमन, अनेक रत्नवीजकी उत्पत्ति पोर देवताघोंका वास, देवताघोंकी भगवती देव करकालीके प्रति चमिकाकी उक्ति, रत्नवीजवध, भयातुर दानवीके प्रति शुभकी उक्ति, निगुप्तका भयभङ्गनीयोग, ३० निगुप्त पोर शुभका युद्धमें पागमन, निगुप्तके साथ देवीका घोरतर युद्ध, निगुप्तकी स्तुति, शुभके निकट रणभङ्गसेव्यकी उक्ति, ३१ भगवत्सेव्यके प्रति शुभका तिरस्कार, शुभका युद्धमें पागमन, देवीके साथ शुभका युद्ध, शुभवध, ३२ व्यासके समीप जनमेजयका भगवती-माहाम्यविवरणकथन, सुरय पोर ममाधिका वृत्तान्तरथ, सुरयराजका जनमगन पोर सुमेधा ऋषिके चात्रममें स्थिति, सुरय ऋषिके साथ ममाधिवेष्टका मिशन, सुरयके साथ ममाधिका कथोपकथन, ३३ ऋषिके समीप सुरयका महामायाविवरणकथन, सुरय पोर ममाधिके निकट महामायामाहाम्यकथन, दद्या पोर निगुप्तका वाक्ययुद्ध, दद्या पोर विष्णुका निष्कृति दर्शन, निगुप्तके प्रादि युक्त निराकरणके लिये विष्णुका पाताम पोर प्रज्ञाका लङ्गेगमन, दद्याका केतकीदत्त पदप, पोर विष्णुके समीप मियाकथन, केतकीका मियापाण्यदान, केतकीके प्रति महादेवका भाष्यप्रदान, ३४ भगवतीकी पूजाविधि, नवरात्रवर्तनविधिकथन, ३५ पोर ममाधिके

प्रति देवीका पाराधनविषयक उपदेश, २६ सुरेश और समाधिकी देवी-उपासना, देवीका त्रय्यक भागमन, सुरेश और समाधिकी वरप्राप्ति।

१४ स्वर्गमें—१ ऋषिगणके समीप सत्तका हवासुर-
हत्तान्तकथन, विश्वरूपकी उत्पत्ति, विश्वरूपकी तपस्या,
२ विश्वरूपका वध करनेके लिये इन्द्रका गमन, विश्व-
रूपको मृत्यु, विश्वरूपकी क्षेदनाय इन्द्र और तट्टाका
कथोपकथन, हवासुरकी उत्पत्ति, ३ इन्द्रविजयके लिये
हवासुरका स्वर्गगमन, वृक्षसृष्टिके साथ इन्द्रकी मन्त्रणा,
इन्द्रका युगगमन, देवगणका पहायन, हवासुरका
तपस्याके लिये गमन, ४ हवासुरकी प्रतिवृत्त्याका वरदान,
हवासुरके साथ देवगणका पुनर्वार युद्ध, जूषिकाकी
सृष्टि, देवताओंका पहायन और हवासुरका स्वर्गराज्य-
लाभ, हवासुरवधके निमित्त सब देवोंका वैकुण्ठगमन,
५ देवगणके प्रति विष्णुकी उक्ति, देवोंकी पाराधनाके
लिये विष्णुका उपदेश, देवगणकचतुर्भुजभगवतोकी सुति,
देवगणकी देवीका वरदान, ६ इन्द्रके साथ हवाका वस्तुता
स्थापनार्थ ऋषियोंका गमन, हवाके साथ इन्द्रका कपट-
वस्तुत्वस्थापन, समुद्रके समीप इन्द्रकचतुर्भुजहवासुरवध,
७ इन्द्रके प्रति त्वष्टाका श्रापप्रदान, देवगणकचतुर्भुज-
की निन्दा, इन्द्रका शृङ्गपरित्यागपूर्वक मानससरोवरमें
गमन, नहुषकी इन्द्रत्वप्राप्ति, ८ नहुषकी शचीलामेच्छा,
नहुषके साथ शचीका नियमकरण, शचीकी भगवतो-
पूजा, शचीके प्रति भगवतोका वरदान, ९ इन्द्रके साथ
शचीका मिलन, नहुषका समर्थन पर आरोहण,
नहुषके प्रति भगवान्मुनिका श्राप, इन्द्रकी पुनः स्वर्ग-
राज्यप्राप्ति, १० कर्मफलफलकथन, ११ युगमें दशे धर्म-
कथन, कलियुगका माडाकारकीर्तन, १२ तीर्थनामकथन,
जन्ममेजयके भाटोवकथनकी कारणजिज्ञासा, सर्वपथमें
हरिचन्द्रका उपास्थान, वरुणके प्रति हरिचन्द्रकी कुलना,
१३ हरिचन्द्रके प्रति वशिष्ठके क्रीतपुत्र द्वारा शानकरणका
उपदेश, यज्ञपथके लिये शुनःशेपकी भानयन, शुनःशेपके
हृन्दन पर विश्वामित्रकी कथना, वशिष्ठ और विश्वामित्र
का परस्पर श्रापप्रदान, भाटोवकथा युद्ध, वशिष्ठ और
विश्वामित्रकी श्रापसृष्टि, १४ वशिष्ठके मन्त्रावरुण नाम-
का हेतुकथन, निमित्तकी यज्ञकरणेच्छा, निमित्तके प्रति

वशिष्ठका श्राप, वशिष्ठके प्रति निमित्तका श्राप, वरुण और
वशिष्ठकी उत्पत्ति, १५ सब प्राणियोंके नेत्र पर निमित्तका
वाध, जनककी उत्पत्ति, कामकोषादिका दुर्जयत्व-
कथन, १६ हे देवगण द्वारा भृगुवंशीयगणके निकट
धनप्रायना, हे देवगण द्वारा भृगुवंशीयका विनाश,
लोभनिन्दाकथन, १७ वैद्यपत्नीगणकी गोरीपूजा, शीव
श्रष्टिकी उत्पत्ति, हे देवगणकी शान्ति, लक्ष्मीका स्वतन्त्र-
दमन, लक्ष्मीके प्रति नारायणका श्राप, १८ लक्ष्मीका
वडवाकर धारणपूर्वक शङ्करकी पाराधना, लक्ष्मी-
का चतुर्भुज और चरका ऐश्वर्यावकथन, लक्ष्मीके
प्रति शङ्करका वरदान, १९ चरकचतुर्भुजकी विष्णुके समीप
घितरूपका प्रेरण, विष्णुके समीप दूतकी उक्ति,
विष्णुका चोटकरूप धारण और लक्ष्मीके निकट
गमन, हे देवकी उत्पत्ति, लक्ष्मीका नवजातपुत्रपरित्याग
और वैकुण्ठगमन, २० चम्पाख्य विद्याधरकी शिशुप्राप्ति,
विद्याधरका शिशु ले कर इन्द्रके निकट गमन, इन्द्रवाक्य
पर विद्याधरकचतुर्भुजकी शिशुको लक्ष्मणमें रक्षण, तुवचुके
निकट नारायणका गमन, तुवचुका पुत्रलाभ, २१ हे देव-
की राजसिंहासन पर स्थापन करनेके बाद तुवचुका
वनगमन, २२ कालकेतुके चतुर्भुजका एकावलीका चरण,
एकावलीका हे देव-वरणेच्छाकथन, हे देवका कालकेतु
भवनमें गमन, कालकेतुके साथ हे देवका युद्ध और
कालकेतुकी मृत्यु, एकावलीके साथ हे देवका विवाह,
२३ जन्ममेजयकचतुर्भुजकी विष्णुकी भय्योनिप्राप्तिकी
कारणजिज्ञासा, नारदके समीप व्यासका संसार-
विषयक प्रश्न, व्यासके साथ सत्यवतोका कथोपकथन,
२४ काशीराजसुताकी पुत्रोत्पत्ति, नारदके समीप व्यासकी
मोहकारण जिज्ञासा, २५ संसारके समीप प्राणी मोहके
अधोर्न, इस हत्तान्तका कथन, सञ्जयके शृङ्गमें पर्वत
नारदकी अवस्थित, नारदके प्रति दमयन्तीका अनुराग,
पर्वतके श्रापसे नारदकी बानर सुखप्राप्ति, नारदके साथ
दमयन्तीका विवाह, पर्वतके बरसे नारदका चारुवदन
प्राप्ति, महाभायाका वलकथन, २८ नारदका श्वेतहोपमें
विष्णुके समीप गमन, विष्णुकचतुर्भुज नारदके समीप
मायाका भजयत्वकथन, नारदकी मायादर्शनेच्छा,
नारदकी स्त्रीरूपप्राप्ति, नारदका तावज्जन्म उपदेश,

२८ नारदके साथ तानध्वज राजाका विवाह, नारद-
को पुत्रोत्पत्ति, नारदका मायाभग्नतावर्णन, नारद-
का पुत्रमृत्यु सुन कर विन्ताप और नारायणका
ब्राह्मणवेशमें यहाँ आगमन, नारदकी पुनर्वाप पुत्र-
पत्नरूपप्राप्ति, २० तानध्वज नृपतिका पत्नी विरहमें
विन्ताप, तानध्वजके प्रति भगवान्का उपदेग, मद्यामाया-
का महिमावर्णन, २१ नारदको विषय देख कर ब्रह्मा-
की जिज्ञासा, ब्रह्माकी समीप नारदका स्वहृत्तान्तकथन,
व्यास कर्त्तव्य गुणमाहात्म्य कोर्त्तन ।

७५ स्कन्धमें—१ चन्द्र और सूर्यवंशका कथारम्भ,
दक्षप्रजापतिकर्त्तव्य प्रजासृष्टि, नारदभर्त्तृक दक्षपुत्रा-
का दूरीकरण, नारदकी प्रति दक्षका श्रापप्रदान, २
सूर्यवंशवर्णन, अथनसुनिका उपाध्याय, शर्वातिदुहितृ
कर्त्तव्य अथनका नेत्रविहकरण, अथनके निरुद्ध शर्वाति-
का अनुमय, अथनकर्त्तव्य शर्वातिकी कन्याप्राप्तिना,
कन्याप्रदानविषयमें मन्त्रियोंके साथ राजाको मन्त्रणा,
शर्वातिका अथनभर्त्तृकी कन्यादान, ४ शर्वाति-कन्याकी
पतिवैवा, अश्विनोक्तुमारका अथन-पत्नीदग्गन, अश्विनो-
क्तुमारकी अथनपत्नीके प्रति उक्ति, ५ अथनको योवन
प्राप्ति, अथन और अश्विनोक्तुमारद्वयोके समानाकृति-
दग्गन करके सुकन्याका भगवतो सुति, भगवतीके
प्रसादे सुकन्याका अथननाम, ६ शर्वातिका अथनायम-
में गमन, शर्वातिके प्रति यज्ञ करनेके सिध अथनको
उक्ति, शर्वातिपञ्चम अश्विनोक्तुमारका सोमपान, ७
शर्वाति-पञ्चमें इन्द्रके साथ अथनका विवाद, अथन-
विनाशके लिये इन्द्रका वज्रध्याग, इन्द्रविनाशके लिये
अथनकर्त्तव्य महासुरका उत्पादन, अथनके निकट
इन्द्रकी क्षमाप्राप्ति, ऐवत नृपतिके उत्पत्ति, ऐवतका
स्वकन्या ऐवतकी प्रवृत्ति करके ब्रह्मलोके गमन, ८
ब्रह्माकी समीप ऐवतकी स्वकन्याको वरजिज्ञासा, वल-
देवको ऐवतीका वरनिर्देश, ऐवतनृपतिका वलदेवको
कन्यादान, ९ इक्ष्वाकुका जन्मकथन, १० इक्ष्वाकुके वरपुत्र
विकुन्तिकी शगद नामप्राप्ति, ककुत्स्थका राज्यनाम, इन्द्र
का ककुत्स्थ नृपतिका बाहन्त्व, ककुत्स्थका वंशकोर्त्तन,
योवनाशका पुत्रके लिये श्रुतिपर्वके समीप गमन, योव-
नाशसे साम्राजाको उत्पत्ति, १० साम्राजाका वंशकोर्त्तन,

सन्धवतकी उत्पत्ति, सन्धवतका राज्ययाग, विश्वामित्र-
को पुत्र गाक्षका वृत्तान्त, सन्धवतकर्त्तव्य वसिष्ठकी
सेतुदर्या, वसिष्ठके श्रापसे सन्धवतकी त्रिगङ्गा नामप्राप्ति,
११ सन्धवतका मनस्तापसे सृष्टि योग, सन्धवतके प्रति
भगवतीकी प्रसन्नता, नृपतिकर्त्तव्य सत्प्राप्तकी पत्नीध्यामें
आनयन, सत्प्राप्तके प्रति नृपतिका उपदेग, १२ त्रिगङ्गा-
को राज्यप्राप्ति, त्रिगङ्गाकी स्वर्गरोरमें स्वर्गगमनके लिये
वसिष्ठके प्रति उक्ति, वसिष्ठके श्रापमें त्रिगङ्गाको चाण्डा-
लत्वप्राप्ति, त्रिगङ्गाका राज्यत्याग, हरियन्द्रका राज्य-
त्याग, १३ विश्वामित्रकी चण्डाचर्यमें कृष्णस्राव-
भक्षणेच्छा, चाण्डाकासमें देहत्यागविकथन, विश्वामि-
त्रके समीप उनकी पत्नीका दुर्मित्त विवरण,
त्रिगङ्गाकृत उपकारवर्णन, त्रिगङ्गाके प्रत्युपाकारार्थ
विश्वामित्रका उनके समीप गमन, १४ त्रिगङ्गाका
स्वर्गगमन, हरियन्द्रको पुत्रके लिये वरुणकी
तपस्या, हरिवरुणके प्रति वरुणका वरदान,
हरियन्द्रको पुत्रोत्पत्ति, हरियन्द्रको पुत्र द्वारा
यज्ञ करनेके प्रतिज्ञा, १५ हरियन्द्रभूमि वरुणका
आगमन, हरियन्द्रके पुत्र रोहितका नामकरण, हरि-
यन्द्रकी भूमिमें पुनर्वाप वरुणका आगमन, रोहितका
पवायन, वरुणके श्रापसे हरियन्द्रकी लज्जोदरोगप्राप्ति,
हरियन्द्रके भूमिमें पुनर्वाप वरुणका आगमन, १६ रोहित-
के साथ इन्द्रका कपोपकथन, हरियन्द्रके प्रति वसिष्ठका
क्रोतपुत्र द्वारा यज्ञ करनेका उपदेग, यज्ञोपवीतका पुत्र-
विक्षय, युनःशिकका लम्पन, युनःशिककी परित्याग करने-
के लिये विश्वामित्रका उपदेग, युनःशिकका परित्याग
करनेमें हरियन्द्रका पत्नीकार, १७ युनःशिकका विश्वामि-
त्रका वरुणमन्त्रप्रदान, वरुणको युनःशिकमुनि और
राजाको मोहोदहरण, विश्वामित्रका पुत्र बन कर युनः-
शिकका सनके साथ गमन, रोहितके साथ हरियन्द्रका
मिलन, हरियन्द्रकी से कर वसिष्ठ और विश्वामित्रका
विवाद, १८ हरियन्द्रकर्त्तव्य वनके मध्य शोभी हुई
शोका दग्गन, विश्वामित्रको लोकपोद्धारक तपस्या
करनेमें हरियन्द्रका लिये, विश्वामित्रकर्त्तव्य हरियन्द्र-
भक्षणमें मायाशूकरप्रेरण, शूकरकर्त्तव्य राजाका उपवन-
मह, शूकरका अनुसरण करते हुए राजाका गहन-वनमें

प्रवेश, हरिचन्द्रको समीप हृषीकेश्यके वेशमें विश्वामित्रका आगमन, १८ पुत्रविद्याके लिये ब्राह्मणवेश-धारी विश्वामित्रको धनप्राप्त्यना, विश्वामित्रको हरिचन्द्र-का राज्यदान, हरिचन्द्रको समीप विश्वामित्रकी दक्षिणाप्राप्त्यना, हरिचन्द्रका पुत्र और भार्याके साथ राज्य-परित्याग, २० दक्षिणाके लिये विश्वामित्रका उपलोडन, हरिचन्द्रका वाराणसीगमन, पक्षोविक्रयकथा सुन कर राजाका मोह, २१ हरिचन्द्रको निकट विश्वामित्रकी पुनर्बार दक्षिणाप्राप्त्यना, हरिचन्द्रपत्नीका किसी भी ब्राह्मणकी यथा-धनप्राप्त्यना करनेका अनुरोध, चन्द्रिय-का भिक्षा-निषेधत्वकथन, २२ हरिचन्द्रका पक्षोविक्रयाथ, राजमार्ग की कर गमन, ब्राह्मणकी वेशमें विश्वामित्रका राजपक्षोविक्रय, मातृविरहसे रोहितका क्रन्दन, ब्राह्मणका राजपुत्रकथन, हरिचन्द्रका विनाप, विश्वामित्रको हरिचन्द्रका दक्षिणादान, अथ धन देव कर विश्वामित्रका मोह, २३ भालविक्रयाथ हरिचन्द्रका गमन, हरिचन्द्रकी खरोदनेके लिये चण्डालका आगमन, चण्डालकी हाथ बिकनेमें अनिच्छा देख विश्वामित्रकी कटुति, विश्वामित्रका दक्षिणा ले कर प्रस्थान, २४ हरिचन्द्रकी कामीय प्रणयनरक्षा, हरिचन्द्रका अनुताप, २५ रोहितकी गर्पदंशन, राजपत्नीकी रोती हुई देख कर ब्राह्मणका तिरस्कार, राजपत्नीका विनाप, नगरपालकके राजपत्नीकी प्रवमानना, चण्डालके कर हरिचन्द्रकी राजपत्नीवध कानेका आदेश, हरिचन्द्रका स्त्रीवध करनेमें निषेध, २६ पुनः चण्डालकी कहनेसे स्त्रीवध करनेमें हरिचन्द्रका उपयोग, हरिचन्द्रका नाम ले ले कर राजपत्नीका विनाप, राजा और रानेका परस्पर प्रतर्पितज्ञान, राजाका विनाप, २७ चित्तमें पुत्रकी रख कर राजाकी भगवतीसुति, हरिचन्द्रको समीप देवताकी-का आगमन, राजपुत्रका जीवनसाम, हरिचन्द्रकी साथ इन्द्रादिका कठोपकथन, हरिचन्द्रकी प्रभावसे प्रजागण-का स्वर्गगमन, रोहितका राज्याभिषेक, २८ शताघोका महातप्यकथन, दुर्गम नामक दानवका यज्ञादिनाश-करण, शतवर्षाधी अनाष्टि, ऋषिगणके भगवती-की पूजा, भगवतीकी शक्तिशी नामप्राप्ति, दुर्गासुर-का युद्धमें आगमन, देवीकी शरीरसे शक्तिगणका आवि-

र्भाव, दुर्गासुरका वध, भगवतीकी दुर्गानामप्राप्ति, २९ भुवनेश्वरीरूपकथन, हरि और हरका शक्तिशून्यता, त्रिधाकटके सनकादिके प्रति महाशक्तिसे धाराधना करनेका आदेश, ३० सनकादिका तपस्याके लिये गमन, सनकादिके समीप देवीको उक्ति, हरि और हरका प्रकटित होना, दसके शठमें सतीको उत्पत्ति, दसका शिवविधेयकारणनिर्णय, विष्णुकटके सतीका देहच्छेद, पोठस्थानकथन, पोठस्थानमाहात्म्य, ३१ तारासुरका विवरण, देवगणकी देवापूजा, देवगणकी समीप देवीका आविर्भाव, देवगणकी देवीसुति, हिमालय-शठमें देवीका जन्मप्रकथन, ३२ सुरगणकी समीप देवीका भालतत्त्वकथा, छटिप्रक्रियाकथन, पक्षो-करण, ३३ तरुशृष्टिसे मायाका अभिवलकथन, देव-गणकी देवीका विराट्-मूर्त्तिप्रदयन, देवीकी प्रति देव-गणकी सुति, ३४ जन्मप्रकथनका कर्मजन्मत्वकथन, ज्ञानका श्रेष्ठत्वकथन, वेदान्तदर्शनका चारनिरूपण, क्रोडार-बोधका स्वकृपवर्णन, ३५ योगस्वकृपवर्णन, योगसनकथन, प्राणायामकथन, प्रत्याहारादिकथन, मन्त्रयोगकथन, षट्चक्रादिका स्थाननिर्णय, ३६ ब्रह्मतत्त्व-निरूपण, ब्रह्मज्ञानापदेशका पावननिर्देश, ब्रह्मज्ञान-दाता-का शुकत्वकथन, ३७ भक्तिस्वकृपादिकोत्तन, ज्ञानका सुत्तिकारणत्वकथन, ३८ शक्तिमूर्त्तिके साथ देवीका स्थानकीर्तन, देवानामपाठका फलकीर्तन, ३९ देवी-पूजानिरूपण, देवीका ध्यान, ४० देवीका वाद्यपूजा-कर्मकीर्तन।

८८ स्कन्धमें—१ नारदनारायणसंवाद, नारदकी प्रति नारायणका देवीस्वकृपवर्णन, स्वायम्भुव मनुकी देवी-सुति, मनुकी प्रति देवीका वरदान, २ ब्रह्माकी तमिजा-से बराहकी उत्पत्ति, बराहके कृषिदेवीका उद्धार, ब्रह्माकी बराहमूर्त्तिकी सुति, विरणाक्षवध, ३ स्वाय-म्भुव मनुकी पुत्रोपपत्ति, स्वायम्भुवका प्रजापति, ४ प्रि-तवशकीर्तन, सप्तहोपका सामान्य विवरण, ५ जम्बू-द्वीपका विवरण, दत्तात्रेयादि वर्षका उत्पत्ति, ६ जाम्बू-न्द सुवर्णकी उत्पत्ति, नन्दनदी और देवीमूर्त्तिकी उत्पत्ति, ७ सुमेरुगिरिका विवरण, ध्रुवनक्षत्रवृत्तान्त, राक्ष-धारावृत्तान्त, ८ इलावृत्तवर्षका विवरण, मद्राक्षवर्षका

विवरण, ८ हरियर्ष-हस्तान्त, सेतुमानवर्षका विवरण, रम्यकवर्षहस्तान्त, १० द्विषणवर्ष-विवरण, उत्तर-कुर्व का विवरण, किव्युहवर्षकथन, ११ भारतवर्षहस्तान्त, पर्वत पोर नदीका विवरण, भारनवर्षका प्राधान्य-कथन, १२ पञ्चदोषहस्तान्त, शास्त्रमन्त्रीपत्रहस्तान्त, कुय-दीप विवरण, १३ क्षौद्रोपविवरण, शाकदोषहस्तान्त, पुष्करदीप विवरण, १४ क्षोक्रान्तिकविवरण, उत्तरा-यणादिकथन, १५ सूर्यगतिवर्णन, सूर्यरथवर्णन, १६ साक्षादिका विषयवर्णन, चन्द्रस्थितिकथन, चन्द्रगति-वर्णन, शुक्रादिवर्णनका गतिवर्णन, १७ ध्रुवमस्थान-कोशेन, ज्योतिषकवर्णन, १८ राहुका स्थितिकोशेन, पृथ्वी पोर कतलादिका परिमाणवर्णन, १९ चतस्रका विवरण, वितस्रका विवरण, सुतस-हस्तान्त, २० तन्नातस पोर महातनका हस्तान्त, रसातल पोर पाताल-का विवरण, अनन्तमूर्त्तिक साक्षादिककथन, २१ सना-ममलन - चतस्रमूर्त्ति, नरकनामकथन, २२ विमेष-पापके कारण विमेष विमेष नरकको प्रप्ति, २३ यमोचि-प्रमुख नरकवर्णन, २४ तिविविधमे देवोपूजाविधि, वार पोर नक्षत्रविमेषमे देवोपूजाविधि, योग, करण पोर साक्षविमेषमे देवोपूजाविधि, देवोत्त-।

८म स्कन्धमे—१ परमब्रह्मरूपिणे प्रकृति, सृष्टिविषय-में मणियजननी, दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती पोर सावित्री आदिका पञ्चविध रूपधारणविषयक वर्णन, नित्यप्रकृतिवर्णन, मणियजननी, दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सर-स्वती पोर सावित्री इन पञ्चप्रकृतिशेका वर्णन, प्रकृति-को पञ्चरूपिणे गङ्गा, तुलसी, मनसा, यक्षी, ब्रह्म-चण्डिका, कातो पोर सप्तभ्रादिका वर्णन, प्रकृतिको कलाकृतिषो ब्रह्मपत्नी स्वाहा, यज्ञपत्नी दक्षिणा, दोषा, स्वधा, स्रष्टि, पुष्टि, तुष्टि, सम्पत्ति, हृत्ति, भवती, दया, प्रतिष्ठा, कीर्ति, क्रिया, मित्या, शान्ति, लज्जा, बुद्धि, मेधा, धृति, मूर्त्ति, मोमानुष्या लक्ष्मी पोर निद्रादिका वर्णन, दुर्गा, सावित्री पोर लक्ष्मीपाटिको प्रथमपूजा-विधि, श्यामदेवियीका पूजाकथन, २ मूलप्रकृतिका विषय पोर भगवतीका पञ्चप्रकृतिरूपधारणविषयक वर्णन, ओन्नोदस्थित प्रकृति-पुष्पवर्णन, प्रकृतिमें श्रीकृष्णका बीर्योधान, कमला पोर राधिकाकी उत्पत्ति, दुर्गाका

भावभाव, श्रीकृष्णका गोपिकापति पोर महादेव-मूर्त्तिधारण, ३ मूलगतिप्रसूत द्विषका विवरण, महाविशङ्को उत्पत्ति, विष्णु, पोर महादेवको उत्पत्ति, ४ नारदकी दुर्गादि पञ्चप्रकृति पोर कला प्रकृतिविषयक प्रश्न, मरुतोको पूजा, स्तोत्र पोर कवचादिवर्णन, विष्णुनामक सरस्वतीकवधारण-का फल, ५ यागवदश्रवण सरस्वती-महाप्राप्त ६ गङ्गाके शापसे सरस्वतीका नदीरूपमें परिवर्तन पर श्रव-नरूप पोर उक्त नदीका साक्षादिकवर्णन, निम्नारितकृते सरस्वतीका पञ्चतरङ्गवर्णन, पद्माः प्रति रात्री ना धर्म-शाप, लक्ष्मी, गङ्गा पोर सरस्वती ७ मूलोक्त पर सारिदादि रूपमें पञ्चतरङ्ग, ८ शाणोद्वारण्य नारायणके निकट सर-स्वती, गङ्गा पोर कमलाका निवेदन, सरस्वती, गङ्गा पोर मन्मोका शापशोचन, भक्तलक्षणकथन, ८ सरस्वती-प्रभृति का भारतमें गमन, कलिदा विवरण, कलिदा पञ्च-तारवर्णन, पुनः सत्ययुगप्रभृतिवर्णन, प्राज्ञ प्रत्यक्षन, ८ सविदानन्द परमात्मावे महादि समस्त शक्तिशेको उत्पत्ति, बहुभ्राता उत्पत्तिविवरण, नारादकृतक पृथिवीका उद्धारकथन, पृथिवीका पूजा विवरण, पृथिवी-का ध्यान, स्तव पोर मन्त्रादि कथन, १० पृथिवीके प्रति चरराध करनेसे नरकादि कलप्रप्ति, भूमि पोर पृथिवी प्रभृति शब्दकी व्युत्पत्ति, ११ गङ्गाको उत्पत्ति पोर साक्षादिकवर्णन, भगोरयकी गङ्गापूजा, १२ कृष्ण-शाणोक्त गङ्गाका ध्यान, विष्णुपदो नामक गङ्गास्तोत्र, गोनीकमे गङ्गाका प्रथोमपत्तिवर्णन, १३ गङ्गादेको किस प्रकार विप्र-पादपक्षसे उत्पन्न हुई, किस प्रकार ब्रह्माके कमण्डलुमें रहने लगी पोर किस प्रकार गिरकी प्रथमो बनी इन विषयमें नारदका प्रश्न, गङ्गा किस प्रकार नारायणप्रिया हुई, तद्विषयक हस्तान्तवर्णन, क्षणिके प्रति राधाका निरन्तर, राधिकाके भयमे गङ्गा-का क्षणचरणमें प्रवेग, ब्रह्मा, विष्णु पोर शिवदिका गोनीक गमन, ब्रह्मा पोर महाभरके पनि क्षणिको उक्ति, क्षणपादपक्षमे गङ्गाका सविगमन, गङ्गाधारिका कुछ भंग ब्रह्माकृतक पक्षमे कमण्डलुमें पोर कुछ भंग शिव-के मन्त्रक पर धारण, १४ जादवीके नारायणस्तोत्रका कारणनिर्देश, १५ तुलसीका उपाख्यान, १६ विषयमें

नारदका प्रश्न, उपध्वजका उपाख्यान, १६ कुम्भध्वजप्रभो
 मान्नावतीके गर्भसे लक्ष्मीकी वेदवतीरूपमें जन्मग्रहण
 कथा, वेदवतीकी तपस्या, रावणके प्रति वेदवतीका
 भूमिप्राप, वेदवतीका सोतास्वरूपमें जन्मग्रहण और राम-
 का यनगमन, मायाभौताज्ञो उत्पत्ति, रावणका माया-
 सोताहरण, सोताका द्रोपदीके रूपमें जन्मग्रहण, द्रोपदीके
 पञ्चपति होनेका कारण, १७ धर्मध्वजका निज पत्नी
 माधवीके साथ विडार, धर्मध्वजके औरससे तुलसीकी
 उत्पत्ति और उसको नामनिर्दिष्टि, तुलसीको तपस्या,
 तुलसीका वृक्षरूपत्ववर्णन, १८ तुलसीका मदनारव्या
 वर्णन, शङ्खचूड़का तुलसीके साथ कथोपकथन, तुलसी-
 की प्रहणार्थ शङ्खचूड़के प्रति ब्रह्माका उपदेश, १९
 शङ्खचूड़के साथ तुलसीका विवाह, देवगणके प्रति शङ्ख-
 चूड़का उपद्रव, देवगणका वैकुण्ठगमन, शङ्खचूड़का
 वृक्षान्त-कथन, २० महादेवकटक चित्ररथको दूतके
 रूपमें शङ्खचूड़के निकट प्रेरण, महादेवके साथ
 स्कन्दवीरमद्भादि, इन्द्रयमादि और शक्तिगणका
 सम्मिलन तुलसीके साथ शङ्खचूड़का कथोपकथन,
 २१ शङ्खचूड़का युक्तीयोग, शङ्खचूड़का महादेवके निकट
 गमन, शङ्खचूड़के प्रति महादेवकी उक्ति, महादेवके
 प्रति शङ्खचूड़की प्रसुरक्ति, शिवका पुनः कथन,
 २२ देवगणके साथ असुरोंका परस्पर युद्धारम्भ,
 स्कन्दके साथ असुरोंका युद्ध, कालीके साथ शङ्खचूड़-
 का युद्ध, महादेवके निकट कालीका संप्रामसंबाद-
 प्रदान, २३ शिवके साथ शङ्खचूड़का संप्राम, हरि-
 कटक वृक्ष ब्राह्मणवेशमें शङ्खचूड़का कवचहरण और
 उनका तुलसीके निकट गमन, शङ्खचूड़वध, २४ नारा-
 यणका शङ्खचूड़रूपधारण और तुलसीके निकट गमन,
 तुलसीके साथ नारायणका सङ्वास, नारायणके प्रति
 तुलसीका भूमिप्राप, तुलसीका माहात्म्यवर्णन, गण्डकी-
 जात ग्रासग्रामशिलासमुच्चका विवरण और उनका
 माहात्म्यवर्णन, २५ महामन्त्रसहित तुलसीपूजा, २६
 सावित्रीका उपाख्यान जाननेके लिये नारायणके निकट
 नारदका प्रश्न, भस्मपतिका वृक्षान्तकथन, गायत्रीजपका
 फल और जपका प्रकारनिर्देश, सावित्रीव्रतकथन,
 सावित्रीका ध्यान, सावित्रीस्तव, २७ भस्मपतिकथावर्ण-

में सावित्रीका जन्मग्रहण, यमसावित्रीसंबाद, २८ यम-
 के निकट सावित्रीका धर्मकर्मादि विषय पर प्रश्न, धर्म-
 कर्मादि विषय पर यमका प्रतुष्टप्रदान, कौन कौन
 कर्म करनेसे जोवगण कौसी गति पाते हैं उस
 विषयमें धर्मके प्रति सावित्रीका प्रश्न, २९ सावित्रीके
 प्रति धर्मका वरदानाभिप्रायप्रकाश, धर्मके निकट
 सावित्रीको सत्यवानके पोरससे श्रतपुत्रादिकी प्राप्ति
 और जोवका कर्मविपाक सुननेके लिये प्रार्थना,
 सावित्रीके प्रति धर्मका वरदान, जोवके कर्म-
 विपाक और दानधर्मादिका फलकथन, ३० किस किस
 कर्म द्वारा स्वर्गलाभ, और किस किस कर्म
 द्वारा मानवगणके पुत्रलाभ होता है इस विषय-
 में धर्मके प्रति सावित्रीका प्रश्न और यमके तद्विषयक
 उत्तरमें दानादिका फलकथन, जन्माष्टमो और शिव-
 रात्रि प्रभृति प्रतफलकथन, हरिपूजा और शिवपूजादिका
 फलकथन, ३१ यमका सावित्रीको शक्तिमन्त्र प्रदान, ३२
 पापियोंके पापका फल भोगनेके लिये नरककुण्डकथन,
 ३३ भिन्न भिन्न पातकियोंका भिन्न भिन्न कुण्डपातवर्णन,
 ३४ विविध पापफलकथन, विविध नरककुण्डवर्णन,
 ३५ पापियोंके निमित्त अवशिष्ट कुण्डवर्णन, ३६ कुण्ड
 केसा है ? पातको उसमें किस प्रकार रहते हैं ? इस
 विषयमें यमके प्रति सावित्रीका प्रश्न, कर्मवन्धन किस
 प्रकार विनष्ट होता है और यमपुरीका भय नहीं रहता
 धर्मका तद्विषय-कोत्तन, जोवके भोगदेहका कथन, ३७
 पृथ्वीतिलकुण्ड संख्या और उनका लक्षणनिर्देश, ३८
 यमके निकट सावित्रीको देवीभक्तिसंप्रार्थना, यमका
 सावित्रीके प्रति शक्तिभक्तिका वरदान, देवीका गुण-
 कीर्तन, और देवीका उक्त्यवर्णन, ३९ महालक्ष्मीका
 उपाख्यान, ४० नारायणके निकट लक्ष्मीको समुद्रतन्त्रा-
 होनेके विषयमें नारदका प्रश्न और नारायणका उत्तर,
 इन्द्रके प्रति दुर्वासका भूमिप्रापवर्णन, इन्द्रका स्वर्ग-
 राज्यवर्णन, इन्द्रके प्रति ब्रह्मसत्तिका उपदेश, राज्यभ्रंश
 निवेदनाथ इन्द्रका ब्रह्माके निकट गमन, ४१ समस्त
 देवताओंके साथ ब्रह्माका विशुद्ध समीप गमन, लक्ष्मी-
 के परिखाण्डखानोंका कथन, समुद्रमें जन्म लेनेके
 लिये लक्ष्मीके प्रति विशुद्धा आदेश, सागरमन्थन और

लक्ष्मीको उत्पत्ति, ४२ महालक्ष्मीका अर्चनाक्रम, महालक्ष्मीका ध्यान, महालक्ष्मीका स्तोत्र, ॥३॥ स्वाहाका उपाख्यान, राधाके मयके कृष्णका पञ्चायन, दक्षिणाके प्रति राधाका अभिषेक, कथविरहमें राधाको खेदोक्ति, लक्ष्मीके अङ्गमें दक्षिणाको उत्पत्ति, दक्षिणाका ध्यान, पौर पूजाविधि, ४६ नारायणके निकट गारटको पठो, मङ्गलचण्डो पौर मनसाका विवरणजिज्ञासा, प्रियव्रतके साथ पण्डोदेवीका साक्षात्, पण्डोदेवीकटके प्रियव्रतके श्रमपुत्रका लोचनदान, पण्डोपूजाविधि, पण्डोस्तोत्र, ४७ मङ्गलचण्डोको पूजा पौर कथा, मनसाका उपाख्यान, ४८ मनसाका ध्यान पौर पूजाविधि, जरत्काक्ष पौर मनसाका विवरण, शास्त्रोक्तका जन्म, मनवामाहात्म्य पौर पूजादि, ४९ सुरभिक्षा उपाख्यान, सुरभिपूजा, सुरभिस्तोत्र, ५० राधा पौर दुर्गामाहात्म्यवर्णन, राधाके वोजमन्त्रादि, राधास्तोत्र, दुर्गादेवीका माहात्म्य पौर उक्तका पूजादि विवरण ।

१०१ अध्याय—१ स्वायम्भुव मनुके उत्पत्ति पौर देवीमाहात्म्यवर्णन, स्वायम्भुव मनुके उत्पत्ति पौर उक्तकी देवी-पारायणा, २ स्वायम्भुव मनुके प्रति देवीका वरदान, देवीका विन्यासवर्णन पर गमन, विन्यासचक्रका उत्पत्तिकथन, ३ विन्यासचक्रका सूर्यगतिनिरोध, ४ देवतापीका मिवके समोप गमन पौर सूर्यगतिनिरोधकथन, ५ देवतापीका विष्णुके निकट गमन पौर विष्णु-सुति, देवतापीके प्रति विष्णुका समयदान, ६ देवतापीका विष्णुके समोप सूर्यगतिनिरोधकथन, अगस्त्यके निकट गमनार्थ देवतापीके प्रति विष्णुका उपदेय, देवतापीका वाराणसीगमन, कार्यसिद्धि करानेके लिये अगस्त्यका चन्द्रो-कार, ७ अगस्त्य द्वारा विन्यासचक्रका उत्पत्तिविवरण, ८ स्वाराचिप मनुको उत्पत्ति पौर उत्पत्तिकथन, ९ चाक्षुष मनुकी उत्पत्ति पौर उत्पत्तिकथन, चाक्षुष मनुको देवीका राज्यप्रदान, १० अयस्यत मनु पौर गावर्षि-मनुका उत्पत्तिकथन, सुरय नृपतिका उपाख्यान, ११ महाकालो-का चरित्रकथन, मधुकेटुमन्त्रार्थ ब्रह्माका महाभावा-स्तव, मधुकेटुमन्त्र, १२ गावर्षि मनुके उत्पत्तिकथन पर मरिचासुरवध, दम्प पौर निम्बवधवर्णन, १३ अश्व-मिष्ट हः मनुषीके उत्पत्तिकथन पर कश्यप, द्रुपद, तामाग,

दिट, गर्वाति पौर विमङ्ग, देव हः राजापीको भामरो-गच्छित्री पारायणा, उक्त हः राजापीकी मन्त्रस्ताराविशद प्राप्तिका वर दे कर भामरोदेवीका पनार्पण, भामरो-देवीका उत्पत्तिकथन, भामरोउत्पत्ति-वर्णनको जन-मुक्ति ।

११४ अध्याय—१ महापारायणार्थना, प्रातःकृत्यवर्णन, प्रायायामविवरण, २ शोचादिविधि, ३ ध्यानविधि, कदाचमाहात्म्य पौर कदाचधारणविधि, ४ एकमुक्ता, त्रिमुक्ता, त्रिमुक्ता, चतुर्मुक्ता पौर पञ्चमुक्तादि अष्टादशमुक्ता वर्णन कदाचधारणका फल, देवीके किस किस स्थान पर कितने कदाच धारण करने होते हैं, उक्तका विवरण, ५ जगन्माताका विधान, कदाचमाहात्म्यवर्णन, ६ कदाच-का प्रायश्चित्त माहात्म्यवर्णन, ७ एक मुक्तादि कदाच-धारणका माहात्म्य, ८ भूमिमुक्ति का विवरण, ९ शिरोव्रत विधानवर्णन, १० गोणभद्रका विवरण ११ गोणभद्रका द्विविधित्व-कारणकथन, त्रिगुणधारणका विवरण, १२ भद्रमधारणमाहात्म्यवर्णन, १३ भद्रमाहात्म्यकोत्तन, १४ विभूतिधारणमाहात्म्य, १५ त्रिगुणधारणमाहात्म्य, दुर्वासाके लक्ष्मणभूत भद्रमपतनहेतु कुम्भोपाकरणकथ्य पापियोंकी सुख पौर आनन्दको प्राप्ति, कुम्भापाकका पुण्यतोषकथन, पुनर्बोर अन्य कुम्भोपाक-निर्माण, कर्ष-पुण्यधारणमाहात्म्य, १६ मन्त्राविधि, गायत्रीकी उपा-सना, आचमनविधि, रथक, पूरक पौर कुम्भकक्षाकर्म जो जो देवता ध्येय हैं उक्तका विवरण, मन्त्रोपासना द्वारा मृत्युमर्त्यक मन्द-ह नामक विंशत्युक्ति राक्षस-दाहन-विवरण, सिद्धामनवर्णन, न्यासविधि, गायत्रीका चतुर्विं-शति मुद्रावसरण, १७ द्विविधागायत्रीका विवरण, गायत्रीको आराधना, पुण्यमृक्के देवदेवीविमोक्ष का प्रियत्वकथन, १८ देवोपूजाका विमोपविधान, देवोपूजा-कालमें देव पुण्यादि ३० मन्त्रादि ३० पौर फलनाम, देवोपूजामाहात्म्य, १९ मन्त्राङ्गमन्त्राकथन, २० ब्रह्म-यज्ञादिकोत्तन, सायानमन्त्रावर्णन, २१ गायत्रीका पुर-श्धारण, २२ योगदेवादि पञ्चवक्त्रका विवरण, प्रायश्चित्त-स्तोत्र, २३ भोजनके बाद पात्रावप्रदान, पात्रावप्र-द, कष्ट, साग्न्यगादि, पारक पौर आम्नायगादिका लक्षण-निर्देश, २४ गायत्रीका साग्निकथन, दीप पौर रोमादि-

को गान्ति, होम और लपादि द्वारा जय और वृष्टादि-
लाम, गायत्रीजप द्वारा अग्निमादि-वेष्टन, इन्द्र और
ब्रह्मवादिप्राप्ति, गायत्रीजप द्वारा पञ्चमहापातकसे मुक्ति-
लाम।

१२५ स्कन्धमें—नारायणको निकट नारदको, सुख-
साध्य पुण्य कर्मोंका प्रश्न, गायत्रीके मध्य अधिक पुण्य-
प्रद सुख्यतम क्या है और गायत्रीके ऋषि तथा हृन्द
प्रभृति विषयों पर प्रश्न, गायत्रीजपका सर्वश्रेष्ठत्ववर्णन,
गायत्रीका हृन्द और देवतादिकथन, २ गायत्रीके प्रत्येक
वर्णका शक्तिकथन, गायत्रीके वर्णोंका तत्त्वकथन,
गायत्रीवर्णकी मुद्रा, ३ गायत्रीकवच, ४ अथर्ववेदीय
गायत्रीहृदय, ५ गायत्रीस्तोत्र, ६ गायत्रीका स्रस्त्र नाम
स्तोत्र, ७ दोहाके विषयमें नारदका प्रश्न, दोहा शब्दकी
व्यवृत्ति और दोहाविधितथ्यन, तत्प्रसङ्गमें भूतवृष्टादि-
कथन, मण्डनसिखन, सर्वतोभद्रमण्डल, कुण्डलस्तार,
शुक्लशुद्धि और वाज्यमस्तार, होमविधि, पूर्वाहुति,
मन्त्रप्रवण, ८ शक्ति भिन्न विज्ञापकके अन्य उपासकत्वका-
कारण, जगदम्बिकाका यक्षरूपमें आविर्भाव, यक्षके
निकट इन्द्रकण्ठके वज्रकी प्रेरण, यक्षकी निकट वज्र-
का लक्षणालम्बन असामर्थ्यकथन, इन्द्रकी आज्ञासे यक्षके
निकट वायुका गमन, यक्षके निकट वायुका लक्षणालम्बनमें
असामर्थ्यकथन, यक्षके निकट इन्द्रका गमन, यक्षका
अन्तर्धान, इन्द्रके प्रति मायाबोजके लिये आकाशवाणी,
इन्द्रके समामूर्खितदर्शन, इन्द्रके निकट भगवत्की
मायाविधित ब्रह्ममूर्खीका सर्वविषयक कारणत्ववर्णन,
शक्ति-उपासनाका मित्यत्ववर्णन, ९ गौतमके-आपसे
ब्राह्मणकी अन्य देवताकी उपासनामें अज्ञा, दुर्भिक्षके
कारण ब्राह्मणोंका गौतमके निकट गमन, गौतमस्त्वसे
सन्तुष्ट गायत्रीका गौतमकी पूर्णपात्रप्रदान, पूर्णपात्र द्वारा
गौतमका समस्त लोकोकी अन्नदान, नारदका-गौतमकी
सभामें आगमन, ब्राह्मणोंके प्रति गौतमका गायत्री-
गतिरहिताय समिधाप, ब्राह्मणोंका वेद और गाय-
त्रीविस्मरण, १० मणिहोषवर्णन, ११ वज्रागादि
प्राकार और उसके मध्य सेना तथा शक्ति आदिका सवि-
धवर्णन, १२ चिन्तामणि गृहादिवर्णन, देवोका ध्यान,
चिन्तामणिगृहके परिमाणदि, १३ जनमे

सुखवर्णन, १४ देवोभागवतपुराणपाठका फलवर्णन,
सुनियोगे सुतको पूजाप्राप्ति, नैमिषारण्यमें सुतका
मिर्गमन।

ऊपर दोनों भागवतकी सूची उद्धृत हुई। वही
हो आश्चर्यका विषय है कि दोनों ही भागवतकी दलीक-
संख्या १८००० है और दोनों ही दादय स्कन्धोंमें
विभक्त है। इस दृष्टावसे किम भागवतकी महा-
पुराण और किमकी उपपुराण माना जायगा। वही ही
विषय समस्या है। मत्स्यपुराणके मतसे—

“यत्राधिकृत्य गायत्रीं यत्नं ते धर्मं विस्तरः।

उत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमुच्यते॥

सारस्वतस्य कल्पस्य मध्ये ये द्युर्गरामराः।

तद्दत्तात्मज्ञवः लोके तद्भागवतमुच्यते॥

षष्टादशमस्कन्धस्य पुराणं तत्प्रकीर्तितम्॥”

जिस ग्रन्थमें गायत्रीका प्रबलस्वन करके सविस्तार
धर्मतत्त्व वर्णित हुआ है और जो उत्रासुरवधके वृत्तान्त-
से पूर्ण है, वही भागवत नामसे प्रसिद्ध है। सारस्वत-
कल्पके मध्य जिन सब नरों या अमरोंकी कथा है,
वही ग्रन्थ भागवत कहलाता है।...इसकी श्लोकसंख्या
१८००० है।

पञ्चपुराणमें लिखा है—

“पुराणेषु च सर्वेषु श्रीमद्भागवतं परम्।

यत् प्रतिपदं लण्यो गौतये बहुधर्माभिः॥ १॥

श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ लण्येन भाषितम्।

परोक्षितैः कथां वक्तुं सभायां संस्थितं शकं॥ १५॥

(उत्तरखण्ड १८८ अ०)

सभी पुराणोंकी अपेक्षा श्रीमद्भागवत ही श्रेष्ठ है,
इसके प्रतिपदमें ऋषिगणकण्ठके नाना प्रकारसे लण्य-
माहात्म्यकीर्ति हुई है। कलिकालमें लण्यभाषित
यही भागवतशास्त्र है। इस शास्त्रकी कथा परोक्षितकी
सभामें रह कर शकदेवेन उन्हें आयोपान्त सुनाई थी।

फिर नारदपुराणमें भागवतका जो संक्षिप्त विषयानु-
क्रम दिया गया है, वह इस प्रकार है—

“मरोचे नृप यक्षामि वेदव्यासेन यत्कृतम्।

श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसमिन्तम्॥

कीर्तितं पापनाशनम्।

सुरपादरूपोऽयं स्तुत्ये दादशभिर्भुजः ॥
 भगवानेव विघ्नेन्द्र विघ्नरूपो चमोरितः ।
 नत्र तु प्रथमे स्तुत्ये सूर्योपा समागमः ॥
 व्याघ्रस्य चरितं पुण्यं पीण्डवानां तथैव च ।
 पारिचितसुपायशानमिदोत् समुदाहृतम् ॥
 परीचिच्छ्रु कर्मवादे सतिष्ठनिरूपणम् ।
 ब्रह्मनारदमवादेऽनारचरितामृतम् ॥
 पुराणनक्षत्रस्यैव सृष्टिकारणमभावः ।
 द्वितीयोऽयं समुदितः स्तुत्यो व्यामेन धौमता ॥
 चरितं विदुरस्याद्य मेनेयेणास्य मन्त्रमः ।
 सृष्टिप्रकरणं परचातुर्दश्या परमात्मनः ॥
 कापित्तं साहस्रमप्यत्र दत्तोऽयमुदाहृतः ।
 सत्याश्चरितमादौ तु ध्रुवस्य चरितं मतः ॥
 द्युधोः पुण्यसमाख्यानं ततः प्राचीनवर्हिपः ।
 इत्येव सुवीरगदितो विमर्गं स्तुत्ये कथनम् ॥
 म्रियव्रतस्य चरितं तद्वैष्णवाच्च पुण्यदम् ।
 वैष्णवाणाम्नां तानाच्च कोकानां वर्णनमातः ॥
 नरकस्थितिरित्येव सत्यानि पञ्चमीमतः ।
 यजामिषस्य चरितं दक्षसृष्टिनिरूपणम् ॥
 ब्रह्माख्यानं ततः परचातुर्दश्यां प्रथमपुण्यदम् ।
 यमोऽयमुदितः स्तुत्यो व्यामेन प्रणिपोषणे ॥
 मन्त्रादचरितं पुण्यं वर्षाग्रमनिरूपणम् ।
 सप्तमी गदितो वक्तुं वामनाकर्मकीर्तने ॥
 गजैर्दुर्मोक्षपाख्यानां मन्त्रनारनिरूपणम् ।
 संसृष्टमयनस्यैव वसिष्ठे भगवत्प्रथमम् ॥
 मत्स्याधत्तारचरितं षष्ठोऽयं प्रकीर्तितः ।
 सूर्यवंशसमाख्यानं मोक्षमार्गनिरूपणम् ॥
 वंशानुचरितं प्रोक्तो नवमोऽयं महासमि ॥
 कृष्णस्य यानचरितं कीमारुच्य मन्त्रस्थितिः ॥
 कौशोर् मधुराख्यानं योगवं हारकास्थितिः ।
 भूभारहणशक्तं निरीधे दशमं स्मृतः ॥
 नारदेन तु सवाटो वसुदेवस्य कीर्तितः ।
 यदोरच दत्तात्रेदेण श्रीकृष्णे नोदवस्य च ॥
 यादवानां मित्रोऽन्तरश्च सुक्तावेकादशः स्मृतः ।
 भविष्यकल्पनिर्देशो मोक्षो रात्रः परोक्षितः ॥
 वेदभाषाप्रथमं मार्कण्डेयतपः स्मृतः ।
 सोरोभिभूतिहृदिता सात्वतो च ततः परम् ॥
 पुराणसंख्याकथनमात्रेव दादशोऽयम् ।
 इत्येव कथितं दक्ष श्रीमहागवतं तथ ॥

दादशस्कन्धयुक्तं चोर वल्लभस्यवदप ॥ ६ विघ्नेन्द्र !
 दशपुराणमि विघ्नरूपो भगवान्का हो कीर्तन किया
 गया है ।

इसके प्रथम स्तुत्यमें सूर्य और अविर्वाका समागम,
 पुण्यजनक व्यास और पाण्डवीका चरित तथा परोक्षित-
 का उपाख्यान है । परीचित् और शुकर्मवाट, मृतिदय-
 निरूपण, ब्रह्म और नारदमवादिमं चवतारचरित, पुराण-
 सचय और सृष्टिकारणमभाव, ये सब धौमान् व्यास-
 कटक द्वितीयस्तुत्यं उक्त हुए हैं । विदुरचरित और
 विदुरका मेनेयेनह समागम, वीक्षे परमात्मा ब्रह्मका सृष्टि-
 करण और श्रीवत्सका वास्ययोग को र्त्तित हुआ है । पद्मे-
 नतोचरित, वीक्षे ध्रुवचरित और द्युधु तथा प्राचीनवर्हि-
 का पुण्याख्यान इन चारोंका वर्णन चतुर्थे स्तुत्यमें है । म्रिय-
 व्रत और तद्वैष्णवस्य बहुतीका पुण्यद चरित, ब्रह्माण्डा-
 न्तर्गत लोकसमुद्रका वर्णन एवं नरकस्थिति प्रभृति
 पञ्चम स्तुत्यमें वर्णित हुआ है । यजामिषचरित, दक्ष-
 सृष्टिनिरूपण, ब्रह्माख्यान और पुण्यद मरुदगणका
 जन्म पट स्तुत्यमें कीर्तित हुआ है । तम स्तुत्यमें पुण्य-
 मय ब्रह्मादचरित और वर्षाग्रम निरूपित हुआ है ।
 गजैर्दुर्गा मोक्षपाख्यान, मन्त्रनारनिरूपण, संसृष्टमयन,
 वसिष्ठमयन, मत्स्यावतार चरित प्रभृति कथाएं षष्ठममें
 कीर्तित हुई हैं । नवम स्तुत्यमें मूर्धन्याख्यान,
 सोमयंशनिरूपण और वंशानुचरित प्रभृति कहे गये हैं ।
 कृष्णका वास्य और कीमारचरित, मन्त्रमं स्थिति, मंगारमं
 मधुरावाच, योगवं हारकावास्य और भूभारहण ये
 सब विषय दशममें वर्णित हैं । वसुदेवनारदमवाट,
 दत्तात्रेयके नाथ यदुका और उदवक नाथ श्रीकृष्णका
 सवाट तथा यदुगणका परस्पर विनाश पाटि कथाएं
 एकादशमें कीर्तित हुई हैं । भविष्यकल्पनिर्देश,
 राजा परोक्षितका मोक्ष, वेदभाषाप्रथम, मार्कण्डेयकी
 तपस्या, गोरो और सात्वतो विभूति एवं पुराणसंख्या-
 कथन दादश स्तुत्यमें वर्णित हुए हैं । ६ वक्तु !
 यह दादश स्तुत्यात्मक श्रीमहागवतं भेने तुमसे कह
 सुनाया ।

“हे मरीचे ! सुनो, मैं तुमसे वेदव्यासप्रपोत श्रीमद्-
 भागवत नामक ब्रह्ममयित पुराण कहता हूँ । यह
 पंठारह हजार श्लोकोंमें पूर्ण और पाणनामक है । यह

सम्य, नारद और पद्मपुराणमें भागवतके जा मंत्र
 लक्षण निर्दिष्ट हुए हैं, श्रीमहागवतमें उनका समाधि

नहीं है। नारदीयकें यन्मानुसार यह कहा जा सकता है। कि प्रचलित श्रीमहागवत ही प्रकृत महापुराणमें गण्य हो सकता है। कारण, नारदीयकी रक्तिमें श्रीमहागवतके लक्षण ही निर्दिष्ट हुए हैं, देवी भागवतके नहीं, किन्तु सत्यवर्णित विस्तृतभागमें सारस्वत-कल्पप्रसङ्ग श्रीमहागवतमें नहीं है। श्रीमहागवतमें 'पाद्व' करामयी ग्युष्ट इस प्रकार पापकल्पका प्रसङ्ग ही विवृत हुआ है। इस हिमावसे फिर श्रीमद्भागवतकी यदि सारस्वत-कल्पायित महापुराण मान लें, तो भी आपत्ति होती है।

फिर भी ग्रंथपुराणके उत्तरखण्डमें लिखा है—

"भगवत्याश्च दुर्गायाश्चरितं यत्र विद्यते।

तत्त भागवतं प्रोक्तं ननु देवोपुराणकम् ॥"

जिस ग्रन्थमें भगवतो दुर्गाका चरित वर्णित है, वही देवीभागवत नामसे प्रसिद्ध है, परन्तु वह देवीपुराण नहीं है।

श्रीवनीलखण्डकृत कालिकापुराणके उमाद्रि-प्रस्ताव-में लिखा है—

"यदिदं कालिकाख्यं तन्मूलं भागवतं स्मृतम् ॥"

कालिका नामक जो उपकरण है उसका मूल भाग-वत है। देवीयामलमें इस प्रकार लिखा है—

"श्रीमहागवतं नाम पुराणं वेदमन्त्रितम्।

पारोक्षतायोपदिष्टं सत्यवल्गुज्जमना ॥

यत्र देव्यवताराश्च बहुधा प्रतिपादिताः।

इदं रहस्यचरितं राधोपासनमुत्तमम् ॥

व्यासाय सम भक्ताय प्रोक्तं पूर्वं मयाद्रिजि।

मत्तो रहस्यं ज्ञात्वा राधोपासनमुत्तमम् ॥

एतस्य विस्तारं चको श्रीमद्भागवते तथा।

नारदे ब्रह्मवैवर्त्तं लोकानां हितकाम्यया ॥"

श्रीमद्भागवतपुराण वेदमन्त्रित है। सत्यवतोके सुत व्यासने परोक्षतुपुत्र जनमेजयकी यह पुराण सुनाया था। इस ग्रन्थमें देवोका नानावतार, देवोका रहस्य और चरित तथा राधाकी उपासना वर्णित हुई है। डॉ. अद्रिजि। मैने पूर्वकालमें अपने भक्त व्यासकी इस राधाकी उपासना कही थी। इस रहस्यमें मत्त हो कर व्यासने लोगोकी भलाईके लिये श्रीमद्भागवत, नारद और ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें इस राधाकी कथाका विस्तार वर्णन किया है।

चित्सुखके भागवतकयाम ग्रन्थमें इस प्रकार उद्धृत है—

"ग्रन्थोऽष्टादशसहस्रो द्वादशसु धवन्विता।

इयप्रोवन्नब्रह्मविद्या यत्र वृत्रवधस्तथा ॥

गायत्र्या च समारम्भस्तद्दे भागवतं विदुः ॥"

जिस ग्रन्थमें १८०० श्लोक और १२ स्कन्ध हैं, जिसमें इयप्रोवके ब्रह्मविद्यानामकी कथा और वृत्रवधकथा वर्णित है तथा गायत्रीका प्रबलध्वन करके जो पुराण आरम्भ हुआ है, वही भागवत है।

ऊपर जो सब प्रमाण दिये गये हैं, उनमें फिर देवी-भागवत ही महापुराण माना जा सकता है।

देवीभागवतके प्रथममें जो त्रिवेदानायको है, पर विष्णु-भागवतमें गायत्रीका 'धोमदि' केवल यही पद्य है। दोनों पुराणमें वृत्रासुरवधकी कथा रहने पर भी विष्णु-भागवतमें इयप्रोवके नाममात्र (५।१८।२)का ही उल्लेख है, उसके ब्रह्मविद्यानामकी कथा कुछ भी नहीं है। देवीभागवत (१।१५ पं०)में इयप्रोव नामक दैत्यकी ब्रह्मविद्यालक्षणीको महागायाका तपस्या और इयप्रोव-रूपधारी विष्णुका साहाय्य प्रवृत्ति विशेषरूपमें वर्णित हुआ है। पहले ही कहा आ चुका है, कि सारस्वोक्त सारस्वतकल्पका प्रसङ्ग विष्णुभागवतमें नहीं है। स्कन्द-पुराणोय नामखण्डमें लिखा है, "सारस्वतसु द्वादश्यां शुक्लायां काल्युनस्य च।" पर्यात् फाल्गुनकी शुक्लद्वादश्या-तिथिमें सारस्वतकल्पका आरम्भ हुआ है।

शिवपुराणोय श्रीमसंहितामें लिखा है—

"ब्रह्मणा मंजुता मेयं मधुकोटभनाग्रने।

महाविद्या जगद्धात्री सर्वविद्याधिदेवता ॥

द्वादश्यां फाल्गुनस्यैव शुक्लायां समभूतप ॥"

हे राजन्! ये जो समस्त विद्याको अधिप्राप्ती जगद्धात्री महाविद्या हैं। ये मधुकोटभनाग्रके लिये ब्रह्माकटके सुत हो कर फाल्गुन शुक्लद्वादश्याकी आरम्भित हुई थीं। श्रीमसंहिताके उक्त वचनानुसार देवीभागवतके १२ स्कन्धके ७२ अध्यायमें ब्रह्मपुत्र और मधुकोटभनाग्रार्थ देवीका प्रादुर्भाव पड़नेसे मान्य होता है, कि यही देवीभागवत सारस्वतकल्पायित पुराण है।

को कुछ हो, यमो दोनों ही मत पावे जाते हैं।
भारद्वय पाद्यके मतसे विष्णुभागवत तथा भक्त्यादिके
मतसे देवीभागवत ही महापुराणमें गिना जाता है।
इस प्रकार मतभेद होनेका कारण क्या है? उपपुराण-
को तानिकासे जाना जाता है, कि 'भागवत' नामक
एक उपपुराण भी है। यथा—

“पाद्यं मन्वकुमारोक्तं भारविं जमतः परम्।

परामारोक्तं प्रवरं तथा भागवताद्वयम्॥”

नीलकण्ठहत गरुडपुराणमें तत्परवश्यके द्वितीयांश-
धर्मखण्डमें लिखा है—

“पुराणं भागवतं दोगं नन्दिभोक्तं तथैव च।”

यद्यत् दुर्गामाचार्यव्यवस्थितं भागवतं चौर नन्दि-
केशरिपोक्तं पुराणादि उपपुराणमें गिने जाते हैं।

रामायणकी दुर्जन मुलवपेटिकामें भी उपपुराणकी
दुहाई दे कर एक श्लोक उद्धृत हुआ है—

“शेषं भागवतं दोगं भविष्योत्सवमेव च।”

इसी प्रकार मधुसूदन सरस्वतीके सर्वशास्त्रार्थ-
संग्रहमें, भागीजीमदके निवन्धमें, दुर्जनमुलवपेटिका-
में चौर पुनर्पोतमके 'भागवतस्वरूप-विषयव्याख्याश-
त्रयोदश' पादि पद्योंमें देवोभागवतके उपपुराणत्व
चौर विष्णुभागवतके महापुराणत्व स्थापनको चेष्टा
कई है।

इधर मिताक्षारकी टोकाकार प्रसिद्ध बालमुग्ध श्री-
महागवतको पुराण नहीं मानते।

इस द्वेगके भक्तिकीर्तिका विज्ञान है, कि विष्णु-
भागवत सुप्रसिद्ध वोपदेवका विरचित है। यद्यार्थमें
वोपदेवविरचित भागवतानुक्रम भी पाया गया है। वड़े
हो पाश्चात्यका विषय है, कि कीलनुक्रमसुप भक्तिक
पाश्चात्य पण्डित भी वोपदेवको भागवतके रचयिता
मानते हैं। ११वीं शताब्दीके शीघ्र भागमें वोपदेव देव-
गिरिमें वर्तमान थे। उन्होंने मुद्राफन नामक भागवत
का तात्पर्यार्थ प्रामक एक पद्य भी लिखा है। उनके
पाश्चात्यताता हेमाद्रिने भी श्रीमहागवतसे वचन उद्धृत
किये हैं। इस हिमावसे वोपदेव भागवतके रचयिता
है, ऐसा विश्वास नहीं होता।

यस देखना चाहिये, कि विष्णुभागवत चौर देवी-

भागवत दोनों पद्योंकी पानोचना करनेसे इस लीला-
की सचमुच कील-या महापुराणके लेना ज'यता है।

श्रीमद्भागवतके प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधरस्वामीने
प्रारम्भमें ही लिखा है—“भागवतं नामान्वयितं भागव-
नीयम्।”

यद्यत् भागवत नामको अन्य पुराण है, इस प्रकार
गढ़ा करना उचित नहीं। श्रीधरस्वामीकी इसी उक्ति
द्वारा मान्य होता है, कि उनके समयमें भी इस भाग-
वत का पुराणत्व ही कर बहुत चल रहा था चौर उस
समय एक दूसरा भागवत भी प्रचलित था, नहीं तो वे
ऐसा क्यों कहते?

श्रीधरस्वामीने इस टीकीप्रक्रममें लिखा है,—

“दात्रिंशत्सिमतश्च यस्य विलसत्” यद्यत् त्रिप्रको
पञ्चायमंग्या ३२२ है।

कामोनाथ (दुर्जनमुलवपेटिकामें) ने पुराण-
पर्वके विसुसुखोद न उक्त श्लोकके माध्यमे चार चार
उद्धृत किये हैं—

“स्तथा दादग यथात्र दादगेन विहितः प्रभाः।

दात्रिंशत्सिमतं पूर्णमध्यायाः परिकीर्तितः॥”

इस पद्यमें त्रय्यकष्टक दादग स्तथा विहित है चौर
३२२ पद्याय परिकीर्तित हुए हैं।

श्रीधरस्वामीकी उक्ति चौर पुराणार्थयका उक्त वचन
पढ़नेसे विष्णु भागवतको ही महापुराणके लेना श्लोकार
कर सकते हैं।

विष्णुभागवतमें तदुत्पत्तिके सम्बन्धमें लिखा है,
'चार वेदविभाग चौर पदमवेदस्वरूप इति शास्त्रपुराणो-
का बहुजन, तथा चो, गूढ चौर निम्नित दूधचोके
लिये महाभारतको रचना करते भी वेदयामका मत
उक्त न हुआ। यन्त्रमें उन्होंने भारद्वयके उपदेगसे
चरिकायाम्यतरूप भागवतको रचना करके परम
योगि काम का री।' (१ म २० ४४-४७ म.) भाग-
वतके उक्त प्रमाचानुसार जाना जाता है, कि पुराण-
इतिहासादि रचित होनेके बाद यह श्रीमद्भागवत रचा
गया है। किन्तु पड़ते ही कहा जा चुका है, कि
विष्णु प्रभृति पुराणके अनुसार भागवत पदमपुराण कह
कर गण्य है। इस हिमावसे सबके मीमने रचित विष्णु-

भागवतमें 'व'श' मन्त्रकी लेखी निहत्ति दी गई है, वह भी प्राचीन शास्त्रमन्त्र नहीं है। पहले ही कहा गया है, कि कुमारिणभट्ट ने समय भी व'शानुक्रम और भावीकथन के दोनों स्वतन्त्र विषय हैं; किन्तु जिस समय भविष्यराजवंशमन्त्र पुराणका विषयोद्भूत हो गया था, भागवत स्वयं वाट रचा गया है, यह उक्त निहत्ति द्वारा प्रतिपन्न होता है। भविष्यराजवंशमन्त्रमें ७वीं शताब्दीकी भी कथाएं मिलती हैं। उक्त विभिन्न प्रमाण द्वारा भागवतकी ७वीं से ८वीं शताब्दीका दशानुपरिपोषक पौराणिक ग्रन्थ मान सकते हैं। इसमें प्रति प्राचीन पुराणाल्प्यायिका भी प्रभाव नहीं है।

हिन्दू समाजमें पुराण, भागवत और महाभारत एक व्यक्ति के लिखे हुए हैं, ऐसा पवाद प्रचलित है। किन्तु भाषाकी धारणा करना हमें ऐसा बोध नहीं होता। ब्रह्म, विष्णु, इन्द्रादिक और महाभारतकी भाषा जैसी सरल, चोखी और बीच बीचमें गांधीय भाषा की है, भागवतकी भाषा वैसी नहीं है। भागवतमें कई जगह कठिन, अनङ्ग, विविध रूपोंमें विविध और गंभीर चिन्तासमुद्भूत है। भागवतकी निज रचना के अनुसार भागवत महापुराण नहीं हो सकता कारण, उससे पहले महाभारत तथा सभी पुराण प्रचलित हुए थे, यह भागवतकारने ही स्वयं स्वीकार किया है। यह पद्य पुराण है, ऐसा भागवतकारने कभी भी प्रकाशित नहीं किया है, वरन् उन्होंने पटाटम पुराण-गणनाकालमें पटाटम पुराणात्मक भागवतकी कभी ८म और कभी १५म पुराण माना है।

पुराणार्थके श्लोकानुसार फिर विष्णुभागवतकी भी महापुराण मान सकते हैं। यद्यपि यह श्रीभागवत नामाख्यानयुक्त एक वैष्णवीय दार्शनिक ग्रन्थ है। गीता में भगवान् श्रीकृष्णने जो अपूर्व मत प्रकाशित किया है, पाश्चात्य और भागवतधर्मी जो दार्शनिक मत स्वीकार किया है, वेदान्तिक मतमें उन सब तत्त्वोंकी ज्ञान वपान्यानादि द्वारा मनोमति समझानेकी विधि भागवतकी उद्दिष्ट है। इसी कारण दार्शनिक लक्ष्य में भागवतका समधिक आधार है। यही कारण है, कि शेष सभी पुराणोंकी अपेक्षा इस भागवतके ऊपर हिन्दू

साधारणका प्रगाढ़ अनुराग, घटित मन्त्रानुसार चरमा मन्त्रिणित होतो है। विष्णु वेदात्मक मत इस भागवतमें बहुत अच्छी तरह विवृत हुआ है। इसी कारण भागवतकारने लिखा है—

“सर्ववेदात्मकारं हि श्रीभागवतमिष्यते ।
तद्भाष्यतस्मैव गान्धर्व्याद्विद्विः कवित् ॥”

(१२।१।५)

यह देवोभागवतके मूलकी धारणा करनेमें क्या कम मिलता है, यही देखन चाहिये। देवीभागवतके विशेष धारणमें लिखा है—

“पुराणसुखं पूर्णं श्रीमद्भागवताभिधानम् ।
पटाटममहर्षिणा श्रीनारायणं संहृतम् ॥
स्वभावात्तस्य एवमर्थोक्तं विविदाः उवाच ॥
विगतं पूर्णं मन्त्राणां पटाटमगुणः स्मृताः ॥ १२ ॥
मग्नं प्रतिमग्नं वंशो मन्त्राणां च ।
वंगानुवरितं च पुराणं पद्यमननम् ॥” (१२।१८)

यह श्रीमद्भागवत नामक पुराण सर्वोत्तम और पुण्यवत् है। यह पटाटममहर्षि-वैष्णव विष्णु श्लोक-मात्र मन्त्रित, ३१८ अध्यायोंमें पूर्ण और महानमय १२ स्तंभाविष्ट है। जग, प्रतिमग्न, वंगानुवरित, मन्त्र-मन्त्र और वंगानुवरित इस पुराणके यही पाँच लक्षण हैं।

पद्यमन्त्र कहनेमें देवीभागवत को महापुराण समझा जाता है। मन्त्र प्रभृति पुराणोंके लक्षण भी इस देवीभागवतमें है। पुराणार्थके लक्षणानुसार भागवतमें ३३२ अध्याय हैं। किन्तु देवीभागवतके मतमें ११८ हैं। इन कारण धर्माधिक मन्त्रा से कर फिर महापुराणके सम्बन्धमें गोनमान २६ दा जाता है।

विष्णुभागवतमें जिस प्रकार भट्टकालोद्भा माहात्म्य सूचित हुआ है, इस देवीभागवतमें उन्हीं प्रकार राधाका माहात्म्य सूचित है।

विष्णुभागवत जिस प्रकार दार्शनिक-प्रधान है, यह देवीभागवत उन्हीं प्रकार तन्त्रानुसारो है। इनमें घटित तन्त्रका प्रभाव मन्त्रित होता है, इसी कारण देवीभागवत पाँच तान्त्रिक पद्योंमें इस देवीभागवतकी प्रधानता स्वीकृत हुई है। तन्त्रप्रधान कहनेमें कोई ऐसा न समझ

भागवत पञ्चमैतत् पुराण होता है। इस विष्णु भागवतमें पुराण-लक्षण-कथन पर इस प्रकार लिखा है—

“मनोऽस्याय विमर्शो हृत्तिरसान्तराणि च ।
वशो वशानुचरितं संस्था हेतुरप्याश्रयः ॥
दशमिस्तस्यैतुक्तं पुराणं तदिदो विदुः ।
केचित् पञ्चविधं ब्रह्मन् महदप्यव्यवस्था ॥
अव्याकृतं गुणबोभासमस्तस्मिन्नहोऽहम् ।
भूतधर्मेन्द्रियार्थानां सम्भवः सगैः उच्यते ॥
पुरुषानुष्टुतोत्तमानामेतेषां वाचनामयः ।
विमर्शोऽयं समाहारो वोज्ञोऽज्ञं चराचरम् ॥
हृत्तिभूतानि भूतानां चराचरमचराणि च ।
कृता स्वैनं कृतां तत्र कामाच्छादनमापि वा ॥
रसाच्छ्रुतावतारेण विष्णुस्यानुगुणे युगे ।
तियं सत्त्वं त्रिदेवेषु ह्यन्यत्तु येष्वन्यो देवः ॥
मन्वन्तरं मनुदेवा मनुयुक्ताः सुरेश्वराः ।
ऋषयोऽश्वतथाराच हरिः पशु विधुमुच्यते ॥
राक्षा ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्तैः कालिकोऽन्वयः ।
वशानुचरितं तेषां उक्तं वंशधरास ये ॥
नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्यं प्राकृतिको सत्यः ।
संस्थेति कविभिः प्रोक्तयतुस्तस्य स्वभावतः ॥
हेतुर्जीवोऽस्य सर्गादिरविद्याकर्मकारकः ।
यज्ञानुगायिनं प्राहुरव्याकृतमुत्तमम् ॥
व्यतिरेकान्वयो यस्य जायते स्वप्नसुषुप्तिषु ।
मायामयेषु तद्ब्रह्म जीवहृत्विष्वक्पञ्चकः ।
पदार्थेषु यथा द्रव्यं समानं रूपनामसु ।
बोधादिपञ्चतात्मासु स्ववस्थासु युतायुतम् ॥
विरमेत यदा चित्तं हित्वा हृत्तित्रयं स्वयम् ।
योगिनं वा तदात्मानं वदेहाया निवर्त्तते ॥
एवं लक्षणसत्त्वाणि पुराणानि पुराविदः ।
मुनयोऽष्टादश प्राहुः पुनस्तस्मिन् भवति च ॥”

(भा० १२।७।८-२२)

(सगं, विमर्शं, संस्था, रसा, मन्वन्तरं, वंशकथनं, वशानुचरितं, प्रसय, हेतु और अपाश्रय पुराणके ये दश लक्षण पण्डितोंने निर्देश किये हैं। कोई कोई पञ्च-लक्षणयुक्त सम्योक्ती भी पुराण कहते हैं। उनकी व्यवस्था यह है, कि दशलक्षण महापुराणके बार पञ्च लक्षण उपपुराणके हैं। प्रकृतिके गुणत्रय समाहारसे महान्, उससे द्विगुणात्मक अष्टादश, भूत और सूक्ष्मेन्द्रिय तथा तत्त्वत्रय की स्थूल सृष्टि है उसका नाम सगं है। ईश्वरानुष्टुतोत्तम महदादिके, पूर्व

पूर्व वाचनामय वीजसे वीजोत्पत्तिको तरङ्ग समाहार-रूप चराचर उत्पत्तिको विमर्श वा पथन्तर सृष्टि कहते हैं। चरभूतका काम-विषय चराचररूप और मनुष्यों-का स्वभावतः तथा कामकृत वा विधिगोधित जी वीजबो-पाय है; उसका नाम संस्था वा स्थिति है। विमर्शक महा युग युगमें बंदेशों टैत्यकलंक देव, तिर्यक, मनुष्य और दैत्यिकों कायं भागीपक्रमसे नारायणका जी विमर्श विमर्श पथन्तर है; उसका नाम रसा है। मनु, देवगण, मनुपुत्रगण, सुरेश्वरगण और दैत्यगण ये सब हरिते वंशावतार हैं। इनके सब सब अधिकार कालकी मन्वन्तर कहते हैं। ब्रह्मोद्भव ध्रुवश्रेय राजाजी के भूत, भावपशु और यक्षमान, इस त्रैकालिक पुरुष परम्पराके वर्चनका नाम वंशकथन तथा उनके वंशमें उत्पन्न वंशधरोंके चरित्रवर्णनका नाम वशानु-कथन है। नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य और प्राकृतिक, स्वभावतः ही चाहे ईश्वर-मायाश्रुतमसे ही, इन चार प्रकारके लयका नाम प्रसय है। पञ्चानुगमसे कर्म-कर्त्ता जीव इस विमर्शके लक्ष्य, स्थिति और भागका कारण है, इसीका नाम हेतु है। मायामय विमर्श तैजस प्रज्ञादि जीवनिष्ठ जायते, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थामें साविक्रूपमें जिनका अन्वय है और समाधिकालमें उन सब अव-स्थाओंमें जिनका व्यतिरेक है, उस अधिष्ठानका नाम अपाश्रय है। जिस प्रकार चटादि पदार्थमें सृष्टिकादि द्रव्य है और रूपनामादिमें सत्तामात्र है, उसी प्रकार वीजसे ले कर पञ्चल तक जीवकी सभी अवस्थाओंमें जी युक्त और वयुक्त हैं, ये ही अपाश्रय हैं। पुराणवत्ता पण्डितोंने ये सब लक्षणयुक्त पष्टादश महापुराण और पष्टादश उपपुराण नियंय किये हैं।)

पहले ही कहा जा चुका है, कि सभी प्रधान पुराणों-के मतेसे महापुराण पञ्चलक्षणप्राक्ता है। परमर्निहादि-प्रमुख अधिष्ठानकारकोंमें भी पुराणोंके पञ्चलक्षण स्वीकार किये हैं। ये वीभागवत और ब्रह्मवेवर्तको छोड़ कर और किसी भी पुराणके दशलक्षण ग्रहण नहीं करते। भागवतके उक्त लक्षण-निर्देशसे भी उससे परमर्कीयका परिवर्त्तित्व प्रतिपादन होता है। उक्त लक्षण द्वारा भी भागवतकी प्राचीन पुराणवत्तामें गल्ल नहीं कर सकते।

भागवतमें 'व' श्रृं लक्षणकी जैसी निरुक्ति दी गई है, यह भी प्राचीन शास्त्रमयन नहीं है। पहले ही कहा गया है, कि कुमारिलभट्टने समय भी वंशानुक्रम और भावोन्नयन ये दोनों स्वतन्त्र विषय हैं। किन्तु जिन समय भविष्यराजवंशवर्णन पुराणका विषयोद्भूत हो गया था, भागवत उसके बाद रचा गया है, यह उक्त निरुक्ति द्वारा प्रतिपन्न होता है। भविष्यराजवंशप्रसङ्गमें उर्वी शताब्दीको भी कथाएँ मिलती हैं। उक्त विभिन्न प्रमाण द्वारा भागवतकी उर्वीसे उर्वी शताब्दीका दर्शनपरिपोषक पौर्वाधिक ग्रन्थ मान सकते हैं। इसमें प्रति प्राचीन पुराणाल्पिका भी सम्भाव नहीं है।

हिन्दूधर्मशास्त्रमें पुराण, भागवत और महाभारत एक श्रृंक्ति लिखे हुए हैं, ऐसा प्रवाद प्रचलित है। किन्तु भाषाकी प्राचीनता करनेसे ऐसा बोध नहीं होता। ब्रह्म, विष्णु, ब्रह्माण्ड और महाभारतकी भाषा जैसी सरल, चीजोंकी चीर चीर बोधमें भाषीयशानी है, भागवतकी भाषा जैसी नहीं है। भागवतमें कई जगह कठिन, चमकृत, विधि कन्दोविशिष्ट और गभीर चिन्तासमुद्भूत है। भागवतकी निज शक्तिसे अनुसार भागवत महापुराण नहीं हो सकता कारण, उसके पहले महाभारत तथा सभी पुराण प्रचलित हुए थे, यह भागवतकारने ही स्वयं ज्ञोकार किया है। यह पञ्चम पुराण है, ऐसा भागवतकारने कही भी प्रकाशित नहीं किया है, वरन् उर्वीने पटादग पुराण-गणनाकालमें पटादग पुराणान्तर्गत भागवतकी कभी ८म और कभी १म पुराण माना है।

पुराणार्थके श्लोकांशुमार फिर विष्णुभागवतकी भी महापुराण मान सकते हैं। यद्यपि यह श्रीभागवत नामाल्यानुगत एक योन्ववोध दार्शनिक ग्रन्थ है। गीता में भगवान् श्रीकृष्णने जो अपूर्व मत प्रकाशित किया है, पाश्चात्य और भागवतगणने जो दार्शनिक मत ज्ञोकार किया है, वेदार्थिक मतमें उन सब तत्त्वोंकी ज्ञाना उपाख्यानादि द्वारा भूगोमति समझानेके लिये भागवतकी सृष्टि हुई है। इसी कारण दार्शनिक जगत्में भागवतका समधिक पादर है। यही कारण है, कि श्रेष्ठ सभी पुराणोंकी अपेक्षा इस भागवतके स्वर हिन्दू

साधारणका प्रगाढ़ अनुसंग, यथेष्ट सम्मान और चक्षुषा भक्ति शक्ति होतो है। विद्युद वेदाभास मत १म भागवतमें बहुत अच्छी तरह विवृत हुआ है। इसी कारण भागवतकारने लिखा है—

“सर्ववेदात्मसारं हि श्रीभागवतमिच्छते।

तद्भस्मस्तत्पठेत्तस्य नाम्नाय कथाद्रुतिः क्वचित्॥”

(१२।१।१५)

यह देवीभागवतके मूलको प्राचीनता करनेमें क्या फल मिलता है, यही देखन चाहिये। देवीभागवतके द्वितीय अध्यायमें लिखा है—

“पुराणसुत्तमं पुन्यं श्रीमद्भागवताभिधम्।

पटादगपटसारं श्रीकान्तं तु सर्वज्ञम्॥

स्तब्धा द्वादश एवाव कल्पेन विहिताः उभाः।

विगतं पूर्णं सध्याया पटादगपुनः स्मृताः॥ १२॥

सग य प्रतिपद्य वंशो मन्वन्तारिण च।

वंशानुवरितश्च पुराणं पञ्चमचरन्॥” (१२।१२।८)

यह श्रीमद्भागवत नामक पुराण सर्वोत्तम और पुण्यपद है। यह पटादगपट-संज्ञक विद्युद श्लोक-मात्रा सम्बन्धित, ३१८ अध्यायोंमें पूर्ण और मङ्गलमय १२ स्तब्धविधि है। सग, प्रतिपद्य, वंशवन्तो, मन्वन्तार और वंशानुवरित इस पुराणके यही पाँच लक्षण हैं।

पञ्चलक्ष कहनेमें देवीभागवत ही महापुराण समझा जाता है। मध्य प्रभुति पुराणोक्त लक्षण भी इस देवीभागवतमें हैं। पुराणार्थके वचनांशुमार भागवतमें ३३२ अध्याय हैं। किन्तु देवीभागवतके मतमें ३१८ हैं। इस कारण पद्यायको मन्त्रा ने कर फिर महापुराणके सम्बन्धमें गोनमान रह हो जाता है।

विष्णुभागवतमें जिस प्रकार भट्टकाशोका माहात्म्य सूचित हुआ है, इस देवीभागवतमें उर्गी प्रकार राधाका माहात्म्य वर्णित है।

विष्णुभागवत जिस प्रकार दार्शनिक-ग्रन्थ है, यह देवीभागवत उर्गी प्रकार तन्त्रानुसारो है। इनमें यथेष्ट तन्त्रका प्रभाव लक्षित होता है, इसी कारण देवीभागवत पादि तान्त्रिक ग्रन्थोंमें इस देवीभागवतको प्रधानता स्वीकृत हुई है। तन्त्रप्रधान कहनेमें कोई ऐसा न समझ

ले, कि देवीभागवत नितान्त प्राधुनिक है। नेपाससे ६७० गताब्दीमें लिखित तन्त्रग्रन्थको पुस्तक पाई गई है। अभी यह प्रमाण मिलता है, कि ११वीं गताब्दीमें भी तान्त्रिक मतका जगोप प्रचार था। देवतादिको मूर्ति बना कर उसको प्रतिष्ठा, यह तान्त्रिक प्रभावके समयमें हो प्रवर्तित हुई है। देवीभागवत-नामधेय श्री मद्भागवतमें भी एक प्राचीन कथाएं रहने पर भी तान्त्रिक प्रभावके समय इनका पुनर्न स्कार हुआ था, इसमें संदेह नहीं। राधाजी उपासना भी तान्त्रिक प्रभावका फल है। विष्णुभागवतमें सविस्तर श्रीकृष्णचरित और गोपोगणका प्रसङ्ग रहने पर भी, उसमें राधाचरित नहीं है, यहाँ तक कि राधाका नाम भी देखनेमें नहीं आता। विष्णुभागवतके रचनाकालमें यदि राधाकी उपासना प्रचलित होती, तो उसमें राधासाहाय्य प्रमशय रहता। इससे मालूम होता है, कि उस समय भी वैष्णवसमाजमें राधा उद्गीत नहीं हुई। इस हिसाबसे देवीभागवतके जिस अंशमें राधाचरित है, वह अंश विष्णुभागवतकी रचनाके बाद रचा गया है, इसमें संदेह नहीं। अतएव देवीभागवतका कोई अंश विष्णुभागवतकी अपेक्षा प्राचीन होने पर भी, विष्णुभागवत सम्पूर्ण होनेके बाद ८वीं से ११वीं गताब्दीके मध्य देवीभागवतने वर्तमान आकार धारण किया है। शैव नीलकण्ठ और स्वामीने इस देवीभागवतकी टोका लिखी है।

उपरोक्त दोनों प्रकारके भागवतकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि पूर्वकालमें एक भागवत ही सम्भवतः भागवतोंका प्रत्येक कर आहत था। बोद्ध-प्रभावसे ब्राह्मणधर्मके गोचरीय परिणामके साथ इस पुरातन भागवतका विमकुल भोग हो गया था। पोल्लेख ब्राह्मणधर्मका अभ्युदय हुआ तब उसके साथ साथ वैष्णव-शास्त्र नामा सम्प्रदाय प्रचल हो उठे। उस समय वैष्णव-शास्त्रनिष्ठाोंने उस पुरातन भागवतका आकार से कर श्रीमद्भागवतका और ग्राह्य पौराणिकोंने देवीभागवतका प्रचार किया। इस कारण दोनों ग्रन्थमें पूर्व तन भागवतके लक्षण विद्यमान हैं। पूर्वतन भागवत १८००१ पद्यविशिष्ट था, इस कारण दोनों ग्रन्थवालोंने अपने अपने भागवतमें १८००० श्लोकोंकी

रचना की थी। अतमें यह भी कह देना उचित है, कि देवीभागवतमें मण्डनचण्डी, पडो, मगसा आदि प्राधुनिक देवीपूजाका प्रसङ्ग रहनेके कारण, यदि इसकी प्राचीन पुराण श्रेणीमें गिनती की जाय, तो घोर संदेह उपस्थित होगा।

द्वि पुराण

१-४ नारद-सप्तकुमारखंदा, ५ भागवतकी मृकण्ड-पुराणप्रस्ताका कथन, ६-११ गङ्गाकी उत्पत्ति और साक्षात्स्थादि वर्णन, १२ वर्णनमनुहके मध्य ब्राह्मणका दान-पात्रत्वकथन, १३ देवतायतनस्थापनमें पुष्पकथन, १४ धर्मशास्त्रनिर्देश, १५ नरकवर्णन, १६ भगोरथका गङ्गानयन वृत्तान्त, १७-२३ विष्णुव्रतकथन, २४-२५ वर्षा-अमाचारकथन, २६ हमार्षधर्मकथन, २७-२८ आद्यविधि, २९ तिथ्यादिनिर्णय, ३० प्रायश्चित्तनिर्णय, ३१ यममार्गनिरूपण, ३२ भवाटवीनिरूपण, ३३-३४ हरिभक्ति लक्षण, ३५ ज्ञाननिरूपण, ३६ वैष्णवेषामाभाव, ३७-४० विष्णुसाहाय्य, ४१ युगधर्मकथन, ४२ सृष्टितत्त्वनिरूपण, ४३ जीवतत्त्वकथन, ४४ परमोक्तनिरूपण, ४५ मोक्षधर्मनिरूपण, ४६ आद्यशान्तिवाद दुःखत्रयनिरूपण, ४७ योगलक्षणवर्णन, ४८-४९ परमाथनिरूपण, ५० वेदाङ्गविद्यादिशास्त्र, ५१ कल्पशास्त्रनिरूपण, ५२ व्याकरणशास्त्रनिरूपण, ५३ निरुक्तशास्त्रनिरूपण, ५४-५६ ज्योतिःशास्त्रनिरूपण, ५७ छन्दःशास्त्रनिरूपण, ५८ शकौत्यनिकथन, ५९ ब्राह्मणकर्तव्य कर्मनिरूपण, ६० वायुका उत्पत्त्यादिवर्णन, ६१ गान्धर्वशास्त्रनिरूपण, ६२ मोक्षशास्त्र समादेश, ६३ भागवततन्त्रनिरूपण, ६४-६६ दीक्षाविधि, ६७ अभीष्टदेवपूजाविधि, ६८ गणेशमन्त्रनिरूपण, ६९ त्रयोमुक्तिनिरूपण, ७०-७२ विष्णुमन्त्रनिरूपण, ७३ राममन्त्रनिरूपण, ७४ हनुमन्मन्त्रनिरूपण, ७५ हनुमद्दीपविधान, ७६ कात्तवीर्योत्थान मन्त्रपूजादिविधान, ७७ कात्तवीर्यकवच, ७८ हनुमत्कवच, ७९ हनुमन्चरित, ८०-८१ कथामन्त्रनिरूपण, ८२ पूर्वजन्ममें नारदका महादेवके समीप कथ्यतत्त्वप्राप्तिवृत्तान्तकथन, ८३ राधाश्रयतारनिरूपण, ८४ मधुकटोभोत्पत्तिविवरण, ८५ कालीमन्त्रनिरूपण, ८६ सरस्वत्येतारवर्णन, ८७ दुर्गावतारवर्णन, ८८ राधावतारचरितवर्णन, ८९ शक्ति-

महस्त्रनामकधन, ८० शक्तिपटल, ८१ महेगमन्त्रनिरूपण,
८२ पुराणाप्याननिरूपण, ८३ ब्रह्म चौर पद्मपुराणानु-
क्रमणिका, ८४ विष्णुपुराणानुक्रमणिका, ८५ वायु-
पुराणानुक्रमणिका, ८६ भागवतानुक्रमणिका, ८७ नारद
पुराणानुक्रमणिका, ८८ मार्कण्डेयपुराणानुक्रमणिका,
८९ धाम्नेयपुराणानुक्रमणिका, ९० भविष्यपुराणानु-
क्रमणिका, ९१ ब्रह्मवैवर्तपुराणानुक्रमणिका, ९२
लिङ्गपुराणानुक्रमणिका, ९३ वराहपुराणानुक्रमणिका,
९४ स्कन्दपुराणानुक्रमणिका, ९५ वामनपुराणानु-
क्रमणिका, ९६ कूर्मपुराणानुक्रमणिका, ९७ मत्स्यपुरा-
णानुक्रमणिका, ९८ गण्डपुराणानुक्रमणिका, ९९
ब्रह्माण्डपुराणानुक्रमणिका, १०० प्रतिपदव्रतनिरूपण,
१०१ द्वितीयाव्रतनिरूपण, १०२ तृतीयाव्रतनिरूपण, १०३
चतुर्थीव्रतनिरूपण, १०४ पञ्चमीव्रतनिरूपण, १०५ षष्ठी-
व्रतनिरूपण, १०६ सप्तमीव्रतनिरूपण, १०७ अष्टमीव्रत-
निरूपण, १०८ नवमीव्रतनिरूपण, १०९ दशमीव्रतनिरू-
पण, ११० एकादशीव्रतनिरूपण, १११ द्वादशीव्रतनिरू-
पण, ११२ त्रयोदशीव्रतनिरूपण, ११३ चतुर्दशीव्रतनिरू-
पण, ११४ पूर्णाव्रतनिरूपण, ११५ पुराणसहिता ।

उत्तरभागमें—१ द्वादशीमाहात्म्य, २ तिथिविचार, ३
विष्णुका भक्त्यधीनत्वकथन, ४ नियोगाचरणनिरूपण, ५
धर्मविलाप, ६ धर्मक प्रति ब्रह्माका वाक्य, ७ लोकमोह-
नाथ ब्रह्माकटक मोहिनी प्रमदाको उत्पत्ति, ८ मोहिनी-
चरित, ९ राजा कृष्णाङ्गदका मृगयामें गमन और तत्-
पुत्र धर्महृदका राज्याभिषेक, १० मृगशदि वारणोद्दिग-
में राजा कृष्णाङ्गदकें प्रति पहिले साधर्म्योद्देश, ११ कृष्णा-
ङ्गद राजाका मृगयाके निमित्त वनगमन और मोहिनीदृश्यन,
१२ मोहिनीके द्वारा कृष्णाङ्गदको विवाहप्रतिज्ञा, १३
कृष्णाङ्गदकें साथ मोहिनीका विवाह, १४ कृष्णाङ्गद
कटकें गृहगोधाविमुक्ति, १५ कृष्णाङ्गदका स्वनगर
प्रत्यान, १६ पतिव्रतीव्यास, १७ माताके प्रति धर्महृदका
विविध चर्चावदान, १८ मोहिनीके प्रणयमें सुन्ध को राजा-
का मोहिनीके साथ पुनर्विचारार्थ पुत्रको राज्यापण,
२० धर्महृदको टिप्पण, २१ कामोद्दिग राजकटक
मोहिनीको विवादान, २२-२३ हरिवाचकें दिन राजाको

खिनातिके सिद्धे मोहिनीका समुत्पन्न और कृष्णाङ्गद
राजाका हरिवाचरमाहात्म्यवर्णन, २८-३४ मोहिनी-
कटकें कामी कृष्णाङ्गदको बहुतरे कनेगदानप्रस्ताव,
३५-३७ मोहिनीकें प्रति असुगण्यका शापदान, ३८में
चत्वारके निमित्त तर्कनेवादि उपदेश, ३८-४३ गङ्गा-
माहात्म्य, ४४-४७ गङ्गामाहात्म्य, ४८-५१ कामोद्दिगमाहात्म्य,
५२-५३ पुण्डरीकमाहात्म्य, ५४-५५ प्रदाममाहात्म्य,
५६-५७ कुक्षेयमाहात्म्य, ५८ हरिवाचमाहात्म्य, ५९
नदिरिवाचमाहात्म्य, ६० कामोद्दिगमाहात्म्य, ६१
कामोद्दिगमाहात्म्य, ६२ प्रभाततोष माहात्म्य, ६३ पुण्डरी-
कमाहात्म्य, ६४ गीतवाचमाहात्म्य, ६५ त्रयम्बक-
माहात्म्य, ६६ गङ्गाच माहात्म्य, ६७ लक्ष्मण-
माहात्म्य, ६८ श्वेतुमाहात्म्य, ६९ नर्मदाताप माहात्म्य,
७० श्वेतुमाहात्म्य, ७१ मयूरमाहात्म्य, ७२ हनु-
मानमाहात्म्य, ७३ वसुधा ब्रह्मकें समोप गमनप्रस्ताव,
७४ मोहिनीतोष सेवनप्रस्ताव ।

नारदपुराणमें ही नारदमहापुराणका विषयानुक्रम
इस प्रकार है—

“शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पुराणं नारदोपकं ।
पञ्चविंशतिमाहसं ब्रह्मकृष्णवैष्णवम् ॥
सूत्रयोगकथंवादं सूत्रमध्वेयवर्णनम् ।
नामा धर्मकथाः पुण्याः प्रवृत्तं समुदाहृतम् ॥
प्राग्भागे प्रथमे पादे मनकेन महात्मना ॥
द्वितीये मोक्षप्रसाधौ मोक्षोपायनिरूपणम् ।
वेदाङ्गानाञ्च कथनं शुक्रोत्पत्तिश्च विद्वरात् ॥
मनन्दनेन गदिता नारदाय महात्मने ॥
महात्म्ये समुद्दिष्टं पञ्चशतमिषोक्तम् ।
मन्त्राणां गायनं दोषा मनोहारय पूजनम् ॥
प्रयोगाः कथनं नाममहसं स्तोत्रमेव च ।
गणेशसूर्यविष्णुनां नारदाय दत्तोपकं ॥
पुराणं लक्ष्मणस्यैव पमःचं दानमेव च ।
पृथक् पृथक् समुद्दिष्टं दानकर्मपुराणम् ॥
चेत्नादि सर्वं मामेव तिथिनाञ्च पृथक् पृथक् ।
प्राक्तं प्रतिपदादौनां व्रतं शर्वाधनायम् ॥
व्रतानेन मुनिना नारदाय चतुर्वर्कं ।
पूर्वभागेऽथमुद्दिष्टो ब्रह्मास्त्रावर्णनम् ॥

पन्थोशरविभागे ॥ प्रथं एकादशोव्रते,
यगितेनाथ मन्वादी माव्यातुः परिकीर्त्तितः ॥
रुक्माद्रदकथा पुण्या मोहिन्युत्पत्ति कम च ।
यसुगापय मोहिन्ये परादुहारणक्रिया ॥
गङ्गाकथा पुण्यतमा गयायात्राशुकीर्त्तनम् ।
काश्या माहात्म्यमतुनं पुण्योत्तमवर्षनम् ॥
यात्राविधानं चैवस्य वृद्धाख्यानसमन्वितम् ॥
प्रयागस्थाय माहात्म्यं कुरुक्षेत्रस्य तत्परम् ।
हरिद्वारस्य चाख्यानं कामोदाख्यानकं तथा ॥
वटरीतीर्थमाहात्म्यं कामाख्यायास्तथ च ।
प्रभासस्य च माहात्म्यं पुराणाख्यानकं तथा ॥
गोतमाख्यानकं पद्माद्विपादभक्तस्ततः ।
गोकर्णक्षेत्रमाहात्म्यं लक्ष्मणाख्यानकं तथा ॥
सेतुमाहात्म्यकथनं नर्मदातीर्थवर्णनम् ।
श्वक्ताया चैव माहात्म्यं मधुरायास्ततः परम् ।
हन्दावनस्य महिमा वधोन्नतान्तिके गतिः ।
मोहिनीचरितं पञ्चादेवं वै नारदीयकम् ॥”
(हे विप्र ! सुनो, नारदीय पुराण कहता है । इस पुराणमें पचीस हजार श्लोक और षड्वत् कल्पकी कथाएँ हैं ।

इसके प्रथम भागमें प्रथमपादमें जहाँ सप्तशतकसंवाद है वहाँ संज्ञित छटिवर्णन और महारमा जनककण्टक नाना प्रकारकी धर्मकथाएँ हैं ।

मोक्षधर्मविषय द्वितीय पादमें मोक्षका उपायनिरूपण, वेदाङ्ग समुदायका कथन और विस्तृतरूपसे शुक्की उत्पत्ति, ये सब माहात्म्य नारदसे सदानन्दने कहे हैं ।

महातन्त्रोद्दिष्ट पद्मपाशविमोचन, गन्धसमुदायका शोधन, दीक्षा उद्धार, पूजा और प्रदोष तथा गणेश, सूर्य और विष्णु, महेश्वरनामस्तोत्र, पुराणकी लक्षण और प्रमाण, दान और दानका पृथक् पृथक् फल-उद्देश तथा चन्दादि साममें प्रतिपदादि तिथिक्रमसे पृथक् पृथक् वृत्तनिरूपण, ये सब उद्घातन सनातन मुनिने नारदसे चतुर्थ भागमें कहे हैं ।

इसके उत्तर भागमें एकादशोव्रत विषयमें प्रथ, वशिष्ठके साथ माव्याताका संवाद, पवित्र रुक्माद्रदकथा, मोहिनीकी उत्पत्ति और कम, मोहिनीकी प्रति वरुणाप,

पयात् उद्धारक्रिया, पुण्यत्रय गङ्गाकथा, गयायात्राशुकीर्त्तन, कामोदाहात्म्य, पुण्योत्तमवर्षन, वटु पादगानयुक्त पुण्योत्तमचक्रका यात्राविधान, प्रयागमाहात्म्य, कुरुक्षेत्रमाहात्म्य, हरिद्वाराख्यान, कामोदाख्यान, वटरीतीर्थमाहात्म्य, कामाख्यामाहात्म्य, प्रभासमाहात्म्य, पुराणाख्यान, गोतमाख्यान, वेदवादस्त्य, गोकर्णक्षेत्रमाहात्म्य, लक्ष्मणाख्यान, सेतुमाहात्म्य, नर्मदातीर्थवर्णन, श्वक्तीधोर सयुग्माङ्ग माहात्म्य, हन्दावनमहिमा, प्रपञ्चके निजट वसुका गमन और पुनः मोहिनीचरित, ये सब नारदीय पुराणमें कीर्त्तित हुए हैं ।)

नारदपुराणोक्त विषयाशुक्तिके साथ नारदीयपुराणको पूर्वाह्न सूची विलक्षण मिलती जुलती है । जिस नारदपुराणके ग्रन्थसे सूची और समस्त पुराणका विषयाशुक्तम दिया गया, उस नारदीयपुराणकी ग्रन्थसंख्या प्रायः २२००० है ।

अध्यापक दिनचम साहबने नारदपुराणके केवल २००० श्लोक पाये हैं । मालूम होता है, कि उन्होंने सम्पूर्ण नारदपुराण नहीं देखा था । उनका विवरण पढ़नेसे ज्ञात होता है, कि नारदपुराणके उत्तरभागमें ऐसे ३० अध्याय तकमें जो पंच है, वही पंच उन्होंने पाया है । इसीसे मालूम होता है, कि उन्हें नारदपुराणमें पुराणके पक्ष लक्षण नहीं मिले और इसी कारण उन्होंने इसे पुराण कह कर स्वीकार नहीं किया । अब देखना चाहिये, कि इस षड्वत् पुराणको हम लोग महापुराणक जैसा स्वीकार कर सकते हैं वा नहीं ?

मत्स्यपुराणके मतसे—

“यत्राह नारदोधर्मान् षड्वत्कल्पान्यथानिह ।

षड्विंशत् महस्त्राणि नारदीयं तदुच्यते ॥”

जिसे ग्रन्थमें नारदने षड्वत्कल्पप्रसङ्गमें नाना प्रकारकी धर्मकथाएँ कही हैं, वही २५००० श्लोकयुक्त नारदपुराण है ।

शिव उग्रपुराणके उत्तरखण्डमें लिखा है—

“नारदीयं पुराणं नारदीयं प्रचक्षते ॥”

नारदीयपुराण ही नारदीय नामसे प्रसिद्ध है ।

उक्त लक्षणके अनुसार हम लोगोंने जो नारदपुराण पाया है, वह नारदीय महापुराण कह कर गण्य हो सकता है ।

अथाप्येक विलम्ब इमं नारदपुराणं १६वीं वा २०वीं शताब्दीमें रचित भक्तिपद्यके जेमा चतुर्मान करते हैं। किन्तु ११वीं शताब्दीमें चम्पकेश्वरकोटक नारदके चम्पकेश्वर चोर १२वीं शताब्दीमें गौड़ाधिप चम्पानमेनके दामनगरीमें इस नारद पुराणमें लचन सहित द्रष्टे हैं। विगेषतः नारदपुराणके विषयको चासोचना करनेसे हमें केवल भक्तिपद्य ही नहीं कह सकते, तान्त्रिक वैष्णविक चम्पुनादि चोर नाना प्रकारके भक्तदायका विधान भी इस पुराणमें वर्णित देखा जाता है। इस पद्यके उत्तर भागकी चालोचना करनेसे यह वैष्णवमन्त्रदाय-विगेषके पद्य जेमा प्रतीत तो होता है, पर पूर्व भागके नाना विषयको चासोचना करनेसे यह कोई विगेष भक्तदायिक पद्य जेमा प्रतीत नहीं होता। हममें जिस प्रकार सभी पुराणोंके विषयानुक्रम दिष्टे गये हैं, उसमें बोध होता है, कि दो एक छोड़ कर सभी पुराणोंके वर्तमान आकार धारण करनेके बाद यह पुराण सहजित हुआ है। सुतरां एक समय छठे पुराणमें इसकी गिनती होने पर भी, सभी बहुत कुछ हिर कर हो गया है। सम्भवतः इस पुराणका अधिकांश प्राचीन भाग ही विलुप्त हो गया है। विगेषरूपमें तान्त्रिक मन्त्रका प्रचार होनेके बाद नारदपुराणमें वर्तमान आकार धारण किया है। चम्पकेश्वरके 'भारत' वर्णित चित्रमें जाना जाता है, कि उस समय भारतमें तान्त्रिक चोर धोराधिक सभी प्रकारको देवप्रतिष्ठा, मन्त्र चोर दीक्षादि प्रचलित थी। इस नारदपुराणका पाठ करनेसे ऐसी कोई विगेष बात नहीं मिलती जिसमें इसकी उत्पत्त्यकी कालकी रचना मान सकते हैं।

इसके पहले पद्यपुराणकी चासोचनामें यह दिखलाया गया है, कि पाञ्चक्यके पद्यपुराणमें जिस प्रकार पापछिन्नचण चोर मायावादको निन्दित है, नारदपुराणके सहजलकाममें पद्यपुराणके मन्त्र उस प्रकारका कोई विषय न था। अतएव हमके यह भी दिखलाया गया है, कि शैवमन्त्रदाय वा माध्वमन्त्रदायके रूपमें ही पापछिन्नचण चोर मायावाद-निन्दितका प्रचार रचा गया है। इस विषयमें ११वीं शताब्दीके पहले नारदपुराणमें वर्तमान आकार धारण किया था, इसमें सन्देह नहीं।

हृदय-दोषपुराण नाममें भी एक संक्षेपपत्र मुद्रित हुआ है। यह महापुराण नहीं है, पद्यपुराणकी ही गिना जा सकता है। समुद्रहृदय-दोष पुराण नामका भी एक छोटा पत्र मिलता है जो न तो पुराण चोर न पद्यपुराणमें की गिना जा सकता है।

वासिष्ठासंहिता, दत्तात्रेयस्तोत्र, पारिवर्जिन्महासंहिता, स्वयंवाचकथा, यादवगिरिमाहात्म्य, शैलेश्वर-माहात्म्य, महोदयपवित्रोक्त इत्यादि नामधेय पत्र नारदपुराणके पञ्चगवत माने जाते हैं।

७म मार्कण्डेयपुराण।

१ मार्कण्डेयके समीप जेमिनिका भारतविषयके प्रश्न, उसके उत्तरमें मार्कण्डेयका वसुधावलयन, २ कनूर चोर विष्णुप्रपत्ता युद्धवर्णन, चटका उत्पत्तिकथन, ३ शमीकमुनिके निकट पिशाचि विहंगीका शाप-कारणवर्णन, सनकी विन्याचनप्राप्ति, ४ विन्याचनका पंचचतुष्टयके समीप यमनपूर्वक जेमिनोका प्रश्न-चतुष्टयकथन, उत्तरमें सनके प्रति चतुष्टयवातावरण, ५ श्लोघीके पञ्चवामोका कारण, इन्द्रविक्रिया-कथन, ६ यमदेवजन्त मण्डपका कारणकथन, ७ विन्यामित्रके लोचने हरियन्त्रको राज्यप्राप्ति, श्लोघीका विचार, ८ हरियन्त्रका उत्पत्त्यान, ९ पाण्डवकुलपुत्रप्राप्ति, १० पञ्चगवके समीप जेमिनिका प्राणिजन्मादि विषयके प्रश्न, ११ विताके समीप पुत्रका निवेदादि तत्त्वानवर्णन, १२ महाशरीरवादि नरकलक्षणावर्णन, १३ शैव-राज एवम् यमपुत्रवर्णन, १४-१५ शैवराजके प्रति यमपुत्रका कर्मफलकथन, शैवराजका स्वर्गगमन, १६ पवित्रतामाहात्म्य, चमनयात्रा वरनाभ, १७ दुष्कृत्यको उत्पत्ति, १८ कात्तवीर्यामृते प्रति गर्भका उत्पत्ति कथनपूर्वक दत्तात्रेय-पुत्रानवर्णन, १९ दत्तात्रेय चोर कात्तवीर्यका संवाद, २० नागराजामनके समीप उसके पुत्र कुवलयगङ्गाका उत्पत्तानवर्णनमारम्भ, २१ कुवलयगङ्गा स्त्रवापविह पातालकेतु देखके चतुर्मुखमें पातानगमन, वहाँ मदानमाका पानिपदच, मन्त्रपातानकेतुवध, २२ मदानमा-विघात, २३ चम्पनकी तपश्चरण द्वारा मदानमाप्राप्ति, कुवलयगङ्गा नागराज-भवनेमें गमन, २४ कुवलयगङ्गा पुनः चम्पनके समीप

मदानमात्रम्, २५ मदानमाका वासोक्षापन, २६ मदानमाके मुखवपः तपसाय, पुत्र चनके प्रति चनका उद्गापनवाच, २७ मदानमाका पुत्रागुमाचन, २८ पनके प्रति मदानमाका पाथम-चतुर्गके धर्मकर्मादिशा कथन, २९ विस्तारितभावेन मार्कण्डेयचर्मनिरूपण, ३० नित्य नैमित्तिकादि आद्यतन्त्र, ३१ पात्रेण आद्यकथन, ३२ आद्यतन्त्र, ३३ नाम्यनादकथन ३४ मदानमाका विस्तारितनिरूपण, ३५ यज्ञीयज्योति निरूपण, ३६ मदानमाका निजपुत्रो पद्मरोचकदान, ३७ चनकेका चानविवेक, ३८ दत्तात्रेय चौर चनकेका संवाद, ३९ योगाध्याय, ४० योगनिदि, ४१ योगधर्मा, ४२ चन्द्रारका रूपकथन, ४३ चरितकथन, ४४ सुवाङ्मय चौर जागोराजका कथोपकथन, ४५ क्रोडकिके प्रति मार्कण्डेयका मन्त्रोत्पत्ति कथन, ४६ काननिरूपण, यज्ञायुका परिमाण, ४७ प्राज्ञत वेङ्गन मगविधान, ४८-४९ विस्तारित भावेन देवादि सृष्टिकथन, ५० यज्ञानुगमन, ५१ टोःसरोत्पत्ति, ५२ रुद्रवर्ण, ५३ द्वायध्वज मन्वन्तरकथन, ५४-५५ सुवनकोप-कथनप्रसङ्गम् अश्वहोप-वर्णन, ५६ गङ्गा-वतार, ५७ भारतवर्षविभाग, ५८ कूर्मसंस्थान, ५९-६० वर्षवर्णन, ६१ स्वारोचिप मन्वन्तरकथन-प्रारम्भ, ६२ कति-वह्निना समागत, ६३ स्वारोचिपके साथ मनोरमाका विवाह, ६४ स्वारोचिपके साथ मनोरमाके दो सखिप्र-का विवाह, ६५ चक्रवाक चौर नृगके प्रति स्वारोचिपका तिरस्कार, ६६ स्वारोचिपको उत्पत्ति, ६७ स्वारोचिप मन्वन्तरकथन, ६८ निधिनिरूपण, ६९ उत्तममन्वन्तर-कथन-प्रारम्भ, उत्तमका पशोपरित्याग, द्विजका भार्या-व्येय, ७० द्विजका भार्यानयन, ७१ राजा चौर राजस-का संवाद, ७२ राजमहिषीका चानयन, चोत्तम मुनि-की उत्पत्ति, ७३ चोत्तममन्वन्तरकथन, ७४ तामस-मन्वन्तरकथन, ७५ वैवस्वत मन्वन्तरकथन, ७६ चानुप-मन्वन्तरकथन, ७७ वैवस्वत मन्वन्तरकथन, वैवस्वत-मनुकी उत्पत्ति, सूर्ययातन, ७८ देवर्षिकन सूर्यस्तव, पश्चिमोक्तमारका उत्पत्ति-कथन, ७९ वैवस्वत मन्वन्तर, ८० सावर्षिक मन्वन्तरकथन, ८१ देवो महाराष्ट्रारम्भ, मयूकैतभवध, ८२ महिषासुर सेनानिधन, ८३ महिषासुर-वध, ८४ मन्नादिमाहात्म्य, ८५ देवोद्भूतसंवाद, ८६ पुत्र-

लोचनवध, ८७ सृष्टिसुखवध, ८८ रत्नयोजवध, ८९ निगुभवध, ९० शुभवध, ९१ देवोत्पत्ति, ९२ देवीहा-वरदान, ९३ देवोमाहात्म्यकथन, ९४ देवोमाहात्म्य-कथामि, ९५ मन्वन्तरार्थ मन्वन्तर, ९६ रुचिका चपा-र्यान, ९७ पितृगणकथन कचका वरदान, ९८ रोच-मनुकी उत्पत्ति, ९९-१०० भोग्यमन्वन्तर-कथन, १०१ भूगन्धर्वगानु नीलन, मार्कण्डेयोत्पत्ति, १०२ मन्नाको सृष्टि चौर भास्वत उत्पत्ति, १०३ मन्नाजत दिवाकर-सुति, १०४ कामगन्धर्वकीर्तन, चदिनिहत सूर्योत्पत्ति, १०५ भास्वान्न वरदान, चदितिके गर्भमे चनका जन्म, १०६ सूर्यका तनुत्पत्ति, १०७ विष्णुकर्माङ्गत सूर्योद्भव, १०८ मन्वन्तरान्तरावकाश, १०९ भानुसन्तति संभवि-वर्णनमे राजवर्धनाख्यान, ११० भानुनाशारम्भ, १११ सूर्य-वंगानुकम, ११२ चपधको शूद्रताप्राप्ति, ११३ नाभाग-चरित, ११४ प्रमतिगाय, ११५ नाभागचरित, ११६ भन-न्दन वसुधोचरित, ११७-११८ खनित्रचरित, १२० विविग्धचरित, १२१ खनीनत्रचरित, १२२ कारभम-चरित, १२३ चवीक्षितचरित चौर तत्कालक वैशालिनोहरण, १२४ चवीक्षितका वन्दोत्थ, १२५-१२६ चवीक्षितका उदार चौर वैराग्यप्राप्ति, माताके किमिच्छिजन्तमे चवी-क्षितका पोत्र सुखप्रदगन्धार्थं पित्र समोपमे पत्नीकार, १२७ दानवके हाथसे चवीक्षितका वैशालिनोपरिवाह, १२८ चवीक्षितका वैशालिनो-विवाह चौर मरुत्तका जन्म-कथन, १२९ मरुत्तागिपेक, १३०-१३१ मरुत्त-चरित, १३२ नरिष्यन्तरचरित, १३३ सुमनास्वधम्बर, १३४ नरिष्यन्तवध, १३५ वपुःमन्वन्तरार्थ दमवाक, १३६ वपुःमन्वन्तर चौर दमचरित, १३७ मार्कण्डेयपुराणकल-न्युति ।

प्रचलित मार्कण्डेयपुराणकी विषयमूची दो गई ।

अब यह देवता चाहिये, कि चरपार पुराणोंमें मार्कण्डेयका कंसा लक्षण निर्दिष्ट हुआ है:—

नारदपुराणके मतमें—

“यथात प्रवक्ष्यामि मार्कण्डेयामिधं मुने ।

पुराणं सुमहत् पुण्यं पठतां श्रवतां सदा ॥

यथाधिकृत्य शकुनौ चर्चधर्मनिरूपणम् ।

मार्कण्डेयं मुनिना केमिनेः प्राक्तं समीरितम् ॥

पश्चिमां धर्मसंज्ञां ततो जन्मनिरूपणम् ।

पूष जन्मकथा येदां विज्ञिया च दिव्यते ॥
 तोययात्रा मनस्यातो द्रोणदेयकथानकम् ॥
 हरिश्चन्द्रकथा पुण्या युद्धमाह्विकाभिषम् ॥
 पितापुत्रसमाख्यानं दत्तात्रेयकथा ततः ॥
 वैद्यकथा चरितं महाख्यानमभावितम् ॥
 मदानसाकथाज्ञा पक्षकचरिताचिता ॥
 अष्टिम कोत्तं न पुण्यं नवधा परिकीर्तितम् ॥
 कल्याणकालनिर्देशो यक्षष्टिमिद्वयम् ॥
 रुद्रादिष्टटिप्युक्ता दीपवंशानुकीर्तनम् ॥
 मनुनाथ कथा नागा कोर्तिताः पापहारिकाः ॥
 तासु दुर्गा कथात्यन्तं पुण्यादा चाष्टमेऽनरे ॥
 तत्पुत्रान् प्रणवीरपतिप्रयतिजममुद्रवः ॥
 मार्कण्डेयस्य जन्माख्या तन्माहात्म्यमभाषितम् ॥
 वैवस्वता च यथापि यक्षमाचरितं ततः ॥
 क्षनिवस्य ततो प्रोक्ता कथा पुण्या महात्म ॥
 पवित्रचरितं चैव किमिच्छतकोत्तं नम् ॥
 नरियन्तस्य चरितमिदं वा कुचरितं ततः ॥
 तुलस्याचरितं पद्माद्रामचन्द्रस्य सत्तथा ॥
 कुम्भकं समाख्यानं सोमवंशानुकीर्तनम् ॥
 पुद्गरवः कथा पुण्या नृपवन्द्य कथादभुता ॥
 ययातिचरितं पुण्यं यदुवंगानुकीर्तनम् ॥
 योजन्य वाक्चरितं मादुरं चरितं ततः ॥
 दारकाचरितञ्च कथा सर्वानतारजा ॥
 ततः सांख्य-ममुद्गः प्रपञ्चासत्त्वकीर्तनम् ॥
 मार्कण्डेयस्य चरितं पुराणयवधौ फलम् ॥”

(हे मुने ! इसके बाद तुमने मार्कण्डेयपुराण कहता
 है । इस पुराणके अंशों और पाठक लोगोंकी जो
 कथियाँ पुण्य लाभ होता है । इसमें मनुजनिर्वाणाय
 लक्षण करके मार्कण्डेय मुनिने समस्त धर्मोंका निरूपण
 किया है । इसमें पवित्रकीर्तन धर्मसंज्ञा, लक्ष्मिनिर्वाण,
 और पूर्व-लक्ष्मण, दिवास्तिकी विज्ञिया, वलदेवकी
 तोययात्रा, द्रोणकी कथा, हरिश्चन्द्रकी कथा, पाण्डवका-
 निधपुत्र, पितापुत्र-समाख्यान, दत्तात्रेयकथा, वैद्यचरित,
 मदानसाकथा, पक्षकचरित, नवधा अष्टिकीर्तन,
 कल्याणकालनिर्देश, यक्षष्टिमिद्वय, रुद्रादिष्टटि,
 दीपवंशानुकीर्तन, मनुष्योंकी नागाविष पापहारक
 कथा, जन्मसे अष्टम मन्वन्तरमें पश्यन्तं पुण्याद दुर्गाकी
 कथा, प्रणवीरपति, त्रयोविज-उद्भव, मार्कण्डेयका समा-
 ख्यान और समस्त माहात्म्य, वैवस्वतचरित तथा यक्षकी
 चरित । इसके बाद पुण्यदायक क्षनिवस्य, पवित्रचरित्-

चरित, किमिच्छतकीर्तन, नरियन्तचरित, रुद्रवाकु-
 चरित, तुलसीचरित, रामचन्द्रकी कथा, कुम्भक-
 समाख्यान, सोमवंशानुकीर्तन, पुद्गरवाकी कथा,
 नृपकथा, ययातिचरित, यदुवंगकीर्तन, योजन्यका
 वाक्चरित, मादुरचरित, दारकाचरित, सांख्यममुद्ग,
 प्रपञ्चासत्त्वकीर्तन एवं मार्कण्डेय-चरित, यक्षों की
 कीर्तन हुए हैं ।)

मरत्यपुराणके मतसे—

“यथाचिन्त्य मनुनीन् धर्माधर्मविचारणाम् ।
 व्याख्यात वै सुनिप्रये सुनिभिर्धर्माचारिभिः ॥
 मार्कण्डेयेन कथितं तत्सर्वं विद्वत्प्रेतम् ॥
 पुराणं नवधाह्वं मार्कण्डेयमिदोच्यते ॥”

(५३२६)

जिस धर्ममें धर्माधर्मविचारण पवित्रों प्रसङ्गमें
 चारण हो कर धार्मिक सुनिगण कथक व्याख्यात सभी
 विषय सुनिर्क प्रयानुसार मार्कण्डेय द्वारा कहे गये हैं,
 वही ८०० पद्ययुक्त मार्कण्डेयपुराण है ।

शेषपुराणके उत्तरखण्डमें लिखा है—

“यद वक्ताऽभवत्तुल्यो मार्कण्डेया महासुनिः ।
 मार्कण्डेय-पुराणं हि तदाख्यातस्य गतमम् ॥”

हे तक्षक ! जिस पुराणमें महासुनि मार्कण्डेय
 वक्ता हुए थे, वह समस्त मार्कण्डेयपुराण नाममें प्रसिद्ध
 है । मरत्य नारदादिपुराणमें मार्कण्डेयपुराणके जो
 लक्षण निर्दिष्ट हुए हैं, प्रवर्तित मार्कण्डेयपुराण
 उनका कुछ भी समान नहीं है ।

यद्यपि देवों, वक्ता अथवा वक्ता विस्मय-प्रमुख पाद्याय
 पण्डितगण सभी एक स्वरसे इस मार्कण्डेयपुराणकी
 मौलिकता स्वीकार करते हैं । परन्तु वक्ता विस्मयने लिखा
 है, कि प्रचलित मार्कण्डेयपुराणमें ६८०० श्लोक देखे
 जाते हैं । यदि ऐसा हो, तो २८०० श्लोक कहाँ गये ?
 इसका कोई भी उचित उत्तर नहीं देते । किमो किसी
 पण्डितने लिखा है, कि जो चर्मा मिलता है, वह प्रथम
 खण्ड है । यह शेष खण्ड कहाँ गया ? नारदपुराणके
 विषयानुक्रममें मान्यम होता है, कि नरियन्त-चरितके
 बाद रुद्रवाकुचरित, तुलसी-चरित, रामचन्द्रकथा, कुम्भ-
 कंथ, सोमवंश, पुद्गरवा, नृपचरित, ययाति-चरित,

यदुम्भ, श्रीकृष्णका शास्त्र और मायुरलीला, हारका-
चरित, सांख्यकथा, प्रपञ्चसत्त्व और साक्ष्येय-चरित
वर्णित था। किन्तु प्रचलित साक्ष्येय-पुराणमें नरि-
प्याप्तिकरितके परवर्ती विषय विलुप्त नहीं हैं। इन
सब विषयोंकी यज्ञत करनेसे साक्ष्येय-पुराणकी
श्लोकसंख्या पूरी होगी, इसमें सन्देह नहीं।

इस पुराणमें साम्यद्राघिक भाव नहीं है। इसमें
बहुतसी ऐसी कथाएँ हैं जो किसी भी पुराणमें नहीं
मिलती। बड़े की पाचयंत्रका विषय है, कि इस पुराण-
में वेदव्यासका नाम तक भी नहीं आया है। प्रचलित
पुराणोंमें जिस प्रकार बनावटों बातें दी गई हैं, उस
प्रकार इस महापुराणमें नहीं है। इसका देवों वा
अष्टमीमाहात्म्य सभी हिन्दू सम्प्रदायकी चमत्त भव-
लम्बनीय और परावर्ण सम्पत्ति है। हिन्दूके सभी प्रधान
धर्म-कर्मोंमें इस देवीमाहात्म्यका पाठ नहीं करनेसे
कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता। विपद्में हिन्दूके
घर पर साक्ष्येय-पुराणीय सप्तमती चण्डीका पाठ
होता है।

इसका प्राचीनत्व स्वीकार करते हुए भी अध्यापक
विलसुनने ८वीं वा १०वीं शताब्दीमें इसका रचना-
काल स्थिर किया है। किन्तु गङ्गासायण, वाण और
मयूरभट्टकईक इस साक्ष्येयपुराणका उत्सव होनेके
कारण इसे बहुत प्राचीन ग्रन्थ स्वीकार कर सकते हैं।
बड़े की पाचयंत्रका विषय है, कि बोहगण भी सप्तमती
चण्डीका आदर करते हैं। नेमालसे एक बोहगण्यकी
हस्तलिखित ८०० वर्षकी पुरानी सप्तमती पाई गई है।
सम्भवतः बोहगण्यके समय भी यह पुराण अस्त नहीं
हुआ था। यतः हम लोग इसे निःसन्देह प्राचीन
तथा अत्र पुराण मान सकते हैं।

८५ भानेशपुराण ।

यमी दो प्रकारका पन्नि वा अष्टिपुराण प्रचलित
देखा जाता है। ओचे दोनों प्रकारके पान्नेयकी विषय-
सूची दी गई है :—

१ मन्त्रिपुराण—१ अष्टिपञ्च, २ पन्निपञ्च, ३ मन्त्र-
सुक्ति, ४ कामविधि, ५ पात्रिककथानविधि, ६ भोजन-
विधि, ७ पान्निपञ्च, ८ पाचयंत्रिक (विष्णुकथा), ९

युद्धका उपाख्यान, १० गायत्रीस्तोत्र, ११ साक्षात्पद्मना,
१२ सर्गाध्यायन, १३ गणपेद, १४ योगनिर्णय, १५ सप्त-
कथन, १६ सर्गाध्यायन, संतोदेष्टाग, १७ वरद्वर्ण,
१८ काम्यपोष प्रजासर्ग, १९ कारयपोषधर्म, २० प्रजा-
पतिधर्म, २१-२२ वराहप्रादुर्भाव, २४-२७ नरनिर्ण-
प्रादुर्भाव, २८ देवाम्बरीपद्मवाट, २९ वैष्णवधर्ममें
सुगानुकीर्तन, ३० वैष्णवधर्ममें क्रियायोगविधि, ३१
वैष्णवधर्ममें श्रद्धावत, ३२ सुनामदादयो, ३३-३५ धनु-
माहात्म्य, ३६ छन्दसुविधि, ३७ हवदान, ३८ पापघनदान
३९ पापनाशन हवदान, ४० भद्रनिधिदान, ४१ गिविना-
दान, ४२ विद्यादान, ४३ रुद्रदान, ४४ टासोदान, ४५
माहात्म्यकथन, ४६ अक्षदान, ४७ प्रेतीपाख्यान, ४८ दीव-
मालिकास्थापन, ४९ अक्षनक्षत्रधर्मवाद, ५० तुलापुष्प-
दान, ५१ शर्मिन्तोपाख्यान, ५२-५३ तद्गणहवधर्मवा,
५४ दानादि यज्ञकरण, ५५ वारुणाधर्मविदा, ५६-६०
वामनप्रादुर्भाव, ६१ क्रियायोग, ६२ कामधेनुप्रदान, ६३
सुप्रतोपाख्यान, ६४ गिवका उपाख्यान, ६५ दानावस्था-
निर्णय, ६६ सप्तधर्मवा, ६७ रोहिणीका चरमोत्तमप,
६८ वैवल्लतामुकीर्तन, ६९ सगरोपाख्यान, ७०-७१
गङ्गावतार, ७२ गङ्गामाहात्म्य, ७३-७४ सूर्यवर्ण
माहात्म्यकोशं, ७५ सोडागावधन, ७६ अथर्वण-
वरदान, ७७ कपिलदर्शन, ७८ राक्षसपुत्र, ७९ विज्ञा-
मित्राष्ट, ८० अष्टव्याधावधोचन, ८१ मोताका विवाह,
८२ सुमन्त्रपेयप, ८३ रामनिर्णय, ८४ जनमन्त्राप, ८५
चित्रकूटनिर्वाह, ८६ केकेयोशक्य, ८७ नन्दियामवान,
८८ त्रिमिराष्ट, ८९ खरवध, ९० राक्षसशक्य, ९१
अयोक्कवनिताप्रवेश, ९२ वनवधप, ९३ रामकीध, ९४
जटावुदर्शन, ९५ जटापुता सत्कार, ९६ अयोमुष्टकी
सुक्ति, ९७ कवचदर्शन ९८ कवचशक्य, ९९ कवचोप-
देश, १०० सुषोवदर्शन, १०१ सुषोवधाक्य, १०२ कन-
मानवाक्य, १०३ रामवाक्य, १०४ वालिमन्त्राप, १०५
वालिना वाक्य, १०६ सुषोवामिपेक, १०७ वर्षानिर्वाह,
रामनिर्वाह, १०८ सप्तपञ्चा कीध, १०९ वानरसेन्य-
समागम, ११० सुषोववाक्य, १११ वानरपूषवपरागमन,
११२ वसुमन्त्राख्यान, ११३ वानरप्रमाणमन, ११४ गन-
विवरण, ११५ राक्षसचरितवन्धने वानरनिर्वाह, ११६

प्राचीपवेगमन, ११० सीतावार्त्तापलम्बि, ११८ सम्प्रातिपच
विनास, ११८ वानरपरायागमन, १२० हनुमानका गज्जम,
१२१ सङ्कायकोकन, १२२ सङ्कायवेध, १२३ पयोध
दग्ध, १२४ सोमोपलम्बन, १२५ राघवोपमादिग, १२६
सीताविनाय, १२७ स्वप्रदग्ध, १२८ सीतासम्बोधन, १२९
सीतापय, १३० वनभङ्ग, १३१ किङ्करव, १३२ भर्माय-
वध, १३३ सेनापतिवध, १३४ अयकुमारवध, १३५
राघववाक्य, १३६ पुच्छनिर्वापन, १३७ सङ्कादाह, १३८
सीतासमागमन, १३९ हनुमत्कथन, १४० मधुमन्थन,
१४१ सीतावाक्य, १४२ सुग्रीववाक्य, १४३ सेनानिवेश,
१४४-१४६ विभीषणवाक्य, १४७ विभीषणगमन, १४८
सेतुवन्धप्रारम्भ, १४९ सेतुवन्धन, १५० मायामय राम-
दग्ध, १५१ सीताता प्रलाप, १५२ प्रहस्तवध, १५३
सुग्रीवविषय, १५४ कुत्राकवध, १५५ नरान्तकवध,
१५६ त्रिगोम्यवध, १५७ पतिकायवध, १५८ इन्द्रजित्का
युद्ध, १५९ शोषणवध, १६० कुम्भवध, १६१ निकुम्भवध,
१६२ महाराजवध, १६३ मायामय सीतावध, १६४ इन्द्र-
जिह्वी, १६५ रामोत्थापन, १६६ इन्द्रजितदग्ध, १६७
विरघोहरण, १६८ इन्द्रजित्कथन, १६९ विजयाष्टाधान,
१७० सुपात्रवाक्य, १७१ परिवेदन, १७२ विदूषाचरवध,
१७३ महापात्रवध, १७४ शक्तिपद, १७५ रामराजयुद्ध,
१७६ राघवगिरिवध, १७७ विभीषणभिवेक, १७८
विमानारोहण, १७९ पयोधोपमन रामन्दका प्रवेश, १८०
रामाभिषेक, १८१ राज्यवर्णन अथपक्ष, अनुक्रम-
विकाशवर्णन, अग्निपुराण-पठनफल ।

२५ अग्निपुराणम् — १ अग्निपुराणारम्भकथन, २ मत्स्या-
वतारकथन, ३ कूर्मावतारकथा, ४ वराहावतार-
वर्णन, ५ रामायणको पादिकाण्डकथा, ६ पयोध्या-
काण्डकथा, ७ परम्यकाण्डवर्णन, ८ क्षितिकत्याकाण्ड-
वर्णन, ९ सुन्दरकाण्डवर्णन, १० लङ्काकाण्ड-
वर्णन, ११ उत्तरकाण्डवर्णन, १२ हरिवंश-
कथन, १३ भारताष्टाध्यायने चादिपर्वने सव्योगवर्ण-
न कथन, १४ पायम्भधिकपर्व पर्वण कथन, १५
पायम्भिकपर्वके शेष पर्वण कथन, १६ युद्धकथने च-
तारकथन, १७ जयलक्ष्मि, १८ व्यापक्यादिकृत सृष्टि-
कथन, १९ कथ्यप्रसङ्गिकथन, २० सृष्टिविभाग, अन्त्यादि-

कृत सृष्टिकथन, २१ विष्णु प्रभृतिका पूजाकथन, २२
हनागविधि कथन, २३ पूजाविधि, २४ पत्निकावर्ग, २५
मन्त्रवदग्ध, २६ सुद्रामदग्ध, २७ दोषाविधि कथन,
२८ पवित्रेकविधि, २९ मन्त्रादि मन्त्र, ३० मन्त्र-
सादिवर्णन, ३१ कुशपामात्रागमन सदाविधि, ३२
पटाष्टालारिण्य मन्त्रारकथन, ३३ पति त.रोहणमन्त्र,
३४ पवित्रारोहणने पत्निकावर्गकथन, ३५ पवित्र पवि-
वास, ३६ विष्णुपवित्रारोहण, ३७ मन्त्र पवित्रारोहण,
३८ देवालयदिक्षा सादागमवर्णन, ३९ प्रतिष्ठादिक्षावर्ण-
न, उपरिपद्यकथन, ४० चण्ड दानविधि, ४१ गिह्यविन्यास-
विधि, ४२ प्रासादलक्षण, ४३ देवतापौके प्रासादने
गान्ध्यादि स्थापनवर्णन, ४४ वासुदेवादि प्रतिमासन्ध,
४५ पिण्डिकासन्धकथन, ४६ गान्ध्याम इत्यादि
मूर्त्तिलक्षण, ४७ गान्ध्यामादि पूजा, ४८ चतु-
र्विंशति मूर्त्तिका स्तव, ४९ दग्धवतार-प्रतिमा-
कथन, ५० देवोपप्रतिमाकथन, ५१ सुग्रीदि प्रतिमाकथन,
५२ योगिन्यादि प्रतिमाकथन, ५३ निम्नकथन, ५४
लिङ्गमाणादिकथन, ५५ प्रतिमापिण्डिकाकथन, ५६
दिकपाल-यागकथन, ५७ कलसाधिवानविधि, ५८ हनप-
नादिविधि, ५९ पवित्रासन्धप्रकारकथन, ६० पिण्डि-
कादि स्थापनके शिष्य भागनिर्णय चोर प्रतिष्ठादिकथन,
६१ भजारीरोहण, ६२ सन्धोत्थापन, ६३ तापयोदि प्रतिष्ठा-
कथन, ६४ कृपवापोतङ्गादिक्षा प्रतिष्ठाकथन, ६५
समादि स्थापन, ६६ वाधारच प्रतिष्ठा, ६७ लीचिञ्जार-
कथन, ६८ यामोका सवादिदिकथन, ६९ चवभूदहनान-
विधि, ७० ह्यारामप्रतिष्ठा, ७१ गणेशपूजा, ७२ हनाग
तर्पणादिकथन, ७३ सूर्यपूजा, ७४ शिवपूजाविधि, ७५
पत्निकापनादिविधि, ७६ शिवपूजायेव-कथ्यपूजाविधि,
७७ कपिलादि पूजनविधि, ७८ पवित्रारोहणने पवित्राग
प्रकार निर्णय, ७९ पवित्रारोहणविधि, ८० दग्धका-
रोहणविधि, ८१ सम्यदोषाविधि, ८२ चन्द्रारदोषा-
विधि, ८३ निर्वाणदोषाके प्रति दोषाधिवाननविधि,
८४ निहतिवकाशोपन, ८५ प्रतिष्ठाकथनागमन,
८६ विद्यालक्षणागमन, ८७ शान्तिकथनागमन,
८८ निर्वाणदोषावमात्र, ८९ एतद्वदोषाविधि,
९० अग्निवेकादिकथन, ९१ नाग

८२ प्रतिष्ठाविशेषकथन, ८३ साधुपूजा, ८४ मिला-
 दित्यामरकथन, ८५ प्रतिष्ठाविशेषकथन, ८६ चण्डिकासन
 विधि, ८७ शिवप्रतिष्ठाकथन, ८८ मोरोमतिष्ठाकथन,
 ८९ सूर्यप्रतिष्ठा, ९० हारप्रतिष्ठा, ९०१ प्रायश्चित्तप्रतिष्ठा,
 ९०२ ध्वजगोष्ठप्रतिष्ठा, ९०३ जीर्णोद्धारप्रतिष्ठा, ९०४
 साधनाय प्रायश्चित्तकथन, ९०५ गृहकादि वायुकथन, ९०६
 नगरादि वायुकथन, ९०७ व्याघ्रवचनकथन, ९०८
 भुवनेश्वरकथन, ९०९ तोयमाहात्म्यकथन, ९१० गङ्गा-
 माहात्म्य, ९११ प्रयागमाहात्म्य, ९१२ काशीमाहात्म्य,
 ९१३ नर्मदादिमाहात्म्य, ९१४ गङ्गासागरात्म्य, ९१५ गङ्गा-
 सागरात्म्य विविध विषय, ९१६ गङ्गासागरात्म्य कथाको
 समाप्ति, ९१७ व्याघ्रकथन, ९१८ जम्बूद्वीपकथन, ९१९
 क्षीराक्षरकथन, ९२० ब्रह्माण्डकथन, ९२१ ज्योतिः-
 माहात्म्यार विविधविषयादि, ९२२ आत्मकथन, ९२३
 विविधयोगकथन, ९२४ युद्धकथन, ९२५ युद्ध-
 कथनार्थं नानाचक्रकथन, ९२६ लक्ष्मणकथन, ९२७
 वल्लभनिर्देश, ९२८ कोटिकथन, ९२९ चण्डिकाकथन,
 ९३० मण्डलानुसङ्गकथन, ९३१ घातकथादि, ९३२ मेवा
 चक्रादि, ९३३ नागाकथन, ९३४ तेलोत्थविषय
 विद्या, ९३५ संध्यामित्रविद्या, ९३६ गच्छचक्र, ९३७
 महासायाविद्या, ९३८ पट्टकर्मकथन, ९३९ घटिष्व-
 स्तरकथन, ९४० वज्रादियोगकथन, ९४१ घटलिङ्ग-
 पदकथन, ९४२ मन्त्रोपपादिकथन, ९४३ कुजिकाक्षम-
 पूजा, ९४४ कुजिकापूजा, ९४५ मोहान्वासादिकथन, ९४६
 घटाष्टकदेवीकथन, ९४७ त्वरितापूजादि, ९४८ संध्याम-
 विज्ञापूजा, ९४९ अयुक्तकथनो-होमकथन, ९५० मन्त्र-
 स्तरकथन, ९५१ वर्णाश्रमस्तरधर्मकथन, ९५२ गृहह-
 स्तकथन, ९५३ ब्रह्मवर्धकर्म, ९५४ विवाहप्रकरण,
 ९५५ आचारारम्भाय, ९५६ द्रव्यशुद्धि, ९५७ आचार्यगोच-
 कथन, ९५८ स्वाभाव्यगोचकथन, ९५९ औचकथन, ९६०
 आनन्दधर्म, ९६१ यतिधर्म, ९६२ धर्मशास्त्र, ९६३
 आहविधि, ९६४ पदपञ्चविधि, ९६५ नानाधर्मकथन,
 ९६६ नृपधर्मोक्तिकथन, ९६७ विविधयज्ञकथन, ९६८
 महापातकादिधर्म, ९६९ महापातकादि प्रायश्चित्त-
 कथन, ९७० संध्यादि प्रायश्चित्तकथन, ९७१ रश्मि-
 स्वादि प्रायश्चित्तकथन, ९७२ पापनाशस्तोत्र, ९७३

जननादिनिरूपण, प्रायश्चित्त विशेषविधि, ९७४ पूजा-
 लोपादि प्रायश्चित्तविशेषका उपदेश, ९७५ व्रतविभाषा,
 ९७६ प्रतिपदव्रत, ९७७ द्वितीयाव्रत, ९७८ त्रयोवि-
 श्व, ९७९ चतुर्विधव्रत, ९८० पञ्चमोव्रतकथन, ९८१
 षष्ठोव्रतकथन, ९८२ सप्तमोव्रतकथन, ९८३ जयन्ताष्टमा-
 व्रत, ९८४ षट्मासव्रतकथन, ९८५ नवमोव्रतकथन, ९८६
 दशमोव्रतकथन, ९८७ एकदशीव्रतकथन, ९८८ द्वादशी-
 व्रतकथन, ९८९ अश्विनाश्रमोव्रतकथन, ९९० पञ्चम-
 द्वादशीव्रतकथन, ९९१ त्रयोदशीव्रतकथन, ९९२ चतुर्दशी-
 व्रतकथन, ९९३ शिवरात्रिव्रत, ९९४ पूर्णिमाव्रतकथन,
 ९९५ वाराहव्रतकथन, ९९६ नक्षत्रव्रतकथन, ९९७ दिवस-
 व्रतकथन, ९९८ मासव्रतकथन, ९९९ वृत्तव्रतकथन,
 १०० दशपदानव्रतकथन, १०१ नवम्य व्रत, १०२ पुष्या
 ध्याय, १०३ भरतृका व्रतकथन, १०४ म सप्तशतव्रत,
 १०५ शोभनव्रतकथन, १०६ चण्डिकाव्रतदान, १०७ कौमुद-
 व्रत, १०८ सामान्यव्रतदानकथन, १०९ दानधर्म शो-
 दानविविधभाषाकथन, ११० महादानकथन, १११ गोदाना-
 दिविशेषधर्मकथन, ११२ भिक्षुदानकथन, ११३ पुत्रियो-
 दानकथन, ११४ मन्त्रमहिमा, ११५ मन्त्राविधि, ११६
 गायत्र्यादि, ११७ गायत्रीनिर्वाण, ११८ राजाभिषेकप्रकार,
 ११९ राज्याभिषेकका मन्त्रकथन, १२० सहायधर्मव्यति,
 १२१ राजाके समोपपन्नोविशेषकथन, १२२ राजधर्म,
 १२३ ग्राम्यादि रक्षाका उपायविधान, १२४ क्षीरसा,
 कामगान्धकथन, १२५ राजकर्मविधि निर्देश, १२६ सामा-
 य्युपायनिर्देश, १२७ दण्डप्रकरण, १२८ पुत्रयात्रा, १२९
 ब्रह्माध्याय, १३० साहस्यध्याय, १३१ शकुनविमर्शकथन,
 १३२ राजाके समोपपन्नोविशेषकथन, १३३ यात्रामण्डलचिन्तादि,
 १३४ उपायपद्धत्युपकथन, १३५ राजनित्यकर्मनिर्देश,
 १३६ संध्यामोक्षा, १३७ लक्ष्मीका स्तन, १३८ राम-
 कवित मोति, १३९ राजधर्मकथन, १४० लक्ष्मणकथन,
 १४१ प्रमाणादि शक्तिनिर्देश, १४२ रामकवित मोतिगप,
 १४३ श्रीपुरुषसत्त्वविचारमं पुष्टपत्रकथनिर्देश, १४४
 श्रीलक्ष्मणकथन, १४५ महादिवसकथन, १४६ रत्न-
 सत्त्वकथन, १४७ वालुनकथन, १४८ पुष्यादिको
 महिमा, १४९ धनुर्दशकथा, १५० पञ्चगव्यविधान,
 १५१ वाहनशौचप्रकार, १५२ गतिविविधादिकथन,

मन्त्रिपते पोषककथन, ३३-३४ भाद्रपद चौर चाग्रिम-
पद्मोमे नागपूजाविधान, ३५ कार्ति-कपञ्चराटि स्तम्भ-
पूजाविधि, ३६-४१ मविपार ब्राह्मणका दण्डविषय-
कथा, ४२ भाद्रपद पञ्चोमे खानटागाटिप्रगंवा, कार्ति-
कपूजामाहात्म्य, ४३ शाकम्भसमीपतविधि, ४४ वासु-
देवशास्त्रसंवादमें सूर्यमाहात्म्य, ४५ सूर्यार्चनविधि, ४६
ब्रह्मपाञ्चवक्त्रसंवादमें सूर्यका परमात्मस्वरूपकथन,
४७ समेकके चारों चौर सूर्यका परिभ्रमण, दो दो
मास करके सूर्यरथका गन्धर्वयथादि शीतमें पञ्चस्थान, ४८
सूर्यके चन्द्रमण्डलमें पद्मनोत्पत्ति कारणत्व चौर पोषधि
प्रभृतिका हेतुत्व शीतमें, उदयास्तमध्याह्न पंचरात्रादि
समयमें तथ्यमयीपुण्यादिमें सूर्यरथका पञ्चस्थानकथन,
४९ ब्रह्मपाञ्चवक्त्रसंवादमें सूर्यमाहात्म्यकोत्तंन,
५० सूर्यको रथयात्राविधि, ५१-५२ मयूररथयात्राकात्त-
कोत्तंन, मयूरच चौर गणपत्यादिको एक एक नैवेद्य-
दानविधि, ५३ रथगोभाकर द्रव्यकथन, सूत्रण द्वारा रथ-
निर्माणकथन, ५४ रथमसमीपतविधि, ५५ ब्रह्ममण्डपि-
संवादमें सूर्याराधन चौर तत्कृतकोत्तंन, ५६ ब्रह्म-
हृदयापापघ्नके लिये तथा क्रियायोगानुष्ठानके लिये
दण्डिनके प्रति तपःप्रीत सूर्यका प्रादेश, ५८-५९ ब्रह्मके
समीप दण्डोका क्रियायोगश्रवण, ६०-६८ गण्डविजसंवाद
में सूर्यको रथयात्रा चौर पूजाविधि, ६९ शास्त्रका कुण्ड-
रोगविधायण, ७०-७१ जल्यनारदसंवादमें शास्त्रकी कुण्ड-
सुक्तिका उपायनिर्धारण, ७२ जल्यके प्रादेशमें शास्त्रका
हारकामगमन चौर नारदके समीप कुण्डरोगगान्तिका
उपाय प्रपञ्चावधारण, ७३ कुण्डरोगगान्तिके लिये सूर्यो-
पासनात्मक उपायकथन, ७४ नारदशास्त्रसंवादमें सूर्य-
माहात्म्यकोत्तंन, सूर्यका जन्मकर्मविवरण, सूर्यके
पुत्रोंका जन्मविवरण, ७६ नारदशास्त्रसंवादमें सूर्य-
पूजाविधि, द्रव्यविषयमें पूजामाहात्म्य, ७७ समयविशेष-
में जलाविजया प्रादि संज्ञाकथन, विजयान्तकथन, सूर्यो-
त्तंनमें विमोपकलकोत्तंन, ७८ प्रादिशोपासनमें नन्दादि
हृदयधारकथन, नन्दादिपिमें सूर्यपूजाको विमोपविधि,
७९ भद्रांमें पूजाविधि चौर फल, ८० शोभ्यवारसकथन
चौर पूजाफलकोत्तंन, ८१ कामदलकथनकथन चौर पूजा-
फल, ८२ पुनदलकथन चौर पूजाफल, ८३ त्रयसकथन चौर

पूजाफल, ८४ त्रयसकथन चौर पूजाफल, ८५-८८ यथा-
क्रम विजय प्रादिता-रोगहर-महाष्टोतबारसकथन चौर
पूजाफल, ८९-९० देवकामभेदे वै कर्मोत्पत्तान चौर द्रव्य
विशेषोपहारमें मासंष्टपूजाको फलश्रुति, ९१-९६ जघा,
जयन्ती, चपराजिता, महाजया, गन्दा, भद्रादिककथन
चौर उन तिथियोंमें सूर्यार्चनका विमोपकलकथन, ९७
तिथिनक्षत्र चौर देवताकथन, खल तिथिनक्षत्रमें उन सम
देवताओंका पूजाविधिकथन, ९८ सूर्यको पूजा करनेमें
फलश्रुति चौर नहीं करनेमें दोषकथन, ९९ कामदसप्तमी-
मतकथा, १०० पापहरसप्तमीमतविधि, १०१ सूर्यपूजामें
गणधियसप्तमोक्तकथा, १०२ मासंष्टसप्तमोक्तकथा, १०३
नतनप्तमी, १०४ पञ्चमसप्तमोक्त, १०५ भासुफलकोत्तंन,
पदमसप्तमी, १०६ त्रितयसप्तमोक्त, १०७ सूर्यप्रतिष्ठा,
१०८ सूर्याराधनामें कोमल्याको स्नानादि गमनरूप फल
प्राप्ति, सूर्यपूजामें देवपुण्यादिकारण, १०९-११० राजा
सत्ताजित् चौर सनको पत्नीके पूर्वजन्मकृत सुगृह
सम्पत्तिनादि कर्मफलमें राजा चौर रातपत्नीत्वप्राप्तिको
कथा, परावसुके सुखमें अत हो कर राजा सत्ताजित्का
फिरमें सूर्यार्चनमें मनन चौर परावसुके सूर्यार्चनविधि-
श्रवण, १११ भद्रोपाख्यान, ११२ सूर्यगृहमें दोषदान-
माहात्म्य, ११३ सूर्यपूजाके फलश्रुति, ११४ प्रादितर-
स्तनकथन, ११५ सूर्यका तेजोहरण-विवरण, तेजसे
विष्णुसक्तविनिर्माणकथन, मेघगृहमें रक्षादि देवताओंका
वासस्थाननिर्माण, ११६ सूर्योपासनामें शास्त्रको कुण्ड-
रोगगान्ति, ११७ सूर्यस्तनकथन, ११८ चन्द्रमागान्तिमें
खानाशौगत शास्त्रका उस नदोषे सूर्य प्रतिमाप्राविधिव-
रण, ११९ नारदके सुखमें शास्त्रका सूर्यादि देवताओंके
गृहनिर्माणविधिश्रवण, १२० देवप्रतिमाकरणमें सुव-
र्णादि उन्नविध वसुनिर्देश, प्रतिमायोगमें वृत्तनिरूपण,
वृत्तज्ज्ञेदनविधिकथन, १२१ सूर्यप्रतिमानिर्माणमें चक्र-
प्रतरादि परिमाणकथन, तत् प्रतिमाका शुभाशुभलक्ष-
णादिकथन, १२२ सूर्यके पश्चिमाष्टहनिर्माणको विधि,
सूर्यके शरीरमें मयदेवका पश्चिष्ठानकोत्तंन, १२३
सूर्यप्रतिमाका प्रतिष्ठाक्रमनिरूपण, मण्डलविधि-
कथन, १२४-१२६ सूर्यप्रतिमा-प्रतिष्ठाविधि, १२७
ध्वजारोपणविधि, १२८ प्रतिष्ठित सूर्यके परिचर्या

पक्षिहारत्वविषयम्, तत्प्रसङ्गम् मग, भोजक, यन्नि
 पोर रविपुत्रादिका उत्पत्तिविवरण, मगभोजकसंशय-
 गणका निवासस्थानकथन, १२८ पञ्चदशप्रश्न वस्तु-
 विशेषका उत्पत्तिकथन, धारणम् फलकीर्तन, १३०
 भोजकगणका ज्ञानोक्त्यं कोत्तन, १३१-१३३ भोजकगण-
 का महत्त्वकोत्तन, पादित्यमाहात्म्यवर्णनम् ।

२ भविष्य ।

१ पुराणोपक्रममे व्यासकृपिगण्यसंवाद, राजा यज-
 न्नीदृको धर्मशास्त्रकथनार्थं प्रव्ययित व्यासप्रिष्यसंवाद,
 भविष्यपुराण प्रस्ताव, ब्राह्म-ऐन्द्र-धाम्य-रोद्र-वायव्य
 द्वाह्यसावित्र-वैश्वदेवै पटविधयाऋक्षकथन,
 महापुराणका नामकीर्तन, भविष्यपुराणका १० वज्रार
 श्लोकसंख्याकथन, २ महापुराण-लक्षण, चतुर्दशविद्या-
 लक्षण, षष्टाश्रयविद्याकथन, सृष्टिकथनप्रसङ्गम् ब्रह्माका
 जगमादिकथनप्रसङ्गकामे प्रथम जलसृष्टिकथन, कालसंख्या
 निरूपण, ब्राह्मणके ४८ प्रकार संस्कारोका निर्णय, क्षमा-
 गोचादिलक्षण, १-४ ज्ञातकर्मादिनिरूपण, ब्राह्मणचरित्रिका
 नामलक्षण, वेदाध्ययनके बाद क्षतवमावर्तनका विवाह-
 विधान, स्त्रीलक्षण, पर्वदीनका विवाहादि विद्वत्प्रमाणकथन,
 सप्तोवाज्जैनको प्रावश्यकता, भार्यादोनका सब कामेनि
 पयोग्यताकथन, असद्व्य विवाहसम्बन्धनिषेध, ७-११
 वास्तुनिर्माणयोग्य दिशादिनिरूपण, स्त्री-रक्षोपायवर्णन,
 स्त्रियोका वृत्तिनिरूपण, देवर पोर पतिके मितके साथ
 लनका विविक्तदेवावस्थान पोर परिहासादि वज-
 नीयता-कथन, लनका सर्वज्ञ ज्ञातव्यनिषेध, गाह-
 ह्यधर्मनिरूपण, भृत्योको वेतनदानव्यवस्था, चापी-
 कर्तव्यनिरूपण, दुर्भंगाके लक्षणादि, क्षामिदोयमे
 स्त्रीका दुर्भगत्वकथन, पायमधर्मनिर्देश, १४-२०
 प्रतिपदादि तिथिविनयम्, विधात्युजाका कर्तव्यता-
 विधान, कार्तिकपोषमागेनि ब्रह्माको रथयात्राविधि,
 कार्तिको समावस्थामे टीपशानविधि, ययातिदुहित्ता
 सुकन्याके साथ अवनता विवाह, अग्निनेकुमारको
 भार्यानामे अवनके साथ लनका जनप्रवेश, यावत्-
 दितोयामे पशुमृगयनप्रवृत्तिविधि, बंशान्न ततोयामे वीर-
 यतायात्रत, गन्ध पोर कार्तिकेयके विरोधप्रसङ्गमे
 भृगुद्वर्गमे का पुरुषलक्षणाज्ञानमात्रनिषेध तत्काल-

कोत्तन, विनायकका एकदशप्राप्तिवर्णन, २१-२१
 गवेगन्ता विप्लवाज्जल प्राप्तिवर्णन, दुःस्वप्नदग्गनाति-
 कथा, सामुद्रिकगोष्ठीपत्तिवर्णन, सामुद्रिकमे स्त्री पोर
 पुरुष-लक्षणकथन, श्वेताकंभूमे गयेगप्रतिभुक्ति-
 निर्माणपूर्वक पूजाविधानादिकथन, श्वेतारक्षोरनिमित्त
 गयेगपूजाविधान, भाद्रमासमे शिवाचतुर्थीव्रतविधान,
 माघमासमे शास्त्राचतुर्थीव्रतविधान, चत्वारश्चत्वार्यष्ट
 चतुर्थीव्रतविधि, २२-२३ नागपञ्चमीविधान, कटुका
 अभिगाप सप्तभय-निवारणार्थं भाद्रपदमीमे नागपूजा-
 विधान, क्वैष्ठ वा चापादमे गगिनिर्घोका गर्भधान,
 चार मान गर्भधारण पोर कार्ति जमासमे २४० करके
 पट्टप्रमनकथन, प्रभुति कर्तक प्रभुनसर्गभावश्चा
 भयणादिभागनिरूपण, लनका १२० वर्ष परमायुक्तयन,
 दन्ताहं दे पोर कश्चुक्त्यागादि कालनिरूपण, मन्थि-
 व्यापनसंख्याकथन, प्रक्षालजान मय का निर्माण-
 कथन, दिग्विज पोर हानि-गद्गलत्वकथन, वाग्दशका
 निषादहत्वकथन पोर तत्तत्साधि निरूपण, २५-३६
 दशमे विषागमप्रकारकथन, सर्वदेग्नकापनिरूपण,
 दृष्टस्थानलक्षण, कासदृष्टलक्षण, विषवेगनिरूपण, त्वग्-
 गतत्व हेतु विषका पोषकत्वनिरूपण, रक्षादिगत विष-
 लक्षण, तदावस्थाका पोषककथन, मृतमन्त्रोक्तो पोषक-
 कथन, ३७-४० स्त्री-पुरुष मनुष्यकर्मपदं गितगणका
 लक्षण, ब्राह्मण चरित्रादि जातीय सर्वदेग्नितगणका
 लक्षण, सर्वगणका वागव्यानादिभेदकथन, कर्णिकोका
 ४४ प्रकारकथन, सर्वभयनिवारणार्थं दारके चमय-
 पाशमे गोमयरेषादानकर्त्तव्यताकथन, भाद्रपद-म-
 पक्षमीमे नागपूजाविधान, कार्तिकमासमे पक्षोक्ष-
 विधान, ब्राह्मणत्वज्ञानिनिरूपण पोर महेष्टकथन,
 जातिभेद कारणादिकथन, दशविध भंस्तारयुक्त ब्राह्म-
 णत्वकथन, ४१-४६ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य पादिका
 साधारण प्रवृत्तिकथन पोर लान्यनिरूपण, मोक्षादिप्रत्यक्ष
 श्रद्धा ब्राह्मणकी पक्षेसा पाथिरकथन, भाद्रपद-म-
 पक्षमे पक्षोक्षविधि, पान्थपदको दायापदीको बहु-
 वादपदमे लनर कुक्षयने लपण्या, ह्यायाके गर्भमे मनि
 पोर लपतका उत्पत्तिकथन, वसुना पोष लपतेके पर-
 प्पर भाषये मदीभाषाति, ह्यायाके भाषये यमको प्रादि-

गन्विषयं शोधयन्, ३३-३४ भाद्रपद चौर शस्त्रि-
पक्षमेने नामपूजाविधान, ३५ कार्तिकपक्षगदि स्तम्भ-
पूजाविधि, ३६-४१ भविष्य शास्त्रको दशविषयस्तार-
कथा, ४२ भाद्रपद पक्षेने खानडाभादिप्रमंभा, कार्ति-
क्यपूजामाहात्म्य, ४३ शाकम्भमोक्षतन्त्रि, ४४ वासु-
देवशास्त्रसंवादमें सूर्यमाहात्म्य, ४५ सूर्यार्चनविधि, ४६
ब्रह्मपञ्चवक्त्रसंवादमें सूर्यका परमात्मस्वरूपकथन,
४७ सुमेरुके चारों ओर सूर्यका परिभ्रमण, दो दो
मास करके सूर्यरथका गन्धर्वयन्त्रादिनौकमें प्रवस्थान, ४८
सूर्यके चन्द्रमण्डलमें प्रत्योत्पत्ति कारणत्व और शोध-
प्रश्रुतिका हेतुत्व शोचने, उदयास्तमय्याङ्ग प्रहरात्रादि
समयमें समयमनौपुर्वादिमें सूर्यरथका प्रवस्थानकथन,
४९ ब्रह्मा-याज्ञवल्करसंवादमें सूर्यमाहात्म्यशोचने,
५० सूर्यको रथयात्राविधि, ५१-५२ सूर्यरथयात्राकात-
कोत्तन, नवपक्ष और गणपदयादिको एक एक नवेव-
दानविधि, ५३ रथशोभाकर द्रव्यकथन, सुवर्ण द्वारा रथ-
निर्माणकथन, ५४ रथमसमोक्षतन्त्रि, ५५ ब्रह्ममहर्षि-
संवादमें सूर्याराधन और तत्फलकोत्तन, ५६ ब्रह्म-
हृदयापल्लवके लिये तथा क्रियायोगानुष्ठानके लिये
दण्डनके प्रति तपःप्रीत सूर्यका आदेश, ५८-५९ ब्रह्माके
समोप दण्डोका क्रियायोगश्रवण, ६०-६८ शङ्खजिज्ञासा
में सूर्यको रथयात्रा और पूजाविधि, ६९ शास्त्रका कुष्ठ-
रोगविवरण, ७०-७१ ज्ञानारदसंवादमें शास्त्रको कुष्ठ-
सुक्तिका उपायनिर्धारण, ७२ ज्ञानके आदेशसे शास्त्रका
हारकागमन और नारदके समोप कुष्ठरोगशान्तिका
उपाय प्रपञ्चावधारण, ७३ कुष्ठरोगशान्तिके लिये सूर्यो-
पासनात्मक उपायकथन, ७४ नारदशास्त्रसंवादमें सूर्य-
माहात्म्यकोत्तन, सूर्यका जन्मक्रमविवरण, सूर्यके
पुत्रीका जन्मविवरण, ७५ नारदशास्त्रसंवादमें सूर्य-
पूजाविधि, द्रव्यविशेषमें पूजामाहात्म्य, ७७ समयविशेष-
में जयाविजया आदि संश्लोकथन, विजयालक्ष्ण, सूर्यो-
त्थनमें विशेषफलकोत्तन, ७८ आदिशोपासनमें नन्दादि
द्वादशवारकथन, नन्दादिभिमें सूर्यपूजाको विशेषविधि,
७९ भद्रामें पूजाविधि और फल, ८० सौम्यधारलक्ष्ण
और पूजाफलकोत्तन, ८१ कामदलक्ष्णकथन और पूजा-
फल, ८२ पुण्डरीकलक्ष्ण और पूजाफल, ८३ जयलक्ष्ण और

पूजाफल, ८४ जयलक्ष्ण और पूजाफल, ८५-८८ यथा-
क्रम विजय आदिता-रोगघ्न-महाखेतवारलक्ष्ण और
पूजाफल, ८९-९० देवकालमें देवे कर्मानुष्ठान और द्रव्य
विशेषोपहारमें सात्त्विकपूजाको फलश्रुति, ९१-९६ जया,
जयन्ती, चपराजिता, महाजया, नन्दा, भद्रादिनक्षत्र
और चन तिथिमें सूर्यार्चनका विशेषफलकथन, ९७
निधिनक्षत्र और देवताकथन, स्वस्त्यतिथिनक्षत्रमें चन सप्त
देवताओंका पूजाविधिकथन, ९८ सूर्यको पूजा करनेमें
फलश्रुति और महर्षि करनेमें दोषकथन, ९९ कामदसप्तमी-
व्रतकथा, १०० पाण्डुरसप्तमीव्रतविधि, १०१ सूर्यपूजामें
गणधिव्रतसमोक्षकथा, १०२ सात्त्विकसप्तमीव्रतकथा, १०३
नवसप्तमी, १०४ चण्डिकासप्तमीव्रत, १०५ भातुफलकोत्तन,
पदसप्तमीव्रत, १०६ त्रितयसप्तमीव्रत, १०७ सूर्यप्रतिष्ठा,
१०८ सूर्याराधनाके कोमल्याको खगोदि गमनरूप फल
प्राप्ति, सूर्यपूजामें देवपुष्पादिनिरूपण, १०९-११० राजा
सत्ताजित् और चनको पत्नीके पूर्वजन्मकृत सूर्यरथ
सम्प्राप्तनादि कर्मफलसे राजा और राजपत्नीका प्राप्तिको
कथा, परावसुके सुखमें यत्न हो कर राजा सत्ताजित्का
किरसे सूर्यार्चनमें मनन और परावसुके सूर्यार्चनविधि-
श्रवण, १११ भद्रोपाख्यान, ११२ सूर्यरथमें दोषदान-
माहात्म्य, ११३ सूर्यपूजामें फलश्रुति, ११४ आदिता-
स्तवकथन, ११५, सूर्यका तेजोहरण-विवरण, तेजसे
विष्णुचक्रविनिर्माणकथन, सैरुहर्षमें इन्द्रादि देवताओंका
वासस्थाननिर्माण, ११६ सूर्योपासनाके शास्त्रको कुष्ठ-
रोगशान्ति, ११७ सूर्यस्तवकथन, ११८ चन्द्रमागाननामें
ज्ञानार्थागत शास्त्रका उस नदोसे सूर्य प्रतिमाप्राप्तिविव-
रण, ११९ नारदके मुखसे शास्त्रका सूर्यादि देवताओंके
रथनिर्माणविधि श्रवण, १२० देवप्रतिमाकरणमें सुव-
र्णादि समविध वस्तुनिर्देश, प्रतिमायोगमें वृत्तनिरूपण,
वृत्तछेदनविधिकथन, १२१ सूर्यप्रतिमानिर्माणमें ब्रह्म-
प्रताह्नादि परिमाणकथन, तत् प्रतिमाका यथाशुभलक्ष-
णादिकथन, १२२ सूर्यके अधिवासरथनिर्माणको विधि,
सूर्यके शरीरमें सर्वदेवका अधिष्ठानकोत्तन, १२३
सूर्यप्रतिमाका प्रतिष्ठासमयनिरूपण, मन्त्रसवि-
कथन, १२४-१२६ सूर्यप्रतिमा-प्रतिष्ठाविधि, १२७
ध्वजारोपणविधि, १२८ प्रतिष्ठित सूर्यके परिचर्या

हिं वक्तव्यमिति, विष्णुकर्माकर्णिकं सूर्याङ्गच्छेदनादि द्वारा प्रकाश रूपमकटन, करधोरपुष्प धोर रक्तचन्दनप्रलेप-
दानमिदं देवताकातर सूर्यका प्रकृतित्वा होना धोर तत्-
पुष्पादिका सूर्यप्रियत्वकथन, अश्वरूपधारी रविके वट्टवा
गर्भमिदं चित्रभोकुमारको उत्पत्ति, आश्वसप्तमीव्रतविधि,
४०-५० त्रीक्षणशाम्बसंवादेन सूर्यमाहात्म्यकोत्तन, सवि-
स्तार सूर्यपूजाविधि, रथसप्तमीव्रतविधान, यदचक्रका
सूर्यरथत्वनिरूपण, सूर्यकिरणसे चाकर्णित जलसे मेघको
उत्पत्ति, उदयास्तसमयादिनिरूपण, जगत्का आदित्य-
मूलकत्वकथन, सूर्यरथयात्राविधान, यदशान्तिविधि,
ब्रह्मशिवसूर्योदिका प्रियवस्तुनिरूपण, ५८-६६ ब्रह्मवृत्ति-
गणसंवादमे सूर्योपासनाका भोजसाधनत्वकथन,
डिण्डिमसूर्यसंवादमे क्रियायोगकथन, द्वादशमास-
व्रतविधि, ब्रह्मडिण्डिमसंवादमे रथसप्तमीव्रतविधि,
गौतमसप्तपरिधानमे ब्राह्मणका दोषकोत्तन, शङ्खभोज-
कुमारसंवाद, शम्भुव्रतसूर्योपासगविवरण, सूर्यका
ऐश्वर्यवर्णन, ६७-७५ उपचारविधिमे सूर्यपूजाका
फलविशेषकथन, स्वप्रदर्शिका शुभाशुभनिर्णय, आदित्य-
सेपव्रतविधान, आदित्यादिस्तोत्र, शम्भुके प्रति दूर्वापा-
का अभिगापवृत्तान्ता, शम्भुके शोन्ध्य पर मुक्त किंसी
किंसी क्षणमहिषोका क्षणदत्तमापविवरण, शम्भुको
कुष्ठरोगमिति, शम्भुव्रत सूर्यप्रतिमाप्रतिष्ठा, नारदका
सूर्यलोकगमन, ७६-८५ सूर्यका जन्मादिष्ठान्तकथन,
पुरुषनामनिर्घन सूर्यमण्डलका विस्तारकथन, सूर्य-
का तेजोमय गौलीकत्वकथन, सूर्यकिरणजालसे समुद्र-
तटगमादिसे जलाकर्षण, रश्मिका नामभेदकथन,
कार्यभेदनिरूपण, मरीचिहृष्टमिति आदिका लक्ष्मस्तान्ता,
संज्ञाके गर्भसे सूर्यका प्रलोत्पादन, विजयसप्तमीव्रत,
सौम्यसप्तमीव्रत धीर कामदसप्तमीव्रतविधि, परिजयविधि,
जयन्तविधि, जयविधि, ८६-८६ उदयसे अस्त तक आदि-
त्यामिमुखसे स्थितिविधान, आदित्यहृदयपाठविधि,
रहस्यविधि, महाश्वेतावारविधि, सूर्यगृहमे दोष-
दानादिविधि, पुराणपाठविधि, कार्तिकेयव्रह्मसंवादमे
धनपाल नामक वैश्वका सपाख्यान, सूर्यप्रदक्षिण-
माहात्म्य, जयासप्तमीव्रतविधान, [जयन्तीसप्तमीवृत्त-
विधान, चण्डाजितासप्तमीवृत्तविधि, महाविजयासप्तमी-

वृत्तविधान, नन्दाकल्पकथन, ८७-१०० भद्राकल्पकथन,
प्रतिपदादि तिथिका देवताविशेषमे प्रियत्वकथन, सप्त-
दिन सप्त देवताका पूजाफल, नक्षत्रविशेषमे देवता-
विशेषका पूजाफल, सूर्यगृहमाहात्म्यकोत्तन, कामदा-
सप्तमीविधान, पापनाशिनौसप्तमीविधान, भाग्यप्रदहय-
वृत्तविधान, सर्वोपाशिसप्तमीवृत्तविधि, मात्तण्डसप्तमी-
वृत्तविधि, अश्वसप्तमीवृत्तविधि, अनन्तसप्तमीवृत्त-
विधि, विजयसप्तमीवृत्तविधि, १०८-११० सूर्यप्रतिमा-
निर्माणादिककथन, छतादि द्वारा सूर्यप्रतिमास्नपन-
फल, गौतमीकौशल्या संवाद, आदित्यधारमाहात्म्यकथन,
सत्ताजित् नृपतिका सपाख्यान, सपत्नीपगमाहात्म्यकथन,
पुस्तकपाठयववादिफलकोत्तन, दोषदानकथात्रंसङ्गमे
भद्रोपाख्यानकथन, ब्रह्माविष्णुसंवादमे सूर्यमाहात्म्य-
कोत्तन, भाव्यपुराणविवरण, ११८-१२० देवगणव्रत
सूर्यस्तोत्र, देवगणको प्रार्थनासे विश्वकर्मा द्वारा
सूर्यतेजःशान्तन, सूर्यका परिजननादिकोत्तन, प्रवर-
कथन, पृथिवीसे सूर्यका दूरत्वनिरूपण, अन्तरीक्षलोक-
वर्णन, व्योममाहात्म्यवर्णन, सुमेरुस्थानादिकोत्तन,
शम्भुव्रत सूर्योपासन, सूर्यस्तवराजकोत्तन, शम्भुव्रत
सूर्यप्रासादलक्षण, १२८-१३७ सूर्यके सात विभिन्न
प्रकारोंका प्रतिमानिर्माणकथन, टाकपरोक्षादिनिरूपण,
प्रतिमालक्षणकोत्तन, अधिवासविधान, मण्डलविधि,
प्रतिष्ठितमूर्तिका स्नानादिविधान, ध्वजारोपणविधि,
गौरमुखशम्भुसंवादमे ध्वजाङ्गमुनिका सपाख्यान, भोजक-
गणका उत्पत्तिकथन, अभ्यङ्गादिविधान, १३८-१५६
श्रुतविशेषमे देवताधोंका सूर्यरथावस्थाननिरूपण,
सूर्यपुलकगणका निर्मोक्षधारणमे फलाधिक्य, अश्वतो-
त्पत्तिकथन, धूपविधि, वासुदेवक सामने कंचकटिक
भोजकज्ञानस्वरूपवर्णन, माज्वाह माह्वणनिरूपण,
सूर्यका प्रियोपासकलक्षण, सुदर्यनचक्रागमविवरण,
सूर्यमन्ददीक्षाविधान, पुराणतिहास यवणादिविधि,
पाठप्रकारकोत्तन, आदित्यमाहात्म्य यवणविधि ।

विष्णुपर्वके पूर्वभागमे—१५१ षष्ठ्यमोक्षमे प्रिय-
माहात्म्य, १५२ प्रतिष्ठाविधान, १५३ तिष्ठप्रतिष्ठा-
विधान, १५४ महादेवमाहात्म्य, १५५ तिष्ठप्रतिष्ठाविधि,
१५६ तिष्ठलक्षण, १५७ तिष्ठार्चनविधि, १५८-१०१

चित्रप्रतिष्ठासमाप्ति, १०२-१०८ विष्णु चौर मन्त्र-
कुमारसंवाद, १०० षट्काष्टमी, १८१ दाम्पत्यपूजन,
१८२-१८३ विष्णुसन्तकुमारसंवाद, १८४ विष्णुस्तनय,
१८५ शतहस्तोद्य, १८६ महादेवमाहात्म्य, १८७
महादेवको रथयात्रा, १८८ महादेवकथन, १८९
महाप्रत, १९०-१९३ महाप्रतीतिविधि, १९४ पुण्याधाय,
१९५-१९६ महाष्टमी, १९७ जयमयष्टमी, १९८-२०२
गौरीमाहात्म्य, २०३-२०४ गौरीविवाह, २०५-२०६
चित्रवेनस्तनय, २०७-२१० ब्रह्महत्याको प्रायश्चित्त-
विधि, २११-२१३ ब्रह्महत्याप्रायश्चित्त, २१४ सुरापान-
प्रायश्चित्तविधि, २१५ २१६ नवमोक्षार्थं दुर्गामाहात्म्य,
२१७ भगवतोक्तोक्त, २२०-२२१ चण्डिकापूजन, २२२
चण्डिकास्तव, २२३-२२४ दुर्गास्नानकथन, २२५-२३०
दुर्गामाहात्म्य, २३१ दुर्गामाहात्म्यं संप्रवर्णनम्, २३२
भगवतोक्तोक्त, २३३ रथनवमो, २३४ विष्णुस्तनय-
यतीका स्तव, २३५-२३७ महाप्रवर्णनम्, २३८-२४० सर्व-
मङ्गलाचरणविधि, २४१ मन्त्रोद्धार, २४२-२४७ भगवती-
यज्ञ, २४८-२४९ छिद्राध्याय, २५० कथन, २५१-२५२
कोशप्रवर्णन, २५३ कुम्भासुक्तप्रवर्णन, २५४ निम्बप्रवर्णन,
२५५ कुम्भाप्रवर्णन, २५६ सुक्तप्रवर्णन, २५७-२५८ चण्डा-
कर्णप्रवर्णन, २५९ रुद्रधर्मप्रवर्णन, २६० शिवनादप्रवर्णन, २६१
कथासुरप्रवर्णन, २६२ रुद्रकथाप्रवर्णन, २६३ रुद्रप्रवर्णन, २६४
मङ्गलविधि, २६५-२६७ मातृमण्डनविधान, २६८ देवी-
का नामविधान, २६९ रथयात्रा, २७० दुर्गायात्रा
समाप्ति, २७१-२७३ मन्त्रोद्धार, २७४-२७५ पानन्दनवमो-
क्षप्रवर्णन, २७६ नन्दिनीनवमो, २७७ नन्दानवमो, २७८
नन्दाकथन, २७९ नन्दिनोपनिषद्, २८० महाप्रवर्णनो-
क्तप्रवर्णनम्, २८१ प्रतिष्ठातन्त्रं भूमिपरीक्षा, २८२
प्रासादसंस्थापन, २८३ प्रिंतांशकथन, २८४ ब्रह्मल्लोका-
कथन, २८५ प्रतिमानकथन, २८६ प्रतिष्ठा मन्त्रं चधि-
वाहविधि, २८७ नवमोक्षप्रवर्णनम् ।

मध्यमन्त्रके उक्तिभागम्—१ सप्तविंशतिवाटं सपरि-
भागप्रवर्णन, २-३ पातालप्रवर्णन, ४ ज्योतिषक, ५-६
गुरुमाहात्म्यकथन, ७ सुस्तकादि मानसकथन, ८-९
यूपनिषद, १०-१३ प्रतिमानकथन, १८ योद्धोपचार-

विधि, १८ चमिनाम, २० दृष्टागिमात्र, २१ दृष्टानिर्णय,
२२-२४ मण्डनकथन, २५ मण्डनाध्यायकथन ।

मध्यमन्त्रके द्वितीय भागम्—१ मृत्युकथन, २-३
निर्दिष्टकथन, ४ मण्डनकथन, ५ मण्डनकथन, ६ दाम्प-
निर्णय, ७-१० चण्डिकाप्रवर्णन, ११-१२ मन्त्रप्रतिष्ठा-
विधि, १३ सुद्वारासंनिष्ठाविधि, १४-१५ चण्डिका-
प्रतिष्ठाविधि, १६ षट्प्रतिष्ठाविधि ।

तृतीयभागम्—१-५ सुद्वारासंनिष्ठाविधि, ६-१०
सुद्वारासंनिष्ठाविधि, ११-१२ यज्ञोक्तविधि, १३-१४ प्रतिष्ठा-
विधि, १५-१६ महाप्रवर्णनसंनिष्ठाविधि, १७ महा-
प्रवर्णनसंनिष्ठाविधि, १८ पवित्रविधान, १९ धर्मा-
शोधन, २० कुम्भसंनिष्ठाविधि, २१-२२ प्रासादसंनिष्ठा-
विधि ।

चतुर्थभागम्—१ दानविधि, २-३ धनदानविधि,
८-१० प्रायश्चित्तविधि, ११ सुरापानशोधनम् ।

३ भविष्य ।

प्रथमभागम्—१ मृत्युके बाद वरविधि किं वाटं
सत्तरविभाग प्रतिष्ठादिकथन, गार्हपत्याश्रमप्रवर्णन, २
धर्ममाहात्म्यकथन, ब्रह्मसिद्धिप्रवर्णनं द्विविध कर्म-
निरूपण, निष्ठितप्रवर्णन, समदमादि सोमप्रवर्णन
शुक्ला निरूपण, ब्राह्मणाका सुप्रवर्णन, रुद्रने प्रवर्ण-
सहितप्रवर्णनकथन, विमेषकथने मन्त्रप्रवर्णनका मत-
प्रतिपादन, रुद्रने ब्रह्मा चौर विष्णुका जयप्रवर्णन,
गुरुमन्त्रकारकादिनिरूपण, ३-४ मङ्गल चौर तपो-
लोकादिना सन्त्यानादिनिरूपण, ५ ६ सन्त्याना
चधिशिवकथन, ब्रह्मलोकादिप्रवर्णन, रुद्रलोकादिप्रवर्णन,
सप्तशतलक्षण, जम्बू चौर ब्रह्मप्रवर्णन मन्त्रोपका
प्रवर्णन, जम्बूरोपका सन्त्यानादिप्रवर्णन, ७ सन्त्याना
प्रवर्णन चौर पर्वतादिना सन्त्यानादिप्रवर्णन, ज्योतिषकनिरु-
पण, ८ चौर चन्द्रका सोमप्रवर्णननिरूपण, ९ सन्त्याना
लोकादिप्रवर्णन, १० ब्राह्मप्रवर्णन, ब्राह्मचर्य सुवर्णने
देवविद्वत्कोकप्रवर्णनका भोगकाप्रवर्णन, ब्राह्मचर्य
देव कर चमिनादन नर्तन करनेने प्रवर्णनकथन,
मनुष्यके मध्य तान प्रवर्णनका चमन कथनकथन, द्विविध
विषमनकथन, चतुर्विध पदलक्षण, विविध पादलक्षण,

त्रिविध पापिष्ठमन्त्रण, सप्तविध नटलक्षण, पञ्चविध
लक्षण, द्विविध रुद्रलक्षण, षट्त्रिविध दुष्टलक्षण, द्विविध
पुष्टलक्षण, षट्त्रिविध कृष्टलक्षण, द्विविध भानन्दलक्षण,
द्विविध करणलक्षण, सप्तलक्षण, त्रिदुष्टलक्षण, चण्ड-
चलमन्त्रीमहादिका लक्षण, दण्ड-पण्ड-खल-नौच-
वाचाल-कदमं चाटिका लक्षण और इनका भवान्तर-
भेदकथन, १-७ शुद्धनिरूपण, दादमी और भमावस्था
तियिमें दानविधान, चपरपत्तमें तपश्चरित्रविधि, पिष्ट-
क्षौद्रकथन, ज्येष्ठ भ्राताका पिष्टतुल्यकथन,
पुराणयवफलकथन, उनका दानकथन, धर्मशास्त्र-
भागमतम्बजामल-डामर-पारायण प्रभृतिका चविष्टाद-
देवताकथन, मधुकोरयवचौराटिका परिभाषाकथन,
रुद्रके पहले वासुदेवके गुणकोत्तनमें फलकथन,
दुर्गाके पहले वासुदेवके गुणकोत्तनमें दोषकथन,
पुस्तकादि हरणका दोषकोत्तन, पुराणादि लिखनेका
नियमादिकथन, पद्माक्षणके मिश्रित ग्रन्थका निष्फल-
कथन, निपिकरणमें दिष्टनिरूपण और निपिष्ट दिन-
कथन, निपिकरणवैतनग्रहणादिमें प्रत्यवायकथन, पुस्तक
परिमाणादिकथन, ताक्षित-चगुरु-भूज-वत्सादिविधान,
पुराणपाठमें स्मृतादिविधिकोत्तन, शूद्रका धर्मशास्त्र-
कथननिषेध, पुराणवाचककी वरासव्याधि, ८-११ जन-
ध्यायकालनिरूपण, ह्यद्रलक्षण, अध्यापना प्रकारकथन,
क्षौद्रोक्त्याद्यादि परित्यागका, पावश्यकताकथन,
कालिमें निगमज्योतिषवेद प्रभृतिके संघमें दोषकथन,
भन्तर्वेदि-वर्षवेदि सामनिरूपण, देवगृह निर्माणादि-
का विधिकथन, पुष्करिणी और दीर्घकादि परिमाण-
कथन, प्रासाद पुष्करिणी चादिकी प्रतिष्ठा नष्ट करनेका
दोषकथन, पतित देवगृहादि संस्तरणका फलकथन,
जलाग्न्यदानादि साहाय्यकोत्तन, भ्रिवनिष्ठवासनादि
निषेधकथन, पुष्करिणीकरणयोग्यस्थाननिरूपण, जला-
ग्रयुकी प्रतिष्ठाका यूप्यादिनिरूपण, भूमिगोधनादिविधि-
कोत्तन, सुदमादिभ्रमोहिकथन, जलाग्न्य और गृहादि-
के चारभमें वास्तुबलिदानादिकथन, त्वरोपणादि विधि-
कथन, नदीके किनारे स्नानाभ्युपेय और चरके दक्षिण और
तुलसीहस्तोपणदोषकोत्तन, चण्डल और चण्डोक्तव-
रोपणफलकथन, कृष्णक्षेत्रका दोषकोत्तन, उद्विज-

विद्याकथन, कृष्णाका दोहदादिकथन, ११-२० कृपादि-
प्रतिष्ठाविधि, प्रतिमा लक्षणकथन, उसके पञ्चप्रत्यङ्गादि-
का परिमाणकथनपूर्वक निर्माणप्रकारकोत्तन, कुण्ड-
निर्माणप्रकारकथन, होमविशेषमें होमसंख्यानिरूपण,
कुण्डसंस्कारविधिकथन, होमविधिकथन, यज्ञिजिज्ञा-
कथन, होमावसानमें पूजाविधान, पोद्गोपचारमन्त्र-
कथन, होमभेदे वस्त्रनामभेदकोत्तन, होमद्रव्यपरि-
माणकथन, क्षिप्रमित्र निवृत्तपत्र द्वारा होमकरणमें दोष-
कथन, २१-२२ प्रतिष्ठाका ह्यदादिनिरूपण, सुकसुवादि-
निर्माणप्रकारकथन, होमसंख्या करनेके लिये गङ्गा-
मृत्तिका-गुटिकादिविधान, उसके धामनादिका निरूपण,
देवताभेदे मण्डलनिर्माणप्रकारकथन, वैदो निर्माण-
प्रकारकथन, मण्डपनिर्माणप्रकारकथन, मण्डपकी
हारादिकरणविधि, पद्मादिनिर्माणप्रकार, क्षौद्रप्राण-
निर्माणप्रकारकोत्तन, प्रासादमें मधूर-हृषभ-सिंहादि-
मूर्त्तिनिर्माणका फलश्रुतिकथन, सर्वतोमद्रमण्डलादि-
निर्माणप्रकारकथन, राजद्रव्यप्रमाणकोत्तन, यज्ञका
स्वर्ण दक्षिणादिपरिमाणकथन, दक्षिणादानका पावश्य-
कताकथन, पुराणपाठका दक्षिणानिरूपण ।

द्वितीयभागमें—१-४ शास्त्रग्रामदानका दक्षिणाकथन,
पूर्वपावपरिमाणादिकथन, कुण्डलादिनिर्माणवैतनादि-
निरूपण, पुष्करिणीप्रभृति खननका परिमाण और वैत-
नादिनिरूपण, वस्त्रनिर्माणादिका वैतनकथन, नरवाह-
नादिका वैतनादिनिरूपण, यागिकलसादिनिरूपण, उसमें
पञ्चपञ्चादिदानका पावश्यकतादिकथन, फलसंख्यापनका
विधिकोत्तन, चन्द्र-सूर्यादिका चतुर्विधपरिमाणलक्षण-
कथन, कर्मविशेषमें मासविशेषका नियम, समसाधमें
प्रतिक्रियाविधानकथन, सविण्डनादिविधिकोत्तन, शूद्रका
उदय और अस्तकांक्ष, युवादिनिरूपण, दिरायादादिनिरूपण,
५-१० पुराणमें देवकार्यकत्तव्यता, मध्याह्नमें एको-
हिष्टादिकत्तव्यता, खर्वदणोदि त्रिविधतिललक्षादि-
कोत्तन, शुभशुक्लतिथिव्यवस्थाकथन, युग्मादितिथि-
व्यवस्थाकथन, तिथिका उपवासव्यवस्थाकथन, मन्त्रवृत्त-
आहविधि, भार्यापुत्ररहितका यज्ञानुष्ठानादिमें मन्त्र-
कारकथन, कात्ति कमासादिमें स्नानदानादिका फलश्रुति-
कथन, भग्न्यभयनप्रतिविधान, आयुष्यपञ्चमोमें मनसा-

पूजा, भाद्रमासमें पठोपूजा और लग्नाटमोवावस्था, दशहराकथन, एकादशिका उपवासकथन, विष्णुष्टकादिनिर्दण, यक्षोद्यानविधि, रत्नोचतुर्दशो, मित्रचतुर्दशो, चैत्रादिपूर्णिमामें स्नानदानादिका फलश्रुतिकथन, ११-१० काश्यप, गौतम, मोह्य, शाण्डिल्यप्रभृति-गोत्रोका प्रवरकीर्तन, वायुयागविधानकथन, मण्डन-निर्माणादिकथन, वायुयागमें कथित समस्त देवताओंका घ्यानादिकथन, उगका पूजाविधिकथन, चण्डदान-विधान, रतहशानिविधिकीर्तन, होमविधानकथन, शक्तिजिज्ञासा ध्यानकथन, देशादिप्रतिष्ठाके पूर्वदिनमें अधिवानविधिकथन, होलपाचावादि वरणविधिकीर्तन, सर्वव्यसादिमें मङ्गलका पावश्यकतानिर्दण, मङ्गल-विधिकथन, प्रतिष्ठादिका मासविशेषचक्रवारादिनिर्दण, मण्डपवेदीप्रभृतिनिर्माणप्रकारकथन, जन्माशय-प्रतिष्ठादि हस्तियाह-कथं व्यक्ताकीर्तन, जन्माशयप्रतिष्ठा-विधानकथन ।

द्वितीय विभागमें—११ चारामादि प्रतिष्ठाविधि-कीर्तन, गोप्रचारविधानकथन, पनायमण्डपदानविधि-कथन, प्रपादानविधिकथन, सुदाशमप्रतिष्ठाविधिकथन, पञ्चदशप्रतिष्ठाविधिकथन, पुत्रकरीणोपनिष्ठाप्रयोग-कथन, वटस्नानविधिकथन, विहवप्रतिष्ठाविधिकथन, शिलादाहमयादि मण्डपप्रतिष्ठाविधि, पुष्पाशमप्रतिष्ठा-विधि, तुलसीप्रतिष्ठाविधिकथन, नेतुप्रतिष्ठाविधिकथन, भूमिदानविधिकथन, नामान्धप्रकारमें पवित्रासनविधि-कथन, दुर्बिसिन्ननिर्दण, उत्तरविभागका अनुक्रम ।

४ मन्विष्योत्तर ।

१ व्यासामन, २ ब्राह्मणोत्पत्ति, ३ वैष्णवशोभाया-कथन, ४ संसारदोषव्यापन, ५ पापोत्पादक कर्मभेद-कथन, ६ श्माशुभकर्मफलनिर्देश, ७ शकटव्रतकथन, ८ तिलकव्रतकथा, ९ कोजिलव्रत, १० वृद्धपौत्रव्रत, ११ नरव्रत, पद्मान्निपाधन, १२ रश्माष्टतोषाव्रतकथा, १३ गोपदष्टतोषाव्रत, १४ हरिकाचाव्रत, १५ क्षितिाष्टतोषा-व्रत, १६ पवित्रोप ण्तोषाव्रत, १७ उमासप्तोषाव्रत, १८ रश्माष्टतोषाव्रत, १९ सोभापष्टकष्टतोषाव्रत, २० चनन्त-उतोषाव्रत, २१ रसकल्याणोषाव्रत, २२ पार्श्वानन्दकरो-व्रत २३ चैत्रमासदशमाघष्टतोषाव्रत, २४ चनन्तउतोषा-

व्रत, २५ पञ्चदशतोषाव्रत, २६ पद्मारकचतुर्विंश, २७ त्रिनायकघनचतुर्विंश, २८ नागशानिव्रत, २९ सार-धनव्रत, ३१ पञ्चमीव्रत, ३२ श्रोपदमीव्रत, ३३ पयोक्ष-पठोव्रत, ३४ फनपठोव्रत, ३५ मन्दापठोव्रत, ३६ क्षितिापठोव्रत, ३७ कान्तिदेवपठोव्रत, तत्पुनश्चमि-स्कन्दपुराणोप कथितःपठोव्रतकथा, ३८ महातपःमत्तमो-व्रत, ३९ त्रिजयामत्तमीव्रत, ४० पादियमण्डपविधि, ४१ जयोदमव्ययममममम, ४२ कुङ्कुटोमकटोव्रत, ४३ चमयमत्तमीव्रत, ४४ कण्ठमत्तमीव्रत, ४५ मत्तमीव्रत, ४६ कमनामत्तमीव्रत, ४७ शुभमत्तमीव्रत, ४८ पादिय-हनमत्तमीव्रत, ४९ चक्रनामत्तमीव्रत, ५० समामत्तमो-व्रत, उत्तरे प्रसङ्गमें सूर्यपुष्याश्विनम पुष्यहामस्तपुष्यमो-युत, ५१ सोमाटमोव्रत, ५२ दूनाटमोव्रत, ५३ क्षणा-टमोव्रत, ५४ बुधाटमोव्रत, ५५ पनपाटमोव्रत, ५६ सोमाटमोव्रत, ५७ श्रोत्रमत्तमीव्रत, ५८ धनमत्तमी-व्रत, ५९ वस्त्रागमोव्रत, ६० दगावतारदगमोव्रत, ६१ वागाटमोव्रत, ६२ तारवददादगोव्रत, ६३ परस्व-दादगोव्रत, ६४ रोहिणोवदव्रत, ६५ करिषारिषि-प्रभाकरादिका पवित्रोपव्रत, ६६ गावसदादगोव्रत, ६७ दादगमत्तोषाव्रत, दादगोव्रत, ६८ नाराजमदादगोव्रत, ६९ मोषपञ्चमव्रत, ७० मन्दादादगोव्रत, ७१ मोमदादगो-व्रत, ७२ वणिक्व्रत, ७३ यवपञ्चादगोव्रत, ७४ सम्पत्ति-दादगोव्रत, ७५ गोविन्ददादगोव्रत, ७६ पचपञ्च-दादगोव्रत, ७७ मनारवदादगोव्रत, ७८ तिलदादगो-व्रत, ७९ सुकृतदादगोव्रत, ८० धरवीव्रत, ८१ विगोत्रदादगोव्रत, धिदुविधान, ८२ विभूतिदादगो-व्रत, ८३ चन्द्रदादगोव्रत, ८४ चद्रादव्रत, ८५ श्वेतमन्दारनिम्बार्करवीशार्कव्रत, ८६ यमादगो-व्रतोदमीव्रत, ८७ चनन्तपठोदमीव्रत, ८८ पामो-व्रत, ८९ रश्माव्रत, ९० पामन्दपठोदमीव्रत, ९१ श्रव-णिव्रत, ९२ चतुर्दशमीव्रत, ९३ मित्रचतुर्दमी-व्रत, ९४ सर्वकल्याणचतुर्दमीव्रत, ९५ तपचतुर्विंशव्रत, ९६ वैशाखे कान्तिनी माघे (दुर्बिमा)-व्रत, ९७ बुधादिनिधनाह्वासा, ९८ भागिधोव्रत, ९९ कान्ति-मे कान्तिदादग, १०० पूर्वमनोरथव्रत, १०१ पयोक्ष-पूर्वमाव्रत, १०२ चनन्तकनव्रत, १०३ साध-

कहीं १८ भविष्यके ब्राह्मणवर्षमें १२१ पञ्चाय हैं। किन्तु २५ भविष्यमें विष्णुपर्वके पूर्वार्धमें १५० पञ्चाय मिलते हैं। अधिकांश पुराणोंके मतसे भविष्यकी श्लोक-संख्या चौदह हजार है। किन्तु २५ भविष्यके १८ पञ्चायमें मिला है, कि भविष्यपुराणको श्लोकसंख्या पचास हजार है। विष्णुपुराणको वायुसंहितामें परिचर्चित और नयकलेवरप्राप्त गिवपुराणको जिस प्रकार सात श्लोकसंख्या बतला कर पांडवर किया गया है, २५ भविष्यकी उक्ति भी ठोस उसी प्रकार अत्युक्ति प्रतीत होती है। इस अर्थमें अनेक विषय संयोजित हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं। इसी कारण रुक्वध (२५० अ०) चादि कोई कोई विषय एकसे अधिक बार वर्णित देखा जाता है। पहले कहा जा चुका है, कि नारदपुराणके मतानुसार षट्मौक्तिकमें विष्णुपर्वका आरम्भ है। किन्तु २५ भविष्यमें षट्मौक्तिकसे ही विष्णुपर्व निर्दिष्ट होने पर भी इस वर्षमें विष्णुपर्वसे ब्रह्माहात्म्य वर्णित है, इस कारण इसके साथ शेषपर्व भी सम्मिलित हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है। शेषार्धमें सौरपर्वके विषयका भी अभाव नहीं है। किन्तु उसमें प्रतिसर्गपर्व नहीं मिला है।

पुराणप्रबन्धके उपक्रममें यह दिखलाया गया है, कि आपस्तम्बधर्मसूत्रमें भविष्यतपुराणका प्रसङ्ग है। आशुष्य २५ भविष्यके २५ अध्यायमें उक्त विषयका समावेश देखा जाता है। इससे जाना जाता है, कि इस अर्थमें अनेक विषय प्रचिष्ट होने पर भी चादि-पुराणको अनेक बातें दी हुई हैं।

उपरोक्त दो भविष्यकी घरेलू तोसरे भविष्यमें ही कुछ अधिक यथावती बातें हैं। इसमें भविष्यका कोई कोई लक्षण रहने पर भी इसका तृतीयोद्य परवर्ती कालका रचा हुआ प्रतीत होता है। जिस समय समस्त भारतमें तान्त्रिक प्रभाव फैला हुआ था, यह २५ भविष्य शायद उसी समयकी रचना है। २५ भविष्यके ०८ अध्यायमें चागम, तन्त्र, कामल और कामादि-की कथाओंका वर्णन है। इस अध्यायमें एक विशेष उल्लेखयोग्य कथा यह है—“पुराणवाचकी व्यास उपाधि”। जनसाधारण विश्वास करते हैं, कि अर्चमान

सभी पुराण व्यासके कृत हैं। पर अभी हम लोग देखते हैं, कि पुराणकयकों द्वारा प्राचीन पुराणाख्यानादि-वर्तमान आचारमें सहूलित हुआ है इस कारण पुराण व्यासकी रचना है, यह प्रवाद जाता रहा।

मात्स्ये मतानुसार भविष्यपुराणमें अनेक भविष्य कथाएँ हैं। १८ और २५ भविष्यमें उसका बहुत कुछ परिचय मिलता है। २५ भविष्यके ८८ अध्यायमें अज्ञेयज्ञानादि परित्यागकी कथा तथा १०८ अध्याय-में कलिमें निगम ज्योतिष और वेदके तत्त्वमें दीपकथन तथा मनसा पशु, दुग्धरा चादि पूजाओंकी कथा है। इस पुर्णार्धमें वैज्ञानिकोंका भी एक सारांश विषय है। ‘उद्भिज्जविद्याका वृत्तान्त’ (Botany)। दूसरे किसी भी पुराणमें उद्भिज्जविद्याका ऐसा प्रसङ्ग नहीं है।

नारदपुराणका आश्वयत्तसे यह कहना पड़ेगा, कि १८ भविष्य अर्थात् ब्राह्मणवर्ष उत्तना विशुद्ध नहीं है, अधिकांश विशुद्ध है। इस ब्राह्मणवर्षमें एक अति गुह्य-तर ऐतिहासिक कथाकी आलोचना पाई गई है, यह इस प्रकार है—

शाक्यने सूर्यमूर्त्ति की प्रतिष्ठा की। किन्तु उन्हें उपयुक्त पूजक न मिला। इस पर नारदके चादिमातु-सार उन्होंने शाकदीपसे १८ प्रकारके कुलीन ब्राह्मणोंकी बुलाया जो ‘मग’ कहलाते थे। शक्यके कहनेसे उन मग ब्राह्मणोंने यादव-धन्याका पाणिग्रहण किया। उन्होंने गभसे भोजकोंकी उत्पत्ति हुई और वे ही सूर्य-पूजके एकमात्र अधिकारी ठहराये गये। प्राचीनकालमें शरव और पारस्यमें सौर वा अग्निपूजकगण ‘मग’ नामसे ही प्रसिद्ध थे। शभवतः उन्हींकी कोई शाखा भारतीयके साथ मिल कर शाकदीपो ब्राह्मण कहलाने लगी। मग और शाकदीपो शाक्य देखो।

ब्रह्मवैवर्तपुराण।

प्रचलित ब्रह्मवैवर्तपुराणकी “विषयसूची इस प्रकार है,—

ब्रह्मवैवर्त—१ मङ्गलाचरण, सौतमीनकसंवाद, २ परमहंसनिरूपण, ३ अष्टनिरूपण, कण्वदेवमें आराधनादि-का आधिर्भाव और शक्यके साथ, ४ वाविवरादिका आधिर्भाव, ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, महाविराट् जन्मकथन,

५ कामान्ध्यान्, राममण्डलम् राधाको उत्पत्ति, राधा-
लम् शरीरम् गोपी, गोप चोर गवादिना चाविर्भाव,
गिवादिना याहनदान, शुक्रादि उत्पत्ति-कथन, ६
श्रीकृष्णका गदरको वरदान, शिवनामनिर्दिष्टकथन,
सृष्टिके लिये ब्राह्मणके प्रति नियोग, ७ पृथिवीप्रभृति
ब्रह्मसृष्टिकथन, ८ ब्रह्मवर्ग, वेदादि ग्राह्यको उत्पत्ति,
स्वायम्भुव मनु चोर ब्रह्मानन्दपुत्र मुनिसत्पादिको उत्पत्ति,
ब्रह्मनारद-गोपीपलभन, ९ कश्यप-प्रादिको सृष्टि, धरागर्भमे
ब्रह्मलोक उत्पत्ति, कश्यप-शश्वर्ग, चन्द्रके प्रति दत्तका
चमिगाप, शिवशरणापन्न चन्द्रका विष्णुवरत्नाम चोर
दत्तके माय गमन, १० जातिनिर्णयप्रस्तावमे पृतापी
चोर विश्वकर्मा का परस्पर श्रावणपलभन, सत्यमन्दिरपथ,
११ चास्त्रिण्य श्रावणमोचन प्रस्तावमे विष्णु, वैष्णव चोर
ब्राह्मणप्रमर्श, १२ उपवर्ण्य गन्धर्वकमे नारदका
जन्म, १३ ब्राह्मणके श्रावणे उपवर्ण्यका प्राणविस्मर्जन,
मानावतीका विलाप, १४ ब्राह्मण-बालक वेगमे विष्णु-
का मातावतीके समीप प्रागमन, ब्राह्मण चोर माता-
वती-सम्वादमे कर्मफलकथन, १५ मानावती-काल-
पुत्रपादिका सम्वाद, १६ चिकित्साशास्त्र-प्रवचन, १७
ब्राह्मण-देवदत्तसम्वादमे विष्णुको प्रमर्श, १८ माना-
वतीकृत महापुत्रपत्नीक, उपवर्ण्यको पुनर्जनिप्राप्ति,
१९ महापुत्र-ब्रह्माण्ड पावनकथन, वाष्पासुरकृत शहर-
का नाश, २० उपवर्ण्य गन्धर्वका शूद्रायोगिने जन्म,
२१ नारद प्रभृति की उत्पत्ति, नारदका श्रावणमोचन,
२२ नारदादि ब्रह्मपुत्रगणकी नामनिर्दिष्ट, २३ ब्रह्म-
नारद-संवाद, २४ मन्त्रप्रवचनके लिये शिवमोक्षमे
गमन, नारदके प्रति ब्रह्माका उपदेश, २५ शिव चोर
नारद-संक्षेप, २६ महादेवका नारदको लम्पमन्त्र-
दान, चाङ्गल-प्रकरणकथन, २७ भद्रयामदृशादिनिर्दिष्टपथ,
२८ ब्रह्मनिर्दिष्टपथ, संयत्नर नारदका शिवकी प्राप्ति
नारायणायाममे गमन, २९ नारायण चोर सृष्टिविगमके
प्रति नारदका प्रश. ३० भगवन्कथनकथन ।

प्रक्षिप्यहमे—१ प्रक्षिप्यवर्तितपुत्र, २ शक्तशक्तिप्रभृति
निर्दिष्ट, ब्रह्माण्डको उत्पत्ति, देवदेवोगणका चाविर्भाव,
३ विश्वनिर्णयवर्णन, ४ सरस्वतीपूजाविधि, ध्यान-
श्रवणादिकथन, ५ याज्ञवल्क्यको यापोस्तव, ६

यापो, मन्त्रो चोर गङ्गाका परम्पर विवाह कर एक
दृष्टिके प्रति चमिगाप तथा उनकी मन्दिरप्रभृति,
७ काल-कनोम्बर-गुणनिर्दिष्टपथ, ८ वसुधाको उत्पत्ति,
सप्तमी पूजाविधि, ध्यान चोर स्तोत्रादिप्रवचन, ९
पृथिवीके उपास्यानमे भूमिदानके लिये पुस्त्यादिका
कथन, १० भागीरथी उपास्यानमे भगवद्भक्त गङ्गा चाम-
यन चोर देवीका स्तव तथा पूजादिना कथन, ११ गङ्गा-
का विष्णुपदो नामके लिये श्रीकृष्णके प्रति पूजाकी
भक्तना चोर क्रीडपुत्रक राधाके गङ्गाको पान करमे
उत्पत्ति हो जाने पर गङ्गाका श्रीकृष्ण-चर-गण-पक्ष
चोर ब्रह्मादिकी प्रार्थनानुसार श्रीकृष्णके वादपक्षमे
गङ्गाको निष्प्राप्ति, १२ गङ्गा चोर नारायणका विवाह,
१३ तुलसीके उपास्यानमे सप्तका चाभिजापादिकथन,
१४ वेदवतीका उपास्यान, समासमे रामायणकथन, १५
तुलसीका जन्म, बदरिकायाममे तपश्चरण चोर ब्रह्माका
वरत्नाम, १६ तुलसीके प्रायश्चमे गङ्गचूड़का प्रागमन,
उनका कथोपकथन, विवाह, उताधिकार देवगणका
वेकुण्ठ जा कर विष्णुके समीप गङ्गचूड़का व्रतान्त्र
निवेदन तथा सप्तका वध करनेके लिये महादेवको
विष्णुमे श्रुतप्राप्ति, १७ युद्धमे निमित्त गङ्गचूड़के निरुद्ध
महादेवका दूतप्रवच, तुलसी चोर गङ्गचूड़-संयोग,
गङ्गचूड़का युद्धमे गमन तथा शिव चोर गङ्गचूड़-संवाद,
१८ देव चोर दानव-सैन्यका हर्षयुद्धवर्णन, स्वयं-
प्राप्तव, कालो चोर गङ्गचूड़युद्धकथन, २० हृद ब्राह्मण-
के वेगमे विष्णुका गङ्गचूड़के समीप गमन चोर कथन-
प्रवच, महादेवकथन गङ्गचूड़वध चोर गङ्गचूड़को
चस्त्रिमे गङ्गीको उत्पत्ति, २१ विष्णुका गङ्गचूड़क-
धारय चोर तुलसीपत्नीक, तुलसीपत्नीका माहात्म्यकीर्तन
शास्त्रप्राप्तनिर्दिष्ट चोर उनका मुचवर्णन, २२ तुलसी-
के चटनाम चोर उनको पूजाविधि, २३ चम्पयति
प्रति पराशरका उपदेश, सावित्रीका ध्यान चोर पूजा-
विधानादि कीर्तन, ब्रह्मा कृत उनका स्तोत्रकथन, २४
सावित्री-सत्ययान्त्रका विवाह, सत्ययान्त्रको पक्ष्यनाति
चोर सावित्रीके समीप यमकथन कर्म हो सप्तको अङ्क
६, ऐसा प्रस्ताव, २५ सावित्री चोर यम-संवाद, २६-
२० यमका सावित्रीके प्रति वरदान, यमसम-विवाह-

स्थान, २८ सावित्रीकृतं कथयन्तः, २९ नरककुण्ड-
की संख्या, ३०-३१ वापभेदेन नरकादिषा भेदः, ३२
श्रीकृष्णकी सेवायै कर्मच्छेदं चौर लिङ्गदेहिनिरूपण,
३३ नरककुण्डलक्षणकथन, ३४ श्रीकृष्णका माहात्म्यादि-
कथन, सत्यवान्का जीवनसामं चौर सावित्री मन्द-
निरादि, ३५ लक्ष्मीनिरूपकथन चौर उनका पूजाकीर्त्तन,
३६ इन्द्रके प्रति दुर्वासाया शप चौर श्रीभट्ट इन्द्रका
उनके निकट ज्ञाननाम तथा वरनाम, ३७ सुरगुरुके
समीप इन्द्रका गमन चौर उनके प्रति गुरुका प्रबोध-
दान, ३८ गुरुके साथ इन्द्र चौर देवताओंका ब्रह्मचो-
रं गमन, ब्रह्माके साथ उनका वैकुण्ठधाममें नारायणके
समीप गमन, नारायणकृतं क नक्षत्रोत्थानकीर्त्तन चौर
उनके उपदेशके ससुद्ध-मन्त्रपूर्वक लक्ष्मीप्राप्ति कथन,
३९ इन्द्रकृतं क लक्ष्मीके पूजाप्रस्तावमें महानक्षत्रो-
त्थान-ध्यान-स्तव चौर पूजाविधि, ४०-स्नाहोपाख्यान,
४१ लक्ष्मीपूज्यान, ४२ दक्षिणोपाख्यान, यज्ञकृत दक्षिण
चौर स्तवप्रभृतिकथन, ४३ षण्ठोद्वेगके उपोष्यानमें
प्रियव्रत-ऋषभृत षण्ठोका पूजन चौर स्तवादि कथन,
४४ मङ्गलचण्डोका उपोष्यान चौर उसका ध्यानपूजन,
मन्त्र चौर स्तोत्रकथन, ४५ मनसाउपाख्यानमें उनकी
मनसा प्रभृति दादगनामनिरुक्ति, ४६ जरत्कारका
मनसादेवोके विषाद, आस्तीका जन्म, ब्रह्मापराधत
परोक्षिके परोक्षगमनके बाद जन्मजयकृतं क नाग-
यज्ञ, आस्तीककृतं क नागकुलरक्षण, महेश्वरकृत मनसा-
देवोका स्तव प्रभृति कथन, ४७ सुरभूषणख्यान चौर
उसका स्तव, ४८ पार्वतीके प्रति शिवका राधाशब्द
निरुक्तिपूर्वक राधाका उपाख्यानवर्णन चारम्भ, ४९
विराजके साथ विहारमें प्रवृत्त श्रीकृष्णका राधाके भयसे
अन्तर्दान, विरजा गोवीको नदीवत्प्रवासा, राधा चौर
सुदामाका विषाद तथा परस्पर अभिसम्पान, ५० सुयश-
राजाके प्रति ब्रह्मघात, ५१-५२ अतिशयविनयच्छलसे
भूतपयोंका राजाके प्रति उपदेश, ५३ राजकृतं क अतिशय-
का प्रसादन चौर प्रत्युपदेशकथन, ५४ श्रीकृष्णस्वरूप-
वर्णन-प्रसङ्गमें कालमानकथन, विप्रपादोदक-प्रशंसा,
तपस्या द्वारा सुयशका
शयिकाकी पूजाविधि,

कवच, ५७ दुर्गाउपाख्यान, दुर्गाका दुर्गाप्रभृति घोष्य-
नामनिरुक्ति, ५८ देवीमाहात्म्यमें सुरध्वंशवर्णनप्रसङ्गमें
ताराहरणवृत्तान्तकथन, शरापागन चन्द्रका पापविमोचन,
५९ श्रीकृष्णको आराधने शक्रादि देवताओंको नमोदार्के
किनारे अवस्थिति चौर सुरगुरुका कोलास-गमन, ६०
शिव चौर लोचका कथोपकथन, उनका नमोदार्के किनारे
गमन, विष्णु एवं देव्यकर्ममें नियुक्त ब्रह्माका शक्राक्षय-
में गमन, ६१ ब्रह्माकी प्रार्थनामें शक्रका तारकाप्रदर्शन,
बुधजन्म, हस्तसिन्धुका तारनाम, सुरध्वंश चौर वैश्वध्वंश-
का परिचय, ६२ सुरध्वंश चौर भेध-संवाद, ६३ समाहित
वैश्वका प्रकृतिसाक्षात्कारनाम, अनन्तररुक्ति, ६४
सुरध्वन प्रकृतिपूजा-कर्मकीर्त्तन, ६५ प्रकृति-पूजाका
फल-काल-परिचीर्त्तन, ६६ दुर्गाका स्तव चौर उसका
कवच ।

गणेश-खण्डमें—१ हरपार्वतीसम्भोगमङ्ग, २ शङ्करके
समीप पार्वतीका खेद, ३ पार्वतीके प्रति शङ्करका
पुष्पकप्रत उपदेश चौर गङ्गाके किनारे उन्हें हरिमन्त्र-
दान, ४ पुष्पकप्रतविधानकथन, ५ व्रतकथाप्रचारण, ६
व्रतमहोत्सव चौर व्रत-भाषाप्रकरण, ७ व्रतानुष्ठान,
श्रीकृष्णके आदेशसे कुमारी पार्वतीके पतिदक्षिणादान
चौर प्रतिप्राप्तिके लिये पार्वतीकृत फिरसे श्रीकृष्णका
स्तव, पार्वतीकी श्रीकृष्णसे वरप्राप्ति, सनत्कुमारके
निकट फिरसे शङ्करप्राप्ति चौर गणेशजन्मकथन, ८
हर-पार्वतीका गणेशसन्देशन, ९ गणेशके मङ्गलके
लिये मङ्गलाचार, १० पार्वती चौर गणेशसंवाद, ११
गणेशविघ्न उपगमन, १२ गणेशका नामकरण, पूजा-
स्तोत्र चौर कवचादि कथन, १३ कार्तिक-प्रवृत्तिप्राप्ति,
१४ कार्तिकको लानेके लिये नन्दिदेव्यादि शिव वृत्त-
गणकी कृत्तिकाभवनमें प्रेरण, कार्तिकेय चौर नन्दि-
केशरका कथोपकथन, १५ कार्तिकेयका कोलास-भाग-
मन, १६ कार्तिकेयका अभिषेक चौर कार्तिकेय-गणेश-
का परिणय, १७ गणेशके गिराभूयताकारण-प्रदर्शन
प्रसङ्गमें शङ्करके प्रति कश्यपका अभिषाग, १८ श्रीसूर्य-
स्तव चौर कवचादि कथन, २० गणेशके गजामन्त्रका
कारण, २१ शक्रका लक्ष्मीप्राप्ति कथन, २२ शक्रकी हरि-
महासंज्ञोत्सव चौर कवचादि दान, २३ लक्ष्मीचरित

कथन, २४ गणेशका एकदन्त होनेका कारण बखान करानेमें समदन्ति-धोर काचबोरेका संवाद, २५ काचिलभेद्ययुद्धमें काचबोरेका पराभव-कथन, २६ समदन्तिके समीप काचबोरेका पराभव, २७ काचबोरेयुद्धमें समदन्तिका प्राथम्यताम धोर परशुरामकी प्रतिष्ठा, २८ भृगु धोर शृगुकासंवाद, ब्रह्मलोकमें ब्रह्मा धोर परशुरामका कथोपकथन, २९ ब्रह्माके वरप्राप्त भागवतका गियलोकगमन, वहां तत्कृत गियका मृत्यु, ३० गहर धोर परशुरामसंवाद, ३१ मार्गवके प्रति गहरका प्रेक्षितविजयकवचदान, ३२ मार्गवकी गहरका भगवन्मन्त्रावादिदान, ३३ मार्गवकी युद्धयात्रा, स्वप्नदर्शन, ३४ कौत्सबोरेके समीप मार्गवका दूतसन्देश, स्वर्मायी मनोरमाके प्रति काचबोरेका स्वप्नदर्शनप्रस्तावना, ३५ मनोरमाका परलोक गमन, मार्गव धोर काचबोरेसंवाद, मत्स्यराज धोर परशुरामयुद्धवर्णनावसरमें शिवकवचकथन, ३६ राजा सुचन्द्रके साथ परशुरामयुद्धवर्णनावसरमें भृगुजत कालोका स्तवकथन, ब्रह्मा धोर मार्गवसंवाद, सुचन्द्रवचकथन, ३७ भद्रकालीकवचकथन, ३८ पुंरुद्रराज धोर परशुरामयुद्धवर्णनप्रसङ्गमें महाबल्लोककवचकथन, ३९ दुर्गाकवचकथन, ४० काचबोरे धोर परशुरामके युद्धमें काचबोरेमें महादेवका कलपूर्वक कवचहरण, राजा धोर मार्गवका कथोपकथन, काचबोरेका परलोकगमन, ब्रह्मा धोर परशुरामसंवाद, ४१ परशुरामका केलासगमन, ४२ गणेशभागवतसंवाद, ४३ मार्गव ४ युद्धमें गणेशका दन्तमन्त्र, ४४ वासंतोकरके तिरस्त्रुत परशुरामके प्रति ओषिण्णका उपदेशकथन धोर गणेशस्तोत्रकथन, ४५ परशुरामजत भगवतोका स्तव, ४६ बिना तुलसीके मार्गवस्तु गणेशपूजाकथनप्रसङ्गमें तुलसी धोर गणेशका परस्पर अभिस्मृत्यकथन ।

धीरुपानमहाप्रश्न—१ नारायणकृतिके प्रति नारदका प्रतिकवाविवरण मध्य धोर उत्तरेके प्रति नारायणका लनस्य कथोपकथन प्रसङ्गमें विष्णु धोर वैष्णवगुणकथन, २ ओष्ण्यका विरजाके साथ विचार, राधिकाके मयसे ओष्ण्यका अन्तर्धान धोर विरजाको नदीरूपत्व प्राप्ति, ३ ओष्ण्यके प्रति राधिकाका अभिप्राय, राधिका

धोर ओदामका परस्पर अभिप्राय, ४ कीप मारहरव करनेके प्रस्तावके निवे चितिका ब्रह्मलोकगमन, ब्रह्मके धर्मोप उक्तका निवेदन, देवद्वन्द्वका हरिमयमें गमन, धोर गीतोक्षवर्णना, ५ ब्रह्मा धर्मनिरागोलोकगमन, ब्रह्मजत ओदरिका स्तव, ओष्ण्यका आभिर्भाव, ब्रह्मादि-कलके भगवानुका स्तव, भगवानुके माय संग्रहा कथोप-कथन, ६ पृथ्वीजम्भपरिचयपूर्वक देवका धोर वासुदेव-परिचयप्रदानकोत्तर, कंसकलके समका हा पुत्र निधन, ब्रह्मादिकलके ओष्ण्यका स्तव, भगवतोका जम्भप्रस्तावना, वासुदेवजत ओष्ण्यका स्तव धोर योगमायाज्ञागतकथन, ७ जम्माटमोप्रतादिका गिद्वय, ८ नन्दोका स्तवकथन, ९ पुतनामोक्ष प्रस्ताव, १० टण्डवकासुरवध, ११ गण्डमध्वन, कवचकथन, १२ मार्ग धोर नन्दसंवाद, ओष्ण्यका पञ्चमायन तथा नामहरण प्रस्ताव, १३ यमनातुं नमश्चन धोर कुविरतनाका शाप-कारण, १४ ओराधाओष्ण्यसंवाद, ब्रह्माभिगमन, ब्रह्माकलके ओराधाका स्तवकथन, राधाओष्ण्यका विवाहवर्णन, १५ वक्र, वैद्यो धोर प्रलम्बासुरवध, वासुदेवादि मन्त्रवांका गहरमाय उपलक्षण तथा सुन्दरनगमन प्रस्ताव, १६ सुन्दरन-निर्माय, कलावतीके साथ उपमाशुका परिचय-प्रस्ताव, सुन्दरन नामकारककथन, राधाको वीरुमा नाम निश्चिन्ति, ओनारायणकलके ओराधाका स्तव, १७ विद-पत्ने मोक्ष, विप्रयोजन कथका स्तव, बह्मिका सर्व-भक्षयवैजकथन, १८ जालोपदमन, कालोयुक्त ओष्ण्यका स्तव, नामपरोक्ष ओष्ण्यका स्तव, टाकानिमोक्ष, गोप धोर गीतोक्त ओष्ण्यका स्तव, २० ब्रह्माकलके गोवत्सदि हरण धोर ब्रह्मजत ओष्ण्यका स्तव, २१ इन्द्रयागभक्षण, नन्दकल इन्द्रका स्तव, ओष्ण्यका गोव-र्द्धनधारण, इन्द्र धोर नन्दकलके ओष्ण्यका स्तव, २२ धेनुकवच तथा धेनुककृत ओष्ण्यका स्तव, २३ प्रमत्त-कर्मसे तिलोत्तमा धोर वनिपुत्रका ब्रह्मगापविश्रान, २४ दुर्वासाका विवाह धोर पराविश्रान, २५ उर्वशीके शापसे दुर्वासाका पराभव, तत्कृत ओष्ण्यका स्तव धोर उत्तमा नीचय, २६ एकादशीवृत्तिधान, २७ मोन-कन्याकृत ओष्ण्यका स्तव, मोरिका पञ्चहरण, राधिका-कृत ओष्ण्यका स्तव, मोरिका त्रिधान, वतचया,

दशम धोर तत्कालक धीराधिका ॥ ८६ ॥ राधिका
धोर उदयका कथोपकथन, ८७ उदयके प्रति राधाको
सखीको रति, उदयका कलावती स्यात्पान-कथन,
८५ राधिकाका खेदवर्णन, ८६ उदयके प्रति राधाका
उपदेग, ८७ राधा धोर उदयका संवाद, ८८ मयुरासि
उदयका प्रयागमन, भगवान्के समीप सनका हन्दा-
सन-वात्तांकथन, ८८ वसुदेवके समीप गंगाका राम
धोर कृष्णका उपनयनप्रस्ताव, वहाँ वृषियोंका गमन,
वसुदेवकालक प्रकृतिवृत्तान्तकथन, १०० वसुदेवके
समीप देवदेवीका समागम, १०१ श्रीकृष्ण धोर वस-
रामका उपनयन, वहाँ समागतोंका स्वस्वद्वयगमन,
१०२ साक्षीपति मुनिके निकट कृष्ण धोर वल्लभरामका
वेद पण्यन, सुनिपन्नोक्त उनका स्तव धोर शुद्धचिन्ता-
दान, १०३ दारावती निर्मातृके किये विम्वकर्मके प्रत्युप-
देशकथन-प्रसङ्गमें, श्रीकृष्णका वासुधाभाशुभ विवरणादि-
कथन, १०४ श्रीकृष्णके समीप ब्रह्मा धोर सनत्कुमार-
प्रभृति देवताओंका समागम, श्रीकृष्णका दारकाप्रवेश-
पूर्वक उपवेशनप्रसृतिके साथ कथोपकथन, १०५ हस्तिनो-
के विवाहमें भीष्मकराजके प्रति गतानन्दवाक्य धोर उसे
सुन कर हट दक्षिणोका वाक्य, १०६ रथतो धोर वल-
देवका विवाह, श्रीकृष्णका कृष्णनगरमें गमन धोर
गान्धव राजाका भगवद्विधेय, १०७ हस्तधरकालक
हस्तिनोकी पराजय, श्रीकृष्णका पाण्डवास, विवाह-
प्राङ्गणमें शभागमन, भीष्मकराजकृत श्रीकृष्णका स्तव,
१०८ हस्तिनोषिष्यदान, १०९ श्रीकृष्णके साथ चरन्वती-
प्रभृतिका कथोपकथन, वरयात्रियोंका वधू धोर वर से
कर दारकामें गमन, ११० भगवान्के निकटसे नन्द धोर
यमोदाका कदलोवन-गमन, राधा धोर यमोदाका
संवाद, ११ यमोदाके प्रति राधिकाका भक्तिज्ञान उपदेय
धोर कृष्णका रामप्रभृति नामनिर्दिष्टकथन, ११२
हस्तिनोका गर्भाधान, कामजन्म, कामकालक गम्हर
देशवध, रति धोर कामका दारका गमन, श्रीकृष्णका
सोनह हज्जर कामिनिर्दिष्टे साथ विवाह, सनको पण्य-
संस्था, दुर्वासोकी श्रीकृष्णका कन्या-सम्पदान धोर
दुर्वासोकरत श्रीकृष्णका स्तव, ११३ कैलासगत दुर्वासा-
का पार्वतीके उपदेशसे पुनः दारकागमन, श्रीकृष्णका

हस्तिनापुर-गमन, वरामन्त्र धोर गान्धवध, मिथ्याम
धोर दत्तयन्त्र-वध, कुरुपाण्डवके युद्धमें भूमार-हरण,
समाताको मृतपुत्रप्रदान, पारिजात-हरण, सत्यमामाको
पुण्यकथन वसुधागमन, ११४ सदा धोर पनिहडका
अश्वसमागम, चित्रसेनाकालक पनिहड-हरण धोर सदा
तथा पनिहडका गन्धर्व-विवाह, ११५ रत्नके सुपुत्रे
छपाका गर्भवृत्तान्त सुन कर हट वाचके प्रति महादेव
पादिका हित उपदेग, वाचासुरको युधवाता धोर वाच
तथा पनिहडका संवाद, ११६ वाचके प्रति पनिहडका
द्रोपदीके पदवामित्व-हेतुका संन, गम्हरकालक रति-
हरण-वृत्तान्त-कथन धोर पनिहडकालक वाच-पराजय,
११७ गणेश्वरके प्रति महादेवका पनिहड-पराक्रम-
कीर्तन, ११८ दूतके सुपुत्रे श्रीकृष्णका पागमन-
संवाद सुन कर महादेव धोर पार्वतीका कर्तव्य
विषयक परामर्श, ११९ वाचकी सभामें वसिष्ठा पाग-
मन, हर धोर वसिष्ठाके कथोपकथनमें हरकालक वेदवर्षा-
को प्रशंसा, हरि धोर वसिष्ठाके कथोपकथनमें वसिष्ठत
श्रीकृष्णका स्तव धोर श्रीकृष्णका वसिष्ठाके प्रभयदान,
१२० यादव धोर पसुरसेनको युधवर्णना, गोपव-
ध्वरसत्पत्तिकथन तथा श्रीकृष्णके निकट वाचका परा-
भय, १२१ शृगावराजसोपन, १२२ स्वमन्त्रक-उपाख्यान,
१२३ सिंहाधर्ममें राधाकालक गणेशपूजा, १२४ राधिका-
के प्रति गणेशवाक्य, सन्ध्यावर्षाकी वरदान, पार्वती-
की आश्रयसे सखीगणकालक राधाका सुषेमादिकरण,
राधिकाके तेजसे विरसित हो सिंहाधर्मराजो देवताओं-
का सनके समीप आगमन धोर ब्रह्मादिकृत राधिकाका
स्तव, १२५ महादेवकालक वासुदेवका ज्ञानसाध, राज
सूय-यज्ञका वसुधागम, १२६ राधाकृष्णका किरमें सन्तो-
मन, राधाकालक श्रीकृष्णका स्तवादिकथन, श्रीकृष्ण-
के प्रति राधिकाका विनयगमर् विविधप्रश्न धोर सनके
प्रति कृष्णका आध्यात्मिक ज्ञानोपदेशकथन, १२७ राधा-
कृष्णका विहार धोर यमोदाका चानन्द, १२८ नन्दके
प्रति श्रीकृष्णका कनिष्ठकथन, गोकुलप्राप्तिका राधाके
साथ गोलोकगमन, १२९ भाण्डोरवनमें पागत ब्रह्मादि-
कालक श्रीकृष्णका स्तव, यदुकुलवध, पाण्डवोंका
वर्गारोहण, भाण्डोरको प्रति भगवतीका वरदान धोर

गोनीकारोदय, १३० नारदज्ञा यदरिकाग्रममे ब्रह्मचोक-
गमन, सृष्ट्यन्तकन्याके बाध विवाह भोर विहार, सनत्-
कुमारके उपदेशमे तपस्याके लिये गमन, ससके प्रति
शत्रुका उपदेशयाश्व भोर नारदकी सुक्ति, १३१. ब्रह्म
भोर सुवर्णका उत्पत्तिकथन, १३२ समासमें ब्रह्मादि-
खण्डचतुष्टयायैन्द्रियण, १३३ महापुराण भोर सप-
पुराणका लक्षणकथन, महापुराणको श्लोकसंख्या,
सपपुराणका नामकात्तन, ब्रह्मवैवर्तका नामनिरुक्ति-
कथन, ससका माहात्म्यवर्णन श्रवणकल तथा श्रवण-
क्रमसे यथाक्रम पशुकोत्तन ।

यव प्रश्न उठता है, कि सत्त ब्रह्मवैवर्त को प्रजत
पुराण वा पादि ब्रह्मवैवर्तपुराण मान सकत हैं वा
नहीं ?

महापुराणके मतसे—

“रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य यत् ।
सावर्णिं ना नारदाय कृष्णमाहात्म्यसंयुतम् ॥
यत्र ब्रह्मवराहस्य चरितं वक्ष्यते सुहृः ।
तदष्टादशसहस्रं ब्रह्मवैवर्तमुच्यते ॥”

रथन्तरकल्पके वृत्तान्तप्रसङ्गमें सावर्णिं नारदसे
जिस ग्रन्थमें कृष्णमाहात्म्य भोर ब्रह्मवराहका चरित
विरचितभावसे वर्णन किया है, वही अष्टादशसहस्र
ब्रह्मवैवर्तपुराण है ।

शैवपुराणके उत्तरखण्डमें, लिखा है—

“विवर्त्तनाद् ब्रह्मणसु ब्रह्मवैवर्तमुच्यते ।”

ब्रह्माके विवर्त्तप्रसङ्गसे इस पुराणको ब्रह्मवैवर्त
कहते हैं ।

नारदपुराणमें इसकी उपनृक्तमणिका इस प्रकार दो
गई है—

“शृणु यत् प्रवक्ष्यामि पुराणं दशमं तव ।
ब्रह्मवैवर्तकं नाम वेदमार्गादुदयकम् ॥
सावर्णियं भगवान् साक्षाद्दर्शय मेऽयम् ।
नारदाय पुराणार्थं प्राह सर्वमनौजिकम् ।
धर्मायं काममोक्षायां सारं प्रीतिहरो हरः ।
भयोरभेद सिद्ध्यर्थं ब्रह्मवैवर्तमुच्यते ॥
रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तं यन्मयोदितम् ।
गतिकोटिपुराणे तत् संचिष्य प्राह वेदवित् ॥
व्यासद्युतुषां संव्यस्य ब्रह्मवैवर्तसंज्ञितम् ।
अष्टादशसहस्रनात् पुराणं परिकीर्त्तितम् ॥
ब्रह्मप्रकृतिविशेषशृणुष्वष्टसमाचितम् ।

तत्र सृष्टिर्वादि पुराणोपक्रमो मतः ॥
सृष्टिप्रकरणं त्वार्थं ततो नारदवेषधोः ।
विवादः सुमहान् यत्र ह्योरासीत् परामर्शः ॥
शिवभोक्तृगतः पयाजज्ञाननाभः शिवात्मनोः ।
शिवभाष्येन तत्पयात् मरोचिर्नारदस्य च ॥
मनश्चैव सावर्ण्यं श्रामार्थं सिद्धवैशिते ।
आद्यमे सुमहापुण्यं वंशोत्पाद्यर्थाकारिणि ॥
एतद्दि ब्रह्मखण्डं हि श्रुतं पापविनाशनम् ।
ततः सावर्णि-वंशवादी नारदस्य समोरितः ॥
अष्टममाहात्म्यसंयुक्तो नानाव्यामन्योत्तरः ।
प्रज्ञतेरंभूतामां कसानाद्यापि वाणं तम् ॥
माहात्म्यं पूजनायैव विस्तरेण यथास्थितम् ।
एतत् प्रकृतिखण्डं हि श्रुतं भूति-विधायकम् ॥
गणेशस्त्वमसंमथसंपुण्यशमहाप्रतम् ।
पार्थव्याः कात्तिकैरेण सद्यः विप्रैश्चमभयः ॥
चरितं काचं वीर्यस्य कामदम्नस्य चाङ्गुतम् ।
विवादः सुमहान् पयाज्ज्ञानदम्नगणेशयोः ॥
एतद्दि ब्रह्मखण्डं हि सर्वविप्रयिनाशनम् ।
श्रीकृष्णस्त्वमसंमथो जन्माख्यान् ततोऽङ्गुतम् ॥
श्रीकृष्णे गमनं यथात् पूतनादिबधोऽद्भुतः ।
वाल्मीकीमारजा लोका विविधास्तत्र वर्णिताः ॥
रासक्रीडा च गोपीभिः शारदी ससुदाहता ।
रहस्ये राधया क्रोद्धा वर्णिता बहुविस्तरा ॥
सहाक्रिय तत्पयाज्ज्ञानममनं हरिः ।
कंसादीनां वधे ह्यष्ट स्यादस्य द्विजसंस्कृतिः ॥
काश्या सन्दीपने पयाद्विद्योपादानमद्भुतम् ।
यवनस्य वधः पयाहारकाममनं हरः ॥
नरकादिवधस्तत्र कृष्णेन विहितोऽद्भुतः ॥
कृष्णखण्डमिदं विप्रवृत्तां संसारखण्डनम् ॥”

(है वल्ल ! सुनो, ब्रह्मवैवर्त नामक वेदपद्यानु-
दयक दशम पुराण कहता है कि इसमें साक्षात् भगवान्
सावर्णिने प्राथित हो कर देवर्षि नारदसे पत्तोकि-
पुराणका पर्थ कहा था । धर्म, पर्थ, काम भोर मोक्ष
इन सबका सार भोर भगवान् हरि तथा हरमें प्रीति,
इन दोनोंका भवेद सिद्ध करनेके लिये ही यह उत्तम
ब्रह्मवैवर्त प्रवर्त्तित हुआ है । मैंने रथन्तरकल्पका लो
वृत्तान्त कहा है, वेदवित् व्यासने उसे गतकोटि पुराणोंमें
संक्षेपमें वर्णन किया है । वेदवित् व्यासने इस ब्रह्म-
वैवर्त पुराणको ब्रह्म, प्रकृति, गणेश भोर कृष्णखण्ड
नामक चार भागोंमें विभक्त कर अष्टादश सहस्र श्लोक

द्वारा कीर्तन किया है। धन और ऋषिर्वादिमें पुराणका उपक्रम दिया हुआ है।

इसके प्रथममें सृष्टिकथन, पोछे नारद और वेधाका विषय, दोनोंका ही परामर्श, शिवभक्तिकथन, नारदमुनि-का शिवसे ज्ञानप्राप्त और शिवके कहनेसे नारद तथा मरीचिका ज्ञानसाधार्थ निहर्षित परम पवित्र त्रैलोक्योपाध्यायकारो आचमनमें गमन, पापनाशक इस ब्रह्म-वेवर्तमें सब विषय वर्णित हैं।

इसमें सावर्णिसंवाद, कृष्णसाहाय्यपुस्तक नामा पाख्यान और प्रकृतिके प्रभूत कलासमुदायका महात्म्य तथा पुनर्जादिका विस्ततरूपसे वर्णन है। यह प्रकृतिखण्ड सुननेसे ऐश्वर्यसाम होता है।

गणेशजन्मप्रश्न, पार्वतीका पुण्यकथन, कालिकेय और गणेशकी उत्पत्ति, कालीयों और आमदम्यका अद्भुतचरित तथा गणेश और आमदम्यका घोर विवाद-कथन, सर्वविघ्नविनाशक गणेशखण्डमें ये सब विषय वर्णित हैं।

श्रीकृष्णजन्मप्रश्न, पीछे जन्माख्यान, गोकुलमें गमन, पुनर्जादिका वध, वायुकोमारज विविध लाजा, गोविंदीके साथ कृष्णको गारदी रावकीड़ा, निर्जनेमें राधाके साथ क्रीडा, पीछे अमूर्तके साथ हरिका मधुरा गमन, कंसादिका वध, कामीमें सन्दीपनके निकट विद्या प्रदण, यवनका वध, हरिका हारकागमन और कृष्ण कर्णक मरकासुरादियह। इन सब विषयोंका लक्षणम्-खण्डमें वर्णन है। ई विप्र । ये सब हस्तगत अथवा करनेसे मानवीका संसारवन्धन खण्डित होता है।

अन्तर, शैव या नारदोक्त संक्षेपोंके साथ प्रचलित ब्रह्मवेवर्तकी एकता नहीं है। रघुनन्दनकथन, सावर्णिक-नारदसंवाद, ब्रह्मवराहका हस्तान्त वा हस्तिका विवर्त-प्रसङ्ग, इन सबका प्रचलित ब्रह्मवेवर्तमें कुछ भी वर्णन नहीं है। यहाँ तक कि नारदपुराणमें जिन चार खण्डोंके नाम और संक्षेपमें विषयायुक्त दिये गये हैं, प्रच-लित ब्रह्मवेवर्त उस प्रकार चार खण्डोंमें विभक्त होने पर भी उनके विषयोंमें एकता नहीं देखी जाती। नार-दोक्त ब्रह्मखण्डोय सृष्टिकथन, नारदब्रह्मविवाद, नारद-की शिवभक्तिके गति और शिवसे ज्ञानप्राप्त, ये सब

विषय पाञ्चकलके ब्रह्मवेवर्तमें रहने पर भी नारद और मरीचिका गमन तथा मित्राचमनमें गमन एवं सावर्णिकी कथा विमकुल नहीं है। इनो प्रकार नार-दोक्त प्रकृतिखण्डमें सावर्णिकनारदसंवाद और सुपादप-के कृष्णसाहाय्यकाही कथा रहने पर भी पाञ्चकलके ब्रह्मवेवर्तमें नहीं है। केवल गोपद्वारे लक्षणकथा है। परन्तु इसमें प्रकृतिका महात्म्य और पुनर्जा-दि-का विस्तृत वर्णन है। नारदमें जिन प्रकार गणेश-खण्ड और कृष्णजन्मखण्डको अनुक्रमणिका है, पाञ्चकल-के ब्रह्मवेवर्तमें वे सभी पाये जाते हैं। हमने बोध होता है, कि ब्रह्मवेवर्त जब क्रमशः वर्तमानरूप धारण कर रहा था, उसी समय नारदोय अनुक्रमणिका मिली गई।

यह प्रश्न यह है, कि इस प्रचलित ब्रह्मवेवर्तको पादिब्रह्मवेवर्त मान सकते हैं या नहीं ?

ब्रह्मवेवर्तमें ही लिया है—

“विभूतं ब्रह्म कार्त्तव्यं कृतेन यत्न शोभक ।

ब्रह्मवेवर्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः ॥

इदं पुराणसूत्रं पुरातनं ब्रह्मणि ।

निरामये च गोमोके लक्षणे परमात्मना ॥

महातीर्थे पुनरे च दत्तं धर्मोय ब्रह्मणा ।

धर्मोयं स्रग्भवा शैत्या नारायणाय च ॥

नारायणोयं भगवान् प्रददो नारदाय च ।

नारदो व्यासदेवाय प्रददो जाड्वाताटे ॥

व्यासः पुराणसूत्रं तत् संवत्स विपुनं महत् ।

महाददो विद्वसेषो पुनर्दे सुमनोहरम् ॥

यदिदं कथितं ब्रह्मस्तत्समं निगमसः ।

षट्दशमहस्रतु व्यामर्षेनेदं पुराणकम् ॥”

(ब्रह्मख. १।१-१५)

इ शोभक । कृष्णकर्णक ब्रह्म विभूत हुआ है, हमने पुराविदगाय इसे ब्रह्मवेवर्त कहते हैं। निरामय गोमोके परमात्म लक्षणे ब्रह्माको यह पुराणसूत्र दिया था, पीछे पुनर महातीर्थमें ब्रह्मने धर्मको दान किया और धर्मने प्रवक्ष को कर स्रपुत नारायण-को, भगवान् नारायणने नारदको, नारदने फिर व्यास-देवको गङ्गाके किनारे यह पुराणसूत्र परंपर दिया था। व्यासने पुनः पुनर्दायक मित्राचमने इस सुमनोहर पुराणको सुके दान किया है। यह पुराण व्यासजन है और इसमें १८००० श्लोक हैं।

ब्रह्मवैवर्त की निम्न छल्लिके अनुसार इसे मास्य वा गोवर्षित ब्रह्मवैवर्त नहीं मान सकते ।

ओ कुछ हो, प्रचलित ब्रह्मवैवर्त में इतनी छल्लिम विषयों का समावेश है, कि उनमेंसे यदि चोर पञ्चलिम विषय निश्चय सेना बहुत ही कठिन है । प्रचलित पञ्चपुराणकी अपेक्षा भी इस ब्रह्मवैवर्त को प्राधुनिक ग्रन्थ कह सकते हैं । इस देश पर अब मुसलमानों का अधिकार हुआ चोर हिन्दू-मुसलमानों के यौन सम्बन्धों से जल नाना मोच जाति उत्पन्न होने लगी, उसी समय इस पुराणकी छटि हुई है ; यह इस पुराणोप ब्रह्मवैवर्त के यथार्थ हो जाना जाता है—

“ज्ञेय्यात् कुविन्दकन्यायां जीलाजातिर्भूव ह ॥”
(१०।१२१)

जो छल्लिके चोर छोर कुविन्दकन्या के गर्भ से जीला (लुलाहा) जाति उत्पन्न हुई है । केवल ब्रह्मदेश में लुलाहों की जीला कहते हैं । पश्चिमाञ्चल में जीलाहा नाम से ही प्रचलित है ज्ञात होता है कि ब्रह्मवैवर्त किसी ब्रह्मलो विद्वान् से रचा गया है । यही कारण है, कि शङ्खचक्र के युद्ध में ‘राक्षो’ चोर ‘वारुन्’ कोरीका नाम आया है । (१)

(१) भागवत के जैसा इस पुराण में भी उपपुराण के पाँच लक्षण और महापुराण के दस लक्षण निर्दिष्ट हुए हैं ।

“सर्ग्य प्रतिषर्ग्य धर्मो, मन्त्रतरणि च ।

धर्मानुयतिं धिप पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

एतद्वपुपुराणं लक्षणम् विदुर्धृषा ।

महातांच पुगणानां लक्षणं कथया मिते ॥

सत्रियापि विद्वद्विस्तितित्वेपाञ्च पाठनम् ।

कर्मणा वाचना वार्ता मन्त्रांच क्रमेण च ॥

निर्णयविशुद्धीं समुद्रब्रह्मवैवर्त का उद्देश्य है, परं यह पुराण अभी नहीं मिलता ।

दासिपात्य ब्रह्मवैवर्त नामक एक चोर पुराण प्रचलित है । किसी किसी का कहना है, कि इस पुराण में भी ब्रह्मवैवर्त के अनेक मन्त्र हैं । २

पञ्चद्वारदानविधि, चट्टिमकूटिमाहात्म्य, चादिरक्षे-
खरमाहात्म्य, एकादशीमाहात्म्य, लण्णस्तोत्र, गङ्गास्तोत्र,
गणेशकवच, गङ्गाचलमाहात्म्य, गर्भसुति, छटिका-
चलमाहात्म्य, तपस्तोत्रमाहात्म्य, तुलाकावेरोमाहात्म्य,
पञ्चानन्दमाहात्म्य, परशुराम के प्रति शङ्कर का उपदेश,
पुष्पवनमाहात्म्य, यकुमारमाहात्म्य, ब्रह्मरक्ष-
माहात्म्य, सुविचित्रमाहात्म्य, राघोदवसंवाद, ब्रह्मचल-
माहात्म्य, श्वषण्माहात्म्य, श्रीगोष्ठीमाहात्म्य, सर्वपु-
त्रमाहात्म्य, स्वामिगोष्ठीमाहात्म्य, ये सब ब्रह्मवैवर्त के
अन्तर्गत चोर कामीकेदारमाहात्म्य, कामीमाहात्म्य,
चम्पकारणमाहात्म्य, जल्पेश्वरमाहात्म्य, तुलाकावेरो-
माहात्म्य, दुर्गापुरोमाहात्म्य, देवीपुरोमाहात्म्य, पञ्च-
नदमाहात्म्य, पुष्पवनमाहात्म्य, बुद्धिगिरिमाहात्म्य,
वेतालकवच, वेदारण्यमाहात्म्य, श्वेतारण्यमाहात्म्य,
सुवर्णस्थानमाहात्म्य चोर स्वामिगिरिमाहात्म्य ये सब
ग्रन्थ ब्रह्मवैवर्त के अन्तर्गत माने गये हैं ।

वर्णनं प्रलवानांच मोक्षस्य च विद्वगम् ।

उत्कीर्तनं हरेरेव देवानांच धृष्टकृष्णम् ॥

दशालिङ्गं लक्षणं महतां परिकीर्तितम् ।

संस्थानञ्च पुराणानां नियोज्य कथयामि ते ॥”

(कृष्णवर्मणः १३२ म०)

(भागवत के विवरण में विष्णुभागवत के पुराणलक्षणों पर
इष्टम् ।)

(२) इस पुराण की सूची समझ कर न लगे ।



अयोध्या भाग सम्पूर्ण ।

